गीताप्रेस, गोरखपुरसे प्रकाशित पुराण, उपनिषद् आदि

॥ ॐ श्रीसाम्बशिवाय नमः ॥ ॥ ॐ श्रीगणेशाय नमः ॥

2224

महर्षि वेदव्यासप्रणीत

श्रीशिवमहापुराण

[द्वितीय-खण्ड—उत्तरार्ध]

(शतरुद्रसंहिता, कोटिरुद्रसंहिता, उमासंहिता, कैलाससंहिता, वायवीयसंहिता)

[सचित्र, मूल संस्कृत श्लोक—हिन्दी व्याख्यासहित]

त्वमेव माता च पिता त्वमेव
त्वमेव बन्धुश्च सखा त्वमेव।
त्वमेव विद्या द्रविणं त्वमेव
त्वमेव सर्वं मम देवदेव॥

गीताप्रेस, गोरखपुर

॥ श्रीहरिः ॥

श्रीशिवमहापुराण

विषय-सूची

अध्याय	विषय	पृष्ठ-संख्या

शतरुद्रसंहिता

कोटिरुद्रसंहिता

अध्याय	विषय	पृष्ठ-संख्या

उमासंहिता

अध्याय	विषय	पृष्ठ-संख्या

कैलाससंहिता

वायवीयसंहिता—पूर्वखण्ड

अध्याय	विषय	पृष्ठ-संख्या

वायवीयसंहिता—उत्तरखण्ड

॥ ॐ श्रीसाम्बशिवाय नमः ॥ ॥ ॐ श्रीगणेशाय नमः ॥

श्रीशिवमहापुराण

(द्वितीय-खण्ड—उत्तरार्ध)

तृतीया शतरुद्रसंहिता

अथ प्रथमोऽध्यायः

सूतजीसे शौनकादि मुनियोंका शिवावतारविषयक प्रश्न

वन्दे महानन्दमनन्तलीलं महेश्वरं सर्वविभुं महान्तम्।
गौरीप्रियं कार्तिकविघ्नराजसमुद्भवं शङ्करमादिदेवम्॥

मैं परम आनन्दस्वरूप, अनन्त लीलाओंसे युक्त, सर्वत्र व्यापक, महान्, गौरीप्रिय, कार्तिकेय और गजाननको उत्पन्न करनेवाले आदिदेव महेश्वर शंकरको नमस्कार करता हूँ।

शौनक उवाच

व्यासशिष्य महाभाग सूत ज्ञानदयानिधे।
वद शम्भ्ववतारांश्च यैरकार्षीत्सतां शिवम्॥ १

शौनकजी बोले—हे व्यासशिष्य! हे महाभाग! हे ज्ञान और दयाके सागर सूतजी! आप शिवजीके उन अवतारोंका वर्णन कीजिये, जिनके द्वारा [उन्होंने] सज्जन व्यक्तियोंका कल्याण किया है॥ १॥

सूत उवाच

मुने शौनक सद्भक्त्या दत्तचित्तो जितेन्द्रियः।
अवताराञ्छिवस्याहं वच्मि ते मुनये शृणु॥ २

सूतजी बोले—हे मुने! हे शौनक! मैं [शिवजीमें] मन लगाकर और इन्द्रियोंको वशमें करके भक्तिपूर्वक शिवजीके अवतारोंका वर्णन आप महर्षिसे कर रहा हूँ, आप सुनिये॥ २॥

एतत्पृष्टः पुरा नन्दी शिवमूर्तिस्सतां गतिः।
सनत्कुमारेण मुने तमुवाच शिवं स्मरन्॥ ३

हे मुने! पूर्वकालमें इसी बातको सनत्कुमारने शिवस्वरूप तथा सत्पुरुषोंकी रक्षा करनेमें समर्थ नन्दीश्वरसे पूछा था, तब शिवजीका स्मरण करते हुए नन्दीश्वरने उनसे कहा था॥ ३॥

नन्दीश्वर उवाच

असङ्ख्याता हि कल्पेषु विभोः सर्वेश्वरस्य वै।
अवतारास्तथापीह वच्म्यहं तान्यथामति॥ ४

नन्दीश्वर बोले—[हे सनत्कुमार!] सर्वव्यापक तथा सर्वेश्वर शंकरके विविध कल्पोंमें यद्यपि असंख्य अवतार हुए हैं, फिर भी मैं अपनी बुद्धिके अनुसार यहाँपर उनका वर्णन कर रहा हूँ॥ ४॥

एकोनविंशकः कल्पो विज्ञेयः श्वेतलोहितः।
सद्योजातावतारस्तु प्रथमः परिकीर्तितः॥ ५

उन्नीसवाँ कल्प श्वेतलोहित नामवाला जानना चाहिये, इसमें प्रथम सद्योजात अवतार कहा गया है॥ ५॥

तस्मिंस्तत्परमं ब्रह्म ध्यायतो ब्रह्मणस्तथा।
उत्पन्नस्तु शिखायुक्तः कुमारः श्वेतलोहितः॥ ६

उस कल्पमें जब ब्रह्माजी परम ब्रह्मके ध्यानमें अवस्थित थे, उसी समय उनसे शिखासे युक्त श्वेत और लोहित वर्णवाला एक कुमार उत्पन्न हुआ॥ ६॥

तं दृष्ट्वा पुरुषं ब्रह्मा ब्रह्मरूपिणमीश्वरम्।
ज्ञात्वा ध्यात्वा स हृदये ववन्दे प्रयताञ्जलिः॥ ७

ब्रह्माजीने उस पुरुषको देखते ही उन्हें ब्रह्मस्वरूप ईश्वर जानकर उनका हृदयमें ध्यान करके हाथ जोड़कर प्रणाम किया॥ ७॥

सद्योजातं शिवं बुद्ध्वा जहर्ष भुवनेश्वरः।
मुहुर्मुहुश्च सद्बुद्ध्या परं तं समचिन्तयत्॥ ८

उनको सद्योजात शिव समझकर वे भुवनेश्वर अत्यन्त हर्षित हुए और बार-बार सद्बुद्धिपूर्वक परमतत्त्वरूप उन पुरुषका चिन्तन करने लगे॥ ८॥

ततोऽस्य ध्यायतः श्वेताः प्रादुर्भूता यशस्विनः।
कुमाराः परविज्ञानपरब्रह्मस्वरूपिणः॥ ९
सुनन्दो नन्दनश्चैव विश्वनन्दोपनन्दनौ।
शिष्यास्तस्य महात्मानो यैस्तद्ब्रह्म समावृतम्॥ १०

उसके बाद ब्रह्माके पुनः ध्यान करनेपर श्वेतवर्ण, यशस्वी, परम ज्ञानी एवं परब्रह्मस्वरूपवाले अनेक कुमार उत्पन्न हुए। उनके नाम सुनन्द, नन्दन, विश्वनन्द और उपनन्दन थे। ये सभी महात्मा उनके शिष्य हुए, उनके द्वारा यह सम्पूर्ण ब्रह्मलोक समावृत है॥ ९-१०॥

सद्योजातश्च वै शम्भुर्ददौ ज्ञानं च वेधसे।
सर्गशक्तिमपि प्रीत्या प्रसन्नः परमेश्वरः॥ ११

उन्हीं सद्योजात नामक परमेश्वर शिवजीने प्रसन्न होकर प्रेमपूर्वक ब्रह्माजीको ज्ञान प्रदान किया एवं सृष्टि उत्पन्न करनेका सामर्थ्य भी प्रदान किया॥ ११॥

ततो विंशतिमः कल्पो रक्तो नाम प्रकीर्तितः।
ब्रह्मा यत्र महातेजा रक्तवर्णमधारयत्॥ १२

इसके बाद बीसवाँ रक्त नामक कल्प कहा गया है, जिसमें महातेजस्वी ब्रह्माजीने रक्तवर्ण धारण किया॥ १२॥

ध्यायतः पुत्रकामस्य प्रादुर्भूतो विधेः सुतः।
रक्तमाल्याम्बरधरो रक्ताक्षो रक्तभूषणः॥ १३

जब पुत्रप्राप्तिकी कामनासे ब्रह्माजी ध्यानमें लीन थे, उसी समय उनसे रक्तवर्णकी माला तथा वस्त्रोंको धारण किये हुए रक्तनेत्रवाला तथा रक्त आभूषणोंसे अलंकृत एक कुमार प्रादुर्भूत हुआ॥ १३॥

स तं दृष्ट्वा महात्मानं कुमारं ध्यानमाश्रितः।
वामदेवं शिवं ज्ञात्वा प्रणनाम कृताञ्जलिः॥ १४

ध्यानमें निमग्न ब्रह्माजीने उन महात्मा कुमारको देखते ही उन्हें वामदेव शिव जानकर हाथ जोड़ करके प्रणाम किया॥ १४॥

ततस्तस्य सुता ह्यासंश्चत्वारो रक्तवाससः।
विरजाश्च विवाहश्च विशोको विश्वभावनः॥ १५

तदुपरान्त उनसे लाल वस्त्र धारण किये हुए विरजा, विवाह, विशोक और विश्वभावन नामक चार पुत्र उत्पन्न हुए॥ १५॥

वामदेवः स वै शम्भुर्ददौ ज्ञानं च वेधसे।
सर्गशक्तिमपि प्रीत्या प्रसन्नः परमेश्वरः॥ १६

उन्हीं वामदेव नामक शिवने प्रसन्न होकर प्रेमपूर्वक ब्रह्माजीको ज्ञान प्रदान किया और सृष्टि उत्पन्न करनेकी शक्ति भी प्रदान की॥ १६॥

एकविंशतिमः कल्पः पीतवासा इति स्मृतः।
ब्रह्मा यत्र महाभागः पीतवासा बभूव ह॥ १७

ध्यायतः पुत्रकामस्य विधेर्जातः कुमारकः।
पीतवस्त्रादिकप्रौढो महातेजा महाभुजः॥ १८

इक्कीसवाँ कल्प पीतवासा—इस नामसे कहा गया है। इस कल्पमें महाभाग्यशाली ब्रह्मा पीतवस्त्र धारण किये हुए थे। [इस कल्पमें] जब ब्रह्माजी पुत्रकी अभिलाषासे ध्यान कर रहे थे, उसी समय उनसे पीताम्बरधारी, महातेजस्वी तथा महाबाहु एक कुमार अवतरित हुआ॥ १७-१८॥

तं दृष्ट्वा ध्यानसंयुक्तं ज्ञात्वा तत्पुरुषं शिवम्।
प्रणनाम ततो बुद्ध्या गायत्रीं शाङ्करीं विधिः॥ १९

जपित्वा तु महादेवीं सर्वलोकनमस्कृताम्।
प्रसन्नस्तु महादेवो ध्यानयुक्तेन चेतसा॥ २०

उस कुमारको देखते ही ध्यानयुक्त ब्रह्माने उन्हें तत्पुरुष शिव जानकर प्रणाम किया और शुद्धबुद्धिसे वे शिवगायत्री (**तत्पुरुषाय विद्महे महादेवाय धीमहि**)-का जप करने लगे। सम्पूर्ण लोकोंसे नमस्कृत महादेवी गायत्रीका ध्यानमग्न मनसे जप करते हुए देखकर महादेवजी ब्रह्मापर बहुत ही प्रसन्न हुए॥ १९-२०॥

ततोऽस्य पार्श्वतो दिव्याः प्रादुर्भूताः कुमारकाः।
पीतवस्त्रा हि सकला योगमार्गप्रवर्तकाः॥ २१

उसके बाद ब्रह्माजीके पार्श्वभागसे पीतवस्त्रधारी अनेक दिव्य कुमार उत्पन्न हुए; वे सभी कुमार योगमार्गके प्रवर्तकके रूपमें प्रसिद्ध हुए॥ २१॥

ततस्तस्मिन्गते कल्पे पीतवर्णे स्वयम्भुवः।
पुनरन्यः प्रवृत्तस्तु कल्पो नाम्ना शिवस्तु सः॥ २२

तदनन्तर ब्रह्माजीके पीतवासा नामक कल्पके व्यतीत हो जानेके पश्चात् शिव नामक एक अन्य कल्प प्रारम्भ हुआ॥ २२॥

एकार्णवे संव्यतीते दिव्यवर्षसहस्रके।
स्रष्टुकामः प्रजा ब्रह्मा चिन्तयामास दुःखितः॥ २३

उस कल्पके हजार दिव्य वर्ष बीतनेपर जब सारा जगत् जलमय था, उस समय ब्रह्माजी प्रजाओंकी सृष्टि करनेके विचारसे [समस्त जगत्को जलमय देखकर] दुखी होकर सोचने लगे॥ २३॥

ततोऽपश्यन्महातेजाः प्रादुर्भूतं कुमारकम्।
कृष्णवर्णं महावीर्यं दीप्यमानं स्वतेजसा॥ २४

धृतकृष्णाम्बरोष्णीषं कृष्णयज्ञोपवीतिनम्।
कृष्णेन मौलिना युक्तं कृष्णस्नानानुलेपनम्॥ २५

उसी समय महातेजस्वी ब्रह्माने कृष्णवर्णवाले, महापराक्रमी तथा अपने तेजसे दीप्त एक कुमारको उत्पन्न हुआ देखा, जो काला वस्त्र, काली पगड़ी, काले रंगका यज्ञोपवीत, कृष्णवर्णका मुकुट तथा कृष्णवर्णके सुगन्धित चन्दनका अनुलेप धारण किये हुए था॥ २४-२५॥

स तं दृष्ट्वा महात्मानमघोरं घोरविक्रमम्।
ववन्दे देवदेवेशमद्भुतं कृष्णपिङ्गलम्॥ २६

अघोरं तु ततो ब्रह्मा ब्रह्मरूपं व्यचिन्तयत्।
तुष्टाव वाग्भिरिष्टाभिर्भक्तवत्सलमव्ययम्॥ २७

ब्रह्माजीने उन महात्मा, घोर पराक्रमी, कृष्णपिंगल वर्णयुक्त, अद्भुत तथा अघोर रूपधारी देवाधिदेव शंकरको देखकर प्रणाम किया। इसके बाद ब्रह्माजी अघोरस्वरूप परब्रह्मका ध्यान करने लगे और उन भक्तवत्सल तथा अविनाशी अघोरकी प्रिय वचनोंसे स्तुति करने लगे॥ २६-२७॥

अथास्य पार्श्वतः कृष्णाः कृष्णस्नानानुलेपनाः।
चत्वारस्तु महात्मानः सम्बभूवुः कुमारकाः॥ २८

कृष्णः कृष्णशिखश्चैव कृष्णास्यः कृष्णकण्ठधृक्।
इति तेऽव्यक्तनामानः शिवरूपाः सुतेजसः॥ २९

तत्पश्चात् ब्रह्माजीके पार्श्वभागसे कृष्ण सुगन्धानुलेपनसे लिप्त कृष्णवर्णके चार महात्मा कुमार उत्पन्न हुए। कृष्ण, कृष्णशिख, कृष्णास्य, कृष्णकण्ठधृक्—इस प्रकारके अव्यक्त नामवाले वे परमतेजसे सम्पन्न तथा शिवस्वरूप थे॥ २८-२९॥

एवंभूता महात्मानो ब्रह्मणः सृष्टिहेतवे।
योगं प्रवर्तयामासुर्घोराख्यं महदद्भुतम्॥ ३०

इस प्रकारके उन महात्माओंने ब्रह्माजीकी सृष्टि करनेके लिये घोर [अघोर] नामक अत्यन्त अद्भुत योगमार्गका उपदेश किया॥ ३०॥

अथान्यो ब्रह्मणः कल्पः प्रावर्तत मुनीश्वराः।
विश्वरूप इति ख्यातो नामतः परमाद्भुतः॥ ३१

[श्रीसूतजीने कहा—] हे मुनीश्वरो! इसके बाद ब्रह्माजीका विश्वरूप इस नामसे प्रसिद्ध एक अत्यन्त अद्भुत कल्प प्रारम्भ हुआ॥ ३१॥

ब्रह्मणः पुत्रकामस्य ध्यायतो मनसा शिवम्।
प्रादुर्भूता महानादा विश्वरूपा सरस्वती॥ ३२

तथाविधः स भगवानीशानः परमेश्वरः।
शुद्धस्फटिकसङ्काशः सर्वाभरणभूषितः॥ ३३

उस कल्पमें पुत्रकामनावाले ब्रह्माजीने शिवजीका मनसे ध्यान किया, तब महानादस्वरूपवाली विश्वरूपा सरस्वती उत्पन्न हुईं और उसी तरह शुद्ध स्फटिकके समान कान्तिवाले तथा सभी आभूषणोंसे अलंकृत परमेश्वर भगवान् शिव ईशानके रूपमें प्रकट हुए॥ ३२-३३॥

तं दृष्ट्वा प्रणनामासौ ब्रह्मेशानमजं विभुम्।
सर्वगं सर्वदं सर्वं सुरूपं रूपवर्जितम्॥ ३४

ब्रह्माने अजन्मा, विभु, सर्वगामी, सब कुछ देनेवाले, सर्वस्वरूप, रूपवान् एवं रूपरहित उन ईशानको देखकर प्रणाम किया॥ ३४॥

ईशानोऽपि तथादिश्य सन्मार्गं ब्रह्मणे विभुः।
सशक्तिः कल्पयाञ्चक्रे स बालांश्चतुरः शुभान्॥ ३५

इसके बाद सर्वव्यापक उन ईशानने भी ब्रह्माको सन्मार्गका उपदेश करके अपनी शक्तिसे युक्त हो चार सुन्दर बालकोंको उत्पन्न किया॥ ३५॥

जटी मुण्डी शिखण्डी च अर्धमुण्डश्च जज्ञिरे।
योगेनादिश्य सद्धर्मं कृत्वा योगगतिं गताः॥ ३६

वे जटी, मुण्डी, शिखण्डी तथा अर्धमुण्ड नामवाले उत्पन्न हुए। वे योगके द्वारा उपदेश देकर सद्धर्म करके योग-गतिको प्राप्त हो गये॥ ३६॥

एवं संक्षेपतः प्रोक्तः सद्यादीनां समुद्भवः।
सनत्कुमार सर्वज्ञ लोकानां हितकाम्यया॥ ३७

[नन्दीश्वर बोले—] हे सनत्कुमार! हे सर्वज्ञ! इस प्रकार मैंने लोकके कल्याणके निमित्त शिवके सद्योजात आदि अवतारोंका संक्षेपसे वर्णन किया॥ ३७॥

अथ तेषां महाप्राज्ञ व्यवहारं यथायथम्।
त्रिलोकहितकारं हि सर्वं ब्रह्माण्डसंस्थितम्॥ ३८

हे महाप्राज्ञ! तीनों लोकोंके लिये हितकर उनका सम्पूर्ण यथोचित व्यवहार इस ब्रह्माण्डमें फैला हुआ है॥ ३८॥

ईशानः पुरुषोऽघोरो वामसंज्ञस्तथैव च।
ब्रह्मसंज्ञा महेशस्य मूर्तयः पञ्च विश्रुताः॥ ३९

महेश्वरकी ईशान, तत्पुरुष, अघोर, वामदेव तथा [सद्योजात] नामक पाँच मूर्तियाँ ब्रह्म संज्ञासे [इस जगत्‌में] प्रख्यात हैं॥ ३९॥

ईशानः शिवरूपश्च गरीयान्प्रथमः स्मृतः।
भोक्तारं प्रकृतेः साक्षात्क्षेत्रज्ञमधितिष्ठति॥ ४०

उनमें ईशान प्रथम तथा सर्वश्रेष्ठ शिवरूप कहा गया है, जो साक्षात् प्रकृतिका भोग करनेवाले क्षेत्रज्ञको अधिकृत करके स्थित है॥ ४०॥

शैवस्तत्पुरुषाख्यश्च स्वरूपो हि द्वितीयकः।
गुणाश्रयात्मकं भोग्यं सर्वज्ञमधितिष्ठति॥ ४१

शिवजीका द्वितीय रूप तत्पुरुषसंज्ञक है, जो गुणोंके आश्रयवाले तथा भोगनेयोग्य सर्वज्ञपर अधिकार करके स्थित है॥ ४१॥

धर्मांय स्वाङ्गसंयुक्तं बुद्धितत्त्वं पिनाकिनः।
अघोराख्यस्वरूपो यस्तिष्ठत्यन्तस्तृतीयकः॥ ४२

शिवजीका जो तीसरा अघोर नामक रूप है, वह धर्मके व्यवहारके लिये अपने अंगोंसे संयुक्त बुद्धितत्त्वका विस्तार करके अन्तःकरणमें अवस्थित है॥ ४२॥

वामदेवाह्वयो रूपश्चतुर्थः शङ्करस्य हि।
अहङ्कृतेरधिष्ठानो बहुकार्यकरः सदा॥ ४३

शिवजीका चौथा रूप वामदेवके नामसे विख्यात है, जो समस्त अहंकारका अधिष्ठान होकर अनेक प्रकारके कार्योंको सर्वदा सम्पादित करनेवाला है॥ ४३॥

ईशानाह्वस्वरूपो हि शङ्करस्येश्वरः सदा।
श्रोत्रस्य वचसश्चापि विभोर्व्योम्नस्तथैव च॥ ४४

सर्वव्यापी शिवजीका ईशान नामक रूप श्रोत्रेन्द्रिय, वागिन्द्रिय तथा आकाशका ईश्वर है॥ ४४॥

त्वक्पाणिस्पर्शवायूनामीश्वरं रूपमैश्वरम्।
पुरुषाख्यं विचारज्ञा मतिमन्तः प्रचक्षते॥ ४५

बुद्धिमान् विचारक शिवजीके तत्पुरुष नामक रूपको त्वचा, पाणि, स्पर्श और वायुका ईश्वर मानते हैं॥ ४५॥

वपुषश्च रसस्यापि रूपस्याग्नेस्तथैव च।
अघोराख्यमधिष्ठानं रूपं प्राहुर्मनीषिणः॥ ४६

मनीषीगण शिवजीके अघोर नामसे विख्यात रूपको शरीर, रस, रूप एवं अग्निका अधिष्ठान मानते हैं॥ ४६॥

रशनायाश्च पायोश्च रसस्यापां तथैव च।
ईश्वरं वामदेवाख्यं स्वरूपं शांकरं स्मृतम्॥ ४७
घ्राणस्य चैवोपस्थस्य गंधस्य च भुवस्तथा।
सद्योजाताह्वयं रूपमीश्वरं शांकरं विदुः॥ ४८

शिवजीका वामदेव नामक रूप जिह्वा, पायु, रस तथा जलका स्वामी माना गया है। शिवजीके सद्योजात नामक रूपको नासिका, उपस्थेन्द्रिय, गन्ध एवं भूमिका अधिष्ठातृदेवता कहा गया है॥ ४७-४८॥

इमे स्वरूपाः शंभोर्हि वन्दनीयाः प्रयत्नतः।
श्रेयोऽर्थिभिर्नरैर्नित्यं श्रेयसामेकहेतवः॥ ४९

अपना कल्याण चाहनेवाले पुरुषोंको शिवजीके इन रूपोंकी प्रयत्नपूर्वक नित्य वन्दना करनी चाहिये; क्योंकि [ये रूप] सभी प्रकारके कल्याणके एकमात्र कारण हैं॥ ४९॥

यः पठेच्छृणुयाद्वापि सद्यादीनां समुद्भवम्।
स भुक्त्वा सकलान्कामान्प्रयाति परमां गतिम्॥ ५०

जो व्यक्ति सद्योजात आदिकी उत्पत्तिको सुनता अथवा पढ़ता है, वह सम्पूर्ण भोगोंको भोगकर परमगति प्राप्त कर लेता है॥ ५०॥

इति श्रीशिवमहापुराणे तृतीयायां शतरुद्रसंहितायां शिवस्य पञ्चब्रह्मावतारवर्णनं नाम प्रथमोऽध्यायः॥ १॥

॥ इस प्रकार श्रीशिवमहापुराणके अन्तर्गत तृतीय शतरुद्रसंहितामें शिवका पंचब्रह्मावतारवर्णन नामक पहला अध्याय पूर्ण हुआ॥ १॥

अथ द्वितीयोऽध्यायः

भगवान् शिवकी अष्टमूर्तियोंका वर्णन

नन्दीश्वर उवाच

शृणु तात महेशस्यावतारान्परमान्प्रभो।
सर्वकार्यकराँल्लोके सर्वस्य सुखदां मुने॥ १

नन्दीश्वर बोले—हे प्रभो! हे तात! हे मुने! अब महेश्वरके समस्त प्राणियोंको सुख प्रदान करनेवाले तथा लोकके सम्पूर्ण कार्योंको सम्पादित करनेवाले अन्य श्रेष्ठतम अवतारोंको सुनें॥ १॥

तस्य शंभोः परेशस्य मूर्त्यष्टकमयं जगत्।
तस्मिन्व्याप्य स्थितं विश्वं सूत्रे मणिगणा इव॥ २

यह सारा संसार परेश शिवकी उन आठ मूर्तियोंका स्वरूप ही है, उस मूर्तिसमूहमें व्याप्त होकर विश्व उसी प्रकार स्थित है, जैसे सूत्रमें [पिरोयी हुई] मणियाँ॥ २॥

शर्वो भवस्तथा रुद्र उग्रो भीमः पशोः पतिः।
ईशानश्च महादेवो मूर्तयश्चाष्ट विश्रुताः॥ ३

भूम्यंभोऽग्निमरुद्व्योमक्षेत्रज्ञार्कनिशाकराः।
अधिष्ठिताश्च शर्वाद्यैरष्टरूपैः शिवस्य हि॥ ४

धत्ते चराचरं विश्वं रूपं विश्वंभरात्मकम्।
शङ्करस्य महेशस्य शास्त्रस्यैवेति निश्चयः॥ ५

संजीवनं समस्तस्य जगतः सलिलात्मकम्।
भव इत्युच्यते रूपं भवस्य परमात्मनः॥ ६

बहिरंतर्जगद्विश्वं बिभर्ति स्पन्दते स्वयम्।
उग्र इत्युच्यते सद्भी रूपमुग्रस्य सत्प्रभोः॥ ७

सर्वावकाशदं सर्वव्यापकं गगनात्मकम्।
रूपं भीमस्य भीमाख्यं भूतवृन्दस्य भेदकम्॥ ८

सर्वात्मनामधिष्ठानं सर्वक्षेत्रनिवासकम्।
रूपं पशुपतेर्ज्ञेयं पशुपाशनिकृन्तनम्॥ ९

सन्दीपयज्जगत्सर्वं दिवाकरसमाह्वयम्।
ईशानाख्यं महेशस्य रूपं दिवि विसर्पति॥ १०

आप्याययति यो विश्वममृतांशुर्निशाकरः।
महादेवस्य तद्रूपं महादेवस्य चाह्वयम्॥ ११

आत्मा तस्याष्टमं रूपं शिवस्य परमात्मनः।
व्यापिकेतरमूर्तीनां विश्वं तस्माच्छिवात्मकम्॥ १२

शाखाः पुष्यन्ति वृक्षस्य वृक्षमूलस्य सेचनात्।
तद्वदस्य वपुर्विश्वं पुष्यते च शिवार्चनात्॥ १३

यथेह पुत्रपौत्रादेः प्रीत्या प्रीतो भवेत्पिता।
तथा विश्वस्य सम्प्रीत्या प्रीतो भवति शङ्करः॥ १४

शर्व, भव, रुद्र, उग्र, भीम, पशुपति, ईशान और महादेव—ये [शंकरकी] आठ मूर्तियाँ विख्यात हैं॥ ३॥

भूमि, जल, अग्नि, पवन, आकाश, क्षेत्रज्ञ, सूर्य एवं चन्द्रमा—ये निश्चय ही शिवके शर्व आदि आठों रूपोंसे अधिष्ठित हैं। महेश्वर शंकरका विश्वम्भरात्मक [शर्व] रूप चराचर विश्वको धारण करता है—ऐसा ही शास्त्रका निश्चय है॥ ४-५॥

समस्त संसारको जीवन देनेवाला जल परमात्मा शिवका भव नामक रूप कहा जाता है॥ ६॥

जो प्राणियोंके भीतर तथा बाहर गतिशील रहकर विश्वका भरण-पोषण करता है और स्वयं भी स्पन्दित होता रहता है, सज्जनोंद्वारा उसे उग्रस्वरूप परमात्मा शिवका उग्र रूप कहा जाता है॥ ७॥

भीमस्वरूप शिवका सबको अवकाश देनेवाला, सर्वव्यापक तथा आकाशात्मक भीम नामक रूप कहा गया है, वह महाभूतोंका भेदन करनेवाला है॥ ८॥

जो सभी आत्माओंका अधिष्ठान, समस्त क्षेत्रोंका निवासस्थान तथा पशुपाशको काटनेवाला है, उसे पशुपतिका [पशुपति नामक] रूप जानना चाहिये॥ ९॥

सूर्यनामसे जो विख्यात होकर सम्पूर्ण जगत्को प्रकाशित करता है और आकाशमें भ्रमण करता है, वह महेशका ईशान नामक रूप है॥ १०॥

जो अमृतके समान किरणोंसे युक्त होकर चन्द्ररूपसे सारे संसारको आप्यायित करता है, महादेव शिवजीका वह रूप महादेव नामसे विख्यात है॥ ११॥

उन परमात्मा शिवका आठवाँ रूप आत्मा है, जो अन्य सभी मूर्तियोंकी अपेक्षा सर्वव्यापक है। इसलिये यह समस्त चराचर जगत् शिवका ही स्वरूप है॥ १२॥

जिस प्रकार वृक्षकी जड़ (मूल)-को सींचनेसे उसकी शाखाएँ पुष्ट होती हैं, उसी प्रकार शिवका शरीरभूत संसार शिवार्चनसे पुष्ट होता है॥ १३॥

जिस प्रकार इस लोकमें पुत्र, पौत्रादिके प्रसन्न होनेपर पिता प्रफुल्लित हो जाता है, उसी प्रकार संसारके प्रसन्न होनेसे शिवजी प्रसन्न रहते हैं॥ १४॥

क्रियते यस्य कस्यापि देहिनो यदि निग्रहः।
अष्टमूर्तेरनिष्टं तत्कृतमेव न संशयः॥ १५

यदि किसीके द्वारा जिस किसी भी शरीरधारीको कष्ट दिया जाता है, तो मानो अष्टमूर्ति शिवका ही वह अनिष्ट किया गया है, इसमें संशय नहीं है॥ १५॥

अष्टमूर्त्यात्मना विश्वमधिष्ठायास्थितं शिवम्।
भजस्व सर्वभावेन रुद्रं परमकारणम्॥ १६

इति प्रोक्ताः स्वरूपास्ते विधिपुत्राष्टविश्रुताः।
सर्वोपकारनिरताः सेव्याः श्रेयोऽर्थिभिर्नरैः॥ १७

अतः अष्टमूर्तिरूपसे सारे विश्वको व्याप्त करके सर्वतोभावेन स्थित परमकारण रुद्र शिवका सर्वभावसे भजन कीजिये। [हे सनत्कुमार!] हे विधिपुत्र! इस प्रकार मैंने आपसे शिवके प्रसिद्ध आठ स्वरूपोंका वर्णन किया, अपना कल्याण चाहनेवाले मनुष्योंको सभीके उपकारमें निरत इन रूपोंकी उपासना करनी चाहिये॥ १६-१७॥

इति श्रीशिवमहापुराणे तृतीयायां शतरुद्रसंहितायां शिवाष्टमूर्त्तिवर्णनं नाम द्वितीयोऽध्यायः॥ २॥

॥ इस प्रकार श्रीशिवमहापुराणके अन्तर्गत तृतीय शतरुद्रसंहितामें शिवाष्टमूर्तिवर्णन नामक दूसरा अध्याय पूर्ण हुआ॥ २॥

अथ तृतीयोऽध्यायः

भगवान् शिवका अर्धनारीश्वर-अवतार एवं सतीका प्रादुर्भाव

नन्दीश्वर उवाच

शृणु तात महाप्राज्ञ विधिकामप्रपूरकम्।
अर्द्धनारीनराख्यं हि शिवरूपमनुत्तमम्॥ १

यदा सृष्टाः प्रजाः सर्वाः न व्यवर्द्धन्त वेधसा।
तदा चिंताकुलोऽभूत्स तेन दुःखेन दुखितः॥ २

नन्दीश्वर बोले—हे तात! हे महाप्राज्ञ! अब मैं ब्रह्माजीकी मनोकामनाओंको पूर्ण करनेवाले शिवके उत्तम अर्धनारीश्वर नामक रूपका वर्णन कर रहा हूँ, उसे सुनें। ब्रह्माके द्वारा विरचित समस्त प्रजाओंका जब विस्तार नहीं हुआ, तब उस दुःखसे व्याकुल हो वे चिन्तित रहने लगे॥ १-२॥

नभोवाणी तदाभूद्वै सृष्टिं मिथुनजां कुरु।
तच्छ्रुत्वा मैथुनीं सृष्टिं ब्रह्मा कर्तुममन्यत॥ ३

नारीणां कुलमीशानान्निर्गतं न पुरा यतः।
ततो मैथुनजां सृष्टिं कर्तुं शेके न पद्मभूः॥ ४

तब आकाशवाणी हुई कि आप मैथुनी सृष्टि करें। यह सुनकर ब्रह्माने मैथुनी सृष्टि करनेका निश्चय किया। उस समय शिवजीसे स्त्रियाँ उत्पन्न नहीं हुई थीं, अतः ब्रह्माजी मैथुनी सृष्टि करनेमें समर्थ नहीं हो सके॥ ३-४॥

प्रभावेण विना शंभोर्न जायेरन्निमाः प्रजाः।
एवं संचिन्तयन्ब्रह्मा तपः कर्त्तुं प्रचक्रमे॥ ५

शिवया परया शक्त्या संयुक्तं परमेश्वरम्।
संचिन्त्य हृदये प्रीत्या तेपे स परमं तपः॥ ६

तीव्रेण तपसा तस्य संयुक्तस्य स्वयंभुवः।
अचिरेणैव कालेन तुतोष स शिवो द्रुतम्॥ ७

शिवके प्रभावके बिना इन प्रजाओंकी वृद्धि नहीं होगी—ऐसा विचार करते हुए ब्रह्माजी तप करनेको उद्यत हुए। पार्वतीरूप परम शक्तिसे संयुक्त परमेश्वर शिवका हृदयमें ध्यानकर वे अत्यन्त प्रीतिसे महान् तपस्या करने लगे। इस प्रकारकी उग्र तपस्यासे संयुक्त हुए उन स्वयम्भू ब्रह्मापर थोड़े समयमें शिवजी शीघ्र ही प्रसन्न हो गये॥ ५—७॥

ततः पूर्णचिदीशस्य मूर्तिमाविश्य कामदाम्।
अर्द्धनारीनरो भूत्वा गतो ब्रह्मान्तिकं हरः॥ ८

तं दृष्ट्वा शङ्करं देवं शक्त्या परमयान्वितम्।
प्रणम्य दण्डवद्ब्रह्मा स तुष्टाव कृताञ्जलिः॥ ९

अथ देवो महादेवो वाचा मेघगभीरया।
संभवाय सुसंप्रीतो विश्वकर्ता महेश्वरः॥ १०

ईश्वर उवाच

वत्स वत्स महाभाग मम पुत्र पितामह।
ज्ञातवानस्मि सर्वं तत्तत्त्वतस्ते मनोरथम्॥ ११
प्रजानामेव वृद्ध्यर्थं तपस्तप्तं त्वयाधुना।
तपसा तेन तुष्टोऽस्मि ददामि च तवेप्सितम्॥ १२

इत्युक्त्वा परमोदारं स्वभावमधुरं वचः।
पृथक्चकार वपुषो भागाद्देवीं शिवां शिवः॥ १३

तां दृष्ट्वा परमां शक्तिं पृथग्भूतां शिवागताम्।
प्रणिपत्य विनीतात्मा प्रार्थयामास तां विधिः॥ १४

ब्रह्मोवाच

देवदेवेन सृष्टोऽहमादौ त्वत्पतिना शिवे।
प्रजाः सर्वा नियुक्ताश्च शंभुना परमात्मना॥ १५

मनसा निर्मिताः सर्वे शिवे देवादयो मया।
न वृद्धिमुपगच्छन्ति सृज्यमानाः पुनः पुनः॥ १६

मिथुनप्रभवामेव कृत्वा सृष्टिमतः परम्।
संवर्द्धयितुमिच्छामि सर्वा एव मम प्रजाः॥ १७

न निर्गतं पुरा त्वत्तो नारीणां कुलमव्ययम्।
तेन नारीकुलं स्त्रष्टुं मम शक्तिर्न विद्यते॥ १८

सर्वासामेव शक्तीनां त्वत्तः खलु समुद्भवः।
तस्मात्त्वां परमां शक्तिं प्रार्थयाम्यखिलेश्वरीम्॥ १९

शिवे नारीकुलं स्त्रष्टुं शक्तिं देहि नमोऽस्तु ते।
चराचरजगद्वृद्धिहेतोर्मातः शिवप्रिये॥ २०

उसके पश्चात् भगवान् हर अपनी पूर्ण चैतन्यमयी, ऐश्वर्यशालिनी तथा सर्वकामप्रदायिनी मूर्तिमें प्रविष्ट होकर अर्धनारीनरका रूप धारणकर ब्रह्माके पास गये॥ ८॥

वे ब्रह्माजी परम शक्तिसे सम्पन्न उन परमेश्वरको देखकर दण्डवत् प्रणामकर हाथ जोड़े हुए उनकी स्तुति करने लगे। इसके बाद देवाधिदेव विश्वकर्ता महेश्वरने अत्यन्त प्रसन्न हो मेघके समान गम्भीर वाणीमें सृष्टिके लिये ब्रह्माजीसे कहा—॥ ९-१०॥

ईश्वर बोले—वत्स! हे महाभाग! हे मेरे पुत्र पितामह! मैं तुम्हारे समस्त मनोरथको यथार्थ रूपमें जान गया हूँ। प्रजाओंकी वृद्धिके लिये ही तुमने इस समय तपस्या की है। उस तपस्यासे मैं सन्तुष्ट हूँ और तुम्हें इच्छित वरदान दे रहा हूँ॥ ११-१२॥

परम उदार एवं स्वभावसे मधुर यह वचन कहकर भगवान् शिवने अपने शरीरके [वाम] भागसे देवी पार्वतीको अलग किया॥ १३॥

शिवसे अलग हुई और पृथक् रूपमें स्थित उन परम शक्तिको देखकर विनीत भावसे प्रणाम करके ब्रह्माजी उनसे प्रार्थना करने लगे—॥ १४॥

ब्रह्माजी बोले—हे शिवे! आपके पति देवाधिदेव शिवजीने सृष्टिके आदिमें मुझे उत्पन्न किया और उन्हीं परमात्मा शिवने सभी प्रजाओंको नियुक्त किया है॥ १५॥

हे शिवे! [उनकी आज्ञासे] मैंने अपने मनसे सभी देवताओं आदिकी सृष्टि की, किंतु बार-बार सृष्टि करनेपर भी प्रजाओंकी वृद्धि नहीं हो रही है। इसलिये अब मैथुनसे होनेवाली सृष्टि करके ही मैं अपनी समस्त प्रजाओंकी वृद्धि करना चाहता हूँ॥ १६-१७॥

आपसे पहले शिवजीके शरीरसे स्त्रियोंका अविनाशी समुदाय उत्पन्न नहीं हुआ, इसलिये मैं उस नारीकुलकी सृष्टि करनेमें असमर्थ रहा। सभी शक्तियाँ आपसे ही उत्पन्न होती हैं, इसलिये मैं परम शक्तिस्वरूपा आप अखिलेश्वरीसे प्रार्थना कर रहा हूँ॥ १८-१९॥

हे शिवे! हे मातः! इस चराचर जगत्की वृद्धिके लिये नारीकुलकी रचनाका सामर्थ्य प्रदान कीजिये। हे शिवप्रिये! आपको नमस्कार है॥ २०॥

अन्यं त्वत्तः प्रार्थयामि वरं च वरदेश्वरि।
देहि मे तं कृपां कृत्वा जगन्मातर्नमोऽस्तु ते॥ २१

चराचरविवृद्ध्यर्थमीशेनैकेन सर्वगे।
दक्षस्य मम पुत्रस्य पुत्री भव भवाम्बिके॥ २२

एवं संयाचिता देवी ब्रह्मणा परमेश्वरी।
तथास्त्विति वचः प्रोच्य तच्छक्तिं विधये ददौ॥ २३

तस्माद्धि सा शिवा देवी शिवशक्तिर्जगन्मयी।
शक्तिमेकां भ्रुवोर्मध्यात्ससर्जात्मसमप्रभाम्॥ २४

तामाह प्रहसन्प्रेक्ष्य शक्तिं देववरो हरः।
कृपासिन्धुर्महेशानो लीलाकारी भवाम्बिकाम्॥ २५

शिव उवाच

तपसाराधिता देवि ब्रह्मणा परमेष्ठिना।
प्रसन्ना भव सुप्रीत्या कुरु तस्याखिलेप्सितम्॥ २६

तामाज्ञां परमेशस्य शिरसा प्रतिगृह्य सा।
ब्रह्मणो वचनाद्देवी दक्षस्य दुहिताऽभवत्॥ २७

दत्त्वैवमतुलां शक्तिं ब्रह्मणे सा शिवा मुने।
विवेश देहं शंभोर्हि शंभुश्चान्तर्दधे प्रभुः॥ २८

तदाप्रभृति लोकेऽस्मिन्स्त्रिया भागः प्रकल्पितः।
आनन्दं प्राप स विधिः सृष्टिर्जाता च मैथुनी॥ २९

एतत्ते कथितं तात शिवरूपं महोत्तमम्।
अर्द्धनारीनरार्द्धं हि महामंगलदं सताम्॥ ३०

एतदाख्यानमनघं यः पठेच्छृणुयादपि।
स भुक्त्वा सकलान्भोगान्प्रयाति परमां गतिम्॥ ३१

हे वरदेश्वरि! मैं आपसे एक अन्य वरकी प्रार्थना करता हूँ, मुझपर कृपाकर उसे प्रदान करें। हे जगन्मातः! आपको नमस्कार है॥ २१॥

हे सर्वगे! हे अम्बिके! इस चराचर जगत्की वृद्धिके लिये आप अपने एक सर्वसमर्थरूपसे मेरे पुत्र दक्षकी कन्याके रूपमें अवतरित हों॥ २२॥

ब्रह्माजीद्वारा इस प्रकार याचना करनेपर 'ऐसा ही होगा'—यह वचन कहकर देवी परमेश्वरीने ब्रह्माको वह शक्ति प्रदान की। इस प्रकार [यह स्पष्ट ही है कि] भगवान् शिवकी परमशक्ति वे शिवादेवी विश्वात्मिका (स्त्रीपुरुषात्मिका) हैं। उन्होंने अपनी भौंहोंके मध्यसे अपने ही समान कान्तिवाली एक दूसरी शक्तिका सृजन किया॥ २३-२४॥

उस शक्तिको देखकर देवताओंमें श्रेष्ठ, कृपासिन्धु, लीलाकारी महेश्वर हर हँसते हुए उन जगन्मातासे कहने लगे—॥ २५॥

शिवजी बोले—हे देवि! परमेष्ठी ब्रह्माने तपस्याके द्वारा आपकी आराधना की है, अतः आप प्रसन्न हो जाइये और प्रेमपूर्वक उनके सारे मनोरथोंको पूर्ण कीजिये। तब उन देवीने परमेश्वर शिवजीकी आज्ञा शिरोधार्य करके ब्रह्माजीके प्रार्थनानुसार दक्षपुत्री होना स्वीकार कर लिया॥ २६-२७॥

हे मुने! इस प्रकार ब्रह्माको अपार शक्ति प्रदानकर वे शिवा शिवजीके शरीरमें प्रविष्ट हो गयीं और प्रभु शिव भी अन्तर्धान हो गये॥ २८॥

उसी समयसे इस लोकमें सृष्टि-कर्ममें स्त्रियोंको भाग प्राप्त हुआ। तब वे ब्रह्माजी बहुत प्रसन्न हुए और मैथुनी सृष्टि होने लगी। हे तात! इस प्रकार मैंने आपसे शिवजीके अत्यन्त उत्तम तथा सज्जनोंको परम मंगल प्रदान करनेवाले इस अर्धनारी और अर्धनर रूपका वर्णन कर दिया॥ २९-३०॥

जो इस निष्पाप कथाको पढ़ता अथवा सुनता है, वह [इस लोकमें] सभी सुखोंको भोगकर परम गति प्राप्त कर लेता है॥ ३१॥

इति श्रीशिवमहापुराणे तृतीयायां शतरुद्रसंहितायां शिवस्यार्द्धनारीश्वरावतारवर्णनं नाम तृतीयोऽध्यायः॥ ३॥

॥ इस प्रकार श्रीशिवमहापुराणके अन्तर्गत तृतीय शतरुद्रसंहितामें शिवके अर्धनारीश्वर-अवतारका वर्णन नामक तीसरा अध्याय पूर्ण हुआ॥ ३॥

अथ चतुर्थोऽध्यायः

वाराहकल्पके प्रथमसे नवम द्वापरतक हुए व्यासों एवं शिवावतारोंका वर्णन

नन्दीश्वर उवाच

सनत्कुमार सर्वज्ञ चरितं शांकरं मुदा।
रुद्रेण कथितं प्रीत्या ब्रह्मणे सुखदं सदा॥ १

नन्दीश्वर बोले—हे सनत्कुमार! हे सर्वज्ञ! अब शंकरजीके जिस सुखदायक चरित्रको हर्षित होकर रुद्रने ब्रह्माजीसे प्रेमपूर्वक कहा था, [उस चरित्रको सुनें]॥ १॥

शिव उवाच

सप्तमे चैव वाराहे कल्पे मन्वन्तराभिधे।
कल्पेश्वरोऽथ भगवान्सर्वलोकप्रकाशनः॥ २
मनोर्वैवस्वतस्यैव ते प्रपुत्रो भविष्यति।
तदा चतुर्युगाश्चैव तस्मिन्मन्वन्तरे विधे॥ ३
अनुग्रहार्थं लोकानां ब्राह्मणानां हिताय च।
उत्पत्स्यामि विधे ब्रह्मन्द्वापराख्ययुगान्तिके॥ ४

शिवजी बोले—[हे ब्रह्मन्!] वाराहकल्पके सातवें मन्वन्तरमें सम्पूर्ण लोकोंको प्रकाशित करनेवाले भगवान् कल्पेश्वर, जो तुम्हारे प्रपौत्र हैं, वैवस्वत मनुके पुत्र होंगे॥ २-३॥

हे विधे! हे ब्रह्मन्! उस समय लोकोंके कल्याणके निमित्त तथा ब्राह्मणोंके हितके लिये मैं [प्रत्येक] द्वापर युगके अन्तमें अवतार ग्रहण करूँगा॥ ४॥

युगप्रवृत्त्या च तदा तस्मिंश्च प्रथमे युगे।
द्वापरे प्रथमे ब्रह्मन्यदा व्यासः स्वयंप्रभुः॥ ५
तदाहं ब्राह्मणार्थाय कलौ तस्मिन्युगान्तिके।
भविष्यामि शिवायुक्तः श्वेतो नाम महामुनिः॥ ६

इस प्रकार क्रमशः युगोंके प्रवृत्त होनेपर प्रथम युगमें (चतुर्युगीके) प्रथम द्वापरयुगमें जब स्वयंप्रभु नामक व्यास होंगे, तब मैं ब्राह्मणोंके हितके लिये उस कलिके अन्तमें पार्वतीसहित श्वेत नामक महामुनिके रूपमें अवतार लूँगा॥ ५-६॥

हिमवच्छिखरे रम्ये छागले पर्वतोत्तमे।
तदा शिष्याः शिखायुक्ता भविष्यन्ति विधे मम॥ ७
श्वेतः श्वेतशिखश्चैव श्वेताश्वः श्वेतलोहितः।
चत्वारो ध्यानयोगात्ते गमिष्यन्ति पुरं मम॥ ८

हे विधे! उस समय पर्वतोंमें श्रेष्ठ, रमणीय हिमालयके छागल नामक शिखरपर शिखासे युक्त श्वेत, श्वेतशिख, श्वेताश्व और श्वेतलोहित नामक मेरे चार शिष्य होंगे। वे चारों ध्यानयोगके प्रभावसे मेरे लोकको जायँगे॥ ७-८॥

ततो भक्ता भविष्यन्ति ज्ञात्वा मां तत्त्वतोऽव्ययम्।
जन्ममृत्युजराहीनाः परब्रह्मसमाधयः॥ ९

तब [वहाँ] मुझ अविनाशीको तत्त्वपूर्वक जानकर वे मेरे भक्त होंगे और जन्म-मृत्यु-जरासे रहित तथा परम ब्रह्ममें समाधि लगानेवाले होंगे॥ ९॥

द्रष्टुं शक्यो नरैर्नाहमृते ध्यानात्पितामह।
दानधर्मादिभिर्वत्स साधनैः कर्महेतुभिः॥ १०

हे पितामह! हे वत्स! ध्यानके बिना मनुष्य मुझे दान-धर्मादि कर्मके हेतुभूत साधनोंसे देखनेमें असमर्थ हैं॥ १०॥

द्वितीये द्वापरे व्यासः सत्यो नाम प्रजापतिः।
यदा तदा भविष्यामि सुतारो नामतः कलौ॥ ११

दूसरे द्वापरमें जब सत्य नामक प्रजापति व्यास होंगे, तब मैं कलियुगमें सुतार नामसे अवतार ग्रहण करूँगा॥ ११॥

तत्रापि मे भविष्यन्ति शिष्या वेदविदो द्विजाः।
दुन्दुभिः शतरूपश्च हृषीकः केतुमांस्तथा॥ १२

उस युगमें भी दुन्दुभि, शतरूप, हृषीक तथा केतुमान् नामक वेदज्ञ ब्राह्मण मेरे शिष्य होंगे॥ १२॥

चत्वारो ध्यानयोगात्ते गमिष्यन्ति पुरं मम।
ततो मुक्ता भविष्यन्ति ज्ञात्वा मां तत्त्वतोऽव्ययम्॥ १३

वे चारों ध्यानयोगके प्रभावसे मेरे लोकको प्राप्त करेंगे और मुझ अव्ययको यथार्थरूपसे जानकर मुक्त हो जायँगे॥ १३॥

तृतीये द्वापरे चैव यदा व्यासस्तु भार्गवः।
तदाप्यहं भविष्यामि दमनस्तु युगान्तिके॥ १४

तीसरे द्वापर युगके अन्तमें जब भार्गव [नामक] व्यास होंगे, तब मैं दमन नामसे अवतार ग्रहण करूँगा॥ १४॥

तत्रापि च भविष्यन्ति चत्वारो मम पुत्रकाः।
विशोकश्च विशेषश्च विपापः पापनाशनः॥ १५

उस समय भी विशोक, विशेष, विपाप और पापनाशन नामक मेरे चार पुत्र (शिष्य) होंगे॥ १५॥

शिष्यैः सहायं व्यासस्य करिष्ये चतुरानन।
निवृत्तिमार्गं सुदृढं वर्त्तयिष्ये कलाविह॥ १६

हे चतुरानन! उस कलियुगमें मैं अपने शिष्योंके द्वारा व्यासकी सहायता करूँगा तथा निवृत्तिमार्गको दृढ़ करूँगा॥ १६॥

चतुर्थे द्वापरे चैव यदा व्यासोऽङ्गिरा स्मृतः।
तदाप्यहं भविष्यामि सुहोत्रो नाम नामतः॥ १७
तत्रापि मम ते पुत्राश्चत्वारो योगसाधकाः।
भविष्यन्ति महात्मानस्तन्नामानि ब्रुवे विधे॥ १८
सुमुखो दुर्मुखश्चैव दुर्दमो दुरतिक्रमः।
शिष्यैः सहायं व्यासस्य करिष्येऽहं तदा विधे॥ १९

चौथे द्वापरमें जब अंगिरा व्यासरूपमें प्रसिद्ध होंगे, तब मैं सुहोत्र नामसे अवतार ग्रहण करूँगा। उस समय भी महात्मा योगसाधक मेरे चार पुत्र (शिष्य) होंगे। हे ब्रह्मन्! मैं उनके नाम बता रहा हूँ। सुमुख, दुर्मुख, दुर्दम और दुरतिक्रम। हे विधे! उस समय मैं अपने शिष्योंके द्वारा व्यासकी सहायता करूँगा॥ १७—१९॥

पञ्चमे द्वापरे चैव व्यासस्तु सविता स्मृतः।
तदा योगी भविष्यामि कंको नाम महातपाः॥ २०
तत्रापि मम ते पुत्राश्चत्वारो योगसाधकाः।
भविष्यन्ति महात्मानस्तन्नामानि शृणुष्व मे॥ २१
सनकः सनातनश्चैव प्रभुर्यश्च सनन्दनः।
विभुः सनत्कुमारश्च निर्मलो निरहंकृतिः॥ २२
तत्रापि कंकनामाहं साहाय्यं सवितुर्विधे।
व्यासस्य हि करिष्यामि निवृत्तिपथवर्द्धकः॥ २३

पाँचवें द्वापरमें सविता नामक व्यास कहे गये हैं, उस समय मैं महातपस्वी कंक नामक योगीके रूपमें अवतार ग्रहण करूँगा। उस समय भी मेरे चार योगसाधक तथा महात्मा पुत्र (शिष्य) होंगे, उनके नाम मुझसे सुनिये—सनक, सनातन, प्रभु सनन्दन और सर्वव्यापी निर्मल अहंकाररहित सनत्कुमार। हे ब्रह्मन्! उस समय भी कंक नामक मैं सविता व्यासकी सहायता करूँगा और निवृत्तिमार्गका संवर्धन करूँगा॥ २०—२३॥

परिवर्त्ते पुनः षष्ठे द्वापरे लोककारकः।
कर्ता वेदविभागस्य मृत्युर्व्यासो भविष्यति॥ २४

तदाऽप्यहं भविष्यामि लोकाक्षिर्नाम नामतः।
व्यासस्य सुसहायार्थं निवृत्तिपथवर्द्धनः॥ २५

तत्रापि शिष्याश्चत्वारो भविष्यन्ति दृढव्रताः।
सुधामा विरजाश्चैव संजयो विजयस्तथा॥ २६

इसके बाद छठे द्वापरके आनेपर लोककी रचना करनेवाले तथा वेदोंका विभाग करनेवाले मृत्यु नामक व्यास होंगे। उस समय भी मैं लोकाक्षि नामसे अवतार ग्रहण करूँगा और व्यासकी सहायताके लिये निवृत्तिमार्गका वर्धन करूँगा। उस समय भी सुधामा, विरजा, संजय एवं विजय नामक मेरे चार दृढ़व्रती शिष्य होंगे॥ २४—२६॥

सप्तमे परिवर्त्ते तु यदा व्यासः शतक्रतुः।
तदाप्यहं भविष्यामि जैगीषव्यो विभुर्विधे॥ २७
योगं संद्रढयिष्यामि महायोगविचक्षणः।
काश्यां गुहान्तरे संस्थो दिव्यदेशे कुशास्तरिः॥ २८
साहाय्यं च करिष्यामि व्यासस्य हि शतक्रतोः।
उद्धरिष्यामि भक्तांश्च संसारभयतो विधे॥ २९
तत्रापि मम चत्वारो भविष्यन्ति सुता युगे।
सारस्वतश्च योगीशो मेघवाहः सुवाहनः॥ ३०

हे विधे! सातवें द्वापरके आनेपर जब शतक्रतु [नामक] व्यास होंगे, उस समय भी मैं विभु जैगीषव्य नामसे अवतरित होऊँगा और महायोगविचक्षण होकर काशीकी गुफामें दिव्य स्थानमें कुशाके आसनपर बैठकर योगमार्गको दृढ़ करूँगा तथा शतक्रतु व्यासकी सहायता करूँगा एवं हे विधे! संसारके भयसे भक्तोंका उद्धार करूँगा। उस युगमें भी सारस्वत, योगीश, मेघवाह और सुवाहन नामक मेरे चार पुत्र (शिष्य) होंगे॥ २७—३०॥

अष्टमे परिवर्त्ते हि वसिष्ठो मुनिसत्तमः।
कर्त्ता वेदविभागस्य वेदव्यासो भविष्यति॥ ३१
तत्राप्यहं भविष्यामि नामतो दधिवाहनः।
व्यासस्य हि करिष्यामि साहाय्यं योगवित्तम॥ ३२
कपिलश्चासुरिः पञ्चशिखः शाल्वलपूर्वकः।
चत्वारो योगिनः पुत्रा भविष्यन्ति समा मम॥ ३३

आठवें द्वापरयुगके आनेपर वेदोंका विभाग करनेवाले मुनिश्रेष्ठ वसिष्ठ वेदव्यास होंगे। हे योग जाननेवालोंमें श्रेष्ठ! उस समय मैं दधिवाहन नामसे अवतार ग्रहण करूँगा और व्यासकी सहायता करूँगा। उस समय कपिल, आसुरि, पंचशिख और शाल्वल नामक मेरे चार पुत्र (शिष्य) होंगे, जो मेरे ही समान योगी होंगे॥ ३१—३३॥

नवमे परिवर्त्ते तु तस्मिन्नेव युगे विधे।
भविष्यति मुनिश्रेष्ठो व्यासः सारस्वताह्वयः॥ ३४
व्यासस्य ध्यायतस्तस्य निवृत्तिपथवृद्धये।
तदाप्यहं भविष्यामि ऋषभो नामतः स्मृतः॥ ३५
पराशरश्च गर्गश्च भार्गवो गिरिशस्तथा।
चत्वारस्तत्र शिष्या मे भविष्यन्ति सुयोगिनः॥ ३६
तैः साकं द्रढयिष्यामि योगमार्गं प्रजापते।
करिष्यामि सहायं वै वेदव्यासस्य सन्मुने॥ ३७

हे विधे! नौवें द्वापरयुगके आनेपर उसमें सारस्वत नामक मुनिश्रेष्ठ व्यास होंगे। उस समय वे व्यासजी निवृत्तिमार्गको बढ़ानेका विचार करेंगे, तब मैं ऋषभ नामसे विख्यात होकर अवतार लूँगा। उस समय पराशर, गर्ग, भार्गव एवं गिरिश नामक मेरे परम योगी शिष्य होंगे। हे प्रजापते! मैं उनके साथ योगमार्गको दृढ़ करूँगा और हे सन्मुने! मैं वेदव्यासकी सहायता करूँगा॥ ३४—३७॥

तेन रूपेण भक्तानां बहूनां दुःखिनां विधे।
उद्धारं भवतोऽहं वै करिष्यामि दयाकरः॥ ३८
सोऽवतारो विधे मे हि ऋषभाख्यः सुयोगकृत्।
सारस्वतव्यासमनःकर्त्ता नानोतिकारकः॥ ३९

उस समय हे विधे! दयालु मैं अपने उस रूपसे बहुत-से दुःखित भक्तोंका और स्वयं आपका भी उद्धार करूँगा। हे विधे! मेरा वह ऋषभ नामक अवतार योगमार्गका प्रवर्तक, सारस्वत व्यासके मनको सन्तुष्ट करनेवाला तथा अनेक प्रकारकी लीला करनेवाला होगा॥ ३८-३९॥

अवतारेण मे येन भद्रायुर्नृपबालकः।
जीवितो हि मृतः क्ष्वेडदोषतो जनकोज्झितः॥ ४०

मेरे उस अवतारने भद्रायु नामक राजकुमारको, जो विषके दोषसे मर गया था एवं जिसके पिताने त्याग दिया था, पुनः जीवित कर दिया था॥ ४०॥

प्राप्तेऽथ षोडशे वर्षे तस्य राजशिशोः पुनः।
ययौ तद्वेश्म सहसा ऋषभः स मदात्मकः॥ ४१

उस राजकुमारके सोलह वर्षका होनेपर मेरे अंशसे उत्पन्न ऋषभ पुनः सहसा उसके घर गये॥ ४१॥

पूजितस्तेन स मुनिः सद्रूपश्च कृपानिधिः।
उपादिदेश तद्धर्मान् राजयोगान्प्रजापते॥ ४२

ततः स कवचं दिव्यं शंखं खड्गं च भास्वरम्।
ददौ तस्मै प्रसन्नात्मा सर्वशत्रुविनाशनम्॥ ४३

हे प्रजापते! उस राजकुमारने कृपानिधि तथा अति सुन्दर उन ऋषभजीका [आदरपूर्वक] पूजन किया और ऋषभजीने उसे उस समय राजयोगसे युक्त धर्मोपदेश दिया। तदनन्तर उन्होंने प्रसन्नचित्त होकर दिव्य कवच, शंख तथा प्रकाशमान खड्ग प्रदान किया, जो शत्रुओंके विनाशमें समर्थ था॥ ४२-४३॥

तदङ्गं भस्मनामृश्य कृपया दीनवत्सलः।
स द्वादशसहस्रस्य गजानां च बलं ददौ॥ ४४

तदनन्तर दीनवत्सल उन [महात्मा] ऋषभजीने उसके अंगोंमें भस्म लगाकर कृपापूर्वक बारह हजार हाथियोंका बल भी उसे प्रदान किया॥ ४४॥

इति भद्रायुषं सम्यगनुश्वास्य समातृकम्।
ययौ स्वैरगतिस्ताभ्यां पूजितस्त्वृषभः प्रभुः॥ ४५

इस प्रकार मातासहित भद्रायुको भलीभाँति आश्वस्त करके तथा उन दोनोंसे पूजित होकर स्वेच्छागामी प्रभु ऋषभ चले गये॥ ४५॥

भद्रायुरपि राजर्षिर्जित्वा रिपुगणान्विधे।
राज्यं चकार धर्मेण विवाह्य कीर्त्तिमालिनीम्॥ ४६

हे विधे! राजर्षि भद्रायु भी अपने शत्रुओंको जीतकर कीर्तिमालिनीसे विवाहकर धर्मानुसार राज्य करने लगे॥ ४६॥

इत्थंप्रभाव ऋषभोऽवतारः शङ्करस्य मे।
सतां गतिर्दीनबन्धुर्नवमः कथितस्तव॥ ४७

मैंने इस प्रकारके प्रभाववाले, सज्जनोंको गति प्रदान करनेवाले तथा दीन-दुःखियोंके बन्धुरूप मुझ शंकरके नौवें ऋषभ-अवतारका वर्णन आपसे किया॥ ४७॥

ऋषभस्य चरित्रं हि परमं पावनं महत्।
स्वर्ग्यं यशस्यमायुष्यं श्रोतव्यं च प्रयत्नतः॥ ४८

ऋषभका चरित्र परम पवित्र, महान्, स्वर्ग देनेवाला यश तथा कीर्ति देनेवाला और आयुको बढ़ानेवाला है, इसे यत्नपूर्वक सुनना चाहिये॥ ४८॥

इति श्रीशिवमहापुराणे तृतीयायां शतरुद्रसंहितायामृषभचरित्रवर्णनं नाम चतुर्थोऽध्यायः॥ ४॥

॥ इस प्रकार श्रीशिवमहापुराणके अन्तर्गत तृतीय शतरुद्रसंहितामें ऋषभचरित्रवर्णन नामक चौथा अध्याय पूर्ण हुआ॥ ४॥

अथ पञ्चमोऽध्यायः

वाराहकल्पके दसवेंसे अट्ठाईसवें द्वापरतक होनेवाले व्यासों एवं शिवावतारोंका वर्णन

शिव उवाच

दशमे द्वापरे व्यासस्त्रिधामा नामतो मुनिः।
हिमवच्छिखरे रम्ये भृगुतुंगे नगोत्तमे॥ १

तत्रापि मम पुत्राश्च भृग्वाद्याः श्रुतिसंमिताः।
बलबन्धुर्नरामित्रः केतुशृंगस्तपोधनः॥ २

शिवजी बोले—[हे ब्रह्मन्!] दसवें द्वापरयुगमें जब त्रिधामा नामक मुनि व्यास होंगे, उस समय मैं हिमालय पर्वतके मनोहर भृगुतुंग नामक ऊँचे शिखरपर अवतार ग्रहण करूँगा। उस समय भी मेरे श्रुतिसम्मित तथा तपस्वी भृगु, बलबन्धु, नरामित्र तथा केतुशृंग नामक पुत्र होंगे॥ १-२॥

एकादशे द्वापरे तु व्यासश्च त्रिवृतो यदा।
गंगाद्वारे कलौ नाम्ना तपोऽहं भविता तदा॥ ३

लम्बोदरश्च लम्बाक्षः केशलम्बः प्रलम्बकः।
तत्रापि पुत्राश्चत्वारो भविष्यन्ति दृढव्रताः॥ ४

द्वादशे परिवर्त्ते तु शततेजाश्च वेदकृत्।
तत्राप्यहं भविष्यामि द्वापरान्ते कलाविह॥ ५

हेमकंचुकमासाद्य नाम्ना ह्यत्रिः परिप्लुतः।
व्यासस्यैव सहायार्थं निवृत्तिपथरोपणः॥ ६

सर्वज्ञः समबुद्धिश्च साध्यः शर्वः सुयोगिनः।
तत्रेति पुत्राश्चत्वारो भविष्यन्ति महामुने॥ ७

त्रयोदशे युगे तस्मिन्धर्मो नारायणः सदा।
व्यासस्तदाहं भविता बलिर्नाम महामुनिः॥ ८

वालखिल्याश्रमे गंधमादने पर्वतोत्तमे।
सुधामा काश्यपश्चैव वसिष्ठो विरजाः शुभाः॥ ९

यदा व्यासस्तु रक्षाख्यः पर्याये तु चतुर्दशे।
वंश आङ्गिरसे तत्र भविताहं च गौतमः॥ १०
तत्रापि मम ते पुत्रा भविष्यन्ति कलौ तदा।
अत्रिश्च वशदश्चैव श्रवणोऽथ श्रविष्कटः॥ ११

व्यासः पञ्चदशे त्रय्यारुणिर्वै द्वापरे यदा।
तदाऽहं भविता वेदशिरा वेदशिरस्तथा॥ १२

महावीर्यं तदस्त्रं च वेदशीर्षश्च पर्वतः।
हिमवत्पृष्ठमासाद्य सरस्वत्यास्तथोत्तरे॥ १३

तत्रापि मम चत्वारो भविष्यन्ति सुता दृढाः।
कुणिश्च कुणिबाहुश्च कुशरीरः कुनेत्रकः॥ १४

व्यासो युगे षोडशे तु यदा देवो भविष्यति।
तदा योगप्रदानाय गोकर्णो भविता ह्यहम्॥ १५

तत्रैव च सुपुण्यं च गोकर्णं नाम तद्वनम्।
तत्रापि योगिनः पुत्रा भविष्यन्त्यम्बुसंमिताः॥ १६

ग्यारहवें द्वापरयुगमें जब त्रिवृत नामक व्यास होंगे, उस समय मैं कलियुगमें गंगाद्वारपर तप नामसे अवतरित होऊँगा। उस समय भी लम्बोदर, लम्बाक्ष, केशलम्ब एवं प्रलम्बक नामक चार दृढ़व्रती मेरे शिष्य होंगे॥ ३-४॥

बारहवें द्वापरयुगके आनेपर वेदोंके विभाग करनेवाले शततेजा नामक व्यास होंगे, तब मैं द्वापरके अन्त होनेपर कलियुगमें यहाँ पृथिवीपर अवतार ग्रहण करूँगा। उस समय हेमकंचुक नामक स्थानपर आविर्भूत हुआ। मैं अत्रिके नामसे प्रसिद्ध होकर व्यासजीके सहायतार्थ निवृत्तिमार्गको दृढ़ करूँगा॥ ५-६॥

हे महामुने! उस समय सर्वज्ञ, समबुद्धि, साध्य एवं शर्व नामक मेरे परम योगी चार पुत्र होंगे॥ ७॥

तेरहवें द्वापरयुगमें धर्मस्वरूप नारायण नामक व्यास होंगे, उस समय मैं वालखिल्यके आश्रममें उत्तम गन्ध-मादन पर्वतपर बलि नामक महामुनिके रूपमें अवतार ग्रहण करूँगा। वहाँपर सुधामा, काश्यप, वसिष्ठ और विरजा नामक मेरे चार श्रेष्ठ पुत्र होंगे॥ ८-९॥

चौदहवें द्वापरयुगके आनेपर जब रक्ष नामक व्यास होंगे, तब मैं आंगिरस वंशमें गौतम नामसे अवतार ग्रहण करूँगा। उस समय भी कलियुगमें अत्रि, वशद, श्रवण और श्रविष्कट नामक मेरे चार पुत्र होंगे॥ १०-११॥

पन्द्रहवें द्वापरयुगमें जब त्रय्यारुणि नामक व्यास होंगे, उस समय मैं वेदशिरा नामसे अवतरित होऊँगा। वेदशिरा नामक महावीर्यवान् मेरा अस्त्र होगा और सरस्वतीके उत्तर तथा हिमालयके पृष्ठभागमें मैं वेदशीर्ष पर्वतपर निवास करूँगा। उस समय भी कुणि, कुणिबाहु, कुशरीर और कुनेत्र नामक मेरे चार शक्तिशाली पुत्र होंगे॥ १२—१४॥

सोलहवें द्वापरयुगमें जब देव नामक व्यास होंगे, उस समय मैं योगमार्गका उपदेश देनेके लिये गोकर्ण नामसे उत्पन्न होऊँगा। वहींपर परम पुण्यप्रद गोकर्ण नामक वन है। वहाँपर भी जलके समान निर्मल अन्तःकरणवाले काश्यप, उशना, च्यवन और बृहस्पति नामक मेरे चार योगपरायण पुत्र होंगे और वे पुत्र भी योगमार्गसे शिवपदको प्राप्त करेंगे॥ १५-१६॥

काश्यपोऽप्युशनाश्चैव च्यवनोऽथ बृहस्पतिः।
तेऽपि तेनैव मार्गेण गमिष्यन्ति शिवालयम्॥ १७
परिवर्त्ते सप्तदशे व्यासो देवकृतंजयः।
गुहावासीति नाम्नाहं हिमवच्छिखरे शुभे॥ १८
महालये महोत्तुंगे शिवक्षेत्रं हिमालयम्।
उतथ्यो वामदेवश्च महायोगो महाबलः॥ १९

सत्रहवें द्वापरयुगके आगमनपर देवकृतंजय नामक व्यास होंगे, उस समय मैं हिमालयके उत्तम तथा ऊँचे शिखरपर, हिमसे व्याप्त जो महालय नामका शिवक्षेत्र है, वहाँ गुहावासी नामसे अवतार धारण करूँगा और वहाँ भी उतथ्य, वामदेव, महायोग एवं महाबल नामक मेरे चार पुत्र होंगे॥ १७—१९॥

परिवर्त्तेऽष्टादशे तु यदा व्यास ऋतंजयः।
शिखण्डीनामतोऽहं तद्धिमवच्छिखरे शुभे॥ २०
सिद्धक्षेत्रे महापुण्ये शिखण्डी नाम पर्वतः।
शिखण्डिनो वनं वापि यत्र सिद्धनिषेवितम्॥ २१
वाचःश्रवा रुचीकश्च श्यावास्यश्च यतीश्वरः।
एते पुत्रा भविष्यन्ति तत्रापि च तपोधनाः॥ २२

अठारहवें द्वापरयुगके आनेपर जब ऋतंजय नामक व्यास होंगे, तब मैं उस हिमालयके मनोहर शिखरपर शिखण्डी नामसे प्रकट होऊँगा। उस महापुण्यप्रद सिद्धक्षेत्रमें शिखण्डी नामक पर्वत है और उसी नामवाला वन भी है, जहाँ सिद्ध निवास करते हैं, वहाँ भी वाचःश्रवा, रुचीक, श्यावास्य एवं यतीश्वर—ये मेरे चार महातपस्वी पुत्र होंगे॥ २०—२२॥

एकोनविंशे व्यासस्तु भरद्वाजो महामुनिः।
तदाप्यहं भविष्यामि जटी माली च नामतः॥ २३
हिमवच्छिखरे तत्र पुत्रा मेऽम्बुधिसंहिताः।
हिरण्यनामा कौशल्यो लोकाक्षी प्रधिमिस्तथा॥ २४

उन्नीसवें द्वापरयुगमें जब भरद्वाज मुनि व्यास होंगे, तब हिमालयके शिखरपर जटाएँ धारण किया हुआ मैं माली नामसे अवतार ग्रहण करूँगा। वहाँ समुद्रके समान गम्भीर हिरण्यनामा, कौशल्य, लोकाक्षी तथा प्रधिमि नामक मेरे चार पुत्र होंगे॥ २३-२४॥

परिवर्त्ते विंशतिमे भविता व्यास गौतमः।
तत्राट्टहासनामाहमट्टहासप्रिया नराः॥ २५
तत्रैव हिमवत्पृष्ठे अट्टहासो महागिरिः।
देवमानुषयक्षेन्द्रसिद्धचारणसेवितः॥ २६
तत्रापि मम ते पुत्रा भविष्यन्ति सुयोगिनः।
सुमन्तुर्बर्बरिर्विद्वान् कबन्धः कुशिकन्धरः॥ २७

बीसवें द्वापरमें गौतम नामक व्यास होंगे, तब मैं हिमालयपर्वतपर अट्टहास नामसे अवतीर्ण होऊँगा। वहीं हिमालयके पृष्ठभागपर अट्टहास नामक महापर्वत है, जहाँ अट्टहासप्रिय मनुष्य निवास करते हैं और जो देव, मनुष्य, यक्षराज, सिद्ध और चारणोंसे सेवित है। वहाँ भी सुमन्तु, विद्वान् बर्बरि, कबन्ध तथा कुशिकन्धर नामक मेरे चार महायोगी पुत्र होंगे॥ २५—२७॥

एकविंशे युगे तस्मिन् व्यासो वाचःश्रवा यदा।
तदाहं दारुको नाम तस्माद्दारुवनं शुभम्॥ २८
तत्रापि मम ते पुत्रा भविष्यन्ति सुयोगिनः।
प्लक्षो दार्भायणिश्चैव केतुमान् गौतमस्तथा॥ २९

इक्कीसवें द्वापरमें जब वाचःश्रवा नामक व्यास होंगे, तब मैं दारुक नामसे अवतरित होऊँगा। इसलिये उस उत्तम वनका नाम भी दारुवन होगा। वहाँपर भी प्लक्ष, दार्भायणी, केतुमान् और गौतम नामक मेरे चार महायोगी पुत्र होंगे॥ २८-२९॥

द्वाविंशे परिवर्त्ते तु व्यासः शुष्मायणो यदा।
तदाप्यहं भविष्यामि वाराणस्यां महामुनिः॥ ३०
नाम्ना वै लांगली भीमो यत्र देवाः सवासवाः।
द्रक्ष्यन्ति मां कलौ तस्मिन्भवं चैव हलायुधम्॥ ३१
तत्रापि मम ते पुत्रा भविष्यन्ति सुधार्मिकाः।
भल्लवी मधुपिंगश्च श्वेतकेतुस्तथैव च॥ ३२

बाईसवें द्वापरयुगके आनेपर जब शुष्मायण नामक व्यास होंगे, तब मैं लांगली भीम नामक महामुनिके रूपमें वाराणसीमें अवतरित होऊँगा, जहाँ कलियुगमें इन्द्रसहित समस्त देवगण मुझ हलायुध शिवका दर्शन करेंगे। वहाँ भी भल्लवी, मधु, पिंग तथा श्वेतकेतु नामक मेरे चार परम धार्मिक पुत्र होंगे॥ ३०—३२॥

परिवर्त्ते त्रयोविंशे तृणबिन्दुर्यदा मुनिः।
श्वेतो नाम तदाऽहं वै गिरौ कालंजरे शुभे॥ ३३
तत्रापि मम ते पुत्रा भविष्यन्ति तपस्विनः।
उशिको बृहदश्वश्च देवलः कविरेव च॥ ३४
परिवर्त्ते चतुर्विंशे व्यासो यक्षो यदा विभुः।
शूली नाम महायोगी तद्युगे नैमिषे तदा॥ ३५
तत्रापि मम ते शिष्या भविष्यन्ति तपस्विनः।
शालिहोत्रोऽग्निवेशश्च युवनाश्वः शरद्वसुः॥ ३६

पञ्चविंशे यदा व्यासः शक्तिर्नाम्ना भविष्यति।
तदाप्यहं महायोगी दण्डी मुण्डीश्वरः प्रभुः॥ ३७
तत्रापि मम ते शिष्या भविष्यन्ति तपस्विनः।
छगलः कुण्डकर्णश्च कुम्भाण्डश्च प्रवाहकः॥ ३८

व्यासः पराशरो यर्हि षड्विंशे भविताप्यहम्।
पुरं भद्रवटं प्राप्य सहिष्णुर्नाम नामतः॥ ३९

तत्रापि मम ते शिष्या भविष्यन्ति तपस्विनः।
उलूको विद्युतश्चैव शम्बूको ह्याश्वलायनः॥ ४०
सप्तविंशे यदा व्यासो जातूकर्ण्यो भविष्यति।
प्रभासतीर्थमाश्रित्य सोमशर्मा तदाप्यहम्॥ ४१
तत्रापि मम ते शिष्या भविष्यन्ति तपस्विनः।
अक्षपादः कुमारश्चोलूको वत्सस्तथैव च॥ ४२
अष्टाविंशे द्वापरे तु पराशरसुतो हरिः।
यदा भविष्यति व्यासो नाम्ना द्वैपायनः प्रभुः॥ ४३
तदा षष्ठेन चांशेन कृष्णः पुरुषसत्तमः।
वसुदेवसुतः श्रेष्ठो वासुदेवो भविष्यति॥ ४४
तदाप्यहं भविष्यामि योगात्मा योगमायया।
लोकविस्मापनार्थाय ब्रह्मचारिशरीरकः॥ ४५
श्मशाने मृतमुत्सृज्य दृष्ट्वा कायमनामयम्।
ब्राह्मणानां हितार्थाय प्रविष्टो योगमायया॥ ४६
दिव्यां मेरुगुहां पुण्यां त्वया सार्धं च विष्णुना।
भविष्यामि तदा ब्रह्मन् लंकुली नाम नामतः॥ ४७
कायावतार इत्येवं सिद्धक्षेत्रं परं तदा।
भविष्यति सुविख्यातं यावद् भूमिर्धरिष्यति॥ ४८

तेईसवें द्वापरयुगके आनेपर जब मुनि तृणबिन्दु व्यास होंगे, तब मैं उत्तम कालंजरपर्वतपर श्वेत नामसे अवतार लूँगा। उस समय उशिक, बृहदश्व, देवल एवं कवि नामक मेरे चार तपस्वी पुत्र होंगे॥ ३३-३४॥

चौबीसवें द्वापरयुगके प्राप्त होनेपर जब यक्ष नामक व्यास होंगे, उस समय मैं नैमिषक्षेत्रमें शूली नामक महायोगीके रूपमें अवतार ग्रहण करूँगा। वहाँपर भी शालिहोत्र, अग्निवेश, युवनाश्व एवं शरद्वसु नामक मेरे चार तपस्वी शिष्य होंगे॥ ३५-३६॥

पच्चीसवें द्वापरयुगमें जब शक्ति नामक व्यास होंगे, तब मैं दण्डधारी महायोगी मुण्डीश्वर प्रभुके रूपमें अवतार ग्रहण करूँगा। उस समय भी छगल, कुण्डकर्ण, कुम्भाण्ड एवं प्रवाहक नामक चार तपस्वी शिष्य होंगे॥ ३७-३८॥

छब्बीसवें द्वापरयुगमें जब पराशर नामक व्यास होंगे, उस समय मैं भद्रवटपुरमें आकर सहिष्णु नामसे अवतरित होऊँगा। वहाँपर भी उलूक, विद्युत, शम्बूक और आश्वलायन नामवाले मेरे चार तपस्वी शिष्य होंगे॥ ३९-४०॥

सत्ताईसवें द्वापरयुगमें जब जातूकर्ण्य व्यास होंगे, उस समय मैं प्रभासतीर्थमें आकर सोमशर्मा नामसे प्रकट होऊँगा। वहाँपर भी अक्षपाद, कुमार, उलूक एवं वत्स नामक मेरे चार तपस्वी शिष्य होंगे॥ ४१-४२॥

अट्ठाईसवें द्वापरयुगमें जब महाविष्णु पराशरके पुत्ररूपमें जन्म लेकर द्वैपायन नामक व्यास होंगे, तब छठे अंशसे पुरुषोत्तम श्रीकृष्ण भी वासुदेवके नामसे प्रसिद्ध और वसुदेवके पुत्ररूपमें अवतरित होंगे। उस समय मैं भी योगमायासे संसारको विस्मित करनेके लिये योगात्मा नामक ब्रह्मचारीका रूप धारण करूँगा और शरीरको अनामय समझकर इसे मृतकी भाँति श्मशानमें छोड़कर ब्राह्मणोंके हितके लिये योगमायासे आप ब्रह्मा एवं विष्णुके साथ दिव्य तथा पवित्र मेरुगुहामें प्रवेश करूँगा। हे ब्रह्मन्! उस समय मैं लंकुली नामसे अवतार ग्रहण करूँगा। मेरे उत्पन्न होनेसे यह कायावतार तीर्थ सिद्धक्षेत्रके नामसे उस समयतक विख्यात रहेगा,

तत्रापि मम ते शिष्या भविष्यन्ति तपस्विनः।
कुशिकश्चैव गर्गश्च मित्रः कौरुष्य एव च॥ ४९
योगिनो ब्राह्मणा वेदपारगा ऊर्ध्वरेतसः।
प्राप्य माहेश्वरं योगं गमिष्यन्ति शिवं पुरम्॥ ५०

जबतक यह पृथ्वी रहेगी। उस समय भी कुशिक, गर्ग, मित्र एवं कौरुष्य नामक मेरे तपस्वी शिष्य होंगे। ये सभी योगी, ब्रह्मनिष्ठ, वेदके पारगामी विद्वान् तथा ऊर्ध्वरेता ब्रह्मचारी होकर माहेश्वर योगको प्राप्तकर शिवलोकको जायँगे॥ ४३—५०॥

वैवस्वतेऽन्तरे सम्यक् प्रोक्ता हि परमात्मना।
योगेश्वरावताराश्च सर्वावर्तेषु सुव्रताः॥ ५१

[सूतजी बोले—] हे उत्तम व्रतवाले मुनियो! इस प्रकार परमात्मा शिवने वैवस्वत मन्वन्तरके प्रत्येक कलियुगमें होनेवाले अपने योगावतारोंका सम्यक् वर्णन किया॥ ५१॥

व्यासाश्चैवाष्टविंशत्का द्वापरे द्वापरे विभो।
योगेश्वरावताराश्च प्रारम्भे च कलौ कलौ॥ ५२

हे विभो! इसी प्रकार प्रत्येक द्वापरयुगमें अट्ठाईस व्यास तथा प्रत्येक कलियुगके प्रारम्भमें योगेश्वरके अवतार होते रहते हैं॥ ५२॥

योगेश्वरावताराणां योगमार्गप्रवर्द्धकाः।
महाशैवाश्च चत्वारः शिष्याः प्रत्येकमव्ययाः॥ ५३

प्रत्येक महायोगेश्वरके अवतारोंमें उनके चार महाशैव शिष्य भी होते रहते हैं, जो योगमार्गकी वृद्धि करनेवाले तथा अविनाशी होते हैं॥ ५३॥

एते पाशुपताः शिष्या भस्मोद्धूलितविग्रहाः।
रुद्राक्षमालाभरणास्त्रिपुण्ड्रांकितमस्तकाः॥ ५४
शिष्या धर्मरताः सर्वे वेदवेदांगपारगाः।
लिंगार्चनरता नित्यं बाह्याभ्यन्तरतः स्थिताः॥ ५५
भक्त्या मयि च योगेन ध्याननिष्ठा जितेन्द्रियाः।
संख्यया द्वादशाधिक्यशतं च गणिता बुधैः॥ ५६

ये सभी शिष्य पाशुपतव्रतका आचरण करनेवाले, शरीरमें भस्मलेपन करनेवाले, रुद्राक्षकी माला धारण करनेवाले तथा त्रिपुण्ड्रसे सुशोभित मस्तकवाले होते हैं। सभी शिष्य धर्मपरायण, वेद-वेदांगके ज्ञाता, लिंगार्चनमें सदा तत्पर, बाहर तथा भीतरसे मुझमें भक्ति रखनेवाले योगध्यानपरायण तथा जितेन्द्रिय होते हैं। विद्वानोंद्वारा इनकी संख्या एक सौ बारह कही गयी है॥ ५४—५६॥

इत्येतद्वै मया प्रोक्तमवतारेषु लक्षणम्।
मन्वादिकृष्णपर्यन्तमष्टाविंशद्युगक्रमात्॥ ५७
तत्र श्रुतिसमूहानां विधानं ब्रह्मलक्षणम्।
भविष्यति तदा कल्पे कृष्णद्वैपायनो यदा॥ ५८

इस प्रकार मैंने अट्ठाईस युगोंके क्रमसे मनुसे लेकर श्रीकृष्णावतारपर्यन्त [शिवजीके] अवतारोंका लक्षण कह दिया। इस कल्पमें जब कृष्णद्वैपायन व्यास होंगे, तब श्रुतिसमूहोंका ब्रह्मलक्षणसम्पन्न विधान अर्थात् वेदान्तके रूपमें प्रयोग होगा॥ ५७-५८॥

इत्येवमुक्त्वा ब्रह्माणमनुगृह्य महेश्वरः।
पुनः संप्रेक्ष्य देवेशस्तत्रैवान्तरधीयत॥ ५९

[हे सनत्कुमार!] देवेश्वर शिव ब्रह्मासे इतना कहकर उनपर कृपा करके उनकी ओर पुनः देखकर वहींपर अन्तर्हित हो गये॥ ५९॥

इति श्रीशिवमहापुराणे तृतीयायां शतरुद्रसंहितायां शिवावतारोपाख्याने एकोनविंशतिशिवावतारवर्णनं नाम पञ्चमोऽध्यायः॥ ५॥

॥ इस प्रकार श्रीशिवमहापुराणके अन्तर्गत तृतीय शतरुद्रसंहिताके शिवावतारोपाख्यानमें शिवके उन्नीस अवतारोंका वर्णन नामक पाँचवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ ५॥

अथ षष्ठोऽध्यायः

नन्दीश्वरावतारवर्णन

सनत्कुमार उवाच

भवान्कथमनुप्राप्तो महादेवांशजः शिवम्।
श्रोतुमिच्छामि तत्सर्वं वक्तुमर्हसि मे प्रभो॥ १

सनत्कुमार बोले—[हे नन्दीश्वर!] आप महादेवके अंशसे किस प्रकार उत्पन्न हुए और किस प्रकार शिवत्वको प्राप्त हुए? हे प्रभो! मैं वह सब सुनना चाहता हूँ, अतः आप मुझे बतानेकी कृपा करें॥ १॥

नन्दीश्वर उवाच

सनत्कुमार सर्वज्ञ सावधानतया शृणु।
यथाऽहं च शिवं प्राप्तो महादेवांशजो मुने॥ २

नन्दीश्वर बोले—हे सनत्कुमार! हे सर्वज्ञ! हे मुने! जिस प्रकार शिवजीके अंशसे उत्पन्न होकर मैंने शिवत्वको प्राप्त किया है, उसको आप सावधानीपूर्वक सुनिये॥ २॥

प्रजाकामः शिलादोऽभूदुक्तः पितृभिरादरात्।
तदुद्धर्तुमना भक्त्या समुद्धारमभीप्सुभिः॥ ३

किसी समय उद्धारकी अभिलाषावाले पितरोंने [महर्षि] शिलादसे आदरपूर्वक कहा कि सन्तान उत्पन्न करनेका प्रयत्न करें, तब शिलादने भक्तिपूर्वक उनका उद्धार करनेकी इच्छासे पुत्रोत्पत्ति करनेका विचार किया॥ ३॥

अधोदृष्टिः सुधर्मात्मा शिलादो नाम वीर्यवान्।
तस्यासीन्मुनिकैर्वृत्तिः शिवलोके च सोऽगमत्॥ ४
शक्रमुद्दिश्य स मुनिस्तपस्तेपे सुदुःसहम्।
निश्चलात्मा शिलादाख्यो बहुकालं दृढव्रतः॥ ५

परम धर्मात्मा तथा तेजस्वी उन शिलादमुनिने अधोदृष्टि एवं मुनिवृत्ति धारण कर ली और वे शिवलोकको गये। उन शिलादमुनिने स्थिर मन तथा दृढ़ व्रतवाला होकर इन्द्रको उद्देश्य करके बहुत समयतक अति कठोर तप किया॥ ४-५॥

तपतस्तस्य तपसा संतुष्टोऽभूच्छतक्रतुः।
जगाम च वरं दातुं सर्वदेवप्रभुस्तदा॥ ६
शिलादमाह सुप्रीत्या शक्रस्तुष्टोऽस्मि तेऽनघ।
तेन त्वं मुनिशार्दूल वरयस्व वरानिति॥ ७

तब तपोनिरत उनके तपसे सर्वदेवप्रभु इन्द्र सन्तुष्ट हो गये और वर देनेहेतु गये तथा अत्यन्त प्रेमपूर्वक शिलादसे बोले—हे अनघ! मैं आपपर प्रसन्न हूँ। अतः हे मुनिशार्दूल! आप वर माँगें॥ ६-७॥

ततः प्रणम्य देवेशं स्तुत्वा स्तुतिभिरादरात्।
शिलादो मुनिशार्दूलस्तमाह सुकृताञ्जलिः॥ ८

तब शिलादमुनि देवेश इन्द्रको प्रणामकर स्तोत्रोंके द्वारा आदरपूर्वक स्तुति करके हाथ जोड़कर उनसे कहने लगे—॥ ८॥

शिलाद उवाच

शतक्रतो सुरेशान सन्तुष्टो यदि मे प्रभो।
अयोनिजं मृत्युहीनं पुत्रमिच्छामि सुव्रतम्॥ ९

शिलाद बोले—हे इन्द्र! हे सुरेशान! हे प्रभो! यदि आप मुझपर प्रसन्न हैं, तो मैं आपसे अयोनिज, अमर तथा उत्तम व्रतवाले पुत्रकी कामना करता हूँ॥ ९॥

शक्र उवाच

पुत्रं दास्यामि पुत्रार्थिन्योनिजं मृत्युसंयुतम्।
अन्यथा ते न दास्यामि मृत्युहीना न सन्ति वै॥ १०
न दास्यामि सुतं तेऽहं मृत्युहीनमयोनिजम्।
हरिर्विधिश्च भगवान्किमुतान्ये महामुने॥ ११

शक्र बोले—हे पुत्रार्थिन्! मैं आपको योनिसे उत्पन्न तथा मृत्युको प्राप्त होनेवाला पुत्र दे सकता हूँ, इसके विपरीत नहीं; क्योंकि मृत्युहीन तो कोई नहीं है। मैं आपको अयोनिज तथा मृत्युरहित पुत्र नहीं दे सकता, हे महामुने! [अयोनिज एवं अमर पुत्र तो] भगवान् विष्णु, ब्रह्मा तथा कोई अन्य भी नहीं दे सकते हैं॥ १०-११॥

तावपि त्रिपुरार्यङ्गसम्भवौ मरणान्वितौ।
तयोरप्यायुषां मानं कथितं निगमे पृथक्॥ १२

वे दोनों भी शिवके शरीरसे उत्पन्न होते हैं और मरते रहते हैं एवं उन दोनोंकी आयुका प्रमाण भी वेदमें अलग कहा गया है॥ १२॥

तस्मादयोनिजे पुत्रे मृत्युहीने प्रयत्नतः।
परित्यजाशां विप्रेन्द्र गृहाणात्मक्षमं सुतम्॥ १३

इसलिये हे विप्रवर! मृत्युहीन एवं अयोनिज पुत्रकी कामना प्रयत्नपूर्वक छोड़ें और अपने सामर्थ्यवाला पुत्र प्राप्त करें॥ १३॥

किन्तु देवेश्वरो रुद्रः प्रसीदति महेश्वरः।
सुदुर्लभो मृत्युहीनस्तव पुत्रो ह्ययोनिजः॥ १४

हाँ, यदि देवाधिदेव महादेव रुद्र आपपर प्रसन्न हो जायँ, तो आपको अत्यन्त दुर्लभ, मृत्युहीन और अयोनिज पुत्र प्राप्त हो सकता है॥ १४॥

अहं च विष्णुर्भगवान् द्रुहिणश्च महामुने।
अयोनिजं मृत्युहीनं पुत्रं दातुं न शक्नुमः॥ १५

आराधय महादेवं तत्पुत्रविनिकाम्यया।
सर्वेश्वरो महाशक्तः स ते पुत्रं प्रदास्यति॥ १६

हे महामुने! मैं, भगवान् विष्णु एवं ब्रह्मा भी अयोनिज तथा मृत्युहीन पुत्र नहीं दे सकते। यदि इस प्रकारके पुत्रको प्राप्त करनेकी कामनासे आप महादेवकी आराधना कीजिये, तो महान् सामर्थ्यवाले वे सर्वेश्वर आपको इस प्रकारका पुत्र देंगे॥ १५-१६॥

नन्दीश्वर उवाच

एवं व्याहृत्य विप्रेन्द्रमनुगृह्य च तं घृणी।
देवैर्वृतः सुरेशानः स्वलोकं समगान्मुने॥ १७

नन्दीश्वर बोले—हे मुने! परम दयालु इन्द्र उन विप्रेन्द्रको इस प्रकारसे कहकर तथा उनपर अनुग्रह करके देवताओंके साथ अपने लोकको चले गये॥ १७॥

गते तस्मिंश्च वरदे सहस्राक्षे शिलाशनः।
आराधयन्महादेवं तपसाऽतोषयद्भवम्॥ १८

वरदाता इन्द्रके चले जानेपर वे शिलादमुनि महादेवकी आराधना करते हुए अपनी तपस्यासे शिवको प्रसन्न करने लगे॥ १८॥

अथ तस्यैवमनिशं तत्परस्य द्विजस्य वै।
दिव्यं वर्षसहस्रं तु गतं क्षणमिवाद्भुतम्॥ १९

इस प्रकार रात-दिन तत्परतापूर्वक तपस्या करते हुए उन द्विज [शिलादमुनि]-के दिव्य एक हजार वर्ष एक क्षणके समान बीत गये, यह आश्चर्यजनक था॥ १९॥

वल्मीकेन वृताङ्गश्च लक्षकीटगणैर्मुनिः।
वज्रसूचीमुखैश्चान्यै रक्तभुग्भिश्च सर्वतः॥ २०

निर्मांसरुधिरत्वग्वै बिले तस्मिन्नवस्थितः।
अस्थिशेषोऽभवत्पश्चाच्छिलादो मुनिसत्तमः॥ २१

उनका समस्त शरीर वज्रसूचीके समान मुखवाले एवं अन्यान्य रुधिरपान करनेवाले लाखों कीड़ोंसे तथा वल्मीकसे ढँक गया। उनका शरीर त्वचा, रुधिर एवं मांससे रहित हो गया, बाँबीमें स्थित उन मुनिश्रेष्ठ शिलादकी हड्डियाँ ही बची रह गयी थीं॥ २०-२१॥

तुष्टः प्रभुस्तदा तस्मै दर्शयामास स्वां तनुम्।
दिव्यां दिव्यगुणैर्युक्तामलभ्यां वामबुद्धिभिः॥ २२

तब शिवजीने प्रसन्न होकर उन्हें दिव्य गुणोंसे युक्त अपना दिव्य शरीर दिखलाया, जिसे कुटिल बुद्धि रखनेवाले नहीं प्राप्त कर सकते हैं॥ २२॥

दिव्यवर्षसहस्रेण तप्यमानाय शूलधृक्।
सर्वदेवाधिपस्तस्मै वरदोऽस्मीत्यभाषत॥ २३

तब सभी देवताओंके स्वामी शूलधारी शिवने देवताओंके एक हजार वर्षसे तप करते हुए उन शिलादमुनिसे कहा कि मैं आपको वर देनेहेतु आया हूँ॥ २३॥

महासमाधिसंलीनः स शिलादो महामुनिः।
नाशृणोत्तद्गिरं शम्भोर्भक्त्यधीनतरस्य वै॥ २४

महासमाधिमें लीन वे महामुनि शिलाद भक्तिके अधीन रहनेवाले शिवजीकी उस वाणीको नहीं सुन सके॥ २४॥

यदा स्पृष्टो मुनिस्तेन करेण त्रिपुरारिणा।
तदैव मुनिशार्दूल उत्ससर्ज तपःक्रमम्॥ २५

जब शिवजीने अपने हाथसे मुनिका स्पर्श किया, तब मुनिश्रेष्ठ शिलादने तपस्या छोड़ी॥ २५॥

अथोन्मील्य मुनिर्नेत्रे सोमं शंभुं विलोकयन्।
द्रुतं प्रणम्य समुदा पादयोर्न्यपतन्मुने॥ २६

हे मुने! तदनन्तर नेत्र खोलकर पार्वतीसहित शिवका दर्शन प्राप्तकर शीघ्रतासे आनन्दपूर्वक प्रणाम करके शिलादमुनि उनके चरणोंपर गिर पड़े॥ २६॥

हर्षगद्गदया वाचा नतस्कंधः कृताञ्जलिः।
प्रसन्नात्मा शिलादः स तुष्टाव परमेश्वरम्॥ २७

तत्पश्चात् प्रसन्नचित्त वे शिलाद कंधा झुकाकर हाथ जोड़कर हर्षके कारण गद्गद वाणीमें परमेश्वरकी स्तुति करने लगे॥ २७॥

ततः प्रसन्नो भगवान्देवदेवस्त्रिलोचनः।
वरदोऽस्मीति तं प्राह शिलादं मुनिपुंगवम्॥ २८

तपसानेन किं कार्यं भवते हि महामते।
ददामि पुत्रं सर्वज्ञं सर्वशास्त्रार्थपारगम्॥ २९

तदनन्तर प्रसन्न हुए देवाधिदेव त्रिलोचन भगवान् शिवने उन मुनिश्रेष्ठ शिलादसे [पुनः] कहा—मैं आपको वर देने आया हूँ। हे महामते! इस तपस्यासे आपको क्या करना है? मैं आपको सर्वज्ञ तथा सर्वशास्त्रार्थवेत्ता पुत्र दे रहा हूँ॥ २८-२९॥

ततः प्रणम्य देवेशं तच्छ्रुत्वा च शिलाशनः।
हर्षगद्गदया वाचोवाच सोमविभूषणम्॥ ३०

तब यह सुनकर शिलादने शिवजीको प्रणामकर हर्षके कारण गद्गद वाणीमें उन चन्द्रशेखरसे कहा— ॥ ३०॥

शिलाद उवाच

महेश यदि तुष्टोऽसि यदि वा वरदश्च मे।
इच्छामि त्वत्समं पुत्रं मृत्युहीनमयोनिजम्॥ ३१

शिलाद बोले—हे महेश्वर! यदि आप [मुझपर] प्रसन्न हैं और मुझे वर देना चाहते हैं, तो मैं आपके समान ही अयोनिज और मृत्युहीन पुत्र चाहता हूँ॥ ३१॥

नंदीश्वर उवाच

एवमुक्तस्ततो देवस्त्र्यम्बकस्तेन शङ्करः।
प्रत्युवाच प्रसन्नात्मा शिलादं मुनिसत्तमम्॥ ३२

नन्दीश्वर बोले—[हे सनत्कुमार!] तब उनके ऐसा कहनेपर त्रिनेत्र भगवान् शिव प्रसन्नचित्त होकर मुनिश्रेष्ठ शिलादसे कहने लगे— ॥ ३२॥

शिव उवाच

पूर्वमाराधितो विप्र ब्रह्मणाऽहं तपोधन।
तपसा चावतारार्थं मुनिभिश्च सुरोत्तमैः॥ ३३

तव पुत्रो भविष्यामि नन्दी नाम्ना त्वयोनिजः।
पिता भविष्यसि मम पितुर्वै जगतां मुने॥ ३४

शिवजी बोले—हे विप्र! हे तपोधन! पूर्वकालमें ब्रह्मा, देवताओं तथा मुनियोंने [मेरे] अवतारके लिये तपस्याके द्वारा मेरी आराधना की थी, इसलिये मैं नन्दी नामसे आपके अयोनिज पुत्रके रूपमें अवतरित होऊँगा और हे मुने! तब आप मुझ तीनों लोकोंके पिताके भी पिता बन जायँगे॥ ३३-३४॥

नन्दीश्वर उवाच

एवमुक्त्वा मुनिं प्रेक्ष्य प्रणिपत्यास्थितं घृणी।
सोमस्तूर्णं तमादिश्य तत्रैवान्तर्दधे हरः॥ ३५

नन्दीश्वर बोले—ऐसा कहकर प्रणाम करके स्थित मुनिकी ओर देखकर उन्हें आज्ञा देकर उमासहित दयालु शिव वहीं अन्तर्हित हो गये॥ ३५॥

गते तस्मिन्महादेवे स शिलादो महामुनिः।
स्वमाश्रममुपागम्य ऋषिभ्योऽकथयत्ततः॥ ३६

तब उन महादेवके अन्तर्धान हो जानेपर अपने आश्रममें आकर उन महामुनि शिलादने ऋषियोंको [वह वृत्तान्त] बताया॥ ३६॥

कियता चैव कालेन तदासौ जनकः स मे।
यज्ञाङ्गणं चकर्षाशु यज्ञार्थं यज्ञवित्तमः॥ ३७

[हे सनत्कुमार!] कुछ समय बाद यज्ञवेत्ताओंमें श्रेष्ठ मेरे पिता शिलादमुनि यज्ञ करनेके लिये यज्ञस्थलका शीघ्रतासे कर्षण करने लगे॥ ३७॥

ततः क्षणादहं शंभोस्तनुजस्तस्य चाज्ञया।
स जातः पूर्वमेवाहं युगान्ताग्निसमप्रभः॥ ३८

उसी समय [यज्ञारम्भसे पूर्व ही] शिवजीकी आज्ञासे प्रलयाग्निके सदृश देदीप्यमान होकर मैं उनके शरीरसे पुत्ररूपमें प्रकट हुआ॥ ३८॥

अवर्षंस्तदा पुष्करावर्तकाद्या
जगुः खेचराः किन्नराः सिद्धसाध्याः।
शिलादात्मजत्वं गते मय्यृषीन्द्राः
समन्ताच्च वृष्टिं व्यधुः कौसुमीं ते॥ ३९

अथ ब्रह्मादयो देवा देवपत्न्यश्च सर्वशः।
तत्राजग्मुश्च सुप्रीत्या हरिश्चैव शिवोऽम्बिका॥ ४०

उस समय शिलादमुनिके पुत्ररूपमें मेरे अवतरित होनेपर पुष्करावर्त आदि मेघ वर्षा करने लगे; आकाशचारी किन्नर, सिद्ध और साध्यगण गान करने लगे और ऋषिगण चारों ओरसे पुष्पवृष्टि करने लगे। इसके बाद ब्रह्मा आदि देवगण, देवपत्नियाँ, विष्णु, शिव, अम्बिका—ये सब अत्यन्त प्रसन्नतापूर्वक वहाँ आये॥ ३९-४०॥

तदोत्सवो महानासीन्ननृतुश्चाप्सरोगणाः।
आदृत्य मां तथालिंग्य तुष्टुवुर्हर्षिताश्च ते॥ ४१

सुप्रशस्य शिलादं तं स्तुत्वा च सुस्तवैः शिवौ।
सर्वे जग्मुश्च धामानि शिवावप्यखिलेश्वरौ॥ ४२

उस समय वहाँपर बहुत बड़ा उत्सव हुआ। अप्सराएँ नाचने लगीं। वे सभी देवगण हर्षित होकर मेरा समादर तथा आलिंगन करके स्तुति करने लगे। वे लोग उन शिलादमुनिकी प्रशंसाकर तथा उत्तम स्तोत्रोंसे शिव एवं पार्वतीकी स्तुतिकर अपने-अपने धामोंको चले गये, अखिलेश्वर शिव-शिवा भी अपने धामको चले गये॥ ४१-४२॥

शिलादोऽपि च मां दृष्ट्वा कालसूर्यानलप्रभम्।
त्र्यक्षं चतुर्भुजं बालं जटामुकुटधारिणम्॥ ४३

त्रिशूलाद्यायुधं दीप्तं सर्वथा रुद्ररूपिणम्।
महानन्दभरः प्रीत्या प्रणम्यं प्रणनाम च॥ ४४

[महर्षि] शिलाद भी प्रलयकालीन सूर्य और अग्निके समान कान्तिमान्, तीन नेत्रोंसे युक्त, चार भुजावाले, जटामुकुटधारी, त्रिशूल आदि शस्त्र धारण करनेवाले, देदीप्यमान रुद्रके समान रूपवाले तथा सब प्रकारसे प्रणम्य मुझ नन्दीश्वरको बालकके रूपमें देखकर परम आनन्दसे परिपूर्ण होकर प्रेमपूर्वक प्रणाम करने लगे॥ ४३-४४॥

शिलाद उवाच

त्वयाहं नन्दितो यस्मान्नन्दी नाम्ना सुरेश्वर।
तस्मात्त्वां देवमानन्दं नमामि जगदीश्वरम्॥ ४५

शिलाद बोले—हे सुरेश्वर! आपने मुझे आनन्दित किया है, अतः आपका नाम नन्दी होगा और इसलिये आनन्दस्वरूप आप प्रभु जगदीश्वरको मैं प्रणाम करता हूँ॥ ४५॥

नन्दीश्वर उवाच

मया सह पिता हृष्टः सुप्रणम्य महेश्वरम्।
उटजं स्वं जगामाशु निधिं लब्ध्वेव निर्धनः॥ ४६

नन्दीश्वर बोले—[हे सनत्कुमार!] पिताजी उन महेश्वरको भलीभाँति प्रणाम करके मुझे साथ लेकर शीघ्रतापूर्वक पर्णकुटीमें चले गये। वे इतने प्रसन्न हुए, मानो किसी निर्धनको निधि मिल गयी हो॥ ४६॥

यदा गतोऽहमुटजं शिलादस्य महामुने।
तदाहं तादृशं रूपं त्यक्त्वा मानुष्यमास्थितः॥ ४७

हे महामुने! जब मैं [महर्षि] शिलादकी कुटीमें गया, तब मैंने उस प्रकारके रूपको त्यागकर मनुष्य-शरीर धारण कर लिया॥ ४७॥

मानुष्यमास्थितं दृष्ट्वा पिता मे लोकपूजितः।
विललापातिदुःखार्त्तः स्वजनैश्च समावृतः॥ ४८
जातकर्मादिकान्येव सर्वाण्यपि चकार मे।
शालंकायनपुत्रो वै शिलादः पुत्रवत्सलः॥ ४९

तदनन्तर मुझे मनुष्य-शरीर धारण किया हुआ देखकर लोकपूजित मेरे पिता अपने कुटुम्बियोंसहित दुखी होकर विलाप करने लगे। शालंकायनमुनिके पुत्र पुत्रवत्सल शिलादने मेरा समस्त जातकर्मादि संस्कार सम्पादित किया॥ ४८-४९॥

वेदानध्यापयामास सांगोपांगानशेषतः।
शास्त्राण्यन्यान्यपि तथा पञ्चवर्षे पिता च माम्॥ ५०
सम्पूर्णे सप्तमे वर्षे मित्रावरुणसंज्ञकौ।
मुनी तस्याश्रमं प्राप्तौ द्रष्टुं मां चाज्ञया विभोः॥ ५१

पाँचवें वर्षमें मेरे पिताने मुझे सांगोपांग वेदों तथा सम्पूर्ण शास्त्रोंका भी अध्ययन कराया। सातवें वर्षके सम्पूर्ण होनेपर मित्र और वरुण नामवाले दो मुनि शिवजीकी आज्ञासे मुझे देखनेके लिये उनके आश्रमपर आये॥ ५०-५१॥

सत्कृतौ मुनिना तेन सूपविष्टौ महामुनी।
ऊचतुश्च महात्मानौ मां निरीक्ष्य मुहुर्मुहुः॥ ५२

उन मुनि [शिलाद]-के द्वारा सत्कृत होकर सुखपूर्वक बैठे हुए दोनों महात्मा महामुनि मुझे बार-बार देखकर कहने लगे—॥ ५२॥

मित्रावरुणावूचतुः

तात नंदी तवाल्पायुः सर्वशास्त्रार्थपारगः।
न दृष्टमेव चापश्यं ह्यायुर्वर्षादतः परम्॥ ५३

मित्र और वरुण बोले—हे तात! आपके पुत्र नन्दी-जैसा सम्पूर्ण शास्त्रोंमें पारंगत मुझे अभीतक कोई दिखायी या सुनायी नहीं पड़ा, किंतु [दुःख है कि] यह अल्पायु है। अब इस वर्षसे अधिक इसकी आयु हमलोग देख नहीं पा रहे हैं॥ ५३॥

विप्रयोरित्युक्तवतोः शिलादः पुत्रवत्सलः।
तमालिङ्ग्य च दुःखार्तो रुरोदातीव विस्वरम्॥ ५४

उन विप्रोंके ऐसा कहनेपर पुत्रवत्सल शिलाद उसका आलिंगनकर दुःखसे व्याकुल होकर ऊँचे स्वरमें अत्यधिक विलाप करने लगे॥ ५४॥

मृतवत्पतितं दृष्ट्वा पितरं च पितामहम्।
प्रत्यवोचत्प्रसन्नात्मा स्मृत्वा शिवपदाम्बुजम्॥ ५५
केन त्वं तात दुःखेन वेपमानश्च रोदिषि।
दुःखं ते कुत उत्पन्नं ज्ञातुमिच्छामि तत्त्वतः॥ ५६

तदनन्तर मृतकके समान गिरे हुए पिता एवं पितामहको देखकर वह बालक शिवके चरणकमलका ध्यानकर प्रसन्नचित्त होकर कहने लगा—हे तात! आप किस दुःखसे दुखी होकर काँपते हुए रो रहे हैं, आपको यह दुःख कहाँसे उत्पन्न हुआ, मैं उसको यथार्थ रूपसे जानना चाहता हूँ॥ ५५-५६॥

पितोवाच

तवाल्पमृत्युदुःखेन दुःखितोऽतीव पुत्रक।
को मे दुःखं हरतु वै शरणं तं प्रयामि हि॥ ५७

पिता बोले—हे पुत्र! तुम्हारी अल्पावस्थामें मृत्युके दुःखसे मैं अत्यधिक दुखी हूँ। मेरे दुःखको कौन दूर करेगा, मैं उसकी शरणमें जाऊँ॥ ५७॥

पुत्र उवाच

देवो वा दानवो वापि यमः कालोऽथवापि हि।
ऋध्येयुर्यद्यपि ह्येते मामन्येऽपि जनास्तथा॥ ५८
अथापि चाल्पमृत्युर्मे न भविष्यति मा तुदः।
सत्यं ब्रवीमि जनक शपथं ते करोम्यहम्॥ ५९

पुत्र बोला—[हे पिताजी!] देवता, दानव, यमराज, काल अथवा अन्य कोई भी प्राणी यदि मुझे मारना चाहें, तो भी मेरी अल्पमृत्यु नहीं होगी, आप दुखी न हों। हे पिताजी! मैं आपकी सौगन्ध खाता हूँ, यह सच कह रहा हूँ॥ ५८-५९॥

पितोवाच

किं तपः किं परिज्ञानं को योगश्च प्रभुश्च ते।
येन त्वं दारुणं दुःखं वञ्चयिष्यसि पुत्र मे॥ ६०

पिता बोले—हे पुत्र! वह कौन-सा तप है, ज्ञान है अथवा योग है या कौन तुम्हारा प्रभु है, जिससे तुम मेरे इस दारुण दुःखको दूर करोगे?॥ ६०॥
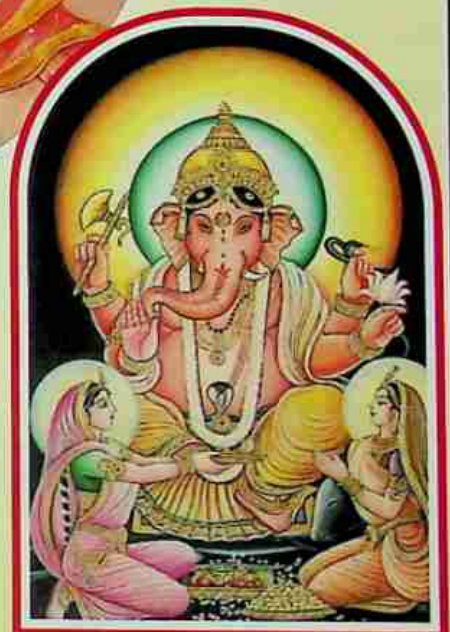
ॐ नमः शिवाय

भगवान् सदाशिवद्वारा विष्णुजीको चक्र प्रदान

भगवती शाकम्भरी देवी

द्वादश ज्योतिर्लिङ्ग—१

श्रीसोमनाथका वर्तमान मन्दिर

श्रीमल्लिकार्जुनका वर्तमान मन्दिर

श्रीमहाकालेश्वरका वर्तमान मन्दिर

श्रीसोमनाथ ज्योतिर्लिङ्ग (गुजरात)

श्रीमल्लिकार्जुन ज्योतिर्लिङ्ग (आ०प्र०)

श्रीमहाकालेश्वर ज्योतिर्लिङ्ग (म०प्र०)

द्वादश ज्योतिर्लिङ्ग—२

श्रीओङ्कारेश्वरका वर्तमान मन्दिर

श्रीकेदारनाथका वर्तमान मन्दिर

श्रीभीमशङ्करका वर्तमान मन्दिर

श्रीओङ्कारेश्वर ज्योतिर्लिङ्ग (म०प्र०)

श्रीकेदारनाथ ज्योतिर्लिङ्ग (उत्तराखण्ड)

श्रीभीमशङ्कर ज्योतिर्लिङ्ग (महाराष्ट्र)

द्वादश ज्योतिर्लिङ्ग — ३
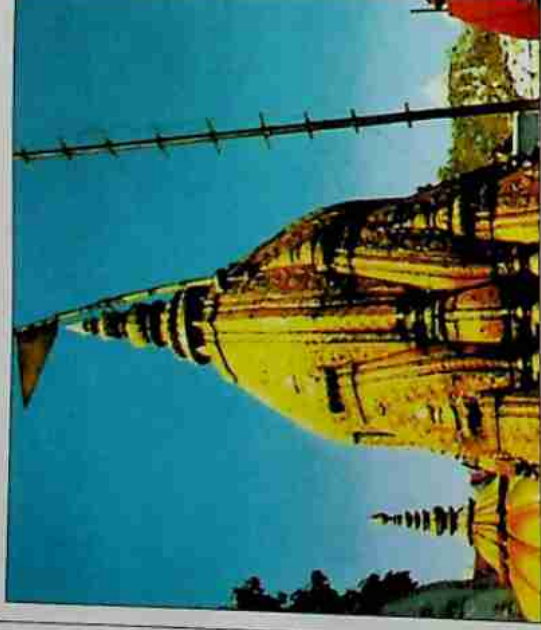
श्रीविश्वेश्वरका वर्तमान मन्दिर

श्रीत्र्यम्बकेश्वरका वर्तमान मन्दिर

श्रीवैद्यनाथका वर्तमान मन्दिर

श्रीविश्वेश्वर ज्योतिर्लिङ्ग (उ०प्र०)

श्रीत्र्यम्बकेश्वर ज्योतिर्लिङ्ग (महाराष्ट्र)

श्रीवैद्यनाथ ज्योतिर्लिङ्ग (झारखण्ड)
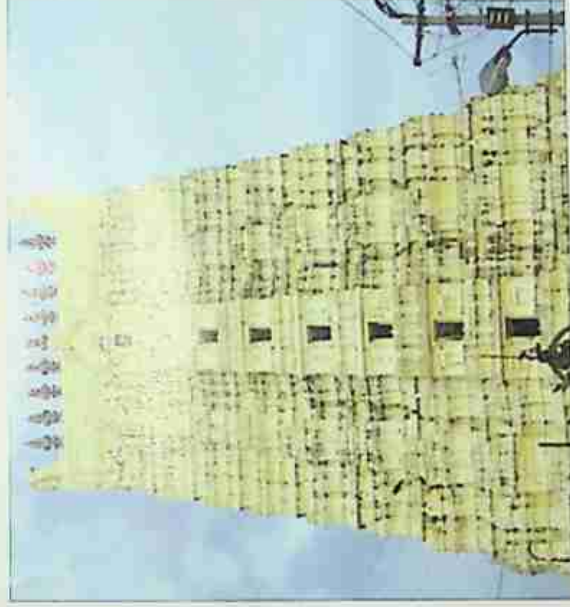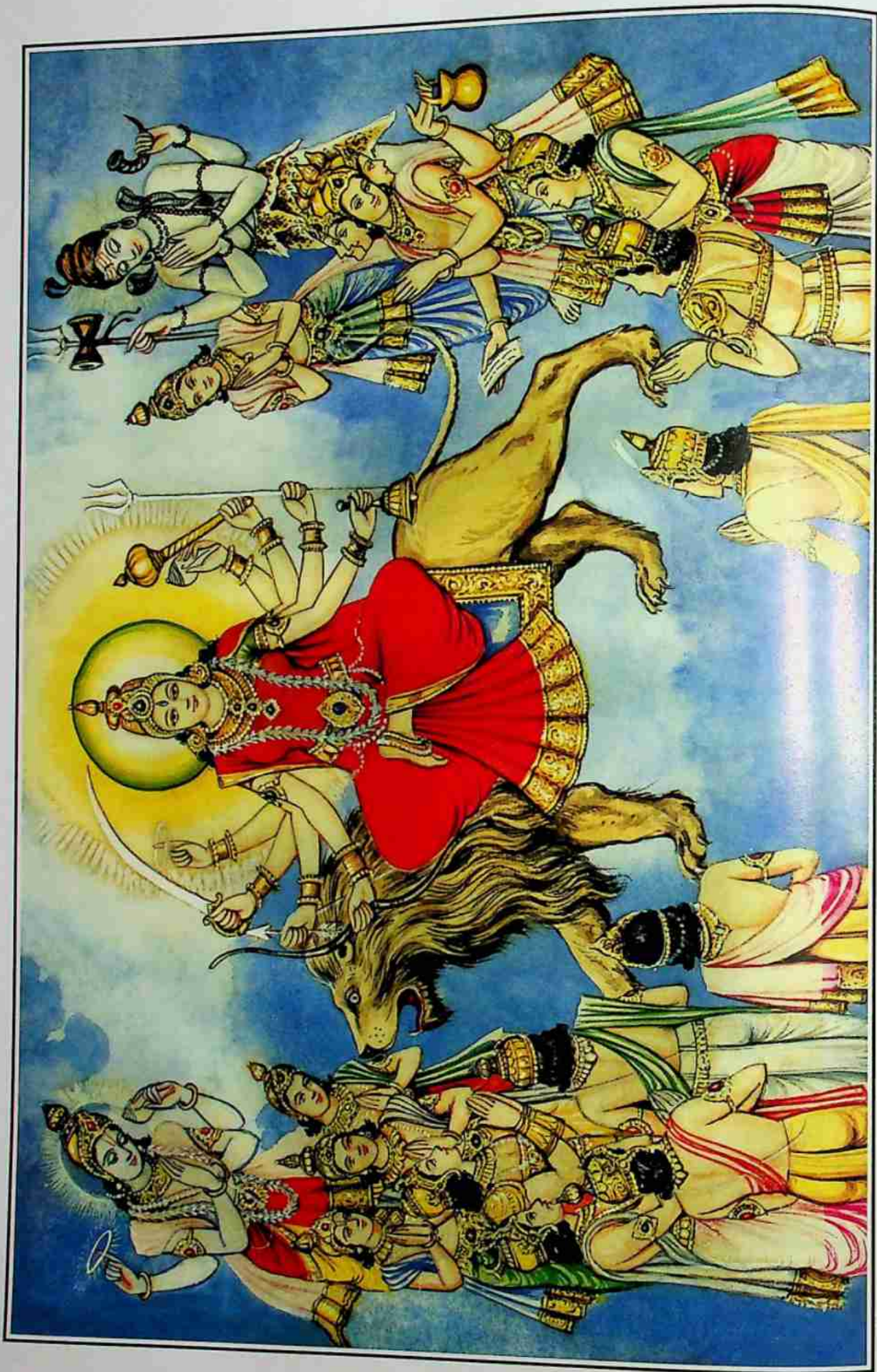
देवताओंद्वारा श्रीदुर्गाजीकी स्तुति

पुत्र उवाच

न तात तपसा मृत्युं वंचयिष्ये न विद्यया।
महादेवस्य भजनान्मृत्युं जेष्यामि नान्यथा॥ ६१

पुत्र बोला—हे तात! मैं न तो तपसे और न विद्यासे ही मृत्युको रोक सकूँगा, मैं तो केवल महादेवके भजनसे मृत्युको जीतूँगा, इसमें सन्देह नहीं है॥ ६१॥

नन्दीश्वर उवाच

इत्युक्त्वाहं पितुः पादौ प्रणम्य शिरसा मुने।
प्रदक्षिणीकृत्य च तमगच्छं वनमुत्तमम्॥ ६२

नन्दीश्वर बोले—हे मुने! ऐसा कहकर मैं सिर झुकाकर पिताके चरणोंमें प्रणामकर उनकी प्रदक्षिणा करके उत्तम वनकी ओर चला गया॥ ६२॥

इति श्रीशिवमहापुराणे तृतीयायां शतरुद्रसंहितायां नन्दिकेशावतारवर्णनं नाम षष्ठोऽध्यायः॥ ६॥

॥ इस प्रकार शिवमहापुराणके अन्तर्गत तृतीय शतरुद्रसंहितामें नन्दिकेशावतारवर्णन नामक छठा अध्याय पूर्ण हुआ॥ ६॥

अथ सप्तमोऽध्यायः

नन्दिकेश्वरका गणेश्वराधिपति पदपर अभिषेक एवं विवाह

नन्दीश्वर उवाच

तत्र गत्वा मुनेऽहं वै स्थित्वैकान्तस्थले सुधीः।
अतपं तप उग्रं सन्मुनीनामपि दुष्करम्॥ १
हृत्पुण्डरीकसुषिरे ध्यात्वा देवं त्रियम्बकम्।
त्र्यक्षं दशभुजं शान्तं पञ्चवक्त्रं सदाशिवम्॥ २
रुद्रजाप्यमकार्षं वै परमध्यानमास्थितः।
सरितश्चोत्तरे पुण्ये ह्येकचित्तः समाहितः॥ ३
तस्मिञ्जाप्येऽथ संप्रीतः स्थितं मां परमेश्वरः।
तुष्टोऽब्रवीन्महादेवः सोमः सोमार्द्धभूषणः॥ ४

नन्दीश्वर बोले—हे मुने! मैं उस वनमें जाकर निर्जन स्थलमें आसन लगाकर धीरतापूर्वक कठोर तप करने लगा, जो मुनिजनोंके लिये भी असाध्य है॥ १॥

नदीके उत्तरकी ओर पवित्र भागमें स्थित हो अपने हृदयकमलके [मध्यवर्ती] विवरमें तीन नेत्रवाले, दस भुजाओंसे युक्त, परम शान्त, पंचमुख सदाशिव त्र्यम्बकदेवका ध्यान करके परम समाधिमें लीन होकर एकाग्रचित्तसे सावधानीपूर्वक रुद्रमन्त्रका जप करने लगा। मुझको उस जपमें स्थित देखकर चन्द्रकला धारण करनेवाले पार्वतीसहित परमेश्वर महादेवने मुझपर प्रसन्न होकर कहा—॥ २—४॥

शिव उवाच

शैलादे वरदोऽहं ते तपसानेन तोषितः।
साधु तप्तं त्वया धीमन् ब्रूहि यत्ते मनोगतम्॥ ५

शिवजी बोले—हे शिलादपुत्र! मैं तुम्हारी इस तपस्यासे सन्तुष्ट होकर वर प्रदान करने आया हूँ। हे धीमन्! तुमने अच्छी तरह तपस्या की है, तुमको जो अभीष्ट हो, उसे माँग लो॥ ५॥

स एवमुक्तो देवेन शिरसा पादयोर्नतः।
अस्तवं परमेशानं जराशोकविनाशनम्॥ ६

शिवजीके ऐसा कहनेपर मैंने सिर झुकाकर उनके चरणोंमें प्रणाम किया और जरा एवं शोकका विनाश करनेवाले उन परमेश्वरकी स्तुति की॥ ६॥

अथ मां नन्दिनं शम्भुर्भक्त्या परमया युतम्।
अश्रुपूर्णेक्षणं सम्यक् पादयोः शिरसा नतम्॥ ७
उत्थाप्य परमेशानः पस्पर्श परमार्तिहा।
कराभ्यां संमुखाभ्यां तु संगृह्य वृषभध्वजः॥ ८
निरीक्ष्य गणपांश्चैव देवीं हिमवतः सुताम्।
उवाच मां कृपादृष्ट्या समीक्ष्य जगतां पतिः॥ ९

महाकष्टोंका नाश करनेवाले, वृषभध्वज, परमेश्वर शम्भुने परम भक्तिसे युक्त, अश्रुपूर्ण नेत्रवाले और चरणोंमें सम्यक् सिर झुकाये हुए मुझ नन्दीको उठाकर दोनों हाथोंसे पकड़कर मेरा स्पर्श किया। इसके बाद गणपतियों एवं देवी पार्वतीकी ओर देखकर दयामयी दृष्टिसे मुझे निहारते हुए जगत्पति शिवजी कहने लगे—॥ ७—९॥

वत्स नन्दिन् महाप्राज्ञ मृत्योर्भीतिः कुतस्तव।
मयैव प्रेषितौ विप्रौ मत्समस्त्वं न संशयः॥ १०

अमरो जरया त्यक्तोऽदुःखी गणपतिः सदा।
अव्ययश्चाक्षयश्चेष्टः सपिता ससुहृज्जनः॥ ११

मद्बलः पार्श्वगो नित्यं ममेष्टो भवितानिशम्।
न जरा जन्म मृत्युर्वै मत्प्रसादाद्भविष्यति॥ १२

हे वत्स! हे नन्दिन्! हे महाप्राज्ञ! तुमको मृत्युसे भय कहाँ? मैंने ही उन दोनों ब्राह्मणोंको भेजा था। तुम तो मेरे ही समान हो, इसमें संशय नहीं है। तुम अपने पिता एवं सुहृज्जनोंके सहित अजर, अमर, दुःखरहित, अविनाशी, अक्षय और सदा मेरे परम प्रिय गणपति हो गये। तुममें मेरे समान ही बल होगा और मेरे प्रिय होकर तुम निरन्तर मेरे समीप निवास करोगे। मेरी कृपासे तुमको जरा, जन्म एवं मृत्यु प्राप्त नहीं होगी॥ १०—१२॥

नन्दीश्वर उवाच

एवमुक्त्वा शिरोमालां कुशेशयमयीं निजाम्।
समुन्मुच्य बबन्धाशु मम कण्ठे कृपानिधिः॥ १३

नन्दीश्वर बोले—[हे सनत्कुमार!] इस प्रकार कहकर कृपानिधि शिवने कमलकी बनी हुई अपनी शिरोमालाको उतारकर मेरे कण्ठमें शीघ्रतासे पहना दिया॥ १३॥

तयाहं मालया विप्र शुभया कण्ठसक्तया।
त्र्यक्षो दशभुजश्चासं द्वितीय इव शङ्करः॥ १४

हे विप्र! उस पवित्र मालाके गलेमें पड़ते ही मैं तीन नेत्र एवं दस भुजाओंसे युक्त होकर दूसरे शिवके समान हो गया॥ १४॥

तत एव समादाय हस्तेन परमेश्वरः।
उवाच ब्रूहि किं तेऽद्य ददामि वरमुत्तमम्॥ १५

तदनन्तर परमेश्वरने मुझे अपने हाथसे पकड़कर कहा—हे वत्स! बताओ, मैं तुमको कौन-सा श्रेष्ठ वर प्रदान करूँ?॥ १५॥

ततो जटाश्रितं वारि गृहीत्वा हारनिर्मलम्।
उक्त्वा नदी भवेतीह विससर्ज वृषध्वजः॥ १६

तत्पश्चात् वृषभध्वजने अपनी जटामें स्थित हारके समान निर्मल जलको लेकर 'तुम यहींपर नदी हो जाओ'—ऐसा कहा और उसे छिड़क दिया॥ १६॥

ततः पञ्चमिता नद्यः प्रावर्तन्त शुभावहाः।
सुतोयाश्च महावेगा दिव्यरूपा च सुन्दरीः॥ १७
जटोदका त्रिस्रोताश्च वृषध्वनिरितीव हि।
स्वर्णोदका जम्बुनदी पञ्च नद्यः प्रकीर्तिताः॥ १८

उससे स्वच्छ जलवाली, महावेगसे युक्त, दिव्य-स्वरूपा सुन्दरी एवं कल्याणकारिणी पाँच नदियाँ उत्पन्न हुईं। जटोदका, त्रिस्रोता, वृषध्वनि, स्वर्णोदका एवं जम्बुनदी—ये पाँच नदियाँ कही गयी हैं॥ १७-१८॥

एतत्पञ्चनदं नाम शिवपृष्ठतमं शुभम्।
जपेश्वरसमीपे तु पवित्रं परमं मुने॥ १९
यः पञ्चनदमासाद्य स्नात्वा जप्त्वेश्वरेश्वरम्।
पूजयेच्छिवसायुज्यं प्रयात्येव न संशयः॥ २०

हे मुने! यह पंचनद नामक शिवका शुभ पृष्ठदेश परम पवित्र है, जो जपेश्वरके समीप विद्यमान है। जो [व्यक्ति] पंचनदमें आकर इसमें स्नान तथा जपकर जपेश्वर शिवकी पूजा करता है, उसे शिवसायुज्यकी प्राप्ति होती है, इसमें संशय नहीं है॥ १९-२०॥

अथ शम्भुरुवाचोमामभिषिञ्चामि नन्दिनम्।
गणेन्द्रं व्याहरिष्यामि किं वा त्वं मन्यसेऽव्यये॥ २१

इसके बाद शिवजीने पार्वतीजीसे कहा—मैं नन्दीको अभिषिक्त करना चाहता हूँ और इसे गणेश्वर बनाना चाहता हूँ। हे अव्यये! इसमें तुम्हारी क्या सम्मति है?॥ २१॥

उमोवाच

दातुमर्हसि देवेश नन्दिने परमेश्वर।
महाप्रियतमो नाथ शैलादिस्तनयो मम॥ २२

उमा बोलीं—हे देवेश! हे परमेश्वर! आप इस नन्दीको अवश्य ही गणेश्वरपद प्रदान करें। हे नाथ! यह शिलादपुत्र [आजसे] मेरा परम प्रिय पुत्र है॥ २२॥

नन्दीश्वर उवाच

ततः स शङ्करः स्वीयान्सस्मार गणपान्वरान्।
स्वतन्त्रः परमेशानः सर्वदो भक्तवत्सलः॥ २३
स्मरणादेव रुद्रस्य सम्प्राप्ताश्च गणेश्वराः।
असङ्ख्याता महामोदाः शङ्कराकृतयोऽखिलाः॥ २४

नन्दीश्वर बोले—[हे सनत्कुमार!] तदनन्तर स्वतन्त्र, सब कुछ प्रदान करनेवाले तथा भक्तवत्सल परमेश्वर शंकरने अपने श्रेष्ठ गणाधिपोंका स्मरण किया। शिवके स्मरण करते ही असंख्य गणेश्वर वहाँ उपस्थित हो गये, वे सब परम आनन्दसे परिपूर्ण तथा शंकरके स्वरूपवाले थे॥ २३-२४॥

ते गणेशाः शिवं देवीं प्रणम्याहुः शुभं वचः।
ते प्रणम्य करौ बद्ध्वा नतस्कन्धा महाबलाः॥ २५

वे महाबली गणेश्वर शिव एवं पार्वतीको प्रणाम करके हाथ जोड़कर तथा विनत होकर शुभ वचन कहने लगे—॥ २५॥

गणेशा ऊचुः

किमर्थं च स्मृता देव ह्याज्ञापय महाप्रभो।
किङ्करान्नः समायातांस्त्रिपुरार्दन कामद॥ २६

गणेश्वर बोले—हे देव! आपने किसलिये हमलोगोंका स्मरण किया है? हे महाप्रभो! हे त्रिपुरार्दन! हे कामद! यहाँ आये हुए हम सेवकोंको आज्ञा दीजिये॥ २६॥

किं सागरान् शोषयामो यमं वा सह किंकरैः।
हन्मो मृत्युं महामृत्युं विशेषं वृद्धपद्मजम्॥ २७
बद्ध्वेन्द्रं सह देवैश्च विष्णुं वा पार्षदैः सह।
आनयामः सुसंक्रुद्धान्दैत्यान्वा दानवैः सह॥ २८
कस्याद्य व्यसनं घोरं करिष्यामस्तवाज्ञया।
कस्य वाद्योत्सवो देव सर्वकामसमृद्धये॥ २९

क्या हमलोग समुद्रोंको सुखा दें अथवा सेवकोंसहित यमराजको मार डालें अथवा मृत्यु, महामृत्यु तथा बूढ़े ब्रह्माका संहार कर दें अथवा देवताओंके सहित इन्द्रको अथवा पार्षदोंसहित विष्णुको अथवा दानवोंसहित अत्यन्त क्रुद्ध दैत्योंको बाँधकर ले आयें? आज आपकी आज्ञासे हम किसे घोर दण्ड दें अथवा हे देव! सभी कामनाओंकी सिद्धिके लिये हम आज किसका उत्सव मनायें?॥ २७—२९॥

नन्दीश्वर उवाच

इत्याकर्ण्य वचस्तेषां गणानां वीरवादिनाम्।
उवाच तान्स प्रशंस्य गणेशान्परमेश्वरः॥ ३०

नन्दीश्वर बोले—इस प्रकार वीरतापूर्ण वचन कहनेवाले उन गणोंकी बात सुनकर वे परमेश्वर उन गणपतियोंकी प्रशंसा करके कहने लगे—॥ ३०॥

शिव उवाच

नन्दीश्वरोऽयं पुत्रो मे सर्वेषामीश्वरेश्वरः।
प्रियो गणाग्रणीः सर्वैः क्रियतां वचनं मम॥ ३१

शिवजी बोले—यह नन्दीश्वर मेरा परम प्रिय पुत्र है, अतः तुमलोग इसे सभी गणोंका अग्रणी तथा सभी गणाध्यक्षोंका ईश्वर बनाओ, यह मेरी आज्ञा है॥ ३१॥

सर्वे प्रीत्याभिषिञ्चध्वं मद्गणानां गतिं पतिम्।
अद्यप्रभृति युष्माकमयं नन्दीश्वरः प्रभुः॥ ३२

मेरे जितने भी गणपति हैं, उन गणपतियोंके आश्रय इस [नन्दी]-को पतिपदपर तुम सब प्रेमपूर्वक अभिषिक्त करो। यह नन्दीश्वर आजसे तुम सभीका स्वामी होगा॥ ३२॥

नन्दीश्वर उवाच

एवमुक्ताः शङ्करेण गणपाः सर्व एव ते।
एवमस्त्विति सम्प्रोच्य सम्भारानाहरँस्ततः॥ ३३

नन्दीश्वर बोले—तब शंकरजीके द्वारा इस प्रकार कहे गये वे सभी गणेश्वर 'ऐसा ही होगा'—यह कहकर [अभिषेककी] सामग्री एकत्र करने लगे॥ ३३॥

ततो देवाश्च सेन्द्राश्च नारायणमुखास्तथा।
मुनयः सर्वतो लोका आजग्मुर्मुदिताननाः॥ ३४

इसके बाद प्रसन्न मुखमण्डलवाले इन्द्रसहित सभी देवता, नारायण आदि मुख्य [देवगण], मुनिगण एवं अन्य सभी लोग वहाँ उपस्थित हुए॥ ३४॥

पितामहोऽपि भगवन्नियोगाच्छङ्करस्य वै।
चकार नंदिनः सर्वमभिषेकं समाहितः॥ ३५

ततो विष्णुस्ततः शक्रो लोकपालास्तथैव च।
ऋषयस्तुष्टुवुश्चैव पितामहपुरोगमाः॥ ३६

स्तुतिमत्सु ततस्तेषु विष्णुः सर्वजगत्पतिः।
शिरस्यञ्जलिमाधाय तुष्टाव च समाहितः॥ ३७

प्राञ्जलिः प्रणतो भूत्वा जयशब्दं चकार च।
ततो गणाधिपाः सर्वे ततो देवास्ततोऽसुराः॥ ३८

एवं स्तुतश्चाभिषिक्तो देवैः सब्रह्मकैस्तदा।
नन्दीश्वरोऽहं विप्रेन्द्र नियोगात्परमेशितुः॥ ३९

उद्वाहश्च कृतस्तत्र नियोगात्परमेष्ठिनः।
महोत्सवयुतः प्रीत्या विष्णुब्रह्मादिभिर्मम॥ ४०

मरुतां च सुता देवी सुयशास्तु मनोहरा।
पत्नी सा मेऽभवद्दिव्या मनोनयननन्दिनी॥ ४१
लब्धं शशिप्रभं छत्रं तया तत्र विभूषितम्।
चामरैश्चामरासक्तहस्ताग्रैः स्त्रीगणैर्युतम्॥ ४२
सिंहासनं च परमं तया चाधिष्ठितं मया।
अलंकृतो महालक्ष्म्या मुकुटाद्यैः सुभूषणैः॥ ४३
लब्धो हारश्च परमो देव्याः कण्ठगतस्तथा।
वृषेन्द्रश्च शितो नागस्सिंहः सिंहध्वजस्तथा॥ ४४
रथश्च हेमहारश्च चन्द्रबिंबसमः शुभः।
अन्यान्यपि च वस्तूनि लब्धानि हि मया मुने॥ ४५
एवं कृतविवाहोऽहं तया पत्न्या महामुने।
पादौ ववन्दे शम्भोश्च शिवाया ब्रह्मणो हरेः॥ ४६

तथाविधं त्रिलोकेशः सपत्नीकं च मां प्रभुः।
प्रोवाच परया प्रीत्या स शिवो भक्तवत्सलः॥ ४७

ईश्वर उवाच

शृणु सत्पुत्र तातस्त्वं सुयशेयं तव प्रिया।
ददामि ते वरं प्रीत्या यत्ते मनसि वाञ्छितम्॥ ४८

हे भगवन्! शिवजीकी आज्ञासे स्वयं ब्रह्माने एकाग्रचित्त होकर नन्दीश्वरका समस्त गणाध्यक्षोंके अधिपतिपदपर अभिषेक किया। तत्पश्चात् विष्णु, इन्द्र एवं [अन्य] लोकपालोंने भी उसी प्रकार अभिषेक किया, तत्पश्चात् ऋषिगण एवं पितामह आदिने उनकी स्तुति की। उन सभीके स्तुति कर लेनेके अनन्तर सम्पूर्ण जगत्के स्वामी विष्णुने सिरपर अंजलि बाँधकर एकाग्रचित्त हो उनकी स्तुति की और हाथ जोड़कर प्रणाम करके उनका जयकार किया, पुनः सभी गणाधिपों, देवताओं एवं असुरोंने जयकार किया॥ ३५—३८॥

हे विप्रेन्द्र! इस प्रकार परमेश्वरकी आज्ञासे ब्रह्मासहित सभी देवताओंने मुझ नन्दीश्वरका अभिषेक तथा स्तवन किया॥ ३९॥

ब्रह्मा, विष्णु आदि देवताओंने शिवजीकी आज्ञासे बड़े उत्सवके साथ प्रेमपूर्वक मेरा विवाह भी सम्पन्न किया॥ ४०॥

मन तथा नेत्रोंको आनन्द देनेवाली मनोहर तथा दिव्य सुयशा नामक मरुत्कन्या मेरी पत्नी हुई॥ ४१॥

उस [सुयशा]-ने हाथके अग्रभागमें चामर धारण की हुई स्त्रियोंसे युक्त तथा चामरोंसे सुशोभित चन्द्रप्रभासदृश छत्र प्राप्त किया। मैं उसके साथ श्रेष्ठतम सिंहासनपर बैठा और स्वयं महालक्ष्मीने मुकुट आदि सुन्दर भूषणोंसे मुझे सुशोभित किया॥ ४२-४३॥

देवीने अपने कण्ठमें स्थित उत्तम हार उतारकर मुझे प्रदान किया। हे मुने! मुझे श्वेत वृषेन्द्र, हाथी, सिंह, सिंहध्वज, रथ, चन्द्रबिम्बके समान स्वच्छ सोनेका हार और अन्यान्य वस्तुएँ भी प्राप्त हुईं॥ ४४-४५॥

हे महामुने! इस प्रकार विवाह हो जानेपर मैंने उस पत्नीके साथ शिव, पार्वती, ब्रह्मा एवं विष्णुके चरणोंकी वन्दना की॥ ४६॥

उस समय उन त्रिलोकेश्वर भक्तवत्सल प्रभु सदाशिवने उस स्वरूपवाले मुझ सपत्नीक नन्दीश्वरसे अत्यन्त प्रेमके साथ कहा—॥ ४७॥

ईश्वर बोले—हे सत्पुत्र! सुनो, तुम मेरे पुत्र हो। यह सुयशा तुम्हारी पत्नी है। तुम्हारे मनमें जो भी अभिलाषा है, उसे मैं प्रेमपूर्वक तुम्हें प्रदान करूँगा॥ ४८॥

सदाऽहं तव नन्दीश सन्तुष्टोऽस्मि गणेश्वर।
देव्या च सहितो वत्स शृणु मे परमं वचः॥ ४९

सदेष्टश्च विशिष्टश्च परमैश्वर्यसंयुतः।
महायोगी महेष्वासः सपिता सपितामहः॥ ५०

अजेयः सर्वजेता च सदा पूज्यो महाबलः।
अहं यत्र भवांस्तत्र यत्र त्वं तत्र चाप्यहम्॥ ५१

हे गणेश्वर! हे नन्दीश्वर! पार्वतीसहित मैं तुमपर सदा सन्तुष्ट हूँ। हे वत्स! तुम मेरी उत्तम बात सुनो। तुम अपने पिता एवं पितामहके साथ सदा मेरे प्रिय, विशिष्ट, परमैश्वर्यसे युक्त, महायोगी, महाधनुर्धर, अजेय, सर्वजेता, सदा पूज्य एवं महाबली होओगे। जहाँ मैं रहूँगा, वहाँ तुम रहोगे और जहाँ तुम रहोगे, वहाँ मैं भी रहूँगा॥ ४९—५१॥

अयं च ते पिता पुत्र परमैश्वर्यसंयुतः।
भविष्यति गणाध्यक्षो मम भक्तो महाबलः॥ ५२

हे पुत्र! तुम्हारे ये पिता महान् ऐश्वर्यसे युक्त, महाबली, मेरे भक्त एवं गणोंके अध्यक्ष होंगे॥ ५२॥

पितामहोऽपि ते वत्स तथास्तु नियमा इमे।
मत्समीपं गमिष्यन्ति मया दत्तवरास्तथा॥ ५३

हे वत्स! तुम्हारे पितामह भी उसी प्रकारके होंगे। ये सभी मेरे द्वारा वरदान प्राप्तकर मेरी समीपता प्राप्त करेंगे। तुम्हारे लिये मैंने यह वरदान दिया॥ ५३॥

नन्दीश्वर उवाच

ततो देवी महाभागा नन्दिनं वरदाब्रवीत्।
वरं ब्रूहीति मां पुत्र सर्वान्कामान्यथेप्सितान्॥ ५४

नन्दीश्वर बोले—[हे मुने!] तब वरदायिनी महाभागा पार्वती देवीने मुझ नन्दीश्वरसे कहा—हे पुत्र! तुम मुझसे सभी अभिलषित वर माँगो॥ ५४॥

तच्छ्रुत्वा वचनं देव्याः प्रावोचत्साञ्जलिस्तदा।
भक्तिर्भवतु मे देवि पादयोस्ते सदा वरा॥ ५५

तब पार्वती देवीके उस वचनको सुनकर नन्दीश्वरने हाथ जोड़कर कहा—हे देवि! आपके चरणोंमें सदा मेरी उत्तम भक्ति हो॥ ५५॥

श्रुत्वा मम वचो देवी ह्येवमस्त्विति साब्रवीत्।
सुयशां तां च सुप्रीत्या नन्दिप्रियतमां शिवाम्॥ ५६

मेरे वचनको सुनकर उन देवीने कहा—ऐसा ही हो, पुनः उन्होंने बड़े प्रेमसे मुझ नन्दीकी कल्याणमयी पत्नी सुयशासे कहा—॥ ५६॥

देव्युवाच

वत्से वरं यथेष्टं हि त्रिनेत्रा जन्मवर्जिता।
पुत्रपौत्रैस्तु भक्तिर्मे तथा च भर्तुरेव हि॥ ५७

देवी बोलीं—हे वत्से! तुम यथेष्ट वर ग्रहण करो। तुम तीन नेत्रवाली एवं जन्म [-मृत्यु]-से रहित रहोगी और पुत्र-पौत्रोंके सहित तुम्हारी भक्ति मुझमें और अपने पतिमें निरन्तर बनी रहेगी॥ ५७॥

नन्द्युवाच

तदा ब्रह्मा च विष्णुश्च सर्वे देवगणाश्च वै।
ताभ्यां वरान्ददुः प्रीत्या सुप्रसन्नाः शिवाज्ञया॥ ५८

नन्दी बोले—उस समय ब्रह्मा, विष्णु तथा सभी देवताओंने प्रसन्नतापूर्वक शिवकी आज्ञासे उन दोनोंको वर दिये॥ ५८॥

सान्वयं मां गृहीत्वेशस्ततः सम्बन्धिबान्धवैः।
आरुह्य वृषमीशानो गतो देव्या निजं गृहम्॥ ५९

उसके बाद ईश शिवजी सम्बन्धियों, बन्धु-बान्धवों एवं कुटुम्बके साथ मुझे लेकर पार्वतीसहित बैलपर सवार होकर अपने धामको गये॥ ५९॥

विष्ण्वादयः सुराः सर्वे प्रशंसन्तो ह्यमी तदा।
स्वधामानि ययुः प्रीत्या संस्तुवन्तः शिवं शिवाम्॥ ६०

वे विष्णु आदि सभी देवता भी मेरी प्रशंसा करते हुए तथा शिव-पार्वतीकी स्तुति करते हुए अपने-अपने धामको चले गये॥ ६०॥

इति ते कथितो वत्स स्वावतारो महामुने।
सदानन्दकरः पुंसां शिवभक्तिप्रवर्द्धनः॥ ६१

हे वत्स! हे महामुने! इस प्रकार मैंने अपना अवतार आपसे कहा, जो मनुष्योंको सदा आनन्द देनेवाला एवं शिवजीमें भक्ति बढ़ानेवाला है॥ ६१॥

य इदं नन्दिनो जन्म वरदानं तथा मम।
अभिषेकं विवाहं च शृणुयाच्छ्रावयेत्तथा॥ ६२

पठेद्वा पाठयेद्वापि श्रद्धावान्भक्तिसंयुतः।
इह सर्वसुखं भुक्त्वा परत्र लभते गतिम्॥ ६३

जो [व्यक्ति] श्रद्धा तथा भक्तिसे युक्त होकर मुझ नन्दीके इस जन्म, वरदान, अभिषेक तथा विवाहके प्रसंगको सुनता है अथवा सुनाता है अथवा भक्तिपूर्वक पढ़ता है या पढ़ाता है, वह इस लोकमें सभी सुखोंको भोगकर परलोकमें मोक्ष प्राप्त कर लेता है॥ ६२-६३॥

इति श्रीशिवमहापुराणे तृतीयायां शतरुद्रसंहितायां नन्दिकेश्वरावताराभिषेक-विवाहवर्णनं नाम सप्तमोऽध्यायः॥ ७॥

॥ इस प्रकार श्रीशिवमहापुराणके अन्तर्गत तृतीय शतरुद्रसंहितामें नन्दिकेश्वर-अवतार-अभिषेक एवं विवाहवर्णन नामक सातवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ ७॥

अथाष्टमोऽध्यायः

भैरवावतारवर्णन

नन्दीश्वर उवाच

सनत्कुमार सर्वज्ञ शृणु त्वं भैरवीं कथाम्।
यस्याः श्रवणमात्रेण शैवी भक्तिर्दृढा भवेत्॥ १

नन्दीश्वर बोले—हे सनत्कुमार! हे सर्वज्ञ! अब आप भैरवकी कथा सुनें, जिसके सुननेमात्रसे शिवभक्ति सुस्थिर हो जाती है॥ १॥

भैरवः पूर्णरूपो हि शङ्करस्य परात्मनः।
मूढास्तं वै न जानन्ति मोहिताः शिवमायया॥ २

भैरवजी परमात्मा शंकरके पूर्णरूप हैं, शिवजीकी मायासे मोहित मूर्खलोग उन्हें नहीं जान पाते॥ २॥

सनत्कुमार नो वेत्ति महिमानं महेशितुः।
चतुर्भुजोऽपि विष्णुर्वै चतुर्वक्त्रोऽपि वै विधिः॥ ३

हे सनत्कुमार! चतुर्भुज विष्णु तथा चतुर्मुख ब्रह्माजी भी महेश्वरकी महिमाको नहीं जान पाते हैं॥ ३॥

चित्रमत्र न किञ्चिद्वै दुर्ज्ञेया खलु शाम्भवी।
तया संमोहिताः सर्वे नार्चयन्त्यपि तं परम्॥ ४

इसमें कोई आश्चर्य नहीं है; क्योंकि शिवजीकी माया दुर्ज्ञेय है। उसी मायासे मोहित होकर [ये] सभी [संसारी] लोग उन परमेश्वरकी पूजा नहीं करते हैं॥ ४॥

वेदयेद्यदि वात्मानं स एव परमेश्वरः।
तदा विदन्ति ते सर्वे स्वेच्छया न हि केऽपि तम्॥ ५

यदि वे परमेश्वर स्वयं ही अपना ज्ञान करा दें, तभी वे सभी लोग उन्हें जान सकते हैं, अपनी इच्छासे कोई भी उन्हें नहीं जान पाता है॥ ५॥

सर्वगोऽपि महेशानो नेक्ष्यते मूढबुद्धिभिः।
देववद् बुध्यते लोके योऽतीतो मनसां गिराम्॥ ६

यद्यपि महेश्वर सर्वव्यापी हैं, किंतु मूढ़ बुद्धिवाले उन्हें देख नहीं पाते हैं। जो वाणी एवं मनसे परे हैं, उन्हें लोग मात्र देवता ही समझते हैं॥ ६॥

अत्रेतिहासं वक्ष्येऽहं परमर्षे पुरातनम्।
शृणु तं श्रद्धया तात परमं ज्ञानकारणम्॥ ७

हे महर्षे! इस विषयमें पुराना इतिहास कह रहा हूँ। हे तात! आप उसको श्रद्धापूर्वक सुनिये। वह परमोत्तम और ज्ञानका कारण है॥ ७॥

मेरुशृङ्गेऽद्भुते रम्ये स्थितं ब्रह्माणमीश्वरम्।
जग्मुर्देवर्षयः सर्वे सुतत्त्वं ज्ञातुमिच्छया॥ ८

समस्त देवता और ऋषिगण परम तत्त्व जाननेकी इच्छासे सुमेरुपर्वतके अद्भुत तथा मनोहर शिखरपर स्थित भगवान् ब्रह्माके पास गये॥ ८॥

तत्रागत्य विधिं नत्वा पप्रच्छुस्ते महादरात्।
कृताञ्जलिपुटाः सर्वे नतस्कन्धा मुनीश्वराः॥ ९

वहाँ जाकर ब्रह्माजीको नमस्कार करके वे सब हाथ जोड़कर तथा कन्धा झुकाकर आदरपूर्वक पूछने लगे—॥ ९॥

देवर्षय ऊचुः

देवदेव प्रजानाथ सृष्टिकृल्लोकनायक।
तत्त्वतो वद चास्मभ्यं किमेकं तत्त्वमव्ययम्॥ १०

देवता तथा ऋषि बोले—हे देवदेव! हे प्रजानाथ! हे सृष्टिकर्ता! हे लोकनायक! आप हमें ठीक-ठीक बताइये कि अद्वितीय तथा अविनाशी तत्त्व क्या है?॥ १०॥

नन्दीश्वर उवाच

स मायया महेशस्य मोहितः पद्मसम्भवः।
अविज्ञाय परं भावं संभावं प्रत्युवाच ह॥ ११

नन्दीश्वर बोले—शिवजीकी मायासे मोहित वे ब्रह्माजी परम तत्त्वको न समझकर सामान्य बात कहने लगे॥ ११॥

ब्रह्मोवाच

हे सुरा ऋषयः सर्वे सुमत्या शृणुतादरात्।
वच्म्यहं परमं तत्त्वमव्ययं वै यथार्थतः॥ १२
जगद्योनिरहं धाता स्वयम्भूरज ईश्वरः।
अनादिभागहं ब्रह्म ह्येक आत्मा निरञ्जनः॥ १३
प्रवर्तको हि जगतामहमेव निवर्त्तकः।
संवर्तको मदधिको नान्यः कश्चित्सुरोत्तमाः॥ १४

ब्रह्माजी बोले—हे देवताओ तथा ऋषियो! आप सब आदरपूर्वक सद्बुद्धिसे मेरी बात सुनें। मैं यथार्थ रूपसे अव्यय परम तत्त्वको बता रहा हूँ॥ १२॥

मैं जगत्का मूल कारण हूँ। मैं धाता, स्वयम्भू, अज, ईश्वर, अनादिभाक्, ब्रह्म, अद्वितीय एवं निरंजन आत्मा हूँ। मैं ही सारे जगत्का प्रवर्तक, संवर्तक तथा निवर्तक हूँ। हे श्रेष्ठ देवताओ! मुझसे बड़ा दूसरा कोई नहीं है॥ १३-१४॥

नन्दीश्वर उवाच

तस्यैवं वदतो धातुर्विष्णुस्तत्र स्थितो मुने।
प्रोवाच प्रहसन्वाक्यं संक्रुद्धो मोहितोऽजया॥ १५

नन्दीश्वर बोले—हे मुने! जब ब्रह्माजी इस बातको कह रहे थे, उसी समय वहाँ स्थित विष्णुने सनातनी मायासे विमोहित होकर हँसते हुए क्रुद्ध होकर यह वचन कहा—॥ १५॥

न चैतदुचिता ब्रह्मन्योगयुक्तस्य मूर्खता।
अविज्ञाय परं तत्त्वं वृथैतत्ते निगद्यते॥ १६

हे ब्रह्मन्! योगसे युक्त होते हुए भी आपकी यह मूर्खता उचित नहीं है। परमतत्त्वको न जानकर आप यह व्यर्थ बोल रहे हैं॥ १६॥

कर्ताऽहं सर्वलोकानां परमात्मा परः पुमान्।
यज्ञो नारायणो देवो मायाधीशः परागतिः॥ १७

सम्पूर्ण लोकोंका कर्ता, परमपुरुष, परमात्मा, यज्ञस्वरूप नारायण, मायाधीश एवं परमगति प्रभु मैं ही हूँ॥ १७॥

ममाज्ञया त्वया ब्रह्मन् सृष्टिरेषा विधीयते।
जगतां जीवनं नैव मामनादृत्य चेश्वरम्॥ १८

हे ब्रह्मन्! आप मेरी आज्ञासे ही इस सृष्टिकी रचना करते हैं। मुझ ईश्वरका अनादरकर यह जगत् किसी भी प्रकार जीवित नहीं रह सकता॥ १८॥

एवं विप्रकृतौ मोहात्परस्परजयैषिणौ।
प्रोचतुर्निगमांश्चात्र प्रमाणे सर्वथा तनौ॥ १९
प्रष्टव्यास्ते विशेषेण स्थिता मूर्तिधराश्च ते।
पप्रच्छतुः प्रमाणज्ञानित्युक्त्वा चतुरोऽपि तान्॥ २०

इस प्रकार परस्पर तिरस्कृत होकर वे दोनों ही अर्थात् ब्रह्मा एवं विष्णु मोहवश एक-दूसरेको जीतनेकी इच्छाकर आपसमें विवाद करते हुए अपने-अपने विषयमें वेदप्रामाण्यकी अपेक्षासे प्रमाणतत्त्वज्ञ, मूर्तिधारी चारों वेदोंके पास जाकर पूछने लगे—॥ १९-२०॥

विधिविष्णू ऊचतुः

वेदाः प्रमाणं सर्वत्र प्रतिष्ठां परमामिताः।
यूयं वदत विश्रब्धं किमेकं तत्त्वमव्ययम्॥ २१

ब्रह्मा एवं विष्णु बोले—हे वेदो! आपलोगोंका सर्वत्र प्रामाण्य है और आपलोगोंको परम प्रतिष्ठा भी प्राप्त हुई है, अतः विश्वासपूर्वक कहिये कि एकमात्र अविनाशी तत्त्व क्या है?॥ २१॥

नन्दीश्वर उवाच

इत्याकर्ण्य तयोर्वाचं पुनस्ते हि ऋगादयः।
अवदंस्तत्त्वतः सर्वे परेशं संस्मरन् प्रभुम्॥ २२

नन्दीश्वर बोले—उन दोनोंका यह वचन सुनकर ऋक् आदि सभी वेद परमेश्वर शिवका स्मरण करते हुए यथार्थ बात कहने लगे॥ २२॥

यदि मान्या वयं देवौ सृष्टिस्थितिकरौ विभू।
तदा प्रमाणं वक्ष्यामो भवत्सन्देहभेदकम्॥ २३

हे सृष्टिस्थितिकर्ता, सर्वव्यापी देवो! यदि हम [आपलोगोंको] मान्य हैं, तो आपलोगोंके सन्देहको दूर करनेवाले प्रमाणको हमलोग कह रहे हैं॥ २३॥

नन्दीश्वर उवाच

श्रुत्युक्तविधिमाकर्ण्य प्रोचतुस्तौ सुरौ श्रुतीः।
युष्मदुक्तं प्रमाणं नौ किं तत्त्वं सम्यगुच्यताम्॥ २४

नन्दीश्वर बोले—वेदोंके द्वारा कही गयी विधिको सुनकर ब्रह्मा एवं विष्णुने वेदोंसे कहा कि जो कुछ भी आपलोग कहेंगे, वही प्रमाण हमलोग मान लेंगे, अतः तत्त्व क्या है, इसे भलीभाँति कहें॥ २४॥

ऋग्वेद उवाच

यदन्तःस्थानि भूतानि यतः सर्वं प्रवर्त्तते।
यदाहुः परमं तत्त्वं स रुद्रस्त्वेक एव हि॥ २५

ऋग्वेद बोला—जिनके भीतर सम्पूर्ण भूत स्थित हैं, जिनसे सब कुछ प्रवृत्त होता है एवं जिन्हें परम तत्त्व कहते हैं, वे एकमात्र रुद्र ही हैं॥ २५॥

यजुर्वेद उवाच

यो यज्ञैरखिलैरीशो योगेन च समिज्यते।
येन प्रमाणं खलु नः स एकः सर्वदृक् शिवः॥ २६

यजुर्वेद बोला—मनुष्य योग एवं समस्त यज्ञोंके द्वारा जिन ईश्वरकी आराधना करता है और जिनसे निश्चय ही हमलोग प्रमाणित हैं, वे एकमात्र सबके द्रष्टा शिव ही परमतत्त्व हैं॥ २६॥

सामवेद उवाच

येनेदं भ्रम्यते विश्वं योगिभिर्यो विचिन्त्यते।
यद्भासा भासते विश्वं स एकस्त्र्यम्बकः परः॥ २७

सामवेद बोला—यह जगत् जिनके द्वारा भ्रमण कर रहा है, योगीजन जिनका चिन्तन करते हैं और जिनके प्रकाशसे यह संसार प्रकाशित हो रहा है, वे एकमात्र त्र्यम्बक शिव ही परमतत्त्व हैं॥ २७॥

अथर्वणवेद उवाच

यं प्रपश्यन्ति देवेशं भक्त्यनुग्रहिणो जनाः।
तमाहुरेकं कैवल्यं शङ्करं दुःखतः परम्॥ २८

अथर्ववेद बोला—जिनकी भक्तिका अनुग्रह प्राप्तकर भक्तजन उनका साक्षात्कार करते हैं, उन्हीं दुःखरहित एवं कैवल्यस्वरूप एकमात्र शंकरको परमतत्त्व कहा गया है॥ २८॥

नन्दीश्वर उवाच

श्रुत्युक्तमिदमाकर्ण्यातीव मायाविमोहितौ।
स्मित्वाहतुर्विधिहरी निगमांस्तान्विचेतनौ॥ २९

नन्दीश्वर बोले—वेदोंका यह वचन सुनकर शिवजीकी मायासे अत्यन्त विमोहित ब्रह्मा एवं विष्णु अचेतसे हो गये, फिर मुसकराकर उन वेदोंसे कहने लगे—॥ २९॥

विधिहरी ऊचतुः

हे वेदाः किमिदं यूयं भाषन्ते गतचेतनाः।
किं जातं वोऽद्य सर्वं हि नष्टं सुवयुनं परम्॥ ३०

ब्रह्मा एवं विष्णु बोले—हे वेदो! आपलोग चेतनाहीन होकर यह क्या प्रलाप कर रहे हैं? आज आपलोगोंको क्या हो गया है? अवश्य ही आपलोगोंका सारा श्रेष्ठ ज्ञान नष्ट हो गया है॥ ३०॥

कथं प्रमथनाथोऽसौ रममाणो निरन्तरम्।
दिगम्बरः पीतवर्णो शिवया धूलिधूसरः॥ ३१

विरूपवेषो जटिलो वृषगो व्यालभूषणः।
परं ब्रह्मत्वमापन्नः क्व च तत्संगवर्जितम्॥ ३२

प्रमथनाथ, दिगम्बर, पीतवर्णवाले, धूलिधूसरित, निरन्तर पार्वतीके साथ रमण करनेवाले, अत्यन्त विकृत रूपवाले, जटाधारी, बैलपर सवारी करनेवाले तथा सर्पोंका आभूषण धारण करनेवाले वे शिव निःसंग परम ब्रह्म किस प्रकार हो सकते हैं?॥ ३१-३२॥

इत्युदीरितमाकर्ण्य प्रणवः सर्वगस्तयोः।
अमूर्तो मूर्तिमान्प्रीत्या जृम्भमाण उवाच तौ॥ ३३

उस समय उन दोनोंकी इस बातको सुनकर सर्वत्र व्यापक तथा निराकार प्रणवने मूर्तिमान् प्रकट होकर उनसे कहा—॥ ३३॥

प्रणव उवाच

न हीशो भगवान् शक्त्या ह्यात्मनो व्यतिरिक्तया।
कदाचिद्रमते रुद्रो लीलारूपधरो हरः॥ ३४

प्रणव बोला—लीलारूपधारी, हर भगवान् रुद्र अपनी शक्तिके बिना कभी भी रमण करनेमें समर्थ नहीं होते॥ ३४॥

असौ हि परमेशानः स्वयंज्योतिः सनातनः।
आनन्दरूपा तस्यैषा शक्तिर्नागन्तुकी शिवा॥ ३५

ये परमेश्वर शिव सनातन तथा स्वयं ज्योतिःस्वरूप हैं और ये शिवा उन्हींकी आह्लादिनी शक्ति हैं, अतः आगन्तुक नहीं हैं, अपितु उन्हींके समान नित्य [तथा उनसे अभिन्न] हैं॥ ३५॥

नन्दीश्वर उवाच

इत्येवमुक्तोऽपि तदा विधेर्विष्णोश्च वै तदा।
नाज्ञानमगमन्नाशं श्रीकण्ठस्यैव मायया॥ ३६
प्रादुरासीत्ततो ज्योतिरुभयोरन्तरे महत्।
पूरयन्निजया भासा द्यावाभूम्योर्यदन्तरम्॥ ३७

नन्दीश्वर बोले—उस समय ॐकारके इस प्रकार कहनेपर भी शिवमायासे मोहित ब्रह्मा एवं विष्णुका अज्ञान जब दूर नहीं हुआ, तब उसी समय अपने प्रकाशसे पृथ्वी तथा आकाशके अन्तरालको पूर्ण करती हुई एक महान् ज्योति उन दोनोंके बीचमें प्रकट हो गयी॥ ३६-३७॥

ज्योतिर्मण्डलमध्यस्थो ददृशे पुरुषाकृतिः।
विधिक्रतुभ्यां तत्रैव महाद्भुततनुर्मुने॥ ३८

हे मुने! उस ज्योतिसमूहके बीचमें स्थित एक अत्यन्त अद्भुत शरीरवाले पुरुषको ब्रह्मा एवं विष्णुने देखा॥ ३८॥

प्रजज्वालाथ कोपेन ब्रह्मणः पञ्चमं शिरः।
आवयोरन्तरे कोऽसौ बिभृयात्पुरुषाकृतिम्॥ ३९

तब क्रोधके कारण ब्रह्माजीका पाँचवाँ सिर जलने लगा कि हम दोनोंके मध्य यह पुरुषशरीरको धारण किये हुए कौन है?॥ ३९॥

विधिः संभावयेद्यावत्तावत्स त्रिविलोचनः।
दृष्टः क्षणेन च महापुरुषो नीललोहितः॥ ४०

त्रिशूलपाणिर्भालाक्षो नागोडुपविभूषणः।
हिरण्यगर्भस्तं दृष्ट्वा विहसन्प्राह मोहितः॥ ४१

जबतक ब्रह्माजी यह विचार कर ही रहे थे कि इतनेमें उसी क्षण वह महापुरुष त्रिलोचन, नीललोहित सदाशिवके रूपमें दिखायी पड़ा। हाथमें त्रिशूल धारण किये, मस्तकपर नेत्रवाले, सर्प एवं चन्द्रमाको भूषणके रूपमें धारण किये उन्हें देखकर मोहित हुए ब्रह्माजी हँसते हुए कहने लगे—॥ ४०-४१॥

ब्रह्मोवाच

नीललोहित जाने त्वां मा भैषीश्चन्द्रशेखर।
भालस्थलान्मम पुरा रुद्रः प्रादुरभूद्भवान्॥ ४२
रोदनाद् रुद्रनामापि योजितोऽसि मया पुरा।
मामेव शरणं याहि पुत्र रक्षां करोमि ते॥ ४३

ब्रह्माजी बोले—हे नीललोहित! हे चन्द्रशेखर! मैं तुम्हें जानता हूँ, डरो मत। तुम पूर्व समयमें मेरे ललाट-प्रदेशसे रोते हुए उत्पन्न हुए थे। पहले मैंने ही रोनेके कारण तुम्हारा नाम रुद्र रखा था। हे पुत्र! मेरी शरणमें आओ, मैं तुम्हारी रक्षा करूँगा॥ ४२-४३॥

नन्दीश्वर उवाच

अथेश्वरः पद्मयोनेः श्रुत्वा गर्ववतीं गिरम्।
चुकोपातीव च तदा कुर्वन्निव लयं मुने॥ ४४

नन्दीश्वर बोले—हे मुने! उसके बाद ब्रह्माकी अहंकारयुक्त वाणी सुनकर शिवजी अत्यन्त क्रोधित हुए, उस समय ऐसा प्रतीत हो रहा था, मानो प्रलय कर देंगे॥ ४४॥

स कोपतः समुत्पाद्य पुरुषं भैरवं क्वचित्।
प्रज्वलन्तं सुमहसा प्रीत्या च परमेश्वरः॥ ४५

उस समय परमेश्वर शिव अपने क्रोधके द्वारा परम तेजसे देदीप्यमान भैरव नामक एक पुरुषको उत्पन्न करके प्रेमपूर्वक [उससे कहने लगे—] ॥ ४५ ॥

ईश्वर उवाच

प्राक् च पंकजजन्मासौ शास्यस्ते कालभैरव।
कालवद्राजसे साक्षात्कालराजस्ततो भवान्॥ ४६

ईश्वर बोले—हे कालभैरव! सर्वप्रथम तुम इस पद्मयोनि ब्रह्माको दण्ड दो, तुम साक्षात् कालके सदृश शोभित हो रहे हो, अतः तुम कालराज [नामसे विख्यात] होओगे ॥ ४६ ॥

विश्वं भर्तुं समर्थोऽसि भरणाद्भैरवः स्मृतः।
त्वत्तो भेष्यति कालोऽपि ततस्त्वं कालभैरवः॥ ४७

तुम संसारका पालन करनेमें सर्वथा समर्थ हो, उसका भरण-पोषण करनेसे तुम भैरव कहे गये हो, तुमसे काल भी डरेगा। अतः तुम कालभैरव कहे जाओगे ॥ ४७ ॥

आमर्दयिष्यति भवान्रुष्टो दुष्टात्मनो यतः।
आमर्दक इति ख्यातिं ततः सर्वत्र यास्यसि॥ ४८

तुम रुष्ट होनेपर दुष्टात्माओंका मर्दन करोगे, इसलिये सर्वत्र आमर्दक नामसे विख्यात होओगे ॥ ४८ ॥

यतः पापानि भक्तानां भक्षयिष्यसि तत्क्षणात्।
पापभक्षण इत्येव तव नाम भविष्यति॥ ४९

तुम भक्तोंके पापोंका तत्काल भक्षण करोगे, इसलिये तुम्हारा नाम पापभक्षण भी होगा ॥ ४९ ॥

या मे मुक्तिपुरी काशी सर्वाभ्योऽपि गरीयसी।
आधिपत्यं च तस्यास्ते कालराज सदैव हि॥ ५०
तत्र ये पातकिनरास्तेषां शास्ता त्वमेव हि।
शुभाशुभं च तत्कर्म चित्रगुप्तो लिखिष्यति॥ ५१

हे कालराज! सभी पुरियोंसे श्रेष्ठ जो मेरी मुक्तिपुरी काशी है, तुम सदा उसके अधिपति बनकर रहोगे। वहाँ जो पापी मनुष्य होंगे, उनके शासक तुम ही रहोगे, उनके अच्छे-बुरे कर्मको चित्रगुप्त लिखेंगे ॥ ५०-५१ ॥

नन्दीश्वर उवाच

एतान्वरान्प्रगृह्याथ तत्क्षणात्कालभैरवः।
वामांगुलिनखाग्रेण चकर्त च विधेश्शिरः॥ ५२

नन्दीश्वर बोले—कालभैरवने इस प्रकारके वरोंको प्राप्तकर अपनी बाँयीं अँगुलियोंके नखोंके अग्रभागसे ब्रह्माका पाँचवाँ सिर तत्क्षण ही काट डाला ॥ ५२ ॥

यदंगमपराध्नोति कार्यं तस्यैव शासनम्।
अतो येन कृता निन्दा तच्छिन्नं पञ्चमं शिरः॥ ५३

जो अंग अपराध करता है, उसीको दण्ड देना चाहिये, अतः जिस सिरने निन्दा की थी, उस पाँचवें सिरको उन्होंने काट दिया ॥ ५३ ॥

अथ छिन्नं विधिशिरो दृष्ट्वा भीततरो हरिः।
शातरुद्रियमन्त्रैश्च भक्त्या तुष्टाव शङ्करम्॥ ५४

उसके बाद ब्रह्माके सिरको कटा हुआ देखकर विष्णु बहुत भयभीत हो गये और शतरुद्रिय मन्त्रोंसे भक्तिपूर्वक शिवजीकी स्तुति करने लगे ॥ ५४ ॥

भीतो हिरण्यगर्भोऽपि जजाप शतरुद्रियम्।
इत्थं तौ गतगर्वौ हि संजातौ तत्क्षणान्मुने॥ ५५

हे मुने! तब भयभीत हुए ब्रह्माजी भी शतरुद्रिय मन्त्रका जप करने लगे। इस प्रकार वे दोनों ही उसी क्षण अहंकाररहित हो गये ॥ ५५ ॥

परब्रह्म शिवः साक्षात्सच्चिदानन्दलक्षणः।
परमात्मा गुणातीत इति ज्ञानमवापतुः॥ ५६

उन दोनोंको यह ज्ञान हो गया कि साक्षात् शिव ही सच्चिदानन्द लक्षणसे युक्त परमात्मा, गुणातीत तथा परब्रह्म हैं ॥ ५६ ॥

सनत्कुमार सर्वज्ञ शृणु मे परमं शुभम्।
यावद्गर्वो भवेत्तावज्ज्ञानगुप्तिर्विशेषतः॥ ५७

हे सनत्कुमार! हे सर्वज्ञ! मेरा यह उत्तम शुभ वचन सुनिये, जबतक अहंकार रहता है, तबतक विशेषरूपसे ज्ञान लुप्त रहता है ॥ ५७ ॥

**त्यक्त्वाभिमानं पुरुषो जानाति परमेश्वरम्।
गर्विणं हन्ति विश्वेशो जातो गर्वापहारकः॥ ५८**

अहंकारका त्याग करनेपर ही मनुष्य परमेश्वरको जान पाता है। विश्वेश्वर शिव अहंकारी [के अहंकार]-का नाश करते हैं, क्योंकि वे गर्वापहारक कहे गये हैं॥ ५८॥

**अथ विष्णुविधी ज्ञात्वा विगर्वौ परमेश्वरः।
प्रसन्नोऽभून्महादेवोऽकरोत्तावभयौ प्रभुः॥ ५९**

इसके बाद ब्रह्मा तथा विष्णुको अहंकाररहित जानकर परमेश्वर महादेव प्रसन्न हो गये और उन प्रभुने उन दोनोंको भयरहित कर दिया॥ ५९॥

**आश्वास्य तौ महादेवः प्रीतः प्रणतवत्सलः।
प्राह स्वां मूर्तिमपरां भैरवं तं कपर्दिनम्॥ ६०**

प्रसन्न हुए भक्तवत्सल महादेव उन्हें आश्वस्त करके अपने दूसरे स्वरूप उन कपर्दी भैरवसे कहने लगे— ॥ ६०॥

महादेव उवाच

**त्वया मान्यो विष्णुरसौ तथा शतधृतिः स्वयम्।
कपालं वैधसं वापि नीललोहित धारय॥ ६१
ब्रह्महत्यापनोदाय व्रतं लोकाय दर्शय।
चर त्वं सततं भिक्षां कपालव्रतमाश्रितः॥ ६२**

महादेव बोले—[हे भैरव!] ये ब्रह्मा एवं विष्णु तुम्हारे मान्य हैं। हे नीललोहित! तुम ब्रह्माके [कटे हुए] इस कपालको धारण करो और ब्रह्महत्याको दूर करनेके लिये संसारके समक्ष व्रत प्रदर्शित करो, कपालव्रत धारणकर तुम निरन्तर भिक्षाचरण करो॥ ६१-६२॥

**इत्युक्त्वा पश्यतस्तस्य तेजोरूपः शिवोऽब्रवीत्।
उत्पाद्य चैकां कन्यां तु ब्रह्महत्याभिविश्रुताम्॥ ६३**

इस प्रकार [कालभैरवसे] कहकर उनके देखते ही ब्रह्महत्या नामक कन्याको उत्पन्नकर तेजोरूप शिवजीने उससे कहा— ॥ ६३॥

**यावद्वाराणसीं दिव्यां पुरीमेषां गमिष्यति।
तावत्त्वं भीषणं कालमनुगच्छोग्ररूपिणम्॥ ६४
सर्वत्र ते प्रवेशोऽस्ति त्यक्त्वा वाराणसीं पुरीम्।
वाराणसीं यदा गच्छेत्तन्मुक्तो भव तत्क्षणात्॥ ६५**

तुम उग्र रूप धारण करनेवाले इन भयंकर कालभैरवके पीछे-पीछे तबतक चलो, जबतक ये वाराणसीपुरीतक नहीं जाते। इनके वाराणसीमें जाते ही तुम मुक्त हो जाओगी। वाराणसीपुरीको छोड़कर सर्वत्र तुम्हारा प्रवेश होगा॥ ६४-६५॥

नन्दीश्वर उवाच

**नियोज्य तामिति तदा ब्रह्महत्यां च तां प्रभुः।
महाद्भुतश्च स शिवोऽप्यन्तर्धानमगात्ततः॥ ६६**

नन्दीश्वर बोले—वे परम अद्भुत प्रभु भगवान् शंकर भी उस ब्रह्महत्याको [उस यात्राके लिये] नियुक्त करके अन्तर्हित हो गये॥ ६६॥

इति श्रीशिवमहापुराणे तृतीयायां शतरुद्रसंहितायां भैरवावतारवर्णनं नामाष्टमोऽध्यायः॥ ८॥

॥ इस प्रकार श्रीशिवमहापुराणके अन्तर्गत तृतीय शतरुद्रसंहितामें भैरवावतारवर्णन नामक आठवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ ८॥

अथ नवमोऽध्यायः

भैरवावतारलीलावर्णन

नन्दीश्वर उवाच

**सनत्कुमार सर्वज्ञ भैरवीमपरां कथाम्।
शृणु प्रीत्या महादोषसंहर्त्रीं भक्तिवर्द्धिनीम्॥ १**

नन्दीश्वर बोले—हे सनत्कुमार! हे सर्वज्ञ! अब आप महादोषोंको दूर करनेवाली और भक्तिको बढ़ानेवाली दूसरी भैरवी कथाको प्रेमपूर्वक सुनिये॥ १॥

तत्सान्निध्यं भैरवोऽपि कालोऽभूत्कालकालनः।
स देवदेववाक्येन बिभ्रत्कापालिकं व्रतम्॥ २

कपालपाणिर्विश्वात्मा चचार भुवनत्रयम्।
नात्याक्षीच्चापि तं देवं ब्रह्महत्यापि दारुणा॥ ३

काशीका सान्निध्य प्राप्तकर वे कालभैरव कालके भी भक्षक महाकाल हुए। देवदेवके आदेशसे कापालिक व्रत धारण किये हुए वे विश्वात्मा भैरव हाथमें [ब्रह्माका] कपाल लेकर तीनों लोकोंमें घूमने लगे, किंतु उस दारुण ब्रह्महत्याने कहीं भी उन प्रभुका पीछा करना न छोड़ा॥ २-३॥

प्रतितीर्थं भ्रमन् नापि विमुक्तो ब्रह्महत्यया।
अतः कामारिमहिमा सर्वोऽपि ह्यवगम्यताम्॥ ४

प्रत्येक तीर्थमें घूमते हुए भी वे ब्रह्महत्यासे नहीं मुक्त हुए, इसमें भी सभीको शिवकी अद्भुत महिमा ही जाननी चाहिये॥ ४॥

प्रमथैः सेव्यमानोऽपि ह्येकदा विहरन्हरः।
कापालिको ययौ स्वैरी नारायणनिकेतनम्॥ ५

एक बार प्रमथगणोंसे सेवित होते हुए भी कापालिक वेषवाले शिवजी [कालभैरव] विहार करते हुए अपनी इच्छासे विष्णुके निवासस्थानपर पहुँचे॥ ५॥

अथायान्तं महाकालं त्रिनेत्रं सर्पकुण्डलम्।
महादेवांशसम्भूतं पूर्णाकारं च भैरवम्॥ ६
पपात दण्डवद्भूमौ तं दृष्ट्वा गरुडध्वजः।
देवाश्च मुनयश्चैव देवनार्य्यः समन्ततः॥ ७
अथ विष्णुः प्रणम्यैनं प्रयातः कमलापतिः।
शिरस्यञ्जलिमाधाय तुष्टाव विविधैः स्तवैः॥ ८

उस समय महादेवके अंशसे उत्पन्न हुए, सर्पका कुण्डल धारण किये, त्रिनेत्र, महाकाल तथा पूर्णाकार उन भैरवको आता हुआ देखकर गरुडध्वज विष्णुने तथा देवों, मुनियों एवं देवस्त्रियोंने भी दण्डवत् प्रणाम किया। इसके बाद लक्ष्मीपति विष्णुने उन्हें तत्त्वतः जानते हुए पुनः प्रणामकर सिरपर अंजलि रखकर नाना प्रकारके स्तोत्रोंसे उनकी स्तुति की॥ ६—८॥

सानन्दोऽथ हरिः प्राह प्रसन्नात्मा महामुने।
क्षीरोदमथनोद्भूतां पद्मां पद्मालयां मुदा॥ ९

हे महामुने! तदनन्तर आनन्दसे पूर्ण हुए विष्णु प्रसन्नचित्त होकर क्षीरसागरसे उत्पन्न हुई कमलनिवासिनी लक्ष्मीसे प्रेमपूर्वक कहने लगे—॥ ९॥

विष्णुरुवाच

प्रिये पश्याब्जनयने धन्यासि सुभगेऽनघे।
धन्योऽहं देवि सुश्रोणि यत्पश्यावो जगत्पतिम्॥ १०

विष्णुजी बोले—हे प्रिये! हे कमलनयने! हे सुभगे! हे अनघे! हे देवि! हे सुश्रोणि! देखो, तुम धन्य हो और मैं भी धन्य हूँ, जो कि हम दोनों जगत्पति [शिव]-का साक्षात् दर्शन कर रहे हैं॥ १०॥

अयं धाता विधाता च लोकानां प्रभुरीश्वरः।
अनादिः शरणः शान्तः पुरः षड्विंशसंमितः॥ ११

ये ही धाता, विधाता तथा लोकके प्रभु, ईश्वर, अनादि, सबको शरण देनेवाले, शान्त तथा छब्बीस तत्त्वोंके रूपमें भी ये ही अभिव्यक्त हो रहे हैं॥ ११॥

सर्वज्ञः सर्वयोगीशः सर्वभूतैकनायकः।
सर्वभूतान्तरात्माऽयं सर्वेषां सर्वदः सदा॥ १२

ये सर्वज्ञ, सभी योगियोंके स्वामी, सभी प्राणियोंके एकमात्र नायक, सर्वभूतान्तरात्मा एवं सबको सदा सब कुछ देनेवाले हैं॥ १२॥

ये विनिद्रा विनिःश्वासाः शान्ताः ध्यानपरायणाः।
धिया पश्यन्ति हृदये सोऽयं पद्मे समीक्षताम्॥ १३

हे पद्मे! निद्राको त्यागकर तथा श्वासको रोककर शान्त स्वभाववाले जन जिन्हें ध्यान लगाकर बुद्धिके द्वारा हृदयमें देखते हैं, वे ये ही हैं, आप उनको देखें॥ १३॥

यं विदुर्वेदतत्त्वज्ञा योगिनो यतमानसाः।
अरूपो रूपवान्भूत्वा सोऽयमायाति सर्वगः॥ १४

वेदतत्त्वज्ञ एवं स्थिर मनवाले योगीजन जिन्हें जानते हैं, वे ही सर्वव्यापक शिव अरूप होते हुए भी स्वरूप धारणकर यहाँ आ रहे हैं॥ १४॥

अहो विचित्रं देवस्य चेष्टितं परमेष्ठिनः।
यस्याख्यां ब्रुवतो नित्यं न देहः सोऽपि देहभृत्॥ १५

तं दृष्ट्वा न पुनर्जन्म लभ्यते मानवैर्भुवि।
सोऽयमायाति भगवांस्त्र्यम्बकः शशिभूषणः॥ १६

पुण्डरीकदलायामे धन्ये मेऽद्य विलोचने।
यद् दृश्यते महादेवो ह्याभ्यां लक्ष्मि महेश्वरः॥ १७

धिग्धिक्पदं तु देवानां परं दृष्ट्वा न शङ्करम्।
लभ्यते यत्र निर्वाणं सर्वदुःखान्तकृत्तु यत्॥ १८

देवत्वादशुभं किञ्चिद्देवलोके न विद्यते।
दृष्ट्वापि सर्वे देवेशं यन्मुक्तिं न लभामहे॥ १९

नन्दीश्वर उवाच

एवमुक्त्वा हृषीकेशः संप्रहृष्टतनूरुहः।
प्रणिपत्य महादेवमिदमाह वृषध्वजम्॥ २०

विष्णुरुवाच

किमिदं देवदेवेन सर्वज्ञेन त्वया विभो।
क्रियते जगतां धात्रा सर्वपापहराव्यय॥ २१

क्रीडेयं तव देवेश त्रिलोचन महामते।
किं कारणं विरूपाक्ष चेष्टितं ते स्मरार्दन॥ २२

किमर्थं भगवञ्छम्भो भिक्षां चरसि शक्तिप।
संशयो मे जगन्नाथ एष त्रैलोक्यराज्यद॥ २३

नन्दीश्वर उवाच

एवमुक्तस्ततः शम्भुर्विष्णुना भैरवो हरः।
प्रत्युवाचाद्भुतोतिः स विष्णुं हि विहसन्प्रभुः॥ २४

भैरव उवाच

ब्रह्मणस्तु शिरश्छिन्नमंगुल्याग्रनखेन ह।
तदघं प्रतिहन्तुं हि चराम्येतद् व्रतं शुभम्॥ २५

नन्दीश्वर उवाच

एवमुक्तो महेशेन भैरवेण रमापतिः।
स्मृत्वा किञ्चिन्नतशिराः पुनरेवमजिज्ञपत्॥ २६

अहो, इन परमेष्ठीकी चेष्टा भी अद्भुत है कि जिनके चरित्रका वर्णन करनेवाला मनुष्य शरीरधारी होकर भी विदेह हो जाता है एवं जिनका दर्शन करनेसे मनुष्योंको पुनः पृथ्वीपर जन्म ग्रहण नहीं करना पड़ता, वे ही त्र्यम्बक शशिभूषण भगवान् शिव आ रहे हैं॥ १५-१६॥

हे लक्ष्मि! श्वेत कमलदलके समान बड़े-बड़े ये मेरे नेत्र आज धन्य हुए, जो इनके द्वारा महेश्वर महादेवका दर्शन किया जा रहा है॥ १७॥

देवताओंके उस पदको धिक्कार है, जिन्होंने शंकरका दर्शन नहीं किया, जो समस्त दुःखोंका नाश करनेवाले तथा मोक्षदायक हैं॥ १८॥

यदि देवदेवेश शिवका दर्शनकर हम सभीने मुक्ति न प्राप्त की, तो देवलोकमें देवता होनेसे बढ़कर और कुछ भी अशुभ बात नहीं है॥ १९॥

नन्दीश्वर बोले—[लक्ष्मीसे] इस प्रकार कहकर रोमांचित शरीरवाले विष्णु वृषभध्वज महादेवको प्रणाम करके यह कहने लगे—॥ २०॥

विष्णुजी बोले—हे विभो! हे सर्वपापहर! हे अव्यय! हे सर्वज्ञ तथा संसारके धाता देवदेव! आप यह क्या कर रहे हैं?॥ २१॥

हे देवेश! हे त्रिलोचन! हे महामते! यह आपकी क्रीड़ा किसलिये हो रही है? हे विरूपाक्ष! हे स्मरार्दन! आपकी इस प्रकारकी चेष्टाका क्या कारण है?॥ २२॥

हे भगवन्! हे शम्भो! हे शक्तिपते! आप किस कारणसे भिक्षाटन कर रहे हैं? हे जगन्नाथ! हे त्रैलोक्यका राज्य देनेवाले! मुझे यह सन्देह हो रहा है॥ २३॥

नन्दीश्वर बोले—विष्णु ने जब इस प्रकार शिवरूप भैरवसे कहा, तब अद्भुत लीला करनेवाले उन प्रभुने विष्णुजीसे हँसते हुए कहा—॥ २४॥

भैरव बोले—मैंने अपने अँगुलीके नखाग्रसे ब्रह्मदेवका सिर काट लिया है, उसी पापको दूर करनेके निमित्त इस शुभ व्रतका अनुष्ठान कर रहा हूँ॥ २५॥

नन्दीश्वर बोले—महेशरूप भैरवके इस प्रकार कहनेपर लक्ष्मीपति कुछ स्मरण करके सिर झुकाकर पुनः इस प्रकार कहने लगे—॥ २६॥

विष्णुरुवाच

यथेच्छसि तथा क्रीड सर्वविघ्नापनोदक।
मायया मां महादेव नाच्छादयितुमर्हसि॥ २७

नाभीकमलकोशात्तु कोटिशः कमलासनाः।
कल्पे कल्पे पुरा ह्यासंस्त्वन्नियोगबलाद्विभो॥ २८

त्यज मायामिमां देव दुस्तरामकृतात्मभिः।
ब्रह्मादयो महादेव मायया तव मोहिताः॥ २९

यथावदनुगच्छामि चेष्टितं ते शिवापते।
तवैवानुग्रहाच्छम्भो सर्वेश्वर सतांगते॥ ३०

संहारकाले संप्राप्ते सदेवान्निखिलान्मुनीन्।
लोकान्वर्णाश्रमवतो हरिष्यसि यदा हर॥ ३१
तदा कृते महादेव पापं ब्रह्मवधादिकम्।
पारतन्त्र्यं न ते शम्भो स्वैरं क्रीडत्यतो भवान्॥ ३२

अतीत ब्रह्मणां ह्यस्थ्नां स्त्रक्कण्ठे तव भासते।
तथाप्यनुगता शम्भो ब्रह्महत्या तवानघ॥ ३३

कृत्वापि सुमहत्पापं यस्त्वां स्मरति मानवः।
आधारं जगतामीश तस्य पापं विलीयते॥ ३४

यथा तमो न तिष्ठेत सन्निधावंशुमालिनः।
तथैव तव यो भक्तः पापं तस्य व्रजेत्क्षयम्॥ ३५

यश्चिन्तयति पुण्यात्मा तव पादाम्बुजद्वयम्।
ब्रह्महत्याकृतमपि पापं तस्य व्रजेत्क्षयम्॥ ३६
तव नामानुरक्ता वाग्यस्य पुंसो जगत्पते।
अप्यद्रिकूटतुलितं नैनस्तमनुबाधते॥ ३७

परमात्मन्परं धाम स्वेच्छाभिधृतविग्रह।
कुतूहलं तवेशेदं कृपणाधीनतेश्वर॥ ३८

अद्य धन्योऽस्मि देवेश यन्न पश्यन्ति योगिनः।
पश्यामि तं जगन्मूर्त्तिं परमेश्वरमव्ययम्॥ ३९

विष्णुजी बोले—सभी विघ्नोंका नाश करनेवाले हे महादेव! आपकी जैसी इच्छा हो, वैसी क्रीड़ा कीजिये, परंतु मुझे अपनी मायासे मोहित न करें॥ २७॥

हे विभो! आपकी आज्ञाशक्तिसे मेरे नाभिकमलके कोशसे कल्प-कल्पमें करोड़ों ब्रह्मा पहले उत्पन्न हो चुके हैं॥ २८॥

हे देव! आप पुण्यहीन मनुष्योंके लिये दुस्तर इस मायाका त्याग करें। हे महादेव! आपकी मायासे ब्रह्मा आदि भी मोहित हो जाते हैं॥ २९॥

सत्पुरुषोंको गति देनेवाले हे पार्वतीपते! हे शम्भो! हे सर्वेश्वर! मैं आपकी कृपासे ही आपकी समस्त चेष्टाएँ ठीक-ठीक जानता हूँ॥ ३०॥

हे हर! संहारकालके उपस्थित होनेपर जब आप समस्त देवताओं, मुनियों एवं वर्णाश्रमी जनोंको उपसंहृत करेंगे, तब भी हे महादेव! आपको ब्रह्मवध आदिका पाप नहीं लगेगा। हे शिव! आप पराधीन नहीं हैं। अतः आप स्वतन्त्र होकर क्रीड़ा करते हैं॥ ३१-३२॥

आपके कण्ठमें पूर्वमें उत्पन्न हो चुके ब्रह्माओंकी अस्थियोंकी माला भासित हो रही है, तब भी हे निष्पाप शिव! आपके पीछे ब्रह्महत्या लगी है॥ ३३॥

हे ईश! जो मनुष्य महान् पाप करके भी आप जगदाधारका स्मरण करता है, उसका पाप नष्ट हो जाता है॥ ३४॥

जिस प्रकार सूर्यके समीप अन्धकार टिक नहीं सकता, उसी प्रकार जो आपका भक्त है, उसका पाप विनष्ट हो जाता है॥ ३५॥

जो पुण्यात्मा आपके दोनों चरणकमलोंका स्मरण करता है, उसका ब्रह्महत्याजनित पाप भी नष्ट हो जाता है। हे जगत्पते! जिस मनुष्यकी वाणी आपके नाममें अनुरक्त है, पर्वतसमूहके समान भारी-से-भारी पाप भी उसे बाधित नहीं कर सकता है॥ ३६-३७॥

हे परमात्मन्! हे परमधाम! स्वेच्छासे शरीर धारण करनेवाले हे ईश्वर! यह भक्तोंकी अधीनता भी आपका कुतूहलमात्र है॥ ३८॥

हे देवेश! आज मैं धन्य हूँ; क्योंकि योगीजन भी जिन्हें नहीं देख पाते हैं, उन जगन्मूर्ति अव्यय परमेश्वरका मैं दर्शन कर रहा हूँ॥ ३९॥

अद्य मे परमो लाभस्त्वद्य मे मंगलं परम्।
तं दृष्ट्वामृततृप्तस्य तृणं स्वर्गापवर्गकम्॥ ४०

आज मुझे परम लाभ मिला और मेरा परम कल्याण हो गया। उन आपके दर्शनसे मैं अमृतपानकर तृप्त हुएके समान तृप्त हो गया। मुझे स्वर्ग और मोक्ष तृणके समान ज्ञात हो रहे हैं॥ ४०॥

इत्थं वदति गोविन्दे विमला पद्मया तया।
मनोरथवती नाम भिक्षा पात्रे समर्पिता॥ ४१
भिक्षाटनाय देवोऽपि निरगात्परया मुदा।
अन्यत्रापि महादेवो भैरवश्चात्तविग्रहः॥ ४२

गोविन्द विष्णुके इस प्रकार कहनेके पश्चात् उन महालक्ष्मीने अत्यन्त निर्मल मनोरथवती नामकी भिक्षा उनके पात्रमें दे दी। तब लीलासे भैरवरूपधारी वे महादेव भी परम प्रसन्न हो भिक्षाटनके लिये अन्यत्र चलनेको उद्यत हो गये॥ ४१-४२॥

दृष्ट्वानुयायिनीं तां तु समाहूय जनार्दनः।
संप्रार्थयद् ब्रह्महत्यां विमुञ्च त्वं त्रिशूलिनम्॥ ४३

उस समय विष्णुने उनके पीछे-पीछे जानेवाली ब्रह्महत्याको बुलाकर उससे प्रार्थना की कि तुम इन त्रिशूलधारी भैरवको छोड़ दो॥ ४३॥

ब्रह्महत्योवाच

अनेनापि मिषेणाहं संसेव्यामुं वृषध्वजम्।
आत्मानं पावयिष्यामि त्वपुनर्भवदर्शनम्॥ ४४

ब्रह्महत्या बोली—जिनका दर्शन करनेसे पुनर्जन्मकी प्राप्ति नहीं होती, ऐसे वृषभध्वजकी सेवाकर इस बहानेसे मैं भी अपनेको पवित्र कर लूँगी॥ ४४॥

नन्दीश्वर उवाच

सा तत्याज न तत्पार्श्वं व्याहृतापि मुरारिणा।
तमूचेऽथ हरिं शंभुः स्मेरास्यो भैरवो वचः॥ ४५

नन्दीश्वर बोले—विष्णुके कहनेसे भी जब ब्रह्महत्याने भैरवका पीछा नहीं छोड़ा, तब भैरव शम्भुने मुसकराकर हरिसे यह वचन कहा—॥ ४५॥

भैरव उवाच

त्वद्वाक्पीयूषपानेन तृप्तोऽस्मि बहुमानद।
स्वभावोऽयं हि साधूनां यत्त्वं वदसि मापते॥ ४६

भैरव बोले—हे बहुमानद! आपके वचनामृतका पानकर मैं तृप्त हो गया। हे लक्ष्मीके पति! सज्जनोंके स्वभावके अनुरूप ही आप वचन बोल रहे हैं॥ ४६॥

वरं वृणीष्व गोविन्द वरदोऽस्मि तवानघ।
अग्रणीर्मम भक्तानां त्वं हरे निर्विकारवान्॥ ४७

हे गोविन्द! तुम वर माँगो। हे निष्पाप! मैं तुम्हें वर देनेवाला हूँ। हे विकाररहित हरे! तुम मेरे भक्तोंमें अग्रगण्य रहोगे॥ ४७॥

नो माद्यन्ति तथा भैक्ष्यैर्भिक्षवोऽप्यतिसंस्कृतैः।
यथा मानसुधापानैर्ननु भिक्षाटनज्वराः॥ ४८

भिक्षाटनरूपी ज्वरसे पीड़ित भिक्षु मानसुधाका पानकर जैसी तृप्ति प्राप्त करते हैं, वैसी तृप्ति अतिसंस्कृत भिक्षाओंसे भी नहीं प्राप्त करते हैं॥ ४८॥

नन्दीश्वर उवाच

इत्याकर्ण्य वचः शंभोर्भैरवस्य परात्मनः।
सुप्रसन्नतरो भूत्वा समवोचन्महेश्वरम्॥ ४९

नन्दीश्वर बोले—परमात्मा शम्भुके अवतार भैरवके इन वचनोंको सुनकर विष्णु परम प्रसन्न होकर महेश्वरसे बोले—॥ ४९॥

विष्णुरुवाच

एष एव वरः श्लाघ्यो यदहं देवताधिपम्।
पश्यामि त्वां देवदेव मनोवाणीपथातिगम्॥ ५०

विष्णु बोले—हे देवदेव! मेरे लिये यही वह प्रशंसनीय है, जिससे कि मैं [आज] मन और वाणीसे अगोचर देवताओंके स्वामी आपका दर्शन प्राप्त कर रहा हूँ॥ ५०॥

अदभ्रेयं सुधादृष्टिरनया मे महोत्सवः।
अयत्ननिधिलाभोऽयं वीक्षणं हर ते सताम्॥ ५१

आपकी जो अमृतमयी पूर्ण दृष्टि [मुझपर] पड़ रही है, इसीसे मुझे महान् हर्ष हो रहा है। हे हर! सज्जनोंके लिये आपका दर्शन बिना यत्नके प्राप्त निधिके समान है॥ ५१॥

अवियोगोऽस्तु मे देव त्वदङ्घ्रियुगलेन वै।
एष एव वरः शंभो नान्यं कञ्चिद् वृणे वरम्॥ ५२

हे देव! आपके चरणयुगलसे मेरा वियोग न हो, हे शम्भो! यही मेरे लिये वरदान है। मैं किसी अन्य वरका वरण नहीं करता हूँ॥ ५२॥

श्रीभैरव उवाच

एवं भवतु ते तात यत्त्वयोक्तं महामते।
सर्वेषामपि देवानां वरदस्त्वं भविष्यसि॥ ५३

श्रीभैरव बोले—महामते तात! जैसा आपने कहा है, वैसा ही हो। आप सभी देवताओंको वर देनेवाले होंगे॥ ५३॥

नन्दीश्वर उवाच

अनुगृह्येति दैत्यारिं केंद्राद्रिभुवने चरन्।
भेजेऽविमुक्तनगरीं नाम्ना वाराणसीं पुरीम्॥ ५४

नन्दीश्वर बोले—[ब्रह्माण्डके] भुवनोंसहित केन्द्रभूत सुमेरुपर्वतपर विचरण करते हुए दैत्यशत्रु विष्णुको इस प्रकार अनुगृहीतकर भैरव विमुक्तनगरी वाराणसीपुरीमें जा पहुँचे॥ ५४॥

क्षेत्रे प्रविष्टमात्रेऽथ भैरवे भीषणाकृतौ।
हाहेत्युक्त्वा ब्रह्महत्या पातालं चाविशत्तदा॥ ५५

भयंकर आकृतिवाले भैरवके उस क्षेत्रमें प्रवेश करनेमात्रसे ही ब्रह्महत्या उसी समय हाहाकार करके पातालमें चली गयी॥ ५५॥

कपालं ब्रह्मणः सद्यो भैरवस्य करांबुजात्।
पपात भुवि तत्तीर्थमभूत्कापालमोचनम्॥ ५६

उसी समय भैरवके हस्तकमलसे ब्रह्माका कपाल पृथिवीपर गिर पड़ा। तबसे वह तीर्थ कपालमोचन नामसे प्रसिद्ध हो गया॥ ५६॥

कपालं ब्रह्मणो रुद्रः सर्वेषामेव पश्यताम्।
हस्तात्पतन्तमालोक्य ननर्त परया मुदा॥ ५७

अपने हाथसे ब्रह्माके कपालको गिरता हुआ देखकर रुद्र सबके सामने परमानन्दसे नाचने लगे॥ ५७॥

विधेः कपालं नामुंचत्करमत्यन्तदुस्सहम्।
परस्य भ्रमतः क्वापि तत्काश्यां क्षणतोऽपतत्॥ ५८

शूलिनो ब्रह्मणो हत्या नापैति स्म च या क्वचित्।
सा काश्यां क्षणतो नष्टा तस्मात्सेव्या हि काशिका॥ ५९

अत्यन्त दुस्सह जो ब्रह्माजीका कपाल [अन्य क्षेत्रोंमें] भ्रमण करते हुए परमेश्वरके हाथसे कहीं नहीं छूट पाया था, वह काशीमें क्षणमात्रमें छूटकर गिर पड़ा। शूल धारण करनेवाले शिवकी जो ब्रह्महत्या कहीं भी नहीं दूर हो सकी, वह काशीमें आते ही क्षणभरमें नष्ट हो गयी, इसलिये काशीका ही सेवन करना चाहिये॥ ५८-५९॥

कपालमोचनं काश्यां यः स्मरेत्तीर्थमुत्तमम्।
इहान्यत्रापि यत्पापं क्षिप्रं तस्य प्रणश्यति॥ ६०

जो मनुष्य काशीमें [स्थित] कपालमोचन नामक उत्तम तीर्थका स्मरण करता है, उसका यहाँ अथवा अन्यत्रका किया हुआ पाप भी शीघ्र ही नष्ट हो जाता है॥ ६०॥

आगत्य तीर्थप्रवरे स्नानं कृत्वा विधानतः।
तर्पयित्वा पितॄन्देवान्मुच्यते ब्रह्महत्यया॥ ६१

इस श्रेष्ठ तीर्थमें आकर विधानके अनुसार स्नानकर देवताओं और पितरोंका तर्पण करनेसे ब्रह्महत्यासे छुटकारा मिल जाता है॥ ६१॥

कपालमोचनं तीर्थं पुरस्कृत्वा तु भैरवः।
तत्रैव तस्थौ भक्तानां भक्षयन्नघसन्ततिम्॥ ६२

कपालमोचन नामक तीर्थको समादृतकर भैरव भक्तोंके पापसमूहका भक्षण करते हुए वहींपर विराजमान हो गये॥ ६२॥

कृष्णाष्टम्यां तु मार्गस्य मासस्य परमेश्वरः।
आविर्बभूव सल्लीलो भैरवात्मा सतां प्रियः॥ ६३

सुन्दर लीला करनेवाले, सज्जनोंके प्रिय, भैरवात्मा परमेश्वर शिव मार्गशीर्षमासके कृष्णपक्षकी अष्टमी तिथिको आविर्भूत हुए॥ ६३॥

मार्गशीर्षासिताष्टम्यां कालभैरवसन्निधौ।
उपोष्य जागरं कुर्वन्महापापैः प्रमुच्यते॥ ६४

जो मनुष्य मार्गशीर्षमासके कृष्णपक्षकी अष्टमीतिथिको कालभैरवकी सन्निधिमें उपवास करके जागरण करता है, वह महान् पापोंसे मुक्त हो जाता है॥ ६४॥

अन्यत्रापि नरो भक्त्या तद् व्रतं यः करिष्यति।
सजागरं महापापैर्मुक्तो यास्यति सद्गतिम्॥ ६५

जो मनुष्य अन्यत्र भी भक्तिपूर्वक जागरणके सहित इस व्रतको करेगा, वह महापापोंसे मुक्त होकर सद्गतिको प्राप्त कर लेगा॥ ६५॥

अनेकजन्मनियुतैर्यत्कृतं जन्तुभिस्त्वघम्।
तत्सर्वं विलयं याति कालभैरवदर्शनात्॥ ६६

कालभैरवभक्तानां पातकानि करोति यः।
स मूढो दुःखितो भूत्वा पुनर्दुर्गतिमाप्नुयात्॥ ६७

प्राणीके द्वारा लाखों जन्मोंमें किया गया जो पाप है, वह सभी कालभैरवके दर्शन करनेसे लुप्त हो जाता है। जो कालभैरवके भक्तोंका अपराध करता है, वह मूर्ख दुःखित होकर पुनः-पुनः दुर्गतिको प्राप्त करता रहता है॥ ६६-६७॥

विश्वेश्वरेऽपि ये भक्ता नो भक्ताः कालभैरवे।
ते लभन्ते महादुःखं काश्यां चैव विशेषतः॥ ६८

जो काशीमें रहकर विश्वेश्वरमें तो भक्ति करते हैं, परंतु कालभैरवकी भक्ति नहीं करते, वे विशेषरूपसे महादुःखको प्राप्त करते हैं॥ ६८॥

वाराणस्यामुषित्वा यो भैरवं न भजेन्नरः।
तस्य पापानि वर्द्धन्ते शुक्लपक्षे यथा शशी॥ ६९

जो मनुष्य वाराणसीमें रहकर [भी] कालभैरवका भजन नहीं करता है, उसके पाप शुक्लपक्षके चन्द्रमाके समान बढ़ते हैं॥ ६९॥

कालराजं न यः काश्यां प्रतिभूताष्टमीकुजम्।
भजेत्तस्य क्षयं पुण्यं कृष्णपक्षे यथा शशी॥ ७०

जो मंगलवार, चतुर्दशी तथा अष्टमीके दिन काशीमें कालराजका भजन नहीं करता है, उसका पुण्य कृष्णपक्षके चन्द्रमाके समान क्षीण हो जाता है॥ ७०॥

श्रुत्वाख्यानमिदं पुण्यं ब्रह्महत्यापनोदकम्।
भैरवोत्पत्तिसंज्ञं च सर्वपापैः प्रमुच्यते॥ ७१

ब्रह्महत्याको दूर करनेवाले, भैरवोत्पत्तिसंज्ञक इस पवित्र आख्यानको सुनकर प्राणी सम्पूर्ण पापोंसे मुक्त हो जाता है॥ ७१॥

बन्धनागारसंस्थोऽपि प्राप्तोऽपि विपदं पराम्।
प्रादुर्भावं भैरवस्य श्रुत्वा मुच्येत सङ्कटात्॥ ७२

कारागारमें पड़ा हुआ अथवा भयंकर कष्टमें फँसा हुआ प्राणी भी भैरवकी उत्पत्ति [के आख्यान]-को सुनकर संकटसे छूट जाता है॥ ७२॥

इति श्रीशिवमहापुराणे तृतीयायां शतरुद्रसंहितायां भैरवावतारलीलावर्णनं नाम नवमोऽध्यायः॥ ९॥

॥ इस प्रकार श्रीशिवमहापुराणके अन्तर्गत तृतीय शतरुद्रसंहितामें भैरवावतारलीलावर्णन नामक नौवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ ९॥

अथ दशमोऽध्यायः

नृसिंहचरित्रवर्णन

नन्दीश्वर उवाच

विध्वंसी दक्षयज्ञस्य वीरभद्राह्वयः प्रभोः।
अवतारश्च विज्ञेयः शिवस्य परमात्मनः॥ १

नन्दीश्वर बोले—[हे सनत्कुमार!] दक्ष प्रजापतिके यज्ञको विध्वंस करनेवाले वीरभद्र नामक [गणाध्यक्ष]-को परमात्मा प्रभु शिवजीका अवतार

सतीचरित्रे कथितं चरितं तस्य कृत्स्नशः।
श्रुतं त्वयापि बहुधा नातः प्रोक्तं सुविस्तरात्॥ २

अतः परं मुनिश्रेष्ठ भवत्स्नेहाद् ब्रवीमि तत्।
शार्दूलाख्यावतारं च शङ्करस्य प्रभोः शृणु॥ ३

सदाशिवेन देवानां हितार्थं रूपमद्भुतम्।
शारभं च धृतं दिव्यं ज्वलज्ज्वालासमप्रभम्॥ ४

शिवावतारा अमिताः सद्भक्तहितकारकाः।
सङ्ख्या न शक्यते कर्तुं तेषां च मुनिसत्तमाः॥ ५

आकाशस्य च ताराणां रेणुकानां क्षितेस्तथा।
आसाराणां च वृद्धेन बहुकल्पैः कदापि हि॥ ६
सङ्ख्या विशक्यते कर्तुं सुप्राज्ञैर्बहुजन्मभिः।
न वै शिवावताराणां सत्यं जानीहि मद्वचः॥ ७
तथापि च यथाबुद्ध्या कथयामि यथाश्रुतम्।
चरित्रं शारभं दिव्यं परमैश्वर्यसूचकम्॥ ८

जयश्च विजयश्चैव भवद्भिः शापितौ यदा।
तदा दितिसुतौ द्वौ तावभूतां कश्यपान्मुने॥ ९

हिरण्यकशिपुश्चाद्यो हिरण्याक्षोऽनुजो बली।
देवर्षिपार्षदौ जातौ तौ द्वावपि दितेः सुतौ॥ १०

पृथ्व्युद्धारे विधात्रा वै प्रार्थितो हि पुरा प्रभुः।
हिरण्याक्षं जघानासौ विष्णुर्वाराहरूपधृक्॥ ११

तं श्रुत्वा भ्रातरं वीरं निहतं प्राणसन्निभम्।
चुकोप हरयेऽतीव हिरण्यकशिपुर्मुने॥ १२

वर्षाणामयुतं तप्त्वा ब्रह्मणो वरमाप सः।
न कश्चिन्मारयेन्मां वै त्वत्सृष्टाविति तुष्टतः॥ १३

शोणिताख्यपुरं गत्वा देवानाहूय सर्वतः।
त्रिलोकीं स्ववशे कृत्वा चक्रे राज्यमकण्टकम्॥ १४

जानना चाहिये, उनका सम्पूर्ण चरित सतीके चरित्रमें कहा गया है। आपने भी उसे अनेक प्रकारसे सुन लिया है, इसीलिये यहाँ विस्तारसे नहीं कहा गया॥ १-२॥

हे मुनिश्रेष्ठ! इसके पश्चात् आपके स्नेहवश अब प्रभु शंकरके शार्दूल नामक अवतारको कह रहा हूँ, उसको सुनिये॥ ३॥

भगवान् सदाशिवने देवताओंके कल्याणार्थ जलती हुई अग्निके समान कान्तियुक्त अत्यन्त अद्भुत शरभ रूपको धारण किया था॥ ४॥

हे मुनिसत्तमो! श्रेष्ठ भक्तोंके हितसाधक अपरिमित शिवावतार हुए हैं, उनकी संख्याकी गणना नहीं की जा सकती है॥ ५॥

आकाशके तारोंकी, पृथ्वीके धूलिकणोंकी तथा वर्षाकी बूँदोंकी गणना अनेक कल्पोंमें अनेक जन्म लेकर कोई बुद्धिमान् पुरुष भले ही कर ले, परंतु शिवजीके अवतारोंकी गणना कदापि नहीं की जा सकती है, मेरा यह कथन सत्य समझें। फिर भी जैसा मैंने सुना है, अपनी बुद्धिके अनुसार दिव्य तथा परम ऐश्वर्यसूचक उस शरभ-चरित्रको कह रहा हूँ॥ ६—८॥

हे मुने! जब आपलोगोंद्वारा जय-विजय [नामक द्वारपालों]-को शाप दिया गया, तब वे दोनों कश्यपके द्वारा दितिके गर्भसे पुत्ररूपमें उत्पन्न हुए॥ ९॥

प्रथम हिरण्यकशिपु तथा छोटा भाई महाबली हिरण्याक्ष था, वे दोनों पहले भगवान् विष्णुके देवर्षि-पार्षद थे, जो [आपलोगोंसे शापित होकर] दितिके पुत्ररूपमें उत्पन्न हुए॥ १०॥

पूर्वकालमें पृथ्वीका उद्धार करनेहेतु ब्रह्माजीद्वारा प्रार्थना किये जानेपर भगवान् विष्णुने वाराहरूप धारणकर हिरण्याक्षका वध किया॥ ११॥

हे मुने! अपने प्राणोंके समान [प्रिय] उस वीर भाईको मारा गया सुनकर हिरण्यकशिपुने विष्णुपर अत्यधिक क्रोध किया॥ १२॥

तत्पश्चात् हिरण्यकशिपुने दस हजार वर्षतक तप करके सन्तुष्ट हुए ब्रह्माजीसे यह वरदान प्राप्त किया कि आपकी सृष्टिमें कोई भी मुझे न मार सके॥ १३॥

वह हिरण्यकशिपु शोणितपुर नामक पुरमें जाकर चारों तरफसे देवताओंको बुलाकर त्रिलोकीको अपने वशमें करके निष्कण्टक राज्य करने लगा॥ १४॥

देवर्षिकदनं चक्रे सर्वधर्मविलोपकः।
द्विजपीडाकरः पापी हिरण्यकशिपुर्मुने॥ १५

प्रह्लादेन स्वपुत्रेण हरिभक्तेन दैत्यराट्।
यदा विद्वेषमकरोद्धरिवैरी विशेषतः॥ १६

सभास्तम्भात्तदा विष्णुरभूदाविर्द्रुतं मुने।
सन्ध्यायां क्रोधमापन्नो नृसिंहवपुषा ततः॥ १७

सर्वथा मुनिशार्दूल करालं नृहरेर्वपुः।
प्रजज्वालातिभयदं त्रासयन्दैत्यसत्तमान्॥ १८

नृसिंहेन तदा दैत्या निहताश्चैव तत्क्षणम्।
हिरण्यकशिपुश्चाथ युद्धं चक्रे सुदारुणम्॥ १९

महायुद्धं तयोरासीन्मुहूर्त्तं मुनिसत्तमाः।
विकरालं च भयदं सर्वेषां रोमहर्षणम्॥ २०

सायं चकर्ष देवेशो देहल्यां दैत्यपुङ्गवम्।
व्योम्नि देवेषु पश्यत्सु नृसिंहश्च रमेश्वरः॥ २१

अथोत्संगे च तं कृत्वा नखैस्तदुदरं द्रुतम्।
विदार्य मारयामास पश्यतां त्रिदिवौकसाम्॥ २२

हते हिरण्यकशिपौ नृसिंहेनैव विष्णुना।
जगत्स्वास्थ्यं तदा लेभे न वै देवा विशेषतः॥ २३

देवदुन्दुभयो नेदुः प्रह्लादो विस्मयं गतः।
लक्ष्मीश्च विस्मयं प्राप्ता रूपं दृष्ट्वाऽद्भुतं हरेः॥ २४

हतो यद्यपि दैत्येन्द्रस्तथापि न परं सुखम्।
ययुर्देवा नृसिंहस्य ज्वाला सा न निवर्तिता॥ २५

तया च व्याकुलं जातं सर्वं चैव जगत्पुनः।
देवाश्च दुःखमापन्नाः किं भविष्यति वा पुनः॥ २६
इत्येवं च वदन्तस्ते भयाद् दूरमुपस्थिताः।
नृसिंहक्रोधजज्वालाव्याकुलाः पद्मभूमुखाः॥ २७
प्रह्लादं प्रेषयामासुस्तच्छान्त्यै निकटं हरेः।
सर्वान्मिलित्वा प्रह्लादः प्रार्थितो गतवांस्तदा॥ २८

हे मुने! सभी धर्मोंको नष्ट करनेवाला तथा ब्राह्मणोंको पीड़ित करनेवाला पापी हिरण्यकशिपु देवताओं तथा ऋषियोंको सताने लगा॥ १५॥

हे मुने! तदनन्तर विष्णुवैरी दैत्यराजने अपने हरिभक्त पुत्र प्रह्लादसे भी जब विशेषरूपसे द्वेष करना प्रारम्भ कर दिया, तब सभामण्डपके खम्भेसे सन्ध्याके समय अत्यन्त क्रोधित होकर भगवान् विष्णु नृसिंहशरीरसे प्रकट हुए॥ १६-१७॥

हे मुनिशार्दूल! भगवान् नृसिंहका विकराल तथा भयदायक शरीर सब प्रकारसे महादैत्योंको सन्त्रस्त करता हुआ अग्निके समान जाज्वल्यमान हो उठा॥ १८॥

नृसिंहने उसी क्षण सभी दैत्योंका संहार कर डाला और तब [दैत्योंके संहारको देखकर] हिरण्यकशिपुने उनसे अत्यन्त भयानक युद्ध किया॥ १९॥

हे मुनिश्रेष्ठ! मुहूर्तभरतक उन दोनोंमें विकराल, सबको भयभीत करनेवाला तथा लोमहर्षक युद्ध होता रहा॥ २०॥

सायंकाल होनेपर लक्ष्मीपति देवेश नृसिंहने आकाशमें स्थित देवताओंके देखते-देखते हिरण्यकशिपुको देहलीपर खींच लिया और अपनी गोदमें उसे लेकर नखोंसे शीघ्र ही स्वर्गनिवासियोंके समक्ष उसका उदर विदीर्णकर मार डाला॥ २१-२२॥

इस प्रकार नृसिंहरूपधारी विष्णुके द्वारा हिरण्यकशिपुके मारे जानेपर जगत्‌में चारों तरफ शान्ति स्थापित हो गयी, परंतु इससे देवताओंको विशेष आनन्द प्राप्त नहीं हुआ॥ २३॥

देवताओंकी दुन्दुभियाँ बजने लगीं, प्रह्लाद आश्चर्यचकित हो गये, विष्णुके उस अद्भुत रूपको देखकर लक्ष्मीजी भी अत्यन्त विस्मित हो गयीं॥ २४॥

यद्यपि हिरण्यकशिपु मार डाला गया, किंतु भगवान् नृसिंहके क्रोधकी ज्वाला शान्त नहीं हुई, इसी कारण देवताओंको उत्तम सुख प्राप्त नहीं हो रहा था॥ २५॥

उस ज्वालासे सम्पूर्ण संसार व्याकुल हो उठा, देवता भी दुखी हुए। 'अब क्या होगा'—ऐसा कहते हुए वे भयके कारण दूर चले गये। नृसिंहके क्रोधसे उत्पन्न ज्वालासे व्याकुल हुए ब्रह्मा आदिने उस ज्वालाकी शान्तिहेतु प्रह्लादको श्रीहरिके पास भेजा। सभीने मिलकर जब प्रार्थना की, तब प्रह्लाद वहाँ गये॥ २६—२८॥

उरसाऽऽलिंगयामास तं नृसिंहः कृपानिधिः।
हृदयं शीतलं जातं रुड्ज्वाला न निवर्त्तिता॥ २९

कृपानिधि नृसिंहने उन्हें [अपने] हृदयसे लगा लिया, जिससे उनका हृदय तो शीतल हो गया, परंतु क्रोधकी ज्वाला शान्त न हुई॥ २९॥

तथापि न निवृत्ता रुड्ज्वाला नरहरेर्यदा।
दुःखं प्राप्तास्ततो देवाः शङ्करं शरणं ययुः॥ ३०

इसपर भी जब नृसिंहके क्रोधकी ज्वाला शान्त नहीं हुई, तब दुःखको प्राप्त हुए देवता [भगवान्] शंकरकी शरणमें गये॥ ३०॥

तत्र गत्वा सुराः सर्वे ब्रह्माद्या मुनयस्तथा।
शङ्करं स्तवयामासुर्लोकानां सुखहेतवे॥ ३१

वहाँ जाकर ब्रह्मा आदि सभी देवता तथा मुनिगण संसारके सुखके लिये शिवजीकी स्तुति करने लगे॥ ३१॥

देवा ऊचुः

देवदेव महादेव शरणागतवत्सल।
पाहि नः शरणापन्नान्सर्वान्देवाञ्जगन्ति च॥ ३२

देवता बोले—हे देवदेव! हे महादेव! हे शरणागतवत्सल! शरणमें आये हुए हम सभी देवताओं तथा लोकोंकी रक्षा कीजिये॥ ३२॥

नमस्तेऽस्तु नमस्तेऽस्तु नमस्तेऽस्तु सदाशिव।
पूर्वं दुःखं यदा जातं तदा ते रक्षिता वयम्॥ ३३

समुद्रो मथितश्चैव रत्नानां च विभागशः।
कृते देवैस्तदा शंभो गृहीतं गरलं त्वया॥ ३४

रक्षिताः स्म तदा नाथ नीलकण्ठ इति श्रुतः।
विषं पास्यसि नो चेत्त्वं भस्मीभूतास्तदाखिलाः॥ ३५

हे सदाशिव! आपको नमस्कार है, आपको नमस्कार है, आपको नमस्कार है। पूर्वकालमें जब भी हमलोगोंपर दुःख पड़ा, तब आपने ही हमलोगोंकी रक्षा की है। जब समुद्रमन्थन किया गया और देवताओंके द्वारा रत्नोंको आपसमें बाँट लिया गया, हे शम्भो! तब आपने विषको ही ग्रहण कर लिया। हे नाथ! उस समय आपने हमारी रक्षा की और 'नीलकण्ठ' इस नामसे प्रसिद्ध हुए। यदि आप विषपान न करते, तो सभी लोग भस्म हो जाते॥ ३३—३५॥

प्रसिद्धं च यदा यस्य दुःखं च जायते प्रभो।
तदा त्वन्नाममात्रेण सर्वं दुःखं विलीयते॥ ३६

हे प्रभो! यह प्रसिद्ध ही है कि जब जिस किसीको दुःख प्राप्त होता है तब आपके नाममात्रके स्मरणसे ही उसका समस्त दुःख दूर हो जाता है॥ ३६॥

इदानीं नृहरिज्वालापीडितान्नः सदाशिव।
तां त्वं शमयितुं देव शक्तोऽसीति सुनिश्चितम्॥ ३७

हे सदाशिव! इस समय नृसिंहके क्रोधकी ज्वालासे पीड़ित हमलोगोंकी रक्षा कीजिये। हे देव! आप उसे शान्त करनेमें समर्थ हैं—यह पूर्णरूपसे निश्चित है॥ ३७॥

नन्दीश्वर उवाच

इति स्तुतस्तदा देवैः शङ्करो भक्तवत्सलः।
प्रत्युवाच प्रसन्नात्माऽभयं दत्त्वा परं प्रभुः॥ ३८

नन्दीश्वर बोले—देवताओंद्वारा इस प्रकार स्तुति किये जानेपर भक्तवत्सल भगवान् शिव उन्हें परम अभय प्रदान करके प्रसन्नचित्त होकर कहने लगे—॥ ३८॥

शङ्कर उवाच

स्वस्थानं गच्छत सुराः सर्वे ब्रह्मादयोऽभयाः।
शमयिष्यामि यद्दुःखं सर्वथा हि व्रतं मम॥ ३९

शंकर बोले—हे ब्रह्मादि देवताओ! आपलोग निडर होकर अपने-अपने स्थानपर जायँ, आपलोगोंका जो दुःख है, उसे मैं सब प्रकारसे दूर करूँगा—यह मेरा व्रत है॥ ३९॥

गतो मच्छरणं यस्तु तस्य दुःखं क्षयं गतम्।
मत्प्रियः शरणापन्नः प्राणेभ्योऽपि न संशयः॥ ४०

जो भी मेरी शरणमें आता है, उसका दुःख नष्ट हो जाता है; क्योंकि शरणागत मुझे प्राणोंसे भी अधिक प्रिय हैं, इसमें संशय नहीं है॥ ४०॥

नन्दीश्वर उवाच

इति श्रुत्वा तदा देवा ह्यानन्दं परमं गताः।
यथागतं तथा जग्मुः स्मरन्तः शङ्करं मुदा॥ ४१

नन्दीश्वर बोले—तब यह सुनकर वे देवता परम आनन्दित हुए और वे जैसे आये थे, प्रसन्नतापूर्वक शिवजीका स्मरण करते हुए वैसे ही चले गये॥ ४१॥

इति श्रीशिवमहापुराणे तृतीयायां शतरुद्रसंहितायां शार्दूलावतारे नृसिंहचरितवर्णनं नाम दशमोऽध्यायः॥ १०॥

॥ इस प्रकार श्रीशिवमहापुराणके अन्तर्गत तृतीय शतरुद्रसंहिताके शार्दूल-अवतारमें नृसिंहचरितवर्णन नामक दसवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ १०॥

अथैकादशोऽध्यायः

भगवान् नृसिंह और वीरभद्रका संवाद

नंदीश्वर उवाच

एवमभ्यर्थितो देवैर्मतिं चक्रे कृपालयः।
महातेजो नृसिंहाख्यं संहर्तुं परमेश्वरः॥ १

नन्दीश्वर बोले—[हे सनत्कुमार!] देवताओंने जब इस प्रकार प्रार्थना की, तब कृपानिधि परमेश्वरने नृसिंह नामक महातेजको संहृत करनेका निश्चय किया॥ १॥

तदूर्ध्वं स्मृतवान् रुद्रो वीरभद्रं महाबलम्।
आत्मनो भैरवं रूपं प्राह प्रलयकारकम्॥ २

इसके बाद रुद्रने महाबलवान् प्रलयकारी एवं अपने भैरवरूप वीरभद्रका स्मरण किया और उनसे कहा॥ २॥

आजगाम ततः सद्यो गणानामग्रणीर्हसन्।
साट्टहासैर्गणवरैरुत्पतद्भिरितस्ततः॥ ३

नृसिंहरूपैरत्युग्रैः कोटिभिः परिवारितः।
माद्यद्भिरभितो वीरैर्नृत्यद्भिश्च मुदान्वितैः॥ ४

क्रीडद्भिश्च महावीरैर्ब्रह्माद्यैः कन्दुकैरिव।
अदृष्टपूर्वैरन्यैश्च वेष्टितो वीरवन्दितः॥ ५

तब तत्काल ही अट्टहास करते हुए श्रेष्ठ गणोंसे परिवेष्टित गणाग्रणी वीरभद्र वहाँ आ पहुँचे। वीरभद्रके वे गण इधर-उधर उछल रहे थे, उनमेंसे करोड़ों गण अति उग्र नृसिंहरूप धारण किये हुए थे। कुछ आनन्दित हो नाचते हुए वीरभद्रकी परिक्रमा कर रहे थे। कुछ उन्मत्त थे, और कुछ ब्रह्मादि देवताओंसे कन्दुकके समान क्रीड़ा कर रहे थे। कुछ ऐसे भी थे, जो सर्वथा अज्ञात थे। इस प्रकारके कल्पान्तकी अग्निके समान प्रज्वलित त्रिनेत्रसे युक्त, मस्तकपर जटाजूट एवं बालचन्द्रमा तथा अल्प शस्त्रोंको धारण किये हुए जाज्वल्यमान वीरभद्र अपने गणोंसे वन्दित हो रहे थे॥ ३—५॥

कल्पान्तज्वलनज्वालो विलसल्लोचनत्रयः।
अशस्त्रो हि जटाजूटी ज्वलद् बालेन्दुमण्डितः॥ ६
बालेन्दुवलयाकारतीक्ष्णदंष्ट्राङ्कुरद्वयः।
आखण्डलधनुःखण्डसन्निभभ्रूलतान्वितः॥ ७
महाप्रचण्डहुङ्कारबधिरीकृतदिङ्मुखः।
नीलमेघाञ्जनश्यामो भीषणः श्मश्रुलोऽद्भुतः॥ ८
वाद्यखण्डमखण्डाभ्यां भ्रामयंस्त्रिशिखं मुहुः।
वीरभद्रोऽपि भगवान्वीरशक्तिविजृम्भितः॥ ९

उनके आगेके तीक्ष्ण दन्ताग्र बालचन्द्राकार तथा दोनों भौंहें इन्द्रधनुषके खण्डके समान प्रतीत हो रही थीं। वीरभद्रके प्रचण्डतम हुंकारसे दिशाएँ बधिर हो रही थीं। उनका रूप काले बादल और काजलके समान कृष्णवर्ण और भयावह था, उनके मुखपर दाढ़ी एवं मूँछें थीं। अद्भुत स्वरूपवाले वे अपनी अखण्ड भुजाओंसे वाद्यखण्ड (वाद्यदण्ड)-की भाँति बार-बार त्रिशूल घुमा रहे थे। इस प्रकार अपनी वीरोचित

स्वयं विज्ञापयामास किमत्र स्मृतिकारणम्।
आज्ञापय जगत्स्वामिन् प्रसादः क्रियतां मयि॥ १०

शक्तिसहित भगवान् वीरभद्र शिवजीके समीप आकर स्वयं बोले—हे देव! यहाँ आपद्वारा मैं किस उद्देश्यसे स्मरण किया गया हूँ? हे जगत्के स्वामिन्! शीघ्र मेरे ऊपर प्रसन्न होकर आज्ञा प्रदान कीजिये॥ ६—१०॥

नन्दीश्वर उवाच

इत्याकर्ण्य महेशानो वीरभद्रोक्तमादरात्।
विलोक्य वचनं प्रीत्या प्रोवाच खलदण्डधृक्॥ ११

नन्दीश्वर बोले—वीरभद्रके आदरपूर्वक कहे गये इस वचनको सुनकर दुष्टोंको दण्ड देनेवाले शिवजी उनकी ओर देखकर प्रीतिपूर्वक कहने लगे— ॥ ११॥

शङ्कर उवाच

अकाले भयमुत्पन्नं देवानामपि भैरवम्।
ज्वलितः स नृसिंहाग्निः शमयैनं दुरासदम्॥ १२

शंकर बोले—[हे वीरभद्र!] असमयमें देवताओंको घोर भय उत्पन्न हो गया है। नृसिंहकी असह्य कोपाग्नि प्रज्वलित हो उठी है, तुम इस कोपाग्निको शान्त करो॥ १२॥

सान्त्वयन् बोधयादौ तं तेन किन्नोपशाम्यति।
ततो मत्परमं भावं भैरवं सम्प्रदर्शय॥ १३

पहले सान्त्वना देते हुए उन्हें समझाओ कि आप क्यों नहीं शान्त होते हैं। तब भी यदि वे शान्त न हों तो तुम मेरे परम भैरवरूपको दिखाओ॥ १३॥

सूक्ष्मं संहृत्य सूक्ष्मेण स्थूलं स्थूलेन तेजसा।
वशमानय वह्निं त्वं वीरभद्र ममाज्ञया॥ १४

हे वीरभद्र! तुम सूक्ष्म तेजसे सूक्ष्मका और स्थूल तेजसे स्थूलका संहरण करके मेरी आज्ञासे अग्निको वशमें करो॥ १४॥

नन्दीश्वर उवाच

इत्यादिष्टो गणाध्यक्षो प्रशान्तं वपुरास्थितः।
जगाम रंहसा तत्र यत्रास्ते नरकेसरी॥ १५

नन्दीश्वर बोले—शिवजीकी इस आज्ञाको स्वीकार गणाध्यक्ष वीरभद्रने परमशान्त रूप धारण कर लिया और जहाँ नृसिंह थे, वहाँ वे अतिशीघ्र जा पहुँचे॥ १५॥

ततः सम्बोधयामास वीरभद्रो हरो हरिम्।
उवाच वाक्यमीशानः पितापुत्रमिवौरसम्॥ १६

तत्पश्चात् शिवरूप वीरभद्रने नृसिंहरूपी विष्णुको समझाया और उन महेश्वरने इस प्रकार वचन कहा, जैसे पिता अपने औरस पुत्रसे बात करता है॥ १६॥

वीरभद्र उवाच

जगत्सुखाय भगवन्नवतीर्णोऽसि माधव।
स्थित्यर्थं त्वं प्रयुक्तोऽसि परेशः परमेष्ठिना॥ १७

वीरभद्र बोले—हे भगवन्! हे माधव! आप संसारके कल्याणके निमित्त अवतीर्ण हुए हैं। परमेष्ठीने आप परमेश्वरको पालनके लिये नियुक्त किया है॥ १७॥

जन्तुचक्रं भगवता प्रच्छन्नं मत्स्यरूपिणा।
पुच्छेनैव समाबध्य भ्रमन्नेकार्णवे पुरा॥ १८

बिभर्षि कूर्मरूपेण वाराहेणोद्धृता मही।
अनेन हरिरूपेण हिरण्यकशिपुर्हतः॥ १९

वामनेन बलिर्बद्धस्त्वया विक्रमता पुनः।
त्वमेव सर्वभूतानां प्रभवः प्रभुरव्ययः॥ २०

पूर्व समयमें जब प्रलय हुआ था, उस समय भगवन्! आपने मत्स्यका रूप धारणकर प्राणियों [से युक्त नौका]-को अपनी पूँछमें बाँधकर [सागरमें] भ्रमण करते हुए उनकी रक्षा की थी। इसी प्रकार आपने कूर्मस्वरूपसे [मन्दराचलको] धारण किया एवं वराहावतारद्वारा पृथ्वीका उद्धार किया था और [इस समय भी आपने] इस नृसिंहरूपसे हिरण्यकशिपुका वध किया है। इसी प्रकार आपने वामनावतार ग्रहणकर [दैत्यराज] बलिको तीन पैरमें तीनों लोकों और उसके शरीरको नापकर बाँध लिया। आप ही सभी प्राणियोंके उत्पत्तिस्थान और अविनाशी प्रभु हैं॥ १८—२०॥

यदा यदा हि लोकस्य दुःखं किञ्चित्प्रजायते।
तदा तदावतीर्णस्त्वं करिष्यसि निरामयम्॥ २१
नाधिकस्त्वत्समोऽप्यस्ति हरे शिवपरायणः।
त्वया वेदाश्च धर्माश्च शुभमार्गे प्रतिष्ठिताः॥ २२

जब-जब इस संसारपर कोई विपत्ति आती है, तब-तब आप अवतार ग्रहणकर उसे दुःखरहित करते हैं। हे हरे! आपसे बढ़कर अथवा आपके समान भी कोई अन्य शिवपरायण नहीं है। आपने ही वेदों तथा धर्मोंको शुभमार्गमें प्रतिष्ठित किया है॥ २१-२२॥

यदर्थमवतारोऽयं निहतः स हि दानवः।
हिरण्यकशिपुश्चैव प्रह्लादोऽपि सुरक्षितः॥ २३

जिसके लिये आपका यह अवतार हुआ है, वह दानव हिरण्यकशिपु मार डाला गया और प्रह्लादकी भी रक्षा हो गयी॥ २३॥

अतीव घोरं भगवन्नरसिंहवपुस्तव।
उपसंहर विश्वात्मंस्त्वमेव मम सन्निधौ॥ २४

अतः हे भगवन्! हे विश्वात्मन्! [आपका प्रयोजन सिद्ध हो चुका है,] अब आप अपने इस घोर नृसिंहरूपको मेरे समक्ष ही उपसंहृत कीजिये॥ २४॥

नन्दीश्वर उवाच

इत्युक्तो वीरभद्रेण नृसिंहः शान्तया गिरा।
ततोऽधिकं महाघोरं कोपं चक्रे महामदः॥ २५
उवाच च महाघोरं कठिनं वचनं तदा।
वीरभद्रं महावीरं दंष्ट्राभिर्भीषयन्मुने॥ २६

नन्दीश्वर बोले—इस प्रकार वीरभद्रद्वारा शान्त वाणीमें निवेदन किये जानेपर महामदसे भरे हुए उन नृसिंहने पहलेसे भी अधिक महाभयानक क्रोध किया और हे मुने! अपने दाँतोंसे भयभीत करते हुए महावीर वीरभद्रसे महाघोर एवं कठोर वचन कहा—॥ २५-२६॥

नृसिंह उवाच

आगतोऽसि यतस्तत्र गच्छ त्वं मा हितं वद।
इदानीं संहरिष्यामि जगदेतच्चराचरम्॥ २७
संहर्तुर्न हि संहारः स्वतो वा परतोऽपि वा।
शासनं मम सर्वत्र शास्ता कोऽपि न विद्यते॥ २८

नृसिंह बोले—[हे वीरभद्र!] तुम जहाँसे आये हो, वहीं चले जाओ और मुझसे लोकहितकी बात न कहो। मैं अभी इसी समय इस चराचर जगत्‌को विनष्ट करूँगा। स्वयं मुझ संहारकर्ताका संहार अपनेसे अथवा दूसरेसे नहीं हो सकता है। सर्वत्र मेरा ही शासन है, मेरे ऊपर शासन करनेवाला कोई भी नहीं है॥ २७-२८॥

मत्प्रसादेन सकलमभयं हि प्रवर्तते।
अहं हि सर्वशक्तीनां प्रवर्तकनिवर्तकः॥ २९

मेरी कृपासे सारा संसार निर्भय रहता है, मैं ही सभी शक्तियोंका प्रवर्तक एवं निवर्तक हूँ॥ २९॥

यद्यद्विभूतिमत्सत्त्वं श्रीमदूर्जितमेव वा।
तत्तद्विद्धि गणाध्यक्ष मम तेजोविजृम्भितम्॥ ३०

हे गणाध्यक्ष! [इस जगत्‌में] जो भी विभूतिमान्, कान्तियुक्त तथा शक्तिसम्पन्न वस्तु है, उस-उसको मेरे ही तेजसे विजृम्भित जानो॥ ३०॥

देवताः परमार्थज्ञं मामेव परमं विदुः।
मदंशाः शक्तिसम्पन्ना ब्रह्मशक्रादयः सुराः॥ ३१

समस्त देवगण मुझे ही परमार्थको जाननेवाला तथा परमब्रह्म कहते हैं और ब्रह्मा एवं इन्द्रादि समस्त देवगण मेरे ही अंश तथा [मुझसे ही] शक्तिसम्पन्न हैं॥ ३१॥

मन्नाभिकमलाज्जातः पुरा ब्रह्मा जगत्करः।
सर्वाधिकः स्वतन्त्रश्च कर्ता हर्ताखिलेश्वरः॥ ३२

जगत्कर्ता ब्रह्मा भी पूर्व समयमें मेरे नाभिकमलसे उत्पन्न हुए थे। मैं ही सबसे अधिक, स्वतन्त्र, कर्ता, हर्ता तथा अखिलेश्वर हूँ॥ ३२॥

इदं तु मत्परं तेजः किं पुनः श्रोतुमिच्छसि।
अतो मां शरणं प्राप्य गच्छ त्वं विगतज्वरः॥ ३३

यह [नृसिंहरूपकी ज्वाला] मेरा सर्वाधिक तेज है, [मेरे विषयमें] और क्या सुनना चाहते हो? अतः मेरी शरणमें आकर निर्भय होकर तुम चले जाओ॥ ३३॥

अवेहि परमं भावमिदम्भूतं गणेश्वर।
मामकं सकलं विश्वं सदेवासुरमानुषम्॥ ३४

हे गणेश्वर! दिखायी पड़नेवाले इस संसारको मेरा ही परम स्वरूप जानो। देवता, असुर एवं मनुष्योंसे युक्त यह सारा विश्व मेरा है॥ ३४॥

कालोऽस्म्यहं लोकविनाशहेतु-
र्लोकान्समाहर्तुमहं प्रवृत्तः।
मृत्योर्मृत्युं विद्धि मां वीरभद्र
जीवन्त्येते मत्प्रसादेन देवाः॥ ३५

मैं लोकोंके विनाशका कारण कालस्वरूप हूँ, अतः मैं लोकोंका संहार करनेके लिये प्रवृत्त हुआ हूँ। हे वीरभद्र! मुझे मृत्युका भी मृत्यु समझो, ये देवगण मेरी ही कृपासे जीवन धारण करते हैं॥ ३५॥

नन्दीश्वर उवाच

साहङ्कारं वचः श्रुत्वा हरेरमितविक्रमः।
विहस्योवाच सावज्ञं ततो विस्फुरिताधरः॥ ३६

नन्दीश्वर बोले—विष्णुके अहंकारयुक्त वचनको सुनकर महापराक्रमी वीरभद्र ओठोंको फड़फड़ाते हुए अवज्ञापूर्वक हँसकर कहने लगे—॥ ३६॥

वीरभद्र उवाच

किन्न जानासि विश्वेशं संहर्तारं पिनाकिनम्।
असद्वादो विवादश्च विनाशस्त्वयि केवलः॥ ३७

वीरभद्र बोले—क्या आप संसारके ईश्वर तथा संहारकर्ता पिनाकधारी शिवको नहीं जानते हैं? आपमें केवल मिथ्या वाद-विवाद भरा पड़ा है, जो कि आपके विनाशका कारण है॥ ३७॥

तवान्योन्यावताराणि कानि शेषाणि साम्प्रतम्।
कृतानि येन केनैव कथाशेषो भविष्यति॥ ३८

आपके अन्यान्य कितने ही अवतार हो चुके हैं, कितने ही बाकी हैं। हे विष्णो! जिस कारणसे आपका यह अवतार हुआ है, कहीं ऐसा न हो कि उसी अवतारसे आप कथामात्र ही शेष न रह जायँ॥ ३८॥

दोषं तं वद येन त्वमवस्थामीदृशीं गतः।
तेन संहारदक्षेण दक्षिणाशेषमेष्यसि॥ ३९

आप उस दोषको बताइये, जिससे आप इस दशाको प्राप्त हुए हैं। संसारके संहारमें प्रवीण होनेके कारण कहीं ऐसा न हो कि उसकी दक्षिणा आपको ही प्राप्त हो जाय॥ ३९॥

प्रकृतिस्त्वं पुमान्रुद्रस्त्वयि वीर्यं समाहितम्।
त्वन्नाभिपङ्कजाज्जातः पञ्चवक्त्रः पितामहः॥ ४०

आप प्रकृति हैं तथा रुद्र पुरुष हैं, उन्होंने आपमें अपने वीर्यका आधान किया है, इसीलिये आपके नाभिकमलसे पाँच मुखवाले ब्रह्माजी उत्पन्न हुए हैं॥ ४०॥

जगत्त्रयीसर्जनार्थं शङ्करं नीललोहितम्।
ललाटेऽचिन्तयत्सोऽयं तपस्युग्रे च संस्थितः॥ ४१

तल्ललाटादभूच्छम्भुः सृष्ट्यर्थे तेन भूषणम्।
अतोऽहं देवदेवस्य तस्य भैरवरूपिणः॥ ४२

त्वत्संहारे नियुक्तोऽस्मि विनयेन बलेन च।
देवदेवेन रुद्रेण सकलप्रभुणा हरे॥ ४३

उन्होंने इस त्रिलोकीकी सृष्टिके लिये अपने ललाटमें नीललोहित शिवका ध्यान किया और वे उग्र तपमें स्थित हुए। तब उन्हींके ललाटसे सृष्टिहेतु शिवजी उत्पन्न हुए और ब्रह्माजीने उन्हें भूषणरूपमें धारण किया। मैं उन्हीं देवाधिदेव भैरवरूपधारीकी आज्ञासे यहाँ आया हूँ। हे हरे! मैं उन्हीं देवदेव सर्वेश्वर रुद्रके द्वारा विनय और बल दोनोंसे आपका नियमन करनेके लिये नियुक्त किया गया हूँ॥ ४१—४३॥

एकं रक्षो विदार्यैव तच्छक्तिकलया युतः।
अहंकारावलेपेन गर्जसि त्वमतन्द्रितः॥ ४४

आपने तो उनकी शक्तिकी कलामात्रसे ही युक्त होकर एक राक्षसका वध किया, पर अब असावधान होकर अहंकारके प्रभावसे गर्जन कर रहे

उपकारो हि साधूनां सुखाय किल संमतः।
उपकारो ह्यसाधूनामपकाराय केवलम्॥ ४५

हैं। सज्जन व्यक्तियोंके साथ किया गया उपकार सुखको बढ़ानेवाला होता है। किंतु वही उपकार यदि दुष्ट व्यक्तियोंके साथ किया जाय तो वह हानिकारक होता है॥ ४४-४५॥

यन्नृसिंह महेशानं पुनर्भूतं तु मन्यसे।
तर्ह्यज्ञानी महागर्वी विकारी सर्वथा भवान्॥ ४६

हे नृसिंह! यदि आप शिवजीको अजन्मा नहीं मानते हैं, तो निश्चय ही आप अज्ञानी, महागर्वी एवं दोषोंसे परिपूर्ण हैं॥ ४६॥

न त्वं स्रष्टा न संहर्ता भर्तापि न नृसिंहक।
परतन्त्रो विमूढात्मा न स्वतन्त्रो हि कुत्रचित्॥ ४७

हे नृसिंह! आप न स्रष्टा हैं, न भर्ता हैं और न संहारकर्ता ही हैं, आप किसी भी प्रकार स्वतन्त्र नहीं हैं, आप परतन्त्र एवं विमूढ चित्तवाले हैं॥ ४७॥

कुलालचक्रवच्छक्त्या प्रेरितोऽसि पिनाकिना।
नानावतारकर्ता त्वं तदधीनः सदा हरे॥ ४८

हे हरे! आप महादेवकी शक्तिसे ही कुलालचक्रकी भाँति प्रेरित हैं और सदा उन्हींके अधीन रहकर अनेक अवतार धारण करते हैं॥ ४८॥

अद्यापि तव निक्षिप्तं कपालं कूर्मरूपिणः।
हरहारलतामध्ये दग्धं कश्चिन्न बध्यते॥ ४९

[हे हरे!] कूर्मावतारके समय [बारम्बार मन्दराचलके द्वारा घर्षित होनेसे] झुलसे हुए कपालको किसीने धारण नहीं किया। तुम्हारेद्वारा त्यागा गया वह कपाल आज भी शिवजीकी हारलता (मुण्डमाला)-में विद्यमान है॥ ४९॥

विस्मृतिः किं तदंशेन दंष्ट्रोत्पातनपीडितम्।
वाराहविघ्नहस्तेऽद्य याक्रोशन्तारकारिणा॥ ५०

उनके अंशमात्रसे उत्पन्न हुए तारकासुरने जो आपका वैरी था, वराहावतारमें तुम्हारे दाँतोंको उखाड़कर जैसी पीड़ा पहुँचायी, पुनः जिन शिवजीकी कृपासे आपके सारे विघ्न दूर हो गये, क्या उन परमात्मा शिवजीको आप भूल गये!॥ ५०॥

दग्धोऽसि पश्य शूलाग्नेर्विष्वक्सेनच्छलाद्भवान्।
दक्षयज्ञे शिरश्छिन्नं मया तेजःस्वरूपिणा॥ ५१

अद्यापि तव पुत्रस्य ब्रह्मणः पञ्चमं शिरः।
छिन्नं न सज्जितं भूयो हरे तद्विस्मृतं त्वया॥ ५२

विष्वक्सेनावतारमें शिवजीने अपने शूलाग्रसे आपको दग्ध कर दिया था। तेजस्वरूप मैंने दक्षके यज्ञमें आपके पुत्र ब्रह्माका पाँचवाँ सिर काट दिया था, जिसे अबतक कोई जोड़ न सका, हे हरे! क्या आप उसे भूल गये हैं?॥ ५१-५२॥

निर्जितस्त्वं दधीचेन संग्रामे समरुद्गणः।
कण्डूयमाने शिरसि कथं तद्विस्मृतं त्वया॥ ५३

चक्रं विक्रमतो यस्य चक्रपाणे तव प्रियम्।
कुतः प्राप्तं कृतं केन त्वया तदपि विस्मृतम्॥ ५४

शिवभक्त दधीचिने सिर खुजलानेमात्रसे मरुद्गणोंसहित आपको संग्राममें जीत लिया था, क्या आप उसे भूल गये?। हे चक्रपाणे! आप जिस चक्रके सहारे अपना पुरुषार्थ प्रकट करते हैं, वह कहाँसे और किसके द्वारा प्राप्त हुआ है, क्या आप उसको भूल गये हैं?॥ ५३-५४॥

ये मया सकला लोका गृहीतास्त्वं पयोनिधौ।
निद्रापरवशः शेषे स कथं सात्त्विको भवान्॥ ५५

मैंने तो सम्पूर्ण लोकोंको धारण कर रखा है और तुम क्षीरसागरमें निद्राके परवश होकर सोते रहते हो, ऐसी स्थितिमें तुम सात्त्विक कैसे हो?॥ ५५॥

त्वदादिस्तम्बपर्यन्तं रुद्रशक्तिविजृम्भितम्।
शक्तिमानभितस्त्वं च ह्यनलात्त्वं विमोहितः ॥ ५६

तत्तेजसो हि माहात्म्यं पुमान्द्रष्टुं न हि क्षमः।
अस्थूला ये प्रपश्यन्ति तद्विष्णोः परमं पदम् ॥ ५७

आपसे लेकर स्तम्बपर्यन्त शिवजीकी शक्ति फैली हुई है, उसीसे आप सर्वथा शक्तिमान् हैं, अन्यथा आप उनके लिंगाकार तेजमात्रके प्रकट होते ही मोहित हो गये थे। उनके तेजके माहात्म्यको देखनेमें कोई भी पुरुष समर्थ नहीं है। सूक्ष्म बुद्धिवाले लोग ही उन सर्वव्यापीके परम पदको देख पाते हैं ॥ ५६-५७ ॥

द्यावापृथिव्या इन्द्राग्नेर्यमस्य वरुणस्य च।
ध्वान्तोदरे शशांके च जनित्वा परमेश्वरः ॥ ५८

आकाश, पृथ्वीका अन्तराल, इन्द्र, अग्नि, यम, वरुण, अन्धकारको लील जानेवाले सूर्य एवं चन्द्रमाको उत्पन्नकर वही परमेश्वर उनमें प्रविष्ट हो जाते हैं ॥ ५८ ॥

कालोऽसि त्वं महाकालः कालकालो महेश्वरः।
अतस्त्वमुग्रकलया मृत्योर्मृत्युर्भविष्यसि ॥ ५९

हे [नृसिंह!] आप ही काल, महाकाल, कालकाल तथा महेश्वर हैं, आप अपनी उग्रकलाके कारण मृत्युके भी मृत्यु हैं ॥ ५९ ॥

स्थिरोऽद्य त्वक्षरो वीरो वीरो विश्वावकः प्रभुः।
उपहन्ता ज्वरं भीमो मृगः पक्षी हिरण्मयः ॥ ६०

शास्ता शेषस्य जगतस्तत्त्वं नैव चतुर्मुखः।
नान्ये च केवलं शम्भुः सर्वशास्ता न संशयः ॥ ६१

वे [शिवजी ही] स्थिर, अक्षर, वीर, विश्वरक्षक, प्रभु, दुःखोंके नाशकर्ता, भीम, मृग, पक्षी, हिरण्मय हैं और सम्पूर्ण जगत्‌के शास्ता हैं; आप, ब्रह्मा तथा अन्य कोई नहीं है, केवल शम्भु ही सबके शासक हैं, इसमें सन्देह नहीं है ॥ ६०-६१ ॥

इत्थं सर्वं समालोक्य संहरात्मानमात्मना।
न विनष्टं त्वमात्मानं कुरु हे नृहरेऽबुध ॥ ६२

नो चेदिदानीं क्रोधस्य महाभैरवरूपिणः।
वज्राशनिरिव स्थाणौ त्वयि मृत्युः पतिष्यति ॥ ६३

इस प्रकार सब कुछ विचारकर आप अपनी ज्वालाको स्वयं ही शान्त करें, हे नृसिंह! हे अबुध! आप अपनेको विनष्ट न करें, अन्यथा इसी समय जैसे सूखे वृक्षपर बिजली गिरती है, वैसे ही महाभैरवरूप उन रुद्रका क्रोध मृत्युरूप होकर तुमपर गिरेगा ॥ ६२-६३ ॥

नन्दीश्वर उवाच

इत्युक्त्वा वीरभद्रोऽपि विररामाकुतोभयः।
दृष्ट्वा नृसिंहाभिप्रायं क्रोधमूर्त्तिश्शिवस्य सः ॥ ६४

नन्दी बोले—इतना कहकर शिवकी क्रोधमूर्ति वे वीरभद्र निर्भय होकर नृसिंहका अभिप्राय जानकर मौन हो गये ॥ ६४ ॥

इति श्रीशिवमहापुराणे तृतीयायां शतरुद्रसंहितायां शरभावतारवर्णनं नामैकादशोऽध्यायः ॥ ११ ॥

॥ इस प्रकार श्रीशिवमहापुराणके अन्तर्गत तृतीय शतरुद्रसंहितामें शरभावतार-वर्णन नामक ग्यारहवाँ अध्याय पूर्ण हुआ ॥ ११ ॥

अथ द्वादशोऽध्यायः

भगवान् शिवका शरभावतार-धारण

सनत्कुमार उवाच

नन्दीश्वर महाप्राज्ञ विज्ञातं तदनन्तरम्।
ममोपरि कृपां कृत्वा प्रीत्या त्वं तद्वदाधुना ॥ १

सनत्कुमार बोले—हे नन्दीश्वर! हे महाप्राज्ञ! इसके बाद [जो वृत्तान्त आपको] ज्ञात हुआ, मेरे ऊपर कृपा करके उस वृत्तान्तको इस समय प्रीतिपूर्वक कहिये ॥ १ ॥

नन्दीश्वर उवाच

इत्युक्तो वीरभद्रेण नृसिंहः क्रोधविह्वलः।
निनदन्ननुवेगेन तं ग्रहीतुं प्रचक्रमे ॥ २

नन्दीश्वर बोले—वीरभद्रके इस प्रकारके कहनेपर नृसिंह क्रोधसे व्याकुल हो गये और गर्जन करते हुए बड़े वेगसे उन्हें पकड़नेके लिये उद्यत हुए ॥ २ ॥

अत्रान्तरे महाघोरं प्रत्यक्षभयकारणम्।
गगनव्यापि दुर्धर्षं शैवतेजः समुद्भवम्॥ ३

वीरभद्रस्य तद्रूपमदृश्यं तु ततः क्षणात्।
तद्वै हिरण्मयं सौम्यं न सौरं नाग्निसम्भवम्॥ ४

न तडिच्चन्द्रसदृशमनौपम्यं महेश्वरम्।
तदा तेजांसि सर्वाणि तस्मिँल्लीनानि शङ्करे॥ ५

न तद्व्योमं महत्तेजो व्यक्तान्तश्चाभवत्ततः।
रुद्रसाधारणं चैव चिह्नितं विकृताकृति॥ ६

ततस्संहाररूपेण सुव्यक्तं परमेश्वरः।
पश्यतां सर्वदेवानां जयशब्दादिमंगलैः॥ ७

सहस्रबाहुर्जटिलश्चन्द्रार्द्धकृतशेखरः।
समृद्धोग्रशरीरेण पक्षाभ्यां चञ्चुना द्विजः॥ ८

अतितीक्ष्णो महादंष्ट्रो वज्रतुल्यनखायुधः।
कण्ठे कालो महाबाहुश्चतुष्पाद्वह्निसन्निभः॥ ९

युगान्तोद्यतजीमूतभीमगम्भीरनिःस्वनः।
महाकुपितकृत्याग्निव्यावृत्तनयनत्रयः॥ १०

स्पष्टदंष्ट्राधरोष्ठश्च हुंकारैः संयुतो हरः।
ईदृग्विधस्वरूपश्च ह्युग्र आविर्बभूव ह॥ ११

हरिस्तद्दर्शनादेव विनष्टबलविक्रमः।
बिभ्रद्धामसहस्रांशोरधः खद्योतविभ्रमम्॥ १२

अथ विभ्रम्य पक्षाभ्यां नाभिपादान्विदारयन्।
पादान्बबंध पुच्छेन बाहुभ्यां बाहुमण्डलम्॥ १३

भिन्दन्नुरसि बाहुभ्यां निजग्राह हरो हरिम्।
ततो जगाम गगनं देवैस्सह महर्षिभिः॥ १४

इसी बीच महाघोर, प्रत्यक्ष, भयके कारण अत्यन्त प्रचण्ड, आकाशव्यापी, दुर्धर्ष, शिवतेजसे उत्पन्न तथा कभी भी न दिखायी पड़नेवाला वीरभद्रका अद्भुत रूप प्रकट हुआ, जो न तो हिरण्मय था, न सौम्य था, वह तेज न सूर्य और न तो अग्निसे उत्पन्न हुआ था, न बिजलीके समान और न चन्द्रमाके समान था, वह शिवतेज अनुपम था। उस समय सभी तेज उन शंकरके तेजमें विलीन हो गये। वह महातेज आकाशमें भी न समा सका। वह तेज प्रकट कालरूप ही था। अत्यन्त विकृताकार वह तेज रुद्रका साधारण चिह्न था॥ ३—६॥

जय-जय आदि मंगल शब्दोंके साथ उन देवताओंके देखते-देखते ही परमेश्वर स्वयं संहाररूपसे प्रकट हुए॥ ७॥

हजार भुजाओंसे समन्वित, जटाधर, ललाटपर बालचन्द्र धारण किये हुए अत्यन्त उग्र शरीरवाले वे दो पंख एवं चोंचसे युक्त पक्षीके रूपमें दिखायी पड़ रहे थे। उनके दाँत अत्यन्त विशाल तथा तीक्ष्णतम थे। वे वज्रतुल्य नखरूपी आयुधसे युक्त थे, वे नीलकण्ठ, महाबाहु और चार चरणोंसे युक्त तथा अग्निके समान तेजस्वी थे। वे युगान्तकालीन अर्थात् प्रलयकारी मेघके समान गम्भीर गर्जना कर रहे थे और महाकोपसे व्याप्त नेत्रोंद्वारा कृत्याग्निके समान जान पड़ते थे। उनके दाँत और अधरोष्ठ क्रोधके कारण फड़क रहे थे। इस प्रकारका उग्र स्वरूप धारण किये, हुंकार करते हुए विकटरूपधारी शंकर [नृसिंहजीके आगे] प्रकट हो गये॥ ८—११॥

उस रूपको देखते ही नृसिंहका समस्त बल पराक्रम उसी प्रकार लुप्त हो गया, जिस प्रकार सूर्यके तेजसे तिरस्कृत जुगनू विभ्रान्त हो जाता है॥ १२॥

इसके बाद उन्होंने अपने दोनों पक्षोंको घुमाते हुए उनसे नृसिंहके नाभि और चरणोंको विदीर्ण करते हुए अपनी पूँछसे उनके चरणोंको तथा हाथोंसे उनकी भुजाओंको बाँध लिया। इसके बाद भुजाओंसे हृदय विदीर्ण करते हुए शिवजीने नृसिंहको पकड़ लिया। उसके बाद देवताओं और महर्षियोंके साथ आकाशमें चले गये॥ १३-१४॥

सहसैवाभयाद्विष्णुं स हि श्येन इवोरगम्।
उत्क्षिप्योत्क्षिप्य संगृह्य निपात्य च निपात्य च॥ १५

उड्डीयोड्डीय भगवान्पक्षघातविमोहितम्।
हरिं हरस्तं वृषभं विवेशानन्त ईश्वरः॥ १६

जिस प्रकार गरुड निर्भयतापूर्वक साँपको कभी ऊपर कभी नीचे पटकता है, कभी उसे लेकर उड़ जाता है, उसी प्रकार उन्होंने नृसिंहको अपने पंखोंसे मार-मारकर आहत कर दिया। फिर वे अनन्त ईश्वर उन नृसिंहको लेकर वृषभपर सवार हो चल पड़े॥ १५-१६॥

अनुयान्तं सुराः सर्वे नमोवाक्येन तुष्टुवुः।
प्रणेमुः सादरं प्रीत्या ब्रह्माद्याश्च मुनीश्वराः॥ १७

तत्पश्चात् सभी ब्रह्मादि देवों तथा मुनीश्वरोंने जाते हुए शिवको आदरपूर्वक प्रणाम किया और वे लोग '**नमः**' शब्दसे उनकी स्तुति करने लगे॥ १७॥

नीयमानः परवशो दीनवक्त्रः कृताञ्जलिः।
तुष्टाव परमेशानं हरिस्तं ललिताक्षरैः॥ १८

नाम्नामष्टशतेनैव स्तुत्वा तं मृडमेव च।
पुनश्च प्रार्थयामास नृसिंहः शरभेश्वरम्॥ १९

यदा यदा ममाज्ञेयं मतिः स्याद्गर्वदूषिता।
तदा तदाऽपनेतव्या त्वयैव परमेश्वर॥ २०

इस प्रकार ले जाये जाते हुए पराधीन तथा दीनमुख नृसिंह हाथ जोड़कर मनोहर अक्षरों [-वाले स्तोत्रों]-से उन परमेश्वरकी स्तुति करने लगे। शिवके एक सौ आठ नामोंद्वारा इन शरभेश्वरकी स्तुतिकर नृसिंहने पुनः उनसे प्रार्थना की—हे परमेश्वर! जब-जब मेरी यह मूढ़ बुद्धि अहंकारसे दूषित हो जाय, तब-तब आप ही उसे दूर करें॥ १८—२०॥

नन्दीश्वर उवाच

एवं विज्ञापयन्प्रीत्या शङ्करं नरकेसरी।
नत्वाशक्तोऽभवद्विष्णुर्जीवितान्तपराजितः॥ २१

तद्वक्त्रं शेषगात्रान्तं कृत्वा सर्वस्वविग्रहम्।
शक्तियुक्तं तदीयाङ्गं वीरभद्रः क्षणात्ततः॥ २२

नन्दीश्वर बोले—इस प्रकार प्रीतिपूर्वक शिवसे प्रार्थना करते हुए नृसिंहरूपधारी विष्णु जीवनपर्यन्त पराधीनता स्वीकारकर बार-बार प्रणाम करके दीन हो गये। वीरभद्रने क्षणमात्रमें ही नृसिंहके मुखसहित समस्त शरीर एवं उनकी शक्तिको अपनेमें समाहित कर लिया॥ २१-२२॥

नन्दीश्वर उवाच

अथ ब्रह्मादयो देवाः शारभं रूपमास्थितम्।
तुष्टुवुः शङ्करं देवं सर्वलोकैकशङ्करम्॥ २३

नन्दीश्वर बोले—तदनन्तर ब्रह्मादि समस्त देवता शरभरूप धारण किये हुए सम्पूर्ण लोकोंके एकमात्र कल्याणकारी भगवान् शंकरकी स्तुति करने लगे॥ २३॥

देवा ऊचुः

ब्रह्मविष्ण्विन्द्रचन्द्रादिसुराः सर्वे महर्षयः।
दितिजाद्याः सम्प्रसूताः त्वत्तः सर्वे महेश्वर॥ २४

देवता बोले—हे महेश्वर! ब्रह्मा-विष्णु-इन्द्र-चन्द्रमा आदि समस्त देवता, महर्षि एवं दैत्य आदि—सबके सब आपसे ही उत्पन्न हुए हैं॥ २४॥

ब्रह्मविष्णुमहेन्द्रांश्च सूर्याद्यानसुरान्सुरान्।
त्वं वै सृजसि पास्यत्सि त्वमेव सकलेश्वरः॥ २५

आप ही ब्रह्मा, विष्णु, महेन्द्र, चन्द्र तथा सूर्य आदि देवताओं एवं असुरोंका सृजन, पालन एवं संहार करते हैं, आप ही सबके स्वामी हैं॥ २५॥

यतो हरसि संसारं हर इत्युच्यते बुधैः।
निगृहीतो हरिर्यस्माद्धर इत्युच्यते बुधैः॥ २६

यतो बिभर्षि सकलं विभज्य तनुमष्टधा।
अतोऽस्मान्पाहि भगवन् सुरान् दानैरभीप्सितैः॥ २७

आप संसारका हरण करते हैं, इसलिये विद्वान् लोग आपको 'हर' कहते हैं और आपने विष्णुका निग्रह किया है, इसलिये भी आप विद्वानोंके द्वारा हर कहे जाते हैं। हे प्रभो! आप अपने शरीरको आठ भागोंमें बाँटकर इस जगत्का संरक्षण करते हैं, अतः हे भगवन्! अभीष्ट वरोंके द्वारा हम देवताओंकी रक्षा कीजिये॥ २६-२७॥

त्वं महापुरुषः शम्भुः सर्वेशः सुरनायकः।
निःस्वात्मा निर्विकारात्मा परब्रह्म सतां गतिः॥ २८

दीनबन्धुर्दयासिन्धुरद्भुतोतिःपरात्मदृक् ।
प्राज्ञो विराट् विभुः सत्यः सच्चिदानन्दलक्षणः॥ २९

आप महापुरुष, शम्भु, सर्वेश्वर, सुरनायक, निःस्वात्मा, निर्विकारात्मा, परब्रह्म, सत्पुरुषोंकी गति, दीनबन्धु, दयासिन्धु, अद्भुत लीला करनेवाले, परात्मदृक्, प्राज्ञ, विराट्, विभु, सत्य एवं सत्-चित्-आनन्द लक्षणसे युक्त हैं॥ २८-२९॥

नन्दीश्वर उवाच

इत्याकर्ण्य वचः शम्भुर्देवानां परमेश्वरः।
उवाच तान् सुरान्देवामहर्षींश्च पुरातनान्॥ ३०

नन्दीश्वर बोले—इस प्रकार देवताओंके वचनको सुनकर परमेश्वर सदाशिव उन पुरातन देवताओं एवं महर्षियोंसे कहने लगे—॥ ३०॥

यथा जलं जले क्षिप्तं क्षीरे क्षीरं घृते घृतम्।
एक एव तदा विष्णुः शिवे लीनो न चान्यथा॥ ३१

[शिवजी बोले—] जिस प्रकार जलमें जल, दूधमें दूध और घीमें घी मिलकर समरस हो जाता है, ठीक उसी प्रकार भगवान् विष्णु भी शिवजीमें मिलकर समरस हो गये हैं, इसमें संशय नहीं है॥ ३१॥

एको विष्णुर्नृसिंहात्मा सदर्पश्च महाबलः।
जगत्संहारकरणे प्रवृत्तो नरकेसरी॥ ३२

प्रार्थनीयो नमस्तस्मै मद्भक्तैः सिद्धिकारिभिः।
मद्भक्तप्रवरश्चैव मद्भक्तवरदायकः॥ ३३

इस समय एकमात्र विष्णु ही महाबलवान् तथा अहंकारी नृसिंहका रूप धारणकर संसारके संहार करनेमें प्रवृत्त हुए हैं, उन्हें नमस्कार है। सिद्धिहेतु प्रयत्नशील मेरे भक्तोंके द्वारा वे प्रार्थनाके योग्य हैं, वे स्वयं भी मेरे भक्तोंमें सर्वश्रेष्ठ हैं और मेरे भक्तोंको वर देनेवाले हैं॥ ३२-३३॥

नन्दीश्वर उवाच

एतावदुक्त्वा भगवान् पक्षिराजो महाबलः।
पश्यतां सर्वदेवानां तत्रैवान्तरधीयत॥ ३४

वीरभद्रोऽपि भगवान्गणाध्यक्षो महाबलः।
नृसिंहकृत्तिं निष्कृष्य समादाय ययौ गिरिम्॥ ३५

नन्दीश्वर बोले—इस प्रकार कहकर महाबली भगवान् पक्षिराज देवताओंके देखते-देखते वहीं अन्तर्धान हो गये। गणाध्यक्ष महाबलवान् भगवान् वीरभद्र भी नृसिंहका चर्म निकाल और उसे लेकर कैलासपर्वतपर चले गये॥ ३४-३५॥

नृसिंहकृत्तिवसनस्तदाप्रभृति शङ्करः।
तद्वक्त्रं मुण्डमालायां नायकत्वेन कल्पितम्॥ ३६

ततो देवा निरातङ्काः कीर्तयन्तः कथामिमाम्।
विस्मयोत्फुल्लनयना जग्मुः सर्वे यथागतम्॥ ३७

उसी समयसे शिवजी नृसिंहके चर्मको धारण करते हैं। उन्होंने नृसिंहके मुखको अपनी मुण्डमालाका सुमेरु बनाया था। तदनन्तर सभी देवता निर्भय होकर इस कथाका वर्णन करते हुए विस्मयसे प्रफुल्लितनेत्र हो जैसे आये थे, वैसे ही चले गये॥ ३६-३७॥

य इदं परमाख्यानं पुण्यं वेदरसान्वितम्।
पठति शृणुयाच्चैव सर्वान्कामानवाप्नुयात्॥ ३८

जो [व्यक्ति] वेदरससे परिपूर्ण इस परम पवित्र आख्यानको पढ़ता है तथा सुनता है, उसकी सम्पूर्ण कामनाएँ पूर्ण हो जाती हैं॥ ३८॥

धन्यं यशस्यमायुष्यमारोग्यम्पुष्टिवर्द्धनम्।
सर्वविघ्नप्रशमनं सर्वव्याधिविनाशनम्॥ ३९

दुःखप्रशमनं वाञ्छासिद्धिदं मंगलालयम्।
अपमृत्युहरं बुद्धिप्रदं शत्रुविनाशनम्॥ ४०

यह आख्यान धन्य, यशको प्रदान करनेवाला, आयुको बढ़ानेवाला, आरोग्य देनेवाला तथा पुष्टिकी वृद्धि करनेवाला, समस्त विघ्नोंको शान्त करनेवाला, सभी व्याधियोंका नाश करनेवाला, दुःखोंको दूर करनेवाला, मनोरथ सिद्ध करनेवाला, कल्याणका आश्रयस्थान, अपमृत्युका हरण करनेवाला, बुद्धिको बढ़ानेवाला तथा शत्रुओंका नाश करनेवाला है॥ ३९-४०॥

इदं तु शरभाकारं परं रूपं पिनाकिनः।
प्रकाशनीयं भक्तेषु शङ्करस्य चरेषु वै॥ ४१

तैरेव पठितव्यं च श्रोतव्यं च शिवात्मभिः।
नवधाभक्तिदं दिव्यमन्तःकरणबुद्धिदम्॥ ४२

यह शरभरूप पिनाकधारी शिवजीका उत्तम रूप है, इसे शिवके भक्तों तथा गणोंमें प्रकाशित करते रहना चाहिये अर्थात् साधारण जनोंके समक्ष यह प्रकाश्य नहीं है। उन्हीं शिवभक्तोंको इस आख्यानको पढ़ना एवं सुनना चाहिये। यह नौ प्रकारकी भक्ति प्रदान करनेवाला दिव्य एवं अन्तःकरण तथा बुद्धिका वर्धन करनेवाला है॥ ४१-४२॥

शिवोत्सवेषु सर्वेषु चतुर्दश्यष्टमीषु च।
पठेत्प्रतिष्ठाकाले तु शिवसन्निधिकारणम्॥ ४३

शिवजीके सभी उत्सवोंमें, चतुर्दशी तथा अष्टमीको एवं शिवकी प्रतिष्ठाके समय इस आख्यानको पढ़नेसे शिवजीका सांनिध्य प्राप्त होता है॥ ४३॥

चौरव्याघ्रनृसिंहात्मकृतराजभयेषु च।
अन्येषूत्पातभूकम्पदस्व्वादिपांसुवृष्टिषु॥ ४४

उल्कापाते महावाते विनावृष्ट्यतिवृष्टिषु।
पठेद्यः प्रयतो विद्वान् शिवभक्तो दृढव्रतः॥ ४५

यः पठेच्छृणुयाद्वापि निष्कामो व्रतमैश्वरम्।
रुद्रलोकं समासाद्य रुद्रस्यानुचरो भवेत्॥ ४६

रुद्रलोकमनुप्राप्य रुद्रेण सह मोदते।
ततः सायुज्यमाप्नोति शिवस्य कृपया मुने॥ ४७

चोर-बाघ-मनुष्य-सिंहके भयमें, आत्मकृत अर्थात् मनमें अकारण उत्पन्न भय तथा राजभयमें, अन्य प्रकारके उत्पात, भूकम्प, डाकू आदिसे भय उपस्थित होनेपर, धूलिवर्षाकालमें, उल्कापात, महावात, अनावृष्टि और अतिवृष्टिमें जो विद्वान् सावधान होकर इसे पढ़ता है, वह दृढ़व्रती शिवभक्त हो जाता है। जो निष्काम भावसे इस शिवचरित्रको पढ़ता या सुनता है और शिवव्रत करता है, वह रुद्रलोकको प्राप्तकर रुद्रका अनुचर हो जाता है। इस प्रकार रुद्रलोकको प्राप्तकर वह रुद्रके साथ आनन्द करता है और हे मुने! उसके बाद शिवजीकी कृपासे वह शिवसायुज्य प्राप्त करता है॥ ४४—४७॥

इति श्रीशिवमहापुराणे तृतीयायां शतरुद्रसंहितायां शरभावतारवर्णनं नाम द्वादशोऽध्यायः॥ १२॥

॥ इस प्रकार श्रीशिवमहापुराणके अन्तर्गत तृतीय शतरुद्रसंहितामें शरभावतारवर्णन नामक बारहवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ १२॥

अथ त्रयोदशोऽध्यायः

भगवान् शंकरके गृहपति-अवतारकी कथा

नन्दीश्वर उवाच

शृणु ब्रह्मसुत प्रीत्या चरितं शशिमौलिनः।
सोऽवतीर्णो यथा प्रीत्या विश्वानरगृहे शिवः॥ १

नन्दीश्वर बोले—हे ब्रह्मपुत्र! अब चन्द्रमाको सिरपर धारण करनेवाले शिवके एक अन्य चरित्रको प्रसन्नतापूर्वक सुनिये, जिस प्रकार उन्होंने प्रेमपूर्वक विश्वानरके घरमें जन्म लिया॥ १॥

नाम्ना गृहपतिः सोऽभूदग्निलोकपतिर्मुने।
अग्निरूपस्तैजसश्च सर्वात्मा परमः प्रभुः॥ २

नर्मदायास्तटे रम्ये पुरे नर्मपुरे पुरा।
पुरारिभक्तः पुण्यात्माभवद्विश्वानरो मुनिः॥ ३

हे मुने! गृहपति नामवाले वे अग्निलोकके स्वामी हुए, वे अग्निके सदृश, तेजस्वी, सर्वात्मा एवं परम प्रभु थे। पूर्वकालमें नर्मदाके तटपर नर्मपुरमें शिवजीके भक्त विश्वानर नामवाले पुण्यात्मा मुनि हुए॥ २-३॥

ब्रह्मचर्याश्रमे निष्ठो ब्रह्मयज्ञरतः सदा।
शाण्डिल्यगोत्रः शुचिमान्ब्रह्मतेजोनिधिर्वशी॥ ४

वे सदा ब्रह्मचर्याश्रम धर्मका पालन करते हुए नित्य-प्रति ब्रह्मयज्ञ किया करते थे। वे शाण्डिल्यगोत्री थे और बड़े पवित्र, ब्रह्मतेजस्वी तथा जितेन्द्रिय थे॥ ४॥

विज्ञाताखिलशास्त्रार्थः सदाचाररतः सदा।
शैवाचारप्रवीणोऽति लौकिकाचारविद्वरः॥ ५

वे सभी शास्त्रोंके अर्थोंके ज्ञाता, सर्वदा सदाचारमें तत्पर, शैव आचारमें अति प्रवीण तथा लौकिक आचारके ज्ञाताओंमें श्रेष्ठ थे॥ ५॥

चित्ते विचार्य गृहिणीगुणान्विश्वानरः शुभान्।
उदुवाह विधानेन स्वोचितां कुलकन्यकाम्॥ ६

उन्होंने भार्याके उत्तम गुणोंपर विचारकर उचित समयमें विधिपूर्वक अपने योग्य कुलीन कन्यासे विवाह किया॥ ६॥

अग्निशुश्रूषणरतः पञ्चयज्ञपरायणः।
षट्कर्मनिरतो नित्यं देवपित्रतिथिप्रियः॥ ७

वे प्रतिदिन अग्निशुश्रूषा, पंचयज्ञ तथा षट्कर्ममें संलग्न रहते थे और देवता, पितर एवं अतिथियोंका पूजन करते थे॥ ७॥

एवं बहुतिथे काले गते तस्याग्रजन्मनः।
भार्या शुचिष्मती नाम भर्तारं प्राह सुव्रता॥ ८

इस प्रकार बहुत समय बीत जानेके उपरान्त [एक दिन] उन ब्राह्मणकी शुचिष्मती नामक पतिव्रता पत्नीने पतिसे कहा—॥ ८॥

नाथ भोगा मया सर्वे भुक्ता वै त्वत्प्रसादतः।
स्त्रीणां समुचिता ये स्युः त्वां समेत्य मुदावहाः॥ ९

हे नाथ! मैंने आपकी कृपासे आपके साथ उन सभी भोगोंको भोग लिया है, जो स्त्रियोंके योग्य तथा आनन्ददायक हैं॥ ९॥

एवं मे प्रार्थितं नाथ चिराय हृदि संस्थितम्।
गृहस्थानां समुचितं त्वमेतद्दातुमर्हसि॥ १०

हे नाथ! अब मेरी एक ही विशेष अभिलाषा है, जो मेरे हृदयमें चिरकालसे स्थित है और वह गृहस्थोंके लिये उचित भी है, उसे देनेकी कृपा करें॥ १०॥

विश्वानर उवाच

किमदेयं हि सुश्रोणि तव प्रियहितैषिणि।
तत्प्रार्थय महाभागे प्रयच्छाम्यविलम्बितम्॥ ११

महेशितुः प्रसादेन मम किञ्चिन्न दुर्लभम्।
इहामुत्र च कल्याणि सर्वकल्याणकारिणः॥ १२

विश्वानर बोले—हे सुश्रोणि! हे प्रियहितैषिणि! मुझे तुम्हारे लिये कुछ भी अदेय नहीं है। हे महाभागे! तुम उसे माँगो, मैं शीघ्र ही प्रदान करूँगा। हे कल्याणि! सम्पूर्ण कल्याण करनेवाले महेश्वरकी कृपासे मुझे इस लोक एवं परलोकमें कुछ भी दुर्लभ नहीं है॥ ११-१२॥

नन्दीश्वर उवाच

इत्याकर्ण्य वचः पत्युस्तस्य सा पतिदेवता।
उवाच हृष्टवदना करौ बद्ध्वा विनीतिका॥ १३

नन्दीश्वर बोले—पतिके इस वचनको सुनकर प्रसन्न मुखवाली वह पतिव्रता स्त्री प्रसन्नतासे विनीत हो दोनों हाथ जोड़कर कहने लगी—॥ १३॥

शुचिष्मत्युवाच

वरयोग्यास्मि चेन्नाथ यदि देयो वरो मम।
महेशसदृशं पुत्रं देहि नान्यं वरं वृणे॥ १४

शुचिष्मती बोली—हे नाथ! यदि मैं वरके योग्य हूँ और यदि आपको मुझे वर प्रदान करना है तो मुझे शिवके समान पुत्र दीजिये, मैं कोई अन्य वर नहीं चाहती हूँ॥ १४॥

नन्दीश्वर उवाच

इति तस्या वचः श्रुत्वा ब्राह्मणः स शुचिव्रतः।
क्षणं समाधिमाधाय हृद्येतत्समचिन्तयत्॥ १५

अहो किं मे तया तन्व्या प्रार्थितं ह्यतिदुर्लभम्।
मनोरथपथाद्दूरमस्तु वा स हि सर्वकृत्॥ १६

तेनैवास्या मुखे स्थित्वा वाक्स्वरूपेण शम्भुना।
व्याहृतं कोऽन्यथा कर्तुमुत्सहेत भवेदिदम्॥ १७

इति सञ्चिन्त्य स मुनिर्विश्वानर उदारधीः।
ततः प्रोवाच तां पत्नीमेकपत्नीव्रते स्थितः॥ १८

नन्दीश्वर उवाच

इत्थमाश्वास्य तां पत्नीं जगाम तपसे मुनिः।
यत्र विश्वेश्वरः साक्षात्काशीनाथोऽधितिष्ठति॥ १९

प्राप्य वाराणसीं तूर्णं दृष्ट्वा तां मणिकर्णिकाम्।
तत्याज तापत्रितयमपि जन्मशतार्जितम्॥ २०

दृष्ट्वा सर्वाणि लिंगानि विश्वेशप्रमुखानि च।
स्नात्वा सर्वेषु कुण्डेषु वापीकूपसरस्सु च॥ २१
नत्वा विनायकान्सर्वान्गौरीं शर्वां प्रणम्य च।
सम्पूज्य कालराजं च भैरवं पापभक्षणम्॥ २२
दण्डनायकमुख्यांश्च गणान्स्तुत्वा प्रयत्नतः।
आदिकेशवमुख्यांश्च केशवं परितोष्य च॥ २३
लोलार्कमुखसूर्यांश्च प्रणम्य स पुनः पुनः।
कृत्वा च पिण्डदानानि सर्वतीर्थेष्वतन्द्रितः॥ २४
सहस्त्रभोजनाद्यैश्च मुनीन्विप्रान्प्रतर्प्य च।
महापूजोपचारैश्च लिंगान्यभ्यर्च्य भक्तितः॥ २५
असकृच्चिन्तयामास किं लिंगं क्षिप्रसिद्धिदम्।
यत्र निश्चलतामेति तपस्तनयकाम्यया॥ २६

क्षणं विचार्य स मुनिरिति विश्वानरः सुधीः।
क्षिप्रं पुत्रप्रदं लिंगं वीरेशं प्रशशंस ह॥ २७

नन्दीश्वर बोले—उसके इस वचनको सुनकर वे पवित्रात्मा ब्राह्मण क्षणभरके लिये समाधिस्थ होकर अपने हृदयमें विचार करने लगे। अहो! मेरी इस स्त्रीने अत्यन्त दुर्लभ तथा मनोरथ मार्गसे दूर कैसी वस्तु माँगी है अथवा वे शिवजी ही सब कुछ पूरा करनेवाले हैं॥ १५-१६॥

उन शम्भुने ही इसके मुखमें वाणीरूपसे स्थित होकर ऐसा कहा है। शिवजीकी यदि ऐसी इच्छा है, तो उसे अन्यथा करनेमें कौन समर्थ हो सकता है!॥ १७॥

ऐसा विचारकर उदार बुद्धिवाले तथा एकपत्नी-व्रतमें परायण रहनेवाले विश्वानर मुनिने बादमें उस पत्नीसे कहा—॥ १८॥

नन्दीश्वर बोले—इस प्रकार अपनी पत्नीको [अनेक प्रकारसे] आश्वस्त करके मुनि तप करनेके लिये वहाँ चले गये, जहाँ साक्षात् काशीनाथ विश्वेश्वर स्थित हैं॥ १९॥

उन्होंने शीघ्र ही वाराणसी पहुँचकर मणिकर्णिकाका दर्शन करके अपने सैकड़ों जन्मोंके अर्जित तीनों तापोंसे मुक्ति प्राप्त कर ली॥ २०॥

उसके बाद उन्होंने विश्वेश्वर आदि सभी लिंगोंका दर्शन करके काशीस्थ सभी कुण्डों, वापियों एवं सरोवरोंमें स्नान करके, सभी विनायकोंको नमस्कार करके, शिवा गौरीको प्रणाम करके, पापोंका भक्षण करनेवाले कालराज भैरवका भी पूजन किया, फिर प्रयत्नपूर्वक दण्डपाणि विनायक आदि प्रमुख गणोंकी स्तुतिकर, आदिकेशव आदि [मुख्य द्वादश केशवों]-को प्रसन्न करके फिर लोलार्क आदि प्रमुख सूर्योंको बार-बार प्रणाम किया, पुनः सभी तीर्थोंमें समाहितचित्त होकर पिण्डदान करके हजारों प्रकारके भोजनादिसे मुनियों तथा ब्राह्मणोंको सन्तुष्टकर महापूजोपचारसे भक्तिपूर्वक [अनेक] लिंगोंका पूजन करके वे बार-बार विचार करने लगे कि शीघ्र ही सिद्धि प्रदान करनेवाला कौन-सा लिंग है, जहाँ पुत्रकी कामनासे मेरा तप सफल होगा॥ २१—२६॥

उन बुद्धिमान् विश्वानर मुनिने कुछ क्षण ऐसा विचार करके शीघ्र ही पुत्र देनेवाले वीरेश [नामक] लिंगकी प्रशंसा की। [उन्होंने अपने मनमें विचार किया

असंख्याताः सहस्राणि सिद्धाः सिद्धिं गतास्ततः।
सिद्धलिंगमिति ख्यातं तस्माद्वीरेश्वरं परम्॥ २८

वीरेश्वरं महालिंगमब्दमभ्यर्च्य भक्तितः।
आयुर्मनोरथं सर्वं पुत्रादिकमनेकशः॥ २९

अहमप्यत्र वीरेशं समाराध्य त्रिकालतः।
आशु पुत्रमवाप्स्यामि यथाभिलषितं स्त्रिया॥ ३०

नन्दीश्वर उवाच

इति कृत्वा मतिं धीरो विप्रो विश्वानरः कृती।
चन्द्रकूपजले स्नात्वा जग्राह नियमं व्रती॥ ३१

एकाहारोऽभवन्मासं मासं नक्ताशनोऽभवत्।
अयाचिताशनो मासं मासं त्यक्ताशनः पुनः॥ ३२

पयोव्रतोऽभवन्मासं मासं शाकफलाशनः।
मासं मुष्टितिलाहारो मासं पानीयभोजनः॥ ३३

पञ्चगव्याशनो मासं मासं चान्द्रायणव्रती।
मासं कुशाग्रजलभुग्मासं श्वसनभक्षणः॥ ३४

एवमब्दमितं कालं ततार स तपोऽद्भुतम्।
त्रिकालमर्चयद्भक्त्या वीरेशं लिङ्गमुत्तमम्॥ ३५

अथ त्रयोदशे मासि स्नात्वा त्रिपथगाम्भसि।
प्रत्यूष एव वीरेशं यावदायाति स द्विजः॥ ३६

तावद्विलोकयाञ्चक्रे मध्ये लिंगं तपोधनः।
विभूतिभूषणं बालमष्टवर्षाकृतिं शिशुम्॥ ३७

आकर्णायतनेत्रं च सुरक्तदशनच्छदम्।
चारुपिंगजटामौलिं नग्नं प्रहसिताननम्॥ ३८

शैशवोचितनेपथ्यधारिणं चितिधारिणम्।
पठन्तं श्रुतिसूक्तानि हसन्तं च स्वलीलया॥ ३९

तमालोक्य मुदं प्राप्य रोमकञ्चुकितो मुनिः।
प्रोच्चचार हृदालापान्नमोऽस्त्विति पुनः पुनः॥ ४०

अभिलाषप्रदैः पद्यैरष्टभिर्बालरूपिणम्।
तुष्टाव परमानन्दं शंभुं विश्वानरः कृती॥ ४१

कि] यह वीरेश्वर सिद्ध लिंग है, [इसकी पूजाके प्रभावसे] असंख्य साधक सिद्धिको प्राप्त किये हैं, इसीलिये यह श्रेष्ठ लिंग सबसे अधिक प्रसिद्ध है। लोग भक्तिभावसे समन्वित होकर वर्षपर्यन्त इस वीरेश्वर महालिंगकी पूजा करके आयु तथा पुत्रादि सभी मनोरथ प्राप्त करते हैं। अतः मैं भी यहीं वीरेश लिंगकी त्रिकाल आराधनाकर शीघ्र वैसा ही पुत्र प्राप्त करूँगा, जैसे कि मेरी स्त्रीने अभिलाषा की है॥ २७—३०॥

नन्दीश्वर बोले—ऐसा विचारकर बुद्धिमान्, पुण्यात्मा तथा व्रती ब्राह्मण विश्वानरने चन्द्रकूपके जलमें स्नानकर नियम धारण किया॥ ३१॥

उन्होंने एक मासपर्यन्त दिनमें एकाहार, एक मासपर्यन्त रात्रिमें एकाहार, एक मासपर्यन्त अयाचित आहार पुनः एक मासतक निराहार रहकर तप किया॥ ३२॥

वे एक महीनेतक दूध पीकर, एक महीनेतक शाक-फल खाकर, एक महीनेतक मुट्ठीभर तिल खाकर और एक महीने पानी पीकर रहे॥ ३३॥

वे एक महीनेतक पंचगव्य पीकर, एक मासतक चान्द्रायणव्रतकर, एक मासतक कुशाग्रका जल पीकर पुनः एक महीने वायु भक्षणकर रहने लगे॥ ३४॥

उत्तम वीरेश्वरलिंगकी भक्तिपूर्वक पूजा करते हुए इस प्रकार उन्होंने एक वर्षतक अद्भुत तप किया॥ ३५॥

उसके बाद तेरहवें महीनेमें गंगाके जलमें प्रातःकाल स्नानकर ज्यों ही वे ब्राह्मण वीरेश्वरकी ओर आये, उसी समय उन तपोधनने [वीरेश्वर] लिंगके मध्यमें विभूतिसे विभूषित, आठ वर्षकी आकृतिवाले एक बालकको देखा। उस बालककी आँखें कानोंतक फैली हुई थीं, उसके ओठ गहरे लाल थे, मस्तकपर अत्यन्त पिंगलवर्णकी जटा शोभा पा रही थी, वह नग्न तथा प्रसन्नमुख था और बालोचित वेशभूषा तथा चिताका भस्म धारण किये हुए श्रुतिके सूक्तोंका पाठ करता हुआ लीलापूर्वक हँस रहा था॥ ३६—३९॥

उसे देखकर आनन्दित होकर रोमांचयुक्त विश्वानर मुनिने बार-बार हृदयसे **'नमोऽस्तु'** कहकर प्रणाम किया। तदनन्तर विश्वानर मुनि कृतार्थ होकर अभिलाषा पूर्ण करनेवाले आठ पद्योंसे बालकरूपधारी परमानन्द-स्वरूप शिवकी स्तुति करने लगे॥ ४०-४१॥

विश्वानर उवाच

एकं ब्रह्मैवाद्वितीयं समस्तं
सत्यं सत्यं नेह नानास्ति किञ्चित्।
एको रुद्रो न द्वितीयोऽवतस्थे
तस्मादेकं त्वां प्रपद्ये महेशम्॥ ४२

विश्वानर बोले—यह सब कुछ एक अद्वितीय ब्रह्म ही है, वही सत्य है, वही सत्य है, सर्वत्र उस ब्रह्मके अतिरिक्त कुछ भी नहीं है। वह ब्रह्म एकमात्र ही है और दूसरा कोई नहीं है, इसलिये मैं एकमात्र आप महेश्वरकी शरण प्राप्त करता हूँ॥ ४२॥

कर्ता हर्ता त्वं हि सर्वस्य शम्भो
नानारूपेष्वेकरूपोऽप्यरूपः।
यद्वत्प्रत्यग्धर्म एकोऽप्यनेक-
स्तस्मान्नान्यं त्वां विनेशं प्रपद्ये॥ ४३

हे शम्भो! एक आप ही सबका सृजन करनेवाले तथा हरण करनेवाले हैं, आप रूपविहीन होकर भी अनेक रूपोंमें एक रूपवाले हैं, जैसे आत्मधर्म एक होता हुआ भी अनेक रूपोंवाला है, इसलिये मैं आप महेश्वरको छोड़कर किसी अन्यकी शरण नहीं प्राप्त करना चाहता हूँ॥ ४३॥

रज्जौ सर्पः शुक्तिकायां च रौप्यं
नैरः पूरस्तन्मृगाख्ये मरीचौ।
यद्यत्सद्वद्विष्वगेव प्रपञ्चो
यस्मिन् ज्ञाते तं प्रपद्ये महेशम्॥ ४४

जिस प्रकार रस्सीमें साँप, सीपीमें चाँदी और मृगमरीचिकामें जलप्रवाह [मिथ्या] भासित होता है, उसी प्रकार [आपमें] यह सारा प्रपंच भासित हो रहा है। जिसके जान लेनेपर इस प्रपंचका मिथ्यात्व भलीभाँति ज्ञात हो जाता है, मैं उन महेश्वरकी शरण प्राप्त करता हूँ॥ ४४॥

तोये शैत्यं दाहकत्वं च वह्नौ
तापो भानौ शीतभानौ प्रसादः।
पुष्पे गन्धो दुग्धमध्येऽपि सर्पि-
र्यत्तच्छंभो त्वं ततस्त्वां प्रपद्ये॥ ४५

हे शम्भो! जिस प्रकार जलमें शीतलता, अग्निमें दाहकता, सूर्यमें ताप, चन्द्रमामें आह्लादकत्व, पुष्पमें गन्ध एवं दुग्धमें घृत व्याप्त रहता है, उसी प्रकार सर्वत्र आप ही व्याप्त हैं, अतः मैं आपकी शरण प्राप्त करता हूँ॥ ४५॥

शब्दं गृह्णास्यश्रवास्त्वं हि जिघ्र-
स्यघ्राणस्त्वं व्यंघ्रिरायासि दूरात्।
व्यक्षः पश्येस्त्वं रसज्ञोऽप्यजिह्वः
कस्त्वां सम्यग्वेत्त्यतस्त्वां प्रपद्ये॥ ४६

हे प्रभो! आप कानोंके बिना सुनते हैं, नाकके बिना सूँघते हैं, बिना पैरके दूरसे आते हैं, बिना आँखके देखते हैं और बिना जिह्वाके रस ग्रहण करते हैं, अतः आपको भलीभाँति कौन जान सकता है। इस प्रकार मैं आपकी शरण प्राप्त करता हूँ॥ ४६॥

नो वेद त्वामीश साक्षाद्धि वेदो
नो वा विष्णुर्नो विधाताखिलस्य।
नो योगीन्द्रा नेन्द्रमुख्याश्च देवा
भक्तो वेद त्वामतस्त्वां प्रपद्ये॥ ४७

हे ईश! आपको न साक्षात् वेद, न विष्णु, न सर्वस्त्रष्टा ब्रह्मा, न योगीन्द्र और न तो इन्द्रादि देवगण ही जान सकते हैं, केवल भक्त ही आपको जान पाता है, अतः मैं आपकी शरण प्राप्त करता हूँ॥ ४७॥

नो ते गोत्रं नेश जन्मापि नाख्या
नो वा रूपं नैव शीलं न देशः।
इत्थम्भूतोऽपीश्वरस्त्वं त्रिलोक्याः
सर्वान्कामान्पूरयेस्त्वं भजे त्वाम्॥ ४८

हे ईश! आपका न तो गोत्र है, न जन्म है, न आपका नाम है, न आपका रूप है, न शील है एवं न देश। ऐसा होते हुए भी आप तीनों लोकोंके स्वामी हैं और आप समस्त मनोरथोंको पूर्ण करते हैं, अतः मैं आपका भजन करता हूँ॥ ४८॥

त्वत्तः सर्वं त्वं हि सर्वं स्मरारे
त्वं गौरीशस्त्वं च नग्नोऽतिशान्तः।
त्वं वै वृद्धस्त्वं युवा त्वं च बाल-
स्तत्त्वं यत्किं नान्यतस्त्वां नतोऽहम्॥ ४९

हे कामशत्रो! सब कुछ आपसे है और आप ही सब कुछ हैं, आप पार्वतीपति हैं, आप दिगम्बर एवं अत्यन्त शान्त हैं। आप वृद्ध, युवा और बालक हैं। कौन ऐसा पदार्थ है, जो आप नहीं हैं, अतः मैं आपको नमस्कार करता हूँ॥ ४९॥

नन्दीश्वर उवाच

स्तुत्वेति विप्रो निपपात भूमौ
संबद्धपाणिर्भवतीह यावत्।
तावत्स बालोऽखिलवृद्धवृद्धः
प्रोवाच भूदेवमतीव हृष्टः॥ ५०

नन्दीश्वर बोले—इस प्रकार स्तुतिकर हाथ जोड़े हुए वे ब्राह्मण जबतक पृथ्वीपर गिरते, तबतक वह बालक वृद्धोंके भी वृद्ध पुरातन पुरुषके रूपमें अत्यन्त प्रसन्न होकर ब्राह्मणसे कहने लगा—॥ ५०॥

बाल उवाच

विश्वानर मुनिश्रेष्ठ भूदेवाहं त्वयाद्य वै।
तोषितः सुप्रसन्नात्मा वृणीष्व वरमुत्तमम्॥ ५१

बालक बोला—हे विश्वानर! हे मुनिश्रेष्ठ! हे ब्राह्मण! आपने आज मुझे अत्यन्त सन्तुष्ट कर दिया। अतः आप प्रसन्नचित्त होकर उत्तम वर माँगिये॥ ५१॥

तत उत्थाय हृष्टात्मा मुनिर्विश्वानरः कृती।
प्रत्यब्रवीन्मुनिश्रेष्ठः शङ्करं बालरूपिणम्॥ ५२

तब मुनियोंमें श्रेष्ठ वे विश्वानर मुनि प्रसन्नचित्त हो उठकर बालकरूपी शिवजीसे कहने लगे॥ ५२॥

विश्वानर उवाच

महेश्वर किमज्ञातं सर्वज्ञस्य तव प्रभो।
सर्वान्तरात्मा भगवान् शर्वः सर्वप्रदो भवान्॥ ५३

विश्वानर बोले—हे महेश्वर! आप तो सर्वज्ञ हैं, अतः आपसे कौन ऐसी बात है, जो छिपी रह सकती है। हे प्रभो! आप सर्वान्तरात्मा, भगवान्, शर्व तथा सब कुछ प्रदान करनेवाले हैं॥ ५३॥

याच्ञां प्रति नियुक्तं मां किं ब्रूषे दैन्यकारिणीम्।
इति ज्ञात्वा महेशान यथेच्छसि तथा कुरु॥ ५४

दीनता प्रकट करनेवाली याचनाके लिये मुझे नियुक्त करके आप मुझसे क्या कहलाना चाहते हैं, हे महेशान! ऐसा जानकर आप जैसा चाहते हैं, वैसा करें॥ ५४॥

नन्दीश्वर उवाच

इति श्रुत्वा वचस्तस्य देवो विश्वानरस्य हि।
शुचिः शुचिव्रतस्याथ शुचिं स्मित्वाब्रवीच्छिशुः॥ ५५

नन्दीश्वर बोले—पवित्र व्रत करनेवाले उन विश्वानरके इस पवित्र वचनको सुनकर परम पवित्र उस बालकरूप महादेवने मन्द-मन्द मुसकराकर कहा—॥ ५५॥

त्वया शुचे शुचिष्मत्यां योऽभिलाषः कृतो हृदि।
अचिरेणैव कालेन स भविष्यत्यसंशयम्॥ ५६

हे शुचे! आपने शुचिष्मतीमें हृदयसे जो इच्छा की है, वह थोड़े ही दिनोंमें निःसन्देह पूर्ण हो जायगी॥ ५६॥

तव पुत्रत्वमेष्यामि शुचिष्मत्यां महामते।
ख्यातो गृहपतिर्नाम्ना शुचिः सर्वामरप्रियः॥ ५७

हे महामते! मैं शुचिष्मतीके गर्भसे आपके पुत्ररूपमें जन्म लूँगा और शुद्धात्मा तथा सभी देवताओंको प्रिय मैं गृहपति नामसे प्रसिद्ध होऊँगा॥ ५७॥

अभिलाषाष्टकं पुण्यं स्तोत्रमेतत्त्वयेरितम्।
अब्दत्रिकालपठनात्कामदं शिवसन्निधौ॥ ५८

आपके द्वारा कहा गया यह पवित्र अभिलाषाष्टकस्तोत्र एक वर्षपर्यन्त तीनों कालमें शिवकी सन्निधिमें पढ़ते रहनेपर [मनुष्योंको] सम्पूर्ण कामनाओंको देनेवाला होगा॥ ५८॥

एतत्स्तोत्रप्रपठनं पुत्रपौत्रधनप्रदम्।
सर्वशान्तिकरं चापि सर्वापत्तिविनाशनम्॥ ५९

इस स्तोत्रका पाठ पुत्र-पौत्र-धन प्रदान करनेवाला, सभी प्रकारकी शान्ति करनेवाला तथा सम्पूर्ण आपत्तियोंका विनाश करनेवाला है और यह स्वर्ग, मोक्ष तथा

स्वर्गापवर्गसम्पत्तिकारकं नात्र संशयः।
सर्वस्तोत्रसमं ह्येतत्सर्वकामप्रदं सदा॥ ६०

सम्पत्ति देनेवाला है, इसमें संशय नहीं है। यह स्तोत्र अकेला ही सभी स्तोत्रोंके तुल्य है तथा सम्पूर्ण कामनाओंको प्रदान करनेवाला है॥ ५९-६०॥

प्रातरुत्थाय सुस्नातो लिंगमभ्यर्च्य शाम्भवम्।
वर्षं जपन्निदं स्तोत्रमपुत्रः पुत्रवान्भवेत्॥ ६१

प्रातःकाल उठकर भली-भाँति स्नान करके शिव-लिंगकी पूजाकर वर्षपर्यन्त इस स्तोत्रका पाठ करता हुआ पुत्रहीन मनुष्य पुत्रवान् हो जाता है॥ ६१॥

अभिलाषाष्टकमिदं न देयं यस्य कस्यचित्।
गोपनीयं प्रयत्नेन महावन्ध्याप्रसूतिकृत्॥ ६२

इस अभिलाषाष्टकस्तोत्रको जिस किसीको नहीं बताना चाहिये और इसे प्रयत्नपूर्वक गुप्त रखना चाहिये, यह महावन्ध्या स्त्रीको भी सन्तान देनेवाला है॥ ६२॥

स्त्रिया वा पुरुषेणापि नियमाल्लिंगसन्निधौ।
अब्दं जप्तमिदं स्तोत्रं पुत्रदं नात्र संशयः॥ ६३

जो स्त्री अथवा पुरुष नियमपूर्वक शिवलिंगके समीप एक वर्षपर्यन्त इस स्तोत्रका पाठ करता है, उसे यह स्तोत्र पुत्र प्रदान करता है, इसमें सन्देह नहीं है॥ ६३॥

नन्दीश्वर उवाच

इत्युक्त्वान्तर्दधे शम्भुर्बालरूपः सतां गतिः।
सोऽपि विश्वानरो विप्रो हृष्टात्मा स्वगृहं ययौ॥ ६४

नन्दीश्वर बोले—ऐसा कहकर सज्जनोंको गति प्रदान करनेवाले बालक-रूपधारी शिवजी अन्तर्धान हो गये और वे विश्वानर ब्राह्मण भी प्रसन्नचित्त होकर अपने घर चले गये॥ ६४॥

इति श्रीशिवमहापुराणे तृतीयायां शतरुद्रसंहितायां गृहपत्यवतारवर्णनं नाम त्रयोदशोऽध्यायः॥ १३॥

॥ इस प्रकार श्रीशिवमहापुराणके अन्तर्गत तृतीय शतरुद्रसंहितामें गृहपत्यवतारवर्णन नामक तेरहवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ १३॥

अथ चतुर्दशोऽध्यायः

विश्वानरके पुत्ररूपमें गृहपति नामसे शिवका प्रादुर्भाव

नन्दीश्वर उवाच

स विप्रो गृहमागत्य महाहर्षसमन्वितः।
प्रियायै कथयामास तद्वृत्तान्तमशेषतः॥ १

नन्दीश्वर बोले—हे सनत्कुमार! घर आकर उस ब्राह्मणने परम हर्षसे युक्त होकर अपनी स्त्रीसे सारा वृत्तान्त कह सुनाया॥ १॥

तच्छ्रुत्वा विप्रपत्नी सा मुदं प्राप शुचिष्मती।
अतीव प्रेमसंयुक्ता प्रशशंस विधिं निजम्॥ २

यह सुनकर उस विप्रपत्नी शुचिष्मतीको महान् आनन्द प्राप्त हुआ और वह प्रेमयुक्त होकर अपने भाग्यकी सराहना करने लगी॥ २॥

अथ कालेन तद्योषिदन्तर्वत्नी बभूव ह।
विधिवद् विहिते तेन गर्भाधानाख्यकर्मणि॥ ३

तदनन्तर कुछ समयके बाद उस ब्राह्मणद्वारा यथाविधि गर्भाधानकर्म किये जानेपर उसकी पत्नी गर्भवती हुई॥ ३॥

ततः पुंसवनं तेन स्पन्दनात्प्राग्विपश्चिता।
गृह्योक्तविधिना सम्यक् कृतं पुंस्त्वविवृद्धये॥ ४

तत्पश्चात् उस विद्वान् ब्राह्मणने गृह्यसूत्रमें कथित विधिके अनुसार पुंस्त्वकी वृद्धिके लिये गर्भस्पन्दनके पहले ही भलीभाँति पुंसवन संस्कार किया॥ ४॥

सीमन्तोऽथाष्टमे मासे गर्भरूपसमृद्धिकृत्।
सुखप्रसवसिद्धौ च तेनाकारि क्रियाविदा॥ ५

तत्पश्चात् आठवाँ महीना आनेपर क्रियावेत्ता उस ब्राह्मणने सुखपूर्वक प्रसवके लिये गर्भके रूपकी वृद्धि करनेवाला सीमन्त-संस्कार कराया॥ ५॥

अथातः शुभतारासु ताराधिपवराननः।
केन्द्रे गुरौ शुभे लग्ने सुग्रहेषु युगेषु च॥ ६

अरिष्टदीपनिर्वाणः सर्वारिष्टविनाशकृत्।
तनयो नाम तस्यां तु शुचिष्मत्यां बभूव ह॥ ७

तदुपरान्त ताराओंके अनुकूल होनेपर बृहस्पतिके केन्द्रवर्ती होनेपर और शुभ ग्रहोंका योग होनेपर शुभ लग्नमें चन्द्रमाके समान सुन्दर मुखवाला सूतिकागृहके दीपकको अपने तेजसे शान्त अर्थात् प्रभाहीन-सा करनेवाला तथा सभी अरिष्टोंका विनाश करनेवाला पुत्र उस शुचिष्मतीके गर्भसे उत्पन्न हुआ॥ ६-७॥

शर्वः समस्तसुखदो भूर्भुवःस्वर्न्निवासिनाम्।
गन्धवाहनवाहाश्च दिग्वधूर्मुखवाससः॥ ८

इष्टगन्धप्रसूनौघैर्ववृषुस्ते घनाघनाः।
देवदुन्दुभयो नेदुः प्रसेदुः सर्वतो दिशः॥ ९

परितः सरितः स्वच्छा भूतानां मानसैः सह।
तमोऽताम्यत्तु नितरां रजोऽपि विरजोऽभवत्॥ १०

सत्त्वाः सत्त्वसमायुक्ताः सुधावृष्टिर्बभूव वै।
कल्याणी सर्वथा वाणी प्राणिनः प्रियवत्यभूत्॥ ११

वह बालक शिवजी ही थे, जो भूर्भुवः स्वः—इन तीनों लोकोंको समग्र सुख देनेके लिये अवतीर्ण हुए। उस समय गन्धको समग्र वहन करनेवाले वायुके वाहन (मेघ) दिशारूपी वधुओंके मुखपर वस्त्रसे बन गये अर्थात् चारों ओर काली घटा उमड़ आयी। वे घनघोर बादल गन्धवाली पुष्पराशिकी वर्षा करने लगे। देवदुन्दुभियाँ बज उठीं और सारी दिशाएँ निर्मल हो गयीं। प्राणियोंके मनोंके साथ चारों ओर नदियाँ स्वच्छ हो गयीं, अन्धकार पूर्णरूपसे दूर हो गया, रजोगुण विरज अर्थात् विनष्ट हो गया। प्राणी सत्त्वगुणसे सम्पन्न हो गये। [चारों ओरसे] अमृतकी वर्षा होने लगी। सभी प्राणियोंकी वाणी कल्याणकारी और प्रिय लगनेवाली हो गयी॥ ८—११॥

रंभामुख्या अप्सरसो मङ्गलद्रव्यपाणयः।
विद्याधर्यश्च किन्नर्यस्तथामर्यः सहस्रशः॥ १२

गन्धर्वोरगयक्षाणां सुमानिन्यः शुभस्वराः।
गायन्त्यो मंगलं गीतं तत्राजग्मुरनेकशः॥ १३

रम्भा आदि अप्सराएँ, विद्याधरियाँ, किन्नरियाँ, देवपत्नियाँ और गन्धर्व-उरग एवं यक्षोंकी पत्नियाँ हजारोंकी संख्यामें अपने-अपने हाथोंमें मंगल-द्रव्य धारण किये हुए सुन्दर स्वरोंमें मंगल गीत गाती हुई वहाँ आ गयीं॥ १२-१३॥

मरीचिरत्रिः पुलहः पुलस्त्यः क्रतुरङ्गिराः।
वसिष्ठः कश्यपोऽगस्त्यो विभाण्डो माण्डवीसुतः॥ १४
लोमशो रोमचरणो भरद्वाजोऽथ गौतमः।
भृगुस्तु गालवो गर्गो जातूकर्ण्यः पराशरः॥ १५
आपस्तम्बो याज्ञवल्क्यो दक्षवाल्मीकिमुद्गलाः।
शातातपश्च लिखितः शिलादः शंख उञ्छभुक्॥ १६
जमदग्निश्च संवर्तो मतंगो भरतोंऽशुमान्।
व्यासः कात्यायनः कुत्सः शौनकः सुश्रुतः शुकः॥ १७

मरीचि, अत्रि, पुलह, पुलस्त्य, क्रतु, अंगिरा, वसिष्ठ, कश्यप, अगस्त्य, विभाण्ड, माण्डवीपुत्र लोमश, रोमचरण, भरद्वाज, गौतम, भृगु, गालव, गर्ग, जातूकर्ण्य, पराशर, आपस्तम्ब, याज्ञवल्क्य, दक्ष, वाल्मीकि, मुद्गल, शातातप, लिखित, शिलाद, उंछवृत्तिसे जीविका चलानेवाले शंख, जमदग्नि, संवर्त, मतंग, भरत, अंशुमान्, व्यास, कात्यायन, कुत्स, शौनक, सुश्रुत, शुक, ऋष्यशृंग, दुर्वासा, शुचि,

ऋष्यशृङ्गोऽथ दुर्वासाः शुचिर्नारदतुम्बुरू।
उत्तंको वामदेवश्च पवनोऽसितदेवलौ॥ १८
सालङ्कायनहारीतौ विश्वामित्रोऽथ भार्गवः।
मृकण्डः सह पुत्रेण पर्वतो दारुकस्तथा॥ १९
धौम्योपमन्युवत्साद्या मुनयो मुनिकन्यकाः।
तच्छान्त्यर्थं समाजग्मुर्धन्यं विश्वानराश्रमम्॥ २०

नारद, तुम्बुरु, उत्तंक, वामदेव, पवन, असित, देवल, सालंकायन, हारीत, विश्वामित्र, भार्गव, अपने पुत्र [मार्कण्डेय]-के साथ मृकण्ड, पर्वत, दारुक, धौम्य, उपमन्यु, वत्स आदि मुनिगण तथा मुनिकन्याएँ उस बालककी [अदृष्ट] शान्तिके लिये विश्वानरके प्रशंसनीय आश्रमपर आ गये॥ १४—२०॥

ब्रह्मा बृहस्पतियुतो देवो गरुडवाहनः।
नन्दिभृङ्गिसमायुक्तो गौर्या सह वृषध्वजः॥ २१
महेन्द्रमुख्या गीर्वाणा नागाः पातालवासिनः।
रत्नान्यादाय बहुशः ससरित्का महाब्धयः॥ २२
स्थावरा जंगमं रूपं धृत्वायाताः सहस्रशः।
महामहोत्सवे तस्मिन् बभूवाकालकौमुदी॥ २३

बृहस्पतिसहित ब्रह्मा तथा भगवान् विष्णु, नन्दी, भृंगी तथा पार्वतीसहित शंकर, महेन्द्र आदि देवता, पातालवासी नागगण एवं अनेक प्रकारके रत्न लेकर नदियोंसहित समुद्र वहाँ गये और स्थावर [पर्वत आदि] हजारोंकी संख्यामें जंगमरूप धारणकर वहाँ आये। उस महोत्सवमें अचानक असमयमें चाँदनी उत्पन्न हो गयी॥ २१—२३॥

जातकर्म स्वयं तस्य कृतवान्विधिरानतः।
श्रुतिं विचार्य तद्रूपं नाम्ना गृहपतिस्त्वयम्॥ २४
इति नाम ददौ तस्मै देयमेकादशेऽहनि।
नामकर्मविधानेन तदर्थं श्रुतिमुच्चरन्॥ २५
चतुर्निगममन्त्रोक्तैराशीर्भिरभिनन्द्य च।
समयाद्धं समारुह्य सर्वेषां च पितामहः॥ २६
कृत्वा बालोचितां रक्षां लौकिकीं गतिमाश्रितः।
आरुह्य यानं स्वं धाम हरोऽपि हरिणा ययौ॥ २७

उसके बाद ब्रह्माने विनम्र होकर स्वयं उसका जातकर्म-संस्कार किया, फिर वेदविधिका विचार करके ग्यारहवें दिन उसके रूपको देखकर उसका नाम गृहपति रखा। उन्होंने नामकरणके समय श्रुतिके मन्त्रोंका उच्चारण करते हुए चारों वेदोंके चार मन्त्रोंसे उसे आशीर्वाद देकर लौकिक रीतिका आश्रय लेकर [रक्षामन्त्रोंसे] उसकी बालोचित रक्षा सम्पन्न की और हंसपर सवार हो सबके पितामह वे ब्रह्माजी अपने धामको चले गये। इसी प्रकार विष्णुके साथ शंकर भी अपने वाहनपर सवार हो अपने लोकको चले गये॥ २४—२७॥

अहो रूपमहो तेजस्त्वहो सर्वांगलक्षणम्।
अहो शुचिष्मतीभाग्यमाविरासीत्स्वयं हरः॥ २८
अथवा किमिदं चित्रं शर्वभक्तजनेष्वहो।
स्वयमाविरभूद् रुद्रो यतो रुद्रस्तदर्चितः॥ २९

वे आपसमें विचार कर रहे थे कि अहो! कैसा इसका रूप है, इसका विलक्षण तेज कैसा है और इसके सभी अंगलक्षण कैसे हैं, देखो शुचिष्मती कैसी भाग्यवती है कि [इसके गर्भसे] साक्षात् शिवजी प्रकट हो गये अथवा शिवजीके भक्तोंमें इस प्रकारकी घटना कोई आश्चर्यकी बात नहीं है; जिससे उनके द्वारा अर्चित रुद्र स्वयं प्रकट हो गये॥ २८-२९॥

इति स्तुवन्तस्तेऽन्योऽन्यं सम्प्रहृष्टतनूरुहाः।
विश्वानरं समापृच्छ्य जग्मुः सर्वे यथागतम्॥ ३०

इस प्रकार आपसमें प्रशंसा करते हुए पुलकित रोमोंवाले सभी देवता विश्वानरसे आज्ञा ले जिस प्रकार आये थे, उसी प्रकार चले गये॥ ३०॥

अतः पुत्रं समीहन्ते गृहस्थाश्रमवासिनः।
पुत्रेण लोकाञ्जयति श्रुतिरेषा सनातनी॥ ३१

पुत्रवान् व्यक्ति पुत्रसे लोकोंको जीतता है—यह सनातनी श्रुति है, इसीलिये समस्त गृहस्थ पुत्रकी कामना करते हैं॥ ३१॥

अपुत्रस्य गृहं शून्यमपुत्रस्यार्जनं वृथा।
अपुत्रस्य तपश्छिन्नं नो पवित्रत्यपुत्रतः॥ ३२

पुत्रहीनका घर सूना है, पुत्रहीनका धन कमाना व्यर्थ है, अपुत्रका तप खण्डित है, जिसको पुत्र नहीं है, वह कभी पवित्र नहीं होता॥ ३२॥

न पुत्रात्परमो लाभो न पुत्रात्परमं सुखम्।
न पुत्रात्परमं मित्रं परत्रेह च कुत्रचित्॥ ३३

पुत्रसे बढ़कर कोई परम लाभ नहीं, पुत्रसे बढ़कर कोई परम सुख नहीं और इस लोक तथा परलोकमें पुत्रसे बढ़कर कोई परम मित्र नहीं है॥ ३३॥

निष्क्रमोऽथ चतुर्थेऽस्य मासि पित्रा कृतो गृहात्।
अन्नप्राशनमब्दार्द्धे चूडाब्दे चार्थवत्कृता॥ ३४

चौथे महीनेमें गृहपतिके पिताने उसका गृहनिष्क्रमण-संस्कार किया। फिर छठे महीनेमें उसका विधिपूर्वक अन्न-प्राशन और वर्ष पूरा होनेपर चूडाकरणसंस्कार किया॥ ३४॥

कर्णवेधं ततः कृत्वा श्रवणर्क्षे स कर्मवित्।
ब्रह्मतेजोभिवृद्ध्यर्थं पञ्चमेऽब्दे व्रतं ददौ॥ ३५

इसके बाद उस कर्मवेत्ताने श्रवणनक्षत्रमें कर्णवेध करके उसके ब्रह्मतेजकी अभिवृद्धिके लिये पाँच वर्षकी अवस्थामें यज्ञोपवीत-संस्कार किया॥ ३५॥

उपाकर्म ततः कृत्वा वेदानध्यापयत्सुधीः।
त्र्यब्दं वेदान्स विधिनाध्यैष्ट सांगपदक्रमान्॥ ३६

पुनः बुद्धिमान् पिताने उपाकर्मकर उसे वेदोंका अध्ययन कराया। इस प्रकार तीन वर्षमें ही उसने विधिपूर्वक अंग, पद तथा क्रमसहित समस्त वेदोंको पढ़ लिया॥ ३६॥

विद्याजातं समस्तं च साक्षिमात्रं गुरोर्मुखात्।
विनयादिगुणानाविष्कुर्वञ्जग्राह शक्तिमान्॥ ३७

प्रतिभाशाली उस बालकने गुरु पिताके मुखसे समस्त विद्याएँ अपने विनय आदि गुणोंको प्रकाशित करते हुए मात्र साक्षिभावसे ग्रहण कर लिया॥ ३७॥

ततोऽथ नवमे वर्षे पित्रोः शुश्रूषणे रतम्।
विश्वानरं गृहपतिं द्रष्टुमायाच्च नारदः॥ ३८

तदुपरान्त नौवें वर्षमें माता-पिताकी सेवामें निरत गृहपति तथा उसके पिता विश्वानरको देखनेके लिये नारदजी [वहाँ] आये॥ ३८॥

विश्वानरोटजं प्राप्य देवर्षिस्तं तु कौतुकी।
अपृच्छत्कुशलं तत्र गृहीतार्घासनः क्रमात्॥ ३९

ततः सर्वं च तद्भाग्यं पुत्रधर्मं च सम्मुखे।
विश्वानरं समवदत्स्मृत्वा शिवपदाम्बुजम्॥ ४०

कौतुकी देवर्षि नारदजीने विश्वानरकी पर्णशालामें प्रवेशकर अर्घ्य, आसन आदि क्रमसे ग्रहणकर उनसे कुशल-मंगल पूछा और उसके बाद शिवके चरणोंका ध्यान करके उनके सामने ही उनके समग्र भाग्य तथा पुत्रधर्मका वर्णन विश्वानरसे किया॥ ३९-४०॥

नन्दीश्वर उवाच

इत्युक्तो मुनिना बालः पित्रोराज्ञामवाप्य सः।
प्रणम्य नारदं श्रीमान् भक्त्या प्रह्व उपाविशत्॥ ४१

नन्दीश्वर बोले—[हे सनत्कुमार! तदुपरान्त] मुनि नारदजीके द्वारा इस प्रकार कहे जानेपर वह शोभासम्पन्न बालक माता-पिताकी आज्ञा प्राप्तकर भक्तिपूर्वक उनको नम्रतासे प्रणामकर बैठ गया॥ ४१॥

नारद उवाच

वैश्वानर समभ्येहि ममोत्संगे निषीद भोः।
लक्षणानि परीक्षेऽहं पाणिं दर्शय दक्षिणम्॥ ४२
ततो दृष्ट्वा तु सर्वं हि तालुजिह्वादि नारदः।
विश्वानरं समवदच्छिवप्रेरणया सुधीः॥ ४३

नारदजी बोले—हे वैश्वानर! मैं तुम्हारे लक्षणोंकी परीक्षा करूँगा, तुम आओ, मेरी गोदमें बैठ जाओ और अपना दाहिना हाथ मुझे दिखाओ। तब विद्वान् नारदजी बालकके तालु, जिह्वा आदिको देखकर शिवजीकी प्रेरणासे विश्वानरसे कहने लगे—॥ ४२-४३॥

नारद उवाच

विश्वानर मुने वच्मि शृणु पुत्राङ्कमादरात्।
सर्वांगस्वङ्कवान्पुत्रो महालक्षणवानयम्॥ ४४

किन्तु सर्वगुणोपेतं सर्वलक्षणलक्षितम्।
सम्पूर्णनिर्मलकलं पालयेद्विधुवद्विधिः॥ ४५

तस्मात्सर्वप्रयत्नेन रक्षणीयस्त्वसौ शिशुः।
गुणोऽपि दोषतां याति वक्रीभूते विधातरि॥ ४६

शंकेऽस्य द्वादशे वर्षे प्रत्यूहो विद्युदग्नितः।
इत्युक्त्वा नारदोऽगच्छद्देवलोकं यथागतम्॥ ४७

नारदजी बोले—हे विश्वानर! हे मुने! मैं आपके पुत्रके सब लक्षणोंको कहता हूँ, उसे आदरपूर्वक सुनिये, आपके पुत्रके सभी अंग उत्तम लक्षणोंसे युक्त हैं, इसलिये यह अत्यन्त भाग्यशाली है। किंतु इसके सर्वगुणसम्पन्न, सम्पूर्ण शुभ लक्षणोंसे समन्वित और चन्द्रमाके समान निर्मल कलाओंसे सुशोभित होनेपर भी विधाता ही इसकी रक्षा करें। इसलिये सब तरहके उपायोंसे इस बालककी रक्षा करनी चाहिये; क्योंकि विधाताके विपरीत होनेपर गुण भी दोष हो जाता है। मुझे इस बातकी शंका है कि बारहवें वर्षमें इसे बिजली अथवा अग्निसे विघ्न है। ऐसा कहकर नारदजी जैसे आये थे, वैसे देवलोकको चले गये॥ ४४—४७॥

इति श्रीशिवमहापुराणे तृतीयायां शतरुद्रसंहितायां गृहपत्यवतारोपाख्याने गृहपत्यवतारवर्णनं नाम चतुर्दशोऽध्यायः॥ १४॥

॥ इस प्रकार श्रीशिवमहापुराणके अन्तर्गत तृतीय शतरुद्रसंहितामें गृहपत्यवतारवर्णन नामक चौदहवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ १४॥

अथ पञ्चदशोऽध्यायः

भगवान् शिवके गृहपति नामक अग्नीश्वरलिंगका माहात्म्य

नन्दीश्वर उवाच

विश्वानरः सपत्नीकः तच्छ्रुत्वा नारदेरितम्।
तदेवं मन्यमानोऽभूद्वज्रपातं सुदारुणम्॥ १

नन्दीश्वर बोले—[हे सनत्कुमार!] नारदजीकी बात सुनकर स्त्रीसहित विश्वानरने उसे अत्यन्त दारुण वज्रपातके समान समझा॥ १॥

हा हतोऽस्मीति वचसा हृदयं समताडयत्।
मूर्च्छामवाप महतीं पुत्रशोकसमाकुलः॥ २

शुचिष्मत्यपि दुःखार्ता रुरोदातीव दुस्सहम्।
अतिस्वरेण हारावैरत्यन्तं व्याकुलेन्द्रिया॥ ३

'हाय मैं मर गया'—ऐसा कहकर वे छाती पीटने लगे और पुत्रके शोकसे सन्तप्त होकर मूर्च्छित हो गये। शुचिष्मती भी अत्यधिक दुःखित होकर ऊँचे स्वरमें हाहाकार करती हुई व्याकुल इन्द्रियोंवाली होकर रोने लगी॥ २-३॥

श्रुत्वार्तनादमिति विश्वनरोऽपि मोहं
हित्वोत्थितः किमिति किं त्विति किं किमेतत्।
उच्चैर्वदन् गृहपतिः क्व स मे बहिस्थः
प्राणोऽन्तरात्मनिलयस्सकलेन्द्रियेशः॥ ४

ततो दृष्ट्वा स पितरौ बहुशोकसमावृतौ।
स्मित्वोवाच गृहपतिः सबालः शङ्करांशजः॥ ५

शुचिष्मतीके विलापको सुनकर विश्वानर भी मूर्च्छाका त्याग करके उठकर अरे! यह क्या हुआ, यह क्या हुआ, इस प्रकार ऊँचे स्वरमें रोते हुए बोले—हाय! मेरी सम्पूर्ण इन्द्रियोंका स्वामी, मेरा बाहर विचरनेवाला प्राण तथा मेरे आत्मामें निवास करनेवाला मेरा पुत्र गृहपति कहाँ है? तब अपने माता-पिताको अत्यधिक शोकसे व्याकुल देखकर शंकरजीके अंशसे उत्पन्न वह बालक गृहपति मुसकराकर कहने लगा—॥ ४-५॥

गृहपतिरुवाच

हे मातस्तात किं जातं कारणं तद्वदाधुना।
किमर्थं रुदितोऽत्यर्थं त्रासस्तादृक् कुतो हि वाम्॥ ६

न मां कृतवपुस्त्राणं भवच्चरणरेणुभिः।
कालः कलयितुं शक्तो वराकी चञ्चलाल्पिका॥ ७

प्रतिज्ञां शृणुतां तातौ यदि वां तनयो ह्यहम्।
करिष्येऽहं तथा येन मृत्युस्त्रस्तो भविष्यति॥ ८

मृत्युञ्जयं समाराध्य सर्वज्ञं सर्वदं सताम्।
जपिष्यामि महाकालं सत्यं तातौ वदाम्यहम्॥ ९

नन्दीश्वर उवाच

इति श्रुत्वा वचस्तस्य जारितौ द्विजदम्पती।
अकालामृतवर्षौघैर्गततापौ तदोचतुः॥ १०

द्विजदम्पती ऊचतुः

पुनर्ब्रूहि पुनर्ब्रूहि कीदृक् कीदृक् पुनर्वद।
कालः कलयितुं नालं वराकी चञ्चलास्ति का॥ ११
आवयोस्तापनाशाय महोपायस्त्वयेरितः।
मृत्युञ्जयाख्यदेवस्य समाराधनलक्षणः॥ १२

तद्गच्छ शरणं शम्भोर्नातः परतरं हि तत्।
मनोरथपथातीतकारिणः पापहारिणः॥ १३

किं न श्रुतं त्वया तात श्वेतकेतुं यथा पुरा।
पाशितं कालपाशेन ररक्ष त्रिपुरान्तकः॥ १४

शिलादतनयं मृत्युग्रस्तमष्टाब्दमात्रकम्।
शिवो निजजनं चक्रे नन्दिनं विश्वनंदिनम्॥ १५

क्षीरोदमथनोद्भूतं प्रलयानलसन्निभम्।
पीत्वा हालाहलं घोरमरक्षद्भुवनत्रयम्॥ १६

जलंधरं महादर्पं हृतत्रैलोक्यसम्पदम्।
रुचिरांगुष्ठरेखोत्थचक्रेण निजघान यः॥ १७

गृहपति बोला—हे माता! हे पिता! क्या हुआ है? जिससे कि आपलोग इतने दुखी होकर रो रहे हैं, इसका कारण मुझे बताइये। इस तरह आपलोग भयभीत क्यों हो रहे हैं?॥ ६॥

आपलोगोंकी चरणधूलिसे सुरक्षित मेरे शरीरको काल भी मारनेमें समर्थ नहीं हो सकता, फिर अत्यन्त अल्प बिजली मेरा कर ही क्या सकती है?॥ ७॥

हे माता-पिता! आपलोग मेरी प्रतिज्ञा सुनें, यदि मैं आप दोनोंका पुत्र हूँ, तो ऐसा कार्य करूँगा, जिससे मृत्यु भी सन्त्रस्त हो जायगी। हे माता-पिता! मैं सत्पुरुषोंको सब कुछ देनेवाले सर्वज्ञ मृत्युंजय भगवान्‌की भलीभाँति आराधना करके महाकालको भी जीत लूँगा, यह मैं सत्य कह रहा हूँ॥ ८-९॥

नन्दीश्वर बोले—उसकी इस प्रकारकी बातको सुनकर मुरझाये हुए द्विजदम्पती अकालमें हुई अमृतकी सघन वृष्टिके समान दुःखरहित होकर कहने लगे॥ १०॥

द्विजदम्पती बोले—[हे पुत्र!] फिर कहो! फिर कहो! तुमने क्या कहा कि मुझे काल भी मारनेमें समर्थ नहीं है। फिर बेचारी बिजली कौन है? तुमने हमलोगोंके शोकका निवारण करनेके लिये मृत्युंजयदेवताका समाराधनरूप उपाय उचित ही कहा है॥ ११-१२॥

शिवजीका आश्रय ही सचमुच ऐसा है, उनसे बड़ा कोई नहीं है, वे सभी पापोंको दूर करनेवाले एवं मनोरथमार्गसे भी परे कामनाको पूर्ण करनेवाले हैं॥ १३॥

हे तात! क्या तुमने नहीं सुना है कि पूर्वकालमें जब श्वेतकेतु कालपाशमें बाँध लिया गया था, तब शिवजीने उसकी रक्षा की थी? शिलादपुत्र नन्दीश्वर जो केवल आठ वर्षका बालक था, शिवजीने कालपाशसे छुड़ाकर उसे अपना गण तथा विश्वका रक्षक बना दिया॥ १४-१५॥

क्षीरसागरके मन्थनसे उत्पन्न तथा प्रलयाग्निके समान महाभयानक हालाहल विषको पीकर शिवजीने ही तीनों लोकोंकी रक्षा की थी॥ १६॥

जिन्होंने त्रिलोकीकी सम्पत्तियोंका हरण करनेवाले महान् अभिमानी जलन्धर नामक दैत्यको अपने सुन्दर अँगूठेकी रेखासे उत्पन्न चक्रके द्वारा मार डाला। जिन्होंने त्रिलोककी सम्पदाको प्राप्तकर मोहित हुए त्रिपुरको

य एकेषुनिपातोत्थज्वलनैस्त्रिपुरम्पुरा।
त्रैलोक्यैश्वर्यसम्मूढं शोषयामास भानुना॥ १८

कामं दृष्टिनिपातेन त्रैलोक्यविजयोर्जितम्।
निनायानंगपदवीं वीक्ष्यमाणेष्वजादिषु॥ १९

तं ब्रह्माद्यैककर्तारं मेघवाहनमच्युतम्।
प्रयाहि पुत्र शरणं विश्वरक्षामणिं शिवम्॥ २०

नन्दीश्वर उवाच

पित्रोरनुज्ञां प्राप्येति प्रणम्य चरणौ तयोः।
प्रादक्षिण्यमुपावृत्य बह्वाश्वास्य विनिर्ययौ॥ २१

सम्प्राप्य काशीं दुष्प्रापां ब्रह्मनारायणादिभिः।
महासंवर्त्तसन्तापहन्त्रीं विश्वेशपालिताम्॥ २२

स्वर्धुन्या हारयष्ट्येव राजितां कण्ठभूमिषु।
विचित्रगुणशालिन्या हरपत्न्या विराजिताम्॥ २३

तत्र प्राप्य स विप्रेशः प्राग्ययौ मणिकर्णिकाम्।
तत्र स्नात्वा विधानेन दृष्ट्वा विश्वेश्वरं प्रभुम्॥ २४

साञ्जलिर्नतशीर्षोऽसौ महानन्दान्वितः सुधीः।
त्रैलोक्यप्राणसन्त्राणकारिणं प्रणनाम ह॥ २५

आलोक्यालोक्य तल्लिङ्गं तुतोष हृदये मुहुः।
परमानन्दकन्दाढ्यं स्फुटमेतन्न संशयः॥ २६

अहो न मत्तो धन्योऽस्ति त्रैलोक्ये सचराचरे।
यदद्राक्षिषमद्याहं श्रीमद्विश्वेश्वरं विभुम्॥ २७

मम भाग्योदयायैव नारदेन महर्षिणा।
पुरागत्य तथोक्तं यत्कृतकृत्योऽस्म्यहं ततः॥ २८

नन्दीश्वर उवाच

इत्यानन्दामृतरसैर्विधाय स हि पारणम्।
ततः शुभेऽह्नि संस्थाप्य लिङ्गं सर्वहितप्रदम्॥ २९

जग्राह नियमान्घोरान् दुष्करानकृतात्मभिः।
अष्टोत्तरशतैः कुम्भैः पूर्णैर्गङ्गाऽम्भसा शुभैः॥ ३०

एक ही बाण चलाकर उससे उत्पन्न हुई ज्वालाओंवाली अग्निसे सुखा डाला और जिन्होंने त्रिलोकके विजयसे उन्मत्त हुए कामदेवको ब्रह्मा आदिके देखते-ही-देखते दृष्टिनिक्षेपमात्रसे अनंग बना दिया। हे पुत्र! तुम ब्रह्मा आदिके एकमात्र जन्मदाता, मेघपर सवार होनेवाले, अविनाशी तथा विश्वकी रक्षारूप मणि उन शिवजीकी शरणमें जाओ॥ १७—२०॥

नन्दीश्वर बोले—हे मुने! माता-पिताकी आज्ञा पाकर उनके चरणोंमें प्रणाम करके उनकी प्रदक्षिणा करके और उन्हें बहुत तरहसे आश्वासन देकर वह वहाँसे चल दिया और उस काशीपुरीमें पहुँचा, जो ब्रह्मा, नारायण आदि देवोंके लिये दुर्लभ, महाप्रलयके सन्तापका विनाश करनेवाली, विश्वेश्वरद्वारा पालित, कण्ठ अर्थात् तटप्रदेशमें हारकी तरह पड़ी हुई गंगाजीसे सुशोभित और अद्भुत गुणोंसे सम्पन्न हरपत्नी [भगवती गिरिजा]-से शोभायमान है॥ २१—२३॥

वहाँ पहुँचकर वे विप्रवर पहले मणिकर्णिका गये। वहाँ विधिपूर्वक स्नान करके प्रभु विश्वेश्वरका दर्शन करके उन बुद्धिमान्‌ने परम आनन्दसे युक्त होकर तीनों लोकोंके प्राणोंकी रक्षा करनेवाले शिवजीको हाथ जोड़कर सिर झुकाकर प्रणाम किया। वे बार-बार उसे देखकर हर्षित हो रहे थे और मनमें विचार कर रहे थे कि सचमुच यह लिंग परम आनन्दकन्दसे परिपूर्ण है, यह स्पष्ट ही है, इसमें संशय नहीं है॥ २४—२६॥

अहो! इस चराचर त्रिलोकीमें मुझसे बढ़कर कोई धन्य नहीं है, जो कि मैंने आज ऐश्वर्यमय तथा सर्वव्यापी विश्वेश्वरका दर्शन किया॥ २७॥

मेरे भाग्योदयके लिये ही महर्षि नारदने जो मुझे आकर पहले ही बता दिया था, जिससे आज मैं [विश्वेश्वरका दर्शन प्राप्तकर] कृतकृत्य हो गया॥ २८॥

नन्दीश्वर बोले—मुने! इस प्रकार आनन्दामृतरूपी रसोंद्वारा पारण करके गृहपतिने शुभ दिनमें सर्वहितप्रद शिवलिंगकी स्थापना की॥ २९॥

तत्पश्चात् अजितेन्द्रियोंके लिये अति दुष्कर कठोर नियमोंको ग्रहणकर अनुष्ठानपरायण हुआ पवित्र चित्तवाला वह प्रतिदिन वस्त्रोंसे छाने गये गंगाजलसे

संस्नाप्य वाससा पूतैः पूतात्मा प्रत्यहं शिवम्।
नीलोत्पलमयीं मालां समर्पयति सोऽन्वहम्॥ ३१
अष्टाधिकसहस्रैस्तु सुमनोभिर्विनिर्मिताम्।
स पक्षे वाथ वा मासे कन्दमूलफलाशनः॥ ३२

शीर्णपर्णाशनैर्धीरः षण्मासं सम्बभूव सः।
षण्मासं वायुभक्षोऽभूत्षण्मासं जलबिन्दुभुक्॥ ३३

एवं वर्षद्वयं तस्य व्यतिक्रान्तं महात्मनः।
शिवैकमनसो विप्रास्तप्यमानस्य नारद॥ ३४

जन्मतो द्वादशे वर्षे तद्वचो नारदेरितम्।
सत्यं करिष्यन्निव तमभ्यगात्कुलिशायुधः॥ ३५

उवाच च वरं ब्रूहि दद्मि त्वन्मनसि स्थितम्।
अहं शतक्रतुर्विप्र प्रसन्नोऽस्मि शुभव्रतैः॥ ३६

नन्दीश्वर उवाच

इत्याकर्ण्य महेन्द्रस्य वाक्यं मुनिकुमारकः।
उवाच मधुरं धीरः कीर्तयन्मधुराक्षरम्॥ ३७

गृहपतिरुवाच

मघवन् वृत्रशत्रो त्वां जाने कुलिशपाणिनम्।
नाहं वृणे वरं त्वत्तः शङ्करो वरदोऽस्ति मे॥ ३८

इन्द्र उवाच

न मत्तः शङ्करस्त्वन्यो देवदेवोऽस्म्यहं शिशो।
विहाय बालिशत्वं त्वं वरं याचस्व मा चिरम्॥ ३९

गृहपतिरुवाच

गच्छाहल्यापतेऽसाधो गोत्रारे पाकशासन।
न प्रार्थये पशुपतेरन्यं देवान्तरं स्फुटम्॥ ४०

नन्दीश्वर उवाच

इति तस्य वचः श्रुत्वा क्रोधसंरक्तलोचनः।
उद्यम्य कुलिशं घोरं भीषयामास बालकम्॥ ४१

स दृष्ट्वा बालको वज्रं विद्युज्ज्वालासमाकुलम्।
स्मरन्नारदवाक्यं च मुमूर्च्छ भयविह्वलः॥ ४२

पूर्ण एक सौ आठ पवित्र घड़ोंसे शिवजीको स्नान कराने लगा और एक हजार आठ नीलकमलोंसे बनी हुई माला समर्पित करने लगा॥ ३०-३१½॥

पहले वह पक्षमें [एक बार] फिर महीने-महीनेमें फल-मूल-कन्दको खाकर [छः महीनेतक] रहा। इसके बाद अत्यन्त धीर वह गृहपति पुनः छः मास सूखे पत्ते खाकर और छः महीने वायु पीकर, फिर छः महीने एक बूँद जल पीकर तपस्या करनेमें लगा रहा॥ ३२-३३॥

हे नारद! इस प्रकार एकमात्र शिवजीको मनमें धारण करके तपमें निरत उस महात्माके दो वर्ष बीत गये। हे शौनक! तब जन्मसे बारहवें वर्षमें देवर्षि नारदद्वारा कही गयी बातको मानो सत्य करनेकी इच्छासे स्वयं इन्द्रदेव उसके पास आये और बोले—हे विप्र! मैं इन्द्र इस उत्तम तपस्यासे अत्यन्त प्रसन्न हो गया हूँ, तुम्हारे मनमें जो अभिलषित हो, उस वरको माँगो, मैं प्रदान कर रहा हूँ॥ ३४—३६॥

नन्दीश्वर बोले—इन्द्रके इस वचनको सुनकर महा-धीर मुनिकुमारने मधुर मधुराक्षरमयी वाणीमें कहा—॥ ३७॥

गृहपति बोला—हे मघवन्! हे वृत्रशत्रो! मैं वज्र धारण करनेवाले आपको जानता हूँ। मैं आपसे वर नहीं माँगता, मुझे वर देनेवाले तो शिवजी हैं॥ ३८॥

इन्द्र बोले—हे बालक! मेरे सिवा कोई दूसरा शिव नहीं है, मैं सभी देवताओंका भी देव हूँ। अतः तुम अपना लड़कपन त्यागकर [मुझसे] वर माँगो और देर मत करो॥ ३९॥

गृहपति बोला—तुम अहल्याके शीलको नष्ट करनेवाले असाधु हो, पाक नामक असुरका वध करनेवाले पर्वतोंके शत्रु हे इन्द्र! तुम चले जाओ, यह स्पष्ट है कि मैं शिवजीके अतिरिक्त और किसी देवतासे वरकी प्रार्थना नहीं करता॥ ४०॥

नन्दीश्वर बोले—उसकी यह बात सुनते ही क्रोधसे लाल नेत्रोंवाले इन्द्र अपना घोर वज्र उठाकर बालकको भयभीत करने लगे॥ ४१॥

विद्युज्ज्वालाके समान प्रज्वलित वज्रको देखकर नारदकी बातका स्मरण करता हुआ वह बालक भयसे व्याकुल होकर मूर्च्छित हो गया। उसके

अथ गौरीपतिः शम्भुराविरासीत्तमोनुदः।
उत्तिष्ठोत्तिष्ठ भद्रं ते स्पर्शैः संजीवयन्निव॥ ४३

पश्चात् अन्धकारका नाश करनेवाले गौरीपति शिवजी प्रकट हो गये और हाथके स्पर्शसे उसे जीवित-सा करते हुए उससे बोले—उठो, उठो, तुम्हारा कल्याण हो॥ ४२-४३॥

उन्मील्य नेत्रकमले सुप्ते इव दिनक्षये।
अपश्यदग्रे चोत्थाय शम्भुमर्कशताधिकम्॥ ४४

भाले लोचनमालोक्य कण्ठेकालं वृषध्वजम्।
वामाङ्गसन्निविष्टाद्रितनयं चन्द्रशेखरम्॥ ४५

कपर्देन विराजन्तं त्रिशूलाजगवायुधम्।
स्फुरत्कर्पूरगौरांगं परिणद्धगजाजिनम्॥ ४६

परिज्ञाय महादेवं गुरुवाक्यत आगमात्।
हर्षबाष्पाकुलासन्नकण्ठरोमाञ्चकञ्चुकः॥ ४७

क्षणं च गिरिवत्तस्थौ चित्रकृत्रिमपुत्रकः।
यथा तथा सुसम्पन्नो विस्मृत्यात्मानमेव च॥ ४८

तब [उस अपूर्व स्पर्शको प्राप्त करके] उसने रात्रिमें सोये हुएके समान अपने नेत्रकमलोंको खोलकर उठ करके अपने आगे सैकड़ों सूर्योंसे भी अधिक प्रकाशमान शिवजीको देखा। उनके मस्तकमें नेत्र शोभित हो रहा था, कण्ठमें विषकी कालिमा थी, वे बैलपर सवार थे, उनके बायीं ओर भगवती पार्वती स्थित थीं, उनके मस्तकपर अर्धचन्द्र सुशोभित हो रहा था, वे जटाजूटसे युक्त थे, त्रिशूल एवं अजगव धनुष धारण किये हुए थे। उनका गौर शरीर कर्पूरके समान उज्ज्वल था और वे गजचर्म धारण किये हुए थे। तब गुरुवाक्य तथा आगमप्रमाणसे उन्हें महादेव जानकर हर्षातिरेकसे उसका कण्ठ रुँध गया और शरीर रोमांचित हो गया। उसकी स्मृति लुप्त हो गयी। फिर भी वह जैसे-तैसे क्षणभरके लिये चित्रलिखित पुतलेके समान स्तम्भित हो अवाक् खड़ा रहा॥ ४४—४८॥

न स्तोतुं न नमस्कर्तुं किञ्चिद्विज्ञप्तुमेव च।
यदा स न शशाकालं तदा स्मित्वाह शङ्करः॥ ४९

जब वह न तो स्तुति, न नमस्कार और न कुछ कहनेमें ही समर्थ रहा, तब शिवजीने मुसकराकर उससे कहा—॥ ४९॥

ईश्वर उवाच

शिशो गृहपते शक्राद्वज्रोद्यतकरादहो।
ज्ञातं भीतोऽसि मा भैषीर्जिज्ञासा ते मया कृता॥ ५०

मम भक्तस्य नो शक्रो न वज्रं चान्तकोऽपि च।
प्रभवेदिन्द्ररूपेण मयैव त्वं बिभीषितः॥ ५१

ईश्वर बोले—हे बालक! हे गृहपते! मैंने समझ लिया कि तुम हाथमें वज्र लिये हुए इन्द्रसे डर गये हो, अब डरो मत! यह तो मैंने ही तुम्हारी परीक्षा ली थी। मेरे भक्तको इन्द्र, वज्र अथवा काल भी नहीं डरा सकते हैं। यह तो मैंने ही इन्द्रका रूप धारणकर तुम्हें डराया था॥ ५०-५१॥

वरं ददामि ते भद्र त्वमग्निपदभाग्भव।
सर्वेषामेव देवानां वरदस्त्वं भविष्यसि॥ ५२

सर्वेषामेव भूतानां त्वमग्नेऽन्तश्चरो भव।
धर्मराजेन्द्रयोर्मध्ये दिगीशो राज्यमाप्नुहि॥ ५३

हे भद्र! अब मैं तुम्हें वर प्रदान करता हूँ कि तुम अग्निका पद ग्रहण करनेवाले हो जाओ। तुम सभी देवताओंके वरदाता बनोगे। तुम सभी प्राणियोंके अन्दर [वैश्वानर नामकी] अग्नि बनकर विचरण करो और दक्षिण एवं पूर्व दिशाके मध्यमें [आग्नेयकोणका] दिगीश्वर बनकर राज्य करो॥ ५२-५३॥

त्वयेदं स्थापितं लिङ्गं तव नाम्ना भविष्यति।
अग्नीश्वर इति ख्यातं सर्वतेजोविबृंहणम्॥ ५४

तुम्हारे द्वारा स्थापित यह लिंग [आजसे] तुम्हारे ही नामसे [प्रसिद्ध] होगा। यह अग्नीश्वर नामवाला होगा, जो सभी तेजोंका विशिष्ट रूपसे अभिवर्धन

अग्नीश्वरस्य भक्तानां न भयं विद्युदग्निभिः।
अग्निमान्द्यभयं नैव नाकालमरणं क्वचित्॥ ५५

अग्नीश्वरं समभ्यर्च्य काश्यां सर्वसमृद्धिदम्।
अन्यत्रापि मृतो दैवाद्वह्निलोके महीयते॥ ५६

नन्दीश्वर उवाच

इत्युक्त्वानीय तद्वन्धून्पित्रोश्च परिपश्यतोः।
दिक्पतित्वेऽभिषिच्याग्निं तत्र लिंगे शिवोऽविशत्॥ ५७

इत्थमग्न्यवतारस्ते वर्णितो मे जनार्दनः।
नाम्ना गृहपतिस्तात शङ्करस्य परात्मनः॥ ५८

चित्रहोत्रपुरी रम्या सुखदार्चिष्मती वरा।
जातवेदसि ये भक्ता ते तत्र निवसन्ति वै॥ ५९

अग्निप्रवेशं ये कुर्युर्दृढसत्त्वा जितेन्द्रियाः।
स्त्रियो वा सत्त्वसम्पन्नास्ते सर्वेऽप्यग्नितेजसः॥ ६०

अग्निहोत्ररता विप्राः स्थापिता ब्रह्मचारिणः।
पञ्चाग्निवर्त्तिनोऽप्येवमग्निलोकेऽग्निवर्चसः॥ ६१

शीते शीतापनुत्त्यै यस्त्वेधोभारान्प्रयच्छति।
कुर्यादग्नीष्टिकां वाथ स वसेदग्निसन्निधौ॥ ६२

अनाथस्याग्निसंस्कारं यः कुर्याच्छ्रद्धयान्वितः।
अशक्तः प्रेरयेदन्यं सोऽग्निलोके महीयते॥ ६३

अग्निरेको द्विजातीनां निःश्रेयसकरः परः।
गुरुर्देवो व्रतं तीर्थं सर्वमग्निर्विनिश्चितम्॥ ६४

करेगा। अग्नीश्वरके भक्तोंको विद्युत् एवं अग्निसे भय नहीं होगा। उन्हें अग्निमान्द्यका भय नहीं होगा और अकालमरण भी कभी नहीं होगा॥ ५४-५५॥

सम्पूर्ण समृद्धियोंको देनेवाले इस अग्नीश्वर लिंगका काशीमें पूजन करके मनुष्य दैवयोगसे यदि कहीं भी मृत्युको प्राप्त होगा, तो उसे अग्निलोककी प्राप्ति हो जायगी॥ ५६॥

नन्दीश्वर बोले—इस प्रकार कहकर शिवजीने गृहपतिके [माता-पिता एवं] बन्धुओंको बुलाकर उनके माता-पिताके देखते-देखते उस बालकको अग्निकोणके दिक्पालपदपर अभिषिक्तकर स्वयं उस लिंगमें प्रवेश किया॥ ५७॥

हे तात! इस प्रकार मैंने परमात्मा शिवके गृहपति नामक अग्निके रूपमें दुर्जनोंको पीड़ा देनेवाले अवतारका वर्णन किया॥ ५८॥

चित्रहोत्र नामक सुखदायिनी, रम्य तथा प्रकाशमान पुरी है, जो लोग अग्निके भक्त हैं, वे वहाँ निवास करते हैं॥ ५९॥

जितेन्द्रिय एवं दृढ़ सत्त्व भाववाले पुरुष अथवा सत्त्वसम्पन्न स्त्रियाँ उस अग्निलोकमें प्रवेश करती हैं, वे सभी अग्निके समान तेजस्वी होते हैं॥ ६०॥

अग्निहोत्रमें तत्पर ब्राह्मण, अग्निको स्थापित करनेवाले ब्रह्मचारी तथा पंचाग्नि तापनेवाले तपस्वी लोग भी अग्निके समान तेजस्वी होकर अग्निलोकमें निवास करते हैं॥ ६१॥

जो शीतकालमें शीतको दूर करनेके लिये काष्ठ-समूहका दान करता है अथवा ईंटोंसे अग्निकुण्डका निर्माण करता है, वह अग्निके सान्निध्यमें निवास करता है। जो श्रद्धायुक्त होकर अनाथ व्यक्तिका अग्नि-संस्कार करता है अथवा स्वयं अशक्त होनेपर [इसके लिये] दूसरेको प्रेरित करता है, वह अग्निलोकमें पूजित होता है॥ ६२-६३॥

एकमात्र अग्निदेव ही द्विजातियों (ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य)-का परम कल्याण करनेवाले हैं। अग्नि ही उनके गुरु, देवता, व्रत, तीर्थ एवं सब कुछ हैं—ऐसा निश्चित है॥ ६४॥

अपावनानि सर्वाणि वह्निसंसर्गतः क्षणात्।
पावनानि भवन्त्येव तस्माद्यः पावकः स्मृतः॥ ६५

अग्निके संसर्गमात्रसे क्षणभरमें ही सभी अपवित्र वस्तुएँ पवित्र हो जाती हैं, इसलिये इन्हें पावक कहा गया है॥ ६५॥

अन्तरात्मा ह्ययं साक्षान्निश्चयो ह्याशुशुक्षणिः।
मांसग्रासान्पचेत्कुक्षौ स्त्रीणां नो मांसपेशिकाम्॥ ६६

ये अग्नि प्राणियोंके साक्षात् अन्तरात्मा हैं और निश्चय ही सब कुछ जला देनेवाले हैं। ये स्त्रियोंकी कुक्षिमें मांसके ग्रासोंको तो पचा देते हैं, किंतु उसीमें रहनेवाले मांसपेशी (गर्भ)-को [दयावश] नहीं पचाते॥ ६६॥

तैजसी शाम्भवी मूर्तिः प्रत्यक्षा दहनात्मिका।
कर्त्री हर्त्री पालयित्री विनैतां किं विलोक्यते॥ ६७

ये अग्नि साक्षात् शिवकी तेजोमयी दहनात्मिका मूर्ति हैं। यही [अग्निरूपा मूर्ति] सृष्टि करनेवाली, विनाश करनेवाली एवं पालन करनेवाली है। इनके बिना कुछ नहीं दिखायी पड़ता है॥ ६७॥

चित्रभानुरयं साक्षान्नेत्रं त्रिभुवनेशितुः।
अन्धे तमोमये लोके विनैनं कः प्रकाशनः॥ ६८

ये अग्नि शिवजीके साक्षात् नेत्र हैं। अन्धकारसे पूर्ण इस तमोमय संसारको अग्निके बिना कौन प्रकाशित कर सकता है॥ ६८॥

धूपप्रदीपनैवेद्यपयोदधिघृतैक्षवम् ।
एतद्धुतं निषेवन्ते सर्वे दिवि दिवौकसः॥ ६९

धूप, दीप, नैवेद्य, दूध, दही, घी एवं मिष्टान्नादि पदार्थ अग्निमें हवन करनेपर स्वर्गमे निवास करनेवाले देवगण उसे प्राप्त करते हैं॥ ६९॥

इति श्रीशिवमहापुराणे तृतीयायां शतरुद्रसंहितायां गृहपत्यवतारवर्णनं नाम पञ्चदशोऽध्यायः॥ १५॥

॥ इस प्रकार श्रीशिवमहापुराणके अन्तर्गत तृतीय शतरुद्रसंहितामें गृहपत्यवतार-वर्णन नामक पन्द्रहवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ १५॥

अथ षोडशोऽध्यायः

यक्षेश्वरावतारका वर्णन

नन्दीश्वर उवाच

यक्षेश्वरावतारं च शृणु शंभोर्मुनीश्वर।
गर्विणं गर्वहन्तारं सतां भक्तिविवर्द्धनम्॥ १

नन्दीश्वर बोले—हे मुनीश्वर! अब आप [भगवान्] शम्भुके यक्षेश्वरावतारको सुनिये, जो अहंकारसे युक्त जनोंके गर्वको नष्ट करनेवाला तथा सज्जनोंकी भक्तिका संवर्धन करनेवाला है॥ १॥

पुरा देवाश्च दैत्याश्च पीयूषार्थं महाबलाः।
क्षीरोदधिं ममन्थुस्ते सुकृतस्वार्थसन्धयः॥ २

पूर्वकालमें महाबलवान् देवता एवं दैत्योंने अपने-अपने स्वार्थके लिये आपसमें भलीभाँति सन्धिकर अमृत प्राप्त करनेके लिये क्षीरसागरका मन्थन किया था॥ २॥

मथ्यमानेऽमृते पूर्वं क्षीराब्धेः सुरदानवैः।
अग्नेः समुत्थितं तस्माद्विषं कालानलप्रभम्॥ ३

जब देवता एवं दानव अमृतके लिये क्षीरसागरका मन्थन कर रहे थे तो सर्वप्रथम [समुद्रमें विद्यमान] अग्निसे कालाग्निके समान विष निकला॥ ३॥

तं दृष्ट्वा निखिला देवा दैत्याश्च भयविह्वलाः।
विद्रुत्य तरसा तात शंभोस्ते शरणं ययुः॥ ४

हे तात! उस विषको देखते ही समस्त देवता और दानव भयसे व्याकुल हो गये और वे भागकर शीघ्र ही शिवजीकी शरणमें गये॥ ४॥

दृष्ट्वा तं शङ्करं सर्वे सर्वदेवशिखामणिम्।
प्रणम्य तुष्टुवुर्भक्त्या साच्युता नतमस्तकाः॥ ५

ततः प्रसन्नो भगवान् शङ्करो भक्तवत्सलः।
पपौ विषं महाघोरं सुरासुरगणार्दनम्॥ ६

विष्णुसहित सभी देवता समस्त देवताओंके शिखामणिस्वरूप उन शिवजीको देखकर सिर झुकाकर उन्हें प्रणाम करके भक्तिपूर्वक उनकी स्तुति करने लगे। उससे प्रसन्न होकर भक्तवत्सल भगवान् सदाशिवने देवता एवं दानवोंको पीड़ित करनेवाले उस महाघोर विषका पान कर लिया॥ ५-६॥

पीतं तं विषमं कण्ठे निदधे विषमुल्बणम्।
रेजे तेनाति स विभुर्नीलकण्ठो बभूव ह॥ ७

पीये गये उस महाभयानक विषको उन्होंने अपने कण्ठमें ही धारण कर लिया, उससे वे प्रभु अत्यन्त सुशोभित हुए और नीलकण्ठ नामवाले हो गये॥ ७॥

ततः सुरासुरगणा ममन्थुः पुनरेव तम्।
विषदाहविनिर्मुक्ताः शिवानुग्रहतोऽखिलाः॥ ८

उसके पश्चात् शिवजीके अनुग्रहसे विषके दाहसे मुक्त हुए देवताओं एवं असुरोंने पुनः समुद्रका मन्थन किया॥ ८॥

ततो बहूनि रत्नानि निस्सृतानि ततो मुने।
अमृतं च पदार्थं हि सुरदानवयोर्मुने॥ ९

तं पपुः केवलं देवा नासुराः कृपया हरेः।
ततो बभूव सुमहद्रत्नं तेषां मिथोऽकदम्॥ १०

हे मुने! इसके बाद देवता तथा दानवोंके [प्रयत्नोंसे मथे गये] समुद्रसे अनेक रत्न निकले और अमृत जैसा—यह उत्तम पदार्थ भी उसीसे निकला, किंतु विष्णुकी कृपासे देवताओं तथा असुरोंमेंसे केवल देवता ही उसे पी गये, असुर नहीं। तब यह महान् रत्न उनके बीच द्वेषका कारण बन गया॥ ९-१०॥

द्वन्द्वयुद्धं बभूवाथ देवदानवयोर्मुने।
तत्र राहुभयाच्चन्द्रो विदुद्राव तदर्दितः॥ ११

जगाम सदनं शंभोः शरणं भयविह्वलः।
सुप्रणम्य च तुष्टाव पाहि पाहीति संवदन्॥ १२

हे मुने! देवों और दानवोंमें [भीषण] द्वन्द्वयुद्ध प्रारम्भ हुआ, तब राहुसे पीड़ित हुए चन्द्रमा उसके भयसे सन्तप्त होकर भाग खड़े हुए और भयसे व्याकुल होकर शिवजीकी शरणमें उनके भवन गये एवं प्रणाम करके 'रक्षा कीजिये, रक्षा कीजिये'—इस प्रकार कहते हुए उनकी स्तुति करने लगे॥ ११-१२॥

ततः सतामभयदः शङ्करो भक्तवत्सलः।
दध्रे शिरसि चन्द्रं स विभुः शरणमागतम्॥ १३

तब सत्पुरुषोंको अभय प्रदान करनेवाले भक्तवत्सल तथा सर्वव्यापक शिवजीने शरणमें आये हुए चन्द्रमाको अपने मस्तकपर धारण कर लिया॥ १३॥

अथागतस्तदा राहुस्तुष्टाव सुप्रणम्य तम्।
शङ्करं सकलाधीशं वाग्भिरिष्टाभिरादरात्॥ १४

तदनन्तर [चन्द्रमाका पीछा करता हुआ] राहु भी वहाँ आया और उसने सर्वेश्वर शिवजीको भलीभाँति प्रणामकर आदरपूर्वक प्रिय वाणीमें उनकी स्तुति की॥ १४॥

शंभुस्तन्मतमाज्ञाय तच्छिरांस्यच्युतेन ह।
पुरा छिन्नानि वै केतुसंज्ञानि निदधे गले॥ १५

शिवजीने उसका अभिप्राय जानकर पूर्वमें विष्णुके द्वारा काटे गये उसके केतुसंज्ञक सिरोंको [अपनी मुण्डमालामें पिरोकर] गलेमें धारण कर लिया॥ १५॥

ततो युद्धेऽसुराः सर्वे देवैश्चैव पराजिताः।
पीत्वामृतं सुराः सर्वे जयं प्रापुर्महाबलाः॥ १६

इसके बाद उस युद्धमें सभी असुर देवताओंसे पराजित हो गये। अमृतका पान करके सभी महाबली देवगणोंने विजय प्राप्त की॥ १६॥

विष्णुप्रभृतयः सर्वे बभूवुश्चातिगर्विताः।
बलानि चांकुरन्तोऽन्तः शिवमायाविमोहिताः॥ १७

[विजय प्राप्त कर लेनेपर] शिवजीकी मायासे मोहित हुए विष्णु आदि देवताओंको अत्यन्त अहंकार हो गया और वे अपने-अपने बलोंकी प्रशंसा करने लगे॥ १७॥

ततः स शङ्करो देवः सर्वाधीशोऽथ गर्वहा।
यक्षो भूत्वा जगामाशु यत्र देवाः स्थिता मुने॥ १८

हे मुने! इसके बाद गर्वको चूर करनेवाले सर्वाधीश वे भगवान् शंकर यक्षका रूप धारणकर जहाँ देवगण स्थित थे, वहाँ शीघ्र गये॥ १८॥

सर्वान् दृष्ट्वाच्युतमुखान्देवान्यक्षपतिः स वै।
महागर्वाढ्यमनसा महेशः प्राह गर्वहा॥ १९

गर्वका नाश करनेवाले यक्षपतिरूपी महेशने विष्णु आदि देवगणोंको देखकर अत्यन्त गर्वयुक्त मनसे उनसे कहा—॥ १९॥

यक्षेश्वर उवाच

किमर्थं संस्थिता यूयमत्र सर्वे सुरा मिथः।
किमु काष्ठाखिलं ब्रूत कारणं मेऽनु पृच्छते॥ २०

यक्षेश्वर बोले—हे देवताओ! आप सभी यहाँ एकत्र होकर किसलिये खड़े हैं? मैं इसका कारण पूछ रहा हूँ, आपलोग बतायें॥ २०॥

देवा ऊचुः

अभूदत्र महान्देव रणः परमदारुणः।
असुरा नाशिताः सर्वेऽवशिष्टा विद्रुता गताः॥ २१

देवता बोले—हे देव! यहाँ [देव-दानवोंमें] भयंकर विकट संग्राम छिड़ा हुआ था, जिसमें समस्त असुर विनष्ट हो गये और जो बचे थे, वे भागकर चले गये॥ २१॥

वयं सर्वे महावीरा दैत्यघ्ना बलवत्तराः।
अग्रेऽस्माकं कियन्तस्ते दैत्याः क्षुद्रबलाः सदा॥ २२

हम सब बड़े पराक्रमी, दैत्योंको मारनेवाले तथा बड़े बलशाली हैं। हमारे समक्ष तुच्छ बलवाले वे क्षुद्र दैत्य भला किस प्रकार टिक सकते हैं?॥ २२॥

नन्दीश्वर उवाच

इति श्रुत्वा वचस्तेषां सुराणां गर्वगर्भितम्।
गर्वहासौ महादेवो यक्षरूपो वचोऽब्रवीत्॥ २३

नन्दीश्वर बोले—देवताओंकी गर्वभरी यह बात सुनकर गर्वका नाश करनेवाले यक्षरूपी महादेवने यह वचन कहा—॥ २३॥

यक्षेश्वर उवाच

हे सुरा निखिला यूयं मद्वचः शृणुतादरात्।
यथार्थं वच्मि नासत्यं सर्वगर्वापहारकम्॥ २४

गर्वमेनं न कुरुत कर्ता हर्तापरः प्रभुः।
विस्मृताश्च महेशानं कथयध्वं वृथा बलाः॥ २५

यक्षेश्वर बोले—हे देवगणो! आप सभी लोग आदरपूर्वक मेरी बात सुनिये, मैं [आप] सबके गर्वका नाश करनेवाला यथार्थ वचन कह रहा हूँ, असत्य नहीं। आपलोग इस प्रकारका अहंकार मत कीजिये, सबका रचयिता और संहारकर्ता स्वामी तो कोई दूसरा ही है। आपलोग उन महादेवको भूल गये और निर्बल होकर भी अपने बलका वृथा घमण्ड करते हैं॥ २४-२५॥

युष्माकं चेत्स हि मदो जानतां स्वबलं महत्।
मत्स्थापितं तृणमिदं छिन्त स्वास्त्रैश्च तैः सुराः॥ २६

हे देवगण! अपने महान् बलको जानते हुए आपलोगोंको यदि घमण्ड है, तो आपलोग मेरे द्वारा रखे गये इस तिनकेको अपने उन शस्त्रोंसे काटें॥ २६॥

नन्दीश्वर उवाच

इत्युक्त्वैकं तृणं तेषां निचिक्षेप पुरस्ततः।
जह्रे सर्वमदं यक्षरूप ईशः सतां गतिः॥ २७

नन्दीश्वर बोले—ऐसा कहकर सत्पुरुषोंको गति देनेवाले यक्षरूपी महादेवजीने उन देवताओंके आगे एक तिनका फेंक दिया, जिसके द्वारा उन्होंने सभी देवताओंका मद दूर कर दिया॥ २७॥

अथ सर्वे सुरा विष्णुप्रमुखा वीरमानिनः।
कृत्वा स्वपौरुषं तत्र स्वायुधानि विचिक्षिपुः॥ २८

तत्रासन् विफलान्याशु तान्यस्त्राणि दिवौकसाम्।
शिवप्रभावतस्तेषां मूढगर्वापहारिणः॥ २९

[इस तिनकेको काटनेके लिये] अपनेको वीर माननेवाले विष्णु आदि सभी देवताओंने अपने पुरुषार्थका प्रयोग करके उसके ऊपर अपने-अपने अस्त्रको चलाया। किंतु मूढ़ोंके गर्वका नाश करनेवाले [भगवान्] शिवके प्रभावसे उन देवताओंके वे अस्त्र शीघ्र ही बेकार हो गये॥ २८-२९॥

अथासीत्तु नभोवाणी देवविस्मयहारिणी।
यक्षोऽयं शङ्करो देवाः सर्वगर्वापहारकः॥ ३०

तब देवताओंके आश्चर्यको दूर करनेवाली आकाशवाणी हुई कि हे देवताओ! ये यक्ष [-रूपमें] सबके अहंकारका अपहरण करनेवाले सदाशिव ही हैं॥ ३०॥

कर्ता हर्ता तथा भर्तायमेव परमेश्वरः।
एतद्बलेन बलिनो जीवाः सर्वेऽन्यथा न हि॥ ३१

ये परमेश्वर ही सबके कर्ता, भर्ता और संहर्ता हैं। इन्हींके बलसे सभी जीव बलवान् हैं, अन्यथा नहीं॥ ३१॥

अस्य मायाप्रभावाद् वै मोहिताः स्वप्रभुं शिवम्।
मदतो बुबुधुर्नैवाद्यापि बोधतनुं प्रभुम्॥ ३२

हे देवताओ! इनकी मायाके प्रभावसे मोहित होकर तथा अहंकारवश आपलोग अपने ज्ञानमूर्ति स्वामी भगवान् शिवको अभीतक पहचान नहीं सके!॥ ३२॥

नन्दीश्वर उवाच

इति श्रुत्वा नभोवाणीं बुबुधुस्ते गतस्मयाः।
यक्षेश्वरं प्रणेमुश्च तुष्टुवुश्च तमीश्वरम्॥ ३३

नन्दीश्वर बोले—इस प्रकारकी आकाशवाणीको सुनकर देवताओंका सारा गर्व दूर हो गया और वे अपने ईश्वरको पहचान गये। उन्होंने यक्षेश्वरको प्रणाम किया तथा उनकी स्तुति की॥ ३३॥

देवा ऊचुः

देवदेव महादेव सर्वगर्वापहारक।
यक्षेश्वर महालील माया तेऽत्यद्भुता प्रभो॥ ३४

देवता बोले—हे देवदेव! हे महादेव! सबके अभिमानको दूर करनेवाले हे यक्षेश्वर! महालीला करनेवाले हे प्रभो! आपकी माया अत्यन्त अद्भुत है॥ ३४॥

मोहिता माययाद्यापि तव यक्षस्वरूपिणः।
सगर्वमभिभाषन्तस्त्वत्पुरो हि पृथङ्मयाः॥ ३५

हे प्रभो! यक्षरूप धारण करनेवाले आपकी मायासे मोहित हुए हमलोग इस समय अपनेको [आपसे] पृथक् समझकर आपके सामने ही गर्वपूर्वक बोल रहे हैं॥ ३५॥

इदानीं ज्ञानमायातं तवैव कृपया प्रभो।
कर्ता हर्ता च भर्ता च त्वमेवान्यो न शङ्कर॥ ३६

त्वमेव सर्वशक्तीनां सर्वेषां हि प्रवर्तकः।
निवर्तकश्च सर्वेशः परमात्माव्ययोऽद्वयः॥ ३७

हे प्रभो! हे शंकर! अब आपकी ही कृपासे हमें इस समय ज्ञान हो गया कि आप ही कर्ता, हर्ता एवं भर्ता हैं, दूसरा नहीं। आप ही सभी जीवोंकी समस्त शक्तियोंके प्रवर्तक एवं निवर्तक हैं, आप ही सर्वेश, परमात्मा, अव्यय एवं अद्वितीय हैं॥ ३६-३७॥

यक्षेश्वरस्वरूपेण सर्वेषां नो मदो हृतः।
कृतो मन्यामहे तत्तेऽनुग्रहो हि कृपालुना॥ ३८

आपने यक्षेश्वरका रूप धारणकर जो हमलोगोंके मदको दूर कर दिया है, उसे हमलोग आप कृपालुके द्वारा किया गया परम अनुग्रह मानते हैं॥ ३८॥

अथो स यक्षनाथोऽनुगृह्य वै सकलान् सुरान्।
विबोध्य विविधैर्वाक्यैस्तत्रैवान्तरधीयत॥ ३९

उसके पश्चात् वे यक्षेश्वर सम्पूर्ण देवताओंपर कृपा करते हुए उन्हें अनेक वचनोंसे समझाकर वहीं अन्तर्धान हो गये॥ ३९॥

इत्थं स वर्णितः शम्भोरवतारः सुखावहः।
यक्षेश्वराख्यः सुखदः सतां तुष्टोऽभयंकरः॥ ४०

[हे मुनीश्वर!] इस प्रकार शिवजीके यक्षेश्वर नामक अवतारका वर्णन कर दिया गया, जो सबको आनन्द देनेवाला तथा सुख प्रदान करनेवाला है। यह यक्षरूप प्रसन्न होनेपर सज्जनोंको अभय प्रदान करनेवाला है॥ ४०॥

इदमाख्यानममलं सर्वगर्वापहारकम्।
सतां सुशान्तिदं नित्यं भुक्तिमुक्तिप्रदं नृणाम्॥ ४१

य इदं शृणुयाद्भक्त्या श्रावयेद्वा सुधीः पुमान्।
सर्वकामानवाप्नोति ततश्च लभते गतिम्॥ ४२

यह आख्यान अत्यन्त निर्मल तथा सबके अभिमानको नष्ट करनेवाला है। यह सत्पुरुषोंको सर्वदा शान्तिदायक एवं मनुष्योंको भोग एवं मोक्ष प्रदान करनेवाला है। जो बुद्धिमान् मनुष्य भक्तिसे युक्त हो इसको सुनता अथवा सुनाता है, वह इस लोकमें समस्त कामनाओंको प्राप्त कर लेता है और इसके बाद परमगतिको प्राप्त करता है॥ ४१-४२॥

इति श्रीशिवमहापुराणे तृतीयायां शतरुद्रसंहितायां यक्षेश्वरावतारवर्णनं नाम षोडशोऽध्यायः॥ १६॥

॥ इस प्रकार श्रीशिवमहापुराणके अन्तर्गत तृतीय शतरुद्रसंहितामें यक्षेश्वरावतार-वर्णन नामक सोलहवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ १६॥

अथ सप्तदशोऽध्यायः

भगवान् शिवके महाकाल आदि प्रमुख दस अवतारोंका वर्णन

नन्दीश्वर उवाच

शृण्वथो गिरिशस्याद्यावतारान् दशसंख्यकान्।
महाकालमुखान् भक्त्योपासनाकाण्डसेवितान्॥ १

नन्दीश्वर बोले—[हे सनत्कुमार!] अब आप उपासनाकाण्डद्वारा सेवित महेश्वरके सर्वप्रथम होनेवाले महाकाल आदि दस प्रमुख अवतारोंको भक्तिपूर्वक सुनिये॥ १॥

तत्राद्यो हि महाकालो भुक्तिमुक्तिप्रदः सताम्।
शक्तिस्तत्र महाकाली भक्तेप्सितफलप्रदा॥ २

उनमें प्रथम महाकाल नामक अवतार है, जो सज्जनोंको भोग एवं मोक्ष प्रदान करनेवाला है। [इस अवतारमें] उनकी शक्ति महाकाली हैं, जो भक्तोंको अभीष्ट फल प्रदान करती हैं॥ २॥

तारनामा द्वितीयश्च ताराशक्तिस्तथैव सा।
भुक्तिमुक्तिप्रदौ चोभौ स्वसेवकसुखप्रदौ॥ ३

दूसरा अवतार तार नामसे विख्यात है, जिनकी शक्ति तारा हैं। ये दोनों ही अपने भक्तोंको सुख प्रदान करनेवाले एवं भोग तथा मोक्ष देनेवाले हैं॥ ३॥

भुवनेशो हि बालाह्वस्तृतीयः परिकीर्तितः।
भुवनेशी शिवा तत्र बालाह्वा सुखदा सताम्॥ ४

श्रीविद्येशः षोडशाह्वः श्रीर्विद्या षोडशी शिवा।
चतुर्थो भक्तसुखदो भुक्तिमुक्तिफलप्रदः॥ ५

तीसरा अवतार बाल भुवनेश्वरके नामसे पुकारा जाता है। उनकी शक्ति बाला भुवनेश्वरी कही जाती हैं, ये सत्पुरुषोंको सुख प्रदान करती हैं। चौथा अवतार षोडश नामक विद्येशके रूपमें हुआ है। षोडशी श्रीविद्या उनकी महाशक्ति हैं। यह अवतार भक्तोंको सुख प्रदान करनेवाला तथा भोग एवं मोक्ष देनेवाला है॥ ४-५॥

पञ्चमो भैरवः ख्यातः सर्वदा भक्तकामदः।
भैरवी गिरिजा तत्र सदुपासककामदा॥ ६

पाँचवाँ अवतार भैरव नामसे प्रसिद्ध है, जो भक्तोंकी कामनाओंको निरन्तर पूर्ण करनेवाला है। इनकी महाशक्ति गिरिजा भैरवी नामसे प्रसिद्ध हैं, जो सज्जनों एवं उपासकोंकी कामनाएँ पूर्ण करती हैं॥ ६॥

छिन्नमस्तकनामासौ शिवः षष्ठः प्रकीर्तितः।
भक्तकामप्रदा चैव गिरिजा छिन्नमस्तका॥ ७

शिवका छठा अवतार छिन्नमस्तक नामक कहा गया है और उनकी महाशक्ति छिन्नमस्तका गिरिजा हैं, जो अपने भक्तोंका मनोरथ पूर्ण करनेवाली हैं॥ ७॥

धूमवान् सप्तमः शम्भुः सर्वकामफलप्रदः।
धूमावती शिवा तत्र सदुपासककामदा॥ ८

शिवके सातवें अवतारका नाम धूमवान् है, जो सम्पूर्ण कामनाओंका फल प्रदान करनेवाला है। उनकी शक्ति धूमावती हैं, जो सज्जन उपासकोंको फल देनेवाली हैं॥ ८॥

शिवावतारः सुखदो ह्यष्टमो बगलामुखः।
शक्तिस्तत्र महानन्दा विख्याता बगलामुखी॥ ९

शिवजीका आठवाँ अवतार बगलामुख है, जो सुख देनेवाला है। उनकी शक्ति बगलामुखी कही गयी हैं, जो परम आनन्दस्वरूपिणी हैं॥ ९॥

शिवावतारो मातङ्गो नवमः परिकीर्तितः।
मातंगी तत्र शर्वाणी सर्वकामफलप्रदा॥ १०

शिवजीका नौवाँ अवतार मातंग नामसे विख्यात है और उनकी शक्ति मातंगी हैं, जो [अपने भक्तोंकी] समस्त कामनाओंका फल प्रदान करती हैं॥ १०॥

दशमः कमलः शम्भुर्भुक्तिमुक्तिफलप्रदः।
कमला गिरिजा तत्र स्वभक्तपरिपालिनी॥ ११

शिवजीका कल्याणकारी दसवाँ अवतार कमल नामवाला है, जो भोग और मोक्ष देनेवाला है। उनकी शक्ति पार्वतीका नाम कमला है, जो भक्तोंका पालन करती हैं॥ ११॥

एते दशमिताः शैवा अवताराः सुखप्रदाः।
भुक्तिमुक्तिप्रदाश्चैव भक्तानां सर्वदा सताम्॥ १२

शिवजीके ये दस अवतार हैं, जो सज्जनों एवं भक्तोंको सर्वदा सुख देनेवाले तथा उन्हें भुक्ति एवं मुक्ति प्रदान करनेवाले हैं॥ १२॥

एते दशावतारा हि शङ्करस्य महात्मनः।
नानासुखप्रदा नित्यं सेवतां निर्विकारतः॥ १३

एतद्दशावताराणां माहात्म्यं वर्णितं मुने।
सर्वकामप्रदं ज्ञेयं तन्त्रशास्त्रादिगर्भितम्॥ १४

महात्मा शिवके ये दसों अवतार निर्विकार रूपसे सेवा करनेवालोंको निरन्तर सभी प्रकारके सुख देते रहते हैं। हे मुने! मैंने शंकरजीके इन दसों अवतारोंके माहात्म्यका वर्णन किया है, इस माहात्म्यको सम्पूर्ण कामनाओंको देनेवाला कहा गया है तथा यह तन्त्र-शास्त्रोंमें निगूढ़ है, ऐसा जानना चाहिये॥ १३-१४॥

एतासामादिशक्तीनामद्भुतो महिमा मुने।
सर्वकामप्रदो ज्ञेयस्तन्त्रशास्त्रादिगर्भितः॥ १५

शत्रुमारणकार्यादौ तत्तच्छक्तिः परा मता।
खलदण्डकरी नित्यं ब्रह्मतेजोविवर्द्धिनी॥ १६

हे मुने! इन [अवतारोंकी] आदि शक्तियोंकी महिमा भी अद्भुत है। इसे सभी कामनाओंको प्रदान करनेवाली तथा तन्त्रशास्त्र आदिमें गोपित जानना चाहिये। ये शक्तियाँ दुष्टोंको दण्ड देनेवाली तथा ब्रह्मतेजका विवर्धन करनेवाली हैं और शत्रुनिग्रह आदि कार्यके लिये सर्वश्रेष्ठ कही गयी हैं॥ १५-१६॥

इत्युक्तास्ते मया ब्रह्मन्नवतारा महेशितुः।
सशक्तिका दशमिता महाकालमुखाः शुभाः॥ १७

हे ब्रह्मन्! इस प्रकार मैंने शक्तियोंसहित शिवजीके महाकालादि प्रमुख शुभ दस अवतारोंका वर्णन किया॥ १७॥

शैवपर्वेषु सर्वेषु योऽधीते भक्तितत्परः।
एतदाख्यानममलं सोऽतिशम्भुप्रियो भवेत्॥ १८

ब्राह्मणो ब्रह्मवर्चस्वी क्षत्रियो विजयी भवेत्।
धनाधिपो हि वैश्यः स्याच्छूद्रः सुखमवाप्नुयात्॥ १९

जो भक्तिमें तत्पर होकर सभी शैव पर्वोंमें शिवके इस निर्मल इतिहासको पढ़ता है, वह शिवका अत्यन्त प्रिय हो जाता है; ब्राह्मण ब्रह्मतेजसे युक्त तथा क्षत्रिय विजयी हो जाता है, वैश्य धनाधिपति हो जाता है एवं शूद्र सुख प्राप्त करता है॥ १८-१९॥

शांकरा निजधर्मस्थाः शृण्वन्तश्चरितं त्विदम्।
सुखिनः स्युर्विशेषेण शिवभक्ता भवन्तु च॥ २०

अपने धर्ममें स्थित होकर इस चरित्रको सुननेवाले शिवभक्त सुखी हो जाते हैं और वे विशेषरूपसे शिवके भक्त हो जाते हैं॥ २०॥

इति श्रीशिवमहापुराणे तृतीयायां शतरुद्रसंहितायां शिवदशावतारवर्णनं नाम सप्तदशोऽध्यायः॥ १७॥

॥ इस प्रकार श्रीशिवमहापुराणके अन्तर्गत तृतीय शतरुद्रसंहितामें शिवदशावतार-वर्णन नामक सत्रहवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ १७॥

अथाष्टादशोऽध्यायः

शिवजीके एकादश रुद्रावतारोंका वर्णन

नन्दीश्वर उवाच

एकादशावतारान्वै शृण्वथो शांकरान्वरान्।
यान् श्रुत्वा न हि बाध्येत बाधासत्यादिसम्भवा॥ १

नन्दीश्वर बोले—[हे सनत्कुमार!] अब शिवजीके उत्तम ग्यारह अवतारोंको सुनिये, जिन्हें सुनकर मनुष्यको असत्य आदिसे उत्पन्न होनेवाला पाप पीड़ित नहीं करता है॥ १॥

पुरा सर्वे सुराः शक्रमुखा दैत्यपराजिताः।
त्यक्त्वामरावतीं भीत्यापलायन्त निजां पुरीम्॥ २

दैत्यप्रपीडिता देवा जग्मुस्ते कश्यपान्तिकम्।
बध्वा करान्नतस्कन्धाः प्रणेमुस्तं सुविह्वलम्॥ ३

पूर्वकालकी बात है, दैत्योंसे पराजित होकर इन्द्र आदि देवता भयसे अपनी अमरावतीपुरी छोड़कर भाग गये थे। दैत्योंसे पीड़ित वे देवता कश्यपके समीप गये और अत्यन्त विनम्रताके साथ हाथ जोड़कर व्याकुलचित्त हो उन्हें प्रणाम किया॥ २-३॥

सुनुत्वा तं सुराः सर्वे कृत्वा विज्ञप्तिमादरात्।
सर्वं निवेदयामासुः स्वदुःखं तत्पराजयम्॥ ४

ततः स कश्यपस्तात तत्पिता शिवसक्तधीः।
तदाकर्ण्यामराकं वै दुःखितोऽभून्न चाधिकम्॥ ५

भलीभाँति उनकी स्तुति करके सभी देवताओंने आदरपूर्वक प्रार्थनाकर अपने पराजयजन्य दुःखको निवेदन किया। हे तात! उसके बाद शिवमें आसक्त मनवाले उनके पिता कश्यप देवताओंका दुःख सुनकर कुछ दुखी तो हुए, पर अधिक नहीं; [क्योंकि उनकी बुद्धि शिवमें निरत थी]॥ ४-५॥

तानाश्वास्य मुनिः सोऽथ धैर्यमाधाय शान्तधीः।
काशीं जगाम सुप्रीत्या विश्वेश्वरपुरीं मुने॥ ६

हे मुने! शान्त बुद्धिवाले उन मुनिने देवताओंको आश्वस्त करके तथा धैर्य धारण करके अत्यन्त प्रसन्नतापूर्वक विश्वेश्वरपुरी काशीकी ओर प्रस्थान किया॥ ६॥

गंगाम्भसि ततः स्नात्वा कृत्वा तं विधिमादरात्।
विश्वेश्वरं समानर्च साम्बं सर्वेश्वरं प्रभुम्॥ ७

शिवलिंगं सुसंस्थाप्य चकार विपुलं तपः।
शम्भुमुद्दिश्य सुप्रीत्या देवानां हितकाम्यया॥ ८

वहाँ गंगाके जलमें स्नान करके श्रद्धासे नित्यक्रियाकर उन्होंने पार्वतीसहित सर्वेश्वर प्रभु विश्वेश्वरका पूजन किया और देवगणोंके कल्याणकी कामनासे शिवकी प्रसन्नताहेतु श्रद्धायुक्त हो लिंगकी स्थापनाकर कठोर तप करने लगे॥ ७-८॥

महान्कालो व्यतीयाय तपतस्तस्य वै मुने।
शिवपादाम्बुजासक्तमनसो धैर्यशालिनः॥ ९

हे मुने! इस प्रकार शिवके चरणकमलोंमें आसक्त मनवाले उन धैर्यवान् महर्षिको तप करते हुए बहुत समय बीत गया॥ ९॥

अथ प्रादुरभूच्छम्भुर्वरं दातुं तदर्षये।
स्वपदासक्तमनसे दीनबन्धुः सतां गतिः॥ १०

तब सज्जनोंके एकमात्र शरण दीनबन्धु भगवान् शिव अपने चरणकमलोंमें आसक्त मनवाले उन ऋषिको वर देनेके लिये प्रकट हुए॥ १०॥

वरं ब्रूहीति चोवाच सुप्रसन्नो महेश्वरः।
कश्यपं मुनिशार्दूलं स्वभक्तं भक्तवत्सलः॥ ११

भक्तवत्सल शिवजीने अति प्रसन्न होकर अपने भक्त मुनिश्रेष्ठ कश्यपसे 'वर माँगिये'—ऐसा कहा॥ ११॥

दृष्ट्वाथ तं महेशानं स प्रणम्य कृताञ्जलिः।
तुष्टाव कश्यपो हृष्टो देवतातः प्रसन्नधीः॥ १२

उन महेश्वरको देखकर देवगणके पिता कश्यपने हर्षित हो उन्हें प्रणाम किया और हाथ जोड़कर प्रसन्नचित्त होकर उनकी स्तुति की॥ १२॥

कश्यप उवाच

देवदेव महेशान शरणागतवत्सल।
सर्वेशः परमात्मा त्वं ध्यानगम्योऽद्वयोऽव्ययः॥ १३

कश्यपजी बोले—हे देवदेव! हे महेशान! हे शरणागतवत्सल! आप सर्वेश्वर, परमात्मा, ध्यानगम्य, अद्वितीय तथा अविनाशी हैं॥ १३॥

बलनिग्रहकर्ता त्वं महेश्वर सतां गतिः।
दीनबन्धुर्दयासिन्धुर्भक्तरक्षणदक्षधीः॥ १४

हे महेश्वर! आप बलवानोंका निग्रह करनेवाले, सज्जनोंको शरण देनेवाले, दीनबन्धु, दयासागर एवं भक्तोंकी रक्षा करनेमें दक्ष बुद्धिवाले हैं॥ १४॥

एते सुरास्त्वदीया हि त्वद्भक्ताश्च विशेषतः।
दैत्यैः पराजिताश्चाद्य पाहि तान्दुःखितान् प्रभो॥ १५

ये सभी देवता आपके हैं और विशेषरूपसे आपके भक्त हैं। हे प्रभो! इस समय ये दैत्योंसे पराजित हो गये हैं, अतः आप इन दुःखियोंकी रक्षा कीजिये॥ १५॥

असमर्थो रमेशोऽपि दुःखदस्ते मुहुर्मुहुः।
अतः सुरा मच्छरणा वेदयन्तोऽसुखं च तत्॥ १६

विष्णु भी असमर्थ हो जानेपर आपको ही बारम्बार कष्ट देते हैं। इसलिये देवता भी [मानो असहायसे होकर] अपना दुःख प्रकट करते हुए मेरी शरणमें आये हुए हैं॥ १६॥

तदर्थं देवदेवेश देवदुःखविनाशक।
तत्पूरितुं तपोनिष्ठां प्रसन्नार्थं तवासदम्॥ १७

हे देवदेवेश! हे देवगणके दुःखका निवारण करनेवाले! मैं आपको प्रसन्न करना चाहता हूँ। [अतएव देवताओंके] अभीष्टको पूर्ण करनेके लिये काशीपुरीमें आकर आपके लिये तपस्या कर रहा हूँ॥ १७॥

शरणं ते प्रपन्नोऽस्मि सर्वथाहं महेश्वर।
कामं मे पूरय स्वामिन्देवदुःखं विनाशय॥ १८

हे महेश्वर! मैं सब प्रकारसे आपकी शरणमें प्राप्त हुआ हूँ। हे स्वामिन्! मेरी कामनाको पूर्ण कीजिये और देवताओंके दुःखको दूर कीजिये॥ १८॥

पुत्रदुःखैश्च देवेश दुःखितोऽहं विशेषतः।
सुखिनं कुरु मामीश सहायस्त्वं दिवौकसाम्॥ १९

भूत्वा मम सुतो नाथ देवा यक्षाः पराजिताः।
दैत्यैर्महाबलैः शम्भो सुरानन्दप्रदो भव॥ २०

सदैवास्तु महेशान सर्वलेखसहायकः।
यथा दैत्यकृता बाधा न बाधेत सुरान्प्रभो॥ २१

नन्दीश्वर उवाच

इत्युक्तस्य तु सर्वेशस्तथेति प्रोच्य शङ्करः।
पश्यतस्तस्य भगवांस्तत्रैवान्तर्दधे हरः॥ २२

कश्यपोऽपि महाहृष्टः स्वस्थानमगमद् द्रुतम्।
देवेभ्यः कथयामास सर्ववृत्तान्तमादरात्॥ २३

ततः स शङ्करः शर्वः सत्यं कर्तुं स्वकं वचः।
सुरभ्यां कश्यपाज्जज्ञे एकादशस्वरूपवान्॥ २४

महोत्सवस्तदासीद् वै सर्वं शिवमयं त्वभूत्।
आसन्हृष्टाः सुराश्चाथ मुनिना कश्यपेन च॥ २५

कपाली पिंगलो भीमो विरूपाक्षो विलोहितः।
शास्ताजपादहिर्बुध्न्यश्शंभुश्चण्डो भवस्तथा॥ २६

एकादशैते रुद्रास्तु सुरभीतनयाः स्मृताः।
देवकार्यार्थमुत्पन्नाः शिवरूपाः सुखास्पदम्॥ २७

ते रुद्राः काश्यपा वीरा महाबलपराक्रमाः।
दैत्यान् जघ्नुश्च संग्रामे देवसाहाय्यकारिणः॥ २८

तद्रुद्रकृपया देवा दैत्यान् जित्वा च निर्भयाः।
चक्रुः स्वराज्यं सर्वे ते शक्राद्याः स्वस्थमानसाः॥ २९

अद्यापि ते महारुद्राः सर्वे शिवस्वरूपकाः।
देवानां रक्षणार्थाय विराजन्ते सदा दिवि॥ ३०

ऐशान्यां पुरि ते वासं चक्रिरे भक्तवत्सलाः।
विरमन्ते सदा तत्र नानालीलाविशारदाः॥ ३१

हे देवेश! मैं अपने पुत्रोंके दुःखोंसे विशेषरूपसे दुखी हूँ। हे ईश! मुझे सुखी कीजिये; आप ही देवताओंके सहायक हैं। हे नाथ! देवता तथा यक्ष महाबली दैत्योंसे पराभवको प्राप्त हुए हैं, अतः हे शम्भो! आप मेरे पुत्रके रूपमें अवतीर्ण होकर देवताओंको आनन्द प्रदान कीजिये॥ १९-२०॥

हे महेश्वर! हे प्रभो! जिस प्रकार इन देवताओंको दैत्योंके द्वारा की जानेवाली बाधा पीड़ित न करे, उस प्रकार आप सदा सभी देवताओंके सहायक बनें॥ २१॥

नन्दीश्वर बोले—कश्यपके द्वारा इस प्रकार कहे जानेपर सर्वेश्वर हर भगवान् शंकरजी 'तथास्तु' कहकर उनके देखते-देखते वहीं अन्तर्धान हो गये॥ २२॥

कश्यपजी भी अत्यन्त प्रसन्न होकर शीघ्र अपने स्थानपर चले गये और उन्होंने आदरपूर्वक देवताओंसे समस्त वृत्तान्त कह सुनाया॥ २३॥

उसके बाद संहर्ता शंकरजीने अपना वचन सत्य करनेके निमित्त ग्यारह रूप धारणकर कश्यपसे उनकी सुरभि नामक पत्नीके गर्भसे अवतार ग्रहण किया॥ २४॥

उस समय महान् उत्सव हुआ और सब कुछ शिवमय हो गया। कश्यपमुनिसहित सभी देवता भी बहुत प्रसन्न हुए॥ २५॥

कपाली, पिंगल, भीम, विरूपाक्ष, विलोहित, शास्ता, अजपाद, अहिर्बुध्न्य, शम्भु, चण्ड तथा भव—ये ग्यारहों रुद्र सुरभिके पुत्र कहे गये हैं। ये सुखके आवासस्थान [रुद्रगण] देवताओंकी कार्यसिद्धिके लिये उत्पन्न हुए थे। वे कश्यपपुत्र रुद्रगण वीर तथा महान् बल एवं पराक्रमवाले थे। इन्होंने संग्राममें देवताओंके सहायक बनकर दैत्योंका संहार कर डाला॥ २६—२८॥

उन रुद्रोंकी कृपासे इन्द्र आदि सभी देवता दैत्योंको जीतकर निर्भय हो गये और स्वस्थचित्त होकर अपना-अपना राजकार्य सँभालने लगे॥ २९॥

आज भी शिवस्वरूप वे सभी महारुद्र देवताओंकी रक्षाके लिये सदा स्वर्गमें विराजमान हैं॥ ३०॥

भक्तवत्सल एवं नाना प्रकारकी लीला करनेमें निपुण वे सब ईशानपुरीमें निवास करते हैं तथा वहाँ सदा रमण करते हैं॥ ३१॥

तेषामनुचरा रुद्राः कोटिशः परिकीर्तिताः।
सर्वत्र संस्थितास्तत्र त्रिलोकेष्वभिभागशः॥ ३२

उनके अनुचर करोड़ों रुद्र कहे गये हैं, जो तीनों लोकोंमें विभक्त होकर चारों ओर सर्वत्र स्थित हैं॥ ३२॥

इति ते वर्णितास्तातावताराः शङ्करस्य वै।
एकादशमिता रुद्राः सर्वलोकसुखावहाः॥ ३३

हे तात! इस प्रकार मैंने आपसे शंकरजीके अवतारोंका वर्णन किया; ये एकादश रुद्र सबको सुख प्रदान करनेवाले हैं॥ ३३॥

इदमाख्यानममलं सर्वपापप्रणाशकम्।
धन्यं यशस्यमायुष्यं सर्वकामप्रदायकम्॥ ३४

यह आख्यान निर्मल, सभी पापोंको दूर करनेवाला, धन तथा यश प्रदान करनेवाला, आयुकी वृद्धि करनेवाला तथा सम्पूर्ण मनोरथोंको पूर्ण करनेवाला है॥ ३४॥

य इदं शृणुयात्तात श्रावयेद्वै समाहितः।
इह सर्वसुखं भुक्त्वा ततो मुक्तिं लभेत सः॥ ३५

हे तात! जो सावधान होकर इसको सुनता है अथवा सुनाता है, वह इस लोकमें सब प्रकारका सुख भोगकर अन्तमें मुक्ति प्राप्त कर लेता है॥ ३५॥

इति श्रीशिवमहापुराणे तृतीयायां शतरुद्रसंहितायां एकादशावतारवर्णनं नामाष्टादशोऽध्यायः॥ १८॥

॥ इस प्रकार श्रीशिवमहापुराणके अन्तर्गत तृतीय शतरुद्रसंहितामें एकादशावतार-वर्णन नामक अठारहवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ १८॥

अथैकोनविंशोऽध्यायः

शिवजीके दुर्वासावतारकी कथा

नन्दीश्वर उवाच

अथान्यच्चरितं शम्भोः शृणु प्रीत्या महामुने।
यथा बभूव दुर्वासाः शङ्करो धर्महेतवे॥ १

नन्दीश्वर बोले—हे महामुने! अब आप शम्भुके एक और चरित्रको प्रेमपूर्वक सुनिये, जिसमें शंकरजी धर्म [की स्थापना]-के लिये दुर्वासा होकर प्रकट हुए थे॥ १॥

ब्रह्मपुत्रो बभूवातितपस्वी ब्रह्मवित्प्रभुः।
अनसूयापतिर्धीमान्ब्रह्माज्ञाप्रतिपालकः॥ २

ब्रह्माके परम तपस्वी एवं ब्रह्मवेत्ता अत्रि नामक पुत्र हुए; वे बड़े बुद्धिमान्, ब्रह्माजीकी आज्ञाका पालन करनेवाले एवं अनसूयाके पति थे॥ २॥

सुनिर्देशाद् ब्रह्मणो हि सस्त्रीकः पुत्रकाम्यया।
स त्र्यक्षकुलनामानं ययौ च तपसे गिरिम्॥ ३

वे किसी समय ब्रह्माजीके निर्देशानुसार पुत्रकी इच्छासे पत्नीसहित तप करनेके लिये त्र्यक्षकुल नामक पर्वतपर गये॥ ३॥

प्राणानायम्य विधिवन्निर्विन्ध्यातटिनीतटे।
तपश्चचार सुमहद् अद्वन्द्वोऽब्दशतं मुनिः॥ ४

उन मुनिने निर्विन्ध्या नदीके तटपर अपने प्राणोंको रोककर निर्द्वन्द्व हो सौ वर्षपर्यन्त विधिपूर्वक महाघोर तप किया॥ ४॥

य एक ईश्वरः कश्चिदविकारी महाप्रभुः।
स मे पुत्रवरं दद्यादिति निश्चितमानसः॥ ५

उन्होंने अपने मनमें निश्चय किया कि जो एकमात्र अविकारी अनिर्वचनीय महाप्रभु ईश्वर हैं, वे मुझे श्रेष्ठ पुत्र प्रदान करेंगे॥ ५॥

बहुकालो व्यतीयाय तस्मिंस्तपति सत्तपः।
आविर्बभूव तस्मात्तु शुचिर्ज्वाला महीयसी॥ ६

इस प्रकार उत्कृष्ट तपमें प्रवृत्त हुए उन महर्षिका बहुत समय व्यतीत हो गया। तब उनके शरीरसे अत्यन्त पवित्र और बहुत बड़ी अग्निज्वाला प्रकट हुई॥ ६॥

तयासन्निखिला लोका दग्धप्राया मुनीश्वराः।
तथा सुरर्षयः सर्वे पीडिता वासवादयः॥ ७

उस ज्वालासे सम्पूर्ण लोक प्रायः जलने लगा और इन्द्रादि सभी देवता, श्रेष्ठ मुनिगण तथा समस्त सुरर्षिगण भी पीड़ित हो उठे॥ ७॥

अथ सर्वे वासवाद्या सुराश्च मुनयो मुने।
ब्रह्मस्थानं ययुः शीघ्रं तज्ज्वालातिप्रपीडिताः॥ ८

हे मुने! इसके बाद इन्द्र आदि सभी देवता एवं मुनिगण उस ज्वालासे अतीव पीड़ित होकर शीघ्र ही ब्रह्मलोक गये॥ ८॥

नत्वा नुत्वा विधिं देवाः तत्स्वदुःखं न्यवेदयन्।
ब्रह्मा सह सुरैस्तात विष्णुलोकं ययावरम्॥ ९

हे तात! देवताओंने नमस्कार एवं स्तुतिकर ब्रह्मदेवके समक्ष अपना दुःख प्रकट किया। तब ब्रह्माजी उन देवताओंको लेकर शीघ्रतासे विष्णुलोकको गये॥ ९॥

तत्र गत्वा रमानाथं नत्वा नुत्वा विधिः सुरैः।
स्वदुःखं तत्समाचख्यौ विष्णवेऽनन्तकं मुने॥ १०

हे मुने! वहाँ देवताओंके साथ जाकर लक्ष्मीपतिको नमस्कार करके तथा उनकी स्तुतिकर अनन्त भगवान् विष्णुसे ब्रह्माजीने दुःख निवेदन किया॥ १०॥

विष्णुश्च विधिना देवै रुद्रस्थानं ययौ द्रुतम्।
हरं प्रणम्य तत्रैत्य तुष्टाव परमेश्वरम्॥ ११

तदनन्तर भगवान् विष्णु भी ब्रह्मा एवं देवताओंको लेकर शीघ्र रुद्रलोक गये और वहाँ पहुँचकर परमेश्वर शिवजीको प्रणाम करके उनकी स्तुति की॥ ११॥

स्तुत्वा बहुतया विष्णुः स्वदुःखं च न्यवेदयत्।
शर्वं ज्वालासमुद्भूतमत्रेश्च तपसः परम्॥ १२

बहुत स्तुति करनेके बाद भगवान् विष्णुने शिवजीसे अपना सारा दुःख निवेदन किया कि अत्रिके तपसे एक ज्वाला उत्पन्न हुई है॥ १२॥

अथ तत्र समेतास्तु ब्रह्मविष्णुमहेश्वराः।
मुने संमन्त्रयाञ्चक्रुरन्योऽन्यं जगतां हितम्॥ १३

हे मुने! तदुपरान्त उस स्थानपर एकत्रित हुए ब्रह्मा, विष्णु एवं महेश्वरने मिलकर संसारके हितसाधनके लिये आपसमें मन्त्रणा की॥ १३॥

तदा ब्रह्मादयो देवास्त्रयस्ते वरदर्षभाः।
जग्मुस्तदाश्रमं शीघ्रं वरं दातुं तदर्षये॥ १४

इसके बाद ब्रह्मा आदि वरदश्रेष्ठ वे तीनों देवता उन मुनिको वर देनेके लिये शीघ्र ही उनके आश्रमपर पहुँचे॥ १४॥

स्वचिह्नचिह्नितांस्तान्स दृष्ट्वात्रिर्मुनिसत्तमः।
प्रणनाम च तुष्टाव वाग्भिरिष्टाभिरादरात्॥ १५

अपने-अपने [हंसादि वाहनोंके] चिह्नोंसे चिह्नित उन देवगणोंको देखकर मुनिश्रेष्ठ अत्रिने उन्हें प्रणाम किया और प्रिय वाणीसे आदरपूर्वक उनकी स्तुति की॥ १५॥

ततः स विस्मितो विप्रस्तानुवाच कृताञ्जलिः।
ब्रह्मपुत्रो विनीतात्मा ब्रह्मविष्णुहराभिधान्॥ १६

तत्पश्चात् हाथ जोड़े हुए वे विनीतात्मा ब्रह्मपुत्र अत्रि उन ब्रह्मा, विष्णु तथा शिवसे विस्मित होकर कहने लगे—॥ १६॥

अत्रिरुवाच

हे ब्रह्मन् हे हरे रुद्र पूज्यास्त्रिजगतां मताः।
प्रभवश्चेश्वराः सृष्टिरक्षासंहारकारकाः॥ १७

अत्रि बोले—हे ब्रह्मन्! हे विष्णो! हे शिव! आप सब तीनों लोकोंके पूज्य, प्रभु, ईश्वर और उत्पत्ति, स्थिति तथा प्रलय करनेवाले माने गये हैं॥ १७॥

एक एव मया ध्यात ईश्वरः पुत्रहेतवे।
यः कश्चिदीश्वरः ख्यातो जगतां स्वस्त्रिया सह॥ १८
यूयं त्रयस्सुराः कस्मादागता वरदर्षभाः।
एतन्मे संशयं छित्त्वा ततो दत्तेप्सितं वरम्॥ १९

मैंने तो सपत्नीक [तपोनिरत होकर] पुत्रकी कामनासे केवल एकमात्र जो इस सारे जगत्के ईश्वर हैं, उन्हींका ध्यान किया था। किंतु वरदाताओंमें श्रेष्ठ आप तीनों देवता यहाँ कैसे उपस्थित हुए हैं; मेरे इस संशयको दूरकर मुझे अभीष्ट वर दीजिये॥ १८-१९॥

इति श्रुत्वा वचस्तस्य प्रत्यूचुस्ते सुरास्त्रयः।
यादृक्कृतस्ते संकल्पस्तथैवाभून्मुनीश्वर॥ २०
वयं त्रयो भवेशानाः समाना वरदर्षभाः।
अस्मदंशभवास्तस्माद्भविष्यन्ति सुतास्त्रयः॥ २१
विदिता भुवने सर्वे पित्रोः कीर्तिविवर्द्धनाः।
इत्युक्त्वा ते त्रयो देवाः स्वधामानि ययुर्मुदा॥ २२

उनकी यह बात सुनकर उन तीनों देवताओंने कहा—हे मुनिराज! जैसा आपने संकल्प किया था, वैसा ही हुआ है, हम ब्रह्मा, विष्णु एवं महेश तीनों ही समानरूपसे इस जगत्के ईश्वर हैं, इसलिये वर देनेके लिये उपस्थित हुए हैं, अतः हमलोगोंके अंशसे आपके तीन पुत्र उत्पन्न होंगे। वे सभी जगत्में प्रसिद्ध होकर माता एवं पिताकी कीर्तिको बढ़ानेवाले होंगे। ऐसा कहकर वे तीनों देवता प्रसन्न हो अपने-अपने धामको चले गये॥ २०—२२॥

वरं लब्ध्वा मुनिः सोऽथ जगाम स्वाश्रमं मुदा।
युतोऽनसूयया प्रीतो ब्रह्मानन्दप्रदो मुने॥ २३

हे मुने! ब्रह्मानन्दके प्रदाता अत्रि मुनि भी वर प्राप्तकर हर्षित हो अनसूयाके साथ प्रसन्नतापूर्वक अपने स्थानपर चले आये॥ २३॥

अथ ब्रह्मा हरिः शम्भुरवतेरुः स्त्रियां ततः।
पुत्ररूपैः प्रसन्नास्ते नानालीलाप्रकाशकाः॥ २४
विधेरंशाद्विधुर्जज्ञेऽनसूयायां मुनीश्वरात्।
आविर्बभूवोदधितः क्षिप्तो देवैः स एव हि॥ २५

तब अनेक लीलाओंको करनेवाले वे ब्रह्मा, विष्णु एवं शिव प्रसन्न हो पुत्ररूपसे अनसूयाके गर्भसे उत्पन्न हुए। समय पूर्ण होनेपर मुनीश्वरके द्वारा अनसूयासे ब्रह्माके अंशसे चन्द्रमा उत्पन्न हुए, किंतु देवताओंके द्वारा समुद्रमें डाल देनेके कारण वे पुनः समुद्रसे उत्पन्न हुए॥ २४-२५॥

विष्णोरंशात् स्त्रियां तस्यामत्रेर्दत्तो व्यजायत।
संन्यासपद्धतिर्येन वर्द्धिता परमा मुने॥ २६

हे मुने! विष्णुके अंशसे अत्रिके द्वारा उन अनसूयासे दत्तात्रेय उत्पन्न हुए, जिन्होंने सर्वोत्तम संन्यासपद्धतिका संवर्धन किया॥ २६॥

दुर्वासा मुनिशार्दूलः शिवांशान्मुनिसत्तम।
जज्ञे तस्यां स्त्रियामत्रेर्वरधर्मप्रवर्तकः॥ २७
भूत्वा रुद्रश्च दुर्वासा ब्रह्मतेजोविवर्द्धनः।
चक्रे धर्मपरीक्षां च बहूनां स दयापरः॥ २८

हे मुनिसत्तम! अत्रिके द्वारा उन अनसूयासे शिवके अंशसे श्रेष्ठ धर्मका प्रचार करनेवाले मुनिश्रेष्ठ दुर्वासा उत्पन्न हुए। रुद्रने दुर्वासाके रूपमें प्रकट होकर ब्रह्मतेजको बढ़ाया और दयापूर्वक बहुतोंके धर्मकी परीक्षा भी ली॥ २७-२८॥

सूर्यवंशे समुत्पन्नो योऽम्बरीषो नृपोऽभवत्।
तत्परीक्षामकार्षीत्स तां शृणु त्वं मुनीश्वर॥ २९

हे मुनीश्वर! सूर्यवंशमें उत्पन्न जो अम्बरीष नामक राजा थे, उनकी परीक्षा दुर्वासाने ली थी; उस आख्यानको आप सुनिये॥ २९॥

सोऽम्बरीषो नृपवरः सप्तद्वीपरसापतिः।
नियमं हि चकारासावेकादश्यां व्रते दृढम्॥ ३०
एकादश्या व्रतं कृत्वा द्वादश्यां चैव पारणाम्।
करिष्यामीति सुदृढसंकल्पस्तु नराधिपः॥ ३१

वे नृपश्रेष्ठ अम्बरीष सात द्वीपोंवाली पृथ्वीके स्वामी थे। एकादशीके व्रतमें स्थित होकर वे दृढ़ नियमका पालन करते थे। उन राजाका यह दृढ़ संकल्प था कि मैं एकादशीव्रतकर द्वादशीको पारण करूँगा॥ ३०-३१॥

ज्ञात्वा तन्नियमं तस्य दुर्वासा मुनिसत्तमः।
तदन्तिकं गतः शिष्यैर्बहुभिः शङ्करांशजः॥ ३२

शंकरजीके अंशसे उत्पन्न हुए मुनिश्रेष्ठ दुर्वासा उनके उस नियमको जानकर अपने अनेक शिष्योंको साथ ले उनके समीप गये॥ ३२॥

पारणे द्वादशीं स्वल्पां ज्ञात्वा यावत्स भोजनम्।
कर्त्तुं व्यवसितस्तावदागतं स न्यमन्त्रयत्॥ ३३

उस दिन स्वल्प द्वादशी जानकर राजाने [पारण करनेके लिये] ज्यों ही भोजन करनेका विचार किया, उसी समय शिष्योंसहित दुर्वासा वहाँ आ पहुँचे, तब राजाने उन्हें भोजनके लिये निमन्त्रित किया॥ ३३॥

ततः स्नानार्थमगमद्दुर्वासाः शिष्यसंयुतः।
विलम्बं कृतवांस्तत्र परीक्षार्थं मुनिर्बहु॥ ३४

इसके बाद मुनि दुर्वासा शिष्योंके साथ स्नान करनेके लिये चले गये और राजाकी परीक्षा लेनेके लिये उन्होंने वहाँ बहुत विलम्ब कर दिया॥ ३४॥

धर्मविघ्नं तदा ज्ञात्वा स नृपः शास्त्रशासनात्।
जलं प्राश्यास्थितस्तत्र तदागमनकांक्षया॥ ३५

तब धर्ममें विघ्न जानकर राजा शास्त्रकी आज्ञासे जलका प्राशन करके दुर्वासाके आगमनकी प्रतीक्षा करने लगे॥ ३५॥

एतस्मिन्नन्तरे तत्र दुर्वासा मुनिरागतः।
कृताशनं नृपं ज्ञात्वा परीक्षार्थं धृताकृतिः॥ ३६

चुक्रोधाति नृपे तस्मिन्परीक्षार्थं वृषस्य सः।
प्रोवाच वचनं तूग्रं स मुनिः शङ्करांशजः॥ ३७

इसी बीच महर्षि दुर्वासा वहाँ आ पहुँचे और राजाको जलप्राशन किया जानकर उनकी परीक्षा लेनेके लिये [महर्षिने भयानक] आकृति धारण कर ली और अत्यन्त क्रुद्ध हो गये। शिवके अंशसे उत्पन्न हुए वे दुर्वासा धर्मकी परीक्षा करनेके उद्देश्यसे राजासे कठोर वचन कहने लगे॥ ३६-३७॥

दुर्वासा उवाच

मां निमन्त्र्य नृपाभोज्य जलं पीतं त्वयाधम।
दर्शयामि फलं तस्य दुष्टदण्डधरो ह्यहम्॥ ३८

दुर्वासा बोले—हे अधम नृप! तुमने मुझे निमन्त्रण देकर बिना भोजन कराये ही जल पी लिया। मैं तुम्हें उसका फल दिखाता हूँ; क्योंकि मैं दुष्टोंको दण्ड देनेवाला हूँ॥ ३८॥

इत्युक्त्वा क्रोधताम्राक्षो नृपं दग्धुं समुद्यतः।
समुत्तस्थौ द्रुतं चक्रं तत्स्थं रक्षार्थमैश्वरम्॥ ३९

इतना कहकर क्रोधसे लाल नेत्रोंवाले वे ज्यों ही राजाको भस्म करनेके लिये उद्यत हुए, इतनेमें ही राजाके भीतर रहनेवाला ईश्वरका चक्र उनकी रक्षाके लिये शीघ्रतासे प्रकट हो गया॥ ३९॥

प्रजज्वालाति तं चक्रं मुनिं दग्धुं सुदर्शनम्।
शिवरूपं तमज्ञात्वा शिवमायाविमोहितम्॥ ४०

एतस्मिन्नन्तरे व्योमवाण्युवाचाशरीरिणी।
अम्बरीषं महात्मानं ब्रह्मभक्तं च वैष्णवम्॥ ४१

वह सुदर्शन चक्र शिवमायासे विमोहित शिवस्वरूप मुनि दुर्वासाको न जानकर उन्हें जलानेके लिये भयंकर रूपमें जल उठा। इसी समय अशरीरी आकाशवाणीने विष्णुप्रिय ब्राह्मणभक्त महात्मा अम्बरीषसे कहा—॥ ४०-४१॥

व्योमवाण्युवाच

सुदर्शनमिदं चक्रं हरये शम्भुनार्पितम्।
शान्तं कुरु प्रज्वलितमद्य दुर्वाससे नृप॥ ४२

आकाशवाणी बोली—हे राजन्! शिवजीने ही यह सुदर्शन चक्र विष्णुको प्रदान किया है; दुर्वासाको जलानेके लिये प्रज्वलित चक्रको इस समय शीघ्र शान्त कीजिये॥ ४२॥

दुर्वासायं शिवः साक्षात्स चक्रं हरयेऽर्पितम्।
एवं साधारणमुनिं न जानीहि नृपोत्तम॥ ४३

तव धर्मपरीक्षार्थमागतोऽयं मुनीश्वरः।
शरणं याहि तस्याशु भविष्यत्यन्यथा लयः॥ ४४

ये दुर्वासा साक्षात् शिव हैं; इन्होंने ही विष्णुको यह चक्र प्रदान किया है। हे नृपश्रेष्ठ! इन्हें सामान्य मुनि मत समझिये। ये मुनीश्वर आपके धर्मकी परीक्षाके लिये आये हैं, अतः शीघ्र ही इनकी शरणमें जाइये, नहीं तो प्रलय हो जायगा॥ ४३-४४॥

नन्दीश्वर उवाच

इत्युक्त्वा च नभोवाणी विरराम मुनीश्वर।
अस्तावीत्स हरांशं तमम्बरीषोऽपि चादरात्॥ ४५

नन्दीश्वर बोले—हे मुनीश्वर! ऐसा कहकर आकाशवाणी शान्त हो गयी, तब वे अम्बरीष भी शिवके अंशस्वरूप उन मुनिकी स्तुति आदरसे करने लगे॥ ४५॥

अम्बरीष उवाच

यद्यस्ति दत्तमिष्टं च स्वधर्मो वा स्वनुष्ठितः।
कुलं नो विप्रदैवं चेद्धरेरस्त्रं प्रशाम्यतु॥ ४६

अम्बरीषजी बोले—यदि मैंने दान किया है, इष्टापूर्त किया है, अपने धर्मका भलीभाँति अनुष्ठान किया है और हमारा कुल ब्रह्मण्य है, तो विष्णुका यह अस्त्र शान्त हो जाय॥ ४६॥

यदि नो भगवान्प्रीतो मद्भक्तो भक्तवत्सलः।
सुदर्शनमिदं चास्त्रं प्रशाम्यतु विशेषतः॥ ४७

यदि मेरे द्वारा सेवित भक्तवत्सल भगवान् मुझपर प्रसन्न हैं तो यह सुदर्शनचक्र विशेष रूपसे शान्त हो जाय॥ ४७॥

नन्दीश्वर उवाच

इति स्तुवति रुद्राग्रे शैवं चक्रं सुदर्शनम्।
अशाम्यत्सर्वथा ज्ञात्वा तं शिवांशं सुलब्धधीः॥ ४८

नन्दीश्वर बोले—हे मुनीश्वर! इस प्रकार रुद्रांशभूत दुर्वासाके आगे अम्बरीषके स्तुति करनेपर [आकाशवाणीसे] प्रेरित बुद्धिवाला वह शैव सुदर्शन चक्र उन्हें शिवांश जानकर पूर्ण रूपसे शान्त हो गया॥ ४८॥

अथाम्बरीषः स नृपः प्रणनाम च तं मुनिम्।
शिवावतारं संज्ञाय स्वपरीक्षार्थमागतम्॥ ४९

इसके बाद उन राजा अम्बरीषने अपनी परीक्षाके निमित्त आये हुए उन मुनिको शिवावतार जानकर उन्हें प्रणाम किया॥ ४९॥

सुप्रसन्नो बभूवाथ स मुनिः शङ्करांशजः।
भुक्त्वा तस्मै वरं दत्त्वा स्वाभीष्टं स्वालयं ययौ॥ ५०

अम्बरीषपरीक्षायां दुर्वासश्चरितं मुने।
प्रोक्तमन्यच्चरित्रं त्वं शृणु तस्य मुनीश्वर॥ ५१

तदनन्तर शिवजीके अंशसे उत्पन्न वे मुनि अत्यन्त प्रसन्न हो गये और भोजन करके अभीष्ट वर प्रदानकर अपने स्थानको चले गये। हे मुने! मैंने अम्बरीषकी परीक्षामें दुर्वासाका चरित्र कह दिया। हे मुनीश्वर! अब आप उनका दूसरा चरित्र सुनिये॥ ५०-५१॥

पुनर्दाशरथेश्चक्रे परीक्षां नियमेन वै।
मुनिरूपेण कालेन यः कृतो नियमो मुने॥ ५२

तत्पश्चात् उन्होंने दशरथपुत्र रामकी नियमसे परीक्षा ली। काल जब मुनिका रूप धारणकर श्रीरामचन्द्रजीसे भेंट करनेके लिये पहुँचा, तब उसने रामसे एक अनुबन्ध किया [और कहा—मैं आपसे कुछ बात करूँगा। किंतु यदि उस समय कोई तीसरा पहुँचा तो वह आपका वध्य होगा। रामचन्द्रजीने तथास्तु कहकर लक्ष्मणको पहरेपर नियुक्त कर दिया और कालसे एकान्तमें बातचीत करने लगे। इसी बीच वहाँ दुर्वासा पहुँचे।] उन्होंने लक्ष्मणसे कहा—मैं आवश्यक कार्यसे रामचन्द्रसे मिलना चाहता

तदैव मुनिना तेन सौमित्रिः प्रेषितो हठात्।
तं तत्याज द्रुतं रामो बन्धुं प्रणवशान्मुने॥ ५३

हूँ। लक्ष्मणजीने इधर रामकी प्रतिज्ञा, उधर दुर्वासाका शाप—इस प्रकार दोनों ओरसे असमंजसमें पड़कर विचार किया कि ब्रह्मशापसे दग्ध होना अच्छा नहीं, अतः उन्होंने दुर्वासाके आनेका समाचार श्रीरामको दे दिया। हे मुने! इस प्रकार दुर्वासाके द्वारा हठपूर्वक भेजे जानेपर श्रीरामने अपनी प्रतिज्ञाके अनुसार तत्क्षण लक्ष्मणको त्याग दिया॥ ५२-५३॥

सा कथा विदिता लोके मुनिभिर्बहुधोदिता।
नातो मे विस्तरात्प्रोक्ता ज्ञाता यत्सर्वथा बुधैः॥ ५४

महर्षियोंने यह कथा बहुधा कही है, जिसके कारण यह लोकमें प्रसिद्ध है। अतः इसे विस्तारसे नहीं कहा; क्योंकि बुद्धिमान् लोग तो इस कथाको जानते ही हैं॥ ५४॥

नियमं सुदृढं दृष्ट्वा सुप्रसन्नोऽभवन्मुनिः।
दुर्वासा सुप्रसन्नात्मा वरं तस्मै प्रदत्तवान्॥ ५५

महर्षि दुर्वासा उनके इस अत्यन्त दृढ़ नियमको देखकर सन्तुष्ट हुए और प्रसन्नचित्त हो उन्हें वर प्रदान किया॥ ५५॥

श्रीकृष्णनियमस्यापि परीक्षां स चकार ह।
तां शृणु त्वं मुनिश्रेष्ठ कथयामि कथां च ताम्॥ ५६

ब्रह्मप्रार्थनया विष्णुर्वसुदेवसुतोऽभवत्।
धराभारावतारार्थं साधूनां रक्षणाय च॥ ५७

हे मुनिश्रेष्ठ! उन्होंने श्रीकृष्णके नियमकी भी परीक्षा ली थी; मैं उस कथाको कह रहा हूँ, आप उसे सुनिये। ब्रह्माजीकी प्रार्थनासे पृथ्वीका भार उतारनेके लिये एवं साधुओंकी रक्षा करनेके लिये भगवान् विष्णु वसुदेवके पुत्ररूपमें अवतरित हुए॥ ५६-५७॥

हत्वा दुष्टान्महापापान् ब्रह्मद्रोहकरान्खलान्।
ररक्ष निखिलान्साधून्ब्राह्मणान्कृष्णनामभाक्॥ ५८

श्रीकृष्ण नामवाले विष्णुने ब्रह्मद्रोही खलों, दुष्टों एवं महापापियोंका संहार करके समस्त साधुओं एवं ब्राह्मणोंकी रक्षा की॥ ५८॥

ब्रह्मभक्तिं चकाराति स कृष्णो वसुदेवजः।
नित्यं हि भोजयामास सुरसान्ब्राह्मणान्बहून्॥ ५९

वे वसुदेवपुत्र श्रीकृष्ण ब्राह्मणोंके प्रति अत्यधिक भक्ति रखते थे और प्रतिदिन बहुत-से ब्राह्मणोंको सरस भोजन कराते थे॥ ५९॥

ब्रह्मभक्तो विशेषेण कृष्णश्चेति प्रथामगात्।
सन्द्रष्टुकामः स मुनिः कृष्णान्तिकमगान्मुने॥ ६०

'श्रीकृष्ण ब्राह्मणोंके विशेषरूपसे भक्त हैं' जब वे इस प्रसिद्धिको प्राप्त हुए, तब हे मुने! उन्हें देखनेकी इच्छासे वे (दुर्वासा) मुनि कृष्णके पास पहुँचे॥ ६०॥

रुक्मिणीसहितं कृष्णं सन्नं कृत्वा रथे स्वयम्।
संयोज्य संस्थितो वाहं सुप्रसन्न उवाह तम्॥ ६१

उन्होंने श्रीकृष्ण एवं रुक्मिणीको रथमें जोत दिया और उस रथपर स्वयं सवार होकर [उन्हें] हाँकने लगे। श्रीकृष्ण [एवं रुक्मिणी]-ने बड़ी प्रसन्नताके साथ उस रथका वहन किया॥ ६१॥

मुनी रथात्समुत्तीर्य दृष्ट्वा तां दृढतां पराम्।
तस्मै भूत्वा सुप्रसन्नो वज्राङ्गत्ववरं ददौ॥ ६२

[ब्राह्मणके विषयमें] उन दोनोंकी इतनी बड़ी दृढ़ता देखकर रथसे उतरकर मुनिने प्रसन्न हो उन्हें वज्रके समान अंगवाला होनेका वर दिया॥ ६२॥

द्युनद्यामेकदा स्नानं कुर्वन्नग्नो बभूव ह।
लज्जितोऽभून्मुनिश्रेष्ठो दुर्वासाः कौतुकी मुने॥ ६३

हे मुने! एक समय गंगाजीमें स्नान करते हुए मुनिश्रेष्ठ दुर्वासा नग्न हो गये थे; उस समय वे कौतुकी मुनि लज्जाका अनुभव करने लगे॥ ६३॥

तज्ज्ञात्वा द्रौपदी स्नानं कुर्वती तत्र चादरात्।
तल्लज्जां छादयामास भिन्नस्वाञ्चलदानतः॥ ६४

उस समय वहाँ स्नान कर रही द्रौपदीने यह जानकर अपना आँचल फाड़कर तथा उसे आदरपूर्वक प्रदान करके उनकी लज्जाको ढँक दिया था॥ ६४॥

तदादाय प्रवाहेनागतं स्वनिकटं मुनिः।
तेनाच्छाद्य स्वगुह्यं च तस्यै तुष्टो बभूव सः॥ ६५

द्रौपद्यै च वरं प्रादात्तदञ्चलविवर्द्धनम्।
पाण्डवान्सुखिनश्चक्रे द्रौपदी तद्वरात्पुनः॥ ६६

इस प्रकार प्रवाहके द्वारा अपने समीप आये उस वस्त्रको लेकर वे मुनि अपने गुह्य अंगको उससे ढँककर उस [द्रौपदी]-पर प्रसन्न हुए और उन्होंने द्रौपदीको उसके आँचलके बढ़नेका वर दिया। समय आनेपर उसी वरदानके प्रभावसे द्रौपदीने पाण्डवोंको सुखी बनाया॥ ६५-६६॥

हंसडिम्भौ नृपौ कौचित्स्वावमानकरौ खलौ।
दत्त्वा निदेशं च हरेर्नाशयामास स प्रभुः॥ ६७

हंस एवं डिम्भ नामक महाखल कोई दो राजा थे। उन्होंने दुर्वासाका अनादर किया। तब इन्हीं दुर्वासाने श्रीकृष्णको सन्देश देकर उनका नाश करवाया॥ ६७॥

ब्रह्मतेजो विशेषेण स्थापयामास भूतले।
संन्यासपद्धतिं चैव यथाशास्त्रविधिक्रमम्॥ ६८

उन्होंने पृथ्वीपर विशेषरूपसे ब्रह्मतेज और शास्त्रकी रीतिके अनुसार संन्यासपद्धतिकी स्थापना की॥ ६८॥

बहूनुद्धारयामास सूपदेशं विबोध्य च।
ज्ञानं दत्त्वा विशेषेण बहून्मुक्तांश्चकार सः॥ ६९

उन्होंने अत्यन्त सुन्दर उपदेश देकर बहुतोंका उद्धार किया और विशेष रूपसे ज्ञान देकर बहुतोंको मुक्त भी कर दिया॥ ६९॥

इत्थं चक्रे स दुर्वासा विचित्रं चरितं बहु।
धन्यं यशस्यमायुष्यं शृण्वतः सर्वकामदम्॥ ७०

इस प्रकार उन दुर्वासाने अनेक विचित्र चरित्र किये। [दुर्वासाका] यह चरित्र श्रवण करनेवालेको धन, यश तथा आयु प्रदान करनेवाला और सम्पूर्ण कामनाओंको देनेवाला है॥ ७०॥

य इदं शृणुयाद्भक्त्या दुर्वासश्चरितं मुदा।
श्रावयेद्वा परान् यश्च स सुखीह परत्र च॥ ७१

जो दुर्वासाके इस चरित्रको प्रीतिपूर्वक सुनता है अथवा जो प्रसन्नतापूर्वक दूसरोंको सुनाता है, वह इस लोकमें एवं परलोकमें सुखी रहता है॥ ७१॥

इति श्रीशिवमहापुराणे तृतीयायां शतरुद्रसंहितायां दुर्वासश्चरितवर्णनं नामैकोनविंशोऽध्यायः॥ १९॥

॥ इस प्रकार श्रीशिवमहापुराणके अन्तर्गत तृतीय शतरुद्रसंहितामें दुर्वासाचरित-वर्णन नामक उन्नीसवाँ अध्याय पूरा हुआ॥ १९॥

अथ विंशोऽध्यायः

शिवजीका हनुमान्‌के रूपमें अवतार तथा उनके चरितका वर्णन

नन्दीश्वर उवाच

अतः परं शृणु प्रीत्या हनुमच्चरितं मुने।
यथा चकाराशु हरो लीलास्तद्रूपतो वराः॥ १

नन्दीश्वर बोले—हे मुने! अब इसके पश्चात् शिवजीने जिस प्रकार हनुमान्‌जीके रूपमें अवतार लेकर मनोहर लीलाएँ कीं, उस हनुमच्चरित्रको प्रेमपूर्वक सुनिये॥ १॥

चकार सुहितं प्रीत्या रामस्य परमेश्वरः।
तत्सर्वं चरितं विप्र शृणु सर्वसुखावहम्॥ २

उन परमेश्वरने प्रेमपूर्वक [हनुमद्रूपसे] श्रीरामका परम हित किया, हे विप्र! सर्वसुखकारी उस सम्पूर्ण चरित्रका श्रवण कीजिये॥ २॥

एकस्मिन्समये शम्भुरद्भुतोतिकरः प्रभुः।
ददर्श मोहिनीरूपं विष्णोः स हि वसेद्गुणः॥ ३

एक बार अत्यन्त अद्भुत लीला करनेवाले तथा सर्वगुणसम्पन्न उन भगवान् शिवने विष्णुके मोहिनी रूपको देखा॥ ३॥

चक्रे स्वं क्षुभितं शम्भुः कामबाणहतो यथा।
स्वं वीर्यं पातयामास रामकार्यार्थमीश्वरः॥ ४

[उस मोहिनी रूपको देखते ही] कामबाणसे आहतकी भाँति शम्भुने अपनेको विक्षुब्ध कर दिया और उन ईश्वरने श्रीरामके कार्यके लिये अपने तेजका उत्सर्ग कर दिया॥ ४॥

तद्वीर्यं स्थापयामासुः पत्रे सप्तर्षयश्च ते।
प्रेरिता मनसा तेन रामकार्यार्थमादरात्॥ ५

शिवजीके मनकी प्रेरणासे प्रेरित हुए सप्तर्षियोंने उनके तेजको रामकार्यके लिये आदरपूर्वक पत्तेपर स्थापित कर दिया॥ ५॥

तैर्गौतमसुतायां तद्वीर्यं शम्भोर्महर्षिभिः।
कर्णद्वारा तथाञ्जन्यां रामकार्यार्थमाहितम्॥ ६

तत्पश्चात् उन महर्षियोंने शम्भुके उस तेजको श्रीरामके कार्यके लिये गौतमकी कन्या अंजनीमें कानके माध्यमसे स्थापित कर दिया॥ ६॥

ततश्च समये तस्माद्धनूमानिति नामभाक्।
शम्भुर्जज्ञे कपितनुर्महाबलपराक्रमः॥ ७

समय आनेपर वह शम्भुतेज महान् बल तथा पराक्रमवाला और वानर शरीरवाला होकर हनुमान्के नामसे प्रकट हुआ॥ ७॥

हनूमान्स कपीशानः शिशुरेव महाबलः।
रविबिम्बं बभक्षाशु ज्ञात्वा लघुफलं प्रगे॥ ८

वे महाबलवान् कपीश्वर हनुमान् जब शिशु ही थे, उसी समय प्रातःकाल उदय होते हुए सूर्यबिम्बको छोटा फल जानकर निगल गये थे॥ ८॥

देवप्रार्थनया तं सोऽत्यजज्ज्ञात्वा महाबलम्।
शिवावतारं च प्राप वरान्दत्तान् सुरर्षिभिः॥ ९

तब देवताओंकी प्रार्थनासे उन्होंने सूर्यको उगल दिया। उन्हें महाबली शिवावतार जानकर देवताओं तथा ऋषियोंके द्वारा प्रदत्त वरोंको उन्होंने प्राप्त किया॥ ९॥

स्वजनन्यन्तिकं प्रागादथ सोऽतिप्रहर्षितः।
हनूमान्सर्वमाचख्यौ तस्यै तद् वृत्तमादरात्॥ १०

तत्पश्चात् अत्यन्त प्रसन्न हनुमान्जी अपनी माताके निकट गये और आदरपूर्वक उनसे वह वृत्तान्त कह सुनाया॥ १०॥

तदाज्ञया ततो धीरः सर्वविद्यामयत्नतः।
सूर्यात्पपाठ स कपिर्गत्वा नित्यं तदन्तिकम्॥ ११

इसके बाद माताकी आज्ञासे नित्यप्रति सूर्यके पास जाकर धैर्यशाली हनुमान्जीने बिना यत्नके ही उनसे सारी विद्याएँ पढ़ लीं॥ ११॥

सूर्याज्ञया तदंशस्य सुग्रीवस्यान्तिकं ययौ।
मातुराज्ञामनुप्राप्य रुद्रांशः कपिसत्तमः॥ १२

ज्येष्ठभ्रात्रा वालिना हि स्वस्त्रीभोक्त्रा तिरस्कृतः।
ऋष्यमूकगिरौ तेन न्यवसत्स हनूमता॥ १३

उसके बाद माताकी आज्ञा प्राप्तकर रुद्रके अंशभूत कपिश्रेष्ठ हनुमान्जी सूर्यकी आज्ञासे [प्रेरित हो] सूर्यके अंशसे उत्पन्न हुए सुग्रीवके पास गये। वे सुग्रीव अपने ज्येष्ठ भ्राता वालि, जिसने उनकी स्त्रीका बलात् हरण कर लिया था, तिरस्कृत हो ऋष्यमूक पर्वतपर हनुमान्जीके साथ निवास करने लगे॥ १२-१३॥

ततोऽभूत्स सुकण्ठस्य मन्त्री कपिवरः सुधीः।
सर्वथा सुहितं चक्रे सुग्रीवस्य हरांशजः॥ १४

तब वे सुग्रीवके मन्त्री हो गये। शिवजीके अंशसे उत्पन्न परम बुद्धिमान् कपिश्रेष्ठ हनुमान्जीने सब प्रकारसे सुग्रीवका हित किया। उन्होंने भाई [लक्ष्मण]

तत्रागतेन सभ्रात्रा हृतभार्येण दुःखिना।
कारयामास रामेण तस्य सख्यं सुखावहम्॥ १५

घातयामास रामश्च वालिनं कपिकुञ्जरम्।
भ्रातृपत्न्याश्च भोक्तारं पापिनं वीरमानिनम्॥ १६

ततो रामाज्ञया तात हनूमान्वानरेश्वरः।
स सीतान्वेषणं चक्रे बहुभिर्वानरैः सुधीः॥ १७

ज्ञात्वा लङ्कागतां सीतां गतस्तत्र कपीश्वरः।
द्रुतमुल्लंघ्य सिंधुं तमनिस्तीर्यं परैः स वै॥ १८

चक्रेऽद्भुतचरित्रं स तत्र विक्रमसंयुतम्।
अभिज्ञानं ददौ प्रीत्या सीतायै स्वप्रभोर्वरम्॥ १९

सीताशोकं जहाराशु स वीरः कपिनायकः।
श्रावयित्वा रामवृत्तं तत्प्राणावनकारकम्॥ २०

तदभिज्ञानमादाय निवृत्तो रामसन्निधिम्।
रावणाराममाहत्य जघान बहुराक्षसान्॥ २१

तदैव रावणसुतं हत्वा सबहुराक्षसम्।
स महोपद्रवं चक्रे महोतिस्तत्र निर्भयः॥ २२

यदा दग्धो रावणेनावगुण्ठ्य वसनानि च।
तैलाभ्यक्तानि सुदृढं महाबलवता मुने॥ २३

उत्प्लुत्योत्प्लुत्य च तदा महादेवांशजः कपिः।
ददाह लंकां निखिलां कृत्वा व्याजं तमेव हि॥ २४

दग्ध्वा लंकां वंचयित्वा विभीषणगृहं ततः।
अपतद्वारिधौ वीरस्ततः स कपिकुञ्जरः॥ २५

स्वपुच्छं तत्र निर्वाप्य प्राप तस्य परं तटम्।
अखिन्नः स ययौ रामसन्निधिं गिरिशांशजः॥ २६

अविलंबेन सुजवो हनूमान् कपिसत्तमः।
रामोपकण्ठमागत्य ददौ सीताशिरोमणिम्॥ २७

के साथ वहाँ आये हुए अपहृत पत्नीवाले दुखी रामके साथ उनकी सुखदायी मित्रता करवायी॥ १४-१५॥

रामचन्द्रजीने भाईकी स्त्रीके साथ रमण करनेवाले, महापापी एवं अपनेको वीर माननेवाले कपिराज वालिका वध कर दिया॥ १६॥

हे तात! तदनन्तर वे महाबुद्धिमान् वानरेश्वर हनुमान् रामचन्द्रजीकी आज्ञासे बहुतसे वानरोंके साथ सीताकी खोजमें लग गये॥ १७॥

सीताको लंकामें विद्यमान जानकर वे कपीश्वर दूसरोंके द्वारा न लाँघे जा सकनेवाले उस समुद्रको बड़ी शीघ्रतासे लाँघकर वहाँ गये॥ १८॥

वहाँ उन्होंने पराक्रमयुक्त अद्भुत कार्य किया और जानकीको प्रीतिपूर्वक अपने प्रभुका उत्तम [मुद्रिकारूप] चिह्न प्रदान किया। जानकीके प्राणोंकी रक्षा करनेवाला रामवृत्त सुनाकर उन वीर वानरनायकने शीघ्र ही उनके शोकको दूर कर दिया॥ १९-२०॥

उन्होंने रावणकी अशोकवाटिका उजाड़कर बहुत-से राक्षसोंका वध कर दिया; फिर सीतासे स्मरणचिह्न लेकर रामचन्द्रके पास लौटने लगे॥ २१॥

उस समय महालीला करनेवाले उन्होंने अत्यन्त निर्भय होकर रावणके पुत्र तथा अनेक राक्षसोंको मारकर वहाँ लंकामें महान् उपद्रव किया॥ २२॥

हे मुने! जब महाबलशाली रावणने तैलसे सने हुए वस्त्रोंको उनकी पूँछमें दृढ़तापूर्वक लपेटकर उसमें आग लगा दी, तब महादेवके अंशसे उत्पन्न हनुमान्‌जीने इसी बहानेसे कूद-कूदकर समस्त लंकाको जला दिया॥ २३-२४॥

तदनन्तर वे कपिश्रेष्ठ वीर हनुमान् [केवल] विभीषणके घरको छोड़कर सारी लंकाको जला करके समुद्रमें कूद पड़े॥ २५॥

वहाँ अपनी पूँछ बुझाकर शिवके अंशसे उत्पन्न वे समुद्रके दूसरे किनारेपर आये और प्रसन्न होकर श्रीरामजीके पास गये॥ २६॥

सुन्दर वेगवाले कपिश्रेष्ठ हनुमान्‌जीने शीघ्रतापूर्वक श्रीरामके निकट जाकर उन्हें सीताजीकी चूड़ामणि प्रदान की॥ २७॥

ततस्तदाज्ञया वीरः सिन्धौ सेतुमबन्धयत्।
वानरैः स समानीय बहून् गिरिवरान् बली॥ २८

तत्पश्चात् उनकी आज्ञासे वानरोंके साथ उन बलवान् तथा वीर हनुमान्‌जीने अनेक विशाल पर्वतोंको लाकर समुद्रपर पुल बाँधा॥ २८॥

गत्वा तत्र ततो रामस्तर्तुकामो यथा ततः।
शिवलिंगं समानर्च प्रतिष्ठाप्य जयेप्सया॥ २९

तब पार जानेकी कामनावाले श्रीरामचन्द्रजीने विजय प्राप्त करनेकी इच्छासे शिवलिंगको यथाविधि प्रतिष्ठितकर तदुपरान्त उसका पूजन किया॥ २९॥

तद्वरात्स जयं प्राप्य वरं तीर्त्वोदधिं ततः।
लंकामावृत्य कपिभी रणं चक्रे स राक्षसैः॥ ३०

तत्पश्चात् उन्होंने पूज्यतम शिवजीसे विजयका वरदान प्राप्त करके समुद्र पारकर वानरोंके साथ लंकाको घेरकर राक्षसोंसे युद्ध किया॥ ३०॥

जघानाथासुरान्वीरो रामसैन्यं ररक्ष सः।
शक्तिक्षतं लक्ष्मणं च संजीविन्या ह्यजीवयत्॥ ३१

उन वीर हनुमान्‌ने राक्षसोंका वध किया, श्रीरामचन्द्रजीकी सेनाकी रक्षा की तथा शक्तिसे घायल लक्ष्मणको संजीवनी बूटीके द्वारा पुनः जीवित कर दिया॥ ३१॥

सर्वथा सुखिनं चक्रे सरामं लक्ष्मणं हि सः।
सर्वसैन्यं ररक्षासौ महादेवात्मजः प्रभुः॥ ३२

इस प्रकार महादेवके पुत्र प्रभु उन हनुमान्‌जीने लक्ष्मणसहित श्रीरामजीको सब प्रकारसे सुखी बनाया और सम्पूर्ण सेनाकी रक्षा की॥ ३२॥

रावणं परिवाराढ्यं नाशयामास विश्रमः।
सुखीचकार देवान्स महाबलग्रहः कपिः॥ ३३

महान् बल धारण करनेवाले उन कपिने बिना श्रमके परिवारसहित रावणका विनाश किया और देवताओंको सुखी बनाया॥ ३३॥

महिरावणसंज्ञं स हत्वा रामं सलक्ष्मणम्।
तत्स्थानादानयामास स्वस्थानं परिपाल्य च॥ ३४

उन्होंने महिरावण नामक राक्षसको मारकर लक्ष्मणसहित रामकी रक्षा करके उसके स्थानसे उन्हें अपने स्थानपर ला दिया॥ ३४॥

रामकार्यं चकाराशु सर्वथा कपिपुङ्गवः।
असुरान्नमयामास नानालीलां चकार च॥ ३५

इस प्रकार उन कपिपुंगवने सब प्रकारसे श्रीरामका कार्य शीघ्र ही सम्पन्न किया, असुरोंका वध किया एवं नाना प्रकारकी लीलाएँ कीं॥ ३५॥

स्थापयामास भूलोके रामभक्तिं कपीश्वरः।
स्वयं भक्तवरो भूत्वा सीतारामसुखप्रदः॥ ३६

सीतारामको सुख देनेवाले वानरराजने स्वयं श्रेष्ठ भक्त होकर भूलोकमें रामभक्तिकी स्थापना की॥ ३६॥

लक्ष्मणप्राणदाता च सर्वदेवमदापहः।
रुद्रावतारो भगवान्भक्तोद्धारकरः स वै॥ ३७

वे लक्ष्मणके प्राणोंके रक्षक, सभी देवताओंका गर्व चूर करनेवाले, रुद्रके अवतार, भगवत्स्वरूप और भक्तोंका उद्धार करनेवाले थे॥ ३७॥

हनुमान्स महावीरो रामकार्यकरः सदा।
रामदूताभिधो लोके दैत्यघ्नो भक्तवत्सलः॥ ३८

वे हनुमान्‌जी महावीर, सदा रामका कार्य सिद्ध करनेवाले, लोकमें रामदूतके रूपमें विख्यात, दैत्योंका संहार करनेवाले तथा भक्तवत्सल थे॥ ३८॥

इति ते कथितं तात हनुमच्चरितं वरम्।
धन्यं यशस्यमायुष्यं सर्वकामफलप्रदम्॥ ३९

हे तात! इस प्रकार मैंने हनुमान्‌जीका श्रेष्ठ चरित्र कहा, जो धन, यश, आयु तथा सम्पूर्ण कामनाओंका फल देनेवाला है॥ ३९॥

य इदं शृणुयाद्भक्त्या श्रावयेद्वा समाहितः।
स भुक्त्वेहाखिलान्कामान् अन्ते मोक्षं लभेत्परम्॥ ४०

जो सावधान होकर भक्तिपूर्वक इसे सुनता है अथवा सुनाता है, वह इस लोकमें सभी सुखोंको भोगकर अन्तमें परम मोक्षको प्राप्त करता है॥ ४०॥

इति श्रीशिवमहापुराणे तृतीयायां शतरुद्रसंहितायां हनुमदवतारचरित्रवर्णनं नाम विंशोऽध्यायः॥ २०॥

॥ इस प्रकार श्रीशिवमहापुराणके अन्तर्गत तृतीय शतरुद्रसंहितामें हनुमदवतारचरित्र-वर्णन नामक बीसवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ २०॥

अथैकविंशोऽध्यायः

शिवजीके महेशावतार-वर्णनक्रममें अम्बिकाके शापसे भैरवका वेतालरूपमें पृथ्वीपर अवतरित होना

नन्दीश्वर उवाच

अथ प्रीत्या शृणु मुनेऽवतारं परमं प्रभोः।
शङ्करस्यात्मभूपुत्र शृण्वतां सर्वकामदम्॥ १

नन्दीश्वर बोले—हे मुने! हे ब्रह्मपुत्र! अब शिवजीके एक और श्रेष्ठ अवतारको प्रीतिपूर्वक सुनिये, जो सुननेवालोंकी सभी कामनाओंको पूर्ण करनेवाला है॥ १॥

एकदा मुनिशार्दूल गिरिजाशङ्करावुभौ।
विहर्तुकामौ संजातौ स्वेच्छया परमेश्वरौ॥ २

भैरवं द्वारपालं च कृत्वाभ्यन्तरमागतौ।
नानासखिगणैः प्रीत्या सेवितौ नरशीलितौ॥ ३

हे मुनिशार्दूल! एक बार परमेश्वर शिव एवं गिरिजा अपनी इच्छासे विहार करनेके लिये तत्पर हुए। भैरवको द्वारपालके रूपमें स्थापितकर वे भीतर आ गये और अनेक सखियोंसे प्रेमपूर्वक सेवित हो मनुष्यके समान लीला करने लगे॥ २-३॥

चिरं विहृत्य तत्र द्वौ स्वतन्त्रौ परमेश्वरौ।
बभूवतुः प्रसन्नौ तौ नानालीलाकरौ मुने॥ ४

हे मुने! इस प्रकार वहाँ बहुत कालतक विहारकर अनेक प्रकारकी लीला करनेवाले तथा स्वतन्त्र वे दोनों ही परमेश्वर परम प्रसन्न हुए॥ ४॥

अथोन्मत्ताकृतिर्देवी स्वतन्त्रा लीलया शिवा।
आगता द्वारि तद्रूपा प्रभोराज्ञामवाप सा॥ ५

तदनन्तर परम स्वतन्त्र वे शिवा लीलावशात् उन्मत्त वेषमें शिवजीकी आज्ञासे द्वारपर आयीं॥ ५॥

तां देवीं भैरवः सोऽथ नारीदृष्ट्या विलोक्य च।
निषिषेध बहिर्गन्तुं तद्रूपेण विमोहितः॥ ६

तब उन देवीको [साधारण] नारीकी दृष्टिसे देखकर उनके [उस उन्मत्त] रूपसे भ्रमित हुए भैरवने उन्हें बाहर जानेसे रोका॥ ६॥

नारीदृष्ट्या सुदृष्टा सा भैरवेण यदा मुने।
क्रुद्धाभवच्छिवा देवी तं शशाप तदाऽम्बिका॥ ७

हे मुने! जब भैरवने [देवीको एक सामान्य] नारीकी दृष्टिसे देखा, तब वे देवी शिवा क्रोधित हो गयीं और उन अम्बिकाने उन्हें शाप दे दिया॥ ७॥

शिवोवाच

नारीदृष्ट्या पश्यसि त्वं यतो मां पुरुषाधम।
अतो भव धरायां हि मानुषस्त्वं च भैरव॥ ८

शिवा बोलीं—हे पुरुषाधम! हे भैरव! तुम मुझे [सामान्य] स्त्रीकी दृष्टिसे देख रहे हो, इसलिये तुम पृथ्वीपर मनुष्यरूप धारण करो॥ ८॥

नन्दीश्वर उवाच

इत्थं यदाभवच्छप्तो भैरवः शिवया मुने।
हाहाकारो महानासीद्दुःखमाप स लीलया॥ ९

नन्दीश्वर बोले—हे मुने! इस प्रकार जब पार्वतीने भैरवको शाप दे दिया, तब महान् हाहाकार मच गया। [पार्वतीकी इस] लीलासे भैरव अत्यन्त दुखी हुए॥ ९॥

ततश्च शङ्करः शीघ्रं तमागत्य मुनीश्वर।
आश्वासयद्भैरवं हि नानानुनयकोविदः॥ १०

तच्छापाद्भैरवः सोऽथ क्षिताववतरन्मुने।
मनुष्ययोन्यां वैतालसंज्ञकः शङ्करेच्छया॥ ११

हे मुनीश्वर! इसके बाद अनेकविध अनुनय-विनयमें प्रवीण श्रीशिवजीने शीघ्रतासे वहाँ आकर भैरवको आश्वस्त किया। हे मुने! तब उस शापसे एवं शिवजीकी इच्छासे वे भैरव पृथ्वीपर मनुष्ययोनिमें वेताल नामसे उत्पन्न हुए॥ १०-११॥

तत्स्नेहतः शिवः सोऽपि क्षिताववतरद्विभुः।
शिवया सह सल्लीलो लौकिकीं गतिमाश्रितः॥ १२

उनके स्नेहसे लौकिक गतिका आश्रय ग्रहणकर उत्तम लीलाओंवाले वे प्रभु शिवजी भी पार्वतीके साथ पृथ्वीपर अवतरित हुए॥ १२॥

महेशाह्वः शिवश्चासीच्छारदा गिरिजा मुने।
सुलीलां चक्रतुः प्रीत्या नानालीलाविशारदौ॥ १३

हे मुने! शिवजी महेश नामसे तथा पार्वतीजी शारदा नामसे प्रसिद्ध हुईं और नाना प्रकारकी लीलाएँ करनेमें प्रवीण वे दोनों प्रेमपूर्वक उत्तम लीला करते रहे॥ १३॥

इति ते कथितं तात महेशचरितं वरम्।
धन्यं यशस्यमायुष्यं सर्वकामफलप्रदम्॥ १४

य इदं शृणुयाद्भक्त्या श्रावयेद्वा समाहितः।
स भुक्त्वेहाखिलान्भोगानन्ते मोक्षमवाप्नुयात्॥ १५

हे तात! इस प्रकार मैंने शिवजीके उत्तम चरित्रका वर्णन आपसे किया, जो धन, यश, आयु तथा सभी कामनाओंका फल प्रदान करनेवाला है। जो मनुष्य सावधानचित्त होकर भक्तिपूर्वक इसे सुनता है अथवा सुनाता है, वह इस लोकमें सम्पूर्ण भोगोंको भोगकर अन्तमें मुक्तिको प्राप्त कर लेता है॥ १४-१५॥

इति श्रीशिवमहापुराणे तृतीयायां शतरुद्रसंहितायां महेशावतारवर्णनं नामैकविंशोऽध्यायः॥ २१॥

॥ इस प्रकार श्रीशिवमहापुराणके अन्तर्गत तृतीय शतरुद्रसंहितामें महेशावतारवर्णन नामक इक्कीसवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ २१॥

अथ द्वाविंशोऽध्यायः

शिवके वृषेश्वरावतार-वर्णनके प्रसंगमें समुद्रमन्थनकी कथा

नन्दीश्वर उवाच

शृणु ब्रह्मसुत प्राज्ञ वृषेशाख्यं मुनीश्वर।
शिवावतारं सल्लीलं हरिगर्वहरं वरम्॥ १

नन्दीश्वर बोले—हे ब्रह्मसुत! हे प्राज्ञ! हे मुनीश्वर! अब आप भगवान् विष्णुके अहंकारको नष्ट करनेवाले तथा श्रेष्ठ लीलासे परिपूर्ण शिवजीके वृषेश्वर नामक उत्तम अवतारको सुनें॥ १॥

पुरा देवासुराः सर्वे जरामृत्युभयार्दिताः।
परस्परं च संधाय रत्नान्यादित्सवोऽभवन्॥ २

पूर्व समयमें जरा एवं मृत्युसे भयभीत हुए देवताओं एवं असुरोंने आपसमें सन्धिकर समुद्रसे रत्न ग्रहण करनेका विचार किया॥ २॥

ततः सुरासुराः सर्वे क्षीरोदं सागरोत्तमम्।
उद्यता मथितुं तं च बभूवुर्मुनिनन्दन॥ ३

हे मुनिनन्दन! तदनन्तर सभी देवता और असुर समुद्रोंमें श्रेष्ठ क्षीरसागरको मथनेके लिये उद्यत हुए॥ ३॥

आसन् शुचिस्मिताः सर्वे केनेदं मन्थनं भवेत्।
स्वकार्यसिद्धये तस्य ब्रह्मन्निति सुरासुराः॥ ४

हे ब्रह्मन्! मधुर मुसकानवाले सभी देवता तथा असुर अपनी कार्यसिद्धिके लिये विचार करने लगे कि किस उपायसे उस क्षीरसागरका मन्थन किया जाय॥ ४॥

तदा नभोगता वाणी मेघगम्भीरनिःस्वना।
उवाच देवान्दैत्यांश्चाश्वासयन्तीश्वराज्ञया॥ ५

तब मेघके समान गम्भीर ध्वनिसे युक्त आकाशवाणी शिवजीकी आज्ञासे देवताओं तथा असुरोंको आश्वस्त करती हुई कहने लगी—॥ ५॥

नभोवाण्युवाच

हे देवा असुराश्चैव मन्थध्वं क्षीरसागरम्।
भवतां बलबुद्धिर्हि भविष्यति न संशयः॥ ६

आकाशवाणी बोली—हे देवगणो! हे असुरो! आपलोग क्षीरसागरका मन्थन कीजिये, [इस कार्यके लिये] आपलोगोंको बल और बुद्धिकी प्राप्ति होगी, इसमें सन्देह नहीं है॥ ६॥

मन्दरं चैव मन्थानं रज्जुं कुरुत वासुकिम्।
मिथः सर्वे मिलित्वा तु मंथनं कुरुतादरात्॥ ७

आपलोग मन्दराचलपर्वतको मथानी एवं वासुकि नागको रस्सी बनाइये और सभी लोग आपसमें मिलकर आदरपूर्वक मन्थन कीजिये॥ ७॥

नन्दीश्वर उवाच

नभोगतां तदा वाणीं निशम्याथ सुरासुराः।
उद्योगं चक्रिरे सर्वे तत्कर्तुं मुनिसत्तम॥ ८

नन्दीश्वर बोले—हे मुनिसत्तम! तब [इस प्रकारकी] आकाशवाणी सुनकर सभी देवता तथा असुर ऐसा करनेके लिये प्रयत्न करने लगे॥ ८॥

सुसन्धायाखिलास्ते वै मन्दरं पर्वतोत्तमम्।
कनकाभं च सरलं नानाशोभार्चितं ययुः॥ ९

वे सब आपसमें मिलकर सोनेके समान कान्तिवाले, ऋजुकाय तथा नाना प्रकारकी शोभासे सम्पन्न पर्वतश्रेष्ठ मन्दराचलके समीप गये॥ ९॥

सुप्रसाद्य गिरीशं तं तदाज्ञप्ताः सुरासुराः।
बलादुत्पाटयामासुर्नेतुकामाः पयोऽर्णवम्॥ १०

उस गिरीश्वरको प्रसन्न करके तथा उसकी आज्ञा प्राप्तकर उसे क्षीरसागरमें ले जानेकी इच्छावाले देवताओं तथा असुरोंने बलपूर्वक उसे उखाड़ लिया॥ १०॥

भुजैरुत्पाट्य ते सर्वे जग्मुः क्षीरार्णवं मुने।
अशक्ता अभवंस्तत्र तमानेतुं हतौजसः॥ ११

हे मुने! अपनी भुजाओंसे [मन्दराचलको] उखाड़कर वे सब क्षीरसागरके पास जाने लगे, किंतु क्षीण बलवाले वे उसे ले जानेमें असमर्थ हो गये॥ ११॥

तद्भुजैः स परिभ्रष्टः पतितो मंदरो गिरिः।
सहसातिगुरुः सद्यो देवदैत्योपरि ध्रुवम्॥ १२

अत्यन्त भारी वह मन्दराचल अकस्मात् उनकी भुजाओंसे छूटकर शीघ्र ही देवताओं और दैत्योंके ऊपर गिर पड़ा॥ १२॥

एवं भग्नोद्यमा भग्नाः सम्बभूवुः सुरासुराः।
चेतनाः प्राप्य च ततस्तुष्टुवुर्जगदीश्वरम्॥ १३

तब भग्न उद्यमवाले देवता तथा असुर आहत हो गये, फिर [कुछ समय बाद] चेतना प्राप्तकर जगदीश्वरकी स्तुति करने लगे॥ १३॥

तदिच्छयोद्यताः सर्वे पुनरुत्थाप्य तं गिरिम्।
निचिक्षिपुर्जले नीत्वा क्षीरोदस्योत्तरे तटे॥ १४

इसके बाद जगदीश्वरकी इच्छासे उद्यत हुए उन सबने उस पर्वतको पुनः उठाकर क्षीरसागरके उत्तरी तटपर ले जाकर जलमें डाल दिया॥ १४॥

ततः सुरासुरगणा रज्जुं कृत्वा च वासुकिम्।
रत्नान्यादातुकामास्ते ममंथुः क्षीरसागरम्॥ १५

तदनन्तर रत्न प्राप्त करनेकी इच्छावाले देवता तथा असुर वासुकि नागकी रस्सी बनाकर क्षीरसागरका मन्थन करने लगे॥ १५॥

क्षीरोदे मथ्यमाने तु श्रीः स्वर्लोकमहेश्वरी।
समुद्भूता समुद्राच्च भृगुपुत्री हरिप्रिया॥ १६

क्षीरसागरका मन्थन किये जानेपर स्वर्गलोककी महेश्वरी भृगुपुत्री हरिप्रिया महालक्ष्मी समुद्रसे प्रकट हुईं। उसके बाद धन्वन्तरि, चन्द्रमा, पारिजात कल्पवृक्ष,

धन्वन्तरिः शशांकश्च पारिजातो महाद्रुमः।
उच्चैःश्रवाश्च तुरगो गज ऐरावतस्तथा॥ १७
सुरा हरिधनुः शङ्खो गावः कामदुघास्ततः।
कौस्तुभाख्यो मणिश्चैव तथा पीयूषमेव च॥ १८
पुनश्च मथ्यमाने तु कालकूटं महाविषम्।
युगान्तानलभं जातं सुरासुरभयावहम्॥ १९

उच्चैःश्रवा घोड़ा, ऐरावत हाथी, सुरा, विष्णुका शार्ङ्गधनुष, शंख, कामधेनु, गोवृन्द, कौस्तुभमणि तथा अमृत उत्पन्न हुए। पुनः मथे जानेपर प्रलयकालीन अग्निके समान कान्तिवाला और देवताओं तथा असुरोंको भय उत्पन्न करनेवाला कालकूट नामक महाविष उत्पन्न हुआ॥ १६—१९॥

पीयूषजन्मकाले तु बिन्दवो ये बहिर्गताः।
तेभ्यः कान्ताः समुद्भूता बह्व्यो ह्यद्भुतदर्शनाः॥ २०
शरत्पूर्णेन्दुवदनास्तडित्सूर्यानलप्रभाः।
हारकेयूरकटकैर्दिव्यरत्नैरलङ्कृताः॥ २१
लावण्यामृततोयेन ताः सिञ्चन्त्यो दिशो दश।
जगदुन्मादयन्त्येव भ्रूभङ्गायतवीक्षणाः॥ २२
कोटिशस्ताः समुत्पन्नास्त्वमृतात्कामनिस्सृताः।
ततोऽमृतं समुत्पन्नं जरामृत्युनिवारणम्॥ २३

अमृत उत्पन्न होनेके समय उसकी जो बूँदें बाहर छलक पड़ीं, उनसे अद्भुत दर्शनवाली बहुत-सी स्त्रियाँ प्रकट हुईं। वे शरत्कालीन पूर्ण चन्द्रमाके समान मुखवाली, बिजली, सूर्य तथा अग्निके समान प्रभावाली और हार, बाजूबन्द, कटक तथा दिव्य रत्नोंसे अलंकृत थीं। वे अपने सौन्दर्यरूपी अमृतजलसे दसों दिशाओंको सींच रही थीं और अपने भ्रूविलासके कारण विस्तीर्ण नेत्रोंवाली वे संसारको उन्मत्त कर रही थीं। इस प्रकार उन अमृतकी बूँदोंसे स्वेच्छया करोड़ों स्त्रियाँ निकलीं। तदनन्तर जरा और मृत्युको दूर करनेवाला अमृत उत्पन्न हुआ॥ २०—२३॥

लक्ष्मीं शंखं कौस्तुभं च खड्गं जग्राह केशवः।
जग्राहार्को हयं दिव्यमुच्चैःश्रवसमादरात्॥ २४
पारिजातं तरुवरमैरावतमिभेश्वरम्।
शचीपतिश्च जग्राह निर्जरेशो महादरात्॥ २५

लक्ष्मी, शंख, कौस्तुभमणि एवं खड्गको श्रीविष्णुने ग्रहण किया। सूर्यने बड़े आदरके साथ दिव्य उच्चैःश्रवा नामका घोड़ा ले लिया। देवताओंके स्वामी शचीपति इन्द्रने अत्यन्त आदरपूर्वक वृक्षोंमें श्रेष्ठ पारिजात एवं हाथियोंके राजा ऐरावतको ग्रहण किया॥ २४-२५॥

कालकूटं शशांकं च देवत्राणाय शङ्करः।
स्वकण्ठे धृतवान् शम्भुः स्वेच्छया भक्तवत्सलः॥ २६

भक्तवत्सल तथा कल्याणकारी शिवजीने देवताओंकी रक्षाके लिये कण्ठमें [महाभयंकर] कालकूट विषको तथा चन्द्रमाको [मस्तकपर] स्वेच्छासे धारण किया॥ २६॥

दैत्याः सुराख्यां रमणीमीश्वराजविमोहिताः।
जगृहुः सकला व्यास सर्वे धन्वन्तरिं जनाः॥ २७

ईश्वरकी मायासे मोहित हुए दैत्योंने आनन्द प्रदान करनेवाली मदिरा ग्रहण की। फिर हे व्यास! सभी मनुष्योंने धन्वन्तरि वैद्यको ग्रहण किया॥ २७॥

जगृहुर्मुनयः सर्वे कामधेनुं मुनीश्वराः।
सामान्यतस्त्रियस्ताश्च स्थिता आसन्विमोहिकाः॥ २८

सभी मुनिगणोंने कामधेनुको ग्रहण किया और मोहित करनेवाली वे स्त्रियाँ सामान्य रूपसे स्थित रहीं॥ २८॥

अमृतार्थे महायुद्धं संबभूव जयैषिणाम्।
सुराणामसुराणां च मिथः संक्षुब्धचेतसाम्॥ २९

विजयकी अभिलाषावाले तथा व्याकुल चित्तवाले देवताओं एवं राक्षसोंमें अमृतके लिये परस्पर महान् युद्ध हुआ॥ २९॥

हृतं सोमं च दैतेयैर्बलाद्देवान्विजित्य च।
बलिप्रभृतिभिर्व्यास युगान्ताग्न्यर्कसुप्रभैः॥ ३०

हे व्यास! प्रलयकालीन अग्नि तथा सूर्यके समान महान् तेजस्वी बलि आदि दैत्योंने बलपूर्वक देवगणोंको जीतकर उनसे अमृत छीन लिया॥ ३०॥

देवाः शङ्करमापन्ना विह्वलाः शिवमायया।
सर्वे शक्रादयस्तात दैतेयैरर्दिता बलात्॥ ३१

ततस्तदमृतं यत्नात्स्त्रीस्वरूपेण मायया।
शिवाज्ञया रमेशेन दैत्येभ्यश्च हृतं मुने॥ ३२

अपाययत्सुरांस्तांश्च मोहिनी स्त्रीस्वरूपधृक्।
मोहयित्वासुरान्सर्वान्हरिर्मायाविनां वरः॥ ३३

गत्वा निकटमेतस्या ऊचिरे दैत्यपुंगवाः।
पाययस्व सुधामेतां माभूद्भेदोऽत्र पंक्तिषु॥ ३४

एतदुक्त्वा ददुस्तस्मै विष्णवे छलरूपिणे।
ते दैत्या दानवाः सर्वे शिवमायाविमोहिताः॥ ३५

एतस्मिन्नन्तरे दृष्ट्वा स्त्रियो दानवपुंगवाः।
अनयन्नमृतोद्भूता यथास्थानं यथासुखम्॥ ३६

तासां पुराणि दिव्यानि स्वर्गाच्छतगुणान्यपि।
घोरैर्यन्त्रैः सुगुप्तानि मयमायाकृतानि च॥ ३७
सुरक्षितानि सर्वाणि कृत्वा युद्धाय निर्ययुः।
अस्पृष्टवृक्षसो दैत्याः कृत्वा समयमेव हि॥ ३८
न स्पृशामः स्त्रियश्चेमा यदि देवैर्विनिर्जिताः।
इत्युक्त्वा ते महावीरा दैत्याः सर्वे युयुत्सवः॥ ३९
सिंहनादं ततश्चक्रुः शंखान्दध्मुः पृथक्पृथक्।
पूरयन्त इवाकाशं तर्पयन्तो बलाहकान्॥ ४०

युद्धं बभूव देवानामसुरैः सह भीकरम्।
देवासुराख्यमतुलं प्रसिद्धं भुवनत्रये॥ ४१

जयं प्रापुः सुराः सर्वे विष्णुना परिरक्षिताः।
दैत्याः पलायितास्तत्र हताः सामरविष्णुना॥ ४२

दैत्याः संमोहिता देवैर्विष्णुना च महात्मना।
हतावशिष्टाः पातालं विविशुर्विवराणि च॥ ४३

अनुवव्राज तान्विष्णुश्चक्रपाणिर्महाबलः।
पातालं परमं गत्वा संस्थितान्भीतभीतवत्॥ ४४

हे तात! तदनन्तर शिवकी मायासे दैत्योंके द्वारा बलपूर्वक पीड़ित किये गये इन्द्रादि सभी देवता व्याकुल होकर शिवजीकी शरणमें आये। हे मुने! तब शिवजीकी आज्ञासे विष्णुने मायासे स्त्रीरूप धारणकर बड़े यत्नसे दैत्योंसे उस अमृतको छीन लिया॥ ३१-३२॥

तत्पश्चात् मायावियोंमें श्रेष्ठ मोहिनी स्त्रीरूपधारी विष्णुने समस्त दैत्योंको मोहितकर वह अमृत देवगणोंको पिला दिया॥ ३३॥

तब उस [मोहिनी रूपवाली] स्त्रीके पास जाकर उन श्रेष्ठ दैत्योंने कहा—इस सुधाको हम सभी दैत्योंको भी पिलाओ, जिससे किसी प्रकारका पंक्तिभेद न हो॥ ३४॥

ऐसा कहकर शिवमायासे मोहित हुए उन सभी दैत्यों एवं दानवोंने कपटरूपधारी उन विष्णुको वह अमृत दे दिया॥ ३५॥

इसी बीच वे वरिष्ठ दैत्य अमृतसे उत्पन्न स्त्रियोंको देखकर उन्हें सुखपूर्वक यथास्थान ले गये॥ ३६॥

उन स्त्रियोंके नगर स्वर्गसे भी सौ गुने मनोहर, मयदानवकी मायासे विनिर्मित तथा सुदृढ़ यन्त्रोंसे सुरक्षित थे। उन सभीको सुरक्षित करके उनका आलिंगन किये बिना ही वे दैत्य प्रतिज्ञा करके युद्धहेतु निकल पड़े। यदि देवगण हमें जीत लेंगे तो हम इन स्त्रियोंका स्पर्श भी नहीं करेंगे—ऐसा कहकर युद्धकी इच्छावाले वे समस्त महावीर दैत्य आकाशको पूरित-सा करते हुए तथा मेघोंको तृप्त [-सा] करते हुए पृथक्-पृथक् सिंहनाद करने लगे और शंख बजाने लगे॥ ३७—४०॥

देवगणोंका असुरोंके साथ तीनों लोकोंमें प्रसिद्ध देवासुर नामक भयानक संग्राम हुआ॥ ४१॥

[उस संग्राममें] विष्णुके द्वारा सब प्रकारसे रक्षित सभी देवताओंकी विजय हुई। बहुत-से दैत्य देवताओं और विष्णुके द्वारा मार डाले गये और शेष दैत्य भाग गये। कुछ दैत्योंको देवताओं तथा महात्मा विष्णुने मोहित कर दिया। जो मरनेसे बचे, वे पाताल एवं [पृथ्वीके] विवरोंमें प्रवेश कर गये॥ ४२-४३॥

महाबली विष्णुने हाथमें चक्र लेकर अत्युत्तम पातालमें जाकर भयभीत होकर स्थित हुए उन दैत्योंका पीछा किया॥ ४४॥

एतस्मिन्नन्तरे विष्णुर्ददर्शामृतसम्भवाः।
कान्ताः पूर्णेन्दुवदना दिव्यलावण्यगर्विताः॥ ४५
संमोहितः कामबाणैर्लेभे तत्रैव निर्वृतिम्।
ताभिश्च वरनारीभिः क्रीडमानो बभूव ह॥ ४६

इसी बीच विष्णुने वहाँपर अमृतसे उत्पन्न हुई, पूर्णचन्द्रके समान मुखवाली तथा दिव्य सौन्दर्यसे गर्वित स्त्रियोंको देखा और वे मोहित होकर वहींपर उन श्रेष्ठ स्त्रियोंके साथ विहार करने लगे तथा उन्होंने वहाँ शान्ति प्राप्त की॥ ४५-४६॥

ताभ्यः पुत्रानजनयद्विष्णुर्वरपराक्रमान्।
महीं सर्वां कंपयन्तो नानायुद्धविशारदान्॥ ४७
ततो वै हरिपुत्रास्ते महाबलपराक्रमाः।
महोपद्रवमाचेरुः स्वर्गे भुवि च दुःखदम्॥ ४८

विष्णुने उन स्त्रियोंसे श्रेष्ठ पराक्रमवाले तथा युद्ध करनेमें निपुण अनेक पुत्र उत्पन्न किये, जिनके बलसे सारी पृथ्वी काँप उठती थी। तत्पश्चात् महाबलवान् एवं पराक्रमी वे विष्णुपुत्र सम्पूर्ण पृथ्वीको कम्पित करते हुए स्वर्गलोक तथा भूलोकमें दुःखद महान् उपद्रव करने लगे॥ ४७-४८॥

लोकोपद्रवमालक्ष्य निर्जरा मुनयोऽथ वै।
चक्रुर्निवेदनं तेषां ब्रह्मणे प्रणिपत्य च॥ ४९

सारे संसारमें उनका [इस प्रकारका] उपद्रव देखकर मुनियों एवं देवताओंने ब्रह्माको प्रणामकर उनसे निवेदन किया॥ ४९॥

तच्छ्रुत्वादाय तान्ब्रह्मा ययौ कैलासपर्वतम्।
तत्र दृष्ट्वा शिवं देवं प्रणनाम पुनः पुनः॥ ५०
तुष्टाव विविधैः स्तोत्रैर्नतस्कन्धः कृताञ्जलिः।
जय देव महादेव सर्वस्वामिन्निति ब्रुवन्॥ ५१

यह सुनकर ब्रह्माजी उन्हें साथ लेकर कैलास पर्वतपर गये। वहाँ प्रभु शिवजीको देखकर विनम्र भावसे अंजलि बाँधे हुए उन्होंने बारंबार प्रणाम किया तथा हे देव! हे महादेव! हे सर्वस्वामिन्! आपकी जय हो—ऐसा कहते हुए अनेक स्तुतियोंके द्वारा उनकी स्तुति की॥ ५०-५१॥

ब्रह्मोवाच

देवदेव महादेव लोकान् रक्षाखिलान्प्रभो।
उपद्रुतान्विष्णुपुत्रैः पातालस्थैर्विकारिभिः॥ ५२

ब्रह्मा बोले—हे देवदेव! हे महादेव! हे प्रभो! पातालमें स्थित, विकारयुक्त तथा उपद्रवी विष्णुपुत्रोंसे [सन्त्रस्त] सम्पूर्ण लोकोंकी रक्षा कीजिये॥ ५२॥

नारीष्वमृतभूतासु संसक्तात्मा हरिर्विभो।
पाताले तिष्ठतीदानीं रमते हि विकारवान्॥ ५३

हे विभो! विकारसे ग्रस्त होकर विष्णुजी अमृतसे उत्पन्न स्त्रियोंमें आसक्तचित्त होकर इस समय पातालमें स्थित हैं और उनके साथ स्थित हैं॥ ५३॥

नन्दीश्वर उवाच

इत्थं बहुस्तुतः शम्भुर्ब्रह्मणा सर्षिनिर्जरैः।
लोकसंरक्षणार्थाय विष्णोरानयनाय च॥ ५४

नन्दीश्वर बोले—इस प्रकार लोकसंरक्षणके लिये तथा पातालसे विष्णुको लानेके निमित्त ऋषियोंसहित देवताओं तथा ब्रह्माने शिवजीकी बहुत स्तुति की॥ ५४॥

ततः स भगवान् शम्भुः कृपासिंधुर्महेश्वरः।
तदुपद्रवमाज्ञाय वृषरूपो बभूव ह॥ ५५

तदनन्तर कृपासिन्धु भगवान् महेश्वर शिवने उस उपद्रवका वृत्तान्त जानकर वृषभका रूप धारण कर लिया॥ ५५॥

इति श्रीशिवमहापुराणे तृतीयायां शतरुद्रसंहितायां विष्णूपद्रववृषावतारवर्णनं नाम द्वाविंशोऽध्यायः॥ २२॥

॥ इस प्रकार श्रीशिवमहापुराणके अन्तर्गत तृतीय शतरुद्रसंहितामें विष्णूपद्रववृषावतारवर्णन नामक बाईसवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ २२॥

अथ त्रयोविंशोऽध्यायः

विष्णुद्वारा भगवान् शिवके वृषभेश्वरावतारका स्तवन

नन्दीश्वर उवाच

ततो वृषभरूपेण गर्जमानः पिनाकधृक्।
प्रविष्टो विवरं तत्र निनदन्भैरवान् रवान्॥ १

नन्दीश्वर बोले—तब वृषभका रूप धारणकर गर्जन तथा भीषण ध्वनि करते हुए पिनाकधारी शिवजीने उस [पातालके] विवरमें प्रवेश किया॥ १॥

निपेतुस्तस्य निनदैः पुराणि नगराणि च।
प्रकम्पो हि बभूवाथ सर्वेषां पुरवासिनाम्॥ २

उनके निनादसे पुर और नगर सभी गिरने लगे एवं सभी नगरवासियोंको कँपकँपी होने लगी॥ २॥

ततो वृषो हरेः पुत्रान्संग्रामोद्यतकार्मुकान्।
शिवमायाविमूढात्ममहाबलपराक्रमान् ॥ ३

उसके बाद वृषभरूप धारण करनेवाले शिवजी महेश्वरकी मायासे मोहित महान् बल तथा पराक्रमवाले और संग्रामके लिये धनुष उठाये हुए विष्णुपुत्रोंके सम्मुख पहुँचे॥ ३॥

हरिपुत्रास्ततस्तेऽथ प्राकुप्यन्मुनिसत्तम।
प्रदुद्रुवुः प्रगर्ज्योच्चैर्वीराः शङ्करसम्मुखम् ॥ ४

हे मुनिसत्तम! तब वे वीर विष्णुपुत्र कुपित हो उठे और जोर-जोरसे गर्जन करके शिवजीके सामने दौड़े॥ ४॥

आयातांस्तान्हरेः पुत्रान् रुद्रो वृषभरूपधृक्।
प्राकुप्यद्विष्णुपुत्रांश्च खुरैः शृंगैर्व्यदारयत्॥ ५

वृषरूपधारी महादेव भी [अपने सामने] आये हुए विष्णुपुत्रोंपर कुपित हो उठे और खुरों तथा शृंगोंसे उन्हें विदीर्ण करने लगे॥ ५॥

विदारितांगा रुद्रेण सर्वे हरिसुताश्च ते।
नष्टा द्रुतं संबभूवुर्गतप्राणा विचेतसः॥ ६

शिवजीके द्वारा क्षत-विक्षत किये गये शरीरवाले वे सभी मूढ़ विष्णुपुत्र शीघ्र ही प्राणरहित हो विनष्ट हो गये॥ ६॥

हतेषु तेषु पुत्रेषु विष्णुर्बलवतां वरः।
निष्क्रम्याथ प्रगर्ज्योच्चैर्ययौ शीघ्रं हरान्तिकम्॥ ७

उन पुत्रोंके मारे जानेपर बलवानोंमें श्रेष्ठ विष्णु [पाताल-विवरसे] शीघ्र बाहर निकलकर जोरसे गर्जना करके शिवजीके निकट जा पहुँचे॥ ७॥

दृष्ट्वा रुद्रं प्रव्रजन्तं हतविष्णुसुतं वृषम्।
शरैः सन्ताडयामास दिव्यैरस्त्रैश्च केशवः॥ ८

पुत्रोंको मारकर जाते हुए वृषभरूपधारी शिवजीको देखकर विष्णुने बाणों तथा दिव्यास्त्रोंसे उनपर प्रहार किया॥ ८॥

ततः क्रुद्धो महादेवो वृषरूपी महाबलः।
अस्त्राणि तानि विष्णोश्च जग्रास गिरिगोचरः॥ ९

तब महाबलवान् कैलासनिवासी वृषभरूपधारी शिवने क्रुद्ध होकर विष्णुके उन अस्त्रोंको निगल लिया॥ ९॥

अथ कृत्वा महाकोपं वृषात्मा स महेश्वरः।
विननाद महाघोरं कम्पयंस्त्रिजगन्मुने॥ १०

हे मुने! इसके बाद वृषभरूपधारी उन महेश्वरने अत्यन्त क्रोधकर तीनों लोकोंको कँपाते हुए महाघोर गर्जना की॥ १०॥

तत उत्प्लुत्य तरसा खुरैः शृंगैर्व्यदारयत्।
विष्णुं क्रोधाकुलं मूढमजानन्तं निजं हरिम्॥ ११

क्रोधमें उन्मत्त हुए और अज्ञानवश [शिवजीको] अपना ईश्वर न माननेवाले विष्णुको बड़े वेगसे कूद-कूदकर अपने सींगों तथा खुरोंसे उन्होंने विदीर्ण कर दिया॥ ११॥

ततः स शिथिलात्मा हि व्यथितांगो बभूव ह।
तत्प्रहारमसह्याशु हरिर्मायाविमोहितः॥ १२

तब मायासे विमोहित हुए विष्णु शिवजीके प्रहारको सहनेमें असमर्थ होकर शीघ्र ही शिथिल मनवाले तथा व्यथित शरीरवाले हो गये॥ १२॥

गतगर्वो हरिश्चैव विचेता गतचेतनः।
ज्ञातवान् परमेशानं विहरन्तं वृषात्मना॥ १३

विष्णुका सारा गर्व चूर हो गया, वे चेतनाशून्य होकर मूर्च्छित हो गये, तब उन्होंने वृषभरूपधारी शिवजीको जाना॥ १३॥

अथ विज्ञाय गौरीशमागतं वृषरूपतः।
प्राह गम्भीरया वाचा नतस्कन्धः कृताञ्जलिः॥ १४

इसके बाद वृषभरूपसे आये हुए शिवजीको पहचानकर विष्णुजी हाथ जोड़कर सिर झुकाकर गम्भीर वाणीमें कहने लगे—॥ १४॥

हरिरुवाच

देवदेव महादेव करुणासागर प्रभो।
मायया ते महेशान मोहितोऽहं विमूढधीः॥ १५
कृतं युद्धं त्वयेशेन स्वनाथेन मया प्रभो।
कृपां कृत्वा मयि स्वामिन्सोऽपराधो हि सह्यताम्॥ १६

विष्णुजी बोले—हे देवदेव! हे महादेव! हे करुणासागर! हे प्रभो! हे महेशान! आपकी मायासे मोहित होनेके कारण मेरी बुद्धि विकृत हो गयी थी। हे प्रभो! हे स्वामिन्! मैंने अपने स्वामी आप शिवसे जो युद्ध किया, आप मुझपर कृपा करके उस अपराधको क्षमा कीजिये॥ १५-१६॥

नन्दीश्वर उवाच

तस्य तद्वचनं श्रुत्वा हरेर्दीनतया मुने।
भगवान् शङ्करः प्राह रमेशं भक्तवत्सलः॥ १७

नन्दीश्वर बोले—हे मुने! उन विष्णुकी दीनतापूर्ण यह बात सुनकर भक्तवत्सल भगवान् शंकरने विष्णुसे कहा—॥ १७॥

हे विष्णो हे महाबुद्धे कथं मां ज्ञातवान्न हि।
युद्धं कृतं कुतस्तेऽद्य ज्ञानं सर्वं च विस्मृतम्॥ १८

हे विष्णो! हे महाबुद्धे! आपने मुझे क्यों नहीं पहचाना? आपका सारा ज्ञान किस प्रकार विस्मृत हो गया, जिसके कारण आज आपने मेरे साथ युद्ध किया?॥ १८॥

आत्मानं किन्न जानासि मदधीनपराक्रमम्।
त्वया नात्र रतिः कार्या निवर्तस्व कुचारतः॥ १९

आपने अपनेको मेरे अधीन पराक्रमवाला क्यों नहीं समझा? अब आप पुनः ऐसा न कीजिये और इस कृत्यसे विरत हो जाइये॥ १९॥

कामाधीनं कथं ज्ञानं स्त्रीषु सक्तो विहारकृत्।
नोचितं तव देवेश स्मरणं विश्वतारणम्॥ २०

आप इन स्त्रियोंमें आसक्त होकर विहार कर रहे हैं; भला कामी पुरुषको ज्ञान किस प्रकार रह सकता है? हे देवेश! यह आपके लिये उचित नहीं है, क्योंकि आपका स्मरण तो विश्वका तारण करनेवाला है॥ २०॥

तच्छ्रुत्वा शम्भुवचनं विज्ञानप्रदमादरात्।
व्रीडयन्स्वमनसा विष्णुः प्राह वाचं महेश्वरम्॥ २१

शिवजीके इस विज्ञानप्रद वचनको सुनकर मन-ही-मन लज्जित होते हुए विष्णु आदरपूर्वक शिवजीसे यह वचन कहने लगे—॥ २१॥

विष्णुरुवाच

ममात्र विद्यते चक्रं तद् गृहीत्वेतदादरात्।
गमिष्यामि स्वलोकं तं त्वदाज्ञापरिपालकः॥ २२

विष्णुजी बोले—हे प्रभो! यहाँ मेरा सुदर्शन चक्र है, इसे लेकर आपकी आज्ञाका आदरपूर्वक पालन करनेवाला मैं [अब] अपने लोकको जाऊँगा॥ २२॥

नन्दीश्वर उवाच

तदाकर्ण्य महेशानो वचनं वैष्णवं हरः।
प्रत्युवाच वृषात्मा हि वृषरक्षः पुनर्हरिम्॥ २३

नन्दीश्वर बोले—तब वृषभरूपधारी धर्मरक्षक महेश्वर शिवने उस वचनको सुनकर विष्णुसे पुनः कहा—॥ २३॥

न विलम्बः प्रकर्त्तव्यो गन्तव्यमित आशु ते।
मच्छासनाद्धरे लोके चक्रमत्रैव तिष्ठताम्॥ २४

हे हरे! इस समय आप देर न कीजिये और मेरी आज्ञासे शीघ्र ही यहाँसे अपने लोक चले जाइये; चक्रको यहीं रहने दीजिये॥ २४॥

सन्तानादित्यसंस्थानाच्छिवत्ववचनादपि ।
अहं घोरतरं तस्माच्चक्रमन्यद्ददामि ते॥ २५

हे विष्णो! मैं आपके कल्याणकारी वचनोंसे प्रसन्न होकर ज्योतिर्मय सान्तानिक लोकमें स्थित, इससे भिन्न एक दूसरा चक्र प्रदान करता हूँ, जो अत्यन्त भयंकर है॥ २५॥

एतदुक्त्वा हरोऽलेखीद्दिव्यं कालानलप्रभम्।
परं चक्रं प्रदीप्तं हि सर्वदुष्टविनाशनम्॥ २६

विष्णवे प्रददौ चक्रं घोरार्कायुतसुप्रभम्।
सर्वामरमुनीन्द्राणां रक्षकाय महात्मने॥ २७

[नन्दीश्वर बोले—] ऐसा कहकर शिवजीने दिव्य कालाग्निके समान देदीप्यमान, अत्यन्त प्रज्वलित एवं दुष्टोंका नाश करनेवाला चक्र प्रकट किया और दस हजार सूर्योंकी-सी कान्तिवाले उस महाभयानक चक्रको सभी देवताओं एवं मुनियोंके रक्षक महात्मा विष्णुको प्रदान किया॥ २६-२७॥

लब्ध्वा सुदर्शनं चान्यच्चक्रं परमदीप्तिमत्।
उवाच विबुधांस्तत्र विष्णुर्बुद्धिमतां वरः॥ २८

सर्वदेववरा यूयं मद्वाक्यं शृणुतादरात्।
कर्तव्यं तत्तथा शीघ्रं ततः शं वो भविष्यति॥ २९

तब बुद्धिमानोंमें श्रेष्ठ विष्णुने अत्यन्त दीप्तिमान् उस दूसरे सुदर्शनचक्रको प्राप्तकर वहाँ [स्थित] देवगणोंसे कहा—आप सभी श्रेष्ठ देवतागण आदरपूर्वक मेरी बात सुनिये और वैसा ही शीघ्र कीजिये; उसीसे आपलोगोंका कल्याण होगा॥ २८-२९॥

दिव्या वरांगनास्सन्ति पाताले यौवनान्विताः।
ताभिः सार्द्धं महाक्रीडां यः करोतु करोतु सः॥ ३०

पाताललोकमें स्थित उन दिव्य स्त्रियोंका वरण स्वेच्छासे आप लोग करें॥ ३०॥

तच्छ्रुत्वा केशवाद्वाक्यं शूरास्त्रिदशयोनयः।
प्रवेष्टुकामाः पातालं बभूवुर्विष्णुना सह॥ ३१

विष्णुके उस वचनको सुनकर सभी शूर देवता उन विष्णुके साथ पातालमें प्रविष्ट होनेकी इच्छा करने लगे॥ ३१॥

विचारमथ विज्ञाय तं तदा भगवान्हरः।
क्रोधाच्छापं ददौ घोरं देवयोन्यष्टकस्य च॥ ३२

तब भगवान् शिवने देवताओंके इस विचारको जानकर क्रोधपूर्वक अष्टविध देवयोनियोंको घोर शाप दे दिया॥ ३२॥

हर उवाच

वर्जयित्वा मुनिं शान्तं दानवान्वा मदंशजम्।
इदं यः प्रविशेत्स्थानं तस्य स्यान्निधनं क्षणात्॥ ३३

हर बोले—मेरे अंशसे उत्पन्न हुए शान्त मुनि [कपिलजी] एवं दानवोंको छोड़कर जो इस स्थानमें प्रवेश करेगा, उसी समय उसकी मृत्यु हो जायगी॥ ३३॥

श्रुत्वा वाक्यमिदं घोरं मनुष्यहितवर्धनम्।
प्रत्याख्यातास्तु रुद्रेण देवाः स्वगृहमाययुः॥ ३४

मनुष्योंके हितको बढ़ानेवाले शिवजीके इस घोर वाक्यको सुनकर तथा उनके द्वारा निषेध करनेपर देवतागण अपने-अपने स्थानको चले गये॥ ३४॥

एवं स्त्रीलः परो विष्णुः शिवेन प्रतिशासितः।
स्वर्लोकमगमद् व्यास स्वास्थ्यं प्राप जगच्च तत्॥ ३५

हे व्यास! इस प्रकार भगवान् शिवने अपनी मायाके प्रभावसे उनमें आसक्त हुए भगवान् विष्णुको अनुशासित किया और तब विष्णु देवलोकको चले गये तथा संसार सुखी हो गया॥ ३५॥

वृषेश्वरोऽपि भगवान् शंकरो भक्तवत्सलः।
इत्थं कृत्वा देवकार्यं जगाम स्वगिरीश्वरम्॥ ३६

इस प्रकार देवताओंका कार्य करके वृषभरूपधारी भक्तवत्सल भगवान् शिव अपने स्थान कैलासपर्वतपर चले गये॥ ३६॥

वृषेश्वरावतारस्तु वर्णितः शङ्करस्य च।
विष्णुमोहहरः शर्वः त्रैलोक्यसुखकारकः ॥ ३७

पवित्रमिदमाख्यानं शत्रुबाधाहरं परम्।
स्वर्ग्यं यशस्यमायुष्यं भुक्तिमुक्तिप्रदं सताम्॥ ३८

य इदं शृणुयाद्भक्त्या श्रावयेद्वै समाहितः।
तथा पठति यो हीदं पाठयेत् सुधियो नरान्।
स भुक्त्वा सकलान् कामान् अन्ते मोक्षमवाप्नुयात्॥ ३९

[हे सनत्कुमार!] मैंने शिवजीके वृषेश्वरावतारका वर्णन कर दिया, जो विष्णुके अज्ञानका हरण करनेवाला, कल्याणकारक तथा तीनों लोकोंको सुख प्रदान करनेवाला है। यह आख्यान परम पवित्र, श्रेष्ठ, शत्रुबाधाको दूर करनेवाला और सज्जनोंको स्वर्ग, यश, आयु, भोग तथा मोक्ष देनेवाला है। जो भक्तिके साथ सावधान होकर इसे सुनता है अथवा सुनाता है और जो इसे पढ़ता है तथा बुद्धिमान् मनुष्योंको पढ़ाता है, वह [इस लोकमें] समस्त सुखोंको भोगकर अन्तमें मोक्ष प्राप्त कर लेता है॥ ३७—३९॥

इति श्रीशिवमहापुराणे तृतीयायां शतरुद्रसंहितायां वृषेश्वरसंज्ञक-शिवावतारवर्णनं नाम त्रयोविंशोऽध्यायः ॥ २३ ॥

॥ इस प्रकार श्रीशिवमहापुराणके अन्तर्गत तृतीय शतरुद्रसंहितामें वृषेश्वरसंज्ञक शिवावतारवर्णन नामक तेईसवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ २३॥

अथ चतुर्विंशोऽध्यायः

भगवान् शिवके पिप्पलादावतारका वर्णन

नन्दीश्वर उवाच

पिप्पलादाख्यमपरमवतारं महेशितुः।
शृणु प्राज्ञ महाप्रीत्या भक्तिवर्धनमुत्तमम्॥ १

नन्दीश्वर बोले—हे प्राज्ञ! अब आप महेश्वरके पिप्पलाद नामक भक्तिवर्धक अन्य अवतारको अत्यन्त प्रसन्नतासे सुनिये॥ १॥

यः पुरा गदितो विप्रो दधीचिर्मुनिसत्तमः।
महाशैवः सुप्रतापी च्यावनिर्भृगुवंशजः॥ २
क्षुवेण सह संग्रामे येन विष्णुः पराजितः।
सनिर्जरोऽथ संशप्तो महेश्वरसहायिना॥ ३
तस्य पत्नी महाभागा सुवर्चा नाम नामतः।
महापतिव्रता साध्वी यया शप्ता दिवौकसः॥ ४
तस्मात्तस्यां महादेवो नानालीलाविशारदः।
प्रादुर्बभूव तेजस्वी पिप्पलादेति नामतः॥ ५

महाप्रतापी, भृगुवंशमें उत्पन्न, महान् शिवभक्त तथा मुनिश्रेष्ठ जिन च्यवनपुत्र विप्र दधीचिके विषयमें मैं पहले कह चुका हूँ और जिन्होंने क्षुवके साथ युद्धमें विष्णुको पराजित किया तथा महेश्वरकी कृपा प्राप्तकर देवताओंसहित विष्णुको शाप दिया था; उनकी सुवर्चा नामक महाभाग्यवती, महापतिव्रता एवं साध्वी पत्नी थीं, जिन्होंने देवताओंको शाप दिया था। उन मुनिसे उन्हीं सुवर्चाके गर्भसे अनेक लीलाएँ करनेमें प्रवीण तेजस्वी महादेव पिप्पलाद—इस नामसे उत्पन्न हुए॥ २—५॥

सूत उवाच

इत्याकर्ण्य मुनिश्रेष्ठो नन्दीश्वरवचोऽद्भुतम्।
सनत्कुमारः प्रोवाच नतस्कन्धः कृताञ्जलिः॥ ६

सूतजी बोले—नन्दीश्वरके इस अद्भुत वचनको सुनकर हाथ जोड़कर तथा सिर झुकाकर मुनिश्रेष्ठ सनत्कुमार कहने लगे—॥ ६॥

सनत्कुमार उवाच

नन्दीश्वर महाप्राज्ञ साक्षाद् रुद्रस्वरूपधृक्।
धन्यस्त्वं सद्गुरुस्तात श्रावितेयं कथाद्भुता॥ ७

सनत्कुमार बोले—हे महाप्राज्ञ! हे नन्दीश्वर! हे तात! आप साक्षात् शिवस्वरूप हैं, आप धन्य हैं तथा आप ही सद्गुरु हैं, जो कि आपने यह अद्भुत कथा सुनायी है॥ ७॥

क्षुवेण सह संग्रामे श्रुतो विष्णुपराजयः।
ब्रह्मणा मे पुरा तात तच्छापश्च शिलादज॥ ८

हे शिलादपुत्र! हे तात! क्षुवके साथ संग्राममें विष्णुको जिस प्रकार शिवभक्त दधीचिने पराजित किया था तथा उन्हें शाप दिया था, उस कथाको मैंने पहले ब्रह्माजीसे सुना था॥ ८॥

अधुना श्रोतुमिच्छामि देवशापं सुवर्चया।
दत्तं पश्चात् पिप्पलादचरितं मङ्गलायनम्॥ ९

अब मैं [पहले] सुवर्चाके द्वारा देवताओंको दिये गये शाप [के वृत्तान्तको] तथा बादमें कल्याणके निवासभूत पिप्पलादचरित्रको सुनना चाहता हूँ॥ ९॥

सूत उवाच

इति श्रुत्वाथ शैलादिर्विधिपुत्रवचः शुभम्।
प्रत्युवाच प्रसन्नात्मा स्मृत्वा शिवपदाम्बुजम्॥ १०

सूतजी बोले—तत्पश्चात् ब्रह्मपुत्र सनत्कुमारका यह शुभ वचन सुनकर शिवजीके चरणकमलका ध्यानकर शिलादपुत्र प्रसन्नचित्त होकर कहने लगे—॥ १०॥

नन्दीश्वर उवाच

एकदा निर्जराः सर्वे वासवाद्या मुनीश्वर।
वृत्रासुरसहायैश्च दैत्यैरासन्पराजिताः॥ ११

नन्दीश्वर बोले—हे मुनीश्वर! किसी समय इन्द्रादि सभी देवताओंको वृत्रासुरकी सहायतासे दैत्योंने पराजित कर दिया॥ ११॥

स्वानि स्वानि वरास्त्राणि दधीचस्याश्रमेऽखिलाः।
निःक्षिप्य सहसा सद्योऽभवन् देवाः पराजिताः॥ १२

तदा सर्वे सुराः सेन्द्रा वध्यमानास्तथर्षयः।
ब्रह्मलोकं गताः शीघ्रं प्रोचुः स्वं व्यसनं च तत्॥ १३

तब उन सभी देवताओंने सहसा दधीचि मुनिके आश्रममें अपने श्रेष्ठ अस्त्रोंको फेंक दिया और तत्काल पराजय स्वीकार कर ली। इसके बाद शीघ्र ही इन्द्र आदि सभी पीड़ित देवता एवं ऋषिगण ब्रह्मलोक गये तथा अपना वह दुःख निवेदित किया॥ १२-१३॥

तच्छ्रुत्वा देववचनं ब्रह्मा लोकपितामहः।
सर्वं शशंस तत्त्वेन त्वष्टुश्चैव चिकीर्षितम्॥ १४

देवताओंके वचनको सुनकर लोकपितामह ब्रह्माने उनसे त्वष्टाका सारा मन्तव्य यथार्थ रूपसे कह दिया॥ १४॥

भवद्वधार्थं जनितस्त्वष्ट्रायं तपसा सुराः।
वृत्रो नाम महातेजाः सर्वदैत्याधिपो महान्॥ १५

[ब्रह्माजी बोले—] हे देवताओ! त्वष्टाने अपनी तपस्याके प्रभावसे आपलोगोंका वध करनेके लिये इसे उत्पन्न किया है; सम्पूर्ण दैत्योंका स्वामी यह वृत्र महान् तेजस्वी है॥ १५॥

अथ प्रयत्नः क्रियतां भवेदस्य वधो यथा।
तत्रोपायं शृणु प्राज्ञ धर्महेतोर्वदामि ते॥ १६

अतः आप लोग वैसा प्रयत्न कीजिये, जिस प्रकार इसका वध हो सके। हे प्राज्ञ! मैं धर्मकी रक्षाके लिये वह उपाय आपको बता रहा हूँ; आप उसे सुनें॥ १६॥

महामुनिर्दधीचिर्यः स तपस्वी जितेन्द्रियः।
लेभे शिवं समाराध्य वज्रास्थित्ववरं पुरा॥ १७

जो जितेन्द्रिय तथा तपस्वी दधीचि नामक महामुनि हैं, उन्होंने पूर्वकालमें शिवजीकी आराधनाकर वज्रके समान हड्डियोंवाला होनेका वरदान पाया था॥ १७॥

तस्यास्थीन्येव याचध्वं स दास्यति न संशयः।
निर्माय तैर्दण्डवज्रं वृत्रं जहि न संशयः॥ १८

आपलोग [उनके पास जाकर] अस्थियोंके लिये याचना कीजिये, वे अवश्य दे देंगे; इसमें संशय नहीं है। इसके बाद उन अस्थियोंसे दण्डवज्रका निर्माणकर निःसन्देह वृत्रासुरका वध कीजिये॥ १८॥

नन्दीश्वर उवाच

तच्छ्रुत्वा ब्रह्मवचनं शक्रो गुरुसमन्वितः।
आगच्छत्सामरः सद्यो दधीच्याश्रममुत्तमम्॥ १९

नन्दीश्वर बोले—[हे मुने!] ब्रह्माका यह वचन सुनकर देवगुरु बृहस्पति तथा देवताओंको साथ लेकर इन्द्र शीघ्र ही दधीचि ऋषिके उत्तम आश्रमपर आये॥ १९॥

दृष्ट्वा तत्र मुनिं शक्रः सुवर्चान्वितमादरात्।
ननाम साञ्जलिर्नम्रः सगुरुः सामरश्च तम्॥ २०

वहाँ सुवर्चासहित मुनिको बैठे देखकर गुरु एवं देवताओंसहित इन्द्रने हाथ जोड़कर विनम्र हो आदरपूर्वक उन्हें प्रणाम किया॥ २०॥

तदभिप्रायमाज्ञाय स मुनिर्बुधसत्तमः।
स्वपत्नीं प्रेषयामास सुवर्चां स्वाश्रमान्तरम्॥ २१

तब बुद्धिमानोंमें श्रेष्ठ उन मुनिने उनका अभिप्राय जानकर पत्नी सुवर्चाको आश्रमके भीतर भेज दिया॥ २१॥

ततस्स देवराजश्च सामरः स्वार्थसाधकः।
अर्थशास्त्रपरो भूत्वा मुनीशं वाक्यमब्रवीत्॥ २२

तत्पश्चात् देवताओंसहित देवराज इन्द्रने, जो स्वार्थसाधनमें बड़े दक्ष थे, अपने प्रयोजनमें तत्पर हो करके मुनीश्वरसे यह वाक्य कहा—॥ २२॥

शक्र उवाच

त्वष्ट्रा विप्रकृताः सर्वे वयं देवास्तथर्षयः।
शरण्यं त्वां महाशैवं दातारं शरणं गताः॥ २३

शक्र बोले—[हे मुने!] हम देवताओं तथा ऋषियोंको यह त्वष्टा बड़ा दुःख दे रहा है। इसलिये हमलोग महाशिवभक्त, शरणागतवत्सल तथा महादानी आपकी शरणमें आये हुए हैं॥ २३॥

स्वास्थीनि देहि नो विप्र महावज्रमयानि हि।
अस्थ्ना ते स्वपविं कृत्वा हनिष्यामि सुरद्रुहम्॥ २४

विप्र! आप अपनी वज्रमयी अस्थियाँ हमें प्रदान कीजिये; क्योंकि हमलोग आपकी हड्डियोंसे वज्रका निर्माणकर देवद्रोही वृत्रासुरका वध करना चाहते हैं॥ २४॥

इत्युक्तस्तेन स मुनिः परोपकरणे रतः।
ध्यात्वा शिवं स्वनाथं हि विससर्ज कलेवरम्॥ २५

इन्द्रके द्वारा इस प्रकार कहे जानेपर परोपकारपरायण उन मुनिने अपने स्वामी शिवका ध्यान करके [अपना] शरीर छोड़ दिया॥ २५॥

ब्रह्मलोकं गतः सद्यः स मुनिर्ध्वस्तबन्धनः।
पुष्पवृष्टिरभूत्तत्र सर्वे विस्मयमागताः॥ २६

वे मुनि कर्मबन्धनसे छुटकारा पाकर शीघ्र ही ब्रह्मलोक चले गये। उस समय वहाँ फूलोंकी वर्षा होने लगी और सभी लोग आश्चर्यचकित हो गये॥ २६॥

अथ गां सुरभिं शक्र आहूयाशु ह्यलेहयत्।
अस्त्रनिर्मितये त्वाष्ट्रं निर्दिदेश तदस्थिभिः॥ २७

तदनन्तर इन्द्रने शीघ्र ही सुरभि गौको बुलाकर उसके द्वारा उन्हें चटवाया और उनकी अस्थियोंसे अस्त्रनिर्माण करनेके निमित्त विश्वकर्माको आज्ञा प्रदान की॥ २७॥

विश्वकर्मा तदाज्ञप्तश्चक्लृपेऽस्त्राणि कृत्स्नशः।
तदस्थिभिर्वज्रमयैः सुदृढैः शिववर्चसा॥ २८

उनकी आज्ञा प्राप्त करके विश्वकर्माने शिवजीके तेजसे अत्यन्त दृढ़ वज्रमयी उन अस्थियोंसे सम्पूर्ण अस्त्रोंका निर्माण कर दिया॥ २८॥

तस्य वंशोद्भवैर्वज्रं शरो ब्रह्मशिरस्तथा।
अन्यास्थिभिर्बहूनि स्वपराण्यस्त्राणि निर्ममे॥ २९

उन्होंने उनकी रीढ़की हड्डियोंसे वज्र तथा ब्रह्मशिर नामक बाणका निर्माण किया और अन्य अस्थियोंसे अपने तथा दूसरोंके लिये अनेक अस्त्रोंका निर्माण किया॥ २९॥

तमिन्द्रो वज्रमुद्यम्य वर्द्धितः शिववर्चसा।
वृत्रमभ्यद्रवत्क्रुद्धो मुने रुद्र इवान्तकम्॥ ३०

हे मुने! तदनन्तर शिवजीके तेजसे वृद्धिको प्राप्त इन्द्र उस वज्रको उठाकर बड़े वेगसे वृत्रासुरपर क्रोध करके इस प्रकार दौड़े, मानो रुद्र यमकी ओर दौड़ रहे हों॥ ३०॥

ततः शक्रः सुसन्नद्धस्तेन वज्रेण स द्रुतम्।
उच्चकर्त शिरो वार्त्रं गिरिशृंगमिवौजसा॥ ३१

इसके बाद उन इन्द्रने भलीभाँति सन्नद्ध होकर शीघ्रतासे उस वज्रके द्वारा उत्साहपूर्वक पर्वतशिखरके समान वृत्रासुरका सिर काट दिया॥ ३१॥

तदा समुत्सवस्तात बभूव त्रिदिवौकसाम्।
तुष्टुवुर्निर्जराः शक्रं पेतुः कुसुमवृष्टयः॥ ३२

हे तात! उस समय देवताओंको महान् प्रसन्नता हुई। देवता लोग इन्द्रकी स्तुति करने लगे और उनके ऊपर फूलोंकी वर्षा होने लगी॥ ३२॥

इति ते कथितं तात प्रसंगाच्चरितं त्विदम्।
पिप्पलादावतारं मे शृणु शम्भोर्महादरात्॥ ३३

हे तात! मैंने प्रसंगवश आपसे इस चरित्रका वर्णन किया। अब आप मुझसे शिवजीके पिप्पलाद-अवतारको आदरपूर्वक सुनिये॥ ३३॥

सुवर्चा सा मुनेः पत्नी दधीचस्य महात्मनः।
ययौ स्वमाश्रमाभ्यन्तस्तदाज्ञप्ता पतिव्रता॥ ३४
आगत्य तत्र सा दृष्ट्वा न पतिं स्वं तपस्विनी।
गृहकार्यं च सा कृत्वाखिलं पतिनिदेशतः॥ ३५
आजगाम पुनस्तत्र पश्यन्ती बह्वशोभनम्।
देवांश्च तान्मुनिश्रेष्ठ सुवर्चा विस्मिताभवत्॥ ३६

महात्मा मुनि दधीचिकी पतिव्रता पत्नी सुवर्चा पतिकी आज्ञासे अपने आश्रमके भीतर चली गयी थीं। हे मुनिश्रेष्ठ! पतिकी आज्ञासे [घरमें] जाकर सम्पूर्ण गृहकार्य करके जब वे तपस्विनी पुनः लौटीं, तो अपने पतिको वहाँ न देखकर और उन देवताओंको तथा उनके अत्यन्त अशोभनीय कर्मको देखती हुई वे सुवर्चा विस्मित हो गयीं॥ ३४—३६॥

ज्ञात्वा च तत्सर्वमिदं सुराणां
कृत्यं तदानीं च चुकोप साध्वी।
ददौ तदा शापमतीव रुष्टा
तेषां सुवर्चा ऋषिवर्यभार्या॥ ३७

देवताओंके उस सम्पूर्ण कृत्यको जानकर उस साध्वीने उस समय महान् कोप किया। इसके बाद ऋषिवरकी पत्नी सुवर्चाने अत्यधिक रुष्ट होकर उन्हें शाप दे दिया॥ ३७॥

सुवर्चोवाच

अहो सुरा दुष्टतराश्च सर्वे
स्वकार्यदक्षा ह्यबुधाश्च लुब्धाः।
तस्माच्च सर्वे पशवो भवन्तु
सेन्द्राश्च मेऽद्यप्रभृतीत्युवाच ॥ ३८

सुवर्चा बोलीं—हे देवगणो! तुमलोग अत्यन्त दुष्ट, अपना कार्य साधनेमें दक्ष, अज्ञानी और लोभी हो, इसलिये इन्द्रसहित सभी देवता आजसे पशु हो जायँ—ऐसा उन्होंने कहा॥ ३८॥

एवं शापं ददौ तेषां सुराणां सा तपस्विनी।
सशक्राणां च सर्वेषां सुवर्चा मुनिकामिनी॥ ३९

इस प्रकार उन तपस्विनी मुनिपत्नी सुवर्चाने इन्द्रसहित उन सभी देवताओंको शाप दे दिया॥ ३९॥

अनुगन्तुं पतेर्लोकमथैच्छत्सा पतिव्रता।
चितां चक्रे समेधोभिः सुपवित्रैर्मनस्विनी॥ ४०

उसके बाद उन मनस्विनी पतिव्रताने अपने पतिके लोकमें जानेकी इच्छा की और अत्यन्त पवित्र काष्ठोंकी चिता बनायी॥ ४०॥

ततो नभोगिरा प्राह सुवर्चां तां मुनिप्रियाम्।
आश्वासयन्ती गिरिशप्रेरिता सुखदायिनी॥ ४१

उसी समय उन्हें आश्वस्त करती हुई शिवप्रेरित तथा सुखदायिनी आकाशवाणीने मुनिपत्नी उन सुवर्चासे कहा— ॥ ४१ ॥

आकाशवाण्युवाच

साहसं न कुरु प्राज्ञे शृणु मे परमं वचः।
मुनितेजस्त्वदुदरे तदुत्पादय यत्नतः॥ ४२
ततः स्वाभीष्टचरणं देवि कर्तुं त्वमर्हसि।
सगर्भा न दहेद् गात्रमिति ब्रह्मनिदेशनम्॥ ४३

आकाशवाणी बोली—हे प्राज्ञे! तुम दुःसाहस मत करो, मेरे उत्तम वचनको सुनो। तुम्हारे उदरमें [गर्भरूपसे] मुनिका तेज विद्यमान है; तुम उसे प्रयत्नपूर्वक उत्पन्न करो। हे देवि! उसके बाद तुम अपना अभीष्ट कार्य कर सकती हो; क्योंकि सगर्भाको सती नहीं होना चाहिये—ऐसी वेदकी आज्ञा है॥ ४२-४३॥

नन्दीश्वर उवाच

इत्युक्त्वा सा नभोवाणी विरराम मुनीश्वर।
तां श्रुत्वा सा मुनेः पत्नी विस्मिताभूत्क्षणं च सा॥ ४४

नन्दीश्वर बोले—हे मुनीश्वर! ऐसा कहकर आकाशवाणी शान्त हो गयी। तब उसे सुनकर वे मुनिकी पत्नी क्षणभरके लिये विस्मित हो गयीं॥ ४४॥

सुवर्चा सा महासाध्वी पतिलोकमभीप्सती।
उपविश्याश्मना भूयः सोदरं विददार ह॥ ४५

तदनन्तर पतिलोक जानेकी इच्छा करती हुई महासाध्वी सुवर्चाने बैठकर पत्थरसे अपने पेटको फाड़ दिया॥ ४५॥

निर्गतो जठरात्तस्या गर्भो मुनिवरस्य सः।
महादिव्यतनुर्दीप्तो भासयंश्च दिशो दश॥ ४६
साक्षाद् रुद्रावतारोऽसौ दधीचिवरतेजसः।
प्रादुर्भूतः स्वयं तात स्वलीलाकरणे क्षमः॥ ४७

उनके उदरसे परम दिव्य शरीरवाला तथा कान्तिमान् वह मुनिपुत्र दशों दिशाओंको प्रकाशित करता हुआ निकला। हे तात! दधीचिके उत्तम तेजसे प्रादुर्भूत हुआ वह पुत्र अपनी लीला करनेमें समर्थ साक्षात् रुद्रका अवतार था॥ ४६-४७॥

तं दृष्ट्वा स्वसुतं दिव्यं स्वरूपं मुनिकामिनी।
सुवर्चाज्ञाय मनसा साक्षाद् रुद्रावतारकम्॥ ४८
प्रहृष्टाभून्महासाध्वी प्रणम्याशु नुनाव सा।
स्वहृदि स्थापयामास तत्स्वरूपं मुनीश्वर॥ ४९

मुनिपत्नी सुवर्चा अपने उस दिव्य रूपवान् पुत्रको देखकर और मनमें उसे साक्षात् रुद्रका अवतार समझकर बहुत प्रसन्न हुईं। हे मुनीश्वर! उन महासाध्वीने शीघ्र ही प्रणामकर उसकी स्तुति की और उसके स्वरूपको अपने हृदयमें स्थापित कर लिया॥ ४८-४९॥

सुवर्चा तनयं तं च प्रहस्य विमलेक्षणा।
जननी प्राह सुप्रीत्या पतिलोकमभीप्सती॥ ५०

तत्पश्चात् पतिलोक जानेकी इच्छावाली विमलेक्षणा माता सुवर्चा हँसकर अपने उस पुत्रसे अत्यन्त प्रेमपूर्वक कहने लगी—॥ ५०॥

सुवर्चोवाच

हे तात परमेशान चिरं तिष्ठास्य सन्निधौ।
अश्वत्थस्य महाभाग सर्वेषां सुखदो भवेः॥ ५१
मामाज्ञापय सुप्रीत्या पतिलोकाय चाधुना।
तत्रस्थाहं च पतिना त्वां ध्याये रुद्ररूपिणम्॥ ५२

सुवर्चा बोली—हे तात! हे परमेशान! हे महाभाग! तुम बहुत समयतक इस पीपलवृक्षके समीप रहो और सबको सुखी बनाओ; अब मुझे पतिलोक जानेके लिये अति प्रसन्नतापूर्वक आज्ञा प्रदान करो, वहाँ रहती हुई मैं [अपने] पतिके साथ तुझ रुद्रस्वरूपका ध्यान करती रहूँगी॥ ५१-५२॥

नन्दीश्वर उवाच

इत्येवं सा बभाषेऽथ सुवर्चा तनयं प्रति।
पतिमन्वगमत्साध्वी परमेण समाधिना॥ ५३

नन्दीश्वर बोले—इस प्रकार साध्वी सुवर्चाने अपने पुत्रसे ऐसा कहकर परम समाधिद्वारा पतिका ही अनुगमन किया॥ ५३॥

एवं दधीचपत्नी सा पतिना संगता मुने।
शिवलोकं समासाद्य सिषेवे शङ्करं मुदा॥ ५४

हे मुने! इस प्रकार वे दधीचिपत्नी [सुवर्चा] शिवलोकमें जाकर अपने पतिके साथ निवास करने लगीं और आनन्दपूर्वक शिवजीकी सेवा करने लगीं॥ ५४॥

एतस्मिन्नन्तरे देवाः सेन्द्राश्च मुनिभिः सह।
तत्राजग्मुस्त्वरा तात आहूता इव हर्षिताः॥ ५५

इसी अवसरपर इन्द्रसहित देवगण मुनियोंके साथ आमन्त्रित हुएके समान प्रसन्न होकर बड़ी शीघ्रतासे वहाँ आये॥ ५५॥

हरिर्ब्रह्मा च सुप्रीत्यावतीर्णं शङ्करं भुवि।
सुवर्चायां दधीचाद्वा ययतुः स्वगणैः सह॥ ५६

तत्र दृष्ट्वावतीर्णं तं मुनिपुत्रत्वमागतम्।
रुद्रं सर्वे प्रणेमुश्च तुष्टुवुर्बद्धपाणयः॥ ५७

दधीचिके द्वारा सुवर्चाके गर्भसे [पुत्ररूपमें] पृथ्वीपर शिवजीको अवतरित हुआ जानकर हर्षित हो ब्रह्मा तथा विष्णु भी अपने गणोंके साथ अति प्रसन्नतापूर्वक वहाँ पहुँचे और मुनिपुत्ररूपमें अवतरित हुए उन शिवजीको देखकर सबने प्रणाम किया और हाथ जोड़कर उनकी स्तुति की॥ ५६-५७॥

तदोत्सवो महानासीद्देवानां मुनिसत्तम।
नेदुर्दुन्दुभयस्तत्र नर्तक्यो ननृतुर्मुदा॥ ५८

जगुर्गन्धर्वपुत्राश्च किन्नरा वाद्यवादकाः।
वादयामासुरमराः पुष्पवृष्टिं च चक्रिरे॥ ५९

हे मुनिसत्तम! उस समय देवताओंने बड़ा उत्सव किया, आकाशमें भेरियाँ बजने लगीं, नर्तकियाँ प्रसन्नतासे नृत्य करने लगीं, गन्धर्वपुत्र गान करने लगे, किन्नर बाजा बजाने लगे और देवता फूलोंकी वर्षा करने लगे॥ ५८-५९॥

दधीचेः पिप्पलपितुर्विलसन्तं सुतं च तम्।
संस्कृत्य विधिवत्सर्वे विष्णवाद्यास्तुष्टुवुः पुनः॥ ६०

विष्णु आदि सभी देवताओंने पीपलवृक्षके द्वारा संरक्षित दधीचिके उस शोभासम्पन्न पुत्रका विधिवत् [जातकर्मादि] संस्कार करके पुनः उसकी स्तुति की॥ ६०॥

पिप्पलादेति तन्नाम चक्रे ब्रह्मा प्रसन्नधीः।
प्रसन्नो भव देवेश इत्यूचे हरिणा सुरैः॥ ६१

ब्रह्मदेवने प्रसन्नचित्त होकर उसका नाम 'पिप्पलाद' रखा और देवताओंके साथ विष्णुने 'हे देवेश! प्रसन्न होइये'—ऐसा कहा॥ ६१॥

इत्युक्त्वा तमनुज्ञाय ब्रह्मा विष्णुः सुरास्तथा।
स्वं स्वं धाम ययुः सर्वे विधाय च महोत्सवम्॥ ६२

इस प्रकार कहकर तथा उनसे आज्ञा लेकर ब्रह्मा, विष्णु तथा समस्त देवगण महोत्सव मनाकर अपने-अपने स्थानको चले गये॥ ६२॥

अथ रुद्रः पिप्पलादोऽश्वत्थमूले महाप्रभुः।
तताप सुचिरं कालं लोकानां हितकाम्यया॥ ६३

उसके बाद रुद्रावतार महाप्रभु पिप्पलाद पीपल वृक्षके नीचे संसारहितकी इच्छासे बहुत कालतक तप करते रहे॥ ६३॥

इत्थं सुतपतस्तस्य पिप्पलादस्य सम्मुखे।
महाकालो व्यतीयाय लोकचर्यानुसारिणः॥ ६४

इस प्रकार लोकचर्याका अनुसरण करनेवाले उन पिप्पलादका भलीभाँति तपस्या करते हुए बहुत-सा समय व्यतीत हो गया॥ ६४॥

इति श्रीशिवमहापुराणे तृतीयायां शतरुद्रसंहितायां पिप्पलादावतारवर्णनं नाम चतुर्विंशोऽध्यायः॥ २४॥

॥ इस प्रकार श्रीशिवमहापुराणके अन्तर्गत तृतीया शतरुद्रसंहितामें पिप्पलादावतारवर्णन नामक चौबीसवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ २४॥

अथ पञ्चविंशोऽध्यायः

राजा अनरण्यकी पुत्री पद्माके साथ पिप्पलादका विवाह एवं उनके वैवाहिक जीवनका वर्णन

नन्दीश्वर उवाच

अथ लोके व्यवस्थाय धर्मस्य स्थापनेच्छया।
महालीलां चकारेशस्तामहो सन्मुने शृणु॥ १

एकदा पुष्पभद्रायां स्नातुं गच्छन्मुनीश्वरः।
ददर्श पद्मां युवतीं शिवांशां सुमनोहराम्॥ २

तल्लिप्सुस्तत्पितुः स्थानमनरण्यस्य भूपतेः।
जगाम भुवनाचारी लोकतत्त्वविचक्षणः॥ ३

राजा नराणां तं दृष्ट्वा प्रणम्य च भयाकुलः।
मधुपर्कादिकं दत्त्वा पूजयामास भक्तितः॥ ४

स्नेहात्सर्वं गृहीत्वा स ययाचे कन्यकां मुनिः।
मौनी बभूव नृपतिः किंचिन्निर्वक्तुमक्षमः॥ ५

मुनिः प्रोवाच नृपतिं कन्यां मे देहि भक्तितः।
अन्यथा भस्मसात्सर्वं करिष्येऽहं त्वया सह॥ ६

अथो बभूवुराच्छन्नाः सर्वे राजजनास्तदा।
तेजसा पिप्पलादस्य दाधीचस्य महामुने॥ ७

अथ राजा महाभीतो विलप्य च मुहुर्मुहुः।
कन्यामलंकृतां पद्मां वृद्धाय मुनये ददौ॥ ८

पद्मां विवाह्य स मुनिः शिवांशाम्भूपतेः सुताम्।
पिप्पलादो गृहीत्वा तां मुदितः स्वाश्रमं ययौ॥ ९

तत्र गत्वा मुनिवरो वयसा जर्जरोऽधिकः।
उवास नार्या स तया तपस्वी नातिलम्पटः॥ १०

अथोऽनरण्यकन्या सा सिषेवे भक्तितो मुनिम्।
कर्मणा मनसा वाचा लक्ष्मीर्नारायणं यथा॥ ११

इत्थं स पिप्पलादो हि शिवांशो मुनिसत्तमः।
रेमे तया युवत्या च युवाभूय स्वलीलया॥ १२

नन्दीश्वरजी बोले—इसके बाद धर्मकी स्थापनाकी इच्छासे लोकमें रहकर उन महेश्वरने महान् लीला की; हे सन्मुने! उसे आप सुनें॥ १॥

एक बार पुष्पभद्रा नदीमें स्नान करनेके लिये जाते हुए उन मुनीश्वर [पिप्पलाद]-ने शिवाके अंशसे उत्पन्न हुई पद्मा नामक अति मनोहर युवतीको देखा॥ २॥

लोकतत्त्वमें प्रवीण एवं समस्त भुवनोंमें संचरण करनेवाले वे उसे प्राप्त करनेकी इच्छासे उसके पिता राजा अनरण्यके पास गये॥ ३॥

उन्हें देखकर भयभीत हुए राजाने प्रणाम करके मधुपर्क आदि प्रदानकर भक्तिपूर्वक उनकी पूजा की॥ ४॥

उन मुनिने स्नेहपूर्वक [मधुपर्क आदि] सबकुछ ग्रहण करके उस कन्याकी याचना की। [यह सुनकर] राजा मौन हो गये और कुछ बोल न सके॥ ५॥

मुनिने राजासे कहा कि मुझे भक्तिपूर्वक अपनी कन्या प्रदान कीजिये, अन्यथा आपसहित सब कुछ भस्म कर दूँगा॥ ६॥

हे महामुने! उस समय समस्त राजपुरुष दधीचिपुत्र पिप्पलादके तेजसे आच्छन्न हो गये॥ ७॥

तब अत्यन्त डरे हुए राजाने बारंबार विलाप करके कन्या पद्माको अलंकृतकर वृद्ध मुनिको समर्पित कर दिया॥ ८॥

पार्वतीके अंशसे समुद्भूत उस राजपुत्री पद्माके साथ विवाहकर वे मुनि पिप्पलाद उसे लेकर प्रसन्न होकर अपने आश्रममें चले गये॥ ९॥

वहाँ जाकर वृद्धावस्थाके कारण अत्यधिक जर्जर हुए तथा लम्पट स्वभाव न रखनेवाले वे तपस्वी मुनिवर उस नारीके साथ निवास करने लगे॥ १०॥

जिस प्रकार लक्ष्मीजी नारायणकी सेवा करती हैं, उसी प्रकार अनरण्यकी वह कन्या मन, वचन तथा कर्मसे भक्तिपूर्वक मुनिकी सेवा करने लगी॥ ११॥

तब शिवके अंशरूप मुनिश्रेष्ठ पिप्पलाद अपनी लीलासे युवा होकर उस युवतीके साथ रमण करने लगे॥ १२॥

दश पुत्रा महात्मानो बभूवुः सुतपस्विनः।
मुनेः पितुः समाः सर्वे पद्मायाः सुखवर्द्धनाः॥ १३

उन मुनिके परम तपस्वी दस महात्मा पुत्र उत्पन्न हुए। वे सब अपने पिताके समान [महातेजस्वी] तथा पद्माके सुखको बढ़ानेवाले थे॥ १३॥

एवं लीलावतारो हि शङ्करस्य महाप्रभोः।
पिप्पलादो मुनिवरो नानालीलाकरः प्रभुः॥ १४

इस प्रकार महाप्रभु शंकरके लीलावतार मुनिवर पिप्पलादने अनेक प्रकारकी लीलाएँ कीं॥ १४॥

येन दत्तो वरः प्रीत्या लोकेभ्यो हि दयालुना।
दृष्ट्वा लोके शनेः पीडां सर्वेषामनिवारिणीम्॥ १५

षोडशाब्दावधि नृणां जन्मतो न भवेच्च सा।
तथा च शिवभक्तानां सत्यमेतद्धि मे वचः॥ १६

अथानादृत्य मद्वाक्यं कुर्यात्पीडां शनिः क्वचित्।
तेषां नृणां तदा स स्याद्भस्मसान्न हि संशयः॥ १७

लोकमें सभीके द्वारा अनिवारणीय शनि-पीड़ाको देखकर उन दयालु पिप्पलादने प्राणियोंको प्रीतिपूर्वक वर प्रदान किया था कि जन्मसे लेकर सोलह वर्षतककी आयुवाले मनुष्यों तथा शिवभक्तोंको शनिकी पीड़ा नहीं होगी; यह मेरा वचन सत्य होगा। मेरे इस वचनका निरादरकर यदि शनिने उन मनुष्योंको पीड़ा पहुँचायी तो वह उसी समय भस्म हो जायगा; इसमें सन्देह नहीं॥ १५—१७॥

इति तद्भयतस्तात विकृतोऽपि शनैश्चरः।
तेषां न कुरुते पीडां कदाचिद् ग्रहसत्तमः॥ १८

हे तात! इसीलिये ग्रहोंमें श्रेष्ठ शनैश्चर विकारयुक्त होनेपर भी उनके भयसे उन [वैसे मनुष्यों]-को कभी पीड़ित नहीं करता॥ १८॥

इति लीलामनुष्यस्य पिप्पलादस्य सन्मुने।
कथितं सुचरित्रं ते सर्वकामफलप्रदम्॥ १९

गाधिश्च कौशिकश्चैव पिप्पलादो महामुनिः।
शनैश्चरकृतां पीडां नाशयन्ति स्मृतास्त्रयः॥ २०

हे सन्मुने! इस प्रकार लीलापूर्वक मनुष्यरूप धारण करनेवाले पिप्पलादका उत्तम चरित मैंने आपसे कहा, जो सभी प्रकारकी कामनाओंको प्रदान करनेवाला है। गाधि, कौशिक एवं महामुनि पिप्पलाद—ये तीनों [महानुभाव] स्मरण किये जानेपर शनैश्चरजनित पीड़ाको नष्ट करते हैं॥ १९-२०॥

पिप्पलादस्य चरितं पद्माचरितसंयुतम्।
यः पठेच्छृणुयाद्वापि सुभक्त्या भुवि मानवः॥ २१

शनिपीडाविनाशार्थमेतच्चरितमुत्तमम् ।
यः पठेच्छृणुयाद्वापि सर्वान्कामानवाप्नुयात्॥ २२

भूलोकमें जो मनुष्य पद्माके चरित्रसे युक्त पिप्पलादके चरित्रको भक्तिपूर्वक पढ़ता या सुनता है और जो शनिकी पीड़ाके नाशके लिये इस उत्तम चरितको पढ़ता या सुनता है, उसकी सभी कामनाएँ पूर्ण हो जाती हैं॥ २१-२२॥

धन्यो मुनिवरो ज्ञानी महाशैवः सतां प्रियः।
अस्य पुत्रो महेशानः पिप्पलादाख्य आत्मवान्॥ २३

महाज्ञानी, महाशिवभक्त एवं सज्जनोंके लिये प्रिय वे मुनिवर दधीचि धन्य हैं, जिनके पुत्र आत्मवेत्ता पिप्पलादके रूपमें साक्षात् शिवजी अवतरित हुए॥ २३॥

इदमाख्यानमनघं स्वर्ग्यं कुग्रहदोषहृत्।
सर्वकामप्रदं तात शिवभक्तिविवर्द्धनम्॥ २४

हे तात! यह आख्यान निष्पाप, स्वर्गको देनेवाला, क्रूर ग्रहोंके दोषको नष्ट करनेवाला, सम्पूर्ण कामनाओंको पूर्ण करनेवाला तथा शिवभक्तिको बढ़ानेवाला है॥ २४॥

इति श्रीशिवमहापुराणे तृतीयायां शतरुद्रसंहितायां पिप्पलादावतार-चरितवर्णनं नाम पञ्चविंशोऽध्यायः॥ २५॥

॥ इस प्रकार श्रीशिवमहापुराणके अन्तर्गत तृतीय शतरुद्रसंहितामें पिप्पलादावतारचरितवर्णन नामक पच्चीसवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ २५॥

अथ षड्विंशोऽध्यायः

शिवके वैश्यनाथ नामक अवतारका वर्णन

नन्दीश्वर उवाच

श्रृणु तात प्रवक्ष्यामि शिवस्य परमात्मनः।
अवतारं परानन्दं वैश्यनाथाह्वयं मुने॥ १

नन्दीश्वर बोले—हे तात! हे मुने! अब मैं परमात्मा शिवजीके परम आनन्ददायक वैश्यनाथ नामक अवतारका वर्णन कर रहा हूँ; आप सुनिये॥ १॥

नन्दिग्रामे पुरा काचिन्महानन्देति विश्रुता।
बभूव वारवनिता शिवभक्ता सुसुन्दरी॥ २

पूर्व समयमें नन्दिग्राममें कोई महानन्दा नामसे प्रसिद्ध शिवभक्ता महासुन्दरी वेश्या रहती थी॥ २॥

महाविभवसम्पन्ना सुधनाढ्या महोज्ज्वला।
नानारत्नपरिच्छन्नश‍ृङ्गाररसनिर्भरा॥ ३

सर्वसंगीतविद्यासु निपुणातिमनोहरा।
तस्या गेयेन हृष्यन्ति राज्यो राजान एव च॥ ४

वह ऐश्वर्यसम्पन्न, धनाढ्य, परम कान्तियुक्त, अनेक प्रकारके रत्नोंसे युक्त, शृंगाररससे परिपूर्ण, सब प्रकारकी संगीत विद्याओंमें कुशल तथा मनको अत्यन्त मोहित करनेवाली थी। उसके गानसे रानियाँ तथा राजा हर्षित हो जाते थे॥ ३-४॥

समानर्च सदा साम्बं सा वेश्या शंकरं मुदा।
शिवनामजपासक्ता भस्मरुद्राक्षभूषणा॥ ५

वह वेश्या प्रसन्नतापूर्वक पार्वतीसहित शंकरकी सदा पूजा करती थी और शिवनामका जप करती थी तथा भस्म एवं रुद्राक्ष धारण करती थी॥ ५॥

शिवं सम्पूज्य सा नित्यं सेवन्ती जगदीश्वरम्।
ननर्त परया भक्त्या गायन्ती शिवसद्यशः॥ ६

शिवजीका प्रतिदिन पूजनकर वह बड़ी भक्तिके साथ जगदीश्वरकी सेवा करती तथा शिवके उत्तम यशका गान करती हुई नृत्य करती थी॥ ६॥

रुद्राक्षैर्भूषयित्वैकं मर्कटं चैव कुक्कुटम्।
करतालैश्च गीतैश्च सदा नर्तयति स्म सा॥ ७

वह एक बन्दर तथा मुर्गेको रुद्राक्षोंसे विभूषित करके ताली बजा-बजाकर गायन करती हुई उन्हें नचाती थी॥ ७॥

नृत्यमानौ च तौ दृष्ट्वा शिवभक्तिरता च सा।
वेश्या स्म विहसत्युच्चैः प्रेम्णा सर्वसखीयुता॥ ८

उन दोनोंको नाचते हुए देखकर शिवजीकी भक्तिमें तत्पर वह वेश्या अपनी सखियोंके सहित प्रेमपूर्वक उच्च स्वरमें हँसती थी॥ ८॥

रुद्राक्षैः कृतकेयूरकर्णाभरणमण्डना।
मर्कटः शिक्षया तस्याः पुरो नृत्यति बालवत्॥ ९

रुद्राक्षका बाजूबन्द एवं कर्णाभूषण पहनी हुई उस महानन्दाके सामने उसके सिखानेसे वानर बालककी तरह नाचता था॥ ९॥

शिखासंबद्धरुद्राक्षः कुक्कुटः कपिना सह।
नित्यं ननर्त नृत्यज्ञः पश्यतां हितमावहन्॥ १०

शिखामें रुद्राक्ष धारण किया हुआ नृत्यकलामें विशारद वह मुर्गा देखनेवालोंको आनन्दित करता हुआ, उस वानरके साथ सदा नृत्य किया करता था॥ १०॥

एवं सा कुर्वती वेश्या कौतुकं परमादरात्।
शिवभक्तिरता नित्यं महानन्दभराभवत्॥ ११

इस प्रकार शिवभक्तिपरायणा वह वेश्या अत्यन्त आदरपूर्वक कौतुक करती हुई सदा आनन्दसे रहती थी॥ ११॥

शिवभक्तिं प्रकुर्वन्त्या वेश्याया मुनिसत्तम।
बहुकालो व्यतीयाय तस्याः परमसौख्यतः॥ १२

हे मुनिसत्तम! इस प्रकार शिवभक्ति करती हुई उस वेश्याका सुखपूर्वक बहुत समय व्यतीत हो गया॥ १२॥

एकदा च गृहे तस्या वैश्यो भूत्वा शिवः स्वयम्।
परीक्षितुं च तद्भावमाजगाम शुभो व्रती॥ १३

त्रिपुण्ड्रविलसद्भालो रुद्राक्षाभरणः कृती।
शिवनामजपासक्तो जटिलः शैववेषभृत्॥ १४

स बिभ्रद्भस्मनिचयं प्रकोष्ठे वरकंकणम्।
महारत्नपरिस्तीर्णं राजते परकौतुकी॥ १५

तमागतं सुसंपूज्य सा वेश्या परया मुदा।
स्वस्थाने सादरं वैश्यं सुन्दरी हि न्यवेशयत्॥ १६

तत्प्रकोष्ठे वरं वीक्ष्य कंकणं सुमनोहरम्।
तस्मिञ्जातस्पृहा सा च तं प्रोवाच सुविस्मिता॥ १७

महानन्दोवाच

महारत्नमयश्चायं कंकणस्त्वत्करे स्थितः।
मनो हरति मे सद्यो दिव्यस्त्रीभूषणोचितः॥ १८

नन्दीश्वर उवाच

इति तां नवरत्नाढ्ये सस्पृहां करभूषणे।
वीक्ष्योदारमतिर्वैश्यः सस्मितं समभाषत॥ १९

वैश्यनाथ उवाच

अस्मिन् रत्नवरे दिव्ये सस्पृहं यदि ते मनः।
त्वमेवाधत्स्व सुप्रीत्या मौल्यमस्य ददासि किम्॥ २०

वेश्योवाच

वयं हि स्वैरचारिण्यो वेश्यास्तु न पतिव्रताः।
अस्मत्कुलोचितो धर्मो व्यभिचारो न संशयः॥ २१

यद्येतदखिलं चित्तं गृह्णाति करभूषणम्।
दिनत्रयमहोरात्रं पत्नी तव भवाम्यहम्॥ २२

वैश्य उवाच

तथास्तु यदि ते सत्यं वचनं वीरवल्लभे।
ददामि रत्नवलयं त्रिरात्रं भव मे वधूः॥ २३

एतस्मिन्व्यवहारे तु प्रमाणं शशिभास्करौ।
त्रिवारं सत्यमित्युक्त्वा हृदयं मे स्पृश प्रिये॥ २४

एक बार स्वयं ही शुभस्वरूप शिवजी व्रत धारण किये हुए वैश्य बनकर उसके भावकी परीक्षा करनेके लिये उसके घर आये॥ १३॥

वे कृती (वैश्यरूप शिव) त्रिपुण्ड्रसे शोभायमान मस्तकवाले, रुद्राक्षके आभरणवाले, शिवनाम जपनेमें आसक्त, जटायुक्त तथा शैव वेश धारण किये हुए थे॥ १४॥

शरीरमें भस्म लगाये तथा हाथमें उत्तम रत्नोंसे युक्त श्रेष्ठ कंकण पहने वे परम कौतुकीकी तरह शोभित हो रहे थे॥ १५॥

उन आये हुए वैश्यकी भलीभाँति पूजा करके उस सुन्दरी वेश्याने बड़े आनन्दके साथ उनको आदरसहित अपने स्थानमें बैठाया॥ १६॥

उनकी कलाईमें अति मनोहर सुन्दर कंकणको देखकर उसमें उसकी लालसा उत्पन्न हो गयी और वह वेश्या चकित होकर उनसे कहने लगी॥ १७॥

महानन्दा बोली—आपके हाथमें स्थित यह महा-रत्नजटित कंकण शीघ्र ही मेरे मनको आकर्षित कर रहा है; यह तो दिव्य स्त्रियोंके योग्य आभूषण है॥ १८॥

नन्दीश्वर बोले—इस प्रकार नवीन रत्नोंसे युक्त हाथके भूषणके प्रति उसे लालसायुक्त देखकर उदार बुद्धिवाले वैश्यने मुसकराकर कहा—॥ १९॥

वैश्यनाथ बोले—यदि इस रत्नोपम दिव्य कंकणमें तुम्हारा मन लुभा गया है, तो तुम ही प्रीतिसे इसको धारण करो; किंतु इसका क्या मूल्य दोगी?॥ २०॥

वेश्या बोली—हम व्यभिचारी वेश्याएँ हैं, पतिव्रताएँ नहीं हैं। व्यभिचार ही हमारे कुलका धर्म है; इसमें संशय नहीं॥ २१॥

निश्चय ही इस हस्ताभूषणने मेरे चित्तको आकृष्ट कर लिया है, इसलिये मैं तीन दिनोंतक दिन-रात आपकी पत्नी बनकर रहूँगी॥ २२॥

वैश्य बोले—हे वीरवल्लभे! 'बहुत अच्छा'; यदि तुम्हारा वचन सत्य है, तो मैं [यह] रत्नकंकण देता हूँ और तुम तीन राततकके लिये मेरी पत्नी बन जाओ॥ २३॥

हे प्रिये! इस व्यवहारमें सूर्य तथा चन्द्रमा साक्षी हैं; यह सत्य है—ऐसा तीन बार कहकर तुम मेरे हृदयका स्पर्श करो॥ २४॥

वेश्योवाच

दिनत्रयमहोरात्रं पत्नी भूत्वा तव प्रभो।
सहधर्मं चरामीति सत्यं सत्यं न संशयः॥ २५

नन्दीश्वर उवाच

इत्युक्त्वा हि महानन्दा त्रिवारं शशिभास्करौ।
प्रमाणीकृत्य सुप्रीत्या सा तद् हृदयमस्पृशत्॥ २६

अथ तस्यै स वैश्यस्तु प्रदत्त्वा रत्नकंकणम्।
लिंगं रत्नमयं तस्या हस्ते दत्त्वेदमब्रवीत्॥ २७

वैश्यनाथ उवाच

इदं रत्नमयं लिंगं शैवं मत्प्राणवल्लभम्।
रक्षणीयं त्वया कान्ते गोपनीयं प्रयत्नतः॥ २८

नन्दीश्वर उवाच

एवमस्त्विति सा प्रोच्य लिंगमादाय रत्नजम्।
नाट्यमण्डपिकामध्ये निधाय प्राविशद् गृहम्॥ २९

सा तेन संगता रात्रौ वैश्येन विटधर्मिणा।
सुखं सुष्वाप पर्यङ्के मृदुतल्पोपशोभिते॥ ३०

ततो निशीथसमये मुने वैश्यपतीच्छया।
अकस्मादुत्थिता वाणी नृत्यमण्डपिकान्तरे॥ ३१

महाप्रज्वलितो वह्निः सुसमीरसहायवान्।
नाट्यमण्डपिकां तात तामेव सहसावृणोत्॥ ३२

मण्डपे दह्यमाने तु सहसोत्थाय संभ्रमात्।
मर्कटं मोचयामास सा वेश्या तत्र बन्धनात्॥ ३३

स मर्कटो मुक्तबन्धः कुक्कुटेन सहामुना।
भिया दूरं हि दुद्राव विधूयाग्निकणान्बहून्॥ ३४

स्तम्भेन सह निर्दग्धं तल्लिंगं शकलीकृतम्।
दृष्ट्वा वेश्या स वैश्यश्च दुरन्तं दुःखमापतुः॥ ३५

दृष्ट्वा ह्यात्मसमं लिंगं दग्धं वैश्यपतिस्तदा।
ज्ञातुं तद्भावमन्तःस्थं मरणाय मतिं दधे॥ ३६

निविश्येऽतितरां खेदाद्वैश्यस्तामाह दुःखिताम्।
नानालीलो महेशानः कौतुकान्नरदेहवान्॥ ३७

वेश्या बोली—हे प्रभो! तीन दिनतक दिन-रात आपकी पत्नी होकर मैं सहधर्मका पालन करूँगी, यह सत्य है—सत्य है; इसमें सन्देह नहीं है॥ २५॥

नन्दीश्वर बोले—उस महानन्दाने तीन बार ऐसा कहकर सूर्य और चन्द्रमाको साक्षी मानकर अत्यन्त प्रसन्नतापूर्वक उनके हृदयका स्पर्श किया। तब वे वैश्य उसे रत्नजटित कंकण देकर [पुनः] उसके हाथमें रत्नमय शिवलिंग देकर यह कहने लगे—॥ २६-२७॥

वैश्यनाथ बोले—हे कान्ते! यह रत्नजटित शिवलिंग मुझे प्राणोंसे भी अधिक प्रिय है; तुम इसकी रक्षा करना और यत्नपूर्वक इसे छिपाकर रखना॥ २८॥

नन्दीश्वर बोले—उस वेश्याने 'ऐसा ही होगा'—इस प्रकार कहकर रत्नजटित लिंग लेकर और उसे नाट्यशालाके मध्यमें रखकर घरमें प्रवेश किया॥ २९॥

तब वह वेश्या उन विटधर्मी (विलासी) वैश्यके साथ रात्रिमें कोमल गद्दोंसे शोभायमान पलंगपर सुखपूर्वक सो गयी॥ ३०॥

हे मुने! तब मध्य रात्रिके समय उन वैश्यपतिकी इच्छासे नृत्यमण्डपके मध्य अकस्मात् एक ध्वनि होने लगी। हे तात! उसी समय तेज पवनकी सहायतासे अग्निने अत्यन्त प्रज्वलित होकर उस नाट्यशालाको चारों ओरसे आवृत कर लिया॥ ३१-३२॥

मण्डपके प्रज्वलित होनेपर उस वेश्याने सहसा व्याकुलतासे उठकर बन्दरको बन्धनमुक्त कर दिया॥ ३३॥

बन्धनसे मुक्त हुआ वह बन्दर उस मुर्गेके साथ बहुत-से अग्निकणोंको हटा करके भयसे दूर भाग गया। खम्भेके साथ जलकर खण्ड-खण्ड हो गये उस लिंगको देखकर वह वैश्य तथा वेश्या दोनों महादुखी हो गये॥ ३४-३५॥

उस समय वैश्यपतिने प्राणोंके समान शिवलिंगको जला हुआ देखकर उस वेश्याके चित्तमें स्थित भावको जाननेके लिये मरनेका विचार किया॥ ३६॥

अनेक लीलाएँ करनेवाले तथा कौतुकवश मनुष्य शरीर धारण किये हुए महेश्वररूप वैश्यपतिने महादुखी होकर उस दुःखित वेश्यासे कहा कि अब मैं अग्निमें प्रविष्ट हो जाऊँगा॥ ३७॥

वैश्यपतिरुवाच

शिवलिंगे तु निर्भिन्ने दग्धे मत्प्राणवल्लभे।
सत्यं वच्मि न सन्देहो नाहं जीवितुमुत्सहे॥ ३८

चितां कारय मे भद्रे स्वभृत्यैस्त्वं वरैर्लघु।
शिवे मनः समावेश्य प्रवेक्ष्यामि हुताशनम्॥ ३९

यदि ब्रह्मेन्द्रविष्ण्वाद्या वारयेयुः समेत्य माम्।
तथाप्यस्मिन् क्षणे भद्रे प्रविशामि त्यजाम्यसून्॥ ४०

नन्दीश्वर उवाच

तमेवं दृढनिर्बन्धं सा विज्ञाय सुदुःखिता।
स्वभृत्यैः कारयामास चितां स्वभवनाद् बहिः॥ ४१

ततः स वैश्यः शिव एक एव
प्रदक्षिणीकृत्य समिद्धमग्निम्।
विवेश पश्यत्सु नरेषु धीरः
सुकौतुकी संगतिभावमिच्छुः॥ ४२

दृष्ट्वा सा तद्गतिं वेश्या महानन्दातिविस्मिता।
अनुतापं च युवती प्रपेदे मुनिसत्तम॥ ४३

अथ सा दुःखिता वेश्या स्मृत्वा धर्मं सुनिर्मलम्।
सर्वान्बंधुजनान्वीक्ष्य बभाषे करुणं वचः॥ ४४

महानन्दोवाच

रत्नकंकणमादाय मया सत्यमुदाहृतम्।
दिनत्रयमहं पत्नी वैश्यस्यामुष्य संमता॥ ४५

कर्मणा मत्कृतेनायं मृतो वैश्यः शिवव्रती।
तस्मादहं प्रवेक्ष्यामि सहानेन हुताशनम्॥ ४६

स्वधर्मचारिणीत्युक्तमाचार्यैः सत्यवादिभिः।
एवं कृते मम प्रीत्या सत्यं मयि न नश्यतु॥ ४७

सत्याश्रयः परो धर्मः सत्येन परमा गतिः।
सत्येन स्वर्गमोक्षौ च सत्ये सर्वं प्रतिष्ठितम्॥ ४८

नन्दीश्वर उवाच

इति सा दृढनिर्बन्धा वार्यमाणापि बन्धुभिः।
सत्यलोपभिया नारी प्राणांस्त्यक्तुं मनो दधे॥ ४९

वैश्यपति बोले—मेरे प्राणोंसे भी प्रिय शिवलिंगके जलकर खण्डित हो जानेपर मैं जीनेकी इच्छा नहीं करता—यह सत्य-सत्य कहता हूँ; इसमें संशय नहीं है। हे भद्रे! तुम अपने श्रेष्ठ सेवकोंसे बहुत शीघ्र चिता बनवाओ; मैं शिवमें मन लगाकर अग्निमें प्रवेश करूँगा॥ ३८-३९॥

हे भद्रे! यदि ब्रह्मा, इन्द्र, विष्णु आदि भी आकर मुझे रोकेंगे, तो भी इस समय मैं अग्निमें प्रवेश करूँगा और प्राणोंको त्याग दूँगा॥ ४०॥

नन्दीश्वर बोले—[हे मुने!] उनका ऐसा दृढ़ संकल्प जानकर वह अत्यन्त दुःखित हुई और उसने अपने सेवकोंसे अपने भवनके बाहर चिता बनवायी॥ ४१॥

तब सुन्दर कौतुक करनेवाले तथा वेश्याके संगतिभावकी परीक्षा करनेवाले वे वैश्यरूपधारी धीर शिव जलती हुई अग्निकी परिक्रमा करके मनुष्योंके देखते-देखते अग्निमें प्रवेश कर गये॥ ४२॥

हे मुनिसत्तम! वह युवती वेश्या महानन्दा उस गतिको देखकर अत्यन्त विस्मित हो उठी और खिन्न हो गयी। इसके बाद वह दुखी वेश्या निर्मल धर्मका स्मरण करके सभी बन्धुजनोंको देखकर करुणासे युक्त वचन कहने लगी—॥ ४३-४४॥

महानन्दा बोली—मैंने इस वैश्यसे रत्नकंकण लेकर सत्य वचन कहा था कि मैं तीन दिनतक इस वैश्यकी धर्मसम्मत पत्नी रहूँगी॥ ४५॥

मेरे द्वारा किये गये कर्मसे यह शिवव्रतधारी वैश्य मृत्युको प्राप्त हुआ है, अतः मैं भी इसके साथ अग्निमें प्रवेश करूँगी॥ ४६॥

सत्य बोलनेवाले आचार्योंने '[नारी] स्वधर्मका आचरण करनेवाली हो'—ऐसा कहा है, अतः प्रसन्न होकर मेरे द्वारा ऐसा किये जानेपर मुझमें स्थित सत्य नष्ट नहीं होगा। सत्यका आश्रय ही परम धर्म है, सत्यसे परम गति होती है, सत्यसे ही स्वर्ग और मोक्ष मिलते हैं, अतः सत्यमें ही सब कुछ प्रतिष्ठित है॥ ४७-४८॥

नन्दीश्वर बोले—इस प्रकार दृढ़ संकल्पवाली उस नारीने अपने बन्धुओंद्वारा रोके जानेपर भी सत्यके लोपके भयसे प्राणोंको त्याग देनेका निश्चय किया

सर्वस्वं द्विजमुख्येभ्यो दत्त्वा ध्यात्वा सदाशिवम्।
तमग्निं त्रिःपरिक्रम्य प्रवेशाभिमुखी ह्यभूत्॥ ५०

और श्रेष्ठ ब्राह्मणोंको अपनी सम्पत्ति देकर सदाशिवका ध्यानकर उस अग्निकी तीन बार परिक्रमा करके वह उसमें प्रवेश करनेको उद्यत हुई॥ ४९-५०॥

तां पतन्तीं समिद्धेऽग्नौ स्वपदार्पितमानसाम्।
वारयामास विश्वात्मा प्रादुर्भूतः स वै शिवः॥ ५१

अपने चरणोंमें समर्पित मनवाली उस वेश्याको जलती अग्निमें गिरती देखकर प्रकट हुए उन विश्वात्मा शिवजीने रोक दिया॥ ५१॥

सा तं विलोक्याखिलदेवदेवं
त्रिलोचनं चन्द्रकलावतंसम्।
शशांकसूर्यानलकोटिभासं
स्तब्धेव भीतेव तथैव तस्थौ॥ ५२

सब देवताओंके भी देव, तीन नेत्रोंवाले, चन्द्रमाकी कलासे शोभित, करोड़ों चन्द्रमा-सूर्य-अग्निके समान प्रकाशवाले उन शिवको देखकर वह स्तब्ध तथा डरी हुईके समान उसी प्रकार खड़ी रह गयी॥ ५२॥

तां विह्वलां सुवित्रस्तां वेपमानां जडीकृताम्।
समाश्वास्य गलद्बाष्पां करौ धृत्वाब्रवीद्वचः॥ ५३

तब व्याकुल, संत्रस्त, काँपती हुई, जड़ीभूत तथा आँसू गिराती हुई उस वेश्याको आश्वस्त करके उसके हाथोंको पकड़कर शिवजी यह वचन कहने लगे—॥ ५३॥

शिव उवाच

सत्यं धर्मं च धैर्यं च भक्तिं च मयि निश्चलाम्।
परीक्षितुं त्वत्सकाशं वैश्यो भूत्वाहमागतः॥ ५४

शिवजी बोले—तुम्हारे सत्य, धर्म, धैर्य तथा मुझमें तुम्हारी निश्चल भक्तिकी परीक्षा करनेके निमित्त मैं वैश्य बनकर तुम्हारे पास आया था॥ ५४॥

माययाग्निं समुद्दीप्य दग्धं ते नाट्यमण्डपम्।
दग्धं कृत्वा रत्नलिंगं प्रविष्टोऽहं हुताशनम्॥ ५५

मैंने अपनी मायासे अग्निको प्रदीप्तकर तुम्हारे नाट्यमण्डपको जलाया है और रत्नलिंगको दग्ध करके मैं अग्निमें प्रविष्ट हुआ हूँ॥ ५५॥

सा त्वं सत्यमनुस्मृत्य प्रविष्टाग्निं मया सह।
अतस्ते संप्रदास्यामि भोगांस्त्रिदशदुर्लभान्॥ ५६

यद्यदिच्छसि सुश्रोणि तदेव हि ददामि ते।
त्वद्भक्त्याहं प्रसन्नोऽस्मि तवादेयं न विद्यते॥ ५७

तुम सत्यका अनुस्मरण करके मेरे साथ अग्निमें प्रविष्ट होने लगी, अतः मैं तुम्हें देवताओंके लिये भी दुर्लभ भोगोंको प्रदान करूँगा। हे सुश्रोणि! तुम जो-जो चाहती हो, उसे मैं तुम्हें देता हूँ; मैं तुम्हारी भक्तिसे प्रसन्न हूँ, तुम्हारे लिये [मुझे] कुछ भी अदेय नहीं है॥ ५६-५७॥

नन्दीश्वर उवाच

इति ब्रुवति गौरीशे शंकरे भक्तवत्सले।
महानन्दा च सा वेश्या शंकरं प्रत्यभाषत॥ ५८

नन्दीश्वर बोले—[हे मुने!] इस प्रकार भक्तवत्सल गौरीपति शिवजीके कहनेपर वह महानन्दा वेश्या शंकरजीसे कहने लगी—॥ ५८॥

वेश्योवाच

न मे वाञ्छास्ति भोगेषु भूमौ स्वर्गे रसातले।
तव पादाम्बुजस्पर्शादन्यत्किंचिन्न कामये॥ ५९

वेश्या बोली—भूमि, स्वर्ग तथा पातालके भोगोंमें मेरी इच्छा नहीं है; मैं आपके चरणकमलोंके स्पर्शके अतिरिक्त अन्य कुछ नहीं चाहती हूँ॥ ५९॥

ये मे भृत्याश्च दास्यश्च ये चान्ये मम बान्धवाः।
सर्वे त्वद्दर्शनपरास्त्वयि संन्यस्तवृत्तयः॥ ६०

सर्वानेतान्मया सार्धं निनीयात्मपरं पदम्।
पुनर्जन्मभयं घोरं विमोचय नमोऽस्तु ते॥ ६१

जो मेरे भृत्य तथा दासियाँ हैं और जो अन्य बान्धव हैं, वे सब आपके दर्शनके लिये लालायित हैं और आपमें ही चित्तकी वृत्तियाँ लगाये हुए हैं। मेरे सहित इन सभीको अपने परम पदकी प्राप्ति कराके पुनर्जन्मके घोर भयसे छुड़ाइये, आपको नमस्कार है॥ ६०-६१॥

नन्दीश्वर उवाच

ततः स तस्या वचनं प्रतिनन्द्य महेश्वरः।
ताः सर्वाश्च तया सार्धं निनाय स्वं परं पदम्॥ ६२

नन्दीश्वर बोले—[हे मुने!] इसके उपरान्त शिवजीने उसके वचनका आदरकर उसके सहित उन सबको अपने परम पदकी प्राप्ति करायी॥ ६२॥

वैश्यनाथावतारस्ते वर्णितः परमो मया।
महानन्दासुखकरो भक्तानन्दप्रदः सदा॥ ६३

मैंने वैश्यनाथके परम अवतारका वर्णन आपसे कर दिया, जो महानन्दाको सुख देनेवाला तथा भक्तोंको सदा आनन्द देनेवाला है॥ ६३॥

इदं चरित्रं परमं पवित्रं
सतां च सर्वप्रदमाशु दिव्यम्।
शिवावतारस्य विशाम्पतेर्महा-
नन्दामहासौख्यकरं विचित्रम्॥ ६४

शिवके अवताररूप वैश्यनाथका यह दिव्य चरित्र परम पवित्र, सत्पुरुषोंको शीघ्र सब कुछ देनेवाला, महानन्दाको परम सुख देनेवाला तथा अद्भुत है॥ ६४॥

इदं यः शृणुयाद्भक्त्या श्रावयेद्वा समाहितः।
च्यवते न स्वधर्मात्स परत्र लभते गतिम्॥ ६५

जो भक्तिसहित सावधान होकर इसे सुनता है अथवा सुनाता है, वह अपने धर्मसे पतित नहीं होता, और परलोकमें [उत्तम] गति प्राप्त करता है॥ ६५॥

इति श्रीशिवमहापुराणे तृतीयायां शतरुद्रसंहितायां वैश्यनाथाह्वय-शिवावतारवर्णनं नाम षड्विंशोऽध्यायः॥ २६॥

॥ इस प्रकार श्रीशिवमहापुराणके अन्तर्गत तृतीय शतरुद्रसंहितामें वैश्यनाथ नामवाले शिवावतारका वर्णन नामक छब्बीसवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ २६॥

अथ सप्तविंशोऽध्यायः

भगवान् शिवके द्विजेश्वरावतारका वर्णन

नन्दीश्वर उवाच

शृणु तात प्रवक्ष्यामि शिवस्य परमात्मनः।
द्विजेश्वरावतारं च सशिवं सुखदं सताम्॥ १

नन्दीश्वर बोले—हे तात! अब मैं सज्जनोंके लिये कल्याणकारी तथा उन्हें सुख देनेवाले परमात्मा शिवके द्विजेश्वरावतारका वर्णन करता हूँ, उसे सुनिये॥ १॥

यः पूर्वं वर्णितस्तात भद्रायुर्नृपसत्तमः।
यस्मिन्नृषभरूपेणानुग्रहं कृतवाञ्छिवः॥ २
तद्धर्मस्य परीक्षार्थं पुनराविर्बभूव सः।
द्विजेश्वरस्वरूपेण तदेव कथयाम्यहम्॥ ३

हे तात! मैंने पहले जिन नृपश्रेष्ठ भद्रायुका वर्णन किया था और जिनपर शिवजीने ऋषभरूप धारणकर अनुग्रह किया था, उन्हींके धर्मकी परीक्षा लेनेके लिये वे पुनः द्विजेश्वरस्वरूपसे प्रकट हुए थे, उसी वृत्तान्तको मैं कह रहा हूँ॥ २-३॥

ऋषभस्य प्रभावेण शत्रूञ्जित्वा रणे प्रभुः।
प्राप्तसिंहासनस्तात भद्रायुः संबभूव ह॥ ४
चन्द्रांगदस्य तनया सीमन्तिन्याः शुभाङ्गजा।
पत्नी तस्याभवद् ब्रह्मन् सुसाध्वी कीर्तिमालिनी॥ ५

हे तात! उन प्रभविष्णु राजा भद्रायुने ऋषभके प्रभावसे संग्राममें समस्त शत्रुओंको जीतकर राज्यसिंहासन प्राप्त किया। हे ब्रह्मन्! राजा चन्द्रांगदकी सीमन्तिनी नामक पत्नीसे उत्पन्न सुन्दरी पुत्री तथा परम साध्वी कीर्तिमालिनी उनकी पत्नी हुई॥ ४-५॥

स भद्रायुः कदाचित्स्वप्रियया गहनं वनम्।
प्राविशत्संविहारार्थं वसन्तसमये मुने॥ ६
अथ तस्मिन्वने रम्ये विजहार स भूपतिः।
शरणागतपालिन्या तया स्वप्रियया सह॥ ७

हे मुने! किसी समय उन भद्रायुने वसन्तकालमें अपनी पत्नीके साथ वनविहार करनेके लिये घने वनमें प्रवेश किया। इसके बाद वे राजा उस सुरम्य वनमें शरणागतोंका पालन करनेवाली अपनी प्रियाके साथ विहार करने लगे॥ ६-७॥

अथ तद्धर्मदृढतां प्रतीक्षन्परमेश्वरः।
लीलां चकार तत्रैव शिवया सह शंकरः॥ ८

तब उनके धर्मकी दृढ़ताकी परीक्षाके लिये पार्वतीसहित भगवान् शिवने वहींपर एक लीला की॥ ८॥

शिवा शिवश्च भूत्वोभौ तद्वने द्विजदम्पती।
व्याघ्रं मायामयं कृत्वाविर्भूतौ निजलीलया॥ ९

शिवजी और पार्वतीजी द्विजदम्पती बनकर तथा अपनी लीलासे एक मायामय व्याघ्रको बनाकर उस वनमें प्रकट हुए॥ ९॥

अथाविदूरे तस्यैव द्रवन्तौ भयविह्वलौ।
अन्वीयमानौ व्याघ्रेण रुदन्तौ तौ बभूवतुः॥ १०

अथ विद्धौ च तौ तात भद्रायुः स महीपतिः।
ददर्श क्रन्दमानौ हि शरण्यः क्षत्रियर्षभः॥ ११

वे दोनों द्विजदम्पती जहाँ राजा विहार कर रहे थे, वहींसे थोड़ी दूरपर व्याघ्रद्वारा पीछा किये जानेपर भयसे व्याकुल होकर दौड़ते, रोते-चिल्लाते हुए राजाके समीप पहुँचे। शरणागतवत्सल एवं क्षत्रियोंमें श्रेष्ठ उन राजा भद्रायुने व्याघ्रसे आक्रान्त होकर 'हे तात!' चिल्लाते हुए उन दोनोंको देखा॥ १०-११॥

अथ तौ मुनिशार्दूल स्वमायाद्विजदम्पती।
भद्रायुषं महाराजमूचतुर्भयविह्वलौ॥ १२

हे मुनिश्रेष्ठ! अपनी मायासे द्विजदम्पती बने हुए उन दोनोंने भयसे व्याकुल होकर महाराज भद्रायुसे इस प्रकार कहा—॥ १२॥

द्विजदम्पती ऊचतुः

पाहि पाहि महाराज नावुभौ धर्मवित्तम।
एष आयाति शार्दूलो जग्धुमावां महाप्रभो॥ १३

एष हिंस्रः कालसमः सर्वप्राणिभयङ्करः।
यावन्न खादति प्राप्य तावन्नौ रक्ष धर्मवित्॥ १४

द्विजदम्पती बोले—हे महाराज! हे धर्मवित्तम! हम दोनोंकी रक्षा कीजिये। हे महाप्रभो! हम दोनोंको खानेके लिये यह व्याघ्र आ रहा है। हे धर्मज्ञ! यह हिंसक, कालसदृश तथा सभी प्राणियोंके लिये भयंकर व्याघ्र आकर जबतक हम दोनोंको खा न ले, उसके पहले ही आप इस व्याघ्रसे हमलोगोंको बचा लीजिये॥ १३-१४॥

नन्दीश्वर उवाच

इत्थमाक्रन्दितं श्रुत्वा तयोश्च नृपतीश्वरः।
अति शीघ्रं महावीरः स यावद्धनुराददे॥ १५

तावदभ्येत्य शार्दूलः त्वरमाणोऽतिमायिकः।
स तस्य द्विजवर्यस्य मध्ये जग्राह तां वधूम्॥ १६

हे नाथ नाथ हे कान्त हा शम्भो हा जगद्गुरो।
इति रोरूयमानां तां व्याघ्रो जग्रास भीषणः॥ १७

नन्दीश्वर बोले—उन महावीर राजाने उन दोनोंका करुण क्रन्दन सुनकर ज्यों ही अत्यन्त शीघ्रतापूर्वक धनुष धारण किया, इतनेमें अति मायावी उस व्याघ्रने बड़ी शीघ्रताके साथ पहुँचकर उस द्विजश्रेष्ठकी स्त्रीको पकड़ लिया, और 'हे नाथ! हा कान्त! हा शम्भो! हे जगद्गुरो!'—इस प्रकार कहकर रोती हुई उस स्त्रीको भयंकर व्याघ्रने ग्रास बना लिया॥ १५—१७॥

तावत्स राजा निशितैर्भल्लैर्व्याघ्रमताडयत्।
न स तैर्विव्यथे किंचिद्गिरीन्द्र इव वृष्टिभिः॥ १८

तबतक राजाने अपने तीक्ष्ण भालोंसे व्याघ्रपर प्रहार किया, किंतु उसे उन भालोंसे किसी प्रकारकी व्यथा नहीं हुई, जैसे वृष्टिधाराओंसे पर्वतराजपर कोई प्रभाव नहीं पड़ता है॥ १८॥

स शार्दूलो महासत्त्वो राज्ञः स्वैरकृतव्यथः।
बलादाकृष्य तां नारीमपाक्रमत सत्वरः॥ १९

राजाके द्वारा यथेच्छ आघात किये जानेपर भी व्यथारहित वह महाबलवान् व्याघ्र बलपूर्वक उस स्त्रीको लेकर बड़ी शीघ्रताके साथ वहाँसे भाग गया॥ १९॥

व्याघ्रेणापहृतां नारीं वीक्ष्य विप्रोऽतिविस्मितः।
लौकिकीं गतिमाश्रित्य रुरोदाति मुहुर्मुहुः॥ २०

रुदित्वा चिरकालं च स विप्रो माययेश्वरः।
भद्रायुषं महीपालं प्रोवाच मदहारकः॥ २१

द्विजेश्वर उवाच

राजन् क्व ते महास्त्राणि क्व ते त्राणं महद्धनुः।
क्व ते द्वादशसाहस्त्रमहानागयुतं बलम्॥ २२

किं ते खड्गेन शङ्खेन किं ते मन्त्रास्त्रविद्यया।
किं सत्त्वेन महास्त्राणां किं प्रभावेण भूयसा॥ २३

तत्सर्वं विफलं जातं यच्चान्यत्त्वयि तिष्ठति।
यस्त्वं वनौकसां घातं न निवारयितुं क्षमः॥ २४

क्षत्रस्यायं परो धर्मो क्षताच्च परिरक्षणम्।
तस्मिन्कुलोचिते धर्मे नष्टे त्वज्जीवितेन किम्॥ २५

आर्तानां शरणाप्तानां त्राणं कुर्वन्ति पार्थिवाः।
प्राणैरर्थैश्च धर्मज्ञास्तद्विना च मृतोपमाः॥ २६

आर्तत्राणविहीनानां जीवितान्मरणं वरम्।
धनिनां दानहीनानां गार्हस्थ्याद्भिक्षुता वरम्॥ २७

वरं विषाशनं प्राज्ञैर्वरमग्निप्रवेशनम्।
कृपणानामनाथानां दीनानामपरक्षणात्॥ २८

नन्दीश्वर उवाच

इत्थं विलपितं तस्य स्ववीर्यस्य च गर्हणम्।
निशम्य नृपतिः शोकादात्मन्येवमचिन्तयत्॥ २९

अहो मे पौरुषं नष्टमद्य दैवविपर्ययात्।
अद्य कीर्तिश्च मे नष्टा पातकं प्राप्तमुत्कटम्॥ ३०

इस प्रकार बाघके द्वारा अपहृत अपनी स्त्रीको देखकर ब्राह्मण अत्यन्त विस्मित हो गया और लौकिकी गतिका आश्रय लेकर बारंबार रोने लगा॥ २०॥

फिर देरतक रोनेके बाद अभिमान नष्ट करनेवाले तथा मायासे विप्ररूप धारण करनेवाले उन परमेश्वरने राजा भद्रायुसे कहा—॥ २१॥

द्विजेश्वर बोले—हे राजन्! [इस समय] तुम्हारे महान् अस्त्र कहाँ हैं, रक्षा करनेवाला तुम्हारा महाधनुष कहाँ है और बारह हजार हाथियोंका तुम्हारा बल कहाँ है?॥ २२॥

तुम्हारे शंख तथा खड्गसे क्या लाभ? तुम्हारी समन्त्रक अस्त्रविद्यासे क्या लाभ? तुम्हारे सत्त्वसे क्या लाभ और तुम्हारे महान् अस्त्रोंके उत्कृष्ट और अतिशय प्रभावसे क्या लाभ? अन्य जो कुछ भी तुममें है, वह सब निष्फल हो गया; क्योंकि तुम वनमें रहनेवाले जन्तुओंके आक्रमणको भी रोकनेमें सक्षम न हो सके॥ २३-२४॥

[प्रजाजनोंको] क्षीण होनेसे बचाना क्षत्रियका परम धर्म है। उस कुलधर्मके नष्ट हो जानेपर तुम्हारे जीवित रहनेसे क्या लाभ है?॥ २५॥

धर्मज्ञ राजा अपने प्राणों तथा धनसे अपने शरणमें आये हुए दीन-दु:खियोंकी रक्षा करते हैं, यदि वे ऐसा नहीं करते तो मृतकके समान हैं॥ २६॥

पीड़ितोंकी रक्षा करनेमें असमर्थ राजाओंके लिये जीवित रहनेकी अपेक्षा मर जाना ही श्रेयस्कर है, दानसे हीन धनी लोगोंके लिये गृहस्थ होनेकी अपेक्षा भिखारी होना कहीं अधिक श्रेष्ठ है॥ २७॥

अनाथ, दीन एवं आर्तजनोंकी रक्षा करनेमें जो अक्षम हैं, उनके लिये विष खाना या अग्निमें प्रवेश कर जाना कहीं अच्छा है—ऐसा बुद्धिमान् लोग कहते हैं॥ २८॥

नन्दीश्वर बोले—इस प्रकार उस ब्राह्मणका विलाप तथा उसके मुखसे अपने पराक्रमकी निन्दा सुनकर राजा भद्रायु शोकसन्तप्त हो अपने मनमें इस प्रकार विचार करने लगे॥ २९॥

अहो! आज भाग्यके उलट-फेरसे मेरा पराक्रम नष्ट हो गया, आज मेरी कीर्ति नष्ट हो गयी और मुझे भयंकर पापका भागी होना पड़ा॥ ३०॥

धर्मः कुलोचितो नष्टो मन्दभाग्यस्य दुर्मतेः।
नूनं मे सम्पदो राज्यमायुष्यं क्षयमेष्यति॥ ३१

मुझ अभागे तथा दुर्बुद्धिका कुलोचित धर्म नष्ट हो गया। निश्चय ही [इस प्रकारके पापके कारण] मेरी सम्पत्तियों, राज्य और आयुका भी नाश हो जायगा॥ ३१॥

अद्य चैनं द्विजन्मानं हतदारं शुचार्दितम्।
हतशोकं करिष्यामि दत्त्वा प्राणानतिप्रियान्॥ ३२

अपनी पत्नीके मर जानेसे शोकसन्तप्त इस ब्राह्मणको मैं आज अतिप्रिय प्राणोंको देकर शोकरहित करूँगा॥ ३२॥

इति निश्चित्य मनसा स भद्रायुर्नृपोत्तमः।
पतित्वा पादयोस्तस्य बभाषे परिसान्त्वयन्॥ ३३

इस प्रकार नृपश्रेष्ठ भद्रायुने अपने मनमें निश्चयकर उस ब्राह्मणके चरणोंमें गिरकर उसे सान्त्वना देते हुए कहा—॥ ३३॥

भद्रायुरुवाच

कृपां कृत्वा मयि ब्रह्मन् क्षत्रबन्धौ हतौजसि।
शोकं त्यज महाप्राज्ञ दास्याम्यद्य तु वाञ्छितम्॥ ३४
इदं राज्यमियं राज्ञी ममेदं च कलेवरम्।
त्वदधीनमिदं सर्वं किं तेऽभिलषितं वरम्॥ ३५

भद्रायु बोले—हे ब्रह्मन्! हे महाप्राज्ञ! मुझ नष्ट तेजवाले क्षत्रियाधमपर कृपा करके अपने शोकका त्याग कीजिये, मैं आज आपका अभीष्ट पूरा करूँगा। यह राज्य, यह रानी और मेरा यह शरीर सब कुछ आपके अधीन है, इसके अतिरिक्त आप और क्या चाहते हैं?॥ ३४-३५॥

ब्राह्मण उवाच

किमादर्शेन चान्धस्य किं गृहैर्भैक्ष्यजीविनः।
किं पुस्तकेन मूढस्य निस्त्रीकस्य धनेन किम्॥ ३६
अतोऽहं हतपत्नीको भुक्तभोगो न कर्हिचित्।
इमां तवाग्रमहिषीं कामये दीयतामिति॥ ३७

ब्राह्मण बोले—[हे राजन्!] अन्धेको दर्पणसे क्या लाभ, भिक्षासे जीवन-निर्वाह करनेवालेको घरकी क्या आवश्यकता, मूर्खको पुस्तकसे क्या लाभ और स्त्रीविहीन पुरुषको धनसे क्या प्रयोजन! इस समय मेरी स्त्री मर चुकी है और मैंने कभी कामसुखका उपभोग नहीं किया, अतः मैं आपकी इस पटरानीको चाहता हूँ, इसे मुझे दे दीजिये॥ ३६-३७॥

भद्रायुरुवाच

दाता रसान्तवित्तस्य राज्यस्य गजवाजिनाम्।
आत्मदेहस्य कस्यापि कलत्रस्य न कर्हिचित्॥ ३८

भद्रायु बोले—[हे ब्राह्मण!] पूरी पृथ्वीके धनका और राज्य, हाथी, घोड़े तथा अपने शरीरका भी दाता तो हुआ जा सकता है, किंतु अपनी स्त्रीका दान करनेवाला तो कहीं नहीं होता॥ ३८॥

परदारोपभोगेन यत्पापं समुपार्जितम्।
न तत्क्षालयितुं शक्यं प्रायश्चित्तशतैरपि॥ ३९

दूसरेकी स्त्रीके साथ समागम करनेसे जो पाप अर्जित किया जाता है, उसे सैकड़ों प्रायश्चित्तोंसे भी दूर नहीं किया जा सकता है॥ ३९॥

ब्राह्मण उवाच

आस्तां ब्रह्मवधं घोरमपि मद्यनिषेवणम्।
तपसा विधमिष्यामि किं पुनः पारदारिकम्॥ ४०

ब्राह्मण बोले—मुझे घोर ब्रह्महत्या तथा मद्य पीनेका महापाप ही क्यों न लगे, मैं उसे तपस्यासे नष्ट कर दूँगा, फिर परस्त्रीगमन कितना बड़ा पाप है॥ ४०॥

तस्मात्प्रयच्छ भार्यां स्वामिमां कामो न मेऽपरः।
अरक्षणाद्भयार्तानां गन्तासि निरयं ध्रुवम्॥ ४१

अतः आप मुझे अपनी यह स्त्री प्रदान कीजिये, मैं दूसरा कुछ नहीं चाहता, अन्यथा भयभीतोंकी रक्षा करनेमें असमर्थ होनेके कारण आपको निश्चित रूपसे नरककी प्राप्ति होगी॥ ४१॥

नन्दीश्वर उवाच

इति विप्रगिरा भीतश्चिन्तयामास पार्थिवः।
अरक्षणान्महापापं पत्नीदानं ततो वरम्॥ ४२

नन्दीश्वर बोले—ब्राह्मणकी इस बातसे भयभीत राजा विचार करने लगे कि भयभीतकी रक्षा न कर सकना महान् पाप है, उसकी अपेक्षा स्त्री दे देना ही श्रेयस्कर है॥ ४२॥

अतः पत्नीं द्विजाग्र्याय दत्त्वा निर्मुक्तकिल्बिषः।
सद्यो वह्निं प्रवेक्ष्यामि कीर्तिश्च विदिता भवेत्॥ ४३

अतः श्रेष्ठ ब्राह्मणको अपनी स्त्री प्रदानकर पापसे मुक्त हो शीघ्र ही अग्निमें प्रवेश कर जाऊँगा, ऐसा करनेसे मेरी कीर्ति भी बढ़ेगी॥ ४३॥

इति निश्चित्य मनसा समुज्ज्वाल्य हुताशनम्।
तमाहूय द्विजं चक्रे पत्नीदानं सहोदकम्॥ ४४

मनमें ऐसा विचारकर राजाने अग्नि प्रज्वलित करके उस ब्राह्मणको बुलाकर जल लेकर [संकल्पके साथ] अपनी पत्नीका दान कर दिया॥ ४४॥

स्वयं स्नातः शुचिर्भूत्वा प्रणम्य विबुधेश्वरान्।
तमग्निं त्रिःपरिक्रम्य शिवं दध्यौ समाहितः॥ ४५

इसके बाद स्वयं स्नान करके पवित्र हो देवेश्वरोंको प्रणामकर उस अग्निकी तीन बार प्रदक्षिणा करके समाहितचित्त हो, उन्होंने शिवजीका ध्यान किया॥ ४५॥

तमथाग्निं पतिष्यन्तं स्वपदासक्तचेतसम्।
प्रत्यषेधत विश्वेशः प्रादुर्भूतो द्विजेश्वरः॥ ४६

तदनन्तर द्विजेश्वरने साक्षात् शिवरूपमें प्रकट होकर अपने चरणोंमें मन लगाकर [प्रज्वलित] अग्निमें गिरनेको उद्यत हुए उन राजाको रोक दिया॥ ४६॥

तमीश्वरं पञ्चमुखं त्रिनेत्रं
पिनाकिनं चन्द्रकलावतंसम्।
प्रलम्बपिंगांशुजटाकलापं
मध्याह्नसद्भास्करकोटितेजसम्॥ ४७
मृणालगौरं गजचर्मवाससं
गंगातरङ्गोक्षितमौलिदेशकम्।
नागेन्द्रहारावलिकण्ठभूषणं
किरीटकाञ्च्यङ्गदकंकणोज्ज्वलम्॥ ४८
शूलासिखट्वाङ्गकुठारचर्म-
मृगाभयाष्टाङ्गपिनाकहस्तम्।
वृषोपरिस्थं शितिकण्ठभूषणं
प्रोद्भूतमग्रे स नृपो ददर्श॥ ४९

पाँच मुखोंवाले, तीन नेत्रोंवाले, पिनाकी, मस्तकपर चन्द्रकला धारण करनेवाले, लम्बी एवं पीली-पीली जटाओंसे युक्त, मध्याह्नकालीन करोड़ों सूर्योंकी भाँति तेजवाले, मृणालके समान शुभ्र वर्णवाले, गजचर्म धारण किये हुए, गंगाकी तरंगोंसे सिंचित शिरःप्रदेशवाले, कण्ठमें नागेन्द्रहाररूप आभूषण धारण करनेवाले, मुकुट-करधनी-बाजूबन्द तथा कंकण धारण करनेसे उज्ज्वल प्रतीत होनेवाले, त्रिशूल-खड्ग-खट्वांग-कुठार-चर्म-मृग-अभय मुद्रा तथा पिनाक नामक धनुषसे युक्त आठ हाथोंवाले, बैलपर बैठे हुए और कण्ठमें विषकी कालिमासे सुशोभित उन शिवजीको राजाने अपने सामने प्रकट हुआ देखा॥ ४७—४९॥

ततोऽम्बराद् द्रुतं पेतुर्दिव्याः कुसुमवृष्टयः।
प्रणेदुर्देवतूर्य्याणि देव्यश्च ननृतुर्जगुः॥ ५०

तब आकाशमण्डलसे शीघ्र ही दिव्य पुष्पवृष्टि होने लगी, देवताओंकी दुन्दुभियाँ बजने लगीं और अप्सराएँ नाचने तथा गाने लगीं॥ ५०॥

तत्राजग्मुः स्तूयमाना हरिर्ब्रह्मा तथा सुराः।
इन्द्रादयो नारदाद्या मुनयश्चापरेऽपि च॥ ५१

ब्रह्मा, विष्णु, इन्द्रादि देवता, नारदादि महर्षि तथा अन्य मुनिगण भी स्तुति करते हुए वहाँ आ पहुँचे॥ ५१॥

तदोत्सवो महानासीत्तत्र भक्तिप्रवर्धनः।
सति पश्यति भूपाले भक्तिनम्रीकृताञ्जलौ॥ ५२

उस समय भक्तिसे विनम्र हो हाथ जोड़े हुए राजाके देखते-देखते ही भक्तिको बढ़ानेवाला महान् उत्सव होने लगा॥ ५२॥

तद्दर्शनानन्दविजृम्भिताशयः
प्रवृद्धबाष्पाम्बुविलिप्तगात्रः ।
प्रहृष्टरोमा स हि गद्गदाक्षर-
स्तुष्टाव गीर्भिर्मुकुलीकृताञ्जलिः ॥ ५३

ततस्स भगवान् राज्ञा संस्तुतः परमेश्वरः।
प्रसन्नः सह पार्वत्या तमुवाच दयानिधिः॥ ५४

राजंस्ते परितुष्टोऽहं भक्त्या त्वद्धर्मतोऽधिकम्।
वरं ब्रूहि सपत्नीकं प्रयच्छामि न संशयः॥ ५५

तव भावपरीक्षार्थं द्विजो भूत्वाहमागतः।
व्याघ्रेण या परिग्रस्ता साक्षाद्देवी शिवा हि सा॥ ५६

व्याघ्रो मायामयो यस्ते शरैरक्षतविग्रहः।
धीरतां द्रष्टुकामस्ते पत्नीं याचितवानहम्॥ ५७

नन्दीश्वर उवाच

इत्याकर्ण्य प्रभोर्वाक्यं स भद्रायुर्महीपतिः।
पुनः प्रणम्य संस्तूय स्वामिनं नतकोऽब्रवीत्॥ ५८

भद्रायुरुवाच

एक एव वरो नाथ यद्भवान्परमेश्वरः।
भवतापप्रतप्तस्य मम प्रत्यक्षतां गतः॥ ५९
यद्दासि पुनर्नाथ वरं स्वकृपया प्रभो।
वृणेऽहं परमं त्वत्तो वरं हि वरदर्षभात्॥ ६०
वज्रबाहुः पिता मे हि सपत्नीको महेश्वर।
सपत्नीकस्त्वहं नाथ सदा त्वत्पादसेवकः॥ ६१
वैश्यः पद्माकरो नाम तत्पुत्रः सनयाभिधः।
सर्वानेतान्महेशान सदा त्वं पार्श्वगान्कुरु॥ ६२

नन्दीश्वर उवाच

अथ राज्ञी च तत्पत्नी प्रमत्ता कीर्तिमालिनी।
भक्त्या प्रसाद्य गिरिशं ययाचे वरमुत्तमम्॥ ६३

राज्ञ्युवाच

चन्द्रांगदो मम पिता माता सीमन्तिनी च मे।
तयोर्याचे महादेव त्वत्पार्श्वे सन्निधिं मुदा॥ ६४

भगवान् सदाशिवके दर्शनमात्रसे राजाका अन्तःकरण प्रसन्नतासे खिल उठा, अश्रुपातसे सारा शरीर आर्द्र हो गया, शरीर रोमांचित हो गया। तब वे हाथ जोड़े गद्गद वाणीसे शिवजीकी स्तुति करने लगे॥ ५३॥

इसके बाद राजाके द्वारा स्तुति किये जानेपर पार्वतीके साथ प्रसन्न हुए दयानिधि भगवान् महेश्वरने उनसे कहा—हे राजन्! मैं आपकी भक्तिसे अत्यन्त प्रसन्न हो गया हूँ और आपके धर्मपालनसे तो और भी प्रसन्न हुआ हूँ। अब आप अपनी पत्नीसहित वर माँगिये, मैं उसे दूँगा, इसमें संशय नहीं है। मैं आपके भक्तिभावकी परीक्षाके लिये ही ब्राह्मणवेष धारण करके आया था और व्याघ्रने जिसे पकड़ लिया था, वे साक्षात् देवी पार्वती थीं। तुम्हारे बाणोंसे आहत न होनेवाला जो व्याघ्र था, वह मायासे बनाया गया था और मैंने आपके धैर्यकी परीक्षाके लिये ही आपकी स्त्रीको माँगा था॥ ५४—५७॥

नन्दीश्वर बोले—प्रभुका यह वचन सुनकर उन्हें पुनः प्रणामकर तथा उनकी स्तुति करके विनम्र होकर वे राजा भद्रायु स्वामी [शिव]-से कहने लगे— ॥ ५८॥

भद्रायु बोले—हे नाथ! मेरा एक ही वर है जो कि आप परमेश्वरने सांसारिक तापसे सन्तप्त मुझको प्रत्यक्ष दर्शन दिया है। हे नाथ! हे प्रभो! फिर भी यदि आप अपनी कृपासे वर देना ही चाहते हैं, तो मैं वरदाताओंमें श्रेष्ठ आपसे यही परम वर माँगता हूँ कि हे महेश्वर! हे नाथ! माताके साथ मेरे पिता वज्रबाहु तथा स्त्रीके सहित मैं आपके चरणोंका सदा सेवक बना रहूँ और हे महेशान! जो पद्माकर नामक यह वैश्य है तथा सनय नामक उसका पुत्र है—इन सबको सदा अपना पार्श्ववर्ती बनायें॥ ५९—६२॥

नन्दीश्वर बोले—तदनन्तर उस राजाकी कीर्तिमालिनी नामक पत्नी भी आनन्दित होकर अपनी भक्तिसे शिवजीको प्रसन्नकर उत्तम वरदान माँगने लगी॥ ६३॥

रानी बोली—हे महादेव! मेरे पिता चन्द्रांगद और मेरी माता सीमन्तिनी—इन दोनोंके लिये प्रसन्नतापूर्वक आपके समीप निवासकी याचना करती हूँ॥ ६४॥

नन्दीश्वर उवाच

एवमस्त्विति गौरीशः प्रसन्नो भक्तवत्सलः।
तयोः कामवरान्दत्त्वा क्षणादन्तर्हितोऽभवत्॥ ६५

भद्रायुरपि सुप्रीत्या प्रसादं प्राप्य शूलिनः।
सहितः कीर्तिमालिन्या बुभुजे विषयान्बहून्॥ ६६

कृत्वा वर्षायुतं राज्यमव्याहतपराक्रमः।
राज्यं विक्षिप्य तनये जगाम शिवसन्निधिम्॥ ६७

चन्द्रांगदोऽपि राजेन्द्रो राज्ञी सीमन्तिनी च सा।
भक्त्या संपूज्य गिरिशं जग्मतुः शाम्भवं पदम्॥ ६८

द्विजेश्वरावतारस्ते वर्णितः परमो मया।
महेश्वरस्य भद्रायुपरमानन्ददः प्रभो॥ ६९

इदं चरित्रं परमं पवित्रं
शिवावतारस्य पवित्रकीर्तेः।
द्विजेशसंज्ञस्य महाद्भुतं हि
शृण्वन्पठन् शम्भुपदं प्रयाति॥ ७०

य इदं शृणुयान्नित्यं श्रावयेद्वा समाहितः।
न श्चोतति स्वधर्मात्स परत्र लभते गतिम्॥ ७१

नन्दीश्वर बोले—भक्तवत्सल पार्वतीपति प्रसन्न होकर उन दोनोंसे 'ऐसा ही हो'—इस प्रकार कहकर उन्हें इच्छित वर देकर क्षणभरमें अन्तर्धान हो गये॥ ६५॥

भद्रायुने भी प्रीतिपूर्वक शिवजीकी कृपा प्राप्तकर [अपनी पत्नी] कीर्तिमालिनीके साथ अनेक विषयोंका भोग किया॥ ६६॥

इस प्रकार अव्याहत पराक्रमवाले राजा दस हजार वर्षपर्यन्त राज्य करके पुत्रको राज्यका भार देकर शिवजीकी सन्निधिमें चले गये और राजर्षि चन्द्रांगद तथा उनकी रानी सीमन्तिनी भक्तिसे शिवजीका पूजनकर शिवपदको प्राप्त हुए॥ ६७-६८॥

हे प्रभो [सनत्कुमार!] इस प्रकार मैंने आपसे शिवजीके श्रेष्ठ द्विजेश्वरावतारका वर्णन किया, जिससे राजा भद्रायुको परम सुख प्राप्त हुआ॥ ६९॥

पवित्र कीर्तिवाले द्विजेशसंज्ञक शिवावतारके इस परम पवित्र तथा अत्यन्त अद्भुत चरित्रको पढ़ने तथा सुननेवाला शिवपदको प्राप्त होता है॥ ७०॥

जो एकाग्रचित्त होकर इसे प्रतिदिन सुनता अथवा सुनाता है, वह अपने धर्मसे विचलित नहीं होता है और परलोकमें उत्तम गति प्राप्त करता है॥ ७१॥

इति श्रीशिवमहापुराणे तृतीयायां शतरुद्रसंहितायां द्विजेशाख्य-शिवावतारवर्णनं नाम सप्तविंशोऽध्यायः॥ २७॥

॥ इस प्रकार श्रीशिवमहापुराणके अन्तर्गत तृतीय शतरुद्रसंहितामें द्विजेशाख्यशिवावतारवर्णन नामक सत्ताईसवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ २७॥

अथाष्टाविंशोऽध्यायः

नल एवं दमयन्तीके पूर्वजन्मकी कथा तथा शिवावतार यतीश्वरका हंसरूप धारण करना

नन्दीश्वर उवाच

शृणु प्राज्ञ प्रवक्ष्यामि शिवस्य परमात्मनः।
अवतारं परानन्दं यतिनाथाह्वयं मुने॥ १

अर्बुदाचलसंज्ञे तु पर्वते भिल्लवंशजः।
आहुकश्च तदभ्याशे वसति स्म मुनीश्वर॥ २

तत्पत्नी ह्याहुका नाम बभूव किल सुव्रता।
उभावपि महाशैवावास्तां तौ शिवपूजकौ॥ ३

नन्दीश्वर बोले—हे प्राज्ञ! हे मुने! अब मैं परमात्मा शिवके परम आनन्दप्रद यतिनाथ नामक अवतारका वर्णन करूँगा, आप सुनें॥ १॥

हे मुनीश्वर! [पूर्वकालमें] अर्बुदाचल नामक पर्वतके समीप भिल्लवंशमें उत्पन्न आहुक नामक एक भील रहता था॥ २॥

उसकी पत्नीका नाम आहुका था, जो अत्यन्त पतिव्रता थी। वे दोनों प्रतिदिन भक्तिपूर्वक शिवजीकी पूजा करते थे। वे दोनों महाशिवभक्त थे॥ ३॥

कस्मिँश्चित्समये भिल्लः शिवभक्तिरतः सदा।
आहारार्थं स्वपत्याश्च सुदूरं स गतो मुने॥ ४

हे मुने! किसी समय सदा शिवभक्तिमें तत्पर रहनेवाला वह भील अपने तथा स्त्रीके लिये आहारकी व्यवस्थाहेतु बहुत दूर चला गया॥ ४॥

एतस्मिन्नन्तरे तत्र गेहे भिल्लस्य शङ्करः।
भूत्वा यतिवपुः सायं परीक्षार्थं समाययौ॥ ५

इसी बीच शिवजी संन्यासीका रूप धारणकर उसकी परीक्षा लेनेके लिये सायंकाल उस भीलके घर आये॥ ५॥

तस्मिन्नवसरे तत्राजगाम स गृहाधिपः।
पूजनं च यतीशस्य चकार प्रेमतः सुधीः॥ ६

उसी समय वह गृहपति [आहुक] भी वहाँ आ गया और उस महाबुद्धिमान् भीलने प्रेमपूर्वक उन यतीश्वरकी पूजा की॥ ६॥

तद्भावस्य परीक्षार्थं यतिरूपः स शंकरः।
महालीलाकरः प्रीत्या भीतः प्रोवाच दीनगीः॥ ७

उसके भावकी परीक्षा करनेके लिये महालीला करनेवाले संन्यासीरूपधारी उन शिवजीने डरते हुए प्रेमपूर्वक दीनवचन कहा—॥ ७॥

यतिनाथ उवाच

अद्य स्थलं निवासार्थं देहि मे प्रातरेव हि।
यास्यामि सर्वथा भिल्ल स्वस्ति स्यात्तव सर्वदा॥ ८

यतिनाथ बोले—हे भिल्ल! तुम मुझे आज रहनेके लिये स्थान दो और प्रातःकाल होते ही मैं सर्वथा चला जाऊँगा, तुम्हारा सर्वदा कल्याण हो॥ ८॥

भिल्ल उवाच

सत्यं प्रोक्तं त्वया स्वामिन् शृणु मद्वचनं च ते।
अति स्वल्पं स्थलं मे हि स्यान्निवासः कथं तव॥ ९

भिल्ल बोला—हे स्वामिन्! आपने सत्य कहा, किंतु मेरी बात सुनिये, मेरा स्थान तो बहुत थोड़ा है, फिर यहाँ आपका निवास किस प्रकार सम्भव है?॥ ९॥

नन्दीश्वर उवाच

इत्युक्तः स यतिस्तेन गमनाय मतिं दधे।
तावद्भिल्ल्या वचः प्रोक्तं स्वामिनं संविचार्य वै॥ १०

नन्दीश्वर बोले—हे सनत्कुमार! उसके द्वारा इस प्रकार कहे जानेपर वह संन्यासी जानेका विचार करने लगा, तबतक भीलनीने विचारकर अपने स्वामीसे कहा—॥ १०॥

भिल्ल्युवाच

स्वामिन्देहि यतेः स्थानं विमुखं कुरु मातिथिम्।
गृहधर्मं विचार्य त्वमन्यथा धर्मसंक्षयः॥ ११

भीलनी बोली—हे स्वामिन्! गृहस्थधर्मका विचार करके आप संन्यासीको स्थान दे दीजिये, अतिथिको निराश मत कीजिये। अन्यथा आपके धर्मका क्षय होगा॥ ११॥

स्थीयतां ते गृहाभ्यन्तः सुखेन यतिना सह।
अहं बहिः स्थितिं कुर्यामायुधानि बृहन्त्यपि॥ १२

आप घरके भीतर संन्यासीके साथ निवास करें और मैं सभी बड़े अस्त्र-शस्त्रोंको बाहर रखकर वहीं रहूँगी॥ १२॥

नन्दीश्वर उवाच

तस्यास्तद्वचनं श्रुत्वा भिल्ल्या धर्मान्वितं शिवम्।
स्वपत्न्या मनसा तेन भिल्लेन च विचारितम्॥ १३

नन्दीश्वर बोले—अपनी पत्नी उस भीलनीके धर्मयुक्त कल्याणकारी वचनको सुनकर वह भील अपने मनमें विचार करने लगा॥ १३॥

स्त्रियं बहिश्च निष्कास्य कथं स्थेयं मया गृहे।
यतेरन्यत्र गमनमधर्मकरमात्मनः॥ १४

स्त्रीको घरके बाहर रखकर मेरा घरमें निवास करना उचित प्रतीत नहीं होता है, फिर इस यतिका दूसरी जगह गमन भी अपने अधर्मका कारण होगा॥ १४॥

द्वयमप्युचितं नैव सर्वथा गृहमेधिनः।
यद्भावि तद्भवेदेव मया स्थेयं गृहाद् बहिः॥ १५

गृहस्थधर्मका आचरण करनेवालोंके लिये ये दोनों बातें सर्वथा उचित नहीं हैं। अतः जो होनहार है, वह हो, मैं घरके बाहर ही रहूँगा॥ १५॥

इत्याग्रहं तदा कृत्वा गृहान्तः स्थाप्य तौ मुदा।
स्वायुधानि च संस्थाप्य भिल्लोऽतिष्ठद् गृहाद् बहिः॥ १६

इस प्रकार आग्रहकर उन दोनोंको घरके भीतर रखकर अपने अस्त्रोंको लेकर वह भील प्रसन्नतासे घरसे बाहर स्थित हो गया॥ १६॥

रात्रौ तं पशवः क्रूराः हिंसकाः समपीडयन्।
तेनापि च यथाशक्ति कृतो यत्नो महांस्तदा॥ १७

रात्रिमें उस भीलको क्रूर एवं हिंसक पशु सताने लगे, उसने भी अपनी रक्षाके लिये उस समय यथाशक्ति महान् प्रयत्न किया॥ १७॥

एवं यत्नं प्रकुर्वाणः स भिल्लो बलवानपि।
प्रारब्धात्प्रेरितैर्हिंस्त्रैर्बलादासीच्च भक्षितः॥ १८

इस प्रकार [अपनी शक्तिके अनुसार] यत्न करते रहनेपर भी प्रारब्धप्रेरित हिंसक पशुओंने बलपूर्वक उस बलवान् भीलको खा लिया॥ १८॥

प्रातरुत्थाय स यतिर्दृष्ट्वा हिंस्त्रैश्च भक्षितम्।
भिल्लं वनेचरं तं वै दुःखितोऽभूदतीव हि॥ १९

प्रातःकाल उठकर संन्यासी हिंस्र जन्तुओंसे भक्षित उस वनेचर भीलको देखकर बड़ा दुखी हुआ॥ १९॥

दुःखितं तं यतिं दृष्ट्वा भिल्ली सा दुःखितापि हि।
धैर्यात्स्वदुःखं संहृत्य वचनं चेदमब्रवीत्॥ २०

संन्यासीको दुखी देखकर वह भीलनी भी बहुत दुःखित हुई, किंतु धैर्यसे अपने दुःखको दबाकर यह वचन कहने लगी—॥ २०॥

भिल्ल्युवाच

किमर्थं क्रियते दुःखं भद्रं जातं यतेऽधुना।
धन्योऽयं कृतकृत्यश्च यज्जातो मृत्युरीदृशः॥ २१

भीलनी बोली—हे यते! आप शोक क्यों कर रहे हैं? इनका कल्याण हो गया, ये धन्य हो गये, कृतकृत्य हो गये। जो इस प्रकार इनकी मृत्यु हुई॥ २१॥

अहं चैनं गमिष्यामि भस्म भूत्वानले यते।
चितां कारय सुप्रीत्या स्त्रीणां धर्मः सनातनः॥ २२

हे यते! अब मैं भी इन्हींके साथ अग्निमें भस्म होकर सती हो जाऊँगी, आप प्रेमपूर्वक चिता तैयार कराइये; क्योंकि यही स्त्रियोंका सनातनधर्म है॥ २२॥

इति तद्वचनं श्रुत्वा हितं मत्वा स्वयं यतिः।
चितां व्यरचयत्सा हि प्रविवेश स्वधर्मतः॥ २३

उसकी यह बात सुनकर और इसीमें उसका कल्याण समझकर उस संन्यासीने तत्क्षण ही चिता तैयार कर दी और वह अपने धर्मके अनुसार उसीमें प्रविष्ट होनेके लिये उद्यत हुई॥ २३॥

एतस्मिन्नन्तरे साक्षात्पुरः प्रादुरभूच्छिवः।
धन्ये धन्य इति प्रीत्या प्रशंसंस्तां हरोऽब्रवीत्॥ २४

इसी अवसरपर साक्षात् शिवजी सामने प्रकट हो गये। धन्य हो, धन्य हो—इस प्रकारसे प्रेमपूर्वक प्रशंसा करते हुए शिवजी उस भीलनी से कहने लगे—॥ २४॥

हर उवाच

वरं ब्रूहि प्रसन्नोऽस्मि त्वदाचरणतोऽनघे।
तवादेयं न वै किंचिद् वश्योऽहं ते विशेषतः॥ २५

हर बोले—हे अनघे! मैं तुम्हारे आचरणसे प्रसन्न हूँ, तुम वर माँगो, मुझे तुम्हारे लिये कुछ भी अदेय नहीं है। मैं इस समय विशेष रूपसे तुम्हारे वशमें हूँ॥ २५॥

नन्दीश्वर उवाच

तच्छ्रुत्वा शम्भुवचनं परमानन्ददायकम्।
सुखं प्राप्तं विशेषेण न किञ्चित्स्मरणं ययौ॥ २६

नन्दीश्वर बोले—शिवजीके उस परमानन्ददायक वचनको सुनकर वह विशेष रूपसे सुखी हुई और उसको कुछ भी स्मरण नहीं रहा॥ २६॥

तस्यास्तद्गतिमालक्ष्य सुप्रसन्नो हरोऽभवत्।
उवाच च पुनः शम्भुर्वरं ब्रूहीति तां प्रभुः॥ २७

उसकी इस अवस्थाको देखकर शिवजी बहुत प्रसन्न हुए। प्रभु शिवने उससे पुनः कहा कि वर माँगो॥ २७॥

शिव उवाच

अयं यतिश्च मद्रूपो हंसरूपो भविष्यति।
परजन्मनि वां प्रीत्या संयोगं कारयिष्यति॥ २८

शिवजी बोले—यह मेरे रूपवाला यति अगले जन्ममें हंस होगा और तुम दोनोंका पुनः संयोग करायेगा॥ २८॥

भिल्लश्च वीरसेनस्य नैषधे नगरे वरे।
महान्पुत्रो नलो नाम भविष्यति न संशयः॥ २९

त्वं सुता भीमराजस्य वैदर्भे नगरेऽनघे।
दमयन्ती च विख्याता भविष्यसि गुणान्विता॥ ३०

यह भील निषधनगरके राजा वीरसेनका नल नामक महाप्रतापी पुत्र होगा, इसमें संशय नहीं है और हे अनघे! तुम विदर्भनगरमें भीमराजकी कन्या होकर परम गुणवती दमयन्ती नामसे विख्यात होओगी॥ २९-३०॥

युवां चोभौ मिलित्वा च राजभोगं सुविस्तरम्।
भुक्त्वा मुक्तिं च योगीन्द्रैर्लप्स्येथे दुर्लभां ध्रुवम्॥ ३१

तुम दोनों ही बहुत कालपर्यन्त यथेष्ट राज्यसुखका भोग करके योगीश्वरोंके लिये दुर्लभ मुक्तिको निश्चित रूपसे प्राप्त करोगे॥ ३१॥

नन्दीश्वर उवाच

इत्युक्त्वा च स्वयं शम्भुर्लिङ्गरूपोऽभवत्तदा।
तस्मान्न चलितो धर्मादचलेश इति स्मृतः॥ ३२

नन्दीश्वर बोले—ऐसा कहकर शिवजी उसी समय लिंगरूपमें प्रकट हो गये। [उनके द्वारा परीक्षा करनेपर] भील धर्मसे विचलित नहीं हुआ, इसलिये वह लिंग अचलेश—इस नामसे प्रसिद्ध हुआ॥ ३२॥

स भिल्ल आहुकश्चापि वीरसेनसुतोऽभवत्।
नैषधे नगरे तात नलनामा महानृपः॥ ३३
आहुका सा महाभिल्ली भीमस्य तनयाभवत्।
वैदर्भे नगरे राज्ञो दमयन्तीति विश्रुता॥ ३४
यतिनाथाह्वयः सोऽपि हंसरूपोऽभवच्छिवः।
विवाहं कारयामास दमयन्त्या नलेन वै॥ ३५

हे तात! वह आहुक भील निषधनगरमें वीरसेनका पुत्र नल नामवाला महान् राजा हुआ। उसकी पत्नी आहुका भीलनी विदर्भनगरके राजा भीमसेनकी पुत्री दमयन्ती नामसे प्रसिद्ध हुई। वे शिवावतार यतीश्वर भी हंसरूपमें अवतरित हुए, जिन्होंने दमयन्तीका विवाह नलके साथ करवाया॥ ३३—३५॥

पूर्वसत्काररूपेण महापुण्येन शंकरः।
हंसरूपं विधायैव ताभ्यां सुखमदात्प्रभुः॥ ३६

पूर्व समयमें उनके द्वारा किये गये [अतिथिके] सत्काररूप महापुण्यके कारण प्रभु शिवजीने हंसरूप धारणकर [इस जीवनमें] दोनोंको महान् सुख प्रदान किया॥ ३६॥

शिवो हंसावतारो हि नानावार्ताविचक्षणः।
दमयन्त्या नलस्यापि परमानन्ददायकः॥ ३७

अनेक प्रकारका वार्तालाप करनेमें निपुण हंसावतार शिवजीने दमयन्ती तथा नलको महान् सुख प्रदान किया॥ ३७॥

इदं चरित्रं परमं पवित्रं
शिवावतारस्य पवित्रकीर्तेः।
यतीशसंज्ञस्य महाद्भुतं हि
हंसाह्वयस्यापि विमुक्तिदं हि॥ ३८

पवित्र कीर्तिवाले यतीश्वर नामक तथा हंस नामक शिवावतारका यह चरित्र अत्यन्त पवित्र, परम अद्भुत तथा निश्चय ही मुक्तिदायक है॥ ३८॥

यतीशब्रह्महंसाख्यावतारचरितं शुभम्।
शृणुयाच्छ्रावयेद्यो हि स लभेत परां गतिम्॥ ३९

इदमाख्यानमनघं सर्वकामफलप्रदम्।
स्वर्ग्यं यशस्यमायुष्यं भक्तिवर्धनमुत्तमम्॥ ४०

जो यतीश तथा ब्रह्महंस नामक अवतारके शुभ चरित्रको सुनता है अथवा सुनाता है, वह परम गति प्राप्त करता है। यह आख्यान निष्पाप, सभी कामनाओंको पूर्ण करनेवाला, स्वर्गकी प्राप्ति करानेवाला, यश तथा आयु प्रदान करनेवाला, भक्तिको बढ़ानेवाला एवं उत्तम है॥ ३९-४०॥

श्रुत्वैतच्चरितं शम्भोर्यतिहंसस्वरूपयोः।
इह सर्वसुखं भुक्त्वा सोऽन्ते शिवपुरं व्रजेत्॥ ४१

यतीश्वर तथा हंसरूप शिवका यह चरित्र सुनकर मनुष्य इस लोकमें सभी सुखोंको भोगकर अन्तमें शिवलोकको प्राप्त करता है॥ ४१॥

इति श्रीशिवमहापुराणे तृतीयायां शतरुद्रसंहितायां यतिनाथब्रह्महंसाह्वय-शिवावतारचरितवर्णनं नामाष्टाविंशोऽध्यायः॥ २८॥

॥ इस प्रकार श्रीशिवमहापुराणके अन्तर्गत तृतीय शतरुद्रसंहितामें यतिनाथब्रह्महंसाह्वयशिवावतारचरितवर्णन नामक अट्ठाईसवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ २८॥

अथैकोनत्रिंशोऽध्यायः

भगवान् शिवके कृष्णदर्शन नामक अवतारकी कथा

नन्दीश्वर उवाच

सनत्कुमार शम्भोस्त्ववतारं परमं शृणु।
नभगज्ञानदं कृष्णदर्शनाह्वयमुत्तमम्॥ १

नन्दीश्वर बोले—हे सनत्कुमार! अब आप नभगको ज्ञान प्रदान करनेवाले कृष्णदर्शन नामक उत्तम शिवावतारका श्रवण कीजिये॥ १॥

इक्ष्वाकुप्रमुखा आसन् श्राद्धदेवसुताश्च ये।
नभगस्तत्र नवमो नाभागस्तत्सुतः स्मृतः॥ २

श्राद्धदेवके इक्ष्वाकु आदि जो प्रमुख पुत्र हुए, उनमें नभग नौवें पुत्र थे, उन्हींके पुत्र नाभाग कहे गये हैं॥ २॥

अम्बरीषः सुतस्तस्य विष्णुभक्तो बभूव सः।
यस्योपरि प्रसन्नोऽभूद्दुर्वासा ब्रह्मभक्तितः॥ ३

उनके पुत्र अम्बरीष थे। वे विष्णुजीके भक्त हुए, जिनकी ब्राह्मणभक्तिसे दुर्वासाजी उनपर प्रसन्न हुए थे॥ ३॥

पितामहोऽम्बरीषस्य नभगो यः प्रकीर्तितः।
तच्चरित्रं शृणु मुने यस्मै ज्ञानमदाच्छिवः॥ ४

हे मुने! अम्बरीषके पितामह जो नभग कहे गये हैं, आप उनका चरित्र सुनिये। जिनको सदाशिवजीने ज्ञान दिया था॥ ४॥

नभगो मनुपुत्रस्तु पठनार्थं सुबुद्धिमान्।
चक्रे गुरुकुले वासं बहुकालं जितेन्द्रियः॥ ५

एतस्मिन्समये ते वै इक्ष्वाकुप्रमुखाः सुताः।
तस्मै भागमकल्प्यैव भेजुर्भागान्निजान्क्रमात्॥ ६

मनुके अति बुद्धिमान् तथा जितेन्द्रिय पुत्र नभग जब पढ़नेके लिये गुरुकुलमें निवास करने लगे, उसी समय मनुके इक्ष्वाकु आदि पुत्रोंने उनको भाग दिये बिना ही अपने-अपने भागोंको क्रमसे विभाजित कर लिया॥ ५-६॥

स्वं स्वं भागं गृहीत्वा ते बुभुजू राज्यमुत्तमम्।
अविषादं महाभागाः पित्रादेशात्सुबुद्धयः॥ ७

वे महाबुद्धिमान् और भाग्यवान् पुत्र अपने पिताकी आज्ञासे अपने-अपने भागको लेकर सुखपूर्वक उत्तम राज्यका भोग करने लगे॥ ७॥

स पश्चादागतस्तत्र ब्रह्मचारी गुरुस्थलात्।
नभगोऽधीत्य सर्वांश्च सांगोपांगाः श्रुतीः क्रमात्॥ ८

भ्रातॄन्विलोक्य नभगो विभक्तान्सकलान्निजान्।
दायार्थी प्राह तान्स्नेहादिक्ष्वाकुप्रमुखान्मुने॥ ९

उसके बाद ब्रह्मचारी नभग क्रमसे सांगोपांग सभी वेदोंका अध्ययन करके गुरुकुलसे वहाँ लौटे। तब हे मुने! इक्ष्वाकु आदि अपने सभी भाइयोंको राज्य विभक्त किये हुए देखकर अपना भाग प्राप्त करनेकी इच्छासे नभगने उनसे स्नेहपूर्वक कहा—॥ ८-९॥

नभग उवाच

भ्रातरोऽभक्तकं मह्यं दायं कृत्वा यथातथम्।
सर्वे विभक्ताः सुप्रीत्या स्वदायार्थागताय च॥ १०

नभग बोले—हे भाइयो! आपलोगोंने मेरा हिस्सा बिना दिये ही पिताकी सम्पत्ति जैसे-तैसे आपसमें बाँट ली, अब मैं अपने दायभागके लिये आपलोगोंके पास आया हूँ॥ १०॥

तदा विस्मृतमस्माभिरिदानीं पितरं तव।
विभजामो वयं भागं तं गृहाण न संशयः॥ ११

[उनके भाइयोंने कहा—] दायका विभाग करते समय हमलोग तुम्हें भूल गये, अब हमलोगोंने तुम्हारे हिस्सेमें पिताजीको नियत किया है, अतः तुम उन्हींको ग्रहण करो, इसमें सन्देह नहीं है॥ ११॥

तच्छ्रुत्वा भ्रातृवचनं नभगः परविस्मृतः।
तदोपकण्ठमागत्य पितरं समभाषत॥ १२

भाइयोंकी वह बात सुनकर नभग अत्यन्त विस्मित हो गये और अपने पिताके पास आकर कहने लगे॥ १२॥

नभग उवाच

हे तात भ्रातरः सर्वे त्यक्त्वा मां व्यभजंश्च ते।
पठनार्थं गतश्चाहं ब्रह्मचारी गुरोः कुले॥ १३

नभग बोले—हे तात! जब मैं ब्रह्मचारी होकर गुरुकुलमें पढ़नेके लिये चला गया था, तभी उन सभी भाइयोंने मुझे छोड़कर सारा राज्य बाँट लिया॥ १३॥

तत आगत्य मे पृष्टा दायदानार्थमादरात्।
ते त्वामूचुर्विभागं मे तदर्थमहमागतः॥ १४

वहाँसे लौटकर जब मैं अपने हिस्सेके लिये उनसे आदरपूर्वक पूछने लगा। तो उन्होंने आपको ही मेरे भागके रूपमें दिया, इसलिये मैं [आपके पास] आया हूँ॥ १४॥

नन्दीश्वर उवाच

तदाकर्ण्य वचस्तस्य पिता तं प्राह विस्मितः।
आश्वास्य श्राद्धदेवः स सत्यधर्मरतं मुने॥ १५

नन्दीश्वर बोले—हे मुने! उनका वचन सुनकर विस्मित हुए पिता श्राद्धदेवने सत्यधर्ममें निरत अपने पुत्रको धीरज बँधाते हुए कहा—॥ १५॥

मनुरुवाच

तदुक्तं मादृथास्तात प्रतारणकरं हि तत्।
न ह्यहं परमं दायं सर्वथा भोगसाधनम्॥ १६

मनु बोले—हे तात! तुम भाइयोंकी बातमें विश्वास मत करो। उनका यह वचन तुम्हें धोखा देनेके लिये है। मैं तुम्हारे भोगका साधनभूत परम दाय नहीं हूँ॥ १६॥

तथापि दायभावेन दत्तोऽहं तैः प्रतारिभिः।
तव वै जीवनोपायं वदामि शृणु तत्त्वतः॥ १७

किंतु उन धोखेबाजोंने तुम्हारे लिये मुझे दायभागके रूपमें दिया है, अतः मैं तुम्हारे जीवन-निर्वाहका ठीक-ठीक उपाय बताता हूँ, तुम श्रवण करो॥ १७॥

सत्रमांगिरसा विप्राः कुर्वंत्यद्य सुमेधसः।
तत्र कर्मणि मुह्यन्ति षष्ठं षष्ठमहः प्रति॥ १८

इस समय आंगिरसगोत्रीय विद्वान् ब्राह्मण यज्ञ कर रहे हैं, उस यज्ञमें वे अपने छठे दिनके कर्ममें भूल कर जाते हैं॥ १८॥

तत्र त्वं गच्छ नभग तान् सुशंस महाकवे।
सूक्ते द्वे वैश्वदेवे हि सत्रं शुद्धं हि तद्भवेत्॥ १९

अतः हे नभग! हे महाकवे! तुम वहाँ जाओ और जाकर विश्वेदेवसम्बन्धी दो सूक्तोंको उन्हें बतलाओ, जिससे वह यज्ञ शुद्ध हो सके॥ १९॥

तत्कर्मणि समाप्ते हि स्वर्यान्तो ब्राह्मणाश्च ते।
धनं दास्यन्ति ते तुष्टाः स्वसत्रपरिशेषितम्॥ २०

उस यज्ञकर्मके समाप्त हो जानेपर जब वे ब्राह्मण स्वर्ग जाने लगेंगे तो वे प्रसन्न होकर यज्ञसे बचा हुआ धन तुम्हें दे देंगे॥ २०॥

नन्दीश्वर उवाच

तदाकर्ण्य पितुर्वाक्यं नभगः सत्यसारवान्।
जगाम तत्र सुप्रीत्या यत्र तत्सत्रमुत्तमम्॥ २१

तदाहःकर्मणि मुने सत्रे तस्मिन्स मानवः।
सूक्ते द्वे वैश्वदेवे हि प्रोवाच स्पष्टतः सुधीः॥ २२

समाप्ते कर्मणि ततो विप्रा आंगिरसाश्च ते।
तस्मै दत्त्वा ययुः स्वर्गं स्वं स्वं सत्रावशेषितम्॥ २३

तत्तदा स्वीकरिष्यन्तं सुसत्रपरिशेषितम्।
विज्ञाय गिरिशः सद्य आविर्भूतः सदूतिकृत्॥ २४

सर्वांगसुन्दरः श्रीमान्पुरुषः कृष्णदर्शनः।
भावं समीक्षितुं भागं दातुं ज्ञानं परं च तत्॥ २५

अथो स शंकरः शम्भुः परीक्षाकर ईश्वरः।
उवाचोत्तरतोऽभ्येत्य नभगं तं हि मानवम्॥ २६

ईश्वर उवाच

कस्त्वं गृह्णासि पुरुष ममेदं वास्तुकं वसु।
प्रेषितः केन तत्सर्वं सत्यं वद ममाग्रतः॥ २७

नन्दीश्वर उवाच

तच्छ्रुत्वा तद्वचस्तात मानवो नभगः कविः।
प्रत्युवाच विनीतात्मा पुरुषं कृष्णदर्शनम्॥ २८

नभग उवाच

ममेदमृषिभिर्दत्तं वसु यज्ञगतं खलु।
कथं वारयसे मां त्वं गृह्णन्तं कृष्णदर्शन॥ २९

नन्दीश्वर उवाच

आकर्ण्य नाभगं वाक्यमिदं सत्यमुदीरितम्।
प्रत्युवाच प्रसन्नात्मा पुरुषः कृष्णदर्शनः॥ ३०

कृष्णदर्शन उवाच

विवादेऽस्मिन्हि नौ तात प्रमाणं जनकस्तव।
याहि तं पृच्छ स ब्रूयात्तत्प्रमाणं तु सत्यतः॥ ३१

नन्दीश्वर बोले—पिताकी यह बात सुनकर सत्य बोलनेवाले नभग बड़ी प्रसन्नताके साथ वहाँ गये, जहाँ वह उत्तम यज्ञ हो रहा था और हे मुने! उस दिनके यज्ञकर्ममें उन परम बुद्धिमान् नभगने विश्वेदेवके दोनों सूक्तोंको स्पष्ट रूपसे कहा॥ २१-२२॥

यज्ञकर्मके समाप्त हो जानेपर वे आंगिरस विप्र यज्ञसे बचा हुआ सारा धन उन्हें देकर स्वर्ग चले गये॥ २३॥

उस श्रेष्ठ यज्ञके शेष धनको ज्यों ही नभगने लेना चाहा, उसी समय यह जानकर उत्तम लीला करनेवाले शिवजी शीघ्र ही प्रकट हो गये। वे कृष्णदर्शन शिवजी सर्वांगसुन्दर तथा श्रीमान् थे। यज्ञशेष धन किसका भाग होता है—इस बातकी परीक्षा करनेके लिये तथा नभगको भाग और उत्तम ज्ञान देनेके लिये वे प्रकट हुए थे॥ २४-२५॥

इसके बाद परीक्षा करनेवाले ऐश्वर्यशाली उन कल्याणकारी शंकरने उन मनुपुत्र नभगके पास उत्तरकी ओरसे जाकर [उनका अभिप्राय जाननेके लिये] उनसे कहा—॥ २६॥

ईश्वर बोले—हे पुरुष! तुम कौन हो? तुम्हें यहाँ किसने भेजा है? यह यज्ञमण्डपसम्बन्धी धन तो मेरा है, तुम इसे क्यों ग्रहण करते हो, मेरे सामने सत्य-सत्य बताओ॥ २७॥

नन्दीश्वर बोले—हे तात! मनुपुत्र कवि नभगने उनका वचन सुनकर अत्यन्त विनम्र होकर उन कृष्णदर्शन पुरुषसे कहा—॥ २८॥

नभग बोले—यज्ञसे (अवशिष्ट) प्राप्त हुए इस धनको ऋषियोंने मुझे दिया है। हे कृष्णदर्शन! तब आप इसे लेनेसे मुझे क्यों मना करते हैं?॥ २९॥

नन्दीश्वर बोले—नभगद्वारा कहे गये सत्य वचनको सुनकर प्रसन्नचित्त कृष्णदर्शन पुरुषने कहा—॥ ३०॥

कृष्णदर्शन बोला—हे तात! हम दोनोंके इस विवादमें तुम्हारे पिता प्रमाण हैं, जाओ और उनसे पूछो, वे जो कुछ भी कहेंगे, वही सत्यरूपमें प्रमाण होगा॥ ३१॥

नन्दीश्वर उवाच

तदाकर्ण्य वचस्तस्य नभगो मानवः कविः।
आगच्छत्पितरं प्रीत्या तदुक्तं पृष्टवान्मुने॥ ३२

पुत्रोदितं समाकर्ण्य श्राद्धदेवः स वै मनुः।
स्मृत्वा शिवपदाम्भोजं प्राप्तस्मृतिरुवाच तम्॥ ३३

मनुरुवाच

हे तात शृणु मद्वाक्यं स देवः पुरुषः शिवः।
तस्यैव सकलं वस्तु यज्ञप्राप्तं विशेषतः॥ ३४
अध्वरोर्वरितं वस्तु रुद्रभागः प्रकीर्तितः।
इत्यपि प्राज्ञवादो हि क्वचिज्जातस्तदिच्छया॥ ३५

स देव ईश्वरः सर्वं वस्त्वर्हति न संशयः।
यज्ञावशिष्टं किमुत परे तस्येच्छया विभोः॥ ३६

अनुग्रहार्थमायातस्तव तद्रूपतः प्रभुः।
तत्र त्वं गच्छ नभग प्रसन्नं कुरु सत्यतः॥ ३७
क्षमापय स्वापराधं सुप्रणम्य स्तुतिं कुरु।
सर्वप्रभुः स एवेशो यज्ञाधीशोऽखिलेश्वरः॥ ३८
विष्णुब्रह्मादयो देवाः सिद्धाः सर्वर्षयोऽपि हि।
तदनुग्रहतस्तात समर्थाः सर्वकर्मणि॥ ३९
किम्बहूक्त्यात्मजश्रेष्ठ गच्छ तत्राशु माचिरम्।
प्रसादय महादेवं सर्वथा सकलेश्वरम्॥ ४०

नन्दीश्वर उवाच

इत्युक्त्वा स मनुः श्राद्धदेवश्च तनयं द्रुतम्।
प्रेषयामास निकटं शम्भोः सोऽपि समेत्य तम्॥ ४१
नभगश्च प्रणम्याशु साञ्जलिर्नतमस्तकः।
प्रोवाच सुप्रसन्नात्मा विनयेन महामतिः॥ ४२

नभग उवाच

इदं तवेश सर्वं हि वस्तु त्रिभुवने हि यत्।
इत्याह मे पिता नूनं किमुताध्वरशेषितम्॥ ४३

अजानता मया नाथ यदुक्तं तद्वचो भ्रमात्।
अपराधं त्वं क्षमस्व शिरसा त्वां प्रसादये॥ ४४

नन्दीश्वर बोले—हे मुने! उनका यह वचन सुनकर मनुपुत्र कवि नभग अपने पिताके पास आये और प्रसन्नतासे उनके द्वारा कही गयी बातके विषयमें पूछने लगे॥ ३२॥

तब उन श्राद्धदेव मनुने पुत्रकी बात सुनकर शिवजीके चरणकमलोंका स्मरण किया और वस्तु-स्थितिको समझकर उससे कहा—॥ ३३॥

मनु बोले—हे तात! मेरी बात सुनो, वे कृष्णदर्शन पुरुष साक्षात् शिव हैं। सब वस्तु उन्हींकी है और विशेषकर यज्ञसे प्राप्त वस्तु उन्हींकी है। यज्ञसे बचा हुआ भाग रुद्रभाग कहा गया है। उनकी प्रेरणासे कहीं-कहीं बुद्धिमान् लोग ऐसा कहा करते हैं॥ ३४-३५॥

वे देव ईश्वर ही यज्ञसे बची हुई सारी वस्तुके अधिकारी हैं, इसमें सन्देह नहीं है। उन विभुकी इच्छाके परे है ही क्या!॥ ३६॥

हे नभग! तुम्हारे ऊपर कृपा करनेके लिये ही वे प्रभु उस रूपमें आये हुए हैं, तुम वहाँ जाओ और अपने सत्यसे उन्हें प्रसन्न करो, अपने अपराधके लिये क्षमा माँगो और भलीभाँति प्रणाम करके उनकी स्तुति करो। वे शिव ही सर्वप्रभु, यज्ञके स्वामी एवं अखिलेश्वर हैं। हे तात! ब्रह्मा, विष्णु आदि देवता, सिद्धगण एवं सभी ऋषि भी उनके अनुग्रहसे सभी कर्मोंको करनेमें समर्थ होते हैं। हे पुत्रश्रेष्ठ! अधिक कहनेसे क्या लाभ, तुम वहाँ शीघ्र जाओ, विलम्ब मत करो और सर्वेश्वर महादेवको सब प्रकारसे प्रसन्न करो॥ ३७—४०॥

नन्दीश्वर बोले—इतना कहकर श्राद्धदेव मनुने पुत्रको शीघ्र ही शिवजीके समीप भेजा। वे महाबुद्धिमान् नभग भी शिवजीके पास शीघ्र जाकर हाथ जोड़कर सिर झुकाकर उन्हें प्रणाम करके अति प्रसन्नचित्त होकर विनयपूर्वक कहने लगे—॥ ४१-४२॥

नभग बोले—हे ईश! इन तीनों लोकोंमें जो भी वस्तु है, सब आपकी ही वस्तु है, फिर यज्ञशेष वस्तुके विषयमें कहना ही क्या—ऐसा मेरे पिताने कहा है॥ ४३॥

हे नाथ! मैंने अज्ञानवश भ्रमसे जो वचन कहा है, मेरे उस अपराधको आप क्षमा करें, मैं सिर झुकाकर आपको प्रसन्न करता हूँ॥ ४४॥

इत्युक्त्वा नभगः सोऽतिदीनधीस्तु कृताञ्जलिः।
तुष्टाव तं महेशानं कृष्णदर्शनमानतः॥ ४५

ऐसा कहकर वे नभग अत्यन्त दीनबुद्धि होकर हाथ जोड़कर विनम्र हो उन कृष्णदर्शन महेश्वरकी स्तुति करने लगे॥ ४५॥

श्राद्धदेवोऽपि शुद्धात्मा नतकः साञ्जलिः सुधीः।
तुष्टाव तं प्रभुं नत्वा स्वापराधं क्षमापयन्॥ ४६

शुद्धात्मा महाबुद्धिमान् श्राद्धदेव भी अपने अपराधके लिये क्षमायाचना करते हुए विनम्र हो हाथ जोड़कर उन शिवजीको नमस्कार करके उनकी स्तुति करने लगे॥ ४६॥

एतस्मिन्नन्तरे तत्र विष्णुर्ब्रह्मादयः सुराः।
वासवाद्याः समाजग्मुः सिद्धाश्च मुनयोऽपि हि॥ ४७
महोत्सवं प्रकुर्वन्तः सुकृताञ्जलयोऽखिलाः।
तुष्टुवुर्नतका भक्त्या सुप्रणम्य पृथक्पृथक्॥ ४८

[हे मुने!] इसी बीच ब्रह्मा, विष्णु, इन्द्र आदि देवता, सिद्ध एवं मुनिगण भी वहाँ आ गये और महोत्सव करते हुए वे सब भक्तिसे हाथ जोड़कर पृथक्-पृथक् भलीभाँति प्रणामकर विनम्र हो उनकी स्तुति करने लगे॥ ४७-४८॥

अथ रुद्रः प्रसन्नात्मा कृपादृष्ट्या विलोक्य तान्।
उवाच नभगं प्रीत्या सस्मितं कृष्णदर्शनः॥ ४९

इसके बाद कृष्णदर्शनरूपधारी सदाशिवने उन [देवताओं तथा मुनियों]-को कृपादृष्टिसे देखकर प्रेमपूर्वक हँसते हुए नभगसे कहा— ॥ ४९॥

कृष्णदर्शन उवाच

यत्ते पितावदद्धर्म्यं वाक्यं तत्तु तथैव हि।
त्वयापि सत्यमुक्तं तत् साधुस्त्वं नात्र संशयः॥ ५०
अतोऽहं सुप्रसन्नोऽस्मि सर्वथा सुव्रतेन ते।
ददामि कृपया ते हि ज्ञानं ब्रह्म सनातनम्॥ ५१

कृष्णदर्शन बोले—तुम्हारे पिताने जो धर्मयुक्त वचन कहा है, बात भी वैसी ही है और तुमने भी सारी बात सत्य-सत्य कही, इसलिये तुम साधु हो, इसमें संशय नहीं है। अतः मैं तुम्हारे इस सत्य आचरणसे सर्वथा प्रसन्न हूँ और कृपापूर्वक तुम्हें सनातन ब्रह्मका उपदेश करता हूँ॥ ५०-५१॥

महाज्ञानी भव त्वं हि सविप्रो नभग द्रुतम्।
गृहाण वस्त्विदं सर्वं मद्दत्तं कृपयाधुना॥ ५२

हे नभग! तुम [यज्ञकर्ता] ब्राह्मणोंसहित शीघ्र ही महाज्ञानी हो जाओ, अब मेरे द्वारा प्रदत्त इस समस्त [यज्ञशेष] सामग्रीको तुम मेरी कृपासे ग्रहण करो॥ ५२॥

इह सर्वसुखं भुङ्क्ष्व निर्विकारं महामते।
सुगतिं प्राप्स्यसि त्वं हि सविप्रः कृपया मम॥ ५३

हे महामते! तुम निर्विकार होकर इस संसारमें सभी प्रकारका सुख भोगो, मेरी कृपासे तुम [यज्ञकर्ता] ब्राह्मणोंके सहित सद्गति प्राप्त करोगे॥ ५३॥

नन्दीश्वर उवाच

इत्युक्त्वा तात भगवान्स रुद्रः सत्यवत्सलः।
सर्वेषां पश्यतां तेषां तत्रैवान्तर्दधे हरः॥ ५४

नन्दीश्वर बोले—हे तात! सत्यसे प्रेम करनेवाले वे भगवान् रुद्र ऐसा कहकर उन सबके देखते-देखते वहींपर अन्तर्धान हो गये॥ ५४॥

विष्णुर्ब्रह्मापि देवाद्याः सर्वे ते मुनिसत्तम।
स्वं स्वं धाम ययुः प्रीत्या तस्यै नत्वा दिशे मुदा॥ ५५

हे मुनिसत्तम! ब्रह्मा, विष्णु आदि वे समस्त देवगण आनन्दसे उस दिशाको नमस्कारकर प्रसन्नतापूर्वक अपने-अपने धामको चले गये॥ ५५॥

सपुत्रः श्राद्धदेवोऽपि स्वस्थानमगमन्मुदा।
भुक्त्वा भोगान्सुविपुलान्सोऽन्ते शिवपुरं ययौ॥ ५६

अपने पुत्र नभगको साथ लेकर श्राद्धदेव भी प्रसन्नतापूर्वक अपने स्थानको चले गये और वहाँ अनेक सुखोंको भोगकर अन्तमें वे शिवलोकको चले गये॥ ५६॥

इत्थं ते कीर्तितो ब्रह्मन्नवतारः शिवस्य हि।
कृष्णदर्शननामा वै नभगानन्ददायकः॥ ५७

हे ब्रह्मन्! इस प्रकार मैंने नभगको आनन्द देनेवाले कृष्णदर्शन नामक शिवावतारका वर्णन आपसे किया॥ ५७॥

इदमाख्यानमनघं भुक्तिमुक्तिप्रदं सताम्।
पठतां शृण्वतां वापि सर्वकामफलप्रदम्॥ ५८

यह पवित्र आख्यान सज्जनोंको भोग एवं मोक्ष प्रदान करता है, पढ़ने और सुननेवालोंको भी यह समस्त कामनाओंका फल प्रदान करता है॥ ५८॥

य एतच्चरितं प्रातः सायं च स्मरते सुधीः।
कविर्भवति मन्त्रज्ञो गतिमन्ते लभेत्पराम्॥ ५९

जो बुद्धिमान् प्रातःकाल तथा सायंकाल इस चरित्रका स्मरण करता है, वह कवि तथा मन्त्रवेत्ता हो जाता है और अन्तमें परमगति प्राप्त करता है॥ ५९॥

इति श्रीशिवमहापुराणे तृतीयायां शतरुद्रसंहितायां नन्दीश्वरसनत्कुमारसंवादे कृष्णदर्शनशिवावतारवर्णनं नामैकोनत्रिंशोऽध्यायः॥ २९॥

॥ इस प्रकार श्रीशिवमहापुराणके अन्तर्गत तृतीय शतरुद्रसंहितामें नन्दीश्वर-सनत्कुमार-संवादमें कृष्णदर्शन शिवावतारवर्णन नामक उनतीसवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ २९॥

अथ त्रिंशोऽध्यायः

भगवान् शिवके अवधूतेश्वरावतारका वर्णन

नन्दीश्वर उवाच

शृणु त्वं ब्रह्मपुत्राद्यावतारं परमेशितुः।
अवधूतेश्वराह्वं वै शक्रगर्वापहारकम्॥ १

नन्दीश्वरजी बोले—हे ब्रह्मपुत्र! अब आप शिवजीके अवधूतेश्वर नामक अवतारका वर्णन सुनिये, जो इन्द्रके घमण्डको नष्ट करनेवाला है॥ १॥

शक्रः पुरा हि सगुरुः सर्वदेवसमन्वितः।
दर्शनं कर्तुमीशस्य कैलासमगमन्मुने॥ २

हे मुने! पूर्व समयमें बृहस्पति एवं देवताओंके सहित इन्द्र शिवजीका दर्शन करनेके लिये कैलास पर्वतपर जा रहे थे॥ २॥

अथ गुर्विन्द्रयोर्ज्ञात्वागमनं शंकरस्तयोः।
परीक्षितुं च तद्भावं स्वदर्शनरतात्मनोः॥ ३

अवधूतस्वरूपोऽभून्नानालीलाकरः प्रभुः।
दिगंबरो महाभीमो ज्वलदग्निसमप्रभः॥ ४

सोऽवधूतस्वरूपो हि मार्गमारुद्ध्य सद्गतिः।
लंबमानपटः शंभुरतिष्ठच्छोभिताकृतिः॥ ५

अपने दर्शनके लिये निरत चित्तवाले बृहस्पति तथा इन्द्रको आते जानकर उनके भावकी परीक्षा करनेके लिये नाना प्रकारकी लीला करनेवाले प्रभु शिवजी दिगम्बर, महाभीमरूप तथा जलती हुई अग्निके समान प्रभावाले अवधूतके रूपमें स्थित हो गये। सज्जनोंको गति प्रदान करनेवाले तथा सुन्दर आकृतिवाले वे अवधूतस्वरूप शिवजी लटकते हुए वस्त्र धारण किये उनका मार्ग रोककर खड़े हो गये॥ ३—५॥

अथ तौ गुरुशक्रौ च गच्छन्तौ शिवसन्निधिम्।
अद्राष्टां पुरुषं भीमं मार्गमध्येऽद्भुताकृतिम्॥ ६

उसके बाद शिवजीके समीप जाते हुए उन बृहस्पति तथा इन्द्रने [अपने] मार्गके मध्यमें अद्भुत आकारवाले एक भयंकर पुरुषको देखा॥ ६॥

अथ शक्रो मुनेऽपृच्छत्स्वाधिकारेण दुर्मदः।
पुरुषं तं स्वमार्गान्तःस्थितमज्ञाय शंकरम्॥ ७

हे मुने! यह देखकर अधिकारमदमें चूर हुए इन्द्रने अपने मार्गके बीचमें खड़े पुरुषको उसे शंकर न जानकर उससे पूछा॥ ७॥

शक्र उवाच

कस्त्वं दिगंबराकारावधूतः कुत आगतः।
किन्नाम तव विख्यातं तत्त्वतो वद मेऽचिरम्॥ ८
स्वस्थाने संस्थितः शंभुः किं वान्यत्र गतोऽधुना।
दर्शनार्थं हि तस्याहं गच्छामि सगुरुः सुरैः॥ ९

नन्दीश्वर उवाच

शक्रेणेत्थं स पृष्टश्च किञ्चिन्नोवाच पूरुषः।
लीलागृहीतदेहः स शङ्करो मदहा प्रभुः॥ १०

शक्रः पुनरपृच्छत्तं नोवाच स दिगंबरः।
अविज्ञातगतिः शम्भुर्महाकौतुककारकः॥ ११

पुनः पुरन्दरोऽपृच्छत् त्रैलोक्याधिपतिः स्वराट्।
तूष्णीमास महायोगी महालीलाकरः स वै॥ १२

इत्थं पुनः पुनः पृष्टः शक्रेण स दिगम्बरः।
नोवाच किञ्चिद्भगवान् शक्रदर्पजिघांसया॥ १३

अथ चुक्रोध देवेशस्त्रैलोक्यैश्वर्यगर्वितः।
उवाच वचनं क्रोधात्तं निर्भर्त्स्य जटाधरम्॥ १४

इन्द्र उवाच

पृच्छमानोऽपि रे मूढ नोत्तरं दत्तवानसि।
अतस्त्वां हन्मि वज्रेण कस्ते त्रातास्ति दुर्मते॥ १५
इत्युदीर्य ततो वज्री संनिरीक्ष्य क्रुधा हि तम्।
हन्तुं दिगम्बरं वज्रमुद्यतं स चकार ह॥ १६
वज्रहस्तं च तं दृष्ट्वा शक्रं शीघ्रं सदाशिवः।
चकार स्तम्भनं तस्य वज्रपातस्य शंकरः॥ १७
ततः स पुरुषः क्रुद्धः करालाक्षो भयङ्करः।
द्रुतमेव प्रजज्वाल तेजसा प्रदहन्निव॥ १८

बाहुप्रतिष्टम्भभुवा मन्युनान्तः शचीपतिः।
समदह्यत भोगीव मन्त्ररुद्धपराक्रमः॥ १९

शक्र बोले—दिगम्बर अवधूत वेष धारण किये हुए तुम कौन हो, कहाँसे आये हो और तुम्हारा क्या नाम है? तुम मुझे ठीक-ठीक शीघ्र बताओ॥ ८॥

इस समय शिवजी अपने स्थानपर हैं अथवा कहीं गये हुए हैं? मैं देवताओं और गुरु बृहस्पतिको साथ लेकर उनके दर्शनहेतु जा रहा हूँ॥ ९॥

नन्दीश्वर बोले—[हे सनत्कुमार!] इन्द्रके द्वारा इस प्रकार पूछे जानेपर लीलासे [अवधूत] देहधारी तथा अहंकारको चूर्ण करनेवाले उन पुरुषरूप प्रभु शिवने कुछ भी उत्तर नहीं दिया॥ १०॥

इन्द्रने उनसे पुनः पूछा, किंतु अलक्षित गतिवाले महाकौतुकी वे दिगम्बर शिव फिर भी कुछ नहीं बोले॥ ११॥

जब त्रैलोक्याधिपति स्वराट् इन्द्रने पुनः पूछा, तो भी महान् लीला करनेवाले वे महायोगी मौन ही रहे। इस प्रकार बारंबार इन्द्रके द्वारा पूछे जानेपर भी दिगम्बर भगवान् शिवजी इन्द्रका गर्व नष्ट करनेकी इच्छासे कुछ नहीं बोले॥ १२-१३॥

तब तीनों लोकोंके ऐश्वर्यसे गर्वित इन्द्रको बड़ा क्रोध उत्पन्न हुआ और उन्होंने क्रोधसे उन जटाधारीको धमकाते हुए कहा—॥ १४॥

इन्द्र बोले—रे मूढ! रे दुर्मते! तुमने मेरे पूछनेपर भी कुछ भी उत्तर नहीं दिया, इसलिये मैं इस वज्रसे तुम्हारा वध करता हूँ, देखें, कौन तुम्हारी रक्षा करता है। ऐसा कहकर इन्द्रने क्रोधपूर्वक उनकी ओर देखकर उन दिगम्बरको मारनेके लिये वज्र उठाया॥ १५-१६॥

सदाशिव शंकरने हाथमें वज्र उठाये हुए इन्द्रको देखकर शीघ्र ही उनका स्तम्भन कर दिया॥ १७॥

तदनन्तर भयंकर तथा विकराल नेत्रोंवाले वे पुरुष कुपित होकर अपने तेजसे [मानो इन्द्रको] जलाते हुए शीघ्र ही प्रज्वलित हो उठे॥ १८॥

उस समय अपनी बाहुके स्तम्भित हो जानेके कारण उत्पन्न हुए क्रोधसे इन्द्र भीतर-ही-भीतर इस तरह जल रहे थे, जिस प्रकार मन्त्रके द्वारा अपने पराक्रमके रुक जानेसे सर्प मन-ही-मन जलता है॥ १९॥

दृष्ट्वा बृहस्पतिस्त्वेनं प्रज्वलन्तं स्वतेजसा।
पुरुषं तं धियामास प्रणनाम हरं द्रुतम्॥ २०

बृहस्पतिने तेजसे प्रज्वलित होते हुए उन पुरुषको देखकर अपनी बुद्धिसे उन्हें शिव जान लिया और शीघ्रतासे उन्हें प्रणाम किया॥ २०॥

कृताञ्जलिपुटो भूत्वा ततो गुरुरुदारधीः।
दण्डवत्कौ पुनर्नत्वा प्रभुं तुष्टाव भक्तितः॥ २१

इसके बाद उदार बुद्धिवाले वे गुरु बृहस्पति हाथ जोड़कर पुनः पृथ्वीमें [लेटकर] दण्डवत् प्रणाम करके भक्तिपूर्वक शिवजीकी स्तुति करने लगे॥ २१॥

गुरुरुवाच

देवदेव महादेव शरणागतवत्सल।
प्रसन्नो भव गौरीश सर्वेश्वर नमोऽस्तु ते॥ २२
मायया मोहिताः सर्वे ब्रह्मविष्ण्वादयोऽपि ते।
त्वां न जानन्ति तत्त्वेन जानन्ति त्वदनुग्रहात्॥ २३

गुरु बोले—हे देवदेव! हे महादेव! हे शरणागत-वत्सल! प्रसन्न होइये। हे गौरीश! हे सर्वेश्वर! आपको नमस्कार है। ब्रह्मा, विष्णु आदि समस्त देवता भी आपकी मायासे मोहित होकर आपको यथार्थ रूपमें नहीं जान पाते हैं, केवल आपकी कृपासे ही जान सकते हैं॥ २२-२३॥

नन्दीश्वर उवाच

बृहस्पतिरिति स्तुत्वा स तदा शङ्करं प्रभुम्।
पादयोः पातयामास तस्येशस्य पुरन्दरम्॥ २४
ततस्तात सुराचार्यः कृताञ्जलिरुदारधीः।
बृहस्पतिरुवाचेदं प्रश्रयावनतः सुधीः॥ २५

नन्दीश्वर बोले—बृहस्पतिने इस प्रकार प्रभु शिवजीकी स्तुति करके इन्द्रको उन ईश्वरके चरणोंमें गिरा दिया। तदनन्तर हे तात! उदार बुद्धिवाले विद्वान् देवगुरु बृहस्पतिने हाथ जोड़कर विनम्रतासे कहा— ॥ २४-२५॥

बृहस्पतिरुवाच

दीनानाथ महादेव प्रणतं तव पादयोः।
समुद्धर च मां तत्त्वं क्रोधं न प्रणयं कुरु॥ २६
तुष्टो भव महादेव पाहीन्द्रं शरणागतम्।
वह्निरेष समायाति भालनेत्रसमुद्भवः॥ २७

बृहस्पति बोले—हे दीननाथ! हे महादेव! मैं आपके चरणोंमें पड़ा हूँ, आप मेरा और इनका उद्धार कीजिये; क्रोध नहीं, बल्कि प्रेम कीजिये॥ २६॥

हे महादेव! आप प्रसन्न होइये और अपने शरणमें आये हुए इन्द्रकी रक्षा कीजिये; क्योंकि आपके भालस्थ नेत्रसे उत्पन्न हुई यह अग्नि [इन्द्रको जलानेके लिये] आ रही है॥ २७॥

नन्दीश्वर उवाच

इत्याकर्ण्य गुरोर्वाक्यमवधूताकृतिः प्रभुः।
उवाच करुणासिन्धुर्विहसन् स सदूतिकृत्॥ २८

नन्दीश्वर बोले—देवगुरुका यह वचन सुनकर अवधूत आकृतिवाले, करुणासिन्धु, उत्तम लीला करनेवाले उन प्रभुने हँसते हुए कहा— ॥ २८॥

अवधूत उवाच

क्रोधाच्च निस्सृतं तेजो धारयामि स्वनेत्रतः।
कथं हि कञ्चुकीं सर्पः संधत्ते चोज्झितां पुनः॥ २९

अवधूत बोले—मैं क्रोधके कारण अपने नेत्रसे निकले हुए तेजको किस प्रकार धारण करूँ? क्या सर्प कंचुकीका त्याग करनेके उपरान्त पुनः उसे धारण कर सकता है॥ २९॥

नन्दीश्वर उवाच

इति श्रुत्वा वचस्तस्य शङ्करस्य बृहस्पतिः।
उवाच साञ्जलिर्भूयो भयव्याकुलमानसः॥ ३०

नन्दीश्वर बोले—उन शंकरके इस वचनको सुनकर भयसे व्याकुल मनवाले बृहस्पतिने हाथ जोड़कर पुनः कहा— ॥ ३०॥

बृहस्पतिरुवाच

हे देव भगवन्भक्ता अनुकम्प्याः सदैव हि।
भक्तवत्सलनामेति स्वं सत्यं कुरु शंकर॥ ३१

बृहस्पति बोले—हे देव! हे भगवन्! भक्त सर्वदा अनुकम्पाके योग्य होते हैं। हे शंकर! अपने भक्तवत्सल नामको सार्थक कीजिये॥ ३१॥

क्षेप्तुमन्यत्र देवेश स्वतेजोऽत्युग्रमर्हसि।
उद्धर्ता सर्वभक्तानां समुद्धर पुरन्दरम्॥ ३२

हे देवेश! आप अपने इस अत्यन्त उग्र तेजको किसी अन्य स्थानपर रख सकते हैं; आप सभी भक्तोंका उद्धार करनेवाले हैं, अतः इन्द्रका उद्धार कीजिये॥ ३२॥

नन्दीश्वर उवाच

इत्युक्तो गुरुणा रुद्रो भक्तवत्सलनामभाक्।
प्रत्युवाच प्रसन्नात्मा सुरेज्यं प्रणतार्तिहा॥ ३३

नन्दीश्वर बोले—इस प्रकार बृहस्पतिके कहनेपर भक्तवत्सल नामसे पुकारे जानेवाले तथा भक्तोंका कष्ट दूर करनेवाले भगवान् रुद्रने प्रसन्नचित्त होकर देवगुरुसे कहा—॥ ३३॥

रुद्र उवाच

प्रीतस्तेऽहं सुराचार्य ददामि वरमुत्तमम्।
इन्द्रस्य जीवदानेन जीवेति त्वं प्रथां व्रज॥ ३४

समुद्भूतोऽनलो योऽयं भालनेत्रात्सुरासहः।
एनं त्यक्ष्याम्यहं दूरे यथेन्द्रं नैव पीडयेत्॥ ३५

रुद्र बोले—हे सुराचार्य! मैं आपपर प्रसन्न हूँ, इसलिये आपको उत्तम वर देता हूँ कि इन्द्रको जीवनदान देनेके कारण आप लोकमें जीव नामसे विख्यात होंगे। मेरे भालस्थ नेत्रसे जो देवताओंके लिये असह्य अग्नि उत्पन्न हुई है, उसे मैं दूर फेंक देता हूँ, जिससे कि यह इन्द्रको पीड़ित न कर सके॥ ३४-३५॥

नन्दीश्वर उवाच

इत्युक्त्वा स करे धृत्वा स्वतेजोऽनलमद्भुतम्।
भालनेत्रसमुद्भूतं प्राक्षिपल्लवणाम्भसि॥ ३६

नन्दीश्वर बोले—ऐसा कहकर शिवजीने अपने भालस्थ नेत्रसे उत्पन्न हुई उस अद्भुत अग्निको हाथमें लेकर लवणसमुद्रमें फेंक दिया॥ ३६॥

अथो शिवस्य तत्तेजो भालनेत्रसमुद्भवम्।
क्षिप्तं च लवणाम्भोधौ सद्यो बालो बभूव ह॥ ३७

तत्पश्चात् शिवके भालनेत्रसे उत्पन्न वह तेज, जो लवणसमुद्रमें फेंका गया था, शीघ्र ही बालकरूपमें परिणत हो गया॥ ३७॥

स जलन्धरनामाभूत्सिन्धुपुत्रोऽसुरेश्वरः।
तं जघान महेशानो देवप्रार्थनया प्रभुः॥ ३८

वही बालक समुद्रका पुत्र तथा समस्त असुरोंका अधिपति होकर जलन्धर नामसे विख्यात हुआ, फिर देवताओंकी प्रार्थनासे प्रभु शिवजीने ही उसका वध किया॥ ३८॥

इत्थं कृत्वा सुचरितं शङ्करो लोकशङ्करः।
अवधूतस्वरूपेण ततश्चान्तर्हितोऽभवत्॥ ३९

बभूवुः सकला देवाः सुखिनश्चातिनिर्भयाः।
गुरुशक्रौ भयान्मुक्तौ जग्मतुः सुखमुत्तमम्॥ ४०

लोककल्याणकारी शिवजी अवधूतरूपसे इस प्रकारका सुन्दर चरित्रकर पुनः अन्तर्धान हो गये और सभी देवता सुखी तथा निर्भय हो गये। बृहस्पति और इन्द्र भी भयमुक्त होकर अत्यन्त सुखी हो गये॥ ३९-४०॥

यदर्थे गमनोद्युक्तौ दर्शनं प्राप्य तस्य तौ।
कृतार्थौ गुरुशक्रौ हि स्वस्थानं जग्मतुर्मुदा॥ ४१

जिनका दर्शन करनेहेतु इन्द्र और बृहस्पति जा रहे थे, उनका दर्शन प्राप्तकर वे कृतार्थ हो गये और प्रसन्नतापूर्वक अपने स्थानको चले गये॥ ४१॥

अवधूतेश्वराह्वोऽवतारस्ते कथितो मया।
परमेशस्य परमानन्ददः खलदण्डदः॥ ४२

[हे सनत्कुमार!] मैंने दुष्टोंको दण्ड देनेवाले तथा परमानन्ददायक परमेश्वर शिवजीके अवधूतेश्वर नामक अवतारका वर्णन आपसे कर दिया॥ ४२॥

इदमाख्यानमनघं यशस्यं स्वर्ग्यमेव च।
भुक्तिमुक्तिप्रदं दिव्यं सर्वकामफलप्रदम्॥ ४३

य इदं शृणुयान्नित्यं श्रावयेद्वा समाहितः।
इह सर्वसुखं भुक्त्वा सोऽन्ते शिवगतिं लभेत्॥ ४४

यह आख्यान पवित्र, दिव्य, यशको बढ़ानेवाला, स्वर्ग, भोग और मोक्ष देनेवाला तथा सम्पूर्ण मनोरथोंको पूर्ण करनेवाला है। जो स्थिरचित्त हो प्रतिदिन इसे सुनता अथवा सुनाता है, वह इस लोकमें सभी सुखोंको भोगकर अन्तमें शिवकी गतिको प्राप्त कर लेता है॥ ४३-४४॥

इति श्रीशिवमहापुराणे तृतीयायां शतरुद्रसंहितायां नन्दीश्वरसनत्कुमारसंवादे अवधूतेश्वरशिवावतारचरित्रवर्णनं नाम त्रिंशोऽध्यायः॥ ३०॥

॥ इस प्रकार श्रीशिवमहापुराणके अन्तर्गत तृतीय शतरुद्रसंहिताके नन्दीश्वर-सनत्कुमार-संवादमें अवधूतेश्वरशिवावतारचरित्रवर्णन नामक तीसवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ ३०॥

अथैकत्रिंशोऽध्यायः

शिवजीके भिक्षुवर्यावतारका वर्णन

नन्दीश्वर उवाच

अथ वक्ष्ये मुनिश्रेष्ठ शम्भोः शृण्ववतारकम्।
स्वभक्तदयया विप्र नारीसन्देहभंजकम्॥ १

नन्दीश्वर बोले—हे मुनिश्रेष्ठ! हे विप्र! अब मैं शिवजीके उस अवतारका वर्णन करूँगा, जिसे [किसी] नारीके सन्देहका निवारण करनेके लिये उन्होंने अपने भक्तपर दया करके ग्रहण किया था, उसे आप सुनिये॥ १॥

आसीत्सत्यरथो नाम्ना विदर्भविषये नृपः।
धर्मात्मा सत्यशीलश्च महाशैवजनप्रियः॥ २

विदर्भनगरमें धर्मात्मा, सत्यशील तथा शिवभक्तोंसे प्रेम करनेवाला सत्यरथ नामक एक राजा था॥ २॥

तस्य राज्ञः सुधर्मेण महीं पालयतो मुने।
महान्कालो व्यतीयाय सुखेन शिवधर्मतः॥ ३

हे मुने! धर्मपूर्वक पृथ्वीका पालन करते एवं शिवधर्मसे सुखपूर्वक निवास करते हुए उस राजाका बहुत समय बीत गया॥ ३॥

कदाचित्तस्य राज्ञस्तु शाल्वैश्च पुररोधिभिः।
महान् रणो बभूवाथ बहुसैन्यैर्बलोद्धतैः॥ ४

किसी समय उसके नगरको अवरुद्ध करनेवाले, बहुत-सी सेनासे युक्त तथा बलसे उन्मत्त शाल्वसंज्ञक क्षत्रिय वीरोंके साथ उस राजाका घोर युद्ध हुआ॥ ४॥

स विदर्भनृपः कृत्वा सार्धं तैर्दारुणं रणम्।
प्रनष्टोरुबलः शाल्वैर्निहतो दैवयोगतः॥ ५

तस्मिन्नृपे हते युद्धे शाल्वैस्तु भयविह्वलाः।
सैनिका हतशेषाश्च मन्त्रिभिः सह दुद्रुवुः॥ ६

उन शाल्ववीरोंके साथ भयानक युद्ध करके नष्ट हुए पराक्रमवाला वह विदर्भराज दैवयोगसे उनके द्वारा मार दिया गया। शाल्वोंके द्वारा रणभूमिमें उस राजाके मारे जानेपर उसके बचे हुए सैनिक भयसे व्याकुल होकर मन्त्रियोंके साथ भाग गये॥ ५-६॥

अथ तस्य महाराज्ञी रात्रौ स्वपुरतो मुने।
संरुद्धा रिपुभिर्यत्नादन्तर्वत्नी बहिर्ययौ॥ ७

निर्गता शोकसंतप्ता सा राजमहिषी शनैः।
प्राचीं दिशं ययौ दूरं स्मरन्तीशपदाम्बुजम्॥ ८

हे मुने! उसके बाद उस राजाकी गर्भवती रानी शत्रुओंके द्वारा घिरी होनेपर भी रात्रिके समय बड़े यत्नसे नगरसे बाहर चली गयी। शोकसे सन्तप्त वह रानी [राजधानीसे] निकलकर शिवके चरणकमलोंका ध्यान करती हुई पूर्व दिशाकी ओर बहुत दूर चली गयी॥ ७-८॥

अथ प्रभाते सा राज्ञी ददर्श विमलं सरः।
अतीता दूरमध्वानं दयया शङ्करस्य हि॥ ९

तत्रागत्य प्रिया राज्ञः संतप्ता सुकुमारिणी।
निवासार्थं सरस्तीरे छायावृक्षमुपाश्रयत्॥ १०
तत्र दैववशाद्राज्ञी मुहूर्ते सद्गुणान्विते।
असूत तनयं दिव्यं सर्वलक्षणलक्षितम्॥ ११

अथ तज्जननी दैवात्तृषितातिनृपाङ्गना।
सरोऽवतीर्णा पानार्थं ग्रस्ता ग्राहेण पाथसि॥ १२

स सुतो जातमात्रस्तु क्षुत्पिपासार्दितो भृशम्।
रुरोद च सरस्तीरे विनष्टपितृमातृकः॥ १३

तस्मिन्वने क्रन्दमाने जातमात्रे सुते मुने।
कृपान्वितो महेशोऽभूदन्तर्यामी स रक्षकः॥ १४

प्रेरिता मनसा काचिदीशेन त्रासहारिणा।
अकस्मादागता तत्र भ्रमन्ती भैक्ष्यजीविनी॥ १५
सा त्वेकहायनं बालं वहन्ती विधवा निजम्।
अनाथमेकं क्रन्दन्तं शिशुं तत्र ददर्श ह॥ १६
सा दृष्ट्वा तत्र तं बालं वने निर्मनुजे मुने।
विस्मितातिद्विजस्त्री सा चिचिन्त हृदये बहु॥ १७

अहो सुमहदाश्चर्यमिदं दृष्टं मयाधुना।
असंभाव्यमकथ्यं च सर्वथा मनसा गिरा॥ १८

अच्छिन्ननाभिनालोऽयं रसायां केवलं शिशुः।
शेते मातृविहीनश्च क्रन्दंस्तेजस्विनां वरः॥ १९

अस्य पित्रादयः केऽपि न सन्तीह सहायिनः।
कारणं किं बभूवाथ ह्यहो दैवबलं महत्॥ २०

न जाने कस्य पुत्रोऽयमस्य ज्ञातात्र कोऽपि न।
यतः पृच्छाम्यस्य जन्म जाता च करुणा मयि॥ २१

इस प्रकार शिवजीकी दयासे [सुरक्षित हुई] वह रानी नगरसे बहुत दूर जा पहुँची और उसने प्रातःकालके समय [वहाँपर] एक स्वच्छ सरोवरको देखा॥ ९॥

वहाँ आकर राजाकी उस सुकुमार पत्नीने शोकसे व्याकुल हो विश्रामके लिये उस सरोवरके तटपर एक छायादार वृक्षका आश्रय लिया। वहाँपर रानीने दैववश शुभ ग्रहोंसे युक्त मुहूर्तमें सर्वलक्षणसम्पन्न दिव्य पुत्रको जन्म दिया॥ १०-११॥

उसी समय भाग्यवश प्याससे व्याकुल हुई उस सद्योजात शिशुकी माता वह रानी ज्यों ही जल लेनेके लिये सरोवरमें उतरी कि जलमें स्थित ग्राहने उसे पकड़ लिया। भूख एवं प्याससे अत्यधिक व्याकुल तथा पिता एवं मातासे रहित वह नवजात बालक सरोवरके किनारे रोने लगा॥ १२-१३॥

हे मुने! [उत्पन्न होते ही भूख-प्याससे व्याकुल हो] रोते हुए उस नवजात शिशुपर सर्वान्तर्यामी तथा सर्वरक्षक वे महेश्वर दयार्द्र हो उठे॥ १४॥

उसी समय कष्ट दूर करनेवाले भगवान्के द्वारा मनसे प्रेरित की गयी एक भिखारिन वहाँ अकस्मात् आ पहुँची। अपने एक वर्षके पुत्रको लिये हुए उस विधवाने उस रोते हुए अनाथ बच्चेको वहाँ देखा॥ १५-१६॥

हे मुने! उस बालकको निर्जन वनमें देखकर वह ब्राह्मणी अत्यन्त आश्चर्यचकित हो अपने हृदयमें बहुत विचार करने लगी॥ १७॥

अहो! मैंने इस समय बहुत बड़ा आश्चर्य देखा, जो असम्भव एवं मन तथा वाणीसे सर्वथा अकथनीय है। तेजस्वियोंमें श्रेष्ठ इस बालकका अभीतक नालच्छेदन नहीं हुआ है और यह मातृविहीन हो रोता हुआ अकेला ही पृथिवीपर लेटा हुआ है॥ १८-१९॥

यहाँ तो इसकी सहायता करनेवाले इसके माता-पिता आदि कोई नहीं हैं, इसमें क्या कारण हो सकता है, अहो, दैवबल बड़ा प्रबल है!॥ २०॥

यह न जाने किसका पुत्र है, इसे जाननेवाला भी यहाँ कोई नहीं है, जिससे इसके जन्मके विषयमें मैं पूछूँ। मुझे तो इसपर बहुत ही दया आ रही है॥ २१॥

इच्छाम्येनं पोषितुं हि बालमौरसपुत्रवत्।
संस्प्रष्टुं नोत्सहेऽज्ञात्वा कुलजन्मादि चास्य वै॥ २२

मैं अब इस बालकका अपने औरसपुत्रकी भाँति पालन करना चाहती हूँ, परंतु इसके कुल और जन्म आदिका ज्ञान न होनेसे इसे छूनेका साहस नहीं होता॥ २२॥

नन्दीश्वर उवाच

इति संचिन्त्यमानायां तस्यां विप्रवरस्त्रियाम्।
कृपां चकार महतीं शंकरो भक्तवत्सलः॥ २३

नन्दीश्वर बोले—जब वह श्रेष्ठ ब्राह्मणी अपने मनमें इस प्रकारका विचार कर रही थी, उसी समय भक्तवत्सल शिवजीने बड़ी दया की॥ २३॥

दध्रे भिक्षुस्वरूपं हि महालीलो महेश्वरः।
सर्वथा भक्तसुखदो निरुपाधिः स्वयं सदा॥ २४

सदैव महान् लीलाएँ करनेवाले, स्वयं उपाधिरहित तथा भक्तोंको हर प्रकारका सुख देनेवाले उन महेश्वरने [उस समय] भिक्षुकका रूप धारण कर लिया॥ २४॥

तत्राजगाम सहसा स भिक्षुः परमेश्वरः।
यत्रास्ति संदेहवती द्विजस्त्री ज्ञातुमिच्छती॥ २५

भिक्षुकरूपधारी वे परमेश्वर वहाँ सहसा आये, जहाँ उस बालकके विषयमें जाननेकी इच्छावाली सन्देहग्रस्त ब्राह्मणी विद्यमान थी॥ २५॥

भिक्षुवर्यस्वरूपोऽसावविज्ञातगतिः प्रभुः।
तामाह विप्रवनितां विहस्य करुणानिधिः॥ २६

तब अविज्ञातगति तथा दयासागर उन भिक्षुकरूपधारी भगवान् शंकरने हँसकर उस ब्राह्मणपत्नीसे कहा—॥ २६॥

भिक्षुवर्य उवाच

सन्देहं कुरु नो चित्ते विप्रभामिनि मा खिद।
रक्षैनं बालकं प्रीत्या सुपवित्रं स्वपुत्रकम्॥ २७

अनेन शिशुना श्रेयः प्राप्स्यसे न चिरात्परम्।
पुष्णीहि सर्वथा ह्येनं महातेजस्विनं शिशुम्॥ २८

भिक्षुश्रेष्ठ बोले—हे ब्राह्मणी! तुम अपने मनमें शंका मत करो और दुखी मत होओ, तुम अपने पुत्रतुल्य इस पवित्र बालककी प्रसन्नतापूर्वक रक्षा करो थोड़े ही समयके उपरान्त इस बालकसे तुम्हारा परम कल्याण होनेवाला है, अतः सब प्रकारसे इस महातेजस्वी शिशुका पालन-पोषण करो॥ २७-२८॥

नन्दीश्वर उवाच

इत्युक्तवन्तं तं भिक्षुस्वरूपं करुणानिधिम्।
सा विप्रवनिता शम्भुं प्रीत्या पप्रच्छ सादरम्॥ २९

नन्दीश्वर बोले—भिक्षुरूप धारण करनेवाले करुणासागर शिवजीने जब इस प्रकार कहा, तब ब्राह्मणीने प्रेमके साथ आदरपूर्वक उनसे पूछा—॥ २९॥

विप्रवनितोवाच

त्वदाज्ञयैनं बालं हि रक्षिष्यामि स्वपुत्रवत्।
पोक्ष्यामि नात्र सन्देहो मद्भाग्यात्त्वमिहागतः॥ ३०

तथापि ज्ञातुमिच्छामि विशेषेण तु तत्त्वतः।
कोऽयं कस्य सुतश्चायं कस्त्वमत्र समागतः॥ ३१

ब्राह्मणी बोली—मैं आपकी आज्ञासे अपने पुत्रके समान इस बालककी रक्षा करूँगी तथा भरण-पोषण करूँगी, इसमें सन्देह नहीं है, आप मेरे भाग्यसे ही यहाँ पधारे हैं। फिर भी मैं आपसे सत्य-सत्य विशेष रूपसे जानना चाहती हूँ कि यह कौन है, यह किसका पुत्र है और यहाँ आये हुए आप कौन हैं?॥ ३०-३१॥

मुहुर्मम समायाति ज्ञानं भिक्षुवर प्रभो।
त्वं शिवः करुणासिन्धुस्त्वद्भक्तोऽयं शिशुः पुरा॥ ३२

हे भिक्षुवर! हे प्रभो! मुझे बारंबार ऐसा ज्ञात हो रहा है कि आप दयासागर भगवान् शिव हैं और यह शिशु पूर्वजन्ममें आपका भक्त था॥ ३२॥

केनचित्कर्मदोषेण सम्प्राप्तोऽयं दशामिमाम्।
तद्भुक्त्वा परमं श्रेयः प्राप्स्यते त्वदनुग्रहात्॥ ३३

किसी कर्मके दोषसे यह इस अवस्थाको प्राप्त हुआ है, उसे भोगकर आपकी कृपासे यह पुनः परम कल्याणको प्राप्त करेगा॥ ३३॥

त्वन्माययैव साहं वै मार्गभ्रष्टा विमोहिता।
आगता प्रेषिता त्वत्तो ह्यस्य रक्षणहेतुतः॥ ३४

नन्दीश्वर उवाच

इति तद्दर्शनप्राप्तविज्ञानां विप्रकामिनीम्।
ज्ञातुकामां विशेषेण प्रोचे भिक्षुतनुः शिवः॥ ३५

भिक्षुवर्य उवाच

शृणु प्रीत्या विप्रपत्नि बालस्यास्य पुरेहितम्।
सर्वमन्यस्य सुप्रीत्या वक्ष्यते तत्त्वतोऽनघे॥ ३६

सुतो विदर्भराजस्य शिवभक्तस्य धीमतः।
अयं सत्यरथस्यैव स्वधर्मनिरतस्य हि॥ ३७

शृणु सत्यरथो राजा हतः शाल्वै रणे परैः।
तत्पत्नी निशि सुव्यग्रा निर्ययौ स्वगृहाद् द्रुतम्॥ ३८

असूत तनयं चैनं समायाता प्रगेऽत्र हि।
सरोऽवतीर्णा तृषया ग्रस्ता ग्राहेण दैवतः॥ ३९

नन्दीश्वर उवाच

इति तस्य समुत्पत्तिं तत्पितुः सङ्गरे मृतिम्।
तन्मातृमरणं ग्राहात्सर्वं तस्यै न्यवेदयत्॥ ४०

अथ सा ब्राह्मणी चैव विस्मितातति मुनीश्वर।
पुनः पप्रच्छ तं भिक्षुं ज्ञानिनं सिद्धरूपकम्॥ ४१

ब्राह्मण्युवाच

स राज्ञोऽस्य पिता भिक्षो वरभोगान्तरैव हि।
कस्माच्छाल्वैः स्वरिपुभिः स्वल्पेहैश्च विघातितः॥ ४२
कस्मादस्य शिशोर्माता ग्राहेणाशु सुभक्षिता।
यस्मादनाथोऽयं जातो विबन्धुश्चैव जन्मतः॥ ४३

कस्मात्सुतो ममापीह सुदरिद्रो हि भिक्षुकः।
भवेत्कथं सुखं भिक्षो पुत्रयोरनयोर्वद॥ ४४

नन्दीश्वर उवाच

इति तस्या वचः श्रुत्वा स भिक्षुः परमेश्वरः।
विप्रपत्न्याः प्रसन्नात्मा प्रोवाच विहसँश्च ताम्॥ ४५

आपकी मायासे मोहित हुई मैं अपना मार्ग भूलकर इधर आ गयी, [जिससे ज्ञात होता है कि] इसके पालन करनेके लिये आपने ही मुझे यहाँ भेजा है॥ ३४॥

नन्दीश्वर बोले—शिवजीके दर्शनसे ज्ञानको प्राप्त हुई तथा विशेषरूपसे जाननेकी इच्छावाली उस ब्राह्मणीसे भिक्षुरूपधारी शिवने कहा—॥ ३५॥

भिक्षुवर बोले—हे विप्रपत्नि! इस सर्वमान्य बालकका पूर्वकालीन इतिहास तुमसे प्रसन्नतापूर्वक कह रहा हूँ। हे अनघे! तुम प्रेमपूर्वक इसे सुनो॥ ३६॥

यह [बालक] शिवभक्त, बुद्धिमान् तथा अपने धर्ममें निरत रहनेवाले विदर्भराज सत्यरथका पुत्र है॥ ३७॥

[हे ब्राह्मणी!] सुनो, राजा सत्यरथ शत्रु शाल्वोंद्वारा युद्धमें मार डाले गये, जिससे अत्यन्त भयभीत हुई उनकी पत्नी रात्रिमें शीघ्रतासे अपने घरसे निकल गयीं॥ ३८॥

उन्होंने इस वनमें आकर प्रातःकाल होते-होते इस पुत्रको जन्म दिया, किंतु प्यास लगनेसे वह सरोवरमें उतरीं, तब दुर्भाग्यसे ग्राहने उन्हें अपना ग्रास बना लिया॥ ३९॥

नन्दीश्वर बोले—इस प्रकार उन्होंने बालककी उत्पत्ति, उसके पिताका संग्राममें मरण एवं ग्राहद्वारा उसकी माताकी मृत्युके विषयमें उससे कहा॥ ४०॥

हे मुनीश्वर! तब वह ब्राह्मणी अत्यन्त विस्मित हुई और उसने ज्ञानी तथा सिद्धस्वरूप उन भिक्षुकसे पुनः पूछा—॥ ४१॥

ब्राह्मणी बोली—हे भिक्षो! इस राजपुत्रका श्रेष्ठ पिता उत्तमोत्तम भोग करते हुए भी इन क्षुद्र शाल्वोंके द्वारा किस प्रकार मारा गया और ग्राहने इस शिशुकी माताको शीघ्र क्यों ग्रास बना लिया, जिसके कारण यह जन्मसे अनाथ एवं बन्धुरहित हो गया है?॥ ४२-४३॥

हे भिक्षो! मेरा यह पुत्र भी परम दरिद्र तथा भिक्षुक क्यों हुआ? किस उपायसे मेरे ये दोनों पुत्र सुखी होंगे, यह बताइये॥ ४४॥

नन्दीश्वर बोले—उस ब्राह्मणीका यह वचन सुनकर भिक्षुरूपधारी उन परमेश्वरने प्रसन्नचित्त होकर हँसते हुए उससे कहा—॥ ४५॥

भिक्षुवर्य उवाच

विप्रपत्नि विशेषेण सर्वप्रश्नान्वदामि ते।
शृणु त्वं सावधानेन चरित्रमिदमुत्तमम्॥ ४६
अमुष्य बालस्य पिता स विदर्भमहीपतिः।
पूर्वजन्मनि पाण्ड्योऽसौ बभूव नृपसत्तमः॥ ४७
स शैवनृपतिर्धर्मात्पालयन्निखिलां महीम्।
स्वप्रजां रञ्जयामास सर्वोपद्रवनाशनः॥ ४८

कदाचित्स हि सर्वेशं प्रदोषे पर्यपूजयत्।
त्रयोदश्यां निराहारो दिवानक्तव्रती शिवम्॥ ४९
तस्य पूजयतः शम्भुं प्रदोषे गिरिशं रते।
महान् शब्दो बभूवाथ विकटः सर्वथा पुरे॥ ५०
तमाकर्ण्य रवं सोऽथ राजा त्यक्तशिवार्चनः।
रिप्वागमनशङ्कातो निर्ययौ भवनाद् बहिः॥ ५१

एतस्मिन्नेव काले तु तस्यामात्यो महाबली।
गृहीतशत्रुसामन्तो राजान्तिकमुपाययौ॥ ५२

तं दृष्ट्वा शत्रुसामन्तं महाक्रोधेन विह्वलः।
अविचार्य वृषन्तस्य शिरश्छेदमकारयत्॥ ५३

असमाप्येशपूजां तामशुचिर्नष्टधीर्नृपः।
रात्रौ चकार सुप्रीत्या भोजनं नष्टमंगलः॥ ५४

विदर्भे सोऽभवद्राजा जन्मनीह शिवव्रती।
शिवार्चनान्तरायेण परैर्भोगान्तरे हतः॥ ५५

तत्पिता यः पूर्वभवे सोऽस्मिञ्जन्मनि तत्सुतः।
अयमेव हतैश्वर्यः शिवपूजाव्यतिक्रमात्॥ ५६

अस्य माता पूर्वभवे सपत्नीं छद्मनाहरत्।
भक्षिता तेन पापेन ग्राहेणास्मिन् भवे हि सा॥ ५७

एषा प्रवृत्तिरेतेषां भवत्यै परिकीर्तिता।
अनर्चितशिवा भक्त्या प्राप्नुवन्ति दरिद्रताम्॥ ५८

भिक्षुवर्य बोले—हे विप्रपत्नि! मैं तुम्हारे सभी प्रश्नोंका उत्तर विशेषरूपसे दे रहा हूँ, तुम सावधान होकर इस उत्तम चरित्रका श्रवण करो॥ ४६॥

विदर्भ देशका राजा, जो इस बालकका पिता था, वह पूर्वजन्ममें पाण्ड्य देशका श्रेष्ठ राजा था॥ ४७॥

सम्पूर्ण उपद्रवोंका नाश करनेवाला वह शिवभक्त राजा सम्पूर्ण पृथ्वीका पालन करता हुआ अपनी प्रजाको प्रसन्न रखता था॥ ४८॥

किसी समय उसने दिनमें निराहार रहकर नक्तव्रत करते हुए त्रयोदशीके प्रदोषकालमें शिवकी पूजा की। जब वह प्रदोषकालमें शिवजीका पूजन कर रहा था, तभी नगरमें बड़ा भयानक शब्द हुआ॥ ४९-५०॥

उस [भयावह] ध्वनिको सुनकर वह राजा शत्रुके आक्रमणकी आशंकासे शिवार्चनका परित्यागकर घरसे बाहर निकल पड़ा॥ ५१॥

इसी समय उसका महाबली मन्त्री भी शत्रुता करनेवाले सामन्तको साथ लेकर राजाके निकट आ गया॥ ५२॥

अत्यधिक क्रोधसे व्याकुल राजाने उस शत्रु सामन्तको देखकर बिना धर्माधर्मका विचार किये निर्दयताके साथ उसका सिर कटवा दिया॥ ५३॥

उस शिवपूजाको समाप्त किये बिना ही अपवित्र तथा नष्ट बुद्धिवाले राजाने रातमें प्रेमपूर्वक भोजन किया, जिससे वह मंगलहीन हो गया॥ ५४॥

उसके पश्चात् इस जन्ममें वह विदर्भ देशका शिवभक्त राजा हुआ, किंतु [पूर्वजन्ममें] शिवार्चनमें होनेवाले पापके कारण शत्रुओंने राज्यसुखभोगके समय ही उसका वध कर दिया॥ ५५॥

पूर्वजन्ममें जो उसका पुत्र था, वह ही इस जन्ममें भी हुआ है, किंतु शिवपूजाके व्यतिक्रमसे यह सारे ऐश्वर्यसे रहित है॥ ५६॥

इसकी माताने पूर्वजन्ममें अपनी सौतको छलसे मरवा दिया था, उस पापसे इस जन्ममें उसे ग्राहने निगल लिया॥ ५७॥

[हे ब्राह्मणी!] मैंने इन सबका सारा वृत्तान्त तुमसे कह दिया, भक्तिपूर्वक शिवकी अर्चना न करनेवाले मनुष्य दरिद्र हो जाते हैं॥ ५८॥

एष ते तनयः पूर्वजन्मनि ब्राह्मणोत्तमः।
प्रतिग्रहैर्वयो निन्ये न यज्ञाद्यैः सुकर्मभिः॥ ५९

अतो दारिद्र्यमापन्नः पुत्रस्ते द्विजभामिनि।
तद्दोषपरिहारार्थं शरणं शंकरं व्रज॥ ६०

एताभ्यां खलु बालाभ्यां शिवपूजा विधीयताम्।
उपवीतानन्तरं हि शिवः श्रेयः करिष्यति॥ ६१

तुम्हारा यह पुत्र पूर्वजन्ममें श्रेष्ठ ब्राह्मण था, इसने यज्ञादि सुकर्म किये नहीं; केवल प्रतिग्रहोंको लेनेमें ही अपना जीवन बिता दिया। हे ब्राह्मणी! इसीलिये तुम्हारा पुत्र दरिद्र हुआ है, उन दोषोंको दूर करनेके लिये तुम शंकरकी शरणमें जाओ और इन दोनों बालकोंको लेकर शिवजीकी पूजा करो। इन दोनोंका यज्ञोपवीत हो जानेके पश्चात् शिवजी कल्याण करेंगे॥ ५९—६१॥

नन्दीश्वर उवाच

इति तामुपदिश्याथ भिक्षुवर्यतनुः शिवः।
स्वरूपं दर्शयामास परमं भक्तवत्सलः॥ ६२

नन्दीश्वर बोले—उसे ऐसा उपदेश देकर भिक्षुरूपधारी भक्तवत्सल भगवान् शिवने उसे अपना उत्कृष्ट स्वरूप दिखाया॥ ६२॥

अथ सा विप्रवनिता ज्ञात्वा तं शंकरं प्रभुम्।
सुप्रणम्य हि तुष्टाव प्रेम्णा गद्गदया गिरा॥ ६३

इसके बाद वह ब्राह्मणी उन भिक्षुश्रेष्ठको शिव जानकर उन्हें भलीभाँति प्रणाम करके प्रेमपूर्वक गद्गद वाणीमें उन प्रभुकी स्तुति करने लगी॥ ६३॥

ततः स भगवान् शम्भुर्धृतभिक्षुतनुर्द्रुतम्।
पश्यन्त्या विप्रपत्न्यास्तु तत्रैवान्तरधीयत॥ ६४

उसके बाद विप्रपत्नीके देखते-देखते भिक्षुरूपधारी वे भगवान् शिव शीघ्र ही वहीं अन्तर्धान हो गये॥ ६४॥

अथ तस्मिन् गते भिक्षौ विश्रब्धा ब्राह्मणी च सा।
तमर्भकं समादाय सस्वपुत्रा गृहं ययौ॥ ६५

भिक्षुकके चले जानेपर ब्राह्मणीको विश्वास हो गया और उस लड़केको लेकर वह अपने पुत्रसहित घर चली गयी॥ ६५॥

एकचक्राह्वये रम्ये ग्राम्ये कृतनिकेतना।
स्वपुत्रं राजपुत्रं च वरान्नैश्च व्यवर्धयत्॥ ६६

एकचक्रा नामक रमणीय ग्राममें निवास करती हुई वह ब्राह्मणी उत्तम अन्नोंसे अपने पुत्र तथा राजपुत्रका पालन करने लगी॥ ६६॥

ब्राह्मणैः कृतसंस्कारौ कृतोपनयनौ च तौ।
ववृधाते स्वगेहे च शिवपूजनतत्परौ॥ ६७

पुनः ब्राह्मणोंने उन दोनोंका यज्ञोपवीत-संस्कार सम्पन्न किया, वे दोनों शिवपूजामें तत्पर हो अपने घरमें बढ़ने लगे॥ ६७॥

तौ शाण्डिल्यमुनेस्तात निदेशान्नियमस्थितौ।
प्रदोषे चक्रतुः शम्भोः पूजां कृत्वा व्रतं शुभम्॥ ६८

हे तात! वे दोनों ही शाण्डिल्य मुनिकी आज्ञासे नियममें तत्पर होकर शुभ व्रत करके प्रदोषकालमें शिवजीका पूजन करने लगे॥ ६८॥

कदाचिद् द्विजपुत्रेण विनासौ राजनन्दनः।
नद्यां स्नातुं गतः प्राप निधानकलशं वरम्॥ ६९

किसी समय ब्राह्मणपुत्रके बिना ही नदीमें स्नान करनेके लिये गये हुए राजपुत्रने धनसे परिपूर्ण एक सुन्दर कलश पाया॥ ६९॥

एवं पूजयतोः शम्भुं राजद्विजकुमारयोः।
सुखेनैव व्यतीयाय तयोर्मासचतुष्टयम्॥ ७०

इस प्रकार शिवजीकी पूजा करते हुए उन राजकुमार और ब्राह्मणकुमारके सुखपूर्वक चार महीने बीत गये॥ ७०॥

एवमर्चयतोः शम्भुं भूयोऽपि परया मुदा।
संवत्सरो व्यतीयाय तस्मिन्नेव तयोर्गृहे॥ ७१

इसी रीतिसे अत्यन्त प्रसन्नतासे पुनः शिवजीका पूजन करते हुए उन दोनोंका उस घरमें एक वर्ष व्यतीत हुआ॥ ७१॥

संवत्सरे व्यतिक्रान्ते स राजतनयो मुने।
गत्वा वनान्ते विप्रेण शिवस्यानुग्रहाद्विभोः ॥ ७२

अकस्मादागतां तत्र दत्तां तज्जनकेन ह।
विवाह्य गन्धर्वसुतां चक्रे राज्यमकण्टकम् ॥ ७३

हे मुने! एक वर्ष बीत जानेपर वह राजपुत्र एक दिन उस ब्राह्मणपुत्रके साथ सर्वव्यापक शिवकी कृपासे वनप्रान्तमें जा पहुँचा और अकस्मात् वहाँपर आयी हुई तथा उसके पिताद्वारा प्रदत्त गन्धर्वकन्यासे विवाह करके अकण्टक राज्य करने लगा ॥ ७२-७३ ॥

या विप्रवनिता पूर्वं तमपुष्णात्स्वपुत्रवत्।
सैव माताभवत्तस्य स भ्राता द्विजनन्दनः ॥ ७४

जिस ब्राह्मणीने अपने पुत्रके समान उसका पालन-पोषण किया था, वही उसकी माता हुई तथा वह ब्राह्मणपुत्र उसका भाई हुआ ॥ ७४ ॥

इत्थमाराध्य देवेशं धर्मगुप्ताह्वयः स वै।
विदर्भविषये राज्ञ्या तया भोगं चकार ह ॥ ७५

इस प्रकार शिवजीकी आराधना करके धर्मगुप्त नामक वह राजपुत्र विदर्भनगरमें उस रानीके साथ सुखोपभोग करने लगा ॥ ७५ ॥

भिक्षुवर्यावतारस्ते वर्णितश्च मयाधुना।
शिवस्य धर्मगुप्ताह्वनृपबालसुखप्रदः ॥ ७६

[हे मुने!]इस समय मैंने शिवजीके भिक्षुवर्यावतारका वर्णन आपसे कर दिया, जो धर्मगुप्त नामक राजपुत्रको सुख देनेवाला था ॥ ७६ ॥

एतदाख्यानमनघं पवित्रं पावनं महत्।
धर्मार्थकाममोक्षाणां साधनं सर्वकामदम् ॥ ७७

यह आख्यान निष्पाप, पवित्र, पवित्र करनेवाला, महान् धर्म, अर्थ, काम तथा मोक्षका साधन एवं सम्पूर्ण मनोरथोंको पूर्ण करनेवाला है ॥ ७७ ॥

य एतच्छृणुयान्नित्यं श्रावयेद्वा समाहितः।
स भुक्त्वेहाखिलान्कामान् सोऽन्ते शिवपुरं व्रजेत् ॥ ७८

जो सावधान होकर इसे नित्य सुनता अथवा सुनाता है, वह समस्त इच्छित भोगोंको भोगकर अन्तमें शिवपुरको जाता है ॥ ७८ ॥

इति श्रीशिवमहापुराणे तृतीयायां शतरुद्रसंहितायां भिक्षुवर्याह्वशिवावतारचरित्रवर्णनं नामैकत्रिंशोऽध्यायः ॥ ३१ ॥

॥ इस प्रकार श्रीशिवमहापुराणके अन्तर्गत तृतीय शतरुद्रसंहितामें भिक्षुवर्याह्वशिवावतारचरित्रवर्णन नामक इकतीसवाँ अध्याय पूर्ण हुआ ॥ ३१ ॥

अथ द्वात्रिंशोऽध्यायः

उपमन्युपर अनुग्रह करनेके लिये शिवके सुरेश्वरावतारका वर्णन

नन्दीश्वर उवाच

शृणु तात प्रवक्ष्यामि शिवस्य परमात्मनः।
सुरेश्वरावतारस्ते धौम्याग्रजहितावहम् ॥ १

नन्दीश्वर बोले—हे तात! परमेश्वर शिवका जो सुरेश्वरावतार हुआ, जिसने धौम्यके ज्येष्ठ भ्राता [उपमन्यु]-का हितसाधन किया था, मैं उसका वर्णन करूँगा, आप श्रवण कीजिये ॥ १ ॥

व्याघ्रपादसुतो धीमानुपमन्युः सतां प्रियः।
जन्मान्तरेण संसिद्धः प्राप्तो मुनिकुमारताम् ॥ २

व्याघ्रपादका उपमन्यु नामवाला एक पुत्र था, जो परम बुद्धिमान् एवं सज्जनोंका प्रिय था, वह जन्मान्तरीय [तपस्यासे] सिद्ध था और मुनिके पुत्ररूपमें उत्पन्न हुआ था ॥ २ ॥

उवास मातुलगृहे स मात्रा शिशुरेव हि।
उपमन्युर्व्याघ्रपादिः स्याद्दरिद्रश्च दैवतः ॥ ३

वह व्याघ्रपादपुत्र उपमन्यु जब बालक था, तभीसे अपनी माताके साथ मामाके घर निवास करने लगा, दैवयोगसे वह दरिद्र था ॥ ३ ॥

कदाचित्क्षीरमत्यल्पं पीतवान्मातुलाश्रमे।
ययाचे मातरं प्रीत्या बहुशो दुग्धलालसः॥ ४

उसने कभी अपने मामाके घरमें थोड़ा-सा दूध पी लिया था, फिर दूधके प्रति उसकी लालसा बढ़ गयी और मातासे बारंबार दूध माँगने लगा॥ ४॥

तच्छ्रुत्वा पुत्रवचनं तन्माता च तपस्विनी।
सान्तः प्रविश्याथ तदा शुभोपायमरीरचत्॥ ५

तब पुत्रका यह वचन सुनकर उस तपस्विनी माताने घरके भीतर प्रवेश करके एक उत्तम उपाय किया॥ ५॥

उञ्छवृत्त्यर्जितान्बीजान्पिष्ट्वालोड्य जलेन तान्।
उपलाल्य सुतं तस्मै सा ददौ कृत्रिमं पयः॥ ६

उसने उञ्छवृत्तिसे एकत्रित बीजोंको पीसकर उस [आटे]-को पानीमें घोलकर पुत्रको बहला-फुसलाकर वह कृत्रिम दूध उसे दे दिया॥ ६॥

पीत्वा च कृत्रिमं दुग्धं मात्रा दत्तं स बालकः।
नैतत्क्षीरमिति प्राह मातरं चारुदत्पुनः॥ ७

माताके द्वारा दिये गये कृत्रिम दूधको पीकर वह बालक 'यह दूध नहीं है', इस प्रकार मातासे बोला और पुनः रोने लगा॥ ७॥

श्रुत्वा सुतस्य रुदितं प्राह सा दुःखिता सुतम्।
सम्मार्ज्य नेत्रे पुत्रस्य कराभ्यां कमलाकृतिः॥ ८

पुत्रका रुदन सुनकर कमलाके समान कोमलांगी माताने हाथोंसे पुत्रके नेत्रोंको पोछकर दुखी होकर उससे कहा— ॥ ८॥

मातोवाच

क्षीरमत्र कुतोऽस्माकं वने निवसतां सदा।
प्रसादेन विना शम्भोः पयः प्राप्तिर्भवेन्न हि॥ ९

माता बोली—हे पुत्र! हम तो सदैव वनमें निवास करते हैं, अतः यहाँ दूधकी प्राप्ति कैसे सम्भव है? शिवजीको प्रसन्न किये बिना तुम्हें दूधकी प्राप्ति नहीं हो सकती॥ ९॥

पूर्वजन्मनि यत्कृत्यं शिवमुद्दिश्य हे सुत।
तदेव लभ्यते नूनं नात्र कार्या विचारणा॥ १०

हे पुत्र! पूर्वजन्ममें शिवजीको उद्देश्य करके जो कर्म किया जाता है, वह उसे अवश्य प्राप्त होता है, इसमें सन्देह नहीं करना चाहिये॥ १०॥

इति मातृवचः श्रुत्वा व्याघ्रपादिः स बालकः।
प्रत्युवाच विशोकात्मा मातरं मातृवत्सलः॥ ११

माताके इस प्रकारके वचनको सुनकर मातृवत्सल वह व्याघ्रपादपुत्र शोकरहित होकर अपनी मातासे बोला— ॥ ११॥

शोकेनालमिमं मातः शंभुर्यद्यस्ति शङ्करः।
त्यज शोकं महाभागे सर्वं भद्रं भविष्यति॥ १२

हे मातः! यदि शिवजी कल्याण करनेवाले हैं, तो शोक करना व्यर्थ है, हे महाभागे! शोकका त्याग करो, सब भला ही होगा॥ १२॥

शृणु मातर्वचो मेऽद्य महादेवोऽस्ति चेत्क्वचित्।
चिराद्वा ह्यचिराद्वापि क्षीरोदं साधयाम्यहम्॥ १३

हे मातः! अब मेरी बात सुनो, यदि कहीं भी वे महादेवजी होंगे, तो मैं थोड़े अथवा अधिक कालमें उनसे क्षीरका समुद्र प्राप्त कर लूँगा॥ १३॥

नन्दीश्वर उवाच

इत्युक्त्वा स शिशुः प्रीत्या शिवं मेऽस्त्वित्युदीर्य च।
विसृज्य तां सुप्रणम्य तपः कर्तुं प्रचक्रमे॥ १४

नन्दीश्वर बोले—इस प्रकार [अपना निश्चय] बताकर तथा 'मेरा कल्याण हो' ऐसा प्रेमपूर्वक कहकर वह बालक माताको भलीभाँति प्रणामकर उससे विदा ले तप करनेके लिये चल पड़ा॥ १४॥

हिमवत्पर्वतगतः वायुभक्षः समाहितः।
अष्टेष्टकाभिः प्रासादं कृत्वा लिङ्गं च मृन्मयम्॥ १५

तत्रावाह्य शिवं साम्बं भक्त्या पञ्चाक्षरेण ह।
पत्रपुष्पादिभिर्वन्यैः समानर्च शिशुः स वै॥ १६

वह बालक हिमालयपर्वतपर जाकर वायुका पान करते हुए सावधान मनसे आठ ईंटोंसे एक मन्दिर बनाकर उसमें मिट्टीका शिवलिंग स्थापित करके उस लिंगमें भक्तिपूर्वक पंचाक्षर मन्त्रके द्वारा पार्वतीसहित शिवका आवाहनकर वनमें उत्पन्न पत्र, पुष्प आदिसे उनका पूजन करने लगा॥ १५-१६॥

ध्यात्वा शिवं च तं साम्बं जपन्पञ्चाक्षरं मनुम्।
समभ्यर्च्य चिरं कालं चचार परमं तपः॥ १७

इस प्रकार पार्वतीसहित उन शिवजीका ध्यान करके पंचाक्षर मन्त्रका जप तथा उनकी अर्चना करते हुए उसने बहुत कालपर्यन्त घोर तप किया॥ १७॥

तपसा तस्य बालस्य ह्युपमन्योर्महात्मनः।
चराचरं च भुवनं प्रदीपितमभून्मुने॥ १८

हे मुने! उस महात्मा बालक उपमन्युकी तपस्यासे सारा चराचर लोक प्रज्वलित हो उठा॥ १८॥

एतस्मिन्नन्तरे शम्भुर्विष्ण्वाद्यैः प्रार्थितः प्रभुः।
परीक्षितुं च तद्भक्तिं शक्ररूपोऽभवत्तदा॥ १९

शिवा शचीस्वरूपाभूद्गणाः सर्वेऽभवन्सुराः।
ऐरावतगजो नन्दी सर्वमेव च तन्मयम्॥ २०

ततः साम्बः शिवः शक्रस्वरूपः सगणो द्रुतम्।
जगामानुग्रहं कर्तुमुपमन्योस्तदाश्रमम्॥ २१

इसी समय विष्णु आदि देवताओंके द्वारा प्रार्थित भगवान् शिवने उसकी भक्तिकी परीक्षा करनेके लिये इन्द्रका रूप धारण किया। पार्वती इन्द्राणीके रूपवाली हो गयीं, सभी गण देवता हो गये और नन्दीने ऐरावत गजका रूप धारण किया। इस प्रकार जब इन्द्ररूपकी सारी सामग्री उपस्थित हो गयी, तब गणों एवं पार्वतीसहित इन्द्ररूप शिवजी उपमन्युके ऊपर अनुग्रह करनेके लिये शीघ्र ही उसके आश्रमपर गये॥ १९—२१॥

परीक्षितुं च तद्भक्तिं शक्ररूपधरो हरः।
प्राह गंभीरया वाचा बालकं तं मुनीश्वर॥ २२

हे मुनीश्वर! इन्द्ररूपधारी शिवजीने उसकी भक्तिकी परीक्षा करनेके लिये गम्भीर वाणीमें उस बालकसे कहा—॥ २२॥

सुरेश्वर उवाच

तुष्टोऽस्मि ते वरं ब्रूहि तपसानेन सुव्रत।
ददामि चेच्छितान्कामान् सर्वान्नात्रास्ति संशयः॥ २३

सुरेश्वर बोले—हे सुव्रत! मैं तुम्हारी इस तपस्यासे अत्यन्त प्रसन्न हूँ, तुम वर माँगो। मैं तुम्हारा सारा अभीष्ट प्रदान करूँगा, इसमें संशय नहीं है॥ २३॥

एवमुक्तः स वै तेन शक्ररूपेण शम्भुना।
वरयामि शिवे भक्तिमित्युवाच कृताञ्जलिः॥ २४

इन्द्ररूपधारी उन शिवजीके इस प्रकार कहनेपर उसने हाथ जोड़कर कहा—मैं शिवमें भक्ति होनेका वरदान चाहता हूँ॥ २४॥

तन्निशम्य हरिः प्राह मां न जानासि लेखपम्।
त्रैलोक्याधिपतिं शक्रं सर्वदेवनमस्कृतम्॥ २५

यह सुनकर इन्द्र बोले—क्या तुम त्रिलोकीके स्वामी, देवगणोंके रक्षक और सभी देवगणोंसे नमस्कृत मुझ इन्द्रको नहीं पहचानते हो॥ २५॥

मद्भक्तो भव विप्रर्षे मामेवार्चय सर्वदा।
ददामि सर्वं भद्रं ते त्यज रुद्रं च निर्गुणम्॥ २६

हे ब्राह्मणश्रेष्ठ! तुम मेरे भक्त हो जाओ और निरन्तर मेरी ही पूजा करो, मैं तुम्हारा सब प्रकारका कल्याण करूँगा। तुम गुणरहित शिवको छोड़ो॥ २६॥

रुद्रेण निर्गुणेनालं किं ते कार्यं भविष्यति।
देवजातिबहिर्भूतो यः पिशाचत्वमागतः॥ २७

उन निर्गुण रुद्रसे तुम्हारा क्या कार्य हो सकता है, जो देवजातिसे बाहर होकर पिशाचत्वको प्राप्त हो गये हैं?॥ २७॥

नन्दीश्वर उवाच

तच्छ्रुत्वा स मुनेः पुत्रो जपन्पञ्चाक्षरं मनुम्।
मन्यमानो धर्मविघ्नं प्राह तं कर्तुमागतम्॥ २८

उपमन्युरुवाच

त्वयैवं कथितं सर्वं भवनिन्दारतेन वै।
प्रसङ्गाद्देवदेवस्य निर्गुणत्वं पिशाचता॥ २९
त्वं न जानासि वै रुद्रं सर्वदेवेश्वरेश्वरम्।
ब्रह्मविष्णुमहेशानां जनकं प्रकृतेः परम्॥ ३०

सदसद् व्यक्तमव्यक्तं यमाहुर्ब्रह्मवादिनः।
नित्यमेकमनेकं च वरं तस्माद् वृणोम्यहम्॥ ३१

हेतुवादविनिर्मुक्तं साङ्ख्ययोगार्थदं परम्।
यमुशन्ति हि तत्त्वज्ञा वरं तस्माद् वृणोम्यहम्॥ ३२

नास्ति शम्भोः परं तत्त्वं सर्वकारणकारणम्।
ब्रह्मविष्ण्वादिदेवानां श्रेष्ठो गुणपराद्विभोः॥ ३३

नाहं वृणे वरं त्वत्तो न विष्णोर्ब्रह्मणोऽपि वा।
नान्यस्मादमराद्वापि शङ्करो वरदोऽस्तु मे॥ ३४

बहुनात्र किमुक्तेन वच्मि तत्त्वं मतं स्वकम्।
न प्रार्थये पशुपतेरन्यं देवादिकं स्फुटम्॥ ३५

मद्भावं शृणु गोत्रारे मयाद्यानुमितं त्विदम्।
भवान्तरे कृतं पापं श्रुता निन्दा भवस्य चेत्॥ ३६

श्रुत्वा निन्दां भवस्याथ तत्क्षणादेव संत्यजेत्।
स्वदेहं तन्निहत्याशु शिवलोकं स गच्छति॥ ३७

आस्तां तावन्ममेच्छेयं क्षीरं प्रति सुराधम।
निहत्य त्वां शिवास्त्रेण त्यजाम्येतत्कलेवरम्॥ ३८

नन्दीश्वर उवाच

एवमुक्त्वोपमन्युस्तं मर्तुं व्यवसितः स्वयम्।
क्षीरे वाञ्छामपि त्यक्त्वा निहन्तुं शक्रमुद्यतः॥ ३९

नन्दीश्वर बोले—यह सुनकर पंचाक्षर मन्त्रका जप करता हुआ वह बालक अपने धर्ममें विघ्न उत्पन्न करनेके लिये उनको आया हुआ जानकर बोला—॥ २८॥

उपमन्यु बोले—शिवनिन्दामें रत तुमने इस प्रकार प्रसंगवश उन देवाधिदेवको निर्गुण एवं पिशाच कहा है। तुम अवश्य ही प्रकृतिसे परे, ब्रह्मा-विष्णु तथा महेश्वरको उत्पन्न करनेवाले और सभी देवेश्वरोंके भी ईश्वर उन रुद्रको नहीं जानते॥ २९-३०॥

ब्रह्मवादी लोग जिन्हें सत्, असत्, व्यक्त, अव्यक्त, नित्य, एक तथा अनेक बताते हैं, मैं उन्हींसे वर माँगूँगा॥ ३१॥

तत्त्वज्ञ लोग जिन्हें तर्कसे परे तथा सांख्ययोगके तात्पर्यार्थको देनेवाला मानते हैं, मैं उन्हींसे वर माँगूँगा॥ ३२॥

विभु शम्भुसे परे कोई तत्त्व नहीं है। वे सभी कारणोंके कारण और गुणोंसे सर्वथा परे हैं, अतः ब्रह्मा-विष्णु आदि देवोंसे श्रेष्ठ हैं॥ ३३॥

मैं न तो आपसे, न विष्णुजीसे, न ब्रह्माजीसे और न अन्य किसी देवतासे वर माँगता हूँ, शंकरजी ही मुझे वर प्रदान करेंगे॥ ३४॥

बहुत कहनेसे क्या लाभ? मैं अपना निश्चय बता रहा हूँ कि मैं पशुपति शिवजीको छोड़कर किसी अन्य देवतासे वरदान नहीं माँगूँगा॥ ३५॥

हे इन्द्र! आप मेरा अभिप्राय सुनें। मैंने आज यह अनुमान कर लिया है कि मैंने जन्मान्तरमें अवश्य कोई पाप किया है, जिससे मुझे शिवजीकी निन्दा सुननी पड़ी॥ ३६॥

शिवकी निन्दाका श्रवण करते ही जो शीघ्र उस निन्दा करनेवालेका प्रतिकारकर उसी समय अपना शरीर छोड़ देता है, वह शिवलोकको जाता है॥ ३७॥

हे सुराधम! अब दूधके विषयमें मेरी यह इच्छा नहीं रही, [अब तो मैं] शिवास्त्रसे तुम्हारा वधकर अपना यह शरीर त्याग दूँगा॥ ३८॥

नन्दीश्वर बोले—इस प्रकार कहकर उपमन्यु मरनेके लिये तैयार हो गये और दूधके प्रति भी इच्छाका त्यागकर इन्द्रको मारनेके लिये उद्यत हो गये॥ ३९॥

भस्मादाय तदाधारादघोरास्त्राभिमन्त्रितम्।
विसृज्य शक्रमुद्दिश्य ननाद स मुनिस्तदा॥ ४०

तब अग्निहोत्रसे भस्म लेकर उसे अघोरास्त्रसे अभिमन्त्रित करके इन्द्रके ऊपर उस भस्मको छोड़कर उन मुनिने घोर शब्द किया॥ ४०॥

स्मृत्वा स्वेष्टपदद्वन्द्वं स्वदेहं दग्धुमुद्यतः।
आग्नेयीं धारणां बिभ्रदुपमन्युरवस्थितः॥ ४१

उसके बाद अपने इष्टदेवके चरणयुगलका स्मरणकर अपने शरीरको जलानेहेतु अग्निकी धारणा करते हुए उपमन्यु स्थित हो गये॥ ४१॥

एवं व्यवसिते विप्रे भगवान् शक्ररूपवान्।
वारयामास सौम्येन धारणां तस्य योगिनः॥ ४२

ब्राह्मण उपमन्युके इतना कर लेनेपर शक्ररूपधारी शिवजीने सौम्य [तेज]-के द्वारा उस महायोगीकी आग्नेयी धारणाको रोक दिया॥ ४२॥

तद्विसृष्टमघोरास्त्रं नन्दीश्वरनियोगतः।
जगृहे मध्यतः क्षिप्तं नन्दी शङ्करवल्लभम्॥ ४३

उनके द्वारा फेंके गये उस शंकरप्रिय अघोरास्त्रको शिवजीके आदेशसे नन्दीने बीचमें ही पकड़ लिया॥ ४३॥

स्वरूपमेव भगवानास्थाय परमेश्वरः।
दर्शयामास विप्राय बालेन्दुकृतशेखरम्॥ ४४

तदनन्तर भगवान् परमेश्वरने उन ब्राह्मणके समक्ष मस्तकपर द्वितीयाका चन्द्र धारण किया हुआ अपना स्वरूप प्रकट किया॥ ४४॥

क्षीरार्णवसहस्त्रं च दध्यादेरर्णवं तथा।
भक्ष्यभोज्यार्णवं तस्मै दर्शयामास स प्रभुः॥ ४५

एवं स ददृशे शम्भुर्देव्या सार्धं वृषोपरि।
गणेश्वरैस्त्रिशूलाद्यैर्दिव्यास्त्रैरपि संवृतः॥ ४६

सर्वसमर्थ उन प्रभुने हजारों दूधके, हजारों दही आदिके तथा हजारों अन्य भक्ष्य-भोज्य पदार्थोंके समुद्र उन्हें दिखाये। इसी प्रकार उन शम्भुने देवी पार्वतीके साथ बैलपर सवार हो त्रिशूल आदि आयुधोंको हाथमें धारण किये हुए गणोंके सहित अपना रूप भी उनके समक्ष प्रकट किया॥ ४५-४६॥

दिवि दुन्दुभयो नेदुः पुष्पवृष्टिः पपात ह।
विष्णुब्रह्मेन्द्रप्रमुखैर्देवैश्छन्ना दिशो दश॥ ४७

अथोपमन्युरानन्दसमुद्रोर्मिभिरावृतः।
पपात दण्डवद्भूमौ भक्तिनम्रेण चेतसा॥ ४८

उस समय स्वर्गलोकमें दुन्दुभियाँ बजने लगीं, आकाशसे फूलोंकी वर्षा होने लगी तथा ब्रह्मा, विष्णु आदि देवगणों [की उपस्थिति]-से दसों दिशाएँ ढँक गयीं। इसके बाद उपमन्यु आनन्दसागरसे उठी हुई लहरोंसे मानो घिर-से गये और भक्तिसे विनम्रचित्त हो शिवजीको दण्डवत् प्रणाम करने लगे॥ ४७-४८॥

एतस्मिन्समये तत्र सस्मितो भगवान्भवः।
एह्येहीति समाहूय मूर्ध्न्याघ्राय ददौ वरान्॥ ४९

इसी समय भगवान् शिवजीने मुसकराकर उपमन्युको 'आओ आओ' इस प्रकार बुलाकर उनका मस्तक सूँघकर उन्हें वर प्रदान किये॥ ४९॥

शिव उवाच

वत्सोपमन्यो तुष्टोऽस्मि त्वदाचरणतो वरात्।
दृढभक्तोऽसि विप्रर्षे मया जिज्ञासितोऽधुना॥ ५०

शिवजी बोले—हे वत्स! हे उपमन्यो! मैं तुम्हारे इस श्रेष्ठ आचरणसे प्रसन्न हूँ। विप्रर्षे! अब मैंने परीक्षा कर ली कि तुम हमारे दृढ़ भक्त हो॥ ५०॥

भक्ष्यभोगान्यथाकामं बान्धवैर्भुङ्क्ष्व सर्वदा।
सुखी भव सदा दुःखनिर्मुक्तो भक्तिमान्मम॥ ५१

तुम्हारी मुझमें इसी प्रकारकी भक्ति बनी रहेगी। तुम्हारे सभी दुःख दूर हो जायँगे और तुम सदा सुखी रहोगे। अब तुम सर्वदा अपने भाई-बन्धुओंसहित स्वेच्छापूर्वक भक्ष्यादि भोगोंका भोग करो॥ ५१॥

उपमन्यो महाभाग तवाम्बैषा हि पार्वती।
मया पुत्रीकृतो ह्यद्य कुमारत्वं सनातनम्॥ ५२

हे महाभाग्यवान् उपमन्यो! ये पार्वती तुम्हारी माता हैं, मैंने आजसे तुम्हें अपना पुत्र मान लिया। तुम सर्वदा कुमार बने रहोगे॥ ५२॥

दुग्धदध्याज्यमधुनामर्णवाश्च सहस्रशः।
भक्ष्यभोज्यादिवस्तूनामर्णवाश्चाखिलास्तथा॥ ५३

तुभ्यं दत्ता मया प्रीत्या त्वं गृह्णीष्व महामुने।
अमरत्वं तथा दत्तं गाणपत्यं च शाश्वतम्॥ ५४

हे महामुने! मैंने प्रसन्न होकर दूध, दही, घी एवं मधुके हजारों समुद्र तथा भोज्य-भक्ष्यादि पदार्थोंसे पूर्ण हजारों समुद्र तुमको प्रदान किये, तुम उन्हें प्रेमपूर्वक ग्रहण करो। मैं तुम्हें अमरत्व तथा शाश्वत गाणपत्य भी प्रदान करता हूँ॥ ५३-५४॥

पिताहं ते महादेवो माता ते जगदम्बिका।
वरान्वरय सुप्रीत्या मनोऽभिलषितान्परान्॥ ५५

मैं महादेव तुम्हारा पिता हूँ तथा ये जगदम्बा तुम्हारी माता हैं। अब तुम अन्य मनोवांछित वरोंको भी प्रेमपूर्वक माँगो॥ ५५॥

अजरश्चामरश्चैव भव त्वं दुःखवर्जितः।
यशस्वी वरतेजस्वी दिव्यज्ञानी महाप्रभुः॥ ५६

तुम अजर, अमर, दुःखसे रहित, यशस्वी, परम तेजस्वी, दिव्यज्ञानी तथा महाप्रभु हो जाओ॥ ५६॥

अथ शम्भुः प्रसन्नात्मा स्मृत्वा तस्य तपो महत्।
पुनर्ददौ वरान्दिव्यान्मुनये ह्युपमन्यवे॥ ५७
व्रतं पाशुपतं ज्ञानं व्रतयोगं च तत्त्वतः।
ददौ तस्मै प्रवक्तृत्वं पाटवं च निजं पदम्॥ ५८

इसके बाद प्रसन्नचित्त शिवजीने उनके घोर तपका स्मरणकर पुनः मुनि उपमन्युको दस दिव्य वरदान, पाशुपतव्रत, पाशुपत ज्ञान, व्रतयोग, भाषण-अभिक्षमता, दक्षता तथा अपना पद भी प्रदान किया॥ ५७-५८॥

एवं दत्त्वा महादेवः कराभ्यामुपगृह्य तम्।
मूर्ध्न्याघ्राय सुतस्तेऽयमिति देव्यै न्यवेदयत्॥ ५९

देवी च शृण्वती प्रीत्या मूर्ध्नि देशे कराम्बुजम्।
विन्यस्य प्रददौ तस्मै कुमारपदमक्षयम्॥ ६०

इस प्रकार वरदान देकर उन्हें अपने दोनों हाथोंसे पकड़कर उनका मस्तक सूँघकर 'यह तुम्हारा पुत्र है'—ऐसा कहकर महादेवजीने उन्हें पार्वतीको समर्पित कर दिया। देवीने यह सुनकर उनके सिरपर प्रेमपूर्वक अपना करकमल रखकर उन्हें अक्षय कुमारपद प्रदान किया॥ ५९-६०॥

क्षीराब्धिमपि साकारं क्षीरस्वादुकरोदधिः।
उपास्थाय ददौ तस्मै पिण्डीभूतमनश्वरम्॥ ६१

दूधका स्वाद उत्पन्न करनेवाले समुद्रने स्वयं उठकर एकत्र पिण्डीभूत और अनश्वर क्षीरसमुद्र उसे प्रदान किया॥ ६१॥

योगैश्वर्यं सदा तुष्टं ब्रह्मविद्यामनश्वराम्।
समृद्धिं परमां तस्मै ददौ सन्तुष्टमानसः॥ ६२

सन्तुष्टचित्त महेश्वरने योगैश्वर्य, सदा सन्तुष्टता, अनश्वर ब्रह्मविद्या तथा परम समृद्धि उन्हें प्रदान की॥ ६२॥

सोऽपि लब्ध्वा वरान्दिव्यान्कुमारत्वं च सर्वदा।
तस्माच्छिवाच्च तस्याश्च शिवाया मुदितोऽभवत्॥ ६३

ततः प्रसन्नचेतस्कः सुप्रणम्य कृताञ्जलिः।
ययाचे स वरं प्रीत्या देवदेवान्महेश्वरात्॥ ६४

इस प्रकार वे उपमन्यु शिव और पार्वतीसे दिव्य वर और नित्यकुमारत्व प्राप्तकर परम प्रसन्न हुए। तदनन्तर प्रसन्नचित्त होकर हाथ जोड़कर प्रणाम करके उन्होंने देवाधिदेव महेश्वरसे प्रीतिपूर्वक वर माँगा॥ ६३-६४॥

उपमन्युरुवाच

प्रसीद देवदेवेश प्रसीद परमेश्वर।
स्वभक्तिं देहि परमां दिव्यामव्यभिचारिणीम्॥ ६५

उपमन्यु बोले—हे देवदेवेश! प्रसन्न हों, हे परमेश्वर! प्रसन्न हों और अपनी दिव्य परम तथा चिरस्थायिनी भक्ति प्रदान कीजिये।

श्रद्धां देहि महादेव स्वसम्बन्धिषु मे सदा।
स्वदास्यं परमं स्नेहं स्वसान्निध्यं च सर्वदा॥ ६६

हे महादेव! अपने सम्बन्धियोंके प्रति श्रद्धाभाव अपना दास्य, परम स्नेह तथा अपना नित्य सान्निध्य मुझे प्रदान कीजिये॥ ६५-६६॥

नन्दीश्वर उवाच

एवमुक्त्वा प्रसन्नात्मा हर्षगद्गदया गिरा।
तुष्टाव स महादेवमुपमन्युर्द्विजोत्तमः॥ ६७

नन्दीश्वर बोले—ऐसा कहकर उन द्विजोत्तम उपमन्युने प्रसन्नचित्त होकर हर्षसे गद्गद वाणीसे महादेवकी स्तुति की॥ ६७॥

एवमुक्तः शिवस्तेन सर्वेषां शृण्वतां प्रभुः।
प्रत्युवाच प्रसन्नात्मोपमन्युं सकलेश्वरः॥ ६८

इस प्रकार उनके द्वारा स्तुति किये जानेपर सकलेश्वर प्रभु शिवने प्रसन्नचित्त होकर सबके सुनते-सुनते ही उपमन्युसे कहा—॥ ६८॥

शिव उवाच

वत्सोपमन्यो धन्यस्त्वं मम भक्तो विशेषतः।
सर्वं दत्तं मया ते हि यद् वृतं भवतानघ॥ ६९

शिवजी बोले—हे वत्स! हे उपमन्यो! तुम धन्य हो और विशेषरूपसे मेरे भक्त हो। हे अनघ! तुमने मुझसे जो कुछ माँगा, वह सब मैंने तुम्हें प्रदान किया॥ ६९॥

अजरश्चामरश्च त्वं सर्वदा दुःखवर्जितः।
सर्वपूज्यो निर्विकारी भक्तानां प्रवरो भव॥ ७०

अक्षया बान्धवाश्चैव कुलं गोत्रं च ते सदा।
भविष्यति द्विजश्रेष्ठ मयि भक्तिश्च शाश्वती॥ ७१

सान्निध्यं चाश्रमे नित्यं करिष्यामि मुने तव।
तिष्ठ वत्स यथाकामं नोत्कण्ठां च करिष्यसि॥ ७२

तुम सर्वदा अजर, अमर, दुःखरहित, सर्वपूज्य, निर्विकार एवं भक्तोंमें श्रेष्ठ हो जाओ। हे द्विजोत्तम! तुम्हारे बान्धव, तुम्हारा गोत्र एवं कुल अक्षय बना रहेगा और मुझमें तुम्हारी शाश्वत भक्ति बनी रहेगी। हे मुने! मैं तुम्हारे आश्रममें नित्य निवास करूँगा। हे वत्स! तुम इच्छानुसार जबतक चाहो, तबतक इस लोकमें निवास करो, [किसी भी वस्तुके लिये] तुम्हें उत्कण्ठा नहीं रहेगी, अर्थात् तुम सर्वदा पूर्णकाम रहोगे॥ ७०—७२॥

नन्दीश्वर उवाच

एवमुक्त्वा स भगवांस्तस्मै दत्त्वा वरान्वरान्।
साम्बश्च सगणः सद्यस्तत्रैवान्तर्दधे प्रभुः॥ ७३

नन्दीश्वर बोले—ऐसा कहकर उन्हें श्रेष्ठ वरदान देकर पार्वती एवं गणोंके सहित वे भगवान् शिव वहींपर अन्तर्हित हो गये॥ ७३॥

उपमन्युः प्रसन्नात्मा प्राप्य शम्भोर्वरान्वरान्।
जगाम जननीस्थानं मात्रे सर्वमवर्णयत्॥ ७४

इसके बाद प्रसन्नचित्त उपमन्यु शिवजीसे श्रेष्ठ वर प्राप्तकर अपनी माताके समीप गये और उन्होंने मातासे सारा वृत्तान्त निवेदन किया॥ ७४॥

तच्छ्रुत्वा तस्य जननी महाहर्षमवाप सा।
सर्वपूज्योऽभवत्सोऽपि सुखं प्रापाधिकं सदा॥ ७५

उसे सुनकर उनकी माता परम हर्षित हुईं। वे उपमन्यु भी सभीके पूज्य हुए और सदा अधिकाधिक सुख प्राप्त करने लगे॥ ७५॥

इत्थं ते वर्णितस्तात शिवस्य परमात्मनः।
सुरेश्वरावतारो हि सर्वदा सुखदः सताम्॥ ७६

हे तात! इस प्रकार मैंने परमात्मा शिवके सुरेश्वरावतारका वर्णन कर दिया, जो सज्जनोंको सदा सुख प्रदान करनेवाला है॥ ७६॥

इदमाख्यानमनघं सर्वकामफलप्रदम्।
स्वर्ग्यं यशस्यमायुष्यं भुक्तिमुक्तिप्रदं सताम्॥ ७७

यह आख्यान [सर्वथा] निष्पाप, सभी मनोरथोंको पूर्ण करनेवाला, स्वर्ग देनेवाला, यश बढ़ानेवाला, आयुकी वृद्धि करनेवाला तथा सज्जनोंको भोग तथा मोक्ष प्रदान करनेवाला है॥ ७७॥

य एतच्छृणुयाद्भक्त्या श्रावयेद्वा समाहितः।
इह सर्वसुखं भुक्त्वा सोऽन्ते शिवगतिं लभेत्॥ ७८

जो इसे भक्तिपूर्वक सुनता अथवा सुनाता है, वह इस लोकमें सब प्रकारका सुख भोगकर अन्तमें शिवसायुज्य प्राप्त कर लेता है॥ ७८॥

इति श्रीशिवमहापुराणे तृतीयायां शतरुद्रसंहितायां सुरेश्वराख्यशिवावतारचरितवर्णनं नाम द्वात्रिंशोऽध्यायः॥ ३२॥

॥ इस प्रकार श्रीशिवमहापुराणके अन्तर्गत तृतीय शतरुद्रसंहितामें सुरेश्वराख्य शिवावतारचरितवर्णन नामक बत्तीसवाँ अध्याय पूरा हुआ॥ ३२॥

अथ त्रयस्त्रिंशोऽध्यायः

पार्वतीके मनोभावकी परीक्षा लेनेवाले ब्रह्मचारीस्वरूप शिवावतारका वर्णन

नन्दीश्वर उवाच

सनत्कुमार सुप्रीत्या शिवस्य परमात्मनः।
अवतारं शृणु विभोर्जटिलाह्वं सुपावनम्॥ १

नन्दीश्वर बोले—हे सनत्कुमार! अब विभु परमात्मा शिवजीके परमपवित्र जटिल नामक अवतारको अत्यन्त प्रेमपूर्वक सुनिये॥ १॥

पुरा सती दक्षकन्या त्यक्त्वा देहं पितुर्मखे।
स्वपित्रानादृता जज्ञे मेनायां हिमभूधरात्॥ २

पूर्व समयमें दक्षकी कन्या सती अपने पितासे अनादर प्राप्तकर उनके यज्ञमें अपना शरीर त्यागकर हिमालयद्वारा मेनाके गर्भसे पार्वती नामसे उत्पन्न हुईं॥ २॥

सा गत्वा गहनेऽरण्ये तेपे सुविमलं तपः।
शङ्करं पतिमिच्छन्ती सखीभ्यां संयुता शिवा॥ ३

वे पार्वती अपनी सखियोंसमेत घोर वनमें जाकर शिवको अपना पति बनानेकी इच्छा करती हुई अत्यन्त निर्दोष तप करने लगीं॥ ३॥

तत्तपः सुपरीक्षार्थं सप्तर्षीन्प्रैषयच्छिवः।
तपःस्थानं तु पार्वत्या नानालीलाविशारदः॥ ४

तब नाना प्रकारकी लीलामें प्रवीण शिवजीने उनके तपकी भलीभाँति परीक्षाके लिये पार्वतीके तपःस्थानपर सप्तर्षियोंको भेजा॥ ४॥

ते गत्वा तत्र मुनयः परीक्षां चक्रुरादरात्।
तस्याः सुयत्नतो नैव समर्था ह्यभवंश्च ते॥ ५

उन मुनियोंने वहाँ जाकर यत्नपूर्वक आदरके साथ उनके तपकी परीक्षा की, किंतु वे सफल नहीं हुए॥ ५॥

तत्रागत्य शिवं नत्वा वृत्तान्तं च निवेद्य तत्।
तदाज्ञां समनुप्राप्य स्वर्लोकं जग्मुरादरात्॥ ६

तब वे पुनः लौटकर शिवजीके पास आये और उनको प्रणामकर आदरपूर्वक सारा वृत्तान्त निवेदन किया तथा उनकी आज्ञा लेकर स्वर्गलोक चले गये॥ ६॥

गतेषु तेषु मुनिषु स्वस्थानं शङ्करः स्वयम्।
परीक्षितुं शिवावृत्तमैच्छत्सूतिकरः प्रभुः॥ ७

उन मुनियोंके अपने-अपने स्थानको चले जानेपर सुन्दर लीला करनेवाले भगवान् शंकरने पार्वतीके भावकी परीक्षा करनेका विचार किया॥ ७॥

सुप्रसन्नस्तपस्वीच्छाशमनादयमीश्वरः।
ब्रह्मचर्यस्वरूपोऽभूत्तदाद्भुततरः प्रभुः॥ ८

उस समय शिवजीने अपनी इच्छाओंका दमन करनेके कारण साक्षात् ईश्वर ही प्रतीत होनेवाले, तपोनिष्ठ तथा आश्चर्यसम्पन्न, प्रसन्नतासे परिपूर्ण ब्रह्मचारीका स्वरूप धारण किया॥ ८॥

अतीव स्थविरो विप्रदेहधारी स्वतेजसा।
प्रज्वलन्मनसा हृष्टो दण्डी छत्री महोज्ज्वलः॥ ९
धृत्वैवं जाटिलं रूपं जगाम गिरिजावनम्।
अतिप्रीतियुतः शम्भुः शङ्करो भक्तवत्सलः॥ १०

वे भक्तवत्सल सदाशिव शम्भु छत्र-दण्डसे युक्त तथा जटाधारी, वृद्ध ब्राह्मणके जैसा उज्ज्वल वेष धारण किये हुए, मनसे हृष्ट तथा अपने तेजसे दीप्त होते हुए अत्यन्त प्रीतियुक्त होकर गिरिजाके वनमें गये॥ ९-१०॥

तत्रापश्यत् स्थितां देवीं सखीभिः परिवारिताम्।
वेदिकोपरि शुद्धान्तां शिवामिव विधोः कलाम्॥ ११

वहाँ उन्होंने सखियोंसे घिरी हुई तथा वेदीके ऊपर विराजमान, चन्द्रकलाके समान शोभित होती हुई और विशुद्ध स्वरूपवाली उन पार्वतीको देखा॥ ११॥

शंभुर्निरीक्ष्य तां देवीं ब्रह्मचारिस्वरूपवान्।
उपकण्ठं ययौ प्रीत्या चोत्सुकी भक्तवत्सलः॥ १२

तब ब्रह्मचारीवेषधारी भक्तवत्सल शिवजी उन देवीको देखकर प्रीतिपूर्वक बड़ी उत्सुकतासे उनके समीप पहुँचे॥ १२॥

आगतं सा तदा दृष्ट्वा ब्राह्मणं तेजसाद्भुतम्।
अंगेषु लोमशं शान्तं दण्डचर्मसमन्वितम्॥ १३

ब्रह्मचर्यधरं वृद्धं जटिलं सकमण्डलुम्।
अपूजयत्परप्रीत्या सर्वपूजोपहारकैः॥ १४

ततः सा पार्वती देवी पूजितं परया मुदा।
कुशलं पर्यपृच्छत्तं ब्रह्मचारिणमादरात्॥ १५

ब्रह्मचारिस्वरूपेण कस्त्वं हि कुत आगतः।
इदं वनं भासयसि वद वेदविदां वर॥ १६

तब पार्वतीने भी अद्भुत तेजस्वी, रोमबहुल अंगोंवाले, शान्ति प्रकट करते हुए, दण्ड तथा [मृग]-चर्मसे युक्त, कमण्डलु धारण किये हुए उन जटाधारी बूढ़े ब्राह्मणको आया देखकर पूजोपचार सामग्रीसे परम प्रेमपूर्वक उनका पूजन किया और पूजन करनेके पश्चात् आनन्दपूर्वक सादर उन ब्रह्मचारीसे कुशलक्षेम पूछा कि आप ब्रह्मचारीका रूप धारण किये हुए कौन हैं, कहाँसे आये हैं, जो अपने तेजसे इस वनप्रदेशको प्रकाशित कर रहे हैं, हे वेदविदोंमें श्रेष्ठ! बताइये?॥ १३—१६॥

नन्दीश्वर उवाच

इति पृष्टस्तु पार्वत्या ब्रह्मचारी स वै द्विजः।
प्रत्युवाच द्रुतं प्रीत्या शिवाभावपरीक्षया॥ १७

नन्दीश्वर बोले—पार्वतीके इस प्रकार पूछनेपर उन ब्रह्मचारी द्विजने पार्वतीके भावकी परीक्षा करनेकी दृष्टिसे प्रसन्न हो शीघ्रतासे कहा—॥ १७॥

ब्रह्मचार्युवाच

अहमिच्छाभिगामी च ब्रह्मचारी द्विजोऽस्मि वै।
तपस्वी सुखदोऽन्येषामुपकारी न संशयः॥ १८

ब्रह्मचारी बोले—मैं अपने इच्छानुसार इधर-उधर भ्रमण करनेवाला ब्रह्मचारी, द्विज तपस्वी तथा सबको सुख पहुँचानेवाला और दूसरोंका उपकार करनेवाला हूँ, इसमें संशय नहीं॥ १८॥

नन्दीश्वर उवाच

इत्युक्त्वा ब्रह्मचारी स शंकरो भक्तवत्सलः।
तस्थिवानुपकण्ठं स गोपायन् रूपमात्मनः॥ १९

नन्दीश्वर बोले—ऐसा कहकर वे भक्तवत्सल ब्रह्मचारीरूप शंकर अपना स्वरूप छिपाते हुए पार्वतीके सन्निकट स्थित हो गये॥ १९॥

ब्रह्मचार्युवाच

किं ब्रवीमि महादेवि कथनीयं न विद्यते।
महानर्थकरं वृत्तं दृश्यते विकृतं महत्॥ २०

ब्रह्मचारी बोले—हे महादेवि! मैं तुमसे क्या बताऊँ, कुछ कहनेयोग्य नहीं है, मुझे जो कि अनर्थकारी और अत्यन्त अशोभनीय कार्य दिखायी पड़ रहा है॥ २०॥

नवे वयसि सद्भोगसाधने सुखकारणे।
महोपचारसद्भोगैर्वृथैव त्वं तपस्यसि॥ २१

तुम्हें समस्त सुखोंकी साधनभूत भोगसामग्री प्राप्त है, किंतु इन सभी प्रकारके भोगोंके रहते हुए भी तुम इस नवीन युवावस्थामें व्यर्थ कष्ट सहती हुई तप कर रही हो॥ २१॥

का त्वं कस्यासि तनया किमर्थं विजने वने।
तपश्चरसि दुर्धर्षे मुनिभिः प्रयतात्मभिः॥ २२

तुम कौन हो, किसकी कन्या हो और इस निर्जन वनमें प्रयतात्मा मुनियोंके लिये भी कठिन यह तप क्यों कर रही हो?॥ २२॥

नन्दीश्वर उवाच

इति तद्वचनं श्रुत्वा प्रहस्य परमेश्वरी।
उवाच वचनं प्रीत्या ब्रह्मचारिणमुत्तमम्॥ २३

नन्दीश्वर बोले—इस प्रकारकी उनकी बात सुनकर परमेश्वरी पार्वती हँसकर प्रेमपूर्वक उन श्रेष्ठ ब्रह्मचारीसे कहने लगीं— ॥ २३ ॥

पार्वत्युवाच

शृणु विप्र ब्रह्मचारिन् मद्वृत्तमखिलं मुने।
जन्म मे भारते वर्षे साम्प्रतं हिमवद्गृहे॥ २४

पार्वतीजी बोलीं—हे ब्रह्मचारिन्! हे विप्र! हे मुने! आप मेरा सारा वृत्तान्त सुनिये। इस समय मेरा जन्म भारतवर्षमें हिमालयके घरमें हुआ है ॥ २४ ॥

पूर्वं दक्षगृहे जन्म सती शङ्करकामिनी।
योगेन त्यक्तदेहाहं तातेन पतिनिन्दिना॥ २५

मैं इसके पूर्व प्रजापति दक्षके घरमें जन्म लेकर सती नामसे शंकरजीकी पत्नी थी। पतिकी निन्दा करनेवाले पिता दक्षके द्वारा किये गये अपमानके कारण मैंने योगके द्वारा अपना शरीर त्याग दिया था ॥ २५ ॥

अत्र जन्मनि संप्राप्तः सुपुण्येन शिवो द्विज।
मां त्यक्त्वा भस्मसात्कृत्वा मन्मथं स जगाम ह॥ २६

हे द्विज! इस जन्ममें मैंने अपने पुण्यसे शिवजीको प्राप्त किया था, किंतु वे कामदेवको भस्मकर मुझे त्याग करके चले गये हैं ॥ २६ ॥

प्रयाते शङ्करे तापाद् व्रीडिताहं पितुर्गृहात्।
आगच्छमत्र तपसे गुरुवाक्येन संयता॥ २७

शिवजीके चले जानेपर दुःखान्वित तथा लज्जित होकर मैं पिताके घरसे निकलकर गुरुके वचनानुसार संयत होकर तप करनेके लिये यहाँ आयी हूँ ॥ २७ ॥

मनसा वचसा साक्षात्कर्मणा पतिभावतः।
सत्यं ब्रवीमि नोऽसत्यं संवृतः शङ्करो मया॥ २८

हे ब्रह्मचारिन्! मैंने मन-वाणी तथा कर्मसे साक्षात् शिवको पतिरूपमें भलीभाँति वरण किया है। मैं सत्य कहती हूँ, इसमें किंचिन्मात्र भी असत्य नहीं है ॥ २८ ॥

जानामि दुर्लभं वस्तु कथं प्राप्यं मया भवेत्।
तथापि मनसौत्सुक्यात्तप्यते मे तपोऽधुना॥ २९

मैं जानती हूँ कि यह मेरे लिये दुर्लभ है और दुर्लभ वस्तुकी प्राप्ति किस प्रकार होगी? फिर भी मैं अपने मनकी उत्सुकतासे इस समय तपमें प्रवृत्त हूँ ॥ २९ ॥

हित्वेन्द्रप्रमुखान्देवान्विष्णुं ब्रह्माणमप्यहम् ।
पतिं पिनाकपाणिं वै प्राप्तुमिच्छामि सत्यतः ॥ ३०

मैं इन्द्रादि प्रमुख देवताओं, विष्णु तथा ब्रह्माको भी छोड़कर केवल पिनाकपाणि भगवान् शिवको वस्तुतः पतिरूपमें प्राप्त करना चाहती हूँ ॥ ३० ॥

नन्दीश्वर उवाच

इत्येवं वचनं श्रुत्वा पार्वत्या हि सुनिश्चितम्।
मुने स जटिलो रुद्रो विहसन्वाक्यमब्रवीत्॥ ३१

नन्दीश्वर बोले—हे मुने! पार्वतीके इस निश्चय-युक्त वचनको सुनकर उन जटाधारी रुद्रने हँसते हुए यह वचन कहा— ॥ ३१ ॥

जटिल उवाच

हिमाचलसुते देवि का बुद्धिः स्वीकृता त्वया।
रुद्रार्थं विबुधान्हित्वा करोषि विपुलं तपः ॥ ३२

जटिल बोले—हे हिमाचलपुत्रि! हे देवि! तुमने इस प्रकारका विचार क्यों किया है, जो कि अन्य देवोंको छोड़कर शिवके निमित्त अत्यधिक कठोर तप कर रही हो? ॥ ३२ ॥

जानाम्यहं च तं रुद्रं शृणु त्वं प्रवदामि ते।
वृषध्वजः स रुद्रो हि विकृतात्मा जटाधरः ॥ ३३

एकाकी च सदा नित्यं विरागी च विशेषतः।
तस्मात्त्वं तेन रुद्रेण मनो योक्तुं न चार्हसि॥ ३४

मैं उन रुद्रको जानता हूँ, सुनो, मैं तुमको बता रहा हूँ। वे रुद्र बैलपर सवारी करनेवाले, विकृत मनवाले तथा जटाजूट धारण करनेवाले, सदा अकेले रहनेवाले और विशेषरूपसे विरागी हैं, इसलिये उन रुद्रमें मन लगाना तुम्हारे लिये उचित नहीं है ॥ ३३-३४ ॥

सर्वं विरुद्धं रूपादि तव देवि हरस्य च।
मह्यं न रोचते ह्येतद्यदीच्छसि तथा कुरु॥ ३५

हे देवि! तुम्हारा और शिवका रूप आदि परस्पर एक-दूसरेके विरुद्ध है, मुझे तो यह अच्छा नहीं लग रहा है, अब तुम्हारी जैसी इच्छा हो, वैसा करो॥ ३५॥

नन्दीश्वर उवाच

इत्युक्त्वा च पुना रुद्रो ब्रह्मचारिस्वरूपवान्।
निनिन्द बहुधात्मानं तदग्रे तां परीक्षितुम्॥ ३६

नन्दीश्वर बोले—ऐसा कहकर ब्रह्मचारी-स्वरूपधारी शिवने उनकी परीक्षा करनेके लिये उनके आगे पुनः अनेक प्रकारसे अपनी निन्दा की॥ ३६॥

तच्छ्रुत्वा पार्वती देवी विप्रवाक्यं दुरासदम्।
प्रत्युवाच महाक्रुद्धा शिवनिन्दापरं च तम्॥ ३७

एतावद्धि मया ज्ञातं कश्चिद् धन्यो भविष्यति।
परन्तु सकलं ज्ञातमवध्यो दृश्यतेऽधुना॥ ३८

विप्रके उस असह्य वचनको सुनकर देवी पार्वतीको बड़ा क्रोध उत्पन्न हो गया और उन्होंने शिवनिन्दापरायण ब्रह्मचारीसे कहा—अभीतक तो मैंने यही समझा था कि आप कोई महात्मा होंगे, किंतु मैंने इस समय आपको जान लिया, फिर भी अवध्य होनेके कारण आपका वध नहीं कर रही हूँ॥ ३७-३८॥

ब्रह्मचारिस्वरूपेण कश्चित्त्वं धूर्त आगतः।
शिवनिन्दा कृता मूढ त्वया मन्युरभून्मम॥ ३९

हे मूढ़! तुम ब्रह्मचारीके स्वरूपमें आये हुए कोई धूर्त हो, तुमने शिवकी निन्दा की है, उससे मुझे महान् क्रोध उत्पन्न हुआ है॥ ३९॥

शिवं त्वं च न जानासि शिवात्त्वं हि बहिर्मुखः।
त्वत्पूजा च कृता यन्मे तस्मात्तापयुताभवम्॥ ४०

तुम शिवसे बहिर्मुख हो, इसलिये शिवको नहीं जानते। मैंने तुम्हारी जो पूजा की, उसके कारण मुझे परिताप हो रहा है॥ ४०॥

शिवनिन्दां करोतीह तत्त्वमज्ञाय यः पुमान्।
आजन्मसञ्चितं पुण्यं तस्य भस्मीभवत्युत॥ ४१

शिवविद्वेषिणं स्पृष्ट्वा प्रायश्चित्तं समाचरेत्॥ ४२

जो मनुष्य तत्त्वको बिना जाने ही शिवकी निन्दा करता है, उसका जन्मभरका संचित पुण्य नष्ट हो जाता है। शिवद्रोहीका स्पर्शकर मनुष्यको प्रायश्चित्त करना चाहिये॥ ४१-४२॥

रे रे दुष्ट त्वया प्रोक्तमहं जानामि शङ्करम्।
निश्चयेन न विज्ञातः शिव एव परः प्रभुः॥ ४३

यथा तथा भवेद्रुद्रो मायया बहुरूपवान्।
ममाभीष्टप्रदोऽत्यन्तं निर्विकारः सतां प्रियः॥ ४४

रे दुष्ट! तुमने कहा कि मैं शंकरको जानता हूँ, किंतु निश्चितरूपसे तुम शिवको नहीं जानते। वास्तवमें वे परमात्मा हैं। रुद्र जैसे-तैसे सब कुछ हो सकते हैं; क्योंकि वे मायासे बहुत रूप धारण करनेमें समर्थ हैं। सज्जनोंके प्रिय वे सर्वथा निर्विकार होनेपर भी मेरे मनोरथको पूर्ण करेंगे॥ ४३-४४॥

नन्दीश्वर उवाच

इत्युक्त्वा तं शिवा देवी शिवतत्त्वं जगाद सा।
यत्र ब्रह्मतया रुद्रः कथ्यते निर्गुणोऽव्ययः॥ ४५

नन्दीश्वर बोले—ऐसा कहकर उन देवी पार्वतीने उन ब्रह्मचारीसे [उस] शिवतत्त्वका वर्णन किया, जिसमें शिव ब्रह्मके रूपमें निर्गुण एवं अव्यय कहे जाते हैं॥ ४५॥

तदाकर्ण्य वचो देव्या ब्रह्मचारी स वै द्विजः।
पुनर्वचनमादातुं यावदेव प्रचक्रमे॥ ४६

प्रोवाच गिरिजा तावत्स्वसखीं विजयां द्रुतम्।
शिवासक्तमनोवृत्तिः शिवनिन्दापराङ्मुखी॥ ४७

देवीके वचनको सुनकर वे ब्राह्मण ब्रह्मचारी ज्यों ही पुनः कुछ कहनेको उद्यत हुए, उसी समय शिवमें संसक्त चित्तवाली तथा शिवनिन्दासे विमुख पार्वतीने अपनी सखी विजयासे शीघ्रतासे कहा—॥ ४६-४७॥

गिरिजोवाच

वारणीयः प्रयत्नेन सख्ययं हि द्विजाधमः।
पुनर्वक्तुमनाश्चायं शिवनिन्दां करिष्यति॥ ४८

न केवलं भवेत्पापं निन्दाकर्तुः शिवस्य हि।
यो वै शृणोति तन्निन्दां पापभाक्स भवेदिह॥ ४९

शिवनिन्दाकरो वध्यः सर्वथा शिवकिंकरैः।
ब्राह्मणश्चेत्स वै त्याज्यो गन्तव्यं तत्स्थलाद् द्रुतम्॥ ५०

अयं दुष्टः पुनर्निन्दां करिष्यति शिवस्य हि।
ब्राह्मणत्वादवध्यश्च त्याज्योऽदृश्यश्च सर्वथा॥ ५१

स्थलमेतद् द्रुतं हित्वा यास्यामोऽन्यत्र मा चिरम्।
यथा संभाषणं न स्यादनेनाविदुषा पुनः॥ ५२

गिरिजा बोलीं—हे सखि! बोलनेकी इच्छावाला यह नीच ब्राह्मण अभी भी पुनः शिवकी निन्दा करेगा, अतः प्रयत्नपूर्वक इसे रोको, क्योंकि केवल शिवजीकी निन्दा करनेवालेको ही पाप नहीं लगता, वरन् जो उस निन्दाको सुनता है, इस संसारमें वह भी पापका भागी होता है॥ ४८-४९॥

शिवभक्तोंको चाहिये कि शिवनिन्दकका सर्वथा प्रतिकार कर दे, किंतु यदि वह ब्राह्मण हो तो उसे त्याग देना चाहिये और उस स्थानसे शीघ्र चले जाना चाहिये॥ ५०॥

निश्चय ही यह दुष्ट पुनः शिवकी निन्दा करेगा, किंतु ब्राह्मण होनेके कारण यह अवध्य है, अतः इसे छोड़ देना चाहिये और फिर इसे कभी नहीं देखना चाहिये। अब देर मत करो, शीघ्रतासे इस स्थानको त्यागकर हम अन्यत्र चलेंगे, जिससे इस मूर्ख ब्राह्मणके साथ पुनः सम्भाषण न हो सके॥ ५१-५२॥

नन्दीश्वर उवाच

इत्युक्त्वा चोमया यावत्पदमुत्क्षिप्यते मुने।
असौ तावच्छिवः साक्षादाललम्बे पटं स्वयम्॥ ५३

कृत्वा स्वरूपं दिव्यं च शिवाध्यानं यथा तथा।
दर्शयित्वा शिवायै तामुवाचावाङ्मुखीं शिवः॥ ५४

नन्दीश्वर बोले—हे मुने! इस प्रकार कहकर ज्यों ही पार्वतीने जानेहेतु पैर उठाया, त्यों ही साक्षात् शिवजीने स्वयं उनका वस्त्र पकड़ लिया। पार्वती शिवजीके जिस स्वरूपका ध्यान करती थीं, शिवजीने वैसा ही दिव्य स्वरूप धारणकर शिवाको दिखाया और नीचेकी ओर मुख की हुई उनसे कहा—॥ ५३-५४॥

शिव उवाच

कुत्र त्वं यासि मां हित्वा न त्वं त्याज्या मया शिवे।
मया परीक्षितासि त्वं दृढभक्तासि मेऽनघे॥ ५५
ब्रह्मचारिस्वरूपेण भावमिच्छुस्त्वदीयकम्।
तवोपकण्ठमागत्य प्रावोचं विविधं वचः॥ ५६

शिवजी बोले—हे शिवे! तुम मुझे छोड़कर कहाँ जा रही हो, मैं किसी प्रकार तुम्हारा त्याग नहीं करूँगा। हे अनघे! मैंने तुम्हारी परीक्षा कर ली है, तुम मेरी दृढ़ भक्त हो। हे देवि! मैंने तुम्हारे भावको जाननेकी इच्छासे ब्रह्मचारीके स्वरूपमें तुम्हारे पास आकर अनेक प्रकारके वचन कहे—॥ ५५-५६॥

प्रसन्नोऽस्मि दृढं भक्त्या शिवे तव विशेषतः।
चित्तेप्सितं वरं ब्रूहि नादेयं विद्यते तव॥ ५७

हे शिवे! मैं तुम्हारी इस दृढ़ भक्तिसे विशेष प्रसन्न हूँ, अब तुम अपना मनोवांछित वर माँगो, तुम्हारे लिये कोई भी वस्तु [मुझे] अदेय नहीं है॥ ५७॥

अद्यप्रभृति ते दासस्तपोभिः प्रेमनिर्भरे।
कृतोऽस्मि तव सौन्दर्यात्क्षण एको युगायते॥ ५८

हे प्रेमनिभरे! तुमने अपनी इस तपस्यासे आजसे मुझे अपना दास बना लिया है। तुम्हारे सौन्दर्यको बिना देखे मेरा एक-एक क्षण युगके समान बीत रहा है॥ ५८॥

त्यज्यतां च त्वया लज्जा मम पत्नी सनातनी।
एहि प्रिये त्वया साकं द्रुतं यामि स्वकं गिरिम्॥ ५९

अब तुम लज्जाको त्यागो; क्योंकि तुम मेरी सनातन पत्नी हो। हे प्रिये! आओ, मैं तुम्हारे साथ शीघ्र ही कैलासपर्वतपर चलता हूँ॥ ५९॥

इत्युक्तवति देवेशे शिवातिमुदमाप सा।
तपोदुःखं तु यत्सर्वं तज्जहौ द्रुतमेव हि॥ ६०

देवेशके इस प्रकार कहनेपर वे पार्वती अत्यन्त प्रसन्न हो उठीं और उनके तप करनेका जो क्लेश था, वह सब दूर हो गया॥ ६०॥

ततः प्रहृष्टा सा दृष्ट्वा दिव्यरूपं शिवस्य तत्।
प्रत्युवाच प्रभुं प्रीत्या लज्जयाधोमुखी शिवा॥ ६१

उसके बाद शिवके उस दिव्य रूपको देखकर प्रसन्न हुई पार्वतीने लज्जासे नीचेकी ओर मुख कर लिया और वे प्रीतिपूर्वक कहने लगीं— ॥ ६१॥

शिवोवाच

यदि प्रसन्नो देवेश करोषि च कृपां मयि।
पतिर्मे भव देवेश इत्युक्तः शिवया शिवः॥ ६२

शिवा बोलीं—हे देवेश! यदि आप मुझपर प्रसन्न हैं और मेरे ऊपर कृपा करना चाहते हैं तो हे देवेश! आप मेरे पति हों—ऐसा पार्वतीने शिवसे कहा॥ ६२॥

नन्दीश्वर उवाच

गृहीत्वा विधिवत्पाणिं कैलासं स तया ययौ।
पतिं तं गिरिजा प्राप्य देवकार्यं चकार सा॥ ६३

नन्दीश्वर बोले—उसके बाद वे शिवजी विधि-विधानसे पाणिग्रहणकर उनके साथ कैलासपर चले गये और उन पार्वतीने उन्हें पतिरूपमें प्राप्तकर देवताओंका कार्य सम्पन्न किया॥ ६३॥

इति प्रोक्तस्तु ते तात ब्रह्मचारिस्वरूपकः।
शिवावतारो हि मया शिवाभावपरीक्षकः॥ ६४

इदमाख्यानमनघं परमं व्याहृतं मया।
य एतच्छृणुयात्प्रीत्या स सुखी गतिमाप्नुयात्॥ ६५

हे तात! इस प्रकार मैंने पार्वतीके भावकी परीक्षा लेनेवाले ब्रह्मचारीस्वरूप शिवावतारका वर्णन आपसे किया। मेरे द्वारा कहा गया यह आख्यान पवित्र तथा उत्तम है। जो इसे प्रेमपूर्वक सुनेगा, वह सुखी होकर सद्गति प्राप्त करेगा॥ ६४-६५॥

इति श्रीशिवमहापुराणे तृतीयायां शतरुद्रसंहितायां ब्रह्मचारिशिवावतारवर्णनं नाम त्रयस्त्रिंशोऽध्यायः॥ ३३॥

॥ इस प्रकार श्रीशिवमहापुराणके अन्तर्गत तृतीय शतरुद्रसंहितामें ब्रह्मचारीशिवावतारवर्णन नामक तैंतीसवाँ अध्याय पूरा हुआ॥ ३३॥

अथ चतुस्त्रिंशोऽध्यायः

भगवान् शिवके सुनर्तक नटावतारका वर्णन

नन्दीश्वर उवाच

सनत्कुमार सर्वज्ञ शिवस्य परमात्मनः।
अवतारं शृणु विभोः सुनर्तकनटाह्वयम्॥ १

नन्दीश्वर बोले—हे सर्वज्ञ! सनत्कुमार! अब सर्वव्यापी परमात्मा शिवजीके नर्तकनट नामक अवतारका श्रवण कीजिये॥ १॥

यदा हि कालिका देवी पार्वती हिमवत्सुता।
तेपे तपः सुविमलं वनं गत्वा शिवाप्तये॥ २

तदा शिवः प्रसन्नोऽभूत्तस्याः सुतपसो मुने।
तद्वृत्तसुपरीक्षार्थं वरं दातुं मुदा ययौ॥ ३

जब हिमालयसुता कालिका पार्वती शिवको प्राप्त करनेके लिये वनमें जाकर अत्यन्त निर्मल तप करने लगीं, तब हे मुने! उनके कठिन तपसे शिवजी प्रसन्न हो गये और उनके भावकी परीक्षाके लिये तथा उन्हें वर देनेके लिये प्रसन्नतापूर्वक वहाँ गये॥ २-३॥

स्वरूपं दर्शयामास तस्यै सुप्रीतमानसः।
वरं ब्रूहीति चोवाच तां शिवां शंकरो मुने॥ ४

हे मुने! अत्यन्त प्रसन्नचित्तवाले शिवने उन्हें अपना रूप दिखाया और उन शिवासे 'वर माँगो'—इस प्रकार कहा॥ ४॥

तच्छ्रुत्वा शम्भुवचनं दृष्ट्वा तद्रूपमुत्तमम्।
सुजहर्ष शिवातीव प्राह तं सुप्रणम्य सा॥ ५

शिवजीके उस वचनको सुनकर तथा उनके उत्तम रूपको देखकर पार्वती बहुत प्रसन्न हुईं और उन्हें भलीभाँति प्रणामकर वे कहने लगीं— ॥ ५ ॥

पार्वत्युवाच

यदि प्रसन्नो देवेश मह्यं देयो वरो यदि।
पतिर्भव ममेशान कृपां कुरु ममोपरि॥ ६

पार्वती बोलीं—हे देवेश! हे ईशान! यदि आप [मुझपर] प्रसन्न हैं और यदि मुझे वर देना चाहते हैं, तो मेरे पति बनें और मेरे ऊपर कृपा करें॥ ६ ॥

पितुर्गृहे मया सम्यग्गम्यते त्वदनुज्ञया।
गन्तव्यं भवता नाथ मत्पितुः पार्श्वतः प्रभो॥ ७

याचस्व मां ततो भिक्षुः ख्यापयंश्च यशः शुभम्।
पितुर्मे सफलं सर्वं कुरु प्रीत्या गृहाश्रमम्॥ ८

हे नाथ! मैं आपकी समुचित आज्ञासे पिताके घर जा रही हूँ। हे प्रभो! आपको भी मेरे पिताके पास जाना चाहिये, आप भिक्षुक बनकर अपना उत्तम यश प्रकट करते हुए मुझे माँगें और प्रेमपूर्वक मेरे पिताका गृहस्थाश्रम पूरी तरहसे सफल करें॥ ७-८ ॥

ततो यथोक्तविधिना कर्तुमर्हसि भो प्रभो।
विवाहं त्वं महेशान देवानां कार्यसिद्धये॥ ९

उसके अनन्तर हे प्रभो! हे महेशान! आप शास्त्रोक्त विधिसे देवगणोंका कार्य सिद्ध करनेके लिये मेरा पाणिग्रहण करें॥ ९ ॥

कामं मे पूरय विभो निर्विकारो भवान्सदा।
भक्तवत्सलनामा हि तव भक्तास्म्यहं सदा॥ १०

हे विभो! आप मेरे इस मनोरथको पूर्ण कीजिये। आप सर्वथा निर्विकार हैं तथा भक्तवत्सल नामवाले हैं और मैं सर्वदा आपकी भक्त हूँ॥ १० ॥

नन्दीश्वर उवाच

इत्युक्तः स तया शम्भुर्महेशो भक्तवत्सलः।
तथास्त्विति वचः प्रोच्यान्तर्हितः स्वगिरिं ययौ॥ ११

नन्दीश्वर बोले—पार्वतीके इस प्रकार कहनेपर भक्तवत्सल भगवान् शिव 'ऐसा ही हो'—यह वचन कहकर अन्तर्धान होकर अपने स्थान कैलासको चले गये॥ ११ ॥

पार्वत्यपि ततः प्रीत्या स्वसखीभ्यां समन्विता।
जगाम स्वपितुर्गेहं रूपं कृत्वा तु सार्थकम्॥ १२

इसके बाद पार्वती भी प्रसन्न होकर अपनी दोनों सखियोंके साथ अपने रूपको सार्थक करके पिताके घर चली गयीं॥ १२ ॥

पार्वत्यागमनं श्रुत्वा मेनया स हिमाचलः।
परिवारयुतो द्रष्टुं स्वसुतां तां ययौ मुदा॥ १३

पार्वतीके आगमनका समाचार सुनकर हिमालय भी मेना तथा परिवारको साथ लेकर अपनी पुत्रीको देखनेके लिये प्रसन्नतापूर्वक गये॥ १३ ॥

दृष्ट्वा तां सुप्रसन्नास्यामानयामासतुर्गृहम्।
कारयामासतुः प्रीत्या महानन्दौ महोत्सवम्॥ १४

परम आनन्दित वे दोनों पार्वतीको प्रसन्नमुख देखकर उन्हें घर लिवा लाये और प्रीतिके साथ महोत्सव मनाया॥ १४ ॥

धनं ददौ द्विजादिभ्यो मेना गिरिवरस्तथा।
मङ्गलं कारयामास सवेदध्वनिमादरात्॥ १५

मेना तथा हिमालयने ब्राह्मणादिकोंको [बहुत-सा] धन दिया और आदरके साथ वेदध्वनिपूर्वक मंगलाचार कराया॥ १५ ॥

ततः स्वकन्यया सार्धमुवास प्राङ्गणे मुदा।
मेना च हिमवाञ्छैलः स्नातुं गंगां जगाम सः॥ १६

उसके बाद मेना अपनी कन्याके साथ आँगनमें प्रसन्नतापूर्वक बैठ गयीं और वे हिमालय गंगास्नान करने चले गये॥ १६ ॥

एतस्मिन्नन्तरे शम्भुः सुलीलो भक्तवत्सलः।
सुनर्तकनटो भूत्वा मेनकासन्निधिं ययौ॥ १७

इसी बीच सुन्दर लीलाओंवाले भक्तवत्सल शिव नाचनेवाले नटका रूप धारणकर मेनाके पास पहुँचे॥ १७॥

शृङ्गं वामे करे धृत्वा दक्षिणे डमरुं तथा।
पृष्ठे कन्थां रक्तवासा नृत्यगानविशारदः॥ १८

ततस्तु नटरूपोऽसौ मेनकाप्राङ्गणे मुदा।
चक्रे स नृत्यं विविधं गानं चाति मनोहरम्॥ १९

रक्तवस्त्रधारी तथा नृत्य-गान-विशारद नटरूपधारी वे शिव अपने बायें हाथमें शृंग, दाहिने हाथमें डमरू और पीठपर कन्था धारण करके मेनाके आँगनमें प्रसन्नतापूर्वक अनेक प्रकारके नृत्य तथा अत्यन्त मनोहर गान करने लगे॥ १८-१९॥

शृङ्गं च डमरुं तत्र वादयामास सुध्वनिम्।
महोतिं विविधां प्रीत्या स चकार मनोहराम्॥ २०

तं द्रष्टुं नागराः सर्वे पुरुषाश्च स्त्रियस्तथा।
आजग्मुः सहसा तत्र बाला वृद्धा अपि ध्रुवम्॥ २१

उन्होंने बड़ी मनोहर ध्वनि करके डमरू तथा शृंग बजाया और प्रीतिपूर्वक विविध प्रकारकी मनोहर लीला प्रारम्भ की। उन्हें देखनेके लिये वहाँ नगरके सभी बालक, वृद्ध, पुरुष एवं स्त्रियाँ सहसा आ पहुँचे॥ २०-२१॥

श्रुत्वा सुगीतं तं दृष्ट्वा सुनृत्यं च मनोहरम्।
सहसा मुमुहुः सर्वे मेनापि च तदा मुने॥ २२

हे मुने! उत्तम गीतको सुनकर तथा उस मनोहर नृत्यको देखकर सभी लोग उस समय सहसा मोहित हो गये और मेना भी मोहित हो उठीं॥ २२॥

ततो मेनाशु रत्नानि स्वर्णपात्रस्थितानि च।
तस्मै दातुं ययौ प्रीत्या तद्भूतिप्रीतमानसा॥ २३

इसके बाद उनकी लीलासे प्रसन्न मनवाली मेना शीघ्र ही स्वर्णपात्रमें रखे हुए रत्नोंको उन्हें प्रीतिपूर्वक देनेके लिये गयीं॥ २३॥

तानि न स्वीचकारासौ भिक्षां काङ्क्षे शिवां च ताम्।
पुनः सुनृत्यं गानं च कौतुकात्कर्तुमुद्यतः॥ २४

उन्होंने उन रत्नोंको ग्रहण नहीं किया और उन पार्वतीको ही भिक्षाके रूपमें माँगा। वे पुनः कौतुकसे उत्तम नृत्य तथा गान करने लगे॥ २४॥

मेना तद्वचनं श्रुत्वा चुकोपाति सुविस्मिता।
भिक्षुकं भर्त्सयामास बहिष्कर्तुमियेष सा॥ २५

उनका वचन सुनकर विस्मित हुई मेना बहुत क्रुद्ध हो गयीं। उन्होंने भिक्षुककी भर्त्सना की और उसे बाहर निकालनेकी इच्छा की॥ २५॥

एतस्मिन्नन्तरे तत्र गंगातो गिरिराड् ययौ।
ददर्श पुरतो भिक्षुं प्राङ्गणस्थं नराकृतिम्॥ २६

इसी समय पर्वतराज हिमालय गंगा-स्नानकर वहाँ आ पहुँचे। उन्होंने मनुष्यरूप धारण किये हुए उस भिक्षुकको सामने आँगनमें स्थित देखा॥ २६॥

श्रुत्वा मेनामुखाद् वृत्तं तत्सर्वं सुचुकोप सः।
आज्ञां चकारानुचरान्बहिः कर्तुं च भिक्षुकम्॥ २७

तब मेनाके मुखसे वह सारा वृत्तान्त सुनकर उन्होंने भी बड़ा क्रोध किया और उस भिक्षुकको बाहर निकालनेके लिये अपने सेवकोंको आज्ञा दी॥ २७॥

महाग्निमिव दुःस्पर्शं प्रज्वलन्तं सुतेजसम्।
न शशाक बहिः कर्तुं कोऽपि तं मुनिसत्तम॥ २८

ततः स भिक्षुकस्तात नानालीलाविशारदः।
दर्शयामास शैलाय स्वप्रभावमनन्तकम्॥ २९

मुनिसत्तम! प्रलयाग्निके समान जलते हुए तेजसे अत्यन्त दुस्सह उस भिक्षुकको बाहर निकालनेमें कोई भी समर्थ नहीं हुआ। उसके बाद हे तात! अनेक प्रकारकी लीला करनेमें निष्णात उस भिक्षुकने शैलराजको अपना अनन्त प्रभाव दिखलाया॥ २८-२९॥

शैलो ददर्श तं तत्र विष्णुरूपधरं द्रुतम्।
ततो ब्रह्मस्वरूपं च सूर्यरूपं ततः क्षणात्॥ ३०

ततो ददर्श तं तात रुद्ररूपं महाद्भुतम्।
पार्वतीसहितं रम्यं विहसन्तं सुतेजसम्॥ ३१

हिमालयने शीघ्रतासे उसे विष्णुरूपधारी, फिर ब्रह्मारूप और थोड़ी देरमें सूर्यरूप धारण किये हुए देखा। हे तात! इसके थोड़ी ही देर बाद उसको अत्यन्त अद्भुत एवं परम तेजस्वी रुद्ररूप धारणकर पार्वतीके साथ मनोहर हास करते हुए देखा॥ ३०-३१॥

एवं सुबहुरूपाणि तस्य तत्र ददर्श सः।
सुविस्मितो बभूवाशु परमानन्दसंप्लुतः॥ ३२

इस प्रकार उन्होंने वहाँ उसके अनेक सुन्दर रूपोंको देखा और वे आनन्दसे विभोर हो विस्मित हो उठे॥ ३२॥

अथासौ भिक्षुवर्यो हि तस्मात्तस्याश्च सूतिकृत्।
भिक्षां ययाचे दुर्गां तां नान्यज्जग्राह किञ्चन॥ ३३

इसके बाद सुन्दर लीला करनेवाले उस भिक्षुने शैल एवं मेनासे केवल पार्वतीको ही भिक्षारूपमें माँगा और अन्य कुछ भी ग्रहण नहीं किया॥ ३३॥

ततश्चान्तर्दधे भिक्षुस्वरूपः परमेश्वरः।
स्वालयं स जगामाशु दुर्गावाक्यप्रणोदितः॥ ३४

पार्वतीके वाक्योंसे प्रेरित होकर भिक्षुरूप धारण करनेवाले परमेश्वर इसके बाद अन्तर्धान हो गये और शीघ्र ही अपने स्थानको चले गये॥ ३४॥

तदा बभूव सुज्ञानं मेनाशैलेशयोरपि।
आवां शिवो वञ्चयित्वा गतवान्स्वालयं विभुः॥ ३५

तब मेना एवं हिमालयको उत्तम ज्ञान हुआ कि सर्वव्यापी शिव हम दोनोंको ठगकर अपने स्थानको चले गये॥ ३५॥

अस्मै देया स्वकन्येयं पार्वती सुतपस्विनी।
एवं विचार्य च तयोः शिवे भक्तिरभूत्परा॥ ३६

हमें अपनी इस तपस्विनी कन्या पार्वतीको उन्हें प्रदान कर देना चाहिये था—ऐसा विचार करके शिवजीमें उन दोनोंकी उत्कट भक्ति हो गयी॥ ३६॥

अतो रुद्रो महोतीश्च कृत्वा भक्तमुदावहम्।
विवाहं कृतवान्प्रीत्या पार्वत्या स विधानतः॥ ३७

इस प्रकारकी महालीलाएँ करके शिवजीने पार्वतीसे भक्तोंको आनन्द देनेवाला विवाह प्रेमपूर्वक विधि-विधानके साथ किया॥ ३७॥

इति प्रोक्तस्तु ते तात सुनर्तकनटाह्वयः।
शिवावतारो हि मया शिवावाक्यप्रपूरकः॥ ३८

हे तात! इस प्रकार मैंने पार्वतीके अनुरोधको पूर्ण करनेवाला शिवका सुनर्तक नट नामक अवतार आपसे कहा—॥ ३८॥

इदमाख्यानमनघं परमं व्याहृतं मया।
य एतच्छृणुयात्प्रीत्या स सुखी गतिमाप्नुयात्॥ ३९

[हे सनत्कुमार!] मेरे द्वारा कहा गया यह आख्यान अत्यन्त श्रेष्ठ तथा पवित्र है, जो भी इसे प्रेमपूर्वक सुनता है, वह सुखी होकर सद्गति प्राप्त कर लेता है॥ ३९॥

इति श्रीशिवमहापुराणे तृतीयायां शतरुद्रसंहितायां सुनर्तकनटाह्वशिवावतारवर्णनं नाम चतुस्त्रिंशोऽध्यायः॥ ३४॥

॥ इस प्रकार श्रीशिवमहापुराणके अन्तर्गत तृतीय शतरुद्रसंहितामें सुनर्तकनटाह्वशिवावतारवर्णन नामक चौंतीसवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ ३४॥

अथ पञ्चत्रिंशोऽध्यायः

परमात्मा शिवके द्विजावतारका वर्णन

नन्दीश्वर उवाच

सनत्कुमार सर्वज्ञ शिवस्य परमात्मनः।
अवतारं शृणु विभोः साधुवेषद्विजाह्वयम्॥ १
मेनाहिमालयोर्भक्तिं शिवे ज्ञात्वा महोत्तमाम्।
चिन्तामापुः सुराः सर्वे मन्त्रयामासुरादरात्॥ २
एकान्तभक्त्या शैलश्चेत्कन्यां दास्यति शम्भवे।
ध्रुवं निर्वाणतां सद्यः सम्प्राप्स्यति शिवस्य वै॥ ३
अनन्तरत्नाधारोऽसौ चेत्प्रयास्यति मोक्षताम्।
रत्नगर्भाभिधा भूमिर्मिथ्यैव भविता ध्रुवम्॥ ४
स्थावरत्वं परित्यज्य दिव्यरूपं विधाय सः।
कन्यां शूलभृते दत्त्वा शिवलोकं गमिष्यति॥ ५
महादेवस्य सारूप्यं प्राप्य शम्भोरनुग्रहात्।
तत्र भुक्त्वा महाभोगांस्ततो मोक्षमवाप्स्यति॥ ६
इत्यालोच्य सुराः सर्वे जग्मुर्गुरुगृहं मुने।
चक्रुर्निवेदनं गत्वा गुरवे स्वार्थसाधकाः॥ ७

देवा ऊचुः

गुरो हिमालयगृहं गच्छास्मत्कार्यसिद्धये।
कृत्वा निन्दां महेशस्य गिरिभक्तिं निवारय॥ ८
स्वश्रद्धया सुतां दत्त्वा शिवाय स गिरिर्गुरो।
लभेत मुक्तिमत्रैव धरण्यां स हि तिष्ठतु॥ ९
इति देववचः श्रुत्वा प्रोवाच च विचार्य तान्॥ १०

गुरुरुवाच

कश्चिन्मध्ये च युष्माकं गच्छेच्छैलान्तिकं सुराः।
सम्पादयेत्स्वाभिमतमहं तत्कर्तुमक्षमः॥ ११
अथवा गच्छत सुरा ब्रह्मलोकं सवासवाः।
तस्मै वृत्तं कथय स्वं स वः कार्यं करिष्यति॥ १२

नन्दीश्वर बोले—हे सर्वज्ञ! सनत्कुमार! अब साधुवेष धारण करनेवाले ब्राह्मणके रूपमें परमात्मा शिवका जिस प्रकार अवतार हुआ, उसे आप सुनें॥ १॥

मेना और हिमालयकी शिवमें उत्कट भक्ति देख देवताओंको बड़ी चिन्ता हुई और उन लोगोंने आदरपूर्वक परस्पर मन्त्रणा की॥ २॥

यदि शिवमें अनन्य भक्ति रखकर हिमालय उन्हें कन्या देंगे, तो निश्चित रूपसे ये शिवका निर्वाणपद प्राप्त कर लेंगे। अनन्त रत्नोंके आधारभूत ये हिमालय यदि मुक्त हो जायँगे तो निश्चय ही पृथ्वीका रत्नगर्भा—यह नाम व्यर्थ हो जायगा॥ ३-४॥

शिवजीको अपनी कन्याके दानके पुण्यसे वे अपने स्थावररूपको त्यागकर दिव्य शरीर धारण करके शिवलोकको प्राप्त करेंगे, फिर शिवजीके अनुग्रहसे शिवसारूप्य प्राप्त करके वहाँ सभी प्रकारके भोगोंको भोगकर बादमें मोक्ष प्राप्त कर लेंगे॥ ५-६॥

हे मुने! इस प्रकार विचारकर अपने स्वार्थसाधनमें कुशल उन सभी देवताओंने गुरु बृहस्पतिके घरके लिये प्रस्थान किया। वहाँ जाकर उन लोगोंने गुरुसे निवेदन किया॥ ७॥

देवता बोले—हे गुरो! आप हमलोगोंका कार्य सिद्ध करनेके लिये हिमालयके घर जाइये और शिवजीकी निन्दाकर हिमालयके चित्तसे शिवके प्रति आस्था दूर कीजिये। हे गुरो! वे हिमालय श्रद्धासे अपनी कन्या शिवको देकर मुक्ति प्राप्त कर लेंगे [किंतु हमलोग ऐसा नहीं चाहते, हमारी इच्छा है कि] वे यहीं पृथ्वीपर रहें॥ ८-९॥

देवताओंका यह वचन सुनकर बृहस्पतिने विचार करके उनसे कहा—॥ १०॥

बृहस्पतिजी बोले—हे देवताओ! आपलोगोंके मध्यसे ही कोई एक पर्वतराजके पास जाय और अपना अभीष्ट सिद्ध करे, मैं इसे करनेमें [सर्वथा] असमर्थ हूँ अथवा हे देवताओ! आपलोग इन्द्रको साथ लेकर ब्रह्मलोकको जाइये और उन ब्रह्मासे अपना सारा वृत्तान्त कहिये, वे आपलोगोंका कार्य करेंगे॥ ११-१२॥

नन्दीश्वर उवाच

तच्छ्रुत्वा ते समालोच्य जग्मुर्विधिसभां सुराः।
सर्वं निवेदयामासुस्तद्वृत्तं पुरतो विधेः॥ १३

अवोचत्तान्विधिः श्रुत्वा तद्वचः सुविचिन्त्य वै।
नाहं करिष्ये तन्निन्दां दुःखदां कहरां सदा॥ १४

सुरा गच्छत कैलासं संतोषयत शङ्करम्।
प्रस्थापयत तं देवं हिमालयगृहं प्रति॥ १५

स गच्छेदथ शैलेशमात्मनिन्दां करोतु वै।
परनिन्दा विनाशाय स्वनिन्दा यशसे मता॥ १६

नन्दीश्वर बोले—[हे सनत्कुमार!] यह सुनकर विचार करके वे देवता ब्रह्माकी सभामें गये और उन लोगोंने ब्रह्माके आगे सारा वृत्तान्त निवेदन किया॥ १३॥

उनका वचन सुनकर ब्रह्मदेवने भलीभाँति विचारकर उनसे कहा—मैं तो दुःख देनेवाली तथा सर्वदा सुखापहारिणी शिवनिन्दा नहीं कर सकता। अतः हे देवताओ! आपलोग कैलासको जाइये, शिवको सन्तुष्ट कीजिये और उन्हीं प्रभुको हिमालयके घर भेजिये। वे [शिव] ही पर्वतराज हिमालयके पास जायँ और अपनी निन्दा करें; क्योंकि दूसरेकी निन्दा विनाशके लिये और अपनी निन्दा यशके लिये मानी गयी है॥ १४—१६॥

नन्दीश्वर उवाच

ततस्ते प्रययुः शीघ्रं कैलासं निखिलाः सुराः।
सुप्रणम्य शिवं भक्त्या तद्वृत्तं निखिला जगुः॥ १७

तच्छ्रुत्वा देववचनं स्वीचकार महेश्वरः।
देवान्सुयापयामास तानाश्वास्य विहस्य सः॥ १८

ततः स भगवाञ्छम्भुर्महेशो भक्तवत्सलः।
गन्तुमैच्छच्छैलमूलं मायेशो न विकारवान्॥ १९

दण्डी छत्री दिव्यवासा बिभ्रत्तिलकमुज्ज्वलम्।
करे स्फटिकमालां च शालग्रामं गले दधत्॥ २०

जपन्नाम हरेर्भक्त्या साधुवेशधरो द्विजः।
हिमाचलं जगामाशु बन्धुवर्गैः समन्वितम्॥ २१

तं च दृष्ट्वा समुत्तस्थौ सगणोऽपि हिमालयः।
ननाम दण्डवद्भूमौ साष्टाङ्गं विधिपूर्वकम्॥ २२

ततः पप्रच्छ शैलेशस्तं द्विजं को भवानिति।
उवाच शीघ्रं विप्रेन्द्रः स योग्यद्रिं महादरात्॥ २३

नन्दीश्वर बोले—उसके बाद वे सभी देवगण कैलासपर्वतपर गये और शिवजीको भक्तिपूर्वक प्रणामकर उन लोगोंने सारा वृत्तान्त निवेदन किया॥ १७॥

देवताओंका वचन सुनकर शिवजीने हँसकर उसे स्वीकार कर लिया तथा उन देवताओंको आश्वस्तकर विदा किया॥ १८॥

उसके बाद भक्तवत्सल मायापति तथा अविकारी महेश्वर भगवान् शम्भुने हिमालयके समीप जानेका विचार किया॥ १९॥

दण्ड, छत्र, दिव्य वस्त्र तथा उज्ज्वल तिलकसे विभूषित हो, कण्ठमें शालग्रामशिला तथा हाथमें स्फटिकमाला धारणकर साधुवेषधारी ब्राह्मणके वेषमें भक्तिभावसे वे श्रीविष्णुके नामका जप करते हुए बन्धु-बान्धवोंसे युक्त हिमालयके यहाँ शीघ्र गये॥ २०-२१॥

उन्हें देखते ही हिमालय सपरिवार उठ खड़े हुए। उन्होंने विधिपूर्वक भूमिमें साष्टांग दण्डवत्कर उन्हें प्रणाम किया॥ २२॥

उसके अनन्तर शैलराजने उन ब्राह्मणसे पूछा कि आप कौन हैं? तब उन योगी विप्रेन्द्रने बड़े आदरके साथ शीघ्र हिमालयसे कहा—॥ २३॥

साधुद्विज उवाच

साधुद्विजाह्वः शैलाहं वैष्णवः परमार्थदृक्।
परोपकारी सर्वज्ञः सर्वगामी गुरोर्बलात्॥ २४

साधुद्विज बोले—हे शैलराज! मेरा नाम साधु द्विज है। मैं मोक्षकी कामनासे युक्त परोपकारी वैष्णव हूँ और अपने गुरुके प्रसादसे सर्वज्ञ तथा सर्वत्र गमन करनेवाला हूँ॥ २४॥

मया ज्ञातं स्वविज्ञानात्स्वस्थाने शैलसत्तम।
तच्छृणु प्रीतितो वच्मि हित्वा दम्भं तवान्तिकम्॥ २५

हे शैलसत्तम! मैंने विज्ञानके बलसे अपने स्थानपर ही जो ज्ञात किया है, उसे प्रीतिपूर्वक आपसे कह रहा हूँ, आप पाखण्ड त्यागकर उसे सुनें॥ २५॥

शङ्कराय सुतां दातुं त्वमिच्छसि निजोद्भवाम्।
इमां पद्मासमां रम्यामज्ञातकुलशीलिने॥ २६

आप इस लक्ष्मीके समान परम सुन्दरी अपनी कन्याको अज्ञात कुल तथा शीलवाले शंकरको प्रदान करना चाहते हैं॥ २६॥

इयं मतिस्ते शैलेन्द्र न युक्ता मङ्गलप्रदा।
निबोध ज्ञानिनां श्रेष्ठ नारायणकुलोद्भव॥ २७

हे शैलेन्द्र! आपकी यह बुद्धि कल्याणकारिणी नहीं है। ज्ञानियोंमें श्रेष्ठ! हे नारायणकुलोद्भव! इसपर विचार कीजिये॥ २७॥

पश्य शैलाधिपत्वं च न तस्यैकोऽस्ति बान्धवः।
बान्धवान्स्वान्प्रयत्नेन पृच्छ मेनां च स्वप्रियाम्॥ २८

सर्वान्संपृच्छ यत्नेन मेनादीन्पार्वतीं विना।
रोगिणे नौषधं शैल कुपथ्यं रोचते सदा॥ २९

हे शैलराज! आप ही विचार कीजिये, उनका कोई एक भी बन्धु-बान्धव नहीं है, आप इस विषयमें अपने बान्धवों तथा अपनी पत्नी मेनासे पूछिये। आप पार्वतीको छोड़कर यत्नपूर्वक मेना आदि सबसे पूछिये; क्योंकि हे शैल! रोगीको औषधि अच्छी नहीं लगती, उसे तो सदैव कुपथ्य ही अच्छा लगता है॥ २८-२९॥

न ते पात्रानुरूपश्च पार्वतीदानकर्मणि।
महाजनः स्मेरमुखः श्रुतिमात्राद्भविष्यति॥ ३०

मेरे विचारसे पार्वतीको देनेके लिये शंकर योग्य पात्र नहीं है। इसे सुननेमात्रसे बड़े लोग आपका उपहास ही करेंगे॥ ३०॥

निराश्रयः सदासङ्गो विरूपो निर्गुणोऽव्ययः।
श्मशानवासी विकटो व्यालग्राही दिगम्बरः॥ ३१

विभूतिभूषणो व्यालवरावेष्टितमस्तकः।
सर्वाश्रमपरिभ्रष्टस्त्वविज्ञातगतिः सदा॥ ३२

वे शिव तो निराश्रय, संगरहित, कुरूप, गुणरहित, अव्यय, श्मशानवासी, भयंकर आकारवाले, साँपोंको धारण करनेवाले, दिगम्बर, भस्म धारण करनेवाले, मस्तकपर सर्पमाला लपेटे हुए, सभी आश्रमोंसे परिभ्रष्ट तथा सदा अज्ञात गतिवाले हैं॥ ३१-३२॥

ब्रह्मोवाच

इत्याद्युक्त्वा वचस्तथ्यं शिवनिन्दापरं स हि।
जगाम स्वालयं शीघ्रं नानालीलाकरः शिवः॥ ३३

ब्रह्माजी बोले—अनेक लीलाएँ करनेमें कुशल शिवजी इस प्रकार शिवनिन्दायुक्त सत्य-सत्य वचन कहकर शीघ्र ही अपने स्थानको चले गये॥ ३३॥

तच्छ्रुत्वा विप्रवचनमभूतां च तनू तयोः।
विपरीतानर्थपरे किं करिष्यावहे ध्रुवम्॥ ३४

ब्राह्मणके कहे गये अप्रिय वचनको सुनकर दोनोंका स्वरूप विरुद्ध भावोंवाला एवं अनर्थसे परिपूर्ण हो गया और वे विचार करने लगे कि अब हमें क्या करना चाहिये॥ ३४॥

ततो रुद्रो महोतिं च कृत्वा भक्तमुदावहाम्।
विवाहयित्वा गिरिजां देवकार्यं चकार सः॥ ३५

इस प्रकार उन रुद्रने भक्तोंको प्रसन्न करनेवाली महान् लीलाएँ कीं और पार्वतीके साथ विवाहकर देवकार्य सम्पन्न किया॥ ३५॥

इति प्रोक्तस्तु ते तात साधुवेषो द्विजाह्वयः।
शिवावतारो हि मया देवकार्यकरः प्रभो॥ ३६

हे तात! हे प्रभो! इस प्रकार मैंने देवगणोंका हित करनेवाले साधुवेषधारी द्विज नामक शिवावतारका वर्णन आपसे किया॥ ३६॥

इदमाख्यानमनघं स्वर्ग्यमायुष्यमुत्तमम्।
यः पठेच्छृणुयाद्वापि स सुखी गतिमाप्नुयात्॥ ३७

यह आख्यान पवित्र, स्वर्गकी प्राप्ति करानेवाला, आयुकी वृद्धि करनेवाला तथा उत्कृष्ट है। जो इसे पढ़ता अथवा सुनता है, वह सुखी रहकर उत्तम गतिको प्राप्त करता है॥ ३७॥

इति श्रीशिवमहापुराणे तृतीयायां शतरुद्रसंहितायां साधुद्विजशिवावतारवर्णनं नाम पञ्चत्रिंशोऽध्यायः॥ ३५॥

॥ इस प्रकार श्रीशिवमहापुराणके अन्तर्गत तृतीय शतरुद्रसंहितामें साधुद्विजशिवावतारवर्णन नामक पैंतीसवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ ३५॥

अथ षट्त्रिंशोऽध्यायः

अश्वत्थामाके रूपमें शिवके अवतारका वर्णन

नन्दीश्वर उवाच

सनत्कुमार सर्वज्ञ शिवस्य परमात्मनः।
अवतारं शृणु विभोरश्वत्थामाह्वयं परम्॥ १

नन्दीश्वर बोले—हे सनत्कुमार! हे सर्वज्ञ! अब आप सर्वव्यापी परमात्मा शिवके अश्वत्थामा नामक श्रेष्ठ अवतारको सुनें॥ १॥

बृहस्पतेर्महाबुद्धेर्देवर्षेरंशतो मुने।
भरद्वाजात्समुत्पन्नो द्रोणोऽयोनिज आत्मवान्॥ २
धनुर्भृतां वरः शूरो विप्रर्षिः सर्वशास्त्रवित्।
बृहत्कीर्तिर्महातेजा यः सर्वास्त्रविदुत्तमः॥ ३
धनुर्वेदे च वेदे च निष्णातं यं विदुर्बुधाः।
वरिष्ठं चित्रकर्माणं द्रोणं स्वकुलवर्धनम्॥ ४

हे मुने! महाबुद्धिमान् देवर्षि बृहस्पतिके अंशसे महर्षि भरद्वाजसे अयोनिज पुत्रके रूपमें आत्मवेत्ता द्रोण उत्पन्न हुए, जो धनुषधारियोंमें श्रेष्ठ, पराक्रमी, विप्रोंमें श्रेष्ठ, सम्पूर्ण शास्त्रोंके जाननेवाले, विशाल कीर्तिवाले, महातेजस्वी एवं सभी अस्त्रोंके ज्ञाताओंमें श्रेष्ठ थे, जिन द्रोणको विद्वान् लोग धनुर्विद्यामें तथा वेदमें पारंगत, वरिष्ठ, आश्चर्यजनक कार्य करनेवाला और अपने कुलको बढ़ानेवाला कहते हैं॥ २—४॥

कौरवाणां स आचार्य आसीत्स्वबलतो द्विज।
महारथिषु विख्यातः षट्सु कौरवमध्यतः॥ ५

हे द्विज! वे अपने पराक्रमके प्रभावसे कौरवोंके आचार्य थे एवं उन कौरवोंके छः महारथियोंमें प्रसिद्ध थे॥ ५॥

साहाय्यार्थं कौरवाणां स तेपे विपुलं तपः।
शिवमुद्दिश्य पुत्रार्थं द्रोणाचार्यो द्विजोत्तमः॥ ६
ततः प्रसन्नो भगवाञ्छंकरो भक्तवत्सलः।
आविर्बभूव पुरतो द्रोणस्य मुनिसत्तम॥ ७

उन द्विजोत्तम द्रोणाचार्यने कौरवोंकी सहायताके लिये पुत्रकी इच्छासे शिवजीको लक्ष्य करके बहुत बड़ा तप किया। उसके बाद हे मुनिसत्तम! [उनके तपसे] प्रसन्न होकर भक्तवत्सल शिवजी द्रोणाचार्यके समक्ष प्रकट हुए॥ ६-७॥

तं दृष्ट्वा स द्विजो द्रोणस्तुष्टावाशु प्रणम्य तम्।
महाप्रसन्नहृदयो नतकः सुकृताञ्जलिः॥ ८

उन्हें देखकर उन ब्राह्मण द्रोणने उन्हें शीघ्रतासे प्रणाम करके हाथ जोड़कर विनम्र हो अत्यन्त प्रसन्नचित्त होकर उनकी स्तुति की॥ ८॥

तस्य स्तुत्या च तपसा सन्तुष्टः शंकरः प्रभुः।
वरं ब्रूहीति चोवाच द्रोणं तं भक्तवत्सलः॥ ९

उनकी स्तुति तथा तपस्यासे सन्तुष्ट हुए भक्तवत्सल प्रभु शंकरने द्रोणाचार्यसे 'वर माँगो'—ऐसा कहा॥ ९॥

तच्छ्रुत्वा शम्भुवचनं द्रोणः प्राहाथ सन्नतः।
स्वांशजं तनयं देहि सर्वाजेयं महाबलम्॥ १०

शिवजीके इस वचनको सुनकर अति विनम्र द्रोणाचार्यने कहा कि मुझे महाबली, सबसे अजेय तथा अपने अंशसे उत्पन्न एक पुत्र दीजिये॥ १०॥

तच्छ्रुत्वा द्रोणवचनं शम्भुः प्रोचे तथास्त्विति।
अभूदन्तर्हितस्तात कौतुकी सुखकृन्मुने॥ ११

हे तात! हे मुने! द्रोणाचार्यका वचन सुनकर कौतुक करनेवाले परम सुखकारी शिवजीने 'ऐसा ही होगा'—यह कहा और वे अन्तर्धान हो गये॥ ११॥

द्रोणोऽपगच्छत्स्वं धाम महाहृष्टो गतभ्रमः।
स्वपत्न्यै कथयामास तद्वृत्तं सकलं मुदा॥ १२

अथावसरमासाद्य रुद्रः सर्वान्तकः प्रभुः।
स्वांशेन तनयो जज्ञे द्रोणस्य स महाबलः॥ १३

द्रोणाचार्य भी निःशंक हो प्रसन्नतापूर्वक अपने घर लौट गये और उन्होंने वह सारा वृत्तान्त अपनी स्त्रीसे प्रेमपूर्वक कहा। इसके बाद अवसर पाकर वे सर्वान्तक प्रभु रुद्र अपने अंशसे द्रोणके महाबलवान् पुत्रके रूपमें उत्पन्न हुए॥ १२-१३॥

अश्वत्थामेति विख्यातः स बभूव क्षितौ मुने।
प्रवीरः कञ्जपत्राक्षः शत्रुपक्षक्षयङ्करः॥ १४

हे मुने! वे पृथ्वीपर अश्वत्थामा नामसे विख्यात हुए, वे महान् वीर थे, उनकी आँखें कमलपत्रके समान थीं और वे शत्रुपक्षका विनाश करनेवाले थे॥ १४॥

यो भारते रणे ख्यातः पितुराज्ञामवाप्य च।
सहायकृद् बभूवाथ कौरवाणां महाबलः॥ १५

यमाश्रित्य महावीरं कौरवाः सुमहाबलाः।
भीष्मादयो बभूवुस्तेऽजेया अपि दिवौकसाम्॥ १६

ये महाबली अश्वत्थामा महाभारतके संग्राममें पिताकी आज्ञासे कौरवोंके सहायकके रूपमें प्रसिद्ध हुए। उन महाबली अश्वत्थामाका आश्रय लेनेके कारण ही महाबलवान् भीष्म आदि कौरवगण देवताओंके लिये भी अजेय हो गये॥ १५-१६॥

यद्भयात्पाण्डवाः सर्वे कौरवाञ्जेतुमक्षमाः।
आसन्नष्टा महावीरा अपि सर्वे च कोविदाः॥ १७

कृष्णोपदेशतः शम्भोस्तपः कृत्वातिदारुणम्।
प्राप्य चास्त्रं शम्भुवराज्जिग्ये तानर्जुनस्ततः॥ १८

उन्हींसे भयभीत होनेके कारण पाण्डवलोग कौरवोंको जीतनेमें अपनेको असमर्थ पा रहे थे और परम बुद्धिमान् तथा महान् वीर होकर भी अश्वत्थामाके भयसे असमर्थ हो गये। तब श्रीकृष्णके उपदेशसे महाबली अर्जुनने शिवकी कठोर तपस्याकर उनसे अस्त्र प्राप्त करके उन कौरवोंपर विजय प्राप्त की॥ १७-१८॥

अश्वत्थामा महावीरो महादेवांशजो मुने।
तथापि तद्भक्तिवशः स्वप्रतापमदर्शयत्॥ १९

विनाश्य पाण्डवसुतान् शिक्षितानपि यत्नतः।
कृष्णादिभिर्महावीरैरनिवार्यबलः परैः॥ २०

हे मुने! उस समय महादेवके अंशसे उत्पन्न हुए उन अश्वत्थामाने कौरवोंकी भक्तिसे प्रसन्न होकर उनके वशीभूत होकर युद्धमें यत्नपूर्वक शिक्षित पाण्डवपुत्रोंका विनाश करके अपना प्रताप दिखाया, श्रीकृष्ण आदि महावीर बलवान् शत्रु भी उनके बलको रोक नहीं सके॥ १९-२०॥

पुत्रशोकेन विकलमापतन्तं तमर्जुनम्।
रथेनाच्युतवन्तं हि दृष्ट्वा स च पराद्रवत्॥ २१

पुत्रके शोकसे सन्तप्त अर्जुनको श्रीकृष्णके साथ रथसे अपनी ओर आता हुआ देखकर वे भाग खड़े हुए॥ २१॥

अस्त्रं ब्रह्मशिरो नाम तदुपर्यसृजत्स हि।
ततः प्रादुरभूत्तेजः प्रचण्डं सर्वतो दिशम्॥ २२

प्राणापदमभिप्रेक्ष्य सोऽर्जुनः क्लेशसंयुतः।
उवाच कृष्णं विक्लान्तो नष्टतेजा महाभयः॥ २३

अश्वत्थामाने अर्जुनपर ब्रह्मशिर नामक अस्त्रका प्रहार किया, उससे सभी दिशाओंमें प्रचण्ड तेज उत्पन्न हो गया। अपने प्राणोंपर आयी हुई आपत्तिको देखकर अर्जुन दुखी हुए और उनका तेज नष्ट हो गया, तब उन्होंने क्लेशक्रान्त तथा भयभीत होकर श्रीकृष्णसे कहा—॥ २२-२३॥

अर्जुन उवाच

किमिदं स्वित्कुतो वेति कृष्ण कृष्ण न वेद्म्यहम्।
सर्वतोमुखमायाति तेजश्चेदं सुदुस्सहम्॥ २४

अर्जुन बोले—हे कृष्ण! हे कृष्ण! यह क्या है, यह दुःसह तेज चारों ओरसे घेरे हुए कहाँसे आ रहा है, मैं इसे नहीं जान पा रहा हूँ॥ २४॥

नन्दीश्वर उवाच

श्रुत्वार्जुनवचश्चेदं स कृष्णः शैवसत्तमः।
दध्यौ शिवं सदारं च प्रत्याहार्जुनमादरात्॥ २५

नन्दीश्वर बोले—अर्जुनका यह वचन सुनकर महाशैव उन श्रीकृष्णने पार्वतीसहित शिवका ध्यान करते हुए आदरपूर्वक अर्जुनसे कहा—॥ २५॥

श्रीकृष्ण उवाच

वेत्थेदं द्रोणपुत्रस्य ब्राह्ममस्त्रं महोल्बणम्।
न ह्यस्यान्यतमं किञ्चिदस्त्रं प्रत्यवकर्शनम्॥ २६

शिवं स्मर द्रुतं शम्भुं स्वप्रभुं भक्तरक्षकम्।
येन दत्तं हि ते स्वास्त्रं सर्वकार्यकरं परम्॥ २७

जह्यस्त्रतेज उन्नद्धं त्वं तच्छैवास्त्रतेजसा।
इत्युक्त्वा च स्वयं कृष्णः शिवं दध्यौ तदर्थकः॥ २८

श्रीकृष्ण बोले—यह द्रोणाचार्यके पुत्रका महातेजस्वी ब्रह्मास्त्र है, इसके समान शत्रुओंका घातक कोई दूसरा अस्त्र नहीं है, ऐसा जानना चाहिये। आप शीघ्र ही भक्तोंकी रक्षा करनेवाले अपने प्रभु शंकरका ध्यान कीजिये, जिन्होंने आपका सारा कार्य सम्पादन करनेवाला अपना सर्वोत्कृष्ट अस्त्र आपको प्रदान किया है। आप इस अस्त्रके परमतेजको अपने शैवास्त्रके तेजसे नष्ट कीजिये, इतना कहकर स्वयं श्रीकृष्ण अर्जुनकी रक्षाके लिये शिवका ध्यान करने लगे॥ २६—२८॥

तच्छ्रुत्वा कृष्णवचनं पार्थः स्मृत्वा शिवं हृदि।
स्पृष्ट्वापस्तं प्रणम्याशु चिक्षेपास्त्रं ततो मुने॥ २९

हे मुने! श्रीकृष्णकी बात सुनकर अर्जुनने अपने मनमें शिवजीका ध्यान किया और इसके बाद जलसे आचमनकर शिवको प्रणाम करके उस अस्त्रको शीघ्र ही [अश्वत्थामापर] छोड़ा॥ २९॥

यद्यप्यस्त्रं ब्रह्मशिरस्त्वमोघं चाप्रतिक्रियम्।
शैवास्त्रतेजसा सद्यः समशाम्यन्महामुने॥ ३०

हे महामुने! यद्यपि वह ब्रह्मशिर नामक अस्त्र अमोघ है तथा इसकी प्रतिक्रिया करनेवाला कोई अन्य अस्त्र नहीं है, फिर भी वह शिवजीके अस्त्रके तेजसे उसी क्षण शान्त हो गया॥ ३०॥

मा मंस्था ह्येतदाश्चर्यं सर्वचित्रमये शिवे।
यः स्वशक्त्याखिलं विश्वं सृजत्यवति हन्त्यजः॥ ३१

अद्भुत चरित्रवाले उन शिवके सम्बन्धमें इसे आश्चर्य मत समझिये, जो अजन्मा शिव अपनी शक्तिसे सारे संसारको उत्पन्न करते हैं, उसका पालन करते हैं तथा संहार करते हैं॥ ३१॥

अश्वत्थामा ततो ज्ञात्वा वृत्तमेतच्छिवांशजः।
शैवं न विव्यथे किञ्चिच्छिवेच्छातुष्टधीर्मुने॥ ३२

हे मुने! इसके बाद शिवके अंशसे उत्पन्न हुए तथा शिवजीकी इच्छासे तुष्ट बुद्धिवाले अश्वत्थामा इस शैववृत्तान्तको जानकर कुछ भी व्यथित नहीं हुए॥ ३२॥

अथ द्रौणिरिदं विश्वं कृत्स्नं कर्तुमपाण्डवम्।
उत्तरागर्भगं बालं नाशितुं मन आदधे॥ ३३

इसके बाद अश्वत्थामाने इस सम्पूर्ण संसारको पाण्डवोंसे रहित करनेके लिये उत्तराके गर्भमें स्थित बालकको विनष्ट करनेका निश्चय किया॥ ३३॥

ब्रह्मास्त्रमनिवार्यं तदन्यैरस्त्रैर्महाप्रभम्।
उत्तरागर्भमुद्दिश्य चिक्षेप स महाप्रभुः॥ ३४

ततश्च सोत्तरा जिष्णुवधूर्विकलमानसा।
कृष्णं तुष्टाव लक्ष्मीशं दह्यमाना तदस्त्रतः॥ ३५

तब उस महाप्रभावशालीने महातेजस्वी तथा अन्य अस्त्रोंद्वारा रोके न जा सकनेवाले ब्रह्मास्त्रको उत्तराके गर्भपर चलाया। तब उस अस्त्रसे जलती हुई अर्जुनकी पुत्रवधू उत्तरा व्याकुलचित्त होकर लक्ष्मीपति श्रीकृष्णकी स्तुति करने लगी॥ ३४-३५॥

ततः कृष्णः शिवं ध्यात्वा हृदा नुत्वा प्रणम्य च।
अपाण्डवमिदं कर्तुं द्रौणेरस्त्रमबुध्यत॥ ३६

स्वरक्षार्थेन्द्रदत्तेन तदस्त्रेण सुवर्चसा।
सुदर्शनेन तस्याश्च व्यधाद्रक्षां शिवाज्ञया॥ ३७

इसके बाद श्रीकृष्णने हृदयसे सदाशिवका ध्यानकर उनकी स्तुति की तथा उन्हें प्रणामकर जान लिया कि पाण्डवोंके विनाशके लिये यह अश्वत्थामाका अस्त्र है। उन्होंने शिवजीकी आज्ञासे अपनी रक्षाके लिये इन्द्रद्वारा प्रदत्त अपने महातेजस्वी सुदर्शन चक्रसे उसकी रक्षा की॥ ३६-३७॥

स्वरूपं शंकरादेशात्कृतं शैववरेण ह।
कृष्णेन चरितं ज्ञात्वा विमनस्कः शनैरभूत्॥ ३८

शंकरकी आज्ञासे उन महाशैव श्रीकृष्णने गर्भमें अपना स्वरूप भी धारण किया, यह चरित्र जानकर अश्वत्थामा उदास हो गये॥ ३८॥

ततः स कृष्णः प्रीतात्मा पाण्डवान्सकलानपि।
अपातयत्तदङ्घ्रयोस्तु तुष्टये तस्य शैवराट्॥ ३९

उसके बाद प्रसन्नचित्त महाशैव श्रीकृष्णने अश्वत्थामाको प्रसन्न करनेके लिये सभी पाण्डवोंको उनके चरणोंमें गिराया॥ ३९॥

अथ द्रौणिः प्रसन्नात्मा पाण्डवान्कृष्णमेव च।
नानावरान्ददौ प्रीत्या सोऽश्वत्थामानुगृह्य च॥ ४०

तदनन्तर प्रसन्नचित्त द्रोणाचार्यके पुत्र अश्वत्थामाने श्रीकृष्ण एवं समस्त पाण्डवोंपर अनुग्रह करके प्रेमपूर्वक उन्हें अनेक प्रकारके वर दिये॥ ४०॥

इत्थं महेश्वरस्तात चक्रे लीलां परां प्रभुः।
अवतीर्य क्षितौ द्रौणिरूपेण मुनिसत्तम॥ ४१

हे तात! हे मुनिश्रेष्ठ! इस प्रकार अश्वत्थामाके रूपमें पृथ्वीपर अवतार लेकर प्रभु शिवजीने अत्यन्त उत्तम लीला की॥ ४१॥

शिवावतारोऽश्वत्थामा महाबलपराक्रमः।
त्रैलोक्यसुखदोऽद्यापि वर्तते जाह्नवीतटे॥ ४२

त्रैलोक्यको सुख देनेवाले महापराक्रमशाली, शिवावतार अश्वत्थामा आज भी गंगातटपर विद्यमान हैं॥ ४२॥

अश्वत्थामावतारस्ते वर्णितः शङ्करप्रभोः।
सर्वसिद्धिकरश्चापि भक्ताभीष्टफलप्रदः॥ ४३

हे मुने! इस प्रकार मैंने आपसे अश्वत्थामाके रूपमें प्रभु शिवजीके अवतारका वर्णन किया, जो सम्पूर्ण सिद्धियोंको देनेवाला तथा भक्तोंको अभीष्ट फल प्रदान करनेवाला है॥ ४३॥

य इदं शृणुयाद्भक्त्या कीर्तयेद्वा समाहितः।
स सिद्धिं प्राप्नुयादिष्टामन्ते शिवपुरं व्रजेत्॥ ४४

जो [मनुष्य] भक्तिपूर्वक इस चरित्रको सुनता है अथवा सावधान होकर इसका कीर्तन करता है, वह अभीष्ट सिद्धि प्राप्त करता है और अन्तमें शिवलोकको जाता है॥ ४४॥

इति श्रीशिवमहापुराणे तृतीयायां शतरुद्रसंहितायामश्वत्थामशिवावतारवर्णनं नाम षट्त्रिंशोऽध्यायः॥ ३६॥

॥ इस प्रकार श्रीशिवमहापुराणके अन्तर्गत तृतीय शतरुद्रसंहितामें अश्वत्थामाशिवावतारवर्णन नामक छत्तीसवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ ३६॥

अथ सप्तत्रिंशोऽध्यायः

व्यासजीका पाण्डवोंको सान्त्वना देकर अर्जुनको इन्द्रकील पर्वतपर तपस्या करने भेजना

नन्दीश्वर उवाच

श्रृणु प्राज्ञ किराताख्यमवतारं पिनाकिनः।
मूकं च हतवान्प्रीतो योऽर्जुनाय वरं ददौ॥ १

नन्दीश्वर बोले—हे प्राज्ञ! अब आप शिवजीका किरातावतार सुनिये, [जिसमें] उन्होंने प्रसन्न होकर मूक दानवका वध किया एवं अर्जुनको वर प्रदान किया॥ १॥

सुयोधनजितास्ते वै पाण्डवाः प्रवराश्च ते।
द्रौपद्या च तया साध्व्या द्वैताख्यं वनमाययुः॥ २

तत्रैव सूर्यदत्तां वै स्थालीं चाश्रित्य ते तदा।
कालं च वाहयामासुः सुखेन किल पाण्डवाः॥ ३

[द्यूतक्रीड़ामें] जब श्रेष्ठ पाण्डवोंको दुर्योधनने जीत लिया, तब वे परम पतिव्रता द्रौपदीको अपने साथ लेकर द्वैतवन चले गये। उस समय वे पाण्डव वहाँपर सूर्यके द्वारा दी गयी स्थाली (बटलोई)-का आश्रय लेकर सुखपूर्वक अपना समय बिताने लगे॥ २-३॥

छलार्थं प्रेरितस्तेन दुर्वासा मुनिपुङ्गवः।
सुयोधनेन विप्रेन्द्र पाण्डवान्तिकमादरात्॥ ४

हे विप्रेन्द्र! तब दुर्योधनने महामुनि दुर्वासाको छल करनेके लिये आदरपूर्वक प्रेरित किया, तदनन्तर महामुनि दुर्वासा पाण्डवोंके निकट गये॥ ४॥

छात्रैः स्वैर्वायुतैः सार्धं ययाचे तत्र तान्मुदा।
भोज्यं चित्तेप्सितं वै स तेभ्यश्चैव समागतः॥ ५

वहाँ जाकर अपने दस हजार शिष्योंके साथ दुर्वासाने मनोनुकूल भोजन उन पाण्डवोंसे प्रेमपूर्वक माँगा॥ ५॥

स्वीकृत्य पाण्डवैस्तैस्तैः स्नानार्थं प्रेषितास्तदा।
दुर्वासःप्रमुखाश्चैव मुनयश्च तपस्विनः॥ ६

पाण्डवोंने उनकी बात स्वीकार कर ली और उस समय दुर्वासा आदि प्रमुख तपस्वी मुनियोंको स्नान करनेहेतु भेज दिया॥ ६॥

अथ ते पाण्डवाः सर्वे अन्नाभावान्मुनीश्वर।
दुःखिताश्च तदा प्राणांस्त्यक्तुं चित्ते समादधुः॥ ७

द्रौपद्या च स्मृतः कृष्ण आगतस्तत्क्षणादपि।
शाकं च भक्षयित्वा तु तेषां तृप्तिं समादधत्॥ ८

हे मुनीश्वर! उस समय अन्नके अभावसे दुखी होकर उन सभी पाण्डवोंने प्राण त्यागनेका मनमें निश्चय किया। तब द्रौपदीने शीघ्र ही श्रीकृष्णका स्मरण किया, वे उसी समय पधारे और शाकका भोग लगाकर उन सभीको तृप्त किया॥ ७-८॥

दुर्वासाश्च तदा शिष्यांस्तृप्तान् ज्ञात्वा ययौ पुनः।
पाण्डवाः कृच्छ्रनिर्मुक्ताः कृष्णस्य कृपया तदा॥ ९

तब शिष्योंको तृप्त जानकर दुर्वासा वहाँसे चले गये। इस प्रकार श्रीकृष्णजीकी कृपासे पाण्डव उस समय दुःखसे निवृत्त हो गये॥ ९॥

अथ ते पाण्डवाः कृष्णं पप्रच्छुः किं भविष्यति।
बलवान् शत्रुरुत्पन्नः किं कार्यं तद्वद प्रभो॥ १०

इसके बाद उन पाण्डवोंने श्रीकृष्णसे पूछा—हे प्रभो! [आगे] क्या होगा? यह [दुर्योधन] महान् वैरी उत्पन्न हुआ है, अब आप बताइये कि क्या करना चाहिये?॥ १०॥

नन्दीश्वर उवाच

इति पृष्टस्तदा तैस्तु श्रीकृष्णः पाण्डवैर्मुने।
स्मृत्वा शिवपदाम्भोजौ पाण्डवानिदमब्रवीत्॥ ११

नन्दीश्वर बोले—हे मुने! उन पाण्डवोंके द्वारा इस प्रकार पूछे जानेपर श्रीकृष्णजीने शिवजीके चरणकमलोंका स्मरण करके पाण्डवोंसे यह कहा—॥ ११॥

श्रीकृष्ण उवाच

श्रूयतां पाण्डवाः श्रेष्ठाः श्रुत्वा कर्तव्यमेव हि।
मद्वृत्तान्तं विशेषेण शिवसेवासमन्वितम्॥ १२

श्रीकृष्णजी बोले—हे श्रेष्ठ पाण्डवो! शिवोपासनासे युक्त मेरे वृत्तान्तको सुनिये और सुनकर विशेषरूपसे [शिवोपासनारूप] कर्तव्यका अनुपालन कीजिये॥ १२॥

द्वारकां च मया गत्वा शत्रूणां विजिगीषया।
विचार्य चोपदेशांश्च ह्युपमन्योर्महात्मनः॥ १३

मया ह्याराधितः शम्भुः प्रसन्नः परमेश्वरः।
बटुके पर्वतश्रेष्ठे सप्तमासं सुसेवितः॥ १४

पूर्वमें मैंने अपने शत्रुओंपर विजय प्राप्त करनेकी इच्छासे द्वारकामें जाकर महात्मा उपमन्युके उपदेशोंका विचार करके बटुक नामक श्रेष्ठ पर्वतपर सात मासपर्यन्त शिवजीकी आराधना की, तब भलीभाँति सेवाके किये जानेसे परमेश्वर शिवजी मुझपर प्रसन्न हो गये॥ १३-१४॥

इष्टान्कामानदान्मह्यं विश्वेशश्च स्वयं स्थितः।
तत्प्रभावान्मया सर्वसामर्थ्यं लब्धमुत्तमम्॥ १५

विश्वेश्वरने साक्षात् प्रकट होकर मुझे अभीष्ट वरदान दिया। उन्हींकी कृपासे मैंने सभी प्रकारका उत्तम सामर्थ्य प्राप्त कर लिया॥ १५॥

इदानीं सेव्यते देवो भुक्तिमुक्तिफलप्रदः।
यूयं सेवत तं शम्भुमपि सर्वसुखावहम्॥ १६

[हे पाण्डवो!] मैं इस समय भी भोग एवं मोक्ष देनेवाले शिवजीकी सेवा करता हूँ, इसलिये आपलोग भी सब प्रकारका सुख देनेवाले उन शिवजीकी सेवा कीजिये॥ १६॥

नन्दीश्वर उवाच

इत्युक्त्वान्तर्दधे कृष्ण आश्वास्याथ च पाण्डवान्।
द्वारकामगमच्छीघ्रं स्मरन् शिवपदाम्बुजम्॥ १७

नन्दीश्वर बोले—ऐसा कहकर पाण्डवोंको आश्वासन देकर श्रीकृष्णजी अन्तर्धान हो गये और शिवजीके चरणकमलोंका स्मरण करते हुए शीघ्र ही द्वारका चले गये॥ १७॥

पाण्डवा अथ भिल्लं च प्रेषयामासुरोजसा।
गुणानां च परीक्षार्थं तस्य दुर्योधनस्य च॥ १८
सोऽपि सर्वं च तत्रत्यं दुर्योधनगुणोदयम्।
समीचीनं च तज्ज्ञात्वा पुनः प्राप प्रभून्प्रति॥ १९

इधर, उत्साहयुक्त पाण्डवोंने उस दुर्योधनके गुणोंकी परीक्षाके लिये एक भीलको भेजा। वह भी दुर्योधनके सभी गुणों और पराक्रमका भलीभाँति पता लगाकर अपने प्रभु पाण्डवोंके समीप लौट आया॥ १८-१९॥

तदुक्तं ते निशम्यैवं दुःखं प्रापुर्मुनीश्वर।
परस्परं समूचुस्ते पाण्डवा अतिदुःखिताः॥ २०

किं कर्तव्यं क्व गन्तव्यमस्माभिरधुना युधि।
समर्था अपि वै सर्वे सत्यपाशेन यन्त्रिताः॥ २१

हे मुनीश्वर! उसकी बात सुनकर पाण्डव अत्यन्त दुखी हुए और अतीव दुःखित उन पाण्डवोंने आपसमें कहा—अब हमलोगोंको क्या करना चाहिये और कहाँ जाना चाहिये? यद्यपि हमलोग इस समय युद्ध करनेमें समर्थ हैं, किंतु सत्यपाशसे बँधे हुए हैं॥ २०-२१॥

नन्दीश्वर उवाच

एतस्मिन्समये व्यासो भस्मभूषितमस्तकः।
रुद्राक्षाभरणश्चायाज्जटाजूटविभूषितः॥ २२
पञ्चाक्षरं जपन्मन्त्रं शिवप्रेमसमाकुलः।
तेजसां च स्वयंराशिः साक्षाद्धर्म इवापरः॥ २३

नन्दीश्वर बोले—इसी समय मस्तकमें भस्म लगाये, रुद्राक्षकी माला धारण किये, सिरपर जटाजूटसे सुशोभित तथा शिवप्रेममें निमग्न, तेजोराशि, साक्षात् दूसरे धर्मके समान श्रीव्यासजी पंचाक्षर मन्त्रका जप करते हुए वहाँ आये॥ २२-२३॥

तं दृष्ट्वा ते तदा प्रीता उत्थाय पुरतः स्थिताः।
दत्त्वासनं तदा तस्मै कुशाजिनसुशोभितम्॥ २४
तत्रोपविष्टं तं व्यासं पूजयन्ति स्म हर्षिताः।
स्तुतिं च विविधां कृत्वा धन्याः स्म इति वादिनः॥ २५

तब उन्हें देखकर वे पाण्डव प्रसन्न हो उठकर उनके आगे खड़े हो गये और कुशासे युक्त मृगचर्मका आसन उन्हें देकर उसपर बैठे हुए व्यासजीका हर्षित होकर पूजन किया, अनेक प्रकारसे उनकी स्तुति की और कहा कि हम धन्य हो गये॥ २४-२५॥

तपश्चैव सुसन्तप्तं दानानि विविधानि च।
तत्सर्वं सफलं जातं तृप्तास्ते दर्शनात्प्रभो॥ २६

हमने जो कठिन तप किया, अनेक प्रकारके दान दिये, वह सब सफल हो गया। हे प्रभो! हम सब आपके दर्शनसे तृप्त हो गये॥ २६॥

दुःखं च दूरतो जातं दर्शनात्ते पितामह।
दुष्टैश्चैव महादुःखं दत्तं नः क्रूरकर्मभिः॥ २७

हे पितामह! आपके दर्शनसे दुःख दूर हो गया, क्रूर कर्मवाले इन दुष्टोंने हमलोगोंको बड़ा दुःख दिया है॥ २७॥

श्रीमतां दर्शने जाते दुःखं चैव गमिष्यति।
कदाचिन्न गतं तत्र निश्चयोऽयं विचारितः॥ २८
महतामाश्रमे प्राप्ते समर्थे सर्वकर्मणि।
यदि दुःखं न गच्छेत्तु दैवमेवात्र कारणम्॥ २९

आप-जैसे श्रीमानोंका दर्शन हो जानेपर जो दुःख कभी न गया, वह अब चला ही जायगा—ऐसा हमलोगोंका विचारपूर्ण निश्चय है। सब कुछ करनेमें समर्थ आप-जैसे महात्माओंके आश्रममें पधारनेपर भी यदि दुःख दूर न हुआ तो इसमें दैव ही कारण है॥ २८-२९॥

निश्चयेनैव गच्छेत्तु दारिद्र्यं दुःखकारणम्।
महतां च स्वभावोऽयं कल्पवृक्षसमो मतः॥ ३०

बड़े लोगोंका स्वभाव कल्पवृक्षके समान माना गया है, उनके आनेपर दुःखका कारणभूत दारिद्र्य निश्चित रूपसे चला जाता है॥ ३०॥

तद्गुणानेव गणयन्महतो वस्तुमात्रतः।
आश्रयस्य वशादेव पुंसो वै जायते प्रभो॥ ३१
लघुत्वं च महत्त्वं च नात्र कार्या विचारणा।

हे प्रभो! महापुरुषोंके गुणोंका कथन करनेसे, उनका नामसंकीर्तनमात्र करनेसे अथवा उनका आश्रय लेनेसे व्यक्ति महत्ता या [उपेक्षा करनेसे] लघुताको प्राप्त करता है—इसमें कोई विचार नहीं करना चाहिये॥ ३१½॥

उत्तमानां स्वभावोऽयं यद्दीनप्रतिपालनम्॥ ३२

उत्तम पुरुषोंमें स्वभाव ही ऐसा होता है कि वे दीनजनोंका परिपालन करते हैं॥ ३२॥

रंकस्य लक्षणं लोके ह्यतिश्रेयस्करं मतम्।
पुरोऽस्य परयत्नो वै सुजनानां च सेवनम्॥ ३३

निर्धनताको लोकमें परम कल्याणकारी माना गया है, क्योंकि इसके सामने अर्थात् लक्ष्यके रूपमें दूसरेका उपकार और सज्जनोंकी सेवा—ये ही रहते हैं॥ ३३॥

अतः परं च भाग्यं वै दोषश्चैव न दीयताम्।
एतस्मात्कारणात्स्वामिंस्त्वयि दृष्टे शुभं तदा॥ ३४
त्वदागमनमात्रेण सन्तुष्टानि मनांसि नः।
दिशोपदेशं येनाशु दुःखं नष्टं भवेच्च नः॥ ३५

उसके बाद जो भाग्य है, उसमें किसीको दोष नहीं देना चाहिये। इसलिये हे स्वामिन्! आपके दर्शनसे हमलोग अपना मंगल ही मानते हैं। आपके आगमन-मात्रसे हमारा मन हर्षित हो उठा है। अब आप हमलोगोंको शीघ्र ही ऐसा उपदेश दें, जिससे हमारा दुःख दूर हो॥ ३४-३५॥

नन्दीश्वर उवाच

इत्येतद्वचनं श्रुत्वा पाण्डवानां महामुनिः।
प्रसन्नमानसो भूत्वा व्यासश्चैवाब्रवीदिदम्॥ ३६

नन्दीश्वर बोले—पाण्डवोंका यह वचन सुनकर प्रसन्नचित्त हुए महामुनि व्यासजीने यह कहा— ॥ ३६ ॥

हे पाण्डवाश्च यूयं वै न कष्टं कर्तुमर्हथ।
धन्याः स्थ कृतकृत्याः स्थ सत्यं नैव विलोपितम्॥ ३७

हे पाण्डवो! आपलोग दुःख मत कीजिये, आपलोग धन्य हैं और कृतकृत्य हैं, जो कि आपलोगोंने सत्यका लोप नहीं होने दिया॥ ३७ ॥

सुजनानां स्वभावोऽयं प्राणान्तेऽपि सुशोभनः।
धर्मं त्यजन्ति नैवात्र सत्यं सफलभाजनम्॥ ३८

सत्पुरुषोंका ऐसा अत्युत्तम स्वभाव होता है कि वे मृत्युपर्यन्त मनोहर फल देनेवाले सत्य तथा धर्मका त्याग नहीं करते हैं॥ ३८ ॥

अस्माकं चैव यूयं च ते चापि समतां गताः।
तथापि पक्षपातो वै धर्मिष्ठानां मतो बुधैः॥ ३९

यद्यपि हमारे लिये आपलोग तथा वे [कौरव] दोनों ही बराबर हैं, फिर भी विद्वानोंके द्वारा धर्मात्माओंके प्रति पक्षपात उचित कहा गया है॥ ३९ ॥

धृतराष्ट्रेन दुष्टेन प्रथमं च ह्यचक्षुषा।
धर्मस्त्यक्तः स्वयं लोभाद्युष्माकं राज्यमाहृतम्॥ ४०

तस्य यूयं च ते चापि पुत्रा एव न संशयः।
पितर्युपरते बाला अनुकम्प्या महात्मनः॥ ४१

अन्धे तथा दुष्ट धृतराष्ट्रने पहले ही धर्मका त्याग किया और लोभसे स्वयं आपलोगोंका राज्य हड़प लिया। आपलोग तथा वे [कौरव] दोनों ही उनके पुत्र हैं, इसमें सन्देह नहीं है। पिता (पाण्डु)-के मर जानेपर उन महात्माके बालकोंके ऊपर उन्हें कृपा करनी चाहिये॥ ४०-४१ ॥

पश्चात्पुत्रश्च तेनैव वारितो न कदाचन।
अनर्थो नैव जायेत यच्चैवं च कृतं तदा॥ ४२

अतः परं च यज्जातं तज्जातं नान्यथा भवेत्।
अयं दुष्टो भवन्तश्च धर्मिष्ठाः सत्यवादिनः॥ ४३

उन्होंने कभी भी अपने पुत्र [दुर्योधन]-को मना नहीं किया, यदि उन्होंने ऐसा किया होता तो यह अनर्थ न होता। जो होना था, वह हो चुका; होनहार कभी मिथ्या नहीं होता। यह [दुर्योधन] दुष्ट है, आपलोग धर्मात्मा एवं सत्यवादी हैं॥ ४२-४३ ॥

तस्मादन्ते च तस्यैवाशुभं हि भविता ध्रुवम्।
यच्चैवं वापितं बीजं तत्प्ररोहो भवेदिह॥ ४४

इसलिये अन्तमें निश्चित रूपसे उसका ही अशुभ होगा, जो बीज यहाँ उसने बोया है, वह अवश्य उत्पन्न होगा॥ ४४ ॥

तस्माद्दुःखं न कर्तव्यं भवद्भिः सर्वथा ध्रुवम्।
भविष्यति शुभं वो हि नात्र कार्या विचारणा॥ ४५

इसलिये निश्चय ही आपलोगोंको दुखी नहीं होना चाहिये। हर प्रकारसे आपलोगोंका अवश्य ही शुभ होगा, इसमें सन्देहकी आवश्यकता नहीं है॥ ४५ ॥

नन्दीश्वर उवाच

इत्युक्त्वा पाण्डवाः सर्वे तेन व्यासेन प्रीणिताः।
युधिष्ठिरमुखास्ते च पुनरेवाब्रुवन्वचः॥ ४६

नन्दीश्वर बोले—इस प्रकार कहकर महात्मा व्यासजीने उन पाण्डवोंको प्रसन्न कर लिया, तब युधिष्ठिर आदि पाण्डवोंने पुनः उनसे यह वचन कहा— ॥ ४६ ॥

पाण्डवा ऊचुः

सत्यमुक्तं त्वया नाथ दुष्टैर्दुःखं निरन्तरम्।
दुष्टात्मभिर्वने चापि दीयते हि मुहुर्मुहुः॥ ४७

पाण्डव बोले—हे नाथ! आपने सत्य कहा, किंतु मलिन चित्तवाले ये दुष्ट हमें इस वनमें भी बार-बार निरन्तर दुःख ही दे रहे हैं॥ ४७ ॥

तन्नाशयाशुभं मेऽद्य किञ्चिद्देयं शुभं विभो।
कृष्णेन कथितं पूर्वमाराध्यः शङ्करः सदा॥ ४८

प्रमादश्च कृतोऽस्माभिस्तद्वचः शिथिलीकृतम्।
स देवमार्गस्तु पुनरिदानीमुपदिश्यताम्॥ ४९

इसलिये हे विभो! हमारे अशुभका नाश कीजिये और हमें मंगल प्रदान कीजिये। इसके पूर्व श्रीकृष्णने [हमलोगोंसे] कहा था कि तुमलोगोंको सर्वदा शिवजीकी आराधना करनी चाहिये, किंतु हमलोगोंने प्रमाद किया और उनकी आज्ञाके पालनमें शिथिलता की। अब आप पुनः उस देवमार्गका उपदेश कीजिये॥ ४८-४९॥

नन्दीश्वर उवाच

इत्येतद्वचनं श्रुत्वा व्यासो हर्षसमन्वितः।
उवाच पाण्डवान्प्रीत्या स्मृत्वा शिवपदाम्बुजम्॥ ५०

नन्दीश्वर बोले—यह वचन सुनकर व्यासजी बहुत ही प्रसन्न हुए और शिवजीके चरणकमलोंका ध्यान करके पाण्डवोंसे प्रेमपूर्वक कहने लगे—॥ ५०॥

व्यास उवाच

श्रूयतां वचनं मेऽद्य पाण्डवा धर्मबुद्धयः।
सत्यमुक्तं तु कृष्णेन मया संसेव्यते शिवः॥ ५१

व्यासजी बोले—हे धर्मबुद्धिवाले पाण्डवो! मेरी बात सुनो। श्रीकृष्णने सत्य ही कहा था, क्योंकि मैं भी सदाशिवकी उपासना करता हूँ॥ ५१॥

भवद्भिः सेव्यतां प्रीत्या सुखं स्यादतुलं सदा।
सर्वदुःखं भवत्येव शिवासेवात एव हि॥ ५२

आपलोग भी प्रेमपूर्वक उनका सेवन कीजिये, जिससे सदा अपार सुखकी प्राप्ति होती रहे। शिवकी सेवा न करनेके कारण ही सारा दुःख होता है॥ ५२॥

नन्दीश्वर उवाच

अथ पञ्चसु तेष्वेव विचार्य शिवपूजने।
अर्जुनं योग्यमुच्चार्य व्यासो मुनिवरस्तथा॥ ५३
तपःस्थानं विचार्यैवं ततः स मुनिसत्तमः।
पाण्डवान्धर्मसन्निष्ठान्पुनरेवाब्रवीदिदम्॥ ५४

नन्दीश्वर बोले—उसके अनन्तर विचार करके मुनिवर व्यासजीने पाँचों पाण्डवोंमें अर्जुनको शिवपूजाके योग्य समझा और इसके बाद उन मुनिश्रेष्ठने [उनके लिये] तपस्याका स्थान निश्चितकर धर्मनिष्ठ पाण्डवोंसे पुनः यह कहा—॥ ५३-५४॥

व्यास उवाच

श्रूयतां पाण्डवाः सर्वे कथयामि हितं सदा।
शिवं सर्वं परं दृष्ट्वा परं ब्रह्म सतां गतिम्॥ ५५

व्यासजी बोले—हे पाण्डवो! मैं तुमलोगोंके हितकी जो बात कह रहा हूँ, उसे सुनो। तुमलोग सज्जनोंके रक्षक सर्वोत्कृष्ट परब्रह्म शिवका दर्शन प्राप्त करो॥ ५५॥

ब्रह्मादित्रिपरार्द्धान्तं यत्किंचिद् दृश्यते जगत्।
तत्सर्वं शिवरूपं च पूज्यं ध्येयं च तत्पुनः॥ ५६

ब्रह्मासे लेकर त्रिपरार्धपर्यन्त जो भी जगत् दिखायी पड़ता है, वह सब शिवस्वरूप है, इसलिये वह पूजा तथा ध्यान करनेयोग्य है॥ ५६॥

सर्वेषां चैव सेव्योऽसौ शङ्करः सर्वदुःखहा।
शिवः स्वल्पेन कालेन संप्रसीदति भक्तितः॥ ५७

सुप्रसन्नो महेशो हि भक्तेभ्यः सकलप्रदः।
भुक्तिं मुक्तिमिहामुत्र यच्छतीति सुनिश्चितम्॥ ५८

शंकरजी सभी प्रकारके दुःखोंको विनष्ट करनेवाले हैं। अतः सभी लोगोंको उनकी सेवा करनी चाहिये। थोड़े समयमें ही भक्तिसे शिव प्रसन्न हो जाते हैं, अति प्रसन्न होनेपर महेश्वर भक्तोंको सब कुछ दे देते हैं। वे इस लोकमें भोग तथा परलोकमें मुक्ति प्रदान करते हैं—यह बात सुनिश्चित है॥ ५७-५८॥

तस्मात्सेव्यः सदा शम्भुर्भुक्तिमुक्तिफलेप्सुभिः।
पुरुषः शङ्करः साक्षाद् दुष्टहन्ता सतां गतिः॥ ५९

परन्तु प्रथमं शक्रविद्यां दृढमना जपेत्।
क्षत्रियस्य पराख्यस्य चेदमेव समाहितम्॥ ६०

अतः भोग एवं मोक्षका फल चाहनेवाले पुरुषोंको सर्वदा शिवजीकी सेवा करनी चाहिये। शंकरजी साक्षात् पुरुषोत्तम हैं, दुष्टोंके विनाशक और सज्जनोंके रक्षक हैं। परंतु सबसे पहले स्वस्थ मनसे शक्रविद्याका जप करना चाहिये, श्रेष्ठ कहलानेवाले क्षत्रियके लिये यही विधि है॥ ५९-६०॥

अतोऽर्जुनश्च प्रथमं शक्रविद्यां जपेद् दृढः।
करिष्यति परीक्षां प्राक् सन्तुष्टस्तद्भविष्यति॥ ६१

सुप्रसन्नश्च विघ्नानि संहरिष्यति सर्वदा।
पुनश्चैवं शिवस्यैव वरं मन्त्रं प्रदास्यति॥ ६२

अतः दृढ़चित्त होकर अर्जुनको सर्वप्रथम शक्रविद्याका जप करना चाहिये। इन्द्र पहले परीक्षा करेंगे, उसके बाद सन्तुष्ट होंगे। सन्तुष्ट हो जानेपर इन्द्र सर्वदा विघ्नोंका विनाश करेंगे और शिवजीका उत्तम मन्त्र प्रदान करेंगे॥ ६१-६२॥

नन्दीश्वर उवाच

इत्युक्त्वार्जुनमाहूयोपेन्द्रविद्यामुपादिशत्।
स्नात्वा च प्राङ्मुखो भूत्वा जग्राहार्जुन उग्रधीः॥ ६३

नन्दीश्वर बोले—व्यासजीने इस प्रकार कहकर अर्जुनको अपने पास बुलाकर उन्हें इन्द्रविद्याका उपदेश किया और तीक्ष्ण बुद्धिवाले अर्जुनने भी स्नानकर पूर्वाभिमुख हो उसे ग्रहण कर लिया॥ ६३॥

पार्थिवस्य विधानं च तस्मै मुनिवरो ददौ।
प्रत्युवाच च तं व्यासो धनञ्जयमुदारधीः॥ ६४

उस समय उदार बुद्धिवाले मुनिवर व्यासजीने अर्जुनको पार्थिव-पूजनके विधानका भी उपदेश किया और उनसे कहा—॥ ६४॥

व्यास उवाच

इतो गच्छाधुना पार्थ इन्द्रकीले सुशोभने।
जाह्नव्याश्च समीपे वै स्थित्वा सम्यक् तपः कुरु॥ ६५

अदृश्या चैव विद्या स्यात्सदा ते हितकारिणी।
इत्याशिषं ददौ तस्मै ततः प्रोवाच तान्मुनिः॥ ६६

धर्ममास्थाय सर्वे वै तिष्ठन्तु नृपसत्तमाः।
सिद्धिः स्यात्सर्वथा श्रेष्ठा नात्र कार्या विचारणा॥ ६७

व्यासजी बोले—हे पार्थ! आप इसी समय शीघ्र ही यहाँसे अत्यन्त शोभासम्पन्न इन्द्रकील पर्वतपर जाइये और वहाँ गंगाके तटपर स्थित होकर भलीभाँति तपस्या कीजिये। यह अदृश्य विद्या सर्वदा आपका हित करती रहेगी—मुनिने उन्हें यह आशीर्वाद दिया। उसके बाद पाण्डवोंसे कहा—हे श्रेष्ठ राजाओ! आपलोग धर्मका आश्रय लेकर यहाँ निवास करें, आपलोगोंको श्रेष्ठ सिद्धि अवश्य प्राप्त होगी, इसमें सन्देह नहीं करना चाहिये॥ ६५—६७॥

नन्दीश्वर उवाच

इति दत्त्वाशिषं तेभ्यः पाण्डवेभ्यो मुनीश्वरः।
स्मृत्वा शिवपदाम्भोजं व्यासश्चान्तर्दधे क्षणात्॥ ६८

नन्दीश्वर बोले—उन पाण्डवोंको यह आशीर्वाद देकर शिवजीके चरणकमलोंका ध्यान करके मुनीश्वर व्यास क्षणभरमें अन्तर्धान हो गये॥ ६८॥

इति श्रीशिवमहापुराणे तृतीयायां शतरुद्रसंहितायां किरातावतारवर्णनप्रसंगेऽर्जुनाय व्यासोपदेशवर्णनं नाम सप्तत्रिंशोऽध्यायः॥ ३७॥

॥ इस प्रकार श्रीशिवमहापुराणके अन्तर्गत तृतीय शतरुद्रसंहितामें किरातावतारवर्णनप्रसंगमें अर्जुनको व्यासका उपदेशवर्णन नामक सैंतीसवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ ३७॥

अथाष्टत्रिंशोऽध्यायः

इन्द्रका अर्जुनको वरदान देकर शिवपूजनका उपदेश देना

नन्दीश्वर उवाच

अर्जुनोऽपि तदा तत्र दीप्यमानो व्यदृश्यत।
मन्त्रेण शिवरूपेण तेजश्चातुलमावहन्॥ १

नन्दीश्वर बोले—[हे सनत्कुमार!] उस समय शिवस्वरूप मन्त्रके कारण अतुल तेज धारण किये हुए अर्जुन भी अत्यन्त दीप्तिमान् दिखायी पड़ने लगे॥ १॥

ते सर्वे चार्जुनं दृष्ट्वा पाण्डवा निश्चयं गताः।
जयोऽस्माकं ध्रुवं जातं तेजश्च विपुलं यतः॥ २

उस समय उन सभी पाण्डवोंने अर्जुनको देखकर यह निश्चय कर लिया कि हमलोग अवश्य विजयी होंगे; क्योंकि अर्जुनका तेज बढ़ा हुआ है॥ २॥

इदं कार्यं त्वया साध्यं नान्येन च कदाचन।
व्यासस्य वचनाद्भाति सफलं कुरु जीवितम्॥ ३

[उन लोगोंने अर्जुनसे कहा—हे अर्जुन!] व्यासजीके कथनसे प्रतीत होता है कि इस कार्यको तुम्हीं सिद्ध कर सकते हो, कोई दूसरा कभी नहीं; अतः जीवनको सफल करो॥ ३॥

इति प्रोच्यार्जुनं ते वै विरहौत्सुक्यकातराः।
अनिच्छन्तोऽपि तत्रैव प्रेषयामासुरादरात्॥ ४

अर्जुनसे इस प्रकार कहकर उनके विरहसे व्याकुल हुए समस्त पाण्डवोंने न चाहते हुए भी उन्हें आदरपूर्वक वहाँ भेज दिया॥ ४॥

द्रौपदी दुःखसंयुक्ता नेत्राश्रूणि निरुध्य च।
प्रेषयन्ती शुभं वाक्यं तदोवाच पतिव्रता॥ ५

अर्जुनको भेजते समय दुःखसे भरी हुई पतिव्रता द्रौपदीने नेत्रोंके आँसुओंको रोककर यह शुभ वचन कहा— ॥ ५॥

द्रौपद्युवाच

व्यासोपदिष्टं यद्राजंस्त्वया कार्यं प्रयत्नतः।
शुभप्रदोऽस्तु ते पन्थाः शङ्करः शं करोतु वै॥ ६

द्रौपदी बोली—हे राजन्! व्यासजीने आपको जैसा उपदेश किया है, वैसा आपको प्रयत्नपूर्वक [कार्य] करना चाहिये। आपका मार्ग मंगलप्रद हो और भगवान् शंकरजी आपका कल्याण करें॥ ६॥

ते सर्वे चावसंस्तत्र विसृज्यार्जुनमादरात्।
अत्यन्तदुःखमापन्ना मिलित्वा पञ्च एव च॥ ७

उसके अनन्तर पाँचों (द्रौपदीसहित) पाण्डव अर्जुनको आदरपूर्वक विदा करके अत्यन्त दुखी होते हुए परस्पर मिलकर वहाँ निवास करने लगे॥ ७॥

स्थितास्तत्र वदन्ति स्म श्रूयतामृषिसत्तम।
दुःखेऽपि प्रियसंगो वै न दुःखाय प्रजायते॥ ८

वियोगे द्विगुणं तस्य दुःखं भवति नित्यशः।
तत्र धैर्यधरस्यापि कथं धैर्यं भवेदिह॥ ९

हे ऋषिसत्तम सनत्कुमार! सुनिये, पाण्डवोंने वहाँ रहते हुए आपसमें कहा कि दुःख उपस्थित होनेपर भी प्रियजनका संयोग बना रहे तो दुःख नहीं जान पड़ता है। किंतु प्रियजनके वियोग रहनेपर दुःख आ पड़े तो वह निरन्तर द्विगुणित होता जाता है, उस समय धैर्यवान्‌को भी धीरज कैसे रह सकता है॥ ८-९॥

नन्दीश्वर उवाच

कुर्वत्स्वेव तदा दुःखं पाण्डवेषु मुनीश्वर।
कृपासिन्धुश्च स व्यास ऋषिवर्यः समागतः॥ १०
तं तदा पाण्डवास्ते वै नत्वा सम्पूज्य चादरात्।
दत्त्वासनं हि दुःखाढ्याः करौ बध्वा वचोऽब्रुवन्॥ ११

नन्दीश्वर बोले—हे मुनीश्वर! इस प्रकार पाण्डवोंके दुःख प्रकट करनेपर करुणासागर ऋषिवर्य व्यासजी वहाँ आये। तब दुःखसे व्याकुल हुए वे पाण्डव व्यासजीको नमस्कार करके आसन देकर आदरपूर्वक उनकी पूजा करके हाथ जोड़कर यह वचन कहने लगे— ॥ १०-११॥

पाण्डवा ऊचुः

श्रूयतामृषभश्रेष्ठ दुःखदग्धा वयं प्रभो।
दर्शनं तेऽद्य सम्प्राप्य ह्यानन्दं प्राप्नुमो मुने॥ १२

पाण्डव बोले—हे श्रेष्ठोत्तम! हे प्रभो! सुनिये, हम दुःखसे जल रहे थे, किंतु हे मुने! आज आपका दर्शन प्राप्तकर हमलोग आनन्दित रहे हैं॥ १२॥

कियत्कालं वसात्रैव दुःखनाशाय नः प्रभो।
दर्शनात्तव विप्रर्षे सर्वं दुःखं विलीयते॥ १३

हे प्रभो! आप हमलोगोंका दुःख दूर करनेके लिये कुछ कालपर्यन्त यहीं निवास कीजिये; क्योंकि हे विप्रर्षे! आपके दर्शनमात्रसे सारा दुःख नष्ट हो जाता है॥ १३॥

नन्दीश्वर उवाच

इत्युक्तः स ऋषिश्रेष्ठो न्यवसत्तत्सुखाय वै।
कथाभिर्विविधाभिश्च तद्दुःखं नोदयंस्तदा॥ १४

वार्तायां क्रियमाणायां तेन व्यासेन सन्मुने।
सुप्रणम्य विनीतात्मा धर्मराजोऽब्रवीदिदम्॥ १५

धर्मराज उवाच

शृणु त्वं हि ऋषिश्रेष्ठ दुःखशान्तिर्मता मम।
पृच्छामि त्वां महाप्राज्ञ कथनीयं त्वया प्रभो॥ १६

ईदृशं चैव दुःखं च पुरा प्राप्तश्च कश्चन।
वयमेव परं दुःखं प्राप्ता वै नैव कश्चन॥ १७

व्यास उवाच

राज्ञस्तु नलनाम्नो वै निषधाधिपतेः पुरा।
भवद्दुःखाधिकं दुःखं जातं तस्य महात्मनः॥ १८

हरिश्चन्द्रस्य नृपतेर्जातं दुःखं महत्तरम्।
अकथ्यं तद्विशेषेण परशोकावहं तथा॥ १९

दुःखं तथैव विज्ञेयं रामस्याप्यथ पाण्डव।
यच्छ्रुत्वा स्त्रीनराणां च भवेन्मोहो महत्तरः॥ २०

तस्माद्वर्णयितुं नैव शक्यते हि मया पुनः।
शरीरं दुःखराशिं च मत्वा त्याज्यं त्वयाधुना॥ २१

येनेदं च धृतं तेन व्याप्तमेव न संशयः।
प्रथमं मातृगर्भे वै जन्म दुःखस्य कारणम्॥ २२

कौमारेऽपि महादुःखं बाललीलानुसारि यत्।
ततोऽपि यौवने कामान्भुञ्जानो दुःखरूपिणः॥ २३

गतागतैर्दिनानां हि कार्यभारैरनेकशः।
आयुश्च क्षीयते नित्यं न जानाति ह तत्पुनः॥ २४

अन्ते च मरणं चैव महादुःखमतः परम्।
नानानरकपीडाश्च भुज्यन्तेऽज्ञैर्नरैस्तदा॥ २५

नन्दीश्वर बोले—उन लोगोंके इस प्रकार कहनेपर उन ऋषिवरने उनके सुखके लिये वहाँ निवास किया और वे अनेक प्रकारकी कथाओंसे उस समय उनका कष्ट दूर करने लगे। हे सन्मुने! व्यासजीके द्वारा की जाती हुई वार्ताके समय उन्हें प्रणाम करके विनीतात्मा धर्मराजने उनसे यह पूछा—॥ १४-१५॥

युधिष्ठिर बोले—हे ऋषिश्रेष्ठ! हे महाप्राज्ञ! [आपके वचनोंसे] मेरे दुःखकी शान्ति हो गयी, किंतु हे प्रभो! मैं आपसे जो पूछता हूँ, उसे बताइये॥ १६॥

क्या इस प्रकारका दुःख पहले और किसीको प्राप्त हुआ है अथवा यह महान् दुःख हमें ही मिला है, अन्य किसीको नहीं?॥ १७॥

व्यासजी बोले—[हे युधिष्ठिर!] पूर्व समयमें निषधदेशके अधिपति महात्मा नलको आपसे भी अधिक दुःख प्राप्त हुआ था॥ १८॥

राजा हरिश्चन्द्रको भी अत्यधिक दुःख प्राप्त हुआ था, जो अनिर्वचनीय और सुननेमात्रसे दूसरोंको भी दुखित करनेवाला है॥ १९॥

हे पाण्डव! वैसा ही दुःख श्रीरामचन्द्रका भी जानना चाहिये, जिसे सुनकर स्त्री-पुरुषोंको अत्यधिक कष्ट होता है। मैं पुनः इसका वर्णन करनेमें असमर्थ हूँ, अतः शरीरको दुःखोंका समूह समझकर इस समय तुम्हें शोकका त्याग करना चाहिये॥ २०-२१॥

जिस किसीने यह शरीर धारण किया है, वह दुःखोंसे व्याप्त हुआ है, इसमें सन्देह नहीं है। सर्वप्रथम माताके गर्भसे जन्म लेना ही दुःखका कारण होता है। फिर कुमारावस्थामें भी बालकोंकी लीलाके अनुसार महान् दुःख होता है। इसके अनन्तर मनुष्य युवावस्थामें दुःखरूपी कामनाओंका भोग करता है॥ २२-२३॥

[हे युधिष्ठिर!] अनेक प्रकारके कार्यभारोंसे तथा दिनोंके गमनागमनसे पुरुषकी सारी आयु इसी प्रकार नष्ट हो जाती है और मनुष्यको उसका ज्ञान नहीं रहता॥ २४॥

अन्त समयमें जब पुरुषकी मृत्यु होती है, उस समय उसे इससे भी अधिक कष्ट उठाना पड़ता है। इसके बाद भी अज्ञानी मनुष्य अनेक प्रकारके नरकोंकी पीड़ा प्राप्त करते हैं॥ २५॥

तस्मादिदमसत्यं च त्वं तु सत्यं समाचर।
येनैव तुष्यते शम्भुस्तथा कार्यं नरेण च॥ २६

इसलिये यह सब असत्य है, आप सत्यका आचरण कीजिये। जिस प्रकार भी शिवजी सन्तुष्ट हों, उसी प्रकारका कार्य मनुष्यको करना चाहिये॥ २६॥

नन्दीश्वर उवाच

एवं विविधवार्ताभिः कालनिर्यापणं तदा।
चक्रुस्ते भ्रातरः सर्वे मनोरथपथैः पुनः॥ २७

नन्दीश्वर बोले—इस प्रकार उन सभी भाइयोंने अनेक प्रकारकी वार्ताओं तथा मनोरथोंसे समय बिताना प्रारम्भ किया॥ २७॥

अर्जुनोऽपि स्वयं गच्छन्दुर्गाद्रिषु दृढव्रतः।
यक्षं लब्ध्वा च तेनैव दस्यून्निघ्नन्ननेकशः॥ २८

मनसा हर्षसंयुक्तो जगामाचलमुत्तमम्।
तत्र गत्वा च गंगायाः समीपं सुन्दरं स्थलम्॥ २९

अशोककाननं यत्र तिष्ठति स्वर्ग उत्तमः।
तत्र तस्थौ स्वयं स्नात्वा नत्वा च गुरुमुत्तमम्॥ ३०

यथोपदिष्टं वेषादि तथा चैवाकरोत्स्वयम्।
इन्द्रियाण्यपकृष्यादौ मनसा संस्थितोऽभवत्॥ ३१

पुनश्च पार्थिवं कृत्वा सुन्दरं समसूत्रकम्।
तदग्रे प्रणिदध्यौ स तेजोराशिमनुत्तमम्॥ ३२

कठिन पहाड़ी मार्गोंसे जाते हुए दृढ़ व्रतवाले अर्जुन भी एक यक्षको प्राप्तकर उसीके साथ अनेक डाकुओंका संहार करते हुए मनमें हर्षित हो उत्तम [इन्द्रकील] पर्वतपर चले गये। वहाँ जाकर उन्होंने गंगाके समीप एक सुन्दर स्थानको प्राप्त किया, जो स्वर्गसे भी उत्तम तथा अशोकवनसे युक्त था, वहींपर वे बैठ गये। इसके बाद स्वयं स्नान करके श्रेष्ठ गुरुको नमस्कारकर उन्होंने यथोपदिष्ट वेश धारण किया और इन्द्रियोंको वशमें करके एकाग्रचित्त हो [तपस्याके लिये] स्थित हो गये। उस समय वे अत्यन्त सुन्दर समसूत्रयुक्त पार्थिव शिवलिंगका निर्माण करके उसके आगे [आसनस्थ होकर] उत्तम तेजोराशि [शिवजीका] ध्यान करने लगे॥ २८—३२॥

त्रिकालं चैव सुस्नातः पूजनं विविधं तदा।
चकारोपासनं तत्र हरस्य च पुनः पुनः॥ ३३

इस प्रकार अर्जुन तीनों समय स्नान करके बारंबार अनेक प्रकारसे शिवजीकी पूजा करते हुए उपासनामें तत्पर हो गये॥ ३३॥

तस्यैव शिरसस्तेजो निस्सृतं तच्चरास्तदा।
दृष्ट्वा भयं समापन्नाः प्रविष्टश्च कदा ह्ययम्॥ ३४

इसके बाद उस समय उनके शिरोभागसे निकले हुए तेजको देखकर इन्द्रके अनुचर भयभीत हो गये और सोचने लगे कि यह इस स्थानपर कब आ गया?॥ ३४॥

पुनस्ते च विचार्यैवं कथनीयं विडौजसे।
इत्युक्त्वा तु गतास्ते वै शक्रस्यान्तिकमञ्जसा॥ ३५

उन्होंने पुनः अपने मनमें विचार किया कि यह समाचार इन्द्रसे निवेदन करना चाहिये। परस्पर ऐसा कहकर वे शीघ्र ही इन्द्रके समीप गये॥ ३५॥

चरा ऊचुः

देवो वाथ ऋषिश्चैव सूर्यो वाथ विभावसुः।
तपश्चरति देवेश न जानीमो वने च तम्॥ ३६
तस्यैव तेजसा दग्धा आगतास्तव सन्निधौ।
निवेदितं चरित्रं तत्क्रियतामुचितं तु यत्॥ ३७

चर बोले—हे देवेश! कोई देवता, ऋषि, सूर्य अथवा अग्निदेव इस वनमें घोर तप कर रहे हैं, हमलोग उन्हें नहीं जानते। उनके तेजसे सन्तप्त होकर हमलोग आपके पास आये हैं। हमने उस चरित्रको आपसे कह दिया, अब जैसा उचित हो, आप वैसा कीजिये॥ ३६-३७॥

नन्दीश्वर उवाच

इत्युक्तस्तैश्चरैः सर्वं ज्ञात्वा पुत्रचिकीर्षितम्।
स गोत्रपान्विसृज्यैव तत्र गन्तुं मनो दधे॥ ३८

नन्दीश्वर बोले—दूतोंके ऐसा कहनेपर इन्द्रने अपने पुत्र [अर्जुन]-का अभिप्राय जानकर पर्वतरक्षकोंको विदाकर स्वयं वहाँ जानेका विचार किया॥ ३८॥

स वृद्धब्राह्मणो भूत्वा ब्रह्मचारी शचीपतिः।
जगाम तत्र विप्रेन्द्र परीक्षार्थं हि तस्य वै॥ ३९

तमागतं तदा दृष्ट्वाकार्षीत्पूजां च पाण्डवः।
स्थितोऽग्रे च स्तुतिं कृत्वा क्वायातोऽसि वदाधुना॥ ४०

इत्युक्तस्तेन देवेशो धैर्यार्थं तस्य प्रीतितः।
परीक्षागर्भितं वाक्यं पाण्डवं तं ततोऽब्रवीत्॥ ४१

हे विप्रेन्द्र! वे शचीपति इन्द्र ब्रह्मचारी वृद्ध ब्राह्मणका रूप धारणकर उनकी परीक्षाके लिये वहाँ पहुँचे। तब उन्हें आया हुआ देखकर अर्जुनने उनकी पूजा की और आगे खड़े होकर स्तुति करके उनसे पूछा कि इस समय आप कहाँसे आये हैं, [कृपया] यह बताइये? तब उनके द्वारा प्रीतिपूर्वक इस प्रकार कहे जानेपर अर्जुनके धैर्यके परीक्षणार्थ देवराज इन्द्र प्रतिप्रश्न करने लगे॥ ३९—४१॥

ब्राह्मण उवाच

नवे वयसि वै तात किं तपस्यसि साम्प्रतम्।
मुक्त्यर्थं वा जयार्थं किं सर्वथैतत्तपस्तव॥ ४२

ब्राह्मण बोले—हे तात! तुम इस समय युवावस्थामें तप क्यों कर रहे हो? क्या तुम्हारी यह तपस्या सर्वथा मुक्तिके लिये है अथवा विजयके लिये है?॥ ४२॥

नन्दीश्वर उवाच

इति पृष्टस्तदा तेन सर्वं संवेदितं पुनः।
तच्छ्रुत्वा स पुनर्वाक्यमुवाच ब्राह्मणस्तदा॥ ४३

नन्दीश्वर बोले—इस प्रकार पूछे जानेपर अर्जुनने अपना सारा समाचार कह सुनाया। तब उन ब्राह्मणने पुनः यह वचन कहा—॥ ४३॥

ब्राह्मण उवाच

युक्तं न क्रियते वीर सुखं प्राप्तुं च यत्तपः।
क्षात्रधर्मेण क्रियते मुक्त्यर्थं कुरुसत्तम॥ ४४

इन्द्रस्तु सुखदाता वै मुक्तिदाता भवेन्न हि।
तस्मात्त्वं सर्वथा श्रेष्ठ कर्तुमर्हसि सत्तपः॥ ४५

ब्राह्मण बोले—हे वीर! तुम क्षात्रधर्ममें स्थित होकर सुख पानेकी इच्छासे जो तप कर रहे हो, वह उचित नहीं है। हे कुरुश्रेष्ठ! क्षत्रिय तो मुक्तिहेतु तप करता है। हे श्रेष्ठ! इन्द्र सुख देनेवाले [देवता] हैं, वे मुक्ति नहीं दे सकते; इसलिये तुम्हें [इस सकाम तपको छोड़कर] सर्वथा श्रेष्ठ तप करना चाहिये॥ ४४-४५॥

नन्दीश्वर उवाच

इदं तद्वचनं श्रुत्वा क्रोधं चक्रेऽर्जुनस्तदा।
प्रत्युवाच विनीतात्मा तदनादृत्य सुव्रतः॥ ४६

नन्दीश्वर बोले—उनके इस वचनको सुनकर दृढ़व्रत एवं विनयी अर्जुनने क्रोध किया और उनका निरादर करते हुए कहा—॥ ४६॥

अर्जुन उवाच

राज्यार्थं न च मुक्त्यर्थं किमर्थं भाषसे त्विदम्।
व्यासस्य वचनेनैव क्रियते तप ईदृशम्॥ ४७

इतो गच्छ ब्रह्मचारिन्मां पातयितुमिच्छसि।
प्रयोजनं किमत्रास्ति तव वै ब्रह्मचारिणः॥ ४८

अर्जुन बोले—मैं न तो राज्यके लिये और न तो मुक्तिके लिये तप कर रहा हूँ। तुम ऐसा क्यों बोल रहे हो? मैं व्यासजीकी आज्ञासे इस प्रकारका तप कर रहा हूँ। हे ब्रह्मचारिन्! अब यहाँसे [शीघ्र] चले जाओ, मुझे अपने संकल्पसे मत गिराओ। तुझ ब्रह्मचारीका यहाँ क्या प्रयोजन है?॥ ४७-४८॥

नन्दीश्वर उवाच

इत्युक्तः स प्रसन्नोऽभूत्सुन्दरं रूपमद्भुतम्।
स्वोपस्करणसंयुक्तं दर्शयामास वै निजम्॥ ४९

नन्दीश्वर बोले—ऐसा कहे जानेपर वे [इन्द्रदेव] प्रसन्न हो उठे और [वज्र आदि] अपने उपस्करणोंसे युक्त अद्भुत तथा मनोहर अपना रूप उन्होंने दिखाया॥ ४९॥

शक्ररूपं तदा दृष्ट्वा लज्जितश्चार्जुनस्तदा।
स इन्द्रस्तं समाश्वास्य पुनरेव वचोऽब्रवीत्॥ ५०

तब इन्द्रके रूपको देखकर अर्जुन लज्जित हो उठे। इसके बाद उन्हें आश्वस्त करके इन्द्रने पुनः यह वचन कहा—॥ ५०॥

इन्द्र उवाच

वरं वृणीष्व हे तात धनंजय महामते।
यदिच्छसि मनोऽभीष्टं नादेयं विद्यते तव॥ ५१
तच्छ्रुत्वा शक्रवचनं प्रत्युवाचार्जुनस्तदा।
विजयं देहि मे तात शत्रुक्लिष्टस्य सर्वथा॥ ५२

शक्र उवाच

बलिष्ठाः शत्रवस्ते च दुर्योधनपुरःसराः।
द्रोणो भीष्मश्च कर्णश्च सर्वे ते दुर्जया ध्रुवम्॥ ५३
अश्वत्थामा द्रोणपुत्रो रौद्रोंऽशो दुर्जयोऽति सः।
मयासाध्या भवेयुस्ते सर्वथा स्वहितं शृणु॥ ५४
एतद्वीरं जयं कर्तुं न शक्तः कश्चनाधुना।
वर्तते हि शिवो वर्यस्तस्माच्छम्भोर्जपोऽधुना॥ ५५
शंकरः सर्वलोकेशश्चराचरपतिः स्वराट्।
सर्वं कर्तु समर्थोऽस्ति भुक्तिमुक्तिफलप्रदः॥ ५६
अहमन्ये च ब्रह्माद्या विष्णुः सर्ववरप्रदः।
अन्ये जिगीषवो ये च ते सर्वे शिवपूजकाः॥ ५७
अद्यप्रभृति तन्मन्त्रं हित्वा भक्त्या शिवं भज।
पार्थिवेन विधानेन ध्यानेनैव शिवस्य च॥ ५८
उपचारैरनेकैश्च सर्वभावेन भारत।
सिद्धिः स्यादचला तेऽद्य नात्र कार्या विचारणा॥ ५९

नन्दीश्वर उवाच

इत्युक्त्वा च चरान्सर्वान्समाहूयाब्रवीदिदम्।
सावधानेन वै स्थेयमेतत्संरक्षणे सदा॥ ६०
प्रबोध्य स्वचरानिन्द्रोऽर्जुनसंरक्षणादिकम्।
वात्सल्यपूर्णहृदयः पुनरूचे कपिध्वजम्॥ ६१

इन्द्र उवाच

राज्यं त्वया प्रमादाद्वै न कर्तव्यं कदाचन।
श्रेयसे भद्र विद्येयं भवेत्तव परन्तप॥ ६२
धैर्यं धार्यं साधकेन सर्वथा रक्षकः शिवः।
संपत्तीश्च फलं तुभ्यं दास्यते नात्र संशयः॥ ६३

इन्द्र बोले—हे तात! हे धनंजय! हे महामते! तुम्हारा जो भी अभिलषित हो, वह वर मुझसे माँगो। तुम्हारे लिये कुछ भी अदेय नहीं है। तब इन्द्रके उस वचनको सुनकर अर्जुन बोले—हे तात! हर प्रकारसे शत्रुओंसे पीड़ित मुझे विजय प्रदान करें॥ ५१-५२॥

शक्र बोले—[हे तात!] दुर्योधन आदि तुम्हारे शत्रु बड़े बलवान् हैं और द्रोण, भीष्म एवं कर्ण—ये सब निश्चय ही [युद्धमें] दुर्जय हैं॥ ५३॥

साक्षात् रुद्रका अंश द्रोणपुत्र अश्वत्थामा तो अत्यन्त दुर्जय है। वे सभी (भीष्म, द्रोण आदि) मुझसे भी असाध्य हैं; तो भी अपने हितकी बात सुनो॥ ५४॥

हे वीर! इस (अश्वत्थामा)-पर विजय प्राप्त करनेमें कोई भी समर्थ नहीं है; केवल शिव ही समर्थ हैं, इसलिये अब तुम शिव-मन्त्रका जप करो॥ ५५॥

सभी लोकोंके स्वामी, चराचरपति, स्वराट् और भोग तथा मोक्ष प्रदान करनेवाले शंकर सब कुछ करनेमें समर्थ हैं। ब्रह्मा आदि [देवश्रेष्ठ], सबको वर देनेवाले विष्णु, मैं [स्वयं इन्द्र], अन्य [देवगण] तथा विजयकी अभिलाषावाले दूसरे लोग—ये सभी भगवान् शिवकी उपासना करते हैं॥ ५६-५७॥

हे भारत! आजसे इस मन्त्रका जप छोड़कर पार्थिव-विधानसे नानाविध उपचारोंके द्वारा तन्मय होकर भक्तिभावसे शिवजीकी आराधना करो। इस प्रकार [पार्थिवार्चन तथा] ध्यानके द्वारा तुमको अचल सिद्धि इसी समय प्राप्त होगी, इसमें सन्देह न करो॥ ५८-५९॥

नन्दीश्वर बोले—ऐसा कहकर इन्द्रने अपने सभी सेवकोंको बुलाकर कहा कि तुमलोग सावधान होकर इनकी रक्षा करनेके लिये सदा यहाँ रहो। इसके बाद इन्द्रने अपने अनुचरोंको अर्जुनकी रक्षा आदिका आदेश देकर वात्सल्यपूर्वक अर्जुनसे पुनः कहा—॥ ६०-६१॥

इन्द्र बोले—हे परन्तप! हे भद्र! तुम कभी भी प्रमादपूर्वक राज्य मत करना; यह विद्या तुम्हारे कल्याणके लिये होगी। साधकको सदा धैर्य धारण करना चाहिये। रक्षक तो शिवजी हैं ही। वे तुमको सम्पत्तियोंके साथ फल (मोक्ष) भी प्रदान करेंगे; इसमें सन्देह नहीं है॥ ६२-६३॥

नन्दीश्वर उवाच

इति दत्त्वा वरं तस्य भारतस्य सुरेश्वरः।
स्मरञ्छिवपदाम्भोजं जगाम भवनं स्वकम्॥ ६४

नन्दीश्वर बोले—इस प्रकार अर्जुनको वरदान देकर इन्द्र शिवजीके चरणकमलोंका स्मरण करते हुए अपने भवनको चले गये॥ ६४॥

अर्जुनोऽपि महावीरः सुप्रणम्य सुरेश्वरम्।
तपस्तेपे संयतात्मा शिवमुद्दिश्य तद्विधम्॥ ६५

पराक्रमी अर्जुन भी सुरेश्वरको प्रणामकर संयतचित्त होकर शिवजीको उद्देश्य करके उसी प्रकारका तप करने लगे॥ ६५॥

इति श्रीशिवमहापुराणे तृतीयायां शतरुद्रसंहितायां किरातावतारवर्णनप्रसंगेऽर्जुनतपोवर्णनं नामाष्टात्रिंशोऽध्यायः॥ ३८॥

॥ इस प्रकार श्रीशिवमहापुराणके अन्तर्गत तृतीय शतरुद्रसंहितामें किरातावतारवर्णन-प्रसंगमें अर्जुनका तपवर्णन नामक अड़तीसवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ ३८॥

अथैकोनचत्वारिंशोऽध्यायः

मूक नामक दैत्यके वधका वर्णन

नन्दीश्वर उवाच

स्नानं स विधिवत्कृत्वा न्यासादि विधिवत्तथा।
ध्यानं शिवस्य सद्भक्त्या व्यासोक्तं यत्तथाकरोत्॥ १

नन्दीश्वर बोले—इस प्रकार व्यासजीने जैसा कहा था, उसी प्रकार अर्जुन विधिवत् स्नान, न्यासादि करके उत्तम भक्तिसे शिवका ध्यान करने लगे॥ १॥

एकपादतलेनैव तिष्ठन्मुनिवरो यथा।
सूर्ये दृष्टिं निबध्यैकां मन्त्रमावर्तयन् स्थितः॥ २

वे एक श्रेष्ठ मुनिके समान एक पैरके तलवेपर स्थित होकर अपनी एकाग्र दृष्टि सूर्यमें लगाकर विधिपूर्वक शिवके मन्त्रका जप खड़े-खड़े करने लगे॥ २॥

तपस्तेपेति सम्प्रीत्या संस्मरन्मनसा शिवम्।
पञ्चाक्षरं मनुं शम्भोर्जपन्सर्वोत्तमोत्तमम्॥ ३

वे मनसे शिवका स्मरण करते हुए तथा शिवजीके सर्वोत्तम पंचाक्षरमन्त्रका जप करते हुए प्रीतिपूर्वक तप करने लगे॥ ३॥

तपसस्तेज एवासीद्यथा देवा विसिस्मियुः।
पुनश्चैव शिवं याताः प्रत्यूचुस्ते समाहिताः॥ ४

उनके तपका तेज ऐसा था कि देवता भी आश्चर्यचकित हो गये, फिर वे शिवजीके समीप गये और सावधान होकर कहने लगे—॥ ४॥

देवा ऊचुः

नरेणैकेन सर्वेश त्वदर्थे तप आहितम्।
यदिच्छति नरः सोऽयं किन्न यच्छति तत्प्रभो॥ ५

देवता बोले—हे सर्वेश! एक मनुष्य आपको प्रसन्न करनेके लिये तप कर रहा है। अतः हे प्रभो! यह मनुष्य जो कुछ चाहता है, उसे आप क्यों नहीं दे देते हैं?॥ ५॥

नन्दीश्वर उवाच

इत्युक्त्वा तु स्तुतिं चक्रुर्विविधां ते तदा सुराः।
तत्पादयोर्दृशः कृत्वा तत्र तस्थुः स्थिराधयः॥ ६

नन्दीश्वर बोले—तब ऐसा कहकर चिन्ताग्रस्त वे देवगण शिवजीकी अनेक प्रकारसे स्तुति करने लगे। वे उनके चरणोंपर दृष्टि लगाकर वहीं स्थित हो गये॥ ६॥

शिवस्तु तद्वचः श्रुत्वा महाप्रभुरुदारधीः।
सुविहस्य प्रसन्नात्मा सुरान्वचनमब्रवीत्॥ ७

तब उदारबुद्धिवाले महाप्रभु शिव उनका वचन सुनकर हँस करके प्रसन्नचित्त होकर देवताओंसे यह वचन कहने लगे—॥ ७॥

शिव उवाच

स्वस्थानं गच्छत सुराः सर्वे सत्यं न संशयः।
सर्वथाहं करिष्यामि कार्यं वो नात्र संशयः॥ ८

नन्दीश्वर उवाच

तच्छ्रुत्वा शम्भुवचनं निश्चयं परमं गताः।
परावृत्य गताः सर्वे स्वस्थानं ते हि निर्जराः॥ ९

एतस्मिन्नन्तरे दैत्यो मूकनामागतस्तदा।
सौकरं रूपमास्थाय प्रेषितश्च दुरात्मना॥ १०

दुर्योधनेन विप्रेन्द्र मायिना चार्जुनं तदा।
यत्रार्जुनः स्थितश्चासीत्तेन मार्गेण वै तदा॥ ११

शृङ्गाणि पर्वतस्यैव च्छिन्दन्वृक्षाननेकशः।
शब्दं च विविधं कुर्वन्नतिवेगेन संयुतः॥ १२

अर्जुनोऽपि च तं दृष्ट्वा मूकनामासुरं तदा।
स्मृत्वा शिवपदाम्भोजं विचारे तत्परोऽभवत्॥ १३

अर्जुन उवाच

कोऽयं वा कुत आयाति क्रूरकर्मा च दृश्यते।
ममानिष्टं ध्रुवं कर्तुं समागच्छत्यसंशयम्॥ १४

ममैवं मन आयाति शत्रुरेव न संशयः।
मया विनिहताः पूर्वमनेके दैत्यदानवाः॥ १५

तदीयः कश्चिदायाति वैरं साधयितुं पुनः।
अथवा च सखा कश्चिद् दुर्योधनहितावहः॥ १६

यस्मिन्दृष्टे प्रसीदेत्स्वं मनः स हितकृद् ध्रुवम्।
यस्मिन्दृष्टे तदेव स्यादाकुलं शत्रुरेव सः॥ १७

आचारः कुलमाख्याति वपुराख्याति भोजनम्।
वचनं श्रुतमाख्याति स्नेहमाख्याति लोचनम्॥ १८

आकारेण तथा गत्या चेष्टया भाषितैरपि।
नेत्रवक्त्रविकाराभ्यां ज्ञायतेऽन्तर्हितं मनः॥ १९

उज्ज्वलं सरसं चैव वक्रमारक्तकं तथा।
नेत्रं चतुर्विधं प्रोक्तं तस्य भावं पृथग्बुधाः॥ २०

शिवजी बोले—हे देवताओ! आप लोगोंकी बात निःसन्देह सत्य है। अब आपलोग अपने-अपने स्थानको जाइये; मैं आपलोगोंका कार्य सर्वथा करूँगा; इसमें संशय नहीं है॥ ८॥

नन्दीश्वर बोले—शिवजीका यह वचन सुनकर देवताओंको पूर्ण विश्वास हो गया और वहाँसे लौटकर वे अपने-अपने स्थानको चले गये॥ ९॥

हे विप्रेन्द्र! इसी बीच दुरात्मा तथा मायावी दुर्योधनके द्वारा अर्जुनके प्रति भेजा गया मूक नामक दैत्य शूकरका रूप धारणकर वहाँ आया, जहाँ अर्जुन स्थित थे। वह पर्वतोंके शिखरोंको तोड़ता हुआ, अनेक वृक्षोंको उखाड़ता हुआ तथा विविध प्रकारके शब्द करता हुआ बड़े वेगसे उसी मार्गसे जा रहा था॥ १०—१२॥

उस समय अर्जुन भी मूक नामक दैत्यको देखकर शिवके चरणकमलोंका स्मरणकर [अपने मनमें] विचार करने लगे॥ १३॥

अर्जुन बोले—यह कौन है? कहाँसे आ रहा है? यह तो बड़ा क्रूर कर्म करनेवाला दिखायी दे रहा है! निश्चय ही यह मेरा अनिष्ट करनेके लिये मेरी ओर आ रहा है॥ १४॥

मेरे मनमें तो यह आ रहा है कि यह शत्रु ही है; इसमें सन्देह नहीं है। मैंने इससे पूर्व अनेक दैत्य-दानवोंका संहार किया है। उन्हींका कोई सम्बन्धी अपना वैर साधनेके लिये [मेरी ओर] आ रहा है अथवा यह दुर्योधनका कोई हितकारी मित्र है॥ १५-१६॥

जिसके देखनेसे अपना मन प्रसन्न हो, वह निश्चय ही हितैषी होता है और जिसके देखनेसे मनमें व्याकुलता उत्पन्न हो, वह अवश्य ही शत्रु होता है। सदाचारसे कुलका, शरीरसे भोजनका, वचनके द्वारा शास्त्रज्ञानका तथा नेत्रके द्वारा स्नेहका पता लग जाता है॥ १७-१८॥

आकार, गति, चेष्टा, सम्भाषण एवं नेत्र तथा मुखके विकारसे मनुष्यके अन्तःकरणकी बात ज्ञात हो जाती है। उज्ज्वल, सरस, टेढ़ा और लाल—ये चार प्रकारके नेत्र कहे गये हैं; विद्वानोंने उनका पृथक्-पृथक् भाव बताया है॥ १९-२०॥

उज्ज्वलं मित्रसंयोगे सरसं पुत्रदर्शने।
वक्रं च कामिनीयोगे आरक्तं शत्रुदर्शने॥ २१

अस्मिन्मम तु सर्वाणि कलुषानीन्द्रियाणि च।
अयं शत्रुर्भवेदेव मारणीयो न संशयः॥ २२

गुरोश्च वचनं मेऽद्य वर्तते दुःखदस्त्वया।
हन्तव्यः सर्वथा राजन्नात्र कार्या विचारणा॥ २३

एतदर्थं त्वायुधानि मम चैव न संशयः।
विचार्येति च तत्रैव बाणं संस्थाय संस्थितः॥ २४

एतस्मिन्नन्तरे तत्र रक्षार्थं ह्यर्जुनस्य वै।
तद्भक्तेश्च परीक्षार्थं शङ्करो भक्तवत्सलः॥ २५
विदग्धभिल्लरूपं हि गणैः सार्धं महाद्भुतम्।
तस्य दैत्यस्य नाशार्थं द्रुतं कृत्वा समागतः॥ २६
बद्धकच्छश्च वल्लीभिर्बद्ध्वा केशान् हरस्तदा।
शरीरे श्वेतरेखाश्च धनुर्बाणयुतः स्वयम्॥ २७
बाणानां तूणकं पृष्ठे धृत्वा वै स जगाम ह।
गणश्चैव तथा जातो भिल्लराजोऽभवच्छिवः॥ २८

शब्दांश्च विविधान्कृत्वा निर्ययौ वाहिनीपतिः।
सूकरस्य ससाराथ शब्दश्च प्रदिशो दश॥ २९

वनेचरेण शब्देन व्याकुलश्चार्जुनस्तदा।
पर्वताद्याश्च तैः शब्दैस्ते सर्वे व्याकुलास्तदा॥ ३०

अहो किन्नु भवेदेष शिवः शुभकरस्त्विह।
मया चैव श्रुतं पूर्वं कृष्णेन कथितं पुनः॥ ३१

व्यासेन कथितं चैव स्मृत्वा देवैस्तथा पुनः।
शिवः शुभकरः प्रोक्तः शिवः सुखकरस्तथा॥ ३२

मुक्तिदश्च स्वयं प्रोक्तो मुक्तिदानान्न संशयः।
तन्नामस्मरणात्पुंसां कल्याणं जायते ध्रुवम्॥ ३३

भजतां सर्वभावेन दुःखं स्वप्नेऽपि नो भवेत्।
यदा कदाचिज्जायेत तदा कर्मसमुद्भवम्॥ ३४

मित्रके मिलनेपर उज्ज्वल, पुत्रको देखनेपर सरस, स्त्रीके मिलनेपर वक्र तथा शत्रुके देखनेपर नेत्र लाल हो जाते हैं। किंतु इसे देखनेपर तो मेरी सारी इन्द्रियाँ कलुषित हो गयी हैं। अतः यह अवश्य ही मेरा शत्रु है, इसका वध कर देना चाहिये; इसमें सन्देह नहीं है॥ २१-२२॥

मेरे गुरुका यह कथन भी है—हे राजन्! तुम दुःख देनेवालेका सर्वथा वध कर देना, इसमें विचार नहीं करना चाहिये। निस्सन्देह इसीलिये तो ये आयुध भी हैं। इस प्रकार विचारकर अर्जुन [धनुषपर] बाण चढ़ाकर खड़े हो गये॥ २३-२४॥

इसी बीच अर्जुनकी रक्षाके लिये एवं उनकी भक्तिकी परीक्षा करनेके लिये भक्तवत्सल भगवान् शंकर अपने गणोंके सहित अत्यन्त अद्भुत सुशिक्षित भीलका रूप धारणकर उस दैत्यका विनाश करनेके लिये शीघ्र ही वहाँ आ पहुँचे। कच्छ (लाँग-काछ) लगाये हुए, लताओंसे अपने केशोंको बाँधे हुए, शरीरपर श्वेत वर्णकी रेखा अंकित किये हुए, धनुष-बाण धारण किये हुए तथा पीठपर बाणोंका तरकस धारण किये हुए वे गणोंसहित वहाँ गये। वे शिवजी भीलराज बने हुए थे॥ २५—२८॥

वे शिवजी भील सेनाके अधिपति होकर कोलाहल करते हुए निकले, उसी समय शूकरके गरजनेकी ध्वनि दसों दिशाओंमें सुनायी पड़ी॥ २९॥

तब उस वनचारी शूकरके [घोर घर्घर] शब्दसे अर्जुन व्याकुल हो गये, साथ ही जो पर्वत आदि थे, वे सभी उन शब्दोंसे व्याकुल हो उठे॥ ३०॥

अहो! यह क्या है? कहीं ये कल्याणकारी शिवजी ही तो नहीं हैं, जो यहाँ पधारे हैं; क्योंकि मैंने ऐसा पूर्वमें सुना था, श्रीकृष्णने भी मुझसे कहा था, व्यासजीने भी ऐसा ही कहा था और देवगणोंने भी स्मरणकर यही बात कही थी कि शिवजी ही सभी प्रकारका मंगल करनेवाले तथा सुख देनेवाले कहे गये हैं॥ ३१-३२॥

वे मुक्ति देनेके कारण मुक्तिदाता कहे गये हैं; इसमें सन्देह नहीं है। उनके नामस्मरणमात्रसे निश्चितरूपसे मनुष्योंका कल्याण होता है। सब प्रकारसे इनका भजन करनेवालोंको स्वप्नमें भी दुःख नहीं होता है। यदि कभी होता है, तो उसे कर्मजन्य समझना चाहिये॥ ३३-३४॥

भावितद्बह्वपि ज्ञेयं नूनमल्पं न संशयः।
प्रारब्धस्याथ वा दोषो नूनं ज्ञेयो विशेषतः॥ ३५

अथवा बहु चाल्पं हि भोग्यं निस्तीर्य शङ्करः।
कदाचिदिच्छया तस्य दूरीकुर्यान्न संशयः॥ ३६

[शिवजीके अनुग्रहसे तो] प्रबल होनहार भी अवश्य कम हो जाता है—ऐसा जानना चाहिये; इसमें सन्देह नहीं है अथवा विशेषरूपसे प्रारब्धका दोष समझना चाहिये और शिवजी स्वयं अपनी इच्छासे कभी बहुत अथवा कम उस भोगको भुगताकर उस दुर्भोग्यका निवारण करते हैं, इसमें संशय नहीं है॥ ३५-३६॥

विषं चैवामृतं कुर्यादमृतं विषमेव वा।
यदिच्छति करोत्येव समर्थः किन्निषिध्यते॥ ३७

इत्थं विचार्यमाणेऽपि भक्तैरन्यैः पुरातनैः।
भाविभिश्च सदा भक्तैरिहानीय मनः स्थिरम्॥ ३८

वे विषको अमृत एवं अमृतको विष बना देते हैं। वे समर्थ हैं, जैसा चाहते हैं, वैसा करते हैं, भला! उन सर्वसमर्थको कौन मना कर सकता है? अन्य पुरातन भक्तोंके द्वारा इस प्रकार विचार किये जानेके कारण भावी भक्तोंको भी सदा शिवजीमें अपना मन स्थिर रखना चाहिये॥ ३७-३८॥

लक्ष्मीर्गच्छेच्चावतिष्ठेन्मरणं निकटे पुरः।
निन्दां वाथ प्रकुर्वन्तु स्तुतिं वा दुःखसंक्षयम्॥ ३९

जायते पुण्यपापाभ्यां शङ्करः सुखदः सदा।
कदाचिच्च परीक्षार्थं दुःखं यच्छति वै शिवः॥ ४०

अन्ते च सुखदः प्रोक्तो दयालुत्वान्न संशयः।
यथा चैव सुवर्णं च शोधितं शुद्धतां व्रजेत्॥ ४१

लक्ष्मी रहे या चली जाय, मृत्यु भले ही सन्निकट और समक्ष खड़ी हो, लोग निन्दा करें अथवा स्तुति करें, [दुःख बना रहे या] दुःखनाश हो जाय [यह इष्ट-अनिष्टात्मक द्वन्द्व तो] पुण्य तथा पापके कारण उत्पन्न होता है, [इसमें शिव निमित्त नहीं हैं] वे तो सर्वदा अपने भक्तोंको सुख ही देते हैं। कभी-कभी वे अपने भक्तोंकी परीक्षा करनेके लिये उनको दुःख भी देते हैं; किंतु दयालु होनेके कारण वे अन्तमें सुख देनेवाले ही होते हैं। जैसे सुवर्ण अग्निमें तपानेपर शुद्ध होता है, उसी प्रकार भक्त भी तपानेसे निखरते हैं॥ ३९—४१॥

एवं चैव मया पूर्वं श्रुतं मुनिमुखात्तथा।
अतस्तद्भजनेनैव लप्स्येऽहं सुखमुत्तमम्॥ ४२

इत्येवं तु विचारं स करोति यावदेव हि।
तावच्च सूकरः प्राप्तो बाणसंमोचनावधिः॥ ४३

शिवोऽपि पृष्ठतो लग्नो ह्यायातः शूकरस्य हि।
तयोर्मध्ये तदा सोऽयं दृश्यते शृङ्गमद्भुतम्॥ ४४

पूर्वकालमें मैंने मुनियोंके मुखसे ऐसा ही सुना है, इसलिये मैं उनके भजनसे ही उत्तम सुख प्राप्त करूँगा, जबतक अर्जुन इस प्रकारका विचार कर ही रहे थे, तबतक शरसन्धानका लक्ष्य वह शूकर वहाँ आ पहुँचा। उधर, [भीलवेषधारी] शिवजी भी शूकरका पीछा करते हुए आ पहुँचे। उस समय उन दोनोंके बीचमें वह शूकर अद्भुत शिखरके समान दिखायी पड़ रहा था॥ ४२—४४॥

तस्य प्रोक्तं च माहात्म्यं शिवः शीघ्रतरं गतः।
अर्जुनस्य च रक्षार्थं शङ्करो भक्तवत्सलः॥ ४५

अर्जुनने शिवका माहात्म्य कहा था, इसलिये भक्तवत्सल शिव उनकी रक्षा करनेके लिये वहाँ पहुँच गये॥ ४५॥

एतस्मिन्समये ताभ्यां कृतं बाणविमोचनम्।
शिवबाणस्तु पुच्छे वै ह्यर्जुनस्य मुखे तथा॥ ४६
शिवस्य पुच्छतो गत्वा मुखान्निस्सृत्य शीघ्रतः।
भूमौ विलीनः संयातस्तस्य वै पुच्छतो गतः॥ ४७
पपात पार्श्वतश्चैव बाणश्चैवार्जुनस्य च।
सूकरस्तत्क्षणं दैत्यो मृतो भूमौ पपात ह॥ ४८

इसी समय उन दोनोंने बाण चलाया; शिवजीका बाण शूकरकी पूँछमें तथा अर्जुनका बाण मुखमें लगा। शिवजीका बाण पूँछमें घुसकर मुखसे निकलकर शीघ्र ही पृथ्वीमें विलीन गया और अर्जुनका बाण [मुखमें प्रविष्ट होकर] पूँछसे निकलकर पार्श्वभागमें गिर पड़ा। वह शूकररूप दैत्य उसी क्षण मरकर पृथ्वीपर गिर पड़ा॥ ४६—४८॥

देवा हर्षं परं प्रापुः पुष्पवृष्टिं च चक्रिरे।
जयपूर्वं स्तुतिकराः प्रणम्य च पुनः पुनः॥ ४९

देवता परम हर्षित हो गये और पुष्पवृष्टि करने लगे। उन्होंने बार-बार प्रणामकर जय-जयकार करते हुए शिवजीकी स्तुति की॥ ४९॥

शिवस्तुष्टमना आसीदर्जुनः सुखमागतः।
दैत्यस्य च तदा दृष्ट्वा क्रूरं रूपं च तौ तदा॥ ५०
अर्जुनस्तु विशेषेण सुखिना प्राह चेतसा।
अहो दैत्यवरश्चायं रूपं तु परमाद्भुतम्॥ ५१
कृत्वागतो मद्वधार्थं शिवेनाहं सुरक्षितः।
ईश्वरेण ममाद्यैव बुद्धिर्दत्ता न संशयः॥ ५२

उस दैत्यके क्रूर रूपको देखकर शिवजी प्रसन्नचित्त हो गये और अर्जुनको भी सुख प्राप्त हुआ। तब अर्जुनने विशेषरूपसे प्रसन्न मनसे कहा—अरे, यह महादैत्य अत्यन्त अद्भुत रूप धारणकर मेरे वधके लिये आया था, किंतु शिवजीने मेरी रक्षा की। शिवजीने ही आज मुझे बुद्धि प्रदान की; इसमें सन्देह नहीं है॥ ५०—५२॥

विचार्येत्यर्जुनस्तत्र जगौ शिव शिवेति च।
प्रणनाम शिवं भूयस्तुष्टाव च पुनः पुनः॥ ५३

ऐसा विचारकर अर्जुनने 'शिव-शिव' कहकर उनका यशोगान किया और उन्हें प्रणाम किया तथा बार-बार उनकी स्तुति की॥ ५३॥

इति श्रीशिवमहापुराणे तृतीयायां शतरुद्रसंहितायां किरातावतारवर्णने मूकदैत्यवधो नामैकोनचत्वारिंशोऽध्यायः॥ ३९॥

॥ इस प्रकार श्रीशिवमहापुराणके अन्तर्गत तृतीय शतरुद्रसंहिताके किरातावतारवर्णनमें मूकदैत्यवध नामक उनतालीसवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ ३९॥

अथ चत्वारिंशोऽध्यायः

भीलस्वरूप गणेश्वर एवं तपस्वी अर्जुनका संवाद

नन्दीश्वर उवाच

सनत्कुमार सर्वज्ञ शृणु लीलां परात्मनः।
भक्तवात्सल्यसंयुक्तां तद् दृढत्वविदर्भिताम्॥ १

नन्दिकेश्वर बोले—हे सनत्कुमार! हे सर्वज्ञ! अब परमात्मा शिवकी भक्तवत्सलतासे युक्त तथा उनकी दृढ़ भक्तिसे भरी हुई लीला सुनिये॥ १॥

शिवोऽप्यथ स्वभृत्यं वै प्रेषयामास स द्रुतम्।
बाणार्थं च तदा तत्रार्जुनोऽपि समगात्ततः॥ २

एकस्मिन् समये प्राप्तौ बाणार्थं तद्गणार्जुनौ।
अर्जुनस्तं पराभर्त्स्य स्वबाणं चाग्रहीत्तदा॥ ३

उसके बाद उन शिवजीने अपना बाण लानेके लिये शीघ्र ही अपने सेवकको वहाँ भेजा और उसी समय अर्जुन भी अपना बाण लेनेके लिये वहाँ पहुँचे। एक ही समय शिवका गण तथा अर्जुन बाण लेने हेतु वहाँ उपस्थित हुए, तब अर्जुनने उसे धमकाकर अपना बाण ले लिया॥ २-३॥

गणः प्रोवाच तं तत्र किमर्थं गृह्यते शरः।
बाणश्चैवास्मदीयो वै मुच्यतां ऋषिसत्तम॥ ४

इत्युक्तस्तेन भिल्लस्य गणेन मुनिसत्तम।
सोऽर्जुनः शङ्करं स्मृत्वा वचनं च तमब्रवीत्॥ ५

अर्जुन उवाच

अज्ञात्वा किं च वदसि मूर्खोऽसि त्वं वनेचर।
बाणश्च मोचितो मेऽद्य त्वदीयश्च कथं पुनः॥ ६

रेखारूपं च पिच्छानि मन्नामाङ्कित एव च।
त्वदीयश्च कथं जातः स्वभावो दुस्त्यजस्तव॥ ७

नन्दीश्वर उवाच

इत्येवं तद्वचः श्रुत्वा विहस्य स गणेश्वरः।
अर्जुनं ऋषिरूपं तं भिल्लो वाक्यमुपाददे॥ ८

तापस श्रूयतां रे त्वं न तपः क्रियते त्वया।
वेषतश्च तपस्वी त्वं न यथार्थं छलायते॥ ९

तपस्वी च कथं मिथ्या भाषणं कुरुते नरः।
नैकाकिनं च मां त्वं च जानीहि वाहिनीपतिम्॥ १०

बहुभिर्वनभिल्लैश्च युक्तः स्वामी स आसते।
समर्थः सर्वथा कर्तुं विग्रहानुग्रहौ पुनः॥ ११

वर्तते तस्य बाणोऽयं यो नीतश्च त्वयाधुना।
अयं बाणश्च ते पार्श्वे न स्थास्यति कदाचन॥ १२

तपःफलं कथं त्वं च हातुमिच्छसि तापस।
चौर्याच्छलादर्द्यमानाद् विस्मयात्सत्यभञ्जनात्॥ १३

तपसा क्षीयते सत्यमेतदेव मया श्रुतम्।
तस्माच्च तपसस्तेऽद्य भविष्यति फलं कुतः॥ १४

तस्मादमुक्तबाणो हि कृतघ्नस्त्वं भविष्यसि।
ममैव स्वामिना बाणस्त्वदर्थे मोचितो ध्रुवम्॥ १५

शत्रुश्च मारितस्तेन पुनर्बाणश्च रक्षितः।
अत्यन्तं च कृतघ्नोऽसि तपोऽशुभकरस्तथा॥ १६

तब शिवजीका गण उनसे कहने लगा—हे मुनिसत्तम! यह बाण मेरा है, आप इसे क्यों ले रहे हैं, आप इसे छोड़ दीजिये। हे मुनिश्रेष्ठ! भीलराजके उस गणद्वारा इस प्रकार कहे जानेपर उन अर्जुनने शिवजीका स्मरण करके उससे कहा—॥ ४-५॥

अर्जुन बोले—हे वनेचर! बिना जाने तुम ऐसा क्यों बोल रहे हो? तुम मूर्ख हो; यह बाण अभी मैंने चलाया था, फिर यह तुम्हारा किस प्रकार हो सकता है? इस बाणके पिच्छ रेखाओंसे चित्रित हैं तथा इसमें मेरा नाम अंकित है। यह तुम्हारा कैसे हो गया? निश्चय ही तुम्हारा [यह हठी] स्वभाव कठिनाईसे छूटनेवाला है॥ ६-७॥

नन्दीश्वर बोले—उनकी यह बात सुनकर गणेश्वर उस भीलने महर्षिरूपधारी उन अर्जुनसे यह वचन कहा—अरे तपस्वी! सुनो, तुम तप नहीं कर रहे हो, तुम केवल वेषसे तपस्वी हो, यथार्थरूपमें [तपोनिरत व्यक्ति] छल नहीं करते॥ ८-९॥

तपस्वी व्यक्ति असत्य भाषण कैसे कर सकता है? तुम मुझ सेनापतिको यहाँ अकेला मत समझो॥ १०॥

मेरे स्वामी भी वनके बहुत-से भीलोंके साथ यहाँ विद्यमान हैं। वे विग्रह तथा अनुग्रह करनेमें सब प्रकारसे समर्थ भी हैं। इस समय जिस बाणको तुमने लिया है, वह उनका ही है, तुम इस बातको अच्छी तरह जान लो कि यह बाण तुम्हारे पास कभी नहीं रहेगा॥ ११-१२॥

हे तापस! [तुम असत्य बोलकर] अपनी तपस्याका फल क्यों नष्ट कर रहे हो, क्योंकि चोरीसे, छलसे, किसीको व्यथित करनेसे, अहंकारसे तथा सत्यको छोड़नेसे व्यक्ति अपनी तपस्यासे रहित हो जाता है। यह बात मैंने यथार्थ रूपसे सुनी है; तब तुम्हें इस तपस्याका फल कैसे मिलेगा?॥ १३-१४॥

इसलिये यदि तुम बाणका त्याग नहीं करोगे, तो कृतघ्न कहे जाओगे; क्योंकि मेरे स्वामीने निश्चितरूपसे तुम्हारी ही रक्षाके लिये यह बाण [शूकरपर] चलाया था। उन्होंने तुम्हारे ही शत्रुको मारा है और तुमने उनके बाणको रख लिया; अतः तुम अति कृतघ्न हो, तुम्हारी यह तपस्या अशुभ करनेवाली है॥ १५-१६॥

सत्यं न भाषसे त्वं च किमतः सिद्धिमिच्छसि।
प्रयोजनं चेद् बाणेन स्वामी च याच्यतां मम॥ १७

जब तुम [तपस्यामें निरत हो] सत्यभाषण नहीं कर रहे हो, तब तुम इस तपसे सिद्धिकी अपेक्षा कैसे रखते हो? यदि तुम्हें बाणकी आवश्यकता हो, तो मेरे स्वामीसे माँग लो॥ १७॥

ईदृशांश्च बहून्बाणांस्तदा दातुं क्षमः स्वयम्।
राजा च वर्तते मेऽद्य किं त्वेवं याच्यते त्वया॥ १८

उपकारं परित्यज्य ह्यपकारं समीहसे।
नैतद्युक्तं त्वयाद्यैव क्रियते त्यज चापलम्॥ १९

वे ऐसे बहुत-से बाण देनेमें समर्थ हैं। वे हमारे राजा हैं, फिर तुम उनसे क्यों नहीं माँग लेते हो? तुम्हें तो उनका उपकार मानना चाहिये, उलटे अपकार कर रहे हो, इस समय तुम्हारा ऐसा व्यवहार उचित प्रतीत नहीं होता, तुम इस चपलताका त्याग करो॥ १८-१९॥

नन्दीश्वर उवाच

इत्येवं वचनं तस्य श्रुत्वा पार्थोऽर्जुनस्तदा।
क्रोधं कृत्वा शिवं स्मृत्वा मितं वाक्यमथाब्रवीत्॥ २०

नन्दीश्वर बोले—तब उसकी यह बात सुनकर पृथापुत्र अर्जुन क्रोध करके पुनः शिवजीका स्मरण करते हुए मर्यादित वाक्य कहने लगे—॥ २०॥

अर्जुन उवाच

शृणु भिल्ल प्रवक्ष्यामि न सत्यं तव भाषणम्।
यथा जातिस्तथा त्वां च जानामि हि वनेचर॥ २१

अर्जुन बोले—हे भील! मैं जो कहता हूँ, तुम उसे सुनो। हे वनेचर! जैसी तुम्हारी जाति है और जैसे तुम हो, मैं उसे [अच्छी तरह] जानता हूँ॥ २१॥

अहं राजा भवान् चौरः कथं युद्धप्रयुक्तता।
युद्धं मे सबलैः कार्यं नाधमैर्हि कदाचन॥ २२

तस्मात्ते च तथा स्वामी भविष्यति भवादृशः।
दातारश्च वयं प्रोक्ताश्चौरा यूयं वनेचराः॥ २३

कथं याच्यो मया भिल्लराज एवं च साम्प्रतम्।
त्वमेव याचसे नैव बाणं मां किं वनेचर॥ २४

मैं राजा हूँ और तुम चोर हो। दोनोंका युद्ध किस प्रकार उचित होगा? मैं बलवानोंसे युद्ध करता हूँ, अधमोंसे कभी नहीं। इसलिये तुम्हारा स्वामी भी तुम्हारे समान ही होगा। देनेवाले तो हम कहे गये हैं, तुम वनेचर तो चोर हो। मैं भीलराजसे किस प्रकार अयुक्त याचना कर सकता हूँ; हे वनेचर! तुम्हीं मुझसे बाण क्यों नहीं माँग लेते हो?॥ २२—२४॥

ददामि ते तथा बाणान् सन्ति मे बहवो ध्रुवम्।
राजा च ग्रहणं चैव न दास्यति तथा भवेत्॥ २५

मैं वैसे बहुत-से बाण तुम्हें दे सकता हूँ, मेरे पास बहुत-से बाण हैं। राजा होकर किससे याचना करे अथवा माँगनेपर न दे, तो कैसा राजा?॥ २५॥

किं पुनश्च तथा बाणान्प्रयच्छामि वनेचर।
यदि मे या चिकीर्षा स्यात्कथं नागम्यतेऽधुना॥ २६

हे वनेचर! मैं क्या कहूँ? मैं बहुत-से ऐसे बाण दे सकता हूँ; यदि तुम्हारे स्वामीको मेरे बाणोंकी अपेक्षा है तो वह आकर मुझसे क्यों नहीं माँगता?॥ २६॥

यथागच्छेत्तु ते भर्ता किमर्थं भाषतेऽधुना।
आगत्य च मया सार्धं जित्वा युद्धे च मां पुनः॥ २७

नीत्वा बाणमिमं भिल्लस्वामी ते वाहिनीपतिः।
निजालयं सुखं यातु विलम्बः क्रियते कथम्॥ २८

तुम्हारा स्वामी यहाँ आये, वहाँसे क्यों बकवास कर रहा है? यहाँ आकर मेरे साथ युद्ध करे और मुझे युद्धमें पराजित करके तुम्हारा सेनापति भीलराज इस बाणको लेकर सुखसे अपने घर चला जाय, वह देर क्यों कर रहा है?॥ २७-२८॥

नन्दीश्वर उवाच

महेश्वरकृपाप्राप्तसद्बलस्यार्जुनस्य हि।
इत्येतद्वचनं श्रुत्वा भिल्लो वाक्यमथाब्रवीत्॥ २९

नन्दीश्वर बोले—महेश्वरकी कृपासे उत्तम बल प्राप्त किये हुए अर्जुनकी इस प्रकारकी बात सुनकर उस भीलने कहा—॥ २९॥

भिल्ल उवाच

अज्ञोऽसि त्वं ऋषिर्नासि मरणं त्वीहसे कथम्।
देहि बाणं सुखं तिष्ठ त्वन्यथा क्लेशभाग्भवेः॥ ३०

भील बोला—तुम ऋषि नहीं हो, मूर्ख हो, तुम अपनी मृत्यु क्यों चाह रहे हो, बाणको दे दो और सुखपूर्वक रहो, अन्यथा कष्ट प्राप्त करोगे॥ ३०॥

नन्दीश्वर उवाच

इत्युक्तस्तेन भिल्लेन शिवसच्छक्तिशोभिना।
गणेन पाण्डवस्तं च प्राह स्मृत्वा च शङ्करम्॥ ३१

नन्दीश्वर बोले—शिवकी श्रेष्ठ शक्तिसे शोभित होनेवाले भीलकी बात सुनकर पाण्डुपुत्र अर्जुनने शिवजीका स्मरण करते हुए उस भीलसे कहा—॥ ३१॥

अर्जुन उवाच

मद्वाक्यं तत्त्वतो भिल्ल शृणु त्वं च वनेचर।
आगमिष्यति ते स्वामी दर्शयिष्ये फलं तदा॥ ३२

अर्जुन बोले—हे वनेचर! हे भील! मेरी बातको भलीभाँति सुनो; जब तुम्हारा स्वामी यहाँ आयेगा, तब मैं उसको इसका फल दिखाऊँगा॥ ३२॥

न शोभते त्वया युद्धं करिष्ये स्वामिना तव।
उपहासकरं ज्ञेयं युद्धं सिंहशृगालयोः॥ ३३

तुम्हारे साथ युद्ध करना मुझे शोभा नहीं देता, अतः तुम्हारे स्वामीके साथ युद्ध करूँगा; क्योंकि सिंह और गीदड़का युद्ध उपहासास्पद होता है॥ ३३॥

श्रुतं च मद्वचस्तेऽद्य द्रक्ष्यसि त्वं महाबलम्।
गच्छस्व स्वामिनं भिल्ल यथेच्छसि तथा कुरु॥ ३४

हे भील! तुमने मेरी बात सुन ली, अब [आगे] मेरा महाबल भी देखोगे। अब तुम अपने स्वामीके पास जाओ और जैसी तुम्हारी इच्छा हो, वैसा करो॥ ३४॥

नन्दीश्वर उवाच

इत्युक्तस्तु गतस्तत्र भिल्लः पार्थेन वै मुने।
शिवावतारो यत्रास्ते किरातो वाहिनीपतिः॥ ३५
अथार्जुनस्य वचनं भिल्लनाथाय विस्तरात्।
सर्वं निवेदयामास तस्मै भिल्लपरात्मने॥ ३६

नन्दीश्वर बोले—अर्जुनके द्वारा इस प्रकार कहे जानेपर वह भील वहाँ गया, जहाँ शिवावतार भीलराज स्थित थे। तदुपरान्त उसने अर्जुनका सारा वचन भीलस्वरूपी परमात्मासे विस्तारपूर्वक निवेदन किया॥ ३५-३६॥

स किरातेश्वरः श्रुत्वा तद्वचो हर्षमागतः।
आजगाम स्वसैन्येन शङ्करो भिल्लरूपधृक्॥ ३७

किरातेश्वर शिव उसका वचन सुनकर अत्यन्त हर्षित हुए, फिर भीलरूपधारी सदाशिव अपनी सेनाके साथ [जहाँ अर्जुन थे,] वहाँ आये॥ ३७॥

अर्जुनश्च तदा सेनां किरातस्य च पाण्डवः।
दृष्ट्वा गृहीत्वा सशरं धनुः सम्मुख आययौ॥ ३८

उस समय पाण्डुपुत्र अर्जुन भी किरात सेनाको देखकर धनुष-बाण लेकर सामने आ गये॥ ३८॥

अथो किरातश्च पुनः प्रेषयामास तं चरम्।
तन्मुखेन जगौ वाक्यं भारताय महात्मने॥ ३९

इसके बाद किरातेश्वरने पुनः भरतवंशीय महात्मा अर्जुनके पास दूत भेजा और उसके मुखसे अपना सन्देश उन्हें कहलवाया॥ ३९॥

किरात उवाच

पश्य सैन्यं तपस्विंस्त्वं मुञ्च बाणं व्रजाधुना।
मरणं स्वल्पकार्यार्थं कथमिच्छसि साम्प्रतम्॥ ४०

किरात बोला—हे दूत! तुम जाकर अर्जुनसे कहो, हे तपस्विन्! तुम मेरी इस विशाल सेनाको देखो, मेरा बाण मुझे लौटा दो और अब चले जाओ। स्वल्प कार्यके लिये इस समय क्यों मरना चाहते हो?॥ ४०॥

भ्रातरस्तव दुःखार्ताः कलत्रं च ततः परम्।
पृथिवी हस्ततस्तेऽद्य यास्यतीति मतिर्मम॥ ४१

तुम्हारे भाई दुखी होंगे, इससे भी अधिक तुम्हारी स्त्री दुखी होगी। मुझे तो ऐसा प्रतीत होता है कि तुम्हारे हाथसे आज पृथ्वी भी चली जायगी॥ ४१॥

नन्दीश्वर उवाच

इत्युक्तं परमेशेन पार्थदार्ढ्यपरीक्षया।
सर्वथार्जुनरक्षार्थं धृतरूपेण शम्भुना॥ ४२

नन्दीश्वर बोले—अर्जुनकी रक्षाके लिये और उनकी दृढ़ताकी परीक्षाके लिये किरातरूपधारी परमेश्वर शिवने इस प्रकार कहा। उसके ऐसा कहनेपर शंकरके

इत्युक्तस्तु तदागत्य स गणः शाङ्करश्च तत्।
विस्तराद् वृत्तमखिलमर्जुनाय न्यवेदयत्॥ ४३

उस दूतने अर्जुनके पास जाकर सारा वृत्तान्त विस्तारपूर्वक निवेदन किया॥ ४२-४३॥

तच्छ्रुत्वा तु पुनः प्राह पार्थस्तं दूतमागतम्।
वाहिनीपतये वाच्यं विपरीतं भविष्यति॥ ४४
यद्यहं चैव ते बाणं यच्छामि च मदीयकम्।
कुलस्य दूषणं चाहं भविष्यामि न संशयः॥ ४५
भ्रातरश्चैव दुःखार्ताः भवन्तु च तथा ध्रुवम्।
विद्याश्च निष्फला मे स्युस्तस्मादागच्छ वै ध्रुवम्॥ ४६
सिंहश्चैव शृगालाद्वा भीतो नैव मया श्रुतः।
तथा वनेचराद्राजा न बिभेति कदाचन॥ ४७

उसकी बात सुनकर अर्जुनने पुनः आये हुए उस दूतसे कहा—हे दूत! तुम अपने स्वामीसे जाकर कहो कि इसका परिणाम विपरीत होगा। यदि मैं तुम्हें अपना बाण दे दूँगा, तो मैं कुलकलंकी हो जाऊँगा; इसमें सन्देह नहीं है। भले ही हमारे भाई दुखी हों, भले ही हमारी विद्या नष्ट हो जाय, किंतु भीलराज मुझसे युद्ध करनेके लिये अवश्य यहाँ आयें। सिंह गीदड़से डर जाय, यह बात मैंने कभी नहीं सुनी, इसी प्रकार किसी वनेचरसे राजा डरे, ऐसा नहीं हो सकता॥ ४४—४७॥

नन्दीश्वर उवाच

इत्युक्तस्तं पुनर्गत्वा स्वामिनं पाण्डवेन सः।
सर्वं निवेदयामास तदुक्तं हि विशेषतः॥ ४८
अथ सोऽपि किराताह्वो महादेवः ससैन्यकः।
तच्छ्रुत्वा सैन्यसंयुक्तो ह्यर्जुनं चागमत्तदा॥ ४९

नन्दीश्वर बोले—पाण्डुपुत्र अर्जुनके इस प्रकार कहनेपर भीलने अपने स्वामीके पास जाकर अर्जुनद्वारा कहे गये सारे वृत्तान्तको विशेष रूपसे वर्णित किया। तब इस वृत्तान्तको सुनकर किरातवेषधारी महादेव सेनासहित अर्जुनके पास आये॥ ४८-४९॥

इति श्रीशिवमहापुराणे तृतीयायां शतरुद्रसंहितायां किरातावतारवर्णने भिल्लार्जुनसंवादो नाम चत्वारिंशोऽध्यायः॥ ४०॥

॥ इस प्रकार श्रीशिवमहापुराणके अन्तर्गत तृतीय शतरुद्रसंहिताके किरातावतारवर्णनमें भील-अर्जुन-संवाद नामक चालीसवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ ४०॥

अथैकचत्वारिंशोऽध्यायः

भगवान् शिवके किरातेश्वरावतारका वर्णन

नन्दीश्वर उवाच

तमागतं ततो दृष्ट्वा ध्यानं कृत्वा शिवस्य सः।
गत्वा तत्रार्जुनस्तेन युद्धं चक्रे सुदारुणम्॥ १

नन्दीश्वर बोले—सेनाके साथ किरातेश्वरको युद्धके लिये आया देखकर शिवजीका ध्यान करते हुए अर्जुनने वहाँ जाकर उसके साथ भयंकर युद्ध किया॥ १॥

गणैश्च विविधैस्तीक्ष्णैरायुधैस्तं न्यपीडयत्।
तैस्तदा पीडितः पार्थः सस्मार स्वामिनं शिवम्॥ २
अर्जुनश्च तदा तेषां बाणावलिमथाच्छिनत्।
यदा युद्धं च तैः क्षिप्तं ततः शर्वं परामृशत्॥ ३

उस भीलराजने अपने अनेक गणों तथा तीक्ष्ण शस्त्रोंके द्वारा अर्जुनको अत्यधिक पीड़ित किया। तब उनसे पीड़ित हुए अर्जुन अपने इष्टदेव शिवका स्मरण करने लगे। अर्जुनने शत्रुओंके सारे बाण काट डाले। जब गणोंने युद्ध करना छोड़ दिया, तो अर्जुनने [किरातवेषधारी] शिवजीको ललकारा॥ २-३॥

पीडितास्ते गणास्तेन ययुश्चैव दिशो दश।
गणेशा वारितास्ते च नाजग्मुः स्वामिनं प्रति॥ ४

अर्जुनसे पीड़ित गण दसों दिशाओंमें भागने लगे। यद्यपि किरातपतिने उन गणस्वामियोंको ऐसा करनेसे रोका, किंतु वे अपने स्वामीके बुलानेपर भी

शिवश्चैवार्जुनश्चैव युयुधाते परस्परम्।
नानाविधैश्चायुधैर्हि महाबलपराक्रमौ॥ ५

नहीं लौटे। तब महाबली एवं पराक्रमी अर्जुन और शिवजीने नाना प्रकारके शस्त्रास्त्रोंसे परस्पर युद्ध किया॥ ४-५॥

शिवोऽपि मनसा नूनं दयां कृत्वार्जुनं ह्यगात्।
अर्जुनश्च दृढं तत्र प्रहारं कृतवांस्तदा॥ ६

यद्यपि शिवजी दया करते हुए अर्जुनके पास गये, किंतु अर्जुनने निर्दयतापूर्वक शिवपर प्रहार किया॥ ६॥

आयुधानि शिवः सो वै ह्यर्जुनस्याच्छिनत्तदा।
कवचानि च सर्वाणि शरीरं केवलं स्थितम्॥ ७

तदनन्तर शिवजीने अर्जुनके समस्त शस्त्र-अस्त्रोंको काट डाला और कवचोंको भी छिन्न-भिन्न कर दिया; केवल उनका शरीर शेष रह गया॥ ७॥

तदार्जुनः शिवं स्मृत्वा मल्लयुद्धं चकार सः।
वाहिनीपतिना तेन भयात्क्लिष्टोऽपि धैर्यवान्॥ ८

तद्युद्धेन मही सर्वा चकम्पे ससमुद्रका।
देवा दुःखं समापन्नाः किं भविष्यति वा पुनः॥ ९

तब धैर्यशाली उन अर्जुनने भयसे व्यथित होते हुए भी शिवजीका स्मरणकर वाहिनीपतिके साथ मल्लयुद्ध करना प्रारम्भ किया। उन दोनोंके संग्रामको देखकर सागरसहित पृथ्वी काँप रही थी और देवता दुखी हो रहे थे कि अब और क्या होनेवाला है?॥ ८-९॥

एतस्मिन्नन्तरे देवः शिवो गगनमास्थितः।
युद्धं चकार तत्रस्थः सोऽर्जुनश्च तथाकरोत्॥ १०

उड्डीयोड्डीय तौ युद्धं चक्रतुर्देवपार्थिवौ।
देवाश्च विस्मयं प्रापू रणं दृष्ट्वा तदाद्भुतम्॥ ११

इसी बीचमें शिवजी ऊपर जाकर आकाशमें स्थित हो युद्ध करने लगे और अर्जुन भी उसी प्रकार आकाशमें स्थित हो युद्ध करने लगे। इस प्रकार शिव एवं अर्जुन दोनों ही उड़-उड़कर आकाशमें जब युद्ध कर रहे थे, तब उस अद्भुत युद्धको देखकर देवगण विस्मित हो रहे थे॥ १०-११॥

अथार्जुनोत्तरं ज्ञात्वा स्मृत्वा शिवपदाम्बुजम्।
दधार पादयोस्तं वै तद्ध्यानादाप्तसद्बलः॥ १२

धृत्वा पादौ तदा तस्य भ्रामयामास सोऽर्जुनः।
विजहास महादेवो भक्तवत्सल ऊतिकृत्॥ १३

उसके पश्चात् अर्जुनने उन्हें अपनेसे अधिक बलवान् जानकर शिवजीके चरणोंका स्मरणकर तथा उनके ध्यानसे विशेष बल प्राप्तकर भीलके दोनों चरणोंको पकड़ लिया। ज्यों ही चरण पकड़कर अर्जुन उन्हें आकाशमें घुमाने लगे, तभी लीला करनेवाले भक्तवत्सल भगवान् शिव हँस पड़े॥ १२-१३॥

दातुं स्वदासतां तस्मै भक्तवश्यतया मुने।
शिवेनैव कृतं ह्येतच्चरितं नान्यथा भवेत्॥ १४

पश्चाद्विहस्य तत्रैव शङ्करो रूपमद्भुतम्।
दर्शयामास सहसा भक्तवश्यतया शुभम्॥ १५

हे मुने! भक्तके अधीन रहनेवाले शिवजीने अर्जुनको अपना दास्य प्रदान करनेके लिये जो यह चरित्र किया, वह अन्यथा कैसे हो सकता है। इसके बाद भक्तवश्यताके कारण शिवजीने हँसकर अपना अद्भुत सुन्दर रूप अर्जुनके सामने प्रकट किया॥ १४-१५॥

यथोक्तं वेदशास्त्रेषु पुराणे पुरुषोत्तम।
व्यासोपदिष्टं ध्यानाय तस्य यत्सर्वसिद्धिदम्॥ १६

तद् दृष्ट्वा सुन्दरं रूपं ध्यानप्राप्तं शिवस्य तु।
बभूव विस्मितोऽतीव ह्यर्जुनो लज्जितः स्वयम्॥ १७

अहो शिवश्शिवः सोऽयं यो मे प्रभुतया वृतः।
त्रिलोकेशः स्वयं साक्षाद् हा कृतं किं मयाधुना॥ १८

हे पुरुषोत्तम! वेद-शास्त्रोंमें तथा पुराणोंमें उनके जिस रूपका वर्णन है और व्यासजीने अर्जुनको ध्यानके लिये जिस रूपका उपदेश दिया था, जिसके दर्शनमात्रसे सारी सिद्धियाँ प्राप्त हो जाती हैं। [उसी प्रकारका रूप धारणकर शिवजी प्रकट हुए] अर्जुन जिस रूपका ध्यान करते थे, उसी सुन्दर रूपको अपने सामने प्रत्यक्ष प्रकट देखकर वे अत्यन्त विस्मित तथा लज्जित हो उठे और मनमें कहने लगे—अहो! यह तो परम कल्याणकारी वे शिवजी ही हैं, जिन्हें मैंने अपना स्वामी स्वीकार किया है। ये तो स्वयं त्रिलोकीके साक्षात् ईश्वर हैं; यह मैंने आज क्या कर डाला!॥ १६—१८॥

प्रभोर्बलवती माया मायिनामपि मोहिनी।
किं कृतं रूपमाच्छाद्य प्रभुणा छलितो ह्यहम्॥ १९

निश्चय ही भगवान् शिवकी माया बड़ी बलवती है, जो बड़े-बड़े मायाविदोंको मोह लेती है। इन्होंने अपना रूप छिपाकर मेरे साथ इस प्रकारका छल क्यों किया; निश्चय ही मैं इनके द्वारा छला गया हूँ॥ १९॥

धियेति संविचार्यैवं साञ्जलिर्नतमस्तकः।
प्रणनाम प्रभुं प्रीत्या तदोवाच स खिन्नधीः॥ २०

इस प्रकार अपने मनमें विचारकर अर्जुनने हाथ जोड़कर सिर झुकाकर और खिन्न मनसे भक्तिपूर्वक प्रणाम किया और उनसे कहा—॥ २०॥

अर्जुन उवाच

देवदेव महादेव करुणाकर शङ्कर।
ममापराधं सर्वेश क्षन्तव्यश्च त्वया पुनः॥ २१

किं कृतं रूपमाच्छाद्य छलितोऽस्मि त्वयाधुना।
धिङ् मां समरकर्तारं स्वामिना भवता प्रभो॥ २२

अर्जुन बोले—हे देवदेव! हे महादेव! हे करुणाकर! हे शंकर! हे सर्वेश! मैं आपका अपराधी हूँ, मुझे क्षमा कीजिये। हे प्रभो! इस समय आपने यह क्या किया, जो अपना रूप छिपाकर मुझसे छल किया। हे प्रभो! आप-जैसे स्वामीसे युद्ध करते हुए मुझे लज्जा नहीं आयी; मुझको धिक्कार है!॥ २१-२२॥

नन्दीश्वर उवाच

इत्येवं पाण्डवः सोऽथ पश्चात्तापमवाप सः।
पादयोर्निपपाताशु शङ्करस्य महाप्रभोः॥ २३
अथेश्वरः प्रसन्नात्मा प्रत्युवाचार्जुनं च तम्।
समाश्वास्येति बहुशो महेशो भक्तवत्सलः॥ २४

नन्दीश्वर बोले—[हे सनत्कुमार!] इस प्रकार पाण्डुपुत्र अर्जुन पश्चात्ताप करने लगे और तत्काल महाप्रभु शिवजीके चरणोंमें शीघ्र गिर पड़े। तदनन्तर भक्तवत्सल महेश्वरने प्रसन्न होकर अर्जुनको अनेक प्रकारसे आश्वासन दिया और उनसे कहा—॥ २३-२४॥

शङ्कर उवाच

न खिद्य पार्थ भक्तोऽसि मम त्वं हि विशेषतः।
परीक्षार्थं मया तेऽद्य कृतमेवं शुचं जहि॥ २५

शिवजी बोले—हे पार्थ! तुम खेद मत करो, तुम मेरे प्रिय भक्त हो; मैंने यह सारी लीला तुम्हारी परीक्षाके लिये की थी, तुम शोकका परित्याग कर दो॥ २५॥

नन्दीश्वर उवाच

इत्युक्त्वा तं स्वहस्ताभ्यामुत्थाप्य प्रभुरर्जुनम्।
विलज्जं कारयामास गणैश्च स्वामिनो गुणैः॥ २६

पुनः शिवोऽर्जुनं प्राह पाण्डवं वीरसम्मतम्।
हर्षयन् सर्वथा प्रीत्या शङ्करो भक्तवत्सलः॥ २७

शिव उवाच

हे पार्थ पाण्डवश्रेष्ठ प्रसन्नोऽस्मि वरं वृणु।
प्रहारैस्ताडनैस्तेऽद्य पूजनं मानितं मया॥ २८

इच्छया च कृतं मेऽद्य नापराधस्तवाधुना।
नादेयं विद्यते तुभ्यं यदिच्छसि वृणीष्व तत्॥ २९

ते शत्रुषु यशोराज्यस्थापनाय शुभं कृतम्।
एतद्दुःखं न कर्तव्यं वैक्लव्यं च त्यजाखिलम्॥ ३०

नन्दीश्वर उवाच

इत्युक्तस्त्वर्जुनस्तेन प्रभुणा शङ्करेण सः।
उवाच शङ्करं भक्त्या सावधानतया स्थितः॥ ३१

अर्जुन उवाच

भक्तप्रियस्य शम्भोस्ते सुप्रभो किं समीहितम्।
वर्णनीयं मया देव कृपालुस्त्वं सदाशिव॥ ३२

इत्युक्त्वा संस्तुतिं तस्य शङ्करस्य महाप्रभोः।
चकार पाण्डवः सोऽथ सद्भक्तिं वेदसम्मताम्॥ ३३

अर्जुन उवाच

नमस्ते देवदेवाय नमः कैलासवासिने।
सदाशिव नमस्तुभ्यं पञ्चवक्त्राय ते नमः॥ ३४

कपर्दिने नमस्तुभ्यं त्रिनेत्राय नमोऽस्तु ते।
नमः प्रसन्नरूपाय सहस्रवदनाय च॥ ३५

नन्दीश्वर बोले—इस प्रकार कहकर प्रभु सदाशिवने स्वयं अपने हाथोंसे अर्जुनको उठाया और स्वामी [शिवजी]-के जैसे गुणोंवाले गणोंद्वारा उन [अर्जुन]-की लज्जा दूर करायी। उसके अनन्तर भक्तवत्सल भगवान् शिव वीरोंमें माननीय पाण्डुपुत्र अर्जुनको प्रीतिसे पूर्णतः हर्षित करते हुए कहने लगे—॥ २६-२७॥

शिवजी बोले—हे पाण्डवश्रेष्ठ! हे पृथापुत्र अर्जुन! मैं प्रसन्न हूँ, तुम वर माँगो। मैंने तुम्हारे द्वारा आज किये गये प्रहारों एवं सन्ताड़नोंको अपनी पूजा मान ली है। आज यह सब मैंने अपनी इच्छासे किया है, इसमें तुम्हारा कोई अपराध नहीं है, मुझे तुम्हारे लिये इस समय कुछ भी अदेय नहीं है, तुम जो चाहते हो, उसे माँग लो। मैंने शत्रुओंमें तुम्हारा यश तथा राज्य प्रतिष्ठित करनेके लिये [ही यह] कल्याणकर [कृत्य] किया है। तुम इस घटनाके लिये दुःख न मानो और अपनी सारी विकलताका त्याग करो॥ २८—३०॥

नन्दीश्वर बोले—प्रभु शंकरजीके द्वारा इस प्रकार कहे जानेपर अर्जुन सावधान होकर भक्तिपूर्वक शिवजीसे कहने लगे—॥ ३१॥

अर्जुन बोले—हे प्रभो! आप भक्तप्रिय हैं, आपकी इच्छाका वर्णन मैं किस प्रकार कर सकता हूँ। हे सदाशिव! आप कृपालु हैं [हर प्रकारसे भक्तोंपर दया करते हैं]॥ ३२॥

[नन्दीश्वर बोले—] इस प्रकार कहकर वे पाण्डुपुत्र अर्जुन महाप्रभु सदाशिवकी वेदसम्मत तथा सद्भक्तियुक्त स्तुति करने लगे॥ ३३॥

अर्जुन बोले—हे देवाधिदेव! आपको नमस्कार है। कैलासवासी आपको नमस्कार है, सदाशिव! आपको नमस्कार है, पाँच मुखवाले आपको नमस्कार है॥ ३४॥

जटा-जूटधारी आपको नमस्कार है, त्रिनेत्र आपको नमस्कार है, प्रसन्न स्वरूपवाले आपको नमस्कार है। सहस्रमुख आपको नमस्कार है॥ ३५॥

नीलकण्ठ नमस्तेऽस्तु सद्योजाताय वै नमः।
वृषध्वज नमस्तेऽस्तु वामाङ्गगिरिजाय च॥ ३६

दशदोष नमस्तुभ्यं नमस्ते परमात्मने।
डमरूकपालहस्ताय नमस्ते मुण्डमालिने॥ ३७

हे नीलकण्ठ! आपको नमस्कार है। सद्योजातरूप आपके लिये नमस्कार है। हे वृषभध्वज! आपको नमस्कार है, वामभागमें पार्वतीको धारण करनेवाले आपको नमस्कार है। दस भुजावाले आपको नमस्कार है, परमात्मन्! आपको नमस्कार है, हाथमें डमरू तथा कपाल लेनेवाले आपको नमस्कार है, मुण्डमालाधारी आपको नमस्कार है॥ ३६-३७॥

शुद्धस्फटिकसंकाशशुद्धकर्पूरवर्ष्मणे।
पिनाकपाणये तुभ्यं त्रिशूलवरधारिणे॥ ३८

व्याघ्रचर्मोत्तरीयाय गजाम्बरविधारिणे।
नागाङ्गाय नमस्तुभ्यं गंगाधर नमोऽस्तु ते॥ ३९

शुद्ध स्फटिक तथा शुद्ध कर्पूरके समान उज्ज्वल गौर-वर्णवाले आपको नमस्कार है। पिनाक नामक धनुष एवं श्रेष्ठ त्रिशूल धारण करनेवाले आपको नमस्कार है। व्याघ्र-चर्मका उत्तरीय तथा गजचर्मका वस्त्र धारण करनेवाले आपको नमस्कार है। सर्पसे आवेष्टित अंगोंवाले तथा सिरपर गंगाको धारण करनेवाले आपको नमस्कार है॥ ३८-३९॥

सुपादाय नमस्तेऽस्तु आरक्तचरणाय च।
नन्द्यादिगणसेव्याय गणेशाय च ते नमः॥ ४०

नमो गणेशरूपाय कार्तिकेयानुगाय च।
भक्तिदाय च भक्तानां मुक्तिदाय नमो नमः॥ ४१

सुन्दर पैरवाले आपको नमस्कार है। अरुणाभ चरणोंवाले आपको नमस्कार है। नन्दी आदि प्रमुख गणोंसे सेवित आपको नमस्कार है। गणेशरूप आपको नमस्कार है। कार्तिकेयके अनुगामी आपको नमस्कार है, भक्तोंको भक्ति देनेवाले तथा [मुमुक्षुओंको] मुक्ति देनेवाले आपको नमस्कार है॥ ४०-४१॥

अगुणाय नमस्तेऽस्तु सगुणाय नमो नमः।
अरूपाय सरूपाय सकलायाकलाय च॥ ४२

नमः किरातरूपाय मदनुग्रहकारिणे।
युद्धप्रियाय वीराणां नानालीलानुकारिणे॥ ४३

गुणरहित आपको नमस्कार है, सगुणरूपधारी आपको नमस्कार है। अरूप, सरूप, सकल एवं अकल आपको नमस्कार है। किरातरूप धारणकर मुझपर अनुग्रह करनेवाले, वीरोंसे प्रीतिपूर्वक युद्ध करनेवाले एवं [नटकी भाँति] अनेक प्रकारकी लीला दिखानेवाले आपको नमस्कार है॥ ४२-४३॥

यत्किञ्चित् दृश्यते रूपं तत्तेजस्तावकं स्मृतम्।
चिद्रूपस्त्वं त्रिलोकेषु रमसेऽन्वयभेदतः॥ ४४

गुणानां ते न सङ्ख्यास्ति यथा भूरजसामिह।
आकाशे तारकाणां हि कणानां वृष्ट्यपामपि॥ ४५

इस त्रिलोकीमें जो भी रूप दिखायी देता है, वह आपका ही तेज कहा गया है। आप ज्ञानस्वरूप हैं और शरीरभेदसे रमण करते हैं। हे प्रभो! जिस प्रकार संसारमें पृथ्वीके रजकण, आकाशके तारे तथा वृष्टिकी बूँदें असंख्य हैं, उसी प्रकार आपके गुण भी असंख्य हैं॥ ४४-४५॥

न ते गुणांस्तु सङ्ख्यातुं वेदा वै सम्भवन्ति हि।
मन्दबुद्धिरहं नाथ वर्णयामि कथं पुनः॥ ४६

हे नाथ! आपके गुणोंकी गणना करनेमें तो वेद भी असमर्थ हैं, मैं तो मन्दबुद्धि ही हूँ। आपके गुणोंका वर्णन कैसे करूँ? हे महेश्वर! आप जो हैं,

सोऽसि योऽसि नमस्तेऽस्तु कृपां कर्तुमिहार्हसि।
दासोऽहं ते महेशान स्वामी त्वं मे महेश्वर॥ ४७

सो हैं, आपको नमस्कार है। हे महेशान! मैं आपका सेवक हूँ, आप मेरे स्वामी हैं, अतः मुझपर कृपा कीजिये॥ ४६-४७॥

नन्दीश्वर उवाच

इति श्रुत्वा वचस्तस्य पुनः प्रोवाच शङ्करः।
सुप्रसन्नतरो भूत्वा विहसन्प्रभुरर्जुनम्॥ ४८

नन्दीश्वर बोले—अर्जुनके द्वारा की गयी स्तुतिको सुनकर परम प्रसन्न हुए भगवान् सदाशिवने हँसकर अर्जुनसे फिर कहा—॥ ४८॥

शङ्कर उवाच

वचसा किम्बहूक्तेन शृणुष्व वचनं मम।
शीघ्रं वृणु वरं पुत्र सर्वं तच्च ददामि ते॥ ४९

शिवजी बोले—हे पुत्र! बारंबार कहनेसे क्या प्रयोजन, मेरी बात सुनो। तुम शीघ्र ही मुझसे वर माँगो, मैं तुम्हें वह सब कुछ दूँगा॥ ४९॥

नन्दीश्वर उवाच

इत्युक्तश्चार्जुनस्तेन प्रणिपत्य सदाशिवम्।
साञ्जलिर्नतकः प्रेम्णा प्रोवाच गद्गदाक्षरम्॥ ५०

नन्दीश्वर बोले—शिवजीका यह वचन सुनकर अर्जुनने सदाशिवको हाथ जोड़कर प्रणाम किया और सिर झुका करके प्रेमपूर्वक गद्‌गद वाणीसे कहा—॥ ५०॥

अर्जुन उवाच

किं ब्रूयां त्वं च सर्वेषामन्तर्यामितया स्थितः।
तथापि वर्णितं मेऽद्य श्रूयतां च त्वया विभो॥ ५१

शत्रूणां सङ्कटं यच्च तद्गतं दर्शनात्तव।
ऐहिकीं च परां सिद्धिं प्राप्नुयां वै तथा कुरु॥ ५२

अर्जुन बोले—हे प्रभो! आप तो सबके अन्तःकरणमें अन्तर्यामीरूपसे स्थित हैं, अतः आपसे क्या कहूँ। आप सब कुछ जानते हैं, फिर भी मैं आपसे जो प्रार्थना करता हूँ, उसे सुनिये। आपके दर्शनसे शत्रुओंसे उत्पन्न होनेवाला जो मेरा संकट था, वह दूर हो गया। अब मैं जिस प्रकार इस लोकमें सर्वश्रेष्ठ सिद्धि प्राप्त करूँ, वैसा उपाय कीजिये॥ ५१-५२॥

नन्दीश्वर उवाच

इत्युक्त्वा तं नमस्कृत्य शङ्करं भक्तवत्सलम्।
नतस्कन्धोऽर्जुनस्तत्र बद्धाञ्जलिरुपस्थितः॥ ५३

नन्दीश्वर बोले—ऐसा कहकर विनम्र हो हाथ जोड़कर अर्जुन नमस्कार करके भक्तवत्सल भगवान् शिवके सन्निकट स्थित हो गये॥ ५३॥

शिवोऽपि च तथाभूतं ज्ञात्वा पाण्डवमर्जुनम्।
निजभक्तवरं स्वामी महातुष्टो बभूव ह॥ ५४

स्वामी शिवजी भी पाण्डुपुत्र अर्जुनको इस प्रकार अपना परमभक्त जानकर बहुत सन्तुष्ट हो गये॥ ५४॥

अस्त्रं पाशुपतं स्वीयं दुर्जयं सर्वदाखिलैः।
ददौ तस्मै महेशानो वचनं चेदमब्रवीत्॥ ५५

उन्होंने प्रसन्न होकर सभीके लिये सर्वदा दुर्जेय अपना पाशुपत अस्त्र अर्जुनको प्रदान किया और यह वचन कहा—॥ ५५॥

शिव उवाच

स्वं महास्त्रं मया दत्तं दुर्जयस्त्वं भविष्यसि।
अनेन सर्वशत्रूणां जयकृत्यमवाप्नुहि॥ ५६

कृष्णं च कथयिष्यामि साहाय्यं ते करिष्यति।
स वै ममात्मभूतश्च मद्भक्तः कार्यकारकः॥ ५७

शिवजी बोले—मैंने अपना यह महान् पाशुपत-अस्त्र तुम्हें प्रदान किया। [हे अर्जुन!] तुम इससे दुर्जेय हो जाओगे, तुम इस अस्त्रकी सहायतासे शत्रुओंपर विजय प्राप्त करो। मैं स्वयं श्रीकृष्णसे कहूँगा कि वे तुम्हारी सहायता करें। वे मेरे भक्त तथा मेरी आत्मा हैं और कार्य करनेमें सर्वथा समर्थ हैं॥ ५६-५७॥

मत्प्रभावान्भारत त्वं राज्यं निष्कण्टकं कुरु।
धर्मान्नानाविधान्भ्रात्रा कारय त्वं च सर्वदा॥ ५८

हे भारत! अब तुम मेरे प्रभावसे निष्कण्टक राज्य करो और अपने भ्राता [युधिष्ठिर]-से सर्वदा नाना प्रकारका धर्माचरण कराते रहो॥ ५८॥

नन्दीश्वर उवाच

इत्युक्त्वा निजहस्तं च धृत्वा शिरसि तस्य सः।
पूजितो ह्यर्जुनेनाशु शङ्करोऽन्तरधीयत॥ ५९
अथार्जुनः प्रसन्नात्मा प्राप्यास्त्रं च वरं प्रभोः।
जगाम स्वाश्रमं मुख्यं स्मरन्भक्त्या गुरुं शिवम्॥ ६०

नन्दीश्वर बोले—ऐसा कहकर उन शिवने अर्जुनके सिरपर अपना हाथ रखा और उनसे पूजित होकर वे तत्काल अन्तर्धान हो गये और प्रसन्न मनवाले अर्जुन भी प्रभुसे श्रेष्ठ पाशुपतास्त्र प्राप्तकर भक्तिपूर्वक गुरुवर शिवजीका स्मरण करते हुए अपने आश्रमको चले गये॥ ५९-६०॥

सर्वे ते भ्रातरः प्रीतास्तन्वः प्राणमिवागतम्।
मिलित्वा तं सुखं प्रापुर्द्रौपदी चातिसुव्रता॥ ६१

जिस प्रकार शरीरमें पुनः प्राण आ जाता है, उसी प्रकार अर्जुनको आया देख [युधिष्ठिर आदि] सभी भाई प्रसन्न हो गये और पतिव्रता द्रौपदीको भी अर्जुनके दर्शनसे सुखकी प्राप्ति हुई॥ ६१॥

शिवं परं च सन्तुष्टं पाण्डवाः सर्व एव हि।
नातृप्यन्सर्ववृत्तान्तं श्रुत्वा हर्षमुपागताः॥ ६२

सभी पाण्डव परमात्मा शिवजीको प्रसन्न जानकर आनन्दित हो गये तथा अर्जुनसे सारा समाचार सुनकर [भी उस वृत्तान्त-श्रवणसे] तृप्त नहीं हुए॥ ६२॥

आश्रमे पुष्पवृष्टिश्च चन्दनेन समन्विता।
पपात सुकरार्थं च तेषां चैव महात्मनाम्॥ ६३

उस समय उन महात्मा पाण्डवोंके आश्रममें उनका मंगल प्रदर्शित करनेके लिये चन्दनयुक्त फूलोंकी वर्षा होने लगी॥ ६३॥

धन्यं च शङ्करं चैव नमस्कृत्य शिवं मुदा।
अवधिं चागतं ज्ञात्वा जयश्चैव भविष्यति॥ ६४

उन लोगोंने भगवान् शंकरको धन्य-धन्य कहते हुए आनन्दके साथ नमस्कार किया और अपने वनवासकी अवधिको समाप्त जानकर यह समझ लिया कि अब अवश्य ही हमलोगोंकी विजय होगी॥ ६४॥

एतस्मिन्नन्तरे कृष्णः श्रुत्वार्जुनमथागतम्।
मेलनाय समायातः श्रुत्वा सुखमुपागतः॥ ६५

इसी समय अर्जुनको आश्रमपर आया हुआ जानकर श्रीकृष्ण उनसे मिलनेके लिये आये और सारा वृत्तान्त जानकर हर्षित हुए [और कहने लगे—]॥ ६५॥

अतश्चैव मयाख्यातः शङ्करः सर्वदुःखहा।
स सेव्यते मया नित्यं भवद्भिरपि सेव्यताम्॥ ६६

इत्युक्तस्ते किराताह्वोऽवतारः शङ्करस्य वै।
तं श्रुत्वा श्रावयन्वापि सर्वान्कामानवाप्नुयात्॥ ६७

इसीलिये तो मैंने कहा था कि शंकर सभी दुःखोंको नष्ट करनेवाले हैं। मैं उनकी सेवा नित्य करता हूँ, आपलोग भी नित्य उनकी सेवा करें। [हे सनत्कुमार!] इस प्रकार मैंने किरातेश्वर नामक शिवावतारका वर्णन आपसे किया, उसको सुनकर अथवा सुनाकर भी मनुष्य अपने समस्त मनोरथोंको प्राप्त कर लेता है॥ ६६-६७॥

इति श्रीशिवमहापुराणे तृतीयायां शतरुद्रसंहितायां किरातेश्वरावतारवर्णनं नामैकचत्वारिंशोऽध्यायः॥ ४१॥

॥ इस प्रकार श्रीशिवमहापुराणके अन्तर्गत तृतीय शतरुद्रसंहितामें किरातेश्वरावतारवर्णन नामक इकतालीसवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ ४१॥

अथ द्विचत्वारिंशोऽध्यायः

भगवान् शिवके द्वादश ज्योतिर्लिंगरूप अवतारोंका वर्णन

नन्दीश्वर उवाच

अवतारान् शृणु विभोर्द्वादशप्रमितान्परान्।
ज्योतिर्लिङ्गस्वरूपान्वै नानोतिकारकान्मुने॥ १

नन्दीश्वरजी बोले—[हे सनत्कुमार!] हे मुने! अब अनेक प्रकारकी लीला करनेवाले परमात्मा शिवजीके ज्योतिर्लिंगरूप द्वादशसंख्यक अवतारोंको सुनिये॥ १॥

सौराष्ट्रे सोमनाथश्च श्रीशैले मल्लिकार्जुनः।
उज्जयिन्यां महाकाल ओङ्कारे चामरेश्वरः॥ २
केदारो हिमवत्पृष्ठे डाकिन्याम्भीमशङ्करः।
वाराणस्यां च विश्वेशस्त्र्यम्बको गौतमीतटे॥ ३
वैद्यनाथश्चिताभूमौ नागेशो दारुकावने।
सेतुबन्धे च रामेशो घुश्मेशश्च शिवालये॥ ४

सौराष्ट्रमें सोमनाथ, श्रीशैलपर मल्लिकार्जुन, उज्जयिनीमें महाकाल, ॐकारमें अमरेश्वर, हिमालयपर केदारेश्वर, डाकिनीमें भीमशंकर, काशीमें विश्वनाथ, गौतमीतटपर त्र्यम्बकेश्वर, चिताभूमिमें वैद्यनाथ, दारुकावनमें नागेश्वर, सेतुबन्धमें रामेश्वर एवं शिवालयमें घुश्मेश्वर—[ये बारह शिवजीके ज्योतिर्लिंगस्वरूप अवतार हैं]॥ २—४॥

अवतारद्वादशकमेतच्छम्भोः परात्मनः।
सर्वानन्दकरं पुंसां दर्शनात्स्पर्शनान्मुने॥ ५

हे मुने! ये परमात्मा शिवके बारह ज्योतिर्लिंगावतार दर्शन तथा स्पर्शसे पुरुषोंका कल्याण करनेवाले हैं॥ ५॥

तत्राद्यः सोमनाथो हि चन्द्रदुःखक्षयंकरः।
क्षयकुष्ठादिरोगाणां नाशकः पूजनान्मुने॥ ६

शिवावतारः सोमेशो लिङ्गरूपेण संस्थितः।
सौराष्ट्रे शुभदेशे च शशिना पूजितः पुरा॥ ७

इन द्वादश ज्योतिर्लिंगोंमें प्रथम सोमनाथ नामक ज्योतिर्लिंग चन्द्रमाके दुःखका नाश करनेवाला है, उसके पूजनसे क्षय और कुष्ठ आदि रोगोंका विनाश होता है। यह सोमेश नामक शिवावतार सुन्दर सौराष्ट्रदेशमें लिंगरूपसे स्थित है, पूर्वकालमें चन्द्रमाने इसकी पूजा की थी॥ ६-७॥

चन्द्रकुण्डं च तत्रैव सर्वपापविनाशकम्।
तत्र स्नात्वा नरो धीमान्सर्वरोगैः प्रमुच्यते॥ ८

वहींपर चन्द्रकुण्ड है, जो समस्त पापोंका नाश करनेवाला है। बुद्धिमान् पुरुष वहाँ स्नान करनेमात्रसे सभी प्रकारके रोगोंसे छुटकारा पा जाता है॥ ८॥

सोमेश्वरं महालिङ्गं शिवस्य परमात्मकम्।
दृष्ट्वा प्रमुच्यते पापाद्भुक्तिं मुक्तिं च विन्दति॥ ९

शिवजीके परमात्मस्वरूप महालिंग सोमेश्वरका दर्शन करनेसे मनुष्य पापोंसे मुक्त हो जाता है और भोग तथा मोक्ष प्राप्त करता है॥ ९॥

मल्लिकार्जुनसंज्ञश्चावतारः शङ्करस्य वै।
द्वितीयः श्रीगिरौ तात भक्ताभीष्टफलप्रदः॥ १०

संस्तुतो लिङ्गरूपेण सुतदर्शनहेतुतः।
गतस्तत्र महाप्रीत्या स शिवः स्वगिरेर्मुने॥ ११

हे तात! शिवका मल्लिकार्जुन नामक दूसरा अवतार श्रीशैलपर हुआ था, जो भक्तोंको मनोवांछित फल प्रदान करता है। हे मुने! वे भगवान् शिव कैलासपर्वतसे पुत्र [कार्तिकेय]-को देखनेके लिये अत्यन्त प्रीतिपूर्वक श्रीशैलपर गये और वहाँ लिंगरूपसे [भक्तोंके द्वारा] संस्तुत हुए॥ १०-११॥

ज्योतिर्लिङ्गं द्वितीयं तद्दर्शनात्पूजनान्मुने।
महासुखकरं चान्ते मुक्तिदं नात्र संशयः॥ १२

हे मुने! उस द्वितीय ज्योतिर्लिंगकी पूजा करनेसे महान् सुखकी प्राप्ति होती है और अन्त समयमें वह निःसन्देह मुक्ति प्रदान करता है॥ १२॥

महाकालाभिधस्तातावतारः शङ्करस्य वै।
उज्जयिन्यां नगर्यां च बभूव स्वजनावनः॥ १३

दूषणाख्यासुरं यस्तु वेदधर्मप्रमर्दकम्।
उज्जयिन्यां गतं विप्रद्वेषिणं सर्वनाशनम्॥ १४

वेदविप्रसुतध्यातो हुङ्कारेणैव स द्रुतम्।
भस्मसात्कृतवांस्तं च रत्नमालनिवासिनम्॥ १५

तं हत्वा स महाकालो ज्योतिर्लिङ्गस्वरूपतः।
देवैः स प्रार्थितोऽतिष्ठत्स्वभक्तपरिपालकः॥ १६

महाकालाह्वयं लिङ्गं दृष्ट्वाभ्यर्च्य प्रयत्नतः।
सर्वान्कामानवाप्नोति लभते परतो गतिम्॥ १७

ओङ्कारः परमेशानो धृतः शम्भोः परात्मनः।
अवतारश्चतुर्थो हि भक्ताभीष्टफलप्रदः॥ १८

विधिना स्थापितो भक्त्या स्वलिङ्गात्पार्थिवान्मुने।
प्रादुर्भूतो महादेवो विन्ध्यकामप्रपूरकः॥ १९

देवैः संप्रार्थितस्तत्र द्विधारूपेण संस्थितः।
भुक्तिमुक्तिप्रदो लिङ्गरूपो वै भक्तवत्सलः॥ २०

प्रणवे चैव चोङ्कारनामासील्लिङ्गमुत्तमम्।
परमेश्वरनामासीत्पार्थिवश्च मुनीश्वर॥ २१

भक्ताभीष्टप्रदो ज्ञेयो योऽपि दृष्टोऽर्चितो मुने।
ज्योतिर्लिंगे महादिव्ये वर्णिते ते महामुने॥ २२

केदारेशोऽवतारस्तु पञ्चमः परमश्शिवः।
ज्योतिर्लिङ्गस्वरूपेण केदारे संस्थितः स च॥ २३

नरनारायणाख्यौ याववतारौ हरेर्मुने।
तत्प्रार्थितः शिवस्तत्स्थैः केदारे हिमभूधरे॥ २४

हे तात! शिवजीका तीसरा महाकाल नामक अवतार उज्जयिनीमें अपने भक्तोंकी रक्षाके लिये हुआ था। पूर्वकालमें रत्नमाला [नामक स्थान]-पर निवास करनेवाला, वेदोक्त धर्मका विध्वंसक, सर्वनाशक, ब्राह्मण-द्वेषी दूषण नामक असुर उज्जयिनी गया। तब वेद नामक ब्राह्मणके पुत्रने शिवजीका ध्यान किया। तब [प्रकट हुए] उन शिवजीने उस असुरको हुंकारमात्रसे उसी समय भस्म कर दिया था॥ १३—१५॥

इस प्रकार उस दैत्यको मारकर देवगणोंसे प्रार्थित होकर अपने भक्तजनोंकी रक्षाके लिये वे महाकाल नामक ज्योतिर्लिंगस्वरूपसे वहीं उज्जयिनीमें प्रतिष्ठित हुए। इस महाकाल नामक ज्योतिर्लिंगके दर्शन तथा यत्नपूर्वक पूजनसे सभी कामनाएँ सिद्ध हो जाती हैं और अन्तमें उत्तम गतिकी प्राप्ति होती है॥ १६-१७॥

परमात्मा शिवजीके द्वारा धारण किया गया परमैश्वर्यसम्पन्न चौथा अवतार ॐकारेश्वर नामसे प्रसिद्ध है, जो भक्तोंको इच्छित फल देनेवाला है॥ १८॥

विन्ध्यके द्वारा भक्तिभावसे विधिपूर्वक पार्थिव लिंग स्थापित किया गया, जिससे विन्ध्यकी कामनाओंको पूर्ण करनेवाले वे महादेव आविर्भूत हुए॥ १९॥

देवगणोंके द्वारा प्रार्थना किये जानेपर शिवजी वहाँ दो रूपोंमें स्थित हो गये। [हे मुनीश्वर!] लिंगरूपसे स्थित हुए वे भक्तोंपर कृपा करनेवाले और भोग तथा मोक्ष देनेवाले हैं॥ २०॥

हे मुनीश्वर! प्रणवमें ओंकार नामसे स्थित शिव ओंकारेश्वर नामसे प्रसिद्ध हैं और पार्थिव लिंग परमेश्वर नामसे प्रसिद्ध है, हे महामुने! इनके दर्शन तथा पूजन करनेसे भक्तोंको अभीष्ट फलकी प्राप्ति होती है। इस प्रकार मैंने आपसे चतुर्थ स्थानीय ॐकारेश्वर तथा परमेश्वर ज्योतिर्लिंगोंका वर्णन किया॥ २१-२२॥

परमशिवका पाँचवाँ अवतार केदारेश नामवाला है, यह ज्योतिर्लिंगरूपसे केदारक्षेत्रमें स्थित है। हे मुने! विष्णुके जो नर-नारायण नामक अवतार हैं, उनके द्वारा तथा वहाँके निवासियोंद्वारा प्रार्थना किये जानेपर वे शिव हिमालयके केदार नामक स्थानपर स्थित हुए॥ २३-२४॥

ताभ्यां च पूजितो नित्यं केदारेश्वरसंज्ञकः।
भक्ताभीष्टप्रदः शम्भुर्दर्शनादर्चनादपि॥ २५

उन दोनोंने ही इन केदारेश्वर नामक ज्योतिर्लिंगकी पूजा की थी। ये केदारेश्वर नामक शिव दर्शन तथा अर्चनसे भक्तोंके मनोरथोंको पूर्ण करनेवाले हैं॥ २५॥

अस्य खण्डस्य स स्वामी सर्वेशोऽपि विशेषतः।
सर्वकामप्रदस्तात सोऽवतारः शिवस्य वै॥ २६

भीमशङ्करसंज्ञस्तु षष्ठः शम्भोर्महाप्रभोः।
अवतारो महालीलो भीमासुरविनाशनः॥ २७

हे तात! शिवजीका यह केदारसंज्ञक अवतार सर्वेश्वर होनेपर भी इस केदारखण्डका विशेषरूपसे स्वामी है, जो भक्तोंकी सभी मनोकामनाएँ पूर्ण करनेवाला है। शिवजीका छठा ज्योतिर्लिंगावतार भीमशंकर नामसे प्रसिद्ध है। यह अवतार महान् लीला करनेवाला है और भीम नामक असुरका विनाशक है॥ २६-२७॥

सुदक्षिणाभिधं भक्तं कामरूपेश्वरं नृपम्।
यो ररक्षाद्भुतं हत्वासुरं तं भक्तदुःखदम्॥ २८

इन्हीं भीमशंकरने भक्तोंको दुःख देनेवाले [भीम नामक] अद्भुत दैत्यको मारकर कामरूप देशके सुदक्षिण नामक भक्त राजाकी रक्षा की थी॥ २८॥

भीमशङ्करनामा स डाकिन्यां संस्थितः स्वयम्।
ज्योतिर्लिङ्गस्वरूपेण प्रार्थितस्तेन शङ्करः॥ २९

इसलिये वे राजाद्वारा प्रार्थना किये जानेपर भीमशंकर नामक ज्योतिर्लिंगके रूपसे उस डाकिनी नामक स्थानमें स्वयं प्रतिष्ठित हुए॥ २९॥

विश्वेश्वरावतारस्तु काश्यां जातो हि सप्तमः।
सर्वब्रह्माण्डरूपश्च भुक्तिमुक्तिप्रदो मुने॥ ३०

हे मुने! शिवजीका सातवाँ विश्वेश्वर नामक अवतार काशीमें हुआ। जो समस्त ब्रह्माण्डका स्वरूप है एवं भोग तथा मोक्षको देनेवाला है॥ ३०॥

पूजितः सर्वदेवैश्च भक्त्या विष्ण्वादिभिः सदा।
कैलासपतिना चापि भैरवेणापि नित्यशः॥ ३१

विष्णु आदि समस्त देवोंने इस विश्वेश्वर ज्योतिर्लिंगका पूजन किया और कैलासपति भैरव तो इनकी नित्य ही पूजा करते हैं॥ ३१॥

ज्योतिर्लिङ्गस्वरूपेण संस्थितस्तत्र मुक्तिदः।
स्वयंसिद्धस्वरूपो हि तथा स्वपुरि स प्रभुः॥ ३२

स्वयं सिद्धस्वरूप ये प्रभु अपनी [काशी] पुरीमें ज्योतिर्लिंगस्वरूपसे विराजमान हैं तथा [मुमुक्षुओंको] वहाँपर मुक्ति प्रदान कर रहे हैं॥ ३२॥

काशीविश्वेशयोर्भक्त्या तन्नामजपकारकाः।
निर्लिप्ताः कर्मभिर्नित्यं कैवल्यपदभागिनः॥ ३३

जो लोग भक्तिपूर्वक काशी तथा विश्वेश्वरके नामका निरन्तर जप करते हैं, वे कर्मोंसे सर्वदा निर्लिप्त रहकर कैवल्यपदके भागी होते हैं॥ ३३॥

त्र्यंबकाख्योऽवतारो यः सोऽष्टमो गौतमीतटे।
प्रार्थितो गौतमेनाविर्बभूव शशिमौलिनः॥ ३४

गौतमस्य प्रार्थनया ज्योतिर्लिङ्गस्वरूपतः।
स्थितस्तत्राचलः प्रीत्या तन्मुनेः प्रीतिकाम्यया॥ ३५

शिवजीका त्र्यम्बक नामक आठवाँ अवतार महर्षि गौतमके द्वारा प्रार्थना किये जानेपर गौतमीके तटपर हुआ और महर्षि गौतमद्वारा प्रार्थना किये जानेपर वहींपर उनकी प्रसन्नताके लिये शिवजी ज्योतिर्लिंगस्वरूपसे अचल होकर प्रेमपूर्वक प्रतिष्ठित हो गये॥ ३४-३५॥

तस्य सन्दर्शनात्स्पर्शादर्चनाच्च महेशितुः।
सर्वे कामाः प्रसिध्यन्ति ततो मुक्तिर्भवेदहो॥ ३६

उन महेश्वरके दर्शन, स्पर्श एवं अर्चनसे सभी कामनाएँ पूर्ण होती हैं और अन्तमें मुक्ति हो जाती है, यह आश्चर्यकारी है॥ ३६॥

शिवानुग्रहतस्तत्र गङ्गा नाम्ना तु गौतमी।
संस्थिता गौतमप्रीत्या पावनी शङ्करप्रिया॥ ३७

शिवके अनुग्रहसे वहाँपर गौतमके प्रीतिवश पवित्र करनेवाली शिवप्रिया गंगा गौतमी नामसे स्थित हैं॥ ३७॥

वैद्यनाथावतारो हि नवमस्तत्र कीर्तितः।
आविर्भूतो रावणार्थं बहुलीलाकरः प्रभुः॥ ३८
तदानयनरूपं हि व्याजं कृत्वा महेश्वरः।
ज्योतिर्लिङ्गस्वरूपेण चिताभूमौ प्रतिष्ठितः॥ ३९

शिवजीका नौवाँ ज्योतिर्लिंगावतार वैद्यनाथेश्वर नामसे प्रसिद्ध है। नानाविध लीलाएँ करनेवाले वे प्रभु रावणके निमित्त प्रकट हुए थे। भगवान् महेश्वर रावणके द्वारा लाये जानेके बहाने चिताभूमिमें ज्योतिर्लिंगस्वरूपसे प्रतिष्ठित हो गये॥ ३८-३९॥

वैद्यनाथेश्वरो नाम्ना प्रसिद्धोऽभूज्जगत्त्रये।
दर्शनात्पूजनाद्भक्त्या भुक्तिमुक्तिप्रदः स हि॥ ४०

यह ज्योतिर्लिंग वैद्यनाथेश्वर नामसे तीनों लोकोंमें प्रसिद्ध हुआ। भक्तिपूर्वक दर्शन और पूजन करनेसे निश्चय ही यह भोग तथा मोक्ष देनेवाला है॥ ४०॥

वैद्यनाथेश्वरशिवमाहात्म्यमनुशासनम् ।
पठतां शृण्वतां चापि भुक्तिमुक्तिप्रदं मुने॥ ४१

नागेश्वरावतारस्तु दशमः परिकीर्तितः।
आविर्भूतः स्वभक्तार्थं दुष्टानां दण्डदः सदा॥ ४२

हे मुने! वैद्यनाथेश्वर शिवके माहात्म्यरूप शास्त्रको पढ़ने तथा सुननेवालोंको भोग तथा मोक्ष दोनों प्राप्त होता है। शिवजीका दसवाँ अवतार नागेश्वर नामवाला कहा गया है, जो भक्तोंकी रक्षाके लिये आविर्भूत हुआ और सर्वदा दुष्टोंका दमन करता रहता है॥ ४१-४२॥

हत्वा दारुकनामानं राक्षसं धर्मघातकम्।
स्वभक्तं वैश्यनाथं च प्रारक्षत्सुप्रियाभिधम्॥ ४३

लोकानामुपकारार्थं ज्योतिर्लिङ्गस्वरूपधृक्।
सन्तस्थौ साम्बिकः शम्भुर्बहुलीलाकरः परः॥ ४४

धर्मनाशक दारुक नामक राक्षसको मारकर शिवजीने वैश्योंके स्वामी सुप्रिय नामक अपने भक्तकी रक्षा की थी। नाना प्रकारकी लीला करनेवाले वे परमात्मा साम्बसदाशिव लोकोंका कल्याण करनेके लिये ज्योतिर्लिंगस्वरूप धारण-कर नागेश्वर नामसे वहींपर स्थित हो गये॥ ४३-४४॥

तद् दृष्ट्वा शिवलिङ्गं तु मुने नागेश्वराभिधम्।
विनश्यन्ति द्रुतं चार्च्य महापातकराशयः॥ ४५
रामेश्वरावतारस्तु शिवस्यैकादशः स्मृतः।
रामचन्द्रप्रियकरो रामसंस्थापितो मुने॥ ४६

हे मुने! उस नागेश्वर नामक शिवलिंगका दर्शन-पूजन करनेसे महापातकोंके समूह शीघ्र ही नष्ट हो जाते हैं। हे मुने! शिवजीका ग्यारहवाँ अवतार रामेश्वर नामसे प्रसिद्ध है, जो रामचन्द्रका प्रिय करनेवाला है, यह रामचन्द्रके द्वारा स्थापित किया गया है॥ ४५-४६॥

ददौ जयवरं प्रीत्या यो रामाय सुतोषितः।
आविर्भूतः स लिङ्गस्तु शङ्करो भक्तवत्सलः॥ ४७

ज्योतिर्लिंगस्वरूपसे आविर्भूत हुए उन भक्तवत्सल भगवान् रामेश्वरने ही रामचन्द्रके द्वारा सन्तुष्ट किये जानेपर उनको विजयका वरदान दिया था॥ ४७॥

रामेण प्रार्थितोऽत्यर्थं ज्योतिर्लिङ्गस्वरूपतः।
सन्तस्थौ सेतुबन्धे च रामसंसेवितो मुने॥ ४८

हे मुने! रामचन्द्रजीद्वारा बहुत प्रार्थना करनेपर उनके द्वारा सेवित हुए शिवजी ज्योतिर्लिंगस्वरूपसे सेतुबन्धमें स्थित हो गये॥ ४८॥

रामेश्वरस्य महिमाद्भुतोऽभूद्भुवि चातुलः।
भुक्तिमुक्तिप्रदश्चैव सर्वदा भक्तकामदः॥ ४९

रामेश्वरकी महिमा इस पृथ्वीतलमें अद्भुत तथा अतुलनीय हुई, ये भोग तथा मोक्षको देनेवाले तथा भक्तोंके मनोरथको पूर्ण करनेवाले हैं॥ ४९॥

तं च गङ्गाजलेनैव स्नापयिष्यति यो नरः।
रामेश्वरं च सद्भक्त्या स जीवन्मुक्त एव हि॥ ५०

जो मनुष्य रामेश्वरको उत्तम भक्तिपूर्वक गंगाजलसे स्नान कराता है, वह जीवन्मुक्त हो जाता है॥ ५०॥

इह भुक्त्वाखिलान्भोगान्देवतादुर्ल्लभानपि।
अतः प्राप्य परं ज्ञानं कैवल्यं मोक्षमाप्नुयात्॥ ५१

वह इस लोकमें देवताओंके लिये भी दुर्लभ सभी प्रकारके सुखोंका उपभोगकर अन्तमें उत्तम ज्ञान प्राप्तकर कैवल्यमोक्ष प्राप्त करता है॥ ५१॥

घुश्मेश्वरावतारस्तु द्वादशः शङ्करस्य हि।
नानालीलाकरो घुश्मानन्ददो भक्तवत्सलः॥ ५२

शिवजीका बारहवाँ अवतार घुश्मेश्वर नामसे प्रसिद्ध है, जो भक्तोंपर कृपा करनेवाला, अनेकविध लीला करनेवाला तथा घुश्माको आनन्द देनेवाला है॥ ५२॥

दक्षिणस्यां दिशि मुने देवशैलसमीपतः।
आविर्बभूव सरसि घुश्माप्रियकरः प्रभुः॥ ५३

हे मुने! दक्षिण दिशामें देवशैलके समीप स्थित सरोवरमें घुश्माका कल्याण करनेवाले प्रभु शिव प्रकट हुए थे॥ ५३॥

सुदेहामारितं घुश्मापुत्रं साकल्यतो मुने।
तुष्टस्तद्भक्तितः शम्भुर्योऽरक्षद्भक्तवत्सलः॥ ५४

तत्प्रार्थितः स वै शम्भुस्तडागे तत्र कामदः।
ज्योतिर्लिङ्गस्वरूपेण तस्थौ घुश्मेश्वराभिधः॥ ५५

हे मुने! इन्हीं भक्तवत्सल शिवजीने सुदेहाद्वारा मारे गये घुश्माके पुत्रकी उसकी भक्तिसे प्रसन्न हो रक्षा की थी और घुश्माके द्वारा प्रार्थना किये जानेपर सम्पूर्ण कामनाओंको देनेवाले ये प्रभु घुश्मेश्वर नामसे उस सरोवरमें ज्योतिर्लिंग-स्वरूपसे स्थित हो गये॥ ५४-५५॥

तं दृष्ट्वा शिवलिङ्गं तु समभ्यर्च्य च भक्तितः।
इह सर्वसुखं भुक्त्वा ततो मुक्तिं च विन्दति॥ ५६

उस शिवलिंगका दर्शन एवं भक्तिपूर्वक पूजन करनेसे मनुष्य इस लोकमें सभी प्रकारका सुख भोगकर अन्तमें मुक्ति प्राप्त कर लेता है॥ ५६॥

इति ते हि समाख्याता ज्योतिर्लिङ्गावली मया।
द्वादशप्रमिता दिव्या भुक्तिमुक्तिप्रदायिनी॥ ५७

[हे सनत्कुमार!] इस प्रकार मैंने भोग तथा मोक्ष देनेवाले इन दिव्य द्वादश ज्योतिर्लिंगोंका वर्णन आपसे कर दिया॥ ५७॥

एतां ज्योतिर्लिङ्गकथां यः पठेच्छृणुयादपि।
मुच्यते सर्वपापेभ्यो भुक्तिं मुक्तिं च विन्दति॥ ५८

जो मनुष्य ज्योतिर्लिंगोंकी इस कथाको पढ़ता अथवा सुनता है, वह समस्त पापोंसे छूट जाता है और भोग तथा मोक्षको प्राप्त कर लेता है॥ ५८॥

शतरुद्राभिधा चेयं वर्णिता संहिता मया।
शतावतारसत्कीर्तिः सर्वकामफलप्रदा॥ ५९

मैंने शिवजीके सौ अवतारोंकी उत्तम कीर्तिसे पूर्ण तथा सभी मनोरथोंको पूर्ण करनेवाली इस शतरुद्र नामक संहिताका वर्णन कर दिया॥ ५९॥

इमां यः पठते नित्यं शृणुयाद्वा समाहितः।
सर्वान्कामानवाप्नोति ततो मुक्तिं लभेद् ध्रुवम्॥ ६०

जो एकाग्रचित्त होकर इसे नित्य पढ़ता अथवा सुनता है, उसकी समस्त कामनाएँ पूर्ण हो जाती हैं और उसके बाद वह मुक्तिको प्राप्त कर लेता है॥ ६०॥

इति श्रीशिवमहापुराणे तृतीयायां शतरुद्रसंहितायां सनत्कुमारनन्दीश्वरसंवादे द्वादशज्योतिर्लिङ्गावतारवर्णनं नाम द्विचत्वारिंशोऽध्यायः॥ ४२॥

॥ इस प्रकार श्रीशिवमहापुराणके अन्तर्गत तृतीय शतरुद्रसंहिताके सनत्कुमार-नन्दीश्वर-संवादमें द्वादशज्योतिर्लिंगावतारवर्णन नामक बयालीसवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ ४२॥

॥ समाप्तेयं तृतीया शतरुद्रसंहिता॥ ३॥

श्रीरामेश्वरपूजन

॥ ॐ श्रीसाम्बशिवाय नमः॥ ॥ ॐ श्रीगणेशाय नमः॥

श्रीशिवमहापुराण

चतुर्थी कोटिरुद्रसंहिता

अथ प्रथमोऽध्यायः

द्वादश ज्योतिर्लिंगों एवं उनके उपलिंगोंके माहात्म्यका वर्णन

यो धत्ते निजमाययैव भुवनाकारं विकारोज्झितो
यस्याहुः करुणाकटाक्षविभवौ स्वर्गापवर्गाभिधौ।
प्रत्यग्बोधसुखाद्वयं हृदि सदा पश्यन्ति यं योगिन-
स्तस्मै शैलसुताञ्चितार्धवपुषे शश्वन्नमस्तेजसे॥ १

जो निर्विकार होते हुए भी अपनी मायासे विराट् विश्वका आकार धारण कर लेते हैं, स्वर्ग तथा अपवर्ग जिनके कृपाकटाक्षके वैभव बताये जाते हैं तथा योगीजन जिन्हें सदा अपने हृदयके भीतर आत्मज्ञानानन्दस्वरूपमें देखते हैं, उन तेजोमय भगवान् शंकरको, जिनका आधा शरीर शैलराजकुमारी पार्वतीसे सुशोभित है, निरन्तर मेरा नमस्कार है॥ १॥

कृपाललितवीक्षणं स्मितमनोज्ञवक्त्राम्बुजं
शशाङ्ककलयोज्ज्वलं शमितघोरतापत्रयम्।
करोतु किमपि स्फुरत्परमसौख्यसच्चिद्वपु-
र्धराधरसुताभुजोद्वलयितं महो मङ्गलम्॥ २

जिसकी कृपापूर्ण चितवन बड़ी ही सुन्दर है, जिसका मुखारविन्द मन्द मुसकानकी छटासे अत्यन्त मनोहर दिखायी देता है, जो चन्द्रमाकी कलासे परम उज्ज्वल है, जो तीनों भीषण तापोंको शान्त कर देनेमें समर्थ है, जिसका स्वरूप सच्चिन्मय एवं परमानन्दरूपसे प्रकाशित होता है तथा जो गिरिराजनन्दिनी पार्वतीके भुजपाशसे आवेष्टित है, वह [शिव नामक] कोई [अनिर्वचनीय] तेजःपुंज सबका मंगल करे॥ २॥

ऋषय ऊचुः

सम्यगुक्तं त्वया सूत लोकानां हितकाम्यया।
शिवावतारमाहात्म्यं नानाख्यानसमन्वितम्॥ ३
पुनश्च कथ्यतां तात शिवमाहात्म्यमुत्तमम्।
लिङ्गसम्बन्धि सुप्रीत्या धन्यस्त्वं शैवसत्तम॥ ४

ऋषिगण बोले—हे सूत! आपने लोकका कल्याण करनेके निमित्त अनेक प्रकारके आख्यानोंसे युक्त शिवजीके अवतारोंका माहात्म्य भलीभाँति कहा। अब हे तात! आप शिवजीके लिंगसम्बन्धी माहात्म्यका प्रेमपूर्वक वर्णन कीजिये। हे शिवभक्तोंमें श्रेष्ठ! आप धन्य हैं॥ ३-४॥

शृण्वन्तस्त्वन्मुखाम्भोजान्न तृप्ताः स्मो वयं प्रभो।
शैवं यशोऽमृतं रम्यं तदेव पुनरुच्यताम्॥ ५

हे प्रभो! आपके मुखकमलसे शिवके अमृतरूप मनोहर यशको सुनते हुए हम लोग तृप्त नहीं हुए, अतः उसीको फिरसे कहिये॥ ५॥

पृथिव्यां यानि लिङ्गानि तीर्थे तीर्थे शुभानि हि।
अन्यत्र वा स्थले यानि प्रसिद्धानि स्थितानि वै॥ ६
तानि तानि च दिव्यानि लिङ्गानि परमेशितुः।
व्यासशिष्य समाचक्ष्व लोकानां हितकाम्यया॥ ७

इस पृथ्वीके सभी तीर्थोंमें जितने शुभ लिंग हैं, अथवा इस भूतलपर अन्यत्र भी जो प्रसिद्ध लिंग स्थित हैं, हे व्यासशिष्य! लोकहितकी कामनासे परमेश्वर शिवके उन सभी दिव्य लिंगोंका वर्णन कीजिये॥ ६-७॥

सूत उवाच

साधु पृष्टमृषिश्रेष्ठा लोकानां हितकाम्यया।
कथयामि भवत्स्नेहात्तानि संक्षेपतो द्विजाः॥ ८

सर्वेषां शिवलिङ्गानां मुने संख्या न विद्यते।
सर्वा लिंगमयी भूमिः सर्वं लिंगमयं जगत्॥ ९

लिंगयुक्तानि तीर्थानि सर्वं लिंगे प्रतिष्ठितम्।
संख्या न विद्यते तेषां तानि किंचिद्ब्रवीम्यहम्॥ १०

यत्किंचिद् दृश्यते दृश्यं वर्ण्यते स्मर्यते च यत्।
तत्सर्वं शिवरूपं हि नान्यदस्तीति किंचन॥ ११

तथापि श्रूयतां प्रीत्या कथयामि यथाश्रुतम्।
लिंगानि च ऋषिश्रेष्ठाः पृथिव्यां यानि तानि ह॥ १२

पाताले चापि वर्तन्ते स्वर्गे चापि तथा भुवि।
सर्वत्र पूज्यते शम्भुः स देवासुरमानुषैः॥ १३

त्रिजगच्छम्भुना व्याप्तं सदेवासुरमानुषम्।
अनुग्रहाय लोकानां लिंगरूपेण सत्तमाः॥ १४

अनुग्रहाय लोकानां लिंगानि च महेश्वरः।
दधाति विविधान्यत्र तीर्थे चान्यस्थले तथा॥ १५

यत्र यत्र यदा शंभुर्भक्त्या भक्तैश्च संस्मृतः।
तत्र तत्रावतीर्याथ कार्यं कृत्वा स्थितस्तदा॥ १६

लोकानामुपकारार्थं स्वलिंगं चाप्यकल्पयत्।
तल्लिंगं पूजयित्वा तु सिद्धिं समधिगच्छति॥ १७

पृथिव्यां यानि लिंगानि तेषां संख्या न विद्यते।
तथापि च प्रधानानि कथ्यन्ते च मया द्विजाः॥ १८

प्रधानेषु च यानीह मुख्यानि प्रवदाम्यहम्।
यच्छ्रुत्वा सर्वपापेभ्यो मुच्यते मानवः क्षणात्॥ १९

ज्योतिर्लिंगानि यानीह मुख्यमुख्यानि सत्तम।
तान्यहं कथयाम्यद्य श्रुत्वा पापं व्यपोहति॥ २०

सूतजी बोले—हे ऋषिवरो! आपलोगोंने लोकहितकी कामनासे अच्छी बात पूछी है, अतः हे द्विजो! आपलोगोंके स्नेहसे मैं उन लिंगोंका वर्णन करता हूँ॥ ८॥

हे मुने! शिवजीके सम्पूर्ण लिंगोंकी [कोई निश्चित] संख्या नहीं है; क्योंकि यह समस्त पृथ्वी लिंगमय है और सारा जगत् लिंगमय है। सभी तीर्थ लिंगमय हैं; सारा प्रपंच लिंगमें ही प्रतिष्ठित है। यद्यपि उनकी कोई संख्या नहीं है, फिर [भी] मैं कुछ लिंगोंका वर्णन कर रहा हूँ॥ ९-१०॥

इस जगत्में जो कुछ भी दृश्य देखा जाता है, कहा जाता है और [मनसे] स्मरण किया जाता है, वह सब शिवस्वरूप ही है। शिवके अतिरिक्त अन्य कुछ भी नहीं है। फिर भी हे श्रेष्ठ ऋषिगण! इस पृथ्वीपर जितने भी दिव्य लिंग हैं, जैसा कि मुझे ज्ञात है। उनको मैं बता रहा हूँ, आपलोग प्रेमपूर्वक सुनिये॥ ११-१२॥

पातालमें, स्वर्गमें एवं पृथ्वीपर सभी जगह शिवलिंग हैं; क्योंकि देवता, असुर एवं मनुष्य—ये सभी शिवजीका पूजन करते हैं॥ १३॥

हे महर्षियो! शिवजीने लोकोंके कल्याणार्थ ही लिंगरूपसे देव, मनुष्य तथा दैत्योंके सहित इस समस्त त्रिलोकीको व्याप्त कर रखा है। वे महेश्वर लोकोंके हितके लिये तीर्थ-तीर्थमें तथा अन्य स्थलोंमें भी विविध लिंगोंको धारण करते हैं॥ १४-१५॥

जिस-जिस स्थानमें जब-जब शिवजीके भक्तोंने भक्तिपूर्वक उनका स्मरण किया है, उस समय उन-उन स्थानोंमें प्रकट होकर [भक्तजनोंका] कार्य करके वे वहाँ स्थित हो गये। उन्होंने लोकोपकारार्थ अपने लिंगको प्रकट किया, उस लिंगका पूजन करके मनुष्य सिद्धिको प्राप्त होता है॥ १६-१७॥

हे द्विजो! पृथिवीपर जितने लिंग हैं, उनकी कोई गणना नहीं है, फिर भी मैं प्रधान लिंगोंको कहता हूँ। प्रधान लिंगोंमें जो [विशेषरूपसे] मुख्य लिंग हैं, उनको मैं कहता हूँ, जिनके सुननेसे मनुष्य उसी समय पापोंसे मुक्त हो जाता है॥ १८-१९॥

हे मुनिसत्तम! इस लोकमें मुख्योंमें भी मुख्य जितने ज्योतिर्लिंग हैं, उन्हें मैं इस समय कहता हूँ, जिन्हें सुनकर प्राणी पापोंसे छूट जाता है॥ २०॥

सौराष्ट्रे सोमनाथं च श्रीशैले मल्लिकार्जुनम्।
उज्जयिन्यां महाकालमोंकारे परमेश्वरम्॥ २१
केदारं हिमवत्पृष्ठे डाकिन्यां भीमशंकरम्।
वाराणस्यां च विश्वेशं त्र्यम्बकं गौतमीतटे॥ २२
वैद्यनाथं चिताभूमौ नागेशं दारुकावने।
सेतुबंधे च रामेशं घुश्मेशं च शिवालये॥ २३
द्वादशैतानि नामानि प्रातरुत्थाय यः पठेत्।
सर्वपापविनिर्मुक्तः सर्वसिद्धिफलं लभेत्॥ २४

सौराष्ट्रमें सोमनाथ, श्रीशैलपर मल्लिकार्जुन, उज्जयिनीमें महाकाल, ॐकार क्षेत्रमें परमेश्वर, हिमालयपर केदार, डाकिनीमें भीमशंकर, वाराणसीमें विश्वेश्वर, गौतमी नदीके तटपर त्र्यम्बकेश्वर, चिताभूमिमें वैद्यनाथ, दारुकवनमें नागेश, सेतुबन्धमें रामेश्वर तथा शिवालयमें घुश्मेश्वर [नामक ज्योतिर्लिंग] हैं। जो [प्रतिदिन] प्रातःकाल उठकर इन बारह नामोंका पाठ करता है, उसके सभी प्रकारके पाप छूट जाते हैं और उसको सम्पूर्ण सिद्धियोंका फल प्राप्त हो जाता है॥ २१—२४॥

यं यं काममपेक्ष्यैव पठिष्यन्ति नरोत्तमाः।
प्राप्स्यन्ति कामं तं तं हि परत्रेह मुनीश्वराः॥ २५

ये निष्कामतया तानि पठिष्यन्ति शुभाशयाः।
तेषां च जननीगर्भे वासो नैव भविष्यति॥ २६

हे मुनीश्वरो! उत्तम पुरुष जिस-जिस मनोरथकी अपेक्षा करके इनका पाठ करेंगे, वे उस-उस मनोकामनाको इस लोकमें तथा परलोकमें प्राप्त करेंगे और जो शुद्ध अन्तःकरणवाले पुरुष निष्कामभावसे इनका पाठ करेंगे, वे [पुनः] माताके गर्भमें निवास नहीं करेंगे॥ २५-२६॥

एतेषां पूजनेनैव वर्णानां दुःखनाशनम्।
इहलोके परत्रापि मुक्तिर्भवति निश्चितम्॥ २७

ग्राह्यमेषां च नैवेद्यं भोजनीयं प्रयत्नतः।
तत्कर्तुः सर्वपापानि भस्मसाद्यान्ति वै क्षणात्॥ २८

इस लोकमें इन लिंगोंका पूजन करनेसे [ब्राह्मण आदि] सभी वर्णोंका दुःख नष्ट हो जाता है और परलोकमें निश्चित रूपसे उनकी मुक्ति भी हो जाती है। इन लिंगोंपर चढ़ाया गया प्रसाद सर्वथा ग्रहण करनेयोग्य होता है; उसे [श्रद्धासे] विशेष यत्नसे ग्रहण करना चाहिये। ऐसा करनेवालेके समस्त पाप उसी क्षण विनष्ट हो जाते हैं॥ २७-२८॥

ज्योतिषां चैव लिंगानां ब्रह्मादिभिरलं द्विजाः।
विशेषतः फलं वक्तुं शक्यते न परैस्तथा॥ २९

एकं च पूजितं येन षण्मासं तन्निरन्तरम्।
तस्य दुःखं न जायेत मातृकुक्षिसमुद्भवम्॥ ३०

हे द्विजो! इन ज्योतिर्लिंगोंका विशेष फल कहनेमें ब्रह्मा आदि भी समर्थ नहीं हैं, फिर दूसरोंकी बात ही क्या? जिसने किसी एक लिंगका भी छः मासतक यदि निरन्तर पूजन कर लिया, उसे पुनर्जन्मका दुःख नहीं उठाना पड़ता है॥ २९-३०॥

हीनयोनौ यदा जातो ज्योतिर्लिंगं च पश्यति।
तस्य जन्म भवेत्तत्र विमले सत्कुले पुनः॥ ३१

सत्कुले जन्म संप्राप्य धनाढ्यो वेदपारगः।
शुभकर्म तदा कृत्वा मुक्तिं यात्यनपायिनीम्॥ ३२

नीच कुलमें उत्पन्न हुआ पुरुष भी यदि किसी ज्योतिर्लिंगका दर्शन करता है, तो उसका जन्म पुनः निर्मल एवं उत्तम कुलमें होता है। वह उत्तम कुलमें जन्म प्राप्तकर धनसे सम्पन्न एवं वेदका पारगामी विद्वान् होता है। उसके बाद [वेदोचित] शुभ कर्म करके वह स्थिर रहनेवाली मुक्ति प्राप्त करता है॥ ३१-३२॥

म्लेच्छो वाप्यन्त्यजो वापि षण्ढो वापि मुनीश्वराः।
द्विजो भूत्वा भवेन्मुक्तस्तस्मात्तद्दर्शनं चरेत्॥ ३३

हे मुनीश्वरो! म्लेच्छ, अन्त्यज अथवा नपुंसक कोई भी हो—वह [ज्योतिर्लिंगके दर्शनके प्रभावसे] द्विजकुलमें जन्म लेकर मुक्त हो जाता है, इसलिये ज्योतिर्लिंगका दर्शन [अवश्य] करना चाहिये॥ ३३॥

सूत उवाच

साधु पृष्टमृषिश्रेष्ठा लोकानां हितकाम्यया।
कथयामि भवत्स्नेहात्तानि संक्षेपतो द्विजाः॥ ८

सर्वेषां शिवलिङ्गानां मुने संख्या न विद्यते।
सर्वा लिंगमयी भूमिः सर्वं लिंगमयं जगत्॥ ९

लिंगयुक्तानि तीर्थानि सर्वं लिंगे प्रतिष्ठितम्।
संख्या न विद्यते तेषां तानि किंचिद्ब्रवीम्यहम्॥ १०

यत्किंचिद् दृश्यते दृश्यं वर्ण्यते स्मर्यते च यत्।
तत्सर्वं शिवरूपं हि नान्यदस्तीति किंचन॥ ११

तथापि श्रूयतां प्रीत्या कथयामि यथाश्रुतम्।
लिंगानि च ऋषिश्रेष्ठाः पृथिव्यां यानि तानि ह॥ १२

पाताले चापि वर्तन्ते स्वर्गे चापि तथा भुवि।
सर्वत्र पूज्यते शम्भुः स देवासुरमानुषैः॥ १३

त्रिजगच्छम्भुना व्याप्तं सदेवासुरमानुषम्।
अनुग्रहाय लोकानां लिंगरूपेण सत्तमाः॥ १४

अनुग्रहाय लोकानां लिंगानि च महेश्वरः।
दधाति विविधान्यत्र तीर्थे चान्यस्थले तथा॥ १५

यत्र यत्र यदा शंभुर्भक्त्या भक्तैश्च संस्मृतः।
तत्र तत्रावतीर्याथ कार्यं कृत्वा स्थितस्तदा॥ १६

लोकानामुपकारार्थं स्वलिंगं चाप्यकल्पयत्।
तल्लिंगं पूजयित्वा तु सिद्धिं समधिगच्छति॥ १७

पृथिव्यां यानि लिंगानि तेषां संख्या न विद्यते।
तथापि च प्रधानानि कथ्यन्ते च मया द्विजाः॥ १८

प्रधानेषु च यानीह मुख्यानि प्रवदाम्यहम्।
यच्छ्रुत्वा सर्वपापेभ्यो मुच्यते मानवः क्षणात्॥ १९

ज्योतिर्लिंगानि यानीह मुख्यमुख्यानि सत्तम।
तान्यहं कथयाम्यद्य श्रुत्वा पापं व्यपोहति॥ २०

सूतजी बोले—हे ऋषिवरो! आपलोगोंने लोक-हितकी कामनासे अच्छी बात पूछी है, अतः हे द्विजो! आपलोगोंके स्नेहसे मैं उन लिंगोंका वर्णन करता हूँ॥ ८॥

हे मुने! शिवजीके सम्पूर्ण लिंगोंकी [कोई निश्चित] संख्या नहीं है; क्योंकि यह समस्त पृथ्वी लिंगमय है और सारा जगत् लिंगमय है। सभी तीर्थ लिंगमय हैं; सारा प्रपंच लिंगमें ही प्रतिष्ठित है। यद्यपि उनकी कोई संख्या नहीं है, फिर [भी] मैं कुछ लिंगोंका वर्णन कर रहा हूँ॥ ९-१०॥

इस जगत्में जो कुछ भी दृश्य देखा जाता है, कहा जाता है और [मनसे] स्मरण किया जाता है, वह सब शिवस्वरूप ही है। शिवके अतिरिक्त अन्य कुछ भी नहीं है। फिर भी हे श्रेष्ठ ऋषिगण! इस पृथ्वीपर जितने भी दिव्य लिंग हैं, जैसा कि मुझे ज्ञात है। उनको मैं बता रहा हूँ, आपलोग प्रेमपूर्वक सुनिये॥ ११-१२॥

पातालमें, स्वर्गमें एवं पृथ्वीपर सभी जगह शिवलिंग हैं; क्योंकि देवता, असुर एवं मनुष्य—ये सभी शिवजीका पूजन करते हैं॥ १३॥

हे महर्षियो! शिवजीने लोकोंके कल्याणार्थ ही लिंगरूपसे देव, मनुष्य तथा दैत्योंके सहित इस समस्त त्रिलोकीको व्याप्त कर रखा है। वे महेश्वर लोकोंके हितके लिये तीर्थ-तीर्थमें तथा अन्य स्थलोंमें भी विविध लिंगोंको धारण करते हैं॥ १४-१५॥

जिस-जिस स्थानमें जब-जब शिवजीके भक्तोंने भक्तिपूर्वक उनका स्मरण किया है, उस समय उन-उन स्थानोंमें प्रकट होकर [भक्तजनोंका] कार्य करके वे वहाँ स्थित हो गये। उन्होंने लोकोपकारार्थ अपने लिंगको प्रकट किया, उस लिंगका पूजन करके मनुष्य सिद्धिको प्राप्त होता है॥ १६-१७॥

हे द्विजो! पृथिवीपर जितने लिंग हैं, उनकी कोई गणना नहीं है, फिर भी मैं प्रधान लिंगोंको कहता हूँ। प्रधान लिंगोंमें जो [विशेषरूपसे] मुख्य लिंग हैं, उनको मैं कहता हूँ, जिनके सुननेसे मनुष्य उसी समय पापोंसे मुक्त हो जाता है॥ १८-१९॥

हे मुनिसत्तम! इस लोकमें मुख्योंमें भी मुख्य जितने ज्योतिर्लिंग हैं, उन्हें मैं इस समय कहता हूँ, जिन्हें सुनकर प्राणी पापोंसे छूट जाता है॥ २०॥

सौराष्ट्रे सोमनाथं च श्रीशैले मल्लिकार्जुनम्।
उज्जयिन्यां महाकालमोंकारे परमेश्वरम्॥ २१
केदारं हिमवत्पृष्ठे डाकिन्यां भीमशंकरम्।
वाराणस्यां च विश्वेशं त्र्यम्बकं गौतमीतटे॥ २२
वैद्यनाथं चिताभूमौ नागेशं दारुकावने।
सेतुबंधे च रामेशं घुश्मेशं च शिवालये॥ २३
द्वादशैतानि नामानि प्रातरुत्थाय यः पठेत्।
सर्वपापविनिर्मुक्तः सर्वसिद्धिफलं लभेत्॥ २४

सौराष्ट्रमें सोमनाथ, श्रीशैलपर मल्लिकार्जुन, उज्जयिनीमें महाकाल, ॐकार क्षेत्रमें परमेश्वर, हिमालयपर केदार, डाकिनीमें भीमशंकर, वाराणसीमें विश्वेश्वर, गौतमी नदीके तटपर त्र्यम्बकेश्वर, चिताभूमिमें वैद्यनाथ, दारुकवनमें नागेश, सेतुबन्धमें रामेश्वर तथा शिवालयमें घुश्मेश्वर [नामक ज्योतिर्लिंग] हैं। जो [प्रतिदिन] प्रातःकाल उठकर इन बारह नामोंका पाठ करता है, उसके सभी प्रकारके पाप छूट जाते हैं और उसको सम्पूर्ण सिद्धियोंका फल प्राप्त हो जाता है॥ २१—२४॥

यं यं काममपेक्ष्यैव पठिष्यन्ति नरोत्तमाः।
प्राप्स्यन्ति कामं तं तं हि परत्रेह मुनीश्वराः॥ २५
ये निष्कामतया तानि पठिष्यन्ति शुभाशयाः।
तेषां च जननीगर्भे वासो नैव भविष्यति॥ २६

हे मुनीश्वरो! उत्तम पुरुष जिस-जिस मनोरथकी अपेक्षा करके इनका पाठ करेंगे, वे उस-उस मनोकामनाको इस लोकमें तथा परलोकमें प्राप्त करेंगे और जो शुद्ध अन्तःकरणवाले पुरुष निष्कामभावसे इनका पाठ करेंगे, वे [पुनः] माताके गर्भमें निवास नहीं करेंगे॥ २५-२६॥

एतेषां पूजनेनैव वर्णानां दुःखनाशनम्।
इहलोके परत्रापि मुक्तिर्भवति निश्चितम्॥ २७
ग्राह्यमेषां च नैवेद्यं भोजनीयं प्रयत्नतः।
तत्कर्तुः सर्वपापानि भस्मसाद्यान्ति वै क्षणात्॥ २८

इस लोकमें इन लिंगोंका पूजन करनेसे [ब्राह्मण आदि] सभी वर्णोंका दुःख नष्ट हो जाता है और परलोकमें निश्चित रूपसे उनकी मुक्ति भी हो जाती है। इन लिंगोंपर चढ़ाया गया प्रसाद सर्वथा ग्रहण करनेयोग्य होता है; उसे [श्रद्धासे] विशेष यत्नसे ग्रहण करना चाहिये। ऐसा करनेवालेके समस्त पाप उसी क्षण विनष्ट हो जाते हैं॥ २७-२८॥

ज्योतिषां चैव लिंगानां ब्रह्मादिभिरलं द्विजाः।
विशेषतः फलं वक्तुं शक्यते न परैस्तथा॥ २९
एकं च पूजितं येन षण्मासं तन्निरन्तरम्।
तस्य दुःखं न जायेत मातृकुक्षिसमुद्भवम्॥ ३०

हे द्विजो! इन ज्योतिर्लिंगोंका विशेष फल कहनेमें ब्रह्मा आदि भी समर्थ नहीं हैं, फिर दूसरोंकी बात ही क्या? जिसने किसी एक लिंगका भी छः मासतक यदि निरन्तर पूजन कर लिया, उसे पुनर्जन्मका दुःख नहीं उठाना पड़ता है॥ २९-३०॥

हीनयोनौ यदा जातो ज्योतिर्लिंगं च पश्यति।
तस्य जन्म भवेत्तत्र विमले सत्कुले पुनः॥ ३१
सत्कुले जन्म संप्राप्य धनाढ्यो वेदपारगः।
शुभकर्म तदा कृत्वा मुक्तिं यात्यनपायिनीम्॥ ३२

नीच कुलमें उत्पन्न हुआ पुरुष भी यदि किसी ज्योतिर्लिंगका दर्शन करता है, तो उसका जन्म पुनः निर्मल एवं उत्तम कुलमें होता है। वह उत्तम कुलमें जन्म प्राप्तकर धनसे सम्पन्न एवं वेदका पारगामी विद्वान् होता है। उसके बाद [वेदोचित] शुभ कर्म करके वह स्थिर रहनेवाली मुक्ति प्राप्त करता है॥ ३१-३२॥

म्लेच्छो वाप्यन्त्यजो वापि षण्ढो वापि मुनीश्वराः।
द्विजो भूत्वा भवेन्मुक्तस्तस्मात्तद्दर्शनं चरेत्॥ ३३

हे मुनीश्वरो! म्लेच्छ, अन्त्यज अथवा नपुंसक कोई भी हो—वह [ज्योतिर्लिंगके दर्शनके प्रभावसे] द्विजकुलमें जन्म लेकर मुक्त हो जाता है, इसलिये ज्योतिर्लिंगका दर्शन [अवश्य] करना चाहिये॥ ३३॥

ज्योतिषां चैव लिंगानां किंचित्प्रोक्तं फलं मया।
ज्योतिषां चोपलिंगानि श्रूयन्तामृषिसत्तमाः॥ ३४

हे मुनिसत्तमो! मैंने संक्षेपमें इन ज्योतिर्लिंगोंके फलका वर्णन किया; अब इनके उपलिंगोंको सुनिये॥ ३४॥

सोमेश्वरस्य यल्लिंगमन्तकेशमुदाहृतम्।
मह्याः सागरसंयोगे तल्लिंगमुपलिङ्गकम्॥ ३५
मल्लिकार्जुनसंभूतमुपलिंगमुदाहृतम्।
रुद्रेश्वरमिति ख्यातं भृगुकक्षे सुखावहम्॥ ३६

महीनदी तथा सागरके संगमपर जो अन्तकेश नामक लिंग स्थित है, वह सोमेश्वरका उपलिंग कहा जाता है। भृगुकच्छमें स्थित परम सुखदायक रुद्रेश्वर नामक लिंग ही मल्लिकार्जुनसे प्रकट हुआ उपलिंग कहा गया है॥ ३५-३६॥

महाकालभवं लिंगं दुग्धेशमिति विश्रुतम्।
नर्मदायां प्रसिद्धं तत्सर्वपापहरं स्मृतम्॥ ३७
ॐकारजं च यल्लिंगं कर्दमेशमिति श्रुतम्।
प्रसिद्धं बिन्दुसरसि सर्वकामफलप्रदम्॥ ३८

नर्मदाके तटपर महाकालसे प्रकट हुआ दुग्धेश्वर नामसे प्रसिद्ध उपलिंग है; जो सम्पूर्ण पापोंका विनाश करनेवाला है। ओंकारेश्वरसम्बन्धी उपलिंग कर्दमेश्वर नामसे प्रसिद्ध तथा बिन्दुसरोवरके तटपर स्थित है और यह सम्पूर्ण कामनाओंका फल देनेवाला है॥ ३७-३८॥

केदारेश्वरसंजातं भूतेशं यमुनातटे।
महापापहरं प्रोक्तं पश्यतामर्चतां तथा॥ ३९
भीमशंकरसंभूतं भीमेश्वरमिति स्मृतम्।
सह्याचले प्रसिद्धं तन्महाबलविवर्द्धनम्॥ ४०
विश्वेश्वराच्च यज्जातं शरण्येश्वर विश्रुतम्।
त्र्यम्बकस्य च यत्प्रोक्तं सिद्धेश्वर इति श्रुतम्॥ ४१
वैद्यनाथाच्च यज्जातं वैजनाथ इति स्मृतम्।

यमुनाके तटपर केदारेश्वरसे उत्पन्न भूतेश्वर नामक उपलिंग स्थित है, जो दर्शन एवं पूजन करनेवालोंके लिये महापापनाशक कहा गया है। सह्यपर्वतपर स्थित भीमेश्वर नामक लिंग भीमशंकरका उपलिंग कहा गया है; वह प्रसिद्ध लिंग महान् बलको बढ़ानेवाला है। विश्वेश्वरसे उत्पन्न लिंग शरण्येश्वर नामसे प्रसिद्ध हुआ, त्र्यम्बकेश्वरसे सिद्धेश्वर लिंग प्रकट हुआ तथा वैद्यनाथसे वैजनाथ नामक लिंगका प्राकट्य हुआ॥ ३९—४१॥

नागेश्वरसमुद्भूतं भूतेश्वरमुदाहृतम्॥ ४२
मल्लिकासरस्वतीतीरे दर्शनात्पापहारकम्।
रामेश्वराच्च यज्जातं गुप्तेश्वरमिति स्मृतम्॥ ४३
घुश्मेशाच्चैव यज्जातं व्याघ्रेश्वरमिति स्मृतम्।
ज्योतिर्लिंगोपलिंगानि प्रोक्तानीह मया द्विजाः॥ ४४
दर्शनात्पापहारीणि सर्वकामप्रदानि च।
एतानि सुप्रधानानि मुख्यतां हि गतानि च।
अन्यानि चापि मुख्यानि श्रूयन्तामृषिसत्तमाः॥ ४५

मल्लिका-सरस्वतीके तटपर स्थित एक अन्य भूतेश्वर नामका ही शिवलिंग नागेश्वरसे उत्पन्न उपलिंग कहा गया है, जो दर्शनमात्रसे पापहारी है। रामेश्वरसे जो प्रकट हुआ, वह गुप्तेश्वर और घुश्मेश्वरसे जो प्रकट हुआ, वह व्याघ्रेश्वर कहा गया है॥ ४२-४३॥

हे ब्राह्मणो! इस प्रकार मैंने ज्योतिर्लिंगों तथा उनके उपलिंगोंका वर्णन किया; ये दर्शनमात्रसे पापोंको दूर करनेवाले तथा सम्पूर्ण मनोरथोंको सिद्ध करनेवाले हैं। हे ऋषिश्रेष्ठो! ये प्रधान लिंग तथा उनके उपलिंग मुख्य रूपसे प्रसिद्ध हैं; अब अन्य प्रसिद्ध लिंगोंको भी सुनिये॥ ४४-४५॥

इति श्रीशिवमहापुराणे चतुर्थ्यां कोटिरुद्रसंहितायां ज्योतिर्लिंगतदुपलिंगमाहात्म्यवर्णनं नाम प्रथमोऽध्यायः॥ १॥

॥ इस प्रकार श्रीशिवमहापुराणके अन्तर्गत चतुर्थ कोटिरुद्रसंहितामें ज्योतिर्लिंग और उनके उपलिंगोंका माहात्म्यवर्णन नामक पहला अध्याय पूर्ण हुआ॥ १॥

अथ द्वितीयोऽध्यायः

काशीस्थित तथा पूर्व दिशामें प्रकटित विशेष एवं सामान्य लिंगोंका वर्णन

सूत उवाच

गंगातीरे सुप्रसिद्धा काशी खलु विमुक्तिदा।
सा हि लिंगमयी ज्ञेया शिववासस्थली स्मृता॥ १

लिंगं तत्रैव मुख्यं च सम्प्रोक्तमविमुक्तकम्।
कृत्तिवासेश्वरः साक्षात्तत्तुल्यो वृद्धकालकः॥ २

तिलभाण्डेश्वरश्चैव दशाश्वमेध एव च।
गंगासागरसंयोगे संगमेश इति स्मृतः॥ ३

भूतेश्वरो यः संप्रोक्तो भक्तसर्वार्थदः सदा।
नारीश्वर इति ख्यातः कौशिक्याः स समीपगः॥ ४

वर्तते गण्डकीतीरे बटुकेश्वर एव सः।
पूरेश्वर इति ख्यातः फल्गुतीरे सुखप्रदः॥ ५

सिद्धनाथेश्वरश्चैव दर्शनात्सिद्धिदो नृणाम्।
दूरेश्वर इति ख्यातः पत्तने चोत्तरे तथा॥ ६

शृंगेश्वरश्च नाम्ना वै वैद्यनाथस्तथैव च।
जप्येश्वरस्तथा ख्यातो यो दधीचिरणस्थले॥ ७

गोपेश्वरः समाख्यातो रंगेश्वर इति स्मृतः।
वामेश्वरश्च नागेशः कामेशो विमलेश्वरः॥ ८

व्यासेश्वरश्च विख्यातः सुकेशश्च तथैव हि।
भाण्डेश्वरश्च विख्यातो हुंकारेशस्तथैव च॥ ९
सुरोचनश्च विख्यातो भूतेश्वर इति स्वयम्।
संगमेशस्तथा प्रोक्तो महापातकनाशनः॥ १०
ततश्च तप्तकातीरे कुमारेश्वर एव च।
सिद्धेश्वरश्च विख्यातः सेनेशश्च तथा स्मृतः॥ ११
रामेश्वर इति प्रोक्तो कुंभेशश्च परो मतः।
नन्दीश्वरश्च पुंजेशः पूर्णायां पूर्णकस्तथा॥ १२

ब्रह्मेश्वरः प्रयागे च ब्रह्मणा स्थापितः पुरा।
दशाश्वमेधतीर्थे हि चतुर्वर्गफलप्रदः॥ १३

सूतजी बोले—गंगाके तटपर परम प्रसिद्ध काशी नगरी है, जो सबको मुक्ति प्रदान करनेवाली है। उसे लिंगमयी ही जानना चाहिये, वह सदाशिवकी निवास-स्थली मानी गयी है॥ १॥

वहींपर अविमुक्त नामका मुख्य लिंग कहा गया है। उसीके समान कृत्तिवासेश्वरलिंग एवं वृद्धकाल लिंग काशीमें है। काशीमें तिलभाण्डेश्वर तथा दशाश्वमेध लिंग है। गंगासागरके संगमपर संगमेश्वर नामक लिंग कहा गया है॥ २-३॥

जिन्हें भूतेश्वर कहा गया है और जो नारीश्वर नामसे विख्यात हैं—ये कौशिकी नदीके तटपर विराजमान हैं और भक्तोंको सभी फल प्रदान करनेवाले हैं॥ ४॥

गण्डकी नदीके तटपर बटुकेश्वर नामक लिंग है। फल्गु नदीके तटपर सुखदायी पूरेश्वर नामक लिंग है। उत्तर नामक नगरमें सिद्धनाथेश्वर तथा दूरेश्वर नामक लिंग हैं, जो दर्शनमात्रसे मनुष्योंको सिद्धि प्रदान करनेवाले हैं॥ ५-६॥

शृंगेश्वर तथा वैद्यनाथेश्वर नामक लिंग भी वैसे ही हैं। दधीचिकी संग्रामभूमिमें जप्येश्वर नामक प्रसिद्ध लिंग है। इसी प्रकार गोपेश्वर, रंगेश्वर, वामेश्वर, नागेश्वर, कामेश्वर तथा विमलेश्वर नामक लिंग कहे गये हैं॥ ७-८॥

व्यासेश्वर, शुकेश्वर, भाण्डेश्वर, हुंकारेश्वर, सुरोचनेश्वर, भूतेश्वर, संगमेश्वर नामक लिंग कहे गये हैं, जो महापातकका नाश करनेवाले हैं॥ ९-१०॥

तप्तका नदीके तटपर कुमारेश्वर, सिद्धेश्वर तथा सेनेश्वर नामक प्रसिद्ध लिंग कहे गये हैं॥ ११॥

पूर्णा नदीके तटपर रामेश्वर, कुम्भेश्वर, नन्दीश्वर, पुंजेश्वर तथा पूर्णकेश्वर लिंग कहे गये हैं॥ १२॥

पूर्व समयमें ब्रह्माके द्वारा प्रयागके दशाश्वमेध तीर्थमें स्थापित किया गया ब्रह्मेश्वर नामक लिंग धर्म, अर्थ, काम तथा मोक्षको देनेवाला है॥ १३॥

तथा सोमेश्वरस्तत्र सर्वापद्विनिवारकः।
भारद्वाजेश्वरश्चैव ब्रह्मवर्चःप्रवर्द्धकः॥ १४

शूलटंकेश्वरः साक्षात्कामनाप्रद ईरितः।
माधवेशश्च तत्रैव भक्तरक्षाविधायकः॥ १५

वहींपर सभी विपत्तियोंको दूर करनेवाला सोमेश्वर नामक लिंग तथा ब्रह्मतेजकी वृद्धि करनेवाला भारद्वाजेश्वर नामक लिंग है। वहींपर कामनाओंको देनेवाला साक्षात् शूलटंकेश्वर लिंग तथा भक्तोंकी रक्षा करनेवाला माधवेश्वर लिंग बताया गया है॥ १४-१५॥

नागेशाख्यः प्रसिद्धो हि साकेतनगरे द्विजाः।
सूर्यवंशोद्भवानां च विशेषेण सुखप्रदः॥ १६

हे द्विजो! साकेत (अयोध्यापुरी)-में नागेश नामका प्रसिद्ध लिंग है, जो विशेष रूपसे सूर्यवंशमें उत्पन्न हुए लोगोंको सुख देनेवाला है॥ १६॥

पुरुषोत्तमपुर्यां तु भुवनेशः सुसिद्धिदः।
लोकेशश्च महालिंगः सर्वानन्दप्रदायकः॥ १७

पुरुषोत्तम (जगन्नाथ)-पुरीमें उत्तम सिद्धि प्रदान करनेवाला भुवनेश्वर लिंग है। लोकेश्वर नामक महालिंग सभी प्रकारके आनन्दको देनेवाला है॥ १७॥

कामेश्वरः शंभुलिंगो गंगेशः परशुद्धिकृत्।
शुक्रेश्वरः शुक्रसिद्धो लोकानां हितकाम्यया॥ १८

तथा वटेश्वरः ख्यातः सर्वकामफलप्रदः।
सिन्धुतीरे कपालेशो वक्त्रेशः सर्वपापहा॥ १९

कामेश्वर तथा गंगेश शिवलिंग परम शुद्धि प्रदान करनेवाले हैं। इसी प्रकार लोकहित करनेवाला तथा शुक्रको सिद्धि प्रदान करनेवाला शुक्रेश्वर लिंग है। वटेश्वर नामक लिंग सभी कामनाओंका फल प्रदान करनेवाला कहा गया है। सिन्धुतटपर स्थित कपालेश्वर एवं वक्त्रेश्वर सभी पापोंको दूर करनेवाले हैं॥ १८-१९॥

धौतपापेश्वरः साक्षादंशेन परमेश्वरः।
भीमेश्वर इति प्रोक्तः सूर्येश्वर इति स्मृतः॥ २०

नन्दीश्वरश्च विज्ञेयो ज्ञानदो लोकपूजितः।
नाकेश्वरो महापुण्यस्तथा रामेश्वरः स्मृतः॥ २१

धौतपापेश्वर, भीमेश्वर तथा सूर्येश्वर नामक लिंग साक्षात् शिवके अंश कहे गये हैं। लोक-पूजित नन्दीश्वर लिंगको ज्ञानप्रद जानना चाहिये। नाकेश्वर तथा रामेश्वर महापुण्यके प्रदाता कहे गये हैं॥ २०-२१॥

विमलेश्वरनामा वै कंटकेश्वर एव च।
पूर्वसागरसंयोगे धर्तुकेशस्तथैव च॥ २२

चन्द्रेश्वरश्च विज्ञेयश्चन्द्रकान्तिफलप्रदः।
सर्वकामप्रदश्चैव सिद्धेश्वर इति स्मृतः॥ २३

विमलेश्वर, कण्टकेश्वर तथा धर्तुकेश नामक लिंग पूर्व सागरके संगमपर स्थित हैं। चन्द्रेश्वरको चन्द्रमाके समान कान्तिरूप फलको देनेवाला जानना चाहिये। सिद्धेश्वर नामक लिंग सम्पूर्ण कामनाओंको सिद्ध करनेवाला कहा गया है॥ २२-२३॥

बिल्वेश्वरश्च विख्यातश्चान्धकेशस्तथैव च।
यत्र वा ह्यन्धको दैत्यः शंकरेण हतः पुरा॥ २४

अयं स्वरूपमंशेन धृत्वा शंभुः पुनः स्थितः।
शरणेश्वरविख्यातो लोकानां सुखदः सदा॥ २५

जहाँपर शिवजीने पूर्वकालमें अन्धक दैत्यका वध किया था, वहींपर बिल्वेश्वर तथा अन्धकेश्वर लिंग भी प्रसिद्ध हैं। [अन्धकका वध करनेके उपरान्त] ये शिवजी अपने अंशसे स्वरूप धारणकर पुनः वहीं स्थित हो गये। सर्वदा लोकको सुख देनेवाला शरणेश्वर लिंग तो प्रसिद्ध ही है॥ २४-२५॥

कर्दमेशः परः प्रोक्तः कोटीशश्चार्बुदाचले।
अचलेशश्च विख्यातो लोकानां सुखदः सदा॥ २६

नागेश्वरस्तु कौशिक्यास्तीरे तिष्ठति नित्यशः।
अनन्तेश्वरसंज्ञश्च कल्याणशुभभाजनः॥ २७

कर्दमेश्वरको श्रेष्ठ लिंग कहा गया है। कोटीश अर्बुदाचलपर स्थित हैं। प्रसिद्ध अचलेश नामक लिंग लोगोंको सदा सुख देनेवाला है। कौशिकी नदीके तटपर नागेश्वर लिंग नित्य विराजमान है। अनन्तेश्वर नामक लिंग कल्याण तथा मंगल करनेवाला है॥ २६-२७॥

योगेश्वरश्च विख्यातो वैद्यनाथेश्वरस्तथा।
कोटीश्वरश्च विज्ञेयः सप्तेश्वर इति स्मृतः॥ २८
भद्रेश्वरश्च विख्यातो भद्रनामा हरः स्वयम्।
चण्डीश्वरस्तथा प्रोक्तः संगमेश्वर एव च॥ २९

योगेश्वर, वैद्यनाथेश्वर, कोटीश्वर तथा सप्तेश्वर लिंग विख्यात कहे गये हैं। भद्र नामक शिव भद्रेश्वर लिंगके रूपमें विख्यात हैं। इसी प्रकार चण्डीश्वर तथा संगमेश्वर भी कहे जाते हैं॥ २८-२९॥

पूर्वस्यां दिशि जातानि शिवलिंगानि यानि च।
सामान्यान्यपि चान्यानि तानीह कथितानि ते॥ ३०

दक्षिणस्यां दिशि तथा शिवलिंगानि यानि च।
संजातानि मुनिश्रेष्ठ तानि ते कथयाम्यहम्॥ ३१

पूर्व दिशामें जितने विशेष एवं सामान्य लिंग प्रकट हुए हैं, इस प्रसंगमें उन सभीका वर्णन मैंने आपसे किया। हे मुनिश्रेष्ठ! अब दक्षिण दिशामें जो शिवलिंग प्रकट हुए हैं, उनका वर्णन मैं आपसे करता हूँ॥ ३०-३१॥

इति श्रीशिवमहापुराणे चतुर्थ्यां कोटिरुद्रसंहितायां शिवलिंगमाहात्म्यवर्णनं नाम द्वितीयोऽध्यायः॥ २॥

॥ इस प्रकार श्रीशिवमहापुराणके अन्तर्गत चतुर्थ कोटिरुद्रसंहितामें शिवलिंगमाहात्म्यवर्णन नामक दूसरा अध्याय पूर्ण हुआ॥ २॥

अथ तृतीयोऽध्यायः

अत्रीश्वरलिंगके प्राकट्यके प्रसंगमें अनसूया तथा अत्रिकी तपस्याका वर्णन

सूत उवाच

ब्रह्मपुर्यां चित्रकूटे लिंगं मत्तगजेन्द्रकम्।
ब्रह्मणा स्थापितं पूर्वं सर्वकामसमृद्धिदम्॥ १

तत्पूर्वदिशि कोटीशं लिंगं सर्ववरप्रदम्।
गोदावर्याः पश्चिमे तल्लिंगं पशुपतिनामकम्॥ २

सूतजी बोले—ब्रह्मपुरीके समीपमें चित्रकूट-पर्वतपर मत्तगजेन्द्र नामक लिंग है, जिसे ब्रह्माजीने पूर्वकालमें स्थापित किया था; वह सभी कामनाओंको पूर्ण करनेवाला है। उसके पूर्वमें सभी प्रकारके वरोंको देनेवाला कोटीश्वर नामक लिंग है। गोदावरी नदीके पश्चिमकी ओर पशुपति नामक लिंग है॥ १-२॥

दक्षिणस्यां दिशि कश्चिदत्रीश्वर इति स्वयम्।
लोकानामुपकारार्थमनसूयासुखाय च॥ ३

प्रादुर्भूतः स्वयं देवो ह्यनावृष्ट्यामजीवयत्।
स एव शंकरः साक्षादंशेन स्वयमेव हि॥ ४

दक्षिण दिशामें कोई अत्रीश्वर नामक लिंग है, जिसके रूपमें लोककल्याणके लिये एवं अनसूयाको सुख देनेहेतु साक्षात् शिवजीने अपने अंशसे स्वयं प्रकट होकर अनावृष्टि होनेपर [मरणासन्न] समस्त प्राणियोंको जीवनदान दिया था॥ ३-४॥

ऋषय ऊचुः

सूत सूत महाभाग कथमत्रीश्वरो हरः।
उत्पन्नः परमो दिव्यस्तत्त्वं कथय सुव्रत॥ ५

ऋषिगण बोले—हे महाभाग्यवान् सूत! हे सुव्रत! वहाँपर परम दिव्य अत्रीश्वर नामक लिंगका प्रादुर्भाव किस प्रकार हुआ है, उसे आप [यथार्थ रूपसे] बताइये?॥ ५॥

सूत उवाच

साधु पृष्टमृषिश्रेष्ठाः कथयामि कथां शुभाम्।
यां कथां सततं श्रुत्वा पातकैर्मुच्यते ध्रुवम्॥ ६
दक्षिणस्यां दिशि महत् कामदं नाम यद्वनम्।
चित्रकूटसमीपेऽस्ति तपसां हितदं सताम्॥ ७
तत्र च ब्रह्मणः पुत्रो ह्यत्रिनामा ऋषिः स्वयम्।
तपस्तेपेऽतिकठिनमनसूयासमन्वितः ॥ ८

पूर्वं कदाचित्तत्रैव ह्यनावृष्टिरभून्मुने।
दुःखदा प्राणिनां दैवाद्विकटा शतवार्षिकी॥ ९
वृक्षाः शुष्कास्तदा सर्वे पल्लवानि फलानि च।
नित्यार्थं न जलं क्वापि दृष्टमासीन्मुनीश्वराः॥ १०

आर्द्रीभावो न लभ्येत खरा वाता दिशो दश।
हाहाकारो महानासीत्पृथिव्यां दुःखदोऽति हि॥ ११

संवर्तं चैव भूतानां दृष्ट्वात्रिगृहिणी प्रिया।
साध्वी चैवाब्रवीदत्रिं मया दुःखं न सह्यते॥ १२
समाधौ च विलीनोऽभूदासने संस्थितः स्वयम्।
प्राणायामं त्रिरावृत्त्या कृत्वा मुनिवरस्तदा॥ १३
ध्यायति स्म परं ज्योतिरात्मस्थमात्मना च सः।
अत्रिर्मुनिवरो ज्ञानी शंकरं निर्विकारकम्॥ १४
स्वामिनि ध्यानलीने च शिष्यास्ते दूरतो गताः।
अन्नं विना तदा ते तु मुक्त्वा तं स्वगुरुं मुनिम्॥ १५
एकाकिनी तदा जाता सानसूया पतिव्रता।
सिषेवे सा च सततं तं मुदा मुनिसत्तमम्॥ १६
पार्थिवं सुन्दरं कृत्वा मंत्रेण विधिपूर्वकम्।
मानसैरुपचारैश्च पूजयामास शंकरम्॥ १७
तुष्टाव शंकरं भक्त्या संसेवित्वा मुहुर्मुहुः।
बद्धाञ्जलिपुटा भूत्वा प्रक्रम्य स्वामिनं शिवम्॥ १८
दण्डवत्प्रणिपातेन प्रतिप्रक्रमणं तदा।
चकार सुचरित्रा सानसूया मुनिकामिनी॥ १९
दैत्याश्च दानवाः सर्वे दृष्ट्वा तु सुन्दरीं तदा।
विह्वलाश्चाभवँस्तत्र तेजसा दूरतः स्थिताः॥ २०

अग्निं दृष्ट्वा यथा दूरे वर्तन्ते तद्वदेव हि।
तथैनां च तदा दृष्ट्वा नायान्तीह समीपगाः॥ २१

सूतजी बोले—हे श्रेष्ठ ऋषियो! आपलोगोंने बहुत ही उत्तम प्रश्न किया है; अब मैं उस शुभ कथाको कहता हूँ, जिसे निरन्तर सुनकर मनुष्य निश्चितरूपसे सभी पापोंसे मुक्त हो जाता है॥ ६॥

चित्रकूटके समीप दक्षिण दिशामें कामद नामक एक विशाल वन है, जो सज्जनों एवं तपस्वियोंका कल्याण करनेवाला है। वहाँ ब्रह्माके पुत्र महर्षि अत्रि [अपनी पत्नी] अनसूयाके साथ अति कठिन तप करते थे॥ ७-८॥

हे मुने! पहले किसी समय दुर्भाग्यसे जीवोंको दुःख देनेवाली सौ वर्षकी भयानक अनावृष्टि हुई॥ ९॥

हे मुनीश्वरो! उस समय सभी वृक्ष, पत्ते तथा फल सूख गये। नित्यकर्मके लिये भी कहीं [नाममात्रका] जल नहीं दिखायी पड़ता था॥ १०॥

आर्द्रता कहीं भी नहीं थी और दसों दिशाओंमें शुष्क पवन बहने लगा, जिससे पृथ्वीपर चारों ओर अतिशय दुःखदायक महान् हाहाकार मच गया। तब अत्रिकी पतिव्रता पत्नीने प्राणियोंका विनाश देखकर अत्रिसे कहा कि यह दुःख मुझसे सहन नहीं हो रहा है॥ ११-१२॥

तब वे मुनिवर [अत्रि] स्वयं आसनपर स्थित हो तीन बार प्राणायामकर समाधिमें लीन हो गये। इस प्रकार वे ज्ञानी मुनिश्रेष्ठ अत्रि आत्मामें स्थित निर्विकार शिवस्वरूप परमज्योतिका ध्यान करने लगे॥ १३-१४॥

तब गुरुके समाधिमें लीन हो जानेपर उनके शिष्य अन्नके अभावमें अपने गुरुको छोड़कर दूर चले गये। तब वे पतिव्रता अनसूया अकेली हो गयीं और वे प्रसन्नताके साथ निरन्तर उन मुनिश्रेष्ठकी सेवा करने लगीं। वे सुन्दर पार्थिव शिवलिंग बनाकर मन्त्रके द्वारा विधिवत् मानस उपचारोंसे पूजन करती थीं और बारंबार शंकरजीकी सेवाकर भक्तिसे उनकी स्तुति करती थीं। हाथ जोड़कर स्वामी सदाशिवकी प्रदक्षिणाकर सुन्दर चरित्रवाली वे मुनिपत्नी अनसूया प्रत्येक परिक्रमामें दण्डवत् प्रणाम करती थीं॥ १५—१९॥

उस समय उन शोभाशालिनी [अनसूया]-को देखकर सम्पूर्ण दैत्य एवं दानव वहाँ घबड़ा गये और उनके तेजके कारण दूर खड़े हो गये। जिस प्रकार अग्निको देखकर लोग दूर रहते हैं, उसी प्रकार उनको देखकर लोग समीपमें नहीं आते थे॥ २०-२१॥

अत्रेश्च तपसश्चैवानसूयाशिवसेवनम्।
विशिष्यते स्म विप्रेन्द्रा मनोवाक्कायसंस्कृतम्॥ २२
तावत्कालं तु सा देवी परिचर्यां चकार ह।
यावत्कालं मुनिवरः प्राणायामपरायणः॥ २३
तौ दम्पती तदा तत्र स्वस्वकार्यपरायणौ।
संस्थितौ मुनिशार्दूल नान्यः कश्चित्परः स्थितः॥ २४
एवं जाते तदा काले ह्यत्रिश्च ऋषिसत्तमः।
ध्याने च परमे लीनो न व्यबुध्यत किंचन॥ २५

हे विप्रेन्द्रो! अत्रिकी तपस्याकी अपेक्षा अनसूयाद्वारा मन, वाणी एवं कर्मसे किया गया शिवसेवन विशिष्ट था। इस प्रकार जबतक मुनिवर अत्रि प्राणायामपरायण होकर समाधिमें लीन रहे, तबतक वे देवी उनकी सेवा करती रहीं। हे मुनिवर! इस प्रकार वे दोनों पति-पत्नी अपने-अपने कार्यमें परायण होकर स्थित रहे, वहाँ कोई अन्य स्थित न रहा, चिरकाल व्यतीत हो जानेपर भी इस प्रकार ध्यानमें मग्न ऋषिश्रेष्ठ अत्रिको किसी वस्तुका भान न रहा॥ २२—२५॥

अनसूयापि सा साध्वी स्वामिनं वै शिवं तथा।
भेजे नान्यत्परं किंचिज्जानीते स्म च सा सती॥ २६
तस्यैव तपसा सर्वे तस्याश्च भजनेन च।
देवाश्च ऋषयश्चैव गंगाद्याः सरितस्तथा॥ २७
दर्शनार्थं तयोः सर्वाः परप्रीत्या समाययुः।
दृष्ट्वा च तत्तपः सेवां विस्मयं परमं ययुः॥ २८

पतिव्रता अनसूया भी अपने पति अत्रि तथा अपने इष्टदेव सदाशिवकी सेवा करने लगीं और उन सतीको भी किसी अन्य वस्तुका ज्ञान न रहा। तब उन अत्रिकी तपस्या तथा अनसूयाके शिवाराधनसे प्रसन्न होकर सम्पूर्ण देवता, ऋषिगण तथा गंगा आदि सभी नदियाँ—ये सभी उन दोनोंका दर्शन करनेके लिये प्रेमपूर्वक वहाँ आये। अत्रिकी तपश्चर्या एवं अनसूयाकी सेवा देखकर वे बड़े आश्चर्यमें पड़ गये॥ २६—२८॥

तयोस्तदद्भुतं दृष्ट्वा समूचुर्भजनं वरम्।
उभयोः किं विशिष्टं च तपसो भजनस्य च॥ २९
अत्रेश्चैव तपःप्रोक्तमनसूयानुसेवनम्।
तत्सर्वमुभयोर्दृष्ट्वा समूचुर्भजनं वरम्॥ ३०
पूर्वैश्च ऋषिभिश्चैव दुष्करं तु तपः कृतम्।
एतादृशं तु केनापि क्व कृतं नैतदब्रुवन्॥ ३१
धन्योऽयं च मुनिर्धन्या तथेयमनसूयिका।
यदैताभ्यां परं प्रीत्या क्रियते सुतपः पुनः॥ ३२
एतादृशं शुभं चैतत्तपो दुष्करमुत्तमम्।
त्रिलोक्यां क्रियते केन साम्प्रतं ज्ञायते न हि॥ ३३

उन दोनोंके अद्भुत तप तथा उत्तम सेवाभावको देखकर वे कहने लगे कि अत्रिका तप तथा अनसूयाकी आराधना—इन दोनोंमें कौन श्रेष्ठ है? इसके बाद उन दोनोंको देखकर उन्होंने कहा कि भजन श्रेष्ठ है। पूर्वकालीन ऋषियोंने भी दुष्कर तप किया था, किंतु ऐसा कठिन तप किसीने कभी भी नहीं किया—ऐसा उन्होंने कहा। ये अत्रि धन्य हैं एवं ये अनसूया भी धन्य हैं, जो कि ये दोनों प्रेमपूर्वक घोर तपस्या कर रहे हैं। त्रिलोकीमें इस प्रकारका शुभ, उत्तम तथा कठिन तप किसीने किया हो, यह बात इस समयतक जानी नहीं जा सकी है॥ २९—३३॥

तयोरेव प्रशंसां च कृत्वा ते तु यथागतम्।
गतास्ते च तदा तत्र गंगाञ्च गिरिशं विना॥ ३४
गंगा मद्भजनप्रीता साध्वी धर्मविमोहिता।
कृत्वोपकारमेतस्यागमिष्यामीत्युवाच सा॥ ३५

इस प्रकार उनकी प्रशंसाकर वे जैसे आये थे, वैसे ही [अपने-अपने स्थानको] चले गये। परंतु गंगाजी और शिवजी वहीं स्थित रहे। गंगा तो साध्वी अनसूयाके पातिव्रत्य धर्म तथा उनकी सेवासे मुग्ध होकर वहीं रह गयीं। गंगाने कहा कि मैं इन अनसूयाका उपकार करके ही जाऊँगी॥ ३४-३५॥

शिवोऽपि ध्यानसम्बद्धो मुनेरत्रेर्मुनीश्वराः।
पूर्णांशेन स्थितस्तत्र कैलासं न जगाम ह॥ ३६

हे मुनीश्वरो! शिवजी भी महर्षि अत्रिके ध्यानसे बँधे रहनेके कारण पूर्णांशसे वहीं स्थित हो गये और कैलास नहीं गये। हे ऋषिश्रेष्ठो! चौवन वर्ष बीत

पञ्चाशच्च तथा चात्र चत्वारि ऋषिसत्तमाः।
वर्षाणि च गतान्यासन् वृष्टिर्नैवाभवत्तदा॥ ३७

यावच्चाप्यत्रिणा ह्येवं तपसा ध्यानमाश्रितम्।
अनसूया तदा नैव गृह्णामीतीषणा कृता॥ ३८

एवं च क्रियमाणे हि मुनिना तपसि स्थिते।
अनसूयासुभजने यज्जातं श्रूयतामिति॥ ३९

गये, किंतु वर्षा नहीं हुई। इधर, अनसूयाने यह प्रतिज्ञा कर रखी थी कि जबतक महर्षि समाधिमें लीन रहेंगे, तबतक मैं कुछ भी ग्रहण नहीं करूँगी। इस प्रकार [हे महर्षियो!] मुनिके द्वारा की जाती हुई तपस्यामें स्थित रहने और अनसूयाके शिवभजनमें तत्पर रहनेके कारण जो कुछ हुआ, उसे आप लोग सुनें॥ ३६—३९॥

इति श्रीशिवमहापुराणे चतुर्थ्यां कोटिरुद्रसंहितायामनसूयात्रितपोवर्णनं नाम तृतीयोऽध्यायः॥ ३॥

॥ इस प्रकार श्रीशिवमहापुराणके अन्तर्गत चतुर्थ कोटिरुद्रसंहितामें अनसूयात्रितपोवर्णन नामक तीसरा अध्याय पूर्ण हुआ॥ ३॥

अथ चतुर्थोऽध्यायः

अनसूयाके पातिव्रतके प्रभावसे गंगाका प्राकट्य तथा अत्रीश्वरमाहात्म्यका वर्णन

सूत उवाच

कदाचित्स ऋषिश्रेष्ठो ह्यत्रिर्ब्रह्मविदां वरः।
जागृतश्च जलं देहि प्रत्युवाच प्रियामिति॥ १

सूतजी बोले—[हे महर्षियो!] किसी समय जब ब्रह्मवेत्ताओंमें श्रेष्ठ ऋषिवर अत्रि समाधिसे जगे, तब उन्होंने अपनी प्रिया पत्नीसे कहा—'जल दो'॥ १॥

सापि साध्वी त्ववश्यं च गृहीत्वाथ कमण्डलुम्।
जगाम विपिने तत्र जलं मे नीयते कुतः॥ २

किं करोमि क्व गच्छामि कुतो नीयेत वै जलम्।
इति विस्मयमापन्ना तां गंगां हि ददर्श सा॥ ३

तामनुव्रजती यावत् साब्रवीच्च तदा हि ताम्।
गंगा सरिद्वरा देवी बिभ्रती सुन्दरां तनुम्॥ ४

वे साध्वी भी 'मैं जल अवश्य ही लाऊँगी' ऐसा निश्चयकर कमण्डलु लेकर वनकी ओर चल पड़ीं और विचार करने लगीं कि 'मैं जल कहाँसे लाऊँ, मैं क्या करूँ, कहाँ जाऊँ और कहाँसे जल लाऊँ'—इस विस्मयमें पड़ी हुई उन्होंने उन गंगाजीको मार्गमें देखा। गंगाजीके पीछे-पीछे अनसूया भी चलने लगीं। तब नदियोंमें श्रेष्ठ तथा सुन्दर शरीर धारण करनेवाली गंगा देवीने उनसे कहा—॥ २—४॥

गंगोवाच

प्रसन्नास्मि च ते देवि कुत्र यासि वदाधुना।
धन्या त्वं सुभगे सत्यं तवाज्ञां च करोम्यहम्॥ ५

गंगाजी बोलीं—हे देवि! मैं तुमपर प्रसन्न हूँ, तुम यह बताओ कि इस समय कहाँ जा रही हो? हे सुभगे! सचमुच तुम धन्य हो, मैं तुम्हारी आज्ञाका पालन करूँगी॥ ५॥

सूत उवाच

तद्वचश्च तदा श्रुत्वा ऋषिपत्नी तपस्विनी।
प्रत्युवाच वचः प्रीत्या स्वयं सुचकिता द्विजाः॥ ६

सूतजी बोले—हे ब्राह्मणो! तब उनकी बात सुनकर तपस्विनी ऋषिपत्नी स्वयं आश्चर्यमें पड़ गयीं और प्रेमपूर्वक यह वचन कहने लगीं—॥ ६॥

अनसूयोवाच

का त्वं कमलपत्राक्षि कुतो वा त्वं समागता।
तथ्यं ब्रूहि कृपां कृत्वा साध्वी सुप्रवदा सती॥ ७

अनसूया बोलीं—हे कमलनयने! तुम कौन हो और कहाँसे आयी हो? कृपा करके बताओ; तुम मनोहर बोलनेवाली साध्वी सती-जैसी मालूम पड़ रही हो॥ ७॥

सूत उवाच

इत्युक्ते च तया तत्र मुनिपत्न्या मुनीश्वराः।
सरिद्वरा दिव्यरूपा गंगा वाक्यमथाब्रवीत्॥ ८

गंगोवाच

स्वामिनः सेवनं दृष्ट्वा शिवस्य च परात्मनः।
साध्वि धर्मं च ते दृष्ट्वा स्थितास्मि तव सन्निधौ॥ ९

अहं गंगा समायाता भजनात्ते शुचिस्मिते।
वशीभूता ह्यहं जाता यदिच्छसि वृणीष्व तत्॥ १०

सूत उवाच

इत्युक्ते गंगया साध्वी नमस्कृत्य पुरः स्थिता।
उवाचेति जलं देहि चेत्प्रसन्ना ममाधुना॥ ११

इत्येतद्वचनं श्रुत्वा गर्तं कुर्विति साब्रवीत्।
शीघ्रं चायाच्च तत्कृत्वा स्थिता तत्क्षणमात्रतः॥ १२

तत्र सा च प्रविष्टा च जलरूपमभूत्तदा।
आश्चर्यं परमं गत्वा गृहीतं च जलं तया॥ १३

उवाच वचनं चैतल्लोकानां सुखहेतवे।
अनसूया मुनेः पत्नी दिव्यरूपां सरिद्वराम्॥ १४

अनसूयोवाच

यदि त्वं सुप्रसन्ना मे वर्तसे च कृपा मयि।
स्थातव्यं च त्वया तावत् मत्स्वामी यावदाव्रजेत्॥ १५

सूत उवाच

इति श्रुत्वानसूयाया वचनं सुखदं सताम्।
गंगोवाच प्रसन्नाति ह्यत्रेर्दास्यसि मेऽनघे॥ १६

इत्युक्ते च तया तत्र ह्यनयापि कृतं तथा।
स्वामिने तज्जलं दिव्यं दत्त्वा तत्पुरतः स्थिता॥ १७

स ऋषिश्चापि सुप्रीत्या स्वाचम्य विधिपूर्वकम्।
पपौ दिव्यं जलं तच्च पीत्वा सुखमवाप ह॥ १८

सूतजी बोले—हे मुनीश्वरो! ऋषिपत्नीके द्वारा इस प्रकार कहे जानेपर नदियोंमें श्रेष्ठ दिव्यरूपधारिणी गंगाजीने यह वचन कहा—॥ ८॥

गंगाजी बोलीं—हे साध्वि! अपने पति तथा परमेश्वर सदाशिवके प्रति तुम्हारी सेवाको देखकर एवं तुम्हारा धर्माचरण देखकर मैं तुम्हारे समीप ही स्थित हो गयी हूँ॥ ९॥

हे शुचिस्मिते! मैं गंगा हूँ और तुम्हारे शिवाराधनसे प्रसन्न होकर यहाँ आयी हूँ तथा तुम्हारी वशवर्तिनी हो गयी हूँ, अत: तुम जो चाहती हो, उसे माँगो॥ १०॥

सूतजी बोले—गंगाके द्वारा इस प्रकार कहे जानेपर वे साध्वी अनसूया उन्हें नमस्कारकर आगे खड़ी हो गयीं और बोलीं कि यदि आप इस समय मुझपर प्रसन्न हैं, तो जल दीजिये॥ ११॥

यह वचन सुनकर गंगाजी बोलीं—गड्ढा तैयार करो। तब क्षणमात्रमें वैसा करके वे अनसूया आकर वहाँ खड़ी हो गयीं। इसके बाद वे गंगा उस (गर्त)-में प्रविष्ट हो गयीं और जलरूपमें परिणत हो गयीं। तब उन्होंने आश्चर्यचकित हो जलको ग्रहण कर लिया। तत्पश्चात् मुनिपत्नी अनसूयाने लोकोंके सुखके लिये नदियोंमें श्रेष्ठ तथा दिव्य रूपवाली गंगाजीसे यह वचन कहा—॥ १२—१४॥

अनसूया बोलीं—[हे कृपामयि!] यदि आप मुझपर प्रसन्न हैं, तो आप तबतक यहीं स्थित रहें, जबतक मेरे स्वामी यहाँ न आ जायँ॥ १५॥

सूतजी बोले—सज्जनोंको सुख देनेवाले अनसूयाके इस वचनको सुनकर गंगाने अत्यन्त प्रसन्न होकर कहा—हे अनघे! तुम मेरे इस जलको अत्रिको दे देना। उनके इस प्रकार कहनेपर अनसूयाने भी वैसा ही किया। वे कभी नष्ट न होनेवाले उस दिव्य जलको अपने स्वामीको देकर उनके आगे खड़ी हो गयीं॥ १६-१७॥

तब उन ऋषिने भी अत्यन्त प्रेमसे विधिपूर्वक आचमनकर उस दिव्य जलका पान किया और उसे पीकर सुखका अनुभव किया॥ १८॥

अहो नित्यं जलं यच्च पीयते तज्जलं न हि।
विचार्येति च तेनाशु परितश्चावलोकितम्॥ १९

शुष्कान्वृक्षान्समालोक्य दिशो रूक्षतरास्तथा।
उवाच तामृषिश्रेष्ठो न जातं वर्षणं पुनः॥ २०

तदुक्तं तत् समाकर्ण्य नेति नेति प्रियां तदा।
तामुवाच पुनः सोऽपि जलं नीतं कुतस्त्वया॥ २१

इत्युक्ते तु तदा तेन विस्मयं परमं गता।
अनसूया स्वमनसि सचिन्ता तु मुनीश्वराः॥ २२

निवेद्यते मया चेद्वै तदोत्कर्षो भवेन्मम।
निवेद्यते यदा नैव व्रतभङ्गो भवेन्मम॥ २३

नोभयं च तथा स्याद्वै निवेद्यं तत्तथा मम।
इति यावद्विचार्येत तावत्पृष्टा पुनः पुनः॥ २४

अथानुग्रहतः शंभोः प्राप्तबुद्धिः पतिव्रता।
उवाच श्रूयतां स्वामिन्यज्जातं कथयामि ते॥ २५

अनसूयोवाच

शंकरस्य प्रतापाच्च तवैव सुकृतैस्तथा।
गंगा समागतात्रैव तदीयं सलिलं त्विदम्॥ २६

सूत उवाच

एवं वचस्तदा श्रुत्वा मुनिर्विस्मयमानसः।
प्रियामुवाच सुप्रीत्या शंकरं मनसा स्मरन्॥ २७

अत्रिरुवाच

प्रिये सुन्दरि त्वं सत्यमथ वाचं व्यलीककाम्।
ब्रवीषि च यथार्थं त्वं न मन्ये दुर्लभं त्विदम्॥ २८

असाध्यं योगिभिर्यच्च देवैरपि सदा शुभे।
तच्चैवाद्य कथं जातं विस्मयः परमो मम॥ २९

यद्येवं दृश्यते चेद्वै तन्मन्येऽहं न चान्यथा।
इति तद्वचनं श्रुत्वा प्रत्युवाच पतिं प्रिया॥ ३०

'अहो, आश्चर्य है, मैं जो जल प्रतिदिन पीता था, यह जल वैसा नहीं है'—ऐसा विचारकर उन्होंने वनमें चारों ओर अपनी दृष्टि दौड़ायी। तब सूखे वृक्षों तथा उससे भी अधिक सूखी हुईं दिशाओंको देखकर ऋषिश्रेष्ठने उनसे कहा कि क्या फिर वर्षा नहीं हुई?॥ १९-२०॥

उनकी बात सुनकर अनसूयाने कहा—नहीं, वर्षा नहीं हुई। तब ऋषिने पुनः अनसूयासे कहा कि फिर तुमने यह जल कहाँसे प्राप्त किया?॥ २१॥

हे मुनीश्वरो! ऋषिके ऐसा कहनेपर अनसूया असमंजसमें पड़ गयी और मनमें विचार करने लगी कि यदि मैं बता देती हूँ, तो इससे मेरी उत्कृष्टता सिद्ध होगी और यदि नहीं बताती, तो मेरा पातिव्रत्य भंग हो जायगा। अब मैं कौन-सा उपाय करूँ कि ये दोनों बातें न हों और मैं सच-सच बात कह भी दूँ। अभी वह इस प्रकार विचार कर ही रही थी कि महर्षिने बारंबार पूछा॥ २२—२४॥

तब शिवजीके अनुग्रहसे बुद्धि प्राप्तकर उन पतिव्रताने कहा—हे स्वामिन्! इस विषयमें जो हुआ, उसे मैं कहती हूँ, आप सुनिये॥ २५॥

अनसूया बोली—महादेवके प्रतापसे तथा आपके पुण्योंसे गंगा यहींपर आयी हुई हैं; यह उन्हींका जल है॥ २६॥

सूतजी बोले—तब इस वचनको सुनकर महर्षिको बड़ा आश्चर्य हुआ और उन्होंने मनसे शंकरजीका स्मरण करते हुए प्रेमपूर्वक अपनी पत्नीसे कहा—॥ २७॥

अत्रि बोले—हे प्रिये! हे सुन्दरि! यह तुम सत्य वचन कह रही हो अथवा झूठ? तुम सच कहती हो या मिथ्या, मैं निश्चय नहीं कर पा रहा हूँ; क्योंकि यह अत्यन्त दुर्लभ है। हे शुभे! जो सदा योगियों तथा देवताओंके लिये भी असाध्य है, वह आज किस प्रकार हो गया; मुझे तो महान् विस्मय हो रहा है। यदि ऐसा है, तो मैं देखना चाहता हूँ; तभी विश्वास करूँगा, अन्यथा नहीं। तब उनका वचन सुनकर उनकी पत्नी अनसूयाने पतिसे कहा—॥ २८—३०॥

अनसूयोवाच

आगम्यतां मया सार्धं त्वया नाथ महामुने।
सरिद्वराया गंगाया द्रष्टुमिच्छा भवेद्यदि॥ ३१

अनसूया बोलीं—हे नाथ! हे महामुने! यदि आपकी इच्छा नदियोंमें श्रेष्ठ गंगाके दर्शनकी हो, तो आप मेरे साथ चलिये॥ ३१॥

सूत उवाच

इत्युक्त्वा तु समादाय पतिं तं सा पतिव्रता।
गता द्रुतं शिवं स्मृत्वा यत्र गंगा सरिद्वरा॥ ३२

सूतजी बोले—ऐसा कहकर वे पतिव्रता अपने पतिको साथ लेकर शिवजीका स्मरण करके शीघ्र ही वहाँ पहुँचीं, जहाँ नदियोंमें श्रेष्ठ गंगा विद्यमान थीं॥ ३२॥

दर्शयामास तां तत्र गंगां पत्ये पतिव्रता।
गर्ते च संस्थितां तत्र स्वयं दिव्यस्वरूपिणीम्॥ ३३

उसके बाद उन पतिव्रताने अपने पतिको उस गड्ढेमें स्थित दिव्यस्वरूपवाली गंगाका दर्शन कराया॥ ३३॥

तत्र गत्वा ऋषिश्रेष्ठो गर्तं च जलपूरितम्।
आकण्ठं सुन्दरं दृष्ट्वा धन्येयमिति चाब्रवीत्॥ ३४

मुनिश्रेष्ठने वहाँ जाकर ऊपरतक जलसे परिपूर्ण सुन्दर गड्ढेको देखकर कहा—ये धन्य हैं॥ ३४॥

किं मदीयं तपश्चैव किमन्येषां पुनस्तदा।
इत्युक्त्वा मुनिशार्दूलो भक्त्या तुष्टाव तां तदा॥ ३५
ततो हि स मुनिस्तत्र सुस्नातः सुभगे जले।
आचम्य पुनरेवात्र स्तुतिं चक्रे पुनः पुनः॥ ३६
अनसूयापि संस्नाता सुन्दरे तज्जले तदा।
नित्यं चक्रे मुनिः कर्म सानसूयापि सुव्रता॥ ३७

क्या यह साक्षात् मेरा तप है अथवा अन्य किसीका—इस प्रकार कहकर मुनिश्रेष्ठने भक्तिपूर्वक उन गंगाकी स्तुति की। इसके बाद उन मुनिने निर्मल जलमें भलीभाँति स्नान किया और आचमनकर बार-बार उनकी स्तुति की। अनसूयाने भी उस निर्मल जलमें स्नान किया। इसके बाद उस पतिव्रता अनसूया तथा मुनिने वहाँ नित्यकर्म सम्पन्न किया॥ ३५—३७॥

ततः सोवाच तां गंगा गम्यते स्वस्थलं मया।
इत्युक्ते च पुनः साध्वी तामुवाच सरिद्वराम्॥ ३८

उसके बाद गंगाने अनसूयासे कहा कि अब मैं अपने स्थानको जा रही हूँ। गंगाके ऐसा कहनेपर उस साध्वीने पुनः उन श्रेष्ठ नदी गंगासे कहा—॥ ३८॥

अनसूयोवाच

यदि प्रसन्ना देवेशि यद्यस्ति च कृपा मयि।
त्वया स्थेयं निश्चलत्वादस्मिन्देवि तपोवने॥ ३९
महतां च स्वभावश्च नांगीकृत्य परित्यजेत्।
इत्युक्त्वा च करौ बध्वा तां तुष्टाव पुनः पुनः॥ ४०

अनसूया बोलीं—हे देवेशि! यदि आप प्रसन्न हैं और मुझपर आपकी कृपा है, तो हे देवि! इस तपोवनमें आप स्थिर होकर निवास करें; क्योंकि बड़े लोगोंका ऐसा स्वभाव होता है कि वे एक बार किसीको स्वीकार करके उसे कभी छोड़ते नहीं—इतना कहकर दोनों हाथ जोड़कर वे पुनः उनकी स्तुति करने लगीं॥ ३९-४०॥

ऋषिश्चापि तथोवाच त्वया स्थेयं सरिद्वरे।
सानुकूला भव त्वं हि सनाथान्देवि नः कुरु॥ ४१

तदनन्तर ऋषिने भी इसी प्रकार प्रार्थना की कि हे सरिद्वरे! हे देवि! आप यहीं निवास करें, आप हमारे अनुकूल रहें और हम लोगोंको सनाथ करें॥ ४१॥

तदीयं तद्वचः श्रुत्वा रम्यं गंगा सरिद्वरा।
प्रसन्नमानसा गंगानसूयां वाक्यमब्रवीत्॥ ४२

तब उनके इस मनोहर वचनको सुनकर नदियोंमें श्रेष्ठ गंगाका मन प्रसन्न हो गया; इसके बाद गंगाने अनसूयासे यह वचन कहा—॥ ४२॥

गंगोवाच

शंकरार्चनसंभूतफलं वर्षस्य यच्छसि।
स्वामिनश्च तदा स्थास्ये देवानामुपकारणात्॥ ४३

गंगाजी बोलीं—हे अनसूये! यदि तुम भगवान् शंकरके अर्चन एवं अपने स्वामीकी सेवाका वर्षभरका फल मुझे प्रदान करो, तो मैं देवताओंके उपकारके लिये यहाँ स्थित रहूँगी॥ ४३॥

तथा दानैर्न मे तुष्टिस्तीर्थस्नानैस्तथा च वै।
यज्ञैस्तथाथवा योगैर्यथा पातिव्रतेन च॥ ४४

हे देवि! दान, तीर्थ-स्नान, यज्ञ तथा योगसे मेरी उतनी सन्तुष्टि नहीं होती, जितनी [पतिव्रताओंके] पातिव्रत्यसे होती है॥ ४४॥

पतिव्रतां यथा दृष्ट्वा मनसः प्रीणनं भवेत्।
तथा नान्यैरुपायैश्च सत्यं मे व्याहृतं सति॥ ४५

पतिव्रतां स्त्रियं दृष्ट्वा पापनाशो भवेन्मम।
शुद्धा जाता विशेषेण गौरीतुल्या पतिव्रता॥ ४६

पतिव्रताको देखकर मेरे मनको जैसी प्रसन्नता होती है, वैसी प्रसन्नता अन्य उपायोंसे नहीं होती। हे सती अनसूये! मैं सत्य कहती हूँ। पतिव्रता स्त्रीको देखकर मेरा पाप नष्ट हो जाता है और मैं विशेषरूपसे शुद्ध हो जाती हूँ, पतिव्रता [स्त्री] पार्वतीके तुल्य है॥ ४५-४६॥

तस्माच्च यदि लोकस्य हिताय तत्प्रयच्छसि।
तर्ह्यहं स्थिरतां यास्ये यदि कल्याणमिच्छसि॥ ४७

इसलिये यदि तुम लोकहितके लिये वह पुण्य मुझे देती हो और कल्याणकी इच्छा करती हो, तो मैं यहाँ स्थिर हो जाऊँगी॥ ४७॥

सूत उवाच

इत्येवं वचनं श्रुत्वानसूया सा पतिव्रता।
गंगायै प्रददौ पुण्यं सर्वं तद्वर्षसंभवम्॥ ४८

सूतजी बोले—यह वचन सुनकर पतिव्रता अनसूयाने वर्षभरका वह सारा पुण्य गंगाको दे दिया॥ ४८॥

महतां च स्वभावो हि परेषां हितमावहेत्।
सुवर्णं चन्दनं चेक्षुरसस्तत्र निदर्शनम्॥ ४९

एतद् दृष्ट्वानसूयं तत्कर्म पातिव्रतं महत्।
प्रसन्नोऽभून्महादेवः पार्थिवादाविराशु वै॥ ५०

बड़े लोगोंका ऐसा स्वभाव है कि वे दूसरोंका हित करते हैं; इस विषयमें सुवर्ण, चन्दन तथा इक्षुरस दृष्टान्तस्वरूप हैं। अनसूयाके उस महान् पातिव्रत्य कर्मको देखकर महादेव प्रसन्न हो गये और उसी क्षण पार्थिव लिंगसे प्रकट हो गये॥ ४९-५०॥

शंभुरुवाच

दृष्ट्वा ते कर्म साध्व्येतत् प्रसन्नोऽस्मि पतिव्रते।
वरं ब्रूहि प्रिये मत्तो यतः प्रियतरासि मे॥ ५१

शंभु बोले—हे साध्वि! हे पतिव्रते! तुम्हारे इस कर्मको देखकर मैं प्रसन्न हूँ। हे प्रिये! तुम मुझसे वर माँगो, क्योंकि तुम मुझे अत्यन्त प्रिय हो॥ ५१॥

अथ तौ दम्पती शंभुमभूतां सुन्दराकृतिम्।
पञ्चवक्त्रादिसंयुक्तं हरं प्रेक्ष्य सुविस्मितौ॥ ५२

नत्वा स्तुत्वा करौ बध्वा महाभक्तिसमन्वितौ।
अवोचेतां समभ्यर्च्य शंकरं लोकशंकरम्॥ ५३

इसके बाद वे दोनों पति-पत्नी पाँच मुखोंसे युक्त तथा मनोरम आकृतिवाले शिवको देखकर अत्यन्त आश्चर्यचकित हो गये और उन्होंने दोनों हाथ जोड़कर महाभक्तिसे युक्त हो नमस्कार करके स्तवन किया, फिर लोकका कल्याण करनेवाले उन शंकरकी भलीभाँति अर्चना करके उनसे कहने लगे—॥ ५२-५३॥

दम्पती ऊचतुः

यदि प्रसन्नो देवेश प्रसन्ना जगदम्बिका।
अस्मिंस्तपोवने तिष्ठ लोकानां सुखदो भव॥ ५४

पति-पत्नी बोले—हे देवेश! यदि आप प्रसन्न हैं और ये जगदम्बा भी प्रसन्न हैं, तो आप इस तपोवनमें निवास करें और लोकोंके लिये सुखदायक हों॥ ५४॥

प्रसन्ना च तदा गंगा प्रसन्नश्च शिवस्तदा।
उभौ तौ च स्थितौ तत्र यत्रासीदृषिसत्तमः॥ ५५

इस प्रकार प्रसन्न हुई गंगा तथा प्रसन्न हुए सदाशिव—वे दोनों वहाँ स्थित हो गये, जहाँ ऋषिश्रेष्ठ अत्रि रहते थे॥ ५५॥

अत्रीश्वरश्च नाम्नासीदीश्वरः परदुःखहा।
गंगा सापि स्थिता तत्र तदा गर्तेऽथ मायया॥ ५६

दूसरोंका दुःख दूर करनेवाले सदाशिव अत्रीश्वर नामसे वहाँपर प्रसिद्ध हो गये और गंगाजी भी अपनी शक्तिसे उसी गड्ढेमें स्थित हो गयीं॥ ५६॥

तद्दिनं हि समारभ्य तत्राक्षय्यजलं सदा।
हस्तमात्रे हि तद्गर्ते गंगा मन्दाकिनी ह्यभूत्॥ ५७

उसी दिनसे वहाँपर जल सर्वदा अक्षय प्रवाहित होने लगा और हाथभरके उस गड्ढेमें [प्रविष्ट हुई] गंगा मन्दाकिनी नामसे प्रसिद्ध हुईं॥ ५७॥

तत्रैव ऋषयो दिव्याः समाजग्मुः सहांगनाः।
तीर्थात्तीर्थाच्च ते सर्वे ये पुरा निर्गता द्विजाः॥ ५८

हे द्विजो! प्रत्येक तीर्थसे उस स्थानपर वे समस्त दिव्य ऋषि अपनी पत्नियोंके साथ आ गये, जो वहाँसे पहले दूसरी जगह चले गये थे॥ ५८॥

यवाश्च व्रीहयश्चैव यज्ञयागपरायणाः।
युक्ता ऋषिवरैस्तैश्च होमं चक्रुश्च ते जनाः॥ ५९

वहाँका सारा प्रदेश यव और व्रीहिसे परिपूर्ण हो गया, जिनसे उन श्रेष्ठ ऋषियोंके साथ यज्ञ-यागादि करनेवाले वहाँके लोग होम करने लगे॥ ५९॥

कर्मभिस्तैश्च संतुष्टा वृष्टिं चक्रुर्घनास्तदा।
आनन्दः परमो लोके बभूवाति मुनीश्वराः॥ ६०

हे मुनीश्वरो! उस समय उन कर्मोंसे सन्तुष्ट होकर मेघोंने बहुत वर्षा की, जिससे संसारमें परम आनन्द छा गया॥ ६०॥

अत्रीश्वरस्य माहात्म्यमित्युक्तं वः सुखावहम्।
भुक्तिमुक्तिप्रदं सर्वकामदं भक्तिवर्धनम्॥ ६१

[हे मुनीश्वरो!] इस प्रकार मैंने अत्रीश्वरका माहात्म्य आपलोगोंसे कहा, जो सुखप्रद, भोग-मोक्ष देनेवाला, समस्त मनोरथोंको पूर्ण करनेवाला एवं भक्तिको बढ़ानेवाला है॥ ६१॥

इति श्रीशिवमहापुराणे चतुर्थ्यां कोटिरुद्रसंहितायामत्रीश्वरमाहात्म्यवर्णनं नाम चतुर्थोऽध्यायः॥ ४॥

॥ इस प्रकार श्रीशिवमहापुराणके अन्तर्गत चतुर्थ कोटिरुद्रसंहितामें अत्रीश्वरमाहात्म्यवर्णन नामक चौथा अध्याय पूर्ण हुआ॥ ४॥

अथ पञ्चमोऽध्यायः

रेवानदीके तटपर स्थित विविध शिवलिंग-माहात्म्य-वर्णनके क्रममें द्विजदम्पतीका वृत्तान्त

सूत उवाच

कालंजरे गिरौ दिव्ये नीलकण्ठो महेश्वरः।
लिंगरूपः सदा चैव भक्तानन्दप्रदः सदा॥ १

सूतजी बोले—दिव्य कालंजर पर्वतपर नीलकण्ठ नामक महादेव लिंगरूपसे सदा निवास करते हैं, जो भक्तजनोंको सर्वदा आनन्द प्रदान करनेवाले हैं॥ १॥

महिमा तस्य दिव्योऽस्ति श्रुतिस्मृतिप्रकीर्तितः।
तीर्थं तदाख्यया तत्र स्नानात्पातकनाशकृत्॥ २

उनकी महिमा परम दिव्य है, जिसका वर्णन वेद तथा स्मृतियोंमें किया गया है। वहाँपर नीलकण्ठ नामक तीर्थ है, जो स्नान करनेसे [मनुष्योंके] पापोंको नष्ट करनेवाला है॥ २॥

रेवातीरे यानि सन्ति शिवलिंगानि सुव्रताः।
सर्वसौख्यकराणीह तेषां संख्या न विद्यते॥ ३

हे सुव्रतो! रेवा नदीके तटपर जितने शिवलिंग हैं, उनकी गणना नहीं की जा सकती; वे सभी सब प्रकारके सुखोंको देनेवाले हैं॥ ३॥

सा च रुद्रस्वरूपा हि दर्शनात्पापहारिका।
तस्यां स्थिताश्च ये केचित्पाषाणाः शिवरूपिणः॥ ४

तथापि च प्रवक्ष्यामि यथान्यानि मुनीश्वराः।
प्रधानशिवलिंगानि भुक्तिमुक्तिप्रदानि च॥ ५

[साक्षात्] रुद्रस्वरूप वह रेवा दर्शनमात्रसे पापोंका नाश कर देनेवाली है और उसमें जो भी पाषाण स्थित हैं, वे शिवस्वरूप हैं। फिर भी हे मुनि! भोग एवं मोक्षको देनेवाले प्रधान शिवलिंगोंका वर्णन यथोचितरूपसे कर रहा हूँ॥ ४-५॥

आर्तेश्वरसुनामा हि वर्तते पापहारकः।
परमेश्वर इति ख्यातः सिंहेश्वर इति स्मृतः॥ ६

वहाँ आर्तेश्वर नामक लिंग है, जो सभी पापोंको दूर करनेवाला है। इसी प्रकार परमेश्वर एवं सिंहेश्वर नामक लिंग भी कहे गये हैं॥ ६॥

शर्मेशश्च तथा चात्र कुमारेश्वर एव च।
पुण्डरीकेश्वरः ख्यातो मण्डपेश्वर एव च॥ ७

इसी प्रकार वहाँपर शर्मेश्वर, कुमारेश्वर, पुण्डरीकेश्वर एवं मण्डपेश्वर नामक लिंग भी हैं॥ ७॥

तीक्ष्णेशनामा तत्रासीद्दर्शनात्पापहारकः।
धुंधुरेश्वरनामासीत्पापहा नर्मदातटे॥ ८

वहाँ नर्मदा नदीके किनारे दर्शनमात्रसे पापको नष्ट करनेवाला तीक्ष्णेश्वर नामक लिंग है तथा पापको दूर करनेवाला धुन्धुरेश्वर नामक लिंग भी है॥ ८॥

शूलेश्वर इति ख्यातस्तथा कुंभेश्वरः स्मृतः।
कुबेरेश्वरनामापि तथा सोमेश्वरः स्मृतः॥ ९
नीलकण्ठो मंगलेशो मंगलायतनो महान्।
महाकपीश्वरो देवः स्थापितो हि हनूमता॥ १०

शूलेश्वर, कुम्भेश्वर, कुबेरेश्वर तथा सोमेश्वर नामक लिंग भी प्रसिद्ध हैं। नीलकण्ठ तथा मंगलेश तो महामंगलके स्थान ही हैं। महाकपीश्वर महादेवकी स्थापना स्वयं हनुमान्‌जीने की थी॥ ९-१०॥

ततश्च नंदिको देवो हत्याकोटिनिवारकः।
सर्वकामार्थदश्चैव मोक्षदो हि प्रकीर्तितः॥ ११

नन्दिकेशं च यश्चैव पूजयेत्परया मुदा।
नित्यं तस्याखिला सिद्धिर्भविष्यति न संशयः॥ १२

इसी क्रममें करोड़ों हत्याओंके पापको नष्ट करनेवाले, सम्पूर्ण कामनाओंका फल प्रदान करनेवाले और मोक्षदायक नन्दिकदेव भी कहे गये हैं। जो अति प्रसन्नतापूर्वक नन्दिकेश्वरका पूजन करता है, उसे सम्पूर्ण सिद्धियाँ नित्य प्राप्त होती हैं; इसमें संशय नहीं है॥ ११-१२॥

तत्र तीरे च यः स्नाति रेवायां मुनिसत्तमाः।
तस्य कामाश्च सिध्यन्ति सर्वं पापं विनश्यति॥ १३

हे श्रेष्ठ मुनियो! वहाँ रेवा नदीके तटपर जो स्नान करता है, उसकी समस्त इच्छाएँ पूर्ण हो जाती हैं तथा उसके सारे पाप नष्ट हो जाते हैं॥ १३॥

ऋषय ऊचुः

एवं तस्य च माहात्म्यं कथं तत्र महामते।
नन्दिकेशस्य कृपया कथ्यतां च त्वयाधुना॥ १४

ऋषिगण बोले—उस नन्दिकेश्वर लिंगका ऐसा माहात्म्य क्यों है; आप इस समय कृपा करके उसे बतायें?॥ १४॥

सूत उवाच

सम्यक् पृष्टं भवद्भिश्च कथयामि यथाश्रुतम्।
शौनकाद्याश्च मुनयः सर्वे हि शृणुतादरात्॥ १५

पुरा युधिष्ठिरेणैवं पृष्टश्च ऋषिसत्तमः।
यथोवाच तथा वच्मि भवत्स्नेहानुसारतः॥ १६

सूतजी बोले—[हे ऋषियो!] आपलोगोंने बड़ा उत्तम प्रश्न किया; इस विषयमें मैंने जैसा सुना है, वैसा कह रहा हूँ। शौनक आदि आप सभी मुनिलोग आदरपूर्वक सुनिये। पूर्व समयमें युधिष्ठिरके प्रश्न करनेपर ऋषिवर व्यासजीने जैसा कहा था, वही बात मैं आपलोगोंके स्नेहके कारण कह रहा हूँ॥ १५-१६॥

रेवायाः पश्चिमे तीरे कर्णिकी नाम वै पुरी।
विराजते सुशोभाढ्या चतुर्वर्णसमाकुला॥ १७

रेवा (नर्मदा) नदीके पश्चिमी तटपर कर्णिकी नामक एक नगरी विराजमान है, जो सम्पूर्ण शोभासे युक्त है और चारों वर्णोंसे भरी पड़ी है॥ १७॥

तत्र द्विजवरः कश्चिदुतथ्यकुलसम्भवः।
काश्यां गतश्च पुत्राभ्यामर्पयित्वा स्वपत्निकाम्॥ १८

तत्रैव स मृतो विप्रः पुत्राभ्यां च श्रुतं तदा।
तदीयं चैव तत्कृत्यं चक्राते पुत्रकावुभौ॥ १९

पत्नी च पालयामास पुत्रौ पुत्रहितैषिणी।
किञ्चिच्च वर्जयित्वा च विभक्तं वै धनं तया॥ २०

स्वीयं च रक्षितं किंचिद्धनं मरणहेतवे।
ततश्च द्विजपत्नी हि कियत्काले गते च सा॥ २१

कदाचिन्म्रियमाणा सा विविधं पुण्यमाचरत्।
न मृता दैवयोगेन द्विजपत्नी च सा द्विजाः॥ २२

यदा प्राणान्न मुमुचे माता दैवात्तयोश्च सा।
तद् दृष्ट्वा जननीकष्टं पुत्रकावूचतुस्तदा॥ २३

पुत्रावूचतुः

किं न्यूनं विद्यते मातः कष्टं यद्विद्यते महत्।
व्रियतां तद् द्रुतं प्रीत्या तदावां करवावहे॥ २४

सूत उवाच

तच्छ्रुत्वोक्तं तया तत्र न्यूनं मे विद्यते बहु।
तदेव क्रियते चेद्वै सुखेन मरणं भवेत्॥ २५

ज्येष्ठपुत्रश्च यस्तस्यास्तेनोक्तं कथ्यतां त्वया।
करिष्यामि तदेतद्धि तया च कथितं तदा॥ २६

द्विजपत्न्युवाच

शृणु पुत्र वचः प्रीत्या पुरासीन्मे मनःस्पृहा।
काश्यां गंतु तथा नासीदिदानीं म्रियते पुनः॥ २७

ममास्थीनि त्वया पुत्र क्षेपणीयान्यतन्द्रितम्।
गंगाजले शुभं तेऽद्य भविष्यति न संशयः॥ २८

सूत उवाच

इत्युक्ते च तया मात्रा स ज्येष्ठतनयोऽब्रवीत्।
मातरं मातृभक्तस्तु सुव्रतां मरणोन्मुखीम्॥ २९

वहीं उतथ्यके कुलमें उत्पन्न कोई श्रेष्ठ ब्राह्मण [रहता था, वह] अपनी पत्नीको अपने दो पुत्रोंको सौंपकर काशी चला गया। वह विप्र वहींपर मर गया। जब उसके पुत्रोंने यह समाचार सुना, तो दोनों पुत्रोंने उसका [श्राद्ध आदि] कृत्य कर दिया॥ १८-१९॥

पुत्रोंका हित चाहनेवाली उसकी पत्नीने अपने बालकोंका लालन-पालन किया। [पुत्रोंके बड़े हो जानेपर] उसने कुछ धन बचाकर शेष धनका बँटवारा कर दिया। उसने कुछ धन अपने मरण-कृत्यके लिये सुरक्षितकर अपने पास रख लिया। कुछ समय बीतनेपर मरणासन्न होनेपर उस ब्राह्मणीने अनेक प्रकारके पुण्य कार्य किये, किंतु हे द्विजो! दैवयोगसे वह ब्राह्मणी मरी नहीं॥ २०—२२॥

जब दैववश उन दोनोंकी माताके प्राण नहीं निकले, तब माताके उस कष्टको देखकर उसके दोनों पुत्रोंने कहा—॥ २३॥

पुत्र बोले—हे माता! अब किस बातकी कमी रह गयी है, जिससे आपको यह महान् कष्ट मिल रहा है? आप शीघ्रतासे हमें बतायें, हमलोग प्रेमपूर्वक उसे करेंगे॥ २४॥

सूतजी बोले—यह सुनकर माताने कहा कि कमी तो बहुत रह गयी है, किंतु यदि तुमलोग उसे पूरा करो, तो सुखपूर्वक मेरी मृत्यु हो सकती है। तब उसका जो ज्येष्ठ पुत्र था, उसने कहा कि आप बताइये; मैं उसे अवश्य पूर्ण करूँगा। तब उसने कहा—॥ २५-२६॥

द्विजपत्नी बोली—हे पुत्र! मेरी बात प्रेमसे सुनो; पहले मेरी इच्छा काशी जानेकी थी, किंतु वैसा नहीं हो सका और अब मैं मर रही हूँ। हे पुत्र! तुम आलस्यका त्यागकर मेरी अस्थियोंको [काशीमें] गंगाजलमें फेंक देना; तुम्हारा कल्याण होगा, इसमें संशय नहीं है॥ २७-२८॥

सूतजी बोले—माताके इस प्रकार कहनेपर मातामें भक्ति रखनेवाले उस ज्येष्ठ पुत्रने सुव्रता, मरणासन्न मातासे कहा—॥ २९॥

पुत्र उवाच

मातस्त्वया सुखेनैव प्राणास्त्याज्या न संशयः।
तव कार्यं पुरा कृत्वा पश्चात्कार्यं मदीयकम्॥ ३०

इति हस्ते जलं दत्त्वा यावत्पुत्रो गृहं गतः।
तावत्सा च मृता तत्र हरस्मरणतत्परा॥ ३१

पुत्र बोला—हे मातः! आप सुखपूर्वक अपने प्राणोंका त्याग कीजिये; मैं सर्वप्रथम आपका कार्य करनेके बाद ही अपना काम करूँगा; इसमें संशय नहीं है। इसके बाद [अपनी माताके] हाथमें जल देकर ज्यों ही पुत्र घर गया, तभी वह शिवजीका ध्यान करती हुई वहाँ मर गयी॥ ३०-३१॥

तस्याश्चैव तु यत्कृत्यं तत्सर्वं संविधाय सः।
मासिकं कर्म कृत्वा तु गमनाय प्रचक्रमे॥ ३२

द्वयोः श्रेष्ठतरो यो वै सुवादो नाम विश्रुतः।
तदस्थीनि समादाय निःसृतस्तीर्थकाम्यया॥ ३३

तब उसका जो भी कृत्य था, वह सब भलीभाँति करके पुनः सारा मासिक [पिण्डदानादि] कार्य करके वह काशी जानेको तैयार हो गया। दोनोंमें ज्येष्ठ पुत्र जो सुवाद नामसे प्रसिद्ध था, वह उसकी अस्थियोंको लेकर तीर्थकी कामनासे निकल पड़ा॥ ३२-३३॥

संगृह्य सेवकं कंचित्तेनैव सहितस्तदा।
आश्वास्य भार्यां पुत्रांश्च मातुः प्रियचिकीर्षया॥ ३४

श्राद्धदानादिकं भोज्यं कृत्वा विधिमनुत्तमम्।
मंगलस्मरणं कृत्वा निर्जगाम गृहाद् द्विजः॥ ३५

श्राद्धदान तथा ब्राह्मणभोजन आदि उत्तम विधि सम्पन्नकर अपनी भार्या और पुत्रोंको आश्वासन देकर माताका हित करनेकी इच्छासे किसी सेवकको बुलाकर उसीके साथ मंगलस्मरण करके वह द्विज घरसे चल दिया॥ ३४-३५॥

तद्दिने योजनं गत्वा विंशति ग्रामके शुभे।
उवासास्तं गते भानौ गृहे विप्रस्य कस्यचित्॥ ३६

उस दिन उसने एक योजन चलकर सूर्यास्त होनेपर किसी विंशति नामक शुभ ग्राममें किसी ब्राह्मणके घरमें निवास किया॥ ३६॥

चक्रे सन्ध्यादि सत्कर्म स द्विजो विधिपूर्वकम्।
स्तवादि कृतवांस्तत्र शंभोरद्भुतकर्मणः॥ ३७

उसके बाद उस द्विजने विधिपूर्वक सन्ध्यादि सत्कर्म किया और अद्भुत क्रिया-कलापवाले शंकरकी स्तुति आदि की॥ ३७॥

सेवकेन तदा युक्तो ब्राह्मणः संस्थितस्तदा।
यामिनी च गता तत्र मुहूर्तद्वयसंमिता॥ ३८

इस प्रकार सेवकके सहित वह ब्राह्मण वहाँ रुका रहा और दो मुहूर्तभर रात बीत गयी॥ ३८॥

एतस्मिन्नन्तरे तत्रैकमाश्चर्यमभूत्तदा।
शृणुतादरतस्तच्च मुनयो वो वदाम्यहम्॥ ३९

हे मुनियो! इसी बीच वहाँ जो आश्चर्यमयी घटना घटी, उसे आपलोग आदरपूर्वक सुनिये; मैं आपलोगोंको बता रहा हूँ॥ ३९॥

इति श्रीशिवमहापुराणे चतुर्थ्यां कोटिरुद्रसंहितायां नन्दिकेश्वरमाहात्म्ये ब्राह्मणीमरणवर्णनं नाम पञ्चमोऽध्यायः॥ ५॥

॥ इस प्रकार श्रीशिवमहापुराणके अन्तर्गत चतुर्थ कोटिरुद्रसंहितामें नन्दिकेश्वरमाहात्म्यमें ब्राह्मणीमरणवर्णन नामक पाँचवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ ५॥

अथ षष्ठोऽध्यायः

नर्मदा एवं नन्दिकेश्वरके माहात्म्य-कथनके प्रसंगमें ब्राह्मणीकी स्वर्गप्राप्तिका वर्णन

सूत उवाच

गौश्चैकाप्यभवत्तत्र ह्यंगणे बंधिता शुभा।
तदैव ब्राह्मणो रात्रावाजगाम बहिर्गतः॥ १

सूतजी बोले—[हे ऋषियो!] वहाँपर आँगनमें एक उत्तम गाय बँधी थी। रातको जब बाहर गया हुआ [गृहपति] ब्राह्मण आया, तब हे मुनीश्वरो! गायको बिना दुही हुई आँगनमें स्थित देख करके

स उवाच प्रियां स्वीयां दृष्ट्वा गामंगणे स्थिताम्।
अदुग्धां खेदनिर्विण्णो दोग्धुकामो मुनीश्वराः॥ २
गौः प्रिये नैव दुग्धा ते सेत्युक्ता वत्समानयत्।
दोहनार्थं समाहूय स्त्रियं शीघ्रतरं तदा॥ ३
वत्सं कीले स्वयं बद्धुं यत्नं चैवाकरोत्तदा।
ब्राह्मणः स गृहस्वामी मुनयो दुग्धलालसः॥ ४

खिन्न हो उसे दुहनेकी इच्छासे उसने अपनी पत्नीसे कहा—हे प्रिये! तुमने अभीतक गाय नहीं दुही? पत्नीसे ऐसा कहकर वह बछड़ेको ले आया। इसके बाद हे मुनियो! दुहनेके उद्देश्यसे शीघ्र ही स्त्रीको बुलाकर दूधकी इच्छावाला वह गृहपति ब्राह्मण स्वयं बछड़ेको खूँटेमें बाँधनेका प्रयत्न करने लगा॥ १—४॥

वत्सोऽपि कर्षमाणश्च पादे वै पादपीडनम्।
चकार ब्राह्मणश्चैव कष्टं प्राप्तश्च सुव्रताः॥ ५

हे सुव्रतो! ब्राह्मणद्वारा खींचे जानेपर बछड़ेने उसके पैरमें लात मार दी, जिससे ब्राह्मणको कष्ट हुआ॥ ५॥

तेन पादप्रहारेण स द्विजः क्रोधमूर्छितः।
वत्सं च ताडयामास कूर्पैर्दृढतरं तदा॥ ६

उस पादप्रहारके कारण क्रोधसे तमतमाये हुए उस ब्राह्मणने कुहनीसे उस बछड़ेको जोरसे मारा॥ ६॥

वत्सोऽपि पीडितस्तेन श्रांतश्चैवाभवत्तदा।
दुग्धा गौर्मोचितो वत्सो न क्रोधेन द्विजन्मना॥ ७

इस प्रकार उसके द्वारा मारे जानेपर बछड़ा भी शान्त हो गया। उसके बाद उस ब्राह्मणने गायको दुह लिया, किंतु क्रोधके कारण बछड़ेको मुक्त नहीं किया॥ ७॥

गौर्दोग्धुं च महत्प्रीत्या रोदनं चाकरोत्तदा।
दृष्ट्वा च रोदनं तस्या वत्सो वाक्यमथाब्रवीत्॥ ८

वह गाय अपने बछड़ेको प्रीतिपूर्वक दूध पिलानेके लिये महान् रुदन करने लगी; तब उसका रुदन देखकर बछड़ेने यह वाक्य कहा— ॥ ८॥

वत्स उवाच

कथं च रुद्यते मातः किं ते दुःखमुपस्थितम्।
तन्निवेदय मे प्रीत्या तच्छ्रुत्वा गौरवोचत॥ ९
श्रूयतां पुत्र मे दुःखं वक्तुं शक्नोम्यहं न हि।
दुष्टेन ताडितस्त्वं च तेन दुःखं ममाप्यभूत्॥ १०

बछड़ा बोला—हे माता! तुम क्यों रो रही हो, तुम्हें कौन-सा दुःख आ पहुँचा; उसे प्रेमपूर्वक मुझे बताओ। यह सुनकर गाय बोली—हे पुत्र! मेरा दुःख सुनो; मैं उसे कह नहीं सकती हूँ। इस दुष्टने तुमको मारा है, इससे मुझे भी [बहुत] दुःख हुआ है॥ ९-१०॥

सूत उवाच

स्वमातुर्वचनं श्रुत्वा स वत्सः प्रत्यबोधयत्।
प्रत्युवाच स्वजननीं प्रारब्धपरिनिष्ठितः॥ ११

सूतजी बोले—अपनी माताकी बात सुनकर प्रारब्धसे सन्तुष्ट उस बछड़ेने अपनी माताको समझाते हुए कहा— ॥ ११॥

किं कर्त्तव्यं क्व गंतव्यं कर्मबद्धा वयं यतः।
कृतं चैव यथा पूर्वं भुज्यते च तथाधुना॥ १२

हे मातः! क्या किया जाय और कहाँ जाया जाय; क्योंकि हम सभी कर्मके बन्धनमें बँधे हुए हैं, इसलिये पूर्वमें जैसा कर्म किया गया है, वही इस समय भोगना पड़ रहा है॥ १२॥

हसता क्रियते कर्म रुदता परिभुज्यते।
दुःखदाता न कोऽप्यस्ति सुखदाता न कश्चन॥ १३

प्राणी हँसते हुए तो कर्म करता है और रोते हुए उसका फल भोगता है। कोई किसीको न सुख देनेवाला है और न ही किसीको दुःख देनेवाला है॥ १३॥

सुखदुःखे परो दत्त इत्येषा कुमतिर्मता।
अहं चापि करोम्यत्र मिथ्याज्ञानं तदोच्यते॥ १४
स्वकर्मणा भवेद्दुःखं सुखं तेनैव कर्मणा।
तस्माच्च पूज्यते कर्म सर्वं कर्मणि संस्थितम्॥ १५

'कोई दूसरा सुख और दुःख देनेवाला है'—यह दुर्बुद्धि मानी गयी है। 'मैं ही करता हूँ' यह मिथ्या ज्ञान कहा जाता है। [प्राणीको] अपने कर्मोंसे दुःख होता है और उसी कर्मसे सुख भी होता है, इसलिये कर्मकी पूजा होती है; सब कुछ कर्ममें ही स्थित है॥ १४-१५॥

त्वं चैवाहं च जननी इमे जीवादयश्च ये।
ते सर्वे कर्मणा बद्धा न शोच्याः कर्हिचित्त्वया॥ १६

हे माता! तुम, मैं और ये जीव आदि जो भी हैं—वे सब कर्मसे बँधे हुए हैं, इसलिये तुम किसी प्रकारका सोच मत करो॥ १६॥

सूत उवाच

एवं श्रुत्वा स्वपुत्रस्य वचनं ज्ञानगर्भितम्।
पुत्रशोकान्विता दीना सा च गौरब्रवीदिदम्॥ १७

सूतजी बोले—इस प्रकार अपने पुत्रके ज्ञानपूर्ण वचनको सुनकर पुत्रशोकसे युक्त एवं दुःखित उस गायने यह कहा—॥ १७॥

गौरुवाच

वत्स सर्वं विजानामि कर्माधीनाः प्रजा इति।
तथापि मायया ग्रस्ता दुःखं प्राप्नोम्यहं पुनः॥ १८

रोदनं च कृतं भूरि दुःखशान्तिर्भवेन्न हि।
इत्येतद्वचनं श्रुत्वा प्रसूं वत्सोऽब्रवीदिदम्॥ १९

गाय बोली—हे वत्स! मैं सब जानती हूँ कि सभी प्राणी कर्मके अधीन हैं, किंतु मोहसे ग्रस्त होनेके कारण मैं बारंबार दुःख प्राप्त कर रही हूँ। मैंने [तुम्हारी ममतावश] बहुत रुदन भी किया, किंतु तब भी दुःख शान्त नहीं हो रहा है। तब यह बात सुनकर बछड़ेने मातासे यह कहा—॥ १८-१९॥

वत्स उवाच

यद्येवं च विजानासि पुनश्च रुदनं कुतः।
कृत्वा च साध्यते किञ्चित्तस्माद्दुःखं त्यजाधुना॥ २०

बछड़ा बोला—यदि तुम ऐसा जानती हो, तो फिर रोना कैसा! कुछ भी करके उसका भोग करना ही पड़ता है, अतः अब दुःख छोड़ो॥ २०॥

सूत उवाच

एवं पुत्रवचः श्रुत्वा तन्माता दुःखसंयुता।
निःश्वस्याति तदा धेनुर्वत्सं वचनमब्रवीत्॥ २१

सूतजी बोले—पुत्रकी यह बात सुनकर उसकी माता बहुत दुःखित हुई। इसके बाद लम्बी साँस लेकर गायने बछड़ेसे यह वचन कहा—॥ २१॥

गौरुवाच

मम दुःखं तदा गच्छेद्यदा दुःखं तथाविधम्।
भवेद्धि ब्राह्मणस्यापि सत्यमेतद्ब्रवीम्यहम्॥ २२

गाय बोली—हे पुत्र! मेरा दुःख तो तभी दूर होगा, जब वैसा ही दुःख इस ब्राह्मणको भी होगा; यह मैं सत्य कह रही हूँ॥ २२॥

प्रातश्चैव मया पुत्र शृंगाभ्यां हि हनिष्यते।
हतश्च जीवितं सद्यो यास्यत्यस्य न संशयः॥ २३

हे पुत्र! मैं प्रातःकाल उसे अवश्य ही दोनों सींगोंसे मारूँगी और तब घायल होनेपर इसके प्राण अवश्य छूट जायँगे; इसमें संशय नहीं है॥ २३॥

वत्स उवाच

प्रथमं यत्कृतं कर्म तत्फलं भुज्यतेऽधुना।
अस्याश्च ब्रह्महत्याया मातः किं फलमाप्स्यसे॥ २४

बछड़ा बोला—हे मातः! तुमने पूर्वजन्ममें जो कर्म किया है, उसका फल इस समय भोग रही हो और अब इस ब्रह्महत्याका फल किस प्रकार भोगोगी?॥ २४॥

समाभ्यां पुण्यपापाभ्यां भवेज्जन्म च भारते।
तयोः क्षये च भोगेन मातर्मुक्तिरवाप्यते॥ २५

हे माता! पुण्य और पापके समान होनेपर भारतमें जन्म प्राप्त होता है और भोगके द्वारा उन दोनोंके नष्ट होनेपर मुक्ति प्राप्त होती है॥ २५॥

कदापि कर्मणो नाशः कदा भोगः प्रजायते।
तस्माच्च पुनरेवं त्वं कर्म मा कर्तुमुद्यता॥ २६

अहं कुतस्ते पुत्रोऽद्य त्वं माता कुत एव च।
वृथाभिमानः पुत्रत्वे मातृत्वे च विचार्यताम्॥ २७

कभी-कभी कर्मके द्वारा कर्मका नाश हो जाता है तो कभी वह कर्म भोगका भी कारण बनता है। इसलिये तुम पुनः इस प्रकारका कर्म करनेके लिये तत्पर मत होओ। मैं कहाँसे आज तुम्हारा पुत्र हूँ और कहाँसे तुम मेरी माता हो; अतः पुत्रत्व और मातृत्वका अभिमान व्यर्थ है—तुम इसपर विचार करो॥ २६-२७॥

क्व माता क्व पिता विद्धि क्व स्वामी क्व कलत्रकम्।
न कोऽपि कस्य चास्तीह सर्वेऽपि स्वकृतंभुजः॥ २८

तुम विचार करो कि कौन किसकी माता और कौन किसका पिता है? कौन किसका स्वामी और कौन किसकी स्त्री है; यहाँपर कोई भी किसीका नहीं है, सभी अपने किये हुए कर्मका फल भोगते हैं॥ २८॥

एवं ज्ञात्वा त्वया मातर्दुःखं त्याज्यं सुयत्नतः।
सुभगाचरणं कार्यं परलोकसुखेप्सया॥ २९

हे मातः! ऐसा विचारकर आपको धैर्यसे दुःखका त्याग करना चाहिये और परलोकमें सुखकी इच्छासे सद्धर्मका आचरण करना चाहिये॥ २९॥

गौरुवाच

एवं जानाम्यहं पुत्र माया मां न जहात्यसौ।
त्वद्दुःखेन समं दुःखं तस्मै दास्ये तदेव हि॥ ३०

पुनश्च ब्रह्महत्याया नाशो यत्र भवेदिह।
तत्स्थलं च मया दृष्टं हत्या मे हि गमिष्यति॥ ३१

गाय बोली—हे पुत्र! [यद्यपि] मैं यह जानती हूँ, किंतु यह मोह मुझे नहीं छोड़ता। उसने तुम्हें जिस प्रकारका दुःख दिया है, मैं वैसा ही दुःख उसे भी दूँगी। उसके बाद मैं वहाँ जाऊँगी, जहाँ ब्रह्महत्याका नाश होता है, वह स्थान मैंने देखा है, जिससे मेरी हत्या दूर हो जायगी॥ ३०-३१॥

सूत उवाच

इत्येतद्वचनं श्रुत्वा स्वमातुर्गोर्द्विजोत्तमाः।
मौनत्वं स्वीकृतं तत्र वत्सेनोक्तं न किञ्चन॥ ३२

सूतजी बोले—हे श्रेष्ठ ब्राह्मणो! अपनी माता उस गायकी बात सुनकर बछड़ा चुप हो गया और [इसके आगे] कुछ भी नहीं कह सका॥ ३२॥

तयोस्तदद्भुतं वृत्तं श्रुत्वा पान्थो द्विजस्तदा।
हृदा विचारयामास विस्मितो हि मुनीश्वराः॥ ३३

इदमत्यद्भुतं वृत्तं दृष्ट्वा प्रातर्मया खलु।
गन्तव्यं पुनरेवातो गन्तव्यं तत्स्थलं पुनः॥ ३४

हे मुनीश्वरो! तब उन दोनोंकी यह अद्भुत बात सुनकर वह तीर्थयात्री ब्राह्मण विस्मित होकर मनमें विचार करने लगा कि प्रातःकाल इस अद्भुत घटनाको देखकर ही मुझे जाना चाहिये; फिर मुझे उस [ब्रह्महत्याविनाशक] स्थानपर अवश्य चलना चाहिये॥ ३३-३४॥

सूत उवाच

विचार्येति हृदा विप्रः स द्विजाः सेवकेन च।
सुष्वाप तत्र जननीभक्तः परमविस्मितः॥ ३५

सूतजी बोले—हे ब्राह्मणो! वह मातृभक्त ब्राह्मण मनमें ऐसा निश्चयकर सेवकसहित अति विस्मित हो रात्रिमें सो गया॥ ३५॥

प्रातःकाले तदा जाते गृहस्वामी समुत्थितः।
बोधयामास तं पान्थं वचनं चेदमब्रवीत्॥ ३६

इसके बाद प्रातःकाल होनेपर गृहपति ब्राह्मण उठा और उस पथिकको जगाने लगा तथा उससे यह वचन कहने लगा—॥ ३६॥

द्विज उवाच

स्वपिषि त्वं किमर्थं हि प्रातःकालो भवत्यलम्।
स्वयात्रां कुरु तं देशं गमनेच्छा च यत्र ह॥ ३७

तेनोक्तं श्रूयतां ब्रह्मन् शरीरे सेवकस्य मे।
वर्तते हि व्यथा स्थित्वा मुहूर्तं गम्यते ततः॥ ३८

ब्राह्मण बोला—[हे पथिक!] तुम अभीतक क्यों सो रहे हो? प्रातःकाल हो गया है, अतः जहाँ जानेकी इच्छा हो, उस स्थानके लिये अपनी यात्रा आरम्भ करो। तब उसने कहा—हे ब्रह्मन्! सुनिये, मेरे सेवकके शरीरमें वेदना है, अतः मुहूर्तभर रुककर हम चले जायँगे॥ ३७-३८॥

सूत उवाच

इत्येवं च मिषं कृत्वा सुष्वाप पुरुषस्तदा।
तद्वृत्तमखिलं ज्ञातुमद्भुतं विस्मयावहम्॥ ३९

दोहनस्य तदा काले ब्राह्मणः स्वसुतं प्रति।
उवाच गंतुकामश्च कार्यार्थं कुत्रचिच्च सः॥ ४०

पितोवाच

मया तु गम्यते पुत्र कार्यार्थं कुत्रचित्पुनः।
धेनुर्दोह्या त्वया वत्स सावधानादियं निजा॥ ४१

सूत उवाच

इत्युक्त्वा ब्राह्मणवरः स जगाम च कुत्रचित्।
पुत्रः समुत्थितस्तत्र वत्सं च मुक्तवांस्तदा॥ ४२

माता च तस्य दोहार्थमाजगाम स्वयं तदा।
द्विजपुत्रस्तदा वत्सं खिन्नं कीलेन ताडितम्॥ ४३

बंधनार्थं हि गोः पार्श्वमनयद्दुग्धलालसः।
पुनर्गौश्च तदा क्रुद्धा शृंगेनाताडयच्च तम्॥ ४४

पपात मूर्च्छां संप्राप्य सोऽपि मर्मणि ताडितः।
लोकाश्च मिलितास्तत्र गवा बालो विहिंसितः॥ ४५

जलं जलं वदन्तस्ते पित्राद्या यत्र संस्थिताः।
यत्नश्च क्रियते यावत्तावद् बालो मृतस्तदा॥ ४६

मृते च बालके तत्र हाहाकारो महानभूत्।
तन्माता दुःखिता ह्यासीद् रुरोद च पुनः पुनः॥ ४७

किं करोमि क्व गच्छामि को मे दुःखं व्यपोहयेत्।
रुदित्वेति तदा गां च ताडयित्वा व्यमोचयत्॥ ४८

श्वेतवर्णा तदा सा गौर्द्रुतं श्यामा व्यदृश्यत।
अहो च दृश्यतां लोकाश्चुक्रुशुश्च परस्परम्॥ ४९

ब्राह्मणश्च तदा पान्थो दृष्ट्वाश्चर्यं विनिर्गतः।
यत्र गौश्च गता तत्र तामनु ब्राह्मणो गतः॥ ५०

सूतजी बोले—इस प्रकार बहाना बनाकर उस अद्भुत तथा आश्चर्यजनक सम्पूर्ण घटनाके विषयमें जाननेके लिये वह व्यक्ति पुनः सो गया। तदनन्तर गाय दुहनेके समय कार्यवश कहीं जानेकी इच्छावाले उस [गृहपति] ब्राह्मणने अपने पुत्रसे कहा—॥ ३९-४०॥

पिता बोला—हे पुत्र! मैं कार्यवश फिर कहीं अन्यत्र जा रहा हूँ; तुम सावधानीपूर्वक अपनी इस गायको दुह लेना॥ ४१॥

सूतजी बोले—[हे महर्षियो!] ऐसा कहकर वह ब्राह्मणश्रेष्ठ कहीं चला गया। फिर पुत्र उठा और उसने बछड़ेको खोला॥ ४२॥

उसी समय उसकी माता गाय दुहनेके लिये स्वयं आयी। तब ब्राह्मणपुत्र कोहनीसे मारे जानेके कारण दुखी बछड़ेको दूधकी इच्छासे बाँधनेके लिये जब गायके पास ले गया, तब गाय क्रोधमें भरकर उसे सींगसे मारने लगी॥ ४३-४४॥

तब मर्मस्थानमें चोट खाया हुआ वह मूर्च्छित होकर गिर पड़ा। उसी समय सब लोग एकत्रित हो गये। 'गायने बालकको मार डाला, जल लाओ, जल लाओ' इस प्रकार कहते हुए वे जहाँ उसके पिता आदि थे, वहाँ पहुँचे। जबतक उसे बचानेका प्रयत्न किया गया, इतनेमें वह बालक मर गया॥ ४५-४६॥

बालकके मर जानेपर वहाँ हाहाकार मच गया; उसकी माता दुखी हो उठी और बारंबार रोने लगी॥ ४७॥

'अब मैं क्या करूँ! कहाँ जाऊँ! कौन मेरे दुःखको दूर करेगा'—इस प्रकार विलाप करके उसने गायको मारकर उसका बन्धन खोल दिया॥ ४८॥

श्वेतवर्णकी वह गाय [ब्रह्महत्याके पापसे] श्यामवर्ण हो गयी। सभी लोग आपसमें जोर-जोरसे कहने लगे—देखिये, यह कैसा आश्चर्य है!॥ ४९॥

तब यात्री ब्राह्मण यह आश्चर्य देखकर चल दिया और वह गाय जहाँ गयी, वहाँ उसीके पीछे-पीछे वह ब्राह्मण भी गया॥ ५०॥

ऊर्ध्वपुच्छं तदा कृत्वा शीघ्रं गौर्नर्मदां प्रति।
आगत्य नन्दिकस्यास्य समीपे नर्मदाजले॥ ५१

संनिमज्य त्रिवारं तु श्वेतत्वं च गता हि सा।
यथागतं गता सा च ब्राह्मणो विस्मयं गतः॥ ५२

अहो धन्यतमं तीर्थं ब्रह्महत्यानिवारणम्।
स्वयं ममज्ज तत्रासौ ब्राह्मणः सेवकस्तथा॥ ५३

निमज्य हि गतौ तौ च प्रशंसन्तौ नदीं च ताम्।
मार्गे च मिलिता काचित्सुन्दरी भूषणान्विता॥ ५४

वह गाय अपनी पूँछ ऊपर उठाये शीघ्र ही नर्मदा नदीकी ओर आकर इन नन्दिकेश्वरके निकट नर्मदा नदीके जलमें तीन बार अवगाहन करके पुनः श्वेतवर्ण हो गयी। फिर वह जैसे आयी थी, वैसे चली गयी; इससे ब्राह्मण आश्चर्यचकित हो गया। वह बोला—अहो! ब्रह्महत्याका नाश करनेवाला यह तीर्थ परम धन्य है। तब स्वयं उस ब्राह्मणने सेवकके साथ वहीं स्नान किया। स्नान करके उस नदीकी प्रशंसा करते हुए वे दोनों चल दिये; इसके बाद मार्गमें आभूषणसे भूषित कोई सुन्दरी स्त्री उन्हें मिली॥ ५१—५४॥

तयोक्तं तं च भोः पांथ कुतो यासि सुविस्मितः।
सत्यं ब्रूहि च्छलं त्यक्त्वा विप्रवर्य ममाग्रतः॥ ५५

उसने पूछा—हे पथिक! आप चकित होकर कहाँ जा रहे हैं? हे विप्रवर! छल त्यागकर आप मेरे सामने सत्य-सत्य कहिये॥ ५५॥

सूत उवाच

एवं वचस्तदा श्रुत्वा द्विजेनोक्तं यथातथम्।
पुनश्चायं द्विजस्तत्र स्त्रियोक्तः स्थीयतां त्वया॥ ५६

तयोक्तं च समाकर्ण्य स्थितः स ब्राह्मणस्ततः।
प्रत्युवाच विनीतात्मा कथ्यते किं वदेति च॥ ५७

सूतजी बोले—उस स्त्रीकी बात सुनकर ब्राह्मणने सारी घटना यथार्थ रूपमें बता दी; फिर स्त्रीने उस ब्राह्मणसे कहा—तुम यहाँ रुको। तब उसकी बात सुनकर वह ब्राह्मण रुक गया और विनम्र होकर बोला—तुम क्या कहती हो? मुझे यह बताओ॥ ५६-५७॥

सा चाह पुनरेवात्र त्वया दृष्टं स्थलं च यत्।
तत्राधुना क्षिपास्थीनि मातुः किं गम्यतेऽन्यतः॥ ५८

तव माता पान्थवर्य साक्षाद्दिव्यमयं वरम्।
देहं धृत्वा द्रुतं साक्षाच्छंभोर्यास्यति सद्गतिम्॥ ५९

वैशाखे चैव संप्राप्ते सप्तम्याञ्च दिने शुभे।
सिते पक्षे सदा गंगा ह्यायाति द्विजसत्तम॥ ६०

अद्यैव सप्तमी या सा गंगाऽहं यामि तत्र वै।
इत्युक्त्वान्तर्दधे देवी सा गंगा मुनिसत्तमाः॥ ६१

तब वह पुनः बोली—'तुमने जिस स्थलको अभी देखा है, वहीं अपनी माताकी अस्थियोंको विसर्जित कर दो। अन्यत्र क्यों जाते हो? हे पथिकश्रेष्ठ! [ऐसा करनेसे] तुम्हारी माता साक्षात् दिव्य तथा उत्तम शरीर धारणकर शीघ्र ही शिवकी [कृपासे] सद्गतिको प्राप्त कर लेंगी। हे ब्राह्मणश्रेष्ठ! वैशाखमासमें शुक्लपक्षकी सप्तमीके शुभ अवसरमें यहाँ सर्वदा गंगाजी आती हैं। आज ही वह सप्तमी तिथि है और वह गंगा मैं ही हूँ तथा वहीं जा भी रही हूँ' हे मुनीश्वरो! यह कहकर [स्त्रीरूपधारी] वे गंगाजी अन्तर्धान हो गयीं॥ ५८—६१॥

निवृत्तश्च द्विजः सोऽपि मात्रस्थ्यर्द्धं स्ववस्त्रतः।
क्षिपेद्यावत्तत्र तीर्थे तावच्चित्रमभूत्तदा॥ ६२

इसके बाद उस ब्राह्मणने भी लौटकर माताकी आधी ही अस्थियोंको अपने वस्त्रसे ज्यों ही उस तीर्थमें विसर्जित किया, तभी एक विचित्र दृश्य उपस्थित हो गया॥ ६२॥

दिव्यदेहत्वमापन्ना स्वमाता च व्यदृश्यत।
धन्योऽसि कृतकृत्योऽसि पवित्रं च कुलं त्वया॥ ६३

धनं धान्यं तथा चायुर्वंशो वै वर्धतां तव।
इत्याशिषं मुहुर्दत्त्वा स्वपुत्राय दिवं गता॥ ६४

तत्र भुक्त्वा सुखं भूरि चिरकालं महोत्तमम्।
शंकरस्य प्रसादेन गता सा ह्युत्तमां गतिम्॥ ६५

ब्राह्मणश्च सुतस्तस्याः क्षिप्त्वास्थीनि पुनस्ततः।
प्रसन्नमानसोऽभूत्स शुद्धात्मा स्वगृहं गतः॥ ६६

उसने दिव्य शरीर धारण की हुई अपनी माताको देखा; माताने उससे कहा—[हे पुत्र!] तुम धन्य हो, कृतकृत्य हो; तुमने अपने कुलको पवित्र कर दिया, तुम्हारे धन, धान्य, आयु एवं वंशकी वृद्धि हो—बार-बार अपने पुत्रको इस प्रकारका आशीर्वाद देकर वे स्वर्ग चली गयीं॥ ६३-६४॥

वहाँपर बहुत समयतक अत्युत्तम परम सुख भोगकर शिवकृपासे उन्होंने श्रेष्ठ गति प्राप्त की॥ ६५॥

इसके बाद उसका पुत्र वह ब्राह्मण भी अस्थियाँ विसर्जितकर प्रसन्न मनवाला हो गया एवं शुद्धचित्त हो अपने घर चला गया॥ ६६॥

इति श्रीशिवमहापुराणे चतुर्थ्यां कोटिरुद्रसंहितायां नन्दिकेश्वरलिंगमाहात्म्यवर्णने ब्राह्मणीस्वर्गतिवर्णनं नाम षष्ठोऽध्यायः॥ ६॥

॥ इस प्रकार श्रीशिवमहापुराणके अन्तर्गत चतुर्थ कोटिरुद्रसंहिताके नन्दिकेश्वरलिंगमाहात्म्यवर्णनमें ब्राह्मणीस्वर्गतिवर्णन नामक छठवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ ६॥

अथ सप्तमोऽध्यायः

नन्दिकेश्वरलिंगका माहात्म्य-वर्णन

ऋषय ऊचुः

कथं गंगा समायाता वैशाखे सप्तमीदिने।
नर्मदायां विशेषेण सूतैतद्वर्णय प्रभो॥ १

ईश्वरश्च कथं जातो नन्दिकेशो हि नामतः।
वृत्तं तदपि सुप्रीत्या कथय त्वं महामते॥ २

सूत उवाच

साधु पृष्टमृषिश्रेष्ठा नन्दिकेशाश्रितं वचः।
तदहं कथयाम्यद्य श्रवणात्पुण्यवर्धनम्॥ ३

ब्राह्मणी ऋषिका नाम्नी कस्यचिच्च द्विजन्मनः।
सुता विवाहिता कस्मैचिद् द्विजाय विधानतः॥ ४

पूर्वकर्मप्रभावेण पत्नी सा हि द्विजन्मनः।
सुव्रतापि च विप्रेन्द्रा बालवैधव्यमागता॥ ५

अथ सा द्विजपत्नी हि ब्रह्मचर्यव्रतान्विता।
पार्थिवार्चनपूर्वं हि तपस्तेपे सुदारुणम्॥ ६

ऋषिगण बोले—हे सूत! हे प्रभो! वैशाखमासके शुक्लपक्षकी सप्तमीके दिन नर्मदानदीमें गंगाजी कैसे आयी थीं; इसे विशेषरूपसे बताइये। हे महामते! उस स्थानपर शिवजी नन्दिकेश नामसे कैसे प्रसिद्ध हुए; आप इस वृत्तान्तको भी अत्यन्त प्रीतिपूर्वक कहिये॥ १-२॥

सूतजी बोले—हे ऋषिश्रेष्ठो! आपलोगोंने नन्दिकेशसे सम्बन्धित यह बहुत ही उत्तम बात पूछी है; अब मैं उसका वर्णन करता हूँ, इसके सुननेमात्रसे पुण्यकी वृद्धि होती है। [पूर्व समयमें] किसी ब्राह्मणकी ऋषिका नामक एक कन्या थी; उसने अपनी उस कन्याका विवाह विधानपूर्वक किसी ब्राह्मणसे कर दिया॥ ३-४॥

हे ब्राह्मणश्रेष्ठो! पूर्वजन्मके कर्मके प्रभावसे वह ब्राह्मणपत्नी पातिव्रत्यधर्ममें परायण होनेपर भी बाल्यावस्थामें ही विधवा हो गयी॥ ५॥

तब वह ब्राह्मणपत्नी ब्रह्मचर्यव्रतके पालनमें तत्पर हो, पार्थिवपूजनपूर्वक कठोर तप करने लगी॥ ६॥

तस्मिन्नवसरे दुष्टो मूढनामासुरो बली।
ययौ तत्र महामायी कामबाणेन ताडितः॥ ७

तपन्तीं तां समालोक्य सुन्दरीमतिकामिनीम्।
तया भोगं ययाचे स नानालोभं प्रदर्शयन्॥ ८

अथ सा सुव्रता नारी शिवध्यानपरायणा।
तस्मिन्दृष्टिं दधौ नैव कामदृष्ट्या मुनीश्वराः॥ ९

न मानितवती तं च ब्राह्मणी सा तपोरता।
अतीव हि तपोनिष्ठासीच्छिवध्यानमाश्रिता॥ १०

अथ मूढः स दैत्येन्द्रः तया तन्व्या तिरस्कृतः।
चुक्रोध विकटं तस्यै पश्चाद्रूपमदर्शयत्॥ ११

अथ प्रोवाच दुष्टात्मा दुर्वचो भयकारकम्।
त्रासयामास बहुशस्तां च पत्नीं द्विजन्मनः॥ १२

तदा सा भयसंत्रस्ता बहुवारं शिवेति च।
बभाषे स्नेहतस्तन्वी द्विजपत्नी शिवाश्रया॥ १३

विह्वलातीव सा नारी शिवनामप्रभाषिणी।
जगाम शरणं शम्भोः स्वधर्मावनहेतवे॥ १४

शरणागतरक्षार्थं कर्तुं सद्वृत्तमाहितम्।
आनन्दार्थं हि तस्यास्तु शिव आविर्बभूव ह॥ १५

अथ तं मूढनामानं दैत्येन्द्रं कामविह्वलम्।
चकार भस्मसात्सद्यः शंकरो भक्तवत्सलः॥ १६

ततश्च परमेशानो कृपादृष्ट्या विलोक्य ताम्।
वरं ब्रूहीति चोवाच भक्तरक्षणदक्षधीः॥ १७

श्रुत्वा महेशवचनं सा साध्वी द्विजकामिनी।
ददर्श शांकरं रूपमानन्दजनकं शुभम्॥ १८

ततः प्रणम्य तं शंभुं परमेशं सुखावहम्।
तुष्टाव साञ्जलिः साध्वी नतस्कन्धा शुभाशया॥ १९

ऋषिकोवाच

देवदेव महादेव शरणागतवत्सल।
दीनबन्धुस्त्वमीशानो भक्तरक्षाकरः सदा॥ २०

उसी समय महामायावी 'मूढ' नामक बलवान् दुष्ट असुर कामबाणसे पीड़ित होकर उस स्थानपर गया और तपस्या करती हुई उस परम सुन्दरी स्त्रीको देखकर वह अनेक प्रकारका प्रलोभन देते हुए उसके साथ सहवासकी याचना करने लगा॥ ७-८॥

हे मुनीश्वरो! उस समय शिवध्यानमें परायण उस सुव्रता स्त्रीने कामभावनासे उसकी ओर देखातक नहीं। वह अत्यन्त तपोनिष्ठ तथा शिवध्यानमें मग्न थी। अतः तपस्यामें संलग्न उस ब्राह्मणीने उसका सम्मान भी नहीं किया॥ ९-१०॥

तब उस स्त्रीके द्वारा तिरस्कृत हुए उस मूर्ख दैत्यने उसपर अत्यन्त क्रोध किया और उसे अपना विकट रूप दिखाया॥ ११॥

इसके बाद वह दुष्टात्मा [राक्षस] उस ब्राह्मणीको भयकारक दुर्वचन कहने लगा तथा उसे अनेक प्रकारसे डराने लगा। तब शिवपरायणा वह कृशांगी द्विजपत्नी भयभीत होकर प्रेमपूर्वक बारंबार 'शिव-शिव'—ऐसा उच्चारण करने लगी॥ १२-१३॥

अत्यन्त व्याकुल एवं शिवनामका जप करती हुई वह स्त्री अपने धर्मकी रक्षाके लिये जब शिवजीकी शरणमें चली गयी, तब शरणागतकी रक्षा, सदाचारकी स्थापना तथा उस ब्राह्मणीके आनन्दके लिये सदाशिव वहीं प्रकट हो गये॥ १४-१५॥

तत्पश्चात् भक्तवत्सल शिवजीने कामपीड़ित उस मूढ नामक दैत्यको उसी समय भस्म कर दिया॥ १६॥

इसके बाद भक्तोंकी रक्षा करनेमें दक्ष बुद्धिवाले शिवजीने दयादृष्टिसे उसकी ओर देखकर 'वर माँगो'—इस प्रकार कहा॥ १७॥

वह पतिव्रता ब्राह्मणी शिवजीके इस वचनको सुनकर उनके मनोहर तथा आनन्दप्रद रूपकी ओर देखने लगी। तदनन्तर उत्तम विचारोंवाली वह पतिव्रता [ब्राह्मणी] सुख देनेवाले महेश्वर शिवको प्रणाम करके सिर झुकाकर तथा हाथ जोड़कर उनकी स्तुति करने लगी॥ १८-१९॥

ऋषिका बोली—हे देवदेव! हे महादेव! हे शरणागतवत्सल! आप दीनोंके बन्धु, सबके ईश्वर तथा सर्वदा भक्तोंकी रक्षा करनेवाले हैं॥ २०॥

त्वया मे रक्षितो धर्मो मूढनाम्नोऽसुरादिह।
यदयं निहतो दुष्टो जगद्रक्षा कृता त्वया॥ २१

[हे प्रभो!] आपने इस मूढ नामक दैत्यसे मेरे धर्मकी रक्षा की और आपने जो इसका वध किया है, उससे आपने [सम्पूर्ण] जगत्‌की भी रक्षा की है॥ २१॥

स्वपादयोः परां भक्तिं देहि मे ह्यनपायिनीम्।
अयमेव वरो नाथ किमन्यदधिकं ह्यतः॥ २२

अन्यदाकर्णय विभो प्रार्थनां मे महेश्वर।
लोकानामुपकारार्थमिह त्वं संस्थितो भव॥ २३

अब आप मुझे अपने चरणोंमें सदा स्थिर रहनेवाली श्रेष्ठ भक्ति प्रदान कीजिये। हे नाथ! यही मेरा वर है; इससे अधिक दूसरा वर क्या हो सकता है! हे विभो! हे महेश्वर! मेरी एक और प्रार्थना आप सुनें—आप लोककल्याणके निमित्त यहीं पर निवास कीजिये॥ २२-२३॥

सूत उवाच

इति स्तुत्वा महादेवमृषिका सा शुभव्रता।
तूष्णीमासाथ गिरिशः प्रोवाच करुणाकरः॥ २४

सूतजी बोले—इस प्रकार महादेवकी स्तुतिकर उत्तम व्रतवाली वह ऋषिका चुप हो गयी; तब दयालु शिवजी कहने लगे—॥ २४॥

गिरिश उवाच

ऋषिके सुचरित्रा त्वं मम भक्ता विशेषतः।
दत्ता वराश्च ते सर्वे तुभ्यं ये ये हि याचिताः॥ २५

गिरिश बोले—हे ऋषिके! तुम उत्तम चरित्रवाली हो और तुम मुझमें विशेष रूपसे भक्ति रखती हो, इसलिये तुमने जो-जो वर माँगा, उन सभी वरोंको मैंने तुम्हें प्रदान किया॥ २५॥

एतस्मिन्नन्तरे तत्र हरिब्रह्मादयः सुराः।
शिवाविर्भावमाज्ञाय ययुर्हर्षसमन्विताः॥ २६

शिवं प्रणम्य सुप्रीत्या समानर्चुश्च तेऽखिलाः।
तुष्टुवुर्नतका विप्राः करौ बद्ध्वा सुचेतसः॥ २७

इसी अवसरपर शिवजीको प्रकट हुआ जानकर ब्रह्मा, विष्णु आदि देवता हर्षयुक्त होकर वहाँ पहुँच गये। हे विप्रो! उन सभीने अत्यन्त प्रीतिपूर्वक शिवजीको प्रणामकर उनका पूजन किया और सिर झुकाकर हाथ जोड़कर प्रसन्न चित्तसे उनकी स्तुति की॥ २६-२७॥

एतस्मिन्समये गंगा साध्वीं तां स्वर्धुनी जगौ।
ऋषिकां सुप्रसन्नात्मा प्रशंसन्ती च तद्विधिम्॥ २८

इसी समय स्वर्नदी गंगाजीने [वहाँ आकर] साध्वी ऋषिकाके भाग्यकी प्रशंसा करते हुए प्रसन्नचित्त होकर उससे कहा—॥ २८॥

गंगोवाच

ममार्थं चैव वैशाखे मासि देयं त्वया वचः।
स्थित्यर्थं दिनमेकं मे सामीप्यं कार्यमेव हि॥ २९

गंगाजी बोलीं—[हे साध्वि!] तुम वैशाख महीनेमें एक दिन मेरे कल्याणके लिये अपने समीपमें मुझे रहनेका वचन दो, जिससे मैं एक दिन तुम्हारा सामीप्य प्राप्त करूँ॥ २९॥

सूत उवाच

गंगावचनमाकर्ण्य सा साध्वी प्राह सुव्रता।
तथास्त्विति वचः प्रीत्या लोकानां हितहेतवे॥ ३०

सूतजी बोले—गंगाजीका वचन सुनकर श्रेष्ठ व्रतवाली उस साध्वीने लोकहितके लिये प्रेमपूर्वक यह वचन कहा—'ऐसा ही हो'॥ ३०॥

आनन्दार्थं शिवस्तस्याः सुप्रसन्नश्च पार्थिवे।
तस्मिँल्लिंगे लयं यातः पूर्णांशेन तया हरः॥ ३१

शिवजी भी उसके आनन्दके लिये उसके द्वारा निर्मित उस पार्थिव लिंगमें प्रसन्न होकर अपने पूर्णांशसे प्रविष्ट हो गये॥ ३१॥

देवाः सर्वे सुप्रसन्नाः प्रशंसन्ति शिवं च ताम्।
स्वं स्वं धाम ययुर्विष्णुर्ब्रह्माद्या अपि स्वर्णदी॥ ३२

इसके बाद ब्रह्मा, विष्णु आदि सभी देवता तथा गंगाजी प्रसन्न हो शिवजीकी तथा उस [ब्राह्मणी]-की प्रशंसा करने लगे और अपने-अपने स्थानको चले गये।

तद्दिनात्पावनं तीर्थमासीदीदृशमुत्तमम्।
नन्दिकेशः शिवः ख्यातः सर्वपापविनाशनः॥ ३३

उसी दिनसे इस प्रकारका यह परम पावन तीर्थ हो गया और शिवजी भी वहाँ सभी पापोंका विनाश करनेवाले नन्दिकेश नामसे प्रसिद्ध हो गये॥ ३२-३३॥

गंगापि प्रतिवर्षं तद्दिने याति शुभेच्छया।
क्षालनार्थं स्वपापस्य यद् गृहीतं नृणां द्विजाः॥ ३४

हे द्विजो! तभीसे गंगाजी भी सबके कल्याणकी इच्छासे तथा मनुष्योंसे ग्रहण किया हुआ अपना पाप धोनेके लिये प्रत्येक वर्ष इस दिन यहाँ आती हैं॥ ३४॥

तत्र स्नातो नरः सम्यङ् नंदिकेशं समर्च्य च।
ब्रह्महत्यादिभिः पापैर्मुच्यते ह्यखिलैरपि॥ ३५

मनुष्य वहाँ स्नानकर और भलीभाँति नन्दिकेश्वरकी पूजाकर ब्रह्महत्या आदि सभी पापोंसे छूट जाता है॥ ३५॥

इति श्रीशिवमहापुराणे चतुर्थ्यां कोटिरुद्रसंहितायां नन्दिकेश्वरशिवलिंगमाहात्म्यवर्णनं नाम सप्तमोऽध्यायः॥ ७॥

॥ इस प्रकार श्रीशिवमहापुराणके अन्तर्गत चतुर्थ कोटिरुद्रसंहितामें नन्दिकेश्वरशिवलिंग-माहात्म्यवर्णन नामक सातवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ ७॥

अथाष्टमोऽध्यायः

पश्चिम दिशाके शिवलिंगोंके वर्णन-क्रममें महाबलेश्वरलिंगका माहात्म्य-कथन

सूत उवाच

द्विजाः शृणुत सद्भक्त्या शिवलिंगानि तानि च।
पश्चिमायां दिशायां वै यानि ख्यातानि भूतले॥ १

सूतजी बोले—हे ब्राह्मणो! अब पश्चिम दिशामें जो-जो लिंग भूतलपर प्रसिद्ध हैं, उन शिवलिंगोंको सद्भक्तिपूर्वक सुनिये॥ १॥

कपिलायां नगर्यां तु कालरामेश्वराभिधे।
शिवलिंगे महादिव्ये दर्शनात्पापहारके॥ २
पश्चिमे सागरे चैव महासिद्धेश्वरः स्मृतः।
धर्मार्थकामदश्चैव तथा मोक्षप्रदोऽपि हि॥ ३

कपिला नगरीमें कालेश्वर एवं रामेश्वर नामक दो महादिव्य लिंग हैं, जो दर्शनमात्रसे पापोंको नष्ट करनेवाले हैं। पश्चिम सागरके तटपर महासिद्धेश्वर लिंग बताया गया है, जो धर्म, अर्थ, काम एवं मोक्षतक प्रदान करनेवाला है॥ २-३॥

पश्चिमाम्बुधितीरस्थं गोकर्णं क्षेत्रमुत्तमम्।
ब्रह्महत्यादिपापघ्नं सर्वकामफलप्रदम्॥ ४
गोकर्णे शिवलिंगानि विद्यन्ते कोटिकोटिशः।
असंख्यातानि तीर्थानि तिष्ठन्ति च पदे पदे॥ ५
बहुनात्र किमुक्तेन गोकर्णस्थानि सर्वशः।
शिवप्रत्यक्षलिंगानि तीर्थान्यम्भांसि सर्वशः॥ ६

पश्चिम समुद्रके तटपर गोकर्ण नामक उत्तम क्षेत्र है, जो ब्रह्महत्या आदि पापोंको नष्ट करनेवाला और सम्पूर्ण कामनाओंका फल प्रदान करनेवाला है। गोकर्ण क्षेत्रमें करोड़ों शिवलिंग हैं और पद-पदपर असंख्य तीर्थ हैं। इस विषयमें अधिक क्या कहें, गोकर्णक्षेत्रमें स्थित सभी लिंग शिवस्वरूप हैं एवं वहाँका समस्त जल तीर्थस्वरूप है॥ ४—६॥

गोकर्णे शिवलिंगानां तीर्थानामपि सर्वशः।
वर्ण्यते महिमा तात पुराणेषु महर्षिभिः॥ ७
कृते युगे स हि श्वेतस्त्रेतायां सोऽतिलोहितः।
द्वापरे पीतवर्णश्च कलौ श्यामो भविष्यति॥ ८

हे तात! महर्षियोंके द्वारा गोकर्णमें स्थित सभी लिंगों एवं तीर्थोंकी महिमाका वर्णन पुराणोंमें किया गया है। [गोकर्णक्षेत्रमें स्थित] महाबलेश्वर शिवलिंग कृतयुगमें श्वेतवर्ण, त्रेतामें अतीव लोहितवर्ण, द्वापरमें पीतवर्ण तथा कलियुगमें श्यामवर्णका हो जाता है॥ ७-८॥

आक्रान्तसप्तपातालकुहरोऽपि महाबलः।
प्राप्ते कलियुगे घोरे मृदुतामुपयास्यति॥ ९
महापातकिनश्चात्र समभ्यर्च्य महाबलम्।
शिवलिंगं च गोकर्णे प्रयाताः शांकरं पदम्॥ १०

सातों पातालोंको आक्रान्त करनेवाला वह महाबलेश्वरलिंग घोर कलियुग प्राप्त होनेपर कोमल हो जायगा। महापाप करनेवाले लोग भी यहाँ गोकर्णक्षेत्रमें [विराजमान] महाबलेश्वर लिंगकी पूजाकर शिवपदको प्राप्त हुए हैं॥ ९-१०॥

गोकर्णे तत्र मुनयो गत्वा पुण्यर्क्षवासरे।
येऽर्चयन्ति च तं भक्त्या ते रुद्राः स्युर्न संशयः॥ ११

हे मुनिगण! जो लोग गोकर्णक्षेत्रमें जाकर उत्तम नक्षत्रयुक्त दिनमें भक्तिपूर्वक उनकी पूजा करते हैं, वे [साक्षात्] शिवस्वरूप ही हैं; इसमें सन्देह नहीं है॥ ११॥

यदा कदाचिद्गोकर्णे यो वा को वापि मानवः।
पूजयेच्छिवलिंगं तत्स गच्छेद् ब्रह्मणः पदम्॥ १२
ब्रह्मविष्ण्वादिदेवानां शंकरो हितकाम्यया।
महाबलाभिधानेन देवः संनिहितः सदा॥ १३

जिस किसी भी समयमें जो कोई भी मनुष्य गोकर्णक्षेत्रमें स्थित उस शिवलिंगका पूजन करता है, वह ब्रह्मपदको प्राप्त कर लेता है। वहाँपर शिवजी ब्रह्मा, विष्णु आदि देवताओंका हित करनेकी इच्छासे महाबल नामसे सदा निवास करते हैं॥ १२-१३॥

घोरेण तपसा लब्धं रावणाख्येन रक्षसा।
तल्लिगं स्थापयामास गोकर्णे गणनायकः॥ १४
विष्णुर्ब्रह्मा महेन्द्रश्च विश्वेदेवा मरुद्गणाः।
आदित्या वसवो दस्रौ शशांकश्च सतारकः॥ १५
एते विमानगतयो देवाश्च सह पार्षदैः।
पूर्वद्वारं निषेवन्ते तस्य वै प्रीतिकारणात्॥ १६

रावण नामक राक्षसने कठोर तपके द्वारा उस लिंगको प्राप्तकर गोकर्णमें स्थापित किया था। गोकर्णमें गणेश, विष्णु, ब्रह्मा, महेन्द्र, विश्वेदेव, मरुद्गण, सभी आदित्य, सभी वसु, दोनों अश्विनीकुमार, नक्षत्रोंके सहित चन्द्रमा—विमानसे चलनेवाले ये सभी देवता अपने-अपने पार्षदोंके साथ उन [महाबलेश्वर शिव]-को प्रसन्न करनेके लिये पूर्वद्वारपर विराजमान रहते हैं॥ १४—१६॥

यमो मृत्युः स्वयं साक्षाच्चित्रगुप्तश्च पावकः।
पितृभिः सह रुद्रैश्च दक्षिणद्वारमाश्रितः॥ १७
वरुणः सरितां नाथो गंगादिसरितां गणैः।
महाबलं च सेवन्ते पश्चिमद्वारमाश्रिताः॥ १८

यम, स्वयं मृत्यु, साक्षात् चित्रगुप्त तथा अग्निदेव, सभी पितरों एवं रुद्रोंके साथ दक्षिण द्वारपर स्थित रहते हैं। नदियोंके स्वामी वरुण गंगा आदि नदियोंके साथ पश्चिम द्वारपर स्थित होकर महाबलकी सेवा करते हैं॥ १७-१८॥

तथा वायुः कुबेरश्च देवेशी भद्रकालिका।
मातृभिश्चण्डिकाद्याभिरुत्तरद्वारमाश्रिताः॥ १९

वायु, कुबेर, देवेश्वरी भद्रकाली, चण्डिका आदि देवता तथा देवियाँ मातृकाओंके साथ उत्तर द्वारपर स्थित रहती हैं॥ १९॥

सर्वे देवाः सगन्धर्वाः पितरः सिद्धचारणाः।
विद्याधराः किंपुरुषाः किन्नरा गुह्यकाः खगाः॥ २०
नानापिशाचा वेताला दैतेयाश्च महाबलाः।
नागाः शेषादयः सर्वे सिद्धाश्च मुनयोऽखिलाः॥ २१
प्रणुवन्ति च तं देवं प्रणमन्ति महाबलम्।
लभन्त ईप्सितान्कामान् रमन्ते च यथासुखम्॥ २२

सभी देवता, गन्धर्व, पितर, सिद्ध, चारण, विद्याधर, किंपुरुष, किन्नर, गुह्यक, खग, नानाविध पिशाच, वेताल, महाबली दैत्य, शेष आदि नाग, सभी सिद्ध एवं मुनिगण उन महाबलेश्वर देवका स्तवन करते हैं और उनसे इच्छित मनोरथोंको प्राप्तकर सुखपूर्वक रमण करते हैं॥ २०—२२॥

बहुभिस्तत्र सुतपस्तप्तं सम्पूज्य तं विभुम्।
लब्धा हि परमा सिद्धिरिहामुत्रापि सौख्यदा॥ २३

गोकर्णे शिवलिंगं तु मोक्षद्वार उदाहृतः।
महाबलाभिधानोऽसौ पूजितः संस्तुतो द्विजाः॥ २४

वहाँ बहुतसे लोगोंने घोर तप किया और उन प्रभुकी पूजाकर इस लोक तथा परलोकमें भी सुख देनेवाली सिद्धि प्राप्त की है। हे द्विजो! गोकर्णक्षेत्रमें स्थित यह महाबलेश्वर नामक शिवलिंग भलीभाँति पूजा तथा स्तवन किये जानेपर [साक्षात्] मोक्षद्वार ही है—ऐसा कहा गया है॥ २३-२४॥

माघासितचतुर्दश्यां महाबलसमर्चनम्।
विमुक्तिदं विशेषेण सर्वेषां पापिनामपि॥ २५

माघमासमें कृष्णपक्षकी चतुर्दशीके दिन महाबलेश्वरका पूजन विशेषरूपसे मुक्ति प्रदान करता है, इस दिन तो पूजा करनेपर पापियोंका भी समुद्धार हो जाता है॥ २५॥

अस्यां शिवतिथौ सर्वे महोत्सवदिदृक्षवः।
आयान्ति सर्वदेशेभ्यश्चातुर्वर्ण्यमहाजनाः॥ २६

स्त्रियो वृद्धाश्च बालाश्च चतुराश्रमवासिनः।
दृष्ट्वा तत्रैत्य देवेशं लेभिरे कृतकृत्यताम्॥ २७

महाबलप्रभावात्ते तच्च लिंगं शिवस्य तु।
सम्पूज्यैकाथ चाण्डाली शिवलोकं गता द्रुतम्॥ २८

इस शिवचतुर्दशीमें महोत्सवको देखनेकी इच्छावाले चारों वर्णोंके मनुष्य सभी देशोंसे यहाँ आते हैं। [ब्रह्मचारी आदि] चारों आश्रमोंके लोग, स्त्री, वृद्ध तथा बालक वहाँ आकर देवेश्वरका दर्शनकर महाबलेश्वरके प्रभावसे कृतकृत्य हो जाते हैं। भगवान् शिवके उस महाबलेश्वर नामक लिंगका पूजन करके एक चाण्डाली भी तत्क्षण शिवलोकको प्राप्त हो गयी थी॥ २६—२८॥

इति श्रीशिवमहापुराणे चतुर्थ्यां कोटिरुद्रसंहितायां महाबलमाहात्म्यवर्णनं नामाष्टमोऽध्यायः॥ ८॥

॥ इस प्रकार श्रीशिवमहापुराणके अन्तर्गत चतुर्थ कोटिरुद्रसंहितामें महाबलमाहात्म्यवर्णन नामक आठवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ ८॥

अथ नवमोऽध्यायः

संयोगवश हुए शिवपूजनसे चाण्डालीकी सद्गतिका वर्णन

ऋषय ऊचुः

सूत सूत महाभाग धन्यस्त्वं शैवसत्तमः।
चाण्डाली का समाख्याता तत्कथां कथय प्रभो॥ १

ऋषिगण बोले—हे सूतजी! हे महाभाग! आप परम शैव हैं, अतः आप धन्य हैं, हे विभो! वह चाण्डाली कौन थी, उसकी कथा कहिये॥ १॥

सूत उवाच

द्विजाः शृणुत सद्भक्त्या तां कथां परमाद्भुताम्।
शिवप्रभावसंमिश्रां शृण्वतां भक्तिवर्धिनीम्॥ २

सूतजी बोले—हे ब्राह्मणो! सुननेवालोंकी भक्तिको बढ़ानेवाली तथा शिवके प्रभावसे मिश्रित उस अत्यन्त अद्भुत कथाको आपलोग भक्तिपूर्वक सुनिये॥ २॥

चांडाली सा पूर्वभवेऽभवद् ब्राह्मणकन्यका।
सौमिनी नाम चन्द्रास्या सर्वलक्षणसंयुता॥ ३

अथ सा समये कन्या युवतिः सौमिनी द्विजाः।
पित्रा दत्ता च कस्मैचिद्विधिना द्विजसूनवे॥ ४

वह चाण्डाली पूर्वजन्ममें सभी लक्षणोंसे समन्वित तथा चन्द्रमाके समान मुखवाली सौमिनी नामक ब्राह्मणकन्या थी। हे द्विजो! सौमिनीके युवती हो जानेपर उसके पिताने किसी ब्राह्मणपुत्रसे विधिपूर्वक उसका विवाह सम्पन्न कर दिया॥ ३-४॥

सा भर्तारमनुप्राप्य किंचित्कालं शुभव्रता।
रेमे तेन द्विजश्रेष्ठा नवयौवनशालिनी॥ ५

हे ब्राह्मणश्रेष्ठो! तदनन्तर नवीन यौवनशालिनी वह उत्तम व्रतवाली सौमिनी पतिको प्राप्त करके उसके साथ सुखपूर्वक रहने लगी॥ ५॥

अथ तस्याः पतिर्विप्रस्तरुणः सुरुजार्दितः।
सौमिन्याः कालयोगात्तु पञ्चत्वमगमद् द्विजाः॥ ६

हे द्विजो! [कुछ काल बीतनेके पश्चात्] उस सौमिनीका नवयुवक ब्राह्मण पति रोगग्रस्त हो गया और कालयोगसे मृत्युको प्राप्त हो गया॥ ६॥

मृते भर्तरि सा नारी दुःखितातिविषण्णधीः।
किंचित्कालं शुभाचारा सुशीलोवास सद्मनि॥ ७

ततः सा मन्मथाविष्टहृदया विधवापि च।
युवावस्थाविशेषेण बभूव व्यभिचारिणी॥ ८

पतिके मर जानेपर सुशील तथा उत्तम आचारवाली उस स्त्रीने दुःखित तथा व्यथितचित्त होकर कुछ काल अपने घरमें निवास किया। उसके अनन्तर विधवा होते हुए भी युवती होनेके कारण कामसे आविष्ट मनवाली वह व्यभिचारिणी हो गयी॥ ७-८॥

तज्ज्ञात्वा गोत्रिणस्तस्या दुष्कर्म कुलदूषणम्।
समेतास्तत्यजुर्दूरं नीत्वा तां सकचग्रहाम्॥ ९

तब कुलको कलंकित करनेवाले उसके इस कुकर्मको जानकर उसके कुटुम्बियोंने परस्पर मिलकर उसके बालोंको खींचते हुए उसे दूर ले जाकर छोड़ दिया॥ ९॥

कश्चिच्छूद्रवरस्तां वै विचरन्तीं निजेच्छया।
दृष्ट्वा वने स्त्रियं चक्रे निनाय स्वगृहं ततः॥ १०

कोई शूद्र उसे वनमें स्वच्छन्द विचरण करती हुई देख अपने घर ले आया और उसने उसे अपनी पत्नी बना लिया॥ १०॥

अथ सा पिशिताहारा नित्यमापीतवारुणी।
अजीजनत्सुतां तेन शूद्रेण सुरतप्रिया॥ ११

अब वह प्रतिदिन मांसका भोजन करती, मदिरा पीती और व्यभिचारनिरत रहती थी। इस प्रकार उस शूद्रके सम्बन्धसे उसने एक कन्याको जन्म दिया॥ ११॥

कदाचिद्भर्तरि क्वापि याते पीतसुराथ सा।
इयेष पिशिताहारं सौमिनी व्यभिचारिणी॥ १२

किसी समय पतिके कहीं चले जानेपर उस व्यभिचारिणी सौमिनीने मद्यपान किया और वह मांसके आहारकी इच्छा करने लगी॥ १२॥

ततो मेषेषु बद्धेषु गोभिः सह बहिर्व्रजे।
निशामुखे तमोऽन्धे हि खड्गमादाय सा ययौ॥ १३

अविमृश्य मदावेशान्मेषबुद्ध्यामिषप्रिया।
एकं जघान गोवत्सं क्रोशन्तमतिदुर्भगा॥ १४

इसके बाद रात्रिके समय घोर अन्धकारमें तलवार लेकर वह घरके बाहर गोष्ठमें गायोंके साथ बँधे हुए मेषोंके बीच गयी। उस समय मांससे प्रेम रखनेवाली उस दुर्भगाने मद्यके नशेके कारण बिना विचार किये चिल्लाते हुए एक बछड़ेको मेष समझकर मार डाला॥ १३-१४॥

हतं तं गृहमानीय ज्ञात्वा गोवत्समङ्गना।
भीता शिव शिवेत्याह केनचित्पुण्यकर्मणा॥ १५

सा मुहूर्तं शिवं ध्यात्वामिषभोजनलालसा।
छित्त्वा तमेव गोवत्सं चकाराहारमीप्सितम्॥ १६

मरे हुए उस पशुको घर लाकर बादमें उसे बछड़ा जानकर वह स्त्री भयभीत हो गयी और किसी पुण्य कर्मसे [पश्चात्तापपूर्वक] 'शिव-शिव'—ऐसा उच्चारण करने लगी। क्षणभर शिवजीका ध्यान करके मांसके आहारकी इच्छावाली उसने उस बछड़ेको ही काटकर अभिलषित भोजन कर लिया॥ १५-१६॥

एवं बहुतिथे काले गते सा सौमिनी द्विजाः।
कालस्य वशमापन्ना जगाम यमसंक्षयम्॥ १७

यमोऽपि धर्ममालोक्य तस्याः कर्म च पौर्विकम्।
निवर्त्य निरयावासाच्चक्रे चाण्डालजातिकाम्॥ १८

साथ भ्रष्टा यमपुराच्चाण्डालीगर्भमाश्रिता।
ततो बभूव जन्मान्धा प्रशांतांगारमेचका॥ १९

जन्मान्धा साथ बाल्येऽपि विध्वस्तपितृमातृका।
ऊढा न केनचिद्दुष्टा महाकुष्ठरुजार्दिता॥ २०

ततः क्षुधार्दिता दीना यष्टिपाणिर्गतेक्षणा।
चाण्डालोच्छिष्टपिंडेन जठराग्निमतर्पयत्॥ २१

एवं कृच्छ्रेण महता नीत्वा स्वविपुलं वयः।
जरया ग्रस्तसर्वाङ्गी दुःखमाप दुरत्ययम्॥ २२

कदाचित्साथ चांडाली गोकर्णं तं महाजनान्।
आयास्यन्त्यां शिवतिथौ गच्छतो बुबुधेऽध्वगान्॥ २३

अथासावपि चांडाली वसनाशनतृष्णया।
महाजनान् याचयितुं सञ्चचार शनैः शनैः॥ २४

गत्वा तत्राथ चांडाली प्रार्थयन्ती महाजनान्।
यत्र तत्र चचारासौ दीनवाक्प्रसृताञ्जलिः॥ २५

एवमभ्यर्थयन्त्यास्तु चांडाल्याः प्रसृताञ्जलौ।
एकः पुण्यतमः पान्थः प्राक्षिपद्बिल्वमंजरीम्॥ २६

तामंजलौ निपतितां सा विमृश्य पुनः पुनः।
अभक्ष्यमिति मत्वाथ दूरे प्राक्षिपदातुरा॥ २७

तस्याः कराद्विनिर्मुक्ता रात्रौ सा बिल्वमंजरी।
पपात कस्यचिद्दिष्ट्या शिवलिंगस्य मस्तके॥ २८

सैवं शिवचतुर्दश्यां रात्रौ पान्थजनान् मुहुः।
याचमानापि यत्किंचिन्न लेभे दैवयोगतः॥ २९
एवं शिवचतुर्दश्या व्रतं जातं च निर्मलम्।

हे द्विजो! इस प्रकार बहुत-सा समय बीतनेके पश्चात् वह सौमिनी कालके वशीभूत हो गयी और यमलोक चली गयी। यमराजने भी उसके पूर्वजन्मके कर्म तथा धर्मका निरीक्षणकर उसे नरकसे निकालकर चाण्डाल जातिवाली बना दिया॥ १७-१८॥

यमराजपुरीसे लौटकर वह [सौमिनी] चाण्डालीके गर्भसे उत्पन्न हुई। वह जन्मसे अन्धी एवं कोयलेके समान काली थी। जन्मसे अन्धी, बाल्यावस्थामें ही माता-पितासे रहित और महाकुष्ठ रोगसे ग्रस्त उस दुष्टासे किसीने विवाह भी नहीं किया॥ १९-२०॥

उसके बाद वह अन्धी चाण्डाली भूखसे पीड़ित एवं दीन हो लाठी हाथमें लेकर जहाँ-तहाँ डोलती और चाण्डालोंके जूठे अन्नसे अपने पेटकी ज्वाला शान्त करती थी। इस प्रकार महान् कष्टसे अपनी अवस्थाका बहुत भाग बिता लेनेके पश्चात् वृद्धावस्थासे ग्रस्त शरीरवाली वह घोर दुःख पाने लगी॥ २१-२२॥

किसी समय उस चाण्डालीको ज्ञात हुआ कि आगे आनेवाली शिवतिथिमें बड़े-बड़े लोग उस गोकर्णक्षेत्रकी ओर जा रहे हैं॥ २३॥

वह चाण्डाली भी वस्त्र एवं भोजनके लोभसे महाजनोंसे माँगनेके लिये धीरे-धीरे [गोकर्णकी ओर] चल पड़ी। वहाँ जाकर वह हाथ फैलाकर दीनवचन बोलती हुई और महाजनोंसे प्रार्थना करती हुई इधर-उधर घूमने लगी॥ २४-२५॥

इस प्रकार याचना करती हुई उस चाण्डालीकी फैली हुई अंजलिमें एक पुण्यात्मा यात्रीने बेलकी मंजरी डाल दी। बार-बार विचार करके 'यह खानेयोग्य नहीं है'—ऐसा समझकर भूखसे व्याकुल उसने अंजलिमें पड़ी हुई उस मंजरीको दूर फेंक दिया॥ २६-२७॥

उसके हाथसे छूटी हुई वह बिल्वमंजरी शिवरात्रिमें भाग्यवश किसी शिवलिंगके मस्तकपर जा गिरी॥ २८॥

इस प्रकार चतुर्दशीके दिन यात्रियोंसे बार-बार याचना करनेपर भी दैवयोगसे उसे कुछ भी प्राप्त नहीं हुआ। तब इस तरहसे अनजानेमें उसका शिवचतुर्दशीका

अज्ञानतो जागरणं परमानन्ददायकम्॥ ३०

ततः प्रभाते सा नारी शोकेन महतावृता।
शनैर्निववृते दीना स्वदेशायैव केवलम्॥ ३१

श्रांता चिरोपवासेन निपतंती पदे पदे।
अतीत्य तावतीं भूमिं निपपात विचेतना॥ ३२

अथ सा शंभुकृपया जगाम परमं पदम्।
आरुह्य सुविमानं च नीतं शिवगणैर्द्रुतम्॥ ३३

आदौ यदेषा शिवनाम नारी
प्रमादतो वाप्यसती जगाद।
तेनेह भूयः सुकृतेन विप्रा
महाबलस्थानमवाप दिव्यम्॥ ३४

श्रीगोकर्णे शिवतिथावुपोष्य शिवमस्तके।
कृत्वा जागरणं सा हि चक्रे बिल्वार्चनं निशि॥ ३५

अकामतः कृतस्यास्य पुण्यस्यैव च तत्फलम्।
भुनक्त्यद्यापि सा चैव महाबलप्रसादतः॥ ३६

एवंविधं महालिंगं शंकरस्य महाबलम्।
सर्वपापहरं सद्यः परमानन्ददायकम्॥ ३७

एवं वः कथितं विप्रा माहात्म्यं परमं मया।
महाबलाभिधानस्य शिवलिंगवरस्य हि॥ ३८

अथान्यदपि वक्ष्यामि माहात्म्यं तस्य चाद्भुतम्।
श्रुतमात्रेण येनाशु शिवे भक्तिः प्रजायते॥ ३९

उत्तम व्रत और अत्यन्त आनन्ददायक जागरण भी हो गया। उसके पश्चात् प्रभात होनेपर वह स्त्री महान् शोकसे युक्त होकर धीरे-धीरे अपने घरके लिये चल पड़ी॥ २९—३१॥

बहुत समयके उपवाससे थक चुकी वह पग-पगपर गिरती हुई उसी (गोकर्णक्षेत्रकी) भूमिपर चलते-चलते प्राणहीन होकर गिर पड़ी। उसने शिवजीकी कृपासे परम पद प्राप्त किया; शिव-गण उसे विमानपर बैठाकर शीघ्र ही ले गये॥ ३२-३३॥

हे ब्राह्मणो! पूर्वजन्ममें इस व्यभिचारिणी स्त्रीने जो अज्ञानमें शिवजीके नामका उच्चारण किया था, उसी पुण्यसे उसने दूसरे जन्ममें महाबलेश्वरके दिव्य स्थानको प्राप्त किया॥ ३४॥

उसने गोकर्णमें शिवतिथिको उपवास करके शिवके मस्तकपर बिल्वपत्र अर्पितकर पूजन किया तथा रात्रिमें जागरण किया। निष्कामभावसे किये गये इस पुण्यका ही फल है कि वह आज भी महाबलेश्वरकी कृपासे सुख भोग रही है॥ ३५-३६॥

[हे ब्राह्मणो!] शिवजीका इस प्रकारका महाबलेश्वर नामक महालिंग शीघ्र ही सभी पापोंको नष्ट करनेवाला तथा परमानन्द प्रदान करनेवाला है॥ ३७॥

हे ब्राह्मणो! इस प्रकार मैंने महाबलेश्वर नामक उत्तम शिवलिंगके परम माहात्म्यका वर्णन आपलोगोंसे किया। अब मैं उसके अन्य अद्भुत माहात्म्यको भी कह रहा हूँ, जिसके सुननेमात्रसे शीघ्र ही शिवजीके प्रति भक्ति उत्पन्न होती है॥ ३८-३९॥

इति श्रीशिवमहापुराणे चतुर्थ्यां कोटिरुद्रसंहितायां चाण्डालीसद्गतिवर्णनं नाम नवमोऽध्यायः॥ ९॥

॥ इस प्रकार श्रीशिवमहापुराणके अन्तर्गत चतुर्थ कोटिरुद्रसंहितामें चाण्डालीसद्गतिवर्णन नामक नौवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ ९॥

अथ दशमोऽध्यायः

महाबलेश्वर शिवलिंगके माहात्म्य-वर्णन-प्रसंगमें राजा मित्रसहकी कथा

सूत उवाच

श्रीमतीक्ष्वाकुवंशे हि राजा परमधार्मिकः।
आसीन्मित्रसहो नाम श्रेष्ठः सर्वधनुष्मताम्॥ १

सूतजी बोले—[हे महर्षियो!] समृद्धिसम्पन्न इक्ष्वाकुवंशमें परम धार्मिक तथा सभी धनुषधारियोंमें श्रेष्ठ मित्रसह नामक राजा था॥ १॥

तस्य राज्ञः सुधर्मिष्ठा मदयन्ती प्रिया शुभा।
दमयन्ती नलस्येव बभूव विदिता सती॥ २

उस राजाकी मदयन्ती नामक धर्मनिष्ठ तथा कल्याणमयी पत्नी थी, जो कि राजा नलकी प्रसिद्ध गुणोंवाली साध्वी दमयन्तीके समान सतीत्वसम्पन्न थी॥ २॥

स एकदा हि मृगयास्नेही मित्रसहो नृपः।
महद्बलेन संयुक्तो जगाम गहनं वनम्॥ ३

आखेटमें रुचि रखनेवाला वह राजा मित्रसह एक बार विशाल सेनाको साथ लेकर घने वनमें गया॥ ३॥

विहरंस्तत्र स नृपः कमठाह्वं निशाचरम्।
निजघान महादुष्टं साधुपीडाकरं खलम्॥ ४
अथ तस्यानुजः पापी जयेयं छद्मनैव तम्।
मत्वा जगाम नृपतेरन्तिकं छद्मकारकः॥ ५

वहाँ घूमते हुए उस राजाने साधुओंको दुःख देनेवाले महादुष्ट तथा नीच कमठ नामक राक्षसको मार डाला। तब उस निशाचरका पापी छोटा भाई 'मैं इस राजाको छलसे जीत लूँगा'—ऐसा निश्चय करके कपटरूप धारणकर राजाके पास गया॥ ४-५॥

तं विनम्राकृतिं दृष्ट्वा भृत्यतां कर्तुमागतम्।
चक्रे महानसाध्यक्षमज्ञानात्स महीपतिः॥ ६

उसे विनम्र आकृतिवाला तथा सेवा करनेके लिये आया हुआ देखकर उस राजाने बिना सोचे-समझे ही उसे रसोईका अध्यक्ष बना दिया॥ ६॥

अथ तस्मिन्वने राजा कियत्कालं विहृत्य सः।
निवृत्तो मृगयां हित्वा स्वपुरीमाययौ मुदा॥ ७

उसके अनन्तर कुछ समयतक उस वनमें विहार करके वह राजा शिकारसे निवृत्त हो उस वनको छोड़कर आनन्दपूर्वक अपने नगरको लौट आया॥ ७॥

पितुः क्षयाहे सम्प्राप्ते निमंत्र्य स्वगुरुं नृपः।
वसिष्ठं गृहमानिन्ये भोजयामास भक्तितः॥ ८

उसके बाद राजाने पिताका श्राद्धदिन आनेपर अपने गुरु वसिष्ठजीको आमन्त्रितकर उन्हें घर बुलाया और भक्तिपूर्वक भोजन कराया॥ ८॥

रक्षसा सूदरूपेण संमिश्रितनरामिषम्।
शाकामिषं पुरः क्षिप्तं दृष्ट्वा गुरुरथाब्रवीत्॥ ९

रसोइयेका रूप धारण करनेवाले उस राक्षसने वसिष्ठजीके सामने मनुष्यके मांससे मिश्रित शाकामिष परोसा; तब गुरु इसे देखकर कहने लगे—॥ ९॥

गुरुरुवाच

धिक् त्वां नरामिषं राजंस्त्वयैतच्छद्मकारिणा।
खलेनोपहृतं मह्यं ततो रक्षो भविष्यसि॥ १०
रक्षःकृतं च विज्ञाय तदैवं स गुरुस्तदा।
पुनर्विमृश्य तं शापं चकार द्वादशाब्दिकम्॥ ११

गुरुजी बोले—हे राजन्! तुम्हें धिक्कार है, जो कि कपटी तथा दुष्ट तुमने मुझे मनुष्यका मांस परोस दिया; अतः तुम राक्षस हो जाओगे। पुनः इसे उस राक्षसका कृत्य जानकर उन गुरुने विचार करके उस शापकी अवधि बारह वर्षपर्यन्त कर दी॥ १०-११॥

स राजानुचितं शापं विज्ञाय क्रोधमूर्छितः।
जलांजलिं समादाय गुरुं शप्तुं समुद्यतः॥ १२
तदा च तत्प्रिया साध्वी मदयन्ती सुधर्मिणी।
पतित्वा पादयोस्तस्य शापं तं हि न्यवारयत्॥ १३

तब वह राजा [गुरुके द्वारा बिना सोचे-समझे दिये गये] इस शापको अनुचित जानकर क्रोधसे व्याकुल हो गया और अंजलिमें जल लेकर गुरुको शाप देनेको उद्यत हुआ। तब उसकी धर्मशीला पतिव्रता स्त्री मदयन्तीने उसके चरणोंमें गिरकर उसे गुरुको शाप देनेसे मना किया॥ १२-१३॥

ततो निवृत्तशापस्तु तस्या वचनगौरवात्।
तत्याज पादयोरंभः पादौ कल्मषतां गतौ॥ १४

तब राजा अपनी पत्नीकी बातका आदर करके शाप देनेसे रुक गया और उसने जलको अपने चरणोंपर गिरा दिया, जिससे उसके चरण काले पड़ गये॥ १४॥

ततः प्रभृति राजा भूत्स लोकेऽस्मिन्मुनीश्वराः।
कल्मषांघ्रिरिति ख्यातः प्रभावात्तज्जलस्य हि॥ १५

हे मुनीश्वरो! उसी समयसे वह राजा उस जलके प्रभावसे इस लोकमें कल्माषपाद नामसे प्रसिद्ध हुआ॥ १५॥

राजा मित्रसहः शापाद् गुरोर्ऋषिवरस्य हि।
बभूव राक्षसो घोरो हिंसको वनगोचरः॥ १६

स बिभ्रद्राक्षसं रूपं कालान्तकयमोपमम्।
चखाद विविधाञ्जंतून् मानुषादीन्वनेचरः॥ १७

तदनन्तर ऋषिश्रेष्ठ गुरुके शापसे वह राजा मित्रसह वनमें विचरण करनेवाला भयानक हिंसक राक्षस हो गया। कालान्तक यमके समान राक्षसरूप धारणकर वह राजा वनमें घूमता हुआ अनेक प्रकारके जन्तुओं एवं मनुष्योंका भक्षण करने लगा॥ १६-१७॥

स कदाचिद्वने क्वापि रममाणौ किशोरकौ।
अपश्यदन्तकाकारो नवोढौ मुनिदम्पती॥ १८

राक्षसः स नराहारः किशोरं मुनिनन्दनम्।
जग्धुं जग्राह शापार्त्तो व्याघ्रो मृगशिशुं यथा॥ १९

यमराजके समान रूपवाले उस राक्षसने किसी समय वनमें विहार करते हुए किन्हीं नवविवाहित किशोर मुनिदम्पतीको देखा। तब मनुष्यका आहार करनेवाले उस शापग्रस्त राक्षसने किशोर मुनिपुत्रको खानेके लिये इस प्रकार पकड़ लिया, जिस प्रकार व्याघ्र मृगशावकको पकड़ लेता है॥ १८-१९॥

कक्षे गृहीतं भर्तारं दृष्ट्वा भीता च तत्प्रिया।
सा चक्रे प्रार्थनां तस्मै वदती करुणं वचः॥ २०

इसके बाद राक्षसद्वारा काँखमें दबाये गये अपने पतिको देखकर उसकी पत्नी भयभीत होकर करुण वचन बोलती हुई उससे प्रार्थना करने लगी॥ २०॥

प्रार्थ्यमानोऽपि बहुशः पुरुषादः स निर्घृणः।
चखाद शिर उत्कृत्य विप्रसूनोर्दुराशयः॥ २१

किंतु उसके अनेक बार प्रार्थना करनेपर भी नरभक्षी, निर्दयी तथा दूषित अन्तःकरणवाला वह [राक्षस] ब्राह्मणपुत्रका सिर नोचकर खा गया॥ २१॥

अथ साध्वी च सा दीना विलप्य भृशदुःखिता।
आहृत्य भर्तुरस्थीनि चितां चक्रे किलोल्बणाम्॥ २२

तब अत्यन्त दुःखित उस दीन साध्वी स्त्रीने विलापकर पतिकी अस्थियाँ एकत्रितकर विशाल चिताका निर्माण किया॥ २२॥

भर्तारमनुगच्छन्ती संविशंती हुताशनम्।
राजानं राक्षसाकारं सा शशाप द्विजाङ्गना॥ २३

अद्यप्रभृति नारीषु यदा त्वं संगतो भवेः।
तदा मृतिस्तवेत्युक्त्वा विवेश ज्वलनं सती॥ २४

उसके बाद पतिका अनुगमन करनेवाली उस ब्राह्मण-पत्नीने अग्निमें प्रवेश करते समय राक्षसरूपधारी राजाको शाप दिया कि 'आजसे यदि तुम किसी स्त्रीसे संगम करोगे, तो उसी क्षण तुम्हारी मृत्यु हो जायगी'—ऐसा कहकर वह पतिव्रता अग्निमें प्रविष्ट हो गयी॥ २३-२४॥

सोऽपि राजा गुरोः शापमनुभूय कृतावधिम्।
पुनः स्वरूपमास्थाय स्वगृहं मुदितो ययौ॥ २५

वह राजा भी निर्धारित अवधितक गुरुके शापका अनुभव करके पुनः अपना [वास्तविक] रूप धारणकर प्रसन्न होकर अपने घर चला गया॥ २५॥

ज्ञात्वा विप्रसतीशापं मदयन्ती रतिप्रियम्।
पतिं निवारयामास वैधव्यादतिबिभ्यती॥ २६

ब्राह्मणीके शापको जानकर वैधव्यसे अत्यन्त डरती हुई मदयन्तीने रतिके लिये उत्सुक अपने पतिको रोका॥ २६॥

अनपत्यो विनिर्विण्णो राज्यभोगेषु पार्थिवः।
विसृज्य सकलां लक्ष्मीं वनमेव जगाम ह॥ २७

तब सन्तानविहीन वह राजा राज्यभोगोंसे उदासीन होकर सम्पूर्ण राज्यको छोड़कर वनमें ही चला गया॥ २७॥

स्वपृष्ठतः समायान्तीं ब्रह्महत्यां सुदुःखदाम्।
ददर्श विकटाकारां तर्जयन्तीं मुहुर्मुहुः॥ २८

तस्या निर्भ्रमन्विच्छन् राजा निर्विण्णमानसः।
चकार नानोपायान्स जपव्रतमखादिकान्॥ २९

नानोपायैर्यदा राज्ञस्तीर्थस्नानादिभिर्द्विजाः।
न निवृत्ता ब्रह्महत्या मिथिलां स ययौ तदा॥ ३०

बाह्योद्यानगतस्तस्याश्चिन्तया परयार्दितः।
ददर्श मुनिमायान्तं गौतमं पार्थिवश्च सः॥ ३१

अभिसृत्य स राजेन्द्रो गौतमं विमलाशयम्।
तद्दर्शनाप्तकिञ्चित्कः प्रणनाम मुहुर्मुहुः॥ ३२

अथ तत्पृष्टकुशलो दीर्घमुष्णं च निःश्वसन्।
तत्कृपादृष्टिसंप्राप्तसुखः प्रोवाच तं नृपः॥ ३३

राजोवाच

मुने मां बाधते ह्येषा ब्रह्महत्या दुरत्यया।
अलक्षिता परैस्तात तर्जयन्ती पदे पदे॥ ३४
यन्मया शापदग्धेन विप्रपुत्रश्च भक्षितः।
तत्पापस्य न शान्तिर्हि प्रायश्चित्तसहस्रकैः॥ ३५

नानोपायाः कृता मे हि तच्छान्त्यै भ्रमता मुने।
न निवृत्ता ब्रह्महत्या मम पापात्मनः किमु॥ ३६

अद्य मे जन्मसाफल्यं सम्प्राप्तमिव लक्षये।
यतस्त्वद्दर्शनादेव ममानन्दभरोऽभवत्॥ ३७

अद्य मे तव पादाब्जशरणस्य कृतैनसः।
शांतिं कुरु महाभाग येनाहं सुखमाप्नुयाम्॥ ३८

सूत उवाच

इति राज्ञा समादिष्टो गौतमः करुणार्द्रधीः।
समादिदेश घोराणामघानां साधु निष्कृतिम्॥ ३९

उसने अपने पीछे-पीछे आती हुई तथा बार-बार धमकाती हुई विकट आकारवाली दुःखदायिनी ब्रह्महत्याको देखा। उससे पीछा छुड़ानेकी इच्छावाले दुःखितचित्त उस राजाने जप, व्रत, यज्ञ आदि अनेक उपाय किये॥ २८-२९॥

हे ब्राह्मणो! जब तीर्थ-स्नान आदि अनेक उपायोंसे भी उस राजाकी ब्रह्महत्या दूर नहीं हुई, तब वह राजा मिथिलापुरी चला गया। उस ब्रह्महत्याकी चिन्तासे अत्यन्त दुःखित राजा मिथिलापुरीके बाहर उद्यानमें पहुँचा; वहाँ उसने मुनि गौतमको आते हुए देखा॥ ३०-३१॥

राजाने विशुद्ध अन्तःकरणवाले उन महर्षिके पास जाकर उनके दर्शनसे कुछ शान्ति प्राप्त करके बार-बार उन्हें प्रणाम किया॥ ३२॥

उसके अनन्तर ऋषिने उसका कुशल-मंगल पूछा। तब उनकी कृपादृष्टिसे कुछ सुखका अनुभव करके दीर्घ तथा गर्म श्वास लेकर राजाने उनसे कहा—॥ ३३॥

राजा बोले—हे मुने! हे तात! दूसरोंके द्वारा न देखी जा सकनेवाली यह दुस्तर ब्रह्महत्या पग-पगपर धमकी देती हुई मुझे बहुत दुःख दे रही है॥ ३४॥

शापग्रस्त होनेके कारण जो मैंने ब्राह्मणपुत्रका भक्षण किया था, उस पापकी शान्ति हजारों प्रायश्चित्त करनेपर भी नहीं हो पा रही है॥ ३५॥

हे मुने! [इधर-उधर] घूमते हुए उसकी शान्तिके लिये मेरे द्वारा अनेक उपाय किये गये, फिर भी मुझ पापीकी ब्रह्महत्या निवृत्त नहीं हुई॥ ३६॥

आज मुझे मालूम पड़ता है कि मेरा जन्म सफल हो गया; क्योंकि आपके दर्शनमात्रसे मुझे विशेष आनन्द प्राप्त हो रहा है॥ ३७॥

अतः हे महाभाग! आपके चरणकमलकी शरणमें आये हुए मुझ पापकर्माको शान्ति प्रदान कीजिये, जिससे मैं सुख प्राप्त कर सकूँ॥ ३८॥

सूतजी बोले—[हे ऋषियो!] राजाके इस प्रकार प्रार्थना करनेपर करुणासे आर्द्र चित्तवाले गौतमजीने घोर पापोंसे छुटकारा पानेके लिये [राजाको] श्रेष्ठ उपाय बताया॥ ३९॥

गौतम उवाच

साधु राजेन्द्र धन्योऽसि महाघेभ्यो भयं त्यज।
शिवे शास्तरि भक्तानां क्व भयं शरणैषिणाम्॥ ४०

गौतमजी बोले—हे राजेन्द्र! तुम धन्य हो, अब तुम महापापोंके भयका त्याग करो; सबपर शासन करनेवाले शिवके रहनेपर उनके शरणागतोंको भय कहाँ?॥ ४०॥

शृणु राजन्महाभाग क्षेत्रमन्यत्प्रतिष्ठितम्।
महापातकसंहारि गोकर्णाख्यं शिवालयम्॥ ४१

तत्र स्थितिर्न पापानां महद्भ्यो महतामपि।
महाबलाभिधानेन शिवः संनिहितः स्वयम्॥ ४२

हे राजन्! हे महाभाग! सुनो; महापातकोंको दूर करनेवाला गोकर्ण नामक एक अन्य प्रसिद्ध शिवक्षेत्र है, वहाँपर शिवजी महाबल नामसे स्वयं विराजमान रहते हैं—वहाँ बड़े-से-बड़े पाप भी टिक नहीं सकते॥ ४१-४२॥

सर्वेषां शिवलिंगानां सार्वभौमो महाबलः।
चतुर्युगे चतुर्वर्णः सर्वपापापहारकः॥ ४३

महाबलेश्वर लिंग सभी लिंगोंका सार्वभौम सम्राट् है, जो चार युगोंमें चार प्रकारके वर्ण धारण करता है और सभी प्रकारके पापोंको विनष्ट करनेवाला है॥ ४३॥

पश्चिमाम्बुधितीरस्थं गोकर्णं तीर्थमुत्तमम्।
तत्रास्ति शिवलिंगं तन्महापातकनाशकम्॥ ४४

तत्र गत्वा महापापाः स्नात्वा तीर्थेषु भूरिशः।
महाबलं च संपूज्य प्रयाताः शांकरं पदम्॥ ४५

पश्चिमी समुद्रके तटपर उत्तम गोकर्णतीर्थ स्थित है; वहाँपर जो शिवलिंग है, वह महापातकोंका नाश करनेवाला है। महापापी भी वहाँ जाकर सभी तीर्थोंमें बारंबार स्नानकर महाबलेश्वरकी पूजाकर शैव पदको प्राप्त हुए हैं॥ ४४-४५॥

तथा त्वमपि राजेन्द्र गोकर्णं गिरिशालयम्।
गत्वा सम्पूज्य तल्लिंगं कृतकृत्यत्वमाप्नुयाः॥ ४६

तत्र सर्वेषु तीर्थेषु स्नात्वाभ्यर्च्य महाबलम्।
सर्वपापविनिर्मुक्तः शिवलोकं त्वमाप्नुयाः॥ ४७

हे राजेन्द्र! उसी प्रकार तुम भी उस गोकर्ण नामक शिवस्थानमें जाकर उस लिंगका पूजनकर अपने मनोरथको प्राप्त करो। तुम वहाँ सभी तीर्थोंमें स्नानकर महाबलेश्वरका भलीभाँति पूजन करके सभी पापोंसे छुटकारा पाकर शिवलोकको प्राप्त करो॥ ४६-४७॥

सूत उवाच

इत्यादिष्टः स मुनिना गौतमेन महात्मना।
महाहृष्टमना राजा गोकर्णं प्रत्यपद्यत॥ ४८

तत्र तीर्थेषु सुस्नात्वा समभ्यर्च्य महाबलम्।
निर्धूताशेषपापौघोऽलभच्छंभोः परं पदम्॥ ४९

सूतजी बोले—[हे महर्षियो!] इस प्रकार महान् आत्मावाले महर्षि गौतम मुनिसे आज्ञा प्राप्तकर वह राजा अत्यन्त प्रसन्नचित्त होकर गोकर्णतीर्थमें गया और वहाँ सभी तीर्थोंमें स्नानकर महाबलेश्वरकी पूजा करके अपने सम्पूर्ण पापोंसे मुक्त होकर उसने शिवके परम पदको प्राप्त किया॥ ४८-४९॥

य इमां शृणुयान्नित्यं महाबलकथां प्रियाम्।
त्रिसप्तकुलजैः सार्धं शिवलोके व्रजत्यसौ॥ ५०

इति वश्च समाख्यातं माहात्म्यं परमाद्भुतम्।
महाबलस्य गिरिशलिंगस्य निखिलाघहृत्॥ ५१

जो [मनुष्य] महाबलेश्वरकी इस प्रिय कथाको नित्य सुनता है, वह इक्कीस पीढ़ीके वंशजोंसहित शिवलोकको जाता है। [हे महर्षियो!] इस प्रकार मैंने आपलोगोंसे महाबलेश्वर नामक शिवलिंगके सर्वपापनाशक परम अद्भुत माहात्म्यका वर्णन किया॥ ५०-५१॥

इति श्रीशिवमहापुराणे चतुर्थ्यां कोटिरुद्रसंहितायां महाबलाह्वशिवलिंगमाहात्म्यवर्णनं नाम दशमोऽध्यायः॥ १०॥

॥ इस प्रकार श्रीशिवमहापुराणके अन्तर्गत चतुर्थ कोटिरुद्रसंहितामें महाबल नामक शिवलिंगका माहात्म्यवर्णन नामक दसवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ १०॥

अथैकादशोऽध्यायः

उत्तरदिशामें विद्यमान शिवलिंगोंके वर्णन-क्रममें चन्द्रभाल एवं पशुपतिनाथलिंगका माहात्म्य-वर्णन

ऋषय ऊचुः

सूत सूत महाभाग धन्यस्त्वं शिवसक्तधीः।
महाबलस्य लिंगस्य श्रावितेयं कथाद्भुता॥ १
उत्तरस्यां दिशायां च शिवलिंगानि यानि च।
तेषां माहात्म्यमनघं वद त्वं पापनाशकम्॥ २

ऋषिगण बोले—हे महाभाग! हे सूतजी! शिवजीमें आसक्त चित्तवाले आप धन्य हैं, जो कि आपने महाबलेश्वर लिंगकी यह अद्भुत कथा हमें सुनायी। अब उत्तर दिशामें स्थित जो शिवलिंग हैं, उनका पापनाशक निर्मल माहात्म्य आप सुनायें॥ १-२॥

सूत उवाच

शृणुतादरतो विप्रा औत्तराणां विशेषतः।
माहात्म्यं शिवलिंगानां प्रवदामि समासतः॥ ३

सूतजी बोले—हे ब्राह्मणो! मैं उत्तर दिशामें विराजमान मुख्य-मुख्य शिवलिंगोंके माहात्म्यका संक्षेपमें वर्णन कर रहा हूँ; आपलोग आदरपूर्वक सुनिये॥ ३॥

गोकर्णं क्षेत्रमपरं महापातकनाशनम्।
महावनं च तत्रास्ति पवित्रमतिविस्तरम्॥ ४

गोकर्ण नामक एक दूसरा भी पापनाशक क्षेत्र है; वहाँपर एक पवित्र तथा अति विस्तृत महावन है॥ ४॥

तत्रास्ति चन्द्रभालाख्यं शिवलिंगमनुत्तमम्।
रावणेन समानीतं सद्भक्त्या सर्वसिद्धिदम्॥ ५
तस्य तत्र स्थितिर्वैद्यनाथस्येव मुनीश्वराः।
सर्वलोकहितार्थाय करुणासागरस्य च॥ ६

वहाँपर चन्द्रभाल नामक उत्तम तथा सर्वसिद्धि-दायक शिवलिंग है, जिसे रावण सद्भक्तिपूर्वक लाया था। हे मुनीश्वरो! वहाँपर उस करुणासागर शिवलिंगकी स्थिति सारे संसारके हितके लिये वैद्यनाथ नामक ज्योतिर्लिंगके तुल्य है॥ ५-६॥

स्नानं कृत्वा तु गोकर्णे चन्द्रभालं समर्च्य च।
शिवलोकमवाप्नोति सत्यं सत्यं न संशयः॥ ७

गोकर्णमें स्नानकर तथा चन्द्रभालका पूजनकर मनुष्य अवश्य ही शिवलोकको प्राप्त करता है, इसमें संशय नहीं है॥ ७॥

चन्द्रभालस्य लिंगस्य महिमा परमाद्भुतः।
न शक्यो वर्णितुं व्यासाद्भक्तिस्नेहरतस्य हि॥ ८

चन्द्रभालमहादेवलिंगस्य महिमा महान्।
यथाकथंचित्संप्रोक्तः परलिंगस्य वै शृणु॥ ९

भक्तोंके ऊपर स्नेह करनेवाले उन चन्द्रभाल नामक शिवकी महिमा बड़ी अद्भुत है; विस्तारसे उसका वर्णन नहीं किया जा सकता है। चन्द्रभाल नामक महादेवके लिंगकी महती महिमाका वर्णन मैंने जिस-किसी प्रकार कर दिया; अब दूसरे लिंगका माहात्म्य सुनिये॥ ८-९॥

दाधीचं शिवलिंगं तु मिश्रर्षिवरतीर्थके।
दधीचिना मुनीशेन सुप्रीत्या च प्रतिष्ठितम्॥ १०
तत्र गत्वा च तत्तीर्थे स्नात्वा सम्यग्विधानतः।
शिवलिंगं समर्चेद्वै दाधीचेश्वरमादरात्॥ ११

मिश्रर्षि (मिसरिख) नामक उत्तम तीर्थमें दाधीच नामक शिवलिंग है, जिसे दधीचिमुनिने परम प्रीतिपूर्वक स्थापित किया था। वहाँ जाकर उस तीर्थमें विधिपूर्वक स्नानकर दाधीचेश्वर शिवलिंगका आदर-पूर्वक पूजन अवश्य ही करना चाहिये॥ १०-११॥

दधीचमूर्तिस्तत्रैव समर्च्या विधिपूर्वकम्।
शिवप्रीत्यर्थमेवाशु तीर्थयात्राफलार्थिभिः॥ १२

तीर्थयात्राका फल शीघ्र प्राप्त करनेकी इच्छावालोंको शिवजीको प्रसन्न करनेके लिये वहाँपर विधिपूर्वक दधीचिकी मूर्तिका पूजन करना चाहिये॥ १२॥

एवं कृते मुनिश्रेष्ठाः कृतकृत्यो भवेन्नरः।
इह सर्वसुखं भुक्त्वा परत्र गतिमाप्नुयात्॥ १३

हे मुनिश्रेष्ठो! ऐसा करनेसे मनुष्य कृतकृत्य हो जाता है और इस लोकमें सभी सुख भोगकर परलोकमें सद्‌गति प्राप्त करता है॥ १३॥

नैमिषारण्यतीर्थे तु निखिलर्षिप्रतिष्ठितम्।
ऋषीश्वरमिति ख्यातं शिवलिंगं सुखप्रदम्॥ १४
तद्दर्शनात्पूजनाच्च जनानां पापिनामपि।
भुक्तिर्मुक्तिश्च तेषां तु परत्रेह मुनीश्वराः॥ १५

नैमिषारण्यमें सभी ऋषियोंद्वारा स्थापित ऋषीश्वर नामक सुखदायक शिवलिंग है। हे मुनीश्वरो! उसके दर्शन एवं पूजनसे पापी लोगोंको भी इस लोकमें भोग तथा परलोकमें मोक्ष प्राप्त होता है॥ १४-१५॥

हत्याहरणतीर्थे तु शिवलिंगमघापहम्।
पूजनीयं विशेषेण हत्याकोटिविनाशनम्॥ १६

हत्याहरण तीर्थमें पापोंको दूर करनेवाला तथा करोड़ों हत्याओंका नाश करनेवाला शिवलिंग है, उसकी विशेष रूपसे पूजा करनी चाहिये॥ १६॥

देवप्रयागतीर्थे तु ललितेश्वरनामकम्।
शिवलिंगं सदा पूज्यं नरैः सर्वाघनाशनम्॥ १७

देवप्रयागतीर्थमें ललितेश्वर नामक शिवलिंग है, उस लिंगकी हमेशा पूजा करनी चाहिये, जिससे सभी प्रकारके पाप दूर हो जाते हैं॥ १७॥

नयपालाख्यपुर्यां तु प्रसिद्धायां महीतले।
लिंगं पशुपतीशाख्यं सर्वकामफलप्रदम्॥ १८
शिरोभागस्वरूपेण शिवलिंगं तदस्ति हि।
तत्कथां वर्णयिष्यामि केदारेश्वरवर्णने॥ १९

पृथिवीपर प्रसिद्ध नेपाल नामक पुरीमें पशुपतीश्वर नामक शिवलिंग है, जो सम्पूर्ण कामनाओंका फल प्रदान करता है। वह शिवलिंग शिरोभागमात्रसे वहाँ स्थित है, उसकी कथा केदारेश्वरवर्णनके प्रसंगमें कहूँगा॥ १८-१९॥

तदारान्मुक्तिनाथाख्यं शिवलिंगं महाद्भुतम्।
दर्शनादर्चनात्तस्य भुक्तिर्मुक्तिश्च लभ्यते॥ २०

उसके समीप मुक्तिनाथ नामक अत्यन्त अद्भुत शिवलिंग है, उसके दर्शन एवं अर्चनसे भोग तथा मोक्ष प्राप्त होते हैं॥ २०॥

इति वश्च समाख्यातं लिंगवर्णनमुत्तमम्।
चतुर्दिक्षु मुनिश्रेष्ठाः किमन्यच्छ्रोतुमिच्छथ॥ २१

हे मुनीश्वरो! इस प्रकार मैंने आपलोगोंसे चारों दिशाओंमें स्थित शिवलिंगोंका उत्तम वर्णन किया; अब आपलोग और क्या सुनना चाहते हैं?॥ २१॥

इति श्रीशिवमहापुराणे चतुर्थ्यां कोटिरुद्रसंहितायां चन्द्रभालपशुपतिनाथलिंगमाहात्म्यवर्णनं नामैकादशोऽध्यायः॥ ११॥

॥ इस प्रकार श्रीशिवमहापुराणके अन्तर्गत चतुर्थ कोटिरुद्रसंहितामें चन्द्रभालपशुपतिनाथलिंगमाहात्म्य-वर्णन नामक ग्यारहवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ ११॥

अथ द्वादशोऽध्यायः

हाटकेश्वरलिंगके प्रादुर्भाव एवं माहात्म्यका वर्णन

ऋषय ऊचुः

सूत जानासि सकलं वस्तु व्यासप्रसादतः।
तवाज्ञातं न विद्येत तस्मात्पृच्छामहे वयम्॥ १

ऋषि बोले—हे सूतजी! आप व्यासजीकी कृपासे सब कुछ जानते हैं, कोई भी बात आपसे अज्ञात नहीं है, इसीलिये हमलोग आपसे पूछते हैं॥ १॥

लिंगं च पूज्यते लोके त्वया कथितं च यत्।
तत्तथैव न चान्यद्वा कारणं विद्यते त्विह॥ २

आपने पूर्वमें कहा था कि लोकमें सभी जगह शिवलिंगकी पूजा होती है। क्या वह लिंग होनेके कारण ही पूजित है अथवा अन्य कोई कारण है?॥ २॥

बाणरूपा श्रुता लोके पार्वती शिववल्लभा।
एतत्किं कारणं सूत कथय त्वं यथाश्रुतम्॥ ३

शिववल्लभा पार्वती लोकमें बाणलिंगरूपा कही जाती हैं। हे सूतजी! इसका क्या कारण है, इस विषयमें आपने जैसा सुना है, वैसा कहिये॥ ३॥

सूत उवाच

कल्पभेदकथा चैव श्रुता व्यासान्मया द्विजाः।
तामेव कथयाम्यद्य श्रूयतामृषिसत्तमाः॥ ४

सूतजी बोले—हे ब्राह्मणो! हे ऋषिसत्तमो! मैंने व्यासजीसे जो कल्पभेदकी कथा सुनी है, उसीका आज वर्णन कर रहा हूँ, आपलोग सुनें॥ ४॥

पुरा दारुवने जातं यद् वृत्तं तु द्विजन्मनाम्।
तदेव श्रूयतां सम्यक् कथयामि यथाश्रुतम्॥ ५

दारुनाम वनं श्रेष्ठं तत्रासन् ऋषिसत्तमाः।
शिवभक्ताः सदा नित्यं शिवध्यानपरायणाः॥ ६

पूर्वकालमें दारुवनमें ब्राह्मणोंके साथ जो घटना घटी, उसीको आप लोग सुनें। जैसा मैंने सुना है, वैसा ही कहता हूँ। हे ऋषिसत्तमो! जो दारु नामक श्रेष्ठ वन है, वहाँ नित्य शिवजीके ध्यानमें तत्पर शिवभक्त [ब्राह्मण] रहा करते थे॥ ५-६॥

त्रिकालं शिवपूजां च कुर्वन्ति स्म निरन्तरम्।
नानाविधैः स्तवैर्दिव्यैस्तुष्टुवुस्ते मुनीश्वराः॥ ७

ते कदाचिद्वने याताः समिधाहरणाय च।
सर्वे द्विजर्षभाः शैवाः शिवध्यानपरायणाः॥ ८

हे मुनीश्वरो! वे तीनों कालोंमें सदा शिवजीकी पूजा करते थे और नाना प्रकारके स्तोत्रोंसे उनकी स्तुति किया करते थे। शिवध्यानमें मग्न रहनेवाले वे शिवभक्त श्रेष्ठ ब्राह्मण किसी समय समिधा लेनेके लिये वनमें गये हुए थे॥ ७-८॥

एतस्मिन्नंतरे साक्षाच्छंकरो नीललोहितः।
विरूपं च समास्थाय परीक्षार्थं समागतः॥ ९

दिगम्बरोऽतितेजस्वी भूतिभूषणभूषितः।
स चेष्टामकरोद्दुष्टां हस्ते लिंगं विधारयन्॥ १०

इसी बीच उन लोगोंकी परीक्षा लेनेहेतु साक्षात् नीललोहित [भगवान्] शंकर विकट रूप धारणकर वहाँ आये। वे दिगम्बर, भस्मरूप भूषणसे विभूषित तथा महातेजस्वी भगवान् शंकर हाथमें [तेजोमय] लिंगको धारणकर विचित्र लीला करने लगे॥ ९-१०॥

मनसा च प्रियं तेषां कर्तुं वै वनवासिनाम्।
जगाम तद्वनं प्रीत्या भक्तप्रीतो हरः स्वयम्॥ ११

तं दृष्ट्वा ऋषिपत्न्यस्ताः परं त्रासमुपागताः।
विह्वला विस्मिताश्चान्याः समाजग्मुस्तथा पुनः॥ १२

आलिलिंगुस्तथा चान्याः करं धृत्वा तथापराः।
परस्परं तु संघर्षात्संमग्नास्ताः स्त्रियस्तदा॥ १३

मनसे उन वनवासियोंका कल्याण करनेके लिये भक्तोंसे प्रेम करनेवाले वे शिव स्वयं प्रेमपूर्वक उस वनमें गये। उन्हें देखकर ऋषिपत्नियाँ अत्यन्त भयभीत हो गयीं और अन्य स्त्रियाँ विह्वल तथा आश्चर्यचकित होकर वहीं चली आयीं। कुछ स्त्रियोंने परस्पर हाथ पकड़कर आलिंगन किया, कुछ स्त्रियाँ आपसमें आलिंगन करनेके कारण अत्यन्त मोहविह्वल हो गयीं॥ ११—१३॥

एतस्मिन्नेव समये ऋषिवर्याः समागमन्।
विरुद्धं तं च ते दृष्ट्वा दुःखिताः क्रोधमूर्च्छिताः॥ १४

तदा दुःखमनुप्राप्ताः कोऽयं कोऽयं तथाब्रुवन्।
समस्ता ऋषयस्ते वै शिवमायाविमोहिताः॥ १५

इसी समय सभी ऋषिवर [वनसे समिधा लेकर] आ गये और वे इस आचरणको देखकर [उसे समझ नहीं सके और] दुःखित तथा क्रोधसे व्याकुल हो गये। तब शिवकी मायासे मोहित हुए समस्त ऋषिगण दुःखित हो आपसमें कहने लगे—'यह कौन है, यह कौन है?'॥ १४-१५॥

यदा च नोक्तवान् किंचित्सोऽवधूतो दिगम्बरः।
ऊचुस्तं पुरुषं भीमं तदा ते परमर्षयः॥ १६

जब उन दिगम्बर अवधूतने कुछ भी नहीं कहा, तब उन महर्षियोंने भयंकर पुरुषका रूप धारण किये हुए उन शिवजीसे कहा—हे अवधूत! तुम वेदमार्गका

त्वया विरुद्धं क्रियते वेदमार्गविलोपि यत्।
ततस्त्वदीयं तल्लिंगं पततां पृथिवीतले॥ १७

लोप करनेवाला यह विरुद्ध आचरण कर रहे हो, अतः तुम्हारा यह विग्रहरूप लिंग [शीघ्र ही] पृथ्वीपर गिर जाय॥ १६-१७॥

सूत उवाच

इत्युक्ते तु तदा तैश्च लिंगं च पतितं क्षणात्।
अवधूतस्य तस्याशु शिवस्याद्भुतरूपिणः॥ १८

सूतजी बोले—[हे महर्षियो!] उनके ऐसा कहनेपर अद्भुत रूपवाले उन अवधूतवेषधारी शिवका [वह चिन्मय] लिंग शीघ्र ही पृथ्वीपर गिर पड़ा॥ १८॥

तल्लिंगं चाग्निवत्सर्वं यद्ददाह पुरा स्थितम्।
यत्र यत्र च तद्याति तत्र तत्र दहेत्पुनः॥ १९

पाताले च गतं तच्च स्वर्गे चापि तथैव च।
भूमौ सर्वत्र तद्यातं न कुत्रापि स्थिरं हि तत्॥ २०

अग्नितुल्य उस माहेश्वरलिंगने सामने स्थित सभी वस्तुओंको जला डाला और इतना ही नहीं, वह फैलकर जहाँ-जहाँ जाता, सब कुछ भस्म कर देता। वह पातालमें तथा स्वर्गमें भी वैसे ही गया; वह पृथ्वीपर सर्वत्र गया और कहीं भी स्थिर न रहा॥ १९-२०॥

लोकाश्च व्याकुला जाता ऋषयस्तेऽतिदुःखिताः।
न शर्म लेभिरे केचिद्देवाश्च ऋषयस्तथा॥ २१

सारे लोक व्याकुल हो उठे और वे ऋषिगण अत्यन्त दुःखित हो गये। देवता और ऋषियोंमें किसीको भी अपना कल्याण दिखायी न पड़ा॥ २१॥

न ज्ञातस्तु शिवो यैस्तु ते सर्वे च सुरर्षयः।
दुःखिता मिलिताः शीघ्रं ब्रह्माणं शरणं ययुः॥ २२

तत्र गत्वा च ते सर्वे नत्वा स्तुत्वा विधिं द्विजाः।
तत्सर्वमवदन् वृत्तं ब्रह्मणे सृष्टिकारिणे॥ २३

जिन देवता और ऋषियोंने शिवजीको नहीं पहचाना, वे सब दुःखित हो आपसमें मिलकर ब्रह्माजीकी शरणमें गये। हे ब्राह्मणो! वहाँ जाकर उन सभीने ब्रह्माको प्रणाम तथा स्तुतिकर सृष्टिकर्ता ब्रह्मासे सारा वृत्तान्त निवेदन किया॥ २२-२३॥

ब्रह्मा तद्वचनं श्रुत्वा शिवमायाविमोहितान्।
ज्ञात्वा तान् शङ्करं नत्वा प्रोवाच ऋषिसत्तमान्॥ २४

तब ब्रह्माजी उनका वचन सुनकर उन श्रेष्ठ ऋषियोंको शिवकी मायासे मोहित जानकर सदाशिवको नमस्कारकर कहने लगे—॥ २४॥

ब्रह्मोवाच

ज्ञातारश्च भवन्तो वै कुर्वते गर्हितं द्विजाः।
अज्ञातारो यदा कुर्युः किं पुनः कथ्यते पुनः॥ २५

ब्रह्माजी बोले—हे ब्राह्मणो! आपलोग ज्ञानी होकर भी निन्दित कर्म कर रहे हैं, तो यदि अज्ञानी लोग ऐसा करें, तो फिर क्या कहा जाय!॥ २५॥

विरुद्ध्यैवं शिवं देवं कुशलं कः समीहते।
मध्याह्नसमये यो वै नातिथिं च परामृशेत्॥ २६

तस्यैव सुकृतं नीत्वा स्वीयं च दुष्कृतं पुनः।
संस्थाप्य चातिथिर्याति किं पुनः शिवमेव वा॥ २७

इस प्रकार सदाशिवसे विरोध करके भला कौन कल्याणकी कामना कर सकता है! यदि कोई मध्याह्नकालमें आये हुए अतिथिका सत्कार नहीं करता, तो वह अतिथि उसका सारा पुण्य लेकर और अपना सारा पाप उसको देकर चला जाता है; फिर शिवजीके विषयमें तो कहना ही क्या!॥ २६-२७॥

यावल्लिंगं स्थिरं नैव जगतां त्रितये शुभम्।
जायते न तदा क्वापि सत्यमेतद्वदाम्यहम्॥ २८

भवद्भिश्च तथा कार्यं यथा स्वास्थ्यं भवेदिह।
शिवलिंगस्य ऋषयो मनसा संविचार्यताम्॥ २९

अतः जबतक यह [शैव] लिंग स्थिर नहीं होता, तबतक तीनों लोकोंमें कहीं भी लोगोंका कल्याण नहीं हो सकता है; मैं यह सत्य कहता हूँ। हे ऋषियो! अब आपलोग मनसे विचार करें और ऐसा उपाय करें, जिससे शिवलिंगकी स्थिरता हो जाय॥ २८-२९॥

सूत उवाच

इत्युक्तास्ते प्रणम्योचुर्ब्रह्माणमृषयश्च वै।
किमस्माभिर्विधे कार्यं तत्कार्यं त्वं समादिश ॥ ३०

इत्युक्तश्च मुनीशैस्तैः सर्वलोकपितामहः।
मुनीशांस्तांस्तदा ब्रह्मा स्वयं प्रोवाच वै तदा ॥ ३१

सूतजी बोले—ब्रह्माके द्वारा इस प्रकार कहे जानेपर ऋषियोंने उन्हें प्रणामकर कहा—हे ब्रह्मन्! अब हमलोगोंको क्या करना चाहिये? आप उस कार्यके लिये आज्ञा प्रदान कीजिये। तब उन मुनीश्वरोंके द्वारा इस प्रकार कहे जानेपर सर्वलोकपितामह ब्रह्माजीने उन मुनीश्वरोंसे स्वयं कहा— ॥ ३०-३१ ॥

ब्रह्मोवाच

आराध्य गिरिजां देवीं प्रार्थयन्तु सुराः शिवाम्।
योनिरूपा भवेच्चेद्वै तदा तत्स्थिरतां व्रजेत् ॥ ३२

ब्रह्माजी बोले—हे देवताओ! आपलोग देवी पार्वतीकी आराधना करके उन शिवासे प्रार्थना कीजिये; यदि वे योनिपीठात्मकरूप धारण कर लें, तो वह शिवलिंग स्थिर हो जायगा ॥ ३२ ॥

तद्विधिं प्रवदाम्यद्य सर्वे शृणुत सत्तमाः।
तामेव कुरुत प्रेम्णा प्रसन्ना सा भविष्यति ॥ ३३

हे ऋषिसत्तमो! अब मैं उस उपायको आपलोगोंसे बताता हूँ, आप लोग सुनिये और प्रेमपूर्वक उस विधिका सम्पादन कीजिये; वे [अवश्य] प्रसन्न होंगी ॥ ३३ ॥

कुम्भमेकं च संस्थाप्य कृत्वाष्टदलमुत्तमम्।
दूर्वायवांकुरैस्तीर्थोदकमापूरयेत्ततः ॥ ३४

वेदमंत्रैस्ततस्तं वै कुंभं चैवाभिमंत्रयेत्।
श्रुत्युक्तविधिना तस्य पूजां कृत्वा शिवं स्मरन् ॥ ३५

तल्लिंगं तज्जलेनाभिषेचयेत्परमर्षयः।
शतरुद्रियमंत्रैस्तु प्रोक्षितं शांतिमाप्नुयात् ॥ ३६

अष्टदलवाला कमल बना करके उसपर एक कलश स्थापितकर उसमें दूर्वा तथा यवांकुरोंसे युक्त तीर्थका जल भर देना चाहिये। फिर वेदमन्त्रोंके द्वारा उस कुम्भको अभिमन्त्रित करना चाहिये। इसके बाद [हे महर्षियो!] वेदोक्त रीतिसे उसका पूजन करके शिवका स्मरण करते हुए शतरुद्रिय मन्त्रोंसे कलशके जलसे उस शिवलिंगका अभिषेक करना चाहिये, फिर उन्हीं मन्त्रोंसे लिंगका प्रोक्षण करना चाहिये; तब शिवलिंग प्रशान्त हो जायगा ॥ ३४—३६ ॥

गिरिजायोनिरूपं च बाणं स्थाप्य शुभं पुनः।
तत्र लिंगं च तत्स्थाप्यं पुनश्चैवाभिमंत्रयेत् ॥ ३७

सुगन्धैश्चन्दनैश्चैव पुष्पधूपादिभिस्तथा।
नैवेद्यादिकपूजाभिस्तोषयेत्परमेश्वरम् ॥ ३८

प्रणिपातैः स्तवैः पुण्यैर्वाद्यैर्गानैस्तथा पुनः।
ततः स्वस्त्ययनं कृत्वा जयेति व्याहरेत्तथा ॥ ३९

प्रसन्नो भव देवेश जगदाह्लादकारक।
कर्ता पालयिता त्वं च संहर्ता त्वं निरक्षरः ॥ ४०

जगदादिर्जगद्योनिर्जगदन्तर्गतोऽपि च।
शान्तो भव महेशान सर्वांल्लोकांश्च पालय ॥ ४१

इसके बाद योनिरूपा गिरिजा तथा उत्तम बाणलिंगको स्थापितकर उस प्रतिष्ठित शिवलिंगको पुनः अभिमन्त्रित करना चाहिये। उसके अनन्तर सुगन्ध द्रव्य, चन्दन, पुष्प, धूप एवं नैवेद्य आदिसे पूजाकर प्रणाम, स्तुति तथा मंगलकारी गीत-वाद्यके द्वारा परमेश्वरको प्रसन्न करना चाहिये। तत्पश्चात् स्वस्तिवाचन करके 'जय' शब्दका उच्चारण करना चाहिये और प्रार्थना करना चाहिये कि हे देवेश! हे संसारको प्रसन्न करनेवाले! आप [हमपर] प्रसन्न होइये; आप ही [संसारके] कर्ता, पालन करनेवाले एवं संहार करनेवाले तथा पूर्णतः विनाशरहित हैं। आप इस जगत्के आदि, जगत्के कारण एवं जगत्के आत्मस्वरूप भी हैं। हे महेश्वर! आप शान्त हो जायँ और सम्पूर्ण जगत्का पालन करें ॥ ३७—४१ ॥

एवं कृते विधौ स्वास्थ्यं भविष्यति न संशयः।
विकारो न त्रिलोकेऽस्मिन्भविष्यति सुखं सदा॥ ४२

हे ऋषियो! इस प्रकारका अनुष्ठान करनेपर शिवलिंग अवश्य स्थिर हो जायगा। फिर इस त्रैलोक्यमें किसी भी प्रकारका उपद्रव नहीं होगा और सदा सुख रहेगा॥ ४२॥

सूत उवाच

इत्युक्तास्ते द्विजा देवाः प्रणिपत्य पितामहम्।
शिवं तं शरणं प्राप्ताः सर्वलोकसुखेप्सया॥ ४३

सूतजी बोले—ब्रह्माके यह कहनेपर वे ब्राह्मण तथा देवता पितामह ब्रह्माजीको प्रणामकर सभी लोकोंको सुखी बनानेकी इच्छासे उन शिवजीकी शरणमें गये॥ ४३॥

पूजितः परया भक्त्या प्रार्थितः शंकरस्तदा।
सुप्रसन्नस्ततो भूत्वा तानुवाच महेश्वरः॥ ४४

उन लोगोंने परम भक्तिसे सदाशिवकी पूजा एवं प्रार्थना की, तब प्रसन्न होकर महेश्वरने उनसे कहा—॥ ४४॥

महेश्वर उवाच

हे देवा ऋषयः सर्वे मद्वचः शृणुतादरात्।
योनिरूपेण मल्लिंगं धृतं चेत्स्यात्तदा सुखम्॥ ४५

पार्वतीं च विना नान्या लिंगं धारयितुं क्षमा।
तया धृतं च मल्लिंगं द्रुतं शान्तिं गमिष्यति॥ ४६

महेश्वर बोले—हे देवताओ! हे ऋषियो! आपलोग आदरपूर्वक मेरी बात सुनिये। यदि यह शिवलिंग योनिपीठात्मिका (समस्त ब्रह्माण्डका प्रसव करनेवाली) भगवती महाशक्तिके द्वारा धारण किया जाय, तभी आपलोगोंको सुख प्राप्त होगा। पार्वतीके अतिरिक्त अन्य कोई भी मेरे इस स्वरूपको धारण करनेमें समर्थ नहीं है; उन महाशक्तिके द्वारा धारण किये जानेपर शीघ्र ही यह मेरा निष्कल स्वरूप प्रशान्त हो जायगा॥ ४५-४६॥

सूत उवाच

तच्छ्रुत्वा ऋषिभिर्देवैः सुप्रसन्नैर्मुनीश्वराः।
गृहीत्वा चैव ब्रह्माणं गिरिजा प्रार्थिता तदा॥ ४७
प्रसन्नां गिरिजां कृत्वा वृषभध्वजमेव च।
पूर्वोक्तं च विधिं कृत्वा स्थापितं लिंगमुत्तमम्॥ ४८

सूतजी बोले—हे मुनीश्वरो! तब यह सुनकर प्रसन्न हुए देवताओं एवं ऋषियोंने ब्रह्माको साथ लेकर पार्वतीकी प्रार्थना की और पार्वती तथा शिवको प्रसन्न करके पूर्वोक्त विधि सम्पादितकर उत्तम लिंग स्थापित किया॥ ४७-४८॥

मंत्रोक्तेन विधानेन देवाश्च ऋषयस्तथा।
चक्रुः प्रसन्नां गिरिजां शिवं च धर्महेतवे॥ ४९

इस प्रकार मन्त्रोक्त विधानके अनुसार उन देवताओं एवं ऋषियोंने धर्मकी रक्षाके लिये शिव तथा पार्वतीको प्रसन्न किया॥ ४९॥

समानर्चुर्विशेषेण सर्वे देवर्षयः शिवम्।
ब्रह्मा विष्णुः परे चैव त्रैलोक्यं सचराचरम्॥ ५०

तत्पश्चात् सभी देवता, ऋषिगण, ब्रह्मा, विष्णु तथा चराचर त्रिलोकीने शिवजीकी विशेष रूपसे पूजा की॥ ५०॥

सुप्रसन्नः शिवो जातः शिवा च जगदम्बिका।
धृतं तया च तल्लिंगं तेन रूपेण वै तदा॥ ५१

लोकानां स्थापिते लिंगे कल्याणं चाभवत्तदा।
प्रसिद्धं चैव तल्लिंगं त्रिलोक्यामभवद् द्विजाः॥ ५२

तब शिवजी प्रसन्न हो गये और जगदम्बा पार्वती भी प्रसन्न हो गयीं; इसके बाद उन पार्वतीने उस शिवलिंगको पीठरूपसे धारण कर लिया। हे द्विजो! तब शिवलिंगके स्थापित हो जानेपर लोकोंका कल्याण हुआ और वह शिवलिंग तीनों लोकोंमें प्रसिद्ध हो गया॥ ५१-५२॥

हाटकेशमिति ख्यातं तच्छिवाशिवमित्यपि।
पूजनात्तस्य लोकानां सुखं भवति सर्वथा॥ ५३

इह सर्वसमृद्धिः स्यान्नानासुखवहाधिका।
परत्र परमा मुक्तिर्नात्र कार्या विचारणा॥ ५४

पार्वतीजी तथा शिवका वह विग्रह हाटकेश्वर—इस नामसे प्रसिद्ध हुआ, उसके पूजनसे सभी लोगोंको सब प्रकारका सुख प्राप्त होता है, इस लोकमें अनेक प्रकारका सुख देनेवाली सम्पूर्ण समृद्धि अधिकाधिक प्राप्त होती है और परलोकमें उत्तम मुक्ति प्राप्त होती है; इसमें कोई विचार नहीं करना चाहिये॥ ५३-५४॥

इति श्रीशिवमहापुराणे चतुर्थ्यां कोटिरुद्रसंहितायां लिंगस्वरूपकारणवर्णनं नाम द्वादशोऽध्यायः॥ १२॥

॥ इस प्रकार श्रीशिवमहापुराणके अन्तर्गत चतुर्थ कोटिरुद्रसंहितामें लिंगस्वरूपकारणवर्णन नामक बारहवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ १२॥

अथ त्रयोदशोऽध्यायः

अन्धकेश्वरलिंगकी महिमा एवं बटुककी उत्पत्तिका वर्णन

सूत उवाच

यथाभवल्लिगरूपः संपूज्यस्त्रिभवे शिवः।
तथोक्तं वा द्विजाः प्रीत्या किमन्यच्छ्रोतुमिच्छथ॥ १

सूतजी बोले—हे द्विजो! जिस प्रकार शिवजी तीनों लोकोंमें लिंगस्वरूपसे पूजनीय हुए, उस वृत्तान्तको मैंने प्रीतिपूर्वक बता दिया; अब आपलोग और क्या सुनना चाहते हैं?॥ १॥

ऋषय ऊचुः

अन्धकेश्वरलिंगस्य महिमानं वद प्रभो।
तथान्यच्छिवलिंगानां प्रीत्या वक्तुमिहार्हसि॥ २

ऋषिगण बोले—हे प्रभो! आप अन्धकेश्वर लिंगकी महिमाका वर्णन कीजिये तथा इसी प्रसंगमें अन्य शिवलिंगोंकी महिमा भी प्रीतिपूर्वक कहिये॥ २॥

सूत उवाच

पुराब्धिगर्तमाश्रित्य वसन् दैत्योऽन्धकासुरः।
स्ववशं कारयामास त्रैलोक्यं सुरसूदनः॥ ३

सूतजी बोले—हे महर्षियो! पूर्व समयमें समुद्रके गर्तका आश्रय लेकर निवास करते हुए देवशत्रु अन्धक नामक दैत्यने त्रैलोक्यको अपने वशमें कर लिया था॥ ३॥

तस्माद्गर्ताच्च निःसृत्य पीडयित्वा पुनः प्रजाः।
प्राविशच्च तदा दैत्यस्तं गर्तं सुपराक्रमः॥ ४

देवाश्च दुःखिताः सर्वे शिवं प्रार्थ्य पुनः पुनः।
सर्वं निवेदयामासुः स्वदुःखं च मुनीश्वराः॥ ५

वह अत्यन्त पराक्रमशाली दैत्य उस गर्तसे निकलकर प्रजाओंको पीड़ित करनेके पश्चात् पुनः उसी गड्ढेमें प्रवेश कर जाता था। हे मुनीश्वरो! तब दुखी होकर समस्त देवताओंने बारंबार शिवकी प्रार्थना करते हुए उनसे अपना सारा दुःख निवेदन किया॥ ४-५॥

सूत उवाच

तदाकर्ण्य वचस्तेषां देवानां परमेश्वरः।
प्रत्युवाच प्रसन्नात्मा दुष्टहंता सतां गतिः॥ ६

सूतजी बोले—तब उन देवगणोंका वचन सुनकर दुष्टोंका संहार करनेवाले एवं सज्जनोंके शरणदाता परमेश्वर प्रसन्न होकर कहने लगे—॥ ६॥

शिव उवाच

घातयिष्यामि तं दैत्यमन्धकं सुरसूदनम्।
सैन्यं च नीयतान्देवा ह्यायामि च गणैः सह॥ ७

तस्माद्गर्तादंधके हि देवर्षिद्रुहि भीकरे।
निःसृते च तदा तस्मिन्देवा गर्तमुपाश्रिताः॥ ८

शिवजी बोले—हे देवगण! मैं देवताओंको दुःख देनेवाले उस अन्धक दैत्यका वध करूँगा; आपलोग अपनी सेना लेकर चलिये, मैं भी गणोंके साथ आ रहा हूँ। तब उस गर्तसे देवताओं और ऋषियोंसे द्वेष करनेवाले उस भयंकर अन्धकके निकल जानेपर देवता लोग उस गर्तमें प्रवेश कर गये॥ ७-८॥

दैत्याश्च देवताश्चैव युद्धं चक्रुः सुदारुणम्।
शिवानुग्रहतो देवाः प्रबलाश्चाभवँस्तदा॥ ९

देवैश्च पीडितः सोऽपि यावद्गर्तमुपागतः।
तावच्छूलेन संप्रोतः शिवेन परमात्मना॥ १०

तब देवताओं एवं दैत्योंने [परस्पर] अत्यन्त भयानक युद्ध किया; शिवजीकी कृपासे देवता उस [युद्ध]-में प्रबल हो गये। देवताओंसे पीड़ित होकर वह ज्यों ही उस गड्ढेमें प्रवेश करने लगा, उसी समय परमात्मा शिवने उसे त्रिशूलमें पिरो लिया॥ ९-१०॥

तत्रत्यश्च तदा शंभुं ध्यात्वा संप्रार्थयत्तदा।
अन्तकाले च त्वां दृष्ट्वा तादृशो भवति क्षणात्॥ ११

तब त्रिशूलमें स्थित हुआ वह शिवजीका ध्यान करके प्रार्थना करने लगा कि [हे शिवजी!] अन्त समयमें आपका दर्शन करके प्राणी आपके ही सदृश हो जाता है॥ ११॥

इत्येवं संस्तुतः सोऽपि प्रसन्नः शंकरस्तदा।
उवाच वचनं तत्र वरं ब्रूहि ददामि ते॥ १२

इस प्रकार स्तुत हुए उन शंकरने भी प्रसन्न होकर यह वचन कहा—तुम वर माँगो, मैं तुम्हें दूँगा॥ १२॥

इत्येवं वचनं श्रुत्वा स दैत्यः पुनरब्रवीत्।
सुप्रणम्य शिवं स्तुत्वा सत्त्वभावमुपाश्रितः॥ १३

यह वचन सुनकर सात्त्विक भावको प्राप्त हुए उस दैत्यने शिवजीको भलीभाँति प्रणाम करके तथा उनकी स्तुतिकर [पुनः] कहा—॥ १३॥

अन्धक उवाच

यदि प्रसन्नो देवेश स्वभक्तिं देहि मे शुभाम्।
कृपां कृत्वा विशेषेण संस्थितो भव चेह वै॥ १४

अन्धक बोला—हे देवेश! यदि आप प्रसन्न हैं, तो मुझे अपनी शुभ भक्ति प्रदान कीजिये और विशेष कृपा करके यहींपर निवास कीजिये॥ १४॥

सूत उवाच

इत्युक्तस्तेन दैत्यं तं तद्गर्ते चाक्षिपद्धरः।
स्वयं तत्र स्थितो लिंगरूपोऽसौ लोककाम्यया॥ १५

सूतजी बोले—उसके इस प्रकार कहनेपर [भगवान्] शंकरने उस दैत्यको उसी गड्ढेमें फेंक दिया और लोकहितकी कामनासे वे वहीं लिंगरूप धारणकर स्थित हो गये॥ १५॥

अन्धकेशं च तल्लिंगं नित्यं यः पूजयेन्नरः।
षण्मासाज्जायते तस्य वांछासिद्धिर्न संशयः॥ १६

जो मनुष्य नित्य उस अन्धकेश्वर लिंगकी पूजा करता है, उसकी छः मासके भीतर ही समस्त कामनाएँ पूर्ण हो जाती हैं; इसमें सन्देह नहीं है॥ १६॥

वृत्त्यर्थं पूजयेल्लिंगं लोकस्य हितकारकम्।
षण्मासं यो द्विजश्चैव स वै देवलकः स्मृतः॥ १७

[परंतु] जो ब्राह्मण आजीविकाके लिये छः मासतक संसारका हित करनेवाले इस लिंगकी [द्रव्य लेकर] पूजा करता है, वह तो देवलक कहा गया है॥ १७॥

यथा देवलकश्चैव स भवेदिह वै तदा।
देवलकश्च यः प्रोक्तो नाधिकारो द्विजस्य हि॥ १८

जिस प्रकार देवलक होता है, उसी प्रकार वह ब्राह्मण भी हो जाता है, [जो छः महीनेतक वृत्त्यर्थ शिवपूजन करता है], जो देवलक कहा गया है, वह द्विजत्वके अधिकारसे वंचित हो जाता है॥ १८॥

ऋषय ऊचुः

देवलकश्च कः प्रोक्तः किं कार्यं तस्य विद्यते।
तत्त्वं वद महाप्राज्ञ लोकानां हितहेतवे॥ १९

ऋषिगण बोले—देवलक कौन कहा गया है और उसका क्या कार्य है? हे महाप्राज्ञ! लोकहितके लिये आप इसे बताइये॥ १९॥

सूत उवाच

दधीचिर्नाम विप्रो यो धर्मिष्ठो वेदपारगः।
शिवभक्तिरतो नित्यं शिवशास्त्रपरायणः॥ २०
तस्य पुत्रस्तथा ह्यासीत्स्मृतो नाम्ना सुदर्शनः।
तस्य भार्या दुकूला च नाम्ना दुष्टकुलोद्भवा॥ २१
तद्वशे स च भर्तासीत्तस्य पुत्रचतुष्टयम्।
सोऽपि नित्यं शिवस्यैव पूजां च स्म करोत्यसौ॥ २२

दधीचेस्तु तदा ह्यासीद् ग्रामान्तरनिवेशनम्।
ज्ञातिसंयोगतश्चैव ज्ञातिभिर्न स मोचितः॥ २३

कथयित्वा च पुत्रं स शिवभक्तिरतो भव।
इत्युक्त्वा स गतो मुक्तो दधीचिः शैवसत्तमः॥ २४
सुदर्शनस्तत्पुत्रोऽपि शिवपूजां चकार ह।
एवं चिरतरः कालो व्यतीयाय मुनीश्वराः॥ २५

एवं च शिवरात्रिश्च समायाता कदाचन।
तस्यां चोपोषिताः सर्वे स्वयं संयोगतस्तदा॥ २६

पूजां कृत्वा गतः सोऽपि सुदर्शन इति स्मृतः।
स्त्रीसंगं शिवरात्रौ तु कृत्वा पुनरिहागतः॥ २७
न स्नानं तेन च कृतं तद्रात्र्यां शिवपूजनम्।
तेन तत्कर्मपाकेन क्रुद्धः प्रोवाच शङ्करः॥ २८

महेश्वर उवाच

शिवरात्र्यां त्वया दुष्ट सेवनं च स्त्रियाः कृतम्।
अस्नातेन मदीया च कृता पूजाविवेकिना॥ २९
ज्ञात्वा चैवं कृतं यस्मात्तस्मात्त्वं जडतां व्रज।
ममास्पृश्यो भव त्वं च दूरतो दर्शनं कुरु॥ ३०

सूत उवाच

इति शप्तो महेशेन दाधीचिः स सुदर्शनः।
जडत्वं प्राप्तवान्सद्यः शिवमायाविमोहितः॥ ३१

एतस्मिन्समये विप्रा दधीचिः शैवसत्तमः।
ग्रामान्तरात्समायातो वृत्तान्तं श्रुतवाँश्च सः॥ ३२

सूतजी बोले—ऋषियो! जो दधीचि नामक धर्मिष्ठ, वेदमें पारंगत, शिवभक्तिमें संलग्न तथा शिवशास्त्रपरायण विप्र थे, उनका पुत्र भी वैसा ही था; वह सुदर्शन नामसे प्रसिद्ध था। उसकी दुकूला नामक पत्नी थी, जो दुष्टकुलमें उत्पन्न हुई थी॥ २०-२१॥

उसका वह पति [सुदर्शन] उसके वशमें रहता था। उसके चार पुत्र हुए। वह [सुदर्शन] भी नित्य शिवकी पूजा किया करता था॥ २२॥

किसी समय दधीचिको दूसरे गाँवमें जाना पड़ा, वहाँ बान्धवोंके सम्मेलनके कारण बन्धु-बान्धवोंने उन्हें लौटने नहीं दिया॥ २३॥

शैवोंमें श्रेष्ठ वे दधीचि अपने पुत्रसे 'तुम शिवजीकी सेवा करते रहना' यह कहकर [पूजन आदि दायित्वोंसे] मुक्त होकर चले गये। उनका पुत्र सुदर्शन भी शिवजीका पूजन करता रहा। हे मुनीश्वरो! इस प्रकार बहुत समय बीत गया॥ २४-२५॥

इसी बीच शिवरात्रि आ गयी और उसमें सभी लोगोंने उपवास किया और सुदर्शनने स्वयं भी संयोगवश उपवास किया॥ २६॥

वह सुदर्शन भी पूजा करके चला गया और शिवरात्रिमें स्त्रीसंग करके पुनः वहाँ आ गया॥ २७॥

उसने उस रात्रिमें स्नान नहीं किया, किंतु शिवपूजन किया; तब उसके इस कुकर्मसे क्रोधित हुए [भगवान्] शंकरने कहा—॥ २८॥

महेश्वर बोले—रे दुष्ट! तुझ अविवेकीने शिवरात्रिके दिन स्त्रीका सेवन किया और बिना स्नान किये ही मेरा पूजन भी किया। चूँकि तुमने जान-बूझकर ऐसा किया है, इसलिये जड़ हो जाओ। अब तुम मुझे स्पर्श करनेयोग्य नहीं हो, अतः दूरसे ही दर्शन करो॥ २९-३०॥

सूतजी बोले—[हे महर्षियो!] शिवजीके द्वारा इस प्रकार शापित वह दधीचिपुत्र सुदर्शन शिवमायासे विमोहित होकर उसी क्षण जड़ हो गया॥ ३१॥

हे ब्राह्मणो! इसी समय शिवभक्तोंमें श्रेष्ठ दधीचि दूसरे गाँवसे आ गये और उन्होंने यह समाचार सुना॥ ३२॥

शिवेन भर्त्सितः सोऽपि दुःखितोऽभूदतीव हि।
रुरोद हा हतोऽस्मीति दुःखेन सुतकर्मणा॥ ३३

पुनः पुनरुवाचेति स दधीचिः सतां मतः।
अनेनेदं कुपुत्रेण हतं मे कुलमुत्तमम्॥ ३४

स पुत्रोऽपि हतो भार्यां पुंश्चलीमुक्तवान्द्रुतम्।
पश्चात्तापमनुप्राप्य स्वपित्रा परिभर्त्सितः॥ ३५

तत्पित्रा गिरिजा तत्र पूजिता विधिभिर्वरैः।
सुयत्नतो महाभक्त्या स्वपुत्रसुखहेतवे॥ ३६

सुदर्शनोऽपि गिरिजां पूजयामास च स्वयम्।
चण्डीपूजनमार्गेण महाभक्त्या शुभैः स्तवैः॥ ३७

एवं तौ पितृपुत्रौ हि नानोपायैः सुभक्तितः।
प्रसन्नां चक्रतुर्देवीं गिरिजां भक्तवत्सलाम्॥ ३८

तयोः सेवाप्रभावेण प्रसन्ना चण्डिका तदा।
सुदर्शनं च पुत्रत्वे चकार गिरिजा मुने॥ ३९
शिवं प्रसादयामास पुत्रार्थे चण्डिका स्वयम्।
क्रुद्धाक्रुद्धा पुनश्चण्डी तत्पुत्रस्य प्रसन्नधीः॥ ४०

अथाज्ञाय प्रसन्नं तं महेशं वृषभध्वजम्।
नमस्कृत्य स्वयं तस्य ह्युत्संगे तं न्यवेशयत्॥ ४१

घृतस्नानं तश्चक्रे पुत्रस्य गिरिजा स्वयम्।
त्रिरावृत्तोपवीतं च ग्रन्थिनैकेन संयुतम्॥ ४२
सुदर्शनाय पुत्राय ददौ प्रीत्या तदाम्बिका।
उद्दिश्य शिवगायत्रीं षोडशाक्षरसंयुताम्॥ ४३
तदों नमः शिवायेति श्रीशब्दपूर्वकाय च।
वारान्षोडश संकल्पपूजां कुर्यादयं बटुः॥ ४४
आस्नानादिप्रणामान्तं पूजयन्वृषभध्वजम्।
मंत्रवादित्रपूजाभिः सर्षीणां सन्निधौ तथा॥ ४५

नाममंत्राननेकांश्च पाठयामास वै तदा।
उवाच सुप्रसन्नात्मा चण्डिका च शिवस्तथा॥ ४६

शिवजीने उन्हें भी धिक्कारा, तब वे अत्यन्त दुखी हुए और यह कहकर रोने लगे—हाय! पुत्रके दुःखित करनेवाले कुकर्मसे मैं मारा गया। सत्पुरुषोंमें श्रेष्ठ दधीचिने बारंबार यह कहा कि इस कुपुत्रके कारण मेरा यह उत्तम कुल नष्ट हो गया॥ ३३-३४॥

अपने पिताके द्वारा तिरस्कृत उस अभागे पुत्र सुदर्शनने भी पश्चात्ताप करके अपनी भार्याके लिये कहा कि यह पुंश्चली है। तदुपरान्त उसके पिताने वहाँ पुत्रके कल्याणके लिये प्रयत्नपूर्वक श्रेष्ठ विधियोंसे परमभक्ति भावसे पार्वतीका पूजन किया॥ ३५-३६॥

स्वयं सुदर्शनने भी महाभक्तिपूर्वक चण्डीपूजन-विधानसे पार्वतीका पूजन किया और उत्तम स्तोत्रोंसे उनकी स्तुति भी की॥ ३७॥

इस प्रकार उन दोनों पिता-पुत्रोंने भक्तिपूर्वक अनेक उपायोंसे भक्तवत्सला देवी गिरिजाको प्रसन्न कर लिया॥ ३८॥

हे मुने! तब उन दोनोंके उत्कृष्ट सेवाभावसे प्रसन्न हुई चण्डिकाने सुदर्शनको अपना पुत्र मान लिया॥ ३९॥

चण्डिकाने स्वयं भी उस [सुदर्शन नामक] पुत्रके लिये शिवजीको प्रसन्न किया। इसके बाद पूर्वमें सुदर्शनसे क्रोधित किंतु अब उस पुत्रपर क्रोधरहित चण्डिकाने प्रसन्नचित्त होकर उन वृषभध्वज महेश्वरको [भलीभाँति] प्रसन्न जानकर उन्हें नमस्कारकर स्वयं ही उस सुदर्शनको उनकी गोदमें बैठा दिया॥ ४०-४१॥

इसके बाद गिरिजाने स्वयं ही सुदर्शनको घृतसे स्नान कराकर एक ग्रन्थिसे युक्त त्रिरावृत यज्ञोपवीत प्रसन्नतापूर्वक पहनाया। तत्पश्चात् अम्बिकाने पुत्र सुदर्शनको सोलह अक्षरसे युक्त शिवगायत्रीका उपदेश दिया और यह भी कहा कि यह वटु श्रीशब्दपूर्वक '**ॐ नमः शिवाय**'—इस मन्त्रका सोलह बार उच्चारणकर संकल्प-पूजा किया करे॥ ४२—४४॥

पुनः उन्होंने स्नानसे लेकर प्रणामपर्यन्त विविध उपचारोंसे ऋषियोंके सान्निध्यमें मन्त्र एवं वाद्यके साथ उस बालकसे शिवपूजन करवाया और उससे शिवजीके अनेक नामों तथा मन्त्रोंका पाठ कराया। तत्पश्चात् अत्यन्त प्रसन्नचित्त होकर चण्डिका एवं शिवजीने उससे कहा—॥ ४५-४६॥

मदर्पितं च यत्किंचिद्धनधान्यादिकं तथा।
तत्सर्वं च त्वया ग्राह्यं न दोषाय भविष्यति॥ ४७

मम कृत्ये भवान्मुख्यो देवीकृत्ये विशेषतः।
घृततैलादिकं सर्वं त्वया ग्राह्यं मदर्पितम्॥ ४८

प्राजापत्यं भवेद्यर्हि तर्ह्येको हि भवान्भवेत्।
तदा पूजा च सम्पूर्णान्यथा सर्वा च निष्फला॥ ४९

तिलकं वर्तुलं कार्यं स्नानं कार्यं सदा त्वया।
शिवसन्ध्या च कर्तव्या गायत्री च तदीयका॥ ५०

मत्सेवां प्रथमं कृत्वा कार्यमन्यत्कुलोचितम्।
एवं कृतेऽखिले भद्रं दोषाः क्षान्ता मया तव॥ ५१

[हे पुत्र!] मेरे लिये जो कुछ भी धन-धान्य आदि अर्पित किया गया हो, वह सब तुम्हें ग्रहण करना चाहिये; इसे ग्रहण करनेमें तुम्हें कोई दोष नहीं लगेगा। मेरे [समस्त] कार्यमें और विशेषकर देवीके कार्यमें तुम मुख्य रहोगे। मेरे लिये चढ़ाया गया घृत, तैल आदि सब कुछ तुम्हें ग्रहण करना चाहिये। जब प्राजापत्य होने लगेगा, तब उसमें तुम अकेले ही मुख्य होगे; और तभी पूजा पूर्ण होगी, अन्यथा सब पूजा निष्फल हो जायगी। तुम सर्वदा वर्तुलाकार तिलक लगाना, स्नान करना, शिवसन्ध्या करना और शिवगायत्रीका जप करना। सबसे पहले मेरी सेवा करके तुम कुलोचित अन्य कार्य करना; यह सब किये जानेपर तुम्हारा कल्याण होगा। मैंने तुम्हारे समस्त दोष क्षमा कर दिये॥ ४७—५१॥

सूत उवाच

इत्युक्त्वा तस्य पुत्राश्च चत्वारो बटुकास्तदा।
अभिषिक्ताश्चतुर्दिक्षु शिवेन परमात्मना॥ ५२
चण्डी चैवात्मनिकटे पुत्रं स्थाप्य सुदर्शनम्।
तत्पुत्रान्प्रेरयामास वरान्दत्त्वा ह्यनेकशः॥ ५३

सूतजी बोले—ऐसा कहकर परमात्मा शिवजीने उसके चारों बटुक पुत्रोंको चारों दिशाओंमें अभिषिक्त कर दिया। तब भगवती चण्डी पुत्र सुदर्शनको अपने निकट बैठाकर उसके पुत्रोंको अनेक प्रकारके वर देकर शिक्षा देने लगीं॥ ५२-५३॥

देव्युवाच

उभयोर्व्यूहयोर्मध्ये बटुको यो भवेन्मम।
तस्य स्याद्विजयो नित्यं नात्र कार्या विचारणा॥ ५४
भवांश्च पूजितो येन तेनैवाहं प्रपूजिता।
कर्तव्यं हि भवद्भिश्च स्वीयं कर्म सदा सुत॥ ५५

देवी बोलीं—दो व्यूहोंके [युद्धमें] जिस ओर मेरा बटुक होगा, उसकी सदा विजय होगी; इसमें सन्देह नहीं करना चाहिए। हे पुत्र! जिसने तुम्हारी पूजा की, उसने मानो मेरी पूजा कर ली; तुम सभीको अपना कर्म सदा करते रहना चाहिये॥ ५४-५५॥

सूत उवाच

एवं तस्मै वरा दत्ताः सपुत्राय महात्मने।
सुदर्शनाय कृपया शिवाभ्यां जगतां कृते॥ ५६

शिवाभ्यां स्थापिता यस्मात्तस्मात्ते बटुकाः स्मृताः।
तपोभ्रष्टा यतो जाताः स्मृतास्तस्मात्तपोऽधमाः॥ ५७

सूतजी बोले—हे ऋषियो! इस प्रकार शिव एवं शिवाने कृपापूर्वक संसारके कल्याणके लिये पुत्रोंसहित उस महात्मा सुदर्शनको अनेक वर प्रदान किये। चूँकि शिव एवं पार्वतीने उन्हें [अपने पुत्रके रूपमें] प्रतिष्ठित किया, इसलिये वे बटुक कहे गये हैं और अपनी तपस्यासे भ्रष्ट हुए, इसलिये वे तपोऽधम कहे गये हैं॥ ५६-५७॥

शिवयोः कृपया सर्वे विस्तारं बहुधा गताः।
तेषां च प्रथमा पूजा महापूजा महात्मनः॥ ५८

शिव-शिवाकी कृपासे वे [आगे चलकर] बहुत विस्तृत हो गये। इन बटुकोंकी प्रथम पूजा साक्षात् महात्मा शंकरकी ही महापूजा है॥ ५८॥

तेन यावत्कृता नैव पूजा वै शंकरस्य च।
तावत्पूजा न कर्त्तव्या कृता चेन्न शुभापि सा॥ ५९

इसलिये जबतक बटुकोंकी पूजा न कर ली जाय, तबतक शिवजीकी पूजा नहीं करनी चाहिये। यदि पूर्वमें शिवजीकी पूजा की जाय, तो वह शुभदायी

शुभं वाप्यशुभं वापि बटुकं न परित्यजेत्।
प्राजापत्ये च भोज्ये वै बटुरेको विशिष्यते॥ ६०

नहीं होती। शुभ कार्य हो अथवा अशुभ कार्य हो, बटुकका कभी भी त्याग न करे। प्राजापत्य भोजमें एक बटुकका पूजन भी विशिष्ट कहा गया है॥ ५९-६०॥

शिवयोश्च तथा कार्ये विशेषोऽत्र प्रदृश्यते।
तदेव शृणु सुप्राज्ञ यथाहं वच्मि तेऽनघ॥ ६१

शिव एवं पार्वतीके कार्यमें बटुककी ही विशेषता देखी जाती है; हे बुद्धिमान् एवं निष्पाप शौनकजी! मैं जैसा कहता हूँ, उसे आप सुनें॥ ६१॥

तस्यैव नगरे राज्ञो भद्रस्य नित्यभोजने।
प्राजापत्यस्य नियमे ह्यन्धकेशसमीपतः॥ ६२

यज्जातमद्भुतं वृत्तं शिवानुग्रहकारणात्।
श्रूयतां तच्च सुप्रीत्या कथयामि यथाश्रुतम्॥ ६३

अन्धकेश्वरके समीप भद्र नामक राजाके नगरमें प्राजापत्य [नामक यज्ञानुष्ठान, जिसमें नित्यप्रति ब्राह्मणभोजनका सम्पादन होता था]-के नित्य भोजनवाले नियममें शिवके अनुग्रहसे जो अद्भुत घटना घटी, उसे प्रीतिपूर्वक सुनिये; जैसा मैंने सुना है, वैसा कह रहा हूँ॥ ६२-६३॥

ध्वज एकश्च तद्राज्ञे दत्तस्तुष्टेन शंभुना।
प्रोक्तश्च कृपया राजा देवदेवेन तेन सः॥ ६४

प्रातश्च बध्यतां राजन्ध्वजो रात्रौ पतिष्यति।
मम त्वेवं च सम्पूर्णे प्राजापत्ये तथा पुनः॥ ६५

अन्यथायं ध्वजो मे हि रात्रावपि स्थिरो भवेत्।
इत्युक्त्वान्तर्हितः शंभू राज्ञे तुष्टः कृपानिधिः॥ ६६

[भगवान्] सदाशिवने प्रसन्न होकर उस भद्र नामक राजाको एक ध्वज प्रदान किया। उसके अनन्तर देवाधिदेव सदाशिवने कृपापूर्वक उस राजासे कहा—हे राजन्! जिस दिन तुम्हारा प्राजापत्य [यज्ञ] पूर्ण होगा, उस दिन प्रातःकाल यह बँधी हुई ध्वजा बढ़ेगी और रात्रिमें गिर जायगी। यदि तुम्हारी पूजामें कोई त्रुटि होगी, तो यह ध्वजा रात्रिकालमें भी स्थिर रहेगी। इतना कहकर राजासे सन्तुष्ट हुए कृपानिधि शंकर अन्तर्धान हो गये॥ ६४—६६॥

तथेति नियमश्चासीत्तस्य राज्ञो महामुने।
प्राजापत्यं कृतं नित्यं शिवपूजाविधानतः॥ ६७

स्वयं प्रातर्विवर्धेत ध्वजः सायं पतेदिति।
यदि कार्यं च सम्पूर्णं जातं चैव भवेदिह॥ ६८

हे महामुने! उस राजाका वैसा ही नियम चलता रहा, वह शिव-पूजाके विधानके अनुसार नित्यप्रति प्राजापत्यका अनुष्ठान करने लगा। जब कार्य पूर्ण हो जाता, तो प्रातःकाल ध्वजा स्वयं बढ़ जाती एवं सायंकाल गिर जाती॥ ६७-६८॥

एकस्मिन्समये चात्र बटोः कार्यं पुरा ह्यभूत्।
ध्वजः स पतितो वै हि ब्रह्मभोजं विनापि हि॥ ६९

किसी समय ब्राह्मणभोजनके बिना ही बटुकोंकी पूजा पहले हो गयी और वह ध्वजा गिर पड़ी॥ ६९॥

दृष्ट्वा तच्च तदा तत्र पृष्टा राज्ञा च पण्डिताः।
भुञ्जते ब्राह्मणा ह्यत्र नोत्थितो वै ध्वजस्त्विति॥ ७०

कथं च पतितः सोऽत्र ब्राह्मणा ब्रूत सत्यतः।
ते पृष्टाश्च तदा प्रोचुर्ब्राह्मणाः पण्डितोत्तमाः॥ ७१

ब्रह्मभोजे महाराज बटुको भोजितः पुरा।
चण्डीपुत्रः शिवस्तुष्टस्तस्माच्च पतितो ध्वजः॥ ७२

यह देखकर राजाने पण्डितोंसे पूछा—ब्राह्मणलोग यहाँ भोजन कर रहे हैं, किंतु यह ध्वज नहीं उठा। हे ब्राह्मणो! वह ध्वज क्यों गिर पड़ा, आपलोग सत्य-सत्य कहिये? तब इस प्रकार पूछे जानेपर पण्डितप्रवर ब्राह्मणोंने कहा—हे महाराज! ब्रह्मभोजमें चण्डीपुत्र बटुकको पहले ही भोजन करा दिया गया; इससे शिवजी सन्तुष्ट हो गये, इसीलिये ध्वजा गिर गयी॥ ७०—७२॥

तच्छ्रुत्वा नृपतिः सोऽथ जनाश्चान्येऽपि सर्वशः।
अभवन्विस्मितास्तत्र प्रशंसां चक्रिरे ततः॥ ७३

तब यह सुनकर वह राजा तथा अन्य लोग भी चकित हो उठे और प्रशंसा करने लगे॥ ७३॥

एवं च महिमा तेषां वर्धितः शङ्करेण हि।
तस्माच्च बटुकाः श्रेष्ठाः पुराविद्भिः प्रकीर्तिताः ॥ ७४

इस प्रकार शिवजीने स्वयं ही उन (बटुकों)-की महिमा बढ़ायी, इसलिये प्राचीन विद्वानोंने बटुकोंको श्रेष्ठ कहा है ॥ ७४ ॥

शिवपूजा तु तैः पूर्वमुत्तार्या नान्यथा पुनः।
अन्येषां नाधिकारोऽस्ति शिवस्य वचनादिह ॥ ७५

उत्तारणं च कार्यं वै पूजा पूर्णा भवत्विति।
एतावदेव तेषां तु कार्यं नान्यत्तथैव च ॥ ७६

अतः बटुकोंके द्वारा ही शिवजीकी उत्तारणा करवानी चाहिये, अन्यथा पूजा सफल नहीं होती। शिवजीके वचनानुसार इसमें दूसरोंका अधिकार नहीं है, उन्हें ही उत्तारणा करनी चाहिये, तभी पूजा पूर्ण होती है। केवल इतना ही उनका कार्य है, कोई दूसरा [कार्य] नहीं है ॥ ७५-७६ ॥

एतत्सर्वं समाख्यातं यत्पृष्टं च मुनीश्वराः।
यच्छ्रुत्वा शिवपूजायाः फलं प्राप्नोति वै नरः ॥ ७७

हे मुनीश्वरो! आपलोगोंने जो पूछा था, वह सब मैंने कह दिया; इसे सुनकर मनुष्य शिवपूजाका फल प्राप्त करता है ॥ ७७ ॥

इति श्रीशिवमहापुराणे चतुर्थ्यां कोटिरुद्रसंहितायां बटुकोत्पत्तिवर्णनं नाम त्रयोदशोऽध्यायः ॥ १३ ॥

॥ इस प्रकार श्रीशिवमहापुराणके अन्तर्गत चतुर्थ कोटिरुद्रसंहितामें बटुकोत्पत्तिवर्णन नामक तेरहवाँ अध्याय पूर्ण हुआ ॥ १३ ॥

अथ चतुर्दशोऽध्यायः

सोमनाथ ज्योतिर्लिंगकी उत्पत्तिका वृत्तान्त

ऋषय ऊचुः

ज्योतिषां चैव लिंगानां माहात्म्यं कथयाधुना।
उत्पत्तिं च तथा तेषां ब्रूहि सर्वं यथाश्रुतम्॥ १

ऋषि बोले—[हे सूतजी!] अब आप ज्योतिर्लिंगोंके माहात्म्य तथा उनकी उत्पत्तिका वर्णन कीजिये; जैसा आपने सुना है, वह सब बताइये ॥ १ ॥

सूत उवाच

शृण्वन्तु विप्रा वक्ष्यामि तन्माहात्म्यं जनिं तथा।
संक्षेपतो यथाबुद्धि सद्गुरोश्च मया श्रुतम्॥ २

सूतजी बोले—हे ब्राह्मणो! मैं उनके माहात्म्य एवं उनकी उत्पत्तिके विषयमें, जैसा कि मैंने अपने सद्गुरुसे सुना है, संक्षेपमें अपनी बुद्धिके अनुसार कहता हूँ; आपलोग श्रवण करें ॥ २ ॥

एतेषां चैव माहात्म्यं वक्तुं वर्षशतैरपि।
शक्यते न मुनिश्रेष्ठास्तथापि कथयामि वः॥ ३

हे मुनिश्रेष्ठो! सैकड़ों वर्षोंमें भी इनके माहात्म्यका वर्णन नहीं किया सकता है, फिर भी मैं आपलोगोंको बता रहा हूँ ॥ ३ ॥

सोमनाथश्च तेषां वै प्रथमः परिकीर्तितः।
तन्माहात्म्यं शृणु मुने प्रथमं सावधानतः॥ ४

उनमें सोमनाथ प्रथम कहे गये हैं। हे मुने! सबसे पहले उन्हींका माहात्म्य सावधानीसे सुनिये ॥ ४ ॥

सप्तविंशन्मिताः कन्या दक्षेण च महात्मना।
तेन चन्द्रमसे दत्ता अश्विन्याद्या मुनीश्वराः॥ ५

हे मुनीश्वरो! महात्मा दक्षने अपनी अश्विनी आदि सत्ताईस कन्याओंका विवाह चन्द्रमासे कर दिया ॥ ५ ॥

चन्द्रं च स्वामिनं प्राप्य शोभमाना विशेषतः।
चन्द्रोऽपि चैव ताः प्राप्य शोभते स्म निरन्तरम्॥ ६

वे चन्द्रमाको [अपने पतिके रूपमें] प्राप्तकर अत्यधिक शोभित हुईं और चन्द्रमा भी उन्हें प्राप्तकर निरन्तर शोभित होते थे, जैसा कि सुवर्णसे मणि सुशोभित होती है और मणिसे सुवर्ण सुशोभित होता है ॥ ६ ॥

हेम्ना चैव मणिर्भाति मणिना हेम चैव हि।
एवं च समये तस्य यज्जातं श्रूयतामिति॥ ७
सर्वास्वपि च पत्नीषु रोहिणी नाम या स्मृता।
यथैका सा प्रिया चासीत्तथान्या न कदाचन॥ ८

अन्याश्च दुःखमापन्नाः पितरं शरणं ययुः।
गत्वा तस्मै च यद्दुःखं तथा ताभिर्निवेदितम्॥ ९

दक्षः स च तथा श्रुत्वा दुःखं च प्राप्तवांस्तदा।
समागत्य द्विजाश्चन्द्रं शान्त्यावोचद् वचस्तदा॥ १०

दक्ष उवाच

विमले च कुले त्वं हि समुत्पन्नः कलानिधे।
आश्रितेषु च सर्वेषु न्यूनाधिक्यं कथं तव॥ ११

कृतं चेत्तत्कृतं तच्च न कर्तव्यं त्वया पुनः।
वर्तनं विषमत्वेन नरकप्रदमीरितम्॥ १२

सूत उवाच

दक्षश्चैवं च संप्रार्थ्य चन्द्रं जामातरं स्वयम्।
जगाम मन्दिरं स्वं वै निश्चयं परमं गतः॥ १३
चंद्रोऽपि वचनं तस्य न चकार विमोहितः।
शिवमायाप्रभावेण यया संमोहितं जगत्॥ १४

शुभं भावि यदा यस्य शुभं भवति तस्य वै।
अशुभं च यदा भावि कथं तस्य शुभं भवेत्॥ १५

चन्द्रोऽपि बलवद्भाविवशान्मेने न तद्वचः।
रोहिण्यां च समासक्तो नान्यां मेने कदाचन॥ १६

तच्छ्रुत्वा पुनरागत्य स्वयं दुःखसमन्वितः।
प्रार्थयामास चन्द्रं स दक्षो दक्षः सुनीतितः॥ १७

दक्ष उवाच

श्रूयतां चन्द्र यत्पूर्वं प्रार्थितो बहुधा मया।
न मानितं त्वया यस्मात्तस्मात्त्वं च क्षयी भव॥ १८

सूत उवाच

इत्युक्ते तेन चन्द्रो वै क्षयी जातः क्षणादिह।
हाहाकारो महानासीत्तदेन्दौ क्षीणतां गते॥ १९

देवर्षयस्तदा सर्वे किं कार्यं हा कथं भवेत्।
इति दुःखं समापन्ना विह्वला ह्यभवन्मुने॥ २०

उसके अनन्तर कालक्रममें उनके साथ जो हुआ, उसको सुनिये। [चन्द्रमाकी] सभी पत्नियोंमें जो रोहिणी नामवाली कही गयी है, वह उन्हें जितना अधिक प्रिय थी, उतना अन्य कोई भी नहीं थी॥ ७-८॥

तब अन्य कन्याएँ दुखी होकर अपने पिताकी शरणमें गयीं। वहाँ जाकर उन सबने जो दुःख था, उसे निवेदन किया। हे ब्राह्मणो! यह सुनकर वे दक्ष बहुत दुखी हुए; उसके बाद चन्द्रमाके पास आकर उन्होंने शान्तिपूर्वक यह वचन कहा—॥ ९-१०॥

दक्ष बोले—हे चन्द्रमा! आप उत्तम कुलमें उत्पन्न हुए हैं; सभी आश्रितोंके प्रति [तो समान व्यवहार करना उचित है, पर] आपका विषम व्यवहार क्यों है? अबतक आपने जो कुछ भी किया, सो किया, किंतु पुनः ऐसा व्यवहार न करें; विषम व्यवहार नरक देनेवाला कहा गया है॥ ११-१२॥

सूतजी बोले—दक्ष अपने दामाद चन्द्रमासे इस प्रकार प्रार्थनाकर निश्चिन्त हो अपने घर चले गये। चन्द्रमाने दक्षकी बात नहीं मानी, क्योंकि वे शिवमायाके प्रभावसे विमोहित थे, जिससे यह जगत् मोहित हो रहा है॥ १३-१४॥

जब जिसका शुभ होना है, तब उसका शुभ अवश्य होता है और जब अशुभ होना है, तब उसका शुभ किस प्रकार हो सकता है!॥ १५॥

चन्द्रमाने भी बलवान् होनहारके कारण उनकी बात नहीं मानी। वे रोहिणीमें आसक्त रहते थे तथा अन्य किसी [पत्नी]-का मान नहीं करते थे। तब दक्ष बहुत दुखी हुए और सुनीतिमें निपुण वे पुनः स्वयं आकर चन्द्रमासे नीतिपूर्वक कहने लगे—॥ १६-१७॥

दक्ष बोले—हे चन्द्र! आप सुनें, मैंने आपसे अनेक प्रकारसे प्रार्थना की, किंतु आपने नहीं माना, अतः आप क्षयरोगसे ग्रस्त हो जायँ॥ १८॥

सूतजी बोले—उनके इस प्रकार कहनेपर चन्द्रमा उसी क्षण क्षयरोगी हो गये। तब उनके क्षीण होते ही महान् हाहाकार मच गया। हे मुने! उस समय सब देवता एवं ऋषि 'हाय! अब क्या करना चाहिये, [चन्द्रमाका कल्याण] किस प्रकार होगा'—ऐसा कहते हुए दुःखित तथा व्याकुल हो गये॥ १९-२०॥

विज्ञापिताश्च चन्द्रेण सर्वे शक्रादयः सुराः।
ऋषयश्च वसिष्ठाद्या ब्रह्माणं शरणं ययुः॥ २१

चन्द्रमाने इन्द्र आदि सभी देवताओं तथा वसिष्ठ आदि ऋषियोंसे यह सब बताया; तब सभी लोग ब्रह्माजीकी शरणमें गये॥ २१॥

गत्वापि तु तदा प्रोचुस्तद् वृत्तं निखिलं मुने।
ब्रह्मणे ऋषयो देवा नत्वा नुत्वातिविह्वलाः॥ २२

ब्रह्मापि तद्वचः श्रुत्वा विस्मयं परमं ययौ।
शिवमायां सुप्रशस्य श्रावयंस्तानुवाच ह॥ २३

मुने! उस समय वहाँ जाकर अति व्याकुल हुए देवगण एवं ऋषियोंने ब्रह्मदेवको प्रणाम करके उनकी स्तुतिकर वह सारा समाचार निवेदन किया। ब्रह्मा भी उनकी बात सुनकर अत्यन्त आश्चर्यचकित हो शिवमायाकी प्रशंसाकर उन्हें सुनाते हुए कहने लगे—॥ २२-२३॥

ब्रह्मोवाच

अहो कष्टं महज्जातं सर्वलोकस्य दुःखदम्।
चन्द्रस्तु सर्वदा दुष्टो दक्षश्च शप्तवानमुम्॥ २४

ब्रह्माजी बोले—अहो! सारे संसारको दुःख देनेवाला यह महान् कष्ट उपस्थित हुआ है। चन्द्रमा तो सदासे ही दुष्ट है और दक्षने भी इसे शाप दे दिया॥ २४॥

सर्वं दुष्टेन चन्द्रेण कृतं कर्माप्यनेकशः।
श्रूयतामृषयो देवाश्चन्द्रकृत्यं पुरातनम्॥ २५

दुष्ट चन्द्रमाने और भी अनेक दुष्कर्म किये हैं। हे देवताओ तथा ऋषियो! आप लोग चन्द्रमाका पुरातन कृत्य सुनिये॥ २५॥

बृहस्पतेर्गृहं गत्वा तारा दुष्टेन वै हृता।
तस्य भार्या पुनश्चैव स दैत्यान्समुपस्थितः॥ २६

समाश्रितस्तदा दैत्यान्युद्धं देवैश्चकार ह।
मयात्रिणा निषिद्धश्च तस्मै तारां ददौ शशी॥ २७

इस दुष्टने बृहस्पतिके घर जाकर उनकी पत्नी ताराका अपहरण किया था। उसके बाद वह दैत्योंसे जाकर मिल गया और उनके पक्षमें होकर देवताओंसे युद्ध भी किया। जब मैंने और अत्रिने चन्द्रमाको मना किया, तब उसने ताराको उन्हें लौटा दिया॥ २६-२७॥

तां च गर्भवतीं दृष्ट्वा न गृह्णामीति सोऽब्रवीत्।
अस्माभिर्वारितो जीवः कृच्छ्राज्जग्राह तां तदा॥ २८

उसे गर्भवती देखकर बृहस्पतिने कहा—मैं इसे ग्रहण नहीं करूँगा, इसके बाद हमलोगोंने बृहस्पतिको ऐसा करनेसे रोका, तब बड़ी कठिनाईसे उन्होंने ताराको स्वीकार किया॥ २८॥

यदि गर्भं जहातीह गृह्णामीत्यब्रवीत्पुनः।
गर्भे मया पुनस्तत्र त्याजिते मुनिसत्तमाः॥ २९

कस्यायं च पुनर्गर्भः सोमस्येति च साब्रवीत्।
पश्चात्तेन गृहीता सा मया च वारितेन वै॥ ३०

बृहस्पतिने पुनः कहा कि मैं इसे तभी ग्रहण करूँगा, जब यह गर्भका परित्याग करेगी। हे महर्षियो! तब मैंने ताराका गर्भत्याग कराया। मैंने उससे पुनः पूछा कि यह किसका गर्भ है? तब उसने कहा कि यह गर्भ चन्द्रमाका है। इसके बाद बृहस्पतिने मेरे कहनेसे उस ताराको ग्रहण किया॥ २९-३०॥

एवंविधानि चन्द्रस्य दुश्चरित्राण्यनेकशः।
वर्ण्यन्ते किं पुनस्तानि सोऽद्यापि कुरुते कथम्॥ ३१

यज्जातं तत् सुसंजातं नान्यथा भवति ध्रुवम्।
अतः परमुपायं वो वक्ष्यामि शृणुतादरात्॥ ३२

इस प्रकारके अनेक दुष्ट कर्म चन्द्रमाके हैं; उनका वर्णन मैं पुनः किस प्रकार करूँ? वह आज भी वैसा ही क्यों कर रहा है? अब जो होनहार था, वह तो भलीभाँति हो गया, वह तो कभी अन्यथा होनेवाला नहीं है। अब मैं आपलोगोंको उत्तम उपाय बताता हूँ, आदरपूर्वक सुनिये॥ ३१-३२॥

प्रभासके शुभे क्षेत्रे व्रजेच्चन्द्रः सदैवतैः।
शिवमाराधयेत्तत्र मृत्युञ्जयविधानतः॥ ३३

निधायेशं पुरस्तत्र चन्द्रस्तपतु नित्यशः।
प्रसन्नश्च शिवः पश्चादक्षयं तं करिष्यति॥ ३४

चन्द्रमा कल्याणकारी प्रभासक्षेत्रमें देवताओंके साथ जाय और वहाँ मृत्युंजय-विधानसे शिवाराधन करे। शिवलिंगको सामने स्थापितकर चन्द्रमा प्रतिदिन तपस्या करे; तब प्रसन्न हुए शिव उसे क्षयरोगसे रहित कर देंगे॥ ३३-३४॥

सूत उवाच

इति श्रुत्वा वचस्तस्य ब्रह्मणस्ते सुरर्षयः।
सन्निवृत्याययुः सर्वे यत्र दक्षविधू ततः॥ ३५

सूतजी बोले—[हे महर्षियो!] उन ब्रह्माजीकी यह बात सुनकर वे देवता तथा ऋषि लौटकर वहाँ आये, जहाँ दक्ष तथा चन्द्रमा स्थित थे॥ ३५॥

गृहीत्वा ते ततश्चन्द्रं दक्षं चाश्वास्य निर्जराः।
प्रभासे ऋषयश्चक्रुस्तत्र गत्वाखिलाश्च वै॥ ३६

आवाह्य तीर्थवर्याणि सरस्वत्यादिकानि च।
पार्थिवेन तदा पूजां मृत्युञ्जयविधानतः॥ ३७

इसके बाद उन सभी देवताओं तथा ऋषियोंने दक्षको आश्वासन देकर तथा चन्द्रमाको अपने साथ ले करके प्रभासतीर्थमें जाकर सरस्वती आदि श्रेष्ठ तीर्थोंका आवाहन करके, मृत्युंजयमन्त्रद्वारा पार्थिवार्चन-विधिसे शिवजीकी आराधना की॥ ३६-३७॥

ते देवाश्च तदा सर्वे ऋषयो निर्मलाशयाः।
स्थाप्य चन्द्रं प्रभासे च स्वं स्वं धाम ययुर्मुदा॥ ३८

उसके बाद विशुद्ध अन्तःकरणवाले वे सभी देवता तथा ऋषि चन्द्रमाको प्रभासक्षेत्रमें छोड़कर प्रसन्नतापूर्वक अपने-अपने धामको चले गये॥ ३८॥

चन्द्रेण च तपस्तप्तं षण्मासं च निरंतरम्।
मृत्युंजयेन मंत्रेण पूजितो वृषभध्वजः॥ ३९

चन्द्रमाने निरन्तर छः मासतक तप किया और मृत्युंजयमन्त्रसे वृषभध्वजका पूजन किया॥ ३९॥

दशकोटिमितं मन्त्रं समावृत्य शशी च तम्।
ध्यात्वा मृत्युञ्जयं मन्त्रं तस्थौ निश्चलमानसः॥ ४०

स्थिरचित्त होकर चन्द्रमा दस करोड़की संख्यामें उस मृत्युंजयमन्त्रका जप करके तथा मन्त्रस्वरूप भगवान् मृत्युंजयका ध्यान करते हुए वहाँ स्थित रहे॥ ४०॥

तं दृष्ट्वा शंकरो देवः प्रसन्नोऽभूत्ततः प्रभुः।
आविर्भूय विधुं प्राह स्वभक्तं भक्तवत्सलः॥ ४१

तब उन्हें देखकर भक्तवत्सल भगवान् शिव प्रसन्न हो गये और प्रकट होकर अपने भक्त चन्द्रमासे कहने लगे—॥ ४१॥

शंकर उवाच

वरं वृणीष्व भद्रं ते मनसा यत्समीप्सितम्।
प्रसन्नोऽहं शशिन्सर्वं दास्ये वरमनुत्तमम्॥ ४२

शंकर बोले—हे चन्द्र! तुम्हारा कल्याण हो, तुम्हारे मनमें जो अभिलषित हो, वह वर माँगो, मैं [तुमपर] प्रसन्न हूँ, मैं तुम्हें सम्पूर्ण उत्तम वर प्रदान करूँगा॥ ४२॥

चंद्र उवाच

यदि प्रसन्नो देवेश किमसाध्यं भवेन्मम।
तथापि मे शरीरस्य क्षयं वारय शंकर॥ ४३

क्षंतव्यो मेऽपराधश्च कल्याणं कुरु सर्वदा।
इत्युक्ते च तदा तेन शिवो वचनमब्रवीत्॥ ४४

चन्द्र बोले—हे देवेश! यदि आप [मुझपर] प्रसन्न हैं, तो मेरा कौन-सा कार्य असाध्य रह सकता है; फिर भी हे शंकर! मेरे शरीरके क्षयरोगको दूर कीजिये। आप मेरा अपराध क्षमा करें और निरन्तर कल्याण करें। उनके ऐसा कहनेपर शिवजीने यह वचन कहा—॥ ४३-४४॥

शिव उवाच

पक्षे च क्षीयतां चन्द्र कला ते च दिने दिने।
पुनश्च वर्धतां पक्षे सा कला च निरंतरम्॥ ४५

शिवजी बोले—हे चन्द्र! एक पक्षमें तुम्हारी [एक-एक] कला प्रतिदिन क्षीण होगी और पुनः दूसरे पक्षमें क्रमशः वह कला निरन्तर बढ़ेगी॥ ४५॥

सूत उवाच

एवं सति तदा देवा हर्षनिर्भरमानसाः।
ऋषयश्च तथा सर्वे समाजग्मुर्द्रुतं द्विजाः॥ ४६

सूतजी बोले—हे द्विजो! चन्द्रमाके ऐसा वरदान प्राप्त कर लेनेपर हर्षसे परिपूर्ण चित्तवाले सभी देवता और ऋषि वहाँ शीघ्र ही आये॥ ४६॥

आगत्य च तदा सर्वे चन्द्रायाशिषमब्रुवन्।
शिवं नत्वा करौ बद्ध्वा प्रार्थयामासुरादरात्॥ ४७

वहाँ आकर उन सभीने चन्द्रमाको आशीर्वाद दिया और शिवजीको प्रणाम करके हाथ जोड़कर आदरपूर्वक उनसे प्रार्थना की—॥ ४७॥

देवा ऊचुः

देवदेव महादेव परमेश नमोऽस्तु ते।
उमया सहितः शंभो स्वामिन्नत्र स्थिरो भव॥ ४८

देवता बोले—हे देवदेव! हे महादेव! हे परमेश! आपको नमस्कार है। हे शम्भो! हे स्वामिन्! पार्वतीसहित आप यहाँ स्थिर हो जाइये॥ ४८॥

सूत उवाच

ततश्चन्द्रेण सद्भक्त्या संस्तुतः शंकरः पुरा।
निराकारश्च साकारः पुनश्चैवाभवत्प्रभुः॥ ४९

सूतजी बोले—तब पूर्वमें निराकार भगवान् शिव चन्द्रमाके द्वारा उत्तम भक्तिसे स्तुति किये जानेपर पुनः साकार हो गये॥ ४९॥

प्रसन्नश्च स देवानां क्षेत्रमाहात्म्यहेतवे।
चन्द्रस्य यशसे तत्र नाम्ना चन्द्रस्य शंकरः॥ ५०
सोमेश्वरश्च नाम्नासीद्विख्यातो भुवनत्रये।
क्षयकुष्ठादिरोगाणां नाशकः पूजनाद् द्विजाः॥ ५१

देवताओंपर प्रसन्न होकर वे शंकर उस क्षेत्रके माहात्म्य [वर्धन]-के लिये तथा चन्द्रमाके यशके [विस्तारके] लिये वहाँ उन्हींके नामपर तीनों लोकोंमें सोमेश्वर नामसे विख्यात हुए। हे द्विजो! वे पूजन करनेसे क्षय, कुष्ठ आदि रोगोंका विनाश करते हैं॥ ५०-५१॥

धन्योऽयं कृतकृत्योऽयं यन्नाम्ना शंकरः स्वयम्।
स्थितश्च जगतां नाथः पावयञ्जगतीतलम्॥ ५२
तत्कुण्डं तैश्च तत्रैव सर्वैर्देवैः प्रतिष्ठितम्।
शिवेन ब्रह्मणा तत्र ह्यविभक्तं तु तत्पुनः॥ ५३

ये चन्द्रमा धन्य हैं, ये कृतकृत्य हैं, जिनके नामसे स्वयं जगन्नाथ शंकरजी धरातलको पवित्र करते हुए यहाँ स्थित हुए। वहींपर देवताओंने चन्द्रमाके नामसे चन्द्रकुण्डकी स्थापना की, जहाँ शिव तथा ब्रह्माका सम्मिश्रित निवास माना जाता है॥ ५२-५३॥

चन्द्रकुण्डं प्रसिद्धं च पृथिव्यां पापनाशनम्।
तत्र स्नाति नरो यः स सर्वैः पापैः प्रमुच्यते॥ ५४
रोगाः सर्वे क्षयाद्याश्च ह्यसाध्या ये भवंति वै।
ते सर्वे च क्षयं यान्ति षण्मासं स्नानमात्रतः॥ ५५

पृथ्वीपर प्रसिद्ध वह चन्द्रकुण्ड समस्त पापोंका नाश करनेवाला है। जो मनुष्य वहाँ स्नान करता है, वह सभी पापोंसे मुक्त हो जाता है। उस कुण्डमें छः मासतक निरन्तर स्नान करनेसे क्षय आदि जो भी असाध्य रोग हैं, वे सभी नष्ट हो जाते हैं॥ ५४-५५॥

प्रभासं च परिक्रम्य पृथिवीक्रमसंभवम्।
फलं प्राप्नोति शुद्धात्मा मृतः स्वर्गे महीयते॥ ५६

प्रभासतीर्थकी परिक्रमा करके शुद्धात्मा मनुष्य पृथ्वीकी परिक्रमा करनेसे होनेवाला फल प्राप्त करता है और मरनेपर स्वर्गमें प्रतिष्ठा प्राप्त करता है॥ ५६॥

सोमलिंगं नरो दृष्ट्वा सर्वपापात्प्रमुच्यते।
लब्ध्वा फलं मनोऽभीष्टं मृतः स्वर्गं समीहते॥ ५७

सोमेश्वर लिंगका दर्शनकर मनुष्य सम्पूर्ण पापोंसे मुक्त हो जाता है और [इस लोकमें] मनोवांछित अभीष्ट फल प्राप्तकर मरनेके पश्चात् स्वर्गको जाता है॥ ५७॥

यद्यत्फलं समुद्दिश्य कुरुते तीर्थमुत्तमम्।
तत्तत्फलमवाप्नोति सर्वथा नात्र संशयः॥ ५८

मनुष्य जिस-जिस फलको उद्देश्य करके इस उत्तम तीर्थका सेवन करता है, वह उस-उस फलको अवश्य प्राप्त करता है; इसमें संशय नहीं है॥ ५८॥

इति ते ऋषयो देवाः फलं दृष्ट्वा तथाविधम्।
मुदा शिवं नमस्कृत्य गृहीत्वा चन्द्रमक्षयम्॥ ५९

परिक्रम्य च तत्तीर्थं प्रशंसन्तश्च ते ययुः।
चंद्रश्चापि स्वकीयं च कार्यं चक्रे पुरातनम्॥ ६०

सोमेश्वरके उस प्रकारके फलको देखकर वे देवता एवं ऋषिगण प्रीतिपूर्वक शिवजीको नमस्कारकर क्षयरोग-रहित चन्द्रमाको लेकर उस तीर्थकी परिक्रमा करके उसकी प्रशंसा करते हुए [अपने-अपने धामको] चले गये और चन्द्रमा भी अपना पुरातन कार्य करने लगे॥ ५९-६०॥

इति सर्वः समाख्यातः सोमेशस्य समुद्भवः।
एवं सोमेश्वरं लिंगं समुत्पन्नं मुनीश्वराः॥ ६१

यः शृणोति तदुत्पत्तिं श्रावयेद्वा परान्नरः।
सर्वान्कामानवाप्नोति सर्वपापैः प्रमुच्यते॥ ६२

हे मुनीश्वरो! इस प्रकार मैंने सोमेश्वरकी उत्पत्तिका वर्णन कर दिया। सोमेश्वर लिंग इसी प्रकार प्रकट हुआ था। जो मनुष्य सोमेश्वर लिंगकी उत्पत्तिको सुनता है अथवा दूसरोंको सुनाता है, उसकी सारी कामनाएँ पूर्ण हो जाती हैं और वह सभी प्रकारके पापोंसे मुक्त हो जाता है॥ ६१-६२॥

इति श्रीशिवमहापुराणे चतुर्थ्यां कोटिरुद्रसंहितायां सोमनाथज्योतिर्लिंगोत्पत्तिवर्णनं नाम चतुर्दशोऽध्यायः॥ १४॥

॥ इस प्रकार श्रीशिवमहापुराणके अन्तर्गत चतुर्थ कोटिरुद्रसंहितामें सोमनाथज्योतिर्लिंगोत्पत्तिवर्णन नामक चौदहवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ १४॥

अथ पञ्चदशोऽध्यायः

मल्लिकार्जुन ज्योतिर्लिंगकी उत्पत्ति-कथा

सूत उवाच

अतः परं प्रवक्ष्यामि मल्लिकार्जुनसंभवम्।
यं श्रुत्वा भक्तिमान्धीमान्सर्वपापैः प्रमुच्यते॥ १

सूतजी बोले—[हे ऋषियो!] इसके बाद मैं मल्लिकार्जुनकी उत्पत्तिका वर्णन करूँगा, जिसे सुनकर बुद्धिमान् भक्त सम्पूर्ण पापोंसे मुक्त हो जाता है॥ १॥

पूर्वं च कथितं यच्च तत्पुनः कथयाम्यहम्।
कुमारचरितं दिव्यं सर्वपापविनाशनम्॥ २

पहले मैंने कार्तिकेयके जिस चरित्रका वर्णन किया था, पापोंका नाश करनेवाले उस दिव्य चरित्रका पुनः वर्णन करता हूँ॥ २॥

यदा पृथ्वीं समाक्रम्य कैलासं पुनरागतः।
कुमारः स शिवापुत्रस्तारकारिर्महाबलः॥ ३

तदा सुरर्षिरागत्य सर्वं वृत्तं जगाद ह।
गणेश्वरविवाहादि भ्रामयंस्तं स्वबुद्धितः॥ ४

जब तारकका वध करनेवाले महाबलवान् पार्वतीपुत्र कार्तिकेय पृथ्वीकी परिक्रमाकर कैलासपर पुनः आये, उस समय देवर्षि नारदने वहाँ आकर अपनी बुद्धिसे उन्हें भ्रमित करते हुए गणेशके विवाह आदिका सारा वृत्तान्त कहा॥ ३-४॥

तच्छ्रुत्वा स कुमारो हि प्रणम्य पितरौ च तौ।
जगाम पर्वतं क्रौंचं पितृभ्यां वारितोऽपि हि॥ ५

इसे सुनकर अपने माता-पिताके मना करनेपर भी वे कुमार उनको प्रणामकर क्रौंचपर्वतपर चले गये॥ ५॥

कुमारस्य वियोगेन तन्माता गिरिजा यदा।
दुःखितासीत्तदा शंभुस्तामुवाच सुबोधकृत्॥ ६

कथं प्रिये दुःखितासि न दुःखं कुरु पार्वति।
आयास्यति सुतः सुभ्रूस्त्यज्यतां दुःखमुत्कटम्॥ ७

जब माता पार्वती कार्तिकेयके वियोगसे बहुत दुखी हुईं, तब शिवजीने उन्हें समझाते हुए कहा—हे प्रिये! तुम दुखी क्यों हो रही हो, हे पार्वति! हे सुभ्रू! दुःख मत करो, तुम्हारा पुत्र [अवश्य] लौट आयेगा; तुम इस महान् दुःखका त्याग करो॥ ६-७॥

सा यदा च न तं मेने पार्वती दुःखिता भृशम्।
तदा च प्रेषितास्तत्र शंकरेण सुरर्षयः॥ ८

देवाश्च ऋषयः सर्वे सगणा हि मुदान्विताः।
कुमारानयनार्थं वै तत्र जग्मुः सुबुद्धयः॥ ९

शंकरजीके बारंबार कहनेके बाद भी जब पार्वतीको सन्तोष नहीं हुआ, तो उन्होंने देवताओं तथा ऋषियोंको कुमारके पास भेजा। उसके बाद गणोंको साथ लेकर सभी बुद्धिमान् देवता एवं महर्षि प्रसन्न होकर कुमारको लानेके लिये वहाँ गये॥ ८-९॥

तत्र गत्वा च ते सर्वे कुमारं सुप्रणम्य च।
विज्ञाप्य बहुधाप्येनं प्रार्थनां चक्रुरादरात्॥ १०

देवादिप्रार्थनां तां च शिवाज्ञासंकुलां गुरुः।
न मेने स कुमारो हि महाहंकारविह्वलः॥ ११

वहाँ जाकर कुमारको भलीभाँति प्रणाम करके उन्हें अनेक प्रकारसे समझाकर उन सभीने आदरपूर्वक प्रार्थना की। तब स्वाभिमानसे उद्दीप्त उन कार्तिकेयने शिवजीकी आज्ञासे युक्त उन देवगणोंकी प्रार्थनाको स्वीकार नहीं किया॥ १०-११॥

ततश्च पुनरावृत्य सर्वे ते हि शिवान्तिकम्।
स्वं स्वं स्थानं गता नत्वा प्राप्य शंकरशासनम्॥ १२

तदा च गिरिजा देवी विरहं पुत्रसंभवम्।
शंभुश्च परमं दुःखं प्राप तस्मिन्ननागते॥ १३

तत्पश्चात् वे सभी लोग पुनः शिवजीके समीप लौट आये और उन्हें प्रणामकर शिवजीसे आज्ञा ले अपने-अपने धामको चले गये। तब उनके न लौटनेपर शिवजी एवं पार्वतीको पुत्रवियोगजन्य महान् दुःख प्राप्त हुआ॥ १२-१३॥

अथो सुदुःखितौ दीनौ लोकाचारकरौ तदा।
जग्मतुस्तत्र सुस्नेहात्स्वपुत्रो यत्र संस्थितः॥ १४

इसके बाद वे दोनों लौकिकाचार प्रदर्शित करते हुए अत्यंत दीन एवं दुखी हो परम स्नेहवश वहाँ गये, जहाँ उनके पुत्र कार्तिकेय रहते थे॥ १४॥

स पुत्रश्च कुमाराख्यः पित्रोरागमनं गिरेः।
ज्ञात्वा दूरं गतोऽस्नेहाद्योजनत्रयमेव च॥ १५

तब वे पुत्र कार्तिकेय माता-पिताका आगमन जान स्नेहरहित हो उस पर्वतसे तीन योजन दूर चले गये॥ १५॥

क्रौंचे च पर्वते दूरं गते तस्मिन्स्वपुत्रके।
तौ च तत्र समासीनौ ज्योतीरूपं समाश्रितौ॥ १६

अपने पुत्रके दूर चले जानेपर वे दोनों ज्योतिरूप धारणकर वहीं क्रौंचपर्वतपर विराजमान हो गये॥ १६॥

पुत्रस्नेहातुरौ तौ वै शिवौ पर्वणि पर्वणि।
दर्शनार्थं कुमारस्य स्वपुत्रस्य हि गच्छतः॥ १७

अमावास्यादिने शंभुः स्वयं गच्छति तत्र ह।
पौर्णमासीदिने तत्र पार्वती गच्छति ध्रुवम्॥ १८

पुत्रस्नेहसे व्याकुल हुए वे शिव तथा पार्वती अपने पुत्र कार्तिकेयको देखनेके लिये प्रत्येक पर्वपर वहाँ जाते हैं। अमावास्याके दिन साक्षात् शिव वहाँ जाते हैं तथा पूर्णमासीके दिन पार्वती वहाँ निश्चित रूपसे जाती हैं॥ १७-१८॥

तद्दिनं हि समारभ्य मल्लिकार्जुनसंभवम्।
लिंगं चैव शिवस्यैकं प्रसिद्धं भुवनत्रये॥ १९

उसी दिनसे लेकर मल्लिका (पार्वती) तथा अर्जुन (शिवजी)-का मिलित रूप वह अद्वितीय शिवलिंग तीनों लोकोंमें प्रसिद्ध हुआ॥ १९॥

तल्लिंगं यः समीक्षेत स सर्वैः किल्बिषैरपि।
मुच्यते नात्र सन्देहः सर्वान्कामानवाप्नुयात्॥ २०

दुःखं च दूरतो याति सुखमात्यन्तिकं लभेत्।
जननीगर्भसंभूतं कष्टं नाप्नोति वै पुनः॥ २१

धनधान्यसमृद्धिश्च प्रतिष्ठारोग्यमेव च।
अभीष्टफलसिद्धिश्च जायते नात्र संशयः॥ २२

जो [मनुष्य] उस लिंगका दर्शन करता है, वह सभी पापोंसे मुक्त हो जाता है और समस्त मनोरथोंको प्राप्त कर लेता है; इसमें सन्देह नहीं है। उसका दुःख सर्वथा दूर हो जाता है, वह परम सुख प्राप्त करता है, उसे माताके गर्भमें पुनः कष्ट नहीं भोगना पड़ता है, उसे धन-धान्यकी समृद्धि, प्रतिष्ठा, आरोग्य तथा अभीष्ट फलकी प्राप्ति होती है; इसमें संशय नहीं॥ २०—२२॥

ज्योतिर्लिंगं द्वितीयं च प्रोक्तं मल्लिकसंज्ञितम्।
दर्शनात्सर्वसुखदं कथितं लोकहेतवे॥ २३

यह मल्लिकार्जुन नामवाला दूसरा ज्योतिर्लिंग कहा गया है, जो दर्शनमात्रसे सभी सुख प्रदान करता है; मैंने लोककल्याणके लिये इसका वर्णन किया॥ २३॥

इति श्रीशिवमहापुराणे चतुर्थ्यां कोटिरुद्रसंहितायां मल्लिकार्जुननामकद्वितीयज्योतिर्लिंगवर्णनं नाम पञ्चदशोऽध्यायः॥ १५॥

॥ इस प्रकार श्रीशिवमहापुराणके अन्तर्गत चतुर्थ कोटिरुद्रसंहितामें मल्लिकार्जुन नामवाले द्वितीय ज्योतिर्लिंगका वर्णन नामक पन्द्रहवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ १५॥

अथ षोडशोऽध्यायः

महाकालेश्वर ज्योतिर्लिंगके प्राकट्यका वर्णन

ऋषय ऊचुः

सूत सर्वं विजानासि वस्तु व्यासप्रसादतः।
ज्योतिषां च कथां श्रुत्वा तृप्तिर्नैव प्रजायते॥ १

तस्मात्त्वं हि विशेषेण कृपां कृत्वातुलां प्रभो।
ज्योतिर्लिंगं तृतीयं च कथय त्वं हि नोऽधुना॥ २

ऋषि बोले—हे सूतजी! आप व्यासजीकी कृपासे सब कुछ जानते हैं; इन ज्योतिर्लिंगोंकी कथा सुनकर हमें तृप्ति नहीं हो रही है। अतः हे प्रभो! हमलोगोंपर विशेषरूपसे अतुलनीय कृपा करके अब आप तीसरे ज्योतिर्लिंगका वर्णन कीजिये॥ १-२॥

सूत उवाच

धन्योऽहं कृतकृत्योऽहं श्रीमतां भवतां यदि।
गतश्च संगमं विप्रा धन्या वै साधुसंगतिः॥ ३

अतो मत्वा स्वभाग्यं हि कथयिष्यामि पावनीम्।
पापप्रणाशिनीं दिव्यां कथां च शृणुतादरात्॥ ४

सूतजी बोले—हे ब्राह्मणो! आप श्रीमानोंकी संगति प्राप्तकर मैं धन्य एवं कृतकृत्य हो गया; क्योंकि सज्जनोंकी संगति धन्य होती है। अतः मैं इसे अपना सौभाग्य मानकर पवित्र, पापका नाश करनेवाली तथा दिव्य कथाको कहूँगा; आपलोग आदरपूर्वक सुनिये॥ ३-४॥

अवन्ती नगरी रम्या मुक्तिदा सर्वदेहिनाम्।
शिवप्रिया महापुण्या वर्तते लोकपावनी॥ ५

शिवजीको प्रिय, परमपुण्यमयी, संसारको पवित्र करनेवाली तथा समस्त प्राणियोंको मुक्ति देनेवाली मनोहर अवन्ती नामक [एक प्रसिद्ध] नगरी है॥ ५॥

तत्रासीद् ब्राह्मणश्रेष्ठः शुभकर्मपरायणः।
वेदाध्ययनकर्ता च वेदकर्मरतः सदा॥ ६

अग्न्याधानसमायुक्तः शिवपूजारतः सदा।
पार्थिवीं प्रत्यहं मूर्तिं पूजयामास वै द्विजः॥ ७

वहाँपर शुभ आचरणमें तत्पर, वेदाध्ययन करनेवाले तथा नित्य वैदिक अनुष्ठानमें निरत एक श्रेष्ठ ब्राह्मण रहते थे। वे ब्राह्मण नित्य अग्निहोत्र करते और शिवपूजामें संलग्न रहते थे; वे प्रतिदिन पार्थिव लिंगका पूजन करते थे॥ ६-७॥

सर्वकर्मफलं प्राप्य द्विजो वेदप्रियः सदा।
सतां गतिं समालेभे सम्यज्ज्ञानपरायणः॥ ८

तत्पुत्रास्तादृशाश्चासंश्चत्वारो मुनिसत्तमाः।
शिवपूजारता नित्यं पित्रोरनवमाः सदा॥ ९

देवप्रियश्च तज्ज्येष्ठः प्रियमेधास्ततः परम्।
तृतीयः सुकृतो नाम धर्मवाही च सुव्रतः॥ १०

उन वेदप्रिय ब्राह्मणने सारे कर्मोंका फल प्राप्तकर भलीभाँति ज्ञानपरायण होकर अन्तमें सज्जनोंकी गति प्राप्त की। हे मुनीश्वरो! उनके चारों पुत्र भी उसी प्रकार शिवपूजामें तत्पर तथा सदा माता-पिताकी आज्ञा माननेवाले थे। उनमें सबसे बड़ा देवप्रिय, उसके बाद प्रियमेधा, तीसरा सुकृत नामवाला और चौथा धर्मनिष्ठ सुव्रत था॥ ८—१०॥

तेषां पुण्यप्रतापाच्च पृथिव्यां सुखमैधत।
शुक्लपक्षे यथा चन्द्रो वर्धते च निरंतरम्॥ ११
तथा तेषां गुणास्तत्र वर्धन्ते स्म सुखावहाः।
ब्रह्मतेजोमयी सा वै नगरी चाभवत्तदा॥ १२

उनके पुण्यप्रतापसे पृथ्वीपर सुख बढ़ रहा था। जैसे शुक्लपक्षमें चन्द्रमा बढ़ता है, उसी प्रकार उनके सुखदायक गुण भी वहाँ निरन्तर बढ़ रहे थे। उस समय वह नगरी ब्रह्मतेजसे सम्पन्न हो गयी॥ ११-१२॥

एतस्मिन्नन्तरे तत्र यज्जातं वृत्तमुत्तमम्।
श्रूयतां तद् द्विजश्रेष्ठाः कथयामि यथाश्रुतम्॥ १३

हे श्रेष्ठ द्विजो! इसी बीच वहाँ जो उत्तम घटना घटी, उसे सुनिये; जैसा कि मैंने सुना है, वैसा कह रहा हूँ॥ १३॥

पर्वते रत्नमाले च दूषणाख्यो महासुरः।
बलवान्दैत्यराजश्च धर्मद्वेषी निरन्तरम्॥ १४
ब्रह्मणो वरदानाच्च जगत्तुच्छीचकार ह।
देवाः पराजितास्तेन स्थानान्निःसारितास्तथा॥ १५

रत्नमालपर्वतपर दूषण नामक एक महान् असुर रहता था। धर्मसे द्वेष करनेवाला वह महाबलवान् दैत्यराज ब्रह्माजीके वरदानसे जगत्‌को तुच्छ समझता था। उसने देवगणोंको पराजितकर उन्हें उनके स्थानसे निकाल दिया॥ १४-१५॥

पृथिव्यां वेदधर्मांश्च स्मृतिधर्मांश्च सर्वशः।
स्फोटितास्तेन दुष्टेन सिंहेनेव शशाः खलु॥ १६
यावंतो वेदधर्मांश्च तावंतो दूरतः कृताः।
तीर्थे तीर्थे तथा क्षेत्रे धर्मो नीतश्च दूरतः॥ १७

उस दुष्टने पृथ्वीपर सभी प्रकारके वेदधर्मों तथा स्मृतिधर्मोंको उसी प्रकार नष्ट कर दिया, जैसे सिंह खरगोशोंको नष्ट कर देता है। जितने भी वेदधर्म थे, उन सबको उसने नष्ट कर दिया और प्रत्येक तीर्थ तथा क्षेत्रसे धर्मको दूर हटा दिया॥ १६-१७॥

अवंती नगरी रम्या तत्रैका दृश्यते पुनः।
इत्थं विचार्य तेनैव यत्कृतं श्रूयतां हि तत्॥ १८

'एकमात्र रम्य अवन्ती नगरी ही दिखायी दे रही है', [जहाँ वैदिक धर्म अभी प्रतिष्ठित है]—ऐसा विचारकर उसने जो किया, उसे आप लोग सुनें॥ १८॥

बहुसैन्यसमायुक्तो दूषणः स महासुरः।
तत्रस्थान्ब्राह्मणान्सर्वानुद्दिश्य समुपाययौ॥ १९
तत्रागत्य स दैत्येन्द्रश्चतुरो दैत्यसत्तमान्।
प्रोवाचाहूय वचनं विप्रद्रोही महाखलः॥ २०

उस महान् असुर दूषणने बहुत बड़ी सेना लेकर वहाँ रहनेवाले सभी ब्राह्मणोंको उद्देश्य करके चढ़ाई कर दी। वहाँ आकर विप्रद्रोही एवं महाखल उस दैत्येन्द्रने अपने चार दैत्यश्रेष्ठ सेनापतियोंको बुलाकर यह वचन कहा—॥ १९-२०॥

दैत्य उवाच

किमेते ब्राह्मणा दुष्टा न कुर्वंति वचो मम।
वेदधर्मरता एते सर्वे दंड्या मते मम॥ २१

दैत्य बोला—ये दुष्ट ब्राह्मण मेरी आज्ञाका पालन क्यों नहीं करते हैं? अतः मेरे विचारसे वेदधर्ममें तत्पर ये सब दण्डके योग्य हैं॥ २१॥

सर्वे देवा मया लोके राजानश्च पराजिताः।
वशे किं ब्राह्मणाः शक्या न कर्तुं दैत्यसत्तमाः॥ २२

हे दैत्यसत्तमो! मैंने संसारमें सभी देवताओं तथा राजाओंको पराजित कर दिया है; क्या इन ब्राह्मणोंको वशमें नहीं किया जा सकता है?॥ २२॥

यदि जीवितुमिच्छा स्यात्तदा धर्मं शिवस्य च।
वेदानां परमं धर्मं त्यक्त्वा सुखसुभागिनः॥ २३
अन्यथा जीवने तेषां संशयश्च भविष्यति।
इति सत्यं मया प्रोक्तं तत्कुरुध्वं विशंकिताः॥ २४

यदि ये लोग जीना चाहते हैं, तो शिवधर्म तथा वेदोंके परम धर्मका त्यागकर सुख प्राप्त करें; अन्यथा इनके जीवित रहनेमें संशय हो जायगा, मैं यह सत्य कहता हूँ, तुमलोग निःशंक होकर इस कार्यको करो॥ २३-२४॥

सूत उवाच

इति निश्चित्य ते दैत्याश्चत्वारः पावका इव।
चतुर्दिक्षु तदा जाताः प्रलये च यथा पुरा॥ २५
ते ब्राह्मणास्तदा श्रुत्वा दैत्यानामुद्यमं तदा।
न दुःखं लेभिरे तत्र शिवध्यानपरायणाः॥ २६

सूतजी बोले—इस प्रकार विचारकर वे चारों दैत्य चारों दिशाओंमें प्रलयकालीन अग्निके समान प्रज्वलित हो उठे। तब दैत्योंके इस प्रयासको सुनकर भी उस समय शिवध्यानपरायण उन ब्राह्मणोंको कुछ भी दुःख नहीं हुआ॥ २५-२६॥

धैर्यं समाश्रितास्ते च रेखामात्रं तदा द्विजाः।
न चेलुः परमध्यानाद्वराकाः के शिवाग्रतः॥ २७

एतस्मिन्नन्तरे तैस्तु व्याप्तासीन्नगरी शुभा।
लोकाश्च पीडितास्तैस्तु ब्राह्मणान्समुपाययुः॥ २८

उस समय वे ब्राह्मण शिवध्यानसे रेखामात्र भी विचलित नहीं हुए और धैर्य धारण किये रहे; शिवजीके आगे वे बेचारे दैत्य क्या हैं! इसी बीच वह उत्तम नगरी दैत्योंसे व्याप्त हो गयी। तब उन दैत्योंसे पीड़ित सभी लोग ब्राह्मणोंके पास आये॥ २७-२८॥

लोका ऊचुः

स्वामिनः किं च कर्तव्यं दुष्टाश्च समुपागताः।
हिंसिता बहवो लोका आगताश्च समीपतः॥ २९

लोग बोले—हे स्वामियो! अब क्या करना चाहिये; वे दुष्ट आ गये हैं, उन्होंने बहुतसे लोगोंको मार डाला, इसलिये हमलोग आपके पास आये हैं॥ २९॥

सूत उवाच

तेषामिति वचः श्रुत्वा वेदप्रियसुताश्च ते।
समूचुर्ब्राह्मणाँस्तान्वै विश्वस्ताः शंकरे सदा॥ ३०

सूतजी बोले—उन लोगोंकी यह बात सुनकर शिवमें सदा विश्वास करनेवाले वे ब्राह्मण वेदप्रियके पुत्र उन लोगोंसे कहने लगे—॥ ३०॥

ब्राह्मणा ऊचुः

श्रूयतां विद्यते नैव बलं दुष्टभयावहम्।
न शस्त्राणि तथा सन्ति यच्च ते विमुखाः पुनः॥ ३१

ब्राह्मण बोले—आपलोग सुनिये, हमारे पास दुष्टोंको भय देनेवाला सैन्यबल नहीं है और न शस्त्र ही हैं, जिससे हम उन्हें पराजित कर सकें॥ ३१॥

सामान्यस्यापमानो नो ह्याश्रयस्य भवेदिह।
पुनश्च किं समर्थस्य शिवस्येह भविष्यति॥ ३२

सामान्य व्यक्तिका आश्रय लेनेपर भी मनुष्यका अपमान नहीं होता; फिर हमलोग तो सर्वसमर्थ शिवजीके आश्रित हैं, हमारा अपमान ये असुर किस प्रकार कर सकते हैं!॥ ३२॥

शिवो रक्षां करोत्वद्यासुराणां भयतः प्रभुः।
नान्यथा शरणं लोके भक्तवत्सलतः शिवात्॥ ३३

अतः भगवान् शिव ही असुरोंके भयसे हमारी रक्षा करेंगे। भक्तवत्सल सदाशिवको छोड़कर संसारमें अब हमें कोई शरण देनेवाला नहीं है॥ ३३॥

सूत उवाच

इति धैर्यं समास्थाय समर्चां पार्थिवस्य च।
कृत्वा ते च द्विजाः सम्यक् स्थिता ध्यानपरायणाः।
दृष्टा दैत्येन तावच्च ते विप्राः सबलेन हि॥ ३४
दूषणेन वचः प्रोक्तं हन्यतां वध्यतामिति।
तच्छ्रुतं तैस्तदा नैव दैत्यप्रोक्तं वचो द्विजैः।
वेदप्रियसुतैः शंभोर्ध्याननमार्गपरायणैः॥ ३५

सूतजी बोले—इस प्रकार वे ब्राह्मण धैर्य धारणकर भलीभाँति पार्थिव-पूजनकर शिवजीके ध्यानमें तत्पर रहे। उसी समय उस बलवान् दूषण दैत्यने उन ब्राह्मणोंको देखा और यह वचन कहा—इनको मारो, इनका वध कर दो। किंतु शिवके ध्यानमें परायण उन वेदप्रियके पुत्रोंने उस दैत्यके द्वारा कहा गया वचन नहीं सुना॥ ३४-३५॥

अथ यावत्स दुष्टात्मा हन्तुमैच्छद् द्विजांश्च तान्।
तावच्च पार्थिवस्थाने गर्त आसीत्सशब्दकः॥ ३६

उसके बाद ज्यों ही उस दुष्टात्माने उन ब्राह्मणोंको मारना चाहा, तभी उस पार्थिवके स्थानपर शब्द करता हुआ एक गड्ढा हो गया॥ ३६॥

गर्तात्ततः समुत्पन्नः शिवो विकटरूपधृक्।
महाकाल इति ख्यातो दुष्टहंता सतां गतिः॥ ३७

महाकालः समुत्पन्नो दुष्टानां त्वादृशामहम्।
खल त्वं ब्राह्मणानां हि समीपाद् दूरतो व्रज॥ ३८

इत्युक्त्वा हुंकृतेनैव भस्मसात्कृतवांस्तदा।
दूषणं च महाकालः शंकरः सबलं द्रुतम्॥ ३९

कियत्सैन्यं हतं तेन किंचित्सैन्यं पलायितम्।
दूषणश्च हतस्तेन शिवेनेह परात्मना॥ ४०

सूर्यं दृष्ट्वा यथा याति संक्षयं सर्वशस्तमः।
तथैव च शिवं दृष्ट्वा तत्सैन्यं विननाश ह॥ ४१

देवदुन्दुभयो नेदुः पुष्पवृष्टिः पपात ह।
देवाः समाययुः सर्वे हरिब्रह्मादयस्तथा॥ ४२

भक्त्या प्रणम्य तं देवं शंकरं लोकशंकरम्।
तुष्टुवुर्विविधैः स्तोत्रैः कृतांजलिपुटा द्विजाः॥ ४३

ब्राह्मणांश्च समाश्वास्य सुप्रसन्नः शिवः स्वयम्।
वरं ब्रूतेति चोवाच महाकालो महेश्वरः॥ ४४

तच्छ्रुत्वा ते द्विजाः सर्वे कृताञ्जलिपुटास्तदा।
सुप्रणम्य शिवं भक्त्या प्रोचुः सन्नतमस्तकाः॥ ४५

द्विजा ऊचुः

महाकाल महादेव दुष्टदण्डकर प्रभो।
मुक्तिं प्रयच्छ नः शंभो संसाराम्बुधितः शिव॥ ४६

अत्रैव लोकरक्षार्थं स्थातव्यं हि त्वया शिव।
स्वदर्शकान्नरान् शम्भो तारय त्वं सदा प्रभो॥ ४७

सूत उवाच

इत्युक्तस्तैः शिवस्तत्र तस्थौ गर्ते सुशोभने।
भक्तानां चैव रक्षार्थं दत्त्वा तेभ्यश्च सद्गतिम्॥ ४८

द्विजास्ते मुक्तिमापन्नाश्चतुर्दिक्षु शिवास्पदम्।
क्रोशमात्रं तदा जातं लिंगरूपिण एव च॥ ४९

उस गड्ढेसे विकटरूपधारी, महाकाल नामसे विख्यात, दुष्टोंका संहार करनेवाले एवं सज्जनोंको गति देनेवाले शिवजी प्रकट हो गये॥ ३७॥

'अरे दुष्ट! [मैं महाकाल हूँ और] तुम्हारे जैसे दुष्टोंके लिये महाकालरूपमें प्रकट हुआ हूँ; तुम इन ब्राह्मणोंके समीपसे दूर भाग जाओ'—ऐसा कहकर महाकाल शंकरने हुंकारमात्रसे ही सैन्यसहित उस दूषणको शीघ्र भस्म कर दिया॥ ३८-३९॥

उन्होंने कुछ सैनिकोंको मार डाला और कुछ सेना भाग गयी। उन परमात्मा शिवने वहींपर दूषणका वध कर दिया। जिस प्रकार सूर्यको देखकर अन्धकार पूर्ण रूपसे नष्ट हो जाता है, उसी प्रकार शिवको देखकर उसकी सेना विनष्ट हो गयी॥ ४०-४१॥

उस समय देवताओंकी दुन्दुभियाँ बजने लगीं और फूलोंकी वर्षा होने लगी। ब्रह्मा, विष्णु आदि सभी देवता वहाँपर उपस्थित हो गये। ब्राह्मणोंने हाथ जोड़कर लोककल्याण करनेवाले उन भगवान् शंकरको भक्तिपूर्वक प्रणाम करके अनेक प्रकारके स्तोत्रोंसे उनकी स्तुति की॥ ४२-४३॥

तब महाकालरूपधारी स्वयं महेश्वरने प्रसन्न होकर उन ब्राह्मणोंको आश्वस्त करके उनसे कहा—'वर माँगिये'। तब यह सुनकर वे सभी ब्राह्मण हाथ जोड़कर तथा सिर झुकाकर भक्तिपूर्वक शिवजीको प्रणाम करके कहने लगे॥ ४४-४५॥

द्विज बोले—हे महाकाल! हे महादेव! दुष्टोंको दण्ड देनेवाले हे प्रभो! हे शम्भो! हे शिव! आप हमें संसारसागरसे मुक्ति दीजिये। हे शिव! हे शम्भो! हे प्रभो! आप संसारकी रक्षाके लिये यहींपर निवास करें और अपने दर्शन करनेवाले मनुष्योंका आप सदा उद्धार कीजिये॥ ४६-४७॥

सूतजी बोले—उनके ऐसा कहनेपर शिवजी उन्हें सद्गति प्रदानकर भक्तोंके रक्षार्थ उस परम सुन्दर गर्तमें स्थित हो गये॥ ४८॥

इस प्रकार वे ब्राह्मण मुक्त हो गये और वहाँ चारों दिशाओंमें एक कोस परिमाणवाला स्थान लिंगरूपी शिवजीका कल्याणमय क्षेत्र हो गया॥ ४९॥

महाकालेश्वरो नाम शिवः ख्यातश्च भूतले।
तं दृष्ट्वा न भवेत्स्वप्ने किंचिद्दुःखमपि द्विजाः ॥ ५०

यं यं काममपेक्ष्यैव तल्लिंगं भजते तु यः।
तं तं काममवाप्नोति लभेन्मोक्षं परत्र च॥ ५१

एतत्सर्वं समाख्यातं महाकालस्य सुव्रताः।
समुद्भवश्च माहात्म्यं किमन्यच्छ्रोतुमिच्छथ॥ ५२

तभीसे महाकालेश्वर नामक शिव पृथ्वीपर प्रसिद्ध हुए। हे द्विजो! उनका दर्शन करनेसे स्वप्नमें भी कोई दुःख नहीं होता है। जो मनुष्य जिस-जिस कामनाकी अपेक्षा करके उस लिंगकी उपासना करता है, वह उस मनोरथको प्राप्त कर लेता है और परलोकमें मोक्ष भी प्राप्त करता है। हे सुव्रतो! महाकालकी उत्पत्ति तथा उनका माहात्म्य—मैंने कह दिया; अब आपलोग और क्या सुनना चाहते हैं?॥ ५०—५२ ॥

इति श्रीशिवमहापुराणे चतुर्थ्यां कोटिरुद्रसंहितायां महाकालज्योतिर्लिंगमाहात्म्यवर्णनं नाम षोडशोऽध्यायः ॥ १६ ॥

॥ इस प्रकार श्रीशिवमहापुराणके अन्तर्गत चतुर्थ कोटिरुद्रसंहितामें महाकाल-ज्योतिर्लिंग-माहात्म्यवर्णन नामक सोलहवाँ अध्याय पूर्ण हुआ ॥ १६ ॥

अथ सप्तदशोऽध्यायः

महाकाल ज्योतिर्लिंगके माहात्म्य-वर्णनके क्रममें राजा चन्द्रसेन तथा श्रीकर गोपका वृत्तान्त

ऋषय ऊचुः

महाकालसमाह्वस्थज्योतिर्लिंगस्य रक्षिणः।
भक्तानां महिमानं च पुनर्ब्रूहि महामते॥ १

सूत उवाच

शृणुतादरतो विप्रा भक्तरक्षाविधायिनः।
महाकालस्य लिंगस्य माहात्म्यं भक्तिवर्धनम्॥ २
उज्जयिन्यामभूद्राजा चन्द्रसेनाह्वयो महान्।
सर्वशास्त्रार्थतत्त्वज्ञः शिवभक्तो जितेन्द्रियः॥ ३

ऋषि बोले—हे महामते! भक्तजनोंकी रक्षा करनेवाले महाकाल नामसे विराजमान ज्योतिर्लिंगके माहात्म्यका पुनः वर्णन कीजिये॥ १॥

सूतजी बोले—हे ब्राह्मणो! भक्तोंकी रक्षा करनेवाले महाकाल नामक ज्योतिर्लिंगका भक्तिवर्धक माहात्म्य आदरपूर्वक सुनिये। उज्जयिनी नगरीमें चन्द्रसेन नामक एक महान् राजा था, जो सभी शास्त्रोंके तात्पर्यको तत्त्वतः जाननेवाला, शिवभक्त तथा जितेन्द्रिय था॥ २-३॥

तस्याभवत्सखा राज्ञो मणिभद्रो गणो द्विजाः।
गिरीशगणमुख्यश्च सर्वलोकनमस्कृतः॥ ४

उस राजाका मित्र महादेवके गणोंमें प्रमुख मणिभद्र नामक गण था; वह समस्त लोगोंद्वारा नमस्कृत था॥ ४॥

एकदा स गणेन्द्रो हि प्रसन्नास्यो महामणिम्।
मणिभद्रो ददौ तस्मै चिंतामणिमुदारधीः॥ ५

स वै मणिः कौस्तुभवद् द्योतमानोऽर्कसन्निभः।
ध्यातो दृष्टः श्रुतो वापि मंगलं यच्छति ध्रुवम्॥ ६

किसी समय उदारबुद्धिवाले उस गणाध्यक्ष मणिभद्रने प्रसन्न होकर उसे चिन्तामणि नामक उत्तम मणि प्रदान की। सूर्यसदृश प्रकाश करनेवाली वह मणि कौस्तुभमणिके समान ध्यान करने, दर्शन करने तथा सुननेमात्रसे निश्चय ही कल्याण प्रदान करती थी॥ ५-६॥

तस्य कांतितलस्पृष्टं कांस्यं ताम्रमयस्त्रपु।
पाषाणादिकमन्यद्वा द्रुतं भवति हाटकम्॥ ७

स तु चिन्तामणिं कंठे बिभ्रद् राजा शिवाश्रयः।
चन्द्रसेनो रराजाति देवमध्ये च भानुमान्॥ ८

उसके प्रकाशतलका स्पर्श पाते ही काँसा, ताँबा, लौह, शीशा, पाषाण तथा अन्य [धातु-खनिज आदि] भी शीघ्र ही सुवर्ण हो जाते थे। उस चिन्तामणिको गलेमें धारण करके वह परम शिवभक्त राजा चन्द्रसेन इस प्रकार शोभित होता था, जैसे देवगणोंके बीच सूर्य शोभित होते हैं॥ ७-८॥

श्रुत्वा चिन्तामणिग्रीवं चन्द्रसेनं नृपोत्तमम्।
निखिलाः क्षितिराजानस्तृष्णाक्षुब्धहृदोऽभवन्॥ ९

चिन्तामणिसे युक्त ग्रीवावाले नृपश्रेष्ठ चन्द्रसेनके विषयमें सुनकर पृथ्वीके समस्त राजा उस मणिको लेनेके लिये आतुर मनवाले हो गये॥ ९॥

नृपा मत्सरिणः सर्वे तं मणिं चन्द्रसेनतः।
नानोपायैरयाचंत देवलब्धमबुद्धयः॥ १०

उन मूर्ख एवं मत्सरग्रस्त राजाओंने देवलब्ध उस मणिको अनेक उपायोंके द्वारा चन्द्रसेनसे माँगा॥ १०॥

सर्वेषां भूभृतां याच्ञा चन्द्रसेनेन तेन वै।
व्यर्थीकृता महाकालदृढभक्तेन भूसुराः॥ ११
ते कदर्थीकृताः सर्वे चन्द्रसेनेन भूभृता।
राजानः सर्वदेशानां संरम्भं चक्रिरे तदा॥ १२
अथ ते सर्वराजानश्चतुरंगबलान्विताः।
चन्द्रसेनं रणे जेतुं संबभूवुः किलोद्यताः॥ १३

किंतु हे ब्राह्मणो! महाकालमें दृढ़ भक्ति रखनेवाले उस चन्द्रसेनने सभी राजाओंकी याचना निष्फल कर दी। तब राजा चन्द्रसेनसे इस प्रकार तिरस्कृत हुए सभी देशोंके समस्त राजाओंने खलबली मचा दी। इसके बाद वे सभी राजा चतुरंगिणी सेनासे युक्त होकर उस चन्द्रसेनको युद्धमें जीतनेके लिये भलीभाँति उद्यत हो गये॥ ११—१३॥

ते तु सर्वे समेता वै कृतसंकेतसंविदः।
उज्जयिन्याश्चतुर्द्वारं रुरुधुर्बहुसैनिकाः॥ १४

आपसमें मिले हुए उन सभी राजाओंने एक-दूसरेको संकेतसे अपना मनोभाव समझाकर बहुत सारे सैनिकोंके साथ मिलकर उज्जयिनीके चारों द्वारोंको घेर लिया॥ १४॥

संरुध्यमानां स्वपुरीं दृष्ट्वा निखिलराजभिः।
तमेव शरणं राजा महाकालेश्वरं ययौ॥ १५
निर्विकल्पो निराहारः स नृपो दृढनिश्चयः।
समानर्च महाकालं दिवानक्तमनन्यधीः॥ १६

तब अपनी नगरीको समस्त राजाओंके द्वारा घिरी देखकर वह राजा उन्हीं महाकालेश्वरकी शरणमें गया। वह राजा निर्विकल्प होकर तथा निराहार रहकर दृढ़ निश्चयपूर्वक एकाग्रचित्त हो दिन-रात महाकालका अर्चन करने लगा॥ १५-१६॥

ततः स भगवाञ्छंभुर्महाकालः प्रसन्नधीः।
तं रक्षितुमुपायं वै चक्रे तं शृणुतादरात्॥ १७

इसके बाद महाकाल भगवान् शिवजीने प्रसन्नचित्त होकर उस राजाकी रक्षा करनेके लिये जो उपाय किया, उसे आपलोग आदरपूर्वक सुनिये॥ १७॥

तदैव समये गोपी काचित्तत्र पुरोत्तमे।
चरंती सशिशुर्विप्रा महाकालान्तिकं ययौ॥ १८

हे विप्रो! उसी समय कोई ग्वालिन बालकसहित उस उत्तम नगरमें घूमती हुई महाकालके निकट पहुँची॥ १८॥

पञ्चाब्दवयसं बालं वहन्ती गतभर्तृका।
राज्ञा कृतां महाकालपूजां सापश्यदादरात्॥ १९

सा दृष्ट्वा सुमहाश्चर्यां शिवपूजां च तत्कृताम्।
प्रणिपत्य स्वशिविरं पुनरेवाभ्यपद्यत॥ २०

पाँच वर्षकी अवस्थावाले बालकको लिये हुए वह विधवा ग्वालिन राजाके द्वारा की जाती हुई महाकालकी पूजाको आदरपूर्वक देखने लगी। राजाके द्वारा की गयी उस आश्चर्यजनक शिवपूजाको देख करके शिवजीको प्रणामकर वह पुनः अपने शिविरमें लौट गयी॥ १९-२०॥

एतत्सर्वमशेषेण स दृष्ट्वा वल्लवीसुतः।
कुतूहलेन तां कर्तुं शिवपूजां मनो दधे॥ २१

यह सब अच्छी तरह देखकर उस गोपीपुत्रने कौतूहलवश उस शिवपूजनको करनेका विचार किया॥ २१॥

आनीय हृद्यं पाषाणं शून्ये तु शिविरान्तरे।
अविदूरे स्वशिविराच्छिवलिंगं स भक्तितः॥ २२

गन्धालंकारवासोभिर्धूपदीपाक्षतादिभिः ।
विधाय कृत्रिमैर्द्रव्यैर्नैवेद्यं चाप्यकल्पयत्॥ २३

भूयो भूयः समभ्यर्च्य पत्रैः पुष्पैर्मनोरमैः।
नृत्यं च विविधं कृत्वा प्रणनाम पुनः पुनः॥ २४

उसने अपने शिविरके सन्निकट किसी दूसरे सूने शिविरमें अत्यन्त मनोहर पाषाण लाकर भक्तिपूर्वक उसे स्थापित किया और गन्ध, आभूषण, वस्त्र, धूप, दीप, अक्षत आदि कृत्रिम द्रव्योंसे शिवजीका पूजनकर नैवेद्य भी चढ़ाया। पुनः मनोहर बिल्वपत्रों एवं पुष्पोंसे बार-बार शिवपूजनकर अनेक प्रकारका नृत्य करके शिवको बार-बार प्रणाम किया॥ २२—२४॥

एतस्मिन्समये पुत्रं शिवासक्तसुचेतसम्।
प्रणयाद्गोपिका सा तं भोजनाय समाह्वयत्॥ २५

उसी समय उस ग्वालिनने शिवमें आसक्त हुए श्रेष्ठ मनवाले अपने पुत्रको स्नेहसे भोजनके लिये बुलाया॥ २५॥

यदाहूतोऽपि बहुशः शिवपूजाक्तमानसः।
बालश्च भोजनं नैच्छत्तदा तत्र ययौ प्रसूः॥ २६

जब शिवभक्तिमें सने हुए चित्तवाले उस बालकने बार-बार बुलाये जानेपर भी भोजनकी इच्छा नहीं की, तब उसकी माता [स्वयं] वहाँ गयी॥ २६॥

तं विलोक्य शिवस्याग्रे निषण्णं मीलितेक्षणम्।
चकर्ष पाणिं संगृह्य कोपेन समताडयत्॥ २७

आकृष्टस्ताडितश्चापि नागच्छत् स्वसुतो यदा।
तां पूजां नाशयामास क्षिप्त्वा लिंगं च दूरतः॥ २८

आँखें बन्द किये हुए उसे शिवजीके आगे बैठा हुआ देखकर उसका हाथ पकड़कर खींचा और क्रोधपूर्वक मारा। किंतु खींचने और मारनेपर भी जब उसका पुत्र नहीं आया, तब उसने शिवलिंगको दूर फेंककर उसकी पूजाको नष्ट कर दिया॥ २७-२८॥

हाहेति दूयमानं तं निर्भर्त्स्य स्वसुतं च सा।
पुनर्विवेश स्वगृहं गोपी क्रोधसमन्विता॥ २९

मात्रा विनाशितां पूजां दृष्ट्वा देवस्य शूलिनः।
देवदेवेति चुक्रोश निपपात स बालकः॥ ३०

इसके बाद 'हाय! हाय!' कहकर दुखी होते हुए अपने पुत्रको झिड़ककर क्रोधयुक्त वह ग्वालिन पुनः अपने घरमें प्रविष्ट हो गयी। तब वह बालक [अपनी] माताके द्वारा भगवान् शिवके पूजनको नष्ट किया गया देखकर देव! देव! इस प्रकार कहकर चीखने लगा और [पृथ्वीपर] गिर पड़ा॥ २९-३०॥

प्रनष्टसंज्ञः सहसा स बभूव शुचाकुलः।
लब्धसंज्ञो मुहूर्तेन चक्षुषी उदमीलयत्॥ ३१

तदैव जातं शिविरं महाकालस्य सुन्दरम्।
ददर्श स शिशुस्तत्र शिवानुग्रहतोऽचिरात्॥ ३२

इसके बाद शोकाकुल होनेके कारण वह सहसा मूर्च्छित हो गया; फिर दो घड़ी बाद चेतनामें आनेपर उसने अपने दोनों नेत्र खोले। शिवजीकी कृपासे उसी क्षण वहाँपर महाकालका सुन्दर शिविर (देवालय) बन गया, जिसे उस बालकने देखा॥ ३१-३२॥

हिरणमयबृहद् द्वारं कपाटवरतोरणम्।
महार्हनीलविमलवज्रवेदीविराजितम् ॥ ३३

संतप्तहेमकलशैर्विचित्रैर्बहुभिर्युतम् ।
प्रोद्भासितमणिस्तंभैर्बद्धस्फटिकभूतलैः ॥ ३४

उस शिवालयके स्वर्णमय बड़े-बड़े दरवाजे थे, उसमें सुन्दर किवाड़ तथा वन्दनवार लगे हुए थे और वह बहुमूल्य इन्द्रनील मणि तथा उज्ज्वल हीरेकी वेदीसे सुशोभित हो रहा था। वह विचित्रतायुक्त बहुत-से तप्त-सुवर्णनिर्मित कलशोंसे युक्त था और मणिके खम्भोंसे जगमगाते हुए तथा स्फटिक मणिके बने हुए भूतल (फर्श)-से शोभायमान हो रहा था॥ ३३-३४॥

तन्मध्ये रत्नलिंगं हि शंकरस्य कृपानिधेः।
स्वकृतार्चनसंयुक्तमपश्यद्गोपिकासुतः ॥ ३५

उस गोपीपुत्रने उस (देवालय)-के बीचमें कृपानिधि शिवजीका रत्नमय ज्योतिर्लिंग देखा, जो उसकी पूजन-सामग्रीसे सर्वथा अलंकृत था॥ ३५॥

स दृष्ट्वा सहसोत्थाय शिशुर्विस्मितमानसः।
संनिमग्न इवासीद्वै परमानंदसागरे॥ ३६

यह सब देख वह बालक सहसा उठकर खड़ा हो गया। उसे मनमें बड़ा आश्चर्य हुआ और वह उठकर आनन्दसागरमें मानो निमग्न हो गया॥ ३६॥

ततः स्तुत्वा स गिरिशं भूयो भूयः प्रणम्य च।
सूर्ये चास्तंगते बालो निर्जगाम शिवालयात्॥ ३७

अथापश्यत्स्वशिविरं पुरंदरपुरोपमम्।
सद्यो हिरण्मयीभूतं विचित्रं परमोज्ज्वलम्॥ ३८

तदनन्तर बारंबार शिवकी स्तुति तथा प्रणाम करके सूर्यास्त होनेपर वह बालक शिवालयसे [अपने शिविरमें] चला गया। [वहाँ जाकर] उसने शीघ्र ही इन्द्रनगरके समान सुवर्णसे बने हुए, विचित्रतासे युक्त तथा अत्यन्त उज्ज्वल अपने शिविरको देखा॥ ३७-३८॥

सोऽन्तर्विवेश भवनं सर्वशोभासमन्वितम्।
मणिहेमगणाकीर्णं मोदमानो निशामुखे॥ ३९

तत्रापश्यत्स्वजननीं स्वपन्तीं दिव्यलक्षणाम्।
रत्नालंकारदीप्तांगीं साक्षात्सुरवधूमिव॥ ४०

उसने सायंकालके समय प्रसन्न हो मणियों एवं सुवर्णसे रचित सर्वशोभासम्पन्न अपने भवनमें प्रवेश किया। वहाँ उसने दिव्य लक्षणोंवाली, रत्नालंकारोंसे जगमगाते हुए अंगोंवाली तथा साक्षात् सुरांगनाके समान [प्रतीत होती हुई] अपनी माताको सोते हुए देखा॥ ३९-४०॥

अथो स तनयो विप्राः शिवानुग्रहभाजनम्।
जवेनोत्थापयामास मातरं सुखविह्वलः॥ ४१

सोत्थिताद्भुतमालक्ष्यापूर्वं सर्वमिवाभवत्।
महानंदसुमग्ना हि सस्वजे स्वसुतं च तम्॥ ४२

हे विप्रो! इसके बाद आनन्दसे परिपूर्ण हो शिवके कृपापात्र उस बालकने वेगपूर्वक अपनी माताको उठाया। जब वह उठी, तो सब अपूर्व अद्भुत दृश्य देखकर आश्चर्यचकित हो आनन्दमें निमग्न हो गयी और उसने अपने पुत्रका आलिंगन किया॥ ४१-४२॥

श्रुत्वा पुत्रमुखात्सर्वं प्रसादं गिरिजापतेः।
प्रभुं विज्ञापयामास यो भजत्यनिशं शिवम्॥ ४३

स राजा सहसागत्य समाप्तनियमो निशि।
ददर्श गोपिकासूनोः प्रभावं शिवतोषणम्॥ ४४

तब अपने पुत्रके मुखसे गिरिजापतिकी सम्पूर्ण कृपाको सुनकर उस ग्वालिनने उस राजाको, जो निरन्तर भगवान् शिवका पूजन कर रहा था, [सारा वृत्तान्त] बताया। नियम समाप्त होनेके बाद राजाने रात्रिमें वहाँ सहसा आकर शिवको प्रसन्न करनेवाले गोपिका-पुत्रके उत्तम [भक्ति] प्रभावको देखा॥ ४३-४४॥

दृष्ट्वा महीपतिः सर्वं तत्सामात्यपुरोहितः।
आसीन्निमग्नो विधृतिः परमानन्दसागरे॥ ४५

अमात्य एवं पुरोहितसहित वह धैर्यशाली राजा यह सब देखकर परमानन्दसागरमें डूब गया॥ ४५॥

प्रेम्णा बाष्पजलं मुञ्चन् चन्द्रसेनो नृपो हि सः।
शिवनामोच्चरन्प्रीत्या परिरेभे तमर्भकम्॥ ४६

महामहोत्सवस्तत्र प्रबभूवाद्भुतो द्विजाः।
महेशकीर्तनं चक्रुः सर्वे च सुखविह्वलाः॥ ४७

वह राजा चन्द्रसेन प्रेमसे आँसू बहाता हुआ और 'शिव' नामका उच्चारण करता हुआ प्रेमपूर्वक उस बालकका आलिंगन करने लगा। हे ब्राह्मणो! उस समय वहाँ बहुत बड़ा उत्सव हुआ। सभी लोग आनन्दसे विभोर हो शिवजीका कीर्तन करने लगे॥ ४६-४७॥

एवमत्यद्भुताचाराच्छिवमाहात्म्यदर्शनात् ।
पौराणां सम्भ्रमाच्चैव सा रात्रिः क्षणतामगात्॥ ४८

अथ प्रभाते युद्धाय पुरं संरुध्य संस्थिताः।
राजानश्चारवक्त्रेभ्यः शुश्रुवुश्चरितं च तत्॥ ४९

ते समेताश्च राजानः सर्वे ये ये समागताः।
परस्परमिति प्रोचुस्तच्छ्रुत्वा चकिता अति॥ ५०

राजान ऊचुः

अयं राजा चन्द्रसेनः शिवभक्तोऽतिदुर्जयः।
उज्जयिन्या महाकालपुर्याः पतिरनाकुलः॥ ५१
ईदृशाः शिशवो यस्य पुर्यां सन्ति शिवव्रताः।
स राजा चन्द्रसेनस्तु महाशंकरसेवकः॥ ५२
नूनमस्य विरोधेन शिवः क्रोधं करिष्यति।
तत्क्रोधाद्धि वयं सर्वे भविष्यामो विनष्टकाः॥ ५३
तस्मादनेन राज्ञा वै मिलापः कार्य एव हि।
एवं सति महेशानः करिष्यति कृपां पराम्॥ ५४

सूत उवाच

इति निश्चित्य ते भूपास्त्यक्तवैराः सदाशयाः।
सर्वे बभूवुः सुप्रीता न्यस्तशस्त्रास्त्रपाणयः॥ ५५

विविशुस्ते पुरीं रम्यां महाकालस्य भूभृतः।
महाकालं समानर्चुश्चंद्रसेनानुमोदिताः॥ ५६

ततस्ते गोपवनितागेहं जग्मुर्महीभृतः।
प्रशंसन्तश्च तद्भाग्यं सर्वे दिव्यमहोदयम्॥ ५७

ते तत्र चन्द्रसेनेन प्रत्युद्गम्याभिपूजिताः।
महार्हविष्टरगताः प्रत्यनंदन् सुविस्मिताः॥ ५८

गोपसूनोः प्रसादात्तत्प्रादुर्भूतं शिवालयम्।
संवीक्ष्य शिवलिंगं च शिवे चक्रुः परां मतिम्॥ ५९

ततस्ते गोपशिशवे प्रीता निखिलभूभुजः।
ददुर्बहूनि वस्तूनि तस्मै शिवकृपार्थिनः॥ ६०

ये ये सर्वेषु देशेषु गोपास्तिष्ठन्ति भूरिशः।
तेषां तमेव राजानं चक्रिरे सर्वपार्थिवाः॥ ६१

इस प्रकार अतीव अद्भुत लीलाओंवाले शिवजीके माहात्म्यको देखनेसे आनन्दमग्न पुरवासियोंकी वह रात्रि क्षणमात्रकी भाँति बीत गयी॥ ४८॥

इसके बाद युद्धके लिये नगरको घेरकर स्थित हुए राजाओंने प्रातःकाल होते ही अपने गुप्तचरोंसे यह समाचार सुना। तब जो-जो राजा वहाँ आये हुए थे, वे सब यह सुनकर अत्यन्त आश्चर्यचकित हो गये और एकत्रित हो आपसमें कहने लगे॥ ४९-५०॥

राजागण बोले—यह महाकालपुरी उज्जयिनीका अधीश्वर राजा चन्द्रसेन शिवभक्त होनेसे निश्चिन्त तथा दुर्जेय है। जिसकी पुरीमें शिशु भी इस प्रकारके शिवभक्त हैं, वह राजा चन्द्रसेन तो महान् शिवभक्त होगा। निश्चय ही इसके साथ विरोध करनेसे तो शिवजी क्रुद्ध हो जायँगे और उनके क्रोधसे हम सब लोग विनष्ट हो जायँगे। इसलिये हमें इस राजासे मेल कर लेना चाहिये; ऐसा करनेपर शिवजी [हमलोगोंपर] महती कृपा करेंगे॥ ५१—५४॥

सूतजी बोले—इस प्रकार निश्चयकर उन राजाओंने वैरभावको त्याग दिया, उनका अन्तःकरण पवित्र हो गया और उन लोगोंने परम प्रसन्न होकर अपने-अपने हाथोंसे अस्त्र-शस्त्रोंका त्याग कर दिया॥ ५५॥

उन राजाओंने महाकालकी रम्य पुरीमें प्रवेश किया और चन्द्रसेनकी आज्ञा लेकर महाकालका भलीभाँति पूजन किया। इसके बाद वे सभी राजा ग्वालिनके घर गये और दिव्य तथा महान् समृद्धिवाले उसके भाग्यकी प्रशंसा करने लगे॥ ५६-५७॥

चन्द्रसेनके द्वारा उन राजाओंकी अगवानी तथा भलीभाँति पूजा किये जानेके उपरान्त [उसके द्वारा प्रदत्त] बहुमूल्य आसनोंमें बैठे हुए वे राजागण [शिवजीकी महिमाको देखकर] अत्यन्त विस्मित तथा प्रसन्न हो गये। गोपपुत्रपर हुई कृपासे उत्पन्न हुए शिवालय तथा [उसमें प्रतिष्ठित] शिवलिंगको देखकर शिवजीके प्रति उनकी अगाध श्रद्धा हो गयी॥ ५८-५९॥

तब शिवकी कृपा प्राप्त करनेकी अभिलाषावाले उन सभी राजाओंने प्रसन्न होकर उस गोपकुमारको बहुत-सी वस्तुएँ दीं। उन राजाओंने समस्त देशोंमें जो-जो बहुत-से गोप रहते थे, उन सबका उसे राजा बना दिया॥ ६०-६१॥

अथास्मिन्नन्तरे सर्वैस्त्रिदशैरभिपूजितः।
प्रादुर्बभूव तेजस्वी हनूमान् वानरेश्वरः॥ ६२

इसी बीच सभी देवगणोंसे पूजित वानराधिपति तेजस्वी हनुमान्‌जी वहाँ प्रकट हुए॥ ६२॥

ते तस्याभिगमादेव राजानो जातसंभ्रमाः।
प्रत्युत्थाय नमश्चक्रुर्भक्तिनम्रात्ममूर्तयः॥ ६३

हनुमान्‌जीके प्रकट हो जानेसे सभी राजा आश्चर्यचकित हो गये और वे उठकर भक्तिभावसे समन्वित हो उन्हें प्रणाम करने लगे॥ ६३॥

तेषां मध्ये समासीनः पूजितः प्लवगेश्वरः।
गोपात्मजं तमालिंग्य राज्ञो वीक्ष्येदमब्रवीत्॥ ६४

उन सभीके बीचमें विराजमान हनुमान्‌जी उनसे पूजित हो उस गोपपुत्रका आलिंगनकर राजाओंकी ओर देख करके यह कहने लगे—॥ ६४॥

हनूमानुवाच

सर्वे शृण्वन्तु भद्रं वो राजानो ये च देहिनः।
ऋते शिवं नान्यतमो गतिरस्ति शरीरिणाम्॥ ६५

एवं गोपसुतो दिष्ट्या शिवपूजां विलोक्य च।
अमंत्रेणापि संपूज्य शिवं शिवमवाप्तवान्॥ ६६

हनुमान्‌जी बोले—हे राजाओ! आप सभी लोग तथा दूसरे देहधारी भी सुनें; जो भी शरीरधारी प्राणी हैं, उनका शरणदाता शिवके अतिरिक्त अन्य कोई नहीं है। इसी प्रकार इस गोपपुत्रने भाग्यसे शिवपूजाको देखकर बिना मन्त्रके ही कल्याणकारी शिवका पूजनकर उन्हें प्राप्त कर लिया॥ ६५-६६॥

एष भक्तवरः शंभोर्गोपानां कीर्तिवर्धनः।
इह भुक्त्वाखिलान्भोगानन्ते मोक्षमवाप्स्यति॥ ६७

शिवजीका यह श्रेष्ठ भक्त गोपोंकी कीर्तिको बढ़ानेवाला होगा और इस लोकमें सम्पूर्ण भोगोंको भोगकर अन्तमें मोक्ष प्राप्त करेगा॥ ६७॥

अस्य वंशेऽष्टमो भावी नन्दो नाम महायशाः।
प्राप्स्यते तस्य पुत्रत्वं कृष्णो नारायणः स्वयम्॥ ६८

इसके वंशकी आठवीं पीढ़ीमें महायशस्वी नन्द नामक गोप उत्पन्न होंगे; जिनके पुत्ररूपमें श्रीकृष्ण नामसे साक्षात् नारायण ही अवतीर्ण होंगे॥ ६८॥

अद्यप्रभृति लोकेऽस्मिन्नेष गोपकुमारकः।
नाम्ना श्रीकर इत्युच्चैर्लोकख्यातिं गमिष्यति॥ ६९

आजसे लेकर यह गोपकुमार इस लोकमें 'श्रीकर' नामसे महती लोकप्रसिद्धि प्राप्त करेगा॥ ६९॥

सूत उवाच

एवमुक्त्वाञ्जनीसूनुः शिवरूपो हरीश्वरः।
सर्वान् राज्ञश्चन्द्रसेनं कृपादृष्ट्या ददर्श ह॥ ७०

अथ तस्मै श्रीकराय गोपपुत्राय धीमते।
उपादिदेश सुप्रीत्या शिवाचारं शिवप्रियम्॥ ७१

सूतजी बोले—ऐसा कहकर अंजनीपुत्र शिवावतार कपीश्वर हनुमान्‌जीने सभी राजाओं तथा चन्द्रसेनको कृपादृष्टिसे देखा। इसके बाद उन्होंने बुद्धिमान् गोपपुत्र श्रीकरको प्रेमपूर्वक शिवजीको प्रिय लगनेवाले शिवाचारका उपदेश दिया॥ ७०-७१॥

हनूमानथ सुप्रीतः सर्वेषां पश्यतां द्विजाः।
चन्द्रसेनं श्रीकरं च तत्रैवान्तरधीयत॥ ७२

तं सर्वे च महीपालाः संहृष्टाः प्रतिपूजिताः।
चन्द्रसेनं समामन्त्र्य प्रतिजग्मुर्यथागतम्॥ ७३

हे द्विजो! उसके अनन्तर अति हर्षित हुए हनुमान्‌जी सभी राजाओं, चन्द्रसेन तथा श्रीकर आदिके देखते-देखते वहीं अन्तर्धान हो गये। इसके बाद चन्द्रसेनके द्वारा सत्कृत हो प्रसन्न हुए सभी राजा उनसे आज्ञा लेकर अपने-अपने स्थानको चले गये॥ ७२-७३॥

श्रीकरोऽपि महातेजा उपदिष्टो हनूमता।
ब्राह्मणैः सह धर्मज्ञैश्चक्रे शम्भोः समर्हणम्॥ ७४

चन्द्रसेनो महाराजः श्रीकरो गोपबालकः।
उभावपि परप्रीत्या महाकालं च भेजतुः॥ ७५

परम तेजस्वी श्रीकर भी हनुमान्‌जीसे उपदेश पाकर धर्मज्ञ ब्राह्मणोंके साथ शिवपूजन करने लगा। [इस प्रकार] महाराज चन्द्रसेन तथा गोपपुत्र श्रीकर दोनों ही बड़ी प्रीतिसे महाकालकी उपासना करने लगे॥ ७४-७५॥

कालेन श्रीकरः सोऽपि चन्द्रसेनश्च भूपतिः।
समाराध्य महाकालं भेजतुः परमं पदम्॥ ७६

कुछ समयके बाद वह श्रीकर तथा राजा चन्द्रसेन भी महाकालकी आराधनाकर परम पदको प्राप्त हुए॥ ७६॥

एवंविधो महाकालः शिवलिंगः सतां गतिः।
सर्वथा दुष्टहंता च शंकरो भक्तवत्सलः॥ ७७

इस प्रकार महाकाल नामक ज्योतिर्लिंग सज्जनोंको शुभ गति देनेवाला, सभी दुष्टोंका वध करनेवाला, कल्याणकारी तथा भक्तोंके ऊपर दया करनेवाला है॥ ७७॥

इदं पवित्रं परमं रहस्यं सर्वसौख्यदम्।
आख्यानं कथितं स्वर्ग्यं शिवभक्तिविवर्धनम्॥ ७८

[हे द्विजो!] मैंने अत्यन्त पवित्र, गोपनीय, सभी प्रकारके सुखोंको देनेवाले, स्वर्गको प्रदान करनेवाले तथा शिवमें भक्तिको बढ़ानेवाले इस आख्यानका वर्णन किया॥ ७८॥

इति श्रीशिवमहापुराणे चतुर्थ्यां कोटिरुद्रसंहितायां महाकालज्योतिर्लिंगमाहात्म्यवर्णनं नाम सप्तदशोऽध्यायः॥ १७॥

॥ इस प्रकार श्रीशिवमहापुराणके अन्तर्गत चतुर्थ कोटिरुद्रसंहितामें महाकाल ज्योतिर्लिंगमाहात्म्यवर्णन नामक सत्रहवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ १७॥

अथाष्टादशोऽध्यायः

ओंकारेश्वर ज्योतिर्लिंगके प्रादुर्भाव एवं माहात्म्यका वर्णन

ऋषय ऊचुः

सूत सूत महाभाग श्राविता ह्यद्भुता कथा।
महाकालाख्यलिंगस्य निजभक्तसुरक्षिणः॥ १
ज्योतिर्लिंगं चतुर्थं च कृपया वद वित्तम।
ॐकारे परमेशस्य सर्वपातकहारिणः॥ २

ऋषि बोले—हे महाभाग सूतजी! आपने अपने भक्तजनोंकी रक्षा करनेवाले महाकाल नामक ज्योतिर्लिंगकी अद्भुत कथा सुनायी॥ १॥

हे ज्ञानियोंमें श्रेष्ठ! अब कृपा करके ओंकारमें विद्यमान, समस्त पापोंको दूर करनेवाले परमेश नामक चतुर्थ ज्योतिर्लिंगका वर्णन कीजिये॥ २॥

सूत उवाच

ॐकारे परमेशाख्यं लिंगमासीद्यथा द्विजाः।
तथा वक्ष्यामि वः प्रीत्या श्रूयतां परमर्षयः॥ ३

सूतजी बोले—हे द्विजो! हे महर्षियो! ॐकारमें जिस तरहसे परमेश (अमरेश्वर) नामक ज्योतिर्लिंगकी उत्पत्ति हुई, उसे मैं प्रसन्नतापूर्वक आप लोगोंसे कह रहा हूँ, आपलोग सुनिये॥ ३॥

कस्मिंश्चित्समये चात्र नारदो भगवान्मुनिः।
गोकर्णाख्यं शिवं गत्वा सिषेवे परभक्तिमान्॥ ४

ततः स आगतो विन्ध्यं नगेशं मुनिसत्तमः।
तत्रैव पूजितस्तेन बहुमानपुरःसरम्॥ ५

किसी समय महाभक्तिसम्पन्न भगवान् नारदमुनिने गोकर्णेश्वर नामक शिवके समीप जाकर बड़े भक्तिभावसे उनकी सेवा की। इसके बाद वे मुनिश्रेष्ठ वहाँसे विन्ध्यपर्वतपर आये। वहाँ उस श्रेष्ठ पर्वतने बड़े आदरके साथ उनकी पूजा की॥ ४-५॥

मयि सर्वं विद्यते च न न्यूनं हि कदाचन।
इति भावं समास्थाय संस्थितो नारदाग्रतः॥ ६

'मैं सब प्रकारसे पूर्ण हूँ और मुझमें किंचिन्मात्र भी न्यूनता नहीं है' इस अहंभावसे ग्रस्त होकर वह नारदजीके समक्ष खड़ा हो गया॥ ६॥

तन्मानं तत्तदा श्रुत्वा नारदो मानहा ततः।
निःश्वस्य संस्थितस्तत्र श्रुत्वा विन्ध्योऽब्रवीदिदम्॥ ७

उसके इस प्रकारके अभिमानको देखकर अभिमानको चूर्ण करनेवाले नारदजी निःश्वास लेकर स्थिर रहे; तब विन्ध्यने यह कहा—॥ ७॥

विन्ध्य उवाच

किं न्यूनं च त्वया दृष्टं मयि निःश्वासकारणम्।
तच्छ्रुत्वा नारदो वाक्यमब्रवीत्स महामुनिः॥ ८

विन्ध्य बोला—हे देवर्षे! आपको मुझमें कौन-सी कमी दिखायी दी, जिससे आप निःश्वास लेकर दुखी हो रहे हैं। यह सुनकर उन महामुनि नारदने यह वचन कहा—॥ ८॥

नारद उवाच

विद्यते त्वयि सर्वं हि मेरुरुच्चतरः पुनः।
देवेष्वपि विभागोऽस्य न तवास्ति कदाचन॥ ९

नारदजी बोले—[हे विन्ध्य!] यद्यपि तुममें सभी प्रकारके गुण हैं, किंतु सुमेरु तुमसे भी ऊँचा है। वहाँ देवगणोंका निवास है, किंतु तुमपर देवगण निवास नहीं करते॥ ९॥

सूत उवाच

इत्युक्त्वा नारदस्तस्माज्जगाम च यथागतम्।
विन्ध्यश्च परितप्तो वै धिग्वै मे जीवितादिकम्॥ १०
विश्वेश्वरं तथा शंभुमाराध्य च तपाम्यहम्।
इति निश्चित्य मनसा शंकरं शरणं गतः॥ ११

सूतजी बोले—ऐसा कहकर नारदजी जैसे आये थे, वैसे ही वहाँसे चले गये। तब विन्ध्याचल दुखी हो विचार करने लगा—ओह! मेरे जीवन आदिको धिक्कार है। अब मैं विश्वेश्वर शिवकी आराधना करते हुए तप करूँगा—इस प्रकार अपने मनमें सोचकर वह शिवजीकी शरणमें गया॥ १०-११॥

जगाम तत्र सुप्रीत्या ह्योंकारो यत्र वै स्वयम्।
चकार च पुनस्तत्र शिवमूर्तिं च पार्थिवीम्॥ १२
आराध्य च तदा शंभुं षण्मासं स निरन्तरम्।
न चचाल तपःस्थानाच्छिवध्यानपरायणः॥ १३

वह प्रसन्नतापूर्वक वहाँ पहुँचा, जहाँ ॐकारेश्वर शिव स्थित थे। उसने वहाँपर शिवकी एक पार्थिव मूर्ति बनायी। छः महीनेतक लगातार शिवाराधन करते हुए वह शिवध्यानमें लीन रहा और तपःस्थानसे [किंचिन्मात्र] विचलित नहीं हुआ॥ १२-१३॥

एवं विंध्यतपो दृष्ट्वा प्रसन्नः पार्वतीपतिः।
स्वरूपं दर्शयामास दुर्लभं योगिनामपि॥ १४
प्रसन्नः स तदोवाच ब्रूहि त्वं मनसेप्सितम्।
तपसा ते प्रसन्नोऽस्मि भक्तानामीप्सितप्रदः॥ १५

विन्ध्यके इस तपको देखकर शिवजी प्रसन्न हो गये और उन्होंने योगियोंके लिये भी दुर्लभ अपने स्वरूपका उसे दर्शन कराया। उसके अनन्तर प्रसन्न हुए शिवजीने कहा—मनोभिलषित वर माँगो, मैं तुम्हारे तपसे प्रसन्न हूँ; मैं भक्तोंका मनोरथ पूर्ण करनेवाला हूँ॥ १४-१५॥

विन्ध्य उवाच

यदि प्रसन्नो देवेश बुद्धिं देहि यथेप्सिताम्।
स्वकार्यसाधिनीं शंभो त्वं सदा भक्तवत्सलः॥ १६

विन्ध्य बोला—हे देवेश! हे शम्भो! यदि आप [मुझपर] प्रसन्न हैं, तो मेरा कार्य सिद्ध करनेवाली अभिलषित बुद्धि प्रदान कीजिये; आप सदैव भक्तवत्सल हैं॥ १६॥

सूत उवाच

तच्छ्रुत्वा भगवान् शम्भुश्चिचेत हृदये चिरम्।
परोपतापदं विन्ध्यो वरमिच्छति मूढधीः॥ १७
किं करोमि यदेतस्मै वरदानं भवेच्छुभम्।
मद्दत्तं परदुःखाय वरदानं यथा न हि॥ १८

सूतजी बोले—यह सुनकर भगवान् शिवजी देरतक अपने मनमें विचार करते रहे कि मूर्ख बुद्धिवाला यह विन्ध्य दूसरोंको दुःख देनेवाला वर चाहता है। अब मैं क्या करूँ, जिससे मेरे वरदानसे इसका कल्याण हो और मेरे द्वारा दिये गये वरसे दूसरोंको पीड़ा न पहुँचे॥ १७-१८॥

सूत उवाच

तथापि दत्तवान् शंभुस्तस्मै तद्वरमुत्तमम्।
विंध्य पर्वतराज त्वं यथेच्छसि तथा कुरु॥ १९
एवं च समये देवा ऋषयश्चामलाशयाः।
संपूज्य शंकरं तत्र स्थातव्यमिति चाब्रुवन्॥ २०

सूतजी बोले—तथापि शिवने उसे यह उत्तम वरदान दिया, 'हे पर्वतराज विन्ध्य! तुम जैसा चाहते हो, वैसा करो'। इसी समय देवताओं और विशुद्ध अन्त:करणवाले ऋषियोंने शिवजीकी पूजाकर कहा—[हे प्रभो!] आप यहीं स्थित रहें॥ १९-२०॥

तच्छ्रुत्वा देववचनं प्रसन्नः परमेश्वरः।
तथैव कृतवान्प्रीत्या लोकानां सुखहेतवे॥ २१

देवगणोंका वह वचन सुनकर हर्षित हुए परमेश्वरने लोककल्याणके लिये प्रेमपूर्वक वैसा ही किया॥ २१॥

ॐ कारं चैव यल्लिंगमेकं तच्च द्विधा गतम्।
प्रणवे चैव ॐकारनामासीत्स सदाशिवः॥ २२

पार्थिवे चैव यज्जातं तदासीत्परमेश्वरः।
भक्ताभीष्टप्रदौ चोभौ भुक्तिमुक्तिप्रदौ द्विजाः॥ २३

ओंकार नामक जो एक लिंग था, वह दो रूपोंमें विभक्त हो गया। प्रणवमें स्थित सदाशिव ॐकारेश्वर नामसे प्रसिद्ध हुए और जो पार्थिवमें प्रकट हुए, वे परमेश्वरके नामसे प्रसिद्ध हुए। हे द्विजो! वे दोनों ही [लिंग] भक्तोंके मनोरथको पूर्ण करनेवाले तथा भुक्ति और मुक्ति देनेवाले हैं॥ २२-२३॥

तत्पूजां च तदा चक्रुर्देवाश्च ऋषयस्तथा।
प्रापुर्वराननेकांश्च संतोष्य वृषभध्वजम्॥ २४

स्वस्वस्थानं ययुर्देवा विन्ध्योऽपि मुदितोऽधिकम्।
कार्यं साधितवान्स्वीयं परितापं जहौ द्विजाः॥ २५

तब देवताओं एवं ऋषियोंने उनकी पूजा की तथा उन वृषभध्वजको प्रसन्न करके अनेक वरदान प्राप्त किये। इसके बाद देवता अपने-अपने स्थानको चले गये। हे द्विजो! विन्ध्य भी बहुत प्रसन्न हुआ; उसने अपना कार्य सिद्ध किया और दुःखका परित्याग कर दिया॥ २४-२५॥

य एवं पूजयेच्छम्भुं मातृगर्भं वसेन्न हि।
यदभीष्टं फलं तच्च प्राप्नुयान्नात्र संशयः॥ २६

हे द्विजो! जो इस प्रकार शिवकी पूजा करता है, वह माताके गर्भमें पुनः निवास नहीं करता और उसका जो भी अभीष्ट फल है, उसे प्राप्त कर लेता है; इसमें संशय नहीं है॥ २६॥

सूत उवाच

एतत्ते सर्वमाख्यातमोंकारप्रभवे फलम्।
अतः परं प्रवक्ष्यामि केदारं लिंगमुत्तमम्॥ २७

सूतजी बोले—इस प्रकार मैंने ॐकारेश्वरका सम्पूर्ण माहात्म्य आपलोगोंसे कहा; अब इसके अनन्तर केदारेश्वर नामक श्रेष्ठ ज्योतिर्लिंगका वर्णन करूँगा॥ २७॥

इति श्रीशिवमहापुराणे चतुर्थ्यां कोटिरुद्रसंहितायामोंकारेश्वरज्योतिर्लिंगमाहात्म्यवर्णनं नामाष्टादशोऽध्यायः॥ १८॥

॥ इस प्रकार श्रीशिवमहापुराणके अन्तर्गत चतुर्थ कोटिरुद्रसंहितामें ओंकारेश्वर ज्योतिर्लिंगमाहात्म्यवर्णन नामक अठारहवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ १८॥

अथैकोनविंशोऽध्यायः

केदारेश्वर ज्योतिर्लिंगके प्राकट्य एवं माहात्म्यका वर्णन

सूत उवाच

नरनारायणाख्यौ याववतारौ हरेर्द्विजाः।
तेपाते भारते खण्डे बदर्याश्रम एव हि॥ १

सूतजी बोले—हे द्विजो! विष्णुके नर-नारायण नामक जिन दो अवतारोंने भारत [वर्षके अन्तर्गत भरत] खण्डमें स्थित बदरिकाश्रममें तप किया था,

ताभ्यां संप्रार्थितः शंभुः पार्थिवे पूजनाय वै।
आयाति नित्यं तल्लिंगे भक्ताधीनतया शिवः॥ २

उनके द्वारा पूजनहेतु प्रार्थना किये जानेपर भक्तके वशीभूत होनेके कारण सदाशिव नित्य इनके पार्थिव लिंगमें विराजमान हो जाते हैं॥ १-२॥

एवं पूजयतोः शंभुं तयोर्विष्ण्ववतारयोः।
चिरकालो व्यतीयाय शैवयोर्धर्मपुत्रयोः॥ ३

एकस्मिन्समये तत्र प्रसन्नः परमेश्वरः।
प्रत्युवाच प्रसन्नोऽस्मि वरो मे व्रियतामिति॥ ४

इस प्रकार शिवकी पूजा करते हुए उन परम शिव-भक्त विष्णुके अवतारभूत धर्मपुत्र नर-नारायणका बहुत समय बीत गया। किसी समय प्रसन्न हुए परमेश्वरने कहा—मैं [आप दोनोंपर] प्रसन्न हूँ; वर माँगिये॥ ३-४॥

इत्युक्ते च तदा तेन नरो नारायणः स्वयम्।
ऊचतुर्वचनं तत्र लोकानां हितकाम्यया॥ ५

तब उनके इस प्रकार कहनेपर स्वयं नर-नारायणने लोककल्याणकी कामनासे यह वचन कहा—॥ ५॥

नरनारायणावूचतुः

यदि प्रसन्नो देवेश यदि देयो वरस्त्वया।
स्थीयतां स्वेन रूपेण पूजार्थं शंकर स्वयम्॥ ६

नर-नारायण बोले—हे देवेश! हे शंकर! यदि आप प्रसन्न हैं और यदि वर देना चाहते हैं, तो अपने स्वरूपसे पूजाके निमित्त स्वयं यहींपर निवास करें॥ ६॥

सूत उवाच

इत्युक्तस्तु तदा ताभ्यां केदारे हिमसंश्रये।
स्वयं च शंकरस्तस्थौ ज्योतीरूपो महेश्वरः॥ ७

सूतजी बोले—तब उन दोनोंके द्वारा इस प्रकार कहे जानेपर हिमाच्छादित उस केदारक्षेत्रमें स्वयं महेश्वर सदाशिव ज्योतिरूपसे विराजमान हो गये॥ ७॥

ताभ्यां च पूजितश्चैव सर्वदुःखभयापहः।
लोकानामुपकारार्थं भक्तानां दर्शनाय वै॥ ८

स्वयं स्थितस्तदा शंभुः केदारेश्वरसंज्ञकः।
भक्ताभीष्टप्रदो नित्यं दर्शनादर्चनादपि॥ ९

इस प्रकार उनसे पूजित होकर सम्पूर्ण संकट तथा भयको दूर करनेवाले शिवजी लोकका कल्याण करनेके लिये एवं भक्तोंको दर्शन देनेके लिये वहाँ केदारेश्वर नामसे स्वयं स्थित हो गये। वे दर्शन तथा पूजन करनेसे अपने भक्तोंका मनोरथ पूर्ण करते हैं॥ ८-९॥

देवाश्च पूजयंतीह ऋषयश्च पुरातनाः।
मनोऽभीष्टफलं ते ते सुप्रसन्नान्महेश्वरात्॥ १०

भवस्य पूजनान्नित्यं बदर्याश्रमवासिनः।
प्राप्नुवन्ति यतः सो हि भक्ताभीष्टप्रदः सदा॥ ११

इनका पूजन सभी देवता तथा पुरातन ऋषि भी करते हैं और वे भलीभाँति प्रसन्न हुए महेश्वरसे मनोभिलषित वर प्राप्त करते हैं। बदरिकाश्रमके निवासी भी सदाशिवकी नित्य पूजा करनेका वांछित फल प्राप्त करते हैं, क्योंकि वे [सदाशिव] सदैव अपने भक्तोंका मनोरथ पूर्ण करनेवाले हैं॥ १०-११॥

तद्दिनं हि समारभ्य केदारेश्वर एव च।
पूजितो येन भक्त्या वै दुःखं स्वप्नेऽपि दुर्लभम्॥ १२

उस दिनसे लेकर जिसने भी भक्तिसे केदारेश्वरकी पूजा की, उसे स्वप्नमें भी [किसी प्रकारका] कष्ट नहीं हुआ॥ १२॥

यो वै हि पाण्डवान्दृष्ट्वा माहिषं रूपमास्थितः।
मायामास्थाय तत्रैव पलायनपरोऽभवत्॥ १३

धृतश्च पाण्डवैस्तत्र ह्यवाङ्मुखतया स्थितः।

पाण्डवोंको देखकर जिन्होंने मायासे महिषका रूप धारणकर पलायन किया था और जब उन पाण्डवोंने महिषरूपधारी उन शिवको तथा उनकी पूँछ भी पकड़ ली, तब वे उन [पाण्डवों]-के प्रार्थना

पुच्छं चैव धृतं तैस्तु प्रार्थितश्च पुनः पुनः ॥ १४

तद्रूपेण स्थितस्तत्र भक्तवत्सलनामभाक्।
नयपाले शिरोभागो गतस्तद्रूपतः स्थितः ॥ १५

तथैव पूजनान्नित्यमाज्ञां चैवाप्यदात्तथा।
पूजितश्च स्वयं शंभुस्तत्र तस्थौ वरानदात् ॥ १६

पूजयित्वा गतास्ते तु पाण्डवा मुदितास्तदा।
लब्ध्वा चित्तेप्सितं सर्वं विमुक्ताः सर्वदुःखतः ॥ १७

करनेपर नीचेकी ओर मुखकर वहाँ स्थित हो गये। भक्तवत्सल नामवाले सदाशिव उसी रूपमें वहाँ विराजमान हुए। उस रूपका शिरोभाग नयपाल (नेपाल)-में प्रकट हुआ। उसके बाद शिवजीने उन्हें (पाण्डवोंको) पूजन करनेकी आज्ञा प्रदान की। तब उनके द्वारा पूजित होकर शिवजीने उन्हें अनेक वरदान दिये और स्वयं वहीं स्थित हो गये। पाण्डव भी उनकी पूजाकर प्रसन्न होकर सभी मनोवांछित फल प्राप्त करके समस्त दुःखोंसे मुक्त होकर वहाँसे चले गये ॥ १३—१७ ॥

तत्र नित्यं हरः साक्षात्क्षेत्रे केदारसंज्ञके।
भारतीभिः प्रजाभिश्च तथैव परिपूज्यते ॥ १८

भारतवासी लोगोंद्वारा उस केदारेश्वर क्षेत्रमें साक्षात् [भगवान्] शंकरकी नित्य पूजा की जाती है ॥ १८ ॥

तत्रत्यं वलयं यो वै ददाति हरवल्लभः।
हररूपान्तिकं तच्च हररूपसमन्वितम् ॥ १९

तथैव रूपं दृष्ट्वा च सर्वपापैः प्रमुच्यते।
जीवन्मुक्तो भवेत्सोऽपि यो गतो बदरीवने ॥ २०

दृष्ट्वा रूपं नरस्यैव तथा नारायणस्य हि।
केदारेश्वरशंभोश्च मुक्तिभागी न संशयः ॥ २१

जो शिवप्रेमी वहाँका शिवरूपयुक्त कंकण उन्हें प्रदान करता है, वह शिवजीके समीप जाकर उनके उस रूपको देखकर सभी पापोंसे छूट जाता है। जो बदरीवनकी यात्रा करता है, वह भी जीवन्मुक्त हो जाता है। वहाँ नर-नारायण तथा केदारेश्वर शिवका दर्शन करके मनुष्य मुक्तिका अधिकारी हो जाता है; इसमें सन्देह नहीं है ॥ १९—२१ ॥

केदारेशस्य भक्ता ये मार्गस्थास्तस्य वै मृताः।
तेऽपि मुक्ता भवन्त्येव नात्र कार्या विचारणा ॥ २२

गत्वा तत्र प्रीतियुक्तः केदारेशं प्रपूज्य च।
तत्रत्यमुदकं पीत्वा पुनर्जन्म न विन्दति ॥ २३

केदारेश्वरके जो भक्त उनकी यात्रा करते हुए मार्गमें मृत्युको प्राप्त होते हैं, वे भी मुक्त हो जाते हैं; इसमें संशय नहीं करना चाहिये। वहाँ जाकर प्रसन्नतासे युक्त होकर केदारेश्वरका पूजनकर तथा वहाँका जल पीकर मनुष्य पुनर्जन्म नहीं पाता है ॥ २२-२३ ॥

खण्डेऽस्मिन् भारते विप्रा नरनारायणेश्वरः।
केदारेशः प्रपूज्यश्च सर्वैर्जीवैः सुभक्तितः ॥ २४

अस्य खण्डस्य स स्वामी सर्वेशोऽपि विशेषतः।
सर्वकामप्रदः शंभुः केदाराख्यो न संशयः ॥ २५

हे ब्राह्मणो! इस भरतखण्डमें सभी प्राणियोंको नर-नारायण तथा केदारेश्वरकी भक्तिपूर्वक पूजा करनी चाहिये। वे इस भूखण्डके स्वामी हैं और विशेष करके सबके स्वामी हैं, केदार नामक शम्भु सभी प्रकारकी कामनाओंको पूर्ण करनेवाले हैं; इसमें सन्देह नहीं है ॥ २४-२५ ॥

एतद्वचः समाख्यातं यत्पृष्टमृषिसत्तमाः।
श्रुत्वा पापं हरेत्सर्वं नात्र कार्या विचारणा ॥ २६

हे महर्षियो! आपलोगोंने जो बात पूछी थी, वह सब मैंने कह दिया, इसे सुननेसे सारे पाप दूर हो जाते हैं; इसमें संशय नहीं है ॥ २६ ॥

इति श्रीशिवमहापुराणे चतुर्थ्यां कोटिरुद्रसंहितायां केदारेश्वरज्योतिर्लिंगमाहात्म्यवर्णनं नामैकोनविंशोऽध्यायः ॥ १९ ॥

॥ इस प्रकार श्रीशिवमहापुराणके अन्तर्गत चतुर्थ कोटिरुद्रसंहितामें केदारेश्वरज्योतिर्लिंगमाहात्म्यवर्णन नामक उन्नीसवाँ अध्याय पूर्ण हुआ ॥ १९ ॥

अथ विंशोऽध्यायः

भीमशंकर ज्योतिर्लिंगके माहात्म्य-वर्णन-प्रसंगमें भीमासुरके उपद्रवका वर्णन

सूत उवाच

अतः परं प्रवक्ष्यामि माहात्म्यं भैमशंकरम्।
यस्य श्रवणमात्रेण सर्वाभीष्टं लभेन्नरः॥ १

सूतजी बोले—[हे महर्षियो!] अब मैं भीमशंकरके माहात्म्यको कह रहा हूँ, जिसके सुननेमात्रसे मनुष्य सभी प्रकारके अभीष्टको प्राप्त कर लेता है॥ १॥

कामरूपाभिधे देशे शंकरो लोककाम्यया।
अवतीर्णः स्वयं साक्षात्कल्याणसुखभाजनम्॥ २

यदर्थमवतीर्णोऽसौ शंकरो लोकशंकरः।
शृणुतादरतस्तच्च कथयामि मुनीश्वराः॥ ३

कामरूप नामक देशमें लोकहितकी कामनासे साक्षात् कल्याण एवं सुखके भाजन शिवजी स्वयं प्रकट हुए थे।* हे मुनीश्वरो! लोककल्याण करनेवाले शंकरजीने [यहाँ] जिस लिये अवतार लिया, उसे आपलोग आदरपूर्वक सुनिये; मैं कह रहा हूँ॥ २-३॥

भीमो नाम महावीर्यो राक्षसोऽभूत्पुरा द्विजाः।
दुःखदः सर्वभूतानां धर्मध्वंसकरः सदा॥ ४

हे ब्राह्मणो! पूर्व समयमें सभी प्राणियोंको सदा दुःख देनेवाला एवं धर्मको नष्ट करनेवाला भीम नामका एक बड़ा बलवान् राक्षस हुआ था॥ ४॥

कुंभकर्णात्समुत्पन्नः कर्कट्यां सुमहाबलः।
सह्ये च पर्वते सोऽपि मात्रावासं चकार ह॥ ५

महाबलवान् वह कुम्भकर्णके द्वारा कर्कटी नामक राक्षसीसे उत्पन्न हुआ था और अपनी माताके साथ सह्य पर्वतपर निवास करता था॥ ५॥

कुंभकर्णे च रामेण हते लोकभयंकरे।
राक्षसी पुत्रसंयुक्ता सह्येऽतिष्ठत्स्वयं तदा॥ ६

संसारको भयभीत करनेवाले कुम्भकर्णका रामके द्वारा वध कर दिये जानेपर वह राक्षसी स्वयं सह्य पर्वतपर अपने पुत्रके साथ निवास करने लगी॥ ६॥

स बाल एकदा भीमः कर्कटीं मातरं द्विजाः।
पप्रच्छ च खलो लोकदुःखदो भीमविक्रमः॥ ७

हे द्विजो! सारे प्राणियोंको दुःख देनेवाले प्रचण्ड पराक्रमी उस भीमने बाल्यावस्थामें किसी समय [अपनी] माता कर्कटीसे पूछा— ॥ ७॥

भीम उवाच

मातर्मे कः पिता कुत्र कथं वैकाकिनी स्थिता।
ज्ञातुमिच्छामि तत्सर्वं यथार्थं त्वं वदाधुना॥ ८

भीम बोला—हे मातः! मेरे पिता कौन हैं, वे कहाँ रहते हैं और तुम अकेली ही यहाँ क्यों रहती हो? मैं वह सब जानना चाहता हूँ, तुम इस समय ठीक-ठीक बताओ॥ ८॥

---

* मतान्तरसे भीमशंकर ज्योतिर्लिंग बम्बईसे पूर्व एवं पूनासे उत्तर भीमा नदीके तटपर सह्याद्रिपर स्थित है। यहींसे भीमा नदी निकलती है। ऐसी जनश्रुति है कि भगवान् शंकरने जब त्रिपुरासुरका वध किया था तो उन्होंने यहीं विश्राम किया था। उस समय 'भीमक' नामक एक सूर्यवंशीय राजा यहाँ तपस्या करता था। राजाकी तपस्यासे प्रसन्न होकर भगवान् शिवने उसे दर्शन दिया और उसकी प्रार्थनापर वे यहाँ दिव्य ज्योतिर्लिंगके रूपमें स्थित होकर भीमशंकरके नामसे प्रसिद्ध हो गये। मराठी शिवलीलामृत, गुरुचरित्र, स्तोत्ररत्नाकर आदि ग्रन्थोंमें इस ज्योतिर्लिंगकी महिमाका गान किया गया है। गंगाधर, रामदास, श्रीधरस्वामी, ज्ञानेश्वर आदि संत-महात्माओंने इसी ज्योतिर्लिंगकी महिमाका वर्णन किया है। वर्तमानमें इसी ज्योतिर्लिंगकी अधिक प्रसिद्धि है। कुछ लोग उत्तराखण्डके नैनीताल जिलेमें उज्जनक नामक स्थानपर स्थित भगवान् शिवके विशाल मन्दिरको श्रीभीमशंकर ज्योतिर्लिंग कहते हैं, किंतु शिवपुराणके अनुसार श्रीभीमशंकर ज्योतिर्लिंग असम प्रान्तके कामरूप जिलेमें ब्रह्मपुर पहाड़ीपर गोहाटीके पास अवस्थित है।

सूत उवाच

एवं पृष्टा तदा तेन पुत्रेण राक्षसी च सा।
उवाच पुत्रं सा दुष्टा श्रूयतां कथयाम्यहम्॥ ९

कर्कट्युवाच

पिता ते कुम्भकर्णश्च रावणानुज एव च।
रामेण मारितः सोऽयं भ्रात्रा सह महाबलः॥ १०

अत्रागतः कदाचिद्वै कुम्भकर्णः स राक्षसः।
मद्भोगं कृतवांस्तात प्रसह्य बलवान्पुरा॥ ११

लंकां स गतवान् मां च त्यक्त्वात्रैव महाबलः।
मया न दृष्टा सा लंका ह्यत्रैव निवसाम्यहम्॥ १२

पिता मे कर्कटो नाम माता मे पुष्कसी मता।
भर्ता मम विराधो हि रामेण निहतः पुरा॥ १३

पित्रोः पार्श्वे स्थिता चाहं निहते स्वामिनि प्रिये।
पितरौ मे मृतौ चात्र ऋषिणा भस्मसात्कृतौ॥ १४

भक्षणार्थं गतौ तत्र क्रुद्धेन सुमहात्मना।
सुतीक्ष्णेन सुतपसागस्त्यशिष्येण वै तदा॥ १५

साहमेकाकिनी जाता दुःखिता पर्वते पुरा।
निवसामि स्म दुःखार्ता निरालंबा निराश्रया॥ १६

एतस्मिन्समये ह्यत्र राक्षसो रावणानुजः।
आगत्य कृतवान् संगं मां विहाय गतो हि सः॥ १७

ततस्त्वं च समुत्पन्नो महाबलपराक्रमः।
अवलंब्य पुनस्त्वां च कालक्षेपं करोम्यहम्॥ १८

सूत उवाच

इति श्रुत्वा वचस्तस्या भीमो भीमपराक्रमः।
क्रुद्धश्च चिंतयामास किं करोमि हरिं प्रति॥ १९

पितानेन हतो मे हि तथा मातामहा अपि।
विराधश्च हतोऽनेन दुःखं बहुतरं कृतम्॥ २०

तत्पुत्रोऽहं भवेयं चेद्धरिं तं पीडयाम्यहम्।
इति कृत्वा मतिं भीमस्तपस्तप्तुं महद्ययौ॥ २१

सूतजी बोले—इस प्रकार अपने पुत्रके पूछनेपर उस दुष्टा राक्षसीने अपने पुत्रसे कहा—तुम सुनो, मैं सब कुछ कहती हूँ॥ ९॥

कर्कटी बोली—तुम्हारे पिता रावणके छोटे भाई महाबली कुम्भकर्ण थे, जिन्हें रामने उनके भाई रावणसहित मार डाला। हे तात! पूर्वकालमें किसी समय वह बलवान् राक्षस कुम्भकर्ण यहाँ आया और उसने मेरे साथ बलपूर्वक सहवास किया। इसके बाद वह महाबली [कुम्भकर्ण] मुझे यहींपर छोड़कर लंकापुरी चला गया। मैंने वह लंका नहीं देखी है, अतः मैं यहीं निवास करती हूँ। मेरे पिताका नाम कर्कट है तथा मेरी माता पुष्कसी कही गयी है। मेरा पति विराध था, जिसे रामने पहले ही मार दिया था॥ १०—१३॥

अपने प्रिय पतिके मारे जानेपर मैं अपने माता-पिताके साथ यहाँ निवास करने लगी। मेरे माता-पिताको (सुतीक्ष्ण) ऋषिने भस्म कर दिया और वे मर गये। [इसका कारण यह था कि] वे दोनों उनको खानेके लिये गये हुए थे, तब परम तपस्वी महात्मा अगस्त्यशिष्य सुतीक्ष्णने क्रोधित हो उन्हें भस्म कर दिया॥ १४-१५॥

इस प्रकार मैं दुखी होकर बिना किसी सहायक एवं आश्रयके पहलेसे अकेली ही इस पर्वतपर निवास करने लगी। इस अवसरपर रावणके छोटे भाई राक्षस कुम्भकर्णने यहाँ आकर मेरे साथ सहवास किया और वह मुझे छोड़कर चला गया। [हे पुत्र!] उसके बाद महाबली एवं पराक्रमी तुम उत्पन्न हुए और अब मैं तुम्हारा सहारा लेकर समय बिता रही हूँ॥ १६—१८॥

सूतजी बोले—माताके इस वचनको सुनकर प्रबलपराक्रमी भीम कुपित हो उठा और विचार करने लगा कि अब मैं हरिके प्रति क्या करूँ? इस रामचन्द्रने मेरे पिता तथा नानाका वध किया और इसने विराधका भी वध किया; इस प्रकार इसने बहुत अधिक दुःख दिया है। अतः यदि मैं कुम्भकर्णका पुत्र हूँ, तो हरिको अवश्य पीड़ा पहुँचाऊँगा—ऐसा विचार करके भीम महान् तप करनेके लिये चल पड़ा॥ १९—२१॥

ब्रह्माणं च समुद्दिश्य वर्षाणां च सहस्रकम्।
मनसा ध्यानमाश्रित्य तपश्चक्रे महत्तदा॥ २२
ऊर्ध्वबाहुश्चैकपादः सूर्ये दृष्टिं दधत्पुरा।
संस्थितः स बभूवाथ भीमो राक्षसपुत्रकः॥ २३
शिरसस्तस्य संजातं तेजः परमदारुणम्।
तेन दग्धास्तदा देवा ब्रह्माणं शरणं ययुः॥ २४
प्रणम्य वेधसं भक्त्या तुष्टुवुर्विविधैः स्तवैः।
दुःखं निवेदयाञ्चक्रुर्ब्रह्मणे ते सवासवाः॥ २५

देवा ऊचुः

ब्रह्मन्वै रक्षसस्तेजो लोकान्पीडितुमुद्यतम्।
यत्प्रार्थ्यते च दुष्टेन तत्त्वं देहि वरं विधे॥ २६
नो चेदद्य वयं दग्धास्तीव्रतत्तेजसा पुनः।
यास्यामः संक्षयं सर्वे तस्मात्तं देहि प्रार्थितम्॥ २७

सूत उवाच

इति तेषां वचः श्रुत्वा ब्रह्मा लोकपितामहः।
जगाम च वरं दातुं वचनं चेदमब्रवीत्॥ २८

ब्रह्मोवाच

प्रसन्नोऽस्मि वरं ब्रूहि यत्ते मनसि वर्तते।
इति श्रुत्वा विधेर्वाक्यमब्रवीद्राक्षसो हि सः॥ २९

भीम उवाच

यदि प्रसन्नो देवेश यदि देयो वरस्त्वया।
अतुलं च बलं मेऽद्य देहि त्वं कमलासन॥ ३०

सूत उवाच

इत्युक्त्वा तु नमश्चक्रे ब्रह्मणे स हि राक्षसः।
ब्रह्मा चापि तदा तस्मै वरं दत्त्वा गृहं ययौ॥ ३१
राक्षसो गृहमागत्य ब्रह्माप्तातिबलस्तदा।
मातरं प्रणिपत्याशु स भीमः प्राह गर्ववान्॥ ३२

भीम उवाच

पश्य मातर्बलं मेऽद्य करोमि प्रलयं महत्।
देवानां शक्रमुख्यानां हरेर्वै तत्सहायिनः॥ ३३

सूत उवाच

इत्युक्त्वा प्रथमं भीमो जिग्ये देवान्सवासवान्।
स्थानान्निःसारयामास स्वात्स्वात्तान्भीमविक्रमः॥ ३४

उसने ब्रह्माको उद्देश्य करके मनसे उनका ध्यान करते हुए एक हजार वर्षतक महान् तप किया। वह राक्षसपुत्र भीम सूर्यकी ओर दृष्टि लगाये हुए दोनों हाथ ऊपर उठाकर एक पैरपर स्थित रहा॥ २२-२३॥

[इस प्रकार तपमें निरत उस राक्षसके] सिरसे अत्यन्त भयानक तेज उत्पन्न हुआ; तब उस तेजसे जलते हुए देवता ब्रह्माजीकी शरणमें गये॥ २४॥

इन्द्रसहित उन देवताओंने ब्रह्माजीको प्रणाम करके अनेक प्रकारके स्तोत्रोंसे भक्तिपूर्वक उनकी स्तुति की। उसके अनन्तर वे ब्रह्माजीसे अपना दुःख कहने लगे॥ २५॥

देवता बोले—हे ब्रह्मन्! उस राक्षसका तेज सभी लोकोंको पीड़ित करनेके लिये उद्यत है, अतः हे विधे! वह दुष्ट जो माँगता है, उसे वह वर दीजिये; नहीं तो आज हम सब उसके प्रचण्ड तेजसे दग्ध होकर नष्ट हो जायँगे, इसलिये उसकी प्रार्थना अवश्य स्वीकार कीजिये॥ २६-२७॥

सूतजी बोले—उनका यह वचन सुनकर लोकपितामह ब्रह्माजी उसको वर देनेके लिये गये और उन्होंने यह वचन कहा—॥ २८॥

ब्रह्माजी बोले—[हे राक्षस!] मैं प्रसन्न हूँ, तुम्हारे मनमें जो भी हो, वह वर माँगो। ब्रह्माजीका यह वचन सुनकर उस राक्षसने कहा—॥ २९॥

भीम बोला—हे देवताओंके स्वामी कमलासन ब्रह्माजी! यदि आप [मुझपर] प्रसन्न हैं तथा मुझे वर देना चाहते हैं, तो आज मुझे अप्रतिम बल दीजिये॥ ३०॥

सूतजी बोले—ऐसा कहकर उस राक्षसने ब्रह्माजीको प्रणाम किया और ब्रह्माजी भी उसे वर देकर अपने धामको चले गये। तब ब्रह्मदेवसे अतुल बलका वरदान प्राप्तकर उस गर्वयुक्त राक्षस भीमने शीघ्र ही घर आकर माताको प्रणामकर कहा—॥ ३१-३२॥

भीम बोला—हे माता! अब मेरे बलको देखना; मैं इन्द्र आदि सभी देवताओं, विष्णु तथा उनके सहायकोंका घोर विनाश करूँगा॥ ३३॥

सूतजी बोले—इस प्रकार कहकर प्रचण्ड पराक्रमवाले उस भीमने सर्वप्रथम इन्द्रादि देवताओंको जीता और उन्हें अपने-अपने स्थानसे हटाकर बाहर निकाल दिया॥ ३४॥

ततो जिग्ये हरिं युद्धे प्रार्थितं निर्जरैरपि।
ततो जेतुं रसां दैत्यः प्रारम्भं कृतवान्मुदा॥ ३५

इसके बाद [सहायताहेतु] देवताओंके द्वारा प्रार्थित विष्णुको भी उस दैत्यने जीत लिया। तदनन्तर उसने प्रसन्नतापूर्वक पृथ्वीको जीतनेका उपक्रम किया॥ ३५॥

पुरा सुदक्षिणं तत्र कामरूपेश्वरं प्रभुम्।
जेतुं गतस्ततस्तेन युद्धमासीद्भयंकरम्॥ ३६

वह पहले कामरूपके स्वामी सुदक्षिणको जीतने गया, वहाँ राजाके साथ उसका भयंकर युद्ध हुआ॥ ३६॥

भीमोऽथ तं महाराजं प्रभावाद् ब्रह्मणोऽसुरः।
जिग्ये वरप्रभावेण महावीरं शिवाश्रयम्॥ ३७

असुर भीमने ब्रह्माके वरदानके प्रभावसे उस महावीर तथा शिवभक्त महाराजाको [युद्धमें] जीत लिया॥ ३७॥

स हि जित्वा ततस्तं च कामरूपेश्वरं प्रभुम्।
बबंध ताडयामास भीमो भीमपराक्रमः॥ ३८
गृहीतं तस्य सर्वस्वं राज्यं सोपस्करं द्विजाः।
तेन भीमेन दुष्टेन शिवदासस्य भूपतेः॥ ३९
राजा चापि सुधर्मिष्ठः प्रियधर्मो हरप्रियः।
गृहीतो निगडैस्तेन ह्येकान्ते स्थापितश्च सः॥ ४०

तब उस महाभयंकर पराक्रमवाले भीमने प्रभावशाली कामरूपेश्वरको जीतकर बाँध लिया और क्लेश देने लगा। हे द्विजो! उस दुष्ट भीमने उस शिवभक्त राजाका सामग्रीसहित राज्य तथा सर्वस्व छीन लिया। उसने उस धर्मात्मा, शिवभक्त तथा धर्मप्रिय राजाको बेड़ियोंसे बाँध दिया और एकान्तमें बन्द कर दिया॥ ३८—४०॥

तत्र तेन तदा कृत्वा पार्थिवीं मूर्तिमुत्तमाम्।
भजनं च शिवस्यैव प्रारब्धं प्रियकाम्यया॥ ४१
गंगायाः स्तवनं तेन बहुधा च तदा कृतम्।
मानसं स्नानकर्मादि कृत्वा शंकरपूजनम्॥ ४२
पार्थिवेन विधानेन चकार नृपसत्तमः।
तद्ध्यानं च यथा स्याद्वै कृत्वा च विधिपूर्वकम्॥ ४३
प्रणिपातैस्तथा स्तोत्रैर्मुद्रासनपुरःसरम्।
कृत्वा हि सकलं तच्च स भेजे शंकरं मुदा॥ ४४

तब वहाँ उसने अपने कल्याणकी इच्छासे उत्तम पार्थिव लिंग बनाकर शिवजीका भजन करना प्रारम्भ किया। उसने अनेक प्रकारसे गंगाजीकी उस समय स्तुति की। मानसिक स्नान आदि कर्म करके उस नृपश्रेष्ठने पार्थिव-विधानसे शिवका पूजन किया। जिस प्रकारका ध्यान विहित है, वैसा ही ध्यान विधिपूर्वक करके प्रणाम, स्तोत्रपाठ, मुद्रा, आसन आदिके साथ सब कुछ करते हुए उसने प्रसन्नतापूर्वक शिवजीकी उपासना की॥ ४१—४४॥

पञ्चाक्षरमयीं विद्यां जजाप प्रणवान्विताम्।
नान्यत्कार्यं स वै कर्तुं लब्धवानन्तरं तदा॥ ४५

तत्पत्नी च तदा साध्वी दक्षिणानाम विश्रुता।
विधानं पार्थिवं प्रीत्या चकार नृपवल्लभा॥ ४६

वह प्रणवके सहित पंचाक्षरी विद्याका जप करता था। उस समय उसे अन्य कार्य करनेके लिये कोई अवकाश न रहा। राजाको [अत्यन्त] प्रिय उसकी पतिव्रता पत्नी, जिसका नाम दक्षिणा था, प्रेमपूर्वक सविधि पार्थिव-पूजन किया करती थी॥ ४५-४६॥

दंपती त्वेकभावेन शंकरं भक्तशंकरम्।
भेजाते तत्र तौ नित्यं शिवाराधनतत्परौ॥ ४७

राक्षसो यज्ञकर्मादि वरदर्पविमोहितः।
लोपयामास तत्सर्वं मह्यं वै दीयतामिति॥ ४८

इस प्रकार उन दोनों पति-पत्नीने शिवाराधनमें तत्पर हो भक्तोंका कल्याण करनेवाले शंकरकी तन्मयतासे सेवा की। वरदानके अभिमानसे मोहित हुए उस राक्षसने सम्पूर्ण यज्ञकर्मादि धर्मोंका लोप कर दिया और 'सब कुछ मुझे ही समर्पण करो'—वह इस प्रकारका प्रचार करने लगा॥ ४७-४८॥

बहुसैन्यसमायुक्तो राक्षसानां दुरात्मनाम्।
चकार वसुधां सर्वां स्ववशे चर्षिसत्तमाः॥ ४९

वेदधर्मं शास्त्रधर्मं स्मृतिधर्मं पुराणजम्।
लोपयित्वा च तत्सर्वं बुभुजे स्वयमूर्जितः॥ ५०

देवाश्च पीडितास्तेन सशक्रा ऋषयस्तथा।
अत्यन्तं दुःखमापन्ना लोकान्निःसारिता द्विजाः॥ ५१

हे महर्षियो! उसने दुष्ट राक्षसोंकी बहुत बड़ी अपनी सेना लेकर सारी पृथ्वी अपने वशमें कर ली और शक्तिसम्पन्न होकर वेदधर्म, शास्त्रधर्म, स्मृति-धर्म एवं पुराणधर्मका लोपकर स्वयं वह सबका भोग करने लगा। हे द्विजो! उसने इन्द्रसहित समस्त देवताओं तथा ऋषियोंको पीड़ा पहुँचायी और उन्हें अत्यन्त दुःखित करके उनके स्थानोंसे निकाल दिया॥ ४९—५१॥

ते ततो विकलाः सर्वे सवासवसुरर्षयः।
ब्रह्मविष्णू पुरोधाय शंकरं शरणं ययुः॥ ५२

तब व्याकुल हुए इन्द्रसहित देवता तथा ऋषि ब्रह्मा और विष्णुको आगेकर शंकरकी शरणमें गये॥ ५२॥

स्तुत्वा स्तोत्रैरनेकैश्च शंकरं लोकशंकरम्।
प्रसन्नं कृतवन्तस्ते महाकोश्यास्तटे शुभे॥ ५३

कृत्वा च पार्थिवीं मूर्तिं पूजयित्वा विधानतः।
तुष्टुवुर्विविधैः स्तोत्रैर्नमस्कारादिभिः क्रमात्॥ ५४

एवं स्तुतस्तदा शंभुर्देवानां स्तवनादिभिः।
सुप्रसन्नतरो भूत्वा तान्सुरानिदमब्रवीत्॥ ५५

उन लोगोंने महाकोशी नदीके उत्तम तटपर लोकका कल्याण करनेवाले शंकरकी अनेक स्तोत्रोंसे स्तुतिकर उन्हें प्रसन्न किया और पार्थिव मूर्ति बनाकर विधिपूर्वक उनकी पूजा करके क्रमसे अनेक प्रकारके स्तोत्रों तथा नमस्कारादिसे उन्हें प्रसन्न किया। इस प्रकार देवगणोंकी स्तुति आदिसे स्तुत हुए शिवजीने अत्यन्त प्रसन्न होकर उन देवताओंसे यह कहा—॥ ५३—५५॥

शिव उवाच

हे हरे हे विधे देवा ऋषयश्चाखिला अहम्।
प्रसन्नोऽस्मि वरं ब्रूत किं कार्यं करवाणि वः॥ ५६

शिवजी बोले—हे विष्णो! हे ब्रह्मन्! हे समस्त देवताओ एवं ऋषियो! मैं प्रसन्न हूँ, आपलोग वर माँगिये; मैं आपलोगोंका कौन-सा कार्य करूँ?॥ ५६॥

सूत उवाच

इत्युक्ते च तदा तेन शिवेन वचने द्विजाः।
सुप्रणम्य करौ बध्वा देवा ऊचुः शिवं तदा॥ ५७

सूतजी बोले—हे द्विजो! तब उन शिवजीके द्वारा यह वचन कहे जानेपर देवता लोग हाथ जोड़कर भलीभाँति प्रणाम करके शिवजीसे कहने लगे—॥ ५७॥

देवा ऊचुः

सर्वं जानासि देवेश सर्वेषां मनसि स्थितम्।
अन्तर्यामी च सर्वस्य नाज्ञातं विद्यते तव॥ ५८

तथापि श्रूयतां नाथ स्वदुःखं ब्रूमहे वयम्।
त्वदाज्ञया महादेव कृपादृष्ट्या विलोकय॥ ५९

देवता बोले—हे देवेश! आप सबके मनमें स्थित सारी बातें जानते हैं; आप अन्तर्यामी हैं, अतः कोई भी बात आपसे छिपी नहीं है। हे नाथ! फिर भी सुनिये; हमलोग आपकी आज्ञासे अपना दुःख निवेदन करते हैं। हे महादेव! आप [अपनी] कृपादृष्टिसे हमें देखिये॥ ५८-५९॥

राक्षसः कर्कटीपुत्रः कुंभकर्णोद्भवो बली।
पीडयत्यनिशं देवान्ब्रह्मदत्तवरोर्जितः॥ ६०

कुम्भकर्णसे उत्पन्न कर्कटीका बलवान् पुत्र राक्षस भीम ब्रह्माके द्वारा दिये गये वरदानसे उन्मत्त होकर देवताओंको निरन्तर पीड़ा पहुँचा रहा है॥ ६०॥

तमिमं जहि भीमाह्वं राक्षसं दुःखदायकम्।
कृपां कुरु महेशान विलंबं न कुरु प्रभो॥ ६१

हे महेश्वर! आप दुःख देनेवाले उस भीम नामक राक्षसका वध कीजिये। कृपा कीजिये। हे प्रभो! इसमें विलम्ब न कीजिये॥ ६१॥

सूत उवाच

इत्युक्तस्तु सुरैः सर्वैः शंभुर्वै भक्तवत्सलः।
वधं तस्य करिष्यामीत्युक्त्वा देवांस्ततोऽब्रवीत्॥ ६२

शंभुरुवाच

कामरूपेश्वरो राजा मदीयो भक्त उत्तमः।
तस्मै ब्रूतेति वै देवाः कार्यं शीघ्रं भविष्यति॥ ६३

सुदक्षिण महाराज कामरूपेश्वर प्रभो।
मद्भक्तस्त्वं विशेषेण कुरु मद्भजनं रतेः॥ ६४

दैत्यं भीमाह्वयं दुष्टं ब्रह्मप्राप्तवरोर्जितम्।
हनिष्यामि न संदेहस्त्वत्तिरस्कारकारिणम्॥ ६५

सूत उवाच

अथ ते निर्जराः सर्वे तत्र गत्वा मुदान्विताः।
तस्मै महानृपायोचुर्यदुक्तं शंभुना च तत्॥ ६६
तमित्युक्त्वा च वै देवा आनंदं परमं गताः।
महर्षयश्च ते सर्वे ययुः शीघ्रं निजाश्रमान्॥ ६७

सूतजी बोले—इस प्रकार सभी देवताओंद्वारा कहे जानेपर भक्तवत्सल शिवजी—'मैं उसका वध करूँगा'—ऐसा कहकर पुनः देवताओंसे कहने लगे॥ ६२॥

शम्भु बोले—हे देवताओ! राजा कामरूपेश्वर मेरा उत्तम भक्त है, आपलोग उससे यह कहिये, तब कार्य शीघ्र पूरा होगा। [शंकरजीने तुमसे कहा है कि] हे सुदक्षिण! हे महाराज! हे कामरूपेश्वर! हे प्रभो! तुम मेरे विशेष रूपसे भक्त हो, प्रेमपूर्वक मेरा भजन करते रहो। मैं ब्रह्मासे प्राप्त वरसे शक्तिमान् तथा तुम्हारा तिरस्कार करनेवाले भीम नामक दुष्ट राक्षसका वध करूँगा, इसमें संशय नहीं है॥ ६३—६५॥

सूतजी बोले—इसके बाद उन सभी देवताओंने हर्षित हो वहाँ जाकर शिवजीने जो कहा था, वह सब उस महाराजासे कह दिया। उससे यह कहकर वे सभी देवता तथा महर्षि परम आनन्दित हुए और शीघ्र ही अपने-अपने आश्रमोंको चले गये॥ ६६-६७॥

इति श्रीशिवमहापुराणे चतुर्थ्यां कोटिरुद्रसंहितायां भीमेश्वरज्योतिर्लिंगमाहात्म्ये भीमासुरकृतोपद्रववर्णनं नाम विंशोऽध्यायः॥ २०॥

॥ इस प्रकार श्रीशिवमहापुराणके अन्तर्गत चतुर्थ कोटिरुद्रसंहिताके भीमेश्वरज्योतिर्लिंगमाहात्म्यमें भीमासुरकृतोपद्रववर्णन नामक बीसवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ २०॥

अथैकविंशोऽध्यायः

भीमशंकर ज्योतिर्लिंगकी उत्पत्ति तथा उसके माहात्म्यका वर्णन

सूत उवाच

शिवोऽपि च गणैः सार्धं जगाम हितकाम्यया।
स्वभक्तनिकटं गुप्तस्तस्थौ रक्षार्थमादरात्॥ १

एतस्मिन्नन्तरे तत्र कामरूपेश्वरेण च।
अत्यन्तं ध्यानमारब्धं पार्थिवस्य पुरस्तदा॥ २
केनचित्तत्र गत्वा च राक्षसाय निवेदितम्।
राजा किंचित्करोत्येवं त्वदर्थं ह्याभिचारिकम्॥ ३

सूत उवाच

राक्षसः स च तच्छ्रुत्वा क्रुद्धस्तद् हननेच्छया।
गृहीत्वा करवालं च जगाम नृपतिं प्रति॥ ४

तद् दृष्ट्वा राक्षसस्तत्र पार्थिवादि स्थितं च यत्।
तदर्थं तत्स्वरूपं च दृष्ट्वा किंचित्करोत्यसौ॥ ५

सूतजी बोले—[उसके बाद] शिवजी भी अपने गणोंको साथ लेकर राजाके कल्याणकी कामनासे आदरपूर्वक वहाँ गये और उसकी रक्षाके लिये गुप्तरूपसे स्थित हो गये॥ १॥

इसी अवसरपर कामरूपेश्वरने वहाँ पार्थिव लिंगके आगे गहन ध्यान करना प्रारम्भ किया॥ २॥

तभी किसीने जाकर राक्षससे कह दिया कि वह राजा आपके निमित्त कुछ अभिचारकर्म कर रहा है॥ ३॥

सूतजी बोले—यह सुनकर राक्षस कुपित हो उठा और उसे मारनेकी इच्छासे हाथमें तलवार लेकर राजाके समीप गया॥ ४॥

वहाँ जो पार्थिव शिवलिंग आदि रखा हुआ था, उसे देखकर और उसके स्वरूपको देखकर उसने निश्चय कर लिया कि यह मेरे लिये कुछ कर रहा

अत एनं बलादद्य हन्मि सोपस्करं नृपम्।
विचार्येति महाक्रुद्धो राक्षसः प्राह तं नृपम्॥ ६

भीम उवाच

रे रे पार्थिव दुष्टात्मन् क्रियते किं त्वयाधुना।
सत्यं वद न हन्यां त्वामन्यथा हन्मि निश्चितम्॥ ७

सूत उवाच

इति श्रुत्वा वचस्तस्य कामरूपेश्वरश्च सः।
मनसीति चिचिन्ताशु शिवविश्वासपूरितः॥ ८
भविष्यं यद्भवत्येव नास्ति तस्य निवर्तकः।
प्रारब्धाधीनमेवात्र प्रारब्धः स शिवः स्मृतः॥ ९
कृपालुः शंकरश्चात्र पार्थिवे वर्तते ध्रुवम्।
मदर्थं न करोतीह कुतः कोऽयं च राक्षसः॥ १०
स्वानुरूपां प्रतिज्ञां स सत्यं चैव करिष्यति।
सत्यप्रतिज्ञो भगवान् शिवश्चेति श्रुतौ श्रुतः॥ ११
मम भक्तं यदा कश्चित्पीडयत्यतिदारुणः।
तदाहं तस्य रक्षार्थं दुष्टं हन्मि न संशयः॥ १२
एवं धैर्यं समालंब्य ध्यात्वा देवं च शंकरम्।
प्रार्थयामास सद्भक्त्या मनसैव रसेश्वरः॥ १३
त्वदीयोऽस्मि महाराज यथेच्छसि तथा कुरु।
सत्यं च वचनं ह्यत्र ब्रवीमि कुरु मे हितम्॥ १४
एवं मनसि स ध्यात्वा सत्यपाशेन यन्त्रितः।
प्राह सत्यं वचो राजा राक्षसं चावमानयन्॥ १५

नृप उवाच

भजामि शंकरं देवं स्वभक्तपरिपालकम्।
चराचराणां सर्वेषामीश्वरं निर्विकारकम्॥ १६

सूत उवाच

इति तस्य वचः श्रुत्वा कामरूपेश्वरस्य सः।
क्रोधेन प्रचलद्गात्रो भीमो वचनमब्रवीत्॥ १७

भीम उवाच

शंकरस्ते मया ज्ञातः किं करिष्यति वै मम।
यो मे पितृव्यकेनैव स्थापितः किंकरो यथा॥ १८

है। अतः मैं आज सभी सामग्रीसहित इसे बलपूर्वक मार डालूँगा। इस प्रकार विचार करके अत्यन्त क्रुद्ध हो राक्षसने राजासे कहा— ॥ ५-६ ॥

भीम बोला—हे दुष्टात्मा राजा! तुम इस समय क्या कर रहे हो? यह सच-सच बता दो, तो तुम्हें नहीं मारूँगा, अन्यथा निश्चय ही तुम्हारा वध कर दूँगा॥ ७॥

सूतजी बोले—उसका यह वचन सुनकर शिवमें विश्वासपरायण वह कामरूपेश्वर शीघ्र ही अपने मनमें यह विचार करने लगा—जो होनहार है, वह होकर रहेगा, उसको टालनेवाला कोई नहीं है, यहाँ तो सब कुछ प्रारब्धके अधीन है और शिवको ही प्रारब्ध कहा गया है। वे दयालु शिवजी निश्चितरूपसे इस पार्थिव लिंगमें भी उपस्थित हैं। क्या वे मेरे लिये कुछ नहीं करेंगे? यह राक्षस [उनके सामने] क्या है? वे अपनी की हुई प्रतिज्ञा पूर्ण करेंगे; क्योंकि भगवान् शिव वेदमें सत्यप्रतिज्ञ कहे गये हैं। [वे स्वयं कहते हैं] जब कोई अत्यन्त निर्दयी व्यक्ति मेरे भक्तको पीड़ित करता है, तो मैं उसकी रक्षाके लिये उस दुष्टका वध कर देता हूँ, इसमें संशय नहीं है॥ ८—१२॥

इस प्रकार धैर्य धारणकर भगवान् शिवका ध्यान करते हुए वह राजा अपने मनमें उत्तम भक्तिपूर्वक प्रार्थना करने लगा। हे महाराज! मैं आपका हूँ, जैसी आपकी इच्छा हो, वैसा कीजिये। मैं यह सत्य कहता हूँ कि आप मेरा कल्याण कीजिये॥ १३-१४॥

इस प्रकार मनमें ध्यान करके सत्यपाशमें बँधे हुए उस राजाने राक्षसका तिरस्कार करते हुए सत्य वचन कहा— ॥ १५ ॥

राजा बोला—[हे राक्षस!] मैं अपने भक्तोंकी रक्षा करनेवाले, समस्त चराचरके स्वामी तथा निर्विकार भगवान् शिवका भजन कर रहा हूँ॥ १६॥

सूतजी बोले—उस कामरूपेश्वरका यह वचन सुनकर क्रोधसे काँपते हुए शरीरवाले उस भीमने यह वचन कहा— ॥ १७॥

भीम बोला—मैं तुम्हारे शंकरको जानता हूँ, वह मेरा क्या कर लेगा, जिसे मेरे पिताके भाई [रावण]-ने दासकी भाँति स्थापित किया था॥ १८॥

तद्बलं हि समाश्रित्य विजेतुं त्वं समीहसे।
तर्हि त्वया जितं सर्वं नात्र कार्या विचारणा॥ १९

यावन्मया न दृष्टो हि शंकरस्त्वत्प्रपालकः।
तावत्त्वं स्वामिनं मत्वा सेवसे नान्यथा क्वचित्॥ २०

तुम उसीके बलका सहारा लेकर मुझे जीतना चाहते हो, तो अब तुम सब कुछ जीत चुके! इसमें सन्देह नहीं करना चाहिये। जबतक तुम्हारा पालन करनेवाला वह शिव मेरे सामने आकर दिखायी नहीं पड़ता, तबतक तुम उसे स्वामी मानकर उसकी सेवा करते रहो, अन्यथा कभी नहीं कर सकोगे॥ १९-२०॥

मया दृष्टे च तत्सर्वं स्फुटं स्यात्सर्वथा नृप।
तस्मात्त्वं वै शिवस्येदं रूपं दूरतरं कुरु॥ २१

अन्यथा हि भयं तेऽद्य भविष्यति न संशयः।
स्वामिनस्ते करं तीक्ष्णं दास्येऽहं भीमविक्रमः॥ २२

हे राजन्! उसे मेरे द्वारा देख लेनेसे सब कुछ भलीभाँति स्पष्ट हो जायगा, अतः तुम शिवजीके इस रूपको दूर कर दो। अन्यथा तुम्हें आज अवश्य ही भय होगा, इसमें संशय नहीं है, भयंकर पराक्रमवाला मैं तुम्हारे स्वामीको तीक्ष्ण चपेटा मारूँगा॥ २१-२२॥

सूत उवाच

इति तद्वचनं श्रुत्वा कामरूपेश्वरो नृपः।
दृढं शंकरविश्वासो द्रुतं वाक्यमुवाच तम्॥ २३

सूतजी बोले—उसका यह वचन सुनकर शिवके प्रति आस्थावाले राजा कामरूपेश्वरने भीमसे शीघ्र ही यह दृढ़ वचन कहा—॥ २३॥

राजोवाच

अहं च पामरो दुष्टो न मोक्ष्ये शंकरं पुनः।
सर्वोत्कृष्टश्च मे स्वामी न मां मुंचति कर्हिचित्॥ २४

राजा बोला—हे राक्षस! मैं नीच एवं दुष्ट जो भी हूँ, किंतु शिवजीका त्याग कभी नहीं करूँगा और मेरे स्वामी भी सर्वश्रेष्ठ हैं, वे मेरा त्याग कभी नहीं करेंगे॥ २४॥

सूत उवाच

एवं वचस्तदा श्रुत्वा तस्य राज्ञः शिवात्मनः।
तं प्रहस्य द्रुतं भीमो भूपतिं राक्षसोऽब्रवीत्॥ २५

सूतजी बोले—इस प्रकार उस शिवभक्त राजाकी बात सुनकर उस भीम राक्षसने हँसकर शीघ्र ही उस राजासे कहा—॥ २५॥

भीम उवाच

मत्तो भिक्षयते नित्यं स किं जानाति स्वाकृतिम्।
योगिनां का च निष्ठा वै भक्तानां प्रतिपालने॥ २६

भीम बोला—मत्त होकर वह नित्य भीख माँगता रहता है, उसे तो अपने स्वरूपका भी ज्ञान नहीं है। भक्तोंकी रक्षा करनेमें योगियोंकी क्या निष्ठा होगी?॥ २६॥

इति कृत्वा मतिं त्वं च दूरतो भव सर्वथा।
अहं च तव स स्वामी युद्धं वै करवावहै॥ २७

ऐसा विचारकर तुम सब प्रकारसे उससे दूर रहो, मैं और तुम्हारा वह स्वामी [परस्पर] युद्ध करेंगे॥ २७॥

सूत उवाच

इत्युक्तः स नृपश्रेष्ठः शंभुभक्तो दृढव्रतः।
प्रत्युवाचाभयो भीमं दुःखदं जगतां सदा॥ २८

सूतजी बोले—उसके बाद इस प्रकार कहे जानेपर शिवभक्त तथा दृढ़ व्रतवाले उस श्रेष्ठ राजाने निडर होकर सदा जगत्को दुःख देनेवाले भीमसे कहा—॥ २८॥

राजोवाच

शृणु राक्षस दुष्टात्मन्मया कर्तुं न शक्यते।
त्वया विक्रियते तर्हि कुतस्त्वं शक्तिमानसि॥ २९

राजा बोला—हे दुष्टात्मा राक्षस! सुनो, मैं ऐसा कभी नहीं कर सकता। तुम जो यह विकर्म करते हो, उसमें तुम समर्थ कहाँसे हुए हो?॥ २९॥

सूत उवाच

इत्युक्तः सैन्यमादाय राजानं परिभर्त्स्य तम्।
करालं करवालं च पार्थिवे प्राक्षिपत्तदा॥ ३०

सूतजी बोले—उसके इस प्रकार कहनेपर सेना लेकर [आये हुए] भीमने उस राजाको धमका करके अपने भयंकर कृपाणसे पार्थिव लिंगपर प्रहार किया

पश्य त्वं स्वामिनोऽद्यैव बलं भक्तसुखावहम्।
इत्युवाच विहस्यैव राक्षसैः स महाबलः॥ ३१

करवालः पार्थिवं च यावत्स्पृशति नो द्विजाः।
तावच्च पार्थिवात्तस्मादाविरासीत्स्वयं हरः॥ ३२

पश्य भीमेश्वरोऽहं च रक्षार्थं प्रकटोऽभवम्।
मम पूर्वव्रतं ह्येतद्रक्ष्यो भक्तो मया सदा॥ ३३

एतस्मात्पश्य मे शीघ्रं बलं भक्तसुखावहम्।
इत्युक्त्वा स पिनाकेन करवालो द्विधा कृतः॥ ३४

पुनश्चैव त्रिशूलं स्वं चिक्षिपे तेन रक्षसा।
तच्छूलं शतधा नीतमपि दुष्टस्य शंभुना॥ ३५

पुनः शक्तिश्च निःक्षिप्ता तेन शंभूपरि द्विजाः।
शंभुना सापि बाणैः स्वैर्लक्षधा च कृता द्रुतम्॥ ३६

पट्टिशश्च ततस्तेन निःक्षिप्तो हि शिवोपरि।
शिवेन स त्रिशूलेन तिलशश्च कृतं क्षणात्॥ ३७

ततः शिवगणानां च राक्षसानां परस्परम्।
युद्धमासीत्तदा घोरं पश्यतां दुःखकावहम्॥ ३८

ततश्च पृथिवी सर्वा व्याकुला चाभवत्क्षणात्।
समुद्राश्च तदा सर्वे चुक्षुभुः समहीधराः॥ ३९

देवाश्च ऋषयः सर्वे बभूवुर्विकला अति।
ऊचुः परस्परं चेति व्यर्थं वै प्रार्थितः शिवः॥ ४०

नारदश्च समागत्य शंकरं दुःखदाहकम्।
प्रार्थयामास तत्रैव सांजलिर्नतमस्तकः॥ ४१

नारद उवाच

क्षम्यतां क्षम्यतां नाथ त्वया विभ्रमकारक।
तृणे कश्च कुठारो वै हन्यतां शीघ्रमेव हि॥ ४२

इति संप्रार्थितः शंभुः सर्वान् रक्षोगणान्प्रभुः।
हुंकारेणैव चास्त्रेण भस्मसात्कृतवांस्तदा॥ ४३

और राक्षसोंके साथ उस महाबली भीमने हँसकर कहा—अब तुम भक्तोंको सुख देनेवाला अपने स्वामीका बल देखो॥ ३०-३१॥

हे द्विजो! जबतक कि उस तलवारने पार्थिवका स्पर्श भी नहीं किया, तबतक उस पार्थिव लिंगसे शिवजी स्वयं प्रकट हो गये॥ ३२॥

[शिवजी बोले—] 'हे भीम! देखो, मैं ईश्वर हूँ, मैं [राजाकी] रक्षाके लिये प्रकट हुआ हूँ। मेरा पहलेसे ही यह व्रत है कि मैं सदा भक्तोंकी रक्षा करता हूँ। अतः अब तुम भक्तोंको सुख देनेवाले मेरे बलको शीघ्र देखो'—ऐसा कहकर शिवजीने अपने पिनाक धनुषसे उसकी तलवारके दो टुकड़े कर दिये॥ ३३-३४॥

तब उस राक्षसने पुनः अपना त्रिशूल फेंका। शिवजीने उस दुष्टके उस त्रिशूलके भी सैकड़ों टुकड़े कर दिये॥ ३५॥

हे द्विजो! तब उस दुष्टने शिवजीके ऊपर अपनी शक्तिसे प्रहार किया। शिवजीने शीघ्रतासे अपने बाणोंसे उसके भी लाखों टुकड़े कर दिये॥ ३६॥

तत्पश्चात् उसने शिवजीके ऊपर पट्टिशसे प्रहार किया, तब शिवजीने त्रिशूलसे पट्टिशको तिलके समान खण्ड-खण्ड कर दिया॥ ३७॥

उसके बाद शिवके गणों तथा राक्षसोंके बीच घोर युद्ध होने लगा, जो देखनेवालोंको भय उत्पन्न करनेवाला था॥ ३८॥

इसके बाद तो उससे सारी पृथ्वी क्षणभरमें व्याकुल हो उठी और पर्वतोंसहित सभी समुद्र विक्षुब्ध हो उठे। सभी देवता तथा ऋषि अत्यन्त व्याकुल हो गये और आपसमें कहने लगे कि हमलोगोंने व्यर्थ ही शिवसे प्रार्थना की॥ ३९-४०॥

इसी बीच नारदजी आकरके दुःखको नष्ट करनेवाले शिवजीसे हाथ जोड़कर तथा सिर झुकाकर प्रार्थना करने लगे॥ ४१॥

नारदजी बोले—हे नाथ! हे विभ्रमकारक! आप क्षमा करें। क्या तृणपर कुठारका प्रयोग करना उचित है? अतः आप शीघ्र ही इसका वध कीजिये॥ ४२॥

तब [नारदके द्वारा] इस प्रकार प्रार्थना किये जानेपर प्रभु शिवने अपने हुंकाररूपी अस्त्रसे समस्त राक्षसोंको भस्म कर दिया॥ ४३॥

सर्वे ते राक्षसा दग्धाः शंकरेण क्षणं मुने।
बभूवुस्तत्र सर्वेषां देवानां पश्यतां द्रुतम्॥ ४४

दावानलगतो वह्निर्यथा च वनमादहेत्।
तथा शिवेन क्रुद्धेन राक्षसानां बलं क्षणात्॥ ४५

हे मुने! इस प्रकार शिवजीके द्वारा वे सभी राक्षस क्षणमात्रमें सभी देवताओंके देखते-देखते दग्ध कर दिये गये। जिस प्रकार दावानलसे उत्पन्न अग्नि वनको जला डालती है, वैसे ही कुपित शिवजीने राक्षसोंकी सेनाको क्षणभरमें जला डाला॥ ४४-४५॥

भीमस्यैव च किं भस्म न ज्ञातं केनचित्तदा।
परिवारयुतो दग्धो नाम न श्रूयते क्वचित्॥ ४६

उस समय किसीको ज्ञात न हुआ कि भीमकी भस्म कौन-सी है! वह परिवारसहित भस्म हो गया, उसका नाम भी कहीं सुनायी नहीं पड़ता था॥ ४६॥

ततः शिवस्य कृपया शान्तिं प्राप्ता मुनीश्वराः।
देवाः सर्वे च शक्राद्याः स्वास्थ्यं प्रापाखिलं जगत्॥ ४७

इसके बाद शिवजीकी कृपासे सभी मुनीश्वरों तथा इन्द्र आदि सभी देवताओंको शान्ति प्राप्त हुई और सारा जगत् स्वस्थ हो गया॥ ४७॥

क्रोधज्वाला महेशस्य निःससार वनाद्वनम्।
राक्षसानां च तद्भस्म सर्वं व्याप्तं वनेऽखिलम्॥ ४८

उस समय महेश्वरके क्रोधकी ज्वाला एक वनसे दूसरे वनतक फैलने लगी। इससे राक्षसोंकी वह सम्पूर्ण भस्म वनमें सभी जगह व्याप्त हो गयी॥ ४८॥

ततश्चौषधयो जाता नानाकार्यकरास्तथा।
रूपान्तरं ततो नृणां भवेद्वेषान्तरं तथा॥ ४९

उससे अनेक कार्य सम्पन्न करनेवाली ऐसी ओषधियाँ उत्पन्न हुईं, जिनके प्रभावसे मनुष्योंके रूप तथा वेष भिन्न-भिन्न रूपमें बदल जाते हैं॥ ४९॥

भूतप्रेतपिशाचादि दूरतश्च ततो व्रजेत्।
तन्न कार्यं च यच्चैव ततो न भवति द्विजाः॥ ५०

हे द्विजो! उन औषधियोंसे भूत, प्रेत, पिशाच आदि दूर भाग जाते हैं, जगत्का ऐसा कोई कार्य नहीं है, जो उन औषधियोंसे न होता हो॥ ५०॥

तैर्देवैः प्रार्थितः शम्भुर्मुनिभिश्च विशेषतः।
स्थातव्यं स्वामिना ह्यत्र लोकानां सुखहेतवे॥ ५१

अयं वै कुत्सितो देश अयोध्यालोकदुःखदः।
भवन्तं च तदा दृष्ट्वा कल्याणं संभविष्यति॥ ५२

भीमशंकरनामा त्वं भविता सर्वसाधकः।
एतल्लिंगं सदा पूज्यं सर्वापद्विनिवारकम्॥ ५३

उसके बाद उन देवताओं एवं ऋषियोंने शिवजीसे विशेषरूपसे प्रार्थना की—संसारको सुख देनेके लिये आप स्वामीको अब यहीं निवास करना चाहिये। निर्बल तथा पराक्रमहीन लोगोंको दुःख देनेवाला यह बड़ा कुत्सित देश है, आपके दर्शनसे उन लोगोंका कल्याण होगा। आप भीमशंकर नामसे प्रसिद्ध होंगे और सब कुछ सिद्ध करेंगे। सभी आपत्तियोंको दूर करनेवाला यह लिंग सदा पूज्य होगा॥ ५१—५३॥

सूत उवाच

इत्येवं प्रार्थितः शम्भुर्लोकानां हितकारकः।
तत्रैवास्थितवान्प्रीत्या स्वतन्त्रो भक्तवत्सलः॥ ५४

सूतजी बोले—इस प्रकार प्रार्थना किये जानेपर लोकका हित करनेवाले, स्वतन्त्र तथा भक्तवत्सल शिवजी प्रेमपूर्वक वहींपर स्थित हो गये॥ ५४॥

इति श्रीशिवमहापुराणे चतुर्थ्यां कोटिरुद्रसंहितायां भीमेश्वरज्योतिर्लिंगोत्पत्तिस्तन्माहात्म्यवर्णनं नामैकविंशोऽध्यायः॥ २१॥

इस प्रकार श्रीशिवमहापुराणके अन्तर्गत चतुर्थ कोटिरुद्रसंहितामें भीमेश्वरज्योतिर्लिंगोत्पत्ति तथा उसके माहात्म्यका वर्णन नामक इक्कीसवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ २१॥

अथ द्वाविंशोऽध्यायः

परब्रह्म परमात्माका शिव-शक्तिरूपमें प्राकट्य, पंचक्रोशात्मिका काशीका अवतरण, शिवद्वारा अविमुक्त लिंगकी स्थापना, काशीकी महिमा तथा काशीमें रुद्रके आगमनका वर्णन

सूत उवाच

अतः परं प्रवक्ष्यामि श्रूयतामृषिसत्तमाः।
विश्वेश्वरस्य माहात्म्यं महापातकनाशनम्॥ १
यदिदं दृश्यते किंचिज्जगत्यां वस्तुमात्रकम्।
चिदानन्दस्वरूपं च निर्विकारं सनातनम्॥ २

सूतजी बोले—हे श्रेष्ठ ऋषिगण! अब विश्वेश्वरके महापापनाशक माहात्म्यका वर्णन करूँगा, आपलोग सुनें। संसारमें यह जो कुछ भी वस्तुमात्र दिखायी देता है, वह चिदानन्दस्वरूप, निर्विकार एवं सनातन है॥ १-२॥

तस्यैव कैवल्यरतेर्द्विंतीयेच्छा ततोऽभवत्।
स एव सगुणो जातः शिव इत्यभिधीयते॥ ३

अपने कैवल्य (अद्वैत)-भावमें ही रमनेवाले उस अद्वितीय परमेश्वरको दूसरा रूपवाला होनेकी इच्छा हुई, वही सगुण हो गया, जो शिवनामसे कहा जाता है॥ ३॥

स एव हि द्विधा जातः पुंस्त्रीरूपप्रभेदतः।
यः पुमान्स शिवः ख्यातः स्त्री शक्तिः सा हि कथ्यते॥ ४
चिदानन्दस्वरूपाभ्यां पुरुषावपि निर्मितौ॥ ५
अदृष्टाभ्यां तदा ताभ्यां स्वभावान्मुनिसत्तमाः।
तावदृष्ट्वा तदा तौ च स्वमातृपितरौ द्विजाः॥ ६
महासंशयमापन्नौ प्रकृतिः पुरुषश्च तौ।
तदा वाणी समुत्पन्ना निर्गुणात्परमात्मनः।
तपश्चैव प्रकर्तव्यं ततः सृष्टिरनुत्तमा॥ ७

वे ही स्त्री तथा पुरुषके भेदसे दो रूपोंमें हो गये। उनमें जो पुरुष था, वह शिव कहा गया एवं जो स्त्री थी, वह शक्ति कही गयी। हे मुनिसत्तमो! उन दोनों अदृष्ट चित् तथा आनन्दस्वरूप (शिव-शक्ति)-द्वारा स्वभावसे प्रकृति तथा पुरुष भी निर्मित किये गये। हे द्विजो! जब इस प्रकृति एवं पुरुषने अपने जननी एवं जनकको नहीं देखा, तब वे महान् संशयमें पड़ गये। उस समय निर्गुण परमात्मासे आकाशवाणी उत्पन्न हुई कि तुम दोनों तप करो, उसीसे उत्तम सृष्टि होगी॥ ४—७॥

प्रकृतिपुरुषावूचतुः

तपसस्तु स्थलं नास्ति कुत्रावाभ्यां प्रभोऽधुना।
स्थित्वा तपः प्रकर्तव्यं तव शासनतः शिव॥ ८

प्रकृति-पुरुष बोले—हे प्रभो! हे शिव! तपका कोई स्थान नहीं है, फिर हम दोनों आपकी आज्ञासे कहाँ स्थित होकर तप करें?॥ ८॥

ततश्च तेजसः सारं पञ्चक्रोशात्मकं शुभम्।
सर्वोपकरणैर्युक्तं सुंदरं नगरं तथा॥ ९
निर्माय प्रेषितं तत्स्वं निर्गुणेन शिवेन च।
अंतरिक्षे स्थितं तच्च पुरुषस्य समीपतः॥ १०

तब निर्गुण शिवने अन्तरिक्षमें स्थित, सभी सामग्रियोंसे समन्वित, सम्पूर्ण तेजोंका सारभूत, पंचक्रोश (पाँच कोस) परिमाणवाला एक शुभ तथा सुन्दर नगर बनाया, जो कि उनका अपना ही स्वरूप था, [उस नगरको शिवजीने] पुरुषके समीप भेज दिया॥ ९-१०॥

तदधिष्ठाय हरिणा सृष्टिकामनया ततः।
बहुकालं तपस्तप्तं तद्ध्यानमवलंब्य च॥ ११

तब वहाँ स्थित होकर [पुरुषरूप] विष्णुने सृष्टिकी कामनासे उन शिवजीका ध्यान करते हुए बहुत कालपर्यन्त तप किया॥ ११॥

श्रमेण जलधाराश्च विविधाश्चाभवंस्तदा।
ताभिर्व्याप्तं च तच्छून्यं नान्यत्किंचिददृश्यत॥ १२

तपस्याके श्रमसे उनके शरीरसे अनेक जलधाराएँ उत्पन्न हो गयीं और उनसे सारा शून्य भर गया। उस समय कुछ भी दिखायी नहीं पड़ता था॥ १२॥

ततश्च विष्णुना दृष्टं किमेतद् दृश्यतेऽद्भुतम्।
इत्याश्चर्यं तदा दृष्ट्वा शिरसः कम्पनं कृतम्॥ १३

इसके बाद विष्णुने देखा कि यह क्या आश्चर्य दिखायी दे रहा है! तब इस आश्चर्यको देखकर विष्णुने अपना सिर हिला दिया॥ १३॥

ततश्च पतितः कर्णान्मणिश्च पुरतः प्रभोः।
तद् बभूव महत्तीर्थं नामतो मणिकर्णिका॥ १४

तब विष्णुके कानसे उनके सामने एक मणि गिर पड़ी। वही मणिकर्णिका नामसे एक महान् तीर्थ हो गया॥ १४॥

जलौघे प्लाव्यमाना सा पञ्चक्रोशी यदाभवत्।
निर्गुणेन शिवेनाशु त्रिशूलेन धृता तदा॥ १५

जब वह पंचक्रोशात्मिका नगरी उस जलराशिमें डूबने लगी, तब निर्गुण शिवने उसे शीघ्र ही अपने त्रिशूलपर धारण कर लिया॥ १५॥

विष्णुस्तत्रैव सुष्वाप प्रकृत्या स्वस्त्रिया सह।
तन्नाभिकमलाज्जातो ब्रह्मा शंकरशासनात्॥ १६

इसके बाद विष्णुने प्रकृति नामक अपनी स्त्रीके साथ वहीं शयन किया, तब शंकरकी आज्ञासे उनके नाभिकमलसे ब्रह्मा प्रकट हुए॥ १६॥

शिवाज्ञां स समासाद्य सृष्टिं चक्रेऽद्भुतां तदा।
चतुर्दशमिता लोका ब्रह्मांडे यत्र निर्मिताः॥ १७
योजनानां च पञ्चाशत्कोटिसंख्याप्रमाणतः।
ब्रह्माण्डस्यैव विस्तारो मुनिभिः परिकीर्तितः॥ १८
ब्रह्माण्डे कर्मणा बद्धाः प्राणिनो मां कथं पुनः।
प्राप्स्यन्तीति विचिन्त्यैतत्पञ्चक्रोशी विमोचिता॥ १९

तब उन्होंने शिवकी आज्ञा पाकर अद्भुत सृष्टिकी रचना की। उन्होंने ब्रह्माण्डमें चौदह लोकोंका निर्माण किया। मुनियोंने इस ब्रह्माण्डका विस्तार पचास करोड़ योजन बताया है॥ १७-१८॥

ब्रह्माण्डमें [अपने-अपने] कर्मोंसे बँधे हुए प्राणी मुझे किस प्रकारसे प्राप्त करेंगे—ऐसा विचारकर उन्होंने (शिवजीने) पंचकोशीको [ब्रह्माण्डसे] अलग रखा॥ १९॥

इयं च शुभदा लोके कर्मनाशकरी मता।
मोक्षप्रकाशिका काशी ज्ञानदा मम सुप्रिया॥ २०

अविमुक्तं स्वयं लिंगं स्थापितं परमात्मना।
न कदापि त्वया त्याज्यमिदं क्षेत्रं ममांशक॥ २१

यह काशी लोकमें कल्याण करनेवाली, कर्मबन्धनका विनाश करनेवाली, मोक्षतत्त्वको प्रकाशित करनेवाली, ज्ञान प्रदान करनेवाली तथा मुझे अत्यन्त प्रिय कही गयी है। परमात्मा शिवने अविमुक्त नामक लिंगको स्वयं स्थापित किया और उससे कहा—हे मेरे अंश-स्वरूप! तुम्हें मेरे इस क्षेत्रका कभी त्याग नहीं करना चाहिये॥ २०-२१॥

इत्युक्त्वा च त्रिशूलात्स्वादवतार्य हरः स्वयम्।
मोचयामास भुवने मर्त्यलोके हि काशिकाम्॥ २२

ऐसा कहकर स्वयं सदाशिवने उस काशीको अपने त्रिशूलसे उतारकर मर्त्यलोक संसारमें स्थापित किया॥ २२॥

ब्रह्मणश्च दिने सा हि न विनश्यति निश्चितम्।
तदा शिवस्त्रिशूलेन दधाति मुनयश्च ताम्॥ २३

ब्रह्माका एक दिन पूरा होनेपर भी उस काशीका नाश निश्चत ही नहीं होता। हे मुनियो! उस समय शिवजी उसे अपने त्रिशूलपर धारण करते हैं॥ २३॥

पुनश्च ब्रह्मणा सृष्टौ कृतायां स्थाप्यते द्विजाः।
कर्मणां कर्षणाच्चैव काशीति परिपठ्यते॥ २४

हे द्विजो! ब्रह्माद्वारा पुनः सृष्टि किये जानेपर वे काशीको स्थापित करते हैं। [सभी प्रकारके] कर्मबन्धनोंको नष्ट करनेके कारण इसे काशी कहते हैं॥ २४॥

अविमुक्तेश्वरं लिंगं काश्यां तिष्ठति सर्वदा।
मुक्तिदातृ च लोकानां महापातकिनामपि॥ २५

अन्यत्र प्राप्यते मुक्तिः सारूप्यादिर्मुनीश्वराः।
अत्रैव प्राप्यते जीवैः सायुज्या मुक्तिरुत्तमा॥ २६

येषां क्वापि गतिर्नास्ति तेषां वाराणसी पुरी।
पञ्चक्रोशी महापुण्या हत्याकोटिविनाशिनी॥ २७

अमरा मरणं सर्वे वांछन्तीह परे च के।
भुक्तिमुक्तिप्रदा चैषा सर्वदा शंकरप्रिया॥ २८

ब्रह्मा च श्लाघते चामुं विष्णुः सिद्धाश्च योगिनः।
मुनयश्च तथैवान्ये त्रिलोकस्था जनाः सदा॥ २९

काश्याश्च महिमानं वै वक्तुं वर्षशतैरपि।
शक्नोम्यहं न सर्वं हि यथाशक्ति ब्रुवे ततः॥ ३०

कैलासस्य पतिर्यो वै ह्यन्तः सत्त्वो बहिस्तमाः।
कालाग्निर्नामतः ख्यातो निर्गुणो गुणवान्भवः।
प्रणिपातैरनेकैश्च वचनं चेदमब्रवीत्॥ ३१

अविमुक्तेश्वर नामक लिंग काशीमें सर्वदा स्थित रहता है, यह महापातकियोंको भी मुक्त करनेवाला है। हे मुनीश्वरो! अन्यत्र (मोक्षप्रद क्षेत्रोंमें) सारूप्य आदि मुक्ति प्राप्त होती है, किंतु यहाँ प्राणियोंको सर्वोत्तम सायुज्य मुक्ति प्राप्त होती है॥ २५-२६॥

जिनकी कहीं गति नहीं होती, उनके लिये वाराणसीपुरी है; महापुण्यदायिनी पंचकोशी करोड़ों हत्याओंको विनष्ट करनेवाली है॥ २७॥

सभी देवतालोग भी यहाँ मृत्युकी इच्छा करते हैं, फिर दूसरोंकी बात ही क्या है? शंकरको प्रिय यह नगरी सर्वदा भोग एवं मोक्षको देनेवाली है॥ २८॥

ब्रह्मा, विष्णु, सिद्ध, योगी, मुनि तथा त्रिलोकमें रहनेवाले अन्य लोग भी सदा काशीकी प्रशंसा करते हैं। [हे महर्षियो!] मैं काशीकी सम्पूर्ण महिमाको सौ वर्षोंमें भी नहीं कह सकता। फिर भी यथाशक्ति वर्णन करता हूँ॥ २९-३०॥

जो कैलासपति भीतरसे सत्त्वगुणी, बाहरसे तमोगुणी कहे गये हैं तथा कालाग्निरुद्रके नामसे प्रसिद्ध हैं, वे निर्गुण होते हुए भी सगुणरूपमें प्रकट हुए शिव हैं। उन्होंने अनेक बार प्रणाम करते हुए शंकरसे यह वचन कहा था—॥ ३१॥

रुद्र उवाच

विश्वेश्वर महेशान त्वदीयोऽस्मि न संशयः।
कृपां कुरु महादेव मयि त्वं साम्ब आत्मजे॥ ३२

स्थातव्यं च सदात्रैव लोकानां हितकाम्यया।
तारयस्व जगन्नाथ प्रार्थयामि जगत्पते॥ ३३

रुद्र बोले—हे विश्वेश्वर! हे महेश्वर! मैं आपका हूँ, इसमें सन्देह नहीं। हे महादेव! मुझ पुत्रपर अम्बासहित आप कृपा कीजिये। हे जगन्नाथ! हे जगत्पते! लोककल्याणकी कामनासे आप यहींपर सदा निवास कीजिये और सबका उद्धार कीजिये; मैं यही प्रार्थना करता हूँ॥ ३२-३३॥

सूत उवाच

अविमुक्तोऽपि दान्तात्मा तं संप्रार्थ्य पुनः पुनः।
नेत्राश्रूणि प्रमुच्यैव प्रीतः प्रोवाच शंकरम्॥ ३४

सूतजी बोले—[तदनन्तर] मन तथा इन्द्रियोंको संयत करनेवाले अविमुक्तने भी बारंबार शिवकी प्रार्थना करके अपने नेत्रोंसे आँसुओंको गिराते हुए प्रसन्नतापूर्वक शिवजीसे कहा—॥ ३४॥

अविमुक्त उवाच

देवदेव महादेव कालामयसुभेषज।
त्वं त्रिलोकपतिः सत्यं सेव्यो ब्रह्माच्युतादिभिः॥ ३५

काश्यां पुर्यां त्वया देव राजधानी प्रगृह्यताम्।
मया ध्यानितया स्थेयमचिन्त्यसुखहेतवे॥ ३६

अविमुक्त बोले—हे देवाधिदेव! हे महादेव! हे कालरूपी रोगकी उत्तम औषधि! सचमुच आप त्रिलोकपति हैं और ब्रह्मा तथा विष्णु आदिके द्वारा सेवनीय हैं॥ ३५॥

हे देव! आप काशीपुरीमें अपनी राजधानी स्वीकार कीजिये और मैं अचिन्त्य सुखके लिये आपका ध्यान करता हुआ यहीं निवास करूँगा॥ ३६॥

मुक्तिदाता भवानेह कामदश्च न चापरः।
तस्मात्त्वमुपकाराय तिष्ठोमासहितः सदा॥ ३७

जीवान्भवाब्धेरखिलांस्तारय त्वं सदाशिव।
भक्तकार्यं कुरु हर प्रार्थयामि पुनः पुनः॥ ३८

आप ही मुक्तिदाता एवं कामनाओंको पूर्ण करनेवाले हैं, दूसरा कोई नहीं; इसलिये आप लोकोपकारके लिये पार्वतीसहित सदा यहीं निवास करें। हे सदाशिव! आप [यहाँ निवास करते हुए] संसारसागरसे सभी जीवोंका उद्धार कीजिये और भक्तोंका कार्य पूर्ण कीजिये, मैं आपसे बारंबार प्रार्थना करता हूँ॥ ३७-३८॥

सूत उवाच

इत्येवं प्रार्थितस्तेन विश्वनाथेन शंकरः।
लोकानामुपकारार्थं तस्थौ तत्रापि सर्वराट्॥ ३९
यद्दिनं हि समारभ्य हरः काश्यामुपागतः।
तदारभ्य च सा काशी सर्वश्रेष्ठतराभवत्॥ ४०

सूतजी बोले—इस प्रकार उन विश्वनाथके द्वारा प्रार्थना किये जानेपर सबके स्वामी शंकरजी लोकोपकारार्थ वहाँ भी निवास करने लगे॥ ३९॥

जिस दिनसे वे हर काशीमें आये, तभीसे वह काशी सर्वश्रेष्ठ हो गयी॥ ४०॥

इति श्रीशिवमहापुराणे चतुर्थ्यां कोटिरुद्रसंहितायां विश्वेश्वरमाहात्म्ये काश्यां रुद्रागमनवर्णनं नाम द्वाविंशोऽध्यायः॥ २२॥

॥ इस प्रकार श्रीशिवमहापुराणके अन्तर्गत चतुर्थ कोटिरुद्रसंहितामें विश्वेश्वरमाहात्म्यमें काशीमें रुद्रका आगमनवर्णन नामक बाईसवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ २२॥

अथ त्रयोविंशोऽध्यायः

काशीविश्वेश्वर ज्योतिर्लिंगके माहात्म्यके प्रसंगमें काशीमें मुक्तिक्रमका वर्णन

ऋषय ऊचुः

एवं वाराणसी पुण्या यदि सूत महापुरी।
तत्प्रभावं वदास्माकमविमुक्तस्य च प्रभो॥ १

ऋषि बोले—हे प्रभो! हे सूतजी! यदि वाराणसी महापुरी इतनी पवित्र है, तो आप उसका एवं अविमुक्त [ज्योतिर्लिंग]-का प्रभाव हमलोगोंसे कहिये॥ १॥

सूत उवाच

वक्ष्ये संक्षेपतः सम्यग्वाराणस्याः सुशोभनम्।
विश्वेश्वरस्य माहात्म्यं श्रूयतां च मुनीश्वराः॥ २
कदाचित्पार्वती देवी शङ्करं परया मुदा।
लोककामनयापृच्छन्माहात्म्यमविमुक्तयोः॥ ३

सूतजी बोले—हे मुनीश्वरो! मैं संक्षेपमें सम्यक् रीतिसे वाराणसी तथा विश्वेश्वरके अतिसुन्दर माहात्म्यका वर्णन करता हूँ, आपलोग सुनें॥ २॥

किसी समय पार्वतीने बड़ी प्रसन्नतासे संसारके हितकी कामनासे काशी तथा अविमुक्तका माहात्म्य शिवजीसे पूछा॥ ३॥

पार्वत्युवाच

अस्य क्षेत्रस्य माहात्म्यं वक्तुमर्हस्यशेषतः।
ममोपरि कृपां कृत्वा लोकानां हितकाम्यया॥ ४

पार्वती बोलीं—[हे शिवजी!] आप लोकहितकी कामनासे मेरे ऊपर कृपा करके इस क्षेत्रका माहात्म्य पूर्णरूपसे कहनेकी कृपा करें॥ ४॥

सूत उवाच

देव्यास्तद्वचनं श्रुत्वा देवदेवो जगत्प्रभुः।
प्रत्युवाच भवानीं तां जीवानां प्रियहेतवे॥ ५

सूतजी बोले—देवीका यह वचन सुनकर देवाधिदेव जगत्प्रभुने जीवोंके कल्याणके लिये उन भवानीसे कहा—॥ ५॥

परमेश्वर उवाच

साधु पृष्टं त्वया भद्रे लोकानां सुखदं शुभम्।
कथयामि यथार्थं वै माहात्म्यमविमुक्तयोः॥ ६

परमेश्वर बोले—हे भद्रे! तुमने लोकका कल्याण करनेवाला तथा सुखदायक शुभ प्रश्न किया है, अब मैं अविमुक्त तथा काशीके यथार्थ माहात्म्यका वर्णन

इदं गुह्यतमं क्षेत्रं सदा वाराणसी मम।
सर्वेषामेव जंतूना हेतुर्मोक्षस्य सर्वथा॥ ७

करता हूँ। यह वाराणसी सदा मेरा गोपनीय क्षेत्र है और सब प्रकारसे सभी प्राणियोंके मोक्षका हेतु भी है॥ ६-७॥

अस्मिन्सिद्धाः सदा क्षेत्रे मदीयं व्रतमाश्रिताः।
नानालिंगधरा नित्यं मम लोकाभिकांक्षिणः॥ ८

इस क्षेत्रमें सिद्धगण अनेक प्रकारका चिह्न धारणकर मेरे लोककी प्राप्ति करनेकी इच्छासे मेरा व्रत धारणकर सर्वदा यहाँ निवास करते हैं॥ ८॥

अभ्यस्यन्ति महायोगं जितात्मानो जितेन्द्रियाः।
परं पाशुपतं श्रौतं भुक्तिमुक्तिफलप्रदम्॥ ९

यहाँपर वे सिद्धगण अपने मन तथा इन्द्रियोंको वशमें करके महायोगका अभ्यास करते हैं एवं भोग तथा मोक्ष देनेवाले श्रेष्ठ पाशुपतव्रतका आचरण करते हैं॥ ९॥

रोचते मे सदा वासो वाराणस्यां महेश्वरि।
हेतुना येन सर्वाणि विहाय शृणु तद् ध्रुवम्॥ १०

हे महेश्वरि! जिस कारणसे सब कुछ छोड़कर वाराणसीमें निवास करना मुझे निश्चय ही अच्छा लगता है, उसे तुम सुनो॥ १०॥

यो मे भक्तश्च विज्ञानी तावुभौ मुक्तिभागिनौ।
तीर्थापेक्षा च न तयोर्विहिताविहिते समौ॥ ११

जो मेरा भक्त है एवं जो ज्ञानी है—वे दोनों ही मुक्तिके भागी हैं, उन्हें किसी अन्य तीर्थकी अपेक्षा नहीं रहती। उनके लिये विहित एवं अविहित दोनों ही (प्रकारके कर्म) समान हैं॥ ११॥

जीवन्मुक्तौ तु तौ ज्ञेयौ यत्र कुत्रापि वै मृतौ।
प्राप्नुतो मोक्षमाश्वेव मयोक्तं निश्चितं वचः॥ १२

अत्र तीर्थे विशेषोऽस्त्यविमुक्ताख्ये परोत्तमे।
श्रूयतां तत्त्वया देवि परशक्ते सुचित्तया॥ १३

उन दोनोंको जीवन्मुक्त समझना चाहिये। वे जहाँ कहीं भी मरें, उन्हें शीघ्र ही मुक्ति प्राप्त हो जाती है,मैंने यह सत्य वचन कहा है। हे देवि! हे परम शक्तिस्वरूपिणि! इस सर्वश्रेष्ठ अविमुक्त नामक तीर्थमें जो विशेषता है, उसे तुम ध्यानसे सुनो॥ १२-१३॥

सर्वे वर्णा आश्रमाश्च बालयौवनवार्धकाः।
अस्यां पुर्यां मृताश्चेत्स्युर्मुक्ता एव न संशयः॥ १४

सभी वर्ण तथा आश्रमके लोग; चाहे वे बालक हों, युवा हों अथवा वृद्ध हों, इस पुरीमें मरनेपर अवश्य मुक्त हो जाते हैं, इसमें सन्देह नहीं है॥ १४॥

अशुचिश्च शुचिर्वापि कन्या परिणता तथा।
विधवा वाथ वा वन्ध्या रजोदोषयुतापि वा॥ १५
प्रसूतासंस्कृता कापि यादृशी तादृशी द्विजाः।
अत्र क्षेत्रे मृता चेत्स्यान्मोक्षभाङ्नात्र संशयः॥ १६
स्वेदजश्चांडजो वापि ह्युद्भिज्जोऽथ जरायुजः।
मृतो मोक्षमवाप्नोति यथात्र न तथा क्वचित्॥ १७

हे द्विजो! पवित्र हो, अपवित्र हो, कन्या हो या विवाहिता, विधवा, वन्ध्या, रजस्वला, प्रसूता अथवा असंस्कृता, चाहे-जैसी कैसी भी स्त्री हो, यदि वह इस क्षेत्रमें मर जाय, तो मुक्ति प्राप्त कर लेती है, इसमें संशय नहीं है। स्वेदज, अण्डज, उद्भिज्ज अथवा जरायुज प्राणी [—ये सभी] यहाँ मरनेपर जैसा मोक्ष प्राप्त कर लेते हैं, वैसा अन्यत्र कहीं नहीं॥ १५—१७॥

ज्ञानापेक्षा न चात्रैव भक्त्यपेक्षा न वै पुनः।
कर्मापेक्षा न देव्यत्र दानापेक्षा न चैव हि॥ १८

संस्कृत्यपेक्षा नैवात्र ध्यानापेक्षा न कर्हिचित्।
नामापेक्षार्चनापेक्षा सुजातीनां तथात्र न॥ १९

हे देवि! यहाँ न ज्ञानकी अपेक्षा है, न भक्तिकी अपेक्षा है, न सत्कर्मकी अपेक्षा और न दानकी ही अपेक्षा है। यहाँ न संस्कारकी अपेक्षा है और न ध्यानकी ही अपेक्षा कभी है। यहाँ न नामकी अपेक्षा है। पूजा तथा उत्तम जातिकी भी कोई अपेक्षा नहीं है॥ १८-१९॥

मम क्षेत्रे मोक्षदे हि यो वा वसति मानवः।
यथा तथा मृतः स्याच्चेन्मोक्षमाप्नोति निश्चितम्॥ २०

जो कोई भी मनुष्य मेरे इस मोक्षदायक क्षेत्रमें निवास करता है, वह चाहे जिस किसी प्रकारसे मरा हो, निश्चय ही मोक्षको प्राप्त कर लेता है॥ २०॥

एतन्मम पुरं दिव्यं गुह्याद् गुह्यतरं प्रिये।
ब्रह्मादयोऽपि जानन्ति माहात्म्यं नास्य पार्वति॥ २१

महत्क्षेत्रमिदं तस्मादविमुक्तमिति स्मृतम्।
सर्वेभ्यो नैमिषादिभ्यः परं मोक्षप्रदं मृते॥ २२

हे प्रिये! यह मेरा दिव्य पुर गुह्यसे भी गुह्यतर है। हे पार्वति! ब्रह्मा आदि भी इसका माहात्म्य नहीं जानते हैं। अतः (सभी स्थितियोंमें मोक्ष प्रदान करनेके कारण) यह महान् क्षेत्र अविमुक्त कहा गया है। मरनेके बाद यह नैमिषारण्य आदि क्षेत्रोंसे भी अधिक मोक्षप्रद है॥ २१-२२॥

धर्मस्योपनिषत्सत्यं मोक्षस्योपनिषत्समम्।
क्षेत्रतीर्थोपनिषदमविमुक्तं विदुर्बुधाः॥ २३

कामं भुंजन्स्वपन्क्रीडन्कुर्वन्हि विविधाः क्रियाः।
अविमुक्ते त्यजन्प्राणाञ्जन्तुर्मोक्षाय कल्पते॥ २४

विद्वान् पुरुष धर्मका उपनिषद् सत्य, मोक्षका सारतत्त्व समत्वभाव, क्षेत्र और तीर्थका उपनिषद् अविमुक्त-क्षेत्रको कहते हैं। अपनी इच्छानुसार भोजन, शयन, क्रीड़ा आदि विविध क्रियाओंको करता हुआ भी अविमुक्तमें प्राण-त्याग करनेवाला प्राणी मोक्षका अधिकारी हो जाता है॥ २३-२४॥

कृत्वा पापसहस्राणि पिशाचत्वं वरं नृणाम्।
न च क्रतुसहस्रत्वं स्वर्गे काशीं पुरीं विना॥ २५

तस्मात्सर्वप्रयत्नेन सेव्यते काशिका पुरी।
अव्यक्तलिंगं मुनिभिर्ध्यायते च सदाशिवः॥ २६

हजारों पाप करके पिशाच हो जाना भी अच्छा है, किंतु काशीको छोड़कर स्वर्गमें हजार इन्द्रपद श्रेष्ठ नहीं हैं। इसलिये मुनिजन पूर्ण प्रयत्नके साथ काशीपुरीका सेवन करते हैं और अव्यक्त स्वरूपवाले सदाशिवका ध्यान करते हैं॥ २५-२६॥

यद्यत्फलं समुद्दिश्य तपन्त्यत्र नराः प्रिये।
तेभ्यश्चाहं प्रयच्छामि सम्यक्तत्तत्फलं ध्रुवम्॥ २७

सायुज्यमात्मनः पश्चादीप्सितं स्थानमेव च।
न कुतश्चित्कर्मबंधस्त्यजतामत्र वै तनुम्॥ २८

हे प्रिये! मनुष्य जिस-जिस फलको उद्देश्य करके यहाँ तप करते हैं, उन्हें मैं निश्चय ही वे-वे मनोवांछित फल प्रदान करता हूँ, उसके बाद उन्हें अपनी सायुज्यमुक्ति तथा अभिलषित स्थान देता हूँ। यहाँ शरीरका त्याग करनेवालोंको कहीं भी कर्मका बन्धन नहीं होता है॥ २७-२८॥

ब्रह्मा देवर्षिभिः सार्धं विष्णुर्वापि दिवाकरः।
उपासते महात्मानः सर्वे मामिह चापरे॥ २९

देवताओं तथा ऋषियोंके सहित ब्रह्मा, विष्णु, सूर्य और अन्य सभी महात्मा तथा दूसरे लोग भी यहाँ मेरी उपासना करते हैं॥ २९॥

विषयासक्तचित्तोऽपि त्यक्तधर्मरुचिर्नरः।
इह क्षेत्रे मृतो यो वै संसारं न पुनर्विशेत्॥ ३०

किं पुनर्निर्ममा धीराः सत्त्वस्था दम्भवर्जिताः।
कृतिनश्च निरारंभाः सर्वे ते मयि भाविताः॥ ३१

विषयासक्त चित्तवाला तथा धर्मरुचिसे रहित मनुष्य भी यदि इस क्षेत्रमें मृत्युको प्राप्त करता है, तो वह पुनः इस संसारमें नहीं आता है, फिर ममतासे रहित, धैर्यवान्, सत्त्वगुणमें स्थित, अहंकाररहित, पुण्यात्मा तथा सर्वारम्भपरित्यागी [निष्काम कर्म करनेवाले] पुरुषोंका कहना ही क्या है, वे सभी तो मुझमें ही लीन रहते हैं॥ ३०-३१॥

जन्मांतरसहस्रेषु जन्म योगी समाप्नुयात्।
तदिहैव परं मोक्षं मरणादधिगच्छति॥ ३२

अत्र लिंगान्यनेकानि भक्तैः संस्थापितानि हि।
सर्वकामप्रदानीह मोक्षदानि च पार्वति॥ ३३

हजारों जन्म लेनेके पश्चात् योगी पुरुष यहाँ जन्म प्राप्त करता है, वह यहाँ मरनेपर परम मोक्ष प्राप्त करता है। हे पार्वति! यहाँपर मेरे भक्तोंने अनेक लिंग स्थापित किये हैं, जो कामनाओंको पूर्ण करनेवाले एवं मोक्ष देनेवाले हैं॥ ३२-३३॥

पञ्चक्रोशं चतुर्दिक्षु क्षेत्रमेतत्प्रकीर्तितम्।
समन्ताच्च तथा जन्तोर्मृतिकालेऽमृतप्रदम्॥ ३४

यह क्षेत्र चारों दिशाओंमें सभी ओर पाँच कोसतक फैला हुआ कहा गया है, इसमें कहीं भी मर जानेपर प्राणीको अमृतत्वकी प्राप्ति होती है॥ ३४॥

अपापश्च मृतो यो वै सद्यो मोक्षं समश्नुते।
सपापश्च मृतो यः स्यात्कायव्यूहान्समश्नुते॥ ३५

यातनां सोऽनुभूयैव पश्चान्मोक्षमवाप्नुयात्।
पातकं योऽविमुक्ताख्ये क्षेत्रेऽस्मिन्कुरुते ध्रुवम्॥ ३६

भैरवीं यातनां प्राप्य वर्षाणामयुते पुनः।
ततो मोक्षमवाप्नोति भुक्त्वा पापं च सुन्दरि॥ ३७

जो पापरहित (पुण्यात्मा) मनुष्य यहाँ मरता है, वह शीघ्र मोक्ष प्राप्त कर लेता है और जो पापी मरता है, वह [पहले] कायव्यूहोंको प्राप्त करता है, फिर वह यातनाको भोगकर बादमें मोक्ष प्राप्त करता है। हे सुन्दरि! जो इस अविमुक्तक्षेत्रमें पाप करता है, वह निश्चित ही दस हजार वर्षपर्यन्त भैरवी यातना प्राप्त करके पापका फल भोगनेके अनन्तर मुक्त हो जाता है॥ ३५—३७॥

इति ते च समाख्याता पापाचारे च या गतिः।
एवं ज्ञात्वा नरः सम्यक्सेवयेदविमुक्तकम्॥ ३८

कृतकर्मक्षयो नास्ति कल्पकोटिशतैरपि।
अवश्यमेव भोक्तव्यं कृतं कर्म शुभाशुभम्॥ ३९

इस प्रकार यहाँ पाप करनेवालोंकी जो गति होती है, उस सबको मैंने तुमसे कह दिया। इसे जानकर मनुष्यको अविमुक्तक्षेत्रका विधिवत् सेवन करना चाहिये। सौ करोड़ कल्पोंमें भी [अपने द्वारा] किये गये कर्मका नाश नहीं होता है, किये गये शुभ और अशुभ कर्मका फल [जीवको] अवश्य भोगना पड़ता है॥ ३८-३९॥

केवलं चाशुभं कर्म नरकाय भवेदिह।
शुभं स्वर्गाय जायेत द्वाभ्यां मानुष्यमीरितम्॥ ४०

अशुभ कर्म निश्चय ही नरकके लिये होता है एवं शुभ कर्म स्वर्गके लिये होता है। [शुभ-अशुभ] दोनों कर्मोंसे मनुष्यलोकमें जन्म कहा गया है॥ ४०॥

जन्म सम्यगसम्यक् च न्यूनाधिक्ये भवेदिह।
उभयोश्च क्षयो मुक्तिर्भवेत्सत्यं हि पार्वति॥ ४१

हे पार्वति! शुभाशुभ कर्मके न्यूनाधिक्यसे उत्तम तथा अधम शरीर प्राप्त होते हैं, किंतु जब दोनोंका क्षय हो जाता है, तब मुक्ति होती है, यह सत्य है॥ ४१॥

कर्म च त्रिविधं प्रोक्तं कर्मकाण्डे महेश्वरि।
संचितं क्रियमाणं च प्रारब्धं चेति बंधकृत्॥ ४२

हे महेश्वरि! कर्मकाण्डमें संचित, प्रारब्ध एवं क्रियमाण—तीन प्रकारके कर्म बताये गये हैं, जो बन्धनमें डालनेवाले हैं॥ ४२॥

पूर्वजन्मसमुद्भूतं संचितं समुदाहृतम्।
भुज्यते च शरीरेण प्रारब्धं परिकीर्तितम्॥ ४३

अनेन जन्मना यच्च क्रियते कर्म सांप्रतम्।
शुभाशुभं च देवेशि क्रियमाणं विदुर्बुधाः॥ ४४

पूर्वजन्ममें किये गये कर्मको संचित कहा गया है और जिसका इस शरीरसे भोग किया जा रहा है, वह प्रारब्ध कहा गया है। हे देवेशि! जो इस जन्ममें शुभाशुभ कर्म इस समय किया जा रहा है, उसे विद्वज्जन क्रियमाण कहते हैं॥ ४३-४४॥

प्रारब्धकर्मणो भोगात्क्षयश्चैव न चान्यथा।
उपायेन द्वयोर्नाशः कर्मणोः पूजनादिना॥ ४५

सर्वेषां कर्मणां नाशो नास्ति काशीं पुरीं विना।
सर्वं च सुलभं तीर्थं दुर्लभा काशिका पुरी॥ ४६

पूर्वजन्मकृतं चेद्वै काशीदर्शनमादरात्।
तदा काशीं च संप्राप्य लभेन्मृत्युं न चान्यथा॥ ४७

काशीं प्राप्य नरो यस्तु गंगायां स्नानमाचरेत्।
तदा च क्रियमाणस्य संचितस्यापि संक्षयः॥ ४८

प्रारब्धं न विना भोगं नश्यतीति सुनिश्चितम्।
मृतिश्च तस्य संजाता तदा तस्य क्षयो भवेत्॥ ४९

पूर्वं चैव कृता काशी पश्चात्पापं समाचरेत्।
तद्बीजेन बलवता नीयते काशिका पुनः॥ ५०

तदा सर्वाणि पापानि भस्मसाच्च भवन्ति हि।
तस्मात्काशीं नरः सेवेत्कर्मनिर्मूलनीं ध्रुवम्॥ ५१

एकोऽपि ब्राह्मणो येन काश्यां संवासितः प्रिये।
काशीवासमवाप्यैव ततो मुक्तिं स विंदति॥ ५२

काश्यां यो वै मृतश्चैव तस्य जन्म पुनर्न हि।
समुद्दिश्य प्रयागे च मृतस्य कामनाफलम्॥ ५३

संयोगश्च तयोश्चेत्स्यात्काशीजन्यं फलं वृथा।
यदि न प्राप्यते तच्च तीर्थराजफलं वृथा॥ ५४

तस्मान्मच्छासनाद्विष्णुः सृष्टिं साक्षाद्धि नूतनाम्।
विधाय मनसोद्दिष्टां तत्सिद्धिं यच्छति ध्रुवम्॥ ५५

सूत उवाच

इत्यादि बहुमाहात्म्यं काश्या वै मुनिसत्तमाः।
तथा विश्वेश्वरस्यापि भुक्तिमुक्तिप्रदं सताम्॥ ५६

प्रारब्ध कर्मका नाश [केवल] उसके भोगसे ही होता है, इसके अतिरिक्त कोई उपाय नहीं है। संचित और क्रियमाण—इन दोनों कर्मोंका नाश पूजनादि उपायसे होता है। सम्पूर्ण कर्मोंका नाश काशीपुरीके अतिरिक्त अन्यत्र नहीं होता है। सभी तीर्थ सुलभ हैं, किंतु काशीपुरी दुर्लभ है॥ ४५-४६॥

यदि पूर्वजन्ममें आदरपूर्वक काशीका दर्शन किया गया है, तभी काशीमें आकर मनुष्य मृत्युको प्राप्त होता है, अन्यथा नहीं। काशीमें आकर जो मनुष्य गंगास्नान करता है, उसके संचित तथा क्रियमाण कर्मका नाश हो जाता है॥ ४७-४८॥

यह निश्चित है कि बिना भोग किये प्रारब्धकर्मका नाश नहीं होता, जब मनुष्यकी [शास्त्रानुमोदित रीतिसे] मृत्यु होती है, तब प्रारब्धकर्मका भी क्षय हो जाता है। यदि किसीने पूर्वमें काशीसेवन किया है और उसके बाद पाप किया है, तो भी काशीसेवनरूप बलवान् बीजसे उसे काशी पुनः प्राप्त हो जाती है और तब सम्पूर्ण पाप भस्म हो जाते हैं, इसलिये कर्मका निर्मूलन करनेवाली काशीका सेवन निश्चित रूपसे करना चाहिये। हे प्रिये! जिसने एक भी ब्राह्मणको काशीवास कराया, वह स्वयं भी काशीवास पाकर मुक्ति प्राप्त कर लेता है॥ ४९—५२॥

जो काशीमें मरता है, उसका पुनर्जन्म नहीं होता, किंतु प्रयागमें फलके उद्देश्यसे मरनेपर कामनानुरूप फल प्राप्त होता है। यदि [मोक्षदायिनी] काशी तथा [वांछितप्रद] प्रयाग—दोनोंका मरणफल एक ही हो तो काशीमरणका अपूर्व फल मोक्ष व्यर्थ हो जायगा और प्रयागमें यदि मरणसे कामनासिद्धि न हुई तो उसका अपूर्व फल भी सिद्ध न हो सकेगा। अतः मेरी आज्ञासे साक्षात् विष्णु भगवान् नयी सृष्टि रचकर [प्रयागमें मनुष्योंको] मनोवांछित सिद्धि प्रदान करते हैं॥ ५३—५५॥

सूतजी बोले—हे श्रेष्ठ मुनियो! इस प्रकार काशीपुरीका तथा विश्वेश्वरका भी बहुत माहात्म्य है, जो सज्जनोंको भोग तथा मोक्ष प्रदान करनेवाला है।

अतः परं प्रवक्ष्यामि माहात्म्यं त्र्यंबकस्य च।
यच्छ्रुत्वा सर्वपापेभ्यो मुच्यते मानवः क्षणात्॥ ५७

इसके बाद मैं त्र्यम्बकेश्वरके माहात्म्यका वर्णन करूँगा, जिसे सुनकर मनुष्य क्षणमात्रमें सम्पूर्ण पापोंसे छूट जाता है॥ ५६-५७॥

इति श्रीशिवमहापुराणे चतुर्थ्यां कोटिरुद्रसंहितायां काशीविश्वेश्वरज्योतिर्लिङ्गमाहात्म्यवर्णनं नाम त्रयोविंशोऽध्यायः॥ २३॥

॥ इस प्रकार श्रीशिवमहापुराणके अन्तर्गत चतुर्थ कोटिरुद्रसंहितामें काशीविश्वेश्वरज्योतिर्लिंग-माहात्म्यवर्णन नामक तेईसवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ २३॥

अथ चतुर्विंशोऽध्यायः

त्र्यम्बकेश्वर ज्योतिर्लिंगके माहात्म्य-प्रसंगमें गौतमऋषिकी परोपकारी प्रवृत्तिका वर्णन

सूत उवाच

श्रूयतामृषयः श्रेष्ठाः कथां पापप्रणाशिनीम्।
कथयामि यथा व्यासात्सद्गुरोश्च श्रुता मया॥ १

सूतजी बोले—हे श्रेष्ठ ऋषियो! मैं पापोंका नाश करनेवाली कथा कहता हूँ, जैसा कि मैंने [अपने] श्रेष्ठ गुरु व्यासजीसे सुना है, आपलोग सुनिये॥ १॥

पुरा ऋषिवरश्चासीद्गौतमो नाम विश्रुतः।
अहल्या नाम तस्यासीत्पत्नी परमधार्मिकी॥ २

पूर्वकालमें प्रसिद्ध गौतम नामक श्रेष्ठ ऋषि थे, उनकी परम धार्मिक अहल्या नामकी पत्नी थी॥ २॥

दक्षिणस्यां दिशि हि यो गिरिर्ब्रह्मेति संज्ञकः।
तत्र तेन तपस्तप्तं वर्षाणामयुतं तथा॥ ३

दक्षिण दिशामें जो ब्रह्मगिरि नामक पर्वत है, वहाँ उन्होंने दस हजार वर्षतक तप किया॥ ३॥

कदाचिच्च ह्यनावृष्टिरभवत्तत्र सुव्रताः।
वर्षाणां च शतं रौद्री लोका दुःखमुपागताः॥ ४
आर्द्रं च पल्लवं न स्म दृश्यते पृथिवीतले।
कुतो जलं विदृश्येत जीवानां प्राणधारकम्॥ ५

हे सुव्रतो! किसी समय वहाँपर सौ वर्षतक भयानक अनावृष्टि हुई, जिससे सभी लोग संकटमें पड़ गये। पृथ्वीतलपर [एक भी] हरा पत्ता नहीं दिखायी पड़ता था, तब फिर प्राणियोंको जिलानेवाला पानी कहाँसे दिखायी दे सकता था!॥ ४-५॥

तदा ते मुनयश्चैव मनुष्याः पशवस्तथा।
पक्षिणश्च मृगास्तत्र गताश्चैव दिशो दश॥ ६

उस समय वे मुनिगण, मनुष्य, पशु, पक्षी और मृग [उस स्थानको छोड़कर] दसों दिशाओंमें चले गये॥ ६॥

तां दृष्ट्वा चर्षयो विप्राः प्राणायामपरायणाः।
ध्यानेन च तदा केचित्कालं निन्युः सुदारुणम्॥ ७

हे विप्रो! तब उस [अनावृष्टि]-को देखकर कुछ ऋषि प्राणायाममें तत्पर होकर ध्यानपूर्वक उस भयंकर कालको बिताने लगे॥ ७॥

गौतमोऽपि स्वयं तत्र वरुणार्थे तपः शुभम्।
चकार चैव षण्मासं प्राणायामपरायणः॥ ८

महर्षि गौतमने स्वयं भी वरुणदेवताको प्रसन्न करनेके लिये प्राणायामपरायण होकर छः महीनेतक उस स्थानपर उत्तम तप किया॥ ८॥

ततश्च वरुणस्तस्मै वरं दातुं समागतः।
प्रसन्नोऽस्मि वरं ब्रूहि ददामि च वचोऽब्रवीत्॥ ९

[उनकी तपस्यासे प्रसन्न हुए] वरुणदेव उन्हें वर देनेके लिये आये और यह वचन बोले—मैं प्रसन्न हूँ, वर माँगो, मैं तुम्हें [वर] दूँगा॥ ९॥

ततश्च गौतमस्तं वै वृष्टिं च प्रार्थयत्तदा।
ततः स वरुणस्तं वै प्रत्युवाच मुनिं द्विजाः॥ १०

तब गौतम ऋषिने उनसे वर्षाके लिये प्रार्थना की। हे द्विजो! इसपर उन वरुणने मुनिसे कहा—॥ १०॥

वरुण उवाच

देवाज्ञां च समुल्लंघ्य कथं कुर्यामहं च ताम्।
अन्यत्प्रार्थय सुज्ञोऽसि यदहं करवाणि ते॥ ११

वरुण बोले—[हे महर्षे!] मैं दैवकी आज्ञाका उल्लंघनकर किस प्रकार वृष्टि करूँ? आप तो बुद्धिमान् हैं, अतः कोई अन्य प्रार्थना कीजिये, जिसे मैं आपके लिये [प्रदान] कर सकूँ॥ ११॥

सूत उवाच

इत्येतद्वचनं तस्य वरुणस्य महात्मनः।
परोपकारी तच्छ्रुत्वा गौतमो वाक्यमब्रवीत्॥ १२

सूतजी बोले—उन महात्मा वरुणका यह वचन सुनकर परोपकार करनेवाले महर्षि गौतमने यह वाक्य कहा—॥ १२॥

गौतम उवाच

यदि प्रसन्नो देवेश यदि देयो वरो मम।
यदहं प्रार्थयाम्यद्य कर्तव्यं हि त्वया तथा॥ १३
यतस्त्वं जलराशीशस्तस्माद्देयं जलं मम।
अक्षयं सर्वदेवेश दिव्यं नित्यफलप्रदम्॥ १४

गौतम बोले—हे देवेश! यदि आप [मुझपर] प्रसन्न हैं और मुझे वर देना ही चाहते हैं, तो मैं आज जो प्रार्थना करता हूँ, उसे पूर्ण कीजिये। चूँकि आप जलराशिके स्वामी हैं, इसलिये हे सर्वदेवेश! मुझे अक्षय, दिव्य तथा नित्य फल प्रदान करनेवाला जल दीजिये॥ १३-१४॥

सूत उवाच

इति संप्रार्थितस्तेन वरुणो गौतमेन वै।
उवाच वचनं तस्मै गर्तश्च क्रियतां त्वया॥ १५

सूतजी बोले—उन गौतमके इस प्रकार प्रार्थना करनेपर वरुणने उनसे कहा—आप एक गड्ढा खोदिये॥ १५॥

इत्युक्ते च कृतस्तेन गर्तो हस्तप्रमाणतः।
जलेन पूरितस्तेन दिव्येन वरुणेन सः॥ १६
अथोवाच मुनिं देवो वरुणो हि जलाधिपः।
गौतमं मुनिशार्दूलं परोपकृतिशालिनम्॥ १७

उनके ऐसा कहनेपर गौतमने एक हाथका गड्ढा खोदा, तब वरुणने उस गड्ढेको दिव्य जलसे भर दिया। इसके बाद जलके स्वामी वरुणदेवने परोपकारी तथा मुनियोंमें श्रेष्ठ गौतम ऋषिसे कहा—॥ १६-१७॥

वरुण उवाच

अक्षयं च जलं तेऽस्तु तीर्थभूतं महामुने।
तव नाम्ना च विख्यातं क्षितावेतद्भविष्यति॥ १८
अत्र दत्तं हुतं तप्तं सुराणां यजनं कृतम्।
पितॄणां च कृतं श्राद्धं सर्वमेवाक्षयं भवेत्॥ १९

वरुण बोले—हे महामुने! यह जल आपके लिये अक्षय एवं तीर्थस्वरूप होगा और पृथ्वीपर आपके नामसे प्रसिद्ध होगा। इस स्थानपर दान, होम, तप, देवताओंके लिये किया गया यज्ञ-पूजन तथा पितरोंके लिये किया गया श्राद्ध—यह सब अक्षय होगा॥ १८-१९॥

सूत उवाच

इत्युक्त्वान्तर्दधे देवः स्तुतस्तेन महर्षिणा।
गौतमोऽपि सुखं प्राप कृत्वान्योपकृतिं मुनिः॥ २०

सूतजी बोले—ऐसा कहकर उन महर्षिसे स्तुत होकर वरुणदेव अन्तर्धान हो गये और महर्षि गौतमने भी दूसरोंका उपकारकर सुख प्राप्त किया॥ २०॥

महतो ह्याश्रयः पुंसां महत्त्वायोपजायते।
महान्तस्तत्स्वरूपं च पश्यन्ति नेतरेऽशुभाः॥ २१

बड़े लोगोंका आश्रय मनुष्योंके गौरवका हेतु होता है, इसलिये महापुरुष ही उनके स्वरूपको देख पाते हैं, नीच लोग नहीं॥ २१॥

यादृङ्नरं च सेवेत तादृशं फलमश्नुते।
महतः सेवयोच्चत्वं क्षुद्रस्य क्षुद्रतां तथा॥ २२

मनुष्य जिस प्रकारके पुरुषका सेवन करता है, वह वैसा ही फल प्राप्त करता है, बड़ोंकी सेवासे बड़प्पन तथा छोटोंकी सेवासे लघुता प्राप्त होती है॥ २२॥

सिंहस्य मंदिरे सेवा मुक्ताफलकरी मता।
शृगालमंदिरे सेवा त्वस्थिलाभकरी स्मृता॥ २३

सिंहकी गुफाके पास रहना गजमुक्ताकी प्राप्ति करानेवाला कहा गया है और सियारकी माँदके पास रहना अस्थिलाभ करानेवाला कहा गया है॥ २३॥

उत्तमानां स्वभावोऽयं परदुःखासहिष्णुता।
स्वयं दुःखं च संप्राप्तं मन्यतेऽन्यस्य वार्यते॥ २४

सज्जन पुरुषोंका ऐसा स्वभाव होता है कि वे दूसरोंका दुःख सह नहीं सकते। वे स्वयं अपने दुःख सह लेते हैं, किंतु दूसरोंके दुःखको दूर करते हैं॥ २४॥

वृक्षाश्च हाटकं चैव चंदनं चेक्षुकस्तथा।
एते भुवि परार्थे च दक्षा एवं न केचन॥ २५

वृक्ष, सोना, चन्दन और ईख—ये पृथ्वीपर दूसरोंके उपकारमें कुशल होते हैं, ऐसे अन्य कोई नहीं हैं॥ २५॥

दयालुरमदस्पर्श उपकारी जितेन्द्रियः।
एतैश्च पुण्यस्तम्भैस्तु चतुर्भिर्धार्यते मही॥ २६

दयालु, अभिमानरहित, उपकारी एवं जितेन्द्रिय—इन चार पुण्यस्तम्भोंने पृथ्वीको धारण किया है॥ २६॥

ततश्च गौतमस्तत्र जलं प्राप्य सुदुर्लभम्।
नित्यनैमित्तिकं कर्म चकार विधिवत्तदा॥ २७

[हे महर्षियो!] तदनन्तर गौतमने अत्यन्त दुर्लभ जल प्राप्तकर विधिपूर्वक नित्य-नैमित्तिक कर्म सम्पन्न किये॥ २७॥

ततो व्रीहीन् यवांश्चैव नीवारानप्यनेकधा।
वापयामास तत्रैव हवनार्थं मुनीश्वरः॥ २८

धान्यानि विविधानीह वृक्षाश्च विविधास्तथा।
पुष्पाणि च फलान्येव ह्यासंस्तत्राप्यनेकशः॥ २९

तत्पश्चात् मुनीश्वरने वहाँपर हवनके लिये व्रीहि, यव, नीवार आदि अनेक प्रकारके धान्योंको बोवाया। इस प्रकार विविध धान्य, अनेक प्रकारके वृक्ष, भिन्न-भिन्न प्रकारके पुष्प एवं फल आदि भी वहाँ उत्पन्न हो गये॥ २८-२९॥

तच्छ्रुत्वा ऋषयश्चान्ये तत्रायाताः सहस्रशः।
पशवः पक्षिणश्चान्ये जीवाश्च बहवोऽगमन्॥ ३०

यह सुनकर वहाँ अन्य हजारों ऋषि भी आ गये। अनेक पशु-पक्षी एवं बहुत-से जीव भी पहुँच गये॥ ३०॥

तद्वनं सुन्दरं ह्यासीत्पृथिव्यां मंडले परम्।
तदक्षयजलायोगादनावृष्टिर्न दुःखदा॥ ३१

इस प्रकार पृथ्वीमण्डलपर वह वन अत्यन्त सुन्दर प्रतीत होने लगा, जलके अक्षय होनेके कारण वहाँ दुःख देनेवाली अनावृष्टि नहीं रह गयी॥ ३१॥

ऋषयोऽपि वने तत्र शुभकर्मपरायणाः।
वासं चक्रुरनेके च शिष्यभार्यासुतान्विताः॥ ३२

उस वनमें अनेक ऋषिलोग भी उत्तम कर्मोंमें तत्पर होकर शिष्य, भार्या तथा पुत्रादिके साथ वहाँ निवास करने लगे॥ ३२॥

धान्यानि वापयामासुः कालक्रमणहेतवे।
आनंदस्तद्वने ह्यासीत्प्रभावाद्गौतमस्य च॥ ३३

उन्होंने अपना जीवन बितानेके लिये धान्योंका वपन किया। इस प्रकार [महर्षि] गौतमके प्रभावसे उस वनमें पूर्ण आनन्द व्याप्त हो गया॥ ३३॥

इति श्रीशिवमहापुराणे चतुर्थ्यां कोटिरुद्रसंहितायां त्र्यंबकेश्वरमाहात्म्ये गौतमप्रभाववर्णनं नाम चतुर्विंशोऽध्यायः॥ २४॥

॥ इस प्रकार श्रीशिवमहापुराणके अन्तर्गत चतुर्थ कोटिरुद्रसंहिताके त्र्यम्बकेश्वरमाहात्म्यमें गौतमप्रभाववर्णन नामक चौबीसवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ २४॥

अथ पञ्चविंशोऽध्यायः

मुनियोंका महर्षि गौतमके प्रति कपटपूर्ण व्यवहार

सूत उवाच

कदाचिद्गौतमेनैव जलार्थं प्रेषिता निजाः।
शिष्यास्तत्र गता भक्त्या कमंडलुकरा द्विजाः॥ १

सूतजी बोले—हे ब्राह्मणो! किसी समय गौतम ऋषिने अपने शिष्योंको जल लानेहेतु भेजा और वे हाथमें कमण्डलु लेकर भक्तिपूर्वक वहाँ पहुँचे॥ १॥

शिष्यान् जलसमीपे तु गतान्दृष्ट्वा न्यषेधयन्।
जलार्थमागतास्तत्र चर्षिपत्न्योऽप्यनेकशः॥ २

ऋषिपत्न्यो वयं पूर्वं ग्रहीष्यामो विदूरतः।
पश्चाच्चैव जलं ग्राह्यमित्येवं पर्यभर्त्सयन्॥ ३

परावृत्य तदा तैश्च ऋषिपत्न्यै निवेदितम्।
सा चापि तान्समादाय समाश्वास्य च तैः स्वयम्॥ ४

जलं नीत्वा ददौ तस्मै गौतमाय तपस्विनी।
नित्यं निर्वाहयामास जलेन ऋषिसत्तमः॥ ५

ताश्चैवमृषिपत्न्यस्तु क्रुद्धास्तां पर्यभर्त्सयन्।
परावृत्य गताः सर्वास्तूटजान्कुटिलाशयाः॥ ६

स्वाम्यग्रे विपरीतं च तद्वृत्तं निखिलं ततः।
दुष्टाशयाभिः स्त्रीभिश्च ताभिर्वै विनिवेदितम्॥ ७

अथ तासां वचः श्रुत्वा भाविकर्मवशात्तदा।
गौतमाय च संक्रुद्धाश्चासंस्ते परमर्षयः॥ ८

विघ्नार्थं गौतमस्यैव नानापूजोपहारकैः।
गणेशं पूजयामासुः संक्रुद्धास्ते कुबुद्धयः॥ ९

आविर्बभूव च तदा प्रसन्नो हि गणेश्वरः।
उवाच वचनं तत्र भक्ताधीनः फलप्रदः॥ १०

गणेश उवाच

प्रसन्नोऽस्मि वरं ब्रूत यूयं किं करवाण्यहम्।
तदीयं तद्वचः श्रुत्वा ऋषयस्तेऽब्रुवंस्तदा॥ ११

ऋषय ऊचुः

त्वया यदि वरो देयो गौतमः स्वाश्रमाद् बहिः।
निष्काश्यमानो ऋषिभिः परिभर्त्स्य तथा कुरु॥ १२

सूत उवाच

स एवं प्रार्थितस्तैस्तु विहस्य वचनं पुनः।
प्रोवाचेभमुखः प्रीत्या बोधयंस्तान्सतां गतिः॥ १३

उस समय जल लेनेके लिये आयी हुई ऋषिपत्नियोंने जलके समीपमें गये उन गौतमशिष्योंको देखकर उन्हें जल लेनेसे रोका॥ २॥

पहले हम ऋषिपत्नियाँ जल ग्रहण करेंगी, इसके बाद तुमलोग दूर रहकर जल ग्रहण करना—ऐसा कहकर उन्होंने धमकाया॥ ३॥

तब वहाँसे लौटकर उन शिष्योंने यह बात ऋषिपत्नीसे कही। इसके बाद तपस्विनी गौतमपत्नी उनको धीरज देकर उन शिष्योंको साथ लेकर स्वयं वहाँ गयीं और जल लाकर उन गौतमको दिया। तब उन ऋषिवरने उस जलसे अपना नित्यकर्म सम्पन्न किया॥ ४-५॥

इधर, कुटिल विचारवाली उन सभी ऋषिपत्नियोंने कुपित होकर महर्षिपत्नीको फटकारा और वहाँसे लौटकर अपनी-अपनी पर्णशालाओंमें गयीं। इसके बाद दुष्ट स्वभाववाली उन स्त्रियोंने अपने-अपने पतियोंसे उलटे-सीधे वह सारा समाचार निवेदन किया॥ ६-७॥

तब उनकी बात सुनकर भवितव्यतावश वे महर्षिगण गौतमके ऊपर क्रुद्ध हो गये॥ ८॥

इसके बाद क्रोधित हुए उन दुर्बुद्धि ऋषियोंने गौतमके तपमें विघ्न करनेके लिये अनेक प्रकारके पूजन एवं उपहारोंद्वारा गणेशजीकी आराधना की॥ ९॥

तदनन्तर भक्तके अधीन रहनेवाले तथा अभीष्ट फल देनेवाले गणेशजी प्रसन्न होकर वहाँ प्रकट हो गये और यह वचन कहने लगे—॥ १०॥

गणेशजी बोले—[हे महर्षियो!] मैं प्रसन्न हूँ, आपलोग वर माँगिये, मैं आपलोगोंका कौन-सा कार्य सम्पन्न करूँ? तब उनकी बात सुनकर उन महर्षियोंने कहा—॥ ११॥

ऋषिगण बोले—यदि आप वर देना चाहते हैं, तो हम ऋषियोंसे धिक्कार दिलाकर गौतमको इनके आश्रमसे बाहर निकलवा दें, [इस प्रकार] हमलोगोंका यह कार्य पूरा कर दें॥ १२॥

सूतजी बोले—ऋषियोंद्वारा इस प्रकार प्रार्थना किये जानेपर सज्जनोंको गति प्रदान करनेवाले गजाननने प्रेमपूर्वक उन्हें समझाते हुए हँसकर पुनः यह वचन कहा—॥ १३॥

गणेश उवाच

श्रूयतामृषयः सर्वे युक्तं न क्रियतेऽधुना।
अपराधं विना तस्मै क्रुध्यतां हानिरेव च॥ १४

उपस्कृतं पुरा यैस्तु तेभ्यो दुःखं हितं न हि।
यदा च दीयते दुःखं तदा नाशो भवेदिह॥ १५

ईदृशं च तपः कृत्वा साध्यते फलमुत्तमम्।
शुभं फलं स्वयं हित्वा साध्यते नाहितं पुनः॥ १६

सूत उवाच

इत्येवं वचनं श्रुत्वा तस्य ते मुनिसत्तमाः।
बुद्धिमोहं तदा प्राप्ता इदमेव वचोऽब्रुवन्॥ १७

ऋषय ऊचुः

कर्तव्यं हि त्वया स्वामिन्निदमेव न चान्यथा।
इत्युक्तस्तु तदा देवो गणेशो वाक्यमब्रवीत्॥ १८

गणेश उवाच

असाधुः साधुतां चैव साधुश्चासाधुतां तथा।
कदाचिदपि नाप्नोति ब्रह्मोक्तमिति निश्चितम्॥ १९

यदा च भवतां दुःखं जातं चानशनात्पुरा।
तदा सुखं प्रदत्तं वै गौतमेन महर्षिणा॥ २०

इदानीं वै भवद्भिश्च तस्मै दुःखं प्रदीयते।
नैतद्युक्ततमं लोके सर्वथा सुविचार्यताम्॥ २१

स्त्रीबलान्मोहिता यूयं न मे वाक्यं करिष्यथ।
एतद्धिततमं तस्य भविष्यति न संशयः॥ २२

पुनश्चायमृषिश्रेष्ठो दास्यते वः सुखं ध्रुवम्।
तारणं न च युक्तं स्याद्वरमन्यं वृणीत वै॥ २३

सूत उवाच

इत्येवं वचनं तेन गणेशेन महात्मना।
यद्यप्युक्तमृषिभ्यश्च तदप्येते न मेनिरे॥ २४
भक्ताधीनतया सोऽथ शिवपुत्रोऽब्रवीत्तदा।
उदासीनेन मनसा तानृषीन्दुष्टशेमुषीन्॥ २५

गणेशजी बोले—हे समस्त ऋषियो! सुनिये, आपलोग इस समय उचित नहीं कर रहे हैं, बिना अपराधके उनपर क्रोध करनेवाले आपलोगोंकी हानि ही होगी। जिन्होंने पूर्वमें आपलोगोंका उपकार किया है, उन्हें दुःख देना हितकारी नहीं है और यदि उनको दुःख दिया जायगा, तो इससे आपलोगोंका यहीं विनाश होगा॥ १४-१५॥

इस प्रकारका तपकर उत्तम फलका साधन करना चाहिये, स्वयं ही शुभफलका परित्याग करके अहितकारक फलको नहीं ग्रहण किया जाता॥ १६॥

सूतजी बोले—तब उनकी यह बात सुनकर बुद्धिमोहको प्राप्त हुए, उन ऋषिवरोंने यह वचन कहा—॥ १७॥

ऋषि बोले—हे स्वामिन्! आपको तो यही करना है, इसके अतिरिक्त अन्य कुछ नहीं। तब उनके ऐसा कहनेपर प्रभु गणेशजीने यह वचन कहा—॥ १८॥

गणेशजी बोले—ब्रह्मदेवने ऐसा कहा है कि नीच पुरुष कभी भी सज्जन नहीं हो सकता तथा वैसे ही सज्जन पुरुष कभी नीच नहीं हो सकता—यह निश्चित है॥ १९॥

पहले जब भोजनके बिना आपलोगोंको दुःख प्राप्त हुआ, तब महर्षि गौतमने आपलोगोंको सुख प्रदान किया था। किंतु इस समय आपलोग उन्हें दुःख दे रहे हैं। यह तो लोकमें किसी प्रकार भी उचित नहीं है, आपलोग भलीभाँति विचार करें॥ २०-२१॥

यदि आपलोग [अपनी-अपनी] स्त्रीके वशीभूत होकर मेरी बात नहीं मानेंगे, तो यह भी उनके लिये परम हितकर ही होगा, इसमें सन्देह नहीं है॥ २२॥

अभी भी ये ऋषिवर आपलोगोंको निश्चित रूपसे सुख देंगे, अतः उनके साथ छल करना उचित नहीं है, आप लोग दूसरा वरदान माँगिये॥ २३॥

सूतजी बोले—[हे महर्षियो!] यद्यपि महात्मा गणेशने उन ऋषियोंको इस प्रकारसे बहुत समझाया, किंतु ऋषियोंने उनकी बात नहीं मानी। इसके बाद भक्तोंके अधीन रहनेके कारण उन शिवपुत्रने उन दुष्टबुद्धि ऋषियोंसे उदासीन मनसे कहा—॥ २४-२५॥

गणेश उवाच

भवद्भिः प्रार्थ्यते यच्च करिष्येऽहं तथा खलु।
पश्चाद्भावि भवेदेव इत्युक्त्वान्तर्दधे पुनः॥ २६

गौतमः स न जानाति मुनीनां वै दुराशयम्।
आनन्दमनसा नित्यं पत्न्या कर्म चकार तत्॥ २७

तदन्तरे च यज्जातं चरित्रं वरयोगतः।
तद्दुष्टर्षिप्रभावात्तु श्रूयतां तन्मुनीश्वराः॥ २८

गौतमस्य च केदारे तत्रासन्व्रीहयो यवाः।
गणेशस्तत्र गौर्भूत्वा जगाम किल दुर्बला॥ २९

कंपमाना च सा गत्वा तत्र तद्वरयोगतः।
व्रीहीन्संभक्षयामास यवांश्च मुनिसत्तमाः॥ ३०

एतस्मिन्नन्तरे दैवाद् गौतमस्तत्र चागतः।
स दयालुस्तृणस्तम्बैर्वारयामास तां तदा॥ ३१

तृणस्तंबेन सा स्पृष्टा पपात पृथिवीतले।
मृता च तत्क्षणादेव तदृषेः पश्यतस्तदा॥ ३२

ऋषयश्छन्नरूपास्ते ऋषिपत्न्यस्तथाशुभाः।
ऊचुस्तत्र तदा सर्वे किं कृतं गौतमेन च॥ ३३

गौतमोऽपि तथाहल्यामाहूयासीत्सुविस्मितः।
उवाच दुःखतो विप्रा दूयमानेन चेतसा॥ ३४

गौतम उवाच

किं जातं च कथं देवि कुपितः परमेश्वरः।
किं कर्तव्यं क्व गन्तव्यं हत्या च समुपस्थिता॥ ३५

सूत उवाच

एतस्मिन्नन्तरे विप्रा गौतमं पर्यभर्त्सयन्।
विप्रपत्न्यस्तथाहल्यां दुर्वचोभिर्व्यथां ददुः॥ ३६

दुर्बुद्धयश्च तच्छिष्याः सुतास्तेषां तथैव च।
गौतमं परिभर्त्स्यैव प्रत्यूचुर्धिग्वचो मुहुः॥ ३७

ऋषय ऊचुः

मुखं न दर्शनीयं ते गम्यतां गम्यतामिति।
दृष्ट्वा गोघ्नमुखं सद्यः सचैलं स्नानमाचरेत्॥ ३८

यावदाश्रममध्ये त्वं तावदेव हविर्भुजः।
पितरश्च न गृह्णन्ति ह्यस्मद्दत्तं हि किञ्चन॥ ३९

तस्माद्गच्छान्यतस्त्वं च परिवारसमन्वितः।
विलम्बं कुरु नैव त्वं धेनुहन्पापकारक॥ ४०

गणेशजी बोले—आपलोग जो प्रार्थना कर रहे हैं, वैसा ही करूँगा, अब जो होनहार है, वह तो होकर ही रहेगा—ऐसा कहकर वे अन्तर्धान हो गये॥ २६॥

उन गौतमजीको दुष्ट ऋषियोंके अभिप्रायका ज्ञान नहीं हुआ और वे प्रसन्न मनसे [निरन्तर] अपनी स्त्रीके साथ नित्यकर्म करते रहे। हे मुनीश्वरो! इसके पश्चात् उस वरदानके कारण उन दुष्ट ऋषियोंके प्रभावसे जो घटना घटी, उसे सुनिये॥ २७-२८॥

महर्षि गौतमकी क्यारीमें धान्य एवं यव बोया गया था, गणेशजी अत्यन्त दुर्बल गौका रूप धारणकर वहाँ चले गये। हे मुनिसत्तमो! उस वरके कारण काँपती हुई वह गाय यव तथा धान चरने लगी॥ २९-३०॥

इसी बीच दैवयोगसे [महर्षि] गौतम भी वहीं पहुँच गये और वे दयालु उस गायको तिनकोंसे हटाने लगे। तब उन तिनकोंके स्पर्शमात्रसे गाय पृथ्वीपर गिरी और उसी क्षण उन ऋषिके देखते-देखते मर गयी॥ ३१-३२॥

तब कपटसे गुप्तरूप धारण करनेवाले ऋषि एवं दुष्ट ऋषिपत्नियाँ सभी कहने लगे कि गौतमने क्या कर डाला। हे विप्रो! आश्चर्यमें पड़े हुए गौतमने भी अहल्याको बुलाकर व्यथित मनसे दुःखपूर्वक कहा—॥ ३३-३४॥

गौतम बोले—हे देवि! यह क्या हो गया? कैसे हुआ, क्या परमेश्वर कुपित हो गये? अब मैं क्या करूँ, कहाँ जाऊँ? मुझे गोवधका पाप लग गया॥ ३५॥

सूतजी बोले—इसी बीच वहाँके ब्राह्मण गौतमको तथा ब्राह्मणियाँ अहल्याको धिक्कारने लगीं और कटु वचनोंसे उन्हें कष्ट देने लगीं॥ ३६॥

दुष्ट बुद्धिवाले उनके शिष्य तथा पुत्र भी गौतमकी निन्दा करके बार-बार उन्हें धिक्कारने लगे॥ ३७॥

ऋषि बोले—हे [गौतम!] तुम्हारा मुँह देखनेयोग्य नहीं है, चले जाओ, चले जाओ; गोहत्यारेका मुख देखकर सचैल (वस्त्रसहित) स्नान करना चाहिये॥ ३८॥

जबतक तुम इस आश्रममें रहोगे, तबतक देवता तथा पितर हमलोगोंके द्वारा दिया गया कुछ भी ग्रहण नहीं करेंगे। इसलिये हे गोघातक! हे पापकारक! तुम परिवारसहित अन्यत्र चले जाओ, तुम विलम्ब मत करो॥ ३९-४०॥

सूत उवाच

इत्युक्त्वा ते च तं सर्वे पाषाणैः समताडयन्।
व्यथां ददुरतीवास्मै त्वहल्यां च दुरुक्तिभिः ॥ ४१

ताडितो भर्त्सितो दुष्टैर्गौतमो गिरमब्रवीत्।
इतो गच्छामि मुनयो ह्यन्यत्र निवसाम्यहम् ॥ ४२

इत्युक्त्वा गौतमस्तस्मात्स्थानाच्च निर्गतस्तदा।
गत्वा क्रोशं तदा चक्रे ह्याश्रमं तदनुज्ञया ॥ ४३

यावच्चैवाभिशापो वै तावत्कार्यं न किंचन।
न कर्मण्यधिकारोऽस्ति दैवे पित्र्येऽथ वैदिके ॥ ४४

मासार्धं च ततो नीत्वा मुनीन्संप्रार्थयत्तदा।
गौतमो मुनिवर्यः स तेन दुःखेन दुखितः ॥ ४५

गौतम उवाच

अनुकंप्यो भवद्भिश्च कथ्यतां क्रियते मया।
यथा मदीयं पापं च गच्छत्विति निवेद्यताम् ॥ ४६

सूत उवाच

इत्युक्तास्ते तदा विप्रा नोचुश्चैव परस्परम्।
अत्यन्तं सेवया पृष्टा मिलिता ह्येकतः स्थिताः ॥ ४७

गौतमो दूरतः स्थित्वा नत्वा तानृषिसत्तमान्।
पप्रच्छ विनयाविष्टः किं कार्यं हि मयाधुना ॥ ४८

इत्युक्ते मुनिना तेन गौतमेन महात्मना।
मिलिताः सकलास्ते वै मुनयो वाक्यमब्रुवन् ॥ ४९

ऋषय ऊचुः

निष्कृतिं हि विना शुद्धिर्जायते न कदाचन।
तस्मात्त्वं देहशुद्ध्यर्थं प्रायश्चित्तं समाचर ॥ ५०

त्रिवारं पृथिवीं सर्वां क्रम पापं प्रकाशयन्।
पुनरागत्य चात्रैव चर मासव्रतं तथा ॥ ५१

शतमेकोत्तरं चैव ब्रह्मणोऽस्य गिरेस्तथा।
प्रक्रमणं विधायैवं शुद्धिस्ते च भविष्यति ॥ ५२

सूतजी बोले—ऐसा कहकर वे सभी गौतमको पत्थरोंसे मारने लगे और गौतमपत्नीको भी दुर्वचनोंसे बहुत अधिक दुःख देने लगे ॥ ४१ ॥

उन दुष्टोंके द्वारा पीटे तथा अपमानित किये गये [महर्षि] गौतमने यह वचन कहा—हे मुनियो! मैं यहाँसे चला जाता हूँ और दूसरी जगह निवास करूँगा ॥ ४२ ॥

तब ऐसा कहकर गौतम उस स्थानसे चले गये और एक कोसकी दूरीपर जाकर उनकी अनुमतिसे आश्रम बना लिया। [वहाँ भी जाकर उन ब्राह्मणोंने कहा—] जबतक गोहत्याका पाप है, तबतक तुम्हें कुछ नहीं करना चाहिये, वेदानुमोदित देव अथवा पितृकार्यमें तुम्हारा कोई अधिकार नहीं है ॥ ४३-४४ ॥

इस प्रकार आधे महीनेका समय व्यतीत करके उस दुःखसे व्याकुल हुए महर्षि गौतम ऋषियोंसे प्रार्थना करने लगे ॥ ४५ ॥

गौतमजी बोले—आपलोग कृपा कीजिये और बताइये कि मैं क्या करूँ? जिस तरह मेरा पाप दूर हो सके, वह उपाय आपलोग बतायें ॥ ४६ ॥

सूतजी बोले—उनके इस प्रकार पूछनेपर भी वे ऋषिगण कुछ न बोले। तब वे सब जहाँ स्थित थे, वहाँ जाकर गौतम अत्यन्त विनयपूर्वक सेवाभावसे पूछने लगे। गौतमने दूर रहकर उन श्रेष्ठ ऋषियोंको प्रणाम करके विनययुक्त होकर पूछा कि अब मुझे क्या करना चाहिये? ॥ ४७-४८ ॥

उन महात्मा गौतमके इस प्रकार पूछनेपर उन सभी मुनियोंने परस्पर मिलकर यह वचन कहा— ॥ ४९ ॥

ऋषि बोले—बिना प्रायश्चित्त किये कभी भी शुद्धि नहीं होती है, इसलिये तुम शरीरशुद्धिके निमित्त प्रायश्चित्त करो ॥ ५० ॥

तुम अपने पापको प्रकाशित करते हुए तीन बार पृथ्वीकी परिक्रमा करो, फिर यहीं आकर मासव्रतका अनुष्ठान करो। इसके बाद एक सौ एक बार इस ब्रह्मगिरिकी परिक्रमा करनेसे तुम्हारी शुद्धि होगी ॥ ५१-५२ ॥

अथवा त्वं समानीय गङ्गास्नानं समाचर।
पार्थिवानां तथा कोटिं कृत्वा देवं निषेवय॥ ५३
गंगायां च ततः स्नात्वा पूतश्चैव भविष्यसि।
पुरा दश तथा चैकं गिरेस्त्वं क्रमणं कुरु॥ ५४
शतकुंभैस्तथा स्नात्वा पार्थिवं निष्कृतिर्भवेत्।
इति तैर्ऋषिभिः प्रोक्तस्तथेत्योमिति तद्वचः॥ ५५

अथवा तुम यहीं गंगाको लाकर स्नान करो और एक करोड़ पार्थिव लिंग बनाकर भगवान् शिवका पूजन करो। उसके बाद गंगामें स्नान करके तुम पवित्र हो जाओगे। सर्वप्रथम ग्यारह बार इस पर्वतकी परिक्रमा करो, तत्पश्चात् सौ घड़े गंगाजलसे स्नानकर पार्थिवपूजन करो, तब तुम्हारा प्रायश्चित्त (पूर्ण) होगा। इस प्रकार उन ऋषियोंके कहनेपर उन्होंने 'हाँ ठीक है'—ऐसा कहकर उनकी बात स्वीकार कर ली॥ ५३—५५॥

पार्थिवानां तथा पूजां गिरेः प्रक्रमणं तथा।
करिष्यामि मुनिश्रेष्ठा आज्ञया श्रीमतामिह॥ ५६
इत्युक्त्वा सर्षिवर्यश्च कृत्वा प्रक्रमणं गिरेः।
पूजयामास निर्माय पार्थिवान्मुनिसत्तमः॥ ५७
अहल्या च ततः साध्वी तच्च सर्वं चकार सा।
शिष्याश्च प्रतिशिष्याश्च चक्रुः सेवां तयोस्तदा॥ ५८

[गौतम बोले—] हे मुनिश्रेष्ठो! मैं आप श्रीमान् लोगोंकी आज्ञासे पार्थिव-पूजन तथा पर्वतकी परिक्रमा करूँगा—ऐसा कहकर उन मुनिश्रेष्ठ महर्षिने पर्वतकी परिक्रमा करके पार्थिव लिंगोंको बनाकर उनका पूजन किया। उन साध्वी अहल्याने भी वही सब किया। उस समय उनके शिष्यों तथा प्रशिष्योंने भी उन दोनोंकी सेवाका कार्य सम्पादित किया॥ ५६—५८॥

इति श्रीशिवमहापुराणे चतुर्थ्यां कोटिरुद्रसंहितायां गौतमव्यवस्थावर्णनं नाम पञ्चविंशोऽध्यायः॥ २५॥

॥ इस प्रकार श्रीशिवमहापुराणके अन्तर्गत चतुर्थ कोटिरुद्रसंहितामें गौतमव्यवस्थावर्णन नामक पच्चीसवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ २५॥

अथ षड्विंशोऽध्यायः

त्र्यम्बकेश्वर ज्योतिर्लिंग तथा गौतमी गंगाके प्रादुर्भावका आख्यान

सूत उवाच

एवं कृते तु ऋषिणा सस्त्रीकेन द्विजाः शिवः।
आविर्बभूव सशिवः प्रसन्नः सगणस्तदा॥ १
अथ प्रसन्नः सशिवो वरं ब्रूहि महामुने।
प्रसन्नोऽहं सुभक्त्या त इत्युवाच कृपानिधिः॥ २

सूतजी बोले—हे द्विजो! उस समय स्त्रीसहित गौतमके द्वारा इस प्रकार प्रायश्चित्त करनेपर शिवजी प्रसन्न होकर पार्वतीजी तथा अपने गणोंके साथ प्रकट हो गये। इसके बाद प्रसन्न हुए कृपानिधि शिवजीने कहा—हे महामुने! मैं आपकी उत्तम भक्तिसे अत्यन्त प्रसन्न हूँ, आप वर माँगिये॥ १-२॥

तदा तत्सुन्दरं रूपं दृष्ट्वा शंभोर्महात्मनः।
प्रणम्य शंकरं भक्त्या स्तुतिं चक्रे मुदान्वितः॥ ३

तब महात्मा शिवके उस सुन्दर रूपको देखकर शंकरजीको प्रणामकर प्रसन्न हो गौतम ऋषि उनकी भक्तिपूर्वक स्तुति करने लगे॥ ३॥

स्तुत्वा बहु प्रणम्येशं बद्धाञ्जलिपुटः स्थितः।
निष्पापं कुरु मां देवाब्रवीदिति स गौतमः॥ ४

बहुत प्रकारसे स्तुति करके एवं शिवको प्रणामकर हाथ जोड़कर महर्षि गौतम स्थित हो गये और कहने लगे—हे देव! आप मुझे पापरहित करें॥ ४॥

सूत उवाच

इत्याकर्ण्य वचस्तस्य गौतमस्य महात्मनः।
सुप्रसन्नतरो भूत्वा शिवो वाक्यमुपाददे॥ ५

सूतजी बोले—उन महात्मा गौतमका यह वचन सुनकर शिवजीने अत्यन्त प्रसन्न हो यह वचन कहा—॥ ५॥

शिव उवाच

धन्योऽसि कृतकृत्योऽसि निष्पापोऽसि सदा मुने।
एतैर्दुष्टैः किल त्वं च छलितोऽसि खलात्मभिः॥ ६

त्वदीयदर्शनाल्लोका निष्पापाश्च भवंति हि।
किं पुनस्त्वं सपापोऽसि मद्भक्तिनिरतः सदा॥ ७

उपद्रवस्त्वयि मुने यैः कृतस्तु दुरात्मभिः।
ते पापाश्च दुराचारा हत्यावन्तस्त एव हि॥ ८
एतेषां दर्शनादन्ये पापिष्ठाः संभवन्तु च।
कृतघ्नाश्च तथा जाता नैतेषां निष्कृतिः क्वचित्॥ ९

सूत उवाच

इत्युक्त्वा शंकरस्तस्मै तेषां दुश्चरितं तदा।
बहूवाच प्रभुर्विप्राः सत्कदोऽसत्सु दंडदः॥ १०
शर्वोक्तमिति स श्रुत्वा सुविस्मितमना ऋषिः।
सुप्रणम्य शिवं भक्त्या साञ्जलिः पुनरब्रवीत्॥ ११

गौतम उवाच

ऋषिभिस्तैर्महेशान ह्युपकारः कृतो महान्।
यद्येवं न कृतं तैस्तु दर्शनं ते कुतो भवेत्॥ १२
धन्यास्ते ऋषयो यैस्तु मह्यं शुभतरं कृतम्।
तद्दुराचरणादेव मम स्वार्थो महानभूत्॥ १३

सूत उवाच

इत्येवं तद्वचः श्रुत्वा सुप्रसन्नो महेश्वरः।
गौतमं प्रत्युवाचाशु कृपादृष्ट्या विलोक्य च॥ १४

शिव उवाच

ऋषिर्धन्योऽसि विप्रेन्द्र ऋषिश्रेष्ठतरोऽसि वै।
ज्ञात्वा मां सुप्रसन्नं हि वृणु त्वं वरमुत्तमम्॥ १५

सूत उवाच

गौतमोऽपि विचार्यैवं लोके विश्रुतमित्युत।
अन्यथा न भवेदेव तस्मादुक्तं समाचरेत्॥ १६

निश्चित्यैवं मुनिश्रेष्ठो गौतमः शिवभक्तिमान्।
साञ्जलिर्नतशीर्षो हि शंकरं वाक्यमब्रवीत्॥ १७

गौतम उवाच

सत्यं नाथ ब्रवीषि त्वं तथापि पञ्चभिः कृतम्।
नान्यथा भवतीत्यत्र यज्जातं जायतां तु तत्॥ १८

शिवजी बोले—हे मुने! आप सदा धन्य हैं, कृतकृत्य हैं तथा निष्पाप हैं, इन दुष्टात्मा पापी ऋषियोंने निश्चय ही आपके साथ छल किया है॥ ६॥

जब आपके दर्शनमात्रसे लोग निष्पाप हो जाते हैं, तब मेरी भक्तिमें निरत रहनेवाले आप किस प्रकार पापी हो सकते हैं?॥ ७॥

हे मुने! जिन दुष्टोंने आपके प्रति उपद्रव किया है, वे ही पापी, दुराचारी और हत्यारे हैं। इनके दर्शनसे दूसरे लोग पापी हो जायँगे, ये लोग कृतघ्न हैं, इनका कोई प्रायश्चित्त नहीं है॥ ८-९॥

सूतजी बोले—हे विप्रो! ऐसा कहकर सज्जनोंको सुख देनेवाले तथा असज्जनोंको दण्ड देनेवाले शिवजीने उनसे ऋषियोंके बहुतसे दुश्चरित्रोंका वर्णन किया॥ १०॥

शिवजीकी बात सुनकर महर्षि गौतम अत्यन्त आश्चर्यचकित हो गये और उन्होंने हाथ जोड़कर शिवजीको भक्तिपूर्वक प्रणाम करके पुनः कहा—॥ ११॥

गौतम बोले—हे महेश्वर! उन ऋषियोंने मेरा बहुत बड़ा उपकार किया है, यदि वे ऐसा न करते, तो आपका दर्शन कैसे होता? वे ऋषि धन्य हैं, जिन्होंने मेरा अत्यन्त कल्याण किया, उनके दुराचारके कारण ही मेरा बहुत बड़ा स्वार्थ सिद्ध हुआ है॥ १२-१३॥

सूतजी बोले—उनकी यह बात सुनकर अति प्रसन्न हुए शिवजीने कृपादृष्टिसे गौतमकी ओर देखकर शीघ्र ही उनसे कहा—॥ १४॥

शिवजी बोले—हे विप्रेन्द्र! आप धन्य हैं। आप सर्वश्रेष्ठ ऋषि हैं। मुझे परम प्रसन्न जानकर आप उत्तम वरदान माँगिये॥ १५॥

सूतजी बोले—[हे द्विजो!] उसके बाद गौतमने भी [अपने मनमें] विचार किया कि [अब मेरे पापकी] प्रसिद्धि लोकमें हो चुकी है, इसलिये वह जिस प्रकार झूठ न हो, उन ऋषियोंकी कही बात सत्य करनी चाहिये। ऐसा निश्चय करके शिवभक्त मुनिश्रेष्ठ गौतमने हाथ जोड़कर सिर झुका करके शिवजीसे यह वचन कहा—॥ १६-१७॥

गौतम बोले—हे नाथ! आप सत्य कहते हैं, किंतु जैसा पंचोंने निर्णय दिया है, वह अन्यथा न हो। जैसा उन लोगोंने निर्णय दिया है, वही होने दीजिये॥ १८॥

यदि प्रसन्नो देवेश गंगा च दीयतां मम।
कुरु लोकोपकारं हि नमस्तेऽस्तु नमोऽस्तु ते॥ १९

हे देवेश! यदि आप प्रसन्न हैं, तो मुझे गंगा प्रदान कीजिये और इस प्रकार लोकका उपकार कीजिये, आपको नमस्कार है, आपको बारंबार नमस्कार है॥ १९॥

सूत उवाच

इत्युक्त्वा वचनं तस्य धृत्वा वै पादपंकजम्।
नमश्चकार देवेशं गौतमो लोककाम्यया॥ २०

सूतजी बोले—ऐसा कहकर लोककल्याणकी इच्छासे गौतमने उनके चरणकमल पकड़कर देवेशको [पुनः] प्रणाम किया॥ २०॥

ततस्तु शंकरो देवः पृथिव्याश्च दिवश्च सः।
सारं चैव समुद्धृत्य रक्षितं पूर्वमेव तत्॥ २१

विवाहे ब्रह्मणा दत्तमवशिष्टं च किंचन।
तत्तस्मै दत्तवान् शम्भुर्मुनये भक्तवत्सलः॥ २२

गंगाजलं तदा तत्र स्त्रीरूपमभवत्परम्।
तस्याश्चैव ऋषिश्रेष्ठः स्तुतिं कृत्वा नतिं व्यधात्॥ २३

उसके बाद पृथ्वी तथा स्वर्गके सारभूत जिस जलको निकालकर पूर्वमें रख लिया था और विवाहकालमें ब्रह्माजीके द्वारा दिया गया जो कुछ शेष जल बचा था, उसे भक्तवत्सल भगवान् शिवने उन मुनिको प्रदान किया। उस समय वह गंगाजल परम सुन्दरी स्त्रीके रूपमें परिणत हो गया। तत्पश्चात् ऋषिवरने उस [स्त्रीरूप जल]-की स्तुतिकर उसे प्रणाम किया॥ २१—२३॥

गौतम उवाच

धन्यासि कृतकृत्यासि पावितं भुवनं त्वया।
मां च पावय गंगे त्वं पतन्तं निरये ध्रुवम्॥ २४

गौतम बोले—हे गंगे! आप धन्य हैं, कृतकृत्य हैं, आपने जगत्‌को पवित्र कर दिया है, अतएव निश्चय ही नरकमें गिरते हुए मुझे भी आप पवित्र कीजिये॥ २४॥

सूत उवाच

शंभुश्चापि तदोवाच सर्वेषां हितकृच्छृणु।
गंगे गौतममेनं त्वं पावयस्व मदाज्ञया॥ २५
इति श्रुत्वा वचस्तस्य शंभोश्च गौतमस्य च।
उवाचैव शिवं गंगा शिवशक्तिर्हि पावनी॥ २६

सूतजी बोले—तब सबका हित करनेवाले शिवजीने भी कहा—हे गंगे! सुनो, तुम मेरी आज्ञासे इन गौतम मुनिको पवित्र करो। तब उन शिव तथा गौतमके वचनको सुनकर भगवान् शिवकी शक्ति परमपावनी गंगाजीने शिवजीसे कहा— ॥ २५-२६॥

गंगोवाच

ऋषिं तु पावयित्वाहं परिवारयुतं प्रभो।
गमिष्यामि निजस्थानं वचः सत्यं ब्रवीमि ह॥ २७

गंगाजी बोलीं—हे प्रभो! मैं मुनिको परिवारसहित पवित्रकर अपने स्थानको जाऊँगी, मैं सत्य वचन कहती हूँ॥ २७॥

सूत उवाच

इत्युक्तं गंगया तत्र महेशो भक्तवत्सलः।
लोकोपकरणार्थाय पुनर्गंगां वचोऽब्रवीत्॥ २८

सूतजी बोले—जब गंगाजीने ऐसा कहा, तब भक्तवत्सल शिवजीने लोकोपकारके निमित्त गंगाजीसे पुनः यह वचन कहा— ॥ २८॥

शिव उवाच

त्वया स्थातव्यमत्रैवाव्रजेद्यावत्कलिर्युगः।
वैवस्वतो मनुर्देवि ह्यष्टाविंशत्तमो भवेत्॥ २९

शिवजी बोले—हे देवि! वैवस्वत मन्वन्तरके अट्ठाईसवें कलियुगतक तुम यहीं निवास करो॥ २९॥

सूत उवाच

इति श्रुत्वा वचस्तस्य स्वामिनः शंकरस्य तत्।
प्रत्युवाच पुनर्गंगा पावनी सा सरिद्वरा॥ ३०

सूतजी बोले—उन स्वामी शिवका यह वचन सुनकर नदियोंमें श्रेष्ठ उन पावनी गंगाने पुनः कहा— ॥ ३०॥

गंगोवाच

माहात्म्यमधिकं चेत्स्यान्मम स्वामिन्महेश्वर।
सर्वेभ्यश्च तदा स्थास्ये धरायां त्रिपुरान्तक॥ ३१

गंगाजी बोलीं—हे स्वामिन्! हे महेश्वर! हे त्रिपुरान्तक! यदि सबकी अपेक्षा मेरा माहात्म्य अधिक रहेगा, तभी मैं पृथ्वीपर निवास करूँगी॥ ३१॥

किंचान्यच्च शृणु स्वामिन्वपुषा सुन्दरेण ह।
तिष्ठ त्वं मत्समीपे वै सगणः साम्बिकः प्रभो॥ ३२

हे स्वामिन्! हे प्रभो! एक और बात सुनिये, आप अपने गणों एवं पार्वतीसहित अपने सुन्दर स्वरूपसे मेरे समीप निवास कीजिये ॥ ३२ ॥

सूत उवाच

एवं तस्या वचः श्रुत्वा शंकरो भक्तवत्सलः।
लोकोपकरणार्थाय पुनर्गंगां वचोऽब्रवीत्॥ ३३

सूतजी बोले—उनका यह वचन सुनकर भक्तवत्सल शंकरने लोकोपकारके लिये गंगाजीसे पुनः यह वचन कहा— ॥ ३३ ॥

शिव उवाच

धन्यासि श्रूयतां गंगे ह्यहं भिन्नस्त्वया न हि।
तथापि स्थीयते ह्यत्र स्थीयतां च त्वयापि हि॥ ३४

शिवजी बोले—हे गंगे! तुम धन्य हो, सुनो! मैं तुमसे पृथक् नहीं हूँ, फिर भी मैं यहाँ निवास करता हूँ और तुम भी निवास करो॥ ३४॥

सूत उवाच

इत्येवं वचनं श्रुत्वा स्वामिनः परमेशितुः।
प्रसन्नमानसा भूत्वा गंगा च प्रत्यपूजयत्॥ ३५

सूतजी बोले—इस प्रकार स्वामी सदाशिवकी बात सुनकर गंगाने प्रसन्नचित्त होकर उनकी आज्ञा स्वीकार कर ली॥ ३५॥

एतस्मिन्नन्तरे देवा ऋषयश्च पुरातनाः।
सुतीर्थान्यप्यनेकानि क्षेत्राणि विविधानि च॥ ३६
आगत्य गौतमं सर्वे गंगां च गिरिशं तथा।
जय जयेति भाषन्तः पूजयामासुरादरात्॥ ३७

इसी बीच देवता, प्राचीन ऋषि, पितर, अनेक सुन्दर तीर्थ एवं विविध क्षेत्र—सभीने वहाँ आकर गौतम, गंगा तथा गिरीशकी जय-जयकार करते हुए आदरपूर्वक उनका पूजन किया॥ ३६-३७॥

ततस्ते निर्जराः सर्वे तेषां चक्रुः स्तुतिं मुदा।
करान् बध्वा नतस्कंधा हरिब्रह्मादयस्तदा॥ ३८

गंगा प्रसन्ना तेभ्यश्च गिरिशश्चोचतुस्तदा।
वरं ब्रूत सुरश्रेष्ठा दद्वो वः प्रियकाम्यया॥ ३९

इसके बाद ब्रह्मा, विष्णु आदि उन सभी देवताओंने हाथ जोड़कर सिर झुका करके प्रसन्नतापूर्वक उनकी स्तुति की। उस समय उन देवताओंपर प्रसन्न हुईं गंगाजी तथा शिवजीने कहा—हे सुरश्रेष्ठो! आपलोग वर माँगिये। आपलोगोंका हित करनेकी इच्छासे हम दोनों उसे प्रदान करेंगे॥ ३८-३९॥

देवा ऊचुः

यदि प्रसन्नो देवेश प्रसन्ना त्वं सरिद्वरे।
स्थातव्यमत्र कृपया नः प्रियार्थं तथा नृणाम्॥ ४०

देवता बोले—हे देवेश! यदि आप प्रसन्न हैं और हे गंगे! यदि आप भी प्रसन्न हैं, तो हमलोगोंके तथा मनुष्योंके हितके लिये कृपापूर्वक यहीं निवास करें॥ ४०॥

गंगोवाच

यूयं सर्वप्रियार्थं च तिष्ठथात्र न किं पुनः।
गौतमं क्षालयित्वाहं गमिष्यामि यथागतम्॥ ४१

भवत्सु मे विशेषोऽत्र ज्ञेयश्चैव कथं सुराः।
तत्प्रमाणं कृतं चेत्स्यात्तदा तिष्ठाम्यसंशयम्॥ ४२

गंगाजी बोलीं—हे देवताओ! तुमलोग स्वयं ही लोकोपकारके निमित्त यहाँ निवास क्यों नहीं करते, मैं तो गौतमको पवित्रकर जहाँसे आयी हूँ, वहीं चली जाऊँगी। आप लोगोंमें मेरा वैशिष्ट्य किस प्रकार जाना जा सके यदि उसे प्रमाणित करो, तब मैं निश्चय ही यहाँ निवास कर सकती हूँ॥ ४१-४२॥

सर्वे ऊचुः

सिंहराशौ यदा स्याद्वै गुरुः सर्वसुहृत्तमः।
तदा वयं च सर्वे त्वागमिष्यामो न संशयः॥ ४३

सभी [देवगण] बोले—जब सबके परम सुहृद् बृहस्पति सिंहराशिपर स्थित रहेंगे, तब हम सभी लोग आपके समीप आयेंगे, इसमें संशय नहीं है॥ ४३॥

एकादश च वर्षाणि लोकानां पातकं त्विह।
क्षालितं यद्भवेदेवं मलिनाः स्मः सरिद्वरे॥ ४४

तस्यैव क्षालनाय त्वायास्यामः सर्वथा प्रिये।
त्वत्सकाशं महादेवि प्रोच्यते सत्यमादरात्॥ ४५

हे सरिद्वरे! इस लोकमें ग्यारह वर्षपर्यन्त लोगोंका जो पाप प्रक्षालित होगा, उससे जब हमलोग मलिन हो जायँगे, तब हे प्रिये! उस पापको धोनेके लिये हमलोग निश्चित रूपसे आपके पास आयेंगे, हे महादेवि! हमलोग आदरपूर्वक सत्य कह रहे हैं॥ ४४-४५॥

अनुग्रहाय लोकानामस्माकं प्रियकाम्यया।
स्थातव्यं शंकरेणापि त्वया चैव सरिद्वरे॥ ४६

हे सरिद्वरे! लोकोंपर अनुग्रह करने तथा हमलोगोंका हित करनेके लिये आपको एवं शंकरजीको भी यहीं रहना चाहिये॥ ४६॥

यावत्सिंहे गुरुश्चैव स्थास्यामस्तावदेव हि।
त्वयि स्नानं त्रिकालं च शंकरस्य च दर्शनम्॥ ४७

कृत्वा स्वपापं निखिलं विमोक्ष्यामो न संशयः।
स्वदेशांश्च गमिष्यामो भवच्छासनतो वयम्॥ ४८

जबतक बृहस्पति सिंहराशिपर रहेंगे, तबतक हमलोग भी यहीं निवास करेंगे और तीनों समय आप [के जल]-में स्नान करके तथा शिवजीका दर्शन करके अपने सम्पूर्ण पापोंसे मुक्त होंगे और पुनः आपकी आज्ञासे अपने-अपने स्थानको चले जायँगे, इसमें सन्देह नहीं है॥ ४७-४८॥

सूत उवाच

इत्येवं प्रार्थितस्तैस्तु गौतमेन महर्षिणा।
स्थितोऽसौ शंकरः प्रीत्या स्थिता सा च सरिद्वरा॥ ४९

सा गंगा गौतमी नाम्ना लिंगं त्र्यंबकमीरितम्।
ख्याताख्यातं बभूवाथ महापातकनाशनम्॥ ५०

सूतजी बोले—इस प्रकार महर्षि गौतम तथा उन देवताओंके द्वारा प्रार्थना किये जानेपर वे शंकरजी प्रेमपूर्वक वहीं स्थित हो गये और वे गंगाजी भी स्थित हो गयीं। वहाँपर वे गंगाजी गौतमी नामसे प्रसिद्ध हुईं तथा वह शिवलिंग त्र्यम्बक नामसे विश्वमें विख्यात हुआ, जो महापातकका भी नाश करनेवाला है॥ ४९-५०॥

तद्दिनं हि समारभ्य सिंहस्थे च बृहस्पतौ।
आयांति सर्वतीर्थानि क्षेत्राणि दैवतानि च॥ ५१

सरांसि पुष्करादीनि गंगाद्याः सरितस्तथा।
वासुदेवादयो देवाः सन्ति वै गौतमीतटे॥ ५२

उस दिनसे लेकर जब-जब बृहस्पति सिंहराशिपर आते हैं, तब सभी देवता, तीर्थ तथा क्षेत्र यहाँ आते हैं। पुष्कर आदि समस्त सरोवर, गंगा आदि सभी नदियाँ एवं विष्णु आदि देवगण गौतमीतटपर निवास करते हैं॥ ५१-५२॥

यावत्तत्र स्थितानीह तावत्तेषां फलं न हि।
स्वप्रदेशे समायातास्तर्ह्येतेषां फलं भवेत्॥ ५३

ये जबतक वहाँ रहते हैं, तबतक [अपने स्थानपर उनके सेवनका] फल प्राप्त नहीं होता और जब वे अपने-अपने निवासपर चले जाते हैं, तभी [उनकी उपासनाका] फल प्राप्त होता है॥ ५३॥

ज्योतिर्लिंगमिदं प्रोक्तं त्र्यंबकं नाम विश्रुतम्।
स्थितं तटे हि गौतम्या महापातकनाशनम्॥ ५४

यः पश्येद्भक्तितो ज्योतिर्लिंगं त्र्यंबकनामकम्।
पूजयेत्प्रणमेत्स्तुत्वा सर्वपापैः प्रमुच्यते॥ ५५

यह त्र्यम्बक नामसे प्रसिद्ध ज्योतिर्लिंग गौतमीके तटपर स्थित है और महान् पापोंका नाश करनेवाला है। जो इस त्र्यम्बकेश्वर नामक ज्योतिर्लिंगका भक्तिपूर्वक दर्शन, पूजन, प्रणाम एवं स्तवन करता है, वह सभी प्रकारके पापोंसे मुक्त हो जाता है॥ ५४-५५॥

ज्योतिर्लिंगं त्र्यंबकं हि पूजितं गौतमेन ह।
सर्वकामप्रदं चात्र परत्र परमुक्तिदम्॥ ५६

गौतमके द्वारा पूजित यह त्र्यम्बक नामक ज्योतिर्लिंग इस लोकमें सम्पूर्ण कामनाओंको देनेवाला तथा परलोकमें उत्तम मुक्ति प्रदान करनेवाला है॥ ५६॥

इति वश्च समाख्यातं यत्पृष्टोऽहं मुनीश्वराः।
किमन्यदिच्छथ श्रोतुं तद् ब्रूयां वो न संशयः॥ ५७

हे मुनीश्वरो! जो आपलोगोंने मुझसे पूछा था, उसे मैंने कह दिया, अब आपलोग और क्या सुनना चाहते हैं? उसे मैं कहूँगा, इसमें सन्देह नहीं है॥ ५७॥

इति श्रीशिवमहापुराणे चतुर्थ्यां कोटिरुद्रसंहितायां त्र्यंबकेश्वरमाहात्म्यवर्णनं नाम षड्विंशोऽध्यायः॥ २६॥

॥ इस प्रकार श्रीशिवमहापुराणके अन्तर्गत चतुर्थ कोटिरुद्रसंहितामें त्र्यम्बकेश्वरमाहात्म्यवर्णन नामक छब्बीसवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ २६॥

अथ सप्तविंशोऽध्यायः

गौतमी गंगा एवं त्र्यम्बकेश्वर ज्योतिर्लिंगका माहात्म्यवर्णन

ऋषय ऊचुः

गंगा च जलरूपेण कुतो जाता वद प्रभो।
तन्माहात्म्यं विशेषेण कुतो जातं वद प्रभो॥ १
यैर्विप्रैर्गौतमायैव दुःखं दत्तं दुरात्मभिः।
तेषां किं च ततो जातमुच्यतां व्याससद्गुरो॥ २

ऋषिगण बोले—हे प्रभो! गंगा किस स्थानसे जलरूपमें प्रवाहित होकर प्रकट हुईं? हे प्रभो! उनका माहात्म्य सबकी अपेक्षा अधिक क्यों हुआ? इसे बताइये। हे व्यासशिष्य! जिन दुष्ट ब्राह्मणोंने महर्षि गौतमको दुःख दिया, बादमें उन्हें क्या फल मिला, उसे कहिये?॥ १-२॥

सूत उवाच

एवं संप्रार्थिता गंगा गौतमेन तदा स्वयम्।
ब्रह्मणश्च गिरेर्विप्रा द्रुतं तस्मादवातरत्॥ ३

सूतजी बोले—हे ब्राह्मणो! उस समय गौतमके द्वारा प्रार्थना करनेपर स्वयं गंगाजी शीघ्र ही उस ब्रह्मगिरिसे प्रकट हुईं॥ ३॥

औदुंबरस्य शाखायास्तत्प्रवाहो विनिःसृतः।
तत्र स्नानं मुदा चक्रे गौतमो विश्रुतो मुनिः॥ ४

गूलर वृक्षकी शाखासे उनकी धारा निकली, तब सुप्रसिद्ध मुनि गौतमने आनन्दसे उसमें स्नान किया॥ ४॥

गौतमस्य च ये शिष्या अन्ये चैव महर्षयः।
समागताश्च ते तत्र स्नानं चक्रुर्मुदान्विताः॥ ५
गंगाद्वारं च तन्नाम प्रसिद्धमभवत्तदा।
सर्वपापहरं रम्यं दर्शनान्मुनिसत्तमाः॥ ६

गौतमके जो शिष्य थे तथा अन्य आये हुए जो महर्षिगण थे, उन सभीने वहाँपर प्रसन्नतापूर्वक स्नान किया। तभीसे उस स्थानका नाम गंगाद्वार प्रसिद्ध हो गया। हे मुनियो! इस रमणीय क्षेत्रका दर्शन करनेसे सम्पूर्ण पापोंका अपहरण हो जाता है॥ ५-६॥

गौतमस्पर्द्धिनस्ते च ऋषयस्तत्र चागताः।
स्नानार्थं तांश्च सा दृष्ट्वा ह्यंतर्धानं गता द्रुतम्॥ ७

उसके बाद [महर्षि] गौतमसे द्वेष करनेवाले वे सभी ऋषि भी स्नान करनेके लिये वहाँ आ गये, तब उन्हें देखकर वे गंगाजी शीघ्रतासे अन्तर्धान हो गयीं॥ ७॥

मा मेति गौतमस्तत्र व्याजहार वचो द्रुतम्।
मुहुर्मुहुः स्तुवन् गंगां साञ्जलिर्नतमस्तकः॥ ८

महर्षि गौतमने हाथ जोड़कर सिर झुकाकर गंगाकी बारंबार स्तुति करते हुए शीघ्रतासे कहा—ऐसा मत कीजिये, ऐसा मत कीजिये॥ ८॥

गौतम उवाच

इमे च श्रीमदांधाश्च साधवो वाप्यसाधवः।
एतत्पुण्यप्रभावेण दर्शनं दीयतां त्वया॥ ९

गौतम बोले—[हे माता!] ये सभी महर्षि श्रीमदमें अन्धे हों, सज्जन हों अथवा असज्जन हों, [परंतु मेरे] इस पुण्यके प्रभावसे आप इन्हें दर्शन दीजिये॥ ९॥

सूत उवाच

ततो वाणी समुत्पन्ना गंगाया व्योममंडलात्।
तच्छृणुध्वमृषिश्रेष्ठा गंगावचनमुत्तमम्॥ १०

सूतजी बोले—हे ऋषिश्रेष्ठो! उसके बाद आकाश-मण्डलसे गंगाजीकी वाणी प्रतिध्वनित हुई, आपलोग गंगाजीके उस उत्तम कथनको सुनिये—॥ १०॥

एते दुष्टतमाश्चैव कृतघ्नाः स्वामिद्रोहिणः।
जाल्माः पाखंडिनश्चैव द्रष्टुं वर्ज्याश्च सर्वदा॥ ११

गौतम उवाच

मातश्च श्रूयतामेतन्महतां गिर एव च।
तस्मात्त्वया च कर्त्तव्यं सत्यं च भगवद् वचः॥ १२
अपकारिषु यो लोक उपकारं करोति वै।
तेन पूतो भवाम्यत्र भगवद्वचनं त्विदम्॥ १३

सूत उवाच

इति श्रुत्वा मुनेर्वाक्यं गौतमस्य महात्मनः।
पुनर्वाणी समुत्पन्ना गंगाया व्योममंडलात्॥ १४
कथ्यते हि त्वया सत्यं गौतमर्षे शिवं वचः।
तथापि संग्रहार्थं च प्रायश्चित्तं चरन्तु वै॥ १५
शतमेकोत्तरं चात्र कार्यं प्रक्रमणं गिरेः।
भवच्छासनतस्त्वेतैस्त्वदधीनैर्विशेषतः॥ १६
ततश्चैवाधिकारश्च जायते दुष्टकारिणाम्।
मद्दर्शने विशेषेण सत्यमुक्तं मया मुने॥ १७
इति श्रुत्वा वचस्तस्याश्चक्रुर्वै ते तथाखिलाः।
संप्रार्थ्य गौतमं दीनाः क्षन्तव्यो नोऽपराधकः॥ १८

एवं कृते तदा तेन गौतमेन तदाज्ञया।
कुशावर्तं नाम चक्रे गङ्गाद्वारादधोगतम्॥ १९

ततः प्रादुरभूत्तत्र सा तस्य प्रीतये पुनः।
कुशावर्तं च विख्यातं तीर्थमासीदनुत्तमम्॥ २०

तत्र स्नातो नरो यस्तु मोक्षाय परिकल्पते।
त्यक्त्वा सर्वानघान्सद्यो विज्ञानं प्राप्य दुर्लभम्॥ २१

गौतमो ऋषयश्चान्ये मिलिताश्च परस्परम्।
लज्जितास्ते तदा ये च कृतघ्ना ह्यभवन्पुरा॥ २२

ऋषय ऊचुः

अस्माभिरन्यथा सूत श्रुतं तद्वर्णयामहे।
गौतमस्तान्द्विजान् क्रुद्धः शशापेति प्रबुध्यताम्॥ २३

सूत उवाच

द्विजास्तदपि सत्यं वै कल्पभेदसमाश्रयात्।
वर्णयामि विशेषेण तां कथामपि सुव्रताः॥ २४

गंगाजी बोलीं—ये अत्यन्त दुष्ट, कृतघ्न, स्वामीसे द्रोह करनेवाले, धूर्त और पाखण्डी हैं, इन्हें देखनातक नहीं चाहिये॥ ११॥

गौतम बोले—हे मातः! महापुरुषोंके इस कथनको आप सुनिये और भगवान् शंकरके वचनको सत्य कीजिये। 'इस पृथ्वीपर जो मनुष्य अपकार करनेवालोंका भी उपकार ही करता है, मैं उससे पवित्र होता हूँ'—यह भगवान्‌का वचन है॥ १२-१३॥

सूतजी बोले—महात्मा गौतममुनिका यह वचन सुनकर आकाशमण्डलसे पुनः गंगाजीका कथन ध्वनित हुआ—हे गौतम महर्षे! आप सत्य और कल्याणकारी वचन कह रहे हैं, फिर भी ये संसारको शिक्षा देनेके लिये प्रायश्चित्त करें। विशेषरूपसे आपके अधीन हुए इन लोगोंको आपकी आज्ञासे एक सौ एक बार इस पर्वतकी परिक्रमा करनी चाहिये। हे मुने! तभी इन दुराचारियोंको मेरे दर्शनका विशेष अधिकार प्राप्त होगा, यह मैंने सत्य कहा है॥ १४—१७॥

[पुनः सूतजी बोले—] गंगाजीकी यह बात सुनकर उन सभी दीन ऋषियोंने 'हमारे अपराधको क्षमा करें' गौतमसे इस प्रकार प्रार्थनाकर पर्वतकी परिक्रमा की। उन ऋषियोंके द्वारा ऐसा कर लेनेपर उन गौतमने गंगाजीकी आज्ञासे गंगाद्वारके नीचेवाले स्थानका नाम कुशावर्त रखा॥ १८-१९॥

उसके बाद वे गंगाजी गौतमको प्रसन्न करनेके लिये वहाँ पुनः प्रकट हुईं, तबसे वह श्रेष्ठ तीर्थ कुशावर्त नामसे प्रसिद्ध हुआ। वहाँ स्नान करनेवाला मनुष्य अपने सभी पापोंका त्याग करके दुर्लभ विज्ञान प्राप्तकर शीघ्र ही मोक्षका अधिकारी हो जाता है॥ २०-२१॥

इसके बाद जब गौतम एवं अन्य ऋषिगण परस्पर मिले, उस समय जिन्होंने पहले कृतघ्नता की थी, वे लोग लज्जित हो गये॥ २२॥

ऋषिगण बोले—हे सूतजी! हमलोगोंने तो इसे दूसरी तरहसे सुना है, हम उसका वर्णन करते हैं। गौतमने क्रुद्ध होकर उन्हें शाप दिया था—आप ऐसा जानिये॥ २३॥

सूतजी बोले—हे द्विजो! कल्पभेदके कारण वह भी सत्य है, हे सुव्रतो! मैं उस कथाका भी विशेष रूपसे वर्णन करता हूँ॥ २४॥

गौतमोऽपि ऋषीन्दृष्ट्वा तदा दुर्भिक्षपीडितान्।
तपश्चकार सुमहद्वरुणस्य महात्मनः॥ २५
अक्षय्यं कल्पयामास जलं वरुणदायया।
ततो व्रीहीन् यवांश्चैव वापयामास भूरिशः॥ २६
एवं परोपकारी स गौतमो मुनिसत्तमः।
आहारं कल्पयामास तेभ्यः स्वतपसो बलात्॥ २७

गौतमने उन ऋषियोंको दुर्भिक्षसे पीड़ित देखकर महात्मा वरुणको उद्देश्यकर बहुत बड़ा तप किया। उसके अनन्तर वरुणकी कृपासे उन्होंने अक्षय जल प्राप्त किया और तत्पश्चात् बहुत-से धान तथा जौ बोवाये। [हे ऋषिश्रेष्ठो!] इस प्रकार उन परोपकारी महर्षि गौतमने अपने तपोबलसे उनके भोजनका प्रबन्ध किया॥ २५—२७॥

कदाचित्तत्स्त्रियो दुष्टा जलार्थमपमानिताः।
ऊचुः पतिभ्यस्ताः क्रुद्धा गौतमेर्ष्याकरं वचः॥ २८

ततस्ते भिन्नमतयो गां कृत्वा कृत्रिमां द्विजाः।
तद्धान्यभक्षणासक्तां चक्रुस्तां कुटिलाशयाः॥ २९

किसी समय उनकी दुष्ट स्त्रियाँ जब जल लेनेके प्रसंगमें [अपने ही व्यवहारके कारण] अपमानित हो गयीं। तब वे क्रुद्ध होकर अपने पतियोंसे गौतमके प्रति ईर्ष्यायुक्त वचन बोलीं। तब दुष्टबुद्धिवाले तथा कुटिल अन्तःकरणवाले उन ब्राह्मणोंने एक कृत्रिम गाय बनाकर उनकी फसलको चरनेके लिये छोड़ दिया॥ २८-२९॥

स्वधान्यभक्षणासक्तां गां दृष्ट्वा गौतमस्तदा।
तृणेन ताडयामास शनैस्तां संनिवारयन्॥ ३०

तृणसंस्पर्शमात्रेण सा भूमौ पतिता च गौः।
मृता ह्यभूत्क्षणं विप्रा भाविकर्मवशात्तदा॥ ३१

तब गौतमने अपनी फसलको खानेमें आसक्त उस गायको देखकर उसे धीरेसे हटाते हुए एक तिनकेसे मारा। हे विप्रो! वह गाय तिनकेके स्पर्शमात्रसे भूमिपर गिर पड़ी और होनहारवश क्षणभरमें मर गयी॥ ३०-३१॥

गौर्हता गौतमेनेति तदा ते कुटिलाशयाः।
एकत्रीभूय तत्रत्याः सकला ऋषयोऽवदन्॥ ३२

तब वहाँके कुत्सित विचारवाले सभी ऋषिगण एकत्र होकर कहने लगे कि गौतमने गाय मार डाली॥ ३२॥

ततः स गौतमो भीतो गौर्हतेति बभूव ह।
चकार विस्मयं नार्यहल्याशिष्यैः शिवानुगः॥ ३३

ततः स गौतमो ज्ञात्वा तां गां क्रोधसमाकुलः।
शशाप तानृषीन् सर्वान् गौतमो मुनिसत्तमः॥ ३४

इसके बाद शिवभक्त गौतम 'गाय मर गयी'— ऐसा सोचकर भयभीत हो गये और अपनी पत्नी अहल्या तथा शिष्योंसहित आश्चर्यमें पड़ गये। उसके पश्चात् उस कृत्रिम गायके विषयमें जानकर वे गौतम कुपित हो उठे और तब मुनिश्रेष्ठ गौतमने उन सभी ऋषियोंको शाप दे दिया॥ ३३-३४॥

गौतम उवाच

यूयं सर्वे दुरात्मानो दुःखदा मे विशेषतः।
शिवभक्तस्य सततं स्युर्वेदविमुखाः सदा॥ ३५
अद्यप्रभृति वेदोक्ते सत्कर्मणि विशेषतः।
मा भूयाद्भवतां श्रद्धा शैवमार्गे विमुक्तिदे॥ ३६
अद्यप्रभृति दुर्मार्गे तत्र श्रद्धा भवेत्तु वः।
मोक्षमार्गविहीने हि सदा श्रुतिबहिर्मुखे॥ ३७

गौतम बोले—तुम सभी दुरात्मा हो, मुझ शिवभक्तको इस प्रकार विशेष दुःख देनेके कारण वेदसे विमुख हो जाओ। आजसे वेदोक्त सत्कर्ममें और विशेषकर मुक्ति प्रदान करनेवाले शैवमार्गमें तुमलोगोंकी श्रद्धा नहीं रहेगी॥ ३५-३६॥

अद्यप्रभृति भालानि मृल्लिप्तानि भवन्तु वः।
स्रंसध्वं नरके यूयं भालमृल्लेपना द्विजाः॥ ३८

आजसे वेदबहिष्कृत एवं मोक्षमार्गसे रहित बुरे मार्गमें तुमलोगोंकी प्रवृत्ति रहेगी। आजसे तुमलोगोंके मस्तकमें मृत्तिकाका तिलक होगा और हे ब्राह्मणो! माथेपर मृत्तिकाका लेप करनेवाले तुमलोग नरकगामी होओगे॥ ३७-३८॥

भवन्तो मा भविष्यन्तु शिवैकपरदैवताः।
अन्यदेव समत्वेन जानन्तु शिवमद्वयम्॥ ३९

तुमलोग शिवको परदेवता नहीं मानोगे और उन अद्वैत सदाशिवको अन्य देवताओंके समान समझोगे॥ ३९॥

मा भूयाद्भवतां प्रीतिः शिवपूजादिकर्मणि।
शिवनिष्ठेषु भक्तेषु शिवपर्वसु सर्वदा॥ ४०

शिवपूजा आदि कर्ममें, शिवनिष्ठ भक्तोंमें एवं शिवपर्वोंमें तुमलोगोंकी प्रीति कभी भी नहीं होगी॥ ४०॥

अद्य दत्ता मया शापा यावन्तो दुःखदायकाः।
तावन्तः सन्तु भवतां सन्ततावपि सर्वदा॥ ४१

आज मैंने जितने दुःखदायी शाप तुमलोगोंको दिये है, वे सब सर्वदा तुमलोगोंकी सन्तानोंको भी प्राप्त होंगे॥ ४१॥

अशैवाः सन्तु भवतां पुत्रपौत्रादयो द्विजाः।
पुत्रैः सहैव तिष्ठन्तु भवन्तो नरके ध्रुवम्॥ ४२

ततो भवन्तु चाण्डाला दुःखदारिद्र्यपीडिताः।
शठा निन्दाकराः सर्वे तप्तमुद्रांकिताः सदा॥ ४३

हे द्विजो! तुमलोगोंके पुत्र-पौत्र आदि शिवभक्तिसे विमुख रहेंगे और तुमलोग अपने पुत्रोंके साथ निश्चित रूपसे नरकमें निवास करोगे। उसके बाद चाण्डालयोनिमें जन्म लेकर दुःख-दारिद्र्यसे पीड़ित रहोगे और धूर्त एवं निन्दा करनेवाले होओगे तथा सर्वदा तप्त मुद्रासे चिह्नित रहोगे॥ ४२-४३॥

सूत उवाच

इति शप्त्वा मुनीन् सर्वान् गौतमः स्वाश्रमं ययौ।
शिवभक्तिं चकाराति स बभूव सुपावनः॥ ४४

ततस्तैः खिन्नहृदया ऋषयस्तेऽखिला द्विजाः।
काञ्च्यां चक्रुर्निवासं हि शैवधर्मबहिष्कृताः॥ ४५

सूतजी बोले—[हे महर्षियो!] इस प्रकार उन सभी मुनियोंको शाप देकर महर्षि गौतम अपने आश्रमपर चले गये। उन्होंने अत्यधिक शिवभक्ति की तथा वे परम पवित्र हो गये। उसके बाद उन शापोंके कारण खिन्न हृदयवाले वे सभी ब्राह्मण शिवधर्मसे बहिष्कृत होकर कांचीपुरीमें निवास करने लगे॥ ४४-४५॥

तत्पुत्राश्चाभवन्सर्वे शैवधर्मबहिष्कृताः।
अग्रे तद्वद्भविष्यन्ति कलौ बहुजनाः खलाः॥ ४६

इति प्रोक्तमशेषेण तद्वृत्तं मुनिसत्तमाः।
पूर्ववृत्तमपि प्राज्ञाः श्रुतं सर्वैस्तु चादरात्॥ ४७

उनके सभी पुत्र भी शिवधर्मसे बहिष्कृत हो गये। आगे चलकर कलियुगमें बहुत-से लोग उन्हींके समान दुष्ट होंगे। हे मुनिसत्तमो! इस प्रकार मैंने उनका समग्र वृत्तान्त आपलोगोंसे कहा। हे प्राज्ञो! इसके पहलेका वृत्तान्त भी आपलोग आदरपूर्वक सुन चुके हैं॥ ४६-४७॥

इति वश्च समाख्यातो गौतम्याश्च समुद्भवः।
माहात्म्यमुत्तमं चैव सर्वपापहरं परम्॥ ४८

त्र्यंबकस्य च माहात्म्यं ज्योतिर्लिंगस्य कीर्तितम्।
यच्छ्रुत्वा सर्वपापेभ्यो मुच्यते नात्र संशयः॥ ४९

इस प्रकार मैंने गौतमी गंगाकी उत्पत्ति तथा पापहारी उत्तम माहात्म्य आपलोगोंसे कह दिया और त्र्यम्बक नामक ज्योतिर्लिंगका माहात्म्य भी मैंने कहा, जिसे सुनकर मनुष्य सारे पापोंसे छूट जाता है, इसमें सन्देह नहीं है॥ ४८-४९॥

अतः परं प्रवक्ष्यामि वैद्यनाथेश्वरस्य हि।
ज्योतिर्लिंगस्य माहात्म्यं श्रूयतां पापहारकम्॥ ५०

अब इसके आगे मैं वैद्यनाथेश्वर नामक ज्योतिर्लिंगके पापनाशक माहात्म्यका वर्णन करूँगा, आप लोग उसे सुनिये॥ ५०॥

इति श्रीशिवमहापुराणे चतुर्थ्यां कोटिरुद्रसंहितायां त्र्यंबकेश्वरज्योतिर्लिंगमाहात्म्यवर्णनं नाम सप्तविंशोऽध्यायः॥ २७॥

॥ इस प्रकार श्रीशिवमहापुराणके अन्तर्गत चतुर्थ कोटिरुद्रसंहितामें त्र्यम्बकेश्वरज्योतिर्लिंगमाहात्म्यवर्णन नामक सत्ताईसवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ २७॥

अथाष्टाविंशोऽध्यायः

वैद्यनाथेश्वर ज्योतिर्लिंगके प्रादुर्भाव एवं माहात्म्यका वर्णन

सूत उवाच

रावणो राक्षसश्रेष्ठो मानी मानपरायणः।
आरराध हरं भक्त्या कैलासे पर्वतोत्तमे॥ १

आराधितः कियत्कालं न प्रसन्नो हरो यदा।
तदा चान्यत्तपश्चक्रे प्रसादार्थं शिवस्य सः॥ २

ततश्चायं हिमवतः सिद्धिस्थानस्य वै गिरेः।
पौलस्त्यो रावणः श्रीमान् दक्षिणे वृक्षखण्डके॥ ३

भूमौ गर्तं वरं कृत्वा तत्राग्निं स्थाप्य स द्विजाः।
तत्सन्निधौ शिवं स्थाप्य हवनं स चकार ह॥ ४

ग्रीष्मे पञ्चाग्निमध्यस्थो वर्षासु स्थंडिलेशयः।
शीते जलांतरस्थो हि त्रिधा चक्रे तपश्च सः॥ ५

चकारैवं बहु तपो न प्रसन्नस्तदापि हि।
परमात्मा महेशानो दुराराध्यो दुरात्मभिः॥ ६

ततः शिरांसि छित्त्वा च पूजनं शंकरस्य वै।
प्रारब्धं दैत्यपतिना रावणेन महात्मना॥ ७

एकैकं च शिरश्छिन्नं विधिना शिवपूजने।
एवं सत्क्रमतस्तेन छिन्नानि नव वै यदा॥ ८

एकस्मिन्नवशिष्टे तु प्रसन्नः शंकरस्तदा।
आविर्बभूव तत्रैव संतुष्टो भक्तवत्सलः॥ ९

शिरांसि पूर्ववत्कृत्वा नीरुजानि तथा प्रभुः।
मनोरथं ददौ तस्मै चातुलं बलमुत्तमम्॥ १०

प्रसादं तस्य संप्राप्य रावणः स च राक्षसः।
प्रत्युवाच शिवं शम्भुं नतस्कंधः कृतांजलिः॥ ११

रावण उवाच

प्रसन्नो भव देवेश लंकां च त्वां नयाम्यहम्।
सफलं कुरु मे कामं त्वामहं शरणं गतः॥ १२

सूतजी बोले—किसी समय अभिमानी तथा मानपरायण राक्षसश्रेष्ठ रावण पर्वतोंमें उत्तम कैलासपर भक्तिपूर्वक शिवजीकी आराधना करने लगा॥ १॥

जब कुछ समयतक आराधना किये जानेपर भी शिवजी प्रसन्न न हुए, तब शिवजीको प्रसन्न करनेके लिये उसने दूसरे प्रकारका तप करना प्रारम्भ किया॥ २॥

हे द्विजो! पुलस्त्यकुलमें जन्म ग्रहण करनेवाला ऐश्वर्यसम्पन्न वह रावण सिद्धिके स्थानभूत हिमालय पर्वतके दक्षिणमें वृक्षोंसे भरी हुई भूमिमें एक उत्तम गर्त बनाकर उसमें अग्नि स्थापित करके उसके समीपमें शिवजीकी स्थापनाकर हवन करने लगा॥ ३-४॥

वह ग्रीष्मकालमें पंचाग्निके मध्यमें बैठकर, वर्षाकालमें [खुले] चबूतरेपर बैठकर और शीतकालमें जलके भीतर रहकर—इस तरह तीन प्रकारसे तप करने लगा॥ ५॥

इस प्रकार उसने घोर तप किया, तब भी दुष्टात्माओंके लिये दुराराध्य परमात्मा सदाशिव प्रसन्न नहीं हुए॥ ६॥

उसके बाद दैत्यपति महात्मा रावणने अपने सिर काटकर शिवका पूजन प्रारम्भ किया॥ ७॥

उसने शिवपूजनमें विधिपूर्वक एक-एक सिर काट डाला, इस प्रकार जब उसने क्रमशः अपने नौ सिर काट डाले, तब एक सिरके शेष रहनेपर शंकरजी प्रसन्न हो गये और वे भक्तवत्सल सदाशिव सन्तुष्ट होकर वहीं प्रकट हो गये॥ ८-९॥

प्रभु सदाशिवने उसके सिरोंको पूर्ववत् स्वस्थ करके उसको मनोवांछित फल तथा अतुल बल प्रदान किया॥ १०॥

तब उनकी प्रसन्नता प्राप्तकर उस राक्षस रावणने हाथ जोड़कर तथा सिर झुकाकर कल्याणकारी शिवजीसे कहा—॥ ११॥

रावण बोला—हे देवेश! आप मुझपर प्रसन्न होइये, मैं आपको लंकापुरी ले चलता हूँ, मेरी इस इच्छाको पूर्ण कीजिये, मैं आपकी शरणमें हूँ॥ १२॥

सूत उवाच

इत्युक्तश्च तदा तेन शंभुर्वै रावणेन सः।
प्रत्युवाच विचेतस्कः संकटं परमं गतः॥ १३

शिव उवाच

श्रूयतां राक्षसश्रेष्ठ वचो मे सारवत्तया।
नीयतां स्वगृहे मे हि सद्भक्त्या लिंगमुत्तमम्॥ १४
भूमौ लिंगं यदा त्वं च स्थापयिष्यसि यत्र वै।
स्थास्यत्यत्र न संदेहो यथेच्छसि तथा कुरु॥ १५

सूत उवाच

इत्युक्तः शंभुना तेन रावणो राक्षसेश्वरः।
तथेति तत्समादाय जगाम भवनं निजम्॥ १६
आसीन्मूत्रोत्सर्गकामो मार्गे हि शिवमायया।
तत्स्तंभितुं न शक्तोऽभूत्पौलस्त्यो रावणः प्रभुः॥ १७
दृष्ट्वैकं तत्र वै गोपं प्रार्थ्य लिंगं ददौ च तत्।
मुहूर्तके ह्यतिक्रांते गोपोऽभूद्विकलस्तदा॥ १८
भूमौ संस्थापयामास तद्भारेणातिपीडितः।
तत्रैव तत्स्थितं लिङ्गं वज्रसारसमुद्भवम्।
सर्वकामप्रदं चैव दर्शनात्पापहारकम्॥ १९
वैद्यनाथेश्वरं नाम्ना तल्लिंगमभवन्मुने।
प्रसिद्धं त्रिषु लोकेषु भुक्तिमुक्तिप्रदं सताम्॥ २०
ज्योतिर्लिंगमिदं श्रेष्ठं दर्शनात्पूजनादपि।
सर्वपापहरं दिव्यं मुक्तिवर्धनमुत्तमम्॥ २१
तस्मिँल्लिंगे स्थिते तत्र सर्वलोकहिताय वै।
रावणः स्वगृहं गत्वा वरं प्राप्य महोत्तमम्।
प्रियायै सर्वमाचख्यौ सुखेनाति महासुरः॥ २२
तच्छ्रुत्वा सकला देवाः शक्राद्या मुनयस्तथा।
परस्परं समामन्त्र्य शिवासक्तधियोऽमलाः॥ २३

सूतजी बोले—तब उस रावणके द्वारा इस प्रकार कहे जानेपर वे शिवजी परम संकटमें पड़ गये और खिन्नमनस्क होकर उन्होंने कहा—॥ १३॥

शिवजी बोले—हे राक्षसश्रेष्ठ! तुम मेरी महत्त्वपूर्ण बात सुनो, तुम उत्तम भक्तिसे युक्त होकर मेरे इस श्रेष्ठ शिवलिंगको अपने घर ले जाओ। किंतु तुम इस लिंगको भूमिपर जहाँ भी रख दोगे, यह वहींपर स्थित हो जायगा, इसमें सन्देह नहीं। अब जैसा चाहो, वैसा करो॥ १४-१५॥

सूतजी बोले—उन शिवजीके इस प्रकार कहनेपर राक्षसेश्वर रावण 'ठीक है'—ऐसा कहकर उसे लेकर अपने घर चला॥ १६॥

इसके बाद शिवकी मायासे मार्गमें ही उसे लघुशंकाकी इच्छा हुई। जब पुलस्त्यका पौत्र वह सामर्थ्यशाली रावण मूत्रके वेगको रोकनेमें समर्थ नहीं हुआ, तब उसने वहाँ एक गोपको देखकर उससे प्रार्थनाकर उस शिवलिंगको उसीको दे दिया। एक मुहूर्त बीतनेपर वह गोप शिवलिंगके भारसे पीड़ित होकर व्याकुल हो उठा और उसे पृथ्वीपर रख दिया। इस प्रकार वज्रसारसे उत्पन्न हुआ वह लिंग वहींपर स्थित हो गया, जो दर्शनमात्रसे पापोंको दूर करनेवाला तथा समस्त कामनाओंको पूर्ण करनेवाला है॥ १७—१९॥

हे मुने! वह लिंग तीनों लोकोंमें वैद्यनाथेश्वर नामसे प्रसिद्ध हुआ, वह सत्पुरुषोंको भोग तथा मोक्ष प्रदान करनेवाला है॥ २०॥

यह दिव्य, उत्तम एवं श्रेष्ठ ज्योतिर्लिंग दर्शन एवं पूजनसे सारे पापोंको दूर करनेवाला है और मुक्ति प्रदान करनेवाला है॥ २१॥

सारे लोकोंका कल्याण करनेके लिये उस लिंगके वहाँ स्थित हो जानेपर रावण श्रेष्ठ वर प्राप्तकर अपने घर चला गया और उस महान् असुरने अपनी पत्नीसे अत्यन्त हर्षपूर्वक सारा वृत्तान्त बताया॥ २२॥

इस [वृत्तान्त]-को सुनकर इन्द्र आदि सभी देवता तथा निष्पाप मुनिगण आपसमें विचारकर वैद्यनाथेश्वरमें आसक्त बुद्धिवाले हो गये॥ २३॥

तस्मिन्काले सुराः सर्वे हरिब्रह्मादयो मुने।
आजग्मुस्तत्र सुप्रीत्या पूजां चक्रुर्विशेषतः॥ २४

प्रत्यक्षं तं तदा दृष्ट्वा प्रतिष्ठाप्य च ते सुराः।
वैद्यनाथेति संप्रोच्य नत्वा नुत्वा दिवं ययुः॥ २५

ऋषय ऊचुः

तस्मिँल्लिगे स्थिते तत्र रावणे च गृहं गते।
किं चरित्रमभूत्तात ततस्तद्वद विस्तरात्॥ २६

सूत उवाच

रावणोऽपि गृहं गत्वा वरं प्राप्य महोत्तमम्।
प्रियायै सर्वमाचख्यौ मुमोदाति महासुरः॥ २७
तच्छ्रुत्वा सकलं देवाः शक्राद्या मुनयस्तथा।
परस्परं समूचुस्ते समुद्विग्ना मुनीश्वराः॥ २८

देवादय ऊचुः

रावणोऽयं दुरात्मा हि देवद्रोही खलः कुधीः।
शिवाद् वरं च संप्राप्य दुःखं दास्यति नोऽति सः॥ २९

किं कुर्मः क्व च गच्छामः किं भविष्यति वा पुनः।
दुष्टश्च दक्षतां प्राप्तः किं किं नो साधयिष्यति॥ ३०

इति दुःखं समापन्नाः शक्राद्या मुनयः सुराः।
नारदं च समाहूय पप्रच्छुर्विकलास्तदा॥ ३१

देवा ऊचुः

सर्वं कार्यं समर्थोऽसि कर्तुं त्वं मुनिसत्तम।
उपायं कुरु देवर्षे देवानां दुःखनाशने॥ ३२

रावणोऽयं महादुष्टः किं किं नैव करिष्यति।
क्व यास्यामो वयं चात्र दुष्टेनापीडिता वयम्॥ ३३

नारद उवाच

दुःखं त्यजत भो देवा युक्तिं कृत्वा च याम्यहम्।
देवकार्यं करिष्यामि कृपया शंकरस्य वै॥ ३४

हे मुने! उस समय ब्रह्मा, विष्णु आदि सभी देवगण वहाँ आये और उन्होंने विशेष विधिसे अतिशय प्रीतिपूर्वक शिवजीका पूजन किया॥ २४॥

वहाँ भगवान् शंकरका प्रत्यक्ष दर्शन करके देवताओंने उस (वज्रसारमय) शिवलिंगकी विधिवत् स्थापना की और उसका वैद्यनाथ नाम रखकर उसकी वन्दना और स्तवन करके वे स्वर्गलोकको चले गये॥ २५॥

ऋषि बोले—हे तात! उस लिंगके वहाँ स्थित हो जानेपर तथा रावणके घर चले जानेपर क्या घटना हुई, उसे विस्तारसे कहिये॥ २६॥

सूतजी बोले—अति उत्तम वर प्राप्तकर घर जा करके महान् असुर रावणने सारा वृत्तान्त अपनी पत्नीसे कहा और वह बहुत आनन्दित हुआ॥ २७॥

हे मुनीश्वरो! वह सारा वृत्तान्त सुनकर वे इन्द्र आदि देवता तथा मुनिगण अत्यन्त व्याकुल होकर आपसमें कहने लगे—॥ २८॥

देवता बोले—यह दुरात्मा रावण देवद्रोही, खल तथा दुर्बुद्धि है, शिवजीसे वरदान पाकर यह हमलोगोंको बहुत अधिक दुःखित करेगा॥ २९॥

हमलोग क्या करें? कहाँ जायँ? अब फिर क्या होगा? एक तो वह स्वयं दुष्ट है, दूसरे अब वरदान प्राप्तकर और भी उद्धत हो गया है, अतः हमलोगोंका कौन-सा अपकार नहीं करेगा॥ ३०॥

तब इस प्रकार दुखी हो इन्द्रादि देवता एवं मुनिगण नारदजीको बुलाकर व्याकुल हो करके पूछने लगे॥ ३१॥

देवगण बोले—हे मुनिसत्तम! आप सभी कार्य करनेमें समर्थ हैं, अतः हे देवर्षे! देवगणोंके दुःखनाशका कोई उपाय कीजिये॥ ३२॥

यह महाखल रावण क्या-क्या नहीं कर डालेगा! हमलोग इस दुष्टसे सर्वथा पीड़ित हैं, अतः अब हमलोग कहाँ जायँ?॥ ३३॥

नारदजी बोले—हे देवताओ! आपलोग दुखी मत होइये, मैं जा रहा हूँ और कोई उपाय करके शंकरकी कृपासे देवताओंका कार्य अवश्य करूँगा॥ ३४॥

सूत उवाच

इत्युक्त्वा स तु देवर्षिरगमद्रावणालयम्।
सत्कारं समनुप्राप्य प्रीत्योवाचाखिलं च तत्॥ ३५

सूतजी बोले—ऐसा कहकर वे देवर्षि [नारद] रावणके घर गये और उससे सत्कृत होकर प्रीतिसे उन्होंने वह सब कहा—॥ ३५॥

नारद उवाच

राक्षसोत्तम धन्यस्त्वं शैववर्यस्तपोधन।
त्वां दृष्ट्वा च मनो मेऽद्य प्रसन्नमति रावण॥ ३६

स्ववृत्तं ब्रूह्यशेषेण शिवाराधनसंभवम्।
इति पृष्टस्तदा तेन रावणो वाक्यमब्रवीत्॥ ३७

नारदजी बोले—हे राक्षसोत्तम! तुम धन्य हो और श्रेष्ठ शिवभक्त हो। हे तपोधन! हे रावण! तुम्हें देखकर मेरा मन आज बहुत अधिक प्रसन्न हुआ। अब तुम शिवाराधन-सम्बन्धी अपने सम्पूर्ण वृत्तान्तको कहो। तब उनके इस प्रकार पूछनेपर रावणने यह वचन कहा—॥ ३६-३७॥

रावण उवाच

गत्वा मया तु कैलासे तपोऽर्थं च महामुने।
तत्रैव बहुकालं वै तपस्तप्तं सुदारुणम्॥ ३८

रावण बोला—हे महामुने! तप करनेके लिये कैलासपर्वतपर जाकर मैंने वहाँ बहुत समयतक अत्यन्त कठोर तप किया॥ ३८॥

यदा न शंकरस्तुष्टस्ततश्च परिवर्तितम्।
आगत्य वृक्षखण्डे वै पुनस्तप्तं मया मुने॥ ३९

ग्रीष्मे पञ्चाग्निमध्ये तु वर्षासु स्थंडिलेशयः।
शीते जलांतरस्थो हि कृतं चैव त्रिधा तपः॥ ४०

हे मुने! जब शिवजी प्रसन्न नहीं हुए, तब वहाँसे आकर मैं पुनः वृक्षसमूहके समीप दूसरे प्रकारसे तपस्या करने लगा। ग्रीष्मऋतुमें पंचाग्निके मध्य रहकर, वर्षामें स्थण्डिलशायी होकर और शीतकालमें जलके मध्यमें रहकर तीन प्रकारसे मैंने तप किया॥ ३९-४०॥

एवं मया कृतं तत्र तपोऽत्युग्रं मुनीश्वर।
तथापि शंकरो मह्यं न प्रसन्नोऽभवन्मनाक्॥ ४१

तदा मया तु क्रुद्धेन भूमौ गर्तं विधाय च।
तत्राग्निं च समाधाय पार्थिवं च प्रकल्प्य च॥ ४२

गंधैश्च चंदनैश्चैव धूपैश्च विविधैस्तदा।
नैवेद्यैः पूजितः शम्भुरारार्तिकविधानतः॥ ४३

प्रणिपातैः स्तवैः पुण्यैस्तोषितः शंकरो मया।
गीतैर्नृत्यैश्च वाद्यैश्च मुखाङ्गुलिसमर्पणैः॥ ४४

एतैश्च विविधैश्चान्यैरुपायैर्भूरिभिर्मुने।
शास्त्रोक्तेन विधानेन पूजितो भगवान् हरः॥ ४५

हे मुनीश्वर! इस प्रकार मैंने वहाँ अति कठोर तप किया, फिर भी जब मेरे ऊपर थोड़ा भी शिवजी प्रसन्न न हुए, तब मुझे बड़ा क्रोध हुआ और मैंने भूमिमें गड्ढा खोदकर उसमें अग्नि स्थापित करके तथा पार्थिव शिवलिंग बनाकर गन्ध, चन्दन, धूप, विविध नैवेद्य तथा आरती आदिसे विधिपूर्वक शिवजीका पूजन किया। प्रणिपात, पुण्यप्रद स्तुति, गीत, नृत्य, वाद्य तथा मुखांगुलि-समर्पणके द्वारा मैंने शंकरजीको सन्तुष्ट किया। हे मुने! इन उपायों तथा अन्य बहुत-से उपायोंके द्वारा शास्त्रोक्त विधिसे मैंने भगवान् शिवका पूजन किया॥ ४१—४५॥

न तुष्टः सम्मुखो जातो यदा च भगवान् हरः।
तदाहं दुःखितोऽभूवं तपसोऽप्राप्य सत्फलम्॥ ४६

धिक् शरीरं बलं चैव धिक् तपःकरणं मम।
इत्युक्त्वा तु मया तत्र स्थापितेऽग्नौ हुतं बहु॥ ४७

जब भगवान् शिव सन्तुष्ट होकर प्रकट नहीं हुए, तब मैं अपने तपका उत्तम फल न प्राप्तकर दुखी हुआ। मेरे शरीर तथा बलको धिक्कार है। मेरे तपको भी धिक्कार है, ऐसा कहकर मैंने वहाँ स्थापित अग्निमें बहुत हवन किया॥ ४६-४७॥

पुनश्चेति विचार्यैव त्यक्षाम्यग्नौ निजां तनुम्।
संछिन्नानि शिरांस्येव तस्मिन् प्रज्वलिते शुचौ॥ ४८

इसके बाद यह विचार करके कि अब मैं इस अग्निमें अपने शरीरकी ही आहुति दूँगा, मैं उस प्रज्वलित अग्निकी सन्निधिमें अपने सिरोंको काटने लगा॥ ४८॥

सुच्छित्वैकैकशस्तानि कृत्वा शुद्धानि सर्वशः।
शंकरायार्पितान्येव नवसंख्यानि वै मया॥ ४९

यावच्च दशमं छेत्तुं प्रारब्धमृषिसत्तम।
तावदाविरभूत्तत्र ज्योतीरूपो हरः स्वयम्॥ ५०

मा मेति व्याहरत् प्रीत्या द्रुतं वै भक्तवत्सलः।
प्रसन्नश्च वरं ब्रूहि ददामि मनसेप्सितम्॥ ५१

इत्युक्ते च तदा तेन मया दृष्टो महेश्वरः।
प्रणतः संस्तुतश्चैव करौ बध्वा सुभक्तितः॥ ५२

तदा वृतं मयैतच्च देहि मे ह्यतुलं बलम्।
यदि प्रसन्नो देवेश दुर्लभं किं भवेन्मम॥ ५३

शिवेन परितुष्टेन सर्वं दत्तं कृपालुना।
मह्यं मनोऽभिलषितं गिरा प्रोच्य तथास्त्विति॥ ५४

अमोघया सुदृष्ट्या वै वैद्यवद्योजितानि मे।
शिरांसि संधयित्वा तु दृष्टानि परमात्मना॥ ५५

एवं कृते तदा तत्र शरीरं पूर्ववन्मम।
जातं तस्य प्रसादाच्च सर्वं प्राप्तं फलं मया॥ ५६

तदा च प्रार्थितो मे संस्थितोऽसौ वृषभध्वजः।
वैद्यनाथेश्वरो नाम्ना प्रसिद्धोऽभूज्जगत्त्रये॥ ५७

दर्शनात्पूजनाज्ज्योतिर्लिंगरूपो महेश्वरः।
भुक्तिमुक्तिप्रदो लोके सर्वेषां हितकारकः॥ ५८

ज्योतिर्लिंगमहं तद्वै पूजयित्वा विशेषतः।
प्रणिपत्यागतश्चात्र विजेतुं भुवनत्रयम्॥ ५९

सूत उवाच

तदीयं तद्वचः श्रुत्वा देवर्षिर्जातसंभ्रमः।
विहस्य च मनस्येव रावणं नारदोऽब्रवीत्॥ ६०

नारद उवाच

श्रूयतां राक्षसश्रेष्ठ कथयामि हितं तव।
त्वया तदेव कर्त्तव्यं मदुक्तं नान्यथा क्वचित्॥ ६१

त्वयोक्तं यच्छिवेनैव हितं दत्तं ममाधुना।
तत्सर्वं च त्वया सत्यं न मन्तव्यं कदाचन॥ ६२

मैंने एक-एक करके नौ सिर भलीभाँति काटकर उन्हें पूर्णतः शुद्ध करके शिवजीको समर्पित कर दिये। हे ऋषिश्रेष्ठ! जब मैंने दसवाँ सिर काटना प्रारम्भ किया, उसी समय ज्योतिःस्वरूप शिवजी स्वयं प्रकट हो गये॥ ४९-५०॥

उन भक्तवत्सलने शीघ्र ही प्रेमपूर्वक कहा—ऐसा मत करो, ऐसा मत करो। मैं प्रसन्न हूँ, वर माँगो, मैं तुम्हें मनोवांछित वर दूँगा। तब उनके ऐसा कहनेपर मैंने महेश्वरका दर्शन किया और हाथ जोड़कर भक्तिपूर्वक उन्हें प्रणाम किया तथा उनकी स्तुति की॥ ५१-५२॥

तदनन्तर मैंने उनसे यह वर माँगा—मुझे अतुल बल दीजिये। हे देवेश! यदि आप प्रसन्न हैं, तो मेरे लिये क्या दुर्लभ हो सकता है!॥ ५३॥

सन्तुष्ट हुए कृपालु शिवने 'तथास्तु' यह वचन कहकर मेरा सारा मनोवांछित पूर्ण कर दिया॥ ५४॥

उन परमात्मा शिवने अपनी अमोघ दृष्टिसे देखकर वैद्यके समान मेरे सिरोंको पुनः यथास्थान जोड़ दिया॥ ५५॥

उनके ऐसा करनेपर मेरा शरीर पहलेके समान हो गया और उनकी कृपासे मुझे सारा फल प्राप्त हो गया। इसके बाद मेरे द्वारा प्रार्थना किये जानेपर वे वृषभध्वज वहींपर स्थित हो गये और वैद्यनाथेश्वर नामसे तीनों लोकोंमें प्रसिद्ध हो गये॥ ५६-५७॥

दर्शन एवं पूजन करनेसे ज्योतिर्लिंगस्वरूप महेश्वर भुक्ति-मुक्ति देनेवाले तथा लोकमें सबका हित करनेवाले हैं॥ ५८॥

[हे देवर्षे!] मैं उस ज्योतिर्लिंगका विशेषरूपसे पूजन करके और उसे प्रणामकर तीनों लोकोंको जीतनेके लिये यहाँ आया हूँ॥ ५९॥

सूतजी बोले—उसका वह वचन सुनकर आश्चर्यचकित हुए देवर्षि नारदजी मन-ही-मन हँस करके रावणसे कहने लगे—॥ ६०॥

नारदजी बोले—हे राक्षसश्रेष्ठ! सुनो, अब मैं तुम्हारे हितकी बात कहता हूँ; जैसा मैं कहता हूँ, वैसा ही तुम करो, मेरा कथन कभी भी असत्य नहीं होता। तुमने जो कहा कि शिवजीने इस समय मेरा सारा हित कर दिया है, उसे तुम कदापि सत्य मत मानना॥ ६१-६२॥

अयं वै विकृतिं प्राप्तः किं किं नैव ब्रवीति च।
सत्यं नैव भवेत्तद्वै कथं ज्ञेयं प्रियोऽसि मे॥ ६३

ये शिव तो विकारग्रस्त हैं, वे क्या नहीं कह देते हैं, जबतक उनकी बात सत्य नहीं होती, तबतक कैसे मान लिया जाय; तुम मेरे प्रिय हो, [अतः तुम्हें मैं उपाय बताता हूँ।] ॥ ६३ ॥

इति गत्वा पुनः कार्यं कुरु त्वं ह्यहिताय वै।
कैलासोद्धरणे यत्नः कर्तव्यश्च त्वया पुनः॥ ६४

अब तुम पुनः जाकर उनके अहितके लिये कार्य करो। तुम कैलासको उखाड़नेका प्रयत्न करो॥ ६४॥

यदि चैवोद्धृतश्चायं कैलासो हि भविष्यति।
तदैव सफलं सर्वं भविष्यति न संशयः॥ ६५

यदि तुम इस कैलासको उखाड़ दोगे, तब सब कुछ सफल हो जायगा, इसमें कुछ संशय नहीं है॥ ६५॥

पूर्ववत्स्थापयित्वा त्वं पुनरागच्छ वै सुखम्।
निश्चयं परमं गत्वा यथेच्छसि तथा कुरु॥ ६६

इसके बाद उसे पूर्वकी भाँति स्थापितकर पुनः सुखपूर्वक लौट आना, अब निश्चयपूर्वक समझ-बूझकर तुम जैसा चाहो, वैसा करो॥ ६६॥

सूत उवाच

इत्युक्तः स हितं मेने रावणो विधिमोहितः।
सत्यं मत्वा मुनेर्वाक्यं कैलासमगमत्तदा॥ ६७

गत्वा तत्र समुद्धारं चक्रे तस्य गिरेः स च।
तत्रस्थं चैव तत्सर्वं विपर्यस्तं परस्परम्॥ ६८

सूतजी बोले—उनके इस प्रकार कहनेपर प्रारब्धवश मोहित उस रावणने इसमें अपना हित समझा और मुनिकी बातको सत्य मानकर कैलासकी ओर चल पड़ा। उसने वहाँ जाकर कैलासपर्वतको उखाड़ना प्रारम्भ किया, जिससे उसपर स्थित सब कुछ [सभी प्राणि-पदार्थ] परस्पर टकराकर गिरने लगे॥ ६७-६८॥

गिरीशोऽपि तदा दृष्ट्वा किं जातमिति सोऽब्रवीत्।
गिरिजा च तदा शंभुं प्रत्युवाच विहस्य तम्॥ ६९

तब शिवजी भी यह देखकर कहने लगे—यह क्या हुआ? तब पार्वतीने हँसकर उन शंकरसे कहा—॥ ६९॥

गिरिजोवाच

सच्छिष्यस्य फलं जातं सम्यग्जातं तु शिष्यतः।
शान्तात्मने सुवीराय दत्तं यदतुलं बलम्॥ ७०

पार्वती बोलीं—आपने शान्तात्मा महावीरको जो अतुल बल दिया था, उसे उत्तम शिष्य बनानेका यह फल प्राप्त हो गया, यह सब उसी शिष्यसे हुआ है॥ ७०॥

सूत उवाच

गिरिजायाश्च साकूतं वचः श्रुत्वा महेश्वरः।
कृतघ्नं रावणं मत्वा शशाप बलदर्पितम्॥ ७१

सूतजी बोले—पार्वतीके इस व्यंग्य वचनको सुनकर महेश्वरने रावणको कृतघ्न तथा बलसे गर्वित समझकर उसे शाप दे दिया॥ ७१॥

महादेव उवाच

रे रे रावण दुर्भक्त मा गर्वं वह दुर्मते।
शीघ्रं च तव हस्तानां दर्पघ्नश्च भवेदिह॥ ७२

महादेवजी बोले—हे दुर्भक्त रावण! हे दुर्मते! तुम घमण्ड मत करो, अब शीघ्र ही तुम्हारे हाथोंके घमण्डको दूर करनेवाला यहाँ कोई उत्पन्न होगा॥ ७२॥

सूत उवाच

इति तत्र च यज्जातं नारदः श्रुतवांस्तदा।
रावणोऽपि प्रसन्नात्मागात्स्वधाम यथागतम्॥ ७३

सूतजी बोले—इस प्रकार वहाँ जो घटना घटी, उसे नारदजीने भी सुन लिया और रावण भी प्रसन्नचित्त होकर जैसे आया था, वैसे ही वहाँसे अपने स्थानको चला गया॥ ७३॥

निश्चयं परमं कृत्वा बली बलविमोहितः।
जगद्वशं हि कृतवान् रावणः परदर्पहा॥ ७४

शिवाज्ञया च प्राप्तेन दिव्यास्त्रेण महौजसा।
रावणस्य प्रतिभटो नालं कश्चिदभूत्तदा॥ ७५

इत्येतच्च समाख्यातं वैद्यनाथेश्वरस्य च।
माहात्म्यं शृण्वतां पापं नृणां भवति भस्मसात्॥ ७६

उसके बाद बली तथा शत्रुओंके अभिमानको चूर करनेवाले रावणने शिवजीके वरदानको सत्य मानकर अपने बलसे विमोहित हो सारे जगत्‌को अपने वशमें कर लिया। शिवजीकी आज्ञासे प्राप्त महातेजस्वी दिव्यास्त्रसे युक्त उस रावणकी बराबरी करनेवाला कोई भी शत्रु उस समय नहीं रहा॥ ७४-७५॥

[हे ऋषिगणो!] इस प्रकार मैंने वैद्यनाथेश्वरके माहात्म्यका वर्णन किया, जिसे सुननेवाले मनुष्योंका पाप विनष्ट हो जाता है॥ ७६॥

इति श्रीशिवमहापुराणे चतुर्थ्यां कोटिरुद्रसंहितायां वैद्यनाथेश्वरज्योतिर्लिंगमाहात्म्यवर्णनं नामाष्टाविंशोऽध्यायः॥ २८॥

॥ इस प्रकार श्रीशिवमहापुराणके अन्तर्गत चतुर्थ कोटिरुद्रसंहितामें वैद्यनाथेश्वरज्योतिर्लिंग-माहात्म्यवर्णन नामक अट्ठाईसवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ २८॥

अथैकोनत्रिंशोऽध्यायः

दारुकावनमें राक्षसोंके उपद्रव एवं सुप्रिय वैश्यकी शिवभक्तिका वर्णन

सूत उवाच

अथातः संप्रवक्ष्यामि नागेशाख्यं परात्मनः।
ज्योतीरूपं यथा जातं परमं लिंगमुत्तमम्॥ १

सूतजी बोले—इसके उपरान्त मैं परमात्मा शिवके नागेश नामक परमश्रेष्ठ ज्योतिर्लिंगकी जिस प्रकार उत्पत्ति हुई, उसे कह रहा हूँ॥ १॥

दारुका राक्षसी काचित्पार्वतीवरदर्पिता।
दारुकश्च पतिस्तस्या बभूव बलवत्तरः॥ २

बहुभी राक्षसैस्तत्र चकार कदनं सताम्।
यज्ञध्वंसं च लोकानां धर्मध्वंसं तदाकरोत्॥ ३

पार्वतीके वरदानसे अहंकारमें डूबी हुई दारुका नामक एक राक्षसी थी, उसका पति दारुक भी महाबलवान् था। वह अनेक राक्षसोंको साथ लेकर सत्पुरुषोंको दुःख दिया करता था और यज्ञका ध्वंस तथा लोगोंके धर्मका ध्वंस किया करता था॥ २-३॥

पश्चिमे सागरे तस्य वनं सर्वसमृद्धिमत्।
योजनानां षोडशभिर्विस्तृतं सर्वतो दिशम्॥ ४

दारुका स्वविलासार्थं यत्र गच्छति तद्वनम्।
भूम्या च तरुभिस्तत्र सर्वोपकरणैर्युतम्॥ ५

दारुकायै ददौ देवी तद्वनस्यावलोकनम्।
प्रयाति तद्वनं सा हि पत्या सह यदृच्छया॥ ६

पश्चिम सागरके तटपर उसका एक वन था, जो चारों ओर सोलह योजन विस्तृत तथा सर्वसमृद्धिपूर्ण था। दारुका राक्षसी अपने क्रीडाविलासके निमित्त वहाँ नित्य विचरण करती थी। वह वन सुन्दर भूमि, नाना प्रकारके वृक्ष तथा अन्य सभी उपकरणोंसे युक्त था। देवीने उस वनकी देख-रेखका भार दारुकाको दिया था, जिसके लिये वह अपने पतिके साथ अपनी इच्छानुसार जाया करती थी॥ ४—६॥

तत्र स्थित्वा तदा सोऽपि सर्वेषां च भयं ददौ।
दारुको राक्षसः पत्न्या तया दारुकया सह॥ ७

वह दारुक राक्षस भी अपनी पत्नी दारुकाके साथ वहाँ निवासकर सभीको भय देने लगा॥ ७॥

ते सर्वे पीडिता लोका और्वस्य शरणं ययुः।
नत्वा प्रीत्या विशेषेण तमूचुर्नतमस्तकाः॥ ८

उससे पीड़ित हुए वहाँके निवासी महर्षि और्वकी शरणमें गये और सिर झुकाकर उन्हें प्रेमपूर्वक नमस्कारकर कहने लगे—॥ ८॥

लोका ऊचुः

महर्षे शरणं देहि नो चेदुष्टैश्च मारिताः।
सर्वं कर्तुं समर्थोऽसि तेजसा दीप्तिमानसि॥ ९
पृथ्व्यां न वर्तते कश्चित्त्वां विना शरणं च नः।
यामो यस्य समीपे तु स्थित्वा सुखमवाप्नुमः॥ १०

लोग बोले—हे महर्षे! हमको शरण दीजिये, अन्यथा दुष्ट हमलोगोंको मार डालेंगे, आप सब कुछ करनेमें समर्थ हैं; आप तेजसे प्रकाशवान् हैं॥ ९॥

पृथ्वीपर आपके सिवा कोई भी हमलोगोंका शरणदाता ऐसा नहीं है, जिसके पास हमलोग जायँ और वहाँ रहकर सुख प्राप्त करें॥ १०॥

त्वां दृष्ट्वा राक्षसाः सर्वे पलायन्ते विदूरतः।
त्वयि शैवं सदा तेजो विभाति ज्वलनो यथा॥ ११

[हे महर्षे!] आपको देखते ही सभी राक्षस दूर भाग जाते हैं; क्योंकि आपमें अग्निके समान शिवका तेज प्रज्वलित होता रहता है॥ ११॥

सूत उवाच

इत्येवं प्रार्थितो लोकैरौर्वो हि मुनिसत्तमः।
शोचमानः शरण्यश्च रक्षायै हि वचोऽब्रवीत्॥ १२

सूतजी बोले—लोगोंके द्वारा इस प्रकार प्रार्थना किये जानेपर शरण देनेवाले मुनिश्रेष्ठ और्वने व्यथित होकर उनकी रक्षाके लिये यह वचन कहा—॥ १२॥

और्व उवाच

पृथिव्यां यदि रक्षांसि हिंस्युर्वै प्राणिनस्तदा।
स्वयं प्राणैर्वियुज्येयू राक्षसा बलवत्तराः॥ १३
यदा यज्ञाश्च हन्येरंस्तदा प्राणैर्वियोजिताः।
भवंतु राक्षसाः सर्वे सत्यमेतन्मयोच्यते॥ १४

और्व बोले—यदि अत्यन्त बलशाली ये राक्षस पृथ्वीपर प्राणियोंका वध करते रहेंगे, तो वे स्वयं मर जायँगे। यदि वे इसी प्रकार यज्ञ-विध्वंस करते रहेंगे, तो सभी राक्षस स्वयं अपने प्राणोंसे हाथ धो लेंगे, यह मैं सत्य कहता हूँ॥ १३-१४॥

सूत उवाच

इत्युक्त्वा वचनं तेभ्यः समाश्वास्य प्रजाः पुनः।
तपश्चकार विविधमौर्वो लोकसुखावहः॥ १५

सूतजी बोले—लोगोंको सुख देनेवाले महर्षि और्व उन लोगोंसे इस प्रकार कहकर तथा प्रजाओंको धीरज देकर विविध प्रकारसे तप करने लगे॥ १५॥

देवास्तदा ते विज्ञाय शापस्य कारणं हि तत्।
युद्धाय च समुद्योगं चक्रुर्देवारिभिः सह॥ १६
सर्वैश्चैव प्रयत्नैश्च नानायुधधराः सुराः।
सर्वे शक्रादयस्तत्र युद्धार्थं समुपागताः॥ १७

इसके बाद वे देवगण शापका कारण जानकर देवशत्रु राक्षसोंके साथ युद्ध करनेका सभी प्रकारसे प्रयत्न करने लगे। उस समय इन्द्रादि समस्त देवगण अनेकविध अस्त्र-शस्त्रोंको धारणकर सभी उपकरणोंके साथ युद्धके लिये वहाँ उपस्थित हुए॥ १६-१७॥

तान्दृष्ट्वा राक्षसास्तत्र विचारे तत्पराः पुनः।
बभूवुस्तेऽखिला दुष्टा मिथो ये यत्र संस्थिताः॥ १८

उन्हें देखकर उस वनमें जहाँ जो भी राक्षस निवास कर रहे थे, वे सभी आपसमें मिलकर विचार करने लगे॥ १८॥

राक्षसा ऊचुः

किं कर्तव्यं क्व गंतव्यं संकटं समुपागताः।
युद्ध्यते म्रियते चैव युद्ध्यते न विहन्यते॥ १९
तथैव स्थीयते चेद्वै भक्ष्यते किं परस्परम्।
दुःखं हि सर्वथा जातं क एनं विनिवारयेत्॥ २०

राक्षस बोले—अब हमलोग क्या करें, कहाँ जायँ? [बहुत बड़ा] संकट उपस्थित हो गया। यदि हमलोग युद्ध करें, तो भी मारे जायँगे और यदि युद्ध न करें, तो भी मारे जायँगे, यदि ऐसे ही पड़े रहे, तो हमलोग क्या भोजन करेंगे? यह तो बड़ा दुःखका अवसर उपस्थित हुआ, कौन इस दुःखको दूर करेगा?॥ १९-२०॥

सूत उवाच

विचार्येति च ते तत्र दारुकाद्याश्च राक्षसाः।
उपायं न विजानन्तो दुःखं प्राप्ताः सदा हि वै॥ २१

दारुका राक्षसी चापि ज्ञात्वा दुःखं समागतम्।
भवान्याश्च वरं तं च कथयामास सा तदा॥ २२

दारुकोवाच

मया ह्याराधिता पूर्वं भवपत्नी वरं ददौ।
वनं गच्छ निजैः सार्धं यत्र गन्तुं त्वमिच्छसि॥ २३

तद्वरश्च मया प्राप्तः कथं दुःखं विषह्यते।
जले वनं च नीत्वा वै सुखं स्थेयं तु राक्षसैः॥ २४

सूत उवाच

तस्यास्तद्वचनं श्रुत्वा राक्षस्या हर्षमागताः।
ऊचुः सर्वे मिथस्ते हि राक्षसा निर्भयास्तदा॥ २५

धन्येयं कृतकृत्येयं राज्ञ्या वै जीविताः स्वयम्।
नत्वा तस्यै च तत्सर्वं कथयामासुरादरात्॥ २६

यदि गन्तुं भवेच्छक्तिर्गम्यतां किं विचार्यते।
तत्र गत्वा जले देवि सुखं स्थास्याम नित्यशः॥ २७

एतस्मिन्नन्तरे लोका देवैः सार्धं समागताः।
युद्धाय विविधैर्दुःखैः पीडिता राक्षसैः पुरा॥ २८

पीडिताश्च तदा तस्या भवान्या बलमाश्रिताः।
समग्रं नगरं नीत्वा जलस्थलसमन्वितम्॥ २९

जय जयेति देव्यास्तु स्तुतिमुच्चार्य राक्षसी।
तत उड्डीयनं कृत्वा सपक्षो गिरिराड्यथा॥ ३०

समुद्रस्य च मध्ये सा संस्थिता निर्भया तदा।
सकलैः परिवारैश्च मुमुदेति शिवानुगा॥ ३१

तत्र सिंधौ च ते स्थित्वा नगरे च विलासिनः।
राक्षसाश्च सुखं प्रापुर्निर्भयाश्च विजह्रिरे॥ ३२

राक्षसाश्च पृथिव्यां वै नाजग्मुश्च कदाचन।
मुनेः शापभयादेव बभ्रमुस्ते जले तदा॥ ३३

सूतजी बोले—वहाँपर इस प्रकार ऐसा विचार करके भी उन दारुक आदि राक्षसोंको जब कोई उपाय नहीं सूझा, तब वे बहुत दुखी हुए। तब दारुका राक्षसी इस प्रकारका संकट उपस्थित हुआ जानकर पार्वतीजीके उस वरदानके विषयमें कहने लगी॥ २१-२२॥

दारुका बोली—मैंने पूर्वकालमें भवानीकी आराधना की थी, तब उन्होंने वरदान दिया था कि तुम जहाँ जाना चाहो, वहाँ अपने स्वजनोंको लेकर वनसहित जा सकती हो। जब मैंने वैसा वरदान प्राप्त किया है, तब तुमलोग दुःख क्यों सह रहे हो? वनको जलके भीतर ले जाकर वहींपर सभी राक्षस सुखपूर्वक रह सकते हैं॥ २३-२४॥

सूतजी बोले—तब उस राक्षसीका यह वचन सुनकर सभी राक्षस हर्षित हो उठे और निडर हो आपसमें कहने लगे—॥ २५॥

यह धन्य है। कृतकृत्य है, इस राज्ञीने हमलोगोंको जीवनदान दिया है। तदुपरान्त वे उस राक्षसीको प्रणामकर आदरपूर्वक कहने लगे—हे देवि! यदि तुममें इस प्रकार जानेकी शक्ति है, तो यहाँसे शीघ्र चलो, अब क्या विचार करती हो? हमलोग जलमें जाकर सुखपूर्वक निवास करेंगे॥ २६-२७॥

इसी बीच सभी लोग देवताओंको साथ लेकर उन राक्षसोंसे युद्ध करनेके लिये आये, जिन्होंने उन्हें पहले बहुत दुःख दिया था॥ २८॥

देवगणोंसे पीड़ित उन राक्षसोंके साथ पार्वतीके बलका आश्रय लेकर 'तुम्हारी जय हो, तुम्हारी जय हो' इस प्रकार देवीकी स्तुतिकर जलस्थलसे युक्त अपना सारा नगर उठाकर पंखयुक्त हिमालयपर्वतके समान उड़ती हुई वह शिवभक्त राक्षसी समुद्रके मध्यमें चली गयी और अपने सम्पूर्ण परिवारोंके साथ निर्भय हो प्रसन्नताके साथ वहाँ रहने लगी॥ २९—३१॥

इस प्रकार वे विलासी राक्षस समुद्रके मध्यमें स्थित होकर सुखी हो गये और निर्भय होकर नगरमें विहार करने लगे। और्व मुनिके शापके भयसे वे कभी पृथ्वीपर नहीं आते थे, अपितु जलमें ही भ्रमण करते रहे॥ ३२-३३॥

नौषु स्थितान् जनान्नीत्वा नगरे तत्र तांस्तदा।
चिक्षिपुर्बन्धनागारे कांश्चिज्जघ्नुस्तदा हि ते॥ ३४
यथा यथा पुनः पीडां चक्रुस्ते राक्षसास्तदा।
तत्र स्थिता भवान्याश्च वरदानाच्च निर्भयाः॥ ३५

वे नावोंपर बैठे मनुष्योंको नगरमें लाकर उन्हें वहाँ कारागारमें डाल देते थे और किसी-किसीको मार भी डालते थे। वहाँ स्थित होकर भी वे राक्षस भवानीके वरदानसे निर्भय होकर जैसे-तैसे लोगोंको पीड़ा देते ही रहते थे॥ ३४-३५॥

यथा पूर्वं स्थले लोके भयं चासीन्निरन्तरम्।
तथा भयं जले तेषामासीन्नित्यं मुनीश्वराः॥ ३६
कदाचिद्राक्षसी सा च निःसृता नगराज्जले।
रुद्ध्वा मार्गं स्थिता लोकपीडार्थं धरणौ च हि॥ ३७

हे मुनीश्वरो! जिस प्रकार उन राक्षसोंका भय पूर्वमें पृथ्वीलोकमें स्थलपर नित्यप्रति बना रहता था। उसी प्रकार उनके जलमें रहनेपर भी निरन्तर भय बना रहने लगा। किसी समय वह राक्षसी जलमें स्थित अपने नगरसे निकलकर लोगोंको पीड़ा देनेके लिये पृथ्वीपर जानेका मार्ग रोककर स्थित हो गयी॥ ३६-३७॥

एतस्मिन्नन्तरे तत्र नावो बहुतराः शुभाः।
आगता बहुधा तत्र सर्वतो लोकसंवृताः॥ ३८

इसी समय वहाँ चारों ओरसे मनुष्योंसे भरी हुई बहुत-सी सुन्दर नावें आयीं॥ ३८॥

ता नावश्च तदा दृष्ट्वा हर्षं संप्राप्य राक्षसाः।
द्रुतं गत्वा हि तत्रस्थान्वेगात्संदध्रिरे खलाः॥ ३९

मनुष्योंसे भरी उन नावोंको देखकर हर्षसे भरे हुए उन दुष्ट राक्षसोंने शीघ्रतासे जाकर नावपर स्थित लोगोंको वेगपूर्वक पकड़ लिया॥ ३९॥

आजग्मुर्नगरं ते च तानादाय महाबलाः।
चिक्षिपुर्बन्धनागारे बद्ध्वा हि निगडैर्दृढैः॥ ४०

उन महाबली राक्षसोंने उन्हें अपने नगरमें लाकर दृढ़ बेड़ियोंसे बाँधकर कारागारमें डाल दिया॥ ४०॥

बद्धास्ते निगडैर्लोकाः संस्थिता बंधनालये।
अतीव दुःखमाजग्मुर्भर्त्सितास्ते मुहुर्मुहुः॥ ४१

शृंखलाओंसे बँधे हुए तथा कारागारमें पड़े हुए उन लोगोंपर राक्षसोंकी बारंबार फटकार भी पड़ती थी, जिसके कारण वे अत्यधिक दुःख पा रहे थे॥ ४१॥

तेषां मध्ये च योऽधीशः स वैश्यः सुप्रियाभिधः।
शिवप्रियः शुभाचारः शैवश्चासीत्सदातनः॥ ४२

उन सभीमें उनका स्वामी जो सुप्रिय नामका वैश्य था, वह शिवजीका श्रेष्ठ भक्त, उत्तम आचरणवाला तथा शाश्वत शिवपरायण था॥ ४२॥

विना च शिवपूजां वै न तिष्ठति कदाचन।
सर्वथा शिवधर्मा हि भस्मरुद्राक्षभूषणः॥ ४३

वह बिना शिवपूजन किये कभी नहीं रहता था। वह सर्वथा शिवधर्मका पालन करनेवाला और भस्म, रुद्राक्ष धारण करनेवाला था॥ ४३॥

यदि पूजा न जाता चेन्न भुनक्ति तदा तु सः।
अतस्तत्रापि वैश्योऽसौ चकार शिवपूजनम्॥ ४४

यदि वह कभी पूजन नहीं कर पाता, तो उस दिन भोजन भी नहीं करता था। अतः वहाँ भी वह वैश्य शिवपूजन किया करता था॥ ४४॥

कारागृहगतः सोऽपि बहूंश्चाशिक्षयत्तदा।
शिवमंत्रं च पूजां च पार्थिवीमृषिसत्तमाः॥ ४५

हे श्रेष्ठ ऋषियो! उसने कारागारमें रहते हुए भी बहुत-से लोगोंको शिवमन्त्र और पार्थिवपूजनकी विधि सिखा दी॥ ४५॥

ते सर्वे च तदा तत्र शिवपूजां स्वकामदाम्।
चक्रिरे विधिवत्तत्र यथादृष्टं यथाश्रुतम्॥ ४६

तब कारागारमें रहनेवाले अन्य लोग भी अपनी कामनाको पूर्ण करनेवाली शिवकी पूजा विधिपूर्वक करने लगे, जैसा कि उन लोगोंने देखा और सुना था॥ ४६॥

केचित्तत्र स्थिता ध्याने बद्ध्वासनमनुत्तमम्।
मानसीं शिवपूजां च केचिच्चक्रुर्मुदान्विताः॥ ४७

कुछ लोग उत्तम आसन लगाकर शिवजीका ध्यान करने लगे और कुछ लोग प्रसन्नतासे शिवकी मानसी पूजामें निरत हो गये॥ ४७॥

तदाधीशेन तत्रैव प्रत्यक्षं शिवपूजनम्।
कृतं च पार्थिवस्यैव विधानेन मुनीश्वराः॥ ४८

हे मुनीश्वरो! उस समय उनका स्वामी प्रत्यक्ष ही पार्थिव विधिसे नित्य शिवपूजन किया करता था॥ ४८॥

अन्ये च ये न जानन्ति विधानं स्मरणं परम्।
नमः शिवाय मंत्रेण ध्यायन्तः शंकरं स्थिताः॥ ४९

सुप्रियो नाम यश्चासीद्वैश्यवर्यः शिवप्रियः।
ध्यायँश्च मनसा तत्र चकार शिवपूजनम्॥ ५०

जो अन्य लोग शिवपूजनका विधान तथा श्रेष्ठ स्मरण (शास्त्रोक्त ध्यान) नहीं जानते थे, वे '**नमः शिवाय**'—इस मन्त्रसे शिवका ध्यान करते हुए रहने लगे। सुप्रिय नामक जो शिवभक्त श्रेष्ठ वैश्य था, वह मनमें [शिवजीका] ध्यान करता हुआ वहाँ शिवपूजा किया करता था॥ ४९-५०॥

यथोक्तरूपी शंभुश्च प्रत्यक्षं सर्वमाददे।
सोऽपि स्वयं न जानाति गृह्यते न शिवेन वै॥ ५१

एवं च क्रियमाणस्य वैश्यस्य शिवपूजनम्।
व्यतीयुस्तत्र षण्मासा निर्विघ्नेन मुनीश्वराः॥ ५२

भगवान् शिवजी भी शास्त्रवर्णित रूप धारणकर सभी सामग्री प्रत्यक्ष ग्रहण करते थे। वह वैश्य स्वयं भी इस बातको नहीं जानता था कि शिवजी उसे ग्रहण कर लेते हैं। हे मुनीश्वरो! इस प्रकार वैश्यको शिवपूजन करते हुए वहाँ निर्विघ्न रूपसे छः महीने बीत गये॥ ५१-५२॥

अतः परं च यज्जातं चरितं शशिमौलिनः।
तच्छृणुध्वमृषिश्रेष्ठाः सावधानेन चेतसा॥ ५३

हे मुनीश्वरो! इसके बाद शिवजीका जैसा चरित्र हुआ, उसे आपलोग सावधान मनसे सुनिये॥ ५३॥

इति श्रीशिवमहापुराणे चतुर्थ्यां कोटिरुद्रसंहितायां नागेश्वरज्योतिर्लिंगमाहात्म्ये दारुकावनराक्षसोपद्रववर्णनं नामैकोनत्रिंशोऽध्यायः॥ २९॥

॥ इस प्रकार श्रीशिवमहापुराणके अन्तर्गत चतुर्थ कोटिरुद्रसंहिताके नागेश्वर ज्योतिर्लिंगमाहात्म्यमें दारुकावनमें राक्षसोपद्रववर्णन नामक उनतीसवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ २९॥

अथ त्रिंशोऽध्यायः

नागेश्वर ज्योतिर्लिंगकी उत्पत्ति एवं उसके माहात्म्यका वर्णन

सूत उवाच

कदाचित्सेवकस्तस्य राक्षसस्य दुरात्मनः।
तदग्रे सुंदरं रूपं शंकरस्य ददर्श ह॥ १

सूतजी बोले—[हे मुनियो!] किसी समय उस दुष्टात्मा राक्षस दारुकके एक सेवकने वैश्यके समक्ष [स्थित हुए] शिवजीका सुन्दर रूप देखा॥ १॥

तस्मै निवेदितं राज्ञे राक्षसानां यथार्थकम्।
सर्वं तच्चरितं तेन सकौतुकमथाद्भुतम्॥ २
राजापि तत्र चागत्य राक्षसानां स दारुकः।
विह्वलः सबलः शीघ्रं पर्यपृच्छच्च तं शिवम्॥ ३

उसने जाकर राक्षसराजके सामने कौतुकसमन्वित उस अद्भुत चरित्रको यथार्थ रूपसे निवेदन किया। तब उस बलवान् राक्षसराज दारुकने भी विह्वल हो शीघ्र ही वहाँ आकर शिवके विषयमें उससे पूछा— ॥ २-३॥

दारुक उवाच

किं ध्यायसि हि वैश्य त्वं सत्यं वद ममाग्रतः।
एवं सति न मृत्युस्ते मम वाक्यं च नान्यथा॥ ४

दारुक बोला—हे वैश्य! तुम किसका ध्यान कर रहे हो, मेरे सामने सत्य-सत्य बताओ, ऐसा करनेपर तुम्हें मृत्युदण्ड नहीं प्राप्त होगा, अन्यथा तुम मारे जाओगे, मेरी बात कभी झूठी नहीं होती॥ ४॥

सूत उवाच

तेनोक्तं च न जानामि तच्छ्रुत्वा कुपितः स वै।
राक्षसान्प्रेरयामास हन्यतां राक्षसा अयम्॥ ५

तदुक्तास्ते तदा हन्तुं नानायुधधरा गताः।
द्रुतं तं वैश्यशार्दूलं शंकरासक्तचेतसम्॥ ६

तानागतांस्तदा दृष्ट्वा भयवित्रस्तलोचनः।
शिवं सस्मार सुप्रीत्या तन्नामानि जगौ मुहुः॥ ७

वैश्यपतिरुवाच

पाहि शंकर देवेश पाहि शंभो शिवेति च।
दुष्टादस्मात्त्रिलोकेश खलहन् भक्तवत्सल॥ ८

सर्वस्वं च भवानद्य मम देव त्वमेव हि।
त्वदधीनस्त्वदीयोऽहं त्वत्प्राणः सर्वदा प्रभो॥ ९

सूत उवाच

इति संप्रार्थितः शंभुर्विवरान्निर्गतस्तदा।
भवनेनोत्तमेनाथ चतुर्द्वारयुतेन च॥ १०

मध्ये ज्योतिःस्वरूपं च शिवरूपं तदद्भुतम्।
परिवारसमायुक्तं दृष्ट्वा चापूजयत्स वै॥ ११

पूजितश्च तदा शंभुः प्रसन्नो ह्यभवत्स्वयम्।
अस्त्रं पाशुपतं नाम दत्त्वा राक्षसपुंगवान्॥ १२

जघान सोपकरणांस्तान्सर्वान्सगणान्द्रुतम्।
अरक्षच्च स्वभक्तं वै दुष्टहा स हि शंकरः॥ १३

सर्वांस्तांश्च तदा हत्वा वरं प्रादाद्वनस्य च।
अत्यद्भुतकरः शंभुः स्वलीलात्तसुविग्रहः॥ १४

अस्मिन्वने सदा वर्णधर्मा वै संभवन्तु च।
ब्राह्मणक्षत्रियविशां शूद्राणां हि तथैव च॥ १५

भवंत्वत्र मुनिश्रेष्ठास्तामसा न कदाचन।
शिवधर्मप्रवक्तारः शिवधर्मप्रवर्तकाः॥ १६

सूत उवाच

एतस्मिन्समये सा वै राक्षसी दारुकाह्वया।
देव्याः स्तुतिं चकारासौ पार्वत्या दीनमानसा॥ १७

सूतजी बोले—तब उसने कहा—मैं कुछ नहीं जानता। यह सुनकर उसने कुपित होकर राक्षसोंसे कहा—हे राक्षसो! इसे मार डालो॥ ५॥

उसके ऐसा कहनेपर तत्काल ही वे राक्षस शिवमें तत्पर चित्तवाले उस श्रेष्ठ वैश्यको मारनेके लिये अनेकविध शस्त्र धारणकर वेगसे दौड़े॥ ६॥

तब उन राक्षसोंको आया हुआ देखकर वह वैश्य भयसे अपने नेत्रोंको बन्दकर अत्यन्त प्रेमपूर्वक शिवका स्मरण और बार-बार उनके नामका संकीर्तन करने लगा॥ ७॥

वैश्यपति बोला—हे शंकर! हे देवेश! हे शम्भो! हे शिव! हे त्रिलोकेश! हे दुष्टनाशक! हे भक्तवत्सल! इस दुष्टसे रक्षा कीजिये, रक्षा कीजिये॥ ८॥

हे देव! आप ही मेरे सर्वस्व हैं, हे प्रभो! इस समय मैं आपके अधीन हूँ, आपका ही हूँ और आप ही मेरे सर्वदा प्राण हैं॥ ९॥

सूतजी बोले—[हे महर्षियो!] इस प्रकार प्रार्थना किये जानेपर चारों ओर दरवाजेवाले उत्तम मन्दिरके सहित शिवजी उस विवरसे प्रकट हुए॥ १०॥

उस (भवन)-के बीचमें ज्योतिःस्वरूप परिवारसहित अद्भुत शिवका रूप देखकर उसने पूजन किया॥ ११॥

तब उससे पूजित हुए शिवजी प्रसन्न हो गये और उन्होंने [सुप्रिय वैश्यको] पाशुपत नामक अस्त्र दे करके सभी उपकरणों तथा गणोंसहित उन समस्त राक्षसगणोंका स्वयं शीघ्रतासे संहार कर दिया। इस प्रकार दुष्टोंका वध करनेवाले उन शिवने अपने भक्तकी रक्षा की॥ १२-१३॥

उस समय अपनी लीलासे सुन्दर शरीर धारण करनेवाले तथा अत्यद्भुत चरित्र करनेवाले शिवजीने उन सबको मारकर उस वनको वरदान दिया कि इस वनमें ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य एवं शूद्र—इन चारों वर्णोंके धर्म नित्य स्थिर रहेंगे॥ १४-१५॥

यहाँ शिवधर्मप्रवर्तक तथा शिवधर्मवक्ता श्रेष्ठ मुनि ही होंगे, तमोगुणी लोग कभी नहीं होंगे॥ १६॥

सूतजी बोले—इसी समय दुःखित मनवाली उस दारुका नामक राक्षसीने भगवती पार्वतीकी स्तुति की॥ १७॥

प्रसन्ना च तदा देवी किं करोमीत्युवाच हि।
साप्युवाच पुनस्तत्र वंशो मे रक्ष्यतां त्वया॥ १८

रक्षयिष्यामि ते वंशं सत्यं च कथ्यते मया।
इत्युक्त्वा च शिवेनैव विग्रहं सा चकार ह॥ १९

तब पार्वतीजीने प्रसन्न होकर उससे कहा—मैं क्या करूँ, तब उसने पुनः कहा—[हे देवि!] आप मेरे वंशकी रक्षा करें। मैं तुम्हारे वंशकी रक्षा अवश्य करूँगी, यह मैं सत्य कह रही हूँ—ऐसा कहकर उन्होंने शिवके साथ (लीलापूर्वक) कलह किया॥ १८-१९॥

शिवोऽपि कुपितां देवीं दृष्ट्वा वरवशः प्रभुः।
प्रत्युवाचेति सुप्रीत्या यथेच्छसि तथा कुरु॥ २०

उसके बाद वरदानके वशीभूत हुए शिवजीने क्रुद्ध हुई पार्वतीजीको देखकर प्रेमपूर्वक कहा—तुम जैसा चाहो, वैसा करो॥ २०॥

सूत उवाच

इति श्रुत्वा वचस्तस्य स्वपतेः शंकरस्य वै।
सुप्रसन्ना विहस्याशु पार्वती वाक्यमब्रवीत्॥ २१

सूतजी बोले—अपने पति शिवजीका यह वचन सुनकर अत्यन्त प्रसन्न हुई पार्वतीजीने हँस करके शीघ्रतासे यह वचन कहा—॥ २१॥

पार्वत्युवाच

भवदीयं वचस्तथ्यं युगान्ते संभविष्यति।
तावच्च तामसी सृष्टिर्भवत्विति मतं मम॥ २२
अन्यथा प्रलयः स्याद्वै सत्यं मे व्याहृतं शिव।
प्रमाणीक्रियतां नाथ त्वदीयास्मि त्वदाश्रया॥ २३
इयं च दारुका देवी राक्षसी शक्तिका मम।
बलिष्ठा राक्षसीनां च रक्षोराज्यं प्रशास्तु च॥ २४
इमा राक्षसपत्न्यस्तु प्रसविष्यन्ति पुत्रकान्।
ते सर्वे मिलिताश्चैव वने वासाय मे मताः॥ २५

पार्वतीजी बोलीं—आपका वचन युगके अन्तमें सत्य होगा, तबतक तामसी सृष्टि ही बनी रहे—ऐसा मेरा विचार है, अन्यथा प्रलय हो जायगा। हे शिवजी! यह मैं सत्य कहती हूँ। हे नाथ! मैं आपकी [वल्लभा] हूँ और आपकी आश्रिता हूँ। अतः मेरा वचन प्रमाणित कीजिये। यह राक्षसी देवी दारुका मेरी शक्ति है, सभी राक्षसियोंमें बलिष्ठ है, यह राक्षसोंपर राज्य करे। ये राक्षसोंकी पत्नियाँ यहाँपर अपने पुत्रोंको उत्पन्न करेंगी। वे सब मिलकर इस वनमें मेरी आज्ञासे निवास करेंगी॥ २२—२५॥

सूत उवाच

इत्येवं वचनं श्रुत्वा पार्वत्याः स्वस्त्रियाः प्रभुः।
प्रसन्नमानसो भूत्वा शंकरो वाक्यमब्रवीत्॥ २६

सूतजी बोले—अपनी पत्नी पार्वतीजीका यह वचन सुनकर भगवान् शिव प्रसन्नमन होकर यह वाक्य कहने लगे—॥ २६॥

शङ्कर उवाच

इति ब्रवीषि त्वं वै चेच्छृणु मद्वचनं प्रिये।
स्थास्याम्यस्मिन्वने प्रीत्या भक्तानां पालनाय च॥ २७

शंकर बोले—हे प्रिये! यदि तुम ऐसा कहती हो, तो मेरी बात सुनो। मैं अपने भक्तोंका पालन करनेके लिये इस वनमें प्रीतिपूर्वक निवास करूँगा॥ २७॥

अत्र मे वर्णधर्मस्थो दर्शनं प्रीतिसंयुतम्।
करिष्यति च यो वै स चक्रवर्ती भविष्यति॥ २८

यहाँपर जो अपने वर्णोचित धर्ममें स्थित होकर प्रेमपूर्वक मेरा दर्शन करेगा, वह चक्रवर्ती राजा होगा॥ २८॥

अन्यथा कलिपर्याये सत्यस्यादौ नृपेश्वरः।
महासेनयुतो यो वै वीरसेनेति विश्रुतः॥ २९

स मे भक्त्यातिविक्रांतो दर्शनं मे करिष्यति।
दर्शनं मे स कृत्वैव चक्रवर्ती भविष्यति॥ ३०

इसके बाद कलियुगके बीत जानेपर तथा सत्ययुगके प्रारम्भ होनेपर अपनी बहुत बड़ी सेनासे युक्त जो वीरसेन नामक प्रसिद्ध श्रेष्ठ राजा होगा, वह मेरी भक्तिके प्रभावसे अतीव पराक्रमी होगा, वह यहाँ आकर मेरा दर्शन करेगा और मेरे दर्शनके फलस्वरूप वह चक्रवर्ती राजा बनेगा॥ २९-३०॥

सूत उवाच

इत्येवं दंपती तौ च कृत्वा हास्यं परस्परम्।
स्थितौ तत्र स्वयं साक्षान्महोतीकारकौ द्विजाः॥ ३१

ज्योतिर्लिंगस्वरूपो हि नाम्ना नागेश्वरः शिवः।
नागेश्वरी शिवा देवी बभूव च सतां प्रियौ॥ ३२

ऋषय ऊचुः

वीरसेनः कथं तत्र यास्यते दारुकावने।
कथमर्चिष्यति शिवं त्वं तद्वद महामते॥ ३३

सूत उवाच

निषधे सुंदरे देशे क्षत्रियाणां कुले च सः।
महासेनसुतो वीरसेनश्चैव शिवप्रियः॥ ३४
पार्थिवेशार्चनं कृत्वा तपः परमदुष्करम्।
चकार वीरसेनो वै वर्षाणां द्वादशावधिः॥ ३५
ततः प्रसन्नो देवेशः प्रत्यक्षं प्राह शंकरः।
काष्ठस्य मत्स्यिकां कृत्वा त्रपुधातुविलेपनाम्॥ ३६
विधाय योगमायां च दास्यामि वीरसेनक।
तां गृहीत्वा प्रविश्यैनं नौभिः सह व्रजाधुना॥ ३७
ततस्त्वं तत्र गत्वा च विवरे च कृते मया।
प्रविश्य च तदा पूजां कृत्वा नागेश्वरस्य च॥ ३८
ततः पाशुपतं प्राप्य हत्वा च राक्षसीमुखान्।
मयि दृष्टे तदा किंचिन्न्यूनं ते न भविष्यति॥ ३९
पार्वत्याश्च बलं चैव संपूर्णं वै भविष्यति।
अन्ये च म्लेच्छरूपा ये भविष्यन्ति वने शुभाः॥ ४०

इत्युक्त्वा शंकरस्तत्र वीरसेनं हि दुःखहा।
कृत्वा कृपां च महतीं तत्रैवान्तर्दधे प्रभुः॥ ४१

इति दत्तवरः सोऽपि शिवेन परमात्मना।
शक्तः सर्वं तदा कर्तुं संबभूव न संशयः॥ ४२

एवं नागेश्वरो देव उत्पन्नो ज्योतिषां पतिः।
लिंगरूपस्त्रिलोकस्य सर्वकामप्रदः सदा॥ ४३

सूतजी बोले—हे ब्राह्मणो! इस प्रकार साक्षात् महालीला करनेवाले वे शिव और पार्वती परस्पर हास-विलास करके स्वयं वहीं स्थित हो गये॥ ३१॥

वहाँ ज्योतिर्लिंगरूप शिवजी नागेश्वर नामसे तथा देवी पार्वती नागेश्वरी नामसे प्रसिद्ध हुईं, वे दोनों सज्जनोंको अत्यन्त प्रिय हैं॥ ३२॥

ऋषिगण बोले—हे महामते! वीरसेन उस दारुका वनमें किस प्रकार जायँगे और किस प्रकार शिवजीकी पूजा करेंगे, आप इसका वर्णन कीजिये?॥ ३३॥

सूतजी बोले—निषध नामक सुन्दर देशमें क्षत्रियोंके कुलमें महासेनके वीरसेन नामक पुत्र उत्पन्न हुआ, जो शिवका [अत्यन्त] प्रिय था॥ ३४॥

वीरसेनने पार्थिवेश शिवका अर्चन करते हुए बारह वर्षपर्यन्त अत्यन्त कठिन तप किया॥ ३५॥

तब प्रसन्न हुए देवाधिदेव शंकरने प्रकट होकर [राजासे] कहा—हे वीरसेन! काठकी मछली बनाकर उसपर राँगेका लेपकर [और उसे] योगमाया [से सम्पन्न] बनाकर तुम्हें दे रहा हूँ, उसे लेकर तुम इस समय नौकासे इस विवरमें प्रवेश करके चले जाओ, तदनन्तर वहाँ जाकर मेरे द्वारा किये गये उस विवरमें प्रविष्ट होकर नागेश्वरका पूजन करके उनसे पाशुपतास्त्र प्राप्तकर इन [दारुका आदि] प्रमुख राक्षसियोंका विनाश करना। मेरे दर्शनके प्रभावसे तुम्हें किसी प्रकारकी कमी न होगी। उस समयतक पार्वतीका वरदान भी पूर्ण हो जायगा, जिससे वहाँ जो अन्य म्लेच्छरूपवाले होंगे, वे भी सदाचारी हो जायँगे॥ ३६—४०॥

दुःखको दूर करनेवाले प्रभु सदाशिव वीरसेनसे इतना कहकर उनपर महती कृपा प्रकट करके वहीं अन्तर्धान हो गये॥ ४१॥

तब परमात्मा शिवसे वर प्राप्त किये हुए वे वीरसेन भी बिना संशयके सब कुछ करनेमें समर्थ हो गये॥ ४२॥

इस प्रकार ज्योतियोंके पति लिंगरूप प्रभु नागेश्वरदेवकी उत्पत्ति हुई, वे तीनों लोकोंकी सम्पूर्ण कामनाको सदा पूर्ण करनेवाले हैं॥ ४३॥

एतद्यः शृणुयान्नित्यं नागेशोद्भवमादरात्।
सर्वान्कामानियाद्धीमान्महापातकनाशनान् ॥ ४४

जो प्रतिदिन नागेश्वरकी इस उत्पत्तिका वृत्तान्त श्रद्धापूर्वक सुनता है, वह बुद्धिमान् महापातकोंका नाश करनेवाले सम्पूर्ण अभीष्टोंको प्राप्त कर लेता है ॥ ४४ ॥

इति श्रीशिवमहापुराणे चतुर्थ्यां कोटिरुद्रसंहितायां नागेश्वरज्योतिर्लिंगोद्भवमाहात्म्यवर्णनं नाम त्रिंशोऽध्यायः ॥ ३० ॥

॥ इस प्रकार श्रीशिवमहापुराणके अन्तर्गत चतुर्थ कोटिरुद्रसंहितामें नागेश्वर-ज्योतिर्लिंगोद्भवमाहात्म्यवर्णन नामक तीसवाँ अध्याय पूर्ण हुआ ॥ ३० ॥

अथैकत्रिंशोऽध्यायः

रामेश्वर नामक ज्योतिर्लिंगके प्रादुर्भाव एवं माहात्म्यका वर्णन

सूत उवाच

अतः परं प्रवक्ष्यामि लिंगं रामेश्वराभिधम्।
उत्पन्नं च यथा पूर्वमृषयः शृणुतादरात्॥ १

सूतजी बोले—हे ऋषियो! इसके बाद मैं रामेश्वर नामक ज्योतिर्लिंग पूर्व समयमें जिस प्रकार उत्पन्न हुआ, उसका वर्णन करता हूँ, आपलोग आदरपूर्वक सुनिये ॥ १ ॥

पुरा विष्णुः पृथिव्यां चावततार सतां प्रियः॥ २

तत्र सीता हृता विप्रा रावणेनोरुमायिना।
प्रापिता स्वगृहं सा हि लंकायां जनकात्मजा॥ ३

हे ब्राह्मणो! पूर्व समयमें सज्जनोंके प्रिय भगवान् विष्णु पृथ्वीपर [रामके रूपमें] अवतरित हुए। उस समय महामायावी रावणने उनकी पत्नी सीताका हरण कर लिया और उन जनकपुत्रीको अपने घर लंकापुरीमें पहुँचा दिया ॥ २-३ ॥

अन्वेषणपरस्तस्याः किष्किन्धाख्यां पुरीमगात्।
सुग्रीवहितकृद्भूत्वा वालिनं संजघान ह॥ ४

सीताको खोजते हुए राम किष्किन्धा नामक नगरीमें गये और उन्होंने सुग्रीवसे मित्रताकर बालीका वध किया ॥ ४ ॥

तत्र स्थित्वा कियत्कालं तदन्वेषणतत्परः।
सुग्रीवाद्यैर्लक्ष्मणेन विचारं कृतवान्स वै॥ ५

कपीन् संप्रेषयामास चतुर्दिक्षु नृपात्मजः।
हनुमत्प्रमुखान् रामस्तदन्वेषणहेतवे॥ ६

कुछ समयतक वहाँ रहकर सीताको खोजनेमें तत्पर वे लक्ष्मण, सुग्रीव आदिके साथ विचार-विमर्श करते रहे। इसके बाद राजकुमार रामने उन्हें खोजनेके लिये हनुमान् आदि प्रमुख वानरोंको चारों दिशाओंमें भेजा ॥ ५-६ ॥

अथ ज्ञात्वा गतां लंकां सीतां कपिवराननात्।
सीताचूडामणिं प्राप्य मुमुदे सोऽति राघवः॥ ७

उसके बाद वानरश्रेष्ठ हनुमान्‌जीके मुखसे सीताको लंकामें स्थित जानकर तथा उनकी चूडामणि प्राप्तकर वे रामचन्द्रजी बहुत प्रसन्न हुए ॥ ७ ॥

सकपीशस्तदा रामो लक्ष्मणेन युतो द्विजाः।
सुग्रीवप्रमुखैः पुण्यैर्वानरैर्बलवत्तरैः॥ ८
पद्मैरष्टादशाख्यैश्च ययौ तीरं पयोनिधेः।
दक्षिणे सागरे यो वै दृश्यते लवणाकरः॥ ९
तत्रागत्य स्वयं रामो वेलायां संस्थितो हि सः।
वानरैः सेव्यमानस्तु लक्ष्मणेन शिवप्रियः॥ १०

हे द्विजो! इसके अनन्तर वे श्रीरामचन्द्रजी हनुमान्, लक्ष्मण तथा सुग्रीव आदि पुण्यवान् तथा अति बलवान् अठारह पद्म वानरोंके साथ समुद्रके तटपर पहुँचे। दक्षिण सागरमें जो लवणसमुद्र दिखायी देता है, वहाँ आकर वे शिवप्रिय राम लक्ष्मण तथा वानरोंसे सेवित होते हुए उसके तटपर स्थित हुए ॥ ८—१० ॥

हा जानकी कुतो याता कदा चेयं मिलिष्यति।
अगाधः सागरश्चैवातार्या सेना च वानरी॥ ११
राक्षसो गिरिधर्ता च महाबलपराक्रमः।
लंकाख्यो दुर्गमो दुर्ग इंद्रजित्तनयोऽस्य वै॥ १२
इत्येवं स विचार्यैव तटे स्थित्वा सलक्ष्मणः।
आश्वासितो वनौकोभिरंगदादिपुरःसरैः॥ १३
एतस्मिन्नंतरे तत्र राघवः शैवसत्तमः।
उवाच भ्रातरं प्रीत्या जलार्थी लक्ष्मणाभिधम्॥ १४

श्रीराम उवाच

भ्रातर्लक्ष्मण वीरेशाहं जलार्थी पिपासितः।
तदानय द्रुतं पाथो वानरैः कैश्चिदेव हि॥ १५

सूत उवाच

तच्छ्रुत्वा वानरास्तत्र ह्यधावन्त दिशो दश।
नीत्वा जलं च ते प्रोचुः प्रणिपत्य पुरः स्थिताः॥ १६

वानरा ऊचुः

जलं च गृह्यतां स्वामिन्नानीतं तत्त्वदाज्ञया।
महोत्तमं च सुस्वादु शीतलं प्राणतर्पणम्॥ १७

सूत उवाच

सुप्रसन्नतरो भूत्वा कृपादृष्ट्या विलोक्य तान्।
तच्छ्रुत्वा रामचन्द्रोऽसौ स्वयं जग्राह तज्जलम्॥ १८
स शैवस्तज्जलं नीत्वा पातुमारब्धवान्यदा।
तदा च स्मरणं जातमित्थमस्य शिवेच्छया॥ १९
न कृतं दर्शनं शंभोर्गृह्यते च जलं कथम्।
स्वस्वामिनः परेशस्य सर्वानंदप्रदस्य वै॥ २०
इत्युक्त्वा च जलं मुक्तं तदा रघुवरेण च।
पश्चाच्च पार्थिवीं पूजां चकार रघुनंदनः॥ २१
आवाहनादिकांश्चैव ह्युपचारान्प्रकल्प्य वै।
विधिवत्षोडशं प्रीत्या देवमानर्च शङ्करम्॥ २२
प्रणिपातैः स्तवैर्दिव्यैः शिवं संतोष्य यत्नतः।
प्रार्थयामास सद्भक्त्या स रामः शंकरं मुदा॥ २३

हाय, जानकी कहाँ चली गयी, वह कब मिलेगी? यह समुद्र अगाध है और वानरीसेना इसे पार करनेमें सर्वथा असमर्थ है। कैलासको भी उठानेवाला राक्षस रावण महाबली है, लंका भी अगम्य दुर्ग है, उसका पुत्र मेघनाद तो इन्द्रको भी जीतनेवाला है—इस प्रकार लक्ष्मणसहित श्रीराम जब विचार कर रहे थे, तब अंगदादि वानर अनुचरोंने उन्हें समझाते हुए धीरज बँधाया॥ ११—१३॥

इसी अवसरपर महाशिवभक्त श्रीरामचन्द्रजीको प्यास लगी और उन्होंने अपने भाई लक्ष्मणसे प्रीतिपूर्वक कहा—॥ १४॥

श्रीरामजी बोले—हे वीरेश्वर भाई लक्ष्मण! मैं प्यासा हूँ, मुझे जलकी आवश्यकता है। अतः तुम कुछ वानरोंको भेजकर शीघ्र जल मँगाओ॥ १५॥

सूतजी बोले—यह सुनकर वानरगण [जल लेनेके लिये] दसों दिशाओंमें गये और जल लाकर आगे खड़े हो प्रणामकर उन सबने कहा—॥ १६॥

वानर बोले—हे स्वामिन्! हमलोग आपकी आज्ञासे शीतल, स्वादिष्ट, प्राणोंको तृप्त करनेवाला तथा अत्यन्त उत्तम जल लाये हैं, इसे आप ग्रहण कीजिये॥ १७॥

सूतजी बोले—वानरोंकी बात सुनकर श्रीरामचन्द्रजीने अत्यन्त प्रसन्न होकर उनकी ओर कृपादृष्टिसे देखकर स्वयं वह जल ग्रहण किया॥ १८॥

उन शिवभक्त [राम]-ने ज्यों ही जल लेकर पीना प्रारम्भ किया, उसी समय शिवकी इच्छासे उन्हें यह स्मरण हुआ कि मैंने सम्पूर्ण आनन्द देनेवाले अपने स्वामी परमेश्वर सदाशिवका दर्शन नहीं किया है, फिर इस जलको किस प्रकार ग्रहण करूँ?॥ १९-२०॥

ऐसा कहकर श्रीरामचन्द्रजीने पार्थिवपूजा सम्पन्न की और तदुपरान्त उन रघुनन्दनने जलका पान किया। उन्होंने आवाहन आदि सोलह उपचारोंको समर्पित करके विधिपूर्वक प्रेमसे शिवजीका पूजन किया। इसके बाद प्रणाम तथा दिव्य स्तोत्रोंसे यत्नपूर्वक शिवको सन्तुष्टकर वे श्रीराम उत्तम भक्तिसे प्रसन्नतापूर्वक शंकरजीसे प्रार्थना करने लगे—॥ २१—२३॥

श्रीराम उवाच

स्वामिन् शंभो महादेव सर्वदा भक्तवत्सल।
पाहि मां शरणापन्नं त्वद्भक्तं दीनमानसम्॥ २४
एतज्जलमगाधं च वारिधेर्भवतारण।
रावणाख्यो महावीरो राक्षसो बलवत्तरः॥ २५

वानराणां बलं ह्येतच्चञ्चलं युद्धसाधनम्।
मम कार्यं कथं सिद्धं भविष्यति प्रियाप्तये॥ २६

तस्मिन्देव त्वया कार्यं साहाय्यं मम सुव्रत।
साहाय्यं ते विना नाथ मम कार्यं हि दुर्लभम्॥ २७

त्वदीयो रावणोऽपीह दुर्जयः सर्वथाखिलैः।
त्वद्दत्तवरदृप्तश्च महावीरस्त्रिलोकजित्॥ २८

अप्यहं तव दासोऽस्मि त्वदधीनश्च सर्वथा।
विचार्येति त्वया कार्यः पक्षपातः सदाशिव॥ २९

सूत उवाच

इत्येवं स च संप्रार्थ्य नमस्कृत्य पुनः पुनः।
तदा जय जयेत्युच्चैरुद्घोषैः शंकरेति च॥ ३०

इति स्तुत्वा शिवं तत्र मंत्रध्यानपरायणः।
पुनः पूजां ततः कृत्वा स्वाम्यग्रे स ननर्त ह॥ ३१

प्रेमविक्लिन्नहृदयो गल्लनादं यदाकरोत्।
तदा च शंकरो देवः सुप्रसन्नो बभूव ह॥ ३२

सांगः सपरिवारश्च ज्योतीरूपो महेश्वरः।
यथोक्तरूपममलं कृत्वाविरभवद् द्रुतम्॥ ३३

ततः संतुष्टहृदयो रामभक्त्या महेश्वरः।
शिवमस्तु वरं ब्रूहि रामेति स तदाब्रवीत्॥ ३४

तद्रूपं च तदा दृष्ट्वा सर्वे पूतास्ततः स्वयम्।
कृतवान् राघवः पूजां शिवधर्मपरायणः॥ ३५

स्तुतिं च विविधां कृत्वा प्रणिपत्य शिवं मुदा।
जयं च प्रार्थयामास रावणाजौ तदात्मनः॥ ३६

श्रीराम बोले—हे स्वामिन्! हे शम्भो! हे महादेव! हे भक्तवत्सल! शरणमें आये हुए तथा दुखी चित्तवाले मुझ अपने भक्तकी रक्षा कीजिये॥ २४॥

हे संसाररूपी समुद्रसे पार उतारनेवाले! इस समुद्रका यह जल अगाध है और रावण नामक राक्षस महापराक्रमी तथा अति बलवान् है॥ २५॥

मेरे पास युद्धका साधन केवल वानरोंकी चंचल सेना है, अतः अपनी प्रियाकी प्राप्तिहेतु मेरा यह कार्य किस प्रकार सिद्ध होगा?॥ २६॥

हे देव! हे सुव्रत! इस कार्यमें आप मेरी सहायता करें। हे नाथ! आपकी सहायताके बिना मेरा कार्य पूर्ण होना दुर्लभ है। यह रावण भी आपका परम भक्त है और यह सभी लोगोंसे सर्वथा अजेय है, आपके द्वारा प्रदत्त वरसे गर्वित होकर यह महान् वीर तथा तीनों लोकोंका विजेता हो गया है। हे सदाशिव! मैं भी आपका दास हूँ और सर्वथा आपके अधीन हूँ—ऐसा विचारकर आपको मेरा पक्षपात करना चाहिये॥ २७—२९॥

सूतजी बोले—इस प्रकार उन्होंने शिवकी प्रार्थना करके और बारंबार उन्हें नमस्कारकर—हे शंकर! आपकी जय हो, आपकी जय हो—इस प्रकार ऊँचे स्वरमें इन उद्घोषोंसे जयकार की। इस प्रकार स्तुतिकर मन्त्रार्थकी भावना करते हुए उन्होंने शिवजीकी पुनः पूजा करके उन स्वामीके आगे नृत्य किया॥ ३०-३१॥

जब वे प्रेमार्द्रहृदय होकर गाल बजाने लगे, तब भगवान् शंकर अत्यन्त प्रसन्न हो उठे॥ ३२॥

वे ज्योतिर्मय महेश्वर वामांगभूता पार्वतीजी तथा पार्षदगणोंके साथ शास्त्रोक्त निर्मल रूप धारणकर तत्काल वहाँ प्रकट हो गये। इसके बाद रामकी भक्तिसे प्रसन्नचित्त होकर उन महेश्वरने कहा—हे राम! तुम्हारा कल्याण हो, वर माँगो॥ ३३-३४॥

उस समय उनके रूपको देखकर सभी लोग पवित्र हो गये और स्वयं शिवधर्मपरायण श्रीरामने शिवकी पूजा की। उन्होंने अनेक प्रकारकी स्तुतिकर प्रसन्नतापूर्वक शिवको प्रणाम करके रावणके साथ युद्धमें अपनी विजयके लिये प्रार्थना की॥ ३५-३६॥

ततः प्रसन्नहृदयो रामभक्त्या महेश्वरः।
जयोऽस्तु ते महाराज प्रीत्या स पुनरब्रवीत्॥ ३७

शिवदत्तं जयं प्राप्य ह्यनुज्ञां समवाप्य च।
पुनश्च प्रार्थयामास साञ्जलिर्नतमस्तकः॥ ३८

इसके बाद श्रीरामकी भक्तिसे सन्तुष्ट होकर उन महेश्वरने पुनः कहा—हे महाराज! आपकी विजय हो। तब शिवजीके द्वारा विजयका वरदान पाकर और उनकी आज्ञा प्राप्तकर वे मस्तक झुकाकर तथा हाथ जोड़कर पुनः प्रार्थना करने लगे—॥ ३७-३८॥

श्रीराम उवाच

त्वया स्थेयमिह स्वामिंल्लोकानां पावनाय च।
परेषामुपकारार्थं यदि तुष्टोऽसि शंकर॥ ३९

श्रीराम बोले—हे स्वामिन्! हे शंकर! यदि आप प्रसन्न हैं, तो संसारको पवित्र करनेके लिये तथा दूसरोंका उपकार करनेके लिये आप यहीं निवास करें॥ ३९॥

सूत उवाच

इत्युक्तस्तु शिवस्तत्र लिंगरूपोऽभवत्तदा।
रामेश्वरश्च नाम्ना वै प्रसिद्धो जगतीतले॥ ४०

सूतजी बोले—उनके ऐसा कहनेपर शिवजी वहींपर लिंगरूपमें स्थित हो गये और रामेश्वर नामसे पृथ्वीपर प्रसिद्ध हुए॥ ४०॥

रामस्तु तत्प्रभावाद्वै सिन्धुमुत्तीर्य चाञ्जसा।
रावणादीन्निहत्याशु राक्षसान्प्राप तां प्रियाम्॥ ४१

उसके बाद उन्हींके प्रभावसे श्रीरामने शीघ्र ही समुद्रको अनायास पारकर रावण आदि राक्षसोंको मारकर अपनी उन प्रिया सीताको प्राप्त किया॥ ४१॥

रामेश्वरस्य महिमाद्भुतोऽभूद्भुवि चातुलः।
भुक्तिमुक्तिप्रदश्चैव सर्वदा भक्तकामदः॥ ४२

पृथ्वीतलपर रामेश्वरकी महिमा अद्भुत एवं असीम है। यह लिंग भोग-मोक्ष देनेवाला तथा सदा भक्तोंकी कामना पूर्ण करनेवाला है॥ ४२॥

दिव्यगंगाजलेनैव स्नापयिष्यति यः शिवम्।
रामेश्वरं च सद्भक्त्या स जीवन्मुक्त एव हि॥ ४३

इह भुक्त्वाखिलान्भोगान्देवानां दुर्लभानपि।
अंते प्राप्य परं ज्ञानं कैवल्यं प्राप्नुयाद् ध्रुवम्॥ ४४

जो दिव्य गंगाजलके द्वारा उत्तम भक्तिभावसे श्रीरामेश्वर नामक शिवलिंगको स्नान करायेगा, वह जीवन्मुक्त हो जायगा और इस लोकमें देवताओंके लिये भी दुर्लभ सम्पूर्ण भोगोंको भोगकर अन्तमें श्रेष्ठ ज्ञान प्राप्त करके निश्चित रूपसे कैवल्य (मोक्ष) प्राप्त कर लेगा॥ ४३-४४॥

इति वश्च समाख्यातं ज्योतिर्लिंगं शिवस्य तु।
रामेश्वराभिधं दिव्यं शृण्वतां पापहारकम्॥ ४५

[हे ऋषियो!] इस प्रकार मैंने शिवजीके रामेश्वर नामक दिव्य ज्योतिर्लिंगका वर्णन आपलोगोंसे कर दिया, यह माहात्म्य सुननेवालोंके पापको नष्ट कर देनेवाला है॥ ४५॥

इति श्रीशिवमहापुराणे चतुर्थ्यां कोटिरुद्रसंहितायां रामेश्वरमाहात्म्यवर्णनं नामैकत्रिंशोऽध्यायः॥ ३१॥

॥ इस प्रकार श्रीशिवमहापुराणके अन्तर्गत चतुर्थ कोटिरुद्रसंहितामें रामेश्वरमाहात्म्यवर्णन नामक इकतीसवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ ३१॥

अथ द्वात्रिंशोऽध्यायः

घुश्मेश्वर ज्योतिर्लिंगके माहात्म्यमें सुदेहा ब्राह्मणी एवं सुधर्मा ब्राह्मणका चरित-वर्णन

सूत उवाच

अतः परं च घुश्मेशं ज्योतिर्लिंगमुदाहृतम्।
तस्यैव च सुमाहात्म्यं श्रूयतामृषिसत्तमाः॥ १

सूतजी बोले—हे मुनिश्रेष्ठो! इसके बाद घुश्मेश नामक ज्योतिर्लिंग कहा गया है। उसका उत्तम माहात्म्य सुनिये॥ १॥

दक्षिणस्यां दिशि श्रेष्ठो गिरिर्देवेति संज्ञकः।
महाशोभान्वितो नित्यं राजतेऽद्भुतदर्शनः॥ २

दक्षिण दिशामें श्रेष्ठ देवगिरि नामक एक महान् शोभासे युक्त पर्वत विराजमान है, जो देखनेमें विचित्र मालूम पड़ता है॥ २॥

तस्यैव निकटे कश्चिद्भारद्वाजकुलोद्भवः।
सुधर्मा नाम विप्रश्च न्यवसद् ब्रह्मवित्तमः॥ ३

उसीके समीप भारद्वाजके कुलमें उत्पन्न महान् वेदवेत्ता सुधर्मा नामका कोई ब्राह्मण रहता था॥ ३॥

तस्य प्रिया सुदेहा च शिवधर्मपरायणा।
पतिसेवापरा नित्यं गृहकर्मविचक्षणा॥ ४

उसकी शिवधर्मपरायण, पतिसेवामें सदा तत्पर रहनेवाली तथा गृहकार्योंमें दक्ष सुदेहा नामक भार्या थी॥ ४॥

सुधर्मा च द्विजश्रेष्ठो देवतातिथिपूजकः।
वेदमार्गपरो नित्यमग्निसेवापरायणः॥ ५

श्रेष्ठ ब्राह्मण सुधर्मा भी देवता एवं अतिथिका पूजन करनेवाला, वेदमार्गके अनुसार आचरण करनेवाला तथा अग्निहोत्रमें नित्य तत्पर रहनेवाला था॥ ५॥

त्रिकालसंध्यया युक्तः सूर्यरूपसमद्युतिः।
शिष्याणां पाठकश्चैव वेदशास्त्रविचक्षणः॥ ६

धनवांश्च परो दाता सौजन्यगुणभाजनः।
शिवकर्मरतो नित्यं शैवः शैवजनप्रियः॥ ७

वह तीनों समयमें सन्ध्योपासन करनेवाला, सूर्यके समान तेजस्वी, शिष्योंको अध्यापन करनेवाला, वेद-शास्त्रका विद्वान्, धनवान्, श्रेष्ठ, दानी, सौजन्यगुणसे युक्त, नित्य शिवकर्म करनेवाला, शिवभक्त तथा शिवभक्तोंका प्रिय था॥ ६-७॥

आयुर्बहु व्यतीयाय तस्य धर्मं प्रकुर्वतः।
पुत्रश्च नाभवत्तस्य ऋतुः स्यादफलः स्त्रियाः॥ ८

इस प्रकार धर्माचरण करते हुए उस ब्राह्मणकी बहुत-सी आयु बीत गयी, किंतु पुत्र उत्पन्न नहीं हुआ और उसकी स्त्रीका ऋतुकाल भी निष्फल होता गया॥ ८॥

तेन दुःखं कृतं नैव वस्तुज्ञानपरेण हि।
आत्मनस्तारकश्चात्मा ह्यात्मनः पावनश्च सः॥ ९

इत्येवं मानसं धृत्वा दुःखं न कृतवांस्तदा।
सुदेहा च तदा दुःखं चकारापुत्रसम्भवम्॥ १०

नित्यं च स्वामिनं सा वै प्रार्थयद्यत्नसाधने।
पुत्रोत्पादनहेतोश्च सर्वविद्याविशारदम्॥ ११

तब भी तत्त्वके ज्ञाता उस ब्राह्मणको थोड़ा-सा भी दुःख नहीं हुआ। आत्मा ही अपना उद्धार करनेवाला है और वही अपनेको पवित्र करनेवाला भी है—ऐसा मनमें विचारकर वह ब्राह्मण दुखित नहीं हुआ, किंतु सुदेहाको पुत्र उत्पन्न न होनेका बहुत बड़ा दुःख रहता था। वह सर्वविद्याविशारद अपने पतिसे पुत्र उत्पन्न करनेके लिये प्रयत्न करनेकी नित्य प्रार्थना किया करती थी॥ ९—११॥

सोऽपि स्त्रियं तदाभर्त्स्य किं पुत्रश्च करिष्यति।
का माता कः पिता पुत्रः को बंधुश्च प्रियश्च कः॥ १२

वह ब्राह्मण अपनी स्त्रीको डाँटकर कहता था कि पुत्र क्या करेगा? कौन किसकी माता तथा कौन किसका पिता है, कौन पुत्र है, कौन भाई है एवं कौन मित्र है?॥ १२॥

सर्वं स्वार्थपरं देवि त्रिलोक्यां नात्र संशयः।
जानीहि त्वं विशेषेण बुद्ध्या शोकं न वै कुरु॥ १३

तस्माद्देवि त्वया दुःखं त्यजनीयं सुनिश्चितम्।
नित्यं मह्यं त्वया नैव कथनीयं शुभव्रते॥ १४

हे देवि! तीनों लोकोंमें सभी निःसन्देह स्वार्थका ही साधन करनेवाले हैं—ऐसा तुम बुद्धिसे विशेषरूपसे समझो और चिन्ता मत करो। अतः हे देवि! तुम निश्चित रूपसे दुःखका त्याग करो और हे शुभव्रते! तुम मुझसे नित्य इसके लिये मत कहा करो॥ १३-१४॥

एवं तां सन्निवार्यैव भगवद्धर्मतत्परः।
आसीत्परमसंतुष्टो द्वन्द्वदुःखं समत्यजत्॥ १५

कदाचिच्च सुदेहा वै गेहे च सहवासिनः।
जगाम प्रियगोष्ठ्यर्थं विवादस्तत्र संगतः॥ १६

तत्पत्नी स्त्रीस्वभावाच्च भर्त्सिता सा तया तदा।
उक्ता चेति दुरुक्त्या वै सुदेहा विप्रकामिनी॥ १७

पत्न्युवाच

अपुत्रिणि कथं गर्वं कुरुषे पुत्रिणी ह्यहम्।
मद्धनं भोक्ष्यते पुत्रो धनं ते कश्च भोक्ष्यते॥ १८

नूनं हरिष्यते राजा त्वद्धनं नात्र संशयः।
धिग्धिक्त्वां ते धनं धिक्च धिक् ते मानं हि वन्ध्यके॥ १९

सूत उवाच

भर्त्सिता ताभिरिति सा गृहमागत्य दुःखिता।
स्वामिने कथयामास तदुक्तं सर्वमादरात्॥ २०

ब्राह्मणोऽपि तदा दुःखं न चकार सुबुद्धिमान्।
कथितं कथ्यतामेव यद्भावि तद्भवेत्प्रिये॥ २१

इत्येवं च तदा तेन ह्याश्वस्तापि पुनः पुनः।
न तदा सात्यजद्दुःखं ह्याग्रहं कृतवत्यसौ॥ २२

सुदेहोवाच

यथा तथा त्वया पुत्रः समुत्पाद्यः प्रियोऽसि मे।
त्यक्ष्यामि ह्यन्यथाहं च देहं देहभृतां वर॥ २३

सूत उवाच

एवमुक्तं तया श्रुत्वा सुधर्मा ब्राह्मणोत्तमः।
शिवं सस्मार मनसा तदाग्रहनिपीडितः॥ २४

अग्नेरग्रेऽक्षिपत्पुष्पद्वयं विप्रो ह्यतन्द्रितः।
मनसा दक्षिणं पुष्पं तन्मेने पुत्रकामदम्॥ २५

एवं कृत्वा पणं पत्नीमुवाच ब्राह्मणः स च।
अनयोर्ग्राह्यमेकं ते पुष्पं पुत्रफलाप्तये॥ २६

तया च मनसा धृत्वा पुत्रश्चैव भवेन्मम।
तदा च स्वामिना यच्च धृतं पुष्पं समेतु माम्॥ २७

इस प्रकार उसे मना करके शिवधर्ममें निरत वह ब्राह्मण परम सन्तुष्ट हो गया और द्वन्द्वदुःखका त्याग कर दिया। किसी समय सुदेहा सखियोंकी गोष्ठीमें सम्मिलित होनेके लिये अपने पड़ोसीके घर गयी, वहींपर परस्पर विवाद होने लगा॥ १५-१६॥

उस पड़ोसीकी स्त्रीने नारीस्वभावके कारण उस ब्राह्मण-पत्नी सुदेहाको धिक्कारते हुए बहुत कटु वचन कह दिये॥ १७॥

[पड़ोसीकी] पत्नी बोली—हे अपुत्रिणि! तुम किस बातका गर्व कर रही हो? मैं पुत्रवती हूँ, मेरा धन तो मेरा पुत्र भोगेगा, किंतु तुम्हारे धनका भोग कौन करेगा? निश्चय ही तुम्हारा धन राजा ले लेगा, इसमें सन्देह नहीं है। हे वन्ध्या! तुम्हें धिक्कार है, तुम्हारे धनको धिक्कार है और तुम्हारे अहंकारको धिक्कार है!॥ १८-१९॥

सूतजी बोले—इस प्रकार उन स्त्रियोंके द्वारा अपमानित होकर दुःखित सुदेहाने घर आकर अपने पतिसे आदरपूर्वक उनकी सारी बात कही॥ २०॥

तब भी उस बुद्धिमान्‌को कुछ दुःख नहीं हुआ। उसने कहा—हे प्रिये! जो उन्होंने कहा—कहने दो, जो होनहार है, वही होता है॥ २१॥

इस प्रकार उसने बारंबार सुदेहाको समझाया, किंतु तब भी उसका दुःख दूर न हुआ, वह पुनः [पुत्रके लिये] आग्रह करने लगी॥ २२॥

सुदेहा बोली—हे देहधारियोंमें श्रेष्ठ! आप मेरे प्रिय हैं, चाहे जिस किसी भी उपायसे आप पुत्र उत्पन्न करें, अन्यथा मैं अपना शरीर त्याग दूँगी॥ २३॥

सूतजी बोले—उसके द्वारा कहे गये इस वचनको सुनकर उसके आग्रहसे विवश हुए ब्राह्मणश्रेष्ठ सुधर्माने चित्तमें भगवान् शिवका स्मरण किया॥ २४॥

इसके बाद उस विप्रने सावधानीपूर्वक दो फूल लेकर अग्निके सामने रख दिये, उसने दाहिनेवाले पुष्पको मनमें पुत्रदायक समझा॥ २५॥

इस प्रकारका संकल्प करके उस ब्राह्मणने अपनी पत्नीसे कहा—पुत्रफलकी प्राप्तिहेतु इन दोनोंमेंसे कोई एक फूल उठाओ। उसने अपने मनमें यह सोचा कि मुझे पुत्र हो और मेरे स्वामीने पुत्रके लिये जिस पुष्पको सोचा है, वही मेरे हाथमें आये॥ २६-२७॥

इत्युक्त्वा च तया तत्र नमस्कृत्य शिवं तदा।
नत्वा चाग्निं पुनः प्रार्थ्य गृहीतं पुष्पमेककम्॥ २८

ऐसा कहकर उसने शिव तथा अग्निको प्रणाम करके तथा उनकी प्रार्थनाकर एक पुष्प उठा लिया॥ २८॥

स्वामिना चिंतितं यच्च तद् गृहीतं तया न हि।
सुदेहया विमोहेन शिवेच्छासंभवेन वै॥ २९

शिवेच्छावश मोहसे ग्रस्त होनेके कारण सुदेहाने उस पुष्पको नहीं उठाया, जिसे उसके पतिने सोचा था॥ २९॥

तद् दृष्ट्वा पुरुषश्चैव निःश्वासं पर्यमोचयत्।
स्मृत्वा शिवपदांभोजमुवाच निजकामिनीम्॥ ३०

यह देखकर ब्राह्मणने लम्बी साँस ली और शिवजीके चरण-कमलका स्मरण करके अपनी स्त्रीसे कहा— ॥ ३०॥

सुधर्मोवाच

निर्मितं चेश्वरेणैव कथं चैवान्यथा भवेत्।
आशां त्यज प्रिये त्वं च परिचर्यां कुरु प्रभोः॥ ३१

सुधर्मा बोला—हे प्रिये! ईश्वरने जो रच दिया, है, वह अन्यथा कैसे हो सकता है, अब तुम पुत्रकी आशा छोड़ो और शिवकी परिचर्या करो॥ ३१॥

इत्युक्त्वा तु स्वयं विप्र आशां परिविहाय च।
धर्मकार्यरतः सोऽभूच्छंकरध्यानतत्परः॥ ३२

सा सुदेहाग्रहं नैव मुमोचात्मजकाम्यया।
प्रत्युवाच पतिं प्रेम्णा साञ्जलिर्नतमस्तका॥ ३३

ऐसा कहकर उस ब्राह्मणने स्वयं भी पुत्रकी आशा त्याग दी और शिवध्यानपरायण होकर धर्मकार्यमें प्रवृत्त हो गया, परंतु उस सुदेहाने आग्रह नहीं छोड़ा और पुत्रकामनासे उसने सिर झुकाकर तथा हाथ जोड़कर प्रेमपूर्वक पतिसे [फिर] कहा— ॥ ३२-३३॥

सुदेहोवाच

मयि पुत्रो न चास्त्वन्यां पत्नीं कुरु मदाज्ञया।
तस्यां नूनं सुतश्चैव भविष्यति न संशयः॥ ३४

सुदेहा बोली—हे स्वामिन्! मुझसे पुत्र उत्पन्न नहीं होगा, तो आप मेरे आग्रहसे दूसरा विवाह कर लीजिये, उस स्त्रीसे आपको निश्चय ही पुत्र होगा, इसमें संशय नहीं है॥ ३४॥

सूत उवाच

तदैव प्रार्थितो वै स ब्राह्मणः शैवसत्तमः।
उवाच स्वप्रियां तां च सुदेहां धर्मतत्परः॥ ३५

सूतजी बोले—उसके द्वारा इस प्रकार प्रार्थना किये जानेपर शिवभक्तोंमें श्रेष्ठ तथा धर्मपरायण उस ब्राह्मणने अपनी पत्नी उस सुदेहासे कहा— ॥ ३५॥

सुधर्मोवाच

त्वदीयं च मदीयं च सर्वं दुःखं गतं ध्रुवम्।
तस्मात्त्वं धर्मविघ्नं च प्रिये मा कुरु सांप्रतम्॥ ३६

सुधर्मा बोला—हे प्रिये! तुम्हारा तथा मेरा समस्त दुःख निश्चित रूपसे दूर हो गया है, इसलिये तुम अब मेरे धर्ममें विघ्न मत करो॥ ३६॥

सूत उवाच

इत्येवं वारिता सा च स्वमातुः पुत्रिकां तदा।
गृहमानीय भर्तारं वृणु त्वेनामिदं जगौ॥ ३७

सूतजी बोले—[हे ऋषियो!] तब इस प्रकार ब्राह्मणके द्वारा मना किये जानेपर भी सुदेहाने अपनी माताकी पुत्री अर्थात् अपनी बहनको घर लाकर पतिसे कहा—आप इससे विवाह कर लें॥ ३७॥

सुधर्मोवाच

इदानीं वदसि त्वं च मत्प्रियेयं ततः पुनः।
पुत्रसूश्च यदा स्याद्वै तदा स्पर्धां करिष्यसि॥ ३८

सुधर्मा बोला—इस समय तो तुम कह रही हो कि यह मेरी पत्नी है, किंतु जब यह पुत्र उत्पन्न कर लेगी, तब तुम इससे ईर्ष्या करने लगोगी॥ ३८॥

सूत उवाच

इत्युक्ता तेन पतिना सा सुदेहा च तत्प्रिया।
पुनः प्राह करौ बद्ध्वा सुधर्माणं पतिं द्विजाः॥ ३९

सूतजी बोले—हे द्विजो! अपने पतिद्वारा इस प्रकार कहे जानेपर उसकी पत्नी सुदेहाने हाथ जोड़कर पुनः अपने पति सुधर्मासे कहा— ॥ ३९॥

नाहं स्पर्धां भगिन्या वै करिष्ये द्विजसत्तम।
उपयच्छस्व पुत्रार्थमिमामाज्ञापयामि च॥ ४०

हे द्विजश्रेष्ठ! मैं अपनी बहनसे कभी ईर्ष्या नहीं करूँगी, आप पुत्रोत्पत्तिके निमित्त इसके साथ विवाह कीजिये, मैं अनुमति देती हूँ॥ ४०॥

इत्येवं प्रार्थितः सोऽपि सुधर्मा प्रियया तया।
घुश्मां तां समुपायंस्त विवाहविधिना द्विजः॥ ४१

इस प्रकार अपनी प्रिया सुदेहाके द्वारा प्रार्थना किये जानेपर उस ब्राह्मण सुधर्माने भी विवाहविधिके अनुसार घुश्माका पाणिग्रहण कर लिया॥ ४१॥

ततस्तां परिणीयाथ प्रार्थयामास तां द्विजः।
त्वदीयेयं कनिष्ठा हि सदा पोष्याऽनघे प्रिये॥ ४२

इसके बाद उसके साथ विवाह करके उस ब्राह्मणने अपनी पहली पत्नीसे कहा—हे प्रिये! हे अनघे! यह तुम्हारी छोटी बहन है, अतः तुम्हें इसका सदा भरण-पोषण करना चाहिये॥ ४२॥

उक्त्वैवं स च धर्मात्मा सुधर्मा शैवसत्तमः।
यथायोग्यं चकाराशु धर्मसंग्रहमात्मनः॥ ४३

इस प्रकार कहकर वह शिवभक्त धर्मात्मा सुधर्मा यथायोग्य अपने धर्मका पालन करने लगा॥ ४३॥

सा चापि मातृपुत्रीं तां सखीवत्पर्यवर्त्तत।
परित्यज्य विरोधं हि पुपोषाहर्निशं प्रिया॥ ४४

वह भी अपनी बहनके साथ सखीकी भाँति व्यवहार करने लगी और विरोधभावका त्याग करके और रात-दिन उसका पालन-पोषण करने लगी॥ ४४॥

कनिष्ठा चैव या पत्नी स्वस्त्रनुज्ञामवाप्य च।
पार्थिवान्सा चकाराशु नित्यमेकोत्तरं शतम्॥ ४५
विधानपूर्वकं घुश्मा सोपचारसमन्वितम्।
कृत्वा तान्प्राक्षिपत्तत्र तडागे निकटस्थिते॥ ४६

उसकी जो छोटी पत्नी थी, वह अपनी बहनकी आज्ञा प्राप्तकर नित्य एक सौ एक पार्थिव शिवलिंगोंका निर्माण करती थी, फिर वह घुश्मा विधिपूर्वक षोडशोपचारसे पूजनकर पासमें स्थित तालाबमें उन्हें विसर्जित कर देती थी॥ ४५-४६॥

एवं नित्यं सा चकार शिवपूजां स्वकामदाम्।
विसृज्य पुनरावाह्य तत्सपर्य्याविधानतः॥ ४७

इस प्रकार वह नित्य शिवलिंगका विसर्जनकर पुनः दूसरे दिन पार्थिव शिवलिंगका निर्माणकर आवाहनसे लेकर विसर्जनतक कामना पूर्ण करनेवाली शिवपूजा विधिपूर्वक करती थी॥ ४७॥

कुर्वन्त्या नित्यमेवं हि तस्याः शंकरपूजनम्।
लक्षसंख्याभवत्पूर्णा सर्वकामफलप्रदा॥ ४८

इस प्रकार नित्य शिवपूजन करते हुए उसकी सभी कामनाओंका फल प्रदान करनेवाली एक लाख पार्थिव-संख्या पूरी हुई॥ ४८॥

कृपया शंकरस्यैव तस्याः पुत्रो व्यजायत।
सुन्दरः सुभगश्चैव कल्याणगुणभाजनः॥ ४९

उसके अनन्तर शिवजीकी कृपासे उसे सुन्दर, भाग्यवान् और सभी कल्याणकारी गुणोंका पात्र पुत्र उत्पन्न हुआ॥ ४९॥

तं दृष्ट्वा परमप्रीतः स विप्रो धर्मवित्तमः।
अनासक्तः सुखं भेजे ज्ञानधर्मपरायणः॥ ५०

धर्मज्ञोंमें श्रेष्ठ वह विप्र सुधर्मा उस पुत्रको देखकर बहुत प्रसन्न हुआ और ज्ञानधर्मपरायण तथा आसक्तिरहित होकर सुखका उपभोग करने लगा॥ ५०॥

सुदेहा तावदस्यास्तु स्पर्धामुग्रां चकार सा।
प्रथमं शीतलं तस्या हृदयं ह्यसिवत्पुनः॥ ५१

उसके बादसे वह सुदेहा उससे अत्यधिक ईर्ष्या करने लगी, पहले उसका जो हृदय शीतल था, वही अब तलवारके समान हो गया॥ ५१॥

ततः परं च यज्जातं कुत्सितं कर्म दुःखदम्।
सावधानेन मनसा श्रूयतां तन्मुनीश्वराः॥ ५२

हे मुनीश्वरो! उसके बाद जो दुःखदायी एवं निन्दित कर्म हुआ, उसे आपलोग सावधान मनसे सुनिये॥ ५२॥

इति श्रीशिवमहापुराणे चतुर्थ्यां कोटिरुद्रसंहितायां घुश्मेश्वरमाहात्म्ये सुदेहासुधर्माचरितवर्णनं नाम द्वात्रिंशोऽध्यायः॥ ३२॥

॥ इस प्रकार श्रीशिवमहापुराणके अन्तर्गत चतुर्थ कोटिरुद्रसंहिताके घुश्मेश्वरमाहात्म्यमें सुदेहासुधर्माचरितवर्णन नामक बत्तीसवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ ३२॥

अथ त्रयस्त्रिंशोऽध्यायः

घुश्मेश्वर ज्योतिर्लिंग एवं शिवालयके नामकरणका आख्यान

सूत उवाच

पुत्रं दृष्ट्वा कनिष्ठाया ज्येष्ठा दुःखमुपागता।
विरोधं सा चकाराशु न सहंती च तत्सुखम्॥ १

सूतजी बोले—अपनी छोटी बहनके पुत्रको देखकर बड़ी बहन दुखी हुई और वह उसके पुत्रसुखको सहन न करती हुई उससे विरोध करने लगी॥ १॥

सर्वे पुत्रप्रसूतिं तां प्रशशंसुर्निरन्तरम्।
तया तत्सह्यते न स्म शिशो रूपादिकं तथा॥ २

सब लोग उस पुत्रवतीकी निरन्तर प्रशंसा करते थे, किंतु सुदेहाको यह सब तथा शिशुका रूप आदि सहन नहीं होता था॥ २॥

सुप्रियं तनयं तं च पित्रोः सद्गुणभाजनम्।
दृष्ट्वाभवत्तदा तस्या हृदयं तप्तमग्निवत्॥ ३

माता-पिताके अत्यन्त प्रिय तथा सद्गुणोंके पात्र उस पुत्रको देखकर उसका हृदय अग्निके समान तप्त हो जाता था॥ ३॥

एतस्मिन्नन्तरे विप्राः कन्यां दातुं समागताः।
विवाहं तस्य तत्रैव चकार विधिवच्च सः॥ ४

इसी बीच कुछ विप्र कन्या देनेके लिये आये और सुधर्माने विधिपूर्वक उस [अपने पुत्र]-का विवाह वहीं सम्पन्न कर दिया॥ ४॥

सुधर्मा घुश्मया सार्धमानन्दं परं गतः।
सर्वे संबन्धिनस्तस्यां घुश्मायां मानमादधुः॥ ५

तं दृष्ट्वा सा सुदेहा हि मनसि ज्वलिता तदा।
अत्यन्तं दुःखमापन्ना हा हतास्मीति वादिनी॥ ६

सुधर्मा [अपनी छोटी स्त्री] घुश्माके साथ परम आनन्दको प्राप्त हुआ और सभी सम्बन्धी उस घुश्माका सम्मान करने लगे। उसे देखकर सुदेहा मन-ही-मन जलने लगी और 'हाय मैं मारी गयी'—ऐसा कहती हुई बहुत दुखी हुई॥ ५-६॥

सुधर्मा गृहमागत्य वधूं पुत्रं विवाहितम्।
उत्साहं दर्शयामास प्रियाभ्यां हर्षयन्निव॥ ७

सुधर्मा अपने विवाहित पुत्र तथा पुत्रवधूको लेकर घर आकर अपनी दोनों स्त्रियोंके साथ हर्षित होते हुए उत्साह प्रदर्शित करने लगा॥ ७॥

अभवद् हर्षिता घुश्मा सुदेहा दुःखमागता।
न सहन्ती सुखं तच्च दुःखं कृत्वापतद्भुवि॥ ८

इससे घुश्मा तो आनन्दित हुई, पर सुदेहा दुःखित हो गयी। वह उस सुखको सहन न करती हुई दुखी हो पृथ्वीपर गिर पड़ी॥ ८॥

घुश्मावदद्वधूपुत्रौ त्वदीयौ न मदीयकौ।
वधूः पुत्रश्च तां प्रीत्या प्रसूं श्वश्रूममन्यत॥ ९

तब घुश्माने कहा—ये पुत्र तथा पुत्रवधू तुम्हारे ही हैं, मेरे नहीं। पुत्र तथा बहू—ये दोनों भी उसे अपनी माता तथा सास ही मानते थे॥ ९॥

भर्ता प्रियां तां ज्येष्ठां च मेने नैव कनिष्ठिकाम्।
तथापि सा तदा ज्येष्ठा स्वान्तर्मलवती ह्यभूत्॥ १०

पति [सुधर्मा] भी अपनी ज्येष्ठ स्त्रीका जैसा आदर करता था, वैसा कनिष्ठाका नहीं। फिर भी वह ज्येष्ठ पत्नी अपने मनमें कपट रखती थी॥ १०॥

एकस्मिन्दिवसे ज्येष्ठा सा सुदेहा च दुःखिनी।
हृदये संचिचिन्तेति दुःखशांतिः कथं भवेत्॥ ११

एक दिन ज्येष्ठा सुदेहाने दुखी होकर अपने मनमें विचार किया कि मेरे इस दुःखकी शान्ति कैसे हो?॥ ११॥

सुदेहोवाच

मदीयो हृदयाग्निश्च घुश्मानेत्रजलेन वै।
भविष्यति ध्रुवं शान्तो नान्यथा दुःखजेन हि॥ १२
अतोऽहं मारयाम्यद्य तत्पुत्रं प्रियवादिनम्।
अग्रे भावि भवेदेवं निश्चयः परमो मम॥ १३

सुदेहा [मन-ही-मन] बोली—मेरे हृदयकी अग्नि घुश्माके दुःखजनित आँसुओंसे ही शान्त होगी, अन्य किसी प्रकार नहीं, यह निश्चित है॥ १२॥

इसलिये मैं आज ही मधुर भाषण करनेवाले उसके पुत्रको मार डालूँगी, यह मेरा दृढ़ निश्चय है, आगे जो होनहार होगा, वह तो होकर ही रहेगा॥ १३॥

सूत उवाच

कदर्याणां विचारश्च कृत्याकृत्ये भवेन्नहि।
कठोरः प्रायशो विप्राः सापत्नो भाव आत्महा॥ १४

सूतजी बोले—हे ब्राह्मणो! कपटी मनुष्यको कर्तव्य-अकर्तव्यका विचार नहीं रहता, कठोर सौतियाडाहका भाव प्रायः अपना ही विनाश कर देता है॥ १४॥

एकस्मिन्दिवसे ज्येष्ठा सुप्तं पुत्रं वधूयुतम्।
चिच्छिदे निशि चांगेषु गृहीत्वा छुरिकां च सा॥ १५

सर्वाङ्गं खण्डयामास रात्रौ घुश्मासुतस्य सा।
नीत्वा सरसि तत्रैवाक्षिपद् दृप्ता महाबला॥ १६

यत्र क्षिप्तानि लिंगानि घुश्मया नित्यमेव हि।
तत्र क्षिप्त्वा समायाता सुष्वाप सुखमागता॥ १७

एक दिन सुधर्माकी ज्येष्ठ पत्नीने छुरी लेकर रातमें वधूके साथ सोये हुए पुत्रके अंगोंको खण्ड-खण्ड काट डाला। इस प्रकार उस घमण्डी तथा महाबलाने घुश्माके पुत्रके सभी अंगोंको खण्ड-खण्ड कर दिया और रात्रिमें ही ले जाकर तालाबमें उसी स्थानपर फेंक दिया, जहाँ घुश्मा नित्य पार्थिव शिवलिंगोंको विसर्जित किया करती थी। इस प्रकार वहाँपर फेंककर लौट आयी और सुखपूर्वक सो गयी॥ १५—१७॥

प्रातश्चैव समुत्थाय घुश्मा नित्यं तथाकरोत्।
सुधर्मा च स्वयं श्रेष्ठो नित्यकर्म समाचरत्॥ १८

प्रातःकाल होनेपर घुश्मा नित्यकर्म करने लगी तथा श्रेष्ठ सुधर्मा भी स्वयं नित्यकर्म सम्पादन करने लगा॥ १८॥

एतस्मिन्नन्तरे सा च ज्येष्ठा कार्यं गृहस्य वै।
चकारानन्दसंयुक्ता सुशांतहृदयानला॥ १९

इसी बीच ज्येष्ठा सुदेहा, जिसके हृदयकी अग्नि शान्त हो चुकी थी, अत्यन्त आनन्दयुक्त होकर गृहकार्य करने लगी॥ १९॥

प्रातःकाले समुत्थाय वधूः शय्यां विलोक्य सा।
रुधिरार्द्रां देहखंडैर्युक्तां दुःखमुपागता॥ २०

श्वश्रूं निवेदयामास पुत्रस्ते च कुतो गतः।
शय्या च रुधिरार्द्रा वै दृश्यंते देहखंडकाः॥ २१

प्रातःकाल होनेपर उठ करके वह वधू खूनसे लथपथ तथा पतिके शरीरके टुकड़ोंसे युक्त शय्याको देखकर बहुत दुखी हुई और उसने अपनी साससे कहा—आपके पुत्र कहाँ गये? शय्या रुधिरसे लथपथ है तथा वहाँ शरीरके टुकड़े-टुकड़े दिखायी पड़ रहे हैं॥ २०-२१॥

हा हतास्मि कृतं केन दुष्टं कर्म शुचिव्रते।
इत्युच्चार्य रुरोदाति विविधं तत्प्रिया च सा॥ २२

ज्येष्ठा दुःखं तदापन्ना हा हतास्मि किलेति च।
बहिर्दुःखं चकारासौ मनसा हर्षसंयुता॥ २३

हे शुचिव्रते! मैं तो मारी गयी, किसने यह दुष्टकर्म किया है—ऐसा कहकर उसकी पत्नी अत्यधिक विलाप करने लगी। तब ज्येष्ठा सुदेहा भी बाहरसे दुःख प्रकट करने लगी और भीतरसे प्रसन्न हुई। वह दुःखित होकर बोली—हाय! मैं तो निश्चय ही मर गयी॥ २२-२३॥

घुश्मा चापि तदा तस्या वध्वा दुःखं निशम्य सा।
न चचाल व्रतात्तस्मान्नित्यपार्थिवपूजनात्॥ २४

वह घुश्मा अपनी पुत्रवधूके दुःखको सुनकर भी नित्य पार्थिवपूजनरूप व्रतसे विचलित नहीं हुई॥ २४॥

मनश्चैवोत्सुकं नैव जातं तस्या मनागपि।
भर्तापि च तथैवासीद्यावद् व्रतविधिर्भवेत्॥ २५

उसका मन [पुत्रशोकसे] थोड़ा भी उत्कण्ठित नहीं हुआ और उसका पति भी जबतक व्रतविधि समाप्त नहीं हुई, तबतक वैसा ही रहा॥ २५॥

मध्याह्ने पूजनांते च दृष्ट्वा शय्यां भयावहाम्।
तथापि न तदा किञ्चित्कृतं दुःखं हि घुश्मया॥ २६

पूजनके बाद मध्याह्नकालमें उस भयानक शय्याको देखकर भी उस घुश्माने कुछ भी दुःख नहीं किया॥ २६॥

येनैव चार्पितश्चायं स वै रक्षां करिष्यति।
भक्तप्रियः स विख्यातः कालकालः सतां गतिः॥ २७

जिन्होंने यह पुत्र दिया है, वे ही रक्षा भी करेंगे; वे भक्तवत्सल, कालके भी काल और सज्जनोंकी रक्षा करनेवाले कहे गये हैं॥ २७॥

यदि नो रक्षिता शंभुरीश्वरः प्रभुरेकलः।
मालाकार इवासौ यान्युङ्क्ते तान्वियुनक्ति च॥ २८

यदि हमारी रक्षा करनेवाले एकमात्र प्रभु ईश्वर सदाशिव हैं, तो चिन्ताकी बात ही क्या है? वे ही मालीके समान उन प्राणियोंका संयोग कराते हैं और पुनः उन्हें अलग भी कर देते हैं॥ २८॥

अद्य मे चिन्तया किं स्यादिति तत्त्वं विचार्य सा।
न चकार तदा दुःखं शिवे धैर्यं समागता॥ २९

इस समय मेरे चिन्ता करनेसे भी क्या होनेवाला है, इस तत्त्वका विचारकर वह दुखी नहीं हुई और शिवजीका ध्यानकर धैर्य धारण किये रही॥ २९॥

पार्थिवांश्च गृहीत्वा सा पूर्ववत्स्वस्थमानसा।
शंभोर्नामान्युच्चरन्ती जगाम सरसस्तटे॥ ३०

क्षिप्त्वा च पार्थिवांस्तत्र परावर्तत सा यदा।
तदा पुत्रस्तडागस्थो दृश्यते स्म तटे तया॥ ३१

स्थिरचित्त होकर पूर्वकी भाँति पार्थिव शिवलिंगोंको लेकर शिवके नामोंका उच्चारण करती हुई वह सरोवरके तटपर गयी। जब वहाँ पार्थिव लिंगोंको डालकर वह लौटने लगी, तब उसने सरोवरके तटपर खड़े अपने पुत्रको देखा॥ ३०-३१॥

पुत्र उवाच

मातरेहि मिलिष्यामि मृतोऽहं जीवितोऽधुना।
तव पुण्यप्रभावाद्धि कृपया शंकरस्य वै॥ ३२

पुत्र बोला—हे माता! आओ, मैं तुमसे मिलूँगा, मैं तो मर गया था, किंतु तुम्हारे पुण्यके प्रभावसे और शंकरजीकी कृपासे अब जीवित हो गया हूँ॥ ३२॥

सूत उवाच

जीवितं तं सुतं दृष्ट्वा घुश्मा सा तत्प्रसूर्द्विजाः।
प्रहृष्टा नाभवत्तत्र दुःखिता न यथा पुरा॥ ३३

सूतजी बोले—हे द्विजो! वह घुश्मा अपने उस पुत्रको जीवित देखकर भी वैसे ही अधिक प्रसन्न न हुई, जैसा कि उसके मरनेपर दुखी न थी, किंतु यथावत् शिवजीके ध्यानमें तत्पर रही॥ ३३॥

एतस्मिन्समये तत्र स्वाविरासीच्छिवो द्रुतम्।
ज्योतीरूपो महेशश्च संतुष्टः प्रत्युवाच ह॥ ३४

इसी समय वहाँ सन्तुष्ट हुए ज्योतिःस्वरूप सदाशिव शीघ्र प्रकट हो गये और उससे कहने लगे— ॥ ३४ ॥

शिव उवाच

प्रसन्नोऽस्मि वरं ब्रूहि दुष्टया मारितो ह्ययम्।
एनां च मारयिष्यामि त्रिशूलेन वरानने॥ ३५

शिवजी बोले—हे वरानने! मैं प्रसन्न हूँ, तुम वर माँगो, उस दुष्टाने इसे मारा था, अब मैं अपने त्रिशूलसे उसे मारूँगा॥ ३५॥

सूत उवाच

घुश्मा तदा वरं वव्रे सुप्रणम्य शिवं नता।
रक्षणीया त्वया नाथ सुदेहेयं स्वसा मम॥ ३६

सूतजी बोले—तब विनत हुई घुश्माने शिवजीको प्रणामकर यह वर माँगा—हे नाथ! आप मेरी इस बहन सुदेहाकी रक्षा कीजिये॥ ३६॥

शिव उवाच

अपकारः कृतस्तस्यामुपकारः कथं त्वया।
क्रियते हननीया च सुदेहा दुष्टकारिणी॥ ३७

शिवजी बोले—उसने तो अपकार किया है, फिर भी तुम उसका उपकार क्यों कर रही हो? दुष्टकर्म करनेवाली सुदेहा तो वधके योग्य है॥ ३७॥

घुश्मोवाच

तव दर्शनमात्रेण पातकं नैव तिष्ठति।
इदानीं त्वां च वै दृष्ट्वा तत्पापं भस्मतां व्रजेत्॥ ३८

घुश्मा बोली—[हे प्रभो!] आपके दर्शनमात्रसे पाप नहीं रह जाता है, इसलिये आपका दर्शन करते ही उसके सभी पाप दूर हो गये॥ ३८॥

अपकारेषु यश्चैव ह्युपकारं करोति च।
तस्य दर्शनमात्रेण पापं दूरतरं व्रजेत्॥ ३९

इति श्रुतं मया देव भगवद्वाक्यमद्भुतम्।
तस्माच्चैवं कृतं येन क्रियतां च सदाशिव॥ ४०

जो पुरुष अपकार करनेवालोंके प्रति उपकार करता है, उसके दर्शनमात्रसे ही पाप दूर भाग जाते हैं। हे देव! मैंने भगवान्‌का ऐसा अद्भुत वाक्य सुना है, इसलिये हे सदाशिव! जिसने जैसा किया है, वह वैसा करे॥ ३९-४०॥

सूत उवाच

इत्युक्तस्तु तया तत्र प्रसन्नोऽत्यभवत्पुनः।
महेश्वरः कृपासिंधुः तामूचे भक्तवत्सलः॥ ४१

सूतजी बोले—उसके द्वारा इस प्रकार कहे जानेपर भक्तवत्सल कृपासिन्धु महेश्वर अतीव प्रसन्न हो गये और उन्होंने पुनः कहा— ॥ ४१॥

शिव उवाच

अन्यद्वरं ब्रूहि घुश्मे ददामि च हितं तव।
त्वद्भक्त्या सुप्रसन्नोऽस्मि निर्विकारस्वभावतः॥ ४२

शिवजी बोले—हे घुश्मे! अब तुम कोई अन्य वर माँगो, मैं दूँगा। मैं तुम्हारी भक्तिसे तथा निर्विकार स्वभावसे अत्यन्त प्रसन्न हूँ, इसलिये तुम्हारा हित करना चाहता हूँ॥ ४२॥

सूत उवाच

सोवाच तद्वचः श्रुत्वा यदि देवो वरस्त्वया।
लोकानां चैव रक्षार्थमत्र स्थेयं मदाख्यया॥ ४३

सूतजी बोले—उनका वचन सुनकर उसने कहा—यदि आप मुझे वर देना ही चाहते हैं, तो आप संसारकी रक्षाके निमित्त मेरे नामसे यहींपर स्थित हो जाइये॥ ४३॥

तदोवाच शिवस्तत्र सुप्रसन्नो महेश्वरः।
स्थास्येऽत्र तव नाम्नाहं घुश्मेशाख्यः सुखप्रदः॥ ४४

तब अत्यन्त प्रसन्न हुए महेश्वर शिवजी बोले—हे घुश्मे! मैं तुम्हारे नामसे घुश्मेश्वरके रूपमें प्रसिद्ध होकर यहाँ निवास करूँगा और सबको सुख प्रदान करूँगा॥ ४४॥

घुश्मेशाख्यं सुप्रसिद्धं लिंगं मे जायतां शुभम्।
इदं सरस्तु लिंगानामालयं जायतां सदा॥ ४५

तस्माच्छिवालयं नाम प्रसिद्धं भुवनत्रये।
सर्वकामप्रदं ह्येतद्दर्शनात्स्यात्सदा सरः॥ ४६

यहाँपर मेरा घुश्मेश्वर नामक शुभ ज्योतिर्लिंग प्रसिद्ध होगा और यह सरोवर सदा सभी लिंगोंका निवासस्थान होगा। इसलिये यह शिवालय नामसे तीनों लोकोंमें प्रसिद्ध होगा। यह सरोवर दर्शनमात्रसे सदा सभी कामनाओंको पूर्ण करनेवाला होगा॥ ४५-४६॥

तव वंशे शतं चैकं पुरुषावधि सुव्रते।
ईदृशाः पुत्रकाः श्रेष्ठा भविष्यन्ति न संशयः॥ ४७
सुस्त्रीकाः सुधनाश्चैव स्वायुष्याश्च विचक्षणाः।
विद्यावंतो ह्युदाराश्च भुक्तिमुक्तिफलाप्तये॥ ४८
शतमेकोत्तरं चैव भविष्यन्ति गुणाधिकाः।
ईदृशो वंशविस्तारो भविष्यति सुशोभनः॥ ४९

हे सुव्रते! तुम्हारे वंशमें एक सौ एक पीढ़ीपर्यन्त इसी प्रकारके श्रेष्ठ पुत्र होते रहेंगे, इसमें सन्देह नहीं है, वे सुन्दर स्त्रीवाले, महाधनी, दीर्घजीवी, मेधावी, विद्वान्, उदार तथा भोग-मोक्षके फलको प्राप्त करनेवाले होंगे। इन सबको एक सौ एक पुत्र होंगे, जो गुणोंमें परस्पर एक-से-एक अधिक होंगे। इस प्रकार तुम्हारे वंशका अति सुन्दर विस्तार होगा॥ ४७—४९॥

सूत उवाच

इत्युक्त्वा च शिवस्तत्र लिंगरूपोऽभवत्तदा।
घुश्मेशो नाम विख्यातः सरश्चैव शिवालयम्॥ ५०

सूतजी बोले—ऐसा कहकर शिवजी वहाँ ज्योतिर्लिंगरूपसे स्थित हो गये। वे घुश्मेश्वर नामसे विख्यात हुए और वह सरोवर शिवालय नामसे विख्यात हुआ॥ ५०॥

सुधर्मा स च घुश्मा च सुदेहा च समागताः।
प्रदक्षिणं शिवस्याशु शतमेकोत्तरं दधुः॥ ५१
पूजां कृत्वा महेशस्य मिलित्वा च परस्परम्।
हित्वा चान्तर्मलं तत्र लेभिरे परमं सुखम्॥ ५२

उस समय वहाँपर आये हुए सुधर्मा, सुदेहा और घुश्माने बड़ी शीघ्रतासे शिवजीकी एक सौ एक बार परिक्रमा की। शिवजीकी पूजा करके परस्पर मिलकर तथा अपने अन्तःकरणका पाप दूरकर उन्होंने परम सुख प्राप्त किया॥ ५१-५२॥

पुत्रं दृष्ट्वा सुदेहा सा जीवितं लज्जिताभवत्।
तौ क्षमाप्याचरद्विप्रा निजपापापहं व्रतम्॥ ५३

हे विप्रो! पुत्रको जीवित देखकर वह सुदेहा लज्जित हो गयी और उसने उन दोनोंसे क्षमा माँगकर अपने पापोंको दूर करनेवाले व्रतका आचरण किया॥ ५३॥

घुश्मेशाख्यमिदं लिंगमित्थं जातं मुनीश्वराः।
तद् दृष्ट्वा पूजयित्वा हि सुखं संवर्धते सदा॥ ५४
इति वश्च समाख्याता ज्योतिर्लिंगावली मया।
द्वादशप्रमिता सर्वकामदा भुक्तिमुक्तिदा॥ ५५

हे मुनीश्वरो! इस प्रकार घुश्मेश्वर नामक यह लिंग उत्पन्न हुआ, उसका पूजन तथा दर्शन करनेसे सुखकी सदा वृद्धि होती है। इस प्रकार मैंने आपलोगोंसे बारह ज्योतिर्लिंगोंका वर्णन किया, जो सभी कामनाओंको पूर्ण करनेवाले और भोग तथा मोक्ष देनेवाले हैं॥ ५४-५५॥

एतज्ज्योतिर्लिंगकथां यः पठेच्छृणुयादपि।
मुच्यते सर्वपापेभ्यो भुक्तिं मुक्तिं च विन्दति॥ ५६

जो इन ज्योतिर्लिंगोंकी कथाओंको पढ़ता और सुनता है, वह सभी पापोंसे मुक्त हो जाता है और भोग तथा मोक्ष प्राप्त करता है॥ ५६॥

इति श्रीशिवमहापुराणे चतुर्थ्यां कोटिरुद्रसंहितायां घुश्मेशज्योतिर्लिंगोत्पत्तिमाहात्म्यवर्णनं नाम त्रयस्त्रिंशोऽध्यायः॥ ३३॥

॥ इस प्रकार श्रीशिवमहापुराणके अन्तर्गत चतुर्थ कोटिरुद्रसंहितामें घुश्मेशज्योतिर्लिंगोत्पत्ति-माहात्म्यवर्णन नामक तैंतीसवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ ३३॥

अथ चतुस्त्रिंशोऽध्यायः

हरीश्वरलिंगका माहात्म्य और भगवान् विष्णुके सुदर्शनचक्र प्राप्त करनेकी कथा

व्यास उवाच

इति श्रुत्वा वचस्तस्य सूतस्य च मुनीश्वराः।
समूचुस्तं सुप्रशस्य लोकानां हितकाम्यया॥ १

व्यासजी बोले—उन सूतजीका यह वचन सुनकर सभी मुनीश्वरोंने उनकी प्रशंसा करके लोकहितकी कामनासे कहा—॥ १॥

ऋषय ऊचुः

सूत सर्वं विजानासि ततः पृच्छामहे वयम्।
हरीश्वरस्य लिंगस्य महिमानं वद प्रभो॥ २

चक्रं सुदर्शनं प्राप्तं विष्णुनेति श्रुतं पुरा।
तदाराधनतस्तात तत्कथां च विशेषतः॥ ३

सूत उवाच

श्रूयतां च ऋषिश्रेष्ठा हरीश्वरकथा शुभा।
यतः सुदर्शनं लब्धं विष्णुना शंकरात्पुरा॥ ४

कस्मिंश्चित्समये दैत्याः संजाता बलवत्तराः।
लोकांस्ते पीडयामासुर्धर्मलोपं च चक्रिरे॥ ५

ते देवाः पीडिता दैत्यैर्महाबलपराक्रमैः।
स्वं दुःखं कथयामासुर्विष्णुं निर्जररक्षकम्॥ ६

देवा ऊचुः

कृपां कुरु प्रभो त्वं च दैत्यैः संपीडिता भृशम्।
कुत्र यामश्च किं कुर्मः शरण्यं त्वां समाश्रिताः॥ ७

सूत उवाच

इत्येवं वचनं श्रुत्वा देवानां दुःखितात्मनाम्।
स्मृत्वा शिवपदांभोजं विष्णुर्वचनमब्रवीत्॥ ८

विष्णुरुवाच

करिष्यामि च वः कार्यमाराध्य गिरिशं सुराः।
बलिष्ठाः शत्रवो ह्येते विजेतव्याः प्रयत्नतः॥ ९

सूत उवाच

इत्युक्तास्ते सुराः सर्वे विष्णुना प्रभविष्णुना।
मत्वा दैत्यान्हतान्दुष्टान्ययुर्धाम स्वकं स्वकम्॥ १०

विष्णुरप्यमराणां तु जयार्थमभजच्छिवम्।
सर्वामराणामधिपं सर्वसाक्षिणमव्ययम्॥ ११

गत्वा कैलासनिकटे तपस्तेपे हरिः स्वयम्।
कृत्वा कुण्डं च संस्थाप्य जातवेदसमग्रतः॥ १२

पार्थिवेन विधानेन मंत्रैर्नानाविधैरपि।
स्तोत्रैश्चैवाप्यनेकैश्च गिरिशं चाभजन्मुदा॥ १३

कमलैः सरसो जातैर्मानसाख्यान्मुनीश्वराः।
बद्ध्वा चैवासनं तत्र न चचाल हरिः स्वयम्॥ १४

ऋषिगण बोले—हे सूतजी! आप सब कुछ जानते हैं, इसीलिये हमलोग पूछ रहे हैं। हे प्रभो! अब आप हरीश्वर लिंगका माहात्म्य कहिये। हमने सुना है कि पूर्वकालमें विष्णुने उनकी आराधनासे सुदर्शन चक्र प्राप्त किया था, इसलिये आप विशेष रूपसे उस कथाको कहिये॥ २-३॥

सूतजी बोले—हे श्रेष्ठ ऋषियो! अब आपलोग हरीश्वरकी शुभ कथा सुनिये, विष्णुने पूर्वकालमें शंकरजीसे सुदर्शनचक्र प्राप्त किया था। किसी समय दैत्य महाबलवान् हो गये। वे लोकोंको पीड़ित करने और धर्मका लोप करने लगे। उसके अनन्तर महान् बल तथा पराक्रमवाले दैत्योंसे पीड़ित हुए उन देवताओंने देवरक्षक विष्णुसे अपना दुःख निवेदन किया॥ ४—६॥

देवगण बोले—हे प्रभो! आप कृपा कीजिये, हमलोगोंको दैत्य अत्यन्त पीड़ा दे रहे हैं, हमलोग कहाँ जायँ, क्या करें, हमलोग आप शरणदाताके आश्रित हैं॥ ७॥

सूतजी बोले—[हे ऋषियो!] दुखी मनवाले देवताओंका वचन सुनकर विष्णुने शिवके चरणकमलोंका ध्यान करके यह वचन कहा—॥ ८॥

विष्णुजी बोले—हे देवताओ! मैं भगवान् शिवकी आराधनाकर आपलोगोंका कार्य करूँगा; क्योंकि ये शत्रु बड़े बलवान् हैं, इन्हें प्रयत्नपूर्वक जीतना चाहिये॥ ९॥

सूतजी बोले—[हे ऋषियो!] सर्वसामर्थ्यशाली विष्णुके इस प्रकार कहनेपर वे सभी देवता उन दुष्ट दैत्योंको हत मानकर अपने-अपने स्थानको चले गये। विष्णु भी देवताओंकी विजयके लिये सभी देवताओंके स्वामी, सर्वसाक्षी एवं अव्यय शिवकी आराधना करने लगे॥ १०-११॥

वे कैलासपर्वतके समीप जाकर स्वयं कुण्डका निर्माणकर उसमें अग्निस्थापनकर उसीके समक्ष तप करने लगे। हे मुनीश्वरो! वे पार्थिव-विधिके अनुसार अनेक प्रकारके मन्त्रों एवं अनेक प्रकारके स्तोत्रोंद्वारा मानसरोवरमें उत्पन्न हुए कमलोंसे प्रसन्नतापूर्वक शिवजीका पूजन करते रहे। वे हरि स्वयं आसन लगाकर स्थित रहे और विचलित नहीं हुए॥ १२—१४॥

प्रसादावधि चैवात्र स्थेयं वै सर्वथा मया।
इत्येवं निश्चयं कृत्वा समानर्च शिवं हरिः॥ १५

जबतक शिवजी प्रसन्न नहीं होंगे, तबतक मैं इसी प्रकारसे स्थिर रहूँगा—ऐसा निश्चयकर विष्णुने शिवका अर्चन किया॥ १५॥

यदा नैव हरस्तुष्टो बभूव हरये द्विजाः।
तदा स भगवान्विष्णुर्विचारे तत्परोऽभवत्॥ १६
विचार्यैवं स्वमनसि सेवनं बहुधा कृतम्।
तथापि न हरस्तुष्टो बभूवोतिकरः प्रभुः॥ १७

हे ब्राह्मणो! जब सदाशिव विष्णुपर प्रसन्न नहीं हुए, तब वे विष्णु विचार करने लगे। इस प्रकार अपने मनमें विचारकर वे नाना प्रकारसे भगवान् शिवकी सेवा करने लगे, फिर भी लीलाविशारद प्रभु सदाशिव प्रसन्न नहीं हुए॥ १६-१७॥

ततः सुविस्मितो विष्णुर्भक्त्या परमयान्वितः।
सहस्रैर्नामभिः प्रीत्या तुष्टाव परमेश्वरम्॥ १८
प्रत्येकं कमलं तस्मै नाममंत्रमुदीर्य च।
पूजयामास वै शंभुं शरणागतवत्सलम्॥ १९

इसके बाद विष्णु आश्चर्यचकित हो अत्यन्त उत्तम भक्तिसे युक्त होकर शिवके सहस्र नामोंसे प्रेमपूर्वक परमेश्वरकी स्तुति करने लगे। वे एक-एक नाममन्त्रका उच्चारणकर उन्हें एक-एक कमल अर्पित करते हुए शरणागतवत्सल शम्भुकी पूजा करने लगे॥ १८-१९॥

परीक्षार्थं विष्णुभक्तेस्तदा वै शंकरेण ह।
कमलानां सहस्रात्तु हृतमेकं च नीरजम्॥ २०
न ज्ञातं विष्णुना तच्च मायाकारणमद्भुतम्।
न्यूनं तच्चापि संज्ञाय तदन्वेषणतत्परः॥ २१

उस समय शिवने विष्णुकी भक्तिकी परीक्षाके लिये उन सहस्रकमलोंमेंसे एक कमलका अपहरण कर लिया। उस समय विष्णुको शिवकी मायासे हुए इस अद्भुत चरित्रका पता न चला। वे एक कमलको कम जानकर उसे ढूँढ़नेमें तत्पर हो गये॥ २०-२१॥

बभ्राम सकलां पृथ्वीं तत्प्रीत्यै सुदृढव्रतः।
तदप्राप्य विशुद्धात्मा नेत्रमेकमुदाहरत्॥ २२

तं दृष्ट्वा स प्रसन्नोऽभूच्छंकरः सर्वदुःखहा।
आविर्बभूव तत्रैव जगाद वचनं हरिम्॥ २३

अविचल व्रतधारी विष्णुने उस कमलको प्राप्त करनेके लिये सारी पृथ्वीका भ्रमण किया। परंतु उसके प्राप्त न होनेपर विशुद्ध आत्मावाले उन्होंने अपना एक नेत्र ही अर्पण कर दिया। तब यह देखकर सभी प्रकारके दुःखोंको दूर करनेवाले वे शंकर उनपर प्रसन्न हो गये, वे वहींपर प्रकट हो गये और विष्णुसे यह वचन कहने लगे—॥ २२-२३॥

शिव उवाच

प्रसन्नोऽस्मि हरे तुभ्यं वरं ब्रूहि यथेप्सितम्।
मनोऽभिलषितं दद्मि नादेयं विद्यते तव॥ २४

शिवजी बोले—हे विष्णो! मैं आपपर प्रसन्न हूँ, आप मनोवांछित वर माँगिये। मैं आपको मनोभिलषित वर दूँगा, आपके लिये मुझे कुछ भी अदेय नहीं है॥ २४॥

सूत उवाच

तच्छ्रुत्वा शंभुवचनं केशवः प्रीतमानसः।
महाहर्षसमापन्नो ह्यब्रवीत्साञ्जलिः शिवम्॥ २५

सूतजी बोले—शिवजीकी यह बात सुनकर प्रसन्नचित्त भगवान् विष्णु परम हर्षसे युक्त होकर हाथ जोड़कर शिवजीसे कहने लगे—॥ २५॥

विष्णुरुवाच

वाच्यं किं मे त्वदग्रे वै ह्यन्तर्यामी त्वमास्थितः।
तथापि कथ्यते नाथ तव शासनगौरवात्॥ २६
दैत्यैश्च पीडितं विश्वं सुखं नो नः सदाशिव।
दैत्यान् हन्तुं मम स्वामिन्स्वायुधं न प्रवर्तते॥ २७

विष्णुजी बोले—हे नाथ! आप तो सर्वान्तर्यामी हैं, अतः मैं आपके सामने अपना मनोरथ क्या कहूँ, फिर भी आपकी आज्ञासे कह रहा हूँ। हे सदाशिव! दैत्योंने सारे संसारको अत्यन्त पीड़ित कर दिया है, इसलिये हम देवताओंको सुख प्राप्त नहीं हो रहा है।

किं करोमि क्व गच्छामि नान्यो मे रक्षकः परः।
अतोऽहं परमेशान शरणं त्वां समागतः॥ २८

हे स्वामिन्! मेरा आयुध दैत्योंको मारनेमें समर्थ नहीं हो पा रहा है। अब मैं क्या करता, कहाँ जाता? आपके अतिरिक्त कोई दूसरा मेरा रक्षक नहीं है, इसलिये हे महेश्वर! मैं आपकी शरणमें आया हूँ॥ २६—२८॥

सूत उवाच

इत्युक्त्वा च नमस्कृत्य शिवाय परमात्मने।
स्थितश्चैवाग्रतः शंभोः स्वयं च पुरुपीडितः॥ २९

सूतजी बोले—ऐसा कहकर परमात्मा शिवको नमस्कारकर दैत्योंसे अत्यन्त पीड़ित हुए स्वयं विष्णुजी शिवजीके आगे खड़े हो गये॥ २९॥

इति श्रुत्वा वचो विष्णोर्देवदेवो महेश्वरः।
ददौ तस्मै स्वकं चक्रं तेजोराशिं सुदर्शनम्॥ ३०

विष्णुका यह वचन सुनकर देवाधिदेव महेश्वरने उन्हें अपना महातेजस्वी सुदर्शनचक्र प्रदान किया॥ ३०॥

तत्प्राप्य भगवान्विष्णुर्दैत्यांस्तान्बलवत्तरान्।
जघान तेन चक्रेण द्रुतं सर्वान्विना श्रमम्॥ ३१

जगत्स्वास्थ्यं परं लेभे बभूवुः सुखिनः सुराः।
सुप्रीतः स्वायुधं प्राप्य हरिरासीन्महासुखी॥ ३२

तब उसे प्राप्तकर भगवान् विष्णुने उस चक्रसे बिना परिश्रमके शीघ्र ही उन महाबली राक्षसोंको विनष्ट कर दिया। इस प्रकार संसारमें शान्ति हुई। देवता सुखी हुए और सुन्दर सुदर्शनचक्र प्राप्तकर अतिप्रसन्न विष्णु भी परम सुखी हो गये॥ ३१-३२॥

ऋषय ऊचुः

किं तन्नामसहस्त्रं वै कथय त्वं हि शांकरम्।
येन तुष्टो ददौ चक्रं हरये स महेश्वरः॥ ३३

तन्माहात्म्यं मम ब्रूहि शिवसंवादपूर्वकम्।
कृपालुत्वं च शंभोर्हि विष्णूपरि यथातथम्॥ ३४

ऋषिगण बोले—शंकरजीका वह सहस्रनाम कौन-सा है, जिससे सन्तुष्ट हो शिवजीने विष्णुको सुदर्शनचक्र प्रदान किया, उसे आप कहिये। शिवकी चर्चासे पूर्ण उसके माहात्म्यको आप मुझसे यथार्थरूपसे कहिये, जिसके कारण विष्णुके ऊपर शिवजी कृपालु हुए॥ ३३-३४॥

व्यास उवाच

इति तेषां वचः श्रुत्वा मुनीनां भावितात्मनाम्।
स्मृत्वा शिवपदांभोजं सूतो वचनमब्रवीत्॥ ३५

व्यासजी बोले—उदार चित्तवाले उन मुनियोंके इस वचनको सुनकर शिवजीके चरणकमलोंका ध्यान करके सूतजी यह वचन कहने लगे—॥ ३५॥

इति श्रीशिवमहापुराणे चतुर्थ्यां कोटिरुद्रसंहितायां विष्णुसुदर्शनचक्रलाभवर्णनं नाम चतुस्त्रिंशोऽध्यायः॥ ३४॥

॥ इस प्रकार श्रीशिवमहापुराणके अन्तर्गत चतुर्थ कोटिरुद्रसंहितामें विष्णुसुदर्शनचक्रलाभवर्णन नामक चौंतीसवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ ३४॥

अथ पञ्चत्रिंशोऽध्यायः

विष्णुप्रोक्त शिवसहस्त्रनामस्तोत्र

सूत उवाच

श्रूयतां भो ऋषिश्रेष्ठा येन तुष्टो महेश्वरः।
तदहं कथयाम्यद्य शैवं नामसहस्त्रकम्॥ १

सूतजी बोले—हे मुनिवरो! आपलोग सुनें, जिससे महेश्वर सन्तुष्ट हुए थे, उस शिवसहस्त्रनामस्तोत्रको मैं कह रहा हूँ॥ १॥

श्रीविष्णुरुवाच

शिवो हरो मृडो रुद्रः पुष्करः पुष्पलोचनः।

भगवान् विष्णुने कहा—१. **शिवः**—कल्याणस्वरूप, २. **हरः**—भक्तोंके पाप-ताप हर लेनेवाले, ३. **मृडः**—सुखदाता, ४. **रुद्रः**—दुःख दूर करनेवाले, ५. **पुष्करः**—आकाशस्वरूप, ६. **पुष्पलोचनः**—

अर्थिगम्यः सदाचारः शर्वः शंभुर्महेश्वरः॥ २

पुष्पके समान खिले हुए नेत्रवाले, ७. **अर्थिगम्यः**— प्रार्थियोंको प्राप्त होनेवाले, ८. **सदाचारः**—श्रेष्ठ आचरणवाले, ९. **शर्वः**—संहारकारी, १०. **शम्भुः**— कल्याणनिकेतन, ११. **महेश्वरः**—महान् ईश्वर ॥ २ ॥

चन्द्रापीडश्चन्द्रमौलिर्विश्वं विश्वम्भरेश्वरः।
वेदान्तसारसंदोहः कपाली नीललोहितः॥ ३

१२. **चन्द्रापीडः**—चन्द्रमाको शिरोभूषणके रूपमें धारण करनेवाले, १३. **चन्द्रमौलिः**—सिरपर चन्द्रमाका मुकुट धारण करनेवाले, १४. **विश्वम्**—सर्वस्वरूप, १५. **विश्वम्भरेश्वरः**—विश्वका भरण-पोषण करनेवाले श्रीविष्णुके भी ईश्वर, १६. **वेदान्तसारसंदोहः**— वेदान्तके सारतत्त्व सच्चिदानन्दमय ब्रह्मकी साकार मूर्ति, १७. **कपाली**—हाथमें कपाल धारण करनेवाले, १८. **नीललोहितः**—(गलेमें) नील और (शेष अंगोंमें) लोहित वर्णवाले ॥ ३ ॥

ध्यानाधारोऽपरिच्छेद्यो गौरीभर्ता गणेश्वरः।
अष्टमूर्तिर्विश्वमूर्तिस्त्रिवर्गस्वर्गसाधनः ॥ ४

१९. **ध्यानाधारः**—ध्यानके आधार, २०. **अपरि-च्छेद्यः**—देश, काल और वस्तुकी सीमासे अविभाज्य, २१. **गौरीभर्ता**—गौरी अर्थात् पार्वतीजीके पति, २२. **गणेश्वरः**—प्रमथगणोंके स्वामी, २३. **अष्टमूर्तिः**—जल, अग्नि, वायु, आकाश, सूर्य, चन्द्रमा, पृथ्वी और यजमान—इन आठ रूपोंवाले, २४. **विश्वमूर्तिः**—अखिल ब्रह्माण्डमय विराट् पुरुष, २५. **त्रिवर्गस्वर्गसाधनः**—धर्म, अर्थ, काम तथा स्वर्गकी प्राप्ति करानेवाले ॥ ४ ॥

ज्ञानगम्यो दृढप्रज्ञो देवदेवस्त्रिलोचनः।
वामदेवो महादेवः पटुः परिवृढो दृढः॥ ५

२६. **ज्ञानगम्यः**—ज्ञानसे ही अनुभवमें आनेके योग्य, २७. **दृढप्रज्ञः**—सुस्थिर बुद्धिवाले, २८. **देव-देवः**—देवताओंके भी आराध्य, २९. **त्रिलोचनः**— सूर्य, चन्द्रमा और अग्निरूप तीन नेत्रोंवाले, ३०. **वाम-देवः**—लोकके विपरीत स्वभाववाले देवता, ३१. **महा-देवः**—महान् देवता ब्रह्मादिकोंके भी पूजनीय, ३२. **पटुः**—सब कुछ करनेमें समर्थ एवं कुशल, ३३. **परिवृढः**—स्वामी, ३४. **दृढः**—कभी विचलित न होनेवाले ॥ ५ ॥

विश्वरूपो विरूपाक्षो वागीशः शुचिसत्तमः।
सर्वप्रमाणसंवादी वृषाङ्को वृषवाहनः॥ ६

३५. **विश्वरूपः**—जगत्स्वरूप, ३६. **विरू-पाक्षः**—विकट नेत्रवाले, ३७. **वागीशः**—वाणीके अधिपति, ३८. **शुचिसत्तमः**—पवित्र पुरुषोंमें भी सबसे श्रेष्ठ, ३९. **सर्वप्रमाणसंवादी**—सम्पूर्ण प्रमाणोंमें सामंजस्य स्थापित करनेवाले, ४०. **वृषाङ्कः**—अपनी ध्वजामें वृषभका चिह्न धारण करनेवाले, ४१. **वृषवाहनः**—वृषभ या धर्मको वाहन बनानेवाले ॥ ६ ॥

ईशः पिनाकी खट्वाङ्गी चित्रवेषश्चिरंतनः।
तमोहरो महायोगी गोप्ता ब्रह्मा च धूर्जटिः॥ ७

४२. **ईशः**—स्वामी या शासक, ४३. **पिनाकी**—पिनाक नामक धनुष धारण करनेवाले, ४४. **खट्वाङ्गी**—खाटके पायेकी आकृतिका एक आयुध धारण करनेवाले, ४५. **चित्रवेषः**—विचित्र वेषधारी, ४६. **चिरंतनः**—पुराण (अनादि) पुरुषोत्तम, ४७. **तमोहरः**—अज्ञानान्ध-कारको दूर करनेवाले, ४८. **महायोगी**—महान् योगसे सम्पन्न, ४९. **गोप्ता**—रक्षक, ५०. **ब्रह्मा**—सृष्टिकर्ता, ५१. **धूर्जटिः**—जटाके भारसे युक्त॥ ७॥

कालकालः कृत्तिवासाः सुभगः प्रणवात्मकः।
उन्नध्रः पुरुषो जुष्यो दुर्वासाः पुरशासनः॥ ८

५२. **कालकालः**—कालके भी काल, ५३. **कृत्तिवासाः**—[गजासुरके] चर्मको वस्त्रके रूपमें धारण करनेवाले, ५४. **सुभगः**—सौभाग्यशाली, ५५. **प्रणवात्मकः**—ओंकारस्वरूप अथवा प्रणवके वाच्यार्थ, ५६. **उन्नध्रः**—बन्धनरहित, ५७. **पुरुषः**—अन्तर्यामी आत्मा, ५८. **जुष्यः**—सेवन करनेयोग्य, ५९. **दुर्वासाः**—'दुर्वासा' नामक मुनिके रूपमें अवतीर्ण, ६०. **पुरशासनः**—तीन मायामय असुरपुरोंका दमन करनेवाले॥ ८॥

दिव्यायुधः स्कन्दगुरुः परमेष्ठी परात्परः।
अनादिमध्यनिधनो गिरीशो गिरिजाधवः॥ ९

६१. **दिव्यायुधः**—'पाशुपत' आदि दिव्य अस्त्र धारण करनेवाले, ६२. **स्कन्दगुरुः**—कार्तिकेयजीके पिता, ६३. **परमेष्ठी**—अपनी प्रकृष्ट महिमामें स्थित रहनेवाले, ६४. **परात्परः**—कारणके भी कारण, ६५. **अनादिमध्यनिधनः**—आदि, मध्य और अन्तसे रहित, ६६. **गिरीशः**—कैलासके अधिपति, ६७. **गिरिजाधवः**—पार्वतीके पति॥ ९॥

कुबेरबन्धुः श्रीकण्ठो लोकवर्णोत्तमो मृदुः।
समाधिवेद्यः कोदण्डी नीलकण्ठः परश्वधी॥ १०

६८. **कुबेरबन्धुः**—कुबेरको अपना बन्धु (मित्र) माननेवाले, ६९. **श्रीकण्ठः**—श्यामसुषमासे सुशोभित कण्ठवाले, ७०. **लोकवर्णोत्तमः**—समस्त लोकों और वर्णोंसे श्रेष्ठ, ७१. **मृदुः**—कोमल स्वभाववाले, ७२. **समाधिवेद्यः**—समाधि अथवा चित्तवृत्तियोंके निरोधसे अनुभवमें आनेयोग्य, ७३. **कोदण्डी**—धनुर्धर, ७४. **नीलकण्ठः**—कण्ठमें हालाहल विषका नील चिह्न धारण करनेवाले, ७५. **परश्वधी**—परशुधारी॥ १०॥

विशालाक्षो मृगव्याधः सुरेशः सूर्यतापनः।

७६. **विशालाक्षः**—बड़े-बड़े नेत्रोंवाले, ७७. **मृग-व्याधः**—वनमें व्याध या किरातके रूपमें प्रकट हो शूकरके ऊपर बाण चलानेवाले, ७८. **सुरेशः**—देवताओंके स्वामी, ७९. **सूर्यतापनः**— सूर्यको भी

धर्मधाम क्षमाक्षेत्रं भगवान् भगनेत्रभित्॥ ११

दण्ड देनेवाले, **८०. धर्म-धाम**—धर्मके आश्रय, **८१. क्षमाक्षेत्रम्**—क्षमाके उत्पत्ति-स्थान, **८२. भगवान्**—सम्पूर्ण ऐश्वर्य, धर्म, यश, श्री, ज्ञान तथा वैराग्यके आश्रय, **८३. भगनेत्रभित्**—भगदेवताके नेत्रका भेदन करनेवाले॥ ११॥

उग्रः पशुपतिस्तार्क्ष्यः प्रियभक्तः परंतपः।
दाता दयाकरो दक्षः कपर्दी कामशासनः॥ १२

८४. उग्रः—संहारकालमें भयंकर रूप धारण करनेवाले, **८५. पशुपतिः**—मायारूपमें बँधे हुए पाशबद्ध पशुओं (जीवों)-को तत्त्वज्ञानके द्वारा मुक्त करके यथार्थरूपसे उनका पालन करनेवाले, **८६. तार्क्ष्यः**—गरुड़रूप, **८७. प्रियभक्तः**—भक्तोंसे प्रेम करनेवाले, **८८. परंतपः**—शत्रुता रखनेवालोंको संताप देनेवाले, **८९. दाता**—दानी, **९०. दयाकरः**—दयानिधान अथवा कृपा करनेवाले, **९१. दक्षः**—कुशल, **९२. कपर्दी**—जटाजूटधारी, **९३. काम-शासनः**—कामदेवका दमन करनेवाले॥ १२॥

श्मशाननिलयः सूक्ष्मः श्मशानस्थो महेश्वरः।
लोककर्ता मृगपतिर्महाकर्ता महौषधिः॥ १३

९४. श्मशाननिलयः—श्मशानवासी, **९५. सूक्ष्मः**—इन्द्रियातीत एवं सर्वव्यापी, **९६. श्मशानस्थः**—श्मशानभूमिमें विश्राम करनेवाले, **९७. महेश्वरः**—महान् ईश्वर या परमेश्वर, **९८. लोककर्ता**—जगत्की सृष्टि करनेवाले, **९९. मृगपतिः**—मृगके पालक या पशुपति, **१००. महाकर्ता**—विराट् ब्रह्माण्डकी सृष्टि करनेके समय महान् कर्तृत्वसे सम्पन्न, **१०१. महौषधिः**—भवरोगका निवारण करनेके लिये महान् ओषधिरूप॥ १३॥

उत्तरो गोपतिर्गोप्ता ज्ञानगम्यः पुरातनः।
नीतिः सुनीतिः शुद्धात्मा सोमः सोमरतः सुखी॥ १४

१०२. उत्तरः—संसार-सागरसे पार उतारनेवाले, **१०३. गोपतिः**—स्वर्ग, पृथ्वी, पशु, वाणी, किरण, इन्द्रिय और जलके स्वामी, **१०४. गोप्ता**—रक्षक, **१०५. ज्ञानगम्यः**—तत्त्वज्ञानके द्वारा ज्ञानस्वरूपसे ही जाननेयोग्य, **१०६. पुरातनः**—सबसे पुराने, **१०७. नीतिः**—न्यायस्वरूप, **१०८. सुनीतिः**—उत्तम नीतिवाले, **१०९. शुद्धात्मा**—विशुद्ध आत्मस्वरूप, **११०. सोमः**—उमासहित, **१११. सोमरतः**—चन्द्रमापर प्रेम रखनेवाले, **११२. सुखी**—आत्मानन्दसे परिपूर्ण ॥ १४ ॥

सोमपोऽमृतपः सौम्यो महातेजा महाद्युतिः।
तेजोमयोऽमृतमयोऽन्नमयश्च सुधापतिः॥ १५

११३. **सोमपः**—सोमपान करनेवाले अथवा सोमनाथरूपसे चन्द्रमाके पालक, ११४. **अमृतपः**—समाधिके द्वारा स्वरूपभूत अमृतका आस्वादन करनेवाले, ११५. **सौम्यः**—भक्तोंके लिये सौम्यरूपधारी, ११६. **महातेजाः**— महान् तेजसे सम्पन्न, ११७. **महाद्युतिः**—परमकान्तिमान्, ११८. **तेजोमयः**—प्रकाशस्वरूप, ११९. **अमृतमयः**—अमृतरूप, १२०. **अन्नमयः**—अन्नरूप, १२१. **सुधापतिः**—अमृतके पालक॥ १५॥

अजातशत्रुरालोकः सम्भाव्यो हव्यवाहनः।
लोककरो वेदकरः सूत्रकारः सनातनः॥ १६

१२२. **अजातशत्रुः**—जिनके मनमें कभी किसीके प्रति शत्रुभाव नहीं पैदा हुआ, ऐसे समदर्शी, १२३. **आलोकः**—प्रकाशस्वरूप, १२४. **सम्भाव्यः**—सम्माननीय, १२५. **हव्यवाहनः**—अग्निस्वरूप, १२६. **लोककरः**— जगत्के स्रष्टा, १२७. **वेदकरः**—वेदोंको प्रकट करनेवाले, १२८. **सूत्रकारः**—ढक्कानादके रूपमें चतुर्दश माहेश्वर सूत्रोंके प्रणेता, १२९. **सनातनः**—नित्यस्वरूप॥ १६॥

महर्षिकपिलाचार्यो विश्वदीप्तिस्त्रिलोचनः।
पिनाकपाणिर्भूदेवः स्वस्तिदः स्वस्तिकृत्सुधीः॥ १७

१३०. **महर्षिकपिलाचार्यः**—सांख्यशास्त्रके प्रणेता भगवान् कपिलाचार्य, १३१. **विश्वदीप्तिः**—अपनी प्रभासे सबको प्रकाशित करनेवाले, १३२. **त्रिलोचनः**—तीनों लोकोंके द्रष्टा, १३३. **पिनाकपाणिः**—हाथमें पिनाक नामक धनुष धारण करनेवाले, १३४. **भूदेवः**— पृथ्वीके देवता—ब्राह्मण अथवा पार्थिवलिंगरूप, १३५. **स्वस्तिदः**—कल्याणदाता, १३६. **स्वस्तिकृत्**— कल्याणकारी, १३७. **सुधीः**—विशुद्ध बुद्धिवाले ॥ १७॥

धातृधामा धामकरः सर्वगः सर्वगोचरः।
ब्रह्मसृग्विश्वसृक्सर्गः कर्णिकारप्रियः कविः॥ १८

१३८. **धातृधामा**—विश्वका धारण-पोषण करनेमें समर्थ तेजवाले, १३९. **धामकरः**—तेजकी सृष्टि करनेवाले, १४०. **सर्वगः**—सर्वव्यापी, १४१. **सर्वगोचरः**—सबमें व्याप्त, १४२. **ब्रह्मसृक्**—ब्रह्माजीके उत्पादक, १४३. **विश्वसृक्**—जगत्के स्रष्टा, १४४. **सर्गः**—सृष्टिस्वरूप, १४५. **कर्णिकारप्रियः**—कर्णिकारके फूलको पसन्द करनेवाले, १४६. **कविः**—त्रिकालदर्शी॥ १८॥

शाखो विशाखो गोशाखः शिवो भिषगनुत्तमः।
गङ्गाप्लवोदको भव्यः पुष्कलः स्थपतिः स्थिरः॥ १९

१४७. **शाखः**—कार्तिकेयके छोटे भाई शाखस्वरूप, १४८. **विशाखः**—स्कन्दके छोटे भाई विशाखस्वरूप अथवा विशाख नामक ऋषि, १४९. **गोशाखः**—वेदवाणीकी शाखाओंका विस्तार करनेवाले, १५०. **शिवः**—मंगलमय, १५१. **भिषगनुत्तमः**—भवरोगका निवारण करनेवाले वैद्यों (ज्ञानियों)-में सर्वश्रेष्ठ, १५२. **गङ्गाप्लवोदकः**—गंगाके प्रवाहरूप जलको सिरपर धारण करनेवाले, १५३. **भव्यः**—कल्याणस्वरूप, १५४. **पुष्कलः**—पूर्णतम अथवा व्यापक, १५५. **स्थपतिः**—ब्रह्माण्डरूपी भवनके निर्माता (थवई), १५६. **स्थिरः**—अचंचल अथवा स्थाणुरूप॥ १९॥

विजितात्मा विधेयात्मा भूतवाहनसारथिः।
सगणो गणकायश्च सुकीर्तिश्छिन्नसंशयः॥ २०

१५७. **विजितात्मा**—मनको वशमें रखनेवाले, १५८. **विधेयात्मा**—शरीर, मन और इन्द्रियोंसे अपनी इच्छाके अनुसार काम लेनेवाले, १५९. **भूतवाहनसारथिः**—पांचभौतिक रथ (शरीर)-का संचालन करनेवाले बुद्धिरूप सारथि, १६०. **सगणः**—प्रमथगणोंके साथ रहनेवाले, १६१. **गणकायः**—गणस्वरूप, १६२. **सुकीर्तिः**—उत्तम कीर्तिवाले, १६३. **छिन्नसंशयः**—संशयोंको काट देनेवाले॥ २०॥

कामदेवः कामपालो भस्मोद्धूलितविग्रहः।
भस्मप्रियो भस्मशायी कामी कान्तः कृतागमः॥ २१

१६४. **कामदेवः**—मनुष्योंद्वारा अभिलषित समस्त कामनाओंके अधिष्ठाता परमदेव, १६५. **कामपालः**—सकाम भक्तोंकी कामनाओंको पूर्ण करनेवाले, १६६. **भस्मोद्धूलितविग्रहः**—अपने श्रीअंगोंमें भस्म रमानेवाले, १६७. **भस्मप्रियः**—भस्मके प्रेमी, १६८. **भस्मशायी**—भस्मपर शयन करनेवाले, १६९. **कामी**—अपने प्रिय भक्तोंको चाहनेवाले, १७०. **कान्तः**—परम कमनीय प्राणवल्लभरूप, १७१. **कृतागमः**—समस्त तन्त्रशास्त्रोंके रचयिता॥ २१॥

समावर्तोऽनिवृत्तात्मा धर्मपुञ्जः सदाशिवः।
अकल्मषश्चतुर्बाहुर्दुरावासो दुरासदः॥ २२

१७२. **समावर्तः**—संसारचक्रको भलीभाँति घुमानेवाले, १७३. **अनिवृत्तात्मा**—सर्वत्र विद्यमान होनेके कारण जिनका आत्मा कहींसे भी हटा नहीं है, ऐसे, १७४. **धर्मपुञ्जः**—धर्म या पुण्यकी राशि, १७५. **सदाशिवः**—निरन्तर कल्याणकारी, १७६. **अकल्मषः**—पापरहित, १७७. **चतुर्बाहुः**—चार भुजाधारी, १७८. **दुरावासः**—जिन्हें योगीजन भी बड़ी कठिनाईसे अपने हृदयमन्दिरमें बसा पाते हैं, ऐसे, १७९. **दुरासदः**—परम दुर्जय॥ २२॥

दुर्लभो दुर्गमो दुर्गः सर्वायुधविशारदः।
अध्यात्मयोगनिलयः सुतन्तुस्तन्तुवर्धनः ॥ २३

१८०. दुर्लभः—भक्तिहीन पुरुषोंको कठिनतासे प्राप्त होनेवाले, **१८१. दुर्गमः**—जिनके निकट पहुँचना किसीके लिये भी कठिन है, ऐसे, **१८२. दुर्गः**—पाप-तापसे रक्षा करनेके लिये दुर्गरूप अथवा दुर्ज्ञेय, **१८३. सर्वायुधविशारदः**—सम्पूर्ण अस्त्रोंके प्रयोगकी कलामें कुशल, **१८४. अध्यात्मयोगनिलयः**—अध्यात्मयोगमें स्थित, **१८५. सुतन्तुः**—सुन्दर विस्तृत जगत्-रूप तन्तुवाले, **१८६. तन्तुवर्धनः**—जगत्-रूप तन्तुको बढ़ानेवाले ॥ २३ ॥

शुभाङ्गो लोकसारङ्गो जगदीशो जनार्दनः।
भस्मशुद्धिकरो मेरुरोजस्वी शुद्धविग्रहः ॥ २४

१८७. शुभाङ्गः—सुन्दर अंगोंवाले, **१८८. लोकसारङ्गः**—लोकसारग्राही, **१८९. जगदीशः**—जगत्‌के स्वामी, **१९०. जनार्दनः**—भक्तजनोंकी याचनाके आलम्बन, **१९१. भस्मशुद्धिकरः**—भस्मसे शुद्धिका सम्पादन करनेवाले, **१९२. मेरुः**—सुमेरुपर्वतके समान केन्द्ररूप, **१९३. ओजस्वी**—तेज और बलसे सम्पन्न, **१९४. शुद्धविग्रहः**—निर्मल शरीरवाले ॥ २४ ॥

असाध्यः साधुसाध्यश्च भृत्यमर्कटरूपधृक्।
हिरण्यरेताः पौराणो रिपुजीवहरो बली ॥ २५

१९५. असाध्यः—साधन-भजनसे दूर रहनेवाले लोगोंके लिये अलभ्य, **१९६. साधुसाध्यः**—साधन-भजनपरायण सत्पुरुषोंके लिये सुलभ, **१९७. भृत्य-मर्कटरूपधृक्**—श्रीरामके सेवक वानर हनुमान्‌का रूप धारण करनेवाले, **१९८. हिरण्यरेताः**—अग्निस्वरूप अथवा सुवर्णमय वीर्यवाले, **१९९. पौराणः**—पुराणोंद्वारा प्रतिपादित, **२००. रिपुजीवहरः**—शत्रुओंके प्राण हर लेनेवाले, **२०१. बली**—बलशाली ॥ २५ ॥

महाह्रदो महागर्तः सिद्धवृन्दारवन्दितः।
व्याघ्रचर्मांबरो व्याली महाभूतो महानिधिः ॥ २६

२०२. महाह्रदः—परमानन्दके महान् सरोवर, **२०३. महागर्तः**—महान् आकाशरूप, **२०४. सिद्धवृन्दार-वन्दितः**—सिद्धों और देवताओंद्वारा वन्दित, **२०५. व्याघ्रचर्माम्बरः**—व्याघ्रचर्मको वस्त्रके समान धारण करनेवाले, **२०६. व्याली**—सर्पोंको आभूषणकी भाँति धारण करनेवाले, **२०७. महाभूतः**—त्रिकालमें भी कभी नष्ट न होनेवाले महाभूतस्वरूप, **२०८. महानिधिः**—सबके महान् निवासस्थान ॥ २६ ॥

अमृताशोऽमृतवपुः पाञ्चजन्यः प्रभञ्जनः।

२०९. अमृताशः—जिनकी आशा कभी विफल न हो, ऐसे अमोघसंकल्प, **२१०. अमृतवपुः**—जिनका कलेवर कभी नष्ट न हो, ऐसे—नित्यविग्रह, **२११. पाञ्चजन्यः**—पांचजन्य नामक शंखस्वरूप, **२१२. प्रभञ्जनः**—वायुस्वरूप अथवा संहारकारी,

पञ्चविंशतितत्त्वस्थः पारिजातः परावरः ॥ २७

२१३. **पञ्चविंशतितत्त्वस्थः**—प्रकृति, महत्तत्त्व (बुद्धि), अहंकार, चक्षु, श्रोत्र, घ्राण, रसना, त्वक्, वाक्, पाणि, पायु, पाद, उपस्थ, मन, शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गन्ध, पृथ्वी, जल, तेज, वायु और आकाश—इन चौबीस जड तत्त्वोंसहित पचीसवें चेतनतत्त्व पुरुषमें व्याप्त, २१४. **पारिजातः**—याचकोंकी इच्छा पूर्ण करनेमें कल्पवृक्षरूप, २१५. **परावरः**—कारण-कार्यरूप ॥ २७ ॥

सुलभः सुव्रतः शूरो ब्रह्मवेदनिधिर्निधिः।
वर्णाश्रमगुरुर्वर्णी शत्रुजिच्छत्रुतापनः ॥ २८

२१६. **सुलभः**—नित्य-निरन्तर चिन्तन करनेवाले एकनिष्ठ श्रद्धालु भक्तको सुगमतासे प्राप्त होनेवाले, २१७. **सुव्रतः**—उत्तम व्रतधारी, २१८. **शूरः**—शौर्य-सम्पन्न, २१९. **ब्रह्मवेदनिधिः**—ब्रह्मा और वेदके प्रादुर्भावके स्थान, २२०. **निधिः**—जगत्-रूपी रत्नके उत्पत्तिस्थान, २२१ **वर्णाश्रमगुरुः**—वर्णों और आश्रमोंके गुरु (उपदेष्टा), २२२. **वर्णी**—ब्रह्मचारी, २२३. **शत्रुजित्**—अन्धकासुर आदि शत्रुओंको जीतनेवाले, २२४. **शत्रुतापनः**—शत्रुओंको संताप देनेवाले ॥ २८ ॥

आश्रमः क्षपणः क्षामो ज्ञानवानचलेश्वरः।
प्रमाणभूतो दुर्ज्ञेयः सुपर्णो वायुवाहनः ॥ २९

२२५. **आश्रमः**—सबके विश्रामस्थान, २२६. **क्षपणः**—जन्म-मरणके कष्टका मूलोच्छेद करनेवाले, २२७. **क्षामः**—प्रलयकालमें प्रजाको क्षीण करनेवाले, २२८. **ज्ञानवान्**—ज्ञानी, २२९. **अचलेश्वरः**—पर्वतों अथवा स्थावर पदार्थोंके स्वामी, २३०. **प्रमाणभूतः**—नित्यसिद्ध प्रमाणरूप, २३१. **दुर्ज्ञेयः**—कठिनतासे जाननेयोग्य, २३२. **सुपर्णः**—वेदमय सुन्दर पंखवाले, गरुड़रूप, २३३. **वायुवाहनः**—अपने भयसे वायुको प्रवाहित करनेवाले ॥ २९ ॥

धनुर्धरो धनुर्वेदो गुणराशिर्गुणाकरः।
सत्यः सत्यपरोऽदीनो धर्माङ्गो धर्मसाधनः ॥ ३०

२३४. **धनुर्धरः**—पिनाकधारी, २३५. **धनुर्वेदः**—धनुर्वेदके ज्ञाता, २३६. **गुणराशिः**—अनन्त कल्याणमय गुणोंकी राशि, २३७. **गुणाकरः**—सद्‌गुणोंकी खान, २३८. **सत्यः**—सत्यस्वरूप, २३९. **सत्यपरः**—सत्य-परायण, २४०. **अदीनः**—दीनतासे रहित—उदार, २४१. **धर्माङ्गः**—धर्ममय विग्रहवाले, २४२. **धर्मसाधनः**—धर्मका अनुष्ठान करनेवाले ॥ ३० ॥

अनन्तदृष्टिरानन्दो दण्डो दमयिता दमः।

२४३. **अनन्तदृष्टिः**—असीमित दृष्टिवाले, २४४. **आनन्दः**—परमानन्दमय, २४५. **दण्डः**—दुष्टोंको दण्ड देनेवाले अथवा दण्डस्वरूप, २४६. **दमयिता**—दुर्दान्त दानवोंका दमन करनेवाले,

अभिवाद्यो महामायो विश्वकर्मविशारदः ॥ ३१

२४७. दमः—दमनस्वरूप, २४८. अभिवाद्यः—प्रणाम करनेयोग्य, २४९. महा-मायः—मायावियोंको भी मोहनेवाले महामायावी, २५०. विश्वकर्म-विशारदः—संसारकी सृष्टि करनेमें कुशल ॥ ३१ ॥

वीतरागो विनीतात्मा तपस्वी भूतभावनः।
उन्मत्तवेषः प्रच्छन्नो जितकामोऽजितप्रियः ॥ ३२

२५१. वीतरागः—पूर्णतया विरक्त, २५२. विनीता-त्मा—मनसे विनयशील अथवा मनको वशमें रखनेवाले, २५३. तपस्वी—तपस्यापरायण, २५४. भूतभावनः—सम्पूर्ण भूतोंके उत्पादक एवं रक्षक, २५५. उन्मत्तवेषः—पागलोंके समान वेष धारण करनेवाले, २५६. प्रच्छन्नः—मायाके पर्देमें छिपे हुए, २५७. जितकामः—कामविजयी, २५८. अजितप्रियः—भगवान् विष्णुके प्रेमी ॥ ३२ ॥

कल्याणप्रकृतिः कल्पः सर्वलोकप्रजापतिः।
तरस्वी तारको धीमान् प्रधानः प्रभुरव्ययः ॥ ३३

२५९. कल्याणप्रकृतिः—कल्याणकारी स्वभाव-वाले, २६०. कल्पः—समर्थ, २६१. सर्वलोकप्रजा-पतिः—सम्पूर्ण लोकोंकी प्रजाके पालक, २६२. तरस्वी—वेगशाली, २६३. तारकः—उद्धारक, २६४. धीमान्—विशुद्ध बुद्धिसे युक्त, २६५. प्रधानः—सबसे श्रेष्ठ, २६६. प्रभुः—सर्वसमर्थ, २६७. अव्ययः—अविनाशी ॥ ३३ ॥

लोकपालोऽन्तर्हितात्मा कल्पादिः कमलेक्षणः।
वेदशास्त्रार्थतत्त्वज्ञोऽनियमो नियताश्रयः ॥ ३४

२६८. लोकपालः—समस्त लोकोंकी रक्षा करनेवाले, २६९. अन्तर्हितात्मा—अन्तर्यामी आत्मा अथवा अदृश्य स्वरूपवाले, २७०. कल्पादिः—कल्पके आदि-कारण, २७१. कमलेक्षणः—कमलके समान नेत्रवाले, २७२. वेदशास्त्रार्थतत्त्वज्ञः—वेदों और शास्त्रोंके अर्थ एवं तत्त्वको जाननेवाले, २७३. अनियमः—नियन्त्रणरहित, २७४. नियताश्रयः—सबके सुनिश्चित आश्रयस्थान ॥ ३४ ॥

चन्द्रः सूर्यः शनिः केतुर्वराङ्गो विद्रुमच्छविः।
भक्तिवश्यः परब्रह्म मृगबाणार्पणोऽनघः ॥ ३५

२७५. चन्द्रः—चन्द्रमारूपसे आह्लादकारी, २७६. सूर्यः—सबकी उत्पत्तिके हेतुभूत सूर्य, २७७. शनिः—शनैश्चररूप, २७८. केतुः— केतु नामक ग्रहस्वरूप, २७९. वराङ्गः—सुन्दर शरीरवाले, २८०. विद्रुमच्छविः—मूँगेकी-सी लाल कान्तिवाले, २८१. भक्तिवश्यः—भक्तिके द्वारा भक्तके वशमें होनेवाले, २८२. परब्रह्म—परमात्मा, २८३. मृगबाणार्पणः—मृगरूपधारी यज्ञपर बाण चलानेवाले, २८४. अनघः—पापरहित ॥ ३५ ॥

अद्रिरद्र्यालयः कान्तः परमात्मा जगद्गुरुः।
सर्वकर्मालयस्तुष्टो मङ्गल्यो मङ्गलावृतः॥ ३६

२८५. अद्रिः—कैलास आदि पर्वतस्वरूप, २८६. अद्र्यालयः—कैलास और मन्दर आदि पर्वतोंपर निवास करनेवाले, २८७. कान्तः—सबके प्रियतम, २८८. परमात्मा—परब्रह्म परमेश्वर, २८९. जगद्गुरुः—समस्त संसारके गुरु, २९०. सर्वकर्मालयः—सम्पूर्ण कर्मोंके आश्रयस्थान, २९१. तुष्टः—सदा प्रसन्न, २९२. मङ्गल्यः—मंगलकारी, २९३. मङ्गलावृतः—मंगलकारिणी शक्तिसे संयुक्त॥ ३६॥

महातपा दीर्घतपाः स्थविष्ठः स्थविरो ध्रुवः।
अहः संवत्सरो व्याप्तिः प्रमाणं परमं तपः॥ ३७

२९४. महातपाः—महान् तपस्वी, २९५. दीर्घतपाः—दीर्घकालतक तप करनेवाले, २९६. स्थविष्ठः—अत्यन्त स्थूल, २९७. स्थविरो ध्रुवः—अति प्राचीन एवं अत्यन्त स्थिर, २९८. अहःसंवत्सरः—दिन एवं संवत्सर आदि कालरूपसे स्थित, अंशकालस्वरूप, २९९. व्याप्तिः—व्यापकतास्वरूप, ३००. प्रमाणम्—प्रत्यक्षादि प्रमाणस्वरूप, ३०१ परमं तपः—उत्कृष्ट तपस्यास्वरूप ॥ ३७॥

संवत्सरकरो मन्त्रप्रत्ययः सर्वदर्शनः।
अजः सर्वेश्वरः सिद्धो महारेता महाबलः॥ ३८

३०२. संवत्सरकरः—संवत्सर आदि कालविभागके उत्पादक, ३०३. मन्त्रप्रत्ययः—वेद आदि मन्त्रोंसे प्रतीत (प्रत्यक्ष) होनेयोग्य, ३०४. सर्वदर्शनः—सबके साक्षी, ३०५. अजः—अजन्मा, ३०६. सर्वेश्वरः—सबके शासक, ३०७. सिद्धः—सिद्धियोंके आश्रय, ३०८. महारेताः—श्रेष्ठ वीर्यवाले, ३०९. महाबलः—प्रमथ-गणोंकी महती सेनासे सम्पन्न॥ ३८॥

योगी योग्यो महातेजाः सिद्धिः सर्वादिरग्रहः।
वसुर्वसुमनाः सत्यः सर्वपापहरो हरः॥ ३९

३१०. योगी योग्यः—सुयोग्य योगी, ३११. महातेजाः—महान् तेजसे सम्पन्न, ३१२. सिद्धिः—समस्त साधनोंके फल, ३१३. सर्वादिः—सब भूतोंके आदिकारण, ३१४. अग्रहः—इन्द्रियोंकी ग्रहणशक्तिके अविषय, ३१५. वसुः—सब भूतोंके वासस्थान, ३१६. वसुमनाः—उदार मनवाले, ३१७. सत्यः—सत्यस्वरूप, ३१८. सर्वपापहरो हरः—समस्त पापोंका अपहरण करनेके कारण हर नामसे प्रसिद्ध ॥ ३९ ॥

सुकीर्तिशोभनः श्रीमान् वेदाङ्गो वेदविन्मुनिः।

३१९. सुकीर्तिशोभनः—उत्तम कीर्तिसे सुशोभित होनेवाले, ३२०. श्रीमान्—विभूतिस्वरूपा उमासे सम्पन्न, ३२१. वेदाङ्गः—वेदरूप अंगोंवाले, ३२२. वेद-विन्मुनिः—वेदोंका विचार करनेवाले मननशील

भ्राजिष्णुर्भोजनं भोक्ता लोकनाथो दुराधरः ॥ ४०

मुनि, ३२३. भ्राजिष्णुः—एकरस प्रकाशस्वरूप, ३२४. भोजनम्—ज्ञानियोंद्वारा भोगनेयोग्य अमृतस्वरूप, ३२५. भोक्ता—पुरुषरूपसे उपभोग करनेवाले, ३२६. लोक-नाथः—भगवान् विश्वनाथ, ३२७. दुराधरः—अजितेन्द्रिय पुरुषोंद्वारा जिनकी आराधना अत्यन्त कठिन है, ऐसे ॥ ४० ॥

अमृतः शाश्वतः शान्तो बाणहस्तः प्रतापवान्।
कमण्डलुधरो धन्वी अवाङ्मनसगोचरः ॥ ४१

३२८. अमृतः शाश्वतः—सनातन अमृतस्वरूप, ३२९. शान्तः—शान्तिमय, ३३०. बाणहस्तः प्रताप-वान्—हाथमें बाण धारण करनेवाले प्रतापी वीर, ३३१. कमण्डलुधरः—कमण्डलु धारण करनेवाले, ३३२. धन्वी—पिनाकधारी, ३३३. अवाङ्मनसगोचरः—मन और वाणीके अविषय ॥ ४१ ॥

अतीन्द्रियो महामायः सर्वावासश्चतुष्पथः।
कालयोगी महानादो महोत्साहो महाबलः ॥ ४२

३३४. अतीन्द्रियो महामायः—इन्द्रियातीत एवं महामायावी, ३३५. सर्वावासः—सबके वासस्थान, ३३६. चतुष्पथः—चारों पुरुषार्थोंकी सिद्धिके एकमात्र मार्ग, ३३७. कालयोगी—प्रलयके समय सबको कालसे संयुक्त करनेवाले, ३३८. महानादः—गम्भीर शब्द करनेवाले अथवा अनाहत नादरूप, ३३९. महोत्साहो महाबलः—महान् उत्साह और बलसे सम्पन्न ॥ ४२ ॥

महाबुद्धिर्महावीर्यो भूतचारी पुरंदरः।
निशाचरः प्रेतचारी महाशक्तिर्महाद्युतिः ॥ ४३

३४०. महाबुद्धिः—श्रेष्ठ बुद्धिवाले, ३४१. महा-वीर्यः—अनन्त पराक्रमी, ३४२. भूतचारी—भूतगणोंके साथ विचरनेवाले, ३४३. पुरंदरः—त्रिपुरसंहारक, ३४४. निशाचरः—रात्रिमें विचरण करनेवाले, ३४५. प्रेतचारी—प्रेतोंके साथ भ्रमण करनेवाले, ३४६. महाशक्तिर्महा-द्युतिः—अनन्तशक्ति एवं श्रेष्ठ कान्तिसे सम्पन्न ॥ ४३ ॥

अनिर्देश्यवपुः श्रीमान् सर्वाचार्यो मनोगतिः।
बहुश्रुतोऽमहामायो नियतात्मा ध्रुवोऽध्रुवः ॥ ४४

३४७. अनिर्देश्यवपुः—अनिर्वचनीय स्वरूपवाले, ३४८. श्रीमान्—ऐश्वर्यवान्, ३४९. सर्वाचार्यमनो-गतिः—सबके लिये अविचार्य मनोगतिवाले, ३५०. बहुश्रुतः—बहुज्ञ अथवा सर्वज्ञ, ३५१. अमहामायः—बड़ी-से-बड़ी माया भी जिनपर प्रभाव नहीं डाल सकती ऐसे, ३५२. नियतात्मा—मनको वशमें रखनेवाले, ३५३. ध्रुवोऽध्रुवः—ध्रुव (नित्य कारण) और अध्रुव (अनित्य-कार्य)-रूप ॥ ४४ ॥

ओजस्तेजोद्युतिधरो जनकः सर्वशासनः।

३५४. ओजस्तेजोद्युतिधरः—ओज (प्राण और बल), तेज (शौर्य आदि गुण) तथा ज्ञानकी दीप्तिको धारण करनेवाले, ३५५. जनकः—सबके उत्पादक, ३५६. सर्वशासनः—सबके शासक,

नृत्यप्रियो नित्यनृत्यः प्रकाशात्मा प्रकाशकः ॥ ४५

३५७. **नृत्यप्रियः**—नृत्यके प्रेमी, ३५८. **नित्यनृत्यः**—प्रतिदिन ताण्डव नृत्य करनेवाले, ३५९. **प्रकाशात्मा**—प्रकाशस्वरूप, ३६०. **प्रकाशकः**—सूर्य आदिको भी प्रकाश देनेवाले ॥ ४५ ॥

स्पष्टाक्षरो बुधो मन्त्रः समानः सारसम्प्लवः।
युगादिकृद्युगावर्तो गम्भीरो वृषवाहनः ॥ ४६

३६१. **स्पष्टाक्षरः**—ओंकाररूप स्पष्ट अक्षरवाले, ३६२. **बुधः**—ज्ञानवान्, ३६३. **मन्त्रः**—ऋक्, साम और यजुर्वेदके मन्त्रस्वरूप, ३६४. **समानः**—सबके प्रति समान भाव रखनेवाले, ३६५. **सारसम्प्लवः**—संसारसागरसे पार होनेके लिये नौकारूप, ३६६. **युगादि-कृद्युगावर्तः**—युगादिका आरम्भ करनेवाले तथा चारों युगोंको चक्रकी तरह घुमानेवाले, ३६७. **गम्भीरः**—गाम्भीर्यसे युक्त, ३६८. **वृषवाहनः**—नन्दी नामक वृषभपर सवार होनेवाले ॥ ४६ ॥

इष्टोऽविशिष्टः शिष्टेष्टः सुलभः सारशोधनः।
तीर्थरूपस्तीर्थनामा तीर्थदृश्यस्तु तीर्थदः ॥ ४७

३६९. **इष्टः**—परमानन्दस्वरूप होनेसे सर्वप्रिय, ३७०. **अविशिष्टः**—सम्पूर्ण विशेषणोंसे रहित, ३७१. **शिष्टेष्टः**—शिष्ट पुरुषोंके इष्टदेव, ३७२. **सुलभः**—अनन्यचित्तसे निरन्तर स्मरण करनेवाले भक्तोंके लिये सुगमतासे प्राप्त होनेयोग्य, ३७३. **सारशोधनः**—सार-तत्त्वकी खोज करनेवाले, ३७४. **तीर्थरूपः**—तीर्थस्वरूप, ३७५. **तीर्थनामा**—तीर्थनामधारी अथवा जिनका नाम भवसागरसे पार लगानेवाला है, ऐसे, ३७६. **तीर्थदृश्यः**—तीर्थसेवनसे अपने स्वरूपका दर्शन करानेवाले अथवा गुरु-कृपासे प्रत्यक्ष होनेवाले, ३७७. **तीर्थदः**—चरणोदक स्वरूप तीर्थको देनेवाले ॥ ४७ ॥

अपांनिधिरधिष्ठानं दुर्जयो जयकालवित्।
प्रतिष्ठितः प्रमाणज्ञो हिरण्यकवचो हरिः ॥ ४८

३७८. **अपांनिधिः**—जलके निधान समुद्ररूप, ३७९. **अधिष्ठानम्**—उपादान-कारणरूपसे सब भूतोंके आश्रय अथवा जगत्-रूप प्रपंचके अधिष्ठान, ३८०. **दुर्जयः**—जिनको जीतना कठिन है, ऐसे, ३८१. **जय-कालवित्**—विजयके अवसरको समझनेवाले, ३८२. **प्रतिष्ठितः**—अपनी महिमामें स्थित, ३८३. **प्रमाणज्ञः**—प्रमाणोंके ज्ञाता, ३८४. **हिरण्यकवचः**—सुवर्णमय कवच धारण करनेवाले, ३८५. **हरिः**—श्रीहरिस्वरूप ॥ ४८ ॥

विमोचनः सुरगणो विद्येशो बिन्दुसंश्रयः।

३८६. **विमोचनः**—संसारबन्धनसे सदाके लिये छुड़ा देनेवाले, ३८७. **सुरगणः**—देवसमुदायरूप, ३८८. **विद्येशः**—सम्पूर्ण विद्याओंके स्वामी, ३८९. **विन्दु-संश्रयः**—बिन्दुरूप प्रणवके आश्रय,

बालरूपोऽबलोन्मत्तोऽविकर्ता गहनो गुहः ॥ ४९

३९०. बालरूपः—बालकका रूप धारण करनेवाले, **३९१. अबलोन्मत्तः**—बलसे उन्मत्त न होनेवाले, **३९२. अविकर्ता**—विकाररहित, **३९३. गहनः**—दुर्बोधस्वरूप या अगम्य, **३९४. गुहः**—मायासे अपने यथार्थ स्वरूपको छिपाये रखनेवाले ॥ ४९ ॥

करणं कारणं कर्ता सर्वबन्धविमोचनः।
व्यवसायो व्यवस्थानः स्थानदो जगदादिजः ॥ ५०

३९५. करणम्—संसारकी उत्पत्तिके सबसे बड़े साधन, **३९६. कारणम्**—जगत्के उपादान और निमित्त कारण, **३९७. कर्ता**—सबके रचयिता, **३९८. सर्वबन्ध-विमोचनः**—सम्पूर्ण बन्धनोंसे छुड़ानेवाले, **३९९. व्यव-सायः**—निश्चयात्मक ज्ञानस्वरूप, **४००. व्यवस्थानः**—सम्पूर्ण जगत्की व्यवस्था करनेवाले, **४०१. स्थानदः**—ध्रुव आदि भक्तोंको अविचल स्थिति प्रदान कर देनेवाले, **४०२. जगदादिजः**—हिरण्यगर्भरूपसे जगत्के आदिमें प्रकट होनेवाले ॥ ५० ॥

गुरुदो ललितोऽभेदो भावात्मात्मनि संस्थितः।
वीरेश्वरो वीरभद्रो वीरासनविधिर्विराट् ॥ ५१

४०३. गुरुदः—श्रेष्ठ वस्तु प्रदान करनेवाले अथवा जिज्ञासुओंको गुरुकी प्राप्ति करानेवाले, **४०४. ललितः**—सुन्दर स्वरूपवाले, **४०५. अभेदः**—भेदरहित, **४०६. भावात्मात्मनि संस्थितः**—सत्स्वरूप, आत्मामें प्रतिष्ठित, **४०७. वीरेश्वरः**—वीरशिरोमणि, **४०८. वीरभद्रः**—वीरभद्र नामक गणाध्यक्ष, **४०९. वीरासनविधिः**—वीरासनसे बैठनेवाले, **४१०. विराट्**—अखिलब्रह्माण्ड-स्वरूप ॥ ५१ ॥

वीरचूडामणिर्वेत्ता चिदानन्दो नदीधरः।
आज्ञाधारस्त्रिशूली च शिपिविष्टः शिवालयः ॥ ५२

४११ वीरचूडामणिः—वीरोंमें श्रेष्ठ, **४१२. वेत्ता**—विद्वान्, **४१३. चिदानन्दः**—विज्ञानानन्दस्वरूप, **४१४. नदीधरः**—मस्तकपर गंगाजीको धारण करनेवाले, **४१५. आज्ञाधारः**—आज्ञाका पालन करनेवाले, **४१६. त्रिशूली**—त्रिशूलधारी, **४१७. शिपिविष्टः**—तेजोमयी किरणोंसे व्याप्त, **४१८. शिवालयः**—भगवती शिवाके आश्रय ॥ ५२ ॥

बालखिल्यो महाचापस्तिग्मांशुर्बधिरः खगः।
अभिरामः सुशरणः सुब्रह्मण्यः सुधापतिः ॥ ५३

४१९. वालखिल्यः—वालखिल्य ऋषिरूप, **४२०. महाचापः**—महान् धनुर्धर, **४२१. तिग्मांशुः**—सूर्यरूप, **४२२. बधिरः**—लौकिक विषयोंकी चर्चा न सुननेवाले, **४२३. खगः**—आकाशचारी, **४२४. अभिरामः**—परम सुन्दर, **४२५. सुशरणः**—सबके लिये सुन्दर आश्रयरूप, **४२६. सुब्रह्मण्यः**—ब्राह्मणोंके परम हितैषी, **४२७. सुधापतिः**—अमृतकलशके रक्षक ॥ ५३ ॥

मघवान्कौशिको गोमान्विरामः सर्वसाधनः।
ललाटाक्षो विश्वदेहः सारः संसारचक्रभृत्॥ ५४

४२८. मघवान् कौशिकः—कुशिकवंशीय इन्द्र-स्वरूप, **४२९. गोमान्**—प्रकाशकिरणोंसे युक्त, **४३०. विरामः**—समस्त प्राणियोंके लयके स्थान, **४३१ सर्व-साधनः**—समस्त कामनाओंको सिद्ध करनेवाले, **४३२. ललाटाक्षः**—ललाटमें तीसरा नेत्र धारण करनेवाले, **४३३. विश्वदेहः**—जगत्स्वरूप, **४३४. सारः**—सार-तत्त्वरूप, **४३५. संसारचक्रभृत्**—संसारचक्रको धारण करनेवाले॥ ५४॥

अमोघदण्डो मध्यस्थो हिरण्यो ब्रह्मवर्चसी।
परमार्थः परो मायी शम्बरो व्याघ्रलोचनः॥ ५५

४३६. अमोघदण्डः—जिनका दण्ड कभी व्यर्थ नहीं जाता है, ऐसे, **४३७. मध्यस्थः**—उदासीन, **४३८. हिरण्यः**—सुवर्ण अथवा तेजःस्वरूप, **४३९. ब्रह्म-वर्चसी**—ब्रह्मतेजसे सम्पन्न, **४४०. परमार्थः**—मोक्षरूप उत्कृष्ट अर्थकी प्राप्ति करानेवाले, **४४१ परो मायी**— महामायावी, **४४२. शम्बरः**—कल्याणप्रद, **४४३. व्याघ्र-लोचनः**—व्याघ्रके समान भयानक नेत्रोंवाले॥ ५५॥

रुचिर्विरञ्चिः स्वर्बन्धुर्वाचस्पतिरहर्पतिः।
रविर्विरोचनः स्कन्दः शास्ता वैवस्वतो यमः॥ ५६

४४४. रुचिः—दीप्तिरूप, **४४५. विरञ्चिः**—ब्रह्मस्वरूप, **४४६. स्वर्बन्धुः**—स्वर्लोकमें बन्धुके समान सुखद, **४४७. वाचस्पतिः**—वाणीके अधिपति, **४४८. अहर्पतिः**—दिनके स्वामी सूर्यरूप, **४४९. रविः**—समस्त रसोंका शोषण करनेवाले, **४५०. विरोचनः**—विविध प्रकारसे प्रकाश फैलानेवाले, **४५१. स्कन्दः**—स्वामी कार्तिकेयरूप, **४५२. शास्ता वैवस्वतो यमः**— सबपर शासन करनेवाले सूर्यकुमार यम॥ ५६॥

युक्तिरुन्नतकीर्तिश्च सानुरागः परञ्जयः।
कैलासाधिपतिः कान्तः सविता रविलोचनः॥ ५७

४५३. युक्तिरुन्नतकीर्तिः—अष्टांगयोगस्वरूप तथा ऊर्ध्वलोकमें फैली हुई कीर्तिसे युक्त, **४५४. सानुरागः**—भक्तजनोंपर प्रेम रखनेवाले, **४५५. परञ्जयः**—दूसरोंपर विजय पानेवाले, **४५६. कैलासाधिपतिः**—कैलासके स्वामी, **४५७. कान्तः**—कमनीय अथवा कान्तिमान् , **४५८. सविता**—समस्त जगत्को उत्पन्न करनेवाले, **४५९. रविलोचनः**—सूर्यरूप नेत्रवाले॥ ५७॥

विद्वत्तमो वीतभयो विश्वभर्त्तानिवारितः।

४६०. विद्वत्तमः—विद्वानोंमें सर्वश्रेष्ठ, परम विद्वान्, **४६१. वीतभयः**—सब प्रकारके भयसे रहित, **४६२. विश्वभर्ता**—जगत्का भरण-पोषण करनेवाले, **४६३. अनिवारितः**—जिन्हें कोई

नित्यो नियतकल्याणः पुण्यश्रवणकीर्तनः॥ ५८

रोक नहीं सकता, ऐसे, ४६४. **नित्यः**—सत्यस्वरूप, ४६५. **नियतकल्याणः**—सुनिश्चितरूपसे कल्याणकारी, ४६६. **पुण्यश्रवण-कीर्तनः**—जिनके नाम, गुण, महिमा और स्वरूपके श्रवण तथा कीर्तन परम पावन हैं, ऐसे॥ ५८॥

दूरश्रवा विश्वसहो ध्येयो दुःस्वप्ननाशनः।
उत्तारणो दुष्कृतिहा विज्ञेयो दुःसहोऽभवः॥ ५९

४६७. **दूरश्रवाः**—सर्वव्यापी होनेके कारण दूरकी बात भी सुन लेनेवाले, ४६८. **विश्वसहः**—भक्तजनोंके सब अपराधोंको कृपापूर्वक सह लेनेवाले, ४६९. **ध्येयः**—ध्यान करनेयोग्य, ४७०. **दुःस्वप्ननाशनः**—चिन्तन करनेमात्रसे बुरे स्वप्नोंका नाश करनेवाले, ४७१. **उत्तारणः**—संसारसागरसे पार उतारनेवाले, ४७२. **दुष्कृतिहा**—पापोंका नाश करनेवाले, ४७३. **विज्ञेयः**—जाननेके योग्य, ४७४. **दुस्सहः**—जिनके वेगको सहन करना दूसरोंके लिये अत्यन्त कठिन है, ऐसे, ४७५. **अभवः**—संसारबन्धनसे रहित अथवा अजन्मा॥ ५९॥

अनादिर्भूर्भुवो लक्ष्मीः किरीटी त्रिदशाधिपः।
विश्वगोप्ता विश्वकर्ता सुवीरो रुचिराङ्गदः॥ ६०

४७६. **अनादिः**—जिनका कोई आदि नहीं है, ऐसे सबके कारणस्वरूप, ४७७. **भूर्भुवो लक्ष्मीः**—भूर्लोक और भुवर्लोककी शोभा, ४७८. **किरीटी**— मुकुटधारी, ४७९. **त्रिदशाधिपः**—देवताओंके स्वामी, ४८०. **विश्व-गोप्ता**—जगत्‌के रक्षक, ४८१. **विश्व-कर्ता**—संसारकी सृष्टि करनेवाले, ४८२. **सुवीरः**—श्रेष्ठ वीर, ४८३. **रुचिराङ्गदः**—सुन्दर बाजूबन्द धारण करनेवाले॥ ६०॥

जननो जनजन्मादिः प्रीतिमान्नीतिमान्धवः।
वसिष्ठः कश्यपो भानुर्भीमो भीमपराक्रमः॥ ६१

४८४. **जननः**—प्राणिमात्रको जन्म देनेवाले, ४८५. **जनजन्मादिः**—जन्म लेनेवालोंके जन्मके मूल कारण, ४८६. **प्रीतिमान्**—प्रसन्न, ४८७. **नीतिमान्**—सदा नीतिपरायण, ४८८. **धवः**—सबके स्वामी, ४८९. **वसिष्ठः**—मन और इन्द्रियोंको अत्यन्त वशमें रखनेवाले अथवा वसिष्ठ ऋषिरूप, ४९०. **कश्यपः**—द्रष्टा अथवा कश्यप मुनिरूप, ४९१. **भानुः**—प्रकाशमान अथवा सूर्यरूप, ४९२. **भीमः**—दुष्टोंको भय देनेवाले, ४९३. **भीम-पराक्रमः**—अतिशय भयदायक पराक्रमसे युक्त॥ ६१॥

प्रणवः सत्पथाचारो महाकोशो महाधनः।

४९४. **प्रणवः**—ओंकारस्वरूप, ४९५. **सत्पथा-चारः**—सत्पुरुषोंके मार्गपर चलनेवाले, ४९६. **महा-कोशः**—अन्नमयादि पाँचों कोशोंको अपने भीतर धारण करनेके कारण महाकोशरूप, ४९७. **महाधनः**—अपरिमित

जन्माधिपो महादेवः सकलागमपारगः ॥ ६२

ऐश्वर्यवाले अथवा कुबेरको भी धन देनेके कारण महाधनवान्, ४९८. **जन्माधिपः**—जन्म (उत्पादन)-रूपी कार्यके अध्यक्ष ब्रह्मा, ४९९. **महादेवः**—सर्वोत्कृष्ट देवता, ५००. **सकलागमपारगः**—समस्त शास्त्रोंके पारंगत विद्वान्॥ ६२॥

तत्त्वं तत्त्वविदेकात्मा विभुर्विश्वविभूषणः।
ऋषिर्ब्राह्मण ऐश्वर्यजन्ममृत्युजरातिगः॥ ६३

५०१ **तत्त्वम्**—यथार्थ तत्त्वरूप, ५०२. **तत्त्व-वित्**—यथार्थ तत्त्वको पूर्णतया जाननेवाले, ५०३. **एकात्मा**—अद्वितीय आत्मरूप, ५०४. **विभुः**—सर्वत्र व्यापक, ५०५. **विश्वभूषणः**—सम्पूर्ण जगत्को उत्तम गुणोंसे विभूषित करनेवाले, ५०६. **ऋषिः**—मन्त्रद्रष्टा, ५०७. **ब्राह्मणः**—ब्रह्मवेत्ता, ५०८. **ऐश्वर्यजन्ममृत्यु-जरातिगः**—ऐश्वर्य, जन्म, मृत्यु और जरासे अतीत॥ ६३॥

पञ्चयज्ञसमुत्पत्तिर्विश्वेशो विमलोदयः।
आत्मयोनिरनाद्यन्तो वत्सलो भक्तलोकधृक्॥ ६४

५०९. **पञ्चयज्ञसमुत्पत्तिः**—पंच महायज्ञोंकी उत्पत्तिके हेतु, ५१०. **विश्वेशः**—विश्वनाथ, ५११. **विमलोदयः**—निर्मल अभ्युदयकी प्राप्ति करानेवाले धर्मरूप, ५१२. **आत्मयोनिः**—स्वयम्भू, ५१३. **अनाद्यन्तः**—आदि-अन्तसे रहित, ५१४. **वत्सलः**—भक्तोंके प्रति वात्सल्य-स्नेहसे युक्त, ५१५. **भक्तलोकधृक्**—भक्तजनोंके आश्रय॥ ६४॥

गायत्रीवल्लभः प्रांशुर्विश्वावासः प्रभाकरः।
शिशुर्गिरिरतः सम्राट् सुषेणः सुरशत्रुहा॥ ६५

५१६. **गायत्रीवल्लभः**—गायत्रीमन्त्रके प्रेमी, ५१७. **प्रांशुः**—ऊँचे शरीरवाले, ५१८. **विश्वावासः**—सम्पूर्ण जगत्के आवासस्थान, ५१९. **प्रभाकरः**—सूर्यरूप, ५२०. **शिशुः**—बालकरूप, ५२१. **गिरिरतः**—कैलासपर्वतपर रमण करनेवाले, ५२२. **सम्राट्**—देवेश्वरोंके भी ईश्वर, ५२३. **सुषेणः सुरशत्रुहा**—प्रमथगणोंकी सुन्दर सेनासे युक्त तथा देवशत्रुओंका संहार करनेवाले॥ ६५॥

अमोघोऽरिष्टनेमिश्च कुमुदो विगतज्वरः।
स्वयंज्योतिस्तनुज्योतिरात्मज्योतिरचञ्चलः ॥ ६६

५२४. **अमोघोऽरिष्टनेमिः**—अमोघ संकल्पवाले महर्षि कश्यपरूप, ५२५. **कुमुदः**—भूतलको आह्लाद प्रदान करनेवाले चन्द्रमारूप, ५२६. **विगतज्वरः**—चिन्तारहित, ५२७. **स्वयंज्योतिस्तनुज्योतिः**—अपने ही प्रकाशसे प्रकाशित होनेवाले सूक्ष्मज्योतिःस्वरूप, ५२८. **आत्मज्योतिः**—अपने स्वरूपभूत ज्ञानकी प्रभासे प्रकाशित, ५२९. **अचञ्चलः**—चंचलतासे रहित॥ ६६॥

पिङ्गलः कपिलश्मश्रुर्भालनेत्रस्त्रयीतनुः।
ज्ञानस्कन्दो महानीतिर्विश्वोत्पत्तिरुपप्लवः॥ ६७

५३०. **पिङ्गलः**—पिंगलवर्णवाले, ५३१. **कपिल-श्मश्रुः**—कपिल वर्णकी दाढ़ी-मूँछ रखनेवाले दुर्वासा मुनिके रूपमें अवतीर्ण, ५३२. **भालनेत्रः**—ललाटमें तृतीय नेत्र धारण करनेवाले, ५३३. **त्रयीतनुः**—तीनों लोक या तीनों वेद जिनके स्वरूप हैं, ऐसे, ५३४. **ज्ञानस्कन्दो महानीतिः**—ज्ञानप्रद और श्रेष्ठ नीतिवाले, ५३५. **विश्वोत्पत्तिः**—जगत्‌के उत्पादक, ५३६. **उपप्लवः**—संहारकारी॥ ६७॥

भगो विवस्वानादित्यो योगपारो दिवस्पतिः।
कल्याणगुणनामा च पापहा पुण्यदर्शनः॥ ६८

५३७. **भगो विवस्वानादित्यः**—अदितिनन्दन भग एवं विवस्वान्, ५३८. **योगपारः**—योगविद्यामें पारंगत, ५३९. **दिवस्पतिः**—स्वर्गलोकके स्वामी, ५४०. **कल्याणगुणनामा**—कल्याणकारी गुण और नामवाले, ५४१. **पापहा**—पापनाशक, ५४२. **पुण्यदर्शनः**—पुण्यजनक दर्शनवाले अथवा पुण्यसे ही जिनका दर्शन होता है, ऐसे॥ ६८॥

उदारकीर्तिरुद्योगी सद्योगी सदसन्मयः।
नक्षत्रमाली नाकेशः स्वाधिष्ठानपदाश्रयः॥ ६९

५४३. **उदारकीर्तिः**—उत्तम कीर्तिवाले, ५४४. **उद्योगी**—उद्योगशील, ५४५. **सद्योगी**—श्रेष्ठ योगी, ५४६. **सदसन्मयः**—सदसत्स्वरूप, ५४७. **नक्षत्र-माली**—नक्षत्रोंकी मालासे अलंकृत आकाशरूप, ५४८. **नाकेशः**—स्वर्गके स्वामी, ५४९. **स्वाधिष्ठान-पदाश्रयः**—स्वाधिष्ठान चक्रके आश्रय॥ ६९॥

पवित्रः पापहारी च मणिपूरो नभोगतिः।
हृत्पुण्डरीकमासीनः शक्रः शान्तो वृषाकपिः॥ ७०

५५०. **पवित्रः पापहारी**—नित्य शुद्ध एवं पाप-नाशक, ५५१. **मणिपूरः**—मणिपूर नामक चक्रस्वरूप, ५५२. **नभोगतिः**—आकाशचारी, ५५३. **हृत्पुण्डरीक-मासीनः**—हृदयकमलमें स्थित, ५५४. **शक्रः**—इन्द्ररूप, ५५५. **शान्तः**—शान्तस्वरूप, ५५६. **वृषाकपिः**—हरिहर॥ ७०॥

उष्णो गृहपतिः कृष्णः समर्थोऽनर्थनाशनः।
अधर्मशत्रुरज्ञेयः पुरुहूतः पुरुश्रुतः॥ ७१

५५७. **उष्णः**—हालाहल विषकी गर्मीसे उष्णतायुक्त, ५५८. **गृहपतिः**—समस्त ब्रह्माण्डरूपी गृहके स्वामी, ५५९. **कृष्णः**—सच्चिदानन्दस्वरूप, ५६०. **समर्थः**—सामर्थ्यशाली, ५६१. **अनर्थनाशनः**—अनर्थका नाश करनेवाले, ५६२. **अधर्मशत्रुः**—अधर्मनाशक, ५६३. **अज्ञेयः**—बुद्धिकी पहुँचसे परे अथवा जाननेमें न आनेवाले, ५६४. **पुरुहूतः पुरुश्रुतः**—बहुत-से नामोंद्वारा पुकारे और सुने जानेवाले॥ ७१॥

ब्रह्मगर्भो बृहद्गर्भो धर्मधेनुर्धनागमः।
जगद्धितैषी सुगतः कुमारः कुशलागमः॥ ७२

५६५. **ब्रह्मगर्भः**—ब्रह्मा जिनके गर्भस्थ शिशुके समान हैं, ऐसे, ५६६. **बृहद्गर्भः**—विश्वब्रह्माण्ड प्रलय-कालमें जिनके गर्भमें रहता है, ऐसे, ५६७. **धर्मधेनुः**—धर्मरूपी वृषभको उत्पन्न करनेके लिये धेनुस्वरूप, ५६८. **धनागमः**—धनकी प्राप्ति करानेवाले, ५६९. **जगद्धि-तैषी**—समस्त संसारका हित चाहनेवाले, ५७०. **सुगतः**—उत्तम ज्ञानसे सम्पन्न अथवा बुद्धस्वरूप, ५७१. **कुमारः**—कार्तिकेयरूप, ५७२. **कुशलागमः**—कल्याणदाता॥ ७२॥

हिरण्यवर्णो ज्योतिष्मान्नानाभूतरतो ध्वनिः।
अरागो नयनाध्यक्षो विश्वामित्रो धनेश्वरः॥ ७३

५७३. **हिरण्यवर्णो ज्योतिष्मान्**—सुवर्णके समान गौरवर्णवाले तथा तेजस्वी, ५७४. **नानाभूतरतः**—नाना प्रकारके भूतोंके साथ क्रीडा करनेवाले, ५७५. **ध्वनिः**—नादस्वरूप, ५७६. **अरागः**—आसक्तिशून्य, ५७७. **नयनाध्यक्षः**—नेत्रोंमें द्रष्टारूपसे विद्यमान, ५७८. **विश्वामित्रः**—सम्पूर्ण जगत्के प्रति मैत्री-भावना रखनेवाले मुनिस्वरूप, ५७९. **धनेश्वरः**—धनके स्वामी कुबेर॥ ७३॥

ब्रह्मज्योतिर्वसुधामा महाज्योतिरनुत्तमः।
मातामहो मातरिश्वा नभस्वान्नागहारधृक्॥ ७४

५८०. **ब्रह्मज्योतिः**—ज्योतिःस्वरूप ब्रह्म, ५८१. **वसुधामा**—सुवर्ण और रत्नोंके तेजसे प्रकाशित अथवा वसुधास्वरूप, ५८२. **महाज्योतिरनुत्तमः**—सूर्य आदि ज्योतियोंके प्रकाशक सर्वोत्तम महाज्योतिःस्वरूप, ५८३. **मातामहः**—मातृकाओंके जन्मदाता होनेके कारण मातामह, ५८४. **मातरिश्वा नभस्वान्**—आकाशमें विचरनेवाले वायुदेव, ५८५. **नागहारधृक्**—सर्पमय हार धारण करनेवाले॥ ७४॥

पुलस्त्यः पुलहोऽगस्त्यो जातूकर्ण्यः पराशरः।
निरावरणनिर्वारो वैरञ्च्यो विष्टरश्रवाः॥ ७५

५८६. **पुलस्त्यः**—पुलस्त्य नामक मुनि, ५८७. **पुलहः**—पुलह नामक ऋषि, ५८८. **अगस्त्यः**—कुम्भ-जन्मा अगस्त्य ऋषि, ५८९. **जातूकर्ण्यः**—इसी नामसे प्रसिद्ध मुनि, ५९०. **पराशरः**—शक्तिके पुत्र तथा व्यासजीके पिता मुनिवर पराशर, ५९१. **निरावरण-निर्वारः**—आवरणशून्य तथा अवरोधरहित, ५९२. **वैरञ्च्यः**—ब्रह्माजीके पुत्र नीललोहित रुद्र, ५९३. **विष्टरश्रवाः**—विस्तृत यशवाले विष्णुस्वरूप, ५९४. **आत्मभूः**—स्वयम्भू ब्रह्मा, ५९५. **अनिरुद्धः**—अकुण्ठित गतिवाले, ५९६. **अत्रिः**—अत्रि नामक ऋषि अथवा त्रिगुणातीत, ५९७. **ज्ञानमूर्तिः**—ज्ञानस्वरूप, ५९८. **महायशाः**—महायशस्वी,

आत्मभूरनिरुद्धोऽत्रिर्ज्ञानमूर्तिर्महायशाः ।

लोकवीराग्रणीर्वीरश्चण्डः सत्यपराक्रमः ॥ ७६

५९९. **लोकवीराग्रणीः**—विश्वविख्यात वीरोंमें अग्रगण्य, ६००. **वीरः**—शूरवीर, ६०१. **चण्डः**—प्रलयके समय अत्यन्त क्रोध करनेवाले, ६०२. **सत्यपराक्रमः**—सच्चे पराक्रमी ॥ ७५-७६ ॥

व्यालकल्पो महाकल्पः कल्पवृक्षः कलाधरः।
अलंकरिष्णुरचलो रोचिष्णुर्विक्रमोन्नतः ॥ ७७

६०३. **व्यालाकल्पः**—सर्पोंके आभूषणसे शृङ्गार करनेवाले, ६०४. **महाकल्पः**—महाकल्पसंज्ञक काल-स्वरूपवाले, ६०५. **कल्पवृक्षः**—शरणागतोंकी इच्छा पूर्ण करनेके लिये कल्पवृक्षके समान उदार, ६०६. **कलाधरः**—चन्द्रकलाधारी, ६०७. **अलंकरिष्णुः**—अलंकार धारण करने या करानेवाले, ६०८. **अचलः**—विचलित न होनेवाले, ६०९. **रोचिष्णुः**—प्रकाशमान, ६१०. **विक्रमोन्नतः**—पराक्रममें बढ़े-चढ़े ॥ ७७ ॥

आयुःशब्दपतिर्वेगी प्लवनः शिखिसारथिः।
असंसृष्टोऽतिथिः शक्रप्रमाथी पादपासनः ॥ ७८

६११. **आयुः शब्दपतिः**—आयु तथा वाणीके स्वामी, ६१२. **वेगी प्लवनः**—वेगशाली तथा कूदने या तैरनेवाले, ६१३. **शिखिसारथिः**—अग्निरूप सहायकवाले, ६१४. **असंसृष्टः**—निर्लेप, ६१५. **अतिथिः**—प्रेमी भक्तोंके घरपर अतिथिकी भाँति उपस्थित हो उनका सत्कार ग्रहण करनेवाले, ६१६. **शक्रप्रमाथी**—इन्द्रका मान-मर्दन करनेवाले, ६१७. **पादपासनः**—वृक्षोंपर या वृक्षोंके नीचे आसन लगानेवाले ॥ ७८ ॥

वसुश्रवा हव्यवाहः प्रतप्तो विश्वभोजनः।
जप्यो जरादिशमनो लोहितात्मा तनूनपात् ॥ ७९

६१८. **वसुश्रवाः**—यशरूपी धनसे सम्पन्न, ६१९. **हव्यवाहः**—अग्निस्वरूप, ६२०. **प्रतप्तः**—सूर्यरूपसे प्रचण्ड ताप देनेवाले, ६२१. **विश्वभोजनः**—प्रलयकालमें विश्व-ब्रह्माण्डको अपना ग्रास बना लेनेवाले, ६२२. **जप्यः**—जपनेयोग्य नामवाले, ६२३. **जरादिशमनः**—बुढ़ापा आदि दोषोंका निवारण करनेवाले, ६२४. **लोहितात्मा तनूनपात्**—लोहितवर्णवाले अग्निरूप ॥ ७९ ॥

बृहदश्वो नभोयोनिः सुप्रतीकस्तमिस्रहा।
निदाघस्तपनो मेघः स्वक्षः परपुरञ्जयः ॥ ८०

६२५. **बृहदश्वः**—विशाल अश्ववाले, ६२६. **नभो-योनिः**—आकाशकी उत्पत्तिके स्थान, ६२७. **सुप्रतीकः**—सुन्दर शरीरवाले, ६२८. **तमिस्रहा**—अज्ञानान्धकारनाशक, ६२९. **निदाघस्तपनः**—तपनेवाले ग्रीष्मरूप, ६३०. **मेघः**—बादलोंसे उपलक्षित वर्षारूप, ६३१. **स्वक्षः**—सुन्दर नेत्रोंवाले, ६३२. **परपुरञ्जयः**—त्रिपुररूप शत्रुनगरीपर विजय पानेवाले ॥ ८० ॥

सुखानिलः सुनिष्पन्नः सुरभिः शिशिरात्मकः।
वसन्तो माधवो ग्रीष्मो नभस्यो बीजवाहनः॥ ८१

६३३. **सुखानिलः**—सुखदायक वायुको प्रकट करनेवाले शरत्कालरूप, ६३४. **सुनिष्पन्नः**—जिसमें अन्नका सुन्दररूपसे परिपाक होता है, वह हेमन्तकालरूप, ६३५. **सुरभिः शिशिरात्मकः**—सुगन्धित मलयानिलसे युक्त शिशिर-ऋतुरूप, ६३६. **वसन्तो माधवः**—चैत्र-वैशाख—इन दो मासोंसे युक्त वसन्तरूप, ६३७. **ग्रीष्मः**—ग्रीष्म-ऋतुरूप, ६३८. **नभस्यः**—भाद्रपदमासरूप, ६३९. **बीज-वाहनः**—धान आदिके बीजोंकी प्राप्ति करानेवाला शरत्काल॥ ८१॥

अङ्गिरा गुरुरात्रेयो विमलो विश्ववाहनः।
पावनः सुमतिर्विद्वांस्त्रैविद्यो वरवाहनः॥ ८२

६४०. **अङ्गिरा गुरुः**—अंगिरा नामक ऋषि तथा उनके पुत्र देवगुरु बृहस्पति, ६४१. **आत्रेयः**—अत्रिकुमार दुर्वासा, ६४२. **विमलः**—निर्मल, ६४३. **विश्ववाहनः**—सम्पूर्ण जगत्का निर्वाह करानेवाले, ६४४. **पावनः**—पवित्र करनेवाले, ६४५. **सुमतिर्विद्वान्**—उत्तम बुद्धिवाले विद्वान्, ६४६. **त्रैविद्यः**—तीनों वेदोंके विद्वान् अथवा तीनों वेदोंके द्वारा प्रतिपादित, ६४७. **वरवाहनः**—वृषभरूप श्रेष्ठ वाहनवाले॥ ८२॥

मनोबुद्धिरहङ्कारः क्षेत्रज्ञः क्षेत्रपालकः।
जमदग्निर्बलनिधिर्विगालो विश्वगालवः॥ ८३

६४८. **मनोबुद्धिरहंकारः**—मन, बुद्धि और अहंकारस्वरूप, ६४९. **क्षेत्रज्ञः**—आत्मा, ६५०. **क्षेत्र-पालकः**—शरीररूपी क्षेत्रका पालन करनेवाले परमात्मा, ६५१. **जमदग्नि**:—जमदग्नि नामक ऋषिरूप, ६५२. **बलनिधिः**—अनन्त बलके सागर, ६५३. **विगालः**—अपनी जटासे गंगाजीके जलको टपकानेवाले, ६५४. **विश्वगालवः**—विश्वविख्यात गालव मुनि अथवा प्रलय-कालमें कालाग्निस्वरूपसे जगत्को निगल जानेवाले॥ ८३॥

अघोरोऽनुत्तरो यज्ञः श्रेष्ठो निःश्रेयसप्रदः।
शैलो गगनकुन्दाभो दानवारिररिंदमः॥ ८४

६५५. **अघोरः**—सौम्यरूपवाले, ६५६. **अनुत्तरः**—सर्वश्रेष्ठ, ६५७. **यज्ञः श्रेष्ठः**—श्रेष्ठ यज्ञरूप, ६५८. **निःश्रेयसप्रदः**—कल्याणदाता, ६५९. **शैलः**—शिलामय लिंगरूप, ६६०. **गगनकुन्दाभः**—आकाशकुन्द—चन्द्रमाके समान गौर कान्तिवाले, ६६१. **दानवारिः**— दानव-शत्रु, ६६२. **अरिंदमः**—शत्रुओंका दमन करनेवाले॥ ८४॥

रजनीजनकश्चारुर्निःशल्यो लोकशल्यधृक्।

६६३. **रजनीजनकश्चारुः**—सुन्दर निशाकर-रूप, ६६४. **निःशल्यः**—निष्कण्टक, ६६५. **लोक-शल्यधृक्**—शरणागतजनोंके शोक-शल्यको निकालकर

चतुर्वेदश्चतुर्भावश्चतुरश्चतुरप्रियः ॥ ८५

स्वयं धारण करनेवाले, ६६६. **चतुर्वेदः**—चारों वेदोंके द्वारा जाननेयोग्य, ६६७. **चतुर्भावः**—चारों पुरुषार्थोंकी प्राप्ति करानेवाले, ६६८. **चतुरश्चतुरप्रियः**—चतुर एवं चतुर पुरुषोंके प्रिय ॥ ८५ ॥

आम्नायोऽथ समाम्नायस्तीर्थदेवशिवालयः।
बहुरूपो महारूपः सर्वरूपश्चराचरः ॥ ८६

६६९. **आम्नायः**—वेदस्वरूप, ६७०. **समाम्नायः**—अक्षरसमाम्नाय—शिवसूत्ररूप, ६७१. **तीर्थदेव-शिवालयः**—तीर्थोंके देवता और शिवालयरूप, ६७२. **बहुरूपः**—अनेक रूपवाले, ६७३. **महारूपः**—विराट्-रूपधारी, ६७४. **सर्वरूपश्चराचरः**—चर और अचर सम्पूर्ण रूपवाले ॥ ८६ ॥

न्यायनिर्मायको न्यायी न्यायगम्यो निरञ्जनः।
सहस्रमूर्धा देवेन्द्रः सर्वशस्त्रप्रभञ्जनः ॥ ८७

६७५. **न्यायनिर्मायको न्यायी**—न्यायकर्ता तथा न्यायशील, ६७६. **न्यायगम्यः**—न्याययुक्त आचरणसे प्राप्त होनेयोग्य, ६७७. **निरञ्जनः**—निर्मल, ६७८. **सहस्रमूर्द्धा**—सहस्रों सिरवाले, ६७९. **देवेन्द्रः**—देवताओंके स्वामी, ६८०. **सर्वशस्त्रप्रभञ्जनः**—विपक्षी योद्धाओंके सम्पूर्ण शस्त्रोंको नष्ट कर देनेवाले ॥ ८७ ॥

मुण्डो विरूपो विक्रान्तो दण्डी दान्तो गुणोत्तमः।
पिङ्गलाक्षो जनाध्यक्षो नीलग्रीवो निरामयः ॥ ८८

६८१. **मुण्डः**—मुँड़े हुए सिरवाले संन्यासी, ६८२. **विरूपः**—विविध रूपवाले, ६८३. **विक्रान्तः**—विक्रम-शील, ६८४. **दण्डी**—दण्डधारी, ६८५. **दान्तः**—मन और इन्द्रियोंका दमन करनेवाले, ६८६. **गुणोत्तमः**—गुणोंमें सबसे श्रेष्ठ, ६८७. **पिङ्गलाक्षः**—पिंगल नेत्र-वाले, ६८८. **जनाध्यक्षः**—जीवमात्रके साक्षी, ६८९. **नीलग्रीवः**—नीलकण्ठ, ६९०. **निरामयः**—नीरोग ॥ ८८ ॥

सहस्रबाहुः सर्वेशः शरण्यः सर्वलोकधृक्।
पद्मासनः परं ज्योतिः पारम्पर्यफलप्रदः ॥ ८९

६९१. **सहस्रबाहुः**—सहस्रों भुजाओंसे युक्त, ६९२. **सर्वेशः**—सबके स्वामी, ६९३. **शरण्यः**—शरणागत-हितैषी, ६९४. **सर्वलोकधृक्**—सम्पूर्ण लोकोंको धारण करनेवाले, ६९५. **पद्मासनः**—कमलके आसनपर विराजमान, ६९६. **परं ज्योतिः**—परम प्रकाशस्वरूप, ६९७. **पारम्पर्यफलप्रदः**—परम्परागत फलकी प्राप्ति करानेवाले ॥ ८९ ॥

पद्मगर्भो महागर्भो विश्वगर्भो विचक्षणः।

६९८. **पद्मगर्भः**—अपनी नाभिसे कमलको प्रकट करनेवाले विष्णुरूप, ६९९. **महागर्भः**—विराट् ब्रह्माण्डको गर्भमें धारण करनेके कारण महान् गर्भवाले, ७००. **विश्वगर्भः**—सम्पूर्ण जगत्को अपने उदरमें धारण करनेवाले, ७०१. **विचक्षणः**—चतुर,

परावरज्ञो वरदो वरेण्यश्च महास्वनः॥ ९०

७०२. **परावरज्ञः**—कारण और कार्यके ज्ञाता, ७०३. **वरदः**—अभीष्ट वर देनेवाले, ७०४. **वरेण्यः**—वरणीय अथवा श्रेष्ठ, ७०५. **महास्वनः**—डमरूका गम्भीर नाद करनेवाले॥ ९०॥

देवासुरगुरुर्देवो देवासुरनमस्कृतः।
देवासुरमहामित्रो देवासुरमहेश्वरः॥ ९१

७०६. **देवासुरगुरुर्देवः**—देवताओं तथा असुरोंके गुरुदेव एवं आराध्य, ७०७. **देवासुरनमस्कृतः**—देवताओं तथा असुरोंसे वन्दित, ७०८. **देवासुर-महामित्रः**—देवता तथा असुर दोनोंके बड़े मित्र, ७०९. **देवासुर-महेश्वरः**—देवताओं और असुरोंके महान् ईश्वर॥ ९१॥

देवासुरेश्वरो दिव्यो देवासुरमहाश्रयः।
देवदेवमयोऽचिन्त्यो देवदेवात्मसम्भवः॥ ९२

७१०. **देवासुरेश्वरः**—देवताओं और असुरोंके शासक, ७११. **दिव्यः**—अलौकिक स्वरूपवाले, ७१२. **देवासुरमहाश्रयः**—देवताओं और असुरोंके महान् आश्रय, ७१३. **देवदेवमयः**—देवताओंके लिये भी देवतारूप, ७१४. **अचिन्त्यः**—चित्तकी सीमासे परे विद्यमान, ७१५. **देवदेवात्मसम्भवः**—देवाधिदेव ब्रह्माजीसे रुद्ररूपमें उत्पन्न॥ ९२॥

सद्योनिरसुरव्याघ्रो देवसिंहो दिवाकरः।
विबुधाग्रचरश्रेष्ठः सर्वदेवोत्तमोत्तमः॥ ९३

७१६. **सद्योनिः**—सत्पदार्थोंकी उत्पत्तिके हेतु, ७१७. **असुरव्याघ्रः**—असुरोंका विनाश करनेके लिये व्याघ्ररूप, ७१८. **देवसिंहः**—देवताओंमें श्रेष्ठ, ७१९. **दिवाकरः**—सूर्यरूप, ७२०. **विबुधाग्रचरश्रेष्ठः**—देवताओंके नायकोंमें सर्वश्रेष्ठ, ७२१. **सर्वदेवोत्तमोत्तमः**—सम्पूर्ण श्रेष्ठ देवताओंके भी शिरोमणि॥ ९३॥

शिवज्ञानरतः श्रीमान् शिखिश्रीपर्वतप्रियः।
वज्रहस्तः सिद्धखड्गो नरसिंहनिपातनः॥ ९४

७२२. **शिवज्ञानरतः**—कल्याणमय शिवतत्त्वके विचारमें तत्पर, ७२३. **श्रीमान्**—अणिमा आदि विभूतियोंसे सम्पन्न, ७२४. **शिखिश्रीपर्वतप्रियः**—कुमार कार्तिकेयके निवासभूत श्रीशैल नामक पर्वतसे प्रेम करनेवाले, ७२५. **वज्रहस्तः**—वज्रधारी इन्द्ररूप, ७२६. **सिद्धखड्गः**—शत्रुओंको मार गिरानेमें जिनकी तलवार कभी असफल नहीं होती, ऐसे, ७२७. **नरसिंहनिपातनः**—शरभरूपसे नृसिंहको धराशायी करनेवाले॥ ९४॥

ब्रह्मचारी लोकचारी धर्मचारी धनाधिपः।

७२८. **ब्रह्मचारी**—भगवती उमाके प्रेमकी परीक्षा लेनेके लिये ब्रह्मचारीरूपसे प्रकट, ७२९. **लोकचारी**—समस्त लोकोंमें विचरनेवाले, ७३०. **धर्मचारी**—धर्मका आचरण करनेवाले, ७३१. **धनाधिपः**—

नन्दी नन्दीश्वरोऽनन्तो नग्नव्रतधरः शुचिः॥ ९५

धनके अधिपति कुबेर, ७३२. **नन्दी**—नन्दी नामक गण, ७३३. **नन्दीश्वरः**—इसी नामसे प्रसिद्ध वृषभ, ७३४. **अनन्तः**—अन्तरहित, ७३५. **नग्नव्रतधरः**—दिगम्बर रहनेका व्रत धारण करनेवाले, ७३६. **शुचिः**—नित्यशुद्ध॥ ९५॥

लिङ्गाध्यक्षः सुराध्यक्षो योगाध्यक्षो युगावहः।
स्वधर्मा स्वर्गतः स्वर्गस्वरः स्वरमयस्वनः॥ ९६

७३७. **लिङ्गाध्यक्षः**—लिंगदेहके द्रष्टा, ७३८. **सुराध्यक्षः**—देवताओंके अधिपति, ७३९. **योगाध्यक्षः**—योगेश्वर, ७४०. **युगावहः**—युगके निर्वाहक, ७४१. **स्वधर्मा**—आत्मविचाररूप धर्ममें स्थित अथवा स्वधर्म-परायण, ७४२. **स्वर्गतः**—स्वर्गलोकमें स्थित, ७४३. **स्वर्गस्वरः**—स्वर्गलोकमें जिनके यशका गान किया जाता है, ऐसे, ७४४. **स्वरमयस्वनः**—सात प्रकारके स्वरोंसे युक्त ध्वनिवाले॥ ९६॥

बाणाध्यक्षो बीजकर्ता धर्मकृद्धर्मसम्भवः।
दम्भो लोभोऽर्थविच्छम्भुः सर्वभूतमहेश्वरः॥ ९७

७४५. **बाणाध्यक्षः**—बाणासुरके स्वामी अथवा बाणलिंग नर्मदेश्वरमें अधिदेवतारूपसे स्थित, ७४६. **बीजकर्ता**—बीजके उत्पादक, ७४७. **धर्मकृद्धर्मसम्भवः**—धर्मके पालक और उत्पादक, ७४८. **दम्भः**—मायामयरूपधारी, ७४९. **अलोभः**—लोभरहित, ७५०. **अर्थविच्छम्भुः**—सबके प्रयोजनको जाननेवाले कल्याण-निकेतन शिव, ७५१. **सर्वभूतमहेश्वरः**—सम्पूर्ण प्राणियोंके परमेश्वर॥ ९७॥

श्मशाननिलयस्त्र्यक्षः सेतुरप्रतिमाकृतिः।
लोकोत्तरस्फुटालोकस्त्र्यम्बको नागभूषणः॥ ९८

७५२. **श्मशाननिलयः**—श्मशानवासी, ७५३. **त्र्यक्षः**—त्रिनेत्रधारी, ७५४. **सेतुः**—धर्ममर्यादाके पालक, ७५५. **अप्रतिमाकृतिः**—अनुपम रूपवाले, ७५६. **लोको-त्तरस्फुटालोकः**—अलौकिक एवं सुस्पष्ट प्रकाशसे युक्त, ७५७. **त्र्यम्बकः**—त्रिनेत्रधारी अथवा त्र्यम्बक नामक ज्योतिर्लिंग, ७५८. **नागभूषणः**—नागहारसे विभूषित॥ ९८॥

अन्धकारिर्मखद्वेषी विष्णुकन्धरपातनः।
हीनदोषोऽक्षयगुणो दक्षारिः पूषदन्तभित्॥ ९९

७५९. **अन्धकारिः**—अन्धकासुरका वध करनेवाले, ७६०. **मखद्वेषी**—दक्षके यज्ञका विध्वंस करनेवाले, ७६१. **विष्णुकन्धरपातनः**—यज्ञमय विष्णुका गला काटनेवाले, ७६२. **हीनदोषः**—दोषरहित, ७६३. **अक्षय-गुणः**—अविनाशी गुणोंसे सम्पन्न, ७६४. **दक्षारिः**—दक्षद्रोही, ७६५. **पूषदन्तभित्**—पूषा देवताके दाँत तोड़नेवाले॥ ९९॥

धूर्जटिः खण्डपरशुः सकलो निष्कलोऽनघः।
अकालः सकलाधारः पाण्डुराभो मृडो नटः ॥ १००

७६६. धूर्जटिः—जटाके भारसे विभूषित, ७६७. खण्डपरशुः—खण्डित परशुवाले, ७६८. सकलो निष्कलः—साकार एवं निराकार परमात्मा, ७६९. अनघः—पापके स्पर्शसे शून्य, ७७०. अकालः—कालके प्रभावसे रहित, ७७१. सकलाधारः—सबके आधार, ७७२. पाण्डुराभः—श्वेत कान्तिवाले, ७७३. मृडो नटः—सुखदायक एवं ताण्डवनृत्यकारी ॥ १०० ॥

पूर्णः पूरयिता पुण्यः सुकुमारः सुलोचनः।
सामगेयप्रियोऽक्रूरः पुण्यकीर्तिरनामयः ॥ १०१

७७४. पूर्णः—सर्वव्यापी परब्रह्म परमात्मा, ७७५. पूरयिता—भक्तोंकी अभिलाषा पूर्ण करनेवाले, ७७६. पुण्यः—परम पवित्र, ७७७. सुकुमारः—सुन्दर कुमार हैं जिनके, ऐसे अथवा मृदुतासे युक्त, ७७८. सुलोचनः—सुन्दर नेत्रवाले, ७७९. सामगेयप्रियः—सामगानके प्रेमी, ७८०. अक्रूरः—क्रूरतारहित, ७८१. पुण्यकीर्तिः—पवित्र कीर्तिवाले, ७८२. अनामयः—रोग-शोकसे रहित ॥ १०१ ॥

मनोजवस्तीर्थकरो जटिलो जीवितेश्वरः।
जीवितान्तकरो नित्यो वसुरेता वसुप्रदः ॥ १०२

७८३. मनोजवः—मनके समान वेगशाली, ७८४. तीर्थकरः—तीर्थोंके निर्माता, ७८५. जटिलः—जटाधारी, ७८६. जीवितेश्वरः—सबके प्राणेश्वर, ७८७. जीविता-न्तकरः—प्रलयकालमें सबके जीवनका अन्त करनेवाले, ७८८. नित्यः—सनातन, ७८९. वसुरेताः—सुवर्णमय वीर्यवाले, ७९०. वसुप्रदः—धनदाता ॥ १०२ ॥

सद्गतिः सत्कृतिः सिद्धिः सज्जातिः खलकण्टकः।
कलाधरो महाकालभूतः सत्यपरायणः ॥ १०३

७९१. सद्गतिः—सत्पुरुषोंके आश्रय, ७९२. सत्कृतिः—शुभ कर्म करनेवाले, ७९३. सिद्धिः—सिद्धिस्वरूप, ७९४. सज्जातिः— सत्पुरुषोंके जन्मदाता, ७९५. खलकण्टकः—दुष्टोंके लिये कण्टकरूप, ७९६. कलाधरः—कलाधारी, ७९७. महाकालभूतः—महाकाल नामक ज्योतिर्लिंगस्वरूप अथवा कालके भी काल होनेसे महाकाल, ७९८. सत्यपरायणः—सत्यनिष्ठ ॥ १०३ ॥

लोककल्याणकर्ता च लोकोत्तरसुखालयः।
चन्द्रसञ्जीवनः शास्ता लोकगूढो महाधिपः ॥ १०४

७९९. लोकलावण्यकर्ता—सब लोगोंको सौन्दर्य प्रदान करनेवाले, ८००. लोकोत्तरसुखालयः—लोकोत्तर सुखके आश्रय, ८०१ चन्द्रसंजीवनः शास्ता—सोम-नाथरूपसे चन्द्रमाको जीवन प्रदान करनेवाले सर्वशासक शिव, ८०२. लोकगूढः—समस्त संसारमें अव्यक्तरूपसे व्यापक, ८०३. महाधिपः—महेश्वर ॥ १०४ ॥

लोकबन्धुर्लोकनाथः कृतज्ञः कीर्तिभूषणः।
अनपायोऽक्षरः कान्तः सर्वशस्त्रभृतां वरः॥ १०५

८०४. **लोकबन्धुर्लोकनाथः**—सम्पूर्ण लोकोंके बन्धु एवं रक्षक, ८०५. **कृतज्ञः**—उपकारको माननेवाले, ८०६. **कीर्तिभूषणः**—उत्तम यशसे विभूषित, ८०७. **अन-पायोऽक्षरः**—विनाशरहित—अविनाशी, ८०८. **कान्तः**—प्रजापति दक्षका अन्त करनेवाले अथवा कान्तिमय, ८०९. **सर्वशस्त्रभृतां वरः**—सम्पूर्ण शस्त्रधारियोंमें श्रेष्ठ॥ १०५॥

तेजोमयो द्युतिधरो लोकानामग्रणीरणुः।
शुचिस्मितः प्रसन्नात्मा दुर्जेयो दुरतिक्रमः॥ १०६

८१०. **तेजोमयो द्युतिधरः**—तेजस्वी और कान्ति-मान्, ८११. **लोकानामग्रणीः**—सम्पूर्ण जगत्के लिये अग्रगण्य देवता अथवा जगत्को आगे बढ़ानेवाले, ८१२. **अणुः**—अत्यन्त सूक्ष्म, ८१३. **शुचिस्मितः**—पवित्र मुसकानवाले, ८१४. **प्रसन्नात्मा**—हर्षभरे हृदयवाले, ८१५. **दुर्जेयः**—जिनपर विजय पाना अत्यन्त कठिन है, ऐसे, ८१६. **दुरतिक्रमः**—दुर्लंघ्य॥ १०६॥

ज्योतिर्मयो जगन्नाथो निराकारो जलेश्वरः।
तुम्बवीणो महाकोपो विशोकः शोकनाशनः॥ १०७

८१७. **ज्योतिर्मयः**—तेजोमय, ८१८. **जगन्नाथः**—विश्वनाथ, ८१९. **निराकारः**—आकाररहित परमात्मा, ८२०. **जलेश्वरः**—जलके स्वामी, ८२१. **तुम्बवीणः**—तूँबीकी वीणा बजानेवाले, ८२२. **महाकोपः**—संहारके समय महान् क्रोध करनेवाले, ८२३. **विशोकः**—शोकरहित, ८२४. **शोकनाशनः**—शोकका नाश करने-वाले॥ १०७॥

त्रिलोकपस्त्रिलोकेशः सर्वशुद्धिरधोक्षजः।
अव्यक्तलक्षणो देवो व्यक्ताव्यक्तो विशाम्पतिः॥ १०८

८२५. **त्रिलोकपः**—तीनों लोकोंका पालन करनेवाले, ८२६. **त्रिलोकेशः**—त्रिभुवनके स्वामी, ८२७. **सर्व-शुद्धिः**—सबकी शुद्धि करनेवाले, ८२८. **अधोक्षजः**—इन्द्रियों और उनके विषयोंसे अतीत, ८२९. **अव्यक्तलक्षणो देवः**—अव्यक्त लक्षणवाले देवता, ८३०. **व्यक्ता-व्यक्तः**—स्थूलसूक्ष्मरूप, ८३१ **विशाम्पतिः**— प्रजाओंके पालक॥ १०८॥

वरशीलो वरगुणः सारो मानधनो मयः।
ब्रह्मा विष्णुः प्रजापालो हंसो हंसगतिर्वयः॥ १०९

८३२. **वरशीलः**—श्रेष्ठ स्वभाववाले, ८३३. **वरगुणः**—उत्तम गुणोंवाले, ८३४. **सारः**—सारतत्त्व, ८३५. **मानधनः**—स्वाभिमानके धनी, ८३६. **मयः**—सुखस्वरूप, ८३७. **ब्रह्मा**— सृष्टिकर्ता ब्रह्मा, ८३८. **विष्णुः प्रजापालः**— प्रजापालक विष्णु, ८३९. **हंसः**—सूर्यस्वरूप, ८४०. **हंसगतिः**—हंसके समान चालवाले, ८४१. **वयः**—गरुड़ पक्षी॥ १०९॥

वेधा विधाता धाता च स्रष्टा हर्ता चतुर्मुखः।
कैलासशिखरावासी सर्वावासी सदागतिः॥ ११०

८४२. **वेधा विधाता धाता**—ब्रह्मा, धाता और विधाता नामक देवतास्वरूप, ८४३. **स्रष्टा**—सृष्टिकर्ता, ८४४. **हर्ता**—संहारकारी, ८४५. **चतुर्मुखः**—चार मुखवाले ब्रह्मा, ८४६. **कैलासशिखरावासी**— कैलासके शिखरपर निवास करनेवाले, ८४७. **सर्वावासी**—सर्वव्यापी, ८४८. **सदागतिः**—निरन्तर गतिशील वायुदेवता॥ ११०॥

हिरण्यगर्भो द्रुहिणो भूतपालोऽथ भूपतिः।
सद्योगी योगविद्योगी वरदो ब्राह्मणप्रियः॥ १११

८४९. **हिरण्यगर्भः**—ब्रह्मा, ८५०. **द्रुहिणः**—ब्रह्मा, ८५१. **भूतपालः**—प्राणियोंका पालन करनेवाले, ८५२. **भूपतिः**—पृथ्वीके स्वामी, ८५३. **सद्योगी**—श्रेष्ठ योगी, ८५४. **योगविद्योगी**—योगविद्याके ज्ञाता योगी, ८५५. **वरदः**—वर देनेवाले, ८५६. **ब्राह्मण-प्रियः**—ब्राह्मणोंके प्रेमी॥ १११॥

देवप्रियो देवनाथो देवज्ञो देवचिन्तकः।
विषमाक्षो विशालाक्षो वृषदो वृषवर्धनः॥ ११२

८५७. **देवप्रियो देवनाथः**—देवताओंके प्रिय तथा रक्षक, ८५८. **देवज्ञः**—देवतत्त्वके ज्ञाता, ८५९. **देव-चिन्तकः**—देवताओंका विचार करनेवाले, ८६०. **विष-माक्षः**—विषम नेत्रवाले, ८६१. **विशालाक्षः**—बड़े-बड़े नेत्रवाले, ८६२. **वृषदो वृषवर्धनः**—धर्मका दान और वृद्धि करनेवाले॥ ११२॥

निर्ममो निरहङ्कारो निर्मोहो निरुपद्रवः।
दर्पहा दर्पदो दृप्तः सर्वर्तुपरिवर्तकः॥ ११३

८६३. **निर्ममः**—ममतारहित, ८६४. **निरहङ्कारः**—अहंकारशून्य, ८६५. **निर्मोहः**—मोहशून्य, ८६६. **निरुप-द्रवः**—उपद्रव या उत्पातसे दूर, ८६७. **दर्पहा दर्पदः**—दर्पका हनन और खण्डन करनेवाले, ८६८. **दृप्तः**—स्वाभिमानी, ८६९. **सर्वर्तुपरिवर्तकः**—समस्त ऋतुओंको बदलते रहनेवाले॥ ११३॥

सहस्रजित् सहस्रार्चिः स्निग्धप्रकृतिदक्षिणः।
भूतभव्यभवन्नाथः प्रभवो भूतिनाशनः॥ ११४

८७०. **सहस्रजित्**—सहस्रोंपर विजय पानेवाले, ८७१. **सहस्रार्चिः**—सहस्रों किरणोंसे प्रकाशमान सूर्यरूप, ८७२. **स्निग्धप्रकृतिदक्षिणः**—स्नेहयुक्त स्वभाववाले तथा उदार, ८७३. **भूतभव्यभवन्नाथः**—भूत, भविष्य और वर्तमानके स्वामी, ८७४. **प्रभवः**—सबकी उत्पत्तिके कारण, ८७५. **भूतिनाशनः**—दुष्टोंके ऐश्वर्यका नाश करनेवाले॥ ११४॥

अर्थोऽनर्थो महाकोशः परकार्यैकपण्डितः।

८७६. **अर्थः**—परमपुरुषार्थरूप, ८७७. **अनर्थः**—प्रयोजनरहित, ८७८. **महाकोशः**—अनन्त धनराशिके स्वामी, ८७९. **परकार्यैकपण्डितः**—पराये कार्यको सिद्ध करनेकी कलाके एकमात्र विद्वान्,

निष्कण्टकः कृतानन्दो निर्व्याजो व्याजमर्दनः ॥ ११५

८८०. **निष्कण्टकः**—कण्टकरहित, ८८१. **कृतानन्दः**—नित्यसिद्ध आनन्दस्वरूप, ८८२. **निर्व्याजो व्याजमर्दनः**—स्वयं कपटरहित होकर दूसरेके कपटको नष्ट करनेवाले ॥ ११५ ॥

सत्त्ववान्सात्त्विकः सत्यकीर्तिः स्नेहकृतागमः।
अकम्पितो गुणग्राही नैकात्मा नैककर्मकृत् ॥ ११६

८८३. **सत्त्ववान्**—सत्त्वगुणसे युक्त, ८८४. **सात्त्विकः**—सत्त्वनिष्ठ, ८८५. **सत्यकीर्तिः**—सत्य-कीर्तिवाले, ८८६. **स्नेहकृतागमः**—जीवोंके प्रति स्नेहके कारण विभिन्न आगमोंको प्रकाशमें लानेवाले, ८८७. **अकम्पितः**—सुस्थिर, ८८८. **गुणग्राही**—गुणोंका आदर करनेवाले, ८८९. **नैकात्मा नैककर्मकृत्**—अनेकरूप होकर अनेक प्रकारके कर्म करनेवाले ॥ ११६ ॥

सुप्रीतः सुमुखः सूक्ष्मः सुकरो दक्षिणानिलः।
नन्दिस्कन्धधरो धुर्यः प्रकटः प्रीतिवर्धनः ॥ ११७

८९०. **सुप्रीतः**—अत्यन्त प्रसन्न, ८९१. **सुमुखः**—सुन्दर मुखवाले, ८९२. **सूक्ष्मः**—स्थूलभावसे रहित, ८९३. **सुकरः**—सुन्दर हाथवाले, ८९४. **दक्षिणानिलः**—मलयानिलके समान सुखद, ८९५. **नन्दिस्कन्धधरः**—नन्दीकी पीठपर सवार होनेवाले, ८९६. **धुर्यः**—उत्तरदायित्वका भार वहन करनेमें समर्थ, ८९७. **प्रकटः**—भक्तोंके सामने प्रकट होनेवाले अथवा ज्ञानियोंके सामने नित्य प्रकट, ८९८. **प्रीतिवर्धनः**—प्रेम बढ़ानेवाले ॥ ११७ ॥

अपराजितः सर्वसत्त्वो गोविन्दः सत्त्ववाहनः।
अधृतः स्वधृतः सिद्धः पूतमूर्तिर्यशोधनः ॥ ११८

८९९. **अपराजितः**—किसीसे परास्त न होनेवाले, ९००. **सर्वसत्त्वः**—सम्पूर्ण सत्त्वगुणके आश्रय अथवा समस्त प्राणियोंकी उत्पत्तिके हेतु, ९०१. **गोविन्दः**—गोलोककी प्राप्ति करानेवाले, ९०२. **सत्त्ववाहनः**—सत्त्वस्वरूप धर्ममय वृषभसे वाहनका काम लेनेवाले, ९०३. **अधृतः**—आधाररहित, ९०४. **स्वधृतः**—अपने-आपमें ही स्थित, ९०५. **सिद्धः**—नित्यसिद्ध, ९०६. **पूतमूर्तिः**—पवित्र शरीरवाले, ९०७. **यशोधनः**—सुयशके धनी ॥ ११८ ॥

वाराहशृङ्गधृक्छृङ्गी बलवानेकनायकः।
श्रुतिप्रकाशः श्रुतिमानेकबन्धुरनेककृत् ॥ ११९

९०८. **वाराहशृङ्गधृक्छृङ्गी**—वाराहको मारकर उसके दाढ़रूपी शृंगोंको धारण करनेके कारण शृंगी नामसे प्रसिद्ध, ९०९. **बलवान्**—शक्तिशाली, ९१०. **एकनायकः**—अद्वितीय नेता, ९११ **श्रुतिप्रकाशः**—वेदोंको प्रकाशित करनेवाले, ९१२. **श्रुतिमान्**—वेदज्ञानसे सम्पन्न, ९१३. **एकबन्धुः**—सबके एकमात्र सहायक, ९१४. **अनेक-कृत्**—अनेक प्रकारके पदार्थोंकी सृष्टि करनेवाले ॥ ११९ ॥

श्रीवत्सलशिवारम्भः शान्तभद्रः समो यशः।
भूशयो भूषणो भूतिर्भूतकृद् भूतभावनः॥ १२०

अकम्पो भक्तिकायस्तु कालहा नीललोहितः।
सत्यव्रतमहात्यागी नित्यशान्तिपरायणः॥ १२१

परार्थवृत्तिर्वरदो विरक्तस्तु विशारदः।
शुभदः शुभकर्ता च शुभनामा शुभः स्वयम्॥ १२२

अनर्थितोऽगुणः साक्षी ह्यकर्ता कनकप्रभः।
स्वभावभद्रो मध्यस्थः शत्रुघ्नो विघ्ननाशनः॥ १२३

शिखण्डी कवची शूली जटी मुण्डी च कुण्डली।
अमृत्युः सर्वदृक्सिंहस्तेजोराशिर्महामणिः॥ १२४

असंख्येयोऽप्रमेयात्मा वीर्यवान् वीर्यकोविदः।

११५. **श्रीवत्सलशिवारम्भः**—श्रीवत्सधारी विष्णुके लिये मंगलकारी, ११६. **शान्तभद्रः**—शान्त एवं मंगलरूप, ११७. **समः**—सर्वत्र समभाव रखनेवाले, ११८. **यशः**— यशस्वरूप, ११९. **भूशयः**—पृथ्वीपर शयन करनेवाले, १२०. **भूषणः**—सबको विभूषित करनेवाले, १२१. **भूतिः**—कल्याणस्वरूप, १२२. **भृतकृत्**—प्राणियोंकी सृष्टि करनेवाले, १२३. **भूतभावनः**—भूतोंके उत्पादक॥ १२०॥

१२४. **अकम्पः**—कम्पित न होनेवाले, १२५. **भक्तिकायः**—भक्तिस्वरूप, १२६. **कालहा**—कालनाशक, १२७. **नीललोहितः**—नील और लोहितवर्णवाले, १२८. **सत्यव्रतमहात्यागी**—सत्यव्रतधारी एवं महान् त्यागी, १२९. **नित्यशान्तिपरायणः**—निरन्तर शान्त॥ १२१॥

१३०. **परार्थवृत्तिर्वरदः**—परोपकारव्रती एवं अभीष्ट वरदाता, १३१. **विरक्तः**—वैराग्यवान्, १३२. **विशारदः**—विज्ञानवान्, १३३. **शुभदः शुभकर्ता**—शुभ देने और करनेवाले, १३४. **शुभनामा शुभः स्वयम्**—स्वयं शुभस्वरूप होनेके कारण शुभ नामधारी॥ १२२॥

१३५. **अनर्थितः**—याचनारहित, १३६. **अगुणः**—निर्गुण, १३७. **साक्षी अकर्ता**—द्रष्टा एवं कर्तृत्व-रहित, १३८. **कनकप्रभः**—सुवर्णके समान कान्ति-मान्, १३९. **स्वभावभद्रः**—स्वभावतः कल्याणकारी, १४०. **मध्य-स्थः**—उदासीन, १४१. **शत्रुघ्नः**—शत्रुनाशक, १४२. **विघ्ननाशनः**—विघ्नोंका निवारण करनेवाले॥ १२३॥

१४३. **शिखण्डी कवची शूली**—मोरपंख, कवच और त्रिशूल धारण करनेवाले, १४४. **जटी मुण्डी च कुण्डली**—जटा, मुण्डमाला और कवच धारण करनेवाले, १४५. **अमृत्युः**—मृत्युरहित, १४६. **सर्वदृक्सिंहः**—सर्वज्ञोंमें श्रेष्ठ, १४७. **तेजोराशिर्महामणिः**—तेजःपुंज महामणि कौस्तुभादिरूप॥ १२४॥

१४८. **असंख्येयोऽप्रमेयात्मा**—असंख्य नाम, रूप और गुणोंसे युक्त होनेके कारण किसीके द्वारा मापे न जा सकनेवाले, १४९. **वीर्यवान् वीर्यकोविदः**—पराक्रमी एवं पराक्रमके ज्ञाता,

वेद्यश्चैव वियोगात्मा परावरमुनीश्वरः॥ १२५

९५०. वेद्यः—जाननेयोग्य, **९५१. वियोगात्मा**—दीर्घकालतक सतीके वियोगमें अथवा विशिष्ट योगकी साधनामें संलग्न हुए मनवाले, **९५२. परावरमुनीश्वरः**—भूत और भविष्यके ज्ञाता मुनीश्वर-रूप॥ १२५॥

अनुत्तमो दुराधर्षो मधुरप्रियदर्शनः।
सुरेशः शरणं सर्वः शब्दब्रह्म सतां गतिः॥ १२६

९५३. अनुत्तमो दुराधर्षः—सर्वोत्तम एवं दुर्जय, **९५४. मधुरप्रियदर्शनः**—जिनका दर्शन मनोहर एवं प्रिय लगता है, ऐसे, **९५५. सुरेशः**—देवताओंके ईश्वर, **९५६. शरणम्**—आश्रयदाता, **९५७. सर्वः**—सर्वस्वरूप, **९५८. शब्दब्रह्म सतां गतिः**—प्रणवरूप तथा सत्पुरुषोंके आश्रय॥ १२६॥

कालपक्षः कालकालः कङ्कणीकृतवासुकिः।
महेष्वासो महीभर्ता निष्कलङ्को विशृङ्खलः॥ १२७

९५९. कालपक्षः—काल जिनका सहायक है, ऐसे, **९६०. कालकालः**—कालके भी काल, **९६१. कङ्कणीकृतवासुकिः**—वासुकि नागको अपने हाथमें कंगनके समान धारण करनेवाले, **९६२. महेष्वासः**—महाधनुर्धर, **९६३. महीभर्ता**—पृथ्वीपालक, **९६४. निष्कलङ्कः**—कलंकशून्य, **९६५. विशृङ्खलः**—बन्धनरहित॥ १२७॥

द्युमणिस्तरणिर्धन्यः सिद्धिदः सिद्धिसाधनः।
विश्वतः संवृतः स्तुत्यो व्यूढोरस्को महाभुजः॥ १२८

९६६. द्युमणिस्तरणिः—आकाशमें मणिके समान प्रकाशमान तथा भक्तोंको भवसागरसे तारनेके लिये नौकारूप सूर्य, **९६७. धन्यः**— कृतकृत्य, **९६८. सिद्धिदः सिद्धिसाधनः**—सिद्धिदाता और सिद्धिके साधक, **९६९. विश्वतः संवृतः**—सब ओरसे मायाद्वारा आवृत, **९७०. स्तुत्यः**—स्तुतिके योग्य, **९७१. व्यूढोरस्कः**—चौड़ी छातीवाले, **९७२. महाभुजः**—बड़ी बाँहवाले॥ १२८॥

सर्वयोनिर्निरातङ्को नरनारायणप्रियः।
निर्लेपो निष्प्रपञ्चात्मा निर्व्यङ्गो व्यङ्गनाशनः॥ १२९

९७३. सर्वयोनिः—सबकी उत्पत्तिके स्थान, **९७४. निरातङ्कः**—निर्भय, **९७५. नरनारायणप्रियः**—नर-नारायणके प्रेमी अथवा प्रियतम, **९७६. निर्लेपो निष्प्रपञ्चात्मा**— दोषसम्पर्कसे रहित तथा जगत्प्रपंचसे अतीत स्वरूपवाले, **९७७. निर्व्यङ्गः**—विशिष्ट अंगवाले प्राणियोंके प्राकट्यमें हेतु, **९७८. व्यङ्गनाशनः**—यज्ञादि कर्मोंमें होनेवाले अंग-वैगुण्यका नाश करनेवाले॥ १२९॥

स्तव्यः स्तवप्रियः स्तोता व्यासमूर्तिर्निरङ्कुशः।

९७९. स्तव्यः—स्तुतिके योग्य, **९८०. स्तव-प्रियः**—स्तुतिके प्रेमी, **९८१. स्तोता**—स्तुति करनेवाले, **९८२. व्यासमूर्तिः**—व्यासस्वरूप, **९८३. निरङ्कुशः**—अंकुशरहित स्वतन्त्र,

निरवद्यमयोपायो विद्याराशी रसप्रियः॥ १३०

९८४. **निरवद्यमयोपायः**—मोक्ष-प्राप्तिके निर्दोष उपायरूप, ९८५. **विद्याराशिः**—विद्याओंके सागर, ९८६. **रसप्रियः**—ब्रह्मानन्दरसके प्रेमी॥ १३०॥

प्रशान्तबुद्धिरक्षुण्णः सङ्ग्रही नित्यसुन्दरः।
वैयाघ्रधुर्यो धात्रीशः शाकल्यः शर्वरीपतिः॥ १३१

९८७. **प्रशान्तबुद्धिः**—शान्त बुद्धिवाले, ९८८. **अक्षुण्णः**—क्षोभ या नाशसे रहित, ९८९. **संग्रही**—भक्तोंका संग्रह करनेवाले, ९९०. **नित्यसुन्दरः**—सतत मनोहर, ९९१. **वैयाघ्रधुर्यः**—व्याघ्रचर्मधारी, ९९२. **धात्रीशः**—ब्रह्माजीके स्वामी, ९९३. **शाकल्यः**— शाकल्य ऋषिरूप, ९९४. **शर्वरीपतिः**—रात्रिके स्वामी चन्द्रमारूप॥ १३१॥

परमार्थगुरुर्दत्तः सूरिराश्रितवत्सलः।
सोमो रसज्ञो रसदः सर्वसत्त्वावलम्बनः॥ १३२

९५५. **परमार्थगुरुर्दत्तः सूरिः**—परमार्थ- तत्त्वका उपदेश देनेवाले ज्ञानी गुरु दत्तात्रेयरूप, ९९६. **आश्रित-वत्सलः**—शरणागतोंपर दया करनेवाले, ९९७. **सोमः**— उमासहित, ९९८. **रसज्ञः**—भक्तिरसके ज्ञाता, ९९९. **रसदः**—प्रेमरस प्रदान करनेवाले, १०००. **सर्वसत्त्वाव-लम्बनः**—समस्त प्राणियोंको सहारा देनेवाले॥ १३२॥

एवं नाम्नां सहस्रेण तुष्टाव हि हरं हरिः।
प्रार्थयामास शम्भुं वै पूजयामास पङ्कजैः॥ १३३

इस प्रकार विष्णुजीने सहस्र नामोंसे शिवजीकी स्तुति और प्रार्थना की तथा हजार कमलोंसे उनकी पूजा की॥ १३३॥

ततः स कौतुकी शम्भुश्चकार चरितं द्विजाः।
महद्भुतं सुखकरं तदेव शृणुतादरात्॥ १३४

हे द्विजो! उसके बाद लीला करनेवाले उन शिवजीने जो अत्यन्त अद्भुत तथा सुखदायक चरित्र किया, उसे आदरसे सुनिये॥ १३४॥

इति श्रीशिवमहापुराणे चतुर्थ्यां कोटिरुद्रसंहितायां शिवसहस्रनामवर्णनं नाम पञ्चत्रिंशोऽध्यायः॥ ३५॥

॥ इस प्रकार श्रीशिवमहापुराणके अन्तर्गत चतुर्थ कोटिरुद्रसंहितामें शिवसहस्रनामवर्णन नामक पैंतीसवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ ३५॥

अथ षट्त्रिंशोऽध्यायः

शिवसहस्रनामस्तोत्रकी फल-श्रुति

सूत उवाच

श्रुत्वा विष्णुकृतं दिव्यं परनामविभूषितम्।
सहस्रनाम स्वस्तोत्रं प्रसन्नोऽभून्महेश्वरः॥ १
परीक्षार्थं हरेरीशः कमलेषु महेश्वरः।
गोपयामास कमलं तदैकं भुवनेश्वरः॥ २

सूतजी बोले—विष्णुजीके द्वारा किये गये अपने उत्कृष्ट सहस्रनामस्तवनको सुनकर शिवजी प्रसन्न हो गये। उस समय जगत्के स्वामी महेश्वरने विष्णुकी परीक्षाके लिये उन कमलोंमेंसे एक कमलको छिपा लिया॥ १-२॥

पंकजेषु तदा तेषु सहस्रेषु बभूव च।
न्यूनमेकं तदा विष्णुर्विह्वलः शिवपूजने॥ ३

तब शिवपूजनमें उन सहस्रकमलोंमेंसे एक कमलके कम हो जानेपर भगवान् विष्णु व्याकुल हो उठे और

हृदा विचारितं तेन कुतो वै कमलं गतम्।
यातं यातु सुखेनैव मन्नेत्रं कमलं न किम्॥ ४

ज्ञात्वेति नेत्रमुद्धृत्य सर्वसत्त्वावलम्बनात्।
पूजयामास भावेन स्तवयामास तेन च॥ ५

ततस्तुतमथो दृष्ट्वा तथाभूतं हरो हरिम्।
मा मेति व्याहरन्नेव प्रादुरासीज्जगद्गुरुः॥ ६

तस्मादवततराशु मण्डलात्पार्थिवस्य च।
प्रतिष्ठितस्य हरिणा स्वलिङ्गस्य महेश्वरः॥ ७

यथोक्तरूपिणं शम्भुं तेजोराशिसमुत्थितम्।
नमस्कृत्य पुरः स्थित्वा स तुष्टाव विशेषतः॥ ८

तदा प्राह महादेवः प्रसन्नः प्रहसन्निव।
सम्प्रेक्ष्य कृपया विष्णुं कृताञ्जलिपुटं स्थितम्॥ ९

शङ्कर उवाच

ज्ञातं मयेदं सकलं तव चित्तेप्सितं हरे।
देवकार्यं विशेषेण देवकार्यरतात्मनः॥ १०

देवकार्यस्य सिद्ध्यर्थं दैत्यनाशाय चाश्रमम्।
सुदर्शनाख्यं चक्रं च ददामि तव शोभनम्॥ ११

यद्रूपं भवता दृष्टं सर्वलोकसुखावहम्।
हिताय तव देवेश धृतं भावय तद्ध्रुवम्॥ १२

रणाजिरे स्मृतं तद्वै देवानां दुःखनाशनम्।
इदं चक्रमिदं रूपमिदं नामसहस्रकम्॥ १३

ये शृण्वन्ति सदा भक्त्या सिद्धिः स्यादनपायिनी।
कामानां सकलानां च प्रसादान्मम सुव्रत॥ १४

सूत उवाच

एवमुक्त्वा ददौ चक्रं सूर्यायुतसमप्रभम्।
सुदर्शनं स्वपादोत्थं सर्वशत्रुविनाशनम्॥ १५

वे अपने मनमें विचार करने लगे कि एक कमल कहाँ चला गया! यदि वह चला गया तो जाने दो, क्या मेरा नेत्र कमलके समान नहीं है?॥ ३-४॥

इस प्रकार विचारकर सत्त्वगुणका सहारा लेकर [पूर्ण धैर्यके साथ] उन्होंने अपना एक नेत्र निकालकर भक्तिपूर्वक शिवजीका पूजन किया तथा उसी स्तोत्रसे उनकी स्तुति की॥ ५॥

उसके बाद स्तुति करते हुए विष्णुको अपना नेत्रकमल निकालते देखकर जगद्गुरु महादेव 'ऐसा मत करो-मत करो'—इस प्रकार कहते हुए स्वयं प्रकट हो गये। इस प्रकार वे महेश्वर विष्णुके द्वारा प्रतिष्ठित किये गये अपने पार्थिव लिंगके मण्डलसे शीघ्र ही अवतरित हो गये॥ ६-७॥

शास्त्रवर्णित रूप धारण किये तेजोराशिसे युक्त साक्षात् प्रकट हुए शिवको प्रणाम करके उनके सामने स्थित होकर वे विष्णु विशेषरूपसे स्तुति करने लगे। तब प्रसन्न हुए महादेवने अपने आगे हाथ जोड़कर खड़े विष्णुकी ओर कृपापूर्वक देखकर हँसते हुए कहा—॥ ८-९॥

शंकर बोले—हे हरे! देवकार्यमें तत्पर मनवाले आपके मनोभिलषित इस सम्पूर्ण देवकार्यको मैंने भलीभाँति जान लिया॥ १०॥

अतः मैं देवताओंकी कार्यसिद्धिके लिये तथा बिना परिश्रम दैत्योंके विनाशके लिये आपको यह सुदर्शन नामक उत्तम चक्र देता हूँ॥ ११॥

हे देवेश! आपने सम्पूर्ण लोकोंको सुख देनेवाले मेरे जिस रूपको देखा है, उसे मैंने आपके हितके लिये धारण किया है, ऐसा आप निश्चित रूपसे जानिये। युद्धस्थलमें मेरे इस चक्रका, मेरे इस रूपका तथा सहस्रनामका स्मरण करनेपर देवताओंके दुःखका विनाश होगा; हे सुव्रत! जो लोग मेरे इस सहस्रनामस्तोत्रको सदा भक्तिपूर्वक सुनते हैं, उन्हें मेरी कृपासे सम्पूर्ण कामनाओंकी अविनाशिनी सिद्धि प्राप्त होती है॥ १२—१४॥

सूतजी बोले—ऐसा कहकर शिवजीने करोड़ों सूर्योंके समान प्रभावाला, अपने चरणोंसे उत्पन्न तथा शत्रुओंका नाश करनेवाला वह सुदर्शनचक्र विष्णुको

विष्णुश्चापि सुसंस्कृत्य जग्राहोदङ्मुखस्तदा।
नमस्कृत्य महादेवं विष्णुर्वचनमब्रवीत्॥ १६

दे दिया। उस समय विष्णुने भी उत्तराभिमुख होकर अपनेको भलीभाँति संस्कार सम्पन्न करके उस चक्रको ग्रहण किया और पुनः महादेवको नमस्कारकर विष्णुने यह वचन कहा—॥ १५-१६॥

विष्णुरुवाच

श्रृणु देव मया ध्येयं पठनीयं च किं प्रभो।
दुःखानां नाशनार्थं हि वद त्वं लोकशंकर॥ १७

विष्णुजी बोले—हे देव! हे प्रभो! हे लोकोंका कल्याण करनेवाले! आप सुनें, मुझे दुःखोंके नाशके लिये किसका ध्यान और किसका पाठ करना चाहिये, मुझे यह बताइये?॥ १७॥

सूत उवाच

इति पृष्टस्तदा तेन सन्तुष्टस्तु शिवोऽब्रवीत्।
प्रसन्नमानसो भूत्वा विष्णुं देवसहायकम्॥ १८

सूतजी बोले—उनके द्वारा इस प्रकार पूछे जानेपर सन्तुष्ट हुए वे शिवजी प्रसन्नचित्त होकर देवताओंके सहायक विष्णुसे कहने लगे—॥ १८॥

शिव उवाच

रूपं ध्येयं हरे मे हि सर्वानर्थप्रशान्तये।
अनेकदुःखनाशार्थं पठ नामसहस्रकम्॥ १९

शिवजी बोले—हे हरे! सम्पूर्ण उपद्रवोंकी शान्तिके लिये आपको मेरे इस रूपका ध्यान करना चाहिये और अनेक दुःखोंके नाशके लिये इस सहस्रनामका पाठ करना चाहिये॥ १९॥

धार्यं चक्रं सदा मे हि सर्वाभीष्टस्य सिद्धये।
त्वया विष्णो प्रयत्नेन सर्वचक्रवरं त्विदम्॥ २०

हे विष्णो! आप समस्त अभीष्टोंकी सिद्धिके लिये सभी चक्रोंमें श्रेष्ठ मेरे इस चक्र सुदर्शनको प्रयत्नपूर्वक सर्वदा धारण कीजिये॥ २०॥

अन्ये च ये पठिष्यन्ति पाठयिष्यन्ति नित्यशः।
तेषां दुःखं न स्वप्नेऽपि जायते नात्र संशयः॥ २१

अन्य जो लोग नित्य इस शिवसहस्रनामस्तोत्रका पाठ करेंगे अथवा इसका पाठ करायेंगे, उन्हें स्वप्नमें भी दुःख नहीं होगा, इसमें सन्देह नहीं है॥ २१॥

राज्ञां च संकटे प्राप्ते शतावृत्तिं चरेद्यदा।
साङ्गं च विधिसंयुक्तं कल्याणं लभते नरः॥ २२

राजाओंके द्वारा संकट प्राप्त होनेपर यदि मनुष्य सांगोपांग विधिपूर्वक इस सहस्रनामकी सौ आवृत्ति करे, तो वह कल्याणको प्राप्त करता है॥ २२॥

रोगनाशकरं ह्येतद्विद्यावित्तदमुत्तमम्।
सर्वकामप्रदं पुण्यं शिवभक्तिप्रदं सदा॥ २३

यदुद्दिश्य फलं श्रेष्ठं पठिष्यन्ति नरास्त्विह।
लप्स्यन्ते नात्र संदेहः फलं तत्सत्यमुत्तमम्॥ २४

यह उत्तम सहस्रनामस्तोत्र रोगोंका नाश करनेवाला, विद्या तथा वित्त प्रदान करनेवाला, सम्पूर्ण अभिलाषाओंको पूर्ण करनेवाला, सदा शिवभक्ति देनेवाला तथा पुण्यप्रद है। जो मनुष्य जिस श्रेष्ठ फलको उद्देश्य करके इसका पाठ करेंगे, वे उस फलको प्राप्त करेंगे, यह ध्रुव सत्य है, इसमें सन्देह नहीं है॥ २३-२४॥

यश्च प्रातः समुत्थाय पूजां कृत्वा मदीयिकाम्।
पठते मत्समक्षं वै नित्यं सिद्धिर्न दूरतः॥ २५

ऐहिकीं सिद्धिमाप्नोति निखिलां सर्वकामिकाम्।
अन्ते सायुज्यमुक्तिं वै प्राप्नोत्यत्र न संशयः॥ २६

जो प्रातःकाल उठकर नित्य मेरी पूजा करनेके उपरान्त मेरे सम्मुख इसका पाठ करता है, सिद्धि उससे दूर नहीं रहती। वह इस लोकमें समस्त मनोरथोंको पूर्ण करनेवाली सम्पूर्ण सिद्धि प्राप्त करता है और अन्तमें सायुज्य मुक्ति प्राप्त करता है, इसमें संशय नहीं है॥ २५-२६॥

सूत उवाच

एवमुक्त्वा तदा विष्णुं शङ्करः प्रीतमानसः।
उपस्पृश्य कराभ्यां तमुवाच गिरिशः पुनः॥ २७

सूतजी बोले—इतना कहकर प्रसन्न चित्तवाले कल्याणकारी शिवजीने अपने दोनों हाथोंसे विष्णुका स्पर्श करके पुनः उनसे कहा—॥ २७॥

शिव उवाच

वरदोऽस्मि सुरश्रेष्ठ वरान्वृणु यथेप्सितान्।
भक्त्या वशीकृतो नूनं स्तवेनानेन सुव्रत॥ २८

शिवजी बोले—हे सुरश्रेष्ठ! मैं वर देना चाहता हूँ। अतः आप यथेष्ट वरोंको माँगिये। हे सुव्रत! आपने अपनी भक्तिसे तथा इस स्तोत्रसे मुझे निश्चित रूपसे वशमें कर लिया है॥ २८॥

सूत उवाच

इत्युक्तो देवदेवेन देवदेवं प्रणम्य तम्।
सुप्रसन्नतरो विष्णुः साञ्जलिर्वाक्यमब्रवीत्॥ २९

सूतजी बोले—देवाधिदेवके इस प्रकार कहनेपर विष्णुने उनको नमस्कार करके अत्यन्त प्रसन्न हो हाथ जोड़कर यह वचन कहा—॥ २९॥

विष्णुरुवाच

यथेदानीं कृपा नाथ क्रियते चान्यतः परा।
कार्या चैव विशेषेण कृपालुत्वात्त्वया प्रभो॥ ३०

विष्णुजी बोले—हे नाथ! हे प्रभो! जिस प्रकार आपने मेरे ऊपर इस समय महती कृपा की है, कृपालु होनेके कारण इसी प्रकारकी कृपा विशेषरूपसे आगे भी करते रहें॥ ३०॥

त्वयि भक्तिर्महादेव प्रसीद वरमुत्तमम्।
नान्यमिच्छामि भक्तानामार्त्तयो नैव यत्प्रभो॥ ३१

हे महादेव! आपमें सदा मेरी भक्ति बनी रहे, मैं यही उत्तम वरदान चाहता हूँ। हे प्रभो! आप मुझपर प्रसन्न रहें और कभी भी आपके भक्तोंको कोई दुःख न हो, मैं अन्य और कुछ नहीं चाहता हूँ॥ ३१॥

सूत उवाच

तच्छ्रुत्वा वचनं तस्य दयावान्सुतरां भवः।
पस्पर्श च तदङ्गं वै प्राह शीतांशुशेखरः॥ ३२

सूतजी बोले—उनका यह वचन सुनकर अत्यन्त दयालु चन्द्रशेखर शिवजीने उन विष्णुके शरीरका स्पर्श किया और कहा—॥ ३२॥

शिव उवाच

मयि भक्तिः सदा ते तु हरे स्यादनपायिनी।
सदा वन्द्यश्च पूज्यश्च लोके भव सुरैरपि॥ ३३
विश्वम्भरेति ते नाम सर्वपापहरं परम्।
भविष्यति न संदेहो मत्प्रसादात्सुरोत्तम॥ ३४

शिवजी बोले—हे विष्णो! आपकी अविनाशिनी भक्ति मुझमें सदा रहेगी और आप लोकमें देवताओंसे भी वन्दनीय एवं पूज्य रहेंगे। हे देवश्रेष्ठ! मेरी कृपासे तुम्हारा नाम विश्वम्भर होगा, जो सभी पापोंको दूर करनेवाला होगा, इसमें संशय नहीं है॥ ३३-३४॥

सूत उवाच

इत्युक्त्वान्तर्दधे रुद्रः सर्वदेवेश्वरः प्रभुः।
पश्यतस्तस्य विष्णोस्तु तत्रैव च मुनीश्वराः॥ ३५

सूतजी बोले—हे मुनीश्वरो! ऐसा कहकर सभी देवताओंके स्वामी प्रभु रुद्र उन विष्णुके देखते-देखते अन्तर्धान हो गये॥ ३५॥

जनार्दनोऽपि भगवान् वचनाच्छङ्करस्य च।
प्राप्य चक्रं शुभं तद्वै जहर्षाति स्वचेतसि॥ ३६
कृत्वा ध्यानं च तच्छम्भोः स्तोत्रमेतन्निरन्तरम्।
पपाठाध्यापयामास भक्तेभ्यस्तदुपादिशत्॥ ३७

भगवान् विष्णु भी शंकरके कथनानुसार उस उत्तम चक्रको प्राप्तकर अपने मनमें बहुत प्रसन्न हुए। वे शिवका ध्यान करके निरन्तर इस स्तोत्रका पाठ करते रहे तथा भक्तोंको पढ़ाते रहे और उसीका उपदेश भी करते रहे॥ ३६-३७॥

इति पृष्टं मयाख्यातं शृण्वतां पापहारकम्।
अतः परं च किं श्रेष्ठाः प्रष्टुमिच्छथ वै पुनः॥ ३८

हे मुनिश्रेष्ठो! आपलोगोंने जो पूछा था, उसे मैंने कह दिया, यह सुननेवालोंका पाप नष्ट करनेवाला है, इसके बाद आपलोग और क्या पूछना चाहते हैं?॥ ३८॥

इति श्रीशिवमहापुराणे चतुर्थ्यां कोटिरुद्रसंहितायां शिवसहस्रनामस्तोत्रफलवर्णनं नाम षट्त्रिंशोऽध्यायः॥ ३६॥

॥ इस प्रकार श्रीशिवमहापुराणके अन्तर्गत चतुर्थ कोटिरुद्रसंहितामें शिवसहस्रनामस्तोत्रफलवर्णन नामक छत्तीसवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ ३६॥

अथ सप्तत्रिंशोऽध्यायः

शिवकी पूजा करनेवाले विविध देवताओं, ऋषियों एवं राजाओंका वर्णन

ऋषय ऊचुः

सूत सूत महाभाग ज्ञानवानसि सुव्रत।
पुनरेव शिवस्यैव चरितं ब्रूहि विस्तरात्॥ १
पुरातनाश्च राजान ऋषयो देवतास्तथा।
आराधनं च तस्यैव चक्रुर्देववरस्य हि॥ २

ऋषिगण बोले—हे महाभाग सूत! हे सुव्रत! आप ज्ञानी हैं, आप शिवजीके चरित्रका ही विस्तारपूर्वक पुनः वर्णन करें। पुरातन ऋषियों, देवताओं एवं राजाओंने उन देवाधिदेव शिवकी ही आराधना की है॥ १-२॥

सूत उवाच

साधु पृष्टमृषिश्रेष्ठाः श्रूयतां कथयामि वः।
चरित्रं शांकरं रम्यं शृण्वतां भुक्तिमुक्तिदम्॥ ३

सूतजी बोले—हे श्रेष्ठ ऋषियो! आपलोगोंने उत्तम बात पूछी है, आपलोग सुनें। अब मैं शंकरके मनोहर चरित्रका वर्णन आपलोगोंसे करता हूँ, जो सुननेवालोंको भोग तथा मोक्ष प्रदान करता है॥ ३॥

एतदेव पुरा पृष्टो नारदेन पितामहः।
प्रत्युवाच प्रसन्नात्मा नारदं मुनिसत्तमम्॥ ४

पूर्वकालमें नारदने यही बात ब्रह्माजीसे पूछी थी, तब उन्होंने प्रसन्नचित्त होकर मुनिश्रेष्ठ नारदसे कहा था—॥ ४॥

ब्रह्मोवाच

शृणु नारद सुप्रीत्या शांकरं चरितं वरम्।
प्रवक्ष्यामि भवत्स्नेहान्महापातकनाशनम्॥ ५
रमया सहितो विष्णुः शिवपूजां चकार ह।
कृपया परमेशस्य सर्वान्कामानवाप हि॥ ६

ब्रह्माजी बोले—हे नारद! आप प्रेमसे सुनिये, मैं आपके स्नेहके कारण महापापोंका नाश करनेवाले शिवके श्रेष्ठ चरित्रका वर्णन करूँगा। लक्ष्मीसहित विष्णुने शिवजीकी पूजा की और परमेश्वरकी कृपासे उन्होंने समस्त मनोरथोंको प्राप्त किया॥ ५-६॥

अहं पितामहश्चापि शिवपूजनकारकः।
तस्यैव कृपया तात विश्वसृष्टिकरः सदा॥ ७

हे तात! मैं ब्रह्मा भी शिवकी पूजा करता हूँ और उन्हींकी कृपासे सदा विश्वकी सृष्टि करता हूँ॥ ७॥

शिवपूजाकरा नित्यं मत्पुत्राः परमर्षयः।
अन्ये च ऋषयो ये ते शिवपूजनकारकाः॥ ८
नारद त्वं विशेषेण शिवपूजनकारकः।
सप्तर्षयो वसिष्ठाद्याः शिवपूजनकारकाः॥ ९

मेरे पुत्र परमर्षिगण भी नित्य शिवपूजन करते हैं एवं अन्य जो ऋषि हैं, वे भी शिवजीकी पूजा करते हैं। हे नारद! आप तो विशेष रूपसे शिवकी पूजा करते हैं, वसिष्ठादि सातों ऋषि भी शिवकी पूजा करते हैं॥ ८-९॥

अरुंधती महासाध्वी लोपामुद्रा तथैव च।
अहल्या गौतमस्त्री च शिवपूजनकारिका॥ १०

महापतिव्रता अरुन्धती, लोपामुद्रा तथा गौतमस्त्री अहल्या भी शिवकी पूजा करनेवाली हैं॥ १०॥

दुर्वासाः कौशिकः शक्तिर्दधीचो गौतमस्तथा।
कणादो भार्गवो जीवो वैशम्पायन एव च॥ ११
एते च मुनयः सर्वे शिवपूजाकरा मताः।
तथा पराशरो व्यासः शिवपूजारतः सदा॥ १२

दुर्वासा, कौशिक, शक्ति, दधीच, गौतम, कणाद, भार्गव, बृहस्पति, वैशम्पायन—ये सभी मुनि शिवजीकी पूजा करनेवाले कहे गये हैं। पराशर तथा व्यास भी सर्वदा शिवकी ही पूजामें लगे रहते हैं॥ ११-१२॥

उपमन्युर्महाभक्तः शिवस्य परमात्मनः।
याज्ञवल्क्यो महाशैवो जैमिनिर्गर्ग एव च॥ १३

उपमन्यु तो परमात्मा शिवके महाभक्त हैं। याज्ञवल्क्य, जैमिनि एवं गर्ग भी महाशैव हैं॥ १३॥

शुकश्च शौनकाद्याश्च शङ्करस्य प्रपूजकाः।
अन्येऽपि बहवः सन्ति मुनयो मुनिसत्तमाः॥ १४

शुक, शौनक आदि ऋषि शिवकी भलीभाँति पूजा करनेवाले हैं। इसी प्रकार अन्य भी बहुत-से मुनि तथा मुनिश्रेष्ठ हैं॥ १४॥

अदितिर्देवमाता च नित्यं प्रीत्या चकार ह।
पार्थिवीं शैवपूजां वै सवधूः प्रेमतत्परा॥ १५

देवमाता अदिति अपनी पुत्रवधुओंके साथ प्रेमसे तत्पर हो प्रीतिपूर्वक नित्य पार्थिव शिवपूजन करती रहती हैं॥ १५॥

शक्रादयो लोकपाला वसवश्च सुरास्तथा।
महाराजिकदेवाश्च साध्याश्च शिवपूजकाः॥ १६
गन्धर्वाः किन्नराद्याश्चोपसुराः शिवपूजकाः।
तथासुरा महात्मानः शिवपूजाकरा मताः॥ १७

इन्द्र आदि लोकपाल, अष्टवसुगण, देवता, महाराजिक देवता तथा साध्यगण भी शिवका पूजन करते रहते हैं। गन्धर्व, किन्नर आदि उपदेवता शिवपूजक हैं एवं महात्मा असुरगण भी शिवके उपासक माने गये हैं॥ १६-१७॥

हिरण्यकशिपुर्दैत्यः सानुजः ससुतो मुने।
शिवपूजाकरो नित्यं विरोचनबली तथा॥ १८
महाशैवः स्मृतो बाणो हिरण्याक्षसुतास्तथा।
वृषपर्वा दनुस्तात दानवाः शिवपूजकाः॥ १९

हे मुने! अपने छोटे भाई एवं पुत्रसहित हिरण्यकशिपु तथा विरोचन एवं बलि भी नित्य शिवपूजन करते थे। हे तात! बलिपुत्र बाण महाशैव कहा ही गया है तथा हिरण्याक्षपुत्र [अन्धक], दनुपुत्र वृषपर्वा आदि दानव भी शिवपूजक थे॥ १८-१९॥

शेषश्च वासुकिश्चैव तक्षकश्च तथाऽपरे।
शिवभक्ता महानागा गरुडाद्याश्च पक्षिणः॥ २०

शेष, वासुकि, तक्षक एवं अन्य महानाग तथा गरुड़ आदि पक्षी भी शिवभक्त हुए हैं॥ २०॥

सूर्यचन्द्रावुभौ देवौ पृथ्व्यां वंशप्रवर्तकौ।
शिवसेवारतौ नित्यं सवश्यौ तौ मुनीश्वर॥ २१

हे मुनीश्वर! इस पृथ्वीपर वंशको चलानेवाले सूर्य एवं चन्द्र—वे दोनों भी अपने-अपने वंशजोंके सहित नित्य शिवपूजामें निरत रहते हैं॥ २१॥

मनवश्च तथा चक्रुः स्वायंभुवपुरःसराः।
शिवपूजां विशेषेण शिववेषधरा मुने॥ २२

हे मुने! स्वायम्भुव आदि मनु भी शैव वेष धारणकर विशेष रूपसे शिवपूजन करते थे॥ २२॥

प्रियव्रतश्च तत्पुत्रास्तथा चोत्तानपात्सुतः।
तद्वंशाश्चैव राजानः शिवपूजनकारकाः॥ २३
ध्रुवश्च ऋषभश्चैव भरतो नवयोगिनः।
तद्भ्रातरः परे चापि शिवपूजनकारकाः॥ २४

प्रियव्रत, उनके पुत्र, उत्तानपादके पुत्र एवं उनके वंशमें उत्पन्न हुए सभी राजा शिवपूजन करनेवाले थे। ध्रुव, ऋषभ, भरत, नवयोगीश्वर एवं उनके अन्य भाई भी शिवपूजन करनेवाले थे॥ २३-२४॥

वैवस्वतसुतास्तार्क्ष्य इक्ष्वाकुप्रमुखा नृपाः।
शिवपूजारतात्मानः सर्वदा सुखभोगिनः॥ २५

वैवस्वत मनु, उनके पुत्र इक्ष्वाकु आदि राजागण तथा तार्क्ष्य शिवपूजामें अपने चित्तको समर्पितकर निरन्तर सुखका भोग करनेवाले हुए हैं॥ २५॥

ककुत्स्थश्चापि मांधाता सगरः शैवसत्तमः।
मुचुकुन्दो हरिश्चन्द्रः कल्माषांघ्रिस्तथैव च॥ २६

भगीरथादयो भूपा बहवो नृपसत्तमाः।
शिवपूजाकरा ज्ञेयाः शिववेषविधायिनः॥ २७

ककुत्स्थ, मान्धाता, शैवश्रेष्ठ सगर, मुचुकुन्द, हरिश्चन्द्र, कल्माषपाद, भगीरथ आदि राजाओं तथा बहुत-से अन्य श्रेष्ठ राजाओंको शैववेष धारण करनेवाला तथा शिवजीका पूजन करनेवाला जानना चाहिये॥ २६-२७॥

खट्वाङ्गश्च महाराजो देवसाहाय्यकारकः।
विधितः पार्थिवीं मूर्तिं शिवस्यापूजयत्सदा॥ २८

तत्पुत्रो हि दिलीपश्च शिवपूजनकृत् सदा।
रघुस्तत्तनयः शैवः सुप्रीत्या शिवपूजकः॥ २९

देवताओंकी सहायता करनेवाले महाराज खट्वांग विधानपूर्वक पार्थिव शिवमूर्तिका सदा पूजन किया करते थे। उनके पुत्र महाराज दिलीप भी सदा शिवपूजन करते थे तथा उनके पुत्र शिवभक्त रघु थे, जो प्रीतिसे शिवका पूजन करते थे॥ २८-२९॥

अजः शिवार्चकस्तस्य तनयो धर्मयुद्धकृत्।
जातो दशरथो भूयो महाराजो विशेषतः॥ ३०

धर्मयुद्ध करनेवाले उनके पुत्र अज शिवकी पूजा करनेवाले थे और अजपुत्र महाराज दशरथ तो विशेष रूपसे शिवजीके पूजक थे॥ ३०॥

पुत्रार्थे पार्थिवीं मूर्त्तिं शैवीं दशरथो हि सः।
समानर्च विशेषेण वसिष्ठस्याज्ञया मुनेः॥ ३१

पुत्रेष्टिं च चकारासौ पार्थिवो भवभक्तिमान्।
ऋष्यशृङ्गमुनेराज्ञां संप्राप्य नृपसत्तमः॥ ३२

वे महाराज दशरथ पुत्रप्राप्तिके लिये वसिष्ठ मुनिकी आज्ञासे विशेषरूपसे पार्थिव शिवलिंगका पूजन करते थे। उन शिवभक्त नृपश्रेष्ठ महाराज दशरथने श्रृंगी ऋषिकी आज्ञा प्राप्तकर पुत्रेष्टियज्ञका अनुष्ठान किया था॥ ३१-३२॥

कौसल्या तत्प्रिया मूर्त्तिं पार्थिवीं शांकरीं मुदा।
ऋष्यशृङ्गसमादिष्टा समानर्च सुताप्तये॥ ३३

सुमित्रा च शिवं प्रीत्या कैकेयी नृपवल्लभा।
पूजयामास सत्पुत्रप्राप्तये मुनिसत्तम॥ ३४

उनकी पत्नी कौसल्या पुत्रप्राप्तिहेतु श्रृंगीऋषिकी आज्ञासे आनन्दपूर्वक शिवकी पार्थिवमूर्तिका अर्चन करती थीं। हे मुनिश्रेष्ठ! इसी प्रकार उन राजाकी प्रिय पत्नी सुमित्रा तथा कैकेयी भी श्रेष्ठ पुत्रकी प्राप्तिहेतु प्रेमपूर्वक शिवकी पूजा करती थीं॥ ३३-३४॥

शिवप्रसादतस्ता वै पुत्रान्प्रापुः शुभङ्करान्।
महाप्रतापिनो वीरान् सन्मार्गनिरतान्मुने॥ ३५

हे मुने! उन सभी रानियोंने शिवजीकी कृपासे कल्याणकारी, महाप्रतापी, वीर तथा सन्मार्गपर चलनेवाले पुत्रोंको प्राप्त किया॥ ३५॥

ततः शिवाज्ञया तस्मात्तासु राज्ञः स्वयं हरिः।
चतुर्भिश्चैव रूपैश्चाविर्बभूव नृपात्मजः॥ ३६

कौसल्यायाः सुतो रामः सुमित्रायाश्च लक्ष्मणः।
शत्रुघ्नश्चैव कैकेय्या भरतश्चेति सुव्रताः॥ ३७

उसके बाद शिवजीकी आज्ञासे स्वयं भगवान् विष्णु उन राजासे उन रानियोंके गर्भसे राजाके पुत्र होकर चार रूपोंसे प्रकट हुए। कौसल्यासे रामचन्द्र, सुमित्रासे लक्ष्मण एवं शत्रुघ्न तथा कैकेयीसे भरत— ये उत्तम व्रतवाले पुत्र उत्पन्न हुए॥ ३६-३७॥

रामः स सहजो नित्यं पार्थिवं समपूजयत्।
भस्मरुद्राक्षधारी च विरजागममास्थितः॥ ३८

वे रामचन्द्र शैवागमके अनुसार विरजादीक्षामें दीक्षित हो गये और वे भस्म तथा रुद्राक्ष धारणकर भाइयोंसहित नित्य पार्थिवपूजन किया करते थे॥ ३८॥

तद्वंशे ये समुत्पन्ना राजानः सानुगा मुने।
ते सर्वे पार्थिवं लिङ्गं शिवस्य समपूजयन्॥ ३९

हे मुने! उस वंशमें जितने भी राजा उत्पन्न हुए थे, वे सभी अपने अनुगामियोंके साथ पार्थिव शिवलिंगका पूजन किया करते थे॥ ३९॥

सुद्युम्नश्च महाराजः शैवो मनुसुतो मुने।
शिवशापात्प्रियाहेतोरभून्नारी ससवेकः॥ ४०

हे मुने! मनुपुत्र शिवभक्त महाराज सुद्युम्न शिवके शापसे* अपने सेवकोंसहित स्त्री हो गये थे॥ ४०॥

पार्थिवेशसमर्चातः पुनः सोऽभूत्पुमान्वरः।
मासं स्त्री पुरुषो मासमेवं स्त्रीत्वं न्यवर्तत॥ ४१

ततो राज्यं परित्यज्य शिवधर्मपरायणः।
शिववेषधरो भक्त्या दुर्लभं मोक्षमाप्तवान्॥ ४२

पुनः वे शिवकी पार्थिव मूर्तिका पूजन करनेसे उत्तम पुरुष बन गये। वे एक मासतक स्त्री तथा एक मासतक पुरुष हो जाते थे, इस प्रकार वे स्त्रीत्वसे निवृत्त हो गये। तत्पश्चात् उन्होंने राज्य त्यागकर शैव वेष धारणकर भक्तिपूर्वक शिवधर्ममें परायण हो दुर्लभ मोक्षको प्राप्त किया॥ ४१-४२॥

पुरूरवाश्च तत्पुत्रो महाराजः सुपूजकः।
शिवस्य देवदेवस्य तत्सुतः शिवपूजकः॥ ४३

भरतस्तु महापूजां शिवस्यैव सदाऽकरोत्।
नहुषश्च महाशैवः शिवपूजारतो ह्यभूत्॥ ४४

उनके पुत्र महाराज पुरूरवा भी शिवोपासक थे तथा उनके पुत्र भी देवाधिदेव शिवके पूजक हुए थे। महाराज भरत नित्य ही शिवकी महापूजा किया करते थे। इसी प्रकार महाशैव नहुष भी [निरन्तर] शिवकी पूजामें तत्पर रहते थे॥ ४३-४४॥

ययातिः शिवपूजातः सर्वान्कामानवाप्तवान्।
अजीजनत्सुतान्पञ्च शिवधर्मपरायणान्॥ ४५

तत्सुता यदुमुख्याश्च पञ्चापि शिवपूजकाः।
शिवपूजाप्रभावेण सर्वान्कामांश्च लेभिरे॥ ४६

ययातिने भी शिवपूजाके प्रभावसे अपने सभी मनोरथ प्राप्त किये और [शिवकी कृपासे] शिवधर्मपरायण पाँच पुत्रोंको उत्पन्न किया। उन ययातिके यदु आदि पाँचों पुत्र शिवाराधक हुए और शिवकी पूजाके प्रभावसे उन सभीने अपनी समस्त कामनाएँ पूर्ण कीं॥ ४५-४६॥

अन्येऽपि ये महाभागाः समानर्चुः शिवं हि ते।
तद्वंश्या अन्यवंश्याश्च भुक्तिमुक्तिप्रदं मुने॥ ४७

हे मुने! इसी प्रकार उनके वंशवाले तथा अन्य वंशवाले जो अन्य महाभाग्यवान् राजागण थे, उन्होंने भी भोग तथा मोक्ष प्रदान करनेवाले शिवकी पूजा की थी॥ ४७॥

कृष्णेन च कृतं नित्यं बदरीपर्वतोत्तमे।
पूजनं तु शिवस्यैव सप्तमासावधि स्वयम्॥ ४८

प्रसन्नाद्भगवांस्तस्माद्वरान्दिव्याननेकशः।
सम्प्राप्य च जगत्सर्वं वशेऽनयत शङ्करात्॥ ४९

स्वयं भगवान् श्रीकृष्णने पर्वतश्रेष्ठ हिमालयके बदरिकाश्रममें स्थित होकर सात मासपर्यन्त नित्य शिवका ही पूजन किया और प्रसन्न हुए भगवान् शंकरसे अनेक दिव्य वरदान प्राप्तकर सम्पूर्ण जगत्को अपने वशमें कर लिया॥ ४८-४९॥

प्रद्युम्नः तत्सुतस्तात शिवपूजाकरः सदा।
अन्ये च कार्ष्णिप्रवराः साम्बाद्याः शिवपूजकाः॥ ५०

जरासंधो महाशैवस्तद्वंश्याश्च नृपास्तथा।
निमिः शैवश्च जनकः तत्पुत्राः शिवपूजकाः॥ ५१

हे तात! उनके पुत्र प्रद्युम्न सदा शिवकी पूजा करते थे तथा कृष्णके साम्ब आदि अन्य प्रमुख पुत्र भी शिवपूजक थे। जरासन्ध तो महाशैव था ही, उसके वंशवाले राजा भी शिवपूजक थे। महाशैव निमि, जनक तथा उनके पुत्र भी शिवपूजक थे॥ ५०-५१॥

* देवी पार्वतीकी इच्छापूर्तिहेतु भगवान् शंकरने अम्बिकावनको शापित कर दिया था कि जो भी पुरुष इस वनमें प्रवेश करेगा, वह स्त्रीरूप हो जायगा। (श्रीमद्भा० ९। १। ३२)

नलेन च कृता पूजा वीरसेनसुतेन वै।
पूर्वजन्मनि यो भिल्लो वने पान्थसुरक्षकः॥ ५२

यतिश्च रक्षितस्तेन पुरा हरसमीपतः।
स्वयं व्याघ्रादिभी रात्रौ भक्षितश्च मृतो वृषात्॥ ५३

तेन पुण्यप्रभावेण स भिल्लो हि नलोऽभवत्।
चक्रवर्ती महाराजो दमयन्तीप्रियोऽभवत्॥ ५४

इति ते कथितं तात यत्पृष्टं भवतानघ।
शाङ्करं चरितं दिव्यं किमन्यत्प्रष्टुमिच्छसि॥ ५५

वीरसेनके पुत्र राजा नलने भी शिवकी पूजा की थी, जो पूर्वजन्ममें वनके भील होकर पथिकोंकी रक्षा किया करते थे। पूर्वकालमें उस भीलने शिवलिंगके पास किसी संन्यासीकी रक्षा की थी और वह स्वयं [अतिथि-रक्षारूप] धर्मपालनके प्रसंगमें रात्रिमें बाघ आदिके द्वारा भक्षण कर लेनेसे मर गया। उसी पुण्य-प्रभावके वह भील [दूसरे जन्ममें] चक्रवर्ती महाराज नल हुआ, जो दमयन्तीका प्रिय पति था॥ ५२—५४॥

हे तात! हे अनघ! आपने शिवजीका जो दिव्य चरित्र पूछा था, वह सब मैं निवेदन किया, अब और क्या पूछना चाहते हैं?॥ ५५॥

इति श्रीशिवमहापुराणे चतुर्थ्यां कोटिरुद्रसंहितायां देवर्षिनृपशैवत्ववर्णनं नाम सप्तत्रिंशोऽध्यायः॥ ३७॥

॥ इस प्रकार श्रीशिवमहापुराणके अन्तर्गत चतुर्थ कोटिरुद्रसंहितामें देवर्षिनृपशैवत्ववर्णन नामक सैंतीसवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ ३७॥

अथाष्टत्रिंशोऽध्यायः

भगवान् शिवके विविध व्रतोंमें शिवरात्रिव्रतका वैशिष्ट्य

ऋषय ऊचुः

धन्योऽसि कृतकृत्योऽसि जीवितं सफलं तव।
यच्छ्रावयसि नस्तात महेश्वरकथां शुभाम्॥ १
बहुभिश्चर्षिभिः सूत श्रुतं यद्यपि वस्तु सत्।
सन्देहो न गतोऽस्माकं तदेतत्कथयामि ते॥ २

केन व्रतेन सन्तुष्टः शिवो यच्छति सत्सुखम्।
कुशलः शिवकृत्ये त्वं तस्मात्पृच्छामहे वयम्॥ ३

भुक्तिर्मुक्तिश्च लभ्येत भक्तैर्येन व्रतेन वै।
तद्वद त्वं विशेषेण व्यासशिष्य नमोऽस्तु ते॥ ४

ऋषि बोले—हे तात! आप धन्य हैं। कृतकृत्य हैं और आपका जीवन सफल है जो आप हमलोगोंको महेश्वरकी कल्याणकारी कथा सुना रहे हैं॥ १॥

हे सूतजी! यद्यपि हमलोगोंने बहुत-से ऋषियोंसे परमार्थतत्त्वका श्रवण किया है, किंतु हमारा संशय अभीतक नहीं गया, इसीलिये आपसे पूछ रहे हैं। किस व्रतसे सन्तुष्ट होकर शिवजी उत्तम सुख प्रदान करते हैं? आप शिवकृत्यमें कुशल हैं, इसलिये हमलोग आपसे पूछ रहे हैं। हे व्यासशिष्य! जिस व्रतके करनेसे शिवभक्तोंको भोग तथा मोक्षकी प्राप्ति होती है, उसे आप विस्तारसे कहिये, आपको नमस्कार है॥ २—४॥

सूत उवाच

सम्यक्पृष्टमृषिश्रेष्ठा भवद्भिः करुणात्मभिः।
स्मृत्वा शिवपदाम्भोजं कथयामि यथाश्रुतम्॥ ५

यथा भवद्भिः पृच्छ्येत तथा पृष्टं हि वेधसा।
हरिणा शिवया चैव तथा वै शंकरं प्रति॥ ६

सूतजी बोले—हे श्रेष्ठ ऋषियो! दयायुक्त चित्तवाले आपलोगोंने अच्छा प्रश्न किया है, मैंने जैसा सुना है, वैसा ही शिवके चरणकमलका ध्यानकर कहता हूँ॥ ५॥

जिस प्रकार आपलोगोंने मुझसे पूछा है, उसी प्रकार ब्रह्मा, विष्णु तथा पार्वतीने शिवजीसे पूछा था॥ ६॥

कस्मिंश्चित्समये तैस्तु पृष्टं च परमात्मने।
केन व्रतेन सन्तुष्टो भुक्तिं मुक्तिं च यच्छसि॥ ७

किसी समय उन लोगोंने परमात्मा शिवजीसे पूछा था कि आप किस व्रतसे सन्तुष्ट होकर भोग तथा मोक्ष प्रदान करते हैं?॥ ७॥

इति पृष्टस्तदा तैस्तु हरिणा तेन वै तदा।
तदहं कथयाम्यद्य शृण्वतां पापहारकम्॥ ८

उस समय विष्णु आदि उन सभीके ऐसा पूछनेपर शिवजीने जैसा कहा था, मैं भी उसीका वर्णन कर रहा हूँ, जो सुननेवालोंके पापको दूर करनेवाला है॥ ८॥

शिव उवाच

भूरि व्रतानि मे सन्ति भुक्तिमुक्तिप्रदानि च।
मुख्यानि तत्र ज्ञेयानि दशसंख्यानि तानि वै॥ ९
दश शैवव्रतान्याहुर्जाबालश्रुतिपारगाः।
तानि व्रतानि यत्नेन कार्याण्येव द्विजैः सदा॥ १०

शिवजी बोले—भोग तथा मोक्ष प्रदान करनेवाले मेरे अनेक व्रत हैं, उनमें दस व्रतोंको मुख्य जानना चाहिये। वेदज्ञाता जाबाल आदि महर्षियोंने शिवके दस व्रतोंको बताया है। द्विजातियोंको सदा उन्हीं व्रतोंको प्रयत्नपूर्वक करना चाहिये॥ ९-१०॥

प्रत्यष्टम्यां प्रयत्नेन कर्तव्यं नक्तभोजनम्।
कालाष्टम्यां विशेषेण हरे त्याज्यंऽह्निभोजनम्॥ ११

हे विष्णो! प्रत्येक अष्टमीके [दिनमें उपवासकर] रात्रिकालमें भोजन करना चाहिये, किंतु कालाष्टमीमें विशेष-रूपसे [रात्रिमें भी] भोजनका त्याग करना चाहिये॥ ११॥

एकादश्यां सितायां तु त्याज्यं विष्णोऽह्निभोजनम्।
असितायां तु भोक्तव्यं नक्तमभ्यर्च्य मां हरे॥ १२

त्रयोदश्यां सितायां तु कर्तव्यं निशि भोजनम्।
असितायां तु भूतायां तन्न कार्यं शिवव्रतैः॥ १३

हे विष्णो! शुक्लपक्षकी एकादशीके अवसरपर दिनमें भोजनका त्याग करना चाहिये, किंतु हे हरे! कृष्णपक्षकी एकादशीमें मेरा पूजनकर रात्रिमें भोजन कर लेना चाहिये। शुक्लपक्षकी त्रयोदशीको रात्रिमें भोजन करे, किंतु कृष्णपक्षकी त्रयोदशी प्राप्त होनेपर शिवव्रत-धारियोंको भोजन नहीं करना चाहिये॥ १२-१३॥

निशि यत्नेन कर्तव्यं भोजनं सोमवासरे।
उभयोः पक्षयोर्विष्णो सर्वस्मिञ्छिवतत्परैः॥ १४

हे विष्णो! दोनों पक्षोंमें सोमवारके दिन यत्नपूर्वक शिवव्रत करनेवालोंको रात्रिमें भोजन करना चाहिये॥ १४॥

व्रतेष्वेतेषु सर्वेषु शैवा भोज्याः प्रयत्नतः।
यथाशक्ति द्विजश्रेष्ठा व्रतसंपूर्तिहेतवे॥ १५

व्रतान्येतानि नियमात्कर्तव्यानि द्विजन्मभिः।
व्रतान्येतानि तु त्यक्त्वा जायन्ते तस्करा द्विजाः॥ १६

हे द्विजश्रेष्ठो! इन सभी व्रतोंके समाप्त होनेपर व्रतकी सम्पूर्णताके लिये यथाशक्ति शैवोंको भोजन कराना चाहिये। द्विजातियोंको इन व्रतोंका अनुष्ठान नियमपूर्वक करना चाहिये, इन व्रतोंका त्याग करनेपर द्विज [दूसरे जन्ममें] तस्कर [चोर] होते हैं॥ १५-१६॥

मुक्तिमार्गप्रवीणैश्च कर्तव्यं नियमादिति।
मुक्तेस्तु प्रापकं चैव चतुष्टयमुदाहृतम्॥ १७

शिवार्चनं रुद्रजप उपवासः शिवालये।
वाराणस्यां च मरणं मुक्तिरेषा सनातनी॥ १८

मुक्तिमार्गमें प्रवीण लोगोंको ये व्रत नियमपूर्वक करने चाहिये। ये चारों मुक्ति देनेवाले कहे गये हैं। शिवजीका पूजन, रुद्रमन्त्रका जप, शिवालयमें उपवास और काशीमें मरण—ये सनातनी मुक्तिके उपाय हैं॥ १७-१८॥

अष्टमी सोमवारे च कृष्णपक्षे चतुर्दशी।
शिवतुष्टिकरं चैतन्नात्र कार्या विचारणा॥ १९

सोमवारसे युक्त अष्टमी तथा कृष्णपक्षकी चतुर्दशी—इन दो तिथियोंमें व्रत करनेसे शिवजी सन्तुष्ट होते हैं, इसमें सन्देह नहीं करना चाहिये॥ १९॥

चतुर्ष्वपि बलिष्ठं हि शिवरात्रिव्रतं हरे।
तस्मात्तदेव कर्तव्यं भुक्तिमुक्तिफलेप्सुभिः॥ २०

एतस्माच्च व्रतादन्यन्नास्ति नृणां हितावहम्।
एतद् व्रतं तु सर्वेषां धर्मसाधनमुत्तमम्॥ २१

हे हरे! [पूर्वोक्त] चारों व्रतोंसे शिवरात्रिव्रत विशेष बलवान् होता है, अतः भोग एवं मोक्षकी इच्छावालोंको वही व्रत करना चाहिये। इस व्रतके अलावा मनुष्योंका हितकारक कोई दूसरा व्रत नहीं है। यह व्रत सभीके लिये उत्तम धर्मसाधन है॥ २०-२१॥

निष्कामानां सकामानां सर्वेषां च नृणां तथा।
वर्णानामाश्रमाणां च स्त्रीबालानां तथा हरे॥ २२
दासानां दासिकानां च देवादीनां तथैव च।
शरीरिणां च सर्वेषां हितमेतद् व्रतं वरम्॥ २३

हे हरे! सकाम अथवा निष्काम भाव रखनेवाले सभी मनुष्यों, वर्णों, आश्रमों, स्त्रियों, बालकों, दास-दासियों, देवगणों तथा समस्त प्राणियोंके लिये यह श्रेष्ठ व्रत हितकारक है॥ २२-२३॥

माघस्य ह्यसिते पक्षे विशिष्टा साति कीर्तिता।
निशीथव्यापिनी ग्राह्या हत्याकोटिविनाशिनी॥ २४

तद्दिने चैव यत्कार्यं प्रातरारभ्य केशव।
श्रूयतां तन्मनो दत्त्वा सुप्रीत्या कथयामि ते॥ २५

माघमासके कृष्णपक्षमें शिवचतुर्दशी अत्यन्त विशिष्ट कही गयी है। अर्धरात्रिकालकी चतुर्दशीको ही ग्रहण करना चाहिये; यह करोड़ों हत्याओंका विनाश करनेवाली है। हे केशव! उस दिन प्रातःकालसे आरम्भकर जो करना चाहिये, उसे मन लगाकर प्रीतिपूर्वक सुनिये, उसे मैं आपसे कहता हूँ॥ २४-२५॥

प्रातरुत्थाय मेधावी परमानन्दसंयुतः।
समाचरेन्नित्यकृत्यं स्नानादिकमतन्द्रितः॥ २६

शिवालये ततो गत्वा पूजयित्वा यथाविधि।
नमस्कृत्य शिवं पश्चात्संकल्पं सम्यगाचरेत्॥ २७

विद्वान्‌को चाहिये कि प्रातःकाल उठकर आलस्यरहित हो परम आनन्दसे युक्त होकर स्नान आदि नित्यकर्म करे। इसके बाद शिवालयमें जाकर यथाविधि शिवजीका पूजनकर उन्हें नमस्कार करके बादमें इस प्रकार संकल्प करना चाहिये॥ २६-२७॥

देवदेव महादेव नीलकण्ठ नमोऽस्तु ते।
कर्तुमिच्छाम्यहं देव शिवरात्रिव्रतं तव॥ २८

तव प्रभावाद्देवेश निर्विघ्नेन भवेदिति।
कामाद्याः शत्रवो मां वै पीडां कुर्वन्तु नैव हि॥ २९

हे देवदेव! हे महादेव! हे नीलकण्ठ! आपको नमस्कार है। हे देव! मैं आपका शिवरात्रिव्रत करना चाहता हूँ। हे देवेश! आपके प्रभावसे यह व्रत विघ्नोंसे रहित हो और कामादि शत्रु मुझे [किसी प्रकारकी] पीड़ा न पहुँचायें॥ २८-२९॥

एवं संकल्पमास्थाय पूजाद्रव्यं समाहरेत्।
सुस्थले चैव यल्लिंगं प्रसिद्धं चागमेषु वै॥ ३०

रात्रौ तत्र स्वयं गत्वा सम्पाद्य विधिमुत्तमम्।
शिवस्य दक्षिणे भागे पश्चिमे वा स्थले शुभे॥ ३१

निधाय चैव तद् द्रव्यं पूजार्थं शिवसन्निधौ।
पुनः स्नायात्तदा तत्र विधिपूर्वं नरोत्तमः॥ ३२

इस प्रकार संकल्पकर पूजासामग्री एकत्रित करे। सुन्दर स्थलपर जो शास्त्रप्रसिद्ध शिवलिंग हो, वहाँ स्वयं रात्रिमें जाकर उत्तम विधि सम्पादित करके शिवके दाहिने अथवा पश्चिम भागमें शुभ स्थानमें पूजाहेतु उस सामग्रीको शिवके समीप रखकर पुनः व्रती पुरुष वहाँ विधिपूर्वक स्नान करे॥ ३०—३२॥

परिधाय शुभं वस्त्रमन्तर्वासः शुभं तथा।
आचम्य च त्रिवारं हि पूजारंभं समाचरेत्॥ ३३

यस्य मंत्रस्य यद् द्रव्यं तेन पूजां समाचरेत्।
अमंत्रकं न कर्तव्यं पूजनं तु हरस्य च॥ ३४

तत्पश्चात् पवित्र वस्त्र तथा उपवस्त्र धारण करनेके उपरान्त तीन बार आचमन करके पूजाका आरम्भ करना चाहिये। जिस मन्त्रका जो द्रव्य (नियत) हो, उस मन्त्रको पढ़कर उसी द्रव्यके द्वारा पूजन करना चाहिये। बिना मन्त्रके शिवका पूजन नहीं करना चाहिये॥ ३३-३४॥

गीतैर्वाद्यैस्तथा नृत्यैर्भक्तिभावसमन्वितैः।
पूजनं प्रथमे यामे कृत्वा मंत्रं जपेद् बुधः॥ ३५

पार्थिवं च तदा श्रेष्ठं विदध्यान्मंत्रवान्यदि।
कृतनित्यक्रियः पश्चात्पार्थिवं च समर्चयेत्॥ ३६

भक्तिभावसे युक्त गीत, वाद्य तथा नृत्यके साथ प्रथम प्रहरमें पूजन करके बुद्धिमान्‌को मन्त्रका जप करना चाहिये। यदि मन्त्रज्ञ पुरुषने उस समय पार्थिव लिंगका निर्माण किया हो तो नित्यक्रिया करनेके अनन्तर पार्थिवपूजन ही करे॥ ३५-३६॥

प्रथमं पार्थिवं कृत्वा पश्चात्स्थापनमाचरेत्।
स्तोत्रैर्नानाविधैर्देवं तोषयेद् वृषभध्वजम्॥ ३७

माहात्म्यं व्रतसंभूतं पठितव्यं सुधीमता।
श्रोतव्यं भक्तवर्येण व्रतसम्पूर्तिकाम्यया॥ ३८

सर्वप्रथम पार्थिव लिंगका निर्माणकर बादमें उसकी स्थापना करे और नाना प्रकारके स्तोत्रोंसे प्रभु वृषभध्वजको सन्तुष्ट करे। उसके बाद बुद्धिमान् श्रेष्ठ भक्त शिवरात्रिव्रतकी समाप्तिका फल प्राप्त करनेके लिये व्रतसम्बन्धी माहात्म्य पढ़े अथवा सुने॥ ३७-३८॥

चतुर्ष्वपि च यामेषु मूर्तीनां च चतुष्टयम्।
कृत्वावाहनपूर्वं हि विसर्गावधि वै क्रमात्॥ ३९

कार्यं जागरणं प्रीत्या महोत्सवसमन्वितम्।
प्रातः स्नात्वा पुनस्तत्र स्थापयेत्पूजयेच्छिवम्॥ ४०

रात्रिके चारों प्रहरोंमें शिवकी चार मूर्तियों (पार्थिव लिंगों)-का निर्माण करके क्रमशः आवाहनसे लेकर विसर्जनपर्यन्त पूजन करे और रात्रिमें प्रेमसे महोत्सवपूर्वक जागरण करे। पुनः प्रातःकाल उठकर स्नान करनेके बाद शिवकी स्थापना तथा पूजा करनी चाहिये॥ ३९-४०॥

ततः संप्रार्थयेच्छंभुं नतस्कन्धः कृताञ्जलिः।
कृतसम्पूर्णव्रतको नत्वा तं च पुनः पुनः॥ ४१

नियमो यो महादेव कृतश्चैव त्वदाज्ञया।
विसृज्यते मया स्वामिन् व्रतं जातमनुत्तमम्॥ ४२

व्रतेनानेन देवेश यथाशक्तिकृतेन च।
सन्तुष्टो भव शर्वाद्य कृपां कुरु ममोपरि॥ ४३

इस प्रकार व्रत समाप्त करके सिर झुकाकर हाथ जोड़कर शिवको बारंबार नमस्कारकर यह प्रार्थना करे—हे महादेव! हे स्वामिन्! आपकी आज्ञासे मैंने जो व्रत ग्रहण किया था, वह उत्तम व्रत सम्पूर्ण हो गया, अब मैं व्रतका विसर्जन करता हूँ। हे देवेश! हे शर्व! [मेरे द्वारा] यथाशक्ति किये गये व्रतसे आप आज सन्तुष्ट हों और मेरे ऊपर दया करें॥ ४१—४३॥

पुष्पाञ्जलिं शिवे दत्त्वा दद्याद्दानं यथाविधि।
नमस्कृत्य शिवायैव नियमं तं विसर्जयेत्॥ ४४

यथाशक्ति द्विजाञ्छैवान्यतिनश्च विशेषतः।
भोजयित्वा सुसन्तोष्य स्वयं भोजनमाचरेत्॥ ४५

इसके बाद शिवजीको पुष्पांजलि समर्पितकर यथाविधि दान दे और शिवको नमस्कारकर उस नियमकी समाप्ति करे। शैव ब्राह्मणोंको तथा विशेषकर संन्यासियोंको शक्तिके अनुसार भोजन करा करके उन्हें भलीभाँति सन्तुष्टकर स्वयं भोजन करे॥ ४४-४५॥

यामे यामे यथा पूजा कार्या भक्तवरैर्हरे।
शिवरात्रौ विशेषेण तामहं कथयामि ते॥ ४६

प्रथमे चैव यामे च स्थापितं पार्थिवं हरे।
पूजयेत्परया भक्त्या सूपचारैरनेकशः॥ ४७

पञ्चद्रव्यैश्च प्रथमं पूजनीयो हरः सदा।
तस्य तस्य च मन्त्रेण पृथग्द्रव्यं समर्पयेत्॥ ४८

तच्च द्रव्यं समर्प्यैव जलधारां ददेत वै।
पश्चाच्च जलधाराभिर्द्रव्याण्युत्तारयेद् बुधः॥ ४९

शतमष्टोत्तरं मन्त्रं पठित्वा जलधारया।
पूजयेच्च शिवं तत्र निर्गुणं गुणरूपिणम्॥ ५०
गुरुदत्तेन मंत्रेण पूजयेद् वृषभध्वजम्।
अन्यथा नाममंत्रेण पूजयेद्वै सदाशिवम्॥ ५१
चन्दनेन विचित्रेण तण्डुलैश्चाप्यखण्डितैः।
कृष्णैश्चैव तिलैः पूजा कार्या शंभोः परात्मनः॥ ५२

पुष्पैश्च शतपत्रैश्च करवीरैस्तथा पुनः।
अष्टभिर्नाममंत्रैश्चार्पयेत्पुष्पाणि शंकरे॥ ५३

भवः शर्वस्तथा रुद्रः पुनः पशुपतिस्तथा।
उग्रो महांस्तथा भीम ईशान इति तानि वै॥ ५४

श्रीपूर्वैश्च चतुर्थ्यन्तैर्नामभिः पूजयेच्छिवम्।
पश्चाद्धूपं च दीपं च नैवेद्यं च ततः परम्॥ ५५

आद्ये यामे च नैवेद्यं पक्वान्नं कारयेद् बुधः।
अर्घं च श्रीफलं दत्त्वा ताम्बूलं च निवेदयेत्॥ ५६

नमस्कारं ततो ध्यानं जपः प्रोक्तो गुरोर्मनोः।
अन्यथा पञ्चवर्णेन तोषयेत्तेन शंकरम्॥ ५७

धेनुमुद्रां प्रदर्श्याथ सुजलैस्तर्पणं चरेत्।
पञ्चब्राह्मणभोजं च कल्पयेद्वै यथाबलम्॥ ५८

महोत्सवश्च कर्तव्यो यावद्यामो भवेदिह।
ततः पूजाफलं तस्मै निवेद्य च विसर्जयेत्॥ ५९

हे हरे! शिवरात्रिमें श्रेष्ठ भक्तोंको जिस प्रकार प्रत्येक प्रहरमें शिवजीकी विशेष पूजा करनी चाहिये, उसे मैं आपसे कहता हूँ। हे हरे! प्रथम प्रहरमें अनेक उत्तम उपचारोंसे परम भक्तिपूर्वक स्थापित पार्थिव लिंगका पूजन करना चाहिये॥ ४६-४७॥

सर्वप्रथम [गन्ध-पुष्पादि] पाँच द्रव्योंसे सदाशिवका पूजन करे और उस-उस वस्तुसे सम्बन्धित मन्त्रसे पृथक्-पृथक् द्रव्योंको समर्पित करे। उन द्रव्योंको समर्पित करनेके पश्चात् जलधारा अवश्य प्रदान करे। बादमें बुद्धिमान् पुरुष जलधारासे ही [समर्पित] द्रव्योंको उतारे॥ ४८-४९॥

एक सौ आठ बार शिवमन्त्र [**'ॐ नमः शिवाय'**] पढ़कर जलधारासे निर्गुण होते हुए भी सगुण हुए शिवकी पूजा करे। गुरुके द्वारा दिये गये मन्त्रसे शिवकी पूजा करनी चाहिये अथवा नाममन्त्रसे ही सदाशिवका पूजन करे। सुगन्धित चन्दन, अखण्डित अक्षत तथा काले तिलोंसे परात्मा शम्भुकी पूजा करनी चाहिये॥ ५०—५२॥

सौ पंखुड़ियोंवाले कमलपुष्पों तथा कनेरके पुष्पोंसे शिवका पूजन करना चाहिये। शिवके आठों नाममन्त्रोंसे शिवजीको पुष्प अर्पित करने चाहिये। भव, शर्व, रुद्र, पशुपति, उग्र, महान्, भीम एवं ईशान—ये [आठ] नाम हैं। इन नामोंको श्रीसे युक्त, चतुर्थ्यन्त [नाममन्त्र] बनाकर इनसे शिवकी पूजा करे और बादमें धूप, दीप तथा नैवेद्य समर्पित करे। विद्वान्‌को चाहिये कि प्रथम प्रहरमें पक्वान्नका नैवेद्य समर्पण करे तथा श्रीफलसे युक्त अर्घ्य देकर ताम्बूल समर्पित करे॥ ५३—५६॥

उसके अनन्तर नमस्कार तथा ध्यान करके गुरुसे प्राप्त मन्त्रका जप करे अथवा उसी पंचाक्षरमन्त्रसे शिवको सन्तुष्ट करे॥ ५७॥

उसके बाद धेनुमुद्रा दिखाकर निर्मल जलसे शिवका तर्पण करे और अपने सामर्थ्यके अनुसार पाँच ब्राह्मणोंको भोजन कराये। जबतक प्रहर न बीते, तबतक महोत्सव करे। इसके बाद शिवको पूजाका फल समर्पितकर विसर्जन करे॥ ५८-५९॥

पुनर्द्वितीये यामे च संकल्पं सुसमाचरेत्।
अथवैकदैव संकल्प्य कुर्यात्पूजां तथाविधाम्॥ ६०

द्रव्यैः पूर्वैस्तथा पूजां कृत्वा धारां समर्पयेत्।
पूर्वतो द्विगुणं मंत्रं समुच्चार्यार्चयेच्छिवम्॥ ६१

पूर्वैस्तिलयवैश्चाथ कमलैः पूजयेच्छिवम्।
बिल्वपत्रैर्विशेषेण पूजयेत्परमेश्वरम्॥ ६२

अर्घ्यं च बीजपूरेण नैवेद्यं पायसं तथा।
मंत्रावृत्तिस्तु द्विगुणा पूर्वतोऽपि जनार्दन॥ ६३

ततश्च ब्राह्मणानां हि भोज्यसंकल्पमाचरेत्।
अन्यत्सर्वं तथा कुर्याद्यावच्च द्वितयावधि॥ ६४

यामे प्राप्ते तृतीये च पूर्ववत्पूजनं चरेत्।
यवस्थाने च गोधूमाः पुष्पाण्यर्कभवानि च॥ ६५

धूपैश्च विविधैस्तत्र दीपैर्नानाविधैरपि।
नैवेद्यापूपकैर्विष्णो शाकैर्नानाविधैरपि॥ ६६

कृत्वैवं चाथ कर्पूरैरारार्तिकविधिं चरेत्।
अर्घ्यं सदाडिमं दद्याद् द्विगुणं जपमाचरेत्॥ ६७

ततश्च ब्रह्मभोजस्य संकल्पं च सदक्षिणम्।
उत्सवं पूर्ववत्कुर्याद्यावद्यामावधिर्भवेत्॥ ६८

यामे चतुर्थे संप्राप्ते कुर्यात्तस्य विसर्जनम्।
प्रयोगादि पुनः कृत्वा पूजां विधिवदाचरेत्॥ ६९

माषैः प्रियङ्गुभिर्मुद्गैः सप्तधान्यैस्तथाथवा।
शंखीपुष्पैर्बिल्वपत्रैः पूजयेत्परमेश्वरम्॥ ७०

नैवेद्यं तत्र दद्याद्वै मधुरैर्विविधैरपि।
अथवा चैव माषान्नैस्तोषयेच्च सदाशिवम्॥ ७१

अर्घं दद्यात्कदल्याश्च फलेनैवाथ वा हरे।
विविधैश्च फलैश्चैव दद्यादर्घ्यं शिवाय च॥ ७२

पूर्वतो द्विगुणं कुर्यान्मंत्रजापं नरोत्तमः।
संकल्पं ब्रह्मभोजस्य यथाशक्ति चरेद् बुधः॥ ७३

गीतैर्वाद्यैस्तथा नृत्यैर्नयेत्कालं च भक्तितः।
महोत्सवैर्भक्तजनैर्यावत्स्यादरुणोदयः॥ ७४

तदनन्तर द्वितीय प्रहर प्राप्त होनेपर अच्छी प्रकारसे संकल्प करे अथवा सभी प्रहरोंका एक साथ संकल्प करके उसी प्रकारकी पूजा करे। पूर्ववत् पाँच द्रव्योंसे पूजा करके धारा समर्पित करे। मन्त्र पढ़कर पहलेकी अपेक्षा दो गुना शिवार्चन करना चाहिये॥ ६०-६१॥

पहलेके रखे गये तिल, यव एवं कमलपुष्पोंसे शिवकी पूजा करे, विशेषकर बिल्वपत्रोंसे परमेश्वरका पूजन करना चाहिये। बीजपूर (बिजौरा)-के साथ अर्घ्य देकर खीरका नैवेद्य समर्पित करे। हे जनार्दन! मन्त्रकी आवृत्ति पहलेसे भी दुगुनी होनी चाहिये। उसके बाद ब्राह्मणभोजनका संकल्प करे। दूसरे प्रहरकी समाप्तितक अन्य सब कुछ पहले प्रहरकी भाँति करे॥ ६२—६४॥

तीसरा प्रहर प्राप्त होनेपर पूर्वकी भाँति ही पूजन करे। यवके स्थानपर गोधूम चढ़ाये तथा [विशेष रूपसे] आकके पुष्प अर्पित करे। हे विष्णो! अनेक प्रकारके धूपों, नानाविध दीपों, नैवेद्यके रूपमें मालपुओं एवं अनेक प्रकारके शाकोंसे पूजनकर कर्पूरसे आरती करे। अनारके साथ अर्घ्य प्रदान करे तथा पूर्वकी अपेक्षा दूना जप करे। इसके बाद दक्षिणासहित ब्राह्मणभोजनका संकल्प करे। इस प्रकार तृतीय प्रहरकी समाप्तिपर्यन्त पूर्ववत् उत्सव करे॥ ६५—६८॥

चौथे प्रहरके आनेपर उनका विसर्जन करे। इसके बाद पुनः पूर्ववत् समस्त प्रयोगकर विधिवत् पूजन करे। उड़द, कंगुनी, मूँग, सप्तधान्य, शंखपुष्पी और बिल्वपत्रोंसे परमेश्वरका पूजन करे॥ ६९-७०॥

अनेक प्रकारके मधुर पदार्थोंसे बना हुआ नैवेद्य अर्पित करे। अथवा उड़दके पक्वान्नसे सदाशिवको सन्तुष्ट करे। हे हरे! केलेके फलोंसे युक्त शिवजीको अर्घ्य प्रदान करे अथवा अन्य विविध प्रकारके फलोंसे अर्घ्य प्रदान करे॥ ७१-७२॥

सज्जन पुरुष पहलेसे दूना मन्त्रजप करे, उसके बाद विद्वान्‌को चाहिये कि यथाशक्ति ब्राह्मणभोजनका संकल्प करे। भक्तिपूर्वक भक्तजनोंके साथ गीतों, वाद्यों, नृत्यों तथा महोत्सवोंके द्वारा अरुणोदयपर्यन्त कालयापन करना चाहिये॥ ७३-७४॥

उदये च तथा जाते पुनः स्नात्वार्चयेच्छिवम्।
नानापूजोपहारैश्च स्वाभिषेकमथाचरेत्॥ ७५

नानाविधानि दानानि भोज्यं च विविधं तथा।
ब्राह्मणानां यतीनां च कर्तव्यं यामसंख्यया॥ ७६

सूर्यके उदित होनेपर पुनः स्नानकर अनेक पूजनोपचारों तथा उपहारोंसे शिवार्चन करे। उस समय [ब्राह्मणोंके द्वारा] अपना अभिषेक करवाये। पुनः अनेक प्रकारके दान देकर प्रहरोंमें संकल्पित ब्राह्मणों एवं संन्यासियोंको विविध प्रकारका भोजन कराये॥ ७५-७६॥

शंकराय नमस्कृत्य पुष्पाञ्जलिमथाचरेत्।
प्रार्थयेत्सुस्तुतिं कृत्वा मन्त्रैरेतैर्विचक्षणः॥ ७७

तावकस्त्वद्गतप्राणस्त्वच्चित्तोऽहं सदा मृड।
कृपानिधे इति ज्ञात्वा यथायोग्यं तथा कुरु॥ ७८

तदनन्तर बुद्धिमान् पुरुष शिवजीको नमस्कारकर पुष्पांजलि अर्पित करे और उत्तम स्तुति करके निम्नांकित मन्त्रोंसे प्रार्थना करे—हे मृड! हे कृपानिधे! मैं आपका हूँ, मेरे प्राण एवं चित्त सदा आपके आश्रित हैं—ऐसा जानकर जो उचित हो, वैसा आप करें॥ ७७-७८॥

अज्ञानाद्यदि वा ज्ञानाज्जपपूजादिकं मया।
कृपानिधित्वाज्ज्ञात्वैव भूतनाथ प्रसीद मे॥ ७९

हे भूतनाथ! मैंने ज्ञानसे अथवा अज्ञानसे जो भी जप, पूजन आदि किया है, कृपानिधि होनेसे उसे जान करके आप प्रसन्न हों॥ ७९॥

अनेनैवोपवासेन यज्जातं फलमेव च।
तेनैव प्रीयतां देवः शंकरः सुखदायकः॥ ८०

कुले मम महादेव भजनं तेऽस्तु सर्वदा।
माभूत्तस्य कुले जन्म यत्र त्वं नहि देवता॥ ८१

हे प्रभो! इस उपवासके द्वारा जो फल प्राप्त हुआ है, उससे सुखदायक आप शंकरदेव प्रसन्न हों। हे महादेव! मेरे कुलमें सर्वदा आपका भजन होता रहे, मेरा जन्म उस कुलमें न हो, जिसमें आप कुलदेवता न हों॥ ८०-८१॥

पुष्पाञ्जलिं समर्प्यैवं तिलकाशिष एव च।
गृह्णीयाद् ब्राह्मणेभ्यश्च ततः शंभुं विसर्जयेत्॥ ८२

एवं व्रतं कृतं येन तस्माद् दूरो हरो न हि।
न शक्यते फलं वक्तुं नादेयं विद्यते मम॥ ८३

इस प्रकार पुष्पांजलि समर्पित करके ब्राह्मणोंसे आशीर्वाद एवं तिलक ग्रहण करे, इसके बाद शिवका विसर्जन करे। [हे विष्णो!] जिसने इस प्रकार मेरा व्रत किया, मैं उससे दूर नहीं रहता, उसके फलका वर्णन नहीं किया जा सकता और उस भक्तके लिये मेरे पास कुछ भी अदेय नहीं है॥ ८२-८३॥

अनायासतया चेद्वै कृतं व्रतमिदं परम्।
तस्य वै मुक्तिबीजं च जातं नात्र विचारणा॥ ८४

प्रतिमासं व्रतं चैव कर्तव्यं भक्तितो नरैः।
उद्यापनविधिं पश्चात्कृत्वा साङ्गफलं लभेत्॥ ८५

जिसने अनायास भी इस उत्तम व्रतको किया, उसमें मानो मुक्तिका बीज ही अंकुरित हो गया हो, इसमें सन्देह नहीं करना चाहिये। मनुष्योंको प्रत्येक महीनेमें भक्तिपूर्वक यह व्रत करना चाहिये। तत्पश्चात् इसका उद्यापन करके मनुष्य सांगोपांग फल प्राप्त कर लेता है॥ ८४-८५॥

व्रतस्य करणान्नूनं शिवोऽहं सर्वदुःखहा।
दद्मि भुक्तिं च मुक्तिं च सर्वं वै वाञ्छितं फलम्॥ ८६

[हे विष्णो!] इस व्रतको करनेपर मैं शिव निश्चित रूपसे सारे दुःखोंको दूर करता हूँ और भोग, मोक्ष तथा सम्पूर्ण वांछित फल प्रदान करता हूँ॥ ८६॥

सूत उवाच

इति शिववचनं निशम्य विष्णु-
हिततरमद्भुतमाजगाम धाम।
तदनु व्रतमुत्तमं जनेषु
समचरदात्महितेषु चैतदेव॥ ८७

सूतजी बोले—[हे ऋषियो!] शिवजीके इस कल्याणकारी एवं अद्भुत [फल देनेवाले] व्रतको सुनकर विष्णुजी अपने धामको लौट आये और तत्पश्चात् अपना सर्वविध कल्याण चाहनेवाले [श्रद्धालु] मनुष्योंमें इस व्रतका प्रचार हुआ॥ ८७॥

कदाचिन्नारदायाथ शिवरात्रिव्रतं त्विदम्।
भुक्तिमुक्तिप्रदं दिव्यं कथयामास केशवः॥ ८८

किसी समय विष्णुजीने भोग तथा मोक्ष देनेवाले इस दिव्य शिवरात्रिव्रतका वर्णन नारदजीसे किया था॥ ८८॥

इति श्रीशिवमहापुराणे चतुर्थ्यां कोटिरुद्रसंहितायां व्याधेश्वरमाहात्म्ये शिवरात्रिव्रतमहिमनिरूपणं नामाष्टत्रिंशोऽध्यायः॥ ३८॥

॥ इस प्रकार श्रीशिवमहापुराणके अन्तर्गत चतुर्थ कोटिरुद्रसंहितामें व्याधेश्वरमाहात्म्यमें शिवरात्रिव्रत-महिमानिरूपणवर्णन नामक अड़तीसवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ ३८॥

अथैकोनचत्वारिंशोऽध्यायः

शिवरात्रिव्रतकी उद्यापन-विधिका वर्णन

ऋषय ऊचुः

उद्यापनविधिं ब्रूहि शिवरात्रिव्रतस्य च।
यत्कृत्वा शंकरः साक्षात्प्रसन्नो भवति ध्रुवम्॥ १

ऋषिगण बोले—[हे सूत!] अब आप शिवरात्रिव्रतके उद्यापनका विधान कहिये, जिसके करनेसे साक्षात् शंकरजी निश्चित रूपसे प्रसन्न होते हैं॥ १॥

सूत उवाच

श्रूयतामृषयो भक्त्या तदुद्यापनमादरात्।
यस्यानुष्ठानतः पूर्णं व्रतं भवति तद् ध्रुवम्॥ २

सूतजी बोले—हे ऋषियो! आपलोग उसके उद्यापनको भक्तिपूर्वक सुनें, जिसके करनेसे निश्चित रूपसे शिवरात्रिव्रत पूर्ण हो जाता है॥ २॥

चतुर्दशाब्दं कर्तव्यं शिवरात्रिव्रतं शुभम्।
एकभक्तं त्रयोदश्यां चतुर्दश्यामुपोषणम्॥ ३

इस शुभ शिवरात्रिव्रतका अनुष्ठान चौदह वर्षोंतक करना चाहिये। त्रयोदशीको एक बार भोजनकर चतुर्दशीको उपवास करना चाहिये॥ ३॥

शिवरात्रिदिने प्राप्ते नित्यं संपाद्य वै विधिम्।
शिवालयं ततो गत्वा पूजां कृत्वा यथाविधि॥ ४
ततश्च कारयेद्दिव्यं मण्डलं तत्र यत्नतः।
गौरीतिलकनाम्ना वै प्रसिद्धं भुवनत्रये॥ ५

शिवरात्रिका दिन आनेपर नित्यक्रियाकर शिवालयमें जाकर विधिपूर्वक पूजन करनेके अनन्तर वहाँ प्रयत्नपूर्वक दिव्य मण्डलका निर्माण कराना चाहिये, जो लोकमें गौरीतिलकके नामसे प्रसिद्ध है॥ ४-५॥

तन्मध्ये लेखयेद्दिव्यं लिङ्गतोभद्रमण्डलम्।
अथवा सर्वतोभद्रं मण्डपान्तः प्रकल्पयेत्॥ ६
कुंभास्तत्र प्रकर्तव्याः प्राजापत्यविसंज्ञया।
सवस्त्राः सफलास्तत्र दक्षिणासहिताः शुभाः॥ ७
मण्डलस्य च पार्श्वे वै स्थापनीयाः प्रयत्नतः।
मध्ये चैकश्च संस्थाप्यः सौवर्णो वापरो घटः॥ ८

उसके बीचमें लिंगतोभद्रमण्डल बनाना चाहिये अथवा मण्डपके अन्दर सर्वतोभद्रमण्डलका निर्माण करना चाहिये। वहाँपर वस्त्र, फल एवं दक्षिणासहित प्राजापत्यसंज्ञक शुभ कलशोंको स्थापित करे और उन्हें मण्डलके पासमें प्रयत्नपूर्वक स्थापित करके उसके मध्यमें सुवर्णका एक अन्य घट भी स्थापित करे॥ ६—८॥

तत्रोमासहितां शंभुमूर्तिं निर्माय हाटकीम्।
पलेन वा तदर्धेन यथाशक्त्याथवा व्रती॥ ९

निधाय वामभागे तु शिवामूर्तिमतन्द्रितः।
मदीयां दक्षिणे भागे कृत्वा रात्रौ प्रपूजयेत्॥ १०

उसपर एक पल या आधे पलकी अथवा अपने सामर्थ्यके अनुसार पार्वतीसहित शिवकी सुवर्णमय मूर्ति बनाकर बड़ी सावधानीके साथ बायीं ओर पार्वतीकी प्रतिमा रखकर एवं दाहिनी ओर शिवकी प्रतिमा रखकर व्रती रात्रिमें पूजन करे॥ ९-१०॥

आचार्यं वरयेत्तत्र चर्त्विग्भिः सहितं शुचिम्।
अनुज्ञातश्च तैर्भक्त्या शिवपूजां समाचरेत्॥ ११

रात्रौ जागरणं कुर्यात्पूजां यामोद्भवां चरन्।
रात्रिमाक्रमयेत्सर्वां गीतनृत्यादिना व्रती॥ १२

पवित्र आचरण करनेवाले ऋत्विजोंसहित आचार्यका वरण करे और उनकी आज्ञा लेकर भक्तिपूर्वक शिवार्चन प्रारम्भ करे। व्रतीको चाहिये कि रात्रिमें जागरण करे और प्रत्येक प्रहरकी पूजा करते हुए गीत, नृत्य आदिके साथ सारी रात व्यतीत करे॥ ११-१२॥

एवं सम्पूज्य विधिवत्संतोष्य प्रातरेव च।
पुनः पूजां ततः कृत्वा होमं कुर्याद्यथाविधि॥ १३

यथाशक्ति विधानं च प्राजापत्यं समाचरेत्।
ब्राह्मणान्भोजयेत्प्रीत्या दद्याद्दानानि भक्तितः॥ १४

इस प्रकार विधिवत् पूजनकर शिवको सन्तुष्ट करके पुनः प्रातःकाल होनेपर पूजनकर यथाविधि हवन करे। यथाशक्ति प्राजापत्यव्रतका विधान करे, प्रेमपूर्वक ब्राह्मणोंको भोजन कराये और भक्तिपूर्वक दान दे॥ १३-१४॥

ऋत्विजश्च सपत्नीकान्वस्त्रालङ्कारभूषणैः।
अलङ्कृत्य विधानेन दद्याद्दानं पृथक्पृथक्॥ १५

गां सवत्सां विधानेन यथोपस्करसंयुताम्।
उक्त्वाचार्याय वै दद्याच्छिवो मे प्रीयतामिति॥ १६

उसके बाद सपत्नीक ऋत्विजोंको वस्त्र, अलंकार एवं आभूषणोंसे विधानपूर्वक अलंकृतकर अलग-अलग दान देना चाहिये। शिवजी मुझपर प्रसन्न हों—ऐसा कहकर आचार्यको विधानके अनुसार बछड़ेसहित सभी सामग्रियोंसे संयुक्त धेनु प्रदान करे॥ १५-१६॥

ततः सकुम्भां तन्मूर्तिं सवस्त्रां वृषभे स्थिताम्।
सर्वालंकारसहितामाचार्याय निवेदयेत्॥ १७

उसके अनन्तर कलश, वस्त्र तथा सभी आभूषणों-सहित वृषभपर स्थित उस मूर्तिको आचार्यको प्रदान करे॥ १७॥

ततः संप्रार्थयेद्देवं महेशानं महाप्रभुम्।
कृताञ्जलिर्नतस्कन्धः सुप्रीत्या गद्गदाक्षरः॥ १८

देवदेव महादेव शरणागतवत्सल।
व्रतेनानेन देवेश कृपां कुरु ममोपरि॥ १९

मया भक्त्यनुसारेण व्रतमेतत्कृतं शिव।
न्यूनं सम्पूर्णतां यातु प्रसादात्तव शङ्कर॥ २०

अज्ञानाद्यदि वा ज्ञानाज्जपपूजादिकं मया।
कृतं तदस्तु कृपया सफलं तव शङ्कर॥ २१

उसके बाद हाथ जोड़कर सिर झुकाकर अत्यन्त प्रेमपूर्वक गद्गद वाणीसे महाप्रभु महेश्वरसे प्रार्थना करे। हे देव! हे महादेव! हे शरणागतवत्सल! हे देवेश! इस व्रतसे [सन्तुष्ट हो] आप मेरे ऊपर कृपा करें। हे शिव! मैंने भक्तिके अनुसार यह व्रत किया है। हे शंकर! इसमें जो न्यूनता रह गयी हो, वह आपकी कृपासे सम्पूर्णताको प्राप्त हो। हे शंकर! मैंने ज्ञान अथवा अज्ञानसे जो कुछ जप-पूजन आदि किया है, वह आपकी कृपासे सफल हो॥ १८—२१॥

एवं पुष्पाञ्जलिं दत्त्वा शिवाय परमात्मने।
नमस्कारं ततः कुर्यात्प्रार्थनां पुनरेव च॥ २२

इस प्रकार परमात्मा शिवको पुष्पांजलि समर्पितकर नमस्कार करे एवं पुनः प्रार्थना करे॥ २२॥

एवं व्रतं कृतं येन न्यूनं तस्य न विद्यते।
मनोभीष्टां ततः सिद्धिं लभते नात्र संशयः ॥ २३

[हे ऋषियो!] इस प्रकार जिसने इस व्रतको किया है, उसे कोई कमी नहीं रहती है और वह मनोभिलषित सिद्धि प्राप्त करता है। इसमें संशय नहीं है ॥ २३ ॥

इति श्रीशिवमहापुराणे चतुर्थ्यां कोटिरुद्रसंहितायां शिवरात्रिव्रतोद्यापनं नामैकोनचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ३९ ॥

॥ इस प्रकार श्रीशिवमहापुराणके अन्तर्गत चतुर्थ कोटिरुद्रसंहितामें शिवरात्रिव्रतोद्यापन नामक उनतालीसवाँ अध्याय पूर्ण हुआ ॥ ३९ ॥

अथ चत्वारिंशोऽध्यायः

शिवरात्रिव्रतमाहात्म्यके प्रसंगमें व्याध एवं मृगपरिवारकी कथा तथा व्याधेश्वरलिंगका माहात्म्य

ऋषय ऊचुः

सूत ते वचनं श्रुत्वा परानन्दं वयं गताः।
विस्तरात्कथय प्रीत्या तदेव व्रतमुत्तमम्॥ १

कृतं पुरा च केनेह सूतैतद् व्रतमुत्तमम्।
कृत्वाप्यज्ञानतश्चैव प्राप्तं किं फलमुत्तमम्॥ २

सूत उवाच

श्रूयतामृषयः सर्वे कथयामि पुरातनम्।
इतिहासं निषादस्य सर्वपापप्रणाशनम्॥ ३

पुरा कश्चिद्वने भिल्लो नाम्ना ह्यासीद् गुरुद्रुहः।
कुटुम्बी बलवान्क्रूरः क्रूरकर्मपरायणः॥ ४

निरन्तरं वने गत्वा मृगान् हन्ति स्म नित्यशः।
चौर्यं च विविधं तत्र करोति स्म वने वसन्॥ ५

बाल्यादारभ्य तेनेह कृतं किंचिच्छुभं न हि।
महान्कालो व्यतीयाय वने तस्य दुरात्मनः॥ ६

कदाचिच्छिवरात्रिश्च प्राप्तासीत्तत्र शोभना।
न दुरात्मा स्म जानाति महद्वननिवासकृत्॥ ७

एतस्मिन् समये भिल्लो मात्रा पित्रा स्त्रिया तथा।
प्रार्थितश्च क्षुधाविष्टैर्भक्ष्यं देहि वनेचर॥ ८

इति संप्रार्थितः सोऽपि धनुरादाय सत्वरम्।
जगाम मृगहिंसार्थं बभ्राम सकलं वनम्॥ ९

दैवयोगात्तदा तेन न प्राप्तं किंचिदेव हि।
अस्तं प्राप्तस्तदा सूर्यः स वै दुःखमुपागतः॥ १०

ऋषिगण बोले—हे सूत! आपकी वाणीको सुनकर हमलोग अत्यन्त आनन्दित हुए। आप उसी उत्तम व्रतको प्रीतिसे विस्तारपूर्वक कहिये ॥ १ ॥

हे सूत! यहाँपर इस उत्तम व्रतको पहले किसने किया तथा अज्ञानतापूर्वक भी इस व्रतको करनेसे [उसको] कौन-सा उत्तम फल प्राप्त हुआ?॥ २॥

सूतजी बोले—हे ऋषिगणो! मैं [इस विषयमें] एक निषादका सर्वपापनाशक पुराना इतिहास कहता हूँ, आप सभी लोग सुनिये ॥ ३ ॥

पूर्व समयमें किसी वनमें गुरुद्रुह नामक कोई बलवान्, निर्दयी तथा क्रूरकर्ममें तत्पर भील कुटुम्बके साथ रहता था। वह सदैव वनमें जाकर प्रतिदिन पशुओंका वध करता था और वहीं वनमें निवास करते हुए अनेक प्रकारकी चोरी किया करता था ॥ ४-५ ॥

उसने बाल्यावस्थासे लेकर कभी कोई शुभ कर्म नहीं किया। इस प्रकार वनमें उस दुष्टात्माका बहुत समय बीत गया। किसी समय शिवरात्रिका उत्तम दिन आया, परंतु विशाल वनमें निवास करनेवाले उस दुष्टात्माको इसका कुछ भी ज्ञान न था ॥ ६-७ ॥

इसी समय भूखसे पीड़ित उसके माता-पिता तथा स्त्रीने उससे कहा—हे वनेचर! हमें भोजन दो ॥ ८ ॥

उनके ऐसा कहनेपर वह भील भी धनुष लेकर शीघ्र ही मृगोंको मारनेके लिये सारे वनमें घूमने लगा ॥ ९ ॥

दैवयोगसे उस समय उसे कुछ भी न मिला, तबतक सूर्यास्त हो गया, इससे वह बहुत दुखी हुआ ॥ १० ॥

किं कर्तव्यं क्व गंतव्यं न प्राप्तं मेऽद्य किंचन।
बालाश्च ये गृहे तेषां किं पित्रोश्च भविष्यति॥ ११

मदीयं वै कलत्रं च तस्याः किंचिद्भविष्यति।
किंचिद् गृहीत्वा हि मया गन्तव्यं नान्यथा भवेत्॥ १२

इत्थं विचार्य स व्याधो जलाशयसमीपगः।
जलावतरणं यत्र तत्र गत्वा स्वयं स्थितः॥ १३

अब क्या करूँ, कहाँ जाऊँ? आज मुझे कुछ भी नहीं मिला। घरमें जो बालक हैं, उनकी तथा माता-पिताकी क्या दशा होगी और जो मेरी स्त्री है, उसका क्या हाल होगा, अतः मुझे कुछ लेकर ही जाना चाहिये, बिना भोजन लिये घर जाना व्यर्थ होगा। ऐसा विचारकर वह व्याध किसी जलाशयके समीप गया और जहाँ जलमें उतरनेके लिये घाट था, वहाँ जाकर बैठ गया॥ ११—१३॥

अवश्यमत्र कश्चिद्वै जीवश्चैवागमिष्यति।
तं हत्वा स्वगृहं प्रीत्या यास्यामि कृतकार्यकः॥ १४

इस स्थानपर जल पीनेके लिये कोई जन्तु अवश्य ही आयेगा, तब उसे मारकर मैं अपना कार्य सिद्ध करके आनन्दपूर्वक अपने घर चला जाऊँगा॥ १४॥

इति मत्वा स वै वृक्षमेकं बिल्वेति संज्ञकम्।
समारुह्य स्थितस्तत्र जलमादाय भिल्लकः॥ १५

इस प्रकारका विचारकर वह भील जल लेकर पास ही स्थित किसी बिल्ववृक्षपर चढ़कर बैठ गया॥ १५॥

कदायास्यति कश्चिद्वै कदा हन्यामहं पुनः।
इति बुद्धिं समास्थाय स्थितोऽसौ क्षुत्तृषान्वितः॥ १६

कब कोई जीव आये और कब मैं उसे मारूँ—ऐसा मनमें विचार करता हुआ वह भूखा-प्यासा व्याध वहाँ बैठा रहा॥ १६॥

तद्रात्रौ प्रथमे यामे मृगी त्वेका समागता।
तृषार्ता चकिता सा च प्रोत्फालं कुर्वती तदा॥ १७

उस रातके प्रथम प्रहरमें प्याससे व्याकुल एक हरिनी चकित हो कूदती-फाँदती वहाँ आयी॥ १७॥

तां दृष्ट्वा च तदा तेन तद्वधार्थमथो शरः।
संहृष्टेन द्रुतं बाणं धनुषि स्वे हि संदधे॥ १८

तब उसे देखकर उसने प्रसन्न हो उसे मारनेके लिये शीघ्र ही अपने धनुषपर बाण चढ़ाया॥ १८॥

इत्येवं कुर्वतस्तस्य जलं बिल्वदलानि च।
पतितानि ह्यधस्तत्र शिवलिङ्गमभूत्ततः॥ १९
यामस्य प्रथमस्यैव पूजा जाता शिवस्य च।
तन्महिम्ना हि तस्यैव पातकं गलितं तदा॥ २०

उसके ऐसा करते ही जल तथा कुछ बिल्वपत्र नीचे गिर पड़े, जहाँपर एक शिवलिंग था। इस प्रकार प्रथम प्रहरकी शिव-पूजा व्याधके द्वारा सम्पन्न हो गयी, जिसकी महिमासे उसके पाप नष्ट हो गये॥ १९-२०॥

तत्रत्यं चैव तच्छब्दं श्रुत्वा सा हरिणी भिया।
व्याधं दृष्ट्वा व्याकुला हि वचनं चेदमब्रवीत्॥ २१

वहाँके उस शब्दको सुनकर भयसे व्याकुल हरिणी व्याधको देखकर यह वचन कहने लगी—॥ २१॥

मृग्युवाच

किं कर्तुमिच्छसि व्याध सत्यं वद ममाग्रतः।
तच्छ्रुत्वा हरिणीवाक्यं व्याधो वचनमब्रवीत्॥ २२

मृगी बोली—हे व्याध! तुम क्या करना चाहते हो, मेरे सामने सच-सच बताओ? तब हरिणीकी वह बात सुनकर व्याधने यह वचन कहा—॥ २२॥

व्याध उवाच

कुटुम्बं क्षुधितं मेऽद्य हत्वा त्वां तर्पयाम्यहम्।
दारुणं तद्वचः श्रुत्वा दृष्ट्वा तं दुर्धरं खलम्॥ २३

किं करोमि क्व गच्छामि ह्युपायं रचयाम्यहम्।
इत्थं विचार्य सा तत्र वचनं चेदमब्रवीत्॥ २४

व्याध बोला—आज मेरा सारा परिवार भूखा है, मैं तुम्हें मारकर उन्हें तृप्त करूँगा। तब उसके इस दारुण वचनको सुनकर एवं उस महादुष्टको देखकर 'मैं क्या करूँ? कहाँ जाऊँ, अच्छा! कोई उपाय करती हूँ'—ऐसा विचारकर वहाँपर उसने यह वचन कहा—॥ २३-२४॥

मृग्युवाच

मन्मांसेन सुखं ते स्याद्देहस्यानर्थकारिणः।
अधिकं किं महत्पुण्यं धन्याहं नात्र संशयः॥ २५

उपकारकरस्यैव यत्पुण्यं जायते त्विह।
तत्पुण्यं शक्यते नैव वक्तुं वर्षशतैरपि॥ २६

परं तु शिशवो मेऽद्य वर्तन्ते स्वाश्रमेऽखिलाः।
भगिन्यै तान्समर्प्यैव प्रायास्ये स्वामिनेऽथवा॥ २७

न मे मिथ्यावचस्त्वं हि विजानीहि वनेचर।
आयास्येऽहं पुनश्चेह समीपं ते न संशयः॥ २८

स्थिता सत्येन धरणी सत्येनैव च वारिधिः।
सत्येन जलधाराश्च सत्ये सर्वं प्रतिष्ठितम्॥ २९

सूत उवाच

इत्युक्तोऽपि तया व्याधो न मेने तद्वचो यदा।
तदा सुविस्मिता भीता वचनं साब्रवीत्पुनः॥ ३०

मृग्युवाच

शृणु व्याध प्रवक्ष्यामि शपथं हि करोम्यहम्।
आगच्छेयं यथा ते न समीपं स्वगृहाद्गता॥ ३१

ब्राह्मणो वेदविक्रेता सन्ध्याहीनस्त्रिकालकम्।
स्त्रियः स्वस्वामिनो ह्याज्ञां समुल्लंघ्य क्रियान्विताः॥ ३२

कृतघ्ने चैव यत्पापं यत्पापं विमुखे हरे।
द्रोहिणश्चैव यत्पापं यत्पापं धर्मलंघने॥ ३३

विश्वासघातके यच्च तथा वै छलकर्तरि।
तेन पापेन लिम्पामि यद्यहं नागमे पुनः॥ ३४

इत्याद्यनेकशपथान्मृगी कृत्वा स्थिता यदा।
तदा व्याधः स विश्वस्य गच्छेति गृहमब्रवीत्॥ ३५

मृगी हृष्टा जलं पीत्वा गता स्वाश्रममण्डलम्।
तावच्च प्रथमो यामस्तस्य निद्रां विना गतः॥ ३६

तदीया भगिनी या वै मृगी च परिभाविता।
तस्या मार्गं विचिन्वन्ती ह्याजगाम जलार्थिनी॥ ३७

मृगी बोली—[हे व्याध!] यदि मेरे अनर्थकारी देहके मांससे तुम्हें सुख प्राप्त हो जाय, तो इससे अधिक पुण्य और क्या हो सकता है, मैं निःसन्देह धन्य हो जाऊँगी, इसमें सन्देह नहीं है॥ २५॥

लोकमें उपकारी जीवको जो पुण्य होता है, उस पुण्यका वर्णन सैकड़ों वर्षोंमें भी नहीं किया जा सकता है। किंतु [तुमसे एक विनती करती हूँ कि] मेरे सभी बच्चे इस समय मेरे आश्रममें हैं, उन्हें अपनी बहन अथवा स्वामीको सौंपकर मैं पुनः आ जाऊँगी॥ २६-२७॥

हे वनेचर! तुम मेरी बातको झूठ मत जानो, मैं अवश्य यहाँ तुम्हारे पास पुनः आ जाऊँगी, इसमें सन्देह नहीं। सत्यसे ही यह पृथ्वी टिकी हुई है, सत्यसे ही समुद्र तथा सत्यसे जलकी धारा बहती है, सब कुछ सत्यमें ही प्रतिष्ठित है॥ २८-२९॥

सूतजी बोले—उसके इस प्रकार कहनेपर भी जब उस व्याधने उसकी बात नहीं मानी, उसका कहना नहीं माना तब विस्मित एवं भयभीत उस हरिणीने पुनः यह वचन कहा—॥ ३०॥

मृगी बोली—हे व्याध! मैं जो कहती हूँ, उसे सुनो, मैं शपथ लेकर कहती हूँ कि यदि मैं जा करके अपने घरसे तुम्हारे पास न लौटूँ, तो वेदविक्रयी एवं त्रिकाल सन्ध्योपासनहीन ब्राह्मणको तथा अपने स्वामीकी आज्ञाका उल्लंघन करके कर्ममें तत्पर रहनेवाली स्त्रियोंको जो पाप लगता है, कृतघ्नको जो पाप लगता है, शिवविमुखको जो पाप लगता है, परद्रोहीको जो पाप लगता है, धर्मका उल्लंघन करनेवालेको जो पाप लगता है। विश्वासघाती एवं छल करनेवालेको जो पाप लगता है, वह सब पाप मुझे लगे, यदि मैं तुम्हारे पास पुनः न लौटूँ॥ ३१—३४॥

इस प्रकार अनेक शपथ करके जब वह हरिणी वहीं खड़ी रही, तब उस भीलने विश्वास करके 'घर जाओ'—ऐसा कह दिया। तब हरिणी प्रसन्न होकर जल पी करके अपने स्थानको चली गयी। तबतक उसका प्रथम प्रहर बिना निद्राके बीत गया॥ ३५-३६॥

[इसी बीच] उसकी बहन जो दूसरी हरिणी थी, वह उत्कण्ठापूर्वक उसे खोजती हुई जल पीनेके लिये वहाँ आ गयी॥ ३७॥

तां दृष्ट्वा च स्वयं भिल्लोऽकार्षीद्बाणस्य कर्षणम्।
पूर्ववज्जलपत्राणि पतितानि शिवोपरि॥ ३८

यामस्य च द्वितीयस्य तेन शंभोर्महात्मनः।
पूजा जाता प्रसङ्गेन व्याधस्य सुखदायिनी॥ ३९

मृगी सा प्राह तं दृष्ट्वा किं करोषि वनेचर।
पूर्ववत् कथितं तेन तच्छ्रुत्वाह मृगी पुनः॥ ४०

मृग्युवाच

धन्याहं श्रूयतां व्याध सफलं देहधारणम्।
अनित्येन शरीरेण ह्युपकारो भविष्यति॥ ४१
परन्तु मम बालाश्च गृहे तिष्ठन्ति चार्भकाः।
भर्त्रे तांश्च समर्प्यैव ह्यागमिष्याम्यहं पुनः॥ ४२

व्याध उवाच

त्वया चोक्तं न मन्येऽहं हन्मि त्वां नात्र संशयः।
तच्छ्रुत्वा हरिणी प्राह शपथं कुर्वती हरेः॥ ४३

मृग्युवाच

शृणु व्याध प्रवक्ष्यामि नागच्छेयं पुनर्यदि।
वाचा विचलितो यस्तु सुकृतं तेन हारितम्॥ ४४

परिणीतां स्त्रियं हित्वा गच्छत्यन्यां च यः पुमान्।
वेदधर्मं समुल्लंघ्य कल्पितेन च यो व्रजेत्॥ ४५

विष्णुभक्तिसमायुक्तः शिवनिन्दां करोति यः।
पित्रोः क्षयाहमासाद्य शून्यं चैवाक्रमेदिह॥ ४६

कृत्वा च परितापं हि करोति वचनं पुनः।
तेन पापेन लिम्पामि नागच्छेयं पुनर्यदि॥ ४७

सूत उवाच

इत्युक्तश्च तया व्याधो गच्छेत्याह मृगीं च सः।
सा मृगी च जलं पीत्वा हृष्टागच्छत्स्वमाश्रमम्॥ ४८

तावद् द्वितीयो यामो वै तस्य निद्रां विना गतः।
एतस्मिन्समये तत्र प्राप्ते यामे तृतीयके॥ ४९

ज्ञात्वा विलंबं चकितस्तदन्वेषणतत्परः।
तद्यामे मृगमद्राक्षीज्जलमार्गगतं ततः॥ ५०

उसे देखकर भीलने बाणको [पुनः] खींचा, जिससे पहलेके समान ही जल तथा बिल्वपत्र शिवजीके ऊपर गिर पड़े। उसके कारण संयोगवश महात्मा सदाशिवकी दूसरे प्रहरकी भी पूजा हो गयी। जो व्याधके लिये सुखप्रद थी॥ ३८-३९॥

उस हरिणीने उसकी ओर देखकर कहा—'हे वनेचर! यह क्या कर रहे हो?' उसने पहलेकी भाँति [अपना प्रयोजन] कहा। यह सुनकर उस मृगीने पुनः कहा—॥ ४०॥

मृगी बोली—हे व्याध! सुनो, मैं धन्य हूँ। आज मेरा देह धारण करना सफल हुआ; क्योंकि इस अनित्य शरीरसे उपकार होगा, परंतु मेरे बच्चे घरपर हैं, उन्हें मैं अपने स्वामीको सौंपकर पुनः यहाँ आ जाऊँगी॥ ४१-४२॥

व्याध बोला—मैं तुम्हारी बात नहीं मानता, तुम्हें अवश्य मारूँगा, इसमें संशय नहीं है। यह सुनकर हरिणी विष्णुकी शपथ करती हुई कहने लगी॥ ४३॥

मृगी बोली—हे व्याध! मैं जो कहती हूँ, उसे सुनो, यदि मैं पुनः न आऊँ तो अपनी बातसे विचलित होनेवालेका जिस प्रकार सुकृत नष्ट हो जाता है अथवा जो मनुष्य अपनी विवाहिता स्त्रीको छोड़कर दूसरी स्त्रीसे समागम करता है, जो वेदधर्मका उल्लंघनकर मनमाने मार्गसे चलता है, विष्णुभक्त होकर जो शिवकी निन्दा करता है, माता-पिताके क्षयाहके आनेपर जो [बिना श्राद्धादि किये] उसे सूना ही बिता देता है, अपने दिये हुए वचनको जो सन्तापका अनुभव करते हुए पूरा करता है—इन्हें जो पाप लगता है, वह पाप मुझे लगे, यदि मैं न आऊँ॥ ४४—४७॥

सूतजी बोले—उसके ऐसा कहनेपर व्याधने मृगीसे कहा—जाओ। तब वह मृगी भी प्रसन्न हो जल पीकर अपने स्थानपर चली गयी॥ ४८॥

तबतक उस व्याधका दूसरा प्रहर भी बिना निद्राके बीत गया। इसी समय तीसरा प्रहर आनेपर मृगीके आनेमें विलम्ब जानकर वह चकित हो उसे ढूँढ़ने लगा। तब उस प्रहरमें उसे एक मृग जलमार्गकी ओर आता हुआ दिखायी पड़ा॥ ४९-५०॥

पुष्टं मृगं च तं दृष्ट्वा हृष्टो वनचरः स वै।
शरं धनुषि संधाय हन्तुं तं हि प्रचक्रमे॥ ५१

तदैवं कुर्वतस्तस्य बिल्वपत्राणि कानिचित्।
तत्प्रारब्धवशाद् द्विजाः पतितानि शिवोपरि॥ ५२

तेन तृतीययामस्य तद्रात्रौ तस्य भाग्यतः।
पूजा जाता शिवस्यैव कृपालुत्वं प्रदर्शितम्॥ ५३

श्रुत्वा तत्र च तं शब्दं किं करोषीति प्राह सः।
कुटुम्बार्थमहं हन्मि त्वां व्याधश्चेति सोऽब्रवीत्॥ ५४

तच्छ्रुत्वा व्याधवचनं हरिणो हृष्टमानसः।
द्रुतमेव च तं व्याधं वचनं चेदमब्रवीत्॥ ५५

हरिण उवाच

धन्योऽहं पुष्टिमानद्य भवत्तृप्तिर्भविष्यति।
यस्याङ्गं नोपकारार्थं तस्य सर्वं वृथा गतम्॥ ५६

यो वै सामर्थ्ययुक्तश्च नोपकारं करोति वै।
तत्सामर्थ्यं भवेद् व्यर्थं परत्र नरकं व्रजेत्॥ ५७

परन्तु बालकान् स्वांश्च समर्प्य जननीं शिशून्।
आश्वास्याप्यथ तान् सर्वानागमिष्याम्यहं पुनः॥ ५८

इत्युक्तस्तेन स व्याधो विस्मितोऽतीव चेतसि।
मनाक् शुद्धमना नष्टपापपुञ्जो वचोऽब्रवीत्॥ ५९

व्याध उवाच

ये ये समागताश्चात्र ते ते सर्वे त्वया यथा।
कथयित्वा गता ह्यत्र नायान्त्यद्यापि वञ्चकाः॥ ६०
त्वं चापि संकटे प्राप्तो व्यलीकं च गमिष्यसि।
मम सञ्जीवनं चाद्य भविष्यति कथं मृग॥ ६१

मृग उवाच

शृणु व्याध प्रवक्ष्यामि नानृतं विद्यते मयि।
सत्येन सर्वं ब्रह्माण्डं तिष्ठत्येव चराचरम्॥ ६२
यस्य वाणी व्यलीका हि तत्पुण्यं गलितं क्षणात्।
तथापि शृणु वै सत्यां प्रतिज्ञां मम भिल्लक॥ ६३
सन्ध्यायां मैथुने घस्त्रे शिवरात्र्यां च भोजने।

उस पुष्ट मृगको देखकर वह व्याध बहुत ही प्रसन्न हुआ और धनुषपर बाण चढ़ाकर उसे मारनेके लिये उद्यत हो गया। हे द्विजो! उस समय भी उस व्याधके ऐसा करते ही उसके प्रारब्धवश कुछ बिल्वपत्र शिवजीके ऊपर गिर पड़े॥ ५१-५२॥

इस प्रकार उस रात्रिमें उस भीलके भाग्यसे तीसरे प्रहरकी भी शिवपूजा हो गयी, इस तरहसे शिवजीने उसके ऊपर अपनी कृपालुता प्रकट की॥ ५३॥

वहाँ उस शब्दको सुनकर उस मृगने कहा—[हे वनेचर!] यह क्या कर रहे हो? तब वह व्याध बोला कि मैं अपने कुटुम्बके लिये तुम्हारा वध करूँगा॥ ५४॥

व्याधका यह वचन सुनकर मृग प्रसन्नचित्त हो गया और बड़ी शीघ्रतासे उस व्याधसे यह वचन कहने लगा—॥ ५५॥

हरिण बोला—मैं धन्य हूँ, जो इतना पुष्ट हूँ, जिससे तुम्हारी तृप्ति हो जायगी, जिसका शरीर उपकारके लिये प्रयुक्त न हो, उसका सब कुछ निष्फल हो जाता है। जो सामर्थ्ययुक्त रहता हुआ भी, उपकार नहीं करता, उसका सामर्थ्य निष्फल ही है और वह परलोकमें जानेपर नरक प्राप्त करता है, किंतु मैं अपने बच्चोंको उनकी माताको सौंपकर और उन सभीको धैर्य देकर पुनः आ जाऊँगा॥ ५६—५८॥

उसके ऐसा कहनेपर वह व्याध अपने मनमें बहुत ही विस्मित हुआ, थोड़ा शुद्ध मनवाले तथा नष्ट हुए पापसमूहवाले उस व्याधने यह वचन कहा—॥ ५९॥

व्याध बोला—जो-जो यहाँ आये, वे सभी तुम्हारे ही जैसा कहकर चले गये, किंतु वे वंचक अभीतक नहीं लौटे। हे मृग! तुम भी संकटमें प्राप्त होकर उसी प्रकार झूठ बोलकर चले जाओगे, आज इस प्रकार में जीवन-निर्वाह कैसे होगा?॥ ६०-६१॥

मृग बोला—हे व्याध! मैं जो कहता हूँ, उसे सुनो, मैं झूठ नहीं बोलता, यह सारा चराचर ब्रह्माण्ड सत्यसे ही प्रतिष्ठित है। जिसकी वाणी मिथ्या होती है, उसका पुण्य क्षणभरमें नष्ट हो जाता है। तथापि हे भील! तुम मेरी सत्य प्रतिज्ञाको सुनो। सन्ध्याकालमें मैथुन करनेसे, शिवरात्रिको भोजन करनेसे, झूठी गवाही देनेसे, धरोहरका हरण करनेसे, सन्ध्यारहित

कूटसाक्ष्ये न्यासहारे संध्याहीने द्विजे तथा॥ ६४

शिवहीनं मुखं यस्य नोपकर्ता क्षमोऽपि सन्।
पर्वणि श्रीफलस्यैव त्रोटनेऽभक्ष्यभक्षणे॥ ६५

असम्पूज्य शिवं भस्मरहितश्चान्नभुक् च यः।
एतेषां पातकं मे स्यान्नागच्छेयं पुनर्यदि॥ ६६

ब्राह्मणको, जिसके मुखसे 'शिव' नामका उच्चारण नहीं होता, समर्थ होते हुए भी जो उपकार नहीं करता, शिवपर्वके दिन बेलके तोड़नेसे, अभक्ष्य-भक्षणसे और बिना शिवपूजन किये एवं शरीरमें बिना भस्मका लेप किये, जो भोजन करता है—इन सभीको जो पाप लगता है, वह पाप मुझे लगे। यदि मैं पुनः लौटकर न आऊँ॥ ६२—६६॥

सूत उवाच

इति श्रुत्वा वचस्तस्य गच्छ शीघ्रं समाव्रज।
स व्याधेनैवमुक्तस्तु जलं पीत्वा गतो मृगः॥ ६७

सूतजी बोले—उसका यह वचन सुनकर व्याधने उससे कहा—जाओ, शीघ्र लौटकर आना। तब वह हरिण जल पीकर चला गया॥ ६७॥

ते सर्वे मिलितास्तत्र स्वाश्रमे कृतसुप्रणाः।
वृत्तान्तं चैव तं सर्वं श्रुत्वा सम्यक् परस्परम्॥ ६८

गन्तव्यं निश्चयेनेति सत्यपाशेन यन्त्रिताः।
आश्वास्य बालकांस्तत्र गन्तुमुत्कण्ठितास्तदा॥ ६९

इसके बाद भलीभाँति प्रतिज्ञा किये हुए वे सभी [मृग और मृगी] अपने आश्रममें जाकर परस्पर मिले और एक-दूसरेको सारा समाचार परस्पर निवेदन किया। इस प्रकार सारा वृत्तान्त सुनकर सभीने सत्यपाशमें नियन्त्रित होनेके कारण विचार किया कि हमें वहाँ निश्चितरूपसे जाना चाहिये और तब अपने बालकोंको धीरज देकर वे जानेको तैयार हो गये॥ ६८-६९॥

मृगी ज्येष्ठा च या तत्र स्वामिनं वाक्यमब्रवीत्।
त्वां विना बालका ह्यत्र कथं स्थास्यन्ति वै मृग॥ ७०

प्रथमं तु मया तत्र प्रतिज्ञा च कृता प्रभो।
तस्मान्मया च गन्तव्यं भवद्भ्यां स्थीयतामिह॥ ७१

उनमेंसे जो हरिणी सबसे बड़ी थी, उसने अपने स्वामीसे कहा—हे मृग! तुम्हारे बिना ये बालक किस प्रकार यहाँ निवास करेंगे? हे प्रभो! मैं [व्याधके पास जानेके लिये] पहले प्रतिज्ञा कर चुकी हूँ। अतः पहले वहाँ मुझे जाना चाहिये। आप दोनों यहीं रहें॥ ७०-७१॥

इति तद्वचनं श्रुत्वा कनिष्ठा वाक्यमब्रवीत्।
अहं त्वत्सेविका चाद्य गच्छामि स्थीयतां त्वया॥ ७२

तच्छ्रुत्वा च मृगः प्राह गम्यते तत्र वै मया।
भवत्यौ तिष्ठतां चात्र मातृतः शिशुरक्षणम्॥ ७३

उसकी यह बात सुनकर छोटी हरिणीने यह वचन कहा—मैं तुम्हारी सेविका हूँ, आज मैं जाती हूँ और तुम यहींपर रहो। यह सुनकर मृगने कहा—मैं ही वहाँ जा रहा हूँ, तुम दोनों यहीं रहो; क्योंकि माताके द्वारा ही बालकोंकी रक्षा होती है॥ ७२-७३॥

तत्स्वामिवचनं श्रुत्वा मेनाते तन्न धर्मतः।
प्रोचुः प्रीत्या स्वभर्तारं वैधव्ये जीवितं च धिक्॥ ७४

तब स्वामीकी बात सुनकर उन्होंने उसे धर्मके अनुकूल नहीं समझा। वे बड़े प्रेमसे अपने पतिसे कहने लगीं कि विधवा बनकर जीना धिक्कार है॥ ७४॥

बालानाश्वास्य तांस्तत्र समर्प्य सहवासिनः।
गतास्ते सर्व एवाशु यत्रास्ते व्याधसत्तमः॥ ७५

ते बाला अपि सर्वे वै विलोक्यानु समागताः।
एतेषां या गतिः स्याद्वै ह्यस्माकं सा भवत्विति॥ ७६

इसके बाद उन बालकोंको धैर्य देकर तथा उन्हें पड़ोसियोंको सौंपकर वे सभी शीघ्र वहाँ गये, जहाँ व्याधश्रेष्ठ स्थित था। तब वे सभी बच्चे भी यह सोचकर उनके पीछे-पीछे चल पड़े कि इनकी जो गति होगी, वही गति हमारी भी हो॥ ७५-७६॥

तान् दृष्ट्वा हर्षितो व्याधो बाणं धनुषि संदधे।
पुनश्च जलपत्राणि पतितानि शिवोपरि॥ ७७

तेन जाता चतुर्थस्य पूजा यामस्य वै शुभा।
तस्य पापं तदा सर्वं भस्मसादभवत् क्षणात्॥ ७८

मृगी मृगी मृगश्चोचुः शीघ्रं वै व्याधसत्तम।
अस्माकं सार्थकं देहं कुरु त्वं हि कृपां कुरु॥ ७९

इति तेषां वचः श्रुत्वा व्याधो विस्मयमागतः।
शिवपूजाप्रभावेण ज्ञानं दुर्लभमाप्तवान्॥ ८०

एते धन्या मृगाश्चैव ज्ञानहीनाः सुसम्मताः।
स्वीयेनैव शरीरेण परोपकरणे रताः॥ ८१

मानुष्यं जन्म संप्राप्य साधितं किं मयाधुना।
परकायं च संपीड्य शरीरं पोषितं मया॥ ८२

कुटुम्बं पोषितं नित्यं कृत्वा पापान्यनेकशः।
एवं पापानि हा कृत्वा का गतिर्मे भविष्यति॥ ८३

कां वा गतिं गमिष्यामि पातकं जन्मतः कृतम्।
इदानीं चिंतयाम्येवं धिग् धिक् च जीवनं मम॥ ८४

इति ज्ञानं समापन्नो बाणं संवारयंस्तदा।
गम्यतां च मृगश्रेष्ठा धन्याः स्थ इति चाब्रवीत्॥ ८५

इत्युक्ते च तदा तेन प्रसन्नः शंकरस्तदा।
पूजितं च स्वरूपं हि दर्शयामास सम्मतम्॥ ८६

संस्पृश्य कृपया शंभुस्तं व्याधं प्रीतितोऽब्रवीत्।
वरं ब्रूहि प्रसन्नोऽस्मि व्रतेनानेन भिल्लक॥ ८७

व्याधोऽपि शिवरूपं च दृष्ट्वा मुक्तोऽभवत्क्षणात्।
पपात शिवपादाग्रे सर्वं प्राप्तमिति ब्रुवन्॥ ८८

शिवोऽपि सुप्रसन्नात्मा नाम दत्वा गुहेति च।
विलोक्य तं कृपादृष्ट्या तस्मै दिव्यान्वरानदात्॥ ८९

उन्हें देखकर व्याध अत्यन्त हर्षित हो उठा और धनुषपर बाण चढ़ाने लगा। इतनेमें शिवजीके ऊपर पुनः जल और बिल्वपत्र गिर पड़े। उससे चतुर्थ प्रहरकी भी उत्तम पूजा सम्पन्न हो गयी, फिर तो क्षणभरमें ही उसका सारा पाप नष्ट हो गया। उस समय दोनों मृगियों एवं मृगने शीघ्रतापूर्वक कहा—हे व्याधश्रेष्ठ! अब तुम [हमलोगोंपर] कृपा करो और हमारे शरीरको सार्थक करो॥ ७७—७९॥

उनकी यह बात सुनकर भील आश्चर्यचकित हुआ। शिवजीकी पूजाके प्रभावसे उसे दुर्लभ ज्ञान प्राप्त हो गया॥ ८०॥

ज्ञानरहित ये मृग धन्य हैं, ये परम सम्माननीय हैं, जो अपने शरीरसे परोपकार करनेमें तत्पर हैं। मैंने इस समय मनुष्यजन्म पाकर भी क्या फल प्राप्त किया, मैंने दूसरोंके शरीरको पीड़ित करके अपने शरीरका पालन किया। हाय! मैंने नित्य अनेक पाप करके अपने कुटुम्बका पालन-पोषण किया। इस प्रकारके पाप करनेके कारण [अब आगे] मेरी क्या गति होगी, मैं किस गतिको प्राप्त होऊँगा? हाय! मैंने तो जन्मसे ही पाप किया है, मैं इस समय ऐसा सोच रहा हूँ, मेरे जीवनको धिक्कार है! धिक्कार है!!—इस प्रकारसे ज्ञानको प्राप्त हुआ वह व्याध अपने बाणको उतारते हुए कहने लगा कि हे श्रेष्ठ मृगो! तुमलोग धन्य हो, अब जाओ॥ ८१—८५॥

तब उसके इस प्रकार कहनेपर शंकरजीने प्रसन्न होकर अपने लोकपूजित उत्तम स्वरूपको उसे दिखाया॥ ८६॥

इसके बाद कृपापूर्वक उस व्याधको स्पर्शकर शिवजीने प्रसन्नतापूर्वक कहा—हे भील! मैं [तुम्हारे] इस व्रतसे प्रसन्न हूँ, वर माँगो॥ ८७॥

व्याध भी शिवजीके स्वरूपको देखकर क्षण-मात्रमें मुक्त हो गया और मैंने आज सब कुछ पा लिया—ऐसा कहता हुआ शिवके चरणोंके आगे गिर पड़ा॥ ८८॥

शिवजीने भी प्रसन्नचित्त होकर उसे 'गुह'—ऐसा नाम देकर उसकी ओर कृपादृष्टिसे देखकर उसे दिव्य वर दिये॥ ८९॥

शिव उवाच

शृणु व्याधाद्य भोगांस्त्वं भुङ्क्ष्व दिव्यान्यथेप्सितान्।
राजधानीं समाश्रित्य शृङ्गवेरपुरे पराम्॥ ९०
अनपाया वंशवृद्धिः श्लाघनीयः सुरैरपि।
गृहे रामस्तव व्याध समायास्यति निश्चितम्॥ ९१
करिष्यति त्वया मैत्रीं मद्भक्तस्नेहकारकः।
मत्सेवासक्तचेतास्त्वं मुक्तिं यास्यसि दुर्लभाम्॥ ९२

सूत उवाच

एतस्मिन्नन्तरे ते तु कृत्वा शंकरदर्शनम्।
सर्वे प्रणम्य सन्मुक्तिं मृगयोनेः प्रपेदिरे॥ ९३
विमानं च समारुह्य दिव्यदेहा गतास्तदा।
शिवदर्शनमात्रेण शापान्मुक्ता दिवं गताः॥ ९४
व्याधेश्वरः शिवो जातः पर्वते ह्यर्बुदाचले।
दर्शनात्पूजनात्सद्यो भुक्तिमुक्तिप्रदायकः॥ ९५
व्याधोऽपि तद्दिनान्नूनं भोगान्स भूसुरसत्तमाः।
भुक्त्वा रामकृपां प्राप्य शिवसायुज्यमाप्तवान्॥ ९६
अज्ञानात्स व्रतं चैतत् कृत्वा सायुज्यमाप्तवान्।
किं पुनर्भक्तिसंपन्ना यान्ति तन्मयतां शुभाम्॥ ९७
विचार्य सर्वशास्त्राणि धर्मांश्चैवाप्यनेकशः।
शिवरात्रिव्रतमिदं सर्वोत्कृष्टं प्रकीर्तितम्॥ ९८
व्रतानि विविधान्यत्र तीर्थानि विविधानि च।
दानानि च विचित्राणि मखाश्च विविधास्तथा॥ ९९
तपांसि विविधान्येव जपाश्चैवाप्यनेकशः।
नैतेन समतां यान्ति शिवरात्रिव्रतेन च॥ १००
तस्माच्छुभतरं चैतत्कर्तव्यं हितमीप्सुभिः।
शिवरात्रिव्रतं दिव्यं भुक्तिमुक्तिप्रदं सदा॥ १०१
एतत्सर्वं समाख्यातं शिवरात्रिव्रतं शुभम्।
व्रतराजेति विख्यातं किमन्यच्छ्रोतुमिच्छसि॥ १०२

शिवजी बोले—हे व्याध! सुनो, इस समय तुम शृंगवेरपुरमें [अपनी] श्रेष्ठ राजधानी बनाकर यथेष्ट दिव्य सुखोंका उपभोग करो॥ ९०॥

वहाँ अक्षयरूपसे तुम्हारे वंशकी वृद्धि होगी, हे व्याध! तुम देवताओंके लिये भी प्रशंसनीय रहोगे, तुम्हारे घर [साक्षात्] श्रीरामचन्द्रजी निश्चित रूपसे पधारेंगे। मेरे भक्तोंसे प्रेम करनेवाले वे तुमसे मित्रता करेंगे और मेरी सेवामें आसक्त चित्तवाले तुम दुर्लभ मोक्षको प्राप्त कर लोगे॥ ९१-९२॥

सूतजी बोले—इसी बीच वे सभी मृग भी शिवजीका दर्शनकर उन्हें प्रणाम करके मृगयोनिसे मुक्त हो गये। वे शिवके दर्शनमात्रसे शापमुक्त हो गये और दिव्य देह धारण करके विमानपर आरूढ़ होकर स्वर्गलोक चले गये॥ ९३-९४॥

तभीसे शिवजी अर्बुदाचल पर्वतपर व्याधेश्वर नामसे प्रसिद्ध हुए, जो दर्शन तथा पूजनसे शीघ्र भोग एवं मोक्ष प्रदान करनेवाले हैं॥ ९५॥

हे ब्राह्मणश्रेष्ठो! उस भीलने भी उस दिनसे सुखोंका उपभोग करनेके उपरान्त श्रीरामकी कृपा प्राप्तकर शिवसायुज्य प्राप्त कर लिया॥ ९६॥

अज्ञानवश इस व्रतको करके उसने सायुज्य मुक्तिको प्राप्त किया, तो फिर यदि भक्तिभावसे युक्त मनुष्य शुभ सायुज्य मुक्तिको प्राप्त करते हैं तो इसमें आश्चर्य ही क्या है?॥ ९७॥

मैंने समस्त शास्त्रों तथा अनेक धर्मोंका चिन्तन करके इस शिवरात्रिव्रतको सर्वोत्कृष्ट कहा है। अनेक प्रकारके व्रत, अनेक प्रकारके तीर्थ, अद्भुत दान, विविध यज्ञ, नाना प्रकारके तप एवं अनेक प्रकारके जप भी इस शिवरात्रिकी तुलना नहीं कर सकते। इसलिये अपना हित चाहनेवालोंको अत्यन्त शुभ, दिव्य भोग एवं मोक्ष देनेवाले इस शिवरात्रिव्रतको सदा करना चाहिये॥ ९८—१०१॥

इस प्रकार मैंने व्रतराज—इस नामसे विख्यात इस शुभ शिवरात्रिव्रतका सम्पूर्ण रूपसे वर्णन किया। अब आपलोग और क्या सुनना चाहते हैं?॥ १०२॥

इति श्रीशिवमहापुराणे चतुर्थ्यां कोटिरुद्रसंहितायां व्याधेश्वरमाहात्म्ये शिवरात्रिव्रतमाहात्म्यवर्णनं नाम चत्वारिंशोऽध्यायः॥ ४०॥

॥ इस प्रकार श्रीशिवमहापुराणके अन्तर्गत चतुर्थ कोटिरुद्रसंहितामें व्याधेश्वरमाहात्म्यमें शिवरात्रिव्रत-माहात्म्यवर्णन नामक चालीसवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ ४०॥

अथैकचत्वारिंशोऽध्यायः

ब्रह्म एवं मोक्षका निरूपण

ऋषय ऊचुः

मुक्तिर्नाम त्वया प्रोक्ता तस्यां किं नु भवेदिह।
अवस्था कीदृशी तत्र भवेदिति वदस्व नः॥ १

सूत उवाच

मुक्तिश्चतुर्विधा प्रोक्ता श्रूयतां कथयामि वः।
संसारक्लेशसंहर्त्री परमानन्ददायिनी॥ २

सारूप्या चैव सालोक्या सान्निध्या च तथा परा।
सायुज्या च चतुर्थी सा व्रतेनानेन या भवेत्॥ ३

मुक्तेर्दाता मुनिश्रेष्ठाः केवलं शिव उच्यते।
ब्रह्माद्या न हि ते ज्ञेयाः केवलं च त्रिवर्गदाः॥ ४

ब्रह्माद्यास्त्रिगुणाधीशाः शिवस्त्रिगुणतः परः।
निर्विकारी परब्रह्म तुर्यः प्रकृतितः परः॥ ५

ज्ञानरूपोऽव्ययः साक्षी ज्ञानगम्योऽद्वयः स्वयम्।
कैवल्यमुक्तिदः सोऽत्र त्रिवर्गस्य प्रदोऽपि हि॥ ६

कैवल्याख्या पञ्चमी च दुर्लभा सर्वथा नृणाम्।
तल्लक्षणं प्रवक्ष्यामि श्रूयतामृषिसत्तमाः॥ ७

उत्पद्यते यतः सर्वं येनैतत्पाल्यते जगत्।
यस्मिंश्च लीयते तद्धि येन सर्वमिदं ततम्॥ ८

तदेव शिवरूपं हि पठ्यते च मुनीश्वराः।
सकलं निष्कलं चेति द्विविधं वेदवर्णितम्॥ ९

विष्णुना तच्च न ज्ञातं ब्रह्मणा न च तत्तथा।
कुमाराद्यैश्च न ज्ञातं न ज्ञातं नारदेन वै॥ १०

शुकेन व्यासपुत्रेण व्यासेन च मुनीश्वरैः।
तत्पूर्वैश्चाखिलैर्देवैर्वेदैः शास्त्रैस्तथा न हि॥ ११

सत्यं ज्ञानमनन्तं च सच्चिदानन्दसंज्ञितम्।
निर्गुणो निरुपाधिश्चाव्ययः शुद्धो निरंजनः॥ १२

ऋषिगण बोले—[हे सूतजी!] आपने मुक्तिकी चर्चा की, उस मुक्तिमें क्या होता है और उसकी कैसी अवस्था होती है? हमलोगोंको यह बताइये॥ १॥

सूतजी बोले—सुनिये, मैं आपलोगोंको बता रहा हूँ। सांसारिक दुःखोंका नाश करनेवाली एवं परम आनन्द देनेवाली मुक्ति चार प्रकारकी कही गयी है। सारूप्य, सालोक्य, सान्निध्य एवं सायुज्य। इनमें जो चौथी सायुज्य मुक्ति होती है, वह इस [शिवरात्रि-] व्रतके करनेसे प्राप्त होती है॥ २-३॥

हे श्रेष्ठ मुनियो! मुक्ति प्रदान करनेवाले केवल शिवजी ही कहे जाते हैं। ब्रह्मा आदिको मुक्ति देनेवाला नहीं जानना चाहिये, वे केवल [धर्म, अर्थ और कामरूप] त्रिवर्गको देनेवाले हैं॥ ४॥

ब्रह्मा आदि त्रिगुणके अधीश्वर हैं और शिवजी त्रिगुणसे परे हैं। वे निर्विकार, परब्रह्म, तुरीय और प्रकृतिसे परे हैं॥ ५॥

वे ज्ञानरूप, अव्यय, साक्षी, ज्ञानगम्य, स्वयं अद्वय, कैवल्य मुक्तिके दाता एवं त्रिवर्गको भी देनेवाले हैं॥ ६॥

कैवल्य नामक पाँचवी मुक्ति मनुष्योंको सर्वथा दुर्लभ है। हे ऋषिगणो! मैं उसका लक्षण बताऊँगा, आपलोग सुनिये॥ ७॥

हे मुनीश्वरो! यह सारा जगत् जिससे उत्पन्न होता है, जिसके द्वारा पालित होता है और निश्चय ही वह जिसमें लीन होता है तथा जिससे यह सब कुछ व्याप्त है, वही शिवका स्वरूप कहा जाता है। [वही] सकल एवं निष्कल—दो रूपोंमें वेदोंमें वर्णित है॥ ८-९॥

विष्णु उस रूपको न जान सके, ब्रह्माजी भी उसे न जान सके, सनत्कुमार आदि न जान सके और नारद भी नहीं जान सके। व्यासपुत्र शुकदेव, व्यासजी, उनसे पहलेके सभी मुनीश्वर, सभी देवता, वेद तथा शास्त्र भी उसे नहीं जान पाये॥ १०-११॥

वह सत्य, ज्ञानरूप, अनन्त, सत्-चित्-आनन्दस्वरूप, निर्गुण, उपाधिरहित, अव्यय, शुद्ध एवं निरंजन है॥ १२॥

न रक्तो नैव पीतश्च न श्वेतो नील एव च।
न ह्रस्वो न च दीर्घश्च न स्थूलः सूक्ष्म एव च॥ १३

वह न रक्त है, न पीत, न श्वेत, न नील है, न ह्रस्व, न दीर्घ, न स्थूल एवं न तो सूक्ष्म ही है॥ १३॥

यतो वाचो निवर्तन्ते अप्राप्य मनसा सह।
तदेव परमं प्रोक्तं ब्रह्मैव शिवसंज्ञकम्॥ १४

मनसहित वाणी आदि इन्द्रियाँ जिसे बिना प्राप्त किये ही लौट आती हैं, वही परब्रह्म 'शिव' नामसे कहा गया है॥ १४॥

आकाशं व्यापकं यद्वत्तथैव व्यापकं त्विदम्।
मायातीतं परात्मानं द्वन्द्वातीतं विमत्सरम्॥ १५

जिस प्रकार आकाश व्यापक है, उसी प्रकार यह [शिवतत्त्व] भी व्यापक है, यह मायासे परे, परात्मा, द्वन्द्वरहित तथा मत्सरशून्य है॥ १५॥

तत्प्राप्तिश्च भवेदत्र शिवज्ञानोदयाद् ध्रुवम्।
भजनाद्वा शिवस्यैव सूक्ष्ममत्या सतां द्विजाः॥ १६

हे द्विजो! उसकी प्राप्ति शिवविषयक ज्ञानके उदयसे, शिवके भजनसे अथवा सज्जनोंके सूक्ष्म विचारसे होती है॥ १६॥

ज्ञानं तु दुष्करं लोके भजनं सुकरं मतम्।
तस्माच्छिवं च भजत मुक्त्यर्थमपि सत्तमाः॥ १७

शिवो हि भजनाधीनो ज्ञानात्मा मोक्षदः परः।
भक्त्यैव बहवः सिद्धा मुक्तिं प्रापुः परां मुदा॥ १८

इस लोकमें ज्ञानका उदय तो अत्यन्त दुष्कर है, किंतु भजन सरल कहा गया है। अतः हे द्विजो! मुक्तिके लिये शिवका भजन कीजिये। शिवजी भजनके अधीन हैं। वे ज्ञानात्मा हैं तथा मोक्ष देनेवाले हैं। बहुत-से सिद्धोंने भक्तिके द्वारा ही आनन्दपूर्वक परम मुक्ति प्राप्त की है॥ १७-१८॥

ज्ञानमाता शंभुभक्तिर्मुक्तिभुक्तिप्रदा सदा।
सुलभा यत्प्रसादाद्धि सत्प्रेमांकुरलक्षणा॥ १९

शिवकी भक्ति ज्ञानकी माता और भोग एवं मोक्षको देनेवाली है। प्रेमकी उत्पत्तिके लक्षणवाली वह भक्ति शिवके प्रसादसे ही सुलभ होती है॥ १९॥

सा भक्तिर्विविधा ज्ञेया सगुणा निर्गुणा द्विजाः।
वैधी स्वाभाविकी या या वरा सा सा स्मृता परा॥ २०

हे द्विजो! वह भक्ति सगुण एवं निर्गुणके भेदसे अनेक प्रकारकी कही गयी है। जैसे-जैसे वैधी और स्वाभाविकी भक्ति बढ़ती जाती है, वैसे-वैसे श्रेष्ठ होती जाती है॥ २०॥

नैष्ठिक्यनैष्ठिकीभेदाद् द्विविधैव हि कीर्तिता।
षड्विधा नैष्ठिकी ज्ञेया द्वितीयैकविधा स्मृता॥ २१

वह नैष्ठिकी तथा अनैष्ठिकीके भेदसे दो प्रकारकी कही गयी है। नैष्ठिकी भक्तिको छः प्रकारकी जानना चाहिये। दूसरी अनैष्ठिकी भक्ति एक प्रकारकी कही गयी है॥ २१॥

विहिताविहिताभेदात्तामनेकां विदुर्बुधाः।
तयोर्बहुविधत्वाच्च विस्तारो न हि वर्ण्यते॥ २२

इसी प्रकार पण्डितलोग उसे विहिता तथा अविहिताके भेदसे अनेक प्रकारवाली कहते हैं, उन दोनोंके अनेक प्रकार होनेके कारण यहाँ उसके विस्तारका वर्णन नहीं किया जा रहा है॥ २२॥

ते नवाङ्गे उभे ज्ञेये श्रवणादिकभेदतः।
सुदुष्करे तत्प्रसादं विना च सुकरे ततः॥ २३

उन दोनोंको श्रवणादि भेदसे नौ-नौ प्रकारकी जानना चाहिये। वे शिवकी कृपाके बिना अत्यन्त कठिन हैं, किंतु शिवकी प्रसन्नतासे अत्यन्त सरल हैं॥ २३॥

भक्तिज्ञाने न भिन्ने हि शंभुना वर्णिते द्विजाः।
तस्माद्भेदो न कर्तव्यः तत्कर्तुः सर्वदा सुखम्॥ २४

हे द्विजो! भक्ति एवं ज्ञान परस्पर भिन्न नहीं हैं, शिवजीने उनका वर्णन कर दिया है। इसलिये ज्ञानी और भक्तमें भेद नहीं समझना चाहिये, ज्ञान हो या भक्ति इनका पालन करनेवालेको सर्वदा सुखकी प्राप्ति होती है॥ २४॥

विज्ञानं न भवत्येव द्विजा भक्तिविरोधिनः।
शंभुभक्तिकरस्यैव भवेज्ज्ञानोदयो द्रुतम्॥ २५

हे द्विजो! भक्तिका विरोध करनेवालेको विज्ञान प्राप्त नहीं होता है, शिवकी भक्ति करनेवालेमें शीघ्र ही ज्ञानका उदय होता है॥ २५॥

तस्माद्भक्तिर्महेशस्य साधनीया मुनीश्वराः।
तयैव निखिलं सिद्धं भविष्यति न संशयः॥ २६

इसलिये हे मुनीश्वरो! शिवकी भक्ति [अवश्य] करनी चाहिये; उसीसे सब कुछ सिद्ध होगा, इसमें संशय नहीं है॥ २६॥

इति पृष्टं भवद्भिर्यत्तदेव कथितं मया।
यच्छ्रुत्वा सर्वपापेभ्यो मुच्यते नात्र संशयः॥ २७

आपलोगोंने मुझसे जो पूछा था, उसे मैंने कह दिया, जिसको सुनकर मनुष्य सभी पापोंसे छूट जाता है, इसमें सन्देह नहीं है॥ २७॥

इति श्रीशिवमहापुराणे चतुर्थ्यां कोटिरुद्रसंहितायां मुक्तिनिरूपणं नामैकचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४१ ॥

॥ इस प्रकार श्रीशिवमहापुराणके अन्तर्गत चतुर्थ कोटिरुद्रसंहितामें मुक्तिनिरूपण नामक इकतालीसवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ ४१ ॥

अथ द्विचत्वारिंशोऽध्यायः

भगवान् शिवके सगुण और निर्गुण स्वरूपका वर्णन

ऋषय ऊचुः

शिवः को वा हरिः को वा रुद्रः को वा विधिश्च कः।
एतेषु निर्गुणः को वा ह्येतं नश्छिन्धि संशयम्॥ १

ऋषिगण बोले—[हे सूतजी!] शिवजी कौन हैं, विष्णु कौन हैं, रुद्र कौन हैं तथा ब्रह्मा कौन हैं और इनमें निर्गुण कौन है? हमलोगोंके इस संशयको दूर कीजिये॥ १॥

सूत उवाच

यच्चादौ हि समुत्पन्नं निर्गुणात्परमात्मनः।
तदेव शिवसंज्ञं हि वेदवेदान्तिनो विदुः॥ २

सूतजी बोले—हे ऋषियो! [सृष्टिके] आदिमें निर्गुण परमात्मासे जो उत्पन्न हुआ, उसी [सगुणरूप]-को शिव कहा गया है—ऐसा वेद और वेदान्तके वेत्ता लोग कहते हैं॥ २॥

तस्मात्प्रकृतिरुत्पन्ना पुरुषेण समन्विता।
ताभ्यां तपः कृतं तत्र मूलस्थे च जले सुधीः॥ ३

पञ्चक्रोशीति विख्याता काशी सर्वातिवल्लभा।
व्याप्तं च सकलं ह्येतत्तज्जलं विश्वतो गतम्॥ ४

उसीसे पुरुषसहित प्रकृति उत्पन्न हुई। उन दोनोंने मूल स्थानमें स्थित जलमें तप किया। वही [तपःस्थली]-पंचक्रोशी काशी कही गयी है, वह शिवजीको अत्यन्त प्रिय है। उसीका जल फैलकर सारे संसारमें व्याप्त हो गया॥ ३-४॥

संभाव्य मायया युक्तस्तत्र सुप्तो हरिः स वै।
नारायणेति विख्यातो माया नारायणी मता॥ ५

[उसी जलका] आश्रय लेकर श्रीहरि [योग] मायाके साथ वहाँ सो गये। तब वे [नार अर्थात् जलको अयन (निवासस्थान) बनानेके कारण] 'नारायण' नामसे विख्यात हुए तथा माया नारायणी नामसे विख्यात हुई॥ ५॥

तन्नाभिकमले यो वै जातः स च पितामहः।
तेनैव तपसा दृष्टः स वै विष्णुरुदाहृतः॥ ६

उनके नाभिकमलसे जो उत्पन्न हुए, वे पितामह [ब्रह्मा कहलाये] थे। उन्होंने तपस्यासे जिन्हें देखा, वे विष्णु कहे गये॥ ६॥

उभयोर्वादशमने यद्रूपं दर्शितं बुधाः।
महादेवेति विख्यातं निर्गुणेन शिवेन हि॥ ७

तेन प्रोक्तमहं शम्भुर्भविष्यामि कभालतः।
रुद्रो नाम स विख्यातो लोकानुग्रहकारकः॥ ८

हे विद्वानो! [किसी समय] उन दोनोंके विवादको शान्त करनेके लिये निर्गुण शिवने जिस रूपका साक्षात्कार कराया, वह महादेव नामसे प्रसिद्ध हुआ। उन्होंने कहा कि मैं ब्रह्माके मस्तकसे शम्भुरूपमें प्रकट होऊँगा, लोकपर अनुग्रह करनेवाले वे ही रुद्र नामसे विख्यात हुए॥ ७-८॥

ध्यानार्थं चैव सर्वेषामरूपो रूपवानभूत्।
स एव च शिवः साक्षाद्भक्तवात्सल्यकारकः॥ ९

इस प्रकार भक्तोंके ऊपर वात्सल्यभाव प्रकट करनेवाले वे शिवजी ही सबके चिन्तनका विषय बननेके लिये रूपरहित होते हुए भी रूपवान् होकर साकार रुद्ररूपसे प्रकट हुए॥ ९॥

शिवे त्रिगुणसम्भिन्ने रुद्रे तु गुणधामनि।
वस्तुतो न हि भेदोऽस्ति स्वर्णे तद्भूषणे यथा॥ १०

पूर्णतः त्रिगुणरहित शिवमें एवं गुणोंके धाम रुद्रमें वस्तुतः कोई भेद नहीं है, जैसे सुवर्ण एवं उससे बने आभूषणमें कोई अन्तर नहीं होता है॥ १०॥

समानरूपकर्माणौ समभक्तगतिप्रदौ।
समानाखिलसंसेव्यौ नानालीलाविहारिणौ॥ ११

ये दोनों ही समान रूप तथा कर्मवाले, समान रूपसे भक्तोंको गति देनेवाले हैं, समान रूपसे सबके द्वारा सेवनीय और अनेक प्रकारकी लीलाएँ करनेवाले हैं॥ ११॥

सर्वथा शिवरूपो हि रुद्रो रौद्रपराक्रमः।
उत्पन्नो भक्तकार्यार्थं हरिब्रह्मसहायकृत्॥ १२

भयानक पराक्रमवाले रुद्र सभी प्रकारसे शिवरूप ही हैं। वे भक्तोंका कार्य करनेके लिये प्रकट होते हैं और ब्रह्मा तथा विष्णुकी सहायता करते हैं॥ १२॥

अन्ये च ये समुत्पन्ना यथानुक्रमतो लयम्।
यांति नैव तथा रुद्रः शिवे रुद्रो विलीयते॥ १३

अन्य जो लोग उत्पन्न हुए हैं, वे क्रमानुसार लयको प्राप्त होते हैं, किंतु रुद्र ऐसे नहीं हैं, रुद्र शिवमें ही विलीन होते हैं॥ १३॥

ते वै रुद्रं मिलित्वा तु प्रयान्ति प्रकृता इमे।
इमान् रुद्रो मिलित्वा तु न याति श्रुतिशासनम्॥ १४

सभी प्राकृत [देवता] क्रमशः मिलकर विलीन हो जाते हैं, किंतु रुद्र उन विष्णु आदिमें मिलकर विलीन नहीं होते—ऐसी वेदोंकी आज्ञा है॥ १४॥

सर्वे रुद्रं भजन्त्येव रुद्रः कञ्चिद्भजेन्न हि।
स्वात्मना भक्तवात्सल्याद्भजत्येव कदाचन॥ १५

सभी रुद्रका भजन करते हैं, किंतु रुद्र किसीका भजन नहीं करते, कभी-कभी भक्तवत्सलतावश वे अपने-आप अपने भक्तोंका भजन करते हैं॥ १५॥

अन्यं भजन्ति ये नित्यं तस्मिंस्ते लीनतां गताः।
तेनैव रुद्रं ते प्राप्ताः कालेन महता बुधाः॥ १६

रुद्रभक्तास्तु ये केचित्तत्क्षणं शिवतां गताः।
अन्यापेक्षा न वै तेषां श्रुतिरेषा सनातनी॥ १७

हे विद्वानो! जो लोग नित्य अन्य देवताका भजन करते हैं, वे उसीमें लीन होकर बहुत समयके बाद उसीसे रुद्रको प्राप्त होते हैं। जो कोई भी रुद्रभक्त हैं, वे उसी क्षण शिवत्वको प्राप्त हो जाते हैं; क्योंकि उन्हें अन्य देवताकी अपेक्षा नहीं होती—यह सनातनी श्रुति है॥ १६-१७॥

अज्ञानं विविधं ह्येतद्विज्ञानं विविधं न हि।
तत्प्रकारमहं वक्ष्ये शृणुतादरतो द्विजाः ॥ १८

हे द्विजो! अज्ञान तो अनेक प्रकारका होता है, किंतु यह विज्ञान अनेक प्रकारका नहीं होता, मैं उस [विज्ञान]-को समझनेकी रीति कहता हूँ, आपलोग आदरपूर्वक सुनिये ॥ १८ ॥

ब्रह्मादितृणपर्यन्तं यत्किञ्चिद् दृश्यते त्विह।
तत्सर्वं शिव एवास्ति मिथ्या नानात्वकल्पना ॥ १९

इस लोकमें ब्रह्मासे लेकर तृणपर्यन्त जो कुछ दिखायी देता है, वह सब शिव ही है, अनेकताकी कल्पना मिथ्या है ॥ १९ ॥

सृष्टेः पूर्वं शिवः प्रोक्तः सृष्टेर्मध्ये शिवस्तथा।
सृष्टेरन्ते शिवः प्रोक्तः सर्वशून्ये सदाशिवः ॥ २०

तस्माच्चतुर्गुणः प्रोक्तः शिव एव मुनीश्वराः।
स एव सगुणो ज्ञेयः शक्तिमत्त्वाद् द्विधापि सः ॥ २१

सृष्टिके आदिमें शिव कहे गये हैं, सृष्टिके मध्यमें शिव कहे गये हैं, सृष्टिके अन्तमें शिव कहे गये हैं और सर्वशून्य होनेपर भी सदाशिव विद्यमान रहते हैं। इसलिये हे मुनीश्वरो! शिव चार गुणोंवाले कहे गये हैं। उन्हीं सगुण शिवको शक्तिसे युक्त होनेके कारण दो प्रकारका भी समझना चाहिये ॥ २०-२१ ॥

येनैव विष्णवे दत्ताः सर्वे वेदाः सनातनाः।
वर्णा मात्रा ह्यनेकाश्च ध्यानं स्वस्य च पूजनम् ॥ २२

ईशानः सर्वविद्यानां श्रुतिरेषा सनातनी।
वेदकर्त्ता वेदपतिस्तस्माच्छंभुरुदाहृतः ॥ २३

जिसने विष्णुको सनातन वेदोंका उपदेश किया, अनेक वर्ण, अनेक मात्रा, ध्यान तथा अपनी पूजाका रहस्य बताया, वे शिव सम्पूर्ण विद्याओंके अधिपति हैं—यह सनातनी श्रुति है, इसीलिये उन शिवको वेदोंको प्रकट करनेवाला तथा वेदपति कहा गया है ॥ २२-२३ ॥

स एव शंकरः साक्षात्सर्वानुग्रहकारकः।
कर्ता भर्ता च हर्ता च साक्षी निर्गुण एव सः ॥ २४

वही शिव सबपर साक्षात् अनुग्रह करनेवाले हैं। वे ही कर्ता, भर्ता, हर्ता, साक्षी तथा निर्गुण हैं ॥ २४ ॥

अन्येषां कालमानं च कालस्य कलना न हि।
महाकालः स्वयं साक्षान्महाकालीसमाश्रितः ॥ २५

सभीके जीवनके कालका प्रमाण है, किंतु उन काल [-रूप शिव]-का प्रमाण नहीं है। वे स्वयं महाकाल हैं और महाकालीके भी आश्रय हैं ॥ २५ ॥

तथा च ब्राह्मणा रुद्रं तथा कालीं प्रचक्षते।
सर्वं ताभ्यां ततः प्राप्तमिच्छया सत्यलीलया ॥ २६

ब्राह्मणलोग रुद्र तथा कालीको सबका कारण बताते हैं। उन दोनोंके द्वारा सत्यलीलायुक्त इच्छासे सब कुछ व्याप्त हुआ है ॥ २६ ॥

न तस्योत्पादकः कश्चिद्भर्ता हर्ता न तस्य हि।
स्वयं सर्वस्य हेतुस्ते कार्यभूताच्युतादयः ॥ २७

उन [शिव]-को उत्पन्न करनेवाला कोई नहीं है और उनका पालन करनेवाला तथा विनाश करनेवाला भी कोई नहीं है, स्वयं वे सबके कारण हैं, वे विष्णु आदि सभी देवता उनके कार्यरूप हैं ॥ २७ ॥

स्वयं च कारणं कार्यं स्वस्य नैव कदाचन।
एकोऽप्यनेकतां यातोऽप्यनेकोऽप्येकतां व्रजेत् ॥ २८

वे शिवजी स्वयं ही कारण और कार्यरूप हैं, किंतु उनका कारण कोई नहीं है। वे एक होकर भी अनेक हैं और अनेक होकर भी एकताको प्राप्त होते हैं ॥ २८ ॥

एकं बीजं बहिर्भूत्वा पुनर्बीजं च जायते।
बहुत्वे च स्वयं सर्वं शिवरूपी महेश्वरः ॥ २९

जिस प्रकार एक ही बीज बाहर अंकुरित होकर बहुत बीजोंके रूपमें प्रकट होता है, उसी प्रकार बहुत होनेपर भी वस्तुरूपसे स्वयं शिवरूपी महेश्वर एक ही हैं ॥ २९ ॥

एतत्परं शिवज्ञानं तत्त्वतस्तदुदाहृतम्।
जानाति ज्ञानवानेव नान्यः कश्चिदृषीश्वराः॥ ३०

हे मुनीश्वरो! यह उत्तम शिवविषयक ज्ञान यथार्थ रूपसे [मेरे द्वारा] कह दिया गया, इसे ज्ञानवान् पुरुष ही जानता है और कोई नहीं॥ ३०॥

मुनय ऊचुः

ज्ञानं सलक्षणं ब्रूहि यज्ज्ञात्वा शिवतां व्रजेत्।
कथं शिवश्च तत्सर्वं सर्वं वा शिव एव च॥ ३१

मुनिगण बोले—[हे सूतजी!] आप लक्षण-सहित ज्ञानका वर्णन कीजिये, जिसे जानकर मनुष्य शिवत्वको प्राप्त होते हैं। वे शिव सर्वमय कैसे हैं और सब कुछ शिवमय कैसे है?॥ ३१॥

व्यास उवाच

एतदाकर्ण्य वचनं सूतः पौराणिकोत्तमः।
स्मृत्वा शिवपदाम्भोजं मुनींस्तानब्रवीद्वचः॥ ३२

व्यासजी बोले—यह वचन सुनकर पौराणिकोत्तम सूतजीने शिवजीके चरणकमलोंका ध्यान करके उन मुनियोंसे यह वचन कहा—॥ ३२॥

इति श्रीशिवमहापुराणे चतुर्थ्यां कोटिरुद्रसंहितायां सगुणनिर्गुणभेदवर्णनं नाम द्विचत्वारिंशोऽध्यायः॥ ४२॥

॥ इस प्रकार श्रीशिवमहापुराणके अन्तर्गत चतुर्थ कोटिरुद्रसंहितामें सगुणनिर्गुणभेदवर्णन नामक बयालीसवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ ४२॥

अथ त्रिचत्वारिंशोऽध्यायः

ज्ञानका निरूपण तथा शिवपुराणकी कोटिरुद्रसंहिताके श्रवणादिका माहात्म्य

सूत उवाच

श्रूयतामृषयः सर्वे शिवज्ञानं यथा श्रुतम्।
कथयामि महागुह्यं परमुक्तिस्वरूपकम्॥ १

सूतजी बोले—हे ऋषियो! अत्यन्त गोपनीय तथा परममुक्तिस्वरूप शिवज्ञानको जैसा मैंने सुना है, वैसा ही कहता हूँ, आप सभी लोग सुनिये॥ १॥

कनारदकुमाराणां व्यासस्य कपिलस्य च।
एतेषां च समाजे तैर्निश्चित्य समुदाहृतम्॥ २

ब्रह्मा, नारद, सनत्कुमार, व्यास एवं कपिल—सभीके समाजमें इन्हीं [महर्षियोंने शिवज्ञानका स्वरूप] निश्चय करके कहा है॥ २॥

इति ज्ञानं सदा ज्ञेयं सर्वं शिवमयं जगत्।
शिवः सर्वमयो ज्ञेयः सर्वज्ञेन विपश्चिता॥ ३

यह सारा जगत् शिवमय है, ऐसा ज्ञान निरन्तर अनुशीलन करनेयोग्य है। इस प्रकार सर्वज्ञ विद्वान्को [निश्चितरूपसे] शिवको सर्वमय जानना चाहिये॥ ३॥

आब्रह्मतृणपर्यन्तं यत्किञ्चिद् दृश्यते जगत्।
तत्सर्वं शिव एवास्ति स देवः शिव उच्यते॥ ४

ब्रह्मासे लेकर तृणपर्यन्त जो कुछ संसार दीख रहा है, वह सब शिव ही है, वे देव शिव [सर्वमय] कहे जाते हैं॥ ४॥

यदेच्छा तस्य जायेत तदा च क्रियते त्विदम्।
सर्वं स एव जानाति तं न जानाति कश्चन॥ ५

जिस समय उनकी इच्छा होती है, तभी वे इस संसारकी सृष्टि करते हैं। वे सबको जानते हैं, किंतु उन्हें कोई नहीं जानता॥ ५॥

रचयित्वा स्वयं तच्च प्रविश्य दूरतः स्थितः।
न तत्र न प्रविष्टोऽसौ निर्लिप्तश्चित्स्वरूपवान्॥ ६

वे इस जगत्का निर्माणकर उसमें प्रविष्ट होकर भी [जगत्से] दूर ही रहते हैं। वे न तो वहाँ हैं और न उसमें प्रविष्ट हैं, [क्योंकि] वे निर्लिप्त तथा चित्स्वरूपवाले हैं॥ ६॥

यथा च ज्योतिषश्चैव जलादौ प्रतिबिंबता।
वस्तुतो न प्रवेशो वै तथैव च शिवः स्वयम्॥ ७

वस्तुतस्तु स्वयं सर्वं क्रमो हि भासते शुभः।
अज्ञानं च मतेर्भेदो नास्त्यन्यच्च द्वयं पुनः॥ ८

दर्शनेषु च सर्वेषु मतिभेदः प्रदर्श्यते।
परं वेदान्तिनो नित्यमद्वैतं प्रतिचक्षते॥ ९

जिस प्रकार जल आदिमें प्रकाशका प्रतिबिम्ब दिखायी देता है, किंतु यथार्थ रूपसे उसका प्रवेश नहीं होता है, उसी प्रकार स्वयं शिव भी [जगत्में भासमान होते हुए भी स्वस्वरूपमें स्थित रहते] हैं। वस्तुरूपसे स्वयं वे ही सर्वमय हैं और सर्वत्र उन्हींका शुभ क्रम अर्थात् अनुप्रवेश भासित होता है। बुद्धिका भेद भ्रम ही अज्ञान है, शिवके अतिरिक्त और कोई द्वितीय वस्तु नहीं है। सम्पूर्ण दर्शनोंमें बुद्धिका भेद ही दिखायी पड़ता है, किंतु वेदान्ती लोग नित्य अद्वैततत्त्वका ही प्रतिपादन करते हैं॥ ७—९॥

स्वस्याप्यंशस्य जीवोंऽशो ह्यविद्यामोहितोऽवशः।
अन्योऽहमिति जानाति तया मुक्तो भवेच्छिवः॥ १०

स्वयं आत्मरूप शिवका अंशभूत यह जीवात्मा अविद्यासे मोहित होकर परतन्त्र-सा हो गया है और मैं दूसरा हूँ—ऐसा समझता है, किंतु उस अविद्यासे मुक्त हो जानेपर वह [साक्षात्] शिव हो जाता है॥ १०॥

सर्वं व्याप्य शिवःसाक्षाद् व्यापकः सर्वजन्तुषु।
चेतनाचेतनेशोऽपि सर्वत्र शंकरः स्वयम्॥ ११

सभीको व्याप्त करके वे शिवजी सभी जन्तुओंमें व्यापक रूपसे स्थित हैं, जड़-चेतनके ईश्वर वे शिव स्वयं सर्वत्र विद्यमान हैं॥ ११॥

उपायं यः करोत्यस्य दर्शनार्थं विचक्षणः।
वेदान्तमार्गमाश्रित्य तद्दर्शनफलं लभेत्॥ १२

जो विद्वान् वेदान्तमार्गका आश्रय लेकर इनके दर्शनके लिये उपाय करता है, वह [अवश्य ही] उनका दर्शनरूप फल प्राप्त करता है॥ १२॥

यथाग्निर्व्यापकश्चैव काष्ठे काष्ठे च तिष्ठति।
यो वै मन्थति तत्काष्ठं स वै पश्यत्यसंशयम्॥ १३

जिस प्रकार अग्नि व्यापक होकर प्रत्येक काष्ठमें [अलक्षितरूपसे] स्थित है, किंतु जो उस काष्ठका मन्थन करता है, उसे ही निःसन्देह अग्निका दर्शन प्राप्त होता है॥ १३॥

भक्त्यादिसाधनानीह यः करोति विचक्षणः।
स वै पश्यत्यवश्यं हि तं शिवं नात्र संशयः॥ १४

जो विद्वान् भक्ति आदि साधनोंका अनुष्ठान इस लोकमें करता है, वह अवश्य ही उन शिवका दर्शन प्राप्त करता है, इसमें संशय नहीं है॥ १४॥

शिवः शिवः शिवश्चैव नान्यदस्तीति किञ्चन।
भ्रान्त्या नानास्वरूपो हि भासते शङ्करः सदा॥ १५

सर्वत्र शिव ही हैं, शिव ही हैं, शिव ही हैं, अन्य कुछ भी नहीं है, भ्रमके कारण ही वे शंकर [अज्ञानी जीवोंको] अनेक स्वरूपोंमें निरन्तर भासते रहते हैं॥ १५॥

यथा समुद्रो मृच्चैव सुवर्णमथवा पुनः।
उपाधितो हि नानात्वं लभते शंकरस्तथा॥ १६

जिस प्रकार समुद्र, मिट्टी एवं सुवर्ण उपाधिभेदसे [एक होकर भी] अनेकत्वको प्राप्त होते हैं, उसी प्रकार शिव भी उपाधियोंके भेदसे अनेक रूपोंमें भासते हैं॥ १६॥

कार्यकारणयोर्भेदो वस्तुतो न प्रवर्तते।
केवलं भ्रान्तिबुद्ध्यैव तदभावे स नश्यति॥ १७

वास्तवमें कार्य-कारणमें [कुछ भी] भेद नहीं है, केवल बुद्धिकी भ्रान्तिसे अन्तर दिखायी पड़ता है और उसके न रहनेपर वह भेद दूर हो जाता है॥ १७॥

यदा बीजात्प्ररोहश्च नानात्वं हि प्रकाशयेत्।
अन्ते च बीजमेव स्यात्तत्प्ररोहश्च नश्यति॥ १८

बीजसे प्ररोह अनेक प्रकारका दिखायी देता है, किंतु अन्तमें बीज ही शेष रहता है और प्ररोह नष्ट हो जाता है॥ १८॥

ज्ञानी च बीजमेव स्यात्प्ररोहो विकृतिर्मता।
तन्निवृत्तौ पुनर्ज्ञानी नात्र कार्या विचारणा॥ १९

ज्ञानी बीजस्वरूप है और प्ररोह (अंकुर)-को विकार माना गया है। उस विकाररूपी अंकुरके नष्ट हो जानेपर ज्ञानीरूपी बीज शेष रहता है, इसमें सन्देह नहीं करना चाहिये॥ १९॥

सर्वं शिवः शिवः सर्वो नास्ति भेदश्च कश्चन।
कथं च विविधं पश्यत्येकत्वं च कथं पुनः॥ २०

यथैकं चैव सूर्याख्यं ज्योतिर्नानाविधं जनैः।
जलादौ च विशेषेण दृश्यते तत्तथैव सः॥ २१

सब कुछ शिव है तथा शिव ही सब कुछ हैं। इन दोनोंमें कुछ भी भेद नहीं है, फिर क्यों अनेकता देखी जाय या एकता देखी जाय? जिस प्रकार लोग एक ही सूर्य नामक ज्योतिको जल आदिमें अनेक रूपमें देखते हैं, उसी प्रकार एक ही शिव अनेक रूपमें भासते हैं॥ २०-२१॥

सर्वत्र व्यापकश्चैव स्पर्शत्वं न विबध्यते।
तथैव व्यापको देवो बध्यते न क्वचित्स वै॥ २२

जिस प्रकार आकाश सर्वत्र व्यापक होकर भी स्पर्शसे बद्ध नहीं होता, उसी प्रकार सर्वव्यापक वह परमात्मा कहीं भी बद्ध नहीं होता है॥ २२॥

साहंकारस्तथा जीवस्तन्मुक्तः शंकरः स्वयम्।
जीवस्तुच्छः कर्मभोगी निर्लिप्तः शंकरो महान्॥ २३

[आत्मतत्त्व] जबतक अहंकारसे युक्त है, तबतक ही वह जीव है और उससे मुक्त हो जानेपर वह स्वयं शिव है। जीव कर्मभोगी होनेके कारण तुच्छ है और उससे निर्लिप्त होनेसे शिव महान् हैं॥ २३॥

यथैकं च सुवर्णादि मिलितं रजतादिना।
अल्पमूल्यं प्रजायेत तथा जीवोऽप्यहंयुतः॥ २४

जैसे चाँदी आदिसे मिश्रित होनेपर सुवर्ण अल्प मूल्यवाला हो जाता है, वैसे ही जीव अहंकारयुक्त होनेपर महत्त्वहीन हो जाता है॥ २४॥

यथैव हि सुवर्णादि क्षारादेः शोधितं शुभम्।
पूर्ववन्मूल्यतां याति तथा जीवोऽपि संस्कृतेः॥ २५

प्रथमं सद्गुरुं प्राप्य भक्तिभावसमन्वितः।
शिवबुद्ध्या करोत्युच्चैः पूजनं स्मरणादिकम्॥ २६

जैसे सुवर्ण आदि क्षार आदिसे शोधित होकर शुद्ध हो जानेपर पहलेके समान मूल्य प्राप्त कर लेता है, उसी प्रकार जीव भी संस्कारसे शुद्ध हो [साक्षात् शिव ही] हो जाता है। पहले श्रेष्ठ गुरुको प्राप्तकर भक्तिभावसे युक्त होकर शिवबुद्धिसे उनका भलीभाँति पूजन-स्मरण आदि करे॥ २५-२६॥

तद्बुध्या देहतो याति सर्वपापादिको मलः।
तदाज्ञानं च नश्येत ज्ञानवाञ्जायते यदा॥ २७

तदाहंकारनिर्मुक्तो जीवो निर्मलबुद्धिमान्।

उनमें इस प्रकारकी बुद्धि (शिवबुद्धि) रखनेसे देहसे सम्पूर्ण पाप आदि दोष दूर हो जाते हैं, इस प्रकार जब वह ज्ञानवान् हो जाता है, तब उस जीवका [द्वैतभावरूप] अज्ञान विनष्ट हो जाता है। वह

शङ्करस्य प्रसादेन याति शङ्करतां पुनः ॥ २८

अहंकारमुक्त होकर निर्मल बुद्धिसे युक्त हो जाता है एवं शिवजीकी कृपासे शिवत्व प्राप्त कर लेता है॥ २७-२८ ॥

यथादर्शस्वरूपे च स्वीयरूपं प्रदृश्यते।
तथा सर्वत्रगं शम्भुं पश्यतीति सुनिश्चितम्॥ २९

जिस प्रकार शुद्ध दर्पणमें अपना रूप दिखायी देता है, उसी प्रकार जीवको भी सभी जगह शिवका साक्षात्कार होने लगता है—यह निश्चित है॥ २९॥

जीवन्मुक्तः स एवासौ देहः शीर्णः शिवे मिलेत्।
प्रारब्धवशगो देहस्तद्भिन्नो ज्ञानवान् मतः॥ ३०

वह जीव शिवसाक्षात्कार होनेपर जीवन्मुक्त हो जाता है। शरीरके शीर्ण हो जानेपर वह शिवमें मिल जाता है। शरीर प्रारब्धके अधीन है, जो देहाभिमानशून्य है, वही ज्ञानी कहा गया है॥ ३०॥

शुभं लब्ध्वा न हृष्येत कुप्येल्लब्ध्वाशुभं न हि।
द्वंद्वेषु समता यस्य ज्ञानवानुच्यते हि सः॥ ३१

शुभ वस्तुको प्राप्तकर जो हर्षित नहीं होता और अशुभको प्राप्तकर क्रोध नही करता और द्वन्द्वोंमें समान रहता है, वह ज्ञानवान् कहा जाता है॥ ३१॥

आत्मयोगेन तत्त्वानामथवा च विवेकतः।
यथा शरीरतो यायाच्छरीरं मुक्तिमिच्छता॥ ३२

सदाशिवे विलीयेत मुक्तो विरहमेव च।
ज्ञानमूलं तथाध्यात्म्यं तस्य भक्तिः शिवस्य च॥ ३३

आत्मचिन्तनसे तथा तत्त्वोंके विवेकसे ऐसा प्रयत्न करे कि शरीरसे अपनी पृथक्ताका बोध हो जाय। मुक्तिकी इच्छा रखनेवाला पुरुष शरीर एवं उसके अभिमानको त्यागकर अहंकारशून्य एवं मुक्त हो सदाशिवमें विलीन हो जाता है। अध्यात्मचिन्तन एवं उन शिवजीकी भक्ति—ये ज्ञानके मूल कारण हैं॥ ३२-३३॥

भक्तेश्च प्रेम संप्रोक्तं प्रेम्णश्च श्रवणं तथा।
श्रवणाच्चापि सत्सङ्गः सत्सङ्गाच्च गुरुर्बुधः॥ ३४

सम्पन्ने च तथा ज्ञाने मुक्तो भवति निश्चितम्।
इति चेज्ज्ञानवान्यो वै शंभुमेव सदा भजेत्॥ ३५

अनन्यया च भक्त्या वै युक्तः शम्भुं भजेत्पुनः।
अन्ते च मुक्तिमायाति नात्र कार्या विचारणा॥ ३६

भक्तिसे प्रेम, प्रेमसे श्रवण, श्रवणसे सत्संग और सत्संगसे विद्वान् गुरुकी प्राप्ति कही गयी है। ज्ञान हो जानेपर मनुष्य निश्चितरूपसे मुक्त हो जाता है। इस प्रकार जो ज्ञानवान् है, वह सदा शिवजीका भजन करता है। जो अनन्य भक्तिसे युक्त होकर शिवका भजन करता है, वह अन्तमें मुक्त हो जाता है, इसमें किसी भी प्रकारका विचार नहीं करना चाहिये॥ ३४—३६॥

अतोऽधिको न देवोऽस्ति मुक्तिप्राप्त्यै च शंकरात्।
शरणं प्राप्य यं चैव संसाराद्विनिवर्तते॥ ३७

मुक्ति प्राप्त करनेके लिये शिवसे बढ़कर अन्य कोई देवता नहीं है, जिनकी शरण प्राप्तकर मनुष्य संसारसे मुक्त हो जाता है॥ ३७॥

इति मे विविधं वाक्यमृषीणां च समागतैः।
निश्चित्य कथितं विप्रा धिया धार्यं प्रयत्नतः॥ ३८

हे ब्राह्मणो! इस प्रकार मैंने ऋषियोंके समागमसे निश्चय किये गये अनेक वचन कहे, आपलोगोंको उन्हें यत्नपूर्वक बुद्धिसे धारण करना चाहिये॥ ३८॥

प्रथमं विष्णवे दत्तं शंभुना लिङ्गसम्मुखे।
विष्णुना ब्रह्मणे दत्तं ब्रह्मणा सनकादिषु॥ ३९

सर्वप्रथम शिवने ज्योतिर्लिंगके सामने विष्णुको वह ज्ञान दिया था। विष्णुने ब्रह्माको तथा ब्रह्माने सनक आदि ऋषियोंको दिया। उसके बाद सनक

नारदाय ततः प्रोक्तं तज्ज्ञानं सनकादिभिः।
व्यासाय नारदेनोक्तं तेन मह्यं कृपालुना॥ ४०

मया चैव भवद्भ्यश्च भवद्भिर्लोकहेतवे।
स्थापनीयं प्रयत्नेन शिवप्राप्तिकरं च तत्॥ ४१

आदिने वह ज्ञान नारदसे कहा, नारदने व्यासजीसे कहा, उन कृपालु व्यासजीने मुझसे कहा और मैंने आपलोगोंसे कहा। अब आपलोगोंको लोककल्याणके लिये उसे प्रयत्नपूर्वक धारण करना चाहिये; क्योंकि वह शिवकी प्राप्ति करानेवाला है॥ ३९—४१॥

इति वश्च समाख्यातं यत्पृष्टोऽहं मुनीश्वराः।
गोपनीयं प्रयत्नेन किमन्यच्छ्रोतुमिच्छथ॥ ४२

हे मुनीश्वरो! आपलोगोंने मुझसे जो पूछा था, वह मैंने आपलोगोंसे कह दिया, इसे यत्नपूर्वक गुप्त रखना चाहिये, अब आपलोग और क्या सुनना चाहते हैं?॥ ४२॥

व्यास उवाच

एतच्छ्रुत्वा तु ऋषय आनन्दं परमं गताः।
हर्षगद्गदया वाचा नत्वा ते तुष्टुवुर्मुहुः॥ ४३

व्यासजी बोले—यह सुनकर वे ऋषि परम हर्षको प्राप्त हुए और सूतजीको नमस्कारकर हर्षके कारण गद्‌गद वाणीमें बारंबार उनकी स्तुति करने लगे॥ ४३॥

ऋषय ऊचुः

व्यासशिष्य नमस्तेऽस्तु धन्यस्त्वं शैवसत्तम।
श्रावितं नः परं वस्तु शैवं ज्ञानमनुत्तमम्॥ ४४

अस्माकं चेतसो भ्रान्तिर्गता हि कृपया तव।
सन्तुष्टाः शिवसज्ज्ञानं प्राप्य त्वत्तो विमुक्तिदम्॥ ४५

ऋषिगण बोले—हे व्यासशिष्य! आपको नमस्कार है। हे शैवसत्तम! आप धन्य हैं, जो कि आपने हमलोगोंको परम तत्त्वरूपी उत्तम शिवज्ञान सुनाया। आपकी कृपासे हमलोगोंके चित्तकी भ्रान्ति दूर हो गयी। हमलोग आपसे मुक्तिदायक शिवविषयक उत्तम ज्ञान प्राप्तकर सन्तुष्ट हो गये॥ ४४-४५॥

सूत उवाच

नास्तिकाय न वक्तव्यमश्रद्धाय शठाय च।
अभक्ताय महेशस्य न चाशुश्रूषवे द्विजाः॥ ४६

इतिहासपुराणानि वेदाञ्छास्त्राणि चासकृत्।
विचार्योद्धृत्य तत्सारं मह्यं व्यासेन भाषितम्॥ ४७

सूतजी बोले—हे द्विजो! नास्तिक, श्रद्धारहित, शठ, शिवमें भक्ति न रखनेवाले तथा सुननेकी इच्छा न रखनेवालेको इसे नहीं बताना चाहिये। व्यासजीने इतिहास, पुराण और वेद-शास्त्रोंको बारंबार विचारकर तथा उनका तत्त्व निकालकर मुझसे कहा है॥ ४६-४७॥

एतच्छ्रुत्वा ह्येकवारं भवेत्पापं हि भस्मसात्।
अभक्तो भक्तिमाप्नोति भक्तस्य भक्तिवर्धनम्॥ ४८

पुनः श्रुते च सद्भक्तिर्मुक्तिः स्याच्च श्रुतेः पुनः।
तस्मात्पुनः पुनः श्राव्यं भुक्तिमुक्तिफलेप्सुभिः॥ ४९

इसे एक बार सुननेसे पाप नष्ट हो जाता है। अभक्तको भक्ति प्राप्त होती है एवं भक्तकी भक्तिमें वृद्धि होती है। पुनः सुननेसे श्रेष्ठ भक्ति मिलती है और पुनः सुननेसे मुक्ति प्राप्त होती है। अतः भोग तथा मोक्षरूप फल चाहनेवालोंको इसे बार-बार सुनना चाहिये॥ ४८-४९॥

आवृत्तयः पञ्च कार्याः समुद्दिश्य फलं परम्।
तत्प्राप्नोति न सन्देहो व्यासस्य वचनं त्विदम्॥ ५०

उत्तम फलको लक्ष्य करके इसकी पाँच आवृत्ति करनी चाहिये, ऐसा करनेसे मनुष्य उसे प्राप्त कर लेता है, इसमें संशय नहीं है; यह व्यासजीका वचन है॥ ५०॥

न दुर्लभं हि तस्यैव येनेदं श्रुतमुत्तमम्।
पञ्चकृत्वस्तदावृत्त्या लभ्यते शिवदर्शनम्॥ ५१

पुरातनाश्च राजानो विप्रा वैश्याश्च सत्तमाः।
इदं श्रुत्वा पञ्चकृत्वो धिया सिद्धिं परां गताः॥ ५२

श्रोष्यत्यद्यापि यश्चेदं मानवो भक्तितत्परः।
विज्ञानं शिवसंज्ञं वै भुक्तिं मुक्तिं लभेच्च सः॥ ५३

जिसने इस उत्तम इतिहासको सुना, उसे कुछ भी दुर्लभ नहीं है। इसकी पाँच आवृत्ति करनेसे शिवजीका दर्शन प्राप्त होता है। हे श्रेष्ठ ऋषियो! प्राचीनकालके राजा, ब्राह्मण एवं वैश्य बुद्धिपूर्वक इसे पाँच बार सुनकर उत्कृष्ट सिद्धिको प्राप्त हुए हैं। आज भी जो मनुष्य भक्तिमें तत्पर होकर इस शिवसंज्ञक विज्ञानका श्रवण करेगा, वह भोग तथा मोक्ष प्राप्त करेगा॥ ५१—५३॥

व्यास उवाच

इति तद्वचनं श्रुत्वा परमानन्दमागताः।
समानर्चुश्च ते सूतं नानावस्तुभिरादरात्॥ ५४

नमस्कारैः स्तवैश्चैव स्वस्तिवाचनपूर्वकम्।
आशीर्भिर्वर्धयामासुः संतुष्टाश्छिन्नसंशयाः॥ ५५

व्यासजी बोले—उनका यह वचन सुनकर वे ऋषि परम आनन्दित हुए और आदरके साथ अनेक प्रकारकी वस्तुओंसे सूतजीकी पूजा करने लगे। वे सन्देहरहित तथा प्रसन्न होकर स्वस्तिवाचनपूर्वक नमस्कार करके अनेक स्तोत्रोंसे उनकी स्तुति करते हुए शुभकामनाओंसे उनका अभिनन्दन करने लगे॥ ५४-५५॥

परस्परं च संतुष्टाः सूतस्ते च सुबुद्धयः।
शंभुं देवं परं मत्वा नमन्ति स्म भजंति च॥ ५६

इसके बाद परम बुद्धिमान् वे ऋषिगण एवं सूतजी परस्पर सन्तुष्ट होकर शिवको परम देवता मानकर नमस्कार तथा भजन करने लगे॥ ५६॥

एतच्छिवसुविज्ञानं शिवस्यातिप्रियं महत्।
भुक्तिमुक्तिप्रदं दिव्यं शिवभक्तिविवर्धनम्॥ ५७

इयं हि संहिता पुण्या कोटिरुद्राह्वया परा।
चतुर्थी शिवपुराणस्य कथिता मे मुदावहा॥ ५८

शिवसम्बन्धी यह विशिष्ट ज्ञान शिवको अत्यन्त प्रसन्न करनेवाला, भोग-मोक्ष देनेवाला तथा दिव्य शिवभक्तिको बढ़ानेवाला है। इस प्रकार मैंने शिवपुराणकी आनन्द प्रदान करनेवाली तथा उत्कृष्ट कोटिरुद्र नामक चौथी संहिताका वर्णन कर दिया॥ ५७-५८॥

एतां यः शृणुयाद्भक्त्या श्रावयेद्वा समाहितः।
स भुक्त्वेहाखिलान्भोगानन्ते परगतिं लभेत्॥ ५९

जो मनुष्य सावधानचित्त होकर भक्तिपूर्वक इसे सुनता है अथवा सुनाता है, वह इस लोकमें सम्पूर्ण सुखोंको भोगकर अन्तमें परम गति प्राप्त करता है॥ ५९॥

इति श्रीशिवमहापुराणे चतुर्थ्यां कोटिरुद्रसंहितायां ज्ञाननिरूपणं नाम त्रिचत्वारिंशोऽध्यायः॥ ४३॥

॥ इस प्रकार श्रीशिवमहापुराणके अन्तर्गत चतुर्थ कोटिरुद्रसंहितामें ज्ञान-निरूपण नामक तैंतालीसवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ ४३॥

॥ समाप्तेयं चतुर्थी कोटिरुद्रसंहिता॥ ४॥

॥ चतुर्थ कोटिरुद्रसंहिता पूर्ण हुई॥

॥ ॐ श्रीसाम्बशिवाय नमः ॥ ॥ ॐ श्रीगणेशाय नमः ॥

श्रीशिवमहापुराण

पञ्चमी उमासंहिता

अथ प्रथमोऽध्यायः

पुत्रप्राप्तिके लिये कैलासपर गये हुए श्रीकृष्णका उपमन्युसे संवाद

यो धत्ते भुवनानि सत्त्वगुणवान्स्रष्टा रजःसंश्रयः
संहर्त्ता तमसान्वितो गुणवतीं मायामतीत्य स्थितः।
सत्यानन्दमनन्तबोधममलं ब्रह्मादिसंज्ञास्पदं
नित्यं सत्त्वसमन्वयादधिगतं पूर्णं शिवं धीमहि॥ १

जो परमात्मा सत्त्वगुणसे युक्त होकर अर्थात् सत्त्वगुणका आश्रय लेकर [चौदहों] भुवनोंको धारण करते हैं, रजोगुणका आश्रय लेकर सृष्टि करते हैं, तमोगुणसे समन्वित होकर संहार करते हैं एवं त्रिगुणमयी मायासे परे होकर स्थित हैं, उन सत्य-आनन्दस्वरूप, अनन्तज्ञानसम्पन्न, निर्मल, ब्रह्मा आदि नामोंसे पुकारे जानेवाले, नित्य, सत्त्वगुणके आश्रयसे प्राप्त होनेवाले तथा अखण्ड शिवका हम ध्यान करते हैं॥ १॥

ऋषय ऊचुः

सूत सूत महाप्राज्ञ व्यासशिष्य नमोऽस्तु ते।
चतुर्थी कोटिरुद्राख्या श्राविता संहिता त्वया॥ २

ऋषिगण बोले—हे सूतजी! हे महाप्राज्ञ! हे व्यासशिष्य! आपको नमस्कार है, आपने हमें कोटिरुद्र नामक चतुर्थ संहिता सुनायी॥ २॥

अथोमासंहितान्तःस्थनानाख्यानसमन्वितम्।
ब्रूहि शंभोश्चरित्रं वै साम्बस्य परमात्मनः॥ ३

अब आप उमासंहितामें विद्यमान विविध आख्यानोंसे युक्त पार्वतीसहित परमात्मा शिवके चरित्रका वर्णन कीजिये॥ ३॥

सूत उवाच

महर्षयः शौनकाद्याः शृणुत प्रेमतः शुभम्।
शाङ्करं चरितं दिव्यं भुक्तिमुक्तिप्रदं परम्॥ ४

सूतजी बोले—हे शौनकादि महर्षियो! अब आपलोग मंगलमय, भोग तथा मोक्षको देनेवाले, दिव्य एवं उत्तम शिवके चरित्रको प्रेमपूर्वक सुनिये॥ ४॥

इतीदृशं पुण्यप्रश्नं पृष्टवान् मुनिसत्तमः।
व्यासः सनत्कुमारं वै शैवं सच्चरितं जगौ॥ ५

[किसी समय] मुनियोंमें श्रेष्ठ व्यासजीने ऐसा ही पवित्र प्रश्न सनत्कुमारसे पूछा था, तब उन्होंने शिवजीके सुन्दर चरित्रका वर्णन किया था॥ ५॥

सनत्कुमार उवाच

वासुदेवाय यत्प्रोक्तमुपमन्युमहर्षिणा।
तदुच्यते मया व्यास चरितं हि महेशितुः॥ ६

सनत्कुमार बोले—हे व्यासजी! महर्षि उपमन्युने श्रीकृष्णसे जिस शिवचरित्रका वर्णन किया था, उसीको मैं कहता हूँ॥ ६॥

पुरा पुत्रार्थमगमत्कैलासं शंकरालयम्।
वसुदेवसुतः कृष्णास्तपस्तप्तुं शिवस्य हि॥ ७

पूर्वकालमें वसुदेवपुत्र श्रीकृष्ण पुत्रकी कामनासे शिवजीकी तपस्या करनेके लिये शंकरालय कैलासपर गये॥ ७॥

अत्रोपमन्युं संदृष्ट्वा तपन्तं शृङ्ग उत्तमे।
प्रणम्य भक्त्या स मुनिं पर्यपृच्छत्कृताञ्जलिः॥ ८

वहाँ पर्वतके उत्तम शिखरपर मुनि उपमन्युको तप करते देखकर भक्तिपूर्वक उन्हें प्रणाम करके हाथ जोड़ उनसे वे पूछने लगे॥ ८॥

श्रीकृष्ण उवाच

उपमन्यो महाप्राज्ञ शैवप्रवर सन्मते।
पुत्रार्थमगमं तप्तुं तपोऽत्र गिरिशस्य हि॥ ९

ब्रूहि शंकरमाहात्म्यं सदानन्दकरं मुने।
यच्छ्रुत्वा भक्तितः कुर्यां तप ऐश्वरमुत्तमम्॥ १०

सनत्कुमार उवाच

इति श्रुत्वा वचस्तस्य वासुदेवस्य धीमतः।
प्रत्युवाच प्रसन्नात्मा ह्युपमन्युः स्मरन् शिवम्॥ ११

उपमन्युरुवाच

शृणु कृष्ण महाशैव महिमानं महेशितुः।
यमद्राक्षमहं शंभोर्भक्तिवर्धनमुत्तमम्॥ १२

तपःस्थोऽहं समद्राक्षं शङ्करं च तदायुधान्।
परिवारं समस्तं च विष्ण्वादीनमरादिकान्॥ १३

त्रिभिरंशैः शोभमानमजस्त्रसुखमव्ययम्।
एकपादं महादंष्ट्रं सज्वालकवलैर्मुखैः॥ १४

द्विसहस्त्रमयूखानां ज्योतिषातिविराजितम्।
सर्वास्त्रप्रवराबाधमनेकाक्षं सहस्त्रपात्॥ १५

यश्च कल्पान्तसमये विश्वं संहरति ध्रुवम्।
नावध्यो यस्य च भवेत्त्रैलोक्ये सचराचरे॥ १६

महेश्वरभुजोत्सृष्टं त्रैलोक्यं सचराचरम्।
निर्ददाह द्रुतं कृत्स्नं निमेषार्द्धान्न संशयः॥ १७

तपःस्थो रुद्रपार्श्वस्थं दृष्टवानहमव्ययम्।
गुह्यमस्त्रं परं चास्य न तुल्यमधिकं क्वचित्॥ १८

यत्तच्छूलमिति ख्यातं सर्वलोकेषु शूलिनः।
विजयाभिधमत्युग्रं सर्वशस्त्रास्त्रनाशकम्॥ १९

दारयेद्यन्महीं कृत्स्नां शोषयेद्यन्महोदधिम्।
पातयेदखिलं ज्योतिश्चक्रं यन्नात्र संशयः॥ २०

श्रीकृष्ण बोले—हे महाप्राज्ञ! हे शैवप्रवर! हे सन्मते! हे उपमन्युजी! मैं पुत्रप्राप्तिके लिये शंकरजीकी तपस्या करनेके लिये यहाँ आया हूँ। हे मुने! निरन्तर आनन्द प्रदान करनेवाले शिवमाहात्म्यको कहिये, जिसे सुनकर मैं भक्तिपूर्वक महेश्वरका उत्तम तप करूँ॥ ९-१०॥

सनत्कुमार बोले—उन बुद्धिमान् श्रीकृष्णकी यह बात सुनकर [महर्षि] उपमन्यु प्रसन्नचित्त होकर शिवजीका स्मरण करते हुए कहने लगे—॥ ११॥

उपमन्यु बोले—हे महाशैव श्रीकृष्ण! महेश्वर शिवजीकी भक्तिको बढ़ानेवाली जिस उत्तम महिमाको मैंने [स्वयं] देखा है, उसे आप सुनिये। तपमें स्थित मैंने शंकर, उनके आयुधों, उनके समस्त परिवार एवं विष्णु आदि देवगणोंका प्रत्यक्ष दर्शन किया॥ १२-१३॥

मैंने देखा कि वह [पाशुपत] तीन फलकोंसे शोभित, शाश्वत सौख्यका हेतु, अविनश्वर, एकपादात्मक, विशाल दाढ़ोंसे युक्त, मुखोंसे मानों आग उगलता हुआ, सहस्रों [सूर्योंकी] किरणोंके प्रकाशसे देदीप्यमान, सहस्रचरणान्वित, अनेक नेत्रोंसे युक्त तथा सभी प्रमुख आयुधोंको अभिभूत करता हुआ [भगवान् शंकरके समीपमें स्थित] है॥ १४-१५॥

जो कल्पके अन्तमें विश्वका संहार कर देता है, जिसके लिये इस चराचर त्रैलोक्यमें कोई भी अवध्य नहीं है, भगवान् महेश्वरकी भुजाओंसे छूटा हुआ वह [पाशुपत] चराचरसहित सम्पूर्ण त्रिलोकीको शीघ्र ही—आधे पलमें दग्ध कर सकता है, इसमें सन्देह नहीं है॥ १६-१७॥

तपमें स्थित मैंने रुद्रके समीपमें विद्यमान अविनाशी [उस] गुह्य अस्त्रको देखा, जिसके समान तथा बढ़कर कोई भी अस्त्र नहीं है, उन शिवजीका सभी लोकोंमें शूल नामसे प्रसिद्ध जो विजयास्त्र है, वह अत्यन्त उग्र है, समस्त शस्त्रास्त्रोंका विनाशक है और जो सम्पूर्ण पृथ्वीको विदीर्ण कर देता है, जो समुद्रको सुखा डालता है और जो सम्पूर्ण नक्षत्रमण्डलको गिरा देता है, इसमें संशय नहीं है॥ १८—२०॥

यौवनाश्वो हतो येन मांधाता सबलः पुरा।
चक्रवर्ती महातेजास्त्रैलोक्यविजयो नृपः॥ २१

दर्पाविष्टो हैहयश्च निःक्षिप्तो लवणासुरः।
शत्रुघ्नं नृपतिं युद्धे समाहूय समन्ततः॥ २२

तस्मिन्दैत्ये विनष्टे तु रुद्रहस्ते गतं तु यत्।
तच्छूलमिति तीक्ष्णाग्रं सन्त्रासजननं महत्॥ २३

जिसने पूर्वकालमें महाबली, चक्रवर्ती, त्रैलोक्यविजयी एवं महातेजसे सम्पन्न युवनाश्वपुत्र मान्धाताको विनष्ट कर दिया, जिसने [परशुरामजीके माध्यमसे] महाभिमानी हैहय (कार्तवीर्यार्जुन)-का संहार करवाया, जिसने युद्धके लिये स्वयं शत्रुघ्नको आमन्त्रितकर [अधर्मनिरत] लवणासुरका विनाश करवाया और उस दैत्य [लवणासुर]-का वध हो जानेपर जो पुनः शिवजीके हाथोंमें पहुँच गया, वह शूल तीक्ष्ण अग्रभागवाला तथा घोर भय उत्पन्न करनेवाला है॥ २१—२३॥

त्रिशिखां भृकुटीं कृत्वा तर्जयन्तमिव स्थितम्।
विधूम्रानलसंकाशं बालसूर्यमिवोदितम्॥ २४

सर्पहस्तमनिर्देश्यं पाशहस्तमिवान्तकम्।
परशुं तीक्ष्णधारं च सर्पाद्यैश्च विभूषितम्॥ २५

कल्पान्तदहनाकारं तथा पुरुषविग्रहम्।
यत्तद्भार्गवरामस्य क्षत्रियान्तकरं रणे॥ २६

रामो यद्बलमाश्रित्य शिवदत्तस्य वै पुरा।
त्रिःसप्तकृत्वो स क्षत्रं ददाह हृषितो मुनिः॥ २७

[हे श्रीकृष्ण!] तीन फलकोंवाला होनेसे मानो भौंहोंको तीन जगहसे टेढ़ीकर विरोधियोंको डाँटता हुआ-सा, धूमरहित अग्निके समान, उदयकालीन सूर्यके समान कान्तिमय, सर्पसे युक्त होनेके कारण पाशधारी यमराजके समान तथा अवर्णनीय वह त्रिशूल [भगवान् शंकरके समीप] स्थित था। [इसी प्रकार] सर्प आदिसे विभूषित, तीक्ष्ण धारवाला तथा प्रलयकालीन अग्निके समान स्वरूपवान् वह परशु भी साक्षात् पुरुष देह धारणकर [शिवजीके निकट] उपस्थित था, जिसने भृगुवंशी परशुरामके क्षत्रिय शत्रुओंका युद्धमें संहार किया था। शिवजीके द्वारा प्रदत्त उसी परशुके सामर्थ्यका आश्रय लेकर प्राचीनकालमें परशुरामजी उत्साहपूर्वक इक्कीस बार क्षत्रियसमूहको भस्म कर सके थे॥ २४—२७॥

सुदर्शनं तथा चक्रं सहस्रवदनं विभुम्।
द्विसहस्रभुजं देवमद्राक्षं पुरुषाकृतिम्॥ २८

द्विसहस्रेक्षणं दीप्तं सहस्रचरणाकुलम्।
कोटिसूर्यप्रतीकाशं त्रैलोक्यदहनक्षमम्॥ २९

[इसी प्रकार] व्यापक स्वरूपवाले हजार मुखोंसे युक्त, हजार-हजार भुजाओं, नेत्रों तथा चरणोंवाले, करोड़ों सूर्योंके सदृश कान्तिमय, त्रिलोकीको भस्म कर देनेमें समर्थ तथा पुरुष शरीर धारणकर वहाँ उपस्थित देवस्वरूप सुदर्शनचक्रको भी मैंने देखा॥ २८-२९॥

वज्रं महोज्ज्वलं तीक्ष्णं शतपर्वमनुत्तमम्।
महाधनुः पिनाकं च सतूणीरं महाद्युतिम्॥ ३०

शक्तिं खड्गं च पाशं च महादीप्तं समांकुशम्।
गदां च महतीं दिव्यामन्यान्यस्त्राणि दृष्टवान्॥ ३१

पुनः मैंने अति उज्ज्वल, सौ पर्ववाले, तीक्ष्ण तथा उत्तम वज्रको, प्रदीप्त कान्तिवाले तथा तरकससहित पिनाक नामक धनुषको और शक्ति, खड्ग, पाश, महाकान्तिमान् अंकुश, महान् दिव्य गदा तथा अन्य अस्त्रोंको भी वहाँ स्थित देखा॥ ३०-३१॥

तथा च लोकपालानामस्त्राण्येतानि यानि च।
अद्राक्षं तानि सर्वाणि भगवद्रुद्रपार्श्वतः॥ ३२

मैंने लोकपालोंके इन अस्त्रोंको तथा अन्य भी जितने अस्त्र हैं, उन सभीको भगवान् रुद्रके पासमें स्थित देखा॥ ३२॥

सव्यदेशे तु देवस्य ब्रह्मा लोकपितामहः।
विमानं दिव्यमास्थाय हंसयुक्तं मनोऽनुगम्॥ ३३

वामपार्श्वे तु तस्यैव शंखचक्रगदाधरः।
वैनतेयं समास्थाय तथा नारायणः स्थितः॥ ३४

लोकपितामह ब्रह्मा हंससे युक्त तथा इच्छानुसार चलनेवाले दिव्य विमानपर आरूढ़ होकर उन प्रभुके दाहिनी ओर विराजमान थे और शंख, चक्र तथा गदा धारण किये भगवान् नारायण गरुड़पर विराजमान होकर उनके वामभागमें स्थित थे॥ ३३-३४॥

स्वायंभुवाद्या मनवो भृग्वाद्या ऋषयस्तथा।
शक्राद्या देवताश्चैव सर्व एव समं ययुः॥ ३५

स्वायम्भुव आदि मनु, भृगु आदि ऋषि एवं इन्द्र आदि समस्त देवता भी उनके साथ आये थे॥ ३५॥

स्कंदः शक्तिं समादाय मयूरस्थः सघंटकः।
देव्याः समीपे सन्तस्थौ द्वितीय इव पावकः॥ ३६

नंदी शूलं समादाय भवाग्रे समवस्थितः।
सर्वभूतगणाश्चैव मातरो विविधाः स्थिताः॥ ३७

मोरपर सवार कार्तिकेय, शक्ति तथा घण्टा धारण करके देवी पार्वतीके समीप दूसरी अग्निके समान स्थित थे। नन्दी त्रिशूल धारण करके सदाशिवके आगे स्थित थे। समस्त भूतगण तथा विविध मातृकाएँ भी विराजमान थीं॥ ३६-३७॥

तेऽभिवाद्य महेशानं परिवार्य समन्ततः।
अस्तुवन्विविधैः स्तोत्रैर्महादेवं तदा सुराः॥ ३८

उस समय वे सभी देवता महेश्वर महादेवको चारों ओरसे घेरकर उन्हें नमस्कारकर अनेक प्रकारके स्तोत्रोंद्वारा उनकी स्तुति कर रहे थे॥ ३८॥

यत्किञ्चित्तु जगत्यस्मिन्दृश्यते श्रूयतेऽथवा।
तत्सर्वं भगवत्पार्श्वे निरीक्ष्याहं सुविस्मितः॥ ३९

इस प्रकार जगत्में जो कुछ भी दिखायी देता है अथवा सुना जाता है, वह सब भगवान्के पास देखकर मैं अत्यधिक आश्चर्यचकित हो गया॥ ३९॥

सुमहद्धैर्यमालम्ब्य प्राञ्जलिर्विविधैः स्तवैः।
परमानन्दसंमग्नोऽभूवं कृष्णाहमध्वरे॥ ४०

सम्मुखे शङ्करं दृष्ट्वा बाष्पगद्गदया गिरा।
अपूजयं सुविधिवदहं श्रद्धासमन्वितः॥ ४१

हे श्रीकृष्ण! मैं इस [शिवाराधन] यज्ञमें अत्यधिक धैर्य धारणकर हाथ जोड़ करके नानाविध स्तोत्रोंसे उनकी स्तुतिकर परम आनन्दमें निमग्न हो गया और शिवजीको सम्मुख देखकर श्रद्धासे युक्त हो आँसुओंके कारण गद्गद वाणीसे मैंने विधिवत् उनका पूजन किया॥ ४०-४१॥

भगवानथ सुप्रीतः शङ्करः परमेश्वरः।
वाण्या मधुरया प्रीत्या मामाह प्रहसन्निव॥ ४२

तब अत्यन्त प्रसन्न हुए परमेश्वर सदाशिवने हँसते हुए प्रेमपूर्वक मधुर वाणीमें मुझसे कहा— ॥ ४२॥

न विचालयितुं शक्यो मया विप्र पुनः पुनः।
परीक्षितोऽसि भद्रं ते भवान्भक्त्यान्वितो दृढः॥ ४३

हे विप्र! मैंने बारंबार आपकी परीक्षा ली, आप भक्तिसे युक्त तथा दृढ़ हैं। मैं आपको अपनी भक्तिसे विचलित नहीं कर सका, आपका कल्याण हो॥ ४३॥

तस्मात्ते परितुष्टोऽस्मि वरं वरय सुव्रत।
दुर्लभं सर्वदेवेषु नादेयं विद्यते तव॥ ४४

स चाहं तद्वचः श्रुत्वा शंभोः सत्प्रेमसंयुतम्।
देवं तं प्राञ्जलिर्भूत्वाब्रुवं भक्तानुकम्पिनम्॥ ४५

अतः हे सुव्रत! मैं बहुत प्रसन्न हूँ, आप सम्पूर्ण देवगणोंके लिये भी दुर्लभ वर माँगिये, आपके लिये कुछ भी अदेय नहीं है। तब शिवजीके उस प्रेमयुक्त वचनको सुनकर हाथ जोड़कर वह [मैं] भक्तोंपर कृपा करनेवाले उन प्रभुसे कहने लगा— ॥ ४४-४५॥

उपमन्युरुवाच

भगवन्यदि तुष्टोऽसि यदि भक्तिः स्थिरा मयि।
तेन सत्येन मे ज्ञानं त्रिकालविषयं भवेत्॥ ४६

उपमन्यु बोले—हे भगवन्! यदि आप मुझसे सन्तुष्ट हैं और यदि आपमें मेरी दृढ़ भक्ति है, तो उस सत्यसे मुझे त्रिकालज्ञता प्राप्त हो जाय॥ ४६॥

प्रयच्छ भक्तिं विपुलां त्वयि चाव्यभिचारिणीम्।
सान्वयस्यापि नित्यं मे भूरि क्षीरौदनं भवेत्॥ ४७

आप मुझको अपने प्रति दृढ़ अनन्यभक्ति प्रदान करें, मुझे तथा मेरे वंशजोंको पर्याप्त दूध-भात नित्य प्राप्त होता रहे॥ ४७॥

ममास्तु तव सान्निध्यं नित्यं चैवाश्रमे विभो।
तव भक्तेषु सख्यं स्यादन्योऽन्येषु सदा भवेत्॥ ४८

हे विभो! मुझे इस आश्रममें आपका नित्य सान्निध्य प्राप्त हो और आपके भक्तोंमें मेरी परस्पर मित्रता सदा बनी रहे तथा अन्य लोगोंके प्रति उदासीनता रहे॥ ४८॥

एवमुक्तो मया शंभुर्विहस्य परमेश्वरः।
कृपादृष्ट्या निरीक्ष्याशु मां स प्राह यदूद्वह॥ ४९

हे यदुश्रेष्ठ! मेरे द्वारा इस प्रकार कहे जानेपर उन परमेश्वर सदाशिवने हँसकर कृपादृष्टिसे मेरी ओर देखकर शीघ्र ही कहा—॥ ४९॥

श्रीशिव उवाच

उपमन्यो मुने तात वर्जितस्त्वं भविष्यसि।
जरामरणजैर्दोषैः सर्वकामान्वितो भव॥ ५०

श्रीशिवजी बोले—हे उपमन्यो! हे मुने! हे तात! आप जरा-मरणजन्य दोषोंसे मुक्त रहेंगे और आपकी सारी कामनाएँ पूर्ण होंगी॥ ५०॥

मुनीनां पूजनीयश्च यशोधनसमन्वितः।
शीलरूपगुणैश्वर्यं मत्प्रसादात्पदे पदे॥ ५१

आप सम्पूर्ण मुनियोंके पूजनीय, यश तथा धनसे परिपूर्ण होंगे और मेरी प्रसन्नतासे पद-पदपर आपको शील, रूप, गुण तथा ऐश्वर्यकी प्राप्ति होती रहेगी॥ ५१॥

क्षीरोदसागरस्यैव सान्निध्यं पयसां निधेः।
तत्र ते भविता नित्यं यत्र यत्रेच्छसे मुने॥ ५२

हे मुने! तुम जहाँ-जहाँ चाहोगे, वहाँ पयोराशिभूत क्षीरसागरका सान्निध्य आपको सदा प्राप्त होता रहेगा॥ ५२॥

अमृतात्मकं तत्क्षीरं यावत्संयाम्यते ततः।
इमं वैवस्वतं कल्पं पश्यसे बन्धुभिः सह॥ ५३
त्वद्गोत्रं चाक्षयं चास्तु मत्प्रसादात्सदैव हि।
सान्निध्यमाश्रमे तेऽहं करिष्यामि महामुने॥ ५४

जबतक वैवस्वत मनुका यह कल्प समाप्त नहीं होगा, तबतक आप अपने बन्धुओंके साथ इस अमृतात्मक क्षीरसागरका दर्शन प्राप्त करते रहेंगे। हे महामुने! मेरी कृपासे आपका वंश सदा अक्षय रहेगा और मैं आपके इस आश्रममें सदैव निवास करूँगा॥ ५३-५४॥

मद्भक्तिः सुस्थिरा चास्तु सदा दास्यामि दर्शनम्।
स्मृतश्च भवता वत्स प्रियस्त्वं सर्वथा मम॥ ५५

हे वत्स! मेरी भक्ति आपमें सदा स्थिर रहेगी और आपके द्वारा स्मरण किये जानेपर मैं निरन्तर दर्शन देता रहूँगा, हे वत्स! आप सब प्रकारसे मेरे प्रिय हैं॥ ५५॥

यथाकामसुखं तिष्ठ नोत्कण्ठां कर्तुमर्हसि।
सर्वं प्रपूर्णतां यातु चिन्तितं नात्र संशयः॥ ५६

आप इच्छानुसार सुखपूर्वक रहें। किसी प्रकारकी उत्कण्ठा मत कीजिये, आपके सारे चिन्तित मनोरथ पूर्ण हो जायँगे, इसमें संशय नहीं है॥ ५६॥

उपमन्युरुवाच

एवमुक्त्वा स भगवान् सूर्यकोटिसमप्रभः।
महेशानो वरान् दत्त्वा तत्रैवान्तरधीयत॥ ५७

उपमन्यु बोले—ऐसा कहकर करोड़ों सूर्योंके समान देदीप्यमान वे भगवान् महेश्वर वर प्रदानकर वहीं अन्तर्धान हो गये॥ ५७॥

एवं दृष्टो मया कृष्ण परिवारसमन्वितः।
शङ्करः परमेशानो भुक्तिमुक्तिप्रदायकः॥ ५८
शंभुना परमेशेन यदुक्तं तेन धीमता।
तदवाप्तं च मे सर्वं देवदेव समाधिना॥ ५९

हे श्रीकृष्ण! इस प्रकार मैंने भोग एवं मोक्ष देनेवाले भगवान् सदाशिवको सपरिवार देखा। हे देवदेव! उन महाबुद्धिमान् परमेश्वर सदाशिवने मुझसे जो कहा था, वह सब उनके ध्यानके द्वारा मैंने प्राप्त किया॥ ५८-५९॥

प्रत्यक्षं चैव ते जातान् गन्धर्वाप्सरसस्तथा।
ऋषीन्विद्याधरांश्चैव पश्य सिद्धान्व्यवस्थितान्॥ ६०

आप अपने समक्ष उपस्थित हुए गन्धर्वों, अप्सराओं, ऋषियों, विद्याधरों एवं सिद्धोंको देखिये॥ ६०॥

पश्य वृक्षान्मनोरम्यान् स्निग्धपत्रान्सुगंधिनः।
सर्वर्तुकुसुमैर्युक्तान्सदापुष्पफलान्वितान्॥ ६१
सर्वमेतन्महाबाहो शङ्करस्य महात्मनः।
प्रसादाद्देवदेवस्य विश्वं भावसमन्वितम्॥ ६२

आप चिकने पत्तोंवाले, सुगन्धित, सभी ऋतुओंमें फूलनेवाले तथा सर्वदा पुष्प-फलसे युक्त इन मनोरम वृक्षोंको देखिये। हे महाबाहो! अनेक पदार्थोंसे संयुक्त यह समस्त विश्व ही देवदेव महात्मा शंकरकी कृपासे उत्पन्न हुआ है॥ ६१-६२॥

ममास्ति त्वखिलं ज्ञानं प्रसादात् शूलपाणिनः।
भूतं भव्यं भविष्यं च सर्वं जानामि तत्त्वतः॥ ६३

मुझे तो सदाशिवकी कृपासे सम्पूर्ण ज्ञान है, मैं भूत, भविष्य एवं वर्तमान सभीको यथार्थरूपमें जानता हूँ॥ ६३॥

तमहं दृष्टवान्देवमपि देवाः सुरेश्वराः।
यं न पश्यन्त्यनाराध्य कोऽन्यो धन्यतरो मया॥ ६४

इन्द्र आदि देवगण भी जिन्हें बिना आराधनाके नहीं देख सकते, उन महेश्वर देवका मैंने दर्शन कर लिया, अतः मुझसे अधिक धन्य कौन हो सकता है?॥ ६४॥

षड्विंशकमिति ख्यातं परं तत्त्वं सनातनम्।
एवं ध्यायन्ति विद्वांसो महत्परममक्षरम्॥ ६५
सर्वं तत्त्वविधानज्ञः सर्वतत्त्वार्थदर्शनः।
स एव भगवान् देवः प्रधानपुरुषेश्वरः॥ ६६

छब्बीसवें तत्त्वके रूपमें प्रसिद्ध जो सनातन परमतत्त्व है, विद्वान् लोग उसी महान् परम अक्षर [ब्रह्म]-का ध्यान करते हैं। वे भगवान् सदाशिव ही सभी तत्त्वोंके विधानको जाननेवाले एवं सभी तत्त्वोंके अर्थोंके द्रष्टा और प्रधान पुरुषेश्वर हैं॥ ६५-६६॥

यो निजाद्दक्षिणात्पार्श्वाद् ब्रह्माणं लोककारणम्।
वामादप्यसृजद्विष्णुं लोकरक्षार्थमीश्वरः॥ ६७

कल्पान्ते चैव संप्राप्तेऽसृजद् रुद्रं हृदः प्रभुः।
ततः समहरत्कृत्स्नं जगत्स्थावरजंगमम्॥ ६८

उन परमेश्वरने संसाररचनाके कारणभूत ब्रह्माको अपने दक्षिण पार्श्वसे तथा लोककी रक्षाके लिये विष्णुको अपने बायें भागसे उत्पन्न किया है। प्रभु सदाशिवने ही कल्पान्तके प्राप्त होनेपर [सृष्टिके विनाशके लिये] अपने हृदयसे रुद्रकी रचना की और उनको माध्यम बनाकर उन्होंने सम्पूर्ण चराचर संसारका संहार किया॥ ६७-६८॥

युगान्ते सर्वभूतानि संवर्तक इवानलः।
कालो भूत्वा महादेवो ग्रसमानः स तिष्ठति॥ ६९

वे ही महादेव युगके अन्तमें संवर्तक अग्निके समान काल बनकर सभी प्राणियोंका भक्षण करते हुए स्थित रहते हैं॥ ६९॥

सर्वज्ञः सर्वभूतात्मा सर्वभूतभवोद्भवः।
आस्ते सर्वगतो देवो दृश्यः सर्वैश्च दैवतैः॥ ७०

वे प्रभु सर्वज्ञ, सर्वभूतात्मा, सभी प्राणियोंको उत्पन्न करनेवाले, सर्वव्यापक एवं सभी देवगणोंके दर्शनीय हैं॥ ७०॥

अतस्त्वं पुत्रलाभाय समाराधय शङ्करम्।
शीघ्रं प्रसन्नो भविता शिवस्ते भक्तवत्सलः॥ ७१

इसलिये [हे श्रीकृष्ण!] आप पुत्रप्राप्तिके लिये शिवकी आराधना करें, वे भक्तवत्सल शिव आपपर शीघ्र ही प्रसन्न होंगे॥ ७१॥

इति श्रीशिवमहापुराणे पञ्चम्यामुमासंहितायां कृष्णोपमन्युसंवादे स्वगतिवर्णनं नाम प्रथमोऽध्यायः॥ १॥

॥ इस प्रकार श्रीशिवमहापुराणके अन्तर्गत पाँचवीं उमासंहितामें कृष्णोपमन्युसंवादमें स्वगतिवर्णन नामक पहला अध्याय पूर्ण हुआ॥ १॥

अथ द्वितीयोऽध्यायः

श्रीकृष्णके प्रति उपमन्युका शिवभक्तिका उपदेश

सनत्कुमार उवाच

इत्याकर्ण्य मुनेर्वाक्यमुपमन्योर्महात्मनः।
जातभक्तिर्महादेवे कृष्णः प्रोवाच तं मुनिम्॥ १

श्रीकृष्ण उवाच

उपमन्यो मुने तात कृपां कुरु ममोपरि।
ये ये शिवं समाराध्य कामानापुश्च तान्वद॥ २

सनत्कुमार उवाच

इत्याकर्ण्योपमन्युः स मुनिः शैववरो महान्।
कृष्णवाक्यं सुप्रशस्य प्रत्युवाच कृपानिधिः॥ ३

उपमन्युरुवाच

यैर्यैर्भवाराधनतः प्राप्ता हृत्काम एव हि।
तांस्तान् भक्तान् प्रवक्ष्यामि शृणु त्वं वै यदूद्वह॥ ४

शर्वात्सर्वामरैश्वर्यं हिरण्यकशिपुः पुरा।
वर्षाणां दशलक्षाणि सोऽलभच्चन्द्रशेखरात्॥ ५

तस्याथ पुत्रप्रवरो नन्दनो नाम विश्रुतः।
स च शर्ववरादिन्द्रं वर्षायुतमयोधयत्॥ ६
विष्णुचक्रं च तद् घोरं वज्रमाखण्डलस्य च।
शीर्णं पुराभवत्कृष्ण तदङ्गेषु महाहवे॥ ७

न शस्त्राणि वहन्त्यङ्गे धर्मतस्तस्य धीमतः।
ग्रहस्यातिबलस्याजौ चक्रवज्रमुखान्यपि॥ ८

अर्द्यमानाश्च विबुधा ग्रहेण सुबलीयसा।
देवदत्तवरा जघ्नुरसुरेन्द्रान् सुरा भृशम्॥ ९

तुष्टो विद्युत्प्रभस्यापि त्रैलोक्येश्वरतामदात्।
शतवर्षसहस्राणि सर्वलोकेश्वरो भवः॥ १०

तथा पुत्रसहस्राणामयुतं च ददौ शिवः।
मम चानुचरो नित्यं भविष्यस्यब्रवीदिति॥ ११

कुशद्वीपे शुभं राज्यमददाद्भगवान् भवः।
स तस्मै शङ्करः प्रीत्या वासुदेव प्रहृष्टधीः॥ १२

सनत्कुमार बोले—महात्मा उपमन्युका यह वचन सुनकर महादेवके प्रति उत्पन्न हुई भक्तिवाले कृष्णने उन मुनिसे कहा—॥ १॥

श्रीकृष्ण बोले—हे उपमन्यो! हे मुने! हे तात! आप मेरे ऊपर कृपा कीजिये, जिन-जिन लोगोंने शिवकी आराधनाकर अपनी कामनाएँ प्राप्त कीं, उन्हें आप बताइये॥ २॥

सनत्कुमार बोले—श्रीकृष्णका यह वचन सुनकर शैवोंमें श्रेष्ठ कृपानिधि महात्मा उपमन्यु मुनिने उनकी प्रशंसा करके कहा—॥ ३॥

उपमन्यु बोले—हे यदुश्रेष्ठ! जिन-जिन लोगोंने सदाशिवकी आराधनासे अपने-अपने हृदयकी कामना पूर्ण की, उन-उन भक्तोंका वर्णन करूँगा, आप सुनें॥ ४॥

पूर्व समयमें हिरण्यकशिपुने दस लाख वर्षतक शिवाराधनकर चन्द्रशेखर सदाशिवसे सभी देवगणोंका ऐश्वर्य प्राप्त किया॥ ५॥

उसीका पुत्रप्रवर नन्दन नामसे प्रसिद्ध हुआ, उसने शिवजीसे वर प्राप्तकर दस हजार वर्षतक इन्द्रके साथ युद्ध किया था। हे श्रीकृष्ण! पूर्वकालमें उस महायुद्धमें विष्णुका भयानक [सुदर्शन] चक्र तथा इन्द्रका वज्र उसके अंगोंमें लगकर चूर-चूर हो गये थे॥ ६-७॥

युद्धमें उस अत्यन्त बलशाली एवं बुद्धिमान् ग्रह [राहु]-के अंगमें [प्रहार किये गये] सुदर्शनचक्र एवं इन्द्रके वज्र आदि मुख्य अस्त्र भी शिवजीकी तपस्याके प्रभावसे उसे पीड़ित नहीं करते थे। उस अत्यन्त बलवान् ग्रहके द्वारा पीड़ित हुए देवताओंने भी शिवसे ही वर प्राप्तकर दैत्योंको बहुत प्रताड़ित किया॥ ८-९॥

सर्वलोकाधिपति सदाशिवने विद्युत्प्रभ नामक राक्षसपर भी प्रसन्न होकर एक लाख वर्षपर्यन्त उसे त्रैलोक्यका स्वामित्व प्रदान किया, शिवजीने उसे सहस्र अयुत (एक करोड़) पुत्र भी दिये और उससे कहा कि तुम मेरे नित्य अनुचर रहोगे। हे वासुदेव! भगवान् शिवने प्रसन्नचित्त होकर उसे प्रेमपूर्वक कुशद्वीपमें उत्तम राज्य भी प्रदान किया॥ १०—१२॥

धात्रा सृष्टः शतमुखो दैत्यो वर्षशतं पुरा।
तपः कृत्वा सहस्त्रं तु पुत्राणामलभद्भवात्॥ १३

पूर्वकालमें ब्रह्माजीद्वारा उत्पन्न शतमुख नामक दैत्यने सौ वर्षपर्यन्त तपस्या करके उनके वरसे एक हजार पुत्र प्राप्त किये॥ १३॥

याज्ञवल्क्य इति ख्यातो गीतो वेदेषु वै मुनिः।
आराध्य स महादेवं प्राप्तवान् ज्ञानमुत्तमम्॥ १४

वेदव्यासस्तु यो नाम्ना प्राप्तवानतुलं यशः।
सोऽपि शङ्करमाराध्य त्रिकालज्ञानमाप्तवान्॥ १५

वेद जिनकी महिमाका गान करते हैं, उन महादेवकी आराधनाकर महर्षि याज्ञवल्क्यने उत्तम ज्ञान प्राप्त किया। जो [मुनिवर] वेदव्यास नामसे प्रसिद्ध हैं, उन्होंने भी शंकरकी आराधना करके अतुलनीय यश प्राप्त किया और वे त्रिकालज्ञ हुए॥ १४-१५॥

इन्द्रेण वालखिल्यास्ते परिभूतास्तु शङ्करात्।
लेभिरे सोमहर्तारं गरुडं सर्वदुर्जयम्॥ १६

आपः प्रनष्टाः सर्वाश्च पूर्वरोषात्कपर्दिनः।
शर्वं सप्तकपालेन देवैरिष्ट्वाः प्रवर्तिताः॥ १७

इन्द्रद्वारा अपमानित उन बालखिल्य महर्षियोंने सदाशिवसे सोमहर्ता तथा सभीसे दुर्जय गरुड़को प्राप्त किया। पूर्वकालमें शिवजीके क्रोधित हो जानेसे [घोर अनावृष्टिके कारण] सम्पूर्ण जल समाप्त हो गया, तब देवगणोंने सप्तकपाल यागके द्वारा शिवजीका यजनकर जलको पुनः प्रकट किया॥ १६-१७॥

अत्रेर्भार्या चानसूया त्रीणि वर्षशतानि च।
मुशलेषु निराहारा सुप्त्वा शर्वात्ततः सुतान्॥ १८

दत्तात्रेयं मुनिं लेभे चन्द्रं दुर्वाससं तथा।
गङ्गां प्रवर्तयामास चित्रकूटे पतिव्रता॥ १९

[महर्षि] अत्रिकी भार्या अनसूयाने तीन सौ वर्ष-पर्यन्त निराहार रहकर मुसलोंपर शयन करके शिवजीसे दत्तात्रेय, चन्द्रमा एवं दुर्वासा-जैसे पुत्र प्राप्त किये और उन पतिव्रताने चित्रकूटमें गंगाको प्रकट किया॥ १८-१९॥

विकर्णश्च महादेवं तथा भक्तसुखावहम्।
प्रसाद्य महतीं सिद्धिमाप्तवान् मधुसूदन॥ २०

हे मधुसूदन! विकर्णने भक्तोंको सुख देनेवाले महादेवको प्रसन्न करके बहुत बड़ी सिद्धि प्राप्त की॥ २०॥

चित्रसेनो नृपः शम्भुं प्रसाद्य दृढभक्तिमान्।
समस्तनृपभीतिभ्योऽभयं प्रापातुलं च कम्॥ २१

श्रीकरो गोपिकासूनुर्नृपपूजाविलोकनात्।
जातभक्तिर्महादेवे परमां सिद्धिमाप्तवान्॥ २२

[शिवमें] दृढ़ भक्तिसे युक्त राजा चित्रसेन (चन्द्रसेन)-ने शिवजीको प्रसन्न करके सम्पूर्ण राजाओंके भयसे मुक्त हो निर्भयता और अतुल सम्पत्ति प्राप्त की। राजाके द्वारा की जाती हुई पूजाको देखनेसे महादेवके प्रति उत्पन्न भक्तिवाले गोपिकापुत्र श्रीकरने परम सिद्धिको प्राप्त किया॥ २१-२२॥

चित्राङ्गदो नृपसुतः सीमन्तिन्याः पतिर्हरे।
शिवानुग्रहतो मग्नो यमुनायां मृतो न हि॥ २३

हे हरे! शिवके अनुग्रहसे सीमन्तिनीका पति चित्रांगद नामक राजपुत्र यमुनामें डूबनेपर भी नहीं मरा॥ २३॥

स च तक्षालयं गत्वा तन्मैत्रीं प्राप्य सुव्रतः।
आयातः स्वगृहं प्रीतो नानाधनसमन्वितः॥ २४

तक्षकके घर जाकर उससे मित्रता स्थापितकर उत्तम व्रतवाला वह अनेक धन-सम्पत्तिसे परिपूर्ण हो प्रसन्नतापूर्वक अपने घर लौट आया॥ २४॥

सीमंतिनी प्रिया तस्य सोमव्रतपरायणा।
शिवानुग्रहतः कृष्ण लेभे सौभाग्यमुत्तमम्॥ २५

हे कृष्ण! उसकी भार्या सीमन्तिनीने सोमवारका व्रतकर शिवके अनुग्रहसे उत्तम सौभाग्य प्राप्त किया॥ २५॥

तत्प्रभावाद् व्रते तस्मिन्नेको द्विजसुतः पुरा।
कश्चित्स्त्रीत्वं गतो लोभात्कृतदाराकृतिश्छलात्॥ २६

पूर्वकालमें उस व्रतमें निरत किसी ब्राह्मणपुत्रने लोभके वशीभूत हो छलसे स्त्रीका रूप धारण करनेके कारण उसके प्रभावसे स्त्रीत्वको प्राप्त कर लिया॥ २६॥

चञ्चुका पुंश्चली दुष्टा गोकर्णे द्विजतः पुरा।
श्रुत्वा धर्मकथां शम्भोर्भक्त्या प्राप परां गतिम्॥ २७

स्वस्त्र्यनुग्रहतः पापी बिंदुगो चञ्चुकापतिः।
श्रुत्वा शिवपुराणं च सद्गतिं प्राप शाङ्करीम्॥ २८

पूर्वकालमें गोकर्णक्षेत्रमें किसी दुष्टा चंचुका (चंचुला) नामक व्यभिचारिणी स्त्रीने किसी द्विजसे शिवजीकी धार्मिक कथाको भक्तिपूर्वक सुनकर परम गति प्राप्त की। चंचुकाके पापी पति बिन्दुगने भी अपनी पत्नीकी कृपासे शिवपुराण सुनकर उत्तम शिवलोकको प्राप्त किया॥ २७-२८॥

पिङ्गला गणिका ख्याता मदराह्वो द्विजाधमः।
शैवमृषभमभ्यर्च्य लेभाते सद्गतिं च तौ॥ २९

पिंगला नामक वेश्या और मदर नामक अधम ब्राह्मण—उन दोनोंने महादेव शिवजीकी आराधना करके उत्तम गति प्राप्त की॥ २९॥

महानन्दाभिधा काचिद्वेश्या शिवपदारता।
दृढात्पणात्सुप्रसाद्य शिवं लेभे च सद्गतिम्॥ ३०

कैकेयी द्विजबाला च सादराह्वा शिवव्रता।
परमं हि सुखं प्राप शिवेशव्रतधारणात्॥ ३१

महानन्दा नामक किसी वेश्याने शिवचरणोंमें तल्लीन होकर अपनी दृढ़ प्रतिज्ञासे शिवजीको भलीभाँति प्रसन्नकर सद्गति प्राप्त की। केकयदेशकी रहनेवाली शिवव्रता सादरा नामक विप्रकन्याने भगवान् शिवका व्रत धारण करनेसे परम सुख प्राप्त किया॥ ३०-३१॥

विमर्षणश्च नृपतिः शिवभक्तिं विधाय वै।
गतिं लेभे परां कृष्ण शिवानुग्रहतः पुरा॥ ३२

हे कृष्ण! पूर्वकालमें राजा विमर्षणने शिवभक्तिकर शिवके अनुग्रहसे श्रेष्ठ गति प्राप्त की॥ ३२॥

दुर्जनश्च नृपः पापी बहुस्त्रीलम्पटः खलः।
शिवभक्त्या शिवं प्राप निर्लिप्तः सर्वकर्मसु॥ ३३

अनेक स्त्रियोंमें आसक्त, पापी तथा दुष्ट, दुर्जन नामक राजाने शिवभक्तिके द्वारा सम्पूर्ण कर्मोंमें निर्लिप्त रहकर शिवको प्राप्त किया॥ ३३॥

सस्त्रीकः शम्बरो नाम्ना शङ्करश्च शिवव्रती।
चिताभस्मरतो भक्त्या लेभे तद्गतिमुत्तमाम्॥ ३४

सौमिनी नाम चाण्डाली संपूज्याज्ञानतो हि सा।
लेभे शैवीं गतिं कृष्ण शङ्करानुग्रहात्परात्॥ ३५

शिवव्रतपरायण शंबर नामक शैव भीलने अपनी स्त्रीसहित भक्तिभावसे चिताकी विभूतिका लेपकर उत्तम गतिको प्राप्त किया। हे कृष्ण! सौमिनी नामक चाण्डालीने अज्ञानसे पूजा करके महादेवकी परम कृपासे शिवगति प्राप्त की॥ ३४-३५॥

महाकालाभिधो व्याधः किरातः परहिंसकः।
समभ्यर्च्य शिवं भक्त्या लेभे सद्गतिमुत्तमाम्॥ ३६

दुर्वासा मुनिशार्दूलः शिवानुग्रहतः पुरा।
तस्तार स्वमतं लोके शिवभक्तिं विमुक्तिदाम्॥ ३७

दूसरोंकी हिंसा करनेवाले महाकाल नामक किरात-जातीय व्याधने भक्तिसे शिवपूजनकर उत्तम सद्गति प्राप्त की। पूर्वकालमें मुनिश्रेष्ठ दुर्वासाने शिवके अनुग्रहसे मुक्ति देनेवाली शिवभक्ति एवं अपने मतका लोकमें प्रचार किया॥ ३६-३७॥

कौशिकश्च समाराध्य शङ्करं लोकशङ्करम्।
ब्राह्मणोऽभूत्क्षत्रियश्च द्वितीय इव पद्मभूः॥ ३८

लोककल्याणकारी भगवान् सदाशिवकी आराधनाकर विश्वामित्रने क्षत्रिय होते हुए भी ब्राह्मणत्वको प्राप्त किया तथा दूसरे ब्रह्माके समान हो गये॥ ३८॥

शिवमभ्यर्च्य सद्भक्त्या विरञ्चिः शैवसत्तमः।
अभूत्सर्गकरः कृष्ण सर्वलोकपितामहः॥ ३९

हे कृष्ण! शिवभक्तोंमें श्रेष्ठ सर्वलोकपितामह ब्रह्माजी उत्तम भक्तिसे शिवकी पूजाकर सृष्टिकर्ता बन गये॥ ३९॥

मार्कण्डेयो मुनिवरश्चिरंजीवी महाप्रभुः।
शिवभक्तवरः श्रीमान् शिवानुग्रहतो हरे॥ ४०
देवेन्द्रो हि महाशैवस्त्रैलोक्यं बुभुजे पुरा।
शिवानुग्रहतः कृष्ण सर्वदेवाधिपः प्रभुः॥ ४१
बलिपुत्रो महाशैवः शिवानुग्रहतो वशी।
बाणो बभूव ब्रह्माण्डनायकः सकलेश्वरः॥ ४२

हे हरे! शिवभक्तोंमें श्रेष्ठ श्रीमान् मुनिवर मार्कण्डेय शिवजीकी कृपासे महाप्रभुतासम्पन्न एवं चिरंजीवी हुए। हे कृष्ण! सभी देवताओंके स्वामी महान् शिवभक्त और प्रभुतासम्पन्न देवेन्द्रने पूर्व समयमें शिवके अनुग्रहसे त्रैलोक्यका उपभोग किया॥ ४०-४१॥

महाशैव तथा जितेन्द्रिय बलिपुत्र बाणासुर शिवजीकी कृपासे सबका स्वामी एवं ब्रह्माण्डका नायक हुआ॥ ४२॥

हरिः शक्तिश्च सद्भक्त्या दधीचश्च महेश्वरः।
शिवानुग्रहतोऽभूवंस्तथा रामो हि शाङ्करः॥ ४३
कणादो भार्गवश्चैव गुरुर्गौतम एव च।
शिवभक्त्या बभूवुस्ते महाप्रभव ईश्वराः॥ ४४

विष्णु, [महर्षि] शक्ति, महान् सामर्थ्यवाले दधीचि एवं श्रीराम भी शिवके अनुग्रहसे महाशैव हुए॥ ४३॥

कणाद, भार्गव, गुरु बृहस्पति, गौतम—ये सभी शिवकी भक्तिसे महाप्रभुतासम्पन्न और ऐश्वर्यशाली हुए॥ ४४॥

शाकल्यः शंसितात्मा च नववर्षशतान्यपि।
भवमाराधयामास मनोयज्ञेन माधव॥ ४५
तुतोष भगवानाह ग्रन्थकर्ता भविष्यसि।
वत्साक्षया च ते कीर्तिस्त्रैलोक्ये प्रभविष्यति॥ ४६
अक्षयं च कुलं तेऽस्तु महर्षिभिरलंकृतम्।
भविष्यति ऋषिश्रेष्ठ सूत्रकर्ता सुतस्तव॥ ४७

हे माधव! प्रशंसनीय आत्मावाले शाकल्य ऋषिने नौ सौ वर्षपर्यन्त मानसयज्ञसे शिवकी आराधना की। तब भगवान् शिव प्रसन्न हो गये और बोले—हे वत्स! तुम ग्रन्थकार होओगे, तीनों लोकोंमें तुम्हारी अक्षय कीर्ति होगी और तुम्हारा वंश अक्षय तथा महर्षियोंसे अलंकृत होगा। हे ऋषिश्रेष्ठ! तुम्हारा पुत्र सूत्रकार बनेगा॥ ४५—४७॥

इत्येवं शङ्करात्प्राप वरं मुनिवरः स वै।
त्रैलोक्ये विततश्चासीत्पूज्यश्च यदुनन्दन॥ ४८

हे यदुनन्दन! इस प्रकार उन मुनिश्रेष्ठने शिवसे वरदान प्राप्त किया और वे त्रैलोक्यमें प्रख्यात तथा पूजनीय हुए॥ ४८॥

सावर्णिरिति विख्यात ऋषिरासीत्कृते युगे।
इह तेन तपस्तप्तं षष्टिवर्षशतानि च॥ ४९
तमाह भगवान् रुद्रः साक्षात्तुष्टोऽस्मि तेऽनघ।
ग्रंथकृल्लोकविख्यातो भवितास्यजरामरः॥ ५०
एवंविधो महादेवः पुण्यपूर्वतरैस्ततः।
समर्चितः शुभान् कामान् प्रददाति यथेप्सितान्॥ ५१
एकेनैव मुखेनाहं वक्तुं भगवतो गुणाः।
ये संति तान्न शक्नोमि ह्यपि वर्षशतैरपि॥ ५२

सत्ययुगमें सावर्णि इस नामसे प्रसिद्ध एक ऋषि हुए, जिन्होंने इसी स्थानपर छः हजार वर्षपर्यन्त तप किया। तब साक्षात् भगवान् रुद्रने उनसे कहा—हे अनघ! मैं तुमसे सन्तुष्ट हूँ, तुम लोकविख्यात ग्रन्थकर्ता और अजर-अमर होओगे॥ ४९-५०॥

इस प्रकार पूर्वजन्मके पुण्योंसे समर्चित हुए महादेव यथेच्छ शुभ कामनाओंको प्रदान करते हैं। [हे कृष्ण!] भगवान् शिवके जो गुण हैं, उनका वर्णन मैं एक मुखसे तो सैकड़ों वर्षोंमें भी नहीं कर सकता हूँ॥ ५१-५२॥

इति श्रीशिवमहापुराणे पञ्चम्यामुमासंहितायां सनत्कुमारव्याससंवादे उपमन्यूपदेशो नाम द्वितीयोऽध्यायः॥ २॥

॥ इस प्रकार श्रीशिवमहापुराणके अन्तर्गत पाँचवीं उमासंहितामें उपमन्यूपदेश नामक दूसरा अध्याय पूर्ण हुआ॥ २॥

अथ तृतीयोऽध्याय:

श्रीकृष्णकी तपस्या तथा शिव-पार्वतीसे वरदानकी प्राप्ति, अन्य शिवभक्तोंका वर्णन

सनत्कुमार उवाच

एतच्छ्रुत्वा वचस्तस्य सोऽब्रवीत्तं महामुनिम्।
विस्मयं परमं गत्वोपमन्युं शान्तमानसम्॥ १

वासुदेव उवाच

धन्यस्त्वमसि विप्रेन्द्र कस्त्वां स्तोतुमलं कृती।
यस्य देवादिदेवस्ते सान्निध्यं कुरुते श्रमे॥ २

दर्शनं मुनिशार्दूल दद्यात्स भगवान् शिवः।
अपि तावन्ममाप्येवं प्रसादं वा करोत्वसौ॥ ३

उपमन्युरुवाच

अचिरेणैव कालेन महादेवं न संशयः।
तस्यैव कृपया त्वं वै द्रक्ष्यसे पुरुषोत्तम॥ ४

षोडशे मासि सुवरान् प्राप्स्यसि त्वं महेश्वरात्।
सपत्नीकात्कथं नो दास्यते देवो वरान्हरे॥ ५

पूज्योऽसि दैवतैः सर्वैः श्लाघनीयः सदा गुणैः।
जाप्यं तेऽहं प्रवक्ष्यामि श्रद्दधानाय चाच्युत॥ ६

तेन जपप्रभावेण सत्यं द्रक्ष्यसि शङ्करम्।
आत्मतुल्यबलं पुत्रं लभिष्यसि महेश्वरात्॥ ७

जपो नमः शिवायेति मन्त्रराजमिमं हरे।
सर्वकामप्रदं दिव्यं भुक्तिमुक्तिप्रदायकम्॥ ८

सनत्कुमार उवाच

एवं कथयतस्तस्य महादेवाश्रिताः कथाः।
दिनान्यष्टौ प्रयातानि मुहूर्तमिव तापस॥ ९

नवमे तु दिने प्राप्ते मुनिना स च दीक्षितः।
मन्त्रमध्यापितं शार्वमाथर्वशिरसं महत्॥ १०

दण्डी मुण्डी च सद्योऽसौ बभूव सुसमाहितः।
पादाङ्गुष्ठोद्धृततनुस्तेपे चोर्ध्वभुजस्तथा॥ ११

संप्राप्ते षोडशे मासि सन्तुष्टः परमेश्वरः।
पार्वत्या सहितः शंभुर्ददौ कृष्णाय दर्शनम्॥ १२

सनत्कुमार बोले—उनकी यह बात सुनकर श्रीकृष्णने अति विस्मित होकर शान्तचित्त उन महामुनिसे कहा—॥ १॥

वासुदेव बोले—हे विप्रेन्द्र! आप धन्य हैं, आप [विशुद्धात्मा]-की स्तुति करनेमें कौन समर्थ हो सकता है, जिन आपके आश्रममें देवताओंके आदिदेव निवास करते हैं। हे मुनिश्रेष्ठ! वे भगवान् सदाशिव मुझे भी जिस प्रकार दर्शन दें तथा मुझपर कृपा करें, आप ऐसा उपाय बतायें॥ २-३॥

उपमन्यु बोले—हे पुरुषोत्तम! आप थोड़े ही समयमें महादेवका दर्शन उन्हींकी कृपासे प्राप्त करेंगे, इसमें सन्देह नहीं है॥ ४॥

आप सोलहवें महीनेमें पार्वतीसहित सदाशिवसे उत्तम वरदान प्राप्त करेंगे। हे हरे! वे प्रभु शिव आपको वरदान क्यों नहीं देंगे, आप सभी देवगणोंसे पूजायोग्य एवं सर्वदा गुणोंके कारण प्रशंसनीय हैं, हे अच्युत! मैं आप श्रद्धालुको जपनीय मन्त्र बताऊँगा॥ ५-६॥

उस जपके प्रभावसे आप निश्चय ही शिवका दर्शन प्राप्त कर लेंगे और महेश्वरसे अपने समान ही बलवाला पुत्र प्राप्त करेंगे॥ ७॥

हे हरे! '**ॐ नमः शिवाय**' इस दिव्य मन्त्रराजका जप सम्पूर्ण कामनाओंको देनेवाला एवं भोग और मोक्षको प्रदान करनेवाला है॥ ८॥

सनत्कुमार बोले—हे तापस! इस प्रकार महादेवसम्बन्धी कथाओंको कहते हुए उन [उपमन्यु]-के आठ दिन एक मुहूर्तके समान बीत गये॥ ९॥

[उसके अनन्तर] नौवाँ दिन आनेपर मुनि उपमन्युने उन श्रीकृष्णको दीक्षा प्रदान की और शिव-अथर्वशीर्षका महामन्त्र उन्हें बताया॥ १०॥

वे शीघ्र ही सिर मुड़ाकर दण्डधारी हो गये और एकाग्रचित्त होकर ऊपर भुजा उठाये पैरके एक अँगूठेपर खड़े होकर तप करने लगे॥ ११॥

इसके बाद सोलहवाँ महीना आनेपर प्रसन्न होकर पार्वतीसहित परमेश्वर शम्भुने कृष्णको दर्शन दिया॥ १२॥

पार्वत्या सहितं देवं त्रिनेत्रं चन्द्रशेखरम्।
ब्रह्माद्यैः स्तूयमानं तु पूजितं सिद्धकोटिभिः॥ १३

दिव्यमाल्याम्बरधरं भक्तिनम्रैः सुरासुरैः।
प्रणतं च विशेषेण नानाभूषणभूषितम्॥ १४

सर्वाश्चर्यमयं कान्तं महेशमजमव्ययम्।
नानागणान्वितं तुष्टं पुत्राभ्यां संयुतं प्रभुम्॥ १५

श्रीकृष्णः प्राञ्जलिर्दृष्ट्वा विस्मयोत्फुल्ललोचनः।
ईदृशं शङ्करं प्रीतः प्रणनाम महोत्सवः॥ १६

नानाविधैः स्तुतिपदैर्वाङ्मयेनार्चयत्तदा।
सहस्रनाम्ना देवेशं तुष्टाव नतकंधरः॥ १७

तीन नेत्रवाले, चन्द्रमाको मस्तकपर धारण किये, ब्रह्मा आदिसे स्तुति किये जाते हुए, करोड़ों सिद्धजनोंसे पूजित, दिव्य माला तथा वस्त्र धारण किये हुए, भक्तिसे विनम्र देवताओं एवं असुरोंसे नमस्कृत, अनेक आभूषणोंसे विभूषित, सम्पूर्ण आश्चर्यसे परिपूर्ण, कान्तिमान्, अनेक गणों तथा दोनों पुत्रोंसे युक्त एवं अति प्रसन्न पार्वतीसहित ऐसे अजन्मा-अविनाशी-प्रभु भगवान् महेश्वरको देखकर विस्मयसे प्रफुल्लित नेत्रोंवाले तथा परम उत्साहसे युक्त श्रीकृष्णने हाथ जोड़कर प्रसन्न होकर शंकरजीको प्रणाम किया। उन्होंने शास्त्रविधिसे उनकी पूजा की और सिर झुकाकर अनेकविध स्तोत्ररूप वाचिक उपचारसे तथा सहस्रनामसे देवेश्वरकी स्तुति की॥ १३—१७॥

ततो देवाः सगंधर्वा विद्याधरमहोरगाः।
मुमुचुः पुष्पवृष्टिं च साधुवादान् मनोनुगान्॥ १८

पार्वत्याश्च मुखं दृष्ट्वा भगवान् भक्तवत्सलः।
उवाच केशवं तुष्टो रुद्रश्चाथ महेश्वरः॥ १९

उसके अनन्तर गन्धर्वोंके सहित देवताओं, विद्याधरों एवं महानागोंने श्रीकृष्णपर पुष्पवृष्टिकर उन्हें मनोनुकूल साधुवाद प्रदान किया। उसके बाद भक्तवत्सल भगवान् महेश्वर रुद्रने पार्वतीके मुखकी ओर देखकर प्रसन्न होकर कृष्णसे कहा—॥ १८-१९॥

श्रीमहादेव उवाच

कृष्ण जानामि भक्तं त्वां मयि नित्यं दृढव्रतम्।
वृणीष्व त्वं वरान् मत्तः पुण्यांस्त्रैलोक्यदुर्लभान्॥ २०

श्रीमहादेव बोले—हे कृष्ण! मेरे प्रति दृढ़व्रतवाले आप भक्तको मैं जानता हूँ, अतः आप तीनों लोकोंमें दुर्लभ एवं पवित्र वरोंको मुझसे माँग लीजिये॥ २०॥

सनत्कुमार उवाच

तस्य तद्वचनं श्रुत्वा कृष्णः प्राञ्जलिरादरात्।
प्राह सर्वेश्वरं शम्भुं सुप्रणम्य पुनः पुनः॥ २१

सनत्कुमार बोले—उनके उस वचनको सुनकर श्रीकृष्णने हाथ जोड़कर आदरसहित सर्वेश्वर शिवको बार-बार प्रणाम करके उनसे कहा—॥ २१॥

श्रीकृष्ण उवाच

देवदेव महादेव याचेऽहं ह्युत्तमान् वरान्।
त्वत्तोऽष्टप्रमितान्नाथ त्वयोद्दिष्टान् महेश्वर॥ २२

तव धर्मे मतिर्नित्यं यशश्चाप्रचलं महत्।
त्वत्सामीप्यं स्थिरा भक्तिस्त्वयि नित्यं ममास्त्विति॥ २३

स्त्रीणां मम दशाद्यानां पुत्राः शम्भो भवन्तु वै।
वध्याश्च रिपवः सर्वे संग्रामे बलदर्पिताः॥ २४

अपमानो भवेन्नैव क्वचिन्मे शत्रुतः प्रभो।
योगिनामपि सर्वेषां भवेयमतिवल्लभः॥ २५

इत्यष्टौ सुवरान्देहि देवदेव नमोऽस्तु ते।
सर्वेश्वरस्त्वमेवासि मत्प्रभुश्च विशेषतः॥ २६

श्रीकृष्ण बोले—हे देवदेव! हे महादेव! हे नाथ! हे महेश्वर! मैं आपके द्वारा कहे गये अत्युत्तम आठ वरोंको आपसे माँगता हूँ। मेरी बुद्धि सदा शिवधर्ममें लगी रहे, मेरा यश सदा अधिक तथा अविचल रहे, मुझे आपका सामीप्य सदा प्राप्त हो और निरन्तर आपमें मेरी भक्ति बनी रहे। हे शम्भो! मेरी प्रमुख पत्नियोंके दस-दस पुत्र उत्पन्न हों और संग्राममें मैं समस्त बलाभिमानी शत्रुओंका वध करनेमें समर्थ होऊँ। हे प्रभो! शत्रुओंसे कभी मेरा अपमान न हो और मैं सभी योगियोंका भी अत्यन्त प्रिय होऊँ, हे देवाधिदेव! मुझे ये आठ उत्तम वर प्रदान कीजिये, आपको नमस्कार है। आप सर्वेश्वर हैं और विशेष रूपसे मेरे प्रभु हैं॥ २२—२६॥

सनत्कुमार उवाच

तस्य तद्वचनं श्रुत्वा तमाह भगवान् भवः।
सर्वं भविष्यतीत्येवं पुनः तं प्राह शूलधृक्॥ २७

सनत्कुमार बोले—उनका यह वचन सुनकर भगवान् शिवने उनसे कहा—यह सब [पूर्ण] होगा। शिवजीने उनसे पुनः कहा॥ २७॥

साम्बो नाम महावीर्यः पुत्रस्ते भविता बली।
घोरसंवर्तकादित्यः शप्तो मुनिभिरेव च॥ २८
मानुषो भवितासीति स ते पुत्रो भविष्यति।
यद्यच्च प्रार्थितं किञ्चित्तत्तत्सर्वं लभस्व वै॥ २९

आपका साम्ब नामक एक महाबलवान् पुत्र होगा। पूर्व समयमें मुनिलोगोंने घोर संवर्तकादित्यको शाप दिया था कि तुम मनुष्यरूप धारण करोगे, इस प्रकार वे ही संवर्तकादित्य आपके पुत्र होंगे। आपने जो कुछ भी माँगा है,वह सब आपको प्राप्त हो॥ २८-२९॥

सनत्कुमार उवाच

एवं लब्ध्वा वरान् सर्वान् श्रीकृष्णः परमेश्वरात्।
नानाविधाभिर्बह्वीभिः स्तुतिभिः समतोषयत्॥ ३०
तमाहाथ शिवा तुष्टा पार्वती भक्तवत्सला।
वासुदेवं महात्मानं शंभुभक्तं तपस्विनम्॥ ३१

सनत्कुमार बोले—इस प्रकार परमेश्वरसे समस्त वर प्राप्तकर श्रीकृष्णने अनेक प्रकारकी बहुत-सी स्तुतियोंसे उन्हें प्रसन्न किया। उसके बाद सन्तुष्ट हुई भक्तवत्सला शिवा पार्वतीने उन महात्मा शिवभक्त महातपस्वी वासुदेवसे कहा— ॥ ३०-३१॥

पार्वत्युवाच

वासुदेव महाबुद्धे कृष्ण तुष्टास्मि तेऽनघ।
गृहाण मत्तश्च वरान् मनोज्ञान् भुवि दुर्लभान्॥ ३२

पार्वती बोलीं—हे वासुदेव! हे महाबुद्धे! हे कृष्ण! हे अनघ! मैं आपसे प्रसन्न हूँ, अब आप पृथ्वीपर सर्वथा दुर्लभ तथा सुन्दर वरोंको मुझसे प्राप्त करें॥ ३२॥

सनत्कुमार उवाच

इत्याकर्ण्य वचस्तस्याः पार्वत्याः स यदूद्वहः।
उवाच सुप्रसन्नात्मा भक्तियुक्तेन चेतसा॥ ३३

सनत्कुमार बोले—उन पार्वतीका यह वचन सुनकर उन श्रीकृष्णने अतिप्रसन्नचित्त होकर भक्तियुक्त मनसे उनसे कहा— ॥ ३३॥

श्रीकृष्ण उवाच

देवि त्वं परितुष्टासि चेद्ददासि वरान्हि मे।
तपसानेन सत्येन ब्राह्मणान् प्रति मास्मभूत्॥ ३४
द्वेषः कदाचिद्भद्रं तु पूजयेयं द्विजान् सदा।
तुष्टौ च मातापितरौ भवेतां मम सर्वदा॥ ३५
सर्वभूतेष्वानुकूल्यं भजेयं यत्र तत्रगः।
कुले प्रसूतिरुचिता ममास्तु तव दर्शनात्॥ ३६
तर्पयेयं सुरेन्द्रादीन्देवान् यज्ञशतेन तु।
यतीनामतिथीनां च सहस्राण्यथ सर्वदा॥ ३७
भोजयेयं सदा गेहे श्रद्धापूतं तु भोजनम्।
बांधवैः सह प्रीतिस्तु नित्यमस्तु सुनिर्वृतिः॥ ३८
देवि भार्यासहस्राणां भवेयं प्राणवल्लभः।
अक्षीणा काम्यता तासु प्रसादात्तव शाङ्करि॥ ३९
आसां च पितरो लोके भवेयुः सत्यवादिनः।
इत्याद्याः सुवराः सन्तु प्रसादात्तव पार्वति॥ ४०

श्रीकृष्ण बोले—हे देवि! यदि आप [मुझपर] प्रसन्न हैं और मेरे इस सत्यतपसे वरदान देना चाहती हैं तो [मुझे यही वरदान दीजिये कि] मुझे ब्राह्मणोंसे कभी द्वेष न हो, मेरा कल्याण हो और मैं सदा ब्राह्मणोंकी पूजा करता रहूँ, मेरे माता-पिता सदा मुझपर प्रसन्न रहें, मैं जहाँ कहीं भी जाऊँ, वहाँ मैं सभी प्राणियोंके प्रति अनुकूलता रखूँ। आपके दर्शनके कारण अच्छे कुलमें मेरा जन्म हो, इन्द्र आदि देवगणोंको सैकड़ों यज्ञोंके द्वारा तृप्त करता रहूँ, हजारों यतियों तथा अतिथियोंको सदा अपने घरपर श्रद्धासे पवित्र भोजन कराता रहूँ, अपने बान्धवजनोंके साथ मेरी प्रीति रहे तथा मैं सदा सुखी रहूँ। हे देवि! मैं अपनी हजारों स्त्रियोंका प्राणप्रिय बना रहूँ और हे शांकरि! आपकी कृपासे उनमें मेरी अक्षीण प्रीति रहे। उनके माता-पिता लोकमें सत्यवादी रहें। हे पार्वति! ये सुन्दर वर आपकी कृपासे मुझे प्राप्त हों॥ ३४—४०॥

सनत्कुमार उवाच

तस्य तद्वचनं श्रुत्वा देवी तं चाह विस्मिता।
एवमस्त्विति भद्रं ते शाश्वती सर्वकामदा॥ ४१
तस्मिंस्तांश्च वरान् दत्त्वा पार्वतीपरमेश्वरौ।
तत्रैवान्तश्च दधतुः कृत्वा कृष्णस्य सत्कृपाम्॥ ४२

सनत्कुमार बोले—उनके इस वचनको सुनकर सभी कामनाओंको पूर्ण करनेवाली सनातनी देवीने विस्मित होकर कहा—ऐसा ही हो॥ ४१॥

इस प्रकार श्रीकृष्णपर सत्कृपा करके उन्हें उन वरोंको देकर शिव-पार्वती वहीं अन्तर्हित हो गये॥ ४२॥

कृष्णः कृतार्थमात्मानममन्यत मुनीश्वर।
उपमन्योर्मुनेराशु प्रापाश्रममनुत्तमम्॥ ४३
प्रणम्य शिरसा तत्र तं मुनिं केशिहा ततः।
तथा वृत्तं च तस्मै तत् समाचष्टोपमन्यवे॥ ४४

हे मुनीश्वर! श्रीकृष्ण अपनेको कृतार्थ समझने लगे, तदनन्तर वे शीघ्रताके साथ महर्षि उपमन्युके श्रेष्ठ आश्रममें गये। वहाँपर उन मुनिको नतमस्तक हो प्रणामकर केशिहा (केशी दैत्यका वध करनेवाले) कृष्णने उन उपमन्युसे उस वृत्तान्तको बताया— ॥ ४३-४४॥

स च तं प्राह कोऽन्यः स्याच्छर्वाद्देवाज्जनार्दन।
महादानपतिर्लोके क्रोधे वातीव दुःसहः॥ ४५

तब उन्होंने उनसे कहा—हे जनार्दन! लोकमें उन प्रभु सदाशिवसे बढ़कर महादानपति तथा क्रोधके करनेमें अतिशय दुःसह कौन हो सकता है?॥ ४५॥

ज्ञाने तपसि वा शौर्ये स्थैर्ये वा पद एव च।
शृणु शंभोस्तु गोविन्द देवैश्वर्यं महायशाः॥ ४६
तच्छ्रुत्वा श्रद्धया युक्तोऽभवच्छंभोस्तु भक्तिमान्।
पप्रच्छ शिवमाहात्म्यं स तं प्राह मुनीश्वरः॥ ४७

ज्ञान, तपस्या, शूरता, स्थिरता तथा पदमें भी उनसे अधिक कौन हो सकता है? हे गोविन्द! हे महायशस्वी! अब आप शिवजीके ऐश्वर्यको सुनें। यह सुनकर वे श्रद्धासम्पन्न एवं शिवभक्तिपरायण हो शिवके माहात्म्यको पूछने लगे। तब मुनीश्वरने उनसे कहा— ॥ ४६-४७॥

उपमन्युरुवाच

भगवान् शङ्करः पूर्वं ब्रह्मलोके महात्मना।
स्तुतो नामसहस्रेण तण्डिना ब्रह्मयोगिना॥ ४८

उपमन्यु बोले—पूर्व समयमें ब्रह्मलोकमें ब्रह्मयोगी महात्मा तण्डीने शिवसहस्रनामसे भगवान् शिवकी स्तुति की थी॥ ४८॥

सांख्याः पठन्ति तद्गीतं विस्तीर्णं च निघंटुवत्।
दुर्ज्ञानं मानुषाणां तु स्तोत्रं तत्सर्वकामदम्॥ ४९
स्मरन्नित्यं शङ्करं त्वं गच्छ कृष्ण गृहं सुखी।
भविष्यसि सदा तात शिवभक्तगणाग्रणीः॥ ५०

निघण्टुके समान विस्तृत [अभिप्रायवाले तथा महात्मा तण्डिके द्वारा] गाये गये उस स्तोत्रका सांख्यवेत्ता पारायण करते हैं, मनुष्योंके लिये दुर्ज्ञेय वह स्तोत्र सम्पूर्ण कामनाओंको पूर्ण करनेवाला है। हे कृष्ण! आप शिवका स्मरण करते हुए सुखपूर्वक घर जाइये। हे तात! आप शिवके भक्तोंमें सदा अग्रणी रहेंगे॥ ४९-५०॥

इत्युक्तस्तं नमस्कृत्य वासुदेवो मुनीश्वरम्।
मनसा संस्मरन् शम्भुं केशवो द्वारकां ययौ॥ ५१

उनके ऐसा कहनेपर वासुदेव श्रीकृष्ण उन मुनीश्वर महर्षिको नमस्कार करके मनसे शिवका स्मरण करते हुए द्वारका चले गये॥ ५१॥

सनत्कुमार उवाच

एवं कृष्णः समाराध्य शङ्करं लोकशङ्करम्।
कृतार्थोऽभून्मुनिश्रेष्ठ सर्वाजेयोऽभवत्तथा॥ ५२
तथा दाशरथी रामः शिवमाराध्य भक्तितः।
कृतार्थोऽभून्मुनिश्रेष्ठ विजयी सर्वतोऽभवत्॥ ५३

सनत्कुमार बोले—हे मुनिश्रेष्ठ! इस प्रकार संसारका कल्याण करनेवाले शिवजीकी आराधनाकर श्रीकृष्ण कृतार्थ हुए और सभीसे अजेय हो गये॥ ५२॥

हे मुनिश्रेष्ठ! इसी तरह दशरथपुत्र श्रीराम भी भक्तिके साथ शिवकी आराधना करके कृतकृत्य हुए और सभीसे अजेय हो गये॥ ५३॥

तपस्तत्त्वातिविपुलं पुरा रामो गिरौ मुने।
शिवाद्धनुः शरं चापं ज्ञानं वै परमुत्तमम्॥ ५४
रावणं सगणं हत्वा सेतुं बद्ध्वाम्भसां निधौ।
सीतां प्राप्य गृहं यातो बुभुजे निखिलां महीम्॥ ५५

हे मुने! पहले श्रीरामने पर्वतपर अतिशय तप करके शिवजीसे अत्युत्तम ज्ञान और धनुष-बाण प्राप्त किया था। तत्पश्चात् वे समुद्रपर पुल बाँधकर सपरिवार रावणका वधकर जानकीको साथ लेकर घर लौटे और सम्पूर्ण पृथ्वीका शासन करने लगे॥ ५४-५५॥

तथा च भार्गवो रामो ह्याराध्य तपसा विभुम्।
निरीक्ष्य दुःखितः शर्वात्पितरं क्षत्रियैर्हतम्॥ ५६
तीक्ष्णं स परशुं लेभे निर्ददाह च तेन तान्।
त्रिःसप्तकृत्वः क्षत्रांश्च प्रसन्नात्परमेश्वरात्॥ ५७

इसी प्रकार क्षत्रियोंके द्वारा मारे गये अपने पिताको देखकर दुखी होकर भृगुपुत्र परशुरामने तपस्याके द्वारा शिवकी आराधना करके प्रसन्न हुए परमेश्वर शिवसे तीक्ष्ण परशुको प्राप्त किया और उससे इक्कीस बार उन क्षत्रियोंका संहार किया॥ ५६-५७॥

अजेयश्चामरश्चैव सोऽद्यापि तपसां निधिः।
लिङ्गार्चनरतो नित्यं दृश्यते सिद्धचारणैः॥ ५८

वे महातपस्वी [परशुराम] अजेय और अमर हैं। वे आज भी सिद्ध और चारणोंके साथ शिवलिंगका पूजन करते हुए देखे जाते हैं॥ ५८॥

महेन्द्रपर्वते रामः स्थितस्तपसि तिष्ठति।
कल्पान्ते पुनरेवासावृषिस्थानमवाप्स्यति॥ ५९
असितस्यानुजः पूर्वं पीडया कृतवांस्तपः।
मूलग्राहेण विश्वस्य देवलो नाम तापसः॥ ६०

वे परशुराम [इस समय भी] महेन्द्रपर्वतपर स्थित रहकर तपस्यामें रत हैं। कल्पका अन्त होनेपर वे पुनः ऋषिस्थान प्राप्त करेंगे। महर्षि असितके अनुज देवल नामक तपस्वीने अपने भाईके द्वारा सर्वस्व अपहरणके बाद दुखी होकर शिवकी आराधना की थी॥ ५९-६०॥

पुरन्दरेण शप्तस्तु तपस्वी यश्च सुस्थिरम्।
अधर्म्यं धर्ममलभल्लिङ्गमाराध्य कामदम्॥ ६१

अधर्मयुक्त कार्य करनेपर इन्द्रके द्वारा शापित किसी तपस्वीने कामनाकी पूर्ति करनेवाले शिवलिंगकी आराधना करके सुस्थिर धर्मकी प्राप्ति की थी॥ ६१॥

चाक्षुषस्य मनोः पुत्रो मृगोऽभूत्तु मरुस्थले।
वसिष्ठशापाद् गृत्समदो दण्डकारण्य एकलः॥ ६२
हृदये संस्मरन् भक्त्या प्रणवेन युतं शिवम्।
तस्मान्मृत्युमुखाकारो गणो मृगमुखोऽभवत्॥ ६३

चाक्षुष मनुका पुत्र गृत्समद वसिष्ठके शापसे दण्डकारण्यके मरुस्थलमें [क्रूर] पशु हुआ और अपने मनमें प्रणवयुक्त शिवमन्त्रका भक्तिपूर्वक स्मरण करता हुआ अकेले घूमा करता था, [वह भगवान् शिवकी कृपासे] मृत्युके समान मुखाकृतिवाला मृगमुख नामक शिवका गण हुआ॥ ६२-६३॥

अजरामरतां नीतस्तीर्त्वा शापं पुनश्च सः।
शङ्करेण कृतः प्रीत्या नित्यं लम्बोदरानुगः॥ ६४

इस प्रकार शिवने प्रेमपूर्वक उसके शापको दूरकर उसे अजर-अमर कर दिया और गणेशजीका अनुगामी बना दिया॥ ६४॥

गार्ग्याय प्रददौ शर्वो मोक्षं च भुवि दुर्लभम्।
कामचारी महाक्षेत्रं कालज्ञानं महर्द्धिमत्॥ ६५
चतुष्पादं सरस्वत्याः पारगत्वं च शाश्वतम्।
न तुल्यं च सहस्रं तु पुत्राणां प्रददौ शिवः॥ ६६

स्वेच्छासे विचरण करनेवाले सदाशिवने गार्ग्यको भूलोकमें दुर्लभ मोक्ष, महासमृद्धिसम्पन्न महाक्षेत्र, कालज्ञान, धर्मादि चारों पदार्थ प्रदान किये तथा सदाके लिये भगवती भारतीका पारंगत विद्वान् बनाया। शिवजीने उन्हें अतुलनीय हजार पुत्रोंकी प्राप्तिका वरदान भी दिया॥ ६५-६६॥

वेदव्यासं तु योगीन्द्रं पुत्रं तुष्टः पिनाकधृक्।
पराशराय च ददौ जरामृत्युविवर्जितम्॥ ६७

सन्तुष्ट हुए पिनाकधारी शिवने पराशरको जरा-मरणरहित वेदव्यास नामक योगीश्वर पुत्र प्रदान

मांडव्यः शङ्करेणैव जीवं दत्त्वा विसर्जितः।
वर्षाणां दश लक्षाणि शूलाग्रादवरोपितः॥ ६८

किया। शिवजीने शूलके अग्रभागपर दस लाख वर्षोंसे चढ़े हुए माण्डव्य ऋषिको जीवनदान देकर मुक्त किया॥ ६७-६८॥

दरिद्रो ब्राह्मणः कश्चिन्निक्षिप्य गुरुवेश्मनि।
पुत्रं तु गालवं यश्च पूर्वमासीद् गृहाश्रमी॥ ६९

गुप्तो वा मुनिशालायां भिक्षुरायाति तद्गृहम्।
भार्यामुवाच यः कश्चिदवश्यं निर्धनो यतः॥ ७०

स तु वाच्यो भवत्या च न दृश्यन्त इति प्रियः।
अतिथेरागतस्यापि किं दास्यामि गृहे वसन्॥ ७१

पूर्व समयमें कोई निर्धन गृहस्थ ब्राह्मण अपने पुत्र गालवको गुरुके घरमें रखकर मुनियोंके आश्रममें छिप गया। उसके घरपर भिक्षुक आते-जाते रहते थे। धनहीन होनेके कारण उस ब्राह्मणने अपनी स्त्रीसे कह दिया था कि जो कोई भिक्षुक आये, उससे तुम कह दिया करो कि मेरे पति घरपर दिखायी नहीं देते हैं; क्योंकि आये हुए अतिथिको मैं गृहस्थ होते हुए भी क्या प्रदान करूँ?॥ ६९—७१॥

कदाचिदतिथिः कश्चित्क्षुत्तृषाक्षामतर्षितः।
तामुवाच स भर्ता ते क्व गतश्चेति तं च सा॥ ७२

प्राह भर्ता मदीयस्तु सांप्रतं न च दृश्यते।
स ऋषिस्तामुवाचेदं ज्ञात्वा दिव्येन चक्षुषा॥ ७३

इसके बाद किसी समय भूख और प्याससे दुर्बल और अतिशय व्याकुल कोई अतिथि पहुँचा, उसने उस ब्राह्मणीसे पूछा कि तुम्हारा पति कहाँ गया है? तब उस ब्राह्मणीने उससे कहा कि मेरे पति तो इस समय दिखायी ही नहीं दे रहे हैं। इसके बाद दिव्य दृष्टिसे उसको देखकर भिक्षुकरूप महर्षिने उससे यह कहा—तुम्हारा पति घरमें कहीं छिपकर बैठा हुआ है और [उसके ऐसा कहते ही] वह ब्राह्मण वहींपर मर गया॥ ७२-७३॥

गृहस्थितः प्रतिच्छन्नस्तत्रैव स मृतो द्विजः।
विश्वामित्राभ्यनुज्ञातस्तत्पुत्रो गालवस्तथा॥ ७४

गृहमागत्य मातुः स श्रुत्वा शापं सुदारुणम्।
आराध्य शङ्करं देवं पूजां कृत्वा तु शाम्भवीम्॥ ७५

गृहादसौ विनिष्क्रान्तः संस्मरन् शङ्करं हृदा।
अथ तं तनयं दृष्ट्वा पिता तं प्राह साञ्जलिम्॥ ७६

महादेवप्रसादाच्च कृतकृत्योऽस्मि कृत्यतः।
धनवान् पुत्रवांश्चैव मृतोऽहं जीवितः पुनः॥ ७७

तत्पश्चात् विश्वामित्रसे सभी वृत्तान्त जानकर उसका पुत्र गालव अपने घर आया और मातासे दारुण शापकी बात जानकर उसने शैव विधानके अनुसार पूजा करते हुए शिवजीकी आराधना की। [तब शिवजीकी कृपासे जीवित हुआ उसका पिता] मनमें शंकरजीका स्मरण करता हुआ घरसे निकला। इसके बाद उस पुत्रको देखकर उसके पिताने हाथ जोड़कर कहा—मैं महादेवजीकी कृपासे कृतकृत्य हो गया हूँ। मैं धनवान् तथा पुत्रवान् हो गया हूँ और मरकर पुनः जीवित हो गया हूँ॥ ७४—७७॥

इति वः कथितमशेषं नाहं शक्तः समासतो व्यासात्।
वक्तुं शंभोश्च गुणान् शेषस्यापि न मुखानि स्युः॥ ७८

[हे मुनिगण!] इस प्रकार मैंने संक्षेपमें वर्णन कर दिया, मैं पूर्णरूपसे वर्णन करनेमें समर्थ नहीं हूँ। शेष-नागके [हजार] मुख भी विस्तारपूर्वक सदाशिवके गुणोंका वर्णन करनेमें समर्थ नहीं हैं॥ ७८॥

*इति श्रीशिवमहापुराणे पञ्चम्यामुमासंहितायां कृष्णादिशिवभक्तोद्धारण-
शिवमाहात्म्यवर्णनं नाम तृतीयोऽध्यायः॥ ३॥*

***॥ इस प्रकार श्रीशिवमहापुराणके अन्तर्गत पाँचवीं उमासंहितामें कृष्णादिशिवभक्तोद्धारण-
शिवमाहात्म्यवर्णन नामक तीसरा अध्याय पूर्ण हुआ॥ ३॥***

अथ चतुर्थोऽध्यायः

शिवकी मायाका प्रभाव

मुनय ऊचुः

तात तात महाभाग धन्यस्त्वं हि महामते।
अद्भुतेयं कथा शंभोः श्राविता परभक्तिदा॥ १
पुनर्ब्रूहि कथां शंभोर्व्यासप्रश्नानुसारतः।
सर्वज्ञस्त्वं व्यासशिष्यः शिवतत्त्वविचक्षणः॥ २

सूत उवाच

एवमेव गुरुर्व्यासः पृष्टवान् मेऽजसंभवम्।
सनत्कुमारं सर्वज्ञं शिवभक्तं मुनीश्वरम्॥ ३

व्यास उवाच

सनत्कुमार सर्वज्ञ श्रावितेयं शुभा कथा।
शङ्करस्य महेशस्य नानालीलाविहारिणः॥ ४
पुनर्ब्रूहि महादेवमहिमानं विशेषतः।
श्रद्धा च महती श्रोतुं मम तात प्रवर्धते॥ ५
महिम्ना येन शंभोस्तु ये ये लोके विमोहिताः।
मायया ज्ञानमाहृत्य नानालीलाविहारिणः॥ ६

सनत्कुमार उवाच

शृणु व्यास महाबुद्धे शाङ्करीं सुखदां कथाम्।
यस्याः श्रवणमात्रेण शिवे भक्तिः प्रजायते॥ ७
शिवः सर्वेश्वरो देवः सर्वात्मा सर्वदर्शनः।
महिम्ना तस्य सर्वं हि व्याप्तं च सकलं जगत्॥ ८
शिवस्यैव परा मूर्तिर्ब्रह्मविष्ण्वीश्वरात्मिका।
सर्वभूतात्मभूताख्या त्रिलिङ्गालिङ्गरूपिणी॥ ९
देवानां योनयश्चाष्टौ मानुषी नवमी च या।
तिरश्चां योनयः पञ्च भवन्त्येवं चतुर्दश॥ १०
भूता वा वर्तमाना वा भविष्याश्चैव सर्वशः।
शिवात्सर्वे प्रवर्तन्ते लीयन्ते वृद्धिमागताः॥ ११

मुनिगण बोले—हे तात! हे तात! हे महाभाग! हे महामते! आप धन्य हैं; क्योंकि आपने परम भक्ति प्रदान करनेवाली यह अद्भुत शिवकथा सुनायी है॥ १॥

[हे सूतजी!] व्यासदेवके प्रश्नके अनुसार पुनः शिवकी कथा कहिये। आप सर्वज्ञ, व्यासजीके शिष्य और शिवतत्त्वके ज्ञाता हैं॥ २॥

सूतजी बोले—इसी प्रकार मेरे गुरु व्यासजीने सब कुछ जाननेवाले शिवभक्त मुनीश्वर ब्रह्मपुत्र सनत्कुमारजीसे पूछा था॥ ३॥

व्यासजी बोले—हे सनत्कुमार! हे सर्वज्ञ! आपने अनेक प्रकारसे लीलाविहार करनेवाले महेश्वर शंकरकी यह शुभ कथा सुनायी। आप पुनः महादेव शिवकी महिमाका विशेषरूपसे वर्णन करें। हे तात! मेरी बहुत अधिक श्रद्धा उसे सुननेके लिये बढ़ रही है॥ ४-५॥

विविध प्रकारसे लीलाविहार करनेवाले सदाशिवकी जिस महिमा तथा मायाके प्रभावसे ज्ञानरहित होकर लोकमें जो-जो लोग विमोहित हुए, उनकी कथा सुनाइये॥ ६॥

सनत्कुमार बोले—हे व्यास! हे महामते! शंकरकी सुखदायिनी कथाको सुनिये, जिसके सुननेमात्रसे शिवजीके प्रति भक्ति उत्पन्न हो जाती है॥ ७॥

शिवजी ही सर्वेश्वर देवता, सर्वात्मा एवं सभीके द्रष्टा हैं, उनकी महिमासे सम्पूर्ण जगत् व्याप्त है॥ ८॥

ब्रह्मा, विष्णु तथा रुद्रके रूपमें भगवान् शिवकी ही त्रिलिंगात्मिका परामूर्ति अभिव्यक्त हो रही है और समस्त प्राणियोंकी आत्माके रूपमें उन्हींकी निष्कल मूर्ति स्थित है॥ ९॥

आठ प्रकारकी देवयोनियाँ, नौवीं मनुष्ययोनि एवं पाँच प्रकारकी तिर्यग् योनियाँ—इन सबको मिलाकर चौदह योनियाँ होती हैं। जो हो चुके हैं, विद्यमान हैं तथा आगे होनेवाले हैं—ये सभी [प्राणि-पदार्थ] शिवसे ही उत्पन्न होते हैं, वृद्धिको प्राप्त होते हैं और अन्तमें शिवमें ही विलीन हो जाते हैं॥ १०-११॥

ब्रह्मेन्द्रोपेन्द्रचन्द्राणां देवदानवभोगिनाम्।
गंधर्वाणां मनुष्याणामन्येषां वापि सर्वशः ॥ १२

बंधुर्मित्रमथाचार्यो रक्षन्नेतार्थवान् गुरुः।
कल्पद्रुमोऽथ वा भ्राता पिता माता शिवो मतः ॥ १३

ब्रह्मा, इन्द्र, विष्णु, चन्द्र, देवता, दानव, नाग, गन्धर्व, मनुष्य तथा अन्य सभी प्राणियोंके बन्धु, मित्र, आचार्य, रक्षक, नेता, धनदाता, गुरु, भाई, पिता, माता एवं [वांछित फलोंको देनेवाले] कल्पवृक्षस्वरूप शिवजी ही माने गये हैं॥ १२-१३ ॥

शिवः सर्वमयः पुंसां स्वयं वेद्यः परात्परः।
वक्तुं न शक्यते यश्च परं चानुपरं च यत्॥ १४

तन्माया परमा दिव्या सर्वत्र व्यापिनी मुने।
तदधीनं जगत्सर्वं सदेवासुरमानुषम्॥ १५

शिव सर्वमय हैं, वे ही मनुष्योंके लिये जाननेयोग्य हैं तथा परसे भी परे हैं, जिनका वर्णन नहीं किया जा सकता और जो पर तथा अनुपर हैं, उनकी माया परम दिव्य तथा सर्वत्र व्याप्त रहनेवाली है और हे मुने! देवता, असुर एवं मनुष्योंसहित सम्पूर्ण जगत् उसीके अधीन है॥ १४-१५ ॥

कामेन स्वसहायेन प्रबलेन मनोभुवा।
सर्वः प्रधर्षितो वीरो विष्ण्वादिप्रबलोऽपि हि॥ १६

शिवजीकी मायाने मनसे उत्पन्न होनेवाले, अपने प्रबल सहयोगी कामके द्वारा विष्णु आदि सभी प्रबल वीर देवताओंको भी अपने अधीन कर लिया है॥ १६॥

शिवमायाप्रभावेणाभूद्धरिः काममोहितः।
परस्त्रीधर्षणं चक्रे बहुवारं मुनीश्वर॥ १७
इन्द्रस्त्रिदशपो भूत्वा गौतमस्त्रीविमोहितः।
पापं चकार दुष्टात्मा शापं प्राप मुनेस्तदा॥ १८

हे मुनीश्वर! शिवकी मायाके प्रभावसे विष्णु भी कामसे मोहित हो गये। देवताओंके स्वामी दुष्टात्मा इन्द्र भी गौतमकी पत्नीपर मोहित होकर पापकर्ममें प्रवृत्त हुए, तव उनको मुनिने शाप दे दिया॥ १७-१८॥

पावकोऽपि जगच्छ्रेष्ठो मोहितः शिवमायया।
कामाधीनः कृतो गर्वात्ततस्तेनैव चोद्धृतः॥ १९

जगत्में श्रेष्ठ अग्निदेव भी अहंकारके कारण शिवकी मायासे मोहित हो कामके अधीन हो गये, बादमें उन [शिवजी]-ने ही उनका उद्धार किया॥ १९॥

जगत्प्राणोऽपि गर्वेण मोहितः शिवमायया।
कामेन निर्जितो व्यास चक्रेऽन्यस्त्रीरतिं पुरा॥ २०

हे व्यास! जगत्के प्राणस्वरूप वायु भी शिवकी मायासे मोहित होकर कामके वशीभूत होकर प्रेममें आसक्त हो गये॥ २०॥

चण्डरश्मिस्तु मार्तण्डो मोहितः शिवमायया।
कामाकुलो बभूवाशु दृष्ट्वाश्वीं हयरूपधृक्॥ २१

शिवकी मायासे मोहित हुए प्रचण्ड किरणोंवाले सूर्यदेवने भी घोड़ी [के रूपमें स्थित अपनी पत्नी संज्ञा]-को देखकर कामसे व्याकुल होकर घोड़ेका स्वरूप धारण किया॥ २१॥

चन्द्रश्च मोहितः शम्भोर्मायया कामसंकुलः।
गुरुपत्नीं जहाराथ युतस्तेनैव चोद्धृतः॥ २२

शिवमायासे विमोहित होकर कामसे व्याकुल चन्द्रमाने भी आसक्त होकर गुरुपत्नीका अपहरण किया, बादमें उन शिवने ही उनका उद्धार किया॥ २२॥

पूर्वं तु मित्रावरुणौ घोरे तपसि संस्थितौ।
मोहितौ तावपि मुनी शिवमायाविमोहितौ॥ २३
उर्वशीं तरुणीं दृष्ट्वा कामुकौ सम्बभूवतुः।
मित्रः कुम्भे जहौ रेतो वरुणोऽपि तथा जले॥ २४
ततः कुम्भात्समुत्पन्नो वसिष्ठो मित्रसंभवः।
अगस्त्यो वरुणाज्जातो वडवाग्निसमद्युतिः॥ २५

पूर्व समयमें मित्र एवं वरुण—दोनों मुनि तपस्यामें स्थित थे, तब शिवकी मायासे मोहित हुए वे दोनों उर्वशी [अप्सरा]-को देखकर मुग्धचित्त तथा कामनायुक्त हो गये। तब मित्रने अपना तेज घड़ेमें और वरुणने जलमें छोड़ दिया। तत्पश्चात् उस कुम्भसे वडवाग्निके समान कान्तिवाले अगस्त्य उत्पन्न हुए और वरुणके तेजसे जलसे वसिष्ठका जन्म हुआ॥ २३—२५॥

दक्षश्च मोहितः शंभोर्मायया ब्रह्मणः सुतः।
भ्रातृभिः स भगिन्यां वै भोक्तुकामोऽभवत्पुरा॥ २६

पूर्वकालमें ब्रह्माके पुत्र दक्ष भी शिवमायासे मोहित हो गये और भाइयोंके साथ वे अपनी भगिनीसे सम्पर्ककी कामनावाले हो गये॥ २६॥

ब्रह्मा च बहुवारं हि मोहितः शिवमायया।
अभवद्भोक्तुकामश्च स्वसुतायां परासु च॥ २७

शिवमायासे मोहित होकर ब्रह्मा भी अनेक बार स्त्री-संगकी कामनावाले हो गये॥ २७॥

च्यवनोऽपि महायोगी मोहितः शिवमायया।
सुकन्यया विजह्रे स कामासक्तो बभूव ह॥ २८

महायोगी च्यवन भी शिवकी मायासे मोहित हो गये और उन्होंने कामासक्त हो [अपनी पत्नी] सुकन्याके साथ विहार किया॥ २८॥

कश्यपः शिवमायातो मोहितः कामसंकुलः।
ययाचे कन्यकां मोहाद्धन्वनो नृपतेः पुरा॥ २९

गरुडः शांडिलीं कन्यां नेतुकामः सुमोहितः।
विज्ञातस्तु तया सद्यो दग्धपक्षो बभूव ह॥ ३०

पूर्वकालमें [महर्षि] कश्यपने शिवमायासे मोहित होकर कामके अधीन हो मोहपूर्वक राजा धन्वासे उनकी कन्याकी याचना की। शिवकी मायासे मोहित हुए गरुड़ने भी शांडिली नामक कन्याको ग्रहण करनेकी इच्छा की, तब उनके अभिप्रायको जान लेनेके बाद उसने उनके पंखोंको भस्म कर दिया॥ २९-३०॥

विभांडको मुनिर्नारीं दृष्ट्वा कामवशं गतः।
ऋष्यशृङ्गसुतस्तस्य मृग्यां जातः शिवाज्ञया॥ ३१

मुनि विभांडक स्त्रीको देखकर कामके अधीन हो गये और शिवकी प्रेरणासे हरिणीसे ऋष्यशृंग नामक पुत्र उन्हें उत्पन्न हुआ॥ ३१॥

गौतमश्च मुनिः शंभोर्मायामोहितमानसः।
दृष्ट्वा शारद्वतीं नग्नां रराम क्षुभितस्तया॥ ३२

शिवमायासे मोहित चित्तवाले महर्षि गौतम शारद्वतीको वस्त्रहीन देखकर क्षुब्ध हो गये और उन्होंने उसके साथ रमण किया॥ ३२॥

रेतः स्कन्नं दधार स्वं द्रोण्यां चैव स तापसः।
तस्माच्च कलशाज्जातो द्रोणः शस्त्रभृतां वरः॥ ३३

तपस्वी [भारद्वाज]-ने [घृताची अप्सराको देखकर] अपने स्खलित वीर्यको द्रोणीमें रख दिया, तब उस कलशसे शस्त्रधारियोंमें श्रेष्ठ द्रोणाचार्य उत्पन्न हुए॥ ३३॥

पराशरो महायोगी मोहितः शिवमायया।
मत्स्योदर्या च चिक्रीडे कुमार्या दाशकन्यया॥ ३४

शिवकी मायासे मोहित होकर महायोगी पराशरने भी निषादराजकी कुमारी कन्या मत्स्योदरीके साथ विहार किया॥ ३४॥

विश्वामित्रो बभूवाथ मोहितः शिवमायया।
रेमे मेनकया व्यास वने कामवशं गतः॥ ३५
वसिष्ठेन विरोधं तु कृतवान्नष्टचेतनः।
पुनः शिवप्रसादाच्च ब्राह्मणोऽभूत्स एव वै॥ ३६

हे व्यास! विश्वामित्र भी शिवमायासे मोहित हो गये और उन्होंने कामके वशीभूत हो वनमें मेनकाके साथ रमण किया। नष्ट बुद्धिवाले उन्होंने वसिष्ठके साथ विरोध किया और शिवकी कृपासे ही पुनः वे [क्षत्रियसे] ब्राह्मण हो गये॥ ३५-३६॥

रावणो वैश्रवाः कामी बभूव शिवमायया।
सीतां जह्रे कुबुद्धिस्तु मोहितो मृत्युमाप च॥ ३७

विश्रवाके पुत्र कामासक्त दुर्बुद्धि रावणने शिवकी मायासे विमोहित होकर सीताका अपहरण किया और अन्तमें उसकी मृत्यु हुई॥ ३७॥

बृहस्पतिर्मुनिवरो मोहितः शिवमायया।
भ्रातृपत्न्या वशी रेमे भरद्वाजस्ततोऽभवत्॥ ३८

शिवकी मायासे विमोहित हुए जितेन्द्रिय मुनिवर बृहस्पतिने अपने भाईकी पत्नीके साथ रमण किया, उसके फलस्वरूप महर्षि भरद्वाज उत्पन्न हुए॥ ३८॥

इति मायाप्रभावो हि शङ्करस्य महात्मनः।
वर्णितस्ते मया व्यास किमन्यच्छ्रोतुमिच्छसि॥ ३९

हे व्यास! इस प्रकार मैंने महात्मा शिवकी मायाके प्रभावका आपसे वर्णन कर दिया, अब आप आगे और क्या सुनना चाहते हैं?॥ ३९॥

इति श्रीशिवमहापुराणे पञ्चम्यामुमासंहितायां शिवमायाप्रभाववर्णनं नाम चतुर्थोऽध्यायः॥ ४॥

॥ इस प्रकार श्रीशिवमहापुराणके अन्तर्गत पाँचवीं उमासंहितामें शिवमाया-प्रभाववर्णन नामक चौथा अध्याय पूर्ण हुआ॥ ४॥

अथ पञ्चमोऽध्यायः

महापातकोंका वर्णन

व्यास उवाच

ये पापनिरता जीवा महानरकहेतवः।
भगवंस्तान् समाचक्ष्व ब्रह्मपुत्र नमोऽस्तु ते॥ १

सनत्कुमार उवाच

ये पापनिरता जीवा महानरकहेतवः।
ते समासेन कथ्यन्ते सावधानतया शृणु॥ २
परस्त्रीद्रव्यसंकल्पश्चेतसानिष्टचिन्तनम्।
अकार्याभिनिवेशश्च चतुर्धा कर्म मानसम्॥ ३
अविबद्धप्रलापत्वमसत्यं चाप्रियं च यत्।
परोक्षतश्च पैशुन्यं चतुर्धा कर्म वाचिकम्॥ ४
अभक्ष्यभक्षणं हिंसा मिथ्याकार्यनिवेशनम्।
परस्वानामुपादानं चतुर्धा कर्म कायिकम्॥ ५
इत्येतद् द्वादशविधं कर्म प्रोक्तं त्रिसाधनम्।
अस्य भेदान् पुनर्वक्ष्ये येषां फलमनन्तकम्॥ ६
ये द्विषन्ति महादेवं संसारार्णवतारकम्।
सुमहत्पातकं तेषां निरयार्णवगामिनाम्॥ ७
ये शिवज्ञानवक्तारं निन्दन्ति च तपस्विनम्।
गुरून् पितॄनथोन्मत्तास्ते यान्ति निरयार्णवम्॥ ८
शिवनिन्दा गुरोर्निन्दा शिवज्ञानस्य दूषणम्।
देवद्रव्यापहरणं द्विजद्रव्यविनाशनम्॥ ९
हरन्ति ये च संमूढाः शिवज्ञानस्य पुस्तकम्।
महान्ति पातकान्याहुरनन्तफलदानि षट्॥ १०

व्यासजी बोले—हे भगवन्! हे ब्रह्मपुत्र! महानरकमें जानेवाले जो पापपरायण जीव हैं, उनका वर्णन कीजिये, आपको नमस्कार है॥ १॥

सनत्कुमार बोले—हे व्यासजी! पापोंमें संलग्न जो महानरकगामी जीव हैं, मैं उनका संक्षेपमें वर्णन कर रहा हूँ, आप सावधानीपूर्वक सुनें। दूसरोंकी स्त्री तथा पराये धनकी इच्छा, मनसे दूसरोंका अनिष्टचिन्तन तथा बुरे कामोंमें प्रवृत्ति—ये चार प्रकारके मानस पापकर्म हैं॥ २-३॥

असम्बद्ध प्रलाप, असत्य, अप्रिय भाषण तथा पीठपीछे चुगलखोरी—ये चार प्रकारके वाचिक पापकर्म हैं। अभक्ष्यभक्षण, हिंसा, अनुचित कर्मके प्रति आग्रह एवं परधनका अपहरण—ये चार प्रकारके कायिक पाप-कर्म हैं॥ ४-५॥

इस प्रकार ये मन, वाणी तथा शरीररूप साधनोंसे होनेवाले बारह प्रकारके पापकर्म कहे गये हैं, अब मैं इनके भेदोंका वर्णन करता हूँ, जिनके [अनिष्ट] परिणामोंका कोई अन्त नहीं है॥ ६॥

जो संसारसमुद्रसे पार करनेवाले महादेवकी निन्दा करते हैं, नरकसमुद्रमें पड़नेवाले उन लोगोंको महापाप लगता है। जो उन्मत्त होकर शिवज्ञानके उपदेशक, तपस्वी, गुरुओं एवं पितृजनोंकी निन्दा करते हैं, वे नरकसमुद्रमें जाते हैं॥ ७-८॥

शिवनिन्दा करना, गुरुनिन्दा करना, शैवसिद्धान्तका खण्डन करना, देवद्रव्यका अपहरण करना, द्विजद्रव्यका नाश करना और मूर्खतावश शिवज्ञानविषयक पुस्तकका अपहरण करना—ये छः अनन्त फल देनेवाले महापातक कहे गये हैं॥ ९-१०॥

नाभिनन्दंति ये दृष्ट्वा शिवपूजां प्रकल्पिताम्।
न नमन्त्यर्चितं दृष्ट्वा शिवलिङ्गं स्तुवन्ति न॥ ११

यथेष्टचेष्टा निःशंकाः संतिष्ठन्ते रमंति च।
उपचारविनिर्मुक्ताः शिवाग्रे गुरुसन्निधौ॥ १२

स्थानसंस्कारपूजां च ये न कुर्वन्ति पर्वसु।
विधिवद्वा गुरूणां च कर्मयोगव्यवस्थिताः॥ १३

ये त्यजन्ति शिवाचारं शिवभक्तान्द्विषन्ति च।
असंपूज्य शिवज्ञानं येऽधीयते लिखन्ति च॥ १४

अन्यायतः प्रयच्छन्ति शृण्वन्त्युच्चारयन्ति च।
विक्रीडन्ति च लोभेन कुज्ञाननियमेन च॥ १५

असंस्कृतप्रदेशेषु यथेष्टं स्वापयन्ति च।
शिवज्ञानकथाक्षेपं यः कृत्वान्यत्प्रभाषते॥ १६

न ब्रवीति च यः सत्यं न प्रदानं करोति च।
अशुचिर्वाशुचिस्थाने यः प्रवक्ति शृणोति च॥ १७

गुरुपूजामकृत्वैव यः शास्त्रं श्रोतुमिच्छति।
न करोति च शुश्रूषामाज्ञां च भक्तिभावतः॥ १८

नाभिनन्दति तद्वाक्यमुत्तरं च प्रयच्छति।
गुरुकर्मण्यसाध्यं यत्तदुपेक्षां करोति च॥ १९

गुरुमार्तमशक्तं च विदेशं प्रस्थितं तथा।
वैरिभिः परिभूतं वा यः संत्यजति पापकृत्॥ २०

तद्भार्यापुत्रमित्रेषु यश्चावज्ञां करोति च।
एवं सुवाचकस्यापि गुरोर्धर्मानुदर्शिनः॥ २१

एतानि खलु सर्वाणि कर्माणि मुनिसत्तम।
सुमहत्पातकान्याहुः शिवनिन्दासमानि च॥ २२

जो लोग दूसरोंके द्वारा किये गये शिवपूजनको देखकर प्रसन्न नहीं होते, अर्चित शिवलिंगको देखकर नमस्कार नहीं करते और न उसकी स्तुति करते हैं, सदाशिवके आगे तथा गुरुके पास निःशंक होकर मनमानी चेष्टाएँ करते हुए बैठते हैं—क्रीडा-विनोद करते हैं और शिष्टाचारका अनुपालन नहीं करते हैं, जो लोग कर्मयोगमें स्थित रहते हुए अर्थात् उपासनापद्धतिके अनुरूप पर्वके दिनोंमें शिवजीके मन्दिरकी साफ-सफाई, पूजा आदि तथा गुरुओंकी विधिवत् पूजा नहीं करते, जो शिवाचारका त्याग करते हैं एवं शिवजीके भक्तोंसे द्वेष करते हैं, जो [परम्पराके अनुसार इष्ट, गुरु आदिका] बिना पूजन किये शिवज्ञानका अध्ययन तथा बेचनेके लिये शिव-ज्ञानसम्बन्धी ग्रन्थका लेखन करते हैं, जो अन्यायसे दान करते हैं, अन्यायसे कथा सुनते एवं सुनाते हैं, लोभवश तथा अज्ञानतावश शिवज्ञानका उपहास करते हैं, संस्कारविहीन स्थानोंमें इच्छानुसार शिवकी स्थापना करते हैं, जो शिवज्ञानकथामें आक्षेप करके दूसरी बात करता है, जो सत्यभाषण नहीं करता है और दान नहीं देता है, जो अपवित्र रहकर या अपवित्र स्थानमें शिवकथाका वाचन अथवा श्रवण करता है, जो गुरुकी पूजा किये बिना ही शास्त्रका अध्ययन करना चाहता है, भक्तिभावसे उनकी सेवा तथा आज्ञापालन नहीं करता है, उनकी आज्ञाका आदर नहीं करता है तथा उत्तर देता है, गुरुकार्यको असाध्य कहकर उसकी उपेक्षा करता है, जो पापपरायण व्यक्ति रोगी, अशक्त, परदेश गये हुए अथवा शत्रुओंसे प्रताड़ित गुरुको छोड़ देता है, जो उनकी भार्या, पुत्र तथा मित्रकी अवज्ञा करता है और इसी प्रकार श्रेष्ठ कथावाचक तथा धर्मोपदेशक गुरुकी भी आज्ञा नहीं मानता है—हे मुनिश्रेष्ठ! ये समस्त कार्य शिवनिन्दाके समान महापातक कहे गये हैं॥ ११—२२॥

ब्रह्मघ्नश्च सुरापश्च स्तेयी च गुरुतल्पगः।
महापातकिनस्त्वेते तत्संयोगी च पञ्चमः॥ २३

क्रोधाल्लोभाद्भयाद् द्वेषाद्ब्राह्मणस्य वधे तु यः।
मर्मान्तिकं महादोषमुक्त्वा स ब्रह्महा भवेत्॥ २४

ब्रह्महत्यारा, सुरापान करनेवाला, चोर, गुरु-पत्नीगामी एवं इनके साथ सम्पर्क रखनेवाला—ये महापापी होते हैं। क्रोध, लोभ, भय अथवा द्वेषवश ब्राह्मण-वधविषयक मर्मान्तिक कथनके अपराधसे भी मनुष्य ब्रह्मघाती होता है॥ २३-२४॥

ब्राह्मणं यः समाहूय दत्त्वा यश्चाददाति च।
निर्दोषं दूषयेद्यस्तु स नरो ब्रह्महा भवेत्॥ २५

ब्राह्मणको बुलाकर उसे दान देकर जो पुनः उसे वापस ले लेता है और जो निर्दोष ब्राह्मणको दोष लगाता है, वह मनुष्य ब्रह्महत्यारा होता है॥ २५॥

यश्च विद्याभिमानेन निस्तेजयति सुद्विजम्।
उदासीनं सभामध्ये ब्रह्महा स प्रकीर्तितः॥ २६

जो अपनी विद्याके अभिमानवश उदासीन हुए अर्थात् तटस्थ भावसे व्यवहार करनेवाले श्रेष्ठ ब्राह्मणको सभामें हतप्रभ करता है, वह ब्रह्महत्यारा कहा गया है॥ २६॥

मिथ्यागुणैर्य आत्मानं नयत्युत्कर्षतां बलात्।
गुणानपि निरुद्धास्य स च वै ब्रह्महा भवेत्॥ २७

जो दूसरेके गुणोंपर आक्षेप करके हठपूर्वक अपने मिथ्या गुणोंके द्वारा अपनेको उत्कृष्ट प्रदर्शित करता है, वह भी ब्रह्महत्यारा कहा गया है॥ २७॥

गवां वृषाभिभूतानां द्विजानां गुरुपूर्वकम्।
यः समाचरते विघ्नं तमाहुर्ब्रह्मघातकम्॥ २८

देवद्विजगवां भूमिं प्रदत्तां हरते तु यः।
प्रनष्टामपि कालेन तमाहुर्ब्रह्मघातकम्॥ २९

वृषभोंके द्वारा बाही जाती हुई गायों और गुरुसे उपदेश ग्रहण करते हुए द्विजोंके कार्यमें जो विघ्न उपस्थित करता है, उसे भी ब्रह्महत्यारा कहा गया है। जो देवता, ब्राह्मण एवं गायोंके निमित्त दानमें दी गयी भूमिके उपेक्षित रहनेपर भी कुछ समय बाद उसका हरण करता है, उसे ब्रह्महत्यारा कहा गया है॥ २८-२९॥

देवद्विजस्वहरणमन्यायेनार्जितं तु यत्।
ब्रह्महत्यासमं ज्ञेयं पातकं नात्र संशयः॥ ३०

देवता एवं ब्राह्मणके धनका अपहरण एवं अन्यायद्वारा किया गया धनोपार्जन है, उसे ब्रह्महत्याके समान पाप समझना चाहिये, इसमें सन्देह नहीं है॥ ३०॥

अधीत्य यो द्विजो वेदं ब्रह्मज्ञानं शिवात्मकम्।
यदि त्यजति यो मूढः सुरापानस्य तत्समम्॥ ३१

यदि कोई ब्राह्मण वेदका अध्ययनकर मोहवश शिवात्मक ब्रह्मज्ञानका त्याग करता है, तो यह सुरापानके समान [पाप] है॥ ३१॥

यत्किंचिद्धि व्रतं गृह्य नियमं यजनं तथा।
संत्यागः पञ्चयज्ञानां सुरापानस्य तत्समम्॥ ३२

जिस किसी भी व्रत, नियम तथा यज्ञके करनेका संकल्पकर उसका त्याग करना तथा पंच [महा] यज्ञोंका त्याग करना सुरापानके समान [पाप] है॥ ३२॥

पितृमातृपरित्यागः कूटसाक्ष्यं द्विजानृतम्।
आमिषं शिवभक्तानामभक्ष्यस्य च भक्षणम्॥ ३३

वने निरपराधानां प्राणिनां चापघातनम्।
द्विजार्थं प्रक्षिपेत्साधुर्न धर्मार्थं नियोजयेत्॥ ३४

गवां मार्गे वने ग्रामे यैश्चैवाग्निः प्रदीयते।
इति पापानि घोराणि ब्रह्महत्यासमानि च॥ ३५

माता-पिताका त्याग करना, झूठी गवाही देना, ब्राह्मणसे मिथ्या भाषण करना, शिवभक्तोंको मांस खिलाना एवं अभक्ष्यका भक्षण करना तथा वनमें निरपराध प्राणियोंका वध करना—[ये सभी पाप ब्रह्महत्याके ही तुल्य हैं।] साधुपुरुषको चाहिये कि वह ब्राह्मणके धनको त्याग दे तथा उसे धर्मके कार्यमें भी न लगाये [अन्यथा उसे ब्रह्महत्याका दोष लगता है]॥ ३३—३५॥

दीनसर्वस्वहरणं नरस्त्रीगजवाजिनाम्।
गोभूरजतवस्त्राणामौषधीनां रसस्य च॥ ३६

चन्दनागरुकर्पूरकस्तूरीपट्टवाससाम्।
विक्रयस्त्वविपत्तौ यः कृतो ज्ञानाद् द्विजातिभिः॥ ३७

दीनोंके धनका हरण, स्त्री, पुरुष, हाथी, घोड़ा, गाय, भूमि, चाँदी, वस्त्र, औषधि, रस, चन्दन, अगुरु, कपूर, कस्तूरी एवं रेशमी वस्त्र आदि वस्तुओंका ब्राह्मणके द्वारा बिना आपत्तिके जान-बूझकर किया गया विक्रय, अपने पासमें रखी गयी धरोहरका

हस्तन्यासापहरणं रुक्मस्तेयसमं स्मृतम्।
कन्यानां वरयोग्यानामदानं सदृशे वरे॥ ३८

पुत्रमित्रकलत्रेषु गमनं भगिनीषु च।
कुमारीसाहसं घोरमद्यपस्त्रीनिषेवणम्॥ ३९

सवर्णायाश्च गमनं गुरुभार्यासमं स्मृतम्।
महापापानि चोक्तानि शृणु त्वमुपपातकम्॥ ४०

अपहरण करना—यह सब सुवर्णकी चोरीके समान माना गया है। विवाहके योग्य कन्याओंको योग्य वरको न प्रदान करना, पुत्र तथा मित्रकी स्त्रियोंसे, बहनसे तथा कुमारीके साथ गमन करना, मद्य पीनेवाली स्त्रीसे संसर्ग करना और समान गोत्रवाली स्त्रीसे संसर्ग करना—गुरुकी भार्याके साथ गमन करनेके समान कहा गया है। [हे व्यास!] मैंने महापातकोंको कह दिया, अब उपपातकोंका श्रवण कीजिये॥ ३६—४०॥

इति श्रीशिवमहापुराणे पञ्चम्यामुमासंहितायां महापातकवर्णनं नाम पञ्चमोऽध्यायः॥ ५॥

॥ इस प्रकार श्रीशिवमहापुराणके अन्तर्गत पाँचवीं उमासंहितामें महापातकवर्णन नामक पाँचवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ ५॥

अथ षष्ठोऽध्यायः

पापभेदनिरूपण

सनत्कुमार उवाच

द्विजद्रव्यापहरणमपि दायव्यतिक्रमः।
अतिमानोऽतिकोपश्च दांभिकत्वं कृतघ्नता॥ १
अत्यन्तविषयासक्तिः कार्पण्यं साधुमत्सरम्।
परदाराभिगमनं साधुकन्यासु दूषणम्॥ २
परिवित्तिः परिवेत्ता यया च परिविद्यते।
तयोर्दानं च कन्यायास्तयोरेव च याजनम्॥ ३
शिवाश्रमतरूणां च पुष्पारामविनाशनम्।
यः पीडामाश्रमस्थानामाचरेदल्पिकामपि॥ ४
सभृत्यपरिवारस्य पशुधान्यधनस्य च।
कुप्यधान्यपशुस्तेयमपां व्यापावनं तथा॥ ५
यज्ञारामतडागानां दारापत्यस्य विक्रयम्।
तीर्थयात्रोपवासानां व्रतोपनयकर्मिणाम्॥ ६
स्त्रीधनान्युपजीवन्ति स्त्रीभिरत्यन्तनिर्जिताः।
अरक्षणं च नारीणां मायया स्त्रीनिषेवणम्॥ ७
कालागताप्रदानं च धान्यवृद्ध्युपसेवनम्।
निंदिताच्च धनादानं पण्यानां कूटजीवनम्॥ ८

सनत्कुमार बोले—ब्राह्मणके धनका अपहरण, पैतृक सम्पत्तिके बँटवारेमें उलट-फेर करना, अत्यन्त अहंकार, अत्यन्त क्रोध, पाखण्ड, कृतघ्नता, विषयोंमें अत्यधिक आसक्ति, कृपणता, सज्जनोंसे द्वेष, परस्त्रीगमन, कुलीन सच्चरित्र कन्याओंको दूषित करना, परिवित्ति, परिवेत्ता* एवं जिस कन्यासे ये दोनों दोष उत्पन्न होते हैं, उन्हींको कन्यादान करना एवं उन्हींका यज्ञ कराना, शिवजीके लिये बनाये गये आश्रममें स्थित वृक्षों, पुष्पों एवं बगीचोंको नष्ट करना, आश्रममें रहनेवालोंको थोड़ी भी पीड़ा पहुँचाना, भृत्य-सहित परिवार, पशु, धान्य, धन, ताँबा आदि धातुओं और पशुओंकी चोरी करना, जलको अपवित्र करना, यज्ञ, वाटिका, तडाग, स्त्री, पुत्रका सौदा करना, तीर्थयात्रा, उपवास, व्रत, उपनयन आदि करके उसका विक्रय करना, जो स्त्रियोंके धनसे आजीविका चलाते हैं, जो स्त्रियोंके वशीभूत हैं (ऐसा होना), स्त्रियोंकी रक्षा न करना, छलपूर्वक स्त्रीका सेवन करना, धन लेकर समयसे ऋण न चुकाना, धान्यकी वृद्धिपर देकर उससे निर्वाह करना, निन्दितसे धन ग्रहण करना, व्यापारमें कपटपूर्ण

* बड़े भाईके अविवाहित रहते जो छोटा भाई अपना विवाह कर लेता है तथा अग्निहोत्र ग्रहण करता है, वह छोटा भाई 'परिवेत्ता' तथा बड़ा भाई 'परिवित्ति' कहलाता है—दाराग्निहोत्रसंयोगं कुरुते योऽग्रजे स्थिते। परिवेत्ता स विज्ञेयः परिवित्तिस्तु पूर्वजः॥ (मनु० ३। १७१)

विषमारणमन्त्राणां सततं वृषवाहनम्।
उच्चाटनाभिचारं च धान्यादानं भिषक्क्रिया॥ ९

जिह्वाकामोपभोगार्थं यस्यारंभः सुकर्मसु।
मूलेनाध्यापको नित्यं वेदज्ञानादिकं च यत्॥ १०

ब्राह्म्यादिव्रतसंत्यागश्चान्याचारनिषेवणम् ।
असच्छास्त्राधिगमनं शुष्कतर्कावलम्बनम्॥ ११

देवाग्निगुरुसाधूनां निन्दा या ब्राह्मणस्य च।
प्रत्यक्षं वा परोक्षं वा राज्ञां मण्डलिनामपि॥ १२

उत्सन्नपितृदेवेज्याः स्वकर्मत्यागिनश्च ये।
दुःशीला नास्तिकाः पापाः सदा वासत्यवादिनः॥ १३

पर्वकाले दिवा वाप्सु वियोनौ पशुयोनिषु।
रजस्वलाया योनौ च मैथुनं यः समाचरेत्॥ १४

स्त्रीपुत्रमित्रसम्प्राप्ते आशाच्छेदकराश्च ये।
जनस्याप्रियवक्तारः क्रूराः समयभेदिनः॥ १५

भेत्ता तडागकूपानां विक्रेतारो रसस्य च।
एकपंक्तिस्थितानां च पाकभेदं करोति यः॥ १६

इत्येतैः स्त्रीनराः पापैरुपपातकिनः स्मृताः।
युक्ता एभिस्तथान्येऽपि शृणु तांस्तु ब्रवीमि ते॥ १७

व्यवहार करना, विष देना तथा मारण मन्त्रोंका प्रयोग करना, बैलकी सवारी करना, उच्चाटन आदि अभिचार कर्म करना, धान्योंका हरण करना, वैद्यवृत्तिसे निर्वाह करना, जिह्वा एवं कामोपभोगके लिये सत्कर्मोंमें जिसकी प्रवृत्ति हो (ऐसा होना), वेदज्ञानको पढ़ाकर उसके मूल्यसे आजीविका चलाना, ब्राह्मणोचित आचारका त्याग करना, दूसरोंके आचारका सेवन करना, असत् शास्त्रोंका अध्ययन करना, व्यर्थ तर्कका आश्रय लेना, देवता, अग्नि, गुरु, साधु, ब्राह्मण तथा चक्रवर्ती राजाओंकी प्रत्यक्ष या परोक्षमें निन्दा करना, जो पितृयज्ञ, देवयज्ञ तथा अपने कर्मका त्याग करनेवाले हैं, जो दुःशील, नास्तिक, पापी तथा सदा असत्य भाषण करनेवाले हैं, जो पर्व समयमें, दिनमें, जलमें, विकृत योनिमें, पशुयोनियोंमें तथा रजस्वला स्त्रीसे संसर्ग करता है, जो स्त्री, पुत्र, मित्रकी प्राप्तिविषयक आशाको नष्ट करते हैं, लोगोंसे कटु वचन बोलते हैं, क्रूर हैं, प्रतिज्ञाको भंग करते हैं, तालाब तथा कूप आदिको विनष्ट करते हैं एवं रसोंको बेचते हैं, इसी प्रकार जो पंक्तिमें बैठे हुए लोगोंमें भोजनका भेद करते हैं, इन पापोंसे युक्त स्त्री एवं पुरुष उपपातकी कहे गये हैं। अन्य उपपातकी भी हैं। [हे व्यासजी!] मैं उन्हें आपको बता रहा हूँ, आप सुनें॥ १—१७॥

ये गोब्राह्मणकन्यानां स्वामिमित्रतपस्विनाम्।
विनाशयन्ति कार्याणि ते नरा नारकाः स्मृताः॥ १८

जो लोग गौ, ब्राह्मण, कन्या, स्वामी, मित्र एवं तपस्वियोंके कार्योंको बिगाड़ते हैं, वे नारकी मनुष्य कहे गये हैं॥ १८॥

परस्त्रियाभितप्यन्ते ये परद्रव्यसूचकाः।
परद्रव्यहरा नित्यं तौलमिथ्यानुसारकाः॥ १९

द्विजदुःखकरा ये च प्रहारं चोद्धरन्ति ये।
सेवन्ते तु द्विजाः शूद्रां सुरां बध्नन्ति कामतः॥ २०

ये पापनिरताः क्रूराः येऽपि हिंसाप्रिया नराः।
वृत्त्यर्थं येऽपि कुर्वन्ति दानयज्ञादिकाः क्रियाः॥ २१

गोष्ठाग्निजलरथ्यासु तरुच्छायानगेषु च।
त्यजन्ति ये पुरीषाद्यानारामायतनेषु च॥ २२

लज्जाश्रमप्रसादेषु मद्यपानरताश्च ये।
कृतकेलिभुजङ्गाश्च रन्ध्रान्वेषणतत्पराः॥ २३

जो परस्त्री [की अभिलाषा]-से दुखी रहते हैं, जो दूसरेके द्रव्यपर दृष्टि रखते हैं, दूसरेके द्रव्यका हरण करते हैं, मिथ्या तौल करते हैं, जो ब्राह्मणोंको पीड़ा देते हैं, जो उन्हें मारनेके लिये शस्त्र उठाये रहते हैं, जो द्विज होकर शूद्र-स्त्रीका सेवन करते हैं, स्वेच्छासे जो सुराका सेवन करते हैं, जो मनुष्य क्रूर एवं पापपरायण हैं, जो हिंसाप्रिय हैं, जो अपनी आजीविकाके लिये दान, यज्ञ आदि क्रियाएँ करते हैं, जो गोशाला, अग्नि, जल, मार्ग, वृक्षकी छाया, पर्वत, वाटिका एवं देवमन्दिरोंमें मल-मूत्रादिका त्याग करते हैं, जो लज्जाके स्थान, आश्रम एवं मन्दिरोंमें मद्यपान करते हैं, चोरीसे दूसरोंकी स्त्रीसे रमण करते हैं, दूसरोंका

वंशेष्टकाशिलाकाष्ठैः शृङ्गैः शंकुभिरेव च।
ये मार्गमनुरुन्धन्ति परसीमां हरन्ति ये॥ २४

कूटशासनकर्तारः कूटकर्मक्रियारताः।
कूटपाकान्नवस्त्राणां कूटसंव्यवहारिणः॥ २५

धनुषः शस्त्रशल्यानां कर्ता यः क्रयविक्रयी।
निर्दयोऽतीव भृत्येषु पशूनां दमनश्च यः॥ २६

मिथ्या प्रवदतो वाच आकर्णयति यः शनैः।
स्वामिमित्रगुरुद्रोही मायावी चपलः शठः॥ २७

ये भार्यापुत्रमित्राणि बालवृद्धकृशातुरान्।
भृत्यानतिथिबन्धूंश्च त्यक्त्वाश्नन्ति बुभुक्षितान्॥ २८

यः स्वयं मिष्टमश्नाति विप्रेभ्यो न प्रयच्छति।
वृथापाकः स विज्ञेयो ब्रह्मवादिषु गर्हितः॥ २९

नियमान् स्वयमादाय ये त्यजन्त्यजितेन्द्रियाः।
प्रव्रज्यावासिता ये च हरस्यास्यप्रभेदकाः॥ ३०

ये ताडयन्ति गां क्रूरा दमयन्ते मुहुर्मुहुः।
दुर्बलान्ये न पुष्णन्ति सततं ये त्यजन्ति च॥ ३१

पीडयन्त्यतिभारेणासहन्तं वाहयन्ति च।
योजयन्त्यकृताहारान्न विमुंचन्ति संयतान्॥ ३२

ये भारक्षतरोगार्तान् गोवृषांश्च क्षुधातुरान्।
न पालयन्ति यत्नेन गोघ्नास्ते नारकाः स्मृताः॥ ३३

छिद्रान्वेषण करते हैं, जो बाँस, ईंट, पत्थर, काष्ठ, सींग एवं काँटों [अथवा कीलों]-से मार्गमें अवरोध उत्पन्न करते हैं, जो दूसरोंकी सीमा (मेड़) नष्ट करते हैं, जो फूट डालकर शासन करते हैं, मिथ्या छलप्रपंचमें संलग्न रहते हैं और कपट करके लाये हुए पाक, अन्न तथा वस्त्रोंका छलपूर्वक व्यवहार करते हैं, जो धनुष, शस्त्र तथा बाणका निर्माण करते हैं एवं उनका क्रय-विक्रय करते हैं, जो अपने नौकरोंके प्रति दयाहीन हैं, पशुओंका दमन करते हैं, जो झूठ बोलनेवालोंकी बात धीरे-धीरे सुनता है, स्वामी, मित्र, गुरुसे द्रोह करता है, मायावी है, धूर्त है, जो अपनी स्त्री, पुत्र, मित्र, बालक, वृद्ध, कमजोर, रोगी, भृत्य, अतिथि एवं बान्धवोंको भूखा छोड़कर [स्वयं] भोजन करते हैं, जो स्वयं मिष्टान्नका भोजन करते हैं, किंतु ब्राह्मणोंको नहीं देते हैं, उसका वह भोजन निरर्थक जानना चाहिये, वह ब्रह्मवादियोंमें निन्दित है, जो अजितेन्द्रिय स्वयं नियमोंको ग्रहण करनेके बाद उनका त्याग कर देते हैं, जो संन्यास ले करके भी घरमें निवास करते हैं, शिवमूर्तियोंको तोड़ते हैं, जो लोग क्रूर होकर गायोंको मारते हैं एवं बार-बार उनका दमन करते हैं, जो दुर्बलोंका पोषण नहीं करते तथा सदा त्याग करते हैं, जो अत्यधिक भारसे [भारवाहक] पशुओंको पीड़ित करते हैं, भार सहन न कर पानेवाले पशुको जोतते हैं, बिना उनको खिलाये कार्यमें जोत देते हैं, जुते हुएको चरनेके लिये नहीं छोड़ते, जो भारसे आहत, रोगी, क्षुधापीड़ित, गाय-बैलोंका भलीभाँति पालन नहीं करते, वे गोहत्यारे तथा नरक जानेके योग्य कहे गये हैं॥ १९—३३॥

वृषाणां वृषणान्ये च पापिष्ठा गालयन्ति च।
वाहयन्ति च गां वन्ध्यां महानारकिनो नराः॥ ३४

जो पापी बैलोंके अण्डकोष कुटवा देते हैं और वन्ध्या गायको जोतते हैं, वे महानारकी मनुष्य कहे गये हैं॥ ३४॥

आशया समनुप्राप्तान् क्षुत्तृष्णाश्रमकर्शितान्।
अतिथींश्च तथानाथान् स्वतन्त्रान् गृहमागतान्॥ ३५

अन्नाभिलाषान् दीनान्वा बालवृद्धकृशातुरान्।
नानुकम्पन्ति ये मूढास्ते यान्ति नरकार्णवम्॥ ३६

भूख-प्यास-श्रमसे पीड़ित तथा [भोजनकी] आशासे घरपर आये हुए अतिथियों, अनाथों, स्वेच्छासे विचरण करनेवालों, अन्नके इच्छुकों, दीनों, बालकों, वृद्धों, दुर्बलों तथा रोगियोंपर जो लोग दया नहीं करते, वे मूढ़ नरकसमुद्रमें जाते हैं॥ ३५-३६॥

गृहेष्वर्था निवर्तन्ते श्मशानादपि बान्धवाः।
सुकृतं दुष्कृतं चैव गच्छन्तमनुगच्छति॥ ३७

[मनुष्यके मरनेपर] धन घरमें ही पड़ा रह जाता है, भाई एवं बन्धु श्मशानसे [पुनः घर] लौट आते हैं, किंतु पुण्य एवं पाप अन्तमें जाते हुए जीवके पीछे-पीछे जाता है॥ ३७॥

अजाविको माहिषिकः सामुद्रो वृषलीपतिः।
शूद्रवत्क्षत्रवृत्तिश्च नारकी स्याद् द्विजाधमः॥ ३८

बकरी-भेड़ तथा भैंसके क्रय-विक्रयसे अपनी जीविका चलानेवाला, नमक बेचनेवाला, शूद्राका पति, शूद्रके समान आचरण करनेवाला तथा क्षत्रियवृत्तिसे जीवनयापन करनेवाला अधम द्विज नरक जानेयोग्य होता है॥ ३८॥

शिल्पिनः कारवो वैद्या हेमकारा नृपध्वजाः।
भृतकाः कूटसंयुक्ताः सर्वे ते नारकाः स्मृताः॥ ३९

शिल्पी, बढ़ई, वैद्य, स्वर्णकार, अपनेको राजाके रूपमें प्रदर्शित करनेवाले, कपटसे युक्त होकर नौकरी करनेवाले—वे सभी नारकी कहे गये हैं॥ ३९॥

यश्चोचितमतिक्रम्य स्वेच्छयैवाहरेत्करम्।
नरके पच्यते सोऽपि योऽपि दण्डरुचिर्नरः॥ ४०

उत्कोचकै रुचिक्रीतैस्तस्करैश्च प्रपीड्यते।
यस्य राज्ञः प्रजा राष्ट्रे पच्यते नरकेषु सः॥ ४१

जो [शासक] औचित्यका अतिक्रमण करके मनमानी रीतिसे कर ग्रहण करता है और जो दण्ड देनेमें रुचि रखता है, वह [राजा] भी नरकोंमें दुःख भोगता है। जिस राजाके राज्यमें प्रजा घूस लेनेवालों, इच्छानुसार [वस्तुका] क्रय करनेवालों तथा चोरोंसे पीड़ित की जाती है, वह राजा भी नरकोंमें दुःख भोगता है॥ ४०-४१॥

ये द्विजाः परिगृह्णन्ति नृपस्यान्यायवर्तिनः।
ते प्रयान्ति तु घोरेषु नरकेषु न संशयः॥ ४२

जो ब्राह्मण अन्यायपरायण राजासे दान ग्रहण करते हैं, वे घोर नरकोंमें जाते हैं, इसमें संशय नहीं है॥ ४२॥

अन्यायात्समुपादाय द्विजेभ्यो यः प्रयच्छति।
प्रजाभ्यः पच्यते सोऽपि नरकेषु नृपो यथा॥ ४३

जो राजा प्रजाओंसे अन्यायपूर्वक धन ग्रहणकर ब्राह्मणोंको दान देता है, वह राजा भी नरकोंमें यातना प्राप्त करता है, इसमें संशय नहीं है॥ ४३॥

पारदारिकचौराणां चण्डानां विद्यते त्वघम्।
परदाररतस्यापि राज्ञो भवति नित्यशः॥ ४४

परदारगमन करनेवाले, चोर तथा क्रूर पुरुषोंको जो पाप लगता है, परायी स्त्रीमें निरत रहनेवाले राजाको भी वही पाप लगता है॥ ४४॥

अचौरं चौरवत्पश्येच्चौरं वाचौररूपिणम्।
अविचार्य नृपस्तस्माद् घातयन्नरकं व्रजेत्॥ ४५

जो राजा बिना विचार किये ही चोरीसे रहित पुरुषको चोरके समान और चोरको चोरीसे रहित समझे, इस प्रकार [निरपराध व्यक्तिको] दण्ड देनेवाला वह राजा नरकगामी होता है॥ ४५॥

घृततैलान्नपानानि मधुमांससुरासवम्।
गुडेक्षुशाकदुग्धानि दधिमूलफलानि च॥ ४६
तृणं काष्ठं पत्रपुष्पमौषधं चात्मभोजनम्।
उपानच्छत्रशकटमासनं च कमण्डलुम्॥ ४७
ताम्रसीसत्रपुः शस्त्रं शंखाद्यं च जलोद्भवम्।

जो लोग लोभपूर्वक घी, तेल, अन्न, पीनेकी वस्तु, मधु, मांस, सुरा, आसव, गुड़, ईख, शाक, दूध, दही, मूल, फल, तृण, काष्ठ, पत्र, पुष्प, ओषधि, अपना भोजन, जूता, छाता, गाड़ी, आसन, कमण्डलु, ताँबा, सीसा, राँगा, शस्त्र, जलसे उत्पन्न शंख आदि

वाद्यं च वैणवं चान्यद्गृहोपस्करणानि च॥ ४८
और्णकार्पासकौशेयपट्टसूत्रोद्भवानि च।
स्थूलसूक्ष्माणि वस्त्राणि ये लोभाद्धि हरन्ति च॥ ४९
एवमादीनि चान्यानि द्रव्याणि विविधानि च।
नरकेषु ध्रुवं यान्ति चापहृत्याल्पकानि च॥ ५०
तद्वा यद्वा परद्रव्यमपि सर्षपमात्रकम्।
अपहृत्य नरा यान्ति नरकं नात्र संशयः॥ ५१

वस्तुएँ, बाँसके बने हुए वाद्य, ऊनी-सूती-रेशमी-पट्टसूत्रसे बने हुए स्थूल तथा सूक्ष्म वस्त्रोंका हरण करते हैं और इसी प्रकार अन्य विविध वस्तुओंका थोड़ा भी हरण करते हैं, वे निश्चित रूपसे नरकोंमें जाते हैं। इतना ही नहीं, सरसोंके बराबर भी दूसरेकी वस्तुका अपहरण करके मनुष्य नरकमें पड़ते हैं, इसमें संशय नहीं है॥ ४६—५१॥

एवमाद्यैर्नरः पापैरुत्क्रान्तिसमनन्तरम्।
शरीरयातनार्थाय सर्वाकारमवाप्नुयात्॥ ५२

इस प्रकारके पापोंके द्वारा मनुष्य प्राणोत्क्रमणके बाद शारीरिक यातना प्राप्त करनेके लिये सभी अवयवोंसे युक्त नूतन शरीर प्राप्त करता है॥ ५२॥

यमलोकं व्रजन्त्येते शरीरेण यमाज्ञया।
यमदूतैर्महाघोरैर्नीयमानाः सुदुःखिताः॥ ५३

यमराजकी आज्ञासे महाभयानक यमदूतोंद्वारा ले जाये जाते हुए ये पापी अत्यन्त दुःखित होकर यातना-शरीरके साथ यमलोकको जाते हैं॥ ५३॥

देवतिर्यङ्मनुष्याणामधर्मनिरतात्मनाम्।
धर्मराजः स्मृतः शास्ता सुघोरैर्विविधैर्वधैः॥ ५४

नियमाचारयुक्तानां प्रमादात्स्खलितात्मनाम्।
प्रायश्चित्तैर्गुरुः शास्ता न बुधैरिष्यते यमः॥ ५५

यमराज अनेक प्रकारके भयानक दण्डोंके द्वारा अधर्मपरायण मनवाले देवता, तिर्यग् योनियों एवं मनुष्योंके शास्ता कहे गये हैं। नियम तथा सदाचारमें तत्पर होनेपर भी प्रमादवश विचलित चित्तवाले लोगोंके लिये प्रायश्चित्तोंके द्वारा गुरु ही शास्ता हैं, यमराज नहीं; ऐसा विद्वानोंका अभिमत है॥ ५४-५५॥

पारदारिकचौराणामन्यायव्यवहारिणाम्।
नृपतिः शासकः प्रोक्तः प्रच्छन्नानां स धर्मराट्॥ ५६

तस्मात् कृतस्य पापस्य प्रायश्चित्तं समाचरेत्।
नाभुक्तस्यान्यथा नाशः कल्पकोटिशतैरपि॥ ५७

परस्त्रीगामियों, चोरों तथा अन्यायसे व्यवहार करनेवालोंका शास्ता राजा कहा गया है, किंतु प्रच्छन्न पाप करनेवालोंके शासक धर्मराज ही हैं। इसलिये [अपने द्वारा] किये गये पापका प्रायश्चित्त कर लेना चाहिये; अन्यथा बिना भोगे हुए पापका नाश करोड़ों कल्पोंमें भी नहीं होता है॥ ५६-५७॥

यः करोति स्वयं कर्म कारयेच्चानुमोदयेत्।
कायेन मनसा वाचा तस्य पापगतिः फलम्॥ ५८

जो अपने शरीर, वाणी तथा मनसे पापोंको स्वयं करता है, कराता है अथवा उसका अनुमोदन करता है, उसका फल पापगति ही है॥ ५८॥

इति श्रीशिवमहापुराणे पञ्चम्यामुमासंहितायां पापभेदवर्णनं नाम षष्ठोऽध्यायः॥ ६॥

॥ इस प्रकार श्रीशिवमहापुराणके अन्तर्गत पाँचवीं उमासंहितामें पापभेदवर्णन नामक छठा अध्याय पूर्ण हुआ॥ ६॥

अथ सप्तमोऽध्यायः

यमलोकका मार्ग एवं यमदूतोंके स्वरूपका वर्णन

सनत्कुमार उवाच

अथ पापैर्नरा यान्ति यमलोकं चतुर्विधैः।
सन्त्रासजननं घोरं विवशाः सर्वदेहिनः॥ १

सनत्कुमार बोले—चार प्रकारके पापोंके कारण विवश होकर समस्त शरीरधारी मनुष्य भयको उत्पन्न करनेवाले घोर यमलोकको जाते हैं॥ १॥

गर्भस्थैर्जायमानैश्च बालैस्तरुणमध्यमैः।
स्त्रीपुन्नपुंसकैर्जीवैर्ज्ञातव्यं सर्वजन्तुषु॥ २
शुभाशुभफलं चात्र देहिनां संविचार्यते।
चित्रगुप्तादिभिः सर्वैः वसिष्ठप्रमुखैस्तथा॥ ३

यह बात गर्भस्थ, उत्पन्न बालक, युवा, मध्यम, वृद्ध, स्त्री, पुरुष, नपुंसक आदि समस्त जीवोंके विषयमें जाननी चाहिये। यहाँपर चित्रगुप्तादि सभी [यमपरिचर] एवं वसिष्ठादि प्रमुख महर्षिगण जीवोंके शुभ-अशुभ फलपर विचार करते हैं॥ २-३॥

न केचित्प्राणिनः सन्ति ये न यान्ति यमक्षयम्।
अवश्यं हि कृतं कर्म भोक्तव्यं तद्विचार्यताम्॥ ४

ऐसे कोई भी प्राणी नहीं हैं, जो यमलोक नहीं जाते, इसे अच्छी तरह विचार कर लीजिये कि अपने किये कर्मका फल अवश्य ही भोगना पड़ता है॥ ४॥

तत्र ये शुभकर्माणः सौम्यचित्ता दयान्विताः।
ते नरा यान्ति सौम्येन पूर्वं यमनिकेतनम्॥ ५
ये पुनः पापकर्माणः पापा दानविवर्जिताः।
ते घोरेण पथा यान्ति दक्षिणेन यमालयम्॥ ६

उनमें जो शुभ कर्म करनेवाले, सौम्यचित्त एवं दयालु होते हैं, वे मनुष्य यमलोकमें सौम्यमार्ग तथा पूर्वद्वारसे जाते हैं, किंतु जो पापी पापकर्ममें निरत एवं दानसे रहित हैं, वे घोर मार्गद्वारा दक्षिणद्वारसे यमलोकमें जाते हैं॥ ५-६॥

षडशीतिसहस्राणि योजनानामतीत्य तत्।
वैवस्वतपुरं ज्ञेयं नानारूपमवस्थितम्॥ ७
समीपस्थमिवाभाति नराणां पुण्यकर्मणाम्।
पापिनामतिदूरस्थं यथा रौद्रेण गच्छताम्॥ ८

[मर्त्यलोकसे] छियासी हजार योजनकी दूरी पार करके अनेक रूपोंमें स्थित सूर्यपुत्र यमके पुरको जानना चाहिये। यह पुर पुण्य कर्मवाले मनुष्योंको समीपमें स्थित-सा जान पड़ता है, किंतु घोरमार्गसे जाते हुए पापियोंको बहुत दूर स्थित प्रतीत होता है॥ ७-८॥

तीक्ष्णकण्टकयुक्तेन शर्कराविचितेन च।
क्षुरधारानिभैस्तीक्ष्णैः पाषाणै रचितेन च॥ ९
क्वचित्पङ्केन महता जलौकाभिश्च सङ्कुलैः।
लोहसूचीनिभैर्दर्भैः सम्पन्नेन पथा क्वचित्॥ १०
तटप्रायातिविषमैः पर्वतैर्वृक्षसंकुलैः।
प्रतप्ताङ्गारयुक्तेन यान्ति मार्गेण दुःखिताः॥ ११

तीक्ष्ण काँटोंसे युक्त, कंकड़ोंसे युक्त, छुरीकी धारके समान तीखे पाषाणोंसे बने हुए, कहीं जोंकोंसे भरे हुए तथा बहुत कीचड़से युक्त, कहीं लोहेकी सूईके समान नुकीले कुशोंसे युक्त, कहीं नदीतट-जैसे दुर्गम स्थानोंसे अति विषम तथा वृक्षोंसे परिपूर्ण, पर्वतोंसे युक्त और प्रतप्त अंगारोंसे युक्त मार्गसे दुःखित होकर [पापीलोग] जाते हैं॥ ९—११॥

क्वचिद्विषमगर्तैश्च क्वचिल्लोष्ठैः सुदुष्करैः।
सुतप्तबालुकाभिश्च तथा तीक्ष्णैश्च शंकुभिः॥ १२
अनेकशाखावितततैर्व्याप्तं वंशवनैः क्वचित्।
कष्टेन तमसा मार्गेणानालम्बेन कुत्रचित्॥ १३
अयःशृंगाटकैस्तीक्ष्णैः क्वचिद्दावाग्निना पुनः।
क्वचित्तप्तशिलाभिश्च क्वचिद्व्याप्तं हिमेन च॥ १४
क्वचिद्वालुकया व्याप्तमाकण्ठान्तःप्रवेशया।
क्वचिद्दुष्टाम्बुना व्याप्तं क्वचिच्च करिषाग्निना॥ १५

वह मार्ग कहीं भयानक गड्ढोंसे, कहीं अत्यन्त दुष्कर ढेलोंसे, कहीं अत्यन्त जलती हुई रेतोंसे, कहीं तीक्ष्ण काँटोंसे, कहीं अनेक शाखाओंवाले फैले हुए बाँसके वनोंसे व्याप्त है। मार्गमें कहीं भयानक अन्धकार है और कहीं पकड़नेके लिये कोई आधार नहीं है, वह मार्ग कहीं लोहेके तीखे शृंगाटकोंसे, कहीं दावानलसे, कहीं प्रतप्त शिलाओंसे तथा कहीं बर्फसे व्याप्त है। वह मार्ग कहीं कण्ठतक शरीरको डुबो देनेवाली रेतसे, कहीं दुर्गन्धियुक्त जलसे तथा कहीं कण्डोंकी अग्निसे व्याप्त है॥ १२—१५॥

क्वचित् सिंहैर्वृकैर्व्याघ्रैर्मशकैश्च सुदारुणैः।
क्वचिन्महाजलौकाभिः क्वचिच्चाजगरैस्तथा॥ १६
मक्षिकाभिश्च रौद्राभिः क्वचित् सर्पैर्विषोल्बणैः।
मत्तमातङ्गयूथैश्च बलोन्मत्तैः प्रमाथिभिः॥ १७
पंथानमुल्लिखद्भिश्च सूकरैस्तीक्ष्णदंष्ट्रिभिः।
तीक्ष्णशृंगैश्च महिषैः सर्वभूतैश्च श्वापदैः॥ १८
डाकिनीभिश्च रौद्राभिर्विकरालैश्च राक्षसैः।
व्याधिभिश्च महाघोरैः पीड्यमाना व्रजन्ति हि॥ १९

[वे नारकीय जीव] कहीं अति भयानक सिंहों, भेड़ियों, बाघों तथा मच्छरोंसे, कहीं बड़ी-बड़ी जोंकोंसे, कहीं अजगरोंसे, कहीं भयंकर मक्खियोंसे, कहीं विषधर सर्पोंसे, कहीं बलसे उन्मत्त होकर रौंद डालनेवाले मतवाले हाथियोंसे, [अपने] नुकीले दाँतोंसे मार्गको खोदते हुए सूकरोंसे, तीक्ष्ण सींगवाले भैंसोंसे, सम्पूर्ण हिंसक जन्तुओंसे, भयानक डाकिनियोंसे, विकराल राक्षसोंसे और घोर व्याधियोंसे पीड़ित होते हुए [यमलोक] जाते हैं॥ १६—१९॥

महाधूलिविमिश्रेण महाचण्डेन वायुना।
महापाषाणवर्षेण हन्यमाना निराश्रयाः॥ २०

क्वचिद्विद्युत्प्रपातेन दह्यमाना व्रजन्ति च।
महता बाणवर्षेण विध्यमानाश्च सर्वतः॥ २१

[वे पापीजन] कहीं अत्यधिक धूलसे भरी प्रचण्ड आँधी और बड़े-बड़े पाषाणोंकी वृष्टिसे आहत किये जाते हुए, कहीं दारुण विद्युत्-पातसे जलाये जाते हुए और कहीं चारों ओरसे महती बाणवृष्टिसे बींधे जाते हुए आश्रयहीन होकर [यमलोक] जाते हैं॥ २०-२१॥

पतद्भिर्वज्रपातैश्च उल्कापातैश्च दारुणैः।
प्रदीप्ताङ्गारवर्षेण दह्यमानाश्च सन्ति हि॥ २२

वे गिरते हुए वज्रपातोंसे, दारुण उल्कापातों एवं धधकते हुए अंगारोंकी वर्षासे जलाये जाते हैं॥ २२॥

महता पांसुवर्षेण पूर्यमाणा रुदन्ति च।
महामेघरवैर्घोरैस्त्रस्यन्ते च मुहुर्मुहुः॥ २३

वे प्रचुर धूलिवर्षासे आच्छादित होकर रोते हैं और महामेघोंकी घोर ध्वनिसे बारम्बार भयभीत होते हैं॥ २३॥

निशितायुधवर्षेण भिद्यमानाश्च सर्वतः।
महाक्षाराम्बुधाराभिः सिच्यमाना व्रजन्ति च॥ २४

वे चारों ओरसे बरसते हुए तीखे शस्त्रोंसे आहत किये जाते हुए तथा अत्यन्त क्षारीय जलधाराओंसे सिंचित किये जाते हुए [यमलोक] गमन करते हैं॥ २४॥

महाशीतेन मरुता रूक्षेण परुषेण च।
समन्ताद् बाध्यमानाश्च शुष्यन्ते संकुचन्ति च॥ २५

रूखी तथा कठोर स्पर्शवाली अत्यन्त शीतल वायुके द्वारा पीड़ित होकर [पापी] लोग सिकुड़ जाते हैं तथा सूख जाते हैं॥ २५॥

इत्थं मार्गेण रौद्रेण पाथेयरहितेन च।
निरालम्बेन दुर्गेण निर्जलेन समन्ततः॥ २६
विषमेणैव महता निर्जनापाश्रयेण च।
तमोरूपेण कष्टेन सर्वदुष्टाश्रयेण च॥ २७
नीयन्ते देहिनः सर्वे ये मूढाः पापकर्मिणः।
यमदूतैर्महाघोरैस्तदाज्ञाकारिभिर्बलात्॥ २८

इस प्रकारके भयंकर, पाथेयरहित, निरालम्ब, कठिन, चारों ओर सर्वथा जलहीन, अत्यन्त विषम, निर्जन, आश्रयहीन घोर अन्धकारसे परिव्याप्त, कष्टकारक तथा सम्पूर्ण दुष्ट आश्रयोंसे युक्त मार्गसे जो मूढ़ तथा पापकर्मवाले जीव हैं, वे सब यमराजके आज्ञाकारी महाघोर दूतोंद्वारा बलपूर्वक [यमलोक] ले जाये जाते हैं॥ २६—२८॥

एकाकिनः पराधीना मित्रबन्धुविवर्जिताः।
शोचन्तः स्वानि कर्माणि रुदन्तश्च मुहुर्मुहुः॥ २९

प्रेता भूत्वा विवस्त्राश्च शुष्ककण्ठौष्ठतालुकाः।
असौम्या भयभीताश्च दह्यमानाः क्षुधान्विताः॥ ३०

वे अकेले, पराधीन, मित्रों और बन्धुओंसे रहित होकर अपने कर्मोंको सोचते हुए बार-बार रोते हैं। वे प्रेत बनकर वस्त्रहीन, शुष्क कण्ठ, ओष्ठ एवं तालुवाले, अशान्त, भयभीत, जलते हुए एवं क्षुधासे व्याकुल [होकर चलते] रहते हैं॥ २९-३०॥

बद्धाः शृंखलया केचिदुत्तानपादका नराः।
कृष्यन्ते कृष्यमाणाश्च यमदूतैर्बलोत्कटैः॥ ३१

उरसाधोमुखाश्चान्ये घृष्यमाणाः सुदुःखिताः।
केशपाशनिबन्धेन सङ्कृष्यन्ते च रज्जुना॥ ३२

कोई मनुष्य जंजीरसे बाँधकर ऊपरकी ओर पैर करके बलवान् यमदूतोंद्वारा खींचे जाते हुए ले जाये जाते हैं। कोई छातीके बल नीचेकी ओर मुख किये हुए घसीटे जाते हैं और अति दुःखित होते हैं। कोई केशपाशमें रस्सीसे बाँधकर घसीटे जाते हैं॥ ३१-३२॥

ललाटे चांकुशेनान्ये भिन्ना दुष्यन्ति देहिनः।
उत्तानाः कंटकपथा क्वचिदङ्गारवर्त्मना॥ ३३

अन्य प्राणी ललाटको अंकुशसे विदीर्ण किये जानेके कारण अत्यन्त दुःखित होते हैं। उत्तान किये हुए कुछ लोग काँटोंके मार्गसे तथा अंगारोंके मार्गसे ले जाये जाते हैं॥ ३३॥

पश्चाद् बाहुनिबद्धाश्च जठरेण प्रपीडिताः।
पूरिताः शृंखलाभिश्च हस्तयोश्च सुकीलिताः॥ ३४

ग्रीवापाशेन कृष्यन्ते प्रयान्त्यन्ये सुदुःखिताः।
जिह्वांकुशप्रवेशेन रज्ज्वाकृष्यन्त एव ते॥ ३५

किसीके दोनों हाथ पीछेकी ओर बाँधकर, किसीके पेटको [रस्सी आदिसे] जकड़कर, किसीको जंजीरोंमें कसकर, किसीके दोनों हाथोंमें कील ठोंककर और किसीके गलेमें रस्सी लगाकर खींचते हुए दुःख देकर ले जाया जाता है। कुछ लोग जीभमें अंकुश चुभाकर रस्सीसे खींचे जाते हैं॥ ३४-३५॥

नासाभेदेन रज्ज्वा च त्वाकृष्यन्ते तथापरे।
भिन्नाः कपोलयो रज्ज्वा कृष्यन्तेऽन्ये तथौष्ठयोः॥ ३६

कुछ लोग नाक छेदकर [नथुनोंमें] रस्सी [डालकर] उससे खींचे जाते हैं और गालों तथा ओठोंको छेदकर उनमें रस्सी डालकर खींचे जाते हैं॥ ३६॥

छिन्नाग्रपादहस्ताश्च छिन्नकर्णोष्ठनासिकाः।
संछिन्नशिश्नवृषणाः छिन्नभिन्नाङ्गसन्धयः॥ ३७

आभिद्यमानाः कुन्तैश्च भिद्यमानाश्च सायकैः।
इतश्चेतश्च धावन्तः क्रन्दमाना निराश्रयाः॥ ३८

किसीका हाथ, किसीका पैर, किसीका कान, किसीका ओठ, किसीकी नाक, किसीका लिंग, किसीका अण्डकोश, किसीके शरीरके जोड़को काट दिया जाता है, कुछ लोग भालों तथा बाणोंसे बींधे जाते हैं और वे आश्रयरहित होकर इधर-उधर भागते तथा क्रन्दन करते हैं॥ ३७-३८॥

मुद्गरैर्लोहदण्डैश्च हन्यमाना मुहुर्मुहुः।
कंटकैर्विविधैर्घोरैर्ज्वलनार्कसमप्रभैः॥ ३९

भिन्दिपालैर्विभिद्यन्ते स्रवन्तः पूयशोणितम्।
शकृता कृमिदिग्धाश्च नीयन्ते विवशा नराः॥ ४०

वे मुद्‌गरोंसे तथा लौहदण्डोंसे बार-बार पीटे जाते हैं, और अग्नि तथा सूर्यके समान तेजवाले विविध भयंकर काँटोंसे तथा भिन्दिपालोंसे बेधे जाते हैं, इस प्रकार रक्त एवं मवादका स्राव करते हुए तथा विष्ठा और कृमिसे भरे हुए [मार्गसे] मनुष्य विवश होकर [यमपुरीमें] ले जाये जाते हैं॥ ३९-४०॥

याचमानाश्च सलिलमन्नं वापि बुभुक्षिताः।
छायां प्रार्थयमानाश्च शीतार्ताश्चानलं पुनः॥ ४१

वे भूखसे व्याकुल होकर अन्न-पानी माँगते हैं, [धूपसे सन्तप्त हो] छायाकी याचना करते हैं और शीतसे दुखी हो अग्निके लिये प्रार्थना करते हैं॥ ४१॥

दानहीनाः प्रयान्त्येवं प्रार्थयन्तः सुखं नराः।
गृहीतदानपाथेयाः सुखं यान्ति यमालयम्॥ ४२

जिन लोगोंने दान नहीं दिया है, वे इसी प्रकार सुखकी याचना करते हुए यमालय जाते हैं, परंतु जिन लोगोंने पहलेसे ही दानरूपी पाथेय ले रखा है, वे सुखपूर्वक यमालयको जाते हैं॥ ४२॥

एवं न्यायेन कष्टेन प्राप्ताः प्रेतपुरं यदा।
प्रज्ञापितास्ततो दूतैर्निवेश्यन्ते यमाग्रतः॥ ४३

इस प्रकारकी व्यवस्थासे कष्टपूर्वक वे जब यमपुरी पहुँचते हैं, तब धर्मराजकी आज्ञासे दूतोंके द्वारा वे उनके आगे ले जाये जाते हैं॥ ४३॥

तत्र ये शुभकर्माणस्तांस्तु सम्मानयेद्यमः।
स्वागतासनदानेन पाद्यार्घ्येण प्रियेण च॥ ४४

धन्या यूयं महात्मानो निगमोदितकारिणः।
यैश्च दिव्यसुखार्थाय भवद्भिः सुकृतं कृतम्॥ ४५

दिव्यं विमानमारुह्य दिव्यस्त्रीभोगभूषितम्।
स्वर्गं गच्छध्वममलं सर्वकामसमन्वितम्॥ ४६

तत्र भुक्त्वा महाभोगानन्ते पुण्यस्य संक्षयात्।
यत्किञ्चिदल्पमशुभं पुनस्तदिह भोक्ष्यथ॥ ४७

उनमें जो पुण्यात्मा होते हैं, उन्हें यमराज स्वागत, आसन-दान, पाद्य तथा अर्घ्यके द्वारा प्रेमपूर्वक सम्मानित करते हैं और कहते हैं कि शास्त्रोक्त कर्म करनेवाले आप महात्मा लोग धन्य हैं, जो कि आपलोगोंने दिव्य सुख प्राप्त करनेके लिये पुण्यकर्म किया। अब आपलोग इस दिव्य विमानपर चढ़कर दिव्य स्त्रियोंके भोगसे भूषित तथा सम्पूर्ण वांछितोंसे युक्त निर्मल स्वर्गको जायँ। वहाँपर महान् भोगोंका उपभोग करके अन्तमें पुण्यका क्षय हो जानेपर जो कुछ अल्प अशुभ शेष रहेगा, उसे आपलोग पुनः यहाँपर भोगेंगे॥ ४४—४७॥

धर्मात्मानो नरा ये च मित्रभूता इवात्मनः।
सौम्यं मुखं प्रपश्यन्ति धर्मराजानमेव च॥ ४८

जो धर्मात्मा पुरुष हैं, वे धर्मराजको अपने मित्रके समान समझते हैं और उन्हें सौम्य मुखवाला देखते हैं॥ ४८॥

ये पुनः क्रूरकर्माणस्ते पश्यन्ति भयानकम्।
दंष्ट्राकरालवदनं भृकुटीकुटिलेक्षणम्॥ ४९

ऊर्ध्वकेशं महाश्मश्रुमूर्ध्वप्रस्फुरिताधरम्।
अष्टादशभुजं क्रुद्धं नीलांजनचयोपमम्॥ ५०

सर्वायुधोद्धतकरं सर्वदण्डेन तर्जयन्।
महामहिषमारूढं दीप्ताग्निसमलोचनम्॥ ५१

रक्तमाल्याम्बरधरं महामेरुमिवोच्छ्रितम्।
प्रलयाम्बुदनिर्घोषं पिबन्निव महोदधिम्॥ ५२

ग्रसन्तमिव शैलेन्द्रमुद्गिरंतमिवानलम्।

जो क्रूर कर्म करनेवाले हैं, वे यमराजको भयानक, दाढ़युक्त विकराल मुखवाला, कुटिल भौंहयुक्त नेत्रवाला, ऊपर उठे हुए केशोंवाला, बड़ी-बड़ी मूँछ एवं दाढ़ीवाला, [क्रोधके कारण] फड़कते ओठोंवाला, अठारह भुजाओंवाला, कुपित, काले अंजनके पहाड़के समान, सम्पूर्ण आयुधोंको धारण किये हुए हाथोंवाला, अपने दण्डसे सबको डाँटते हुए, बहुत बड़े भैंसेपर आरूढ़ एवं जलती हुई अग्निके समान नेत्रवाला समझते हैं। [वे पापीजन यमराजको] रक्तवर्णकी माला तथा वस्त्र धारण किये हुए, सुमेरुपर्वतके समान ऊँचे, प्रलयकालीन महामेघके समान गर्जना करते हुए, समुद्रको पीते हुए, पर्वतराजको निगलते हुए और अग्निको उगलते हुए [मानो] देखते हैं॥ ४९—५२½॥

मृत्युश्चैव समीपस्थः कालानलसमप्रभः॥ ५३

कालश्चांजनसंकाशः कृतान्तश्च भयानकः।
मारी चोग्रमहामारी कालरात्रिश्च दारुणा॥ ५४
विविधा व्याधयः कुष्ठा नानारूपा भयावहाः।
शक्तिशूलांकुशधराः पाशचक्रासिपाणयः॥ ५५

कालाग्निके समान प्रभावाली मृत्यु उनके समीप स्थित है और [वहीं] काजलके समान प्रतीत होनेवाले कालदेवता तथा भयानक कृतान्त देवता भी स्थित हैं। मारी, उग्रमहामारी, भयंकर कालरात्रि, कुष्ठादि नाना प्रकारकी भयानक व्याधियाँ [भी वहाँ मूर्तिमान् होकर] तथा शक्ति, शूल, अंकुश, पाश,

वज्रतुण्डधरा रौद्राः क्षुरतूणधनुर्द्धराः।
नानायुधधराः सर्वे महावीरा भयंकराः॥ ५६

असंख्याता महावीराः कालाञ्जनसमप्रभाः।
सर्वायुधोद्यतकरा यमदूता भयानकाः॥ ५७

अनेन परिचारेण वृतं तं घोरदर्शनम्।
यमं पश्यन्ति पापिष्ठाश्चित्रगुप्तं च भीषणम्॥ ५८

निर्भर्त्सयति चात्यन्तं यमस्तान्पापकर्मणः।
चित्रगुप्तश्च भगवान् धर्मवाक्यैः प्रबोधयेत्॥ ५९

चक्र, खड्ग आदि शस्त्रोंको हाथोंमें लिये हुए और क्षुर, तरकस, धनुष आदि धारण किये हुए वज्रतुल्य तुण्डवाले रुद्रगण भी वहाँ विद्यमान हैं। नाना प्रकारके शस्त्रोंको धारण किये हुए भयंकर महावीर वहाँ स्थित हैं और कालांजनके समान कान्तिवाले तथा समस्त शस्त्रोंको हाथोंमें लिये हुए असंख्य भयानक तथा महावीर यमदूत वहाँ विद्यमान हैं, पापीलोग इन परिचारकोंसे घिरे हुए घोर दर्शनवाले उन यमराजको तथा भयंकर चित्रगुप्तको देखते हैं॥ ५३—५८॥

[उस समय] यमराज उन पापियोंको अत्यधिक धमकाते हैं और भगवान् चित्रगुप्त धर्मयुक्त वचनोंसे उन्हें समझाते हैं॥ ५९॥

इति श्रीशिवमहापुराणे पञ्चम्यामुमासंहितायां नरकलोकमार्गयमदूतस्वरूपवर्णनं नाम सप्तमोऽध्यायः॥ ७॥

॥ इस प्रकार श्रीशिवमहापुराणके अन्तर्गत पाँचवीं उमासंहितामें नरकलोकमार्ग तथा यमदूतस्वरूपवर्णन नामक सातवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ ७॥

अथाष्टमोऽध्यायः

नरक-भेद-निरूपण

चित्रगुप्त उवाच

भो भो दुष्कृतकर्माणः परद्रव्यापहारकाः।
गर्विता रूपवीर्येण परदारावमर्दकाः॥ १

यत् स्वयं क्रियते कर्म तदिदं भुज्यते पुनः।
तत्किमात्मोपघातार्थं भवद्भिर्दुष्कृतं कृतम्॥ २

इदानीं किं प्रलप्यध्वं पीड्यमानाः स्वकर्मभिः।
भुज्यतां स्वानि कर्माणि नास्ति दोषो हि कस्यचित्॥ ३

चित्रगुप्त बोले—हे पापकर्मवालो! हे दूसरोंके द्रव्यका अपहरण करनेवालो! हे रूप एवं पराक्रमपर घमण्ड करनेवालो! हे परनारीप्रसंग करनेवालो! तुमलोगोंने स्वयं जो कर्म किया है, उसे तुम्हें भोगना पड़ रहा है। तुमलोगोंने आत्मविनाशके लिये कुत्सित आचरण क्यों किया? इस समय तुमलोग अपने कर्मोंके कारण पीड़ित किये जाते हुए [इस प्रकार] प्रलाप क्यों कर रहे हो? अब अपने कर्मोंको भोगो, इसमें किसीका दोष नहीं है॥ १—३॥

सनत्कुमार उवाच

एवं ते पृथिवीपालाः सम्प्राप्तास्तत्समीपतः।
स्वकीयैः कर्मभिर्घोरैर्दुष्कर्मबलदर्पिणः॥ ४

तानपि क्रोधसंयुक्तश्चित्रगुप्तो महाप्रभुः।
संशिक्षयति धर्मज्ञो यमराजानुशिक्षया॥ ५

सनत्कुमार बोले—इसी प्रकार अपने कुत्सित कर्मों तथा बलपर गर्व करनेवाले राजालोग भी अपने घोर कर्मोंके कारण चित्रगुप्तके पास उपस्थित हुए। तब धर्मके ज्ञाता महाप्रभु चित्रगुप्तने यमराजकी आज्ञासे क्रोधयुक्त होकर उन्हें शिक्षा प्रदान की॥ ४-५॥

चित्रगुप्त उवाच

भो भो नृपा दुराचाराः प्रजाविध्वंसकारिणः।
अल्पकालस्य राज्यस्य कृते किं दुष्कृतं कृतम्॥ ६

चित्रगुप्त बोले—प्रजाओंका विध्वंस करनेवाले हे दुराचारी राजाओ! तुमलोगोंने अल्पकालवाले राज्यके लिये पापकर्म क्यों किया?॥ ६॥

राज्यभोगेन मोहेन बलादन्यायतः प्रजाः।
यद्दण्डिताः फलं तस्य भुज्यतामधुना नृपाः॥ ७

हे राजाओ! तुमलोगोंने राज्यभोगके मोहसे अन्यायपूर्वक जबरदस्ती प्रजाओंको जो दण्डित किया, अब उसका फल भोगो॥ ७॥

क्व तद्राज्यं कलत्रं च यदर्थमशुभं कृतम्।
तत्सर्वं संपरित्यज्य यूयमेकाकिनः स्थिताः॥ ८

अब वह राज्य कहाँ है, वह स्त्री कहाँ है, जिनके लिये तुमलोगोंने [इतना बड़ा] दुष्कर्म किया? उन सभीको छोड़कर तुमलोग अकेले ही यहाँ स्थित हो॥ ८॥

पश्यामि तद्बलं नष्टं येन विध्वंसिताः प्रजाः।
यमदूतैर्योज्यमाना अधुना कीदृशं भवेत्॥ ९

मैं तुमलोगोंका वह बल नष्ट हुआ देख रहा हूँ, जिसके द्वारा तुमलोगोंने प्रजाओंका नाश किया है। तुमलोग तो यमदूतोंसे बँधे हुए हो, अब क्या हो सकेगा?॥ ९॥

सनत्कुमार उवाच

एवं बहुविधैर्वाक्यैरुपलब्धा यमेन ते।
स्वानि कर्माणि शोचन्ति तूष्णीं तिष्ठन्ति पार्थिवाः॥ १०

सनत्कुमार बोले—इस प्रकार यमके द्वारा अनेकविध वचनोंसे उपालम्भ प्राप्त किये हुए वे राजालोग चुप हो गये और अपने कर्मोंपर पश्चात्ताप करने लगे॥ १०॥

इति कर्म समुद्दिश्य नृपाणां धर्मराड् यमः।
तत्पापपंकशुद्ध्यर्थमिदं दूतान् ब्रवीति च॥ ११

इस प्रकार उन राजाओंके कर्मको बतलाकर धर्मराज यमने उनके पापरूपी कीचड़की शुद्धिके लिये दूतोंसे यह कहा—॥ ११॥

यमराज उवाच

भो भोश्चण्ड महाचण्ड गृहीत्वा नृपतीन्बलात्।
नियमेन विशुद्ध्यध्वं क्रमेण नरकाग्निषु॥ १२

यमराज बोले—हे चण्ड! हे महाचण्ड! इन राजाओंको बलपूर्वक पकड़कर नियमपूर्वक क्रमसे नरककी अग्नियोंमें इन्हें शुद्ध करो॥ १२॥

सनत्कुमार उवाच

ततः शीघ्रं समादाय नृपान् संगृह्य पादयोः।
भ्रामयित्वा तु वेगेन निक्षिप्योर्ध्वं प्रगृह्य च॥ १३

सर्वप्रायेण महतातीव तप्ते शिलातले।
आस्फालयन्ति तरसा वज्रेणेव महाद्रुमान्॥ १४

सनत्कुमार बोले—तब वे दूत शीघ्र ही उन राजाओंको दबोचकर उनके दोनों पैर पकड़कर वेगसे घुमाकर ऊपरकी ओर फेंककर और पुनः पकड़कर सर्वप्रथम तपे हुए शिलातलपर बड़े वेगसे पटकते हैं, मानो वज्रके द्वारा आहत होकर महावृक्ष गिर रहे हों॥ १३-१४॥

ततः स रक्तं श्रोत्रेण स्रवते जर्जरीकृतः।
निःसंज्ञः स तदा देही निश्चेष्टः संप्रजायते॥ १५

ततः स वायुना स्पृष्टः स तैरुज्जीवितः पुनः।
ततः पापविशुद्ध्यर्थं क्षिपन्ति नरकार्णवे॥ १६

उस समय अत्यधिक जर्जर हो जानेपर उस जीवके कानोंसे रक्त बहने लगता है और वह संज्ञाशून्य तथा मूर्च्छित हो जाता है। तब वायुका स्पर्श कराकर यमदूत उसे पुनः उज्जीवित कर देते हैं और पापकी शुद्धिके लिये यमदूत उसे नरकसमुद्रमें फेंक देते हैं॥ १५-१६॥

अष्टाविंशतिसंख्याभिः क्षित्यधः सप्तकोटयः।
सप्तमस्य तलस्यान्ते घोरे तमसि संस्थितः॥ १७

घोराख्या प्रथमा कोटिः सुघोरा तदधः स्थिता।
अतिघोरा महाघोरा घोररूपा च पञ्चमी॥ १८

उनमें पहली कोटि घोरा है और [दूसरी सुघोरा उसके नीचे स्थित है। वहाँ पृथ्वीसे नीचे घोर अन्धकारमय सातवें पातालतलके अन्तमें सात [प्रधान] नरककोटियाँ हैं, जो अट्ठाइस नरक-कोटियोंके रूपमें दृष्टिगोचर होती हैं, जिनमें नारकीय प्राणी स्थित रहता है। इसी प्रकार अतिघोरा,

षष्ठी तलातलाख्या च सप्तमी च भयानका।
अष्टमी कालरात्रिश्च नवमी च भयोत्कटा॥ १९
दशमी तदधश्चण्डा महाचण्डा ततोऽप्यधः।
चण्डकोलाहला चान्या प्रचण्डा चण्डनायिका॥ २०
पद्मा पद्मावती भीता भीमा भीषणनायिका।
कराला विकराला च वज्रा विंशतिमा स्मृता॥ २१
त्रिकोणा पञ्चकोणा च सुदीर्घा चाखिलार्तिदा।
समा भीमबलाभोग्रा दीप्तप्रायेति चाष्टमी॥ २२
इति ते नामतः प्रोक्ता घोरा नरककोटयः।
अष्टाविंशतिरेवैताः पापानां यातनात्मिकाः॥ २३

महाघोरा, पाँचवीं घोररूपा, छठी तलातला, सातवीं भयानका, आठवीं कालरात्रि, नौवीं भयोत्कटा, उसके नीचे दसवीं चण्डा, उसके भी नीचे महाचण्डा, चण्डकोलाहला, चण्डोंकी नायिका प्रचण्डा, पद्मा, पद्मावती, भीता, भीषण नरकोंकी नायिका भीमा, कराला, विकराला और बीसवीं वज्रा कही गयी है। त्रिकोणा, पंचकोणा, सुदीर्घा, अखिलार्तिदा, समा, भीमबलाभा, उग्रा एवं अन्तिम दीप्तप्राया है। इस प्रकार नामके अनुसार अट्ठाईस घोर नरककोटियोंको आपसे कह दिया, ये पापियोंको यातना देनेवाली हैं॥ १७—२३॥

तासां क्रमेण विज्ञेयाः पञ्च पञ्चैव नायकाः।
प्रत्येकं सर्वकोटीनां नामतः संनिबोधत॥ २४
रौरवः प्रथमस्तेषां रुदन्ते यत्र देहिनः।
महारौरवपीडाभिर्महान्तोऽपि रुदन्ति च॥ २५
ततः शीतं तथा चोष्णं पञ्चाद्या नायकाः स्मृताः।
सुघोरः सुमहातीक्ष्णस्तथा संजीवनः स्मृतः॥ २६
महातमो विलोमश्च विलोपश्चापि कंटकः।
तीव्रवेगः करालश्च विकरालः प्रकंपनः॥ २७
महावक्रश्च कालश्च कालसूत्रः प्रगर्जनः।
सूचीमुखः सुनेतिश्च खादकः सुप्रपीडनः॥ २८
कुम्भीपाकसुपाकौ च क्रकचश्चातिदारुणः।
अङ्गारराशिभवनं मेदोऽसृक्प्रहितस्ततः॥ २९
तीक्ष्णतुण्डश्च शकुनिर्महासंवर्तकः क्रतुः।
तप्तजन्तुः पंकलेपः प्रतिमांसस्त्रपूद्भवः॥ ३०
उच्छ्वासः सुनिरुच्छ्वासो सुदीर्घः कूटशाल्मलिः।
दुरिष्टः सुमहावादः प्रवाहः सुप्रतापनः॥ ३१
ततो मेषो वृषः शाल्मः सिंहव्याघ्रगजाननाः।
श्वसूकराजमहिषघूककोकवृकाननाः॥ ३२
ग्राहकुम्भीननक्राख्याः सर्पकूर्माख्यवायसाः।
गृध्रोलूकहलौकाख्याः शार्दूलक्रथकर्कटाः॥ ३३
मण्डूकः पूतिवक्त्रश्च रक्ताक्षः पूतिमृत्तिकाः।
कणधूम्रस्तथाग्निश्च कृमिगन्धिवपुस्तथा॥ ३४
अग्नीध्रश्चाप्रतिष्ठश्च रुधिराभः श्वभोजनः।
लालाभक्षान्त्रभक्षौ च सर्वभक्षः सुदारुणः॥ ३५
कंटकः सुविशालश्च विकटः कटपूतनः।
अम्बरीषः कटाहश्च कष्टा वैतरणी नदी॥ ३६

उन नरककोटियोंमें प्रत्येकमें पाँच-पाँच प्रधान नरक जानने चाहिये। नामके अनुसार उन्हें सुनिये। उनमें प्रथम रौरव है, जहाँ प्राणी रोते रहते हैं, महारौरवकी यातनाओंसे महान्से महान् प्राणी भी रोने लगते हैं। तीसरा शीत, चौथा उष्ण और पाँचवाँ सुघोर—ये पाँच प्रधान नरक कहे गये हैं। इसी प्रकार सुमहातीक्ष्ण, संजीवन, महातम, विलोम, विलोप, कण्टक, तीव्रवेग, कराल, विकराल, प्रकम्पन, महावक्र, काल, कालसूत्र, प्रगर्जन, सूचीमुख, सुनेति, खादक, सुप्रपीडन, कुम्भीपाक, सुपाक, क्रकच, अतिदारुण, अंगारराशिभवन, मेदोऽसृक्प्रहित, तीक्ष्णतुण्ड, शकुनि, महासंवर्तक, क्रतु, तप्तजन्तु, पंकलेप, प्रतिमांस, त्रपूद्भव, उच्छ्वास, सुनिरुच्छ्वास, सुदीर्घ, कूटशाल्मलि, दुरिष्ट, सुमहावाद, प्रवाह, सुप्रतापन, मेष, वृष, शाल्म, सिंहमुख, व्याघ्रमुख, गजमुख, श्वमुख, सूकरमुख, अजमुख, महिषमुख, घूकमुख, कोकमुख, वृकमुख, ग्राह, कुम्भीनस, नक्र, सर्प, कूर्म, काक, गृध्र, उलूक, हलौक, शार्दूल, ऊँट, कर्कट, मण्डूक, पूतिवक्त्र, रक्ताक्ष, पूतिमृत्तिक, कणधूम्र, अग्नि, कृमि, गन्धिवपु, अग्नीध्र, अप्रतिष्ठ, रुधिराभ, श्वभोजन, लालाभक्ष, आन्त्रभक्ष, सर्वभक्ष, सुदारुण, कण्टक, सुविशाल, विकट, कटपूतन, अम्बरीष, कटाह, कष्टदायक वैतरणी नदी,

सुतप्तलोहशयन एकपादः प्रपूरणः।
असितालवनं घोरमस्थिभंगः सुपूरणः॥ ३७
विलातसोऽसुयन्त्रोपि कूटपाशः प्रमर्दनः।
महाचूर्णोऽसुचूर्णोऽपि तप्तलोहमयं तथा॥ ३८
पर्वतः क्षुरधारा च तथा यमलपर्वतः।
मूत्रविष्ठाश्रुकूपश्च क्षारकूपश्च शीतलः॥ ३९
मुसलोलूखलं यन्त्रं शिलाशकटलाङ्गलम्।
तालपत्रासिगहनं महाशकटमण्डपम्॥ ४०
संमोहमस्थिभङ्गश्च तप्तश्चलमयोगुडम्।
बहुदुःखं महाक्लेशः कश्मलं समलं मलात्॥ ४१
हालाहलो विरूपश्च स्वरूपश्च यमानुगः।
एकपादस्त्रिपादश्च तीव्रश्चाचीवरं तमः॥ ४२
अष्टाविंशतिरित्येते क्रमशः पञ्चपञ्चकम्।
कोटीनामानुपूर्व्येण पञ्च पञ्चैव नायकाः॥ ४३
रौरवाय प्रबोध्यन्ते नरकाणां शतं स्मृतम्।
चत्वारिंशच्च तत्प्रोक्तं महानरकमण्डलम्॥ ४४

सुतप्तलोहशयन, एकपाद, प्रपूरण, घोर असितालवन, अस्थिभंग, सुपूरण, विलातस, असुयन्त्र, कूटपाश, प्रमर्दन, महाचूर्ण, असुचूर्ण, तप्तलोहमय, पर्वत, क्षुरधारा, यमलपर्वत, मूत्रकूप, विष्ठाकूप, अश्रुकूप, क्षारकूप, शीतल, मुसल-उलूखलयन्त्र, शिला-शकटलांगल, तालपत्र, असिगहन, महाशकटमण्डप, सम्मोह, अस्थिभंग, तप्त, चल, अयोगुड, बहुदुःख, महाक्लेश, कश्मल, समल, मल, हालाहल, विरूप, स्वरूप, यमानुग, एकपाद, त्रिपाद, तीव्र, आचीवर, तम—ये पाँच-पाँचके क्रममें अट्ठाईस नरक हैं, उनमें क्रमसे नरककोटियोंके पाँच-पाँच नायक हैं॥ २४—४३॥

इति ते व्यास संप्रोक्ता नरकस्य स्थितिर्मया।
प्रसंख्यानाच्च वैराग्यं शृणु पापगतिं च ताम्॥ ४५

प्राणियोंको दुःख देनेके लिये एक सौ चालीस नरक बताये गये हैं, उसे नरकमण्डल कहा गया है। हे व्यास! इस प्रकार मैंने आपसे संख्याके अनुसार नरककी स्थितिका वर्णन किया, अब आप वैराग्य तथा उस पापगतिका श्रवण कीजिये॥ ४४-४५॥

इति श्रीशिवमहापुराणे पञ्चम्यामुमासंहितायां नरकलोकवर्णनं नामाष्टमोऽध्यायः॥ ८॥

॥ इस प्रकार श्रीशिवमहापुराणके अन्तर्गत पाँचवीं उमासंहितामें नरकलोकवर्णन नामक आठवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ ८॥

अथ नवमोऽध्यायः

नरककी यातनाओंका वर्णन

सनत्कुमार उवाच

एषु पापाः प्रपच्यन्ते शोष्यन्ते नरकाग्निषु।
यातनाभिर्विचित्राभिरास्वकर्मक्षयाद् भृशम्॥ १

सनत्कुमार बोले—[हे व्यास!] इन नरकाग्नियोंमें पापीजन अनेक प्रकारकी विचित्र यातनाओंके द्वारा कर्मोंके विनष्ट होनेतक सताये तथा सुखाये जाते हैं॥ १॥

स्वमलप्रक्षयाद्यद्वदग्नौ धास्यन्ति धातवः।
तत्र पापक्षयात्पापा नराः कर्मानुरूपतः॥ २

जिस प्रकार मल दूर होनेतक धातुएँ अग्निमें तपायी जाती हैं, उसी प्रकार पापके क्षयपर्यन्त पापी मनुष्य भी अपने कर्मोंके अनुरूप सन्तप्त किये जाते हैं॥ २॥

सुगाढं हस्तयोर्बद्ध्वा ततः शृंखलया नराः।
महावृक्षाग्रशाखासु लम्ब्यन्ते यमकिंकरैः॥ ३

यमराजके दूत लोहेकी जंजीरमें [पापी] मनुष्योंके दोनों हाथ दृढ़तापूर्वक बाँधकर महावृक्षकी शाखाओंमें लटका देते हैं॥ ३॥

ततस्ते सर्वयत्नेन क्षिप्ता दोलन्ति किंकरैः।
दोल्यन्तश्चातिवेगेन विसंज्ञायान्ति योजनम्॥ ४

उसके बाद यत्नपूर्वक यमकिंकरोंद्वारा फेंके गये मनुष्य बड़े वेगसे काँपते हुए मूर्च्छित होकर योजनों दूरीतक [उनके द्वारा] ले जाये जाते हैं॥ ४॥

अन्तरिक्षस्थितानां च लोहभारशतं पुनः।
पादयोर्बध्यते तेषां यमदूतैर्महाबलैः॥ ५

तेन भारेण महता प्रभृशं ताडिता नराः।
ध्यायन्ति स्वानि कर्माणि तूष्णीं तिष्ठन्ति निश्चलाः॥ ६

ततोऽङ्कुशैरग्निवर्णैर्लोहदण्डैश्च दारुणैः।
हन्यन्ते किंकरैर्घोरैः समन्तात्पापकर्मिणः॥ ७

ततः क्षारेण दीप्तेन वह्नेरपि विशेषतः।
समन्ततः प्रलिप्यन्ते तीव्रेण तु पुनः पुनः॥ ८

द्रुतेनात्यन्तलिप्तेन कृत्ताङ्गा जर्जरीकृताः।
पुनर्विदार्य चाङ्गानि शिरसः प्रभृति क्रमात्॥ ९

वृन्ताकवत्प्रपच्यन्ते तप्तलोहकटाहकैः।
विष्ठापूर्णे तथा कूपे कृमीणां निचये पुनः॥ १०

मेदोऽसृक्पूयपूर्णायां वाप्यां क्षिप्यन्ति ते पुनः।
भक्ष्यन्ते कृमिभिस्तीक्ष्णैर्लोहतुण्डैश्च वायसैः॥ ११

श्वभिर्दंशैर्वृकैर्व्याघ्रै रौद्रैश्च विकृताननैः।
पच्यन्ते मत्स्यवच्चापि प्रदीप्ताङ्गारराशिषु॥ १२

भिन्नाः शूलैः सुतीक्ष्णैश्च नराः पापेन कर्मणा।
तैलयन्त्रेषु चाक्रम्य घोरैः कर्मभिरात्मनः॥ १३

तिला इव प्रपीड्यन्ते चक्राख्ये जनपिण्डकाः।
भ्रज्यन्ते चातपे तप्तलोहभाण्डेष्वनेकधा॥ १४

तैलपूर्णकटाहेषु सुतप्तेषु पुनः पुनः।
बहुधा पच्यते जिह्वा प्रपीड्योरसि पादयोः॥ १५

यातनाश्च महत्योऽत्र शरीरस्याति सर्वतः।
निःशेषनरकेष्वेवं क्रमन्ति क्रमशो नराः॥ १६
नरकेषु च सर्वेषु विचित्रा यमयातनाः।
याम्यैश्च दीयते व्यास सर्वाङ्गेषु सुकष्टदाः॥ १७

ज्वलदङ्गारमादाय मुखमापूर्य ताड्यते।
ततः क्षारेण दीप्तेन ताम्रेण च पुनः पुनः॥ १८

इसके बाद महाबलवान् यमराजके दूत आकाशमें स्थित उन मनुष्योंके पैरोंमें सौ भारका लोहा बाँध देते हैं। उस महान् भारसे अत्यधिक पीड़ित मनुष्य अपने कर्मोंका स्मरण करते हैं और चेष्टाविहीन होकर चुपचाप खड़े रहते हैं॥ ५-६॥

तदनन्तर अतिभयंकर यमदूत उन पापियोंको चारों ओरसे भयानक अंकुशों एवं अग्निके समान वर्णवाले लोहदण्डोंसे मारते हैं। उसके पश्चात् अग्निसे भी तेज खारे नमकसे चारों ओरसे उनके ऊपर बार-बार लेप करते हैं॥ ७-८॥

उस लेपसे शीघ्र उनका शरीर जर्जर होकर छिन्न-भिन्न हो जाता है, पुनः सिरसे लेकर क्रमशः सारे अंग काट-काटकर अत्यन्त प्रतप्त लोहेके कड़ाहोंमें बैगनके समान पकाये जाते हैं। इसके बाद विष्ठासे पूरित कूपमें, कीड़ोंके ढेरमें तथा पुनः चर्बी, रक्त तथा मवादसे भरी हुई बावलीमें [पापियोंके शरीरावयव] फेंक दिये जाते हैं। वहाँपर कीड़े तथा लौहके समान तीक्ष्ण चोंचोंवाले कौए, कुत्ते, मच्छर, भेड़िये एवं भयानक तथा विकृत मुख-वाले व्याघ्र उनका भक्षण करते हैं और वे जलते अंगारोंकी राशिमें मछलीके समान भूँजे जाते हैं॥ ९—१२॥

वे मनुष्य अपने पापकर्मके फलस्वरूप अत्यन्त तीक्ष्ण भालोंसे वेधे जाते हैं। मनुष्योंके [वे] यातना-शरीर अपने घोर कर्मोंके कारण तेलयन्त्रोंमें डालकर तिलोंके समान पीसे जाते हैं। पुनः [अत्यन्त तीक्ष्ण] धूपमें तथा तपे हुए लोहेके पात्रोंमें अनेक प्रकारसे भूँजे जाते हैं। इसके बाद तेलसे पूर्ण अत्यन्त तप्त कड़ाहोंमें हृदय तथा पैरोंको दबाकर उनकी जीभको पकाया जाता है॥ १३—१५॥

इस प्रकार शरीरसे नाना प्रकारकी भयंकर यातना प्राप्त करते हुए [पापी] मनुष्य क्रमशः सभी नरकोंमें घूमते रहते हैं। हे व्यासजी! यमदूत सभी नरकोंमें [पापियोंके] सभी अंगोंमें विचित्र एवं अत्यन्त पीड़ादायिनी यातनाएँ देते हैं॥ १६-१७॥

जलता हुआ अंगार लेकर उनके मुखमें भरकर उन्हें पीटा जाता है, इसके बाद क्षारद्रव्यसे तथा तप्त [पिघले हुए] ताम्रसे उन्हें बार-बार पीड़ित किया

घृतेनात्यन्ततप्तेन तदा तैलेन तन्मुखम्।
इतस्ततः पीडयित्वा भृशमापूर्य हन्यते॥ १९

विष्ठाभिः कृमिभिश्चापि पूर्यमाणाः क्वचित् क्वचित्।
परिष्वजन्ति चात्युग्रां प्रदीप्तां लोहशाल्मलीम्॥ २०

हन्यन्ते पृष्ठदेशे च पुनर्दीप्तैर्महाघनैः।
दन्तुरेणातिकुण्ठेन क्रकचेन बलीयसा॥ २१
शिरःप्रभृति पीड्यन्ते घोरैः कर्मभिरात्मजैः।
खाद्यन्ते च स्वमांसानि पीयते शोणितं स्वकम्॥ २२
अन्नं पानं न दत्तं यैः सर्वदा स्वात्मपोषकैः।
इक्षुवत्ते प्रपीड्यन्ते जर्जरीकृत्य मुद्गरैः॥ २३

असितालवने घोरे छिद्यन्ते खण्डशस्ततः।
सूचीभिर्भिन्नसर्वाङ्गाः तप्तशूलाग्ररोपिताः॥ २४

संचाल्यमाना बहुशः क्लिश्यन्ते न म्रियन्ति च।
तथा च तच्छरीराणि सुखदुःखसहानि च॥ २५

देहादुत्पाट्य मांसानि भिद्यन्ते स्वैश्च मुद्गरैः।
दन्तुराकृतिभिर्घोरैर्यमदूतैर्बलोत्कटैः॥ २६

निरुच्छ्वासे निरुच्छ्वासास्तिष्ठन्ति नरके चिरम्।
उत्ताड्यन्ते तथोच्छ्वासे वालुकासदने नराः॥ २७

रौरवे रोदमानाश्च पीड्यन्ते विविधैर्वधैः।
महारौरवपीडाभिर्महान्तोऽपि रुदन्ति च॥ २८

पत्सु वक्त्रे गुदे मुण्डे नेत्रयोश्चैव मस्तके।
निहन्यन्ते घनैस्तीक्ष्णैः सुतप्तैर्लोहशंकुभिः॥ २९

सुतप्तवालुकायां तु प्रयोज्यन्ते मुहुर्मुहुः।
जन्तुपङ्के भृशं तप्ते क्षिप्ताः क्रन्दन्ति विस्वरम्॥ ३०

जाता है। तत्पश्चात् अत्यधिक तपे हुए घी तथा तेलको उनके मुखमें भरकर इधर-उधर पीड़ा देकर बहुत मारा जाता है॥ १८-१९॥

[यमदूत] कभी-कभी उनके मुखमें कीड़े तथा विष्ठा भरकर अति भयानक तथा प्रदीप्त लोहशलाकासे उन्हें दागते हैं॥ २०॥

वे पीठपर जलते हुए विशाल घनोंसे मारे जाते हैं और अपने घोर पापकर्मोंके कारण दाँतोंवाले, वेदनाप्रद तथा सुदृढ़ आरेसे सिरतक चीरे जाते हैं। वे अपना ही मांस खाते हैं तथा अपना ही रक्त पीते हैं॥ २१-२२॥

सर्वदा अपने ही पोषणमें तत्पर रहनेवाले जिन्होंने अन्न अथवा पेय वस्तुका दान नहीं किया है, वे मुद्गरोंद्वारा जर्जर बनाकर ईखके समान पेरे जाते हैं॥ २३॥

उसके अनन्तर वे घोर असितालवनमें खण्ड-खण्ड करके छिन्न-भिन्न किये जाते हैं और उनके सारे अंगोंमें सुइयाँ चुभोयी जाती हैं एवं वे तप्त शूलीके अग्रभागपर लटकाये जाते हैं। उसपर हिला-डुलाकर वे बहुत पीड़ित किये जाते हैं, किंतु मरते नहीं, इस प्रकार उनके वे [यातना] शरीर सुख-दुःखको सहन करते हैं॥ २४-२५॥

महाबलशाली तथा बड़े-बड़े दाँतोंवाले भयंकर यमदूत उनके शरीरसे मांस निकालकर उन्हें मुद्गरोंसे पीटते हैं। उन मनुष्योंको निरुच्छ्वास नामक नरकमें बहुत समयतक बिना श्वासके रहना पड़ता है और उच्छ्वास नामक नरकमें बालूके घरमें उन्हें अत्यधिक पीटा जाता है॥ २६-२७॥

रौरव नरकमें रोते हुए जीव अनेक आघातोंसे पीड़ित किये जाते हैं और महारौरव नरककी यातनाओंसे बड़े-बड़े [धैर्यवान्] भी रोने लगते हैं॥ २८॥

चरण, मुख, गुदा, सिर, नेत्रों और मस्तकपर वे तीक्ष्ण घनोंसे तथा अत्यधिक तपी हुई लोहेकी छड़ोंसे मारे जाते हैं। वे अत्यन्त तपती हुई रेतोंमें बार-बार गिराये जाते हैं और अत्यन्त तपे हुए जन्तुपंकमें फेंके जानेपर वे विकृत स्वरमें क्रन्दन करने लगते हैं॥ २९-३०॥

कुम्भीपाकेषु पच्यन्ते तप्ततैलेषु वै मुने।
पापिनः क्रूरकर्माणोऽसह्येषु सर्वथा पुनः ॥ ३१

लालाभक्षेषु पापास्ते पात्यन्ते दुःखदेषु वै।
नानास्थानेषु च तथा नरकेषु पुनः पुनः ॥ ३२

हे मुने! क्रूर कर्म करनेवाले पापी कुम्भीपाक नरकोंमें असह्य तप्त तेलोंमें पूर्णरूपसे पकाये जाते हैं। उन पापियोंको दुःखदायक लालाभक्ष नामक नरकोंमें गिराया जाता है। इसी प्रकार वे अनेक प्रकारके नरकोंमें बार-बार गिराये जाते हैं॥ ३१-३२॥

सूचीमुखे महाक्लेशे नरके पात्यते नरः।
पापी पुण्यविहीनश्च ताड्यते यमकिंकरैः ॥ ३३

लोहकुम्भे विनिःक्षिप्ताः श्वसन्तश्च शनैः शनैः।
महाग्निना प्रपच्यन्ते स्वपापैरेव मानवाः ॥ ३४

यमदूतोंद्वारा पुण्यहीन पापी मनुष्य अत्यन्त कष्टदायक सूचीमुख नरकमें गिराया जाता है तथा मारा जाता है। अपने पापोंके कारण लोहकुम्भ नरकमें डाले गये मनुष्य धीरे-धीरे श्वास लेते हुए महान् अग्निसे पकाये जाते हैं॥ ३३-३४॥

दृढं रज्वादिभिर्बद्ध्वा प्रपीड्यन्ते शिलासु च।
क्षिप्यन्ते चान्धकूपेषु दश्यन्ते भ्रमरैर्भृशम् ॥ ३५

रस्सी आदिसे दृढ़तापूर्वक बाँधकर उन्हें पत्थरोंपर पटका जाता है, अन्धकूप नरकोंमें फेंका जाता है, जहाँ भौंरे उन्हें बहुत डँसते हैं॥ ३५॥

कृमिभिर्भिन्नसर्वांगाः शतशो जर्जरीकृताः।
सुतीक्ष्णक्षारकूपेषु क्षिप्यन्ते तदनन्तरम् ॥ ३६

कीड़ोंके द्वारा काटे गये सभी अंगोंवाले तथा पूर्णरूपसे जर्जर कर दिये गये वे बादमें अत्यन्त तीक्ष्ण क्षारकूपोंमें फेंक दिये जाते हैं॥ ३६॥

महाज्वालेऽत्र नरके पापाः क्रन्दन्ति दुःखिताः।
इतश्चेतश्च धावन्ति दह्यमानास्तदर्चिषा ॥ ३७

पापीलोग महाज्वाल नामक इस नरकमें दुखी होकर क्रन्दन करते रहते हैं और उसकी ज्वालासे दग्ध होते हुए इधर-उधर भागते हैं॥ ३७॥

पृष्ठे चानीय तुण्डाभ्यां विन्यस्तस्कंधयोजिते।
तयोर्मध्येन वाकृष्य बाहुपृष्ठेन गाढतः ॥ ३८

बद्धाः परस्परं सर्वे सुभृशं पाशरज्जुभिः।
बद्धपिण्डास्तु दृश्यन्ते महाज्वाले तु यातनाः ॥ ३९

तुण्डोंके द्वारा पीठपर लाकर कन्धोंका सहारा लेकर बाहु तथा पीठके बीचसे दृढ़तापूर्वक खींचकर पाश तथा रस्सियोंसे अति कठोरतापूर्वक बाँधे गये सभी पापी महाज्वाल नामक नरकमें एक-दूसरेकी यातना देखते रहते हैं॥ ३८-३९॥

रज्जुभिर्वेष्टिताश्चैव प्रलिप्ताः कर्दमेन च।
करीषतुषवह्नौ च पच्यन्ते न म्रियन्ति च ॥ ४०

सुतीक्ष्णचरितास्ते हि कर्कशासु शिलासु च।
आस्फाल्य शतशः पापाः पच्यन्ते तृणवत्ततः ॥ ४१

रस्सियोंसे बँधे हुए तथा कीचड़से लिपटे हुए वे कण्डा तथा भूसीकी आगमें पकाये जाते हैं, किंतु मरते नहीं। अति दुश्चरित्र पापियोंको कठोर शिलाओंपर बड़े जोरसे पटककर तृणके समान सैकड़ों खण्डोंमें फाड़ दिया जाता है॥ ४०-४१॥

शरीराभ्यन्तरगतैः प्रभूतैः कृमिभिर्नराः।
भक्ष्यन्ते तीक्ष्णवदनैरात्मदेहक्षयाद् भृशम् ॥ ४२

शरीरके भीतर प्रविष्ट हुए तीखे मुखवाले बहुत-से कीड़ोंके द्वारा वे मनुष्य यातना-शरीरके नाशपर्यन्त निरन्तर भक्षण किये जाते हैं॥ ४२॥

कृमीणां निचये क्षिप्ताः पूयमांसास्थिराशिषु।
तिष्ठन्त्युद्विग्नहृदयाः पर्वताभ्यां निपीडिताः ॥ ४३

कीड़ोंके समूहमें और पीब, मांस एवं हड्डियोंके समूहमें फेंके गये वे पापी दो पत्थरोंके बीचमें दबे हुए व्यथितचित्त होकर वहाँ पड़े रहते हैं॥ ४३॥

तप्तेन वज्रलेपेन शरीरमनुलिप्यते।
अधोमुखोर्ध्वपादश्च तातप्यन्ते स्म वह्निना॥ ४४

उनका शरीर कभी तपे हुए वज्रलेपसे लिप्त होता है और वे कभी नीचेकी ओर मुख तथा ऊपरको पैर करके अग्निसे तपाये जाते हैं॥ ४४॥

वदनान्तःप्रविन्यस्तां सुप्रतप्तामयोगदाम्।
ते खादन्ति पराधीनास्तैस्ताड्यन्ते च मुद्गरैः॥ ४५

वे मुखके भीतर डाली हुई अतिशय तप्त लोहेकी गदाको विवश होकर निगलते रहते हैं और यमदूत उन्हें मुद्गरोंसे पीटते रहते हैं॥ ४५॥

इत्थं व्यास कुकर्माणो नरकेषु पचन्ति हि।
वर्णयामि विवर्णत्वं तेषां तत्त्वाय कर्मिणाम्॥ ४६

हे व्यासजी! इस प्रकार पापकर्म करनेवाले लोग नरकोंमें दुःख भोगते हैं, अब मैं आपके जाननेके लिये उन पापियोंके विकृतस्वरूपका वर्णन करता हूँ॥ ४६॥

इति श्रीशिवमहापुराणे पञ्चम्यामुमासंहितायां सामान्यतो नरकगतिवर्णनं नाम नवमोऽध्यायः॥ ९॥

॥ इस प्रकार श्रीशिवमहापुराणके अन्तर्गत पाँचवीं उमासंहितामें सामान्य नरकगतिवर्णन नामक नौवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ ९॥

अथ दशमोऽध्यायः

नरकविशेषमें दुःखवर्णन

सनत्कुमार उवाच

मिथ्यागमं प्रवृत्तस्तु द्विजिह्वाख्यं च गच्छति।
जिह्वार्धकोशविस्तीर्णहलैस्तीक्ष्णैः प्रपीड्यते॥ १

निर्भर्त्सयति यः क्रूरो मातरं पितरं गुरुम्।
विष्ठाभिः कृमिमिश्राभिर्मुखमापूर्य हन्यते॥ २

सनत्कुमार बोले—हे व्यासजी! मिथ्या शास्त्रमें प्रवृत्त व्यक्ति द्विजिह्व नामक नरकमें जाता है, जहाँ जिह्वाके समान पतले, आधे कोशके विस्तारवाले तथा तीखे फालोंवाले हलोंसे उसे विशेष पीड़ा पहुँचायी जाती है। जो क्रूर मनुष्य माता-पिता एवं गुरुको झिड़कता है, उसके मुखको कीड़ोंसे युक्त विष्ठासे भरकर उसे पीटा जाता है॥ १-२॥

ये शिवायतनारामवापीकूपतडागकान्।
विद्रवन्ति द्विजस्थानं नरास्तत्र रमन्ति च॥ ३

कामायोद्वर्तनाभ्यङ्गं स्नानपानाम्बुभोजनम्।
क्रीडनं मैथुनं द्यूतमाचरन्ति मदोद्धताः॥ ४

पेचिरे विविधैर्घोरैरिक्षुयन्त्रादिपीडनैः।
निरयाग्निषु पच्यन्ते यावदाभूतसम्प्लवम्॥ ५

जो मनुष्य शिवमन्दिर, बगीचा, बावली, कूप, तड़ाग तथा ब्राह्मणोंके स्थानको नष्ट करते हैं और वहाँ विहार करते हैं, जो लोग कामके निमित्त मदोन्मत्त होकर वहाँ तेल-मालिश, उबटन, स्नान, [मद्यादिका] पान, जल (अविधिपूर्वक जलका पान), भोजन, क्रीड़ा, मैथुन तथा द्यूतका सेवन करते हैं, वे अनेक प्रकारके घोर इक्षुयन्त्र (कोल्हू) आदिसे पीड़ितकर दुखी किये जाते हैं और प्रलयकालपर्यन्त नरककी अग्नियोंमें पकते रहते हैं॥ ३—५॥

तेन तेनैव रूपेण ताड्यन्ते पारदारिकाः।
गाढमालिंग्य ते नारीं सुतप्तां लोहनिर्मिताम्॥ ६

पूर्वाकाराश्च पुरुषाः प्रज्वलन्ति समन्ततः।
दुश्चारिणीं स्त्रियं गाढमालिङ्गन्ति रुदन्ति च॥ ७

परस्त्रीगमन करनेवाले उसी रूपसे पीड़ित किये जाते हैं। वे पुरुष अतितप्त लोहनिर्मित नारीका पूर्ववत् आकार धारणकर दृढ़तापूर्वक आलिंगन करके सभी ओरसे जलते हैं। इस प्रकार वे व्यभिचारिणी स्त्रीका दृढ़तापूर्वक आलिंगन करते हैं और [जोर-जोरसे चिल्ला-चिल्लाकर] रोते हैं॥ ६-७॥

ये शृण्वन्ति सतां निन्दां तेषां कर्णप्रपूरणम्।
अग्निवर्णैरयःकीलैस्तप्तैस्ताम्रादिनिर्मितैः ॥ ८

त्रपुसीसारकूटाद्भिः क्षीरेण च पुनः पुनः।
सुतप्ततीक्ष्णतैलेन वज्रलेपेन वा पुनः॥ ९

क्रमादापूर्य कर्णांस्तु नरकेषु च यातनाः।
अनुक्रमेण सर्वेषु भवन्त्येताः समन्ततः॥ १०

सर्वेन्द्रियाणामप्येवं क्रमात्पापेन यातनाः।
भवन्ति घोराः प्रत्येकं शरीरेण कृतेन च॥ ११

स्पर्शदोषेण ये मूढाः स्पृशन्ति च परस्त्रियम्।
तेषां करोऽग्निवर्णाभिः पांसुभिः पूर्यते भृशम्॥ १२

तेषां क्षारादिभिः सर्वैः शरीरमनुलिप्यते।
यातनाश्च महाकष्टाः सर्वेषु नरकेषु च॥ १३

कुर्वन्ति पित्रोर्भृकुटिं करनेत्राणि ये नराः।
वक्त्राणि तेषां सान्तानि कीर्यन्ते शंकुभिर्दृढम्॥ १४

यैरिन्द्रियैर्नरा ये च विकुर्वन्ति परस्त्रियम्।
इन्द्रियाणि च तेषां वै विकुर्वन्ति तथैव च॥ १५

परदारांश्च पश्यन्ति लुब्धाः स्तब्धेन चक्षुषा।
सूचीभिश्चाग्निवर्णाभिस्तेषां नेत्रप्रपूरणम्॥ १६

क्षाराद्यैश्च क्रमात्सर्वा इहैव यमयातनाः।
भवन्ति मुनिशार्दूल सत्यं सत्यं न संशयः॥ १७

देवाग्निगुरुविप्रेभ्यश्चानिवेद्य प्रभुञ्जते।
लोहकीलशतैस्तप्तैस्तज्जिह्वास्यं च पूर्यते॥ १८

ये देवारामपुष्पाणि लोभात्संगृह्य पाणिना।
जिघ्रन्ति च नरा भूयः शिरसा धारयन्ति च॥ १९

आपूर्यते शिरस्तेषां तप्तैर्लोहस्य शंकुभिः।
नासिका चातिबहुलैस्ततः क्षारादिभिर्भृशम्॥ २०

जो लोग सज्जनोंकी निन्दा सुनते रहते हैं, उनके कानोंमें अग्निके समान वर्णवाली लोहेकी कीलें तथा ताम्र आदिसे निर्मित तप्त कीलें ठोंक दी जाती हैं और फिर पिघले हुए राँगा, सीसा एवं पीतलसे तथा तप्त दूध, तप्त तीक्ष्ण तेल अथवा वज्रलेपसे क्रमशः उनके कानोंको भरकर नरकोंमें क्रमानुसार चारों ओरसे उन्हें यातनाएँ दी जाती हैं॥ ८—१०॥

इसी प्रकार प्रत्येक शरीरसे किये गये पापके कारण क्रमसे सभी इन्द्रियोंकी भी घोर यातनाएँ होती हैं। जो मूढ़ दूसरेकी स्त्रीका [सकाम भावसे] स्पर्श करते हैं, उस स्पर्शदोषके कारण उनके हाथ अग्निके समान दहकती हुई बालुओंसे भर दिये जाते हैं। उनके शरीरपर सभी क्षारपदार्थोंका लेप कर दिया जाता है और सभी नरकोंमें महान् कष्ट देनेवाली यातनाएँ दी जाती हैं॥ ११—१३॥

जो मनुष्य अपने माता-पिताको टेढ़ी भृकुटीसे देखते हैं, उनकी ओर हाथ उठाते हैं, उन्हें आँख दिखाते हैं, उनके मुख लोहेके शंकुओंसे दृढ़तापूर्वक अन्ततक (चिरकालपर्यन्त) छेदे जाते हैं। जो मनुष्य जिन इन्द्रियोंसे परायी स्त्रीको दूषित करते हैं, उनकी उन इन्द्रियोंको वैसे ही विकृत कर दिया जाता है॥ १४-१५॥

जो लुब्ध होकर अपलक दृष्टिसे दूसरेकी स्त्रियोंको देखते हैं, उनके नेत्रोंको अग्निके जैसी सूइयोंसे तथा क्षार आदि पदार्थोंसे भर दिया जाता है। हे मुनिशार्दूल! क्रमसे यहाँ ये यमयातनाएँ दी जाती हैं। यह सत्य है, सत्य है, इसमें संशय नहीं॥ १६-१७॥

जो देवता, अग्नि, गुरु एवं ब्राह्मणोंको बिना दिये ही खा लेता है, उसकी जीभ तथा मुख लौहनिर्मित तथा तपी हुई सैकड़ों कीलोंसे भर दिये जाते हैं॥ १८॥

जो मनुष्य देवताके लिये लगाये गये उद्यानके फूलोंको लोभवश हाथसे तोड़कर सूँघते हैं और पुनः सिरपर धारण करते हैं, उनके सिरपर लोहेकी तपी हुई कीलें ठोंक दी जाती हैं और उनकी नाक अत्यधिक क्षार आदि पदार्थोंसे पूर्णतः भर दी जाती है॥ १९-२०॥

ये निन्दन्ति महात्मानं वाचकं धर्मदेशिकम्।
देवाग्निगुरुभक्तांश्च धर्मशास्त्रं च शाश्वतम्॥ २१
तेषामुरसि कण्ठे च जिह्वायां दन्तसन्धिषु।
तालुन्योष्ठे नासिकायां मूर्ध्नि सर्वाङ्गसन्धिषु॥ २२
अग्निवर्णास्तु तप्ताश्च त्रिशाखा लोहशंकवः।
आखिद्यन्ते च बहुशः स्थानेष्वेतेषु मुद्गरैः॥ २३
ततः क्षारेण दीप्तेन पूर्यते हि समन्ततः।
यातनाश्च महत्यो वै शरीरस्याति सर्वतः॥ २४
अशेषनरकेष्वेव क्रमन्ति क्रमशः पुनः।

जो लोग महात्मा, कथावाचक, धर्मोपदेशक, देवता, अग्नि, गुरु, भक्त तथा सनातन धर्मशास्त्रकी निन्दा करते हैं, उनके हृदय, कण्ठ, जिह्वा, दाँत, मसूढ़ों, तालु, ओठ, नासिका, मस्तक तथा समस्त अंगोंके सन्धिस्थलोंपर तीन फालवाले अग्निके समान लाल, तप्त लोहशंकु मुद्‌गरोंसे ठोंके जाते हैं। उसके बाद सभी जगह दीप्त क्षारसे लेप किया जाता है, इस प्रकार हर तरहसे शरीरकी महती यातनाएँ पाते हुए वे क्रमशः सम्पूर्ण नरकोंमें घूमते रहते हैं॥ २१—२४½ ॥

ये गृह्णन्ति परद्रव्यं पद्भ्यां विप्रं स्पृशन्ति च॥ २५
शिवोपकरणं गां च ज्ञानादिलिखितं च यत्।
हस्तपादादिभिस्तेषामापूर्यन्ते समन्ततः॥ २६
नरकेषु च सर्वेषु विचित्रा बहुयातनाः।
भवन्ति बहुशः कष्टाः पाणिपादसमुद्भवाः॥ २७

जो लोग दूसरेका द्रव्य लेते हैं, पैरोंसे ब्राह्मणोंको छूते हैं और शिवकी पूजा-सम्बन्धी वस्तु, गाय तथा ज्ञानमय शास्त्रोंको [अपवित्र] हाथों तथा [अवज्ञापूर्वक] पैर आदिसे छूते हैं, उनके हाथ एवं पैरोंमें लोहेकी कीलें ठोंकी जाती हैं। इसी प्रकार सभी नरकोंमें हाथों एवं पैरोंसे सम्बन्धित विचित्र तथा कष्टकारक बहुत-सी यातनाएँ प्राप्त होती हैं॥ २५—२७॥

शिवायतनपर्यन्ते देवारामेषु कुत्रचित्।
समुत्सृजन्ति ये पापाः पुरीषं मूत्रमेव च॥ २८
तेषां शिश्नं सवृषणं चूर्ण्यते लोहमुद्गरैः।
सूचीभिरग्निवर्णाभिस्तथा त्वापूर्यते पुनः॥ २९
ततः क्षारेण महता तीव्रेण च पुनः पुनः।
द्रुतेन पूर्यते गाढं गुदे शिश्ने च देहिनः॥ ३०
मनः सर्वेन्द्रियाणां च यस्माद्दुःखं प्रजायते।

जो पापी शिवमन्दिरकी सीमामें तथा देवताओंके लिये लगाये गये उद्यानोंमें मल-मूत्रका त्याग करते हैं, उनके वृषण तथा मूत्रेन्द्रियको लोहेके मुद्‌गरोंसे चूर-चूर कर दिया जाता है और पुनः अग्निके सदृश तप्त सुइयोंको उसमें भर दिया जाता है, उसके अनन्तर शीघ्र ही उस जीवकी गुदा एवं शिश्नमें अत्यन्त तीक्ष्ण क्षार पदार्थ अच्छी तरहसे बार-बार भरा जाता है, जिससे मन एवं सभी इन्द्रियोंमें [बड़ी तीव्र] वेदना होती है॥ २८—३०॥

धने सत्यपि ये दानं न प्रयच्छन्ति तृष्णया॥ ३१
अतिथिं चावमन्यन्ते काले प्राप्ते गृहाश्रमे।
तस्मात्ते दुष्कृतं प्राप्य गच्छन्ति निरयेऽशुचौ॥ ३२

जो [मनुष्य] धन होनेपर भी लोभवश दान नहीं करते हैं और भोजनकालमें घरपर आये हुए अतिथिका अपमान करते हैं, इस कारणसे वे पापके भागी होकर अपवित्र नरकमें जाते हैं॥ ३१-३२॥

येऽन्नं दत्त्वा हि भुञ्जन्ति न श्वभ्यः सह वायसैः।
तेषां च विवृतं वक्त्रं कीलकद्वयताडितम्॥ ३३
कृमिभिः प्राणिभिश्चोग्रैर्लोहतुण्डैश्च वायसैः।
उपद्रवैर्बहुविधैरुग्रैरन्तः प्रपीड्यते॥ ३४

जो लोग कौवों तथा कुत्तोंको अन्न न देकर [स्वयं] भोजन करते हैं, उनके मुँहमें दो कीलें ठोंककर उसे खुला रखा जाता है। वे कीड़े, हिंसक जन्तु एवं लोहेके समान चोंचवाले कौवे अनेक प्रकारके घोर उपद्रवोंसे उनके चित्तमें पीड़ा पहुँचाते हैं॥ ३३-३४॥

श्यामश्च शबलश्चैव यममार्गानुरोधकौ।
यौ स्तस्ताभ्यां प्रयच्छामि तौ गृह्णीतामिमं बलिम्॥ ३५

यममार्गका अनुगमन करनेवाले श्याम और शबल नामक जो दो कुत्ते हैं, उन दोनोंको मैं बलि देता हूँ; वे दोनों इस बलिको ग्रहण करें। पश्चिम, वायव्य, याम्य

ये वा वरुणवायव्या याम्या नैर्ऋत्यवायसाः ।
वायसाः पुण्यकर्माणस्ते प्रगृह्णन्तु मे बलिम्॥ ३६
शिवमभ्यर्च्य यत्नेन हुत्वाग्नौ विधिपूर्वकम्।
शैवैर्मन्त्रैर्बलिं ये च ददते न च ते यमम्॥ ३७
पश्यन्ति त्रिदिवं यान्ति तस्माद्द्याद्दिने दिने।
मण्डलं चतुरस्त्रं तु कृत्वा गन्धादिवासितम्॥ ३८
धन्वन्तर्यर्थमीशान्यां प्राच्यामिन्द्राय निःक्षिपेत्।
याम्यां यमाय वारुण्यां सुदक्षोमाय दक्षिणे॥ ३९
पितृभ्यस्तु विनिःक्षिप्य प्राच्यामर्यमणं ततः।
धातुश्चैव विधातुश्च द्वारदेशे विनिःक्षिपेत्॥ ४०
श्वभ्यश्च श्वपतिभ्यश्च वयोभ्यो विक्षिपेद्भुवि।
देवैः पितृमनुष्यैश्च प्रेतैर्भूतैः सगुह्यकैः॥ ४१
वयोभिः कृमिकीटैश्च गृहस्थश्चोपजीव्यते।
स्वाहाकारः स्वधाकारो वषट्कारस्तृतीयकः॥ ४२
हन्तकारस्तथैवान्यो धेन्वाः स्तनचतुष्टयम्।
स्वाहाकारं स्तनं देवाः स्वधां च पितरस्तथा॥ ४३
वषट्कारं तथैवान्ये देवा भूतेश्वरास्तथा।
हन्तकारं मनुष्याश्च पिबन्ति सततं स्तनम्॥ ४४
यस्त्वेतां मानवो धेनुं श्रद्धया ह्यनुपूर्विकाम्।
करोति सततं काले साग्नित्वायोपकल्प्यते॥ ४५
यस्तां जहाति वास्वस्थस्तामिस्त्रे स तु मज्जति।
तस्माद्दत्त्वा बलिं ताभ्यो द्वारस्थश्चिन्तयेत्क्षणम्॥ ४६
क्षुधार्तमतिथिं सम्यगेकग्रामनिवासिनम्।
भोजयेत्तं शुभान्नेन यथाशक्त्यात्मभोजनात्॥ ४७

तथा नैर्ऋत्य दिशाके जो कौवे हैं, वे पुण्यकर्मवाले कौवे मेरी बलिको ग्रहण करें—इस प्रकार जो यत्नपूर्वक शिवमन्त्रोंसे शिवका पूजन करके विधिपूर्वक अग्निमें होमकर शिवमन्त्रोंसे बलि देते हैं अर्थात् बलिवैश्वदेव करते हैं, वे यमराजको नहीं देखते हैं और स्वर्गको जाते हैं। अतः प्रतिदिन चौकोर मण्डल बनाकर उसे गन्ध आदिसे सुगन्धितकर ईशानकोणमें धन्वन्तरिके लिये तथा पूर्व दिशामें इन्द्रके लिये बलि प्रदान करना चाहिये। पुनः दक्षिणमें यमके लिये, पश्चिममें सुदक्षोमके लिये, दक्षिणमें पितरोंके लिये और पुनः पूर्वमें अर्यमाको बलि प्रदान करके द्वारदेशपर धाता एवं विधाताको बलि देनी चाहिये। कुत्ते, कुत्तेके स्वामियों तथा पक्षियोंके लिये भूमिपर बलि देनी चाहिये। देवता, पितर, मनुष्य, प्रेत, भूत, गुह्यक, पक्षी, कृमि एवं कीटोंसे गृहस्थ उपजीवित होता है अर्थात् ये सभी गृहस्थके आश्रयसे निर्वाह करते हैं। स्वाहाकार, स्वधाकार, तीसरा वषट्कार तथा हन्तकार—ये [धर्ममयी] धेनुके चार स्तन हैं। देवता स्वाहाकार स्तनका, पितर स्वधाकार स्तनका, अन्य देवता तथा भूतेश्वर वषट्कारका और मनुष्य हन्तकार स्तनका निरन्तर पान करते हैं। जो मनुष्य श्रद्धासे इस धर्ममयी धेनुके लिये बतायी गयी विधिका निरन्तर अनुपालन करता है, वह अग्निके समान तेजस्वी एवं पवित्र हो जाता है और जो उसका त्याग करता है, वह अशान्त होकर तामिस्र नरकमें डूबता रहता है। इसलिये उन सबको बलि प्रदान करके क्षणमात्र द्वारपर रुककर अतिथिकी प्रतीक्षा करे और यथाशक्ति अपने भोजनसे भूखे अभ्यागत अथवा अपने ही गाँवके रहनेवाले किसी व्यक्ति विधिपूर्वक उत्तम अन्नका भोजन कराये॥ ३५—४७॥

अतिथिर्यस्य भग्नाशो गृहात्प्रतिनिवर्तते।
स तस्मै दुष्कृतं दत्त्वा पुण्यमादाय गच्छति॥ ४८
ततोऽन्नं प्रियमेवाश्नन्नरः शृंखलवान् पुनः।
जिह्वावेगेन विद्धोऽत्र चिरं कालं स तिष्ठति॥ ४९
यतस्तन्मांसमुद्धृत्य तिलमात्रप्रमाणतः।
खादितुं दीयते तेषां भित्त्वा चैव तु शोणितम्॥ ५०
निःशेषतः कशाभिस्तु पीड्यते क्रमशः पुनः।
बुभुक्षयातिकष्टं हि तथाचातिपिपासया॥ ५१

जिसके घरसे अतिथि निराश होकर लौट जाता है, वह उस व्यक्तिको अपना पाप देकर और उसका पुण्य लेकर चला जाता है। उसके बाद मधुर अन्नको खानेवाला मनुष्य शृंखलाओंसे आबद्ध होकर जिह्वाके वेगसे बिंधा हुआ चिरकालतक नरकमें निवास करता है। तिल-तिलभर उसका मांस काटकर और रुधिरको निकालकर उन्हें खानेके लिये दिया जाता है। इसके बाद कोड़ोंसे मारकर उसे बहुत कष्ट दिया जाता है। अत्यधिक भूख और प्याससे व्याकुल होकर वह बहुत कष्ट पाता है॥ ४८—५१॥

एवमाद्या महाघोरा: यातना: पापकर्मणाम्।
अन्ते यत्प्रतिपन्नं हि तत्संक्षेपेण संशृणु॥ ५२

इस प्रकारकी अनेक यातनाएँ पाप करनेवालोंको दी जाती हैं, इसके अनन्तर अन्तमें जो भी वह प्राप्त करता है, उसे संक्षेपसे सुनिये॥ ५२॥

य: करोति महापापं धर्मं चरति वै लघु।
धर्मं गुरुतरं वापि तथावस्थे तयो: शृणु॥ ५३

जो प्राणी महापाप करता है और थोड़ा धर्म भी करता है अथवा धर्माचरण अधिक करता है, उन दोनोंकी स्थितियोंको सुनिये॥ ५३॥

सुकृतस्य फलं नोक्तं गुरुपापप्रभावत:।
न मिनोति सुखं तत्र भोगैर्बहुभिरन्वित:॥ ५४

तथोद्विग्नोऽतिसन्तप्तो न भक्ष्यैर्मन्यते सुखम्।
अभावादग्रतोऽन्यस्य प्रतिकल्यं दिने दिने॥ ५५

अधिक पापके प्रभावके कारण पुण्यका फल नहीं बताया गया; अनेक भोगोंसे युक्त होनेपर भी वह उनसे सुखी नहीं हो पाता और व्याकुल तथा अति सन्तप्त हुआ वह भोजनयोग्य पदार्थोंसे सुखका अनुभव नहीं करता है। वह अभावके कारण दूसरेके आगे प्रतिदिन दुखी रहता है॥ ५४-५५॥

पुमान्यो गुरुधर्मापि सोपवासो यथा गृही।
वित्तवान्न विजानाति पीडां नियमसंस्थित:॥ ५६

जिस मनुष्यने अधिक धर्म किया है, वह धनसम्पन्न उपवासी गृहस्थके समान नियममें स्थित रहनेपर भी पीड़ाका अनुभव नहीं करता है॥ ५६॥

तानि पापानि घोराणि सन्ति यैश्च नरो भुवि।
शतधा भेदमाप्नोति गिरिर्वज्रहतो यथा॥ ५७

इस प्रकारके अनेक घोर पाप हैं, जिनके द्वारा भूलोकमें मनुष्य वज्रसे आहत हुए पर्वतकी भाँति सौ टुकड़ोंमें छिन्न-भिन्न हो जाता है॥ ५७॥

इति श्रीशिवमहापुराणे पञ्चम्यामुमासंहितायां नरकगतिभोगवर्णनं नाम दशमोऽध्याय:॥ १०॥

॥ इस प्रकार श्रीशिवमहापुराणके अन्तर्गत पाँचवीं उमासंहितामें नरकगतिभोगवर्णन नामक दसवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ १०॥

अथैकादशोऽध्याय:

दानके प्रभावसे यमपुरके दु:खका अभाव तथा अन्नदानका विशेष माहात्म्यवर्णन

व्यास उवाच

कृतपापा नरा यान्ति दु:खेन महतान्विता:।
यममार्गे सुखं यैश्च तान्धर्मान्वद मे प्रभो॥ १

व्यासजी बोले—हे प्रभो! पाप करनेवाले मनुष्य बड़े दु:खसे युक्त होकर यममार्गमें गमन करते हैं, अब आप उन धर्मोंको कहिये, जिनके द्वारा वे सुखपूर्वक यममार्गमें गमन करते हैं॥ १॥

सनत्कुमार उवाच

अवश्यं हि कृतं कर्म भोक्तव्यमविचारत:।
शुभाशुभमथो वक्ष्ये तान्धर्मान् सुखदायकान्॥ २

अत्र ये शुभकर्माण: सौम्यचित्ता दयान्विता:।
सुखेन ते नरा यान्ति यममार्गं भयावहम्॥ ३

सनत्कुमार बोले—निश्चय ही अपने द्वारा किये गये शुभाशुभ कर्मका फल बिना विचारे विवश होकर भोगना पड़ता है, अब मैं सुख प्रदान करनेवाले धर्मोंका वर्णन करूँगा। इस लोकमें जो लोग शुभ कर्म करनेवाले, शान्तचित्त एवं दयालु मनुष्य हैं, वे बड़े सुखके साथ भयानक यममार्गमें जाते हैं॥ २-३॥

य: प्रदद्याद् द्विजेन्द्राणामुपानत्काष्ठपादुके।
स नरोऽश्वेन महता सुखं याति यमालयम्॥ ४

जो मनुष्य श्रेष्ठ ब्राह्मणोंको जूता एवं खड़ाऊँका दान करते हैं, वे उत्तम घोड़ेपर बैठकर सुखपूर्वक यमपुरीको

छत्रदानेन गच्छन्ति यथा छत्रेण देहिनः।
शिबिकायाः प्रदानेन तद्रथेन सुखं व्रजेत्॥ ५

जाते हैं। छाताका दान करनेसे मनुष्य यहाँकी भाँति छाता लगाकर [यमलोक] जाते हैं। शिविका प्रदान करनेसे प्राणी सुखपूर्वक रथसे गमन करता है॥ ४-५॥

शय्यासनप्रदानेन सुखं याति सुविश्रमम्।
आरामच्छायाकर्तारो मार्गे वा वृक्षरोपकाः।
व्रजन्ति यमलोकं ते आतपेऽपि गतक्लमाः॥ ६

शय्या, आसन प्रदान करनेसे प्राणी विश्राम करता हुआ सुखपूर्वक जाता है। जो लोग उद्यान लगानेवाले, छाया करनेवाले तथा मार्गमें वृक्षका आरोपण करनेवाले हैं, वे धूपमें भी कष्टरहित होकर यमपुरीको जाते हैं॥ ६॥

यान्ति पुष्पकयानेन पुष्पारामकरा नराः।
देवायतनकर्तारः क्रीडन्ति च गृहोदरे॥ ७

कर्तारश्च तथा ये च यतीनामाश्रमस्य च।
अनाथमण्डपानां तु क्रीडन्ति च गृहोदरे॥ ८

फूलोंके बगीचे लगानेवाले मनुष्य पुष्पक विमानसे जाते हैं और देवमन्दिरका निर्माण करानेवाले [उस मार्गपर] [उत्तम] भवनोंके भीतर क्रीड़ा करते हैं। जो लोग संन्यासियोंके लिये आश्रम तथा अनाथोंके लिये अनाथालय बनवाते हैं, वे भी [उत्तमोत्तम] भवनोंमें क्रीड़ा करते हैं॥ ७-८॥

देवाग्निगुरुविप्राणां मातापित्रोश्च पूजकाः।
पूज्यमाना नरा यान्ति कामुकेन यथासुखम्॥ ९

देवता, अग्नि, गुरु, ब्राह्मण एवं माता-पिताकी पूजा करनेवाले मनुष्य पूजित होते हुए यथेच्छ सुखपूर्वक [यमपुरीको] जाते हैं॥ ९॥

द्योतयन्तो दिशः सर्वा यान्ति दीपप्रदायिनः।
प्रतिश्रयप्रदानेन सुखं यान्ति निरामयाः॥ १०

दीपदान करनेवाले सभी दिशाओंको प्रकाशित करते हुए जाते हैं एवं आश्रयस्थान (गृह आदि) प्रदान करनेवाले नीरोग होकर सुखपूर्वक जाते हैं॥ १०॥

विश्राम्यमाणा गच्छन्ति गुरुशुश्रूषका नराः।
आतोद्यविप्रदातारः सुखं यान्ति स्वके गृहे॥ ११

गुरुकी सेवा करनेवाले मनुष्य विश्राम करते हुए जाते हैं और वाद्य-यन्त्रोंका दान देनेवाले अपने घरके समान सुखपूर्वक [यमलोक] जाते हैं॥ ११॥

सर्वकामसमृद्धेन यथा गच्छन्ति गोप्रदाः।
अत्र दत्तान्नपानानि तान्याप्नोति नरः पथि॥ १२

गौ प्रदान करनेवाले सभी कामनाओंसे सम्पन्न होकर जाते हैं। मनुष्य इस लोकमें जो भी अन्न, पान आदि दिये रहता है, वही [परलोकके] मार्गमें वह प्राप्त करता है॥ १२॥

पादशौचप्रदानेन सजलेन पथा व्रजेत्।
पादाभ्यङ्गं च यः कुर्यादश्वपृष्ठेन गच्छति॥ १३

पैर धोनेके लिये जल प्रदान करनेसे प्राणी जलवाले मार्गसे जाता है। पैरोंमें लगानेके लिये उबटनका दान करनेवाले घोड़ोंकी पीठपर चढ़कर जाते हैं॥ १३॥

पादशौचं तथाभ्यङ्गं दीपमन्नं प्रतिश्रयम्।
यो ददाति सदा व्यास नोपसर्पति तं यमः॥ १४

हे व्यासजी! जो पैर धोनेके लिये जल, उबटन [तेल आदि], दीपक, अन्न एवं प्रतिश्रय (गृह आदि) प्रदान करता है, उसके पास यमराज नहीं जाते हैं॥ १४॥

हेमरत्नप्रदानेन याति दुर्गाणि निस्तरन्।
रौप्यानडुत्प्रदानेन यमलोकं सुखेन सः॥ १५

इत्येवमादिभिर्दानैः सुखं यान्ति यमालयम्।
स्वर्गे तु विविधान्भोगान् प्राप्नुवन्ति सदा नराः॥ १६

सोना एवं रत्नका दान करनेसे मनुष्य घोर कष्टोंको पार करता हुआ तथा चाँदी, बैल आदिका दान करनेसे वह सुखसे यमलोकको जाता है और इन सभी दानोंके कारण मनुष्य सुखपूर्वक यमलोक जाते हैं और स्वर्गमें सदा अनेक प्रकारके भोग प्राप्त करते हैं॥ १५-१६॥

सर्वेषामेव दानानामन्नदानं परं स्मृतम्।
सद्यः प्रीतिकरं हृद्यं बलबुद्धिविवर्धनम्॥ १७

सभी दानोंमें अन्नदान श्रेष्ठ कहा गया है; क्योंकि यह तत्काल प्रसन्न करनेवाला, हृदयको प्रिय लगनेवाला एवं बल तथा बुद्धिको बढ़ानेवाला है॥ १७॥

नान्नदानसमं दानं विद्यते मुनिसत्तम।
अन्नाद्भवन्ति भूतानि तदभावे म्रियन्ति च॥ १८

हे मुनिश्रेष्ठ! अन्नदानके समान कोई दूसरा दान नहीं है; क्योंकि अन्नसे ही प्राणी उत्पन्न होते हैं और उसके अभावमें मर जाते हैं॥ १८॥

रक्तं मांसं वसा शुक्रं क्रमादन्नात्प्रवर्धते।
शुक्राद्भवन्ति भूतानि तस्मादन्नमयं जगत्॥ १९

रक्त, मांस, चर्बी एवं शुक्र—[ये] क्रमशः अन्नसे ही बढ़ते हैं। शुक्रसे प्राणी उत्पन्न होते हैं, इसलिये जगत् अन्नमय है अर्थात् अन्नका ही परिणाम है॥ १९॥

हेमरत्नाश्वनागेन्द्रैर्नारीस्त्रक्चन्दनादिभिः ।
समस्तैरपि संप्राप्तैर्न रमन्ति बुभुक्षिताः॥ २०
गर्भस्था जायमानाश्च बालवृद्धाश्च मध्यमाः।
आहारमभिकांक्षन्ति देवदानवराक्षसाः॥ २१

भूखे लोग सुवर्ण, रत्न, घोड़ा, हाथी, स्त्री, माला, चन्दन आदि समस्त भोगोंके प्राप्त होनेपर भी आनन्दित नहीं होते हैं। गर्भस्थ, उत्पन्न हुए शिशु, बालक, युवा, वृद्ध, देवता, दानव तथा राक्षस—ये सब आहारकी ही विशेष आकांक्षा रखते हैं॥ २०-२१॥

क्षुधा निःशेषरोगाणां व्याधिः श्रेष्ठतमः स्मृतः।
स चान्नौषधिलेपेन नश्यतीह न संशयः॥ २२

इस जगत्में भूखको सभी रोगोंमें सबसे बड़ा रोग कहा गया है, वह [रोग] अन्नरूपी औषधिके लेपसे नष्ट होता है, इसमें संशय नहीं है॥ २२॥

नास्ति क्षुधासमं दुःखं नास्ति रोगः क्षुधासमः।
नास्त्यरोगसमं सौख्यं नास्ति क्रोधसमो रिपुः॥ २३
अत एव महत्पुण्यमन्नदाने प्रकीर्तितम्।
तथा क्षुधाग्निना तप्ता म्रियन्ते सर्वदेहिनः॥ २४

क्षुधाके समान कोई दुःख नहीं है, क्षुधाके समान कोई व्याधि नहीं है, आरोग्यलाभके समान कोई सुख नहीं है एवं क्रोधके समान कोई शत्रु नहीं है। अतः अन्नदान करनेमें महापुण्य कहा गया है; क्योंकि क्षुधारूपी अग्निसे तप्त हुए सभी प्राणी मर जाते हैं॥ २३-२४॥

अन्नदः प्राणदः प्रोक्तः प्राणदश्चापि सर्वदः।
तस्मादन्नप्रदानेन सर्वदानफलं लभेत्॥ २५

यस्यान्नपानपुष्टाङ्गः कुरुते पुण्यसंचयम्।
अन्नप्रदातुस्तस्यार्धं कर्तुश्चार्धं न संशयः॥ २६

अन्नका दान करनेवाला, प्राणदाता और प्राणदान करनेवाला सर्वस्वका दान करनेवाला कहा गया है, अतः मनुष्य अन्नदानसे सभी प्रकारके दानका फल प्राप्त करता है। जिसके अन्नसे पालित पुरुष पुष्ट होकर पुण्य संचय करता है, उसका आधा पुण्य अन्नदाताको और आधा पुण्य [स्वयं उस] कर्ताको प्राप्त होता है, इसमें संशय नहीं है॥ २५-२६॥

त्रैलोक्ये यानि रत्नानि भोगस्त्रीवाहनानि च।
अन्नदानप्रदः सर्वमिहामुत्र च तल्लभेत्॥ २७
धर्मार्थकाममोक्षाणां देहः परमसाधनम्।
तस्मादन्नेन पानेन पालयेद्देहमात्मनः॥ २८

तीनों लोकोंमें जो भी रत्न, भोग, स्त्री, वाहन आदि हैं, उन सबको अन्नदान करनेवाला इस लोकमें तथा परलोकमें प्राप्त करता है। यह शरीर धर्म, अर्थ, काम एवं मोक्षका परम साधन है। अतः अन्न एवं पानसे अपने शरीरकी रक्षा करनी चाहिये॥ २७-२८॥

अन्नमेव प्रशंसन्ति सर्वमन्ने प्रतिष्ठितम्।
अन्नेन सदृशं दानं न भूतं न भविष्यति॥ २९

सभी लोग अन्नकी प्रशंसा करते हैं; क्योंकि सब कुछ अन्नमें प्रतिष्ठित है। अन्नदानके समान न कोई दान हुआ है और न होगा॥ २९॥

अन्नेन धार्यते सर्वं विश्वं जगदिदं मुने।
अन्नमूर्जस्करं लोके प्राणा ह्यन्ने प्रतिष्ठिताः ॥ ३०

हे मुने! अन्नके द्वारा ही यह सम्पूर्ण विश्व धारण किया जाता है, अन्न ही लोकमें ऊर्जा प्रदान करनेवाला है और अन्नमें ही प्राण भी प्रतिष्ठित हैं ॥ ३० ॥

दातव्यं भिक्षवे चान्नं ब्राह्मणाय महात्मने।
कुटुम्बं पीडयित्वापि ह्यात्मनो भूतिमिच्छता ॥ ३१

ऐश्वर्यकी कामना करनेवालेको चाहिये कि वह अपने कुटुम्बको [यत्किंचित्] दुःख देकर भी भिक्षुक तथा महात्मा ब्राह्मणको अन्नका दान करे ॥ ३१ ॥

विददाति निधिश्रेष्ठं यो दद्यादन्नमर्थिने।
ब्राह्मणायार्तरूपाय पारलौकिकमात्मनः ॥ ३२

जो व्यक्ति याचक तथा दुखी ब्राह्मणको अन्नका दान करता है, वह अपनी पारलौकिक श्रेष्ठ निधिको संचित कर लेता है ॥ ३२ ॥

अर्चयेद्भूतिमन्विच्छन्काले द्विजमुपस्थितम्।
श्रान्तमध्वनि वृत्त्यर्थं गृहस्थो गृहमागतम् ॥ ३३

अन्नदः पूजयेद् व्यास सुशीलस्तु विमत्सरः।
क्रोधमुत्पतितं हित्वा दिवि चेह महत्सुखम् ॥ ३४

ऐश्वर्यकी कामना करनेवाले गृहस्थ व्यक्तिको चाहिये कि आजीविकाहेतु यथासमय उपस्थित हुए तथा रास्तेमें थककर घर आये हुए ब्राह्मणका सत्कार करे। हे व्यासजी! जो शीलसम्पन्न तथा ईर्ष्याशून्य होकर भोजन देनेवाला पुरुष उत्पन्न हुए क्रोधका त्यागकर [अभ्यागतकी] पूजा करता है, वह इस लोक तथा परलोकमें बहुत सुख प्राप्त करता है ॥ ३३-३४ ॥

नाभिनिन्देदधिगतं न प्रणुद्यात्कथंचन।
अपि श्वपाके शुनि वा नान्नदानं प्रणश्यति ॥ ३५

कभी भी प्राप्त हुए अन्नकी निन्दा न करे और न उसे किसी तरह फेंके ही; क्योंकि चाण्डाल तथा कुत्तेके लिये भी दिया गया अन्नदान निष्फल नहीं होता है ॥ ३५ ॥

श्रान्तायादृष्टपूर्वाय ह्यन्नमध्वनि वर्तते।
यो दद्यादपरिक्लिष्टः स समृद्धिमवाप्नुयात् ॥ ३६

थके हुए तथा अपरिचित पथिकको जो प्रसन्नतापूर्वक अन्न प्रदान करता है, वह ऐश्वर्य प्राप्त करता है ॥ ३६ ॥

पितॄन् देवांस्तथा विप्रानतिथींश्च महामुने।
यो नरः प्रीणयत्यन्नैः तस्य पुण्यफलं महत् ॥ ३७

हे महामुने! जो मनुष्य पितरों, देवताओं, ब्राह्मणों एवं अतिथियोंको अन्नोंके द्वारा सन्तुष्ट करता है, उस व्यक्तिको बहुत पुण्य मिलता है ॥ ३७ ॥

अन्नं पानं च शूद्रेऽपि ब्राह्मणे च विशिष्यते।
न पृच्छेद्गोत्रचरणं स्वाध्यायं देशमेव च ॥ ३८

अन्न तथा जलका दान तो ब्राह्मणके लिये ही नहीं बल्कि शूद्रके लिये भी विशेष महत्त्व रखता है, [अतएव अन्नके इच्छुकसे] गोत्र, शाखा, स्वाध्याय तथा देश नहीं पूछना चाहिये ॥ ३८ ॥

भिक्षितो ब्राह्मणेनेह दद्यादन्नं च यः पुमान्।
स याति परमं स्वर्गं यावदाभूतसम्प्लवम् ॥ ३९

इस लोकमें ब्राह्मणके द्वारा याचना किये जानेपर जो व्यक्ति अन्नदान करता है, वह प्रलयकालतक उत्तमस्थान स्वर्गमें निवास करता है। हे विप्रो! जिस

अन्नदस्य च वृक्षाश्च सर्वकामफलान्विताः।
भवन्तीह यथा विप्रा हर्षयुक्तास्त्रिविष्टपे॥ ४०

प्रकार कल्पवृक्ष आदि वृक्ष सभी कामनाओंको देनेमें समर्थ होते हैं, उसी प्रकार अन्नदान अन्नदाताको सभी कामनाओंका फल प्रदान करता है और अन्न देनेवाले लोग आनन्दपूर्वक स्वर्गमें निवास करते हैं॥ ३९-४०॥

अन्नदानेन ये लोकाः स्वर्गे विरचिता मुने।
अन्नदातुर्महादिव्यास्तान् शृणुष्व महामुने॥ ४१

भवनानि प्रकाशन्ते दिवि तेषां महात्मनाम्।
नानासंस्थानरूपाणि नानाकामान्वितानि च॥ ४२

हे महामुने! अन्न प्रदान करनेवाले व्यक्तिके लिये अन्नदानके कारण स्वर्गमें जो अतिशय दिव्य लोक बनाये गये हैं, उन्हें सुनिये। उन महात्माओंके लिये अनेक सुखोपभोगोंसे परिपूर्ण तथा स्थापत्य-कलाके विविध चमत्कारोंवाले शोभायुक्त भवन स्वर्गमें प्रकाशित होते हैं॥ ४१-४२॥

सर्वकामफलाश्चापि वृक्षा भवनसंस्थिताः।
हेमवाप्यः शुभाः कूपा दीर्घिकाश्चैव सर्वशः॥ ४३

घोषयन्ति च पानानि शुभान्यथ सहस्रशः।
भक्ष्यभोज्यमयाः शैला वासांस्याभरणानि च॥ ४४

क्षीरं स्रवन्त्यः सरितस्तथैवाज्यस्य पर्वताः।
प्रासादाः पाण्डुराभासाः शय्याश्च कनकोज्ज्वलाः॥ ४५

तानन्नदाश्च गच्छन्ति तस्मादन्नप्रदो भवेत्।
यदीच्छेदात्मनो भव्यमिह लोके परत्र च॥ ४६

एते लोकाः पुण्यकृतामन्नदानां महाप्रभाः।
तस्मादन्नं विशेषेण दातव्यं मानवैर्ध्रुवम्॥ ४७

उनके भवनोंमें उनकी कामनाके अनुरूप फल प्रदान करनेवाले वृक्ष, सोनेकी बावली, सुन्दर कूप तथा सरोवर विद्यमान रहते हैं। वहाँ हजारों शोभामय जलप्रपात कलकल ध्वनि करते रहते हैं। खानेयोग्य भोज्य वस्तुओंके पर्वत, वस्त्र, आभूषण, दुग्ध प्रवाहित करती हुई नदियाँ, घीके पहाड़, श्वेत-पीत कान्तिवाले महल तथा सोनेके समान देदीप्यमान शय्याएँ—ये सब विद्यमान रहते हैं। अन्न प्रदान करनेवाले उन लोकोंमें जाते हैं। इसलिये यदि मनुष्य इस लोक तथा परलोकमें ऐश्वर्यकी इच्छा करता हो, तो उसे अन्नका दान [अवश्य] करना चाहिये। अन्न प्रदान करनेवाले पुण्यात्माओंको ये परम कान्तिमय लोक प्राप्त होते हैं, इसलिये अवश्य ही मनुष्योंको विशेष रूपसे अन्नका दान करना चाहिये॥ ४३—४७॥

अन्नं प्रजापतिः साक्षादन्नं विष्णुः स्वयं हरः।
तस्मादन्नसमं दानं न भूतं न भविष्यति॥ ४८

कृत्वापि सुमहत्पापं यः पश्चादन्नदो भवेत्।
विमुक्तः सर्वपापेभ्यः स्वर्गलोकं स गच्छति॥ ४९

अन्न ही साक्षात् ब्रह्मा, विष्णु और महेश है, इसलिये अन्नदानके समान न कोई दान हुआ है और न होगा। बहुत बड़ा पाप करके भी जो बादमें अन्नका दान करता है, वह सभी पापोंसे मुक्त होकर स्वर्गलोकको जाता है॥ ४८-४९॥

अन्नपानाश्वगोवस्त्रशय्याच्छत्रासनानि च।
प्रेतलोके प्रशस्तानि दानान्यष्टौ विशेषतः॥ ५०

अन्न, पान, अश्व, गौ, वस्त्र, शय्या, छत्र एवं आसन—ये आठ प्रकारके दान यमलोकके लिये विशेषरूपसे श्रेष्ठ कहे गये हैं॥ ५०॥

एवं दानविशेषेण धर्मराजपुरं नरः।
यस्माद्याति विमानेन तस्माद्दानं समाचरेत्॥ ५१

चूँकि इस प्रकारके विशेष दान से मनुष्य विमानद्वारा धर्मराजके लोकको जाता है, इसलिये [अन्नादिका] दान करना चाहिये॥ ५१॥

एतदाख्यानमनघमन्नदानप्रभावतः।
यः पठेत्पाठयेदन्यान्स समृद्धः प्रजायते॥ ५२

अन्नदानके प्रभाव वर्णनसे युक्त यह आख्यान [सर्वथा] पापरहित है। जो इसे पढ़ता है या दूसरोंको पढ़ाता है, वह समृद्धिशाली हो जाता है॥ ५२॥

शृणुयाच्छ्रावयेच्छ्राद्धे ब्राह्मणान्यो महामुने।
अक्षय्यमन्नदानं च पितॄणामुपतिष्ठति॥ ५३

हे महामुने! जो श्राद्धकालमें इस प्रसंगको सुनता है अथवा ब्राह्मणोंको सुनाता है, उसके पितरोंको अक्षय अन्नदान [-का फल] प्राप्त होता है॥ ५३॥

इति श्रीशिवमहापुराणे पञ्चम्यामुमासंहितायां अन्नदानमाहात्म्यवर्णनं नामैकादशोऽध्यायः॥ ११॥

॥ इस प्रकार श्रीशिवमहापुराणके अन्तर्गत पाँचवीं उमासंहितामें अन्नदानमाहात्म्यवर्णन नामक ग्यारहवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ ११॥

अथ द्वादशोऽध्यायः

जलदान, सत्यभाषण और तपकी महिमा

सनत्कुमार उवाच

पानीयदानं परमं दानानामुत्तमं सदा।
सर्वेषां जीवपुञ्जानां तर्पणं जीवनं स्मृतम्॥ १

सनत्कुमार बोले—[हे व्यासजी!] जलका दान सभी दानोंमें सदा अति श्रेष्ठ है; क्योंकि वह सभी जीव-समुदायको तृप्त करनेवाला जीवन कहा गया है॥ १॥

प्रपादानमतः कुर्यात् सुस्नेहादनिवारितम्।
जलाश्रयविनिर्माणं महानन्दकरं भवेत्॥ २

इह लोके परे वापि सत्यं सत्यं न संशयः।
तस्माद्वापीश्च कूपांश्च तडागान् कारयेन्नरः॥ ३

अतः बिना किसी रुकावटके प्रेमपूर्वक पौसरा चलाना चाहिये। जलाशयका निर्माण इस लोकमें तथा परलोकमें भी परम आनन्द प्रदान करनेवाला है। यह सत्य है, सत्य है, इसमें संशय नहीं है। इसलिये मनुष्यको बावली, तालाब तथा कूपोंका निर्माण कराना चाहिये॥ २-३॥

अर्धं पापस्य हरति पुरुषस्य विकर्मणः।
कूपः प्रवृत्तपानीयः सुप्रवृत्तस्य नित्यशः॥ ४

सर्वं तारयते वंशं यस्य खाते जलाशये।
गावः पिबन्ति विप्राश्च साधवश्च नराः सदा॥ ५

जल निकलते ही कूप पापपरायण दुष्कर्मशील पुरुषके आधे पापका हरण कर लेता है तथा सत्कर्मनिरत व्यक्तिके पापोंका [तो वह] निरन्तर हरण करता ही रहता है। जिसके द्वारा खुदवाये जलाशयमें गाय, ब्राह्मण, साधु तथा अन्य मनुष्य सदा जल पीते हैं, वह [अपने] सम्पूर्ण कुलको तार देता है॥ ४-५॥

निदाघकाले पानीयं यस्य तिष्ठत्यवारितम्।
सुदुर्गं विषमं कृच्छ्रं न कदाचिदवाप्यते॥ ६

जिसके जलाशयमें गर्मीके समयमें भी पर्याप्त जल रहता है, वह विषम तथा अति भयंकर दुःख कभी नहीं प्राप्त करता है॥ ६॥

तडागानां च वक्ष्यामि कृतानां ये गुणाः स्मृता।
त्रिषु लोकेषु सर्वत्र पूजितो यस्तडागवान्॥ ७

अथवा मित्रसदने मैत्रं मित्रार्तिवर्जितम्।
कीर्तिसंजननं श्रेष्ठं तडागानां निवेशनम्॥ ८

[हे व्यास!] निर्मित कराये गये सरोवरोंके जो गुण कहे गये हैं, उन्हें मैं बताऊँगा। जो तालाबका निर्माण कराता है, वह तीनों लोकोंमें सर्वत्र पूजित होता है अथवा सूर्यलोकमें पूजित होता है। तालाबोंका निर्माण सूर्यके तापको दूर करनेवाला, मैत्रीकारक तथा कीर्तिका उत्तम हेतु होता है॥ ७-८॥

धर्मस्यार्थस्य कामस्य फलमाहुर्मनीषिणः।
तडागः सुकृतो येन तस्य पुण्यमनन्तकम्॥ ९

विद्वान् लोग धर्म, अर्थ तथा कामके [तो परिमित] फलका वर्णन करते हैं, परंतु जिसने सरोवरका निर्माण कराया, उसका पुण्य अनन्त होता है॥ ९॥

चतुर्विधानां भूतानां तडागः परमाश्रयः।
तडागादीनि सर्वाणि दिशन्ति श्रियमुत्तमाम्॥ १०

स्वेदज, अण्डज, उद्भिज्ज तथा जरायुज—इन चारों प्रकारके प्राणियोंको तालाब महान् शरण [कहा गया] है। सभी प्रकारके तालाब [कूप, वापी, प्रपा] आदि [निर्माणकर्ताको] उत्तम लक्ष्मी प्रदान करते हैं॥ १०॥

देवा मनुष्या गन्धर्वाः पितरो नागराक्षसाः।
स्थावराणि च भूतानि संश्रयन्ति जलाशयम्॥ ११

देवता, मनुष्य, गन्धर्व, पितर, नाग, राक्षस और स्थावर प्राणी जलाशयका आश्रय ग्रहण करते हैं॥ ११॥

प्रावृड्ऋतौ तडागे तु सलिलं यस्य तिष्ठति।
अग्निहोत्रफलं तस्य भवतीत्याह चात्मभूः॥ १२
शरत्काले तु सलिलं तडागे यस्य तिष्ठति।
गोसहस्रफलं तस्य भवेन्नैवात्र संशयः॥ १३

वर्षाकालमें जिसके सरोवरमें जल रहता है, उसे अग्निहोत्रका फल मिलता है—ऐसा ब्रह्माजीने कहा है। शरत्कालमें जिसके सरोवरमें जल रहता है, उसे हजार गोदानका फल मिलता है, इसमें संशय नहीं है॥ १२-१३॥

हेमन्ते शिशिरे चैव सलिलं यस्य तिष्ठति।
स वै बहुसुवर्णस्य यज्ञस्य लभते फलम्॥ १४
वसन्ते च तथा ग्रीष्मे सलिलं यस्य तिष्ठति।
अतिरात्राश्वमेधानां फलमाहुर्मनीषिणः॥ १५

हेमन्त और शिशिर-ऋतुमें जिसके सरोवरमें जल रहता है, वह बहुत-सी सुवर्णदक्षिणावाले यज्ञका फल प्राप्त करता है। वसन्त और ग्रीष्मकालमें जिसके सरोवरमें जल रहता है, उसे अतिरात्र एवं अश्वमेधयज्ञका फल मिलता है—ऐसा विद्वानोंने कहा है॥ १४-१५॥

मुने व्यासाथ वृक्षाणां रोपणे च गुणान् शृणु।
प्रोक्तं जलाशयफलं जीवप्रीणनमुत्तमम्॥ १६

हे व्यास मुने! जीवोंको सन्तुष्ट करनेवाले जलाशयके फलका वर्णन मैंने कर दिया, अब वृक्षोंके लगानेके महत्त्वका श्रवण कीजिये॥ १६॥

अतीतानागतान् सर्वान् पितृवंशांस्तु तारयेत्।
कान्तारे वृक्षरोपी यस्तस्माद् वृक्षांस्तु रोपयेत्॥ १७

तत्र पुत्रा भवन्त्येते पादपा नात्र संशयः।
परं लोकं गतः सोऽपि लोकानाप्नोति चाक्षयान्॥ १८

जो वनमें वृक्षोंको लगाता है, वह बीती हुई पीढ़ियों और आनेवाली पीढ़ियोंके सभी पितृकुलोंका उद्धार कर देता है, इसलिये वृक्षोंको अवश्य लगाना चाहिये। लगाये गये ये वृक्ष दूसरे जन्ममें उस व्यक्तिके पुत्र होते हैं, इसमें सन्देह नहीं है। वह वृक्षारोपण करनेवाला अन्तमें परलोक जानेपर अक्षय लोकोंको प्राप्त करता है॥ १७-१८॥

पुष्पैः सुरगणान् सर्वान् फलैश्चापि तथा पितॄन्।
छायया चातिथीन् सर्वान् पूजयन्ति महीरुहाः॥ १९

वृक्ष पुष्पोंके द्वारा देवगणोंकी, फलोंके द्वारा पितरोंकी और छायाके द्वारा सभी अतिथियोंकी पूजा करते हैं॥ १९॥

किन्नरोरगरक्षांसि देवगन्धर्वमानवाः।
तथैवर्षिगणाश्चैव संश्रयन्ति महीरुहान्॥ २०
पुष्पिताः फलवन्तश्च तर्पयन्तीह मानवान्।
इह लोके परे चैव पुत्रास्ते धर्मतः स्मृताः॥ २१

किन्नर, सर्प, राक्षस, देवता, गन्धर्व, मनुष्य तथा ऋषि वृक्षोंका आश्रय लेते हैं। फूले-फले वृक्ष इस लोकमें मनुष्योंको तृप्त करते हैं, वे इस लोक एवं परलोकमें धर्मसम्बन्धसे साक्षात् पुत्र ही कहे गये हैं॥ २०-२१॥

तडागकृद् वृक्षरोपी चेष्टयज्ञश्च यो द्विजः।
एते स्वर्गान्न हीयन्ते ये चान्ये सत्यवादिनः॥ २२

जो द्विज सरोवरका निर्माण करनेवाला, वृक्षोंको लगानेवाला, इष्ट तथा पूर्तकर्म करनेवाला है और भी जो दूसरे सत्य बोलनेवाले लोग हैं—ये स्वर्गसे च्युत नहीं होते हैं॥ २२॥

सत्यमेव परं ब्रह्म सत्यमेव परं तपः।
सत्यमेव परो यज्ञः सत्यमेव परं श्रुतम्॥ २३

सत्यं सुप्तेषु जागर्ति सत्यं च परमं पदम्।
सत्येनैव धृता पृथ्वी सत्ये सर्वं प्रतिष्ठितम्॥ २४

तपो यज्ञश्च पुण्यं च देवर्षिपितृपूजने।
आपो विद्या च ते सर्वे सर्वं सत्ये प्रतिष्ठितम्॥ २५

सत्यं यज्ञस्तपो दानं मन्त्रा देवी सरस्वती।
ब्रह्मचर्यं तथा सत्यमोंकारः सत्यमेव च॥ २६

सत्येन वायुरभ्येति सत्येन तपते रविः।
सत्येनाग्निर्निर्दहति स्वर्गः सत्येन तिष्ठति॥ २७

पालनं सर्ववेदानां सर्वतीर्थावगाहनम्।
सत्येन वहते लोके सर्वमाप्नोत्यसंशयम्॥ २८

अश्वमेधसहस्त्रं च सत्यं च तुलया धृतम्।
लक्षाणि क्रतवश्चैव सत्यमेव विशिष्यते॥ २९

सत्येन देवाः पितरो मानवोरगराक्षसाः।
प्रीयन्ते सत्यतः सर्वे लोकाश्च सचराचराः॥ ३०

सत्यमाहुः परं धर्मं सत्यमाहुः परं पदम्।
सत्यमाहुः परं ब्रह्म तस्मात्सत्यं सदा वदेत्॥ ३१

मुनयः सत्यनिरतास्तपस्तप्त्वा सुदुश्चरम्।
सत्यधर्मरताः सिद्धाः ततः स्वर्गं च ते गताः॥ ३२

अप्सरोगणसंविष्टैर्विमानैः परिमातृभिः।
वक्तव्यं च सदा सत्यं न सत्याद्विद्यते परम्॥ ३३

अगाधे विपुले सिद्धे सत्यतीर्थे शुचिह्रदे।
स्नातव्यं मनसा युक्तं स्थानं तत्परमं स्मृतम्॥ ३४

आत्मार्थे वा परार्थे वा पुत्रार्थे वापि मानवाः।
अनृतं ये न भाषन्ते ते नराः स्वर्गगामिनः॥ ३५

वेदा यज्ञास्तथा मन्त्राः सन्ति विप्रेषु नित्यशः।
नो भान्त्यपि ह्यसत्येषु तस्मात्सत्यं समाचरेत्॥ ३६

सत्य ही परब्रह्म है, सत्य ही परम तप है, सत्य ही परम यज्ञ है और सत्य ही परम शास्त्र है॥ २३॥

सभीके सो जानेपर एक सत्य ही जागता रहता है। सत्य ही परम पद है, सत्यके द्वारा ही पृथ्वी टिकी हुई है, अतः सत्यमें ही सब कुछ प्रतिष्ठित है॥ २४॥

तप, यज्ञ, देव, ऋषि, पितृपूजनका पुण्य, जल एवं विद्या—ये सभी तथा सब कुछ सत्यमें ही प्रतिष्ठित हैं। सत्य ही यज्ञ, तप, दान, सभी मन्त्र तथा देवी सरस्वतीरूप है। सत्य ही ब्रह्मचर्य है, सत्य ही ओंकार है॥ २५-२६॥

सत्यसे ही वायु बहता है, सत्यसे ही सूर्य तपता है, सत्यसे ही अग्नि जलाती है और सत्यसे ही स्वर्ग स्थित है। सभी वेदोंका पालन तथा सभी तीर्थोंका स्नान सत्यसे ही होता है, सत्यसे ही प्राणी निःसन्देह सब कुछ प्राप्त कर लेता है॥ २७-२८॥

हजारों अश्वमेधयज्ञ तथा लाखों अन्य यज्ञ तराजूके एक पलड़ेपर तथा सत्यको दूसरे पलड़ेमें रखनेपर सत्य भारी पड़ता है। सत्यसे देवता, पितर, मानव, सर्प तथा राक्षस प्रसन्न रहते हैं, सत्यसे ही चर-अचरसहित सम्पूर्ण लोक प्रसन्न रहते हैं॥ २९-३०॥

सत्यको परम धर्म कहा गया है, सत्यको परम पद कहा गया है और सत्यको परम ब्रह्म कहा गया है, इसलिये सदा सत्य बोलना चाहिये॥ ३१॥

सत्यपरायण मुनिगण तथा सत्यधर्ममें प्रवृत्त हुए सिद्धगण अत्यन्त कठिन तप करके अप्सराओंसे परिपूर्ण विस्तृत विमानोंके द्वारा स्वर्गको प्राप्त हुए हैं। [इसलिये सभी लोगोंको] सत्य बोलना चाहिये; क्योंकि सत्यसे बढ़कर कुछ भी नहीं है॥ ३२-३३॥

अगाध, विपुल, सिद्ध तथा पवित्रतापूर्ण सत्यरूपी ह्रदमें मनोयोगसे स्नान करना चाहिये; क्योंकि वह परम पवित्र तीर्थ कहा गया है॥ ३४॥

जो लोग स्वयंके लिये अथवा दूसरोंके लिये यहाँतक कि अपने पुत्रके लिये भी झूठ नहीं बोलते, वे स्वर्गगामी होते हैं॥ ३५॥

ब्राह्मणोंमें वेदों, यज्ञों तथा मन्त्रोंके विद्यमान रहनेपर भी उनके असत्ययुक्त होनेपर वे सुशोभित नहीं होते, इसलिये भली प्रकारसे सत्यभाषण करना चाहिये॥ ३६॥

व्यास उवाच

तपसो मे फलं ब्रूहि पुनरेव विशेषतः।
सर्वेषां चैव वर्णानां ब्राह्मणानां तपोधन॥ ३७

व्यासजी बोले—हे तपोधन! सभी वर्णों एवं विशेष रूपसे ब्राह्मणोंकी तपस्याका फल पुनः मुझसे कहिये॥ ३७॥

सनत्कुमार उवाच

प्रवक्ष्यामि तपोऽध्यायं सर्वकामार्थसाधकम्।
सुदुश्चरं द्विजातीनां तन्मे निगदतः शृणु॥ ३८

तपो हि परमं प्रोक्तं तपसा विद्यते फलम्।
तपोरता हि ये नित्यं मोदन्ते सह दैवतैः॥ ३९

सनत्कुमार बोले—हे व्यासजी! मैं द्विजातियोंके लिये सभी प्रकारकी कामनाओं एवं अर्थोंको सिद्ध करनेवाले अत्यन्त कठिन तपोऽध्यायका वर्णन करूँगा, उसे कहते हुए मुझसे आप सुनें। तप सर्वश्रेष्ठ कहा गया है, सभी प्रकारके फल तपस्यासे ही प्राप्त होते हैं। जो निरन्तर तपका सेवन करते हैं, वे देवगणोंके साथ आनन्द प्राप्त करते हैं॥ ३८-३९॥

तपसा प्राप्यते स्वर्गस्तपसा प्राप्यते यशः।
तपसा प्राप्यते कामस्तपः सर्वार्थसाधनम्॥ ४०

तपसे स्वर्ग मिलता है, तपसे यश मिलता है, तपस्यासे सभी कामनाएँ पूर्ण होती हैं और तप सभी प्रकारके अर्थोंका साधन है॥ ४०॥

तपसा मोक्षमाप्नोति तपसा विन्दते महत्।
ज्ञानविज्ञानसम्पत्तिः सौभाग्यं रूपमेव च॥ ४१

तपसे मोक्ष प्राप्त होता है, तपस्यासे परमात्मा प्राप्त होते हैं, तपस्यासे ज्ञान, विज्ञान, सम्पत्ति, सौभाग्य एवं रूप प्राप्त होता है॥ ४१॥

नानाविधानि वस्तूनि तपसा लभते नरः।
तपसा लभते सर्वं मनसा यद्यदिच्छति॥ ४२

मनुष्य तपस्यासे नाना प्रकारकी वस्तुएँ प्राप्त करता है, वह मनसे जिस-जिस वस्तुकी अभिलाषा करता है, वह सब कुछ तपस्यासे प्राप्त कर लेता है॥ ४२॥

नातप्ततपसो यान्ति ब्रह्मलोकं कदाचन।
नातप्ततपसां प्राप्यः शंकरः परमेश्वरः॥ ४३

तप न करनेवाले कभी भी ब्रह्मलोक नहीं जा सकते हैं और तप न करनेवालोंके लिये कभी परमेश्वर शिवजी प्राप्त नहीं हो सकते हैं॥ ४३॥

यत्कार्यं किंचिदास्थाय पुरुषस्तपते तपः।
तत्सर्वं समवाप्नोति परत्रेह च मानवः॥ ४४

सुरापः परदारी च ब्रह्महा गुरुतल्पगः।
तपसा तरते सर्वं सर्वतश्च विमुच्यति॥ ४५

पुरुष जिस कार्यको उद्देश्य करके तप करता है, वह उसे इस लोकमें तथा परलोकमें प्राप्त कर लेता है। मदिरा पीनेवाला, परस्त्रीगमन करनेवाला, ब्रह्महत्यारा एवं गुरुपत्नीगामी भी तपस्याके प्रभावसे अपने सभी पापोंसे मुक्त हो जाता है और तर जाता है॥ ४४-४५॥

अपि सर्वेश्वरः स्थाणुर्विष्णुश्चैव सनातनः।
ब्रह्मा हुताशनः शक्रो ये चान्ये तपसान्विताः॥ ४६

सर्वेश्वर शिव, सनातन विष्णु, ब्रह्मा, अग्नि, इन्द्र तथा अन्य लोग भी तपस्यापरायण रहते हैं॥ ४६॥

अष्टाशीतिसहस्राणि मुनीनामूर्ध्वरेतसाम्।
तपसा दिवि मोदन्ते समेता दैवतैः सह॥ ४७

ऊर्ध्वरेता अट्ठासी हजार [बालखिल्य आदि] महर्षि भी तपके प्रभावसे ही देवगणोंके साथ स्वर्गमें आनन्द प्राप्त करते हैं॥ ४७॥

तपसा लभ्यते राज्यं स च शक्रः सुरेश्वरः।
तपसापालयत्सर्वमहन्यहनि वृत्रहा॥ ४८

सूर्याचन्द्रमसौ देवौ सर्वलोकहिते रतौ।
तपसैव प्रकाशन्ते नक्षत्राणि ग्रहास्तथा॥ ४९

तपस्यासे राज्य प्राप्त होता है, तपस्यासे ही वृत्रासुरका नाशकर इन्द्र देवताओंके स्वामी बने हुए हैं और प्रतिदिन सबका पालन करते हैं। तपस्याके प्रभावसे ही सम्पूर्ण लोकोंका कल्याण करनेमें लगे हुए सूर्य, चन्द्रमा, नक्षत्र एवं ग्रह प्रकाशित होते हैं॥ ४८-४९॥

न चास्ति तत्सुखं लोके यद्विना तपसा किल।
तपसैव सुखं सर्वमिति वेदविदो विदुः॥ ५०

जगत्‌में ऐसा कोई सुख नहीं है, जो तपके बिना प्राप्त होता हो, तपसे ही सारा सुख प्राप्त होता है—ऐसा वेदवेत्ताओंने कहा है॥ ५०॥

ज्ञानं विज्ञानमारोग्यं रूपवत्त्वं तथैव च।
सौभाग्यं चैव तपसा प्राप्यते सर्वदा सुखम्॥ ५१

ज्ञान, विज्ञान, आरोग्य, रूप, सौभाग्य तथा सुख सर्वदा तपस्यासे ही प्राप्त होते हैं॥ ५१॥

तपसा सृज्यते विश्वं ब्रह्मा विश्वं विना श्रमम्।
पाति विष्णुर्हरोऽप्यत्ति धत्ते शेषोऽखिलां महीम्॥ ५२

तपस्याके द्वारा ही ब्रह्माजी बिना श्रमके सम्पूर्ण संसारकी रचना करते हैं, विष्णु रक्षा करते हैं, शिवजी संहार करते हैं और शेषनाग सम्पूर्ण पृथ्वीको धारण करते हैं॥ ५२॥

विश्वामित्रो गाधिसुतस्तपसैव महामुने।
क्षत्रियोऽथाभवद्विप्रः प्रसिद्धं त्रिभवे त्विदम्॥ ५३

हे महामुने! गाधिपुत्र [महर्षि] विश्वामित्र तपस्याके प्रभावसे ही क्षत्रियसे ब्राह्मण हो गये थे; यह बात त्रैलोक्यमें प्रसिद्ध है॥ ५३॥

इत्युक्तं ते महाप्राज्ञ तपोमाहात्म्यमुत्तमम्।
शृण्वध्ययनमाहात्म्यं तपसोऽधिकमुत्तमम्॥ ५४

हे महाप्राज्ञ! इस प्रकार मैंने तपका श्रेष्ठ माहात्म्य आपसे कहा, अब तपसे भी श्रेष्ठ [वेदोंके] अध्ययनकी महिमाको सुनिये॥ ५४॥

इति श्रीशिवमहापुराणे पञ्चम्यामुमासंहितायां तपोमाहात्म्यवर्णनं नाम द्वादशोऽध्यायः॥ १२॥

॥ इस प्रकार श्रीशिवमहापुराणके अन्तर्गत पाँचवीं उमासंहितामें तपस्याका माहात्म्यवर्णन नामक बारहवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ १२॥

अथ त्रयोदशोऽध्यायः

पुराणमाहात्म्यनिरूपण

सनत्कुमार उवाच

तपस्तपति योऽरण्ये वन्यमूलफलाशनः।
योऽधीते ऋचमेकां हि फलं स्यात्तत्समं मुने॥ १

सनत्कुमार बोले—हे मुने! जो वनके कन्द-मूल एवं फल खाकर अरण्यमें तपस्या करता है और जो वेदकी एक ऋचामात्रका अध्ययन करता है, उन दोनोंका समान फल होता है॥ १॥

श्रुतेरध्ययनात्पुण्यं यदाप्नोति द्विजोत्तमः।
तदध्यापनतश्चापि द्विगुणं फलमश्नुते॥ २

जगद्यथा निरालोकं जायतेऽशशिभास्करम्।
विना तथा पुराणं ह्यध्येयमस्मान्मुने सदा॥ ३

श्रेष्ठ ब्राह्मण वेदके अध्ययनसे जो पुण्य प्राप्त करता है, उसके अध्यापनसे उसका दूना फल प्राप्त होता है। हे मुने! जैसे सूर्य और चन्द्रमाके बिना सम्पूर्ण संसार प्रकाशरहित हो जाता है, वैसे ही पुराणके अध्ययनके बिना लोग ज्ञानरहित हो जाते हैं, इसलिये सदा पुराणका अध्ययन करना चाहिये॥ २-३॥

तप्यमानं सदाज्ञानान्निरये योऽपि शास्त्रतः।
सम्बोधयति लोकं तं तस्मात् पूज्यः पुराणगः॥ ४

सर्वेषां चैव पात्राणां मध्ये श्रेष्ठः पुराणवित्।
पतनात् त्रायते यस्मात् तस्मात्पात्रमुदाहृतम्॥ ५

पुराण जाननेवाला ही शास्त्रका उपदेश देकर अज्ञानके कारण नरकमें दुःख प्राप्त करनेवाले मनुष्यको भलीभाँति बोध कराता है, इसलिये पुराणका वक्ता [सर्वदा] पूजनीय होता है। सत्पात्रोंमें पुराण जाननेवाला ही सर्वश्रेष्ठ है; वह पतनसे रक्षा करता है, इसलिये उसे पात्र कहा गया है॥ ४-५॥

मर्त्यबुद्धिर्न कर्तव्या पुराणज्ञे कदाचन।
पुराणज्ञः सर्ववेत्ता ब्रह्मा विष्णुर्हरो गुरुः॥ ६
धनं धान्यं हिरण्यं च वासांसि विविधानि च।
देयं पुराणविज्ञाय परत्रेह च शर्मणे॥ ७
यो ददाति महाप्रीत्या पुराणज्ञाय सज्जनः।
पात्राय शुभवस्तूनि स याति परमां गतिम्॥ ८

पुराणवेत्ताको कभी भी मनुष्यके रूपमें नहीं समझना चाहिये। पुराणका ज्ञाता सर्वज्ञ, ब्रह्मा, विष्णु, शिव एवं गुरु है। इस लोक एवं परलोकमें [अपने] कल्याणके लिये पुराण-वेत्ताको धन-धान्य, सुवर्ण एवं विविध वस्त्र देना चाहिये। जो सज्जन पुराण जाननेवालेको प्रेमपूर्वक शुभ वस्तुएँ प्रदान करता है, वह परम गतिको प्राप्त होता है॥ ६—८॥

महीं गां वा स्यंदनांश्च गजानश्वांश्च शोभनान्।
यः प्रयच्छति पात्राय तस्य पुण्यफलं शृणु॥ ९
अक्षयान्सर्वकामांश्च परत्रेह च जन्मनि।
अश्वमेधमखस्यापि स फलं लभते पुमान्॥ १०

जो सत्पात्रको पृथ्वी, गौ, रथ, हाथी और श्रेष्ठ घोड़ा देता है, उसके पुण्यके फलका श्रवण करो। वह मनुष्य इस जन्ममें तथा परलोकमें सभी अक्षय कामनाओंको तथा अश्वमेधयज्ञके फलको प्राप्त करता है॥ ९-१०॥

महीं ददाति यस्तस्मै कृष्टां फलवतीं शुभाम्।
स तारयति वै वंश्यान्दश पूर्वान् दशापरान्॥ ११

जो पुराणवेत्ताको हलसे जोती गयी फसलयुक्त भूमि प्रदान करता है, वह अपनेसे पूर्वकी दस पीढ़ी तथा आगे आनेवाली दस पीढ़ियोंका उद्धार कर देता है॥ ११॥

इह भुक्त्वाखिलान् कामानन्ते दिव्यशरीरवान्।
विमानेन च दिव्येन शिवलोकं स गच्छति॥ १२
न यज्ञैस्तुष्टिमायान्ति देवाः प्रोक्षणकैरपि।
बलिभिः पुष्पपूजाभिर्यथा पुस्तकवाचनैः॥ १३

वह व्यक्ति इस लोकमें सभी सुखोंका भोग करके दिव्य शरीरसे युक्त होकर दिव्य विमानसे शिवलोक जाता है। देवतालोग यज्ञ, प्रोक्षण, बलि, पुष्पार्पण तथा पूजासे उतने प्रसन्न नहीं होते, जितना पुराण-ग्रन्थके वाचनसे होते हैं॥ १२-१३॥

शम्भोरायतने यस्तु कारयेद्धर्मपुस्तकम्।
विष्णोरर्कस्य कस्यापि शृणु तस्यापि तत्फलम्॥ १४
राजसूयाश्वमेधानां फलमाप्नोति मानवः।
सूर्यलोकं च भित्त्वाशु ब्रह्मलोकं स गच्छति॥ १५

जो शिवालय, विष्णुमन्दिर, सूर्यमन्दिर अथवा किसी भी देवमन्दिरमें धर्मशास्त्रका वाचन कराता है, उसके फलका श्रवण कीजिये। वह मनुष्य राजसूय तथा अश्वमेधयज्ञका फल प्राप्त करता है और सूर्यलोकका भेदनकर ब्रह्मलोकको जाता है॥ १४-१५॥

स्थित्वा कल्पशतान्यत्र राजा भवति भूतले।
भुङ्क्ते निष्कण्टकं भोगान्नात्र कार्या विचारणा॥ १६

वहाँ सैकड़ों कल्पतक निवास करके वह यहाँ पृथ्वीपर राजा होता है और निष्कण्टक सभी सुखोंका भोग करता है; इसमें सन्देह नहीं करना चाहिये॥ १६॥

अश्वमेधसहस्रस्य यत्फलं समुदाहृतम्।
तत्फलं समवाप्नोति देवाग्रे यो जपं चरेत्॥ १७
इतिहासपुराणाभ्यां शम्भोरायतने शुभे।
नान्यत्प्रीतिकरं शम्भोस्तथान्येषां दिवौकसाम्॥ १८
तस्मात्सर्वप्रयत्नेन कार्यं पुस्तकवाचनम्।
तथास्य श्रवणं प्रेम्णा सर्वकामफलप्रदम्॥ १९

जो किसी देवताके सान्निध्यमें जप करता है, वह हजार अश्वमेधका जो फल कहा गया है, उस फलको प्राप्त करता है। शिवमन्दिरमें एवं अन्य देवमन्दिरोंमें इतिहास-पुराणोंके वाचनके बिना शिवजीको प्रसन्न करनेका अन्य कोई उपाय नहीं है। इसलिये सम्पूर्ण प्रयत्नसे देवमन्दिरोंमें धर्मपुस्तकोंका वाचन तथा श्रवण प्रेमपूर्वक करना चाहिये, वह सभी प्रकारकी कामनाओंका फल प्रदान करनेवाला है॥ १७—१९॥

पुराणश्रवणात् शम्भोर्निष्पापो जायते नरः।
भुक्त्वा भोगान् सुविपुलान् शिवलोकमवाप्नुयात्॥ २०

शिवपुराणके सुननेसे पुरुष पापहीन हो जाता है और सम्पूर्ण सुखोंको भोगकर [अन्तमें] शिवलोकको प्राप्त करता है॥ २०॥

राजसूयेन यत्पुण्यमग्निष्टोमशतेन च।
तत्पुण्यं लभते शम्भोः कथाश्रवणमात्रतः॥ २१

सर्वतीर्थावगाहेन गवां कोटिप्रदानतः।
तत् फलं लभते शम्भोः कथाश्रवणतो मुने॥ २२

सैकड़ों राजसूय एवं अग्निष्टोमयज्ञ करनेसे जो पुण्य प्राप्त होता है, उस पुण्यकी प्राप्ति शिवजीकी कथा सुनानेमात्रसे हो जाती है। हे मुने! सभी तीर्थोंमें स्नान करनेसे तथा करोड़ों गौओंका दान करनेसे जो फल मिलता है, उस फलको मनुष्य शिवकी कथा सुननेमात्रसे ही प्राप्त करता है॥ २१-२२॥

ये शृण्वन्ति कथां शम्भोः सदा भुवनपावनीम्।
ते मनुष्या न मन्तव्या रुद्रा एव न संशयः॥ २३

जो मनुष्य तीनों भुवनोंको पवित्र करनेवाली शिवकथाको सुनते हैं, उन्हें मनुष्य नहीं समझना चाहिये, वे साक्षात् रुद्र ही हैं, इसमें संशय नहीं है॥ २३॥

शृण्वतां शिवसत्कीर्तिं सतां कीर्तयतां च ताम्।
पादाम्बुजरजांस्येव तीर्थानि मुनयो विदुः॥ २४

गन्तुं निःश्रेयसं स्थानं येऽभिवांछन्ति देहिनः।
कथां पौराणिकीं शैवीं भक्त्या शृण्वन्तु ते सदा॥ २५

मुनियोंने शिवजीके उत्तम यशका श्रवण करनेवाले तथा उसका कीर्तन करनेवाले सत्पुरुषोंके चरणकमलकी धूलिको ही तीर्थ कहा है। जो प्राणी मोक्षकी स्थिति प्राप्त करना चाहते हैं, उन्हें सदा भक्तिपूर्वक शिवपुराणकी कथा सुननी चाहिये॥ २४-२५॥

कथां पौराणिकीं श्रोतुं यद्यशक्तः सदा भवेत्।
नियतात्मा प्रतिदिनं शृणुयाद्वा मुहूर्तकम्॥ २६

यदि प्रतिदिनं श्रोतुमशक्तो मानवो भवेत्।
पुण्यमासादिषु मुने शृणुयाच्छांकरीं कथाम्॥ २७

यदि मनुष्य पुराणकी कथाको सदा सुननेमें असमर्थ हो तो संयतचित्त होकर प्रतिदिन केवल एक मुहूर्त ही कथाका श्रवण करे। हे मुने! यदि मनुष्य प्रतिदिन कथा सुननेमें असमर्थ हो तो पवित्र महीनोंमें ही शिवकी कथाका श्रवण करे॥ २६-२७॥

शैवीं कथां हि शृण्वानः पुरुषो हि मुनीश्वर।
स निस्तरति संसारं दग्ध्वा कर्ममहाटवीम्॥ २८

कथां शैवीं मुहूर्तं वा तदर्धं वा क्षणं च वा।
ये शृण्वन्ति नरा भक्त्या न तेषां दुर्गतिर्भवेत्॥ २९

हे मुनीश्वर! शिवकी कथाका श्रवण करता हुआ वह पुरुष कर्मरूपी महारण्यको भस्म करके संसारसे पार हो जाता है। जो मनुष्य मुहूर्तमात्र अथवा उसका आधा या क्षणमात्र भी शिवकी कथाको भक्तिपूर्वक सुनते हैं, उनकी दुर्गति नहीं होती है॥ २८-२९॥

यत्पुण्यं सर्वदानेषु सर्वयज्ञेषु वा मुने।
शम्भोः पुराणश्रवणात्तत्फलं निश्चलं भवेत्॥ ३०

हे मुने! सभी दानों अथवा सभी यज्ञोंसे जो पुण्य मिलता है, वह शिवपुराणके श्रवणसे अचल हो जाता है॥ ३०॥

विशेषतः कलौ व्यास पुराणश्रवणादृते।
परो धर्मो न पुंसां हि मुक्तिध्यानपरः स्मृतः॥ ३१

पुराणश्रवणं शम्भोर्नामसंकीर्तनं तथा।
कल्पद्रुमफलं रम्यं मनुष्याणां न संशयः॥ ३२

हे व्यासजी! विशेष रूपसे कलियुगमें मनुष्योंके लिये पुराणके श्रवणसे अतिरिक्त और कोई भी श्रेष्ठ धर्म नहीं है, वही उनके लिये मोक्ष एवं ध्यानरूपी फल देनेवाला बताया गया है। शिवपुराणका श्रवण एवं शिवनामका कीर्तन मनुष्योंके लिये कल्पवृक्षका मनोरम फल है, इसमें संशय नहीं है॥ ३१-३२॥

कलौ दुर्मेधसां पुंसां धर्माचारोज्झितात्मनाम्।
हिताय विदधे शम्भुः पुराणाख्यं सुधारसम्॥ ३३

कलियुगमें धर्माचरणसे रहित चित्तवाले दुर्बुद्धि मनुष्योंके हितके लिये शिवजीने शिवपुराण नामक अमृतरसका निर्माण किया है। अमृतका पान

एकोऽजरामरः स्याद्वै पिबन्नेवामृतं पुमान्।
शम्भोः कथामृतापानात् कुलमेवाजरामरम्॥ ३४

करनेवाला मात्र एक ही व्यक्ति अजर-अमर होता है, किंतु शिवकथारूपी सुधाके पानसे सम्पूर्ण कुल ही अजर-अमर हो जाता है॥ ३३-३४॥

या गतिः पुण्यशीलानां यज्विनां च तपस्विनाम्।
सा गतिः सहसा तात पुराणश्रवणात्खलु॥ ३५

ज्ञानावाप्तिर्यदा न स्याद्योगशास्त्राणि यत्नतः।
अध्येतव्यानि पौराणं शास्त्रं श्रोतव्यमेव च॥ ३६

हे तात! जो गति पुण्यात्माओं, यज्ञ करनेवालों एवं तपस्वियोंकी होती है, वह गति केवल पुराणके श्रवणमात्रसे ही हो जाती है। यदि ज्ञानकी प्राप्ति न हो सके, तो यत्नपूर्वक योगशास्त्रोंका अध्ययन करना चाहिये और पुराण-शास्त्रका श्रवण करना चाहिये॥ ३५-३६॥

पापं संक्षीयते नित्यं धर्मश्चैव विवर्धते।
पुराणश्रवणाज्ज्ञानी न संसारं प्रपद्यते॥ ३७

अतएव पुराणानि श्रोतव्यानि प्रयत्नतः।
धर्मार्थकामलाभाय मोक्षमार्गाप्तये तथा॥ ३८

पुराणका श्रवण करनेसे पापका नाश होता है और धर्मकी अभिवृद्धि होती है एवं व्यक्ति ज्ञानवान् होकर पुनः संसारके आवागमनके बन्धनमें नहीं पड़ता है। इसलिये धर्म, अर्थ, कामकी सिद्धि तथा मोक्ष-मार्गकी प्राप्तिके लिये प्रयत्नपूर्वक पुराणोंको सुनना चाहिये॥ ३७-३८॥

यज्ञैर्दानैस्तपोभिस्तु यत्फलं तीर्थसेवया।
तत्फलं समवाप्नोति पुराणश्रवणान्नरः॥ ३९

न भवेयुः पुराणानि धर्ममार्गेक्षणानि तु।
यद्यत्र यद् व्रती स्थाता कोऽत्र पारत्रिकीं कथाम्॥ ४०

यज्ञ, दान, तप एवं तीर्थसेवनसे जो फल मिलता है, उस फलको मनुष्य केवल पुराणश्रवणसे प्राप्त कर लेता है। यदि धर्ममार्गका प्रदर्शन करनेवाले पुराण न होते तो लोक तथा परलोकको कथाको सुनानेवाला कौन व्रती रहता?॥ ३९-४०॥

षड्विंशति पुराणानां मध्येऽप्येकं शृणोति यः।
पठेद्वा भक्तियुक्तस्तु स मुक्तो नात्र संशयः॥ ४१

छब्बीस पुराणोंमें एक भी पुराणको जो भक्तियुक्त होकर सुनता है या पढ़ता है, वह मुक्त हो जाता है, इसमें सन्देह नहीं है॥ ४१॥

अन्यो न दृष्टः सुखदो हि मार्गः
पुराणमार्गो हि सदा वरिष्ठः।
शास्त्रं विना सर्वमिदं न भाति
सूर्येण हीना इव जीवलोकाः॥ ४२

अन्य कोई भी सुखप्रद मार्ग नहीं है, पुराणमार्ग ही सर्वदा श्रेष्ठ मार्ग है। [पुराणरूप इस अनुशासक] शास्त्रके बिना यह संसार आलोकित नहीं होता है, जैसे सूर्यके बिना जीवलोक आलोकयुक्त नहीं होता॥ ४२॥

इति श्रीशिवमहापुराणे पञ्चम्यामुमासंहितायां पुराणमाहात्म्यवर्णनं नाम त्रयोदशोऽध्यायः॥ १३॥

॥ इस प्रकार श्रीशिवमहापुराणके अन्तर्गत पाँचवीं उमासंहितामें पुराणमाहात्म्यवर्णन नामक तेरहवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ १३॥

अथ चतुर्दशोऽध्यायः

दानमाहात्म्य तथा दानके भेदका वर्णन

सनत्कुमार उवाच

शस्तानि घोरदानानि महादानानि नित्यशः।
पात्रेभ्यस्तु प्रदेयानि आत्मानं तारयन्ति च॥ १

सनत्कुमार बोले—हे व्यासजी! जो घोरदान तथा महादान कहे गये हैं, उन्हें सदा सत्पात्रको ही देना चाहिये, ये आत्माका उद्धार करते हैं॥ १॥

हिरण्यदानं गोदानं भूमिदानं द्विजोत्तम।
गृह्णन्तो वै पवित्राणि तारयन्ति स्वमेव तम्॥ २

हे द्विजोत्तम! सुवर्णदान, गोदान, भूमिदान—इनको ग्रहण करनेवाला पवित्र रहता है तथा ये दान लेनेवाले और दान देनेवाले दोनोंका उद्धार करनेवाले हैं॥ २॥

सुवर्णदानं गोदानं पृथिवीदानमेव च।
एतानि श्रेष्ठदानानि कृत्वा पापैः प्रमुच्यते॥ ३

सुवर्णदान, गोदान एवं भूमिदान—इन उत्तम दानोंको करके मनुष्य पापोंसे मुक्त हो जाता है॥ ३॥

तुलादानानि शस्तानि गावः पृथ्वी सरस्वती।
द्वे तु तुल्यबले शस्ते ह्यधिका च सरस्वती॥ ४

तुलादान, गोदान, पृथ्वीदान तथा विद्यादान—ये प्रशस्त दान कहे गये हैं। इनमें दो दान तो समान हैं, किंतु सरस्वतीदान सबसे बढ़कर है॥ ४॥

नित्यं ह्यनडुहो गावश्छत्रं वस्त्रमुपानहौ।
देयानि याचमानेभ्यः पानमन्नं तथैव च॥ ५

नित्य दुही जानेवाली गौएँ, छत्र, वस्त्र, जूता एवं अन्न-पान—ये वस्तुएँ याचकोंको देते रहना चाहिये॥ ५॥

संकल्पविहितो योऽर्थो ब्राह्मणेभ्यः प्रदीयते।
अर्थिभ्योऽपीडितेभ्यश्च मनस्वी तेन जायते॥ ६
कनकं च तिला नागाः कन्या दासी गृहं रथः।
मणयः कपिला गावो महादानानि वै दश॥ ७

संकल्प किया गया जो द्रव्य ब्राह्मणों तथा अपीड़ित याचकों को दिया जाता है, उससे दान करनेवाला मनस्वी होता है। सुवर्ण, तिल, हाथी, कन्या, दासी, गृह, रथ, मणि तथा कपिला गाय—ये दस महादान हैं॥ ६-७॥

गृहीत्वैतानि सर्वाणि ब्राह्मणो ज्ञानवित्सदा।
वदान्यांस्तारयेत्सद्यो ह्यात्मानं च न संशयः॥ ८
सुवर्णं ये प्रयच्छन्ति नराः शुद्धेन चेतसा।
देवतास्तं प्रयच्छन्ति समन्तादिति मे श्रुतम्॥ ९

ज्ञानी ब्राह्मण इन महादानोंको ग्रहणकर शीघ्र ही दान करनेवालोंको तथा स्वयं अपनेको तार देता है, इसमें संशय नहीं। जो मनुष्य शुद्धचित्तसे सुवर्ण दान करते हैं, उन्हें देवतालोग चारों ओरसे सब कुछ देते हैं—ऐसा मैंने सुना है॥ ८-९॥

अग्निर्हि देवताः सर्वाः सुवर्णं च हुताशनः।
तस्मात् सुवर्णं दत्त्वा च दत्ताः स्युः सर्वदेवताः॥ १०

पृथ्वीदानं महाश्रेष्ठं सर्वकामफलप्रदम्।
सौवर्णं च विशेषेण यत्कृतं पृथुना पुरा॥ ११

अग्नि सर्वदेवमय हैं और सुवर्ण अग्निस्वरूप है, अतः सुवर्णका दान करनेसे मानो सभी देवताओंको दान दे दिया गया। पृथ्वीदान अत्यन्त श्रेष्ठ तथा सभी कामनाओंको पूर्ण करनेवाला है, उसमें भी सुवर्णमयी भूमिका दान विशेष उत्तम है, जिसे पूर्वकालमें राजा पृथुने किया था॥ १०-११॥

दीयमानां प्रपश्यन्ति पृथ्वीं रुक्मसमन्विताम्।
सर्वपापविनिर्मुक्तास्ते यान्ति परमां गतिम्॥ १२

जो लोग सुवर्णसे युक्त पृथ्वीका दान होते हुए अपनी आँखोंसे देखते हैं, वे सभी पापोंसे सर्वथा मुक्त होकर परम गतिको प्राप्त करते हैं॥ १२॥

अथान्यच्च प्रवक्ष्यामि दानं सर्वोत्तमं मुने।
कान्तारं यन्न पश्यन्ति यमस्य बहुदुःखदम्॥ १३

हे मुने! अब मैं सर्वश्रेष्ठ दानका वर्णन करता हूँ, जिससे प्राणी यमराजके अति दुःखदायी असिपत्रवनको नहीं देखते हैं॥ १३॥

कुर्यात् कान्तारदानं हि विधिना शुद्धमानसः।
न्यायार्जितेन द्रव्येण वित्तशाठ्यविवर्जितः॥ १४

न्यायपूर्वक अर्जित किये गये धनसे खरीदे गये वनका विधिपूर्वक शुद्धचित्त होकर तथा धनकी कृपणतासे रहित होकर दान करना चाहिये॥ १४॥

तिलप्रस्थमयीं कृत्वा धेनुं सर्वगुणान्विताम्।
धेनुवत्सं सुवर्णं च सुदिव्यं सर्वलक्षणम्॥ १५
पद्ममष्टदलं कृत्वा कुंकुमाक्ताक्षतैः शुभैः।
पूजयेत्तत्र रुद्रादीन् सर्वान् देवान् सुभक्तितः॥ १६
एवं सम्पूज्य तां दद्याद् ब्राह्मणाय स्वशक्तितः।

प्रस्थ परिमाणमात्र तिलके द्वारा सभी गुणोंसे सम्पन्न गाय तथा सभी लक्षणोंसे युक्त दिव्य सोनेका बछड़ा बनाये और कुंकुम-मिश्रित शुभ अक्षतोंसे अष्टदल कमल बनाकर उसमें भक्तिपूर्वक रुद्र आदि सभी देवताओंकी पूजा करे। इस प्रकार पूजा सम्पन्नकर अपने सामर्थ्यके अनुसार रत्न, सुवर्ण एवं सभी

सरत्नां सहिरण्यां च सर्वाभरणभूषिताम्॥ १७
ततो नक्तं समश्नीयाद्दीपान् दद्यात्तु विस्तरात्।
कार्तिक्यामिति कर्तव्यं पूर्णिमायां प्रयत्नतः॥ १८

आभूषणोंसे अलंकृत उस धेनुको ब्राह्मणको दान दे। उसके बाद रातमें भोजन करे और विस्तारपूर्वक दीपोंका दान करे। कार्तिकीपूर्णिमाको प्रयत्नपूर्वक इसे करना चाहिये॥ १५—१८॥

एवं यः कुरुते सम्यग्विधानेन स्वशक्तितः।
यममार्गभयं घोरं नरकं च न पश्यति॥ १९

इस प्रकार जो मनुष्य अपनी शक्तिभर शास्त्रोक्त विधि-विधानसे भलीभाँति यह दान करता है, वह यममार्गकी भयावहतासे त्रस्त नहीं होता और भीषण नरकोंको नहीं देखता॥ १९॥

कृत्वा पापान्यशेषाणि सबन्धुः ससुहृज्जनः।
दिवि संक्रीडते व्यास यावदिन्द्राश्चतुर्दश॥ २०

हे व्यासजी! वह सभी तरहके पापोंको करके भी इस परम दानके प्रभावसे अपने बन्धु-बान्धव एवं मित्रोंके साथ चौदह इन्द्रोंके कालतक स्वर्गमें आनन्द करता है॥ २०॥

विधितो गोश्च दानं वै सर्वोत्तममिह स्मृतम्।
न तेन सदृशं व्यास परं दानं प्रकीर्तितम्॥ २१

हे व्यासजी! इस लोकमें विधानके साथ गौका दान सर्वश्रेष्ठ दान कहा गया है। अन्य कोई भी दान उसके समान नहीं बताया गया है॥ २१॥

प्रयच्छते यः कपिलां सवत्सां स्वर्णशृङ्गिकाम्।
कांस्यपात्रां रौप्यखुरां सर्वलक्षणलक्षिताम्॥ २२
तैस्तैर्गुणैः कामदुघा भूत्वा सा गौरुपैति तम्।
प्रदातारं नरं व्यास परत्रेह च जन्मनि॥ २३

हे व्यासजी! जो बछड़ेसहित सोनेकी सींगवाली, चाँदीके खुरवाली तथा काँसेकी दोहनीयुक्त सभी लक्षणोंसे सम्पन्न कपिला गौका दान करता है, वह गाय उन-उन गुणोंसे युक्त होकर इस लोकमें और परलोकमें कामधेनु बनकर उस दाताके पास उपस्थित होती है॥ २२-२३॥

यद्यदिष्टतमं लोके तदस्ति दयितं गृहे।
तत्तद् गुणवते देयं तदेवाक्षयमिच्छता॥ २४

जो मनुष्य अक्षय फलको प्राप्त करना चाहता है, वह इस लोकमें जो जो अत्यन्त अभीष्ट पदार्थ है तथा वह यदि घरमें हो तो उसे गुणवान् ब्राह्मणको प्रदान करे॥ २४॥

तुलापुरुषदानं हि दानानां दानमुत्तमम्।
तुलासंरोहणं कार्यं यदीच्छेच्छ्रेय आत्मनः॥ २५
यत्कृत्वा मुच्यते पापैर्वधबंधकृतोद्भवैः।
तुलादानं महत्पुण्यं सर्वपापक्षयंकरम्॥ २६

तुलापुरुषका दान सभी दानोंमें श्रेष्ठ दान है। यदि मनुष्य अपने कल्याणकी कामना करता हो तो तुलादान [अवश्य] करे। इसे करके मनुष्य वध-बन्धनके कारण उत्पन्न होनेवाले पापोंसे छुटकारा पाता है। तुलादान अतिशय पुण्यकारक और सभी तरहके पापोंको नष्ट करनेवाला है॥ २५-२६॥

कृत्वा पापान्यशेषाणि तुलादानं करोति यः।
सर्वैस्तु पातकैर्मुक्तः स दिवं यात्यसंशयम्॥ २७

सभी तरहके पापोंको करनेके बाद भी जो तुलादान करता है, वह सभी पापोंसे छुटकारा पाकर निस्सन्देह स्वर्गको जाता है॥ २७॥

पापं कृतं यद्दिवसे निशायां
द्विसंध्ययोर्मध्यदिने निशान्ते।
कालत्रये कायमनोवचोभिः
तुलापुमान्वै तदपाकरोति॥ २८

जो पाप दिनमें, रातमें, दोनों सन्ध्याओंमें, दोपहरमें, रात्रिके अन्तिम भागमें, तीनों कालों, शरीर, मन एवं वाणीसे किया गया रहता है, उसे तुलापुरुष नष्ट कर देता है॥ २८॥

बालेन वृद्धेन मया हि यूना
विजानता ज्ञानपरेण पापम्।
तत्सर्वमेवाशु कृतं मदीयं
तुलापुमान् वै हरतु स्मरारिः॥ २९

मैंने बाल्यावस्थामें, युवावस्थामें, वृद्धावस्थामें ज्ञान-पूर्वक या अज्ञानपूर्वक जो भी पाप किया है, मेरे द्वारा किये गये उन समस्त पापोंको तुलापुरुष महादेवजी शीघ्र नष्ट करें॥ २९॥

पात्रे प्रयुक्तं द्रविणं मयाद्य
प्रमाणपूर्णं निहितं तुलायाम्।
तेनैव सार्धं तु ममावशेषं
कृताकृतं यत्सुकृतं समेतु॥ ३०

अपने परिमाणके तुल्य जो भी द्रव्य तुलामें रखकर मैंने सत्पात्रको समर्पण किया है, उसीके साथ मेरे द्वारा किया गया तथा न किया गया सम्पूर्ण पाप पुण्यरूप हो जाय॥ ३०॥

सनत्कुमार उवाच

एवमुच्चार्य तं दद्यात् द्विजेभ्यः सर्वदा हितः।
नैकस्यापि प्रदातव्यं न निस्तारस्ततो भवेत्॥ ३१

सनत्कुमार बोले—अपने हितकी कामना करनेवाला मनुष्य इस प्रकारसे उच्चारणकर उस धनको ब्राह्मणोंको प्रदान करे। यह धन किसी एक व्यक्तिको प्रदान न करे, ऐसा करनेसे उद्धार नहीं होता॥ ३१॥

ददात्येवं तु यो व्यास तुलापुरुषमुत्तमम्।
हत्वा पापं दिवं तिष्ठेद्यावदिन्द्राश्चतुर्दश॥ ३२

हे व्यासजी! जो मनुष्य इस प्रकार उत्तम तुलापुरुष दान करता है, वह सभी पापोंको नष्टकर चौदह इन्द्रोंके कालतक स्वर्गलोकमें वास करता है॥ ३२॥

इति श्रीशिवमहापुराणे पञ्चम्यामुमासंहितायां सामान्यदानवर्णनं नाम चतुर्दशोऽध्यायः॥ १४॥

॥ इस प्रकार श्रीशिवमहापुराणके अन्तर्गत पाँचवीं उमासंहितामें सामान्यदानवर्णन नामक चौदहवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ १४॥

अथ पञ्चदशोऽध्यायः

ब्रह्माण्डदानकी महिमाके प्रसंगमें पाताललोकका निरूपण

व्यास उवाच

येनैकेन हि दत्तेन सर्वेषां प्राप्यते फलम्।
दानानां तन्ममाख्याहि मानुषाणां हितार्थतः॥ १

व्यासजी बोले—हे सनत्कुमारजी! जिस एक ही दानके करनेसे सभी दानोंका फल मिल जाता है, मनुष्योंके हितके लिये उस दानको आप मुझसे कहें॥ १॥

सनत्कुमार उवाच

शृणु काले प्रदत्ताद्वै फलं विंदन्ति मानवाः।
एकस्मादपि सर्वेषां दानानां तद्वदामि ते॥ २

सनत्कुमार बोले—समयपर जिस एक ही दानके करनेसे मनुष्य सभी दानोंका फल प्राप्त कर लेता है, उसे मैं आपसे कहता हूँ, आप सुनिये॥ २॥

दानानामुत्तमं दानं ब्रह्माण्डं खलु मानवैः।
दातव्यं मुक्तिकामैस्तु संसारोत्तारणाय वै॥ ३

सभी दानोंमें ब्रह्माण्डका दान निश्चय ही श्रेष्ठ है, मुक्तिकी कामना करनेवाले मनुष्योंको संसारसे पार होनेके लिये यह दान अवश्य करना चाहिये॥ ३॥

ब्रह्माण्डे सकले दत्ते यत्फलं लभते नरः।
तदेकभावादाप्नोति सप्तलोकाधिपो भवेत्॥ ४

यावच्चन्द्रदिवाकरौ नभसि वा
यावत् स्थिरा मेदिनी
तावत्सोऽपि नरः स्वबान्धवयुतः
स्वर्गौकसामोकसि।

मनुष्य सभी दानोंको करनेसे जिस फलको प्राप्त करता है, उतना ही फल ब्रह्माण्डके दानसे प्राप्त करता है और वह सातों लोकोंका स्वामी भी हो जाता है। जबतक आकाशमें चन्द्रमा एवं सूर्य हैं और जबतक पृथ्वी स्थिर है, तबतक ब्रह्माण्डका दान करनेवाला वह मनुष्य अपने बन्धु-बान्धवोंके साथ सम्पूर्ण कामनाओंको

सर्वेष्वेव मनोनुगेषु ककुभि-
ब्रह्माण्डदः क्रीडते
पश्चाद्याति पदं सुदुर्लभतरं
देवैर्मुदे माधवम्॥ ५

व्यास उवाच

भगवन् ब्रूहि ब्रह्माण्डं यत्प्रमाणं यदात्मकम्।
यदाधारं यथाभूतं येन मे प्रत्ययो भवेत्॥ ६

सनत्कुमार उवाच

मुने शृणु प्रवक्ष्यामि यदुत्सेधं तु विस्तरम्।
ब्रह्माण्डं तत्तु संक्षेपाच्छ्रुत्वा पापात्प्रमुच्यते॥ ७

यत्तत्कारणमव्यक्तं व्यक्तं शिवमनामयम्।
तस्मात्संजायते ब्रह्मा द्विधाभूताद्धि कालतः॥ ८

ब्रह्माण्डं सृजति ब्रह्मा चतुर्दशभवात्मकम्।
तद्ब्रच्मि क्रमतस्तात समासाच्छृणु यत्नतः॥ ९

पातालानि तु सप्तैव भुवनानि तथोर्ध्वतः।
उच्छ्रायो द्विगुणस्तस्य जलमध्ये स्थितस्य च॥ १०

तस्याधारः स्थितो नागः स च विष्णुः प्रकीर्तितः।
ब्रह्मणो वचसां हेतोर्बिभर्ति सकलं त्विदम्॥ ११

शेषस्यास्य गुणान् वक्तुं न शक्ता देवदानवाः।
योऽनन्तः पठ्यते सिद्धैर्देवर्षिगणपूजितः॥ १२

शिरःसहस्रयुक्तः स सर्वा विद्योतयन्दिशः।
फणामणिसहस्रेण स्वस्तिकामलभूषणः॥ १३

मदाघूर्णितनेत्रोऽसौ साग्निः श्वेत इवाचलः।
स्रग्वी किरीटी ह्याभाति यः सदैवैककुण्डलः॥ १४

साभ्रगङ्गाप्रवाहेन श्वेतशैलोपशोभितः।
नीलवासा मदोद्रिक्तः कैलासाद्रिरिवापरः॥ १५

लाङ्गलासक्तहस्ताग्रो बिभ्रन्मुसलमुत्तमम्।
योऽर्च्यते नागकन्याभिः स्वर्णवर्णाभिरादरात्॥ १६

प्राप्तकर देवताओंके घर स्वर्गमें आनन्दपूर्वक क्रीड़ा करता है और बादमें देवताओंके लिये भी अत्यन्त दुर्लभ विष्णुपदको प्राप्त करता है॥ ४-५॥

व्यासजी बोले—हे भगवन्! इस ब्रह्माण्डका प्रमाण, इसका स्वरूप, इसका आधार और यह जिस रूपमें उत्पन्न हुआ है—यह सब मुझे बताइये, जिससे मुझे विश्वास हो जाय॥ ६॥

सनत्कुमार बोले—हे मुने! सुनिये, मैं संक्षेपमें इस ब्रह्माण्डकी ऊँचाई तथा विस्तारको कहता हूँ। इसे सुनकर व्यक्ति पापोंसे मुक्त हो जाता है॥ ७॥

इसके कारणभूत, अव्यक्त, व्यक्त तथा निर्विकार जो शिव हैं, दो भागोंमें (प्रकृति तथा पुरुषके रूपमें) विभक्त हुए उन्हीं कालस्वरूपसे ब्रह्माजी उत्पन्न होते हैं। तब ब्रह्माजी चौदह भुवनवाले ब्रह्माण्डकी रचना करते हैं। हे तात! मैं क्रमसे संक्षेपमें उसे कहता हूँ, आप सावधान होकर सुनिये॥ ८-९॥

जलके मध्यमें स्थित ब्रह्माण्डके नीचे सात पाताल हैं और ऊपर (स्वर्गादि) सात भुवन हैं। उनकी ऊँचाई क्रमशः एककी अपेक्षा दुगुनी है॥ १०॥

सम्पूर्ण ब्रह्माण्डके आधार शेषनाग हैं, उन्हींको विष्णु कहा गया है। ब्रह्माकी आज्ञाके अनुसार वे इस सम्पूर्ण जगत्को धारण करते हैं॥ ११॥

शेषनागके इन गुणोंका वर्णन करनेमें देवता तथा दानव भी समर्थ नहीं हैं, उन्हें अनन्त भी कहा जाता है। सिद्ध, देवता तथा ऋषिगण उनकी पूजा करते हैं॥ १२॥

हजार फणोंसे युक्त वे शेषनाग अपने हजार फणोंकी मणियोंसे सम्पूर्ण दिशाओंको प्रकाशित करते रहते हैं, वे फणोंपर निर्मल स्वस्तिकका आभूषण धारण करते हैं। वे मदसे घूमते हुए नेत्रोंवाले तथा अग्निसे युक्त श्वेतपर्वतके समान हैं। वे माला, मुकुट तथा सर्वदा ही एक कुण्डलको धारणकर शोभायमान हैं॥ १३-१४॥

वे आकाशगंगाके प्रवाहसे युक्त श्वेतवर्णके पहाड़के समान सुशोभित होते हैं। मदसे परिव्याप्त वे नील वस्त्रको धारणकर दूसरे कैलासपर्वतकी भाँति शोभित होते हैं। वे अपने आयुध हलमें हाथका अग्रभाग लगाये रहते हैं तथा उत्तम मूसल धारण किये रहते हैं। स्वर्णके समान वर्णवाली नागकन्याएँ आदरपूर्वक उनकी पूजा करती हैं॥ १५-१६॥

संकर्षणात्मको रुद्रो विषानलशिखोज्ज्वलः।
कल्यान्ते निष्क्रमन्ते यद्वक्त्रेभ्योऽग्निशिखा मुहुः।
दग्ध्वा जगत्रयं शान्ता भवन्तीत्यनुशुश्रुमः॥ १७

आस्ते पातालमूलस्थः सशेषः क्षितिमण्डलम्।
बिभ्रत्स्वपृष्ठे भूतेशः शेषोऽशेषगुणार्चितः॥ १८

तस्य वीर्यप्रभावश्च साकाङ्क्षैस्त्रिदशैरपि।
न हि वर्णयितुं शक्यः स्वरूपं ज्ञातुमेव वा॥ १९

आस्ते कुसुममालेव फणामणिशिखारुणा।
यस्यैषा सकला पृथ्वी कस्तद्वीर्यं वदिष्यति॥ २०

यदा विजृम्भतेऽनन्तो मदाघूर्णितलोचनः।
तदा चलति भूरेषा साद्रितोयाधिकानना॥ २१

दशसाहस्रमेकैकं पातालं मुनिसत्तम।
अतलं वितलं चैव सुतलं च रसातलम्॥ २२
तलं तलातलं चाग्र्यं पातालं सप्तमं मतम्।
भूमेरधः सप्तलोका इमे ज्ञेया विचक्षणैः॥ २३

उच्छ्रायो द्विगुणश्चैषां सर्वेषां रत्नभूमयः।
रत्नवन्तोऽथ प्रासादा भूमयो हेमसम्भवाः॥ २४

तेषु दानवदैतेया नागानां जातयस्तथा।
निवसन्ति महानागा राक्षसा दैत्यसम्भवाः॥ २५

प्राह स्वर्गसदोमध्ये पातालानीति नारदः।
स्वर्लोकादति रम्याणि तेभ्योऽसावागतो दिवि॥ २६

नानाभूषणभूषाश्च मणयो यत्र सुप्रभाः।
आह्लादकारिणः शुभ्राः पातालं केन तत्समम्॥ २७

पाताले कस्य न प्रीतिरितश्चेतश्च शोभिते।
दैत्यदानवकन्याभिर्विमुक्तस्याभिजायते॥ २८

वे संकर्षण नामके रुद्र विषाग्निकी ज्वालाओंसे अत्यन्त देदीप्यमान हैं। कल्पके अन्तमें उनके मुखोंसे अग्निकी लपटें बार-बार निकलती हैं, जो तीनों लोकोंको भस्म करके ही शान्त होती हैं—ऐसा हमने सुना है। सभी गुणोंसे अलंकृत तथा सभी प्राणियोंके स्वामी वे शेष अपनी पीठपर क्षितिमण्डलको धारण करते हुए पातालके मूल स्थानमें स्थित हैं॥ १७-१८॥

देवगण इच्छा करते हुए भी उनके पराक्रमके प्रभावका वर्णन करनेमें तथा उनके स्वरूपको जाननेमें समर्थ नहीं हैं। जिनके फणोंमें स्थित मणियोंकी अरुणकान्तिसे रंजित यह सम्पूर्ण पृथ्वी [उनके शिरःपृष्ठमें] पुष्पोंकी मालाके समान विराजमान है, उनके पराक्रमका वर्णन कौन करेगा!॥ १९-२०॥

जब मदसे घूर्णित नेत्रवाले शेषनागजी जम्भाई लेते हैं, तब पर्वत, समुद्र तथा वनोंसहित यह पृथ्वी डगमगा जाती है॥ २१॥

हे मुनिश्रेष्ठ! प्रत्येक पाताल दस हजार योजन विस्तार-वाला है। अतल, वितल, सुतल, रसातल, तल, तलातल एवं सातवाँ पाताल माना गया है, विद्वानोंको पृथ्वीके नीचे स्थित इन सात लोकोंको जानना चाहिये॥ २२-२३॥

इनकी ऊँचाई एक-दूसरेसे दूनी है। इन सातों लोकोंकी भूमियाँ स्वर्णमय हैं तथा भवन रत्नमय हैं और आँगन भी स्वर्णमय हैं। उनमें दानव, दैत्य, नागोंकी जातियाँ, महानाग, राक्षस तथा दैत्योंसे उत्पन्न अन्य उपजातियाँ निवास करती हैं॥ २४-२५॥

उन पातालादि लोकोंसे लौटकर स्वर्ग आये हुए नारदजीने स्वर्गकी सभामें ऐसा कहा था कि ये पाताल स्वर्गसे भी अधिक रमणीय हैं॥ २६॥

जहाँ विविध प्रकारके आभूषणोंमें विभूषित करनेवाली स्वच्छ एवं कान्तिमय मणियाँ लगी हैं, उस पातालके समान कौन लोक है!॥ २७॥

दैत्यकन्याएँ एवं दानवकन्याएँ जिस पाताललोकमें इधर-उधर शोभायमान हो रही हैं, उस लोकमें [निवासके लिये] किस मुक्तपुरुषकी अभिरुचि नहीं होगी?॥ २८॥

दिवार्करश्मयो यत्र न भवन्ति विधोर्निशि।
न शीतमातपो यत्र मणितेजोऽत्र केवलम्॥ २९

यहाँ दिनमें सूर्यकी तथा रातमें चन्द्रमाकी किरणें नहीं होती हैं और यहाँ शीत तथा आतप भी नहीं रहता है, यहाँ केवल मणियोंके तेज विद्यमान हैं॥ २९॥

भक्ष्यभोज्यान्नपानानि भुज्यन्ते मुदितैर्भृशम्।
यत्र न ज्ञायते कालो गतोऽपि मुनिसत्तम॥ ३०

हे मुनिश्रेष्ठ! यहाँ आनन्दमग्न लोग भक्ष्य-भोज्य, अन्नपान आदि ग्रहण करते हैं। यहाँ बीते हुए समयका ज्ञान भी नहीं रहता है॥ ३०॥

पुंस्कोकिलरुतं यत्र पद्मानि कमलाकराः।
नद्यः सरांसि रम्याणि मनोज्ञान्यम्बराणि च॥ ३१
भूषणान्यतिशुभ्राणि गन्धाढ्यं चानुलेपनम्।
वीणावेणुमृदङ्गानां स्वना गेयानि च द्विज॥ ३२
दैत्योरगैश्च भुज्यन्ते पाताले वै सुखानि च।
तपसा समवाप्नोति दानवैः सिद्धमानवैः॥ ३३

हे द्विज! यहाँ नरकोकिलोंका शब्द सुनायी देता है। कमल तथा कमलोंकी खान नदियाँ, रमणीक सरोवर, मनोहर वस्त्र, अतिशय मनोरम अलंकार तथा अनुलेपन, वीणा-वेणु-मृदंगोंकी ध्वनियाँ, गीत तथा नानाविध सुख हैं, जिनका भोग दैत्य, दानव, सिद्ध, मानव एवं नागगण करते हैं, उस पातालका आनन्द [बहुत बड़ी] तपस्यासे प्राप्त किया जाता है॥ ३१—३३॥

इति श्रीशिवमहापुराणे पञ्चम्यामुमासंहितायां ब्रह्माण्डकथने पाताललोकवर्णनं नाम पञ्चदशोऽध्यायः॥ १५॥

॥ इस प्रकार श्रीशिवमहापुराणके अन्तर्गत पाँचवीं उमासंहितामें ब्रह्माण्डकथनमें पाताललोकवर्णन नामक पन्द्रहवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ १५॥

अथ षोडशोऽध्यायः

विभिन्न पापकर्मोंसे प्राप्त होनेवाले नरकोंका वर्णन और शिव-नाम-स्मरणकी महिमा

सनत्कुमार उवाच

तेषां मूर्धोपरिष्टाद्वै नरकांस्तान् शृणुष्व च।
मत्तो मुनिवरश्रेष्ठ पच्यन्ते यत्र पापिनः॥ १

सनत्कुमार बोले—हे मुनिश्रेष्ठ! उन लोकोंके ऊपर स्थित नरकोंको मुझसे सुनिये, जहाँपर पापीजन दुःख भोगते हैं॥ १॥

रौरवः शूकरो रोधस्तालो विवसनस्तथा।
महाज्वालस्तप्तकुम्भो लवणोऽपि विलोहितः॥ २
वैतरणी पूयवहा कृमिशः कृमिभोजनः।
असिपत्रवनं घोरं लालाभक्षश्च दारुणः॥ ३
तथा पूयवहः प्रायो वह्निज्वालो ह्यधःशिराः।
संदंशः कालसूत्रश्च तमश्चावीचिरोधनः॥ ४
श्वभोजनोऽथ रुष्टश्च महारौरवशाल्मली।
इत्याद्या बहवस्तत्र नरका दुःखदायकाः॥ ५

रौरव, शूकर, रोध, ताल, विवसन या विशसन, महाज्वाल, तप्तकुम्भ, लवण, विलोहित, पूयवहा वैतरणी, कृमिश, कृमिभोजन, घोर असिपत्रवन, दारुण लालाभक्ष, पूयवह, वह्निज्वाल, अधःशिरा, संदंश, कालसूत्र, तम, अवीचिरोधन, श्वभोजन, रुष्ट, महारौरव, शाल्मली इत्यादि बहुतसे पीड़ादायक नरक हैं॥ २—५॥

पच्यन्ते तेषु पुरुषाः पापकर्मरतास्तु ये।
क्रमाद्वक्ष्ये तु तान् व्यास सावधानतया शृणु॥ ६

हे व्यासजी! पापकर्ममें निरत जो पुरुष उनमें दुःख भोगते हैं, मैं उनका वर्णन क्रमशः कर रहा हूँ, आप सावधान होकर सुनिये॥ ६॥

कूटसाक्ष्यं तु यो वक्ति विना विप्रान् सुरांश्च गाः।
सदानृतं वदेद्यस्तु स नरो याति रौरवम्॥ ७

जो मनुष्य ब्राह्मण, देवता एवं गौओंके पक्षको छोड़कर अन्यत्र झूठी गवाही करता है और सदा मिथ्या-भाषण करता है, वह रौरव नरकमें जाता है॥ ७॥

भ्रूणहा स्वर्णहर्ता च गोरोधी विश्वघातकः।
सुरापो ब्रह्महन्ता च परद्रव्यापहारकः॥ ८

यस्तत्संगी स वै याति मृतो व्यास गुरोर्वधात्।
तप्तकुम्भे स्वसुर्मातुर्गोश्चैव दुहितुस्तथा॥ ९

हे व्यासजी! भ्रूणहत्या करनेवाला, स्वर्ण चुरानेवाला, गायोंको रोकनेवाला, विश्वासघाती, सुरापान करनेवाला, ब्राह्मणका वध करनेवाला, दूसरोंके द्रव्यको चुरानेवाला तथा इनका साथ देनेवाला और गुरु, माता, गौ तथा कन्याका वध करनेवाला मरनेपर तप्तकुम्भ नामक नरकमें जाता है॥ ८-९॥

साध्व्या विक्रयकृच्चाथ वार्द्धकी केशविक्रयी।
तप्तलोहेषु पच्यन्ते यश्च भक्तं परित्यजेत्॥ १०

साध्वी स्त्रीको बेचनेवाला, [अधिक] ब्याज लेनेवाला, व्यभिचारी अथवा केशका विक्रय करनेवाला और जो अपने भक्तका त्याग कर देता है—ये सब तप्तलोह नामक नरकमें दुःख भोगते हैं॥ १०॥

अवमन्ता गुरूणां यः पश्चाद्वोक्ता नराधमः।
देवदूषयिता चैव देवविक्रयिकश्च यः॥ ११

अगम्यगामी यश्चान्ते याति सप्तबलं द्विज।

हे द्विज! जो अधम मनुष्य गुरुओंका अपमान करनेवाला, दुर्वचन कहनेवाला, वेदनिन्दक, वेदोंको बेचनेवाला तथा अगम्या स्त्रीके साथ संसर्ग करनेवाला है, वह अन्तमें सप्तबल नामक नरकमें जाता है॥ ११$\frac{1}{2}$॥

चौरो गोघ्नो हि पतितो मर्यादादूषकस्तथा॥ १२

देवद्विजपितृद्वेष्टा रत्नदूषयिता च यः।
स याति कृमिभक्षं वै कृमीनत्ति दुरिष्टिकृत्॥ १३

जो चोर, गोहत्यारा, पतित, मर्यादाको तोड़नेवाला, देवता-ब्राह्मण-पितरोंसे द्वेष करनेवाला, रत्नोंको दूषित करनेवाला, दूषित यज्ञ करनेवाला है, वह पापी कृमिभक्ष नरकमें जाता है और वहाँ कीड़ोंका भोजन करता है॥ १२-१३॥

पितृदेवसुरान् यस्तु पर्यश्नाति नराधमः।
लालाभक्षं स यात्यज्ञो यः शास्त्रकूटकृन्नरः॥ १४

जो नराधम पितरों एवं देवताओंको अर्पण किये बिना खाता है एवं जो शास्त्रोंमें कुतर्क करता है, वह मूर्ख लालाभक्ष नामक नरकमें जाता है॥ १४॥

यश्चान्त्यजेन संसेव्यो ह्यसद्ग्राही तु यो द्विजः।
अयाज्ययाजकश्चैव तथैवाभक्ष्यभक्षकः॥ १५

रुधिरौघे पतन्त्येते सोमविक्रयिणश्च ये।
मधुहा ग्रामहा याति क्रूरां वैतरणीं नदीम्॥ १६

जो द्विज अन्त्यजसे सेवा कराता है, नीचोंसे प्रतिग्रह ग्रहण करता है, यज्ञके अनधिकारियोंसे यज्ञ कराता है एवं अभक्ष्य वस्तुओंका भक्षण करता है और जो सोमका विक्रय करता है—ये सब रुधिरौघ नामक नरकमें जाते हैं। मधुका हरण करनेवाला तथा ग्रामका ध्वंस करनेवाला घोर वैतरणी नदीमें जाता है॥ १५-१६॥

नवयौवनमत्ताश्च मर्यादाभेदिनश्च ये।
ते कृम्यं यान्त्यशौचाश्च कुलटाजीविनश्च ये॥ १७

जो नव यौवनसे मदमत्त होकर मर्यादाका उल्लंघन करते हैं, अपवित्र रहते हैं और कुलटा स्त्रियोंसे जीविका चलाते हैं, वे कृमि नामक नरकमें जाते हैं॥ १७॥

असिपत्रवनं याति वृक्षच्छेदी वृथैव यः।
क्षुरभ्रका मृगव्याधा वह्निज्वाले पतन्ति ते॥ १८

जो व्यर्थमें वृक्षोंको काटता है, वह असिपत्रवनको जाता है। चाकूसे काटकर जीविका-यापन करनेवाले अर्थात् मांसविक्रयी तथा मृगोंका वध करनेवाले वह्निज्वाल नामक नरकमें जाते हैं॥ १८॥

भ्रष्टाचारो हि यो विप्रः क्षत्रियो वैश्य एव च।
यात्यन्ते द्विज तत्रैव यः श्वपाकेषु वह्निदः॥ १९

हे द्विज! भ्रष्टाचार करनेवाला ब्राह्मण, क्षत्रिय तथा वैश्य उसी वह्निज्वाल नरकमें जाते हैं और आग लगानेवाला श्वपाक नामक नरकमें जाता है॥ १९॥

व्रतस्य लोपका ये च स्वाश्रमाद्विच्युताश्च ये।
संदंशयातनामध्ये पतन्ति भृशदारुणे॥ २०

जो व्रतका लोप करनेवाले हैं और जो अपने आश्रमसे च्युत हो गये हैं, वे अत्यन्त भयानक संदंश नामक नरकमें जाते हैं॥ २०॥

वीर्यं स्वप्नेषु स्कंदेयुर्ये नरा ब्रह्मचारिणः।
पुत्रा नाध्यापिता यैश्च ते पतन्ति श्वभोजने॥ २१
एते चान्ये च नरकाः शतशोऽथ सहस्रशः।
येषु दुष्कृतकर्माणः पच्यन्ते यातनागताः॥ २२

जो ब्रह्मचारी मनुष्य स्वप्नमें वीर्य स्खलित करते हैं तथा जो गृहस्थ अपने पुत्रोंको नहीं पढ़ाते हैं, वे श्वभोजन नरकमें गिरते हैं। ये सब तथा अन्य भी सैकड़ों, हजारों नरक हैं, जिनमें पाप करनेवाले यातना भोगते हुए पड़े रहते हैं॥ २१-२२॥

तथैव पापान्येतानि तथान्यानि सहस्रशः।
भुज्यन्ते यानि पुरुषैर्नरकान्तरगोचरैः॥ २३

इसी प्रकार ये सभी तथा अन्य भी हजारों पाप हैं, जिन्हें नरकोंमें पड़े हुए मनुष्य भोगते रहते हैं॥ २३॥

वर्णाश्रमविरुद्धं च कर्म कुर्वंति ये नराः।
कर्मणा मनसा वाचा निरये तु पतन्ति ते॥ २४

जो मनुष्य मन, वचन तथा कर्मसे वर्णाश्रमधर्मके विपरीत आचरण करते हैं, वे नरकमें गिरते हैं॥ २४॥

अधःशिरोभिर्दृश्यन्ते नारका दिवि दैवतैः।
देवानधोमुखान् सर्वानधः पश्यन्ति नारकाः॥ २५

देवगण उन नारकी प्राणियोंको नीचेकी ओर शिर किये हुए देखते हैं और वे भी सभी देवताओंको नीचेकी ओर मुख किये हुए देखते रहते हैं॥ २५॥

स्थावराः कृमयोऽब्जाश्च पक्षिणः पशवो नराः।
धार्मिकास्त्रिदशास्तद्वन्मोक्षिणश्च यथाक्रमम्॥ २६

यावन्तो जन्तवः स्वर्गे तावन्तो नरकौकसः।
पापकृद्याति नरकं प्रायश्चित्तपराङ्मुखः॥ २७

[पापकर्मा मनुष्य] क्रमशः उन्नति करते हुए स्थावर, कृमि, जलचर, पक्षी, पशु, मनुष्य, धर्मात्मा, देवता तथा मुमुक्षु होते हैं और अन्तमें मोक्ष प्राप्त कर लेते हैं। जितने प्राणी स्वर्गमें हैं, उतने ही नरकमें भी स्थित हैं। प्रायश्चित्तसे विमुख पापी नरकको जाता है॥ २६-२७॥

गुरूणि गुरुभिश्चैव लघूनि लघुभिस्तथा।
प्रायश्चित्तानि कालेय मनुः स्वायम्भुवोऽब्रवीत्॥ २८
यानि तेषामशेषाणां कर्माण्युक्तानि तेषु वै।
प्रायश्चित्तमशेषेण हरानुस्मरणं परम्॥ २९

हे व्यास! स्वायम्भुव मनुने बड़े पापोंके लिये महान् प्रायश्चित्त तथा अल्प पापोंके लिये अल्प प्रायश्चित्त कहे हैं। उन सभी पापोंके जो प्रायश्चित्त कर्म कहे गये हैं, उनमें विशेष रूपसे शिवजीका नामस्मरणरूप प्रायश्चित्त सबसे श्रेष्ठ है॥ २८-२९॥

प्रायश्चित्तं तु तस्यैकं यस्य पुंसः प्रजायते।
कृते पापेऽनुतापोऽपि शिवसंस्मरणं परम्॥ ३०

जिस पुरुषके चित्तमें पापकर्म करनेके अनन्तर पश्चात्ताप होता है, उसके लिये तो एकमात्र शिवजीका स्मरण ही सर्वोत्तम प्रायश्चित्त है॥ ३०॥

माहेश्वरमवाप्नोति मध्याह्नादिषु संस्मरन्।
प्रातर्निशि च संध्यायां क्षीणपापो भवेन्नरः ॥ ३१

मुक्तिं प्रयाति स्वर्गं वा समस्तक्लेशसंक्षयम्।
शिवस्य स्मरणादेव तस्य शंभोरुमापतेः ॥ ३२

प्रातः, रात्रि, सन्ध्या तथा मध्याह्नमें शिवका स्मरण करनेवाला मनुष्य पापरहित हो जाता है और शिवलोकको प्राप्त करता है। उन उमापति शम्भु शिवके स्मरणमात्रसे ही वह सभी प्रकारके दुःखोंसे मुक्त हो जाता है और स्वर्ग अथवा मोक्ष प्राप्त करता है ॥ ३१-३२ ॥

पापान्तरायो विप्रेन्द्र जपहोमार्चनादि च।
भवत्येव न कुत्रापि त्रैलोक्ये मुनिसत्तम ॥ ३३

हे मुनिसत्तम! [भगवान् शंकरके स्मरणके प्रभावसे] इस त्रिलोकीमें कहीं भी जप, होम, अर्चन आदि सत्कर्मोंमें विघ्न नहीं होता तथा [स्मरणकर्ताके चित्तमें] पाप [-का संक्रमण भी] नहीं होता ॥ ३३ ॥

महेश्वरे मतिर्यस्य जपहोमार्चनादिषु।
यत्पुण्यं तत्कृतं तेन देवेन्द्रत्वादिकं फलम् ॥ ३४

पुमान्न नरकं याति यः स्मरेद् भक्तितो मुने।
अहर्निशं शिवं तस्मात् स क्षीणाशेषपातकः ॥ ३५

हे विप्रेन्द्र! जिसकी बुद्धि महादेवमें लगी हो, उसे जप, होम एवं पूजा आदि करनेसे जो पुण्य मिलता है, वह पुण्य प्राप्त हो जाता है एवं देवेन्द्रत्व आदिका फल प्राप्त हो जाता है। हे मुने! जो पुरुष दिन-रात भक्तिपूर्वक शिवका स्मरण करता है, वह समस्त पापोंसे रहित हो जाता है और इसीलिये नरकमें नहीं पड़ता है ॥ ३४-३५ ॥

नरकस्वर्गसंज्ञे वै पापपुण्ये द्विजोत्तम।
ययोस्त्वेकं तु दुःखायान्यत्सुखायोद्भवाय च ॥ ३६

हे द्विजश्रेष्ठ! नरक एवं स्वर्ग नामका तात्पर्य पाप और पुण्य है, जिनमें नरक दुःखके लिये और स्वर्ग सुख तथा समृद्धिके लिये होता है ॥ ३६ ॥

तदेव प्रीतये भूत्वा पुनर्दुःखाय जायते।
तस्माद्दुःखात्मकं नास्ति न च किंचित्सुखात्मकम् ॥ ३७

वही एक वस्तु प्रसन्नताके लिये होकर बादमें दुःखका कारण बन जाती है। इसलिये कोई भी वस्तु न दुःख देनेवाली है और न सुख देनेवाली ॥ ३७ ॥

मनसः परिणामोऽयं सुखदुःखोपलक्षणः।
ज्ञानमेव परं ब्रह्म ज्ञानं तत्त्वाय कल्पते ॥ ३८

सुख-दुःखका उपलक्षणरूप यह तो केवल मनका परिणाममात्र है। ज्ञान ही परब्रह्म है, वह ज्ञान ही तत्त्वका बोध कराता है ॥ ३८ ॥

ज्ञानात्मकमिदं विश्वं सकलं सचराचरम्।
परविज्ञानतः किंचित् विद्यते न परं मुने ॥ ३९

हे मुने! यह सम्पूर्ण चराचर जगत् ज्ञानस्वरूप है, वस्तुतः परतत्त्वके विज्ञानसे बढ़कर कुछ भी श्रेष्ठ पदार्थ नहीं है ॥ ३९ ॥

एवमेतन्मयाख्यातं सर्वं नरकमण्डलम्।
अत ऊर्ध्वं प्रवक्ष्यामि साम्प्रतं मण्डलं भुवः ॥ ४०

इस प्रकार मैंने सम्पूर्ण नरकोंका वर्णन कर दिया है, अब इसके बाद मैं भूमण्डलका वर्णन करूँगा ॥ ४० ॥

इति श्रीशिवमहापुराणे पञ्चम्यामुमासंहितायां ब्रह्माण्डवर्णने नरकोद्धारवर्णनं नाम षोडशोऽध्यायः ॥ १६ ॥

॥ इस प्रकार श्रीशिवमहापुराणके अन्तर्गत पाँचवीं उमासंहितामें ब्रह्माण्डवर्णनमें नरकोद्धारवर्णन नामक सोलहवाँ अध्याय पूर्ण हुआ ॥ १६ ॥

अथ सप्तदशोऽध्यायः

ब्रह्माण्डके वर्णन-प्रसंगमें जम्बूद्वीपका निरूपण

सनत्कुमार उवाच

पाराशर्य सुसंक्षेपाच्छृणु त्वं वदतो मम।
मण्डलं च भुवः सम्यक् सप्तद्वीपादिसंयुतम्॥ १

जम्बूः प्लक्षः शाल्मलिश्च कुशः क्रौञ्चश्च शाककः।
पुष्करः सप्तमः सर्वे समुद्रैः सप्तभिर्वृताः॥ २

लवणेक्षुरसौ सर्पिर्दधिदुग्धजलाशयाः।
जम्बूद्वीपः समस्तानामेतेषां मध्यतः स्थितः॥ ३

तस्यापि मेरुः कालेय मध्ये कनकपर्वतः।
प्रविष्टः षोडशाधस्ताद्योजनैस्तस्य चोच्छ्रयः॥ ४

चतुरशीतिमानैस्तैर्द्वात्रिंशन्मूर्ध्नि विस्तृतः।
भूमिपृष्ठस्थशैलोऽयं विस्तरस्तस्य सर्वतः॥ ५

मूले षोडशसाहस्रः कर्णिकाकारसंस्थितः।
हिमवान् हेमकूटश्च निषधश्चास्य दक्षिणे॥ ६

नीलः श्वेतश्च शृङ्गी च उत्तरे वर्षपर्वताः।
दशसाहस्रिका ह्येते रत्नवन्तोऽरुणप्रभाः॥ ७

सहस्रयोजनोत्सेधास्तावद्विस्तारिणश्च ते।
भारतं प्रथमं वर्षं ततः किंपुरुषं स्मृतम्॥ ८
हरिवर्षं ततोऽन्यद्वै मेरोर्दक्षिणतो मुने।
रम्यकं चोत्तरे पार्श्वे तस्यांशे तु हिरण्मयम्॥ ९
उत्तरे कुरवश्चैव यथा वै भारतं तथा।
नवसाहस्रमेकैकमेतेषां मुनिसत्तम॥ १०
इलावृतं तु तन्मध्ये तन्मध्ये मेरुरुच्छ्रितः।
मेरोश्चतुर्दिशं तत्र नवसाहस्रमुच्छ्रितम्॥ ११
इलावृतमृषिश्रेष्ठ चत्वारश्चात्र पर्वताः।
विष्कंभा रचिता मेरोर्योजिताः पुनरुच्छ्रिताः॥ १२

पूर्वे हि मन्दरो नाम दक्षिणे गन्धमादनः।
विपुलः पश्चिमे भागे सुपार्श्वश्चोत्तरे स्थितः॥ १३

कदम्बो जम्बुवृक्षश्च पिप्पलो वट एव च।
एकादशशतायामाः पादपा गिरिकेतवः॥ १४

सनत्कुमार बोले—हे पराशरपुत्र [व्यासजी!] आप सातों द्वीपोंसे समन्वित भूमण्डलका संक्षेपमें वर्णन करते हुए मुझसे भलीभाँति सुनिये॥ १॥

भूमण्डलमें जम्बूद्वीप, प्लक्षद्वीप, शाल्मलिद्वीप, कुशद्वीप, क्रौंचद्वीप, शाकद्वीप और सातवाँ पुष्करद्वीप है—ये सभी द्वीप सात समुद्रोंसे घिरे हुए हैं॥ २॥

लवण, इक्षुरस, घी, दही, दूध और जलके जो समुद्र हैं, इन सभीके मध्यमें जम्बूद्वीप स्थित है॥ ३॥

हे व्यासजी! उसके भी मध्यमें कनकमय सुमेरु पर्वत वर्तमान है, जो पृथ्वीके नीचे सोलह हजार योजन धँसा हुआ है और चौरासी हजार योजन ऊँचा है। उसका शिखर बत्तीस हजार योजन विस्तृत है। पृथ्वीतलपर स्थित इस पर्वतका मूलभाग सोलह हजार योजन विस्तृत है, यह [मेरुपर्वत पृथ्वीरूपी कमलकी] कर्णिकाके आकारमें स्थित है। इसके दक्षिणमें हिमवान्, हेमकूट और निषधपर्वत और उत्तर भागमें नील, श्वेत और शृंगी पर्वत हैं। इन पर्वतोंकी लम्बाई दस हजार योजन है। ये रत्नोंसे युक्त और अरुण कान्तिवाले हैं। ये हजार योजन ऊँचे हैं और उतने ही विस्तारवाले हैं॥ ४—७॥

हे मुने! मेरुके दक्षिणमें प्रथम भारतवर्ष और इसके बाद किम्पुरुष और हरिवर्ष है। इसके उत्तर भागमें रम्यक और उसीके पास हिरण्मयवर्ष है। उत्तरमें कुरुदेश है। हे मुनिश्रेष्ठ! भारतवर्षकी भाँति इन सभीका विस्तार नौ-नौ हजार योजन है॥ ८—१०॥

उनके मध्यमें इलावृतवर्ष है, जिसके मध्यमें उन्नत सुमेरुपर्वत है। इस सुमेरुके चारों ओर नौ हजार योजन विस्तृत इलावृतवर्ष है। हे ऋषिश्रेष्ठ! वहाँ चार पर्वत सुमेरुपर्वतके शिखरके रूपमें अवस्थित हैं। ये ऊँचाईमें सुमेरुपर्वतसे मिले हुए हैं॥ ११-१२॥

पूर्वमें मन्दर, दक्षिणमें गन्धमादन, पश्चिममें विपुल और उत्तरमें सुपार्श्व नामक पर्वत स्थित हैं॥ १३॥

कदम्ब, जामुन, पीपल तथा वटके वृक्ष इन पर्वतोंकी ध्वजाके रूपमें ग्यारह सौ योजन विस्तारमें फैले हुए हैं॥ १४॥

जम्बूद्वीपस्य नाम्नो वै हेतुं शृणु महामुने।
विराजन्ते महावृक्षास्तत्स्वभावं वदामि ते॥ १५

हे महामुने! जम्बूद्वीपका नाम पड़नेका कारण आप सुनें। यहाँपर [जामुन, कदम्ब, पीपल तथा वटके] बड़े-बड़े वृक्ष हैं, मैं उनका स्वभाव आपको बताता हूँ॥ १५॥

महागजप्रमाणानि जम्ब्वास्तस्याः फलानि च।
पतन्ति भूभृतः पृष्ठे शीर्यमाणानि सर्वतः॥ १६

उस जामुनके बड़े-बड़े हाथीके परिमाणवाले फल पर्वतके ऊपर गिरकर फूट जाते हैं और चारों ओर फैल जाते हैं॥ १६॥

रसेन तेषां विख्याता तत्र जम्बूनदीति वै।
परितो वर्तते तत्र पीयते तन्निवासिभिः॥ १७

उनके रससे जम्बू नामक विख्यात नदी चारों ओर बहती है, जिसके रसको वहाँके निवासी पीते हैं॥ १७॥

न स्वेदो न च दौर्गन्ध्यं न जरा चेन्द्रियग्रहः।
तस्यास्तटे स्थितानां तु जनानां तन्न जायते॥ १८

तीरमृत्स्नां च सम्प्राप्य सुखवायुविशोषिताम्।
जाम्बूनदाख्यं भवति सुवर्णं सिद्धभूषणम्॥ १९

उसके तटपर रहनेवाले लोगोंको पसीना, दुर्गन्ध, बुढ़ापा एवं किसी प्रकारकी इन्द्रियपीड़ा आदि नहीं होते हैं। सुखद वायुसे सुखायी गयी उसके तटकी मिट्टीसे जाम्बूनद नामक सुवर्ण बन जाता है, जो सिद्धोंके द्वारा भूषणके रूपमें धारण किया जाता है॥ १८-१९॥

भद्राश्वं पूर्वतो मेरोः केतुमालं च पश्चिमे।
वर्षे द्वे तु मुनिश्रेष्ठ तयोर्मध्य इलावृतम्॥ २०

वनं चैत्ररथं पूर्वे दक्षिणे गन्धमादनः।
विभ्राजं पश्चिमे तद्वदुत्तरे नन्दनं स्मृतम्॥ २१

हे मुनिश्रेष्ठ! सुमेरुपर्वतके पूर्वमें भद्राश्व तथा पश्चिममें केतुमाल नामक दो अन्य वर्ष हैं, उनके मध्यमें इलावृतवर्ष है। उसके पूर्वमें चैत्ररथ, दक्षिणमें गन्धमादन, पश्चिममें विभ्राज और उसके उत्तरमें नन्दनवन बताया गया है॥ २०-२१॥

अरुणोदं महाभद्रं शीतोदं मानसं स्मृतम्।
सरांस्येतानि चत्वारि देवभोग्यानि सर्वशः॥ २२

शीतांजनः कुरुंगश्च कुररो माल्यवांस्तथा।
एकैकप्रमुखा मेरोः पूर्वतः केसराचलाः॥ २३

अरुणोद, महाभद्र, शीतोद तथा मानस नामक ये चार सरोवर कहे गये हैं, जो सब प्रकारसे देवताओंके भोगनेयोग्य हैं। शीतांजन, कुरंग, कुरर एवं माल्यवान्—ये प्रत्येक प्रमुख पर्वत मेरुके पूर्वमें कर्णिकाके केसरके समान स्थित हैं॥ २२-२३॥

त्रिकूटः शिशिरश्चैव पतङ्गो रुचकस्तथा।
निषधः कपिलाद्याश्च दक्षिणे केसराचलाः॥ २४

त्रिकूट, शिशिर, पतंग, रुचक, निषध, कपिल आदि पर्वत दक्षिणमें केसराचलके रूपमें स्थित हैं॥ २४॥

सिनीवासः कुसुंभश्च कपिलो नारदस्तथा।
नागादयश्च गिरयः पश्चिमे केसराचलाः॥ २५

सिनीवास, कुसुम्भ, कपिल, नारद, नाग आदि पर्वत पश्चिम भागमें केसराचलके रूपमें स्थित हैं॥ २५॥

शंखचूडोऽथ ऋषभो हंसो नाम महीधरः।
कालंजराद्याश्च तथा उत्तरे केसराचलाः॥ २६

शंखचूड़, ऋषभ, हंस, कालंजर आदि पर्वत उत्तरमें केसराचलके रूपमें स्थित हैं॥ २६॥

मेरोरुपरि मध्ये हि शातकौम्भं विधेः पुरम्।
चतुर्दशसहस्त्राणि योजनानि च संख्यया॥ २७

अष्टानां लोकपालानां परितस्तदनुक्रमात्।
यथादिशं यथारूपं पुरोऽष्टावुपकल्पिताः॥ २८

सुमेरुके ऊपर मध्य भागमें ब्रह्माका सुवर्णमय नगर है, जो चौदह हजार योजन विस्तृत है। उसके चारों ओर क्रमसे आठों लोकपालोंके आठ पुर उनकी दिशाओंके अनुसार तथा उनके अनुरूप निर्मित किये गये हैं॥ २७-२८॥

तस्यां च ब्रह्मणः पुर्यां प्लावयित्वेन्दुमण्डलम्।
विष्णुपादविनिष्क्रान्ता गङ्गा पतति वै नदी॥ २९

सीता चालकनन्दा च चक्षुर्भद्रा च वै क्रमात्।
सा तत्र पतिता दिक्षु चतुर्धा प्रत्यपद्यत॥ ३०

सीता पूर्वेण शैलं हि नन्दा चैव तु दक्षिणे।
सा चक्षुः पश्चिमे चैव भद्रा चोत्तरतो व्रजेत्॥ ३१

गिरीनतीत्य सकलांश्चतुर्दिक्षु महांबुधिम्।
सा ययौ प्रयता भूता गङ्गा त्रिपथगामिनी॥ ३२

सुनीलनिषधौ यौ तौ माल्यवद्गन्धमादनौ।
तेषां मध्यगतो मेरुः कर्णिकाकारसंस्थितः॥ ३३

भारतः केतुमालश्च भद्राश्वः कुरवस्तथा।
पत्राणि लोकपद्मस्य मर्यादालोकपर्वताः॥ ३४

जठरं देवकूटश्च आयामे दक्षिणोत्तरे।
गन्धमादनकैलासौ पूर्वपश्चिमतो गतौ॥ ३५

पूर्वपश्चिमतो मेरोर्निषधो नीलपर्वतः।
दक्षिणोत्तरमायातौ कर्णिकान्तर्व्यवस्थितौ॥ ३६

जठराद्याः स्थिता मेरोर्येषां द्वौ द्वौ व्यवस्थितौ।
केसराः पर्वता एते श्वेताद्याः सुमनोरमाः॥ ३७

शैलानामन्तरे द्रोण्यः सिद्धचारणसेविताः।
सुरम्याणि तथा तासु काननानि पुराणि च॥ ३८

सर्वेषां चैव देवानां यक्षगंधर्वरक्षसाम्।
क्रीडन्ति देवदैतेयाः शैलप्रायेष्वहर्निशम्॥ ३९

धर्मिणामालया ह्येते भौमाः स्वर्गाः प्रकीर्तिताः।
न तेषु पापकर्तारो यान्ति पश्यन्ति कुत्रचित्॥ ४०

यानि किंपुरुषादीनि वर्षाण्यष्टौ महामुने।
न तेषु शोको नापत्त्यो नोद्वेगः क्षुद्भयादिकम्॥ ४१

स्वस्थाः प्रजा निरातंकाः सर्वदुःखविवर्जिताः।
दशद्वादशवर्षाणां सहस्राणि स्थिरायुषः॥ ४२

भगवान् विष्णुके चरणोंसे निकली वे गंगाजी चन्द्रमण्डलको आप्लावित करती हुई ब्रह्माजीकी उस पुरीमें [चारों ओर] गिरती हैं। वे वहाँ गिरकर क्रमशः सीता, अलकनन्दा, चक्षु और भद्रा नामक चार धाराओंके रूपमें चारों दिशाओंमें प्रवाहित होती हैं॥ २९-३०॥

सुमेरुपर्वतके पूर्वमें सीता, दक्षिणमें अलकनन्दा, पश्चिममें चक्षु और उत्तरमें भद्रा नदी बहती है॥ ३१॥

वे त्रिपथगामिनी गंगा सम्पूर्ण पर्वतोंको लाँघकर [अपने चारों धारारूपोंसे] चारों दिशाओंके महासमुद्रमें जाकर मिल जाती हैं। जो सुनील तथा निषध नामक दो पर्वत हैं और जो माल्यवान् एवं गन्धमादन नामक दो पर्वत हैं, उनके मध्यमें स्थित सुमेरुपर्वत कर्णिकाके आकारमें विराजमान है॥ ३२-३३॥

भारत, केतुमाल, भद्राश्व एवं कुरुवर्ष—ये लोकरूपी पद्मके पत्र हैं। इस लोकपद्मके ये मर्यादापर्वत—जठर तथा देवकूट दक्षिणसे उत्तरकी ओर फैले हैं, गन्धमादन तथा कैलास पूर्व-पश्चिममें फैले हैं। मेरुके पूर्व तथा पश्चिमकी ओर निषध तथा नीलपर्वत दक्षिणसे उत्तरकी ओर फैले हुए हैं और वे कर्णिकाके मध्य भागमें स्थित हैं॥ ३४—३६॥

मेरुपर्वतके चारों ओर ये जठर, कैलास आदि मनोहर केसर पर्वत भलीभाँति अवस्थित हैं॥ ३७॥

उन पर्वतोंके मध्यमें सिद्ध तथा चारणोंसे सेवित अनेक द्रोणियाँ हैं और उनमें देवताओं, गन्धर्वों एवं राक्षसोंके मनोहर नगर तथा वन विद्यमान हैं। देवता तथा दैत्य इन पर्वतनगरोंमें रात-दिन क्रीड़ा करते हैं॥ ३८-३९॥

[हे मुने!] ये धर्मात्माओंके निवासस्थान हैं और पृथ्वीके स्वर्ग कहे गये हैं। उनमें पापीजन नहीं जा सकते और न तो कहीं कुछ देख ही सकते हैं॥ ४०॥

हे महामुने! जो किम्पुरुष आदि आठ वर्ष हैं, उनमें न शोक, न विपत्ति, न उद्वेग, न भूख तथा न भय आदि ही रहता है। यहाँकी प्रजाएँ स्वस्थ, निर्द्वन्द्व, सभी दुःखोंसे रहित तथा दस-बारह हजार वर्षोंकी स्थिर आयुवाली होती हैं॥ ४१-४२॥

कृतत्रेतादिकाश्चैव भौमान्यंभांसि सर्वतः।
न तेषु वर्षते देवस्तेषु स्थानेषु कल्पना॥ ४३

सप्तस्वेतेषु नद्यश्च सुजाताः स्वर्णवालुकाः।
शतशः सन्ति क्षुद्राश्च तासु क्रीडेच्छुभो जनः॥ ४४

वहाँ कृतयुग एवं त्रेतायुग ही होते हैं, वहाँ सर्वत्र पृथ्वीका ही जल है और उनमें मेघ वर्षा नहीं करते हैं। इन सातों द्वीपोंमें निर्मल जल तथा सुवर्णमय वालुकावाली सैकड़ों क्षुद्र नदियाँ भी बहती हैं; उनमें उत्तम लोग विहार करते हैं॥ ४३-४४॥

इति श्रीशिवमहापुराणे पञ्चम्यामुमासंहितायां ब्रह्माण्डकथने जम्बूद्वीपवर्षवर्णनं नाम सप्तदशोऽध्यायः॥ १७॥

॥ इस प्रकार श्रीशिवमहापुराणके अन्तर्गत पाँचवीं उमासंहितामें ब्रह्माण्डकथनमें जम्बूद्वीपवर्षवर्णन नामक सत्रहवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ १७॥

अथाष्टादशोऽध्यायः

भारतवर्ष तथा प्लक्ष आदि छः द्वीपोंका वर्णन

सनत्कुमार उवाच

वक्ष्येऽहं भारतं वर्षं हिमाद्रेश्चैव दक्षिणे।
उत्तरे तु समुद्रस्य भारती यत्र संसृतिः॥ १

सनत्कुमार बोले—[हे व्यास!] अब मैं हिमालयके दक्षिण तथा समुद्रके उत्तर भागमें स्थित भारतवर्षका वर्णन करूँगा, जहाँ भारती सृष्टि है॥ १॥

नवयोजनसाहस्रो विस्तारोऽस्य महामुने।
स्वर्गापवर्गयोः कर्मभूमिरेषा स्मृता बुधैः॥ २
अतः संप्राप्यते पुंभिः स्वर्गो नरक एव च।
भारतस्यापि वर्षस्य नव भेदान् ब्रवीमि ते॥ ३

हे महामुने! इसका विस्तार नौ हजार योजन है, विद्वानोंने इसे स्वर्ग और मोक्षकी कर्मभूमि कहा है। मनुष्य यहींसे स्वर्ग तथा नरक प्राप्त करते हैं। मैं भारतवर्षके भी नौ भेदोंको आपसे कहता हूँ॥ २-३॥

इन्द्रद्युम्नः कसेरुश्च ताम्रवर्णो गभस्तिमान्।
नागद्वीपस्तथा सौम्यो गन्धर्वस्त्वथ वारुणः॥ ४
अयं तु नवमस्तेषां द्वीपः सागरसंभृतः।
योजनानां सहस्रं तु द्वीपोऽयं दक्षिणोत्तरः॥ ५
पूर्वे किराता यस्य स्युर्दक्षिणे यवनाः स्थिताः।
पश्चिमे च तथा ज्ञेया उत्तरे हि तपस्विनः॥ ६
ब्राह्मणाः क्षत्रिया वैश्या मध्ये शूद्राश्च भूयशः।
इज्यायुद्धपणासेवा वर्तयन्तो व्यवस्थिताः॥ ७

इन्द्रद्युम्न, कसेरु, ताम्रवर्ण, गभस्तिमान्, नागद्वीप, सौम्य, गन्धर्व तथा वारुण—[ये आठ द्वीप हैं।] उनमें सागरसे घिरा हुआ यह [भारत] नौवाँ द्वीप है। यह द्वीप हजार योजन परिमाणमें दक्षिणसे उत्तरपर्यन्त फैला हुआ है, जिसके पूर्वमें किरात तथा दक्षिण और पश्चिममें यवन स्थित हैं। इसके उत्तरमें तपस्वियोंको स्थित जानना चाहिये। इसके मध्यमें ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य एवं शूद्र क्रमशः यज्ञ, युद्ध, व्यापार तथा सेवावृत्ति करते हुए स्थित हैं॥ ४—७॥

महेन्द्रो मलयः सह्यः सुदामा चर्क्षपर्वतः।
विंध्यश्च पारियात्रश्च सप्तात्र कुलपर्वताः॥ ८

इसमें महेन्द्र, मलय, सह्य, सुदामा, ऋक्ष, विन्ध्य एवं पारियात्र—ये सात कुलपर्वत हैं॥ ८॥

वेदस्मृतिपुराणाद्याः पारियात्रोद्भवा मुने।
सर्वपापहरा ज्ञेया दर्शनात्स्पर्शनादपि॥ ९

हे मुने! वेद, स्मृति, पुराण आदि पारियात्रमें ही आविर्भूत हुए हैं, दर्शन तथा स्पर्शसे इन्हें सभी पापोंका नाश करनेवाला जानना चाहिये॥ ९॥

नर्मदा सुरसाद्याश्च सप्तान्याश्च सहस्रशः।
विन्ध्योद्भवा महानद्यः सर्वपापहराः शुभाः॥ १०

नर्मदा, सुरसा आदि सात और इनके अतिरिक्त हजारों शुभ महानदियाँ विन्ध्यपर्वतसे उत्पन्न हुई हैं, जो सम्पूर्ण पापोंका हरण करती हैं॥ १०॥

गोदावरीभीमरथीतापीप्रमुखनिम्नगाः ।
गिरेर्विनिर्गता ऋक्षात्सद्यः पापभयापहाः ॥ ११

सह्यपादोद्भवा नद्यः कृष्णावेण्यादिकास्तथा।
कृतमालाताम्रपर्णीप्रमुखा मलयोद्भवाः ॥ १२

त्रियामा चर्षिकुल्याद्या महेन्द्रप्रभवाः स्मृताः।
ऋषिकुल्या कुमार्याद्याः शुक्तिमत्पादसंभवाः ॥ १३

नानाजनपदास्तेषु मण्डलेषु वसन्ति वै।
आसां पिबन्ति पानीयं सरःसु विविधेषु च॥ १४

चत्वारि भारते वर्षे युगान्यासन् महामुने।
कृतादीनि न चान्येषु द्वीपेषु प्रभवन्ति हि॥ १५

दानानि चात्र दीयन्ते सुकृतैश्चात्र याज्ञिकैः।
तपस्तपन्ति यतयः परलोकार्थमादरात्॥ १६

यतो हि कर्मभूरेषा जम्बूद्वीपे महामुने।
अत्रापि भारतं श्रेष्ठमतोऽन्या भोगभूमयः ॥ १७

कदाचिल्लभते मर्त्यः सहस्त्रैर्मुनिसत्तम।
अत्र जन्मसहस्राणां मानुष्यं पुण्यसञ्चयैः ॥ १८

स्वर्गापवर्गास्पदमार्गभूते
धन्यास्तु ते भारतभूमिभागे।
गायन्ति देवाः किल गीतकानि
भवन्ति भूयः पुरुषाः सुरास्ते॥ १९
अवाप्य मानुष्यमयं कदाचिद्
विहृत्य शंभोः परमात्मरूपे।
फलानि सर्वाणि तु कर्मजानि
यास्याम्यहं तत्तनुतां हि तस्य॥ २०
आप्स्यन्ति धन्याः खलु ते मनुष्याः
सुखैर्युताः कर्मणि सन्निविष्टाः।
जनुर्हि येषां खलु भारतेऽस्ति
ते स्वर्गमोक्षोभयलाभवन्तः ॥ २१

लक्षयोजनविस्तारः समस्तपरिमण्डलः।
जम्बूद्वीपो मया ख्यातः क्षारोदधिसुसंवृतः ॥ २२

गोदावरी, भीमरथी एवं तापी आदि प्रमुख नदियाँ ऋक्षपर्वतसे निकली हैं, जो शीघ्र ही पाप तथा भयका हरण करती हैं॥ ११॥

इसी प्रकार कृष्णा, वेणी आदि नदियाँ सह्यपर्वतके चरणोंसे निकली हैं। कृतमाला, ताम्रपर्णी आदि [नदियाँ] मलयाचलसे निकली हैं॥ १२॥

त्रियामा, ऋषिकुल्या आदि नदियाँ महेन्द्रपर्वतसे निकली हुई कही गयी हैं। ऋषिकुल्या, कुमारी आदि नदियाँ शुक्तिमान् पर्वतसे निकली हैं॥ १३॥

उन मण्डलोंमें अनेक जनपद निवास करते हैं, वे इन नदियों तथा अन्य सरोवरोंका जल पीते हैं॥ १४॥

हे महामुने! इस भारतवर्षमें ही सत्ययुग आदि चारों युग होते हैं, अन्य द्वीपोंमें ये नहीं होते॥ १५॥

यहींपर यज्ञ करनेवाले पुण्यात्मा लोग श्रद्धापूर्वक दान करते हैं और यहींपर परलोककी प्राप्तिके लिये यतिलोग तपस्या करते हैं॥ १६॥

हे महामुने! जम्बूद्वीपमें यह भूमि ही कर्मभूमि है, और उसमें भी यह भारतवर्ष सर्वश्रेष्ठ है, इसके अतिरिक्त अन्य सभी भोगभूमियाँ हैं॥ १७॥

हे मुनिश्रेष्ठ! यहाँपर जीव हजारों जन्मोंका पुण्यसंचय होनेपर कभी-कभी मनुष्यका जन्म प्राप्त करता है॥ १८॥

स्वर्ग एवं मोक्षके साधनभूत इस भारतवर्षका गुणगान देवतालोग भी करते हैं। अहा! यह भारतभूमि धन्य है, जहाँ देवतालोग भी पुरुष बनकर जन्म ग्रहण करते हैं। हम देवतालोग कब इस भारत-भूमिमें मनुष्य-जन्म पाकर परमात्मस्वरूप शिवमें अपने सारे कर्मोंका फल समर्पितकर शिवस्वरूप हो जायँगे॥ १९-२०॥

सुखोंसे युक्त तथा कर्ममें निरत वे मनुष्य निश्चय ही धन्य हैं, जिनका जन्म भारतवर्षमें होता है; क्योंकि वे स्वर्ग तथा मोक्ष दोनोंका लाभ प्राप्त करते हैं॥ २१॥

एक लाख योजन विस्तारवाले, सभी मण्डलोंसे युक्त तथा क्षारसमुद्रसे घिरे हुए इस जम्बूद्वीपका वर्णन मैंने किया॥ २२॥

संवेष्ट्य क्षारमुदधिं शतसाहस्त्रसम्मितम्।
ततो हि द्विगुणो ब्रह्मन् प्लक्षद्वीपः प्रकीर्तितः॥ २३
गोमन्तश्चैव चन्द्रश्च नारदो दर्दुरस्तथा।
सोमकः सुमनाः शैलो वैभ्राजश्चैव सत्तमः॥ २४
वर्षाचलेषु रम्येषु सहिताः सततं प्रजाः।
वसन्ति देवगंधर्वा वर्षेष्वेतेषु नित्यशः॥ २५
नाधयो व्याधयो वापि जनानां तत्र कुत्रचित्।
दश वर्षसहस्राणि तत्र जीवन्ति मानवाः॥ २६
अनुतप्ता शिखी चैव पापघ्नी त्रिदिवा कृपा।
अमृता सुकृता चैव सप्तैवात्र च निम्नगाः॥ २७
क्षुद्रनद्यस्तथा शैलास्तत्र सन्ति सहस्रशः।
ताः पिबन्ति सुसंहृष्टा नदीर्जनपदास्तु ते॥ २८
न तत्रापि युगावस्था यथा स्थानेषु सप्तसु।
त्रेतायुगसमः कालः सर्वदैव महामुने॥ २९
विप्रक्षत्रियवैश्यास्ते शूद्राश्च मुनिसत्तम।
कल्पवृक्षसमानस्तु तन्मध्ये सुमहातरुः॥ ३०
प्लक्षस्तन्नामसंज्ञो वै प्लक्षद्वीपो द्विजोत्तम।
इज्यते तत्र भगवान् शंकरो लोकशंकरः॥ ३१
हरिश्च भगवान् ब्रह्मा यन्त्रैर्मन्त्रैश्च वैदिकैः।
संक्षेपेण तथा भूयः शाल्मलिं त्वं निशामय॥ ३२
सप्तवर्षाणि तत्रैव तेषां नामानि मे शृणु।
श्वेतोऽथ हरितश्चैव जीमूतो रोहितस्तथा॥ ३३
वैकलो मानसश्चैव सुप्रभः सप्तमो मुने।
शाल्मलेन तु वृक्षेण द्वीपः शाल्मलिसंज्ञकः॥ ३४
द्विगुणेन समुद्रेण सततं संवृतः स्थितः।
वर्षाभिव्यंजका नद्यस्तासां नामानि मे शृणु॥ ३५
शुक्ला रक्ता हिरण्या च चन्द्रा शुभ्रा विमोचना।
निवृत्तिः सप्तमी तासां पुण्यतोयाः सुशीतलाः॥ ३६
सप्तैव तानि वर्षाणि चतुर्वर्णैर्युतानि च।
भगवन्तं सदा शंभुं यजन्ते विविधैर्मखैः॥ ३७
देवानां तत्र सान्निध्यमतीव सुमनोरमे।
एष द्वीपः समुद्रेण सुरोदेन समावृतः॥ ३८

हे ब्रह्मन्! क्षारसमुद्रसे घिरा हुआ एक लाख योजन विस्तारवाला, जो जम्बूद्वीप है, उससे दुगुने परिमाणका प्लक्षद्वीप कहा गया है। यहाँपर गोमन्त, चन्द्र, नारद, दर्दुर, सोमक, सुमना तथा वैभ्राज नामके उत्तम पर्वत हैं॥ २३-२४॥

इन मनोरम वर्षाचलोंमें प्रजाएँ, देवता एवं गन्धर्व सुखपूर्वक नित्य-निरन्तर निवास करते हैं॥ २५॥

यहाँपर लोगोंको आधि-व्याधि कभी नहीं होती है और यहाँके मनुष्य दस हजार वर्ष जीते हैं॥ २६॥

यहाँपर अनुतप्ता, शिखी, पापघ्नी, त्रिदिवा, कृपा, अमृता, सुकृता—ये सात नदियाँ हैं। छोटी नदियाँ तथा पहाड़ तो हजारोंकी संख्यामें हैं, यहाँके निवासी अत्यन्त प्रसन्न होकर इन नदियोंका जल पीते हैं॥ २७-२८॥

हे महामुने! इन सातों स्थानोंमें चारों युगोंकी स्थिति नहीं होती, वहाँ सदा त्रेतायुगके समान काल-व्यवस्था है। हे मुनिसत्तम! वहाँपर ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य एवं शूद्र निवास करते हैं। उसके मध्यमें कल्पवृक्षके समान एक बहुत बड़ा वृक्ष है। हे द्विजश्रेष्ठ! उसका नाम प्लक्ष है, इसी वृक्षके कारण इसका नाम प्लक्षद्वीप है। लोकका कल्याण करनेवाले भगवान् शंकर, भगवान् विष्णु तथा ब्रह्माकी पूजा यहाँपर वैदिक मन्त्रों तथा यन्त्रोंके द्वारा की जाती है। अब आप संक्षेपमें शाल्मलीद्वीपका वर्णन सुनिये॥ २९—३२॥

वहाँपर भी सात वर्ष हैं, उनके नाम मुझसे सुनिये। श्वेत, हरित, जीमूत, रोहित, वैकल, मानस और सातवाँ सुप्रभ। हे मुने! शाल्मली वृक्षके कारण इस द्वीपका नाम शाल्मलीद्वीप है॥ ३३-३४॥

यह भी परिमाणमें दुगुने समुद्रसे निरन्तर घिरा हुआ स्थित है। वर्षोंको सूचित करनेवाली नदियाँ भी वहाँ विद्यमान हैं, उनके नाम मुझसे सुनिये। शुक्ला, रक्ता, हिरण्या, चन्द्रा, शुभ्रा, विमोचना और सातवीं निवृत्ति। वे सब पवित्र तथा शीतल जलवाली हैं॥ ३५-३६॥

वे सातों वर्ष चारों वर्णोंसे युक्त हैं, वे लोग विविध यज्ञोंसे सदा भगवान् शिवका यजन करते हैं॥ ३७॥

उस अत्यन्त मनोरम द्वीपमें देवताओंका सर्वदा सान्निध्य रहता है। यह द्वीप सुरोद नामक समुद्रसे घिरा हुआ है॥ ३८॥

द्विगुणेन कुशद्वीपः समन्ताद् बाह्यतः स्थितः।
वसन्ति तत्र दैतेया मनुजैः सह दानवाः॥ ३९

तथैव देवगन्धर्वा यक्षाः किंपुरुषादयः।
वर्णास्तत्रैव चत्वारो निजानुष्ठानतत्पराः॥ ४०

इसके बाहर चारों ओर उसके दुगुने परिमाणका कुशद्वीप स्थित है। वहाँपर मनुष्योंके साथ दैत्य, दानव, देवता, गन्धर्व, यक्ष, किम्पुरुष आदि निवास करते हैं। वहाँपर चारों वर्णवाले मनुष्य अपने-अपने कर्मानुष्ठानमें निरत रहते हैं॥ ३९-४०॥

तत्रैव च कुशद्वीपे ब्रह्माणं च जनार्दनम्।
यजन्ति च तथेशानं सर्वकामफलप्रदम्॥ ४१

वहाँ कुशद्वीपमें लोग सम्पूर्ण कामनाओंको प्रदान करनेवाले ब्रह्मा, विष्णु तथा महेश्वरका यजन करते हैं॥ ४१॥

कुशेशयो हरिश्चैव द्युतिमान् पुष्पवांस्तथा।
मणिद्रुमो हेमशैलः सप्तमो मन्दराचलः॥ ४२
नद्यश्च सप्त तासां तु नामानि शृणु तत्त्वतः।
धूतपापा शिवा चैव पवित्रा संमितिस्तथा॥ ४३
विद्या दंभा मही चान्या सर्वपापहरास्त्विमाः।
अन्याः सहस्त्रशः सन्ति शुभापो हेमवालुकाः॥ ४४
कुशद्वीपे कुशस्तम्बो घृतोदेन समावृतः।
क्रौञ्चद्वीपो महाभाग श्रूयतां चापरो महान्॥ ४५

वहाँ कुशेशय, हरि, द्युतिमान्, पुष्पवान्, मणिद्रुम, हेमशैल एवं सातवाँ मन्दराचल नामक पर्वत है। वहाँ सात नदियाँ भी हैं, उनके नामोंको यथार्थरूपमें सुनिये—धूतपापा, शिवा, पवित्रा, सम्मिति, विद्या, दम्भा तथा मही—ये सम्पूर्ण पापोंको हरनेवाली हैं। इनके अतिरिक्त निर्मल जलवाली तथा सुवर्णबालुकापूर्ण अन्य हजारों नदियाँ भी हैं। कुशद्वीपमें घृतके समुद्रसे घिरा हुआ कुशोंका स्तम्ब है। हे महाभाग! अब दूसरे विशाल क्रौंचद्वीपका वर्णन सुनिये॥ ४२—४५॥

द्विगुणेन समुद्रेण दधिमण्डेन चावृतः।
वर्षाचला महाबुद्धे तेषां नामानि मे शृणु॥ ४६
क्रौञ्चश्च वामनश्चैव तृतीयश्चांधकारकः।
दिवावृतिर्मनश्चैव पुण्डरीकश्च दुन्दुभिः॥ ४७
निवसन्ति निरातङ्का वर्षशैलेषु तेषु वै।
सर्वसौवर्णरम्येषु सुहृद्देवगणैः प्रजाः॥ ४८
ब्राह्मणाः क्षत्रिया वैश्याः शूद्राश्चानुक्रमोदिताः।
सन्ति तत्र महानद्यः सप्तान्यास्तु सहस्त्रशः॥ ४९
गौरी कुमुद्वती चैव सन्ध्या रात्रिर्मनोजवा।
शान्तिश्च पुण्डरीका च याः पिबन्ति पयः शुभम्॥ ५०

यह दुगुने विस्तारवाले दधिमण्ड नामक समुद्रसे घिरा हुआ है। हे महाबुद्धे! उसमें जो वर्षपर्वत हैं, उनके नाम मुझसे सुनिये। क्रौंच, वामन, तीसरा अन्धकारक, दिवावृति, मन, पुण्डरीक एवं दुन्दुभि। चारों ओर सुवर्णके समान सुरम्य उन वर्षपर्वतोंमें मित्रों और देवगणोंके साथ प्रजाएँ निर्भय होकर निवास करती हैं। ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य एवं शूद्र यहाँ निवास करते हैं। यहाँपर सात महानदियाँ हैं, इनके अतिरिक्त अन्य भी हजारों नदियाँ हैं। गौरी, कुमुद्वती, सन्ध्या, रात्रि, मनोजवा, शान्ति तथा पुण्डरीका नामवाली जो [सात] नदियाँ हैं, उनका विमल जल लोग पीते हैं॥ ४६—५०॥

भगवान् पूज्यते तत्र योगरुद्रस्वरूपवान्।
दधिमण्डोदकश्चापि शाकद्वीपेन संवृतः॥ ५१

द्विगुणेनाद्रयः सप्त तेषां नामानि मे शृणु।
पूर्वे तत्रोदयगिरिर्जलधारः परे यतः॥ ५२

पृष्ठतोऽस्तगिरिश्चैव ह्यविकेशश्च केसरी।
शाकस्तत्र महावृक्षः सिद्धगंधर्वसेवितः॥ ५३

वहाँपर योगरुद्रस्वरूपवाले भगवान् शिवकी पूजा की जाती है। उसके बाद दधिमण्डोदक समुद्र द्विगुणित शाकद्वीपसे घिरा है। यहाँ सात पर्वत हैं, उनके नाम मुझसे सुनिये। इसके पूर्वमें उदयगिरि और पश्चिममें जलधार पर्वत है। पृष्ठभागमें अस्तगिरि, अविकेश तथा केसरी पर्वत हैं। यहाँ शाक नामक महान् वृक्ष है, जो सिद्धों तथा गन्धर्वोंसे सेवित है॥ ५१—५३॥

तत्र पुण्या जनपदाश्चातुर्वर्ण्यसमन्विताः।
नद्यश्चात्र महापुण्याः सर्वपापभयापहाः॥ ५४
सुकुमारी कुमारी च नलिनी वेणुका तथा।
इक्षुश्च रेणुका चैव गभस्तिः सप्तमी तथा॥ ५५
अन्याः सहस्रशस्तत्र क्षुद्रनद्यो महामुने।
महीधरास्तथा सन्ति शतशोऽथ सहस्रशः॥ ५६

वहाँपर चारों वर्णोंके लोगोंसे युक्त पवित्र जनपद हैं, वहाँ परम पवित्र तथा सभी पापोंको दूर करनेवाली सुकुमारी, कुमारी, नलिनी, वेणुका, इक्षु, रेणुका तथा गभस्ति नामक सात नदियाँ हैं। हे महामुने! इसके अतिरिक्त वहाँ हजारों अन्य छोटी नदियाँ हैं तथा सैकड़ों-हजारों पर्वत भी हैं॥ ५४—५६॥

धर्महानिर्न तेष्वस्ति स्वर्गादागत्य मानवाः।
वर्षेषु तेषु पृथिवीं विहरन्ति परस्परम्॥ ५७

उन वर्षोंमें धर्मकी हानि नहीं होती है। स्वर्गसे आकर उन वर्षोंमें पृथ्वीपर मनुष्य परस्पर विहार करते हैं॥ ५७॥

शाकद्वीपे तु वै सूर्यः प्रीत्या जनपदैः सदा।
यथोक्तैरिज्यते सम्यक्कर्मभिर्नियतात्मभिः॥ ५८

शाकद्वीपमें वहाँके संयमशील निवासी शास्त्रोक्त कर्मोंके द्वारा प्रेमपूर्वक सर्वदा सूर्यभगवान्‌का सम्यक् यजन करते हैं॥ ५८॥

क्षीरोदेनावृतः सोऽपि द्विगुणेन समन्ततः।
क्षीराब्धिः सर्वतो व्यास पुष्कराख्येन संवृतः॥ ५९

द्विगुणेन महावर्षस्तत्र ख्यातोऽत्र मानसः।
योजनानां सहस्राणि ऊर्ध्वं पञ्चाशदुच्छ्रितः॥ ६०

तानि चैव तु लक्षाणि सर्वतो वलयाकृतिः।
पुष्करद्वीपवलयं मध्येन विभजन्निव॥ ६१

वह शाकद्वीप चारों ओरसे दुगुने विस्तारवाले क्षीरसागरसे घिरा हुआ है। हे व्यास! क्षीरसागर दुगुने विस्तारवाले पुष्कर नामक द्वीपसे घिरा हुआ है। वहाँ मानस (मानसोत्तर) नामक विशाल वर्षपर्वत प्रसिद्ध है। यह पचास हजार योजन ऊँचा है और लाख योजन वलयके आकारमें विस्तृत है। वलयाकृति पुष्करद्वीपको यह पर्वत मध्यमें दो भागोंमें विभक्त करके स्थित है। इसीसे इस द्वीपके दोनों भागोंकी आकृति कंकणके समान है॥ ५९—६१॥

तेनैव वलयाकारा द्वीपवर्षसमाकृतिः।
दशवर्षसहस्राणि तत्र जीवन्ति मानवाः॥ ६२
निरामया वीतशोका रागद्वेषविवर्जिताः।
अधर्मो न मतस्तेषां न बंधवधकौ मुने॥ ६३
सत्यानृते न तस्यास्तां सदैव वसतिः सदा।
तुल्यवेषास्तु मनुजा हेमवर्णैकरूपिणः॥ ६४

यहाँके मनुष्य दस हजार वर्षपर्यन्त जीवित रहते हैं और रोग, शोक, राग तथा द्वेषसे रहित होते हैं। हे मुने! इन लोगोंमें अधर्म, वध-बन्धन आदि कुछ नहीं बताया गया है। इनमें असत्य नहीं होता। केवल सत्यका ही वास होता है। सभी मनुष्योंका वेष एक समान होता है और वे सुवर्णके समान एकमात्र गौर वर्णवाले होते हैं॥ ६२—६४॥

वर्षश्चायं तु कालेय भौमः स्वर्गोपमोपमः।
सर्वस्य सुखदः कालो जरारोगविवर्जितः॥ ६५

हे व्यासजी! भौम पृथिवीमें अवस्थित यह वर्ष तो स्वर्गतुल्य है। यहाँका काल सबको सुख देनेवाला तथा जरा-रोगसे रहित है॥ ६५॥

पुष्करे धातकीखण्डे महावीते महामुने।
न्यग्रोधं पुष्करद्वीपे ब्रह्मणः स्थानमुत्तमम्॥ ६६

तस्मिन्निवसते ब्रह्मा पूज्यमानः सुरासुरैः।
स्वादूदकेनाम्बुधिना पुष्करः परिवेष्टितः॥ ६७

पुष्करद्वीपमें महावीत एवं धातकी नामक दो खण्ड हैं। यहाँ पुष्करद्वीपमें एक न्यग्रोधका वृक्ष है, जो ब्रह्माजीका उत्तम स्थान है। ब्रह्माजी देवताओं एवं असुरोंसे पूजित होते हुए उसमें निवास करते हैं। यह पुष्करद्वीप चारों ओरसे स्वादूदक नामक समुद्रसे घिरा हुआ है॥ ६६-६७॥

एवं द्वीपाः समुद्रैस्तु सप्त सप्तभिरावृताः।
द्वीपाश्चैव समुद्राश्च समाना द्विगुणैः परैः॥ ६८

इस प्रकार ये सातों द्वीप सात समुद्रोंसे घिरे हुए हैं। द्वीप एवं समुद्र संख्यामें समान हैं, किंतु क्रमशः एक-दूसरेसे द्विगुण विस्तारवाले हैं॥ ६८॥

उक्तातिरिक्तता तेषां समुद्रेषु समानि वै।
पयांसि सर्वदाल्पत्वं जायन्ते न कदाचन॥ ६९

इस प्रकार मैंने उनकी अतिरिक्तताको कह दिया। समुद्रोंमें जल सर्वदा समान रहता है, उनका जल कभी घटता नहीं है॥ ६९॥

स्थालीस्थमग्निसंयोगादधःस्थं मुनिसत्तम।
तथेन्दुवृद्धौ सलिलमूर्ध्वगं भवति ध्रुवम्॥ ७०

हे मुनिश्रेष्ठ! जिस प्रकार अग्निके संयोगसे स्थालीमें रहनेवाला पदार्थ ऊपरकी ओर उबलकर आता है, उसी प्रकार चन्द्रमाकी वृद्धि होनेपर समुद्रका जल भी ऊपरको उठता है॥ ७०॥

उदयास्तमने त्विन्दोर्वर्धन्त्यापो ह्रसन्ति च।
अतो न्यूनातिरिक्ताश्च पक्षयोः शुक्लकृष्णयोः॥ ७१

चन्द्रमाके उदय तथा अस्तकालमें समुद्रोंका जल भी क्रमशः बढ़ता है और घटता है। इसलिये कृष्ण तथा शुक्लपक्षमें न्यूनाधिक्य होता रहता है॥ ७१॥

अपां वृद्धिक्षयौ दृष्टौ शतशस्तु दशोत्तरम्।
समुद्राणां मुनिश्रेष्ठ सर्वेषां कथितं तव॥ ७२

हे मुनिश्रेष्ठ! इस प्रकार समस्त समुद्रोंके जलके एक सौ दस उदय तथा क्षय देखे गये हैं, यह मैंने आपसे कह दिया॥ ७२॥

भोजनं पुष्करद्वीपे प्रजाः सर्वाः सदैव हि।
खण्डस्य कुर्वते विप्र तत्र स्वयमुपस्थितम्॥ ७३

हे विप्र! सभी प्रजाएँ पुष्करद्वीपमें सर्वदा अपने-आप उपस्थित खाँड़ आदि [मिष्टान्नोंका] भोजन करती हैं॥ ७३॥

स्वादूदकस्य पुरतो नास्ति लोकस्य संस्थितिः।
सौवर्णी द्विगुणा भूमिः सर्वजन्तुविवर्जिता॥ ७४

स्वादूदक समुद्रके आगे कोई भी लोक नहीं है। यहाँकी भूमि सुवर्णमयी तथा पुष्करद्वीपसे दुगुनी है, यह सभी प्रकारके प्राणियोंसे रहित है॥ ७४॥

लोकालोकस्ततः शैलः सहस्राण्यचलो हि सः।
उच्छ्रयेण हि तावन्ति योजनायुतविस्तृतः॥ ७५

उससे आगे लोकालोक पर्वत है। वह पर्वत ऊँचाईमें एक हजार योजन है और उसका विस्तार दस हजार योजन है॥ ७५॥

तमश्चाण्डकटाहेन सेयमुर्वी महामुने।
पञ्चाशत्कोटिविस्तारा सद्वीपा समहीधरा॥ ७६

आधारभूता सर्वेषां सर्वभूतगुणाधिका।
सेयं धात्री च कालेय सर्वेषां जगतामिला॥ ७७

हे महामुने! तमोमय ब्रह्माण्डरूप कटाहसे आवृत यह पृथ्वी द्वीपों तथा पर्वतोंसहित पचास करोड़ योजन विस्तारवाली है। हे व्यासजी! सबकी आधारभूता यह पृथ्वी गुणमें सभी महाभूतोंकी अपेक्षा अधिक है और यह सभी लोकोंकी धात्री है॥ ७६-७७॥

इति श्रीशिवमहापुराणे पञ्चम्यामुमासंहितायां ब्रह्माण्डकथने सप्तद्वीपवर्णनं नामाष्टादशोऽध्यायः॥ १८॥

॥ इस प्रकार श्रीशिवमहापुराणके अन्तर्गत पाँचवीं उमासंहितामें ब्रह्माण्डकथनमें सप्तद्वीपवर्णन नामक अठारहवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ १८॥

अथैकोनविंशोऽध्यायः

सूर्यादि ग्रहोंकी स्थितिका निरूपण करके जन आदि लोकोंका वर्णन

सनत्कुमार उवाच

रविचन्द्रमसोर्यावन्मयूखा भासयन्ति हि।
तावत्प्रमाणा पृथिवी भूलोकः स तु गीयते॥ १
भूमेर्योजनलक्षे तु संस्थितं रविमण्डलम्।
योजनानां सहस्राणि सदैव परिसंख्यया॥ २
शशिनस्तु प्रमाणाय जगतः परिचक्षते।
रवेरूर्ध्वं शशी तस्थौ लक्षयोजनसंख्यया॥ ३

सनत्कुमार बोले—[हे व्यासजी!] जहाँतक सूर्य एवं चन्द्रमाकी किरणें प्रकाश करती हैं, वहाँतक पृथ्वी है, उसीको भूलोक कहा जाता है॥ १॥

पृथ्वीसे एक लाख योजनकी दूरीपर सर्वदा एक हजार योजनके घेरेमें सूर्यमण्डल स्थित है। अब संसारमें चन्द्रमाके प्रमाणकी स्थिति कही जा रही है। सूर्यमण्डलसे एक लाख योजनकी दूरीपर चन्द्रमा स्थित है॥ २-३॥

ग्रहाणां मण्डलं कृत्स्नं विधोरुपरि संस्थितम्।
सनक्षत्रं सहस्राणि दशैव परितोपरि॥ ४
बुधस्तस्मादथो काव्यस्तस्माद्भौमस्य मण्डलम्।
बृहस्पतिस्तदूर्ध्वं तु तस्योपरि शनैश्चरः॥ ५
सप्तर्षिमण्डलं तस्माल्लक्षेणैकेन संस्थितम्।
ऋषिभ्यस्तु सहस्राणां शतादूर्ध्वं ध्रुवः स्थितः॥ ६

चन्द्रमाके ऊपर दस हजार योजनकी दूरीपर चारों ओर नक्षत्रोंके सहित ग्रहमण्डल स्थित है। उसके आगे बुध, उसके आगे शुक्र और उसके ऊपर भौममण्डल है। फिर उसके ऊपर बृहस्पति और उसके ऊपर शनैश्चर स्थित है। उसके एक लाख योजन दूरीपर सप्तर्षिमण्डल है और सप्तर्षियोंसे सौ हजार योजन ऊपर ध्रुव स्थित है॥ ४—६॥

मेढीभूतः स यस्तस्य ज्योतिश्चक्रस्य वै ध्रुवः।
भूर्भुवः स्वरिति ज्ञेयं भुव ऊर्ध्वं ध्रुवादवाक्॥ ७

यह ध्रुव [समस्त] ज्योतिश्चक्रका मेढीभूत अर्थात् केन्द्र होकर स्थित है। पृथ्वीके ऊपर तथा ध्रुवके नीचे भूर्लोक, भुवर्लोक तथा स्वर्लोक स्थित हैं, ऐसा जानना चाहिये॥ ७॥

एकयोजनकोटिस्तु यत्र ते कल्पवासिनः।
ध्रुवादूर्ध्वं महर्लोकः सप्तैते ब्रह्मणः सुताः॥ ८
सनकश्च सनन्दश्च तृतीयश्च सनातनः।
कपिलश्चासुरिश्चैव वोढुः पञ्चशिखस्तथा॥ ९

ध्रुवके ऊपर एक करोड़ योजनपर महर्लोक है, जहाँ ब्रह्माजीके कल्पान्तवासी सनक, सनन्दन, सनातन, कपिल, आसुरि, वोढु एवं पंचशिख—ये सात पुत्र निवास करते हैं॥ ८-९॥

उपरिष्टात्ततः शुक्रो द्विलक्षाभ्यन्तरे स्थितः।
द्विलक्षयोजनं तस्मादधः सोमसुतः स्मृतः॥ १०
द्विलक्षयोजनं तस्मादूर्ध्वं भौमः स्थितो मुने।
द्विलक्षयोजनं तस्मादूर्ध्वं जीवः स्थितो गुरुः॥ ११
द्विलक्षयोजनं जीवादूर्ध्वं सौरिर्व्यवस्थितः।
एते सप्त ग्रहाः प्रोक्ताः स्व स्व राशौ व्यवस्थिताः॥ १२

उसके ऊपर दो लाख योजनपर शुक्र स्थित है, शुक्रसे दो लाख योजन नीचे चन्द्रमापुत्र बुध बताया गया है। हे मुने! उससे दो लाख योजन ऊपर मंगल स्थित है और उससे दो लाख योजन ऊपर गुरु बृहस्पति स्थित हैं। बृहस्पतिसे दो लाख योजन ऊपर शनैश्चर स्थित है, ये सातों ग्रह अपनी-अपनी राशियोंपर स्थित रहते हैं॥ १०—१२॥

रुद्रलक्षैर्योजनतः सप्तोर्ध्वमृषयः स्थिताः।
विश्वलक्षैर्योजनतो ध्रुवस्थितिरुदाहृता॥ १३

चतुर्गुणोत्तरे चार्धे जनलोकात्तपः स्मृतम्।
वैराजा यत्र देवा वै स्थिता दाहविवर्जिताः॥ १४

उनसे ग्यारह लाख योजन ऊपर सप्तर्षि स्थित हैं और उनसे दस लाख योजनपर ध्रुवकी स्थिति बतायी गयी है। जनलोकसे आगे साढ़े चार गुनी दूरीपर तपलोक कहा गया है, जहाँपर वैराज देवता तापरहित होकर रहते हैं॥ १३-१४॥

षड्गुणेन तपोलोकात्सत्यलोको व्यवस्थितः।
ब्रह्मलोकः स विज्ञेयो वसन्त्यमलचेतसः॥ १५
सत्यधर्मरताश्चैव ज्ञानिनो ब्रह्मचारिणः।
यद्गामिनोऽथ भूलोकान्निवसन्ति हि मानवाः॥ १६

तपलोकसे छः गुनी दूरीपर सत्यलोक स्थित है, उसे ब्रह्मलोक जानना चाहिये। यहाँपर निर्मल आत्मावाले लोग रहते हैं और भूलोकसे ब्रह्मलोक जानेवाले, सत्यधर्ममें तत्पर, ज्ञानी तथा ब्रह्मचारी मनुष्य निवास करते हैं॥ १५-१६॥

भुवर्लोके तु संसिद्धा मुनयो देवरूपिणः।
स्वर्गलोके सुरादित्या मरुतो वसवोऽश्विनौ॥ १७
विश्वेदेवास्तथा रुद्राः साध्या नागाः खगादयः।
नवग्रहास्ततस्तत्र ऋषयो वीतकल्मषाः॥ १८

भुवर्लोकमें सिद्ध तथा देवस्वरूप मुनि रहते हैं। स्वर्गलोकमें देवता, आदित्य, मरुद्गण, वसुगण, दोनों अश्विनीकुमार, विश्वेदेव, रुद्र, साध्य, नाग, नक्षत्र आदि, नवग्रह तथा निष्पाप ऋषिगण निवास करते हैं॥ १७-१८॥

एते सप्त महालोकाः कालेय कथितास्तव।
पातालानि च सप्तैव ब्रह्माण्डस्य च विस्तरः॥ १९
दधिवृक्षफलं यद्वद् वृत्तिश्चोर्ध्वमधस्तथा।
एतदण्डकटाहेन सर्वतो वै समावृतम्॥ २०
दशगुणेन पयसा सर्वतस्तत्समावृतम्।
वह्निना वायुना चापि नभसा तमसा तथा॥ २१
भूतादिनापि महता दिग्गुणोत्तरवेष्टितः।
महान्तं च समावृत्य प्रधानं पुरुषः स्थितः॥ २२

हे व्यासजी! मैंने इन सातों महालोकोंका, सातों पातालोंका तथा ब्रह्माण्डके विस्तारका वर्णन आपसे किया। जिस प्रकार कैथका फल ऊपर-नीचे चारों ओरसे आवृत रहता है, उसी प्रकार यह ब्रह्माण्ड भी अण्डकटाहसे सभी ओरसे घिरा हुआ है। यह दस गुने जलसे, तेजसे, वायुसे, आकाशसे एवं अन्धकारसे चारों ओरसे व्याप्त है। ये महाभूत आदिके सहित महत्तत्त्वसे भी दस गुना घिरा हुआ है और इस प्रधान महत्तत्त्वको घेरकर पुरुष स्थित है॥ १९—२२॥

अनन्तस्य न तस्यास्ति संख्यापि परमात्मनः।
तेनानन्त इति ख्यातः प्रमाणं नास्ति वै यतः॥ २३

उन अनन्त परमात्माकी कोई संख्या नहीं है और उनका परिमाण भी नहीं है, अतः वे अनन्त कहे गये हैं॥ २३॥

हेतुभूतः समस्तस्य प्रकृतिः सा परा मुने।
अण्डानां तु सहस्राणां सहस्राण्ययुतानि च॥ २४
ईदृशानां प्रभूतानि तस्मादव्यक्तजन्मनः।
दारुण्यग्निस्तिले तैलं पयःसु च यथा घृतम्॥ २५
तथासौ परमात्मा वै सर्वं व्याप्यात्मवेदनः।
आदिबीजात्प्रसुवते ततस्तेभ्यः परेऽण्डजाः॥ २६
तेभ्यः पुत्रास्तथान्येषां बीजान्यन्यानि वै ततः।
महदादिविशेषान्तास्तद्भवन्ति सुरादयः॥ २७

वे सबके कारण हैं और परा उनकी प्रकृति है। इस प्रकारके हजारों-लाखों ब्रह्माण्डसमुदाय उन अव्यक्त परमात्मासे उत्पन्न हुए हैं। जिस प्रकार काष्ठमें आग, तिलमें तेल तथा दूधमें घी व्याप्त रहता है, उसी प्रकार वे आत्मवेत्ता परमात्मा सम्पूर्ण ब्रह्माण्डमें व्याप्त होकर स्थित हैं। सृष्टि आदि-बीजसे होती है, उसके बाद उनसे अण्डज होते हैं। फिर उनसे पुत्रादि होते हैं, पुनः उनसे अन्य उत्पन्न होते हैं। इसके बाद उनसे महत्‌से लेकर विशेषपर्यन्त तत्त्व उत्पन्न होते हैं, उसके बाद देवता आदिकी उत्पत्ति होती है॥ २४—२७॥

बीजाद् वृक्षप्ररोहेण यथा नापचयस्तरोः।
सूर्यकान्तमणेः सूर्याद्यद्वद्वह्निः प्रजायते॥ २८
तद्वत्संजायते सृष्टिः शिवस्तत्र न कामयेत्।

जिस प्रकार बीजसे वृक्ष तथा वृक्षसे बीज होता है और इससे वृक्षकी हानि नहीं होती है, जैसे सूर्यके सन्नियोगसे सूर्यकान्तमणिद्वारा अग्नि प्रकट होती है, उसी प्रकार [परमात्माके संयोगसे] सृष्टि होती है, उसमें शिवकी कोई कामना नहीं है।

शिवशक्तिसमायोगे देवाद्याः प्रभवन्ति हि॥ २९
तथा स्वकर्मणैकेन प्ररोहमुपयान्ति वै।
ब्रह्मा विष्णुश्च रुद्रश्च स शिवः परिगीयते॥ ३०
तस्मादुद्धरते सर्वं यस्मिंश्च लयमेष्यति।
कर्ता क्रियाणां सर्वासां स शिवः परिगीयते॥ ३१

शिव तथा शक्तिका समायोग होनेपर देवता आदि उत्पन्न होते हैं। वे अपने एकमात्र कर्मसे ही उत्पन्न होते हैं, वे शिव ही ब्रह्मा, विष्णु तथा रुद्ररूपमें कहे जाते हैं। उन्हींसे सारा जगत् उत्पन्न होता है और उन्हींमें लयको भी प्राप्त होता है। वे शिव ही सभी क्रियाओंके कर्ता कहे जाते हैं॥ २८—३१॥

व्यास उवाच

सनत्कुमार सर्वज्ञ छिन्धि मे संशयं महत्।
सन्ति लोका हि ब्रह्माण्डादुपरिष्टान्न वा मुने॥ ३२

व्यासजी बोले—हे सर्वज्ञ! सनत्कुमार! मेरे इस महान् संशयको दूर कीजिये। हे मुने! ब्रह्माण्डके ऊपर अन्य कोई लोक हैं अथवा नहीं॥ ३२॥

सनत्कुमार उवाच

ब्रह्माण्डादुपरिष्टाच्च सन्ति लोका मुनीश्वर।
तान् शृणु त्वं विशेषेण वच्मि तेऽहं समागतः॥ ३३

सनत्कुमार बोले—हे मुनीश्वर! ब्रह्माण्डके ऊपर भी लोक हैं, उन्हें विस्तारपूर्वक आप सुनिये, यहाँ आया हुआ मैं आपसे उनका वर्णन कर रहा हूँ॥ ३३॥

विधिलोकात्परो लोको वैकुण्ठ इति विश्रुतः।
विराजते महादीप्त्या यत्र विष्णुः प्रतिष्ठितः॥ ३४
तस्योपरिष्टात्कौमारो लोको हि परमाद्भुतः।
सेनानीः शंभुतनयो राजते यत्र सुप्रभः॥ ३५
ततः परमुमालोको महादिव्यो विराजते।
यत्र शक्तिर्विभात्येका त्रिदेवजननी शिवा॥ ३६
परात्परा हि प्रकृती रजःसत्त्वतमोमयी।
निर्गुणा च स्वयं देवी निर्विकारा शिवात्मिका॥ ३७

ब्रह्मलोकसे ऊपर श्रेष्ठ वैकुण्ठ नामक परम दीप्तियुक्त लोक विराजमान है, जहाँ विष्णु निवास करते हैं। उसके ऊपर अत्यन्त अद्भुत कौमारलोक है, जहाँ महातेजस्वी शम्भुपुत्र कार्तिकेय निवास करते हैं। उसके ऊपर परम दिव्य उमालोक विराजमान है, जहाँ तीनों देवताओंकी जननी एकमात्र महाशक्ति शिवा विराजती हैं। वे देवी [शिवा] स्वयं परात्पर प्रकृति, सत्त्व, रज, तमोमयी, निर्गुण, निर्विकार एवं शिवात्मिका हैं॥ ३४—३७॥

तस्योपरिष्टाद्विज्ञेयः शिवलोकः सनातनः।
अविनाशी महादिव्यो महाशोभान्वितः सदा॥ ३८
विराजते परं ब्रह्म यत्र शंभुर्महेश्वरः।
त्रिदेवजनकः स्वामी सर्वेषां त्रिगुणात्परः॥ ३९

उसके ऊपर सनातन, अविनाशी, परम दिव्य तथा सर्वदा महान् शोभासे युक्त शिवलोकको जानना चाहिये, जहाँ तीनों देवताओंको उत्पन्न करनेवाले, सबके स्वामी तथा त्रिगुणातीत परब्रह्म महेश्वर निवास करते हैं॥ ३८-३९॥

तत ऊर्ध्वं न लोकाश्च गोलोकस्तत्समीपतः।
गोमातरः सुशीलाख्यास्तत्र सन्ति शिवप्रियाः॥ ४०

उसके ऊपर कोई भी लोक नहीं है। उसके समीपमें गोलोक है, जहाँपर सुशीला नामवाली शिवप्रिया गोमाताएँ निवास करती हैं॥ ४०॥

तत्पालः कृष्णनामा हि राजते शंकराज्ञया।
प्रतिष्ठितः शिवेनैव शक्त्या स्वच्छन्दचारिणा॥ ४१

उन गौओंका पालन करनेवाले श्रीकृष्ण शिवजीकी आज्ञासे वहाँ निवास करते हैं। परम स्वतन्त्र शिवजीने ही अपनी शक्तिसे वहाँ उन्हें प्रतिष्ठित किया है॥ ४१॥

शिवलोकोऽद्भुतो व्यास निराधारो मनोहरः।
तथानिर्वचनीयश्च नानावस्तुविराजितः॥ ४२
शिवस्तु तदधिष्ठाता सर्वदेवशिरोमणिः।
विष्णुब्रह्महरैः सेव्यः परमात्मा निरञ्जनः॥ ४३

हे व्यासजी! वह शिवलोक अद्भुत, निराधार, मनोहर, अनिर्वचनीय तथा अनेक वस्तुओंसे सुशोभित है। सभी देवताओंमें श्रेष्ठ, ब्रह्मा-विष्णु-हरसे सेवित, परमात्मा तथा निर्विकार शिवजी उस लोकके अधिष्ठाता हैं।

इति ते कथिता तात सर्वब्रह्माण्डसंस्थितिः।
तदूर्ध्वं लोकसंस्थानं किमन्यच्छ्रोतुमिच्छसि॥ ४४

हे तात! इस प्रकार मैंने सारे ब्रह्माण्डकी स्थिति तथा उसके ऊपर स्थित लोकोंका वर्णन क्रमसे कर दिया, अब आप और क्या सुनना चाहते हैं?॥ ४२—४४॥

इति श्रीशिवमहापुराणे पञ्चम्यामुमासंहितायां लोकवर्णनं नामैकोनविंशोऽध्यायः॥ १९॥

॥ इस प्रकार श्रीशिवमहापुराणके अन्तर्गत पाँचवीं उमासंहितामें लोकवर्णन नामक उन्नीसवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ १९॥

अथ विंशोऽध्यायः

तपस्यासे शिवलोककी प्राप्ति, सात्त्विक आदि तपस्याके भेद, मानवजन्मकी प्रशस्तिका कथन

व्यास उवाच

सनत्कुमार सर्वज्ञ तत्प्राप्तिं वद सत्तम।
यद् गत्वा न निवर्तन्ते शिवभक्तियुता नराः॥ १

व्यासजी बोले—हे सर्वज्ञ! सनत्कुमार! हे सत्तम! अब आप उस [शिवलोक]-की प्राप्तिका वर्णन करें, जहाँ जाकर शिवभक्त मनुष्य फिर नहीं लौटते हैं॥ १॥

सनत्कुमार उवाच

पराशरसुत व्यास शृणु प्रीत्या शुभां गतिम्।
व्रतं हि शुद्धभक्तानां तथा शुद्धं तपस्विनाम्॥ २

सनत्कुमार बोले—हे पराशरपुत्र व्यास! अब आप शुद्ध शिवभक्तजनों तथा तपस्वियोंकी शुभ गति तथा पवित्र व्रतको प्रीतिपूर्वक सुनिये॥ २॥

ये शिवं शुद्धकर्माणः सुशुद्धतपसान्विताः।
समर्चयन्ति तं नित्यं वन्द्यास्ते सर्वथान्वहम्॥ ३

शुद्ध कर्म करनेवाले एवं अत्यन्त शुद्ध तपस्यासे युक्त जो मनुष्य प्रतिदिन शिवजीकी पूजा करते हैं, वे सब प्रकारसे सर्वदा वन्दनीय हैं॥ ३॥

नातप्ततपसो यान्ति शिवलोकमनामयम्।
शिवानुग्रहसद्धेतुस्तप एव महामुने॥ ४

तपसा दिवि मोदन्ते प्रत्यक्षं देवतागणाः।
ऋषयो मुनयश्चैव सत्यं जानीहि मद्वचः॥ ५

हे महामुने! तपस्या नहीं करनेवाले उस निर्विकार शिवलोकमें नहीं जा सकते हैं, शिवजीकी कृपाका मूल हेतु तपस्या ही है। यह प्रत्यक्ष है कि तपके प्रभावसे ही देवता, ऋषि और मुनिलोग स्वर्गमें आनन्द प्राप्त करते हैं, मेरे इस वचनको सत्य जानिये॥ ४-५॥

सुदुर्द्धरं दुराराध्यं सुदूरं दुरतिक्रमम्।
तत्सर्वं तपसा साध्यं तपो हि दुरतिक्रमम्॥ ६

सुस्थितस्तपसि ब्रह्मा नित्यं विष्णुर्हरस्तथा।
देवा देव्योऽखिलाः प्राप्तास्तपसा दुर्लभं फलम्॥ ७

जो अत्यन्त कठिन, दुराराध्य, अत्यन्त दूर एवं पार न पानेयोग्य है, वह सब तपस्यासे सिद्ध हो जाता है, निश्चय ही तपस्याका अतिक्रमण नहीं किया जा सकता। ब्रह्मा, विष्णु तथा हर नित्य तपमें स्थित रहते हैं। सम्पूर्ण देवताओं तथा देवियोंने भी तपस्यासे ही दुर्लभ फल प्राप्त किया है॥ ६-७॥

येन येन हि भावेन स्थित्वा यत्क्रियते तपः।
ततः संप्राप्यतेऽसौ तैरिह लोके न संशयः॥ ८

सात्त्विकं राजसं चैव तामसं त्रिविधं स्मृतम्।
विज्ञेयं हि तपो व्यास सर्वसाधनसाधनम्॥ ९

जिस-जिस भावमें स्थित होकर लोग जो तपस्या करते हैं, वे उस तपसे उसी प्रकारका फल इस लोकमें प्राप्त करते हैं, इसमें सन्देह नहीं है। हे व्यासजी! सात्त्विक, राजस तथा तामस—यह तीन प्रकारका तप कहा गया है, तपको सम्पूर्ण साधनोंका साधन जानना चाहिये॥ ८-९॥

सात्त्विकं दैवतानां हि यतीनामूर्ध्वरेतसाम्।
राजसं दानवानां हि मनुष्याणां तथैव च।
तामसं राक्षसानां हि नराणां क्रूरकर्मणाम्॥ १०

त्रिविधं तत्फलं प्रोक्तं मुनिभिस्तत्त्वदर्शिभिः।
जपो ध्यानं तु देवानामर्चनं भक्तितः शुभम्॥ ११

सात्त्विकं तद्धि निर्दिष्टमशेषफलसाधकम्।
इह लोके परे चैव मनोऽभिप्रेतसाधनम्॥ १२

कामनाफलमुद्दिश्य राजसं तप उच्यते।
निजदेहं सुसंपीड्य देहशोषकदुःसहैः॥ १३

तपस्तामसमुद्दिष्टं मनोऽभिप्रेतसाधनम्॥ १४

उत्तमं सात्त्विकं विद्याद्धर्मबुद्धिश्च निश्चला।
स्नानं पूजा जपो होमः शुद्धशौचमहिंसनम्॥ १५
व्रतोपवासचर्या च मौनमिन्द्रियनिग्रहः।
धीर्विद्या सत्यमक्रोधो दानं क्षान्तिर्दमो दया॥ १६
वापीकूपतडागादेः प्रासादस्य च कल्पना।
कृच्छ्रं चान्द्रायणं यज्ञः सुतीर्थान्याश्रमाः पुनः॥ १७
धर्मस्थानानि चैतानि सुखदानि मनीषिणाम्।
सुधर्मः परमो व्यास शिवभक्तेश्च कारणम्॥ १८
संक्रान्तिविषुवद्योगे नादमुक्ते नियुज्यताम्।
ध्यानं त्रिकालिकं ज्योतिरुन्मनीभावधारणा॥ १९
रेचकः पूरकः कुम्भः प्राणायामस्त्रिधा स्मृतः।
नाडीसंचारविज्ञानं प्रत्याहारनिरोधनम्॥ २०

तुरीयं तदधोबुद्धिरणिमाद्यष्टसंयुतम्।
पूर्वोत्तमं समुद्दिष्टं परज्ञानप्रसाधनम्॥ २१

काष्ठावस्था मृतावस्था हरिता वेति कीर्तिताः।
नानोपलब्धयो ह्येताः सर्वपापप्रणाशनाः॥ २२

देवताओं, संन्यासियों एवं ब्रह्मचारियोंका तप सात्त्विक होता है। दैत्यों एवं मनुष्योंका तप राजस होता है तथा राक्षसों एवं क्रूर कर्म करनेवाले मनुष्योंका तप तामस होता है॥ १०॥

तत्त्वदर्शी महर्षियोंने उनका फल भी तीन प्रकारका बताया है। भक्तिपूर्वक देवगणोंका जप, ध्यान एवं अर्चन शुभ होता है। वह सात्त्विक कहा गया है, जो सभी फलोंको प्रदान करता है। यह तप इस लोकमें और परलोकमें भी मनोरथोंको सिद्ध करनेवाला है॥ ११-१२॥

किसी प्रकारकी कामनाकी सिद्धिको उद्देश्य करके जो तप किया जाता है, वह राजस तप कहा जाता है। देहको सुखानेवाले और दुस्सह तपोंसे शरीरको पीड़ितकर जो तप किया जाता है, वह तामस तप कहा जाता है, वह भी मनोरथ सिद्ध करनेवाला है॥ १३-१४॥

सात्त्विक तपको सर्वोत्तम जानना चाहिये। निश्चल धर्मबुद्धि, स्नान, पूजा, जप, होम, शुद्धता, शौच, अहिंसा, व्रत-उपवास, मौन, इन्द्रियनिग्रह, बुद्धि, विद्या, सत्य, अक्रोध, दान, क्षमा, दम, दया, बावली-कूप-सरोवर एवं प्रासादका निर्माण, कृच्छ्र, चान्द्रायण आदि व्रत, यज्ञ, श्रेष्ठ तीर्थ और आश्रमका निवास—ये सभी धर्मके स्थान हैं और बुद्धिमानोंको सुख देनेवाले हैं। हे व्यास! इस प्रकार विषुव संक्रान्ति (मेष-तुला संक्रान्ति)-में सम्पन्न ये सद्धर्म शिवभक्तिके परम कारण हैं। किसी शब्दरहित स्थानमें उन्मनी भावसे ज्योतिका तीनों कालोंमें ध्यान करना ही धारणा है। रेचक, पूरक और कुम्भक—यह तीन प्रकारका प्राणायाम कहा गया है। प्रत्याहारद्वारा इन्द्रियोंका निरोध एवं नाड़ीसंचारका ज्ञान होता है॥ १५—२०॥

यह तुरीयावस्था होती है। अणिमादि अष्टसिद्धियोंको प्राप्त करना अधोबुद्धि है। इसमें पूर्व-पूर्व उत्तम भेद कहे गये हैं, जो ज्ञानविशेषके साधन हैं। काष्ठावस्था, मृतावस्था और हरितावस्था—ये तीन अवस्थाएँ कही गयी हैं। ये अवस्थाएँ अनेक उपलब्धियोंवाली तथा सभी पापोंको विनष्ट करनेवाली हैं॥ २१-२२॥

नारी शय्या तथा पानं वस्त्रधूपविलेपनम्।
ताम्बूलभक्षणं पञ्च राजैश्वर्यविभूतयः॥ २३
हेमभारस्तथा ताम्रं गृहाश्च रत्नधेनवः।
पाण्डित्यं वेदशास्त्राणां गीतनृत्यविभूषणम्॥ २४
शंखवीणामृदङ्गाश्च गजेन्द्रः छत्रचामरे।
भोगरूपाणि चैतानि एभिः सक्तोऽनुरज्यते॥ २५

नारी, शय्या, पान, वस्त्र, धूप, सुगन्धित चन्दन आदिका लेप, ताम्बूलभक्षण, पाँच राजैश्वर्य विभूतियाँ, सुवर्णकी अधिकता, ताँबा, घर, रत्न, धेनु, वेद-शास्त्रोंका पाण्डित्य, गीत, नृत्य, आभूषण, शंख, वीणा, मृदंग, गजेन्द्र, छत्र एवं चामर—ये सभी भोगस्वरूप हैं। इनमें [विषयोंमें] आसक्त प्राणी ही अनुरक्त होता है॥ २३—२५॥

आदर्शवन्मुने स्नेहैस्तिलवत्स निपीड्यते।
अरं गच्छेति चाप्येनं कुरुते ज्ञानमोहितः॥ २६

हे मुने! ये सभी पदार्थ दर्पणमें पड़े प्रतिबिम्बके समान अवास्तविक तथा आभासमात्र हैं तथापि इनमें यथार्थबुद्धि करके संसारीपुरुष तेलके लिये तिलके समान बारंबार इस संसारचक्रमें पेरा जाता है और माया उसे अज्ञानसे मोहित कर लेती है॥ २६॥

जानन्नपीह संसारे भ्रमते घटियन्त्रवत्।
सर्वयोनिषु दुःखार्तः स्थावरेषु चरेषु च॥ २७
एवं योनिषु सर्वासु प्रतिक्रम्य भ्रमेण तु।
कालान्तरवशाद्याति मानुष्यमतिदुर्लभम्॥ २८
व्युत्क्रमेणापि मानुष्यं प्राप्यते पुण्यगौरवात्।
विचित्रा गतयः प्रोक्ताः कर्मणां गुरुलाघवात्॥ २९

वह सब कुछ जानते हुए भी घड़ीके यन्त्रके समान स्थावर, जंगम आदि सभी योनियोंमें दुखी होकर घूमता रहता है। इस प्रकार समस्त योनियोंमें भ्रमणकर बहुत समयके बाद अत्यन्त दुर्लभ मनुष्य जन्म प्राप्त करता है और कभी-कभी पुण्यकी महिमासे बीचमें ही मानवशरीर प्राप्त कर लेता है; क्योंकि कर्मोंके गौरव तथा लाघवके कारण उनकी गतियाँ बड़ी विचित्र कही गयी हैं॥ २७—२९॥

मानुष्यं च समासाद्य स्वर्गमोक्षप्रसाधनम्।
नाचरत्यात्मनः श्रेयः स मृतः शोचते चिरम्॥ ३०

देवासुराणां सर्वेषां मानुष्यं चातिदुर्लभम्।
तत्सम्प्राप्य तथा कुर्यान्न गच्छेन्नरकं यथा॥ ३१

जो पुरुष स्वर्ग एवं मोक्षके साधनभूत इस मनुष्यजन्मको पाकर अपना परम कल्याण नहीं करता है, वह मरनेके बाद बहुत कालतक शोक करता रहता है। सभी देवताओं एवं असुरोंके लिये भी यह मनुष्यजन्म अति दुर्लभ है। अतः उसे प्राप्त करके वैसा कर्म करना चाहिये, जिससे नरकमें न जाना पड़े॥ ३०-३१॥

स्वर्गापवर्गलाभाय यदि नास्ति समुद्यमः।
दुर्लभं प्राप्य मानुष्यं वृथा तज्जन्म कीर्तितम्॥ ३२

दुर्लभ मनुष्ययोनि प्राप्त करके यदि स्वर्ग तथा मोक्षके लिये प्रयत्न नहीं किया जाता है तो उस जन्मको व्यर्थ कहा गया है॥ ३२॥

सर्वस्य मूलं मानुष्यं चतुर्वर्गस्य कीर्तितम्।
सम्प्राप्य धर्मतो व्यास तद्यत्नादनुपालयेत्॥ ३३

धर्ममूलं हि मानुष्यं लब्ध्वा सर्वार्थसाधकम्।
यदि लाभाय यत्नः स्यान्मूलं रक्षेत्स्वयं ततः॥ ३४

हे व्यासजी! धर्म, अर्थ, काम एवं मोक्ष—इन सम्पूर्ण पुरुषार्थोंका मूल मनुष्यजन्म कहा गया है, अतः मनुष्यजन्मको प्राप्तकर धर्मानुसार उसका यत्नपूर्वक पालन करते रहना चाहिये। धर्मके आधार तथा समस्त अर्थोंके साधनभूत इस मनुष्यजन्मको प्राप्त करके यदि [परमार्थ-] लाभके लिये यत्न होता है तभी उससे मूल अर्थात् मनुष्य जीवन सुरक्षित समझना चाहिये॥ ३३-३४॥

मानुष्येऽपि च विप्रत्वं यः प्राप्य खलु दुर्लभम्।
नाचरत्यात्मनः श्रेयः कोऽन्यस्तस्मादचेतनः ॥ ३५

द्वीपानामेव सर्वेषां कर्मभूरियमुच्यते।
इतः स्वर्गश्च मोक्षश्च प्राप्यते समुपार्जितः ॥ ३६

देशेऽस्मिन् भारते वर्षे प्राप्य मानुष्यमध्रुवम्।
न कुर्यादात्मनः श्रेयस्तेनात्मा खलु वञ्चितः ॥ ३७

कर्मभूमिरियं विप्र फलभूमिरसौ स्मृता।
इह यत्क्रियते कर्म स्वर्गे तदनुभुज्यते ॥ ३८

यावत्स्वास्थ्यं शरीरस्य तावद्धर्मं समाचरेत्।
अस्वस्थश्चोदितोऽप्यन्यैर्न किञ्चित्कर्तुमुत्सहेत् ॥ ३९

अध्रुवेण शरीरेण ध्रुवं यो न प्रसाधयेत्।
ध्रुवं तस्य परिभ्रष्टमध्रुवं नष्टमेव च ॥ ४०

आयुषः खण्डखण्डानि निपतन्ति तदग्रतः।
अहोरात्रोपदेशेन किमर्थं नावबुध्यते ॥ ४१

यदा न ज्ञायते मृत्युः कदा कस्य भविष्यति।
आकस्मिके हि मरणे धृतिं विन्दति कस्तथा ॥ ४२

परित्यज्य यदा सर्वमेकाकी यास्यति ध्रुवम्।
न ददाति कदा कस्मात्पाथेयार्थमिदं धनम् ॥ ४३

गृहीतदानपाथेयः सुखं याति यमालयम्।
अन्यथा क्लिश्यते जन्तुः पाथेयरहिते पथि ॥ ४४

येषां कालेय पुण्यानि परिपूर्णानि सर्वतः।
गच्छतां स्वर्गदेशं हि तेषां लाभः पदे पदे ॥ ४५

इति ज्ञात्वा नरः पुण्यं कुर्यात्पापं विवर्जयेत्।
पुण्येन याति देवत्वमपुण्यो नरकं व्रजेत् ॥ ४६

मनुष्यजन्ममें भी अति दुर्लभ ब्राह्मणत्वको पाकर जो अपना पारलौकिक कल्याण नहीं करता है, उससे अधिक जड़ और कौन है? सभी द्वीपोंमें यह [भारतभूमि ही] कर्मभूमि कही जाती है, यहींपर कर्म करके स्वर्ग और मोक्ष प्राप्त किया जाता है ॥ ३५-३६ ॥

इस भारतवर्षमें अस्थिर मनुष्यजन्मको प्राप्तकर जिसने अपना कल्याण नहीं किया, उसने मानो अपनी ही आत्माको ठगा है ॥ ३७ ॥

हे विप्र! यही कर्मभूमि और यही फलभूमि भी कही गयी है। यहाँ जो कर्म किया जाता है, उसीका फलभोग स्वर्गमें किया जाता है। जबतक शरीर स्वस्थ रहे, तबतक धर्माचरण करते रहना चाहिये; क्योंकि अस्वस्थ हो जानेपर दूसरोंके द्वारा प्रेरित किये जानेपर भी मनुष्य कुछ भी करनेमें समर्थ नहीं होता है ॥ ३८-३९ ॥

अस्थिर शरीरसे जो स्थिर [मोक्ष]-को सिद्ध नहीं करता, उसका स्थिर [मोक्ष] भी नष्ट हो जाता है और यह अध्रुव शरीर तो नष्ट होनेवाला ही है ॥ ४० ॥

[मनुष्यकी] आयुके एक-एक क्षण रात-दिनके रूपमें उसके आगे ही नष्ट होते जाते हैं, फिर भी उसे बोध क्यों नहीं होता है? जब यह ज्ञात नहीं है कि किसकी मृत्यु कब होगी, तब सहसा मृत्यु होनेपर कौन धैर्य धारण कर सकता है? ॥ ४१-४२ ॥

जब यह निश्चित है कि सब कुछ छोड़कर अकेले ही जाना है, तब मनुष्य जानेके समय मार्गके खर्चके लिये इस धनका दान क्यों नहीं करता? ॥ ४३ ॥

जिसने दानफलरूप पाथेयको प्राप्त कर लिया है, वह सुखपूर्वक यमलोकको जाता है, यदि ऐसा न हुआ तो प्राणी पाथेयरहित मार्गमें दुःख प्राप्त करता है। हे व्यास! सभी प्रकारसे जिनके पुण्य परिपूर्ण हैं, उनको स्वर्गमार्गमें जाते समय पग-पगपर लाभ होता है ॥ ४४-४५ ॥

ऐसा जानकर मनुष्यको पुण्य करते रहना चाहिये और पापको सर्वथा छोड़ देना चाहिये। पुण्यसे वह देवत्व प्राप्त करता है और पुण्यरहित होनेपर नरकको जाता है ॥ ४६ ॥

ये मनागपि देवेशं प्रपन्नाः शरणं शिवम्।
तेऽपि घोरं न पश्यन्ति यमं न नरकं तथा॥ ४७

किन्तु पापैर्महामोहैः किञ्चित्काले शिवाज्ञया।
वसन्ति तत्र मानुष्यास्ततो यान्ति शिवास्पदम्॥ ४८

ये पुनः सर्वभावेन प्रतिपन्ना महेश्वरम्।
न ते लिम्पन्ति पापेन पद्मपत्रमिवाम्भसा॥ ४९

जो लोग थोड़ा भी देवेश शिवकी शरणमें चले जाते हैं, वे घोर यमको और नरकको नहीं देखते हैं, किंतु महान् व्यामोह उत्पन्न करनेवाले पापोंके कारण शिवजीकी आज्ञासे मनुष्य कुछ दिनके लिये वहाँ निवास करते हैं और उसके बाद शिवलोकमें चले जाते हैं। जो लोग सर्वभावसे महेश्वर शिवके शरणागत हैं, वे जलसे कमलपत्रकी भाँति पापसे लिप्त नहीं होते हैं॥ ४७—४९॥

उक्तं शिवेति यैर्नाम तथा हर हरेति च।
न तेषां नरकाद्भीतिर्यमाद्धि मुनिसत्तम॥ ५०

हे मुनिसत्तम! जिन्होंने 'शिव-शिव' तथा 'हर-हर' इस नामका उच्चारण किया है, उन्हें नरक और यमराजसे भय नहीं होता है॥ ५०॥

परलोकस्य पाथेयं मोक्षोपायमनामयम्।
पुण्यसंघैकनिलयं शिव इत्यक्षरद्वयम्॥ ५१

शिव—ये दो अक्षर परलोकके लिये पाथेय, अनामय, मोक्ष-साधन एवं पुण्यसमूहका एकमात्र स्थान हैं॥ ५१॥

शिवनामैव संसारमहारोगैकशामकम्।
नान्यत्संसाररोगस्य शामकं दृश्यते मया॥ ५२

संसाररूपी महारोगोंका नाश करनेवाला [एकमात्र] शिव नाम ही है। मुझे संसाररूपी रोगका नाश करनेवाला अन्य कोई उपाय नहीं दिखायी देता है॥ ५२॥

ब्रह्महत्यासहस्राणि पुरा कृत्वा तु पुल्कसः।
शिवेति नाम विमलं श्रुत्वा मोक्षं गतः पुरा॥ ५३

तस्माद्विवर्धयेद्भक्तिमीश्वरे सततं बुधः।
शिवभक्त्या महाप्राज्ञ भुक्तिं मुक्तिं च विन्दति॥ ५४

प्राचीनकालमें पुल्कस हजारों ब्रह्महत्याएँ करके भी विमल शिवनामको सुनकर मुक्त हो गया। इसलिये बुद्धिमान्को चाहिये कि सदा ईश्वरके प्रति [अपनी] भक्ति बढ़ाये। हे महाप्राज्ञ! शिवभक्तिसे प्राणी भोग तथा मोक्ष प्राप्त कर लेता है॥ ५३-५४॥

इति श्रीशिवमहापुराणे पञ्चम्यामुमासंहितायां मनुविशेषकथनं नाम विंशोऽध्यायः॥ २०॥

॥ इस प्रकार श्रीशिवमहापुराणके अन्तर्गत पाँचवीं उमासंहितामें मनुविशेषकथन नामक बीसवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ २०॥

अथैकविंशोऽध्यायः

कर्मानुसार जन्मका वर्णनकर क्षत्रियके लिये संग्रामके फलका निरूपण

व्यास उवाच

ब्राह्मणत्वं हि दुष्प्राप्यं निसर्गाद् ब्राह्मणो भवेत्।
ईश्वरस्य मुखात्क्षत्रं बाहुभ्यामूरुतो विशः॥ १
पद्भ्यां शूद्रः समुत्पन्न इति तस्य मुखात् श्रुतिः।
किमु स्थितिमधःस्थानादाप्नुवन्ति ह्यतो वद॥ २

व्यासजी बोले—स्वभावतः ब्राह्मणत्वकी प्राप्ति बहुत कठिन है। ईश्वरके मुखसे ब्राह्मण, भुजाओंसे क्षत्रिय और जंघासे वैश्य उत्पन्न हुए हैं, उनके चरणोंसे शूद्र उत्पन्न हुआ है—ऐसी बात उनके मुखसे सुनी गयी है। किंतु ऊपरसे नीचे मनुष्य क्यों जाते हैं, यह मुझे बतायें॥ १-२॥

सनत्कुमार उवाच

दुष्कृतेन तु कालेय स्थानाद् भ्रश्यन्ति मानवाः।
श्रेष्ठं स्थानं समासाद्य तस्माद्रक्षेत पण्डितः॥ ३
यस्तु विप्रत्वमुत्सृज्य क्षत्रयोन्यां प्रसूयते।
ब्राह्मण्यात्स परिभ्रष्टः क्षत्रियत्वं निषेवते॥ ४

सनत्कुमार बोले—हे व्यास! मानव बुरा आचरण करनेसे भ्रष्ट हो जाते हैं, अतः विद्वान्को चाहिये कि श्रेष्ठ स्थान प्राप्तकर उसकी रक्षा करे। जो विप्रत्वका परित्यागकर क्षत्रियामें पुत्रोत्पत्ति करता है, वह ब्राह्मणत्वसे भ्रष्ट होकर क्षत्रियत्वका सेवन करता है॥ ३-४॥

अधर्मसेवनान्मूढस्तथैव परिवर्तते।
जन्मान्तरसहस्राणि तमस्याविशते यतः॥ ५

तस्मात्प्राप्य परं स्थानं प्रमाद्येन्न तु नाशयेत्।
स्वस्थानं सर्वदा रक्षेत्प्राप्यापि विपदो नरः॥ ६

ब्राह्मणत्वं शुभं प्राप्य ब्राह्मण्यं योऽवमन्यते।
भोज्याभोज्यं न जानाति स पुमान् क्षत्रियो भवेत्॥ ७

कर्मणा येन मेधावी शूद्रो वैश्यो हि जायते।
तत्ते वक्ष्यामि निखिलं येन वर्णोत्तमो भवेत्॥ ८

शूद्रकर्म यथोद्दिष्टं शूद्रो भूत्वा समाचरेत्।
यथावत्परिचर्यां तु त्रिषु वर्णेषु नित्यदा॥ ९

कुरुते कामयानस्तु शूद्रोऽपि वैश्यतां व्रजेत्।
यो योजयेद्धनैर्वैश्यो जुह्वानश्च यथाविधि॥ १०

अग्निहोत्रमुपादाय शेषान्नकृतभोजनः।
स वैश्यः क्षत्रियकुले जायते नात्र संशयः॥ ११

क्षत्रियो जायते यज्ञैः संस्कृतैराप्तदक्षिणैः।
अधीते स्वर्गमन्विच्छंस्त्रेताग्निशरणं सदा॥ १२

आर्द्रहस्तपदो नित्यं क्षितिं धर्मेण पालयेत्।
ऋतुकालाभिगामी च स्वभार्यां धर्मतत्परः॥ १३

सर्वातिथ्यं त्रिवर्गस्य भूतेभ्यो दीयतामिति।
गोब्राह्मणात्मनोऽर्थं हि संग्रामाभिहतो भवेत्॥ १४

तेनाग्निमन्त्रपूतात्मा क्षत्रियो ब्राह्मणो भवेत्।
विधितो ब्राह्मणो भूत्वा याजकस्तु प्रजायते॥ १५

स्वकर्मनिरतो नित्यं सत्यवादी जितेन्द्रियः।
प्राप्यते विपुलः स्वर्गो देवानामपि वल्लभः॥ १६

मूर्ख प्राणी अधर्मका आचरण करनेसे हजारों जन्मोंतक जन्म-मरणके चक्रमें घूमता रहता है और उसी अधर्मके कारण अन्धकारमें पड़ा रहता है, अतः मनुष्य श्रेष्ठ स्थानको प्राप्तकर प्रमाद न करे और उसे विनष्ट न करे, विपत्तियोंको सहकर भी सर्वदा अपने स्थानकी रक्षा करे॥ ५-६॥

जो मनुष्य श्रेष्ठ ब्राह्मणका जन्म प्राप्त करके भी ब्राह्मणत्वका तिरस्कार करता है एवं भक्ष्य-अभक्ष्य (गम्यागम्य, कार्याकार्यादि)-का विचार नहीं करता है, वह पुनः क्षत्रिय हो जाता है॥ ७॥

बुद्धिसम्पन्न शूद्र जिस कर्मसे वैश्य हो जाता है और जिस कर्मसे वह क्रमशः उत्तम वर्णमें जन्म प्राप्त करता है, मैं वह सब आपसे कहता हूँ॥ ८॥

शूद्रकुलमें जन्म ग्रहणकर शास्त्रमें जैसा उसका कर्म बताया गया है, उसे करना चाहिये। जो [वर्णाभ्युदयकी] इच्छा रखता हुआ तीनों वर्णोंकी सेवारूप अपने कर्मका नित्य आचरण करता है, वह शूद्र भी वैश्यकुलमें जन्म प्राप्त कर लेता है। वैश्यकुलमें उत्पन्न जो व्यक्ति अपने धनोंसे विधिपूर्वक हवन करता और अग्निहोत्र सम्पन्नकर उससे बचे हुए अन्नका भोजन करता है, वह क्षत्रियकुलमें जन्म प्राप्त करता है, इसमें सन्देह नहीं है॥ ९—११॥

जो क्षत्रिय विपुल दक्षिणावाले संस्कारयुक्त यज्ञोंके द्वारा यजन करता है, स्वर्गकी कामना करता हुआ स्वाध्याय तथा [गार्हपत्यादि] तीनों अग्नियोंकी शुश्रूषा करता है, हाथ-पैर धोकर शुद्ध हो [भोजनादि क्रिया सम्पादित करता है तथा] धर्मपूर्वक नित्य पृथ्वीका पालन करता है, धर्मपरायण होकर ऋतुकालमें ही अपनी भार्याके साथ समागम करता है, [धर्मादि] तीनों वर्गोंका सेवन तथा अभ्यागतमात्रका आतिथ्य-सत्कार करता है, पंचभूत बलि प्रदान करता है और गौ, ब्राह्मण तथा अपने [राष्ट्रके] हितके लिये संग्राममें प्राणोंका त्याग कर देता है, उस कर्मके द्वारा अग्नि एवं मन्त्रसे पवित्र वह क्षत्रिय ब्राह्मणकुलमें जन्म ग्रहण करता है, इस प्रकार विधानपूर्वक ब्राह्मण होकर वह याजक हो जाता है। सदा अपने कर्मोंमें संलग्न, सत्यवादी एवं जितेन्द्रिय वह ब्राह्मण देवताओंके लिये भी प्रिय होकर स्वर्गको प्राप्त कर लेता है॥ १२—१६॥

ब्राह्मणत्वं हि दुष्प्राप्यं कृच्छ्रेण साध्यते नरैः।
ब्राह्मण्यात्सकलं प्राप्य मोक्षं चापि मुनीश्वर॥ १७

तस्मात्सर्वप्रयत्नेन ब्राह्मणो धर्मतत्परः।
साधनं सर्ववर्गस्य रक्षेद् ब्राह्मण्यमुत्तमम्॥ १८

हे मुनीश्वर! ब्राह्मणत्व अतिशय दुर्लभ है; मनुष्योंके द्वारा यह बहुत कष्टसे प्राप्त किया जाता है। ब्राह्मणत्वसे सब कुछ प्राप्त होता है, यहाँतक कि मनुष्य मोक्षतक प्राप्त कर लेता है। इसलिये ब्राह्मणको धर्मपरायण होकर पूर्ण प्रयत्नके साथ सभी पुरुषार्थोंके साधनस्वरूप उत्तम ब्राह्मणत्वकी रक्षा करनी चाहिये॥ १७-१८॥

व्यास उवाच

संग्रामस्येह माहात्म्यं त्वयोक्तं मुनिसत्तम।
एतदिच्छाम्यहं श्रोतुं ब्रूहि त्वं वदतां वर॥ १९

व्यासजी बोले—हे मुनिश्रेष्ठ! आपने [इस लोकमें क्षत्रियके लिये] युद्धका बहुत माहात्म्य कहा है, मैं इसे [विस्तारसे] सुनना चाहता हूँ। हे वक्ताओंमें श्रेष्ठ! आप उसका वर्णन कीजिये॥ १९॥

सनत्कुमार उवाच

अग्निष्टोमादिभिर्यज्ञैरिष्ट्वा विपुलदक्षिणैः।
न तत्फलमवाप्नोति संग्रामे यदवाप्नुयात्॥ २०

इति तत्त्वविदः प्राहुर्यज्ञकर्मविदः सदा।
तस्मात्तत्ते प्रवक्ष्यामि यत्फलं शस्त्रजीविनाम्॥ २१

सनत्कुमार बोले—क्षत्रिय बहुत दक्षिणावाले अग्निष्टोम आदि यज्ञोंका अनुष्ठान करके भी उस फलको प्राप्त नहीं करता है, जो उसे युद्धमें मिलता है। यज्ञकर्मको जाननेवाले तत्त्वज्ञानियोंने ऐसा कहा है। अतः शस्त्रजीवियोंको जो फल प्राप्त होता है, उसका वर्णन मैं आपसे करता हूँ॥ २०-२१॥

धर्मलाभोऽर्थलाभश्च यशोलाभस्तथैव च।
यः शूरो वाञ्छते युद्धं विमृदन् परवाहिनीम्॥ २२

तस्य धर्मार्थकामाश्च यज्ञश्चैव सदक्षिणः।
परं ह्यभिमुखं दत्त्वा तद्यानं योऽधिरोहति॥ २३

जो शूरवीर क्षत्रिय शत्रुकी सेनाको मसल डालता हुआ [निरन्तर धर्मपूर्वक] युद्धकी कामना करता है, उसे धर्म, अर्थ और कीर्तिकी प्राप्ति होती है। जो अपने शत्रुके सम्मुख उपस्थित होकर संग्राम करता है और उसकी गतिका अतिक्रमण करता है, उसे धर्म, अर्थ, काम और दक्षिणासहित किये गये यज्ञका फल प्राप्त होता है॥ २२-२३॥

विष्णुलोके स जायेत यश्च युद्धेऽपराजितः।
अश्वमेधानवाप्नोति चतुरो न मृतः स चेत्॥ २४

यस्तु शस्त्रमनुत्सृज्य म्रियते वाहिनीमुखे।
सम्मुखो वर्तते शूरः स स्वर्गान्न निवर्तते॥ २५

जो क्षत्रिय युद्धमें अपराजित होता है, वह विष्णुलोकको जाता है। यदि वह संग्राममें मृत्युको प्राप्त नहीं हुआ, तो चार अश्वमेध यज्ञोंका फल प्राप्त करता है। जो शस्त्र धारण करके रणभूमिमें और सेनाके अभिमुख हो युद्ध करते हुए प्राणत्याग कर देता है, वह वीर स्वर्गसे नहीं लौटता है॥ २४-२५॥

राजा वा राजपुत्रो वा सेनापतिरथापि वा।
हतः क्षात्रेण यः शूरस्तस्य लोकोऽक्षयो भवेत्॥ २६

यावन्ति तस्य रोमाणि भिद्यन्तेऽस्त्रैर्महाहवे।
तावतो लभते लोकान् सर्वकामदुघाऽक्षयान्॥ २७

वीरासनं वीरशय्या वीरस्थानस्थितिः स्थिरा।
सर्वदा भवति व्यास इह लोके परत्र च॥ २८

राजा, राजपुत्र अथवा सेनापति जो भी शूर क्षत्रिय-धर्मसे प्राणत्याग कर देता है, उसे अक्षय लोककी प्राप्ति होती है। महासंग्राममें अस्त्रोंसे उसके जितने रोमोंका भेदन होता है, वह सभी कामनाओंको पूर्ण करनेवाले उतने ही अक्षय लोकोंको प्राप्त करता है। हे व्यास! वीरासन, वीरशय्या और वीरस्थानकी स्थिति उसके लिये इस लोकमें और परलोकमें सर्वथा स्थिर रहती है॥ २६—२८॥

गवार्थे ब्राह्मणार्थे च स्थानस्वाम्यर्थमेव च।
ये मृतास्ते सुखं यान्ति यथा सुकृतिनस्तथा॥ २९

यः कश्चिद् ब्राह्मणं हत्वा पश्चात्प्राणान् परित्यजेत्।
तत्रासौ स्वपतेर्युद्धे स स्वर्गान्न निवर्तते॥ ३०

गौ, ब्राह्मण, राष्ट्र एवं स्वामीके लिये जो प्राणोंका त्याग करते हैं, वे पुण्यात्माओंकी भाँति [परलोक जाकर] सुख प्राप्त करते हैं। जो अपने राजाके लिये युद्धमें [धर्मपूर्वक लड़ता हुआ] ब्राह्मणको भी मारकर बादमें स्वयं प्राणत्याग करता है, वह स्वर्गसे नहीं लौटता है॥ २९-३०॥

क्रव्यादैर्दन्तिभिश्चैव हतस्य गतिरुत्तमा।
द्विजगोस्वामिनामर्थे भवेद्विपुलदाक्षया॥ ३१

शक्नोत्विह समर्थश्च यष्टुं क्रतुशतैरपि।
आत्मदेहपरित्यागः कर्तुं युधि सुदुष्करः॥ ३२

संग्राममें मांसका भक्षण करनेवाले जन्तुओं एवं हाथियोंके द्वारा मारे गये व्यक्तिकी भी उत्तम गति होती है और ब्राह्मण, गौ तथा अपने स्वामीके लिये प्राणका परित्याग करनेवालेको विपुल पुण्यदायिनी अक्षय गतिकी प्राप्ति होती है। व्यक्ति सैकड़ों यज्ञोंका अनुष्ठान करनेमें समर्थ हो सकता है, किंतु युद्धमें अपने शरीरका परित्याग करना बहुत ही कठिन है॥ ३१-३२॥

युद्धं पुण्यतमं स्वर्ग्यं रूपज्ञं सर्वतोमुखम्।
सर्वेषामेव वर्णानां क्षत्रियस्य विशेषतः॥ ३३

भृशं चैव प्रवक्ष्यामि युद्धधर्मं सनातनम्।
यादृशाय प्रहर्तव्यं यादृशं परिवर्जयेत्॥ ३४

संग्राम सभी वर्णोंके लिये, विशेषकर क्षत्रियके लिये सब प्रकारसे पुण्यप्रद, स्वर्गप्रद तथा स्वरूप प्रदान करनेवाला है। अब मैं सनातन युद्धधर्मको विस्तारके साथ कहता हूँ। जिस तरहके व्यक्तिपर प्रहार करना चाहिये और जिसे छोड़ देना चाहिये॥ ३३-३४॥

आततायिनमायान्तमपि वेदान्तङ्गं द्विजम्।
जिघांसन्तं जिघांसेत्तु न तेन ब्रह्महा भवेत्॥ ३५

मारनेके लिये आते हुए वेदान्तपारंगत आततायी ब्राह्मणको भी मार देना चाहिये, इससे व्यक्ति ब्रह्महत्यारा नहीं होता है॥ ३५॥

हन्तव्योऽपि न हन्तव्यः पानीयं यश्च याचते।
रणे हत्वातुरान् व्यास स नरो ब्रह्महा भवेत्॥ ३६

हे व्यास! मारनेके योग्य मनुष्य भी यदि [प्याससे पीड़ित होकर] जल माँगे, तो उसका वध नहीं करना चाहिये; संग्राममें रोगियों (जलादिकी कामनासे व्याकुल)-को मारनेसे वह मनुष्य ब्रह्मघाती हो जाता है॥ ३६॥

व्याधितं दुर्बलं बालं स्त्र्यनाथौ कृपणं ध्रुवम्।
धनुर्भग्नं छिन्नगुणं हत्वा वै ब्रह्महा भवेत्॥ ३७

रोगग्रस्त, दुर्बल, बालक, स्त्री, अनाथ, कृपण, टूटे हुए धनुषवाले, टूटी हुई धनुषकी डोरीवाले व्यक्तिको [युद्धमें] मारनेसे निश्चितरूपसे ब्रह्महत्याका पाप लगता है॥ ३७॥

एवं विचार्य सद्धीमान् भवेत्प्रीत्या रणप्रियः।
स जन्मनः फलं प्राप्य परत्रेह प्रमोदते॥ ३८

इस प्रकार विचार करके जो बुद्धिमान् व्यक्ति उत्साहसे युद्ध करता है, वह [इस] जन्मका फल प्राप्त करके इस लोक तथा परलोकमें आनन्दित होता है॥ ३८॥

इति श्रीशिवमहापुराणे पञ्चम्यामुमासंहितायां रणफलवर्णनं नामैकविंशोऽध्यायः॥ २१॥

॥ इस प्रकार श्रीशिवमहापुराणके अन्तर्गत पाँचवीं उमासंहितामें रणफलवर्णन नामक इक्कीसवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ २१॥

अथ द्वाविंशोऽध्यायः

देहकी उत्पत्तिका वर्णन

व्यास उवाच

विधिं तात वदेदानीं जीवजन्म विधानतः।
गर्भे स्थितिं च तस्यापि वैराग्यार्थं मुनीश्वर॥ १

व्यासजी बोले—हे मुनीश्वर! हे तात! रागनिवृत्तिके लिये इस समय विधिपूर्वक जीवके जन्म तथा गर्भमें उसकी स्थितिका वर्णन कीजिये॥ १॥

सनत्कुमार उवाच

शृणु व्यास समासेन शास्त्रसारमशेषतः।
वदिष्यामि सुवैराग्यं मुमुक्षोर्भवबन्धकृत्॥ २

सनत्कुमार बोले—हे व्यास! अब मैं संक्षेपमें सम्पूर्ण शास्त्रोंके साररूप उत्तम वैराग्यका वर्णन करूँगा, जो मुमुक्षुजनके संसाररूप बन्धनको काटनेवाला है॥ २॥

पाकपात्रस्य मध्ये तु पृथगन्नं पृथग्जलम्।
अग्नेरूर्ध्वं जलं स्थाप्यं तदन्नं च जलोपरि॥ ३
जलस्याधः स चाग्निर्हि स्थितोऽग्निं धमते शनैः।
वायुना धम्यमानोऽग्निरत्युष्णं कुरुते जलम्॥ ४

पाकपात्रके मध्य स्थित अन्न और जल अलग-अलग रहते हैं। अग्निके ऊपर जल रहता है तथा जलके ऊपर अन्न रखा जाता है। जलके नीचे स्थित अग्निको वायु धीरे-धीरे प्रज्वलित करता है, वायुसे प्रेरित हुई अग्नि जलको उष्ण करती है॥ ३-४॥

तदन्नमुष्णातोयेन समन्तात्पच्यते पुनः।
द्विधा भवति तत्पक्वं पृथक्किट्टं पृथग्रसः॥ ५
मलैर्द्वादशभिः किट्टं भिन्नं देहाद्बहिर्भवेत्।
रसस्तु देहे सरति स पुष्टस्तेन जायते॥ ६
कर्णाक्षिनासिका जिह्वा दन्ताः शिश्नो गुदं नखाः।
मलाश्रयः कफः स्वेदो विण्मूत्रं द्वादश स्मृताः॥ ७

गर्म हुए जलसे उस अन्नका भलीभाँति परिपाक होता है। पका हुआ अन्न खा लेनेपर दो भागोंमें विभक्त हो जाता है, किट्ट अलग और रस अलग हो जाता है। वह किट्ट बारह मलोंके रूपमें बँटकर शरीरसे बाहर निकलता है। रस देहमें फैलता है, वह देह उससे पुष्ट होता है। कान, नेत्र, नासिका, जिह्वा, दाँत, लिंग, गुदा, नख—ये मलाश्रय हैं तथा कफ, पसीना, विष्ठा और मूत्र—ये मल हैं, सभी मिलाकर बारह कहे गये हैं॥ ५—७॥

हृत्पद्मे प्रतिबद्धाश्च सर्वनाड्यः समन्ततः।
ज्ञेया रसप्रवाहिन्यस्तत्प्रकारं ब्रुवे मुने॥ ८
तासां मुखेषु तं सूक्ष्मं प्राणः स्थापयते रसम्।
रसेन तेन नाडीस्ताः प्राणं पूरयते पुनः॥ ९

हृदयकमलमें चारों ओरसे समस्त नाड़ियाँ बँधी हुई हैं, उन्हें रसवाहिनियाँ जानना चाहिये। हे मुने! मैं उनकी [संचरण] विधि कहता हूँ। प्राणवायु उन नाड़ियोंके मुखोंमें उस सूक्ष्म रसको स्थापित करता है, इसके बाद प्राण रससे उन नाड़ियोंको सन्तृप्त करता है॥ ८-९॥

पुनः प्रयान्ति सम्पूर्णाः ताश्च देहं समन्ततः।
ततः स नाडीमध्यस्थः शरीरेणात्मना रसः॥ १०
पच्यते पच्यमानाच्च भवेत्पाकद्वयं पुनः।
त्वक् तया वेष्ट्यते पूर्वं रुधिरं च प्रजायते॥ ११
रक्ताल्लोमानि मांसं च केशाः स्नायुश्च मांसतः।
स्नायुतश्च तथास्थीनि नखा मज्जास्थिसम्भवाः॥ १२
मज्जाकारणवैकल्यं शुक्रं हि प्रसवात्मकम्।
इति द्वादशधान्नस्य परिणामः प्रकीर्तितः॥ १३

प्राणवायुसे समन्वित हो सभी नाड़ियाँ उस रसको सारे शरीरमें फैला देती हैं। इस प्रकार नाड़ियोंके बीचमें प्रवाहित हुआ वह रस अपने शरीरद्वारा पकाया जाता है, इसके पाक हो जानेपर पुनः वह दो भागोंमें बँट जाता है। सबसे पहले उससे त्वचा बनती है, जो शरीरको वेष्टित करती है, बादमें रक्त बनता है। रक्तसे लोम और मांस बनते हैं, मांससे केश और स्नायु बनते हैं, स्नायुसे अस्थियाँ और अस्थियोंसे नख एवं मज्जा बनते हैं। मज्जासे प्रसवका कारणस्वरूप शुक्र बनता है, अन्नका यह बारह प्रकारका परिणाम कहा गया है॥ १०—१३॥

शुक्रोऽन्नाज्जायते शुक्राद्दिव्यदेहस्य सम्भवः।
ऋतुकाले यदा शुक्रं निर्दोषं योनिसंस्थितम्॥ १४

तदा तद् वायुसंस्पृष्टं स्त्रीरक्तेनैकतां व्रजेत्।
विसर्गकाले शुक्रस्य जीवः कारणसंयुतः॥ १५

संवृतः प्रविशेद्योनिं कर्मभिः स्वैर्नियोजितः।
तच्छुक्ररक्तमेकस्थमेकाहात्कललं भवेत्॥ १६

पञ्चरात्रेण कललं बुद्बुदाकारतां व्रजेत्।
बुद्बुदः सप्तरात्रेण मांसपेशी भवेत् पुनः॥ १७

अन्नसे शुक्र बनता है और शुक्रसे दिव्य देहकी उत्पत्ति होती है। जब ऋतुकालमें निर्दोष शुक्र योनिमें स्थित होता है, तब वायुके द्वारा वह स्त्रीके रक्तमें मिलकर एक हो जाता है। जब शुक्र शरीरसे स्खलित होकर स्त्रीकी योनिमें प्रविष्ट होता है, तब उसी समय कारणदेहसे संयुक्त होकर जीव अपने कर्मवश निगूढरूपसे स्त्रीयोनिमें प्रविष्ट हो जाता है। वह शुक्र और रक्त मिलकर एक दिनमें कलल बनता है। वह कलल पाँच रातमें बुद्बुदके आकारका हो जाता है और बुद्बुद सात रातमें मांसपेशी बन जाता है॥ १४—१७॥

ग्रीवा शिरश्च स्कन्धौ च पृष्ठवंशस्तथोदरम्।
पाणिपादं तथा पार्श्वे कटिर्गात्रं तथैव च॥ १८

द्विमासाभ्यन्तरेणैव क्रमशः सम्भवेदिह।
त्रिभिर्मासैः प्रजायन्ते सर्वे ह्यङ्कुरसन्धयः॥ १९

इसके बाद ग्रीवा, सिर, दोनों कन्धे, पीठ (तथा मेरुदण्ड), पेट, हाथ, पैर, दोनों पार्श्व, कमर और गात्र क्रमशः दो महीनेके भीतर बन जाते हैं। तीन महीनेमें सभी अंकुरसन्धियाँ [जोड़] बन जाती हैं॥ १८-१९॥

मासैश्चतुर्भिरङ्गुल्यः प्रजायन्ते यथाक्रमम्।
मुखं नासा च कर्णौ च मासैः पञ्चभिरेव च॥ २०

दन्तपंक्तिस्तथा गुह्यं जायन्ते च नखाः पुनः।
कर्णयोस्तु भवेच्छिद्रं षण्मासाभ्यन्तरेण तु॥ २१

चार महीनेमें क्रमानुसार अँगुलियाँ बन जाती हैं। पाँच महीनेमें मुख, नासिका तथा कान उत्पन्न हो जाते हैं, तत्पश्चात् दाँतोंकी पंक्ति, गुह्यभाग और नख प्रकट हो जाते हैं। छः महीनेके भीतर कानोंका छिद्र प्रकट हो जाता है॥ २०-२१॥

पायुर्मेहमुपस्थं च नाभिश्चाभ्युपजायते।
सन्धयो ये च गात्रेषु मासैर्जायन्ति सप्तभिः॥ २२

सात महीनेमें गुदा, मेह-उपस्थेन्द्रिय, नाभि और अंगोंमें जो सन्धियाँ हैं—ये सब उत्पन्न हो जाते हैं॥ २२॥

अङ्गप्रत्यङ्गसम्पूर्णः परिपक्वः स तिष्ठति।
उदरे मातुराच्छन्नो जरायौ मुनिसत्तम॥ २३

हे मुनिश्रेष्ठ! इस प्रकार अंग-प्रत्यंगसे पूर्ण वह जीव परिपक्व होकर जरायुसे लिपटा हुआ माताके उदरमें स्थित रहता है॥ २३॥

मातुराहारचौर्येण षड्विधेन रसेन तु।
नाभिनालनिबद्धेन वर्धते स दिने दिने॥ २४

नाभिनालमें बँधा हुआ वह [जीव] माताके आहारसे प्राप्त छः प्रकारके रसोंसे प्रतिदिन बढ़ता रहता है॥ २४॥

ततः स्मृतिं लभेज्जीवः सम्पूर्णेऽस्मिन् शरीरके।
सुखं दुःखं विजानाति निद्रास्वप्नं पुराकृतम्॥ २५

तत्पश्चात् शरीरके पूर्ण हो जानेपर उस जीवको स्मृति प्राप्त होती है। वह अपने पूर्वजन्मके किये गये कर्मों, सुख, दुःख, निद्रा एवं स्वप्नको जानने लगता है॥ २५॥

मृतश्चाहं पुनर्जातो जातश्चाहं पुनर्मृतः।
नानायोनिसहस्राणि मया दृष्टानि जायता॥ २६

अधुना जातमात्रोऽहं प्राप्तसंस्कार एव च।
श्रेयोऽमुना करिष्यामि येन गर्भे न सम्भवः॥ २७

गर्भस्थश्चिन्तयन्नेवमहं गर्भाद्विनिःसृतः।
अन्वेष्यामि शिवज्ञानं संसारविनिवर्तकम्॥ २८

मैं मरकर पुनः पैदा हुआ और पैदा होकर पुनः मरा, इस प्रकारसे जन्म लेते हुए मैंने हजारों योनियाँ देखीं। अब मैं उत्पन्न होते ही संस्कारयुक्त होकर इस शरीरसे उत्तम कर्म करूँगा, जिससे पुनः गर्भमें न आना पड़े। गर्भमें स्थित वह जीव यही सोचता रहता है कि मैं गर्भसे निकलते ही संसारसे मुक्ति प्रदान करनेवाले शिवज्ञानका अन्वेषण करूँगा॥ २६—२८॥

एवं स गर्भदुःखेन महता परिपीडितः।
जीवः कर्मवशादास्ते मोक्षोपायं विचिन्तयन्॥ २९
यथा गिरिवराक्रान्तः कश्चिद्दुःखेन तिष्ठति।
तथा जरायुणा देही दुःखं तिष्ठति वेष्टितः॥ ३०

पतितः सागरे यद्वद्दुःखमास्ते समाकुलः।
गर्भोदकेन सिक्ताङ्गः सर्वदाकुलितस्तदा॥ ३१

लोहकुम्भे यथा न्यस्तः पच्यते कश्चिदग्निना।
गर्भकुम्भे तथा क्षिप्तः पच्यते जठराग्निना॥ ३२

सूचीभिरग्निवर्णाभिर्निर्भिन्नस्य निरन्तरम्।
यद्दुःखं जायते तस्य तत्र संस्थस्य चाधिकम्॥ ३३

गर्भावासात्परं दुःखं कष्टं नैवास्ति कुत्रचित्।
देहिनां दुःखबहुलं सुघोरमतिसङ्कटम्॥ ३४

इत्येतत्सुमहद्दुःखं पापिनां परिकीर्तितम्।
केवलं धर्मबुद्धीनां सप्तमासैर्भवः सदा॥ ३५

गर्भात्सुदुर्लभं दुःखं योनियन्त्रनिपीडनात्।
भवेत्पापात्मनां व्यास न हि धर्मयुतात्मनाम्॥ ३६

इक्षुवत्पीड्यमानस्य यन्त्रेणैव समन्ततः।
शिरसा ताड्यमानस्य पापमुद्गरकेण च॥ ३७

यन्त्रेण पीडिता यद्वन्निःसाराः स्युस्तिलाः क्षणात्।
तथा शरीरं निःसारं योनियन्त्रनिपीडनात्॥ ३८

अस्थिपादतुलास्तम्भं स्नायुबन्धेन यन्त्रितम्।
रक्तमांसमृदालिप्तं विण्मूत्रद्रव्यभाजनम्॥ ३९
केशरोमनखच्छन्नं रोगायतनमातुरम्।
वदनैकमहाद्वारं गवाक्षाष्टकभूषितम्॥ ४०
ओष्ठद्वयकपाटं च तथा जिह्वार्गलान्वितम्।
भोगतृष्णातुरं मूढं रागद्वेषवशानुगम्॥ ४१

इस प्रकार कर्मवश महान् गर्भक्लेशसे सन्तप्त हुआ वह जीव मोक्षका उपाय सोचता हुआ वहाँ रहता है। जिस प्रकार बहुत बड़े पहाड़से दबा हुआ कोई मनुष्य बड़े कष्टसे स्थित रहता है, उसी प्रकार जरायुसे लिपटा हुआ जीव भी बड़े दुःखसे स्थित रहता है॥ २९-३०॥

जैसे सागरमें गिरा हुआ मनुष्य व्याकुल होता है, उसी प्रकार गर्भजलसे सिक्त अंगोंवाला जीव भी सर्वदा व्याकुल रहता है॥ ३१॥

जिस प्रकार लोहेकी बटलोयीमें रखा गया कोई पदार्थ अग्निसे पकाया जाता है, उसी प्रकार गर्भकुम्भमें स्थित जीव भी जठराग्निसे पकाया जाता है॥ ३२॥

आगमें लाल की गयी सुइयोंसे निरन्तर बिंधे हुए प्राणीको जो कष्ट होता है, उससे भी अधिक कष्ट वहाँपर [गर्भाशयमें] स्थित उस जीवको सदा प्राप्त होता रहता है। शरीरधारियोंके लिये गर्भवाससे बड़ा उद्विग्न करनेवाला कष्ट अन्यत्र कहीं नहीं होता है, यह दुःख महाघोर तथा बहुत संकट देनेवाला होता है॥ ३३-३४॥

मैंने यहाँ केवल पापियोंके अत्यधिक दुःखका वर्णन किया, धर्मात्माओंका जन्म तो सात ही मासमें हो जाता है॥ ३५॥

हे व्यास! गर्भसे निकलते समय योनियन्त्रसे निपीडनके कारण महान् दुःख केवल पापियोंको होता है, धर्मात्माओंको नहीं होता है। जिस प्रकार ईखको कोल्हूमें डालकर उसे चारों ओरसे पेरा जानेपर उसका निपीडन होता है, उसी प्रकार पापरूपी मुद्गरसे सिरपर प्रहार होनेसे उन पापियोंको दुःख होता है॥ ३६-३७॥

जिस प्रकार कोल्हूमें पेरे जानेपर तिल क्षणभरमें निःसार हो जाते हैं, उसी प्रकार [जन्मकालमें] योनियन्त्रसे निपीडित होनेके कारण शरीर भी अशक्त हो जाता है॥ ३८॥

इसमें इस शरीर [रूपी भवन]-को स्नायुबन्धनसे यन्त्रित अस्थिपाद-रूप तुलास्तम्भके समान रक्तमांसरूपी मिट्टीसे लिप्त विष्ठा-मूत्ररूपी द्रव्यका पात्र, केश-रोम-नखोंसे ढका हुआ, रोगोंका घर, आतुरस्वरूप, मुखरूपी महाद्वारवाला, आठ छिद्ररूपी गवाक्षोंसे सुशोभित, दो ओठरूपी कपाटवाला, जीभरूपी अर्गलासे युक्त, भोग-तृष्णासे आतुर, अज्ञानमय राग-द्वेषके वशीभूत रहनेवाला,

संवर्तिताङ्गप्रत्यङ्गं जरायुपरिवेष्टितम्।
सङ्कटेनाविविक्तेन योनिमार्गेण निर्गतम्॥ ४२
विण्मूत्ररक्तसिक्ताङ्गं विकोशिकसमुद्भवम्।
अस्थिपञ्जरविख्यातमस्मिन् ज्ञेयं कलेवरम्॥ ४३

अंग-प्रत्यंगोंसे करवट लेता हुआ, जरायुसे परिवेष्टित, बड़े संकीर्ण योनिमार्गसे निर्गत, विष्ठा-मूत्र-रक्तसे सिक्त अंगोंवाला, विकोशिकासे उत्पन्न और अस्थि-पंजरसे युक्त जानना चाहिये॥ ३९—४३॥

शतत्रयं षष्ट्यधिकं पञ्च पेशीशतानि च।
सार्धाभिस्तिसृभिश्छन्नं समन्ताद्रोमकोटिभिः॥ ४४
शरीरं स्थूलसूक्ष्माभिर्दृश्यादृश्या हि ताः स्मृताः।
एतावतीभिर्नाडीभिः कोटिभिस्तत्समन्ततः॥ ४५
अस्वेदमधुभिर्याभिरन्तस्थः स्त्रवते बहिः।
द्वात्रिंशद्दशनाः प्रोक्ता विंशतिश्च नखाः स्मृताः॥ ४६

इसमें तीन सौ पैंसठ पेशियाँ हैं और यह सभी ओरसे साढ़े तीन करोड़ रोमोंसे ढँका हुआ है। यह शरीर इतने ही करोड़ सूक्ष्म तथा स्थूल नाड़ियोंसे चारों ओरसे व्याप्त है, वे नाड़ियाँ दृश्य तथा अदृश्य कही गयी हैं। यह शरीर स्वेद एवं मधुविहीन नाड़ियोंसे रहित होकर भी [स्वेदादिके रूपमें] बाहर स्त्रवित होता रहता है। इस शरीरमें बत्तीस दाँत बताये गये हैं और बीस नख कहे गये हैं॥ ४४—४६॥

पित्तस्य कुडवं ज्ञेयं कफस्याथाढकं स्मृतम्।
वसायाश्च पलं विंशत्तदर्धं कपिलस्य च॥ ४७
पञ्चार्धं तु तुला ज्ञेया पलानि दश मेदसः।
पलत्रयं महारक्तं मज्जायाश्च चतुर्गुणम्॥ ४८
शुक्रोऽर्धं कुडवं ज्ञेयं तद्बीजं देहिनां बलम्।
मांसस्य चैकपिंडेन पलसाहस्त्रमुच्यते॥ ४९
रक्तं पलशतं ज्ञेयं विण्मूत्रं यत्प्रमाणतः।
अञ्जलयश्च चत्वारश्चत्वारो मुनिसत्तम॥ ५०

इसमें पित्तका भाग एक कुडव (पावभर) जानना चाहिये, कफका भाग एक आढ़क (चार सेर) कहा गया है। चरबीका भाग बीस पल और कपिलका भाग उसका आधा है। साढ़े पाँच पल तुला और मेदाका भाग दस पल जानना चाहिये। [इस शरीरमें] तीन पल महारक्त होता है और मज्जा इसकी चौगुनी होती है। इसमें आधा कुडव वीर्य समझना चाहिये, वही शरीरधारियोंका उत्पत्ति-बीज तथा बल है। मांसका परिमाण हजार पल कहा जाता है। हे मुनिश्रेष्ठ! रक्तको सौ पल परिमाणका जानना चाहिये और चार-चार अंजलि विष्ठा तथा मूत्रका परिमाण होता है॥ ४७—५०॥

इति देहगृहं ह्येतन्नित्यस्यानित्यमात्मनः।
अविशुद्धं विशुद्धस्य कर्मबन्धाद्विनिर्मितम्॥ ५१

इस प्रकार विशुद्ध नित्य आत्माका यह अनित्य एवं अपवित्र शरीररूपी घर कर्मबन्धनसे विनिर्मित है॥ ५१॥

इति श्रीशिवमहापुराणे पञ्चम्यामुमासंहितायां देहोत्पत्तिवर्णनं नाम द्वाविंशोऽध्यायः॥ २२॥

॥ इस प्रकार श्रीशिवमहापुराणके अन्तर्गत पाँचवीं उमासंहितामें देहोत्पत्तिवर्णन नामक बाईसवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ २२॥

अथ त्रयोविंशोऽध्यायः

शरीरकी अपवित्रता तथा उसके बालादि अवस्थाओंमें प्राप्त होनेवाले दुःखोंका वर्णन

सनत्कुमार उवाच

शृणु व्यास महाबुद्धे देहस्याशुचितां मुने।
महत्त्वं च स्वभावस्य समासात्कथयाम्यहम्॥ १
शुक्रशोणितसंयोगाद्देहः संजायते यतः।
नित्यं विण्मूत्रसम्पूर्णस्तेनायमशुचिः स्मृतः॥ २

सनत्कुमार बोले—हे मुने! हे महाबुद्धे! हे व्यासजी! सुनिये, अब मैं शरीरकी अपवित्रता तथा उसके आत्मभावके महत्त्वका संक्षिप्त रूपसे वर्णन कर रहा हूँ। चूँकि देह शुक्र और शोणितके मेलसे बनता है और यह विष्ठा तथा मूत्रसे सदा भरा रहता है, इसलिये इसे अपवित्र कहा गया है॥ १-२॥

यथान्तर्विष्ठया पूर्णः शुचिमान्न बहिर्घटः।
शोध्यमानो हि देहोऽयं तेनायमशुचिस्ततः॥ ३

सम्प्राप्याति पवित्राणि पञ्चगव्यं हवींषि च।
अशुचित्वं क्षणाद्यान्ति किमन्यदशुचिस्ततः॥ ४

जिस प्रकार भीतर विष्ठासे परिपूर्ण घट बाहरसे शुद्ध होता हुआ भी अपवित्र ही होता है, उसी प्रकार शुद्ध किया हुआ यह शरीर भी अपवित्र कहा गया है। अत्यन्त पवित्र पंचगव्य एवं हव्य आदि भी जिस शरीरमें जानेपर क्षणभरमें अपवित्र हो जाते हैं, उस शरीरसे अधिक अपवित्र और क्या हो सकता है?॥ ३-४॥

हृद्यान्यप्यन्नपानानि यं प्राप्य सुरभीणि च।
अशुचित्वं प्रयान्त्याशु किमन्यदशुचिस्ततः॥ ५

हे जनाः किन्न पश्यन्ति यन्निर्याति दिने दिने।
स्वदेहात्कश्मलं पूतिस्तदाधारः कथं शुचिः॥ ६

अत्यन्त सुगन्धित एवं मनोहर अन्नपान भी जिसे प्राप्तकर शीघ्र ही अपवित्र हो जाते हैं, उससे अपवित्र और क्या हो सकता है? हे मनुष्यो! क्या तुमलोग नहीं देखते हो कि इस शरीरसे प्रतिदिन दुर्गन्धित मल-मूत्र बाहर निकलता है, फिर उसका आधार [यह देह] किस प्रकार शुद्ध हो सकता है?॥ ५-६॥

देहः संशोध्यमानोऽपि पञ्चगव्यकुशाम्बुभिः।
घृष्यमाण इवाङ्गारो निर्मलत्वं न गच्छति॥ ७

स्रोतांसि यस्य सततं प्रभवन्ति गिरेरिव।
कफमूत्रपुरीषाद्यैः स देहः शुध्यते कथम्॥ ८

पंचगव्य एवं कुशोदकसे भलीभाँति शुद्ध किया जाता हुआ देह भी माँजे जाते हुए कोयलेके समान निर्मल नहीं हो सकता है। पर्वतसे निकले हुए झरनेके समान जिससे कफ, मूत्र, विष्ठा आदि निरन्तर निकलते रहते हैं, वह शरीर भला शुद्ध किस प्रकार हो सकता है?॥ ७-८॥

सर्वाशुचिनिधानस्य शरीरस्य न विद्यते।
शुचिरेकः प्रदेशोऽपि विण्मूत्रस्य दृतेरिव॥ ९

सृष्ट्वात्मदेहस्रोतांसि मृत्तोयैः शोध्यते करः।
तथाप्यशुचिभाण्डस्य न विभ्रश्यति किं करः॥ १०

विष्ठा-मूत्रकी थैलीकी भाँति सब प्रकारकी अपवित्रताके निधानरूप इस शरीरका कोई एक भी स्थान पवित्र नहीं है। अपने देहके स्रोतोंसे मल निकालकर जल और मिट्टीके द्वारा हाथ शुद्ध किया जाता है, किंतु सर्वथा अशुद्धिपूर्ण इस शरीररूपी पात्रका अवयव होनेसे हाथ किस प्रकार पवित्र रह सकता है?॥ ९-१०॥

कायः सुगन्धधूपाद्यैर्यत्नेनापि सुसंस्कृतः।
न जहाति स्वभावं स श्वपुच्छमिव नामितम्॥ ११

यथा जात्यैव कृष्णोऽर्थः शुक्लः स्यान्नह्युपायतः।
संशोद्ध्यमानापि तथा भवेन्मूर्तिर्न निर्मला॥ १२

यत्नपूर्वक उत्तम गन्ध, धूप आदिसे भलीभाँति सुसंस्कृत भी यह शरीर कुत्तेकी पूँछकी तरह अपना स्वभाव नहीं छोड़ता है। जिस प्रकार स्वभावसे काली वस्तु अनेक उपाय करनेपर भी उज्ज्वल नहीं हो सकती, उसी प्रकार यह काया भी भलीभाँति शुद्ध करनेपर भी निर्मल नहीं हो सकती है॥ ११-१२॥

जिघ्रन्नपि स्वदुर्गन्धं पश्यन्नपि स्वकं मलम्।
न विरज्येत लोकोऽयं पीडयन्नपि नासिकाम्॥ १३

अपनी दुर्गन्धको सूँघता हुआ, अपने मलको देखता हुआ तथा अपनी नाकको दबाता हुआ भी यह संसार इससे विरक्त नहीं होता है॥ १३॥

अहो मोहस्य माहात्म्यं येनेदं छादितं जगत्।
शीघ्रं पश्यन् स्वकं दोषं कायस्य न विरज्यते॥ १४

स्वदेहस्य विगन्धेन न विरज्येत यो नरः।
विरागकारणं तस्य किमेतदुपदिश्यते॥ १५

अहो, महामोहकी महिमा है, जिसने इस संसारको आच्छादित कर रखा है। शरीरके अपने दोषको देखते हुए भी मनुष्य शीघ्र विरक्त नहीं होता है। जो मनुष्य अपने शरीरकी दुर्गन्धसे विरक्त नहीं होता, उसे वैराग्यका कौन-सा कारण बताया जा सकता है?॥ १४-१५॥

सर्वस्यैव जगन्मध्ये देह एवाशुचिर्भवेत्।
तन्मलावयवस्पर्शाच्छुचिरप्यशुचिर्भवेत् ॥ १६

गन्धलेपापनोदार्थं शौचं देहस्य कीर्तितम्।
द्वयस्यापगमाच्छुद्धिः शुद्धस्पर्शाद्विशुध्यति॥ १७

इस जगत्में सभीका शरीर अपवित्र है; क्योंकि उसके मलिन अवयवोंके स्पर्शसे पवित्र वस्तु भी अपवित्र हो जाती है। केवल इसके गन्धके लेपको दूर करनेके लिये देहशुद्धिकी विधि कही गयी है। गन्ध तथा लेपके दूर हो जानेसे शुद्धि हो जाती है, इसीलिये शुद्ध पदार्थके स्पर्श होनेसे शरीर शुद्ध होता है॥ १६-१७॥

गङ्गातोयेन सर्वेण मृद्भारैः पर्वतोपमैः।
आमृत्योराचरेच्छौचं भावदुष्टो न शुध्यति॥ १८

गंगाके सम्पूर्ण जलसे एवं पर्वतके समान मिट्टीके ढेरसे भले ही कोई मरणपर्यन्त शुद्धि करता रहे, किंतु भावदुष्ट होनेपर वह शुद्ध नहीं होता है॥ १८॥

तीर्थस्नानैस्तपोभिर्वा दुष्टात्मा नैव शुध्यति।
श्वदृतिः क्षालिता तीर्थे किं शुद्धिमधिगच्छति॥ १९

दुष्टात्मा तीर्थस्नानोंसे अथवा तपोंसे कदापि शुद्ध नहीं होता है। क्या तीर्थमें धोयी गयी कुत्तेकी खाल कभी शुद्ध हो सकती है?॥ १९॥

अन्तर्भावप्रदुष्टस्य विशतोऽपि हुताशनम्।
न स्वर्गो नापवर्गश्च देहनिर्दहनं परम्॥ २०
सर्वेण गाङ्गेन जलेन सम्यङ्
मृत्पर्वतेनाप्यथ भावदुष्टः।
आजन्मनः स्नानपरो मनुष्यो
न शुध्यतीत्येव वयं वदामः॥ २१

दूषित मनोभाववाला [शुद्ध होनेके लिये] भले ही अग्निमें प्रवेश करे तो उसका शरीर भस्म अवश्य हो जाता है, किंतु उसे स्वर्ग या अपवर्ग कुछ भी प्राप्त नहीं होता है। भावदुष्ट मनुष्य भले ही सम्पूर्ण गंगाजलसे तथा पर्वतके बराबर मिट्टीसे भलीभाँति जन्मभर स्नान करता रहे, फिर भी शुद्ध नहीं होता—ऐसा हमलोग कहते हैं॥ २०-२१॥

प्रज्वाल्य वह्निं घृततैलसिक्तं
प्रदक्षिणावर्तशिखं महान्तम्।
प्रविश्य दग्धस्त्वपि भावदुष्टो
न धर्ममाप्नोति फलं न चान्यत्॥ २२
गङ्गादितीर्थेषु वसन्ति मत्स्या
देवालये पक्षिगणाश्च नित्यम्।
भावोज्झितास्ते न फलं लभन्ते
तीर्थावगाहाच्च तथैव दानात्॥ २३

स्वभावदुष्ट व्यक्ति घी अथवा तेलसे विधिपूर्वक प्रज्वलित की गयी, दक्षिणावर्त ज्वालाओंवाली प्रशस्त अग्निमें प्रविष्ट होकर भले ही भस्म हो जाय, किंतु उसे धर्म अथवा किसी अन्य फलकी प्राप्ति सम्भव नहीं है। गंगा आदि तीर्थोंमें मछलियाँ तथा देवालयोंमें पक्षी नित्य निवास करते हैं, किंतु वे भावहीन होनेके कारण फल नहीं पाते, उसी प्रकार भावदुष्टको तीर्थस्नान एवं दानसे कोई फल प्राप्त नहीं होता है॥ २२-२३॥

भावशुद्धिः परं शौचं प्रमाणे सर्वकर्मसु।
अन्यथालिंग्यते कान्ता भावेन दुहितान्यथा॥ २४

मनसो भिद्यते वृत्तिरभिन्नेष्वपि वस्तुषु।
अन्यथैव सुतं नारी चिन्तयत्यन्यथा पतिम्॥ २५

सभी प्रकारके कर्मोंमें, भावशुद्धिको महान् शौच कहा गया है; क्योंकि कान्ताका आलिंगन अन्य भावसे किया जाता है और पुत्रीका आलिंगन अन्य भावसे किया जाता है। अभिन्न अर्थात् समान रूपवाली वस्तुओंमें भी मनके भेदके कारण भावभेद हो जाता है। स्त्री [अपने] पतिमें अन्य भाव रखती है और पुत्रके प्रति अन्य भाव रखती है॥ २४-२५॥

पश्यध्वमस्य भावस्य महाभाग्यमशेषतः।
परिष्वक्तोऽपि यन्नार्या भावहीनं न कामयेत्॥ २६

नाद्याद्विविधमन्नाद्यं भक्ष्याणि सुरभीणि च।
यदि चिन्तां समाधत्ते चित्ते कामादिषु त्रिषु॥ २७

इस भावकी अपार महिमाको पूर्णरूपसे देखिये, स्त्रीसे आलिंगित होनेपर भी भावहीन स्त्रीके प्रति उसकी कामना नहीं होती। यदि चित्तमें काम, क्रोध एवं लोभ—इन तीनोंकी चिन्ता विद्यमान रहे, तो अनेक प्रकारके अन्नादि तथा स्वादिष्ट भोज्य पदार्थोंको मनुष्य [रुचिपूर्वक] नहीं खा सकता है॥ २६-२७॥

गृह्यते तेन भावेन नरो भावाद्विमुच्यते।
भावतः शुचि शुद्धात्मा स्वर्गं मोक्षं च विन्दति॥ २८

भावेनैकात्मशुद्धात्मा दहन् जुह्वन् स्तुवन् मृतः।
ज्ञानावाप्तेरवाप्याशु लोकान् सुबहुयाजिनाम्॥ २९

भावना करनेसे ही मनुष्य बन्धनमें पड़ता है और उसमें भाव न रहनेसे उससे छुटकारा भी प्राप्त हो जाता है। भावसे शुद्ध आत्मावाला ही स्वर्ग और मोक्ष प्राप्त करता है। एकमात्र भावसे शुद्ध आत्मावाला जलता हुआ, होम करता हुआ तथा स्तुति करता हुआ यदि मर भी जाय तो उसे शीघ्रतासे ज्ञानप्राप्तिके पश्चात् याज्ञिकोंको मिलनेवाले लोक प्राप्त होते हैं॥ २८-२९॥

ज्ञानामलाम्भसा पुंसां सद्वैराग्यमृदा पुनः।
अविद्यारागविण्मूत्रलेपगन्धविशोधनम् ॥ ३०
एवमेतच्छरीरं हि निसर्गादशुचि स्मृतम्।
त्वङ्मात्रसारं निःसारं कदलीसारसन्निभम्॥ ३१

ज्ञानरूपी निर्मल जलसे और वैराग्यरूपी मृत्तिकासे मनुष्योंकी अविद्या रागरूपी मल-मूत्रके लेपकी दुर्गन्ध दूर हो जाती है। यह शरीर तो स्वभावसे ही अपवित्र कहा गया है। जिसमें केवल त्वचा ही सार होती है, ऐसे केलेके वृक्षकी भाँति यह निःसार है॥ ३०-३१॥

ज्ञात्वैवं दोषवद्देहं यः प्राज्ञः शिथिलो भवेत्।
देहभोगोद्भवाद्भावाच्छमचित्तः प्रसन्नधीः॥ ३२

जो बुद्धिमान् पुरुष देहको इस प्रकारका दोषयुक्त जानकर विरक्त हो जाता है, वह शरीरके भोगोंसे उत्पन्न होनेवाले भावसे उपराम हुए चित्तवाला एवं निर्मल बुद्धिसे युक्त हो जाता है॥ ३२॥

सोऽतिक्रामति संसारं जीवन्मुक्तः प्रजायते।
संसारकदलीसारदृढग्राह्यवतिष्ठते ॥ ३३

वह संसारसे पार हो जाता है और जीवन्मुक्त हो जाता है, किंतु जिसे संसारकी असारताका ज्ञान नहीं होता, वह केलेके खम्भेके समान [भंगुर संसारको नित्य मानकर] इसे दृढ़तासे पकड़े रहता है॥ ३३॥

एवमेतन्महाकष्टं जन्मदुःखं प्रकीर्तितम्।
पुंसामज्ञानदोषेण नानाकर्मवशेन च॥ ३४

[हे व्यास!] इस प्रकार मनुष्योंके अज्ञानदोष तथा नाना प्रकारके कर्मोंके कारण होनेवाले उनके इस महाकष्टदायक जन्म-दुःखका वर्णन मैंने कर दिया॥ ३४॥

श्लोकार्धेन तु वक्ष्यामि यदुक्तं ग्रन्थकोटिभिः।
ममेति परमं दुःखं न ममेति परं सुखम्॥ ३५
बहवोऽपीह राजानः परं लोकमितो गताः।
निर्ममत्वसमेतास्तु बद्धाः शतसहस्रशः॥ ३६

जो करोड़ों ग्रन्थोंमें कहा गया है, उसे मैं आधे श्लोकमें कहता हूँ। 'यह मेरा है' यह परम दुःख है और 'यह मेरा नहीं है'—यह परम सुख है। ममतासे रहित बहुत-से राजा यहाँसे परलोक चले गये, किंतु ममतावश लाखों लोग इसमें बँधे रह गये॥ ३५-३६॥

गर्भस्थस्य स्मृतिर्यासीत्सा च तस्य प्रणश्यति।
सम्मूर्छितेन दुःखेन योनियन्त्रनिपीडनात्॥ ३७

गर्भमें स्थित जीवकी जो स्मृति थी, वह [जन्म लेते समय] योनियन्त्रके निपीडनके कारण मूर्च्छित कर देनेवाले दुःखसे नष्ट हो जाती है॥ ३७॥

बाह्येन वायुना वास्य मोहसङ्गेन देहिनः।
स्पृष्टमात्रेण घोरेण ज्वरः समुपजायते॥ ३८
तेन ज्वरेण महता सम्मोहश्च प्रजायते।
सम्मूढस्य स्मृतिभ्रंशः शीघ्रं संजायते पुनः॥ ३९
स्मृतिभ्रंशात्ततस्तस्य स्मृतिर्नो पूर्वकर्मणः।
रतिः संजायते तूर्णं जन्तोस्तत्रैव जन्मनि॥ ४०

बाहरी वायुके स्पर्शसे अथवा चित्तके विकल होनेसे उसे घोर ज्वर हो जाता है। उस महाज्वरसे उसे सम्मोह उत्पन्न होता है और पुनः शीघ्र ही उस सम्मूढ़की स्मृतिका नाश हो जाता है। इसके बाद स्मृतिके नष्ट होते ही उसे अपने पूर्व कर्मोंका स्मरण नहीं रह जाता है और उस जीवको शीघ्र ही इसी जन्मसे अनुराग हो जाता है॥ ३८—४०॥

रक्तो मूढश्च लोकोऽयं न कार्ये सम्प्रवर्तते।
न चात्मानं विजानाति न परं न च दैवतम्॥ ४१
न शृणोति परं श्रेयः सति कर्णेऽपि सन्मुने।
न पश्यति परं श्रेयः सति चक्षुषि तत्क्षमे॥ ४२

अनुरागयुक्त वह मूढ़ जीव शुभ कार्यमें प्रवृत्त नहीं होता है, तब वह अपनेको, परायेको तथा परमेश्वरको भी जान नहीं पाता है। हे मुनिश्रेष्ठ! कानके होनेपर भी वह परम कल्याणकी बात नहीं सुनता और आँखोंमें देखनेकी शक्ति होनेपर भी अपना परम कल्याण नहीं देखता है॥ ४१-४२॥

समे पथि शनैर्गच्छन् स्खलतीव पदे पदे।
सत्यां बुद्धौ न जानाति बोध्यमानो बुधैरपि॥ ४३
संसारे क्लिश्यते तेन गर्भलोभवशानुगः।
गर्भस्मृतेन पापेन समुज्झितमतिः पुमान्॥ ४४

वह समतल मार्गमें शनैः-शनैः चलता हुआ भी पद-पदपर फिसलता रहता है और विद्वानोंके द्वारा समझाया जानेपर तथा बुद्धिके रहनेपर भी समझ नहीं पाता है। गर्भवासके समय स्मरण किये गये पापोंसे बुद्धिको हटाकर अर्थात् जन्म-मरणादिके कारणभूत असत्कर्मोंको भूलकर [सांसारिक सुखोंके] लोभवश विषयोंमें आबद्ध हुआ मनुष्य संसारमें आकर पुनः गर्भक्लेश प्राप्त करता है॥ ४३-४४॥

इत्थं महत्परं दिव्यं शास्त्रमुक्तं शिवेन तु।
तपसः कथनार्थाय स्वर्गमोक्षप्रसाधनम्॥ ४५

इस प्रकार शिवजीने तपस्याका निरूपण करनेके लिये स्वर्ग एवं मोक्षके साधनभूत इस महान् तथा परम दिव्य शास्त्रको कहा है॥ ४५॥

ये सत्यस्मिन् शिवे ज्ञाने सर्वकामार्थसाधने।
न कुर्वन्त्यात्मनः श्रेयस्तदेव महदद्भुतम्॥ ४६

ये [संसारी] लोग सभी प्रकारके मनोरथोंको सिद्ध करनेवाले इस शिवज्ञानके रहते हुए भी अपना कल्याण नहीं कर पाते, यह तो महान् आश्चर्य है!॥ ४६॥

अव्यक्तेन्द्रियवृत्तित्वाद् बाल्ये दुःखं महत्पुनः।
इच्छन्नपि न शक्नोति वक्तुं कर्तुं प्रतिक्रियाम्॥ ४७
दन्तोत्थाने महद्दुःखमल्पेन व्याधिना तथा।
बालरोगैश्च विविधैः पीडा बालग्रहैरपि॥ ४८

बाल्यावस्थामें इन्द्रियोंकी शक्ति प्रकट न होनेसे बहुत कष्ट उठाना पड़ता है, क्योंकि चाहते हुए भी वह कुछ कहनेमें तथा प्रतिक्रिया करनेमें समर्थ नहीं होता है। उस समय दाँतोंके निकलते समय उसे बहुत कष्ट होता है और थोड़ी-बहुत व्याधिसे अनेक प्रकारके बालरोगोंसे तथा बालग्रहोंसे भी पीड़ा होती है॥ ४७-४८॥

क्वचित्क्षुत्तृट्परीताङ्गः क्वचित्तिष्ठति संरटन्।
विण्मूत्रभक्षणाद्यं च मोहाद् बालः समाचरेत्॥ ४९

बालक कभी भूख-प्याससे व्याकुल रहता है, कभी रोता रहता है और अज्ञानवश मल-मूत्र आदिका भक्षण भी करता रहता है॥ ४९॥

कौमारे कर्णपीडायां मातापित्रोश्च साधनैः।
अक्षराध्ययनाद्यैश्च नानादुःखं प्रवर्तते॥ ५०

बाल्ये दुःखमतीत्यैव पश्यन्नपि विमूढधीः।
न कुर्वीतात्मनः श्रेयस्तदत्र महदद्भुतम्॥ ५१

कुमारावस्थामें कानोंकी पीड़ा एवं माता-पिताद्वारा अक्षराभ्यास-अध्ययनादि साधनोंमें लगाये जानेके कारण उसे अनेक प्रकारका कष्ट होता है। बाल्यकालके दुःखको जानकर एवं उसे देखकर भी वह मूढ़बुद्धि अपना कल्याण नहीं करता, यह तो महान् आश्चर्य है!॥ ५०-५१॥

प्रवृत्तेन्द्रियवृत्तित्वात्कामरोगप्रपीडनात्।
तदप्राप्ते तु सततं कुतः सौख्यं तु यौवने॥ ५२

यौवनावस्थामें इन्द्रियोंके सुखोंको भोगनेकी इच्छाके कारण तथा कामरोगसे पीड़ित होनेके कारण और बादमें उसके निरन्तर प्राप्त न होनेपर सुख कहाँ?॥ ५२॥

ईर्ष्यया च महद्दुःखं मोहाद्रक्तस्य तस्य च।
नेत्रस्य कुपितस्येव त्यागो दुःखाय केवलम्॥ ५३

ईर्ष्या, मोह आदि दोषोंसे रँगे हुए चित्तको तो क्लेश होता ही है, पर इन दोषोंका शमन भी बिना कष्टके नहीं हो सकता। जिस प्रकार [नेत्रव्याधिके कारण] लाल हुए नेत्रकी उपेक्षा तो यावज्जीवन कष्ट देती ही है, पर उपचार भी बिना कष्ट सहे हो नहीं सकता (अतः उचित तो यही है कि इन मनोविकारोंको मनमें आने ही न दिया जाय)॥ ५३॥

न रात्रौ विन्दते निद्रां कामाग्निपरिवेदितः।
दिवापि च कुतः सौख्यमर्थोपार्जनचिन्तया॥ ५४

स्त्रीष्वध्यासितचित्तस्य ये पुंसः शुक्रबिन्दवः।
ते सुखाय न मन्यन्ते स्वेदजा इव ते तथा॥ ५५

कामाग्निसे सन्तप्त रहनेके कारण उस कामी पुरुषको रातमें निद्रा नहीं आती और दिनमें अर्थोपार्जनकी चिन्ताके कारण उसे सुख कहाँ? स्त्रीमें आसक्त चित्तवाले पुरुषके जो वीर्यबिन्दु हैं, वे सुखके हेतु नहीं माने जा सकते, वे तो पसीनेकी बूँदोंके समान हैं॥ ५४-५५॥

कृमिभिस्तुद्यमानस्य कुष्ठिनो वानरस्य च।
कण्डूयनाभितापेन यद्भवेत् स्त्रीषु तद्विदः॥ ५६

कीड़ोंसे काटे जाते हुए कुष्ठी वानरको खुजलीके सन्ताप (जलन)-से जो सुख होता है, वही स्त्रियोंमें व्यक्तिको भी होता है, ऐसा विद्वज्जन कहते हैं॥ ५६॥

यादृशं मन्यते सौख्यं गण्डे पूतिविनिर्गमात्।
तादृशं स्त्रीषु मन्तव्यं नाधिकं तासु विद्यते॥ ५७

पके हुए फोड़ेसे मवादके निकल जानेपर जैसा सुख माना जाता है, उसी प्रकारका सुख विषयोपभोगमें मानना चाहिये, उनमें उससे अधिक सुख नहीं है॥ ५७॥

विण्मूत्रस्य समुत्सर्गात्सुखं भवति यादृशम्।
तादृशं स्त्रीषु विज्ञेयं मूढैः कल्पितमन्यथा॥ ५८

नारीष्ववस्तुभूतासु सर्वदोषाश्रयासु च।
नाणुमात्रं सुखं तासु कथितं पञ्चचूडया॥ ५९

विष्ठा और मूत्रके त्यागसे जैसा सुख होता है, वैसा ही सुख स्त्रीप्रसंगमें जानना चाहिये, किंतु मूर्खोंने उसकी दूसरी ही कल्पना की है। अवस्तुस्वरूप तथा समस्त दोषोंकी आश्रयभूता उन नारियोंमें अणुमात्र भी सुख नहीं है—ऐसा पंचचूडाने कहा था॥ ५८-५९॥

सम्माननावमानाभ्यां वियोगेनेष्टसंगमात्।
यौवनं जरया ग्रस्तं क्व सौख्यमनुपद्रवम्॥ ६०

वलीपलितखालित्यैः शिथिलीकृतविग्रहम्।
सर्वक्रियास्वशक्तिं च जरया जर्जरीकृतम्॥ ६१

सम्मान, तिरस्कार, वियोग, अपने प्रियके संयोग तथा बुढ़ापेसे यौवन ग्रस्त है, अतः बाधारहित सुख कहाँ? झुर्रियों, श्वेत केशों तथा गंजापनसे युक्त, शिथिल और बुढ़ापेसे शरीर जर्जर हो जानेपर सभी कार्योंमें अक्षम हो जाता है॥ ६०-६१॥

स्त्रीपुंसोर्यौवनं हृद्यमन्योऽन्यस्य प्रियं पुरा।
तदेव जरया ग्रस्तमनयोरपि न प्रियम्॥ ६२

स्त्री-पुरुषका मनोहर यौवन जो पहले एक-दूसरेको प्रिय था, वही बुढ़ापेसे ग्रस्त होनेपर इन दोनोंको आपसमें भी प्रिय नहीं रह जाता है॥ ६२॥

अपूर्ववत्स्वमात्मानं जरया परिवर्तितम्।
यः पश्यन्नपि रज्येत कोऽन्यस्तस्मादचेतनः॥ ६३

जराभिभूतः पुरुषः पुत्रीपुत्रादिबान्धवैः।
अशक्तत्वाद्दुराधर्षैर्भृत्यैश्च परिभूयते॥ ६४

बुढ़ापेके कारण परिवर्तित अपने शरीरको देखता हुआ भी [जो] नूतनके समान उससे अनुराग रखता है, उससे अधिक अज्ञानी और कौन होगा? बुढ़ापेसे ग्रस्त हुआ मनुष्य असमर्थताके कारण पुत्री, पुत्र, भाई-बन्धु तथा कठोर स्वभाववाले भृत्योंसे तिरस्कृत किया जाता है॥ ६३-६४॥

धर्ममर्थं च कामं वा मोक्षं वातिजरातुरः।
अशक्तः साधितुं तस्माद्युवा धर्मं समाचरेत्॥ ६५

बुढ़ापेसे ग्रस्त हुआ मनुष्य धर्म, अर्थ, काम तथा मोक्षको सिद्ध करनेमें असमर्थ रहता है, अतः यौवनावस्थामें ही धर्माचरण कर लेना चाहिये॥ ६५॥

इति श्रीशिवमहापुराणे पञ्चम्यामुमासंहितायां संसारचिकित्सायां देहाशुचित्वबाल्याद्यवस्था-दुःखवर्णनं नाम त्रयोविंशोऽध्यायः॥ २३॥

॥ इस प्रकार श्रीशिवमहापुराणके अन्तर्गत पाँचवीं उमासंहितामें संसारचिकित्सामें देहाशुचित्व-बाल्याद्यवस्थादुःखवर्णन नामक तेईसवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ २३॥

अथ चतुर्विंशोऽध्यायः

नारदके प्रति पंचचूडा अप्सराके द्वारा स्त्रीके स्वभाव*का वर्णन

व्यास उवाच

कुत्सितं योषिदर्थं यत्संप्रोक्तं पञ्चचूडया।
तन्मे ब्रूहि समासेन यदि तुष्टोऽसि मे मुने॥ १

व्यासजी बोले—हे मुने! यदि आप मुझसे सन्तुष्ट हैं तो स्त्रियोंकी जिस दुष्प्रवृत्तिको पंचचूडाने कहा है, उसे संक्षेपमें मुझसे कहिये॥ १॥

सनत्कुमार उवाच

स्त्रीणां स्वभावं वक्ष्यामि शृणु विप्र यथातथम्।
यस्य श्रवणमात्रेण भवेद्वैराग्यमुत्तमम्॥ २

सनत्कुमार बोले—हे विप्र! सुनिये, मैं स्त्रियोंके स्वभावका यथार्थरूपमें वर्णन कर रहा हूँ, जिसके सुनने-मात्रसे उत्तम वैराग्य हो जाता है॥ २॥

स्त्रियो मूलं हि दोषाणां लघुचित्ताः सदा मुने।
तदासक्तिर्न कर्तव्या मोक्षेप्सुभिरतन्द्रितैः॥ ३

हे मुने! क्षुद्रचित्तवाली स्त्रियाँ सदा दोषोंकी जड़ होती हैं। इसलिये सावधान मुमुक्षुओंको उनमें आसक्ति नहीं करनी चाहिये॥ ३॥

अत्राप्युदाहरन्तीममितिहासं पुरातनम्।
नारदस्य च संवादं पुंश्चल्या पञ्चचूडया॥ ४

लोकान् परिचरन् धीमान् देवर्षिर्नारदः पुरा।
ददर्शाप्सरसं बालां पञ्चचूडामनुत्तमाम्॥ ५

इस विषयमें व्यभिचारिणी पंचचूडाके साथ नारदजीके संवादरूप इस प्राचीन इतिहासको लोग उदाहृत करते हैं। पूर्वकालमें सम्पूर्ण लोकोंमें विचरण करते हुए बुद्धिमान् देवर्षि नारदने सुन्दरी बाला पंचचूडा नामक अप्सराको देखा॥ ४-५॥

* पंचचूडाके द्वारा किया गया यह स्वभाववर्णन चंचल प्रवृत्तिवाली स्त्रियोंमें ही घटित होता है। साध्वी स्त्रियोंकी तो पुराणोंमें बड़ी महिमा बतायी गयी है।

यप्रच्छाप्सरसं सुभ्रूं नारदो मुनिसत्तमः।
संशयो हृदि मे कश्चित्तन्मे ब्रूहि सुमध्यमे॥ ६

एवमुक्ता तु सा विप्रं प्रत्युवाच वराप्सरा।
विषये सति वक्ष्यामि समर्थां मन्यसेऽथ माम्॥ ७

नारद उवाच

न त्वामविषये भद्रे नियोक्ष्यामि कथञ्चन।
स्त्रीणां स्वभावमिच्छामि त्वत्तः श्रोतुं सुमध्यमे॥ ८

सनत्कुमार उवाच

एतच्छ्रुत्वा वचस्तस्य देवर्षेरप्सरोत्तमा।
प्रत्युवाच मुनीशं तं देवर्षिं मुनिसत्तमम्॥ ९

पञ्चचूडोवाच

मुने शृणु न शक्या स्त्री सती वै निन्दितुं स्त्रिया।
विदितास्ते स्त्रियो याश्च यादृश्यश्च स्वभावतः॥ १०

न मामर्हसि देवर्षे नियोक्तुं प्रश्नमीदृशम्।
इत्युक्त्वा साभवत्तूष्णीं पञ्चचूडाप्सरोवरा॥ ११

अथ देवर्षिवर्यो हि श्रुत्वा तद्वाक्यमुत्तमम्।
प्रत्युवाच पुनस्तां वै लोकानां हितकाम्यया॥ १२

नारद उवाच

मृषावादे भवेद्दोषः सत्ये दोषो न विद्यते।
इति जानीहि सत्यं त्वं वदातस्तत्सुमध्यमे॥ १३

सनत्कुमार उवाच

इत्युक्ता सा कृतमती रभसा चारुहासिनी।
स्त्रीदोषान् शाश्वतान्सत्यान् भाषितुं सम्प्रचक्रमे॥ १४

पञ्चचूडोवाच

कुलीना नाथवन्त्यश्च रूपवन्त्यश्च योषितः।
मर्यादासु न तिष्ठन्ति स दोषः स्त्रीषु नारद॥ १५
न स्त्रीभ्यः किञ्चिदन्यद्वै पापीयस्तरमस्ति हि।
स्त्रियो मूलं हि पापानां तथा त्वमपि वेत्थ ह॥ १६
समाज्ञातानर्थवतः प्रतिरूपान् यथेप्सितान्।
पतीनन्तरमासाद्य नालं नार्यः प्रतीक्षितुम्॥ १७

मुनिश्रेष्ठ नारदने सुन्दर भौंहोंवाली उस अप्सरासे पूछा—हे सुमध्यमे! मेरे मनमें कुछ सन्देह है, तुम उसे बताओ। इस प्रकार पूछे जानेपर उस श्रेष्ठ अप्सराने विप्र नारदजीसे कहा—यदि आप मुझे उसके योग्य समझते हों और मैं कहनेमें समर्थ हुई तो आपके प्रश्नोंका उत्तर दूँगी॥ ६-७॥

नारदजी बोले—हे भद्रे! मैं तुम्हें किसी ऐसे कार्यमें प्रवृत्त नहीं करूँगा, जो तुम्हारी जानकारीसे बाहर हो। हे सुमध्यमे! मैं तुमसे स्त्रियोंके स्वभावको सुनना चाहता हूँ॥ ८॥

सनत्कुमार बोले—हे व्यासजी! देवर्षिका यह वचन सुनकर श्रेष्ठ अप्सरा मुनीश्वर देवर्षिसे कहने लगी—॥ ९॥

पंचचूडा बोली—हे मुने! कोई स्त्री सती नारीकी निन्दा नहीं कर सकती है, जो स्त्रियाँ स्वभावसे जिस प्रकारकी होती हैं, उनके विषयमें आप जानते ही हैं॥ १०॥

अतः हे मुने! मुझे इस प्रकारके प्रश्नके समाधानमें नियुक्त मत कीजिये। ऐसा कहकर वह श्रेष्ठ अप्सरा पंचचूडा मौन हो गयी। तब उसका उत्तम वचन सुनकर देवर्षियोंमें श्रेष्ठ नारदजी लोगोंके हितकी कामनासे उससे पुनः कहने लगे—॥ ११-१२॥

नारदजी बोले—झूठ बोलनेमें दोष होता है, सत्य बोलनेमें दोष नहीं है—ऐसा तुम सत्य जानो, अतः हे सुमध्यमे! तुम उसे बताओ॥ १३॥

सनत्कुमार बोले—इस प्रकार बतानेके लिये बलात् प्रेरित किये जानेपर मनोहर हास्यवाली वह निश्चयपूर्वक स्त्रियोंके स्वाभाविक तथा सत्य दोषोंको कहने लगी॥ १४॥

पंचचूडा बोली—हे नारद! कुलीन, पतिमती एवं सुन्दर रूपवाली स्त्रियाँ [भी कभी-कभी] मर्यादामें नहीं रहती हैं, यही दोष स्त्रियोंमें है। इस प्रकारकी स्त्रियाँ अपने पतिके परोक्षमें बिना जाने हुए भी धनवान्, रूपवान् एवं अपनेको चाहनेवाले पुरुषोंकी कामना करती हैं और किसीकी प्रतीक्षा नहीं करतीं॥ १५—१७॥

अस‌द्धर्मस्त्वयं स्त्रीणामस्माकं भवति प्रभो।
पापीयसो नरान् यद्वै लज्जां त्यक्त्वा भजामहे ॥ १८

स्त्रियं च यः प्रार्थयते सन्निकर्षं च गच्छति।
ईषच्च कुरुते सेवां तमेवेच्छन्ति योषितः ॥ १९

अनर्थित्वान्मनुष्याणां भयात्पतिजनस्य च।
मर्यादायाममर्यादाः स्त्रियस्तिष्ठन्ति भर्तृषु ॥ २०

नासां कश्चिदमान्योऽस्ति नासां वयसि निश्चयः।
सुरूपं वा कुरूपं वा पुमांसमुपभुञ्जते ॥ २१

न भयादथ वाक्रोशान्नार्थहेतोः कथञ्चन।
न ज्ञातिकुलसम्बन्धात् स्त्रियस्तिष्ठन्ति भर्तृषु ॥ २२

यौवने वर्तमानानामिष्टाभरणवाससाम्।
नारीणां स्वैरवृत्तीनां स्पृहयन्ति कुलस्त्रियः ॥ २३

या हि शश्वद् बहुमता रक्ष्यन्ते दयिताः स्त्रियः।
अपि ताः सम्प्रसज्जन्ते कुब्जान्धजडवामने ॥ २४

पङ्गुष्वपि च देवर्षे ये चान्ये कुत्सिता नराः।
स्त्रीणामगम्यो लोकेषु नास्ति कश्चिन्महामुने ॥ २५

यदि पुंसां गतिर्ब्रह्मन् कथञ्चिन्नोपपद्यते।
अप्यन्योऽन्यं प्रवर्तन्ते न च तिष्ठन्ति भर्तृषु ॥ २६

अलाभात्पुरुषाणां च भयात्परिजनस्य च।
वधबन्धभयाच्चैव ता भग्नाशा हि योषितः ॥ २७

चलस्वभावा दुश्चेष्टा दुर्ग्राह्या भावतस्तथा।
प्राज्ञस्य पुरुषस्येह यथा रतिपरिग्रहात् ॥ २८

नाग्निस्तुष्यति काष्ठानां नापगानां महोदधिः।
नान्तकः सर्वभूतानां न पुंसां वामलोचनाः ॥ २९

इदमन्यच्च देवर्षे रहस्यं सर्वयोषिताम्।
दृष्ट्वैव पुरुषं सद्यो योनिः प्रक्लिद्यते स्त्रियाः ॥ ३०

हे प्रभो! हम-जैसी स्त्रियोंका यह एक बड़ा बुरा धर्म है, जो कि हम लज्जा छोड़कर अन्य पुरुषोंका भी सेवन करती हैं। जो मनुष्य स्त्रीको चाहता है, उसके समीप जाता है एवं थोड़ा भी उसकी सेवा करता है, उसे स्त्रियाँ चाहने लगती हैं ॥ १८-१९ ॥

बिना मर्यादावाली स्त्रियाँ मनुष्योंके कामलोलुप न रहनेसे एवं पति आदिके भयसे ही अपने पतियोंकी मर्यादामें रहती हैं ॥ २० ॥

इनके लिये अमान्य कोई नहीं है और न तो इनके लिये अवस्थाका ही कोई निश्चय है, ये सुरूप अथवा कुरूप किसी भी प्रकारके पुरुषका सेवन कर लेती हैं। ऐसी स्त्रियाँ न भयसे, न आक्रोशसे, न धनके निमित्त और न जातिकुलके सम्बन्धसे ही पतियोंके वशमें रहती हैं ॥ २१-२२ ॥

ऐसी स्त्रियाँ युवावस्थामें इच्छानुसार वस्त्र-आभूषण प्राप्त करनेवाली व्यभिचारिणी स्त्रियोंके साथकी अभिलाषा करती हैं ॥ २३ ॥

जो प्रिय स्त्रियाँ सर्वदा बहुत सम्मानित होकर रखी जाती हैं, वे भी कुबड़े, अन्धे, मूर्ख, बौने तथा लँगड़े मनुष्योंपर आसक्त हो जाती हैं। हे देवर्षे! हे महामुने! संसारमें अन्य भी जो निन्दित पुरुष हैं, उनमें कोई भी ऐसी स्त्रियोंके लिये अगम्य नहीं है ॥ २४-२५ ॥

हे ब्रह्मन्! स्त्रियाँ यदि किसी प्रकार पुरुषोंको प्राप्त नहीं कर पातीं तो वे आपसमें भी आसक्त हो जाती हैं, परंतु अपने पतियोंके वशमें नहीं रहतीं ॥ २६ ॥

पुरुषोंके प्राप्त न होनेसे, परिजनोंके भयसे और वध तथा बन्धनके भयसे ही वे स्त्रियाँ कामनारहित हुआ करती हैं। चंचल स्वभाववाली तथा बुरी चेष्टाओंवाली स्त्रियाँ भावुक होनेके कारण बुद्धिमान् पुरुषके द्वारा भी दुर्ग्राह्य ही होती हैं, वे तो केवल संयोगसे ही अनुकूल हो सकती हैं ॥ २७-२८ ॥

हे मुने! जिस प्रकार आग काष्ठोंसे तृप्त नहीं होती, समुद्र नदियोंसे तृप्त नहीं होता तथा काल सभी जीवोंसे भी तृप्त नहीं होता, उसी प्रकार असती स्त्रियाँ भी पुरुषोंसे तृप्त नहीं होतीं। हे देवर्षे! यह एक विशेष बात है कि पुरुषोंका अवलोकन करनेपर असती स्त्रियोंके अवयव विह्वल हो जाते हैं ॥ २९-३० ॥

सुस्नातं पुरुषं दृष्ट्वा सुगन्धं मलवर्जितम्।
योनिः प्रक्लिद्यते स्त्रीणां दृतेः पात्रादिवोदकम्॥ ३१

कामानामपि दातारं कर्तारं मानसान्त्वयोः।
रक्षितारं न मृष्यन्ति भर्तारं परमं स्त्रियः॥ ३२

सुगन्धका लेप किये हुए एवं अच्छी तरह स्नान किये हुए निर्मल पुरुषको देखकर पानीसे भरी मशकके समान स्त्रियोंमें आंगिक विकार परिलक्षित होने लगते हैं। दुष्ट स्त्रियाँ तो इच्छाओंको पूर्ण करनेवाले, मान देनेवाले, सान्त्वना प्रदान करनेवाले तथा रक्षा करनेवाले प्रिय स्वामीके भी वशमें नहीं रहती हैं॥ ३१-३२॥

न कामभोगात्परमान्नालङ्कारार्थसंचयात्।
तथा हितं न मन्यन्ते यथा रतिपरिग्रहात्॥ ३३

अन्तकः शमनो मृत्युः पातालं वडवामुखम्।
क्षुरधारा विषं सर्पो वह्निरित्येकतः स्त्रियः॥ ३४

वे न सम्पूर्ण कामोंके भोगसे और न तो अलंकार तथा धनके संचयसे वैसा सुख मानती हैं, जैसा शृंगारिकताके परिग्रहसे मानती हैं। काल, कष्ट देनेवाला मृत्यु, पाताल, बड़वानल, छूरेकी धार, विष, सर्प एवं अग्नि—ये सभी एक ओर तथा स्त्रियाँ एक ओर हैं, अर्थात् इन काल आदिका सामर्थ्य सम्मिलित रूपसे ही स्त्रीसामर्थ्यके तुल्य हो सकता है॥ ३३-३४॥

यतश्च भूतानि महान्ति पञ्च
यतश्च लोको विहितो विधात्रा।
यतः पुमांसः प्रमदाश्च निर्मिताः
सदैव दोषः प्रमदासु नारद॥ ३५

हे नारद! ब्रह्माने जहाँसे पंच महाभूतों तथा जहाँसे लोकका निर्माण किया एवं जहाँसे स्त्री-पुरुषोंका निर्माण किया, वहींसे स्त्रियोंमें सर्वदा दोषका विधान किया है अर्थात् स्त्रियोंके ये दोष स्वाभाविक हैं॥ ३५॥

सनत्कुमार उवाच

इति श्रुत्वा वचस्तस्या नारदस्तुष्टमानसः।
तथ्यं मत्वा ततस्तद्वै विरक्तोऽभूद्धि तासु च॥ ३६

इत्युक्तः स्त्रीस्वभावस्ते पञ्चचूडोक्त आदरात्।
वैराग्यकारणं व्यास किमन्यच्छ्रोतुमर्हसि॥ ३७

सनत्कुमार बोले—उसका वचन सुनकर नारदजी प्रसन्नचित्त हो गये और उसकी बात सत्य मानकर स्त्रियोंसे विरक्त हो गये। हे व्यास! इस प्रकार मैंने पंचचूडाद्वारा कहे गये स्त्रियोंके स्वभावको आदरपूर्वक आपसे कह दिया, जो वैराग्यका कारण है, अब आप और क्या सुनना चाहते हैं?॥ ३६-३७॥

इति श्रीशिवमहापुराणे पञ्चम्यामुमासंहितायां स्त्रीस्वभाववर्णनं नाम चतुर्विंशोऽध्यायः॥ २४॥

॥ इस प्रकार श्रीशिवमहापुराणके अन्तर्गत पाँचवीं उमासंहितामें स्त्रीस्वभाववर्णन नामक चौबीसवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ २४॥

अथ पञ्चविंशोऽध्यायः

मृत्युकाल निकट आनेके लक्षण

व्यास उवाच

सनत्कुमार सर्वज्ञ त्वत्सकाशान्मया मुने।
स्त्रीस्वभावः श्रुतः प्रीत्या कालज्ञानं वदस्व मे॥ १

व्यासजी बोले—हे सनत्कुमार! हे सर्वज्ञ! हे मुने! मैंने आपसे स्त्रियोंके स्वभावका वर्णन सुना, अब आप प्रेमपूर्वक मुझसे काल-ज्ञानका वर्णन कीजिये॥ १॥

सनत्कुमार उवाच

इदमेव पुरापृच्छत् पार्वती परमेश्वरम्।
श्रुत्वा नानाकथां दिव्यां प्रसन्ना सुप्रणम्य तम्॥ २

सनत्कुमार बोले—हे व्यास! पूर्वकालमें अनेक प्रकारकी दिव्य कथाका श्रवण करके प्रसन्न हुई पार्वतीने भी शंकरको प्रणामकर उनसे यही पूछा था॥ २॥

पार्वत्युवाच

भगवंस्त्वत्प्रसादेन ज्ञातं मे सकलं मतम्।
यथार्चनं तु ते देव यैर्मन्त्रैश्च यथाविधि॥ ३

अद्यापि संशयस्त्वेकः कालचक्रं प्रति प्रभो।
मृत्युचिह्नं यथा देव किं प्रमाणं यथायुषः॥ ४

सर्वं कथय मे नाथ यद्यहं तव वल्लभा।
इति पृष्टस्तया देव्या प्रत्युवाच महेश्वरः॥ ५

ईश्वर उवाच

सत्यं ते कथयिष्यामि शास्त्रं सर्वोत्तमं प्रिये।
येन शास्त्रेण देवेशि नरैः कालः प्रबुध्यते॥ ६
अहः पक्षं तथा मासमृतुं चायनवत्सरौ।
स्थूलसूक्ष्मगतैश्चिह्नैर्बहिरंतर्गतैस्तथा ॥ ७
तत्तेऽहं सम्प्रवक्ष्यामि शृणु तत्त्वेन सुन्दरि।
लोकानामुपकारार्थं वैराग्यार्थमुमेऽधुना॥ ८
अकस्मात्पांडुरं देहमूर्ध्वरागं समन्ततः।
तदा मृत्युं विजानीयात्षण्मासाभ्यन्तरे प्रिये॥ ९

मुखं कर्णौ तथा चक्षुर्जिह्वास्तम्भो यदा भवेत्।
तदा मृत्युं विजानीयात्षण्मासाभ्यन्तरे प्रिये॥ १०

रौरवानुगतं भद्रे ध्वनिं नाकर्णयेद् द्रुतम्।
षण्मासाभ्यन्तरे मृत्युर्ज्ञातव्यः कालवेदिभिः॥ ११

रविसोमाग्निसंयोगाद्यदोद्योतं न पश्यति।
कृष्णं सर्वं समस्तं च षण्मासं जीवितं तथा॥ १२

वामहस्तो यदा देवि सप्ताहं स्पन्दते प्रिये।
जीवितं तु तदा तस्य मासमेकं न संशयः॥ १३

उन्मीलयन्ति गात्राणि तालुकं शुष्यते यदा।
जीवितं तु तदा तस्य मासमेकं न संशयः॥ १४

नासा तु स्रवते यस्य त्रिदोषे पक्षजीवितम्।
वक्त्रं कण्ठं च शुष्येत षण्मासान्ते गतायुषः॥ १५

पार्वती बोलीं—हे भगवन्! हे देव! विधि-विधानसे जिन मन्त्रोंके द्वारा आपकी पूजा होती है, वह सब आपकी कृपासे मैंने जान लिया, किंतु हे प्रभो! मुझे कालज्ञानके प्रति आज भी एक संशय बना हुआ है, हे देव! मृत्युका चिह्न तथा आयुका प्रमाण क्या है? हे नाथ! यदि मैं आपकी प्रिया हूँ तो यह सब मुझसे कहिये। तब उन देवीके ऐसा पूछनेपर महेश्वर कहने लगे॥ ३—५॥

ईश्वर बोले—हे प्रिये! हे देवेशि! मैं सर्वश्रेष्ठ शास्त्रको तुमसे सत्य-सत्य कहूँगा, जिस शास्त्रके द्वारा मनुष्योंको कालका ज्ञान हो जाता है। हे उमे! भीतरी एवं बाहरी, स्थूल एवं सूक्ष्म चिह्नोंद्वारा जिस प्रकार उसकी शेष आयुके दिन, पक्ष, मास, ऋतु, अयन एवं वर्षका ज्ञान हो जाता है; वह सब मैं लोककल्याण एवं वैराग्यके लिये तुमसे तत्त्वपूर्वक कहूँगा। हे सुन्दरि! अब तुम श्रवण करो॥ ६—८॥

हे प्रिये! यदि मनुष्यका शरीर सभी ओरसे अचानक पीला पड़ जाय और ऊपरसे लाल दिखायी पड़ने लगे तो छः मासके भीतर मृत्युको जानना चाहिये॥ ९॥

हे प्रिये! जब मुख, कान, आँख एवं जिह्वाका [अचानक] स्तम्भन हो जाय तो भी छः मासके भीतर मृत्युको जान लेना चाहिये॥ १०॥

हे भद्रे! यदि पीछेसे आती हुई भयावह ध्वनि शीघ्र न सुनायी पड़े, तो भी कालवेत्ताओंको छः मासके भीतर मृत्यु जान लेना चाहिये॥ ११॥

सूर्य, चन्द्रमा एवं अग्निके रहनेपर भी यदि प्रकाश न दिखायी पड़े और सब कुछ काला दिखायी पड़े तो उसका जीवन छः मासतक ही रहता है॥ १२॥

हे देवि! हे प्रिये! जब बायाँ हाथ एक सप्ताहतक फड़कता रहे, तब उसका जीवन केवल एक महीनेभर रहता है, इसमें सन्देह नहीं है॥ १३॥

जब देहमें टूटन हो एवं तालु सूख जाय, तब उसका जीवन एक मासतक रहता है, इसमें सन्देह नहीं है॥ १४॥

त्रिदोष हो जानेपर जिसकी नासिका बहती रहे, उसका जीवन एक पक्षभर रहता है और जिसका कण्ठ एवं मुख सूखने लगे, वह छः मासमें मृत्युको प्राप्त हो जाता है॥ १५॥

स्थूलजिह्वा भवेद्यस्य द्विजा: क्लिद्यन्ति भामिनि।
षण्मासाज्जायते मृत्युश्चिह्नैस्तैरुपलक्षयेत्॥ १६

हे भामिनि! जिसकी जीभ मोटी हो जाय और दाँतोंसे लार बहने लगे तो उन चिह्नोंसे जान लेना चाहिये कि छ: मासमें उसकी मृत्यु हो जायगी॥ १६॥

अंबुतैलघृतस्थं तु दर्पणे वरवर्णिनि।
न पश्यति यदात्मानं विकृतं पलमेव च॥ १७

षण्मासायु: स विज्ञेय: कालचक्रं विजानता।
अन्यच्च शृणु देवेशि येन मृत्युर्विबुद्ध्यते॥ १८

शिरोहीनां यदा छायां स्वकीयामुपलक्षयेत्।
अथवा छायया हीनो मासमेकं न जीवति॥ १९

हे वरवर्णिनि! जब मनुष्य जल, तेल, घी तथा दर्पणमें अपनी छाया न देख सके अथवा विकृत छाया दिखायी पड़े तो कालचक्रके जाननेवालोंको उसे छ: मासपर्यन्त आयुवाला जानना चाहिये। हे देवेशि! अब अन्य चिह्नोंको सुनिये, जिससे मृत्युका ज्ञान हो जाता है। जब मनुष्य अपनी छायाको सिरविहीन देखे अथवा [अपनेको] छायासे रहित देखे, तब वह एक मास भी जीवित नहीं रहता है॥ १७—१९॥

आंगिकानि मयोक्तानि मृत्युचिह्नानि पार्वति।
बाह्यस्थानि ब्रुवे भद्रे चिह्नानि शृणु सांप्रतम्॥ २०

हे पार्वति! हे भद्रे! मैंने इन अंगसम्बन्धी मृत्युचिह्नोंका वर्णन किया। हे भद्रे! अब मैं बाहरी चिह्नोंको कह रहा हूँ, तुम सुनो॥ २०॥

रश्मिहीनं यदा देवि भवेत्सोमार्कमण्डलम्।
दृश्यते पाटलाकारं मासार्धेन विपद्यते॥ २१

हे देवि! जब सूर्यमण्डल अथवा चन्द्रमण्डल किरणोंसे रहित प्रतीत हो अथवा लाल वर्णवाला दिखायी पड़े, तब वह [व्यक्ति] आधे महीनेमें मर जाता है॥ २१॥

अरुंधतीं महायानमिंदुं लक्षणवर्जितम्।
अदृष्टतारको योऽसौ मासमेकं स जीवति॥ २२

जो [प्राणी] अरुन्धती तारा, महायान तथा चन्द्रमाको लक्षणोंसे हीन देखे या कि इनको देख न सके और तारोंको भी न देख सके तो वह एक मासपर्यन्त जीवित रहता है॥ २२॥

दृष्टे ग्रहे च दिङ्मोह: षण्मासाज्जायते ध्रुवम्।
उतथ्यं न ध्रुवं पश्येद्यदि वा रविमण्डलम्॥ २३

रात्रौ धनुर्यदा पश्येन्मध्याह्ने चोल्कपातनम्।
वेष्ट्यते गृध्रकाकैश्च षण्मासायुर्न संशय:॥ २४

ग्रहोंके दिखायी पड़नेपर भी यदि दिशाभ्रम हो जाय अथवा उतथ्य [नामक तारा], ध्रुव एवं सूर्यमण्डलको न देख सके तो उसकी मृत्यु छ: महीनेके भीतर हो जाती है। यदि [व्यक्ति] रात्रिमें इन्द्रधनुष एवं मध्याह्नमें उल्कापात देखे अथवा उसे काक और गीध घेरने लगें, तो छ: महीनेके भीतर मर जायगा, इसमें सन्देह नहीं है॥ २३-२४॥

ऋषय: स्वर्गपंथाश्च दृश्यन्ते नैव चाम्बरे।
षण्मासायुर्विजानीयात्पुरुषै: कालवेदिभि:॥ २५

यदि [व्यक्तिको] आकाशमण्डलमें स्वर्गमार्ग [छायापथ] और सप्तर्षिगण न दिखायी पड़ें, तो कालवेत्ता पुरुष उसे छ: मासकी आयुवाला समझें॥ २५॥

अकस्माद्राहुणा ग्रस्तं सूर्यं वा सोममेव च।
दिक्चक्रं भ्रान्तवत्पश्येत्षण्मासान्म्रियते स्फुटम्॥ २६

यदि वह अचानक सूर्य अथवा चन्द्रमाको राहुके द्वारा ग्रस्त अथवा दिशाओंको घूमता हुआ देखे तो वह अवश्य ही छ: मासके भीतर मर जाता है॥ २६॥

नीलाभिर्मक्षिकाभिश्च ह्यकस्माद् वेष्ट्यते पुमान्।
मासमेकं हि तस्यायुर्ज्ञातव्यं परमार्थतः ॥ २७

गृध्रः काकः कपोतश्च शिरश्चाक्रम्य तिष्ठति।
शीघ्रं तु म्रियते जन्तुर्मासैकेन न संशयः ॥ २८

यदि मनुष्यको अचानक नीले रंगकी मक्खियाँ घेर लें तो उसकी आयु निश्चितरूपसे एक मास जाननी चाहिये। यदि गीध, कौआ अथवा कबूतर सिरपर आकर बैठ जाय तो वह प्राणी शीघ्र ही एक मासके भीतर मर जाता है, इसमें सन्देह नहीं है ॥ २७-२८ ॥

एवं चारिष्टभेदस्तु बाह्यस्थः समुदाहृतः।
मानुषाणां हितार्थाय संक्षेपेण वदाम्यहम्॥ २९

हस्तयोरुभयोर्देवि यथा कालं विजानते।
वामदक्षिणयोर्मध्ये प्रत्यक्षं चेत्युदाहृतम्॥ ३०

इस प्रकार मनुष्योंके हितके लिये बाहरी अरिष्ट-लक्षणोंको कह दिया, अब अन्य लक्षण भी संक्षेपमें कहता हूँ। हे सुन्दरि! जिस प्रकार मनुष्यको अपने बायें एवं दाहिने हाथमें प्रत्यक्ष आता हुआ काल दिखायी पड़ सके, वे सब लक्षण कहे जा रहे हैं ॥ २९-३० ॥

एवं पक्षौ स्थितौ द्वौ तु समासात्सुरसुंदरि।
शुचिर्भूत्वा स्मरन्देवं सुस्नातः संयतेन्द्रियः ॥ ३१

हस्तौ प्रक्षाल्य दुग्धेनालक्तकेन विमर्दयेत्।
गंधैः पुष्पैः करौ कृत्वा मृगयेच्च शुभाशुभम्॥ ३२

हे सुरसुन्दरि! इस प्रकार वे दोनों पक्ष स्थित हैं, ऐसा संक्षेपमें जानना चाहिये। उस समय पवित्र होकर शिवनामस्मरण करते हुए जितेन्द्रिय व्यक्ति भलीभाँति स्नान करके दोनों हाथोंको दूधसे धोकर आलतासे रगड़े, पुनः हाथोंमें गन्ध एवं पुष्प लेकर शुभाशुभका विचार करे ॥ ३१-३२ ॥

कनिष्ठामादितः कृत्वा यावदंगुष्ठकं प्रिये।
पर्वत्रयक्रमेणैव हस्तयोरुभयोरपि ॥ ३३
प्रतिपदादि विन्यस्य तिथिं प्रतिपदादितः।
संपुटाकारहस्तौ तु पूर्वदिङ्मुखसंस्थितः ॥ ३४
स्मरेन्नवात्मकं मन्त्रं यावदष्टोत्तरं शतम्।
निरीक्षयेत्ततो हस्तौ प्रतिपर्वणि यत्नतः ॥ ३५
तस्मिन्पर्वणि सा रेखा दृश्यते भृङ्गसन्निभा।
तत्तिथौ हि मृतिर्ज्ञेया कृष्णे शुक्ले तथा प्रिये ॥ ३६

हे प्रिये! कनिष्ठिकासे लेकर अंगुष्ठपर्यन्त दोनों हाथोंके तीन पोरोंपर क्रमसे प्रतिपदा आदिका न्यास करके प्रतिपदा आदि तिथियोंसे दोनों हाथोंको सम्पुटितकर पूर्वाभिमुख हो एक सौ आठ बार नवाक्षर मन्त्रका जप करे। इसके बाद यत्नपूर्वक दोनों हाथोंके प्रत्येक पर्वको देखे। हे प्रिये! जिस पर्वपर भौंरेके समान काली रेखा दिखायी पड़े, कृष्णपक्ष अथवा शुक्लपक्षमें उसी तिथिको मृत्यु जानना चाहिये ॥ ३३—३६ ॥

अधुना नादजं वक्ष्ये संक्षेपात्काललक्षणम्।
गमागमं विदित्वा तु कर्म कुर्याच्छृणु प्रिये ॥ ३७

हे प्रिये! अब मैं नादसे प्रकट होनेवाले काल-लक्षणको संक्षेपमें कहूँगा, उसका श्रवण करो, इसमें श्वासके गमन-आगमनको जानकर कर्म करना चाहिये ॥ ३७ ॥

आत्मविज्ञानं सुश्रोणि वारं ज्ञात्वा तु यत्नतः।
क्षणं त्रुटिर्लवं चैव निमेषं काष्ठकालिकम् ॥ ३८
मुहूर्तकं त्वहोरात्रं पक्षमासर्तुवत्सरम्।
अब्दं युगं तथा कल्पं महाकल्पं तथैव च ॥ ३९
एवं स हरते कालः परिपाट्या सदाशिवः।
वामदक्षिणमध्ये तु पथि त्रयमिदं स्मृतम्॥ ४०

हे सुश्रोणि! उस नादके दैनन्दिन संचारको जानकर यत्नसे अपना भी ज्ञान कर लेना चाहिये। क्षण, त्रुटि, लव, निमेष, काष्ठा, मुहूर्त, दिन-रात, पक्ष, मास, ऋतु, वत्सर, अब्द, युग, कल्प एवं महाकल्प—यही काल कहा जाता है, कालस्वरूप सदाशिव इसी परिपाटीसे संहरण करते हैं। वाम, दक्षिण एवं मध्य—ये संचारके तीन मार्ग कहे गये हैं ॥ ३८—४० ॥

दिनानि पञ्च चारभ्य पञ्चविंशद्दिनावधि।
वामाचारगतौ नादः प्रमाणं कथितं तव॥ ४१
भूतरंध्रं दिशश्चैव ध्वजश्च वरवर्णिनि।
वामचारगतो नादः प्रमाणं कालवेदिनः॥ ४२

पाँच दिनसे लेकर पच्चीस दिनपर्यन्त वामाचार गतिमें नाद होता है। यह नादप्रमाण मैंने आपसे कह दिया। हे वरवर्णिनि! कालवेत्ताओंको भूत, रन्ध्र, दिशा, ध्वजारूप नादप्रमाण वामाचार गतिमें जानना चाहिये॥ ४१-४२॥

ऋतोर्विकारभूताश्च गुणास्तत्रैव भामिनि।
प्रमाणं दक्षिणं प्रोक्तं ज्ञातव्यं प्राणवेदिभिः॥ ४३

भूतसंख्या यदा प्राणान्वहन्ते च इडादयः।
वर्षस्याभ्यन्तरे तस्य जीवितं हि न संशयः॥ ४४

हे भामिनि! यदि उसमें ऋतुके विकारभूत गुण प्रतीत हों, तो उसे दक्षिण प्रमाणवाला नाद कहा गया है—ऐसा प्राणवेत्ताओंको जानना चाहिये और जब भूतसंख्यक इडादि नाड़ियाँ प्राणोंका वहन करती हैं, तो वर्षके भीतर मृत्यु हो जाती है, इसमें संशय नहीं है॥ ४३-४४॥

दशघस्त्रप्रवाहेण ह्यब्दमानं स जीवति।
पञ्चदशप्रवाहेण ह्यब्दमेकं गतायुषम्॥ ४५
विंशद्दिनप्रवाहेण षण्मासं लक्षयेत्तदा।
पञ्चविंशद्दिनमितं वहते वामनाडिका॥ ४६
जीवितं तु तदा तस्य त्रिमासं हि गतायुषः।
षड्विंशद्दिनमानेन मासद्वयमुदाहृतम्॥ ४७
सप्तविंशद्दिनमितं वहते त्वत्यविश्रमा।
मासमेकं समाख्यातं जीवितं वामगोचरे॥ ४८

नाड़ियोंके दस दिनपर्यन्त चलनेसे वह वर्षभर जीता है और पन्द्रह दिनोंतक चलनेसे वह एक वर्षके भीतर ही मर जाता है। बीस दिनतक प्रवाहित होते रहनेसे छः महीनेतक जीवित समझना चाहिये। यदि बायीं नाड़ी पन्द्रह दिनोंतक चलती रहे तो उस मरणोन्मुख व्यक्तिका जीवन तीन महीनेतक शेष रहता है। छब्बीस दिनतक प्रवाहित रहनेसे उसकी आयु दो मास कही गयी है। यदि नाड़ी सत्ताईस दिनतक बायीं ओर अविश्रान्त चलती रहे तो उसका जीवन एक मास शेष कहा गया है॥ ४५—४८॥

एतत्प्रमाणं विज्ञेयं वामवायुप्रमाणतः।
सव्येतरे दिनान्येव चत्वारश्चानुपूर्वशः॥ ४९

चतुःस्थाने स्थिता देवि षोडशैताः प्रकीर्तिताः।
तेषां प्रमाणं वक्ष्यामि साम्प्रतं हि यथार्थतः॥ ५०

इस प्रकार वाम वायुके प्रमाणसे नादका प्रमाण जानना चाहिये। दाहिनी ओर लगातार चलते रहनेसे चार दिनतक जीवन शेष रहता है। हे देवि! नाड़ियाँ चार स्थानोंमें स्थित रहती हैं, सब मिलाकर ये सोलह नाड़ियाँ कही गयी हैं। अब मैं उनका ठीक-ठीक प्रमाण कहूँगा॥ ४९-५०॥

षड्दिनान्यादितः कृत्वा संख्यायाश्च यथाविधि।
एतदन्तर्गते चैव वामरंध्रे प्रकाशितम्॥ ५१

छः दिनोंसे लेकर संख्याकी समाप्तितक अर्थात् नौ दिनतक वाम नासारन्ध्रमें प्राणवायुकी स्थितिका शास्त्रविधिसे विचार किया जाता है॥ ५१॥

षड्दिनानि यदा रूढं द्विवर्षं च स जीवति।
मासानष्टौ विजानीयाद्दिनान्यष्टौ च तानि तु ॥ ५२

प्राणाः सप्तदशे चैव विद्धि वर्षं न संशयः।
सप्तमासान्विजानीयाद्दिनैः षड्भिर्न संशयः॥ ५३
अष्टघस्त्रप्रभेदेन द्विवर्षं हि स जीवति।
चतुर्मासा हि विज्ञेयाश्चतुर्विंशद्दिनावधि॥ ५४

यदि छः दिनतक नाद प्राणवायुपर चढ़ा रहे तो वह मनुष्य दो वर्ष आठ महीने आठ दिन जीता है—ऐसा जानना चाहिये। यदि सत्रह दिनतक प्राण आरूढ़ रहे तो वह एक वर्ष सात महीने छः दिनतक जीता है, इसमें संशय नहीं है। आठ दिनतक निरन्तर प्राणवायुके चलनेसे वह दो वर्ष चार महीने चौबीस दिनतक जीता है—ऐसा जानना चाहिये॥ ५२—५४॥

यदा नवदिनं प्राणा वहंत्येव त्रिमासकम्।
मासद्वयं च द्वे मासे दिना द्वादश कीर्तिताः॥ ५५
पूर्ववत्कथिता ये तु कालं तेषां तु पूर्वकम्।
अवान्तरदिना ये तु तेन मासेन कथ्यते॥ ५६

जब नौ दिन प्राणवायु चले तो सात महीने बारह दिनतक आयु कही गयी है। जो प्राण पहलेके समान कहे गये हैं, उनके अन्तर्गत उतने महीने और उतने दिनोंकी संख्या भी जान लेनी चाहिये॥ ५५-५६॥

एकादशप्रवाहेण वर्षमेकं स जीवति।
मासा नव तथा प्रोक्ता दिनान्यष्टमितान्यपि॥ ५७
द्वादशेन प्रवाहेण वर्षमेकं स जीवति।
मासान् सप्त विजानीयात्षड्घस्त्रांश्चाप्युदाहरेत्॥ ५८

ग्यारह दिन लगातार प्राणवायु चलते रहनेपर वह एक वर्ष नौ महीने आठ दिनतक जीवित रहता है। बारह दिनतक प्रवाहित रहनेसे वह एक वर्ष सात महीने छः दिनतक जीता है—ऐसा जानना चाहिये॥ ५७-५८॥

नाडी यदा च वहति त्रयोदशदिनावधि।
संवत्सरं भवेत्तस्य चतुर्मासाः प्रकीर्तिताः॥ ५९
चतुर्विंशद्दिनं शेषं जीवितं च न संशयः।
प्राणवाहा यदा वामे चतुर्दशदिनानि तु॥ ६०
संवत्सरं भवेत्तस्य मासाः षट् च प्रकीर्तिताः।
चतुर्विंशद्दिनान्येव जीवितं च न संशयः॥ ६१

यदि तेरह दिनतक नाड़ी चले तो [व्यक्तिकी आयु] एक वर्ष चार महीने चौबीस दिन [शेष] जानना चाहिये, इसमें संशय नहीं है। यदि प्राणवाही नाड़ियाँ चौदह दिन लगातार बायीं ओरसे चलें तो उसका जीवन एक वर्ष छः मास चौबीस दिनपर्यन्त शेष जानना चाहिये, इसमें संशय नहीं है॥ ५९—६१॥

पञ्चदशप्रवाहेण नव मासान्स जीवति।
चतुर्विंशद्दिनान्येव कथितं कालवेदिभिः॥ ६२
षोडशाहप्रवाहेण दशमासान्स जीवति।
चतुर्विंशद्दिनाधिक्यं कथितं कालवेदिभिः॥ ६३

पन्द्रह दिनतक प्रवाहित रहनेसे वह नौ महीने चौबीस दिनतक जीवित रहता है—ऐसा कालवेत्ताओंने कहा है। सोलह दिनतक नाड़ीप्रवाहसे वह दस महीने चौबीस दिन जीवित रहता है—ऐसा कालविदोंने कहा है॥ ६२-६३॥

सप्तदशप्रवाहेण नवमासैर्गतायुषम्।
अष्टादश दिनान्यत्र कथितं साधकेश्वरि॥ ६४

हे साधकेश्वरि! सत्रह दिनतक प्रवाहसे नौ महीने अठारह दिनतक जीवन शेष कहा गया है॥ ६४॥

वामचारं यदा देवि ह्यष्टादशदिनावधिः।
जीवितं चाष्टमासं तु घस्त्रा द्वादश कीर्तिताः॥ ६५
चतुर्विंशद्दिनान्यत्र निश्चयेनावधारय।

हे देवि! जब प्राणवायु बायीं ओर अठारह दिनोंतक चलता रहे तो आठ महीने बारह दिन अथवा चौबीस दिनतक जीवन शेष कहा गया है—ऐसा निश्चय समझिये॥ ६५½॥

प्राणवाहो यदा देवि त्रयोविंशद्दिनावधिः॥ ६६
चत्वारः कथिता मासाः षड्दिनानि तथोत्तरे।
चतुर्विंशप्रवाहेण त्रीन्मासांश्च स जीवति॥ ६७
दिनान्यत्र दशाष्टौ स संहरत्येव चारतः।
अवान्तरदिने यस्तु संक्षेपात्ते प्रकीर्तिताः॥ ६८

हे देवि! जब तेईस दिनतक प्राण प्रवाहित रहे तो चार महीने, छः दिनतक जीवन शेष कहा गया है। चौबीस दिनके प्रवाहसे वह तीन माह अठारह दिनतक जीवित रहता है। इस प्रकार मैंने प्राणवायुके संचारसे अवान्तर दिनके जीवनकालकी संख्या तुमसे कही॥ ६६—६८॥

वामचारः समाख्यातो दक्षिणं शृणु सांप्रतम्।
अष्टाविंशप्रवाहेण तिथिमानेन जीवति॥ ६९
प्रवाहेण दशाहेन तत्संस्थेन विपद्यते।
त्रिंशद्घस्त्रप्रवाहेण पञ्चाहेन विपद्यते॥ ७०

इस प्रकार मैंने वामसंचार कह दिया, अब दक्षिण प्राणसंचारका श्रवण करो। अट्ठाईस दिनके प्रवाहसे वह पन्द्रह दिनोंतक जीता है। दस दिनके प्रवाहसे वह उतने ही [दस] दिनोंमें मर जाता है और तीस दिनके प्रवाहसे पाँच दिनोंमें मर जाता है।

एकत्रिंशद्यदा देवि वहते च निरंतरम्।
दिनत्रयं तदा तस्य जीवितं हि न संशयः॥ ७१

द्वात्रिंशत्प्राणसंख्या च यदा हि वहते रविः।
तदा तु जीवितं तस्य द्विदिनं हि न संशयः॥ ७२

हे देवि! जब इकतीस दिन लगातार प्राणवायु प्रवाहित होता रहे, तब उस व्यक्तिका जीवन तीन दिन रहता है, इसमें सन्देह नहीं है। जब सूर्य बत्तीस प्राणसंख्याका वहन करता है, तब उसका जीवन दो दिनतक रहता है, इसमें सन्देह नहीं है॥ ६९—७२॥

दक्षिणः कथितः प्राणो मध्यस्थं कथयामि ते।
एकभागगतो वायुप्रवाहो मुखमण्डले॥ ७३

धावमानप्रवाहेण दिनमेकं स जीवति।
चक्रमेतत्परासोर्हि पुराविद्भिरुदाहृतम्॥ ७४

मैंने दक्षिण प्राणवायुका वर्णन किया, अब तुमसे मध्यस्थ प्राणका वर्णन करता हूँ। जब वायुका प्रवाह मुखमण्डलमें एक ओर हो, तब उस दौड़ते हुए प्रवाहसे वह एक दिन जीवित रहता है। इस प्रकार प्राचीन विद्वानोंने मरणोन्मुख व्यक्तिके कालचक्रका वर्णन किया है॥ ७३-७४॥

एतत्ते कथितं देवि कालचक्रं गतायुषः।
लोकानां च हितार्थाय किमन्यच्छ्रोतुमिच्छसि॥ ७५

हे देवि! मैंने लोकहितके निमित्त तुमसे समाप्त आयुवाले व्यक्तिके कालचक्रका वर्णन कर दिया। अब और क्या सुनना चाहती हो?॥ ७५॥

इति श्रीशिवमहापुराणे पञ्चम्यामुमासंहितायां कालज्ञानवर्णनं नाम पञ्चविंशोऽध्यायः॥ २५॥

॥ इस प्रकार श्रीशिवमहापुराणके अन्तर्गत पाँचवीं उमासंहितामें कालज्ञानवर्णन नामक पच्चीसवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ २५॥

अथ षड्विंशोऽध्यायः

योगियोंद्वारा कालकी गतिको टालनेका वर्णन

देव्युवाच

कथितं तु त्वया देव कालज्ञानं यथार्थतः।
कालस्य वञ्चनं ब्रूहि यथा तत्त्वेन योगिनः॥ १

कालस्तु सन्निकृष्टो हि वर्तते सर्वजन्तुषु।
यथा चास्य न मृत्युश्च वञ्चते कालमागतम्॥ २

तथा कथय मे देव प्रीतिं कृत्वा ममोपरि।
योगिनां च हिताय त्वं ब्रूहि सर्वसुखप्रद॥ ३

देवी बोलीं—हे देव! आपने यथार्थरूपसे कालज्ञानका वर्णन किया, योगिजन जिस प्रकार कालका वंचन करते हैं, आप उसे विधिपूर्वक कहिये। काल सभी प्राणियोंके सन्निकट घूमता है, किंतु योगी आये हुए कालको भी वंचित कर देता है, जिससे उसकी मृत्यु नहीं होती है। हे देव! मेरे ऊपर कृपा करके आप इसका वर्णन करें। हे सर्वसुखद! योगियोंके हितके लिये इसका वर्णन करें॥ १—३॥

शंकर उवाच

शृणु देवि प्रवक्ष्यामि पृष्टोऽहं यत्त्वया शिवे।
समासेन च सर्वेषां मानुषाणां हितार्थतः॥ ४

पृथिव्यापस्तथा तेजो वायुराकाशमेव च।
एतेषां हि समायोगः शरीरं पाञ्चभौतिकम्॥ ५

शिवजी बोले—हे देवि! हे शिवे! तुमने मुझसे जो पूछा है, उसे मैं सभी मनुष्योंके हितार्थ संक्षेपमें कहूँगा, तुम सुनो। पृथ्वी, जल, तेज, वायु एवं आकाश—इनका समायोग ही पांचभौतिक शरीर है॥ ४-५॥

आकाशस्तु ततो व्यापी सर्वेषां सर्वगः स्थितः।
आकाशे तु विलीयन्ते संभवन्ति पुनस्ततः॥ ६

आकाशतत्त्व सर्वव्यापी है तथा सभीमें सर्वत्र स्थित है। आकाशमें ही सभी लय हो जाते हैं एवं पुनः उसीसे

वियोगे तु सदा कस्य स्वं धाम प्रतिपेदिरे।
तस्य न स्थिरता चास्ति सन्निपातस्य सुंदरि॥ ७

प्रकट भी हो जाते हैं। हे सुन्दरि! आकाशसे वियुक्त हो जानेपर पंचभूत अपने-अपने स्थानमें मिल जाते हैं, उस सन्निपातकी स्थिरता नहीं है॥ ६-७॥

ज्ञानिनोऽपि तथा तत्र तपोमन्त्रबलादपि।
ते सर्वे सुविजानन्ति सर्वमेतन्न संशयः॥ ८

सभी ज्ञानी लोग तपस्या एवं मन्त्रके बलसे यह सब भलीभाँति जान लेते हैं। इसमें संशय नहीं है॥ ८॥

देव्युवाच

खं तेन यन्नश्यति घोररूपः
कालः करालस्त्रिदिवैकनाथः।
दग्धस्त्वया त्वं पुनरेव तुष्टः
स्तोत्रैः स्तुतः स्वां प्रकृतिं स लेभे॥ ९

देवी बोलीं—आकाशतत्त्व उस घोररूप कालके द्वारा नष्ट हो जाता है; क्योंकि काल कराल एवं त्रिलोकीका स्वामी है। आपने उस कालको भी जला दिया था, किंतु स्तोत्रोंद्वारा स्तुति किये जानेपर आप उसपर सन्तुष्ट हो गये और उसने पुनः अपना स्वरूप प्राप्त कर लिया॥ ९॥

त्वया स चोक्तः कथया जनाना-
मदृष्टरूपः प्रचरिष्यसीति।
दृष्टस्त्वया तत्र महाप्रभावः
प्रभोर्वरात्ते पुनरुत्थितश्च॥ १०

आपने वार्तालापके माध्यमसे उससे कहा कि तुम लोगोंसे अदृश्य रहकर विचरण करोगे। उस समय आपने उसे महान् प्रभाववाला देखा और आप प्रभुके वरके प्रभावसे वह पुनः उठ खड़ा हुआ॥ १०॥

तदद्य भोः काल इहास्ति किंचित्
निहन्यते येन वदस्व तन्मे।
त्वं योगिवर्यः प्रभुरात्मतन्त्रः
परोपकारात्ततनुर्महेश॥ ११

हे महेश! क्या इस जगत्में कोई साधन है, जिससे काल मारा जा सके, उसे मुझको बताइये; आप योगियोंमें श्रेष्ठ, प्रभावशाली तथा स्वतन्त्र हैं और परोपकारके लिये शरीर धारण किये हुए हैं॥ ११॥

शंकर उवाच

न हन्यते देववरैस्तु दैत्यैः
सयक्षरक्षोरगमानुषैश्च।
ये योगिनो ध्यानपराः सदेहा
भवन्ति ते घ्नन्ति सुखेन कालम्॥ १२

शंकरजी बोले—हे देवि! बड़े-बड़े देवताओं, दैत्यों, यक्षों, राक्षसों, सर्पों एवं मनुष्योंसे भी काल नहीं मारा जा सकता है, किंतु जो ध्यानपरायण देहधारी योगी होते हैं, वे सरलतापूर्वक कालको मार डालते हैं॥ १२॥

सनत्कुमार उवाच

एतच्छ्रुत्वा त्रिभुवनगुरोः प्राह गौरी विहस्य
सत्यं त्वं मे वद कथमसौ हन्यते येन कालः।
शम्भुस्तामाह सद्यो हिमकरवदने योगिनो ये क्षिपन्ति
कालव्यालं सकलमनघास्तच्छृणुष्वैकचित्ताः॥ १३

सनत्कुमार बोले—तीनों लोकोंके गुरु शिवकी बात सुनकर पार्वतीने हँसकर कहा—आप मुझे सच-सच बताइये कि योगी किस प्रकार इस कालको अपने वशमें कर लेते हैं? तब शिवजीने उनसे कहा—हे चन्द्रमुखी! निष्पाप तथा एकाग्रचित्त जो योगीजन हैं, वे जिस प्रकार [निमेषादि] कलाओंवाले कालरूपी सर्पको शीघ्र ही नष्ट कर देते हैं, उसे तुम सुनो॥ १३॥

शंकर उवाच

पञ्चभूतात्मको देहः सदा युक्तस्तु तद्गुणैः।
उत्पाद्यते वरारोहे तद्विलीनो हि पार्थिवः॥ १४

शंकरजी बोले—हे वरारोहे! यह पंचभूतात्मक शरीर सदा उनके रूप-रसादि गुणोंसे युक्त होकर उत्पन्न होता है और पुनः यह पार्थिव शरीर उन्हींमें विलीन भी हो जाता है॥ १४॥

आकाशाज्जायते वायुर्वायोस्तेजश्च जायते।
तेजसोऽम्बु विनिर्दिष्टं तस्माद्धि पृथिवी भवेत्॥ १५

पृथिव्यादीनि भूतानि गच्छन्ति क्रमशः परम्।
धरा पञ्चगुणा प्रोक्ता ह्यापश्चैव चतुर्गुणाः॥ १६

त्रिगुणं च तथा तेजो वायुर्द्विगुण एव च।
शब्दैकगुणमाकाशं पृथिव्यादिषु कीर्तितम्॥ १७

शब्दः स्पर्शश्च रूपं च रसो गन्धश्च पञ्चमः।
विजहाति गुणं स्वं स्वं तदा भूतं विपद्यते॥ १८

यदा गुणं विगृह्णाति प्रादुर्भूतं तदुच्यते।
एवं जानीहि देवेशि पञ्चभूतानि तत्त्वतः॥ १९

तस्माद्धि योगिनां नित्यं स्वस्वकालेंऽशजा गुणाः।
चिन्तनीयाः प्रयत्नेन देवि कालजिगीषुणा॥ २०

देव्युवाच

कथं जेजीयते कालो योगिभिर्योगवित्प्रभो।
ध्यानेन चाथ मन्त्रेण तत्सर्वं कथयस्व मे॥ २१

शंकर उवाच

शृणु देवि प्रवक्ष्यामि योगिनां हितकाम्यया।
परज्ञानप्रकथनं न देयं यस्य कस्यचित्॥ २२

श्रद्दधानाय दातव्यं भक्तियुक्ताय धीमते।
अनास्तिकाय शुद्धाय धर्मनित्याय भामिनि॥ २३

सुश्वासेन सुशय्यायां योगं युञ्जीत योगवित्।
दीपं विनांधकारे तु प्रजाः सुप्तेषु धारयेत्॥ २४

तर्जन्या पिहितौ कर्णौ पीडयित्वा मुहूर्त्तकम्।
तस्मात्संश्रूयते शब्दस्तुदन्वह्निसमुद्भवः॥ २५

सन्ध्यातो भुक्तमेवं हि चावसन्नं क्षणादपि।
सर्वरोगान्निहन्त्याशु ज्वरोपद्रवकान्बहून्॥ २६

आकाशसे वायु उत्पन्न होता है, वायुसे तेज उत्पन्न होता है, तेजसे जल उत्पन्न होता है और जलसे पृथ्वी उत्पन्न होती है। ये क्रमशः पृथ्वी आदि पंचभूत एक-दूसरेमें पूर्व-पूर्वके क्रमसे विलीन होते हैं। पृथ्वी पाँच गुणोंवाली कही गयी है। जल चार गुणोंवाला, तेज तीन गुणोंवाला तथा वायु दो गुणोंवाला है। इन पृथिवी आदिमें आकाशतत्त्व एकमात्र शब्द गुणवाला कहा गया है॥ १५—१७॥

जब पंचमहाभूत शब्द, स्पर्श, रूप, रस और पाँचवाँ गन्ध—अपने-अपने इन गुणोंको त्याग देते हैं तो प्राणीकी मृत्यु हो जाती है और जब अपने-अपने गुणोंको ग्रहण करते हैं, तब उसीको जीवका प्रकट होना कहा जाता है। हे देवेशि! इस प्रकार पाँचों भूतोंको ठीक-ठीक जानो॥ १८-१९॥

अतः हे देवेशि! कालको जीतनेकी इच्छावाले योगीको यत्नपूर्वक अपने-अपने कालमें उसके अंशभूत हुए गुणोंपर विचार करना चाहिये॥ २०॥

पार्वतीजी बोलीं—हे योगवेत्ता प्रभो! योगी लोग ध्यानसे अथवा मन्त्रसे किस प्रकार कालको जीतते हैं, वह सब मुझसे कहिये?॥ २१॥

शंकरजी बोले—हे देवि! सुनो, मैं योगियोंके हितके लिये इसे कहूँगा, जिस किसीको इस उत्कृष्ट ज्ञानका उपदेश प्रदान नहीं करना चाहिये। हे भामिनि! इसका उपदेश श्रद्धालु, भक्त, बुद्धिमान्, आस्तिक, पवित्र तथा धर्मपरायण व्यक्तिको ही करना चाहिये॥ २२-२३॥

योगीको चाहिये कि उत्तम आसनपर विराजमान हो प्राणायामके द्वारा योगका अभ्यास करे, विशेषकर सब लोगोंके सो जानेपर बिना दीपके अन्धकारमें ही योगाभ्यास करना चाहिये॥ २४॥

एक मुहूर्ततक तर्जनी अँगुलीसे दोनों कान दबाकर बन्द रखे, ऐसा करनेसे [कुछ देर बाद] अग्निप्रेरित शब्द सुनायी पड़ने लगता है॥ २५॥

इससे सन्ध्याके बाद खाया हुआ अन्न क्षणभरमें पच जाता है और वह ज्वर आदि समस्त रोग-उपद्रवोंको शीघ्र नष्ट कर देता है॥ २६॥

यश्चोपलक्षयेन्नित्यमाकारं घटिकाद्वयम्।
जित्वा मृत्युं तथा कामं स्वेच्छया पर्यटेदिह ॥ २७

सर्वज्ञः सर्वदर्शी च सर्वसिद्धिमवाप्नुयात्।
यथा नदति खेऽब्दो हि प्रावृडद्भिः सुसंयतः ॥ २८

तं श्रुत्वा मुच्यते योगी सद्यः संसारबन्धनात्।
ततः स योगिभिर्नित्यं सूक्ष्मात् सूक्ष्मतरो भवेत् ॥ २९

जो योगी नित्य दो घड़ीपर्यन्त इस तरहके आकारका ध्यान करता है, वह काम तथा मृत्युको जीतकर अपनी इच्छासे इस लोकमें विचरण करता है और सर्वज्ञ तथा सर्वदर्शी होकर सम्पूर्ण सिद्धियोंको प्राप्त कर लेता है। वर्षाकालमें जिस प्रकार मेघ आकाशमें शब्द करते हैं, उसी प्रकारका यह शब्द है। उसे सुनकर योगी शीघ्र ही संसारबन्धनसे मुक्त हो जाता है। इसके बाद वह योगियोंद्वारा प्रतिदिन [चिन्तन किया जाता हुआ शब्द] सूक्ष्मसे भी सूक्ष्म होता जाता है ॥ २७—२९ ॥

एष ते कथितो देवि शब्दब्रह्मविधिक्रमः।
पलालमिव धान्यार्थी त्यजेद्ग्रन्थमशेषतः ॥ ३०

शब्दब्रह्म त्विदं प्राप्य ये केचिदन्यकांक्षिणः।
घ्नन्ति ते मुष्टिनाकाशं कामयन्ते क्षुधां तृषाम् ॥ ३१

हे देवि! इस प्रकार मैंने शब्दब्रह्मके ध्यानकी यह विधि तुमसे कह दी। जिस प्रकार धानको चाहनेवाला पुआलका त्याग कर देता है, वैसे योगीको सांसारिक बन्धनका पूर्णरूपसे त्याग कर देना चाहिये। इस शब्दब्रह्मको प्राप्तकर जो कोई भी लोग अन्य पदार्थोंकी इच्छा रखते हैं, वे मानो अपनी मुट्ठीसे आकाशका भेदन करना चाहते हैं और [इस अमृतोपम योगको पा करके भी] भूख-प्यासकी अपेक्षा रखते हैं ॥ ३०-३१ ॥

ज्ञात्वा परमिदं ब्रह्म सुखदं मुक्तिकारणम्।
अबाह्यमक्षरं चैव सर्वोपाधिविवर्जितम् ॥ ३२

मोहिताः कालपाशेन मृत्युपाशवशङ्गताः।
शब्दब्रह्म न जानन्ति पापिनस्ते कुबुद्धयः ॥ ३३

तावद् भ्रमन्ति संसारे यावद्धाम न विन्दते।
विदिते तु परे तत्त्वे मुच्यते जन्मबन्धनात् ॥ ३४

[शब्दब्रह्म नामसे कहे गये] परम सुख देनेवाले, मुक्तिके कारणस्वरूप, अन्तःकरणमें स्थित, अविनाशी तथा सभी उपाधियोंसे रहित इस परब्रह्मको जानकर मनुष्य मुक्त हो जाते हैं। जो इस शब्दब्रह्मको नहीं जानते, वे कालके पाशसे मोहित होकर मृत्युके वशमें होते हैं एवं वे पापी तथा कुबुद्धि हैं। वे संसारचक्रमें तभीतक भटकते रहते हैं, जबतक उन्हें धाम (सबका आश्रय) प्राप्त नहीं हो जाता। परमतत्त्वके ज्ञात हो जानेपर मनुष्य जन्म-मृत्युरूपी बन्धनसे छूट जाते हैं ॥ ३२—३४ ॥

निद्रालस्यं महाविघ्नं जित्वा शत्रुं प्रयत्नतः।
सुखासने स्थितो नित्यं शब्दब्रह्माभ्यसन्निति ॥ ३५

शतवृद्धः पुमाँल्लब्ध्वा यावदायुः समभ्यसेत्।
मृत्युञ्जयवपुस्तम्भ आरोग्यं वीर्यवर्द्धनम् ॥ ३६

योगीको चाहिये कि वह निद्रा-आलस्यरूपी महाविघ्नकारी शत्रुको यत्नपूर्वक जीतकर सुखद आसनपर बैठ करके नित्यप्रति शब्दब्रह्मका अभ्यास करे। सौ वर्षकी आयुवाला वृद्ध मनुष्य इसे प्राप्त करके जीवनपर्यन्त इसका अभ्यास करे तो उसे आरोग्यलाभ होता है। उसकी वीर्यवृद्धि होती है और वह मृत्युको जीतकर अपने शरीरको स्थिर रखता है ॥ ३५-३६ ॥

प्रत्ययो दृश्यते वृद्धे किं पुनस्तरुणे जने।
न चोङ्कारो न मन्त्रोऽपि नैव बीजं न चाक्षरम्॥ ३७

अनाहतमनुच्चार्यं शब्दब्रह्म शिवं परम्।
ध्यायन्ते देवि सततं सुधियो यत्नतः प्रिये॥ ३८

इस प्रकारका विश्वास जब वृद्धमें देखा जाता है, तब युवकजनमें इसकी बात ही क्या? यह शब्दब्रह्म न ॐकार है, न मन्त्र है, न बीज तथा न अक्षर ही है। हे देवि! यह शब्दब्रह्म अनाहत तथा उच्चारणसे रहित होता है और यह परम कल्याणकारी है, हे प्रिये! उत्तम बुद्धिवाले यत्नपूर्वक निरन्तर इसका ध्यान करते हैं॥ ३७-३८॥

तस्माच्छब्दा नव प्रोक्ताः प्राणविद्भिस्तु लक्षिताः।
तान् प्रवक्ष्यामि यत्नेन नादसिद्धिमनुक्रमात्॥ ३९

घोषं कांस्यं तथा शृङ्गं घण्टां वीणादिवंशजान्।
दुन्दुभिं शंखशब्दं तु नवमं मेघगर्जितम्॥ ४०

नव शब्दान् परित्यज्य तुङ्कारं तु समभ्यसेत्।
ध्यायन्नेवं सदा योगी पुण्यैः पापैर्न लिप्यते॥ ४१

उसी अनाहत नादसे [प्रकट होनेवाले] नौ प्रकारके शब्द कहे गये हैं, जिन्हें प्राणवेत्ताओंने परिलक्षित किया है। हे देवि! उन्हें तथा नादसिद्धिको यत्नपूर्वक कहता हूँ—घोष, कांस्य, शृंग, घण्टा, वीणा, बाँसुरी, दुन्दुभि, शंखशब्द और नौवाँ मेघगर्जन—[ये अनाहतसे प्रकट होनेवाले शब्द हैं। योगी] इन नौ शब्दोंका त्यागकर तुंकारशब्दका अभ्यास करे। इस प्रकार ध्यान करनेवाला योगी पुण्यों एवं पापोंसे लिप्त नहीं होता है॥ ३९—४१॥

न शृणोति यदा शृण्वन्योगाभ्यासेन देविके।
म्रियतेऽभ्यसमानस्तु योगी तिष्ठेद्दिवानिशम्॥ ४२

तस्मादुत्पद्यते शब्दो मृत्युजित्सप्तभिर्दिनैः।
स वै नवविधो देवि तं ब्रवीमि यथार्थतः॥ ४३

हे देवि! जब योगाभ्याससे युक्त योगी सुननेका यत्न करते हुए भी नहीं सुन पाये तो भी मृत्युके समीप आनेपर भी योगी रात-दिन इसी प्रकारका अभ्यास करता रहे, तब उससे सात दिनोंमें मृत्युको जीतनेवाला शब्द उत्पन्न होता है। हे देवि! वह नौ प्रकारका होता है। मैं यथार्थरूपसे उसका वर्णन करता हूँ॥ ४२-४३॥

प्रथमं नदते घोषमात्मशुद्धिकरं परम्।
सर्वव्याधिहरं नादं वश्याकर्षणमुत्तमम्॥ ४४

पहला घोषात्मक नाद होता है, वह आत्माको शुद्ध करनेवाला, श्रेष्ठ, सभी प्रकारकी व्याधियोंको दूर करनेवाला, मनको वशीभूतकर अपने प्रति आकृष्ट करनेवाला तथा उत्तम होता है॥ ४४॥

द्वितीयं नदते कांस्यं स्तम्भयेत् प्राणिनां गतिम्।
विषं भूतग्रहान् सर्वान् बध्नीयान्नात्र संशयः॥ ४५

तृतीयं नदते शृङ्गमभिचारि नियोजयेत्।
विद्विडुच्चाटने शत्रोर्मारणे च प्रयोजयेत्॥ ४६

द्वितीय कांस्यका शब्द होता है, जो जीवोंकी गतिको रोकता है और विष तथा सभी भूतग्रहोंको दूर करता है, इसमें सन्देह नहीं है। तीसरा शृंगनाद है, उसका आभिचारिक कर्ममें प्रयोग करना चाहिये, शत्रुके उच्चाटन तथा मारणमें वह प्रयोग करनेयोग्य है॥ ४५-४६॥

घण्टानादं चतुर्थं तु वदते परमेश्वरः।
आकर्षः सर्वदेवानां किं पुनर्मानुषा भुवि॥ ४७

यक्षगन्धर्वकन्याश्च तस्याकृष्टा ददन्ति हि।
यथेप्सितां महासिद्धिं योगिने कामतोऽपि वा॥ ४८

चौथा घण्टानाद होता है, जिसका साक्षात् परमेश्वर उच्चारण करते हैं। वह सभी देवगणोंको भी आकर्षित करनेवाला है, फिर भूलोकके मनुष्योंकी तो बात ही क्या है? यक्षों तथा गन्धर्वोंकी कन्याएँ उस नादसे आकृष्ट होकर उस योगीको यथेच्छ महासिद्धि प्रदान करती हैं॥ ४७-४८॥

वीणा तु पञ्चमो नादः श्रूयते योगिभिः सदा।
तस्मादुत्पद्यते देवि दूरदर्शनमेव हि॥ ४९

पाँचवाँ नाद वीणा है, जिसे योगीलोग निरन्तर सुनते रहते हैं। हे देवि! उससे दूर-दर्शनकी शक्ति प्राप्त होती है॥ ४९॥

ध्यायतो वंशनादं तु सर्वतत्त्वं प्रजायते।
दुन्दुभिं ध्यायमानस्तु जरामृत्युविवर्जितः॥ ५०

वंशीनादका ध्यान करनेवाले योगीको सभी तत्त्व प्राप्त हो जाते हैं। दुन्दुभिनादका ध्यान करनेवाला जरा एवं मृत्युसे रहित हो जाता है॥ ५०॥

शंखशब्देन देवेशि कामरूपं प्रपद्यते।
योगिनो मेघनादेन न विपत्संगमो भवेत्॥ ५१

हे देवेशि! शंखनादका अनुसन्धान करनेसे इच्छानुसार रूपधारणका सामर्थ्य प्राप्त होता है और मेघके नादका ध्यान करनेसे योगीको कोई विपत्ति नहीं होती है॥ ५१॥

यश्चैकमनसा नित्यं तुङ्कारं ब्रह्मरूपिणम्।
किमसाध्यं न तस्यास्ति यथामति वरानने॥ ५२

सर्वज्ञः सर्वदर्शी च कामरूपी व्रजत्यसौ।
न विकारैः प्रयुज्येत शिव एव न संशयः॥ ५३

हे वरानने! जो एकाग्र मनसे नित्यप्रति ब्रह्मरूपी तुंकारका ध्यान करता है, उसे इच्छानुसार सब वस्तुएँ प्राप्त होती हैं और उसके लिये कुछ भी असाध्य नहीं होता है। वह सर्वज्ञ, सर्वदर्शी तथा कामरूपी होकर [सर्वत्र] भ्रमण करता है और विकारोंसे युक्त नहीं होता है, वह [साक्षात्] शिव ही है, इसमें सन्देह नहीं॥ ५२-५३॥

एतत्ते परमेशानि शब्दब्रह्मस्वरूपकम्।
नवधा सर्वमाख्यातं किं भूयः श्रोतुमिच्छसि॥ ५४

हे परमेश्वरि! मैंने यह नौ प्रकारका शब्दब्रह्मस्वरूप तुमसे कहा, अब और क्या सुनना चाहती हो?॥ ५४॥

इति श्रीशिवमहापुराणे पञ्चम्यामुमासंहितायां कालवञ्चनवर्णनं नाम षड्विंशोऽध्यायः॥ २६॥

॥ इस प्रकार श्रीशिवमहापुराणके अन्तर्गत पाँचवीं उमासंहितामें कालवंचनवर्णन नामक छब्बीसवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ २६॥

अथ सप्तविंशोऽध्यायः

अमरत्व प्राप्त करनेकी चार यौगिक साधनाएँ

देव्युवाच

वायोस्तु पदमाप्नोति योगाकाशसमुद्भवम्।
तन्मे सर्वं समाचक्ष्व प्रसन्नस्त्वं यदि प्रभो॥ १

देवी बोलीं—योगी योगाकाशसे उत्पन्न वायुपद कैसे प्राप्त करता है, हे प्रभो! यदि आप मुझपर प्रसन्न हैं, तो यह सब मुझे बताइये॥ १॥

शंकर उवाच

पुरा मे सर्वमाख्यातं योगिनां हितकाम्यया।
कालं जिगाय यः सम्यग्वायोर्लिंगं यथा भवेत्॥ २

शंकर बोले—[हे देवि!] योगियोंके हितकी कामनासे मैंने पहले सभी बातोंको कह दिया है, अब जिस प्रकार योगी कालको अच्छी तरह जीतकर वायुस्वरूप हो जाता है, उसको सुनो॥ २॥

तेन ज्ञात्वा दिनं योगी प्राणायामपरः स्थितः।
स जयत्यागतं कालं मासार्धेनैव सुंदरि॥ ३

हे सुन्दरि! उस [योगसामर्थ्य]-से [मृत्युके] दिनको जानकर प्राणायाममें तत्पर योगी आधे महीनेमें ही आये हुए कालको जीत लेता है॥ ३॥

हृत्स्थो वायुः सदा वह्नेर्दीपकः सोऽनुपावकः।
स बाह्याभ्यन्तरो व्यापी वायुः सर्वगतो महान्॥ ४

ज्ञानविज्ञानमुत्साहः सर्वं वायोः प्रवर्तते।
येनेह निर्जितो वायुस्तेन सर्वमिदं जगत्॥ ५

हृदयमें स्थित रहनेवाला वायु सदा अग्निको प्रदीप्त करता है। अग्निके पीछे चलनेवाला वह महान् तथा सर्वगामी वायु भीतर और बाहर सभी जगह व्याप्त है। ज्ञान, विज्ञान एवं उत्साह—इन सबकी प्रवृत्ति वायुसे होती है, जिसने इस लोकमें वायुको जीत लिया, उसने इस सम्पूर्ण जगत्को जीत लिया॥ ४-५॥

धारणायां सदा तिष्ठेज्जरामृत्युजिघांसया।
योगी योगरतः सम्यग्धारणाध्यानतत्परः॥ ६

योगपरायण योगी सम्यक् धारणा-ध्यानमें तत्पर रहे, उसे जरा-मृत्युके विनाशकी इच्छासे सदा धारणामें निष्ठा करनी चाहिये॥ ६॥

लोहकारो यथा भस्त्रामापूर्य मुखतो मुने।
साधयेद्वायुना कर्म तद्वद्योगी समभ्यसेत्॥ ७

हे मुने! जिस प्रकार लोहार मुखसे वायुके द्वारा धौंकनीको फुलाकर कार्य सिद्ध करता है, उसी प्रकार योगीको भी अभ्यास करना चाहिये॥ ७॥

देवः सहस्रको नेत्रपादहस्तसहस्रकः।
पृथ्वीं हि सर्वामावृत्य सोऽग्रे तिष्ठेद्दशांगुलम्॥ ८

गायत्रीं शिरसा सार्धं जपेद् व्याहृतिपूर्विकाम्।
त्रिवारमायतप्राणः प्राणायामः स उच्यते॥ ९

[प्राणायामके समय जिनका ध्यान किया जाता है] वे [आराध्य] देव [परमेश्वर] सहस्रों मस्तक, नेत्र, पैर और हाथोंसे युक्त हैं तथा समस्त ग्रन्थियोंको आवृतकर उनसे भी दस अंगुल आगे स्थित हैं। प्राणवायुको नियन्त्रितकर व्याहृतिपूर्वक तीन बार गायत्रीका शिरोमन्त्र-सहित जप करे, उसे प्राणायाम कहा जाता है॥ ८-९॥

गतागता निवर्तन्ते चन्द्रसूर्यादयो ग्रहाः।
अद्यापि न निवर्तन्ते योगध्यानपरायणाः॥ १०

चन्द्र, सूर्य आदि ग्रह आते-जाते रहते हैं, किंतु प्राणायामपूर्वक ध्यानमें तत्पर योगी आजतक कभी नहीं लौटे अर्थात् कैवल्यको प्राप्त हो गये॥ १०॥

शतमब्दं तपस्तप्त्वा कुशाग्रापः पिबेद् द्विजः।
तदाप्नोति फलं देवि प्राणानां धारणैकया॥ ११

यो द्विजः कल्यमुत्थाय प्राणायामैकमाचरेत्।
सर्वं पापं निहन्त्याशु ब्रह्मलोकं स गच्छति॥ १२

हे देवि! सौ वर्षतक तप करके ब्राह्मण कुशाके अग्रभागके बराबर (बिन्दुमात्र) जलको पीकर जो फल प्राप्त करता है, उसे वह (योगी) एक प्राणायामके द्वारा ही प्राप्त कर लेता है। जो द्विज प्रातःकाल उठकर एक प्राणायाम करता है, वह अपने सभी पापोंको नष्टकर शीघ्र ही ब्रह्मलोकको जाता है॥ ११-१२॥

योऽतन्द्रितः सदैकान्ते प्राणायामपरो भवेत्।
जरां मृत्युं विनिर्जित्य वायुगः खेचरीति सः॥ १३

सिद्धस्य भजते रूपं कान्तिं मेधां पराक्रमम्।
शौर्यं वायुसमो गत्या सौख्यं श्लाघ्यं परं सुखम्॥ १४

जो सदा आलस्यरहित होकर एकान्तमें प्राणायाम करता है, वह जरा तथा मृत्युको जीतकर वायुके समान गतिशील होकर आकाशमें विचरण करता है। वह सिद्ध पुरुषका रूप; कान्ति, मेधा, पराक्रम तथा शौर्य प्राप्त कर लेता है और गतिमें वायुके समान होकर प्रशंसनीय सौख्य तथा परम सुख प्राप्त करता है॥ १३-१४॥

एतत्कथितमशेषं वायोः सिद्धिं यदाप्नुते योगी।
यत्तेजसोऽपि लभते तत्ते वक्ष्यामि देवेशि॥ १५

हे देवेशि! जिस प्रकार योगी वायुसे सिद्धि प्राप्त करता है, वह सब मैंने तुमसे कह दिया, अब जिस प्रकार उन्हें तेजसे सिद्धिकी प्राप्ति होती है, उसे मैं तुमसे कहूँगा॥ १५॥

स्थित्वा सुखासने स्वे शेते जनवचनहीने तु।
शशिरवियुतया तेजः प्रकाशयन्मध्यमे देशे॥ १६

वह्निगतं भ्रूमध्ये प्रकाशते यस्त्वतन्द्रितो योगी।
दीपैर्हीनध्वान्ते पश्येन्न्यूनमसंशयं लोके॥ १७

जहाँ दूसरोंकी बातचीतका कोलाहल न हो, ऐसे शान्त एकान्त स्थानमें सुखासनपर बैठकर चन्द्रमा और सूर्य (वाम और दक्षिण नेत्र)-की कान्तिसे प्रकाशित मध्यवर्ती देश अर्थात् भ्रूमध्यभागमें जो अग्निका तेज अव्यक्तरूपसे प्रकाशित होता है, उसे आलस्यरहित योगी प्रकाशरहित अन्धकारपूर्ण स्थानमें चिन्तन करनेपर निश्चय ही देख सकता है॥ १६-१७॥

नेत्रे करशाखाभिः किंचित्संपीड्य यत्नतो योगी।
तारं पश्यन्ध्यायेन्मुहूर्तमर्द्धं तमेकभावोऽपि॥ १८

योगी यत्नपूर्वक नेत्रोंको हाथकी अँगुलियोंसे कुछ दबाकर उनके तारोंको देखते हुए एकाग्रचित्तसे आधे मुहूर्ततक उनका ध्यान करे॥ १८॥

ततस्तु तमसि ध्यायन्पश्यति ज्योतिरैश्वरम्।
श्वेतं रक्तं तथा पीतं कृष्णमिन्द्रधनुष्प्रभम्॥ १९

उसके बाद ध्यान करता हुआ वह अन्धकारमें श्वेत, रक्त, पीत, कृष्ण तथा इन्द्रधनुषके समान कान्तिवाले ईश्वरीय तेजको देखता है॥ १९॥

भ्रुवोर्मध्ये ललाटस्थं बालार्कसमतेजसम्।
तं विदित्वा तु कामांगी क्रीडते कामरूपधृक्॥ २०

दोनों भौंहोंके मध्यमें ललाटस्थित बालसूर्यके समान उस तेजको जानकर वह इच्छानुसार कामरूपधारी होकर मनोवांछित शरीरसे क्रीडा करता है॥ २०॥

कारणप्रशमावेशं परकायप्रवेशनम्।
अणिमादिगुणावाप्तिर्मनसा चावलोकनम्॥ २१

दूरश्रवणविज्ञानमदृश्यं बहुरूपधृक्।
सन्तताभ्यासयोगेन खेचरत्वं प्रजायते॥ २२

निरन्तर अभ्यासके योगसे उसमें कारणको शान्त करना, आवेश, परकायाप्रवेश, अणिमादि सिद्धियोंकी प्राप्ति, मनसे सारी वस्तुओंका अवलोकन, दूरसे सुननेकी शक्ति, स्वयं अदृश्य हो जाना, अनेक रूप धारण करना एवं आकाशमें विचरणकी शक्ति—यह सब (सामर्थ्य) उत्पन्न हो जाता है॥ २१-२२॥

श्रुताध्ययनसंपन्ना नानाशास्त्रविशारदाः।
ज्ञानिनोऽपि विमुह्यन्ते पूर्वकर्मवशानुगाः॥ २३

पश्यन्तोऽपि न पश्यन्ति शृण्वाना बधिरा यथा।
यथांधा मानुषा लोके मूढाः पापविमोहिताः॥ २४

वेदाध्ययनसे सम्पन्न तथा अनेक शास्त्रोंमें प्रवीण ज्ञानीलोग भी अपने पूर्व कर्मोंके वशीभूत होकर मोहित हो जाते हैं। पापसे मोहित हुए मूढ़ मनुष्य लोकमें देखते हुए भी अन्धेके समान नहीं देखते और सुनते हुए भी बहरेके समान नहीं सुनते हैं॥ २३-२४॥

वेदाहमेतं पुरुषं महान्त-
मादित्यवर्णं तमसः परस्तात्।
तमेव विदित्वातिमृत्युमेति
नान्यः पंथा विद्यते प्रायणाय॥ २५

सूर्यके समान वर्णवाले तथा अन्धकारसे परे उस परम पुरुषको मैं जानता हूँ, इस प्रकार जानकर योगी मृत्युका अतिक्रमण कर लेता है, मुक्त होनेके लिये इसके अतिरिक्त अन्य उपाय नहीं है॥ २५॥

एष ते कथितः सम्यक्तेजसो विधिरुत्तमः।
कालं जित्वा यथा योगी चामरत्वं प्रपद्यते॥ २६

पुनः परतरं वक्ष्ये यथा मृत्युर्न जायते।
सावधानतया देवि शृणुष्वैकाग्रमानसा॥ २७

[हे देवि!] मैंने तेजस्तत्त्वके चिन्तनकी यह उत्तम विधि तुमसे कह दी, जिसके द्वारा कालको जीतकर योगी अमरत्वको प्राप्त हो जाता है। हे देवि! अब मैं इससे भी उत्कृष्ट बात कहूँगा, जिससे मृत्यु नहीं होती, तुम सावधानीपूर्वक एकाग्र मनसे सुनो॥ २६-२७॥

तुरीया देवि भूतानां योगिनां ध्यानिनां तथा।
सुखासने यथास्थानं योगी नियतमानसः॥ २८

समुन्नतशरीरोऽपि स बद्ध्वा करसंपुटम्।
चञ्च्वाकारेण वक्त्रेण पिबन्वायुं शनैः शनैः॥ २९

प्रस्रवन्ति क्षणादापस्तालुस्था जीवदायिकाः।
ता जिघ्रेद्वायुनादायामृतं तच्छीतलं जलम्॥ ३०

पिबन्ननुदिनं योगी न मृत्युवशगो भवेत्।
दिव्यकायो महातेजाः पिपासाक्षुद्विवर्जितः॥ ३१

हे देवि! प्राणियोंकी तथा ध्यान करनेवाले योगियोंकी तुरीयावस्था होती है। स्थिर चित्तवाले योगीको सुखद आसनपर यथास्थान स्थित हो शरीरको ऊँचा उठाकर दोनों हाथ सम्पुटितकर चोंचके आकारवाले मुखसे धीरे-धीरे वायुका पान करना चाहिये। थोड़ी ही देरमें तालुमें स्थित जीवनदायी जो जलबिन्दु टपकने लगते हैं, उन अमृतके समान शीतल जलबिन्दुओंको वायुसे ग्रहण करके सूँघे। इस प्रकार प्रतिदिन उसे पीनेवाला योगी मृत्युके वशीभूत नहीं होता है और वह दिव्य शरीरवाला, महातेजस्वी और भूख-प्याससे रहित हो जाता है॥ २८—३१॥

बलेन नागस्तुरगो जवेन
दृष्ट्या सुपर्णः सुश्रुतिस्तु दूरात्।
आंकुचिताकुंडलिकृष्णकेशो
गंधर्वविद्याधरतुल्यवर्णः॥ ३२
जीवन्नरो वर्षशतं सुराणां
सुमेधसा वाक्पतिना समत्वम्।
एवं चरन् खेचरतां प्रयाति
यथेष्टचारी सुखितः सदैव॥ ३३

वह मनुष्य बलमें हाथीके समान, वेगमें घोड़ेके समान, दृष्टिमें गरुड़के समान, दूरसे सुननेकी शक्तिवाला, कुण्डलके समान घुँघराले काले केशवाला और गन्धर्वों एवं विद्याधरोंके समान स्वरूपवाला होता है और बुद्धिमें बृहस्पतिके समान होकर देवताओंके सौ वर्षतक जीवित रहता है। ऐसा करता हुआ वह सुखपूर्वक स्वेच्छाचारी रहकर आकाशमें भ्रमण करता है॥ ३२-३३॥

पुनरन्यत्प्रवक्ष्यामि विधानं यत्सुरैरपि।
गोपितं तु प्रयत्नेन तच्छृणुष्व वरानने॥ ३४

हे वरानने! अब मैं दूसरी विधिका वर्णन करता हूँ, जिसे देवगण भी नहीं जानते, तुम प्रयत्नपूर्वक उसका श्रवण करो॥ ३४॥

समाकुञ्च्याभ्यसेद्योगी रसनां तालुकं प्रति।
किंचित्कालान्तरेणैव क्रमात्प्राप्नोति लंबिकाम्॥ ३५

ततः प्रस्रवते सा तु संस्पृष्टा शीतलां सुधाम्।
पिबन्नेव सदा योगी सोऽमरत्वं हि गच्छति॥ ३६

योगी अपनी जीभको सिकोड़कर तालुमें लगानेका अभ्यास करे तो कुछ समयके बाद वह लम्बिकाको प्राप्त कर लेती है। तब तालुसे स्पृष्ट हुई वह जिह्वा शीतल अमृतका स्राव करने लगती है, उसको निरन्तर पीता हुआ वह योगी अमरत्व प्राप्त कर लेता है॥ ३५-३६॥

रेफाग्रं लंबकाग्रं करतलघटनं
शुभ्रपद्मस्य बिन्दो-
स्तेनाकृष्टा सुधेयं पतति परपदे
देवतानंदकारी।
सारं संसारतारं कृतकलुषतरं
कालतारं सतारं
येनेदं प्लावितांगं स भवति न मृतः
क्षुत्पिपासाविहीनः॥ ३७

जैसे हाथसे निचोड़नेसे गीली वस्तुसे रस टपकता है, उसी प्रकार रेफाग्र तथा लम्बिकाग्रसे निर्मल कमल-बिन्दुसे प्राप्त वह देवताओंको आनन्द देनेवाला अमृत परपदमें गिरता है। संसारको तारनेवाले, पापनाशक, कालसे बचानेवाले अमृतसारसे जिसने अपने शरीरको आप्लावित कर लिया, वह भूख-प्याससे रहित होकर अमर हो जाता है॥ ३७॥

एभिर्युक्ता चतुर्भिः क्षितिधरतनये योगिभिर्वै धरैषा
धैर्यान्नित्यं कुतोऽन्तः सकलमपि जगद्यत्सुखं प्रापणाय।
स्वप्ने देही विधत्ते सकलमपि सदा मानयन्यच्च दुःखं
स्वर्गे ह्येवं धरित्र्याः प्रभवति च ततो वा स किंचिच्चतुर्णाम्॥ ३८

हे पार्वति! यह सारा संसार जिस सुखके लिये सदा लालायित रहता है, उसे ये चार प्रकारके योगीजन सदा धैर्य धारण करते हुए अपने अन्तःकरणमें धारण करते हैं। प्राणी स्वप्नमें भी स्वर्गमें अथवा भूमिपर जिसे सुख मानता है, वास्तवमें वह दुःख ही है, इस प्रकारका सुख तो इन चारों योगियोंके लिये किंचिन्मात्र भी सुखकर नहीं है॥ ३८॥

तस्मान्मन्त्रैस्तपोभिर्व्रतनियमयुतैरौषधैर्योगयुक्ता
धात्री रक्ता मनुष्यैर्नयविनययुतैर्धर्मविद्भिः क्रमेण।
भूतानामादिदेवो न हि भवति चलः संयुतो वै चतुर्णां
तस्मादेवं प्रवक्ष्ये विधिमनुगदितं छायिकं यच्छिवाख्यम्॥ ३९

अतः मन्त्र, तप, व्रत, नियम, नीतिविनयसे युक्त धर्मवेत्ता मनुष्योंसे और औषधियों तथा योगसे युक्त यह रागमयी पृथ्वी उत्तम फल देती है। भूतोंके आदिदेव शिवजी इन चार प्रकारके योगोंसे युक्त होकर विचलित नहीं होते। अतः अब मैं विधिसहित शिव नामक छायापुरुषका वर्णन करता हूँ, जो साक्षात् शिवस्वरूप हैं॥ ३९॥

इति श्रीशिवमहापुराणे पञ्चम्यामुमासंहितायां कालवञ्चनशिवप्राप्तिवर्णनं नाम सप्तविंशोऽध्यायः॥ २७॥

॥ इस प्रकार श्रीशिवमहापुराणके अन्तर्गत पाँचवीं उमासंहितामें कालवंचनशिवप्राप्तिवर्णन नामक सत्ताईसवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ २७॥

अथाष्टाविंशोऽध्यायः

छायापुरुषके दर्शनका वर्णन

देव्युवाच

देवदेव महादेव कथितं कालवञ्चनम्।
शब्दब्रह्मस्वरूपं च योगलक्षणमुत्तमम्॥ १
कथितं ते समासेन छायिकं ज्ञानमुत्तमम्।
विस्तरेण समाख्याहि योगिनां हितकाम्यया॥ २

देवी बोलीं—हे देवदेव! हे महादेव! आपने कालकी वंचना करनेवाले शब्दब्रह्मस्वरूप उत्तम योगके लक्षणका वर्णन संक्षेपसे किया। अब योगियोंके हितकी इच्छासे छायापुरुष-सम्बन्धी उस उत्तम ज्ञानको विस्तारपूर्वक कहिये॥ १-२॥

शंकर उवाच

शृणु देवि प्रवक्ष्यामि छायापुरुषलक्षणम्।
यज्ज्ञात्वा पुरुषः सम्यक्सर्वपापैः प्रमुच्यते॥ ३

शंकर बोले—हे देवि! सुनो, मैं छायापुरुषका लक्षण कह रहा हूँ, जिसे भलीभाँति जानकर मनुष्य सभी पापोंसे मुक्त हो जाता है॥ ३॥

सूर्यं हि पृष्ठतः कृत्वा सोमं वा वरवर्णिनि।
शुक्लाम्बरधरः स्त्रग्वी गंधधूपादिवासितः॥ ४
संस्मरेन्मे महामन्त्रं सर्वकामफलप्रदम्।
नवात्मकं पिंडभूतं स्वां छायां संनिरीक्षयेत्॥ ५
दृष्ट्वा तां पुनराकाशे श्वेतवर्णस्वरूपिणीम्।
स पश्यत्येकभावस्तु शिवं परमकारणम्॥ ६

हे वरवर्णिनि! श्वेत वस्त्र पहनकर माला धारणकर एवं उत्तम गन्ध-धूपादिसे सुगन्धित होकर चन्द्रमा अथवा सूर्यको पीछेकर सम्पूर्ण कामनाओंका फल देनेवाले मेरे पिण्डभूत नवाक्षर महामन्त्र [**'ॐ नमो भगवते रुद्राय'**]-का स्मरण करे और अपनी छायाको देखे। पुनः उस श्वेत वर्णकी छायाको आकाशमें देखकर वह एकचित्त हो परम कारणभूत शिवजीको देखे।

ब्रह्मप्राप्तिर्भवेत्तस्य कालविद्भिरितीरितम्।
ब्रह्महत्यादिकैः पापैर्मुच्यते नात्र संशयः॥ ७

ऐसा करनेसे उसे ब्रह्मकी प्राप्ति होती है और वह ब्रह्महत्या आदि पापोंसे छूट जाता है—ऐसा कालवेत्ताओंने कहा है। इसमें संशय नहीं है॥ ४—७॥

शिरोहीनं यदा पश्येत्षड्भिर्मासैर्भवेत्क्षयः।
समस्तं वाङ्मयं तस्य योगिनस्तु यथा तथा॥ ८

यदि उस छायामें अपना शिर दिखायी न पड़े तो छः महीनेमें मृत्यु जाननी चाहिये, ऐसे योगीके मुखसे जिस प्रकारका वाक्य निकलता है, उसके अनुरूप ही फल होता है॥ ८॥

शुक्ले धर्मं विजानीयात्कृष्णे पापं विनिर्दिशेत्।
रक्ते बंधं विजानीयात्पीते विद्विषमादिशेत्॥ ९

शुक्लवर्णकी छाया होनेपर धर्मकी वृद्धि और कृष्णवर्णकी होनेपर पापकी वृद्धि जाननी चाहिये। रक्तवर्णकी होनेपर बन्धन जानना चाहिये तथा पीतवर्णकी होनेपर शत्रुबाधा समझनी चाहिये॥ ९॥

विनासे बंधुनाशः स्याद्वितुंडे चैव क्षुद्भयम्।
विकटौ नश्यते भार्या विजंघे धनमेव हि॥ १०

पादाभावे विदेशः स्यादित्येतत्कथितं मया।
तद्विचार्यं प्रत्यत्नेन पुरुषेण महेश्वरि॥ ११

[छायाके] नासिकारहित होनेपर बन्धुनाश और मुखरहित होनेपर भूखका भय रहता है। कटि-रहित होनेपर स्त्रीका नाश और जंघारहित होनेपर धनका नाश होता है एवं पादरहित होनेपर विदेशगमन होता है। यह छायापुरुषका फल मैंने कहा। हे महेश्वरि! पुरुषको प्रयत्नपूर्वक इसका विचार करना चाहिये॥ १०-११॥

सम्यक्तं पुरुषं दृष्ट्वा संनिवेश्यात्मनात्मनि।
जपेन्नवात्मकं मन्त्रं हृदयं मे महेश्वरि॥ १२

हे महेश्वरि! उस छायापुरुषको भलीभाँति देखकर उसे अपने मनमें पूर्णतः सन्निविष्ट करके मनमें मेरे नवात्मक (नवाक्षर) मन्त्रका जप करना चाहिये, जो कि साक्षात् मेरा हृदय ही है॥ १२॥

वत्सरे विगते मन्त्री तन्नास्ति यन्न साधयेत्।
अणिमादिगुणानष्टौ खेचरत्वं प्रपद्यते॥ १३

एक वर्ष बीत जानेपर वह मन्त्रजापक ऐसा कुछ नहीं है, जिसे सिद्ध न कर सके, वह अणिमा आदि आठों सिद्धियोंको तथा आकाशमें विचरणकी शक्तिको प्राप्त कर लेता है॥ १३॥

पुनरन्यत्प्रवक्ष्यामि शक्तिं ज्ञातुं दुरासदाम्।
प्रत्यक्षं दृश्यते लोके ज्ञानिनामग्रतः स्थितम्॥ १४

अब इससे भी अधिक दुष्प्राप्य शक्तिको प्राप्त करनेवाले ज्ञानका वर्णन करता हूँ, जिससे ज्ञानियोंके समक्ष संसारमें सब कुछ सामने रखी हुई वस्तुकी भाँति प्रत्यक्ष दिखायी पड़ने लगता है॥ १४॥

अज्ञेया लिख्यते लोके या सर्पीकृतकुण्डली।
सा मात्रा यानसंस्थापि दृश्यते न च पठ्यते॥ १५

सर्पाकार कुण्डली, जो लोकमें अज्ञेय कही जाती है, उसका वर्णन करता हूँ, वह मार्गमें स्थित हुई मात्रा केवल दिखती है, किंतु पढ़ी नहीं जाती॥ १५॥

ब्रह्माण्डमूर्ध्निगा या च स्तुता वेदैस्तु नित्यशः।
जननी सर्वविद्यानां गुप्तविद्येति गीयते॥ १६

खेचरा सा विनिर्दिष्टा सर्वप्राणिषु संस्थिता।

जो ब्रह्माण्डके शिरोभागपर स्थित है, वेदोंके द्वारा निरन्तर स्तुत है, सम्पूर्ण विद्याओंकी जननी है, गुप्त विद्याके नामसे कही जाती है, वह जीवोंके भीतर स्थित होकर हृदयाकाशमें विचरण करनेवाली कही गयी है।

दृश्यादृश्याचला नित्या व्यक्ताव्यक्ता सनातनी॥ १७
अवर्णा वर्णसंयुक्ता प्रोच्यते बिंदुमालिनी।
तां पश्यन्सर्वदा योगी कृतकृत्योऽभिजायते॥ १८

सर्वतीर्थकृतस्नानाद्धवेद्दानस्य यत्फलम्।
सर्वयज्ञफलं यच्च मालिन्या दर्शनात्तदा॥ १९

प्राप्नोत्यत्र न संदेहः सत्यं वै कथितं मया।
सर्वतीर्थेषु यत्स्नात्वा दत्त्वा दानानि सर्वशः॥ २०

सर्वेषां देवि यज्ञानां यत्फलं तल्लभेत्पुमान्।
किं बहूक्त्या महेशानि सर्वान्कामान्समश्नुते॥ २१

तस्माज्ज्ञानं यथायोगमभ्यसेत्सततं बुधः।
अभ्यासाज्जायते सिद्धिर्योगोऽभ्यासात्प्रवर्धते॥ २२

संवित्तिर्लभ्यतेऽभ्यासादभ्यासान्मोक्षमश्नुते।
अभ्यासः सततं कार्यो धीमता मोक्षकारणम्॥ २३

इत्येतत्कथितं देवि भुक्तिमुक्तिफलप्रदम्।
किमन्यत्पृच्छ्यते तत्त्वं वद सत्यं ब्रवीमि ते॥ २४

सूत उवाच

इति श्रुत्वा ब्रह्मपुत्रवचनं परमार्थदम्।
प्रसन्नोऽभूदति व्यासः पाराशर्यो मुनीश्वराः॥ २५
सनत्कुमारं सर्वज्ञं ब्रह्मपुत्रं कृपानिधिम्।
व्यासः परमसन्तुष्टः प्रणनाम मुहुर्मुहुः॥ २६

ततस्तुष्टाव तं व्यासः कालेयः स मुनीश्वरः।
सनत्कुमारं मुनयः सुरविज्ञानसागरम्॥ २७

व्यास उवाच

कृतार्थोऽहं मुनिश्रेष्ठ ब्रह्मत्वं मे त्वया कृतम्।
नमस्तेऽस्तु नमस्तेऽस्तु धन्यस्त्वं ब्रह्मवित्तमः॥ २८

सूत उवाच

इति स्तुत्वा स कालेयो ब्रह्मपुत्रं महामुनिम्।
तूष्णीं बभूव सुप्रीतः परमानंदनिर्भरः॥ २९

वह दृश्य, अदृश्य, अचल, नित्य, व्यक्त, अव्यक्त और सनातनी है। वह अवर्ण, वर्णसंयुक्त तथा बिन्दुमालिनी कही जाती है। उसका सर्वदा दर्शन करनेवाला योगी कृतकृत्य हो जाता है॥ १६—१८॥

सभी तीर्थोंमें स्नान करनेके बाद दानका जो फल होता है एवं सम्पूर्ण यज्ञोंसे जो फल प्राप्त होता है, वह बिन्दुमालिनीके दर्शनसे मिलता है, इसमें सन्देह नहीं है, यह मैं सत्य कह रहा हूँ। हे देवि! सभी तीर्थोंमें स्नान करनेसे तथा सभी प्रकारके दान करनेसे जो फल मिलता है, एवं सम्पूर्ण यज्ञोंके अनुष्ठानसे जो फल मिलता है, वह फल मनुष्य [इसके दर्शनसे] प्राप्त कर लेता है। हे महेशानि! अधिक कहनेसे क्या लाभ, उसके सभी मनोरथ पूर्ण हो जाते हैं॥ १९—२१॥

अतः बुद्धिमान् पुरुषको योग-ज्ञानका नित्य अभ्यास करना चाहिये, अभ्याससे सिद्धि उत्पन्न होती है, अभ्याससे योग बढ़ता है। अभ्याससे ज्ञान प्राप्त होता है और अभ्याससे मुक्ति मिलती है, अतः बुद्धिमान्‌को मोक्षके कारणभूत योगका निरन्तर अभ्यास करते रहना चाहिये॥ २२-२३॥

हे देवि! इस प्रकार मैंने भोग एवं मोक्ष देनेवाला योगाभ्यास तुमसे कहा, अब तुम्हें और क्या पूछना है, उसे तुम बताओ, मैं तुम्हें सत्य-सत्य बताऊँगा॥ २४॥

सूतजी बोले—हे मुनीश्वरो! सनत्कुमारके परमार्थप्रद वचनको सुनकर पराशरपुत्र व्यासजी प्रसन्न हो गये॥ २५॥

उसके अनन्तर व्यासजीने अत्यन्त सन्तुष्ट हो सर्वज्ञ तथा कृपालु ब्रह्मपुत्र सनत्कुमारको बारम्बार प्रणाम किया॥ २६॥

तत्पश्चात् हे मुनियो! कालीपुत्र मुनीश्वर व्यासने स्वरविज्ञानसागर सनत्कुमारकी स्तुति की॥ २७॥

व्यासजी बोले—हे मुनिश्रेष्ठ! मैं कृतार्थ हुआ, आपने मुझे ब्रह्मतत्त्वकी प्राप्ति करायी, आप ब्रह्मवेत्ताओंमें श्रेष्ठ तथा धन्य हैं, आपको नमस्कार है, आपको नमस्कार है॥ २८॥

सूतजी बोले—इस प्रकार वे व्यासजी महामुनि ब्रह्मपुत्रकी स्तुतिकर अत्यन्त प्रसन्न तथा परमानन्दमें मग्न होकर मौन हो गये॥ २९॥

ब्रह्मपुत्रस्तमामन्त्र्य पूजितस्तेन शौनक।
ययौ स्वधाम सुप्रीतो व्यासोऽपि प्रीतमानसः॥ ३०

हे शौनक! उसके बाद उनके द्वारा पूजित हुए सनत्कुमारजी उनसे आज्ञा लेकर अपने स्थानको चले गये और इधर व्यासजी भी प्रसन्नचित्त होकर अपने स्थानको चले गये॥ ३०॥

इति मे वर्णितो विप्राः सुखदः परमार्थयुक्।
सनत्कुमारकालेयसंवादो ज्ञानवर्धनः॥ ३१

हे ब्राह्मणो! मैंने इस प्रकार सनत्कुमार एवं व्यासजीका यह सुख प्रदान करनेवाला, परमार्थयुक्त तथा ज्ञानवर्धक संवाद आपलोगोंसे कहा॥ ३१॥

इति श्रीशिवमहापुराणे पञ्चम्यामुमासंहितायां छायापुरुषवर्णनं नामाष्टाविंशोऽध्यायः॥ २८॥

॥ इस प्रकार श्रीशिवमहापुराणके अन्तर्गत पाँचवीं उमासंहितामें छायापुरुषवर्णन नामक अट्ठाईसवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ २८॥

अथैकोनत्रिंशोऽध्यायः

ब्रह्माकी आदिसृष्टिका वर्णन

शौनक उवाच

श्रुतं मे महदाख्यानं यत्त्वया परिकीर्तितम्।
सनत्कुमारकालेयसंवादं परमार्थदम्॥ १

अतोऽहं श्रोतुमिच्छामि यथा सर्गस्तु ब्रह्मणः।
समुत्पन्नं तु मे ब्रूहि यथा व्यासाच्च ते श्रुतम्॥ २

शौनक बोले—आपने परमार्थ प्रदान करनेवाला सनत्कुमार एवं व्यासजीका संवादरूप जो महान् आख्यान कहा, उसे मैंने सुन लिया। अब जिस प्रकार ब्रह्माकी सृष्टि उत्पन्न हुई, उसे मैं सुनना चाहता हूँ, जैसा आपने व्यासजीसे सुना है, उसे मुझसे कहिये॥ १-२॥

सूत उवाच

मुने शृणु कथां दिव्यां सर्वपापप्रणाशिनीम्।
कथ्यमानां मया चित्रां बह्वर्थां श्रुतविस्तराम्॥ ३

सूतजी बोले—हे मुने! मेरे द्वारा कही जाती हुई श्रुतियोंमें विस्तारसे वर्णित, अनेक अर्थोंवाली, सभी प्रकारके पापोंका नाश करनेवाली, दिव्य तथा अद्भुत कथाको आप सुनिये॥ ३॥

यश्चैनां पाठयेत्तां च शृणुयाद्वाप्यभीक्ष्णशः।
स्ववंशधारणं कृत्वा स्वर्गलोके महीयते॥ ४

प्रधानं पुरुषो यत्तन्नित्यं सदसदात्मकम्।
प्रधानपुरुषो भूत्वा निर्ममे लोकभावनः॥ ५

जो [मनुष्य] इसे पढ़ाता है अथवा बार-बार सुनता है, वह अपनी वंशपरम्पराको स्थिर रखते हुए स्वर्गलोकमें प्रतिष्ठा प्राप्त करता है। जो [परमात्मा] प्रधान तथा पुरुषस्वरूप हैं, जो नित्य और सदसदात्मक हैं, उन्हीं पुरुषरूप लोकस्त्रष्टाके द्वारा प्रधान अर्थात् प्रकृतिके माध्यमसे सृष्टि की गयी है॥ ४-५॥

स्त्रष्टारं सर्वभूतानां नारायणपरायणम्।
तं वै विद्धि मुनिश्रेष्ठ ब्रह्माणममितौजसम्॥ ६

यस्मादकल्पयत्कल्पाः समग्राः शुचयो यतः।
भवन्ति मुनिशार्दूल नमस्तस्मै स्वयम्भुवे॥ ७

तस्मै हिरण्यगर्भाय पुरुषायेश्वराय च।
नमस्कृत्य प्रवक्ष्यामि भूयः सर्गमनुत्तमम्॥ ८

हे मुनिश्रेष्ठ! नारायणपरायण तथा अमित तेजस्वी उन ब्रह्माको सभी प्राणियोंकी सृष्टि करनेवाला जानिये। हे मुनिश्रेष्ठ! जिनसे सभी पवित्र कल्पों (पदार्थों)-की सृष्टि हुई तथा जिनसे सब कुछ पवित्र होता है, उन स्वयम्भूको नमस्कार है। उन हिरण्यगर्भ पुरुष परमेश्वरको नमस्कार करके मैं इस सर्वश्रेष्ठ सृष्टिका वर्णन कर रहा हूँ॥ ६—८॥

ब्रह्मा स्त्रष्टा हरिः पाता संहर्ता च महेश्वरः।
तस्य सर्गस्य नान्योऽस्ति काले काले तथा गते॥ ९

समय-समयपर ब्रह्मा इस सृष्टिके सृजनकर्ता, विष्णु पालनकर्ता एवं शिवजी संहर्ता रहे हैं, इनके अतिरिक्त स्त्रष्टा अथवा लय करनेवाला अन्य कोई नहीं है॥ ९॥

सोऽपि स्वयंभूर्भगवान् सिसृक्षुर्विविधाः प्रजाः।
अप एव ससर्जादौ तासु वीर्यमवासृजत्॥ १०

नाना प्रकारकी प्रजाओंकी सृष्टिकी इच्छासे भगवान् स्वयम्भूने सर्वप्रथम जलको उत्पन्न किया, और उसमें ओजका आधान किया॥ १०॥

आपो नारा इति प्रोक्ता आपो वै नरसूनवः।
अयनं तस्य ताः पूर्वं तेन नारायणः स्मृतः॥ ११

जलको नार कहा जाता है; क्योंकि वह नरसे उत्पन्न हुआ है, वह जल पूर्व समयमें भगवान्‌का आश्रय हुआ था, अतः वे नारायण कहे गये हैं॥ ११॥

हिरण्यवर्णमभवत्तदण्डमुदकेशयम् ।
तत्र जज्ञे स्वयं ब्रह्मा स्वयंभूरिति विश्रुतः॥ १२

भगवान्‌के द्वारा जलमें आधान किये गये ओजसे एक सुवर्णमय अण्ड प्रकट हुआ, उससे स्वयं ब्रह्मा उत्पन्न हुए, अतः वे स्वयम्भू कहे गये हैं॥ १२॥

हिरण्यगर्भो भगवानुषित्वा परिवत्सरम्।
तदण्डमकरोद् द्वैधं दिवं भूमिं च निर्ममे॥ १३

अधोऽधोर्ध्वं प्रयुक्तानि भुवनानि चतुर्दश।
तयोः शकलयोर्मध्य आकाशमसृजत्प्रभुः॥ १४

अप्सु परिप्लवां पृथ्वीं दिशश्च दशधा दधे।
तत्र कालं मनो वाचं कामक्रोधावथो रतिम्॥ १५

भगवान् हिरण्यगर्भने एक वर्षतक वहाँ निवासकर उस अण्डेको दो भागोंमें विभक्त किया और उनसे स्वर्ग तथा भूलोकका निर्माण किया। उन्होंने उसमें नीचे और ऊपर कुल चौदह भुवनोंकी रचना की। प्रभुने दोनों खण्डोंके बीचमें आकाशका सृजन किया। उन्होंने जलमें तैरती हुई पृथ्वी तथा दस दिशाओंकी रचना की और वहीं काल, मन, वाणी, काम, क्रोध एवं रतिको बनाया॥ १३—१५॥

मरीचिमत्र्यङ्गिरसौ पुलस्त्यं पुलहं क्रतुम्।
वसिष्ठं तु महातेजाः सोऽसृजत्सप्त मानसान्॥ १६

सप्त ब्रह्माण इत्येते पुराणे निश्चयं गताः।
ततोऽसृजत्पुनर्ब्रह्मा रुद्रान् क्रोधसमुद्भवान्॥ १७

सनत्कुमारं च ऋषिं सर्वेषामपि पूर्वजम्।
सप्त चैते प्रजायन्ते पश्चाद्रुद्राश्च सर्वतः॥ १८

अतः सनत्कुमारस्तु तेजः संक्षिप्य तिष्ठति।
तेषां सप्त महावंशा दिव्या देवर्षिपूजिताः॥ १९

प्रजायन्ते क्रियावन्तो महर्षिभिरलंकृताः।

तत्पश्चात् उन महातेजस्वीने मरीचि, अत्रि, अंगिरा, पुलस्त्य, पुलह, क्रतु एवं वसिष्ठ—इन सात मानस ऋषियोंको उत्पन्न किया। पुराणमें ये ही सात ऋषि ब्रह्माके नामसे प्रसिद्ध हैं, उसके बाद पुनः ब्रह्माजीने क्रोधसे उत्पन्न होनेवाले रुद्रोंकी एवं सबके पूर्वज ऋषि सनत्कुमारकी रचना की। इस प्रकार ये सप्तर्षि पहले एवं रुद्र उनके बाद उत्पन्न होते हैं। सनत्कुमार तो अपने तेजका संवरणकर स्थित रहते हैं, किंतु उन सप्तर्षियोंके सात महावंश उत्पन्न होते हैं, जो दिव्य देवर्षियोंसे पूजित, क्रियाशील तथा महर्षियोंसे अलंकृत हैं॥ १६—१९॥

विद्युतोऽशनिमेघांश्च रोहितेन्द्रधनूंषि च॥ २०

पयांसि च ससर्जादौ पर्जन्यं च ससर्ज ह।
ऋचो यजूंषि सामानि निर्ममे यज्ञसिद्धये॥ २१

उसके बाद उन्होंने विद्युत्, वज्र, मेघ, रोहित, इन्द्र-धनुष, जल एवं पर्जन्यको उत्पन्न किया। तदनन्तर उन्होंने यज्ञसम्पादनके लिये ऋक्, यजुः तथा सामवेदकी रचना की। उन वेदोंके द्वारा ही पूज्य देवगणोंका यजन किया गया—ऐसा हम सुनते हैं।

पूज्यांस्तैरयजन्देवानित्येवमनुशुश्रुम ।
मुखाद्देवानजनयत्पितॄंश्चैवाथ वक्षसः।
प्रजनाच्च मनुष्यान्वै जघनान्निर्ममेऽसुरान्॥ २२

उन्होंने अपने मुखसे देवताओंको, वक्षःस्थलसे पितरोंको, उपस्थेन्द्रियसे मनुष्योंको और जघनसे दैत्योंको उत्पन्न किया। इस प्रकार प्रजाकी सृष्टि करते हुए उन आपव (अर्थात् जलमें प्रकट हुए) प्रजापति ब्रह्माजीके अंगोंमेंसे उच्च तथा साधारण श्रेणीके बहुत-से प्राणी प्रकट हुए॥ २०—२२॥

उच्चावचानि भूतानि गात्रेभ्यस्तस्य जज्ञिरे।
आपवस्य प्रजासर्गं सृजतो हि प्रजापतेः॥ २३
सृज्यमानाः प्रजाश्चैव नावर्धन्त यदा तदा।
द्विधा कृत्वात्मनो देहं स्त्री चैव पुरुषोऽभवत्॥ २४

ब्रह्माजीके द्वारा सृजन की जाती हुई सृष्टि जब नहीं बढ़ी, तब वे अपने शरीरको दो भागोंमें विभक्तकर एक भागसे पुरुष और दूसरे भागसे नारी हो गये॥ २३-२४॥

ससृजेऽथ प्रजाः सर्वा महिम्ना व्याप्य विश्वतः।
विराजमसृजद्विष्णुः स सृष्टः पुरुषं विराट्॥ २५

द्वितीयं तं मनुं विद्धि मनोरन्तरमेव च।
स वैराजः प्रजाः सर्वाः ससर्ज पुरुषः प्रभुः॥ २६

इसके अनन्तर अपनी महिमासे सारे संसारमें व्याप्त होकर उन्होंने सम्पूर्ण प्रजाको उत्पन्न किया। भगवान् विष्णुने विराट् (आपव, ब्रह्माजी)-को उत्पन्न किया। उन विराट्ने पुरुषको उत्पन्न किया। उस पुरुषको ही द्वितीय [सृष्टिकर्ता] मनु समझिये तथा यहींसे मन्वन्तरका आरम्भ भी मानना चाहिये। उन्हीं प्रभावशाली वैराज पुरुष मनुने समस्त प्रजाओंकी सृष्टि की थी॥ २५-२६॥

नारायणविसर्गस्य प्रजास्तस्याप्ययोनिजाः।
आयुष्मान् कीर्तिमान्धन्यः प्रजावांश्चाभवत्ततः॥ २७

भगवान् नारायणका [आपव प्रजापति ब्रह्माजीके रूपमें हुआ] प्रजासर्ग अयोनिज था। वह सर्ग आयुष्मान्, कीर्तिमान्, धन्य तथा प्रजावान् हुआ॥ २७॥

इत्येवमादिसर्गस्ते वर्णितो मुनिसत्तम।
आदिसर्गं विदित्वैवं यथेष्टां प्राप्नुयाद्गतिम्॥ २८

हे मुनिश्रेष्ठ! इस प्रकार मैंने आपसे आदिसर्गका वर्णन कर दिया। मनुष्य इस आदिसर्गको जानकर यथेष्ट गतिको प्राप्त कर लेता है॥ २८॥

इति श्रीशिवमहापुराणे पञ्चम्यामुमासंहितायां आदिसर्गवर्णनं नामैकोनत्रिंशोऽध्यायः॥ २९॥

॥ इस प्रकार श्रीशिवमहापुराणके अन्तर्गत पाँचवीं उमासंहितामें आदिसर्गवर्णन नामक उनतीसवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ २९॥

अथ त्रिंशोऽध्यायः

ब्रह्माद्वारा स्वायम्भुव मनु आदिकी सृष्टिका वर्णन

सूत उवाच

संसृष्टासु प्रजास्वेव आपवोऽथ प्रजापतिः।
लेभे वै पुरुषः पत्नीं शतरूपामयोनिजाम्॥ १

आपवस्य महिम्ना तु दिवमावृत्य तिष्ठतः।
धर्मेणैव महात्मा स शतरूपाप्यजायत॥ २

सूतजी बोले—इस प्रकार [अयोनिज मानस] प्रजाओंकी रचना हो जानेके पश्चात् आपव प्रजापति पुरुष अर्थात् मनुने अयोनिजा शतरूपा नामक पत्नी प्राप्त की। अपनी महिमासे द्युलोकको व्याप्त करके स्थित हुए मनुके धर्मसे ही उनकी पत्नी शतरूपाकी उत्पत्ति हुई॥ १-२॥

सा तु वर्षशतं तप्त्वा तपः परमदुश्चरम्।
भर्तारं दीप्ततपसं पुरुषं प्रत्यपद्यत॥ ३
स वै स्वायम्भुवो जज्ञे पुरुषो मनुरुच्यते।
तस्यैकसप्ततियुगं मन्वन्तरमिहोच्यते॥ ४

सौ वर्षतक अत्यन्त कठिन तप करके शतरूपाने तपस्तेजसे सम्पन्न पुरुषको पतिरूपमें प्राप्त किया था। प्रादुर्भूत हुए वे पुरुष ही स्वायम्भुव मनु कहे जाते हैं, उन [के अधिकार]-का इकहत्तर चतुर्युगोंका समय इस संसारमें एक मन्वन्तर कहा जाता है॥ ३-४॥

वैराजात्पुरुषाद्वीरा शतरूपा व्यजायत।
प्रियव्रतोत्तानपादौ वीरकायामजायताम्॥ ५
काम्या नाम महाभागा कर्दमस्य प्रजापतेः।
काम्यापुत्रास्त्रयस्त्वासन्सम्राट्साक्षिरविट् प्रभुः॥ ६

उन वैराज पुरुषके [अपने ही अंशके] द्वारा वीरा शतरूपा उत्पन्न हुई और उस वीरका (वीरा) शतरूपासे स्वायम्भुव मनुने प्रियव्रत और उत्तानपाद नामक दो पुत्र उत्पन्न किये। उनकी एक कन्या उत्पन्न हुई, जिसका नाम काम्या था। वह महाभागा काम्या कर्दम प्रजापतिकी भार्या हुई। काम्याके सम्राट्, साक्षी और अविट्प्रभु नामक तीन पुत्र हुए॥ ५-६॥

उत्तानपादोऽजनयत्पुत्रान् शक्रसमान् प्रभुः।
ध्रुवं च तनयं दिव्यमात्मानन्दसुवर्चसम्॥ ७

प्रभु उत्तानपादने इन्द्रके समान अनेक पुत्रोंको उत्पन्न किया और आत्माराम परम तेजस्वी ध्रुव नामक एक अन्य पुत्रको भी उत्पन्न किया॥ ७॥

धर्मस्य कन्या सुश्रोणी सुनीतिर्नाम विश्रुता।
उत्पन्ना चापि धर्मेण ध्रुवस्य जननी तथा॥ ८

सुन्दर कटिवाली धर्मकन्या सुनीति नामसे प्रसिद्ध थी, यही धर्मकन्या [सुनीति] ध्रुवकी माता थी॥ ८॥

ध्रुवो वर्षसहस्राणि त्रीणि दिव्यानि कानने।
तपस्तेपे स बालस्तु प्रार्थयन्स्थानमव्ययम्॥ ९
तस्मै ब्रह्मा ददौ प्रीतः स्थानमात्मसमं प्रभुः।
अचलं चैव पुरतः सप्तर्षीणां प्रजापतिः॥ १०

उस बालक ध्रुवने अविनाशी स्थान प्राप्त करनेकी इच्छासे दिव्य तीन हजार वर्षपर्यन्त वनमें [कठोर] तप किया। प्रजापति प्रभु ब्रह्माजीने प्रसन्न होकर सप्तर्षियोंके सम्मुख उसे अपने ही समान अचल स्थान दिया॥ ९-१०॥

तस्मात् पुष्टिश्च धान्यश्च ध्रुवात्पुत्रौ व्यजायताम्।
पुष्टिरेवं समुत्थायाः पञ्चपुत्रानकल्मषान्॥ ११
रिपुं रिपुञ्जयं विप्रं वृकलं वृषतेजसम्।
रिपोरेवं च महिषी चाक्षुषं सर्वतोदिशम्॥ १२
अजीजनत्पुष्करिण्यां वरुणं चाक्षुषो मनुः।
मनोरजायन्त दश नड्वलायां महौजसः॥ १३
कन्यायां हि मुनिश्रेष्ठ वैराजस्य प्रजापतेः।
पुरुर्मासः शतद्युम्नस्तपस्वी सत्यवित्कविः॥ १४
अग्निष्टोमोऽतिरात्रश्चातिमन्युः सुयशा दश।
पूरोरजनयत्पुत्रान् षडाग्नेयी महाप्रभान्॥ १५
अङ्गं सुमनसं ख्यातिं सृतिमङ्गिरसं गयम्।
अङ्गात्सुनीथा भार्या वै वेनमेकमसूयत॥ १६

उस ध्रुवसे पुष्टि तथा धान्य नामक दो पुत्र उत्पन्न हुए। पुष्टिने समुत्थासे रिपु, रिपुंजय, विप्र, वृकल और वृषतेजा नामवाले पापरहित पाँच पुत्रोंको उत्पन्न किया। रिपुकी पत्नीने सभी दिशाओंमें विख्यात चाक्षुष नामक पुत्रको जन्म दिया। चाक्षुष मनुने पुष्करिणीसे वरुण नामक पुत्र उत्पन्न किया। हे मुनिश्रेष्ठ! मनुसे प्रजापति वैराजकी कन्या नड्वलाके गर्भसे दस तेजस्वी पुत्र उत्पन्न हुए। उन पुत्रोंके नाम पुरु, मास, शतद्युम्न, तपस्वी, सत्यवित्, कवि, अग्निष्टोम, अतिकाल, अतिमन्यु एवं सुयश हैं। अग्निकी पुत्रीने पुरुसे परम तेजस्वी अंग, सुमना, ख्याति, सृति, अंगिरा और गय नामवाले छः पुत्रोंको उत्पन्न किया। अंगसे उनकी भार्या सुनीथाने वेन नामक पुत्रको उत्पन्न किया॥ ११—१६॥

अपचारेण वेनस्य कोपस्तेषां महानभूत्।
हुङ्कारेणैव तं जघ्नुर्मुनयो धर्मतत्पराः॥ १७

वेनके अपचारसे मुनियोंको महान् क्रोध हुआ और उन धर्मपरायण मुनियोंने अपने हुंकारसे उसे मार दिया॥ १७॥

अथ प्रजार्थमृषयः प्रार्थिताश्च सुनीथया।
सारस्वतास्तदा तस्य ममंथुर्दक्षिणं करम्॥ १८

तदनन्तर सुनीथाने सन्तानके लिये ऋषियोंसे प्रार्थना की, तब उन महाज्ञानी ऋषियोंने वेनके दाहिने हाथका मन्थन किया॥ १८॥

वेनस्य पाणौ मथिते संबभूव ततः पृथुः।
स धन्वी कवची जातस्तेजसादित्यसन्निभः॥ १९

वेनके हाथका मन्थन किये जानेपर उससे पृथु उत्पन्न हुए। वे धनुष एवं कवच धारण किये हुए उत्पन्न हुए थे तथा सूर्यके समान तेजस्वी थे॥ १९॥

अवतारः स विष्णोर्हि प्रजापालनहेतवे।
धर्मसंरक्षणार्थाय दुष्टानां दण्डहेतवे॥ २०

पृथुर्वैन्यस्तदा पृथ्वीमरक्षत्क्षत्रपूर्वजः।
राजसूयाभिषिक्तानामाद्यः स वसुधापतिः॥ २१

प्रजापालन, धर्मसंरक्षण तथा दुष्टोंको दण्ड देनेके लिये विष्णुका वह अवतार हुआ। उस समय सभी क्षत्रियोंके पूर्वज वेनपुत्र पृथुने पृथ्वीकी रक्षा की, वे राजसूयाभिषिक्त राजाओंमें प्रथम सम्राट् हुए॥ २०-२१॥

तस्माच्चैव समुत्पन्नौ निपुणौ सूतमागधौ।
तेनेयं गौर्मुनिश्रेष्ठ दुग्धा सर्वहिताय वै॥ २२

सर्वेषां वृत्तिदश्चाभूद्देवर्षिसुररक्षसाम्।
मनुष्याणां विशेषेण शतयज्ञकरो नृपः॥ २३

हे मुनिश्रेष्ठ! बुद्धिमान् सूत और मागध उन्हींसे उत्पन्न हुए। उन्होंने सबके कल्याणके लिये इस पृथ्वीका दोहन किया। सौ यज्ञ करनेवाले उन राजाने देवता, ऋषि, राक्षस तथा विशेषकर मनुष्योंको आजीविका प्रदान की॥ २२-२३॥

पृथोः पुत्रौ तु जज्ञाते धर्मज्ञौ भुवि पार्थिवौ।
विजिताश्वश्च हर्यक्षो महावीरौ सुविश्रुतौ॥ २४

पृथुके विजिताश्व और हर्यक्ष नामक दो पुत्र उत्पन्न हुए, जो भूलोकमें धर्मज्ञ, महावीर तथा अतिप्रसिद्ध राजा हुए॥ २४॥

शिखंडिनी चाजनयत्पुत्रं प्राचीनबर्हिषम्।
प्राचीनाग्राः कुशास्तस्य पृथिवीतलचारिणः॥ २५

समुद्रतनया तेन धर्मतः सुविवाहिता।
रेजेऽधिकतरं राजा कृतदारो महाप्रभुः॥ २६

शिखण्डिनीने प्राचीनबर्हि नामक पुत्र उत्पन्न किया। पृथ्वीतलपर विचरण करनेवाले उन प्राचीन-बर्हिके द्वारा [पृथ्वीपर यज्ञ किये जानेके कारण] कुशाओंका अग्रभाग सदा पूर्वकी ओर रहा करता था। उन्होंने समुद्रकी पुत्रीके साथ धर्मपूर्वक विवाह किया, विवाह करके वे महाप्रभु राजा अत्यन्त सुशोभित हुए॥ २५-२६॥

समुद्रतनयायास्तु दश प्राचीनबर्हिषः।
बभूवुस्तनया दिव्या बहुयज्ञकरस्य वै॥ २७

समुद्रकन्याके गर्भसे अनेक यज्ञोंके कर्ता उन प्राचीनबर्हिने दिव्य दस पुत्रोंको उत्पन्न किया॥ २७॥

सर्वे प्राचेतसा नाम्ना धनुर्वेदस्य पारगाः।
अपृथग्धर्माचरणास्तेऽतप्यन्त महत्तपः॥ २८

दशवर्षसहस्राणि समुद्रसलिलेशयाः।
रुद्रगीतं जपन्तश्च शिवध्यानपरायणाः॥ २९

प्राचेतस नामसे प्रसिद्ध वे सब धनुर्वेदके पारंगत थे। अनुकूल धर्मका आचरण करनेवाले उन सभीने शिवके ध्यानमें संलग्न होकर समुद्रके जलमें शयन करते हुए और रुद्रगीतका जप करते हुए दस हजार वर्षपर्यन्त कठोर तपस्या की॥ २८-२९॥

तपश्चरत्सु पृथ्व्यामभवंश्च महीरुहाः।
अरक्ष्यमाणायां पृथ्व्यां बभूवाथ प्रजाक्षयः॥ ३०

जिस समय वे तप कर रहे थे उस समय रक्षा न की जाती हुई पृथ्वीपर प्रजाओंका क्षय होने लगा और सारी पृथ्वीपर पेड़-ही-पेड़ हो गये॥ ३०॥

तान् दृष्ट्वा तु निवृत्तास्ते तपसो लब्धसद्वराः।
चुक्रुधुर्मुनिशार्दूल दग्धुकामास्तपोबला:॥ ३१

प्राचेतसा मुखेभ्यस्ते प्रासृजन्नग्निमारुतौ।
वृक्षानुन्मूल्य वायुस्तानदहद्धव्यवाहनः॥ ३२

वृक्षक्षयं ततो दृष्ट्वा किञ्चिच्छेषेषु शाखिषु।
उपगम्याब्रवीदेतान् राजा सोमः प्रतापवान्॥ ३३

सोम उवाच

कोपं यच्छत राजानः सर्वे प्राचीनबर्हिषः।
अनुभूतानुकन्येयं वृक्षाणां वरवर्णिनी॥ ३४
भविष्यं जानता सा तु धृता गर्भेण वै मया।
भार्या वोऽस्तु महाभागाः सोमवंशविवर्धिनी॥ ३५
अस्यामुत्पत्स्यते विद्वान् दक्षो नाम प्रजापतिः।
सृष्टिकर्ता महातेजा ब्रह्मपुत्रः पुरातनः॥ ३६
युष्माकं तेजसार्धेन मम चानेन तेजसा।
ब्रह्मतेजोमयो भूपः प्रजाः संवर्धयिष्यति॥ ३७

ततः सोमस्य वचनाज्जगृहुस्ते प्रचेतसः।
भार्यां धर्मेण तां प्रीत्या वृक्षजां वरवर्णिनीम्॥ ३८

तेभ्यस्तस्यास्तु संजज्ञे दक्षो नाम प्रजापतिः।
सोऽपि जज्ञे महातेजाः सोमस्यांशेन वै मुने॥ ३९

अचरांश्च चरांश्चैव द्विपदोऽथ चतुष्पदः।
संसृज्य मनसा दक्षो मैथुनीं सृष्टिमारभत्॥ ४०

वीरणस्य सुतां नाम्ना वीरणीं स प्रजापतेः।
उपयेमे सुविधिना सुधर्मेण पतिव्रताम्॥ ४१
हर्यश्वानयुतं तस्यां सुतान् पुण्यानजीजनत्।
ते विरक्ता बभूवुश्च नारदस्योपदेशतः॥ ४२

तच्छ्रुत्वा स पुनर्दक्षः सुबलाश्वानजीजनत्।
नामतस्तनयांस्तस्यां सहस्रपरिसंख्यया॥ ४३

तेऽपि भ्रातृपथा यातास्तन्मुनेरुपदेशतः।
नागमन् पितृसान्निध्यं विरक्ता भिक्षुमार्गिणः॥ ४४

हे मुनिश्रेष्ठ! तपस्यासे वर प्राप्तकर जब वे लौटे तो उन वृक्षोंको देखकर उन्हें बड़ा क्रोध उत्पन्न हुआ और उन समर्थ तपस्वियोंने उन्हें जला देनेका विचार किया। उन प्राचेतसोंने अपने मुखोंसे अग्नि तथा वायुको उत्पन्न किया। वायुने उन वृक्षोंको उखाड़ डाला और अग्निने भस्म कर दिया॥ ३१-३२॥

तब वृक्षोंका क्षय देखकर और कुछ ही वृक्षोंके शेष रह जानेपर प्रतापी राजा चन्द्रमा उनके समीप जाकर कहने लगे— ॥ ३३॥

सोम बोले—हे प्राचीनबर्हिके पुत्र राजाओ! आपलोग अपने क्रोधको शान्त कीजिये और वृक्षोंकी इस सुन्दर कन्याको स्वीकार कीजिये। भविष्यको जाननेवाले मैंने गर्भमें इसका पोषण किया है। अतः हे महाभागो! सोमवंशको बढ़ानेवाली इस कन्याको आपलोग भार्यारूपसे स्वीकार कीजिये। विद्वान्, सृष्टिकर्ता, महातेजस्वी, पुरातन, ब्रह्मपुत्र दक्ष नामक प्रजापति इसके गर्भसे उत्पन्न होंगे। ब्रह्मतेजसे सम्पन्न ये राजा (प्रजापति दक्ष) आपलोगोंके आधे तेजसे एवं मेरे तेजसे प्रजाओंकी वृद्धि करेंगे॥ ३४—३७॥

तब सोमके वचनसे प्रचेताओंने वृक्षोंसे उत्पन्न उस मनोहर कन्याको प्रेमके साथ धर्मपूर्वक भार्यारूपमें ग्रहण किया। हे मुने! उन प्रचेताओंसे उसके गर्भसे दक्ष नामक प्रजापति उत्पन्न हुए, परम तेजवाले वे सोमके भी अंशसे उत्पन्न हुए थे॥ ३८-३९॥

तब दक्षने मनसे अचर, चर, दो पैरवाले एवं चार पैरवाले जीवोंका सृजन करके मैथुनी सृष्टि प्रारम्भ की॥ ४०॥

उन्होंने वीरण नामक प्रजापतिकी वीरणी नामक पतिव्रता कन्यासे उत्तम विधानके साथ धर्मपूर्वक विवाह किया और उस कन्यासे हर्यश्व नामक दस हजार पुण्यात्मा पुत्रोंको उत्पन्न किया, वे सब नारदजीके उपदेशसे विरक्त हो गये॥ ४१-४२॥

यह सुनकर दक्षने पुनः उसी स्त्रीसे सुबलाश्व नामक हजार पुत्रोंको उत्पन्न किया। वे भी उन मुनिके उपदेशसे अपने भाइयोंके मार्गपर चले गये, वे विरक्त तथा भिक्षुमार्गी हो गये और पिताके पास नहीं गये॥ ४३-४४॥

तच्छ्रुत्वा शापमाक्रुद्धो मुनये दुःसहं ददौ।
कुत्रचिन्न लभस्वेति संस्थितिं कलहप्रिय॥ ४५

यह सुनकर अत्यधिक कुपित होकर उन दक्षने मुनिको दुःसह शाप दे दिया—हे कलहप्रिय! तुम कहीं भी स्थिरता प्राप्त नहीं करोगे॥ ४५॥

सांत्वितोऽथ विधात्रा हि स पश्चादसृजत्स्त्रियः।
महाज्वालास्वरूपेण गुणैश्चापि मुनीश्वर॥ ४६

हे मुनीश्वर! इसके बाद ब्रह्माजीके द्वारा सान्त्वना दिये जानेपर उन्होंने महाज्वालास्वरूप तथा सभी गुणोंसे युक्त स्त्रियोंको उत्पन्न किया॥ ४६॥

ददौ स दश धर्माय कश्यपाय त्रयोदश।
द्वे चैवं ब्रह्मपुत्राय द्वे चैवाङ्गिरसे तदा॥ ४७
द्वे कृशाश्वाय विदुषे मुनये मुनिसत्तम।
शिष्टाः सोमाय दक्षोऽपि नक्षत्राख्या ददौ प्रभुः॥ ४८
ताभ्यो दक्षस्य पुत्रीभ्यो जाता देवासुरादयः।
बहवस्तनयाः ख्यातास्तैः सर्वैः पूरितं जगत्॥ ४९

उन्होंने दस कन्याएँ धर्मराजको, तेरह कश्यपको, दो ब्रह्मपुत्रको और दो अंगिराको दीं, हे मुनिश्रेष्ठ! उन प्रभु दक्षने दो कन्याएँ विद्वान् मुनि कृशाश्वको और नक्षत्र नामवाली [सत्ताईस] कन्याएँ चन्द्रमाको प्रदान कीं। दक्षकी उन्हीं कन्याओंसे देवता, असुर आदि उत्पन्न हुए, उनके बहुत-से पुत्र कहे गये हैं, उन सभीके द्वारा जगत् परिपूर्ण हो गया॥ ४७—४९॥

ततः प्रभृति विप्रेन्द्र प्रजा मैथुनसम्भवाः।
संकल्पाद्दर्शनात्स्पर्शात्पूर्वेषां सृष्टिरुच्यते॥ ५०

हे विप्रेन्द्र! तभीसे मैथुनी सृष्टिका प्रादुर्भाव हुआ। इसके पूर्व संकल्प, दर्शन एवं स्पर्शसे सृष्टि कही गयी है॥ ५०॥

शौनक उवाच

अङ्गुष्ठाद् ब्रह्मणो जज्ञे दक्षश्चोक्तस्त्वया पुरा।
कथं प्राचेतसत्वं हि पुनर्लेभे महातपाः॥ ५१
एतं मे संशयं सूत प्रत्याख्यातुं त्वमर्हसि।
चित्रमेतत्स सोमस्य कथं श्वशुरतां गतः॥ ५२

शौनक बोले—आपने पहले कहा था कि ब्रह्माके अँगूठेसे दक्ष उत्पन्न हुए, तब महान् तपवाले वे प्रचेताओंके पुत्र किस प्रकार हुए? हे सूतजी! मेरे इस सन्देहको दूर करनेमें आप समर्थ हैं और यह आश्चर्य है कि वे चन्द्रमाके श्वशुर किस प्रकार हुए?॥ ५१-५२॥

सूत उवाच

उत्पत्तिश्च निरोधश्च नित्यं भूतेषु वर्तते।
कल्पे कल्पे भवन्त्येते सर्वे दक्षादयो मुने॥ ५३

सूतजी बोले—हे मुने! प्राणियोंकी उत्पत्ति एवं उनका निरोध नित्य होता रहता है। प्रत्येक कल्पमें ये दक्ष आदि उत्पन्न होते रहते हैं॥ ५३॥

इमां विसृष्टिं दक्षस्य यो विद्यात्सचराचराम्।
प्रजावानायुषा पूर्णः स्वर्गलोके महीयते॥ ५४

जो [मनुष्य] दक्षकी इस चराचरयुक्त सृष्टिको जान लेता है। वह सन्तानयुक्त एवं आयुसे पूर्ण होकर स्वर्गलोकमें प्रतिष्ठा प्राप्त करता है॥ ५४॥

इति श्रीशिवमहापुराणे पञ्चम्यामुमासंहितायां सर्गवर्णनं नाम त्रिंशोऽध्यायः॥ ३०॥

॥ इस प्रकार श्रीशिवमहापुराणके अन्तर्गत पाँचवीं उमासंहितामें सर्गवर्णन नामक तीसवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ ३०॥

अथैकत्रिंशोऽध्यायः

दैत्य, गन्धर्व, सर्प एवं राक्षसोंकी सृष्टिका वर्णन तथा दक्षद्वारा नारदके शाप-वृत्तान्तका कथन

शौनक उवाच

देवानां दानवानां च गन्धर्वोरगरक्षसाम्।
सृष्टिं तु विस्तरेणेमां सूतपुत्र वदाशु मे॥ १

शौनकजी बोले—हे सूतपुत्र! आप देवगणों, दैत्यों, गन्धर्वों, सर्पों एवं राक्षसोंकी इस सृष्टिका वर्णन विस्तारपूर्वक करें॥ १॥

सूत उवाच

यदा न ववृधे सा तु वीरणस्य प्रजापतिः।
सुतां सुतपसा युक्तामाह्वयत्सर्गकारणात्॥ २

सूतजी बोले—जब प्रजापति दक्षकी [मानसी] प्रजाकी वृद्धि नहीं हुई, तब वे तपस्यामें निरत रहनेवाली प्रजापति वीरणकी पुत्री [असिक्नी]-को विवाहकर ले आये॥ २॥

स मैथुनेन धर्मेण ससर्ज विविधाः प्रजाः।
ताः शृणु त्वं महाप्राज्ञ कथयामि समासतः॥ ३

तस्यां पुत्रसहस्राणि वीरिण्यां पञ्च वीर्यवान्।
आश्रित्य जनयामास दक्ष एव प्रजापतिः॥ ४

हे महाप्राज्ञ! उन्होंने मैथुनके द्वारा धर्मपूर्वक विविध प्रजाओंका सृजन किया, मैं संक्षेपमें उन्हें बता रहा हूँ, आप सुनिये। उस वीरिणीका आश्रय लेकर दक्ष प्रजापतिने पाँच हजार पुत्रोंको उत्पन्न किया॥ ३-४॥

एतान् सृष्टांस्तु तान् दृष्ट्वा नारदः प्राह वै मुनिः।
सत्रे स तु समुत्पन्नो नारदः परमेष्ठिनः॥ ५

श्रुतवान्वा कश्यपाद्वै पुंसां सृष्टिर्भविष्यति।
दक्षस्यैव दुहितृषु तस्मात्तानब्रवीत्तु सः॥ ६

अजानन्तः कथं सृष्टिं बालिशा वै करिष्यथ।
दिशं काञ्चिदजानन्तस्तस्माद्विज्ञाय तां भुवम्॥ ७

परमेष्ठी ब्रह्माजीके सृष्टिसत्रमें उत्पन्न हुए नारद मुनिने कश्यपजीसे यह जानकर कि दक्षकी पुत्रियोंसे ही सृष्टिका विस्तार होगा, उत्पन्न हुए उन दक्ष-पुत्रोंको देखकर उनसे कहा—हे अबोध बालको! तुमलोग पृथ्वीका विस्तार बिना जाने भला किस प्रकार सृष्टि करोगे? दिशाको जाने बिना कोई अपने लक्ष्यको कैसे प्राप्त करेगा, इसलिये तुमलोग पृथ्वीकी दिशाओंका पता लगाओ॥ ५—७॥

इत्युक्ताः प्रययुः सर्वे आशां विज्ञातुमोजसा।
तदन्तं न हि सम्प्राप्य न निवृत्ताः पितुर्गृहम्॥ ८

तज्ज्ञात्वा जनयामास पुनः पञ्चशतान् सुतान्।
तानुवाच पुनः सोऽपि नारदः सर्वदर्शनः॥ ९

उनके द्वारा ऐसा कहे जानेपर वे सभी अपनी शक्तिसे दिशाका ज्ञान करनेके लिये चल दिये। उसका अन्त न पाकर वे पुनः अपने पिताके घर नहीं लौटे। यह जानकर दक्षने पुनः पाँच सौ पुत्रोंको उत्पन्न किया। इसके बाद सर्वदर्शी उन नारदने उनसे भी कहा—॥ ८-९॥

नारद उवाच

भुवो मानमजानन्तः कथं सृष्टिं करिष्यथ।
सर्वे हि बालिशाः किं हि सृष्टिं कर्तुं समुद्यताः॥ १०

नारदजी बोले—तुमलोग पृथ्वीका प्रमाण जाने बिना किस प्रकार सृष्टि करोगे? हे मूर्खो! तुम सब सृष्टि करनेके लिये भला कैसे उद्यत हो गये हो?॥ १०॥

सूत उवाच

तेऽपि तद्वचनं श्रुत्वा निर्याताः सर्वतोदिशम्।
सुबलाश्वा दक्षसुता हर्यश्वा इव ते पुरा॥ ११

सूतजी बोले—वह वचन सुनकर वे सभी दिशाओंमें चले गये, जैसे पहले वे दक्षपुत्र सुबलाश्व तथा हर्यश्व चले गये थे॥ ११॥

अनन्तं पुष्करं प्राप्य गतास्तेऽपि पराभवम्।
अद्यापि न निवर्तन्ते समुद्रेभ्य इवापगाः॥ १२

दिशाओंको बिना अन्तवाला पाकर वे पराभवको प्राप्त हुए और आजतक नहीं लौटे, जिस प्रकार समुद्रको प्राप्तकर नदियाँ पुनः नहीं लौटती हैं॥ १२॥

तदाप्रभृति वै भ्राता भ्रातुरन्वेषणे रतः।
प्रयातो नश्यति मुने तन्न कार्यं विपश्चिता॥ १३

हे मुने! उसी समयसे कोई भी भाई अपने भाईकी खोजमें नहीं जाता, यदि चला भी जाय तो नष्ट हो जाता है—ऐसा सोचकर बुद्धिमानोंको भाईकी खोजमें प्रवृत्त नहीं होना चाहिये॥ १३॥

तांश्चापि नष्टान् विज्ञाय पुत्रान् दक्षः प्रजापतिः।
स च क्रोधाद्ददौ शापं नारदाय महात्मने॥ १४

कुत्रचिन्न लभस्वेति संस्थितिं कलहप्रिय।
तव सान्निध्यतो लोके भवेच्च कलहः सदा॥ १५

सांत्वितोऽथ विधात्रा हि स दक्षस्तु प्रजापतिः।
कन्याः षष्ट्यसृजत्पश्चाद्वीरिण्यामिति नः श्रुतम्॥ १६

ददौ स दश धर्माय कश्यपाय त्रयोदश।
सप्तविंशति सोमाय चतस्रोऽरिष्टनेमिने॥ १७

द्वे चैवं ब्रह्मपुत्राय द्वे चैवाङ्गिरसे तदा।
द्वे कृशाश्वाय विदुषे तासां नामानि मे शृणु॥ १८

अरुंधती वसुर्यामिर्लम्बा भानुर्मरुत्वती।
संकल्पा च मुहूर्ता च सन्ध्या विश्वा च वै मुने॥ १९
धर्मपत्न्यो मुने त्वेतास्तास्वपत्यानि मे शृणु।
विश्वेदेवास्तु विश्वायाः साध्यान्साध्या व्यजायत॥ २०
मरुत्वत्यां मरुत्वन्तो वसोस्तु वसवस्तथा।
भानोस्तु भानवः सर्वे मुहूर्तायां मुहूर्तजाः॥ २१
लम्बायाश्चैव घोषोऽथ नागवीथी च यामिजा।
पृथिवीविषमस्तस्यामरुन्धत्यामजायत ॥ २२
सङ्कल्पायास्तु सत्यात्मा जज्ञे सङ्कल्प एव हि।
अयादयो वसोः पुत्रा अष्टौ तान् शृणु शौनक॥ २३
अयो ध्रुवश्च सोमश्च धरश्चैवानिलोऽनलः।
प्रत्यूषश्च प्रभासश्च वसवोऽष्टौ च नामतः॥ २४

अयस्य पुत्रो वैतण्डः श्रमः शान्तो मुनिस्तथा।
ध्रुवस्य पुत्रो भगवान् कालो लोकप्रभावनः॥ २५

सोमस्य भगवान् वर्चा वर्चस्वी येन जायते।
धरस्य पुत्रो द्रविणो हुतहव्यवहस्तथा॥ २६
मनोहरायाः शिशिरः प्राणोऽथ रमणस्तथा।
अनिलस्य शिवा भार्या यस्याः पुत्रः पुरोजवः॥ २७
अविज्ञातगतिश्चैव द्वौ पुत्रावनिलस्य तु।
अग्निपुत्रः कुमारस्तु शरस्तम्बे श्रियावृते॥ २८
तस्य शाखो विशाखश्च नैगमेयश्च पृष्ठतः।
अपत्यं कृत्तिकानां तु कार्तिकेय इति स्मृतः॥ २९

उसके अनन्तर उन पुत्रोंको नष्ट हुआ जानकर उन दक्ष प्रजापतिने क्रोधपूर्वक महात्मा नारदजीको यह शाप दे दिया। हे कलहप्रिय! आप कहीं भी स्थिति प्राप्त नहीं करेंगे, आपके सान्निध्यसे लोकमें सदा कलह होगा॥ १४-१५॥

तब ब्रह्माजीने दक्ष प्रजापतिको शान्त किया, उसके बाद उन्होंने वीरिणीसे साठ कन्याओंको उत्पन्न किया—ऐसा हमने सुना है॥ १६॥

उन्होंने दस कन्याएँ धर्मराजको, तेरह कश्यपको, सत्ताईस सोमको, चार कन्याएँ अरिष्टनेमिको, दो कन्याएँ ब्रह्मपुत्रको, दो अंगिराको तथा दो कन्याएँ विद्वान् कृशाश्वको दीं। उन सभीके नाम मुझसे सुनिये॥ १७-१८॥

हे मुने! अरुन्धती, वसु, यामि, लम्बा, भानु, मरुत्वती, संकल्पा, मुहूर्ता, सन्ध्या और विश्वा—ये दस धर्मकी पत्नियाँ हैं। हे मुने! अब उनसे उत्पन्न सन्तानोंके नाम मुझसे सुनिये। विश्वासे विश्वेदेव उत्पन्न हुए। साध्याने साध्योंको उत्पन्न किया। मरुत्वतीसे मरुत्वान्, वसुसे [अष्ट] वसु, भानुसे [द्वादश] भानु, मुहूर्तासे सभी मुहूर्तज, लम्बासे घोष, यामिसे नागवीथी एवं उस अरुन्धतीसे पृथिवीविषम उत्पन्न हुए। संकल्पासे सत्यवादी संकल्प नामक पुत्र उत्पन्न हुआ। हे शौनक! वसुके अय आदि आठ पुत्र हैं, उनके नाम सुनिये। अय, ध्रुव, सोम, धर, अनिल, अनल, प्रत्यूष तथा प्रभास नामवाले आठ वसुपुत्र हैं॥ १९—२४॥

अयके पुत्र वैतण्ड, श्रम, शान्त एवं मुनि हुए। समस्त लोकोंको प्रभावित करनेवाले भगवान् काल ध्रुवके पुत्र थे॥ २५॥

सोमके पुत्र भगवान् वर्चा हुए, जिनसे मनुष्य वर्चस्वी होता है। धरके पुत्र द्रविण, हुत एवं हव्यवह हुए। मनोहरासे शिशिर, प्राण एवं रमण उत्पन्न हुए। अनिलकी शिवा नामक भार्या थी, जिसके अनिलसे दो पुत्र उत्पन्न हुए—पुरोजव एवं अविज्ञातगति। अग्निके पुत्र कुमार हुए, जिनकी उत्पत्ति श्रीयुक्त सरकण्डोंके वनमें हुई। उन कुमारके पृष्ठदेशसे भी पुत्र शाख, विशाख एवं नैगमेय हुए। वे कार्तिकेय कृत्तिकाओंके पुत्र भी कहे गये हैं॥ २६—२९॥

प्रत्यूषस्य त्वभूत्पुत्र ऋषिर्नाम्ना तु देवलः।
द्वौ पुत्रौ देवलस्यापि प्रजावन्तौ मनीषिणौ॥ ३०

प्रत्यूषके पुत्र देवल नामक ऋषि हुए, उन देवलके भी महाबुद्धिमान् तथा सन्तानशील दो पुत्र उत्पन्न हुए॥ ३०॥

बृहस्पतेस्तु भगिनी वरस्त्री ब्रह्मचारिणी।
योगसिद्धा जगत्कृत्स्नं समन्ताद्व्यचरत्तदा॥ ३१

प्रभासस्य तु सा भार्या वसूनामष्टमस्य च।
विश्वकर्मा महाभाग तस्य जज्ञे प्रजापतिः॥ ३२

कर्ता शिल्पसहस्राणां त्रिदशानां च वार्धकिः।
भूषणानां च सर्वेषां कर्ता शिल्पवतां वरः॥ ३३

यः सर्वासां विमानानि देवतानां चकार ह।
मनुष्याश्चोपजीवन्ति यस्य शिल्पं महात्मनः॥ ३४

बृहस्पतिकी बहन ब्रह्मचारिणी थी, जो स्त्रियोंमें श्रेष्ठ थी, वह योगमें सिद्ध होकर समस्त संसारमें भ्रमण करनेवाली थी। वह आठवें वसु प्रभासकी पत्नी हुई। हे महाभाग! उस प्रभासके प्रजापति विश्वकर्मा [नामक पुत्र] उत्पन्न हुए, जो हजारों शिल्पोंके कर्ता, देवताओंके कारीगर, सभी प्रकारके आभूषणोंके निर्माता एवं शिल्पकारोंमें श्रेष्ठ हुए, जिन्होंने सभी देवताओंके विमानोंका निर्माण किया और जिन महात्माके शिल्पद्वारा [आज भी] मनुष्य आजीविका प्राप्त करते हैं॥ ३१—३४॥

रैवतोऽजो भवो भीमो वाम उग्रो वृषाकपिः।
अजैकपादहिर्बुध्न्यो बहुरूपो महानिति॥ ३५

सरूपायां प्रसूतस्य स्त्रियां रुद्रांश्च कोटिशः।
तत्रैकादशमुख्यांस्तु तन्नामानि मुने शृणु॥ ३६

रैवत, अज, भव, भीम, वाम, उग्र, वृषाकपि, अजैकपाद, अहिर्बुध्न्य, बहुरूप, महान् एवं अन्य करोड़ों रुद्र प्रसूतकी स्त्री सरूपामें उत्पन्न हुए, जिनमें ग्यारह रुद्र प्रमुख हैं। हे मुने! मुझसे उनके नामोंका श्रवण कीजिये॥ ३५-३६॥

अजैकपादहिर्बुध्न्यस्त्वष्टा रुद्रश्च वीर्यवान्।
हरश्च बहुरूपश्च त्र्यम्बकश्चापराजितः॥ ३७
वृषाकपिश्च शम्भुश्च कपर्दी रैवतस्तथा।
एकादशैते कथिता रुद्रास्त्रिभुवनेश्वराः॥ ३८

अजैकपाद, अहिर्बुध्न्य, त्वष्टा, वीर्यवान् रुद्र, हर, बहुरूप, अपराजित, त्र्यम्बक, वृषाकपि, शम्भु, कपर्दी एवं रैवत—ये तीनों लोकोंके स्वामी ग्यारह रुद्र कहे गये हैं॥ ३७-३८॥

शतं त्वेवं समाख्यातं रुद्राणाममितौजसाम्।
शृणु कश्यपपत्नीनां नामानि मुनिसत्तम॥ ३९

इसी प्रकार अमित तेजवाले सौ रुद्र कहे गये हैं। हे मुनिश्रेष्ठ! अब कश्यपकी पत्नियोंके नामका श्रवण कीजिये॥ ३९॥

इति श्रीशिवमहापुराणे पञ्चम्यामुमासंहितायां सर्गवर्णनं नामैकत्रिंशोऽध्यायः॥ ३१॥

॥ इस प्रकार श्रीशिवमहापुराणके अन्तर्गत पाँचवीं उमासंहितामें सर्गवर्णन नामक इकतीसवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ ३१॥

अथ द्वात्रिंशोऽध्यायः

कश्यपकी पत्नियोंकी सन्तानोंके नामका वर्णन

सूत उवाच

अदितिर्दितिश्च सुरसारिष्टेला दनुरेव च।
सुरभिर्विनता चैव ताम्रा क्रोधवशा खशा॥ १

कद्रूर्मुनिश्च विप्रेन्द्र तास्वपत्यानि मे शृणु।
पूर्वमन्वन्तरे श्रेष्ठे द्वादशासन्सुरोत्तमाः॥ २
तुषिता नाम तेऽन्योऽन्यमूचुर्वैवस्वतेऽन्तरे।

सूतजी बोले—अदिति, दिति, सुरसा, अरिष्टा, इला, दनु, सुरभि, विनता, ताम्रा, क्रोधवशा, खशा, कद्रू एवं मुनि—[ये कश्यपकी पत्नियोंके नाम हैं] अब उनकी सन्तानोंके विषयमें मुझसे सुनिये। पूर्वके मन्वन्तरमें तुषित नामक जो बारह उत्तम देवता थे, वे सुकीर्तिसम्पन्न चाक्षुष मन्वन्तरके समापन तथा वैवस्वत मन्वन्तरके आगमनके अवसरपर सभी लोकोंके हितके

उपस्थिते सुयशसश्चाक्षुषस्यान्तरे मनोः॥ ३
हिताय सर्वलोकानां समागम्य परस्परम्।
आगच्छत द्रुतं देवा अदितिं च प्रविश्य वै॥ ४
मन्वन्तरे प्रसूयामः सतां श्रेयो भविष्यति।
एवमुक्तास्तु ते सर्वे चाक्षुषस्यान्तरे मनोः॥ ५
मारीचात्कश्यपाज्जातास्तेऽदित्या दक्षकन्यया।

लिये परस्पर एकत्रित होकर कहने लगे कि हमलोग इस वैवस्वत मन्वन्तरमें अदितिके गर्भमें प्रविष्ट होकर जन्म लें, ऐसा करनेसे सज्जन लोगोंका कल्याण होगा। ऐसा कहे जानेपर चाक्षुष मन्वन्तरके अन्तमें वे तुषित देवगण मरीचिके पुत्र कश्यपके द्वारा दक्षपुत्री अदितिके गर्भसे उत्पन्न हुए॥ १—५१/२ ॥

तत्र विष्णुश्च शक्रश्च जज्ञाते पुनरेव हि॥ ६
अर्यमा चैव धाता च त्वष्टा पूषा तथैव च।
विवस्वान् सविता चैव मित्रावरुण एव च॥ ७
अंशो भगश्चातितेजा आदित्या द्वादश स्मृताः।
चाक्षुषस्यान्तरे पूर्वमासन्ये तुषिताः सुराः॥ ८
पुरैव तस्यान्तरे तु आदित्या द्वादश स्मृताः।
इति प्रोक्तानि क्रमशोऽदित्यपत्यानि शौनक॥ ९

उनमें विष्णु तथा शक्रने पहले जन्म लिया, अदितिमें जन्म लेनेवाले अर्यमा, धाता, त्वष्टा, पूषा, विवस्वान्, सविता, मित्र, वरुण, अंश तथा भग—ये अतितेजस्वी द्वादश आदित्यके नामसे विख्यात हुए। जो चाक्षुष मन्वन्तरमें तुषित नामके देवता थे, वे ही अगले (वैवस्वत) मन्वन्तरमें द्वादश आदित्य कहे गये। हे शौनक! इस प्रकार मैंने अदितिके द्वादश अपत्योंका वर्णन आपसे किया॥ ६—९ ॥

सप्तविंशतिर्याः प्रोक्ताः सोमपत्न्योऽथ सुव्रताः।
तासामपत्यान्यभवन्दीप्तयोऽमिततेजसः ॥ १०

दक्षकी सत्ताईस कन्याएँ जो उत्तम व्रतवाली सोमकी स्त्रियाँ थीं, उनसे अत्यन्त तेजस्वी सन्तानें हुईं॥ १० ॥

अरिष्टनेमिपत्नीनामपत्यानीह षोडश।
बहुपुत्रस्य विदुषश्चतस्त्रो विद्युतः स्मृताः॥ ११
कृशाश्वस्य तु देवर्षे देवप्रहरणाः स्मृताः।
भार्यायामर्चिषि मुने धूम्रकेशस्तथैव च॥ १२

दक्षकी विद्युत् नामवाली चार कन्याएँ जो अनेक पुत्रोंवाले विद्वान् अरिष्टनेमिकी पत्नियाँ थीं, उनमें सोलह पुत्र उत्पन्न हुए, देवर्षि कृशाश्वके पुत्र देवप्रहरण (देवताओंके अस्त्र-शस्त्र) नामसे अभिहित हुए। हे मुने! उनकी अर्चि नामक पत्नीसे धूम्रकेश उत्पन्न हुए॥ ११-१२ ॥

स्वधा सती च द्वे पत्न्यौ स्वधा ज्येष्ठा सती परा।
स्वधासूत पितॄन् वेदमथर्वाङ्गिरसं सती॥ १३

उनकी स्वधा और सती नामक दो पत्नियाँ थीं, उनमें बड़ीका नाम स्वधा था तथा कनिष्ठा सती थी। स्वधाने पितरोंको और सतीने वेद और अथर्वांगिराको उत्पन्न किया॥ १३ ॥

एते युगसहस्रान्ते जायन्ते पुनरेव हि।
सर्वदेवनिकायाश्च त्रयस्त्रिंशत्तु कामजाः॥ १४
यथा सूर्यस्य नित्यं हि उदयास्तमयाविह।
एवं देवनिकायास्ते सम्भवन्ति युगे युगे॥ १५

ये सभी तैंतीस देवता कामज कहे गये हैं और सहस्रयुगोंके अन्तमें पुनः-पुनः नित्य उत्पन्न होते रहते हैं। जिस प्रकार जगत्में सूर्यका उदय और अस्त होता है, उसी प्रकार ये देवनिकाय भी युग-युगमें उत्पन्न होते रहते हैं॥ १४-१५ ॥

दित्यां बभूवतुः पुत्रौ कश्यपादिति नः श्रुतम्।
हिरण्यकशिपुश्चैव हिरण्याक्षश्च वीर्यवान्॥ १६
सिंहिका ह्यभवत्कन्या विप्रचित्तेः परिग्रहः।
हिरण्यकशिपोः पुत्राश्चत्वारः प्रथितौजसः॥ १७
अनुह्लादश्च ह्लादश्च संह्लादश्चैव वीर्यवान्।
प्रह्लादश्चानुजस्तत्र विष्णुभक्तिविचारधीः॥ १८

कश्यपसे दितिके गर्भसे हिरण्याक्ष एवं हिरण्यकशिपु नामक महाबलवान् दो पुत्र उत्पन्न हुए—ऐसा हमने सुना है। सिंहिका नामकी एक कन्या भी हुई, जो विप्रचित्तिकी पत्नी बनी। हिरण्यकशिपुके महातेजस्वी चार पुत्र हुए। उनके नाम अनुह्लाद, ह्लाद, संह्लाद तथा प्रह्लाद थे। सबसे छोटा प्रह्लाद विष्णुका अत्यन्त भक्त था॥ १६—१८ ॥

अनुह्लादस्य सूर्यायां पुलोमा महिषस्तथा।
ह्लादस्य धमनिर्भार्यासूत वातापिमिल्वलम्॥ १९

संह्लादस्य कृतिर्भार्यासूत पञ्चजनं ततः।
विरोचनस्तु प्राह्लादिर्देव्यां तस्याभवद् बलिः॥ २०

बलेः पुत्रशतं त्वासीदशनायां मुनीश्वर।
बलिरासीन्महाशैवः शिवभक्तिपरायणः॥ २१

दानशील उदारश्च पुण्यकीर्तितपाः स्मृतः।
तत्पुत्रो बाणनामा यः सोऽपि शैववरः सुधीः।
यः सन्तोष्य शिवं सम्यग्गाणपत्यमवाप ह॥ २२

सा कथा श्रुतपूर्वा ते बाणस्य हि महात्मनः।
कृष्णं यः समरे वीरः सुप्रसन्नं चकार ह॥ २३

हिरण्याक्षसुताः पञ्च पण्डिताः सुमहाबलाः।
कुकुरः शकुनिश्चैव भूतसन्तापनस्तथा॥ २४

महानादश्च विक्रान्तः कालनाभस्तथैव च।
इत्युक्ता दितिपुत्राश्च दनोः पुत्रान् मुने शृणु॥ २५

अभवन्दनुपुत्राश्च शतं तीव्रपराक्रमाः।
अयोमुखः शम्बरश्च कपोलो वामनस्तथा॥ २६
वैश्वानरः पुलोमा च विद्रावणमहाशिरौ।
स्वर्भानुर्वृषपर्वा च विप्रचित्तिश्च वीर्यवान्॥ २७
एते सर्वे दनोः पुत्राः कश्यपादनुजज्ञिरे।
एषां पुत्रीः शृणु मुने प्रसङ्गाद्वच्मि तेऽनघ॥ २८
स्वर्भानोस्तु प्रभा कन्या पुलोम्नस्तु शची सुता।
उपदानवी हयशिरा शर्मिष्ठा वार्षपर्वणी॥ २९

पुलोमिका पुलोमा च वैश्वानरसुते उभे।
बह्वपत्ये महावीर्ये मारीचेस्तु परिग्रहात्॥ ३०

तयोः पुत्रसहस्राणि षष्टिर्दानवनन्दनाः।
मारीचिर्जनयामास महता तपसान्विताः॥ ३१

पौलोमाः कालखंजाश्च दानवानां महाबलाः।
अवध्या देवतानां च हिरण्यपुरवासिनः॥ ३२
पितामहप्रसादेन ये हताः सव्यसाचिना।

अनुह्लादकी स्त्री सूर्याके गर्भसे प्रलोमा एवं महिष हुए। ह्लादकी धमनि नामक पत्नीने वातापी एवं इल्वलको जन्म दिया। संह्लादकी कृति नामक भार्याने पंचजनको उत्पन्न किया। प्रह्लादकी देवी नामक भार्यासे पुत्र विरोचन और विरोचनका पुत्र बलि हुआ॥ १९-२०॥

हे मुनीश्वर! बलिके अशना नामक पत्नीके गर्भसे सौ पुत्र उत्पन्न हुए। बलि शिवभक्तिपरायण महाशैव था। वह दानशील, उदार, पुण्यकीर्ति एवं तपस्वी कहा गया है। उसके पुत्रका नाम बाण था, वह भी शिवभक्त और महाबुद्धिमान् था, जिसने शिवजीको भलीभाँति सन्तुष्टकर गाणपत्यपद प्राप्त किया था। महात्मा बाणकी उस कथाको तो आप पहले ही सुन चुके हैं, जिसमें उस वीरने संग्राममें श्रीकृष्णको अत्यन्त प्रसन्न किया था॥ २१—२३॥

हिरण्याक्षके पाँच पुत्र हुए, जो विद्वान् एवं महाबलवान् थे, वे कुकुर, शकुनि, भूतसन्तापन, पराक्रमी महानाद एवं कालनाभ थे। हे मुने! इस प्रकार मैंने दितिके पुत्रोंको बताया, अब दनुपुत्रोंके नामका श्रवण कीजिये॥ २४-२५॥

दनुके महापराक्रमशाली सौ पुत्र हुए, जिनमें अयोमुख, शम्बर, कपोल, वामन, वैश्वानर, पुलोमा, विद्रावण, महाशिर, स्वर्भानु, वृषपर्वा एवं महाबलवान् विप्रचित्ति मुख्य थे। दनुके ये सभी पुत्र कश्यपसे उत्पन्न हुए थे। हे अनघ! अब मैं आपसे प्रसंगतः इनकी पुत्रियोंका वर्णन करता हूँ, उसे सुनिये॥ २६—२८॥

स्वर्भानुकी प्रभा, पुलोमाकी शची, हयशिराकी उपदानवी तथा वृषपर्वाकी शर्मिष्ठा नामक कन्या थी। वैश्वानरकी पुलोमिका तथा पुलोमा नामक दो कन्याएँ थीं, मारीचि (कश्यप)-की ये दो पत्नियाँ बहुत सन्तानवाली तथा महाशक्तिशालिनी थीं। कश्यपने उन दोनोंसे साठ हजार पुत्र उत्पन्न किये, जो दानवकुलको आनन्द देनेवाले तथा परम तपस्यासे युक्त थे॥ २९—३१॥

दानवोंमें महाबली पौलोम एवं कालखंज पितामहका वरदान प्राप्तकर देवगणोंसे सर्वथा अवध्य तथा हिरण्यपुरवासी थे, जिनका वध अर्जुनने किया था।

सिंहिकायामथोत्पन्ना विप्रचित्तेः सुतास्तथा॥ ३३
दैत्यदानवसंयोगाज्जातास्तीव्रपराक्रमाः ।
सैंहिकेया इति ख्यातास्त्रयोदश महाबलाः॥ ३४
राहुः शल्यो सुबलिनो बलश्चैव महाबलः।
वातापिर्नमुचिश्चैवाथेल्वलः स्वसृपस्तथा॥ ३५
अजिको नरकश्चैव कालनाभस्तथैव च।
शरमाणः शरः कल्प एते वंशविवर्धनाः॥ ३६
एषां पुत्राश्च पौत्राश्च दनुवंशविवर्द्धनाः।
बहवश्च समुद्भूता विस्तरत्वान्न वर्णिताः॥ ३७

विप्रचित्तिसे सिंहिकामें जो पुत्र उत्पन्न हुए, वे सभी दैत्य-दानवोंके संयोगसे महापराक्रमी थे। उन सिंहिकाके पुत्रोंमें तेरह महाबली थे। वे राहु, शल्य, सुबलि, बल, महाबल, वातापि, नमुचि, इल्वल, स्वसृप, अजिक, नरक, कालनाभ, शरमाण, शर तथा कल्प नामवाले थे, जो दनुके वंशका विस्तार करनेवाले हुए। दनुवंशको बढ़ानेवाले बहुत-से इनके पुत्र और पौत्र उत्पन्न हुए, उनका वर्णन यहाँ विस्तारके कारणसे नहीं किया जा रहा है॥ ३२—३७॥

संह्रादस्य तु दैतेया निवातकवचाः कुले।
उत्पन्ना मरुतस्तस्मिंस्तपसा भावितात्मनः॥ ३८

संह्रादके वंशमें निवातकवच नामक दैत्य हुए। इसी कुलमें तपस्यासे आत्मज्ञान प्राप्त करनेवाले मरुत् भी हुए थे॥ ३८॥

षण्मुखाद्या महासत्त्वास्ताम्रायाः परिकीर्तिताः।
काकी श्येनी च भासी च सुग्रीवी च शुकी तथा॥ ३९
गृध्रिकाश्वी ह्युलूकी च ताम्रकन्याः प्रकीर्तिताः।
काकी काकानजनयदुलूकी प्रत्युलूककान्॥ ४०
श्येनी श्येनांस्तथा भासी भासान्गृध्री तु गृध्रकान्।
शुकी शुकानजनयत्सुग्रीवी शुभपक्षिणः॥ ४१
अश्वानुष्ट्रान् गर्दभांश्च ताम्रा च कश्यपप्रिया।
जनयामास चेत्येवं ताम्रवंशः प्रकीर्तितः॥ ४२

ताम्राके महाशक्तिशाली षण्मुख आदि पुत्र उत्पन्न हुए। काकी, श्येनी, भासी, सुग्रीवी, शुकी, गृध्रिका, अश्वी, उलूकी—ये ताम्राकी कन्याएँ कही गयी हैं। उनमें काकीने काकोंको, उलूकीने कौओंके शत्रु उलूकोंको पैदा किया। श्येनीने श्येनोंको, भासीने भासोंको, गृध्रीने गृध्रोंको, शुकीने शुकोंको और सुग्रीवीने शुभ पक्षियोंको उत्पन्न किया। इसी प्रकार कश्यपपत्नी ताम्राने घोड़ों, ऊँटों एवं गधोंको भी उत्पन्न किया। इस प्रकार ताम्राके वंशका कथन किया गया॥ ३९—४२॥

विनतायाश्च पुत्रौ द्वावरुणो गरुडस्तथा।
सुपर्णः पततां श्रेष्ठो दारुणः स्वेन कर्मणा॥ ४३
सुरसायाः सहस्रं तु सर्पाणाममितौजसाम्।
अनेकशिरसां तेषां खेचराणां महात्मनाम्॥ ४४
येषां प्रधाना राजानः शेषवासुकितक्षकाः।
ऐरावतो महापद्मः कम्बलाश्वतरावुभौ॥ ४५

विनताके अरुण तथा गरुड़—ये दो पुत्र उत्पन्न हुए, जिनमें गरुड़ पक्षियोंमें श्रेष्ठ हो गये, वे अपने कर्मसे अत्यन्त दारुण थे। सुरसाके महातेजस्वी अनेक शिरवाले, आकाशचारी हजारों महात्मा सर्प उत्पन्न हुए, जिनमें शेष, वासुकि, तक्षक, ऐरावत, महापद्म, कम्बल तथा अश्वतर सर्पोंमें प्रधान राजा हुए॥ ४३—४५॥

ऐलापत्रस्तथा पद्मः कर्कोटकधनञ्जयौ।
महानीलमहाकर्णौ धृतराष्ट्रो बलाहकः॥ ४६
कुहरः पुष्पदन्तश्च दुर्मुखः सुमुखस्तथा।
बहुशः खररोमा च पाणिरित्येवमादयः॥ ४७
गणाः क्रोधवशायाश्च तस्याः सर्वे च दंष्ट्रिणः।
अण्डजाः पक्षिणोऽब्जाश्च वराह्याः पशवो मताः॥ ४८

एलापत्र, पद्म, कर्कोटक, धनंजय, महानील, महाकर्ण, धृतराष्ट्र, बलाहक, कुहर, पुष्पदन्त, दुर्मुख, सुमुख, बहुश, खररोमा और पाणि आदि सर्पोंमें प्रधान राजा हुए। क्रोधवशाके सभी पुत्र दंष्ट्रावाले अण्डज, पक्षी और जल-जन्तु हैं। वाराहीके पशु कहे गये हैं॥ ४६—४८॥

अनायुषायाः पुत्राश्च पञ्चाशच्च महाबलाः।
अभवन्बलवृक्षौ च विक्षरोऽथ बृहंस्तथा॥ ४९

शशांस्तु जनयामास सुरभिर्महिषांस्तथा।
इला वृक्षाँल्लता वल्लीस्तृणजातीस्तु सर्वशः॥ ५०

खशा तु यक्षरक्षांसि मुनिरप्सरसस्तथा।
अरिष्टासूत सर्पांश्च प्रभा वै मानवोत्तमान्॥ ५१

एते कश्यपदायादाः कीर्तितास्ते मुनीश्वर।
येषां पुत्राश्च पौत्राश्च शतशोऽथ सहस्रशः॥ ५२

अनायुषाके महाबलवान् पचास पुत्र हुए, जिनमें बल, वृक्ष, विक्षर और बृहत् प्रधान थे। सुरभिने खरगोशों तथा महिषोंको जन्म दिया। इलाने वृक्ष, लताओं तथा समस्त तृण जातियोंको उत्पन्न किया। खशाने यक्षों एवं राक्षसोंको, मुनिने अप्सराओंको, अरिष्टाने सर्पोंको और प्रभाने उत्तम मानवोंको जन्म दिया॥ ४९—५१॥

हे मुनीश्वर! इस प्रकार मैंने आपसे कश्यपके दायादोंका वर्णन किया, जिनके सैकड़ों-हजारों पुत्र और पौत्र हुए॥ ५२॥

इति श्रीशिवमहापुराणे पञ्चम्यामुमासंहितायां कश्यपवंशवर्णनं नाम द्वात्रिंशोऽध्यायः॥ ३२॥

॥ इस प्रकार श्रीशिवमहापुराणके अन्तर्गत पाँचवीं उमासंहितामें कश्यपवंशवर्णन नामक बत्तीसवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ ३२॥

अथ त्रयस्त्रिंशोऽध्यायः

मरुतोंकी उत्पत्ति, भूतसर्गका कथन तथा उनके राजाओंका निर्धारण

सूत उवाच

एष मन्वन्तरे तात सर्गः स्वारोचिषे स्मृतः।
वैवस्वते तु महति वारुणे वितते क्रतौ॥ १

जुह्वानस्य ब्रह्मणो वै प्रजासर्ग इहोच्यते।
पूर्वं यानथ ब्रह्मर्षीनुत्पन्नान् सप्तमानसान्॥ २

पुत्रान्वै कल्पयामास स्वयमेव पितामहः।
तेषां विरोधे देवानां दानवानां महात्रृषे॥ ३

दितिर्विनष्टपुत्रा तु कश्यपं समुपस्थिता।
स कश्यपः प्रसन्नात्मा सम्यगाराधितस्तया॥ ४

वरेण छंदयामास सा च वव्रे वरं तदा।
पुत्रमिन्द्रवधार्थाय समर्थममितौजसम्॥ ५

सूतजी बोले—हे तात! यह सर्ग स्वारोचिष मन्वन्तरमें कहा गया है, वैवस्वत मन्वन्तरमें जब महान् वारुण यज्ञका विस्तार हुआ, उस समय ब्रह्मदेवद्वारा हवन करते समय जो सृष्टि हुई, उसका वर्णन करता हूँ। हे महर्षे! पूर्व समयमें स्वयं ब्रह्माने जिन सात ब्रह्मर्षियोंको मानस पुत्रके रूपमें उत्पन्न किया था, उन्हींके वंशमें उत्पन्न होनेवाले देवगणों तथा दानवोंमें विरोध हो जानेसे भयंकर संग्राम हुआ। जिसमें अपने पुत्रोंके नष्ट हो जानेपर दिति कश्यपके पास गयी। उसके द्वारा सम्यक् आराधित हुए उन कश्यपने प्रसन्नचित्त होकर उसे वर माँगनेको कहा। तब उसने इन्द्रका वध करनेके लिये सामर्थ्ययुक्त तथा महातेजस्वी पुत्रका वरदान माँगा॥ १—५॥

स तस्यै च वरं प्रादात्प्रार्थितं सुमहातपाः।
ब्रह्मचर्यादिनियमं प्राह चैव शतं समाः॥ ६

तदनन्तर उन महातपस्वीने उसे वांछित वरदान दिया और सौ वर्षपर्यन्त ब्रह्मचर्य आदि नियमके पालन करनेका उपदेश दिया॥ ६॥

धारयामास गर्भं तु शुचिः सा वरवर्णिनी।
ब्रह्मचर्यादिनियमं दितिर्दध्रे तथैव वै॥ ७

ततस्त्वाधाय सो दित्यां गर्भं तं शंसितव्रतः।
जगाम कश्यपस्तप्तुं तपः संहृष्टमानसः॥ ८

उसके अनन्तर परम सुन्दरी तथा पवित्र आचरण-वाली दितिने गर्भ धारण किया और वह उपदेशानुसार ब्रह्मचर्यादि व्रतनियमोंका पालन करने लगी। उसके बाद प्रशंसनीय व्रतवाले कश्यप भी दितिमें गर्भाधान करके प्रसन्नचित्त होकर तप करनेके लिये चले गये॥ ७-८॥

तस्याश्चैवान्तरं प्रेप्सुः सोऽभवत्पाकशासनः।
ऊनवर्षे शते चास्या ददर्शान्तरमेव सः॥ ९

अकृत्वा पादयोः शौचं दितिरर्वाक्शिरास्तदा।
निद्रामाहारयामास भाविनोऽर्थस्य गौरवात्॥ १०

एतस्मिन्नन्तरे शक्रस्तस्याः कुक्षिं प्रविश्य सः।
वज्रपाणिस्तु तं गर्भं सप्तधा हि न्यकृन्तत॥ ११

इधर इन्द्र दितिके व्रतनियममें छिद्रान्वेषणका अवसर खोजने लगे। जब सौ वर्षमें एक वर्ष कम रहा, उसी समय इन्द्रको छिद्रावकाश दिखायी पड़ा। होनहारकी प्रबलतावश दिति अपना पैर बिना धोये ही पलंगपर पैर रखनेवाले निचले भागमें उलटे सिर करके सो गयी। इसी बीच हाथमें वज्र लिये हुए इन्द्रने दितिके गर्भमें प्रविष्ट होकर उस गर्भके सात टुकड़े कर दिये॥ ९—११॥

स पाट्यमानो गर्भोऽथ वज्रेण प्ररुरोद ह।
रुदन्तं सप्तधैकैकं मा रोदीरिति तान्पुनः।
चकर्त वज्रपाणिस्तान्नैव मम्रुस्तथापि ते॥ १२

ते तमूचुः पाट्यमानाः सर्वे प्राञ्जलयो मुने।
नो जिघांससि किं शक्र भ्रातरो मरुतस्तव॥ १३

इस प्रकार वज्रसे टुकड़े-टुकड़े कर दिये जानेपर जब गर्भ रोने लगा, तब पुनः रोते हुए उस गर्भके एक-एक टुकड़ेको वज्रधारी इन्द्रने सात भागोंमें काट डाला और उन [प्राणवान् गर्भखण्डों]-से कहा—मत रोओ, मत रोओ, उनचास टुकड़े करनेपर भी वे नहीं मरे। हे मुने! इस तरह इन्द्रद्वारा काटे जानेपर उन उनचास टुकड़ोंने हाथ जोड़कर उनसे कहा—हे इन्द्र! आप हमारा वध क्यों करते हैं, हम आपके भाई मरुत हैं॥ १२-१३॥

इन्द्रेण स्वीकृतास्ते हि भ्रातृत्वे सर्व एव च।
तत्यजुर्दैत्यभावं ते विप्रर्षे शङ्करेच्छया॥ १४

मरुतो नाम ते देवा बभूवुः सुमहाबलाः।
खगा एकोनपञ्चाशत्सहाया वज्रपाणिनः॥ १५

उसी समय इन्द्रने उन सभीको अपना भाई मान लिया। हे विप्रर्षे! इसके बाद उन मरुतोंने शिवजीकी इच्छासे अपने दैत्यभावका परित्याग कर दिया। तभीसे वे महाबली उनचास मरुत नामवाले दितिपुत्र देवता हो गये और इन्द्रकी सहायतामें संलग्न हो आकाश (अथवा स्वर्ग)-में विचरण करने लगे॥ १४-१५॥

तेषामेव प्रवृद्धानां हरिः प्रादात्प्रजापतिः।
क्रमशस्तानि राज्यानि पृथुपूर्वं शृणुष्व तत्॥ १६

अरिष्टः पुरुषो वीरः कृष्णो जिष्णुः प्रजापतिः।
पर्जन्यस्तु धनाध्यक्षस्तस्य सर्वमिदं जगत्॥ १७

वे ही प्राणी जब अत्यन्त प्रवृद्ध हो गये, तब प्रजापति हरिने पृथुसे पूर्व उन्हें राज्य दिया। उन हरिके नामोंका श्रवण कीजिये। अरिष्ट, पुरुष, वीर, कृष्ण, जिष्णु, प्रजापति, पर्जन्य और धनाध्यक्ष। उन्हींका यह समस्त संसार है॥ १६-१७॥

भूतसर्गमिमं सम्यगवोचं ते महामुने।
विभागं शृणु राज्यानां क्रमशस्तं ब्रुवेऽधुना॥ १८
अभिषिच्याधिराज्ये तु पृथुं वैन्यं पितामहः।
ततः क्रमेण राज्यानि व्यादेष्टुमुपचक्रमे॥ १९

हे महामुने! इस प्रकार मैंने समस्त भूतसर्गकी उत्पत्तिका ठीक-ठीक वर्णन किया, अब क्रमसे राज्योंके विभागका वर्णन सुनिये। पितामहने वेनपुत्र पृथुको [परमशासकके रूपमें] राज्यपर अभिषिक्तकर क्रमशः राज्योंका इस प्रकार नियोजन किया॥ १८-१९॥

द्विजानां वीरुधां चैव नक्षत्रग्रहयोस्तथा।
यज्ञानां तपसां चैव सोमं राज्येऽभ्यषेचयत्॥ २०
अपां तु वरुणं राज्ये राज्ञां वैश्रवणं प्रभुम्।
आदित्यानां तथा विष्णुं वसूनामथ पावकम्॥ २१
प्रजापतीनां दक्षं तु मरुतामथ वासवम्।

उन्होंने ब्राह्मण, वृक्ष, नक्षत्र, ग्रह, यज्ञ तथा तपस्वियोंका राजा चन्द्रमाको बनाया। वरुणको जलका आधिपत्य, विश्रवापुत्र कुबेरको राजाओंका आधिपत्य, विष्णुको आदित्योंका आधिपत्य तथा पावकको वसुओंका आधिपत्य, दक्षको प्रजापतियोंका, इन्द्रको मरुतोंका,

दैत्यानां दानवानां च प्रह्लादममितौजसम्॥ २२
वैवस्वतं पितॄणां च यमं राज्येऽभ्यषेचयत्।
मातॄणां च व्रतानां च मन्त्राणां च तथा गवाम्॥ २३
यक्षाणां राक्षसानां च पार्थिवानां तथैव च।
सर्वभूतपिशाचानां गिरिशं शूलपाणिनम्॥ २४
शैलानां हिमवन्तं च नदीनामथ सागरम्।
मृगाणामथ शार्दूलं गोवृषं तु गवामपि॥ २५
वनस्पतीनां वृक्षाणां वटं राज्येऽभ्यषेचयत्।
इति दत्तं प्रजेशेन राज्यं सर्वत्र वै क्रमात्॥ २६

महातेजस्वी प्रह्लादको दैत्य एवं दानवोंका और विवस्वान्पुत्र यमको पितरोंका आधिपत्य प्रदान किया। उन्होंने मातृगणों, व्रतों, मन्त्रों, गौओं, यक्षों, राक्षसों, राजाओं एवं सभी भूत-पिशाचोंका राजा शूलपाणि भगवान् शिवको नियुक्त किया। उन्होंने शैलोंका राजा हिमालयको, नदियोंका राजा समुद्रको, मृगों (पशुओं)-का राजा सिंहको तथा गाय एवं बैलोंका राजा गोवृषको और वनस्पतियों तथा वृक्षोंका राजा वटवृक्षको नियुक्त किया। इस प्रकार प्रजापतिने सर्वत्र क्रमशः राज्यका प्रविभाग कर दिया॥ २०—२६॥

पूर्वस्यां दिशि पुत्रं तु वैराजस्य प्रजापतेः।
स्थापयामास सर्वात्मा राज्ये विश्वपतिर्विभुः॥ २७
तथैव मुनिशार्दूल कर्दमस्य प्रजापतेः।
दक्षिणस्यां तथा पुत्रं सुधन्वानमचीक्लृपत्॥ २८
पश्चिमायां दिशि तथा रजसः पुत्रमच्युतम्।
केतुमन्तं महात्मानं राजानं व्यादिशत्प्रभुः॥ २९
तथा हिरण्यरोमाणं पर्जन्यस्य प्रजापतेः।
उदीच्यां दिशि राजानं दुर्धर्षं सोऽभ्यषेचयत्॥ ३०

सर्वात्मा विश्वपति प्रभु ब्रह्मदेवने पूर्व दिशामें वैराज प्रजापतिके पुत्रको स्थापित किया। इसी प्रकार हे मुनिश्रेष्ठ! उन्होंने दक्षिण दिशामें कर्दम प्रजापतिके पुत्र सुधन्वाको राज्यपदपर नियुक्त किया। उन प्रभुने पश्चिम दिशामें रजसके पुत्र अच्युत महात्मा केतुमान्को नियुक्त किया। उन्होंने उत्तर दिशामें पर्जन्य प्रजापतिके पुत्र दुर्धर्ष राजा हिरण्यरोमाको अभिषिक्त किया॥ २७—३०॥

तस्य विस्तरमाख्यातं पृथोर्वैन्यस्य शौनक।
महर्ध्यै तदधिष्ठानं पुराणं परिकीर्तितम्॥ ३१

हे शौनक! इस प्रकार मैंने उन वेनपुत्र पृथुका विस्तृत वृत्तान्त बताया। यह प्राचीन वृत्तान्त महान् समृद्धिका साक्षात् अधिष्ठान कहा गया है॥ ३१॥

इति श्रीशिवमहापुराणे पञ्चम्यामुमासंहितायां कश्यपवंशवर्णनं नाम त्रयस्त्रिंशोऽध्यायः॥ ३३॥

॥ इस प्रकार श्रीशिवमहापुराणके अन्तर्गत पाँचवीं उमासंहितामें कश्यपवंशवर्णन नामक तैंतीसवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ ३३॥

अथ चतुस्त्रिंशोऽध्यायः

चतुर्दश मन्वन्तरोंका वर्णन

शौनक उवाच

मन्वन्तराणि सर्वाणि विस्तरेणानुकीर्तय।
यावन्तो मनवश्चैव श्रोतुमिच्छामि तानहम्॥ १

शौनक बोले—हे सूत! आप सभी मन्वन्तरोंका विस्तारपूर्वक वर्णन कीजिये, अबतक जितने भी मनु हुए हैं, उनका वर्णन मैं सुनना चाहता हूँ॥ १॥

सूत उवाच

स्वायम्भुवो मनुश्चैव ततः स्वारोचिषस्तथा।
उत्तमस्तामसश्चैव रैवतश्चाक्षुषस्तथा॥ २
एते च मनवः षट् ते सम्प्रोक्ता मुनिपुङ्गव।
वैवस्वतो मुनिश्रेष्ठ साम्प्रतं मनुरुच्यते॥ ३

सूतजी बोले—स्वायम्भुव, स्वारोचिष, उत्तम, तामस, रैवत, चाक्षुष—इन छः मनुओंको मैंने आपसे कह दिया है। हे मुनिश्रेष्ठ! अब वैवस्वत मनुका वर्णन कर रहा हूँ॥ २-३॥

सावर्णिश्च मनुश्चैव ततो रौच्यस्तथा परः।
तथैव ब्रह्मसावर्णिश्चत्वारो मनवस्तथा॥ ४
तथैव धर्मसावर्णी रुद्रसावर्णिरेव च।
देवसावर्णिराख्यात इन्द्रसावर्णिरेव च॥ ५
अतीता वर्तमानाश्च तथैवानागताश्च ये।
कीर्तिता मनवश्चापि मयैवैते यथा श्रुताः॥ ६

उसके बाद क्रमशः सावर्णि, रौच्य, ब्रह्मसावर्णि, धर्मसावर्णि, रुद्रसावर्णि, देवसावर्णि और इन्द्रसावर्णि—ये मनु होनेवाले हैं॥ ४-५॥

इस प्रकार मैंने बीते हुए छः मनुओं, वर्तमान सातवें वैवस्वत मनु तथा आगे आनेवाले सात मनुओं—कुल चौदह मनुओंको कहा, जैसा कि मैंने सुना है॥ ६॥

मुने चतुर्दशैतानि त्रिकालानुगतानि ते।
प्रोक्तानि निर्मितः कल्पो युगसाहस्रपर्ययः॥ ७
ऋषींस्तेषां प्रवक्ष्यामि पुत्रान् देवगणांस्तथा।
शृणु शौनक सुप्रीत्या क्रमशस्तान्यशस्विनः॥ ८

हे मुने! तीनों कालोंमें होनेवाले इन चौदह मन्वन्तरों तथा सहस्रयुगात्मक कल्पका वर्णन किया गया, अब उनके ऋषियों, मनुपुत्रों एवं देवताओंको कह रहा हूँ। हे शौनक! प्रेमपूर्वक आप उन यशस्वियोंका श्रवण कीजिये॥ ७-८॥

मरीचिरत्रिर्भगवानङ्गिराः पुलहः क्रतुः।
पुलस्त्यश्च वसिष्ठश्च सप्तैते ब्रह्मणः सुताः॥ ९
उत्तरस्यां दिशि तथा मुने सप्तर्षयस्तथा।
यामा नाम तथा देवा आसन्स्वायम्भुवेऽन्तरे॥ १०

स्वायम्भुव मन्वन्तरमें मरीचि, अत्रि, भगवान् अंगिरा, पुलह, क्रतु, पुलस्त्य, वसिष्ठ—ये सात ब्रह्मपुत्र कहे गये हैं। हे मुने! उत्तर दिशामें स्थित [महर्षिगण उस समयके] सप्तर्षि और उस मन्वन्तरमें याम नामक देवता हुए॥ ९-१०॥

आग्नीध्रश्चाग्निबाहुश्च मेधा मेधातिथिर्वसुः।
ज्योतिष्मान्धृतिमान्हव्यः सवनः शुभ्र एव च॥ ११
स्वायम्भुवस्य पुत्रास्ते मनोर्दश महात्मनः।
कीर्तिता मुनिशार्दूल तत्रेन्द्रो यज्ञ उच्यते॥ १२
प्रथमं कथितं तात दिव्यं मन्वन्तरं तथा।
द्वितीयं ते प्रवक्ष्यामि तन्निबोध यथातथम्॥ १३

आग्नीध्र, अग्निबाहु, मेधा, मेधातिथि, वसु, ज्योतिष्मान्, धृतिमान्, हव्य, सवन और शुभ्र—ये दस महात्मा स्वायम्भुव मनुके पुत्र कहे गये हैं। हे मुनिश्रेष्ठ! उस समय यज्ञ नामक इन्द्र कहे गये॥ ११-१२॥

हे तात! इस प्रकार मैंने पहला स्वायम्भुव मन्वन्तर कहा, अब मैं दूसरा मन्वन्तर कह रहा हूँ, उसे भलीभाँति सुनिये॥ १३॥

ऊर्जस्तम्भः परस्तम्भ ऋषभो वसुमांस्तथा।
ज्योतिष्मान् द्युतिमांश्चैव रोचिष्मान् सप्तमस्तथा॥ १४
एते महर्षयो ज्ञेयास्तत्रेन्द्रो रोचनस्तथा।
देवाश्च तुषिता नाम स्मृताः स्वारोचिषेऽन्तरे॥ १५

(दूसरे मन्वन्तरमें) ऊर्जस्तम्भ, परस्तम्भ, ऋषभ, वसुमान्, ज्योतिष्मान्, द्युतिमान् तथा सातवें रोचिष्मान्—इन्हें महर्षि [सप्तर्षि] समझना चाहिये, उस कालमें रोचन नामक इन्द्र हुए। स्वारोचिष मन्वन्तरमें 'तुषित' नामवाले देवता कहे गये हैं॥ १४-१५॥

हरिघ्नः सुकृतिर्ज्योतिरयोमूर्तिरयस्मयः।
प्रथितश्च मनस्युश्च नभः सूर्यस्तथैव च॥ १६
स्वारोचिषस्य पुत्रास्ते मनोर्दश महात्मनः।
कीर्तिता मुनिशार्दूल महावीर्यपराक्रमाः॥ १७
द्वितीयमेतत्कथितं मुने मन्वन्तरं मया।
तृतीयं तव वक्ष्यामि तन्निबोध यथातथम्॥ १८

हे मुनिश्रेष्ठ! हरिघ्न, सुकृति, ज्योति, अयोमूर्ति, अयस्मय, प्रथित, मनस्यु, नभ और सूर्य—ये महात्मा स्वारोचिष मनुके महान् बल तथा पराक्रमवाले दस पुत्र कहे गये हैं। हे मुने! मैंने दूसरा मन्वन्तर कहा—अब मैं तृतीय मन्वन्तरका वर्णन करता हूँ, उसे अच्छी तरह सुनें॥ १६—१८॥

वसिष्ठपुत्राः सप्तासन्वासिष्ठा इति विश्रुताः।
हिरण्यगर्भस्य सुता ऊर्जा नाम महौजसः॥ १९

ऋषयोऽत्र समाख्याताः कीर्त्यमानान्निबोध मे।
औत्तमेया ऋषिश्रेष्ठ दश पुत्रा मनोः स्मृताः॥ २०

इष ऊर्जित ऊर्जश्च मधुर्माधव एव च।
शुचिः शुक्रवहश्चैव नभसो नभ एव च॥ २१
ऋषभस्तत्र देवाश्च सत्यवेदश्रुतादयः।
तत्रेन्द्रः सत्यजिन्नाम त्रैलोक्याधिपतिर्मुने॥ २२
तृतीयमेतत्परमं मन्वन्तरमुदाहृतम्।
मन्वन्तरं चतुर्थं ते कथयामि मुने शृणु॥ २३

गार्ग्यः पृथुस्तथा वाग्मी जयो धाता कपीनकः।
कपीवान् सप्त ऋषयः सत्या देवगणास्तथा॥ २४
तत्रेन्द्रस्त्रिशिखो ज्ञेयो मनुपुत्रान् मुने शृणु।
द्यूतिपोतः सौतपस्यस्तपः शूलश्च तापनः॥ २५
तपोरतिरकल्माषो धन्वी खड्गी महानृषिः।
तामसस्य स्मृता एते दश पुत्रा महाव्रताः॥ २६

तामसस्यान्तरं चैव मनोर्मे कथितं तव।
चतुर्थं पञ्चमं तात शृणु मन्वन्तरं परम्॥ २७

देवबाहुर्जयश्चैव मुनिर्वेदशिरास्तथा।
हिरण्यरोमा पर्जन्य ऊर्ध्वबाहुश्च सोमपाः॥ २८
सत्यनेत्ररताश्चान्ये एते सप्तर्षयोऽपरे।
देवाश्च भूतरजसस्तपःप्रकृतयस्तथा॥ २९
तत्रेन्द्रो विभुनामा च त्रैलोक्याधिपतिस्तथा।
रैवताख्यो मनुस्तत्र ज्ञेयस्तामससोदरः॥ ३०
अर्जुनः पंक्तिविन्ध्यो वा दयायास्तनया मुने।
महता तपसा युक्ता मेरुपृष्ठे वसन्ति हि॥ ३१

रुचेः प्रजापतिः पुत्रो रौच्यो नाम मनुः स्मृतः।
भूत्या चोत्पादितो देव्यां भौत्यो नामाभवत्सुतः॥ ३२

अनागताश्च सप्तैते कल्पेऽस्मिन् मनवः स्मृताः।
अनागताश्च सप्तैव स्मृता दिवि महर्षयः॥ ३३

जो कभी महान् ओजस्वी हिरण्यगर्भके ऊर्जा नामसे प्रसिद्ध पुत्र थे, वे ही वसिष्ठके सात पुत्र हुए, जो वासिष्ठ नामसे प्रसिद्ध हैं। हे ऋषिश्रेष्ठ! वे इस तृतीय मन्वन्तरके ऋषि कहे गये हैं, उत्तम नामक तीसरे मनुके भी दस पुत्र हुए, उनका कथन कर रहा हूँ, उसे समझो॥ १९-२०॥

इष, ऊर्जित, ऊर्ज, मधु, माधव, शुचि, शुक्रवह, नभस, नभ और ऋषभ—ये नाम हैं। उस समय सत्यवेद, श्रुत आदि देवता हुए। हे मुने! उस कालमें सत्यजित् नामक इन्द्र हुए थे, जो तीनों लोकोंके अधिपति थे। हे मुने! इस श्रेष्ठ तृतीय मन्वन्तरका वर्णन किया। अब चतुर्थ मन्वन्तरको कह रहा हूँ, आप उसे सुनें॥ २१—२३॥

गार्ग्य, पृथु, वाग्मी, जय, धाता, कपीनक, कपीवान्—ये सप्तर्षि हुए। उस समय सत्य नामके देवता हुए और त्रिशिख नामक इन्द्र हुए, ऐसा जानना चाहिये। हे मुने! अब मनुके पुत्रोंको सुनिये—द्युतिपोत, सौतपस्य, तप, शूल, तापन, तपोरति, अकल्माष, धन्वी, खड्गी और महानृषि—ये तामस मनुके महाव्रती दस पुत्र कहे गये हैं॥ २४—२६॥

इस प्रकार मैंने चौथे तामस मन्वन्तरका वर्णन आपसे कर दिया। हे तात! अब पंचम मन्वन्तरका श्रवण कीजिये॥ २७॥

देवबाहु, जय, वेदशिरा मुनि हिरण्यरोमा पर्जन्य, सोमपायी ऊर्ध्वबाहु तथा सत्यनेत्ररत—ये सप्तर्षि हुए। उस समय तपस्वी स्वभाववाले भूतरज नामक देवता हुए और विभु नामक त्रिलोकाधिपति इन्द्र हुए, उस समय तामसके सहोदर भाई रैवत नामक [पंचम] मनुको जानना चाहिये॥ २८—३०॥

हे मुने! अर्जुन अथवा पंक्तिविन्ध्य (दक्षकन्या प्रिया) दया आदिके पुत्र हुए, जो महान् तपस्यासे युक्त होकर मेरुपृष्ठपर अब भी निवास करते हैं॥ ३१॥

रुचिके पुत्र प्रजापति रौच्य भी मनु कहे गये हैं, जिन्होंने भूति नामक स्त्रीसे भौत्य नामक पुत्र उत्पन्न किया। इस कल्पमें ये सात अनागत मनु कहे गये हैं और सात अनागत महर्षि कहे गये हैं, जो स्वर्गलोकमें निवास करते हैं॥ ३२-३३॥

कश्यपोऽत्रिर्वसिष्ठश्च विश्वामित्रोऽथ गौतमः।
जमदग्निर्भरद्वाजः सप्तैते ऋषयः स्मृताः॥ ३४
रामो व्यासस्तथात्रेयो दीप्तिमान्सुबहुश्रुतः।
भारद्वाजस्तथा द्रौणिरश्वत्थामा महाद्युतिः॥ ३५
गौतमस्यात्मजश्चैव शरद्वान् गौतमः कृपः।
कौशिको गालवश्चैव रुरुः काश्यप एव च॥ ३६
एते सप्त महात्मानो भविष्या मुनिसत्तमाः।
देवाश्चानागतास्तत्र त्रयः प्रोक्ताः स्वयम्भुवा॥ ३७
मारीचस्यैव पुत्रास्ते कश्यपस्य महात्मनः।
तेषां विरोचनसुतो बलिरिन्द्रो भविष्यति॥ ३८

कश्यप, अत्रि, वसिष्ठ, विश्वामित्र, गौतम, जमदग्नि और भरद्वाज—ये सात ऋषि कहे गये हैं। [परशु] राम, व्यास, अत्रिगोत्रीय बहुश्रुत दीप्तिमान्, भरद्वाजगोत्रीय महातेजस्वी द्रोणपुत्र अश्वत्थामा, गौतमपुत्र शरद्वान् [के पुत्र] कृपाचार्य, कुशिकवंशी गालव तथा कश्यपवंशी रुरु—ये सात महात्मा आगे सप्तर्षि होनेवाले हैं। उसमें स्वयम्भू [ब्रह्मा]-ने तीनको ही अनागत देवता कहा है। [उस समय] वे देवता मरीचिपुत्र महात्मा कश्यपके पुत्र होंगे और उस समय विरोचनके पुत्र बलि इन्द्र होंगे॥ ३४—३८॥

विषाङ्गश्चावनीवांश्च सुमन्तो धृतिमान्वसुः।
सूरिः सुराख्यो विष्णुश्च राजा सुमतिरेव च॥ ३९
सावर्णेश्च मनोः पुत्रा भविष्या दश शौनक।
इहाष्टमं हि कथितं नवमं चान्तरं शृणु॥ ४०

हे शौनक! विषांग, अवनीवान्, सुमन्त, धृतिमान्, वसु, सूरि, सुरा, विष्णु, राजा, सुमति—ये दस सावर्णि मनुके पुत्र होंगे। इस प्रकार आठवाँ मन्वन्तर कहा गया, अब नौवें मन्वन्तरका श्रवण कीजिये॥ ३९-४०॥

प्रथमं दक्षसावर्णिं प्रवक्ष्यामि मनुं शृणु।
मेधातिथिश्च पौलस्त्यो वसुः काश्यप एव च॥ ४१
ज्योतिष्मान् भार्गवश्चैव धृतिमानङ्गिरास्तथा।
सवनश्चैव वासिष्ठ आत्रेयो हव्य एव च॥ ४२
पुलहः सप्त इत्येते ऋषयो रौहितेऽन्तरे।
देवतानां गणास्तत्र त्रय एव महामुने॥ ४३
दक्षपुत्रस्य पुत्रास्ते रोहितस्य प्रजापतेः।
धृष्टकेतुर्दीप्तकेतुः पञ्चहस्तो निराकृतिः॥ ४४
पृथुश्रवा भूरिद्युम्नो ऋचीको बृहतो गयः।
प्रथमस्य तु सावर्णेर्नव पुत्रा महौजसः॥ ४५

मैं पहले दक्षसावर्णि मनुको कह रहा हूँ, उसे आप सुनिये। पुलस्त्यवंशी मेधातिथि, कश्यप-वंशी वसु, भृगुवंशी ज्योतिष्मान्, धैर्यवान् अंगिरा, वसिष्ठवंशी सवन, अत्रिवंशी हव्य और पुलह—ये सात ऋषि रोहित मन्वन्तरमें होंगे। हे महामुने! इस मन्वन्तरमें देवताओंके ये तीन गण होंगे। वे दक्षपुत्र प्रजापति रोहितके पुत्र होंगे। धृष्टकेतु, दीप्तकेतु, पंचहस्त, निराकृति, पृथुश्रवा, भूरिद्युम्न, ऋचीक, बृहत, गय—ये प्रथम दक्षसावर्णिके नौ महातेजस्वी पुत्र होंगे॥ ४१—४५॥

दशमे त्वथ पर्याये द्वितीयस्यान्तरे मनोः।
हविष्मान् पौलहश्चैव प्रकृतिश्चैव भार्गवः॥ ४६
आपोमुक्तिस्तथात्रेयो वासिष्ठश्चाव्ययः स्मृतः।
पौलस्त्यः प्रयतिश्चैव भामारश्चैव काश्यपः॥ ४७
अङ्गिरानेनसः सत्यः सप्तैते परमर्षयः।
देवतानां गणाश्चापि द्विषिमन्तश्च ये स्मृताः॥ ४८
तेषामिन्द्रः स्मृतः शम्भुस्त्वयमेव महेश्वरः।
अक्षत्वानुत्तमौजाश्च भूरिषेणश्च वीर्यवान्॥ ४९
शतानीको निरामित्रो वृषसेनो जयद्रथः।
भूरिद्युम्नः सुवर्चार्चिर्दश त्वेते मनोः सुताः॥ ५०

दसवें और दूसरे [सावर्णि] मनुका जब मन्वन्तर होगा, तब पुलहवंशी हविष्मान्, भृगुवंशी प्रकृति, अत्रिवंशी आपोमुक्ति, वसिष्ठवंशी अव्यय, पुलस्त्यवंशी प्रयति, कश्यपवंशी भामार, अंगिरावंशी अनेनाके पुत्र सत्य—ये सात परमर्षि होंगे। इस मन्वन्तरमें जो द्विषिमन्त नामवाले कहे गये हैं, वे देवता होंगे। उनमें ये महेश्वर शम्भु ही इन्द्र कहे गये हैं। अक्षत्वान्, उत्तमौजा, पराक्रमी भूरिषेण, शतानीक, निरामित्र, वृषसेन, जयद्रथ, भूरिद्युम्न, सुवर्चा और अर्चि—ये मनुके दस पुत्र होंगे॥ ४६—५०॥

एकादशे तु पर्याये तृतीयस्यान्तरे मनोः।
तस्यापि सप्त ऋषयः कीर्त्यमानान्निबोध मे॥ ५१
हविष्मान् कश्यपश्चापि वपुष्मांश्चैव वारुणः।
आत्रेयोऽथ वसिष्ठश्च ह्यनयस्त्वंगिरास्तथा॥ ५२
चारुधृष्यश्च पौलस्त्यो निःस्वरोऽग्निस्तु तैजसः।
सप्तैते ऋषयः प्रोक्तास्त्रयो देवगणाः स्मृताः॥ ५३
ब्रह्मणस्तु सुतास्ते हि त इमे वैधृताः स्मृताः।
सर्वगश्च सुशर्मा च देवानीकस्तु क्षेमकः॥ ५४
दृढेषुः खण्डको दर्शः कुहुर्बाहुर्मनोः स्मृताः।
सावर्णस्य तु पुत्रा वै तृतीयस्य नव स्मृताः॥ ५५

चतुर्थस्य तु सावर्णेर्ऋषीन्सप्त निबोध मे।
द्युतिर्वसिष्ठपुत्रश्च आत्रेयः सुतपास्तथा॥ ५६
अङ्गिरास्तपसो मूर्तिस्तपस्वी कश्यपस्तथा।
तपोधनश्च पौलस्त्यः पुलहश्च तपोरतिः॥ ५७
भार्गवः सप्तमस्तेषां विज्ञेयः तपसो निधिः।
पञ्च देवगणाः प्रोक्ता मानसा ब्रह्मणः सुताः॥ ५८
ऋतधामा तदिन्द्रो हि त्रिलोकीराज्यकृत्सुखी।

द्वादशे चैव पर्याये भाव्ये रौच्यान्तरे मुने॥ ५९
अङ्गिराश्चैव धृतिमान् पौलस्त्यो हव्यवांस्तु यः।
पौलहस्तत्त्वदर्शी च भार्गवश्च निरुत्सवः॥ ६०
निष्प्रपञ्चस्तथात्रेयो निर्देहः कश्यपस्तथा।
सुतपाश्चैव वासिष्ठः सप्तैवैते महर्षयः॥ ६१
त्रय एव गणाः प्रोक्ता देवतानां स्वयम्भुवा।
दिवस्पतिस्तदिन्द्रो वै विचित्रश्चित्र एव च॥ ६२
नयो धर्मो धृतोन्ध्रश्च सुनेत्रः क्षत्रवृद्धकः।
निर्भयः सुतपा द्रोणो मनो रौच्यस्य ते सुताः॥ ६३
मनुस्त्रयोदशो भाव्यो देवसावर्णिरात्मवान्।
चित्रसेनविचित्राद्या देवसावर्णिदेहजाः॥ ६४

देवाः सुकर्मसुत्रामसंज्ञा इन्द्रो दिवस्पतिः।
निर्मोकतत्त्वदर्शाद्या भविष्यन्त्यृषयस्तदा॥ ६५

चतुर्दशे तु पर्याये भौत्यस्यैवान्तरे मनोः।
आग्नीध्रः काश्यपश्चैव पौलस्त्यो मागधश्च यः॥ ६६
भार्गवोऽप्यतिवाह्यश्च शुचिराङ्गिरसस्तथा।
युक्तश्चैव तथात्रेयः शुक्रो वासिष्ठ एव च॥ ६७
अजितः पुलहश्चैव ह्यन्त्याः सप्तर्षयश्च ते।
पवित्राश्चाक्षुषा देवाः शुचिरिन्द्रो भविष्यति॥ ६८

जब तीसरे [सावर्णि] मन्वन्तरमें ग्यारहवें मनु होंगे, उस समय जो सात ऋषि होंगे, उन्हें मैं कह रहा हूँ, आप सुनें। कश्यपवंशी हविष्मान्, वरुणवंशी वपुष्मान्, अत्रिवंशी वसिष्ठ, अंगिरावंशी अनय, पुलस्त्यवंशी चारुधृष्य, निस्वर और तैजस अग्नि (अग्नितेजा)—ये सात ऋषि कहे गये हैं और तीन देवगण कहे गये हैं। वे ब्रह्माजीके पुत्र वैधृत नामवाले कहे गये हैं। सर्वग, सुशर्मा, देवानीक, क्षेमक, दृढेषु, खण्डक, दर्श, कुहु, बाहु—ये मनुके पुत्र कहे गये हैं। ये तीसरे सावर्णि मनुके नौ पुत्र कहे गये हैं॥ ५१—५५॥

अब चतुर्थ सावर्णिके सप्तर्षियोंको मुझसे सुनें। उनमें वसिष्ठपुत्र द्युति, अत्रिगोत्री सुतपा, तपोमूर्ति अंगिरा, तपस्वी कश्यप, तपोधन पौलस्त्य, तपोरति पुलह और सातवें तपोनिधि भार्गव कहे गये हैं। [इस मन्वन्तरमें] ब्रह्माके पाँच मानसपुत्र देवगण कहे गये हैं। उस समय प्रजाओंको सुख देनेवाले तथा त्रिलोकीके अधिपति ऋतधामा इन्द्र होंगे॥ ५६—५८ $^{1}/_{2}$॥

हे मुने! आगे आनेवाले बारहवें रौच्य नामक मन्वन्तरमें धृतिमान् अंगिरा, पुलस्त्यवंशी हव्यवान्, पुलहवंशी तत्त्वदर्शी, निरुत्सव भार्गव, प्रपंचरहित आत्रेय, निर्देह कश्यप और वसिष्ठवंशी सुतपा—ये सप्तर्षि होंगे। इसमें स्वयम्भू (ब्रह्माजी)-ने देवताओंके तीन गण कहे हैं। दिवस्पति उस मन्वन्तरमें इन्द्र होंगे। विचित्र, चित्र, नय, धर्म, धृतोन्ध्र, सुनेत्र, क्षत्रवृद्धक, निर्भय, सुतपा और द्रोण—ये रौच्य मनुके [दस] पुत्र होंगे॥ ५९—६३॥

आत्मज्ञानी देवसावर्णि नामक तेरहवें मनु होंगे। चित्रसेन, विचित्र आदि उन देवसावर्णिके पुत्र होंगे। उस समय सुकर्म तथा सुत्राम नामवाले देवता होंगे, दिवस्पति नामक इन्द्र होंगे और निर्मोक, तत्त्वदर्शी आदि ऋषि होंगे॥ ६४-६५॥

चौदहवें भौत्य नामक मनुके कालमें कश्यपवंशी आग्नीध्र, पुलस्त्यवंशी मागध और भृगुवंशी अतिबाह्य, अंगिरागोत्रीय शुचि, अत्रिगोत्रीय युक्त, वसिष्ठगोत्रीय शुक तथा पुलहगोत्रीय अजित—ये अन्तिम मनुके सप्तर्षि होंगे। [इस मन्वन्तरमें] पवित्र चाक्षुष देवगण होंगे और शुचि नामक इन्द्र होंगे॥ ६६—६८॥

एतेषां कल्य उत्थाय कीर्तनात्सुखमेधते।
अतीतानागतानां वै महर्षीणां नरैः सदा॥ ६९

देवतानां गणाः प्रोक्ताः शृणु पञ्च महामुने।
तुरङ्गभीरुर्बुध्नश्च तनुग्रोऽनुग्र एव च॥ ७०
अतिमानी प्रवीणश्च विष्णुः संक्रन्दनस्तथा।
तेजस्वी सबलश्चैव भौत्यस्त्वेते मनोः सुता॥ ७१
भौत्यस्यैवाधिकारे वै पूर्णे कल्पस्तु पूर्यते।
इत्येतेऽनागतातीता मनवः कीर्तिता मया॥ ७२

उक्ताः सनत्कुमारेण व्यासायामिततेजसा।
पूर्णे युगसहस्रान्ते परिपाल्य स्वधर्मतः॥ ७३

प्रजाभिस्तपसा युक्ता ब्रह्मलोकं व्रजन्ति ते।

युगानि सप्ततिस्त्वेकं साग्राण्यन्तरमुच्यते॥ ७४

चतुर्दशैते मनवः कीर्तिताः कीर्तिवर्धनाः।
मन्वन्तरेषु सर्वेषु संहारान्ते पुनर्भवः॥ ७५

न शक्यमन्तरं तेषां वक्तुं वर्षशतैरपि।
पूर्णे शतसहस्रे तु कल्पो निःशेष उच्यते॥ ७६

तत्र सर्वाणि भूतानि दग्धान्यादित्यरश्मिभिः।
ब्रह्माणमग्रतः कृत्वा सदादित्यगणैर्मुने॥ ७७
प्रविशन्ति सुरश्रेष्ठं हरिं नारायणं परम्।
स्रष्टारं सर्वभूतानां कल्पान्तेषु पुनः पुनः॥ ७८

भूयोऽपि भगवान् रुद्रः संहर्ता काल एव हि।
कल्पान्ते तत्प्रवक्ष्यामि मनोर्वैवस्वतस्य वै॥ ७९

इति ते कथितं सर्वं मन्वन्तरसमुद्भवम्।
विसर्गं पुण्यमाख्यानं धन्यं कुलविवर्द्धनम्॥ ८०

अतीत तथा अनागत—इन महर्षियोंका सर्वदा प्रातःकाल उठकर नाम-कीर्तन करनेसे मनुष्योंके सुखोंकी वृद्धि होती है॥ ६९॥

हे महामुने! सुनिये; इसमें देवताओंके पाँच गण कहे गये हैं और तुरंगभीरु, बुध्न, तनुग्र, अनुग्र, अतिमानी, प्रवीण, विष्णु, संक्रन्दन, तेजस्वी तथा सबल—ये दस भौत्यमनुके पुत्र होंगे॥ ७०-७१॥

भौत्य मनुके अधिकारकालकी पूर्णताके साथ कल्प पूर्ण हो जाता है। इस प्रकार मैंने भूत, भविष्यके इन मनुओंका वर्णन किया, जिनके विषयमें महातेजस्वी सनत्कुमारने व्यासजीसे कहा था। वे मनु एक हजार युगपर्यन्त अपने धर्मके अनुसार प्रजाओंका पालनकर तपस्यासे युक्त हो प्रजाओंके साथ ब्रह्मलोकको जाते हैं॥ ७२-७३१/२॥

इकहत्तर चतुर्युगीको एक मन्वन्तरका काल कहा जाता है। [हे महर्षे!] इस प्रकार मैंने कीर्तिको बढ़ानेवाले इन चौदह मनुओंका वर्णन कर दिया। सभी मन्वन्तरोंके पूर्ण हो जानेपर संहारके अन्तमें पुनः सृष्टि होती है। सैकड़ों वर्षोंमें भी उनके मन्वन्तरोंका वर्णन नहीं किया जा सकता है। सौ हजार चतुर्युगीके बीत जानेपर एक कल्पकी समाप्ति कही जाती है॥ ७४—७६॥

उस समय सूर्यकी किरणोंसे सभी प्राणी भस्म हो जाते हैं। हे मुने! वे समस्त प्राणी कल्पोंके अन्तमें ब्रह्मदेवको आगेकर आदित्यगणोंके साथ सभी प्राणियोंके स्रष्टा तथा देवताओंमें श्रेष्ठ श्रीहरि नारायणमें बार-बार प्रविष्ट होते रहते हैं॥ ७७-७८॥

इस प्रकार प्रत्येक कल्पके अन्तमें कालस्वरूप भगवान् रुद्र पुनः संहार करते हैं, इसका वर्णन मैं वैवस्वत मनुके प्रसंगमें करूँगा। इस प्रकार मैंने मन्वन्तरोंकी उत्पत्ति तथा विसर्गसे सम्बन्धित सम्पूर्ण आख्यान आपसे कह दिया। जो पुण्यप्रद, धन्यताको देनेवाला तथा कुलकी वृद्धि करनेवाला है॥ ७९-८०॥

इति श्रीशिवमहापुराणे पञ्चम्यामुमासंहितायां सर्वमन्वन्तरानुकीर्तनं नाम चतुस्त्रिंशोऽध्यायः॥ ३४॥

॥ इस प्रकार श्रीशिवमहापुराणके अन्तर्गत पाँचवीं उमासंहितामें सर्वमन्वन्तरानुकीर्तनवर्णन नामक चौंतीसवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ ३४॥

अथ पञ्चत्रिंशोऽध्यायः

विवस्वान् एवं संज्ञाका वृत्तान्तवर्णनपूर्वक अश्विनीकुमारोंकी उत्पत्तिका वर्णन

सूत उवाच

विवस्वान् कश्यपाज्जज्ञे दाक्षायण्यां महाऋषे।
तस्य भार्याभवत्संज्ञा त्वाष्ट्री देवी सुरेणुका॥ १

मुनेऽसहिष्णुना तेन तेजसा दुःसहेन च।
भर्तृरूपेण नातुष्यद्रूपयौवनशालिनी॥ २

आदित्यस्य हि तद्रूपमसहिष्णुः सुतेजसः।
दह्यमाना तदोद्वेगमकरोद्वरवर्णिनी॥ ३

ऋषेऽस्यां त्रीण्यपत्यानि जनयामास भास्करः।
संज्ञायां तु मनुः पूर्वं श्राद्धदेवः प्रजापतिः॥ ४
यमश्च यमुना चैव यमलौ सम्बभूवतुः।
एवं हि त्रीण्यपत्यानि तस्यां जातानि सूर्यतः॥ ५
संवर्तुलं तु तद्रूपं दृष्ट्वा संज्ञा विवस्वतः।
असहंती ततः छायामात्मनः सासृजच्छुभाम्॥ ६

मायामयी तु सा संज्ञामवोचद्भक्तितः शुभे।
किं करोमीह कार्यं ते कथयस्व शुचिस्मिते॥ ७

संज्ञोवाच

अहं यास्यामि भद्रं ते ममैव भवनं पितुः।
त्वयैतद्भवने सत्यं वस्तव्यं निर्विकारतः॥ ८
इमौ मे बालकौ साधू कन्या चेयं सुमध्यमा।
पालनीयाः सुखेनैव मम चेदिच्छसि प्रियम्॥ ९

छायोवाच

आकेशग्रहणाद्देवि सहिष्येऽहं सुदुष्कृतम्।
नाख्यास्यामि मतं तुभ्यं गच्छ देवि यथासुखम्॥ १०

सूत उवाच

इत्युक्ता सागमद्देवी व्रीडिता सन्निधौ पितुः।
पित्रा निर्भर्त्सिता तत्र नियुक्ता सा पुनः पुनः॥ ११

अगच्छद्वडवा भूत्वाच्छाद्य रूपं ततः स्वकम्।
कुरूंस्तदोत्तरान् प्राप्य तृणान्येव चचार ह॥ १२

सूतजी बोले—महर्षि कश्यपसे दक्षपुत्री [अदिति]-में विवस्वान् उत्पन्न हुए; उनकी पत्नी त्वष्टापुत्री देवी संज्ञा हुईं, जो सुरेणुका नामसे भी विख्यात हैं॥ १॥

रूप-यौवनसे समन्वित वह [संज्ञा] अपने पतिके असहिष्णु तथा दुःसह तेजसे सन्तुष्ट नहीं हुई॥ २॥

तब अत्यन्त तेजस्वी सूर्यके उस तेजको सहनेमें असमर्थ वह सुन्दरी जलती हुई [अत्यन्त] उद्विग्न हो गयी॥ ३॥

हे ऋषे! आदित्यने इस संज्ञासे तीन सन्तानें उत्पन्न कीं। सर्वप्रथम श्राद्धदेव प्रजापति मनु हुए, उसके अनन्तर यम और यमुना—ये दोनों जुड़वें पैदा हुए। इस प्रकार सूर्यसे संज्ञामें तीन सन्तानें उत्पन्न हुईं॥ ४-५॥

उसके बाद सूर्यके उस संवर्तुल अर्थात् उत्पीडक रूपको देखकर उसे सहन न करती हुई उस संज्ञाने अपनी सुन्दर छायाका निर्माण किया॥ ६॥

तब उस मायामयी छायाने संज्ञासे भक्तिपूर्वक कहा—हे शुभे! हे शुचिस्मिते! मैं यहाँ आपका कौन-सा कार्य करूँ, बताओ?॥ ७॥

संज्ञा बोली—तुम्हारा कल्याण हो, मैं अपने पिताके घर जा रही हूँ, तुम इस भवनमें निर्विकार भावसे निवास करो। यदि तुम मेरा हित चाहती हो, तो मेरे इन दोनों साधुस्वभाव पुत्रोंका और इस सुन्दरी कन्याका सुखपूर्वक पालन करना॥ ८-९॥

छाया बोली—हे देवि! मैं अपना केश पकड़े जानेतक अत्याचार सहन करूँगी और तबतक आपका रहस्य सूर्यसे नहीं कहूँगी, आप सुखपूर्वक जाइये॥ १०॥

सूतजी बोले—ऐसा कहे जानेपर वह संज्ञा लज्जित हो अपने पिताके पास चली गयी। वहाँपर पिताने उसे बहुत फटकारा और वहाँ जानेके लिये उसे बारंबार विवश किया। तब वह अपने स्वरूपको छिपाकर घोड़ीका रूप धारण करके उत्तर कुरुदेशमें जाकर तृणोंके बीच [गुप्त रूपसे] विचरण करने लगी॥ ११-१२॥

संज्ञां तां तु रविर्मत्वा छायायां सुसुतं तदा।
जनयामास सावर्णिं मनुं वै सविता किल॥ १३

संज्ञानु प्रार्थिता छाया सा स्वपुत्रेऽपि नित्यशः।
चकाराभ्यधिकं स्नेहं न तथा पूर्वजे सुते॥ १४

मनुस्तस्याक्षमत्तं तु यमस्तं नैव चक्षमे।
स सरोषस्तु बाल्याच्च भाविनोऽर्थस्य गौरवात्॥ १५

छायां सन्तर्जयामास पदा वैवस्वतो यमः।
तं शशाप ततः क्रोधाच्छाया तु कलुषीकृता॥ १६

चरणः पतत्तामेष तवेति भृशरोषतः।
यमस्ततः पितुः सर्वं प्राञ्जलिः प्रत्यवेदयत्॥ १७

भृशं शापभयोद्विग्नः संज्ञावाक्यैर्विचेष्टितः।
मात्रा स्नेहेन सर्वेषु वर्तितव्यं सुतेषु वै॥ १८

स्नेहमस्मास्वपाकृत्य कनीयांसं बिभर्ति सा।
तस्मान्मयोद्यतः पादस्तद्भवान् क्षन्तुमर्हति॥ १९

शप्तोऽहमस्मि देवेश जनन्या तपतांवर।
तव प्रसादाच्चरणो न पतेन्मम गोपते॥ २०

सवितोवाच

असंशयं पुत्र महद्भविष्यत्यत्र कारणम्।
येन त्वामाविशत्क्रोधो धर्मज्ञं सत्यवादिनम्॥ २१

न शक्यते तन्मिथ्या वै कर्तुं मातृवचस्तव।
कृमयो मांसमादाय गमिष्यन्ति महीतले॥ २२

तद्वाक्यं भविता सत्यं त्वं च त्रातो भविष्यसि।
कुरु तात न संदेहं मनश्चाश्वास्य स्वं प्रभो॥ २३

सूत उवाच

इत्युक्त्वा तनयं सूर्यो यमसंज्ञं मुनीश्वर।
आदित्यश्चाब्रवीत्तांत्तु छायां क्रोधसमन्वितः॥ २४

सूर्य उवाच

हे प्रिये कुमते चंडि किं त्वयाचरितं किल।
किंतु मेऽभ्यधिकः स्नेह एतादाख्यातुमर्हसि॥ २५

उसके बाद सूर्यने छायाको ही संज्ञा समझकर उससे सावर्णि मनु नामक सुन्दर पुत्रको उत्पन्न किया॥ १३॥

संज्ञाद्वारा प्रार्थना किये जानेपर भी वह छाया अपने पुत्र सावर्णिसे अधिक स्नेह करती थी, किंतु संज्ञापुत्रोंसे उतना स्नेह नहीं करती थी॥ १४॥

श्राद्धदेव मनुने तो इसे सह लिया, किंतु यमको यह सहन नहीं हुआ। इसलिये जब बचपनेके कारण तथा भवितव्यताके वश हो क्रोधित होकर उन वैवस्वत यमने छायाको पैर उठाकर धमकाया, तब पापिनी छायाने क्रोधपूर्वक उसे शाप दे दिया कि तुम्हारा यह चरण पृथ्वीपर गिर जाय। उसके बाद यमने हाथ जोड़कर सारा समाचार अपने पितासे निवेदन किया। शापके भयसे अत्यन्त व्याकुल एवं संज्ञाके वचनोंसे प्रेरित हुए यमने कहा कि माताको चाहिये कि वह अपने सभी पुत्रोंमें स्नेहपूर्वक समताका व्यवहार करे। किंतु वह छाया तो हमलोगोंसे स्नेह हटाकर केवल छोटे भाईका लालन-पालन करती है, इसीलिये मैंने उसे मारनेके लिये पैर उठाया, इसे आप क्षमा कीजिये। हे देवेश! हे तेजस्वियोंमें श्रेष्ठ! हे गोपते! माताने मुझे शाप दिया है, अतः आपकी कृपासे मेरा चरण न गिरे॥ १५—२०॥

सविता बोले—हे पुत्र! इसमें निःसन्देह कोई कारण होगा, जिससे तुम्हारे जैसे धर्मज्ञ तथा सत्यवादीको क्रोध उत्पन्न हुआ। तुम्हारी माताका वचन तो मिथ्या नहीं किया जा सकता है। कीड़े तुम्हारे चरणोंका मांस लेकर पृथ्वीमें चले जायँगे। इससे उसकी बात भी सत्य हो जायगी और तुम्हारी रक्षा भी हो जायगी। हे तात! हे प्रभो! अपने मनको आश्वस्त कर लो और सन्देह मत करो॥ २१—२३॥

सूतजी बोले—हे मुनीश्वर! यम नामक पुत्रसे ऐसा कहकर आदित्य सूर्यने क्रोधित हो उस छायासे कहा—॥ २४॥

सूर्य बोले—हे प्रिये! हे कुमते! हे चण्डि! तुमने यह क्या किया? तुम अपने पुत्रोंमें न्यूनाधिक स्नेह क्यों करती हो, इसे मुझको बताओ॥ २५॥

सूत उवाच

सा रवेर्वचनं श्रुत्वा यथातथ्यं न्यवेदयत्।
निर्दग्धा कामरविणा सान्त्वयामास वै तदा॥ २६

तस्यास्तद् वचनं श्रुत्वा सूर्योऽगात्त्वष्टुरन्तिकम्।
पप्रच्छ तं क्व संज्ञेति त्वष्टा सूर्यमथाब्रवीत्॥ २७

त्वष्टोवाच

तवातितेजसा दग्धा इदं रूपं न शोभते।
असहंती च तत्संज्ञा वने वसति शाद्वले॥ २८

श्लाघ्या योगबलोपेता योगमासाद्य गोपते।
अनुकूलस्तु देवेश संदिश्यात्ममयं मतम्॥ २९

रूपं निवर्तयाम्यद्य तव कान्तं करोम्यहम्।

सूत उवाच

तच्छ्रुत्वापगतः क्रोधो मार्तण्डस्य विवस्वतः॥ ३०

भ्रमिमारोप्य तत्तेजः शातयामास वै मुनिः।
ततो विभ्राजितं रूपं तेजसा संवृतेन च॥ ३१

कृतं कान्ततरं रूपं त्वष्ट्रा तच्छुशुभे तदा।
ततोऽधियोगमास्थाय स्वां भार्यां हि ददर्श ह॥ ३२

अधृष्यां सर्वभूतानां तेजसा नियमेन च।
सोऽश्वरूपं समास्थाय गत्वा तां मैथुनेच्छया॥ ३३

मैथुनाय विचेष्टन्तीं परपुंसोऽभिशंकया।
मुखतो नासिकायां तु शुक्रं तद्व्यदधान्मुने॥ ३४

देवौ ततः प्रजायेतामश्विनौ भिषजां वरौ।
नासत्यौ तौ च दस्रौ च स्मृतौ द्वावश्विनावपि॥ ३५

तां तु कान्तेन रूपेण दर्शयामास भास्करः।
आत्मानं सा तु तं दृष्ट्वा प्रहृष्टा पतिमादरात्॥ ३६

पत्या तेन गृहं प्रागात्स्वं सती मुदितानना।
मुमुदातेऽथ तौ प्रीत्या दम्पती पूर्वतोऽधिकम्॥ ३७

सूतजी बोले—अपनी इच्छासे प्रज्वलित हुए सूर्यदेवके द्वारा जलायी जाती हुई छायाने उनका कथन सुनकर तथ्यपूर्ण उत्तर दिया, तब सूर्यदेवने उसे सान्त्वना प्रदान की। उसकी बात सुनकर सूर्य त्वष्टाके पास गये और उन्होंने उनसे पूछा कि संज्ञा कहाँ है? तब त्वष्टाने सूर्यसे कहा—॥ २६-२७॥

त्वष्टा बोले—आपके अत्यन्त तेजसे जलती रहनेके कारण उसे आपका यह रूप अच्छा नहीं लगता है, अतः उसे सहन न करती हुई वह तृणोंसे भरे वनमें निवास करती है। हे गोपते! योगबलसे युक्त तथा योगका आश्रय लेकर स्थित वह संज्ञा प्रशंसनीय है। हे देवेश! अपनी बात कहकर आप अनुकूल हो जाइये। अब मैं आपके रूपको मनोहर बना देता हूँ॥ २८-२९½॥

सूतजी बोले—यह सुनकर विवस्वान् सूर्यका क्रोध दूर हो गया। तब त्वष्टा मुनिने सानपर स्थापितकर उनके तेजको छील दिया। इसके बाद तेजके छील दिये जानेसे उनका रूप मनोहारी हो गया। जब त्वष्टाने उनके रूपको अत्यधिक सुन्दर बना दिया, तब वे अति शोभित होने लगे। इस प्रकार सूर्यदेवने योगमें स्थित होकर अपने नियम और तेजके कारण सम्पूर्ण प्राणियोंद्वारा अपराजेय अपनी भार्याको देखा। तब अश्वका रूप धारणकर सूर्य संगकी इच्छासे वहाँ पहुँचे। हे मुने! तब संगके लिये चेष्टा करते हुए सूर्यको देखकर परपुरुषकी शंकासे युक्त संज्ञाने उनका शुक्र मुखसे लेकर नासिकामें धारण कर लिया॥ ३०—३४॥

उससे वैद्योंमें श्रेष्ठ युगल अश्विनीकुमार देवता उत्पन्न हुए। वे दोनों अश्विनीकुमार नासत्य अथवा दस्र कहे गये हैं॥ ३५॥

उसके बाद सूर्यने उसको अपने मनोहर रूपका दर्शन कराया। तब आत्मस्वरूप अपने पतिदेवको आदरपूर्वक देखकर वह (संज्ञा) प्रसन्न हो गयी। इसके बाद प्रसन्नमुखवाली वह सती पतिके साथ अपने घर चली गयी। इस प्रकार दोनों स्त्री-पुरुष प्रीतिसे युक्त हो पहलेसे अधिक प्रसन्न हो गये॥ ३६-३७॥

यमस्तु कर्मणा तेन भृशं पीडितमानसः।
धर्मेण रञ्जयामास धर्मराज इमाः प्रजाः॥ ३८

लेभे स कर्मणा तेन धर्मराजो महाद्युतिः।
पितॄणामाधिपत्यं च लोकपालत्वमेव च॥ ३९

[माताके तिरस्काररूप] उस कर्मसे अत्यन्त व्यथित धर्मराज यम धर्मपूर्वक प्रजाओंको प्रसन्न करने लगे। उस कर्मसे महातेजस्वी धर्मराजको पितरोंका आधिपत्य तथा लोकपालका पद प्राप्त हुआ॥ ३८-३९॥

मनुः प्रजापतिस्त्वासीत्सावर्णिः स तपोधनः।
भाव्यः स कर्मणा तेन मनोः सावर्णिकेऽन्तरे॥ ४०

तपोधन सावर्णिको भी प्रजापति मनुका पद प्राप्त हुआ। वे अपने उस कर्मसे वैवस्वत मनुके बाद सावर्णि मन्वन्तरके मनु होंगे॥ ४०॥

मेरुपृष्ठे तपो घोरमद्यापि चरते प्रभुः।
यवीयसी तयोर्या तु यमी कन्या यशस्विनी॥ ४१
अभवत्सा सरिच्छ्रेष्ठा यमुना लोकपावनी।
मनुरित्युच्यते लोके सावर्णिरिति चोच्यते॥ ४२

वे प्रभु आज भी सुमेरुपर्वतपर घोर तप कर रहे हैं। लोकमें उन्हें मनु कहा जाता है और सावर्णि भी कहा जाता है। उन दोनोंसे छोटी जो यशस्विनी कन्या यमी थी, वह नदियोंमें श्रेष्ठ लोकपावनी यमुना हुई॥ ४१-४२॥

य इदं जन्म देवानां शृणुयाद्धारयेत्तु वा।
आपदं प्राप्य मुच्येत प्राप्नुयात्सुमहद्यशः॥ ४३

जो देवगणोंके जन्मके इस आख्यानका श्रवण करता है अथवा स्मरण करता है, वह आपद्ग्रस्त होनेपर भी उससे मुक्त हो जाता है और महान् यश प्राप्त करता है॥ ४३॥

इति श्रीशिवमहापुराणे पञ्चम्यामुमासंहितायां मन्वन्तरकीर्तने वैवस्वतवर्णनं नाम पञ्चत्रिंशोऽध्यायः॥ ३५॥

॥ इस प्रकार श्रीशिवमहापुराणके अन्तर्गत पाँचवीं उमासंहितामें मन्वन्तरकीर्तनमें वैवस्वतवर्णन नामक पैंतीसवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ ३५॥

अथ षट्त्रिंशोऽध्यायः

वैवस्वतमनुके नौ पुत्रोंके वंशका वर्णन

सूत उवाच

मनोर्वैवस्वतस्यासन् पुत्रा वै नव तत्समाः।
पश्चान्महोन्नता धीराः क्षत्रधर्मपरायणाः॥ १

सूतजी बोले—[हे महर्षियो!] बादमें वैवस्वत मनुके नौ पुत्र उत्पन्न हुए, जो उन्हींके समान विशालकाय, धैर्यशाली एवं क्षत्रिय धर्ममें तत्पर थे॥ १॥

इक्ष्वाकुः शिबिनाभागौ धृष्टः शर्यातिरेव च।
नरिष्यन्तोऽथ नाभागः करूषश्च प्रियव्रतः॥ २

[वे मनु पुत्र] इक्ष्वाकु, शिबि, नाभाग, धृष्ट, शर्याति, नरिष्यन्त, नाभाग [नाभागारिष्ट], करूष और प्रियव्रत नामवाले थे॥ २॥

अकरोत्पुत्रकामस्तु मनुरिष्टिं प्रजापतिः।
अनुत्पन्नेषु पुत्रेषु तत्रेष्ट्यां मुनिपुङ्गव॥ ३

सा हि दिव्याम्बरधरा दिव्याभरणभूषिता।
दिव्यसंहनना चैवमिला जज्ञे हि विश्रुता॥ ४

हे मुनिश्रेष्ठ! [किसी समय] पुत्रकी कामनावाले प्रजापति मनुने यज्ञ किया, किंतु उस यज्ञमें पुत्र उत्पन्न नहीं हुए अपितु दिव्य वस्त्र धारण की हुई, दिव्य आभूषणोंसे विभूषित तथा दिव्य अंगोंवाली इला [इडा] नामक कन्या उत्पन्न हुई॥ ३-४॥

तामिडेत्येव होवाच मनुर्दण्डधरस्तथा।
अनुगच्छस्व मामेति तमिडा प्रत्युवाच ह॥ ५
धर्मयुक्तमिदं वाक्यं पुत्रकामं प्रजापतिम्।

तब दण्डधारी मनुने उससे कहा—हे इडा! तुम मेरा अनुसरण करो, इसपर इडाने पुत्रकी कामनावाले उन प्रजापति मनुसे यह धर्मसम्मत बात कही—॥ ५½॥

इडोवाच

मित्रावरुणयोरंशैर्जातास्मि वदतां वर॥ ६

तयोः सकाशं यास्यामि न मेऽधर्मे रुचिर्भवेत्।
एवमुक्त्वा सती सा तु मित्रावरुणयोस्ततः॥ ७

गत्वान्तिकं वरारोहा प्राञ्जलिर्वाक्यमब्रवीत्।
अंशैस्तु युवयोर्जाता मनुयज्ञे महामुनी॥ ८

आगता भवतोरन्ति ब्रूतं किं करवाणि वाम्।
अन्यान् पुत्रान् सृज विभो तैर्वंशस्ते भविष्यति॥ ९

सूत उवाच

तां तथावादिनीं साध्वीमिडां मन्वध्वरोद्भवाम्।
मित्रावरुणनामानौ मुनी ऊचतुरादरात्॥ १०

मित्रावरुणावूचतुः

अनेन तव धर्मज्ञे प्रश्रयेण दमेन च।
सत्येन चैव सुश्रोणि प्रीतौ द्वौ वरवर्णिनि॥ ११

आवयोस्त्वं महाभागे ख्यातिं चैव गमिष्यसि।
मनोर्वंशकरः पुत्रस्त्वमेव च भविष्यसि॥ १२

सुद्युम्न इति विख्यातस्त्रिषु लोकेषु विश्रुतः।
जगत्प्रियो धर्मशीलो मनुवंशविवर्धनः॥ १३

सूत उवाच

निवृत्ता सा तु तच्छ्रुत्वा गच्छन्ती पितुरन्तिके।
बुधेनान्तरमासाद्य मैथुनायोपमन्त्रिता॥ १४

सोमपुत्रात्ततो जज्ञे तस्यां राजा पुरूरवाः।
पुत्रोऽतिसुन्दरः प्राज्ञ उर्वशीपतिरुन्नतः॥ १५

जनयित्वा च सा तत्र पुरूरवसमादरात्।
पुत्रं शिवप्रसादात्तु पुनः सुद्युम्नतां गता॥ १६

सुद्युम्नस्य तु दायादास्त्रयः परमधार्मिकाः।
उत्कलश्च गयश्चापि विनताश्वश्च वीर्यवान्॥ १७

उत्कलस्योत्कला विप्रा विनताश्वस्य पश्चिमा।
दिक्पूर्वा मुनिशार्दूल गयस्य तु गया स्मृता॥ १८

इडा बोली—हे वक्ताओंमें श्रेष्ठ! मैं मित्रावरुणके अंशसे मैं उत्पन्न हुई हूँ। मैं उन्हीं दोनोंके पास जाऊँगी। मेरी रुचि इस प्रकारके अधर्ममें नहीं है। ऐसा कहकर उस सुन्दरी सतीने मित्रावरुणके पास जाकर हाथ जोड़कर यह वचन कहा—हे महामुनियो! मैं मनुके यज्ञमें आप दोनोंके अंशसे उत्पन्न हुई हूँ। अब मैं आप दोनोंके समीप आयी हूँ। बताइये कि मैं क्या करूँ? [इडाने मनुसे भी कहा कि—] हे विभो! आपलोग अन्य पुत्रोंको उत्पन्न कीजिये, उन्हींसे आपका वंश चलेगा॥ ६—९॥

सूतजी बोले—ऐसा कहनेवाली, मनुके यज्ञमें उत्पन्न हुई उस साध्वी इडासे मित्रावरुण नामवाले दोनों मुनियोंने आदरपूर्वक कहा— ॥ १०॥

मित्रावरुण बोले—हे धर्मज्ञे! हे सुश्रोणि! हे सुन्दरि! हम दोनों तुम्हारे इस विनय, नियम तथा सत्यसे प्रसन्न हैं॥ ११॥

हे महाभागे! तुम हम दोनोंकी ख्याति प्राप्त करोगी और तुम्हीं मनुका वंश बढ़ानेवाला पुत्र होओगी, जो सुद्युम्न नामसे तीनों लोकोंमें विख्यात होगा और संसारका प्रिय, धर्मपरायण तथा मनुवंशको बढ़ानेवाला होगा॥ १२-१३॥

सूतजी बोले—ऐसा सुनकर वह लौट करके अपने पिताके पास जाने लगी, तभी अवसर पाकर बुधने उसे संगके लिये आमन्त्रित किया॥ १४॥

उसके पश्चात् चन्द्रमापुत्र बुधसे उस इडामें राजा पुरूरवाकी उत्पत्ति हुई, वह पुत्र अत्यन्त सुन्दर, बुद्धिमान् और उन्नत था, जो आगे चलकर उर्वशीका पति हुआ। इस प्रकार प्रेमपूर्वक पुरूरवा नामक पुत्रको जन्म देकर वह शिवजीकी कृपासे पुनः सुद्युम्न हो गयी॥ १५-१६॥

सुद्युम्नके तीन परम धार्मिक पुत्र हुए—उत्कल, गय तथा पराक्रमी विनताश्व। हे विप्रो! उत्कलकी राजधानी उत्कला (उड़ीसा) हुई, विनताश्वको पश्चिम दिशाका राज्य मिला और हे मुनिश्रेष्ठ! गयकी राजधानी पूर्वदिशामें गया नामकी पुरी कही गयी॥ १७-१८॥

प्रविष्टे तु मनौ तात दिवाकरतनुं तदा।
दशधा तत्र तत्क्षेत्रमकरोत्पृथिवीमिमाम्॥ १९

इक्ष्वाकुः श्रेष्ठदायादो मध्यदेशमवाप्तवान्।
वसिष्ठवचनादासीत्प्रतिष्ठानं महात्मनः॥ २०

प्रतिष्ठां धर्मराज्यस्य सुद्युम्नोऽथ ततो ददौ।
तत्पुरूरवसे प्रादाद् राज्यं प्राप्य महायशाः॥ २१

मानवो यो मुनिश्रेष्ठाः स्त्रीपुंसोर्लक्षणः प्रभुः।
नरिष्यन्ताच्छकाः पुत्रा नभगस्य सुतोऽभवत्॥ २२

अम्बरीषस्तु बाह्लेयो बाह्लकं क्षेत्रमाप्तवान्।
शर्यातेर्मिथुनं त्वासीदानर्तो नाम विश्रुतः॥ २३

पुत्रः सुकन्या कन्या च या पत्नी च्यवनस्य हि।
आनर्तस्य हि दायादो रैभ्यो नाम स रैवतः॥ २४

आनर्तविषये यस्य पुरी नाम कुशस्थली।
महादिव्या सप्तपुरीमध्ये या सप्तमी मता॥ २५

हे तात! मनुके दिवाकरके शरीरमें प्रविष्ट होनेपर इस पृथ्वीको [इक्ष्वाकुने] दस भागोंमें विभक्त किया। ज्येष्ठ पुत्र इक्ष्वाकुने मध्यदेश प्राप्त किया। वसिष्ठके वचनके अनुसार उन महात्मा [सुद्युम्न]-का प्रतिष्ठानपुर राज्य हुआ। महायशस्वी सुद्युम्नने भी प्रतिष्ठानका राज्य प्राप्तकर उसमें धर्मराज्यकी प्रतिष्ठा की और वह प्रतिष्ठान नामक नगर पुरूरवाको दे दिया। हे मुनिश्रेष्ठो! इस प्रकार जो मनुपुत्र सुद्युम्न थे, वे स्त्री-पुरुषके लक्षणसे युक्त राजा हुए। नरिष्यन्तके पुत्र शक हुए। नभग (नाभाग)-के पुत्र अम्बरीष हुए। उन्हें बाह्लक देश प्राप्त हुआ। शर्यातिने युग्म सन्तानको उत्पन्न किया, जिसमें पुत्र आनर्त नामसे प्रसिद्ध हुआ तथा कन्याका नाम सुकन्या हुआ, जो च्यवनकी पत्नी बनी। आनर्तके पुत्रका नाम रैभ्य था, जो रैवत नामसे प्रसिद्ध हुए और जिनकी कुशस्थली नामक पुरी आनर्त देशमें थी, जो परम दिव्य तथा सप्त महापुरियोंमें क्रममें सातवीं मानी गयी है॥ १९—२५॥

तस्य पुत्रशतं त्वासीत्ककुद्मी ज्येष्ठ उत्तमः।
तेजस्वी सुबलः पारो धर्मिष्ठो ब्रह्मपालकः॥ २६

ककुद्मिनस्तु संजाता रेवती नाम कन्यका।
महालावण्यसंयुक्ता दिव्यलक्ष्मीरिवापरा॥ २७

उन रैवतके सौ पुत्र हुए, जिनमें ककुद्मी ज्येष्ठ थे, वे उत्तम, तेजस्वी, महाबली, पारगामी, धर्मपरायण और ब्राह्मणोंके पालनकर्ता थे। ककुद्मीसे रेवती नामक कन्या हुई, जो परम सौन्दर्ययुक्त तथा दूसरी लक्ष्मीके समान दिव्य थी॥ २६-२७॥

प्रष्टुं कन्यावरं राजा ककुद्मी कन्यया सह।
ब्रह्मलोके विधेः सम्यक्सर्वाधीशो जगाम ह॥ २८

किसी समय सबके स्वामी राजा ककुद्मी अपनी कन्याको साथ लेकर उसके लिये ब्रह्माजीसे वर पूछनेहेतु ब्रह्मलोकमें गये॥ २८॥

आवर्तमाने गान्धर्वे स्थितो लब्धक्षणः क्षणम्।
शुश्राव तत्र गान्धर्वं नर्तने ब्रह्मणोऽन्तिके॥ २९

मुहूर्तभूतं तत्काले गतं बहुयुगं तदा।
न किञ्चिद् बुबुधे राजा ककुद्मी मुनयः स तु॥ ३०

उस समय वहाँ गायन हो रहा था, अवसर पाकर वे भी क्षणमात्र ब्रह्मदेवके पास रुककर गान-नृत्य सुनने-देखने लगे। हे मुनियो! उस मुहूर्तमात्रमें बहुत-से युग बीत गये, किंतु उन ककुद्मी राजाको इसका कुछ भी पता न लगा॥ २९-३०॥

तदासौ विधिमानम्य स्वाभिप्रायं कृताञ्जलिः।
न्यवेदयद्विनीतात्मा ब्रह्मणे परमात्मने॥ ३१

इसके बाद उन्होंने ब्रह्माजीको नमस्कारकर हाथ जोड़ करके विनीतभावसे परमात्मा ब्रह्माजीसे अपना अभिप्राय निवेदन किया॥ ३१॥

तदभिप्रायमाकर्ण्य स प्रहस्य प्रजापतिः।
ककुद्मिनं महाराजं समाभाष्य समब्रवीत्॥ ३२

उनका अभिप्राय सुनकर वे प्रजापति कुशल-मंगल पूछकर महाराज ककुद्मीसे हँसकर कहने लगे—॥ ३२॥

ब्रह्मोवाच

शृणु राजन् रैभ्यसुत ककुद्मिन् पृथिवीपते।
मद्वचः प्रीतितः सत्यं प्रवक्ष्यामि विशेषतः ॥ ३३

कालेन संहृतास्ते वै वरा ये ते कृता हृदि।
न तद्गोत्रं हि तत्रास्ति कालः सर्वस्य भक्षकः ॥ ३४

त्वत्पुर्यपि हता पुण्यजनैः सा राक्षसैर्नृप।
अष्टाविंशद्वापरेऽद्य कृष्णेन निर्मिता पुनः ॥ ३५

कृता द्वारावती नाम्ना बहुद्वारा मनोरमा।
भोजवृष्ण्यन्धकैर्गुप्ता वासुदेवपुरोगमैः ॥ ३६

तद्गच्छ तत्र प्रीतात्मा वासुदेवाय कन्यकाम्।
बलदेवाय देहि त्वमिमां स्वतनयां नृप ॥ ३७

सूत उवाच

इत्यादिष्टो नृपोऽयं तं नत्वा तां च पुरीं गतः।
गतान् बहून्युगान् ज्ञात्वा विस्मितः कन्यया युतः ॥ ३८

ततस्तु युवतीं कन्यां तां च स्वां सुविधानतः।
कृष्णभ्रात्रे बलायाशु प्रादात्तत्र स रेवतीम् ॥ ३९

ततो जगाम शिखरं मेरोर्दिव्यं महाप्रभुः।
शिवमाराधयामास स नृपस्तपसि स्थितः ॥ ४०

ऋषय ऊचुः

तत्र स्थितो बहुयुगं ब्रह्मलोके स रेवतः।
युवैवागान्मर्त्यलोकमेतन्नः संशयो महान् ॥ ४१

सूत उवाच

न जरा क्षुत्पिपासा वा विकारास्तत्र सन्ति वै।
अपमृत्युर्न केषांचिन्मुनयो ब्रह्मणोऽन्तिके ॥ ४२

अतो न राजा संप्राप जरां मृत्युं च सा सुता।
स युवैवागतस्तत्र संमन्त्र्य तनयावरम् ॥ ४३

गत्वा द्वारावतीं दिव्यां पुरीं कृष्णविनिर्मिताम्।
विवाहं कारयामास कन्यायाः स बलेन हि ॥ ४४

ब्रह्माजी बोले—हे राजन्! हे रैभ्यपुत्र! हे ककुद्मिन्! हे पृथ्वीपते! मेरी बात प्रेमपूर्वक सुनिये। मैं पूर्णतः सत्य कह रहा हूँ ॥ ३३ ॥

आप जिन वरोंको हृदयसे चाहते हैं, उन्हें कालने हरण कर लिया है। अब वहाँ उनके गोत्रमें भी कोई नहीं रहा, क्योंकि काल सबका भक्षक है ॥ ३४ ॥

हे राजन्! पुण्यजनों एवं राक्षसोंने आपकी पुरीको भी नष्ट कर दिया है, इस समय चल रहे अट्ठाईसवें द्वापरमें श्रीकृष्णने पुनः उसका निर्माण कराया है। अनेक द्वारोंवाली उस मनोरम पुरीका नाम द्वारावती है, वह वासुदेव आदि भोज, वृष्णि तथा अन्धकवंशियोंसे सुरक्षित है ॥ ३५-३६ ॥

हे राजन्! अब आप प्रसन्नचित्त होकर वहीं चले जाइये और अपनी इस कन्याको वसुदेवपुत्र बलदेवको प्रदान कर दीजिये ॥ ३७ ॥

सूतजी बोले—इस प्रकार आज्ञा प्राप्तकर वे राजा ककुद्मी उन्हें नमस्कारकर कन्याके साथ उस पुरीको गये और बहुत-से युगोंको बीता हुआ जानकर परम विस्मयको प्राप्त हुए। इसके बाद उन्होंने अपनी रेवती नामक युवती कन्याको शीघ्र ही विधिपूर्वक श्रीकृष्णके ज्येष्ठ भ्राता बलरामको अर्पित कर दिया ॥ ३८-३९ ॥

तत्पश्चात् वे महाप्रभु राजा मेरुके दिव्य शिखरपर चले गये और तपस्यामें निरत होकर शिवाराधन करने लगे ॥ ४० ॥

ऋषि बोले—[हे सूतजी!] वे ककुद्मी बहुत युगोंतक ब्रह्मलोकमें स्थित रहे, किंतु युवा रहकर ही मृत्युलोकको लौटे, हमलोगोंको यह महान् संशय है ॥ ४१ ॥

सूतजी बोले—हे मुनियो! वहाँपर ब्रह्माजीके समीप किसीको भी जरा, क्षुधा, प्यास आदि विकार एवं अकालमृत्यु आदि कुछ नहीं होता है ॥ ४२ ॥

अतः वे राजा तथा वह कन्या जरा एवं मृत्युको प्राप्त नहीं हुए और वे अपनी कन्याके लिये वरहेतु परामर्श करके युवा ही लौट आये। इसके बाद उन्होंने श्रीकृष्णद्वारा निर्मित दिव्य द्वारकापुरीमें जाकर अपनी कन्याका विवाह बलरामके साथ कराया ॥ ४३-४४ ॥

तस्य पुत्रशतं त्वासीद्धार्मिकस्य महाप्रभोः।
कृष्णस्यापि सुता जाता बहुस्त्रीभ्योऽमितास्ततः॥ ४५
अन्ववायो महांस्तत्र द्वयोरपि महात्मनोः।
क्षत्रिया दिक्षु सर्वासु गता हृष्टाः सुधार्मिकाः॥ ४६

तदनन्तर उन धर्मनिष्ठ महाप्रभु बलरामके सौ पुत्र हुए और श्रीकृष्णके भी अनेक स्त्रियोंसे बहुत-से पुत्र हुए। उन दोनों ही महात्माओंका पर्याप्त वंशविस्तार हुआ और [उनके वंशज] धर्मात्मा क्षत्रिय प्रसन्न होकर सभी दिशाओंको फैल गये॥ ४५-४६॥

इति प्रोक्तो हि शर्यातेर्वंशोऽन्येषां वदाम्यहम्।
मानवानां हि संक्षेपाच्छृणुतादरतो द्विजाः॥ ४७

हे द्विजो! इस प्रकार शर्यातिके वंशका वर्णन किया, अब अन्य मनुपुत्रोंके वंशका वर्णन संक्षेपमें करता हूँ, आपलोग आदरपूर्वक सुनिये॥ ४७॥

नाभागो दिष्टपुत्रोऽभूत्स तु ब्राह्मणतां गतः।
स्वक्षत्रवंशं संस्थाप्य ब्रह्मकर्मभिरावृतः॥ ४८
धृष्टाद्धार्ष्टमभूत्क्षत्रं ब्रह्मभूयं गतं क्षितौ।
करूषस्य तु कारूषाः क्षत्रिया युद्धदुर्मदाः॥ ४९

नाभागारिष्टका जो पुत्र हुआ, उसने ब्राह्मणत्वको प्राप्त किया, वह अपने क्षत्रिय वंशकी स्थापना करके ब्राह्मणकर्मोंसे युक्त हुआ। धृष्टसे धार्ष्ट उत्पन्न हुए, वे भी क्षत्रिय थे, किंतु पृथ्वीपर ब्राह्मणत्वके आधिक्यसे युक्त हुए। करूषके पुत्र कारूष क्षत्रिय हुए, जो युद्धके मदसे उन्मत्त रहते थे॥ ४८-४९॥

नृगो यो मनुपुत्रस्तु महादाता विशेषतः।
नानावसूनां सुप्रीत्या विप्रेभ्यश्च गवां तथा॥ ५०

मनुके ही एक पुत्र नृग हुए, जो विशेष रूपसे महादानी थे, वे ब्राह्मणोंको अनेक प्रकारकी सम्पत्तियों तथा गौओंका दान करते थे॥ ५०॥

गोदानव्यत्ययाद्यस्तु स्वकुबुद्ध्या स्वपापतः।
कृकलासत्वमापन्नः श्रीकृष्णेन समुद्धृतः॥ ५१
तस्यैकोऽभूत्सुतः श्रेष्ठः प्रयातिर्धर्मवित्तथा।
इति श्रुतं मया व्यासात्तत्प्रोक्तं हि समासतः॥ ५२

वे गोदानविधिमें गड़बड़ी होनेसे, अपनी कुबुद्धिसे तथा अपने पापसे गिरगिटकी योनिको प्राप्त हुए, बादमें श्रीकृष्णने उनका उद्धार किया। उन्हें प्रयाति नामक एक पुत्र हुआ, जो धर्मात्मा था। इस प्रकार मैंने व्यासजीसे जो सुना था, उसे संक्षेपमें कह दिया॥ ५१-५२॥

वृषघ्नस्तु मनोः पुत्रो गोपालो गुरुणा कृतः।
पालयामास गा यत्तो रात्र्यां वीरासनव्रतः॥ ५३
स एकदागतं गोष्ठे व्याघ्रं गा हिंसितुं बली।
श्रुत्वा गोक्रन्दनं बुद्धो हन्तुं तं खड्गधृग्ययौ॥ ५४

गुरुने मनुके पुत्र वृषघ्न (पृषध्र)-को गोपालनमें नियुक्त किया, वे वीरासनमें स्थित होकर सावधानीपूर्वक रात्रिमें गायोंकी रक्षा करने लगे। किसी समय गायोंका क्रन्दन सुनकर वे जग गये और गायोंकी हिंसा करनेके लिये गोशालामें आये हुए व्याघ्रको मारनेके लिये वे बलशाली वृषघ्न हाथमें तलवार लेकर दौड़े॥ ५३-५४॥

अजानन्नहनद्बभ्रोः शिरः शार्दूलशंकया।
निश्चक्राम सभीर्व्याघ्रो दृष्ट्वा तं खड्गिनं प्रभुम्॥ ५५

उन्होंने शेरके भ्रममें किसी बछड़ेका सिर काट दिया और वह व्याघ्र खड्ग धारण किये हुए उन राजाको देखकर भयभीत हो भाग गया॥ ५५॥

मन्यमानो हतं व्याघ्रं स्वस्थानं स जगाम ह।
रात्र्यां तस्यां भ्रमापन्नो वर्षवातविनष्टधीः॥ ५६

उस रात्रिमें वर्षा तथा आँधीसे बुद्धि नष्ट हो जानेके कारण वे भ्रममें पड़ गये थे, अतएव वे व्याघ्रको मरा जानकर अपने स्थानको लौट गये॥ ५६॥

व्युष्टायां निशि चोत्थाय प्रगे तत्र गतो हि सः।
अद्राक्षीत्स हतां बभ्रुं न व्याघ्रं दुःखितोऽभवत्॥ ५७

रात्रिके व्यतीत हो जानेपर वे प्रातःकाल उठकर गोशालामें गये। वहाँ उन्होंने व्याघ्रके स्थानपर बछड़ेको मरा हुआ देखा, तब वे बड़े दुखी हुए॥ ५७॥

श्रुत्वा तद्वृत्तमाज्ञाय तं शशाप कृतागसम्।
अकामतो विचार्येति शूद्रो भव न क्षत्रियः॥ ५८

इस बातको सुनकर गुरुने बिना कारण जाने और बिना विचार किये उन अपराधी पृषध्रको शाप दिया कि अब तुम क्षत्रिय न रहकर शूद्र हो जाओ॥ ५८॥

एवं शप्तस्तु गुरुणा कुलाचार्येण कोपतः।
निःसृतश्च पृषध्रस्तु जगाम विपिनं महत्॥ ५९

निर्विण्णः स तु कष्टेन विरक्तोऽभूत्स योगवान्।
वनाग्नौ दग्धदेहश्च जगाम परमां गतिम्॥ ६०

इस प्रकार क्रोधपूर्वक कुलाचार्य गुरुके द्वारा शापित वे पृषध्र वहाँसे निकल गये और घोर वनमें चले गये। वे उस कष्टसे इतना दुखी हुए कि विरक्त होकर उन्होंने योगका आश्रय लिया और वनकी अग्निमें अपना शरीर जलाकर परम गतिको प्राप्त हुए॥ ५९-६०॥

कविः पुत्रो मनोः प्राज्ञः शिवानुग्रहतोऽभवत्।
इह भुक्त्वा सुखं दिव्यं मुक्तिं पाप सुदुर्लभाम्॥ ६१

मनुके एक अन्य पुत्र कवि शिवका अनुग्रह प्राप्तकर महाबुद्धिमान् हुए। उन्होंने इस लोकमें दिव्य सुख भोगकर परम दुर्लभ मुक्ति प्राप्त की॥ ६१॥

इति श्रीशिवमहापुराणे पञ्चम्यामुमासंहितायां मनुनवपुत्रवंशवर्णनं नाम षट्त्रिंशोऽध्यायः॥ ३६॥

॥ इस प्रकार श्रीशिवमहापुराणके अन्तर्गत पाँचवीं उमासंहितामें मनुके नौ पुत्रोंका वंशवर्णन नामक छत्तीसवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ ३६॥

अथ सप्तत्रिंशोऽध्यायः

इक्ष्वाकु आदि मनुवंशीय राजाओंका वर्णन

सूत उवाच

पूर्वतस्तु मनोर्जज्ञे इक्ष्वाकुर्घ्राणतः सुतः।
तस्य पुत्रशतं त्वासीदिक्ष्वाकोर्भूरिदक्षिणम्॥ १

सूतजी बोले—पूर्व समयमें [छींकते समय] मनुकी नासिकासे इक्ष्वाकु नामक पुत्रका जन्म हुआ। उन इक्ष्वाकुके विपुल दक्षिणा देनेवाले सौ पुत्र हुए॥ १॥

तेषां पुरस्तादभवन्नार्यावर्ते नृपा द्विजाः।
तेषां विकुक्षिर्ज्येष्ठस्तु सोऽयोध्यायां नृपोऽभवत्॥ २

हे द्विजो! उनके बाद इस आर्यावर्तमें अनेक राजा हुए। इक्ष्वाकुके पुत्रोंमें सबसे बड़ा विकुक्षि था, वह अयोध्याका राजा हुआ॥ २॥

तत्कर्म शृणु तत्प्रीत्या यज्जातं वंशतो विधेः।
श्राद्धकर्मणि चोद्दिष्टो ह्यकृते श्राद्धकर्मणि॥ ३

भक्षयित्वा शशं शीघ्रं शशादत्वमतो गतः।
इक्ष्वाकुणा परित्यक्तः शशादो वनमाविशत्॥ ४

उसका वह कर्म प्रेमपूर्वक श्रवण करें, जो ब्रह्मवंशमें उत्पन्न होनेपर भी उससे [मोहवश] हो गया। पिताने श्राद्धकर्म करनेके लिये उसे श्राद्धसामग्री एकत्रित करनेकी आज्ञा दी, किंतु उसने श्राद्धकर्म किये बिना ही श्राद्धके लिये लाये गये खरगोशका भक्षण कर लिया, जिससे वह 'शशाद' कहा जाने लगा। इक्ष्वाकुने उसका त्याग कर दिया, तब वह शशाद वनकी ओर चला गया॥ ३-४॥

इक्ष्वाकौ संस्थिते राजा वसिष्ठवचनादभूत्।
शकुनिप्रमुखास्तस्य पुत्राः पञ्चदश स्मृताः॥ ५

इक्ष्वाकुके मरनेके पश्चात् वह वसिष्ठके वचनानुसार राजा हुआ। शकुनि आदि नामोंवाले उसके पन्द्रह पुत्र कहे गये हैं॥ ५॥

उत्तरापथदेशस्य रक्षितारो महीक्षितः।
अयोधस्य तु दायादः ककुत्स्थो नाम वीर्यवान्॥ ६

अरिनाभः ककुत्स्थस्य पृथुरेतस्य वै सुतः।
विष्टराश्वः पृथोः पुत्रस्तस्मादिन्द्रः प्रजापतिः॥ ७

इन्द्रस्य युवनाश्वस्तु श्रावस्तस्य प्रजापतिः।
जज्ञे श्रावस्तकः प्राज्ञः श्रावस्ती येन निर्मिता।
श्रावस्तस्य तु दायादो बृहदश्वो महायशाः॥ ८

युवनाश्वः सुतस्तस्य कुवलाश्वश्च तत्सुतः।
स हि धुन्धुवधाद्भूतो धुन्धुमारो नृपोत्तमः॥ ९

कुवलाश्वस्य पुत्राणां शतमुत्तमधन्विनाम्।
बभूवाथ पिता राज्ये कुवलाश्वं न्ययोजयत्॥ १०

पुत्रसंक्रामितश्रीको वनं राजा समाविशत्।
तमुत्तङ्कोऽथ राजर्षिः प्रयान्तं प्रत्यवारयत्॥ ११

उत्तङ्क उवाच

भवता रक्षणं कार्यं पृथिव्या धर्मतः शृणु।
त्वया हि पृथिवी राजन् रक्ष्यमाणा महात्मना॥ १२
भविष्यति निरुद्विग्ना नारण्यं गन्तुमर्हसि।
ममाश्रमसमीपे तु समेषु मरुधन्वसु॥ १३
समुद्रवालुकापूर्णो दानवो बलदर्पितः।
देवतानामवध्यो हि महाकायो महाबलः॥ १४

अन्तर्भूमिगतस्तत्र वालुकान्तर्हितः स्थितः।
राक्षसस्य मधोः पुत्रो धुन्धुनामा सुदारुणः॥ १५
शेते लोकविनाशाय तप आस्थाय दारुणम्।

संवत्सरस्य पर्यन्ते स निश्वासं विमुञ्चति॥ १६

यदा तदा भूश्चलति सशैलवनकानना।
सविस्फुलिङ्गं साङ्गारं सधूममतिदारुणम्॥ १७

तेन राजन्न शक्नोमि तस्मिन् स्थातुं स्व आश्रमे।
तं मारय महाबाहो लोकानां हितकाम्यया॥ १८

लोकाः स्वस्था भवन्त्वद्य तस्मिन् विनिहते त्वया।
त्वं हि तस्य वधायैव समर्थः पृथिवीपते॥ १९

वे सभी उत्तरापथ देशकी रक्षा करनेवाले राजा हुए। अयोधका पराक्रमी पुत्र ककुत्स्थ नामवाला हुआ। ककुत्स्थका पुत्र अरिनाभ तथा उसका पुत्र पृथु हुआ। पृथुका पुत्र विष्टराश्व और उससे इन्द्र [नामक] प्रजापति हुए॥ ६-७॥

इन्द्रका पुत्र युवनाश्व और उसका पुत्र प्रजापति श्राव हुआ। उसका पुत्र बुद्धिमान् श्रावस्त हुआ, जिसने श्रावस्ती नामक पुरीका निर्माण किया। श्रावस्तका पुत्र महायशस्वी बृहदश्व हुआ। उसका पुत्र युवनाश्व तथा उसका पुत्र कुवलाश्व हुआ, वह श्रेष्ठ राजा [कुवलाश्व] धुन्धुका वध करनेके कारण धुन्धुमार नामसे प्रसिद्ध हुआ। कुवलाश्वके पिताने कुवलाश्वको राजपदपर अभिषिक्त किया। कुवलाश्वके महाधनुर्धर सौ पुत्र थे॥ ८—१०॥

पुत्रको अपना राज्यभार देकर राजा [युवनाश्व] वनको जाने लगे, तब [वन] जाते हुए उन राजर्षिको उत्तंकने रोका॥ ११॥

उत्तंक बोले—हे राजन्! सुनिये, आपको धर्मपूर्वक पृथ्वीकी रक्षा करनी चाहिये, आप महात्माद्वारा रक्षा की जाती हुई इस पृथ्वीपर शान्ति रहेगी, अतः वन मत जाइये। मेरे आश्रमके समीप समतल मरुस्थलमें, जो कि समुद्रकी बालुकाओंसे पूर्ण है, एक बलोन्मत्त दानव रहता है, वह देवताओंसे भी अवध्य है, विशाल शरीरवाला तथा महाबली है॥ १२—१४॥

भूमिके भीतर प्रविष्ट होकर बालुकाके मध्यमें छिपा हुआ राक्षस मधुका अत्यन्त भयंकर धुन्धु नामक पुत्र कठिन तपस्यामें स्थित होकर लोकका नाश करनेके लिये उसीमें शयन कर रहा है॥ १५$\frac{1}{2}$॥

वह एक वर्षके बाद जब श्वास छोड़ता है, तब वन तथा पर्वतोंके सहित पृथ्वी कम्पित हो जाती है, उस समय उसके अंगार, चिनगारी और धुआँसे युक्त भयानक निःश्वाससे लोक भर जाता है। हे राजन्! इस कारणसे मैं अपने उस आश्रममें रहनेमें समर्थ नहीं हो पाता हूँ। अतः हे महाबाहो! लोकहितकी कामनासे आप उसे मार डालिये। आपके द्वारा उसके मारे जानेपर सभी लोग सुखी हो जायँगे, हे पृथ्वीपते! उसे मारनेमें आप ही समर्थ हैं॥ १६—१९॥

विष्णुना च वरो दत्तो मह्यं पूर्वयुगेऽनघ।
तेजसा स्वेन ते विष्णुस्तेज आप्याययिष्यति॥ २०
पालने हि महान् धर्मः प्रजानामिह दृश्यते।
न तथा दृश्यतेऽरण्ये मा तेऽभूद् बुद्धिरीदृशी॥ २१
ईदृशो न हि राजेन्द्र क्वचिद्धर्मः प्रविद्यते।
प्रजानां पालने यादृक् पुरा राजर्षिभिः कृतः॥ २२

हे अनघ! पूर्व युगमें विष्णुने मुझको महान् वरदान दिया था, अतः वे विष्णु अपने तेजसे आपके तेजका संवर्धन करेंगे। इस लोकमें प्रजापालनमें महान् धर्म देखा जाता है, वैसा धर्म वनमें नहीं देखा जाता है, अतः आप ऐसा विचार छोड़ दें। हे राजेन्द्र! ऐसा धर्म कहीं नहीं है, जैसा प्रजाओंके पालनमें है, पूर्वकालके राजर्षियोंने ऐसा ही धर्माचरण किया था॥ २०—२२॥

स एवमुक्तो राजर्षिरुत्तङ्केन महात्मना।
कुवलाश्वं सुतं प्रादात्तस्मै धुन्धुनिवारणे॥ २३

इस प्रकार महात्मा उत्तंकके द्वारा कहे जानेपर उन राजर्षिने धुन्धुका वध करनेके लिये अपना पुत्र कुवलाश्व उनको दे दिया॥ २३॥

भगवन्न्यस्तशस्त्रोऽहमयं तु तनयो मम।
भविष्यति द्विजश्रेष्ठ धुन्धुमारो न संशयः॥ २४
इत्युक्त्वा पुत्रमादिश्य ययौ स तपसे नृपः।
कुवलाश्वश्च सोत्तङ्को ययौ धुन्धुविनिग्रहे॥ २५

हे भगवन्! हे द्विजश्रेष्ठ! मैंने शस्त्रका त्याग कर दिया है, यह मेरा पुत्र ही [उस दैत्य] धुन्धुका वध करेगा, इसमें सन्देह नहीं है—ऐसा कहकर और अपने पुत्रको आज्ञा देकर वे राजा तप करनेके लिये चले गये। इसके बाद कुवलाश्व धुन्धुका वध करनेके लिये उत्तंकके साथ चल दिया॥ २४-२५॥

तमाविशत्तदा विष्णुर्भगवांस्तेजसा प्रभुः।
उत्तङ्कस्य नियोगाद्वै लोकानां हितकाम्यया॥ २६

उस समय प्रभु भगवान् विष्णु उत्तंककी प्रेरणासे तथा लोकहितकी कामनासे अपने तेजके साथ उसमें प्रवेश कर गये॥ २६॥

तस्मिन्प्रयाते दुर्धर्षे दिवि शब्दो महानभूत्।
एष श्रीमान्नृपसुतो धुन्धुमारो भविष्यति॥ २७
दिव्यैर्माल्यैश्च तं देवाः समन्तात्समवारयन्।
प्रशंसां चक्रिरे तस्य जय जीवेति वादिनः॥ २८

उस दुर्धर्ष कुवलाश्वके प्रस्थान करनेपर आकाशमें महान् ध्वनि होने लगी कि यह श्रीमान् राजपुत्र धुन्धुका वध करेगा। उस समय देवता सभी ओरसे उसके ऊपर दिव्य पुष्पोंकी वृष्टि करने लगे और जय-जीव कहते हुए उसकी प्रशंसा करने लगे॥ २७-२८॥

स गत्वा जयतां श्रेष्ठस्तनयैः सह पार्थिवः।
समुद्रं खनयामास वालुकार्णवमध्यतः॥ २९
नारायणस्य विप्रर्षेस्तेजसाप्यायितस्तु सः।
बभूव सुमहातेजा भूयो बलसमन्वितः॥ ३०

जीतनेवालोंमें श्रेष्ठ उस राजाने अपने पुत्रोंके साथ वहाँ जाकर बालुकाके मध्यमें समुद्रको खोदना प्रारम्भ किया। विप्रर्षि [उत्तंक तथा] नारायणके तेजसे व्याप्त हुआ वह [राजपुत्र कुवलाश्व] महातेजस्वी तथा अत्यन्त बलवान् हो गया था॥ २९-३०॥

तस्य पुत्रैः खनद्भिस्तु वालुकान्तर्गतस्तु सः।
धुन्धुरासादितो ब्रह्मन् दिशमाश्रित्य पश्चिमाम्॥ ३१

हे ब्रह्मन्! समुद्रको खोदते हुए उसके पुत्रोंने पश्चिम दिशाका आश्रय ले करके बालुकाके बीचमें स्थित उस धुन्धुको प्राप्त कर लिया॥ ३१॥

मुखजेनाग्निना क्रोधाल्लोकान् संवर्तयन्निव।
वारि सुस्राव वेगेन विधोः कधिरिवोदये॥ ३२

वह अपने मुखसे उत्पन्न अग्निसे क्रोधपूर्वक जगत्‌को मानो भस्म-सा करता हुआ वेगके साथ जल बरसाने लगा, जैसे कि पूर्ण चन्द्रमाके उदय होनेपर समुद्रका जल भी ऊपर उठने लगता है॥ ३२॥

ततोऽनलैरभिहतं दग्धं पुत्रशतं हि तत्।
त्रय एवावशिष्टाश्च तेषु मध्ये मुनीश्वर॥ ३३

ततः स राजा विप्रेन्द्र राक्षसं तं महाबलम्।
आससाद महातेजा धुन्धुं विप्रविनाशनम्॥ ३४

हे मुनीश्वर! उसकी मुखाग्निसे कुवलाश्वके जो सौ पुत्र थे, उनमें केवल तीन ही शेष रहे और सब मरकर भस्म हो गये। हे विप्रेन्द्र! इसके बाद वह महातेजस्वी राजा महाबलवान् तथा ब्राह्मणविनाशक उस धुन्धु राक्षसके समीप पहुँच गया॥ ३३-३४॥

तस्य वारिमयं वेगमापीय स नराधिपः।
वह्निबाणेन बह्निं तु शमयामास वारिणा॥ ३५

तं निहत्य महाकायं बलेनोदकराक्षसम्।
उत्तंकस्येक्षयामास कृतं कर्म नराधिपः॥ ३६

उस राजाने अग्निबाणसे उसके वारिमय वेगको पीकर शान्त किया और वारुण बाणसे उसकी मुखाग्निकी ज्वाला शान्त कर दी। इस प्रकार उस राजाने जलके मध्यमें रहनेवाले उस महाकाय राक्षसका वधकर उत्तंककी कृपासे अपना सारा कार्य सिद्ध माना॥ ३५-३६॥

उत्तंकस्तु वरं प्रादात्तस्मै राज्ञे महामुने।
अददच्चाक्षयं वित्तं शत्रुभिश्चापराजयम्॥ ३७

धर्मे मतिं च सततं स्वर्गे वासं तथाक्षयम्।
पुत्राणां चाक्षयं लोकं रक्षसा ये तु संहताः॥ ३८

हे महामुने! उत्तंकने उस राजाको वरदान दिया। उन्होंने उसे अक्षय धन दिया और शत्रुओंसे पराजय न होनेका वरदान दिया। धर्ममें सदा बुद्धि, स्वर्गमें अक्षय वास तथा राक्षसके द्वारा मारे गये पुत्रोंको अक्षयलोककी प्राप्तिका भी वरदान दिया॥ ३७-३८॥

तस्य पुत्रास्त्रयः शिष्टाः दृढाश्वः श्रेष्ठ उच्यते।
हंसाश्वकपिलाश्वौ च कुमारौ तत्कनीयसौ॥ ३९

धौंधुमारिर्दृढाश्वो यो हर्यश्वस्तस्य चात्मजः।
हर्यश्वस्य निकुंभोऽभूत्पुत्रो धर्मरतः सदा॥ ४०

उसके जो तीन पुत्र बचे थे, उनमें दृढाश्व श्रेष्ठ [ज्येष्ठ] कहा गया। कुमार हंसाश्व तथा कपिलाश्व उससे छोटे थे। जो धुन्धुमारका पुत्र दृढाश्व था, उसका पुत्र हर्यश्व हुआ। हर्यश्वका पुत्र निकुम्भ हुआ, जो सदा धर्ममें संलग्न रहता था॥ ३९-४०॥

संहताश्वो निकुंभस्य पुत्रो रणविशारदः।
अक्षाश्वश्च कृताश्वश्च संहताश्वसुतौ द्विजाः॥ ४१

तस्य हैमवती भार्या सतां मान्या दृषद्वती।
विख्याता त्रिषु लोकेषु पुत्रस्तस्याः प्रसेनजित्॥ ४२

लेभे प्रसेनजिद्भार्यां गौरीं नाम पतिव्रताम्।
अभिशप्ता तु सा भर्त्रा नदी सा बाहुदा कृता॥ ४३

निकुम्भका पुत्र संहताश्व था, जो संग्रामविशारद था। हे द्विजो! संहताश्वके अक्षाश्व और कृताश्व नामक पुत्र हुए। सज्जनोंद्वारा समादृत हिमवान्की पुत्री दृषद्वती कृताश्वकी भार्या हुई, जो तीनों लोकोंमें प्रसिद्ध थी, उसीका पुत्र प्रसेनजित् हुआ। प्रसेनजित्ने गौरी नामक पतिव्रता स्त्रीको प्राप्त किया, उसके पतिने उसे शाप दे दिया और वह बाहुदा नामक नदी हुई॥ ४१—४३॥

तस्य पुत्रो महानासीद्युवनाश्वो महीपतिः।
मांधाता युवनाश्वस्य त्रिषु लोकेषु विश्रुतः॥ ४४

तस्य चैत्ररथी भार्या शशबिंदुसुताभवत्।
पतिव्रता च ज्येष्ठा च भ्रातृणामयुतस्य सा॥ ४५

तस्यामुत्पादयामास मान्धाता द्वौ सुतौ तदा।
पुरुकुत्सं च धर्मज्ञं मुचुकुंदं च धार्मिकम्॥ ४६

उसका पुत्र युवनाश्व महान् राजा हुआ। युवनाश्वका पुत्र मान्धाता तीनों लोकोंमें प्रसिद्ध था। उसकी पत्नी चैत्ररथी थी, जो शशबिन्दुकी कन्या थी। वह महान् पतिव्रता थी और अपने दस हजार भाइयोंमें सबसे बड़ी थी। उस मान्धाताने उससे धर्मज्ञ तथा धर्मपरायण पुरुकुत्स तथा मुचुकुन्द नामके दो पुत्र उत्पन्न किये॥ ४४—४६॥

पुरुकुत्ससुतस्त्वासीद्विद्वांस्त्रय्यारुणिः कविः।
तस्य सत्यव्रतो नाम कुमारोऽभून्महाबली॥ ४७

पुरुकुत्सका पुत्र विद्वान् और कवि त्रय्यारुणि नामवाला हुआ और उसका सत्यव्रत नामक महाबली पुत्र हुआ॥ ४७॥

पाणिग्रहणमन्त्राणां विघ्नं चक्रे महात्मभिः।
येन भार्या हृता पूर्वं कृतोद्वाहः परस्य वै॥ ४८

उसने ब्राह्मण महात्माओंके द्वारा पाणिग्रहण मन्त्रोंके पाठ किये जाते समय किसी दूसरे पुरुषसे ब्याही जानेवाली स्त्रीका अपहरण कर लिया॥ ४८॥

बलात्कामाच्च मोहाच्च संहर्षाच्च मदोत्कटात्।
जहार कन्यां कामाच्च कस्यचित्पुरवासिनः॥ ४९

अधर्मसङ्गिनं तं तु राजा त्रय्यारुणिस्त्यजन्।
अपध्वंसेति बहुशोऽवदत्क्रोधसमन्वितः॥ ५०

उसने आसक्ति, मोह, हर्ष, मदकी अधिकता तथा स्वेच्छासे किसी पुरवासीकी कन्याका बलपूर्वक अपहरण किया था, इसलिये राजा त्रय्यारुणिने उस अधर्मीका त्याग करते हुए कुपित होकर उससे बारंबार कहा—'अब तुम चले जाओ'॥ ४९-५०॥

पितरं सोऽब्रवीद् दुष्टः क्व गच्छामीति वै तदा।
वस श्वपाकनिकटे राजा प्राहेति तं तदा॥ ५१

स हि सत्यव्रतस्तेन श्वपाकावसथान्तिके।
पित्रा त्यक्तोऽवसद्वीरो धर्मपालेन भूभुजा॥ ५२

तब उस दुष्टने पितासे कहा कि 'मैं कहाँ जाऊँ?' इसपर राजाने उससे कहा कि तुम चाण्डालोंके समीप रहो। इस प्रकार अपने धार्मिक पिताके द्वारा परित्यक्त हुआ वह वीर सत्यव्रत चाण्डालोंकी बस्तीके समीप निवास करने लगा॥ ५१-५२॥

ततस्त्रय्यारुणी राजा विरक्तः पुत्रकर्मणा।
स शंकरतपः कर्तुं सर्वं त्यक्त्वा वनं ययौ॥ ५३
ततस्तस्य स्वविषये नावर्षत्पाकशासनः।
समा द्वादश विप्रर्षे तेनाधर्मेण वै तदा॥ ५४
दारांस्तस्य तु विषये विश्वामित्रो महातपाः।
संत्यज्य सागरानूपे चचार विपुलं तपः॥ ५५

इसके बाद पुत्रके कर्मके कारण विरक्त हुआ वह राजा त्रय्यारुणि सब कुछ छोड़कर भगवान् शंकरकी तपस्या करनेके लिये वनको चला गया। हे विप्रर्षे! तब उस अधर्मके कारण उसके राज्यमें बारह वर्षतक इन्द्रने वर्षा नहीं की। उस समय महातपस्वी विश्वामित्र अपनी स्त्रीको सत्यव्रतके समीप रखकर समुद्रके समीप कठिन तप करने लगे॥ ५३—५५॥

तस्य पत्नी गले बद्ध्वा मध्यमं पुत्रमौरसम्।
शेषस्य भरणार्थाय व्यक्रीणाद्गोशतेन च॥ ५६
तां तु दृष्ट्वा गले बद्धं विक्रीणन्तीं स्वमात्मजम्।
महर्षिपुत्रं धर्मात्मा मोचयामास तं तदा॥ ५७

उनकी स्त्री अपने मध्यम औरस पुत्रको गलेमें बाँधकर शेष पुत्रोंके भरण-पोषणके लिये सौ गाएँ लेकर उसे बेचने लगी। तब गलेमें बँधे हुए अपने पुत्रको बेचती हुई उस स्त्रीको देखकर धर्मात्मा सत्यव्रतने महर्षिके उस पुत्रको छुड़ाया॥ ५६-५७॥

सत्यव्रतो महाबाहुर्भरणं तस्य चाकरोत्।
विश्वामित्रस्य तुष्ट्यर्थमनुक्रोशार्थमेव च॥ ५८

तदारभ्य स पुत्रस्तु विश्वामित्रस्य वै मुनेः।
अभवद्गालवो नाम गलबंधान्महातपाः॥ ५९

महाबाहु सत्यव्रत विश्वामित्रको प्रसन्न करनेके लिये तथा दयापरवश होकर उस पुत्रका भरण-पोषण करने लगा। उसी समयसे मुनि विश्वामित्रका वह पुत्र गलेमें बाँधे जानेके कारण महातपस्वी 'गालव' नामसे विख्यात हुआ॥ ५८-५९॥

इति श्रीशिवमहापुराणे पञ्चम्यामुमासंहितायां मनुवंशवर्णनं नाम सप्तत्रिंशोऽध्यायः॥ ३७॥

॥ इस प्रकार श्रीशिवमहापुराणके अन्तर्गत पाँचवीं उमासंहितामें मनुवंशवर्णन नामक सैंतीसवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ ३७॥

अथाष्टात्रिंशोऽध्यायः

सत्यव्रत-त्रिशंकु-सगर आदिके जन्मके निरूपणपूर्वक उनके चरित्रका वर्णन

सूत उवाच

सत्यव्रतस्तु तद्भक्त्या कृपया च प्रतिज्ञया।
विश्वामित्रकलत्रं च पोषयामास वै तदा॥ १

हत्वा मृगान्वराहांश्च महिषांश्च वनेचरान्।
विश्वामित्राश्रमाभ्याशे तन्मांसं चाक्षिपन्मुने॥ २

तीर्थं गां चैव गात्रं च तथैवान्तःपुरं मुनिः।
याज्योपाध्यायसंयोगाद्वसिष्ठः पर्यरक्षत॥ ३

सत्यव्रतस्य वाक्याद्वा भाविनोऽर्थस्य वै बलात्।
वसिष्ठोऽभ्यधिकं मन्युं धारयामास नित्यशः॥ ४

पित्रा तु तं तदा राष्ट्रात्परित्यक्तं स्वमात्मजम्।
न वारयामास मुनिर्वसिष्ठः कारणेन च॥ ५

पाणिग्रहणमन्त्राणां निष्ठा स्यात्सप्तमे पदे।
न च सत्यव्रतस्तस्य तमुपांशुमबुद्ध्यत॥ ६

तस्मिन्स परितोषाय पितुरासीन्महात्मनः।
कुलस्य निष्कृतिर्विप्र कृता सा वै भवेदिति॥ ७

न तं वसिष्ठो भगवान्पित्रा त्यक्तं न्यवारयत्।
अभिषेक्ष्याम्यहं पुत्रमस्य नैवाब्रवीन्मुनिः॥ ८

स तु द्वादश वर्षाणि दीक्षां तामुद्वहद् बली।
अविद्यमाने मांसे तु वसिष्ठस्य महात्मनः॥ ९

सर्वकामदुहां दोग्ध्रीं ददर्श स नृपात्मजः।
तां वै क्रोधाच्च लोभाच्च श्रमाद्वै च क्षुधान्वितः॥ १०

दाशधर्मगतो राजा तां जघान स वै मुने।
स तं मांसं स्वयं चैव विश्वामित्रस्य चात्मजम्॥ ११

भोजयामास तच्छ्रुत्वा वसिष्ठो ह्यस्य चुक्रुधे।
उवाच च मुनिश्रेष्ठस्तं तदा क्रोधसंयुतः॥ १२

सूतजी बोले—तदनन्तर सत्यव्रत उनकी सेवाके उद्देश्यसे तथा कृपासे और अपनी प्रतिज्ञासे विश्वामित्रकी पत्नीका [भरण-] पोषण करने लगा॥ १॥

हे मुने! वह मृग, वाराह, महिष तथा अन्य वनेचर जन्तुओंका वधकर उनका मांस नित्य विश्वामित्रके आश्रमके समीप रख देता था॥ २॥

इधर [त्रय्यारुणिके वन चले जानेपर] मुनि वसिष्ठ यजमान तथा पुरोहितके सम्बन्धसे उनके तीर्थ, पृथ्वी, राज्य तथा अन्तःपुरकी रक्षा करने लगे॥ ३॥

सत्यव्रतके वचनसे अथवा होनहारकी प्रेरणासे वसिष्ठजी उसके प्रति अधिक क्रोध रखते थे। इसी कारणसे पिताके द्वारा राज्यसे अपने पुत्रके निकाल दिये जानेपर भी मुनि वसिष्ठने मना नहीं किया था॥ ४-५॥

यद्यपि पाणिग्रहण-क्रियाकी समाप्ति सप्तपदीपर होती है, [इससे पूर्व कन्याग्रहण विहित है, तथापि इसी बहाने इसका व्रत हो जायगा, इस प्रकारके] वसिष्ठजीके आशयको सत्यव्रत समझ नहीं सका। वसिष्ठजीने सोचा कि ऐसा करनेसे पिता भी प्रसन्न हो जायँगे और इसके कुलकी निष्कृति भी हो जायगी। इसलिये पिताके द्वारा परित्याग करनेपर भी वसिष्ठने उन्हें मना नहीं किया। उन्होंने सोचा कि उपांशुव्रत पूरा हो जानेपर मैं स्वयं इसका अभिषेक करूँगा, इसलिये उस समय मुनिने कुछ नहीं कहा॥ ६—८॥

इस प्रकार उस बली राजपुत्रने बारह वर्षतक उस दीक्षाको धारण किया। किसी समय कहीं भी मांस न मिलनेपर उस राजकुमारने महात्मा वसिष्ठकी गौको देखा, जो सभी प्रकारकी कामनाओंको पूर्ण करनेवाली थी। हे मुने! क्रोध, लोभ एवं मोहके कारण चाण्डालधर्मको प्राप्त हुए क्षुधासे पीड़ित उस राजाने उस गायको मार दिया और उसने उसके मांसको स्वयं खाया और विश्वामित्रके पुत्रको भी खिलाया। तब यह सुनकर मुनिश्रेष्ठ वसिष्ठ उसपर बहुत कुपित हुए और क्रोधित होकर उससे कहने लगे—॥ ९—१२॥

वसिष्ठ उवाच

पातयेयमहं क्रूर तव शंकुमशंसयम्।
यदि ते द्वाविमौ शंकू नस्यातां वै कृतौ पुनः ॥ १३

पितुश्चापरितोषेण गुरोर्दोग्ध्रीवधेन च।
अप्रोक्षितोपयोगाच्च त्रिविधस्ते व्यतिक्रमः ॥ १४

त्रिशङ्कुरिति होवाच त्रिशङ्कुरिति स स्मृतः।

विश्वामित्रस्तु दाराणामागतो भरणे कृते ॥ १५

तेन तस्मै वरं प्रादान्मुनिः प्रीतस्त्रिशङ्कवे।
छन्द्यमानो वरेणाथ वरं वव्रे नृपात्मजः ॥ १६

अनावृष्टिभये चास्मिञ्जाते द्वादशवार्षिके।
अभिषिच्य पितू राज्ये याजयामास तं मुनिः ॥ १७

मिषतां देवतानां च वसिष्ठस्य च कौशिकः।
सशरीरं तदा तं तु दिवमारोहयत्प्रभुः ॥ १८

तस्य सत्यरथा नाम भार्या केकयवंशजा।
कुमारं जनयामास हरिश्चन्द्रमकल्मषम् ॥ १९

स वै राजा हरिश्चन्द्रो त्रैशङ्कव इति स्मृतः।
आहर्ता राजसूयस्य सम्राडिति ह विश्रुतः ॥ २०

हरिश्चन्द्रस्य हि सुतो रोहितो नाम विश्रुतः।
रोहितस्य वृकः पुत्रो वृकाद् बाहुस्तु जज्ञिवान् ॥ २१

हैहयास्तालजङ्घाश्च निरस्यन्ति स्म तं नृपम्।
नात्यर्थं धार्मिको विप्राः स हि धर्मयुगेऽभवत् ॥ २२

सगरं स सुतं बाहुर्जज्ञे सह गरेण वै।
और्वस्याश्रममासाद्य भार्गवेणाभिरक्षितः ॥ २३

आग्नेयमस्त्रं लब्ध्वा च भार्गवात्सगरो नृपः।
जिगाय पृथिवीं हत्वा तालजङ्घान्स हैहयान् ॥ २४

शकान्बहूदकांश्चैव पारदान्सगणान्खशान्।
सुधर्मं स्थापयामास शशास वृषतः क्षितिम् ॥ २५

वसिष्ठजी बोले—अरे क्रूर! यदि तुझमें फिरसे किये गये ये दो शंकु (पाप) न होते तो मैं तेरे प्रथम शंकुको अवश्य नष्ट कर देता ॥ १३ ॥

[कन्याहरणद्वारा] पिताको असन्तुष्ट करने, गुरुकी गायका वध करने और अप्रोक्षित मांसका भक्षण करनेके कारण तुमने तीन प्रकारका अपराध किया है, अतः तुम त्रिशंकु हो जाओगे, तब उनके इस प्रकार कहनेपर वह त्रिशंकु—इस नामसे प्रसिद्ध हो गया ॥ १४१/२ ॥

जब विश्वामित्र तपस्याकर [अपने आश्रम] आये, तब त्रिशंकुके द्वारा अपनी स्त्रीका भरण-पोषण किये जानेके कारण उन्होंने वर माँगनेके लिये उससे कहा, तब राजपुत्रने वर माँगा और उन मुनिने प्रसन्न होकर उस त्रिशंकुको वर प्रदान किया ॥ १५-१६ ॥

बारह वर्षकी इस अनावृष्टिका भय दूर हो जानेपर मुनिने उसे पिताके राज्यपर अभिषिक्त करके उससे यज्ञ कराया। उसके बाद प्रभु विश्वामित्रने वसिष्ठ एवं सभी देवताओंके देखते-देखते उसे सशरीर स्वर्ग भेज दिया ॥ १७-१८ ॥

केकयवंशमें उत्पन्न उसकी सत्यरथा नामक भार्याने हरिश्चन्द्र नामक निष्पाप पुत्रको उत्पन्न किया। वे ही राजा हरिश्चन्द्र त्रिशंकुके पुत्र होनेसे त्रैशंकव भी कहे गये हैं। ये राजसूययज्ञके कर्ता और चक्रवर्ती राजाके रूपमें प्रसिद्ध हुए ॥ १९-२० ॥

हरिश्चन्द्रका पुत्र रोहित नामसे प्रसिद्ध हुआ। रोहितका पुत्र वृक था और वृकसे बाहु उत्पन्न हुआ ॥ २१ ॥

हे विप्रो! उस धर्मयुगमें वह राजा सम्यग् रीतिसे धर्मका पालन नहीं करता था, [जिसके कारण] हैहय और तालजंघ राजाओंने उसे [धर्महीन जानकर] राज्यसे हटा दिया। [तत्पश्चात्] और्वके आश्रममें आकर भार्गवके द्वारा रक्षित उस बाहुने गरसहित सगर नामक पुत्रको उत्पन्न किया ॥ २२-२३ ॥

राजा सगरने भार्गवसे आग्नेयास्त्र पाकर हैहयवंशी तालजंघों, शकों, बहूदकों, पारदों एवं गणोंसहित खशोंको मारकर पृथ्वीको जीत लिया एवं उत्तम धर्मकी स्थापना की तथा धर्मपूर्वक पृथ्वीपर शासन किया ॥ २४-२५ ॥

शौनक उवाच

स वै गरेण सहितः कथं जातस्तु क्षत्रियात्।
जितवानेतदाचक्ष्व विस्तरेण हि सूतज॥ २६

सूत उवाच

पारीक्षितेन संपृष्टो वैशंपायन एव च।
यदाचष्ट स्म तद्वक्ष्ये शृणुष्वैकमना मुने॥ २७

परीक्षितोवाच

कथं स सगरो राजा गरेण सहितो मुने।
जातः स जघ्निवान्भूपानेतदाख्यातुमर्हसि॥ २८

वैशम्पायन उवाच

बाहोर्व्यसनिनस्तातहृतं राज्यमभूत्किल।
हैहयैस्तालजङ्घैश्च शकैः सार्धं विशांपते॥ २९

यवनाः पारदाश्चैव काम्बोजाः पाह्लवास्तथा।
बहूदकाश्च पञ्चैव गणाः प्रोक्ताश्च रक्षसाम्॥ ३०
एते पञ्च गणा राजन् हैहयार्थेषु रक्षसाम्।
कृत्वा पराक्रमान् बाहो राज्यं तेभ्यो ददुर्बलात्॥ ३१

हतराज्यस्ततो राजा स वै बाहुर्वनं ययौ।
पत्न्या चानुगतो दुःखी स वै प्राणानवासृजत्॥ ३२

पत्नी या यादवी तस्य सगर्भा पृष्ठतो गता।
सपत्न्या च गरस्तस्यै दत्तः पूर्वसुतेर्ष्यया॥ ३३

सा तु भर्तुश्चितां कृत्वा ज्वलनं चावरोहत।
और्वस्तां भार्गवो राजन्कारुण्यात्समवारयत्॥ ३४

तस्याश्रमे स्थिता राज्ञी गर्भरक्षणहेतवे।
सिषेवे मुनिवर्यं तं स्मरन्ती शंकरं हृदा॥ ३५

एकदा खलु तद् गर्भो गरेणैव सह च्युतः।
सुमुहूर्त्ते सुलग्ने च पञ्चोच्चग्रहसंयुते॥ ३६

तस्मिँल्लग्ने च बलिनि सर्वथा मुनिसत्तम।
व्यजायत महाबाहुः सगरो नाम पार्थिवः॥ ३७

शौनक बोले—हे सूतजी! वे [सगर] क्षत्रिय बाहुसे किस प्रकार गरके सहित उत्पन्न हुए और उन्होंने किस प्रकार सभीको जीता, इसे विस्तारपूर्वक कहिये॥ २६॥

सूतजी बोले—हे मुने! परीक्षित्-पुत्र (जनमेजय)-के पूछनेपर वैशम्पायनने जो कहा था, उसीको मैं कह रहा हूँ, आप एकाग्रचित्त होकर सुनें॥ २७॥

परीक्षित्के पुत्र (जनमेजय) बोले—हे मुने! वे राजा सगर किस प्रकार गरसहित उत्पन्न हुए और उन्होंने उन राजाओंका वध कैसे किया? आप इसे बतानेकी कृपा करें॥ २८॥

वैशम्पायन बोले—हे तात! हे विशाम्पते! व्यसन-ग्रस्त बाहुका सारा राज्य शकोंके साथ हैहयवंशी तालजंघोंने छीन लिया॥ २९॥

यवन, पारद, काम्बोज, पाह्लव और बहूदक राक्षसोंके ये पाँच गण कहे गये हैं। हे राजन्! राक्षसोंके इन पाँच गणोंने हैहयोंके लिये पराक्रम करके बलपूर्वक बाहुका राज्य उन्हें दे दिया॥ ३०-३१॥

नष्ट राज्यवाला वह राजा [बाहु] दुःखित होकर अपनी पत्नीके साथ वन चला गया और उसने प्राण त्याग दिये। उसकी जो यादवी नामक पत्नी साथमें गयी थी, वह गर्भिणी अवस्थामें थी और उसकी सौतने पुत्रके ईर्ष्यावश उसे विष दे दिया॥ ३२-३३॥

हे राजन्! वह पतिकी चिता बनाकर अग्निमें प्रवेश करने लगी, तब भार्गव और्वने दयापूर्वक उसे [सती होनेसे] रोक दिया। उसके अनन्तर अपने गर्भकी रक्षाके लिये वह उन्हींके आश्रममें निवास करने लगी और मनमें शंकरका ध्यान करती हुई उन महामुनिकी सेवा करने लगी॥ ३४-३५॥

किसी समय पाँच उच्च ग्रहोंसे युक्त शुभ मुहूर्त तथा शुभ लग्नमें उसका गर्भ विषके साथ उत्पन्न हुआ॥ ३६॥

हे मुनिश्रेष्ठ! उस सर्वथा बलवान् लग्नमें महाबाहु राजा सगरने जन्म लिया॥ ३७॥

और्वस्तु जातकर्मादि तस्य कृत्वा महात्मनः।
अध्याप्य वेदशास्त्राणि ततोऽस्त्रं प्रत्यपादयत्॥ ३८

आग्नेयं तं महाभागो ह्यमरैरपि दुःसहम्।
जग्राह विधिना प्रीत्या सगरोऽसौ नृपोत्तमः॥ ३९

और्वने उस महात्माके जातकर्म आदि संस्कार करके बादमें वेद-शास्त्रोंको पढ़ाकर उसे अस्त्र-विद्या सिखायी और उन नृपश्रेष्ठ महाभाग सगरने विधिपूर्वक प्रसन्नतासे देवताओंके लिये भी दुःसह उस आग्नेयास्त्रकी शिक्षा ग्रहण की॥ ३८-३९॥

स तेनास्त्रबलेनैव बलेन च समन्वितः।
हैहयान्विजघानाशु संक्रुद्धोऽस्त्रबलेन च॥ ४०

आजहार च लोकेषु कीर्तिं कीर्तिमतां वरः।
धर्मं संस्थापयामास सगरोऽसौ महीतले॥ ४१

इसके बाद उसने अपनी सेनासे युक्त होकर आग्नेयास्त्रके बलसे क्रुद्ध हो शीघ्र ही हैहयोंका वध किया और यशस्वियोंमें श्रेष्ठ उन सगरने लोकोंमें अपना यश फैलाया तथा पृथ्वीतलपर धर्मकी स्थापना की॥ ४०-४१॥

ततः शकाः सयवनाः काम्बोजाः पाह्लवास्तथा।
हन्यमानास्तदा ते तु वसिष्ठं शरणं ययुः॥ ४२

वसिष्ठो वञ्चनां कृत्वा समयेन महाद्युतिः।
सगरं वारयामास तेषां दत्वाभयं नृपम्॥ ४३

तब उनके द्वारा मारे जाते हुए शक, यवन, काम्बोज तथा पाह्लव [नरेश भयभीत हो] वसिष्ठकी शरणमें गये। महातेजस्वी वसिष्ठने नैतिक छल करके कुछ शर्तोंके द्वारा उन्हें अभय प्रदानकर राजा सगरको उनका वध करनेसे रोक दिया॥ ४२-४३॥

सगरः स्वां प्रतिज्ञां तु गुरोर्वाक्यं निशम्य च।
धर्मं जघान तेषां वै केशान्यत्वं चकार ह॥ ४४

सगरने अपनी प्रतिज्ञा और गुरुके वाक्यको ध्यानमें रखकर उनके धर्म नष्ट कर दिये और उनके केशोंको विरूप कर दिया॥ ४४॥

अर्धं शकानां शिरसो मुंडं कृत्वा व्यसर्जयत्।
यवनानां शिरः सर्वं कांबोजानां तथैव च॥ ४५

उन्होंने शकोंका आधा सिर और यवनों तथा काम्बोजोंका सारा सिर मुंडवाकर उन्हें छोड़ दिया॥ ४५॥

पारदा मुंडकेशाश्च पाह्लवाः श्मश्रुधारिणः।
निःस्वाध्यायवषट्काराः कृतास्तेन महात्मना॥ ४६

उन महात्माने पारदोंका केश मुड़वा दिया तथा पह्लवोंको दाढ़ी-मूँछ धारण करा दिया और उन्हें स्वाध्याय एवं वषट्कारसे रहित कर दिया॥ ४६॥

जिता च सकला पृथ्वी धर्मतस्तेन भूभुजा।
सर्वे ते क्षत्रियास्तात धर्महीनाः कृताः पुरा॥ ४७

स धर्मविजयी राजा विजित्वेमां वसुंधराम्।
अश्वं संस्कारयामास वाजिमेधाय पार्थिवः॥ ४८

हे तात! पूर्वकालमें उस राजाने सम्पूर्ण पृथ्वीको धर्मपूर्वक जीत लिया और उन सभी क्षत्रियोंको धर्महीन बना दिया। इस प्रकार उस धर्मविजयी राजाने इस पृथ्वीको जीतकर अश्वमेध-यज्ञ करनेके लिये एक घोड़ेका संस्कार कराया॥ ४७-४८॥

तस्य चारयतः सोऽश्वः समुद्रे पूर्वदक्षिणे।
गतः षष्टिसहस्रैस्तु तत्पुत्रैरन्वितो मुने॥ ४९

देवराजेन शक्रेण सोऽश्वो हि स्वार्थसाधिना।
वेलासमीपेऽपहृतो भूमिं चैव प्रवेशितः॥ ५०

हे मुने! अश्वको छोड़ दिये जानेपर वह पूर्व-दक्षिण समुद्रके तटपर पहुँच गया, राजा सगरके साठ हजार पुत्र उसके पीछे-पीछे चल रहे थे। अपना स्वार्थ सिद्ध करनेवाले देवराज इन्द्रने समुद्रके तटसे उस घोड़ेको चुरा लिया और उसे भूमितलमें रख दिया॥ ४९-५०॥

महाराजोऽथ सगरस्तद्धयान्वेषणाय च।
स तं देशं तदा पुत्रैः खानयामास सर्वतः॥ ५१

तब महाराज सगरने उस घोड़ेको खोजनेके लिये अपने पुत्रोंसे उस देशको सभी ओरसे खुदवा डाला॥ ५१॥

आसेदुस्ते ततस्तत्र खन्यमाने महार्णवे।
तमादिपुरुषं देवं कपिलं विश्वरूपिणम्॥ ५२

तदनन्तर उन सबने उस खोदे जाते हुए महासागरमें विश्वरूपी आदिपुरुष उन प्रभु [महर्षि] कपिलको प्राप्त किया॥ ५२॥

तस्य चक्षुःसमुत्थेन वह्निना प्रतिबुध्यतः।
दग्धाः षष्टिसहस्राणि चत्वारस्त्ववशेषिताः॥ ५३

हर्षकेतुः सुकेतुश्च तथा धर्मरथोऽपरः।
शूरः पञ्चजनश्चैव तस्य वंशकरा नृपाः॥ ५४

उनके जागते ही उनके नेत्रोंसे निकली हुई अग्निके द्वारा [सगरके] साठ हजार पुत्र जल गये और केवल चार ही शेष रहे। हर्षकेतु, सुकेतु, धर्मरथ और पराक्रमी पंचजन—ये ही उनके वंशको चलानेवाले राजा बचे थे॥ ५३-५४॥

प्रादाच्च तस्मै भगवान् हरिः पञ्च वरान्स्वयम्।
वंशं मेधां च कीर्तिं च समुद्रं तनयं धनम्॥ ५५

सागरत्वं च लेभे स कर्मणा तस्य तेन वै।
तं चाश्वमेधिकं सोऽश्वं समुद्रादुपलब्धवान्॥ ५६

आजहाराश्वमेधानां शतं स तु महायशाः।
ईजे शंभुविभूतीश्च देवतास्तत्र सुव्रताः॥ ५७

भगवान् कपिलने [प्रसन्न होकर] उन्हें स्वयं वंश, विद्या, कीर्ति, पुत्रके रूपमें समुद्र और धन—ये पाँच वर दिये। अपने उस कर्मसे समुद्रने सागरत्व अर्थात् सगरका पुत्रत्व प्राप्त किया और उन्होंने उस आश्वमेधिक घोड़ेको भी समुद्रसे प्राप्त किया। उन महायशस्वीने सौ अश्वमेध-यज्ञ सम्पन्न किये और शिवकी विभूतियों तथा सच्चरित्र देवताओंका पूजन किया॥ ५५—५७॥

इति श्रीशिवमहापुराणे पञ्चम्यामुमासंहितायां सत्यव्रतादिसगरपर्यन्तवंशवर्णनं नामाष्टात्रिंशोऽध्यायः॥ ३८॥

॥ इस प्रकार श्रीशिवमहापुराणके अन्तर्गत पाँचवीं उमासंहितामें सत्यव्रतादिसगरपर्यन्तवंशवर्णन नामक अड़तीसवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ ३८॥

अथैकोनचत्वारिंशोऽध्यायः

सगरकी दोनों पत्नियोंके वंशविस्तारवर्णनपूर्वक वैवस्वतवंशमें उत्पन्न राजाओंका वर्णन

शौनक उवाच

सगरस्यात्मजा वीराः कथं जाता महाबलाः।
विक्रान्ताः षष्टिसाहस्रा विधिना केन वा वद॥ १

शौनक बोले—हे सूतजी! सगरके साठ हजार महाबली पुत्र किस प्रकार उत्पन्न हुए और उन्होंने किस प्रकार अपना पराक्रम प्रदर्शित किया, वह सब कहिये॥ १॥

सूत उवाच

द्वे पत्न्यौ सगरस्यास्तां तपसा दग्धकिल्बिषे।
और्वस्तयोर्वरं प्रादात्तोषितो मुनिसत्तमः॥ २

सूतजी बोले—हे शौनक! महाराज सगरकी दो स्त्रियाँ थीं, उन्होंने तपस्याके द्वारा अपने पापको दग्ध कर दिया, तब मुनिश्रेष्ठ और्वने प्रसन्न होकर उन्हें वर प्रदान किया॥ २॥

षष्टिपुत्रसहस्राणि एका वव्रे तरस्विनाम्।
एकं वंशकरं त्वेका यथेष्टं वरशालिनी॥ ३

तत्रैवागत्य तांल्लब्ध्वा पुत्रान् शूरान्बहूंस्तदा।
सा चैव सुषुवे तुम्बं बीजपूर्णं पृथक् कृतम्॥ ४

उनमेंसे एकने तो महाबलशाली साठ हजार पुत्रोंका वर माँगा और दूसरी वरशालिनीने स्वेच्छासे वंशवृद्धि करनेवाले एक ही पुत्रको माँगा। पहलीने घर आनेपर यथासमय बहुतसे शूरवीर पुत्रोंके वरके कारण पुत्ररूप बीजोंसे पूर्ण तुम्बीको उत्पन्न किया, जिसमें अलग-अलग सभी बालक बीजरूपसे वर्तमान थे॥ ३-४॥

ते सर्वे हि स्वधात्रीभिर्ववृधुश्च यथाक्रमम्।
घृतपूर्णेषु कुम्भेषु कुमाराः प्रीतिवर्द्धनाः॥ ५

कपिलाग्निप्रदग्धानां तेषां तत्र महात्मनाम्।
एकः पञ्चजनो नाम पुत्रो राजा बभूव ह॥ ६

सगरको प्रसन्न करनेवाले ये बालक पृथक्-पृथक् घृतकुम्भोंमें रखे गये और धाइयोंने यथाक्रम इनका पालन-पोषण किया। [आगे चलकर] महर्षि कपिलकी क्रोधाग्निमें जलकर भस्म हुए उन महात्मा पुत्रोंके अतिरिक्त [दूसरी रानीसे उत्पन्न हुआ] एक पंचजन नामक पुत्र [बादमें] राजा हुआ॥ ५-६॥

ततः पञ्चजनस्यासीदंशुमान्नाम वीर्यवान्।
दिलीपस्तनयस्तस्य पुत्रो यस्य भगीरथः॥ ७
यस्तु गंगां सरिच्छ्रेष्ठामवातारयत प्रभुः।
समुद्रमानयच्चेमां दुहितृत्वमकल्पयत्॥ ८

उसके बाद पंचजनके पराक्रमी पुत्र अंशुमान् हुए। उनके पुत्र दिलीप हुए, जिनके पुत्र भगीरथ हुए, जिन सामर्थ्यवान्ने नदियोंमें श्रेष्ठ गंगाको लाकर पृथ्वीपर उतारा तथा इन्हें समुद्रमें मिलाया और इन्हें अपनी पुत्री बनाया॥ ७-८॥

भगीरथसुतो राजा श्रुतसेन इति श्रुतः।
नाभागस्तु सुतस्तस्य पुत्रः परमधार्मिकः॥ ९
अंबरीषस्तु नाभागिः सिंधुद्वीपस्ततोऽभवत्।
अयुताजित्तु दायादः सिंधुद्वीपस्य वीर्यवान्॥ १०

भगीरथके पुत्र राजा श्रुतसेन कहे गये हैं। उनके पुत्र नाभाग हुए, जो परम धार्मिक थे। नाभागके पुत्र अम्बरीष और उनके पुत्र सिन्धुद्वीप हुए। सिन्धुद्वीपके पुत्र वीर्यवान् अयुताजित् हुए॥ ९-१०॥

अयुताजित्सुतस्त्वासीद् ऋतुपर्णो महायशाः।
दिव्याक्षहृदयज्ञोऽसौ राजा नलसखोऽभवत्॥ ११

अयुताजित्के पुत्र महायशस्वी राजा ऋतुपर्ण हुए, जो दिव्य अक्ष (द्यूतक्रीड़ा)-के मर्मज्ञ थे एवं नलके परम सुहृद् थे॥ ११॥

ऋतुपर्णसुतस्त्वासीदनुपर्णो महाद्युतिः।
तस्य कल्माषपादो वै नाम्ना मित्रसहस्तथा॥ १२
कल्माषपादस्य सुतः सर्वकर्मेति विश्रुतः।
अनरण्यस्तु पुत्रोऽभूद्विश्रुतः सर्वशर्मणः॥ १३

ऋतुपर्णके पुत्र महातेजस्वी अनुपर्ण हुए और उनके पुत्र कल्माषपाद हुए, जिनका दूसरा नाम मित्रसह भी था। कल्माषपादके सर्वकर्मा नामक पुत्र हुए और सर्वकर्माके अनरण्य नामक पुत्र हुए॥ १२-१३॥

अनरण्यसुतो राजा विद्वान्मुण्डिद्रुहोऽभवत्।
निषधस्तस्य तनयो रतिः खट्वाङ्ग इत्यपि॥ १४
येन स्वर्गादिहागत्य मुहूर्तं प्राप्य जीवितम्।
त्रयोऽपि संचिता लोका बुद्ध्या सत्येन चानघ॥ १५

अनरण्यके पुत्र विद्वान् राजा मुण्डिद्रुह हुए उनके पुत्र निषध, रति और खट्वांग हुए। हे अनघ! जिन खट्वांगने स्वर्गसे इस लोकमें आकर मुहूर्तमात्रका जीवन प्राप्तकर अपनी बुद्धि एवं सत्यसे तीनों लोकोंका संग्रह किया॥ १४-१५॥

दीर्घबाहुः सुतस्तस्य रघुस्तस्याभवत्सुतः।
अजस्तस्य तु पुत्रोऽभूत्तस्माद्दशरथोऽभवत्॥ १६

उनके पुत्र दीर्घबाहु हुए और उनके पुत्र रघु हुए। उनके पुत्र अज हुए और उनसे दशरथ उत्पन्न हुए॥ १६॥

रामो दशरथाज्जज्ञे धर्मात्मा यो महायशाः।
स विष्ण्वंशो महाशैवः पौलस्त्यो येन घातितः॥ १७

तच्चरित्रं च बहुधा पुराणेषु प्रवर्णितम्।
रामायणे प्रसिद्धं हि नातः प्रोक्तं तु विस्तरात्॥ १८

दशरथसे रामचन्द्र उत्पन्न हुए, जो धर्मात्मा तथा महायशस्वी थे। जो विष्णुके अंश तथा महाशैव थे और जिन्होंने रावणका वध किया था। उनका चरित्र पुराणोंमें अनेक प्रकारसे वर्णित है तथा रामायणमें तो प्रसिद्ध ही है, इसलिये यहाँ विस्तारसे वर्णन नहीं किया गया॥ १७-१८॥

रामस्य तनयो जज्ञे कुश इत्यति विश्रुतः।
अतिथिस्तु कुशाज्जज्ञे निषधस्तस्य चात्मजः॥ १९

रामचन्द्रके कुश नामक पुत्र हुए, जो अत्यन्त प्रसिद्ध थे, कुशसे अतिथि उत्पन्न हुए। उन अतिथिके पुत्र निषध हुए॥ १९॥

निषधस्य नलः पुत्रो नभः पुत्रो नलस्य तु।
नभसः पुंडरीकश्च क्षेमधन्वा ततः स्मृतः॥ २०

निषधके पुत्र नल, नलके पुत्र नभ, नभके पुत्र पुण्डरीक और उनके पुत्र क्षेमधन्वा कहे गये हैं॥ २०॥

क्षेमधन्वसुतस्त्वासीद्देवानीकः प्रतापवान्।
आसीदहीनगुर्नाम देवानीकात्मजः प्रभुः॥ २१

क्षेमधन्वाके पुत्र महाप्रतापी देवानीक थे और देवानीकके पुत्र राजा अहीनगु थे॥ २१॥

अहीनगोस्तु दायादः सहस्वान्नाम वीर्यवान्।
वीरसेनात्मजस्तस्य यश्चेक्ष्वाकुकुलोद्भवः॥ २२
वीरसेनस्य दायादः पारियात्रो बभूव ह।
ततो बलाख्यस्तनयः स्थलस्तस्मादभूत्सुतः॥ २३

अहीनगुके पुत्र पराक्रमी सहस्वान् हुए तथा उनके पुत्र वीरसेन हुए। ये वीरसेन (निषधराज नलके पिता वीरसेनसे भिन्न) इक्ष्वाकुकुलमें उत्पन्न हुए थे। इनके पुत्र पारियात्र थे, जिनके बल नामक पुत्र उत्पन्न हुआ। बलके पुत्रका नाम स्थल था॥ २२-२३॥

अर्कांशसंभवस्तस्मात्पुत्रो यक्षः प्रतापवान्।
तत्सुतस्त्वगुणस्त्वासीत्तस्माद्विधृतिरात्मजः॥ २४
हिरण्यनाभस्तत्पुत्रो योगाचार्यो बभूव ह।
स शिष्यो जैमिनिमुनेर्ह्यात्मविद्याविशारदः॥ २५
कौशल्यो याज्ञवल्क्योऽथ योगमध्यात्मसंज्ञकम्।
यतोऽध्यगान्नृपवराद् हृदयग्रंथिभेदनम्॥ २६

सूर्यदेवके अंशसे उत्पन्न तथा अतिपराक्रमी यक्ष स्थलके पुत्र थे। यक्षके पुत्रका नाम अगुण था, जिनके पुत्र विधृति हुए। उनके पुत्र योगाचार्य हिरण्यनाभ हुए। वे महर्षि जैमिनिके शिष्य तथा अध्यात्मविद्याके विशिष्ट वेत्ता थे। इन्हीं नृपश्रेष्ठ हिरण्यनाभसे कोसलदेशवासी याज्ञवल्क्यऋषिने हृदयग्रन्थिका भेदन करनेवाला अध्यात्मयोग प्राप्त किया था॥ २४—२६॥

तत्सुतो पुष्यनामा हि ध्रुवसंज्ञस्तदात्मजः।
अग्निवर्णः सुतस्तस्य शीघ्रनामा सुतस्ततः॥ २७
मरुन्नामा सुतस्तस्य योगसिद्धो बभूव ह।
असावास्तेऽद्यापि प्रभुः कलापग्रामसंज्ञके॥ २८
तद्वासिभिश्च मुनिभिः कलेरंते स एव हि।
पुनर्भावयिता नष्टं सूर्यवंशं विशेषतः॥ २९

हिरण्यनाभके पुत्र पुष्य थे और उनके पुत्र ध्रुव हुए। ध्रुवके पुत्र अग्निवर्ण थे, जिनके पुत्रका नाम शीघ्र था। शीघ्रके पुत्र सिद्धयोगी मरुत् (मरु) हुए, जो कलाप-ग्रामवासी मुनियोंके साथ इस समय भी विद्यमान हैं। वे [राजर्षि] मरु कलियुगके अन्तमें नष्ट हुए सूर्यवंशका पुनः प्रवर्तन करेंगे॥ २७—२९॥

पृथुश्रुतश्च तत्पुत्रः संधिस्तस्य सुतः स्मृतः।
अमर्षणः सुतस्तस्य मरुत्वांस्तत्सुतोऽभवत्॥ ३०
विश्वसाह्वः सुतस्तस्य तत्सुतोऽभूत्प्रसेनजित्।
तक्षकस्तस्य तनयः तत्सुतो हि बृहद्बलः॥ ३१

उनके पुत्र पृथुश्रुत हुए तथा पृथुश्रुतके पुत्र सन्धि हुए। उनके अमर्षण हुए और अमर्षणके पुत्र मरुत्वान् हुए। उनके विश्वसाह्व तथा विश्वसाह्वके प्रसेनजित् हुए। प्रसेनजित्से तक्षकका जन्म हुआ, जिनके पुत्र बृहद्बल थे॥ ३०-३१॥

एत इक्ष्वाकुवंशीया अतीताः संप्रकीर्तिताः।
शृणुतानागतान्भूपांस्तद्वंश्यान्धर्मवित्तमान्॥ ३२
बृहद्बलस्य तनयो भविता हि बृहद्रणः।
बृहद्रणसुतस्तस्योरुक्रियो हि भविष्यति॥ ३३
वत्सवृद्धः सुतस्तस्य प्रतिव्योमा सुतस्ततः।
भानुस्तत्तनयो भावी दिवाको वाहिनीपतिः॥ ३४
सहदेवः सुतस्तस्य महावीरो भविष्यति।
तत्सुतो बृहदश्वो हि भानुमांस्तत्सुतो बली॥ ३५

ये इक्ष्वाकुवंशमें अभीतक हुए राजागण यहाँ बताये गये हैं, आगे होनेवाले धर्मविद् राजाओं तथा उनके वंशधरोंके विषयमें श्रवण कीजिये। बृहद्बलका पुत्र बृहद्रण होगा तथा उसका पुत्र उरुक्रिय होगा। उरुक्रियसे वत्सवृद्ध और उससे प्रतिव्योमा होगा। प्रतिव्योमासे भानु तथा उससे सेनापति दिवाक होगा। दिवाकका पुत्र महावीर सहदेव तथा उसका पुत्र बृहदश्व होगा। बृहदश्वसे भानुमान् नामक बलवान् पुत्र होगा॥ ३२—३५॥

सुतो भानुमतो भावी प्रतीकाश्वश्च वीर्यवान्।
सुप्रतीकः सुतस्तस्य भविष्यति नृपोत्तमः॥ ३६
मरुदेवः सुतस्तस्य सुनक्षत्रो भविष्यति।
तत्सुतः पुष्करस्तस्यान्तरिक्षस्तत्सुतो द्विजाः॥ ३७
सुतपास्तत्सुतो वीरो मित्रचित्तस्य चात्मजः।
बृहद्भ्राजः सुतस्तस्य बर्हिनामा तदात्मजः॥ ३८

भानुमान्‌का पुत्र भावी होगा और उसका पुत्र पराक्रमशाली प्रतीकाश्व होगा। प्रतीकाश्वसे नृपश्रेष्ठ सुप्रतीक होगा। उससे मरुदेव तथा मरुदेवसे सुनक्षत्रका जन्म होगा। हे ब्राह्मणो! उसका पुत्र पुष्कर होगा, जिससे अन्तरिक्षका जन्म होगा। उससे सुतपा नामक वीर पुत्र होगा, जिसका पुत्र मित्रचित् होगा। मित्रचित्‌से बृहद्भ्राज तथा उससे बर्हिका जन्म होगा॥ ३६—३८॥

कृतञ्जयः सुतस्तस्य तत्सुतो हि रणञ्जयः।
संजयस्तु मयस्तस्य तस्य शाक्यो हि चात्मजः॥ ३९
शुद्धोदस्तनयस्तस्य लांगलस्तु तदात्मजः।
तस्य प्रसेनजित्पुत्रस्तत्सुतः शूद्रकाह्वयः॥ ४०
रुणको भविता तस्य सुरथस्तत्सुतः स्मृतः।
सुमित्रस्तत्सुतो भावी वंशनिष्ठान्त एव हि॥ ४१

बर्हिसे कृतंजय और उससे रणंजय होगा। उसका पुत्र संजय तथा संजयसे शाक्यका जन्म होगा। शाक्यका पुत्र शुद्धोद तथा उससे लांगणका जन्म होगा। उससे प्रसेनजित्, प्रसेनजित्‌से शूद्रक, उससे रुणक, रुणकसे सुरथ तथा सुरथसे इस वंशके अन्तिम राजा सुमित्रका जन्म होगा॥ ३९—४१॥

सुमित्रान्तोऽन्वयोऽयं वै इक्ष्वाकूणां भविष्यति।
राज्ञां वैचित्रवीर्याणां धर्मिष्ठानां सुकर्मणाम्॥ ४२
सुमित्रं प्राप्य राजानं स तद्वंशः शुभः कलौ।
संस्थां प्राप्स्यति तद्ब्राह्मे वर्धिष्यति पुनः कृते॥ ४३

धर्ममें निरत, पवित्र आचरणवाले तथा आश्चर्यजनक पराक्रमसे सम्पन्न इक्ष्वाकुवंशीय राजाओंका यह वंश [महाराज] सुमित्रतक ही रहेगा। कलियुगमें राजा सुमित्रके साथ ही यह शोभन राजवंश समाप्त हो जायगा और पुनः ब्राह्म सत्ययुगमें बढ़ेगा॥ ४२-४३॥

एतद्वैवस्वते वंशे राजानो भूरिदक्षिणाः।
इक्ष्वाकुवंशप्रभवाः प्राधान्येन प्रकीर्तिताः॥ ४४
पुण्येयं परमा सृष्टिरादित्यस्य विवस्वतः।
श्राद्धदेवस्य देवस्य प्रजानां पुष्टिदस्य च॥ ४५

इस प्रकार मैंने वैवस्वतवंशमें हुए विपुल दक्षिणा देनेवाले इक्ष्वाकुवंशीय मुख्य-मुख्य राजाओंका वर्णन कर दिया। प्रजाओंको पुष्टि प्रदान करनेवाले भगवान् आदित्यके पुत्र वैवस्वत श्राद्धदेवकी यह सृष्टि परम पुण्य प्रदान करनेवाली है॥ ४४-४५॥

पठन् शृण्वन्निमां सृष्टिमादित्यस्य च मानवः।
प्रजावानेति सायुज्यमिह भुक्त्वा सुखं परम्॥ ४६

[भगवान्] आदित्यकी इस सृष्टिको पढ़ने तथा सुननेवाला मानव सन्तानपरम्परासे युक्त होता है और इस लोकमें परम सुख भोगकर सायुज्यमुक्ति प्राप्त करता है॥ ४६॥

इति श्रीशिवमहापुराणे पञ्चम्यामुमासंहितायां वैवस्वतवंशोद्भवराजवर्णनं नामैकोनचत्वारिंशोऽध्यायः॥ ३९॥

॥ इस प्रकार श्रीशिवमहापुराणके अन्तर्गत पाँचवीं उमासंहितामें वैवस्वतवंशोद्भवराजवर्णन नामक उनतालीसवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ ३९॥

अथ चत्वारिंशोऽध्यायः

पितृश्राद्धका प्रभाव-वर्णन

व्यास उवाच

इत्याकर्ण्य श्राद्धदेवसूर्यान्वयमनुत्तमम्।
पर्यपृच्छन्मुनिश्रेष्ठः शौनकः सूतमादरात्॥ १

व्यासजी बोले—श्राद्धदेव सूर्यके वंशके वर्णनको सुनकर मुनिश्रेष्ठ शौनकने सूतजीसे आदरपूर्वक पूछा॥ १॥

शौनक उवाच

सूत सूत चिरंजीव व्यासशिष्य नमोऽस्तु ते।
श्राविता परमा दिव्या कथा परमपावनी॥ २
त्वया प्रोक्तः श्राद्धदेवः सूर्यः सद्वंशवर्धनः।
संशयस्तत्र मे जातस्तं ब्रवीमि त्वदग्रतः॥ ३
कुतो वै श्राद्धदेवत्वमादित्यस्य विवस्वतः।
श्रोतुमिच्छामि तत्प्रीत्या छिंधि मे संशयं त्विमम्॥ ४

श्राद्धस्यापि च माहात्म्यं तत्फलं च वद प्रभो।
प्रीताश्च पितरो येन श्रेयसा योजयन्ति तम्॥ ५

एतच्च श्रोतुमिच्छामि पितृणां सर्गमुत्तमम्।
कथय त्वं विशेषेण कृपां कुरु महामते॥ ६

सूत उवाच

वच्मि तत्तेऽखिलं प्रीत्या पितृसर्गं तु शौनक।
मार्कण्डेयेन कथितं भीष्माय परिपृच्छते॥ ७
गीतं सनत्कुमारेण मार्कण्डेयाय धीमते।
तत्तेऽहं संप्रवक्ष्यामि सर्वकामफलप्रदम्॥ ८
युधिष्ठिरेण संपृष्टो भीष्मो धर्मभृतां वरः।
शरशय्यास्थितः प्रोचे तच्छृणुष्व वदामि ते॥ ९

युधिष्ठिर उवाच

पुष्टिकामेन पुंसा वै कथं पुष्टिरवाप्यते।
एतच्छ्रोतुं समिच्छामि किं कुर्वाणो न सीदति॥ १०

सूत उवाच

युधिष्ठिरेण संपृष्टं प्रश्नं श्रुत्वा स धर्मवित्।
भीष्मः प्रोवाच सुप्रीत्या सर्वेषां शृण्वतां वचः॥ ११

भीष्म उवाच

ये कुर्वन्ति नराः श्राद्धान्यपि प्रीत्या युधिष्ठिर।
श्राद्धैः प्रीणाति तत्सर्वं पितृणां हि प्रसादतः॥ १२
श्राद्धानि चैव कुर्वन्ति फलकामाः सदा नराः।
अभिसंधाय पितरं पितुश्च पितरं तथा॥ १३
पितुः पितामहञ्चैव त्रिषु पिंडेषु नित्यदा।
पितरो धर्मकामस्य प्रजाकामस्य च प्रजाम्॥ १४
पुष्टिकामस्य पुष्टिं च प्रयच्छन्ति युधिष्ठिर॥ १५

शौनकजी बोले—हे सूतजी! हे चिरंजीव! हे व्यासशिष्य! आपको नमस्कार है, आपने परम दिव्य एवं अति पवित्र कथा सुनायी॥ २॥

आपने कहा कि श्राद्धके देवता सूर्यदेव हैं, जो उत्तम वंशकी वृद्धि करनेवाले हैं, इस विषयमें मुझे एक सन्देह है, उसे मैं आपके समक्ष कहता हूँ॥ ३॥

विवस्वान् सूर्यदेव श्राद्धदेव क्यों कहे जाते हैं? मेरे इस सन्देहको दूर कीजिये, मैं उसे प्रेमपूर्वक सुनना चाहता हूँ॥ ४॥

हे प्रभो! आप श्राद्धके माहात्म्य तथा उसके फलको भी कहिये, जिससे पितृगण प्रसन्न होकर अपने वंशजका निरन्तर कल्याण करते हैं॥ ५॥

हे महामते! मैं पितरोंकी श्रेष्ठ उत्पत्तिको सुनना चाहता हूँ, आप इसे कहिये और [मेरे ऊपर] विशेष कृपा कीजिये॥ ६॥

सूतजी बोले—हे शौनक! मैं उस समस्त पितृसर्गको आपसे प्रेमपूर्वक कह रहा हूँ, जैसा कि भीष्मके पूछनेपर मार्कण्डेयने उनसे कहा था और महर्षि सनत्कुमारने बुद्धिमान् मार्कण्डेयसे जो कहा था, उसे मैं आपसे कहूँगा। यह सभी कामनाओंको पूर्ण करनेवाला है॥ ७-८॥

युधिष्ठिरके पूछनेपर धर्मात्माओंमें श्रेष्ठ भीष्मने शरशय्यापर लेटे हुए जो कहा था, उसे मैं आपसे कह रहा हूँ, सुनिये॥ ९॥

युधिष्ठिरजी बोले—[हे पितामह!] पुष्टि चाहनेवाले पुरुषको किस प्रकार पुष्टिकी प्राप्ति होती है और कौन-सा कार्य करनेवाला [मनुष्य] दुखी नहीं होता, इसे मैं सुनना चाहता हूँ॥ १०॥

सूतजी बोले—युधिष्ठिरके द्वारा आदरसहित पूछे गये प्रश्नको सुनकर वे धर्मात्मा भीष्म सभीको सुनाते हुए प्रेमपूर्वक यह वचन कहने लगे—॥ ११॥

भीष्म बोले—हे युधिष्ठिर! जो मनुष्य प्रेमसे श्राद्धोंको करते हैं, उन श्राद्धोंसे निश्चय ही पितरोंकी कृपासे उसका सब कुछ सम्पन्न हो जाता है। श्रेष्ठ फलकी इच्छा रखनेवाले मनुष्य पिता, पितामह और प्रपितामह—इन तीनोंका पिण्डोंसे श्राद्ध सदा करते हैं। हे युधिष्ठिर! [श्राद्धसे प्रसन्न हुए] पितर धर्म तथा प्रजाकी इच्छा करनेवालेको धर्म तथा सन्तान प्रदान करते हैं और पुष्टि चाहनेवालेको पुष्टि प्रदान करते हैं॥ १२—१५॥

युधिष्ठिर उवाच

वर्तन्ते पितरः स्वर्गे केषांचिन्नरके पुनः।
प्राणिनां नियतं चापि कर्मजं फलमुच्यते॥ १६

तानि श्राद्धानि दत्तानि कथं गच्छन्ति वै पितॄन्।
कथं शक्तास्तमाहर्तुं नरकस्थाः फलं पुनः॥ १७

देवा अपि पितॄन्स्वर्गे यजन्त इति मे श्रुतम्।
एतदिच्छाम्यहं श्रोतुं विस्तरेण ब्रवीहि मे॥ १८

युधिष्ठिर बोले—[हे पितामह!] किन्हींके पितर स्वर्गमें और किन्हींके नरकमें निवास करते हैं और प्राणियोंका कर्मजन्य फल भी नियत कहा जाता है। किये गये वे श्राद्ध पितरोंको किस प्रकार प्राप्त होते हैं और नरकमें स्थित पितर किस प्रकार श्राद्धोंको प्राप्त करनेमें तथा फल देनेमें समर्थ होते हैं? मैंने सुना है कि देवतालोग भी स्वर्गमें पितरोंका यजन करते हैं। मैं यह सब सुनना चाहता हूँ, आप विस्तारपूर्वक मुझसे कहिये॥ १६—१८॥

भीष्म उवाच

अत्र ते कीर्तयिष्यामि यथा श्रुतमरिन्दम।
पित्रा मम पुरा गीतं लोकान्तरगतेन वै॥ १९

भीष्मजी बोले—हे शत्रुमर्दन! इस विषयमें जैसा मैंने सुना है और परलोकमें गये हुए मेरे पिताने जैसा मुझसे कहा है, उसे आपसे मैं कह रहा हूँ॥ १९॥

श्राद्धकाले मम पितुर्मया पिंडः समुद्यतः।
मत्पिता मम हस्तेन भित्त्वा भूमिमयाचत॥ २०

नैष कल्पविधिर्दृष्ट इति निश्चित्य चाप्यहम्।
कुशेष्वेव ततः पिण्डं दत्तवानविचारयन्॥ २१

किसी समय जब मैं श्राद्धकालमें पिण्डदान देने लगा, तब मेरे पिताने भूमिका भेदनकर अपने हाथमें पिण्डदान ग्रहण करना चाहा। किंतु ऐसी कल्प-विधि नहीं देखी गयी है—ऐसा निश्चय करके [पिताके अनुरोधका] बिना विचार किये मैंने कुशाओंपर ही पिण्डदान किया॥ २०-२१॥

ततः पिता मे सन्तुष्टो वाचा मधुरया तदा।
उवाच भरतश्रेष्ठ प्रीयमाणो मयानघ॥ २२

त्वया दायादवानस्मि धर्मज्ञेन विपश्चिता।
तारितोऽहं तु जिज्ञासा कृता मे पुरुषोत्तम॥ २३

तब मुझसे सन्तुष्ट हुए मेरे पिताने मधुर वाणीमें कहा—हे अनघ! हे भरतश्रेष्ठ! मैं तुमसे प्रसन्न हूँ। तुम्हारे जैसे धर्मात्मा एवं विद्वान् [पुत्र]-से मैं पुत्रवान् हूँ। हे पुरुषोत्तम! तुमसे जैसी आशा थी, तुमने मुझे तार दिया। मैंने तो [तुम्हारी धर्मनिष्ठाकी] परीक्षा की थी॥ २२-२३॥

प्रमाणं यद्धि कुरुते धर्माचारेण पार्थिवः।
प्रजास्तदनुवर्तन्ते प्रमाणाचरितं सदा॥ २४

राजधर्मकी प्रधानतासे राजा जैसा आचरण करता है, प्रजाएँ भी प्रमाण मानकर उसी आचरणका अनुसरण करती हैं॥ २४॥

शृणु त्वं भरतश्रेष्ठ वेदधर्मांश्च शाश्वतान्।
प्रमाणं वेदधर्मस्य पुत्र निर्वर्त्तितं त्वया॥ २५
तस्मात्तवाहं सुप्रीतः प्रीत्या वरमनुत्तमम्।
ददामि त्वं प्रतीच्छस्व त्रिषु लोकेषु दुर्लभम्॥ २६

हे भरतश्रेष्ठ! हे पुत्र! तुम सनातन वेदधर्मोंको सुनो, तुमने वेदधर्मके प्रमाणानुसार कर्म किया है। अतः तुमसे प्रसन्न होकर प्रेमपूर्वक मैं तुम्हें तीनों लोकोंमें दुर्लभ उत्तम वर देता हूँ, तुम उसे ग्रहण करो॥ २५-२६॥

न ते प्रभविता मृत्युर्यावज्जीवितुमिच्छसि।
त्वत्तोऽभ्यनुज्ञां संप्राप्य मृत्युः प्रभविता पुनः॥ २७

किं वा ते प्रार्थितं भूयो ददामि वरमुत्तमम्।
तद् ब्रूहि भरतश्रेष्ठ यत्ते मनसि वर्तते॥ २८

तुम जबतक जीवित रहना चाहोगे, तबतक मृत्यु तुमपर प्रभावी नहीं होगी। तुमसे आज्ञा पाकर ही मृत्यु [तुम्हारे ऊपर] प्रभाव डाल सकेगी। अब इसके अतिरिक्त तुम और जो उत्तम वर चाहते हो, उसे मैं तुम्हें दूँगा। हे भरतश्रेष्ठ! तुम्हारे मनमें जो हो, उसे माँगो॥ २७-२८॥

इत्युक्तवति तस्मिंस्तु अभिवाद्य कृताञ्जलिः।
अवोचं कृतकृत्योऽहं प्रसन्ने त्वयि मानद।
प्रश्नं पृच्छामि वै कंचिद्वाच्यः स भवता स्वयम्॥ २९

उनके इस प्रकार कहनेपर मैंने हाथ जोड़कर उनका अभिवादन करके कहा—हे मानद! आपके प्रसन्न होनेसे मैं कृतकृत्य हो गया हूँ। मैं कुछ प्रश्न पूछता हूँ, आप उसका उत्तर दें॥ २९॥

स मामुवाच तद् ब्रूहि यदीच्छसि वदामि ते।
इत्युक्तेन मया तत्र पृष्टः प्रोवाच तं नृपः॥ ३०

तब उन्होंने मुझसे कहा—तुम जो [जानना] चाहते हो, उसे पूछो, मैं उसे बताऊँगा। उनके ऐसा कहनेपर मैंने राजासे पूछा, तब वे उसे कहने लगे—॥ ३०॥

शन्तनुरुवाच

शृणु तात प्रवक्ष्यामि प्रश्नं तेऽहं यथार्थतः।
पितृकल्पं च निखिलं मार्कण्डेयेन मे श्रुतम्॥ ३१
यत्त्वं पृच्छसि मां तात तदेवाहं महामुनिम्।
मार्कण्डेयमपृच्छं हि स मां प्रोवाच धर्मवित्॥ ३२

शान्तनु बोले—हे तात! सुनो, मैं तुम्हारे प्रश्नका उत्तर यथार्थ रूपसे दे रहा हूँ, जैसा कि मैंने मार्कण्डेयसे समस्त पितृकल्प सुना है। हे तात! तुम मुझसे जो पूछते हो, उसीको मैंने महामुनि मार्कण्डेयसे पूछा था, तब उन धर्मवेत्ताने मुझसे कहा—॥ ३१-३२॥

मार्कण्डेय उवाच

शृणु राजन्मया दृष्टं कदाचित्पश्यता दिवम्।
विमानं महदायान्तमन्तरेण गिरेस्तदा॥ ३३

मार्कण्डेयजी बोले—हे राजन्! सुनो, किसी समय आकाशकी ओर देखते हुए मैंने पर्वतके अन्दरसे आते हुए किसी विशाल विमानको देखा॥ ३३॥

तस्मिन्विमाने पर्यक्षं ज्वलितांगारवर्चसम्।
महातेजः प्रज्वलन्तं निर्विशेषं मनोहरम्॥ ३४
अपश्यं चैव तत्राहं शयानं दीप्ततेजसम्।
अंगुष्ठमात्रं पुरुषमग्नावग्निमिवाहितम्॥ ३५

मैंने उस विमानमें स्थित पर्यंकमें जलते हुए अंगारके समान प्रभावाले, अत्यन्त असामान्य मनोहर तथा प्रज्वलित महातेजके सदृश एक अंगुष्ठमात्र पुरुषको लेटे हुए देखा, जो कि अग्निमें स्थापित अग्निके समान तेजोमय प्रतीत हो रहा था॥ ३४-३५॥

सोऽहं तस्मै नमः कृत्वा प्रणम्य शिरसा प्रभुम्।
अपृच्छं चैव तमहं विद्याम त्वां कथं विभो॥ ३६

मैंने सिर झुकाकर उन्हें प्रणाम करके उन प्रभुसे पूछा—हे विभो! मैं आपको किस प्रकार जान सकता हूँ?॥ ३६॥

स मामुवाच धर्मात्मा ते न तद्विद्यते तपः।
येन त्वं बुध्यसे मां हि मुने वै ब्रह्मणः सुतम्॥ ३७
सनत्कुमारमिति मां विद्धि किं करवाणि ते।
ये त्वन्ये ब्रह्मणः पुत्राः कनीयांसस्तु ते मम॥ ३८
भ्रातरः सप्त दुर्धर्षा येषां वंशाः प्रतिष्ठिताः।
वयं तु यतिधर्माणः संयम्यात्मानमात्मनि॥ ३९

तब उन धर्मात्माने मुझसे कहा—हे मुने! निश्चय ही तुम्हारेमें वह तप नहीं है, जिससे तुम मुझ ब्रह्मपुत्रको जान सको। तुम मुझे सनत्कुमार समझो। मैं तुम्हारा कौन-सा कार्य सम्पन्न करूँ? ब्रह्माके जो अन्य पुत्र हैं, वे मेरे सात छोटे भाई हैं, जिनके वंश प्रतिष्ठित हैं। हमलोग अपनेमें ही आत्माको स्थिर करके यतिधर्ममें संलग्न रहनेवाले हैं॥ ३७—३९॥

यथोत्पन्नस्तथैवाहं कुमार इति विश्रुतः।
तस्मात्सनत्कुमारं मे नामैतत्कथितं मुने॥ ४०

मैं जैसे उत्पन्न हुआ हूँ, वैसा ही हूँ अतः कुमार इस नामसे प्रसिद्ध हुआ। अतः हे मुने! सनत्कुमार—यह मेरा नाम कहा गया है॥ ४०॥

यद्भक्त्या ते तपश्चीर्णं मम दर्शनकांक्षया।
एष दृष्टोऽस्मि भद्रं ते कं कामं करवाणि ते॥ ४१

तुमने मेरे दर्शनकी इच्छासे भक्तिपूर्वक तपस्या की है, इसलिये मैंने तुम्हें दर्शन दिया, तुम्हारा कल्याण हो, अब मैं तुम्हारा कौन-सा मनोरथ पूर्ण करूँ?॥ ४१॥

इत्युक्तवन्तं तं चाहं प्रावोचं तं शृणु प्रभो।
पितॄणामादिसर्गं च कथयस्व यथातथम्॥ ४२

इत्युक्तः स तु मां प्राह शृणु सर्वं यथातथम्।
वच्मि ते तत्त्वतस्तात पितृसर्गं शुभावहम्॥ ४३

सनत्कुमार उवाच

देवान्पुरासृजद्ब्रह्मा मां यक्षध्वं स चाह तान्।
समुत्सृज्य तमात्मानमयजंस्ते फलार्थिनः॥ ४४

ते शप्ता ब्रह्मणा मूढा नष्टसंज्ञा भविष्यथ।
तस्मात्किञ्चिदजानन्तो नष्टसंज्ञाः पितामहम्॥ ४५

प्रोचुस्तं प्रणताः सर्वे कुरुष्वानुग्रहं हि नः।

इत्युक्तस्तानुवाचेदं प्रायश्चित्तार्थमेव हि॥ ४६
पुत्रान्स्वान्परिपृच्छध्वं ततो ज्ञानमवाप्स्यथ।

इत्युक्ता नष्टसंज्ञास्ते पुत्रान्पप्रच्छुरोजसा॥ ४७

प्रायश्चित्तार्थमेवाधिलब्धसंज्ञा दिवौकसः।
गम्यतां पुत्रका एवं पुत्रैरुक्ताश्च तेऽनघ॥ ४८

अभिशप्तास्तु ते देवाः पुत्रकामेन वेधसम्।
पप्रच्छुरुक्ताः पुत्रैस्ते गतास्ते पुत्रका इति॥ ४९

ततस्तानब्रवीद्देवो देवान्ब्रह्मा ससंशयान्।
शृणुध्वं निर्जराः सर्वे यूयं न ब्रह्मवादिनः॥ ५०

तस्माद्यदुक्तं युष्माकं पुत्रैस्तैर्ज्ञानिसत्तमैः।
मन्तव्यं संशयं त्यक्त्वा तथा न च तदन्यथा॥ ५१

देवाश्च पितरश्चैव यजध्वं त्रिदिवौकसः।
परस्परं महाप्रीत्या सर्वकामफलप्रदाः॥ ५२

सनत्कुमार उवाच

ततस्ते छिन्नसंदेहाः प्रीतिमन्तः परस्परम्।
बभूवुर्मुनिशार्दूल ब्रह्मवाक्यात्सुखप्रदाः॥ ५३

उनके इस प्रकार कहनेपर मैंने उनसे कहा—हे प्रभो! सुनिये, आप पितरोंके आदिसर्गको मुझसे यथार्थ रूपसे कहिये॥ ४२॥

मेरे ऐसा कहनेपर उन्होंने कहा—हे तात! सुनो, मैं तुमसे सुखदायक सम्पूर्ण पितृसर्ग यथार्थरूपसे तत्त्वपूर्वक कहता हूँ॥ ४३॥

सनत्कुमारजी बोले—पूर्वकालमें ब्रह्माजीने देवगणोंको उत्पन्न किया और उनसे कहा—तुमलोग मेरा यजन करो, किंतु फलकी आकांक्षा करनेवाले वे उन्हें छोड़कर आत्मयजन करने लगे। तब ब्रह्माजीने उन्हें शाप दे दिया—मूढो! तुमलोगोंका ज्ञान नष्ट हो जायगा। उसके अनन्तर कुछ भी न जानते हुए वे सभी नष्ट ज्ञानवाले देवता सिर झुकाकर उन पितामहसे बोले—हमलोगोंपर कृपा कीजिये॥ ४४–४५½॥

उनके ऐसा कहनेपर ब्रह्माने इस कर्मका प्रायश्चित्त करनेके लिये यह कहा कि तुमलोग अपने पुत्रोंसे पूछो, तभी ज्ञान प्राप्त होगा॥ ४६½॥

उनके ऐसा कहनेपर नष्ट ज्ञानवाले वे देवता प्रायश्चित्त जाननेके लिये पुत्रोंके पास गये और इस कर्मका प्रायश्चित्त उनसे पूछा। हे अनघ! तब उनका [समाधान करके] पुत्रोंने उनसे कहा—प्राप्त हुए ज्ञानवाले हे पुत्रो! आप सभी देवता प्रायश्चित्तके लिये जाइये। तब अभिशप्त वे सभी देवता पुत्रोंकी इच्छासे प्रेरित हो ब्रह्मदेवके पास पुनः जा पहुँचे तथा [समग्र वृत्तान्त कह सुनाया और] पूछने लगे कि हमारे पुत्रोंने हमें 'पुत्र' कहा है [इसका क्या रहस्य है?]॥ ४७—४९॥

तब ब्रह्माजीने संशययुक्त उन देवताओंसे कहा—हे देवताओ! सुनो, तुमलोग ब्रह्मवादी नहीं हो। अतः तुमलोगोंके उन परम ज्ञानी पुत्रोंने जो कहा—उसे सन्देहका त्याग करके ठीक समझो, वह अन्यथा नहीं है। तुमलोग देवता हो और वे [ज्ञान प्रदान करनेसे] तुम्हारे पितर हैं। अतः सभी कामनाओंको सिद्ध करनेवाले आपलोग प्रसन्नतासे परस्पर एक-दूसरेका यजन करें॥ ५०—५२॥

सनत्कुमारजी बोले—हे मुनिश्रेष्ठ! तब ब्रह्माजीके वचनसे सन्देहरहित हो वे एक-दूसरेपर प्रसन्न होकर आपसमें सुख देनेवाले हुए॥ ५३॥

तततो देवा हि प्रोचुस्तान्यदुक्ताः पुत्रका वयम्।
तस्माद्भवन्तः पितरो भविष्यथ न संशयः॥ ५४

इसके बाद देवगणोंने अपने पुत्रोंसे कहा—तुमलोगोंने हमें '**पुत्रकाः**'—ऐसा कहा है, अतः तुमलोग पितर होओगे, इसमें संशय नहीं है॥ ५४॥

पितृश्राद्धे क्रियां कश्चित्करिष्यति न संशयः।
श्राद्धैराप्यायितः सोमो लोकानाप्याययिष्यति॥ ५५
समुद्रं पर्वतवनं जंगमाजंगमैर्वृतम्।
श्राद्धानि पुष्टिकामाश्च ये करिष्यन्ति मानवाः॥ ५६
तेभ्यः पुष्टिप्रदाश्चैव पितरः प्रीणिताः सदा।
श्राद्धे ये च प्रदास्यन्ति त्रीन्पिंडान्नामगोत्रतः॥ ५७
सर्वत्र वर्तमानास्ते पितरः प्रपितामहाः।
भावयिष्यन्ति सततं श्राद्धदानेन तर्पिताः॥ ५८

जो कोई भी पितृश्राद्धमें पितृकर्म करेगा, [वह निश्चय ही पूर्णमनोरथ होगा] उसके श्राद्धोंसे तृप्त हुए चन्द्रदेव सभी लोगोंको एवं समुद्र, पर्वत तथा वनसहित चराचरको तृप्त करेंगे। जो मनुष्य पुष्टिकी कामनासे श्राद्ध करेंगे, उससे प्रसन्न हुए पितर उन्हें सदा पुष्टि प्रदान करेंगे। जो लोग श्राद्धमें नाम-गोत्रपूर्वक तीन पिण्डदान करेंगे, उनके श्राद्धसे तृप्त हुए तथा सर्वत्र वर्तमान वे पितर तथा प्रपितामह उनकी सभी कामनाओंकी पूर्ति करेंगे॥ ५५—५८॥

इति तद्वचनं सत्यं भवत्वथ दिवौकसः।
पुत्राश्च पितरश्चैव वयं सर्वे परस्परम्॥ ५९

एवं ते पितरो देवा धर्मतः पुत्रतां गताः।
अन्योऽन्यं पितरो वै ते प्रथिताः क्षितिमण्डले॥ ६०

[ब्रह्माजीने कहा ही था कि] हे देवताओ! उनका यह कथन सत्य हो। इसलिये हम सभी देवगण तथा पितृगण परस्पर पिता तथा पुत्र हैं। उन पितरोंके भी पिता वे देवगण [ज्ञानोपदेशरूप] धर्मसम्बन्धके कारण पितरोंके पुत्र बने और परस्पर एक-दूसरेके पिता-पुत्रके रूपमें पृथ्वीपर प्रसिद्ध हुए॥ ५९-६०॥

इति श्रीशिवमहापुराणे पञ्चम्यामुमासंहितायां श्राद्धकल्पे पितृप्रभाववर्णनं नाम चत्वारिंशोऽध्यायः॥ ४०॥

॥ इस प्रकार श्रीशिवमहापुराणके अन्तर्गत पाँचवीं उमासंहिताके श्राद्धकल्पमें पितृप्रभाववर्णन नामक चालीसवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ ४०॥

अथैकचत्वारिंशोऽध्यायः

पितरोंकी महिमाके वर्णनक्रममें सप्त व्याधोंके आख्यानका प्रारम्भ

सनत्कुमार उवाच

सप्त ते तपतां श्रेष्ठ स्वर्गे पितृगणाः स्मृताः।
चत्वारो मूर्त्तिमन्तो वै त्रयश्चैव ह्यमूर्तयः॥ १
तान्यजन्ते देवगणा आद्या विप्रादयस्तथा।
आप्याययन्ति ते पूर्वं सोमं योगबलेन वै॥ २

सनत्कुमारजी बोले—हे तपस्वियोंमें श्रेष्ठ! स्वर्गमें सात पितृगण कहे गये हैं, जिनमें चार मूर्तिमान् हैं एवं तीन अमूर्त हैं। वे पितर पूर्वसे ही योगबलके द्वारा सोमको तृप्त करते रहे हैं। देवगण तथा ब्राह्मण उन्हींका यजन करते हैं॥ १-२॥

तस्माच्छ्राद्धानि देयानि योगिनां तु विशेषतः।
सर्वेषां राजतं पात्रमथवा रजतान्वितम्॥ ३

दत्तं स्वधां पुरोधाय श्राद्धं प्रीणाति वै पितॄन्।
वह्नेराप्यायनं कृत्वा सोमस्य तु यमस्य वै॥ ४

उदगायनमप्यग्नावग्न्यभावेऽप्सु वा पुनः।
पितॄन्प्रीणाति यो भक्त्या पितरः प्रीणयन्ति तम्॥ ५

इसलिये योगनिष्ठ पितरोंको विशेष रूपसे श्राद्ध देने चाहिये। इन सभी [सातों] पितरोंको चाँदी या चाँदीसे युक्त पात्र तथा स्वधापूर्वक दिया गया श्राद्ध प्रसन्नता प्रदान करता है। जो मनुष्य अग्नि, सोम तथा यमका आप्यायनकर अग्निमें उदगायन करता है अथवा अग्निके अभावमें जलमें उदगायन करके भक्तिसे पितरोंको तृप्त करता है, उससे सन्तुष्ट हुए पितर उसे भी सन्तुष्ट करते हैं।

यच्छन्ति पितरः पुष्टिं प्रजाश्च विपुलास्तथा।
स्वर्गमारोग्यवृद्धिं च यदन्यदपि चेप्सितम्॥ ६

पितृगण प्रसन्न हो जानेपर उसे पुष्टि, विपुल सन्तति, स्वर्ग, आरोग्यवृद्धि तथा अन्य अभीष्ट भी प्रदान करते हैं॥ ३—६॥

देवकार्यादपि मुने पितृकार्यं विशिष्यते।
पितृभक्तोऽसि विप्रर्षे तेन त्वमजरामरः॥ ७

हे मुने! देवकार्यकी अपेक्षा पितृकार्यको विशेष कहा गया है, हे विप्रर्षे! आप पितृभक्त हैं, इसलिये अजर-अमर हैं॥ ७॥

न योगेन गतिः सा तु पितृभक्तस्य या मुने।
पितृभक्तिर्विशेषेण तस्मात्कार्या महामुने॥ ८

हे मुने! योगसे भी वह गति नहीं प्राप्त होती, जो पितृभक्तको प्राप्त होती है, इसलिये हे महामुने! विशेष रूपसे पितृभक्ति करनी चाहिये॥ ८॥

मार्कण्डेय उवाच

एवमुक्त्वाशु देवेशो देवानामपि दुर्लभम्।
चक्षुर्दत्त्वा सविज्ञानं जगाम यौगिकीं गतिम्॥ ९

मार्कण्डेयजी बोले—ऐसा कहकर वे देवेश [सनत्कुमार] मुझे देवताओंके लिये भी दुर्लभ विज्ञानमय दृष्टि देकर शीघ्र ही योगगतिको प्राप्त हो गये॥ ९॥

शृणु भीष्म पुरा भूयो भारद्वाजात्मजा द्विजाः।
योगधर्ममनुप्राप्य भ्रष्टा दुश्चरितेन वै॥ १०

वाग्दुष्टः क्रोधनो हिंस्रः पिशुनः कविरेव च।
खसृमः पितृवर्ती च नामभिः कर्मभिस्तथा॥ ११

हे भीष्म! सुनो* पूर्व समयमें कुछ ब्राह्मण रहते थे, जो भरद्वाजके पुत्र थे। वे योगधर्मका सेवन करते-करते दुराचारमें फँस जानेके कारण [स्वर्गसे] भ्रष्ट हो गये। वे वाग्दुष्ट, क्रोधन, हिंस्र, पिशुन, कवि, खसृम और पितृवर्ती नामवाले थे और अपने नामके अनुसार कार्य भी किया करते थे॥ १०-११॥

कौशिकस्य सुतास्तात शिष्या गर्गस्य चाभवन्।
पितर्युपरते सर्वे प्रवसन्तस्तदाभवन्॥ १२

विनियोगाद् गुरोस्तस्य गां दोग्ध्रीं समकालयन्।
समानवत्सां कपिलां सर्वेऽन्यायागतास्तदा॥ १३

हे तात! [दूसरे जन्ममें] वे सभी कौशिकके पुत्र एवं गर्गके शिष्य हुए। पिताके मर जानेपर वे सभी प्रवास (गुरुके आश्रम)-में रहने लगे। एक समय उन गुरुकी आज्ञासे दूध देनेवाली तथा बछड़ेसे युक्त कपिला गौको चराते-चराते वे अन्यायमें प्रवृत्त हो गये॥ १२-१३॥

तेषां पथि क्षुधार्तानां बाल्यान्मोहाच्च भारत।
क्रूरा बुद्धिः समुत्पन्ना तां गां वै हिंसितुं तदा॥ १४

तां कविः खसृमश्चैव याचेते नेति वै तदा।
न चाशक्यास्तु ताभ्यां वा तदा वारयितुं निजाः॥ १५

हे भारत! मोह तथा मूर्खताके कारण भूखसे व्याकुल उन सभीको मार्गमें उसे मारनेके लिये क्रूर बुद्धि उत्पन्न हुई। कवि तथा खसृमने उनसे गौकी माँग की, किंतु उन्होंने नहीं दिया और उन भाइयोंसे उसे बचानेमें भी वे दोनों समर्थ नहीं हो सके॥ १४-१५॥

पितृवर्ती तु यस्तेषां नित्यं श्राद्धाह्निको द्विजः।
स सर्वानब्रवीत्कोपात् पितृभक्तिसमन्वितः॥ १६

यद्यशक्यं प्रकर्तव्यं पितृनुद्दिश्य साध्यताम्।
प्रकुर्वन्तो हि श्राद्धं तु सर्व एव समाहिताः॥ १७

उनमें जो पितृवर्ती नामक भाई था, वह नित्यश्राद्ध करनेवाला था, पितृभक्तिसे युक्त वह क्रोधपूर्वक उन सभीसे कहने लगा—यदि तुम लोग इसका वध अवश्य करना चाहते ही हो तो पितरोंको उद्देश्यकर ऐसा करो और सावधान होकर उससे पितरोंका श्राद्ध करो॥ १६-१७॥

---

* यह आख्यान अनेक पुराणोंमें तथा हरिवंशपुराणके हरिवंशपर्वमें अध्याय २१ से अध्याय २४ के मध्य विशेष विस्तारसे वर्णित है। यहाँका कथानक वहाँसे किंचित् भिन्न भी है।

एवमेषा च गौर्धर्मं प्राप्स्यते नात्र संशयः।
पितॄनभ्यर्च्य धर्मेण नाधर्मो नो भविष्यति॥ १८

ऐसा करनेसे यह गौ धर्मको प्राप्त होगी, इसमें संशय नहीं है। धर्मपूर्वक पितरोंका पूजन कर लेनेसे हमलोगोंको [वधजन्य] अधर्म भी नहीं होगा॥ १८॥

एवमुक्ताश्च ते सर्वे प्रोक्षयित्वा च गां तदा।
पितृभ्यः कल्पयित्वा तु ह्युपायुञ्जत भारत॥ १९

हे भारत! उसके ऐसा कहनेपर उन सभीने गौका प्रोक्षण करके उसको मारकर उससे पितरोंका श्राद्ध किया और उसे उपयोगमें ले लिया॥ १९॥

उपयुज्य च गां सर्वे गुरोस्तस्य न्यवेदयन्।
शार्दूलेन हता धेनुर्वत्सो वै गृह्यतामिति॥ २०

इस प्रकार सभीने गायका उपयोगकर गुरुसे निवेदन किया कि सिंहने गायको मार दिया, अब इस बछड़ेको ग्रहण कीजिये॥ २०॥

आर्जवात्स तु तं वत्सं प्रतिजग्राह वै द्विजः।
मिथ्योपचारतः पापमभूत्तेषां च गोघ्नताम्॥ २१

सरल स्वभावके कारण ब्राह्मणने भी उस बछड़ेको ग्रहण कर लिया, इस मिथ्या उपचार [असत्ययुक्त अपकर्म]-से उन गोहत्यारोंको पाप लगा॥ २१॥

ततः कालेन कियता कालधर्ममुपागताः।
ते सप्त भ्रातरस्तात बभूवुः स्वायुषः क्षये॥ २२

हे तात! इसके बाद कुछ काल बीत जानेपर वे सातों भाई अपनी आयुके क्षीण होनेपर कालधर्म (मृत्यु)-को प्राप्त हुए॥ २२॥

ते वै क्रूरतया हैंस्त्र्यात्स्वानार्यत्वाद् गुरोस्तथा।
उग्रहिंसाविहाराश्च जाताः सप्त सहोदराः॥ २३
लुब्धकस्य सुतास्तावद् बलवन्तो मनस्विनः।
जाता व्याधा दशार्णेषु सप्त धर्मविचक्षणाः॥ २४

क्रूरकर्म, हत्या एवं गुरुसे अनार्य व्यवहार करनेके कारण उग्र स्वभाववाले तथा हिंसामें ही रमण करनेवाले वे सभी सातों भाई दशार्ण देशमें किसी बहेलियेके बलवान्, मनस्वी तथा धर्मप्रवीण सात पुत्र हुए॥ २३-२४॥

स्वधर्मनिरताः सर्वे मृगा मोहविवर्जिताः।
आसन्नुद्वेगसंविग्ना रम्ये कालंजरे गिरौ॥ २५

उसके अनन्तर अपने धर्ममें निरत वे सभी कालधर्मको प्राप्त होकर दूसरे जन्ममें रम्य कालंजर-पर्वतपर [पूर्वकृत कर्मोंके कारण] उद्वेगसे युक्त तथा [जातिस्मरताके कारण] मोहविवर्जित मृगजन्मको प्राप्त होकर वहीं विहार करने लगे॥ २५॥

तमेवार्थमनुध्याय जातिस्मरणसंभवम्।
आसन्वनचराः क्षान्ता निर्द्वन्द्वा निष्परिग्रहाः॥ २६

उस जन्ममें भी वे जातिस्मरताको प्राप्तकर पूर्वकृत कर्मोंके फलका स्मरण करते हुए निर्द्वन्द्व, निष्परिग्रह तथा क्षमाशील हो वनमें विचरण करते थे॥ २६॥

ते सर्वे शुभकर्माणः सद्धर्माणो वनेचराः।
विधर्माचरणैर्हीना जातिस्मरणसिद्धयः॥ २७
पूर्वजातिषु यो धर्मः श्रुतो गुरुकुलेषु वै।
तथैव चास्थिता बुद्धिः संसारेऽपि निवर्तने॥ २८

वे सभी वनेचर मृग शुभ कर्मवाले, उत्तम धर्मका आचरण करनेवाले, विधर्म आचरणसे रहित तथा जातिस्मरणकी सिद्धिवाले थे। उन्होंने पूर्वजन्ममें गुरुकुलोंमें जो धर्म सुन रखा था, वे संसारसे निवृत्त होनेके लिये उसीको बुद्धिमें रखते थे॥ २७-२८॥

गिरिमध्ये जहुः प्राणाँल्लब्धाहारास्तपस्विनः।
तेषां तु पतितानां च यानि स्थानानि भारत॥ २९

तथैवाद्यापि दृश्यन्ते गिरौ कालञ्जरे नृप।
कर्मणा तेन ते जाताः शुभाशुभविवर्जकाः॥ ३०

उसके अनन्तर उन तपस्वी मृगोंने [बिना यत्नके] प्राप्त आहारको ग्रहण करते हुए वहीं पर्वतके मध्यमें अपने प्राणोंका त्याग कर दिया। हे भारत! हे नृप! उन पतितोंके जो स्थान थे, वे आज भी कालंजरपर्वतपर दिखायी पड़ते हैं। इस शुभकर्मके प्रभावसे वे शुभ तथा अशुभ दोनोंसे मुक्त हो गये॥ २९-३०॥

शुभाच्छुभतरां योनिं चक्रवाकत्वमागताः।
शुभे देशे शरद्वीपे सप्तैवासञ्जलौकसः॥ ३१
त्यक्त्वा सहचरीधर्मं मुनयो धर्मधारिणः।
निःसंगो निर्ममश्शान्तो निर्द्वन्द्वो निष्परिग्रहः॥ ३२
निवृत्तिनिर्वृतश्चैव शकुना नामतः स्मृताः।
ते ब्रह्मचारिणः सर्वे शकुना धर्मचारिणः॥ ३३
जातिस्मराः सुसंवृद्धाः सप्तैव ब्रह्मचारिणः।
स्थिता एकत्र सद्धर्मा विकाररहिताः सदा॥ ३४

पुनः वे सातों मृग परमपुण्य क्षेत्र शरद्वीपमें शुभसे भी शुभ जलवासी चक्रवाक योनिको प्राप्त हुए। वे सहचारी धर्मका त्याग करके मुनियोंकी भाँति धर्मनिरत होकर रहते थे। वे पक्षी निःसंग, निर्मम, शान्त, निर्द्वन्द्व, निष्परिग्रह, निवृत्ति तथा निर्वृत नामवाले थे। वे सभी ब्रह्मचर्यपरायण तथा धर्मनिरत थे। जातिस्मरणवाले तथा अभ्युदयसे युक्त वे सातों पक्षी विकारसे रहित हो सर्वदा एक ही स्थानमें निवास करते थे॥ ३१—३४॥

विप्रयोनौ तु यन्मोहान्मिथ्यापचरितं गुरौ।
तिर्यग्योनौ तथा जन्म श्राद्धाज्ज्ञानं च लेभिरे॥ ३५

तथा तु पितृकार्यार्थं कृतं श्राद्धं व्यवस्थितैः।
तदा ज्ञानं च जातिं च क्रमात्प्राप्तं गुणोत्तरम्॥ ३६

उन्होंने ब्राह्मणयोनिमें जो गुरुके प्रति दोषपूर्ण मिथ्या आचार किया था, इस कारण उन्हें पक्षियोनि प्राप्त हुई, किंतु श्राद्ध करनेके कारण उन्हें ज्ञानबल रहा। उन्होंने व्यवस्थित होकर पितरोंको प्रसन्न करनेके निमित्त श्राद्ध किया था, इसलिये उन्होंने क्रमसे उत्कृष्ट गुणोंसे युक्त ज्ञान तथा जातिको प्राप्त किया॥ ३५-३६॥

पूर्वजातिषु यद्ब्रह्म श्रुतं गुरुकुलेषु वै।
तथैव संस्थितं ज्ञानं तस्माज्ज्ञानं समभ्यसेत्॥ ३७

पूर्वजन्मोंमें गुरुकुलोंमें उन्होंने जो ज्ञान सुना था, वही ज्ञान उनमें बना हुआ था। अतः सबको ज्ञानका अभ्यास करना चाहिये॥ ३७॥

सुमनाश्च सुवाक्छुद्धः पञ्चमश्छिद्रदर्शकः।
स्वतन्त्रश्च सुयज्ञश्च कुलिंगा नामतः स्मृताः॥ ३८

[उस योनिमें] वे पक्षी सुमना, सुवाक्, शुद्ध, पंचम, छिद्रदर्शक, स्वतन्त्र और सुयज्ञ नामवाले हुए॥ ३८॥

तेषां तत्र विहंगानां चरतां धर्मचारिणाम्।
सुवृत्तमभवत्तत्र तच्छृणुष्व महामुने॥ ३९
नीपानामीश्वरो राजा प्रभावेण समन्वितः।
श्रीमानन्तःपुरवृतो वनं तत्राविवेश ह॥ ४०

हे महामुने! वनमें विचरण करनेवाले उन धर्मात्मा पक्षियोंके सामने जो सुन्दर घटना घटी, उसे आप सुनें। नीप देशका बड़ा प्रभावशाली तथा श्रीमान् राजा [विभ्राज] एक समय अन्तःपुरकी स्त्रियोंसे युक्त हो उस वनमें आया॥ ३९-४०॥

स्वतन्त्रश्चक्रवाकः स स्पृहयामास तं नृपम्।
दृष्ट्वा यान्तं सुखोपेतं राज्यशोभासमन्वितम्॥ ४१

सुखसम्पन्न तथा राज्यशोभायुक्त उस राजाको आया हुआ देखकर स्वतन्त्र नामक उस चक्रवाकने यह इच्छा की॥ ४१॥

यद्यस्ति सुकृतं किंचित्तपो वा नियमोऽपि वा।
खिन्नोऽहमुपवासेन तपसा निश्चलेन च॥ ४२
तस्य सर्वस्य पूर्णेन फलेनापि कृतेन हि।
सर्वसौभाग्यपात्रश्च भवेयमहमीदृशः॥ ४३

इस निश्चल तप एवं निरन्तर उपवाससे मैं अत्यन्त शिथिल हो गया हूँ, यदि मेरा कुछ पुण्य, तप, नियम हो तो उसके करनेसे प्राप्त हुए पूर्ण फलसे मैं इसीके सदृश सम्पूर्ण सौभाग्यका पात्र हो जाऊँ॥ ४२-४३॥

मार्कण्डेय उवाच

ततस्तु चक्रवाकौ द्वावासतुः सहचारिणौ।
आवां वै सचिवौ स्याव तव प्रियहितैषिणौ॥ ४४

मार्कण्डेयजी बोले—उसके बाद दोनों सहचारी चकवोंने कहा कि हम दोनों तुम्हारे राजा होनेपर तुम्हारे प्रिय तथा हितैषी मन्त्री होवें॥ ४४॥

तथेत्युक्ता तु तस्यासीत्तदा योगात्मनो गतिः।
एवं तौ चक्रवाकौ च स्ववाक्यं प्रत्यभाषताम्॥ ४५

तब ऐसा ही हो, ऐसा उनके कहनेसे उस योगात्माकी वैसी ही गति हो गयी, जिससे दोनों चकवोंने मन्त्री होनेके लिये अपनी बात की थी॥ ४५॥

यस्मात्कर्म ब्रुवाणस्त्वं योगधर्ममवाप्य तम्।
एवं वरं प्रार्थयसे तस्माद्वाक्यं निबोध मे॥ ४६

[तदुपरान्त उन तीनों पक्षियोंसे चौथा पक्षी शुचिवाक् कहने लगा—] योगधर्मको प्राप्त करके भी ऐसा वर चाह रहे हो। तुम कर्मकी बात कह रहे हो अर्थात् कर्मबन्धनमें बँधना चाहते हो तो अब मैं जो कह रहा हूँ, उसे सुनो॥ ४६॥

राजा त्वं भविता तात कांपिल्ये नगरोत्तमे।
एतौ ते सचिवौ स्यातां व्यभिचारप्रधर्षितौ॥ ४७

न तानूचुस्त्रयो राज्यं चतुरः सहचारिणः।
स प्रसादं पुनश्चक्रे तन्मध्ये सुमनाब्रवीत्॥ ४८

हे तात! तुम श्रेष्ठ काम्पिल्यनगरमें राजा होगे एवं योगसे भ्रष्ट हुए ये दोनों चक्रवाक तुम्हारे मन्त्री होंगे। तदुपरान्त राज्यलोलुप उन पक्षियोंसे जब अन्य पक्षियोंने बोलना बन्द कर दिया, तब वे तीनों अपने चारों सहचरोंसे कहने लगे—'हमपर कृपा कीजिये।' तब उनमेंसे सुमना नामक पक्षी बोला—॥ ४७-४८॥

अन्तवान् भविता शापः पुनर्योगमवाप्स्यथ।
सर्वसत्त्वरुतज्ञश्च स्वतन्त्रोऽयं भविष्यति॥ ४९

पितृप्रसादाद्युष्माभिः संप्राप्तं सुकृतं भवेत्।
गां प्रोक्षयित्वा धर्मेण पितृभ्यश्चोपकल्पिताः॥ ५०

तुमलोगोंका शाप भी मिट जायगा और तुमलोग पुनः योग प्राप्त करोगे—यह स्वतन्त्र सभी प्राणियोंकी भाषाका जानकार होगा। तुम सभीको पितरोंके प्रसादका पुण्य प्राप्त होगा, क्योंकि गौका प्रोक्षणकर तुमलोगोंने पितरोंके निमित्त श्राद्ध किया है॥ ४९-५०॥

अस्माकं ज्ञानसंयोगः सर्वेषां योगसाधनम्।
इदं च वाक्यं संरब्धं श्लोकमेकमुदाहृतम्॥ ५१

पुरुषान्तरितं श्रुत्वा ततो योगमवाप्स्यथ।
इत्युक्त्वा स तु मौनोऽभूद्विहंगः सुमना बुधः॥ ५२

हमलोगोंके ज्ञानका संयोग तुम सभीके योगका निमित्त कैसे बनेगा—इस विषयमें जब तुमलोग किसी पुरुषसे हमलोगोंके द्वारा कहा गया श्लोक सुनोगे, तब तुम्हें योगकी प्राप्ति होगी। इस प्रकार कहकर वह सुमना नामक बुद्धिमान् चक्रवाक चुप हो गया॥ ५१-५२॥

मार्कण्डेय उवाच

लोकानां स्वस्तये तात शन्तनुप्रवरात्मज।
इत्युक्तं तच्चरित्रं मे किं भूयः श्रोतुमिच्छसि॥ ५३

मार्कण्डेयजी बोले—हे तात! हे शन्तनुपुत्र! मैंने लोककल्याणके निमित्त यह चरित्र आपसे कहा, अब दूसरा क्या सुनना चाहते हैं?॥ ५३॥

इति श्रीशिवमहापुराणे पञ्चम्यामुमासंहितायां पितृसर्गवर्णनं सप्तव्याधगतिवर्णनं नामैकचत्वारिंशोऽध्यायः॥ ४१॥

॥ इस प्रकार श्रीशिवमहापुराणके अन्तर्गत पाँचवीं उमासंहितामें पितृसर्गवर्णन तथा सप्तव्याधगतिवर्णन नामक इकतालीसवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ ४१॥

अथ द्विचत्वारिंशोऽध्यायः

'सप्त व्याध' सम्बन्धी श्लोक सुनकर राजा ब्रह्मदत्त और उनके मन्त्रियोंको पूर्वजन्मका स्मरण होना और योगका आश्रय लेकर उनका मुक्त होना

भीष्म उवाच

मार्कण्डेय महाप्राज्ञ पितृभक्तिभृतां वर।
किं जातं तु ततो ब्रूहि कृपया मुनिसत्तम॥ १

भीष्मजी बोले—हे मार्कण्डेयजी! हे महाप्राज्ञ! हे पितृभक्तोंमें श्रेष्ठ! हे मुनिश्रेष्ठ! इसके अनन्तर क्या हुआ, कृपया आप बताइये?॥ १॥

मार्कण्डेय उवाच

ते धर्मयोगनिरताः सप्त मानसचारिणः।
वाय्वंबुभक्षाः सततं शरीरमुपशोषयन्॥ २

स राजान्तःपुरवृतो नन्दने मघवा इव।
क्रीडित्वा सुचिरं तत्र सभार्यः स्वपुरं ययौ॥ ३

अनूहो नाम तस्यासीत्पुत्रः परमधार्मिकः।
तं विभ्राजः सुतं राज्ये स्थापयित्वा वनं ययौ॥ ४

तपः कर्तुं समारेभे यत्र ते सहचारिणः।
स वै तत्र निराहारो वायुभक्षो महातपाः॥ ५

ततो विभ्राजितं तेन वैभ्राजं नाम तद्वनम्।
बभूव सुप्रसिद्धं हि योगसिद्धिप्रदायकम्॥ ६

तत्रैव ते हि शकुनाश्चत्वारो योगधर्मिणः।
योगभ्रष्टास्त्रयश्चैव देहत्यागकृतोऽभवन्॥ ७

कांपिल्ये नगरे ते तु ब्रह्मदत्तपुरोगमाः।
जाताः सप्त महात्मानः सर्वे विगतकल्मषाः॥ ८

स्मृतिमन्तोऽत्र चत्वारस्त्रयस्तु परिमोहिताः।
स्वतन्त्रस्त्वणुहाज्जातो ब्रह्मदत्तो महौजसः॥ ९

छिद्रदर्शी सुनेत्रस्तु वेदवेदांगपारगौ।
जातौ श्रोत्रियदायादौ पूर्वजातिसहोषितौ॥ १०

पञ्चालो बह्वृचस्त्वासीदाचार्यत्वं चकार ह।
द्विवेदः पुंडरीकश्च छंदोगोऽध्वर्युरेव च॥ ११

ततो राजा सुतं दृष्ट्वा ब्रह्मदत्तमकल्मषम्।
अभिषिच्य स्वराज्ये तु परां गतिमवाप्तवान्॥ १२

पञ्चालः पुण्डरीकस्तु पुत्रौ संस्थाप्य मन्दिरे।
विविशतुर्वनं तत्र गतौ परमिकां गतिम्॥ १३

ब्रह्मदत्तस्य भार्या तु सन्नतिर्नाम भारत।
सा त्वेकभावसंयुक्ता रेमे भर्त्रा सहैव तु॥ १४

मार्कण्डेयजी बोले—[तदुपरान्त उनका जन्म मानसरोवरके हंसोंके रूपमें हुआ।] वे मानसरोवरमें विचरण करनेवाले सातों पक्षी धर्मयोगमें तत्पर हो पवन तथा जलका आहार करते हुए अपना शरीर सुखाने लगे। इधर, नीपदेशका वह राजा [उन पक्षियोंकी योगचर्याको देखकर योगधर्मकी प्राप्तिकी अभिलाषा करता हुआ] अन्तःपुरकी स्त्रियोंके साथ नन्दनवनमें इन्द्रके समान क्रीड़ाकर भार्यासहित अपने नगरको चला गया॥ २-३॥

उसका अनूह (अणुह) नामक परम धर्मात्मा पुत्र था, उस पुत्रको राज्यपर स्थापित करके उसने वनकी ओर प्रस्थान किया और जहाँ वे सहचारी हंस पक्षी थे, वहींपर वह महातपस्वी निराहार रहकर वायुभक्षण करते हुए तप करने लगा॥ ४-५॥

उससे विभ्राजित होनेके कारण वह वन योगसिद्धि-प्रदायक वैभ्राज नामसे विशेष प्रसिद्ध हुआ॥ ६॥

वहींपर योगधर्ममें तत्पर उन चारों पक्षियोंने तथा योगसे भ्रष्ट शेष तीन पक्षियोंने अपने शरीरका त्याग किया, पुनः वे काम्पिल्य नामक नगरमें ब्रह्मदत्त आदि नामवाले सात निष्पाप महात्मा हुए॥ ७-८॥

इनमें चारको तो अपने पूर्वजन्मकी स्मृति बनी रही, किंतु [शेष] तीन पूर्वजन्मकी स्मृतिके नष्ट हो जानेसे मोहमें पड़ गये थे। उनमें स्वतन्त्र नामक चक्रवाक महातेजस्वी अणुहके पुत्र ब्रह्मदत्त नामसे विख्यात हुआ॥ ९॥

छिद्रदर्शी और सुनेत्र पूर्वजन्ममें उसके साथ रहनेके कारण उसी नगरमें वेद-वेदांगपारगामी [पंचाल तथा पुण्डरीक नामवाले] श्रोत्रियपुत्र हुए। पंचाल बह्वृच अर्थात् ऋग्वेदी था और आचार्यत्व करता था। पुण्डरीक दो वेदोंका ज्ञाता होनेसे छन्दोगान करनेवाला और अध्वर्यु हुआ॥ १०-११॥

इधर राजाने अपने पुत्र ब्रह्मदत्तको पापरहित देखकर उसका राज्याभिषेक करके परम गति प्राप्त की। पंचाल और पुण्डरीकके भी पिताने अपने दोनों पुत्रोंको राजाके मन्त्रिपदपर अभिषिक्तकर वनमें जाकर परम गति प्राप्त की। हे भारत! ब्रह्मदत्तकी सन्नति नामक भार्या थी, वह अपने पतिमें अनन्यभावसे रमण करती थी॥ १२—१४॥

शेषास्तु चक्रवाका वै कांपिल्ये सहचारिणः।
जाताः श्रोत्रियदायादा दरिद्रस्य कुले नृप॥ १५
धृतिमान्सुमहात्मा च तत्त्वदर्शी निरुत्सुकः।
वेदाध्ययनसम्पन्नाश्चत्वारश्छिद्रदर्शिनः ॥ १६

हे राजन्! सहचारी (चारों) चक्रवाक उसी काम्पिल्य नगरमें किसी दरिद्र श्रोत्रियके पुत्रोंके रूपमें उत्पन्न हुए। धृतिमान्, सुमहात्मा, तत्त्वदर्शी और निरुत्सुक उनके नाम थे। ये सभी चारों वेदाध्ययनसम्पन्न और सांसारिक दोषोंके ज्ञाता थे॥ १५-१६॥

ते योगनिरताः सिद्धाः प्रस्थिताः सर्व एव हि।
आमंत्र्य च मिथः शंभोः पदाम्भोजं प्रणम्य तु॥ १७
ते तमूचुर्द्विजाः सर्वे पितरं पुनरेव च।
करिष्यामो विधानं ते येन त्वं वर्तयिष्यसि॥ १८

एक समय इन योगनिरत सिद्ध पुरुषोंने परस्पर विचार किया और [अपना कल्याण करनेके लिये] वे शिवजीके चरणकमलोंमें प्रणामकर प्रस्थान करने लगे। उस समय [पिताके द्वारा रोके जानेपर] उन सभी ब्राह्मणोंने अपने पितासे कहा—हम आपकी आजीविकाकी व्यवस्था किये जा रहे हैं, जिससे आपका निर्वाह हो जायगा॥ १७-१८॥

इमं श्लोकं महार्थं त्वं राजानं सहमंत्रिणम्।
श्रावयेथाः समागम्य ब्रह्मदत्तमकल्मषम्॥ १९

आप मन्त्रियोंसहित निष्पाप ब्रह्मदत्त राजाके पास जाकर महान् अर्थपूर्ण इस श्लोकको सुना देना॥ १९॥

प्रीतात्मा दास्यति स ते ग्रामान् भोगांश्च पुष्कलान्।
एतावदुक्त्वा ते सर्वे पूजयित्वा च तं गुरुम्।
योगधर्ममनुप्राप्य परां निर्वृतिमाययुः॥ २०
चतुर्णां तु पिता योऽसौ ब्राह्मणानां महात्मनाम्।
श्लोकं सोऽधीत्य पुत्रेभ्यः कृतकृत्य इवाभवत्॥ २१

इस श्लोकसे हर्षित हुआ राजा अनेक ग्राम तथा नाना प्रकारकी भोग-सामग्री देगा। इस प्रकार कहकर वे अपने पिताकी पूजा कर और योगधर्म प्राप्तकर परमशान्तिका अनुभव करने लगे। उन चारोंके पिता भी अपने महात्मा पुत्रोंके द्वारा कहे गये श्लोकका अध्ययनकर कृतकृत्य हो गये॥ २०-२१॥

श्रावयामास राजानं श्लोकं तं सचिवौ च तौ।
सप्तव्याधा दशार्णेषु मृगाः कालञ्जरे गिरौ॥ २२
चक्रवाकाः शरद्वीपे हंसाः सरसि मानसे।
तेऽभिजाताः कुरुक्षेत्रे ब्राह्मणा वेदपारगाः॥ २३
प्रस्थिता दीर्घमध्वानं यूयं किमवसीदथ।
तच्छ्रुत्वा मोहमगमद्ब्रह्मदत्तो नराधिपः॥ २४

उसने राजाके पास जाकर मन्त्रियोंकी उपस्थितिमें उस श्लोकको सुनाया—'जो दशार्ण देशमें सात व्याध हुए, कालंजरपर्वतपर सात हरिण हुए, शरद्वीपमें सात चक्रवाक और पुनः मानसरोवरमें सात हंस हुए; वे ही कुरुक्षेत्रमें वेदवेत्ता ब्राह्मण हुए हैं। चार तो अपना रास्ता पार कर चुके, अब तीन शेष तुमलोग क्यों इस जगत्के दुर्गम मार्गमें भटक रहे हो?' इतना सुनते ही राजा ब्रह्मदत्त उसी क्षण मोहित हो गया॥ २२—२४॥

सचिवश्चास्य पाञ्चालः पुण्डरीकश्च भारत।
ततस्ते तत्सरः स्मृत्वा योगं तमुपलभ्य च॥ २५
ब्राह्मणं विपुलैरर्थैर्भोगैश्च समयोजयन्।
अभिषिच्य स्वराज्ये तु विष्वक्सेनमरिन्दमम्॥ २६
जगाम ब्रह्मदत्तो हि सदारो वनमेव ह।
प्राप्य योगं बलादेव गतिं प्राप सुदुर्लभाम्॥ २७

हे भारत! उसीके साथ उसके सचिव पांचाल और पुण्डरीक भी मोहित हो गये। फिर वे मानसरोवरका स्मरण करते ही योगको प्राप्त हो गये। उसके अनन्तर ब्रह्मदत्तने उस ब्राह्मणको बहुत-सा रथ, भोगसामग्री एवं धन दिया और अपने विष्वक्सेन नामक शत्रुहन्ता पुत्रको राज्यपर अभिषिक्तकर स्वयं पत्नीसमेत वन चला गया और योगबलसे श्रेष्ठ गतिको प्राप्त किया॥ २५—२७॥

पुण्डरीकोऽपि धर्मात्मा सांख्ययोगमनुत्तमम्।
प्राप्य योगगतिः सिद्धो विशुद्धस्तेन कर्मणा॥ २८

क्रमं प्रणीय पाञ्चाल्यः शिक्षां चोत्पाद्य केवलाम्।
योगाचार्यगतिं प्राप यशश्चाग्र्यं महातपाः॥ २९

धर्मात्मा पुण्डरीक भी सर्वश्रेष्ठ सांख्ययोगको प्राप्तकर योगका आश्रय ले उसके साधनसे विशुद्ध और सिद्ध हो गया। इसी प्रकार महातपस्वी पांचाल (पंचाल)-ने भी [वैदिकोंमें प्रसिद्ध] क्रमपाठ तथा शिक्षा [वेदांगविशेष अथवा योगशास्त्रीय ग्रन्थ]-का प्रणयनकर उत्तम कीर्ति तथा योगाचार्यगति (मोक्ष) प्राप्त की॥ २८-२९॥

शूरा ये सम्प्रपद्यन्ते अपुनर्भवकांक्षिणः।
पापं प्रणाशयन्त्वद्य तच्छम्भोः परमं पदम्॥ ३०
शारीरे मानसे चैव पापे वाग्जे महामुने।
कृते सम्यगिदं भक्त्या पठेच्छ्रद्धासमन्वितः॥ ३१

जिन शूरोंको मुक्तिकी इच्छा हो, वे भगवान् सदाशिवके चरणकमलोंका ध्यानकर अपना पाप नष्ट करें। हे महामुने! शरीर, मन तथा वाणीसे किये गये पापके नाशके लिये श्रद्धा एवं भक्तिसे समन्वित हो इस आख्यानका भलीभाँति पाठ करना चाहिये॥ ३०-३१॥

मुच्यते सर्वपापेभ्यः शिवनामानुकीर्तनात्।
उच्चार्यमाण एतस्मिन्देवदेवस्य तस्य वै॥ ३२
विलयं पापमायाति ह्यामभाण्डमिवाम्भसि।

शिवनामका पुनः-पुनः कीर्तन करनेसे व्यक्ति सभी पापोंसे मुक्त हो जाता है। उन देवदेव शिवके नामोंका उच्चारण होते ही पाप उसी प्रकार विलीन हो जाता है, जैसे पानी भरते ही मिट्टीका कच्चा घड़ा विनष्ट हो जाता है॥ ३२½॥

तस्मात्तत्संचिते पापे समानान्तरमेव च॥ ३३
जप्तव्यमेतत्पापस्य प्रशमाय महामुने।
नरैः श्रद्धालुभिर्भूयः सर्वकामफलाप्तये॥ ३४
पुष्ट्यर्थमिममध्यायं पठेदेनं शृणोति वा।
मुच्यते सर्वपापेभ्यो मोक्षं याति न संशयः॥ ३५

इतना ही नहीं, हे महामुने! संचित [अथवा किये गये] पापके नाशके लिये भी निरन्तर शिवनामका जप अवश्य करना चाहिये। श्रद्धालुजनोंको अपने मनोभिलषितकी सिद्धिहेतु भी शिवनामका जप करना आवश्यक है। जो मनुष्य पुष्टिके लिये इस अध्यायको पढ़ता और सुनता है, वह सब पापोंसे छूटकर मोक्षको प्राप्त करता है, इसमें सन्देह नहीं॥ ३३—३५॥

इति श्रीशिवमहापुराणे पञ्चम्यामुमासंहितायां पितृकल्पे पितृप्रभाववर्णनं नाम द्विचत्वारिंशोऽध्यायः॥ ४२॥

॥ इस प्रकार श्रीशिवमहापुराणके अन्तर्गत पाँचवीं उमासंहितामें पितृप्रभाववर्णन नामक बयालीसवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ ४२॥

अथ त्रिचत्वारिंशोऽध्यायः

आचार्यपूजन एवं पुराणश्रवणके अनन्तर कर्तव्य-कथन

शौनक उवाच

आचार्यपूजनं ब्रूहि सूत व्यासगुरोऽधुना।
ग्रन्थस्य श्रवणान्ते हि किं कर्तव्यं तदप्यहो॥ १

शौनकजी बोले—हे सूतजी! हे व्यासशिष्य! अब आचार्यपूजनकी विधिको कहिये और पुराण सुननेके बाद क्या करना चाहिये, यह भी बताइये?॥ १॥

सूत उवाच

पूजयेद्विधिवद्भक्त्याचार्यं श्रुत्वा कथां पराम्।
ग्रन्थान्ते विधिवद्दद्यादाचार्याय प्रसन्नधीः॥ २

सूतजी बोले—इस सर्वोत्तम कथाको सुनकर भक्तिपूर्वक सविधि आचार्यका पूजन करना चाहिये और प्रसन्नतापूर्वक उन्हें दक्षिणा देनी चाहिये॥ २॥

ततो वक्तारमानम्य संपूज्य च यथाविधि।
भूषणैर्हस्तकर्णानां वस्त्रैः सौम्यादिभिः सुधीः॥ ३

शिवपूजासमाप्तौ तु दद्याद्धेनुं सवत्सिकाम्।
कृत्वासनं सुवर्णस्य पलमानस्य साम्बरम्॥ ४

तत्रास्थाप्य शुभं ग्रंथं लिखितं ललिताक्षरैः।
आचार्याय सुधीर्दद्यान्मुक्तः स्याद्भवबन्धनैः॥ ५

उसके अनन्तर बुद्धिमान्‌को चाहिये कि पुराण-वक्ताको नमस्कारकर विधिपूर्वक हाथ एवं कानोंके आभूषण और रेशमी तथा सूती वस्त्रोंसे उनका पूजन करे। शिवपूजा समाप्त हो जानेपर सवत्सा गौका दान करे। उसके बाद वह सुधी एक पल सुवर्णसे आसन [सिंहासन] बनवाकर उसपर वस्त्र बिछाये और उस आसनपर सुन्दर अक्षरोंसे लिखे हुए शुभ ग्रन्थको स्थापितकर आचार्यको प्रदान करे, ऐसा करनेसे वह संसारके बन्धनोंसे मुक्त हो जाता है॥ ३—५॥

ग्रामो गजो हयश्चापि यथाशक्त्यपराणि च।
मुने सर्वाणि देयानि वाचकाय महात्मने॥ ६

विधानसहितं सम्यक् श्रुतं हि सफलं स्मृतम्।
पुराणं शौनकमुने सत्यमेवोदितं मया॥ ७

हे महामुने! महात्मा कथावाचकको यथाशक्ति ग्राम, गज, घोड़ा एवं अन्य सभी वस्तुएँ भी देनी चाहिये। हे शौनक! विधिपूर्वक भलीभाँति सुना हुआ यह पुराण फलदायी कहा गया है। यह मैं सत्य कह रहा हूँ॥ ६-७॥

तस्माद्विधानयुक्तं तु शृणुयाद्भक्तितो मुने।
पुराणं निगमार्थाढ्यं पुण्यदं हृदयं श्रुतेः॥ ८

अतः हे मुने! वेदार्थसे युक्त, पुण्यप्रद तथा श्रुतिके हृदयरूप पुराणको भक्तिपूर्वक विधानके साथ सुनना चाहिये॥ ८॥

इति श्रीशिवमहापुराणे पञ्चम्यामुमासंहितायां व्यासपूजनप्रकारो नाम त्रिचत्वारिंशोऽध्यायः॥ ४३॥

॥ इस प्रकार श्रीशिवमहापुराणके अन्तर्गत पाँचवीं उमासंहितामें व्यासपूजनप्रकार नामक तैंतालीसवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ ४३॥

अथ चतुश्चत्वारिंशोऽध्यायः

व्यासजीकी उत्पत्तिकी कथा, उनके द्वारा तीर्थाटनके प्रसंगमें काशीमें व्यासेश्वरलिंगकी स्थापना तथा मध्यमेश्वरके अनुग्रहसे पुराणनिर्माण

मुनय ऊचुः

व्यासोत्पत्तिं महाबुद्धे ब्रूहि सूत दयानिधे।
कृपया परया स्वामिन् कृतार्थान्नः कुरु प्रभो॥ १

मुनि बोले—हे महाबुद्धे! हे सूत! हे दयासागर! हे स्वामिन्! हे प्रभो! अब आप व्यासजीकी उत्पत्तिके विषयमें कहिये और अपनी परम कृपासे हमलोगोंको कृतार्थ कीजिये॥ १॥

व्यासस्य जननी प्रोक्ता नाम्ना सत्यवती शुभा।
विवाहिता तु सा देवी राज्ञा शन्तनुना किल॥ २

व्यासजीकी माता कल्याणमयी सत्यवती कही गयी हैं और उन देवीका विवाह राजा शन्तनुसे हुआ था॥ २॥

तस्यां जातो महायोगी कथं व्यासः पराशरात्।
सन्देहोऽत्र महाञ्जातस्तं भवाञ्छेत्तुमर्हति॥ ३

महायोगी व्यास उनके गर्भमें पराशरसे किस प्रकार उत्पन्न हुए? इस विषयमें [हमलोगोंको] महान् सन्देह है, आप उसे दूर कीजिये॥ ३॥

सूत उवाच

एकदा तीर्थयात्रायां व्रजन्योगी पराशरः।
यदृच्छयागतो रम्यं यमुनायास्तटं शुभम्॥ ४

सूतजी बोले—[हे मुनियो!] किसी समय तीर्थयात्रापर जाते हुए योगी पराशर अकस्मात् यमुनाके

निषादमाह धर्मात्मा कुर्वन्तं भोजनं तदा।
नयस्व यमुनापारं जलयानेन मामरम्॥ ५

इत्युक्तो मुनिना तेन निषादः स्वसुतां जगौ।
मत्स्यगन्धाममुं बाले पारं नावा नय द्रुतम्॥ ६

तापसोऽयं महाभागे दृश्यन्तीगर्भसम्भवः।
तितीर्षुरस्ति धर्माब्धिश्चतुराम्नायपारगः॥ ७

इति विज्ञापिता पित्रा मत्स्यगन्धा महामुनिम्।
संवाहयति नौकायामासीनं सूर्यरोचिषम्॥ ८

कालयोगान्महायोगी तस्यां कामातुरोऽभवत्।
दृष्ट्वा योऽप्सरसां रूपं न कदापि विमोहितः॥ ९

ग्रहीतुकामः स मुनिर्दाशकन्यां मनोहराम्।
दक्षिणेन करेणैतामस्पृशद्दक्षिणे करे॥ १०

तमुवाच विशालाक्षी वचनं स्मितपूर्वकम्।
किमिदं क्रियते कर्म वाचंयमविगर्हितम्॥ ११

वसिष्ठस्य कुले रम्ये त्वं जातोऽसि महामते।
निषादजा त्वहं ब्रह्मन् कथं संगो घटेत नौ॥ १२

दुर्लभं मानुषं जन्म ब्राह्मणत्वं विशेषतः।
तत्रापि तापसत्वं च दुर्लभं मुनिसत्तम॥ १३

विद्यया वपुषा वाचा कुलशीलेन चान्वितः।
कामबाणवशं यातो महदाश्चर्यमत्र हि॥ १४

प्रवृत्तमप्यसत्कर्म कर्तुमेनं न कोऽपि ह।
भुवि वारयितुं शक्तः शापभीत्यास्य योगिनः॥ १५

इति संचिन्त्य हृदये निजगाद महामुनिम्।
तावद्धैर्यं कुरु स्वामिन्यावत्त्वां पारयामि न॥ १६

सूत उवाच

इति श्रुत्वा वचस्तस्या योगिराजः पराशरः।
तत्याज पाणिं तरसा सिन्धोः पारं गतः पुनः॥ १७

रम्य तथा सुन्दर तटपर पहुँचे। तब उन धर्मात्माने भोजन करते हुए निषादराजसे कहा—तुम मुझे शीघ्र ही नावसे यमुनाके उस पार ले चलो॥ ४-५॥

इस प्रकार उन मुनिद्वारा कहे जानेपर उस निषादने अपनी मत्स्यगन्धा नामक कन्यासे कहा—हे पुत्रि! तुम शीघ्र ही नावसे इन्हें पार ले जाओ। हे महाभागे! दृश्यन्तीके गर्भसे उत्पन्न हुए ये तपस्वी चारों वेदोंके पारगामी विद्वान् एवं धर्मके समुद्र हैं, ये इस समय यमुना पार करना चाहते हैं॥ ६-७॥

पिताके इतना कहनेपर मत्स्यगन्धा सूर्यके समान कान्तिवाले उन महामुनिको नावमें बैठाकर पार ले जाने लगी। जो कभी अप्सराओंके रूपको देखकर भी विमोहित नहीं हुए, वे महायोगी पराशरमुनि कालके प्रभावसे उस (मत्स्यगन्धा)-के प्रति आसक्त हो उठे॥ ८-९॥

उन मुनिने उस मनोहर दाश-कन्याको ग्रहण करनेकी इच्छासे अपने दाहिने हाथसे उसके दाहिने हाथका स्पर्श किया। तब विशाल नयनोंवाली उस कन्याने मुसकराकर उनसे यह वचन कहा—हे महर्षे! आप ऐसा निन्दनीय कर्म क्यों कर रहे हैं?॥ १०-११॥

हे महामते! आप वसिष्ठके उत्तम कुलमें उत्पन्न हुए हैं और मैं निषादकन्या हूँ, अतः हे ब्रह्मन्! हम दोनोंका संग कैसे सम्भव है?॥ १२॥

हे मुनिश्रेष्ठ! मनुष्य-जन्म ही दुर्लभ है, विशेषकर ब्राह्मणजन्म तो और भी दुर्लभ है और उसमें भी तपस्वी होना तो अति दुर्लभ है। आप विद्या, शरीर, वाणी, कुल एवं शीलसे युक्त होकर भी कामबाणके वशीभूत हो गये, यह तो महान् आश्चर्य है!॥ १३-१४॥

इन योगीके शापके भयसे अनुचित कर्म करनेमें प्रवृत्त इनको इस पृथ्वीपर कोई भी रोक पानेमें समर्थ नहीं है—ऐसा मनमें विचारकर उसने महामुनिसे कहा—हे स्वामिन्! जबतक मैं आपको पार नहीं ले चलती, तबतक आप धैर्य धारण कीजिये॥ १५-१६॥

सूतजी बोले—उसकी यह बात सुनकर योगिराज पराशरने शीघ्र ही उसका हाथ छोड़ दिया और पुनः नदीके पार चले गये॥ १७॥

पुनर्जग्राह तां बालां मुनिः कामप्रपीडितः।
कंपमाना तु सा बाला तमुवाच दयानिधिम्॥ १८
दुर्गन्धाहं मुनिश्रेष्ठ कृष्णवर्णा निषादजा।
भवांस्तु परमोदारविचारो योगिसत्तमः॥ १९
नावयोर्घटते सङ्गो काचकाञ्चनयोरिव।
तुल्यजात्याकृतिकयोः संगः सौख्यप्रदो भवेत्॥ २०

उसके अनन्तर कामके वशीभूत हुए मुनिने पुनः उसका हाथ पकड़ा, तब काँपती हुई उस कन्याने उन करुणासागरसे कहा—हे मुनिश्रेष्ठ! मैं दुर्गन्धियुक्त तथा काले वर्णवाली निषादकन्या हूँ और आप परम उदार विचारवान् योगिश्रेष्ठ हैं। काँच और कांचनके समान हम दोनोंका संयोग उचित नहीं है। समान जाति एवं रूपवालोंका संग सुखदायक होता है॥ १८—२०॥

इत्युक्तेन तया तेन क्षणमात्रेण कामिनी।
कृता योजनगंधा तु रम्यरूपा मनोरमा॥ २१

उसके ऐसा कहनेपर उन्होंने क्षणमात्रमें उसे योजनमात्रतक सुगन्धि फैलानेवाली, रम्य रूपवाली तथा मनोरम कामिनी बना दिया॥ २१॥

पुनर्जग्राह तां बालां स मुनिः कामपीडितः।
ग्रहीतुकामं तं दृष्ट्वा पुनः प्रोवाच वासवी॥ २२

रात्रौ व्यवायः कर्तव्यो न दिवेति श्रुतिर्जगौ।
दिवासंगे महान्दोषो निन्दा चापि दुरासदा॥ २३

तस्मात्तावत्प्रतीक्षस्व यावद्भवति यामिनी।
पश्यन्ति मानवाश्चात्र पिता मे च तटे स्थितः॥ २४

इसके बाद मोहित हुए उन मुनिने उसे पुनः पकड़ लिया, तब ग्रहण करनेकी इच्छावाले उन मुनिकी ओर देखकर वासवीने पुनः कहा—रात्रिमें प्रसंग करना चाहिये, दिनमें उचित नहीं है—ऐसा वेदने कहा है। दिनमें प्रसंग करनेसे महान् दोष होता है तथा दुःखदायी निन्दा भी होती है। अतः जबतक रात न हो, तबतक प्रतीक्षा कीजिये, यहाँ मनुष्य देख रहे हैं और विशेषकर मेरे पिता तो नदीतटपर ही स्थित हैं॥ २२—२४॥

तयोक्तमिदमाकर्ण्य वचनं मुनिपुङ्गवः।
नीहारं कल्पयामास सद्यः पुण्यबलेन वै॥ २५

उसकी यह बात सुनकर उन मुनिश्रेष्ठने शीघ्रतासे अपने पुण्यबलसे कोहरेका निर्माण कर दिया॥ २५॥

नीहारे च समुत्पन्ने तमसा रात्रिसन्निभे।
व्यवायचकिता बाला पुनः प्रोवाच तं मुनिम्॥ २६

योगिन्नमोघवीर्यस्त्वं भुक्त्वा गन्तासि मां यदि।
सगर्भा स्यां तदा स्वामिन्का गतिर्मे भवेदिति॥ २७

कन्याव्रतं महाबुद्धे मम नष्टं भविष्यति।
हसिष्यन्ति तदा लोकाः पितरं किं ब्रवीम्यहम्॥ २८

अन्धकारके कारण रात्रिसदृश प्रतीत होनेवाले उस उत्पन्न हुए कोहरेको देखकर संसर्गके प्रति आश्चर्यचकित हुई उस निषाद-कन्याने पुनः कहा—हे योगिन्! आप तो अमोघवीर्य हैं। हे स्वामिन्! मेरा संगकर आप तो चले जायँगे और यदि मैं गर्भवती हो गयी तो मेरी क्या गति होगी? हे महाबुद्धे! इससे मेरा कन्याव्रत नष्ट हो जायगा, तब सभी लोग मेरी हँसी करेंगे और मैं अपने पितासे क्या कहूँगी?॥ २६—२८॥

पराशर उवाच

रम बाले मया सार्धं स्वच्छन्दं कामजै रसैः।
स्वीयाभिलाषमाख्याहि पूरयाम्यधुना प्रिये॥ २९

मदाज्ञासत्यकरणान्नाम्ना सत्यवती भव।
वन्दनीया तथाशेषैर्योगिभिस्त्रिदशैरपि॥ ३०

पराशर बोले—हे बाले! हे प्रिये! तुम इस समय मेरे साथ अनुरागसहित स्वच्छन्द होकर रमण करो, तुम अपनी अभिलाषा बताओ, मैं उसे पूर्ण करूँगा। मेरी आज्ञाको सत्य करनेसे तुम सत्यवती नामवाली होगी और सम्पूर्ण योगीजन तथा देवगण तुम्हारी वन्दना करेंगे॥ २९-३०॥

सत्यवत्युवाच

जानते न पिता माता न वान्ये भुवि मानवाः।
कन्याधर्मो न मे हन्याद्यदि स्वीकुरु मां तदा॥ ३१

पुत्रश्च त्वत्समो नाथ भवेदद्भुतशक्तिमान्।
सौगन्ध्यं सर्वदाङ्गे मे तारुण्यं च नवं नवम्॥ ३२

पराशर उवाच

शृणु प्रिये तवाभीष्टं सर्वं पूर्णं भविष्यति।
विष्ण्वंशसंभवः पुत्रो भविता ते महायशाः॥ ३३

किंचिद्वै कारणं विद्धि यतोऽहं कामपीडितः।
दृष्ट्वा चाप्सरसां रूपं नामुह्यन्मे मनः क्वचित्॥ ३४

मीनगन्धां समालक्ष्य त्वां मोहवशगोऽभवम्।
न बाले भालपट्टस्थो ब्रह्मलेखोऽन्यथा भवेत्॥ ३५

पुराणकर्ता पुत्रस्ते वेदशाखाविभागकृत्।
भविष्यति वरारोहे ख्यातकीर्तिर्जगत्त्रये॥ ३६

इत्युक्त्वा तां सुरम्याङ्गीं भुक्त्वा योगविशारदः।
वव्राज शीघ्रं यमुनाजले स्नात्वा महामुने॥ ३७

सापि गर्भं दधाराशु द्वादशात्मसमप्रभम्।
असूत सूर्यजाद्वीपे कामदेवमिवात्मजम्॥ ३८

वामे कमण्डलुं बिभ्रद्दक्षिणे दण्डमुत्तमम्।
पिशंगीभिर्जटाभिश्च राजितो महसां चयः॥ ३९

जातमात्रस्तु तेजस्वी मातरं प्रत्यभाषत।
गच्छ मातर्यथाकामं गच्छाम्यहमतः परम्॥ ४०

मातर्यदा भवेत्कार्यं तव किंचिद् हृदीप्सितम्।
संस्मृतश्चागमिष्यामि त्वदिच्छापूर्तिहेतवे॥ ४१

इत्युक्त्वा मातृचरणावभिवाद्य तपोनिधिः।
जगाम च तपः कर्तुं तीर्थं पापविशोधनम्॥ ४२

सत्यवती बोली—[हे महर्षे!] यदि मेरे माता-पिता एवं पृथ्वीके अन्य मनुष्य इस कृत्यको न जानें तथा मेरा कन्याधर्म नष्ट न हो तो आप मुझे ग्रहण करें और हे नाथ! मेरा पुत्र आपके समान ही अद्भुत शक्तिसम्पन्न हो। मेरे शरीरमें सुगन्धि तथा नवयौवन सदा बना रहे॥ ३१-३२॥

पराशर बोले—हे प्रिये! सुनो, तुम्हारा सारा मनोरथ पूर्ण होगा। तुम्हारा पुत्र विष्णुके अंशसे युक्त तथा महायशस्वी होगा॥ ३३॥

मैं जो इस समय मुग्ध हुआ हूँ, उसमें निश्चय ही कुछ कारण समझो। अप्सराओंके रूपको देखकर भी मेरा मन कभी मोहित नहीं हुआ, किंतु मछलीके समान गन्धवाली तुम्हें देखकर मैं मोहके वशीभूत हो गया हूँ। हे बाले! ललाटमें लिखी हुई ब्रह्मलिपि अन्यथा होनेवाली नहीं है। हे वरारोहे! तुम्हारा पुत्र पुराणोंका कर्ता, वेदशाखाओंका विभाग करनेवाला और तीनों लोकोंमें प्रसिद्ध कीर्तिवाला होगा॥ ३४—३६॥

हे महामुने! ऐसा कहकर मनोहर अंगोंवाली उस मत्स्यगन्धाका संगकर योगप्रवीण पराशरजी यमुनामें स्नानकर शीघ्र चले गये। उसके अनन्तर उस कन्याने शीघ्र ही गर्भ धारण किया और यमुनाके द्वीपमें सूर्यके समान प्रभावाले तथा कामदेवके समान सुन्दर पुत्रको उत्पन्न किया॥ ३७-३८॥

वह [बालक] अपने बायें हाथमें कमण्डलु और दाहिने हाथमें श्रेष्ठ दण्ड धारण किये हुए, पीतवर्णकी जटाओंसे सुशोभित और महान् तेजोराशिवाला था॥ ३९॥

उत्पन्न होते ही उस तेजस्वीने अपनी मातासे कहा—हे मातः! तुम अपने यथेष्ट स्थानको जाओ, अब मैं भी जाता हूँ। हे मातः! जब कभी भी तुम्हारा कोई अभीष्ट कार्य हो, तब तुम्हारे द्वारा स्मरण किये जानेपर मैं तुम्हारी इच्छाकी पूर्तिके लिये उपस्थित हो जाऊँगा॥ ४०-४१॥

ऐसा कहकर उस महातपस्वीने अपनी माताके चरणोंमें प्रणाम किया और तप करनेके लिये पापनाशक तीर्थमें चला गया॥ ४२॥

सापि पित्रन्तिकं याता पुत्रस्नेहाकुला सती।
स्मरन्ती चरितं सूनोर्वर्णयन्ती स्वभाग्यकम्॥ ४३

सत्यवती भी पुत्रस्नेहसे व्याकुल होकर अपने पुत्रके चरित्रका स्मरण करती हुई तथा अपने भाग्यकी सराहना करती हुई पिताके पास चली गयी॥ ४३॥

द्वीपे जातो यतो बालस्तेन द्वैपायनोऽभवत्।
वेदशाखाविभजनाद्वेदव्यासः प्रकीर्तितः॥ ४४

द्वीपमें उत्पन्न होनेके कारण उस बालकका नाम द्वैपायन हुआ और वेद-शाखाओंका विभाग करनेके कारण वह वेदव्यास कहा गया॥ ४४॥

तीर्थराजं प्रथमतो धर्मकामार्थमोक्षदम्।
नैमिषं च कुरुक्षेत्रं गङ्गाद्वारमवन्तिकाम्॥ ४५
अयोध्यां मथुरां चैव द्वारकाममरावतीम्।
सरस्वतीं सिंधुसङ्गं गंगासागरसंगमम्॥ ४६
काञ्चीं च त्र्यम्बकं चापि सप्तगोदावरीतटम्।
कालञ्जरं प्रभासं च तथा बदरिकाश्रमम्॥ ४७
महालयं तथोंकारक्षेत्रं वै पुरुषोत्तमम्।
गोकर्णं भृगुकच्छं च भृगुतुङ्गं च पुष्करम्॥ ४८
श्रीपर्वतादितीर्थानि धारातीर्थं तथैव च।
गत्वावगाह्य विधिना चचार परमं तपः॥ ४९

धर्म-अर्थ-काम-मोक्षको देनेवाले तीर्थराज प्रयाग, नैमिषारण्य, कुरुक्षेत्र, गंगाद्वार, अवन्तिका, अयोध्या, मथुरा, द्वारका, अमरावती, सरस्वती, सिन्धुसंगम, गंगासागरसंगम, कांची, त्र्यम्बक, सप्तगोदावरीतट, कालंजर, प्रभास, बदरिकाश्रम, महालय, ॐकारेश्वरक्षेत्र, पुरुषोत्तमक्षेत्र, गोकर्ण, भृगुकच्छ, भृगुतुंग, पुष्कर, श्रीपर्वत और धारातीर्थ आदि तीर्थोंमें जाकर वहाँ विधिपूर्वक स्नानकर उस (सत्यवतीनन्दन)-ने उत्तम तपस्या की॥ ४५—४९॥

एवं तीर्थान्यनेकानि नानादेशस्थितानि ह।
पर्यटन्कालिकासूनुः प्रापद्वाराणसीं पुरीम्॥ ५०
यत्र विश्वेश्वरः साक्षादन्नपूर्णा महेश्वरी।
भक्तानाममृतं दातुं विराजेते कृपानिधी॥ ५१

इस प्रकार अनेक देशोंमें स्थित अनेक तीर्थोंमें भ्रमण करते हुए वे कालीपुत्र व्यास वाराणसीपुरीमें जा पहुँचे, जहाँ कृपानिधि साक्षात् विश्वेश्वर तथा महेश्वरी अन्नपूर्णा अपने भक्तोंको अमृतत्व प्रदान करनेके लिये विराजमान हैं॥ ५०-५१॥

प्राप्य वाराणसीतीर्थं दृष्ट्वाथ मणिकर्णिकाम्।
कोटिजन्मार्जितं पापं तत्याज स मुनीश्वरः॥ ५२

वाराणसीतीर्थमें पहुँचकर मणिकर्णिकाका दर्शन करके उन मुनीश्वरने करोड़ों जन्मोंमें अर्जित पापोंका परित्याग किया॥ ५२॥

दृष्ट्वा लिंगानि सर्वाणि विश्वेशप्रमुखानि च।
स्नात्वा सर्वेषु कुण्डेषु वापीकूपसरःसु च॥ ५३
नत्वा विनायकान्सर्वान्गौरीः सर्वाः प्रणम्य च।
सम्पूज्य कालराजं च भैरवं पापभक्षणम्॥ ५४
दण्डनायकमुख्यांश्च गणान्स्तुत्वा प्रयत्नतः।
आदिकेशवमुख्यांश्च केशवान्परितोष्य च॥ ५५
लोलार्कमुख्यसूर्यांश्च प्रणम्य च पुनः पुनः।
कृत्वा पिण्डप्रदानानि सर्वतीर्थेष्वतन्द्रितः॥ ५६
स्थापयामास पुण्यात्मा लिंगं व्यासेश्वराभिधम्।
यद्दर्शनाद्भवेद्विप्रा नरो विद्यासु वाक्पतिः॥ ५७

इसके बाद उन्होंने विश्वेश्वर आदि सम्पूर्ण लिंगोंका दर्शनकर वहाँके समस्त कुण्ड, वापी, कूप तथा सरोवरोंमें स्नान करके, सभी विनायकोंको नमस्कार करके, सभी गौरियोंको प्रणामकर, पापभक्षक कालराज भैरवका पूजन करके, यत्नपूर्वक दण्डनायकादि गणोंका स्तवन करके, आदिकेशव आदि केशवोंको सन्तुष्टकर, लोलार्क आदि सूर्योंको बार-बार प्रणाम करके और सावधानीसे समस्त तीर्थोंमें पिण्डदानकर व्यासेश्वर नामक लिंगको स्थापित किया, हे ब्राह्मणो! जिसके दर्शनसे मनुष्य सम्पूर्ण विद्याओंमें बृहस्पतिके समान [निपुण] हो जाता है॥ ५३—५७॥

लिंगान्यभ्यर्च्य विश्वेशप्रमुखानि सुभक्तितः।
असकृच्चिन्तयामास किं लिंगं क्षिप्रसिद्धिदम्॥ ५८
यमाराध्य महादेवं विद्याः सर्वा लभेमहि।
पुराणकर्तृताशक्तिर्ममास्तु यदनुग्रहात्॥ ५९
श्रीमदोंकारनाथं वा कृत्तिवासेश्वरं किमु।
केदारेशं तु कामेशं चन्द्रेशं वा त्रिलोचनम्॥ ६०
कालेशं वृद्धकालेशं कलशेश्वरमेव वा।
ज्येष्ठेशं जम्बुकेशं वा जैगीषव्येश्वरं तु वा॥ ६१
दशाश्वमेधमीशानं द्रुमचण्डेशमेव वा।
दृक्केशं गरुडेशं वा गोकर्णेशं गणेश्वरम्॥ ६२
प्रसन्नवदनेशं वा धर्मेशं तारकेश्वरम्।
नन्दिकेशं निवासेशं पत्रीशं प्रीतिकेश्वरम्॥ ६३
पर्वतेशं पशुपतिं हाटकेश्वरमेव वा।
बृहस्पतीश्वरं वाथ तिलभाण्डेशमेव वा॥ ६४
भारभूतेश्वरं किं वा महालक्ष्मीश्वरं तु वा।
मरुतेशं तु मोक्षेशं गङ्गेशं नर्मदेश्वरम्॥ ६५
कृष्णेशं परमेशानं रत्नेश्वरमथापि वा।
यामुनेशं लाङ्गलीशं श्रीमद्विश्वेश्वरं विभुम्॥ ६६
अविमुक्तेश्वरं वाथ विशालाक्षीशमेव वा।
व्याघ्रेश्वरं वराहेशं विद्येश्वरमथापि वा॥ ६७
वरुणेशं विधीशं वा हरिकेशेश्वरं तु वा।
भवानीशं कपर्दीशं कन्दुकेशमजेश्वरम्॥ ६८
विश्वकर्मेश्वरं वाथ वीरेश्वरमथापि वा।
नादेशं कपिलेशं च भुवनेश्वरमेव वा॥ ६९
वाष्कुलीशं महादेवं सिद्धीश्वरमथापि वा।
विश्वेदेवेश्वरं वीरभद्रेशं भैरवेश्वरम्॥ ७०
अमृतेशं सतीशं वा पार्वतीश्वरमेव वा।
सिद्धेश्वरं मतङ्गेशं भूतीश्वरमथापि वा॥ ७१
आषाढीशं प्रकाशेशं कोटिरुद्रेश्वरं तथा।
मदालसेश्वरं चैव तिलपर्णेश्वरं किमु॥ ७२
किं वा हिरण्यगर्भेशं किं वा श्रीमध्यमेश्वरम्।
इत्यादि कोटिलिंगानां मध्येऽहं किमुपाश्रये॥ ७३
इति चिन्तातुरो व्यासः शिवभक्तिरतात्मवान्।
क्षणं विचारयामास ध्यानसुस्थिरचेतसा॥ ७४
आम् ज्ञातं विस्मृतं तावन्निष्पन्नो मे मनोरथः।
सिद्धैः संपूजितं लिंगं धर्मकामार्थमोक्षदम्॥ ७५
दर्शनात्स्पर्शनाद्यस्य चेतो निर्मलतामियात्।
उद्घाटितं सदैवास्ति द्वारं स्वर्गस्य यत्र हि॥ ७६

भक्तिपूर्वक विश्वेश्वर आदि लिंगोंका पूजन करके वे बार-बार विचार करने लगे कि कौन-सा लिंग शीघ्र सिद्धि प्रदान करनेवाला है, जिसकी आराधनाकर मैं सम्पूर्ण विद्याओंको प्राप्त करूँ तथा जिसके अनुग्रहसे मुझे पुराण-रचनाकी शक्ति प्राप्त हो? श्रीमद्ओंकारेश्वर, कृत्तिवासेश्वर, केदारेश्वर, कामेश्वर, चन्द्रेश्वर, त्रिलोचन, कालेश, वृद्धकालेश, कलशेश्वर, ज्येष्ठेश, जम्बुकेश, जैगीषव्येश्वर, दशाश्वमेधेश्वर, द्रुमचण्डेश, दृक्केश, गरुडेश, गोकर्णेश, गणेश्वर, प्रसन्नवदनेश्वर, धर्मेश्वर, तारकेश्वर, नन्दिकेश्वर, निवासेश्वर, पत्रीश्वर, प्रीतिकेश्वर, पर्वतेश्वर, पशुपतीश्वर, हाटकेश्वर, बृहस्पतीश्वर, तिलभाण्डेश्वर, भारभूतेश्वर, महालक्ष्मीश्वर, मरुतेश्वर, मोक्षेश्वर, गंगेश्वर, नर्मदेश्वर, कृष्णेश्वर, परमेशान, रत्नेश्वर, यामुनेश्वर, लांगलीश्वर, प्रभु श्रीमद्विश्वेश्वर, अविमुक्तेश्वर, विशालाक्षीश्वर, व्याघ्रेश्वर, वराहेश्वर, विद्येश्वर, वरुणेश्वर, विधीश्वर, हरिकेशेश्वर, भवानीश्वर, कपर्दीश्वर, कन्दुकेश्वर, अजेश्वर, विश्वकर्मेश्वर, वीरेश्वर, नादेश, कपिलेश, भुवनेश्वर, वाष्कुलीश्वर महादेव, सिद्धीश्वर, विश्वेदेवेश्वर, वीरभद्रेश्वर, भैरवेश्वर, अमृतेश्वर, सतीश्वर, पार्वतीश्वर, सिद्धेश्वर, मतंगेश्वर, भूतीश्वर, आषाढीश्वर, प्रकाशेश्वर, कोटिरुद्रेश्वर, मदालसेश्वर, तिलपर्णेश्वर, हिरण्यगर्भेश्वर एवं श्रीमध्यमेश्वर इत्यादि कोटिलिंगोंमें मैं किसकी उपासना करूँ?। इस प्रकारकी चिन्तामें मग्न हुए शिवभक्ति-परायणचित्तवाले व्यासजी क्षणभर ध्यानसे चित्तको स्थिरकर विचार करने लगे। ओह! मैं तो भूल गया था, अब जान लिया, निश्चय ही मेरी अभिलाषा पूर्ण हो गयी। सिद्धोंसे पूजित एवं धर्म-अर्थ-काम-मोक्ष देनेवाला यह मध्यमेश्वरलिंग है, जिसके दर्शन एवं स्पर्शसे चित्त निर्मल हो जाता है और जहाँ स्वर्गका द्वार सर्वदा खुला रहता है॥ ५८—७६॥

अविमुक्ते महाक्षेत्रे सिद्धक्षेत्रे हि तत्परम्।
यत्रास्ते परमं लिंगं मध्यमेश्वरसंज्ञकम्॥ ७७

अविमुक्त नामक महाक्षेत्र तथा सिद्धक्षेत्रमें वह मध्यमेश्वर नामक श्रेष्ठ लिंग है॥ ७७॥

न मध्यमेश्वरादन्याल्लिंगं काश्यां हि विद्यते।
यद्दर्शनार्थमायान्ति देवाः पर्वणि पर्वणि॥ ७८

अतः सेव्यो महादेवो मध्यमेश्वरसंज्ञकः।
अस्याराधनतो विप्रा बहवः सिद्धिमागताः॥ ७९

काशीमें मध्यमेश्वर लिंगसे बढ़कर और कोई लिंग नहीं है, जिसका दर्शन करनेके लिये प्रत्येक पर्वपर देवतालोग भी स्वर्गसे आते हैं। अतः मध्यमेश्वर नामक लिंगकी सेवा करनी चाहिये, हे विप्रो! इसकी आराधना करनेसे अनेक लोगोंको सिद्धि प्राप्त हुई है॥ ७८-७९॥

यः प्रधानतया काश्यां मध्ये तिष्ठति शङ्करः।
स्वपुरीजनसौख्यार्थमतोऽसौ मध्यमेश्वरः॥ ८०

शिवजी अपनी पुरीके लोगोंको सुख देनेके लिये काशीके मध्यमें प्रधानरूपसे स्थित हैं, अतः वे मध्यमेश्वर कहे जाते हैं॥ ८०॥

तुम्बुरुर्नाम गंधर्वो देवर्षिर्नारदस्तथा।
अमुमाराध्य संपन्नौ गानविद्याविशारदौ॥ ८१
अमुमेव समाराध्य विष्णुर्मोक्षप्रदोऽभवत्।
ब्रह्मा विष्णुश्च रुद्रश्च सृष्टिपालकहारकाः॥ ८२
धनाधीशः कुबेरोऽपि वामदेवो हि शैवराट्।
खट्वांगो नाम भूपालोऽनपत्योऽपत्यवानभूत्॥ ८३

तुम्बुरु नामक गन्धर्व एवं देवर्षि नारद इनकी आराधनाकर गानविद्यामें विशारद हो गये। इन्हींकी आराधना करके विष्णु मोक्ष देनेवाले हुए तथा ब्रह्मा, विष्णु एवं रुद्र स्रष्टा, पालक तथा संहारक हुए, कुबेर धनाध्यक्ष एवं वामदेव महाशैव हो गये तथा [पूर्वमें] सन्तानरहित खट्वांग नामके राजा सन्तानयुक्त हो गये॥ ८१—८३॥

अप्सराश्चन्द्रभामाख्या नृत्यन्ती निजभावतः।
सदेहा कोकिलालापा लिंगमध्ये लयं गता॥ ८४
श्रीकरो गोपिकासूनुः सेवित्वा मध्यमेश्वरम्।
गाणपत्यं समालेभे शिवस्य करुणात्मनः॥ ८५

कोयलके समान स्वरवाली चन्द्रभागा नामक अप्सरा नृत्य करती हुई इस लिंगमें अपने [भक्ति] भावके कारण सशरीर विलीन हो गयी। गोपिकाके पुत्र श्रीकरने मध्यमेश्वरकी आराधना करके दयालु चित्तवाले शिवका गाणपत्यपद प्राप्त किया॥ ८४-८५॥

भार्गवो गीष्पतिश्चोभौ देवौ दैत्यसुरार्चितौ।
विद्यापारङ्गतौ जातौ प्रसादान्मध्यमेशितुः॥ ८६

दैत्यपूजित भार्गव तथा देवपूजित बृहस्पति मध्यमेश्वरकी कृपासे विद्याओंमें पारंगत हो गये॥ ८६॥

अहमप्यत्र संपूज्य मध्यमेश्वरमीश्वरम्।
पुराणकर्तृताशक्तिं प्राप्स्यामि तरसा ध्रुवम्॥ ८७

अतः मैं भी यहाँ मध्यमेश्वरकी आराधनाकर पुराण रचनेकी शक्ति शीघ्र ही निश्चित रूपसे प्राप्त करूँगा॥ ८७॥

इति कृत्वा मतिं धीरो व्यासः सत्यवतीसुतः।
भागीरथ्यम्भसि स्नात्वा जग्राह नियमं व्रती॥ ८८

धैर्यशाली, व्रतनिष्ठ, सत्यवतीपुत्र व्यासने ऐसा विचारकर भागीरथीके जलमें स्नानकर [मध्यमेश्वरके पूजनका] नियम ग्रहण किया॥ ८८॥

क्वचित्पर्णाशनो भूत्वा फलशाकाशनः क्वचित्।
वातभुग्जलभुक् क्वापि क्वचिन्निरशनव्रती॥ ८९
इत्यादिनियमैर्योगी त्रिकालं मध्यमेश्वरम्।
पूजयामास धर्मात्मा नानावृक्षोद्भवैः फलैः॥ ९०

व्यासजी कभी पत्तेका भक्षण कर रह जाते, कभी फल एवं शाकाहार करते। कभी वायु पीते, कभी जल पीते एवं कभी निराहार ही रह जाते थे, इन नियमोंद्वारा वे धर्मात्मा योगी अनेक प्रकारके वृक्षोंके फलोंसे तीनों समय मध्यमेश्वरका पूजन करने लगे॥ ८९-९०॥

इत्थं बहुतिथे काले व्यतीते कालिकासुतः।
स्नात्वा त्रिपथगातोये यावदायाति स प्रगे॥ ९१

मध्यमेश्वरमीशानं भक्ताभीष्टवरप्रदम्।
तावद्ददर्श पुण्यात्मा मध्ये लिंगं महेश्वरम्॥ ९२

उमाभूषितवामाङ्गं व्याघ्रचर्मोत्तरीयकम्।
जटाजूटचलद्गंगातरङ्गैश्चारुविग्रहम् ॥ ९३

लसच्छारदबालेन्दुचन्द्रिकाचन्द्रितालकम् ।
भस्मोद्धूलितसर्वाङ्गं कर्पूरार्जुनविग्रहम्॥ ९४

कर्णान्तायतनेत्रं च विद्रुमारुणदच्छदम्।
पञ्चवर्षाकृतिं बालं बालकोचितभूषणम्॥ ९५

दधानं कोटिकन्दर्पदर्पहानिं तनुद्युतिम्।
नग्नं प्रहसितास्याब्जं गायन्तं साम लीलया॥ ९६

करुणापारपाथोधिं भक्तवत्सलनामकम्।
आशुतोषमुमाकान्तं प्रसादसुमुखं हरम्॥ ९७

समालोक्य स्तुतिं चक्रे प्रेमगद्गदया गिरा।
योगिनामप्यगम्यं तं दीनबन्धुं चिदात्मकम्॥ ९८

इस प्रकार आराधना करते हुए बहुत दिन बीत जानेपर एक दिन जब व्यासजी प्रातःकाल गंगास्नानकर पूजनके लिये मध्यमेश्वरमें गये, उसी समय उन पुण्यात्माने शिवलिंगके बीचमें भक्तोंको अभीष्ट वर देनेवाले ईशान मध्यमेश्वरका दर्शन प्राप्त किया। उनके वामांगमें उमा सुशोभित हो रही थीं, वे व्याघ्रचर्मका उत्तरीय धारण किये हुए थे, जटाजूटमें निवास करनेवाली गंगाकी चलायमान तरंगोंसे उनका विग्रह शोभित हो रहा था, शोभायमान शारदीय बालचन्द्रमाकी चन्द्रिकासे उनके अलक शोभा पा रहे थे, कर्पूरके समान स्वच्छ, समग्र शरीरमें भस्मका लेप लगा हुआ था, उनकी बड़ी-बड़ी आँखें कानोंतक फैली हुई थीं, उनके ओष्ठ विद्रुमके सदृश अरुण थे, बालकोंके योग्य भूषणोंसे युक्त शिवजी पाँच वर्षके बालककी-सी आकृतिवाले थे, करोड़ों कामदेवोंके अभिमानको दूर करनेवाली शरीरकान्तिको धारण किये हुए थे, वे नग्न थे, हँसते हुए मुखकमलसे वे लीलापूर्वक सामवेदका गान कर रहे थे, वे [व्यासजी] इस प्रकार करुणाके अगाध सागर, भक्तवत्सल, आशुतोष, योगियोंके लिये भी अज्ञेय, दीनबन्धु, चैतन्यस्वरूप, कृपादृष्टिसे निहारते हुए उमापतिको देखकर प्रेमसे गद्गद वाणीद्वारा उनकी स्तुति करने लगे॥ ९१—९८॥

वेदव्यास उवाच

देवदेव महाभाग शरणागतवत्सल।
वाङ्मनःकर्मदुष्प्राप योगिनामप्यगोचर॥ ९९
महिमानं न ते वेदा विदामासुरुमापते।
त्वमेव जगतः कर्ता धर्ता हर्ता तथैव च॥ १००

त्वमाद्यः सर्वदेवानां सच्चिदानंद ईश्वरः।
नामगोत्रे न वा ते स्तः सर्वज्ञोऽसि सदाशिव॥ १०१

त्वमेव परमं ब्रह्म मायापाशनिवर्तकः।
गुणत्रयैर्न लिप्तस्त्वं पद्मपत्रमिवाम्भसा॥ १०२

न ते जन्म न वा शीलं न देशो न कुलं च ते।
इत्थम्भूतोऽपीश्वरस्त्वं त्रिलोक्याः काममावहेः॥ १०३

वेदव्यासजी बोले—हे देवदेव! हे महाभाग! हे शरणागतवत्सल! वाणी-मन एवं कर्मसे दुष्प्राप्य तथा योगियोंके लिये भी अगोचर हे उमापते! वेद भी आपकी महिमा नहीं जानते। आप ही इस जगत्के कर्ता, पालक और हर्ता हैं॥ ९९-१००॥

हे सदाशिव! आप ही सभी देवताओंमें आदिदेव, सच्चिदानन्द तथा ईश्वर हैं, आपका नाम-गोत्र कुछ भी नहीं है, आप सर्वज्ञ हैं। आप ही मायापाशको नष्ट करनेवाले परब्रह्म हैं और आप जलसे [निर्लिप्त] कमलपत्रकी भाँति तीनों गुणोंसे लिप्त नहीं हैं॥ १०१-१०२॥

आपका जन्म, शील, देश और कुल कुछ भी नहीं है, इस प्रकारके होते हुए भी आप परमेश्वर त्रैलोक्यकी कामनाओंको पूर्ण करते हैं॥ १०३॥

न ब्रह्मा न च लक्ष्मीशो न च सेन्द्रा दिवौकसः।
न योगीन्द्रा विदुस्तत्त्वं यस्य ते त्वामुपास्महे॥ १०४

त्वत्तः सर्वं त्वं हि सर्वं गौरीशस्त्वं पुरान्तकः।
त्वं बालस्त्वं युवा वृद्धस्तं त्वां हृदि युनज्म्यहम्॥ १०५

हे प्रभो! ब्रह्मा, विष्णु एवं इन्द्रसहित देवता भी जिन आपके तत्त्वको नहीं जानते, ऐसे आपकी उपासना मैं किस प्रकार करूँ? आपसे ही सब कुछ है और आप ही सब कुछ हैं, आप ही गौरीश तथा त्रिपुरान्तक हैं। आप बालक, वृद्ध तथा युवा हैं, ऐसे आपको मैं हृदयमें धारण करता हूँ॥ १०४-१०५॥

नमस्तस्मै महेशाय भक्तध्येयाय शम्भवे।
पुराणपुरुषायाद्धा शंकराय परात्मने॥ १०६

मैं भक्तोंके ध्येय, शम्भु, पुराणपुरुष, शंकर तथा परमात्मा उन महेश्वरको नमस्कार करता हूँ॥ १०६॥

इति स्तुत्वा क्षितौ यावद्दण्डवन्निपपात सः।
तावत्स बालो हृष्टात्मा वेदव्यासमभाषत॥ १०७
वरं वृणीष्व भो योगिन्यस्ते मनसि वर्तते।
नादेयं विद्यते किंचिद्भक्ताधीनो यतोऽस्म्यहम्॥ १०८

इस प्रकार स्तुतिकर वे ज्यों ही दण्डवत् पृथ्वीपर गिरे, तभी प्रसन्नचित्त उस बालकने वेदव्याससे कहा—हे योगिन्! तुम्हारे मनमें जो भी इच्छा हो, उसे वररूपमें माँगो, मेरे लिये कुछ भी अदेय नहीं है; क्योंकि मैं भक्तोंके अधीन हूँ॥ १०७-१०८॥

तत उत्थाय हृष्टात्मा मुनिर्व्यासो महातपाः।
प्रत्यब्रवीत्किमज्ञातं सर्वज्ञस्य तव प्रभो॥ १०९
सर्वान्तरात्मा भगवान् शर्वः सर्वप्रदो भवान्।
याच्ञां प्रतिनियुङ्क्ते मां किमीशो दैन्यकारिणीम्॥ ११०

तब प्रसन्न मनवाले महातपस्वी व्यासने उठकर कहा—हे प्रभो! सब कुछ जाननेवाले आपसे कौन बात छिपी हुई है। आप सर्वान्तरात्मा, भगवान्, शर्व एवं सर्वप्रद हैं, अतः इस प्रकारकी दैन्यकारिणी याचनामें मुझे क्यों नियुक्त कर रहे हैं?॥ १०९-११०॥

इति श्रुत्वा वचस्तस्य व्यासस्यामलचेतसः।
शुचि स्मित्वा महादेवो बालरूपधरोऽब्रवीत्॥ १११

इसके बाद निर्मल चित्तवाले उन व्यासजीका यह वचन सुनकर बालकरूपधारी महादेवजी मन्द-मन्द मुसकराकर कहने लगे—॥ १११॥

बाल उवाच

त्वया ब्रह्मविदां श्रेष्ठ योऽभिलाषः कृतो हृदि।
अचिरेणैव कालेन स भविष्यत्यसंशयः॥ ११२

बालक शिव बोले—हे ब्रह्मवेत्ताओंमें श्रेष्ठ! आपने जो अभिलाषा अपने मनमें की है, वह निश्चित रूपसे शीघ्र ही पूर्ण होगी, इसमें संशय नहीं है॥ ११२॥

कण्ठे स्थित्वा तव ब्रह्मन्नन्तर्याम्यहमीश्वरः।
सेतिहासपुराणानि सम्यङ्निर्मापयाम्यहम्॥ ११३

हे ब्रह्मन्! मैं अन्तर्यामी ईश्वर [स्वयं] आपके कण्ठमें स्थित हो इतिहास-पुराणोंका निर्माण आपसे कराऊँगा॥ ११३॥

अभिलाषाष्टकं पुण्यं स्तोत्रमेतत्त्वयेरितम्।
वर्षं त्रिकालं पठनात्कामदं शम्भुसद्मनि॥ ११४

आपने जो यह पवित्र अभिलाषाष्टक स्तोत्र कहा है, शिवस्थानमें निरन्तर एक वर्षतक तीनों कालोंमें इसका पाठ करनेसे सारी मनोकामनाएँ पूर्ण होंगी॥ ११४॥

एतत्स्तोत्रस्य पठनं विद्याबुद्धिविवर्धनम्।
सर्वसम्पत्करं प्रोक्तं धर्मदं मोक्षदं नृणाम्॥ ११५

इस स्तोत्रका पाठ मनुष्योंकी विद्या तथा बुद्धिको बढ़ानेवाला होगा। यह सम्पूर्ण सम्पत्ति, धर्म एवं मोक्षको देनेवाला है॥ ११५॥

प्रातरुत्थाय सुस्नातो लिंगमभ्यर्च्य शाङ्करम्।
वर्षं पठन्निदं स्तोत्रं मूर्खोऽपि स्याद् बृहस्पतिः॥ ११६

प्रातःकाल उठकर भलीभाँति स्नान करके शिवलिंगका अर्चनकर वर्षभर इस स्तोत्रका पाठ करनेवाला मूर्ख व्यक्ति भी बृहस्पतिके समान हो जायगा॥ ११६॥

स्त्रिया वा पुरुषेणापि नियमाल्लिंगसन्निधौ।
वर्षं जप्तमिदं स्तोत्रं बुद्धिं विद्यां च वर्धयेत्॥ ११७

इत्युक्त्वा स महादेवो बालो लिंगे न्यलीयत।
व्यासोऽपि मुञ्चन्नश्रूणि शिवप्रेमाकुलोऽभवत्॥ ११८

एवं लब्धवरो व्यासो महेशान्मध्यमेश्वरात्।
अष्टादश पुराणानि प्रणिनाय स्वलीलया॥ ११९
ब्राह्मं पाद्मं वैष्णवं च शैवं भागवतं तथा।
भविष्यं नारदीयं च मार्कण्डेयमतः परम्॥ १२०
आग्नेयं ब्रह्मवैवर्तं लैङ्गं वाराहमेव च।
वामनाख्यं ततः कौर्मं मात्स्यं गारुडमेव च॥ १२१
स्कान्दं तथैव ब्रह्माण्डाख्यं पुराणं च कीर्तितम्।
यशस्यं पुण्यदं नृणां श्रोतॄणां शांकरं यशः॥ १२२

सूत उवाच

अष्टादशपुराणानां पूर्वं नामोदितं त्वया।
कुरु निर्वचनं तेषामिदानीं वेदवित्तम॥ १२३

व्यास उवाच

अयमेव कृतः प्रश्नस्तण्डिना ब्रह्मयोनिना।
नन्दिकेश्वरमुद्दिश्य स यदाह ब्रवीमि तत्॥ १२४

नन्दिकेश्वर उवाच

यत्र वक्ता स्वयं तण्डिन् ब्रह्मा साक्षाच्चतुर्मुखः।
तस्माद् ब्राह्मं समाख्यातं पुराणं प्रथमं मुने॥ १२५
पद्मकल्पस्य माहात्म्यं तत्र यस्यामुदाहृतम्।
तस्मात्पाद्मं समाख्यातं पुराणं च द्वितीयकम्॥ १२६

पराशरकृतं यत्तु पुराणं विष्णुबोधकम्।
तदेव व्यासकथितं पुत्रपित्रोरभेदतः॥ १२७

यत्र पूर्वोत्तरे खण्डे शिवस्य चरितं बहु।
शैवमेतत्पुराणं हि पुराणज्ञा वदन्ति च॥ १२८
भगवत्याश्च दुर्गायाश्चरितं यत्र विद्यते।
तत्तु भागवतं प्रोक्तं ननु देवीपुराणकम्॥ १२९
नारदोक्तं पुराणं तु नारदीयं प्रचक्षते।
यत्र वक्ताभवत्तण्डिन् मार्कण्डेयो महामुनिः॥ १३०

मार्कण्डेयपुराणं हि तदाख्यातं च सप्तमम्।
अग्नियोगात्तदाग्नेयं भविष्योक्तेर्भविष्यकम्॥ १३१

स्त्री हो या पुरुष जो भी नियमपूर्वक शिवलिंगके समीप एक वर्षपर्यन्त इस स्तोत्रका जप-पाठ करेगा, उसकी विद्या एवं बुद्धिमें वृद्धि होगी॥ ११७॥

ऐसा कहकर बालकरूपधारी वे महादेव उसी शिवलिंगमें अदृश्य हो गये और व्यासजी भी अश्रुपात करते हुए शिवप्रेममें निमग्न हो गये॥ ११८॥

इस प्रकार मध्यमेश्वर महेशसे वर प्राप्तकर व्यासजीने अपनी लीलासे अठारह पुराणोंकी रचना की। ब्रह्म, पद्म, विष्णु, शिव, भागवत, भविष्य, नारदीय, मार्कण्डेय, अग्नि, ब्रह्मवैवर्त, लिंग, वराह, वामन, कूर्म, मत्स्य, गरुड, स्कन्द तथा ब्रह्माण्ड—ये [अठारह] पुराण कहे गये हैं। शिवजीका यश सुननेवाले मनुष्योंको ये पुराण यश तथा पुण्य प्रदान करते हैं॥ ११९—१२२॥

सूतजी बोले—हे वेदवेत्ताओंमें श्रेष्ठ! आपने जिन अठारह पुराणोंके नाम कहे हैं, अब उनका निर्वचन कीजिये॥ १२३॥

व्यासजी बोले—[हे सूत!] यही प्रश्न ब्रह्मयोनि तण्डीने नन्दिकेश्वरसे किया था, तब उन्होंने जो उत्तर दिया था, उसीको मैं कह रहा हूँ॥ १२४॥

नन्दिकेश्वर बोले—हे तण्डि मुने! साक्षात् चतुर्मुख ब्रह्मा स्वयं जिसमें वक्ता हैं, उस प्रथम पुराणको इसीलिये ब्रह्मपुराण कहा गया है॥ १२५॥

जिसमें पद्मकल्पका माहात्म्य कहा गया है, वह दूसरा पद्मपुराण कहा गया है॥ १२६॥

पराशरने जिस पुराणको कहा है, वह विष्णुका ज्ञान करानेवाला पुराण विष्णुपुराण कहा गया है। पिता एवं पुत्रमें अभेद होनेके कारण यह व्यासरचित भी माना जाता है॥ १२७॥

जिसके पूर्व तथा उत्तरखण्डमें शिवजीका विस्तृत चरित्र है, उसे पुराणज्ञ शिवपुराण कहते हैं॥ १२८॥

जिसमें भगवती दुर्गाका चरित्र है, उसे देवीभागवत नामक पुराण कहा गया है॥ १२९॥

नारदजीद्वारा कहा गया पुराण नारदीय पुराण कहा जाता है। हे तण्डि मुने! जिसमें मार्कण्डेय महामुनि वक्ता हैं, उसे सातवाँ मार्कण्डेयपुराण कहा गया है। अग्निद्वारा कथित होनेसे अग्निपुराण एवं भविष्यका वर्णन होनेसे भविष्यपुराण कहा गया है॥ १३०-१३१॥

विवर्तनाद् ब्रह्मणस्तु ब्रह्मवैवर्तमुच्यते।
लिंगस्य चरितोक्तत्वात्पुराणं लिंगमुच्यते॥ १३२

ब्रह्मके विवर्तका आख्यान होनेसे ब्रह्मवैवर्त-पुराण कहा जाता है तथा लिंगचरित्रका वर्णन होनेसे लिंगपुराण कहा जाता है॥ १३२॥

वराहस्य च वाराहं पुराणं द्वादशं मुने।
यत्र स्कन्दः स्वयं श्रोता वक्ता साक्षान्महेश्वरः॥ १३३

तत्तु स्कान्दं समाख्यातं वामनस्य तु वामनम्।
कौर्मं कूर्मस्य चरितं मात्स्यं मत्स्येन कीर्तितम्॥ १३४

हे मुने! भगवान् वराहका वर्णन होनेसे बारहवाँ वाराहपुराण है, जिसमें साक्षात् महेश्वर वक्ता हैं और स्वयं स्कन्द श्रोता हैं, उसे स्कन्दपुराण कहा गया है। वामनका चरित्र होनेसे वामनपुराण है। कूर्मका चरित्र होनेसे कूर्मपुराण है तथा मत्स्यके द्वारा कथित [सोलहवाँ] मत्स्यपुराण है॥ १३३-१३४॥

गरुडस्तु स्वयं वक्ता यत्तद् गारुडसंज्ञकम्।
ब्रह्माण्डचरितोक्तत्वाद् ब्रह्माण्डं परिकीर्तितम्॥ १३५

जिसके वक्ता स्वयं गरुड हैं, वह [सत्रहवाँ] गरुडपुराण है। ब्रह्माण्डके चरित्रका वर्णन होनेके कारण [अठारहवाँ] ब्रह्माण्डपुराण कहा गया है॥ १३५॥

सूत उवाच

अयमेव मयाकारि प्रश्नो व्यासाय धीमते।
ततः सर्वपुराणानां मया निर्वचनं श्रुतम्॥ १३६

सूतजी बोले—[हे शौनक!] मैंने यही प्रश्न बुद्धिमान् व्यासजीसे किया था, तब उनसे मैंने सभी पुराणोंका निर्वचन सुना॥ १३६॥

एवं व्यासः समुत्पन्नः सत्यवत्यां पराशरात्।
पुराणसंहिताश्चक्रे महाभारतमुत्तमम्॥ १३७

पराशरेण संयोगः पुनः शन्तनुना यथा।
सत्यवत्या इह ब्रह्मन्नः संशयितुमर्हसि॥ १३८

इस प्रकार सत्यवतीके गर्भसे पराशरके द्वारा उत्पन्न हुए व्यासजीने पुराणसंहिता तथा उत्तम महाभारतकी रचना की। हे ब्रह्मन्! प्रथम सत्यवतीका संयोग पराशरसे और उसके बाद शान्तनुसे हुआ, इसमें सन्देह मत कीजिये॥ १३७-१३८॥

सकारणेयमुत्पत्तिः कथिताश्चर्यकारिणी।
महतां चरिते चैव गुणा ग्राह्या विचक्षणैः॥ १३९

इदं रहस्यं परमं यः शृणोति पठत्यपि।
स सर्वपापनिर्मुक्त ऋषिलोके महीयते॥ १४०

यह आश्चर्यकारिणी उत्पत्ति सकारण कही गयी है। महान् पुरुषोंके चरित्रमें बुद्धिमानोंको गुणोंको ही ग्रहण करना चाहिये। जो [मनुष्य] इस परम रहस्यको सुनता है अथवा पढ़ता है, वह सभी पापोंसे मुक्त होकर ऋषिलोकमें प्रतिष्ठा प्राप्त करता है॥ १३९-१४०॥

इति श्रीशिवमहापुराणे पञ्चम्यामुमासंहितायां व्यासोत्पत्तिवर्णनं नाम चतुश्चत्वारिंशोऽध्यायः॥ ४४॥

॥ इस प्रकार श्रीशिवमहापुराणके अन्तर्गत पाँचवीं उमासंहितामें व्यासोत्पत्तिवर्णन नामक चौवालीसवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ ४४॥

अथ पञ्चचत्वारिंशोऽध्यायः

भगवती जगदम्बाके चरितवर्णनक्रममें सुरथराज एवं समाधि वैश्यका वृत्तान्त तथा मधु-कैटभके वधका वर्णन

मुनय ऊचुः

श्रुता शंभोः कथा रम्या नानाख्यानसमन्विता।
नानावतारसंयुक्ता भुक्तिमुक्तिप्रदा नृणाम्॥ १
इदानीं श्रोतुमिच्छामस्त्वत्तो ब्रह्मविदांवर।

मुनिगण बोले—हे सूतजी! हमलोगोंने अनेक आख्यानोंसे युक्त मनोहर शिवकथा सुनी, जो अनेक अवतारोंसे सम्बन्धित तथा मनुष्योंको मुक्ति एवं भुक्ति देनेवाली है। हे ब्रह्मवेत्ताओंमें श्रेष्ठ! अब हमलोग आपसे

चरित्रं जगदंबाया भगवत्या मनोहरम्॥ २
परब्रह्ममहेशस्य शक्तिराद्या सनातनी।
उमा या समभिख्याता त्रैलोक्यजननी परा॥ ३
सती हैमवती तस्या अवतारद्वयं श्रुतम्।
अपरानवतारांस्त्वं ब्रूहि सूत महामते॥ ४
को विरज्येत मतिमान् गुणश्रवणकर्मणि।
श्रीमातुर्ज्ञानिनो यानि न त्यजन्ति कदाचन॥ ५

सूत उवाच

धन्या यूयं महात्मानः कृतकृत्याः स्थ सर्वदा।
यत्पृच्छथ पराम्बाया उमायाश्चरितं महत्॥ ६
शृण्वतां पृच्छतां चैव तथा वाचयतां च तत्।
पादाम्बुजरजांस्येव तीर्थानि मुनयो विदुः॥ ७
ते धन्या कृतकृत्याः स्युर्धन्या तेषां प्रसूः कुलम्।
येषां चित्तं भवेल्लीनं श्रीदेव्यां परसंविदि॥ ८
ये न स्तुवन्ति देवेशीं सर्वकारणकारणाम्।
मायागुणैर्मोहिताः स्युर्हतभाग्या न संशयः॥ ९
न भजन्ति महादेवीं करुणारससागराम्।
अन्धकूपे पतन्त्येते घोरे संसाररूपिणि॥ १०
गङ्गां विहाय तृप्त्यर्थं मरुवारि यथा व्रजेत्।
विहाय देवीं तद्भिन्नं तथा देवान्तरं व्रजेत्॥ ११
यस्याः स्मरणमात्रेण पुरुषार्थचतुष्टयम्।
अनायासेन लभते कस्त्यजेत्तां नरोत्तमः॥ १२
एतत्पृष्टः पुरा मेधाः सुरथेन महात्मना।
यदुक्तं मेधसा पूर्वं तच्छृणुष्व वदामि ते॥ १३
स्वारोचिषेऽन्तरे पूर्वं विरथो नाम पार्थिवः।
सुरथस्तस्य पुत्रोऽभून्महाबलपराक्रमः॥ १४
दानशौण्डः सत्यवादी स्वधर्मकुशलः कृती।
देवीभक्तो दयासिन्धुः प्रजानां परिपालकः॥ १५

भगवती जगदम्बाके मनोहर चरित्रको सुनना चाहते हैं। परब्रह्म महेश्वरकी जो सनातनी आद्या शक्ति हैं, वे उमा नामसे विख्यात हैं। वे ही त्रिलोकीको उत्पन्न करनेवाली पराशक्ति हैं। उनके दक्षकन्या सती तथा हैमवती पार्वती—ये दो अवतार हमने सुने। हे महामते सूतजी! अब आप उनके अन्य अवतारोंका वर्णन कीजिये॥ १—४॥

उन श्रीमाताके गुणोंका श्रवण करनेसे भला कौन बुद्धिमान् विरत होना चाहेगा, [जबकि] ज्ञानीलोग भी उनके गुणानुवाद-श्रवणका त्याग नहीं करते॥ ५॥

सूतजी बोले—आप सभी महात्मा धन्य एवं कृतकृत्य हैं, जो सर्वदा पराम्बा भगवती पार्वतीका महान् चरित्र पूछते हैं॥ ६॥

मुनियोंने जगदम्बाका चरित्र पूछनेवालों, सुननेवालों तथा पढ़नेवालोंके चरणकमलोंकी धूलिको ही तीर्थ कहा है। जिन लोगोंका चित्त परमसंवित्-स्वरूपिणी श्रीदेवीके चिन्तनमें लीन रहता है, वे धन्य हैं, कृतकृत्य हैं और उनकी जननी तथा कुल भी धन्य हैं॥ ७-८॥

जो लोग समस्त कारणोंकी कारणभूता जगदम्बाकी स्तुति नहीं करते हैं, वे मायाके गुणोंसे मोहित और भाग्यहीन ही रहते हैं, इसमें संशय नहीं है॥ ९॥

जो करुणारसकी सिन्धुस्वरूपा महादेवीका भजन नहीं करते, वे संसाररूपी घोर अन्धकूपमें पड़ते हैं॥ १०॥

जो मनुष्य देवीको छोड़कर दूसरे देवताओंकी शरण लेता है, वह मानो गंगाजीको छोड़कर मरुस्थलके जलाशयके पास जाता है॥ ११॥

जिनके स्मरणमात्रसे चारों पुरुषार्थ [धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष] बिना परिश्रमके प्राप्त हो जाते हैं, उन देवीका कौन श्रेष्ठ पुरुष त्याग करेगा? पूर्व समयमें महात्मा सुरथने मेधा ऋषिसे यही पूछा था, तब मेधाने जो कहा था, उसीको मैं आपसे कह रहा हूँ, सुनिये॥ १२-१३॥

पहले स्वारोचिष मन्वन्तरमें विरथ नामक राजा हुआ था, उसका पुत्र सुरथ महाबली एवं पराक्रमशाली था। वह दानमें निपुण, सत्यवादी, अपने धर्ममें कुशल, सफल, देवीभक्त, दयासागर और प्रजापालक था॥ १४-१५॥

पृथिवीं शासतस्तस्य पाकशासनतेजसः।
बभूवुर्नव ये भूपाः पृथ्वीग्रहणतत्पराः॥ १६

कोलानाम्नीं राजधानीं रुरुधुस्तस्य भूपतेः।
तैः समं तुमुलं युद्धं समपद्यत दारुणम्॥ १७

युद्धे स निर्जितो भूपः प्रबलैस्तैर्द्विषद्गणैः।
उज्जासितश्च कोलाया हृत्वा राज्यमशेषतः॥ १८

इन्द्रके समान तेजसम्पन्न वह राजा जब पृथ्वीका शासन कर रहा था, उस समय नौ राजा ऐसे थे, जो उसका राज्य लेनेको उद्यत हो गये। उन्होंने उस राजाकी कोला नामक राजधानीको घेर लिया और उनके साथ [सुरथका] भयंकर संग्राम हुआ। उन महाबली शत्रुओंने युद्धमें उस राजाको पराजित कर दिया और उसका सारा राज्य छीनकर उसे कोलापुरीसे बाहर निकाल दिया॥ १६—१८॥

स राजा स्वपुरीमेत्याकरोद्राज्यं स्वमंत्रिभिः।
तत्रापि च महापक्षैर्विपक्षैः स पराजितः॥ १९

दैवाच्छत्रुत्वमापन्नैरमात्यप्रमुखैर्गणैः।
कोशस्थितं च यद्वित्तं तत्सर्वं चात्मसात्कृतम्॥ २०

वह राजा अपनी पुरीमें आकर अपने मन्त्रियोंके साथ राज्य करने लगा, किंतु वहाँ भी उसके प्रबल शत्रुओंने उसे पराजित कर दिया। दैवयोगसे शत्रुता करके उसके मन्त्री आदि प्रमुख सहायकोंने कोषमें जो भी धन स्थित था, वह सब स्वयं ले लिया॥ १९-२०॥

ततः स निर्गतो राजा नगरान्मृगयाछलात्।
असहायोऽश्वमारुह्य जगाम गहनं वनम्॥ २१

इसके बाद असहाय वह राजा आखेटके बहाने घोड़ेपर चढ़कर घने वनमें चला गया॥ २१॥

इतस्ततस्तत्र गच्छन्राजा मुनिवराश्रमम्।
ददर्श कुसुमारामभ्राजितं सर्वतोदिशम्॥ २२

वेदध्वनिसमाकीर्णं शान्तजन्तुसमाश्रितम्।
शिष्यैः प्रशिष्यैस्तच्छिष्यैः समन्तात्परिवेष्टितम्॥ २३

वहाँ इधर-उधर भटकते हुए उस राजाने किसी मुनिके उत्तम आश्रमको देखा, जो चारों ओरसे पुष्प-वाटिकाओंसे सुशोभित था, वेदध्वनिसे गुंजित, शान्त जन्तुओंसे परिव्याप्त और उनके शिष्यों, प्रशिष्यों तथा उनके भी शिष्योंसे सभी ओरसे घिरा हुआ था॥ २२-२३॥

व्याघ्रादयो महावीर्या अल्पवीर्यान्महामते।
तदाश्रमे न बाधन्ते द्विजवर्यप्रभावतः॥ २४

हे महामते! उन द्विजवरके प्रभावसे उस आश्रममें महाबलवान् व्याघ्र आदि जन्तु निर्बल जन्तुओंको पीड़ा नहीं पहुँचाते थे॥ २४॥

उवास तत्र नृपतिर्महाकारुणिको बुधः।
सत्कृतो मुनिनाथेन सुवचो भोजनासनैः॥ २५

वहाँपर परम दयालु तथा बुद्धिमान् राजा मुनिवर्यके द्वारा मधुर वचन, भोजन, आसन, पान आदिसे सत्कृत होकर निवास करने लगा॥ २५॥

एकदा स महाराजश्चिन्तामाप दुरत्ययाम्।
अहो मे हीनभाग्यस्य दुर्बुद्धेर्हीनतेजसः॥ २६

हृतं राज्यमशेषेण शत्रुवर्गैर्मदोद्धतैः।
मत्पूर्वैं रक्षितं राज्यं शत्रुभिर्भुज्यतेऽधुना॥ २७

एक समय वह राजा अत्यधिक चिन्तामग्न होकर सोचने लगा। आश्चर्य है कि मुझ भाग्यहीन, बुद्धिहीन एवं निस्तेजका सम्पूर्ण राज्य मदोन्मत्त शत्रुओंने छीन लिया। मेरे पूर्वजोंसे रक्षित राज्यका उपभोग इस समय शत्रु कर रहे हैं॥ २६-२७॥

मादृशश्चैत्रवंशेऽस्मिन्न कोऽप्यासीन्महीपतिः।
किं करोमि क्व गच्छामि कथं राज्यं लभेय हि॥ २८

इस चैत्रवंशमें मेरे-जैसा [अभागा] कोई राजा नहीं हुआ। अब मैं क्या करूँ, कहाँ जाऊँ और किस प्रकार अपना राज्य प्राप्त करूँ?॥ २८॥

अमात्या मन्त्रिणश्चैव मामका ये सनातनाः।
न जाने कं च नृपतिं समासाद्याधुनासते॥ २९
विनाश्य राज्यमधुना न जाने कां गतिं गताः।
रणभूमिमहोत्साहा अरिवर्गनिकर्तनाः॥ ३०
मामका ये महाशूरा नृपमन्यं भजन्ति ते।
पर्वताभा गजा अश्वा वातवद्वेगगामिनः॥ ३१
पूर्वपूर्वार्जितः कोशः पाल्यते तैर्न वाधुना।
एवं मोहवशं यातो राजा परमधार्मिकः॥ ३२

जो मेरे परम्परागत अमात्य तथा मन्त्री थे, वे इस समय न जाने किस राजाका आश्रय लेकर निवास करते होंगे। वे इस राज्यका विनाश करके न जाने अब किस गतिको प्राप्त हुए होंगे। युद्धभूमिमें महान् उत्साहवाले एवं शत्रुवर्गका छेदन करनेवाले मेरे जो महान् शूरवीर थे, वे दूसरे राजाके आश्रयमें होंगे। पर्वतके समान हाथियों और वायुके समान वेगशाली घोड़ों तथा पहलेके पूर्वजोंद्वारा अर्जित मेरे कोषकी रक्षा वे इस समय करते होंगे अथवा नहीं। इस प्रकार विचार करता हुआ वह परम धार्मिक राजा मोहके वशीभूत हो गया॥ २९—३२॥

एतस्मिन्नन्तरे तत्र वैश्यः कश्चित्समागतः।
राजा पप्रच्छ कस्त्वं भोः किमर्थमिह चागतः॥ ३३

इसी बीच कोई वैश्य वहाँ आया। राजाने उससे पूछा—तुम कौन हो? और किसलिये यहाँ आये हो?॥ ३३॥

दुर्मना लक्ष्यसे कस्मादेतन्मे ब्रूहि साम्प्रतम्।
इत्याकर्ण्य वचो रम्यं नरपालेन भाषितम्॥ ३४

दृग्भ्यां विमुञ्चन्नश्रूणि समाधिर्वैश्यपुंगवः।
प्रत्युवाच महीपालं प्रणयावनतां गिरम्॥ ३५

इस समय तुम इतने दुखी क्यों दिखायी पड़ रहे हो, इसे मुझे बताओ। राजाके द्वारा कहे गये इस मनोहर वचनको सुनकर वह वैश्यश्रेष्ठ समाधि अपने नेत्रोंसे आँसू बहाता हुआ प्रेम और विनययुक्त वाणीमें राजासे कहने लगा—॥ ३४-३५॥

वैश्य उवाच

समाधिर्नाम वैश्योऽहं धनिवंशसमुद्भवः।
पुत्रदारादिभिस्त्यक्तो धनलोभान्महीपते॥ ३६

वैश्य बोला—हे महीपते! मैं धनियोंके वंशमें उत्पन्न समाधि नामक वैश्य हूँ; मेरे स्त्री-पुत्र आदिने धनलोभके कारण मेरा त्याग कर दिया है॥ ३६॥

वनमभ्यागतो राजन्दुःखितः स्वेन कर्मणा।
सोऽहं पुत्रप्रपौत्राणां कलत्राणां तथैव च॥ ३७

भ्रातॄणां भ्रातृपुत्राणां परेषां सुहृदां तथा।
न वेद्मि कुशलं सम्यक् करुणासागर प्रभो॥ ३८

हे राजन्! अपने [पूर्वकृत] कर्मसे दुःखित होकर मैं इस वनमें आया हूँ। हे करुणासागर! हे प्रभो! मैं अपने पुत्रों, पौत्रों, स्त्रियों, भाइयों, भतीजों एवं अन्य सुहृदोंका कुशल भलीभाँति नहीं जान पा रहा हूँ॥ ३७-३८॥

राजोवाच

निष्कासितो यैः पुत्राद्यैर्दुर्वृत्तैर्धनगर्धिभिः।
तेषु किं भवता प्रीतिः क्रियते मूर्खजन्तुवत्॥ ३९

राजा बोला—दुराचारी तथा धनके लोभी जिन पुत्र आदिने तुम्हें [घरके बाहर] निकाल दिया, उनसे तुम मूर्ख प्राणीके समान प्रीति क्यों करते हो?॥ ३९॥

वैश्य उवाच

सम्यगुक्तं त्वया राजन्वचः सारार्थबृंहितम्।
तथापि स्नेहपाशेन मोह्यतेऽतीव मे मनः॥ ४०

वैश्य बोला—हे राजन्! आपने सचमुच सारगर्भित बात कही है, किंतु स्नेहपाशसे जकड़े रहनेके कारण मेरा मन अत्यन्त मोहग्रस्त हो रहा है॥ ४०॥

एवं मोहाकुलौ वैश्यपार्थिवौ मुनिसत्तम।
जग्मतुर्मुनिवर्यस्य मेधसः सन्निधिं तदा॥ ४१
स वैश्यराजसहितो नरराजः प्रतापवान्।
प्रणनाम महाधीरः शिरसा योगिनां वरम्॥ ४२

[सूतजी बोले—] हे मुनिश्रेष्ठ! तदुपरान्त इस प्रकार मोहसे व्याकुल राजा एवं वैश्य दोनों ही मुनिवर सुमेधाके पास गये। वैश्यवरसहित उस प्रतापी महाधैर्यशाली राजाने सिर झुकाकर योगिराजको प्रणाम किया॥ ४१-४२॥

बद्ध्वाञ्जलिमिमां वाचमुवाच नृपतिर्मुनिम्।
भगवन्नावयोर्मोहं छेत्तुमर्हसि साम्प्रतम्॥ ४३
अहं राजश्रिया त्यक्तो गहनं वनमाश्रितः।
तथापि हृतराज्यस्य तोषो नैवाभिजायते॥ ४४
अयं च वैश्यः स्वजनैर्दाराद्यैर्निष्कृतो गृहात्।
तथाप्येतस्य ममता न निवृत्तिं समश्नुते॥ ४५
किमत्र कारणं ब्रूहि ज्ञानिनोरपि नो मनः।
मोहेन व्याकुलं जातं महत्येषा हि मूर्खता॥ ४६

उसके अनन्तर राजाने हाथ जोड़कर मुनिसे यह वचन कहा—हे भगवन्! इस समय आप हम दोनोंका संशय दूर करनेकी कृपा कीजिये। मैं अपनी राज्यलक्ष्मीसे त्यक्त होकर इस गहन वनमें आया हूँ, तथापि राज्यके अपहरण हो जानेके कारण मुझे शान्ति नहीं है। यह वैश्य भी अपने कुटुम्बियोंद्वारा घरसे निकाल दिया गया है, फिर भी इसकी ममता दूर नहीं हो रही है। इसमें क्या कारण है, उसे कहिये, जानकार होते हुए भी हम दोनोंका मन मोहसे व्याकुल हो गया है, यह तो महान् मूर्खता है!॥ ४३—४६॥

ऋषिरुवाच

महामाया जगद्धात्री शक्तिरूपा सनातनी।
सा मोहयति सर्वेषां समाकृष्य मनांसि वै॥ ४७
ब्रह्मादयः सुराः सर्वे यन्मायामोहिताः प्रभो।
न जानन्ति परं तत्त्वं मनुष्याणां च का कथा॥ ४८
सा सृजत्यखिलं विश्वं सैव पालयतीति च।
सैव संहरते काले त्रिगुणा परमेश्वरी॥ ४९
यस्योपरि प्रसन्ना सा वरदा कामरूपिणी।
स एव मोहमत्येति नान्यथा नृपसत्तम॥ ५०

ऋषि बोले—हे राजन्! वे जगद्धात्री शक्तिरूपा सनातनी महामाया ही सबके मनको आकृष्टकर मोहमें डाल देती हैं॥ ४७॥

हे प्रभो! ब्रह्मा आदि समस्त देवता भी जिनकी मायासे मोहित होकर परमतत्त्वको नहीं जान पाते, फिर मनुष्योंकी तो बात ही क्या?॥ ४८॥

वे त्रिगुणा परमेश्वरी सम्पूर्ण संसारको उत्पन्न करती हैं, वे ही उसका पालन करती हैं और वे ही फिर समय प्राप्त होनेपर उसका विनाश भी करती हैं॥ ४९॥

हे नृपश्रेष्ठ! वरदायिनी एवं कामरूपिणी वे देवी जिसके ऊपर प्रसन्न होती हैं, वही मोहका अतिक्रमण करता है, दूसरा कोई नहीं॥ ५०॥

राजोवाच

का सा देवी महामाया या च मोहयतेऽखिलान्।
कथं जाता च सा देवी कृपया वद मे मुने॥ ५१

राजा बोला—वे देवी महामाया कौन हैं, जो सभीको मोहित कर देती हैं, वे देवी किस प्रकार उत्पन्न हुईं? हे मुने! कृपाकर मुझसे कहिये॥ ५१॥

ऋषिरुवाच

जगत्येकार्णवे जाते शेषमास्तीर्य योगिराट्।
योगनिद्रामुपाश्रित्य यदा सुष्वाप केशवः॥ ५२
तदा द्वावसुरौ जातौ विष्णोः कर्णमलेन वै।
मधुकैटभनामानौ विख्यातौ पृथिवीतले॥ ५३
प्रलयार्कप्रभौ घोरौ महाकायौ महाहनू।
दंष्ट्राकरालवदनौ भक्षयन्तौ जगन्ति वा॥ ५४

ऋषि बोले—जगत्‌के एकार्णव हो जानेपर जब योगिराज विष्णु योगनिद्राका आश्रय लेकर शेषशय्यापर सो रहे थे, उस समय विष्णुके कानोंके मलसे दो दैत्य उत्पन्न हुए, जो मधु और कैटभ नामसे भूतलपर प्रसिद्ध हुए। वे प्रलयकालीन सूर्यके समान तेजस्वी, भयानक, विशाल शरीरवाले, बड़ी ठोढ़ीवाले और दाढ़ोंके कारण विकराल मुखवाले थे, ऐसा प्रतीत होता था कि वे सभी लोकोंका भक्षण कर जायँगे॥ ५२—५४॥

तौ दृष्ट्वा भगवन्नाभिपङ्कजे कमलासनम्।
हननायोद्यतावास्तां कस्त्वं भोरिति वादिनौ॥ ५५

उस समय भगवान्‌के नाभिकमलपर ब्रह्माजीको स्थित देखकर वे दोनों दैत्य उन्हें मारनेको उद्यत हुए और कहने लगे—'तुम कौन हो?'॥ ५५॥

समालोक्य तु तौ दैत्यौ सुरज्येष्ठो जनार्दनम्।
शयानं च पयोम्भोधौ तुष्टाव परमेश्वरीम्॥ ५६

उस समय उन दोनों दैत्योंको देखकर तथा विष्णुको क्षीरसागरमें शयन करते हुए जानकर ब्रह्माजी परमेश्वरीकी स्तुति करने लगे॥ ५६॥

ब्रह्मोवाच

रक्ष रक्ष महामाये शरणागतवत्सले।
एताभ्यां घोररूपाभ्यां दैत्याभ्यां जगदम्बिके॥ ५७

ब्रह्माजी बोले—हे महामाये! हे शरणागतवत्सले! हे जगदम्बे! घोर रूपवाले इन दोनों दैत्योंसे रक्षा कीजिये, रक्षा कीजिये॥ ५७॥

प्रणमामि महामायां योगनिद्रामुमां सतीम्।
कालरात्रिं महारात्रिं मोहरात्रिं परात्पराम्॥ ५८

त्रिदेवजननीं नित्यां भक्ताभीष्टफलप्रदाम्।
पालिनीं सर्वदेवानां करुणावरुणालयाम्॥ ५९

मैं महामाया, योगनिद्रा, उमा, सती, कालरात्रि, महारात्रि, मोहरात्रि, परात्परा, तीनों देवताओंकी जननी, नित्या, भक्तोंको अभीष्ट फल देनेवाली, समस्त देवोंका पालन करनेवाली तथा करुणासागररूपिणी देवीको प्रणाम करता हूँ॥ ५८-५९॥

त्वत्प्रभावादहं ब्रह्मा माधवो गिरिजापतिः।
सृजत्यवति संसारं काले संहरतीति च॥ ६०

[हे देवि!] आपके प्रभावसे मैं ब्रह्मा, विष्णु तथा शिव इस जगत्का सृजन, पालन तथा समय प्राप्त होनेपर संहार करते हैं॥ ६०॥

त्वं स्वाहा त्वं स्वधा त्वं ह्रीस्त्वं बुद्धिर्विमला मता।
तुष्टिः पुष्टिस्त्वमेवाम्ब शान्तिः क्षान्तिः क्षुधा दया॥ ६१

हे अम्ब! आप ही स्वाहा, स्वधा, लज्जा तथा निर्मल बुद्धि कही गयी हैं, आप ही तुष्टि, पुष्टि, शान्ति, क्षान्ति, क्षुधा और दया हैं॥ ६१॥

विष्णुमाया त्वमेवाम्ब त्वमेव चेतना मता।
त्वं शक्तिः परमा प्रोक्ता लज्जा तृष्णा त्वमेव च॥ ६२

हे अम्ब! आप ही विष्णुमाया और चेतना कही गयी हैं। आप ही परमाशक्ति, लज्जा एवं तृष्णा कही गयी हैं॥ ६२॥

भ्रान्तिस्त्वं स्मृतिरूपा त्वं मातृरूपेण संस्थिता।
त्वं लक्ष्मीर्भवने पुंसां पुण्याचारप्रवर्तिनाम्॥ ६३

आप भ्रान्ति तथा स्मृति हैं एवं मातृरूपसे स्थित हैं। आप ही पुण्य आचारमें संलग्न मनुष्योंके घरमें लक्ष्मीरूपसे स्थित हैं॥ ६३॥

त्वं जातिस्त्वं मता वृत्तिर्व्याप्तिरूपा त्वमेव हि।
त्वमेव चित्तिरूपेण व्याप्य कृत्स्नं प्रतिष्ठिता॥ ६४

आप ही जाति तथा वृत्ति कही गयी हैं। आप ही व्याप्तिरूपा हैं। आप ही चित्तिरूपसे सारे संसारमें व्याप्त होकर स्थित हैं॥ ६४॥

सा त्वमेतौ दुराधर्षावसुरौ मोहयाम्बिके।
प्रबोधय जगद्योने नारायणमजं विभुम्॥ ६५

हे अम्बिके! हे जगद्योने! आप इन दोनों अजेय दैत्योंको मोहित कीजिये और अजन्मा तथा सर्वव्यापी नारायणको जगाइये॥ ६५॥

ऋषिरुवाच

ब्रह्मणा प्रार्थिता सेयं मधुकैटभनाशने।
महाविद्या जगद्धात्री सर्वविद्याधिदेवता॥ ६६

द्वादश्यां फाल्गुनस्यैव शुक्लायां समभून्नृप।
महाकालीति विख्याता शक्तिस्त्रैलोक्यमोहिनी॥ ६७

ऋषि बोले—हे नृप! ब्रह्माजीके द्वारा प्रार्थित वे महाविद्या, जगद्धात्री, समस्त विद्याओंकी अधिदेवता भगवती मधु-कैटभका नाश करनेहेतु फाल्गुन शुक्ल द्वादशीको प्रकट हुईं, वे तीनों लोकोंको मोहित करनेवाली शक्ति महाकाली—इस नामसे प्रसिद्ध हुईं॥ ६६-६७॥

ततोऽभवद्वियद्वाणी मा भैषीः कमलासन।
कण्टकं नाशयाम्यद्य हत्वाजौ मधुकैटभौ॥ ६८

इत्युक्त्वा सा महामाया नेत्रवक्त्रादितो हरेः।
निर्गम्य दर्शने तस्थौ ब्रह्मणोऽव्यक्तजन्मनः॥ ६९

तब आकाशवाणी हुई—'हे ब्रह्मदेव! तुम भयभीत मत होओ, मैं युद्धमें मधु-कैटभका वधकर आज तुम्हारा दुःख दूर करूँगी'—ऐसा कहकर वे महामाया विष्णुके नेत्र एवं मुख आदिसे निकलकर अव्यक्तजन्मा ब्रह्माजीके समक्ष स्थित हो गयीं॥ ६८-६९॥

उत्तस्थौ च हृषीकेशो देवदेवो जनार्दनः।
स ददर्श पुरो दैत्यौ मधुकैटभसंज्ञकौ॥ ७०

उसके बाद देवदेव जनार्दन हृषीकेश [निद्रासे] उठे और उन्होंने अपने सामने मधु-कैटभ नामक दोनों दैत्योंको देखा॥ ७०॥

ताभ्यां प्रववृत्ते युद्धं विष्णोरतुलतेजसः।
पञ्चवर्षसहस्राणि बाहुयुद्धमभूत्तदा॥ ७१

महामायाप्रभावेण मोहितौ दानवोत्तमौ।
जजल्पतू रमाकान्तं गृहाण वरमीप्सितम्॥ ७२

तब उन दोनोंके साथ महातेजस्वी विष्णुका युद्ध आरम्भ हो गया, पाँच हजार वर्षपर्यन्त बाहुयुद्ध हुआ। उसके अनन्तर महामायाके प्रभावसे मोहित हुए दोनों दैत्यश्रेष्ठ विष्णुसे बोले—आप मनोवांछित वर ग्रहण कीजिये॥ ७१-७२॥

नारायण उवाच

मयि प्रसन्नौ यदि वां दीयतामेष मे वरः।
मम वध्यावुभौ नान्यं युवाभ्यां प्रार्थये वरम्॥ ७३

नारायण बोले—यदि तुम दोनों मुझसे प्रसन्न हो तो मुझे यह वर दो कि मैं स्वयं तुम दोनोंका वध कर सकूँ, मैं तुम दोनोंसे अन्य वर नहीं माँगता हूँ॥ ७३॥

ऋषिरुवाच

एकार्णवां महीं दृष्ट्वा प्रोचतुः केशवं वचः।
आवां जहि न यत्रासौ धरणी पयसाप्लुता॥ ७४

ऋषि बोले—तब सभी ओरसे जलमग्न पृथ्वीकी ओर देखकर उन दोनोंने विष्णुसे यह वचन कहा—जहाँ पृथ्वीपर जल न हो, उस स्थानपर आप हम दोनोंका वध कीजिये॥ ७४॥

तथास्तु प्रोच्य भगवांश्चक्रमुत्थाप्य सूज्ज्वलम्।
चिच्छेद शिरसी कृत्वा स्वकीयजघने तयोः॥ ७५

'ऐसा ही होगा'—यह कहकर भगवान्ने अपना अत्यन्त देदीप्यमान चक्र उठाकर उन दोनों दैत्योंको अपनी जंघापर रखकर उनके सिर काट दिये॥ ७५॥

एवं ते कथितो राजन् कालिकायाः समुद्भवः।
महालक्ष्म्यास्तथोत्पत्तिं निशामय महामते॥ ७६

हे राजन्! हे महामते! इस प्रकार मैंने आपसे कालिकाकी उत्पत्ति कह दी, अब महालक्ष्मीकी उत्पत्तिका वृत्तान्त सुनिये॥ ७६॥

निर्विकारापि साकारा निराकारापि देव्युमा।
देवानां तापनाशार्थं प्रादुरासीद्युगे युगे॥ ७७

निर्विकार तथा निराकार होनेपर भी वे भगवती उमा देवगणोंका दुःख दूर करनेके लिये युग-युगमें शरीर धारणकर प्रकट होती हैं॥ ७७॥

यदिच्छावैभवं सर्वं तस्या देहग्रहः स्मृतः।
लीलया सापि भक्तानां गुणवर्णनहेतवे॥ ७८

अपनी इच्छाके अनुसार देह धारण करना उन भगवतीका इच्छावैभव कहा गया है और वे भी लीलासे इसलिये शरीर धारण करती हैं कि भक्त उनके गुणोंका गान करते रहें॥ ७८॥

इति श्रीशिवमहापुराणे पञ्चम्यामुमासंहितायां मधुकैटभवधे महाकालिकावतारवर्णनं नाम पञ्चचत्वारिंशोऽध्यायः॥ ४५॥

॥ इस प्रकार श्रीशिवमहापुराणके अन्तर्गत पाँचवीं उमासंहितामें महाकालिकावतारवर्णन नामक पैंतालीसवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ ४५॥

अथ षट्चत्वारिंशोऽध्यायः

महिषासुरके अत्याचारसे पीड़ित ब्रह्मादि देवोंकी प्रार्थनासे प्रादुर्भूत महालक्ष्मीद्वारा महिषासुरका वध

ऋषिरुवाच

आसीद्रंभासुरो नाम दैत्यवंशशिरोमणिः।
तस्माज्जातो महातेजा महिषो नाम दानवः॥ १
स संग्रामे सुरान्सर्वान्निर्जित्य दनुजाधिपः।
चकार राज्यं स्वर्लोके महेन्द्रासनसंस्थितः॥ २

ऋषि बोले—[हे राजन्!] पूर्व समयमें दैत्यवंशशिरोमणि रम्भ नामक दैत्य था, उससे महिष नामक महातेजस्वी दानव उत्पन्न हुआ। उस दैत्यराज महिषने युद्धमें सभी देवताओंको जीत लिया और स्वर्गलोकमें इन्द्रासनपर बैठकर राज्य करने लगा॥ १-२॥

पराजितास्ततो देवा ब्रह्माणं शरणं ययुः।
ब्रह्मापि तान्समादाय ययौ यत्र वृषाकपी॥ ३
तत्र गत्वा सुराः सर्वे नत्वा शंकरकेशवौ।
स्ववृत्तं कथयामासुर्यथावदनुपूर्वशः॥ ४

तब पराजित हुए देवता ब्रह्माजीकी शरणमें गये। ब्रह्मा भी उन्हें लेकर वहाँ गये, जहाँ शिव और विष्णु स्थित थे। वहाँ जाकर सभी देवता शंकर एवं केशवको नमस्कारकर अपना सारा वृत्तान्त भलीभाँति क्रमसे कहने लगे—॥ ३-४॥

भगवन्तौ वयं सर्वे महिषेण दुरात्मना।
उज्जासिताश्च स्वर्लोकान्निर्जित्य समरांगणे॥ ५
भ्रमामो मर्त्यलोकेऽस्मिन्न लभेमहि शं क्वचित्।
कां कां न दुर्दशां नीता देवा इन्द्रपुरोगमाः॥ ६
सूर्याचन्द्रमसौ पाशी कुबेरो यम एव च।
इन्द्राग्निवातगन्धर्वा विद्याधरसुचारणाः॥ ७
एतेषामपरेषां च विधेयं कर्म सोऽसुरः।
स्वयं करोति पापात्मा दैत्यपक्षाभयंकरः॥ ८
तस्माच्छरणमापन्नान्देवानस्त्रातुमर्हथः।
वधोपायं च तस्याशु चिन्तयेथां युवां प्रभू॥ ९

हे भगवन्! दुष्टात्मा महिषासुरने संग्राममें हमलोगोंको जीतकर स्वर्गलोकसे निकाल दिया है। अब हमलोग मनुष्यलोकमें घूम रहे हैं, किंतु कहीं भी शान्ति नहीं मिलती। उसने इन्द्र आदि प्रमुख देवताओंकी कौन-कौन-सी दुर्गति नहीं की। दैत्यपक्षको अभय देनेवाला वह पापात्मा असुर सूर्य, चन्द्रमा, वरुण, कुबेर, यम, इन्द्र, अग्नि, पवन, गन्धर्व, विद्याधर एवं चारण—इन देवताओं तथा अन्य देवगणोंके विधेय कर्मको स्वयं सम्पन्न करता है। इसलिये आपकी शरणमें आये हुए हम देवताओंकी आप दोनों रक्षा करें और शीघ्र ही उस दैत्यके वधका उपाय सोचें, आप दोनों हमलोगोंके प्रभु हैं॥ ५—९॥

इति देववचः श्रुत्वा दामोदरसतीश्वरौ।
चक्रतुः परमं कोपं रोषाघूर्णितलोचनौ॥ १०
ततोऽतिकोपपूर्णस्य विष्णोः शंभोश्च वक्त्रतः।
तथान्येषां च देवानां शरीरान्निर्गतं महः॥ ११

देवगणोंका वचन सुनकर क्रोधसे घूरते हुए विष्णु और शिव अत्यन्त कुपित हुए। उस समय कुपित विष्णु तथा शिवके मुखसे और अन्य देवताओंके शरीरसे तेज निकला॥ १०-११॥

अतीव महसः पुञ्जः ज्वलन्तं दशदिक्षु च।
अपश्यंस्त्रिदशाः सर्वे दुर्गाध्यानपरायणाः॥ १२

दुर्गाध्यानपरायण सभी देवगणोंने उस अतिशायि तेजसमूहको दसों दिशाओंमें देदीप्यमान देखा॥ १२॥

सर्वदेवशरीरोत्थं तेजस्तदतिभीषणम्।
सङ्घीभूयाभवन्नारी साक्षान्महिषमर्दिनी॥ १३

सभी देवगणोंके शरीरसे उत्पन्न वह भयंकर तेज एकत्रित होकर साक्षात् महिषमर्दिनी स्त्रीके रूपमें परिणत हो गया॥ १३॥

शंभुतेजस उत्पन्नं मुखमस्याः सुभास्वरम्।
याम्येन बाला अभवन्वैष्णवेन च बाहवः॥ १४

देवीका कान्तिमान् मुख शिवजीके तेजसे उत्पन्न हुआ। यमके तेजसे केश और विष्णुके तेजसे उनकी भुजाएँ उत्पन्न हुईं॥ १४॥

चन्द्रमस्तेजसा तस्याः स्तनयुग्मं व्यजायत।
मध्यमैन्द्रेण जंघोरू वारुणेन बभूवतुः॥ १५
भूतेजसा नितंबोऽभूद् ब्राह्मेण चरणद्वयम्।
आर्केण चरणांगुल्यः करांगुल्यश्च वासवात्॥ १६
कुबेरतेजसा नासा रदनाश्च प्रजापतेः।
पावकीयेन नयनत्रयं सान्ध्येन भ्रूद्वयम्॥ १७
आनिलेन श्रवोद्वन्द्वं तथान्येषां स्वरोकसाम्।
तेजसा संभवा पद्मालया सा परमेश्वरी॥ १८

चन्द्रमाके तेजसे उनके दोनों स्तन, इन्द्रके तेजसे कटिप्रदेश एवं वरुणके तेजसे जंघा तथा ऊरु उत्पन्न हुए। पृथ्वीके तेजसे नितम्ब, ब्रह्माके तेजसे दोनों चरण, सूर्यके तेजसे पैरोंकी अँगुलियाँ, इन्द्रके तेजसे हाथोंकी अँगुलियाँ, कुबेरके तेजसे नासिका, प्रजापतिके तेजसे दाँत, अग्निके तेजसे तीनों नेत्र, सन्ध्याके तेजसे उनकी दोनों भौंहें और पवनके तेजसे दोनों कान एवं अन्य सभी देवगणोंके तेजसे [प्रकट अवयवोंसे युक्त] वे कमलनिवासिनी महालक्ष्मी आविर्भूत हुईं॥ १५—१८॥

ततो निखिलदेवानां तेजोराशिसमुद्भवाम्।
तामालोक्य सुराः सर्वे परं हर्षं प्रपेदिरे॥ १९
निरायुधां च तां दृष्ट्वा ब्रह्माद्यास्त्रिदिवेश्वराः।
सायुधां तां शिवां कर्तुं मनः सन्दधिरे सुराः॥ २०

इस प्रकार समस्त देवगणोंकी तेजोराशिसे उन देवीको प्रकट हुआ देखकर सम्पूर्ण देवता अत्यन्त हर्षित हो गये। उसके बाद उन देवीको अस्त्रहीन देखकर ब्रह्मा आदि देवगणोंने उन शिवाको शस्त्रयुक्त करनेका मनमें विचार किया॥ १९-२०॥

ततः शूलं महेशानो महेशान्यै समर्पयत्।
चक्रं च कृष्णो भगवान् शंखं पाशं च पाशभृत्॥ २१

शिवजीने महेश्वरीको अपना त्रिशूल दिया, भगवान् श्रीकृष्णने उन्हें शंख एवं सुदर्शन चक्र दिया तथा पाश धारण करनेवाले वरुणने पाश दिया॥ २१॥

शक्तिं हुताशनोऽयच्छन्मारुतश्चापमेव च।
बाणपूर्णेषुधी चैव वज्रघण्टे शचीपतिः॥ २२
यमो ददौ कालदण्डमक्षमालां प्रजापतिः।
ब्रह्मा कमण्डलुं प्रादाद्रोमरश्मीन्दिवाकरः॥ २३

अग्निने शक्ति, पवनने धनुष-बाणोंसे परिपूर्ण तरकस और शचीपति इन्द्रने वज्र एवं घण्टा दिया। यमराजने कालदण्ड, प्रजापतिने अक्षमाला, ब्रह्मदेवने कमण्डलु तथा सूर्यने समस्त रोमकूपोंमें रश्मियाँ अर्पित कीं॥ २२-२३॥

कालः खड्गं ददौ तस्यै फलकं च समुज्ज्वलम्।
क्षीराब्धी रुचिरं हारमजरे च तथाम्बरे॥ २४
चूडामणिं कुण्डले च कटकानि तथैव च।
अर्द्धचन्द्रं च केयूरान्नूपुरौ च मनोहरौ॥ २५
ग्रैवेयकमंगुलीषु समस्तास्वंगुलीयकम्।
विश्वकर्मा च परशुं ददौ तस्यै मनोहरम्॥ २६

कालने खड्ग एवं उज्ज्वल ढाल दी, क्षीरसागरने गलेकी मनोहर माला, कभी जीर्ण न होनेवाले दो वस्त्र, चूडामणि, कुण्डल, कटक, अर्धचन्द्र, केयूर, दो मनोहर नूपुर, ग्रीवाके आभूषण तथा समस्त अँगुलियोंके लिये अँगूठियाँ दीं। विश्वकर्माने उन्हें मनोहर परशु प्रदान किया और साथ ही अनेक अस्त्र तथा अभेद्य कवच भी प्रदान किया॥ २४—२६॥

अस्त्राण्यनेकानि तथाभेद्यं चैव तनुच्छदम्।
सुरम्यसरसां मालां पङ्कजं चाम्बुधिर्ददौ॥ २७
ददौ सिंहं च हिमवान् रत्नानि विविधानि च।
सुरया पूरितं पात्रं कुबेरोऽस्यै समर्पयत्॥ २८

समुद्रने सुरम्य, सरस माला तथा कमलपुष्प प्रदान किये। हिमालयने इन्हें सिंह तथा अनेक प्रकारके रत्न दिये और कुबेरने मधुसे भरा पात्र दिया॥ २७-२८॥

शेषश्च भोगिनां नेता विचित्ररचनाञ्चितम्।
ददौ तस्यै नागहारं नानासन्मणिगुंफितम्॥ २९

सभी सर्पोंके अधिपति शेषने विचित्ररचनायुक्त तथा अनेक उत्तम मणियोंसे जटित नागहार उन्हें दिया॥ २९॥

एतैश्चान्यैः सुरैर्देवी भूषणैरायुधैस्तथा।
सत्कृतोच्चैर्ननादासौ साट्टहासं पुनः पुनः॥ ३०

इस प्रकार इन देवताओं तथा दूसरे देवगणोंके द्वारा प्रदत्त भूषणों एवं आयुधोंसे सत्कृत हुई देवीने ऊँचे स्वरसे बार-बार अट्टहासपूर्वक गर्जना की॥ ३०॥

तस्या भीषणनादेन पूरिता च नभःस्थली।
प्रतिशब्दो महानासीच्चुक्षुभे भुवनत्रयम्॥ ३१

चेलुः समुद्राश्चत्वारो वसुधा च चचाल ह।
जयशब्दस्ततो देवैरकारि महिषार्दितैः॥ ३२

उनके इस भीषण नादसे सारा आकाशमण्डल पूर्ण हो गया और ऐसी प्रतिध्वनि हुई कि त्रैलोक्य विक्षुब्ध हो उठा। चारों समुद्र चंचल हो गये और पृथ्वी भी डगमगाने लगी। इसके बाद महिषासुरसे पीड़ित हुए देवगणोंने जय-जयकार किया॥ ३१-३२॥

ततोऽम्बिकां परां शक्तिं महालक्ष्मीस्वरूपिणीम्।
तुष्टुवुस्ते सुराः सर्वे भक्तिगद्गदया गिरा॥ ३३

तदनन्तर वे सभी देवता भक्तियुक्त गद्गद वाणीमें महालक्ष्मीस्वरूपिणी पराशक्ति अम्बिकाकी स्तुति करने लगे॥ ३३॥

लोकं संक्षुब्धमालोक्य देवतापरिपन्थिनः।
सन्नद्धसैनिकास्ते च समुत्तस्थुरुदायुधाः॥ ३४

लोकको इस प्रकार संक्षुब्ध देखकर देवताओंके शत्रु असुरगण अपने सैनिकोंके साथ अस्त्र-शस्त्रोंसे युक्त होकर संग्रामके लिये उद्यत हो गये॥ ३४॥

महिषोऽपि च तं शब्दमभ्यधावद्रुषान्वितः।
स ददर्श ततो देवीं व्याप्तलोकत्रयां रुचा॥ ३५

तब महिषासुर भी उस शब्दको लक्ष्यकर क्रोधसे कुपित हो दौड़ पड़ा और उसने अपनी कान्तिसे तीनों लोकोंको व्याप्त करती हुई देवीको देखा॥ ३५॥

एतस्मिन्नन्तरे तत्र महिषासुरपालिताः।
समाजग्मुर्महावीराः कोटिशो धृतहेतयः॥ ३६

इसी बीच महिषासुरके द्वारा पालित करोड़ों महावीर शस्त्र धारण किये हुए वहाँ पहुँच गये॥ ३६॥

चिक्षुरश्चामरोदग्रौ करालोद्धतवाष्कलाः।
ताम्रोग्रास्योग्रवीर्याश्च बिडालोऽन्धक एव च॥ ३७
दुर्धरो दुर्मुखश्चैव त्रिनेत्रश्च महाहनुः।
एते चान्ये च बहवः शूरा युद्धविशारदाः॥ ३८
युयुधुः समरे देव्या सह शस्त्रास्त्रपारगाः।
इत्थं कालो व्यतीयाय युध्यतोर्भीषणस्तयोः॥ ३९

चिक्षुर, चामर, उदग्र, कराल, उद्धत, वाष्कल, ताम्र, उग्रास्य, उग्रवीर्य, बिडाल, अन्धक, दुर्धर, दुर्मुख, त्रिनेत्र और महाहनु—ये तथा अन्य युद्धविशारद और शस्त्रास्त्रविद्यामें पारंगत अनेक वीर समरमें देवीके साथ युद्ध करने लगे। इस प्रकार युद्ध करते हुए उन दोनों पक्षोंका भयावह समय बीत गया॥ ३७—३९॥

अरिवर्गकरक्षिप्ता नानाशस्त्रास्त्रराशयः।
महामायाप्रभावेण विफला अभवन् क्षणात्॥ ४०

शत्रुवर्गके द्वारा छोड़े गये अनेक शस्त्रास्त्रोंके समूह महामायाके प्रभावसे क्षणमात्रमें ही विनष्ट हो गये॥ ४०॥

ततो जघान सा देवी चिक्षुरप्रमुखानरीन्।
सगणान्गदया बाणैः शूलशक्तिपरश्वधैः॥ ४१

तत्पश्चात् देवीने सैन्यसहित चिक्षुर आदि प्रमुख शत्रुओंपर गदा, बाण, त्रिशूल, शक्ति एवं परशुसे प्रहार किया॥ ४१॥

एवं स्वीयेषु सैन्येषु हतेषु महिषासुरः।
देवीनिःश्वाससंभूतान्भावयामास तान्गणान्॥ ४२

अताडयत्खुरैः कांश्चित्कांश्चिच्छृङ्गद्वयेन च।
लांगूलेन च तुण्डेन भिनत्ति स्म मुहुर्मुहुः॥ ४३

इस प्रकार युद्ध करते-करते जब महिषासुरकी सारी सेना नष्ट हो गयी, तब वह दैत्य देवीके निःश्वाससे उत्पन्न हुए गणोंको आक्रान्त करने लगा। उसने कुछ गणोंपर खुरसे, कुछपर अपनी दोनों सींगोंसे, किसीपर पूँछसे और किसीपर तुण्डसे बार-बार प्रहार करना आरम्भ किया॥ ४२-४३॥

इत्थं देवीगणान्हत्वाभ्यधावत्सोऽसुराधिपः।
सिंहं मारयितुं देव्यास्ततोऽसौ कुपितोऽभवत्॥ ४४

कोपात्सोऽपि महावीर्यः खुरकुट्टितभूतलः।
शृङ्गाभ्यां शैलमुत्पाट्य चिक्षेप प्रणनाद च॥ ४५

इस प्रकार देवीके गणोंको मारकर वह असुरराज देवीके सिंहको मारने दौड़ा और अत्यधिक कुपित हो गया। क्रोधके कारण वह महापराक्रमी महिषासुर खुरोंसे पृथ्वीको खोदने लगा और सींगोंसे पर्वतोंको उखाड़कर फेंकने लगा तथा घनघोर गर्जना करने लगा॥ ४४-४५॥

वेगेन विष्वग् भ्रमता प्रक्षिप्ता गुरवोऽद्रयः।
आकाशतो महीमध्ये निपेतुर्नृपसत्तम॥ ४६

हे नृपसत्तम! उस महिषासुरके द्वारा चारों ओर वेगसे दौड़ते हुए फेंके गये बड़े-बड़े पहाड़ ऊपरसे पृथ्वीपर गिरने लगे॥ ४६॥

शृंगभिन्नाः पयोवाहाः खण्डं खण्डमयासिषुः।
लांगूलेनाहतश्चाब्धिर्विष्वगुद्वेलमस्पदत् ॥ ४७

उसकी सींगोंसे विदीर्ण हुए बादल खण्ड-खण्ड हो गये और पूँछसे ताडित हो समुद्र चारों ओरके किनारोंको तोड़कर इधर-उधर बहने लगे॥ ४७॥

एवं क्रुद्धं समालोक्य महिषासुरमम्बिका।
विदधे तद्वधोपायं देवानामभयंकरी॥ ४८

इस प्रकार क्रुद्ध हुए उस महिषासुरको देखकर देवताओंको अभयदान देनेवाली अम्बिकाने उसके वधका उपाय किया॥ ४८॥

ततः पाशं समुत्थाप्य क्षिप्त्वा तस्योपरीश्वरी।
बबन्ध महिषं सोऽपि रूपं तत्याज माहिषम्॥ ४९

ततः सिंहो बभूवाशु मायावी तच्छिरोऽम्बिका।
यावद्छिनत्ति तावत्स खड्गपाणिर्बभूव ह॥ ५०

उन ईश्वरीने अपना पाश उठाकर महिषासुरके ऊपर फेंककर जब उसे बाँधना चाहा, तब महिषासुरने अपना महिषरूप त्याग दिया और उसी क्षण सिंहका रूप धारण कर लिया, इसके बाद जबतक देवीने तलवारसे उसके सिरपर प्रहार किया, तबतक वह मायावी खड्गधारी पुरुष हो गया॥ ४९-५०॥

सचर्मासिकरं तं च देवी बाणैरताडयत्।
ततो गजवपुर्भूत्वा सिंहं चिच्छेद शुण्डया॥ ५१

इसके बाद ढाल एवं तलवार लिये हुए उस पुरुषपर जब देवीने बाणोंसे प्रहार किया, तब उसने हाथीका रूप धारणकर अपनी सूँड़से देवीके सिंहपर प्रहार करना आरम्भ किया॥ ५१॥

ततोऽस्य च करं देवी चकर्त स्वमहासिना।
अधारि च पुना रूपं स्वकीयं तेन रक्षसा॥ ५२
तदैव क्षोभयामास त्रैलोक्यं सचराचरम्।
ततः क्रुद्धा महामाया चण्डिका मानविक्रमा॥ ५३
पपौ पुनः पुनः पानं जहासोद्भ्रान्तलोचना।
जगर्ज चासुरः सोऽपि बलवीर्यमदोद्धतः॥ ५४

इसके बाद देवीने अपने महाखड्गसे उसकी सूँड़ काट दी, तब उस राक्षसने पुनः अपना महिषरूप धारण कर लिया और सारे चराचर जगत्‌को क्षुब्ध करने लगा। यह देख महामानिनी चण्डिकाको अपार क्रोध हुआ और घूर्णित नेत्रोंवाली वे बार-बार मधुपान करने लगीं तथा अट्टहास करने लगीं। इसके बाद बल और पराक्रमसे मतवाला वह असुर गर्जना करने लगा॥ ५२—५४॥

तस्या उपरि चिक्षेप शैलानुत्पाट्य सोऽसुरः।
सा च बाणावलीघातैश्चूर्णयामास सत्वरम्॥ ५५

वारुणीमदसंजातमुखरागाकुलेन्द्रिया ।
प्रोवाच परमेशानी मेघगंभीरया गिरा॥ ५६

वह असुर पर्वतोंको उखाड़कर उनके ऊपर फेंकने लगा। तब उन देवीने बाणसमूहके प्रहारोंसे उन्हें शीघ्र ही चूर-चूर कर डाला। उसके अनन्तर मधुके मदसे आरक्त मुखवाली तथा विह्वल इन्द्रियोंवाली देवी मेघके समान गम्भीर वाणीमें कहने लगीं— ॥ ५५-५६॥

देव्युवाच

रे मूढ रे हतप्रज्ञ व्यर्थं किं कुरुषे हठम्।
न मदग्रेऽसुराः केऽपि स्थास्नवो जगतीत्रये॥ ५७

देवी बोलीं—हे मूर्ख! हे हतबुद्धि! तुम व्यर्थ हठ क्यों कर रहे हो? त्रैलोक्यमें कोई भी असुर मेरे सामने टिक नहीं सकता है॥ ५७॥

ऋषिरुवाच

एवमाभाष्य कूर्दित्वा देवी सर्वकलामयी।
पदाक्रम्यासुरं कण्ठे शूलेनोग्रेण साभिनत्॥ ५८

ऋषि [सुमेधा] बोले—ऐसा कहकर समस्त कलामयी उन देवीने कूदकर उस दैत्यको पैरोंसे दबाकर भयंकर त्रिशूलसे उसके कण्ठपर प्रहार किया॥ ५८॥

ततस्तच्चरणाक्रान्तः स स्वकीयमुखात्ततः।
अर्धनिष्क्रान्त एवासीद्देव्या वीर्येण संवृतः॥ ५९

अर्धनिष्क्रान्त एवासौ युध्यमानो महाधमः।
महासिना शिरो भित्त्वा न्यपाति धरणीतले॥ ६०

तत्पश्चात् देवीके चरणोंसे दबा हुआ और देवीके पराक्रमसे विवश हुआ वह अपने मुखसे आधा निकल आया, वह महाधम दैत्य अपने आधे रूपसे निकलकर देवीके साथ पुनः संग्राम करने लगा। तब देवीने अपने महाखड्गसे उसका सिर काटकर पृथ्वीतलपर गिरा दिया॥ ५९-६०॥

हा हा शब्दं समुच्चार्यावाङ्मुखास्तद्गणास्ततः।
पलायन्त रणाद्भीतास्त्राहि त्राहीति वादिनः॥ ६१

तुष्टुवुश्च तदा देवीमिन्द्राद्याः सकलाः सुराः।
गन्धर्वा गीतमुच्चेरुर्ननृतुर्नर्तकीजनाः॥ ६२

उसके बाद महिषासुरके गण 'हाय-हाय' शब्दका उच्चारण करके मुख नीचे किये हुए भयभीत होकर 'रक्षा करो, रक्षा करो'—ऐसा कहते हुए युद्धभूमिसे भाग गये। तब इन्द्र आदि सभी देवता देवीकी स्तुति करने लगे, गन्धर्व गीत गाने लगे और अप्सराएँ नृत्य करने लगीं॥ ६१-६२॥

एवं ते कथितो राजन्महालक्ष्म्याः समुद्भवः।
सरस्वत्यास्तथोत्पत्तिं शृणु सुस्थेन चेतसा॥ ६३

हे राजन्! इस प्रकार मैंने आपसे महालक्ष्मीकी उत्पत्ति कही, अब आप स्वस्थचित्तसे सरस्वतीकी उत्पत्तिका वृत्तान्त श्रवण कीजिये॥ ६३॥

इति श्रीशिवमहापुराणे पञ्चम्यामुमासंहितायां महिषासुरवधोपाख्याने महालक्ष्म्यवतारवर्णनं नाम षट्चत्वारिंशोऽध्यायः॥ ४६॥

॥ इस प्रकार श्रीशिवमहापुराणके अन्तर्गत पाँचवीं उमासंहितामें महिषासुरवधके उपाख्यानमें महालक्ष्मीका अवतारवर्णन नामक छियालीसवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ ४६॥

अथ सप्तचत्वारिंशोऽध्यायः

शुम्भ-निशुम्भसे पीड़ित देवताओंद्वारा देवीकी स्तुति तथा देवीद्वारा धूम्रलोचन, चण्ड-मुण्ड आदि असुरोंका वध

ऋषिरुवाच

आसीच्छुम्भासुरो दैत्यो निशुंभश्च प्रतापवान्।
त्रैलोक्यमोजसाक्रान्तं भ्रातृभ्यां सचराचरम्॥ १

ताभ्यां प्रपीडिता देवा हिमवन्तं समाययुः।
जननीं सर्वभूतानां कामदात्रीं ववन्दिरे॥ २

ऋषि बोले—हे राजन्! पूर्व समयमें शुम्भ एवं निशुम्भ नामक प्रतापी दैत्य हुए। उन दोनों भाइयोंने अपने तेजसे चराचरसहित तीनों लोकोंको आक्रान्त कर रखा था। उन दोनोंसे पीड़ित हुए देवगण हिमालयपर्वतपर गये और समस्त प्राणियोंकी माता तथा कामनाओंको पूर्ण करनेवाली देवीकी स्तुति करने लगे॥ १-२॥

देवा ऊचुः

जय दुर्गे महेशानि जयात्मीयजनप्रिये।
त्रैलोक्यत्राणकारिण्यै शिवायै ते नमो नमः॥ ३
नमो मुक्तिप्रदायिन्यै पराम्बायै नमो नमः।
नमः समस्तसंसारोत्पत्तिस्थित्यन्तकारिके॥ ४
कालिकारूपसंपन्ने नमस्ताराकृते नमः।
छिन्नमस्तास्वरूपायै श्रीविद्यायै नमोऽस्तु ते॥ ५
भुवनेशि नमस्तुभ्यं नमस्ते भैरवाकृते।
नमोऽस्तु बगलामुख्यै धूमावत्यै नमो नमः॥ ६
नमस्त्रिपुरसुन्दर्यै मातङ्ग्यै ते नमो नमः।
अजितायै नमस्तुभ्यं विजयायै नमो नमः॥ ७
जयायै मंगलायै ते विलासिन्यै नमो नमः।
दोग्ध्रीरूपे नमस्तुभ्यं नमो घोराकृतेऽस्तु ते॥ ८
नमोऽपराजिताकारे नित्याकारे नमो नमः।
शरणागतपालिन्यै रुद्राण्यै ते नमो नमः॥ ९
नमो वेदान्तवेद्यायै नमस्ते परमात्मने।
अनन्तकोटिब्रह्माण्डनायिकायै नमो नमः॥ १०
इति देवैः स्तुता गौरी प्रसन्ना वरदा शिवा।
प्रोवाच त्रिदशान्सर्वान्युष्माभिः स्तूयतेऽत्र का॥ ११
ततो गौरीतनोरेका प्रादुरासीत्कुमारिका।
सोवाच मिषतां तेषां शिवशक्तिं परादरात्॥ १२
स्तोत्रं मे क्रियते मातः समस्तैः स्वर्गवासिभिः।
निशुंभशुंभदैत्याभ्यां प्रबलाभ्यां प्रपीडितैः॥ १३
शरीरकोशाद्यत्तस्या निर्गता तेन कौशिकी।
नाम्ना सा गीयते साक्षाच्छुंभासुरनिबर्हिणी॥ १४
चैवोग्रतारिका प्रोक्ता महोग्रतारिकापि च।
प्रादुर्भूता यतः सा वै मातंगीत्युच्यते भुवि॥ १५

देवगण बोले—हे दुर्गे! हे महेश्वरि! आपकी जय हो, हे आत्मीयजनप्रिये! आपकी जय हो, त्रैलोक्यकी रक्षा करनेवाली आप शिवाको नमस्कार है, नमस्कार है। मुक्तिदायिनीको नमस्कार है, पराम्बाको नमस्कार है, समस्त जगत्‌का सृजन, पालन तथा संहार करनेवालीको नमस्कार है॥ ३-४॥

हे कालिकारूपसम्पन्ने! आपको नमस्कार है। आप ताराकृतिको नमस्कार है। आप छिन्नमस्तास्वरूपा तथा श्रीविद्याको नमस्कार है॥ ५॥

हे भुवनेश्वरि! आपको नमस्कार है, आप भैरवाकृतिको नमस्कार है। आप बगलामुखीको नमस्कार है। आप धूमावतीको बार-बार नमस्कार है॥ ६॥

त्रिपुरसुन्दरीको नमस्कार है, मातंगीको बार-बार नमस्कार है। आप अजिताको नमस्कार है, विजयाको बार-बार नमस्कार है। आप जया, मंगला तथा विलासिनीको बार-बार नमस्कार है, आप दोग्ध्रीरूपाको नमस्कार है, आप घोराकृतिको नमस्कार है॥ ७-८॥

हे अपराजिताकारे! आपको नमस्कार है, हे नित्याकारे! आपको नमस्कार है। शरणागतोंका पालन करनेवाली आप रुद्राणीको बार-बार नमस्कार है॥ ९॥

आप वेदान्तवेद्याको नमस्कार है, आप परमात्माको नमस्कार है, अनन्तकोटि ब्रह्माण्डकी नायिकाको बार-बार नमस्कार है॥ १०॥

इस प्रकार देवताओंद्वारा स्तुति की जाती हुई वरदायिनी गौरी शिवाने प्रसन्न होकर सभी देवगणोंसे कहा—आपलोग यहाँपर किसकी स्तुति कर रहे हैं?॥ ११॥

उसी समय पार्वतीके शरीरसे एक कन्या प्रकट हुई, उन देवगणोंके देखते-देखते ही उसने अत्यन्त आदरपूर्वक शिवशक्ति पार्वतीजीसे कहा—हे मातः! महाबली शुम्भ-निशुम्भसे पीड़ित हुए सभी स्वर्गवासी देवता मेरी स्तुति कर रहे हैं॥ १२-१३॥

वे पार्वतीके शरीरकोशसे उत्पन्न हुईं, अतः शुम्भासुरका नाश करनेवाली वे कौशिकी नामसे पुकारी जाती हैं। वे ही उग्रतारिका एवं वही महोग्रतारिका भी कही गयी हैं। वे प्रकट हुईं, इसलिये लोकमें मातंगी कही जाती हैं॥ १४-१५॥

बभाषे निखिलान्देवान्यूयं तिष्ठत निर्भयाः।
कार्यं वः साधयिष्यामि स्वतन्त्राहं विनाश्रयम्॥ १६

इत्युक्त्वा सा तदा देवी तरसान्तर्हिताभवत्।
चण्डमुण्डौ तु तां देवीमद्राष्टां सेवकौ तयोः॥ १७

दृष्ट्वा मनोहरं तस्या रूपं नेत्रसुखावहम्।
पेततुस्तौ धरामध्ये नष्टसंज्ञौ विमोहितौ॥ १८

गत्वा व्याजह्रतुः सर्वं राज्ञे वृत्तान्तमादितः।
दृष्टा काचिन्मयापूर्वा नारी राजन्मनोहरा॥ १९

हिमवच्छिखरे रम्ये संस्थिता सिंहवाहिनी।
समन्ताद्देवकन्याभिः सेविता बद्धपाणिभिः॥ २०

कुरुते पादसंवाहं काचित्संस्कुरुते कचान्।
पाणिसंवाहनं काचित्काचिन्नेत्राञ्जनं न्यधात्॥ २१

काचिद् गृहीत्वा हस्तेनादर्शं दर्शयते मुखम्।
नागवल्लीं ददात्येका लवंगैलादिसंयुताम्॥ २२

पतद्ग्रहं करे कृत्वा स्थिता काचित्सखी पुरः।
भूषयत्यखिलांगानि काचिद्भूषाम्बरादिभिः॥ २३

कदलीस्तंभजंघोरुः कीरनासाहिदोर्लता।
रणन्मञ्जीरचरणा रम्यमेखलया युता॥ २४
लसत्कस्तूरिकामोदमुक्ताहारचलस्तनी।
ग्रैवेयकलसद्ग्रीवा ललन्ती दाममण्डिता॥ २५
अर्धचन्द्रधरा देवी मणिकुण्डलधारिणी।
रम्यवेणिर्विशालाक्षी लोचनत्रयभूषिता॥ २६

साक्षरा मालिकोपेता पाणिराजितकंकणा।
स्वर्णोर्मिकांगुलिर्भ्राजत्पारिहार्यलसत्करा॥ २७

शुभ्रवस्त्रावृता गौरी पद्मासनविराजिता।
काश्मीरबिन्दुतिलका चन्द्रालंकृतमस्तका॥ २८

तडिद्द्युतिर्महामूल्याम्बरचोलोन्नमत्कुचा।
भुजैरष्टाभिरुत्तुङ्गैर्धारयन्ती वरायुधान्॥ २९

उन्होंने सभी देवताओंसे कहा—आप सब निर्भय होकर निवास कीजिये। मैं स्वतन्त्र हूँ, इसलिये किसीके सहारेके बिना ही मैं आपलोगोंका कार्य सिद्ध करूँगी॥ १६॥

तब ऐसा कहकर वे देवी उसी क्षण अन्तर्धान हो गयीं। उन दोनों शुम्भ-निशुम्भके चण्ड-मुण्ड नामक सेवकोंने [उसी समय] उन देवीको देखा। नेत्रोंको सुख प्रदान करनेवाले उनके मनोहर रूपको देखते ही वे चेतनाहीन तथा मोहित हो पृथ्वीपर गिर पड़े॥ १७-१८॥

इसके बाद जाकर उन दोनोंने [अपने] राजासे आरम्भसे लेकर सारा वृत्तान्त कहा—हे राजन्! हमने एक मनोहर अपूर्व स्त्री देखी है, जो हिमालयके रम्य शिखरपर सिंहारूढ होकर स्थित है। सभी ओरसे देवकन्याएँ हाथ जोड़कर उसकी सेवा कर रही हैं। कोई [देवकन्या] उसका पैर दबाती है, कोई केश सँवारती है, कोई हाथ दबाती है, कोई नेत्रोंमें सुरमा लगाती है। कोई हाथमें दर्पण लेकर उन्हें मुख दिखा रही है, कोई लौंग-इलायचीमिश्रित पान खिला रही है, कोई स्त्री हाथमें पीकदान लेकर उसके सामने खड़ी है और कोई आभूषण एवं वस्त्रोंसे उसके सभी अंगोंका शृंगार कर रही है॥ १९—२३॥

वह देवी केलेके स्तम्भके समान ऊरुदेशवाली, शुकसदृश नासिकावाली, सर्पके समान भुजावल्लीवाली, बजते हुए नूपुरोंसे युक्त चरणोंवाली, रम्य मेखलासे युक्त, कस्तूरीकी गन्ध तथा मोतियोंकी मालासे शोभायमान हिलते हुए स्तनवाली, ग्रैवेयकसे सुशोभित ग्रीवावाली, बिजलीके समान कान्तिसे देदीप्यमान, अर्धचन्द्र तथा मणिमय कुण्डल धारण किये हुए स्थित है॥ २४—२६॥

मनोहर चोटीवाली, विशाल नेत्रोंवाली, तीन नेत्रोंसे सुशोभित, अक्षरब्रह्ममयी माला धारण किये हुए, हाथोंमें मनोहर कंकणसे सुशोभित, स्वर्णकी अँगूठीसे युक्त अँगुलियोंवाली, उज्ज्वल बाजूबन्दसे सुशोभित भुजाओंवाली, श्वेत वस्त्र पहने हुए, गौरवर्णवाली, कमलके आसनपर विराजमान, केसरबिन्दुका तिलक धारण किये हुए चन्द्रमासे अलंकृत मस्तकवाली, विद्युत्‌के समान कान्तिवाली, बहुमूल्य वस्त्रका चोल धारण किये हुए, ऊँचे स्तनोंवाली तथा उत्तुंग आठों हाथोंमें श्रेष्ठ आयुध धारण की हुई स्थित है॥ २७—२९॥

तादृशी नासुरी नागी न गन्धर्वी न दानवी।
विद्यते त्रिषु लोकेषु यादृशी सा मनोरमा॥ ३०
तस्मात्संभोगयोग्यत्वं तस्यास्त्वय्येव शोभते।
नारीरत्नं यतः सा वै पुंरत्नं च भवान्प्रभो॥ ३१

वह जैसी सुन्दर है, वैसी त्रिलोकीमें न कोई असुर स्त्री है, न नाग स्त्री है, न गन्धर्व स्त्री है और न ही दानव स्त्री है। अतः हे प्रभो! उसके परिग्रहकी योग्यता आपमें ही शोभित होती है; क्योंकि आप पुरुषरत्न हैं और वह स्त्रीरत्न है॥ ३०-३१॥

इत्युक्तं चण्डमुण्डाभ्यां निशम्य स महासुरः।
दूतं सुग्रीवनामानं प्रेषयामास तां प्रति॥ ३२
गच्छ दूत तुषाराद्रौ तत्रास्ते कापि सुन्दरी।
सा नेतव्या प्रयत्नेन कथयित्वा वचो मम॥ ३३

चण्ड-मुण्डके द्वारा कहा गया यह वचन सुनकर उस महान् असुरने देवीके पास अपना सुग्रीव नामक दूत भेजा और उससे कहा—हे दूत! तुम हिमालयपर्वतपर जाओ, वहाँ एक सुन्दर स्त्री है, मेरा सन्देश कहकर उसे यत्नपूर्वक [मेरे पास] लाओ॥ ३२-३३॥

इति विज्ञापितस्तेन सुग्रीवो दानवोत्तमः।
गत्वा हिमाचलं प्राह जगदम्बां महेश्वरीम्॥ ३४

उसकी यह आज्ञा पाकर दैत्योंमें श्रेष्ठ उस सुग्रीवने हिमालयपर्वतपर जाकर महेश्वरी जगदम्बासे कहा—॥ ३४॥

दूत उवाच

देवि शुंभासुरो दैत्यो निशुंभस्तस्य चानुजः।
विख्यातस्त्रिषु लोकेषु महाबलपराक्रमः॥ ३५
चारोऽहं प्रेषितस्तेन सन्निधिं ते समागमम्।
स यज्जगौ सुरेशानि तत्समाकर्णयाधुना॥ ३६

दूत बोला—हे देवि! महान् बल तथा पराक्रमवाले शुम्भासुर एवं उनके छोटे भाई निशुम्भ तीनों लोकोंमें विख्यात हैं। मैं उनका दूत हूँ। उनके द्वारा भेजा गया मैं आपके पास आया हूँ। हे सुरेश्वरि! उन्होंने जो कहा है, उसे अब आप सुनिये॥ ३५-३६॥

इन्द्रादीन्समरे जित्वा तेषां रत्नान्यपाहरम्।
देवभागं स्वयं भुञ्जे यागे दत्तं सुरादिभिः॥ ३७

मैंने इन्द्र आदिको युद्धमें जीतकर उनके सारे रत्न ले लिये हैं और यज्ञमें देवगणोंके द्वारा दिये गये यज्ञभागको मैं स्वयं ग्रहण करता हूँ॥ ३७॥

स्त्रीरत्नं त्वामहं मन्ये सर्वरत्नोपरिस्थितम्।
सा त्वं ममानुजं मां वा भजतात्कामजै रसैः॥ ३८

मैं तुम्हें सभी रत्नोंमें सर्वश्रेष्ठ स्त्रीरत्न समझता हूँ, अतः तुम कामजन्य रसोंके द्वारा मेरा अथवा मेरे छोटे भाईका सेवन करो॥ ३८॥

इति दूतोक्तमाकर्ण्य वचनं शुंभभाषितम्।
जगाद सा महामाया भूतेशप्राणवल्लभा॥ ३९

शुम्भके द्वारा सन्दिष्ट दूतका कहा हुआ वचन सुनकर शिवप्राणप्रिया वे महामाया कहने लगीं—॥ ३९॥

देव्युवाच

सत्यं वदसि भो दूत नानृतं किंचिदुच्यते।
परं त्वेका कृता पूर्वं प्रतिज्ञा तां निबोध मे॥ ४०
यो मे दर्पं विधुनुते यो मां जयति संगरे।
उत्सहे तमहं कर्तुं पतिं नान्यमिति ध्रुवम्॥ ४१
स त्वं कथय शुंभाय निशुंभाय वचो मम।
यथा युक्तं भवेदेवं विदधातु तथात्र सः॥ ४२

देवी बोलीं—हे दूत! तुम सत्य कह रहे हो, तुमने थोड़ा-सा भी असत्य नहीं कहा है, किंतु मैंने पहले एक प्रतिज्ञा की है, उसे मुझसे जान लो। जो युद्धमें मुझे जीत लेगा और जो मेरा अहंकार दूर करेगा, मैं उसे ही पतिरूपमें वरण करूँगी, दूसरेको नहीं, यह निश्चित है। तुम शुम्भ-निशुम्भसे मेरा यह वचन कह दो। इस विषयमें जैसा उचित हो, वह वैसा ही करे॥ ४०—४२॥

इत्थं देवीवचः श्रुत्वा सुग्रीवो नाम दानवः।
राज्ञे विज्ञापयामास गत्वा तत्र सविस्तरम्॥ ४३

तब सुग्रीव नामक दूतने देवीका यह वचन सुनकर वहाँ जाकर विस्तारपूर्वक अपने राजासे कह दिया॥ ४३॥

अथ दूतोक्तमाकर्ण्य शुंभो भैरवशासनः।
धूम्राक्षं प्राह सक्रोधः सेनान्यं बलिनां वरम्॥ ४४
हे धूम्राक्ष तुषाराद्रौ वर्तते कापि सुन्दरी।
तामानय द्रुतं गत्वा यथा यास्यति सात्र वै॥ ४५
तस्या आनयने भीतिर्न कार्यासुरसत्तम।
युद्धं कार्यं प्रयत्नेन यदि सा योद्धुमिच्छति॥ ४६

उसके अनन्तर दूतकी बात सुनकर प्रचण्ड शासनवाले शुम्भने क्रोधित हो बलवानोंमें श्रेष्ठ अपने सेनापति धूम्राक्षसे कहा—हे धूम्राक्ष! हिमालयपर्वतपर कोई सुन्दरी स्थित है, तुम वहाँ शीघ्र जाकर वह जिस किसी प्रकार भी यहाँ आये, उसे लिवा लाओ। हे दैत्यसत्तम! उसके लानेमें भय मत करना, यदि वह युद्ध भी करना चाहे तो तुम प्रयत्नपूर्वक युद्ध करना॥ ४४—४६॥

एवं विज्ञापितो दैत्यो धूम्रलोचनसंज्ञकः।
गत्वा हिमाचलं प्राह भुवनेशीमुमांशजाम्॥ ४७
भर्तुर्ममान्तिकं गच्छ नो चेत्त्वां घातयाम्यहम्।
षष्ट्यासुराणां सहितः सहस्राणां नितंबिनि॥ ४८

इस प्रकार शुम्भकी आज्ञा प्राप्तकर उस धूम्रलोचन नामक दैत्यने हिमालयपर जाकर उमाके अंशसे उत्पन्न भुवनेश्वरीसे कहा—हे नितम्बिनि! तुम मेरे स्वामीके पास चलो, नहीं तो साठ हजार सैनिकोंसे युक्त मैं तुम्हें मार डालूँगा॥ ४७-४८॥

देव्युवाच

दैत्यराट् प्रेषितो वीर हंसि चेत्किं करोमि ते।
परन्त्वसाध्यं गमनं मन्ये संग्राममन्तरा॥ ४९

देवी बोलीं—हे वीर! दैत्यराजने तुम्हें भेजा है, यदि तुम मुझे मार दोगे, तो मैं तुम्हारा क्या कर सकती हूँ, किंतु मैं युद्धके बिना वहाँ जाना असम्भव समझती हूँ॥ ४९॥

इत्युक्तस्तामन्वधावद्दानवो धूम्रलोचनः।
हुंकारोच्चारणेनैव तं ददाह महेश्वरी॥ ५०
ततः प्रभृति सा देवी धूमावत्युच्यते भुवि।
आराधिता स्वभक्तानां शत्रुवर्गनिकर्तिनी॥ ५१

देवीके द्वारा ऐसा कहे जानेपर वह दानव धूम्रलोचन उनकी ओर झपटा, किंतु महेश्वरीने 'हुं' के उच्चारणमात्रसे उसे [उसी क्षण] भस्म कर दिया। उसी समयसे वे देवी लोकमें धूमावती नामसे विख्यात हुईं, जो आराधित होकर अपने भक्तोंके शत्रुओंका नाश कर देती हैं॥ ५०-५१॥

धूम्राक्षे निहते देव्या वाहनेनातिकोपिना।
चर्वितास्तद्गणाः सर्वेऽपलायन्तावशेषिताः॥ ५२

धूम्राक्षके मार दिये जानेपर देवीके वाहन सिंहने अत्यन्त कुपित होकर उसके सैनिकोंका भक्षण कर डाला और जो शेष बचे, वे सब भाग गये॥ ५२॥

इत्थं देव्या हतं दैत्यं श्रुत्वा शुंभः प्रतापवान्।
चकार बहुलं कोपं सन्दष्टौष्ठपुटद्वयः॥ ५३

इस प्रकार देवीके द्वारा धूम्रलोचन दैत्यको मारा गया सुनकर वह प्रतापी शुम्भ अपने दोनों ओठोंको चबाता हुआ अत्यन्त क्रोधित हुआ॥ ५३॥

चण्डं मुंडं रक्तबीजं प्रैषयत्क्रमतोऽसुरान्।
तेऽपि चाज्ञापिता दैत्या ययुर्यत्राम्बिका स्थिता॥ ५४

उसने क्रमसे चण्ड, मुण्ड और रक्तबीज नामक दैत्योंको भेजा, तब उसकी आज्ञा पाकर वे भी वहाँ गये, जहाँ देवी स्थित थीं॥ ५४॥

सिंहारूढां भगवतीमणिमादिभिराश्रिताम्।
भासयन्तीं दिशो भासा दृष्ट्वोचुर्दानवर्षभाः॥ ५५
हे देवि तरसा मूलं याहि शुंभनिशुंभयोः।
अन्यथा घातयिष्यामः सगणां त्वां सवाहनाम्॥ ५६
वृणीष्व तं पतिं वामे लोकपालादिभिः स्तुतम्।
प्रपत्स्यसे महानन्दं देवानामपि दुर्लभम्॥ ५७

सिंहपर आरूढ, अणिमादि सिद्धियोंसे युक्त और अपने तेजसे दसों दिशाओंको प्रकाशित करती हुई भगवतीको देखकर उन दैत्यराजोंने कहा—हे देवि! तुम शीघ्रतासे शुम्भ एवं निशुम्भके पास चलो, अन्यथा हमलोग तुम्हें गणों एवं वाहनके साथ मार डालेंगे। हे वामे! लोकपालों आदिके द्वारा स्तुत उन शुम्भका पतिरूपमें वरण करो, इससे तुम देवताओंके लिये भी दुर्लभ महान् आनन्द प्राप्त करोगी॥ ५५—५७॥

इत्युक्तमाकलय्याम्बा स्मयित्वा परमेश्वरी।
उदाजहार सा देवी सूनृतं रसवद्वचः॥ ५८

उनका यह वचन सुनकर वे परमेश्वरी देवी हँसकर रसमय सत्य वचन कहने लगीं—॥ ५८॥

देव्युवाच

अद्वितीयो महेशानः परब्रह्म सदाशिवः।
यत्तत्त्वं न विदुर्वेदा विष्णवादीनां च का कथा॥ ५९
तस्याहं प्रकृतिः सूक्ष्मा कथमन्यं पतिं वृणे।
सिंही कामातुरा नैव जम्बुकं वृणुते क्वचित्॥ ६०
करेणुर्गर्दभं नैव द्वीपिनी शशकं न वा।
मृषा वदत भो दैत्या मृत्युव्यालनियंत्रिताः॥ ६१
यूयं प्रयात पातालं युध्यध्वं शक्तिरस्ति चेत्।

देवी बोलीं—जो अद्वितीय महेशान परब्रह्म सदाशिव कहे जाते हैं और जिन्हें वेद भी तत्त्वतः नहीं जानते, फिर विष्णु आदिकी तो बात ही क्या? मैं उन्हींकी सूक्ष्म प्रकृति हूँ, अतः किसी दूसरेको पतिरूपमें किस प्रकार वरण करूँ? कामपीड़ित सिंहिनी कभी गीदड़का, हथिनी कभी गधेका एवं व्याघ्री खरगोशका वरण नहीं कर सकती है? हे दैत्यो! कालसर्पसे ग्रस्त हुए तुमलोग झूठ बोल रहे हो। अब शीघ्र ही पाताल चले जाओ अथवा यदि सामर्थ्य हो तो युद्ध करो॥ ५९—६१½॥

इति क्रोधकरं वाक्यं श्रुत्वोचुस्ते परस्परम्॥ ६२

अबलां मनसि ज्ञात्वा न हन्मो भवतीं वयम्।
अथो स्थिरैहि पञ्चास्ये युद्धेच्छा मानसेऽस्ति चेत्॥ ६३

क्रोधको उत्पन्न करनेवाले इस प्रकारके वचन सुनकर वे परस्पर कहने लगे—हमलोग अपने मनमें तुम्हें अबला समझकर नहीं मार रहे हैं, हे सिंहवाहिनि! यदि तुम मनसे युद्धकी लालसा रखती हो तो सिंहपर सुस्थिर होकर बैठ जाओ और [युद्धके लिये] आओ॥ ६२-६३॥

तेषामेवं विवदतां कलहः समवर्धत।
ववृषुः समरे बाणा उभयोर्दलयोः शिताः॥ ६४

इस प्रकार उनके विवाद करनेपर कलह बढ़ गया और युद्धमें दोनों ही पक्षोंसे तीखे बाण बरसने लगे॥ ६४॥

एवं तैः समरं कृत्वा लीलया परमेश्वरी।
जघान चण्डमुण्डाभ्यां रक्तबीजं महासुरम्॥ ६५
द्वेषबुद्धिं विधायापि त्रिदशारातयोऽप्यमी।
अन्ते प्रापन्परं लोकं यँल्लोकं यान्ति तज्जनाः॥ ६६

इस प्रकार उनके साथ युद्ध करके परमेश्वरीने लीलामात्रसे चण्ड-मुण्डसहित महान् असुर रक्तबीजको मार डाला। द्वेषबुद्धि रखनेपर भी उन देवशत्रुओंने अन्तमें उस श्रेष्ठ लोकको प्राप्त किया, जिस लोकको देवीके भक्त प्राप्त करते हैं॥ ६५-६६॥

इति श्रीशिवमहापुराणे पञ्चम्यामुमासंहितायां धूम्रलोचनचण्डमुण्डरक्तबीजवधो नाम सप्तचत्वारिंशोऽध्यायः॥ ४७॥

॥ इस प्रकार श्रीशिवमहापुराणके अन्तर्गत पाँचवीं उमासंहितामें धूम्रलोचन-चण्ड-मुण्ड-रक्तबीजका वध नामक सैंतालीसवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ ४७॥

अथाष्टचत्वारिंशोऽध्यायः

सरस्वतीदेवीके द्वारा सेनासहित शुम्भ-निशुम्भका वध

राजोवाच

धूम्राक्षं चण्डमुण्डं च रक्तबीजासुरं तथा।
भगवन्निहतं देव्या श्रुत्वा शुम्भः सुरार्दनः॥ १
किमकार्षीत्ततो ब्रह्मन्नेतन्मे ब्रूहि साम्प्रतम्।
शुश्रूषवे जगद्योनेश्चरित्रं पापनाशनम्॥ २

राजा बोले—हे भगवन्! देवीके द्वारा धूम्राक्ष, चण्ड-मुण्ड एवं रक्तबीजको मारा गया सुनकर देवताओंको कष्ट देनेवाले शुम्भने क्या किया? हे ब्रह्मन्! अब आप जगत्कारणभूता देवीके पापनाशक चरित्रको सुननेकी इच्छावाले मुझे इसे बताइये॥ १-२॥

ऋषिरुवाच

हतानिमान्दैत्यवरान्महासुरो
निशम्य राजन्महनीयविक्रमः।
अजिज्ञपत्स्वीयगणान्दुरासदान्
रणाभिधोच्चारणजातसंमदान् ॥ ३

बलान्विताः संमिलिता ममाज्ञया
जयाशया कालकवंशसंभवाः।
सकालकेयासुरमौर्यदौर्हृदाः
तथा परेऽप्याशु प्रयाणयन्तु ते॥ ४

निशुंभशुंभौ दितिजान्निदेश्य तान्
रथाधिरूढौ निरयांबभूवतुः।
बलान्यनूकाबलिनोस्तयोर्धराद्
विनाशवन्तः शलभा इवोत्थिताः॥ ५

प्रवादयामास मृदंगमर्दलं
सभेरिकाडिण्डिमझर्झरानकम् ।
रणस्थले संजहृषू रणप्रिया
असुप्रियाः संगरतः पराययुः॥ ६

भटाश्च ते युद्धपटावृतास्तदा
रणस्थलीमापुरपापविग्रहाः ।
गृहीतशस्त्रास्त्रचया जिगीषया
परस्परं विग्रहयन्त उल्बणम्॥ ७

गजाधिरूढास्तुरगाधिरोहिणो
रथाधिरूढाश्च तथापरेऽसुराः।
अलक्षयन्तः स्वपराञ्जनान्मुदाऽ-
सुरेशसंगे समरेऽभिरेभिरे॥ ८

ध्वनिः शतघ्नीजनितो मुहुर्मुहु-
र्बभूव तेन त्रिदशाः समेजिताः।
महान्धकारः समपद्यताम्बरे
विलोक्यते नो रथमण्डलं रवेः॥ ९

पदातयो वव्रजुरेव कोटिशः
प्रभूतमाना विजयाभिलाषिणः।
रथाश्वगा वारणगा अथापरेऽ-
सुरा निरीयुः कति कोटिशो मुदा॥ १०

ऋषि बोले—हे राजन्! मान्य पराक्रमवाले उस महान् असुरने इन दैत्यवरोंके मारे जानेका समाचार सुनकर युद्धका नाम लेते ही मदोन्मत्त होनेवाले अपने दुर्धर्ष सैनिकोंको आज्ञा दी—मेरी आज्ञासे कालकवंशीय, कालकेय, मौर्य एवं दौर्हृद नामवाले सभी असुर एवं अन्य असुर भी विजयकी आशा लेकर सेनासे युक्त होकर एक साथ युद्धके लिये प्रस्थान करें॥ ३-४॥

उन दैत्योंको इस प्रकारकी आज्ञा देकर शुम्भ एवं निशुम्भ भी रथपर सवार हो निकल पड़े। उन महाबलशालियोंके सैनिक उनके पीछे-पीछे ऐसे चले, मानो विनष्ट होनेवाले शलभ [पतिंगे] पृथ्वीसे निकल पड़े हों॥ ५॥

उस समय [वह दैत्यराज] मृदंग, ढोल, भेरी, डिण्डिम, झाँझ, नगाड़ा आदि अनेक बाजे संग्रामभूमिमें बजवाने लगा, रणप्रिय योद्धा हर्षित हो उठे और प्राणसे मोह रखनेवाले युद्धभूमिसे भाग गये॥ ६॥

कवच धारण किये हुए तथा निष्पाप शरीरवाले वे समस्त राक्षस वीर ढेरों अस्त्र-शस्त्र लेकर विजयकी इच्छासे एक-दूसरेको खूब ललकारते हुए युद्धभूमिमें पहुँचे॥ ७॥

कुछ राक्षस सैनिक हाथीपर सवार थे, कुछ घोड़ेपर सवार थे, कुछ रथपर आरूढ़ थे, इस प्रकार सभी असुर अपने-परायेको न देखते हुए शुम्भके साथ प्रसन्न होकर युद्धभूमिमें इधर-उधर घूमने लगे॥ ८॥

उस समय शतघ्नीकी ध्वनि होने लगी, उससे देवता कम्पित हो उठे। आकाशमण्डलमें अन्धकार छा गया, जिससे सूर्यका रथमण्डल नहीं दिखायी पड़ता था॥ ९॥

विजयके इच्छुक करोड़ों महामानी राक्षस पैदल ही चल पड़े और अन्य करोड़ों राक्षस रथों, हाथियों तथा घोड़ोंपर सवार हो प्रसन्नतापूर्वक पहुँचे॥ १०॥

अशुक्लशैला इव मत्तवारणा
अतानिषुश्चीत्कृतिशब्दमाहवे।
क्रमेलकाश्चापि गलद्गलध्वनिं
वितन्वते क्षुद्रमहीधरोपमाः॥ ११

काले पर्वतके समान मदमत्त हाथी युद्धस्थलमें चिंग्घाड़ने लगे और छोटे पर्वतोंके समान ऊँट भी गलगल ध्वनि करने लगे॥ ११॥

हयाश्च हेषन्त उदग्रभूमिजा
विशालकण्ठाभरणा गतेर्विदः।
पदानि दन्तावलमूर्ध्नि बिभ्रतः
सुडिड्यिरे व्योमपथा यथावयः॥ १२

विशाल कण्ठहार पहने हुए, उत्तम देशमें उत्पन्न तथा गतिका ज्ञान रखनेवाले घोड़े हिनहिनाने लगे और हाथियोंके मस्तकपर अपना पैर रखकर पक्षियोंके समान आकाशमार्गमें उड़ने लगे॥ १२॥

समीक्ष्य शत्रोर्बलमित्थमापतत्
चकार सज्यं धनुरम्बिका तदा।
ननाद घण्टां रिपुसाददायिनीं
जगर्ज सिंहोऽपि सटां विधूनयन्॥ १३

तब इस प्रकार शत्रुओंकी सेनाको उपस्थित देखकर अम्बिकाने धनुषपर डोरी चढ़ायी और शत्रुओंको कष्ट देनेवाले अपने घण्टेका नाद किया। उधर, सिंह भी अपना अयाल हिलाता हुआ गर्जन करने लगा॥ १३॥

ततो निशुंभस्तुहिनाचलस्थितां
विलोक्य रम्याभरणायुधां शिवाम्।
गिरं बभाषे रसनिर्भरां परां
विलासिनीभावविचक्षणो यथा॥ १४
भवादृशीनां रमणीयविग्रहे
दुनोति कीर्णं खलु मालतीदलम्।
कथं करालाहवमातनोष्यसे
महेशि तेनैव मनोज्ञवर्ष्मणा॥ १५

तत्पश्चात् हिमालयपर विराजमान और रम्य आभूषण तथा शस्त्रोंको धारण करनेवाली शिवाको देखकर वह निशुम्भ कामुकके समान रससे भरी हुई उत्तम वाणीमें बोला—हे महेशि! तुम-जैसी सुन्दरियोंके रमणीय शरीरपर गिरा हुआ मालतीपुष्प भी कष्ट पहुँचाता है, अतः तुम इस कोमल शरीरसे यह भयंकर संग्राम क्यों करना चाहती हो?॥ १४-१५॥

इतीरयित्वा वचनं महासुरो
बभूव मौनी तमुवाच चण्डिका।
वृथा किमात्थासुर मूढ संगरं
कुरुष्व नागालयमन्यथा व्रज॥ १६
ततोऽतिरुष्टः समरे महारथ-
श्चकार बाणावलिवृष्टिमद्भुताम्।
घनाघनाः संववृषुर्यथोदकं
रणस्थले प्रावृडिवागतास्तदा॥ १७

ऐसा वचन कहकर वह महान् असुर चुप हो गया। तब चण्डिकाने उससे कहा—अरे मूर्ख असुर! व्यर्थ क्यों बोल रहे हो? युद्ध करो, अन्यथा पातालमें चले जाओ। तब अत्यधिक क्रोधित हुआ वह महारथी दैत्य युद्धमें बाणोंकी ऐसी अद्भुत वर्षा करने लगा, जिस प्रकार आये हुए मेघ वर्षाकालमें जलकी वृष्टि करते हैं॥ १६-१७॥

शरैश्शितैः शूलपरश्वधायुधैः
सभिन्दिपालैः परिघैः शरासनैः।
भुशुण्डिकाप्रासक्षुरप्रसंज्ञकै-
र्महासिभिः संयुयुधे मदोद्धतः॥ १८

वह मदसे उन्मत्त हो तीखे बाणों, त्रिशूल, फरसा, भिन्दिपाल, परिघ, तरकसों, तोप, भाला, छूरी एवं महान् खड्ग [से युक्त सैनिकों]-को साथ लेकर संग्राम करने लगा॥ १८॥

विबभ्रमुस्तत्समरे महागजा
विभिन्नकुंभा असिताद्रिसन्निभाः।
चलद्बलाकाधवला विकेतवो
विसेतवः शुंभनिशुंभकेतवः॥ १९

उस संग्राममें विदीर्ण मस्तकोंवाले, काले पर्वतोंके समान बड़े-बड़े हाथी घूमने लगे और उड़ती हुई बलाकाओंकी पंक्ति-जैसी श्वेत शुम्भ-निशुम्भकी पताकाएँ खण्डित होकर नीचे गिरने लगीं॥ १९॥

विभिन्नदेहा दितिजा झषोपमा
विकन्धरा वाजिगणा भयंकराः।
परासवः कालिकया कृता रणे
मृगारिणा चामिषतां परेऽसुराः॥ २०

कालिकाने रणमें राक्षसोंको मछलीके समान काटकर प्राणहीन कर डाला, गर्दनके कट जानेके कारण घोड़े भयंकर दिखायी पड़ने लगे। उस समय अन्य राक्षसोंको सिंहने अपना आहार बना लिया॥ २०॥

विसुस्त्रुवू रक्तवहास्तदन्तरे
सरिच्चयास्तत्र विपुप्लुवे हतैः।
कचा भटानां जलनीलिकोपमा-
स्तदुत्तरीयं सितफेनसंनिभम्॥ २१

युद्धके बीचमें रक्तकी धाराओंवाली कितनी ही नदियाँ बह चलीं और उनमें कटे हुए रुण्ड-मुण्ड बहने लगे। योद्धाओंके केश जलकी काईके समान दिखायी पड़ रहे थे और उनके उत्तरीय सफेद फेन-जैसे प्रतीत हो रहे थे॥ २१॥

तुरंगसादी तुरगाधिरोहिणं
गजस्थितानभ्यपतन्गजारुहः ।
रथी रथेशं खलु पत्तिरङ्घ्रिगान्
समप्रतिद्वन्द्विकलिर्महानभूत् ॥ २२

उस समय घुड़सवार घुड़सवारोंसे, हाथीपर सवार हाथीपर सवारी करनेवालोंसे, रथी रथके स्वामीसे और पैदल सैनिक पैदल सैनिकोंसे लड़ने लगे। इस प्रकार परस्पर समान प्रतिद्वन्द्वियोंवाला घमासान संग्राम होने लगा॥ २२॥

ततो निशुंभो हृदये व्यचिन्तयत्
करालकालोऽयमुपागतोऽधुना ।
भवेद्दरिद्रोऽपि महाधनो महा-
धनो दरिद्रो विपरीतकालतः॥ २३
जडो भवेत्स्फीतमतिर्महामति-
र्जडो नृशंसो बहुमन्तुसंस्तुतः।
पराजयं यान्ति रणे महाबला
जयन्ति संग्राममुखे च दुर्बलाः॥ २४

उसके बाद निशुम्भने मनमें विचार किया कि इस समय यह भयंकर काल उपस्थित हो गया है, कालकी विपरीततासे दरिद्र महान् धनवान् तथा महान् धनवान् दरिद्र हो जाता है। जड़ महाबुद्धिमान् एवं महाबुद्धिमान् जड़ हो जाता है, हत्यारा बड़े-बड़े मुनियोंसे प्रशंसित होता है, महाबली पराजित हो जाते हैं और दुर्बल युद्धमें विजय प्राप्त कर लेते हैं॥ २३-२४॥

जयोऽजयो वा परमेश्वरेच्छया
भवत्यनायासत एव देहिनाम्।
न कालमुल्लंघ्य शशाक जीवितुं
महेश्वरः पद्मजनी रमापतिः॥ २५
उपेत्य संग्राममुखं पलायनं
न साधु वीरा हृदयेऽनुमन्वते।
परंतु युद्धे कथमेतया जयो
विनाशितं मे सकलं बलं यथा॥ २६

अतः प्राणियोंकी जय अथवा पराजय परमेश्वरकी इच्छासे अनायास ही होती रहती है। महेश्वर, ब्रह्मा एवं विष्णु भी कालका अतिक्रमणकर जीनेमें समर्थ नहीं हो सकते। उत्तम वीर रणभूमिमें [शत्रुके सामने] जाकर पुनः भाग जाना अपने मनमें उचित नहीं समझते हैं, किंतु इसके साथ युद्धमें विजय कैसे होगी, जिसने मेरी सम्पूर्ण सेना नष्ट कर दी है॥ २५-२६॥

इयं हि नूनं सुरकर्म साधितुं
समागता दैत्यबलं च बाधितुम्।
पुराणमूर्तिः प्रकृतिः परा शिवा
न लौकिकीयं वनिता कदापि वा॥ २७

यह निश्चय ही देवगणोंके कार्यको सिद्ध करनेके लिये एवं दैत्यसेनाके विनाशके लिये आयी हुई है। यह सनातनमूर्ति परा प्रकृति शिवा है, यह सांसारिक स्त्री कदापि नहीं है॥ २७॥

वधोऽपि नारीविहितोऽयशस्करः
प्रगीयते युद्धरसं लिलिक्षुभिः।
तथाप्यकृत्वा समरं कथं मुखं
प्रदर्शयामोऽसुरराजसन्निधौ ॥ २८

युद्धरसका आस्वादन करनेवाले वीरोंने स्त्रीद्वारा हुए वधको निन्दित बताया है, फिर भी बिना युद्ध किये दैत्यराजके सामने मुँह किस प्रकार दिखायेंगे ? ॥ २८ ॥

विचारयित्वेति महारथो रथं
महान्तमध्यास्य नियन्तृचोदितम्।
ययौ द्रुतं यत्र महेश्वराङ्गना
सुराङ्गनाप्रार्थितयौवनोद्गमा ॥ २९

ऐसा विचारकर वह महारथी अपने सारथिसे हाँके जाते हुए विशाल रथपर आरूढ हो शीघ्रतासे उस स्थानपर गया, जहाँ देवांगनाओंसे प्रार्थित वे यौवनकी उद्गमस्वरूपा पार्वती विराजमान थीं ॥ २९ ॥

अवोचदेनां स महेशि किं भवे-
देभिर्हतैर्वेतनजीविभिर्भटैः।
तवास्ति काङ्क्षा यदि योद्धुमावयो-
स्तदा रणः स्याद्धतयुद्धसत्पटैः ॥ ३०

उसने उनसे कहा—हे महेश्वरि! इन आजीविकाके लिये ही युद्धमें प्रवृत्त योद्धाओंको मारनेसे क्या लाभ! यदि हम दोनोंसे तुम्हारी युद्ध करनेकी अभिलाषा हो, तो कवच उतारकर हमलोगोंका युद्ध हो ॥ ३० ॥

उवाच कालीं प्रति कौशिकी तदा
समीक्ष्यतामेष दुराग्रहोऽनयोः।
करोति कालो विपदागमे मतिं
विभिन्नवृत्तिं सदसत्प्रवर्तकः ॥ ३१

ततो निशुंभोऽभिजघान चण्डिकां
शरैः सहस्रैश्च तथैव कालिकाम्।
बिभेद बाणानसुरप्रचोदितान्
सहस्रखण्डं स्वशरोत्करैः शिवा ॥ ३२

तब कौशिकीने कालीसे कहा—इन दोनोंके इस दुराग्रहको देखो, अच्छे और बुरे मार्गमें प्रेरित करनेवाला काल विपत्ति आनेपर बुद्धिको विपरीत वृत्तिवाला बना देता है। उसके बाद निशुम्भने चण्डिका एवं कालिकापर हजारों बाणोंसे प्रहार किया, किंतु शिवाने अपने बाणोंसे उस असुरके द्वारा चलाये गये बाणोंके हजारों टुकड़े कर दिये ॥ ३१-३२ ॥

ततः समुत्थाप्य कृपाणमुज्ज्वलं
सचर्म कण्ठीरवमूर्ध्न्यताडयत्।
बिभेद तं चापि महासिनाम्बिका
यथा कुठारेण तरुं तरुच्छिदः ॥ ३३

इसके बाद उसने ढालसहित उज्ज्वल खड्ग उठाकर सिंहके सिरपर मारा, किंतु अम्बिकाने अपने महाखड्गसे उसके भी टुकड़े-टुकड़े कर दिये, जिस प्रकार कुल्हाड़ी बड़े-बड़े वृक्षोंको टुकड़े-टुकड़े कर देती है ॥ ३३ ॥

स भिन्नखड्गो निचखान मार्गणं
पराम्बिकावक्षसि सोऽपि चिच्छिदे।
पुनस्त्रिशूलं हृदयेऽक्षिपत्तद-
प्यचूर्णयन्मुष्टिनिपातनेन सा ॥ ३४

गदां समादाय पुनर्महारथोऽ-
भ्यधावदम्बां मरणोन्मुखोऽसुरः।
अचूर्णयत्तामपि शूलधारया
पुनस्त्रिशूलं विददार सोऽन्यया ॥ ३५

उसके खड्गके टुकड़े-टुकड़े हो जानेपर उसने अम्बिकाके वक्षःस्थलपर बाणसे प्रहार किया, तब देवीने उसे भी काट दिया। इसके बाद उसने देवीके हृदयपर त्रिशूल फेंका, उन्होंने उसे भी [अपने] मुष्टिप्रहारसे चूर-चूर कर दिया। तब मरनेके लिये उद्यत हुआ वह महारथी दैत्य गदा लेकर देवीकी ओर दौड़ा, देवीने उसे भी अपने त्रिशूलकी धारसे चूर्ण कर दिया। उसने पुनः दूसरी गदासे देवीके त्रिशूलको चूर-चूर कर दिया ॥ ३४-३५ ॥

ततोऽम्बिका भीमभुजंगमोपमैः
सुरद्विषां शोणितचूषणोचितैः।
निशुम्भमात्मीयशिलीमुखैः शितै-
र्निहत्य भूमीमनयद्विषोक्षितैः॥ ३६
निपातितेऽमानबलेऽसुरप्रभुः
कनीयसि भ्रातरि रोषपूरितः।
रथस्थितो बाहुभिरष्टभिर्वृतो
जगाम यत्र प्रमदा महेशितुः॥ ३७

तदनन्तर अम्बिकाने देव-शत्रुओंके रक्तको चूसनेयोग्य, भयंकर सर्पसदृश तथा विषदिग्ध अपने तीक्ष्ण बाणोंसे निशुम्भको मारकर भूमिपर गिरा दिया। अमित बलवाले अपने छोटे भाईके मार दिये जानेपर क्रोधमें भरा हुआ आठ भुजाओंसे युक्त दैत्यराज शुम्भ रथपर सवार होकर वहाँ पहुँचा, जहाँ [भगवती] महेश्वरी थीं॥ ३६-३७॥

अवादयच्छंखमरिन्दमं तदा
धनुःस्वनं चापि चकार दुःसहम्।
ननाद सिंहोऽपि सटां विधूनयन्
बभूव नादत्रयनादितं नभः॥ ३८

उसने शत्रुओंको दमितकर देनेवाला शंखनाद किया और धनुषके दुःसह टंकारकी ध्वनि की। इधर [देवीका] सिंह भी अपने अयालोंको हिलाता हुआ भयंकर गर्जना करने लगा, इन तीनों नादोंसे आकाश गूँज उठा॥ ३८॥

ततोऽट्टहासं जगदम्बिकाऽकरो-
द्वितत्रसुस्तेन सुरारयोऽखिलाः।
जयेति शब्दं जगदुस्तदा सुरा
यदाम्बिकोवाच रणे स्थिरो भव॥ ३९
स दैत्यराजो महतीं ज्वलच्छिखां
मुमोच शक्तिं निहता च सोल्कया।
बिभेद शुंभप्रहितान् शरान् शिवा
शिवेरितान्सोऽपि सहस्रधा शरान्॥ ४०

उसके पश्चात् अम्बिकाने अट्टहास किया, उससे सभी असुर भयभीत हो उठे। जब अम्बिकाने उससे कहा कि युद्धमें खड़े रहो, तब देवताओंने जय-जयकार किया। तब उस दैत्यराजने प्रदीप्त अग्निशिखाके समान अपनी भीषण शक्तिसे देवीपर प्रहार किया, किंतु देवीने उसे उल्काके द्वारा काट दिया। फिर शिवाने शुम्भके द्वारा चलाये गये बाणोंके और उसने भी शिवाके द्वारा छोड़े गये बाणोंके हजारों टुकड़े कर दिये॥ ३९-४०॥

त्रिशूलमुत्क्षिप्य जघान चण्डिका
महासुरं तं स पपात मूर्च्छितः।
विभिन्नपक्षो हरिणा यथा नगः
प्रकंपयन् द्यां वसुधां सवारिधिम्॥ ४१

इसके बाद चण्डिकाने त्रिशूल उठाकर उस महान् असुरपर ऐसा प्रहार किया, जिससे वह मूर्च्छित होकर आकाश तथा समुद्रसहित पृथ्वीको कँपाता हुआ उसी प्रकार गिर पड़ा, जैसे इन्द्रके द्वारा काटे गये पंखवाला पर्वत गिर पड़ता है॥ ४१॥

ततो मृषित्वा त्रिशिखोद्भवां व्यथां
विधाय बाहूनयुतं महाबलः।
स कालिकां सिंहयुतां महेश्वरीं
जघान चक्रैरमरक्षयंकरैः॥ ४२

इसके बाद वह महाबली [दैत्य] त्रिशूलकी व्यथाको सहकर [मायासे] दस हजार भुजाएँ बनाकर देवताओंका भी नाश करनेमें समर्थ चक्रोंसे सिंहपर सवार महेश्वरी कालिकापर प्रहार करने लगा॥ ४२॥

तदस्य चक्राणि विभिद्य लीलया
त्रिशूलमुद्गूर्य जघान सासुरम्।
शिवाजगत्पावनपाणिपङ्कजा-
दुपात्तमृत्यू परमं पदं गतौ॥ ४३

तब उन शिवाने लीलापूर्वक उसके चक्रोंको नष्ट करके अपना त्रिशूल उठाकर उस असुरको मार दिया। इस प्रकार शिवाके जगत्पावन करकमलसे मृत्युको प्राप्त होकर वे दोनों [दैत्य] परमपदके भागी हुए॥ ४३॥

हते तस्मिन्महावीर्ये निशुंभे भीमविक्रमे।
शुंभे च सकला दैत्या विविशुर्बलिसद्मनि॥ ४४
भक्षिता अपरे कालीसिंहाद्यैरमरद्विषः।
पलायितास्तथान्ये च दशदिक्षु भयाकुलाः॥ ४५

तब उस महाबली तथा प्रचण्ड पराक्रमवाले निशुम्भ एवं शुम्भके मार दिये जानेपर सभी दैत्य पातालमें प्रवेश कर गये और कुछ दैत्योंको काली तथा सिंह आदिने भक्षण कर लिया तथा अन्य दैत्य भयभीत होकर दसों दिशाओंमें भाग गये॥ ४४-४५॥

बभूवुर्मार्गवाहिन्यः सरितः स्वच्छपाथसः।
ववुर्वाताः सुखस्पर्शा निर्मलत्वं ययौ नभः॥ ४६
पुनर्यागः समारेभे देवैर्ब्रह्मर्षिभिस्तथा।
सुखिनश्चाभवन्सर्वे महेन्द्राद्या दिवौकसः॥ ४७

[दैत्योंके मारे जानेपर] नदियाँ स्वच्छ जलवाली होकर अपने मार्गसे बहने लगीं, सुखदायक पवन बहने लगा, आकाश निर्मल हो गया। देवगणों तथा ब्रह्मर्षियोंने यज्ञ प्रारम्भ कर दिये और इन्द्र आदि सभी देवता सुखी हो गये॥ ४६-४७॥

पवित्रं परमं पुण्यमुमायाश्चरितं प्रभो।
दैत्यराजवधोपेतं श्रद्धया यः समभ्यसेत्॥ ४८
स भुक्त्वेहाखिलान्भोगांस्त्रिदशैरपि दुर्लभान्।
परत्रोमालयं गच्छेन्महामायाप्रसादतः॥ ४९

हे प्रभो! जो दैत्यराजके वधसे युक्त पार्वतीके इस परम पवित्र तथा पुण्यप्रद चरित्रको श्रद्धापूर्वक पढ़ता है, वह इस लोकमें देवताओंके लिये भी दुर्लभ सभी सुखोंको भोगकर महामायाके अनुग्रहसे देवीलोकको प्राप्त करता है॥ ४८-४९॥

ऋषिरुवाच

एवं देवी समुत्पन्ना शुंभासुरनिबर्हिणी।
प्रोक्ता सरस्वती साक्षादुमांशाविर्भवा नृप॥ ५०

ऋषि बोले—हे राजन्! शुम्भासुरका वध करनेवाली देवी इस प्रकार उत्पन्न हुईं, जो साक्षात् पार्वतीके अंशसे उत्पन्न सरस्वती कही गयी हैं॥ ५०॥

इति श्रीशिवमहापुराणे पञ्चम्यामुमासंहितायां निशुंभशुंभवधोपाख्याने सरस्वतीप्रादुर्भाववर्णनं नामाष्टचत्वारिंशोऽध्यायः॥ ४८॥

॥ इस प्रकार श्रीशिवमहापुराणके अन्तर्गत पाँचवीं उमासंहितामें शुम्भ-निशुम्भवध-उपाख्यानमें सरस्वतीप्रादुर्भाववर्णन नामक अड़तालीसवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ ४८॥

अथैकोनपञ्चाशत्तमोऽध्यायः

भगवती उमाके प्रादुर्भावका वर्णन

मुनय ऊचुः

उमाया भुवनेशान्याः सूत सर्वार्थवित्तम।
अवतारं समाचक्ष्व यतो जाता सरस्वती॥ १
या गीयते परब्रह्ममूलप्रकृतिरीश्वरी।
निराकारापि साकारा नित्यानन्दमयी सती॥ २

मुनिगण बोले—सर्वार्थवेत्ता सूतजी! अब आप भुवनेश्वरी उमाके अवतारका वर्णन करें, जिनसे सरस्वती उत्पन्न हुईं, जो परब्रह्म, मूलप्रकृति, ईश्वरी, निराकार होकर भी साकार एवं नित्यानन्दमयी सती कही जाती हैं॥ १-२॥

सूत उवाच

तापसाः शृणुत प्रेम्णा चरित्रं परमं महत्।
यस्य विज्ञानमात्रेण नरो याति परां गतिम्॥ ३

सूतजी बोले—हे तपस्वियो! आपलोग उनके अति महान् चरित्रका प्रेमपूर्वक श्रवण कीजिये, जिसके जाननेमात्रसे मनुष्य परम गतिको प्राप्त कर लेता है॥ ३॥

देवदानवयोर्युद्धमेकदासीत्परस्परम्।
महामायाप्रभावेणामराणां विजयोऽभवत्॥ ४

एक बार दैत्यों एवं देवताओंमें परस्पर युद्ध हुआ, उसमें महामायाके प्रभावसे देवगणोंकी विजय हुई॥ ४॥

ततोऽवलिप्ता अमराः स्वप्रशंसां वितेनिरे।
वयं धन्या वयं धन्याः किं करिष्यन्ति नोऽसुराः॥ ५

ये प्रभावं समालोक्यास्माकं परमदुःसहम्।
भीता नागालयं याता यात यातेति वादिनः॥ ६

अहो बलमहो तेजो दैत्यवंशक्षयंकरम्।
अहो भाग्यं सुमनसामेवं सर्वेऽभ्यवर्णयन्॥ ७

इससे देवताओंको अहंकार हो गया और वे अपनी प्रशंसा करने लगे कि हमलोग धन्य हैं, हमलोग धन्य हैं। वे असुर हमलोगोंका क्या कर लेंगे, जो हमारे अति दुःसह प्रतापको देखकर भयभीत हो 'भागो, भागो' ऐसा कहकर पाताललोकको चले गये। अहो, दैत्योंके वंशका नाश करनेवाला हमारा बल एवं तेज अद्भुत है, देवताओंका आश्चर्यकारक भाग्य है—इस प्रकार वे सब आत्मश्लाघा करने लगे॥ ५—७॥

तत आविरभूत्तेजः कूटरूपं तदैव हि।
अदृष्टपूर्वं तद् दृष्ट्वा विस्मिता अभवन्सुराः॥ ८
किमिदं किमिदं चेति रुद्धकण्ठाः समब्रुवन्।
अजानन्तः परं श्यामानुभावं मानभञ्जनम्॥ ९

उसी समय वहाँ एक पुंजीभूत तेज प्रकट हुआ, जिसे पहले नहीं देखा गया था। उसे देखकर देवता आश्चर्यचकित हो उठे। देवी श्यामाके अभिमाननाशक उस प्रभावको न जानते हुए वे रुँधे कण्ठसे कहने लगे—यह क्या है, यह क्या है!॥ ८-९॥

तत आज्ञापयद्देवान् देवानामधिनायकः।
यात यूयं परीक्षध्वं याथातथ्येन किन्विति॥ १०
सुरेन्द्रप्रेरितो वायुर्महसः सन्निधिं गतः।
कस्त्वं भोरिति सम्बोध्यावोचदेनं च तन्महः॥ ११
इति पृष्टस्तदा वायुर्महसातिगरीयसा।
वायुरस्मि जगत्प्राणः साभिमानोऽब्रवीदिदम्॥ १२
जंगमाजंगमं सर्वमोतप्रोतमिदं जगत्।
मय्येव निखिलाधारे चालयाम्यखिलं जगत्॥ १३

तब देवताओंके अधिपतिने देवताओंको आज्ञा दी कि आपलोग जाइये और ठीक-ठीक परीक्षा कीजिये कि यह क्या है? तब देवेन्द्रसे प्रेरित पवनदेव उस तेजके पास गये। उस तेजने उनको सम्बोधितकर कहा—तुम कौन हो?। तब उस प्रबल तेजके द्वारा इस प्रकार पूछे जानेपर अभिमानसे परिपूर्ण वायुने यह कहा—मैं जगत्का प्राण वायु हूँ। यह चराचर सारा जगत् सबके आधारस्वरूप मुझमें ही ओत-प्रोत है, मैं ही सम्पूर्ण जगत्का संचालन करता हूँ॥ १०—१३॥

तदोवाच महातेजः शक्तोऽसि यदि चालने।
धृतमेतत्तृणं वायो चालयस्व निजेच्छया॥ १४

ततः सर्वप्रयत्नेनाकरोद्यत्नं सदागतिः।
न चचाल यदा स्थानात्तदासौ लज्जितोऽभवत्॥ १५

उसके अनन्तर महातेजने कहा—हे वायो! यदि तुम चलानेमें समर्थ हो, तो इस रखे हुए तृणको स्वेच्छासे चला दो। तब वायुने सभी उपायोंसे उसे चलानेका यत्न किया, किंतु जब वह [तृण] अपने स्थानसे विचलित नहीं हुआ, तब वे वायुदेव लज्जित हो गये॥ १४-१५॥

तूष्णीं भूत्वा ततो वायुर्जगामेन्द्रसभां प्रति।
कथयामास तद् वृत्तं स्वकीयाभिभवान्वितम्॥ १६

इसके बाद चुप होकर वायु इन्द्रकी सभामें गये और अपने पराभवका वह समाचार बताया॥ १६॥

सर्वेशत्वं वयं सर्वे मृषैवात्मनि मन्महे।
न पारयामहे किंचिद्विधातुं क्षुद्रवस्त्वपि॥ १७

ततश्च प्रेषयामास मरुत्वान्सकलान्सुरान्।
न शेकुस्ते यदा ज्ञातुं तदेन्द्रः स्वयमभ्यगात्॥ १८

हम सब व्यर्थ ही अपनेमें सर्वेश्वरत्वका अभिमान करते हैं, हमलोग छोटे-से-छोटा कार्य भी नहीं कर सकते हैं। इसके बाद इन्द्रने सभी देवताओंको भेजा, किंतु जब वे भी उसे नहीं जान सके, तब स्वयं इन्द्र उसके पास गये॥ १७-१८॥

मघवन्तमथायान्तं दृष्ट्वा तेजोऽतिदुःसहम्।
बभूवान्तर्हितः सद्यो विस्मितोऽभूच्च वासवः ॥ १९

चरित्रमीदृशं यस्य तमेव शरणं श्रये।
इति संचिन्तयामास सहस्राक्षः पुनः पुनः ॥ २०

एतस्मिन्नन्तरे तत्र निर्व्याजकरुणातनुः।
तेषामनुग्रहं कर्तुं हर्तुं गर्वं शिवाङ्गना ॥ २१
चैत्रशुक्लनवम्यां तु मध्याह्नस्थे दिवाकरे।
प्रादुरासीदुमा देवी सच्चिदानन्दरूपिणी ॥ २२
महोमध्ये विराजन्ती भासयन्ती दिशो रुचा।
बोधयन्ती सुरान् सर्वान् ब्रह्मैवाहमिति स्फुटम् ॥ २३
चतुर्भिर्दधती हस्तैर्वरपाशांकुशाभयान्।
श्रुतिभिः सेविता रम्या नवयौवनगर्विता ॥ २४
रक्ताम्बरपरीधाना रक्तमाल्यानुलेपना।
कोटिकंदर्पसंकाशा चन्द्रकोटिसमप्रभा ॥ २५
व्याजहार महामाया सर्वान्तर्यामिरूपिणी।
साक्षिणी सर्वभूतानां परब्रह्मस्वरूपिणी ॥ २६

उमोवाच

न ब्रह्मा न मुरारातिर्न पुरारातिरीश्वरः।
मदग्रे गर्वितुं किंचित्का कथान्यसुपर्वणाम् ॥ २७
परं ब्रह्म परं ज्योतिः प्रणवद्वन्द्वरूपिणी।
अहमेवास्मि सकलं मदन्यो नास्ति कश्चन ॥ २८
निराकारापि साकारा सर्वतत्त्वस्वरूपिणी।
अप्रतर्क्यगुणा नित्या कार्यकारणरूपिणी ॥ २९
कदाचिद्दयिताकारा कदाचित्पुरुषाकृतिः।
कदाचिदुभयाकारा सर्वाकाराहमीश्वरी ॥ ३०

विरञ्चिः सृष्टिकर्ताहं जगत्पाताहमच्युतः।
रुद्रः संहारकर्ताहं सर्वविश्वविमोहिनी ॥ ३१

कालिकाकमलावाणीमुखाः सर्वा हि शक्तयः।
मदंशादेव संजातास्तथेमाः सकलाः कलाः ॥ ३२

मत्प्रभावाज्जिताः सर्वे युष्माभिर्दितिनन्दनाः।
तामविज्ञाय मां यूयं वृथा सर्वेशमानिनः ॥ ३३

इन्द्रको आता हुआ देखकर वह अति दुःसह तेज उसी क्षण अन्तर्धान हो गया, इन्द्र आश्चर्यचकित हो गये। तब इन्द्रने बार-बार यह विचार किया कि जिसका ऐसा चरित्र है, मुझे उसीके शरणमें जाना चाहिये ॥ १९-२० ॥

इसी बीच अकारण करुणामूर्ति सच्चिदानन्दरूपिणी शिवांगना भगवती उमा उन सभीपर अनुग्रह करनेके लिये एवं उनका अभिमान दूर करनेके लिये चैत्र शुक्ल नवमीको मध्याह्नकालमें वहाँ प्रकट हुईं। तेजके मध्यमें विराजमान, अपनी प्रभासे दसों दिशाओंको प्रकाशित करती हुई, 'मैं ही ब्रह्म हूँ'—ऐसा सभी देवताओंको स्पष्ट रूपसे बतलाती हुई, अपने चारों हाथोंमें वरद मुद्रा, पाश, अंकुश एवं अभयमुद्रा धारण की हुई, वेदोंके द्वारा सेवित, मनोहर, नवयौवनसे गर्वित, रक्त वस्त्र धारण की हुई, रक्तपुष्पोंकी माला पहनी हुई, रक्त चन्दनके अनुलेपसे युक्त, करोड़ों कामदेवके सदृश विमोहिनी; करोड़ों चन्द्रमाओंके समान कान्तिवाली उन सर्वान्तर्यामिनी सर्वभूतसाक्षिणी परब्रह्मस्वरूपिणी महामायाने कहा— ॥ २१—२६ ॥

उमा बोलीं—मेरे सामने न ब्रह्मा, न विष्णु एवं न तो महेश्वर ही कुछ भी गर्व करनेमें समर्थ हैं, अन्य देवताओंकी तो बात ही क्या है? ॥ २७ ॥

मैं ही परब्रह्म, परमज्योति, प्रणव और युगलरूपिणी हूँ, मैं ही सब कुछ हूँ, मेरे अतिरिक्त अन्य कोई कुछ नहीं है। मैं निराकार होकर भी साकार, सर्वतत्त्वस्वरूपिणी, तर्कसे परे गुणोंवाली, नित्य तथा कार्य-कारणस्वरूपिणी हूँ। मैं कभी स्त्रीरूपवाली, कभी पुरुषरूपवाली तथा कभी दोनों ही स्वरूपोंवाली हो जाती हूँ, इस प्रकार मैं सर्वस्वरूपा महेश्वरी हूँ ॥ २८—३० ॥

सृष्टिकर्ता ब्रह्मा मै ही हूँ, जगत्का पालन करनेवाला विष्णु मैं ही हूँ, संहार करनेवाला शिव भी मैं ही हूँ एवं जगत्को मोहनेवाली (महामाया) भी मैं ही हूँ ॥ ३१ ॥

कालिका, कमला, सरस्वती आदि समस्त शक्तियाँ मेरे ही अंशसे उत्पन्न हुई हैं और ये सब मेरी कलाएँ हैं। मेरे ही प्रभावसे तुमलोगोंने दैत्योंपर विजय प्राप्त की है, उस मुझ [शक्ति]-को न जानकर तुमलोग व्यर्थ ही अपनेको सर्वेश समझते हो ॥ ३२-३३ ॥

यथा दारुमयीं योषां नर्तयत्यैन्द्रजालिकः।
तथैव सर्वभूतानि नर्तयाम्यहमीश्वरी॥ ३४
मद्भयाद्वाति पवनः सर्वं दहति हव्यभुक्।
लोकपालाः प्रकुर्वन्ति स्वस्वकर्माण्यनारतम्॥ ३५

जिस प्रकार ऐन्द्रजालिक काठकी पुतलीको नचाता है, उसी प्रकार मैं ईश्वरी सभी प्राणियोंको नचाती हूँ। मेरे भयसे पवन बहता है, अग्नि सबको जलाती है एवं लोकपाल निरन्तर अपने-अपने कार्य करते हैं॥ ३४-३५॥

कदाचिद्देववर्गाणां कदाचिद्दितिजन्मनाम्।
करोमि विजयं सम्यक् स्वतन्त्रा निजलीलया॥ ३६
अविनाशि परं धाम मायातीतं परात्परम्।
श्रुतयो वर्णयन्ते यत्तद्रूपं तु ममैव हि॥ ३७

मैं सर्वथा स्वतन्त्र हूँ, इसलिये अपनी लीलासे कभी देवगणोंकी और कभी दैत्योंकी भलीभाँति विजय कराती हूँ। वेद जिस अविनाशी तथा मायातीत परात्पर परमधामका वर्णन करते हैं, वह तो मेरा ही रूप है॥ ३६-३७॥

सगुणं निर्गुणं चेति मद्रूपं द्विविधं मतम्।
मायाशबलितं चैकं द्वितीयं तदनाश्रितम्॥ ३८
एवं विज्ञाय मां देवाः स्वं स्वं गर्वं विहाय च।
भजत प्रणयोपेताः प्रकृतिं मां सनातनीम्॥ ३९

सगुण एवं निर्गुण—यह मेरा दो प्रकारका रूप कहा गया है। प्रथम रूप मायामय है एवं दूसरा रूप माया-रहित है। हे देवताओ! इस प्रकार मुझे जानकर और अपने-अपने गर्वका परित्याग करके भक्तिसे युक्त होकर मुझ सनातनी प्रकृतिकी आराधना करो॥ ३८-३९॥

इति देव्या वचः श्रुत्वा करुणागर्भितं सुराः।
तुष्टुवुः परमेशानीं भक्तिसन्नतकन्धराः॥ ४०
क्षमस्व जगदीशानि प्रसीद परमेश्वरि।
मैवं भूयात्कदाचिन्नो गर्वो मातर्दयां कुरु॥ ४१

देवीके ऐसे दयायुक्त वचनको सुनकर भक्तिसे सिर झुकाये हुए देवतालोग परमेश्वरीकी स्तुति करने लगे—हे जगदीश्वरि! क्षमा कीजिये। हे परमेश्वरि! प्रसन्न हो जाइये, अब हमलोगोंको ऐसा गर्व कभी न हो। हे मातः! दया कीजिये॥ ४०-४१॥

ततः प्रभृति ते देवा हित्वा गर्वं समाहिताः।
उमामाराधयामासुर्यथापूर्वं यथाविधि॥ ४२
इति वः कथितो विप्रा उमाप्रादुर्भवो मया।
यस्य श्रवणमात्रेण परमं पदमश्नुते॥ ४३

उसी समयसे वे देवता अभिमान छोड़कर एकाग्र-चित्त हो पूर्वकी भाँति विधिपूर्वक पार्वतीकी आराधना करने लगे। हे विप्रो! इस प्रकार मैंने आपलोगोंसे उमाके प्रादुर्भावका वर्णन कर दिया, जिसके श्रवणमात्रसे परमपद प्राप्त होता है॥ ४२-४३॥

इति श्रीशिवमहापुराणे पञ्चम्यामुमासंहितायामुमाप्रादुर्भाववर्णनं नामैकोनपञ्चाशत्तमोऽध्यायः॥ ४९॥

॥ इस प्रकार श्रीशिवमहापुराणके अन्तर्गत पाँचवीं उमासंहितामें उमाप्रादुर्भाववर्णन नामक उनचासवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ ४९॥

अथ पञ्चाशत्तमोऽध्यायः

दस महाविद्याओंकी उत्पत्ति तथा देवीके दुर्गा, शताक्षी, शाकम्भरी और भ्रामरी आदि नामोंके पड़नेका कारण

मुनय ऊचुः

श्रोतुकामा वयं सर्वे दुर्गाचरितमन्वहम्।
अपरं च महाप्राज्ञ तत्त्वं वर्णय नोऽद्भुतम्॥ १

मुनिगण बोले—हे महाप्राज्ञ! हमलोग दुर्गाके चरित्रको निरन्तर सुनना चाहते हैं, अतः आप हमलोगोंसे दूसरे अद्भुत [लीला] तत्त्वका वर्णन कीजिये॥ १॥

श्रृण्वतां त्वन्मुखाम्भोजात् कथा नाना सुधोपमाः।
न तृप्यति मनोऽस्माकं सूत सर्वार्थवित्तम॥ २

सूत उवाच

दुर्गमः प्रथितो नाम्ना रुरुपुत्रो महाबलः।
ब्रह्मणो वरदानेन चतस्त्रोऽलभत श्रुतीः॥ ३
देवाजेयबलं चापि संप्राप्य जगतीतले।
करोति स्म बहूत्पातान्दिवि देवाश्चकम्पिरे॥ ४
सर्वा नष्टेषु वेदेषु क्रिया नष्टा बभूव ह।
ब्राह्मणाश्च दुराचारा बभूवुः ससुरास्तदा॥ ५
न दानं न तपोऽत्युग्रं न यागो हवनं न हि।
अनावृष्टिस्ततो जाता पृथिव्यां शतवार्षिकी॥ ६
हाहाकारो महानासीत् त्रिषु लोकेषु दुःखिताः।
अभवंश्च जनाः सर्वे क्षुत्तृड्भ्यां पीडिता भृशम्॥ ७
सरितः सागराश्चैव वापीकूपसरांसि च।
निर्जला अभवन्सर्वे संशुष्का वृक्षवीरुधः॥ ८
ततो दृष्ट्वा महादुःखं प्रजानां दीनचेतसाम्।
त्रिदशाः शरणं याता योगमायां महेश्वरीम्॥ ९

देवा ऊचुः

रक्ष रक्ष महामाये स्वकीयाः सकलाः प्रजाः।
कोपं संहर नूनं त्वं लोका नंक्ष्यन्ति चान्यथा॥ १०
यथा शुंभो हतो दैत्यो निशुंभश्च महाबलः।
धूम्राक्षश्चण्डमुण्डौ च रक्तबीजो महाबलः॥ ११
समधुः कैटभो दैत्यो महिषासुर एव च।
तथैवामुं कृपासिन्धो दीनबन्धो जहि द्रुतम्॥ १२
अपराधो भवत्येव बालकानां पदे पदे।
सहते को जनो लोके केवलं मातरं विना॥ १३
यदा यदाभवद्दुःखं देवानां ब्रह्मणां तथा।
तदा तदावतीर्याशु कुरुषे सुखिनो जनान्॥ १४

इति विक्लवितं तेषां समाकर्ण्य कृपामयी।
अनन्ताक्षमयं रूपं दर्शयामास साम्प्रतम्॥ १५

धनुर्बाणौ तथा पद्मं नानामूलफलानि च।
चतुर्भिर्दधती हस्तैः प्रसन्नमुखपङ्कजा॥ १६

समस्त अर्थोंको जाननेवालोंमें श्रेष्ठ हे सूतजी! आपके मुखारविन्दसे निकलती हुई अमृतके समान अनेक कथाओंको सुनते हुए हमलोगोंका मन तृप्त नहीं होता है॥ २॥

सूतजी बोले—[पूर्वकालमें] रुरुके दुर्गम नामसे विख्यात महाबली पुत्रने ब्रह्मदेवके वरदानसे चारों वेदोंको प्राप्त किया। वह देवगणोंसे भी अजेय बल प्राप्तकर पृथ्वीतलपर बहुत उपद्रव करने लगा, जिससे स्वर्गमें देवता भी काँप उठे। उस समय वेदोंके नष्ट हो जानेसे सारी क्रियाएँ नष्ट हो गयीं और देवताओंसहित ब्राह्मण दुराचारी हो गये॥ ३—५॥

उस समय न तो कहीं दान किया जाता था, न उग्र तपस्या की जाती थी, न यज्ञ होता था और न हवन ही होता था, उससे पृथ्वीपर सौ वर्षकी अनावृष्टि हुई॥ ६॥

तीनों लोकोंमें हाहाकार होने लगा। सभी लोग भूख-प्याससे पीड़ित होकर अत्यन्त दुखी हो गये। सभी नदियाँ, समुद्र, बावली, कूप, सरोवर जलविहीन हो गये और वृक्ष तथा लताएँ सूख गयीं॥ ७-८॥

तब दीन चित्तवाली प्रजाओंकी महान् विपत्ति देखकर देवता योगमाया महेश्वरीके शरणमें गये॥ ९॥

देवगण बोले—हे महामाये! आप अपनी समस्त प्रजाओंकी रक्षा करें और अपने क्रोधको दूर करें, अन्यथा सभी लोक अवश्य नष्ट हो जायँगे॥ १०॥

हे कृपासिन्धो! हे दीनबन्धो! जिस प्रकार आपने दैत्य शुम्भ, महाबलशाली निशुम्भ, धूम्राक्ष, चण्ड, मुण्ड, महाबली रक्तबीज, मधु, कैटभ तथा महिषासुरका वध किया था; उसी प्रकार शीघ्र इसका भी वध कीजिये॥ ११-१२॥

बालकोंसे तो अपराध पद-पदपर होता है, केवल माताके अतिरिक्त लोकमें उसे कौन सह सकता है!॥ १३॥

हे देवि! जब-जब देवगणों और ब्राह्मणोंको दुःख हुआ, तब-तब आपने अवतार लेकर उन लोगोंको सुखी बनाया है॥ १४॥

उन देवताओंके इस दीन वचनको सुनकर कृपामयी भगवतीने उस समय अनन्त नेत्रोंवाला अपना स्वरूप दिखाया। वे प्रसन्न मुखकमलवाली थीं और चारों हाथोंमें धनुष, बाण, कमल तथा नाना प्रकारके फल-मूल धारण की हुई थीं॥ १५-१६॥

ततो दृष्ट्वा प्रजास्तप्ताः करुणापूरितेक्षणा।
रुरोद नव घस्राणि नव रात्रीः समाकुला॥ १७
मोचयामास दृष्टिभ्यो वारिधाराः सहस्रशः।
ताभिः प्रतर्पिता लोका ओषध्यः सकला अपि॥ १८

तदनन्तर प्रजाओंको दुखी देखकर करुणाभरे नेत्रोंवाली वे व्याकुल होकर लगातार नौ दिन एवं नौ रात्रितक रोती रहीं। उस समय वे नेत्रोंसे हजारों जलधाराएँ बहाने लगीं, उन धाराओंसे सभी लोक तथा समस्त औषधियाँ तृप्त हो गयीं॥ १७-१८॥

अगाधतोयाः सरितो बभूवुः सागरा अपि।
रुरुहुर्धरणीपृष्ठे शाकमूलफलानि च॥ १९

समुद्र एवं नदियाँ अगाध जलसे परिपूर्ण हो गयीं और पृथ्वीतलपर शाक तथा फल-मूल उगने लगे॥ १९॥

विततार करस्थानि सुमनोभ्यः फलानि च।
गोभ्यस्तृणानि रम्याणि तथान्येभ्यो यथार्हतः॥ २०

भगवती शुद्ध हृदयवाले महात्मा पुरुषोंको अपने हाथोंमें रखे हुए फल बाँटने लगीं। उन्होंने गौओंके लिये सुस्वादु तृण और दूसरे प्राणियोंके लिये यथायोग्य भोज्य वस्तुओंको प्रस्तुत किया॥ २०॥

सन्तुष्टा अभवन्सर्वे सदेवद्विजमानुषाः।
ततो जगाद सा देवी किमन्यत्करवाणि वः॥ २१

इस प्रकार ब्राह्मण, देवता और मनुष्योंसहित सभी सन्तुष्ट हो गये, तब उन देवीने कहा—अब मैं आपलोगोंका कौन-सा कार्य करूँ?॥ २१॥

समेत्योचुस्तदा देवा भवत्या तोषिता जनाः।
वेदान्देहि कृपां कृत्वा दुर्गमेण समाहृतान्॥ २२

तब सभी देवताओंने मिलकर [हे देवि!] आपने सभी लोगोंको सन्तुष्ट कर दिया, अब कृपाकर दुर्गमद्वारा हरण किये गये वेदोंको हमें उपलब्ध कराइये॥ २२॥

तथास्त्विति प्रभाष्याह यात यात निजालयम्।
वितरिष्यामि वो वेदानचिरेणैव कालतः॥ २३

तब देवीने 'ऐसा ही होगा' कहकर पुनः उनसे कहा कि अब आपलोग अपने घर जाइये, मैं शीघ्र ही आपलोगोंको वेद प्रदान करूँगी॥ २३॥

ततः प्रमुदिता देवाः स्वं स्वं धाम समाययुः।
सुप्रणम्य जगद्योनिं फुल्लेन्दीवरलोचनाम्॥ २४

इसके बाद प्रसन्न हुए देवतालोग जगत्‌को उत्पन्न करनेवाली तथा विकसित नीलकमलके समान नेत्रोंवाली देवीको प्रणामकर अपने-अपने स्थानको चले गये॥ २४॥

ततः कोलाहलो जातो दिवि भूम्यन्तरिक्षके।
तच्छ्रुत्वा रौरवः सद्यो न्यरुणत्सर्वतः पुरीम्॥ २५

तब स्वर्ग, भूलोक तथा अन्तरिक्षमें कोलाहल मच गया, उसे सुनकर दुर्गमने चारों ओरसे [अमरावती] पुरीको घेर लिया॥ २५॥

ततस्तेजोमयं चक्रं विधाय परितः शिवा।
रक्षणार्थं देवतानां स्वयं तस्माद् बहिर्गता॥ २६

ततः समभवद्युद्धं देव्या दैत्यस्य चोभयोः।
ववृषुः समरे बाणान्निशितान्कंकटच्छिदः॥ २७

इसके बाद शिवा—पार्वती देवताओंकी रक्षाके लिये पुरीके चारों ओर तेजोमय मण्डलका निर्माणकर स्वयं उस [घेरे]-से बाहर आ गयीं। तब देवी और दैत्य दोनोंके बीच संग्राम छिड़ गया। दोनों पक्षोंसे कवचोंको काटनेवाले तीक्ष्ण बाणोंकी वर्षा होने लगी॥ २६-२७॥

एतस्मिन्नन्तरे तस्याः शरीराद् रम्यमूर्तयः।
काली तारा छिन्नमस्ता श्रीविद्या भुवनेश्वरी॥ २८
भैरवी बगला धूम्रा श्रीमत्त्रिपुरसुंदरी।
मातंगी च महाविद्या निर्गता दश सायुधाः॥ २९

इसी बीच उनके शरीरसे काली, तारा, छिन्नमस्ता, श्रीविद्या, भुवनेश्वरी, भैरवी, बगला, धूम्रा, त्रिपुरसुन्दरी तथा मातंगी—ये मनोहर रूपवाली दस महाविद्याएँ शस्त्रयुक्त हो प्रकट हो गयीं॥ २८-२९॥

असंख्यातास्ततो जाता मातरो दिव्यमूर्तयः।
चन्द्रलेखाधराः सर्वाः सर्वा विद्युत्समप्रभाः॥ ३०

ततो मातृगणैर्युद्धं प्रावर्तत भयंकरम्।
रौरवीयं हतं ताभिर्दलमक्षौहिणीशतम्॥ ३१

उसके बाद दिव्य मूर्तिवाली असंख्य मातृकाएँ प्रकट हुईं, वे सब चन्द्रलेखाको धारण किये थीं तथा विद्युत्के समान कान्तिवाली थीं। तब मातृगणोंके साथ उस दुर्गमका भयंकर संग्राम होने लगा, उन देवियोंने रुरुपुत्र दुर्गमकी सौ अक्षौहिणी सेना नष्ट कर दी॥ ३०-३१॥

जघान सा तदा दैत्यं दुर्गमं शूलधारया।
पपात धरणीपृष्ठे खातमूलद्रुमो यथा॥ ३२

तब उन्होंने अपने त्रिशूलकी धारसे उस दैत्यपर प्रहार किया और वह उखड़े हुए मूलवाले वृक्षके समान पृथ्वीपर गिर पड़ा॥ ३२॥

इत्थं हत्वा तदा दैत्यं दुर्गमासुरनामकम्।
आदाय चतुरो वेदान्ददौ देवेभ्य ईश्वरी॥ ३३

इस प्रकार दुर्गम नामक असुरको मारकर उससे चारों वेदोंको लेकर ईश्वरीने देवताओंको दे दिया॥ ३३॥

देवा ऊचुः

अस्मदर्थं त्वया रूपमनन्ताक्षिमयं धृतम्।
मुनयः कीर्तयिष्यन्ति शताक्षीं त्वामतोऽम्बिके॥ ३४

आत्मदेहसमुद्भूतैः शाकैर्लोका भृता यतः।
शाकंभरीति विख्यातं तत्ते नाम भविष्यति॥ ३५

दुर्गमाख्यो महादैत्यो हतो यस्मात्ततः शिवे।
दुर्गां भगवतीं भद्रां व्याहरिष्यन्ति मानवाः॥ ३६

देवता बोले—हे अम्बिके! हमलोगोंके लिये आपने अनन्त नेत्रोंवाला स्वरूप धारण किया, अतः मुनिलोग आपको 'शताक्षी' कहेंगे। आपने अपनी देहसे उत्पन्न शाकोंद्वारा लोकोंका भरण [-पोषण] किया, अतः आपका 'शाकम्भरी'—यह नाम विख्यात होगा। हे शिवे! आपने दुर्गम नामक महादैत्यका वध किया है, इसलिये मानव आप कल्याणमयी भगवतीको 'दुर्गा' कहेंगे॥ ३४—३६॥

योगनिद्रे नमस्तुभ्यं नमस्तेऽस्तु महाबले।
नमो ज्ञानप्रदे तुभ्यं विश्वमात्रे नमो नमः॥ ३७

हे योगनिद्रे! आपको नमस्कार है। हे महाबले! आपको नमस्कार है। हे ज्ञानप्रदे! आपको नमस्कार है। आप विश्वमाताको बार-बार नमस्कार है॥ ३७॥

तत्त्वमस्यादिवाक्यैर्या बोध्यते परमेश्वरी।
अनन्तकोटिब्रह्माण्डनायिकायै नमो नमः॥ ३८

जिन परमेश्वरीका ज्ञान 'तत्त्वमसि' आदि वाक्योंसे होता है, उन अनन्तकोटिब्रह्माण्डनायिकाको बार-बार नमस्कार है॥ ३८॥

वाङ्मनःकायदुष्प्रापां सूर्यचन्द्राग्निलोचनाम्।
स्तोतुं न शक्नुमो मातस्त्वत्प्रभावाबुधा वयम्॥ ३९

हे मातः! आपके प्रभावको न जाननेवाले हमलोग वाणी, मन और शरीरसे दुष्प्राप्य तथा सूर्य, चन्द्रमा एवं अग्निरूपी तीन नेत्रोंवाली आपकी स्तुति नहीं कर सकते हैं॥ ३९॥

मादृशानमरान्दृष्ट्वा कः कुर्यादीदृशीं दयाम्।
वर्जयित्वा सुरेशानीं शताक्षीं मातरं विना॥ ४०

हम-जैसे देवगणोंको देखकर सुरेश्वरी माता शताक्षीके बिना कौन इस प्रकारकी दया कर सकता है॥ ४०॥

त्रिलोकी नाभिभूयेत बाधाभिश्च निरन्तरम्।
एवं कार्यस्त्वया यत्नोऽस्माकं वैरिविनाशनम्॥ ४१

अब आप इस प्रकारका यत्न करें कि बाधाओंसे निरन्तर त्रिलोकी पराभूत न हो सके और हमारे शत्रुओंका नाश हो॥ ४१॥

देव्युवाच

वत्सान्दृष्ट्वा यथा गावो व्यग्रा धावन्ति सत्वरम्।
तथैव भवतो दृष्ट्वा धावामि व्याकुला सती॥ ४२

देवी बोलीं—[हे देवगणो!] जिस प्रकार अपने बछड़ोंको देखकर गायें शीघ्रतासे व्यग्र हो दौड़ती हैं, उसी प्रकार मैं भी आपलोगोंको देखकर व्यग्र होकर दौड़ पड़ती हूँ॥ ४२॥

मम युष्मानपश्यन्त्याः पश्यन्त्या बालकानिव।
अपि प्राणान्प्रयच्छन्त्याः क्षण एको युगायते॥ ४३

मैं आपलोगोंको सन्तानके समान देखती रहती हूँ, किंतु जब नहीं देख पाती तो मेरा एक-एक क्षण युगके समान बीतता है। मैं आपलोगोंके लिये अपने प्राणोंको भी न्योछावर कर सकती हूँ॥ ४३॥

कापि चिन्ता न कर्तव्या युष्माभिर्भक्तिशालिभिः।
भवत्यां मयि तिष्ठन्त्यां संहरन्त्यां निजापदः॥ ४४

आपलोगोंकी विपत्तियोंको दूर करनेवाली मेरे रहते आप भक्तोंको किसी प्रकारकी चिन्ता नहीं करनी चाहिये॥ ४४॥

यथा पूर्वं हता दैत्या हनिष्यामि तथासुरान्।
संशयो नात्र कर्त्तव्यः सत्यं सत्यं ब्रवीम्यहम्॥ ४५

जिस प्रकार मैंने पूर्व समयमें दैत्योंका वध किया था, उसी प्रकार [आगे भी] असुरोंका वध करूँगी, इसमें संशय नहीं करना चाहिये, यह मैं सत्य-सत्य कहती हूँ॥ ४५॥

यदा शुंभो निशुंभश्चापरौ दैत्यौ भविष्यतः।
तदाहं नन्दभार्यायां यशोदायां यशोमयी॥ ४६
योनिजं रूपमास्थाय जनिष्ये गोपगोकुले।
हनिष्याम्यसुरौ तन्मां व्याहरिष्यन्ति नन्दजाम्॥ ४७

जब दूसरे शुम्भ एवं निशुम्भ नामक दैत्य उत्पन्न होंगे, तब यशोमयी मैं नन्दभार्या यशोदाके गर्भसे योनिज रूप ग्रहणकर गोपोंके गोकुलमें अवतरित होऊँगी और उन दोनोंका वध करूँगी, तब लोग मुझे 'नन्दजा' कहेंगे॥ ४६-४७॥

भ्रामरं रूपमास्थाय वधिष्याम्यरुणं यतः।
भ्रामरीति च मां लोके कीर्तयिष्यन्ति मानवाः॥ ४८
कृत्वा भीमं पुना रूपं रक्षांस्यत्स्याम्यहं यदा।
भीमा देवीति विख्यातं तन्मे नाम भविष्यति॥ ४९

मैं भ्रमरका रूप धारणकर अरुण नामक दैत्यका वध करूँगी। अतः मानव लोकमें मुझे 'भ्रामरी'—इस नामसे पुकारेंगे। पुनः जब मैं भीम [भयंकर] रूप धारणकर राक्षसोंका भक्षण करूँगी, तब मेरा 'भीमादेवी'—यह नाम विख्यात होगा॥ ४८-४९॥

यदा यदासुरोत्थैवं बाधा भुवि भविष्यति।
तदा तदावतीर्याहं शं करिष्याम्यसंशयम्॥ ५०

इस प्रकार जब-जब पृथ्वीपर दैत्योंके द्वारा बाधा उत्पन्न होगी, तब-तब मैं अवतार लेकर निस्सन्देह कल्याण करूँगी॥ ५०॥

या शताक्षी स्मृता देवी सैव शाकंभरी मता।
सैव प्रकीर्तिता दुर्गा व्यक्तिरेकैव त्रिष्वपि॥ ५१

जो देवी शताक्षी कही गयी हैं, वे ही शाकम्भरी हैं और वे ही दुर्गा भी कहलाती हैं, इन तीनों नामोंद्वारा एक ही सत्ताका प्रतिपादन होता है॥ ५१॥

न शताक्षीसमा काचिद्दयालुर्भुवि देवता।
दृष्ट्वारुदत्प्रजास्तप्ता या नवाहं महेश्वरी॥ ५२

भूलोकमें शताक्षीके समान कोई दयालु देवता नहीं है, जिन्होंने प्रजाओंको सन्तप्त देखकर निरन्तर नौ दिनोंतक रुदन किया॥ ५२॥

इति श्रीशिवमहापुराणे पञ्चम्यामुमासंहितायां शताक्ष्याद्यवतारवर्णनं नाम पञ्चाशत्तमोऽध्यायः॥ ५०॥

॥ इस प्रकार श्रीशिवमहापुराणके अन्तर्गत पाँचवीं उमासंहितामें शताक्ष्याद्यवतारवर्णन नामक पचासवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ ५०॥

अथैकपञ्चाशत्तमोऽध्यायः

भगवतीके मन्दिरनिर्माण, प्रतिमास्थापन तथा पूजनका माहात्म्य और उमासंहिताके श्रवण एवं पाठकी महिमा

मुनय ऊचुः

व्यासशिष्य महाभाग सूत पौराणिकोत्तम।
अपरं श्रोतुमिच्छामः किमप्याख्यानमीशितुः॥ १
उमाया जगदम्बायाः क्रियायोगमनुत्तमम्।
प्रोक्तं सनत्कुमारेण व्यासाय च महात्मने॥ २

मुनिगण बोले—हे व्यासशिष्य! हे महाभाग! हे पौराणिकोत्तम सूतजी! हमलोग महेश्वरी उमा जगदम्बाके अद्वितीय अनुत्तम क्रियायोगाख्यानको सुनना चाहते हैं, जिसे सनत्कुमारने महात्मा व्याससे कहा था॥ १-२॥

सूत उवाच

धन्या यूयं महात्मानो देवीभक्तिदृढव्रताः।
पराशक्तेः परं गुप्तं रहस्यं शृणुतादरात्॥ ३

सूतजी बोले—देवीकी भक्तिमें दृढ़ व्रतवाले आप सभी महात्मा धन्य हैं; अब पराशक्तिके अत्यन्त गुप्त रहस्यको आपलोग आदरपूर्वक सुनिये॥ ३॥

व्यास उवाच

सनत्कुमार सर्वज्ञ ब्रह्मपुत्र महामते।
उमायाः श्रोतुमिच्छामि क्रियायोगं महाद्भुतम्॥ ४
कीदृक्च लक्षणं तस्य किं कृते च फलं भवेत्।
प्रियं यच्च पराम्बायास्तदशेषं वदस्व मे॥ ५

व्यासजी बोले—हे सनत्कुमार! हे सर्वज्ञ! हे ब्रह्मपुत्र! हे महामते! मैं पार्वतीके अत्यन्त अद्भुत क्रियायोगको सुनना चाहता हूँ। उसका क्या लक्षण है, उसके अनुष्ठानका क्या फल होता है और पराम्बाको जो प्रिय है, उसे पूर्णरूपसे बताइये॥ ४-५॥

सनत्कुमार उवाच

द्वैपायन यदेतत्त्वं रहस्यं परिपृच्छसि।
तच्छृणुष्व महाबुद्धे सर्वं मे वर्णयिष्यतः॥ ६

सनत्कुमार बोले—हे द्वैपायन! हे महाबुद्धे! आप जिस रहस्यको पूछ रहे हैं, उसका वर्णन मैं कर रहा हूँ, आप सुनें॥ ६॥

ज्ञानयोगः क्रियायोगो भक्तियोगस्तथैव च।
त्रयो मार्गाः समाख्याताः श्रीमातुर्भुक्तिमुक्तिदाः॥ ७

ज्ञानयोग, क्रियायोग और भक्तियोग—ये श्रीमाता [की उपासना]-के तीन मार्ग हैं, जो भोग एवं मोक्षको देनेवाले कहे गये हैं॥ ७॥

ज्ञानयोगस्तु संयोगश्चित्तस्यैवात्मना तु यः।
यस्तु बाह्यार्थसंयोगः क्रियायोगः स उच्यते॥ ८

भक्तियोगो मतो देव्या आत्मनश्चैक्यभावनम्।
त्रयाणामपि योगानां क्रियायोगः स उच्यते॥ ९

चित्तका आत्माके साथ जो संयोग है, वह ज्ञानयोग कहा गया है और जो बाहरके अर्थों (वस्तुओं)-का संयोग है, वह क्रियायोग कहा जाता है और देवीके साथ आत्माका संयुक्त हो एकरस हो जाना भक्तियोग माना गया है। अब मैं इन तीनों योगोंमें जो क्रियायोग है, उसका वर्णन कर रहा हूँ॥ ८-९॥

कर्मणा जायते भक्तिर्भक्त्या ज्ञानं प्रजायते।
ज्ञानात्प्रजायते मुक्तिरिति शास्त्रेषु निश्चयः॥ १०

कर्मसे भक्ति होती है, भक्तिसे ज्ञान होता है और ज्ञानसे मुक्ति होती है—ऐसा शास्त्रोंमें निर्णय किया गया है॥ १०॥

प्रधानं कारणं योगो विमुक्तेर्मुनिसत्तम।
क्रियायोगस्तु योगस्य परमं ध्येयसाधनम्॥ ११

हे मुनिसत्तम! मुक्तिका प्रधान कारण योग है और क्रियायोग उस योगके ध्येयका उत्तम साधन है॥ ११॥

मायां तु प्रकृतिं विद्यान्मायावी ब्रह्म शाश्वतम्।
अभिन्नं तद्वपुर्ज्ञात्वा मुच्यते भवबन्धनात्॥ १२

प्रकृतिको माया तथा शाश्वत ब्रह्मको मायावी जानना चाहिये, उन दोनोंके स्वरूपको परस्पर अभिन्न जानकर व्यक्ति संसारबन्धनसे मुक्त हो जाता है॥ १२॥

यस्तु देव्यालयं कुर्यात्पाषाणं दारवं तथा।
मृन्मयं वाथ कालेय तस्य पुण्यफलं शृणु।
अहन्यहनि योगेन यजतो यन्महाफलम्॥ १३

प्राप्नोति तत्फलं देव्या यः कारयति मन्दिरम्।
सहस्रकुलमागामि व्यतीतं च सहस्रकम्।
स तारयति धर्मात्मा श्रीमातुर्धाम कारयन्॥ १४

कोटिजन्मकृतं पापं स्वल्पं वा यदि वा बहु।
श्रीमातुर्मन्दिरारम्भक्षणादेव प्रणश्यति॥ १५

हे कालीपुत्र [हे व्यास!] जो पत्थर, काष्ठ अथवा मिट्टीसे देवीका मन्दिर बनवाता है, उसके पुण्यका फल सुनिये। प्रतिदिन योगके द्वारा यजन करनेवालेको जो महान् फल मिलता है, उस फलको वह मनुष्य प्राप्त करता है, जो देवीका मन्दिर बनवाता है। श्रीमाताके मन्दिरको बनवानेवाला वह धर्मात्मा अपनेसे पहलेके हजार कुलोंको एवं बादके हजार कुलोंको तार देता है। श्रीमाताके मन्दिरके आरम्भके क्षण ही करोड़ों जन्मोंमें किये गये उसके छोटे अथवा बड़े सभी पाप नष्ट हो जाते हैं॥ १३—१५॥

नदीषु च यथा गंगा शोणः सर्वनदेषु च।
क्षमायां च यथा पृथ्वी गांभीर्ये च यथोदधिः॥ १६
ग्रहाणां च समस्तानां यथा सूर्यो विशिष्यते।
तथा सर्वेषु देवेषु श्रीपराम्बा विशिष्यते॥ १७
सर्वदेवेषु सा मुख्या यस्तस्याः कारयेद् गृहम्।
प्रतिष्ठां समवाप्नोति स च जन्मनि जन्मनि॥ १८

जिस प्रकार नदियोंमें गंगा, नदोंमें शोण, क्षमामें पृथ्वी, गम्भीरतामें समुद्र और सभी ग्रहोंमें सूर्य श्रेष्ठ हैं, उसी प्रकार सभी देवोंमें श्रीपराम्बा श्रेष्ठ हैं, वे सभी देवताओंमें प्रधान हैं, अतः जो उनके मन्दिरका निर्माण करवाता है, वह जन्म-जन्मान्तरमें प्रतिष्ठा प्राप्त करता है॥ १६—१८॥

वाराणस्यां कुरुक्षेत्रे प्रयागे पुष्करे तथा।
गंगासमुद्रतीरे च नैमिषेऽमरकण्टके॥ १९
श्रीपर्वते महापुण्ये गोकर्णे ज्ञानपर्वते।
मथुरायामयोध्यायां द्वारावत्यां तथैव च॥ २०
इत्यादिपुण्यदेशेषु यत्र कुत्र स्थलेऽपि वा।
कारयन्मातुरावासं मुक्तो भवति बन्धनात्॥ २१

वाराणसी, कुरुक्षेत्र, प्रयाग, पुष्कर, गंगासागर, नैमिषारण्य, अमरकण्टक, महापुण्यदायी श्रीपर्वत, गोकर्ण, ज्ञानपर्वत, मथुरा, अयोध्या एवं द्वारका आदि पुण्यस्थलोंमें अथवा जिस-किसी भी जगह श्रीमाताके मन्दिरका निर्माण करवानेवाला संसारके बन्धनसे मुक्त हो जाता है॥ १९—२१॥

इष्टकानां तु विन्यासो यावद्वर्षाणि तिष्ठति।
तावद्वर्षसहस्राणि मणिद्वीपे महीयते॥ २२

जितने वर्षोंतक [देवीके मन्दिरकी] ईंटोंका विन्यास स्थित रहता है, उतने हजार वर्षपर्यन्त मनुष्य मणिद्वीपमें प्रतिष्ठा प्राप्त करता है॥ २२॥

प्रतिमाः कारयेद्यस्तु सर्वलक्षणलक्षिताः।
स उमायाः परं लोकं निर्भयो व्रजति ध्रुवम्॥ २३

जो भगवतीकी सर्वलक्षणयुक्त प्रतिमाका निर्माण करवाता है, वह निर्भय हो निश्चित रूपसे देवीके परम लोकको जाता है॥ २३॥

देवीमूर्तिं प्रतिष्ठाप्य शुभर्तुग्रहतारके।
कृतकृत्यो भवेन्मर्त्यो योगमायाप्रसादतः॥ २४

शुभ ऋतु, शुभ ग्रह एवं शुभ नक्षत्रमें देवीकी मूर्तिको प्रतिष्ठापित करके मनुष्य योगमायाकी कृपासे

ये भविष्यन्ति येऽतीता आकल्यात्पुरुषाः कुले।
तांस्तांस्तारयते देव्या मूर्तिं संस्थाप्य शोभनाम्॥ २५

कृतकृत्य हो जाता है। उसके कुलमें कल्पसे लेकर जितनी भी पीढ़ियाँ हैं और जो भी आगे उत्पन्न होंगी, उन सभीको वह देवीकी उत्तम मूर्तिकी स्थापना करके तार देता है॥ २४-२५॥

त्रिलोकीस्थापनात्पुण्यं यद्भवेन्मुनिपुंगव।
तत्कोटिगुणितं पुण्यं श्रीदेवीस्थापनाद्भवेत्॥ २६

हे मुनिश्रेष्ठ! त्रिलोकीके स्थापित करनेसे जो पुण्य होता है, उसका करोड़ों गुना पुण्य श्रीदेवीकी प्रतिष्ठा करनेसे होता है॥ २६॥

मध्ये देवीं स्थापयित्वा पञ्चायतनदेवताः।
चतुर्दिक्षु स्थापयेद्यस्तस्य पुण्यं न गण्यते॥ २७

जो मन्दिरके मध्यमें देवीकी प्रतिष्ठाकर उनके चारों ओर पंचायतन देवताओंको स्थापित करता है, उसके पुण्यकी गणना नहीं की जा सकती है॥ २७॥

विष्णोर्नाम्नां कोटिजपाद् ग्रहणे चन्द्रसूर्ययोः।
यत्फलं लभ्यते तस्माच्छतकोटिगुणोत्तरम्॥ २८
शिवनाम्नो जपादेव तस्मात्कोटिगुणोत्तरम्।
श्रीदेवीनामजापात्तु ततः कोटिगुणोत्तरम्॥ २९
देव्याः प्रासादकरणात्पुण्यं तु समवाप्यते।
स्थापिता येन सा देवी जगन्माता त्रयीमयी॥ ३०
न तस्य दुर्लभं किंचित् श्रीमातुः करुणावशात्।
वर्धन्ते पुत्रपौत्राद्या नश्यत्यखिलकश्मलम्॥ ३१

सूर्य-चन्द्रग्रहणमें विष्णुके नामोंको करोड़ों बार जपनेसे जो पुण्यफल प्राप्त होता है, उससे सौ करोड़ गुना अधिक पुण्यफल शिवनामके जपसे होता है, उससे भी करोड़ गुना पुण्यफल देवीके नाम-जपसे होता है और उससे भी करोड़ गुना अधिक पुण्यफल देवीके मन्दिरका निर्माण करानेसे प्राप्त होता है। जिसने वेदरूपा तथा त्रिगुणात्मिका जगज्जननी देवीको प्रतिष्ठापित किया, श्रीमाताकी दयासे उसके लिये कुछ भी दुर्लभ नहीं है। उसके पुत्र-पौत्रादि निरन्तर बढ़ते रहते हैं और उसका सम्पूर्ण पाप नष्ट हो जाता है॥ २८—३१॥

मनसा ये चिकीर्षन्ति मूर्तिस्थापनमुत्तमम्।
तेऽप्युमायाः परं लोकं प्रयान्ति मुनिदुर्लभम्॥ ३२

जो लोग मनमें भी देवीकी उत्तम मूर्तिस्थापनाकी इच्छा करते हैं, वे मुनियोंके लिये भी दुर्लभ उमादेवीके परमलोकको प्राप्त करते हैं॥ ३२॥

क्रियमाणं तु यः प्रेक्ष्य चेतसा ह्यनुचिन्तयेत्।
कारयिष्याम्यहं यर्हि संपन्मे संभविष्यति॥ ३३
एवं तस्य कुलं सद्यो याति स्वर्गं न संशयः।
महामायाप्रभावेण दुर्लभं किं जगत्त्रये॥ ३४

किसीके द्वारा बनवाये जाते हुए मन्दिरको देखकर जो मनमें यह सोचता है कि जब मुझे सम्पत्ति होगी, तब मैं भी मन्दिर बनवाऊँगा। इस प्रकार सोचनेवालेका कुल शीघ्र ही स्वर्गको जाता है, इसमें संशय नहीं है। महामायाके प्रभावसे त्रिलोकीमें कौन-सी वस्तु दुर्लभ है॥ ३३-३४॥

श्रीपराम्बां जगद्योनिं केवलं ये समाश्रिताः।
ते मनुष्या न मन्तव्याः साक्षाद्देवीगणाश्च ते॥ ३५

जो जगत्कारणभूता श्रीपराम्बाका एकमात्र आश्रय ग्रहण करते हैं, उन्हें मनुष्य नहीं समझना चाहिये, वे तो देवीके साक्षात् गण हैं॥ ३५॥

ये व्रजन्तः स्वपन्तश्च तिष्ठन्तो वाप्यहर्निशम्।
उमेति द्व्यक्षरं नाम ब्रुवते ते शिवागणाः॥ ३६

जो चलते-सोते अथवा बैठे हुए उमा—इस दो अक्षरके नामका उच्चारण करते रहते हैं, वे तो शिवाके साक्षात् गण हैं॥ ३६॥

नित्ये नैमित्तिके देवीं ये यजन्ति परां शिवाम्।
पुष्पैर्धूपैस्तथा दीपैस्ते प्रयास्यन्त्युमालयम्॥ ३७

जो लोग नित्य तथा नैमित्तिक कर्मोंमें पुष्पों, धूपों तथा दीपोंसे परा शिवाकी पूजा करते हैं, वे उमालोक प्राप्त करते हैं॥ ३७॥

ये देवीमण्डपं नित्यं गोमयेन मृदाथवा।
उपलिम्पन्ति मार्जन्ति ते प्रयास्यन्त्युमालयम्॥ ३८

जो लोग प्रतिदिन गोमयसे अथवा मृत्तिकासे देवी-मण्डपका उपलेप करते हैं तथा उसका मार्जन करते हैं, वे उमालोक प्राप्त करते हैं॥ ३८॥

यैर्देव्या मन्दिरं रम्यं निर्मापितमनुत्तमम्।
तत्कुलीनाञ्जनान्माता ह्याशिषः संप्रयच्छति॥ ३९

मदीयाः शतवर्षाणि जीवन्तु प्रेमभाजनाः।
नापदामयनानीत्थं श्रीमाता वक्त्यहर्निशम्॥ ४०

जिन्होंने देवीके रम्य तथा उत्तम मन्दिरका निर्माण करवाया है, उनके कुलमें उत्पन्न लोगोंको देवी आशीर्वाद देती हैं—'मेरे प्रेमपात्र भक्त सौ वर्षतक जीवित रहें और उनपर कदापि कोई विपत्ति न आये'—ऐसा वे श्रीमाता रात-दिन कहती हैं॥ ३९-४०॥

येन मूर्तिर्महादेव्या उमायाः कारिता शुभा।
नरायुतं तत्कुलजं मणिद्वीपे महीयते॥ ४१

जिसने महादेवी उमाकी शुभ मूर्तिका निर्माण करवाया है, उसके कुलके दस हजार पीढ़ियोंतकके लोग मणिद्वीपमें प्रतिष्ठा प्राप्त करते हैं॥ ४१॥

स्थापयित्वा महामायामूर्तिं सम्यक्प्रपूज्य च।
यं यं प्रार्थयते कामं तं तं प्राप्नोति साधकः॥ ४२

साधक महामायाकी मूर्ति स्थापित करके और उसकी विधिवत् पूजाकर जिस-जिस मनोरथके लिये प्रार्थना करता है, उसे [अवश्य ही] प्राप्त कर लेता है॥ ४२॥

यः स्नापयति श्रीमातुः स्थापितां मूर्तिमुत्तमाम्।
घृतेन मधुनाक्तेन तत्फलं गणयेत्तु कः॥ ४३

जो श्रीमाताकी स्थापित की गयी उत्तम मूर्तिको मधुमिश्रित घृतसे स्नान कराता है, उसके फलकी गणना कौन कर सकता है॥ ४३॥

चन्दनागुरुकर्पूरमांसीमुस्तादियुग्जलैः।
एकवर्णगवां क्षीरैः स्नापयेत्परमेश्वरीम्॥ ४४

एक वर्णवाली गौओंके दूधसे तथा चन्दन, अगरु, कपूर, जटामांसी, मोथा आदिसे मिश्रित जलसे परमेश्वरीको स्नान कराना चाहिये॥ ४४॥

धूपेनाष्टादशांगेन दद्यादाहुतिमुत्तमाम्।
नीराजनं चरेद्देव्याः साज्यकर्पूरवर्तिभिः॥ ४५

अठारह [सुगन्धित] द्रव्योंसे बनाये गये धूपसे उत्तम आहुति प्रदान करनी चाहिये। घी तथा कपूरयुक्त बत्तियोंसे देवीकी आरती करनी चाहिये॥ ४५॥

कृष्णाष्टम्यां नवम्यां वामायां वा पञ्चदिक्तिथौ।
पूजयेज्जगतां धात्रीं गंधपुष्पैर्विशेषतः॥ ४६

संपठञ्जननीसूक्तं श्रीसूक्तमथवा पठन्।
देवीसूक्तमथो वापि मूलमन्त्रमथापि वा॥ ४७

कृष्णपक्षकी अष्टमी, नवमी, अमावास्यामें अथवा [शुक्लपक्षकी] पूर्णिमा तिथिको मातृसूक्त, श्रीसूक्त पढ़ते हुए अथवा देवीसूक्त पढ़ते हुए अथवा मूलमन्त्रका उच्चारण करते हुए गन्ध-पुष्पोंद्वारा विशेष रूपसे जगज्जननीका पूजन करना चाहिये॥ ४६-४७॥

विष्णुक्रान्तां च तुलसीं वर्जयित्वाखिलं सुमम्।
देवीप्रीतिकरं ज्ञेयं कमलं तु विशेषतः॥ ४८

अर्पयेत्स्वर्णपुष्पं यो देव्यै राजतमेव वा।
स याति परमं धाम सिद्धकोटिभिरन्वितम्॥ ४९

विष्णुकान्ता एवं तुलसीको छोड़कर अन्य सभी पुष्पोंको देवीके लिये प्रीतिकर जानना चाहिये तथा कमल विशेषरूपसे देवीको प्रिय है। जो देवीको स्वर्णपुष्प अथवा रजतपुष्प समर्पित करता है, वह करोड़ों सिद्धोंके द्वारा सेवित परम धामको जाता है॥ ४८-४९॥

पूजनान्ते सदा कार्यं दासैरेनःक्षमापनम्।
प्रसीद परमेशानि जगदानन्ददायिनि॥ ५०

इति वाक्यैः स्तुवन्मन्त्री देवीभक्तिपरायणः।
ध्यायेत्कण्ठीरवारूढां वरदाभयपाणिकाम्॥ ५१

भक्तोंको चाहिये कि वे पूजनके अन्तमें अपने पापोंके लिये क्षमा-प्रार्थना करें। हे परमेश्वरि! हे जगदानन्ददायिनि! प्रसन्न होइये। देवीभक्तिपरायण साधकको इन वाक्योंसे स्तुति करते हुए सिंहपर आरूढ़ तथा हाथोंमें वरद एवं अभयमुद्रा धारण करनेवाली भगवतीका ध्यान करना चाहिये॥ ५०-५१॥

इत्थं ध्यात्वा महेशानीं भक्ताभीष्टफलप्रदाम्।
नानाफलानि पक्वानि नैवेद्यत्वे प्रकल्पयेत्॥ ५२

इस प्रकार भक्तोंको अभीष्ट फल देनेवाली महेश्वरीका ध्यान करके नैवेद्यके रूपमें अनेक प्रकारके पके हुए फल अर्पित करना चाहिये॥ ५२॥

नैवेद्यं भक्षयेद्यस्तु शंभुशक्तेः परात्मनः।
स निर्धूयाखिलं पङ्कं निर्मलो मानवो भवेत्॥ ५३

जो मनुष्य परमेश्वरी शम्भुशक्तिके नैवेद्यका भक्षण करता है, वह अपने सम्पूर्ण पापपंकको धोकर निर्मल हो जाता है॥ ५३॥

चैत्रशुक्लतृतीयायां यो भवानीव्रतं चरेत्।
भवबन्धननिर्मुक्तः प्राप्नुयात्परमं पदम्॥ ५४

जो चैत्र शुक्ल तृतीयाको भवानीव्रतका अनुष्ठान करता है, वह सांसारिक बन्धनसे छूटकर परमपद प्राप्त करता है॥ ५४॥

अस्यामेव तृतीयायां कुर्याद्दोलोत्सवं बुधः।
पूजयेज्जगतां धात्रीमुमां शंकरसंयुताम्॥ ५५
कुसुमैः कुंकुमैर्वस्त्रैः कर्पूरागुरुचन्दनैः।
धूपैर्दीपैः सनैवेद्यैः स्रग्गन्धैरपरैरपि॥ ५६

बुद्धिमान् पुरुष इसी तृतीया तिथिको दोलोत्सव सम्पन्न करे और पुष्प, कुंकुम, वस्त्र, कपूर, अगुरु, चन्दन, धूप, दीप, नैवेद्य, माला एवं अन्य मनोहर गन्धोंसे शिवसहित जगद्धात्रीका पूजन करे॥ ५५-५६॥

आन्दोलयेत्ततो देवीं महामायां महेश्वरीम्।
श्रीगौरीं शिवसंयुक्तां सर्वकल्याणकारिणीम्॥ ५७

प्रत्यब्दं कुरुते योऽस्यां व्रतमान्दोलनं तथा।
नियमेन शिवा तस्मै सर्वमिष्टं प्रयच्छति॥ ५८

इसके बाद सबका कल्याण करनेवाली महामाया भगवती महेश्वरी श्रीगौरीको शिवसहित [पालनेमें बैठाकर] झुलाये। जो इस तिथिको प्रतिवर्ष नियमानुसार व्रत तथा झूलनोत्सव करता है, उसे शिवा समस्त अभीष्ट फल प्रदान करती हैं॥ ५७-५८॥

माधवस्य सिते पक्षे तृतीया याक्षयाभिधा।
तस्यां यो जगदम्बाया व्रतं कुर्यादतन्द्रितः॥ ५९

मल्लिकामालतीचंपाजपाबन्धूकपंकजैः ।

वैशाख शुक्लपक्षमें जो अक्षय तृतीया नामक तिथि है, उसमें जो आलस्यरहित होकर जगदम्बाका व्रत करता है एवं मल्लिका, मालती, चम्पा, जपा, बन्धूक तथा कमलपुष्पोंसे शिवसमेत पार्वतीका

कुसुमैः पूजयेद्गौरीं शंकरेण समन्विताम्॥ ६०

कोटिजन्मकृतं पापं मनोवाक्कायसम्भवम्।
निर्धूय चतुरो वर्गानक्षयानिह सोऽश्नुते॥ ६१

ज्येष्ठे शुक्लतृतीयायां व्रतं कृत्वा महेश्वरीम्।
योऽर्चयेत्परमप्रीत्या तस्यासाध्यं न किंचन ॥ ६२

आषाढशुक्लपक्षीयतृतीयायां रथोत्सवम्।
देव्याः प्रियतमं कुर्याद्यथावित्तानुसारतः॥ ६३

रथं पृथ्वीं विजानीयाद्रथांगे चन्द्रभास्करौ।
वेदानश्वान्विजानीयात्सारथिं पद्मसंभवम्॥ ६४

नानामणिगणाकीर्णं पुष्पमालाविराजितम्।
एवं रथं कल्पयित्वा तस्मिन् संस्थापयेच्छिवाम्॥ ६५

लोकसंरक्षणार्थाय लोकं द्रष्टुं पराम्बिका।
रथमध्ये संस्थितेति भावयेन्मतिमान्नरः॥ ६६

रथे प्रचलिते मन्दं जयशब्दमुदीरयेत्।
पाहि देवि जनानस्मान्प्रपन्नान्दीनवत्सले॥ ६७

इति वाक्यैस्तोषयेच्च नानावादित्रनिःस्वनैः।
सीमान्ते तु रथं नीत्वा तत्र संपूजयेद्रथे॥ ६८

नानास्तोत्रैस्ततः स्तुत्वाप्यानयेत्तां स्ववेश्मनि।
प्रणिपातशतं कृत्वा प्रार्थयेज्जगदम्बिकाम्॥ ६९

एवं यः कुरुते विद्वान्पूजाव्रतरथोत्सवम्।
इह भुक्त्वाखिलान्भोगान्सोऽन्ते देवीपदं व्रजेत्॥ ७०

शुक्लायां तु तृतीयायामेवं श्रावणभाद्रयोः।
यो व्रतं कुरुतेऽम्बायाः पूजनं च यथाविधि॥ ७१

मोदते पुत्रपौत्राद्यैर्धनाद्यैरिह सन्ततम्।
सोऽन्ते गच्छेदुमालोकं सर्वलोकोपरि स्थितम्॥ ७२

पूजन करता है, वह करोड़ों जन्मोंमें मन, वाणी तथा शरीरसे किये गये पापोंको विनष्टकर अक्षय चतुर्वर्ग [धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष]-को प्राप्त कर लेता है॥ ५९—६१॥

जो ज्येष्ठमासके शुक्लपक्षकी तृतीयाको व्रत करके परम प्रीतिसे महेश्वरीका पूजन करता है, उसके लिये कुछ भी असाध्य नहीं है॥ ६२॥

आषाढ़मासके शुक्लपक्षकी तृतीयाको अपने धनसामर्थ्यके अनुसार देवीका अतिप्रिय रथोत्सव सम्पन्न करना चाहिये। उसमें पृथ्वीको रथ और चन्द्रमा तथां सूर्यको रथके दोनों पहिये समझना चाहिये, वेदोंको घोड़े तथा ब्रह्माको सारथि समझना चाहिये॥ ६३-६४॥

इस प्रकार अनेक मणियोंसे जटित एवं पुष्पमालाओंसे सुशोभित रथका निर्माणकर उसपर शिवाको स्थापित करे। उस समय बुद्धिमान् मनुष्य [मनमें] यह भावना करे कि श्रीपराम्बा लोककी रक्षाके लिये एवं लोकका अवलोकन करनेके लिये रथके मध्यमें बैठी हुई हैं॥ ६५-६६॥

रथके धीरे-धीरे चलनेपर देवीकी जयकार करे और प्रार्थना करे कि हे देवि! हे दीनवत्सले! हम शरणागत जनोंकी रक्षा कीजिये। इन वचनोंसे तथा अनेक वाद्योंकी ध्वनियोंसे भगवतीको सन्तुष्ट करे और सीमापर्यन्त रथ ले जाकर वहाँ रथमें भगवतीका पूजन करे। इसके बाद अनेक स्तोत्रोंसे स्तुति करके उन जगदम्बाको अपने घर ले आये और सैकड़ों प्रणाम करके उनकी प्रार्थना करे॥ ६७—६९॥

जो विद्वान् इस प्रकार देवीका पूजन, व्रत एवं रथोत्सव करता है, वह इस लोकमें सम्पूर्ण सुखोंका उपभोग करके अन्तमें देवीके धामको जाता है॥ ७०॥

इसी प्रकार श्रावण और भाद्रपदमासकी शुक्ल तृतीयाको जो विधिपूर्वक अम्बाका व्रत और पूजन करता है, वह इस लोकमें पुत्र, पौत्र एवं धन आदिसे सम्पन्न होकर सदा आनन्दित रहता है तथा अन्तमें सब लोकोंसे ऊपर विराजमान उमालोकको जाता है॥ ७१-७२॥

आश्विने धवले पक्षे नवरात्रव्रतं चरेत्।
यत्कृते सकलाः कामाः सिद्ध्यन्त्येव न संशयः॥ ७३

आश्विनमासके शुक्लपक्षमें नवरात्रव्रत करना चाहिये, जिसे करनेपर सम्पूर्ण कामनाएँ सिद्ध हो जाती हैं, इसमें संशय नहीं है॥ ७३॥

नवरात्रव्रतस्यास्य प्रभावं वक्तुमीश्वरः।
चतुरास्यो न पञ्चास्यो न षडास्यो न कोऽपरः॥ ७४

नवरात्रव्रतं कृत्वा भूपालो विरथात्मजः।
हृतं राज्यं निजं लेभे सुरथो मुनिसत्तमाः॥ ७५

इस नवरात्रव्रतके प्रभावका वर्णन करनेमें ब्रह्मा, महादेव तथा कार्तिकेय भी समर्थ नहीं हैं, फिर दूसरा कौन समर्थ हो सकता है। हे मुनिवरो! नवरात्रव्रतका अनुष्ठान करके विरथके पुत्र राजा सुरथने छीने गये अपने राज्यको [पुनः] प्राप्त कर लिया था॥ ७४-७५॥

ध्रुवसंधिसुतो धीमानयोध्याधिपतिर्नृपः।
सुदर्शनो हृतं राज्यं प्रापदस्य प्रभावतः॥ ७६

अयोध्याके अधिपति बुद्धिमान् ध्रुवसन्धिपुत्र राजा सुदर्शनने इसके प्रभावसे ही [शत्रुओंके द्वारा] छीना गया अपना राज्य प्राप्त किया था॥ ७६॥

व्रतराजमिमं कृत्वा समाराध्य महेश्वरीम्।
संसारबन्धनान्मुक्तः समाधिर्मुक्तिभागभूत्॥ ७७

इस व्रतराजका अनुष्ठान करके तथा महेश्वरीकी आराधना करके समाधि [नामक वैश्य] संसारबन्धनसे मुक्त होकर मोक्षका भागी हुआ॥ ७७॥

तृतीयायां च पञ्चम्यां सप्तम्यामष्टमीतिथौ।
नवम्यां वा चतुर्दश्यां यो देवीं पूजयेन्नरः॥ ७८

आश्विनस्य सिते पक्षे व्रतं कृत्वा विधानतः।
तस्य सर्वं मनोऽभीष्टं पूरयत्यनिशं शिवा॥ ७९

जो मनुष्य आश्विनमासके शुक्लपक्षमें तृतीया, पंचमी, सप्तमी, अष्टमी, नवमी एवं चतुर्दशी तिथियोंको विधिपूर्वक व्रत करके देवीका पूजन करता है, उसकी सभी मनोवांछाओंको शिवा निरन्तर पूर्ण करती रहती हैं॥ ७८-७९॥

यः कार्त्तिकस्य मार्गस्य पौषस्य तपसस्तथा।
तपस्यस्य सिते पक्षे तृतीयायां व्रतं चरेत्॥ ८०

लोहितैः करवीराद्यैः पुष्पैर्धूपैः सुगन्धितैः।
पूजयेन्मङ्गलां देवीं स सर्वं मंगलं लभेत्॥ ८१

जो कार्तिक, मार्गशीर्ष, पौष, माघ और फाल्गुन मासके शुक्लपक्षमें तृतीयाको व्रत करता है तथा लाल कनेर आदिके फूलों एवं सुगन्धित धूपोंसे मंगलमयी देवीकी पूजा करता है, वह सम्पूर्ण मंगलको प्राप्त कर लेता है॥ ८०-८१॥

सौभाग्याय सदा स्त्रीभिः कार्यमेतन्महाव्रतम्।
विद्याधनसुताप्त्यर्थं विधेयं पुरुषैरपि॥ ८२

स्त्रियोंको अपने सौभाग्यके लिये इस महान् व्रतका सदा अनुष्ठान करना चाहिये और पुरुषोंको भी विद्या, धन एवं पुत्रप्राप्तिके लिये इस व्रतका अनुष्ठान करना चाहिये॥ ८२॥

उमामहेश्वरादीनि व्रतान्यन्यानि यान्यपि।
देवीप्रियाणि कार्याणि स्वभक्त्यैवं मुमुक्षुभिः॥ ८३

इसी प्रकार देवीको प्रिय लगनेवाले उमा-महेश्वर आदि जो भी अन्य व्रत हैं, उनका अनुष्ठान मोक्षकी अभिलाषा रखनेवालोंको भक्तिभावसे करना चाहिये॥ ८३॥

संहितेयं महापुण्या शिवभक्तिविवर्धिनी।
नानाख्यानसमायुक्ता भुक्तिमुक्तिप्रदा शिवा॥ ८४

यह उमासंहिता परम पुण्यमयी, शिवभक्तिको बढ़ानेवाली, अनेक आख्यानोंसे युक्त, भोग तथा मोक्ष प्रदान करनेवाली और कल्याणकारिणी है॥ ८४॥

य एनां शृणुयाद्भक्त्या श्रावयेद्वा समाहितः।
पठेद्वा पाठयेद्वापि स याति परमां गतिम्॥ ८५

जो सावधान होकर भक्तिपूर्वक इसे सुनता है अथवा सुनाता है, पढ़ता है या पढ़ाता है, वह परम गतिको प्राप्त होता है॥ ८५॥

यस्य गेहे स्थिता चेयं लिखिता ललिताक्षरैः।
संपूजिता च विधिवत्सर्वान्कामान्स आप्नुयात्॥ ८६

भूतप्रेतपिशाचादिदुष्टेभ्यो न भयं क्वचित्।
पुत्रपौत्रादिसम्पत्तीर्लभत्येव न संशयः॥ ८७

जिसके घरमें सुन्दर अक्षरोंमें लिखी गयी यह संहिता स्थित रहती है और विधिवत् पूजित होती है, वह सम्पूर्ण मनोरथोंको प्राप्त कर लेता है। उसे भूत, प्रेत, पिशाच आदि दुष्टोंसे कभी भय नहीं होता और वह पुत्र-पौत्र आदि तथा सम्पत्तिको प्राप्त कर लेता है, इसमें संशय नहीं है॥ ८६-८७॥

तस्मादियं महापुण्या रम्योमासंहिता सदा।
श्रोतव्या पठितव्या च शिवभक्तिमभीप्सुभिः॥ ८८

अतः शिवकी भक्ति चाहनेवालोंको इस परम पुण्यमयी तथा रम्य उमासंहिताका सदा श्रवण एवं पाठ करना चाहिये॥ ८८॥

इति श्रीशिवमहापुराणे पञ्चम्यामुमासंहितायां क्रियायोगनिरूपणं नामैकपञ्चाशत्तमोऽध्यायः॥ ५१॥

॥ इस प्रकार श्रीशिवमहापुराणके अन्तर्गत पाँचवीं उमासंहितामें क्रियायोगनिरूपण नामक इक्यावनवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ ५१॥

॥ समाप्तेयं पञ्चम्युमासंहिता॥ ५॥

॥ ॐ श्रीसाम्बशिवाय नमः ॥ ॥ ॐ श्रीगणेशाय नमः ॥

श्रीशिवमहापुराण

षष्ठी कैलाससंहिता

अथ प्रथमोऽध्यायः

व्यासजीसे शौनकादि ऋषियोंका संवाद

नमः शिवाय साम्बाय सगणाय ससूनवे।
प्रधानपुरुषेशाय सर्गस्थित्यन्तहेतवे॥ १

ऋषय ऊचुः

श्रुतोमासंहिता रम्या नानाख्यानसमन्विता।
कैलाससंहितां ब्रूहि शिवतत्त्वविवर्धिनीम्॥ २

व्यास उवाच

शृणुत प्रीतितो वत्साः कैलासाख्यां हि संहिताम्।
शिवतत्त्वपरां दिव्यां वक्ष्ये वः स्नेहतः पराम्॥ ३

हिमवच्छिखरे पूर्वं तपस्यन्तो महौजसः।
वाराणसीं गन्तुकामा मुनयः कृतसंविदः॥ ४

निर्गत्य तस्मात्सम्प्राप्य गिरेः काशीं समाहिताः।
स्नातव्यमेवेति तदा ददृशुर्मणिकर्णिकाम्॥ ५

तत्र स्नात्वा सुसन्तर्प्य देवादीनथ जाह्नवीम्।
दृष्ट्वा स्नात्वा मुनीशास्ते विश्वेशं त्रिदशेश्वरम्॥ ६

नमस्कृत्याथ सम्पूज्य भक्त्या परमयान्विताः।
शतरुद्रादिभिः स्तुत्वा स्तुतिभिर्वेदपारगाः॥ ७

आत्मानं मेनिरे सर्वे कृतार्था वयमित्युत।
शिवप्रीत्या सुपूर्णार्थाः शिवभक्तिरताः सदा॥ ८

तस्मिन्नवसरे सूतं पञ्चक्रोशदिदृक्षया।
गत्वा समागतं वीक्ष्य मुदा ते तं ववन्दिरे॥ ९

जो प्रधान (प्रकृति) और पुरुषके नियन्ता तथा सृष्टि-पालन-संहारके कारण हैं, उन पार्वतीसहित शिवजीको पार्षदों और पुत्रोंके साथ नमस्कार है॥ १॥

ऋषि बोले—हमने अनेक आख्यानोंसे समन्वित मनोहर उमासंहिता सुनी, अब आप शिवतत्त्वको बढ़ानेवाली कैलाससंहिताका वर्णन कीजिये॥ २॥

व्यासजी बोले—हे वत्स! शिवतत्त्वसे युक्त, दिव्य तथा उत्कृष्ट कैलास नामक संहिताका वर्णन कर रहा हूँ, आपलोग प्रेमपूर्वक सुनिये। पूर्वसमयमें हिमालयपर तप करनेवाले महातेजस्वी ऋषियोंने आपसमें विचारकर काशी जानेकी इच्छा की॥ ३-४॥

उस पर्वतसे चलकर एकाग्रचित्त हो काशी पहुँचकर वे स्नान करनेकी इच्छासे मणिकर्णिकाको देखने लगे॥ ५॥

वेदमें पारंगत उन मुनियोंने वहाँ स्नानकर देवता आदिका तर्पण करके पुनः गंगाजीका दर्शनकर उस [जल]-में स्नान करके देवाधिदेव विश्वेश्वरको नमस्कारकर परम भक्तिसे युक्त होकर उनका पूजन करके शतरुद्रिय आदि मन्त्रोंसे उनकी स्तुति करके अपनेको कृतार्थ समझा और कहा कि सर्वदा शिवभक्तिपरायण हमलोग [आज] शिवकृपासे पूर्णमनोरथवाले हो गये॥ ६—८॥

उसी समय पंचक्रोशको देखनेकी इच्छासे (अर्थात् पंचक्रोशी परिक्रमा करनेके लिये) आये हुए सूतजीको देखकर उनके पास जाकर उन सभीने प्रसन्नतापूर्वक उन्हें प्रणाम किया॥ ९॥

सोऽपि विश्वेश्वरं साक्षाद्देवदेवमुमापतिम्।
नमस्कृत्याथ तैः साकं मुक्तिमण्डपमाविशत्॥ १०

तत्रासीनं महात्मानं सूतं पौराणिकोत्तमम्।
अर्घ्यादिभिस्तदा सर्वे मुनयः समुपाचरन्॥ ११

ततः सूतः प्रसन्नात्मा मुनीनालोक्य सुव्रतान्।
पप्रच्छ कुशलं तेऽपि प्रोचुः कुशलमात्मनः॥ १२

ते तु संहृष्टहृदयं ज्ञात्वा तं वै मुनीश्वराः।
प्रणवार्थावगत्यर्थमूचुः प्रास्ताविकं वचः॥ १३

मुनय ऊचुः

व्यासशिष्य महाभाग सूत पौराणिकोत्तम।
धन्यस्त्वं शिवभक्तो हि सर्वविज्ञानसागरः॥ १४

भवन्तमेव भगवान्व्यासः सर्वजगद्गुरुः।
अभिषिच्य पुराणानां गुरुत्वे समयोजयत्॥ १५

तस्मात्पौराणिकी विद्या भवतो हृदि संस्थिता।
पुराणानि च सर्वाणि वेदार्थं प्रवदन्ति हि॥ १६

वेदाः प्रणवसम्भूताः प्रणवार्थो महेश्वरः।
अतो महेश्वरस्थानं त्वयि धिष्ण्यं प्रतिष्ठितम्॥ १७

त्वन्मुखाब्जपरिस्यन्दन्मकरंदमनोहरम्।
प्रणवार्थामृतं पीत्वा भविष्यामो गतज्वराः॥ १८

विशेषतो गुरुस्त्वं हि नान्योऽस्माकं महामते।
परं भावं महेशस्य परया कृपया वद॥ १९

इति तेषां वचः श्रुत्वा सूतो व्यासप्रियः सुधीः।
गणेशं षण्मुखं साक्षान्महेशानं महेश्वरीम्॥ २०

शिलादतनयं देवं नन्दीशं सुयशापतिम्।
सनत्कुमारं व्यासं च प्रणिपत्येदमब्रवीत्॥ २१

सूत उवाच

साधु साधु महाभागा मुनयः क्षीणकल्मषाः।
मतिर्दृढतरा जाता दुर्लभा सापि दुष्कृताम्॥ २२

इसके बाद उन्होंने भी साक्षात् देवाधिदेव उमापति विश्वेश्वरको प्रणामकर उन सभीके साथ मुक्तिमण्डपमें प्रवेश किया। उसके अनन्तर सभी मुनियोंने अर्घ्यादि [पूजनद्रव्यों]-से वहाँपर बैठे हुए पौराणिकोत्तम महात्मा सूतजीका पूजन किया॥ १०-११॥

तत्पश्चात् सूतजीने प्रसन्नचित्त होकर उत्तम व्रतवाले मुनियोंकी ओर देखकर उनका कुशलक्षेम पूछा, तब उन सभीने भी अपना कुशल बताया। इसके बाद उन मुनीश्वरोंने उन्हें प्रसन्नचित्त जानकर प्रणवका अर्थ जाननेके लिये प्रास्ताविक वचन कहना प्रारम्भ किया॥ १२-१३॥

मुनि बोले—हे व्यासशिष्य! हे महाभाग! हे पौराणिकोत्तम सूतजी! आप धन्य हैं; क्योंकि आप समस्त विज्ञानके सागर एवं शिवभक्त हैं। सम्पूर्ण संसारके गुरु भगवान् व्यासजीने आपको सभी पुराणोंके गुरुरूपमें अभिषिक्तकर सर्वाधिक महत्त्व प्रदान किया है। अतः [समग्र] पौराणिकी विद्या आपके हृदयमें स्थित है। सभी पुराण वेदार्थका प्रतिपादन करते हैं। समग्र वेद प्रणवसे उत्पन्न हुए हैं और प्रणवका तात्पर्य [स्वयं] महेश्वर हैं, अतः महेश्वरका स्थान आपके [हृदय-] स्थलमें प्रतिष्ठित है। हमलोग आपके मुखकमलसे निकलते हुए सुन्दर मकरन्दसदृश प्रणवार्थरूप अमृतको पीकर सन्तापरहित हो जायँगे। हे महामते! आप ही हमलोगोंके विशेष गुरु हैं, कोई दूसरा नहीं, अतः आप परम कृपापूर्वक महेश्वरके श्रेष्ठ ज्ञानका उपदेश कीजिये॥ १४—१९॥

उनके इस वचनको सुनकर व्यासजीके परम प्रिय शिष्य विद्वान् सूतजी गणेश, कार्तिकेय, साक्षात् महेश्वर, शिलादके पुत्र तथा सुयशाके पति प्रभु नन्दीश्वर, सनत्कुमार तथा व्यासजीको नमस्कारकर यह कहने लगे—॥ २०-२१॥

सूतजी बोले—हे पापरहित महाभाग्यशाली मुनियो! आपलोग धन्य हैं, जो कि आपलोगोंकी ऐसी अत्यन्त दृढ़ मति है, वह पापियोंके लिये [सर्वथा] दुर्लभ है॥ २२॥

पाराशर्येण गुरुणा नैमिषारण्यवासिनाम् ।
मुनीनामुपदिष्टं यद् वक्ष्ये तन्मुनिपुङ्गवाः॥ २३

यस्य श्रवणमात्रेण शिवभक्तिर्भवेन्नृणाम्।
सावधाना भवन्तोऽद्य शृण्वन्तु परया मुदा॥ २४

हे महर्षियो! पूर्व समयमें पराशरपुत्र गुरुदेव व्यासजीने नैमिषारण्यनिवासी मुनियोंको जो उपदेश दिया था, उसीको मैं [आपलोगोंसे] कह रहा हूँ, जिसके सुननेमात्रसे मनुष्योंमें शिवभक्ति उत्पन्न हो जाती है, अब आपलोग सावधान होकर परम प्रसन्नताके साथ उसे सुनिये॥ २३-२४॥

स्वारोचिषेऽन्तरे पूर्वं तपस्यन्तो दृढव्रताः।
ऋषयो नैमिषारण्ये सर्वसिद्धनिषेविते॥ २५
दीर्घसत्रं वितन्वन्तो रुद्रमध्वरनायकम्।
प्रीणयन्तः परं भावमैश्वर्यं ज्ञातुमिच्छवः॥ २६
निवसन्ति स्म ते सर्वे व्यासदर्शनकांक्षिणः।
शिवभक्तिरता नित्यं भस्मरुद्राक्षधारिणः॥ २७

पूर्वकालमें स्वारोचिष मन्वन्तरमें दृढ़ व्रतवाले ऋषिगण सभी सिद्धोंके द्वारा निषेवित नैमिषारण्यमें तप करते हुए तथा यज्ञाधिपति रुद्रको प्रसन्न करते हुए उनके परम ऐश्वर्यको जाननेकी इच्छासे दीर्घसत्र करने लगे। इस प्रकार वे सब व्यासजीके दर्शनकी इच्छावाले महर्षि शिवभक्तिपरायण हो भस्म एवं रुद्राक्ष धारण किये हुए वहाँ निवास करने लगे॥ २५—२७॥

तेषां भावं समालोक्य भगवान्बादरायणः।
प्रादुर्बभूव सर्वात्मा पराशरतपःफलम्॥ २८
तं दृष्ट्वा मुनयः सर्वे प्रहृष्टवदनेक्षणाः।
अभ्युत्थानादिभिः सर्वैरुपचारैरुपाचरन्॥ २९
सत्कृत्य प्रददुस्तस्मै सौवर्णं विष्टरं शुभम्।
सुखोपविष्टः स तदा तस्मिन्सौवर्णविष्टरे।
प्राह गंभीरया वाचा पाराशर्यो महामुनिः॥ ३०

उनकी ऐसी भावना देखकर महर्षि पराशरके तपः फलरूप सर्वात्मा भगवान् वेदव्यास वहींपर प्रकट हो गये। उन्हें देखकर प्रसन्न मुखकमल तथा नेत्रवाले मुनियोंने प्रत्युत्थान (अगवानी) आदि सभी उपचारोंसे उनका पूजन किया और सत्कार करके उन्हें सुवर्णमय उत्तम आसन प्रदान किया। तब उस सुवर्णमय आसनपर सुखपूर्वक बैठे हुए महामुनि व्यासजी गम्भीर वाणीमें कहने लगे—॥ २८—३०॥

व्यास उवाच

कुशलं किं नु युष्माकं प्रब्रूतास्मिन्महामखे।
अर्चितः किं नु युष्माभिः सम्यगध्वरनायकः॥ ३१
किमर्थमत्र युष्माभिरध्वरे परमेश्वरः।
स्वर्चितो भक्तिभावेन साम्बः संसारमोचकः॥ ३२
युष्मत्प्रवृत्तिर्मे भाति शुश्रूषापूर्वमेव हि।
परभावे महेशस्य मुक्तिहेतोः शिवस्य च॥ ३३

व्यासजी बोले—आपलोग बतायें कि इस महायज्ञमें आपलोगोंका कुशल तो है, आपलोगोंने यज्ञाधिपति शिवका पूजन अच्छी प्रकार कर तो लिया है? आपलोगोंने इस यज्ञमें संसारसे मुक्त करनेवाले पार्वतीसहित सदाशिवका भक्तिभावसे किसलिये पूजन किया है? मुझे तो ऐसा मालूम हो रहा है कि महेश्वर शिवके परभावमें आपलोगोंकी इस प्रकारकी प्रवृत्ति एवं शुश्रूषा मोक्ष पानेके लिये ही हुई है॥ ३१—३३॥

एवमुक्ता मुनीन्द्रेण व्यासेनामिततेजसा।
मुनयो नैमिषारण्यवासिनः परमौजसः॥ ३४
प्रणिपत्य महात्मानं पाराशर्यं महामुनिम्।
शिवानुरागसंहृष्टमानसं च तमब्रुवन्॥ ३५

अमित तेजस्वी व्यासजीके द्वारा इस प्रकार कहे जानेपर नैमिषारण्यवासी परम ओजस्वी मुनियोंने शिवके अनुरागसे प्रसन्नचित्त उन महात्मा महामुनि व्यासजीको प्रणाम करके कहा—॥ ३४-३५॥

मुनय ऊचुः

भगवन्मुनिशार्दूल साक्षान्नारायणांशज।
कृपानिधे महाप्राज्ञ सर्वविद्याधिप प्रभो॥ ३६
त्वं हि सर्वजगद्भर्तुर्महादेवस्य वेधसः।

मुनि बोले—साक्षात् विष्णुजीके अंशसे अवतार धारण करनेवाले हे भगवन्! हे मुनिश्रेष्ठ! हे कृपानिधान! हे महाप्राज्ञ! हे सर्वविद्येश्वर! हे प्रभो! आप सम्पूर्ण जगत्के स्वामी, सृष्टिकर्ता एवं पार्वती तथा गणोंसहित

साम्बस्य सगणस्यास्य प्रसादानां निधिः स्वयम्॥ ३७

त्वत्पादाब्जरसास्वादमधुपायितमानसाः ।
कृतार्था वयमद्यैव भवत्पादाब्जदर्शनात्॥ ३८

त्वदीयचरणाम्भोजदर्शनं खलु पापिनाम्।
दुर्लभं लब्धमस्माभिस्तस्मात्सुकृतिनो वयम्॥ ३९

इन महादेवकी कृपाके साक्षात् समुद्र हैं। आपके चरणकमलके मकरन्दके स्वादमें [आसक्त हुए] भ्रमरस्वरूप मनवाले हमलोग आज आपके चरण-कमलके दर्शनसे कृतार्थ हो गये हैं। हमलोगोंने पापीजनोंके लिये अत्यन्त दुर्लभ आपके चरणकमलका दर्शन प्राप्त किया, अतः हमलोग महान् पुण्यवाले हैं॥ ३६—३९॥

अस्मिन्देशे महाभाग नैमिषारण्यसंज्ञके।
दीर्घसत्रान्विताः सर्वे प्रणवार्थप्रकाशकाः॥ ४०

श्रोतव्यः परमेशान इति कृत्वा विनिश्चिताः।
परस्परं चिन्तयन्तः परं भावं महेशितुः॥ ४१

अज्ञातवन्त एवैते वयं तस्माद्भवान्प्रभो।
छेत्तुमर्हति तान्सर्वान् संशयानल्पचेतसाम्॥ ४२

त्वदन्यः संशयस्यास्य छेत्ता न हि जगत्त्रये।
तस्मादपारगंभीरव्यामोहाब्धौ निमज्जतः॥ ४३

तारयस्व शिवज्ञानपोतेनास्मान्दयानिधे।
शिवसद्भक्तितत्त्वार्थं ज्ञातुं श्रद्धालवो वयम्॥ ४४

हे महाभाग! प्रणवके अर्थको प्रकाशित करनेकी इच्छावाले हमलोग नैमिषारण्य नामक इस महातीर्थमें महासत्र सम्पादित कर रहे हैं। महेश्वरके परम भावका चिन्तन करते हुए हमलोगोंने यह निश्चय किया है कि परमेश्वरके विषयमें सुनना चाहिये। हे प्रभो! अभीतक हमलोग उनकी महिमाको नहीं जान पाये हैं। अतः आप हम अल्पबुद्धिवालोंके उन समस्त सन्देहोंको दूर करनेकी कृपा करें। इस त्रिलोकीमें आपके अतिरिक्त कोई दूसरा इस संशयको दूर करनेवाला नहीं है। अतः हे दयानिधे! आप इस अपार तथा अथाह भ्रम-सागरमें डूबते हुए हमलोगोंको शिवज्ञानरूपी नौकासे पार कर दीजिये; हमलोग शिवकी उत्तम भक्तिके तत्त्वार्थको जाननेके लिये श्रद्धायुक्त हैं॥ ४०—४४॥

एवमभ्यर्थितस्तत्र मुनिभिर्वेदपारगैः।
सर्ववेदार्थविन्मुख्यः शुकतातो महामुनिः।
वेदान्तसारसर्वस्वं प्रणवं परमेश्वरम्॥ ४५

ध्यात्वा हृत्कर्णिकामध्ये साम्बं संसारमोचकम्।
प्रहृष्टमानसो भूत्वा व्याजहार महामुनिः॥ ४६

इस प्रकार वेदोंमें पारंगत मुनियोंके द्वारा प्रार्थना किये जानेपर समस्त वेदार्थके ज्ञाताओंमें मुख्य शुकदेवके पिता महामुनि व्यासजी वेदान्तके सारसर्वस्व प्रणवरूप तथा संसारसे मुक्त करनेवाले पार्वतीसहित परमेश्वरका अपने हृदयकमलमें ध्यान करके प्रसन्नचित्त होकर कहने लगे—॥ ४५-४६॥

इति श्रीशिवमहापुराणे षष्ठ्यां कैलाससंहितायां व्यासशौनकादिसंवादो नाम प्रथमोऽध्यायः॥ १॥

॥ इस प्रकार श्रीशिवमहापुराणके अन्तर्गत छठी कैलाससंहितामें व्यासशौनकादिसंवाद नामक पहला अध्याय पूर्ण हुआ॥ १॥

अथ द्वितीयोऽध्यायः

भगवान् शिवसे पार्वतीजीकी प्रणवविषयक जिज्ञासा

व्यास उवाच

साधु पृष्टमिदं विप्रा भवद्भिर्भाग्यवत्तमैः।
दुर्लभं हि शिवज्ञानं प्रणवार्थप्रकाशकम्॥ १

व्यासजी बोले—हे ब्राह्मणो! परम सौभाग्यशाली आपलोगोंने यह बहुत अच्छी बात पूछी है; क्योंकि प्रणवार्थको प्रकाशित करनेवाला शिवज्ञान [सर्वथा] दुर्लभ है॥ १॥

येषां प्रसन्नो भगवान्साक्षाच्छूलवरायुधः।
तेषामेव शिवज्ञानं प्रणवार्थप्रकाशकम्॥ २

जायते न हि सन्देहो नेतरेषामिति श्रुतिः।
शिवभक्तिविहीनानामिति तत्त्वार्थनिश्चयः॥ ३

त्रिशूल नामक उत्तम आयुध धारण करनेवाले साक्षात् भगवान् शिव जिनपर प्रसन्न होते हैं, उन्हींको प्रणवार्थको प्रकाशित करनेवाला शिवज्ञान प्राप्त होता है, इसमें संशय नहीं है; यह शिवभक्तिसे रहित अन्य लोगोंको नहीं प्राप्त होता है—यह वेदवचन है तथा यथार्थ तत्त्वका निश्चय है॥ २-३॥

दीर्घसत्रेण युष्माभिर्भगवानम्बिकापतिः।
उपासित इतीदं मे दृष्टमद्य विनिश्चितम्॥ ४

तस्माद्वक्ष्यामि युष्माकमितिहासं पुरातनम्।
उमामहेशसंवादरूपमद्भुतमास्तिकाः॥ ५

आपलोगोंने इस दीर्घ सत्रके माध्यमसे अम्बिकापति भगवान् सदाशिवकी उपासना की है, इसे मैंने आज निश्चित रूपसे देख लिया। अतः हे आस्तिको! मैं आपलोगोंसे उमा-महेश्वरका संवादरूप प्राचीन तथा अद्भुत इतिहास कह रहा हूँ॥ ४-५॥

पुराखिलजगन्माता सती दाक्षायणी तनुम्।
शिवनिन्दाप्रसङ्गेन त्यक्त्वा च जनकाध्वरे॥ ६

ततः प्रभावात्सा देवी सुताभूद्धिमवद्गिरेः।
शिवार्थमतपत्सा वै नारदस्योपदेशतः॥ ७

पूर्व समयमें दक्षपुत्री जगन्माता सतीने पिताके यज्ञमें शिवजीकी निन्दाके कारण अपना शरीरत्याग कर दिया। इसके बाद वे देवी उस शिवनिष्ठाके प्रभावसे [दूसरे जन्ममें] हिमालयकी पुत्री हुईं। वे नारदजीके उपदेशसे शिवके निमित्त तप करने लगीं॥ ६-७॥

तस्मिन्भूधरवर्ये तु स्वयंवरविधानतः।
देवेशे च कृतोद्वाहे पार्वती सुखमाप सा॥ ८

तथैकस्मिन्महादेवी समये पतिना सह।
सूपविष्टा महाशैले गौरी देवमभाषत॥ ९

उसके अनन्तर हिमालयने स्वयंवरविधिसे शिवजीके साथ उनका विवाह कर दिया, इससे वे पार्वती आनन्दित हुईं। इसके बाद किसी समय हिमालयपर्वतपर पतिके साथ सुखपूर्वक बैठी हुई महादेवी गौरी शिवजीसे कहने लगीं—॥ ८-९॥

महादेव्युवाच

भगवन्परमेशान पञ्चकृत्यविधायक।
सर्वज्ञ भक्तिसुलभ परमामृतविग्रह॥ १०
दाक्षायणीं तनुं त्यक्त्वा तव निन्दाप्रसङ्गतः।
आसमद्य महेशान पुत्री हिमवतो गिरेः॥ ११
कृपया परमेशान मन्त्रदीक्षाविधानतः।
मां विशुद्धात्मतत्त्वस्थां कुरु नित्यं महेश्वर॥ १२
इति सम्प्रार्थितो देव्या देवः शीतांशुभूषणः।
प्रत्युवाच ततो देवीं प्रहृष्टेनान्तरात्मना॥ १३

महादेवी बोलीं—हे भगवन्! हे परमेश्वर! हे पंचकृत्यविधायक! हे सर्वज्ञ! हे भक्तिसुलभ! हे परम अमृतस्वरूप! मैंने तुम्हारी निन्दा होनेके कारण पूर्वजन्ममें दक्षपुत्रीका शरीर त्यागकर इस समय हिमालयकी पुत्रीके रूपमें जन्म लिया है। हे परमेशान! हे महेश्वर! अब कृपापूर्वक मुझे मन्त्रदीक्षाविधिसे विशुद्ध आत्मतत्त्वमें सदाके लिये स्थित कीजिये॥ १०—१२॥

इस प्रकार जब देवीने चन्द्रभूषण सदाशिवसे प्रार्थना की, तब वे प्रसन्नमनसे देवीसे कहने लगे—॥ १३॥

महादेव उवाच

धन्या त्वं देवदेवेशि यदि जातेदृशी मतिः।
कैलासशिखरं गत्वा करिष्ये त्वां च तादृशीम्॥ १४

महादेव बोले—हे देवि! आप धन्य हैं, जो आपकी ऐसी बुद्धि हुई है, मैं कैलास-शिखरपर जाकर आपको विशुद्ध तत्त्वमें स्थित करूँगा॥ १४॥

ततो हिमवतो गत्वा कैलासं भूधरेश्वरम्।
जगौ दीक्षाविधानेन प्रणवादीन्मनून् क्रमात्॥ १५

उक्त्वा मन्त्रांश्च तान्देवीं कृत्वा शुद्धात्मनि स्थिताम्।
सार्धं देव्या महादेवो देवोद्यानं गतोऽभवत्॥ १६

इसके बाद हिमालयसे पर्वतश्रेष्ठ कैलासके शिखरपर जाकर शिवजीने दीक्षाविधिसे उन्हें प्रणवादि मन्त्रोंका उपदेश दिया। इस प्रकार उन मन्त्रोंका उपदेश करके देवीको विशुद्ध आत्मतत्त्वमें स्थितकर महादेवजी देवीके साथ देवोद्यानमें चले गये॥ १५-१६॥

ततः सुमालिनीमुख्यैर्देव्याः प्रियसखीजनैः।
समाहृतैः प्रफुल्लैस्तैः पुष्पैः कल्पतरूद्भवैः॥ १७

अलंकृत्य महादेवीं स्वांकमारोप्य शंकरः।
प्रहृष्टवदनस्तस्थौ विलोक्य च तदाननम्॥ १८

ततः प्रियकथा जाताः पार्वतीपरमेशयोः।
हिताय सर्वलोकानां साक्षाच्छ्रुत्यर्थसम्मिताः॥ १९

तदा सर्वजगन्माता भर्तुरङ्कं समाश्रिता।
विलोक्य वदनं भर्तुरिदमाह तपोधनाः॥ २०

श्रीदेव्युवाच

उपदिष्टास्त्वया देव मन्त्राः सप्रणवा मताः।
तत्रादौ श्रोतुमिच्छामि प्रणवार्थं विनिश्चितम्॥ २१

कथं प्रणव उत्पन्नः कथं प्रणव उच्यते।
मात्राः कति समाख्याताः कथं वेदादिरुच्यते॥ २२

देवताः कति च प्रोक्ताः कथं देवादिभावना।
क्रियाः कतिविधाः प्रोक्ता व्याप्यव्यापकता कथम्॥ २३

ब्रह्माणि पञ्च मन्त्रेऽस्मिन्कथं तिष्ठन्त्यनुक्रमात्।
कलाः कति समाख्याताः प्रपञ्चात्मकता कथम्॥ २४

वाच्यवाचकसम्बन्धस्थानानि च कथं शिव।
कोऽत्राधिकारी विज्ञेयो विषयः क उदाहृतः॥ २५

सम्बन्धः कोऽत्र विज्ञेयः किं प्रयोजनमुच्यते।
उपासकस्तु किंरूपः किं वा स्थानमुपासनम्॥ २६

उपास्यं वस्तु किंरूपं किं वा फलमुपासितुः।
अनुष्ठानविधिः को वा पूजास्थानं च किं प्रभो॥ २७

पूजायां मण्डलं किं वा किं वा ऋष्यादिकं हर।
न्यासजापविधिः को वा को वा पूजाविधिक्रमः॥ २८

एतत्सर्वं महेशान समाचक्ष्व विशेषतः।
श्रोतुमिच्छामि तत्त्वेन यद्यस्ति मयि ते कृपा॥ २९

इसके बाद देवीकी सुमालिनी आदि प्रिय सखियोंके द्वारा लाये गये कल्पवृक्षके खिले हुए पुष्पोंसे महादेवीको अलंकृत करके उन्हें अपनी गोदमें बैठाकर उनका मुख देखकर प्रसन्नमुख शिवजी वहाँ बैठ गये॥ १७-१८॥

तत्पश्चात् सभी लोकोंके कल्याणके लिये पार्वती एवं परमेश्वरके बीच वेदार्थसम्मत प्रिय कथाएँ होने लगीं। हे तपोधनो! उसी समय अपने पतिकी गोदमें विराजमान सम्पूर्ण जगत्‌की माताने अपने पतिके मुखको देखकर यह कहा—॥ १९-२०॥

श्रीदेवी बोलीं—हे देव! आपके द्वारा उपदिष्ट मन्त्र प्रणवयुक्त कहे गये हैं, अतः सबसे पहले मैं प्रणवके निश्चित अर्थको सुनना चाहती हूँ॥ २१॥

प्रणव किस प्रकार उत्पन्न हुआ, इसे प्रणव क्यों कहा जाता है, इसमें कितनी मात्राएँ कही गयी हैं और यह वेदोंका आदि क्यों कहा जाता है? इसके कितने देवता कहे गये हैं, इसमें किस प्रकार देवादिकी भावना की जाती है, इसमें कितने प्रकारकी क्रियाएँ बतायी गयी हैं और इसकी व्याप्य-व्यापकता कैसी है? क्रमशः सद्योजातादि पंचब्रह्म इस मन्त्रमें किस प्रकार निवास करते हैं, कितनी कलाएँ कही गयी हैं? और प्रपंचात्मकता क्या है? इसका वाच्य-वाचकसम्बन्ध और स्थान किस प्रकारका है, इसका अधिकारी किसे जानना चाहिये और इसका विषय किसे कहा गया है? इसमें सम्बन्ध किसे जानना चाहिये, इसका कौन-सा प्रयोजन कहा जाता है, इसकी उपासना करनेवाला किस रूपका होता है और उपासनाके योग्य स्थान कैसा होता है? हे प्रभो! इसकी उपास्य वस्तु किस प्रकारकी है, इसकी उपासना करनेवालोंका फल क्या होता है, इसकी अनुष्ठानविधि क्या है तथा पूजनका स्थान क्या है? हे हर! पूजामें मण्डल कैसा हो, इसके ऋषि आदि कौन हैं, इसमें न्यास तथा जपकी विधि क्या है और पूजाविधिका क्रम क्या है? हे महेशान! यदि आपकी मुझपर कृपा है, तो यह सब मुझे विशेषरूपसे बताइये, मैं इसे यथार्थरूपसे सुनना चाहती हूँ॥ २२—२९॥

इति देव्या समापृष्टो भगवानिन्दुभूषणः।
सम्प्रशस्य महेशानीं वक्तुं समुपचक्रमे॥ ३०

देवीके द्वारा इस प्रकार पूछे जानेपर भगवान् चन्द्रभूषण [उन] महेश्वरीकी प्रशंसा करके कहने लगे— ॥ ३० ॥

इति श्रीशिवमहापुराणे षष्ठ्यां कैलाससंहितायां देवीदेवसंवादे देवीकृतप्रश्नवर्णनं नाम द्वितीयोऽध्यायः ॥ २ ॥

॥ इस प्रकार श्रीशिवमहापुराणके अन्तर्गत छठी कैलाससंहितामें देवीदेवसंवादमें देवीकृत प्रश्नवर्णन नामक दूसरा अध्याय पूर्ण हुआ ॥ २ ॥

अथ तृतीयोऽध्यायः

प्रणवमीमांसा तथा संन्यासविधिवर्णन

ईश्वर उवाच

श्रृणु देवि प्रवक्ष्यामि यन्मां त्वं परिपृच्छसि।
तस्य श्रवणमात्रेण जीवः साक्षाच्छिवो भवेत्॥ १

ईश्वर बोले—हे देवि! आप मुझसे जो पूछ रही हैं, उसे मैं आपसे कह रहा हूँ, सुनिये; उसके सुननेमात्रसे जीव साक्षात् शिव हो जाता है ॥ १ ॥

प्रणवार्थपरिज्ञानमेव ज्ञानं मदात्मकम्।
बीजं तत्सर्वविद्यानां मन्त्रं प्रणवनामकम्॥ २

प्रणवके अर्थको जान लेना ही मेरा ज्ञान है, प्रणव नामक वह मन्त्र सभी विद्याओंका बीज है ॥ २ ॥

अतिसूक्ष्मं महार्थं च ज्ञेयं तद्वटबीजवत्।
वेदादि वेदसारं च मद्रूपं च विशेषतः॥ ३

देवो गुणत्रयातीतः सर्वज्ञः सर्वकृत्प्रभुः।
ओमित्येकाक्षरे मंत्रे स्थितोऽहं सर्वगः शिवः॥ ४

उसे वटबीजके समान अति सूक्ष्म तथा [विशाल] वटवृक्षके समान महान् अर्थवाला जानना चाहिये, यह वेदका आदि, वेदका सार और विशेषरूपसे मेरा स्वरूप है। तीनों गुणोंसे परे, सर्वज्ञ, सर्वकृत्, देवस्वरूप, सर्वसमर्थ तथा सर्वत्र व्याप्त मैं शिव इस ओम् नामक एकाक्षर मन्त्रमें निवास करता हूँ ॥ ३-४ ॥

यदस्ति वस्तु तत्सर्वं गुणप्राधान्ययोगतः।
समस्तं व्यस्तमपि च प्रणवार्थं प्रचक्षते॥ ५

सर्वार्थसाधकं तस्मादेकं ब्रह्मैतदक्षरम्।
तेनोमिति जगत्कृत्स्नं कुरुते प्रथमं शिवः॥ ६

[इस जगत्में] जो भी वस्तु है, वह सब गुणोंकी प्रधानतासे और समष्टि या व्यष्टिरूपसे प्रणवार्थ ही है। इसीलिये एकाक्षर ब्रह्मस्वरूप यह प्रणव सभी अर्थोंका साधक है। शिवजी इसी प्रणवसे सबसे पहले समस्त संसारका निर्माण करते हैं ॥ ५-६ ॥

शिवो वा प्रणवो ह्येष प्रणवो वा शिवः स्मृतः।
वाच्यवाचकयोर्भेदो नात्यन्तं विद्यते यतः॥ ७

तस्मादेकाक्षरं देवं मां च ब्रह्मर्षयो विदुः।
वाच्यवाचकयोरैक्यं मन्यमाना विपश्चितः॥ ८

शिवको ही प्रणवस्वरूप तथा प्रणवको ही शिवस्वरूप कहा गया है; क्योंकि वाच्य-वाचकमें कुछ भी भेद नहीं होता है। इसीलिये वाच्य तथा वाचकमें एकता मानते हुए ब्रह्मर्षिगण मुझ शिवको एकाक्षर कहते हैं ॥ ७-८ ॥

अतस्तदेव जानीयात्प्रणवं सर्वकारणम्।
निर्विकारी मुमुक्षुर्मां निर्गुणं परमेश्वरम्॥ ९

अतः विकाररहित तथा मोक्षकी इच्छावालेको चाहिये कि उस प्रणवको ही मुझ सर्वकारण, निर्गुण परमेश्वरके रूपमें समझे ॥ ९ ॥

एनमेव हि देवेशि सर्वमन्त्रशिरोमणिम्।
काश्यामहं प्रदास्यामि जीवानां मुक्तिहेतवे॥ १०

हे देवेशि! मैं काशीमें जीवोंकी मुक्तिके लिये सभी मन्त्रोंमें श्रेष्ठ इसी प्रणवका उपदेश करता हूँ ॥ १० ॥

तत्रादौ सम्प्रवक्ष्यामि प्रणवोद्धारमम्बिके।
यस्य विज्ञानमात्रेण सिद्धिश्च परमा भवेत्॥ ११

निवृत्तिमुद्धरेत्पूर्वमिन्धनं च ततः परम्।
कालं समुद्धरेत्पश्चाद्दंडमीश्वरमेव च॥ १२

वर्णपञ्चकरूपोऽयमेवं प्रणव उद्धृतः।
त्रिमात्रबिन्दुनादात्मा मुक्तिदो जपतां सदा॥ १३

ब्रह्मादिस्थावरान्तानां सर्वेषां प्राणिनां खलु।
प्राणः प्रणव एवायं तस्मात्प्रणव ईरितः॥ १४

आद्यं वर्णमकारं च उकारमुत्तरे ततः।
मकारं मध्यतश्चैव नादान्तं तस्य चोमिति॥ १५

जलवद्वर्णमाद्यं तु दक्षिणे चोत्तरे तथा।
मध्ये मकारं शुचिवदोंकारे मुनिसत्तम॥ १६

अकारश्चाप्युकारोऽयं मकारश्च त्रयं क्रमात्।
तिस्रो मात्राः समाख्याता अर्धमात्रा ततः परम्॥ १७

अर्धमात्रा महेशानि बिन्दुनादस्वरूपिणी।
वर्णनीया न वै चाद्धा ज्ञेया ज्ञानिभिरेव सा॥ १८

ईशानः सर्वविद्यानामित्याद्याः श्रुतयः प्रिये।
मत्त एव भवन्तीति वेदाः सत्यं वदन्ति हि॥ १९

तस्माद् वेदादिरेवाहं प्रणवो मम वाचकः।
वाचकत्वान्ममैषोऽपि वेदादिरिति कथ्यते॥ २०

अकारस्तु महद् बीजं रजः स्रष्टा चतुर्मुखः।
उकारः प्रकृतिर्योनिः सत्त्वं पालयिता हरिः॥ २१

मकारः पुरुषो बीजी तमः संहारको हरः।
बिन्दुर्महेश्वरो देवस्तिरोभाव उदाहृतः॥ २२

नादः सदाशिवः प्रोक्तः सर्वानुग्रहकारकः।
नादमूर्द्धनि संचिन्त्यः परात्परतरः शिवः॥ २३

हे अम्बिके! अब मैं सर्वप्रथम प्रणवोद्धारका वर्णन करूँगा, जिसका ज्ञान हो जानेसे परम सिद्धि प्राप्त हो जाती है॥ ११॥

सर्वप्रथम निवृत्तिकलारूप अकारका उद्धार करे, तत्पश्चात् इन्धनकलारूप उकारका, कालकलारूप मकारका, दण्डकलारूप बिन्दुका तथा ईश्वरकलारूप नादका उद्धार करे। इस प्रकार तीन मात्रा, बिन्दु तथा नादस्वरूप पंचवर्णरूप यह प्रणव उद्धृत किये जानेपर जप करनेवालोंको सदा मुक्ति प्रदान करता है॥ १२-१३॥

यह प्रणव ब्रह्मासे लेकर स्थावरपर्यन्त सम्पूर्ण प्राणियोंका प्राण ही है, अतः इसे प्रणव कहा गया है। इस प्रणवका आदि अक्षर अकार है, उसके बाद उकार, मध्यमें मकार और अन्तमें नाद है, इनके संयोगसे 'ओम्' बनता है॥ १४-१५॥

हे मुनिसत्तम! आदि वर्ण अकार, जो कि उकारके दक्षिणमें है तथा अकारके उत्तरमें स्थित उकार—ये दोनों जलवत् शुभ्र आभावाले हैं तथा ओंकारके मध्यमें स्थित मकार अग्निकी भाँति तेजोमय है॥ १६॥

अकार, उकार एवं मकार—ये क्रमसे तीन मात्राएँ कही गयी हैं, उसके बाद अर्धमात्रा है। हे महेशानि! यह अर्धमात्रा ही नाद-बिन्दुस्वरूपवाली है, जिसका निश्चय ही वर्णन नहीं किया जा सकता, उसे तो ज्ञानीलोग ही जान सकते हैं॥ १७-१८॥

'ईशानः सर्वविद्यानाम्' इत्यादि श्रुतियाँ मुझसे ही प्रकट हुई हैं—ऐसा वेदोंने सत्य कहा है। इसलिये वेदका आदि मैं ही हूँ और प्रणव मेरा वाचक है। मेरा वाचक होनेके कारण यह प्रणव वेदोंका आदि भी कहा जाता है॥ १९-२०॥

अकार इसका महान् बीज है, जो रजोगुणयुक्त सृष्टिकर्ता ब्रह्मास्वरूप है। उकार उसकी योनिरूपा प्रकृति है, जो सत्त्वगुणयुक्त पालनकर्ता हरिका स्वरूप है। मकार बीजयुक्त पुरुष है, जो तमोगुणसे युक्त संहारकर्ता सदाशिवका स्वरूप है। बिन्दु साक्षात् प्रभु महेश्वर हैं, उन्हींसे जगत्का तिरोभाव कहा गया है। नादको सदाशिव कहा गया है, जो सबपर अनुग्रह करनेवाले हैं, नादरूप मूर्धामें परात्परतर शिवका ध्यान करना चाहिये॥ २१—२३॥

स सर्वज्ञः सर्वकर्त्ता सर्वेशो निर्मलोऽव्ययः।
अनिर्देश्यः परब्रह्म साक्षात्सदसतः परः॥ २४

वे सर्वज्ञ, सर्वकर्ता, सर्वेश, निर्मल, अविनाशी, अनिर्देश्य तथा सत्-असत्से परे साक्षात् परब्रह्म हैं॥ २४॥

अकारादिषु वर्णेषु व्यापकं चोत्तरोत्तरम्।
व्याप्यं त्वधस्तनं वर्णमेवं सर्वत्र भावयेत्॥ २५

[प्रणवके घटक] वे अकारादि वर्ण क्रमशः उत्तरोत्तर व्यापक हैं और वे ही पूर्व-पूर्व वर्ण व्याप्य हैं, इस प्रकारकी भावना सर्वत्र करनी चाहिये॥ २५॥

सद्यादीशानपर्यन्तान्यकारादिषु पञ्चसु।
स्थितानि पञ्च ब्रह्माणि तानि मन्मूर्त्तयः क्रमात्॥ २६

अकारादि पाँचों वर्णोंमें क्रमशः सद्योजातसे ईशान-पर्यन्त पाँच ब्रह्म स्थित हैं, वे मेरी ही मूर्तियाँ हैं॥ २६॥

अष्टौ कलाः समाख्याता अकारे सद्यजाः शिवे।
उकारे वामरूपिण्यस्त्रयोदश समीरिताः॥ २७
अष्टावघोररूपिण्यो मकारे संस्थिताः कलाः।
बिन्दौ चतस्त्रः संभूताः कलाः पुरुषगोचराः॥ २८
नादे पञ्च समाख्याताः कला ईशानसंभवाः।
षड्विधैक्यानुसंधानात्प्रपञ्चात्मकतोच्यते ॥ २९
मन्त्रो यन्त्रं देवता च प्रपञ्चो गुरुरेव च।
शिष्यश्च षट्पदार्थानामेषामर्थं शृणु प्रिये॥ ३०

हे शिवे! अकारमें सद्योजातसे उत्पन्न आठ कलाएँ कही गयी हैं। उकारमें वामदेवरूपिणी तेरह कलाएँ कही गयी हैं। मकारमें अघोररूपिणी आठ कलाएँ स्थित हैं। बिन्दुमें पुरुषरूपिणी चार कलाएँ स्थित हैं। नादमें ईशानसे प्रादुर्भूत पाँच कलाएँ कही गयी हैं। छः पदार्थोंकी एकताके अनुसन्धानसे [प्रणवकी] प्रपंचात्मकता कही जाती है। मन्त्र, यन्त्र, देवता, प्रपंच, गुरु एवं शिष्य—ये ही छः पदार्थ हैं। हे प्रिये! इन छः पदार्थोंका अर्थ सुनो॥ २७—३०॥

पञ्चवर्णसमष्टिः स्यान्मन्त्रः पूर्वमुदाहृतः।
स एव यंत्रतां प्राप्तो वक्ष्ये तन्मण्डलक्रमम्॥ ३१

यन्त्रं तु देवतारूपं देवता विश्वरूपिणी।
विश्वरूपो गुरुः प्रोक्तः शिष्यो गुरुवपुः स्मृतः॥ ३२

प्रणवमन्त्र पाँच वर्णोंका समुदाय है, यह पहले ही कहा गया है, देवता ही यन्त्रभावको प्राप्त होता है, अब मैं उसके मण्डलक्रमको कहता हूँ। यन्त्र देवतास्वरूप है और देवता विश्वरूप है, गुरुको विश्वरूप कहा गया है और शिष्यको गुरुका शरीर कहा गया है॥ ३१-३२॥

ओमितीदं सर्वमिति सर्वं ब्रह्मेति च श्रुतेः।
वाच्यवाचकसम्बन्धोऽप्ययमेवार्थ ईरितः॥ ३३

'सर्वं खल्विदं ब्रह्म'—इस श्रुतिसे सारा प्रपंच ही ओंकारस्वरूप है, इसी वाच्य-वाचक सम्बन्धसे [प्रपंचकी वाचकता तथा ब्रह्मकी वाच्यतारूप] अर्थ भी कह दिया गया॥ ३३॥

आधारो मणिपूरश्च हृदयं तु ततः परम्।
विशुद्धिराज्ञा च ततः शक्तिः शान्तिरिति क्रमात्॥ ३४
स्थानान्येतानि देवेशि शान्त्यतीतं परात्परम्।
अधिकारी भवेद्यस्य वैराग्यं जायते दृढम्॥ ३५

हे देवेशि! मूलाधार, मणिपूर, हृदय, विशुद्धि, आज्ञा, शक्ति, शान्ति और परात्पर शान्त्यतीत—ये [आठ] स्थान हैं, जिसे दृढ़ वैराग्य होता है, वही इस प्रणवका अधिकारी है॥ ३४-३५॥

विषयः स्यामहं देवि जीवब्रह्मैक्यभावनात्।
सम्बन्धं शृणु देवेशि विषयः सम्यगीरितः॥ ३६

जीवात्मनो मया सार्धमैक्यस्य प्रणवस्य च।
वाच्यवाचकभावोऽत्र सम्बन्धः समुदीरितः॥ ३७

हे देवि! मैं ही जीव और ब्रह्मकी एकत्वभावनासे इस प्रणवका विषय हूँ। हे देवेशि! प्रणवका विषय [नामक अनुबन्ध] भलीभाँति कह दिया, अब सम्बन्धको सुनिये। जीवात्माका मुझ परमात्माके साथ ऐक्य इस प्रणवका विषय है और वाच्यवाचकभाव ही यहाँपर सम्बन्ध है॥ ३६-३७॥

व्रतादिनिरतः शान्तस्तपस्वी विजितेन्द्रियः।
शौचाचारसमायुक्तो भूदेवो वेदनिष्ठितः॥ ३८
विषयेषु विरक्तः सन्नैहिकामुष्मिकेषु च।
देवानां ब्राह्मणानां च सद्भक्तश्च शिवव्रती॥ ३९
सर्वशास्त्रार्थतत्त्वज्ञं वेदान्तज्ञानपारगम्।
आचार्यमुपसङ्गम्य यतिं मतिमतां वरम्॥ ४०
दीर्घदण्डप्रणामाद्यैस्तोषयेद्यत्नतः सुधीः।
शान्त्यादिगुणसंयुक्तः शिष्यः सौशील्यवान् वरः॥ ४१

व्रत आदिमें निरत, शान्त, तपस्वी, जितेन्द्रिय, पवित्र आचरणसे युक्त, इस लोक तथा परलोकके विषयोंसे विरक्त, देवताओं तथा ब्राह्मणोंमें उत्तम भक्ति रखनेवाले, बुद्धिमान्, शिवव्रती, शान्ति आदि गुणोंसे युक्त, सुशील तथा श्रेष्ठ वेदवेत्ता ब्राह्मण शिष्यको चाहिये कि सभी शास्त्रोंके अर्थको तत्त्वतः जाननेवाले, वेदान्तज्ञानमें पारंगत, तथा बुद्धिमानोंमें श्रेष्ठ यति आचार्यके पास जाकर उन्हें दण्डवत् प्रणाम आदिके द्वारा प्रयत्नपूर्वक सन्तुष्ट करे॥ ३८—४१॥

यो गुरुः स शिवः प्रोक्तो यः शिवः स गुरुः स्मृतः।
इति निश्चित्य मनसा स्वविचारं निवेदयेत्॥ ४२

जो गुरु हैं, वे ही शिव कहे गये हैं और जो शिव हैं, वे ही गुरु कहे गये हैं—ऐसा मनसे सोचकर अपना विचार निवेदन करना चाहिये॥ ४२॥

लब्धानुज्ञस्तु गुरुणा द्वादशाहं पयोव्रती।
समुद्रतीरे नद्यां च पर्वते वा शिवालये॥ ४३
शुक्लपक्षे तु पञ्चम्यामेकादश्यां तथापि वा।
प्रातः स्नात्वा तु शुद्धात्मा कृतनित्यक्रियः सुधीः॥ ४४
गुरुमाहूय विधिना नान्दीश्राद्धं विधाय च।
क्षौरं च कारयित्वाथ कक्षोपस्थविवर्जितम्॥ ४५
केशश्मश्रुनखानां वै स्नात्वा नियतमानसः।
सक्तुं प्राश्याथ सायाह्ने स्नात्वा सन्ध्यामुपास्य च॥ ४६
सायमौपासनं कृत्वा गुरुणा सहितो द्विजः।
शास्त्रोक्तदक्षिणां दत्त्वा शिवाय गुरुरूपिणे॥ ४७
होमद्रव्याणि संपाद्य स्वसूत्रोक्तविधानतः।
अग्निमाधाय विधिवल्लौकिकादिविभेदतः॥ ४८
आहिताग्निस्तु यः कुर्यात्प्राजापत्येष्टिनाहिते।
श्रौते वैश्वानरे सम्यक् सर्ववेदसदक्षिणम्॥ ४९
अथाग्निमात्मन्यारोप्य ब्राह्मणः प्रव्रजेद् गृहात्।
श्रपयित्वा चरुं तस्मिन्समिदन्नाज्यभेदतः॥ ५०
पौरुषेणैव सूक्तेन हुत्वा प्रत्यृचमात्मवान्।
हुत्वा च सौविष्टकृतीं स्वसूत्रोक्तविधानतः॥ ५१

बुद्धिमान् शिष्यको चाहिये कि गुरुसे आज्ञा प्राप्त करके बारह दिनपर्यन्त केवल दूध पीकर रहे, पुनः समुद्रके तटपर, नदीके किनारे, पर्वतपर अथवा शिवालयमें शुक्लपक्षकी पंचमी अथवा एकादशीके दिन प्रातःकाल स्नान करके शुद्धचित्त होकर नित्यकृत्य करके गुरुको बुलाकर विधिपूर्वक नान्दीश्राद्ध करके कक्ष (काँख) तथा गुह्यस्थानके केशोंको छोड़कर सिर, दाढ़ी, मूँछके बालोंको बनवाकर, नाखून कटवाकर पुनः स्नान करके जितेन्द्रिय हो सन्ध्योपासन करके सत्तूका भोजन करके सायंकाल पुनः स्नानकर सन्ध्योपासन करे। ब्राह्मणको चाहिये कि गुरुके साथ सन्ध्याकालकी उपासना करके गुरुरूपी शिवको शास्त्रोक्त दक्षिणा देकर अपने गृह्यसूत्रमें बताये गये विधानके अनुसार होमद्रव्य लेकर लौकिक आदि भेदसे अग्निका आधान करे। इस प्रकार अग्न्याधान करके जो ब्राह्मण प्राजापत्य यज्ञके अनुसार हवन कर चुका है, वह वेदसहित सम्पूर्ण धनको दक्षिणामें देकर अग्निको आत्मामें धारणकर घरसे संन्यास ग्रहण करे। पुनः चरु तैयार करके समिधा, अन्न, घृतके द्वारा जितेन्द्रिय होकर पुरुषसूक्तकी प्रत्येक ऋचासे हवन उस अग्निमें करके पुनः अपने [गृह्य] सूत्रके अनुसार स्विष्टकृत् आहुतियोंसे हवन करे॥ ४३—५१॥

हुत्वोपरिष्टात्तन्त्रं च तेनाग्नेरुत्तरे बुधः।
स्थित्वासने जपेन्मौनी चैलाजिनकुशोत्तरे।
यावद् ब्राह्ममुहूर्त्तं तु गायत्रीं दृढमानसः॥ ५२

इस प्रकार हवन करके एकतन्त्रसे अग्निके उत्तरमें उदीच्यकर्म करे। बुद्धिमान् शिष्यको कुशाके ऊपर मृगचर्म एवं उसके ऊपर कपड़ेके आसनपर बैठकर मौन तथा स्थिरचित्त होकर ब्राह्ममुहूर्तपर्यन्त गायत्रीका जप करना चाहिये॥ ५२॥

ततः स्नात्वा यथापूर्वं श्रपयित्वा चरुं ततः।
पौरुषं सूक्तमारभ्य विरजान्तं हुनेद् बुधः॥ ५३
वामदेवमतेनापि शौनकादिमतेन वा।
तत्र मुख्यं वामदेव्यं गर्भयुक्तो यतो मुनिः॥ ५४

इसके बाद प्रातःकाल स्नान करके चरुका निर्माणकर पुरुषसूक्तसे आरम्भकर विरजापर्यन्त वामदेव अथवा शौनकादिके मतानुसार हवन करे। इनमें वामदेवका मत अधिक श्रेष्ठ है, क्योंकि वामदेवमुनि गर्भमें ही योगयुक्त हो गये थे॥ ५३-५४॥

होमशेषं समाप्याथ प्रातरौपासनं हुनेत्।
ततोऽग्निमात्मन्यारोप्य प्रातः सन्ध्यामुपास्य च॥ ५५
सवितर्युदिते पश्चात्सावित्रीं प्राविशेत्क्रमात्।
एषणानां त्रयं त्यक्त्वा प्रैषमुच्चार्य च क्रमात्॥ ५६
शिखोपवीते संत्यज्य कटिसूत्रादिकं ततः।
विसृज्य प्राङ्मुखो गच्छेदुत्तराशामुखोऽपि वा॥ ५७
गृह्णीयाद्दण्डकौपीनाद्युचितं लोकवर्तने।
विरक्तश्चेन्न गृह्णीयाल्लोकवृत्तिविचारणे॥ ५८

इसके बाद शेष हवनको समाप्तकर प्रातःकालकी उपासनाका हवन सम्पन्न करे। तदनन्तर आत्मामें अग्निका आरोपणकर प्रातःकालिक सन्ध्योपासन करके सूर्यके उदय हो जानेपर सावित्रीमें क्रमशः प्रवेश करे और तीनों एषणाओं (लोकैषणा, पुत्रैषणा तथा धनैषणा)-का त्यागकर प्रैषोच्चारण करके क्रमसे शिखा, उपवीतका त्याग करके पुनः कटिसूत्र आदिको भी त्यागकर पूर्व अथवा उत्तरदिशाकी ओर मुख करके गमन करना चाहिये और लोकव्यवहारके लिये उचित दण्ड तथा कौपीन आदि धारण करना चाहिये, जिसे लोकव्यवहारका ध्यान न हो, वह इन्हें धारण न भी करे॥ ५५—५८॥

गुरोः समीपं गत्वाथ दण्डवत्प्रणमेत्त्रयम्।
समुत्थाय ततस्तिष्ठेद् गुरुपादसमीपतः॥ ५९

गुरुके समीप जाकर तीन बार दण्डवत् प्रणाम करना चाहिये, पुनः उठकर गुरुके चरणोंके समीप बैठना चाहिये॥ ५९॥

ततो गुरुः समादाय विरजानलजं सितम्।
भस्म तेनैव तं शिष्यं समुद्धूल्य यथाविधि॥ ६०
अग्निरित्यादिभिर्मन्त्रैस्त्रिपुण्ड्रं धारयेत्ततः।
हृत्पंकजे समासीनं मां त्वया सह चिन्तयेत्॥ ६१
हस्तं निधाय शिरसि शिष्यस्य प्रीतमानसः।
ऋष्यादिसहितं तस्य दक्षकर्णे समुच्चरेत्॥ ६२
प्रणवं त्रिःप्रकारं तु ततस्तस्यार्थमादिशेत्।
षड्विधार्थं परिज्ञानसहितं गुरुसत्तमः॥ ६३

इसके बाद गुरुको चाहिये कि विरजा अग्निसे उत्पन्न श्वेत भस्म लेकर उससे विधिपूर्वक शिष्यके शरीरपर उद्धूलन करके **'अग्निरिति भस्म'** इत्यादि मन्त्रोंसे त्रिपुण्ड्र धारण कराये और हृदयकमलमें स्थित पार्वतीसहित मेरा ध्यान कराये। तत्पश्चात् प्रसन्नचित्त होकर श्रेष्ठ गुरु शिष्यके मस्तकपर अपना हाथ रखकर उसके दाहिने कानमें ऋषि आदिके सहित तीन बार प्रणवका उच्चारण करे और पुनः सविस्तार उसके षड्विध अर्थका समग्रतः उपदेश करे॥ ६०—६३॥

द्विषट्प्रकारं स गुरुं प्रणम्य भुवि दण्डवत्।
तदधीनो भवेन्नित्यं वेदान्तं सम्यगभ्यसेत्॥ ६४
मामेव चिन्तयेन्नित्यं परमात्मानमात्मनि।
विशुद्धे निर्विकारे वै ब्रह्मसाक्षिणमव्ययम्॥ ६५
शमादिधर्मनिरतो वेदान्तज्ञानपारगः।
अत्राधिकारी स प्रोक्तो यतिर्विगतमत्सरः॥ ६६

तदनन्तर वह शिष्य गुरुको बारह प्रकारसे भूमिपर दण्डवत् करके उनके अधीन रहकर वेदान्तका नित्य अभ्यास करे और अपने निर्विकार एवं विशुद्ध मनमें सदा मुझ ब्रह्म, साक्षी तथा अव्यय परमात्माका चिन्तन करे। शम आदि धर्मोंमें निरत, वेदान्तज्ञानमें पारंगत तथा ईर्ष्यारहित यति ही इस प्रणवका अधिकारी कहा गया है॥ ६४—६६॥

हृत्पुण्डरीकं विरजं विशोकं विशदं परम्।
अष्टपत्रं केशराढ्यं कर्णिकोपरि शोभितम्॥ ६७

आधारशक्तिमारभ्य त्रितत्त्वान्तमयं पदम्।
विचिन्त्य मध्यतस्तस्य दहरं व्योम भावयेत्॥ ६८

ओमित्येकाक्षरं ब्रह्म व्याहरन्मां त्वया सह।
चिंतयेन्मध्यतस्तस्य नित्यमुद्युक्तमानसः॥ ६९

एवंविधोपासकस्य मल्लोकगतिमेव च।
मत्तो विज्ञानमासाद्य मत्सायुज्यफलं प्रिये॥ ७०

स्वच्छ, शोकरहित, परम उज्ज्वल, अष्टपत्रयुक्त, कर्णिकामें विराजमान मकरन्दयुक्त हृत्कमलके मध्यमें आधारशक्तिसे आरम्भ करके मणिपूरकपर्यन्त दहर आकाशमें त्रितत्त्वयुक्त प्रणवकी भावना करे॥ ६७-६८॥

सावधानचित्त होकर 'ओम्' इस एकाक्षरमन्त्रका उच्चारण करते हुए उस दहराकाशके मध्य तुम्हारे साथ मेरा स्मरण सदा करता रहे॥ ६९॥

हे प्रिये! इस प्रकारके उपासकको मेरा लोक प्राप्त होता है और वह मुझसे ज्ञान पाकर मेरे सायुज्यका फल प्राप्त कर लेता है॥ ७०॥

इति श्रीशिवमहापुराणे षष्ठ्यां कैलाससंहितायां संन्यासपद्धतिवर्णनं नाम तृतीयोऽध्यायः॥ ३॥

॥ इस प्रकार श्रीशिवमहापुराणके अन्तर्गत छठी कैलाससंहितामें संन्यासपद्धतिवर्णन नामक तीसरा अध्याय पूर्ण हुआ॥ ३॥

अथ चतुर्थोऽध्यायः

संन्यासदीक्षासे पूर्वकी आह्निकविधि

ईश्वर उवाच

अतः परं प्रवक्ष्यामि संन्यासाह्निककर्म च।
तव स्नेहान्महादेवि संप्रदायानुरोधतः॥ १

ब्राह्मे मुहूर्त्त उत्थाय शिरसि श्वेतपंकजे।
सहस्रारे समासीनं गुरुं सञ्चिन्तयेद्यतिः॥ २

शुद्धस्फटिकसंकाशं द्विनेत्रं वरदाभये।
दधानं शिवसद्भावमेवात्मनि मनोहरम्॥ ३

भावोपनीतैः संपूज्य गन्धादिभिरनुक्रमात्।
बद्धाञ्जलिपुटो भूत्वा नमस्कुर्याद् गुरुं ततः॥ ४

प्रातःप्रभृति सायान्ते सायादि प्रातरन्ततः।
यत्करोमि महादेव तदस्तु तव पूजनम्॥ ५

प्रतिविज्ञाप्य गुरवे लब्धानुज्ञस्ततो गुरोः।
निरुद्धप्राण आसीनो विजितात्मा जितेन्द्रियः॥ ६

मूलादिब्रह्मरन्ध्रान्तं षट्चक्रं परिचिन्तयेत्।
विद्युत्कोटिसमप्रख्यं सर्वतेजोमयं परम्॥ ७

तन्मध्ये चिंतयेन्मां च सच्चिदानन्दविग्रहम्।
निर्गुणं परमं ब्रह्म सदाशिवमनामयम्॥ ८

शिवजी बोले—हे महादेवि! अब मैं आपके ऊपर स्नेहके कारण सम्प्रदायोंके अनुसार संन्यास लेनेसे पूर्वके आह्निक कर्मका वर्णन करूँगा॥ १॥

हे महादेवि! ब्राह्ममुहूर्तमें उठकर यति अपने सिरमें सहस्र दलवाले श्वेत कमलपर बैठे हुए, शुद्ध स्फटिकके समान अत्यन्त निर्मल, दो नेत्रोंवाले, वरद एवं अभयमुद्राको धारण किये हुए शिवके समान कल्याणकारी एवं अत्यन्त मनोहर स्वरूपवाले गुरुका ध्यान करे। उसके अनन्तर मानसिक भावोंसे लाये गये गन्ध आदिसे क्रमशः पूजन करके हाथ जोड़कर गुरुको नमस्कार करे॥ २—४॥

हे महादेव! प्रातःकालसे सन्ध्यापर्यन्त तथा सन्ध्यासे प्रातःकालपर्यन्त मैं जो कुछ भी करता हूँ, वह सब आपका ही पूजन हो। इस प्रकार गुरुसे निवेदनकर उनसे आज्ञा लेकर प्राणोंको रोक करके मन एवं इन्द्रियोंको वशमें रखकर आसनपर बैठे और मूलाधारसे ब्रह्मरन्ध्रपर्यन्त छः चक्रोंका ध्यान करे। उनके मध्यमें करोड़ों विद्युत्के समान कान्ति-वाले, सर्वतेजोमय, सच्चिदानन्दस्वरूप, निर्गुण, निर्विकार, परब्रह्मरूप मुझ सदाशिवका चिन्तन करे॥ ५—८॥

सोऽहमस्मीति मतिमान्मदैक्यमनुभूय च।
बहिर्निर्गत्य च ततो दूरं गच्छेद्यथासुखम्॥ ९

उसके अनन्तर उस बुद्धिमान्‌को चाहिये कि 'वह मैं ही हूँ'—इस प्रकार मेरे साथ एकताका अनुभव करके बाहर निकलकर सुविधानुरूप दूर चला जाय॥ ९॥

वस्त्रेणाच्छाद्य मतिमाञ्छिरो नासिकया सह।
विशोध्य देहं विधिवत्तृणमाधाय भूतले॥ १०
गृहीतशिश्न उत्थाय ततो गच्छेज्जलाशयम्।
उद्धृत्य वार्यथान्यायं शौचं कुर्यादतन्द्रितः॥ ११
हस्तौ पादौ च संशोध्य द्विराचम्योमिति स्मरन्।
उत्तराभिमुखो मौनी दन्तधावनमाचरेत्॥ १२

वह बुद्धिमान् [शिष्य] वस्त्रसे नासिका तथा सिरको ढँककर पृथ्वीपर तृण रखकर विधिवत् शौच करके वहाँसे उठकर शिश्नको हाथसे पकड़े हुए जलाशयकी ओर जाय और उचित रीतिसे जल लेकर सावधान हो विधिपूर्वक शुद्धि करे। पुनः हाथ-पैर धोकर 'ॐ' इस मन्त्रका स्मरण करता हुआ दो बार आचमन करके मौन धारणकर उत्तराभिमुख हो दन्तधावन करे॥ १०—१२॥

तृणपर्णैः सदा कुर्यादमामेकादशीं विना।
अपां द्वादशगण्डूषैर्मुखं संशोधयेत्ततः॥ १३
द्विराचम्य मृदा तोयैः कटिशौचं विधाय च।
अरुणोदयकाले तु स्नानं कुर्यान्मृदा सह॥ १४

एकादशी तथा अमावास्याको छोड़कर तृण तथा पत्ते (डण्ठल आदि)-से सदा दन्तधावन करे, इसके बाद जलसे बारह कुल्लाकर मुखको शुद्ध करे, पुनः दो बार आचमनकर मिट्टी तथा जलसे कटिपर्यन्त शरीरभागको शुद्ध करके सूर्योदयके समय मिट्टीका लेपनकर स्नान करे॥ १३-१४॥

गुरुं संस्मृत्य मां चैव स्नानसंध्याद्यमाचरेत्।
विस्तारभयतो नोक्तमत्र द्रष्टव्यमन्यतः॥ १५

गुरुका तथा मेरा स्मरण करते हुए स्नान-सन्ध्या आदि करना चाहिये। इस विषयमें विस्तारके भयसे अधिक नहीं कहा गया है, इसे अन्यत्र देख लेना चाहिये॥ १५॥

आबध्य शंखमुद्रां च प्रणवेनाभिषेचयेत्।
शिरसि द्वादशावृत्त्या तदर्धं वा तदर्धकम्॥ १६
तीरमागत्य कौपीनं प्रक्षाल्याचम्य च द्विधा।
प्रोक्षयेत्प्रणवेनैव वस्त्रमङ्गोपमार्जनम्॥ १७

शंखमुद्रा बाँधकर प्रणवसे सिरपर बारह बार, उसका आधा छः बार अथवा उसका भी आधा तीन बार जल छिड़के। उसके अनन्तर किनारेपर आकर कौपीनका प्रक्षालनकर दो बार आचमन करके प्रणवसे ही वस्त्रपर जल छिड़के तथा अंगोंका मार्जन करे॥ १६-१७॥

मुखं प्रथमतो मृज्य शिर आरभ्य सर्वतः।
तेनैव मार्जयेद्देहं स्थित्वा च गुरुसन्निधौ॥ १८
आबध्याद् वामतः शुद्धं कौपीनं च सडोरकम्।
ततः संधारयेद्भस्म तद्विधिः प्रोच्यतेऽद्रिजे॥ १९

सबसे पहले अँगोछेसे मुख पोंछकर बादमें सिरसे लेकर सम्पूर्ण देहको पोंछे। इसके बाद गुरुके समीप ही स्थित हो शुद्ध कौपीन धारणकर डोरेसे बाँध ले। पुनः भस्म धारण करे, हे प्रिये! उसकी विधि कह रहा हूँ॥ १८-१९॥

द्विराचम्य समादाय भस्म सद्यादिमन्त्रतः।
अग्निरित्यादिभिर्मन्त्रैरभिमन्त्र्य स्पृशेत्तनुम्॥ २०
आपोवेत्यभिमन्त्र्याथ जलं तेनैव सेचयेत्।
ओमापोज्योतिरित्युक्त्वा मानस्तोकेति मन्त्रतः॥ २१

दो बार आचमन करके **सद्योजात०** इस आद्य मन्त्रसे भस्म ग्रहण करके **अग्निरिति०** इत्यादि मन्त्रोंसे उसे अभिमन्त्रित करते हुए शरीरका स्पर्श करे। इसके बाद **'आपो वा'** इस मन्त्रसे भस्ममें जल मिलाये। पुनः **ॐ आपो ज्योतिः**—इस मन्त्रको

सम्मर्द्य कवलद्वन्द्वं कुर्यादेकं तु पञ्चधा।
शिरोवदनहृद्गुह्यपादेषु परमेश्वरि॥ २२

ईशानादि समारभ्य सद्यान्तं पञ्चभिः क्रमात्।
उद्धूल्य कवलं पश्चात्प्रणवेनाभिषेचयेत्॥ २३

सर्वाङ्गं च ततो हस्तौ प्रक्षाल्यान्यत्समाहरेत्।
सम्मर्द्य पूर्ववत्तत्तु त्रिपुण्ड्रांस्तेन धारयेत्॥ २४

त्रियायुषैस्त्र्यम्बकैश्च प्रणवेन शिवेन च।
शिरस्यथ ललाटे च वक्षसि स्कन्ध एव च॥ २५

नाभौ बाह्वोः संधिषु च पृष्ठे चैव यथाक्रमम्।
प्रक्षाल्य हस्तौ च ततो द्विराचम्य यथाविधि॥ २६

पञ्चीकरणमुच्चार्य भावयेत्स्वगुरुं बुधः।
वक्ष्यमाणप्रकारेण प्राणायामान्षडाचरेत्॥ २७

पढ़कर **मानस्तोके**—इस मन्त्रसे [भस्मको] मसलकर कवलके आकारके दो पिण्ड बनाये। फिर एकके पाँच भाग करे। हे परमेश्वरि! उसे सिर, मुख, हृदय, गुह्यस्थान तथा चरणमें ईशानसे लेकर सद्योजातपर्यन्त पाँच मन्त्रोंसे क्रमशः लगाकर बादमें प्रणवसे अभिषेक करे। इसके साथ सभी अंगोंको तथा तत्पश्चात् दोनों हाथोंको धोकर दूसरा पिण्ड ग्रहण करे और पहलेकी तरह मसलकर उससे त्रिपुण्ड्र धारण करे, '**त्र्यायुषं जमदग्नेः**', '**त्र्यम्बकं यजामहे**', प्रणव अथवा अन्य शिवमन्त्रके द्वारा सिर, ललाट, वक्षःस्थल, कन्धा, नाभि, दोनों बाहुओं, सन्धियों तथा पीठपर क्रमशः भस्म लगाये। इसके बाद दोनों हाथ धोकर यथाविधि दो बार आचमन करके पंचाक्षर मन्त्रका उच्चारणकर वह विद्वान् [शिष्य] अपने गुरुका ध्यान करे और आगे कही जानेवाली विधिके अनुसार छः प्राणायाम करे॥ २०—२७॥

दक्षहस्तेन सङ्गृह्य जलं वामेन पाणिना।
समाच्छाद्य द्विषड्वारं प्रणवेनाभिमन्त्रयेत्॥ २८
एवं त्रिवारं संप्रोक्ष्य शिरसि त्रिः पिबेत्ततः।
समाहितेन मनसा ध्यायन्नोङ्कारमीश्वरम्॥ २९
सौरमण्डलमध्यस्थं सर्वतेजोमयं परम्।
अष्टबाहुं चतुर्वक्त्रमर्द्धनारीकमद्भुतम्॥ ३०
सर्वाश्चर्यगुणोपेतं सर्वालंकारशोभितम्।
एवं ध्यात्वाथ विधिवद्द्याद‍र्घ्यत्रयं ततः॥ ३१

दाहिने हाथमें जल लेकर उसे बायें हाथसे ढँककर बारह बार प्रणवमन्त्र पढ़कर उसे अभिमन्त्रित करे। इसके बाद तीन बार उसे अपने सिरपर छिड़ककर तीन बार उसका पान करे और एकाग्र मनसे सूर्यमण्डलमें स्थित, सर्वतेजोमय, आठ भुजावाले, चार मुखसे युक्त, अर्धनारीश्वर, अद्भुत स्वरूपवाले, सम्पूर्ण आश्चर्यमय गुणोंसे युक्त तथा सभी अलंकारोंसे सुशोभित ओंकाररूपी ईश्वरका ध्यान करे॥ २८—३०१/२॥

अष्टोत्तरशतं जप्त्वा द्विषड्वारं तु तर्पयेत्।
पुनराचम्य विधिवत्प्राणायामत्रयं चरेत्॥ ३२

इस प्रकार ध्यान करके विधिपूर्वक तीन बार अर्घ्य दे। इसके बाद एक सौ आठ बार [शिवमन्त्रका] जप करके बारह बार तर्पण करे, पुनः विधिवत् आचमनकर तीन प्रणायाम करे॥ ३१-३२॥

पूजासदनमागच्छेन्मनसा संस्मरन् शिवम्।
द्वारमासाद्य प्रक्षाल्य पादौ मौनी द्विराचमेत्॥ ३३

प्रविशेद्विधिना तत्र दक्षपादपुरःसरम्।
मण्डपान्तः सुधीस्तत्र मण्डलं रचयेत्क्रमात्॥ ३४

तदनन्तर मनसे शिवजीका स्मरण करते हुए पूजास्थानमें आये, वहाँ द्वारपर दोनों पैर धो करके मौन होकर दो बार आचमन करे। बुद्धिमान्‌को चाहिये कि दाहिना चरण आगे करके पूजामण्डपमें विधिवत् प्रवेश करे और वहाँ क्रमसे मण्डलकी रचना करे॥ ३३-३४॥

इति श्रीशिवमहापुराणे षष्ठ्यां कैलाससंहितायां संन्यासाचारवर्णनं नाम चतुर्थोऽध्यायः॥ ४॥

॥ इस प्रकार श्रीशिवमहापुराणके अन्तर्गत छठी कैलाससंहितामें संन्यासाचारवर्णन नामक चौथा अध्याय पूर्ण हुआ॥ ४॥

अथ पञ्चमोऽध्यायः

संन्यासदीक्षाहेतु मण्डलनिर्माणकी विधि

ईश्वर उवाच

परीक्ष्य विधिवद्भूमिं गंधवर्णरसादिभिः।
मनोऽभिलषिते तत्र वितानविततताम्बरे॥ १
सुप्रलिप्ते महीपृष्ठे दर्पणोदरसन्निभे।
अरत्नियुग्ममानेन चतुरस्रं प्रकल्पयेत्॥ २

ईश्वर बोले—भूमिके गन्ध, वर्ण, रस आदिकी भलीभाँति परीक्षाकर वहाँ अपने मनके अनुकूल स्थानपर वस्त्रका विशाल चँदोवा लगाकर दर्पणतलके तुल्य [सम तथा स्निग्ध] पृथ्वीतलपर दो हाथ प्रमाणके चौकोर मण्डलका निर्माण करे॥ १-२॥

तालपत्रं समादाय तत्समायामविस्तरम्।
तस्मिन्भागान्प्रकुर्वीत त्रयोदशसमां कलाम्॥ ३
तत्पत्रं तत्र निःक्षिप्य पश्चिमाभिमुखः स्थितः।
तत्पूर्वभागे सुदृढं सूत्रमादाय रंजितम्॥ ४
प्राक् प्रत्यग् दक्षिणोदक् च चतुर्दिशि निपातयेत्।
सूत्राणि देवदेवेशि नवषष्ट्युत्तरं शतम्॥ ५
कोष्ठानि स्युस्ततस्तस्य मध्यकोष्ठं तु कर्णिका।
कोष्ठाष्टकं बहिस्तस्य दलाष्टकमिहोच्यते॥ ६

ताड़का पत्ता लेकर उसीके समान लम्बे एवं चौड़े स्थानमें बराबर तेरह भाग करे। उस ताड़पत्रको वहीं रखकर पश्चिमकी ओर मुख करके बैठे और रँगा हुआ सुदृढ़ धागा लेकर उसे पूर्व, पश्चिम, उत्तर, दक्षिण—चारों दिशाओंमें लपेटे। हे देवदेवेशि! इस प्रकार करनेसे उस मण्डलके एक सौ उनहत्तर कोष्ठक हो जायँगे। उसके मध्यका कोष्ठक कर्णिका है, उसके बाहरके आठ कोष्ठक आठ दल कहे जाते हैं॥ ३—६॥

दलानि श्वेतवर्णानि समग्राणि प्रकल्पयेत्।
पीतरूपां कर्णिकां च कृत्वारक्तं च वृत्तकम्॥ ७
वनभिद्दलदक्षं तु समारभ्य सुरेश्वरि।
रक्तकृष्णाः क्रमेणैव दलसन्धीन्विचित्रयेत्॥ ८

सभी दलोंको श्वेत वर्णका बनाये। कर्णिकाको पीले रंगसे रँगना चाहिये और उसके चारों ओर लाल रंगका वृत्त बनाकर हे सुरेश्वरि! [उस अष्टदल] कमलके दलोंके दाहिनी ओरसे आरम्भ करके दलोंके सन्धिस्थानको क्रमसे लाल तथा काले रंगसे रँगना चाहिये॥ ७-८॥

कर्णिकायां लिखेद् यन्त्रं प्रणवार्थप्रकाशकम्।
अधः पीठं समालिख्य श्रीकण्ठं च तदूर्ध्वतः॥ ९
तदुपर्यमरेशं च महाकालं च मध्यतः।
तन्मस्तकस्थं दण्डं च तत ईश्वरमालिखेत्॥ १०
श्यामेन पीठं पीतेन श्रीकण्ठं च विचित्रयेत्।
अमरेशं महाकालं रक्तं कृष्णं च तौ क्रमात्॥ ११
कुर्यात्सुधूम्रं दण्डं च धवलं चेश्वरं बुधः।
एवं यन्त्रं समालिख्य रक्तं सद्येन वेष्टयेत्॥ १२

कर्णिकामें प्रणवार्थको प्रकाशित करनेवाला यन्त्र लिखे। पुनः नीचेकी ओर पीठ और उसके ऊपर श्रीकण्ठ लिखकर उसके ऊपर अमरेश, मध्यमें महाकाल और महाकालके मस्तकके समीप दण्ड लिखकर फिर ईश्वरको लिखे। श्याम रंगसे पीठ और पीत रंगसे श्रीकण्ठको चित्रित करे। अमरेश और महाकालको क्रमशः लाल तथा काले रंगसे चित्रित करे। बुद्धिमान्को चाहिये कि दण्डको धूमवर्ण तथा ईश्वरको धवलवर्णका बनाये। इस प्रकार रंग भरकर बनाये गये यन्त्रको सद्योजात मन्त्रसे वेष्टित कर दे॥ ९—१२॥

तदुत्थेनैव नादेन भिन्द्यादीशानमीश्वरि।
तद्बाह्यपङ्क्तीर्गृह्णीयादाग्नेयादिक्रमेण वै॥ १३

हे ईश्वरि! उस मन्त्रसे उठे हुए नादसे ईशानका भेदन करे और आग्नेय आदिके क्रमसे उनकी बाह्य पंक्तियोंको ग्रहण करे॥ १३॥

कोष्ठानि कोणभागेषु चत्वार्येतानि सुन्दरि।
शुक्लेनापूर्य वर्णादि चतुष्कं रक्तधातुभिः॥ १४
आपूर्य तानि चत्वारि द्वाराणि परिकल्पयेत्।
ततस्तत्पार्श्वयोर्द्वन्द्वं पीतेनैव प्रपूरयेत्॥ १५

हे सुन्दरि! उन कोणोंके चार कोष्ठकोंको श्वेत तथा लाल धातुओंसे रँगकर चार द्वारोंकी परिकल्पना करे। उनके बगलके दोनों कोष्ठकोंको पीले रंगसे परिपूर्ण करना चाहिये॥ १४-१५॥

आग्नेयकोष्ठमध्ये तु पीताभे चतुरस्रके।
अष्टपत्रं लिखेत्पद्मं रक्ताभं पीतकर्णिकम्॥ १६

आग्नेय कोणके कोष्ठके मध्यभागमें पीतवर्णवाले चौकोर स्थानमें लालरंगके अष्टदल कमलका निर्माण करना चाहिये और उसकी कर्णिकाको पीले रंगसे रँगना चाहिये॥ १६॥

हकारं विलिखेन्मध्ये बिन्दुयुक्तं समाहितः।
पद्मस्य नैर्ऋते कोष्ठे चतुरस्रं तदा लिखेत्॥ १७

पद्ममष्टदलं रक्तं पीतकिञ्जल्ककर्णिकम्।
शवर्गस्य तृतीयं तु षष्ठस्वरसमन्वितम्॥ १८

तत्पश्चात् सावधान होकर उसके मध्यमें बिन्दुयुक्त हकार लिखे। उस कमलके नैर्ऋत्यकोणवाले कोष्ठकमें चौकोर [वृत्तवाला] रक्तवर्णका अष्टदल कमल बनाये और उसकी कर्णिकाओंमें पीला रंग भर दे। उसमें शवर्गके तीसरे अक्षर 'स' को छठे स्वर 'ऊ' से युक्त करके 'सू' लिखे॥ १७-१८॥

चतुर्दशस्वरोपेतं बिन्दुनादविभूषितम्।
एतद् बीजवरं भद्रे पद्ममध्ये समालिखेत्॥ १९

हे भद्रे! बिन्दु-नादसे युक्त चौदहवाँ स्वर 'औं'—इस श्रेष्ठ बीजमन्त्रको पद्मके मध्यमें लिखे॥ १९॥

पद्मस्येशानकोष्ठे तु तथा पद्मं समालिखेत्।
कवर्गस्य तृतीयं तु पञ्चमस्वरसंयुतम्॥ २०
विलिखेन्मध्यतस्तस्य बिन्दुं कण्ठे स्वलङ्कृतम्।
तद्बाह्यपंक्तित्रितये पूर्वादिपरितः क्रमात्॥ २१
कोष्ठानि पञ्च गृह्णीयाद्गिरिराजसुते शिवे।
मध्ये तु कर्णिकां कुर्यात्पीतां रक्तं च वृत्तकम्॥ २२

इसी प्रकार पद्मके ईशानकोणवाले कोष्ठकमें भी रक्तवर्णका वैसा ही कमल बनाये और उसमें कवर्गके तीसरे अक्षर 'ग' को पंचम स्वरसे युक्त करके 'गु' लिखे। उस वर्णके कण्ठभागमें बिन्दु लिखे। हे पार्वति! हे शिवे! इसकी बाहरवाली तीन पंक्तियोंमें पूर्वादि दिशाके क्रमसे चारों ओरके पाँच कोष्ठ ग्रहण करे और उसके मध्यमें कर्णिकाको पीला करे एवं वृत्तको रक्तवर्णका कर दे॥ २०—२२॥

दलानि रक्तवर्णानि कल्पयेत्कल्पवित्तमः।
दलबाह्ये तु कृष्णेन रंध्राणि परिपूरयेत्॥ २३
आग्नेयादीनि चत्वारि शुक्लेनैव प्रपूरयेत्।
पूर्वे षड्बिन्दुसहितं षट्कोणं कृष्णमालिखेत्॥ २४

इसकी विधि जाननेवालेको चाहिये कि कमल-दलोंको लाल बनाये और दलोंके बाहरवाले छिद्रोंको काले रंगसे भर दे। आग्नेय आदि चारों कोनोंको सफेद रंगसे परिपूर्ण करे। पूर्वकी ओर छः बिन्दुसे युक्त षट्कोणको काले रंगसे लिखे॥ २३-२४॥

रक्तवर्णं दक्षिणतस्त्रिकोणं चोत्तरे ततः।
श्वेताभमर्द्धचन्द्रं च पीतवर्णं च पश्चिमे॥ २५
चतुरस्रं क्रमात्तेषु लिखेद्बीजं चतुष्टयम्।
पूर्वे बिन्दुं समालिख्य शुभ्रं कृष्णं तु दक्षिणे॥ २६
उकारमुत्तरे रक्तं मकारं पश्चिमे ततः।
अकारं पीतमेवं तु कृत्वा वर्णचतुष्टयम्॥ २७
सर्वोर्ध्वपंक्त्यधः पंक्तौ समारभ्य च सुन्दरि।
पीतं श्वेतं च रक्तं च कृष्णं चेति चतुष्टयम्॥ २८

दक्षिण कोष्ठकमें रक्तवर्ण त्रिकोण, उत्तरकोष्ठकमें श्वेताभ अर्धचन्द्र, पश्चिम कोष्ठकमें पीतवर्ण चतुरस्र अंकित करके क्रमशः चार बीज लिखे। पूर्वकोष्ठकमें शुक्लवर्ण बिन्दु, दक्षिणकोष्ठकमें कृष्णवर्ण उकार, उत्तरकोष्ठकमें रक्तवर्ण मकार और पश्चिम कोष्ठकमें पीतवर्ण अकार लिखे। हे सुन्दरि! सबसे ऊपरकी पंक्तिसे नीचेवाली पंक्तिमें पीला, श्वेत, लाल और काला—ये चारों रंग भरे॥ २५—२८॥

तदधो धवलं श्यामं पीतं रक्तं चतुष्टयम्।
अधस्त्रिकोणके रक्तं शुक्लं पीतं वरानने॥ २९

एवं दक्षिणमारभ्य कुर्यात्सोमान्तमीश्वरि।
तद्बाह्यपंक्तौ पूर्वादिमध्यमान्तं विचित्रयेत्॥ ३०

पीतं रक्तं च कृष्णं च श्यामं श्वेतं च पीतकम्।
आग्नेयादि समारभ्य रक्तं श्यामं सितं प्रिये॥ ३१

रक्तं कृष्णं च रक्तं च षट्कमेवं प्रकीर्तितम्।
दक्षिणाद्यं महेशानि पूर्वावधि समीरितम्॥ ३२

नैर्ऋताद्यं तु विज्ञेयमाग्नेयावधि चेश्वरि।
वारुणं तु समारभ्य दक्षिणावधि चेरितम्॥ ३३

वायव्याद्यं महादेवि नैर्ऋतावधि चेरितम्।
सोमाद्यं परमेशानि वारुणावधि चेरितम्॥ ३४

ईशानाद्यं तु विज्ञेयं वायव्यावधि चाम्बिके।
इत्युक्तो मण्डलविधिर्मया तुभ्यं च पार्वति॥ ३५

एवं मण्डलमालिख्य नियतात्मा यतिः स्वतः।
सौरपूजां प्रकुर्वीत स हि तद्वस्तुतत्परः॥ ३६

उसके नीचे श्वेत, श्याम, पीत एवं रक्त रंगसे रँगे। हे वरानने! नीचेके त्रिकोणमें लाल, सफेद और पीला रंग भरे। हे ईश्वरि! इस प्रकार दक्षिणसे प्रारम्भकर उत्तर दिशातक चित्रण करे। उसकी बाहरी पंक्तिमें पूर्वसे मध्यभागतक पीला, लाल, काला, श्याम, श्वेत, पीतवर्ण चित्रित करे। हे प्रिये! रक्त, श्याम, श्वेत, लाल, कृष्ण, लाल—ये छः रंग कहे गये हैं। आग्नेयकोणसे आरम्भकर [वायुकोणपर्यन्त] इन रंगोंका क्रमशः प्रयोग करे। हे महेशानि! दक्षिणसे लेकर पूर्वपर्यन्त ये सब बताये गये हैं। हे ईश्वरि! वैसे ही नैर्ऋत्यदिशासे लेकर आग्नेयदिशापर्यन्त जानना चाहिये, उसी रीतिसे पश्चिमदिशासे लेकर दक्षिणदिशा-पर्यन्त भी कहा गया है। हे महादेवि! वायव्यसे लेकर नैर्ऋत्यदिशातक यह क्रम कह दिया। इसी प्रकार परमेशानि! पूर्वसे लेकर पश्चिम दिशातक कहा गया। हे अम्बिके! उत्तरसे लेकर वायव्यतक यह क्रम जानना चाहिये। हे पार्वति! इस प्रकार मैंने मण्डलकी विधि आपसे कह दी। जितेन्द्रिय यतिको चाहिये कि स्वयं इस प्रकार मण्डल लिखकर ब्रह्ममें तत्पर हो सौरपूजा करे॥ २९—३६॥

इति श्रीशिवमहापुराणे षष्ठ्यां कैलाससंहितायां संन्यासमण्डलविधिवर्णनं नाम पञ्चमोऽध्यायः॥ ५॥

॥ इस प्रकार श्रीशिवमहापुराणके अन्तर्गत छठी कैलाससंहितामें संन्यासमण्डलविधिवर्णन नामक पाँचवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ ५॥

अथ षष्ठोऽध्यायः

पूजाके अंगभूत न्यासादि कर्म

ईश्वर उवाच

दक्षिणे मण्डलस्याथ वैयाघ्रं चर्म शोभनम्।
आस्तीर्य शुद्धतोयेन प्रोक्षयेदस्त्रमन्त्रतः॥ १

प्रणवं पूर्वमुद्धृत्य पश्चादाधारमुद्धरेत्।
तत्पश्चाच्छक्तिकमलं चतुर्थ्यन्तं नमोऽन्तकम्॥ २

मनुमेवं समुच्चार्य स्थित्वा तस्मिन्नुदङ्मुखः।
प्राणानायम्य विधिवत्प्रणवोच्चारपूर्वकम्॥ ३

अग्निरित्यादिभिर्मन्त्रैर्भस्म संधारयेत्ततः।
शिरसि श्रीगुरुं नत्वा मण्डलं रचयेत्पुनः॥ ४

ईश्वर बोले—मण्डलके दक्षिणमें मनोहर व्याघ्रचर्म बिछाकर अस्त्र-मन्त्रके द्वारा शुद्ध जलसे उसका प्रोक्षण करे। पहले प्रणवका उद्धार करके बादमें आधारका उद्धार करे। उसके अनन्तर शक्तिकमलका उद्धार करे। इन सबमें चतुर्थी विभक्ति लगाकर अन्तमें नमः पदका प्रयोग करे। इस प्रकार मन्त्रका उच्चारण करके वहाँपर उत्तरकी ओर मुख करके बैठकर प्रणवका उच्चारण करते हुए विधिवत् प्राणायाम करे॥ १—३॥

'अग्निरिति भस्म०' इत्यादि मन्त्रका उच्चारणकर मस्तकपर भस्म लगाये, उसके बाद गुरुको नमस्कारकर

त्रिकोणवृत्तं बाह्ये तु चतुरस्त्रात्मकं क्रमात्।
अभ्यर्च्योमिति साधारं स्थाप्य शंखं समर्चयेत्॥ ५

आपूर्य शुद्धतोयेन प्रणवेन सुगन्धिना।
अभ्यर्च्य गन्धपुष्पाद्यैः प्रणवेन च सप्तधा॥ ६
अभिमन्त्र्य ततस्तस्मिन्धेनुमुद्रां प्रदर्शयेत्।
शंखमुद्रां च तेनैव प्रोक्षयेदस्त्रमन्त्रतः॥ ७
आत्मानं गन्धपुष्पादिपूजोपकरणानि च।
प्राणायामत्रयं कृत्वा ऋष्यादिकमथाचरेत्॥ ८
अस्य श्रीसौरमन्त्रस्य देवभाग ऋषिस्ततः।
छन्दो गायत्रमित्युक्तं देवः सूर्यो महेश्वरः॥ ९
देवता स्यात्षडङ्गानि ह्रामित्यादीनि विन्यसेत्।
ततः संप्रोक्षयेत्पद्ममस्त्रेणाग्नेरगोचरम्॥ १०

तस्मिन्समर्चयेद्विद्वान् प्रभूतां विमलामपि।
सारां चाथ समाराध्य पूर्वादिपरतः क्रमात्॥ ११

अथ कालाग्निरुद्रं च शक्तिमाधारसंज्ञिताम्।
अनन्तं पृथिवीं चैव रत्नद्वीपं तथैव च॥ १२
संकल्प्य वृक्षोद्यानं च गृहं मणिमयं ततः।
रक्तपीठं च संपूज्य पादेषु प्रागुपक्रमात्॥ १३
धर्मं ज्ञानं च वैराग्यमैश्वर्यं च चतुष्टयम्।
अधर्माद्यग्निकोणादिकोणेषु च समर्चयेत्॥ १४
मायाधश्छदनं पश्चाद्विद्योर्ध्वच्छदनं ततः।
सत्त्वं रजस्तमश्चैव समभ्यर्च्य यथाक्रमम्॥ १५

पूर्वादिदिक्षु मध्ये च दीप्तां सूक्ष्मां जयामपि।
भद्रां विभूतिं विमलाममोघां वैद्युतामपि॥ १६
सर्वतोमुखसंज्ञां च कन्दनालं तथैव च।
सुषिरं च ततस्तं तु कंटकांस्तदनन्तरम्॥ १७
मूलच्छदनकिञ्जल्कप्रकाशसकलात्मनः।
पञ्चग्रन्थिकर्णिकां च दलानि तदनन्तरम्॥ १८
केशरान् ब्रह्मविष्णू च रुद्रमात्मानमेव च।
अन्तरात्मानमपि च ज्ञानात्मपरमात्मनि॥ १९
सम्पूज्य पश्चात्सौराख्यं योगपीठं समर्चयेत्।
पीठोपरि समाकल्प्य मूर्तिं मूलेन मूलवित्॥ २०

मण्डलकी रचना करे। मण्डलमें त्रिकोण तथा वृत्तकी रचनाकर उसे चतुरस्रके द्वारा बाहरसे आवेष्टित करे। फिर 'ओम्' मन्त्रसे उसपर आधारसहित शंख रखकर उसकी भी अर्चना करे॥ ४-५॥

तदनन्तर प्रणवका उच्चारणकर शुद्ध तथा सुगन्धित जलसे शंखको पूर्ण करके [प्रणवका उच्चारणकर] गन्ध-पुष्पादिसे शंखका पूजन करके पुनः सात बार प्रणवसे अभिमन्त्रितकर धेनुमुद्रा तथा शंखमुद्रा प्रदर्शित करे। पुनः अस्त्रमन्त्रसे अपना तथा गन्ध, पुष्प आदि पूजा-सामग्रियोंका प्रोक्षण करे। इसके बाद तीन बार प्राणायाम करके ऋषि आदिका न्यास करे। इस सौरमन्त्रके देवभाग ऋषि हैं, गायत्री छन्द है और सूर्यरूप महेश्वर इसके देवता हैं॥ ६—९१/२॥

'ह्रां, ह्रीं, ह्रूं, ह्रैं, ह्रौं, ह्रः' इत्यादि मन्त्रोंसे न्यास करे। फिर अस्त्रमन्त्रसे आग्नेय कोणके कमलको प्रोक्षित करे। विद्वान् पुरुष उस कमलपर पूर्वादि क्रमसे प्रभूता, विमला तथा साराकी आराधनाकर उनका पूजन करे॥ १०-११॥

इसके बाद कालाग्निरुद्र, आधारशक्ति, अनन्त, पृथ्वी, मणिद्वीप, कल्पवृक्षका उद्यान, मणिमय गृह एवं रक्तपीठकी पूजाकर उसके पादस्थानमें चारों ओर पूर्वादि क्रमसे धर्म, ज्ञान, वैराग्य और ऐश्वर्यका तथा आग्नेयादि चार कोणोंमें अधर्म आदिका पूजन करे॥ १२—१४॥

माया [बीज]-से नीचेके भागका आच्छादन और विद्या [बीज]-से ऊर्ध्वभागका आच्छादनकर पूर्वादि दिशाओंमें क्रमशः सत्त्व, रज तथा तमका पूजन करे एवं मध्यमें क्रमशः दीप्ता, सूक्ष्मा, जया, भद्रा, विभूति, विमला, अमोघा और विद्युताकी भी पूजा करे॥ १५-१६॥

इसके बाद सर्वतोमुख, कन्दनाल, सुषिर, कण्टक, मूल, पत्र, किंजल्क तथा आत्मप्रकाशका पूजन करे, फिर पंचग्रन्थि, कर्णिका, कमलदल तथा केसरोंका पूजन करे। तदनन्तर कमलके केसरपर ब्रह्मा, विष्णु, रुद्र, आत्मा, अन्तरात्मा, ज्ञानात्मा तथा परमात्माका पूजनकर सौर नामक योगपीठकी पूजा करे। तदुपरान्त मन्त्रवेत्ता सिंहासनके ऊपर मूलमन्त्रसे मूर्तिकी स्थापना करे॥ १७—२०॥

निरुद्धप्राण आसीनो मूलेनैव स्वमूलतः।
शक्तिमुत्थाप्य तत्तेन प्रभावात्पिङ्गलाध्वना॥ २१

तत्पश्चात् संयतप्राण होकर उसी मूलमन्त्रसे मूलाधारमें स्थित आधारशक्तिको पिंगलानाडीके मार्गसे ऊपर उठाये॥ २१॥

पुष्पाञ्जलौ निर्गमय्य मण्डलस्थस्य भास्वतः।
सिन्दूरारुणदेहस्य वामार्धदयितस्य च॥ २२
अक्षस्रक्पाशखट्वाङ्गकपालाङ्कुशपङ्कजम्।
शंखं चक्रं दधानस्य चतुर्वक्त्रस्य लोचनैः॥ २३
राजितस्य द्वादशभिस्तस्य हृत्पङ्कजोदरे।
प्रणवं पूर्वमुद्धृत्य ह्रां ह्रीं सस्तदनन्तरम्॥ २४

मण्डलमें स्थित अत्यन्त तेजस्वी तथा सिन्दूरके समान अरुणवर्णवाले पार्वतीसहित अर्धनारीश्वर भगवान्‌को पुष्पांजलिमें आकृष्ट करे, जिनके हाथोंमें रुद्राक्षकी माला, पाश, खट्वांग, कपाल, अंकुश, कमल, शंख और चक्र विराजमान हैं, जिनके चार मुख और बारह नेत्र हैं, उन सौररूप महादेवके हृदयकमलके मध्यमें सर्वप्रथम प्रणवका उद्धार करके पुनः **ह्रां ह्रीं सः**का उद्धार करे॥ २२—२४॥

प्रकाशशक्तिसहितं मार्तण्डं च ततः परम्।
आवाहयामि नम इत्यावाह्यावाहनाख्यया॥ २५
मुद्रया स्थापनाद्याश्च मुद्राः संदर्शयेत्ततः।
विन्यस्याङ्गानि ह्रां ह्रीं ह्रूं अन्तेन मनुना ततः॥ २६

तत्पश्चात् '**प्रकाशशक्तिसहितं मार्तण्डमावाहयामि नमः**' इस मन्त्रसे सूर्यरूप महेश्वरका आवाहन करके आवाहनी नामक मुद्राके द्वारा स्थापन [आदि क्रियाएँ सम्पन्न]-कर मुद्रा प्रदर्शित करे। **ह्रां, ह्रीं, ह्रूं, ह्रैं, ह्रौं, ह्रः**—इन मन्त्रोंसे अंगन्यास तथा करन्यास करे॥ २५-२६॥

पञ्चोपचारान्संकल्प्य मूलेनाभ्यर्चयेत् त्रिधा।
केशरेषु च पद्मस्य षडंगानि महेश्वरि॥ २७
वह्नीशरक्षोवायूनां परितः क्रमतः सुधीः।
द्वितीयावरणे पूज्याश्चतस्रो मूर्तयः क्रमात्॥ २८

पंचोपचारोंको परिकल्पित करके पद्मकेसरोंमें मूल-मन्त्रसे षडंग (ह्रां, ह्रीं आदि)-की तीन बार अर्चना करे। हे महेश्वरि! तदुपरान्त विज्ञ साधक अग्नि, ईश्वर, राक्षस, वायु आदि चारों मूर्तियोंका क्रमशः दूसरे आवरणमें पूजन करे॥ २७-२८॥

पूर्वाद्युत्तरपर्यन्तं दलमूलेषु पार्वति।
आदित्यो भास्करो भानू रविश्चेत्यनुपूर्वशः॥ २९
अर्को ब्रह्मा तथा रुद्रो विष्णुश्चेति पुनः प्रिये।
ईशानादिषु संपूज्यास्तृतीयावरणे पुनः॥ ३०
सोमं कुजं बुधं जीवं कविं मंदं तमस्तमः।
समन्ततो यजेदेतान्पूर्वादिदलमध्यतः॥ ३१
अथवा द्वादशादित्यान्द्वितीयावरणे यजेत्।
तृतीयावरणे चैव राशीन्द्वादश पूजयेत्॥ ३२

हे पार्वति! पूर्वसे लेकर उत्तर दलके मूल भागतकमें आदित्य, भास्कर, भानु तथा रविका एवं ईशानादि चारों कोणोंमें अर्क, ब्रह्मा, रुद्र तथा विष्णुका इसी प्रकार तृतीय आवरणमें पूजन करे। पूर्वादि दलोंके मध्यमें सोम, मंगल, बुध, बृहस्पति, शुक्र, शनैश्चर, राहु तथा केतुका पूजन करना चाहिये अथवा द्वितीय आवरणमें ही द्वादश आदित्योंका पूजन करे। तीसरे आवरणमें बारह राशियोंका पूजन करे॥ २९—३२॥

सप्तसागरगङ्गाश्च बहिरस्य समन्ततः।
ऋषीन्देवांश्च गंधर्वान्पन्नगानप्सरोगणान्॥ ३३
ग्रामण्यश्च तथा यक्षान्यातुधानांस्तथा हयान्।
सप्तच्छन्दोमयांश्चैव बालखिल्यांश्च पूजयेत्॥ ३४

इसके बाहर चारों ओर सप्तसागर, गंगा, ऋषि, देवता, गन्धर्व, पन्नग, अप्सराएँ, ग्रामणी, यक्ष, यातुधान, सप्तछन्दरूप सात घोड़े तथा बालखिल्योंका भी पूजन करे॥ ३३-३४॥

एवं त्र्यावरणं देवं समभ्यर्च्य दिवाकरम्।
विरच्य मंडलं पश्चाच्चतुरस्रं समाहितः॥ ३५

इस प्रकार तीन आवरणवाले दिवाकर देवका पूजनकर समाहितचित्त हो चौकोर मण्डलका निर्माण करे। पुष्प आदिसे सुवासित शुद्ध जलसे परिपूर्ण,

स्थाप्य साधारकं ताम्रपात्रं प्रस्थोदविस्तृतम्।
पूरयित्वा जलैः शुद्धैर्वासितैः कुसुमादिभिः॥ ३६
अभ्यर्च्य गंधपुष्पाद्यैर्जानुभ्यामवनिं गतः।
अर्घ्यपात्रं समादाय भ्रूमध्यान्तं समुद्धरेत्॥ ३७
ततो ब्रूयादिमं मन्त्रं सावित्रं सर्वसिद्धिदम्।
शृणु तच्च महादेवि भुक्तिमुक्तिप्रदं सदा॥ ३८
सिन्दूरवर्णाय सुमण्डलाय
नमोऽस्तु वज्राभरणाय तुभ्यम्।
पद्माभनेत्राय सपंकजाय
ब्रह्मेन्द्रनारायणकारणाय ॥ ३९
सरक्तचूर्णं ससुवर्णतोयं
स्रक्कुंकुमाढ्यं सकुशं सपुष्पम्।
प्रदत्तमादाय सहेमपात्रं
प्रशस्तमर्घ्यं भगवन्प्रसीद॥ ४०
एवमुक्त्वा ततो दत्त्वा तदर्घ्यं सूर्यमूर्तये।
नमस्कुर्यादिमं मन्त्रं पठित्वा सुसमाहितः॥ ४१
नमः शिवाय साम्बाय सगणायादिहेतवे।
रुद्राय विष्णवे तुभ्यं ब्रह्मणे च त्रिमूर्तये॥ ४२
एवमुक्त्वा नमस्कृत्य स्वासने समवस्थितः।
ऋष्यादिकं पुनः कृत्वा करं संशोध्य वारिणा॥ ४३
पुनश्च भस्म सन्धार्य पूर्वोक्तेनैव वर्त्मना।
न्यासजातं प्रकुर्वीत शिवभावविवृद्धये॥ ४४
पञ्चोपचारैः संपूज्य शिरसा श्रीगुरुं बुधः।
प्रणवं श्रीचतुर्थ्यन्तं नमोऽन्तं प्रणमेत्ततः॥ ४५
पञ्चात्मकं बिन्दुयुतं पञ्चमस्वरसंयुतम्।
तदेवं बिन्दुसहितं पञ्चमस्वरवर्जितम्॥ ४६
पञ्चमस्वरसंयुक्तं मन्त्रीशं च सबिन्दुकम्।
उद्धृत्य बिन्दुसहितं संवर्तकमथोद्धरेत्॥ ४७
एतैरेवं क्रमाद्बीजैरुद्धृतैः प्रणमेद् बुधः।
भुजयोरूरुयुग्मे च गुरुं गणपतिं तथा॥ ४८
दुर्गां च क्षेत्रपालं च बद्धाञ्जलिपुटः स्थितः।
ओमस्त्राय फडित्युक्त्वा करौ संशोध्य षट् क्रमात्॥ ४९

ताम्रनिर्मित, प्रस्थमात्र जल भरनेके योग्य विस्तारवाला आधारसहित कलश स्थापित करके गन्ध, पुष्पादिसे ताम्रकलशका पूजनकर दोनों घुटनोंके बल पृथ्वीपर बैठकर हाथमें अर्घ्यपात्रको लेकर उसे भौंहपर्यन्त ऊपर उठाये और तब सविता देवताके सर्वसिद्धिप्रद इस मन्त्रका पाठ करे। हे महादेवि! सर्वदा भोग तथा मोक्ष प्रदान करनेवाले इस मन्त्रको सुनो—॥ ३५—३८॥

सिन्दूरकी-सी आभावाले, उत्तम मण्डलसे युक्त, कमलके समान कान्तिमय नेत्रोंवाले, कमलपुष्पसे शोभित तथा ब्रह्मा, इन्द्र और नारायणके उद्भवहेतु, हीरकभूषित आपको नमस्कार है। हे भगवन्! रोली, सुवर्ण, पुष्पमाला, कुश, पुष्प तथा कुंकुमसे युक्त, स्वर्णपात्रमें स्थित यह जलसहित उत्तम अर्घ्य [आपको] अर्पित है, इसे ग्रहणकर [आप] प्रसन्न होइये॥ ३९-४०॥

इस प्रकार सूर्यरूपी महेश्वरको अर्घ्य प्रदानकर सावधानीसे 'पार्वतीजी एवं प्रमथगणोंसे समन्वित, संसारके आदि कारण, ब्रह्मा-विष्णु-रुद्ररूप तीन विग्रहोंवाले आप शिवजीको नमस्कार है।' यह मन्त्र पढ़कर नमस्कार करे॥ ४१-४२॥

इस प्रकार बोलते हुए नमस्कार करनेके उपरान्त अपने आसनपर स्थित हो ऋषि आदिका न्यास करके तथा जलसे हाथोंको शुद्ध करके पूर्वोक्त विधिसे पुनः भस्म धारणकर शिवमें भावनाकी दृढ़ताके लिये नानाविध न्यास करे॥ ४३-४४॥

बुद्धिमान् साधकको चाहिये कि पंचोपचारसे गुरुदेवकी पूजाकर '**श्रीगुरवे नमः**' मन्त्रका उच्चारण करके उन्हें सिरसे प्रणाम करे। पंचात्मक, बिन्दुयुक्त पंचम स्वर उकारसहित, वैसे ही बिन्दुसहित, पंचम स्वररहित तथा [पुनः] पंचमस्वरसहितका उद्धारकर बिन्दुसहित अकार तथा संवर्तक बीजका उच्चारण करे॥ ४५—४७॥

इस प्रकार क्रमशः बीजोंका उद्धारकर दोनों भुजा, तथा ऊरुको झुकाकर बुद्धिमान् पुरुष गुरु तथा गणपतिको प्रणाम करे। उसके अनन्तर हाथ जोड़कर दुर्गा तथा क्षेत्रपालको प्रणाम करे। '**ॐ अस्त्राय फट्**'—इस मन्त्रका छः बार उच्चारणकर हाथोंको शुद्ध करे॥ ४८-४९॥

अपसर्पन्त्विति प्रोच्य प्रणवं तदनन्तरम्।
अस्त्राय फडिति प्रोच्य पार्ष्णिघातत्रयेण तु॥ ५०

उद्धृत्य विघ्नान्भूमिष्ठान्करतालत्रयेण तु।
अन्तरिक्षगतान्दृष्ट्वा विलोक्य दिवि संस्थितान्॥ ५१

निरुद्धप्राण आसीनो हंसमन्त्रमनुस्मरन्।
हृदिस्थं जीवचैतन्यं ब्रह्मनाड्या समानयेत्॥ ५२

द्वादशान्तःस्थविशदे सहस्त्रारमहाम्बुजे।
चिच्चन्द्रमण्डलान्तःस्थं चिद्रूपं परमेश्वरम्॥ ५३

शोषदाहप्लवान्कुर्याद्रेचकादि क्रमेण तु।
सषोडशचतुष्षष्टिद्वात्रिंशद्गणनायुतैः ॥ ५४

वाय्वग्निसलिलार्णैस्तैः स्ववेदाद्यैरनुक्रमात् ।

प्राणानायम्य मूलस्थां कुण्डलीं ब्रह्मरन्ध्रगाम्॥ ५५

आनीय द्वादशांतःस्थसहस्त्राराम्बुजोदरे।
चिच्चन्द्रमण्डलोद्भूतपरमामृतधारया ॥ ५६

संसिक्तायां तनौ भूयः शुद्धदेहः सुभावनः।
सोऽहमित्यवतीर्याथ स्वात्मानं हृदयाम्बुजे॥ ५७

आत्मन्यावेश्य चात्मानममृतं सृतिधारया।
प्राणप्रतिष्ठां विधिवत्कुर्यादत्र समाहितः॥ ५८

एकाग्रमानसो योगी विमृश्यात्तां च मातृकाम्।
पुटितां प्रणवेनाथ न्यसेद्बाह्ये च मातृकाम्॥ ५९

पुनश्च संयतप्राणः कुर्याद् दृष्ट्यादिकं बुधः।
शंकरं संस्मरंश्चित्ते संन्यसेच्च विमत्सरः॥ ६०

प्रणवस्य ऋषिर्ब्रह्मा देवि गायत्रमीरितम्।
छन्दोऽत्र देवताहं वै परमात्मा सदाशिवः॥ ६१

अकारो बीजमाख्यातमुकारः शक्तिरुच्यते।
मकारः कीलकं प्रोक्तं मोक्षार्थे विनियुज्यते॥ ६२

'अपसर्पन्तु ते भूताः'—इस मन्त्रको पढ़कर प्रणवपूर्वक **'अस्त्राय फट्'**—इस मन्त्रका उच्चारणकर बगलमें तीन बार ताली बजाकर भूतलमें स्थित समस्त विघ्नोंको आकाशमें भगा दे। उसके बाद विघ्नोंको अन्तरिक्षमें गया हुआ तथा वहाँ स्थित हुआ देखकर प्राणायाम करना चाहिये। फिर **'सोऽहम्'**—इस मन्त्रका उच्चारण करते हुए हृदयमें विराजमान जीवचैतन्यको सुषुम्ना नाड़ीद्वारा द्वादशान्तपर्यन्त विस्तारवाले सहस्त्र-दलकमलमें स्थित चैतन्यमय चन्द्रमण्डलमें विराजमान चिद्रूप परमेश्वरके साथ योजित कर दे॥ ५०—५३॥

वायु, अग्नि तथा जलके बीजमन्त्रोंसहित सोलह, चौंसठ एवं बत्तीस प्राणायामोंके द्वारा रेचक आदिके क्रमसे शोषण, दाह तथा प्लावन अपनी-अपनी वेदशाखामें निर्दिष्ट मन्त्रोंसे करे॥ ५४$\frac{1}{2}$॥

तदनन्तर प्राणायाम करके मूलाधारमें स्थित तथा ब्रह्मरन्ध्रकी ओर उन्मुख कुण्डलिनीको लाकर द्वादशान्तमें स्थित सहस्त्रारपद्मके मध्यमें विद्यमान चैतन्यमय चन्द्रमण्डलसे निकली हुई उत्कृष्ट अमृतधारासे आप्लुत हुए पवित्र देहवाला [साधक] भलीभाँति **'सोऽहम्'**—इस प्रकारकी भावना करते हुए अपने आत्मतत्त्वको हृदयकमलमें उद्बुद्ध करे॥ ५५—५७॥

उसके अनन्तर [उस चैतन्यमय चन्द्रमण्डलसे] झरती हुई अमृतधारासे आप्लुत आत्मतत्त्वको परमात्मामें आविष्टकर एकाग्रचित्तसे विधिपूर्वक प्राणप्रतिष्ठा करे। इस प्रकार योगी एकाग्र मन हो मातृकाशक्तिका स्मरण करे और प्रणवसे सम्पुटित मातृकाओंको बाहर तथा भीतर न्यस्त करे। तत्पश्चात् प्राणवायुको रोककर बुद्धिमान् पुरुष ध्यान आदि करे और चित्तमें शंकरका स्मरण करते हुए मत्सरताका त्याग करके न्यास करे॥ ५८—६०॥

हे देवि! प्रणवके ऋषि ब्रह्मा तथा गायत्री छन्द कहा गया है। मैं परमात्मा सदाशिव उसका देवता हूँ। अकार उसका बीज कहा गया है, उकार शक्ति कहा गया है और मकार कीलक है तथा मोक्षकी कामनाके लिये इसका विनियोग किया जाता है॥ ६१-६२॥

अङ्गुष्ठद्वयमारभ्य तलान्तं परिमार्जयेत्।
ओमित्युक्त्वाथ देवेशि करन्यासं समारभेत्॥ ६३
दक्षहस्तस्थिताङ्गुष्ठं समारभ्य यथाक्रमम्।
वामहस्तकनिष्ठांतं विन्यसेत्पूर्ववत्क्रमात्॥ ६४
अकारमप्युकारं च मकारं बिन्दुसंयुतम्।
नमोऽन्तं प्रोच्य सर्वत्र हृदयादौ न्यसेदथ॥ ६५
अकारं पूर्वमुद्धृत्य ब्रह्मात्मानमथाचरेत्।
ङेऽन्तं नमोऽन्तं हृदये विनियुज्यात्तथा पुनः॥ ६६
उकारं विष्णुसहितं शिरोदेशे प्रविन्यसेत्।
मकारं रुद्रसहितं शिखायां तु प्रविन्यसेत्॥ ६७
एवमुक्त्वा मुनिर्मन्त्री कवचं नेत्रमस्तके।
विन्यसेद्देवदेवेशि सावधानेन चेतसा॥ ६८
अङ्गवक्त्रकलाभेदात्पञ्च ब्रह्माणि विन्यसेत्।
शिरोवदनहृद्गुह्यपादेष्वेतानि विन्यसेत्॥ ६९
ईशानस्य कलाः पञ्च पञ्चस्वेतेषु च क्रमात्।
ततश्चतुर्षु वक्त्रेषु पुरुषस्य कला अपि॥ ७०
चतस्रः प्रणिधातव्याः पूर्वादिक्रमयोगतः।
हृत्कंठांसेषु नाभौ च कुक्षौ पृष्ठे च वक्षसि॥ ७१
अघोरस्य कलाश्चाष्टौ पूजनीया यथाक्रमम्।
पश्चात् त्रयोदशकलाः पायुमेढ्रोरुजानुषु॥ ७२
जंघास्फिक्कटिपार्श्वेषु वामदेवस्य भावयेत्।
सद्यस्यापि कलाश्चाष्टौ नेत्रेषु च यथाक्रमम्॥ ७३
कीर्तितास्ताः कलाश्चैवं पादयोरपि हस्तयोः।
प्राणे शिरसि बाह्वोश्च कल्पयेत्कल्पवित्तमः॥ ७४
अष्टत्रिंशत्कलान्यासमेवं कृत्वा तु सर्वशः।
पश्चात्प्रणवविद्धीमान्प्रणवन्यासमाचरेत्॥ ७५
बाहुद्वये कूर्परयोस्तथा च मणिबन्धयोः।
पार्श्वतोदरजङ्घेषु पादयोः पृष्ठतस्तथा॥ ७६
इत्थं प्रणवविन्यासं कृत्वा न्यासविचक्षणः।
हंसन्यासं प्रकुर्वीत परमात्मविबोधिनि॥ ७७

हे देवेशि! दोनों अँगूठोंसे लेकर दोनों हाथोंके तल-भागको शुद्धकर ॐका उच्चारण करके करन्यास करे। दाहिने हाथके अँगूठेसे प्रारम्भकर बायें हाथकी कनिष्ठा अँगुलीपर्यन्त पूर्ववत् क्रमसे न्यास करे॥ ६३-६४॥

अकार, उकार और बिन्दुसहित मकार—इनके अन्तमें 'नमः' लगाकर हृदयादिका स्पर्शकर न्यास करे॥ ६५॥

सर्वप्रथम अकारका उद्धारकर चतुर्थी एकवचनान्त ब्रह्मात्म शब्दके अन्तमें नमः लगाकर '**ब्रह्मात्मने नमः**'—इस प्रकार कह करके हृदयका स्पर्श करे। उकारपूर्वक 'विष्णु' शब्दका शिरःप्रदेशमें न्यास करे। मकारपूर्वक 'रुद्र' शब्दका शिखामें न्यास करे॥ ६६-६७॥

हे देवदेवेशि! इस प्रकार कहकर मन्त्रको जाननेवाला मुनि सावधानीसे कवच, नेत्र तथा मस्तकका भी न्यास करे। इसी प्रकार अंग, वक्त्र तथा कलाभेदसे पंचब्रह्मको सिर, मुख, हृदय, गुह्य तथा चरणोंमें भी न्यस्त करना चाहिये॥ ६८-६९॥

ईशानकी पाँच कलाओंका क्रमशः इन्हीं पाँचों स्थानोंमें क्रमसे न्यास करे। पुनः पूर्वादि क्रमसे स्थित शिवके चार मुखोंमें तत्पुरुषकी चार कलाओंका भी पूर्वादि दिशाओंमें न्यास करे। इसी प्रकार अघोरकी आठ कलाओंको भी हृदय, कण्ठ, दोनों कन्धों, नाभि, कुक्षि, पृष्ठ तथा वक्षःस्थलपर न्यस्त करे। उसके अनन्तर वामदेवकी तेरह कलाओंका भी पायु, मेढ्र, ऊरु, जानु, जंघा, स्फिक्, कटि और पार्श्वमें न्यास करे। इसी तरह विद्वान् सद्योजातकी आठ कलाओंका यथाक्रमसे नेत्र, पाद, हस्त, प्राण तथा सिरमें न्यास करे॥ ७०—७४॥

इस तरह [ईशानकी पाँच, तत्पुरुषकी चार, अघोरकी आठ, वामदेवकी तेरह और सद्योजातकी आठ] अड़तीस कलाओंका न्यास करके प्रणववेत्ता बुद्धिमान् पुरुषको चाहिये कि वह प्रणवन्यास आरम्भ करे, हे परमात्मविबोधिनि! दोनों बाहुओं, केहुनी, मणिबन्ध, पार्श्व, उदर, जंघा, दोनों पाद और पीठमें प्रणवन्यास करके न्यासज्ञाता हंसन्यास करे॥ ७५—७७॥

इति श्रीशिवमहापुराणे षष्ठ्यां कैलाससंहितायां संन्यासपद्धतौ न्यासवर्णनं नाम षष्ठोऽध्यायः॥ ६॥

॥ इस प्रकार श्रीशिवमहापुराणके अन्तर्गत छठी कैलाससंहितामें संन्यासपद्धतिमें न्यासवर्णन नामक छठा अध्याय पूर्ण हुआ॥ ६॥

अथ सप्तमोऽध्यायः

शिवजीके विविध ध्यानों तथा पूजा-विधिका वर्णन

ईश्वर उवाच

स्ववामे चतुरस्त्रं तु मण्डलं परिकल्पयेत्।
ओमित्यभ्यर्च्य तस्मिंस्तु शंखमस्त्रोपशोधितम्॥ १

स्थाप्य साधारकं तं तु प्रणवेनार्चयेत्ततः।
आपूर्य शुद्धतोयेन चन्दनादिसुगन्धिना॥ २

अभ्यर्च्य गन्धपुष्पाद्यैः प्रणवेन च सप्तधा।
अभिमन्त्र्य ततस्तस्मिन्धेनुमुद्रां प्रदर्शयेत्॥ ३

शंखमुद्रां च पुरतश्चतुरस्त्रं प्रकल्पयेत्।
तदन्तरेऽर्धचन्द्रं च त्रिकोणं च तदन्तरे॥ ४
षट्कोणं वृत्तमेवेदं मण्डलं परिकल्पयेत्।
अभ्यर्च्य गन्धपुष्पाद्यैः प्रणवेनाथ मध्यतः॥ ५
साधारमर्घ्यपात्रं च स्थाप्य गंधादिनार्चयेत्।
आपूर्य शुद्धतोयेन तस्मिन्पात्रे विनिःक्षिपेत्॥ ६
कुशाग्राण्यक्षतांश्चैव यवव्रीहितिलानपि।
आज्यसिद्धार्थपुष्पाणि भसितं च वरानने॥ ७
सद्योजातादिभिर्मन्त्रैः षडङ्गैः प्रणवेन च।
अभ्यर्च्य गंधपुष्पाद्यैरभिमन्त्र्य च वर्मणा॥ ८

अवगुण्ठ्यास्त्रमन्त्रेण संरक्षार्थं प्रदर्शयेत्।
धेनुमुद्रां च तेनैव प्रोक्षयेदस्त्रमन्त्रतः॥ ९

स्वात्मानं गंधपुष्पादिपूजोपकरणान्यपि।
पद्मस्येशानदिक्पद्मे प्रणवोच्चारपूर्वकम्॥ १०
गुर्वासनाय नम इत्यासनं परिकल्पयेत्।
गुरोर्मूर्तिं च तत्रैव कल्पयेदुपदेशतः॥ ११

प्रणवं गुं गुरुभ्योऽन्ते नमः प्रोच्यापि देशिकम्।
समावाह्य ततो ध्यायेद्दक्षिणाभिमुखं स्थितम्॥ १२

सुप्रसन्नमुखं सौम्यं शुद्धस्फटिकनिर्मलम्।
वरदाभयहस्तं च द्विनेत्रं शिवविग्रहम्॥ १३

ईश्वर बोले—साधकको अपनी बायीं ओर चौकोर मण्डलका निर्माण करना चाहिये। उस मण्डलकी प्रणवके द्वारा पूजाकर अस्त्रमन्त्रसे शोधितकर आधारसहित शंख स्थापित करे। इस प्रकार मण्डलमें स्थित शंखका प्रणवसे पूजन करे। सबसे पहले चन्दनादिके द्वारा सुवासित जलसे शंखको पूर्ण करके सात बार प्रणवद्वारा अभिमन्त्रितकर गन्ध, पुष्प आदिसे उसका पूजन करे और धेनुमुद्रा तथा शंखमुद्राका प्रदर्शन करे॥ १—३॥

उसके आगे चतुष्कोणका निर्माण करे। उसके बीचमें अर्धचन्द्र तथा उसके मध्यभागमें त्रिकोण बनाये, फिर उस त्रिकोणमें षट्कोणात्मक वृत्त बनाये। इस प्रकार मण्डलकी परिकल्पना करे। मण्डलका गन्ध, पुष्पादिद्वारा प्रणवसे पूजन करके वहाँपर आधारयुक्त अर्घ्यपात्र स्थापितकर उसे जलसे परिपूर्णकर गन्धादिसे अर्चित करे और उसमें कुशाका अग्रभाग, अक्षत, जौ, व्रीहि, तिल, घृत, पीली सरसों, पुष्प और भस्मका निक्षेपकर सद्योजातादि षडंग मन्त्रों और प्रणवमन्त्रसे पूजा करे। उस अर्घ्यपात्रकी गन्ध, पुष्पादिसे पूजाकर कवचसे अभिमन्त्रित करना चाहिये॥ ४—८॥

अस्त्रमन्त्रसे उसका अवगुण्ठन करके रक्षाहेतु धेनुमुद्रा प्रदर्शित करना चाहिये, फिर अस्त्रमन्त्रद्वारा उसका, अपना तथा गन्धादि पूजनसामग्रीका प्रोक्षण करे। उसके अनन्तर कमलकी ईशान दिशामें स्थित कमलपर ओंकारका उच्चारण करके **'गुर्वासनाय नमः'**—इस प्रकार कहकर आसन प्रदान करनेकी भावना करे और गुरुके उपदेशानुसार वहाँ गुरुमूर्तिकी परिकल्पना करे॥ ९—११॥

'ॐ गुं गुरुभ्यो नमः'—इस मन्त्रका उच्चारणकर गुरुका आवाहन करे तथा दक्षिणाभिमुख स्थित हुए उनका ध्यान करे। जो प्रसन्नमुख हैं, सौम्य एवं शुद्ध स्फटिकके समान निर्मल हैं तथा हाथमें वर एवं अभयमुद्राको धारण किये हुए हैं, जिनके दो नेत्र हैं और जो साक्षात् शिवस्वरूप हैं। इस प्रकार गुरुका

एवं ध्यात्वा यजेद्गन्धपुष्पादिभिरनुक्रमात्।
पद्मस्य नैर्ऋते पद्मे गणपत्यासनोपरि॥ १४

मूर्तिं प्रकल्प्य तत्रैव गणानां त्वेति मन्त्रतः।
समावाह्य ततो देवं ध्यायेदेकाग्रमानसः॥ १५

रक्तवर्णं महाकायं सर्वाभरणभूषितम्।
पाशाङ्कुशाक्षाभीष्टं च दधानं करपङ्कजैः॥ १६

गजाननं प्रभुं सर्वविघ्नौघघ्नमुपासितुः।
एवं ध्यात्वा यजेद्गन्धपुष्पाद्यैरुपचारकैः॥ १७

ध्यानकर क्रमशः गन्ध-पुष्पादिसे उनका पूजन करे, फिर उस पद्मके नैर्ऋत्यकोणमें स्थित पद्मपर गणेशके आसनके ऊपर गणपतिमूर्तिकी परिकल्पना करे और **'गणानां त्वा०'**—इस मन्त्रसे गणपतिका आवाहन करे, तदुपरान्त एकाग्रचित्त होकर इस प्रकार उनका ध्यान करे—वे रक्तवर्णवाले, विशालकाय, सम्पूर्ण आभूषणोंसे अलंकृत, चारों हाथोंमें क्रमशः पाश-अंकुश, अक्षमाला तथा वर-मुद्रा धारण किये हुए हैं, वे गजानन प्रभु ध्यान करनेवाले उपासकोंके सम्पूर्ण विघ्नोंको नष्ट करनेवाले हैं। इस प्रकार गणपतिका ध्यानकर गन्ध-पुष्पादि उपचारोंसे उनका पूजन करे॥ १२—१७॥

कदलीनारिकेलाम्रफललड्डुकपूर्वकम्।
नैवेद्यं च समर्प्याथ नमस्कुर्याद्गजाननम्॥ १८

पद्मस्य वायुदिक्पद्मे संकल्प्य स्कान्दमासनम्।
स्कन्दमूर्तिं प्रकल्प्याथ स्कन्दमावाहयेद् बुधः॥ १९

केला, नारिकेल, आम्रफल, लड्डू तथा फलसहित नैवेद्य समर्पितकर नमस्कार करे। पद्मके वायव्यकोणवाले कमलपर संकल्पपूर्वक स्कन्दके लिये आसन प्रदान करे और स्कन्दकी मूर्ति बनाकर बुद्धिमान् साधक उसीमें उनका आवाहन करे॥ १८-१९॥

उच्चार्य स्कन्दगायत्रीं ध्यायेदथ कुमारकम्।
उद्यदादित्यसंकाशं मयूरवरवाहनम्॥ २०

चतुर्भुजमुदाराङ्गं मुकुटादिविभूषितम्।
वरदाभयहस्तं च शक्तिकुक्कुटधारिणम्॥ २१

स्कन्दगायत्रीका उच्चारण करनेके अनन्तर कुमारका इस प्रकार ध्यान करे—जो उदीयमान सूर्यके समान तेजस्वी तथा श्रेष्ठ मयूरके आसनपर स्थित हैं। जो चार भुजाओंसे युक्त, परम कृपालु, मुकुट आदि आभूषणोंसे सुशोभित और अपने चारों हाथोंमें वर-अभय मुद्रा, शक्ति तथा कुक्कुट धारण किये हुए हैं॥ २०-२१॥

एवं ध्यात्वाथ गंधाद्यैरुपचारैरनुक्रमात्।
सम्पूज्य पूर्वद्वारस्य दक्षशाखामुपाश्रितम्॥ २२

अन्तःपुराधिपं साक्षान्नन्दिनं सम्यगर्चयेत्।
चामीकराचलप्रख्यं सर्वाभरणभूषितम्॥ २३

बालेन्दुमुकुटं सौम्यं त्रिनेत्रं च चतुर्भुजम्।
दीप्तशूलमृगीटंकं हेमवेत्रधरं विभुम्॥ २४

चन्द्रबिम्बाभवदनं हरिवक्त्रमथापि वा।
उत्तरस्यां तथा तस्य भार्यां च मरुतां सुताम्॥ २५

सुयशां सुव्रतामम्बपादमण्डनतत्पराम्।
संपूज्य विधिवद्गन्धपुष्पाद्यैरुपचारकैः॥ २६

इस प्रकार ध्यान करके गन्ध, पुष्पादि पूजोपचार सामग्रीसे विधिपूर्वक उनकी पूजा करे। इसके बाद पूर्वद्वारके दाहिनी ओर रहनेवाले अन्तःपुरके रक्षक साक्षात् नन्दीश्वरकी भलीभाँति पूजा करे। जो सोनेके पर्वतके समान, सम्पूर्ण आभरणोंसे विभूषित, बालचन्द्रयुक्त मुकुट धारण किये हुए, सौम्यमूर्ति, त्रिनेत्र, चतुर्भुज, अपनी भुजाओंमें देदीप्यमान शूल, मृगमुद्रा, टंक तथा सुवर्णका वेत्र धारण किये हुए हैं; चन्द्रबिम्बकी-सी प्रभासे युक्त तथा वानरके मुखसदृश जिनका मुख है—ऐसे नन्दीकी तथा उनके उत्तरकी ओर मरुतोंकी कन्या सुयशा, जो नन्दीश्वरकी भार्या हैं, जो अत्यन्त पतिव्रता तथा पार्वतीजीके चरणोंको [आलता आदिसे] अलंकृत करनेमें तत्पर रहती हैं, उनका भी गन्ध, पुष्पादि उपहारोंसे पूजन करे॥ २२—२६॥

ततः संप्रोक्षयेत्पद्मं सास्त्रशंखोदबिन्दुभिः।
कल्पयेदासनं पश्चादाधारादि यथाक्रमम्॥ २७

तत्पश्चात् अस्त्रमन्त्र पढ़कर शंखोदकसे उस पद्मका प्रोक्षण करे। यथाक्रम आधारादि आसनका भी निर्माण करे। पृथ्वीके नीचे श्यामवर्णकी कल्याणकारिणी आधारशक्तिका ध्यान करे। उसके आगे ऊपरकी ओर मुख किये कुण्डलके आकारवाले उन अनन्त भगवान्‌का ध्यान करे— ॥ २७-२८ ॥

आधारशक्तिं कल्याणीं श्यामां ध्यायेदधो भुवि।
तस्याः पुरस्तादुत्कंठमनन्तं कुंडलाकृतिम्॥ २८

धवलं पञ्चफणिनं लेलिहानमिवाम्बरम्।
तस्योपर्यासनं भद्रं कंठीरवचतुष्पदम्॥ २९

जिनका शरीर धवल वर्णका है, जो पाँच फणवाले हैं और जो मानो आकाशको चाट-से रहे हैं। तत्पश्चात् उस आधारशक्तिके ऊपर चार पादवाला एक श्रेष्ठ सिंहासन स्थापित करे। उस सिंहासनके चारों पादोंके नाम आग्नेय आदि कोणोंके क्रमसे धर्म, ज्ञान, वैराग्य तथा ऐश्वर्य हैं। उनका वर्ण श्वेत, पीत, रक्त तथा श्याम है॥ २९-३०॥

धर्मो ज्ञानं च वैराग्यमैश्वर्यं च पदानि वै।
आग्नेयादिश्वेतपीतरक्तश्यामानि वर्णतः॥ ३०

अधर्मादीनि पूर्वादीन्युत्तरान्तान्यनुक्रमात्।
राजावर्तमणिप्रख्यान्यस्य गात्राणि भावयेत्॥ ३१

उसके अनन्तर पूर्वादि दिशाओंके क्रमसे उत्तर-दिशापर्यन्त अधर्म आदिका आवाहन करे और लाजावर्त-मणिके समान कान्तिमय उन अनन्तदेवके शरीरकी भावना करे। उसके अनन्तर कमलके अधश्छद, ऊर्ध्वछद, कन्द, नाल, कण्टक, दल और कर्णिकामें इस प्रकार भावनाकर क्रमशः उनका अर्चन करे॥ ३१-३२॥

अधोर्ध्वच्छदनं पश्चात्कन्दं नालं च कण्ठकान्।
दलादिकं कर्णिकां च विभाव्य क्रमशोऽर्चयेत्॥ ३२

दलेषु सिद्धयश्चाष्टौ केसरेषु च शक्तिकाः।
रुद्रा वामादयस्त्वष्टौ पूर्वादिपरितः क्रमात्॥ ३३

दलोंमें आठों सिद्धियों तथा केसरोंमें रुद्रा, वामा आदि आठों शक्तियोंकी पूर्व आदिके क्रमसे चतुर्दिक् भावना करे। कर्णिकामें वैराग्य और बीजोंमें नौ शक्तियोंकी भावना करे। इसी प्रकार वामादि शक्तियोंकी पूर्वादि दिशाओंमें कल्पनाकर बादमें मनोन्मनीकी कल्पना करे॥ ३३-३४॥

कर्णिकायां च वैराग्यं बीजेषु नव शक्तयः।
वामाद्या एव पूर्वादि तदन्ते च मनोन्मनी॥ ३४

कन्दे शिवात्मको धर्मो नाले ज्ञानं शिवाश्रयम्।
कर्णिकोपरि वाह्नेयं मण्डलं सौरमैन्दवम्॥ ३५

कन्दमें शिवात्मक धर्म, नालमें शिवाश्रयभूत ज्ञान, कर्णिकाके ऊपर आग्नेयमण्डल, चन्द्रमण्डल तथा सूर्यमण्डलका ध्यान करे॥ ३५॥

आत्मविद्या शिवाख्यं च तत्त्वत्रयमतः परम्।
सर्वासनोपरि सुखं विचित्रकुसुमोज्ज्वलम्॥ ३६

परव्योमावकाशाख्यविद्ययातीव भास्वरम्।
परिकल्प्यासनं मूर्त्तेः पुष्पविन्यासपूर्वकम्॥ ३७

आत्मा, विद्या तथा शिव—इन तीन तत्त्वोंकी कल्पना करनेके अनन्तर सभी आसनोंके ऊपर सुखकर, चित्र-विचित्र पुष्पोंसे उद्भासित तथा परव्योमावकाश नामवाली विद्याके द्वारा अत्यन्त प्रकाशमान आसनकी मूर्तिके उद्देश्यसे पुष्प अर्पित करते हुए परिकल्पना करे॥ ३६-३७॥

आधारशक्तिमारभ्य शुद्धविद्यासनावधि।
ॐकारादिचतुर्थ्यन्तं नाममन्त्रं नमोऽन्तकम्॥ ३८

उच्चार्य पूजयेद्विद्वान्सर्वत्रैवं विधिक्रमः।

तत्पश्चात् आधारशक्तिसे आरम्भकर शुद्धविद्या आसन (विशुद्ध ज्ञानासन)-पर्यन्त ओंकारसहित चतुर्थी विभक्तिके अन्तमें '**नमः**' लगाकर नाममन्त्रोंका उच्चारण करके विद्वान् साधक पूजन करे, यही विधिक्रम सर्वत्र

अङ्गवक्त्रकलाभेदात्पञ्च ब्रह्माणि पूर्ववत् ॥ ३९
विन्यसेत्क्रमशो मूर्त्तौ तत्तन्मुद्राविचक्षणः ।
आवाहयेत्ततो देवं पुष्पाञ्जलिपुटः स्थितः ॥ ४०

सद्योजातं प्रपद्यामीत्यारभ्योमन्तमुच्चरन् ।
आधारोत्थितनादं तु द्वादशग्रन्थिभेदतः ॥ ४१

ब्रह्मरन्ध्रान्तमुच्चार्य ध्यायेदोङ्कारगोचरम् ।
शुद्धस्फटिकसंकाशं देवं निष्कलमक्षरम् ॥ ४२

कारणं सर्वलोकानां सर्वलोकमयं परम् ।
अन्तर्बहिः स्थितं व्याप्य ह्यणोरल्पं महत्तमम् ॥ ४३

भक्तानामप्रयत्नेन दृश्यमीश्वरमव्ययम् ।
ब्रह्मेन्द्रविष्णुरुद्राद्यैरपि देवैरगोचरम् ॥ ४४

वेदसारं च विद्वद्भिरगोचरमिति श्रुतम् ।
आदिमध्यान्तरहितं भेषजं भवरोगिणाम् ॥ ४५

समाहितेन मनसा ध्यात्वैवं परमेश्वरम् ।
आवाहनं स्थापनं च सन्निरोधं निरीक्षणम् ॥ ४६

नमस्कारं च कुर्वीत बद्ध्वा मुद्राः पृथक्पृथक् ।

ध्यायेत्सदाशिवं साक्षाद्देवं सकलनिष्कलम् ॥ ४७

शुद्धस्फटिकसंकाशं प्रसन्नं शीतलद्युतिम् ।
विद्युद्वलयसंकाशं जटामुकुटभूषितम् ॥ ४८

शार्दूलचर्मवसनं किञ्चित्स्मितमुखाम्बुजम् ।
रक्तपद्मदलप्रख्यपाणिपादतलाधरम् ॥ ४९

सर्वलक्षणसम्पन्नं सर्वाभरणभूषितम् ।
दिव्यायुधकरैर्युक्तं दिव्यगन्धानुलेपनम् ॥ ५०

पञ्चवक्त्रं दशभुजं चन्द्रखण्डशिखामणिम् ।

अस्य पूर्वमुखं सौम्यं बालार्कसदृशप्रभम् ॥ ५१

त्रिलोचनारविन्दाढ्यं बालेन्दुकृतशेखरम् ।
दक्षिणं नीलजीमूतसमानरुचिरप्रभम् ॥ ५२

है। मुद्रावित् पुरुष अंग, मुख तथा कलाके भेदसे उन सद्योजातादि पाँचों ब्रह्मदेवताओंको पूर्ववत् उनकी मूर्तिमें क्रमशः विन्यस्त करे, फिर पुष्पांजलि हाथमें लेकर देवताका आवाहन करे ॥ ३८—४० ॥

'सद्योजातं प्रपद्यामि' से लेकर **'शिवो मे अस्तु सदाशिवोम्'** यहाँतक मन्त्रका उच्चारण करते हुए मूलाधारसे उठे हुए नादका बारह चक्रोंकी ग्रन्थियोंको भेदकर ब्रह्मरन्ध्रपर्यन्त उच्चारणकर ओंकारसे प्रत्यक्ष होनेवाले शिवका इस प्रकार ध्यान करे कि वे सदाशिव शुद्ध स्फटिकके समान वर्णवाले, निष्कल, अक्षर, सभी लोकोंके कारण, सर्वलोकमय, परम तत्त्व, बाहर तथा भीतर सर्वत्र व्याप्त होकर स्थित, अणुसे अणु तथा महान्‌से महान्, भक्तोंको बिना प्रयत्न दिखायी पड़नेवाले, ईश्वर, अव्यय, ब्रह्मा-इन्द्र-विष्णु-रुद्र आदि देवगणोंको भी दिखायी न देनेवाले, वेदोंके सारस्वरूप, विद्वानोंके द्वारा अगोचर सुने जानेवाले, आदि-मध्य-अन्तरहित और भवरोगियोंके लिये औषधस्वरूप हैं। इस प्रकार एकाग्रचित्त हो परमेश्वरका ध्यान करके पृथक्-पृथक् मुद्राओंका प्रदर्शन करते हुए उनका आवाहन, स्थापन, सन्निरोध, निरीक्षण तथा नमस्कार करे ।॥ ४१—४६१/२ ॥

सकल तथा निष्कल दोनों ही स्वरूपोंवाले साक्षात् सदाशिव देवका इस प्रकार ध्यान करे कि वे शुद्ध स्फटिकके समान स्वच्छ, [सर्वदा] प्रसन्न, शीतल कान्तिसे युक्त, विद्युत्के वलयके सदृश, जटारूपी मुकुटसे सुशोभित, व्याघ्र-चर्मका वस्त्र धारण किये हुए, मन्द हास्यसे युक्त मुखकमलवाले, रक्तकमलकी पंखुड़ीके समान प्रतीत होते हुए करतल-पदतल तथा अधरवाले, सम्पूर्ण लक्षणोंसे सम्पन्न, सभी आभरणोंसे विभूषित, हाथोंमें दिव्य आयुध धारण किये हुए, दिव्य गन्धका लेप लगाये हुए, पाँच मुख तथा दस भुजाओंवाले और सिरपर अर्धचन्द्ररूप मणिको धारण किये हुए हैं ॥ ४७—५०१/२ ॥

इनका पूर्व दिशाका मुख सौम्य, बालसूर्यके समान कान्तिमान्, कमलके समान तीन नेत्रोंसे युक्त तथा बालचन्द्रसे सुशोभित मस्तकवाला है, इनका दक्षिण-मुख नील मेघके समान सुन्दर कान्तिवाला,

भ्रुकुटीकुटिलं घोरं रक्तवृत्तत्रिलोचनम्।
दंष्ट्राकरालं दुष्प्रेक्ष्यं स्फुरिताधरपल्लवम्॥ ५३

उत्तरं विद्रुमप्रख्यं नीलालकविभूषितम्।
सद्विलासं त्रिनयनं चन्द्रार्धकृतशेखरम्॥ ५४

पश्चिमं पूर्णचन्द्राभं लोचनत्रितयोज्ज्वलम्।
चन्द्रलेखाधरं सौम्यं मन्दस्मितमनोहरम्॥ ५५

पञ्चमं स्फटिकप्रख्यमिन्दुरेखासमुज्ज्वलम्।
अतीव सौम्यमुत्फुल्ललोचनत्रितयोज्ज्वलम्॥ ५६

दक्षिणे शूलपरशुवज्रखड्गानलोज्ज्वलम्॥ ५७

वामे पिनाकनाराचघण्टापाशाङ्कुशोज्ज्वलम्।
निवृत्त्या जानुपर्यन्तमानाभि च प्रतिष्ठया॥ ५८

आकण्ठं विद्यया तद्वदाललाटं तु शान्तया।
तदूर्ध्वं शान्त्यतीताख्यकलया परया तथा॥ ५९

टेढ़ी भ्रुकुटीयुक्त, भयानक, लाल तथा गोल तीन नेत्रोंसे युक्त, दाढ़ोंके कारण विकराल प्रतीत होनेवाला, कठिनाईसे देखा जानेयोग्य तथा फड़कते ओठोंसे युक्त है, इनका उत्तरमुख मूँगे समान रक्ताभ, नीलवर्णकी अलकावलीसे सुशोभित, सुन्दर विलासयुक्त, तीन नेत्रोंसे युक्त तथा अर्धचन्द्रसे शोभित मस्तकसे समन्वित है। इनका पश्चिममुख पूर्णचन्द्रके समान मनोहर, तीन नेत्रोंसे उज्ज्वल, चन्द्ररेखाको धारण करनेवाला, सौम्य एवं मन्द हास्यके कारण मनोहर है, इनका पाँचवाँ मुख स्फटिकके समान स्वच्छ, चन्द्ररेखाके द्वारा उद्भासित, अत्यन्त सौम्य तथा खिले हुए तीन नेत्रोंसे भासमान है, इनके दक्षिणका भाग शूल, परशु, वज्र, खड्ग एवं अग्निसे उद्भासित है और वामभाग पिनाक नामक धनुष, बाण, घण्टा, पाश एवं अंकुशसे देदीप्यमान है, वे जानुपर्यन्त निवृत्ति नामक कलासे, नाभिपर्यन्त प्रतिष्ठा नामक कलासे, कण्ठपर्यन्त विद्या नामक कलासे, ललाटपर्यन्त शान्ता नामक कलासे तथा उसके ऊपर शान्त्यतीता नामक परा कलासे युक्त हैं॥ ५१—५९॥

पञ्चाध्वव्यापिनं तस्मात्कलापञ्चकविग्रहम्।
ईशानमुकुटं देवं पुरुषास्यं पुरातनम्॥ ६०
अघोरहृदयं तद्वद्वामगुह्यं महेश्वरम्।
सद्यपादं च तन्मूर्तिमष्टत्रिंशत्कलामयम्॥ ६१
मातृकामयमीशानं पञ्चब्रह्ममयं तथा।
ॐकाराख्यमयं चैव हंसन्यासमयं तथा॥ ६२
पञ्चाक्षरमयं देवं षडक्षरमयं तथा।
अङ्गषट्कमयं चैव जातिषट्कसमन्वितम्॥ ६३

भगवान् शिवका अड़तीस कलाओंसे समन्वित स्वरूप पंचाध्वव्यापी तथा वैसे ही पंचकलामय विग्रहवाला है। इन पुरातन महेश्वरदेवके मन्त्रात्मक श्रीविग्रहका ईशानमन्त्र शिरोमुकुट, तत्पुरुषमन्त्र मुख, अघोरमन्त्र हृदय, वैसे ही गुह्यदेश वामदेवमन्त्र तथा चरण सद्योजात मन्त्र है। वे मातृकामय, पंच ब्रह्ममय, ओंकारमय तथा हंसन्यासमय हैं; वे पंचाक्षरमय, षडक्षरमय, छः अंगोंसे युक्त तथा छः जातियोंसे युक्त हैं॥ ६०—६३॥

एवं ध्यात्वाथ मद्वामभागे त्वां च मनोन्मनीम्।
गौरीमिमाय मन्त्रेण प्रणवाद्येन भक्तितः॥ ६४

आवाह्य पूर्ववत्कुर्यान्नमस्कारान्तमीश्वरि।
ध्यायेत्ततस्त्वां देवेशि समाहितमना मुनिः॥ ६५

प्रफुल्लोत्पलपत्राभां विस्तीर्णायतलोचनाम्।
पूर्णचन्द्राभवदनां नीलकुञ्चितमूर्धजाम्॥ ६६

हे प्रिये! इस प्रकार मेरा ध्यानकर मेरे वामभागमें मनोन्मनीस्वरूपा आप गौरीका '**गौरीमिमाय**' इस मन्त्रके आदिमें ओंकार लगाकर भक्तिपूर्वक आवाहन करके पूर्ववत् नमस्कारपर्यन्त पूजन करे। हे ईश्वरि! हे देवेशि! तब एकाग्रमन हो साधक इस प्रकार तुम्हारा ध्यान करे—खिले हुए कमलके समान कान्तियुक्त एवं विस्तीर्ण तथा दीर्घ जिनके नेत्र हैं, पूर्ण चन्द्रके समान मुख तथा केश नीले एवं घुँघराले हैं, जिनके शरीरका वर्ण नील कमलके समान है, जिनके

नीलोत्पलदलप्रख्यां चन्द्रार्धकृतशेखराम् ।
अतिवृत्तघनोत्तुङ्गस्निग्धपीनपयोधराम् ॥ ६७
तनुमध्यां पृथुश्रोणीं पीतसूक्ष्मतराम्बराम्।
सर्वाभरणसम्पन्नां ललाटतिलकोज्ज्वलाम्॥ ६८
विचित्रपुष्पसंकीर्णकेशपाशोपशोभिताम् ।
सर्वतोऽनुगुणाकारां किञ्चिल्लज्जानताननाम्॥ ६९
हेमारविन्दं विलसद्दधानां दक्षिणे करे।
चण्डवच्चामरं हस्ते न्यस्यासीनां सुखासने॥ ७०

मस्तकपर अर्धचन्द्र विराज रहा है, जिनका वक्षःस्थल अत्यन्त उत्तुंग, घन, स्निग्ध तथा वृत्ताकार है, जिनकी कटि अत्यन्त सूक्ष्म तथा श्रोणिप्रदेश स्थूल है, जो पीत और सूक्ष्म वस्त्र धारण की हुई हैं, जो सर्वाभरणभूषित हैं तथा मस्तकपर उज्ज्वल तिलकसे युक्त हैं, जिनके केशपाश सुन्दर पुष्पसे ग्रथित हैं, जो सभी गुणोंसे सम्पन्न हैं, कुछ-कुछ लज्जासे जिनका मुख नीचेकी ओर झुका हुआ है, जो अपने दाहिने हाथमें सुवर्ण कमल धारण की हुई हैं और जो हाथमें चामरदण्ड लेकर सुखासनपर विराजमान हैं॥ ६४—७०॥

एवं मां त्वां च देवेशि ध्यात्वा नियतमानसः।
स्नापयेच्छंखतोयेन प्रणवप्रोक्षणक्रमात्॥ ७१
भवे भवे नातिभव इति पाद्यं प्रकल्पयेत्।
वामाय नम इत्युक्त्वा दद्यादाचमनीयकम्॥ ७२
ज्येष्ठाय नम इत्युक्त्वा शुभ्रवस्त्रं प्रकल्पयेत्।
श्रेष्ठाय नम इत्युक्त्वा दद्याद्यज्ञोपवीतकम्॥ ७३

हे देवेशि! इस प्रकार स्थिरचित्त होकर मेरा तथा तुम्हारा ध्यान करके ओंकारसे प्रोक्षणादिपूर्वक शंखके जलसे स्नान कराये। '**भवे भवे नातिभवे**' इस मन्त्रसे पाद्य अर्पित करे, '**वामदेवाय नमः**'—इस मन्त्रको पढ़कर आचमन प्रदान करे, '**ज्येष्ठाय नमः**'—ऐसा कहकर शुभ वस्त्र प्रदान करे तथा '**श्रेष्ठाय नमः**'—ऐसा कहकर यज्ञोपवीत प्रदान करे॥ ७१—७३॥

रुद्राय नम इत्युक्त्वा पुनराचमनीयकम्।
कालाय नम इत्युक्त्वा गन्धं दद्यात्सुसंस्कृतम्॥ ७४
कलविकरणाय नमोऽक्षतं च परिकल्पयेत्।
बलविकरणाय नम इति पुष्पाणि दापयेत्॥ ७५
बलाय नम इत्युक्त्वा धूपं दद्यात्प्रयत्नतः।
बलप्रमथनायेति सुदीपं चैव दापयेत्॥ ७६

इसके बाद '**रुद्राय नमः**' इस प्रकार कहकर पुनः आचमन कराये, '**कालाय नमः**'—ऐसा कहकर भलीभाँति निर्मित उत्तम गन्ध प्रदान करे। '**कलविकरणाय नमः**' ऐसा कहकर अक्षत प्रदान करे तथा '**बलविकरणाय नमः**' ऐसा उच्चारणकर पुष्प अर्पित करे। '**बलाय नमः**' ऐसा बोलकर यत्नपूर्वक धूप दे और '**बलप्रमथनाय नमः**' ऐसा कहकर उत्तम दीप प्रदान करे॥ ७४—७६॥

ब्रह्मभिश्च षडङ्गैश्च ततो मातृकया सह।
प्रणवेन शिवेनैव शक्तियुक्तेन च क्रमात्॥ ७७
मुद्राः प्रदर्शयेन्मह्यं तुभ्यं च वरवर्णिनि।
मयि प्रकल्पयेत्पूर्वमुपचारांस्ततस्त्वयि॥ ७८
यदा त्वयि प्रकुर्वीत स्त्रीलिंगं योजयेत्तदा।
इयानेव हि भेदोऽस्ति नान्यः पार्वति कश्चन॥ ७९

षडंग ब्रह्म मन्त्रों, मातृकासहित प्रणव, शिव और शक्तिसहित क्रमसे मुझे तथा आपको मुद्रा दिखाये। हे सुन्दरि! उसके बाद पहले मेरा पूजन करे तथा बादमें तुम्हारा पूजन करे। जब तुम्हारी पूजा करे, तब स्त्रीलिंग पदोंका प्रयोग करे। हे पार्वति! मात्र इतना ही भेद है और कुछ नहीं॥ ७७—७९॥

एवं ध्यानं पूजनं च कृत्वा सम्यग्विधानतः।
ममावरणपूजां च प्रारभेत विचक्षणः॥ ८०

इस प्रकार भलीभाँति विधिके अनुसार ध्यान और पूजनकर बुद्धिमान् पुरुष मेरी आवरणपूजा आरम्भ करे॥ ८०॥

इति श्रीशिवमहापुराणे षष्ठ्यां कैलाससंहितायां शिवध्यानपूजनवर्णनं नाम सप्तमोऽध्यायः॥ ७॥

॥ इस प्रकार श्रीशिवमहापुराणके अन्तर्गत छठी कैलाससंहितामें शिवध्यानपूजनवर्णन नामक सातवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ ७॥

अथाष्टमोऽध्यायः

आवरणपूजा-विधि-वर्णन

ईश्वर उवाच

अत्रास्ति च महादेवि खल्वावरणपञ्चकम्।
पञ्चावरणपूजां तु प्रारभेत यथाक्रमम्॥ १
प्रथमं पूजितौ यत्र तत्रैव क्रमशः सुधीः।
गन्धाद्यैरर्चयेत्पूर्वं देवौ हेरम्बषण्मुखौ॥ २
पञ्च ब्रह्माणि परितो वृत्तं सम्पूजयेत्क्रमात्।
ईशानदेशे पूर्वे च दक्षिणे चोत्तरे तथा॥ ३
पश्चिमे च ततस्तस्मिन्षडङ्गानि समर्चयेत् ।
आग्नेये च तथैशाने नैर्ऋते वायुदेशके॥ ४
मध्ये नेत्रं तद्वदस्त्रं पूर्वादिपरितः क्रमात्।
प्रथमावरणं प्रोक्तं द्वितीयावरणं शृणु॥ ५
अनन्तं पूर्वदिक्पत्रे सूक्ष्मं दक्षिणतस्तथा।
शिवोत्तमं पश्चिमत एकनेत्रं तथोत्तरे॥ ६
एकरुद्रं तथैशाने त्रिमूर्तिं वह्निदिग्दले।
श्रीकण्ठं नैर्ऋते वायौ शिखण्डीशं समर्चयेत्॥ ७
द्वितीयावरणे चैव पूज्यास्ते चक्रवर्तिनः।
पूर्वद्वारस्य मध्ये तु वृषेशानं प्रपूजयेत्॥ ८
तद्दक्षिणे नन्दिनं च महाकालं तदुत्तरे।
भृंगीशं दक्षिणद्वारपश्चिमे सम्प्रपूजयेत्॥ ९
तत्पूर्वकोष्ठे गन्धाद्यैः सम्प्रपूज्य विनायकम्।
पश्चिमोत्तरकोष्ठे च वृषभं दक्षिणे गुहम्॥ १०
उत्तरद्वारपूर्वे तु प्रदक्षिणविधानतः।
नामाष्टकविधानेन पूजयेदुच्यते हि तत्॥ ११
भवं शर्वं तथेशानं रुद्रं पशुपतिं पुनः।
उग्रं भीमं महादेवं तृतीयावरणं त्विदम् ॥ १२
यो वेदादौ स्वर इति समावाह्य महेश्वरम्।
पूजयेत्पूर्वदिग्भागे कमले कर्णिकोपरि॥ १३
ईश्वरं पूर्वदिक्पत्रे विश्वेशं दक्षिणे ततः।
उत्तरे परमेशानं सर्वेशं पश्चिमे यजेत्॥ १४

ईश्वर बोले—हे महादेवि! मेरी पूजाके पाँच आवरण हैं। अतः क्रमके अनुसार पाँचों आवरणोंकी पूजा करनी चाहिये। जहाँसे दोनोंकी पूजा की गयी है, उसी क्रमसे बुद्धिमान् पुरुष गणेश एवं कार्तिकेयका गन्धादिसे पूजन करे॥ १-२॥

मण्डलमें स्थित वृत्तमें चारों ओर [सद्योजातादि] पंचब्रह्म देवताओंका क्रमसे पूजन करे। ईशानभागमें, पूर्वमें, दक्षिण, उत्तर तथा पश्चिममें छः अंगोंकी पूजा करे। आग्नेय, ईशान, नैर्ऋत्य, वायव्य एवं मध्यमें नेत्र एवं अस्त्र आदिकी पूर्वादि क्रमसे प्रतिष्ठाकर पूजा करे। इस प्रकार मैंने प्रथम आवरण [का पूजाक्रम] कहा, अब दूसरा आवरण सुनिये—॥ ३—५॥

पूर्व दिशाके पत्रमें अनन्तकी, दक्षिण पत्रमें सूक्ष्मकी, पश्चिम दिशामें शिवोत्तमकी एवं उत्तर दिशामें एकनेत्रकी, एकरुद्रकी ईशानमें, त्रिमूर्तिकी आग्नेयमें, श्रीकण्ठकी नैर्ऋत्यमें तथा शिखण्डीशकी वायव्यमें स्थापनाकर पूजन करे॥ ६-७॥

इस प्रकार द्वितीयावरणके चक्रमें निवास करनेवालोंकी पूजा करे। पूर्व द्वारके मध्यमें वृषेशानकी पूजा करे॥ ८॥

दक्षिण द्वारपर नन्दीश्वरका, उत्तरद्वारपर महाकालका तथा भृंगीशका दक्षिणद्वारके पृष्ठभागमें पूजन करे। उसके पूर्ववाले कोष्ठकपर विनायककी गन्धादिसे पूजाकर पश्चिमोत्तर कोष्ठमें वृषभकी और दक्षिणमें स्कन्दकी पूजा करे॥ ९-१०॥

अब उत्तरद्वारके पूर्व भागमें प्रदक्षिणक्रमसे जिन आठ नामोंद्वारा पूजा करे, उसे कह रहा हूँ। वे भव, शर्व, ईशान, रुद्र, पशुपति, उग्र, भीम और महादेव हैं, यह तृतीय आवरण है॥ ११-१२॥

'यो वेदादौ स्वर'—इत्यादि मन्त्रसे पूर्वदिग्भागकी कमलकर्णिकापर महादेवका आवाहन करके उनका पूजन करे॥ १३॥

ईश्वरकी पूर्व दिशाके पत्रपर, विश्वेशकी दक्षिणदिशाके पत्रपर, परमेशानकी उत्तरदिशाके पत्रपर तथा सर्वेशकी पश्चिमदिशाके पत्रपर पूजा करे॥ १४॥

दक्षिणे तु यजेद् रुद्रमावोराजानमित्यृचा।
आवाह्य गन्धपुष्पाद्यैः कर्णिकायां दलेषु च॥ १५

शिवः पूर्वे दक्षिणतो हर उत्तरतो मृडः।
भवः पश्चिमदिक्पत्रे पूज्या एते यथाक्रमम्॥ १६

दक्षिणके पत्रपर **'आवो राजानम्'**—इस ऋचासे रुद्रका पूजन करे। उसके अनन्तर कर्णिकाओंमें एवं दलोंमें देवताओंको आवाहितकर गन्ध, पुष्प आदिसे उनका पूजन करे। शिवको पूर्वमें, हरको दक्षिणमें, मृडको उत्तरमें तथा भवको पश्चिम पत्रमें यथाक्रम आवाहित करके पूजन करे॥ १५-१६॥

उत्तरे विष्णुमावाह्य गन्धपुष्पादिभिर्यजेत्।
प्रतद्विष्णुरिति प्रोच्य कर्णिकायां दलेषु च॥ १७

उत्तरमें विष्णुका आवाहनकर गन्ध, पुष्पादिसे **'प्रतद्विष्णु'**—इस प्रकार मन्त्र पढ़कर कर्णिकामें तथा दलोंमें पूजन करे॥ १७॥

वासुदेवं पूर्वभागे दक्षिणे चानिरुद्धकम्।
सौम्ये संकर्षणं चैव प्रद्युम्नं पश्चिमे यजेत्॥ १८

पूर्वभागमें वासुदेवकी, दक्षिणमें अनिरुद्धकी, उत्तरमें संकर्षणकी और पश्चिम दिशामें प्रद्युम्नकी पूजा करे॥ १८॥

ब्रह्माणं पश्चिमे पद्मे समावाह्य समर्चयेत्।
हिरण्यगर्भः समवर्तत इति मन्त्रेण मन्त्रवित्॥ १९

हिरण्यगर्भं पूर्वस्यां विराजं दक्षिणे ततः।
उत्तरे पुष्करञ्चैव कालं पश्चिमतो यजेत्॥ २०

पश्चिमके कमलमें ब्रह्माजीका आवाहनकर पूजन करे। मन्त्रमर्मज्ञ **'हिरण्यगर्भः समवर्तत'**—इस मन्त्रसे हिरण्यगर्भका पूर्वमें, विराट्पुरुषका दक्षिणमें, पुष्करका उत्तरमें एवं कालपुरुषका पश्चिम दिशामें पूजन करे॥ १९-२०॥

सर्वोर्ध्वपङ्क्तौ पूर्वादिप्रदक्षिणविधानतः।
तत्तत्स्थानेषु संपूज्य लोकपालाननुक्रमात्॥ २१

पूर्वादि प्रदक्षिणविधिसे सबसे ऊपरकी पंक्तिमें उन-उन स्थानोंपर क्रमानुसार लोकपालोंकी पूजा करे॥ २१॥

रान्तं मान्तं तथा क्षान्तं लान्तं वान्तमपूर्वकम्।
सान्तं हान्तं च वेदाद्यं श्रीबीजं च दश क्रमात्॥ २२

बीजानि लोकपालानामेतैरेतान्समर्चयेत्।
नैर्ऋत्ये चोत्तरे तद्वदीशानस्य च दक्षिणे॥ २३

ब्रह्मविष्णू च विधिना पूजयेदुपचारकैः।
बाह्यरेखासु देवेशि पञ्चमावरणे यजेत्॥ २४

ॐ रां, ॐ मां, ॐ क्षां, ॐ लां, ॐ वां, ॐ शां, ॐ सां, ॐ हां, ॐ ॐ, ॐ श्रीं—यही दस लोकपालोंके दस बीजमन्त्र हैं, इनका उद्धारकर क्रमसे उनकी पूजा करे। नैर्ऋत्य और उत्तरदिशामें ब्रह्मदेव एवं विष्णुका तथा दक्षिणमें ईशानका षोडशोपचारसे पूजन करे और पाँचवें आवरणकी बाह्य रेखाओंमें देवेशकी पूजा करे॥ २२—२४॥

श्रीमत्त्रिशूलमीशाने वज्रं माहेन्द्रदिङ्मुखे।
परशुं वह्निदिग्भागे याम्ये सायकमर्चयेत्॥ २५

नैर्ऋते तु यजेत्खड्गं पाशं वरुणगोचरे।
अंकुशं मारुते भागे पिनाकं चोत्तरे यजेत्॥ २६

ईशानमें ऐश्वर्यमय त्रिशूल, पूर्वमें वज्र, आग्नेयकोणमें परशु, दक्षिणमें बाण, नैर्ऋत्यकोणमें खड्ग, पश्चिममें पाश, वायव्यमें अंकुश और उत्तरभागमें पिनाकका पूजन करे॥ २५-२६॥

पश्चिमाभिमुखं रौद्रं क्षेत्रपालं समर्चयेत्।
यथाविधि विधानज्ञः शिवप्रीत्यर्थमेव च॥ २७

कृताञ्जलिपुटाः सर्वे चिन्त्याः स्मितमुखाम्बुजाः।
सादरं प्रेक्षमाणाश्च देवं देवीं च सर्वदा॥ २८

विधिवेत्ता पुरुषको चाहिये कि वह यथाविधि शिवजीकी प्रसन्नताके निमित्त रौद्र स्वरूपवाले पश्चिमाभिमुख क्षेत्रपालका पूजन करे। ऐसी भावना करे कि हास्ययुक्त मुखकमलवाले सभी देवता हाथ जोड़कर सादर देवाधिदेव महादेव तथा देवीकी ओर सतत देख रहे हैं॥ २७-२८॥

इत्थमावरणाभ्यर्चां कृत्वा विक्षेपशान्तये।
पुनरभ्यर्च्य देवेशं प्रणवं च शिवं वदेत्॥ २९

इस तरह आवरणकी पूजाकर विघ्नकी शान्तिके लिये पुनः देवेशकी अर्चना करके प्रणवसे युक्त शिवका '**ॐ शिव**' इस प्रकार स्मरण करे॥ २९॥

एवमभ्यर्च्य विधिवद् गन्धाद्यैरुपचारकैः।
उपचर्य ततो दद्यान्नैवेद्यं विधिसाधितम्॥ ३०
पुनराचमनीयं च दद्यादर्घ्यं यथा पुरा।
ततो निवेद्य पानीयं ताम्बूलं चोपदेशतः॥ ३१
नीराजनादिकं कृत्वा पूजाशेषं समापयेत्।
ध्यात्वा देवं च देवीं च मनुमष्टोत्तरं जपेत्॥ ३२

इस प्रकार गन्धादि उपचारोंसे विधिपूर्वक शिवकी पूजा करनेके पश्चात् [शास्त्रीय] विधिसे बनाया हुआ नैवेद्य उन्हें समर्पित करे। इसके बाद पहलेकी तरह आचमनीय तथा अर्घ्य प्रदान करे, फिर जल तथा ताम्बूल निवेदनकर नीराजन आदि करके शेष पूजा सम्पन्न करे। तदनन्तर देवाधिदेव शिव तथा शिवाका ध्यानकर एक सौ आठ बार उनके मन्त्रका जप करे॥ ३०—३२॥

तत उत्थाय रचितपुष्पाञ्जलिपुटः स्थितः।
जपेद् ध्यात्वा महादेवं यो देवानामिति क्रमात्॥ ३३
यो वेदादौ स्वरः प्रोक्त इत्यन्तं परमेश्वरि।
पुष्पाञ्जलिं ततो दत्त्वा त्रिःप्रदक्षिणमाचरेत्॥ ३४

तत्पश्चात् उठकर हाथमें पुष्पांजलि लेकर स्थित हो जाय और महादेवका ध्यान करके '**यो देवानाम्**' से लेकर '**यो वेदादौ स्वरः प्रोक्तः**' पर्यन्त जप करे। हे परमेश्वरि! पुनः पुष्पांजलि देकर तीन बार प्रदक्षिणा करे॥ ३३-३४॥

साष्टाङ्गं प्रणमेत्तं च भक्त्या परमयान्वितः।
पुनः प्रदक्षिणां कृत्वा प्रणमेत्पुनरेकधा॥ ३५

इसके पश्चात् अत्यन्त भक्तिभावसे युक्त हो साष्टांग प्रणाम करे, पुनः प्रदक्षिणा करके एक बार नमस्कार करे॥ ३५॥

स्थित्वासने समभ्यर्च्य देवं नामाष्टकेन च।
साधु वासाधु वा कर्म यद्यदाचरितं मया॥ ३६
तत्सर्वं भगवञ्छम्भो भवदाराधनं परम्।
इति शंखोदकेनैव सपुष्पेण समर्पयेत्॥ ३७
पूज्यं पुनः समभ्यर्च्य सार्थं नामाष्टकं जपेत्।
तदेव शृणु देवेशि संब्रुवे तव भक्तितः॥ ३८

तदनन्तर आसनपर बैठकर शिवके आठ नामोंके द्वारा पूजनकर उनकी प्रार्थना करके ऐसा कहे—हे भगवन्! हे शम्भो! मैंने जो कुछ भी विधियुक्त या विधिहीन कर्मानुष्ठान किया है, वह सब आपकी ही आराधना हो जाय, इस प्रकार कहकर पुष्पसहित शंख-जलसे पूजा उन्हींको समर्पितकर पुनः पूज्यकी पूजा करके उनके आठ नामोंका अर्थसहित जप करे। देवेशि! आपकी भक्तिसे [प्रसन्न होकर] अब मैं उसीको कह रहा हूँ, आप सुनें॥ ३६—३८॥

इति श्रीशिवमहापुराणे षष्ठ्यां कैलाससंहितायामावरणपूजावर्णनं नामाष्टमोऽध्यायः॥ ८॥

॥ इस प्रकार श्रीशिवमहापुराणके अन्तर्गत छठी कैलाससंहितामें आवरणपूजावर्णन नामक आठवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ ८॥

अथ नवमोऽध्यायः

प्रणवोपासनाकी विधि

ईश्वर उवाच

शिवो महेश्वरश्चैव रुद्रो विष्णुः पितामहः।
संसारवैद्यः सर्वज्ञः परमात्मेति मुख्यतः॥ १

ईश्वर बोले—परमात्मा शिवजीके मुख्य नाम हैं—शिव, महेश्वर, रुद्र, विष्णु, पितामह, संसारवैद्य, सर्वज्ञ और परमात्मा। ये आठ नाम शिवजीके प्रतिपादक

नामाष्टकमिदं नित्यं शिवस्य प्रतिपादकम्।
आद्यन्तपञ्चकं तत्र शान्त्यतीताद्यनुक्रमात्॥ २
संज्ञा सदाशिवादीनां पञ्चोपाधिपरिग्रहात्।
उपाधिविनिवृत्तौ तु यथास्वं विनिवर्तते॥ ३
पदमेव हि तं नित्यमनित्याः पदिनः स्मृताः।
पदानां परिवृत्तिः स्यान्मुच्यन्ते पदिनो यतः॥ ४
परिवृत्त्यन्तरे त्वेवं भूयस्तस्याप्युपाधिना।
आत्मान्तराभिधानं स्यात्यादाद्यं नामपञ्चकम्॥ ५

अन्यत्तु त्रितयं नाम्नामुपादानादिभेदतः।
त्रिविधोपाधिरचनाच्छिव एव तु वर्तते॥ ६

अनादिमलसंश्लेषप्रागभावात्स्वभावतः।
अत्यन्तपरिशुद्धात्मेत्यतोऽयं शिव उच्यते॥ ७

अथवाशेषकल्याणगुणैकघन ईश्वरः।
शिव इत्युच्यते सद्भिः शिवतत्त्वार्थवेदिभिः॥ ८

त्रयोविंशतितत्त्वेभ्यः परा प्रकृतिरुच्यते।
प्रकृतेस्तु परं प्राहुः पुरुषं पञ्चविंशकम्॥ ९

यद्वेदादौ स्वरं प्राहुर्वाच्यवाचकभावतः।
वेदैकवेद्यं याथात्म्याद्वेदान्ते च प्रतिष्ठितम्॥ १०

स एव प्रकृतौ लीनो भोक्ता यः प्रकृतेर्यतः।
तस्य प्रकृतिलीनस्य यः परः स महेश्वरः॥ ११

तदधीनप्रवृत्तित्त्वात्प्रकृतेः पुरुषस्य च।
अथवा त्रिगुणं तत्त्वं मायेयमिदमव्ययम्॥ १२

मायां तु प्रकृतिं विद्यान्मायिनं तु महेश्वरम्।
मायाविमोचकोऽनन्तो महेश्वरसमन्वयात्॥ १३

रुद्दुःखं दुःखहेतुर्वा तद् द्रावयति यः प्रभुः।
रुद्र इत्युच्यते तस्माच्छिवः परमकारणम्॥ १४

शिवतत्त्वादिभूम्यन्तं शरीरादि घटादि च।
व्याप्याधितिष्ठति शिवस्तस्माद्विष्णुरुदाहृतः॥ १५

हैं, इनमें आदिसे पितामहपर्यन्त पाँच नामोंमें शान्त्यतीतादि पाँच उपाधियोंके ग्रहणक्रमसे शिवादि संज्ञाएँ ग्रहण की गयी हैं। उपाधिके निवृत्त हो जानेपर संज्ञाकी भी निवृत्ति हो जाती है; क्योंकि पद तो नित्य है किंतु पदपर रहनेवाले अनित्य हैं। पदोंकी परिवृत्ति होती रहती है, जिससे पदपर रहनेवाले हटते रहते हैं॥ १—४॥

पदोंकी परिवृत्तिके मध्यमें इसी प्रकार वैसी ही उपाधिसे युक्त इन्हीं पाँच नामोंसे दूसरी-दूसरी आत्माएँ पदस्थ होती रहती हैं॥ ५॥

इन पाँच नामोंके अतिरिक्त शेष जो तीन नाम हैं, वे जगत्के उपादान आदिके भेदसे तीन प्रकारकी उपाधिके कारण शिव ही हैं॥ ६॥

उन शिवमें अनादि मलके संश्लेषका पूर्वसे ही अभाव होनेसे वे अत्यन्त परिशुद्ध आत्मावाले हैं, इसीलिये उन्हें शिव नामसे जाना जाता है अथवा सभी कल्याणकारी गुणोंका घनीभूत एकमात्र आधार होनेसे ही ईश्वरको शिवतत्त्वके ज्ञाता पुरुष शिव कहते हैं॥ ७-८॥

तेईस तत्त्वोंके अतिरिक्त चौबीसवाँ तत्त्व पराप्रकृति है और इस चौबीसवें प्रकृतितत्त्वसे परे पचीसवें तत्त्वको पुरुष कहा जाता है, जिसको वेद आदिमें वाच्य-वाचकभावसे स्वर कहा जाता है, जो केवल वेदके द्वारा ज्ञेय है और जो वेदान्त अर्थात् दो उपनिषदोंमें प्रतिष्ठित है। वही प्रकृतिमें लीन होकर प्रकृतिका भोग करता है। उस प्रकृतिलीन पुरुषसे जो परे हैं, वही महेश्वर जाने जाते हैं; क्योंकि पुरुष और प्रकृतिकी प्रवृत्ति उसके अधीन है अथवा अव्यय त्रिगुणतत्त्व ही माया है, माया ही प्रकृति है और जिसकी वह माया है, उसी मायीको महेश्वर जानना चाहिये, क्योंकि उन अनन्त महेश्वरको प्राप्त कर लेनेपर वे मायासे मुक्त कर देते हैं। रुत्को दुःख अथवा दुःखका कारण कहा जाता है, उसे वे प्रभावसम्पन्न तथा जगत्के परमकारण भगवान् शंकर विनष्ट कर देते हैं, अतः उनको 'रुद्र' कहा जाता है॥ ९—१४॥

शिवतत्त्वसे लेकर पृथ्वीतत्त्वपर्यन्त समस्त शरीरोंमें घटाकाशवत् शिवजी व्याप्त होकर स्थित हैं, अतः उन्हें 'विष्णु' कहा जाता है॥ १५॥

जगतः पितृभूतानां शिवो मूर्त्यात्मनामपि।
पितृभावेन सर्वेषां पितामह उदीरितः॥ १६
निदानज्ञो यथा वैद्यो रोगस्य विनिवर्तकः।
उपायैर्भेषजैस्तद्वल्लयभोगाधिकारकः ॥ १७
संसारस्येश्वरो नित्यं स्थूलस्य विनिवर्तकः।
संसारवैद्य इत्युक्तः सर्वतत्त्वार्थवेदिभिः॥ १८
दशार्द्धज्ञानसिद्ध्यर्थमिन्द्रियेषु च सत्स्वपि।
त्रिकालभाविनो भावान्स्थूलान्सूक्ष्मानशेषतः॥ १९
अणवो नैव जानन्ति मायार्णवमलावृताः।
असत्स्वपि च सर्वेषु सिद्धसर्वार्थवेदिषु॥ २०
यद्यथावस्थितं वस्तु तत्तथैव सदाशिवः।
अयत्नेनैव जानाति तस्मात्सर्वज्ञ उच्यते॥ २१
सर्वात्मा परमैरेभिर्गुणैर्नित्यसमन्वयात्।
स्वस्मात्परात्मविरहात्परमात्मा शिवः स्वयम्॥ २२
इति स्तुत्वा महादेवं प्रणवात्मानमव्ययम्।
अर्घ्यं पाद्यं पुरो दत्त्वा पश्चादीशानमस्तके॥ २३
पुनरभ्यर्च्य देवेशं प्रणवेन समाहितः।
हस्तेन बद्धाञ्जलिना पूजापुष्पं प्रगृह्य च॥ २४
उन्मन्यन्तं शिवं नीत्वा वामनासापुटाध्वना।
देवीमुद्वास्य च ततो दक्षनासापुटाध्वना॥ २५
शिव एवाहमस्मीति तदैक्यमनुभूय च।
सर्वावरणदेवांश्च पुनरुद्वासयेद् हृदि॥ २६
विद्यापूजां गुरोः पूजां कृत्वा पश्चाद्यथाक्रमम्।
शङ्खार्घपात्रमन्त्रांश्च हृदये विन्यसेत्क्रमात्॥ २७
निर्माल्यं च समर्प्याथ चण्डीशायेशगोचरे।
पुनश्च संयतप्राण ऋष्यादिकमथोच्चरेत्॥ २८
कैलासप्रस्तरो नाम मण्डलं परिभाषितम्।
अर्चयेन्नित्यमेवैतत्पक्षे वा मासि मासि वा॥ २९
षण्मासे वत्सरे वापि चातुर्मास्यादिपर्वणि।
अवश्यं च समभ्यर्चेन्नित्यं मल्लिङ्गमास्तिकः॥ ३०

संसारको उत्पन्न करनेवाले पितृस्थानीय समस्त शरीरधारी ब्रह्मादिकोंके भी पिता होनेसे वे पितामह कहे गये हैं। जिस प्रकार निदान जाननेवाला वैद्य चिकित्सकीय उपायों तथा ओषधियोंसे रोगको नष्ट कर देता है, उसी प्रकार मोक्ष तथा भोग देकर स्थूल संसारसे सर्वथा मुक्त कर देनेवाले उन जगदीश्वरको समस्त तत्त्वार्थविदोंने संसारका वैद्य कहा है॥ १६—१८॥

शब्दादि पंचविषयोंके ज्ञानके लिये यद्यपि जीवको इन्द्रियाँ प्राप्त हैं तथापि तीनों कालोंमें होनेवाली स्थूल तथा सूक्ष्म क्रियाओंको मायार्णवमलसे आवृत मलिन वह जीव समग्रतया जाननेमें समर्थ नहीं होता। सिद्ध, साध्यादि सभी पदार्थोंका ज्ञान करानेवाली इन्द्रियोंसे रहित होकर भी सदाशिव जो वस्तु जिस रूपमें स्थित है, उसे उसी रूपमें बिना यत्नके ही जान लेते हैं, इसलिये उन्हें सर्वज्ञ कहा जाता है॥ १९—२१॥

वे इन सर्वज्ञत्वादि गुणोंसे नित्य युक्त हैं, सर्वात्मस्वरूप हैं, उनमें अपनी आत्मा तथा परमात्माका भेद नहीं रहता, इसलिये वे शिव स्वयं परमात्मा हैं॥ २२॥

इस प्रकार प्रणवस्वरूप अव्यय परमात्माकी स्तुतिकर उनके सम्मुख अर्घ्य तथा पाद्य प्रदान करके बादमें ईशानके मस्तकपर एकाग्रचित्त हो ॐकारमन्त्रसे देवेशका अर्चन करे और पूजाके पुष्पोंको लेकर अंजलि बाँधकर बायीं ओरकी नासिकाके मार्गसे उन्मनी नाड़ीपर्यन्त शिवको ले जाकर दाहिने नासापुटके मार्गसे देवीको ले जाकर 'मैं ही शिव हूँ'—इस प्रकारकी भावनाकर शिवजीसे तादात्म्य स्थापित करके सभी आवरण देवगणोंका हृदयमें ध्यान करे और इसके बाद क्रमसे गुरु तथा विद्याकी पूजाकर शंखरूप अर्घ्यपात्रसे अर्घ्यपाद्यादि प्रदान करके मन्त्रद्वारा हृदयमें न्यास करे। तत्पश्चात् निर्माल्यको सदाशिवके समक्ष ही चण्डेश्वरको अर्पितकर पुनः प्राणायाम करके ऋषि आदिका उच्चारण करे॥ २३—२८॥

इस प्रकार मैंने कैलासप्रस्तर नामक मण्डलका वर्णन किया, इसी प्रक्रियासे नित्य, पक्षमें, महीने-महीने, छः मासपर, वर्षमें या चातुर्मास्य आदि पर्वमें आस्तिकपुरुष मेरे लिंगकी पूजा अवश्य करे॥ २९-३०॥

तस्मिन्क्रमे महादेवि विशेषः कोऽपि कथ्यते।
उपदेशदिने लिंगं पूजितं गुरुणा सह॥ ३१
गृह्णीयादर्चयिष्यामि शिवमाप्राणसंक्षयम्।
एवं त्रिवारमुच्चार्य शपथं गुरुसन्निधौ॥ ३२
ततः समर्चयेन्नित्यं पूर्वोक्तविधिना प्रिये।
अर्घं समर्पयेल्लिंगमूर्द्धन्यर्घ्योदकेन च॥ ३३
प्रणवेन समभ्यर्च्य धूपदीपौ समर्पयेत्।
ऐशान्यां चण्डमाराध्य निर्माल्यं च निवेदयेत्॥ ३४

हे महादेवि! इस विषयमें कुछ लोगोंका विशेष विचार यह भी है कि दीक्षाके दिन गुरुके साथ पूजित लिंगको हाथमें ग्रहण करे और कहे कि मैं प्राणक्षयपर्यन्त निरन्तर शिवजीकी पूजा करता रहूँगा—इस प्रकार तीन बार गुरुके निकट प्रतिज्ञाकर हे प्रिये! पूर्वोक्त विधिसे शिवजीका नित्य पूजन करे। अर्घ्योदकके द्वारा लिंगके मस्तकपर अर्घ्य समर्पित करे और प्रणवसे पूजनकर धूप, दीप [तथा अन्य उपचार] अर्पित करे। ईशान दिशामें चण्डकी पूजाकर उन्हें निर्माल्य निवेदित करे॥ ३१-३४॥

प्रक्षाल्य लिङ्गं वेदीं च वस्त्रपूतैर्जलैस्ततः।
निःक्षिप्य पुष्पं शिरसि लिंगस्य प्रणवेन तु॥ ३५
आधारशक्तिमारभ्य शुद्धविद्यासनावधि।
विभाव्य सर्वं मनसा स्नापयेत्परमेश्वरम्॥ ३६
पञ्चगव्यादिभिर्द्रव्यैर्यथाविभवसम्भृतैः।
केवलैर्वा जलैः शुद्धैः सुरभिद्रव्यवासितैः॥ ३७
पावमानेन रुद्रेण नीलेन त्वरितेन च।
ऋग्भिश्च सामभिर्वापि ब्रह्मभिश्चैव पञ्चभिः॥ ३८
स्नापयेद्देवदेवेशं प्रणवेन शिवेन च।
विशेषार्घ्योदकेनापि प्रणवेनाभिषेचयेत्॥ ३९

वस्त्रद्वारा छाने गये जलसे लिंग और वेदीका प्रक्षालन करे। फिर लिंगके मस्तकपर ॐकारका उच्चारणकर पुष्प अर्पित करके आधारशक्तिसे आरम्भकर शुद्ध विद्यासनपर्यन्त शक्तियोंका मनमें स्मरणकर परमेश्वरको स्नान कराये। अपने ऐश्वर्यानुसार पंचगव्यादि द्रव्योंसे अथवा सुगन्धित द्रव्यसे वासित शुद्ध जलसे 'पवमानसूक्त' द्वारा अथवा रुद्रसूक्तके द्वारा अथवा नीलसूक्तसे या त्वरित सूक्तसे अथवा सामवेदके मन्त्रोंसे अथवा सद्योजातादि पाँच मन्त्रोंसे अथवा '**ॐ नमः शिवाय**'—इस मन्त्रसे या प्रणवसे शिवजीको स्नान कराये। प्रणवके द्वारा विशेषार्घ्यके जलसे शिवजीको स्नान कराये॥ ३५—३९॥

विशोध्य वाससा पुष्पं लिङ्गमूर्धनि विन्यसेत्।
पीठे लिङ्गं समारोप्य सूर्याद्यर्चां समाचरेत्॥ ४०

इसके पश्चात् वस्त्रके द्वारा लिंगका प्रोक्षणकर सुगन्धित पुष्पोंको लिंगके ऊपर चढ़ाये तथा पीठपर लिंगको स्थापितकर सूर्य आदिका अर्चन करे॥ ४०॥

आधारशक्त्यनन्तौ द्वौ पीठाधस्तात्समर्चयेत्।
सिंहासनं तदूर्ध्वं तु समभ्यर्च्य यथाक्रमम्॥ ४१

पीठके नीचे आधारशक्ति तथा अनन्तकी पूजा करे। इसके पश्चात् उसके ऊपर सिंहासन रखकर यथाक्रम उसका भी पूजन करे॥ ४१॥

अथोर्ध्वच्छदनम्पीठपादे स्कन्दं समर्चयेत्।
लिङ्गे मूर्तिं समाकल्प्य मां त्वया सह पूजयेत्॥ ४२

ऊर्ध्वच्छदनकी [पूजा] तथा पीठपादमें स्कन्दकी पूजा करनेके अनन्तर लिंगमें मूर्तिकी कल्पनाकर तुम्हारे साथ मेरी पूजा करे॥ ४२॥

सम्यग् भक्त्या विधानेन यतिर्मद्ध्यानतत्परः।
एवं मया ते कथितमतिगुह्यमिदं प्रिये॥ ४३
गोपनीयं प्रयत्नेन न देयं यस्य कस्यचित्।
मम भक्ताय दातव्यं यतये वीतरागिणे॥ ४४

यह सब कार्य यति मेरे ध्यानमें तत्पर हो भक्तिपूर्वक करे। हे प्रिये! पूजाकी यह अतिगुह्य विधि मैंने तुमसे कही। इसे यत्नपूर्वक गुप्त रखना चाहिये और जिस किसीको नहीं दे देना चाहिये। मेरे भक्त तथा रागरहित यतिको ही इसे प्रदान करे॥ ४३-४४॥

गुरुभक्ताय शान्ताय मदर्थे योगभागिने।
ममाज्ञामतिलंघ्यैतद्यो ददाति विमूढधीः॥ ४५

स नारकी मम द्रोही भविष्यति न संशयः।
मद्भक्तदानाद्देवेशि मत्प्रियश्च भवेद् ध्रुवम्।
इह भुक्त्वाखिलान्भोगान्मत्सान्निध्यमवाप्नुयात्॥ ४६

गुरुभक्त, शान्तचित्त तथा मेरी प्राप्तिके लिये योगपरायण [यति]-को ही इसे प्रदान करे, किंतु मेरी आज्ञाका उल्लंघनकर जो बुद्धिहीन इसे अपात्रको देता है, वह मेरा द्रोही है और वह नरकमें जायगा, इसमें सन्देह नहीं है। हे देवेशि! इस पूजाको जो मेरे भक्तोंको देता है, वह मेरा प्रिय होता है, वह इस लोकके सभी भोगोंको भोगकर अन्तमें मेरा सान्निध्य प्राप्त कर लेता है॥ ४५-४६॥

व्यास उवाच

एतच्छ्रुत्वा महादेवी महादेवेन भाषितम्।
स्तुत्वा तु विविधैः स्तोत्रैर्देवं वेदार्थगर्भितैः॥ ४७
श्रीमत्पादाब्जयोः पत्युः प्रणामं परमेश्वरी।
अतिप्रहृष्टहृदया मुमोद मुनिसत्तमाः॥ ४८

व्यासजी बोले—हे मुनिगणो! शिवजीके इस प्रकारके वचनको सुनकर अतिप्रसन्न हृदयवाली परमेश्वरी पार्वती वेदार्थयुक्त अनेक प्रकारके स्तोत्रोंसे स्तुतिकर तथा अपने पतिके श्रीसम्पन्न चरण-कमलोंमें प्रेमपूर्वक नमस्कारकर बहुत ही हर्षित हुईं॥ ४७-४८॥

अतिगुह्यमिदं विप्राः प्रणवार्थप्रकाशकम्।
शिवज्ञानपरं ह्येतद्भवतामार्तिनाशनम्॥ ४९

हे ब्राह्मणो! प्रणवार्थकी प्रकाशिका यह विधि अत्यन्त गुप्त है, शिवज्ञानसे पूर्ण है और आपलोगोंके सभी दुःखोंको दूर करनेवाली है॥ ४९॥

सूत उवाच

इत्युक्त्वा मुनिशार्दूलः पाराशर्यो महातपाः।
पूजितः परया भक्त्या मुनिभिर्वेदवादिभिः॥ ५०
कैलासाद्रिमनुस्मृत्य ययौ तस्मात्तपोवनात्।
तेऽपि प्रहृष्टहृदयाः सत्रान्ते परमेश्वरम्॥ ५१
सम्पूज्य परया भक्त्या सोमं सोमार्धशेखरम्।
यमादियोगनिरताः शिवध्यानपराभवन्॥ ५२

सूतजी बोले—हे मुनिश्रेष्ठो! इस प्रकार कहकर महातपस्वी पराशरपुत्र व्यासदेव वेदवेत्ता महर्षियोंसे परम भक्तिपूर्वक पूजित हो [शिवजीका] स्मरणकर उस तपोवनसे कैलासपर्वतकी ओर चले गये। ऋषिगण भी प्रसन्नचित्त होकर यज्ञके अन्तमें उत्तम भक्तिभावपूर्वक चन्द्रशेखर परमेश्वर शंकरका पूजनकर यमादि योगोंमें तत्पर हो शिवध्यानपरायण हो गये॥ ५०—५२॥

गुहाय कथितं ह्येतद्देव्या तेनापि नन्दिने।
सनत्कुमारमुनये प्रोवाच भगवान् हि सः॥ ५३
तस्माल्लब्धं मद्गुरुणा व्यासेनामिततेजसा।
तस्माल्लब्धमिदं पुण्यं मयापि मुनिपुङ्गवाः॥ ५४

हे मुनिश्रेष्ठो! इस कथाको देवीने स्कन्दसे, स्कन्दने नन्दीसे, भगवान् नन्दीने मुनिवर सनत्कुमारसे कहा था और सनत्कुमारने भगवान् वेदव्याससे कहा। इसके पश्चात् उन महातेजस्वी व्यासजीद्वारा यह पवित्र प्रसंग मैंने प्राप्त किया॥ ५३-५४॥

मया वः श्रावितं ह्येतद् गुह्याद् गुह्यतरं परम्।
ज्ञात्वा शिवप्रियान्भक्त्या भवतो गिरिशप्रियम्॥ ५५

[हे मुनिश्रेष्ठ!] मैंने यह गुह्यातिगुह्य तथा शिवप्रिय चरित्र आपलोगोंको शिवभक्त जानकर भक्तिपूर्वक सुनाया॥ ५५॥

भवद्भिरपि दातव्यमेतद् गुह्यं शिवप्रियम्।
यतिभ्यः शान्तचित्तेभ्यो भक्तेभ्यः शिवपादयोः॥ ५६

शिवजीको प्रिय, अत्यन्त गुप्त तथा प्रणवार्थप्रकाशक, जो यह चरित्र है, उसे आपलोगोंको भी शिवजीके चरणोंमें भक्ति रखनेवाले शान्तचित्त यतियोंको ही देना चाहिये॥ ५६॥

एतदुक्त्वा महाभागः सूतः पौराणिकोत्तमः।
तीर्थयात्राप्रसङ्गेन चचार पृथिवीमिमाम्॥ ५७

पुराणवेत्ताओंमें श्रेष्ठ सूतजी इस प्रकार कहकर तीर्थयात्राके प्रसंगसे पृथ्वीपर भ्रमण करने लगे॥ ५७॥

एतद्रहस्यं परमं लब्ध्वा सूतान्मुनीश्वराः।
काश्यामेव समासीना मुक्ताः शिवपदं ययुः॥ ५८

इसके पश्चात् सूतजीसे इस गुप्त रहस्यको ग्रहणकर वे सभी ऋषि काशीमें निवासकर मुक्त हो गये और शिवजीके धामको चले गये॥ ५८॥

इति श्रीशिवमहापुराणे षष्ठ्यां कैलाससंहितायां प्रणवार्थपद्धतिवर्णनं नाम नवमोऽध्यायः॥ ९॥

॥ इस प्रकार श्रीशिवमहापुराणके अन्तर्गत छठी कैलाससंहितामें प्रणवार्थपद्धति-वर्णन नामक नौवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ ९॥

अथ दशमोऽध्यायः

सूतजीका काशीमें आगमन

व्यास उवाच

गतेऽथ सूते मुनयः सुविस्मिता
विचिन्त्य चान्योऽन्यमिदं तु विस्मृतम्।
यद्वामदेवस्य मतं मुनीश्वर
प्रसूचितं तत्खलु कष्टमद्य नः॥ १

व्यासजी बोले—हे मुनीश्वर! सूतजीके चले जानेपर मुनिगण बहुत ही आश्चर्यचकित हुए और आपसमें विचार करके कहने लगे कि वामदेवका मत जिसे सूतजीने कहा था और जो बहुत कठिन है, उसे तो हमलोगोंने भुला दिया॥ १॥

कदानुभूयान्मुनिवर्यदर्शनं
भवाब्धिदुःखौघहरं परं हि तत्।
महेश्वराराधनपुण्यतोऽधुना
मुनीश्वरः सत्वरमाविरस्तु नः॥ २

अब यही ज्ञात नहीं कि उन मुनिवर्यके कब दर्शन होंगे? उनका उत्तम दर्शन तो संसारसागरके दुःखसमूहसे पार करनेवाला है। हमारी इच्छा है कि महेश्वरके आराधनरूप पुण्यप्रतापसे शीघ्र ही सूतजीका दर्शन प्राप्त हो॥ २॥

इति चिन्तासमाविष्टा मुनयो मुनिपुङ्गवम्।
व्यासं संपूज्य हृत्पद्मे तस्थुस्तद्दर्शनोत्सुकाः॥ ३

संवत्सरान्ते स पुनः काशीं प्राप महामुनिः।
शिवभक्तिरतो ज्ञानी पुराणार्थप्रकाशकः॥ ४

इस प्रकारकी चिन्तामें निमग्न सभी मुनिगण हृदयकमलमें व्यासजीकी पूजा करके उत्सुकतापूर्वक उनके दर्शनकी प्रतीक्षा करते हुए वहीं स्थित हो गये। एक संवत्सरके बीत जानेके बाद शिवभक्त, ज्ञानी एवं पुराणार्थ-प्रकाशक महामुनि सूतजी पुनः काशीमें आये॥ ३-४॥

तं दृष्ट्वा सूतमायान्तं मुनयो हृष्टचेतसः।
अभ्युत्थानासनार्घ्यादिपूजया समपूजयन्॥ ५

सूतजीको आता हुआ देखकर ऋषिगण बहुत ही प्रसन्न हुए और उन्होंने स्वागत, आसनदान तथा अर्घ्यदान आदिसे उनकी पूजा की॥ ५॥

सोऽपि तान्मुनिशार्दूलानभिनन्द्य स्मितोदरम्।
प्रीत्या स्नात्वा जाह्नवीये जले परमपावने॥ ६

ऋषीन्संतर्प्य च सुरान् पितॄंश्च तिलतण्डुलैः।
तीरमागत्य सम्प्रोक्ष्य वाससी परिधाय च॥ ७

द्विराचम्य समादाय भस्म सद्यादिमन्त्रतः।
उद्धूलनादिक्रमतो विधार्याथ मुनीश्वरः॥ ८

रुद्राक्षमालाभरणः कृतनित्यक्रियः सुधीः।

इसके पश्चात् सूतजीने उन श्रेष्ठ मुनिगणोंद्वारा पूजित हो प्रसन्नतापूर्वक मन्द-मन्द मुसकराकर उनका अभिनन्दन किया। तदनन्तर उन्होंने गंगाजीके परम पवित्र जलमें स्नानकर ऋषिगणों, देवगणों और पितरोंका अक्षत एवं तिलादिसे तर्पणकर तटपर आ करके शरीरको पोंछकर वस्त्र एवं उत्तरीय धारण किया और दो बार आचमन करके भस्म लेकर सद्योजातादि मन्त्रसे क्रमशः भस्मोद्धूलन किया। रुद्राक्षमाला धारणकर उन बुद्धिमान् सूतजीने अपना नित्यकर्म सम्पादन किया

यथोक्ताङ्गेषु विधिना त्रिपुण्ड्रं रचति स्म ह॥ ९
विश्वेश्वरमुमाकान्तं ससुतं सगणाधिपम्।
पूजयामास सद्भक्त्या ह्यस्तौ नत्वा मुहुर्मुहुः॥ १०
कालभैरवनाथं च संपूज्याथ विधानतः।
प्रदक्षिणीकृत्य पुनस्त्रेधा नत्वा च पञ्चधा॥ ११
पुनः प्रदक्षिणीकृत्य प्रणम्य भुवि दण्डवत्।
तुष्टाव परया स्तुत्या संस्मरंस्तत्पदाम्बुजम्॥ १२
श्रीमत्पञ्चाक्षरीं विद्यामष्टोत्तरसहस्रकम्।
संजप्य पुरतः स्थित्वा क्षमापय्य महेश्वरम्॥ १३
चण्डीशं सम्प्रपूज्याथ मुक्तिमण्डपमध्यतः।
निर्दिष्टमासनं भेजे मुनिभिर्वेदपारगैः॥ १४
एवं स्थितेषु सर्वेषु नमस्कृत्य समन्त्रकम्।
अथ प्राह मुनीन्द्राणां भाववृद्धिकरं वचः॥ १५

सूत उवाच

धन्या यूयं महाप्राज्ञा मुनयः शंसितव्रताः।
भवदर्थमिह प्राप्तोऽहं तद्वृत्तमिदं शृणु॥ १६
यदाहमुपदिश्याथ भवतः प्रणवार्थकम्।
गतस्तीर्थाटनार्थाय तद्वृत्तान्तं ब्रवीमि वः॥ १७
इतो निर्गत्य सम्प्राप्य तीरं दक्षपयोनिधेः।
स्नात्वा सम्पूज्य विधिवद्देवीं कन्यामयीं शिवाम्।
पुनरागत्य विप्रेन्द्राः सुवर्णमुखरीतटम्॥ १८
श्रीकालहस्तिशैलाख्यनगरे परमाद्भुते।
सुवर्णमुखरीतोये स्नात्वा देवानृषीनपि॥ १९
सन्तर्प्य विधिवद्भक्त्या समुद्रं गिरिशं स्मरन्।
समर्च्य कालहस्तीशं चन्द्रकान्तसमप्रभम्॥ २०
पश्चिमाभिमुखं पञ्चशिरसं परमाद्भुतम्।
सकृद्दर्शनमात्रेण सर्वाघक्षयकारणम्॥ २१
सर्वसिद्धिप्रदं भुक्तिमुक्तिदं त्रिगुणेश्वरम्।

और विधिपूर्वक उन-उन स्थानोंपर त्रिपुण्ड्र लगाकर प्रधान गण तथा गणपतिसहित उमाकान्त भगवान् विश्वेश्वरका उत्तम भक्तिभावसे पूजन किया तथा बार-बार हाथ जोड़कर नमस्कार किया॥ ६—१०॥

इसके बाद उन्होंने विधिविधानसे कालभैरवनाथकी पूजाकर तीन बार प्रदक्षिणापूर्वक पाँच बार उन्हें नमस्कार किया और पुनः प्रदक्षिणापूर्वक पृथ्वीपर साष्टांग प्रणामकर उनके चरणकमलोंका स्मरण करते हुए पराभक्तिसे युक्त हो उनकी स्तुति की॥ ११-१२॥

उन्होंने एक हजार आठ बार ऐश्वर्यमयी पंचाक्षरी विद्याका जपकर महेश्वरके सम्मुख स्थित हो उनसे क्षमा-प्रार्थना की। इसके बाद वे मुक्तिमण्डपके बीचमें चण्डीश्वरकी पूजाकर वेदविद्याविशारद महर्षियोंके द्वारा निर्दिष्ट आसनपर बैठे॥ १३-१४॥

जब सभी लोग बैठ गये। तब वे मन्त्रपूर्वक शान्तिपाठ, मंगलाचरणादि करनेके उपरान्त मुनिगणोंके हृदयमें सद्भावकी वृद्धि करते हुए इस प्रकार कहने लगे—॥ १५॥

सूतजी बोले—प्रशंसनीय व्रतवाले हे महाप्राज्ञ ऋषियो! आपलोग धन्य हैं, आपलोगोंके पास मैं जिस उद्देश्यसे आया हूँ, उसका वृत्तान्त आपलोग सुनें॥ १६॥

आपलोगोंको प्रणवका उपदेश देकर उस समयमें मैं तीर्थयात्रा करने चला गया था, अब उसका वृत्तान्त आपलोगोंसे कह रहा हूँ॥ १७॥

सर्वप्रथम मैं यहाँसे चलकर दक्षिण समुद्रतटपर गया, वहाँपर स्नानकर विधिपूर्वक कन्याकुमारी देवी शिवाका पूजन किया। इसके पश्चात् हे ब्राह्मणो! वहाँसे सुवर्णमुखरीके तटपर गया। वहाँ कालहस्ती शैल नामक अत्यन्त अद्भुत नगर है, जहाँ सुवर्णमुखरीके जलमें स्नान करके देवगणों तथा ऋषिगणोंका भक्तिके साथ विधिपूर्वक तर्पणकर समुद्र और भगवान् शंकरका स्मरण करते हुए चन्द्रकान्तके समान प्रभामण्डलसे युक्त पश्चिमाभिमुख स्थित, पाँच सिरवाले, अत्यन्त अद्भुत, एक ही बारके दर्शनसे सारे पापोंको विनष्ट करनेवाले, सभी प्रकारकी सिद्धि, भुक्ति तथा मुक्ति देनेवाले त्रिगुणेश्वर कालहस्तीश्वरका पूजन किया

ततश्च परया भक्त्या तस्य दक्षिणगां शिवाम्॥ २२

ज्ञानप्रसूनकलिकां समर्च्य हि जगत्प्रसूम्।
श्रीमत्पञ्चाक्षरीं विद्यामष्टोत्तरसहस्रकम्॥ २३

जप्त्वा प्रदक्षिणीकृत्य स्तुत्वा नत्वा मुहुर्मुहुः॥ २४

और बादमें मैंने भक्तिभावसमन्वित हो उनके दक्षिण भागमें विराजमान पार्वती, जो जगत्को उत्पन्न करनेवाली तथा ब्रह्मज्ञानरूपी पुष्पकी कली हैं, उनका पूजन किया और एक हजार आठ बार ऐश्वर्यशालिनी पंचाक्षरी महाविद्याका जपकर उनकी प्रदक्षिणा तथा स्तुति करके बार-बार उन्हें नमस्कार किया॥ १८—२४॥

ततः प्रदक्षिणीकृत्य गिरिं प्रत्यहमादरात्।
आमोदतीव मनसि प्रत्यहं नियमास्थितः॥ २५

अनयन् चतुरो मासानेवं तत्र मुनीश्वराः।
ज्ञानप्रसूनकलिकामहादेव्याः प्रसादतः॥ २६

इसके बाद मैं प्रसन्नतापूर्वक प्रतिदिन कालहस्तीश्वरकी प्रदक्षिणा करते हुए नियमपूर्वक उसी क्षेत्रमें निवास करने लगा। हे मुनीश्वरो! इस प्रकार मैंने ज्ञानप्रसूनकी कलिका श्रीमहादेवीकी कृपासे चार महीनेका समय उस क्षेत्रमें बिताया॥ २५-२६॥

एकदा तु समास्तीर्य चैलाजिनकुशोत्तरम्।
आसनं परमं तस्मिन् स्थित्वा रुद्धेन्द्रियो मुनिः॥ २७

समाधिमास्थाय सदा परमानंदचिद्घनः।
परिपूर्णः शिवोऽस्मीति निर्व्यग्रहृदयोऽभवम्॥ २८

एतस्मिन्नेव समये मद्गुरुः करुणानिधिः।
नीलजीमूतसङ्काशो विद्युत्पिङ्गजटाधरः॥ २९

प्रांशुः कमण्डलूदण्डकृष्णाजिनधरः स्वयम्।
भस्मावदातसर्वाङ्गः सर्वलक्षणलक्षितः॥ ३०

त्रिपुण्ड्रविलसद्भालो रुद्राक्षालङ्कृताकृतिः।
पद्मपत्रारुणायामविस्तीर्णनयनद्वयः॥ ३१

प्रादुर्भूय हृदम्भोजे तदानीमेव सत्वरम्।
विमोहितस्तदैवासमेतदद्भुतमास्तिकाः॥ ३२

तदनन्तर एक बार जब मैं कुशा, मृगचर्म एवं उसके ऊपर वस्त्रका आसन बिछाकर उसपर बैठकर मौन धारण करके इन्द्रियोंको रोककर समाधिस्थ हो 'मैं सर्वदा परमानन्द चिद्घन परिपूर्ण शिव हूँ'—इस प्रकार ध्यान करता हुआ हृदयमें शान्तिका अनुभव कर रहा था कि इतनेमें ही नीले मेघके समान कान्तियुक्त, बिजलीके समान पीली जटा धारण किये, विशालकाय, कमण्डलुदण्ड एवं कृष्णाजिन धारण किये, सम्पूर्ण अंगोंमें भस्म लगाये हुए, सभी प्रकारके लक्षणोंसे युक्त, ललाटपर त्रिपुण्ड्र धारण किये तथा रुद्राक्षसे अलंकृत देहवाले मेरे सद्गुरु करुणा-वरुणालय व्यासजी मेरे हृदयकमलमें प्रकट हो गये। हे मुनियो! उनके दोनों नेत्र कमलदलके समान अरुण तथा विस्तृत थे। हे आस्तिक मुनियो! इस प्रकार अपने हृदयकमलमें [परिपूर्ण शोभासे समन्वित] व्यासजीके अद्भुत प्राकट्यको देखकर मैं सर्वथा मोहित हो गया॥ २७—३२॥

तत उन्मील्य नयने विलापं कृतवानहम्।
आसीन्ममाश्रुपातश्च गिरिनिर्झरसन्निभः॥ ३३

एतस्मिन्नेव समये श्रुता वागशरीरिणी।
व्योम्नो महाद्भुता विप्रास्तामेव शृणुतादरात्॥ ३४

इसके पश्चात् मैं नेत्र खोलकर विलाप करने लगा। उस समय पर्वतके झरनेके समान मेरे नेत्रोंसे निरन्तर अश्रुधारा प्रवाहित होने लगी। हे विप्रो! ठीक उसी समय मुझे आकाशमण्डलसे परम आश्चर्यमयी अव्यक्त वाणी सुनायी पड़ी। आपलोग उसे आदरपूर्वक सुनें॥ ३३-३४॥

सूतपुत्र महाभाग गच्छ वाराणसीं पुरीम्।
तत्रासन्मुनयः पूर्वमुपदिष्टास्त्वयाधुना॥ ३५

हे महाभाग! हे लोमहर्षण! हे सूतपुत्र! तुम शीघ्र ही वाराणसीपुरी जाओ, पूर्व समयमें वहाँपर जिन मुनियोंको तुमने उपदेश दिया था, वे मुनिगण

त्वदुपागमकल्याणं कांक्षन्ते विवशा भृशम्।
तिष्ठन्ति ते निराहारा इत्युक्त्वा विरराम सा॥ ३६

निराहार व्रत करते हुए अपने कल्याणकी कामनासे तुम्हारे आगमनकी प्रतीक्षा कर रहे हैं, ऐसा कहकर आकाशवाणी विरत गयी॥ ३५-३६॥

तत उत्थाय तरसा देवं देवीं च भक्तितः।
प्रदक्षिणीकृत्य पुनः प्रणम्य भुवि दण्डवत्॥ ३७
द्विषड्वारं गुरोराज्ञां विज्ञाय शिवयोरथ।
क्षेत्रान्निर्गत्य तरसा चत्वारिंशद्दिनान्तरे॥ ३८
आगतोऽस्मि मुनिश्रेष्ठा अनुगृह्णन्तु मामिह।
मया किमद्य वक्तव्यं भवन्तस्तद् ब्रुवन्तु मे॥ ३९

तदनन्तर मैं शीघ्र ही उठकर शिव तथा शिवाको भक्तिपूर्वक भूमिपर दण्डवत् प्रणाम करके पुनः बारह बार उनकी प्रदक्षिणाकर गुरुकी आज्ञाको जानकर शिव तथा शिवाके उस क्षेत्रसे शीघ्र निकलकर अब चालीस दिनके बाद यहाँ पहुँचा हूँ। हे मुनिश्रेष्ठो! अब आपलोग मेरे ऊपर दया कीजिये। मैं आपलोगोंसे इस समय क्या कहूँ, उसे आपलोग मुझसे कहिये॥ ३७—३९॥

इति सूतवचः श्रुत्वा ऋषयो हृष्टमानसाः।
अवोचन्मुनिशार्दूलं व्यासं नत्वा मुहुर्मुहुः॥ ४०

सूतजीका यह वचन सुनकर ऋषियोंने प्रसन्नचित्त होकर मुनिश्रेष्ठ व्यासजीको बारंबार प्रणाम करके यह कहा—॥ ४०॥

इति श्रीशिवमहापुराणे षष्ठ्यां कैलाससंहितायां सूतोपदेशो नाम दशमोऽध्यायः॥ १०॥

॥ इस प्रकार श्रीशिवमहापुराणके अन्तर्गत छठी कैलाससंहितामें सूतोपदेश नामक दसवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ १०॥

अथैकादशोऽध्यायः

भगवान् कार्तिकेयससे वामदेवमुनिकी प्रणवजिज्ञासा

ऋषय ऊचुः

सूत सूत महाभाग त्वमस्मद्गुरुरुत्तमः।
अतस्त्वां परिपृच्छामो भवतोऽनुग्रहो यदि॥ १
श्रद्धालुषु च शिष्येषु त्वादृशा गुरवः सदा।
स्निग्धभावा इतीदं नो दर्शितं भवताधुना॥ २

ऋषिगण बोले—हे सूतजी! हे महाभाग! आप हमलोगोंके श्रेष्ठ गुरु हैं, आपकी [हम सबपर बड़ी] कृपा है, इसीलिये हमलोग आपसे पूछ रहे हैं। आप-जैसे गुरु श्रद्धालु शिष्योंके प्रति सदा स्नेहभाव रखते हैं, ऐसा आपने इस समय प्रदर्शित कर दिया॥ १-२॥

विरजाहोमसमये वामदेवमतं पुरा।
सूचितं भवतास्माभिर्न श्रुतं विस्तरान्मुने॥ ३
तदिदानीं श्रोतुकामाः श्रद्धया परमादरात्।
वयं सर्वे कृपासिंधो प्रीत्या तद्वक्तुमर्हसि॥ ४

हे मुने! पहले आपने विरजाहोमके उपदेशके समय वामदेवके मतको बताया था, उसे हमलोगोंने विस्तारपूर्वक नहीं सुना है। हे कृपासिन्धो! इस समय हम सभी लोग श्रद्धा और बड़े ही आदरसे उसे सुनना चाहते हैं, अतः आप प्रेमपूर्वक उसे कहिये॥ ३-४॥

इति तेषां वचः श्रुत्वा सूतो हृष्टतनूरुहः।
नमस्कृत्य महादेवं गुरोः परतरं गुरुम्॥ ५
महादेवीं त्रिजननीं गुरुं व्यासं च भक्तितः।
प्राह गम्भीरया वाचा मुनीनाह्लादयन्निदम्॥ ६

उनका यह वचन सुनकर सूतजी हर्षसे प्रफुल्लित हो गुरुसे भी श्रेष्ठ गुरु महादेवको, तीनों लोकोंकी जननी महादेवीको तथा [अपने] गुरु व्यासजीको भक्तिपूर्वक प्रणाम करके मुनियोंको प्रसन्न करते हुए गम्भीर वाणीमें यह कहने लगे॥ ५-६॥

सूत उवाच

स्वस्त्यस्तु मुनयः सर्वे सुखिनः सन्तु सर्वदा।
शिवभक्ताः स्थिरात्मानः शिवभक्तिप्रवर्तकाः॥ ७

सूतजी बोले—हे मुनियो! आप सभीका कल्याण हो, आपलोग सर्वदा सुखी रहें, आपलोग शिवभक्त, स्थिरचित्त तथा शिवभक्तिका प्रचार करनेवाले हैं। मैंने

तदतीव विचित्रं हि श्रुतं गुरुमुखाम्बुजात्।
इतः पूर्वं मया नोक्तं गुह्यप्राकट्यशंकया॥ ८

यूयं खलु महाभागाः शिवभक्ता दृढव्रताः।
इति निश्चित्य युष्माकं वक्ष्यामि श्रूयतां मुदा॥ ९

गुरुके मुखकमलसे यह अत्यन्त अद्भुत बात सुनी थी, परंतु इस गुह्य रहस्यको प्रकट हो जानेके भयसे आजतक किसीसे नहीं कहा। आपलोग निश्चितरूपसे शिवभक्त, दृढ़व्रती एवं महाभाग्यशाली हैं—ऐसा सोचकर मैं आपलोगोंसे कह रहा हूँ, प्रसन्नतापूर्वक सुनिये॥ ७—९॥

पुरा रथन्तरे कल्पे वामदेवो महामुनिः।
गर्भमुक्तः शिवज्ञानविदां गुरुतमः स्वयम्॥ १०
वेदागमपुराणादिसर्वशास्त्रार्थतत्त्ववित्।
देवासुरमनुष्यादिजीवानां जन्मकर्मवित्॥ ११

भस्मावदातसर्वाङ्गो जटामण्डलमण्डितः।
निराश्रयो निःस्पृहश्च निर्द्वन्द्वो निरहंकृतिः॥ १२

दिगंबरो महाज्ञानी महेश्वर इवापरः।
शिष्यभूतैर्मुनीन्द्रैश्च तादृशैः परिवारितः॥ १३

पर्यटन्पृथिवीमेतां स्वपादस्पर्शपुण्यतः।
पवित्रयन्परे धाम्नि निमग्नहृदयोऽन्वहम्॥ १४

कुमारशिखरं मेरोर्दक्षिणं प्राविशन्मुदा।
यत्रास्ते भगवानीशतनयः शिखिवाहनः॥ १५

ज्ञानशक्तिधरो वीरः सर्वासुरविमर्दनः।
गजावल्लीसमायुक्तः सर्वैर्देवैर्नमस्कृतः॥ १६

पूर्व समयमें रथन्तर कल्पमें महामुनि वामदेवजी गर्भसे उत्पन्न होते ही सभी शिवज्ञानवेत्ताओंमें सर्वश्रेष्ठ माने जाने लगे। वे वेद, आगम, पुराण आदि सभी शास्त्रोंके अर्थतत्त्वके ज्ञाता और देव, असुर, मनुष्य आदि सभी जीवोंके जन्म एवं कर्मके वेत्ता थे। वे सम्पूर्ण शरीरमें भस्मलेपसे युक्त, जटामण्डलसे मण्डित, निराश्रय, निःस्पृह, निर्द्वन्द्व, अहंकारहीन, दिगम्बर, महाज्ञानी तथा दूसरे शिवके समान थे और अपने ही सदृश बड़े-बड़े शिष्यरूप मुनियोंसे सदा घिरे रहते थे। परब्रह्ममें सदा निमग्न चित्तवाले, भ्रमणनिरत तथा अपने चरणोंके स्पर्शजनित पुण्यसे इस पृथ्वीको पवित्र करते हुए वे एक समय मेरुके दक्षिणमें स्थित कुमारशिखरपर प्रसन्नतापूर्वक पहुँचे, जहाँ ज्ञानरूपी शक्तिको धारण करनेवाले, महावीर, सभी असुरोंके विनाशक [अपनी पत्नी] गजावल्लीसे सुशोभित तथा सभी देवगणोंके द्वारा नमस्कृत शिवपुत्र भगवान् कार्तिकेय विराजमान थे॥ १०—१६॥

तत्र स्कन्दसरो नाम सरः सागरसन्निभम्।
शिशिरस्वादुपानीयं स्वच्छागाधबहूदकम्॥ १७

सर्वाश्चर्यगुणोपेतं विद्यते स्वामिसन्निधौ।
तत्र स्नात्वा वामदेवः सहशिष्यैर्महामुनिः॥ १८

कुमारं शिखरासीनं मुनिवृन्दनिषेवितम्।
उद्यदादित्यसंकाशं मयूरवरवाहनम्॥ १९

चतुर्भुजमुदाराङ्गं मुकुटादिविभूषितम्।
शक्तिरत्नद्वयोपास्यं शक्तिकुक्कुटधारिणम्॥ २०

वरदाभयहस्तं च दृष्ट्वा स्कन्दं मुनीश्वरः।
सम्पूज्य परया भक्त्या स्तोतुं समुपचक्रमे॥ २१

वहाँ स्कन्दसर नामका सरोवर था, जो सागरके समान गम्भीर, शीतल एवं स्वादिष्ट जलसे परिपूर्ण, अत्यन्त स्वच्छ, अगाध तथा पर्याप्त जलवाला था। सभी आश्चर्यमय गुणोंसे युक्त वह सरोवर स्वामी कार्तिकेयके समीप विद्यमान था। महामुनि वामदेव अपने शिष्योंके साथ उसमें स्नान करके कुमारशिखरपर विराजमान, मुनिवृन्दद्वारा सेवित, उदीयमान सूर्यके समान तेजस्वी, श्रेष्ठ मयूरपर आरूढ़, चार भुजाओंवाले, मनोहर विग्रहवाले, मुकुट आदिसे विभूषित, रत्नभूत दो शक्तियोंसे उपासित, [अपने चारों हाथोंमें] शक्ति, कुक्कुट, वर तथा अभय मुद्रा धारण करनेवाले स्कन्दको देखकर परम भक्तिसे उनका पूजन करके स्तुति करने लगे॥ १७—२१॥

वामदेव उवाच

ॐ नमः प्रणवार्थाय प्रणवार्थविधायिने।
प्रणवाक्षरबीजाय प्रणवाय नमो नमः॥ २२

वेदान्तार्थस्वरूपाय वेदान्तार्थविधायिने।
वेदान्तार्थविदे नित्यं विदिताय नमो नमः॥ २३

नमो गुहाय भूतानां गुहासु निहिताय च।
गुह्याय गुह्यरूपाय गुह्यागमविदे नमः॥ २४

अणोरणीयसे तुभ्यं महतोऽपि महीयसे।
नमः परावरज्ञाय परमात्मस्वरूपिणे॥ २५

स्कन्दाय स्कन्दरूपाय मिहिरारुणतेजसे।
नमो मन्दारमालोद्यन्मुकुटादिभृते सदा॥ २६

शिवशिष्याय पुत्राय शिवस्य शिवदायिने।
शिवप्रियाय शिवयोरानन्दनिधये नमः॥ २७

गाङ्गेयाय नमस्तुभ्यं कार्तिकेयाय धीमते।
उमापुत्राय महते शरकाननशायिने॥ २८

षडक्षरशरीराय षड्विधार्थविधायिने।
षडध्वातीतरूपाय षण्मुखाय नमो नमः॥ २९

द्वादशायतनेत्राय द्वादशोद्यतबाहवे।
द्वादशायुधधाराय द्वादशात्मन्नमोऽस्तु ते॥ ३०

चतुर्भुजाय शान्ताय शक्तिकुक्कुटधारिणे।
वरदाभयहस्ताय नमोऽसुरविदारिणे॥ ३१

गजावल्लीकुचालिप्तकुङ्कुमाङ्कितवक्षसे।
नमो गजाननानन्दमहिमानंदितात्मने॥ ३२

ब्रह्मादिदेवमुनिकिन्नरगीयमान-
गाथाविशेषशुचिचिन्तितकीर्त्तिधाम्ने।
वृन्दारकामलकिरीटविभूषणस्रक्-
पूज्याभिरामपदपङ्कज ते नमोऽस्तु॥ ३३

वामदेव बोले—प्रणवके अर्थ-स्वरूप तथा प्रणवार्थके प्रतिपादकको नमस्कार है। प्रणवाक्षररूप बीज एवं प्रणवस्वरूप आपको बार-बार नमस्कार है॥ २२॥

वेदान्तके अर्थस्वरूप, वेदान्तके अर्थका विधान करनेवाले, वेदान्तके अर्थके वेत्ता एवं सर्वत्र व्याप्त आपको बार-बार प्रणाम है। सभी प्राणियोंके अन्तःकरणरूपी गुहामें स्थित कार्तिकेयको नमस्कार है, गुह्य, गुह्यरूप एवं गुह्यशास्त्रवेत्ताको बार-बार नमस्कार है॥ २३-२४॥

सूक्ष्मसे भी सूक्ष्म, महान्‌से भी महान्, पर-अपरके ज्ञाता एवं परमात्मस्वरूप आपको नमस्कार है॥ २५॥

स्कन्दस्वरूप, आदित्यके समान अरुण तेजवाले, मन्दारमाला एवं कान्तिमान् मुकुट धारण करनेवाले आप स्कन्दको सर्वदा नमस्कार है॥ २६॥

शिवके शिष्य, शिवके पुत्र, कल्याण करनेवाले, शिवप्रिय एवं शिव-शिवाके आनन्दनिधिस्वरूप आपको नमस्कार है। गंगापुत्र, परम बुद्धिमान्, महान्, उमापुत्र एवं सरकण्डोंके वनमें शयन करनेवाले आप कार्तिकेयको नमस्कार है॥ २७-२८॥

षडक्षररूप शरीरवाले, छः प्रकारके अर्थोंका प्रतिपादन करनेवाले तथा षडध्वाओंसे अतीत रूपवाले षण्मुखको बार-बार नमस्कार है। बड़े-बड़े बारह नेत्रोंवाले, उठी हुई बारह भुजाओंवाले, बारह आयुध धारण करनेवाले एवं बारह रूपोंवाले आपको नमस्कार है॥ २९-३०॥

चार भुजाओंवाले, शान्त, शक्ति-कुक्कुट, वर तथा अभयमुद्रा धारण करनेवाले, वर प्रदान करनेवाले तथा असुरोंका वध करनेवाले आपको नमस्कार है॥ ३१॥

[अपनी भार्या] गजावल्लीके स्तनोंपर लिप्त कुंकुमसे अंकित वक्षःस्थलवाले, गजाननको आनन्द प्रदान करनेवाले और अपनी महिमासे स्वयं आनन्दित रहनेवाले आपको नमस्कार है॥ ३२॥

जिनकी गाथाका ब्रह्मादि देवता, ऋषि एवं किन्नरगण गान करते हैं और जिनकी कीर्ति पवित्र चरित्रवाले महात्माओंके द्वारा गायी जा रही है। देवताओंके निर्मल किरीटको विभूषित करनेवाली पुष्पमालासे पूजित मनोहर चरणकमलोंवाले [भगवन्!] आपको नमस्कार है॥ ३३॥

इति स्कन्दस्तवं दिव्यं वामदेवेन भाषितम्।
यः पठेच्छृणुयाद्वापि स याति परमां गतिम्॥ ३४

महाप्रज्ञाकरं ह्येतच्छिवभक्तिविवर्धनम्।
आयुरारोग्यधनकृत्सर्वकामप्रदं सदा॥ ३५

इति स्तुत्वा वामदेवो देवं सेनापतिं प्रभुम्।
प्रदक्षिणात्रयं कृत्वा प्रणम्य भुवि दण्डवत्॥ ३६
साष्टाङ्गं च पुनः कृत्वा प्रदक्षिणनमस्कृतम्।
अभवत्पार्श्वतस्तस्य विनयावनतो द्विजाः॥ ३७
वामदेवकृतं स्तोत्रं परमार्थविजृम्भितम्।
श्रुत्वाभवत्प्रसन्नो हि महेश्वरसुतः प्रभुः॥ ३८
तमुवाच महासेनः प्रीतोऽस्मि तव पूजया।
भक्त्या स्तुत्या च भद्रं ते किमद्य करवाण्यहम्॥ ३९
मुने त्वं योगिनां मुख्यः परिपूर्णश्च निःस्पृहः।
भवादृशां हि लोकेऽस्मिन् प्रार्थनीयं न विद्यते॥ ४०
तथापि धर्मरक्षायै लोकानुग्रहकांक्षया।
त्वादृशाः साधवः सन्तो विचरन्ति महीतले॥ ४१
श्रोतव्यमस्ति चेद् ब्रह्मन् वक्तुमर्हसि साम्प्रतम्।
तदिदानीमहं वक्ष्ये लोकानुग्रहहेतवे॥ ४२
इति स्कन्दवचः श्रुत्वा वामदेवो महामुनिः।
प्रश्रयावनतः प्राह मेघगम्भीरया गिरा॥ ४३

वामदेव उवाच

भगवन्परमेशस्त्वं परावरविभूतिदः।
सर्वज्ञः सर्वकर्त्ता च सर्वशक्तिधरः प्रभुः॥ ४४

जीवा वयं तु ते वक्तुं सन्निधौ परमेशितुः।
तथाप्यनुग्रहोऽयं ते यत्त्वं वदसि मां प्रति॥ ४५

कृतार्थोऽहं महाप्राज्ञ विज्ञानकणमात्रतः।
प्रेरितः परिपृच्छामि क्षन्तव्योऽतिक्रमो मम॥ ४६

प्रणवो हि परः साक्षात्परमेश्वरवाचकः।
वाच्यः पशुपतिर्देवः पशूनां पाशमोचकः॥ ४७

वामदेवजीके द्वारा कहे गये इस दिव्य कार्तिकेयस्तोत्रको जो पढ़ता है अथवा सुनता है, वह परम गतिको प्राप्त होता है। यह [स्तोत्र] विशद बुद्धि प्रदान करनेवाला, शिवभक्तिको बढ़ानेवाला, आयु-आरोग्य-धनकी वृद्धि करनेवाला एवं सभी कामनाओंको पूर्ण करनेवाला है॥ ३४-३५॥

हे द्विजो! वामदेवजी देवताओंके सेनापति प्रभु कार्तिकेयकी इस प्रकार स्तुति करके तीन बार प्रदक्षिणाकर पृथ्वीपर दण्डवत् प्रणाम करके पुनः साष्टांग प्रणाम तथा प्रदक्षिणा करके विनयावनत हो उनके समीप बैठ गये। वामदेवजीद्वारा किये गये परमार्थयुक्त स्तोत्रको सुनकर महेश्वरपुत्र प्रभु स्कन्द प्रसन्न हो गये॥ ३६—३८॥

इसके बाद कार्तिकेयजीने उनसे कहा—मैं आपकी पूजा, भक्ति तथा स्तुतिसे प्रसन्न हूँ, मैं इस समय आपका कौन-सा कल्याण करूँ? हे मुने! आप योगियोंमें प्रधान, परिपूर्णकाम और निःस्पृह हैं, इस लोकमें आप-जैसे लोगोंके लिये कुछ भी प्रार्थनीय नहीं है। फिर भी धर्मकी रक्षाके लिये तथा लोगोंपर कृपा करनेकी कामनासे आप-जैसे साधु-सन्त पृथ्वीपर भ्रमण करते हैं। हे ब्रह्मन्! जो आप सुनना चाहते हैं, उसे इस समय पूछिये; मैं लोककल्याणके लिये उसे अवश्य कहूँगा॥ ३९—४२॥

स्कन्दजीका यह वचन सुनकर महामुनि वामदेवजी विनयावनत होकर मेघके समान गम्भीर वाणीमें कहने लगे—॥ ४३॥

वामदेव बोले—हे भगवन्! आप पर तथा अवर विभूतिको देनेवाले, सर्वज्ञ, सब कुछ करनेवाले, समस्त शक्तियोंको धारण करनेवाले तथा सर्वसमर्थ परमेश्वर हैं। हमलोग तो जीव हैं और आप परमेश्वरके सन्निधानमें कुछ कहनेमें असमर्थ हैं, यह तो आपकी कृपा है, जो आप मुझसे ऐसा कह रहे हैं॥ ४४-४५॥

हे महाप्राज्ञ! मैं कृतकृत्य हो गया, फिर भी कणमात्र ज्ञानसे प्रेरित होकर कुछ पूछ रहा हूँ, मेरे इस दुस्साहसको क्षमा कीजिये॥ ४६॥

प्रणव श्रेष्ठ [मन्त्र] है, यह साक्षात् परमेश्वरका वाचक है एवं जीवोंको बन्धनसे मुक्त करनेवाले पशुपति देव इसके वाच्य हैं। प्रणवरूप वाचकसे

वाचकेन समाहूतः पशून्मोचयते क्षणात्।
तस्माद्वाचकतासिद्धिः प्रणवेन शिवं प्रति॥ ४८

भलीभाँति आहूत होनेपर वे [पशुपति] क्षणमात्रमें जीवोंको मुक्त कर देते हैं, इसलिये प्रणवकी शिवजीके प्रति वाचकता सिद्ध हो जाती है॥ ४७-४८॥

ओमितीदं सर्वमिति श्रुतिराह सनातनी।
ओमिति ब्रह्म सर्वं हि ब्रह्मेति च समब्रवीत्॥ ४९

देवसेनापते तुभ्यं देवानां पतये नमः।
नमो यतीनां पतये परिपूर्णाय ते नमः॥ ५०

सनातन श्रुतिमें भी कहा गया है **'ओमितीदं सर्वम्, ओमिति ब्रह्म सर्वम्'** यह सब कुछ ॐकार है और ॐकार ही ब्रह्म है। हे देवसेनापते! देवताओंके स्वामी आपको नमस्कार है, यतियोंके पतिको नमस्कार है, परिपूर्णस्वरूप आपको नमस्कार है॥ ४९-५०॥

एवं स्थिते जगत्यस्मिन् शिवादन्यन्न विद्यते।
सर्वरूपधरः स्वामी शिवो व्यापी महेश्वरः॥ ५१

ऐसा होनेपर इस संसारमें शिवजीके अतिरिक्त अन्य कोई भी नहीं है। महेश्वर शिव ही सभी रूप धारण करनेवाले, व्यापक और सबके स्वामी हैं॥ ५१॥

समष्टिव्यष्टिभावेन प्रणवार्थः श्रुतो मया।
न जातुचिन्महासेन संप्राप्तस्त्वादृशो गुरुः॥ ५२

अतः कृत्वानुकम्पां वै तमर्थं वक्तुमर्हसि।
उपदेशविधानेन सदाचारक्रमेण च॥ ५३

स्वाम्येकः सर्वजन्तूनां पाशच्छेदकरो गुरुः।
अतस्त्वत्कृपया सोऽर्थः श्रोतव्यो हि मया गुरो॥ ५४

मैंने समष्टि-व्यष्टिभावसे प्रणवका अर्थ सुना है। हे महासेन! मुझे आपके समान गुरु नहीं प्राप्त हुआ है। इसलिये मेरे ऊपर कृपा करके उपदेशविधिसे तथा सदाचारक्रमके साथ उस अर्थको बतानेकी कृपा करें। आप सभी जन्तुओंके एकमात्र स्वामी एवं भव-बन्धनको काटनेवाले गुरु हैं, अतः हे गुरो! मैं आपकी कृपासे उस अर्थको सुनना चाहता हूँ॥ ५२—५४॥

इति स मुनिना पृष्टः स्कन्दः प्रणम्य सदाशिवं
प्रणववपुषं साष्टत्रिंशत्कलावरलक्षितम्।
सहितमुमया शश्वत्पार्श्वे मुनिप्रवरान्वितं
गदितुमुपचक्राम श्रेयः श्रुतिष्वपि गोपितम्॥ ५५

जब मुनिने कार्तिकेयसे इस प्रकार पूछा, तब उन्होंने अड़तीस उत्तम कलाओंसे समन्वित प्रणव-शरीरवाले, श्रेष्ठ मुनियोंसे घिरे हुए तथा पार्श्वभागमें निरन्तर विराजमान पार्वतीसहित शिवजीको प्रणाम करके वेदोंमें भी छिपे हुए श्रेयको मुनिसे कहना आरम्भ किया॥ ५५॥

इति श्रीशिवमहापुराणे षष्ठ्यां कैलाससंहितायां वामदेवब्रह्मवर्णनं नामैकादशोऽध्याय॥ ११॥

॥ इस प्रकार श्रीशिवमहापुराणके अन्तर्गत छठी कैलाससंहितामें वामदेवब्रह्मवर्णन नामक ग्यारहवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ ११॥

अथ द्वादशोऽध्यायः

प्रणवरूप शिवतत्त्वका वर्णन तथा संन्यासांगभूत नान्दीश्राद्ध-विधि

श्रीसुब्रह्मण्य उवाच

साधु साधु महाभाग वामदेव मुनीश्वर।
त्वमतीव शिवे भक्तः शिवज्ञानवतां वरः॥ १

श्रीब्रह्मण्य [स्कन्दजी] बोले—हे महाभाग! हे मुनिश्रेष्ठ! हे वामदेवजी! आप धन्य हैं, आप शिवजीके परमभक्त हैं तथा शिवज्ञानियोंमें श्रेष्ठ हैं॥ १॥

त्वया त्वविदितं किंचिन्नास्ति लोकेषु कुत्रचित्।
तथापि तव वक्ष्यामि लोकानुग्रहकारिणः॥ २

सभी लोकोंमें कहीं भी आप [अन्तर्यामी]-को कुछ भी अविदित नहीं है, फिर भी मैं लोकपर कृपा करनेवाले आपसे कह रहा हूँ॥ २॥

लोकेऽस्मिन्पशवः सर्वे नानाशास्त्रविमोहिताः।
वञ्चिताः परमेशस्य माययातिविचित्रया॥ ३
न जानन्ति परं साक्षात्प्रणवार्थं महेश्वरम्।
सगुणं निर्गुणं ब्रह्म त्रिदेवजनकं परम्॥ ४
दक्षिणं बाहुमुद्धृत्य शपथं प्रब्रवीमि ते।
सत्यं सत्यं पुनः सत्यं सत्यं सत्यं पुनः पुनः॥ ५
प्रणवार्थः शिवः साक्षात्प्राधान्येन प्रकीर्तितः।
श्रुतिषु स्मृतिशास्त्रेषु पुराणेष्वागमेषु च॥ ६
यतो वाचो निवर्तन्ते अप्राप्य मनसा सह।
आनन्दं यस्य वै विद्वान्न बिभेति कुतश्चन॥ ७
यस्माज्जगदिदं सर्वं विधिविष्ण्विन्द्रपूर्वकम्।
सह भूतेन्द्रियग्रामैः प्रथमं सम्प्रसूयते॥ ८
न सम्प्रसूयते यो वै कुतश्चन कदाचन।
यस्मिन्न भासते विद्युन्न च सूर्यो न चन्द्रमाः॥ ९
यस्य भासा विभातीदं जगत्सर्वं समन्ततः।
सर्वैश्वर्येण सम्पन्नो नाम्ना सर्वेश्वरः स्वयम्॥ १०
यो वै मुमुक्षुभिर्ध्येयः शम्भुराकाशमध्यगः।
सर्वव्यापी प्रकाशात्मा भासरूपो हि चिन्मयः॥ ११
यस्य पुंसः परा शक्तिर्भावगम्या मनोहरा।
निर्गुणा स्वगुणैरेव निगूढा निष्कला शिवा॥ १२
तदीयं त्रिविधं रूपं स्थूलं सूक्ष्मं परं ततः।
ध्येयं मुमुक्षुभिर्नित्यं क्रमतो योगिभिर्मुने॥ १३

इस लोकमें सभी जीव विविध शास्त्रोंके व्यामोहमें पड़े हुए हैं और परमेश्वरकी अति विचित्र मायासे ठगे गये हैं। वे महेश्वर सगुण, निर्गुण, परब्रह्मरूप तथा तीनों देवोंको उत्पन्न करनेवाले हैं। प्रणवके अर्थ साक्षात् शिव ही हैं। श्रुतियों, स्मृति-शास्त्रों, पुराणों तथा आगमोंमें प्रधानतया उन्हींको प्रणवका वाच्यार्थ बताया गया है। जहाँसे मनसहित वाणी आदि सभी इन्द्रियाँ उस परमेश्वरको न पाकर लौट आती हैं, जिसके आनन्दका अनुभव करनेवाला पुरुष किसीसे डरता नहीं, ब्रह्मा-विष्णु तथा इन्द्रसहित यह सम्पूर्ण जगत् भूतों और इन्द्रियसमुदायके साथ सर्वप्रथम जिससे प्रकट होता है, जो परमात्मा स्वयं किसीसे और कभी भी उत्पन्न नहीं होता, जिसके निकट विद्युत्, सूर्य और चन्द्रमाका प्रकाश काम नहीं देता तथा जिसके ही प्रकाशसे यह सम्पूर्ण जगत् सब ओरसे प्रकाशित होता है, वह परब्रह्म परमात्मा सम्पूर्ण ऐश्वर्यसे सम्पन्न होनेके कारण स्वयं ही सर्वेश्वर 'शिव' नाम धारण करता है। जो सर्वव्यापी, प्रकाशात्मा, प्रकाशरूप एवं चिन्मय शम्भु मुमुक्षुओंके द्वारा हृदयाकाशमें ध्यान किये जानेयोग्य हैं, जिन परम पुरुषकी परा शक्ति शिवा भावगम्य, मनोहर, निर्गुण, अपने गुणोंसे निगूढ़ तथा निष्कल हैं, हे मुने! उनके स्थूल, सूक्ष्म तथा उससे भी परे—इन तीन प्रकारके रूपोंका ध्यान मोक्ष चाहनेवाले योगियोंको क्रमसे नित्य करना चाहिये॥ ३—१३॥

निष्कलः सर्वदेवानामादिदेवः सनातनः।
ज्ञानक्रियास्वभावो यः परमात्मेति गीयते॥ १४
तस्य देवाधिदेवस्य मूर्त्तिः साक्षात्सदाशिवः।
पञ्चमन्त्रतनुर्देवः कलापञ्चकविग्रहः॥ १५
शुद्धस्फटिकसंकाशः प्रसन्नः शीतलद्युतिः।
पञ्चवक्त्रो दशभुजस्त्रिपञ्चनयनः प्रभुः॥ १६

वे सम्पूर्ण देवोंके आदिदेव, सनातन एवं निष्कल हैं, जो ज्ञान, क्रिया, स्वभाव एवं परमात्मा कहे जाते हैं; उन देवाधिदेवकी साक्षात् मूर्ति ही साक्षात् सदाशिव हैं। वे देव पंचमन्त्रात्मक शरीरवाले, पंचकलात्मक विग्रहवाले, शुद्ध स्फटिकके सदृश, प्रसन्न, शीतल कान्तिवाले, पाँच मुखवाले, दस भुजाओंसे युक्त तथा पन्द्रह नेत्रोंवाले हैं॥ १४—१६॥

ईशानमुकुटोपेतः पुरुषास्यः पुरातनः।
अघोरहृदयो वामदेवगुह्यप्रदेशवान्॥ १७
सद्यपादश्च तन्मूर्त्तिः साक्षात्सकलनिष्कलः।
सर्वज्ञत्वादिषट्शक्तिषडंगीकृतविग्रहः॥ १८

ईशानमन्त्र उनका मुकुटमण्डित शिरोभाग है, तत्पुरुषमन्त्र उन पुरातन पुरुषका मुख है, अघोरमन्त्र हृदय है, वामदेवमन्त्र गुह्यप्रदेश है तथा सद्योजातमन्त्र उनका पाददेश है। वे ही साक्षात् साकार तथा निराकार परमात्मा हैं। सर्वज्ञत्व आदि छः शक्तियाँ ही

शब्दादिशक्तिस्फुरितहृत्पंकजविराजितः ।
स्वशक्त्या वामभागे तु मनोन्मन्या विभूषितः॥ १९

मन्त्रादिषड्विधार्थानामर्थोपन्यासमार्गतः ।
समष्टिव्यष्टिभावार्थं वक्ष्यामि प्रणवात्मकम्॥ २०

उपदेशक्रमो ह्यादौ वक्तव्यः श्रूयतामयम्।
चातुर्वर्ण्यं हि लोकेऽस्मिन्प्रसिद्धं मानुषे मुने॥ २१

त्रैवर्णिकानामेवात्र श्रुत्याचारसमन्वयः।
शुश्रूषामात्रसारा हि शूद्राः श्रुतिबहिष्कृताः॥ २२

त्रैवर्णिकानां सर्वेषां स्वस्वाश्रमरतात्मनाम्।
श्रुतिस्मृत्युदितो धर्मोऽनुष्ठेयो नापरः क्वचित्॥ २३

श्रुतिस्मृत्युदितं कर्म कुर्वन्सिद्धिमवाप्स्यति।
इत्युक्तं परमेशेन वेदमार्गप्रदर्शिना॥ २४

वर्णाश्रमाचारपुण्यैरभ्यर्च्य परमेश्वरम्।
तत्सायुज्यं गताः सर्वे बहवो मुनिसत्तमाः॥ २५

ब्रह्मचर्येण मुनयो देवा यज्ञक्रियाध्वना।
पितरः प्रजया तृप्ता इति हि श्रुतिरब्रवीत्॥ २६

एवं ऋणत्रयान्मुक्तो वानप्रस्थाश्रमं गतः।
शीतोष्णसुखदुःखादिसहिष्णुर्विजितेन्द्रियः॥ २७

तपस्वी विजिताहारो यमाद्यं योगमभ्यसेत्।
यथा दृढतरा बुद्धिरविचाल्या भवेत्तथा॥ २८

एवं क्रमेण शुद्धात्मा सर्वकर्माणि विन्यसेत्।
संन्यस्य सर्वकर्माणि ज्ञानपूजापरो भवेत्॥ २९

सा हि साक्षाच्छिवैक्येन जीवन्मुक्तिफलप्रदा।
सर्वोत्तमा हि विज्ञेया निर्विकारा यतात्मनाम्॥ ३०

तत्प्रकारमहं वक्ष्ये लोकानुग्रहकाम्यया।
तव स्नेहान्महाप्राज्ञ सावधानतया शृणु॥ ३१

उनके शरीरके छः अंग हैं, वे शब्दादि शक्तियोंसे स्फुरित हृदयकमलमें विराजमान हैं और वामभागमें अपनी शक्ति मनोन्मनीसे विभूषित हैं॥ १७—१९॥

अब मन्त्रादि छः प्रकारके अर्थोंको प्रकट करनेके लिये अर्थोपन्यासमार्गसे समष्टि-व्यष्टिभावरूप प्रणवात्मक तत्त्वको कहूँगा॥ २०॥

मैं पहले उपदेश-क्रम कहता हूँ, इसे सुनिये। हे मुने! इस मनुष्यलोकमें चार वर्ण प्रसिद्ध हैं। इनमें तीन वर्णोंके लिये ही श्रुतियोंमें सदाचारका विधान है। वेदसे बहिष्कृत शूद्रोंको शुश्रूषामात्रका अधिकार है॥ २१-२२॥

अपने-अपने आश्रमोचित कर्तव्योंमें निरत चित्तवाले तीनों वर्णोंको श्रुति एवं स्मृतिमें कहे गये धर्मका ही अनुष्ठान करना चाहिये, द्विज किसी अन्य धर्मका कभी भी अनुष्ठान नहीं करे। श्रुति तथा स्मृतिमें कहे गये कर्मको करनेवाला सिद्धि प्राप्त करेगा—वेदपथप्रदर्शक [भगवान्] परमेश्वरने ऐसा कहा है॥ २३-२४॥

वर्णाश्रमोचित आचारोंके पुण्यकर्मोंसे परमेश्वरकी पूजा करके बहुत-से श्रेष्ठ मुनि शिव-सायुज्यको प्राप्त हुए हैं। मुनिगण ब्रह्मचर्यसे, देवतागण यज्ञकर्मानुष्ठानसे तथा पितरगण [धर्मपूर्वक] सन्तानोत्पादनसे तृप्त होते हैं—ऐसा वेदने कहा है॥ २५-२६॥

इस प्रकार तीनों ऋणोंसे मुक्ति पाकर पुरुषको वानप्रस्थ-आश्रममें प्रविष्ट हो शीत-उष्ण, सुख-दुःखको सहते हुए जितेन्द्रिय तथा तपस्वी होकर एवं आहारपर विजय प्राप्तकर यम आदि योगोंका अभ्यास करना चाहिये, जिससे बुद्धि अत्यधिक दृढ़ तथा निश्चल हो जाय॥ २७-२८॥

इस प्रकार क्रमसे शुद्ध मनवाला होकर सभी कर्मोंका विन्यास करे; सभी कर्मोंका त्यागकर ज्ञानमयी पूजामें तत्पर हो जाय॥ २९॥

वह ज्ञानमयी पूजा साक्षात् शिवजीसे ऐक्यके द्वारा जीवन्मुक्ति देनेवाली है; इसे जितेन्द्रियोंके लिये सर्वोत्तम एवं निर्विकार जानना चाहिये॥ ३०॥

हे महाप्राज्ञ! अब मैं आपके स्नेह एवं लोकके ऊपर अनुग्रहकी कामनासे उस ज्ञानपूजाके प्रकारको कह रहा हूँ; सावधानीपूर्वक सुनिये॥ ३१॥

सर्वशास्त्रार्थतत्त्वज्ञं वेदांतज्ञानपारगम्।
आचार्यमुपगच्छेत्स यतिर्मतिमतां वरम्॥ ३२

तत्समीपमुपव्रज्य यथाविधि विचक्षणः।
दीर्घदण्डप्रणामाद्यैस्तोषयेद्यत्नतः सुधीः ॥ ३३

यो गुरुः स शिवः प्रोक्तो यः शिवः स गुरुः स्मृतः।
इति निश्चित्य मनसा स्वविचारं निवेदयेत्॥ ३४

लब्ध्वानुज्ञस्तु गुरुणा द्वादशाहं पयोव्रती।
शुक्लपक्षे चतुर्थ्यां वा दशम्यां वा विधानतः॥ ३५

प्रातः स्नात्वा विशुद्धात्मा कृतनित्यक्रियः सुधीः।
गुरुमाहूय विधिना नांदीश्राद्धं समारभेत्॥ ३६

विश्वेदेवाः सत्यवसुसंज्ञावन्तः प्रकीर्तिताः।
देवश्राद्धे ब्रह्मविष्णुमहेशाः कथितास्त्रयः॥ ३७
ऋषिश्राद्धे तु सम्प्रोक्ता देवक्षेत्रमनुष्यजाः।
देवश्राद्धे तु वसुरुद्रादित्याः सम्प्रकीर्तिताः॥ ३८
चत्वारो मानुषश्राद्धे सनकाद्या मुनीश्वराः।
भूतश्राद्धे पञ्च महाभूतानि च ततः परम्॥ ३९
चक्षुरादीन्द्रियग्रामो भूतग्रामश्चतुर्विधः।
पितृश्राद्धे पिता तस्य पिता तस्य पिता त्रयः॥ ४०
मातृश्राद्धे मातृपितामह्यौ च प्रपितामही।
आत्मश्राद्धे तु चत्वार आत्मा पितृपितामहौ॥ ४१
प्रपितामहनामा च सपत्नीकाः प्रकीर्तिताः।
मातामहात्मकश्राद्धे त्रयो मातामहादयः॥ ४२

प्रतिश्राद्धं ब्राह्मणानां युग्मं कृत्वोपकल्पितान्।
आहूय पादौ प्रक्षाल्य स्वयमाचम्य यत्नतः॥ ४३
समस्तसंपत्समवाप्तिहेतवः
समुत्थितापत्कुलधूमकेतवः।
अपारसंसारसमुद्रसेतवः
पुनन्तु मां ब्राह्मणपादरेणवः॥ ४४

[ज्ञानपूजाकी इच्छा रखनेवाला] वह यति सभी शास्त्रोंके अर्थतत्त्वको जाननेवाले, वेदान्तज्ञानमें पारंगत तथा बुद्धिमानोंमें श्रेष्ठ आचार्यके समीप जाय। उनके पास जाकर वह बुद्धिमान् तथा विद्वान् [मुमुक्षु] यथाविधि दण्डवत् प्रणाम आदिसे यत्नपूर्वक उन्हें सन्तुष्ट करे॥ ३२-३३॥

जो गुरु हैं, वे ही शिव कहे गये हैं और जो शिव हैं, वे ही गुरु कहे गये हैं, ऐसा मनमें निश्चय करके उनसे अपना विचार प्रकट करना चाहिये॥ ३४॥

इसके पश्चात् उस विद्वान्को चाहिये कि गुरुसे आज्ञा प्राप्तकर बारह दिनपर्यन्त दूध पीकर व्रत करे तथा शुक्लपक्षकी चतुर्थी अथवा दशमीको विधानपूर्वक प्रातःकाल स्नान करके विशुद्ध होकर नित्यक्रिया सम्पन्न करे और गुरुको बुलाकर विधिपूर्वक नान्दीश्राद्ध करे॥ ३५-३६॥

उस श्राद्धमें सत्य-वसुसंज्ञक विश्वेदेव कहे गये हैं और उस देवश्राद्धमें ब्रह्मा, विष्णु एवं महेश ये तीन [देवता] कहे गये हैं। ऋषिश्राद्धमें देवता, ऋषि तथा मनुष्यकी सन्तानें [पितृगण] कहे गये हैं। देवश्राद्धमें वसु, रुद्र एवं आदित्य [पितृगण] कहे गये हैं। मनुष्यश्राद्धमें सनक आदि चारों मुनीश्वर कहे गये हैं और भूतश्राद्धमें पंच महाभूत तथा उसके बाद चक्षु आदि इन्द्रियसमूह और चार प्रकारके भूतसमूह कहे गये हैं। पितृश्राद्धमें पिता, पितामह एवं प्रपितामह—ये तीन कहे गये हैं। मातृश्राद्धमें माता, पितामही एवं प्रपितामही कही गयी हैं। आत्मश्राद्धमें ये चारों—स्वयं श्राद्धकर्ता, अपने पिता, पितामह एवं प्रपितामह सपत्नीक कहे गये हैं। मातामहके श्राद्धमें मातामह आदि ये तीन (मातामह, प्रमातामह तथा वृद्धप्रमातामह) ग्रहण किये जाते हैं॥ ३७—४२॥

प्रत्येक श्राद्धमें दो ब्राह्मणोंको आमन्त्रित करना चाहिये; आमन्त्रित ब्राह्मणोंको बुलाकर यत्नपूर्वक आचमन कराकर उनके दोनों पैर धो करके [कहे—] 'समस्त सम्पत्तिकी प्राप्तिके हेतुभूत, आनेवाली विपत्तियोंका विनाश करनेके लिये धूमकेतुसदृश और अपार संसाररूपी समुद्रको पार करने हेतु सेतुस्वरूप ब्राह्मणचरणरज मुझे पवित्र करे। आपदारूपी घने

आपद्घनध्वान्तसहस्त्रभानवः
समीहितार्थार्पणकामधेनवः ।
समस्ततीर्थाम्बुपवित्रमूर्त्तयो
रक्षन्तु मां ब्राह्मणपादपांसवः॥ ४५
इति जप्त्वा नमस्कृत्य साष्टाङ्गं भुवि दण्डवत्।
स्थित्वा तु प्राङ्मुखः शम्भोः पादाब्जयुगलं स्मरन्॥ ४६
सपवित्रकरः शुद्ध उपवीती दृढासनः।
प्राणायामत्रयं कुर्याच्छ्रुत्वा तिथ्यादिकं पुनः॥ ४७
मत्संन्यासाङ्गभूतं यद्विश्वेदेवादिकं तथा।
श्राद्धमष्टविधं मातामहान्तं पार्वणेन वै॥ ४८
विधानेन करिष्यामि युष्मदाज्ञापुरःसरम्।
एवं विधाय संकल्पं दर्भानुत्तरतस्त्यजेत्॥ ४९

अन्धकारको नष्ट करनेके लिये हजार सूर्योंके समान, वांछित फलको देनेहेतु कामधेनुसदृश और समस्त तीर्थोंके जलसदृश पवित्र मूर्तिवाले ब्राह्मणोंकी चरणरज मुझे पवित्र करे।' तदुपरान्त पृथ्वीपर साष्टांग दण्डवत् प्रणाम करके पूर्वाभिमुख बैठकर शिवजीके चरणकमलोंका स्मरण करे; पुनः हाथमें पवित्री धारणकर शुद्ध हो और यज्ञोपवीत धारणकर आसनपर दृढ़तापूर्वक बैठ करके तीन प्राणायाम करे। उसके बाद तिथि आदिका स्मरणकर '**मत्संन्यासाङ्गभूतं विश्वेदेवादि-मातामहान्तम्, अष्टविधश्राद्धं पार्वणेन विधानेन युष्मदाज्ञापुरस्सरं करिष्यामि**'—इस प्रकारका संकल्पकर कुशाको उत्तरकी ओर त्याग दे॥ ४३—४९॥

उपस्पृश्याप उत्थाय वरणक्रममारभेत्।
पवित्रपाणिः संस्पृश्य पाणी ब्राह्मणयोर्वदेत्॥ ५०
विश्वेदेवार्थ इत्यादि भवद्भ्यां क्षण इत्यपि॥ ५१
प्रसादनीय इत्यन्तं सर्वत्रैवं विधिक्रमः।
एवं समाप्य वरणं मण्डलानि प्रकल्पयेत्॥ ५२
उदगारभ्य दश च कृत्वाभ्यर्चनमक्षतैः।
तेषु क्रमेण संस्थाप्य ब्राह्मणान् पादयोः पुनः॥ ५३
विश्वेदेवादिनामानि ससंबोधनमुच्चरेत्।
इदं वः पाद्यमिति सकुशपुष्पाक्षतोदकैः॥ ५४
पाद्यं दत्त्वा स्वयमपि क्षालिताङ्घ्रिरुदङ्मुखः।
आचम्य युग्मक्लृप्तांस्तानासनेषूपवेश्य च॥ ५५
विश्वेदेवस्वरूपस्य ब्राह्मणस्येदमासनम्।
इति दर्भासनं दत्त्वा दर्भपाणिः स्वयं स्थितः॥ ५६

तत्पश्चात् जलसे आचमन करके उठकर वरणक्रिया आरम्भ करे। हाथमें पवित्री धारणकर दो ब्राह्मणोंका हाथ स्पर्शकर उनसे इस प्रकार कहे '**विश्वेदेवार्थं भवन्तौ वृणे भवद्भ्यां क्षणः प्रसादनीयः।**' यही विधि सर्वत्र है। इस प्रकार वरणक्रम समाप्तकर मण्डलोंकी रचना करे। उत्तरसे लेकर दस मण्डल बनाकर, अक्षतोंसे पूजन करके उनमें क्रमसे ब्राह्मणोंको बैठाकर उनके पैरोंपर अक्षत आदि चढ़ाये और विश्वेदेवा आदि नामोंसे सम्बोधनपूर्वक यह कहे कि आप लोगोंके लिये कुश, पुष्प, अक्षत तथा जलसहित यह पाद्य* है। पाद्य देनेके बाद स्वयं भी पैर धोकर उत्तराभिमुख हो आचमनकर उन दो ब्राह्मणोंको आसनोंपर बैठाकर 'विश्वेदेवस्वरूप ब्राह्मणके लिये यह आसन है'—ऐसा कहकर उन्हें कुशका आसन प्रदान करके स्वयं हाथमें कुश लेकर बैठे॥ ५०—५६॥

अस्मिन्नान्दीमुखश्राद्धे विश्वेदेवार्थ इत्यपि।
भवद्भ्यां क्षण इत्युक्त्वा क्रियतामिति संवदेत्॥ ५७
प्राप्नुतामिति सम्प्रोच्य भवन्ताविति संवदेत्।
वदेतां प्राप्नुयावेति तौ च ब्राह्मणपुङ्गवौ॥ ५८

'**अस्मिन् नान्दीश्राद्धे विश्वेदेवार्थमिदं पाद्यं भवद्भ्यां क्षणः क्रियताम्, भवन्तौ प्राप्नुताम्**' इस वाक्यको कहे। इसके पश्चात् ब्राह्मण कहें कि '**पाद्यं प्राप्नुयाव, दर्भं प्राप्नुयाव**' इस प्रकार स्वीकारात्मक वाक्य कहना चाहिये॥ ५७-५८॥

---

* प्रथम मण्डलमें दो विश्वेदेवोंके लिये, फिर आठ मण्डलोंमें क्रमशः देवादि आठ श्राद्धोंके अधिकारियोंके लिये तथा दसवें मण्डलमें सपत्नीक मातामह आदिके लिये पाद्य अर्पण करने चाहिये। अर्पण-वाक्यका प्रयोग इस प्रकार है—

ॐ सत्यवसुसंज्ञकाः विश्वेदेवाः नान्दीमुखाः भूर्भुवः स्वः इदं वः पाद्यं पादावनेजनं पादप्रक्षालनं वृद्धिः॥ १॥

ॐ ब्रह्मविष्णुमहेश्वराः नान्दीमुखाः भूर्भुवः स्वः इदं वः पाद्यं पादावनेजनं पादप्रक्षालनं वृद्धिः॥ २॥

ॐ देवर्षिब्रह्मर्षिक्षत्रर्षयो नान्दीमुखाः भूर्भुवः स्वः इदं वः पाद्यं पादावनेजनं पादप्रक्षालनं वृद्धिः॥ ३॥

इसी प्रकार अन्य श्राद्धोंके लिये वाक्यकी ऊहा कर लेनी चाहिये।

संपूर्णमस्तु संकल्पसिद्धिरस्त्विति तान् प्रति।
भवन्तोऽनुगृह्णंत्विति प्रार्थयेद् द्विजपुङ्गवान्॥ ५९

इसके बाद उन श्रेष्ठ द्विजोंसे यह प्रार्थना करे—'मेरा कार्य पूर्ण हो, मेरे संकल्पकी सिद्धि हो और आप लोग मेरे ऊपर कृपा करें'॥ ५९॥

ततः शुद्धकदल्यादिपात्रेषु क्षालितेषु च।
अन्नादिभोज्यद्रव्याणि दत्त्वा दर्भैः पृथक् पृथक्॥ ६०
परिस्तीर्य स्वयं तत्र परिषिच्योदकेन च।
हस्ताभ्यामवलम्ब्याथ पात्रं प्रत्येकमादरात्॥ ६१
पृथिवी ते पात्रमित्यादि कृत्वा तत्र व्यवस्थितान्।
देवादींश्च चतुर्थ्यन्ताननूद्याक्षतसंयुतान्॥ ६२
उदग्गृहीत्वा स्वाहेति देवार्थेऽन्नं यजेत्पुनः।
न ममेति वदेदन्ते सर्वत्रायं विधिक्रमः॥ ६३

इसके पश्चात् केलेके धुले हुए शुद्ध पत्तोंपर अन्न आदि भोज्य पदार्थोंको परोसकर अलग-अलग कुशा बिछाकर उसपर जल छिड़कनेके बाद प्रत्येक पात्रपर अपने दोनों हाथ रखकर आदरपूर्वक '**पृथिवी ते पात्रम्**'[1] आदि मन्त्र पढ़ना चाहिये और देवादिकोंमें चतुर्थी विभक्तिका उच्चारणकर अक्षतके साथ जल लेकर '**विश्वेभ्यः एतदन्नं स्वाहा इदं न मम**'[2]—ऐसा पढ़कर अक्षतसहित जल भोजनपात्रपर संकल्पित करे; सभी जगह (माता आदिके लिये) यही विधि है॥ ६०—६३॥

यत्पादपद्मस्मरणाद्यस्य नामजपादपि।
न्यूनं कर्म भवेत्पूर्णं तं वन्दे साम्बमीश्वरम्॥ ६४
इति जप्त्वा ततो ब्रूयान्मया कृतमिदं पुनः।
नान्दीमुखश्राद्धमिति यथोक्तं च वदेत्ततः॥ ६५
अस्त्विति ब्रूतेति च तान्प्रसाद्य द्विजपुङ्गवान्।
विसृज्य स्वकरस्थोदं प्रणम्य भुवि दण्डवत्॥ ६६
उत्थाय च ततो ब्रूयादमृतं भवतु द्विजान्।
प्रार्थयेच्च परं प्रीत्या कृतांजलिरुदारधीः॥ ६७
श्रीरुद्रं चमकं सूक्तं पौरुषं च यथाविधि।
चित्ते सदाशिवं ध्यात्वा जपेद् ब्रह्माणि पञ्च च॥ ६८

इसके बाद 'जिनके चरणकमलके स्मरणसे तथा जिनके नाम-जपसे न्यून कर्म भी पूर्ण हो जाता है, उन साम्ब शिवको मैं प्रणाम करता हूँ'—इस प्रकार प्रार्थनाकर फिर बोले कि मैंने जो यह नान्दीमुख श्राद्ध किया है, वह यथायोग्य है, ऐसा आप कहें; तब ब्राह्मण कहें कि 'ऐसा ही हो।' तत्पश्चात् उन श्रेष्ठ ब्राह्मणोंको प्रसन्न करके अपने हाथमें स्थित जलको पृथ्वीपर छोड़कर दण्डवत् प्रणाम करके फिर उठकर उदार बुद्धिवाला वह यजमान अत्यन्त प्रेमपूर्वक ब्राह्मणोंसे हाथ जोड़कर प्रार्थना करे कि यह अन्न अमृत हो। इसके बाद 'श्रीरुद्रसूक्त', चमकाध्याय तथा पुरुषसूक्तका यथाविधि पाठ करे और सदाशिवका ध्यानकर (ईशान, तत्पुरुष, अघोर, वामदेव एवं सद्योजात) पाँच ब्रह्ममन्त्रोंका जप करे॥ ६४—६८॥

भोजनान्ते रुद्रसूक्तं क्षमापय द्विजान् पुनः।
तन्मन्त्रेण ततो दद्यादुत्तरापोशणं पुरः॥ ६९
प्रक्षालिताङ्घ्रिराचम्य पिण्डस्थानं व्रजेत्ततः।
आसीनः प्राङ्मुखो मौनी प्राणायामत्रयं चरेत्॥ ७०

भोजनके अन्तमें रुद्रसूक्तका पाठ कराकर ब्राह्मणोंसे क्षमा-प्रार्थना करे और '**अमृतापिधानमसि स्वाहा**' मन्त्रसे उत्तरापोशनार्थ जल प्रदान करे। इसके बाद पैर धोकर आचमन करके पिण्डस्थानपर जाय और पूर्वाभिमुख बैठकर मौन धारण करके तीन बार प्राणायाम करे॥ ६९-७०॥

१-'पृथिवी ते पात्रं द्यौरपिधानं ब्राह्मणस्य मुखेऽमृतेऽमृतं जुहोमि स्वाहा'—यह पूरा मन्त्र है।
२-वाक्यका प्रयोग इस प्रकार है—'ॐ सत्यवसुसंज्ञकेभ्यो विश्वेभ्यो देवेभ्यो नान्दीमुखेभ्यः स्वाहा न मम' इत्यादि।

नान्दीमुखोक्तश्राद्धाङ्गं करिष्ये पिण्डदानकम्।
इति संकल्प्य दक्षादि समारभ्योदकान्तिकम्॥ ७१

नव रेखाः समालिख्य प्रागग्रान्द्वादश क्रमात्।
संस्तीर्य दर्भान्दक्षादिदेवादिस्थानपञ्चकम्॥ ७२

तूष्णीं दद्यात्साक्षतोदं त्रिषु स्थानेषु च क्रमात्।
स्थानेष्वन्येषु मातृषु मार्ज्जयंस्तास्ततः परम्॥ ७३

अत्रेति पितरः पश्चात्साक्षतोदं समर्च्य च।
दद्यात्ततः क्रमेणैव देवादिस्थानपञ्चके॥ ७४

'अब मैं नान्दीमुखश्राद्धका अंगभूत पिण्डदान करूँगा'—ऐसा संकल्पकर दक्षिणसे आरम्भकर उत्तरतक नौ रेखाएँ बनाकर उनके आगे पूर्वकी ओर अग्रभागवाले बारह कुशोंको क्रमशः दक्षिणकी ओरसे देवता आदिके पाँच स्थानोंमें बिछाकर तथा क्रमसे पितृवर्गके तीन स्थानोंमें मौनभावसे अक्षत और जल छोड़े। अन्य मातृपक्षके स्थानोंमें भी जलसे मार्जन कर देना चाहिये। इसके बाद **'अत्र पितरो मादयध्वम्'**—यह कहकर अक्षतसहित जलसे पूजन करके इसी क्रमसे देवगणोंके पाँचों स्थानोंपर भी अक्षत, जल समर्पित करना चाहिये॥ ७१—७४॥

तत्तद्देवादिनामानि चतुर्थ्यन्तान्युदीर्य च।
पिण्डत्रयं ततो दद्यात्प्रत्येकं स्थानपञ्चके॥ ७५

स्वगृह्योक्तेन मार्गेण दद्यात्पिण्डान्पृथक्पृथक्।
दद्यादिदं साक्षतं च पितृसाद्गुण्यहेतवे॥ ७६

तदनन्तर उन-उन देवताओंके चतुर्थ्यन्त नामोंका उच्चारण करके पाँचों स्थानोंमें प्रत्येक स्थानपर तीन-तीन पिण्ड प्रदान करे। (इसी तरह शेष स्थानोंपर भी पिण्ड प्रदान करे।) अपने गृह्यसूत्रमें बताये गये विधानसे पृथक्-पृथक् पिण्डदान करे और पितरोंके साद्गुण्यके लिये इसे जल-अक्षतसहित दे॥ ७५-७६॥

ध्यायेत्सदाशिवं देवं हृदयाम्भोजमध्यतः।
यत्पादपद्मस्मरणादिति श्लोकं पठन् पुनः॥ ७७

नमस्कृत्य ब्राह्मणेभ्यो दक्षिणां च स्वशक्तितः।
दत्त्वा क्षमापय च तान् विसृज्य च ततः क्रमात्॥ ७८

पिण्डानुत्सृज्य गोग्रासं दद्यान्नो चेज्जले क्षिपेत्।
पुण्याहवाचनं कृत्वा भुंजीत स्वजनैः सह॥ ७९

इसके पश्चात् **'यत्पादपद्मस्मरणात्'** इस श्लोकको पढ़ते हुए हृदयकमलके मध्यमें सदाशिवका ध्यान करे। ब्राह्मणोंको नमस्कारकर उन्हें अपने सामर्थ्यके अनुसार दक्षिणा प्रदान करके क्षमाप्रार्थना करे और उन्हें विदा करके क्रमसे पिण्डोंको उठाकर गौको खिला दे अथवा जलमें डाल दे। इसके अनन्तर पुण्याहवाचन [करा] कर बन्धुजनोंके साथ भोजन करे॥ ७७—७९॥

अन्येद्युः प्रातरुत्थाय कृतनित्यक्रियः सुधीः।
उपोष्य क्षौरकर्मादि कक्षोपस्थविवर्जितम्॥ ८०

केशश्मश्रुनखानेव कर्मावधि विसृज्य च।
समष्टिकेशान्विधिवत्कारयित्वा विधानतः॥ ८१

स्नात्वा धौतपटः शुद्धो द्विराचम्याथ वाग्यतः।
भस्म संधार्य विधिना कृत्वा पुण्याहवाचनम्॥ ८२

तेन संप्रोक्ष्य संप्राप्य शुद्धदेहस्वभावतः।
होमद्रव्यार्थमाचार्यदक्षिणार्थं विहाय च॥ ८३

द्रव्यजातं महेशाय द्विजेभ्यश्च विशेषतः।
भक्तेभ्यश्च प्रदायाथ शिवाय गुरुरूपिणे॥ ८४

तत्पश्चात् दूसरे दिन प्रातःकाल उठकर वह बुद्धिमान् नित्यक्रिया सम्पन्नकर उपवास करते हुए कक्ष (काँख) तथा उपस्थके बालोंको छोड़कर क्षौरकर्म कराये। कर्म करनेतक दाढ़ी, केश, मूँछ तथा नाखूनको न कटवाये; बादमें विधिपूर्वक समस्त केशोंका वपन कराकर स्नानकर धौतवस्त्र धारण कर ले और शुद्ध होकर मौन भावसे दो बार आचमन करके विधिपूर्वक भस्म धारण करे। पुण्याहवाचन करके स्वयंका प्रोक्षणकर उससे स्वभावतः शुद्धदेहवाला होकर होमसामग्री तथा आचार्य-दक्षिणाके निमित्तभूत द्रव्योंको छोड़कर सम्पूर्ण द्रव्योंको महेश्वर, ब्राह्मणों, विशेषकर शिवभक्तों तथा गुरुस्वरूप शिवको समर्पित

वस्त्रादि दक्षिणां दत्त्वा प्रणम्य भुवि दण्डवत्।
दोरकौपीनवसनं दण्डाद्यं क्षालितं भुवि॥ ८५

आदाय होमद्रव्याणि समिधादीनि च क्रमात्।
समुद्रतीरे नद्यां वा पर्वते वा शिवालये॥ ८६

अरण्ये चापि गोष्ठे वा विचार्य स्थानमुत्तमम्।
स्थित्वाचम्य ततः पूर्वं कृत्वा मानसमञ्जरीम्॥ ८७

ब्राह्ममोंकारसहितं नमो ब्रह्मण इत्यपि।
जपित्वा त्रिस्ततो ब्रूयादग्निमीले पुरोहितम्॥ ८८

अथ महाव्रतमिति अग्निर्वै देवनामतः।
तथैतस्य समाम्नायमिषे त्वोर्ज्जेत्वा वेति तत्॥ ८९
अग्न आयाहि वीतये शन्नो देवीरभिष्टये।
पश्चात्प्रोच्य मयरसतजभनलगैः सह॥ ९०
सम्मितं च ततः पञ्चसंवत्सरमयं ततः।
समाम्नायः समाम्नातः अथ शिक्षां वदेत्पुनः।
प्रवक्ष्यामीत्युदीर्याथ वृद्धिरादैच्च संवदेत्॥ ९१
अथातो धर्मजिज्ञासेत्युच्चार्य पुनरंजसा।
अथातो ब्रह्मजिज्ञासा वेदादीनपि संजपेत्॥ ९२

ब्रह्माणमिन्द्रं सूर्यं च सोमं चैव प्रजापतिम्।
आत्मानमन्तरात्मानं ज्ञानात्मानमतः परम्॥ ९३

परमात्मानमपि च प्रणवाद्यं नमोऽन्तकम्।
चतुर्थ्यन्तं जपित्वाऽथ सक्तुमुष्टिं प्रगृह्य च॥ ९४

प्राश्याथ प्रणवेनैव द्विराचम्याथ संस्पृशेत्।
नाभिं मन्त्रान्वक्ष्यमाणं प्रणवाद्यान्नमोऽन्तकान्॥ ९५

आत्मानमन्तरात्मानं ज्ञानात्मानं पुरं पुनः।
आत्मानं च समुच्चार्य प्रजापतिमतः परम्॥ ९६

स्वाहांतान्प्रजपेत्पश्चात्पयोदधिघृतं पृथक्।
त्रिवारं प्रणवेनैव प्राश्याचम्य द्विधा पुनः॥ ९७

प्रागास्य उपविश्याथ दृढचित्तः स्थिरासनः।
यथोक्तविधिना सम्यक्प्राणायामत्रयं चरेत्॥ ९८

करके वस्त्र आदि तथा दक्षिणा प्रदान करे, तदुपरान्त पृथ्वीपर दण्डवत् प्रणाम करके धुले हुए डोरा, कौपीन वस्त्र, दण्ड आदि धारण करके होमद्रव्य तथा समिधा आदिको क्रमसे लेकर समुद्रतटपर, नदीके किनारे, पर्वतपर, शिवालयमें, वनमें, गोशालामें—कहीं भी उत्तम स्थानका विचार करके वहाँ स्थित होकर आचमन करनेके अनन्तर सर्वप्रथम मनमें मालाकी परिकल्पनाकर ओंकारसहित ब्रह्ममन्त्र '**ॐ नमो ब्रह्मणे**'—इस मन्त्रको तीन बार जपकर '**अग्निमीळे पुरोहितम्**' इस मन्त्रका उच्चारण करे॥ ८०—८८॥

इसके बाद '**अथ महाव्रतम्**', '**अग्निर्वै देवानाम्**', '**एतस्य समाम्नायम्**', '**ॐ इषे त्वोर्जे त्वा वायवस्थ**', '**अग्न आयाहि वीतये**' तथा '**शं नो देवीरभीष्टये**' इत्यादिका पाठ करे। तत्पश्चात् '**म य र स त ज भ न ल ग**' '**पञ्च संवत्सरमयम्**', '**समाम्नायः समाम्नातः**', '**अथ शिक्षां प्रवक्ष्यामि**', '**वृद्धिरादैच्**', '**अथातो धर्मजिज्ञासा**', '**अथातो ब्रह्मजिज्ञासा**'—इन सबका पाठ करे। तदनन्तर यथासम्भव वेद, पुराण आदिका स्वाध्याय करे॥ ८९—९२॥

ब्रह्मा, इन्द्र, सूर्य, सोम, प्रजापति, आत्मा, अन्तरात्मा, ज्ञानात्मा, परमात्मा—इनके आदिमें '**ॐ**' तथा अन्तमें चतुर्थ्यन्त विभक्ति लगाकर अन्तमें नमः '**ॐ इन्द्राय नमः**' इत्यादि क्रमसे पद लगाकर जप करे। तदुपरान्त एक मुट्ठी सत्तू लेकर प्रणवका उच्चारण करके उसे खाये और दो बार आचमन करके नाभिका स्पर्श करे। इसके पश्चात् पूर्वमें प्रणव तथा अन्तमें स्वाहापदसे युक्त बताये जा रहे आत्मा आदि शब्दोंके [चतुर्थ्यन्त] रूपोंका पुनः जप करे। '**आत्मने स्वाहा**', '**अन्तरात्मने स्वाहा**', '**ज्ञानात्मने स्वाहा**', '**परमात्मने स्वाहा**', '**प्रजापतये स्वाहा**' [इन] मन्त्रोंका जपकर अलग-अलग दूध, दही एवं घीका तीन बार प्रणव-मन्त्र पढ़कर प्राशनकर दो बार आचमन करे और पूर्वदिशाकी ओर मुख करके एकाग्रचित्त हो स्थिरतापूर्वक आसनपर बैठकर यथोक्त विधिसे तीन प्राणायाम करे॥ ९३—९८॥

इति श्रीशिवमहापुराणे षष्ठ्यां कैलाससंहितायां संन्यासविधिवर्णनं नाम द्वादशोऽध्यायः॥ १२॥

॥ इस प्रकार श्रीशिवमहापुराणके अन्तर्गत छठी कैलाससंहितामें संन्यासविधिवर्णन नामक बारहवाँ अध्याय पूरा हुआ॥ १२॥

अथ त्रयोदशोऽध्यायः

संन्यासकी विधि

सुब्रह्मण्य उवाच

अथ मध्याह्नसमये स्नात्वा नियतमानसः।
गन्धपुष्पाक्षतादीनि पूजाद्रव्याण्युपाहरेत्॥ १

नैर्ऋत्ये पूजयेद्देवं विघ्नेशं देवपूजितम्।
गणानां त्वेति मन्त्रेणावाहयेत्सुविधानतः॥ २

रक्तवर्णं महाकायं सर्वाभरणभूषितम्।
पाशांकुशाक्षाभीष्टं च दधानं करपङ्कजैः॥ ३

एवमावाह्य सन्ध्याय शम्भुपुत्रं गजाननम्।
अभ्यर्च्य पायसापूपनालिकेरगुडादिभिः॥ ४

नैवेद्यमुत्तमं दद्यात्ताम्बूलादिमथापरम्।
परितोष्य नमस्कृत्य निर्विघ्नं प्रार्थयेत्ततः॥ ५

औपासनाग्नौ कर्त्तव्यं स्वगृह्योक्तविधानतः।
आज्यभागान्तमाग्नेयं मखतन्त्रमतः परम्॥ ६

भूःस्वाहेति त्र्यृचा पूर्णाहुतिं हुत्वा समाप्य च।
गायत्रीं प्रजपेद्यावदपराह्णमतंद्रितः॥ ७

अथ सायन्तनीं सन्ध्यामुपास्य स्नानपूर्वकम्।
सायमौपासनं हुत्वा मौनी विज्ञापयेद् गुरुम्॥ ८

श्रपयित्वा चरुं तस्मिन्समिदन्नाज्यभेदतः।
जुहुयाद्रौद्रसूक्तेन सद्योजातादिपञ्चभिः॥ ९

ब्रह्मभिश्च महादेवं सांबं वह्नौ विभावयेत्।
गौरीर्मिमाय मन्त्रेण हुत्वा गौरीमनुस्मरन्॥ १०

ततोऽग्नये स्विष्टकृते स्वाहेति जुहुयात्सकृत्।
हुत्वोपरिष्टात्तन्त्रं तु ततोऽग्नेरुत्तरे बुधः॥ ११

स्थित्वासने जपेन्मौनी चैलाजिनकुशोत्तरे।
आब्राह्मं च मुहूर्तं तु गायत्रीं दृढमानसः॥ १२

सुब्रह्मण्य बोले—इसके पश्चात् मध्याह्नकालमें स्नान करके समाहितचित्त होकर गन्ध, पुष्प, अक्षत आदि पूजन-सामग्रियोंको एकत्रित करे॥ १॥

नैर्ऋत्यकोणमें देवपूजित विघ्नेश्वर देवकी पूजा करे। पहले **'गणानां त्वा०'**—इस मन्त्रद्वारा विधि-विधानसे उनका आवाहन करे। रक्तवर्णवाले, विशालकाय, सभी आभरणोंसे विभूषित और अपने करकमलोंमें पाश-अंकुश-अक्षमाला तथा अभीष्ट (वर) मुद्रा धारण किये हुए शम्भुपुत्र गजाननका इस प्रकार आवाहन तथा ध्यान करके खीर, मालपूआ, नारियल, गुड़ आदिसे पूजन करके उत्तम नैवेद्य अर्पण करे और इसके बाद ताम्बूल दे। इस प्रकार उन्हें प्रसन्न करके नमस्कारकर निर्विघ्नताहेतु प्रार्थना करे॥ २—५॥

तत्पश्चात् अपने गृह्यसूत्रके अनुसार औपासन अग्निमें आज्यभागान्त* हवन करे और इसके बाद अग्निसम्बन्धी मखतन्त्र आरम्भ करे। **'भूः स्वाहा'** आदि तीनों व्याहृतियोंसे पूर्णाहुति प्रदानकर हवनकी क्रिया सम्पन्न करके आलस्यरहित होकर अपराह्णकालतक गायत्रीमन्त्रका जप करे॥ ६-७॥

इसके पश्चात् स्नान करके सायंकालकी सन्ध्या तथा सायंकालिक होम करनेके पश्चात् मौन हो गुरुसे आज्ञा माँगे॥ ८॥

तदुपरान्त चरुको पकाकर अग्निमें समिधा अन्न तथा घीके द्वारा रुद्रसूक्त तथा सद्योजात आदि पाँच ब्रह्ममन्त्रोंसे हवन करे तथा अग्निमें अम्बासहित महादेवकी भावना करे। पुनः गौरीका स्मरण करते हुए **'गौरीर्मिमाय'** मन्त्रसे हवन करनेके अनन्तर **'अग्नये स्विष्टकृते स्वाहा'**—इस मन्त्रसे एक बार फिर आहुति प्रदान करे। इस प्रकार निर्दिष्ट विधिसे हवनके पश्चात् बुद्धिमान् पुरुष अग्निके उत्तरकी ओर कुशा, मृगचर्म तथा वस्त्रसे समन्वित आसनपर बैठकर मौन हो स्थिर चित्तसे ब्राह्ममुहूर्तपर्यन्त गायत्रीका जप करे॥ ९—१२॥

* कुशकण्डिकाके अनन्तर अग्निमें जो चार आहुतियाँ दी जाती हैं, उनमें प्रथम दोको 'आघार' और अन्तिम दोको 'आज्यभाग' कहते हैं। प्रजापति और इन्द्रके उद्देश्यसे 'आघार' तथा अग्नि और सोमके उद्देश्यसे 'आज्यभाग' दिया जाता है।

ततः स्नात्वा त्वशक्तश्चेद्भस्मना वा विधानतः।
श्रपयित्वा चरुं तस्मिन्नग्रावेवाभिघारितम्॥ १३

उदगुद्वास्य बर्हिष्यासाद्याज्येन चरुं ततः।
अभिघार्य व्याहृतीश्च रौद्रसूक्तं च पञ्च च॥ १४

जपेद् ब्रह्माणि सन्धार्य चित्तं शिवपदांबुजे।
प्रजापतिमथेन्द्रं च विश्वेदेवास्ततः परम्॥ १५

ब्रह्माणं सचतुर्थ्यन्तं स्वाहांतान् प्रणवादिकान्।
संजप्य वाचयित्वाथ पुण्याहं च ततः परम्॥ १६

परस्तात्तंत्रमग्नये स्वाहेत्यग्निमुखावधि।
निर्वर्त्य पश्चात्प्राणाय स्वाहेत्यारभ्य पञ्चभिः॥ १७

साज्येन चरुणा पश्चादग्निं स्विष्टकृतं हुनेत्।
पुनश्च प्रजपेत्सूक्तं रौद्रं ब्रह्माणि पञ्च च॥ १८

महेशादि चतुर्व्यूहमन्त्रांश्च प्रजपेत्पुनः।
हुत्वोपरिष्टात्तन्त्रं तु स्वशाखोक्तेन वर्त्मना॥ १९

तत्तद्देवान्समुद्दिश्य साङ्गं कुर्याद्विचक्षणः।
एवमग्निमुखाद्यं यत्कर्मतन्त्रं प्रवर्तितम्॥ २०

अतः परं प्रजुहुयाद्विरजाहोममात्मनः।
षड्विंशत्तत्त्वरूपेऽस्मिन्देहे लीनस्य शुद्धये॥ २१

तत्त्वान्येतानि मद्देहे शुध्यन्तामित्यनुस्मरन्।
तत्रात्मतत्त्वशुद्ध्यर्थं मन्त्रैरारुणकेतुकैः॥ २२

पठ्यमानैः पृथिव्यादिपुरुषान्तं क्रमान्मुने।
साज्येन चरुणा मौनी शिवपादाम्बुजं स्मरन्॥ २३

पृथिव्यादि च शब्दादि वागाद्यं पञ्चकं पुनः।
श्रोत्राद्यं च शिरः पार्श्वपृष्ठोदरचतुष्टयम्॥ २४

जंघां च योजयेत्पश्चात्त्वगाद्यं धातुसप्तकम्।
प्राणाद्यं पञ्चकं पश्चादन्नाद्यं कोशपञ्चकम्॥ २५

मनश्चित्तं च बुद्धिश्चाहंकृतिः ख्यातिरेव च।
संकल्पं तु गुणाः पश्चात्प्रकृतिः पुरुषस्ततः॥ २६

तदनन्तर स्नान करके अथवा यदि [जलसे स्नान करनेमें] असमर्थ हो तो विधिपूर्वक भस्मस्नान करके उसी अग्निमें चरु पकाकर घृतसे सिक्त करे और उसे निकालकर उत्तरदिशाकी ओर कुशापर रखे और चरुमें घी मिलाकर शिवजीके चरणकमलमें ध्यान लगाकर व्याहृति, रुद्रसूक्त तथा ईशानादि पंच ब्रह्ममन्त्रोंका जप करे। इसके बाद प्रजापति, इन्द्र, विश्वेदेव तथा ब्रह्माके चतुर्थ्यन्त नामोंके आगे प्रणव तथा अन्तमें स्वाहा लगाकर जप करके पुनः पुण्याहवाचन करनेके अनन्तर '**अग्नये स्वाहा**' कहकर अग्निके मुखमें आहुति देनेतकका कार्य करे। तदनन्तर '**प्राणाय स्वाहा**' आदि पाँच मन्त्रोंसे घृतयुक्त चरुसे आहुतियाँ देकर '**अग्नये स्विष्टकृते स्वाहा**'—ऐसा कहकर हवन करे। इसके बाद फिरसे रुद्रसूक्त एवं ईशानादि पंच ब्रह्ममन्त्रोंका जप करे॥ १३—१८॥

इसके बाद महेशादि (ईशानादि) चतुर्व्यूहके मन्त्रोंका जपकर बुद्धिमान् पुरुष अपनी शाखाके अनुसार उन-उन देवगणोंको उद्देश्यकर सांग होम करे। इस तरह जो अग्निमुखादि कर्मतन्त्र प्रवृत्त किया गया है, उसका निर्वाह करे॥ १९-२०॥

तत्पश्चात् छब्बीस तत्त्वोंसे बने हुए इस शरीरमें अवस्थित तत्त्वोंकी शुद्धिके लिये विरजा होम करे। मनमें भावना करे कि 'मेरे शरीरमें विराजमान ये सभी तत्त्व शुद्ध हो जायँ; हे मुने! उस प्रसंगमें आत्मशुद्धिके निमित्त आरुणकेतुक मन्त्रोंसे पृथ्वीतत्त्वसे लेकर पुरुषतत्त्वपर्यन्त क्रमशः सभी तत्त्वोंकी शुद्धिके लिये मौन धारणकर शिवके चरणकमलका स्मरण करते हुए घृत तथा चरुसे हवन करे॥ २१—२३॥

पृथ्वी, जल, तेज, वायु और आकाश—ये पृथिव्यादिपंचक कहलाते हैं। शब्द, स्पर्श, रूप, रस और गन्ध—ये शब्दादि पंचक हैं। वाक्, पाणि, पाद, पायु तथा उपस्थ—ये वागादिपंचक हैं। श्रोत्र, नेत्र, नासिका, रसना और त्वक्—ये श्रोत्रादिपंचक हैं। शिर, पार्श्व, पृष्ठ और उदर—ये चार हैं। इन्हींमें जंघाको भी जोड़ ले। फिर त्वक् आदि सात धातुएँ हैं। प्राण, अपान आदि पाँच वायुओंको प्राणादिपंचक कहा गया है। अन्नमयादि पाँचों कोशोंको कोशपंचक

पुरुषस्य तु भोक्तृत्वं प्रतिपन्नस्य भोजने।
अन्तरंगतया तत्त्वपञ्चकं परिकीर्तितम्॥ २७

नियतिः कालरागश्च विद्या च तदनन्तरम्।
कला च पञ्चकमिदं मायोत्पन्नं मुनीश्वर॥ २८

कहते हैं। (उनके नाम इस प्रकार हैं—अन्नमय, प्राणमय, मनोमय, विज्ञानमय और आनन्दमय।) इनके सिवा मन, चित्त, बुद्धि, अहंकार, ख्याति, संकल्प, गुण, प्रकृति और पुरुष हैं। भोक्तापनको प्राप्त हुए पुरुषके लिये भोग-कालमें जो पाँच अन्तरंग साधन हैं, उन्हें तत्त्वपंचक कहा गया है। उनके नाम ये हैं—नियति, काल, राग, विद्या और कला। ये पाँचों मायासे उत्पन्न हैं॥ २४—२८॥

मायां तु प्रकृतिं विद्यादिति माया श्रुतीरिता।
तज्जान्येतानि तत्त्वानि श्रुत्युक्तानि न संशयः॥ २९

श्रुतिमें प्रकृतिको ही माया कहा गया है तथा उसी मायासे इन तत्त्वोंकी उत्पत्ति भी श्रुतिमें कही गयी है; इसमें संशय नहीं है॥ २९॥

कालस्वभावो नियतिरिति च श्रुतिरब्रवीत्।
एतत्पञ्चकमेवास्य पञ्चकञ्चुकमुच्यते॥ ३०
अजानन्पञ्चतत्त्वानि विद्वानपि च मूढधीः।
निपत्याधस्तात्प्रकृतेरुपरिष्टात्पुमानयम्॥ ३१

कालका स्वभाव ही नियति है—ऐसा श्रुतिने कहा है। इन्हीं [नियति आदि] पाँचोंके समूहको पंचकंचुक भी कहा जाता है। इन पाँच तत्त्वोंको बिना जाने विद्वान् भी मूर्ख ही होता है। प्रकृतिके नीचे नियति और ऊपर पुरुष है॥ ३०-३१॥

काकाक्षिन्यायमाश्रित्य वर्तते पार्श्वतोऽन्वहम्।
विद्यातत्त्वमिदं प्रोक्तं शुद्धविद्यामहेश्वरौ॥ ३२

सदाशिवश्च शक्तिश्च शिवश्चेदं तु पञ्चकम्।
शिवतत्त्वमिदं ब्रह्मन् प्रज्ञानं ब्रह्म वाग्यतः॥ ३३

काकाक्षिगोलकन्यायका आश्रय लेकर पुरुष नियति एवं प्रकृति दोनोंके पार्श्वमें रहता है, इसीको विद्यातत्त्व कहा गया है। शुद्ध विद्या, महेश्वर, सदाशिव, शक्ति और शिव यही पंचक या तत्त्वसमुदाय [समष्टिरूपमें] शिवतत्त्व कहा गया है। हे ब्रह्मन्! '**प्रज्ञानं ब्रह्म**' इस वाक्यसे यह शिवतत्त्व ही जाना जाता है॥ ३२-३३॥

पृथिव्यादिशिवान्तं यत्तत्त्वजातं मुनीश्वर।
स्वकारणलयद्वारा शुद्धिरस्य विधीयताम्॥ ३४

एकादशानां मन्त्राणां परस्मैपदपूर्वकम्।
शिवज्योतिश्चतुर्थ्यन्तमिदं पदमथोच्चरेत्॥ ३५

न ममेति वदेत्पश्चादुद्देशत्याग ईरितः।
अतः परं विविद्यैति कर्षोत्कायेति मन्त्रयोः॥ ३६

व्यापकाय पदस्यान्ते परमात्मन इत्यपि।
शिवज्योतिश्चतुर्थ्यन्तं विश्वभूतपदं पुनः॥ ३७

हे मुनीश्वर! पृथ्वीसे लेकर शिवपर्यन्त जो तत्त्वसमूह हैं, उसमेंसे प्रत्येकको क्रमशः अपने-अपने कारणमें लीन करते हुए उसकी शुद्धि करना चाहिये। १. पृथिव्यादिपंचक, २. शब्दादिपंचक, ३. वागादिपंचक, ४.श्रोत्रादिपंचक, ५. शिरादिपंचक, ६. त्वगादिधातुसप्तक, ७.प्राणादिपंचक, ८. अन्नमयादिकोश-पंचक, ९. मन आदि पुरुषान्त तत्त्व, १०. नियत्यादि तत्त्वपंचक (अथवा पंचकंचुक) और ११. शिवतत्त्व-पंचक—ये ग्यारह वर्ग हैं; इन एकादश-वर्गसम्बन्धी मन्त्रोंके अन्तमें '**परस्मै शिवज्योतिषे इदं न मम**' इस वाक्यका उच्चारण करे*। इसके द्वारा अपने उद्देश्यका त्याग बताया गया है। इसके बाद 'विविद्या' तथा

* यथा—'पृथिव्यादिपञ्चकं मे शुध्यतां ज्योतिरहं विरजा विपाप्मा भूयासꣳस्वाहा—पृथिव्यादिपञ्चकाय परस्मै शिवज्योतिषे इदं न मम।'

घसनोत्सुकशब्दश्च चतुर्थ्यन्तमथो वदेत्।
परस्मैपदमुच्चार्य देवाय पदमुच्चरेत्॥ ३८

'कर्षोत्क' सम्बन्धी मन्त्रोंके अन्तमें अर्थात् 'विविद्यायै स्वाहा', 'कर्षोत्काय स्वाहा' इनके अन्तमें स्वत्वत्यागके लिये '**व्यापकाय परमात्मने शिवज्योतिषे विश्वभूतघसनोत्सुकाय परस्मै देवाय इदं न मम**' इसका उच्चारण करे॥ ३४—३८॥

उत्तिष्ठस्वेति मन्त्रस्य विश्वरूपाय शब्दतः।
पुरुषाय पदं ब्रूयादोंस्वाहेत्यस्य संवदेत्॥ ३९

इसके अनन्तर '**उत्तिष्ठस्व विश्वरूपाय पुरुषाय ॐ स्वाहा**'—इस प्रकार उच्चारणकर आहुति प्रदान करे॥ ३९॥

लोकत्रयपदस्यान्ते व्यापिने परमात्मने।
शिवायेदं न मम च पदं ब्रूयादतः परम्॥ ४०
स्वशाखोक्तप्रकारेण पुरस्तात्तन्त्रकर्म च।
निर्वर्त्य सर्पिषा मिश्रं चरुं प्राश्य पुरोधसे॥ ४१
प्रदद्याद् दक्षिणां तस्मै हेमादिपरिबृंहिताम्।
ब्रह्माणमुद्वास्य ततः प्रातरौपासनं हुनेत्॥ ४२

तदनन्तर '**त्रैलोक्यव्यापिने परमात्मने शिवाय इदं न मम**'—ऐसा कहे और पुनः अपनी शाखाके अनुसार पहले तन्त्रकर्म समाप्तकर घृतयुक्त चरुका प्राशन कराके अपने पुरोहितको सुवर्णादिसे युक्त दक्षिणा प्रदान करे। पुनः ब्रह्माको विसर्जित करके प्रातःकाल होनेपर औपासनिक हवन करे॥ ४०—४२॥

सं मा सिञ्चन्तु मरुत इति मन्त्रं जपेन्नरः।
याते अग्न इत्यनेन मन्त्रेणाग्नौ प्रताप्य च॥ ४३
हस्तमग्नौ समारोप्य स्वात्मन्यद्वैतधामनि।
प्राभातिकीं ततः सन्ध्यामुपास्यादित्यमप्यथ॥ ४४
उपस्थाय प्रविश्याप्सु नाभिदघ्नं प्रवेशयन्।
तन्मन्त्रान् प्रजपेत्प्रीत्या निश्चलात्मा समुत्सुकः॥ ४५

तत्पश्चात् साधक '**सं मा सिञ्चन्तु मरुतः**' इस मन्त्रका जप करे और '**या ते अग्ने**'—इस मन्त्रके द्वारा हाथको अग्निमें तपाकर अद्वैत धामस्वरूप अपनी आत्मामें अग्निको आरोपित करे। इसके पश्चात् प्रभातकालीन सन्ध्योपासन तथा सूर्योपस्थान करके नाभिमात्र जलमें प्रविष्ट हो स्थिरचित्त तथा श्रद्धायुक्त होकर प्रेमपूर्वक सूर्यके मन्त्रोंका जप करे॥ ४३—४५॥

आहिताग्निस्तु यः कुर्यात्प्राजापत्येष्टिमाहिते।
श्रौते वैश्वानरे सम्यक् सर्ववेदसदक्षिणाम्॥ ४६

यदि अग्निहोत्रीको विरजा होम करना हो तो वह स्थापित अग्निमें प्राजापत्येष्टि करे, फिर अच्छी प्रकार श्रौताग्निमें हवनकर दक्षिणाके सहित समस्त वेदोंका दान करे॥ ४६॥

अथाग्निमात्मन्यारोप्य ब्राह्मणः प्रव्रजेद् गृहात्।
सावित्रीप्रथमं पादं सावित्रीमित्युदीर्य च॥ ४७
प्रवेशयामि शब्दान्ते भूरोमिति च संवदेत्।
द्वितीयं पादमुच्चार्य सावित्रीमिति पूर्ववत्॥ ४८
प्रवेशयामि शब्दान्ते भुवरोमिति संवदेत्।
तृतीयं पादमुच्चार्य सावित्रीमित्यतः परम्॥ ४९
प्रवेशयामि शब्दान्ते सुवरोमित्युदीरयेत्।
त्रिपादमुच्चरेत्पूर्वं सावित्रीमित्यतः परम्॥ ५०
प्रवेशयामि शब्दान्ते भूर्भुवः सुवरोमिति।
उदीरयेत्परं प्रीत्या निश्चलात्मा मुनीश्वर॥ ५१

तदनन्तर अपनी आत्मामें अग्निको धारणकर साधक घरसे निकल जाय। इसके बाद गायत्रीके प्रथम पादका उच्चारण करके '**सावित्रीं प्रवेशयामि**'—ऐसा कहकर '**भूरोम्**' यह बोले इसके बाद दूसरे पादका उच्चारण करके '**सावित्रीं प्रवेशयामि**' कहकर '**भुवरोम्**'—ऐसा कहे। इसके अनन्तर तीसरे पादका उच्चारण करके '**सावित्रीं प्रवेशयामि**' शब्दके अन्तमें '**सुवरोम्**'—ऐसा कहे। हे मुनीश्वर! इसके बाद निश्चल मनवाला होकर प्रेमपूर्वक तीनों पादोंका एक साथ उच्चारण करे और बादमें '**सावित्रीं प्रवेशयामि**' कहकर '**भूर्भुव-स्सुवरोम्**'-का उच्चारण करे॥ ४७—५१॥

इयं भगवती साक्षाच्छंकरार्द्धशरीरिणी।
पञ्चवक्त्रा दशभुजा त्रिपञ्चनयनोज्ज्वला॥ ५२

नवरत्नकिरीटोद्यच्चन्द्रलेखावतंसिनी।
शुद्धस्फटिकसंकाशा दशायुधधरा शुभा॥ ५३

हारकेयूरकटककिंकिणीनूपुरादिभिः।
भूषितावयवा दिव्यवसना रत्नभूषणा॥ ५४

ये भगवती सावित्री साक्षात् शंकरकी अर्धांगिनी हैं, पाँच मुख-दस भुजाएँ तथा पंद्रह नेत्रोंसे समन्वित हैं, इनके शरीरका वर्ण अत्यन्त उज्ज्वल है, नवरत्नसे जटित इनका किरीट मस्तकपर चन्द्रमाकी लेखासे सुशोभित हो रहा है, शुद्ध स्फटिकके समान इनके शरीरकी कान्ति है, मंगलमयी ये हाथोंमें दस आयुध धारण की हुई हैं, इनके अंगोंमें हार-केयूर-किंकिणी तथा नूपुर आदि आभूषण सुशोभित हो रहे हैं, ये दिव्य वस्त्र तथा रत्नोंके आभूषणोंसे मण्डित हैं॥ ५२—५४॥

विष्णुना विधिना देवऋषिगंधर्वदानवैः।
मानवैश्च सदा सेव्या सर्वात्मव्यापिनी शिवा॥ ५५

सदाशिवस्य देवस्य धर्मपत्नी मनोहरा।
जगदम्बा त्रिजननी त्रिगुणा निर्गुणाप्यजा॥ ५६

ये शिवा सर्वव्यापिनी हैं एवं विष्णु, ब्रह्मा, देवता, ऋषि, गन्धर्व, दानव एवं मनुष्योंसे सर्वदा सेवनीय हैं, ये सदाशिवकी मनोहर धर्मपत्नी हैं, जगदम्बा हैं, तीनों लोकोंको उत्पन्न करनेवाली हैं, त्रिगुणात्मिका, निर्गुणा एवं अजा हैं॥ ५५-५६॥

इत्येवं संविचार्याथ गायत्रीं प्रजपेत्सुधीः।
आदिदेवीं च त्रिपदां ब्राह्मणत्वादिदामजाम्॥ ५७

यो ह्यन्यथा जपेत्पापो गायत्रीं शिवरूपिणीम्।
स पच्यते महाघोरे नरके कल्पसंख्यया॥ ५८

इस प्रकारका विचार करके बुद्धिमान् पुरुषको गायत्रीका जप करना चाहिये; क्योंकि ये आदिदेवी हैं, त्रिपदा हैं, ब्राह्मणत्व आदि प्रदान करनेवाली एवं अजा हैं। जो पापी शास्त्रीयविधिका अतिक्रमणकर शिवरूपा गायत्रीका जप करते हैं, वे कल्पपर्यन्त नरकमें यातना प्राप्त करते हैं॥ ५७-५८॥

सा व्याहृतिभ्यः संजाता तास्वेव विलयं गता।
ताश्च प्रणवसम्भूता प्रणवे विलयं गताः॥ ५९

व्याहृतियोंसे ही गायत्री उत्पन्न हुई हैं और उन्हींमें लीन हो जाती हैं और व्याहृतियाँ प्रणवसे उत्पन्न होकर उसीमें लीन होती हैं॥ ५९॥

प्रणवः सर्ववेदादिः प्रणवः शिववाचकः।
मन्त्राधिराजराजश्च महाबीजं मनुः परः॥ ६०

सम्पूर्ण वेदोंका आदि प्रणव ही है तथा शिवका वाचक भी प्रणव ही है। यह श्रेष्ठ मन्त्र मन्त्रोंका राजाधिराज तथा महाबीजस्वरूप है॥ ६०॥

शिवो वा प्रणवो ह्येष प्रणवो वा शिवः स्मृतः।
वाच्यवाचकयोर्भेदो नात्यन्तं विद्यते यतः॥ ६१

प्रणव ही शिव और शिव ही प्रणव कहे गये हैं; क्योंकि वाचक और वाच्यमें कुछ भी भेद नहीं है॥ ६१॥

एनमेव महामन्त्रं जीवानां च तनुत्यजाम्।
काश्यां संश्राव्य मरणे दत्ते मुक्तिं परां शिवः॥ ६२

तस्मादेकाक्षरं देवं शिवं परमकारणम्।
उपासते यतिश्रेष्ठा हृदयाम्भोजमध्यगम्॥ ६३

काशीमें मृत्यु प्राप्त करते समय शिवजी प्राणियोंको इसी मन्त्रका उपदेश देकर मुक्त करते हैं। इसीलिये एकाक्षर-स्वरूप, दिव्य, मंगलमय तथा परमकारणरूप इस मन्त्रकी यतिश्रेष्ठ हृदयकमलमें उपासना करते हैं॥ ६२-६३॥

मुमुक्षवोऽपरे धीरा विरक्ता लौकिका नराः।
विषयान्मनसा ज्ञात्वोपासते परमं शिवम्॥ ६४

अन्य मुमुक्षु, धीर, विरक्त तथा लौकिक पुरुष भी इन विषयोंको अच्छी तरह जानकर परमकल्याणमय प्रणवकी उपासना करते हैं॥ ६४॥

एवं विलाप्य गायत्रीं प्रणवे शिववाचके।
अहं वृक्षस्य रेरिवेत्यनुवाकं जपेत्पुनः॥ ६५

यश्छन्दसामामृषभ इत्यनुवाकमुपक्रमात्।
गोपायान्तं जपन्पश्चादुत्थितोऽहमितीरयेत्॥ ६६

वदेज्जपेत् त्रिधा मन्दमध्योच्छ्रायक्रमान्मुने।
प्रणवं पूर्वमुद्धृत्य सृष्टिस्थितिलयक्रमात्॥ ६७

तेषामथ क्रमाद्ब्रूयाद्भूः संन्यस्तम्भुवस्तथा।
संन्यस्तं सुवरित्युक्त्वा संन्यस्तं पदमुच्चरन्॥ ६८

सर्वमन्त्रान्त प्रदेशे मयेति च पदं वदेत्।
प्रणवं पूर्वमुद्धृत्य समष्टिव्याहृतीर्वदेत्॥ ६९

समस्तमित्यतो ब्रूयान्मयेति च समब्रवीत्।
सदाशिवं हृदि ध्यात्वा मंदादीति ततो मुने॥ ७०

प्रैषमन्त्रांस्तु जप्त्वैवं सावधानेन चेतसा।
अभयं सर्वभूतेभ्यो मत्तः स्वाहेति संजपन्॥ ७१

प्राच्यां दिश्यप उद्धृत्य प्रक्षिपेदंजलिं ततः।
शिखां यज्ञोपवीतं च यत्रोत्पाट्य च पाणिना॥ ७२

गृहीत्वा प्रणवं भूश्च समुद्रं गच्छ संवदेत्।
वह्निजायां समुच्चार्य सोदकाञ्जलिना ततः॥ ७३

अप्सु हुयादथ प्रैषैरभिमन्त्र्य त्रिधा त्वपः।
प्राश्य तीरे समागत्य भूमौ वस्त्रादिकं त्यजेत्॥ ७४

इस प्रकार गायत्रीको शिववाचक प्रणवमें लीन करनेके पश्चात् **'अहं वृक्षस्य रेरिवा'**[1]—इस अनुवाकका जप करना चाहिये॥ ६५॥

तत्पश्चात् **'यश्छन्दसामृषभः'** (तैत्तिरीय० १।४।१)—इस अनुवाकको आरम्भसे लेकर……**'श्रुतं मे गोपाय'**[2] तक पढ़कर कहे—**'दारैषणायाश्च वित्तैषणायाश्च लोकैषणायाश्च व्युत्थितोऽहम्'** अर्थात् 'मैं स्त्रीकी कामना, धनकी कामना और लोकोंमें ख्यातिकी कामनासे ऊपर उठ गया हूँ।' मुने! इस वाक्यका मन्द, मध्यम और उच्चस्वरसे क्रमशः तीन बार उच्चारण करे। तत्पश्चात् सृष्टि, स्थिति और लयके क्रमसे पहले प्रणवमन्त्रका उद्धार करे, फिर क्रमशः इन वाक्योंका उच्चारण करे—**'ॐ भूः संन्यस्तं मया', 'ॐ भुवः संन्यस्तं मया', 'ॐ सुवः संन्यस्तं मया', 'ॐ भूर्भुवः सुवः संन्यस्तं मया'**[3] इन वाक्योंका मन्द, मध्यम और उच्चस्वरसे हृदयमें सदाशिवका ध्यान करते हुए सावधान चित्तसे उच्चारण करे। तदनन्तर **'अभयं सर्वभूतेभ्यो मत्तः स्वाहा'** (मेरी ओरसे सब प्राणियोंको अभयदान दिया गया)—ऐसा कहते हुए पूर्व दिशामें एक अंजलि जल लेकर छोड़े। इसके बाद शिखाके शेष बालोंको हाथसे उखाड़ डाले और यज्ञोपवीतको निकालकर जलके साथ हाथमें ले इस प्रकार कहे—**'ॐ भूः समुद्रं गच्छ स्वाहा'** यों कहकर उसका जलमें होम कर दे। फिर **'ॐ भूः संन्यस्तं मया', 'ॐ भुवः संन्यस्तं मया', 'ॐ सुवः संन्यस्तं मया'**—इस प्रकार तीन बार कहकर तीन बार जलको अभिमन्त्रित करके उसका

---

१. अहं वृक्षस्य रेरिवा। कीर्तिः पृष्ठं गिरेरिव। ऊर्ध्वपवित्रो वाजिनीव स्वमृतमस्मि। द्रविणं सवर्चसम्। सुमेधा अमृतोक्षितः। इति त्रिशङ्कोर्वेदानुवचनम्। (तैत्तिरीय० १।१०।१)

२. 'मैं संसारवृक्षका उच्छेद करनेवाला हूँ, मेरी कीर्ति पर्वतके शिखरकी भाँति उन्नत है; अन्नोत्पादक शक्तिसे युक्त सूर्यमें जैसे उत्तम अमृत है, उसी प्रकार मैं भी अतिशय पवित्र अमृतस्वरूप हूँ तथा मैं प्रकाशयुक्त धनका भण्डार हूँ, परमानन्दमय अमृतसे अभिषिक्त तथा श्रेष्ठ बुद्धिवाला हूँ—इस प्रकार यह त्रिशंकु ऋषिका अनुभव किया हुआ वैदिक प्रवचन है।'

३. यश्छन्दसामृषभो विश्वरूपः। छन्दोभ्योऽध्यमृतात्सम्बभूव। स मेन्द्रो मेधया स्पृणोतु। अमृतस्य देव धारणो भूयासम। शरीरं मे विचर्षणम्। जिह्वा मे मधुमत्तमा। कर्णाभ्यां भूरि विश्रुवम्। ब्रह्मणः केशोऽसि मेधया पिहितः श्रुतं मे गोपाय।

'जो वेदोंमें सर्वश्रेष्ठ है, सर्वरूप है और अमृतस्वरूप वेदोंसे प्रधानरूपमें प्रकट हुआ है, वह सबका स्वामी परमेश्वर मुझे धारणायुक्त बुद्धिसे सम्पन्न करे। हे देव! मैं आपकी कृपासे अमृतमय परमात्माको अपने हृदयमें धारण करनेवाला बन जाऊँ। मेरा शरीर विशेष फुर्तीला—सब प्रकारसे रोगरहित हो और मेरी जिह्वा अतिशय मधुमती (मधुरभाषिणी) हो जाय। मैं दोनों कानोंद्वारा अधिक सुनता रहूँ। (हे प्रणव! तू) लौकिक बुद्धिसे ढकी हुई परमात्माकी निधि है। तू मेरे सुने हुए उपदेशकी रक्षा करे।'

उदङ्मुखः प्राङ्मुखो वा गच्छेत् सप्तपदाधिकम्।
किञ्चिद्दूरमथाचार्यस्तिष्ठ तिष्ठेति संवदेत्॥ ७५

लोकस्य व्यवहारार्थं कौपीनं दण्डमेव च।
भगवन्स्वीकुरुष्वेति दद्यात्स्वेनैव पाणिना॥ ७६

दत्त्वा सुदोरं कौपीनं काषायवसनं ततः।
आच्छाद्याचम्य च द्वेधा तं शिष्यमिति संवदेत्॥ ७७

इन्द्रस्य वज्रोऽसि तत इति मन्त्रमुदाहरेत्।
सम्प्रार्थ्य दण्डं गृह्णीयात्सखामा इति संजपन्॥ ७८

अथ गत्वा गुरोः पार्श्वं शिवपादांबुजं स्मरन्।
प्रणमेद्दण्डवद्भूमौ त्रिवारं संयतात्मवान्॥ ७९

पुनरुत्थाय च शनैः प्रेम्णा पश्यन्गुरुं निजम्।
कृताञ्जलिपुटस्तिष्ठेद्गुरुपादसमीपतः ॥ ८०

कर्मारम्भात्पूर्वमेव गृहीत्वा गोमयं शुभम्।
स्थूलामलकमात्रेण कृत्वा पिण्डान्विशोषयेत्॥ ८१

सौरैस्तु किरणैरेव होमारम्भाग्निमध्यगान्।
निक्षिप्य होमसम्पूर्त्तौ भस्म सङ्गृह्य गोपयेत्॥ ८२

ततो गुरुः समादाय विरजानलजं सितम्।
भस्म तेनैव तं शिष्यमग्निरित्यादिभिः क्रमात्॥ ८३

आचमन करे। फिर जलाशयके किनारे आकर वस्त्र और कटिसूत्रको भूमिपर त्याग दे तथा उत्तर या पूर्वकी ओर मुँह करके सात पदसे कुछ अधिक चले। कुछ दूर जानेपर आचार्य उससे कहे, 'ठहरो, ठहरो भगवन्! लोक-व्यवहारके लिये कौपीन और दण्ड स्वीकार करो।' यों कह आचार्य अपने हाथसे ही उसे कटिसूत्र और कौपीन देकर गेरुआ वस्त्र भी अर्पित करे। तत्पश्चात् संन्यासी जब उससे अपने शरीरको ढककर दो बार आचमन कर ले तब आचार्य शिष्यसे कहे—'**इन्द्रस्य वज्रोऽसि**' यह मन्त्र बोलकर दण्ड ग्रहण करो। तब वह इस मन्त्रको पढ़े और '**सखा मा गोपायौजः सखा योऽसीन्द्रस्य वज्रोऽसि वार्त्रघ्नः शर्म मे भव यत्पापं तन्निवारय**'*—इस मन्त्रका उच्चारण करते हुए दण्डकी प्रार्थना करके उसे हाथमें ले। (तत्पश्चात् प्रणव या गायत्रीका उच्चारण करके कमण्डलु ग्रहण करे।)

तदनन्तर भगवान् शिवके चरणारविन्दका चिन्तन करते हुए गुरुके निकट जा वह तीन बार पृथ्वीमें लोटकर दण्डवत् प्रणाम करे। उस समय वह अपने मनको पूर्णतया संयममें रखे। फिर धीरेसे उठकर प्रेमपूर्वक अपने गुरुकी ओर देखते हुए हाथ जोड़ उनके चरणोंके समीप खड़ा हो जाय। संन्यास-दीक्षा-विषयक कर्म आरम्भ होनेके पहले ही शुद्ध गोबर लेकर आँवले बराबर उसके गोले बना ले और सूर्यकी किरणोंसे ही उन्हें सुखाये। फिर होम आरम्भ होनेपर उन गोलोंको होमाग्निके बीचमें डाल दे। होम समाप्त होनेपर उन सबको संग्रह करके सुरक्षित रखे। तदनन्तर दण्डधारणके पश्चात् गुरु विरजाग्निजनित उस श्वेत भस्मको लेकर उसीको शिष्यके अंगोंमें लगाये अथवा उसे लगानेकी आज्ञा दे। उसका क्रम इस प्रकार है—'**ॐ अग्निरिति भस्म वायुरिति भस्म जलमिति भस्म स्थलमिति भस्म व्योमेति भस्म सर्वꣳह वा इदं भस्म मन एतानि चक्षूꣳषि**' इस मन्त्रसे भस्मको अभिमन्त्रित करे। तदनन्तर ईशानादि पाँच

* मैंने भूलोकका संन्यास (पूर्णतः त्याग) कर दिया। मैंने भुवः (अन्तरिक्ष) लोकका परित्याग कर दिया तथा मैंने स्वर्गलोकका भी सर्वथा त्याग कर दिया। मैंने भूर्लोक, भुवर्लोक और स्वर्गलोक—इन तीनोंको भलीभाँति त्याग दिया।

मन्त्रैरङ्गानि संस्पृश्य मूर्धादिचरणान्ततः।
ईशानाद्यैः पञ्चमन्त्रैः शिर आरभ्य सर्वतः॥ ८४

समुद्धृत्य विधानेन त्रिपुण्ड्रं धारयेत्ततः।
त्रियायुषैस्त्र्यम्बकैश्च मूर्ध्न आरभ्य च क्रमात्॥ ८५

मन्त्रोंद्वारा उस भस्मका शिष्यके अंगोंसे स्पर्श कराकर उसे मस्तकसे लेकर पैरोंतक सर्वांगमें लगानेके लिये दे दे। शिष्य उस भस्मको विधिपूर्वक हाथमें लेकर **'त्र्यायुषम्०'**[१] तथा **'त्र्यम्बकम्०'**[२] इन दोनों मन्त्रोंको तीन-तीन बार पढ़ते हुए ललाट आदि अंगोंमें क्रमशः त्रिपुण्ड्र धारण करे॥ ६६—८५॥

ततः सद्भक्तियुक्तेन चेतसा शिष्यसत्तमः।
हृत्पंकजे समासीनं ध्यायेच्छिवमुमासखम्॥ ८६

इसके पश्चात् अत्यन्त भक्तिभावसे समन्वित हो उत्तम शिष्य अपने हृदयकमलमें विराजमान उमासहित शिवजीका ध्यान करे॥ ८६॥

हस्तं निधाय शिरसि शिष्यस्य स गुरुर्वदेत्।
त्रिवारं प्रणवं दक्षकर्णे ऋष्यादिसंयुतम्॥ ८७

ततः कृत्वा च करुणां प्रणवस्यार्थमादिशेत्।
षड्विधार्थपरिज्ञानसहितं गुरुसत्तमः॥ ८८

गुरु प्रसन्नतापूर्वक शिष्यके सिरपर हाथ रखकर दाहिने कानमें तीन बार ऋषि, छन्द, देवतासहित प्रणवमन्त्रका उपदेश करे। इसके बाद श्रेष्ठ गुरु शिष्यपर करुणा करके छः प्रकारके अर्थोंसे युक्त प्रणवके तात्पर्यको भी समझाये॥ ८७-८८॥

द्विषट्प्रकारं स गुरुं प्रणमेद्भुवि दण्डवत्।
तदधीनो भवेन्नित्यं नान्यत्कर्म समाचरेत्॥ ८९

शिष्य भी पृथ्वीपर दण्डवत् गिरकर बारह बार गुरुको प्रणाम करे और सदा गुरुके अधीन रहे तथा [उनकी आज्ञाके बिना] अन्य कर्म न करे॥ ८९॥

तदाज्ञया ततः शिष्यो वेदान्तार्थानुसारतः।
शिवज्ञानपरो भूयात्सगुणागुणभेदतः॥ ९०

ततस्तेनैव शिष्येण श्रवणाद्यङ्गपूर्वकम्।
प्राभातिकाद्यनुष्ठानं जपान्ते कारयेद् गुरुः॥ ९१

गुरुकी आज्ञासे शिष्य सर्वदा वेदान्तके अर्थके अनुसार सगुण एवं निर्गुण भेदसे शिवज्ञानमें तत्पर रहे। गुरु सर्वदा श्रवण, मनन, निदिध्यासन, प्रातःकालिक अनुष्ठान तथा अन्तमें जपादि कार्य उस शिष्यसे कराता रहे॥ ९०-९१॥

पूजां च मण्डले तस्मिन्कैलासप्रस्तराह्वये।
शिवोदितेन मार्गेण शिष्यस्तत्रैव पूजयेत्॥ ९२

शिष्य भी कैलासप्रस्तर नामक मण्डलमें शिवजीद्वारा कही गयी विधिके अनुसार शिवपूजन करता रहे॥ ९२॥

देवं नित्यमशक्तश्चेत्पूजितं गुरुणा शुभम्।
स्फाटिकं पीठिकोपेतं गृह्णीयाल्लिंगमैश्वरम्॥ ९३

वरं प्राणपरित्यागश्छेदनं शिरसोऽपि मे।
न त्वनभ्यर्च्य भुञ्जीयां भगवन्तं त्रिलोचनम्॥ ९४

एवं त्रिवारमुच्चार्य शपथं गुरुसन्निधौ।
कुर्याद् दृढमनाः शिष्यः शिवभक्तिं समुद्वहन्॥ ९५

यदि शिष्य गुरुके आज्ञानुसार मण्डलमें शिवजीका सदा पूजन करनेमें असमर्थ हो, तो गुरुसे शिवका पीठयुक्त स्फटिक लिंग ग्रहणकर उसीकी पूजा करे। चाहे मेरे प्राण चले जायँ अथवा भले ही सिर कटा लेना पड़े, किंतु भलीभाँति भगवान् त्र्यम्बकका अर्चन किये बिना कभी भी भोजन नहीं करूँगा, इस प्रकार शिवभक्ति रखते हुए वह शिष्य गुरुके समीप दृढ़चित्त होकर तीन बार उच्चारण करके शपथ ग्रहण करे।

१-त्र्यायुषं जमदग्नेः कश्यपस्य त्र्यायुषम्। यद्देवेषु त्र्यायुषं तन्नोऽस्तु त्र्यायुषम्॥ (यजुर्वेद ३। ६२)
२-त्र्यम्बकं यजामहे सुगन्धिं पुष्टिवर्धनम्। उर्वारुकमिव बन्धनान्मृत्योर्मुक्षीय मामृतात्॥ (यजुर्वेद ३। ६०)

तत एव महादेवं नित्यमुद्युक्तमानसः।
पूजयेत्परया भक्त्या पञ्चावरणमार्गतः॥ ९६

इसके बाद शिवभक्तिमें तत्पर मनवाला वह पंचावरण मार्गसे परम भक्तिके साथ नित्य महादेवका पूजन करे॥ ९३—९६॥

इति श्रीशिवमहापुराणे षष्ठ्यां कैलाससंहितायां संन्यासविधिर्नाम त्रयोदशोऽध्यायः॥ १३॥

॥ इस प्रकार श्रीशिवमहापुराणके अन्तर्गत छठी कैलाससंहितामें संन्यासविधि नामक तेरहवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ १३॥

अथ चतुर्दशोऽध्यायः

शिवस्वरूप प्रणवका वर्णन

वामदेव उवाच

भगवन्षण्मुखाशेषविज्ञानामृतवारिधे।
विश्वामरेश्वरसुत प्रणतार्त्तिप्रभञ्जन॥ १

षड्विधार्थपरिज्ञानमिष्टदं किमुदाहृतम्।
के तत्र षड्विधा अर्थाः परिज्ञानं च किं प्रभो॥ २

प्रतिपाद्यश्च कस्तस्य परिज्ञाने च किं फलम्।
एतत्सर्वं समाचक्ष्व यद्यत्पृष्टं मया गुह॥ ३

वामदेव बोले—हे भगवन्! हे षण्मुख! हे सम्पूर्ण विज्ञानरूपी अमृतके सागर! हे समस्त देवताओंके स्वामी शिवजीके पुत्र! हे शरणागतोंके दुःखके विनाशक! आपने कहा कि प्रणवके छः प्रकारोंके अर्थोंका ज्ञान अभीष्ट प्रदान करनेवाला है—वह क्या है, उसमें छः प्रकारके कौन-से अर्थ हैं, उनका ज्ञान किस प्रकारसे किया जा सकता है, उसका प्रतिपाद्य कौन है और उसके परिज्ञानका फल क्या है? हे कार्तिकेय! मैंने जो-जो पूछा है, यह सब बताइये॥ १—३॥

एतमर्थमविज्ञाय पशुशास्त्रविमोहितः।
अद्याप्यहं महासेन भ्रान्तश्च शिवमायया॥ ४

हे महासेन! इस अर्थको बिना जाने पशुशास्त्रसे मोहित हुआ मैं आज भी शिवजीकी मायासे भ्रमित हो रहा हूँ॥ ४॥

अहं शिवपदद्वंद्वज्ञानामृतरसायनम्।
पीत्वा विगतसम्मोहो भविष्यामि यथा तथा॥ ५
कृपामृतार्द्रया दृष्ट्या विलोक्य सुचिरं मयि।
कर्त्तव्योऽनुग्रहः श्रीमत्पादाब्जशरणागते॥ ६

मैं अब जिस प्रकार शिवजीके चरणयुगलके ज्ञानामृत रसायनका पानकर मायासे रहित हो जाऊँ, वैसा कीजिये। कृपामृतसे आर्द्र दृष्टिसे निरन्तर मेरी ओर देखकर आपके ऐश्वर्यमय चरणकमलकी शरणमें आये हुए मुझपर अनुग्रह कीजिये॥ ५-६॥

इति श्रुत्वा मुनीन्द्रोक्तं ज्ञानशक्तिधरो विभुः।
प्राहान्यदर्शनमहासंत्रासजनकं वचः॥ ७

मुनिवरकी यह बात सुनकर ज्ञानशक्तिको धारण करनेवाले वे प्रभु शिवशास्त्रको विपरीत माननेवालोंको महान् भय उत्पन्न करनेवाला वचन कहने लगे॥ ७॥

सुब्रह्मण्य उवाच

श्रूयतां मुनिशार्दूल त्वया यत्पृष्टमादरात्।
समष्टिव्यष्टिभावेन परिज्ञानं महेशितुः॥ ८

प्रणवार्थपरिज्ञानरूपं तद्विस्तरादहम्।
वदामि षड्विधार्थैक्यपरिज्ञानेन सुव्रत॥ ९

सुब्रह्मण्य बोले—हे मुनिशार्दूल! आपने आदरपूर्वक समष्टि तथा व्यष्टि भावसे [इस जगत्‌में विराजमान] महेश्वरके जिस परिज्ञानको पूछा है, उसे सुनिये। हे सुव्रत! मैं उस प्रणवार्थपरिज्ञानरूप एक ही विषयको छः प्रकारके तात्पर्योंकी [वस्तुतः] एकताके परिज्ञानसहित विस्तारपूर्वक बता रहा हूँ॥ ८-९॥

प्रथमो मन्त्ररूपः स्याद् द्वितीयो मन्त्रभावितः।
देवतार्थस्तृतीयोऽर्थः प्रपञ्चार्थस्ततः परम्॥ १०
चतुर्थः पञ्चमार्थः स्याद् गुरुरूपप्रदर्शकः।
षष्ठः शिष्यात्मरूपोऽर्थः षड्विधार्थाः प्रकीर्तिताः॥ ११
तत्र मन्त्रस्वरूपं ते वदामि मुनिसत्तम।
येन विज्ञातमात्रेण महाज्ञानी भवेन्नरः॥ १२

पहला मन्त्ररूप अर्थ, दूसरा यन्त्ररूप अर्थ, तीसरा देवताबोधक अर्थ, चौथा प्रपंचरूप अर्थ, पाँचवाँ गुरुरूपको दिखानेवाला अर्थ और छठा शिष्यके स्वरूपका बोधक अर्थ—ये छः प्रकारके अर्थ कहे गये हैं। हे मुनिश्रेष्ठ! मैं उनमें मन्त्ररूप अर्थको आपसे कहता हूँ, जिसे जाननेमात्रसे मनुष्य महाज्ञानी हो जाता है॥ १०—१२॥

आद्यः स्वरः पञ्चमश्च पञ्चमान्तस्ततः परः।
बिन्दुनादौ च पञ्चार्णाः प्रोक्ता वेदैर्न चान्यथा॥ १३

एतत्समष्टिरूपो हि वेदादिः समुदाहृतः।
नादः सर्वसमष्टिः स्याद् बिन्द्वाढ्यं यच्चतुष्टयम्॥ १४

व्यष्टिरूपेण संसिद्धं प्रणवे शिववाचके।
यंत्ररूपं शृणु प्राज्ञ शिवलिंगं तदेव हि॥ १५

पहला स्वर अकार, दूसरा स्वर उकार, पाँचवें वर्गका अन्तिम वर्ण मकार, बिन्दु एवं नाद—ये ही पाँच वर्ण वेदोंके द्वारा ओंकारमें कहे गये हैं, दूसरे नहीं। इनका समष्टिरूप ॐकार ही वेदका आदि कहा गया है। नाद सर्वसमष्टिरूप है और बिन्दुसहित जो चार वर्णोंका समूह है, वह शिववाचक प्रणवमें व्यष्टिरूपसे प्रतिष्ठित है। हे प्राज्ञ! अब यन्त्ररूप सुनें; वही शिवलिंगस्वरूप है॥ १३—१५॥

सर्वाधस्ताल्लिखेत्पीठं तदूर्ध्वं प्रथमं स्वरम्।
उवर्णं च तदूर्ध्वस्थं पवर्गान्तं तदूर्ध्वगम्॥ १६

तन्मस्तकस्थं बिंदुं च तदूर्ध्वं नादमालिखेत्।
यंत्रे संपूर्णतां याते सर्वकामः प्रसिध्यति॥ १७

एवं यन्त्रं समालिख्य प्रणवेनैव वेष्टयेत्।
तदुत्थेनैव नादेन विद्यान्नादावसानकम्॥ १८

सबसे नीचे पीठकी रचना करे। उसके ऊपर प्रथम स्वर अकार, उसके ऊपर उकार, उसके ऊपर पवर्गका अन्तिम वर्ण मकार, उसके मस्तकपर बिन्दु और उसके ऊपर [अर्धचन्द्राकार] नाद लिखे। इस प्रकार यन्त्रके पूर्ण हो जानेपर सभी कामनाएँ सिद्ध हो जाती हैं। इस रीतिसे यन्त्रको लिखकर उसे ॐकारसे वेष्टित करे। उससे उठे हुए नादसे ही नादकी पूर्णताको जाने॥ १६—१८॥

देवतार्थं प्रवक्ष्यामि गूढं सर्वत्र यन्मुने।
तव स्नेहाद् वामदेव यथा शंकरभाषितम्॥ १९
सद्योजातं प्रपद्यामीत्युपक्रम्य सदाशिवोम्।
इति प्राह श्रुतिस्तारं ब्रह्मपञ्चकवाचकम्॥ २०

हे मुने! हे वामदेव! अब मैं शिवजीद्वारा कहे गये देवतार्थको, जो सर्वत्र गूढ़ है, आपके स्नेहवश कह रहा हूँ। श्रुतिने स्वयं '**सद्योजातं प्रपद्यामि**' से **सदाशिवोम्**' पर्यन्त इन पाँच मन्त्रोंका वाचक तार अर्थात् ॐको कहा है॥ १९-२०॥

विज्ञेया ब्रह्मरूपिण्यः सूक्ष्माः पञ्चैव देवताः।
एता एव शिवस्यापि मूर्तित्वेनोपबृंहिताः॥ २१
शिवस्य वाचको मन्त्रः शिवमूर्त्तेश्च वाचकः।
मूर्त्तिमूर्त्तिमतोर्भेदो नात्यन्तं विद्यते यतः॥ २२

ब्रह्मरूपी सूक्ष्म देवता भी पाँच ही हैं, इस प्रकार समझना चाहिये और ये सभी शिवकी मूर्तिके रूपमें भी प्रतिष्ठित हैं, यह मन्त्र शिवका वाचक है तथा शिवमूर्तिका भी वाचक है; क्योंकि मूर्ति और मूर्तिमान्में वस्तुतः भेद नहीं है॥ २१-२२॥

ईशानमुकुटोपेत इत्यारभ्य पुरोदितः।
शिवस्य विग्रहः पञ्चवक्त्राणि शृणु सांप्रतम्॥ २३

पञ्चमादि समारभ्य सद्योजाताद्यनुक्रमात्।
ऊर्ध्वान्तमीशानान्तं च मुखपञ्चकमीरितम्॥ २४

'**ईशानमुकुटोपेतः**' इत्यादि श्लोकोंके द्वारा भगवान् शिवके विग्रहको पहले ही बताया जा चुका है, अब उनके पाँच मुखोंको सुनें। पंचम अर्थात् ईशानसे आरम्भ करके सद्योजातादिके अनुक्रमसे उनका श्रीविग्रह कहा गया तथा [पश्चिममुख सद्योजातसे लेकर] ऊर्ध्वमुख ईशानपर्यन्त शिवके पाँच मुख कहे गये हैं॥ २३-२४॥

ईशानस्यैव देवस्य चतुर्व्यूहपदे स्थितम्।
पुरुषाद्यं च सद्यान्तं ब्रह्मरूपं चतुष्टयम्॥ २५

तत्पुरुषसे लेकर सद्योजातपर्यन्त ये चार ब्रह्मरूप ईशानदेवके चतुर्व्यूहके रूपमें स्थित हैं॥ २५॥

पञ्चब्रह्मसमष्टिः स्यादीशानं ब्रह्म विश्रुतम्।
पुरुषाद्यं तु तद्व्यष्टिः सद्योजातान्तिकं मुने ॥ २६

हे मुने! सुविख्यात ईशान नामक ब्रह्मरूपके साथ [सद्योजातादिके] समन्वित होनेकी स्थिति पंचब्रह्मात्मक समष्टि कही जाती है तथा तत्पुरुषसे लेकर सद्योजातपर्यन्त [पाँचों] ब्रह्मरूपोंकी [पृथक्-पृथक्] स्थिति व्यष्टि कहलाती है॥ २६॥

अनुग्रहमयं चक्रमिदं पञ्चार्थकारणम्।
परब्रह्मात्मकं सूक्ष्मं निर्विकारमनामयम्॥ २७

यह अनुग्रहमयचक्र है, यह पंचार्थका कारण, परब्रह्मस्वरूप, सूक्ष्म, निर्विकार तथा अनामय है॥ २७॥

अनुग्रहोऽपि द्विविधस्तिरोभावादिगोचरः।
प्रभुश्चान्यस्तु जीवानां परावरविमुक्तिदः ॥ २८

एतत्सदाशिवस्यैव कृत्यद्वयमुदाहृतम्।
अनुग्रहेऽपि सृष्ट्यादिकृत्यानां पञ्चकं विभोः॥ २९

अनुग्रह भी दो प्रकारका है—एक तिरोभाव और दूसरा प्रकट रूप। दूसरा जो प्रकट रूप अनुग्रह है, वह जीवोंका अनुशासक और उन्हें पर-अवर मुक्ति देनेवाला है। सदाशिवके ये दो कार्य कहे गये हैं। विभुके अनुग्रहमें भी सृष्टि आदि पाँच कृत्य होते हैं॥ २८-२९॥

मुने तत्रापि सद्याद्या देवताः परिकीर्तिताः।
परब्रह्मस्वरूपास्ताः पञ्च कल्याणदाः सदा॥ ३०

अनुग्रहमयं चक्रं शान्त्यतीतकलामयम्।
सदाशिवाधिष्ठितं च परमं पदमुच्यते॥ ३१

हे मुने! उन सर्गादि कृत्योंके सद्योजातादि पाँच देवता कहे गये हैं। वे पाँचों परब्रह्मके स्वरूप एवं सदा कल्याण करनेवाले हैं। अनुग्रहमय चक्र शान्त्यतीत-कलासे युक्त है और सदाशिवके द्वारा अधिष्ठित होनेसे परम पद कहा जाता है॥ ३०-३१॥

एतदेव पदं प्राप्य यतीनां भावितात्मनाम्।
सदाशिवोपासकानां प्रणवासक्तचेतसाम्॥ ३२

एतदेव पदं प्राप्य तेन साकं मुनीश्वराः।
भुक्त्वा सुविपुलान्भोगान्देवेन ब्रह्मरूपिणा॥ ३३

महाप्रलयसंभूतौ शिवसाम्यं भजन्ति हि।
न पतन्ति पुनः क्वापि संसाराब्धौ जनाश्च ते॥ ३४

प्रणवमें निष्ठा रखनेवाले सदाशिवके उपासकों तथा आत्मानुसन्धानमें निरत यतियोंको यही पद प्राप्त करना चाहिये। इसी पदको प्राप्त करके श्रेष्ठ मुनिगण ब्रह्मरूपी उन शिवके साथ अनेक प्रकारके उत्तम सुखोंको भोगकर महाप्रलय होनेपर शिवसाम्य प्राप्त कर लेते हैं और वे लोग फिर कभी संसारसागरमें नहीं गिरते हैं॥ ३२—३४॥

ते ब्रह्मलोक इति च श्रुतिराह सनातनी।
ऐश्वर्यं तु शिवस्यापि समष्टिरिदमेव हि॥ ३५

सर्वैश्वर्येण सम्पन्न इत्याहाथर्वणी शिखा।
सर्वैश्वर्यप्रदातृत्वमस्यैव प्रवदन्ति हि॥ ३६

'ते ब्रह्मलोकेषु परान्तकाले परामृताः परिमुच्यन्ति सर्वे'—ऐसा सनातनी श्रुति कहती है। यह समष्टि ही सदाशिवका ऐश्वर्य है। वे सम्पूर्ण ऐश्वर्यसे सम्पन्न हैं—ऐसा आथर्वणी श्रुति कहती है। वे समस्त ऐश्वर्य देते हैं—ऐसा वेद कहते हैं॥ ३५-३६॥

चमकस्य पदान्नान्यदधिकं विद्यते पदम्।
ब्रह्मपञ्चकविस्तारप्रपञ्चः खलु दृश्यते॥ ३७

चमकाध्यायके पदसे [यह ज्ञात होता है कि शिवसे] श्रेष्ठ कोई पद नहीं है। ब्रह्मपंचकका विस्तार ही प्रपंच कहलाता है॥ ३७॥

ब्रह्मभ्य एव संजाता निवृत्त्याद्याः कला मताः।
सूक्ष्मभूतस्वरूपिण्यः कारणत्वेन विश्रुताः॥ ३८

स्थूलरूपस्वरूपस्य प्रपञ्चस्यास्य सुव्रत।
पञ्चधावस्थितं यत्तद् ब्राह्मपञ्चकमिष्यते॥ ३९

निवृत्ति आदि कलाएँ पंचब्रह्मसे ही उत्पन्न कही गयी हैं, जो सूक्ष्मभूत स्वरूपवाली हैं तथा कारणके रूपमें प्रसिद्ध हैं। हे सुव्रत! स्थूलस्वरूपवाले इस प्रपंचकी जो पाँच प्रकारकी स्थिति है, वही ब्राह्मपंचक कहा जाता है॥ ३८-३९॥

पुरुषः श्रोत्रवाण्यौ च शब्दाकाशौ च पञ्चकम्।
व्याप्तमीशानरूपेण ब्रह्मणा मुनिसत्तम॥ ४०
प्रकृतिस्त्वक्च पाणिश्च स्पर्शो वायुश्च पञ्चकम्।
व्याप्तं पुरुषरूपेण ब्रह्मणैव मुनीश्वर॥ ४१
अहंकारस्तथा चक्षुः पादो रूपं च पावकः।
अघोरब्रह्मणा व्याप्तमेतत्पञ्चकमञ्चितम्॥ ४२
बुद्धिश्च रसना पायू रस आपश्च पञ्चकम्।
ब्रह्मणा वामदेवेन व्याप्तं भवति नित्यशः॥ ४३
मनो नासा तथोपस्थो गन्धो भूमिश्च पञ्चकम्।
सद्येन ब्रह्मणा व्याप्तं पञ्चब्रह्ममयं जगत्॥ ४४

हे मुनिसत्तम! पुरुष, श्रोत्र, वाणी, शब्द और आकाश—यह पंचसमुदाय ईशानरूप ब्रह्मसे व्याप्त है। हे मुनीश्वर! प्रकृति, त्वक्, हाथ, स्पर्श और वायु—ये पाँच तत्पुरुषरूप ब्रह्मसे व्याप्त हैं। अहंकार, चक्षु, चरण, रूप और अग्नि—यह पंचसमुदाय अघोररूप ब्रह्मसे व्याप्त है। बुद्धि, रसना, पायु, रस तथा जल—यह पंचसमुदाय वामदेवरूप ब्रह्मसे व्याप्त है। मन, नासिका, उपस्थ, गन्ध और भूमि—यह पंचसमुदाय सद्योजातरूप ब्रह्मसे व्याप्त है। इस प्रकार यह सारा जगत् पंचब्रह्ममय है॥ ४०—४४॥

यन्त्ररूपेणोपदिष्टः प्रणवः शिववाचकः।
समष्टिः पञ्चवर्णानां बिन्द्वाद्यं यच्चतुष्टयम्॥ ४५

शिवोपदिष्टमार्गेण यन्त्ररूपं विभावयेत्।
प्रणवं परमं मन्त्राधिराजं शिवरूपिणम्॥ ४६

शिववाचक प्रणव यन्त्ररूपसे कहा गया है। वह [नादपर्यन्त] पाँचों वर्णोंका समष्टिरूप है तथा बिन्दुयुक्त जो चार वर्ण हैं, वे प्रणवके व्यष्टिरूप हैं। शिवजीके द्वारा उपदिष्ट मार्गसे सर्वश्रेष्ठ मन्त्राधिराज तथा शिवरूपी प्रणवका यन्त्ररूपसे ध्यान करना चाहिये॥ ४५-४६॥

इति श्रीशिवमहापुराणे षष्ठ्यां कैलाससंहितायां शिवरूपप्रणववर्णनं नाम चतुर्दशोऽध्यायः॥ १४॥

॥ इस प्रकार श्रीशिवमहापुराणके अन्तर्गत छठी कैलाससंहितामें शिवरूप प्रणववर्णन नामक चौदहवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ १४॥

अथ पञ्चदशोऽध्यायः

तिरोभावादि चक्रों तथा उनके अधिदेवताओं आदिका वर्णन

ईश्वर उवाच

ततः परं प्रवक्ष्यामि सृष्टिपद्धतिमुत्तमाम्।
सदाशिवान्महेशादिचतुष्कस्य वरानने॥ १

ईश्वर बोले—हे वरानने! इसके बाद सदाशिवसे जिस प्रकार महेश्वरादि व्यूहचतुष्टयकी उत्पत्ति होती है, उस उत्तम सृष्टि-पद्धतिको मैं कह रहा हूँ॥ १॥

सदाशिवः समष्टिः स्यादाकाशाधिपतिः प्रभुः।
अस्यैव व्यष्टितापन्नं महेशादिचतुष्टयम्॥ २

सदाशिवसहस्रांशान्महेशस्य समुद्भवः।
पुरुषानन्तरूपत्वाद्वायोरधिपतिश्च सः॥ ३

आकाशके अधिपति प्रभु सदाशिव समष्टिस्वरूप हैं। महेश्वरादि चाररूप (महेश्वर, रुद्र, विष्णु, ब्रह्मा) उन्हींकी व्यष्टि हैं। महेश्वरकी उत्पत्ति सदाशिवके हजारवें भागसे होती है। पुरुषके अनन्तरूप होनेसे वे वायुके अधिपति हैं॥ २-३॥

मायाशक्तियुतो वामे सकलश्च क्रियाधिकः।
अस्यैव व्यष्टिरूपं स्यादीश्वरादिचतुष्टयम्॥ ४
ईशो विश्वेश्वरः पश्चात्परमेशस्ततः परम्।
सर्वेश्वर इतीदं तु तिरोधाचक्रमुत्तमम्॥ ५

वे वामभागमें मायाशक्तिसे युक्त, सकल तथा क्रियाओंके स्वामी हैं। ईश्वर आदि चारोंका समूह इन्हींका व्यष्टिरूप है। ईश, विश्वेश्वर, परमेश, सर्वेश्वर—यह उत्तम तिरोधानचक्र है॥ ४-५॥

तिरोभावो द्विधा भिन्न एको रुद्रादिगोचरः।
अन्यश्च देहभावेन पशुवर्गस्य सन्ततेः॥ ६

तिरोभाव भी दो प्रकारका है, एक रुद्र आदिके रूपमें दिखायी पड़ता है और दूसरा जीवसमूहके विस्तारके रूपमें देहभावसे स्थित है॥ ६॥

भोगानुरञ्जनपरः कर्मसाम्यक्षणावधि।
कर्मसाम्ये स एकः स्यादनुग्रहमयो विभुः॥ ७

यह शरीर तभीतक रहता है, जबतक पुण्य और पाप जीवमें रहता है। इसकी अवधि कर्मसाम्यपर्यन्त है। कर्मसाम्य होनेपर वह जीव अनुग्रहमय परमात्मामें मिलकर एक हो जाता है॥ ७॥

तत्र सर्वेश्वरा यास्ते देवताः परिकीर्तिताः।
परब्रह्मात्मकाः साक्षान्निर्विकल्पा निरामयाः॥ ८

उसमें सर्वेश्वर आदि जो चार देवता कहे गये हैं, वे साक्षात् परब्रह्मात्मक, निर्विकल्प एवं निरामय हैं॥ ८॥

तिरोभावात्मकं चक्रं भवेच्छान्तिकलामयम्।
महेश्वराधिष्ठितं च पदमेतदनुत्तमम्॥ ९

एतदेव पदं प्राप्यं महेशपदसेविनाम्।
माहेश्वराणां सालोक्यक्रमादेव विमुक्तिदम्॥ १०

तिरोभावात्मक चक्र शान्तिकलामय है, यह उत्तम पद महेश्वरसे अधिष्ठित है। यह पद [तिरोभावात्मक चक्र] ही महेश्वरके चरणोंकी सेवा करनेवालोंका प्राप्य है तथा शिवोपासकोंको [अधिकारके अनुसार] क्रमशः सालोक्य आदि मुक्तियाँ प्रदान करनेवाला है॥ ९-१०॥

महेश्वरसहस्रांशाद् रुद्रमूर्तिरजायत।
अघोरवदनाकारस्तेजस्तत्त्वाधिपश्च सः॥ ११

रुद्रमूर्तिकी उत्पत्ति महेश्वरके हजारवें अंशसे हुई है, वे अघोर वदनके आकारवाले तथा तेजस्तत्त्वके स्वामी हैं॥ ११॥

गौरीशक्तियुतो वामे सर्वसंहारकृत्प्रभुः।
अस्यैव व्यष्टिरूपं स्याच्छिवाद्यथ चतुष्टयम्॥ १२
शिवो हरो मृडभवौ विदितं चक्रमद्भुतम्।
संहाराख्यं महादिव्यं परमं हि मुनीश्वर॥ १३

सबका संहार करनेवाले वे प्रभु अपने वामभागमें गौरीशक्तिसे युक्त हैं तथा शिवादि चार रूप इन्हींके व्यष्टिरूप हैं। हे मुनीश्वर! शिव, हर, मृड और भव—[इनसे युक्त] यह सुप्रसिद्ध, अद्भुत तथा महादिव्य 'संहार' नामक चक्र है॥ १२-१३॥

स संहारस्त्रिधा प्रोक्तो बुधैर्नित्यादिभेदतः।
नित्यो जीवसुषुप्त्याख्यो विधेर्नैमित्तिकः स्मृतः॥ १४

विलयस्तस्य तु महानिति वेदनिदर्शितः।
जीवानां जन्मदुःखादिश्रान्तानामुषितात्मनाम्॥ १५

विश्रान्त्यर्थं मुनिश्रेष्ठ कर्मणां पाकहेतवे।
संहारः कल्पितस्त्रेधा रुद्रेणामिततेजसा॥ १६

विद्वानोंने उस संहारचक्रको नित्य आदिके भेदसे तीन प्रकारका कहा है। नित्य वह है, जिसमें जीव सुषुप्तिमें रहता है। सृष्टिके निमित्तभूत (संहारचक्र)-को नैमित्तिक कहते हैं और उस [जगत्]-के विलयको महाप्रलय कहते हैं—इसका वेदमें निर्देश है। जब जीव संसारमें जन्म-दुःखादिसे श्रान्त हो जाता है, उस समय हे मुनिश्रेष्ठ! उस जीवकी विश्रान्ति और उसके कर्मपरिपाकके लिये अमित तेजस्वी रुद्रने तीन प्रकारके संहारोंकी कल्पना की है॥ १४—१६॥

रुद्रस्यैव तु कृत्यानां त्रयमेतदुदाहृतम्।
संहृतावपि सृष्ट्यादिकृत्यानां पञ्चकं विभोः ॥ १७

मुने तत्र भवाद्यास्ते देवताः परिकीर्तिताः।
परब्रह्मस्वरूपाश्च लोकानुग्रहकारकाः ॥ १८

संहाराख्यमिदं चक्रं विद्यारूपकलामयम्।
अधिष्ठितं च रुद्रेण पदमेतन्निरामयम् ॥ १९

एतदेव पदं प्राप्यं रुद्राराधनकांक्षिणाम्।
रुद्राणां तद्धि सालोक्यक्रमात्सायुज्यदं मुने ॥ २०

रुद्रमूर्तेः सहस्रांशाद्विष्णोश्चैवाभवज्जनिः।
स वामदेवचक्रात्मा वारितत्त्वैकनायकः ॥ २१

रमाशक्तियुतो वामे सर्वरक्षाकरो महान्।
चतुर्भुजोऽरविंदाक्षः श्यामः शंखादिचिह्नभृत् ॥ २२

अस्यैव वासुदेवादिचतुष्कं व्यष्टितां गतम्।
उपासनरतानां वै वैष्णवानां विमुक्तिदम् ॥ २३
वासुदेवोऽनिरुद्धश्च ततः संकर्षणः परः।
प्रद्युम्नश्चेति विख्यातं स्थितिचक्रमनुत्तमम् ॥ २४
स्थितिः सृष्टस्य जगतस्तत्कर्त्रा सह पालनम्।
आरब्धकर्मभोगान्तं जीवानां फलभोगिनाम् ॥ २५

विष्णोरेवेदमाख्यातं कृत्यं रक्षाविधायिनः।
स्थितावपि तु सृष्ट्यादिकृत्यानां पञ्चकं विभोः ॥ २६

तत्र प्रद्युम्नमुख्यास्ते देवताः परिकीर्तिताः।
निर्विकल्पा निरातंका मुक्तानंदकराः सदा ॥ २७
स्थितिचक्रमिदं ब्रह्मन् प्रतिष्ठारूपमुत्तमम्।
जनार्दनाधिष्ठितं च परमं पदमुच्यते ॥ २८

एतदेव पदं प्राप्यं विष्णुपादाब्जसेविनाम्।
वैष्णवानां चक्रमिदं सालोक्यादिपदप्रदम् ॥ २९

विष्णोरेव सहस्रांशात्संबभूव पितामहः।
सद्योजातमुखात्मा यः पृथिवीतत्त्वनायकः ॥ ३०

ये तीनों प्रकारके संहारकृत्य रुद्रके ही कहे गये हैं। संहारकालमें भी उन विभुके सृष्टि आदि पाँच कार्योंका यह समुदाय (सृष्टि, स्थिति, लय, तिरोभाव, अनुग्रह रहता है। हे मुने! सृष्टि आदि) पाँच कृत्योंके वे भव आदि देवता कहे गये हैं, जो परब्रह्मके स्वरूप और लोकपर अनुग्रह करनेवाले हैं ॥ १७-१८ ॥

यह संहार नामक चक्र विद्यारूप और कलामय है। यह निरामय पद रुद्रसे अधिष्ठित है ॥ १९ ॥

रुद्राराधनमें निरत चित्तवाले रुद्रोपासकोंके लिये यह पद ही प्राप्य है तथा उन्हें सालोक्यमुक्तिके क्रमसे शिवसायुज्य प्रदान करनेवाला है ॥ २० ॥

रुद्रमूर्तिके हजारवें भागसे विष्णुकी उत्पत्ति हुई है, वे वामदेवचक्रके आत्मारूप तथा जलतत्त्वके अधिपति हैं। वे बायें भागमें रमाशक्तिसे समन्वित, सबकी रक्षा करनेवाले, महान्, चार भुजाओंवाले, कमलसदृश नेत्रवाले, श्यामवर्ण तथा शंख आदि चिह्नोंको धारण करनेवाले हैं ॥ २१-२२ ॥

व्यष्टिकी दशामें इन्हींके वासुदेव आदि चार रूप होते हैं, जो उपासनापरायण वैष्णवोंको मुक्ति प्रदान करते हैं। यह उत्तम स्थितिचक्र वासुदेव, अनिरुद्ध, संकर्षण तथा प्रद्युम्न नामसे विख्यात है ॥ २३-२४ ॥

उत्पन्न किये गये जगत्की स्थिति-सम्पादन तथा ब्रह्माके साथ [अपने कर्मके अनुसार] फलका भोग करनेवाले जीवोंका आरब्ध कर्मके भोगपर्यन्त पालन करना—यह रक्षा करनेवाले विष्णुका कृत्य कहा गया है। स्थितिमें भी विभु विष्णुके सृष्टि आदि पाँच कृत्य हैं, उसमें प्रद्युम्न आदि वे पाँच देवता हो गये हैं, जो सर्वदा निर्विकल्प, निरातंक तथा मुक्तिरूप आनन्दको देनेवाले हैं ॥ २५—२७ ॥

हे ब्रह्मन्! यह प्रतिष्ठा नामक स्थितिचक्र जनार्दनसे अधिष्ठित है तथा परम पद कहा जाता है ॥ २८ ॥

विष्णुके चरणकमलोंकी सेवा करनेवालोंके लिये यही पद प्राप्तव्य है, वैष्णवोंका यह चक्र सालोक्य आदि मुक्तिपद देनेवाला है। विष्णुके हजारवें भागसे पितामह उत्पन्न हुए हैं, जो सद्योजात नामक शिवके मुखरूप हैं और पृथ्वीतत्त्वके नायक हैं ॥ २९-३० ॥

वाग्देवीसहितो वामे सृष्टिकर्त्ता जगत्प्रभुः।
चतुर्मुखो रक्तवर्णो रजोरूपस्वरूपवान्॥ ३१

हिरण्यगर्भाद्यस्यैव व्यष्टिरूपं चतुष्टयम्।
हिरण्यगर्भोऽथ विराट् पुरुषः काल एव च॥ ३२

सृष्टिचक्रमिदं ब्रह्मपुत्रादिऋषिसेवितम्।
सर्वकामार्थदं ब्रह्मन्परिवारसुखप्रदम्॥ ३३

सृष्टिस्तु संहृतस्यास्य जीवस्य प्रकृतौ बहिः।
आनीय कर्मभोगार्थं साधनाङ्गफलैः सह॥ ३४

संयोजनमितीदं तु कृत्यं पैतामहं विदुः।
जगत्सृष्टिक्रियाविज्ञा यावद् व्यूहं सुखावहम्॥ ३५

जगत्सृष्टावपि मुने कृत्यानां पञ्चकं विभोः।
अस्ति कालादयस्तत्र देवताः परिकीर्तिताः॥ ३६

निवृत्तिरूपमाख्यातं सृष्टिचक्रमिदं बुधैः।
पितामहाधिष्ठितं च पदमेतद्धि शोभनम्॥ ३७

एतदेव पदं प्राप्यं ब्रह्मार्पितधियां नृणाम्।
पैतामहानामेतद्धि सालोक्यादिविमुक्तिदम्॥ ३८

अस्मिन्नपि चतुष्के तु चक्राणां प्रणवो भवेत्।
महेशादिक्रमादेव गौण्या वृत्त्या स वाचकः॥ ३९

इदं खलु जगच्चक्रं श्रुतिविश्रुतवैभवम्।
पञ्चारं चक्रमिति ह स्तौति श्रुतिरिदं मुने॥ ४०

एकमेव जगच्चक्रं शम्भोः शक्तिविजृंभितम्।
सृष्ट्यादिपञ्चावयवं पञ्चारमिति कथ्यते॥ ४१

अलातचक्रभ्रमिवदविच्छिन्नलयोदयम्।
परितो वर्तते यस्मात्तस्माच्चक्रमितीरितम्॥ ४२

सृष्ट्यादिपृथुसृष्टित्वात्पृथुत्वेनोपदृश्यते।
हिरण्मयस्य देवस्य शम्भोरमिततेजसः॥ ४३

शक्तिकार्यमिदं चक्रं हिरण्यज्योतिराश्रितम्।
सलिलेनावृतमिदं सलिलं वह्निनावृतम्॥ ४४

वे वामभागमें सरस्वतीसे युक्त, सृष्टिकर्ता, जगत्के स्वामी, चतुर्मुख, रक्तवर्ण तथा रजोगुणवाले हैं॥ ३१॥

हिरण्यगर्भ आदि चार इन्हींके व्यष्टिरूप हैं, जो हिरण्यगर्भ, विराट्, पुरुष और काल नामवाले हैं॥ ३२॥

हे ब्रह्मन्! यह सृष्टिचक्र ब्रह्मपुत्र [भृगु] आदि ऋषियोंसे सेवित, समस्त कामनाओंको पूर्ण करनेवाला और परिवार-सुखको प्रदान करनेवाला है॥ ३३॥

प्रकृतिमें लीन हुए जीवके कर्मभोगके निमित्त बाहरसे भोगके साधनभूत स्त्री-पुत्र और उनके फलोंको लाकर संयुक्त करनेका नाम सृष्टि है, इसे पितामहका कृत्य कहा गया है। विद्वानोंके मतमें यही जगत्-सृष्टिकी क्रिया है, यह व्यूह सुख देनेवाला है॥ ३४-३५॥

हे मुने! जगत्की सृष्टिमें भी उन ईश्वरके ये पाँच कृत्य हैं, उसके काल आदि देवता कहे गये हैं॥ ३६॥

विद्वानोंने इसको निवृत्ति नामक सृष्टिचक्र कहा है। यह सुन्दर पद पितामहसे अधिष्ठित है॥ ३७॥

ब्रह्मदेवमें मन लगानेवाले मनुष्योंको यही पद प्राप्त करना चाहिये, यह पैतामह अर्थात् ब्रह्मोपासकोंको सालोक्य आदि पद देनेवाला है। महेशादिके क्रमसे चार चक्रोंका यह समुदाय गौणीवृत्ति अर्थात् पारम्परिक सम्बन्धसे प्रणवका ही बोध करानेवाला कहा गया है। हे मुने! वेदोंमें प्रसिद्ध वैभववाला यह जगच्चक्र पंचारचक्र कहा जाता है, श्रुति इस चक्रकी स्तुति करती है॥ ३८—४०॥

यह एकमात्र जगच्चक्र केवल शिवशक्तिसे विजृम्भित है। सृष्टि आदि पाँच अवयववाला होनेसे इस जगच्चक्रको पंचार कहा जाता है। निरन्तर लय और उदयको प्राप्त हुआ यह जगच्चक्र घूमते हुए अलातचक्रके समान अविच्छिन्न प्रतीत हो रहा है, यह चारों ओर विद्यमान है, इसलिये इसे चक्र कहा गया है॥ ४१-४२॥

स्थूल सृष्टिके दिखायी देनेके कारण इसे पृथु भी कहा जाता है। परम तेजस्वी हिरण्यमय शिवजीका शक्ति-कार्यरूपी यह चक्र हिरण्य ज्योतिवाला है। यह [हिरण्यमय जगच्चक्र] जलसे व्याप्त है, जल अग्निसे

आवृतो वायुना वह्निराकाशेनावृतं मरुत्।
भूतादिना तथाकाशो भूतादिर्महतावृतः॥ ४५

अव्यक्तेनावृतस्तद्वन्महानित्येवमास्तिकैः।
ब्रह्माण्डमिति संप्रोक्तमाचार्यैर्मुनिसत्तम॥ ४६

व्याप्त है, अग्नि वायुसे व्याप्त है, वायु आकाशसे व्याप्त है, आकाश भूतादिसे व्याप्त है, भूतादि महत्तत्त्वसे आवृत हैं और महत्तत्त्व सर्वदा अव्यक्तसे आवृत है, हे मुने! आस्तिक आचार्योंने इसीको ब्रह्माण्ड कहा है॥ ४३—४६॥

उक्तानि सप्तावरणान्यस्य विश्वस्य गुप्तये।
चक्राद्दशगुणाधिक्यं सलिलस्य विधीयते॥ ४७
उपर्युपरि चान्योऽन्यमेवं दशगुणाधिकम्।
ब्रह्माण्डमिति विज्ञेयं तद् द्विजैर्मुनिनायक॥ ४८

इस संसारचक्रकी रक्षाके लिये सात आवरण कहे गये हैं। संसारचक्रसे दस गुना अधिक जलतत्त्व है। इसी प्रकार ऊपर-ऊपरके आवरण नीचेके आवरणकी अपेक्षा दस गुना अधिक हैं। हे मुनिश्रेष्ठ! ब्राह्मणोंको उसे ही ब्रह्माण्ड जानना चाहिये॥ ४७-४८॥

इममर्थमुरीकृत्य चक्रसामीप्यवर्त्तनात्।
सलिलस्य च तन्मध्ये इति प्राह श्रुतिः स्वयम्॥ ४९
अनुग्रहतिरोभावसंहृतिस्थितिसृष्टिभिः।
करोत्यविरतं लीलामेकः शक्तियुतः शिवः॥ ५०

इसी अर्थको समझकर ब्रह्माण्डरूप चक्रके समीप जलके होनेसे श्रुतिने भी जगत्को जलमध्यशायी कहा है। अनुग्रह, तिरोभाव, संहार, स्थिति और सृष्टिके द्वारा एकमात्र शिव ही अपनी शक्तिसे युक्त होकर निरन्तर लीला करते रहते हैं॥ ४९-५०॥

बहुनेह किमुक्तेन मुने सारं वदामि ते।
शिव एवेदमखिलं शक्तिमानिति निश्चितम्॥ ५१

हे मुने! यहाँ बहुत कहनेसे क्या लाभ, मैं आपसे सारतत्त्व कह रहा हूँ कि यह सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड शक्तिमान् शिवरूप ही है—यह सुनिश्चित है॥ ५१॥

इति श्रीशिवमहापुराणे षष्ठ्यां कैलाससंहितायामुपासनामूर्त्तिवर्णनं नाम पञ्चदशोऽध्यायः॥ १५॥

॥ इस प्रकार श्रीशिवमहापुराणके अन्तर्गत छठी कैलाससंहितामें उपासनामूर्तिवर्णन नामक पन्द्रहवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ १५॥

अथ षोडशोऽध्यायः

शैवदर्शनके अनुसार शिवतत्त्व, जगत्-प्रपंच और जीवतत्त्वके विषयमें विशद विवेचन तथा शिवसे जीव और जगत्की अभिन्नताका प्रतिपादन

सूत उवाच

श्रुत्वोपदिष्टं गुरुणा वेदार्थं मुनिपुङ्गवः।
परमात्मनि संदिग्धं परिपप्रच्छ सादरम्॥ १

सूतजी बोले—गुरुके द्वारा उपदिष्ट वेदार्थको सुनकर मुनिवर वामदेव परमात्मविषयक सन्देहोंको आदरपूर्वक पूछने लगे—॥ १॥

वामदेव उवाच

ज्ञानशक्तिधर स्वामिन्परमानन्दविग्रह।
प्रणवार्थामृतं पीतं श्रीमुखाब्जात्परिस्त्रुतम्॥ २
दृढप्रज्ञश्च जातोऽस्मि संदेहो विगतो मम।
किंचिदन्यन्महासेन पृच्छामि त्वां शृणु प्रभो॥ ३

वामदेवजी बोले—हे ज्ञानशक्तिके धारक! हे स्वामिन्! हे परमानन्दविग्रह! मैंने आपके मुखकमलसे बहते हुए प्रणवार्थरूप अमृतका पान किया। अब मेरी बुद्धि दृढ़ हो गयी और मेरा सन्देह दूर हो गया। हे महासेन! अब मैं आपसे कुछ और बात पूछना चाहता हूँ। हे प्रभो! सुनिये॥ २-३॥

सदाशिवादिकीटांतरूपस्य जगतः स्थितिः।
स्त्रीपुंरूपेण सर्वत्र दृश्यते न हि संशयः॥ ४

सदाशिवसे लेकर कीटपर्यन्त रूपवाले जगत्की स्थिति सभी जगह स्त्री-पुरुषमय दिखायी पड़ती है, इसमें सन्देह नहीं है। इस प्रकारके रूपवाले जगत्का

एवंरूपस्य जगतः कारणं यत्सनातनम्।
स्त्रीरूपं तत्किमाहोस्वित्पुरुषो वा नपुंसकम्॥ ५

उत मिश्रं किमन्यद्वा न जातस्तत्र निर्णयः।
बहुधा विवदन्तीह विद्वांसः शास्त्रमोहिताः॥ ६

जो सनातन कारण है, वह स्त्रीरूप है अथवा पुरुषरूप अथवा नपुंसक है अथवा मिश्रितरूप है अथवा कोई अन्यरूप है, इसका निर्णय नहीं हुआ। शास्त्रोंके सिद्धान्तसे मोहित हुए विद्वान् लोग अनेक प्रकारकी बातें कहते हैं॥ ४—६॥

जगत्सृष्टिविधायिन्यः श्रुतयो जगता सह।
विष्णुब्रह्मादयो देवाः सिद्धाश्च न विदन्ति हि॥ ७

यथैक्यभावं गच्छेयुरेतदन्यच्च वेदय।
जानामीति करोमीति व्यवहारः प्रदृश्यते॥ ८

स हि सर्वात्मसंसिद्धो विवादो नात्र कस्यचित्।
सर्वदेहेन्द्रियमनोबुद्ध्यहंकारसंभवः॥ ९

आहोस्विदात्मनो रूपं महानत्रापि संशयः।
द्वयमेतद्धि सर्वेषां विवादास्पदमद्भुतम्॥ १०

संसारसृष्टिका विधान करनेवाली श्रुतियाँ जगत्के साथ जिस प्रकारसे [एकीकरणको प्राप्त होती] हैं और जिसे ब्रह्मा, विष्णु, देवगण एवं सिद्ध भी नहीं जानते, उसे अथवा इस विषयमें अन्य जो भी बातें हैं, उन्हें आप कहें। [लोकमें] जानता हूँ, करता हूँ—इस प्रकारका व्यवहार देखा जाता है, ऐसा सर्वानुभवसिद्ध व्यवहार शरीर, इन्द्रिय, मन, बुद्धि एवं अहंकारसे उत्पन्न होता है। इसमें किसी भी तरहका विवाद नहीं है परंतु यह जगत् आत्माका ही दृष्टिगोचर होनेवाला परिणाम है, इस मतमें महान् संशय है। इस प्रकार जगत्सृष्टिके विषयमें ये दो विवादास्पद विचित्र मत [लोकमें प्रसिद्ध] हैं॥ ७—१०॥

उत्पाट्याज्ञानसंभूतं संशयाख्यं विषद्रुमम्।
शिवाद्वैतमहाकल्पवृक्षभूमिर्यथा भवेत्॥ ११

चित्तं मम यथा देव बोध्योऽस्मि कृपया तव।
कृपातस्तव देवेश दृढज्ञानी भवाम्यहम्॥ १२

अतः आप अज्ञानसे उत्पन्न संशयरूपी इस विषवृक्षको उखाड़ दीजिये, जिससे मेरा चित्त शिवाद्वैतरूपी महान् कल्पवृक्षकी [आधार]भूमि हो जाय। हे देव! आप मुझपर कृपा करके इस प्रकारका ज्ञान दीजिये कि हे देवेश! मैं आपके अनुग्रहसे दृढ़ ज्ञानी हो जाऊँ॥ ११-१२॥

सूत उवाच

श्रुत्वैवं मुनिना पृष्टं वचो वेदान्तनिर्वृतम्।
रहस्यं प्रभुराहेदं किञ्चित्प्रहसिताननः॥ १३

सूतजी बोले—इस प्रकार मुनिद्वारा पूछे गये वेदान्तगर्भित रहस्यमय वचनको सुनकर मन्द हास्ययुक्त मुखवाले प्रभु कहने लगे—॥ १३॥

सुब्रह्मण्य उवाच

एतदेव मुने गुह्यं शिवेन परिभाषितम्।
अम्बायाः शृण्वतो देव्या वामदेव ममापि हि॥ १४

तस्याः स्तन्यं तदा पीत्वा संतृप्तोऽस्मि मुहुर्मुहुः।
श्रुतवान्निश्चलं तद्वै निश्चितं मे विचारितम्॥ १५

तत्ते वदामि दयया वामदेव महामुने।
महद्गुह्यं च परमं सुत त्वं शृणु सांप्रतम्॥ १६

सुब्रह्मण्य बोले—हे मुने! इसी गुह्य तत्त्वको सदाशिवने कहा है। हे वामदेव! जब वे देवी अम्बासे कह रहे थे, उस समय मैं उनका दूध पीकर अत्यन्त तृप्त हो रहा था। उस समय उनके निश्चल विचारको मैंने [स्वस्थचित्त हो] बार-बार सुना और उसपर विचारपूर्वक निश्चय किया। हे वामदेव! हे महामुने! मैं उसीको आपसे दयापूर्वक कह रहा हूँ, हे पुत्र! इस समय आप उस परम गोपनीय श्रेष्ठ रहस्यको सुनिये॥ १४—१६॥

कर्मास्तितत्त्वादारभ्य शास्त्रवादः सुविस्तरः।
यथाविवेकं श्रोतव्यो ज्ञानिना ज्ञानदो मुने॥ १७

हे मुने! कर्मास्तितत्त्वसे लेकर जो विस्तृत शास्त्रवाद है अर्थात् कर्मसत्ताके प्रतिपादक कर्मफलवादसे आरम्भ करके शास्त्रोंमें विविध विषयोंका जो विशद विवेचन है, उसे विचारवान् पुरुषको विवेकपूर्वक सुनना चाहिये, क्योंकि वह ज्ञान देनेवाला है॥ १७॥

त्वयोपदिष्टा ये शिष्यास्तत्र को वा भवत्समः।
कापिलादिषु शास्त्रेषु भ्रमन्त्यद्यापि तेऽधमाः॥ १८

ते शप्ता मुनिभिः षड्भिः शिवनिन्दापराः पुरा।
न श्रोतव्या हि तद्वार्त्ता तेऽन्यथावादिनो यतः॥ १९

आपने जिन शिष्योंको उपदेश दिया है, उनमें आपके समान कौन है? वे अधम आज भी [अनीश्वरवादी] कपिल आदिके शास्त्रोंमें भटक रहे हैं। शिवकी निन्दा करनेवाले वे पहले ही छः मुनियोंके द्वारा शापित हुए हैं, वे अन्यथावादी हैं, अतः उनकी बात नहीं सुननी चाहिये॥ १८-१९॥

अनुमानप्रयोगस्याप्यवकाशोऽत्र विद्यते।
पञ्चावयवयुक्तस्य स तु धूमस्य दर्शनात्॥ २०

पर्वतस्याग्निमद्भावं वदन्त्यत्रापि सुव्रत।
प्रत्यक्षस्य प्रपञ्चस्य दर्शनालम्बनं त्वतः॥ २१

ज्ञातव्यः परमेशानः परमात्मा न संशयः।
स्त्रीपुंरूपमयं विश्वं प्रत्यक्षेणैव दृश्यते॥ २२

जिस प्रकार ईश्वरके विषयमें नैयायिक लोग पंचावयव वाक्य [रूपा अनुमिति-प्रक्रिया]-का प्रयोगकर धूमदर्शन [-रूपलिंग]-से अग्निको अनुमानके द्वारा सिद्ध करते हैं, उसी प्रकार यहाँ भी अनुमान प्रयोगका अवकाश तो है ही, इस प्रत्यक्ष प्रपंचके दर्शनरूप हेतुका अवलम्बन करके भी परमेश्वर परमात्माको निस्सन्देह जाना जा सकता है। स्त्री-पुरुषरूप यह विश्व प्रत्यक्ष ही दिखायी पड़ता है॥ २०—२२॥

षट्कोशरूपः पिण्डो हि तत्र चाद्यत्रयं भवेत्।
मात्रंशजं पुनश्चान्यत्पित्रंशजमिति श्रुतिः॥ २३

एवं सर्वशरीरेषु स्त्रीपुंभावविदो जनाः।
परमात्मन्यपि मुने स्त्रीपुंभावं विदुर्बुधाः॥ २४

छः कोशवाले इस शरीरमें प्रथम तीन कोश माताके अंशसे तथा अन्य तीन कोश पिताके अंशसे उत्पन्न होते हैं, ऐसा श्रुतिका कथन है। हे मुने! इस प्रकार सभी शरीरोंमें स्त्री-पुरुषभावको जाननेवाले विद्वज्जन परमात्मामें भी स्त्री-पुरुषभावको जानते हैं॥ २३-२४॥

सच्चिदानन्दरूपत्वं वदति ब्रह्मणः श्रुतिः।
असन्निवर्तकः शब्दः सदात्मेति निगद्यते॥ २५

निवर्तनं जडत्वस्य चिच्छब्देन विधीयते।
त्रिलिंगवर्ती सच्छब्दः पुरुषोऽत्र विधीयताम्॥ २६

श्रुति ब्रह्मके सच्चिदानन्दस्वरूपका प्रतिपादन करती है, इसमें आत्मवाचक सत् शब्दसे असत्की निवृत्ति हो जाती है। 'चित्' शब्द जडत्वका निवर्तक है। यद्यपि 'सत्' शब्द तीनों लिंगोंमें गृहीत होता है तथापि यहाँ परब्रह्म परमात्माके अर्थमें पुल्लिंग 'सत्' शब्द ही ग्रहण करनेयोग्य है॥ २५-२६॥

प्रकाशवाची स भवेत्सत्प्रकाश इति स्फुटम्।
ज्ञानशब्दस्य पर्यायश्चिच्छब्दः स्त्रीत्वमागतः॥ २७

उस 'सत्' शब्दसे प्रकाशका बोध होता है—यह बात स्पष्ट ही है। (प्रकाशके पुल्लिंग होनेसे सत् शब्द ही पुल्लिंगरूपसे ब्रह्मके लिये व्यवहृत होता है।) 'चित्' शब्द ज्ञानवाचक या कि चेतनार्थक है, जो स्त्रीलिंग है अर्थात् परमात्मामें चिद्रूपता उसके स्त्रीभावको सूचित करती है॥ २७॥

प्रकाशश्चिच्च मिथुनं जगत्कारणतां गतम्।
सच्चिदात्मन्यपि तथा जगत्कारणतां गते॥ २८

एकत्रैव शिवः शक्तिरिति भावो विधीयते।
तैलवर्त्यादिमालिन्यात्प्रकाशस्यापि वर्तते॥ २९

मालिन्यमशिवत्वं च चिताग्न्यादिषु दृश्यते।
एवं निवर्तकत्वेन शिवत्वं श्रुतिचोदितम्॥ ३०

जीवाश्रितायाश्चिच्छक्तेर्दौर्बल्यं विद्यते सदा।
तन्निवृत्त्यर्थमेवात्र शक्तित्वं सार्वकालिकम्॥ ३१

बलवान् शक्तिमांश्चेति व्यवहारः प्रदृश्यते।

लोके वेदे च सततं वामदेव महामुने॥ ३२

एवं शिवत्वं शक्तित्वं परमात्मनि दर्शितम्।
शिवशक्त्योस्तु संयोगादानंदः सततोदितः॥ ३३

अतो मुने तमुद्दिश्य मुनयः क्षीणकल्मषाः।
शिवे मनः समाधाय प्राप्ताः शिवमनामयम्॥ ३४

सर्वात्मत्वं तयोरेवं ब्रह्मेत्युपनिषत्सु च।
गीयते ब्रह्मशब्देन बृहिधात्वर्थगोचरम्॥ ३५

बृंहणत्वं बृहत्वं च सदा शंभ्वाख्यविग्रहे।
पञ्चब्रह्ममये विश्वप्रतीतिर्ब्रह्मशब्दिता॥ ३६

प्रतिलोमात्मकं हंसे वक्ष्यामि प्रणवोद्भवम्।
तव स्नेहाद्वामदेव सावधानतया शृणु॥ ३७

व्यंजनस्य सकारस्य हकारस्य च वर्जनात्।
ओमित्येव भवेत्स्थूलो वाचकः परमात्मनः॥ ३८

महामन्त्रः स विज्ञेयो मुनिभिस्तत्त्वदर्शिभिः।
तत्र सूक्ष्मो महामन्त्रस्तदुद्धारं वदामि ते॥ ३९

प्रकाश पुल्लिंग और चित् चेतना—ये दोनों ही सम्मिलित रूपसे जगत्की उत्पत्तिमें कारण हैं। इसी प्रकार सच्चिदात्मामें जगत्की कारणता प्राप्त होनेमें एकमात्र परमात्मामें ही शिवभाव तथा शक्ति-भावका भेद किया जाता है। तेल और बत्तीके मलिन होनेसे प्रकाश भी मलिन अर्थात् मन्द हो जाता है॥ २८-२९॥

मलिनता और अशिवता दोनों ही चिताकी अग्नि आदिमें देखी जाती हैं, परंतु ये आरोपित हैं, इस आरोपका निवर्तक होनेके कारण वेदोंमें [परमात्माके] शिवत्वका प्रतिपादन किया गया है। यही चित् शक्ति जब जीवोंके आश्रित होती है, तब वह दुर्बल हो जाती है, उसकी निवृत्तिके लिये ही इन (परमात्मामें) सार्वकालिक चित् शक्ति विद्यमान है, अतः परमात्मा ही बलवान् तथा शक्तिमान् है—[लोकमें] ऐसा व्यवहार देखा जाता है॥ ३०-३१½॥

हे वामदेव! हे महामुने! इस प्रकार लोक तथा वेदमें सदा ही परमात्मामें शिवत्व और शक्तित्व दिखाया गया है। शिव तथा शक्तिके संयोगसे ही सदा आनन्द उदित होता है॥ ३२-३३॥

अतः हे मुने! निष्पाप मुनिगण उन शिवको उद्देश्य करके शिवमें मन लगाकर अनामय शिवको प्राप्त हुए हैं। उन शिव और शक्तिको उपनिषदोंमें सर्वात्मा तथा ब्रह्म कहा गया है। ब्रह्म शब्दसे ही बृंहि धात्वर्थरूप व्यापकता तथा सर्वात्मकताका प्रतिपादन होता है॥ ३४-३५॥

शम्भु नामक विग्रहमें बृंहणत्व तथा बृहत्त्व (व्यापकता एवं विशालता) सदा ही विद्यमान है। (सद्योजातादि) पंचब्रह्ममय शिवविग्रहमें विद्यमान विश्वप्रतीति 'ब्रह्म' शब्दसे व्यवहृत होती है॥ ३६॥

हे वामदेव! अब मैं आपके स्नेहवश 'हंस' इस पदमें स्थित इसके प्रतिलोमात्मक प्रणव मन्त्रका उद्भव कहता हूँ, आप सावधानीपूर्वक सुनें। हंस—इस मन्त्रका प्रतिलोम करनेपर **'सोऽहम्'** (पद सिद्ध होता है।) इसके सकार एवं हकार—इन दो वर्णोंका लोप कर देनेपर स्थूल ओंकारमात्र शेष रहता है, यही शब्द परमात्माका वाचक है। तत्त्वदर्शी महर्षियोंके अनुसार उसे महामन्त्र समझना चाहिये। अब मैं सूक्ष्म महामन्त्रका उद्धार आपसे कह रहा हूँ॥ ३७—३९॥

आद्ये त्रिपञ्चरूपे च स्वरे षोडशके त्रिषु।
महामन्त्रो भवेदादौ ससकारो भवेद्यदा॥ ४०

[हंसः—इस पदमें तीन अक्षर हैं—ह्, अ, स।] इनमें आदिस्वर 'अ' पन्द्रहवें (अनुस्वार) और सोलहवें [विसर्ग]-के साथ है। सकारके साथवाला 'अ' विसर्गसहित है। यदि वह सकारके साथ 'हं' के आदिमें चला जाय तो सोऽहम् यह महामन्त्र हो जायगा॥ ४०॥

हंसस्य प्रतिलोमः स्यात्सकारार्थः शिवः स्मृतः।
शक्त्यात्मको महामन्त्रवाच्यः स्यादिति निर्णयः॥ ४१

हंसका प्रतिलोम कर देनेपर **'सोऽहम्'** यह महामन्त्र सिद्ध होता है, जिसमें सकारका अर्थ शिव कहा गया है। वे शिव ही शक्त्यात्मक महामन्त्रके वाच्यार्थ हैं—ऐसा ही निर्णय है॥ ४१॥

गुरूपदेशकाले तु सोऽहं शक्त्यात्मकः शिवः।
इति जीवपरो भूयान्महामन्त्रस्तदा पशुः॥ ४२

शक्त्यात्मकः शिवांशश्च शिवैक्याच्छिवसाम्यभाक्।

गुरुके द्वारा उपदेशके समय **'सोऽहम्'**—इस पदसे उसको शक्त्यात्मक शिवका बोध कराना ही अभीष्ट होता है। अर्थात् वह यह अनुभव करे कि मैं शक्त्यात्मक शिवरूप हूँ। इस प्रकार जब यह महामन्त्र जीवपरक होता है अर्थात् जीवकी शिवरूपताका बोध कराता है तब पशु (जीव) अपनेको शक्त्यात्मक एवं शिवांश जानकर शिवके साथ अपनी एकता सिद्ध हो जानेसे शिवकी समताका भागी हो जाता है॥ ४२½॥

प्रज्ञानं ब्रह्मवाक्ये तु प्रज्ञानार्थः प्रदृश्यते॥ ४३

प्रज्ञानशब्दश्चैतन्यपर्यायः स्यान्न संशयः।
चैतन्यमात्मेति मुने शिवसूत्रं प्रवर्तितम्॥ ४४

'प्रज्ञानं ब्रह्म'—इस ब्रह्मवाक्यमें प्रज्ञानका अर्थ इस प्रकार दिखायी देता है। प्रज्ञान शब्द चैतन्यका पर्याय है, इसमें सन्देह नहीं है। इसीलिये हे मुने! **'चैतन्यमात्मा'** (अर्थात् आत्मा चैतन्यरूप है) यह शिवसूत्र कहा गया है॥ ४३-४४॥

चैतन्यमिति विश्वस्य सर्वज्ञानक्रियात्मकम्।
स्वातन्त्र्यं तत्स्वभावो यः स आत्मा परिकीर्तितः॥ ४५

इत्यादिशिवसूत्राणां वार्तिकं कथितं मया।

अब श्रुतिके **'प्रज्ञानं ब्रह्म'** इस वाक्यमें जो **'प्रज्ञानम्'** पद आया है, उसके अर्थको दिखाया जा रहा है। 'प्रज्ञान' शब्द 'चैतन्य' का पर्याय है, इसमें संशय नहीं है। मुने! शिवसूत्रमें यह कहा गया है कि **'चैतन्यम् आत्मा'** अर्थात् आत्मा (ब्रह्म या परमात्मा) चैतन्यरूप है। चैतन्य शब्दसे यह सूचित होता है कि जिसमें विश्वका सम्पूर्ण ज्ञान तथा स्वतन्त्रतापूर्वक जगत्के निर्माणकी क्रिया स्वभावतः विद्यमान है, उसीको आत्मा या परमात्मा कहा गया है। इस प्रकार मैंने यहाँ शिवसूत्रोंकी ही व्याख्या की है॥ ४५½॥

ज्ञानं बंध इतीदं तु द्वितीयं सूत्रमीशितुः॥ ४६

ज्ञानमित्यात्मनस्तस्य किञ्चिज्ज्ञानक्रियात्मकम्।

'ज्ञानं बन्धः' यह दूसरा शिवसूत्र है। इसमें पशुवर्ग (जीवसमुदाय)-का लक्षण बताया गया है। इस सूत्रमें आदि पद **'ज्ञानम्'** के द्वारा किंचिन्मात्र

इत्याहाद्यपदेनेशः पशुवर्गस्य लक्षणम्॥ ४७

एतद् द्वयं पराशक्तेः प्रथमं स्पंदतां गतम्।
एतामेव परां शक्तिं श्वेताश्वतरशाखिनः॥ ४८

स्वाभाविकी ज्ञानबलक्रिया चेत्यस्तुवन्मुदा।
ज्ञानक्रियेच्छारूपं हि शंभोर्दृष्टित्रयं विदुः॥ ४९

एतन्मनोमध्यगं सदिन्द्रियज्ञानगोचरम्।
अनुप्रविश्य जानाति करोति च पशुः सदा॥ ५०

तस्मादात्मन एवेदं रूपमित्येव निश्चितम्।

प्रपञ्चार्थं प्रवक्ष्यामि प्रणवैक्यप्रदर्शनम्॥ ५१

ओमितीदं सर्वमिति श्रुतिराह सनातनी।
तस्माद्वेतीत्युपक्रम्य जगत्सृष्टिः प्रकीर्तिता॥ ५२

तस्याः श्रुतेस्तु तात्पर्यं वक्ष्यामि श्रूयतामिदम्।
तव स्नेहाद्वामदेव विवेकार्थविजृम्भितम्॥ ५३

शिवशक्तिसमायोगः परमात्मेति निश्चितम्।
पराशक्तेस्तु संजाता चिच्छक्तिस्तु तदुद्भवा॥ ५४

आनन्दशक्तिस्तज्जा स्यादिच्छाशक्तिस्तदुद्भवा।

ज्ञानशक्तिस्ततो जाता क्रियाशक्तिस्तु पञ्चमी।
एताभ्य एव संजाता निवृत्त्याद्याः कला मुने॥ ५५

चिदानन्दसमुत्पन्नौ नादबिन्दू प्रकीर्तितौ।
इच्छाशक्तेर्मकारस्तु ज्ञानशक्तेस्तु पञ्चमः॥ ५६

ज्ञान और क्रियाका होना ही जीवका लक्षण कहा गया है। यह ज्ञान और क्रिया पराशक्तिका प्रथम स्पन्दन है। कृष्ण यजुर्वेदकी श्वेताश्वतर शाखाका अध्ययन करनेवाले विद्वानोंने **'स्वाभाविकी ज्ञानबलक्रिया च'*** इस श्रुतिके द्वारा इसी पराशक्तिका प्रसन्नतापूर्वक स्तवन किया है। भगवान् शंकरकी तीन दृष्टियाँ मानी गयी हैं—ज्ञान, क्रिया और इच्छारूप। ये तीनों दृष्टियाँ जीवके मनमें स्थित हो अर्थात् इन्द्रियज्ञानगोचर देहमें प्रवेश करके जीवरूप हो सदा जानती और करती हैं। अतः यह दृष्टित्रयरूप जीव आत्मा (महेश्वर)-का स्वरूप ही है, ऐसा निश्चित सिद्धान्त है॥ ४६—५०½॥

अब मैं जगत्प्रपंचके साथ प्रणवकी एकताका बोध करानेवाले प्रपंचार्थका वर्णन करूँगा। **'ओमितीदं सर्वम्'** (तैत्तिरीय० १। ८। १) अर्थात् यह प्रत्यक्ष दिखायी देनेवाला समस्त जगत् ओंकार है—यह सनातन श्रुतिका कथन है। इससे प्रणव और जगत्‌की एकता सूचित होती है। **'तस्माद्वा'** (तैत्तिरीय० २। १) इस वाक्यसे आरम्भ करके तैत्तिरीय श्रुतिने संसारकी सृष्टिके क्रमका वर्णन किया है। वामदेव! उस श्रुतिका जो विवेकपूर्ण तात्पर्य है, उसे मैं तुम्हारे स्नेहवश बता रहा हूँ, सुनो॥ ५१—५३॥

शिवशक्तिका संयोग ही परमात्मा है, यह ज्ञानी पुरुषोंका निश्चित मत है। शिवकी जो पराशक्ति है, उससे चिच्छक्ति प्रकट होती है। चिच्छक्तिसे आनन्दशक्तिका प्रादुर्भाव होता है, आनन्दशक्तिसे इच्छाशक्तिका उद्भव हुआ है, इच्छाशक्तिसे ज्ञानशक्ति और ज्ञानशक्तिसे पाँचवीं क्रियाशक्ति प्रकट हुई है॥ ५४½॥

मुने! इन्हींसे निवृत्ति आदि कलाएँ उत्पन्न हुई हैं। चिच्छक्तिसे नाद और आनन्दशक्तिसे बिन्दुका प्राकट्य बताया गया है। इच्छाशक्तिसे मकार प्रकट हुआ है। ज्ञानशक्तिसे पाँचवाँ स्वर उकार उत्पन्न हुआ है और क्रियाशक्तिसे अकारकी उत्पत्ति हुई है।

* यह श्रुति श्वेताश्वतरोपनिषद् (६। ८) की है। इसका पूरा पाठ इस प्रकार है—
न तस्य कार्यं करणं च विद्यते न तत्समश्चाभ्यधिकश्च दृश्यते। परास्य शक्तिर्विविधैव श्रूयते स्वाभाविकी ज्ञानबलक्रिया च॥
अर्थात्—
देह और इन्द्रियसे उनका है सम्बन्ध नहीं कोई। अधिक कहाँ, उनके सम भी तो दीख रहा न कहीं कोई॥
ज्ञानरूप, बलरूप, क्रियामय उनकी पराशक्ति भारी। विविध रूपमें सुनी गयी है, स्वाभाविक उनमें सारी॥

स्वरः क्रियाशक्तिजातो ह्यकारस्तु मुनीश्वर।
इत्युक्ता प्रणवोत्पत्तिः पञ्चब्रह्मोद्भवं शृणु॥ ५७

मुनीश्वर! इस प्रकार मैंने तुम्हें प्रणवकी उत्पत्ति बतलायी है। अब ईशानादि पंच ब्रह्मकी उत्पत्तिका वर्णन सुनो॥ ५५—५७॥

शिवादीशान उत्पन्नस्ततस्तत्पुरुषोद्भवः।
ततोऽघोरस्ततो वामः सद्योजातोद्भवस्ततः॥ ५८

एतस्मान्मातृकादष्टत्रिंशन्मातृसमुद्भवः।

शिवसे ईशान उत्पन्न हुए हैं, ईशानसे तत्पुरुषका प्रादुर्भाव हुआ है, तत्पुरुषसे अघोरका, अघोरसे वामदेवका और वामदेवसे सद्योजातका प्राकट्य हुआ है। इस आदि अक्षर प्रणवसे ही मूलभूत पाँच स्वर और तैंतीस व्यंजनके रूपमें अड़तीस अक्षरोंका प्रादुर्भाव हुआ है॥ ५८१/२॥

ईशानाच्छान्त्यतीताख्या कला जाताथ पूरुषात्।
उत्पद्यते शान्तिकला विद्याघोरसमुद्भवा॥ ५९

प्रतिष्ठा च निवृत्तिश्च वामसद्योद्भवे मते।
ईशाच्चिच्छक्तिमुखतो विभोर्मिथुनपञ्चकम्॥ ६०

अनुग्रहादिकृत्यानां हेतुः पञ्चकमिष्यते।
तद्विद्भिर्मुनिभिः प्राज्ञैर्वरतत्त्वप्रदर्शिभिः॥ ६१

अब कलाओंकी उत्पत्तिका क्रम सुनो। ईशानसे शान्त्यतीताकला उत्पन्न हुई है। तत्पुरुषसे शान्तिकला, अघोरसे विद्याकला, वामदेवसे प्रतिष्ठाकला और सद्योजातसे निवृत्तिकलाकी उत्पत्ति हुई है। ईशानसे चिच्छक्तिद्वारा मिथुनपंचककी उत्पत्ति होती है। अनुग्रह, तिरोभाव, संहार, स्थिति और सृष्टि—इन पाँच कृत्योंका हेतु होनेके कारण उसे पंचक कहते हैं। यह बात तत्त्वदर्शी ज्ञानी मुनियोंने कही है॥ ५९—६१॥

वाच्यवाचकसम्बन्धान्मिथुनत्वमुपेयुषि।
कलावर्णस्वरूपेऽस्मिन्पञ्चके भूतपञ्चकम्॥ ६२

वियदादिक्रमादासीदुत्पन्नं मुनिपुङ्गव।
आद्यं मिथुनमारभ्य पञ्चमं यन्मयं विदुः॥ ६३

वाच्य-वाचकके सम्बन्धसे उनमें मिथुनत्वकी प्राप्ति हुई है। कला वर्णस्वरूप इस पंचकमें भूतपंचककी गणना है। मुनिश्रेष्ठ! आकाशादिके क्रमसे इन पाँचों मिथुनोंकी उत्पत्ति हुई है। इनमें पहला मिथुन है आकाश, दूसरा वायु, तीसरा अग्नि, चौथा जल और पाँचवाँ मिथुन पृथ्वी है॥ ६२-६३॥

शब्दैकगुण आकाशः शब्दस्पर्शगुणो मरुत्।
शब्दस्पर्शरूपगुणप्रधानो वह्निरुच्यते॥ ६४

शब्दस्पर्शरूपरसगुणकं सलिलं स्मृतम्।
शब्दस्पर्शरूपरसगन्धाढ्या पृथिवी स्मृता॥ ६५

व्यापकत्वञ्च भूतानामिदमेव प्रकीर्तितम्।
व्याप्यत्वं वैपरीत्येन गन्धादिक्रमतो भवेत्॥ ६६

[इनमें आकाशसे लेकर पृथ्वीतकके भूतोंका जैसा स्वरूप बताया गया है, उसे सुनो।] आकाशमें एकमात्र शब्द ही गुण है; वायुमें शब्द और स्पर्श दो गुण हैं; अग्निमें शब्द, स्पर्श और रूप—इन तीन गुणोंकी प्रधानता है; जलमें शब्द, स्पर्श, रूप और रस—ये चार गुण माने गये हैं तथा पृथ्वी शब्द, स्पर्श, रूप, रस और गन्ध—इन पाँच गुणोंसे सम्पन्न है। यही भूतोंका व्यापकत्व कहा गया है अर्थात् शब्दादि गुणोंद्वारा आकाशादि भूत वायु आदि परवर्ती भूतोंमें किस प्रकार व्यापक हैं, यह दिखाया गया है। इसके विपरीत गन्धादि गुणोंके क्रमसे वे भूत पूर्ववर्ती भूतोंसे व्याप्य हैं अर्थात् गन्ध गुणवाली पृथ्वी जलका और रसगुणवाला जल अग्निका व्याप्य है, इत्यादि रूपसे इनकी व्याप्यताको समझना चाहिये॥ ६४—६६॥

भूतपञ्चकरूपोऽयं प्रपञ्चः परिकीर्त्यते।
विराट् सर्वसमष्ट्यात्मा ब्रह्माण्डमिति च स्फुटम् ॥ ६७

पृथिवीतत्त्वमारभ्य शिवतत्त्वावधिं क्रमात्।
निलीय तत्त्वसंदोहे जीव एव विलीयते॥ ६८

संशक्तिकः पुनः सृष्टौ शक्तिद्वारा विनिर्गतः।
स्थूलप्रपञ्चरूपेण तिष्ठत्याप्रलयं सुखम्॥ ६९

पाँच भूतोंका यह विस्तार ही 'प्रपंच' कहलाता है। सर्वसमष्टिका जो आत्मा है, उसीका नाम 'विराट्' है और पृथ्वीतत्त्वसे लेकर क्रमशः शिवतत्त्वतक जो तत्त्वोंका समुदाय है, वही 'ब्रह्माण्ड' है। वह क्रमशः तत्त्वसमूहमें लीन होता हुआ अन्ततोगत्वा सबके जीवनभूत चैतन्यमय परमेश्वरमें ही लयको प्राप्त होता है और सृष्टिकालमें फिर शक्तिद्वारा शिवसे निकलकर स्थूल प्रपंचके रूपमें प्रलय-कालपर्यन्त सुखपूर्वक स्थित रहता है॥ ६७—६९ ॥

निजेच्छया जगत्सृष्टमुद्युक्तस्य महेशितुः।
प्रथमो यः परिस्पन्दः शिवतत्त्वं तदुच्यते॥ ७०
एषैवेच्छा शक्तितत्त्वं सर्वकृत्यानुवर्तनात्।

अपनी इच्छासे संसारकी सृष्टिके लिये उद्यत हुए महेश्वरका जो प्रथम परिस्पन्द है, उसे 'शिवतत्त्व' कहते हैं। यही इच्छाशक्ति-तत्त्व है; क्योंकि सम्पूर्ण कृत्योंमें इसीका अनुवर्तन होता है॥ ७०१/२ ॥

ज्ञानक्रियाशक्तियुग्मे ज्ञानाधिक्ये सदाशिवः॥ ७१
महेश्वरं क्रियोद्रेके तत्त्वं विद्धि मुनीश्वर।
ज्ञानक्रियाशक्तिसाम्यं शुद्धं विद्यात्मकं मतम्॥ ७२

मुनीश्वर! ज्ञान और क्रिया—इन दो शक्तियोंमें जब ज्ञानका आधिक्य हो, तब उसे सदाशिवतत्त्व समझना चाहिये; जब क्रिया-शक्तिका उद्रेक हो तब उसे महेश्वरतत्त्व जानना चाहिये तथा जब ज्ञान और क्रिया दोनों शक्तियाँ समान हों तब वहाँ शुद्ध विद्यात्मक-तत्त्व समझना चाहिये॥ ७१-७२ ॥

स्वाङ्गरूपेषु भावेषु मायातत्त्वविभेदधीः।
शिवो यदा निजं रूपं परमैश्वर्यपूर्वकम्॥ ७३
निगृह्य माययाऽशेषपदार्थग्राहको भवेत्।
तदा पुरुष इत्याख्या तत्सृष्ट्वेत्यभवच्छ्रुतिः॥ ७४

समस्त भाव-पदार्थ परमेश्वरके अंगभूत ही हैं; तथापि उनमें जो भेदबुद्धि होती है, उसका नाम माया-तत्त्व है। जब शिव अपने परम ऐश्वर्यशाली रूपको मायासे निगृहीत करके सम्पूर्ण पदार्थोंको ग्रहण करने लगते हैं, तब उनका नाम 'पुरुष' होता है। '**तत्सृष्ट्वा तदेवानु प्राविशत्**' (उस शरीरको रचकर स्वयं उसमें प्रविष्ट हुआ) इस श्रुतिने उनके इसी स्वरूपका प्रतिपादन किया है अथवा इसी तत्त्वका प्रतिपादन करनेके लिये उक्त श्रुतिका प्रादुर्भाव हुआ है॥ ७३-७४ ॥

अयमेव हि संसारी मायया मोहितः पशुः।
शिवज्ञानविहीनो हि नानाकर्मविमूढधीः॥ ७५
शिवादभिन्नं न जगदात्मानं भिन्नमित्यपि।
जानतोऽस्य पशोरेव मोहो भवति न प्रभो॥ ७६

यही पुरुष मायासे मोहित होकर संसारी (संसारबन्धनमें बँधा हुआ) पशु कहलाता है। शिवतत्त्वके ज्ञानसे शून्य होनेके कारण उसकी बुद्धि नाना कर्मोंमें आसक्त हो मूढ़ताको प्राप्त हो जाती है। वह जगत्को शिवसे अभिन्न नहीं जानता तथा अपनेको भी शिवसे भिन्न ही समझता है। प्रभो! यदि शिवसे अपनी तथा जगत्की अभिन्नताका बोध हो जाय तो इस पशु (जीव)-को मोहका बन्धन न प्राप्त हो। जैसे इन्द्रजाल-विद्याके ज्ञाता (बाजीगर)- को अपनी रची हुई अद्भुत

यथैन्द्रजालिकस्यापि योगिनो न भवेद् भ्रमः।
गुरुणा ज्ञापितैश्वर्यः शिवो भवति चिद्घनः॥ ७७

वस्तुओंके विषयमें मोह या भ्रम नहीं होता है, उसी प्रकार ज्ञानयोगीको भी नहीं होता। गुरुके उपदेशद्वारा अपने ऐश्वर्यका बोध प्राप्त हो जानेपर वह चिदानन्दघन शिवरूप ही हो जाता है॥ ७५—७७॥

सर्वकर्तृत्वरूपा च सर्वज्ञत्वस्वरूपिणी।
पूर्णत्वरूपा नित्यत्वव्यापकत्वस्वरूपिणी॥ ७८

शिवस्य शक्तयः पञ्च संकुचद्रूपभास्कराः।
अपि संकोचरूपेण विभान्त्य इति नित्यशः॥ ७९

शिवकी पाँच शक्तियाँ हैं—१-सर्व-कर्तृत्वरूपा, २-सर्वतत्त्वरूपा, ३-पूर्णत्वरूपा, ४-नित्यत्वरूपा और ५-व्यापकत्वरूपा। ये शक्तियाँ सूर्यके समान अपने स्वरूपको संकुचित करनेमें भी समर्थ हैं। संकुचित होनेपर भी ये सदैव भासित होती रहती हैं॥ ७८-७९॥

पशोः कलाख्यविद्येति रागकालौ नियत्यपि।
तत्त्वपञ्चकरूपेण भवत्यत्र कलेति सा॥ ८०

किंचित्कर्तृत्वहेतुः स्यात् किञ्चित्तत्त्वैकसाधनम्।
सा तु विद्या भवेद्रागो विषयेष्वनुरंजकः॥ ८१

जीवकी पाँच कलाएँ हैं—१-कला, २-विद्या, ३-राग, ४-काल और ५-नियति। इन्हें कलापंचक कहते हैं। जो यहाँ पाँच तत्त्वोंके रूपमें प्रकट होती है, उसका नाम 'कला' है। जो कुछ-कुछ कर्तृत्वमें हेतु बनती है और कुछ तत्त्वका साधन होती है, उस कलाका नाम 'विद्या' है। जो विषयोंमें आसक्ति पैदा करनेवाली है, उस कलाका नाम 'राग' है॥ ८०-८१॥

कालो हि भावभावानां भासानां भासनात्मकः।
क्रमावच्छेदको भूत्वा भूतादिरिति कथ्यते॥ ८२

इदं तु मम कर्तव्यमिदं नेति नियामिका।
नियतिः स्याद्विभोः शक्तिस्तदाक्षेपात्पतेत् पशुः॥ ८३

एतत्पञ्चकमेवास्य स्वरूपावारकत्वतः।
पञ्चकञ्चुकमाख्यातमन्तरंगं च साधनम्॥ ८४

जो भाव पदार्थों और प्रकाशोंका भासनात्मकरूपसे क्रमशः अवच्छेदक होकर सम्पूर्ण भूतोंका आदि कहलाता है, वही 'काल' है। यह मेरा कर्तव्य है और यह नहीं है—इस प्रकार नियन्त्रण करनेवाली जो विभुकी शक्ति है, उसका नाम 'नियति' है। उसके आक्षेपसे जीवका पतन होता है। ये पाँचों ही जीवके स्वरूपको आच्छादित करनेवाले आवरण हैं। इसलिये 'पंचकंचुक' कहे गये हैं। इनके निवारणके लिये अन्तरंग साधनकी आवश्यकता है॥ ८२—८४॥

इति श्रीशिवमहापुराणे षष्ठ्यां कैलाससंहितायां शिवतत्त्ववर्णनं नाम षोडशोऽध्यायः॥ १६॥

॥ इस प्रकार श्रीशिवमहापुराणके अन्तर्गत छठी कैलाससंहितामें शिवतत्त्ववर्णन नामक सोलहवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ १६॥

अथ सप्तदशोऽध्यायः

अद्वैत शैववाद एवं सृष्टिप्रक्रियाका प्रतिपादन

वामदेव उवाच

नियत्यधस्तात्प्रकृतेरुपरिस्थः पुमानिति।
पूर्वत्र भवता प्रोक्तमिदानीं कथमन्यथा॥ १

मायया संकुचद्रूपस्तदाधस्तादिति प्रभो।
इति मे संशयं नाथ छेत्तुमर्हसि तत्त्वतः॥ २

वामदेवजी बोले—हे भगवन्! आपने पहले कहा कि प्रकृतिके नीचे नियति और ऊपर पुरुष है, अब आप अन्यथा कैसे कह रहे हैं? हे प्रभो! मायासे जिसका स्वरूप ढका हुआ है, उस जीवरूप पुरुषको तो मायासे नीचे होना चाहिये। हे नाथ! आप मेरा यह सन्देह तत्त्वतः दूर कीजिये॥ १-२॥

श्रीसुब्रह्मण्य उवाच

अद्वैतशैववादोऽयं द्वैतं न सहते क्वचित्।
द्वैतं च नश्वरं ब्रह्माद्वैतं परमनश्वरम्॥ ३
सर्वज्ञः सर्वकर्ता च शिवः सर्वेश्वरोऽगुणः।
त्रिदेवजनको ब्रह्मा सच्चिदानन्दविग्रहः॥ ४
स एव शंकरो देवः स्वेच्छया च स्वमायया।
संकुचद्रूप इव सन्पुरुषः संबभूव ह॥ ५
कलादिपञ्चकेनैव भोक्तृत्वेन प्रकल्पितः।
प्रकृतिस्थः पुमानेष भुङ्क्ते प्रकृतिजान्गुणान्॥ ६

इति स्थानद्वयान्तःस्थः पुरुषो न विरोधकः।
संकुचन्निजरूपाणां ज्ञानादीनां समष्टिमान्॥ ७

सत्त्वादिगुणसाध्यं च बुद्ध्यादि त्रितयात्मकम्।
चित्तम्प्रकृतितत्त्वं तदासीत्सत्त्वादिकारणात्॥ ८

सात्त्विकादिविभेदेन गुणाः प्रकृतिसम्भवाः।
गुणेभ्यो बुद्धिरुत्पन्ना वस्तुनिश्चयकारिणी॥ ९

ततो महानहङ्कारस्ततो बुद्धीन्द्रियाणि च।
जातानि मनसो रूपं स्यात्संकल्पविकल्पकम्॥ १०

बुद्धीन्द्रियाणि श्रोत्रत्वक् चक्षुर्जिह्वा च नासिका।
शब्दः स्पर्शश्च रूपं च रसो गन्धश्च गोचरः॥ ११
बुद्धीन्द्रियाणां कथितं श्रोत्रादिक्रमतस्ततः।
वैकारिकादहंकारात्तन्मात्राण्यभवन्क्रमात्॥ १२
तानि प्रोक्तानि सूक्ष्माणि मुनिभिस्तत्त्वदर्शिभिः।
कर्मेन्द्रियाणि ज्ञेयानि स्वकार्यसहितानि च॥ १३
विप्रर्षे वाक्करौ पादौ पायूपस्थौ च तत्क्रियाः।
वचनादानगमनविसर्गानन्दसंज्ञिताः॥ १४
भूतादिकादहंकारात्तन्मात्राण्यभवन्क्रमात्।
तानि सूक्ष्माणि रूपाणि शब्दादीनामिति स्थितिः॥ १५

तेभ्यश्चाकाशवाय्वग्निजलभूमिजनिः क्रमात्।
विज्ञेया मुनिशार्दूल पञ्चभूतमितीष्यते॥ १६

अवकाशप्रदानं च वाहकत्वं च पाचनम्।
संरम्भो धारणं तेषां व्यापाराः परिकीर्तिताः॥ १७

सुब्रह्मण्य बोले—यह अद्वैत शैववाद है, जो किसी भी प्रकार द्वैतमतको स्वीकार नहीं करता है; क्योंकि द्वैत नश्वर है और अद्वैत अविनाशी परब्रह्म है। शिवजी सर्वज्ञ, सर्वकर्ता, सर्वेश्वर, निर्गुण, त्रिदेवोंके जनक, ब्रह्म एवं सच्चिदानन्द स्वरूपवाले हैं॥ ३-४॥

वही महादेव शंकर अपनी इच्छासे तथा अपनी मायासे संकुचितरूप धारणकर पुरुषरूप हो गये॥ ५॥

कलादि पंचकंचुकके कारण यह पुरुष भोक्ता बनता है तथा प्रकृतिमें रहकर प्रकृतिके गुणोंको भोगता है। इस प्रकार दोनों स्थानमें स्थित होनेपर भी पुरुषका प्रकृतिसे कोई विरोध नहीं है, क्योंकि वह अपने रूपको संकुचित करनेपर भी ज्ञानरूपसे समष्टिमें स्थित है॥ ६-७॥

वह सत्त्व गुणोंसे साध्य है एवं बुद्धि आदि त्रितयसे युक्त है, सत्त्व आदि गुणोंके कारण वह चित्-प्रकृतितत्त्व भी है। सात्त्विक आदि भेदसे तीनों गुण प्रकृतिसे उत्पन्न हुए हैं, इन्हीं गुणोंसे वस्तुका निश्चय करानेवाली बुद्धि उत्पन्न हुई है। उस बुद्धिसे महान्, महान्से अहंकार, अहंकारसे ज्ञानेन्द्रियाँ उत्पन्न हुई हैं, [उसी तैजस अहंकारसे मन भी उत्पन्न हुआ है।] मनका रूप संकल्प-विकल्पात्मक है॥ ८—१०॥

श्रोत्र, त्वचा, चक्षु, जिह्वा और नासिका—ये ज्ञानेन्द्रियाँ हैं। शब्द, स्पर्श, रूप, रस और गन्ध—ये श्रोत्र आदिके क्रमसे ज्ञानेन्द्रियोंके गुण कहे गये हैं। वैकारिक अहंकारसे क्रमशः तन्मात्राएँ उत्पन्न होती हैं॥ ११-१२॥

तत्त्वद्रष्टा मुनियोंने उन तन्मात्राओंको सूक्ष्म [भूत] कहा है। कर्मेन्द्रियोंको उनके कार्योंके सहित समझना चाहिये। हे विप्रर्षे! वे वाणी, हाथ, पैर, पायु और उपस्थ हैं; उनके कार्य बोलना, ग्रहण करना, चलना, मलत्याग तथा आनन्द लेना है। भूतादि अहंकारसे क्रमशः तन्मात्राओंकी उत्पत्ति हुई है, उन्हीं सूक्ष्मभूतोंको शब्दादि सूक्ष्म तन्मात्रा कहा जाता है॥ १३—१५॥

उन्हींसे क्रमशः आकाश, वायु, तेज, जल और पृथ्वीकी उत्पत्ति जाननी चाहिये। हे मुनिशार्दूल! इन्हें ही पंचभूत भी कहा जाता है। अवकाश प्रदान करना, वहन करना, पकाना, वेग एवं धारण करना—ये उनके कार्य कहे गये हैं॥ १६-१७॥

वामदेव उवाच

भूतसृष्टिः पुरा प्रोक्ता कलादिभ्यः कथं पुनः।
अन्यथा प्रोच्यते स्कन्द संदेहोऽत्र महान्मम॥ १८
आत्मतत्त्वमकारः स्याद्विद्या स्यादुस्ततः परम्।
शिवतत्त्वं मकारः स्याद्वामदेवेति चिन्त्यताम्॥ १९
बिन्दुनादौ तु विज्ञेयौ सर्वतत्त्वार्थकावुभौ।
तत्रत्या देवता याश्च ता मुने शृणु साम्प्रतम्॥ २०
ब्रह्मा विष्णुश्च रुद्रश्च महेश्वरसदाशिवौ।
ते हि साक्षाच्छिवस्यैव मूर्तयः श्रुतिविश्रुताः॥ २१
इत्युक्तं भवता पूर्वमिदानीमुच्यतेऽन्यथा।
तन्मात्रेभ्यो भवन्तीति सन्देहोऽत्र महान्मम॥ २२
कृत्वा तत्करुणां स्कन्द संशयं छेत्तुमर्हसि।
इत्याकर्ण्य मुनेर्वाक्यं कुमारः प्रत्यभाषत॥ २३

वामदेवजी बोले—हे स्कन्द! आपने पहले कलाओंसे भूतसृष्टि कही थी, किंतु अब आप इसके विपरीत क्यों कह रहे हैं, इस विषयमें मुझे महान् सन्देह हो रहा है। आपने कहा था 'हे वामदेव! अकार आत्मतत्त्व है, उकार विद्यातत्त्व है, मकार शिवतत्त्व है, ऐसा समझना चाहिये। बिन्दु-नादको सर्वतत्त्वार्थक जानना चाहिये। हे मुने! उसके जो देवता हैं, उन्हें अब सुनिये। ब्रह्मा, विष्णु, रुद्र, महेश्वर और सदाशिव—ये सभी साक्षात् शिवकी ही मूर्तियाँ हैं, जो श्रुतिमें कही गयी हैं'—ऐसा आपने पहले कहा था, किंतु अब उसके विपरीत कह रहे हैं कि ये तन्मात्राओंसे होती हैं, मुझे इस विषयमें महान् सन्देह है। हे स्कन्दजी! आप दया करके इस सन्देहको दूर कीजिये। मुनिका यह वचन सुनकर कुमार कहने लगे— ॥ १८—२३ ॥

श्रीसुब्रह्मण्य उवाच

तस्माद्वेति समारभ्य भूतसृष्टिक्रमे मुने।
ताञ्छृणुष्व महाप्राज्ञ सावधानतयादरात्॥ २४

श्रीसुब्रह्मण्य बोले—हे मुने! हे महाप्राज्ञ! '**तस्माद्वा**' इस श्रुतिसे प्रारम्भकर भूतसृष्टिक्रमको मैं कह रहा हूँ, उसे सावधान होकर आदरपूर्वक सुनें॥ २४॥

जातानि पञ्च भूतानि कलाभ्य इति निश्चितम्।
स्थूलप्रपञ्चरूपाणि तानि भूतपतेर्वपुः॥ २५

शिवतत्त्वादिपृथ्व्यन्तं तत्त्वानामुदयक्रमे।
तन्मात्रेभ्यो भवन्तीति वक्तव्यानि क्रमान्मुने॥ २६

कलाओंसे पंचमहाभूत उत्पन्न हुए हैं। यह तो निश्चित ही है। अतः स्थूल प्रपंचरूप वे पंचमहाभूत शिवजीके शरीर हैं। शिवतत्त्वसे लेकर पृथ्वीतत्त्वपर्यन्त सभी तत्त्व क्रमसे तन्मात्राओंद्वारा उत्पन्न होते हैं। हे मुने! अब मैं क्रमसे उन्हीं तत्त्वोंको कहूँगा॥ २५-२६ ॥

तन्मात्राणां कलानामप्यैक्यं स्याद् भूतकारणम्।
अविरुद्धत्वमेवात्र विद्धि ब्रह्मविदां वर॥ २७

सभी भूतोंके जो कारण हैं, वे कला तथा तन्मात्राएँ एक ही वस्तु हैं। हे ब्रह्मवेत्ताओंमें श्रेष्ठ! इनमें विरोध मत समझिये॥ २७॥

स्थूलसूक्ष्मात्मके विश्वे चन्द्रसूर्यादयो ग्रहाः।
सनक्षत्राश्च संजातास्तथान्ये ज्योतिषां गणाः॥ २८
ब्रह्मविष्णुमहेशादिदेवता भूतजातयः।
इन्द्रादयोऽपि दिक्पाला देवाश्च पितरोऽसुराः॥ २९
राक्षसा मानुषाश्चान्ये जङ्गमत्वविभागिनः।
पशवः पक्षिणः कीटाः पन्नगादिप्रभेदिनः॥ ३०
तरुगुल्मलतौषध्यः पर्वताश्चाष्ट विश्रुताः।
गङ्गाद्याः सरितः सप्त सागराश्च महर्द्धयः॥ ३१
यत्किंचिद्वस्तुजातं तत्सर्वमत्र प्रतिष्ठितम्।
विचारणीयं सद्बुध्या न बहिर्मुनिसत्तम॥ ३२

इस स्थूल-सूक्ष्मात्मक संसारमें नक्षत्रोंके सहित सूर्य, चन्द्रादि ग्रह तथा अन्य ज्योतिर्गण उत्पन्न हुए हैं। ब्रह्मा, विष्णु, महेश्वरादि देवता, समस्त भूतसमुदाय, इन्द्रादि दिक्पाल, देवता, पितर, असुर, राक्षस, मनुष्य एवं अन्य प्रकारके जंगम प्राणी, पशु, पक्षी, कीट, पन्नग (सर्प) आदि नाम भेदवाले जीव, वृक्ष, गुल्म, लता, औषधि, पर्वत, गंगा आदि आठ प्रसिद्ध नदियाँ तथा महान् ऋद्धिसम्पन्न सात समुद्र और जो कुछ भी वस्तुएँ हैं, वे सब इसीमें प्रतिष्ठित हैं, बाहर नहीं, हे मुनिश्रेष्ठ! इसे बुद्धिसे विचार करना चाहिये॥ २८—३२॥

स्त्रीपुंरूपमिदं विश्वं शिवशक्त्यात्मकं बुधैः।
भवादृशैरुपास्यं स्याच्छिवज्ञानविशारदैः॥ ३३

सर्वं ब्रह्मेत्युपासीत सर्वं वै रुद्र इत्यपि।
श्रुतिराह मुने तस्मात्प्रपञ्चात्मा सदाशिवः॥ ३४

अष्टत्रिंशत्कलान्याससामर्थ्या द्वैतभावनात्।
सदाशिवोऽहमेवेति भावितात्मा गुरुः शिवः॥ ३५

एवंविचारी सच्छिष्यो गुरुः स्यात्स शिवः स्वयम्।
प्रपञ्चदेवतायन्त्रमन्त्रात्मा न हि संशयः॥ ३६

आचार्यकृपया विप्र संछिन्नाखिलबन्धनः।
शिष्यः शिवपदासक्तो गुर्वात्मा भवति ध्रुवम्॥ ३७

यदस्ति वस्तु तत्सर्वं गुणप्राधान्ययोगतः।
समस्तं व्यस्तमपि च प्रणवार्थं प्रचक्षते॥ ३८

रागादिदोषरहितं वेदसारः शिवोदितम्।
तुभ्यं मे कथितं प्रीत्याद्वैतज्ञानं शिवप्रियम्॥ ३९

यो ह्यन्यथैतन्मनुते मद्वचो मदगर्वितः।
देवो वा दानवः सिद्धो गन्धर्वो मनुजोऽपि वा॥ ४०

दुरात्मनस्तस्य शिरः छिन्द्यसमनया ध्रुवम्।
सच्छक्त्या रिपुकालाग्निकल्पया न हि संशयः॥ ४१

भवानेव मुने साक्षाच्छिवाद्वैतविदां वरः।
शिवज्ञानोपदेशे हि शिवाचारप्रदर्शकः॥ ४२

यद्देहभस्मसम्पर्कात्संछिन्नाघव्रजोऽशुचिः।
महापिशाचः सम्प्राप त्वत्कृपातः सतां गतिम्॥ ४३

शिवज्ञानविशारद आप-जैसे बुद्धिमानोंको इसीकी उपासना करनी चाहिये; क्योंकि यह सारा स्त्री-पुरुषरूप विश्व शिवशक्तिस्वरूप है॥ ३३॥

हे मुने! यह सब ब्रह्म है, यह सब रुद्र है—ऐसा मानकर उपासना करनी चाहिये—श्रुति ऐसा कहती है तथा इसीलिये सदाशिव इस प्रपंचकी आत्मा कहे जाते हैं॥ ३४॥

अड़तीस कलाओंके न्याससम्पादनमें जो समर्थ हैं तथा 'मैं सदा शिवसे सर्वथा अभिन्न हूँ', ऐसी अद्वैत भावनासे युक्त जो गुरु हैं, वे साक्षात् सदाशिव ही हैं तथा शिवस्वरूप गुरु ही प्रपंच, देवता, यन्त्र तथा मन्त्रस्वरूप भी हैं, इसमें संशय नहीं है। इस प्रकारसे विचार करनेवाला वह श्रेष्ठ शिष्य गुरुकी भाँति शिवस्वरूप हो जाता है॥ ३५-३६॥

हे विप्र! आचार्यकी कृपासे सभी बन्धनोंसे मुक्त होकर शिवजीके चरणोंमें आसक्त हुआ शिष्य निश्चित रूपसे महान् आत्मावाला हो जाता है॥ ३७॥

[इस जगत्में] जो भी वस्तु है, वह सब गुणोंकी प्रधानताके कारण समष्टि और व्यष्टि-रूपसे प्रणवके ही अर्थको कहती है। रागादि दोषोंसे रहित, वेदोंका सारस्वरूप, शिवप्रिय तथा शिवजीद्वारा कथित यह अद्वैतज्ञान मैंने आपसे प्रेमपूर्वक कह दिया॥ ३८-३९॥

जो अहंकारमें भरकर मेरी बातको मिथ्या कहेगा, वह देवता, दानव, सिद्ध, गन्धर्व अथवा मनुष्य कोई भी हो, मैं अवश्य ही उस दुरात्माका सिर शत्रुओंके लिये कालाग्निके समान अपनी महान् शक्तिसे काट दूँगा, इसमें सन्देह नहीं है॥ ४०-४१॥

हे मुने! आप तो साक्षात् शैवाद्वैतवेत्ताओंमें सर्वश्रेष्ठ हैं और शिवज्ञानके उपदेश [करनेमें कुशल] तथा शिवाचारके प्रदर्शक हैं, जिन आपके देहकी भस्मके स्पर्शमात्रसे अपवित्र महापिशाचने भी पापराशिको ध्वस्तकर आपकी कृपासे सद्गतिको प्राप्त किया था*॥ ४२-४३॥

* स्कन्दपुराणके ब्राह्मखण्डान्तर्गत ब्रह्मोत्तर नामक उपखण्डके पन्द्रहवें अध्यायमें भस्ममाहात्म्यके प्रसंगमें यह कथा आयी है।

शिवयोगीति संख्यातस्त्रिलोकविभवो भवान्।
भवत्कटाक्षसम्पर्कात्पशुः पशुपतिर्भवेत्॥ ४४

तव तस्य मयि पृच्छा लोकशिक्षार्थमादरात्।
लोकोपकारकरणे विचरन्तीह साधवः॥ ४५

त्रैलोक्यका ऐश्वर्य धारण करनेवाले आप शिवयोगी कहे जाते हैं। आपकी कृपादृष्टिके पड़ते ही पशु भी पशुपति अर्थात् साक्षात् शिव हो जाता है। आपने जो आदरपूर्वक मुझसे प्रश्न किया, वह तो केवल लोक-शिक्षाके लिये किया; क्योंकि साधुलोग लोकोपकारके लिये ही इस लोकमें विचरण करते हैं॥ ४४-४५॥

इदं रहस्यं परमं प्रतिष्ठितमतस्त्वयि।
त्वमपि श्रद्धया भक्त्या प्रणवेष्वेव सादरम्॥ ४६

उपविश्य च तान्सर्वान्संयोज्य परमेश्वरे।
शिवाचारं ग्राहयस्व भूतिरुद्राक्षमिश्रितम्॥ ४७

यह परम रहस्य सदा आपमें प्रतिष्ठित है ही, अतः आप श्रद्धा एवं भक्तिभावसे आदरपूर्वक अपने मनको प्रणवमें लगाकर उन संसारी जीवोंको परमेश्वरमें युक्त करके उन्हें भस्म और रुद्राक्षमाला [धारण-विधिके उपदेश]-सहित शिवाचारकी शिक्षा प्रदान करें॥ ४६-४७॥

त्वं शिवो हि शिवाचारी सम्प्राप्ताद्वैतभावतः।
विचरँल्लोकरक्षायै सुखमक्षयमाप्नुहि॥ ४८

आप कल्याणमय हैं, शैवोचित आचरण करते हैं और अद्वैत भावनाको प्राप्त हैं, अतः लोकरक्षाहेतु विचरण करते हुए आप अक्षय सुख प्राप्त करें॥ ४८॥

सूत उवाच

श्रुत्वेदमद्भुतमतं हि षडाननोक्तं
वेदान्तनिष्ठितमृषिस्तु विनम्रमूर्तिः।
भूत्वा प्रणम्य बहुशो भुवि दण्डवत्त-
त्पादारविन्दविहरन्मधुपत्वमाप ॥ ४९

सूतजी बोले—स्कन्दजीद्वारा कथित इस अद्भुत वेदान्तनिष्ठित मतको सुनकर महर्षि वामदेव विनम्र हो कार्तिकेयको पृथ्वीपर बार-बार दण्डवत् प्रणामकर उनके चरणकमलके मकरन्दका भ्रमरके समान आस्वादन करते हुए तत्त्वज्ञ हो गये॥ ४९॥

इति श्रीशिवमहापुराणे षष्ठ्यां कैलाससंहितायां शिवाद्वैतज्ञानकथनादि-सृष्टिकथनं नाम सप्तदशोऽध्यायः॥ १७॥

॥ इस प्रकार श्रीशिवमहापुराणके अन्तर्गत छठी कैलाससंहितामें शिवाद्वैतज्ञानकथनादि-सृष्टिकथन नामक सत्रहवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ १७॥

अथाष्टादशोऽध्यायः

संन्यासपद्धतिमें शिष्य बनानेकी विधि

शौनक उवाच

श्रुत्वा वेदान्तसारं तद्रहस्यं परमाद्भुतम्।
किं पृष्टवान् वामदेवो महेश्वरसुतं तदा॥ १

धन्यो योगी वामदेवः शिवज्ञानरतः सदा।
यत्सम्बन्धात्कथोत्पन्ना दिव्या परमपावनी॥ २

शौनकजी बोले—[हे सूतजी!] तब वेदान्त-सारस्वरूप उस परम अद्भुत रहस्यको सुनकर वामदेवने महेश्वरपुत्र कार्तिकेयसे [और] क्या पूछा? शिवज्ञानमें सदा तत्पर रहनेवाले योगी वामदेव धन्य हैं, जिनके सम्बन्धसे इस प्रकारकी दिव्य एवं परम पावनी कथा उत्पन्न हुई॥ १-२॥

इति श्रुत्वा मुनीनां तद्वचनं प्रेमगर्भितम्।
सूतः प्राह प्रसन्नस्तान् शिवासक्तमना बुधः॥ ३

इस प्रकार मुनियोंके उस स्नेहयुक्त वचनको सुनकर शिवमें आसक्त चित्तवाले बुद्धिमान् सूतजी प्रसन्न होकर उनसे कहने लगे—॥ ३॥

सूत उवाच

धन्या यूयं महादेवभक्ता लोकोपकारकाः।
शृणुध्वं मुनयः सर्वे संवादं च तयोः पुनः॥ ४

श्रुत्वा महेशतनयवचनं द्वैतनाशकम्।
अद्वैतज्ञानजनकं सन्तुष्टोऽभून्महान्मुनिः॥ ५

नत्वा स्तुत्वा च विविधं कार्तिकेयं शिवात्मजम्।
पुनः पप्रच्छ तत्त्वं हि विनयेन महामुनिः॥ ६

वामदेव उवाच

भगवन्सर्वतत्त्वज्ञ षण्मुखामृतवारिधे।
गुरुत्वं कथमेतेषां यतीनां भावितात्मनाम्॥ ७

जीवानां भोगमोक्षादिसिद्धिः सिध्यति यद्वशात्।
पारम्पर्यं विना नैषामुपदेशाधिकारिता॥ ८

एवं च क्षौरकर्माङ्गं स्नानं च कथमीदृशम्।
इति विज्ञापय स्वामिन् संशयं छेत्तुमर्हसि॥ ९

इति श्रुत्वा कार्तिकेयो वामदेववचः स्मरन्।
शिवं शिवां च मनसा व्याचष्टुमुपचक्रमे॥ १०

श्रीसुब्रह्मण्य उवाच

योगपट्टं प्रवक्ष्यामि गुरुत्वं येन जायते।
तव स्नेहाद्वामदेव महद्गोप्यं विमुक्तिदम्॥ ११

वैशाखे श्रावणे मासि तथाश्वयुजि कार्तिके।
मार्गशीर्षे च माघे वा शुक्लपक्षे शुभे दिने॥ १२

पञ्चम्यां पौर्णमास्यां वा कृतप्राभातिकक्रियः।
लब्धानुज्ञस्तु गुरुणा स्नात्वा नियतमानसः॥ १३

पर्यङ्कशौचं कृत्वा तद्वाससाङ्गं प्रमृज्य च।
द्विगुणं दोरमाबध्य वाससी परिधाय च॥ १४

क्षालिताङ्घ्रिर्द्विराचम्य भस्म सद्यादिमन्त्रतः।
धारयेद्धि समादाय समुद्धूलनमार्गतः॥ १५

गृहीतहस्तो गुरुणा सानुकूलेन वै मुने।
स शिष्यः साञ्जलिः स्वाभ्यां हस्ताभ्यां प्राङ्मुखो यथा॥ १६

तथोपवेष्टितस्तिष्ठेन्मण्डपे समलङ्कृते।
गुर्वासनवरे शुद्धे चैलाजिनकुशोत्तरे॥ १७

सूतजी बोले—आपलोग महादेवके भक्त एवं लोकोपकारी हैं, अतः धन्य हैं। हे मुनियो! अब आप सभी लोग उन दोनोंके संवादको पुनः सुनें॥ ४॥

इस प्रकार महेशपुत्र स्कन्दके द्वैतनाशक तथा अद्वैतज्ञानको उत्पन्न करनेवाले वचनको सुनकर महर्षि [वामदेव] प्रसन्न हुए। शिवपुत्र कार्तिकेयको बार-बार नमस्कार करके तथा उनकी स्तुति करके महामुनिने विनयपूर्वक पुनः पूछा—॥ ५-६॥

वामदेव बोले—हे भगवन्! हे सर्वतत्त्वज्ञ! हे अमृतवारिधि कार्तिकेय! इन आत्मज्ञानी यतियोंका गुरुत्व कैसे है? जीवोंको भोग-मोक्षादिकी सिद्धि किस कारणसे होती है? सम्प्रदायकी परम्पराके बिना इन्हें उपदेशमें अधिकार क्यों नहीं है?॥ ७-८॥

इनका इस प्रकार क्षौरकर्म क्यों होता है तथा ऐसा अभिषेक क्यों किया जाता है? इन सभी बातोंको बताइये। हे स्वामिन्! आप मेरा सन्देह दूर करनेकी कृपा कीजिये। वामदेवका यह वचन सुनकर कार्तिकेयजी मनमें शिव तथा पार्वतीका ध्यान करते हुए कहने लगे—॥ ९-१०॥

श्रीसुब्रह्मण्य बोले—अब मैं आपके स्नेहवश योगपट्टका वर्णन करूँगा, जिसके कारण गुरुत्व प्राप्त होता है। हे वामदेव! यह अत्यन्त गोपनीय तथा मुक्तिप्रद है॥ ११॥

वैशाख, श्रावण, आश्विन, कार्तिक, मार्गशीर्ष अथवा माघमासके शुक्लपक्षमें, उत्तम दिनमें पंचमी अथवा पूर्णमासीको प्रातःकालकी नित्य कर्मविधि समाप्तकर शिष्य गुरुकी आज्ञासे स्थिरचित्त होकर नियमपूर्वक स्नान करके पर्यंक अर्थात् आसनकी शुद्धि करे तथा उसके बाद वस्त्रसे अपने शरीरको पोंछकर दूना डोरा बाँध करके कटिवस्त्र एवं उत्तरीय धारण करे, फिर पैर धोकर दो बार आचमन करके सद्योजातादि मन्त्रसे विधिपूर्वक भस्म धारण करे। इसके बाद फिर भस्म लेकर उसे सारे शरीरमें लगाये॥ १२—१५॥

हे मुने! तब आचार्य प्रसन्न होकर शिष्यका हाथ ग्रहण करे और वह शिष्य दोनों हाथोंसे अंजलि बनाकर पूर्वाभिमुख अलंकृत मण्डपमें जहाँ कुश, उसके ऊपर मृगचर्म तथा उसपर वस्त्र बिछा हो—ऐसे आसनपर बैठे॥ १६-१७॥

अथ देशिक आदाय शङ्खं साधारमस्त्रतः।
विशोध्य तस्य पुरतः स्थापयेत्सानुकूलतः ॥ १८

इसके बाद आचार्यको चाहिये कि अपने हाथमें आधारसहित शंख लेकर अस्त्रमन्त्रसे उसे शुद्ध करके [शिष्यके प्रति अनुकूल होकर उसके आगे] आधारपर स्थापित करे॥ १८॥

साधारं शङ्खमपि च सम्पूज्य कुसुमादिभिः।
निःक्षिपेदस्त्रवर्मभ्यां शोधितं तत्र सज्जलम्॥ १९

आपूर्य पूर्ववत्पूज्य षडङ्गोक्तक्रमेण च।
प्रणवेन पुनस्तद्वै सप्तधैवाभिमन्त्रयेत्॥ २०

अभ्यर्च्य गन्धपुष्पाद्यैर्धूपदीपौ प्रदर्श्य च।
संरक्ष्यास्त्रेण तं शंखं वर्मणाथावगुण्ठयेत्॥ २१

तत्पश्चात् आधारसहित शंखकी कुसुमादिसे पूजाकर कवच एवं अस्त्रमन्त्रसे उस शंखमें शोधित किया गया उत्तम जल डाले और पूर्ववत् पुनः कथित षडंगके क्रमसे उसका पूजनकर प्रणवमन्त्रसे सात बार उस जलको अभिमन्त्रित करे। पुनः गन्ध, पुष्प आदिसे पूजनकर धूप तथा दीप दिखाकर अस्त्र-मन्त्रसे रक्षा करके उस शंखको कवचमन्त्रसे अवगुण्ठित करे॥ १९—२१॥

धेनुशंखाख्यमुद्रे च दर्शयेदथ देशिकः।
पुनः स्वपुरतः शंखं दक्षिणे देश उत्तमे॥ २२

पूज्यार्घ्योक्तविधानेन सुन्दरं मण्डलं शुभम्।
कुर्यात्सम्पूजयेत्तं च सुगन्धकुसुमादिभिः॥ २३

उसके बाद आचार्य स्वयं धेनु और शंखमुद्रा दिखाये। तदनन्तर उस शंखको अपने आगे दक्षिण दिशामें उत्तम स्थानपर रखकर पूजाके अर्घ्यविधानके अनुसार उत्तम तथा शुभ मण्डलका निर्माण करे और सुगन्धित पुष्पोंसे उसकी पूजा करे॥ २२-२३॥

साधारं शोधितं शुद्धं घटं तन्तुपरिष्कृतम्।
धूपितं स्थापितं शुद्धवासितोदप्रपूरितम्॥ २४

पञ्चत्वक्पञ्चपत्रैश्च मृत्तिकाभिश्च पञ्चभिः।
मिलितं च सुगन्धेन लेपयेत्तं मुनीश्वर॥ २५

वस्त्राम्रदलदूर्वाग्रनारिकेलसुमैस्ततः।
तं घटं वस्तुभिश्चान्यैः संकुर्यात्समलंकृतम्॥ २६

[उस मण्डलपर] आधारसहित, शोधित, धूपित, सूतसे आवेष्टित तथा सुगन्धित निर्मल जलसे भरा हुआ उत्तम घट स्थापित करे। हे मुनीश्वर! उसमें पाँच वृक्षों [पीपल, प्लक्ष, गूलर, आम तथा बरगद]-की छाल, पंचपल्लव रखे और पाँच प्रकारकी मिट्टीमें सुगन्धित जल मिलाकर कलशमें उसीसे लेप करे। इसके बाद वस्त्र, आम्रपत्र, दूर्वादल, [कुशाग्र], नारियल तथा फूलोंसे कलशको पूर्ण करे। इसी प्रकार अन्य वस्तुओंसे भी उस घटको अलंकृत करे॥ २४—२६॥

विन्यसेत्पञ्चरत्नानि घटे तत्र मुनीश्वर।
हिरण्यं चापि तेषां वाभावे भक्त्या प्रविन्यसेत्॥ २७
नीलाख्यरत्नं च तथा रत्ने माणिक्यहेमनी।
प्रवालगोमेदके च पञ्चरत्नमिदं स्मृतम्॥ २८

हे मुनीश्वर! उस घटमें पंचरत्न अथवा उसके अभावमें भक्तिपूर्वक केवल सुवर्ण डाले। नीलम, माणिक्य, सुवर्ण, मूँगा, गोमेद—इन्हें पंचरत्न कहा गया है॥ २७-२८॥

नृम्लुस्कमिति सम्प्रोच्य ग्लूमित्यन्तेऽथ देशिकः।
सम्यग्विधानतः प्रीत्या सानुकूलः समर्चयेत्॥ २९
आधारशक्तिमारभ्य यजनोक्तविधानतः।
पञ्चावरणमार्गेण देवमावाह्य पूजयेत्॥ ३०

'नृम्लुस्क' इत्यादि मन्त्रका उच्चारण करते हुए **'ग्लूम्'** इस बीजको अन्तमें लगाकर आचार्य प्रेमसे विधिपूर्वक आधारशक्तिसे लेकर पंचावरणपर्यन्त उन-उन देवोंका आवाहनकर पूजा करे॥ २९-३०॥

निवेद्य पायसान्नं च ताम्बूलादि यथा पुरा।
नामाष्टकार्चनान्तं च कृत्वा तमभिमन्त्रयेत्॥ ३१

प्रणवाष्टोत्तरशतं ब्रह्मभिः पञ्चभिः क्रमात्।
सद्यादीशान्तमप्यस्त्रं रक्षितं वर्मणा पुनः॥ ३२

अवगुण्ठ्य प्रदर्श्याथ धूपदीपौ च भक्तितः।
धेनुयोन्याख्यमुद्रे च सम्यक् तत्र प्रदर्शयेत्॥ ३३

तत्पश्चात् पायसका नैवेद्य अर्पितकर पूर्वकी भाँति ताम्बूलादि उपचारोंको समर्पित करे और [शर्व आदि] आठ नामोंसे पूजन करे। तदुपरान्त अष्टोत्तरशत प्रणवका उच्चारण करके उस [घट]-को अभिमन्त्रित करे। उसके अनन्तर पंच ब्रह्ममन्त्रोंसे सद्योजातादिका अर्चनकर [मुद्राओंका] प्रदर्शन करते हुए अस्त्रमन्त्रसे रक्षण तथा कवचमन्त्रसे अवगुण्ठन करे। इसके पश्चात् भक्तिपूर्वक धूप एवं दीप दिखाकर बादमें धेनु और योनि नामक मुद्राएँ प्रदर्शित करे॥ ३१—३३॥

ततश्च देशिकस्तस्य दर्भैराच्छाद्य मस्तकम्।
मण्डलस्थेशदिग्भागे चतुरस्रं प्रकल्पयेत्॥ ३४

तदुपर्यासनं रम्यं कल्पयित्वा विधानतः।
तत्र संस्थापयेच्छिष्यं तं शिशुं सानुकूलतः॥ ३५

उसके बाद आचार्य उस शिष्यके मस्तकको कुशोंसे ढँककर मण्डलके ईशानकोणमें चौकोर मण्डलका निर्माण करे। उसके ऊपर विधिपूर्वक सुन्दर आसन रखकर उसपर उस शिशु शिष्यको प्रेमपूर्वक बैठाये॥ ३४-३५॥

ततः कुम्भं समुत्थाप्य स्वस्तिवाचनपूर्वकम्।
अभिषिञ्चेद् गुरुः शिष्यं प्रादक्षिण्येन मस्तके॥ ३६

प्रणवं पूर्वमुच्चार्य सप्तधा ब्रह्मभिस्ततः।
पञ्चभिश्चाभिषेकान्ते शंखोदेनाभिवेष्टयेत्॥ ३७

उसके बाद कलशको उठाकर स्वस्तिवाचन करते हुए गुरु प्रदक्षिणक्रमसे अपने शिष्यके मस्तकपर अभिषेक करे। तदनन्तर प्रणवका सात बार उच्चारणकर पंचब्रह्मके मन्त्रोंसे अभिषेककर शंखका जल उसके चारों ओर अभिवेष्टित कर दे॥ ३६-३७॥

चारुदीपं प्रदर्श्याथ वाससा परिमृज्य च।
नूतनं दोरकौपीनं वाससी परिधापयेत्॥ ३८

तदनन्तर मनोहर दीप दिखाकर वस्त्रसे पोंछकर नये डोरेसे युक्त वस्त्र तथा कौपीन धारण कराये॥ ३८॥

क्षालिताङ्घ्रिर्द्विराचम्य धृतभस्मगुरुः शिशुम्।
हस्ताभ्यामवलंब्याथ हस्तौ मंडपमध्यतः॥ ३९

तदङ्गेषु समालिप्य तद्भस्म विधिना गुरुः।
आसने संप्रवेश्याथ कल्पिते स्थापयेत्सुखम्॥ ४०

इसके बाद पैर धोकर तथा दो बार आचमन कराके भस्म लगाकर आचार्य अपने हाथोंसे उसके दोनों हाथोंको पकड़कर मण्डपके मध्यमें उसे ले जाय। पुनः गुरु उसके अंगोंमें विधिपूर्वक भस्म लगाकर उसके लिये रखे हुए आसनपर सुखपूर्वक बैठाये॥ ३९-४०॥

पूर्वाभिमुखमात्मीयतत्त्वज्ञानाभिलाषिणम्।
स्वासनस्थो गुरुर्ब्रूयादमलात्मा भवेति तम्॥ ४१

गुरुश्च परिपूर्णोऽस्मि शिव इत्यचलस्थितिः।
समाधिमाचरेत्सम्यङ् मुहूर्त्तं गूढमानसः॥ ४२

पश्चादुन्मील्य नयने सानुकूलेन चेतसा।
साञ्जलिं संस्थितं शुद्धं पश्येच्छिष्यमनाकुलः॥ ४३

तदनन्तर पूर्वकी ओर मुखकर बैठे हुए शिष्यको आत्मतत्त्वज्ञानका अभिलाषी जानकर अपने आसनपर बैठा हुआ आचार्य उससे कहे—विशुद्ध आत्मावाले हो जाओ। तत्पश्चात् गुरु 'परिपूर्ण शिव हूँ'—ऐसा कहकर अचल हो दो घड़ीतकके लिये स्थिरचित्त हो समाधिमें लीन रहे। इसके बाद नेत्र खोलकर अपने सामने अंजलि बाँधकर खड़े हुए अपने शिष्यकी ओर प्रेमसे देखे॥ ४१—४३॥

स्वहस्तं भसितालिप्तं विन्यस्य शिशुमस्तके।
दक्षश्रुतावुपदिशेद्धंसः सोऽहमिति स्फुटम्॥ ४४

तत्राद्यहंपदस्यार्थः शक्त्यात्मा स शिवः स्वयम्।
स एवाहं शिवोऽस्मीति स्वात्मानं संविभावय॥ ४५

इसके बाद भस्मलिप्त अपने हाथको शिष्यके मस्तकपर रखकर दाहिने कानमें '**हंसः सोऽहम्**' इस मन्त्रका स्पष्ट उपदेश करे और शिष्यसे कहे कि इस मन्त्रके आद्य पद अहंका अर्थ स्वयं वे शक्त्यात्मा शिव हैं, वही शिव मैं हूँ—ऐसा अपने मनमें विचार करो॥ ४४-४५॥

य इत्यणोरर्थतत्त्वमुपदिश्य ततो वदेत्।
अवान्तराणां वाक्यानामर्थतात्पर्यमादरात्॥ ४६

वाक्यानि वच्मि ते ब्रह्मन्सावधानमतिः शृणु।
तानि धारय चित्ते हि स ब्रूयादिति संस्फुटम् ॥ ४७

'**य इत्यणो०**' इत्यादि मन्त्रके अर्थतत्त्वका उपदेशकर बादमें ब्रह्मके परोक्ष ज्ञानको कहनेवाले महावाक्योंको मैं तुमसे कहता हूँ, हे ब्रह्मन्! सावधान होकर सुनो और उन्हें चित्तमें धारण करो—इस प्रकार कहकर स्पष्ट रूपसे उन महावाक्योंका उपदेश करे॥ ४६-४७॥

इति श्रीशिवमहापुराणे षष्ठ्यां कैलाससंहितायां संन्यासपद्धतौ शिष्यकरणविधिर्नामाष्टादशोऽध्यायः॥ १८॥

॥ इस प्रकार श्रीशिवमहापुराणके अन्तर्गत छठी कैलाससंहितामें संन्यासपद्धतिमें शिष्यकरणविधि नामक अठारहवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ १८॥

अथैकोनविंशोऽध्यायः

महावाक्योंके तात्पर्य तथा योगपट्टविधिका वर्णन

सुब्रह्मण्य उवाच

''अथ महावाक्यानि''

सुब्रह्मण्य बोले—अब महावाक्योंको कहता हूँ—

१-**प्रज्ञानं ब्रह्म**—ब्रह्म उत्कृष्ट ज्ञानस्वरूप अथवा चैतन्यरूप है। (ऐतरेय० ३। ३ तथा आत्मप्र० १) २-**अहं ब्रह्मास्मि**—वह ब्रह्म मैं हूँ। (बृहदारण्यक० १। ४। १०) ३-**तत्त्वमसि**—वह ब्रह्म तू है। (छा० उ० अ० ६ ख० ८ से १६ तक) ४-**अयमात्मा ब्रह्म**—यह आत्मा ब्रह्म है। (माण्डूक्य० २; बृह० २। ५। १९) ५-**ईशा वास्यमिदꣳ सर्वम्**—यह सब ईश्वरसे व्याप्त है। (ईशा० १) ६-**प्राणोऽस्मि**—मैं प्राण हूँ। (कौषी० ३) ७-**प्रज्ञानात्मा**—प्रज्ञानस्वरूप हूँ। (कौषी० ३) ८-**यदेवेह तदमुत्र यदमुत्र तदन्विह**—जो परब्रह्म यहाँ है, वही वहाँ (परलोकमें) भी है; जो वहाँ है, वही यहाँ (इस लोकमें) भी है। (कठ० २। १। १०) ९-**अन्यदेव तद्विदितादथो अविदितादधि**—वह ब्रह्म विदित (ज्ञात वस्तुओं)-से भिन्न है और अविदित (अज्ञात)-से भी ऊपर है। (केन० १। ३) १०-**एष त आत्मान्तर्याम्यमृतः**—वह तुम्हारा आत्मा अन्तर्यामी अमृत है। (बृह० ३। ७। ३—२३) ११-**स यश्चायं पुरुषे यश्चासावादित्ये स एकः**—वह जो यह पुरुषमें है और वह जो यह आदित्यमें है, एक ही है। (तैत्तिरीय० २। ८)

१२-**अहमस्मि परं ब्रह्म परापरपरात्परम्**—मैं परापरस्वरूप परात्पर परब्रह्म हूँ।

१३-**वेदशास्त्रगुरुत्वात्तु स्वयमानन्दलक्षणम्**—वेदों, शास्त्रों और गुरुजनोंके वचनोंसे स्वयं ही हृदयमें आनन्दस्वरूप ब्रह्मका अनुभव होने लगता है।

१४-**सर्वभूतस्थितं ब्रह्म तदेवाहं न संशयः**—जो सम्पूर्ण भूतोंमें स्थित है, वही ब्रह्म मैं हूँ—इसमें संशय नहीं है।

१५-**तत्त्वस्य प्राणोऽहमस्मि पृथिव्याः प्राणोऽहमस्मि**—मैं तत्त्वका प्राण हूँ, पृथ्वीका प्राण हूँ।

१६-**अपां च प्राणोऽहमस्मि तेजसश्च प्राणोऽहमस्मि**—मैं जलका प्राण हूँ, तेजका प्राण हूँ।

१७-**वायोश्च प्राणोऽहमस्मि आकाशस्य प्राणोऽहमस्मि**—मैं वायुका प्राण हूँ, मैं आकाशका

प्राण हूँ।

१८-**त्रिगुणस्य प्राणोऽहमस्मि**—मैं त्रिगुणका प्राण हूँ।

१९-**सर्वोऽहं सर्वात्मकोऽहं संसारी यद्भूतं यच्च भव्यं यद्वर्तमानं सर्वात्मकत्वाददद्वितीयोऽहम्**—मैं सब हूँ, सर्वरूप हूँ, संसारी जीवात्मा हूँ; जो भूत, वर्तमान और भविष्य है, वह सब मेरा ही स्वरूप होनेके कारण मैं अद्वितीय परमात्मा हूँ।

२०-**सर्वं खल्विदं ब्रह्म**—यह सब निश्चय ही ब्रह्म है। (छान्दोग्य० ३। १४। १)

२१-**सर्वोऽहं विमुक्तोऽहम्**—मैं सर्वरूप हूँ, मुक्त हूँ।

२२-**योऽसौ सोऽहं हंसः सोऽहमस्मि**—जो वह है, वह मैं हूँ। मैं वह हूँ और वह मैं हूँ।

'इत्येवं सर्वत्र सदा ध्यायेदिति'

॥ ''अथ महावाक्यानामर्थमाह'' ॥

प्रज्ञानं ब्रह्मवाक्यार्थः पूर्वमेव प्रबोधितः।
अहंपदस्यार्थभूतः शक्त्यात्मा परमेश्वरः॥ १

इस प्रकार सर्वत्र चिन्तन करे। अब इन महा-वाक्योंका भावार्थ कहते हैं—'**प्रज्ञानं ब्रह्म**' का वाक्यार्थ पहले ही समझाया जा चुका है। (अब '**अहं ब्रह्मास्मि**' का अर्थ बताया जाता है।) शक्तिस्वरूप अथवा शक्तियुक्त परमेश्वर ही '**अहम्**' पदके अर्थभूत हैं॥ १॥

अकारः सर्ववर्णाग्र्यः प्रकाशः परमः शिवः।
हकारो व्योमरूपः स्याच्छक्त्यात्मा संप्रकीर्तितः॥ २

शिवशक्त्योस्तु संयोगादानन्दः सततोदितः।
ब्रह्मेति शिवशक्त्योस्तु सर्वात्मत्वमिति स्फुटम्॥ ३

'अकार' सब वर्णोंका अग्रगण्य, परम प्रकाश शिवरूप है। 'हकार' के व्योमस्वरूप होनेके कारण उसका शक्तिरूपसे वर्णन किया गया है। शिव और शक्तिके संयोगसे सदा आनन्द उदित होता है। ['मकार' उसी आनन्दका बोधक है।] 'ब्रह्म' शब्दसे शिवशक्तिकी सर्वरूपता स्पष्ट ही सूचित होती है॥ २-३॥

पूर्वमेवोपदिष्टं तत्सोऽहमस्मीति भावयेत्।
तत्त्वमित्यत्र तदिति तच्छब्दार्थः प्रबोधितः॥ ४

अन्यथा सोऽहमित्यत्र विपरीतार्थभावना।
अहंशब्दस्तु पुरुषस्तदिति स्यान्नपुंसकम्।
एवमन्योऽन्यवैरुध्यादन्वयो न भवेत्तयोः॥ ५

स्त्रीपुंरूपस्य जगतः कारणं चान्यथा भवेत्।
स तत्त्वमसि इत्येवमुपदेशार्थभावना॥ ६

पहले ही इस बातका उपदेश किया गया है कि वह शक्तिमान् परमेश्वर मैं हूँ, ऐसी भावना करनी चाहिये। [अब तत्त्वमसिका अर्थ कहते हैं—] '**तत्त्वमसि**' इस वाक्यमें तत्पदका वही अर्थ है, जो '**सोऽहमस्मि**' में '**सः**' पदका अर्थ बताया गया है अर्थात् तत्पद शक्त्यात्मक परमेश्वरका ही वाचक है, अन्यथा '**सोऽहम्**' इस वाक्यमें विपरीत अर्थकी भावना हो सकती है। क्योंकि '**अहम्**' पद पुँल्लिंग है, अतः '**सः**' के साथ उसका अन्वय हो जायगा; परंतु '**तत्**' पद नपुंसक है और '**त्वम्**' पुँल्लिंग, अतः परस्परविरोधीलिंग होनेके कारण उन दोनोंमें अन्वय नहीं हो सकता। जब दोनोंका अर्थ 'शक्तिमान् परमेश्वर' होगा, तब अर्थमें समानलिंगता होनेसे अन्वयमें अनुपपत्ति नहीं होगी। यदि ऐसा न माना जाय तो स्त्री-पुरुषरूप जगत्का कारण भी किसी और ही प्रकारका होगा। इसलिये '**सोऽहमस्मि**' का '**सः**' और '**तत्त्वमसि**' का **तत्**—ये दोनों समानार्थक हैं। इन महावाक्योंके उपदेशसे एक ही अर्थकी भावनाका विधान है॥ ४—६॥

अयमात्मेति वाक्ये च पुंरूपं पदयुग्मकम्।
ईशेन रक्षणीयत्वादीशावास्यमिदं जगत्॥ ७

[अब **'अयमात्मा ब्रह्म'** का अर्थ बताया जाता है—] **'अयमात्मा ब्रह्म'** इस वाक्यमें **'अयम्'** और **'आत्मा'**—ये दोनों पद पुँल्लिग-रूप हैं। अतः यहाँ अन्वयमें बाधा नहीं है। **'अयम्'** शक्तिमान् परमेश्वररूप आत्मा ब्रह्म है—यह इस वाक्यका तात्पर्य है। [अब **'ईशा वास्यमिदं सर्वम्'** का भावार्थ बता रहे हैं—] परमेश्वरसे रक्षणीय होनेके कारण यह सम्पूर्ण जगत् उनसे व्याप्त है। [अब **'प्राणोऽस्मि' 'प्रज्ञानात्मा'** और **'यदेवेह तदमुत्र०'** इन वाक्योंके अर्थपर विचार किया जाता है—] मैं प्रज्ञानस्वरूप प्राण हूँ। यहाँ प्राण शब्द परमेश्वरका ही वाचक है। जो यहाँ है, वह वहाँ है—ऐसा चिन्तन करे। यहाँ **'यत्, तत्'** का अर्थ क्रमशः **'यः'** और **'सः'** है अर्थात् जो परमात्मा यहाँ है, वह परमात्मा वहाँ है—ऐसा सिद्धान्तपक्षका अवलम्बन करनेवाले विद्वानोंने कहा है॥ ७-८॥

प्रज्ञानात्मा यदेवेह तदमुत्रेति चिन्तयेत्।
यः स एवेति विद्वद्भिः सिद्धान्तिभिरिहोच्यते॥ ८

उपरिस्थितवाक्ये च योऽमुत्र स इह स्थितः।
इति पूर्ववदेवार्थः पुरुषो विदुषां मतः॥ ९

उपर्युक्त वाक्यमें **'यदमुत्र तदन्विह'** इस वाक्यांशका भाव यह है कि **'योऽमुत्र स इह स्थितः'** अर्थात् जो परमात्मा वहाँ परलोकमें स्थित है, वही यहाँ (इस लोकमें) भी स्थित है। इस प्रकार विद्वानोंको पहलेके समान ही परमपुरुष परमात्मारूप अर्थ यहाँ अभीष्ट है॥ ९॥

अन्यदेव तद्विदितादथो अविदितादपि।
अस्मिन्वाक्ये फलस्यापि वैपरीत्यविभावना॥ १०

यथा स्यात्तद्वदेवात्र वक्ष्यामि श्रूयतां मुने।
अयथाविदिताशब्दो पूर्ववद्विदितादिति॥ ११

प्रवृत्तः स्यात्तद्विदितात्तथैवाविदितात्परम्।
अन्यदेव हि संसिद्ध्यै न भवेदिति निश्चितम्॥ १२

[अब **'अन्यदेव तद्विदितादथो अविदितादधि'** इस वाक्यपर विचार करते हैं—] मुने! **'अन्यदेव तद्विदितादथो अविदितादधि'** इस वाक्यमें जिस प्रकार फलकी भी विपरीतताकी भावना होती है, उसे यहाँ बताता हूँ; सुनो। **'विदितात्'** यह पद **'अयथाविदितात्'** के अर्थमें प्रवृत्त हो सकता है। वह विदितसे भिन्न है अर्थात् जो असम्यग्रूपसे ज्ञात है, उससे भिन्न है। इसी प्रकार जो यथावत् रूपसे विदित नहीं है, उससे भी पृथक् है। इस कथनसे यह निश्चित होता है कि मुक्तिरूप फलकी सिद्धिके लिये कोई और ही तत्त्व है, जो विदिताविदितसे पर है। परंतु जो आत्मा है, वह सर्वरूप है, वह किसीसे अन्य नहीं हो सकता। अतः आत्मा या ब्रह्म आदि पद पूर्ववत् शक्तिमान् परमेश्वर शिवके ही बोधक हैं, यह मानना चाहिये॥ १०—१२॥

एष त आत्मान्तर्यामी योऽमृतश्च शिवः स्वयम्।
यश्चायं पुरुषे शम्भुर्यश्चादित्ये व्यवस्थितः ॥ १३

स चाऽसौ सेति पार्थक्यं नैकं सर्वं स ईरितः।
सोपाधिद्वयमस्यार्थ उपचारात्तथोच्यते ॥ १४

तं शम्भुनाथं श्रुतयो वदन्ति हि हिरण्मयम्।
हिरण्यबाहव इति सर्वाङ्गस्योपलक्षणम् ॥ १५

अन्यथा तत्पतित्वं तु न भवेदिति यत्नतः।
य एषोऽन्तरिति शम्भुश्छान्दोग्ये श्रूयते शिवः ॥ १६

हिरण्यश्मश्रुवांस्तद्वद्धिरण्यमयकेशवान् ।
नखमारभ्य केशान्तं सर्वत्रापि हिरण्मयः ॥ १७

अहमस्मि परं ब्रह्म परापरपरात्परम्।
इति वाक्यस्य तात्पर्यं वदामि श्रूयतामिदम् ॥ १८

अहंपदस्यार्थभूतः शक्त्यात्मा शिव ईरितः।
स एवास्मीति वाक्यार्थ योजना भवति ध्रुवम् ॥ १९

सर्वोत्कृष्टश्च सर्वात्मा परब्रह्म स ईरितः।
परश्चाथापरश्चेति परात्परमिति त्रिधा ॥ २०

रुद्रो ब्रह्मा च विष्णुश्च प्रोक्ताः श्रुत्यैव नान्यथा।
तेभ्यश्च परमो देवः परशब्देन बोधितः ॥ २१

वेदशास्त्रगुरूणां च वाक्याभ्यासवशाच्छिशोः।
पूर्णानन्दमयः शम्भुः प्रादुर्भूतो भवेद्धृदि ॥ २२

सर्वभूतस्थितः शम्भुः स एवाहं न संशयः।
तत्त्वजातस्य सर्वस्य प्राणोऽस्म्यहमहं शिवः ॥ २३

[अब **'एष त आत्मा'** तथा **'यश्चायं पुरुषे'** इन दो वाक्योंके अर्थपर विचार किया जाता है—] यह तुम्हारा अन्तर्यामी आत्मा है, जो स्वयं ही अमृतस्वरूप शिव है। यह जो पुरुषमें शम्भु है, वही सूर्यमें भी स्थित है। इन दोनोंमें कोई भेद नहीं है। जो पुरुषमें है, वही आदित्यमें है। इन दोनोंमें पृथक्ता नहीं है। वह तत्त्व एक ही है। उसीको सर्वरूप कहा गया है। पुरुष और आदित्य—इन दो उपाधियोंसे युक्त जो अर्थ किया जाता है, वह औपचारिक है ॥ १३-१४ ॥

उन शम्भुनाथको सब श्रुतियाँ हिरण्यमय बताती हैं। **'हिरण्यबाहवे नमः'** इसमें जो 'बाहु' शब्द है, वह सब अंगोंका उपलक्षण है। अन्यथा उसे हिरण्यपति कहना किसी भी यत्नसे सम्भव नहीं होता। छान्दोग्योपनिषद्में जो यह श्रुति है— **'य एषोऽन्तरादित्ये हिरण्मयः पुरुषो दृश्यते हिरण्यश्मश्रुर्हिरण्यकेश आप्रणखात् सर्व एव सुवर्णः।'** (छान्दोग्य० १।६।६) इसके द्वारा आदित्य-मण्डलान्तर्गत पुरुषको सुवर्णमय दाढ़ी-मूँछोंवाला, सुवर्णसदृश केशोंवाला तथा नखसे लेकर केशाग्रभागपर्यन्त सारा-का-सारा सुवर्णमय—प्रकाशमय ही बताया गया है। अतः वह हिरण्यमय पुरुष साक्षात् शम्भु ही हैं ॥ १५—१७ ॥

अब **'अहमस्मि परं ब्रह्म परापरपरात्परम्'** इस वाक्यका तात्पर्य बताता हूँ, सुनो। **'अहम्'** पदके अर्थभूत सत्यात्मा शिव ही बताये गये हैं। वे ही शिव मैं हूँ, ऐसी वाक्यार्थयोजना अवश्य होती है। उन्हींको सबसे उत्कृष्ट और सर्वस्वरूप परब्रह्म कहा गया है। उसके तीन भेद हैं—पर, अपर तथा परात्पर। रुद्र, ब्रह्मा और विष्णु—ये तीन देवता श्रुतिने ही बताये हैं। ये ही क्रमशः पर, अपर तथा परात्पररूप हैं। इन तीनोंसे भी जो श्रेष्ठ देवता हैं, वे शम्भु 'परब्रह्म' शब्दसे कहे गये हैं ॥ १८—२१ ॥

वेदों, शास्त्रों और गुरुके वचनोंके अभ्याससे शिष्यके हृदयमें स्वयं ही पूर्णानन्दमय शम्भुका प्रादुर्भाव होता है। सम्पूर्ण भूतोंके हृदयमें विराजमान शम्भु ब्रह्मरूप ही हैं। वही मैं हूँ, इसमें संशय नहीं है। मैं शिव ही सम्पूर्ण तत्त्वसमुदायका प्राण हूँ ॥ २२-२३ ॥

इत्युक्त्वा पुनरप्याह शिवस्तत्त्वत्रयस्य च।
प्राणोऽस्मीत्यत्र पृथ्व्यादिगुणान्तग्रहणान्मुने॥ २४

आत्मतत्त्वानि सर्वाणि गृहीतानीति भावय।
पुनश्च सर्वग्रहणं विद्यातत्त्वे शिवात्मनोः॥ २५

तत्त्वयोश्चास्म्यहं प्राणः सर्वः सर्वात्मको ह्यहम्।
जीवस्य चान्तर्यामित्वाज्जीवोऽहं तस्य सर्वदा॥ २६

यद्भूतं यच्च भव्यं यद्भविष्यत्सर्वमेव च।
मन्मयत्वादहं सर्वः सर्वो वै रुद्र इत्यपि॥ २७

श्रुतिराह मुने सा हि साक्षाच्छिवमुखोद्गता।
सर्वात्मा परमैरेभिर्गुणैर्नित्यसमन्वयात्॥ २८

स्वस्मात्परात्मविरहादद्वितीयोऽहमेव हि।
सर्वं खल्विदं ब्रह्मेति वाक्यार्थः पूर्वमीरितः॥ २९

पूर्णोऽहं भावरूपत्वान्नित्यमुक्तोऽहमेव हि।
पशवो मत्प्रसादेन मुक्ता मद्भावमाश्रिताः॥ ३०

योऽसौ सर्वात्मकः शम्भुः सोऽहं हंसः शिवोऽस्म्यहम्।
इति वै सर्ववाक्यार्थो वामदेव शिवोदितः॥ ३१

इतीशश्रुतिवाक्याभ्यामुपदिष्टार्थमादरात्।
साक्षाच्छिवैक्यदं पुंसां शिशोर्गुरुरुपादिशेत्॥ ३२

आदाय शंखं साधारमस्त्रमन्त्रेण भस्मना।
शोध्य तत्पुरतः स्थाप्य चतुरस्रे समर्चिते॥ ३३

ओमित्यभ्यर्च्य गन्धाद्यैरस्त्रं वस्त्रोपशोभितम्।
वासितं जलमापूर्य सम्पूज्योमिति मन्त्रतः॥ ३४

सप्तधैवाभिमन्त्र्याथ प्रणवेन पुनश्च तम्।
यस्त्वन्तरं किञ्चिदपि कुरुते सोऽतिभीतिभाक्॥ ३५

ऐसा कहकर स्कन्दजी फिर कहते हैं—मुने! मैं शिव आत्मतत्त्व, विद्यातत्त्व और शिवतत्त्व—इन तीनोंका प्राण हूँ। पृथिवी आदिका भी प्राण हूँ। पृथ्वी आदिके गुणोंतकका ग्रहण होनेसे यह समझ लो कि यहाँ सारे आत्मतत्त्व गृहीत हो गये। फिर सबका ग्रहण विद्यातत्त्व और शिवतत्त्वका भी ग्रहण कराता है॥ २४-२५॥

इन सब तत्त्वोंका मैं प्राण हूँ। मैं सर्व हूँ, सर्वात्मक हूँ, जीवका भी अन्तर्यामी होनेसे उसका भी जीव (आत्मा) हूँ। जो भूत, वर्तमान और भविष्यत्काल है, वह सब मेरा स्वरूप होनेके कारण मैं ही हूँ। '**सर्वो वै रुद्रः**' (सब कुछ रुद्र ही है)—यह श्रुति साक्षात् शिवके मुखसे प्रकट हुई है। अतः शिव ही सर्वरूप हैं; क्योंकि उन्हींका इन समस्त उत्कृष्ट गुणोंसे नित्य सम्बन्ध है। अपने और परायेके भेदसे रहित होनेके कारण मैं ही अद्वितीय आत्मा हूँ। '**सर्वं खल्विदं ब्रह्म**' इस वाक्यका अर्थ पहले बताया जा चुका है॥ २६—२९॥

मैं भावरूप होनेके कारण पूर्ण हूँ। नित्यमुक्त भी मैं ही हूँ। पशु (जीव) मेरी कृपासे मुक्त होकर मेरे स्वरूपको प्राप्त होते हैं। जो सर्वात्मक शम्भु हैं, वही मैं हूँ। मैं हंसरूप तथा शिवरूप हूँ। वामदेव! इस प्रकार सम्पूर्ण वाक्योंके अर्थ भगवान् शिव ही बताये गये हैं॥ ३०-३१॥

ईशावास्योपनिषद्‌की श्रुतिके दो वाक्योंद्वारा प्रतिपादित अर्थ साक्षात् शिवकी एकताका ज्ञान प्रदान करनेवाला होता है। गुरुको चाहिये कि शिष्योंको इसका आदरपूर्वक उपदेश करे॥ ३२॥

गुरुको उचित है कि वे आधारसहित शंखको लेकर अस्त्र-मन्त्र (फट्)-से तथा भस्मद्वारा उसकी शुद्धि करके उसे अपने सामने पूजित हुए चौकोर मण्डलमें स्थापित करे। फिर ओंकारका उच्चारण करके गन्ध आदिके द्वारा उस शंखकी पूजा करे। उसमें वस्त्र लपेट दे और सुगन्धित जल भरकर प्रणवका उच्चारण करते हुए उसका पूजन करे॥ ३३-३४॥

तत्पश्चात् सात बार प्रणवके द्वारा फिर उस शंखको अभिमन्त्रित करके शिष्यसे कहे—'हे शिष्य! जो थोड़ा-सा भी अन्तर करता है—भेदभाव रखता है, वह भयका भागी होता है। यह श्रुतिका सिद्धान्त

इत्याह श्रुतिसत्तत्त्वं दृढात्मा गतभीर्भव।
इत्याभाष्य स्वयं शिष्यं देवं ध्यायन् समर्चयेत्॥ ३६

शिष्यासनं सम्प्रपूज्य षडुत्थापनमार्गतः।
शिवासनं च संकल्प्य शिवमूर्तिं प्रकल्पयेत्॥ ३७
पञ्च ब्रह्माणि विन्यस्य शिरः पादावसानकम्।
मुण्डवक्त्रकलाभेदैः प्रणवस्य कला अपि॥ ३८
अष्टत्रिंशन्मन्त्ररूपाः शिष्यदेहेऽथ मस्तके।
समावाह्य शिवं मुद्राः स्थापनीयाः प्रदर्शयेत्॥ ३९
ततश्चाङ्गानि विन्यस्य सर्वज्ञानीत्यनुक्रमात्।
कल्पयेदुपचारांश्च षोडशासनपूर्वकम्॥ ४०

पायसान्नं च नैवेद्यं समर्प्योमग्निजायया।
गण्डूषाचमनार्घ्यादि धूपदीपादिकं क्रमात्॥ ४१

नामाष्टकेन सम्पूज्य ब्राह्मणैर्वेदपारगैः।
जपेद् ब्रह्मविदाप्नोति भृगुर्वै वारुणिस्ततः॥ ४२

यो देवानामुपक्रम्य यः परः स महेश्वरः।
इत्यन्तं तस्य पुरतः कह्लारादिविनिर्मिताम्॥ ४३

आदाय मालामुत्थाय श्रीविरूपाक्षनिर्मिते।
शास्त्रे पञ्चास्यके रूपे सिद्धिस्कन्धं जपेच्छनैः॥ ४४

ख्यातिः पूर्णोऽहमित्यन्तं सानुकूलेन चेतसा।
देशिकस्तस्य शिष्यस्य कण्ठदेशे समर्पयेत्॥ ४५

तिलकं चन्दनेनाथ सर्वाङ्गालेपनं पुनः।
स्वसम्प्रदायानुगुणं कारयेच्च यथाविधि॥ ४६
ततश्च देशिकः प्रीत्या नाम श्रीपादसंज्ञितम्।
छत्रं च पादुकां दद्याद् दूर्वाकल्पविकल्पनम्॥ ४७
व्याख्यातृत्वं च कर्मादि गुर्वासनपरिग्रहम्।
अनुगृह्य गुरुस्तस्मै शिष्याय शिवरूपिणे॥ ४८

बताया गया, इसलिये तुम अपने चित्तको स्थिर करके निर्भय हो जाओ।' ऐसा कहकर गुरु स्वयं महादेवजीका ध्यान करते हुए उन्हींके रूपमें शिष्यका अर्चन करे॥ ३५-३६॥

शिष्यके आसनकी पूजा करके उसमें शिवके आसन और शिवकी मूर्तिकी भावना करे। फिर सिरसे पैरतक '**सद्योजातादि**' पाँच मन्त्रोंका न्यास करके मस्तक, मुख और कलाओंके भेदसे प्रणवकी कलाओंका भी न्यास करे। शिष्यके शरीरमें अड़तीस मन्त्ररूपा प्रणवकी कलाओंका न्यास करके उसके मस्तकपर शिवका आवाहन करे। तत्पश्चात् स्थापनी आदि मुद्राओंका प्रदर्शन करे। फिर सर्वज्ञादि मन्त्रसे क्रमशः अंगन्यास करके आसनपूर्वक षोडश उपचारोंकी कल्पना करे॥ ३७—४०॥

खीरका नैवेद्य अर्पण करके '**ॐ स्वाहा**' का उच्चारण करे। कुल्ला और आचमन कराये। अर्घ्य आदि देकर क्रमशः धूप-दीपादि समर्पित करे। शिवके आठ नामोंसे पूजन करके वेदोंके पारंगत ब्राह्मणोंके साथ '**ब्रह्मविदाप्नोति परम्**' इत्यादि ब्रह्मानन्दवल्लीके मन्त्रोंको तथा '**भृगुर्वै वारुणिः**' इत्यादि भृगुवल्लीके मन्त्रोंको पढ़े॥ ४१-४२॥

तत्पश्चात् '**यो देवानां प्रथमं पुरस्तात्**'—(१०।३) से लेकर '**तस्य प्रकृतिलीनस्य यः परः स महेश्वरः**' (१०।८) तक [महानारायणोपनिषद्के मन्त्रोंका] पाठ करे। इसके बाद शिष्यके सामने कह्लार आदिकी बनी हुई माला लेकर खड़े हो गुरु शिवनिर्मित पांचास्यिक शास्त्रके सिद्धिस्कन्धका धीरे-धीरे जप करे। अनुकूल चित्तसे '**ख्यातिः पूर्णोऽहम्**' इस मन्त्रतकका जप करके गुरु उस मालाको शिष्यके कण्ठमें पहना दे॥ ४३—४५॥

तदनन्तर ललाटमें तिलक लगाकर सम्प्रदायके अनुसार उसके सर्वांगमें विधिवत् चन्दनका लेप कराये। तत्पश्चात् गुरु प्रसन्नतापूर्वक श्रीपादयुक्त नाम देकर शिष्यको छत्र और चरणपादुका अर्पित करे। उसे व्याख्यान देने तथा आवश्यक कर्म आदिके लिये गुर्वासन ग्रहण करनेका तथा दूर्वार्चनका अधिकार दे। फिर गुरु अपने उस शिवरूपी शिष्यपर अनुग्रह

शिवोऽहमस्मीति सदा समाधिस्थो भवेति तम्।
सम्प्रोच्याथ स्वयं तस्मै नमस्कारं समाचरेत्॥ ४९

करके कहे—"तुम सदा समाधिस्थ रहकर 'मैं शिव हूँ' इस प्रकारकी भावना करते रहो।" यों कहकर वह स्वयं शिष्यको नमस्कार करे॥ ४६—४९॥

सम्प्रदायानुगुण्येन नमस्कुर्युस्तथापरे।
शिष्यस्तदा समुत्थाय नमस्कुर्याद् गुरुं तथा।
गुरोरपि गुरुं तस्य शिष्यांश्च स्वगुरोरपि॥ ५०

फिर सम्प्रदायकी मर्यादाके अनुसार दूसरे लोग भी उसे नमस्कार करें। उस समय शिष्य उठकर गुरुको नमस्कार करे। अपने गुरुके गुरुको और उनके शिष्योंको भी मस्तक झुकाये॥ ५०॥

एवं कृतनमस्कारं शिष्यं दद्याद् गुरुः स्वयम्।
सुशीलं यतवाचं तं विनयावनतं स्थितम्॥ ५१

अद्य प्रभृति लोकानामनुग्रहपरो भव।
परीक्ष्य वत्सरं शिष्यमङ्गीकुरु विधानतः॥ ५२

इस प्रकार नमस्कार करके सुशील शिष्य जब मौन और विनीतभावसे गुरुके समीप खड़ा हो, तब गुरु स्वयं उसे इस प्रकारका उपदेश दे—'बेटा! आजसे तुम समस्त लोकोंपर अनुग्रह करते रहो। यदि कोई शिष्य होनेके लिये आये तो पहले एक वर्षतक उसकी परीक्षा कर लो, फिर शास्त्रविधिके अनुसार उसे शिष्य बनाओ॥ ५१-५२॥

रागादिदोषान्सन्त्यज्य शिवध्यानपरो भव।
सत्सम्प्रदायसंसिद्धैः सङ्गं कुरु न चेतरैः॥ ५३

अनभ्यर्च्य शिवं जातु मा भुंक्ष्वाप्राणसंक्षयम्।
गुरुभक्तिं समास्थाय सुखी भव सुखी भव॥ ५४

राग आदि दोषोंका त्याग करके निरन्तर शिवका चिन्तन करते रहो। श्रेष्ठ सम्प्रदायके सिद्ध पुरुषोंका संग करो, दूसरोंका नहीं। प्राणोंपर संकट आ जाय तो भी शिवका पूजन किये बिना कभी भोजन न करो। गुरुभक्तिका आश्रय ले सुखी रहो, सुखी रहो।'॥ ५३-५४॥

इति क्रमाद् गुरुवरो दयालुर्ज्ञानसागरः।
सानुकूलेन चित्तेन समं शिष्यं समाचरेत्॥ ५५

इस उपदिष्ट क्रमसे दयालु, ज्ञानसागर श्रेष्ठ गुरु प्रसन्न चित्तसे शिष्यको अपने समान बना दे॥ ५५॥

तव स्नेहान्मयायं वै वामदेव मुनीश्वर।
योगपट्टप्रकारस्ते प्रोक्तो गुह्यतरोऽपि हि॥ ५६

इत्युक्त्वा षण्मुखस्तस्मै क्षौरस्नानविधिक्रमम्।
वक्तुमारभते प्रीत्या यतीनां कृपया शुभम्॥ ५७

मुनीश्वर वामदेव! तुम्हारे स्नेहवश अत्यन्त गोपनीय होनेपर भी मैंने यह योगपट्टका प्रकार तुम्हें बताया है। ऐसा कहकर स्कन्दने यतियोंपर कृपा करके उनसे संन्यासियोंके क्षौर और स्नानविधिका वर्णन किया॥ ५६-५७॥

इति श्रीशिवमहापुराणे षष्ठ्यां कैलाससंहितायां योगपट्टविधिवर्णनं नामैकोनविंशोऽध्यायः॥ १९॥

॥ इस प्रकार श्रीशिवमहापुराणके अन्तर्गत छठी कैलाससंहितामें योगपट्टविधिवर्णन नामक उन्नीसवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ १९॥

अथ विंशोऽध्यायः

यतियोंके क्षौर-स्नानादिकी विधि तथा अन्य आचारोंका वर्णन

सुब्रह्मण्य उवाच

क्षौरस्नानविधिं वक्ष्ये वामदेव महामुने।
यस्य सद्यो विधानेन शुद्धिः स्याद्यतिनः परा॥ १

सुब्रह्मण्य बोले—हे वामदेव! हे महामुने! अब मैं क्षौर तथा स्नानविधि कहता हूँ, जिसके करनेसे यतिकी तत्क्षण परम शुद्धि होती है॥ १॥

योगपट्टप्रकारस्य विधिं प्राप्य मुनीश्वर।
स शिष्यः स्याद् व्रती पूर्णः क्षौरकर्मोद्यतो भवेत्॥ २

हे मुनीश्वर! योगपट्टकी विधि प्राप्तकर शिष्य पूर्ण व्रती हो और तब क्षौर-कर्मके लिये उद्यत हो जाय॥ २॥

गुरुं नत्वा विशेषेण लब्धानुज्ञस्ततो गुरोः।
शिरः संक्षाल्य चाचम्य सवासाः क्षौरमाचरेत्॥ ३

तदनन्तर गुरुको विशेषरूपसे नमस्कारकर उनसे आज्ञा लेकर सिर प्रक्षालन करके आचमन करे और वस्त्र पहने हुए ही क्षौरकर्म कराये॥ ३॥

क्षालयेद्वसनं पश्चान्मृदम्भोभिः क्षुरादिकम्।
तद्धस्तौ च मृदालिप्य क्षालयेति मृदं ददेत्॥ ४

[नापितके द्वारा] वस्त्रप्रक्षालन कराये, उसका क्षुरा मिट्टी और जलसे शुद्ध करवा ले। उस नापितके हाथमें मिट्टी देकर कहे कि इस मिट्टीसे हाथ शुद्ध करो॥ ४॥

स्थापितं प्रोक्षितं तोयैः शिवं शिवमितीरयन्।
स्वनेत्रे पिहिते चैवानामाङ्गुष्ठाभिमन्त्रिते॥ ५

अस्त्रेणोन्मील्य संदृश्य क्षुरादिक्षौरसाधनम्।
अभिमन्त्र्य द्वादशाथ प्रोक्षयेदस्त्रमन्त्रतः॥ ६

प्रक्षालित क्षुरेको शिव-शिव कहते हुए किसी पत्रपर स्थापित करे, फिर अनामिका एवं अँगूठेको अभिमन्त्रितकर उन दोनों अँगुलियोंसे नेत्र बन्द करे। अस्त्र मन्त्रसे नेत्रोंको खोलकर क्षौरके साधनभूत क्षुरेको देखे। बारह बार अभिमन्त्रितकर अस्त्रमन्त्रसे क्षुरेको पुनः प्रक्षालित करे॥ ५-६॥

क्षुरं गृहीत्वा तारेण दक्षभागे निकृन्तयेत्।
केशांश्च कांश्चिदग्रेषु वप्त्वा सर्वं च वापयेत्॥ ७

प्रणवका उच्चारणकर यति नापितके हाथमें क्षुरा देकर दाहिनी ओरसे क्षौर क्रिया कराये। उस समय आगेके कुछ बालोंको कटवाकर पुनः समस्त बालोंका वपन करवा ले॥ ७॥

पृथिव्यां पर्णमादाय विक्षिपेन्न भुवः स्थले।
श्मश्रूणि हस्तपादस्थनखानि च निकृंतयेत्॥ ८

एक पत्ता भूमिपर रखकर उसीके ऊपर बालोंको रखे, उन्हें पृथ्वीपर नहीं रखना चाहिये। मूँछ और हाथ-पैरके नाखून भी कटवा लेना चाहिये॥ ८॥

बिल्वाश्वत्थतुलस्यादिस्थाने सङ्गृह्य मृत्तिकाम्।
द्विषड्वारं निमज्याप्सु तीरं गत्वोपविश्य च॥ ९

शुद्धे देशे तु संस्थाप्य मृदं त्रेधा विभज्य च।
एवं पुनस्त्रिधा कृत्वा प्रोक्ष्यास्त्रेणाभिमन्त्रयेत्॥ १०

इसके बाद बेल, पीपल, तुलसी आदि वृक्षोंके स्थानकी मिट्टीका संग्रह करे। बारह बार जलमें डुबकी लगा किनारेपर जाकर बैठे। किसी शुद्ध स्थानपर उस मृत्तिकाको रख करके उसके तीन भाग करके पुनः एकके तीन भाग करे एवं अस्त्रमन्त्रद्वारा उसका प्रोक्षण तथा अभिमन्त्रण करे॥ ९-१०॥

तत्रैकां मृदमादाय दापयित्वान्यपाणिना।
करौ द्वादशधालिप्य प्रत्येकं केन क्षालयेत्॥ ११

उसमेंसे एक भाग मृत्तिका लेकर दूसरे हाथमें भी उसे रखकर बारह बार हाथोंमें लेपकर प्रत्येक बार जलसे दोनों हाथोंको धो डाले॥ ११॥

पुनरेकां पादयोश्च मुखे चान्यां करे क्रमात्।
संलिप्याक्षाल्य चाम्भोभिः पुनश्च जलमाविशेत्॥ १२

एक भागको दोनों पैरोंमें और शेष एक भागको मुखमें तथा हाथमें क्रमसे लगाकर जलसे धोकर पुनः जलमें प्रवेश करे॥ १२॥

अन्यां मृदं भागयित्वा शिरसि द्वादश क्रमात्।
आलिप्य मृदमास्यान्तं निमज्य च पुनः पुनः॥ १३

तीरं गत्वा तु गंडूषान् षोडशाचमनं द्विधा।
प्राणानायम्य च पुनः प्रणवं द्व्यष्टसंख्यया॥ १४

इसके बाद मिट्टीके दूसरे भागको लेकर बारह बार क्रमशः सिरसे मुखपर्यन्त लेपकर बार-बार गोता लगाये और तटपर जाकर सोलह बार कुल्ला करके दो बार आचमन करे। पुनः ॐकारपूर्वक सोलह प्राणायाम करे॥ १३-१४॥

मृदमन्यां पुनस्त्रेधा विभज्य च तदेकया।
कटिशौचं पादशौचं विधायाचम्य च द्विधा॥ १५

प्रणवेनाथ षोडश प्राणानायम्य वाग्यतः।
पुनरन्यां स्वोरुदेशे त्रिधा विन्यस्य चोमिति॥ १६

प्रोक्ष्याभिमन्त्रयेत्सप्त स्वपाण्योस्तलमेकधा।
त्रिधालिप्याथ सम्पश्येत्सूर्यमूर्तिं च पावनीम्॥ १७

इसके पश्चात् अन्य मृत्तिकाको लेकर उसके तीन भाग करके उनमेंसे एक भागके द्वारा कटिशौच और पादशौच करके दो बार आचमन करे और मौन हो प्रणवमन्त्रसे सोलह बार प्राणायाम करे। फिर दूसरे भागको लेकर उसे ऊरुदेशपर रखकर प्रणवसे तीन भाग करे। पुनः प्रोक्षणकर उसे सात बार अभिमन्त्रित करे। एक-एकके क्रमसे तीन बार दोनों हाथोंके तलवोंमें उसे लगाकर सबको पवित्र करनेवाली सूर्यमूर्तिका दर्शन करे॥ १५—१७॥

स्वकक्षयोः समालिप्य व्यत्यस्ताभ्यामथान्यया।
पाणिभ्यां च मृदा शिष्यः सुमतिर्दृढमानसः॥ १८
गृहीत्वान्यां मृदं शुद्धां तथासौ गुरुभक्तिमान्।
शिर आरभ्य पादान्तं विलिप्यादित्यदृष्टया॥ १९
समुत्थाय ततोऽसौ वै दण्डमादाय भूतले।
स्वगुरुं मन्त्रदं भक्त्या संस्मरेज्ज्ञाननिष्ठया॥ २०
ततः साम्बं महेशानं शंकरं चन्द्रशेखरम्।
संस्मरेद्भक्तितः शिष्यः सर्वैश्वर्यपतिं शिवम्॥ २१

बुद्धिमान् शिष्य स्वस्थचित्त होकर मिट्टी लेकर दाहिने हाथसे बायीं काँख तथा बायें हाथसे दाहिनी काँखमें उसे लगाये। तत्पश्चात् गुरुभक्त शिष्य दूसरी शुद्ध मिट्टीको लेकर सूर्यको देखता हुआ सिरसे पैरतक उस मिट्टीको लगाये और उठ करके पृथ्वीपर स्थित दण्ड लेकर अपने मन्त्रदाता गुरुका भक्तिपूर्वक तत्त्वबुद्धिसे स्मरण करे। इसके बाद वह शिष्य भक्तिपूर्वक सर्वैश्वर्यपति, चन्द्रमाको धारण करनेवाले, पार्वतीसहित कल्याणमय महेश्वर शंकरजीका स्मरण करे॥ १८—२१॥

त्रिवारं प्रणमेत्प्रीत्या साष्टाङ्गं च गुरुं शिवम्।
पञ्चाङ्गेनैकवारं च समुत्थाय च वन्दयेत्॥ २२

इसके बाद प्रेमपूर्वक तीन बार गुरु तथा शिवको साष्टांग प्रणाम करे, फिर उठकर उन्हें एक बार पंचांग प्रणाम करे॥ २२॥

तीर्थं प्रविश्य तन्मध्ये निमज्योन्मज्य तां मृदम्।
स्कन्धे संस्थाप्य पूर्वोक्तप्रकारेण विलेपयेत्॥ २३
तत्रावशिष्टं संगृह्य जलमध्ये प्रविश्य च।
विलोड्य सम्यक् तां तत्र सर्वाङ्गेषु विलिप्य च॥ २४
त्रिवारमोमिति प्रोच्य शिवपादाम्बुजं स्मरन्।
संसाराम्बुधिसंतारं सदा यद्विधितो हि सः॥ २५
अभिषिच्योमिति जलं विरजाभस्मलोलितम्।
अङ्गोपमार्ज्जनं कृत्वा सुस्नायाद्भस्मना ततः॥ २६

इसके बाद जलमें प्रवेशकर बार-बार डुबकी लगानेके बाद कन्धेपर [तीर्थकी] मृत्तिका रखकर पहले बतायी गयी विधिसे शरीरमें लेप करे। अवशिष्ट मिट्टीको लेकर जलमें प्रविष्ट हो उसे मल करके अच्छी तरह सभी अंगोंमें लगाकर तीन बार ॐकारका उच्चारणकर संसारसागरसे पार करनेवाले शिवके चरणकमलका स्मरण करते हुए स्नान करे, इसके बाद विरजा भस्ममिश्रित जलसे शरीरके अंगोंका उपमार्जनकर भलीभाँति भस्मसे स्नान करे॥ २३—२६॥

त्रिपुंड्रं च विधायाथ यथोक्तविधिना शुभम्।
यथोक्ताङ्गेषु सर्वेषु सावधानतया मुने॥ २७

उसके बाद शास्त्रविधिके अनुसार उत्तम त्रिपुण्ड्र धारण करके हे मुने! सावधानीसे यथोक्त सभी अंगोंमें भस्म लगाये॥ २७॥

ततः शुद्धमना भूत्वा कुर्यान्मध्यदिनक्रियाः।
महेश्वरं नमस्कृत्य गुरूंस्तीर्थादिकानि च॥ २८
सम्पूजयेन्महेशानं भक्त्या परमया मुने।
साम्बिकं ज्ञानदातारं पातारं त्रिभवस्य वै॥ २९

इसके पश्चात् शुद्धचित्त होकर मध्याह्नकी क्रियाएँ सम्पादित करे। तदनन्तर महेश्वर, गुरुजनों तथा तीर्थों आदिको नमस्कारकर हे मुने! परम भक्तिपूर्वक ज्ञानदाता, त्रैलोक्यरक्षक साम्ब सदाशिवका पूजन करे॥ २८-२९॥

ततोऽसौ दृढचेतस्को यतिः स्ववृषसंस्थितः।
भिक्षार्थं प्रव्रजेच्छुद्धो विप्रवर्गेषु साधुषु॥ ३०
ततस्तत्र च शुद्धात्मा पञ्चधा परिकल्पितम्।
भैक्ष्यं यथोचितं कुर्याद् दूषितान्नं विवर्जयेत्॥ ३१

तत्पश्चात् स्वस्थचित्त हो उस शुद्ध यतिको अपने धर्ममें स्थित होकर ब्राह्मणों अथवा साधुओंके बीच भिक्षाके लिये जाना चाहिये। [शास्त्रकारोंके आदेशानुसार] वह शुद्धात्मा पाँच घरोंसे भिक्षा ग्रहण करे, किंतु दूषित अन्न कभी ग्रहण न करे॥ ३०-३१॥

शौचं स्नानं तथा भिक्षां नित्यमेकान्तसेवनम्।
भिक्षोश्चत्वारि कर्माणि पञ्चमं नैव विद्यते॥ ३२
अलाबुं वेणुपात्रं च दारवं मृण्मयं तथा।
भिक्षोश्चत्वारि पात्राणि पञ्चमं नैव विद्यते॥ ३३

भिक्षुके चार कर्म हैं—शौच, स्नान, भिक्षा तथा एकान्तवास; इसके अतिरिक्त पाँचवाँ कर्म नहीं है। लौकीका पात्र, वेणुका पात्र, लकड़ीका पात्र तथा मिट्टीका पात्र—ये चार प्रकारके पात्र भिक्षुकको ग्राह्य हैं, पाँचवाँ कोई अन्य नहीं॥ ३२-३३॥

ताम्बूलं तैजसं पात्रं रेतस्सेकं सिताम्बरम्।
दिवास्वापो हि नक्तान्नं यतीनां षड्विवर्जिताः॥ ३४

ताम्बूल, स्वर्णादि धातुका पात्र, वीर्यसेचन, श्वेत वस्त्रधारण, दिनमें शयन तथा रात्रिमें भोजन—ये छः कर्म यतियोंके लिये सर्वथा वर्जित हैं॥ ३४॥

साक्षरा विपरीताश्च राक्षसास्त इति स्मृताः।
तस्माद्वै विपरीतं च कर्म नैवाचरेद् यतिः॥ ३५
यतिः प्रयत्नतः कुर्यात्क्षौरस्नानं च शुद्धये।
संस्मरन्मनसा शुद्धं परं ब्रह्म सदाशिवम्॥ ३६
इत्येवं मुनिशार्दूल तव स्नेहान्मयाखिलः।
क्षौरस्नानविधिः प्रोक्तः किम्भूयः श्रोतुमिच्छसि॥ ३७

विपरीत आचरण करनेवाले साक्षर भी राक्षस कहे गये हैं, इसलिये यतिको विपरीत आचरण कभी नहीं करना चाहिये। यतिको शुद्धिके लिये शुद्ध सनातन शिवतत्त्वका स्मरण करते हुए यत्नपूर्वक क्षौर एवं स्नान करना चाहिये। हे मुनिश्रेष्ठ! इस प्रकार आपके स्नेहके कारण मैंने क्षौरस्नानकी सम्पूर्ण विधि कह दी, अब आप और क्या सुनना चाहते हैं?॥ ३५—३७॥

इति श्रीशिवमहापुराणे षष्ठ्यां कैलाससंहितायां क्षौरस्नानविधिवर्णनं नाम विंशोऽध्यायः॥ २०॥

॥ इस प्रकार श्रीशिवमहापुराणके अन्तर्गत छठी कैलाससंहितामें क्षौरस्नानविधिवर्णन नामक बीसवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ २०॥

अथैकविंशोऽध्यायः

यतिके अन्त्येष्टिकर्मकी दशाहपर्यन्त विधिका वर्णन

वामदेव उवाच

ये मुक्ता यतयस्तेषां दाहकर्म न विद्यते।
मृते शरीरे खननं तद्देहस्य श्रुतं मया॥ १
तत्कर्माचक्ष्व सुप्रीत्या कार्तिकेय गुरो मम।
त्वत्तोऽन्यो न हि संवक्ता त्रिषु लोकेषु विद्यते॥ २

वामदेवजी बोले—जो मुक्त यति हैं, उनके शरीरका दाहकर्म नहीं होता। मरनेपर उनके शरीरको गाड़ दिया जाता है, यह मैंने सुना है। मेरे गुरु कार्तिकेय! आप प्रसन्नतापूर्वक यतियोंके उस अन्त्येष्टिकर्मका मुझसे वर्णन कीजिये; क्योंकि तीनों लोकोंमें आपके सिवा दूसरा कोई इस विषयका वर्णन करनेवाला नहीं है॥ १-२॥

पूर्णाहंभावमाश्रित्य ये मुक्ता देहपंजरात्।
ये तूपासनमार्गेण देहमुक्ताः परं गताः॥ ३

भगवन्! शंकरनन्दन! जो पूर्ण परब्रह्ममें अहंभावका आश्रय ले देहपंजरसे मुक्त हो गये हैं तथा जो उपासनाके मार्गसे शरीरबन्धनसे मुक्त हो परमात्माको

तेषां गतिविशेषं च भगवन् शंकरात्मज।
वक्तुमर्हसि सुप्रीत्या मां विचार्य स्वशिष्यतः॥ ४

प्राप्त हुए हैं, उनकी गतिमें क्या अन्तर है—यह बताइये। प्रभो! मैं आपका शिष्य हूँ, इसलिये अच्छी तरह विचार करके प्रसन्नतापूर्वक मुझसे इस विषयका वर्णन कीजिये॥ ३-४॥

सूत उवाच

मुनिविज्ञप्तिमाकर्ण्य शक्तिपुत्रः सुरारिहा।
प्राहात्यन्तरहस्यं तद् भृगुणा श्रुतमीश्वरात्॥ ५

सूतजी बोले—मुनि वामदेवजीका निवेदन सुनकर देवशत्रुओंका नाश करनेवाले पार्वतीनन्दन स्कन्दजी शिवजीसे भृगुके द्वारा सुने गये परम रहस्यको कहने लगे—॥ ५॥

सुब्रह्मण्य उवाच

इदमेव मुने गुह्यं भृगवे शिवयोगिने।
उक्तं भगवता साक्षात्सर्वज्ञेन पिनाकिना॥ ६
वक्ष्ये तदद्य ते ब्रह्मन्न देयं यस्य कस्यचित्।
देयं शिष्याय शान्ताय शिवभक्तियुताय वै॥ ७

सुब्रह्मण्य बोले—हे मुने! हे ब्रह्मन्! इस गुप्त बातका सर्वज्ञ सदाशिवने परम शैव भृगुसे जैसा वर्णन किया था। मैं वही आपसे कह रहा हूँ। यह ज्ञान जिस किसीको नहीं देना चाहिये, इसे शान्तचित्त तथा शिवभक्तिसमन्वित शिष्यको ही देना चाहिये॥ ६-७॥

समाधिस्थो यतिः कश्चिच्छिवभावेन देहमुक्।
अस्ति चेत्स महाधीरः परिपूर्णः शिवो भवेत्॥ ८

अधैर्यचित्तो यः कश्चित्समाधिं न च विन्दति।
तदुपायं प्रवक्ष्यामि सावधानतया शृणु॥ ९

जो कोई यति समाधिस्थ हो शिवके चिन्तनपूर्वक अपने शरीरका परित्याग करता है, वह यदि महान् धीर हो तो परिपूर्ण शिवरूप हो जाता है; किंतु यदि कोई अधीरचित्त होनेके कारण समाधिलाभ नहीं कर पाता तो उसके लिये उपाय बताता हूँ; सावधान होकर सुनो॥ ८-९॥

त्रिपदार्थपरिज्ञानं वेदान्तागमवाक्यजम्।
श्रुत्वा गुरोर्मुखाद्योगमभ्यसेत्स यमादिकम्॥ १०

तत्कुर्वन्स यतिः सम्यक् शिवध्यानपरो भवेत्।
नियमेन मुने नित्यं प्रणवासक्तमानसः॥ ११

वेदान्त-शास्त्रके वाक्योंसे जो ज्ञाता, ज्ञान और ज्ञेय—इन तीन पदार्थोंका परिज्ञान होता है, उसे गुरुके मुखसे सुनकर यति यम-नियमादिरूप योगका अभ्यास करे। उसे करते हुए वह भलीभाँति शिवके ध्यानमें तत्पर रहे। मुने! उसे नित्य नियमपूर्वक प्रणवके जप और अर्थचिन्तनमें मनको लगाये रखना चाहिये॥ १०-११॥

देहदौर्बल्यवशतो यद्यधैर्यधरो यतिः।
अकामश्च शिवं स्मृत्वा स जीर्णां स्वां तनुं त्यजेत्॥ १२
सदाशिवानुग्रहतो नंदिना प्रेरिता मुने।
आतिवाहिकरूपिण्यो देवताः पञ्च विश्रुताः॥ १३

मुने! यदि देहकी दुर्बलताके कारण धीरता धारण करनेमें असमर्थ यति निष्कामभावसे शिवका स्मरण करके अपने जीर्ण शरीरको त्याग दे तो भगवान् सदाशिवके अनुग्रहसे नन्दीके भेजे हुए विख्यात पाँच आतिवाहिक देवता आते हैं॥ १२-१३॥

अग्न्यहन्ताकृतिः काचिज्ज्योतिःपुंजवपुष्मती।
अह्नोऽभिमानिनी काचिच्छुक्लपक्षाभिमानिनी॥ १४

उत्तरायणरूपा च पञ्चानुग्रहतत्परा।
धूम्रा तमस्विनी रात्रिः कृष्णपक्षाभिमानिनी॥ १५

उनमेंसे कोई तो अग्निका अभिमानी, कोई ज्योतिःपुंजस्वरूप, कोई दिनाभिमानी, कोई शुक्ल-पक्षाभिमानी और कोई उत्तरायणका अभिमानी होता है। ये पाँचों सब प्राणियोंपर अनुग्रह करनेमें तत्पर रहते हैं। इसी तरह धूमाभिमानी, तमका अभिमानी, रात्रिका अभिमानी, कृष्णपक्षका अभिमानी और दक्षिणायनका

दक्षिणायनरूपेति विश्रुताः पञ्च देवताः।
तासां वृत्तिं शृणुष्वाद्य वामदेव महामुने॥ १६

ताः पञ्च देवता जीवान् कर्मानुष्ठानतत्परान्।
गृहीत्वा त्रिदिवं यान्ति तत्पुण्यवशतो मुने॥ १७

भुक्त्वा भोगान्यथोक्तांश्च ते तत्पुण्यक्षये पुनः।
मानुषं लोकमासाद्य भजते जन्म पूर्ववत्॥ १८

ताः पुनः पञ्चधा मार्गं विभज्यारभ्य भूतलम्।
अग्न्यादिक्रमतां गृह्य सदाशिवपदं यतिः॥ १९

निनीय वन्द्यचरणौ देवदेवस्य पृष्ठतः।
तिष्ठन्त्यनुग्रहाकाराः कर्मण्येव प्रयोजिताः॥ २०

समागतमभिप्रेक्ष्य देवदेवः सदाशिवः।
विरक्तश्चेन्महामन्त्रतात्पर्यमुपदिश्य च॥ २१

स्वसाम्यं च वपुर्दत्ते गाणपत्येऽभिषिच्य च।
अनुगृह्णाति सर्वेशः शंकरः सर्वनायकः॥ २२

मृगटङ्कत्रिशूलाग्र्यवरदानविभूषितम्।
त्रिनेत्रं चन्द्रशकलं गङ्गोल्लासिजटाधरम्॥ २३

अधिष्ठितविमानाग्र्यं सर्वगं सर्वकामदम्।
इति शाखाविरक्तस्य रुद्रकन्यासमावृतम्॥ २४

नृत्यगीतमृदङ्गादिवाद्यघोषमनोहरम्।
दिव्याम्बरस्त्रगालेपभूषणैरपि भूषितम्॥ २५

दिव्यामृतघटैः पूर्णं दिव्यांभःपरिपूरितम्।
सूर्यकोटिप्रतीकाशं चन्द्रकोटिसुशीतलम्॥ २६

मनोवेगं सर्वगं च विमानमनुगृह्य च।
भुक्तभोगस्य तस्यापि भोगकौतूहलक्षये॥ २७

निपात्य शक्तिं तीव्रतरां प्रकृत्या ह्यतिदुर्गमाम्।
कान्तारं दग्धुकामां तां प्रलयानलसुप्रभाम्॥ २८

अभिमानी—ये सब मिलकर पाँच होते हैं। ये पाँचों विख्यात देवता दक्षिण मार्गमें प्रसिद्ध हैं। महामुने वामदेव! अब तुम उन सब देवताओंकी वृत्तिका वर्णन सुनो॥ १४—१६॥

कर्मके अनुष्ठानमें लगे हुए जीवोंको साथ ले वे पाँचों देवता उनके पुण्यवश स्वर्गलोकको जाते हैं और वहाँ यथोक्त भोगोंका उपभोग करके वे जीव पुण्य क्षीण होनेपर पुनः मनुष्यलोकमें आते तथा पूर्ववत् जन्म ग्रहण करते हैं॥ १७-१८॥

इनके सिवा जो उत्तर मार्गके पाँच देवता हैं, वे भूतलसे लेकर ऊर्ध्वलोकतकके मार्गको पाँच भागोंमें विभक्त करके यतिको साथ ले क्रमशः अग्नि आदिके मार्गमें होते हुए उसे सदाशिवके धाममें पहुँचाते हैं। वहाँ देवाधिदेव महादेवके चरणोंमें प्रणाम करके लोकानुग्रहके कर्ममें ही लगाये गये वे अनुग्रहाकार देवता उन सदाशिवके पीछे खड़े हो जाते हैं॥ १९-२०॥

यतिको आया देख देवाधिदेव सदाशिव यदि वह विरक्त हो तो उसे महामन्त्रके तात्पर्यका उपदेश दे गणपतिके पदपर अभिषिक्त करके अपने ही समान शरीर देते हैं। इस प्रकार सर्वेश्वर सर्वनियन्ता भगवान् शंकर उसपर अनुग्रह करते हैं॥ २१-२२॥

उसे मृग, टंक, त्रिशूल, वरदान [मुद्रा]-से विभूषितकर अर्धचन्द्रसमन्वित तथा गंगाप्रवाहसे उल्लसित जटाओंवाला बना देते हैं॥ २३॥

जो यति नाना शाखाओंवाले विषयभोगोंसे विरक्त नहीं हुआ है, उसे कृपापूर्वक शिवजी सभी कामनाओंको प्रदान करनेवाला, रुद्रकन्याओंसे समावृत, मृदंगादि वाद्यध्वनियों तथा नृत्य-गीतादिसे मनोहर, दिव्य वस्त्र, माल्य, आभूषण आदिसे विभूषित, दिव्य अमृत घटोंसे पूर्ण, दिव्य शय्याओंसे युक्त, करोड़ों सूर्योंके समान दीप्तिमान् तथा करोड़ों चन्द्रोंके समान शीतल, मनके समान वेगवाला, सर्वत्रगामी विमान प्रदान करते हैं। इन भोगोंको भोग लेनेपर निवृत्त हुई भोगासक्तिवाले यतिको स्वभावतः अत्यन्त दुर्गम, तीव्रतर, [विषय-वासनारूपी] वनको दग्ध करनेके लिये उद्यत, प्रलयकालीन अग्निके सदृश प्रभावाली शक्ति प्रदान करते हैं॥ २४—२८॥

अनुगृह्य महामन्त्रतात्पर्यं परमेश्वरः।
पूर्णोऽहं भावनारूपः शम्भुरस्मीति निश्चलम्॥ २९

वे परमेश्वर अनुग्रहपूर्वक उस यतिको महामन्त्रके तात्पर्यका उपदेश करते हैं [जिसके फलस्वरूप वह] 'मैं परिपूर्ण शिव ही हूँ' इस प्रकारकी निश्चल भावनावाला हो जाता है॥ २९॥

अनुगृह्य समाधिं च स्वदास्यस्पन्दरूपिणीः।
रव्यादिकर्म्मसामर्थ्यरूपाः सिद्धीरनर्गलाः॥ ३०

आयुःक्षये पद्मयोनेः पुनरावृत्तिवर्जिताम्।
मुक्तिं च परमां तस्मै प्रयच्छति जगद्गुरुः॥ ३१

उसे वे अनुगृहीत करके निश्चल समाधि देते हैं। अपने प्रति दास्यभावकी फलस्वरूपा तथा सूर्य आदिके कार्य करनेकी शक्तिरूपा ऐसी सिद्धियाँ प्रदान करते हैं, जो कहीं अवरुद्ध नहीं होतीं। साथ ही वे जगद्गुरु शंकर उस यतिको वह परम मुक्ति देते हैं, जो ब्रह्माजीकी आयु समाप्त होनेपर भी पुनरावृत्तिके चक्करसे दूर रहती है॥ ३०-३१॥

एतदेव पदं तस्मात्सर्वैश्वर्यं समष्टिमत्।
मुक्तिघंटापथं चेति वेदान्तानां विनिश्चयः॥ ३२

अतः यही समष्टिमान् सम्पूर्ण ऐश्वर्यसे युक्त पद है और यही मोक्षका राजमार्ग है, ऐसा वेदान्तशास्त्रका निश्चय है॥ ३२॥

मुमूर्षोस्तस्य मन्दस्य यतेः सत्सम्प्रदायिनः।
यतयः सानुकूलत्वात्तिष्ठेयुः परितस्तदा॥ ३३

ततः सर्वे च ते तत्र प्रणवादीन्यनुक्रमात्।
उपदिश्य च वाक्यानि तात्पर्यं च समाहिताः॥ ३४

वर्णयेयुः स्फुटं प्रीत्या शिवं संस्मारयन्सदा।
निर्गुणं परमज्योतिः प्रणम्य विलयावधि॥ ३५

जिस समय यति मरणासन्न हो शरीरसे शिथिल हो जाय, उस समय श्रेष्ठ सम्प्रदायवाले दूसरे यति अनुकूलताकी भावना ले उसके चारों ओर खड़े हो जायँ। वे सब वहाँ क्रमशः प्रणव आदि वाक्योंका उपदेश दे उनके तात्पर्यका सावधानी और प्रसन्नताके साथ सुस्पष्ट वर्णन करें तथा जबतक उसके प्राणोंका लय न हो जाय तबतक निर्गुण परमज्योतिःस्वरूप सदाशिवका उसे निरन्तर स्मरण कराते रहें॥ ३३—३५॥

एतेषां सममेवात्र संस्कारक्रम उच्यते।
असंस्कृतशरीराणां दौर्गत्यं नैव जायते॥ ३६

संन्यस्य सर्वकर्माणि शिवाश्रयपरा यतः।
देहं दूषयतस्तेषां राज्ञो राष्ट्रं च नश्यति॥ ३७

तद्ग्रामवासिनस्तेऽपि भवेयुर्भृशदुःखिनः।
तद्दोषपरिहाराय विधानं चैवमुच्यते॥ ३८

सब यतियोंका यहाँ समानरूपसे संस्कार-क्रम बताया जाता है। संन्यासी सब कर्मोंका त्याग करके भगवान् शिवका आश्रय ग्रहण कर लेते हैं। इसलिये उनके शरीरका दाहसंस्कार नहीं होता और उसके न होनेसे उनकी दुर्गति नहीं होती। संन्यासीके शरीरको दूषित करनेवाले राजाका राज्य नष्ट हो जाता है। उसके गाँवोंमें रहनेवाले लोग अत्यन्त दुखी हो जाते हैं। इसलिये उस दोषका परिहार करनेके लिये शान्तिका विधान बताया जाता है॥ ३६—३८॥

स तु नम इरिण्याय चेत्यारभ्य विनम्रधीः।
नम आमीवत्केभ्यान्तं तत्काले प्रजपेन्मनुम्॥ ३९

ओमित्यन्ते जपन् देवयजनं पूरयेत्ततः।
ततः शान्तिर्भवेत्तस्य दोषस्य हि मुनीश्वर॥ ४०

उस समय '**नम इरिण्याय**' से लेकर '**नम अमीवकेभ्यः**' तकके मन्त्रका विनीतचित्त होकर जप करे। फिर अन्तमें ओंकारका जप करते हुए मिट्टीसे देवयजनकी* पूर्ति करे। मुनीश्वर! ऐसा करनेसे उस दोषकी शान्ति हो जाती है॥ ३९-४०॥

* संन्यासीके शरीरको गाड़नेके लिये जो गड्ढा खोदा जाता है, उसको 'देवयजन' कहते हैं।

पुत्रादयो यथान्यायं कुर्युः संस्कारमुत्तमम्।
वच्मि तत्कृपया विप्र सावधानतया शृणु॥ ४१

[अब संन्यासीके शवके संस्कारकी विधि बताते हैं।] पुत्र या शिष्य आदिको चाहिये कि यतिके शरीरका यथोचित रीतिसे उत्तम संस्कार करे। हे ब्रह्मन्! मैं कृपापूर्वक संस्कारकी विधि बता रहा हूँ, सावधान होकर सुनो॥ ४१॥

अभ्यर्च्य स्नाप्य शुद्धोदैरभ्यर्च्य कुसुमादिभिः।
श्रीरुद्रचमकाभ्यां च रुद्रसूक्तेन च क्रमात्॥ ४२

शंखं च पुरतः स्थाप्य तज्जलेनाभिषिच्य च।
पुष्पं निधाय शिरसि प्रणवेन प्रमार्जयेत्॥ ४३

पहले यतिके शरीरको शुद्ध जलसे नहलाकर पुष्प आदिसे उसकी पूजा करे। पूजनके समय श्रीरुद्रसम्बन्धी चमकाध्याय और नमकाध्यायका पाठ करके रुद्रसूक्तका उच्चारण करे। उसके आगे शंखकी स्थापना करके शंखस्थ जलसे यतिके शरीरका अभिषेक करे। सिरपर पुष्प रखकर प्रणवद्वारा उसका मार्जन करे॥ ४२-४३॥

कौपीनादीनि सन्त्यज्य पुनरन्यानि धारयेत्।
भस्मनोद्धूलयेत्तस्य सर्वाङ्गं विधिना ततः॥ ४४

त्रिपुण्ड्रं च विधानेन तिलकं चन्दनेन च।
विरच्य पुष्पैर्मालाभिरलंकुर्यात्कलेवरम्॥ ४५

पहलेके कौपीन आदिको हटाकर दूसरे नवीन कौपीन आदि धारण कराये। फिर विधिपूर्वक उसके सारे अंगोंमें भस्म लगाये। विधिवत् त्रिपुण्ड्र लगाकर चन्दनद्वारा तिलक करे। फिर फूलों और मालाओंसे उसके शरीरको अलंकृत करे॥ ४४-४५॥

उरःकण्ठशिरोबाहुप्रकोष्ठश्रुतिषु क्रमात्।
रुद्राक्षमालाभरणैरलंकुर्याच्च मन्त्रतः॥ ४६

सुधूपितं समुत्थाप्य शिक्योपरि निधाय च।
पञ्चब्रह्ममये रम्ये रथे संस्थापयेत्तनुम्॥ ४७

छाती, कण्ठ, मस्तक, बाँह, कलाई और कानोंमें क्रमशः रुद्राक्षकी मालाके आभूषण मन्त्रोच्चारण-पूर्वक धारण कराकर उन सब अंगोंको सुशोभित करे। फिर धूप देकर उस शरीरको उठाये और विमानके ऊपर रखकर ईशानादि पंचब्रह्ममय रमणीय रथपर स्थापित करे॥ ४६-४७॥

ओमाद्यैः पञ्चभिर्ब्रह्ममन्त्रैः सद्यादिभिः क्रमात्।
सुगन्धकुसुमैर्माल्यैरलंकुर्याद्रथं च तम्॥ ४८

नृत्यवाद्यैर्ब्राह्मणानां वेदघोषैश्च सर्वतः।
ग्रामं प्रदक्षिणीकृत्य गच्छेत्प्रेतं तमुद्वहन्॥ ४९

आदिमें ओंकारसे युक्त पाँच सद्योजातादि ब्रह्ममन्त्रोंका उच्चारण करके सुगन्धित पुष्पों और मालाओंसे उस रथको सुसज्जित करे। फिर नृत्य, वाद्य तथा ब्राह्मणोंके वेदमन्त्रोच्चारणकी ध्वनिके साथ ग्रामकी सभी ओरसे प्रदक्षिणा करते हुए उस प्रेतको बाहर ले जाय॥ ४८-४९॥

ततस्ते यतिनः सर्वे तथा प्राच्यामथापि वा।
उदीच्यां पुण्यदेशे तु पुण्यवृक्षसमीपतः॥ ५०

खनित्वा देवयजनं दण्डमात्रप्रमाणतः।

तदनन्तर साथ गये हुए वे सब यति गाँवके पूर्व या उत्तरदिशामें पवित्र स्थानमें किसी पवित्र वृक्षके निकट देवयजन (गड्ढा) खोदें। उसकी लम्बाई संन्यासीके दण्डके बराबर ही होनी चाहिये॥ ५०१/२॥

प्रणवव्याहृतिभ्यां च प्रोक्ष्य चास्तीर्य च क्रमात्॥ ५१

शमीपत्रैश्च कुसुमैरुत्तराग्रं तदूर्ध्वतः।
आस्तीर्य दर्भांस्तत्पीठं चैलाजिनकुशोत्तरम्॥ ५२

फिर प्रणव तथा व्याहृति-मन्त्रोंसे उस स्थानका प्रोक्षण करके वहाँ क्रमशः शमीके पत्र और फूल बिछाये। उनके ऊपर उत्तराग्र कुश बिछाकर उसपर योगपीठ रखे। उसके ऊपर पहले कुश बिछाये,

प्रणवेन ब्रह्मभिश्च पञ्चगव्येन तां तनुम्।
प्रोक्ष्याभिषिच्य रौद्रेण सूक्तेन प्रणवेन च॥ ५३

शंखतोयेनाभिषिच्य मूर्ध्नि पुष्पं विनिःक्षिपेत्।
तद्गतस्यानुकूलोऽसौ शिवस्मरणतत्परः॥ ५४

ओमित्यथ समुद्धृत्य स्वस्तिवाचनपूर्वकम्।
गर्ते योगासने स्थाप्य प्राङ्मुखं स्याद्यथा तथा॥ ५५

गंधपुष्पैरलंकृत्य धूपगुग्गुलुना ततः।
विष्णो हव्यमिति प्रोच्य रक्षस्वेति वदन् ददेत्॥ ५६

दण्डं दक्षिणहस्ते तु वामे दद्यात्कमण्डलुम्।
प्रजापते न त्वदेतान्यन्योमन्त्रेण सोदकम्॥ ५७

ब्रह्मजज्ञानं प्रथममिति मन्त्रेण मस्तके।
स्पृशञ्जप्त्वा रुद्रसूक्तं भ्रुवोर्मध्ये स्पृशञ्जपेत्॥ ५८

मानोमहान्तमित्यादि चतुर्भिर्मस्तकं ततः।
नालिकेरेण निर्भिद्यादवटं पूरयेत्ततः॥ ५९

पञ्चभिर्ब्रह्मभिः स्पृष्ट्वा जपेत् स्थलमनन्यधीः।
यो देवानामुपक्रम्य यः परः स महेश्वरः॥ ६०

इति जप्त्वा महादेवं सांबं संसारभेषजम्।
सर्वज्ञमपराधीनं सर्वानुग्रहकारकम्॥ ६१

एकारत्निसमुत्सेधमरत्निद्वयविस्तृतम्।
मृदा पीठं प्रकल्प्याथ गोमयेनोपलेपयेत्॥ ६२

चतुरस्त्रं स तन्मध्ये गंधाक्षतसमन्वितैः।
सुगंधकुसुमैर्बिल्वैस्तुलस्या च समर्चयेत्॥ ६३

कुशोंके ऊपर मृगचर्म तथा उसके भी ऊपर वस्त्र बिछाकर प्रणवसहित सद्योजातादि पंचब्रह्ममन्त्रोंका पाठ करते हुए पंचगव्यद्वारा उस शवका प्रोक्षण करे। तत्पश्चात् रुद्रसूक्त एवं प्रणवका उच्चारण करते हुए शंखके जलसे उसका अभिषेक करके उसके मस्तकपर फूल डाले। वहाँ गये हुए शिष्य आदि संस्कारकर्ता पुरुष मृत यतिके प्रति अनुकूल भाव रखते हुए शिवका चिन्तन करते रहें॥ ५१—५४॥

तदनन्तर ॐकारका उच्चारण और स्वस्तिवाचन करके उस शवको उठाकर गड्ढेके भीतर योगासनपर इस तरह बिठाये, जिससे उसका मुख पूर्व-दिशाकी ओर रहे॥ ५५॥

फिर चन्दन-पुष्पसे अलंकृत करके उसे धूप और गुग्गुलकी सुगन्ध दे। इसके बाद **'विष्णो! हव्यमिदं रक्षस्व'** ऐसा कहकर उसके दाहिने हाथमें दण्ड दे और **'प्रजापते न त्वदेतान्यन्यो०'** (शु० यजु० २३। ६५) इस मन्त्रको पढ़कर बायें हाथमें जलसहित कमण्डलु अर्पित करे॥ ५६-५७॥

फिर **'ब्रह्म जज्ञानं प्रथमं०'** (शु० यजु० १३। ३) इस मन्त्रसे उसके मस्तकका स्पर्श करके दोनों भौंहोंके स्पर्शपूर्वक रुद्रसूक्तका जप करे। तत्पश्चात् **'मा नो महान्तमुत०'** (शु० यजु० १६। १५) इत्यादि चार मन्त्रोंको पढ़कर नारियलके द्वारा यतिके शवके मस्तकका भेदन करे। इसके बाद उस गड्ढेको पाट दे॥ ५८-५९॥

फिर उस स्थानका स्पर्श करके अनन्यचित्तसे पाँच ब्रह्ममन्त्रोंका जप करे। तदनन्तर **'यो देवानां प्रथमं पुरस्तात्'** (१०। ३)-से लेकर **'तस्य प्रकृति-लीनस्य यः परः स महेश्वरः।'** (१०। ८) तक [महानारायणोपनिषद्के] मन्त्रोंका जप करके संसाररूपी रोगके भेषज, सर्वज्ञ, स्वतन्त्र तथा सबपर अनुग्रह करनेवाले उमासहित महादेवजीका चिन्तन एवं पूजन करे॥ ६०-६१॥

[पूजनकी विधि यों है—] एक हाथ ऊँचे और दो हाथ लम्बे-चौड़े एक पीठका मिट्टीके द्वारा निर्माण करे। फिर उसे गोबरसे लीपे। वह पीठ चौकोर होना चाहिये। उसके मध्यभागमें [उमा-महेश्वरको स्थापित करके] गन्ध, अक्षत, सुगन्धित पुष्प, बिल्वपत्र और तुलसीदलोंसे उनकी पूजा करे॥ ६२-६३॥

प्रणवेन ततो दद्याद् धूपदीपौ पयो हविः।
दत्त्वा प्रदक्षिणीकृत्य नमस्कुर्याच्च पञ्चधा॥ ६४

तत्पश्चात् प्रणवसे धूप और दीप निवेदन करे। फिर दूध और हविष्यका नैवेद्य लगाकर पाँच बार परिक्रमा करके नमस्कार करे॥ ६४॥

प्रणवं द्वादशावृत्त्या संजप्य प्रणमेत्ततः।
दिग्विदिक्क्रमतो दद्याद् ब्रह्मार्घ्यं प्रणवेन च॥ ६५

फिर बारह बार प्रणवका जप करके प्रणाम करे। तदनन्तर (ब्रह्मीभूत यतिकी तृप्तिके लिये नारायणपूजन, बलिदान, घृतदीपदानका संकल्प करके गर्तके ऊपर मृण्मय लिंग बनाकर पुरुषसूक्तसे पूजा करके घृतमिश्रित पायसकी बलि दे। घीका दीप जला पायसबलिको जलमें डाल दे) तत्पश्चात् दिशा-विदिशाओंके क्रमसे प्रणवके उच्चारणपूर्वक '**ॐ ब्रह्मणे नमः**' इस मन्त्रसे [ब्रह्मीभूत] यतिके लिये शंखसे आठ बार अर्घ्यजल दे॥ ६५॥

एवं दशाहपर्यन्तं विधिस्ते समुदाहृतः।
यतीनां मुनिवर्याथैकादशाहविधिं शृणु॥ ६६

इस प्रकार दस दिनोंतक करता रहे। मुनिश्रेष्ठ! यह दशाहतकको विधि तुम्हें बतायी गयी। अब यतियोंके एकादशाहकी विधि सुनो॥ ६६॥

इति श्रीशिवमहापुराणे षष्ठ्यां कैलाससंहितायां यतीनां मरणानन्तरदशाहपर्यन्तकृत्यवर्णनं नामैकविंशोऽध्यायः॥ २१॥

॥ इस प्रकार श्रीशिवमहापुराणके अन्तर्गत छठी कैलाससंहितामें यतियोंके मरणकालके अनन्तर दशाहपर्यन्त कृत्यवर्णन नामक इक्कीसवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ २१॥

अथ द्वाविंशोऽध्यायः

यतिके लिये एकादशाह-कृत्यका वर्णन

सुब्रह्मण्य उवाच

एकादशेऽह्नि सम्प्राप्ते यो विधिः समुदाहृतः।
तं वक्ष्ये मुनिशार्दूल यतीनां स्नेहतस्तव॥ १

सम्मार्ज्य वेदीमालिप्य कृत्वा पुण्याहवाचनम्।
प्रोक्ष्य पश्चिममारभ्य पूर्वान्तं पञ्च च क्रमात्॥ २

मण्डलान्युत्तराशास्यः कुर्यात्स्वयमवस्थितः।
प्रादेशमात्रं संकल्प्य चतुरस्रं च मध्यतः॥ ३

बिन्दुत्रिकोणषट्कोणवृत्ताकाराणि च क्रमात्।

स्कन्दजी बोले—मुनिश्रेष्ठ वामदेव! यतिका एकादशाह प्राप्त होनेपर जो विधि बतायी गयी है, उसका मैं तुम्हारे स्नेहवश वर्णन करता हूँ। मिट्टीकी वेदी बनाकर उसका सम्मार्जन और उपलेपन करे। तत्पश्चात् पुण्याहवाचनपूर्वक प्रोक्षण करके पश्चिमसे लेकर पूर्वकी ओर क्रमसे पाँच मण्डल बनाये और स्वयं श्राद्धकर्ता उत्तराभिमुख बैठकर कार्य करे। प्रादेशमात्र लंबा-चौड़ा चौकोर मण्डल बनाकर उसके मध्यभागमें बिन्दु, उसके ऊपर त्रिकोण मण्डल, उसके ऊपर षट्कोण मण्डल और उसके ऊपर गोल मण्डल बनाये॥ १—३½॥

शंखं च पुरतः स्थाप्य पूजोक्तक्रममार्गतः॥ ४

प्राणानायम्य संकल्प्य पूजयित्वा सुरेश्वरीः।
देवताः पञ्च पूर्वोक्ता अतिवाहिकरूपिणीः॥ ५

फिर अपने सामने शंखकी स्थापना करके पूजाके लिये बतायी हुई पद्धतिके क्रमसे आचमन, प्राणायाम एवं संकल्प करके पूर्वोक्त पाँच आतिवाहिक देवताओंका देवेश्वरी देवियोंके रूपमें पूजन करे॥ ४-५॥

सन्त्यज्योत्तरतो दर्भानपश्च संस्पृशेत् ततः।
पश्चिमादि समारभ्य षडुत्थासनमार्गतः॥ ६

मण्डलानि च तेष्वन्तः पुष्पाण्याधाय पीठवत्।
ॐ ह्रीमित्युक्त्वाग्निरूपां तामतिवाहिकदेवताम्॥ ७

आवाहयामि नम इत्यन्तं सर्वत्र भावयेत्।
दर्शयेत्स्थापनाद्यास्तु मुद्राः प्रत्येकमादरात्॥ ८

उत्तरकी ओर आसनके लिये कुश डालकर जलका स्पर्श करे। पश्चिमसे आरम्भ करके पूर्वपर्यन्त जो मण्डल बताये गये हैं, उनके भीतर षडध्वाविधिसे पीठके रूपमें पुष्प रखे और उन पुष्पोंपर क्रमशः उक्त पाँचों देवियोंका आवाहन करे। पहले अग्निपुंजस्वरूपिणी आतिवाहिक देवीका आवाहन करते हुए इस प्रकार कहे—'**ॐ ह्रीं अग्निरूपामातिवाहिकदेवताम् आवाहयामि नमः**'। इस प्रकार सर्वत्र वाक्ययोजना और भावना करे। इस तरह पाँचों देवियोंका आवाहन करके प्रत्येकके लिये आदरपूर्वक स्थापनी आदि मुद्राओंका प्रदर्शन करे॥ ६—८॥

ह्रांह्रीमित्यादिना कुर्यादासामङ्गानि च क्रमात्।
पाशांकुशाभयाभीष्टपाणिचन्द्रोपलप्रभाः॥ ९

रक्ताङ्गुलीयकच्छायरञ्जिताखिलदिङ्मुखाः।
रक्ताम्बरधराः हस्तपदपंकजशोभिताः॥ १०

त्रिनेत्रोल्लासिवदनपूर्णचन्द्रमनोहराः।
माणिक्यमुकुटोद्भासिचन्द्रलेखावतंसिताः॥ ११

कुण्डलामृष्टगण्डाश्च पीनोन्नतपयोधराः।
हारकेयूरकटककाञ्चीदाममनोहराः॥ १२

तनुमध्याः पृथुश्रोण्यो रक्तदिव्याम्बरावृताः।
माणिक्यमयमंजीरसिञ्जत्पदसरोरुहाः।
पादाङ्गुलीयकश्रेणीर्मंजुलातिमनोहराः॥ १३

तत्पश्चात् ह्रां ह्रीं ह्रूं ह्रैं ह्रौं ह्रः—इन बीजमन्त्रोंद्वारा षडंगन्यास और करन्यास करे। इसके बाद उन देवियोंका इस प्रकार ध्यान करना चाहिये। उन सबके चार-चार हाथ हैं। उनमेंसे दो हाथोंमें वे पाश और अंकुश धारण करती हैं तथा शेष दो हाथोंमें अभय और वरद मुद्राएँ हैं। उनकी अंगकान्ति चन्द्रकान्तमणिके समान है। लाल अँगूठियोंकी प्रभासे उन्होंने सम्पूर्ण दिशाओंके मुख-मण्डलको रँग दिया है। वे लाल वस्त्र धारण करती हैं। उनके हाथ और पैर कमलोंके समान शोभा पाते हैं। तीन नेत्रोंसे सुशोभित मुखरूपी पूर्ण चन्द्रमाकी छटासे वे मनको मोहे लेती हैं। माणिक्यनिर्मित मुकुटोंसे उद्भासित चन्द्रलेखा उनके सीमन्तको विभूषित कर रही है। कपोलोंपर रत्नमय कुण्डल झलमला रहे हैं। उनके उरोज पीन तथा उन्नत हैं। हार, केयूर, कड़े और करधनीकी लड़ियोंसे विभूषित होनेके कारण वे बड़ी मनोहारिणी जान पड़ती हैं। उनका कटिभाग कृश और नितम्ब स्थूल हैं। उनके अंग लाल रंगके दिव्य वस्त्रोंसे आच्छादित हैं। चरणारविन्दोंमें माणिक्य-निर्मित पायजेबोंकी झनकार होती रहती है। पैरोंकी अँगुलियोंमें बिछुओंकी पंक्ति अत्यन्त सुन्दर एवं मनोहर है॥ ९—१३॥

अनुग्रहेण मूर्तेन शिववत् किं नु साध्यते।
तस्माच्छक्त्यात्ममूर्तेन सर्वं साध्यं महेशवत्॥ १४

शक्तिविशिष्ट अनुग्रहमूर्ति शिवजीके द्वारा क्या सिद्ध नहीं हो सकता, अर्थात् सब कुछ सिद्ध हो सकता है। इसलिये वे देवियाँ महेश्वरकी भाँति शक्त्यात्मक मूर्तिवाले अनुग्रहसे सम्पन्न हैं। अतः उनके अनुग्रहसे सब कुछ सिद्ध हो सकता है। सबपर

सर्वानुग्रहकर्त्रैव स्वीकृताः पञ्चमूर्तयः।
सर्वकार्यकरा दिव्याः परानुग्रहतत्पराः॥ १५

अनुग्रह करनेवाले भगवान् शिवने ही उन पाँच मूर्तियोंको स्वीकार किया है। इसलिये वे दिव्य, सम्पूर्ण कार्य करनेमें समर्थ तथा परम अनुग्रहमें तत्पर हैं॥ १४-१५॥

एवं ध्यात्वा तु ताः सर्वा अनुग्रहपराः शिवाः।
पादयोः पाद्यमेतासां दद्याच्छंखोदबिन्दुभिः॥ १६
हस्तेष्वाचमनीयं च मौलीष्वर्घ्यं प्रदापयेत्।
शंखोदबिन्दुभिस्तासां स्नानकर्म च भावयेत्॥ १७

इस प्रकार उन सब अनुग्रहपरायण कल्याणमयी देवियोंका ध्यान करके इनके लिये शंखस्थ जलके बिन्दुओंद्वारा पैरोंमें पाद्य, हाथोंमें आचमनीय तथा मस्तकोंपर अर्घ्य देना चाहिये। तदनन्तर शंखके जलकी बूँदोंसे उनका स्नानकर्म सम्पन्न कराना चाहिये॥ १६-१७॥

रक्ताम्बराणि दिव्यानि सोत्तरीयाणि दापयेत्।
मुकुटादीन्यनर्घ्याणि दद्यादाभरणानि च॥ १८
सुवासितं च श्रीखण्डमक्षतांश्चातिशोभनान्।
सुरभीणि मनोज्ञानि कुसुमानि च दापयेत्॥ १९

[स्नानके पश्चात्] दिव्य लाल रंगके वस्त्र और उत्तरीय अर्पित करे। बहुमूल्य मुकुट एवं आभूषण दे [इन वस्तुओंके अभावमें मनके द्वारा भावना करके इन्हें अर्पित करना चाहिये]। तत्पश्चात् सुगन्धित चन्दन, अत्यन्त सुन्दर अक्षत तथा उत्तम गन्धसे युक्त मनोहर पुष्प चढ़ाये॥ १८-१९॥

धूपं च परमामोदं साज्यवर्तिं च दीपकम्।
सर्वं समर्पयामीति प्रणवं ह्रीमुपक्रमात्॥ २०
नमोऽन्तं च ततो दद्यात्पायसं मधुनाप्लुतम्।
साज्यशर्करयापूपकदलीगुडपूरितम्॥ २१
प्रत्येकं कदलीपत्रे भरितं च सुवासितम्।
भूर्भुवः स्वरिति प्रोच्य प्रोक्षणादीनि कारयेत्॥ २२

अत्यन्त सुगन्धित धूप और घीकी बत्तीसे युक्त दीपक निवेदन करे। इन सब वस्तुओंको अर्पण करते समय आरम्भमें **'ओं ह्रीं'** का प्रयोग करके फिर **'समर्पयामि नमः'** बोलना चाहिये यथा **'ॐ ह्रीं अग्न्यादिरूपाभ्यः पञ्चदेवीभ्यः दीपं समर्पयामि नमः।'** इसी तरह अन्य उपचारोंको अर्पित करते समय वाक्ययोजना कर लेनी चाहिये। दीपसमर्पणके पश्चात् हाथ जोड़कर प्रत्येक देवीके लिये पृथक्-पृथक् केलेके पत्तेपर पूरा-पूरा सुवासित नैवेद्य रखे। वह नैवेद्य घी, शक्कर और मधुसे मिश्रित खीर, पूआ, केलेके फल और गुड़ आदिके रूपमें होना चाहिये। **'भूर्भुवः स्वः'** बोलकर उसका प्रोक्षण आदि संस्कार करे॥ २०—२२॥

ॐ ह्रीमिति समुच्चार्य नैवेद्यं वह्निजायया।
पानीयं नम इत्युक्त्वा परं प्रेम्णा समर्पयेत्॥ २३
तत उद्वासयेत् प्रीत्या पूर्वतो मुनिसत्तम।
स्थलं विशोध्य गंडूषाचमनार्घ्याणि दापयेत्॥ २४
तांबूलं धूपदीपौ च प्रदक्षिणनमस्कृती।
विधाय प्रार्थयेदेताः शिरस्यंजलिमादधत्॥ २५

फिर **'ॐ ह्रीं स्वाहा नैवेद्यं निवेदयामि नमः'** बोलकर नैवेद्य-समर्पणके पश्चात् **'ॐ ह्रीं नैवेद्यान्ते आचमनार्थं पानीयं समर्पयामि नमः।'** कहते हुए बड़े प्रेमसे जल अर्पित करे। मुनिश्रेष्ठ! तत्पश्चात् प्रसन्नतापूर्वक नैवेद्यको पूर्व दिशामें हटा दे और उस स्थानको शुद्ध करके कुल्ला, आचमन तथा अर्घ्यके लिये जल दे। फिर ताम्बूल, धूप और दीप देकर परिक्रमा एवं नमस्कार करके मस्तकपर हाथ जोड़ इन सब देवियोंसे इस प्रकार प्रार्थना करे॥ २३—२५॥

श्रीमातरः सुप्रसन्ना यतिं शिवपदैषिणम्।
रक्षणीयं प्रब्रुवन्तु परमेशपदाब्जयोः॥ २६

'हे श्रीमाताओ! आप अत्यन्त प्रसन्न हो शिव-पदकी अभिलाषा रखनेवाले इस यतिको परमेश्वरके चरणारविन्दोंमें रख दें और इसके लिये अपनी स्वीकृति दें'॥ २६॥

इति संप्रार्थ्य ताः सर्वा विसृज्य च यथागतम्।
तासां प्रसादमुद्धृत्य कन्यकाभ्यः प्रदापयेत्॥ २७

गोभ्यो वा जलमध्ये वा निक्षिपेन्नान्यथा क्वचित्।
अत्रैव पार्वणं कुर्यान्नैकोद्दिष्टं यतेः क्वचित्॥ २८

इस प्रकार प्रार्थना करके उन सबका, वे जैसे आयी थीं, उसी तरह विदा देकर, विसर्जन कर दे और उनका प्रसाद लेकर कुमारी कन्याओंको बाँट दे या गौओंको खिला दे अथवा जलमें डाल दे। इसके सिवा और कहीं किसी प्रकार भी न डाले। यहीं पार्वण करे। यतिके लिये कहीं भी एकोद्दिष्ट-श्राद्धका विधान नहीं है॥ २७-२८॥

अत्रायं पार्वणश्राद्धे नियमः प्रोच्यते मया।
तं शृणुष्व मुनिश्रेष्ठ येन श्रेयो भवेत्ततः॥ २९

कर्ता स्नात्वा धृतप्राण उपवीती समाहितः।
सपवित्रकरस्त्वस्यां पुण्यतिथ्यामिति ब्रुवन्॥ ३०

करिष्ये पार्वणं श्राद्धमिति संकल्प्य चोत्तरे।
दद्याद्दर्भानुत्तमांश्च ह्यासनार्थं जलं स्पृशेत्॥ ३१

यहाँ पार्वण-श्राद्धके लिये जो नियम है, उसे मैं बता रहा हूँ। मुनिश्रेष्ठ! तुम उसे सुनो। इससे कल्याणकी प्राप्ति होगी। श्राद्धकर्ता पुरुष स्नान करके प्राणायाम करे। यज्ञोपवीत पहन सावधान हो हाथमें पवित्री धारण करके [देश-कालका कीर्तन करनेके पश्चात्] 'मैं इस पुण्यतिथिको पार्वण-श्राद्ध करूँगा' इस तरह संकल्प करे। संकल्पके बाद उत्तर- दिशामें आसनके लिये उत्तम कुश बिछाये। फिर जलका स्पर्श करे॥ २९—३१॥

तत्रोपवेशयेद्भक्त्या साभ्यङ्गं कृतमज्जनान्।
आहूय चतुरो विप्रान् शिवभक्तान्दृढव्रतान्॥ ३२

उन आसनोंपर दृढ़तापूर्वक उत्तम व्रतका पालन करनेवाले चार शिवभक्त ब्राह्मणोंको बुलाकर भक्तिभावसे बिठाये। वे ब्राह्मण उबटन लगाकर स्नान किये होने चाहिये॥ ३२॥

विश्वेदेवार्थं भवता प्रसादः क्रियतामिति।
आत्मने भवता पश्चादन्तरात्मन इत्यपि॥ ३३

परमात्मन इत्येवं प्रोच्य प्रार्थ्य च तान्यतिः।
श्रद्धया वरणं तेषां कुर्याद्याथार्थ्यमादरात्॥ ३४

उनमेंसे एक ब्राह्मणसे कहे—'आप विश्वेदेवके लिये यहाँ श्राद्ध ग्रहण करनेकी कृपा करें।' इसी तरह दूसरेसे आत्माके लिये, तीसरेसे अन्तरात्माके लिये और चौथेसे परमात्माके लिये श्राद्ध ग्रहण करनेकी प्रार्थना करके संयतचित्त श्राद्धकर्ता श्रद्धा और आदरपूर्वक उन सबका यथोचितरूपसे वरण करे॥ ३३-३४॥

पादौ प्रक्षाल्य तेषां तु प्राङ्मुखानुपवेश्य च।
गन्धादिभिरलंकृत्य भोजयेच्च शिवाग्रतः॥ ३५

फिर उन सबके पैर धोकर उन्हें पूर्वाभिमुख बिठाये और गन्ध आदिसे अलंकृत करके शिवके सम्मुख भोजन कराये॥ ३५॥

गोमयेनोपलिप्यात्र दर्भान्प्रागग्रकल्पितान्।
आस्तीर्य संयतप्राणः पिण्डानां च प्रदानकम्॥ ३६

करिष्य इति संकल्प्य मण्डलत्रयमर्च्य च।

तदनन्तर वहाँ गोबरसे भूमिको लीपकर पूर्वाग्र कुश बिछाये और प्राणायामपूर्वक पिण्डदानके लिये संकल्प करके तीन मण्डलोंकी पूजा करे। इसके बाद पहले पिण्डको हाथमें ले **'आत्मने इमं पिण्डं**

आत्मानमन्तरात्मानं परमात्मनमप्यतः ॥ ३७
चतुर्थ्यन्तं वदन् पश्चादिमं पिण्डमितीरयन्।
ददामीति च सम्प्रोच्य दद्यात्पिण्डान् स्वभक्तितः ॥ ३८
कुशोदकं ततो दद्याद्यथाविधि विधानतः।
तत उत्थाय वै कुर्यात् प्रदक्षिणनमस्कृती ॥ ३९
ततो दत्त्वा ब्राह्मणेभ्यो दक्षिणां च यथाविधि।
नारायणबलिं कुर्यात् तस्मिन्नेव स्थले दिने ॥ ४०
रक्षार्थमेव सर्वत्र विष्णोः पूजाविधिः स्मृतः।
कुर्याद्विष्णोर्महापूजां पायसान्नं निवेदयेत् ॥ ४१
द्वादशाथ समाहूय ब्राह्मणान्वेदपारगान्।
केशवादिभिरभ्यर्च्य गन्धपुष्पाक्षतादिभिः ॥ ४२
उपानच्छत्रवस्त्रादि दत्त्वा तेभ्यो यथाविधि।
सन्तोषयेन्महाभक्त्या विविधैर्वचनैः शुभैः ॥ ४३
आस्तीर्य दर्भान्पूर्वाग्रान्भूः स्वाहा च भुवः सुवः।
प्रणवादि प्रोच्य भूमौ पायसान्नं बलिं हरेत् ॥ ४४
एकादशाहसुविधिर्मया प्रोक्तो मुनीश्वर।
द्वादशाहविधिं वक्ष्ये शृणुष्वादरतो द्विज ॥ ४५

ददामि' ऐसा कहकर उस पिण्डको प्रथम मण्डलमें दे दे। तत्पश्चात् दूसरे पिण्डको **'अन्तरात्मने इमं पिण्डं ददामि'** कहकर दूसरे मण्डलमें दे दे। फिर तीसरे पिण्डको **'परमात्मने इमं पिण्डं ददामि'** कहकर तीसरे मण्डलमें अर्पित करे। इस तरह भक्तिभावसे विधिपूर्वक पिण्ड और कुशोदक दे। तत्पश्चात् उठकर परिक्रमा और नमस्कार करे ॥ ३६—३९ ॥

तदनन्तर ब्राह्मणोंको विधिवत् दक्षिणा दे। उसी जगह और उसी दिन नारायणबलि करे। रक्षाके लिये ही सर्वत्र श्रीविष्णुकी पूजाका विधान है। अतः विष्णुकी महापूजा करे और खीरका नैवेद्य लगाये ॥ ४०-४१ ॥

इसके बाद वेदोंके पारंगत बारह विद्वान् ब्राह्मणोंको बुलाकर केशव आदि नाम-मन्त्रोंद्वारा गन्ध, पुष्प और अक्षत आदिसे उनकी पूजा करे। उनके लिये विधिपूर्वक जूता, छाता और वस्त्र आदि दे। अत्यन्त भक्तिसे भाँति- भाँतिके शुभ वचन कहकर उन्हें सन्तोष दे ॥ ४२-४३ ॥

फिर पूर्वाग्र कुशोंको बिछाकर **'ॐ भूः स्वाहा, ॐ भुवः स्वाहा, ॐ स्वः स्वाहा'** ऐसा उच्चारण करके पृथ्वीपर खीरकी बलि दे। मुनीश्वर ! यह मैंने एकादशाहकी विधि बतायी है। अब द्वादशाहकी विधि बताता हूँ, आदरपूर्वक सुनो ॥ ४४-४५ ॥

इति श्रीशिवमहापुराणे षष्ठ्यां कैलाससंहितायां यतीनामेकादशाहकृत्यवर्णनं नाम द्वाविंशोऽध्यायः ॥ २२ ॥

॥ इस प्रकार श्रीशिवमहापुराणके अन्तर्गत छठी कैलाससंहितामें यतियोंका एकादशाहकृत्यवर्णन नामक बाईसवाँ अध्याय पूर्ण हुआ ॥ २२ ॥

अथ त्रयोविंशोऽध्यायः

यतिके द्वादशाह-कृत्यका वर्णन, स्कन्द और वामदेवका कैलासपर्वतपर जाना तथा सूतजीके द्वारा इस संहिताका उपसंहार

सुब्रह्मण्य उवाच

द्वादशाहे समुत्थाय प्रातः स्नात्वा कृताह्निकः।
शिवभक्तान्यतीन्वापि ब्राह्मणान्वा शिवप्रियान् ॥ १

स्कन्दजी बोले—[वामदेव!] बारहवें दिन प्रातःकाल उठकर श्राद्धकर्ता पुरुष स्नान और नित्यकर्म करके शिवभक्तों, यतियों अथवा शिवके प्रति प्रेम रखनेवाले ब्राह्मणोंको* निमन्त्रित करे।

* धर्मसिन्धुके अनुसार सोलह ब्राह्मणोंको निमन्त्रित करना चाहिये। इनमेंसे चार तो गुरु, परमगुरु, परमेष्ठि गुरु और परात्पर गुरुके लिये होते हैं और बारह ब्राह्मणोंकी केशवादि नामसे पूजा होती है। परंतु इस पुराणमें दिये गये वर्णनके अनुसार बारह ब्राह्मणोंको निमन्त्रित करना आवश्यक है।

निमन्त्र्य तान्समाहूय मध्याह्ने चाप्लुताञ्छुचीन्।
विधिवद्भोजयेद्भक्त्या स्वाद्वन्नैर्विविधैः शुभैः॥ २

मध्याह्नकालमें स्नान करके पवित्र हुए उन ब्राह्मणोंको बुलाकर भक्तिभावसे विधिपूर्वक भाँति-भाँतिके स्वादिष्ट अन्नका भोजन कराये॥ १-२॥

सन्निधौ परमेशस्य पञ्चावरणमार्गतः।
पूजयेत्तत्र संस्थाप्य प्राणानायम्य वाग्यतः॥ ३

महासंकल्पमार्गेण संकल्प्यास्मद्गुरोरिह।
पूजां करिष्य इत्युक्त्वा ततो दर्भानुपस्पृशेत्॥ ४

फिर परमेश्वरके निकट बिठाकर पंचावरण-पद्धतिसे उनका पूजन करे। तत्पश्चात् मौनभावसे प्राणायाम करके [देश-काल आदिके कीर्तनपूर्वक] महान् संकल्पकी प्रणालीके अनुसार संकल्प करते हुए—'**अस्मद्गुरोरिह पूजां करिष्ये** (मैं अपने गुरुकी यहाँ पूजा करूँगा)' ऐसा कहकर कुशोंका स्पर्श करे॥ ३-४॥

पादौ प्रक्षाल्य चाचम्य स्वयं कर्ता च वाग्यतः।
स्थापयेदासने तान्वै प्राङ्मुखान्भस्मभूषितान्॥ ५

सदाशिवादिक्रमतो ध्यायेदष्टौ च तत्र तान्।
परया सम्भावनयेतरानपि मुने द्विजान्॥ ६

फिर ब्राह्मणोंके पैर धोकर आचमन करके श्राद्धकर्ता मौन रहे और भस्मसे विभूषित उन ब्राह्मणोंको पूर्वाभिमुख आसनपर बिठाये। वहाँ सदाशिव आदिके क्रमसे उन आठ ब्राह्मणोंका बड़े आदरके साथ चिन्तन करे अर्थात् उन्हें सदाशिव आदिका स्वरूप माने। मुने! अन्य [चार] ब्राह्मणोंका भी [चार गुरुओंके रूपमें] चिन्तन करे॥ ५-६॥

परमेष्ठिगुरुं ध्यायेत्साम्बबुद्ध्या स्वनामतः।
गुरुं च परमं तस्मात्परात्परगुरुं ततः॥ ७

इदमासनमित्युक्त्वा चासनानि प्रकल्पयेत्।
प्रणवादिद्वितीयांते स्वस्य नाम समुच्चरन्॥ ८

आवाहयामि नम इत्यावाह्यार्घोदकेन तु।
पाद्यमाचमनं चार्घ्यं वस्त्रगन्धाक्षतानपि॥ ९

दत्त्वा पुष्पैरलङ्कृत्य प्रणवाद्यष्टनामभिः।
सचतुर्थीनमोऽन्तैश्च सुगन्धकुसुमैस्ततः॥ १०

चारों गुरु ये हैं—गुरु, परम गुरु, परात्पर गुरु और परमेष्ठी गुरु। परमेष्ठी गुरुका उनमें उमासहित महेश्वरकी भावना करते हुए चिन्तन करे। अपने गुरुका नाम लेकर ध्यान करे। उन सबके लिये '**इदमासनम्**' ऐसा कहकर पृथक्-पृथक् आसन रखे। आदिमें प्रणव, बीचमें द्वितीयान्त गुरु तथा अन्तमें '**आवाहयामि नमः**' बोलकर आवाहन करे। यथा—**ॐ अमुकनामानं गुरुम् आवाहयामि नमः। ॐ परमगुरुम् आवाहयामि नमः। ॐ परात्परगुरुम् आवाहयामि नमः। ॐ परमेष्ठिगुरुम् आवाहयामि नमः**। इस प्रकार आवाहन करके अर्घोदक (अर्घमें रखे हुए जल)-से पाद्य, आचमन और अर्घ्य निवेदन करे। फिर वस्त्र, गन्ध और अक्षत देकर '**ॐ गुरवे नमः**' इत्यादि रूपसे गुरुओंको तथा '**ॐ सदाशिवाय नमः**' इत्यादि रूपसे आठ नामोंके उच्चारणपूर्वक आठ अन्य ब्राह्मणोंको सुगन्धित फूलोंसे अलंकृत करे॥ ७—१०॥

धूपदीपौ हि दत्त्वा च सकलाराधनं कृतम्।
सम्पूर्णमस्त्विति प्रोच्य नमस्कुर्यात्समुत्थितः॥ ११

तत्पश्चात् धूप, दीप देकर '**कृतमिदं सकलमाराधनं सम्पूर्णमस्तु** (की गयी यह सारी आराधना पूर्णरूपसे सफल हो)' ऐसा कहकर खड़ा हो नमस्कार करे॥ ११॥

पात्राणि कदलीपत्राण्यास्तीर्याद्भिर्विशोध्य च।
शुद्धान्नपायसापूपसूपव्यञ्जनपूर्वकम् ॥ १२

दत्त्वा पदार्थान् कदलीनालिकेरगुडान्वितान्।
पात्रासनानि च पृथग्दद्यात्सम्प्रोच्य च क्रमात् ॥ १३

परिषिच्य च सम्प्रोक्ष्य विष्णोर्हव्यमिति ब्रुवन्।
रक्षस्वेति करस्पर्शं कारयित्वा समुत्थितः ॥ १४

आपोशनं समर्प्याथ प्रार्थयेत्तानिदं प्रति।
सदाशिवादयः प्रीता वरदाश्च भवन्तु मे ॥ १५

इसके बाद केलेके पत्तोंको पात्ररूपमें बिछाकर जलसे शुद्ध करके उनपर शुद्ध अन्न, खीर, पूआ, दाल और साग आदि व्यंजन परोसकर केलेके फल, नारियल और गुड़ भी रखे। पात्रोंको रखनेके लिये आसन भी अलग-अलग दे। उन आसनोंका क्रमशः प्रोक्षण करके उन्हें यथास्थान रखे। फिर भोजनपात्रका भी प्रोक्षण एवं अभिषेक करके हाथसे उसका स्पर्श करते हुए कहे— '**विष्णो! हव्यमिदं रक्षस्व** (हे विष्णो ! इस हविष्यको आप सुरक्षित रखें)' फिर उठकर उन ब्राह्मणोंको पीनेके लिये जल देकर उनसे इस प्रकार प्रार्थना करे—'**सदा-शिवादयो मे प्रीता वरदा भवन्तु** (सदाशिव आदि मुझपर प्रसन्न हो अभीष्ट वर देनेवाले हों)' ॥ १२—१५ ॥

ये देवा इति च ततो जप्त्वेदं साक्षतं त्यजेत्।
नमस्कृत्य समुत्थाय सर्वत्रामृतमस्त्विति ॥ १६

उक्त्वा प्रसाद्य च जपन् गणानां त्वेत्युपक्रमात्।
वेदादीन् रुद्रचमकौ रुद्रसूक्तं च पञ्च च ॥ १७

इसके बाद '**ये देवा**' (शु० यजु० १७। १३-१४) आदि मन्त्रका उच्चारण करके अक्षतसहित इस अन्नका त्याग करे। फिर नमस्कार करके उठे और '**सर्वत्रामृतमस्तु**।' ऐसा कहकर ब्राह्मणोंको संतुष्ट करके '**गणानां त्वा**' (शु० यजु० २३। १९) इस मन्त्रका पहले पाठ करके चारों वेदोंके आदिमन्त्रोंका, रुद्राध्यायका, चमकाध्यायका, रुद्रसूक्तका तथा सद्योजातादि पाँच ब्रह्ममन्त्रोंका पाठ करे ॥ १६-१७ ॥

विप्राणां भोजनान्ते तु यावन्मन्त्रांश्च साक्षतान्।
दत्त्वोत्तरापोशनं च हस्ताङ्घ्रिमुखशोधनम् ॥ १८

ब्राह्मण-भोजनके अन्तमें भी यथासम्भव मन्त्र बोले और अक्षत छोड़े, फिर आचमनादिके लिये जल दे। हाथ-पैर और मुँह धोनेके लिये भी जल अर्पित करे ॥ १८ ॥

कृत्वाचान्तान् स्वासनेषु स्थापयित्वा यथासुखम्।
शुद्धोदकं प्रदायाथ कर्पूरादि यथोदितम् ॥ १९

मुखवासं दक्षिणां च पादुकासनपात्रकम्।
व्यजनं फलकं दण्डं वैणवं च प्रदाय तान् ॥ २०

प्रदक्षिणानमस्कारैः संतोष्याशिषमावहेत्।
पुनः प्रणम्य सम्प्रार्थ्य गुरुभक्तिमचञ्चलाम् ॥ २१

आचमनके पश्चात् सब ब्राह्मणोंको सुखपूर्वक आसनोंपर बिठाकर शुद्ध जल देनेके अनन्तर मुखशुद्धिके लिये यथोचित कपूर आदिसे युक्त ताम्बूल अर्पित करे। फिर दक्षिणा, चरणपादुका, आसन, छाता, व्यजन, चौकी और बाँसकी छड़ी देकर परिक्रमा और नमस्कारके द्वारा उन ब्राह्मणोंको सन्तुष्ट करे तथा उनसे आशीर्वाद ले। पुनः प्रणाम करके गुरुके प्रति अविचल भक्तिके लिये प्रार्थना करे ॥ १९—२१ ॥

सदाशिवादयः प्रीता गच्छन्तु च यथासुखम्।
इत्युद्वास्य द्वारदेशावधि सम्यगनुव्रजन्॥ २२

[तत्पश्चात् विसर्जनकी भावनासे कहे—] **'सदाशिवादयः प्रीता यथासुखं गच्छन्तु'** (सदाशिव आदि सन्तुष्ट हो सुखपूर्वक यहाँसे पधारें)। इस प्रकार विदा करके दरवाजेतक उनके पीछे-पीछे जाय। फिर उनके रोकनेपर आगे न जाकर लौट आये। लौटकर

निरुद्धस्तैः परावृत्त्य द्वाःस्थैर्विप्रैश्च बन्धुभिः।
दीनानाथैश्च सहितो भुक्त्वा तिष्ठेद्यथासुखम्॥ २३

द्वारपर बैठे हुए ब्राह्मणों, बन्धुजनों, दीनों और अनाथोंके साथ स्वयं भी भोजन करके सुखपूर्वक रहे॥ २२-२३॥

विकृतं न भवेत् क्वापि सत्यं सत्यं पुनः पुनः।
प्रत्यब्दमेवं कुर्वाणो गुर्वाराधनमुत्तमम्।
इह भुक्त्वा महाभोगान् शिवलोकमवाप्नुयात्॥ २४

ऐसा करनेसे उसमें कहीं भी विकृति नहीं हो सकती। यह सब सत्य है, सत्य है और बारंबार सत्य है। इस प्रकार प्रतिवर्ष गुरुकी उत्तम आराधना करनेवाला शिष्य इस लोकमें महान् भोगोंका उपभोग करके अन्तमें शिवलोकको प्राप्त कर लेता है॥ २४॥

सूत उवाच

एवं कृतानुग्रहमात्मशिष्यं
श्रीवामदेवं मुनिवर्यमुक्त्वा।
प्रसन्नधीर्ज्ञानिवरो महात्मा
कृत्वा परानुग्रहमाशु देवः॥ २५
यन्नैमिषारण्यमुनीश्वराणां
प्रोक्तं पुरा व्यासमुनीश्वरेण।
तस्मादसावादिगुरुर्भवांस्तु
द्वितीय आर्यो भुवने प्रसिद्धः॥ २६
श्रुत्वा मुनीन्द्रो भवतो मुखाब्जात्
सनत्कुमारः शिवभक्तिपूर्णः।
व्यासाय वक्ता स च शैववर्यः
शुकाय वक्ता भविता च पूर्णः॥ २७

सूतजी बोले—अपने शिष्य मुनिवर वामदेवपर इस प्रकार शीघ्र ही परम अनुग्रहकर निर्मलबुद्धि, ज्ञानियोंमें श्रेष्ठ महात्मा स्कन्ददेव पुनः कहने लगे—यह बात मुनीश्वर व्यासने नैमिषारण्यवासी मुनियोंसे कही थी, इसलिये वे आदिगुरु हैं और आप जगत्में दूसरे गुरुके रूपमें प्रसिद्ध हैं। मुनीन्द्र सनत्कुमार आपके मुखकमलसे इस बातको सुनकर शिवभक्तिमें पूर्ण रहेंगे। वे महाशैव सनत्कुमार व्यासजीको उपदेश करेंगे और वे महर्षि व्यास शुकदेवको उपदेश करेंगे, जिससे वे शिवभक्तिमें पूर्ण होंगे॥ २५—२७॥

प्रत्येकं मुनिशार्दूल शिष्यवर्गचतुष्टयम्।
वेदाध्ययनसंवृत्तं धर्मस्थापनपूर्वकम्॥ २८
वैशम्पायन एव स्यात्पैलो जैमिनिरेव च।
सुमन्तुश्चेति चत्वारो व्यासशिष्या महौजसः॥ २९

हे मुनिश्रेष्ठ! इन शिवभक्त महात्माओंकी प्रत्येक शिष्यपरम्परामें चार-चार शिष्य होंगे, जो निरन्तर वेदाध्ययन एवं धर्मसंस्थापनके कार्यमें लगे रहेंगे। वैशम्पायन, पैल, जैमिनि एवं सुमन्तु—ये चार व्यासजीके महातेजस्वी शिष्य होंगे॥ २८-२९॥

अगस्त्यश्च पुलस्त्यश्च पुलहः क्रतुरेव च।
तव शिष्या महात्मानो वामदेव महामुने॥ ३०

हे वामदेव! हे महामुने! अगस्त्य, पुलस्त्य, पुलह एवं क्रतु—ये महात्मा आपके शिष्य होंगे॥ ३०॥

सनकश्च सनन्दश्च सनातनमुनिस्ततः।
सनत्सुजात इत्येते योगिवर्याः शिवप्रियाः॥ ३१
सनत्कुमारशिष्यास्ते सर्ववेदार्थवित्तमाः।
गुरुश्च परमश्चैव परात्परगुरुस्ततः।
परमेष्ठिगुरुश्चैते पूज्याः स्युः शुकयोगिनः॥ ३२
इदं प्रणवविज्ञानं स्थितं वर्गचतुष्टये।
सर्वोत्कृष्टनिदानं च काश्यां सन्मुक्तिकारणम्॥ ३३

सनक, सनन्दन, सनातनमुनि और सनत्सुजात—ये योगियोंमें श्रेष्ठ, शिवप्रिय तथा सभी वेदार्थोंके ज्ञाता मुनिगण सनत्कुमारके शिष्य होंगे। गुरु, परमगुरु, परात्परगुरु और परमेष्ठी गुरु—यह [गुरुचतुष्टय] योगी शुकदेवजीका पूज्य है॥ ३१-३२॥

यह प्रणव-विज्ञान इन्हीं व्यास, वामदेव, सनत्कुमार एवं शुकदेव—इन चार वर्गोंकी परम्परामें सुरक्षित रहेगा। यह ज्ञान सर्वोत्तम है और काशीमें मुक्ति प्रदान करनेवाला है॥ ३३॥

एतन्मण्डलमद्भुतं परशिवाधिष्ठानरूपं सदा
वेदान्तार्थविचारपूर्णमतिभिः पूज्यं यतीन्द्रैः परम्।
वेदादिप्रविभागकल्पितमहाकाशादिनाप्यावृतं
त्वत्सन्तोषकरं तथास्तु जगतां श्रेयस्करं श्रीप्रदम्॥ ३४

जो अद्भुत स्वरूपवाला, परमशिवका साक्षात् अधिष्ठान, वेदान्तके तात्पर्य-विचारमें निरत बुद्धिवाले यतीन्द्रोंके द्वारा परम पूजनीय तथा वेदादिकी शाखा-प्रशाखाओंमें उपनिबद्ध और महाकाश आदिके द्वारा आवृत है, ऐसा वह संसारको श्रेय तथा श्री प्रदान करनेवाला [प्रणववेत्ताओंका] मण्डल आपको परम आनन्द प्रदान करनेवाला हो॥ ३४॥

इदं रहस्यं परमं शिवोदितं
वेदान्तसिद्धांतविनिश्चितं परम्।
मत्तः श्रुतं यद्भवता ततो मुने
भवन्मतं प्राज्ञतमा वदन्ति॥ ३५
तस्मादनेनैव पथा गतः शिवं
शिवोऽहमस्मीति शिवो भवेद्यतिः।
पितामहादिप्रविभागमुक्तये
नद्यो यथा सिन्धुमिमाः प्रयान्ति॥ ३६

मुने! यह साक्षात् भगवान् शिवका कहा हुआ उत्तम रहस्य है, जो वेदान्तके सिद्धान्तसे निश्चित किया गया है। तुमने मुझसे जो कुछ सुना है, उसे विद्वान् पुरुष तुम्हारा ही मत कहेंगे। यति इसी मार्गसे चलकर '**शिवोऽहमस्मि**' (मैं शिव हूँ) इस रूपमें आत्मस्वरूप शिवकी भावना करता हुआ शिवरूप हो जाता है॥ ३५-३६॥

सूत उवाच

एवं मुनीश्वरायैतदुपदिश्य सुरेश्वरः।
संस्मृत्य चरणाम्भोजे पित्रोः सर्वसुरार्चिते॥ ३७
कैलासशिखरं प्राप कुमारः शिखरावृतम्।
राजितं परमाश्चर्यं दिव्यज्ञानप्रदो गुरुः॥ ३८

सूतजी बोले—इस प्रकार मुनीश्वर वामदेवको उपदेश देकर दिव्य ज्ञानदाता गुरु देवेश्वर कार्तिकेय पिता-माताके सर्वदेव-वन्दित चरणारविन्दोंका चिन्तन करते हुए अनेक शिखरोंसे आवृत, शोभाशाली एवं परम आश्चर्यमय कैलासशिखरको चले गये॥ ३७-३८॥

वामदेवोऽपि सच्छिष्यैः संवृतः शिखिवाहनम्।
सम्प्रणम्य जगामाशु कैलासं परमाद्भुतम्॥ ३९
गत्वा कैलासशिखरं प्राप्येशनिकटं मुनिः।
ददर्श मोक्षदं मायानाशं चरणमीशयोः॥ ४०

श्रेष्ठ शिष्योंसहित वामदेव भी मयूर-वाहन कार्तिकेयको प्रणाम करके शीघ्र ही परम अद्भुत कैलासशिखरपर जा पहुँचे और महादेवजीके निकट जा उन्होंने उमासहित महेश्वरके मायानाशक मोक्षदायक चरणोंका दर्शन किया॥ ३९-४०॥

भक्त्या चार्पितसर्वाङ्गो विस्मृत्य स्वकलेवरम्।
पपात सन्निधौ भूयो भूयो नत्वा समुत्थितः ॥ ४१

ततो बहुविधैः स्तोत्रैर्वेदागमरसोत्कटैः।
तुष्टाव परमेशानं सांबिकं ससुतं मुनिः ॥ ४२

फिर भक्तिभावसे अपना सारा कलेवर भगवान् शिवको समर्पित करके, वे शरीरकी सुधि भुलाकर उनके निकट दण्डकी भाँति पड़ गये और बारंबार उठ-उठकर नमस्कार करने लगे। तत्पश्चात् उन्होंने भाँति-भाँतिके स्तोत्रोंद्वारा, जो वेदों और आगमोंके रससे पूर्ण थे, जगदम्बा और पुत्रसहित परमेश्वर शिवका स्तवन किया ॥ ४१-४२ ॥

निधाय चरणाम्भोजं देवदेव्योः स्वमूर्धनि।
पूर्णानुग्रहमासाद्य तत्रैव न्यवसत्सुखम् ॥ ४३

भवन्तोऽपि विदित्वैवं प्रणवार्थं महेश्वरम्।
वेदगुह्यं च सर्वस्वं तारकं ब्रह्म मुक्तिदम् ॥ ४४

अत्रैव सुखमासीनाः श्रीविश्वेश्वरपादयोः।
सायुज्यरूपामतुलां भजध्वं मुक्तिमुत्तमाम् ॥ ४५

इसके बाद देवी पार्वती और महादेवजीके चरणारविन्दको अपने मस्तकपर रखकर उनका पूर्ण अनुग्रह प्राप्त करके वे वहीं सुखपूर्वक रहने लगे। तुम सभी ऋषि भी इसी प्रकार प्रणवके अर्थभूत महेश्वरका तथा वेदोंके गोपनीय रहस्य, वेदसर्वस्व और मोक्षदायक तारक मन्त्र ॐकारका ज्ञान प्राप्त करके यहीं सुखसे रहो तथा विश्वनाथजीके चरणोंमें [अवस्थित] सायुज्यरूपा अनुपम एवं उत्तम मुक्तिका चिन्तन किया करो ॥ ४३—४५ ॥

अहं गुरुपदाम्भोजसेवायै बादराश्रमम्।
गमिष्ये भवतां भूयः सत्सम्भाषणमस्तु मे ॥ ४६

अब मैं गुरुदेवकी सेवाके लिये बदरिकाश्रम-तीर्थको जाऊँगा। तुम्हें फिर मेरे साथ सम्भाषणका एवं सत्संगका अवसर प्राप्त हो ॥ ४६ ॥

इति श्रीशिवमहापुराणे षष्ठ्यां कैलाससंहितायां द्वादशाहकृत्यवर्णनपूर्वक-व्यासादिशिष्यवर्गकथनं नाम त्रयोविंशोऽध्यायः ॥ २३ ॥

॥ इस प्रकार श्रीशिवमहापुराणके अन्तर्गत छठी कैलाससंहितामें द्वादशाहकृत्यवर्णनपूर्वक व्यासादिशिष्यवर्गकथनवर्णन नामक तेईसवाँ अध्याय पूर्ण हुआ ॥ २३ ॥

॥ समाप्तेयं षष्ठी कैलाससंहिता ॥ ६ ॥

॥ छठी कैलाससंहिता पूर्ण हुई ॥

॥ ॐ श्रीसाम्बशिवाय नमः ॥ ॥ ॐ श्रीगणेशाय नमः ॥

श्रीशिवमहापुराण

सप्तम्याः वायवीयसंहितायाः पूर्वखण्डः

अथ प्रथमोऽध्यायः

ऋषियोंद्वारा सम्मानित सूतजीके द्वारा कथाका आरम्भ, विद्यास्थानों एवं पुराणोंका परिचय तथा वायुसंहिताका प्रारम्भ

व्यास उवाच

नमः शिवाय सोमाय सगणाय ससूनवे।
प्रधानपुरुषेशाय सर्गस्थित्यन्तहेतवे॥ १

शक्तिरप्रतिमा यस्य ह्यैश्वर्यं चापि सर्वगम्।
स्वामित्वं च विभुत्वं च स्वभावं सम्प्रचक्षते॥ २

तमजं विश्वकर्माणं शाश्वतं शिवमव्ययम्।
महादेवं महात्मानं व्रजामि शरणं शिवम्॥ ३

धर्मक्षेत्रे महातीर्थे गंगाकालिंदिसंगमे।
प्रयागे नैमिषारण्ये ब्रह्मलोकस्य वर्त्मनि॥ ४

मुनयः शंसितात्मानः सत्यव्रतपरायणाः।
महौजसो महाभागा महासत्रं वितेनिरे॥ ५

तत्र सत्रं समाकर्ण्य तेषामक्लिष्टकर्मणाम्।
साक्षात्सत्यवतीसूनोर्वेदव्यासस्य धीमतः॥ ६

शिष्यो महात्मा मेधावी त्रिषु लोकेषु विश्रुतः।
पंचावयवयुक्तस्य वाक्यस्य गुणदोषवित्॥ ७

उत्तरोत्तरवक्ता च ब्रुवतोऽपि बृहस्पतेः।
मधुरश्रवणानां च मनोज्ञपदपर्वणाम्॥ ८

कथानां निपुणो वक्ता कालविन्नयवित्कविः।
आजगाम स तं देशं सूतः पौराणिकोत्तमः॥ ९

तं दृष्ट्वा सूतमायान्तं मुनयो हृष्टमानसाः।
तस्मै साम च पूजां च यथावत्प्रत्यपादयन्॥ १०

व्यासजी बोले—जो जगत्‌की सृष्टि, पालन और संहारके हेतु तथा प्रकृति और पुरुषके ईश्वर हैं, उन प्रमथगण, पुत्रद्वय तथा उमासहित भगवान् शिवको नमस्कार है॥ १॥

जिनकी शक्तिकी कहीं तुलना नहीं है, जिनका ऐश्वर्य सर्वत्र व्यापक है तथा स्वामित्व और विभुत्व जिनका स्वभाव कहा गया है, उन विश्वस्रष्टा, सनातन, अजन्मा, अविनाशी, महान् देव, मंगलमय परमात्मा शिवकी मैं शरण लेता हूँ॥ २-३॥

किसी समय धर्मक्षेत्र, महातीर्थ, ब्रह्मलोकके मार्गभूत तथा गंगा-यमुनाके संगमसे युक्त प्रयागतीर्थवाले नैमिषारण्यमें विशुद्ध अन्तःकरणवाले, सत्यव्रतपरायण, महातेजस्वी एवं महाभाग्यशाली मुनियोंने महायज्ञका आयोजन किया था॥ ४-५॥

अक्लिष्ट कर्म करनेवाले उन महर्षियोंके यज्ञका वृत्तान्त सुनकर सत्यवतीसुत महाबुद्धिमान् वेदव्यासके साक्षात् शिष्य सूतजी, जो महात्मा, मेधावी, तीनों लोकोंमें प्रसिद्ध, पंचावयवसे युक्त वाक्यके गुण-दोषोंको जाननेवाले, बृहस्पतिको भी वादमें निरुत्तर करनेवाले, श्रवणसुखद तथा मनोहर शब्दोंसे संघटित कथाओंके निपुण वाचक, कालवेत्ता, नीतिके ज्ञाता, कवि एवं पौराणिकोंमें श्रेष्ठ हैं, वे उस स्थानपर आये॥ ६—९॥

उन सूतजीको आते हुए देखकर प्रसन्नचित्त मुनियोंने उनका यथोचित स्वागत तथा पूजन किया॥ १०॥

प्रतिगृह्य स तां पूजां मुनिभिः प्रतिपादिताम्।
उद्दिष्टमासनं भेजे नियुक्तो युक्तमात्मनः॥ ११

मुनियोंके द्वारा की गयी उस पूजाको ग्रहणकर सूतजी उनके द्वारा दिये गये अपने उचित आसनपर विराजमान हुए॥ ११॥

ततस्तत्संगमादेव मुनीनां भावितात्मनाम्।
सोत्कंठमभवच्चित्तं श्रोतुं पौराणिकीं कथाम्॥ १२

तदा तमनुकूलाभिर्वाग्भिः पूज्य महर्षयः।
अतीवाभिमुखं कृत्वा वचनं चेदमब्रुवन्॥ १३

इसके पश्चात् सद्भावयुक्त मनवाले उन मुनियोंका चित्त उनकी उपस्थितिमात्रसे ही पौराणिक कथा सुननेके लिये उत्कण्ठित हो उठा। तब सभी महर्षिगण प्रिय वचनोंसे उनकी स्तुतिकर उन्हें अत्यधिक अभिमुख करके यह वचन कहने लगे—॥ १२-१३॥

ऋषय ऊचुः

रोमहर्षण सर्वज्ञ भवान्नो भाग्यगौरवात्।
संप्राप्तोऽद्य महाभाग शैवराज महामते॥ १४

पुराणविद्यामखिलां व्यासात्प्रत्यक्षमीयिवान्।
तस्मादाश्चर्यभूतानां कथानां त्वं हि भाजनम्॥ १५

रत्नानामुरुसाराणां रत्नाकर इवार्णवः।
यच्च भूतं यच्च भव्यं यच्चान्यद्वस्तु वर्तते॥ १६

न तवाविदितं किञ्चित् त्रिषु लोकेषु विद्यते।
त्वमदृष्टवशादस्मद्दर्शनार्थमिहागतः।
अकुर्वन्किमपि श्रेयो न वृथा गन्तुमर्हसि॥ १७

तस्माच्छ्राव्यतरं पुण्यं सत्कथाज्ञानसंहितम्।
वेदांतसारसर्वस्वं पुराणं श्रावयाशु नः॥ १८

ऋषिगण बोले—हे रोमहर्षण! हे महाभाग! हे सर्वज्ञ! हे शैवराज! हे महामते! आप हमलोगोंके सौभाग्यसे आज यहाँ आये हुए हैं। आपने व्यासजीसे समस्त पुराणविद्या प्रत्यक्षरूपसे प्राप्त की है। अतः आप निश्चय ही आश्चर्यपूर्ण कथाओंके पात्र हैं। जिस प्रकार बड़े-बड़े अनमोल रत्नोंका भण्डार समुद्र है, [उसी प्रकार आप भी उत्तमोत्तम पुराणकथाओंके मानो समुद्र ही हैं।] तीनों लोकोंमें जो भी भूत एवं भविष्यकी बात तथा अन्य जो भी वस्तु है, आपके लिये कोई भी अविदित नहीं है। आप हमलोगोंके भाग्यसे ही दर्शन देनेके लिये यहाँ आये हैं। अब हमलोगोंका कुछ कल्याण किये बिना आप यहाँसे व्यर्थ मत जाइये। अतः सुननेके योग्य, पुण्यप्रद, उत्तम कथा एवं ज्ञानसे युक्त तथा वेदान्तके सारस्वरूप पुराणको हमें सुनाइये॥ १४—१८॥

एवमभ्यर्थितः सूतो मुनिभिर्वेदवादिभिः।
श्लक्ष्णां च न्यायसंयुक्तां प्रत्युवाच शुभां गिरम्॥ १९

इस प्रकार वेदज्ञाता मुनिजनोंके द्वारा प्रार्थना किये जानेपर सूतजी मधुर, न्याययुक्त एवं शुभ वाणीमें कहने लगे—॥ १९॥

सूत उवाच

पूजितोऽनुगृहीतश्च भवद्भिरिति चोदितः।
कस्मात्सम्यङ् न विब्रूयां पुराणमृषिपूजितम्॥ २०

सूतजी बोले—आपलोगोंने मेरी पूजाकर अनुगृहीत कर दिया है, इसलिये मैं आपलोगोंके कहनेपर ऋषियोंद्वारा समादृत पुराणका भलीभाँति वर्णन क्यों नहीं करूँगा॥ २०॥

अभिवन्द्य महादेवं देवीं स्कन्दं विनायकम्।
नंदिनं च तथा व्यासं साक्षात्सत्यवतीसुतम्॥ २१

वक्ष्यामि परमं पुण्यं पुराणं वेदसम्मितम्।
शिवज्ञानार्णवं साक्षाद् भुक्तिमुक्तिफलप्रदम्॥ २२

महादेव, भगवती, स्कन्द, गणेश, नन्दी तथा साक्षात् सत्यवतीपुत्र व्यासजीको नमस्कारकर उस पुराणको कहूँगा, जो परम पुण्यको देनेवाला, वेदतुल्य, शिवविषयक ज्ञानका समुद्र, साक्षात् भोग तथा मोक्षको देनेवाला और [यथोचित] शब्द तथा [तदनुकूल]

शब्दार्थन्यायसंयुक्तैरागमार्थैर्विभूषितम् ।
श्वेतकल्पप्रसंगेन वायुना कथितं पुरा॥ २३

तर्कसंगत अभिप्रायवाले शैवागमोक्त सिद्धान्तोंसे विभूषित है। पूर्वकालमें वायुने श्वेतकल्पके प्रसंगसे इसका वर्णन किया था॥ २१—२३॥

विद्यास्थानानि सर्वाणि पुराणानुक्रमं तथा।
तत्पुराणस्य चोत्पत्तिं ब्रुवतो मे निबोधत॥ २४
अंगानि वेदाश्चत्वारो मीमांसा न्यायविस्तरः।
पुराणं धर्मशास्त्रं च विद्याश्चैताश्चतुर्दश॥ २५
आयुर्वेदो धनुर्वेदो गांधर्वश्चेत्यनुक्रमात्।
अर्थशास्त्रं परं तस्माद्विद्या ह्यष्टादश स्मृताः॥ २६

अब मैं विद्याके सभी स्थान, पुराणानुक्रम एवं उस पुराणकी उत्पत्तिका वर्णन कर रहा हूँ, आपलोग सुनिये। चारों वेद, उनके छः अंग, मीमांसा, न्याय, पुराण एवं धर्मशास्त्र—ये चौदह विद्याएँ हैं। इनके अतिरिक्त आयुर्वेद, धनुर्वेद, गान्धर्ववेद तथा अर्थशास्त्र [—ये चार उपांग हैं], इन्हें मिलाकर कुल अठारह विद्याएँ कही गयी हैं॥ २४—२६॥

अष्टादशानां विद्यानामेतासां भिन्नवर्त्मनाम्।
आदिकर्त्ता कविः साक्षाच्छूलपाणिरिति श्रुतिः॥ २७

स हि सर्वजगन्नाथः सिसृक्षुरखिलं जगत्।
ब्रह्माणं विदधे साक्षात्पुत्रमग्रे सनातनम्॥ २८

भिन्न-भिन्न मार्गोंवाली इन अठारह विद्याओंके आदिकर्ता कवि साक्षात् महेश्वर हैं—ऐसा श्रुति कहती है। सम्पूर्ण जगत्के स्वामी उन सदाशिवने समस्त जगत्को उत्पन्न करनेकी इच्छा की तो उन्होंने सबसे पहले सनातन ब्रह्मदेवको साक्षात् पुत्ररूपमें उत्पन्न किया॥ २७-२८॥

तस्मै प्रथमपुत्राय ब्रह्मणे विश्वयोनये।
विद्याश्चेमा ददौ पूर्वं विश्वसृष्ट्यर्थमीश्वरः॥ २९
पालनाय हरिं देवं रक्षाशक्तिं ददौ ततः।
मध्यमं तनयं विष्णुं पातारं ब्रह्मणोऽपि हि॥ ३०

सदाशिवने विश्वके कारणभूत अपने प्रथम पुत्र ब्रह्माको विश्वसृष्टिके लिये इन विद्याओंको प्रदान किया। तत्पश्चात् उन्होंने ब्रह्माजीकी भी रक्षा करनेवाले अपने मध्यम पुत्र श्रीहरि भगवान् विष्णुको जगत्के पालनके लिये रक्षाशक्ति प्रदान की॥ २९-३०॥

लब्धविद्येन विधिना प्रजासृष्टिं वितन्वता।
प्रथमं सर्वशास्त्राणां पुराणं ब्रह्मणा स्मृतम्॥ ३१

शिवजीसे विद्याओंको प्राप्त किये हुए ब्रह्माजीने प्रजासृष्टिका विस्तार करते हुए सभी शास्त्रोंके पहले पुराणका स्मरण किया॥ ३१॥

अनन्तरं तु वक्त्रेभ्यो वेदास्तस्य विनिर्गताः।
प्रवृत्तिः सर्वशास्त्राणां तन्मुखादभवत्ततः॥ ३२

इसके पश्चात् उनके मुखसे वेद उत्पन्न हुए। तदनन्तर उनके मुखसे सभी शास्त्र उत्पन्न हुए॥ ३२॥

यदास्य विस्तरं शक्ता नाधिगन्तुं प्रजा भुवि।
तदा विद्यासमासार्थं विश्वेश्वरनियोगतः॥ ३३
द्वापरान्तेषु विश्वात्मा विष्णुर्विश्वंभरः प्रभुः।
व्यासनाम्ना चरत्यस्मिन्नवतीर्य महीतले॥ ३४

जब पृथ्वीपर प्रजाएँ इन विस्तृत विद्याओंको धारण करनेमें असमर्थ हो जाती हैं, उस समय उन विद्याओंको संक्षिप्त करनेके लिये विश्वेश्वरकी आज्ञासे प्रत्येक द्वापरके अन्तमें विश्वात्मा विश्वम्भर प्रभु विष्णु व्यासरूपसे इस पृथ्वीपर अवतार लेकर विचरण करते हैं॥ ३३-३४॥

एवं व्यस्ताश्च वेदाश्च द्वापरे द्वापरे द्विजाः।
निर्मितानि पुराणानि अन्यानि च ततः परम्॥ ३५

स पुनर्द्वापरे चास्मिन्कृष्णद्वैपायनाख्यया।
अरण्यामिव हव्याशी सत्यवत्यामजायत॥ ३६

हे द्विज! इस प्रकार प्रत्येक द्वापरके अन्तमें वे वेदोंका विभाग करते हैं और इसके बाद अन्य पुराणोंकी भी रचना करते हैं। वे इस द्वापरमें कृष्णद्वैपायन नामसे सत्यवतीसे [वैसे ही] उत्पन्न हुए, जिस प्रकार अरणीसे अग्नि उत्पन्न होती है॥ ३५-३६॥

संक्षिप्य स पुनर्वेदांश्चतुर्द्धा कृतवान्मुनिः।
संक्षिप्तान् स पुनर्वेदान् चक्रेऽष्टादशधा मुनिः।
व्यस्तवेदतया लोके वेदव्यास इति श्रुतः॥ ३७

उन महर्षिने बादमें वेदोंको संक्षिप्तकर उन्हें चार भागोंमें विभक्त किया। इसके बाद उन मुनिने वेदोंका संक्षेपण करनेके अनन्तर [पुराणवाङ्मयको] अठारह भागोंमें विभक्त किया। वेदोंका विभाग करनेके कारण उन्हें लोकमें वेदव्यास कहा गया है॥ ३७॥

पुराणानां च संक्षिप्तं चतुर्लक्षप्रमाणतः।
अद्यापि देवलोके तच्छतकोटिप्रविस्तरम्॥ ३८

पुराण आज भी देवलोकमें सौ करोड़ श्लोक-संख्यावाले हैं, उन्हें वेदव्यासने संक्षिप्तकर चार लाख श्लोकोंका बना दिया॥ ३८॥

यो विद्याच्चतुरो वेदान् सांगोपनिषदो द्विजः।
न चेत्पुराणं संविद्यान्नैव स स्याद्विचक्षणः॥ ३९

इतिहासपुराणाभ्यां वेदं समुपबृंहयेत्।
बिभेत्यल्पश्रुताद्वेदो मामयं प्रहरिष्यति॥ ४०

जो ब्राह्मण छहों अंगों एवं उपनिषदोंके सहित सभी वेदोंको जानता है, परंतु पुराणको नहीं जानता, वह विद्वान् नहीं है। इतिहास तथा पुराणोंके द्वारा वेदोंका उपबृंहण (विस्तार) करना चाहिये। अल्पज्ञसे वेद डरता है कि यह मुझपर प्रहार कर बैठेगा॥ ३९-४०॥

सर्गश्च प्रतिसर्गश्च वंशो मन्वन्तराणि च।
वंशानुचरितं चैव पुराणं पञ्चलक्षणम्॥ ४१

सृष्टि, सृष्टिका प्रलय, वंश, मन्वन्तर तथा वंशानुचरित—ये पुराणोंके पाँच लक्षण हैं॥ ४१॥

दशधा चाष्टधा चैतत्पुराणमुपदिश्यते।
बृहत्सूक्ष्मप्रभेदेन मुनिभिस्तत्त्ववित्तमैः॥ ४२

ब्राह्मं पाद्मं वैष्णवं च शैवं भागवतं तथा।
भविष्यं नारदीयं च मार्कण्डेयमतः परम्॥ ४३

आग्नेयं ब्रह्मवैवर्तं लैंगं वाराहमेव च।
स्कान्दं च वामनं चैव कौर्मं मात्स्यं च गारुडम्॥ ४४

ब्रह्माण्डं चेति पुण्योऽयं पुराणानामनुक्रमः।
तत्र शैवं तुरीयं यच्छार्वं सर्वार्थसाधकम्॥ ४५

तत्त्वदर्शी मुनियोंने स्थूल-सूक्ष्मके भेदसे पुराणोंकी संख्या अठारह कही है—ब्रह्मपुराण, पद्मपुराण, विष्णुपुराण, शिवपुराण, भागवतपुराण, भविष्यपुराण, नारदीयपुराण, मार्कण्डेयपुराण, अग्निपुराण, ब्रह्मवैवर्तपुराण, लिंगपुराण, वाराहपुराण, स्कन्दपुराण, वामनपुराण, कूर्मपुराण, मत्स्यपुराण, गरुडपुराण एवं ब्रह्माण्डपुराण—यह पुराणोंका पुण्यप्रद अनुक्रम है। उनमें भगवान् शंकरसे सम्बन्धित जो चौथा शिवपुराण है, वह सभी प्रकारके मनोरथोंको पूर्ण करनेवाला है॥ ४२—४५॥

ग्रंथो लक्षप्रमाणं तद्व्यस्तं द्वादशसंहितम्।
निर्मितं तच्छिवेनैव तत्र धर्मः प्रतिष्ठितः॥ ४६

यह ग्रन्थ एक लाख श्लोकों तथा बारह संहिताओंवाला है। इसका निर्माण स्वयं शिवजीने किया है, इसमें साक्षात् धर्म प्रतिष्ठित है॥ ४६॥

तदुक्तेनैव धर्मेण शैवास्त्रैवर्णिका नराः।
तस्माद्विमुक्तिमन्विच्छन् शिवमेव समाश्रयेत्॥ ४७

तमाश्रित्यैव देवानामपि मुक्तिर्न चान्यथा॥ ४८

यदिदं शैवमाख्यातं पुराणं वेदसंमितम्।
तस्य भेदान्समासेन ब्रुवतो मे निबोधत॥ ४९

उसके द्वारा बताये गये धर्मसे तीनों वर्णोंके पुरुष शिवभक्त हो जाते हैं। अतः मुक्तिकी इच्छा करते हुए शिवका ही आश्रय ग्रहण करना चाहिये। उनका आश्रय लेनेसे ही देवगणोंकी भी मुक्ति सम्भव है, अन्यथा नहीं। यह शिवपुराण वेदसम्मित कहा गया है। अब मैं संक्षिप्त रूपसे इसके भेदोंको कह रहा हूँ, आपलोग सुनिये॥ ४७—४९॥

विद्येश्वरं तथा रौद्रं वैनायकमनुत्तमम्।
औमं मातृपुराणं च रुद्रैकादशकं तथा॥ ५०
कैलासं शतरुद्रं च कोटिरुद्राख्यमेव च।
सहस्रकोटिरुद्राख्यं वायवीयं ततः परम्॥ ५१
धर्मसंज्ञं पुराणं चेत्येवं द्वादश संहिताः।
विद्येशं दशसाहस्रमुदितं ग्रंथसंख्यया॥ ५२
रौद्रं वैनायकं चौमं मातृकाख्यं ततः परम्।
प्रत्येकमष्टसाहस्रं त्रयोदशसहस्रकम्॥ ५३
रुद्रैकादशकाख्यं यत् कैलासं षट्सहस्रकम्।
शतरुद्रं त्रिसाहस्रं कोटिरुद्रं ततः परम्॥ ५४
सहस्रैर्नवभिर्युक्तं सर्वार्थज्ञानसंयुतम्।
सहस्रकोटिरुद्राख्यमेकादशसहस्रकम् ॥ ५५
चतुस्सहस्रसंख्येयं वायवीयमनुत्तमम्।
धर्मसंज्ञं पुराणं यत्तद् द्वादशसहस्रकम्॥ ५६

विद्येश्वरसंहिता, रुद्र, विनायक, उमा, मातृसंहिता, एकादशरुद्रसंहिता, कैलाससंहिता, शतरुद्रसंहिता, कोटिरुद्र, सहस्रकोटिरुद्र, वायवीयसंहिता तथा धर्मसंहिता—ये बारह संहिताएँ हैं। श्लोकसंख्याकी दृष्टिसे विद्येश्वरसंहिता दस हजार श्लोकोंवाली कही गयी है। रुद्रसंहिता, विनायकसंहिता, उमासंहिता और मातृसंहिता—इनमें-से प्रत्येक संहितामें आठ-आठ हजार श्लोक हैं। एकादश-रुद्रसंहितामें तेरह हजार श्लोक हैं और कैलाससंहितामें छः हजार श्लोक हैं। शतरुद्रसंहितामें तीन हजार श्लोक हैं। इसके बाद कोटिरुद्रसंहिता नौ हजार श्लोकोंसे युक्त है तथा इसमें समस्त तत्त्वज्ञान भरा हुआ है। सहस्र-कोटिरुद्रसंहितामें ग्यारह हजार श्लोक हैं। सर्वोत्कृष्ट वायवीयसंहितामें चार हजार श्लोक हैं तथा जो धर्मसंहिता है, वह बारह हजार श्लोकोंसे युक्त है॥ ५०—५६॥

तदेवं लक्षमुद्दिष्टं शैवं शाखाविभेदतः।
पुराणं वेदसारं तद् भुक्तिमुक्तिफलप्रदम्॥ ५७

इस प्रकार शाखा-भेदके अनुसार शिवपुराणके श्लोकोंकी संख्या एक लाख कही गयी है। यह पुराण वेदोंका सारभूत और भोग तथा मोक्षको देनेवाला है॥ ५७॥

व्यासेन तत्तु संक्षिप्तं चतुर्विंशत्सहस्रकम्।
शैवं तत्र पुराणं वै चतुर्थं सप्तसंहितम्॥ ५८

विद्येश्वराख्या तत्राद्या द्वितीया रुद्रसंहिता।
तृतीया शतरुद्राख्या कोटिरुद्रा चतुर्थिका॥ ५९

पंचमी कथिता चोमा षष्ठी कैलाससंहिता।
सप्तमी वायवीयाख्या सप्तैवं संहिता इह॥ ६०

व्यासजीने इसे संक्षिप्तकर चौबीस हजार श्लोकोंवाला बना दिया। इस प्रकार यह चौथा शिवपुराण अब सात संहिताओंसे युक्त है। पहली विद्येश्वरसंहिता, दूसरी रुद्रसंहिता, तीसरी शतरुद्रसंहिता एवं चौथी कोटिरुद्रसंहिता, पाँचवीं उमासंहिता, छठी कैलाससंहिता तथा सातवीं वायवीयसंहिता है। इस प्रकार इसमें सात संहिताएँ हैं॥ ५८—६०॥

विद्येश्वरं द्विसाहस्रं रौद्रं पंचशतायुतम्।
त्रिंशत्तथा द्विसाहस्रं सार्द्धैकशतमीरितम्॥ ६१
शतरुद्रं तथा कोटिरुद्रं व्योमयुगाधिकम्।
द्विसाहस्रं च द्विशतं तथौमं भूसहस्रकम्॥ ६२
चत्वारिंशत्साष्टशतं कैलासं भूसहस्रकम्।
चत्वारिंशच्च द्विशतं वायवीयमतः परम्॥ ६३
चतुस्साहस्रसंख्याकमेवं संख्याविभेदतः।
श्रुतं परमपुण्यं तु पुराणं शिवसंज्ञकम्॥ ६४

विद्येश्वरसंहिता दो हजार, रुद्रसंहिता दस हजार और शतरुद्रसंहिता दो हजार एक सौ अस्सी श्लोंकोसे युक्त कही गयी है। कोटिरुद्रसंहिता दो हजार दो सौ बीस, उमासंहिता एक हजार आठ सौ चालीस, कैलाससंहिता एक हजार दो सौ चालीस और वायवीयसंहिता चार हजार श्लोकोंसे युक्त है। इस प्रकार यह परम पुण्यप्रद शिवपुराण संख्याभेदसे सुना गया है॥ ६१—६४॥

चतुःसहस्रकं यत्तु वायवीयमुदीरितम्।
तददिदं वर्त्तयिष्यामि भागद्वयसमन्वितम्॥ ६५

नावेदविदुषे वाच्यमिदं शास्त्रमनुत्तमम्।
न चैवाश्रद्दधानाय नापुराणविदे तथा॥ ६६

परीक्षिताय शिष्याय धार्मिकायानसूयवे।
प्रदेयं शिवभक्ताय शिवधर्मानुसारिणे॥ ६७

पुराणसंहिता यस्य प्रसादान्मयि वर्तते।
नमो भगवते तस्मै व्यासायामिततेजसे॥ ६८

हमने पहले जिस वायवीयसंहिताके श्लोकोंकी संख्या चार हजार कही है, वह दो भागोंमें विभक्त है। अब मैं उसका वर्णन करूँगा। इस उत्तम शास्त्रका उपदेश वेद तथा पुराणको न जाननेवाले और इसके प्रति श्रद्धा न रखनेवालेको नहीं करना चाहिये॥ ६५-६६॥

परीक्षा किये गये, धर्मनिष्ठ, ईर्ष्यारहित, शिवभक्त तथा शिवधर्मके अनुसार आचरण करनेवाले शिष्यको इसका उपदेश करना चाहिये। जिनकी कृपासे मुझे यह पुराणसंहिता प्राप्त हुई है, उन महातेजस्वी भगवान् व्यासजीको मेरा नमस्कार है॥ ६७-६८॥

इति श्रीशिवमहापुराणे सप्तम्यां वायवीयसंहितायां पूर्वखण्डे
विद्यावतारकथनं नाम प्रथमोऽध्यायः॥ १॥

॥ इस प्रकार श्रीशिवमहापुराणके अन्तर्गत सातवीं वायवीयसंहिताके पूर्वखण्डमें
विद्यावतारकथन नामक पहला अध्याय पूर्ण हुआ॥ १॥

अथ द्वितीयोऽध्यायः

ऋषियोंका ब्रह्माजीके पास जाकर उनकी स्तुति करके उनसे परमपुरुषके विषयमें प्रश्न करना और ब्रह्माजीका आनन्दमग्न हो 'रुद्र' कहकर उत्तर देना

सूत उवाच

पुरा कालेन महता कल्पेऽतीते पुनः पुनः।
अस्मिन्नुपस्थिते कल्पे प्रवृत्ते सृष्टिकर्मणि॥ १

प्रतिष्ठितायां वार्तायां प्रबुद्धासु प्रजासु च।
मुनीनां षट्कुलीयानां ब्रुवतामितरेतरम्॥ २

इदं परमिदं नेति विवादः सुमहानभूत्।
परस्य दुर्निरूपत्वान्न जातस्तत्र निश्चयः॥ ३

सूतजी बोले—पूर्व समयमें अनेक कल्पोंके पुनः-पुनः बीत जानेके बाद जब यह वर्तमान [श्वेतवाराह] कल्प उपस्थित हुआ और सृष्टिका कार्य उपस्थित हुआ, जब जीविकाओंकी प्रतिष्ठा हो गयी और प्रजाएँ सजग हो गयीं, उस समय छः कुलोंमें उत्पन्न हुए मुनिगण आपसमें कहने लगे—॥ १-२॥

यह परब्रह्म है, यह नहीं है—इस प्रकारका बहुत बड़ा विवाद उनमें होने लगा और परब्रह्मका निरूपण बहुत कठिन होनेके कारण उस समय कोई निर्णय नहीं हो सका॥ ३॥

तेऽभिजग्मुर्विधातारं द्रष्टुं ब्रह्माणमव्ययम्।
यत्रास्ते भगवान् ब्रह्मा स्तूयमानः सुरासुरैः॥ ४

मेरुशृंगे शुभे रम्ये देवदानवसंकुले।
सिद्धचारणसंबाधे यक्षगंधर्वसेविते॥ ५

विहंगसंघसंघुष्टे मणिविद्रुमभूषिते।
निकुंजकंदरदरीगुहानिर्झरशोभिते॥ ६

तब वे मुनिगण सृष्टिकर्ता तथा अविनाशी ब्रह्माजीके दर्शनके लिये [वहाँ] गये, जहाँ देवताओं तथा दानवोंके द्वारा निषेवित, सिद्धों तथा चारणोंसे युक्त, यक्षों तथा गन्धर्वोंसे सेवित, पक्षिसमूहके कलरवसे भरे हुए, मणियों तथा मूँगोंसे विभूषित और नाना प्रकारके निकुंज-कन्दराओं-गुफाओं तथा झरनोंसे शोभित सुन्दर तथा रम्य [स्थानमें] देवताओं तथा दानवोंसे स्तुत होते हुए वे भगवान् ब्रह्मा विराजमान थे॥ ४—६॥

तत्र ब्रह्मवनं नाम नानामृगसमाकुलम्।
दशयोजनविस्तीर्णं शतयोजनमायतम्॥ ७
सुरसामलपानीयपूर्णरम्यसरोवरम्।
मत्तभ्रमरसंछन्नरम्यपुष्पितपादपम्॥ ८

वहाँ ब्रह्मवन नामसे प्रसिद्ध एक वन था, जो दस योजन विस्तृत, सौ योजन लम्बा, अनेकविध वन्य पशुओंसे युक्त, सुमधुर तथा स्वच्छ जलसे पूर्ण रमणीय सरोवरसे सुशोभित और मत्त भ्रमरोंसे भरे हुए सुन्दर एवं पुष्पित वृक्षोंसे युक्त था॥ ७-८॥

तरुणादित्यसंकाशं तत्र चारु महत्पुरम्।
दुर्द्धर्षबलदृप्तानां दैत्यदानवरक्षसाम्॥ ९
तप्तजांबूनदमयं प्रांशुप्राकारतोरणम्।
निर्यूहवलभीकूटप्रतोलीशतमंडितम्॥ १०
महार्हमणिचित्राभिर्लेलिहानमिवांबरम्।
महाभवनकोटीभिरनेकाभिरलंकृतम्॥ ११

वहाँपर मध्याह्नकालीन सूर्यके जैसी आभावाला एक विशाल, सुन्दर नगर था, जो कि बलसे उन्मत्त दैत्य-दानव-राक्षसादिके लिये अत्यन्त दुर्धर्ष था। वह नगर तपे हुए जाम्बूनदस्वर्णसे निर्मित, ऊँचे गोपुर तथा तोरणवाला था। वह हाथीदाँतसे बनी सैकड़ों छतों तथा मार्गोंसे शोभायमान था और आकाशको मानो चूमते हुए-से प्रतीत होनेवाले, बहुमूल्य मणियोंसे चित्रित भवनसमूहोंसे अलंकृत था॥ ९—११॥

तस्मिन्निवसति ब्रह्मा सभ्यैः सार्द्धं प्रजापतिः।
तत्र गत्वा महात्मानं साक्षाल्लोकपितामहम्॥ १२
ददृशुर्मुनयो देवा देवर्षिगणसेवितम्।
शुद्धचामीकरप्रख्यं सर्वाभरणभूषितम्॥ १३
प्रसन्नवदनं सौम्यं पद्मपत्रायतेक्षणम्।
दिव्यकांतिसमायुक्तं दिव्यगंधानुलेपनम्॥ १४
दिव्यशुक्लांबरधरं दिव्यमालाविभूषितम्।
सुरासुरेन्द्रयोगीन्द्रवंद्यमानपदांबुजम्॥ १५
सर्वलक्षणयुक्ताङ्ग्या लब्धचामरहस्तया।
भ्राजमानं सरस्वत्या प्रभयेव दिवाकरम्॥ १६
तं दृष्ट्वा मुनयः सर्वे प्रसन्नवदनेक्षणाः।
शिरस्यञ्जलिमाधाय तुष्टुवुः सुरपुङ्गवम्॥ १७

उसमें प्रजापति ब्रह्मदेव अपने सभासदोंके साथ निवास करते हैं। वहाँ जाकर उन मुनियोंने देवताओं तथा ऋषियोंसे सेवित, शुद्ध सुवर्णके समान प्रभावाले, सभी आभूषणोंसे विभूषित, प्रसन्न मुखमण्डलवाले, सौम्य, कमलदलके सदृश विशाल नेत्रोंवाले, दिव्य कान्तिसे युक्त, दिव्य गन्धका अनुलेप किये हुए, दिव्य श्वेत वस्त्र पहने, दिव्य मालाओंसे विभूषित, देवता-असुर एवं योगीन्द्रोंसे वन्द्यमान चरणकमलवाले, सभी लक्षणोंसे समन्वित अंगोंवाली तथा हाथमें चामर धारण की हुई सरस्वतीके साथ प्रभासे युक्त सूर्यकी भाँति सुशोभित होते हुए महात्मा साक्षात् लोकपितामह ब्रह्माको देखा। उन्हें देखकर प्रसन्नमुख तथा नेत्रोंवाले सभी मुनिगण सिरपर अंजलि बाँधकर उन देवश्रेष्ठकी स्तुति करने लगे॥ १२—१७॥

मुनय ऊचुः

नमस्त्रिमूर्तये तुभ्यं सर्गस्थित्यन्तहेतवे।
पुरुषाय पुराणाय ब्रह्मणे परमात्मने॥ १८

मुनिगण बोले—संसारका सृजन, पालन और संहार करनेवाले, त्रिमूर्तिस्वरूप, पुराणपुरुष तथा परमात्मा आप ब्रह्मदेवको नमस्कार है॥ १८॥

नमः प्रधानदेहाय प्रधानक्षोभकारिणे।
त्रयोविंशतिभेदेन विकृतायाविकारिणे॥ १९
नमो ब्रह्माण्डदेहाय ब्रह्माण्डोदरवर्तिने।
तत्र संसिद्धकार्याय संसिद्धकरणाय च॥ २०

प्रकृति जिनका स्वरूप है, जो प्रकृतिमें क्षोभ उत्पन्न करनेवाले हैं तथा प्रकृतिरूपमें तेईस प्रकारके विकारोंसे युक्त होकर भी स्वयं अविकृत रहनेवाले हैं—ऐसे आपको नमस्कार है। ब्रह्माण्डरूप शरीरवाले, ब्रह्माण्डके बीचमें निवास करनेवाले, सम्यक् रूपसे सिद्ध कार्य एवं करणस्वरूप आपको नमस्कार है॥ १९-२०॥

नमोऽस्तु सर्वलोकाय सर्वलोकविधायिने।
सर्वात्मदेहसंयोगवियोगविधिहेतवे ॥ २१

जो सर्वलोकस्वरूप, सम्पूर्ण लोकके कर्ता एवं सभीके आत्मा तथा देहका संयोग-वियोग करानेवाले हैं, [उन] आपको नमस्कार है ॥ २१ ॥

त्वयैव निखिलं सृष्टं संहृतं पालितं जगत्।
तथापि मायया नाथ न विद्मस्त्वां पितामह ॥ २२

हे नाथ! आप ही इस समग्र संसारके उत्पत्तिकर्ता, पालक तथा संहारकर्ता हैं, तथापि हे पितामह! आपकी मायाके कारण हमलोग आपको नहीं समझ पाते ॥ २२ ॥

सूत उवाच

एवं ब्रह्मा महाभागैर्महर्षिभिरभिष्टुतः।
प्राह गंभीरया वाचा मुनीन् प्रह्लादयन्निव ॥ २३

सूतजी बोले—महाभाग्यशाली महर्षियोंके द्वारा इस प्रकार स्तुति किये जानेपर ब्रह्माजी उन मुनियोंको हर्षित-सा करते हुए गम्भीर वाणीमें कहने लगे— ॥ २३ ॥

ब्रह्मोवाच

ऋषयो हे महाभागा महासत्त्वा महौजसः।
किमर्थं संहिताः सर्वे यूयमत्र समागताः ॥ २४

ब्रह्माजी बोले—हे महाभाग्यशाली, महाप्राण एवं महातेजस्वी ऋषियो! आप सभी लोग मिलकर एक साथ यहाँ क्यों आये हैं ? ॥ २४ ॥

तमेवंवादिनं देवं ब्रह्माणं ब्रह्मवित्तमाः।
वाग्भिर्विनयगर्भाभिः सर्वे प्राञ्जलयोऽब्रुवन् ॥ २५

जब देवाधिदेव ब्रह्माजीने उन लोगोंसे ऐसा कहा, तब हाथ जोड़कर ब्रह्मवेत्ताओंमें श्रेष्ठ वे सभी ऋषिगण विनयसे समन्वित वाणीमें कहने लगे— ॥ २५ ॥

मुनय ऊचुः

भगवन्नन्धकारेण महता वयमावृताः।
खिन्ना विवदमानाश्च न पश्यामोऽत्र यत्परम् ॥ २६

त्वं हि सर्वजगद्धाता सर्वकारणकारणम्।
त्वया ह्यविदितं नाथ नेह किंचन विद्यते ॥ २७

मुनिगण बोले—हे भगवन्! हमलोग घोर अज्ञानान्धकारसे घिरे हुए हैं, अतः परस्पर विवाद करते हुए दुखी हैं, हमलोगोंको परमतत्त्वका ज्ञान अभीतक नहीं हो पाया है। आप सम्पूर्ण जगत्के पालक हैं और सभी कारणोंके भी कारण हैं। हे नाथ! आपको इस जगत्में कुछ भी अविदित नहीं है ॥ २६-२७ ॥

कः पुमान् सर्वसत्त्वेभ्यः पुराणः पुरुषः परः।
विशुद्धः परिपूर्णश्च शाश्वतः परमेश्वरः ॥ २८

कौन पुरुष सभी प्राणियोंसे प्राचीन, परम पुरुष, विशुद्ध, परिपूर्ण, शाश्वत तथा परमेश्वर है ॥ २८ ॥

केनैव चित्रकृत्येन प्रथमं सृज्यते जगत्।
तत्त्वं वद महाप्राज्ञ स्वसंदेहापनुत्तये ॥ २९

वह अपने किस विचित्र कृत्यसे सर्वप्रथम इस जगत्का निर्माण करता है। हे महाप्राज्ञ! हमारे सन्देहको दूर करनेके लिये आप इसे कहिये ॥ २९ ॥

एवं पृष्टस्तदा ब्रह्मा विस्मयस्मेरवीक्षणः।
देवानां दानवानां च मुनीनामपि सन्निधौ ॥ ३०

उत्थाय सुचिरं ध्यात्वा रुद्र इत्युच्चरन् गिरम्।
आनंदक्लिन्नसर्वांगः कृताञ्जलिरभाषत ॥ ३१

ऐसा पूछे जानेपर ब्रह्माजीके नेत्र आश्चर्यसे खिल उठे और वे देवताओं, दानवों तथा मुनियोंके सामने उठ करके बहुत देरतक ध्यान करते रहे, तदुपरान्त आनन्दसे सिक्त समस्त अंगोंवाले वे 'रुद्र-रुद्र' इस प्रकारका शब्द उच्चारण करते हुए हाथ जोड़कर कहने लगे— ॥ ३०-३१ ॥

इति श्रीशिवमहापुराणे सप्तम्यां वायवीयसंहितायां पूर्वखण्डे मुनिप्रस्ताववर्णनं नाम द्वितीयोऽध्यायः ॥ २ ॥

॥ इस प्रकार श्रीशिवमहापुराणके अन्तर्गत सातवीं वायवीयसंहिताके पूर्वखण्डमें मुनिप्रस्ताववर्णन नामक दूसरा अध्याय पूरा हुआ ॥ २ ॥

अथ तृतीयोऽध्यायः

ब्रह्माजीके द्वारा परमतत्त्वके रूपमें भगवान् शिवकी महत्ताका प्रतिपादन तथा उनकी आज्ञासे सब मुनियोंका नैमिषारण्यमें आना

ब्रह्मोवाच

यतो वाचो निवर्तन्ते अप्राप्य मनसा सह।
आनन्दं यस्य वै विद्वान्न बिभेति कुतश्चन॥ १

यस्मात्सर्वमिदं ब्रह्मविष्णुरुद्रेन्द्रपूर्वकम्।
सह भूतेन्द्रियैः सर्वैः प्रथमं संप्रसूयते॥ २

कारणानां च यो धाता ध्याता परमकारणम्।
न संप्रसूयतेऽन्यस्मात्कुतश्चन कदाचन॥ ३

सर्वैश्वर्येण संपन्नो नाम्ना सर्वेश्वरः स्वयम्।
सर्वैर्मुमुक्षुभिर्ध्येयः शंभुराकाशमध्यगः ॥ ४

ब्रह्माजी बोले—मनके साथ वाणी जिनको प्राप्त किये बिना ही लौट आती है, जिनके आनन्दमय स्वरूपको प्राप्तकर विद्वान् पुरुष किसीसे भयभीत नहीं होता, जिनसे ये सभी ब्रह्मा, विष्णु, रुद्र एवं इन्द्रादि देवता उत्पन्न हुए हैं एवं जो सभीके साथ पंचमहाभूतों एवं इन्द्रियोंकी सृष्टि करते हैं, जो सभी कारणोंके कारण हैं, जो धाता एवं ध्याता दोनों हैं, जो अन्य किसीसे कभी भी उत्पन्न नहीं होते, वे सम्पूर्ण ऐश्वर्योंसे सम्पन्न होनेके कारण स्वयं सर्वेश्वर हैं। हृदयाकाशमें रहनेवाले वे महेश्वर सभी मुमुक्षुओंके द्वारा ध्यान किये जानेयोग्य हैं॥ १—४॥

योऽग्रे मां विदधे पुत्रं ज्ञानं च प्रहिणोति मे।
तत्प्रसादान्मया लब्धं प्राजापत्यमिदं पदम्॥ ५

जिन्होंने सर्वप्रथम मुझे पुत्ररूपसे उत्पन्न किया और [वेदोंका] ज्ञान प्रदान किया तथा उन्हींकी कृपासे मैंने इस प्रजापतिपदको प्राप्त किया है॥ ५॥

ईशो वृक्ष इव स्तब्धो य एको दिवि तिष्ठति।
येनेदमखिलं पूर्णं पुरुषेण महात्मना॥ ६

एको बहूनां जंतूनां निष्क्रियाणां च सक्रियः।
य एको बहुधा बीजं करोति स महेश्वरः॥ ७

जो ईश्वर अकेले ही वृक्षके समान निश्चल हो आकाशमें विराजमान हैं, जिन महात्मा पुरुषसे यह सम्पूर्ण संसार व्याप्त है, जो अकेले ही सभी निष्क्रिय जीवोंको सक्रिय बनाते हैं और जो अकेले ही एक बीजको अनेक रूपोंमें परिणत कर देते हैं, वे ही महान् ऐश्वर्यवाले हैं॥ ६-७॥

जीवैरेभिरिमाँल्लोकान्सर्वानीशो य ईशते।
य एको भगवान् रुद्रो न द्वितीयोऽस्ति कश्चन॥ ८

जो ईश्वर इन जीवोंसे युक्त सभी लोकोंपर शासन करते हैं, वे एकमात्र भगवान् रुद्र हैं, दूसरा कोई नहीं है॥ ८॥

सदा जनानां हृदये संनिविष्टोऽपि यः परैः।
अलक्ष्यो लक्षयन्विश्वमधितिष्ठति सर्वदा॥ ९

यस्तु कालात्प्रमुक्तानि कारणान्यखिलान्यपि।
अनन्तशक्तिरेवैको भगवानधितिष्ठति॥ १०

न यस्य दिवसो रात्रिर्न समानो न चाधिकः।
स्वाभाविकी पराशक्तिर्नित्या ज्ञानक्रिये अपि॥ ११

जो सर्वदा सभी लोगोंके हृदयमें सन्निविष्ट हो करके विश्वको देखते हुए भी दूसरोंके द्वारा देखे नहीं जा पाते और [जगत्में] अधिष्ठित रहते हैं, जो अनन्त शक्तिशाली एकमात्र भगवान् [रुद्र] कालसे भी परे और आत्मा एवं आकाशादि सभी कारणोंमें व्याप्त हैं, जिनके लिये दिन एवं रात्रि कुछ नहीं है, जिनके समान अथवा अधिक कोई नहीं है, जिनकी ज्ञान [बल और] क्रियारूपा पराशक्ति नित्या तथा स्वाभाविकी है, जो क्षर एवं अव्यक्त

यदिदं क्षरमव्यक्तं यदप्यमृतमक्षरम्।
तावुभावक्षरात्मानावेको देवः स्वयं हरः॥ १२

हैं, अक्षर और अमृत हैं—इस प्रकार क्षर एवं अक्षरभावसे स्थित हैं, वे एकमात्र महेश्वरदेव ही [सर्वोपरि] हैं॥ ९—१२॥

ईशते तदभिध्यानाद् योजनात्तत्त्वभावतः।
भूयो ह्यस्य पशोरन्ते विश्वमाया निवर्तते॥ १३

भगवान् शिवके साथ मनःसंयोग करनेसे तथा तात्त्विक रूपसे अपनेको उनसे अभिन्न चिन्तन करनेसे जीव सामर्थ्यवान् हो जाता है, उनके ध्यानसे इस जगत्का शासक हो जाता है और उनकी कृपासे अन्तमें पशुरूप जीवकी माया भी निवृत्त हो जाती है॥ १३॥

यस्मिन्न भासते विद्युन्न सूर्यो न च चन्द्रमाः।
यस्य भासा विभातीदमित्येषा शाश्वती श्रुतिः॥ १४

एको देवो महादेवो विज्ञेयस्तु महेश्वरः।
न तस्य परमं किंचित्पदं समधिगम्यते॥ १५

जिसको विद्युत्, सूर्य एवं चन्द्रमा कोई भी प्रकाशित नहीं करता, किंतु जिसके प्रकाशसे यह जगत् प्रकाशित होता है—ऐसा सनातन श्रुति भी कहती है। ऐसे एकमात्र प्रभु महेश्वर महादेव ही जाननेयोग्य हैं, उनसे श्रेष्ठ कोई भी पद प्राप्त नहीं किया जा सकता है॥ १४-१५॥

अयमादिरनाद्यन्तः स्वभावादेव निर्मलः।
स्वतन्त्रः परिपूर्णश्च स्वेच्छाधीनचराचरः॥ १६

वे सबके आदि, स्वयं आदि एवं अन्तसे रहित, स्वभावसे निर्मल, स्वतन्त्र, परिपूर्ण तथा चराचर विश्वको अपने अधीन किये हुए हैं॥ १६॥

अप्राकृतवपुः श्रीमाँल्लक्ष्यलक्षणवर्जितः।
अयं मुक्तो मोचकश्च ह्यकालः कालचोदकः॥ १७

समस्त ऐश्वर्यसे युक्त ये प्रकृतिसे भिन्न (दिव्य) शरीरवाले, लक्ष्य तथा लक्षणसे रहित, स्वयं मुक्त, दूसरोंको मुक्त करनेवाले और स्वयं कालके वशमें न रहकर कालके भी प्रेरक हैं॥ १७॥

सर्वोपरिकृतावासः सर्वावासश्च सर्ववित्।
षड्विधाध्वमयस्यास्य सर्वस्य जगतः पतिः॥ १८

उत्तरोत्तरभूतानामुत्तरश्च निरुत्तरः।
अनन्तानन्दसन्दोहमकरंदमधुव्रतः॥ १९

उनका स्थान सबके ऊपर है तथा वे ही सबके आश्रय स्थान एवं सबको जाननेवाले हैं। वे छः प्रकारके मार्गवाले इस सम्पूर्ण जगत्के स्वामी हैं तथा उत्तरोत्तर उत्कृष्ट प्राणियोंमें सबसे श्रेष्ठ हैं, उनसे बढ़कर कोई दूसरा नहीं है, वे अनन्त आनन्दराशिरूप मकरन्दका पान करनेवाले भ्रमर हैं॥ १८-१९॥

अखंडजगदण्डानां पिंडीकरणपंडितः।
औदार्यवीर्यगांभीर्यमाधुर्यमकरालयः॥ २०

नैवास्य सदृशं वस्तु नाधिकं चापि किंचन।
अतुलः सर्वभूतानां राजराजश्च तिष्ठति॥ २१

वे अखण्ड गतिशील ब्रह्माण्डोंके पिण्डीकरणमें पण्डित हैं और औदार्य, पराक्रम, गाम्भीर्य एवं माधुर्यके समुद्र हैं। इनके समान कोई भी वस्तु अर्थात् परमतत्त्व नहीं है और इनसे अधिक भी कोई वस्तु नहीं है। ये सभी प्राणियोंमें अतुलनीय हैं और राजराजेश्वर होकर विराजमान हैं॥ २०—२१॥

अनेन चित्रकृत्येन प्रथमं सृज्यते जगत्।
अंतकाले पुनश्चेदं तस्मिन्प्रलयमेष्यति॥ २२

अस्य भूतानि वश्यानि अयं सर्वनियोजकः।
अयं तु परया भक्त्या दृश्यते नान्यथा क्वचित्॥ २३

ये अपने अद्भुत क्रिया-कलापोंसे जगत्की सृष्टि करते हैं और पुनः अन्तःकाल उपस्थित होनेपर यह जगत् उनमें विलीन हो जाता है। समस्त जीव इनके वशमें हैं, ये सबके प्रेरक हैं, ये परम भक्तिसे ही देखे जा सकते हैं, अन्य उपायोंसे कभी नहीं॥ २२-२३॥

व्रतानि सर्वदानानि तपांसि नियमास्तथा।
कथितानि पुरा सद्भिर्भावार्थं नात्र संशयः॥ २४

हरिश्चाहं च रुद्रश्च तथान्ये च सुरासुराः।
तपोभिरुग्रैरद्यापि तस्य दर्शनकांक्षिणः॥ २५

महात्माओंने इनकी प्राप्तिके लिये ही व्रतों, सर्वविध दानों, तपों एवं नियमोंका निरूपण किया है, इसमें सन्देह नहीं है। विष्णु, मैं [ब्रह्मा], रुद्र, अन्य देवता एवं असुर आज भी कठोर तपोंके द्वारा उनके दर्शनकी आकांक्षा रखते हैं॥ २४-२५॥

अदृश्यः पतितैर्मूढैर्दुर्जनैरपि कुत्सितैः।
भक्तैरन्तर्बहिश्चापि पूज्यः संभाष्य एव च॥ २६

वे पतित, मूढ, कुत्सित तथा दुर्जन पुरुषोंके लिये अदृश्य हैं, किंतु भक्तजनोंके द्वारा बाहर-भीतर पूज्य हैं और सम्भाषणके योग्य हैं॥ २६॥

तदिदं त्रिविधं रूपं स्थूलं सूक्ष्मं ततः परम्।
अस्मदाद्यमरैर्दृश्यं स्थूलं सूक्ष्मं तु योगिभिः॥ २७

ततः परं तु यन्नित्यं ज्ञानमानन्दमव्ययम्।
तन्निष्ठैस्तत्परैर्भक्तैर्दृश्यं तद् व्रतमाश्रितैः॥ २८

उनके तीन रूप हैं, स्थूल, सूक्ष्म एवं उनसे भी परे। हम देवताओंसे उनका स्थूल रूप दृश्य है, योगियोंसे उनका सूक्ष्म रूप दृश्य है, किंतु उससे भी परे जो उनका नित्य-ज्ञानमय, आनन्दमय एवं अविनाशी रूप है, वह तो उनमें निष्ठा रखनेवाले, उनके प्रति परायण रहनेवाले तथा उनके व्रतमें आश्रित जनोंके द्वारा ही दृश्य है॥ २७-२८॥

बहुनाऽत्र किमुक्तेन गुह्याद्गुह्यतरं परम्।
शिवे भक्तिर्न सन्देहस्तया युक्तो विमुच्यते॥ २९

प्रसादादेव सा भक्तिः प्रसादो भक्तिसंभवः।
यथा चांकुरतो बीजं बीजतो वा यथांकुरः॥ ३०

बहुत कहनेका क्या प्रयोजन? उस परमात्माका परस्वरूप गुप्तसे भी गुप्ततर है। शिवजीमें भक्ति रखनी चाहिये, उससे युक्त प्राणी मुक्त हो जाता है, इसमें सन्देह नहीं है। वह भक्ति शिवकी कृपासे ही हो सकती है और उनकी कृपा भक्तिसे उत्पन्न होती है, जैसे अंकुरसे बीज और बीजसे अंकुर उत्पन्न होता है॥ २९-३०॥

प्रसादपूर्विका एव पशोः सर्वत्र सिद्धयः।
स एव साधनैरन्ते सर्वैरपि च साध्यते॥ ३१

प्रसादसाधनं धर्मः स च वेदेन दर्शितः।
तदभ्यासवशात्साम्यं पूर्वयोः पुण्यपापयोः॥ ३२

उस ईश्वरका प्रसाद प्राप्त हो जानेपर जीवको सर्वत्र सिद्धि प्राप्त हो जाती है। सभी लोग सम्पूर्ण साधनोंसे अन्तमें उसीको प्राप्त करते हैं। परमात्मा शिवको प्रसन्न करनेका साधन धर्म है और वेदने उस धर्मके स्वरूपका प्रतिपादन किया है। उसका अभ्यास करते रहनेसे पूर्वजन्मार्जित पुण्य एवं पापमें समता आ जाती है॥ ३१-३२॥

साम्यात्प्रसादसंपर्को धर्मस्यातिशयस्ततः।
धर्मातिशयमासाद्य पशोः पापपरिक्षयः॥ ३३

एवं प्रक्षीणपापस्य बहुभिर्जन्मभिः क्रमात्।
साम्बे सर्वेश्वरे भक्तिर्ज्ञानपूर्वा प्रजायते॥ ३४

उस साम्यसे प्रसाद [प्रसन्नता या चित्तशुद्धि] की उपलब्धि होती है, उससे धर्मकी वृद्धि होती है और धर्मकी वृद्धिको प्राप्त करके जीवके पापका विनाश हो जाता है। इस प्रकार क्रमसे बहुत जन्म-जन्मान्तरोंमें हुए पापोंका विनाश हो जानेपर साम्बसदाशिवमें ज्ञानपूर्विका भक्ति उत्पन्न होती है॥ ३३-३४॥

भावानुगुणमीशस्य प्रसादो व्यतिरिच्यते।
प्रसादात्कर्मसन्त्यागः फलतो न स्वरूपतः॥ ३५

भक्तोंके भावोंके अनुरूप ही शिवका अनुग्रह प्राप्त होता है, उनका प्रसाद प्राप्त हो जानेपर ही कर्मका त्याग होता है, जिसमें फलवासना नहीं होती, यद्यपि भक्त स्वरूपतः कर्म करता रहता है॥ ३५॥

तस्मात्कर्मफलत्यागाच्छिवधर्मान्वयः शुभः।
स च गुर्वनपेक्षश्च तदपेक्ष इति द्विधा॥ ३६

तदुपरान्त कर्मफलके त्यागसे जीवका शुभ सम्बन्ध शिवधर्मसे हो जाता है। वह [धर्म] भी दो प्रकारका होता है—एक गुरुकी अपेक्षासे रहित तथा दूसरा गुरुकी अपेक्षा रखनेवाला॥ ३६॥

तत्रानपेक्षात्सापेक्षो मुख्यः शतगुणाधिकः।
शिवधर्मान्वयस्यास्य शिवज्ञानसमन्वयः॥ ३७

उसमें गुरुकी अपेक्षा रखनेवाला शिवधर्म गुरुकी अपेक्षा न करनेवालेसे सौ गुना अधिक उत्तम है। जो गुरुकी शिक्षाद्वारा शिवधर्ममें तत्पर रहता है, वह शीघ्र ही शिव-ज्ञानकी प्राप्ति कर लेता है॥ ३७॥

ज्ञानान्वयवशात्पुंसः संसारे दोषदर्शनम्।
ततो विषयवैराग्यं वैराग्याद्भावसाधनम्॥ ३८

ज्ञानयुक्त हो जानेसे मनुष्यको इस जगत्में दोष दिखायी पड़ने लगता है, तदनन्तर विषयोंके प्रति वैराग्य हो जाता है और वैराग्यसे भावसिद्धि हो जाती है॥ ३८॥

भावसिद्ध्युपपन्नस्य ध्याने निष्ठा न कर्मणि।
ज्ञानध्यानाभियुक्तस्य पुंसो योगः प्रवर्तते॥ ३९

भावसिद्धिको प्राप्त हुए व्यक्तिकी निष्ठा ध्यानमें होती है, कर्ममें नहीं। ज्ञान तथा ध्यानसे युक्त मनुष्यको योगकी प्राप्ति होती है॥ ३९॥

योगेन तु परा भक्तिः प्रसादस्तदनंतरम्।
प्रसादान्मुच्यते जंतुर्मुक्तः शिवसमो भवेत्॥ ४०

योगसे पराभक्ति प्राप्त होती है, इसके पश्चात् [भक्तिकी महिमासे] शिवका प्रसाद उपलब्ध होता है, शिवके प्रसादसे जीव मुक्त हो जाता है और मुक्त हो जानेपर वह शिवके समान हो जाता है॥ ४०॥

अनुग्रहप्रकारस्य क्रमोऽयमविवक्षितः।
यादृशी योग्यता पुंसस्तस्य तादृगनुग्रहः॥ ४१

इस प्रकार शिवजीके अनुग्रहका जो यह स्वरूप है, वह इसी प्रकारका है—यह कहना सम्भव नहीं है। मनुष्यकी जैसी योग्यता होती है, उसीके अनुरूप उसे शिवजीका अनुग्रह प्राप्त होता है॥ ४१॥

गर्भस्थो मुच्यते कश्चिज्जायमानस्तथापरः।
बालो वा तरुणो वाथ वृद्धो वा मुच्यते परः॥ ४२
तिर्यग्योनिगतः कश्चिन्मुच्यते नारकोऽपरः।

कोई गर्भमें निवास करते ही मुक्त हो जाता है। कोई उत्पन्न होते ही, कोई बालक होकर, कोई युवा होकर और कोई वृद्ध होकर मुक्त हो जाता है। कोई पशु-पक्षियोंकी योनिमें मुक्त हो जाता है। कोई नरकमें

अपरस्तु पदं प्राप्तो मुच्यते स्वपदक्षये॥ ४३

कश्चित्क्षीणपदो भूत्वा पुनरावर्त्य मुच्यते।
कश्चिदध्वगतस्तस्मिन् स्थित्वा स्थित्वा विमुच्यते॥ ४४

तस्मान्नैकप्रकारेण नराणां मुक्तिरिष्यते।
ज्ञानभावानुरूपेण प्रसादेनैव निर्वृतिः॥ ४५

तस्मादस्य प्रसादार्थं वाङ्मनोदोषवर्जिताः।
ध्यायन्तश्शिवमेवैकं सदारतनयाग्नयः॥ ४६

तन्निष्ठास्तत्पराः सर्वे तद्युक्तास्तदुपाश्रयाः।
सर्वक्रियाः प्रकुर्वाणास्तमेव मनसा गताः॥ ४७

दीर्घसत्रसमारब्धं दिव्यवर्षसहस्रकम्।
सत्रांते मंत्रयोगेन वायुस्तत्र गमिष्यति॥ ४८

स एव भवतां श्रेयः सोपायं कथयिष्यति।
ततो वाराणसी पुण्या पुरी परमशोभना॥ ४९

गन्तव्या यत्र विश्वेशो देव्या सह पिनाकधृक्।
सदा विहरति श्रीमान् भक्तानुग्रहकारणात्॥ ५०

तत्राश्चर्यं महद् दृष्ट्वा मत्समीपं गमिष्यथ।
ततो वः कथयिष्यामि मोक्षोपायं द्विजोत्तमाः॥ ५१

येनैकजन्मना मुक्तिर्युष्मत्करतले स्थिता।
अनेकजन्मसंसारबंधनिर्मोक्षकारिणी ॥ ५२

एतन्मनोमयं चक्रं मया सृष्टं विसृज्यते।
यत्रास्य शीर्यते नेमिः स देशस्तपसः शुभः॥ ५३

इत्युक्त्वा सूर्यसंकाशं चक्रं दृष्ट्वा मनोमयम्।
प्रणिपत्य महादेवं विससर्ज पितामहः॥ ५४

तेऽपि हृष्टतरा विप्राः प्रणम्य जगतां प्रभुम्।
प्रययुस्तस्य चक्रस्य यत्र नेमिरशीर्यत॥ ५५

और कोई वैकुण्ठादि उत्तम लोक प्राप्तकर पुण्य-क्षय हो जानेपर मुक्त हो जाता है। कोई [पुण्यशेष होनेपर] अपने पदसे च्युत होकर संसारमें जन्म लेकर मुक्त होता है। कोई संसाररूपी मार्गमें क्रमशः जन्म-मरणका चक्र प्राप्तकर धीरे-धीरे मुक्त होता है॥ ४२—४४॥

अतः मनुष्योंकी मुक्ति अनेक प्रकारसे होती है। ज्ञान और भक्तिके अनुरूप शिवकी कृपा प्राप्त होनेपर मुक्ति होती है॥ ४५॥

अतः इन्हें प्रसन्न करनेके लिये वाणी, मन तथा शरीरके दोषोंको त्यागकर स्त्री-पुत्रों एवं अग्नियोंके सहित आप सभीको शिवजीका ध्यान, उनमें निष्ठा, भक्ति, शिवशरणागति एवं मनसे उनका ध्यान करते हुए समस्त क्रियाएँ करनी चाहिये॥ ४६-४७॥

इस समय आपलोगोंने जो दिव्य सहस्रवर्षवाला दीर्घ यज्ञानुष्ठान प्रवर्तित किया है, उस यज्ञके अन्तमें मन्त्रद्वारा आवाहन करनेपर वायुदेव वहाँ पधारेंगे। वे ही आपलोगोंके कल्याणका साधन एवं उपाय बतायेंगे। इसके पश्चात् आपलोग परम सुन्दर तथा पुण्यमयी वाराणसी पुरी चले जाना, जहाँ पिनाकपाणि भगवान् विश्वनाथ भक्तजनोंपर अनुग्रह करनेके लिये देवी पार्वतीके साथ सदा विहार करते हैं॥ ४८—५०॥

हे श्रेष्ठ ब्राह्मणो! आपलोग वहाँ बड़ा भारी आश्चर्य देखकर मेरे पास आना, तब मैं आपलोगोंको मुक्तिका उपाय बताऊँगा, जिससे जन्म-जन्मान्तरके संसार-बन्धनसे छुटकारा दिलानेवाली मुक्ति आपलोगोंको एक ही जन्ममें मिल जायगी॥ ५१-५२॥

मैंने इस मनोमय चक्रका निर्माण किया है, मैं इस चक्रको छोड़ रहा हूँ, जहाँ इसकी नेमि टूटकर गिर जाय, वही देश तपस्याके लिये शुभ होगा—ऐसा कहकर पितामहने उस सूर्यतुल्य मनोमय चक्रकी ओर देखकर और महादेवजीको प्रणामकर उसे छोड़ दिया॥ ५३-५४॥

वे ब्राह्मण भी अत्यन्त प्रसन्न होकर लोकनाथ ब्रह्माजीको प्रणाम करके उस स्थानके लिये चल दिये, जहाँ उस चक्रकी नेमि विशीर्ण होनेवाली थी। इसके

चक्रं तदपि संक्षिप्तं श्लक्ष्णं चारुशिलातले।
विमलस्वादुपानीये निपपात वने क्वचित्॥ ५६

तद्वनं तेन विख्यातं नैमिषं मुनिपूजितम्।
अनेकयक्षगंधर्वविद्याधरसमाकुलम् ॥ ५७

पश्चात् वह फेंका गया कान्तिमय चक्र स्वादिष्ट एवं विमल जलसे युक्त [सरोवरवाले] किसी वनमें एक मनोहर शिलातलपर गिर पड़ा, इसी कारणसे वह वन मुनिपूजित नैमिषारण्य नामसे विख्यात हुआ, जो अनेक यक्ष, गन्धर्व और विद्याधरोंसे व्याप्त है॥ ५५—५७॥

अष्टादश समुद्रस्य द्वीपानश्नन्पुरूरवाः।
विलासवशमुर्वश्या यातो दैवेन चोदितः॥ ५८

अक्रमेणाहरन्मोहाद्यज्ञवाटं हिरणमयम्।
मुनिभिर्यत्र संक्रुद्धैः कुशवज्रैर्निपातितः॥ ५९

समुद्रोंसे वेष्टित अठारह द्वीपोंका उपभोग करनेवाले महाराज पुरूरवा* प्रारब्धसे प्रेरित होकर उर्वशीके रूपसौन्दर्यके वशीभूत हो गये और उन्होंने अज्ञानवश धर्मका अतिक्रमण करके [ऋषियोंकी] सुवर्णमयी यज्ञशालाका हरण कर लिया, तब कुपित मुनियोंने अभिमन्त्रित होनेसे वज्रसदृश प्रभाववाले कुशोंसे उन्हें विनष्ट कर दिया॥ ५८-५९॥

विश्वं सिसृक्षमाणा वै यत्र विश्वसृजः पुरा।
सत्रमारेभिरे दिव्यं ब्रह्मज्ञा गार्हपत्यगाः॥ ६०

ऋषिभिर्यत्र विद्वद्भिः शब्दार्थन्यायकोविदैः।
शक्तिप्रज्ञाक्रियायोगैर्विधिरासीदनुष्ठितः ॥ ६१

यत्र वेदविदो नित्यं वेदवादबहिष्कृतान्।
वादजल्पबलैर्घ्नन्ति वचोभिरतिवादिनः॥ ६२

स्फटिकमयमहीभृत्पादजाभ्यश्शिलाभ्यः
प्रसरदमृतकल्पस्वच्छपानीयरम्यम्।
अतिरसफलवृक्षप्रायमव्यालसत्त्वं
तपस उचितमासीन्नैमिषं तन्मुनीनाम्॥ ६३

जहाँपर पूर्वकालमें वेदज्ञ, गार्हपत्याग्निके उपासक एवं विश्वकी सृष्टि करनेवाले महर्षियोंने ब्रह्मदेवके उद्देश्यसे यज्ञका प्रारम्भ किया था, जिस यज्ञमें शब्दशास्त्र, अर्थशास्त्र और न्यायशास्त्रके ज्ञाता विद्वान् महर्षियोंने अपनी शक्ति, प्रज्ञा तथा क्रियाके माध्यमसे शास्त्रीय विधिका अनुष्ठान किया था, जहाँपर वेदवेत्ता ब्राह्मण वेदोंको न माननेवाले और स्वच्छन्द शास्त्रका निर्माण करनेवाले नास्तिकोंको तार्किक प्रक्रियाके द्वारा निरन्तर पराजित करते हैं, जहाँ स्फटिक मणिमय पर्वतकी शिलाओंसे अमृतके समान मधुर निर्मल जल प्रवाहित होता रहता है, वृक्षोंपर स्वादिष्ट रसीले फल लगे रहते हैं एवं अनेक जीव-जन्तु निवास करते हैं—इस प्रकारका वह नैमिषारण्य मुनियोंके तपके योग्य है॥ ६०—६३॥

इति श्रीशिवमहापुराणे सप्तम्यां वायवीयसंहितायां पूर्वखण्डे
नैमिषोपाख्यानं नाम तृतीयोऽध्यायः॥ ३॥

॥ इस प्रकार श्रीशिवमहापुराणके अन्तर्गत सातवीं वायवीयसंहिताके पूर्वखण्डमें
नैमिषोपाख्यान नामक तीसरा अध्याय पूर्ण हुआ॥ ३॥

---

* मत्स्यपुराण अ० २४ के अनुसार धर्म आदि चारों पुरुषार्थोंकी पूजाके प्रसंगमें राजर्षि पुरूरवाको उनके द्वारा किंचित् उपेक्षित काम तथा अर्थने शाप दिया था, इसी कारण वे उर्वशीके वियोगदुःख तथा अर्थलोभसे आक्रान्त हुए।

अथ चतुर्थोऽध्यायः

नैमिषारण्यमें दीर्घसत्रके अन्तमें मुनियोंके पास वायुदेवताका आगमन

सूत उवाच

तस्मिन्देशे महाभागा मुनयः शंसितव्रताः।
अर्चयन्तो महादेवं सत्रमारेभिरे तदा॥ १

सूतजी बोले—उस समय उत्तम व्रतका पालन करनेवाले महाभाग्यवान् उन ऋषियोंने महादेवका अर्चन करते हुए उस स्थानमें यज्ञानुष्ठान प्रारम्भ किया॥ १॥

तच्च सत्रं प्रववृते सर्वाश्चर्यं महर्षिणाम्।
विश्वं सिसृक्षमाणानां पुरा विश्वसृजामिव॥ २

उन महर्षियोंका वह यज्ञ अनेक प्रकारके आश्चर्योंसे वैसे ही परिपूर्ण था, जिस प्रकार पूर्व समयमें सृष्टिकी इच्छा करनेवाले विश्वस्रष्टा प्रजापतियोंका यज्ञ था॥ २॥

अथ काले गते सत्रे समाप्ते भूरिदक्षिणे।
पितामहनियोगेन वायुस्तत्रागमत्स्वयम्॥ ३

कुछ समय बीत जानेपर प्रचुर दक्षिणावाला वह यज्ञ जब समाप्त हो गया, तब ब्रह्माजीकी आज्ञासे वहाँ स्वयं वायुदेव आये॥ ३॥

शिष्यः स्वयंभुवो देवः सर्वप्रत्यक्षदृग्वशी।
आज्ञायां मरुतो यस्य संस्थिताः सप्तसप्तकाः॥ ४

प्रेरयञ्छश्वदङ्गानि प्राणाद्याभिः स्ववृत्तिभिः।
सर्वभूतशरीराणां कुरुते यश्च धारणम्॥ ५

अणिमादिभिरष्टाभिरैश्वर्यैश्च समन्वितः।
तिर्यक् करादिभिर्मेध्यैर्भुवनानि बिभर्ति यः॥ ६

आकाशयोनिर्द्विगुणः स्पर्शशब्दसमन्वयात्।
तेजसां प्रकृतिश्चेति यमाहुस्तत्त्वचिन्तकाः॥ ७

तमाश्रमगतं दृष्ट्वा मुनयो दीर्घसत्रिणः।
पितामहवचः स्मृत्वा प्रहर्षमतुलं ययुः॥ ८

वे वायुदेव साक्षात् स्वयम्भू ब्रह्माजीके शिष्य, सब कुछ प्रत्यक्ष देखनेवाले तथा इन्द्रियोंको वशमें रखनेवाले थे। जिनकी आज्ञामें उनचास मरुद्गण सर्वदा समुद्यत रहते हैं, जो प्राण आदि अपनी वृत्तियोंके द्वारा अंगोंको चेष्टावान् करते रहते हैं, जो समस्त प्राणियोंके शरीरोंको धारण करते हैं, जो अणिमादि आठ प्रकारकी सिद्धियों तथा नानाविध ऐश्वर्योंसे युक्त हैं, जो तिरछी पड़नेवाली अपनी पवित्र गतियोंसे भुवनोंको धारण करते हैं, जो आकाशसे उत्पन्न हुए हैं, जो स्पर्श एवं शब्द नामक दो गुणोंवाले हैं, तत्त्ववेत्ता लोग जिन्हें तेजोंकी प्रकृति कहते हैं—उन्हें आश्रममें आया देखकर दीर्घकालिक यज्ञ करनेवाले मुनिगण ब्रह्माजीके वचनका स्मरणकर अत्यन्त प्रसन्न हो गये॥ ४—८॥

अभ्युत्थाय ततः सर्वे प्रणम्याम्बरसम्भवम्।
चामीकरमयं तस्मै विष्टरं समकल्पयन्॥ ९

तब सभीने उठकर आकाशजन्मा वायुदेवको प्रणामकर उन्हें [बैठनेके लिये] सुवर्णमय आसन प्रदान किया॥ ९॥

सोऽपि तत्र समासीनो मुनिभिः सम्यगर्चितः।
प्रतिनंद्य च तान् सर्वान् पप्रच्छ कुशलं ततः॥ १०

इसके पश्चात् मुनियोंने उस आसनपर बैठे हुए वायुदेवकी भलीभाँति पूजा की और उन्होंने भी उन सभीकी प्रशंसाकर उनसे कुशल पूछा॥ १०॥

वायुरुवाच

अत्र वः कुशलं विप्राः कच्चिद्वृत्ते महाक्रतौ।
कच्चिद्यज्ञहनो दैत्या न बाधेरन्सुरद्विषः॥ ११

वायु बोले—हे ब्राह्मणो! इस महायज्ञके पूरे होनेतक आपलोग सकुशल तो रहे; यज्ञमें विघ्न डालनेवाले देवशत्रु दैत्योंने कहीं विघ्न तो उपस्थित

प्रायश्चित्तं दुरिष्टं वा न कश्चित्समजायत।
स्तोत्रमन्त्रजपैर्देवान् पितॄन् पित्र्यैश्च कर्मभिः॥ १२

कच्चिदभ्यर्च्य युष्माभिर्विधिरासीत्स्वनुष्ठितः।
निवृत्ते च महासत्रे पश्चात्किं वश्चिकीर्षितम्॥ १३

नहीं किया? आपके इस यज्ञमें कोई प्रत्यवाय अथवा उपद्रव तो नहीं हुआ? आपलोगोंने स्तवन तथा मन्त्रजपके द्वारा देवगणोंका तथा पितृ-कर्मोंके द्वारा पितरोंका पूजनकर ठीक तरहसे यज्ञानुष्ठानकी विधि सम्पन्न तो कर ली। अब इस महायज्ञके समाप्त हो जानेके अनन्तर आपलोगोंकी क्या करनेकी इच्छा है?॥ ११—१३॥

इत्युक्ता मुनयः सर्वे वायुना शिवभाविना।
प्रहृष्टमनसः पूताः प्रत्यूचुर्विनयान्विताः॥ १४

तब शिवभक्त वायुके द्वारा इस प्रकार पूछे गये सभी मुनि प्रसन्नचित्त तथा विनयावनत होकर कहने लगे—॥ १४॥

मुनय ऊचुः

अद्य नः कुशलं सर्वमद्य साधु भवेत्तपः।
अस्मच्छ्रेयोऽभिवृद्ध्यर्थं भवानत्रागतो यतः॥ १५

मुनि बोले—जब आप हमारे कल्याणकी वृद्धिके लिये यहाँ आ गये हैं तो आज हमलोगोंका पूर्णतः मंगल हो गया और हमारी तपस्या सफल हो गयी॥ १५॥

शृणु चेदं पुरावृत्तं तमसाक्रान्तमानसैः।
उपासितः पुरास्माभिर्विज्ञानार्थं प्रजापतिः॥ १६

अब आप पहलेका एक वृत्तान्त सुनिये। तमोगुणसे आक्रान्त मनवाले हमलोगोंने पूर्वकालमें विशिष्ट ज्ञानके निमित्त प्रजापति ब्रह्माजीकी उपासना की थी॥ १६॥

सोऽप्यस्माननुगृह्याह शरण्यः शरणागतान्।
सर्वस्मादधिको रुद्रो विप्राः परमकारणम्॥ १७

तमप्रतर्क्यं याथात्म्यं भक्तिमानेव पश्यति।
भक्तिश्चास्य प्रसादेन प्रसादादेव निर्वृतिः॥ १८

तब शरणागतोंकी रक्षा करनेवाले उन्होंने हम शरणागतोंपर कृपा करके कहा—हे ब्राह्मणो! सभी कारणोंके कारण रुद्रदेव सर्वश्रेष्ठ हैं। तर्कसे परे उन रुद्र देवताको यथार्थ रूपसे भक्तिमान् ही देख सकता है और इन्हींकी प्रसन्नतासे भक्ति मिलती है और [अन्तमें] मुक्ति भी प्राप्त होती है॥ १७-१८॥

तस्मादस्य प्रसादार्थं नैमिषे सत्रयोगतः।
यजध्वं दीर्घसत्रेण रुद्रं परमकारणम्॥ १९

तत्प्रसादेन सत्रान्ते वायुस्तत्रागमिष्यति।
तन्मुखाज्ज्ञानलाभो वस्तत्र श्रेयो भविष्यति॥ २०

अतः आपलोग इनकी प्रसन्नता प्राप्त करनेहेतु नैमिषारण्यमें यज्ञनियमोंमें दीक्षित होकर दीर्घसत्रके द्वारा परमकारण रुद्रका यजन कीजिये। तब उनकी प्रसन्नतासे यज्ञके अन्तमें वायुदेव आयेंगे। उनके मुखसे आपलोगोंको ज्ञानलाभ होगा और कल्याणकी प्राप्ति होगी॥ १९-२०॥

इत्यादिश्य वयं सर्वे प्रेषिताः परमेष्ठिना।
अस्मिन्देशे महाभाग तवागमनकांक्षिणः॥ २१

इस प्रकारका आदेश देकर ब्रह्माजीने हमलोगोंको इस स्थानपर भेजा है। हे महाभाग! हमलोग आपकी प्रतीक्षा कर रहे हैं॥ २१॥

दीर्घसत्रं समासीना दिव्यवर्षसहस्रकम्।
अतस्तवागमादन्यत्प्रार्थ्यं नो नास्ति किंचन॥ २२

दिव्य हजार वर्षपर्यन्त हमलोग यहाँ बैठकर जो दीर्घसत्र कर रहे थे, उसका उद्देश्य आपके आगमनके अतिरिक्त अन्य कुछ नहीं था॥ २२॥

इत्याकर्ण्य पुरावृत्तमृषीणां दीर्घसत्रिणाम्।
वायुः प्रीतमना भूत्वा तत्रासीन्मुनिसंवृतः ॥ २३

तब प्रसन्न मनसे वायुदेवने दीर्घसत्र करनेवाले ऋषियोंके उस प्राचीन वृत्तान्तका श्रवण किया और मुनियोंसे घिरे हुए वे वहींपर विराजमान हो गये ॥ २३ ॥

ततस्तैर्मुनिभिः पृष्टस्तेषां भावविवृद्धये।
सर्गादि शार्वमैश्वर्यं समासादवदद् विभुः ॥ २४

इसके पश्चात् मुनियोंके द्वारा पूछे जानेपर शिवमें उनकी भक्ति बढ़ानेके लिये सर्वव्यापक वायुदेवने सृष्टिकी उत्पत्ति एवं शिवका ऐश्वर्य संक्षेपमें बताया ॥ २४ ॥

इति श्रीशिवमहापुराणे सप्तम्यां वायवीयसंहितायां पूर्वखण्डे वायुसमागमो नाम चतुर्थोऽध्यायः ॥ ४ ॥

॥ इस प्रकार श्रीशिवमहापुराणके अन्तर्गत सातवीं वायवीयसंहिताके पूर्वखण्डमें वायुसमागम नामक चौथा अध्याय पूर्ण हुआ ॥ ४ ॥

अथ पञ्चमोऽध्यायः

ऋषियोंके पूछनेपर वायुदेवद्वारा पशु, पाश एवं पशुपतिका तात्त्विक विवेचन

सूत उवाच

तत्र पूर्वं महाभागा नैमिषारण्यवासिनः।
प्रणिपत्य यथान्यायं पप्रच्छुः पवनं प्रभुम्॥ १

नैमिषीया ऊचुः

भवान् कथमनुप्राप्तो ज्ञानमीश्वरगोचरम्।
कथं च शिष्यभावस्ते ब्रह्मणोऽव्यक्तजन्मनः ॥ २

वायुरुवाच

एकोनविंशतिः कल्पो विज्ञेयः श्वेतलोहितः।
तस्मिन्कल्पे चतुर्वक्त्रः स्रष्टुकामोऽतपत्तपः ॥ ३

तपसा तेन तीव्रेण तुष्टस्तस्य पिता स्वयम्।
दिव्यं कौमारमास्थाय रूपं रूपवतां वरः ॥ ४

श्वेतो नाम मुनिर्भूत्वा दिव्यां वाचमुदीरयन्।
दर्शनं प्रददौ तस्मै देवदेवो महेश्वरः ॥ ५

तं दृष्ट्वा पितरं ब्रह्मा ब्रह्मणोऽधिपतिं पतिम्।
प्रणम्य परमज्ञानं गायत्र्या सह लब्धवान्॥ ६

ततः स लब्धविज्ञानो विश्वकर्मा चतुर्मुखः।
असृजत्सर्वभूतानि स्थावराणि चराणि च॥ ७

यतः श्रुत्वाऽमृतं लब्धं ब्रह्मणा परमेश्वरात्।
ततस्तद्वदनादेव मया लब्धं तपोबलात्॥ ८

सूतजी बोले—हे महाभाग्यवान् ऋषियो! नैमिषारण्यनिवासी उन ऋषियोंने विधिपूर्वक वायुदेवको प्रणामकर उनसे पहले पूछा ॥ १ ॥

नैमिषारण्यके ऋषियोंने पूछा—देव! आपने ईश्वरविषयक ज्ञान कैसे प्राप्त किया? तथा आप अव्यक्तजन्मा ब्रह्माजीके शिष्य किस प्रकार हुए? ॥ २ ॥

वायुदेवता बोले—महर्षियो! उन्नीसवें कल्पका नाम श्वेतलोहितकल्प समझना चाहिये। उसी कल्पमें चतुर्मुख ब्रह्माने सृष्टिकी कामनासे तपस्या की। उनकी उस तीव्र तपस्यासे संतुष्ट हो स्वयं उनके पिता देवदेव महेश्वरने उन्हें दर्शन दिया। वे दिव्य कुमारावस्थासे युक्त रूप धारण करके रूपवानोंमें श्रेष्ठ श्वेत नामक मुनि होकर दिव्य वाणी बोलते हुए उनके सामने उपस्थित हुए। वेदोंके अधिपति तथा सबके पालक पिता महेश्वरका दर्शन करके गायत्रीसहित ब्रह्माजीने उन्हें प्रणाम किया और उन्हींसे उत्तम ज्ञान पाया। ज्ञान पाकर विश्वकर्मा चतुर्मुख ब्रह्मा सम्पूर्ण चराचर भूतोंकी सृष्टि करने लगे। साक्षात् परमेश्वर शिवसे सुनकर ब्रह्माजीने अमृतस्वरूप ज्ञान प्राप्त किया था, इसलिये मैंने तपस्याके बलसे उन्हींके मुखसे उस ज्ञानको उपलब्ध किया ॥ ३—८ ॥

मुनय ऊचुः

किं तज्ज्ञानं त्वया लब्धं तथ्यात्तथ्यतरं शुभम्।
यत्र कृत्वा परां निष्ठां पुरुषः सुखमृच्छति॥ ९

मुनियोंने पूछा—आपने वह कौन-सा ज्ञान प्राप्त किया, जो सत्यसे भी परम सत्य एवं शुभ है तथा जिसमें उत्तम निष्ठा रखकर पुरुष परमानन्दको प्राप्त करता है?॥ ९॥

वायुरुवाच

पशुपाशपतिज्ञानं यल्लब्धं तु मया पुरा।
तत्र निष्ठा परा कार्या पुरुषेण सुखार्थिना॥ १०

अज्ञानप्रभवं दुःखं ज्ञानेनैव निवर्त्तते।
ज्ञानं वस्तुपरिच्छेदो वस्तु च त्रिविधं स्मृतम्॥ ११

अजडं च जडं चैव नियन्तृ च तयोरपि।
पशुः पाशः पतिश्चेति कथ्यते तत्त्रयं क्रमात्॥ १२

वायुदेवता बोले—महर्षियो ! मैंने पूर्वकालमें पशु-पाश और पशुपतिका जो ज्ञान प्राप्त किया था, सुख चाहनेवाले पुरुषको उसीमें ऊँची निष्ठा रखनी चाहिये। अज्ञानसे उत्पन्न होनेवाला दुःख ज्ञानसे ही दूर होता है। वस्तुके विवेकका नाम ज्ञान है। वस्तुके तीन भेद माने गये हैं—जड (प्रकृति), चेतन (जीव) और उन दोनोंका नियन्ता (परमेश्वर)। इन्हीं तीनोंको क्रमसे पाश, पशु तथा पशुपति कहते हैं॥ १०—१२॥

अक्षरं च क्षरं चैव क्षराक्षरपरं तथा।
तदेतत्त्रितयं भूम्ना कथ्यते तत्त्ववेदिभिः॥ १३

अक्षरं पशुरित्युक्तः क्षरं पाश उदाहृतः।
क्षराक्षरपरं यत्तत् पतिरित्यभिधीयते॥ १४

तत्त्वज्ञ पुरुष प्रायः इन्हीं तीन तत्त्वोंको क्षर, अक्षर तथा उन दोनोंसे अतीत कहते हैं। अक्षर ही पशु कहा गया है। क्षर तत्त्वका ही नाम पाश है तथा क्षर और अक्षर दोनोंसे परे जो परमतत्त्व है, उसीको पति या पशुपति कहते हैं॥ १३-१४॥

मुनय ऊचुः

किं तच्च क्षरमित्युक्तं किं चाक्षरमुदाहृतम्।
तयोश्च परमं किं वा तदेतद् ब्रूहि मारुत॥ १५

मुनिगण बोले—हे मारुत! क्षर किसे कहा गया है और अक्षर किसे कहते हैं एवं उन दोनों क्षराक्षरसे परे क्या है? उसका वर्णन कीजिये॥ १५॥

वायुरुवाच

प्रकृतिः क्षरमित्युक्तं पुरुषोऽक्षर उच्यते।
ताविमौ प्रेरयत्यन्यः स परः परमेश्वरः॥ १६

वायुदेव बोले—प्रकृतिको ही क्षर कहा गया है। पुरुष (जीव)-को अक्षर कहते हैं और जो इन दोनोंको प्रेरित करता है, वह क्षर और अक्षर दोनोंसे भिन्न तत्त्व ही परमेश्वर कहा गया है॥ १६॥

मुनय ऊचुः

कैषा प्रकृतिरित्युक्ता क एष पुरुषो मतः।
अनयोः केन सम्बन्धः कोऽयं प्रेरक ईश्वरः॥ १७

मुनिगण बोले—हे देव! यह प्रकृति कौन कही गयी है, और यह पुरुष कौन कहा गया है? इनका सम्बन्ध किसके द्वारा होता है और यह प्रेरक ईश्वर कौन है?॥ १७॥

वायुरुवाच

मायाप्रकृतिरुद्दिष्टा पुरुषो माययाऽऽवृतः।
सम्बन्धो मलकर्मभ्यां शिवः प्रेरक ईश्वरः॥ १८

वायुदेव बोले—मायाका ही नाम प्रकृति है। पुरुष उस मायासे आवृत है। मल और कर्मके द्वारा प्रकृतिका पुरुषके साथ सम्बन्ध होता है। शिव ही इन दोनोंके प्रेरक ईश्वर हैं॥ १८॥

मुनय ऊचुः

केयं माया समाख्याता किंरूपो मायया वृतः।
मलं कीदृक् कुतो वास्य किं शिवत्वं कुतश्शिवः॥ १९

मुनिगण बोले—माया किसे कहते हैं, मायासे आच्छादित होनेपर पुरुष किस रूपका हो जाता है, यह मल क्या है और कहाँसे आया, शिवतत्त्व क्या है तथा शिव कौन है?॥ १९॥

वायुरुवाच

माया माहेश्वरी शक्तिश्चिद्रूपो मायया वृतः।
मलश्चिच्छादको नैजो विशुद्धिः शिवता स्वतः॥ २०

वायुदेव बोले—माया महेश्वरकी शक्ति है। चित्स्वरूप जीव उस मायासे आवृत है। चेतन जीवको आच्छादित करनेवाला अज्ञानमय पाश ही मल कहलाता है। उससे शुद्ध हो जानेपर जीव स्वतः शिव हो जाता है। वह विशुद्धता ही शिवत्व है॥ २०॥

मुनय ऊचुः

आवृणोति कथं माया व्यापिनं केन हेतुना।
किमर्थं चावृतिः पुंसः केन वा विनिवर्तते॥ २१

मुनियोंने पूछा—सर्वव्यापी चेतनको माया किस हेतुसे आवृत करती है? किसलिये पुरुषको आवरण प्राप्त होता है? और किस उपायसे उसका निवारण होता है?॥ २१॥

वायुरुवाच

आवृतिर्व्यापिनोऽपि स्याद्व्यापि यस्मात्कलाद्यपि।
हेतुः कर्मैव भोगार्थं निवर्तेत मलक्षयात्॥ २२

वायुदेवता बोले—व्यापक तत्त्वको भी आंशिक आवरण प्राप्त होता है; क्योंकि कला आदि भी व्यापक हैं। भोगके लिये किया गया कर्म ही उस आवरणमें कारण है। मलका नाश होनेसे वह आवरण दूर हो जाता है॥ २२॥

मुनय ऊचुः

कलादि कथ्यते किं तत्कर्म वा किमुदाहृतम्।
तत्किमादि किमन्तं वा किंफलं वा किमाश्रयम्॥ २३

कस्मै भोगश्च किं भोग्यं किं वा तद्भोगसाधनम्।
मलक्षयस्य को हेतुः कीदृक् क्षीणमलः पुमान्॥ २४

मुनिगण बोले—हे वायुदेव! वह कलादि क्या है, कर्म किसे कहते हैं? उसका आदि एवं अन्त क्या है और उसका फल तथा आश्रय क्या है?॥ २३॥

किसके भोगसे क्या भोगना पड़ता है, उस भोगका साधन क्या है, मलक्षयका हेतु क्या है और क्षीणमलवाला पुरुष कैसा होता है?॥ २४॥

वायुरुवाच

कला विद्या च रागश्च कालो नियतिरेव च।
कलादयः समाख्याता यो भोक्ता पुरुषो भवेत्॥ २५

पुण्यपापात्मकं कर्म सुखदुःखफलं तु यत्।
अनादिमलभोगान्तमज्ञानात्मसमाश्रयम् ॥ २६

भोगः कर्मविनाशाय भोग्यमव्यक्तमुच्यते।
बाह्यान्तःकरणद्वारं शरीरं भोगसाधनम्॥ २७

भावातिशयलब्धेन प्रसादेन मलक्षयः।
क्षीणे चात्ममले तस्मिन् पुमान् शिवसमो भवेत्॥ २८

वायुदेवता बोले—कला, विद्या, राग, काल और नियति—इन्हींको कलादि कहते हैं। कर्मफलका जो उपभोग करता है, उसीका नाम पुरुष (जीव) है। कर्म दो प्रकारके हैं—पुण्यकर्म और पापकर्म। पुण्यकर्मका फल सुख और पापकर्मका फल दुःख है। कर्म अनादि है और फलका उपभोग कर लेनेपर उसका अन्त हो जाता है। यद्यपि जड कर्मका चेतन आत्मासे कुछ सम्बन्ध नहीं है, तथापि अज्ञानवश जीवने उसे अपने-आपमें मान रखा है। भोग कर्मका विनाश करनेवाला है, प्रकृतिको भोग्य कहते हैं और भोगका साधन है शरीर। बाह्य इन्द्रियाँ और अन्तःकरण उसके द्वार हैं। अतिशय भक्तिभावसे उपलब्ध हुए महेश्वरके कृपाप्रसादसे मलका नाश होता है और मलका नाश हो जानेपर पुरुष निर्मल—शिवके समान हो जाता है॥ २५—२८॥

मुनय ऊचुः

कलादिपञ्चतत्त्वानां किं कर्म पृथगुच्यते।
भोक्तेति पुरुषश्चेति येनात्मा व्यपदिश्यते॥ २९

किमात्मकं तदव्यक्तं केनाकारेण भुज्यते।
किं तस्य शरणं भुक्तौ शरीरं च किमुच्यते॥ ३०

मुनिगण बोले—कलादि पाँच तत्त्वोंका अलग-अलग कर्म क्या कहा जाता है? क्या आत्माको ही भोक्ता एवं पुरुषके नामसे पुकारा जाता है? उस अव्यक्त तत्त्वका स्वरूप क्या है और वह किस प्रकारसे भोगा जाता है? उस [भोग्य]-के भोगका आश्रय क्या है और शरीर किसे कहते हैं?॥ २९-३०॥

वायुरुवाच

दिक्क्रियाव्यंजिके विद्याकले रागः प्रवर्तकः।
कालोऽवच्छेदकस्तत्र नियतिस्तु नियामिका॥ ३१

अव्यक्तं कारणं यत्तत्त्रिगुणप्रभवाप्ययम्।
प्रधानं प्रकृतिश्चेति यदाहुस्तत्त्वचिन्तकाः॥ ३२

कलातस्तदभिव्यक्तमनभिव्यक्तलक्षणम्।
सुखदुःखविमोहात्मा भुज्यते गुणवांस्त्रिधा॥ ३३

वायुदेवता बोले—विद्या पुरुषकी ज्ञानशक्तिको और कला उसकी क्रियाशक्तिको अभिव्यक्त करनेवाली है। राग भोग्य वस्तुके लिये क्रियामें प्रवृत्त करनेवाला होता है। काल उसमें अवच्छेदक होता है और नियति उसे नियन्त्रणमें रखनेवाली है। अव्यक्तरूप जो कारण है, वह त्रिगुणमय है; उसीसे जड जगत्‌की उत्पत्ति होती है और उसीमें उसका लय होता है। तत्त्वचिन्तक पुरुष उस अव्यक्तको ही प्रधान और प्रकृति कहते हैं। अप्रकटित लक्षणोंवाला वह प्रधान तत्त्व कलाओंके माध्यमसे अभिव्यक्तिको प्राप्त करता है। उस सत्त्वादिगुणत्रयात्मक प्रधानका स्वरूप सुख-दुःख-विमोहात्मक है, जो पुरुषके द्वारा भोगा जाता है॥ ३१—३३॥

सत्त्वं रजस्तम इति गुणाः प्रकृतिसंभवाः।
प्रकृतौ सूक्ष्मरूपेण तिले तैलमिव स्थिताः॥ ३४

सुखं च सुखहेतुश्च समासात्सात्त्विकं स्मृतम्।
राजसं तद्विपर्यासात् स्तंभमोहौ तु तामसौ॥ ३५

सात्त्विक्यूर्ध्वगतिः प्रोक्ता तामसी स्यादधोगतिः।
मध्यमा तु गतिर्या सा राजसी परिपठ्यते॥ ३६

सत्त्व, रज और तम—ये तीनों गुण प्रकृतिसे प्रकट होते हैं; तिलमें तेलकी भाँति वे प्रकृतिमें सूक्ष्मरूपसे विद्यमान रहते हैं। सुख और उसके हेतुको संक्षेपसे सात्त्विक कहा गया है, दुःख और उसके हेतु राजस कार्य हैं तथा जडता और मोह—वे तमोगुणके कार्य हैं। सात्त्विकी वृत्ति ऊर्ध्वमें ले जानेवाली है, तामसी वृत्ति अधोगतिमें डालनेवाली है तथा राजसी वृत्ति मध्यम स्थितिमें रखनेवाली है॥ ३४—३६॥

तन्मात्रापञ्चकं चैव भूतपञ्चकमेव च।
ज्ञानेन्द्रियाणि पञ्चैव पञ्चकर्मेन्द्रियाणि च॥ ३७

प्रधानबुद्ध्यहंकारमनांसि च चतुष्टयम्।
समासादेवमव्यक्तं सविकारमुदाहृतम्॥ ३८

पाँच तन्मात्राएँ, पाँच भूत, पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ, पाँच कर्मेन्द्रियाँ तथा प्रधान (चित्त), महत्तत्त्व (बुद्धि), अहंकार और मन—ये चार अन्तःकरण—सब मिलकर चौबीस तत्त्व होते हैं। इस प्रकार संक्षेपसे ही विकारसहित अव्यक्त (प्रकृति)-का वर्णन किया गया॥ ३७-३८॥

तत्कारणदशापन्नमव्यक्तमिति कथ्यते।
व्यक्तं कार्यदशापन्नं शरीरादिघटादिवत्॥ ३९

कारणावस्थामें रहनेपर ही इसे अव्यक्त कहते हैं और शरीर आदिके रूपमें जब वह कार्यावस्थाको प्राप्त होता है, तब उसकी 'व्यक्त' संज्ञा होती है—

यथा घटादिकं कार्यं मृदादेर्नातिभिद्यते।
शरीरादि तथा व्यक्तमव्यक्तान्नातिभिद्यते॥ ४०

तस्मादव्यक्तमेवैकं कारणं करणानि च।
शरीरं च तदाधारं तद्भोग्यं चापि नेतरत्॥ ४१

मुनय ऊचुः

बुद्धीन्द्रियशरीरेभ्यो व्यतिरेकस्य कस्यचित्।
आत्मशब्दाभिधेयस्य वस्तुतोऽपि कुतः स्थितिः॥ ४२

वायुरुवाच

बुद्धीन्द्रियशरीरेभ्यो व्यतिरेको विभोर्ध्रुवम्।
अस्त्येव कश्चिदात्मेति हेतुस्तत्र सुदुर्गमः॥ ४३

बुद्धीन्द्रियशरीराणां नात्मता सद्भिरिष्यते।
स्मृतेरनियतज्ञानादयावद्देहवेदनात् ॥ ४४

अतः स्मर्तानुभूतानामशेषज्ञेयगोचरः।
अन्तर्यामीति वेदेषु वेदांतेषु च गीयते॥ ४५

सर्वं तत्र स सर्वत्र व्याप्य तिष्ठति शाश्वतः।
तथापि क्वापि केनापि व्यक्तमेष न दृश्यते॥ ४६

नैवायं चक्षुषा ग्राह्यो नापरैरिन्द्रियैरपि।
मनसैव प्रदीप्तेन महानात्मावसीयते॥ ४७

न च स्त्री न पुमानेष नैव चापि नपुंसकः।
नैवोर्ध्वं नापि तिर्यक् च नाधस्तान्न कुतश्चन॥ ४८

अशरीरं शरीरेषु चलेषु स्थाणुमव्ययम्।
सदा पश्यति तं धीरो नरः प्रत्यवमर्शनात्॥ ४९

किमत्र बहुनोक्तेन पुरुषो देहतः पृथक्।
अपृथग्ये तु पश्यंति ह्यसम्यक् तेषु दर्शनम्॥ ५०

ठीक उसी तरह, जैसे कारणावस्थामें स्थित होनेपर जिसे हम 'मिट्टी' कहते हैं, वही कार्यावस्थामें 'घट' आदि नाम धारण कर लेती है। जैसे घट आदि कार्य मृत्तिका आदि कारणसे अधिक भिन्न नहीं है, उसी प्रकार शरीर आदि व्यक्त पदार्थ अव्यक्तसे अधिक भिन्न नहीं हैं। इसलिये एकमात्र अव्यक्त ही कारण, करण, उनका आधारभूत शरीर तथा भोग्य वस्तु है, दूसरा कोई नहीं॥ ३९—४१॥

मुनियोंने पूछा—प्रभो! बुद्धि, इन्द्रिय और शरीरसे व्यतिरिक्त किसी आत्मा नामक वस्तुकी वास्तविक स्थिति कहाँ है?॥ ४२॥

वायुदेवता बोले—महर्षियो! सर्वव्यापी चेतनका बुद्धि, इन्द्रिय और शरीरसे पार्थक्य अवश्य है। आत्मा नामक कोई पदार्थ निश्चय ही विद्यमान है; परन्तु उसकी सत्तामें किसी हेतुकी उपलब्धि बहुत ही कठिन है! सत्पुरुष बुद्धि, इन्द्रिय और शरीरको आत्मा नहीं मानते; क्योंकि स्मृति (बुद्धिका ज्ञान) अनियत है तथा उसे सम्पूर्ण शरीरका एक साथ अनुभव नहीं होता। इसीलिये वेदों और वेदान्तोंमें आत्माको पूर्वानुभूत विषयोंका स्मरणकर्ता, सम्पूर्ण ज्ञेय पदार्थोंमें व्यापक तथा अन्तर्यामी कहा जाता है॥ ४३—४५॥

उसमें सब कुछ है और वह शाश्वत आत्मा सभीको व्याप्त करके सर्वत्र स्थित रहता है, फिर भी व्यक्तरूपमें कोई भी कहीं भी उसे प्रत्यक्ष नहीं देख पाता है। यह नेत्र तथा अन्य इन्द्रियोंसे भी ग्राह्य नहीं है। वह महान् आत्मा ज्ञानप्रदीप्त मनसे ही ग्राह्य है॥ ४६-४७॥

यह न स्त्री है, न पुरुष है और न नपुंसक ही है। न ऊपर है, न अगल-बगलमें है, न नीचे है और न किसी स्थान-विशेषमें। यह सम्पूर्ण चल शरीरोंमें अविचल, निराकार एवं अविनाशीरूपसे स्थित है। ज्ञानी पुरुष निरन्तर विचार करनेसे उस आत्मतत्त्वका साक्षात्कार कर पाते हैं। बहुत कहनेसे क्या प्रयोजन? आत्मा देहसे पृथक् है। जो लोग इसे अपृथक् देखते हैं, उनको इसका यथार्थ ज्ञान नहीं है॥ ४८—५०॥

यच्छरीरमिदं प्रोक्तं पुरुषस्य ततः परम्।
अशुद्धमवशं दुःखमध्रुवं न च विद्यते॥ ५१

विपदां बीजभूतेन पुरुषस्तेन संयुतः।
सुखी दुःखी च मूढश्च भवति स्वेन कर्मणा॥ ५२

अद्भिराप्लावितं क्षेत्रं जनयत्यङ्कुरं यथा।
अज्ञानात्प्लावितं कर्म देहं जनयते तथा॥ ५३

पुरुषका जो वह शरीर कहा गया है, इससे बढ़कर अशुद्ध, पराधीन, दुःखमय और अस्थिर दूसरी कोई वस्तु नहीं है। शरीर ही सब विपत्तियोंका मूल कारण है। उससे युक्त हुआ पुरुष अपने कर्मके अनुसार सुखी, दुखी और मूढ़ होता है। जैसे पानीसे सींचा हुआ खेत अंकुर उत्पन्न करता है, उसी प्रकार अज्ञानसे आप्लावित हुआ कर्म नूतन शरीरको जन्म देता है॥ ५१—५३॥

अत्यन्तमसुखावासाः स्मृताश्चैकान्तमृत्यवः।
अनागता अतीताश्च तनवोऽस्य सहस्रशः॥ ५४

आगत्यागत्य शीर्णेषु शरीरेषु शरीरिणः।
अत्यन्तवसतिः क्वापि न केनापि च लभ्यते॥ ५५

ये शरीर अत्यन्त दुःखोंके आलय माने जाते हैं। इनकी मृत्यु अनिवार्य होती है। भूतकालमें कितने ही शरीर नष्ट हो गये और भविष्यकालमें सहस्रों शरीर आनेवाले हैं, वे सब आ-आकर जब जीर्ण-शीर्ण हो जाते हैं, तब पुरुष उन्हें छोड़ देता है। कोई भी जीवात्मा किसी भी शरीरमें अनन्त कालतक रहनेका अवसर नहीं पाता॥ ५४-५५॥

छादितश्च वियुक्तश्च शरीरैरेषु लक्ष्यते।
चंद्रबिंबवदाकाशे तरलैरभ्रसञ्चयैः॥ ५६

अनेकदेहभेदेन भिन्ना वृत्तिरिहात्मनः।
अष्टापदपरिक्षेपे ह्यक्षमुद्रेव लक्ष्यते॥ ५७

कभी यह शरीरोंमें व्याप्त होकर निवास करता है और कभी उन्हें छोड़ देता है, जैसे चन्द्रबिम्ब आकाशमें कभी चंचल मेघोंसे आच्छादित रहता है और कभी मुक्त रहता है। इसकी वृत्ति देहभेदसे भिन्न-भिन्न रसोंवाली होती है, जिस प्रकार पासा एक होते हुए भी पटलपर फेंके जानेपर भिन्न-भिन्न रूपोंमें दिखायी पड़ता है॥ ५६-५७॥

नैवास्य भविता कश्चिन्नासौ भवति कस्यचित्।
पथि संगम एवायं दारैः पुत्रैश्च बन्धुभिः॥ ५८

यथा काष्ठं च काष्ठं च समेयातां महोदधौ।
समेत्य च व्यपेयातां तद्वद् भूतसमागमः॥ ५९

यहाँ स्त्रियों, पुत्रों और बन्धु-बान्धवोंसे जो मिलन होता है, वह पथिकको मार्गमें मिले हुए दूसरे पथिकोंके समागमके ही समान है। जैसे महासागरमें एक काष्ठ कहींसे और दूसरा काष्ठ कहींसे बहता आता है, वे दोनों काष्ठ कहीं थोड़ी देरके लिये मिल जाते हैं और मिलकर फिर बिछुड़ जाते हैं। उसी प्रकार प्राणियोंका यह समागम भी संयोग-वियोगसे युक्त है॥ ५८-५९॥

स पश्यति शरीरं तच्छरीरं तन्न पश्यति।
तौ पश्यति परः कश्चित्तावुभौ तं न पश्यतः॥ ६०

वह [परमात्मा] शरीर [और जीवात्मा]-को [तत्त्वतः] जानता है, किंतु शरीर उसे नहीं जान पाता; परमतत्त्व शरीरादिका द्रष्टा [ज्ञाता] होकर भी इनके द्वारा दृश्य अर्थात् ज्ञेय नहीं है॥ ६०॥

ब्रह्माद्याः स्थावरान्ताश्च पशवः परिकीर्तिताः।
पशूनामेव सर्वेषां प्रोक्तमेतन्निदर्शनम्॥ ६१

स एष बध्यते पाशैः सुखदुःखाशनः पशुः।
लीलासाधनभूतो य ईश्वरस्येति सूरयः॥ ६२

अज्ञो जन्तुरनीशोऽयमात्मनः सुखदुःखयोः।
ईश्वरप्रेरितो गच्छेत्स्वर्गं वा श्वभ्रमेव वा॥ ६३

ब्रह्माजीसे लेकर स्थावर प्राणियोंतक सभी जीव पशु कहे गये हैं। उन सभी पशुओंके लिये ही यह दृष्टान्त या दर्शन-शास्त्र कहा गया है। यह जीव पाशोंमें बँधता और सुख-दुःख भोगता है, इसलिये 'पशु' कहलाता है। यह ईश्वरकी लीलाका साधन-भूत है, ऐसा ज्ञानी महात्मा कहते हैं। यह जीव अज्ञानी है एवं अपने सुख-दुःखको भोगनमें सर्वदा परतन्त्र है। यह ईश्वरसे प्रेरित होकर स्वर्ग अथवा नरकमें जाता है॥ ६१—६३॥

सूत उवाच

इत्याकर्ण्यानिलवचो मुनयः प्रीतमानसाः।
प्रोचुः प्रणम्य तं वायुं शैवागमविचक्षणम्॥ ६४

सूतजी बोले—वायुका यह वचन सुनकर मुनिगण प्रसन्नचित्त हो गये और शैवागममें कुशल वायुदेवको प्रणाम करके कहने लगे॥ ६४॥

इति श्रीशिवमहापुराणे सप्तम्यां वायवीयसंहितायां पूर्वखण्डे शिवतत्त्वज्ञानवर्णनं नाम पञ्चमोऽध्यायः॥ ५॥

॥ इस प्रकार श्रीशिवमहापुराणके अन्तर्गत सातवीं वायवीयसंहिताके पूर्वखण्डमें शिवतत्त्वज्ञानवर्णन नामक पाँचवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ ५॥

अथ षष्ठोऽध्यायः

महेश्वरकी महत्ताका प्रतिपादन

मुनय ऊचुः

योऽयं पशुरिति प्रोक्तो यश्च पाश उदाहृतः।
आभ्यां विलक्षणः कश्चित्कोऽयमस्ति तयोः पतिः॥ १

मुनि बोले—[हे देव!] आपने पूर्वमें पशु तथा पाशके विषयमें बताया है, अब इन दोनोंसे विलक्षण तथा इनपर शासन करनेवाले किसी [तत्त्व] अर्थात् पशुपतिके विषयमें बताइये॥ १॥

वायुरुवाच

अस्ति कश्चिदपर्यन्तरमणीयगुणाश्रयः।
पतिर्विश्वस्य निर्माता पशुपाशविमोचनः॥ २

अभावे तस्य विश्वस्य सृष्टिरेषा कथं भवेत्।
अचेतनत्वादज्ञानादनयोः पशुपाशयोः॥ ३

प्रधानपरमाण्वादि यावत्किञ्चिदचेतनम्।
तत्कर्तृकं स्वयं दृष्टं बुद्धिमत्कारणं विना॥ ४

वायुदेवता कहते हैं—महर्षियो! इस विश्वका निर्माण करनेवाला कोई पति है, जो अनन्त रमणीय गुणोंका आश्रय कहा गया है। वही पशुओंको पाशसे मुक्त करनेवाला है। उसके बिना संसारकी सृष्टि कैसे हो सकती है; क्योंकि पशु अज्ञानी और पाश अचेतन है। प्रधान परमाणु आदि जितने भी जड तत्त्व हैं, उन सबका कर्ता वह पति ही है—यह बात स्वयं समझमें आ जाती है। किसी बुद्धिमान् या चेतन कारणके बिना इन जड तत्त्वोंका निर्माण कैसे सम्भव है॥ २—४॥

जगच्च कर्तृसापेक्षं कार्यं सावयवं यतः।
तस्मात्कार्यस्य कर्तृत्वं पत्युर्न पशुपाशयोः॥ ५

यह जगत् कर्तृसापेक्ष है; क्योंकि [घटादिके समान] कार्य सावयव है। अतः कार्यका कर्ता ईश्वर ही हो सकता है, पशु और पाश नहीं॥ ५॥

पशोरपि च कर्तृत्वं पत्युः प्रेरणपूर्वकम्।
अयथाकरणज्ञानमन्धस्य गमनं यथा॥ ६

आत्मानं च पृथङ्मत्वा प्रेरितारं ततः पृथक्।
असौ जुष्टस्ततस्तेन ह्यमृतत्वाय कल्पते॥ ७

पशु भी कर्ता होता है, किंतु वह ईश्वरकी प्रेरणासे ही होता है, उसका यह कर्तृत्व [दूसरेके आश्रयसे] अन्धेके चलनेके समान भ्रमात्मक होता है। यह जीव जब अपनेको प्रेरक ईश्वरसे भिन्न मानकर उसकी उपासना करता है, तब ईश्वरसे उपकृत हो जानेके कारण, वह अमृतत्वको प्राप्त कर लेता है॥ ६-७॥

पशोः पाशस्य पत्युश्च तत्त्वतोऽस्ति पदं परम्।
ब्रह्मवित् तद्विदित्वैव योनिमुक्तो भविष्यति॥ ८

संयुक्तमेतद् द्वितयं क्षरमक्षरमेव च।
व्यक्ताव्यक्तं बिभर्तीशो विश्वं विश्वविमोचकः॥ ९

पशु, पाश और पतिका जो वास्तवमें पृथक्-पृथक् स्वरूप है, उसे जानकर ही ब्रह्मवेत्ता पुरुष योनिसे मुक्त होता है। क्षर और अक्षर—ये दोनों एक-दूसरेसे संयुक्त होते हैं। पति या महेश्वर ही व्यक्ताव्यक्त जगत्का भरण-पोषण करते हैं। वे ही जगत्को बन्धनसे छुड़ानेवाले हैं॥ ८-९॥

भोक्ता भोग्यं प्रेरयिता मंतव्यं त्रिविधं स्मृतम्।
नातः परं विजानद्भिर्वेदितव्यं हि किञ्चन॥ १०

भोक्ता, भोग्य और प्रेरक—ये तीन ही तत्त्व जाननेयोग्य हैं। विज्ञ पुरुषोंके लिये इनसे भिन्न दूसरी कोई वस्तु जाननेयोग्य नहीं है॥ १०॥

तिलेषु वा यथा तैलं दध्नि वा सर्पिरर्पितम्।
यथापः स्रोतसि व्याप्ता यथारण्यां हुताशनः॥ ११
एवमेव महात्मानमात्मन्यात्मविलक्षणम्।
सत्येन तपसा चैव नित्ययुक्तोऽनुपश्यति॥ १२

जिस प्रकार तिलमें तेल, दहीमें घृत, स्रोतमें जल तथा अरणिमें अग्नि व्याप्त रहती है, उसी प्रकार विलक्षण महान् आत्माको सत्य एवं तपसे नित्ययुक्त व्यक्ति अपनेमें सतत देखता है॥ ११-१२॥

य एको जालवानीश ईशानीभिः स्वशक्तिभिः।
सर्वांल्लोकानिमान् कृत्वा एक एव स ईशते॥ १३

इन्द्रजालके समान एक ही ईश्वर वशमें करनेवाली अपनी माया शक्तियोंसे इन सभी लोकोंको वशमें करके अपना ऐश्वर्य-विस्तार करता है॥ १३॥

एक एव सदा रुद्रो न द्वितीयोऽस्ति कश्चन।
संसृज्य विश्वभुवनं गोप्ता ते संचुकोच यः॥ १४

विश्वतश्चक्षुरेवायमुतायं विश्वतोमुखः।
तथैव विश्वतोबाहुर्विश्वतः पादसंयुतः॥ १५

सृष्टिके आरम्भमें एक ही रुद्रदेव विद्यमान रहते हैं, दूसरा कोई नहीं होता। वे ही इस जगत्की सृष्टि करके इसकी रक्षा करते हैं और अन्तमें सबका संहार कर डालते हैं। उनके सब ओर नेत्र हैं, सब ओर मुख हैं, सब ओर भुजाएँ हैं और सब ओर चरण हैं॥ १४-१५॥

द्यावाभूमी च जनयन् देव एको महेश्वरः।
स एव सर्वदेवानां प्रभवश्चोद्भवस्तथा॥ १६

वे ही एक महेश्वर देव द्यौ तथा पृथ्वीको उत्पन्न करते हैं और वे ही सम्पूर्ण देवगणोंको उत्पन्न करते हैं तथा उनकी अभिवृद्धि करते हैं॥ १६॥

हिरण्यगर्भं देवानां प्रथमं जनयेदयम्।
विश्वस्मादधिको रुद्रो महर्षिरिति हि श्रुतिः॥ १७

वेदाहमेतं पुरुषं महान्तममृतं ध्रुवम्।

ये ही सबसे पहले देवताओंमें ब्रह्माजीको उत्पन्न करते हैं। श्रुति कहती है कि 'रुद्रदेव सबसे श्रेष्ठ महान् ऋषि हैं। मैं इन महान् अमृतस्वरूप अविनाशी पुरुष परमेश्वरको जानता हूँ। इनकी

आदित्यवर्णं तमसः परस्तात्संस्थितं प्रभुम्॥ १८

अस्मान्नास्ति परं किंचिदपरं परमात्मनः।
नाणीयोऽस्ति न च ज्यायस्तेन पूर्णमिदं जगत्॥ १९

सर्वाननशिरोग्रीवः सर्वभूतगुहाशयः।
सर्वव्यापी च भगवांस्तस्मात्सर्वगतश्शिवः॥ २०

सर्वतः पाणिपादोऽयं सर्वतोऽक्षिशिरोमुखः।
सर्वतः श्रुतिमाँल्लोके सर्वमावृत्य तिष्ठति॥ २१

सर्वेन्द्रियगुणाभासः सर्वेन्द्रियविवर्जितः।
सर्वस्य प्रभुरीशानः सर्वस्य शरणं सुहृत्॥ २२

अचक्षुरपि यः पश्यत्यकर्णोऽपि शृणोति यः।
सर्वं वेत्ति न वेत्तास्य तमाहुः पुरुषं परम्॥ २३

अणोरणीयान्महतो महीयानयमव्ययः।
गुहायां निहितश्चापि जन्तोरस्य महेश्वरः॥ २४

तमक्रतुं क्रतुप्रायं महिमातिशयान्वितम्।
धातुः प्रसादादीशानं वीतशोकः प्रपश्यति॥ २५

वेदाहमेनमजरं पुराणं सर्वगं विभुम्।
निरोधं जन्मनो यस्य वदन्ति ब्रह्मवादिनः॥ २६

एकोऽपि त्रीनिमाँल्लोकान् बहुधा शक्तियोगतः।
विदधाति विचेत्यन्ते विश्वमादौ महेश्वरः॥ २७

विश्वधात्रीत्यजाख्या च शैवी चित्राकृतिः परा।
तामजां लोहितां शुक्लां कृष्णामेकां त्वजः प्रजाम्॥ २८

जनित्रीमनुशेतेऽन्यो जुषमाणः स्वरूपिणीम्।

अंगकान्ति सूर्यके समान है। ये प्रभु अज्ञानान्धकारसे परे विराजमान हैं।' इन परमात्मासे परे दूसरी कोई वस्तु नहीं है। इनसे अत्यन्त सूक्ष्म और इनसे अधिक महान् भी कुछ नहीं है। इनसे यह सारा जगत् परिपूर्ण है॥ १७—१९॥

उन परमात्मा रुद्रके मुख, सिर और ग्रीवा सर्वत्र व्याप्त हैं, सभी प्राणियोंके हृदयस्थलमें वे स्थित हैं, वे सर्वव्यापी, सर्वगत, ऐश्वर्यशाली एवं शिवस्वरूप हैं॥ २०॥

इनके सब ओर हाथ, पैर, नेत्र, मस्तक, मुख और कान हैं। ये लोकमें सबको व्याप्त करके स्थित हैं। ये सम्पूर्ण इन्द्रियोंके विषयोंको जाननेवाले हैं, परंतु वास्तवमें सब इन्द्रियोंसे रहित हैं। सबके स्वामी, शासक, शरणदाता और सुहृद् हैं॥ २१-२२॥

ये नेत्रके बिना भी देखते हैं और कानके बिना भी सुनते हैं। ये सबको जानते हैं, किंतु इनको पूर्णरूपसे जाननेवाला कोई नहीं है। इन्हें परम पुरुष कहते हैं। ये अणुसे भी अत्यन्त अणु और महान्से भी परम महान् हैं। ये अविनाशी महेश्वर इस जीवकी हृदय-गुफामें निवास करते हैं॥ २३-२४॥

उस यज्ञरहित, यज्ञस्वरूप, अतिशय महिमावाले जगन्नियन्ता [परमात्मा]-को उसी परमात्माकी कृपासे शोकरहित हुआ पुरुष देख पाता है॥ २५॥

मैं उस जरारहित, सर्वव्यापी तथा सर्वज्ञ पुराण-पुरुषको जानता हूँ, जिसके ध्यानसे जन्म, मरणादिका निरोध हो जाता है—ऐसा ब्रह्मवेत्ता लोग कहते हैं॥ २६॥

वे अकेले महेश्वर ही सर्वप्रथम अपनी शक्तिके साथ मिलकर बहुत प्रकारसे इन तीनों लोकोंकी सृष्टि करते हैं और अन्तमें उसका संहार भी करते हैं॥ २७॥

विश्वको धारण करनेवाली वह शैवी शक्ति अजा, चित्राकृति (अद्भुत स्वरूपा) एवं परा आदि नामोंसे पुकारी जाती है। जन्मरहिता उस रक्त-श्वेत-कृष्णवर्णा (सत्त्व-रजस्तमोमयी) समष्टिरूपा, तथा प्रजाओंको उत्पन्न करनेवाली [मूल प्रकृति]-का

तामेवाजामजोऽन्यस्तु भुक्तभोगां जहाति च॥ २९

सेवन वह अजन्मा (जीवात्मा) करता है और आत्मस्वरूपमें स्थिता भुक्तभोगा उस प्रकृतिका दूसरा पुरुष (परमात्मा) त्याग कर देता है॥ २८-२९॥

द्वौ सुपर्णौ च सयुजौ समानं वृक्षमास्थितौ।
एकोऽत्ति पिप्पलं स्वादु परोऽनश्नन् प्रपश्यति॥ ३०

वृक्षेऽस्मिन् पुरुषो मग्नो मुह्यमानश्च शोचति।
जुष्टमन्यं यदा पश्येदीशं परमकारणम्॥ ३१

तदास्य महिमानं च वीतशोकः सुखी भवेत्।

एक साथ रहनेवाले दो पक्षी एक ही वृक्ष (शरीर)-का आश्रय लेकर रहते हैं। उनमेंसे एक तो उस वृक्षके कर्मरूप फलोंका स्वाद ले-लेकर उपभोग करता है, किंतु दूसरा उस वृक्षके फलका उपभोग न करता हुआ केवल देखता रहता है। जीवात्मा इस वृक्षके प्रति आसक्तिमें डूबा हुआ है, अतः मोहित होकर शोक करता रहता है। वह जब कभी भगवत्कृपासे भक्तसेवित परम कारणरूप परमेश्वरका और उनकी महिमाका साक्षात्कार कर लेता है, तब शोकरहित हो सुखी हो जाता है॥ ३०-३१½॥

छन्दांसि यज्ञाः क्रतवो यद्भूतं भव्यमेव च॥ ३२

मायी विश्वं सृजत्यस्मिन्निविष्टो मायया परः।
मायां तु प्रकृतिं विद्यान्मायिनं तु महेश्वरम्॥ ३३

छन्द, यज्ञ, क्रतु तथा भूत, वर्तमान और भविष्य सम्पूर्ण विश्वको वह मायावी रचता है और मायासे ही उसमें प्रविष्ट होकर रहता है। प्रकृतिको ही माया समझना चाहिये और महेश्वर ही वह मायावी है॥ ३२-३३॥

तस्यास्त्ववयवैरेव व्याप्तं सर्वमिदं जगत्।
सूक्ष्मातिसूक्ष्ममीशानं कललस्यापि मध्यतः॥ ३४

स्रष्टारमपि विश्वस्य चेष्टितारं च तस्य तु।
शिवमेवेश्वरं ज्ञात्वा शांतिमत्यंतमृच्छति॥ ३५

उस प्रकृतिके अवयवोंसे यह सम्पूर्ण जगत् व्याप्त है। [गर्भाशयके] मध्यमें स्थित कललमें विद्यमान बीजसे भी अधिक परमात्मा सूक्ष्म है। उस मंगलमय परमेश्वरको इस विश्वका स्रष्टा एवं परिचालक जानकर [साधक] परमशक्ति प्राप्त कर लेता है॥ ३४-३५॥

स एव कालो गोप्ता च विश्वस्याधिपतिः प्रभुः।
तं विश्वाधिपतिं ज्ञात्वा मृत्युपाशात्प्रमुच्यते॥ ३६

घृतात्परं मंडमिव सूक्ष्मं ज्ञात्वा स्थितं प्रभुम्।
सर्वभूतेषु गूढं च सर्वपापैः प्रमुच्यते॥ ३७

वह परमेश्वर ही कालस्वरूप, रक्षक एवं विश्वका अधिपति है। उस विश्वाधिपतिको जानकर जीव कालपाशसे छुटकारा पा जाता है। घृतमें मण्डकी भाँति सूक्ष्म एवं सारे प्राणियोंके भीतर निगूढ़भावसे विद्यमान प्रभुको जानकर मनुष्य सभी पापोंसे छूट जाता है॥ ३६-३७॥

एष एव परो देवो विश्वकर्मा महेश्वरः।
हृदये संनिविष्टं तं ज्ञात्वैवामृतमश्नुते॥ ३८

ये विश्वकर्मा महेश्वर ही परम देवता परमात्मा हैं, जो सबके हृदयमें विराजमान हैं। उन्हें जानकर ही पुरुष परमानन्दमय अमृतका अनुभव करता है॥ ३८॥

यदा समस्तं न दिवा न रात्रिर्न सदप्यसत्।
केवलश्शिव एवैको यतः प्रज्ञा पुरातनी॥ ३९

जब दिन-रात, सत्-असत् कुछ भी—यह समस्त [जगत्प्रपंच] नहीं था, तब केवल एकमात्र शिव ही विद्यमान थे, उन्हींसे यह शाश्वती प्रज्ञा उत्पन्न होती

नैनमूर्ध्वं न तिर्यक्च न मध्यं पर्यजिग्रहत्।
न तस्य प्रतिमा चास्ति यस्य नाम महद्यशः॥ ४०

अजातमिममेवैकं बुद्ध्वा जन्मनि भीरवः।
रुद्रस्यास्य प्रपद्यन्ते रक्षार्थं दक्षिणं मुखम्॥ ४१

है। ऊँचे, नीचे, तिरछे तथा मध्यमें कोई भी उन्हें पकड़ नहीं सकता। वे महान् यशवाले हैं तथा उनकी कोई तुलना नहीं है। जन्म [मृत्यु]-के भयसे आक्रान्त पुरुष उन अजन्मा तथा अद्वितीय भगवान् रुद्रको [तत्त्वतः] जानकर रक्षाके लिये उनके कल्याणमय स्वरूपकी शरण ग्रहण कर लेते हैं॥ ३९—४१॥

द्वे अक्षरे ब्रह्मपरे त्वनन्ते समुदाहृते।
विद्याविद्ये समाख्याते निहिते यत्र गूढवत्॥ ४२

क्षरं त्वविद्या ह्यमृतं विद्येति परिगीयते।
ते उभे ईशते यस्तु सोऽन्यः खलु महेश्वरः॥ ४३

ब्रह्मासे भी श्रेष्ठ, असीम एवं अविनाशी परमात्मामें विद्या और अविद्या दोनों गूढ़भावसे स्थित हैं। विनाशशील जडवर्गको ही यहाँ अविद्या कहा गया है और अविनाशी जीवको विद्या नाम दिया गया है; जो उन दोनों विद्या और अविद्यापर शासन करते हैं, वे महेश्वर उनसे सर्वथा भिन्न—विलक्षण हैं॥ ४२-४३॥

एकैकं बहुधा जालं विकुर्वन्नेकवच्च यः।
सर्वाधिपत्यं कुरुते सृष्ट्वा सर्वान् प्रतापवान्॥ ४४

दिश ऊर्ध्वमधस्तिर्यक् भासयन् भ्राजते स्वयम्।
यो निःस्वभावादप्येको वरेण्यस्त्वधितिष्ठति॥ ४५

ये प्रतापी महेश्वर इस जगत्में समष्टिभूत और इन्द्रिय-वर्गरूप एक-एक जालको अनेक प्रकारसे रचकर इसका विस्तार करते हैं। फिर अन्तमें संहार करके सबको अनेकसे एकमें परिणत कर देते हैं तथा पुनः सृष्टिकालमें सबकी पूर्ववत् रचना करके सबपर आधिपत्य करते हैं। जैसे सूर्य अकेला ही ऊपर-नीचे तथा अगल-बगलकी दिशाओंको प्रकाशित करता हुआ स्वयं भी देदीप्यमान होता है, उसी प्रकार ये भजनीय परमेश्वर अकेले ही समस्त कारणरूप पृथ्वी आदि तत्त्वोंका नियमन करते हैं॥ ४४-४५॥

स्वभावं वाचकान् सर्वान् वाच्यांश्च परिणामयन्।
गुणांश्च भोग्यभोक्तृत्वे तद्विश्वमधितिष्ठति॥ ४६

वे ही वस्तुस्वरूप वाच्य एवं वाचकको [जगद्रूपमें परिणमित करते हुए] और गुणोंको भोक्ता तथा भोग्यके रूपमें परिणमित करते हुए संसारमें अधिष्ठित हैं॥ ४६॥

तं वै गुह्योपनिषदि गूढं ब्रह्म परात्परम्।
ब्रह्मयोनिं जगत्पूर्वं विदुर्देवा महर्षयः॥ ४७

गुह्य उपनिषदोंमें गूढ़ रूपसे प्रतिपाद्य जगत्कर्ता तथा ब्रह्माजीको भी उत्पन्न करनेवाले उस परात्पर ब्रह्मको पहले देवगणों एवं महर्षियोंने जाना था॥ ४७॥

भावग्राह्यमनीहाख्यं भावाभावकरं शिवम्।
कलासर्गकरं देवं ये विदुस्ते जहुस्तनुम्॥ ४८

श्रद्धा और भक्तिभावसे प्राप्त होनेयोग्य, आश्रयरहित कहे जानेवाले, जगत्की उत्पत्ति और संहार करनेवाले, कल्याण-स्वरूप एवं सोलह कलाओंकी रचना करनेवाले उन महादेवको जो जानते हैं, वे शरीरके बन्धनको सदाके लिये त्याग देते हैं अर्थात् जन्म-मृत्युके चक्करसे छूट जाते हैं। मोहमें पड़े हुए

स्वभावमेके मन्यन्ते कालमेके विमोहिताः।

देवस्य महिमा ह्येष येनेदं भ्राम्यते जगत्॥ ४९

कुछ लोग उन्हें स्वभाव और कुछ लोग काल मानते हैं, यह उन परमात्माकी महिमा ही है, जिससे यह संसार भ्रमित है॥ ४८-४९॥

येनेदमावृतं नित्यं कालकालात्मना यतः।
तेनेरितमिदं कर्म भूतैः सह विवर्तते॥ ५०

कालके भी कालस्वरूप जिन परमात्माने सारे जगत्को आवृत कर रखा है, उन्हींसे प्रेरित यह कर्म प्राणियोंके साथ प्रवृत्त होता है॥ ५०॥

तत्कर्म भूयशः कृत्वा विनिवर्त्य च भूयशः।
तत्त्वस्य सह सत्त्वेन योगं चापि समेत्य वै॥ ५१

अष्टाभिश्च त्रिभिश्चैव द्वाभ्यां चैकेन वा पुनः।
कालेनात्मगुणैश्चापि कृत्स्नमेव जगत् स्वयम्॥ ५२

गुणैरारभ्य कर्माणि स्वभावादीनि योजयेत्।
तेषामभावे नाशः स्यात्कृतस्यापि च कर्मणः॥ ५३

कर्मक्षये पुनश्चान्यत्ततो याति स तत्त्वतः।
स एवादिः स्वयं योगनिमित्तं भोक्तृभोगयोः॥ ५४

वे परमात्मा [कला आदि] तत्त्वोंका सत्त्व [आदि गुणों]-के साथ योग करके बारम्बार नानाविध कर्मोंको सम्पन्नकर उनसे विनिवृत्त हो जाते हैं। [आकाश आदि] आठ मूर्तियों, [सत्त्वादि] तीनों गुणों, [विद्या-अविद्या] दोनों शक्तियों अथवा एकमात्र [मूल-प्रकृति] काल तथा [इच्छा आदि] आत्मगुणोंके द्वारा यह समस्त विश्व अभिव्याप्त है। [वह परमात्मा सत्त्वादि] गुणोंके द्वारा कर्मोंकी परिकल्पनाकर उनसे स्वभाव आदिका योग करता है। उन [गुण एवं स्वाभावादिका]-का अभाव होनेपर किये गये कर्मका भी नाश हो जाता है। [प्राणियोंके] कर्मका क्षय होनेपर [परमेश्वर] पुनः अन्य [कर्म, स्वभावादि]-की प्राप्ति कराता है। वह आदिपुरुष परमात्मा ही भोक्ता और भोगके [पारस्परिक] संयोगमें निमित्त बनता है॥ ५१—५४॥

परस्त्रिकालादकलः स एव परमेश्वरः।
सर्ववित् त्रिगुणाधीशो ब्रह्म साक्षात् परात्परः॥ ५५

तं विश्वरूपमभवं भवमीड्यं प्रजापतिम्।
देवदेवं जगत्पूज्यं स्वचित्तस्थमुपास्महे॥ ५६

वे ही परमेश्वर तीनों कालोंसे परे, निष्कल, सर्वज्ञ, त्रिगुणाधीश्वर एवं साक्षात् परात्पर ब्रह्म हैं। सम्पूर्ण विश्व उन्हींका रूप है। वे सबकी उत्पत्तिके कारण होकर भी स्वयं अजन्मा हैं, स्तुतिके योग्य हैं, प्रजाओंके पालक, देवताओंके भी देवता और सम्पूर्ण जगत्के लिये पूजनीय हैं। अपने हृदयमें विराजमान उन परमेश्वरकी हम उपासना करते हैं॥ ५५-५६॥

कालादिभिः परो यस्मात् प्रपञ्चः परिवर्तते।
धर्मावहं पापनुदं भोगेशं विश्वधाम च॥ ५७

तमीश्वराणां परमं महेश्वरं
तं देवतानां परमं च दैवतम्।
पतिं पतीनां परमं परस्ताद्
विदाम देवं भुवनेश्वरेश्वरम्॥ ५८

जो काल आदिसे परे हैं, जिनसे यह समस्त प्रपंच प्रकट होता है, जो धर्मके पालक, पापके नाशक, भोगोंके स्वामी तथा सम्पूर्ण विश्वके धाम हैं, जो ईश्वरोंके भी परम महेश्वर, देवताओंके भी परम देवता तथा पतियोंके भी परम पति हैं, उन भुवनेश्वरोंके भी ईश्वर महादेवको हम सबसे परे जानते हैं॥ ५७-५८॥

न तस्य विद्यते कार्यं कारणं च न विद्यते।
न तत्समोऽधिकश्चापि क्वचिज्जगति दृश्यते॥ ५९

परास्य विविधा शक्तिः श्रुतौ स्वाभाविकी श्रुता।
ज्ञानं बलं क्रियां चैव याभ्यो विश्वमिदं कृतम्॥ ६०

उनके शरीररूप कार्य और इन्द्रिय तथा मनरूपी करण नहीं हैं, उनके समान और उनसे अधिक भी इस जगत्‌में कोई नहीं दिखायी देता। ज्ञान, बल और क्रियारूप उनकी स्वाभाविक पराशक्ति वेदोंमें नाना प्रकारकी सुनी गयी है। उन्हीं शक्तियोंसे इस सम्पूर्ण विश्वकी रचना हुई है॥ ५९-६०॥

न तस्यास्ति पतिः कश्चिन्नैव लिङ्गं न चेशिता।
कारणं कारणानां च स तेषामधिपाधिपः॥ ६१

न चास्य जनिता कश्चिन्न च जन्म कुतश्चन।
न जन्महेतवस्तद्वन्मलमायादिसंज्ञकाः॥ ६२

स एकः सर्वभूतेषु गूढो व्याप्तश्च विश्वतः।
सर्वभूतान्तरात्मा च धर्माध्यक्षः स कथ्यते॥ ६३

उसका न कोई स्वामी है, न कोई निश्चित चिह्न है, न उसपर किसीका शासन है। वह समस्त कारणोंका कारण होता हुआ ही उनका अधीश्वर भी है। उनका न कोई जन्मदाता है, न जन्म है, न जन्मके माया-मलादि हेतु ही हैं। वह एक ही सम्पूर्ण विश्वमें, समस्त भूतोंमें गुह्यरूपसे व्याप्त है। वही सब भूतोंका अन्तरात्मा और धर्माध्यक्ष कहलाता है॥ ६१—६३॥

सर्वभूताधिवासश्च साक्षी चेता च निर्गुणः।
एको वशी निष्क्रियाणां बहूनां विवशात्मनाम्॥ ६४

नित्यानामप्यसौ नित्यश्चेतनानां च चेतनः।
एको बहूनां चाकामः कामानीशः प्रयच्छति॥ ६५

वह सब भूतोंके अंदर बसा हुआ, [सबका द्रष्टा] साक्षी, चेतन और निर्गुण है। वह एक है, वशी है, अनेकों विवशात्मा निष्क्रिय पुरुषोंको वशमें रखनेवाला है। वह नित्योंका नित्य, चेतनोंका चेतन है। वह एक है, कामनारहित है और बहुतोंकी कामना पूर्ण करनेवाला ईश्वर है॥ ६४-६५॥

सांख्ययोगाधिगम्यं यत् कारणं जगतां पतिम्।
ज्ञात्वा देवं पशुः पाशैः सर्वैरेव विमुच्यते॥ ६६

विश्वकृद् विश्ववित् स्वात्मयोनिज्ञः कालकृद् गुणी।
प्रधानः क्षेत्रज्ञपतिर्गुणेशः पाशमोचकः॥ ६७

सांख्य और योग अर्थात् ज्ञानयोग और निष्काम कर्मयोगसे प्राप्त करनेयोग्य सबके कारणरूप उन जगदीश्वर परमदेवको जानकर जीव सम्पूर्ण पाशों (बन्धनों)-से मुक्त हो जाता है। वे सम्पूर्ण विश्वके स्रष्टा, सर्वज्ञ, स्वयं ही अपने प्राकट्यके हेतु, ज्ञानस्वरूप, कालके भी स्रष्टा, सम्पूर्ण दिव्य गुणोंसे सम्पन्न, प्रकृति और जीवात्माके स्वामी, समस्त गुणोंके शासक तथा संसार-बन्धनसे छुड़ानेवाले हैं॥ ६६-६७॥

ब्रह्माणं विदधे पूर्वं वेदांश्चोपादिशत्स्वयम्।
यो देवस्तमहं बुद्ध्वा स्वात्मबुद्धिप्रसादतः॥ ६८

मुमुक्षुरस्मात् संसारात् प्रपद्ये शरणं शिवम्।

जिन परमदेवने सबसे पहले ब्रह्माजीको उत्पन्न किया और स्वयं उन्हें वेदोंका ज्ञान दिया, अपने स्वरूपविषयक बुद्धिको प्रसन्न (निर्मल) करनेवाले उन परमेश्वर शिवको जानकर मैं इस संसारबन्धनसे छूटनेके लिये उनकी शरणमें जाता हूँ॥ ६८ १/२॥

निष्कलं निष्क्रियं शांतं निरवद्यं निरंजनम्॥ ६९

अमृतस्य परं सेतुं दग्धेन्धनमिवानलम्॥ ७०

निष्कल, निष्क्रिय, शान्त, निष्कलंक, निरंजन, अमृत-स्वरूप मोक्षके परमसेतु तथा काष्ठके दग्ध हो जानेपर देदीप्यमान होनेवाली अग्निके समान निर्विकार [परमेश्वर शिवकी मैं शरण ग्रहण करता हूँ]॥ ६९-७०॥

यदा चर्मवदाकाशं वेष्टयिष्यन्ति मानवाः।
तदा शिवमविज्ञाय दुःखस्यान्तो भविष्यति॥ ७१

यदि कोई आकाशको चमड़ेके समान [अपने शरीरमें] लपेट ले, तब वह शिवको बिना जाने अपना दुःख दूर कर सकता है अर्थात् शिवके ज्ञानके बिना दुःखका अन्त असम्भव है॥ ७१॥

तपःप्रभावाद्देवस्य प्रसादाच्च महर्षयः।
आत्माश्रमोचितज्ञानं पवित्रं पापनाशनम्॥ ७२
वेदान्ते परमं गुह्यं पुरा कल्पप्रचोदितम्।
ब्रह्मणो वदनाल्लब्धं मयेदं भाग्यगौरवात्॥ ७३

हे महर्षियो! अपनी तपस्याके प्रभाव और शिवके अनुग्रहसे संन्यासाश्रमोचित, पापनाशक, पवित्र, वेदान्तमें परम गुप्त और पूर्वकल्पमें कहे गये इस ज्ञानको मैंने अपने भाग्यके प्रभावसे ब्रह्माजीके मुखसे प्राप्त किया है॥ ७२-७३॥

नाप्रशांताय दातव्यमेतज्ज्ञानमनुत्तमम्।
न पुत्रायासुवृत्ताय नाशिष्याय च सर्वथा॥ ७४

यह श्रेष्ठ ज्ञान न अस्थिर चित्तवाले व्यक्तिको, न सदाचारविहीन पुत्रको तथा न तो अयोग्य शिष्यको ही देना चाहिये॥ ७४॥

यस्य देवे परा भक्तिर्यथा देवे तथा गुरौ।
तस्यैते कथिता ह्यर्थाः प्रकाशन्ते महात्मनः॥ ७५

अतश्च संक्षेपमिदं शृणुध्वं
शिवः परस्तात्प्रकृतेश्च पुंसः।
स सर्गकाले च करोति सर्वं
संहारकाले पुनराददाति॥ ७६

जिनकी परमदेव परमेश्वरमें परम भक्ति है, जैसे परमेश्वरमें है, वैसे ही गुरुमें भी है, उस महात्मा पुरुषके हृदयमें ही ये बताये हुए रहस्यमय अर्थ प्रकाशित होते हैं। अतः संक्षेपसे यह सिद्धान्तकी बात सुनो। भगवान् शिव प्रकृति और पुरुषसे परे हैं। वे ही सृष्टिकालमें जगत्को रचते और संहारकालमें पुनः सबको आत्मसात् कर लेते हैं॥ ७५-७६॥

इति श्रीशिवमहापुराणे सप्तम्यां वायवीयसंहितायां पूर्वखण्डे शिवतत्त्वज्ञानवर्णनं नाम षष्ठोऽध्यायः॥ ६॥

॥ इस प्रकार श्रीशिवमहापुराणके अन्तर्गत सातवीं वायवीयसंहिताके पूर्वखण्डमें शिवतत्त्वज्ञानवर्णन नामक छठा अध्याय पूर्ण हुआ॥ ६॥

अथ सप्तमोऽध्यायः

कालकी महिमाका वर्णन

मुनय ऊचुः

कालादुत्पद्यते सर्वं कालादेव विपद्यते।
न कालनिरपेक्षं हि क्वचित्किंचन विद्यते॥ १

मुनिगण बोले—कालसे ही सब कुछ उत्पन्न होता है और कालसे ही सब कुछ नष्ट हो जाता है। कालके बिना कहीं कुछ भी नहीं होता है॥ १॥

यदास्यान्तर्गतं विश्वं शश्वत्संसारमण्डलम्।
सर्गसंहृतिमुद्राभ्यां चक्रवत्परिवर्तते॥ २

यह सारा संसारमण्डल कालके मुखमें वर्तमान रहकर उत्पत्ति तथा प्रलयरूप लक्षणोंसे लक्षित चक्रकी भाँति निरन्तर घूमता रहता है॥ २॥

ब्रह्मा हरिश्च रुद्रश्च तथान्ये च सुरासुराः।
यत्कृतां नियतिं प्राप्य प्रभवो नातिवर्तितुम्॥ ३

ब्रह्मा, विष्णु, रुद्र तथा अन्य देवता एवं असुर जिसके द्वारा बनाये गये नियमको प्राप्तकर उसका उल्लंघन करनेमें सर्वथा असमर्थ हैं, अत्यन्त

भूतभव्यभविष्याद्यैर्विभज्य जरयन् प्रजाः।

भयानक वह काल भूत, भविष्य, वर्तमान आदि रूपोंमें

अतिप्रभुरिति स्वैरं वर्ततेऽतिभयंकरः॥ ४

अपनेको विभक्तकर प्रजाओंको क्षीण करता हुआ सर्वसमर्थ होकर स्वच्छन्दतापूर्वक व्यवहार करता रहता है॥ ३-४॥

क एष भगवान् कालः कस्य वा वशवर्त्ययम्।
क एवास्य वशे न स्यात्कथयैतद्विचक्षण॥ ५

यह भगवत्स्वरूप काल कौन है, यह किसके अधीन रहनेवाला है और कौन इसके वशमें नहीं है? हे विचक्षण! इसे बताइये॥ ५॥

वायुरुवाच

कलाकाष्ठानिमेषादिकलाकलितविग्रहम् ।
कालात्मेति समाख्यातं तेजो माहेश्वरं परम्॥ ६

यदलङ्घ्यमशेषस्य स्थावरस्य चरस्य च।
नियोगरूपमीशस्य बलं विश्वनियामकम्॥ ७

वायु बोले—कला, काष्ठा, निमेष आदि इकाइयोंसे घटित मूर्तस्वरूप धारण करनेवाला महेश्वरका परम तेज ही कालात्मा कहा गया है, जिसका उल्लंघन समस्त स्थावर तथा जंगम रूपवाला कोई भी [प्राणी] नहीं कर सकता। वह ईश्वरका आदेशरूप है और विश्वको अपने वशमें रखनेवाला ईश्वरका [साक्षात्] बल है॥ ६-७॥

तस्यांशांशमयी शक्तिः कालात्मनि महात्मनि।
ततो निष्क्रम्य संक्रांता विसृष्टाग्नेरिवायसि॥ ८

तस्मात्कालवशे विश्वं न स विश्ववशे स्थितः।
शिवस्य तु वशे कालो न कालस्य वशे शिवः॥ ९

यतोऽप्रतिहतं शार्वं तेजः काले प्रतिष्ठितम्।
महती तेन कालस्य मर्यादा हि दुरत्यया॥ १०

उन परमेश्वरकी अंशांशरूपा शक्ति उनसे निकलकर महिमामय कालात्मामें उसी प्रकार संक्रान्त हो गयी है, जिस प्रकार दाहिका शक्ति अग्निसे निकलकर लोहेमें संक्रान्त हो जाती है। इसलिये सम्पूर्ण जगत् तो कालके वशमें है, पर काल विश्वके वशमें नहीं है और वह काल शिवके वशमें है, किंतु शिव कालके वशमें नहीं हैं। शिवजीका अप्रतिहत तेज कालमें सन्निविष्ट है, इसलिये कालकी महान् मर्यादा मिटायी नहीं जा सकती॥ ८—१०॥

कालं प्रज्ञाविशेषेण कोऽतिवर्तितुमर्हति।
कालेन तु कृतं कर्म न कश्चिदतिवर्तते॥ ११

अपनी विशिष्ट बुद्धिसे भी भला कौन कालका अतिक्रमण करनेमें समर्थ है। कोई भी कालके द्वारा किये गये कर्मको नहीं मिटा सकता है॥ ११॥

एकच्छत्रां महीं कृत्स्नां ये पराक्रम्य शासति।
तेऽपि नैवातिवर्तन्ते कालं वेलामिवाब्धयः॥ १२

जो पराक्रम करके सम्पूर्ण पृथ्वीपर एकछत्र शासन करते हैं, वे भी कालकी मर्यादाको नहीं मिटा सकते, जैसे तटकी मर्यादाको सागर नहीं मिटा सकते॥ १२॥

ये निगृह्येन्द्रियग्रामं जयन्ति सकलं जगत्।
न जयन्त्यपि ते कालं कालो जयति तानपि॥ १३

आयुर्वेदविदो वैद्याः त्वनुष्ठितरसायनाः।
न मृत्युमतिवर्तन्ते कालो हि दुरतिक्रमः॥ १४

जो लोग इन्द्रियोंको वशमें करके सारे संसारको जीत लेते हैं, वे भी कालको नहीं जीत पाते, अपितु काल ही उन्हें जीत लेता है। आयुर्वेदके ज्ञाता और रसायनका प्रयोग करनेवाले वैद्य भी मृत्युको नहीं टाल सकते हैं; क्योंकि काल दुरतिक्रम है॥ १३-१४॥

श्रिया रूपेण शीलेन बलेन च कुलेन च।
अन्यच्चिन्तयते जंतुः कालोऽन्यत्कुरुते बलात्॥ १५

श्री (धन), रूप, शील, बल और कुलके द्वारा [समृद्ध] प्राणी कुछ और सोचता है, किंतु काल बलपूर्वक कुछ और ही कर देता है॥ १५॥

अप्रियैश्च प्रियैश्चैव ह्यचिन्तितसमागमैः।
संयोजयति भूतानि वियोजयति चेश्वरः॥ १६

वह सामर्थ्यशाली काल प्रिय और अप्रिय घटनाओंके अकल्पित समागमके द्वारा कभी प्राणियोंका संयोग और कभी वियोग प्राप्त कराता रहता है॥ १६॥

यदैव दुःखितः कश्चित्तदैव सुखितः परः।
दुर्विज्ञेयस्वभावस्य कालस्याहो विचित्रता॥ १७

जिस समय कोई दुखी रहता है, उसी समय कोई दूसरा सुखी रहता है। अहो! कठिनतासे जाननेयोग्य स्वभाववाले कालकी कैसी विचित्रता है!॥ १७॥

यो युवा स भवेद् वृद्धो यो बलीयान्स दुर्बलः।
यः श्रीमान्सोऽपि निःश्रीकः कालश्चित्रगतिर्द्विजाः॥ १८

नाभिजात्यं न वै शीलं न बलं न च नैपुणम्।
भवेत्कार्याय पर्याप्तं कालश्चेत् प्रतिरोधकः॥ १९

जो युवा है, वह वृद्ध हो जाता है, जो बलवान् है, वह दुर्बल हो जाता है और जो श्रीसम्पन्न है, वह निर्धन भी हो सकता है। हे ब्राह्मणो! कालकी गति बड़ी विचित्र है। कालके प्रतिकूल होनेपर कुलीनता, शील, सामर्थ्य तथा कुशलता—ये कोई भी गुण कार्यसिद्धिमें सफलता नहीं दे पाते॥ १८-१९॥

ये सनाथाश्च दातारो गीतवाद्यैरुपस्थिताः।
ये चानाथाः परान्नादाः कालस्तेषु समक्रियः॥ २०

जो प्राणी सनाथ हैं, दानशील हैं और जिनका मनोरंजन गीत-वाद्यादिके द्वारा किया जाता है, वे लोग और जो अनाथ हैं तथा दूसरोंके द्वारा दिये गये अन्नका भोजन करते हैं—उन सभीके प्रति काल समान व्यवहारवाला होता है॥ २०॥

फलन्त्यकाले न रसायनानि
सम्यक् प्रयुक्तान्यपि चौषधानि।
तान्येव कालेन समाहृतानि
सिद्धिं प्रयान्त्याशु सुखं दिशन्ति॥ २१
नाकालतोऽयं म्रियते जायते वा
नाकालतः पुष्टिमग्र्यामुपैति।
नाकालतः सुखितं दुःखितं वा
नाकालिकं वस्तु समस्ति किंचित्॥ २२

असमयमें अच्छी तरहसे प्रयोगमें लाये गये रसायन तथा औषध कारगर नहीं होते हैं, किंतु समयसे दिये जानेपर वे ही सफल होते हैं तथा सुख प्रदान करते हैं। यह जीव बिना समयके न मरता है, न जन्म ही लेता है और न उत्तम पोषण ही प्राप्त करता है। बिना कालके कोई सुखी अथवा दुखी भी नहीं होता है। [इस संसारमें] कोई वस्तु ऐसी नहीं है, जो अकालिक हो॥ २१-२२॥

कालेन शीतः प्रतिवाति वातः
कालेन वृष्टिर्जलदानुपैति।
कालेन चोष्मा प्रशमं प्रयाति
कालेन सर्वं सफलत्वमेति॥ २३

समयसे ही ठण्डी हवा चलती है, समयसे ही मेघोंसे वर्षा होती है और समयसे ही गर्मी शान्त होती है, कालसे ही सब कुछ सफल होता है॥ २३॥

कालश्च सर्वस्य भवस्य हेतुः
कालेन सस्यानि भवंति नित्यम्।
कालेन सस्यानि लयं प्रयांति
कालेन संजीवति जीवलोकः॥ २४

काल ही सभीकी उत्पत्तिका कारण है। समयपर ही फसलें होती हैं और समयपर ही फसलें कटती हैं, कालसे ही सब लोग जीवित रहते हैं॥ २४॥

इत्थं कालात्मनस्तत्त्वं यो विजानाति तत्त्वतः।
कालात्मानमतिक्रम्य कालातीतं स पश्यति॥ २५

इस प्रकार जो कालात्माके तात्त्विक स्वरूपको यथार्थरूपसे जानता है, वह कालात्माका अतिक्रमणकर कालसे परे निर्गुण परमेश्वरका दर्शन कर लेता है॥ २५॥

न यस्य कालो न च बंधमुक्ती
न यः पुमान्न प्रकृतिर्न विश्वम्।
विचित्ररूपाय शिवाय तस्मै
नमः परस्मै परमेश्वराय॥ २६

जिसका न काल है, न बन्धन है और न मुक्ति है; जो न पुरुष है, न प्रकृति है तथा न विश्व है—उस विचित्र रूपवाले परात्पर परमेश्वर शिवको नमस्कार है॥ २६॥

इति श्रीशिवमहापुराणे सप्तम्यां वायवीयसंहितायां पूर्वखण्डे कालमहिमवर्णनं नाम सप्तमोऽध्यायः॥ ७॥

॥ इस प्रकार श्रीशिवमहापुराणके अन्तर्गत सातवीं वायवीयसंहिताके पूर्वखण्डमें कालमहिमवर्णन नामक सातवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ ७॥

अथाष्टमोऽध्यायः

कालका परिमाण एवं त्रिदेवोंके आयुमानका वर्णन

ऋषय ऊचुः

केन मानेन कालेऽस्मिन्नायुःसंख्या प्रकल्प्यते।
संख्यारूपस्य कालस्य कः पुनः परमोऽवधिः॥ १

ऋषिगण बोले—इस कालमें किस प्रमाणके द्वारा आयु-गणनाकी कल्पना की जाती है और संख्यारूप कालकी परम अवधि क्या है?॥ १॥

वायुरुवाच

आयुषोऽत्र निमेषाख्यमाद्यमानं प्रचक्षते।
संख्यारूपस्य कालस्य शान्त्यतीतकलावधिः॥ २
अक्षिपक्ष्मपरिक्षेपो निमेषः परिकल्पितः।
तादृशानां निमेषाणां काष्ठा दश च पञ्च च॥ ३

वायुदेव बोले—आयुका पहला मान निमेष कहा जाता है। संख्यारूप कालकी शान्त्यतीत कला चरम सीमा है। पलक गिरनेमें जो समय लगता है, उसे ही निमेष कहा गया है। उस प्रकारके पन्द्रह निमेषोंकी एक काष्ठा होती है॥ २-३॥

काष्ठास्त्रिंशत्कला नाम कलास्त्रिंशन्मुहूर्तकः।
मुहूर्त्तानामपि त्रिंशदहोरात्रं प्रचक्षते॥ ४
त्रिंशत्संख्यैरहोरात्रैर्मासः पक्षद्वयात्मकः॥ ५
ज्ञेयं पित्र्यमहोरात्रं मासः कृष्णसितात्मकः॥ ६

तीस काष्ठाओंकी एक कला, तीस कलाओंका एक मुहूर्त और तीस मुहूर्तोंका एक अहोरात्र कहा जाता है। मास तीस दिन-रातका तथा दो पक्षोंवाला होता है। एक मासके बराबर पितरोंका एक अहोरात्र होता है, जिसमें रात्रि कृष्णपक्ष और दिन शुक्लपक्ष माना जाता है॥ ४—६॥

मासैस्तैरयनं षड्भिर्वर्षं द्वे चायनं मतम्।
लौकिकेनैव मानेन ह्यब्दो यो मानुषः स्मृतः॥ ७
एतद्दिव्यमहोरात्रमिति शास्त्रस्य निश्चयः।
दक्षिणं चायनं रात्रिस्तथोदगयनं दिनम्॥ ८

छः महीनोंका एक अयन होता है। दो अयनोंका एक वर्ष माना गया है, जिसे लौकिक मानसे मनुष्योंका वर्ष कहा जाता है। यही एक वर्ष देवताओंका एक अहोरात्र होता है—ऐसा शास्त्रका निश्चय है। दक्षिणायन देवताओंकी रात्रि एवं उत्तरायण दिन होता है॥ ७-८॥

मासस्त्रिंशदहोरात्रैर्दिव्यो मानुषवत्स्मृतः।
संवत्सरोऽपि देवानां मासैर्द्वादशभिस्तथा॥ ९

त्रीणि वर्षशतान्येव षष्टिवर्षयुतान्यपि।
दिव्यः संवत्सरो ज्ञेयो मानुषेण प्रकीर्तितः॥ १०

दिव्येनैव प्रमाणेन युगसंख्या प्रवर्तते।
चत्वारि भारते वर्षे युगानि कवयो विदुः॥ ११

मनुष्योंकी भाँति देवताओंके भी तीस अहोरात्रोंको उनका एक मास कहा गया है और इस प्रकारके बारह महीनोंका देवताओंका भी एक वर्ष होता है। मनुष्योंके तीन सौ साठ वर्षोंका देवताओंका एक वर्ष जानना चाहिये। उसी दिव्य वर्षसे युगसंख्या होती है। विद्वानोंने भारतवर्षमें चार युगोंकी कल्पना की है॥ ९—११॥

पूर्वं कृतयुगं नाम ततस्त्रेता विधीयते।
द्वापरं च कलिश्चैव युगान्येतानि कृत्स्नशः॥ १२

सबसे पहले कृतयुग (सत्ययुग), इसके बाद त्रेतायुग होता है, फिर द्वापर तथा कलियुग होते हैं—इस प्रकार कुल ये ही चार युग हैं॥ १२॥

चत्वारि तु सहस्राणि वर्षाणां तत्कृतं युगम्।
तस्य तावच्छती संध्या संध्यांशश्च तथाविधः॥ १३

इनमें देवताओंके चार हजार वर्षोंका सत्ययुग होता है, इसके अतिरिक्त चार सौ वर्षोंकी सन्ध्या तथा इतने ही वर्षोंका सन्ध्यांश होता है॥ १३॥

इतरेषु ससन्ध्येषु ससन्ध्यांशेषु च त्रिषु।
एकापायेन वर्तन्ते सहस्राणि शतानि च॥ १४

एतद्द्वादशसाहस्रं साधिकं च चतुर्युगम्।
चतुर्युगसहस्रं यत्संकल्प इति कथ्यते॥ १५

अन्य तीन युगोंमें वर्ष तथा सन्ध्या-सन्ध्यांशमें एक-एक पाद क्रमशः हजार तथा सौ कम होता है अर्थात् त्रेता तीन हजार वर्षका, उसकी सन्ध्या एवं सन्ध्यांश तीन सौ वर्षके, द्वापर दो हजार वर्षका तथा उसकी सन्ध्या एवं सन्ध्यांश दो सौ वर्षके और कलियुग एक हजार वर्षका तथा उसकी सन्ध्या एवं सन्ध्यांश एक-एक सौ वर्षके होते हैं। इस तरह सन्ध्या एवं सन्ध्यांशके सहित चारों युग बारह हजार वर्षके होते हैं। एक हजार चतुर्युगीका एक कल्प कहा जाता है॥ १४-१५॥

चतुर्युगैकसप्तत्या मनोरन्तरमुच्यते।
कल्पे चतुर्दशैकस्मिन्मनूनां परिवृत्तयः॥ १६

इकहत्तर चतुर्युगीका एक मन्वन्तर कहा जाता है। एक कल्पमें चौदह मनुओंका आवर्तन होता है॥ १६॥

एतेन क्रमयोगेन कल्पमन्वन्तराणि च।
सप्रजानि व्यतीतानि शतशोऽथ सहस्रशः॥ १७

अज्ञेयत्वाच्च सर्वेषामसंख्येयतया पुनः।
शक्यो नैवानुपूर्व्याद्वै तेषां वक्तुं सुविस्तरः॥ १८

कल्पो नाम दिवा प्रोक्तो ब्रह्मणोऽव्यक्तजन्मनः।
कल्पानां वै सहस्रं च ब्राह्मं वर्षमिहोच्यते॥ १९

इस क्रमयोगसे प्रजाओंसहित सैकड़ों-हजारों कल्प और मन्वन्तर बीत चुके हैं। उन सभीको न जाननेके कारण तथा उनकी गणना न कर सकनेके कारण क्रमबद्धरूपसे उनके विस्तारका निरूपण नहीं किया जा सकता है। एक कल्पके बराबर अव्यक्तजन्मा ब्रह्माजीका एक दिन कहा गया है तथा यहाँपर हजार कल्पोंका ब्रह्माका एक वर्ष कहा जाता है॥ १७—१९॥

वर्षाणामष्टसाहस्त्रं यच्च तद्ब्रह्मणो युगम्।
सवनं युगसाहस्त्रं ब्रह्मणः पद्मजन्मनः॥ २०
सवनानां सहस्त्रं च त्रिगुणं त्रिवृतं तथा।
कल्प्यते सकलः कालो ब्रह्मणः परमेष्ठिनः॥ २१
तस्य वै दिवसे यान्ति चतुर्दश पुरंदराः।
शतानि मासे चत्वारि विशंत्या सहितानि च॥ २२
अब्दे पञ्च सहस्त्राणि चत्वारिंशद्युतानि च।
चत्वारिंशत्सहस्त्राणि पञ्च लक्षाणि चायुषि॥ २३

ऐसे आठ हजार वर्षोंका ब्रह्माका एक युग होता है और पद्मयोनि ब्रह्माके हजार युगोंका एक सवन होता है। एक हजार सवनोंका तीन गुना तथा उस तीन गुनाका भी तीन गुना अर्थात् नौ हजार सवनोंका ब्रह्माजीका कालमान कहा गया है। उनके एक दिनमें चौदह, एक मासमें चार सौ बीस, एक वर्षमें पाँच हजार चालीस तथा उनकी पूरी आयुमें पाँच लाख चालीस हजार इन्द्र व्यतीत हो जाते हैं॥ २०—२३॥

ब्रह्मा विष्णोर्दिने चैको विष्णू रुद्रदिने तथा।
ईश्वरस्य दिने रुद्रः सदाख्यस्य तथेश्वरः॥ २४

ब्रह्मा विष्णुके एक दिनपर्यन्त, विष्णु रुद्रके एक दिनपर्यन्त, रुद्र ईश्वरके एक दिनपर्यन्त और ईश्वर सत् नामक शिवके एक दिनपर्यन्त रहते हैं॥ २४॥

साक्षाच्छिवस्य तत्संख्यस्तथा सोऽपि सदाशिवः।
चत्वारिंशत्सहस्त्राणि पञ्चलक्षाणि चायुषि॥ २५

यही साक्षात् शिवके लिये कालकी संख्या है, उन्हें सदाशिव भी कहा जाता है। इनकी पूर्ण आयुमें पूर्वोक्त क्रमसे पाँच लाख चालीस हजार रुद्र हो जाते हैं॥ २५॥

तस्मिन्साक्षाच्छिवेनैष कालात्मा सम्प्रवर्तते।
यत्तत्सृष्टेः समाख्यातं कालान्तरमिह द्विजाः॥ २६
एतत्कालान्तरं ज्ञेयमहर्वै पारमेश्वरम्।
रात्रिश्च तावती ज्ञेया परमेशस्य कृत्स्नशः॥ २७
अहस्तस्य तु या सृष्टी रात्रिश्च प्रलयः स्मृतः।
अहर्न विद्यते तस्य न रात्रिरिति धारयेत्॥ २८

उन साक्षात् सदाशिवके द्वारा ही वह कालात्मा प्रवर्तित होता है। हे ब्राह्मणो! सृष्टिके कालान्तरका मैंने वर्णन कर दिया, इतने कालको परमेश्वरका एक दिन जानना चाहिये और उतने ही कालको परमेश्वरकी एक पूर्ण रात्रि भी जाननी चाहिये। सृष्टिको दिन और प्रलयको रात्रि कहा गया है, किंतु उनके लिये न दिन है और न रात्रि—ऐसा समझना चाहिये॥ २६—२८॥

एषोपचारः क्रियते लोकानां हितकाम्यया।
प्रजाः प्रजानां पतयो मूर्तयश्च सुरासुराः॥ २९
इन्द्रियाणीन्द्रियार्थाश्च महाभूतानि पञ्च च।
तन्मात्राण्यथ भूतादिर्बुद्धिश्च सह दैवतैः॥ ३०

यह औपचारिक व्यवहार तो लोकके हितकी कामनासे किया जाता है। प्रजा, प्रजापति, नानाविध शरीर, सुर, असुर, इन्द्रियाँ, इन्द्रियोंके विषय, पंचमहाभूत, तन्मात्राएँ, भूतादि (अहंकार), देवगणोंके साथ बुद्धि—ये सब धीमान् परमेश्वरके दिनमें स्थित रहते हैं और दिनके अन्तमें प्रलयको प्राप्त हो जाते हैं, इसके बाद रात्रिके अन्तमें पुनः विश्वकी उत्पत्ति होती है॥ २९-३०॥

अहस्तिष्ठन्ति सर्वाणि परमेशस्य धीमतः।
अहरन्ते प्रलीयन्ते रात्र्यन्ते विश्वसंभवः॥ ३१

जो विश्वात्मा हैं और काल, कर्म तथा स्वभावादि अर्थमें जिनकी शक्तिका उल्लंघन नहीं किया जा सकता और जिनकी आज्ञाके अधीन यह समस्त जगत् है, उन महान् शंकरको नमस्कार है॥ ३१॥

इति श्रीशिवमहापुराणे सप्तम्यां वायवीयसंहितायां पूर्वखण्डे कालप्रभावे त्रिदेवायुर्वर्णनं नामाष्टमोऽध्यायः॥ ८॥

॥ इस प्रकार श्रीशिवमहापुराणके अन्तर्गत सातवीं वायवीयसंहिताके पूर्वखण्डमें कालप्रभावमें त्रिदेवोंका आयुवर्णन नामक आठवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ ८॥

अथ नवमोऽध्यायः

सृष्टिके पालन एवं प्रलयकर्तृत्वका वर्णन

मुनय ऊचुः

कथं जगदिदं कृत्स्नं विधाय च निधाय च।
आज्ञया परमां क्रीडां करोति परमेश्वरः॥ १

किं तत्प्रथमसंभूतं केनेदमखिलं ततम्।
केन वा पुनरेवेदं ग्रस्यते पृथुकुक्षिणा॥ २

मुनिगण बोले—[हे वायुदेव!] परमात्मा शिव किस प्रकारसे इस सम्पूर्ण जगत्का निर्माणकर पुनः इसे स्थापित करके अपनी शक्तिके साथ उत्तम क्रीड़ा करते हैं?॥ १॥

यह संसार सर्वप्रथम किस प्रकारसे उत्पन्न हुआ, किसने इस सम्पूर्ण जगत्का विस्तार किया और विशाल उदरवाला कौन इसे बादमें ग्रास बना लेता है?॥ २॥

वायुरुवाच

शक्तिः प्रथमसम्भूता शान्त्यतीतपदोत्तरा।
ततो माया ततोऽव्यक्तं शिवाच्छक्तिमतः प्रभोः॥ ३

वायु बोले—सबसे पहले शक्तिकी उत्पत्ति हुई, इसके पश्चात् शान्त्यतीतपद उत्पन्न हुआ, तदनन्तर शक्तिमान् प्रभु शिवसे माया एवं अव्यक्त प्रकृति उत्पन्न हुई॥ ३॥

शान्त्यतीतपदं शक्तेस्ततः शान्तिपदं क्रमात्।
ततो विद्यापदं तस्मात्प्रतिष्ठापदसम्भवः॥ ४

निवृत्तिपदमुत्पन्नं प्रतिष्ठापदतः क्रमात्।
एवमुक्ता समासेन सृष्टिरीश्वरचोदिता॥ ५

[प्रथमोत्पन्न] शक्तिसे शान्त्यतीतपद, इसके पश्चात् शान्तिपद, तदनन्तर विद्यापद, उसके आगे प्रतिष्ठापद और उसके आगे निवृत्तिपद क्रमशः उत्पन्न हुए। इस प्रकार मैंने ईश्वरप्रेरित सृष्टिका वर्णन संक्षेपमें किया है॥ ४-५॥

आनुलोम्यात्तथैतेषां प्रातिलोम्येन संहृतिः।
अस्मात्पञ्चपदोद्दिष्टात्परः स्रष्टा समिष्यते॥ ६

सृष्टिकी उत्पत्ति अनुलोम क्रमसे होती है और प्रतिलोम क्रमसे उसका संहार होता है। इन पाँच पदोंसे उपदिष्ट सृष्टिके अतिरिक्त एक स्रष्टा भी कहा जाता है॥ ६॥

कलाभिः पञ्चभिर्व्याप्तं तस्माद्विश्वमिदं जगत्।
अव्यक्तं कारणं यत्तदात्मना समनुष्ठितम्॥ ७

महदादिविशेषान्तं सृजतीत्यपि सम्मतम्।
किं तु तत्रापि कर्तृत्वं नाव्यक्तस्य न चात्मनः॥ ८

अव्यक्त कारण जो पाँच कलाओंसे व्याप्त हैं तथा जिससे इस विश्वकी उत्पत्ति है और जो चेतनसे अधिष्ठित है, वह अव्यक्त महत्तत्त्वसे लेकर विशेष-तत्त्वपर्यन्त इस संसारकी सृष्टि करता है—यह सर्व-सम्मत है, फिर भी इसमें अव्यक्त तथा जीवका कर्तृत्व नहीं है॥ ७-८॥

अचेतनत्वात्प्रकृतेरज्ञत्वात्पुरुषस्य च।
प्रधानपरमाण्वादि यावत्किञ्चिदचेतनम्॥ ९

प्रकृतिके अचेतन होनेसे और पुरुषके अज्ञानी होनेसे प्रधान, परमाणु आदि जो कुछ भी हैं, सभी अचेतन ही हैं॥ ९॥

तत्कर्तृकं स्वयं दृष्टं बुद्धिमत्कारणं विना।
जगच्च कर्तृसापेक्षं कार्यं सावयवं यतः॥ १०

उनका कर्ता कोई चेतन होना चाहिये, जो बुद्धिसे युक्त हो, इसके बिना कार्य-कारणभावकी संगति नहीं बैठती, क्योंकि यह जगत् कार्यरूप है, सावयव है और कर्तृसापेक्ष है॥ १०॥

तस्माच्छक्तः स्वतन्त्रो यः सर्वशक्तिश्च सर्ववित्।
अनादिनिधनश्चायं महदैश्वर्यसंयुतः॥ ११

स एव जगतः कर्ता महादेवो महेश्वरः।
पाता हर्ता च सर्वस्य ततः पृथगनन्वयः॥ १२

अतएव जो समर्थ, स्वतन्त्र, सर्वशक्तिमान्, सर्वज्ञ, आदि-अन्तसे परे और महान् ऐश्वर्यसे समन्वित हैं, वे महेश्वर महादेव ही सम्पूर्ण जगत्की रचना करनेवाले, पालन करनेवाले तथा संहार करनेवाले हैं और सबसे पृथक् तथा अन्वयरहित हैं॥ ११-१२॥

परिणामः प्रधानस्य प्रवृत्तिः पुरुषस्य च।
सर्वं सत्यव्रतस्यैव शासनेन प्रवर्तते॥ १३

इतीयं शाश्वती निष्ठा सतां मनसि वर्तते।
न चैनं पक्षमाश्रित्य वर्तते स्वल्पचेतनः॥ १४

प्रधानका परिणाम तथा पुरुषकी प्रवृत्ति—यह सब कुछ उस सत्यव्रत [परमेश्वर]-के शासनसे ही प्रवर्तित होता है। सज्जनोंके मनमें यह शाश्वत निष्ठा बनी हुई है, किंतु अल्पबुद्धिवाला इस पक्षको ग्रहण नहीं कर पाता है॥ १३-१४॥

यावदादिसमारंभो यावद्यः प्रलयो महान्।
तावदप्येति सकलं ब्रह्मणः शरदां शतम्॥ १५

जबसे इस सृष्टिका आरम्भ होता है और जबतक प्रलय होता है, तबतक ब्रह्मदेवके पूरे सौ वर्ष व्यतीत हो जाते हैं॥ १५॥

परमित्यायुषो नाम ब्रह्मणोऽव्यक्तजन्मनः।
तत्पराख्यं तदर्द्धं च परार्द्धमभिधीयते॥ १६

परार्द्धद्वयकालान्ते प्रलये समुपस्थिते।
अव्यक्तमात्मनः कार्यमादायात्मनि तिष्ठति॥ १७

अव्यक्तजन्मा ब्रह्माकी आयुका नाम 'पर' है। उस परके आधे भागको प्रथम परार्ध तथा द्वितीय भागको द्वितीय परार्ध कहते हैं। दोनों परार्धोंके बीत जानेके बाद प्रलयके उपस्थित होनेपर अव्यक्त अपने कार्यभूत जगत्को लेकर अपने स्वरूपमें अवस्थित हो जाता है॥ १६-१७॥

आत्मन्यवस्थितेऽव्यक्ते विकारे प्रतिसंहृते।
साधर्म्येणाधितिष्ठेते प्रधानपुरुषावुभौ॥ १८

अव्यक्तके स्वस्वरूपमें अवस्थित हो जानेपर तथा [जगद्रूप] विकारका प्रतिलोमक्रमसे विलय हो जानेपर प्रधान और पुरुष दोनों समान धर्मसे स्थित हो जाते हैं॥ १८॥

तमःसत्त्वगुणावेतौ समत्वेन व्यवस्थितौ।
अनुद्रिक्तावनूनौ तावोतप्रोतौ परस्परम्॥ १९

तब तम तथा सत्त्वगुण—ये दोनों समरूपमें स्थित रहते हैं। वे दोनों वृद्धि और न्यूनतासे रहित होकर परस्पर चेष्टाशून्य ओत-प्रोत रहते हैं॥ १९॥

गुणसाम्ये तदा तस्मिन्नविभागे तमोदये।
शांतवातैकनीरे च न प्राज्ञायत किंचन॥ २०

अप्रज्ञाते जगत्यस्मिन्नेक एव महेश्वरः।
उपास्य रजनीं कृत्स्नां परो माहेश्वरीं ततः॥ २१

प्रभातायां तु शर्वर्यां प्रधानपुरुषावुभौ।
प्रविश्य क्षोभयामास मायायोगान्महेश्वरः॥ २२

उस समय गुणोंकी साम्यावस्था होनेसे परस्पर वे अविभक्त थे तथा [सर्वत्र घनीभूत] अन्धकार व्याप्त था। वायु तथा जलकी गति शान्त थी और कुछ भी ज्ञात नहीं हो पा रहा था। उस समय जब संसारमें कुछ भी प्रतीत नहीं हो रहा था, तब एकमात्र महेश्वर ही विद्यमान थे। उन परमात्मा महेश्वरने उस सम्पूर्ण माहेश्वरी रात्रिको व्यतीत किया। रात्रिके अवसान तथा प्रभातके आगमनपर उन्होंने मायाके योगसे प्रधान तथा पुरुषमें प्रविष्ट होकर उनको क्षुब्ध कर दिया॥ २०—२२॥

ततः पुनरशेषाणां भूतानां प्रभवाप्ययात्।
अव्यक्तादभवत्सृष्टिराज्ञया परमेष्ठिनः॥ २३

विश्वोत्तरोत्तरविचित्रमनोरथस्य
यस्यैकशक्तिशकले सकलः समाप्तः।
आत्मानमध्वपतिमध्वविदो वदंति
तस्मै नमः सकललोकविलक्षणाय॥ २४

इसके बाद परमेष्ठीकी आज्ञासे अव्यक्तसे पुनः उत्पत्ति और लयके निमित्त सभी प्राणियोंकी सृष्टि हुई। जिनकी इच्छाके द्वारा यह विचित्र विश्व उत्तरोत्तर उत्पन्न हुआ था, जिनकी शक्तिके मात्र एक अंशमें यह समस्त जगत् लयको प्राप्त हो जाता है। मोक्षमार्गको जाननेवाले लोग जिन्हें मोक्षमार्गका नियामक तथा आत्मस्वरूप बताते हैं, उन सर्वलोक-विलक्षण [परमेश्वर]-को नमस्कार है॥ २३-२४॥

इति श्रीशिवमहापुराणे सप्तम्यां वायवीयसंहितायां पूर्वखण्डे सृष्टिपालनप्रलयकर्तृत्ववर्णनं नाम नवमोऽध्यायः॥ ९॥

॥ इस प्रकार श्रीशिवमहापुराणके अन्तर्गत सातवीं वायवीयसंहिताके पूर्वखण्डमें सृष्टिपालन तथा प्रलयकर्तृत्ववर्णन नामक नवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ ९॥

अथ दशमोऽध्यायः

ब्रह्माण्डकी स्थिति, स्वरूप आदिका वर्णन

वायुरुवाच

पुरुषाधिष्ठितात्पूर्वमव्यक्तादीश्वराज्ञया।
बुद्ध्यादयो विशेषान्ता विकाराश्चाभवन् क्रमात्॥ १

वायु बोले—पहले ईश्वरकी आज्ञासे पुरुषसे समन्वित अव्यक्तसे बुद्धि आदिसे लेकर विशेषपर्यन्त सभी विकार क्रमशः उत्पन्न हुए॥ १॥

ततस्तेभ्यो विकारेभ्यो रुद्रो विष्णुः पितामहः।
कारणत्वेन सर्वेषां त्रयो देवाः प्रजज्ञिरे॥ २

इसके बाद उन्हीं विकारोंसे रुद्र, विष्णु एवं पितामह—ये तीन जगत्कारणभूत देवता उत्पन्न हुए॥ २॥

सर्वतो भुवनव्याप्तिशक्तिमव्याहतां क्वचित्।
ज्ञानमप्रतिमं शश्वदैश्वर्यं चाणिमादिकम्॥ ३

सृष्टिस्थितिलयाख्येषु कर्मसु त्रिषु हेतुताम्।
प्रभुत्वेन सहैतेषां प्रसीदति महेश्वरः॥ ४

कल्पान्तरे पुनस्तेषामस्पर्द्धाबुद्धिमोहिनाम्।
सर्गरक्षालयाचारं प्रत्येकं प्रददौ च सः॥ ५

तत्पश्चात् उन्होंने [ब्रह्मा आदिको] इस संसारमें सभी जगह व्याप्त रहनेवाली अप्रतिहत शक्ति, अप्रतिम ज्ञान, अणिमादि ऐश्वर्य और सृष्टि, स्थिति तथा लय—इन तीन कार्योंका सामर्थ्य प्रदान किया, [इस प्रकार] उन ब्रह्मादि देवोंको प्रभुत्वसे [अनुगृहीत करते हुए] उनपर महेश्वर प्रसन्न हुए। उन्होंने कल्पान्तरमें स्पर्धारहित तथा निर्भ्रान्त बुद्धिवाले इन देवगणोंको सृष्टि, स्थिति एवं प्रलयका कार्य क्रमसे सौंपा॥ ३—५॥

एते परस्परोत्पन्ना धारयन्ति परस्परम्।
परस्परेण वर्द्धन्ते परस्परमनुव्रताः॥ ६

ये [देवगण] परस्पर उत्पन्न होकर आपसमें एक-दूसरेको धारण करते हैं और परस्पर एक-दूसरेका अनुवर्तन करते हुए वृद्धिको प्राप्त होते रहते हैं॥ ६॥

क्वचिद्ब्रह्मा क्वचिद्विष्णुः क्वचिद् रुद्रः प्रशस्यते।
नानेन तेषामाधिक्यमैश्वर्यं चातिरिच्यते॥ ७

मूर्खा निन्दन्ति तान्वाग्भिः संरम्भाभिनिवेशिनः।
यातुधाना भवन्त्येव पिशाचाश्च न संशयः॥ ८

कभी ब्रह्मा, कभी विष्णु तथा कभी रुद्र प्रशंसित होते हैं, परंतु इससे उनके ऐश्वर्यकी न्यूनता अथवा अधिकता नहीं होती है। दुराग्रहसे युक्त मूर्खलोग वाणीसे उनकी निन्दा करते हैं और [उस अपराधके कारण] वे [दूसरे जन्ममें] राक्षस और पिशाच होते हैं, इसमें सन्देह नहीं है॥ ७-८॥

देवो गुणत्रयातीतश्चतुर्व्यूहो महेश्वरः।
सकलः सकलाधारः शक्तेरुत्पत्तिकारणम् ॥ ९

सोऽयमात्मा त्रयस्यास्य प्रकृतेः पुरुषस्य च।
लीलाकृतजगत्सृष्टिरीश्वरत्वे व्यवस्थितः॥ १०

वे चतुर्व्यूहरूप महेश्वर देव तीनों गुणोंसे परे, कलायुक्त, सबको धारण करनेमें समर्थ तथा शक्तिकी उत्पत्तिके कारण हैं। लीलामात्रसे जगत्‌की रचना करनेवाले वे शिवजी [ब्रह्मा आदि] तीनों देवताओं, प्रकृति तथा पुरुषके अधीश्वरके रूपमें विराजमान रहते हैं॥ ९-१०॥

यः सर्वस्मात्परो नित्यो निष्कलः परमेश्वरः।
स एव च तदाधारस्तदात्मा तदधिष्ठितः॥ ११
तस्मान्महेश्वरश्चैव प्रकृतिः पुरुषस्तथा।
सदाशिवो भवो विष्णुर्ब्रह्मा सर्वं शिवात्मकम्॥ १२

जो परमेश्वर सबसे परे, नित्य तथा निष्कल हैं, वे ही सबके आधार, सबकी आत्मा तथा सभीमें अधिष्ठित हैं। अतः महेश्वर, प्रकृति पुरुष, सदाशिव, भव, विष्णु, ब्रह्मा—ये सभी शिवात्मक हैं॥ ११-१२॥

प्रधानात्प्रथमं जज्ञे बुद्धिः ख्यातिर्मतिर्महान्।
महत्तत्त्वस्य संक्षोभादहंकारस्त्रिधाऽभवत्॥ १३

अहंकारश्च भूतानि तन्मात्राणीन्द्रियाणि च।
वैकारिकादहंकारात्सत्त्वोद्रिक्तात्तु सात्त्विकः॥ १४

प्रधानसे सर्वप्रथम बुद्धि, ख्याति, मति तथा महत्तत्त्व उत्पन्न हुए, पुनः महत्तत्त्वके संक्षोभसे तीन प्रकारका अहंकार उत्पन्न हुआ। पंचमहाभूत, पंचतन्मात्राएँ एवं इन्द्रियाँ—ये अहंकारसे उत्पन्न हुए। सत्त्वप्रधान उस वैकारिक अहंकारसे सात्त्विक सर्ग उत्पन्न हुआ॥ १३-१४॥

वैकारिकः स सर्गस्तु युगपत्संप्रवर्तते।
बुद्धीन्द्रियाणि पञ्चैव पञ्चकर्मेन्द्रियाणि च॥ १५
एकादशं मनस्तत्र स्वगुणेनोभयात्मकम्।
तमोयुक्तादहंकाराद्भूततन्मात्रसंभवः ॥ १६
भूतानामादिभूतत्वाद् भूतादिः कथ्यते तु सः।
भूतादेः शब्दमात्रं स्यात्तत्र चाकाशसंभवः॥ १७
आकाशात्स्पर्श उत्पन्नः स्पर्शाद्वायुसमुद्भवः।
वायो रूपं ततस्तेजस्तेजसो रससंभवः॥ १८
रसादापः समुत्पन्नास्ताभ्यो गन्धसमुद्भवः।
गन्धाच्च पृथिवी जाता भूतेभ्योऽन्यच्चराचरम्॥ १९

यह वैकारिक सर्ग एक साथ ही प्रवृत्त होता है। पाँच कर्मेन्द्रियाँ, पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ, इन दस इन्द्रियोंके अतिरिक्त ग्यारहवाँ मन भी एक इन्द्रिय है, जो अपने गुणोंसे कर्मेन्द्रिय एवं ज्ञानेन्द्रिय दोनों है—ये उत्पन्न हुए। तामस अहंकारसे महाभूतों तथा तन्मात्राओंकी उत्पत्ति हुई। पंचभूतोंसे पहले उत्पन्न होनेके कारण उसे भूतादि कहा जाता है। भूतादि अहंकारसे सर्वप्रथम शब्दतन्मात्राकी उत्पत्ति हुई, जिससे आकाश उत्पन्न हुआ। आकाशसे स्पर्श उत्पन्न हुआ, स्पर्शसे वायुकी उत्पत्ति हुई। वायुसे रूप, रूपसे तेज, तेजसे रस उत्पन्न हुआ। रससे जल उत्पन्न हुआ, जलसे गन्ध उत्पन्न हुआ और गन्धसे पृथ्वी उत्पन्न हुई और इन पंचभूतोंद्वारा अन्य चराचरकी उत्पत्ति हुई॥ १५—१९॥

पुरुषाधिष्ठितत्वाच्च अव्यक्तानुग्रहेण च।
महदादिविशेषान्ता ह्यण्डमुत्पादयन्ति ते॥ २०

तत्र कार्यं च करणं संसिद्धं ब्रह्मणो यदा।
तदण्डे सुप्रवृद्धोऽभूत् क्षेत्रज्ञो ब्रह्मसंज्ञितः॥ २१

वे पुरुषके अधिष्ठित होनेसे और अव्यक्तके अनुग्रहसे महत्तत्त्वसे लेकर विशेषपर्यन्त समस्त ब्रह्माण्डकी उत्पत्ति करते हैं। इस प्रकारका जब ब्रह्माजीका कार्य-कारणभाव सिद्ध हो गया, तब उस अण्डमें ब्रह्मसंज्ञक क्षेत्रज्ञ वृद्धिको प्राप्त होने लगा॥ २०-२१॥

स वै शरीरी प्रथमः स वै पुरुष उच्यते।
आदिकर्ता स भूतानां ब्रह्माग्रे समवर्तत॥ २२

वही प्रथम शरीरी है और उसीको पुरुष भी कहा जाता है। प्राणियोंके कर्ता वही ब्रह्मा सबसे पहले उत्पन्न हुए॥ २२॥

तस्येश्वरस्याप्रतिमा ज्ञानवैराग्यलक्षणा।
धर्मैश्वर्यकरी बुद्धिर्ब्राह्मी जज्ञेऽभिमानिनः॥ २३

अव्यक्ताज्जायते तस्य मनसा यद्यदीप्सितम्।

वशीकृतत्वात्त्रैगुण्यात्सापेक्षत्वात्स्वभावतः॥ २४

त्रिधा विभज्य चात्मानं त्रैलोक्ये संप्रवर्त्तते।
सृजते ग्रसते चैव वीक्षते च त्रिभिः स्वयम्॥ २५

चतुर्मुखस्तु ब्रह्मत्वे कालत्वे चान्तकः स्मृतः।
सहस्त्रमूर्द्धा पुरुषस्तिस्रोऽवस्थास्स्वयंभुवः॥ २६

सत्त्वं रजश्च ब्रह्मत्वे कालत्वे च तमो रजः।
विष्णुत्वे केवलं सत्त्वं गुणवृद्धिस्त्रिधा विभोः॥ २७

ब्रह्मत्वे सृजते लोकान् कालत्वे संक्षिपत्यपि।
पुरुषत्वेऽत्युदासीनः कर्म च त्रिविधं विभोः॥ २८

एवं त्रिधा विभिन्नत्वाद् ब्रह्मा त्रिगुण उच्यते।
चतुर्द्धा प्रविभक्तत्वाच्चतुर्व्यूहः प्रकीर्तितः॥ २९

आदित्वादादिदेवोऽसावजातत्वादजः स्मृतः।
पाति यस्मात्प्रजाः सर्वाः प्रजापतिरिति स्मृतः॥ ३०

हिरणमयस्तु यो मेरुस्तस्योल्बं सुमहात्मनः।
गर्भोदकं समुद्राश्च जरायुश्चाऽपि पर्वताः॥ ३१

तस्मिन्नण्डे त्विमे लोका अन्तर्विश्वमिदं जगत्।
चंद्रादित्यौ सनक्षत्रौ सग्रहौ सह वायुना॥ ३२

अद्भिर्दशगुणाभिस्तु बाह्यतोऽण्डं समावृतम्।
आपो दशगुणेनैव तेजसा बहिरावृताः॥ ३३

तदनन्तर क्षेत्राभिमानी उन ब्रह्माजीकी ज्ञान-वैराग्यसे युक्त, धर्मैश्वर्यप्रदायिनी, अतुलनीया ब्राह्मी बुद्धि उत्पन्न हुई। उन ब्रह्माजीने अपने मनमें जो-जो कामना की, वह सब अव्यक्त [प्रकृति]-से उत्पन्न हुई॥ २३१/२॥

वे ब्रह्माजी स्वभावतः त्रिगुणके वशीभूत एवं [प्रकृतिके] सापेक्ष होनेके कारण अपनेको तीन रूपोंमें विभक्तकर त्रैलोक्यमें भलीभाँति अधिष्ठित होते हैं और इन तीनों रूपोंके द्वारा सृजन, पालन तथा संहार करते हैं॥ २४-२५॥

वे सृष्टि करते समय चतुर्मुख ब्रह्मा, लयकालमें रुद्र तथा पालनकालमें सहस्र सिरवाले पुरुष विष्णु कहे गये हैं। स्वयम्भू परमात्माकी ये तीन अवस्थाएँ हैं॥ २६॥

उन विभुके ब्रह्मरूप धारण करनेमें सत्त्वगुण तथा रजोगुण, [संहारक] कालस्वरूप धारण करनेमें रजोगुण एवं तमोगुण तथा विष्णुरूप धारण करनेमें सत्त्वगुणकी कारणता कही जाती है। ये गुणवृद्धिके तीन प्रकार हैं। वे ब्रह्माके रूपमें लोकोंकी रचना करते हैं, रुद्ररूपमें लोकोंका संहार करते हैं और पुरुष विष्णुरूपमें अत्यन्त उत्कृष्टरूपमें स्थित रहकर पालन करते हैं। यही उन विभुका तीन प्रकारका कर्म है॥ २७-२८॥

इस प्रकार तीन रूपोंमें विभक्त होनेके कारण ब्रह्मा त्रिगुणात्मक कहे जाते हैं तथा चार भागोंमें विभक्त होनेके कारण वे चतुर्व्यूह कहे जाते हैं॥ २९॥

वे सबके आदि होनेसे आदिदेव तथा अजन्मा होनेसे अज कहे गये हैं। वे सभी प्रजाओंकी रक्षा करते हैं, अतः प्रजापति कहे गये हैं॥ ३०॥

सुवर्णमय जो मेरु पर्वत है, वह उन महात्माका गर्भाशय है, समुद्र उस गर्भका जल है तथा पर्वत जरायु हैं। उस अण्डमें ये लोक स्थित हैं, इसीके भीतर नक्षत्र, ग्रह वायुके सहित सूर्य तथा चन्द्रमा और यह सम्पूर्ण जगत् स्थित है॥ ३१-३२॥

यह अण्ड बाहरसे अपने दस गुने परिमाणवाले जलसे व्याप्त है, जल बाहरसे अपनेसे दस गुने परिमाणवाले तेजसे व्याप्त है और तेज भी बाहरसे

तेजो दशगुणेनैव वायुना बहिरावृतम्।
आकाशेनावृतो वायुः खं च भूतादिनाऽऽवृतम्॥ ३४

भूतादिर्महता तद्वदव्यक्तेनावृतो महान्।
एतैरावरणैरण्डं सप्तभिर्बहिरावृतम्॥ ३५

अपनेसे दस गुने परिमाणवाले वायुसे व्याप्त है, वायु आकाशसे आवृत है और आकाश भूतादिसे आवृत है। भूतादि महान्‌से और महान् अव्यक्त तत्त्वसे आवृत है। इस प्रकार यह ब्रह्माण्ड बाहरसे इन सात आवरणोंसे घिरा हुआ है॥ ३३—३५॥

एतदावृत्य चान्योऽन्यमष्टौ प्रकृतयः स्थिताः।
सृष्टिपालनविध्वंसकर्मकर्त्र्यो द्विजोत्तमाः॥ ३६

एवं परस्परोत्पन्ना धारयन्ति परस्परम्।
आधाराधेयभावेन विकारास्तु विकारिषु॥ ३७

ये आठ प्रकृतियाँ एक-दूसरेको आवृतकर स्थित हैं। हे ब्राह्मणो! ये सृष्टि, पालन तथा संहारका कार्य करती रहती हैं। इस प्रकार ये एक-दूसरेसे उत्पन्न होकर एक-दूसरेको धारण करती हैं। इनका परस्पर आधार-आधेयभावसे विकारियोंमें विकार होता है॥ ३६-३७॥

कूर्मोऽङ्गानि यथा पूर्वं प्रसार्य्य विनियच्छति।
विकारांश्च तथाऽव्यक्तं सृष्ट्वा भूयो नियच्छति॥ ३८

जिस प्रकार कछुआ पहले अपने अंगोंको फैलाकर पुनः समेट लेता है, उसी प्रकार अव्यक्त भी विकारोंकी सृष्टिकर उन्हें पुनः समेट लेता है॥ ३८॥

अव्यक्तप्रभवं सर्वमानुलोम्येन जायते।
प्राप्ते प्रलयकाले तु प्रातिलोम्येऽनुलीयते॥ ३९

यह संसार अनुलोमक्रमसे अव्यक्तसे उत्पन्न होता है और प्रलयकाल उपस्थित होनेपर प्रतिलोम क्रमसे विलयको प्राप्त होता है॥ ३९॥

गुणाः कालवशादेव भवंति विषमाः समाः।
गुणसाम्ये लयो ज्ञेयो वैषम्ये सृष्टिरुच्यते॥ ४०

कालके प्रभावसे ही गुण सम और विषम होते हैं। गुणोंमें साम्यकी स्थितिमें लय समझना चाहिये और वैषम्यकी स्थितिमें सृष्टि कही जाती है॥ ४०॥

तदिदं ब्रह्मणो योनिरेतदण्डं घनं महत्।
ब्रह्मणः क्षेत्रमुद्दिष्टं ब्रह्मा क्षेत्रज्ञ उच्यते॥ ४१

इतीदृशानामण्डानां कोट्यो ज्ञेयाः सहस्रशः।
सर्वगत्वात्प्रधानस्य तिर्य्यगूर्ध्वमधः स्थिताः॥ ४२

यह घनीभूत महान् अण्ड ब्रह्माकी उत्पत्तिमें कारण है। यह ब्रह्मदेवका क्षेत्र कहा जाता है और ब्रह्मा क्षेत्रज्ञ कहे जाते हैं। इस प्रकारके हजारों ब्रह्माण्डसमूहोंको जानना चाहिये। प्रधानके सर्वत्र व्याप्त होनेसे ये ऊपर-नीचे तथा तिरछे विद्यमान हैं॥ ४१-४२॥

तत्र तत्र चतुर्वक्त्रा ब्रह्माणो हरयो भवाः।
सृष्टाः प्रधानेन तथा लब्ध्वा शंभोस्तु सन्निधिम्॥ ४३

उन सभी स्थानोंमें चतुर्मुख ब्रह्मा, विष्णु और रुद्र स्थित हैं, जो शिवका सान्निध्य प्राप्त करके प्रधानके द्वारा सृजित किये गये हैं॥ ४३॥

महेश्वरः परोव्यक्तादंडमव्यक्तसंभवम्।
अण्डाजज्ञे विभुर्ब्रह्मा लोकास्तेन कृतास्त्विमे॥ ४४

महेश्वर अव्यक्तसे परे हैं। यह अण्ड अव्यक्तसे उत्पन्न हुआ है, अण्डसे विभु ब्रह्मा उत्पन्न हुए हैं और उन्होंने ही इन लोकोंकी रचना की है॥ ४४॥

अबुद्धिपूर्वः कथितो मयैषः
प्रधानसर्गः प्रथमः प्रवृत्तः।
आत्यन्तिकश्च प्रलयोऽन्तकाले
लीलाकृतः केवलमीश्वरस्य॥ ४५

मैंने प्रथम प्रवृत्त हुई अबुद्धिपूर्वा प्रधान सृष्टिका वर्णन किया, जिसका अन्तकालमें आत्यन्तिक लय हो जाता है, यह चेष्टा ईश्वरकी लीलामात्र है॥ ४५॥

यत्तत्स्मृतं कारणमप्रमेयं
ब्रह्म प्रधानं प्रकृतेः प्रसूतिः।
अनादिमध्यान्तमनन्तवीर्यं
शुक्लं सुरक्तं पुरुषेण युक्तम्॥ ४६

उत्पादकत्वाद्रजसोऽतिरेका-
ल्लोकस्य संतानविवृद्धिहेतून्।
अष्टौ विकारानपि चादिकाले
सृष्ट्वा समश्नाति तथान्तकाले॥ ४७

वह जो ब्रह्म जगत्का प्रधान कारण, अप्रमेय, प्रकृतिका उत्पादक, आदि-मध्य-अन्तसे रहित, अनन्तवीर्य [सत्त्वगुणान्वित होनेपर] शुक्लवर्ण, [रजोगुणान्वित होनेसे] रक्तवर्ण तथा [सृष्टिकर्ता] पुरुषसे युक्त है। वह जगत्के उत्पादक रजोगुणकी अभिवृद्धिके द्वारा लोककी सन्तानपरम्पराकी वृद्धिमें हेतुभूत आठ विकारोंको सृष्टिके आदिकालमें उत्पन्न करता है और अन्तमें उनका लय कर देता है॥ ४६-४७॥

प्रकृत्यवस्थापितकारणानां
या च स्थितिर्या च पुनः प्रवृत्तिः।
तत्सर्वमप्राकृतवैभवस्य
संकल्पमात्रेण महेश्वरस्य॥ ४८

प्रकृतिद्वारा स्थापित किये गये कारणोंकी जो स्थिति एवं पुनः प्रवृत्ति है, वह सब अप्राकृत ऐश्वर्यवाले महेश्वरके संकल्पमात्रसे सम्भव होती है॥ ४८॥

इति श्रीशिवमहापुराणे सप्तम्यां वायवीयसंहितायां पूर्वखण्डे
ब्रह्माण्डस्थितिवर्णनं नाम दशमोऽध्यायः॥ १०॥

॥ इस प्रकार श्रीशिवमहापुराणके अन्तर्गत सातवीं वायवीयसंहिताके पूर्वखण्डमें
ब्रह्माण्डस्थितिवर्णन नामक दसवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ १०॥

अथैकादशोऽध्यायः

अवान्तर सर्ग और प्रतिसर्गका वर्णन

मुनय ऊचुः

मन्वन्तराणि सर्वाणि कल्पभेदांश्च सर्वशः।
तेष्वेवान्तरसर्गं च प्रतिसर्गं च नो वद॥ १

मुनि बोले—[हे देव!] अब सभी मन्वन्तरों, समस्त कल्पभेदों और उनमें होनेवाले अवान्तर सर्ग तथा प्रतिसर्गका वर्णन हमलोगोंसे कीजिये॥ १॥

वायुरुवाच

कालसंख्याविवृत्तस्य परार्द्धो ब्रह्मणः स्मृतः।
तावांश्चैवास्य कालोऽन्यस्तस्यान्ते प्रतिसृज्यते॥ २

दिवसे दिवसे तस्य ब्रह्मणः पूर्वजन्मनः।
चतुर्दश महाभागा मनूनां परिवृत्तयः॥ ३

अनादित्वादनंतत्वादज्ञेयत्वाच्च कृत्स्नशः।
मन्वन्तराणि कल्पाश्च न शक्या वचनात्पृथक्॥ ४

वायु बोले—[हे मुनियो!] मैंने कालगणनाके प्रसंगमें कहा है कि ब्रह्माकी आयु परार्धपर्यन्त है। जब परार्धकाल पूर्ण हो जाता है, तो सृष्टि विनष्ट हो जाती है। सबसे पहले उत्पन्न होनेवाले उन ब्रह्माजीके एक-एक दिनमें चौदह-चौदह मनुओंका काल व्यतीत होता है। अनादि, अनन्त तथा अज्ञेय होनेसे सभी मन्वन्तर और कल्पोंका वर्णन अलग-अलग नहीं किया जा सकता है॥ २—४॥

उक्तेष्वपि च सर्वेषु शृण्वतां वो वचो मम।
किमिहास्ति फलं तस्मान्न पृथग वक्तुमुत्सहे॥ ५

आपलोग मेरी बात सुनिये। उन सभीका वर्णन किये जानेपर भी उस वर्णनका कोई फल नहीं है, इसीलिये मैं उन्हें पृथक्‌रूपसे नहीं कह सकता॥ ५॥

य एव खलु कल्पेषु कल्पः संप्रति वर्तते।
तत्र संक्षिप्य वर्तन्ते सृष्टयः प्रतिसृष्टयः॥ ६
यस्त्वयं वर्तते कल्पो वाराहो नाम नामतः।
अस्मिन्नपि द्विजश्रेष्ठा मनवस्तु चतुर्दश॥ ७
स्वायंभुवादयः सप्त सप्त सावर्णिकादयः।
तेषु वैवस्वतो नाम सप्तमो वर्तते मनुः॥ ८

इस समय कल्पोंके क्रममें जो वर्तमान कल्प चल रहा है, उसीमें संक्षिप्त रूपसे सृष्टि और संहार होते हैं। हे द्विजश्रेष्ठो! यह जो वाराह नामक कल्प चल रहा है, इसमें भी चौदह मनु हैं॥ ६-७॥

स्वायम्भुव आदि [जो पूर्ववर्ती] सात मनु हैं तथा सावर्णि आदि [जो उत्तरवर्ती] सात मनु हैं। उनमें इस समय सातवें वैवस्वत मनु वर्तमान हैं॥ ८॥

मन्वन्तरेषु सर्वेषु सर्गसंहारवृत्तयः।
प्रायः समा भवन्तीति तर्कः कार्यो विजानता॥ ९

सभी मन्वन्तरोंमें सृष्टि और संहारका क्रम समान ही होता है—विद्वानोंको ऐसा जानना चाहिये॥ ९॥

पूर्वकल्पे परावृत्ते प्रवृत्ते कालमारुते।
समुन्मूलितमूलेषु वृक्षेषु च वनेषु च॥ १०
जगंति तृणवत्त्रीणि देवे दहति पावके।
वृष्ट्या भुवि निषिक्तायां विवेलेष्वर्णवेषु च॥ ११
दिक्षु सर्वासु मग्नासु वारिपूरे महीयसि।
तदद्भिश्चटुलाक्षेपैस्तरङ्गभुजमण्डलैः ॥ १२
प्रारब्धचण्डनृत्येषु ततः प्रलयवारिषु।
ब्रह्मा नारायणो भूत्वा सुष्वाप सलिले सुखम्॥ १३
इमं चोदाहरन्मन्त्रं श्लोकं नारायणं प्रति।
तं शृणुध्वं मुनिश्रेष्ठास्तदर्थं चाक्षराश्रयम्॥ १४
आपो नारा इति प्रोक्ता आपो वै नरसूनवः।
अयनं तस्य ता यस्मात्तेन नारायणः स्मृतः॥ १५

इस कल्पके पहले जब प्रलयकाल उपस्थित हुआ, तब बड़े जोरसे आँधी चलने लगी, वृक्ष एवं वन उखड़कर नष्ट हो गये, अग्निदेवने तीनों लोकोंको तृणके समान जला डाला, वर्षासे पृथ्वी भर उठी, सभी समुद्र उद्वेलित हो उठे, महान् जलराशिमें सभी दिशाएँ मग्न हो गयीं, उस प्रलय-कालीन जलमें समुद्र अपनी चंचल तरंगरूपी भुजाओंको ऊपर उठा-उठाकर भयानक नृत्य करने लगे, उस समय ब्रह्माजी नारायणरूप होकर सुखपूर्वक जलमें शयन कर रहे थे। उन नारायणके प्रति यह मन्त्रात्मक श्लोक कहा गया है, हे मुनिश्रेष्ठो! अक्षर [परमतत्त्व]-का प्रतिपादन करनेवाले उस अर्थको सुनिये—जलको नार कहा गया है; क्योंकि उसकी उत्पत्ति भगवान् नरसे हुई है। वही जल पूर्वकालमें उनके रहनेका स्थान हुआ, इसीलिये उन्हें नारायण कहा गया है॥ १०—१५॥

शिवयोगमयीं निद्रां कुर्वन्तं त्रिदशेश्वरम्।
बद्धाञ्जलिपुटाः सिद्धा जनलोकनिवासिनः॥ १६
स्तोत्रैः प्रबोधयामासुः प्रभातसमये सुराः।
यथा सृष्ट्यादिसमये ईश्वरं श्रुतयः पुरा॥ १७
ततः प्रबुद्ध उत्थाय शयनात्तोयमध्यगात्।
उदैक्षत दिशः सर्वा योगनिद्रालसेक्षणः॥ १८

इसके पश्चात् प्रातःकाल उपस्थित होनेपर शिव-योगमयी निद्रा लेते हुए देवेश्वर [नारायणस्वरूप ब्रह्माजी]-को जनलोकनिवासी सिद्धगण तथा देवता हाथ जोड़कर अनेक प्रकारके स्तोत्रोंसे जगाने लगे, जैसे पूर्वकालमें सृष्टिके प्रारम्भमें श्रुतियाँ ईश्वरको जगाती रही हैं। तब योगनिद्रासे अलसाये नेत्रोंवाले वे [नारायणस्वरूप ब्रह्माजी] निद्रा त्यागकर तथा जलके मध्यमें स्थित शय्यासे उठ करके सभी दिशाओंको देखने लगे॥ १६—१८॥

नापश्यत्स तदा किंचित्स्वात्मनो व्यतिरेकि यत्।
सविस्मय इवासीनः परां चिंतामुपागमत्॥ १९

क्व सा भगवती या तु मनोज्ञा महती मही।
नानाविधमहाशैलनदीनगरकानना ॥ २०

एवं संचिन्तयन्ब्रह्मा बुबुधे नैव भूस्थितिम्।
तदा सस्मार पितरं भगवन्तं त्रिलोचनम्॥ २१

स्मरणाद्देवदेवस्य भवस्यामिततेजसः।
ज्ञातवान्सलिले मग्नां धरणीं धरणीपतिः॥ २२

ततो भूमेः समुद्धारं कर्तुकामः प्रजापतिः।
जलक्रीडोचितं दिव्यं वाराहं रूपमस्मरत्॥ २३

महापर्वतवर्ष्माणं महाजलदनिःस्वनम्।
नीलमेघप्रतीकाशं दीप्तशब्दं भयानकम्॥ २४

पीनवृत्तघनस्कंधं पीनोन्नतकटीतटम्।
ह्रस्ववृत्तोरुजंघाग्रं सुतीक्ष्णखुरमण्डलम्॥ २५

पद्मरागमणिप्रख्यं वृत्तभीषणलोचनम्।
वृत्तदीर्घमहागात्रं स्तब्धकर्णस्थलोज्ज्वलम्॥ २६

उदीर्णोच्छ्वासनिःश्वासघूर्णितप्रलयार्णवम्।
विस्फुरत्सुसटाच्छन्नकपोलस्कंधबंधुरम् ॥ २७

मणिभिर्भूषणैश्चित्रैर्महारत्नैः परिष्कृतम्।
विराजमानं विद्युद्भिर्मेघसंघमिवोन्नतम्॥ २८

आस्थाय विपुलं रूपं वाराहममितं विधिः।
पृथिव्युद्धरणार्थाय प्रविवेश रसातलम्॥ २९

स तदा शुशुभेऽतीव सूकरो गिरिसंनिभः।
लिंगाकृतेर्महेशस्य पादमूलं गतो यथा॥ ३०

ततः स सलिले मग्नां पृथिवीं पृथिवीधरः।
उद्धृत्यालिंग्य दंष्ट्राभ्यामुन्ममज्ज रसातलात्॥ ३१

तं दृष्ट्वा मुनयः सिद्धा जनलोकनिवासिनः।
मुमुदुर्ननृतुर्मूर्ध्नि तस्य पुष्पैरवाकिरन्॥ ३२

जब उन्होंने अपने अतिरिक्त कुछ भी नहीं देखा, तब विस्मित होकर यह चिन्ता करने लगे—अनेक प्रकारके महाशैल, नदी, नगर तथा वनवाली, मनोहर एवं विशाल जो ऐश्वर्यशालिनी पृथ्वी थी, वह कहाँ चली गयी?॥ १९-२०॥

इस तरह सोचते हुए ब्रह्माजीको जब पृथ्वीकी स्थितिका ज्ञान नहीं हुआ, तो वे अपने पिता भगवान् सदाशिवका स्मरण करने लगे। तब अमित तेजस्वी देवदेव सदाशिवका स्मरण करते ही धरणीपति ब्रह्मदेवने जान लिया कि पृथ्वी जलमें निमग्न है॥ २१-२२॥

तत्पश्चात् पृथ्वीका उद्धार करनेकी इच्छावाले प्रजापतिने जलक्रीडाके योग्य दिव्य वाराहरूपका स्मरण किया। महान् पर्वतके समान शरीरवाले, महामेघके समान गर्जनवाले, नीलमेघसदृश कान्तिवाले तथा उत्कट, भयानक शब्द करते हुए, मोटे सुपुष्ट और गोल कन्धेवाले, मोटे और ऊँचे कटिप्रदेशवाले, छोटे एवं गोल ऊरु तथा जंघाके अग्रभागवाले, तीक्ष्ण खुरमण्डलवाले, पद्मराग-मणिके समान आभावाले, गोल एवं भयानक नेत्रवाले और दीर्घ गोल गात्रवाले, स्तब्ध तथा उज्ज्वल कर्णप्रदेश-वाले, छोड़े गये दीर्घ श्वासोच्छ्वाससे प्रलयकालीन समुद्रको क्षुब्ध करनेवाले, बिखरे अयालोंसे आच्छन्न कपोल एवं स्कन्धभागवाले, मणिजटित आभूषणों तथा अद्भुत महारत्नोंसे अलंकृत, मानो विद्युत्से सुशोभित ऊँचा मेघमण्डल ही स्थित हो—ऐसे अत्यधिक विशाल वराहरूपको धारण करके पृथ्वीका उद्धार करनेके लिये ब्रह्माजी रसातलमें प्रविष्ट हुए॥ २३—२९॥

पर्वतके समान [विशाल] शूकररूपधारी वे ब्रह्माजी शिवलिंगके पादपीठके समान अत्यन्त शोभायमान हो रहे थे। इसके पश्चात् वे जलमें निमग्न पृथ्वीको उठाकर अपने दाढ़के ऊपर धारणकर रसातलसे ऊपर आये॥ ३०-३१॥

उन्हें देखकर जनलोकनिवासी मुनि एवं सिद्धगण हर्षित होकर नृत्य करने लगे और उनके मस्तकपर फूलोंकी वर्षा करने लगे॥ ३२॥

वपुर्महावराहस्य शुशुभे पुष्पसंवृतम्।
पतद्भिरिव खद्योतैः प्राशुरंजनपर्वतः॥ ३३

उस समय पुष्पोंसे आच्छादित महावाराहका शरीर उड़-उड़कर गिरते हुए खद्योतोंसे आवृत अंजनपर्वतके समान शोभायमान हो रहा था॥ ३३॥

ततः संस्थानमानीय वराहो महतीं महीम्।
स्वमेव रूपमास्थाय स्थापयामास वै विभुः॥ ३४
पृथिवीं च समीकृत्य पृथिव्यां स्थापयन् गिरीन्।
भूराद्यांश्चतुरो लोकान् कल्पयामास पूर्ववत्॥ ३५
इति स ह महतीं महीं महीध्रैः
प्रलयमहाजलधेरधःस्थमध्यात् ।
उपरि च विनिवेश्य विश्वकर्मा
चरमचरं च जगत्ससर्ज भूयः॥ ३६

तत्पश्चात् भगवान् वराहने महती पृथ्वीको लाकर अपना रूप धारण करके उसे यथास्थान स्थापित कर दिया। उन्होंने पृथ्वीको समतल करके उस पृथ्वीपर पर्वतोंकी स्थापना करते हुए पूर्वकी भाँति भूः आदि चार लोकोंको भी स्थापित किया। इस प्रकार प्रलय-कालीन महासागरके नीचे स्थित जलके बीचसे पर्वतों-सहित विशाल पृथ्वीको जलके ऊपर स्थापित करके पुनः उन विश्वकर्माने उसपर चराचर जगत्की रचना की॥ ३४—३६॥

इति श्रीशिवमहापुराणे सप्तम्यां वायवीयसंहितायां पूर्वखण्डे सृष्ट्यादिवर्णनं नामैकादशोऽध्यायः॥ ११॥

॥ इस प्रकार श्रीशिवमहापुराणके अन्तर्गत सातवीं वायवीयसंहिताके पूर्वखण्डमें सृष्टि आदिवर्णन नामक ग्यारहवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ ११॥

अथ द्वादशोऽध्यायः

ब्रह्माजीकी मानसी सृष्टि, ब्रह्माजीकी मूर्च्छा, उनके मुखसे रुद्रदेवका प्राकट्य, सप्राण हुए ब्रह्माजीके द्वारा आठ नामोंसे महेश्वरकी स्तुति तथा रुद्रकी आज्ञासे ब्रह्माद्वारा सृष्टि-रचना

वायुरुवाच

सर्गं चिन्तयतस्तस्य तदा वै बुद्धिपूर्वकम्।
प्रध्यानकाले मोहस्तु प्रादुर्भूतस्तमोमयः॥ १
तमोमोहो महामोहस्तामिस्त्रश्चान्धसंज्ञितः।
अविद्या पञ्चमी चैषा प्रादुर्भूता महात्मनः॥ २

वायु बोले—इसके पश्चात् बुद्धिपूर्विका सृष्टिका चिन्तन करते हुए उन ब्रह्माजीको ध्यानकालमें तमोमय मोहकी प्राप्ति हुई। उस समय उन महात्मासे तम, मोह, महामोह, तामिस्त्र, अन्धतामिस्त्र नामक पंचपर्वा अविद्या उत्पन्न हुई॥ १-२॥

पञ्चधाऽवस्थितः सर्गो ध्यायतस्त्वभिमानिनः।
सर्वतस्तमसातीव बीजकुम्भवदावृतः॥ ३

उस समय उन अभिमानी ब्रह्माके ध्यान करते रहनेपर यह सर्ग पाँच प्रकारसे प्रकट हुआ, यह सभी ओरसे अन्धकारसे पूर्णतः उसी प्रकार व्याप्त था, जैसे कुम्भ बीजको आवृत किये रहता है॥ ३॥

बहिरन्तश्चाप्रकाशः स्तब्धो निःसंज्ञ एव च।
तस्मात्तेषां वृता बुद्धिर्मुखानि करणानि च॥ ४

तस्मात्ते संवृतात्मानो नगा मुख्याः प्रकीर्तिताः।
तं दृष्ट्वासाधकं ब्रह्मा प्रथमं सर्गमीदृशम्॥ ५

वह बाहर-भीतरसे प्रकाशरहित, निश्चल तथा संज्ञाहीन था, अतः उसमें होनेवालोंकी बुद्धि, मुख तथा इन्द्रियाँ—ये सब ढँके हुए थे। अतः आवृत स्वरूपवाले वे सब नग कहे गये और यह सर्ग मुख्य सर्ग कहलाया। तब इस प्रकारके उस प्रथम सर्गको

अप्रसन्नमना भूत्वा द्वितीयं सोऽभ्यमन्यत।
तस्याभिध्यायतः सर्गं तिर्य्यक्स्त्रोतोऽभ्यवर्त्तत॥ ६

अन्तःप्रकाशास्तिर्य्यंच आवृताश्च बहिः पुनः।
पश्वात्मानस्ततो जाता उत्पथग्राहिणश्च ते॥ ७

तमप्यसाधकं ज्ञात्वा सर्गमन्यममन्यत।
तदोर्ध्वस्त्रोतसो वृत्तो देवसर्गस्तु सात्त्विकः॥ ८

ते सुखप्रीतिबहुला बहिरन्तश्च नावृताः।
प्रकाशा बहिरन्तश्च स्वभावादेव संज्ञिताः॥ ९

ततोऽभिध्यायतोऽव्यक्तादर्वाक्स्त्रोतस्तु साधकः।
मनुष्यनामा सञ्जातः सर्गो दुःखसमुत्कटः॥ १०

प्रकाशा बहिरन्तस्ते तमोद्रिक्ता रजोऽधिकाः।
पंचमोऽनुग्रहः सर्गश्चतुर्धा संव्यवस्थितः॥ ११

विपर्य्ययेण शक्त्या च तुष्ट्या सिद्ध्या तथैव च।
तेऽपरिग्राहिणः सर्वे संविभागरताः पुनः॥ १२

खादनाश्चाप्यशीलाश्च भूताद्याः परिकीर्तिताः।
प्रथमो महतः सर्गो ब्रह्मणः परमेष्ठिनः॥ १३
तन्मात्राणां द्वितीयस्तु भूतसर्गः स उच्यते।
वैकारिकस्तृतीयस्तु सर्ग ऐन्द्रियकः स्मृतः॥ १४
इत्येष प्रकृतेः सर्गः सम्भूतोऽबुद्धिपूर्वकः।
मुख्यसर्गश्चतुर्थस्तु मुख्या वै स्थावराः स्मृताः॥ १५
तिर्य्यक्स्त्रोतस्तु यः प्रोक्तस्तिर्यग्योनिः स पञ्चमः।
तदूर्ध्वस्त्रोतसः षष्ठो देवसर्गस्तु स स्मृतः॥ १६

ततोऽर्वाक् स्त्रोतसां सर्गः सप्तमः स तु मानुषः।
अष्टमोऽनुग्रहः सर्गः कौमारो नवमः स्मृतः॥ १७

अनुपयोगी देखकर ब्रह्मा अप्रसन्नमन होकर दूसरे सर्गका विचार करने लगे। तब उस सर्गका ध्यान करते हुए ब्रह्माका तिर्यक्स्रोत नामक सर्ग उत्पन्न हुआ॥ ४—६॥

वे पशु-पक्षी आदि भीतरसे प्रकाश (ज्ञान)-युक्त तथा बाहरसे अज्ञानयुक्त थे, अतः उन्होंने भी सन्मार्गको ग्रहण नहीं किया॥ ७॥

तब उसे भी अनुपयोगी समझकर वे दूसरे प्रकारकी सृष्टि करनेका विचार करने लगे। उन्होंने सत्त्वगुणयुक्त ऊर्ध्वस्रोत नामक देवसर्ग प्रारम्भ किया। वे देवता स्वभावसे ही सुख तथा प्रीतिसे परिपूर्ण, बाहर-भीतरसे अज्ञानरहित तथा ज्ञानसम्पन्न हुए॥ ८-९॥

इसके बाद ब्रह्माजीके ध्यान करते समय अव्यक्तसे अर्वाक्स्रोत (संसारकी ओर सृष्टि-प्रवाहवाला), [पुरुषार्थोंको] सिद्ध करनेवाला किंतु महान् दुःखोंसे युक्त मनुष्य नामक सर्ग उत्पन्न हुआ। वे [मनुष्य] बाहर-भीतरसे ज्ञानयुक्त और तमोगुण तथा रजोगुणवाले थे। पाँचवाँ अनुग्रह नामक सर्ग विपर्यय, शक्ति, तुष्टि तथा सिद्धिके द्वारा चार प्रकारसे बँटा हुआ व्यवस्थित था। [इस सर्गके अन्तर्गत जिनकी उत्पत्ति हुई] वे सब अपरिग्रही, संविभागरत, खाने-पीनेवाले तथा शीलरहित भूत-प्रेत आदि कहे गये॥ १०—१२॥

परमेष्ठी ब्रह्माका पहला सर्ग महत्तत्त्वका है। तन्मात्राओंका जो दूसरा सर्ग है, वह भूतसर्ग कहा जाता है। तीसरा वैकारिक सर्ग इन्द्रियोंका कहा गया है। प्रकृतिकी यह सृष्टि बुद्धिपूर्वक हुई, यह जो चौथा मुख्य सर्ग है, इसके अन्तर्गत मुख्य रूपसे स्थावर कहे गये हैं॥ १३—१५॥

तिर्यक् स्रोत नामक सर्ग पाँचवाँ है, जो तिर्यक् योनियोंका सर्ग कहा गया है। जो ऊर्ध्वस्रोत नामक छठा सर्ग है, वह देवसर्ग कहा गया है॥ १६॥

इसके बाद जो सातवाँ अर्वाक्स्रोत सर्ग है, वह मनुष्योंका सर्ग है। आठवाँ अनुग्रह सर्ग है तथा नौवाँ कौमार सर्ग कहा गया है। जो प्रथम तीन

प्राकृताश्च त्रयः पूर्वे सर्गास्तेऽबुद्धिपूर्वकाः।
बुद्धिपूर्वं प्रवर्तन्ते मुख्याद्याः पञ्च वैकृताः॥ १८

अग्रे ससर्ज वै ब्रह्मा मानसानात्मनः समान्।
सनन्दं सनकं चैव विद्वांसञ्च सनातनम्॥ १९
ऋभुं सनत्कुमारं च पूर्वमेव प्रजापतिः।
सर्वे ते योगिनो ज्ञेया वीतरागा विमत्सराः॥ २०
ईश्वरासक्तमनसो न चक्रुः सृष्टये मतिम्।

तेषु सृष्ट्यनपेक्षेषु गतेषु सनकादिषु॥ २१
स्रष्टुकामः पुनर्ब्रह्मा तताप परमं तपः।
तस्यैवं तप्यमानस्य न किंचित्समवर्त्तत॥ २२
ततो दीर्घेण कालेन दुःखात्क्रोधो व्यजायत।

क्रोधाविष्टस्य नेत्राभ्यां प्रापतन्नश्रुबिन्दवः॥ २३

ततस्तेभ्योऽश्रुबिन्दुभ्यो भूताः प्रेतास्तदाभवन्।
सर्वांस्तानश्रुजान्दृष्ट्वा ब्रह्मात्मानमनिंदत॥ २४

तस्य तीव्राऽभवन्मूर्च्छा क्रोधामर्षसमुद्भवा।
मूर्च्छितस्तु जहौ प्राणान्क्रोधाविष्टः प्रजापतिः॥ २५

ततः प्राणेश्वरो रुद्रो भगवान्नीललोहितः।
प्रसादमतुलं कर्त्तुं प्रादुरासीत्प्रभोर्मुखात्॥ २६

दशधा चैकधा चक्रे स्वात्मानं प्रभुरीश्वरः।
ते तेनोक्ता महात्मानो दशधा चैकधा कृताः॥ २७

यूयं सृष्टा मया वत्सा लोकानुग्रहकारणात्।
तस्मात्सर्वस्य लोकस्य स्थापनाय हिताय च॥ २८

प्रजासन्तानहेतोश्च प्रयतध्वमतन्द्रिताः।

एवमुक्ताश्च रुरुदुर्दुद्रुवुश्च समन्ततः॥ २९

रोदनाद् द्रावणाच्चैव ते रुद्रा नामतः स्मृताः।
ये रुद्रास्ते खलु प्राणा ये प्राणास्ते महात्मकाः॥ ३०

प्राकृत सर्ग हैं, वे अबुद्धिपूर्वक प्रवृत्त हुए हैं। मुख्य आदि पाँच वैकारिक सर्ग बुद्धिपूर्वक प्रवृत्त हुए हैं॥ १७-१८॥

इसके अनन्तर प्रजापति ब्रह्माने सर्वप्रथम अपने ही समान मानसपुत्रों सनन्दन, सनक, विद्वान् सनातन, ऋभु और सनत्कुमारको उत्पन्न किया। उन सभीको योगी, वीतराग तथा अभिमानरहित जानना चाहिये। ईश्वरमें आसक्त मनवाले उन सबका मन सृष्टिकार्यमें नहीं लगा॥ १९-२०१/२॥

सृष्टिकी अपेक्षासे रहित उन सनक आदिके चले जानेपर सृष्टि करनेकी इच्छावाले ब्रह्माने महान् तप किया। इस प्रकार बहुत समयतक तप करते हुए ब्रह्माको जब कोई भी फल नहीं मिला, तब दुःखके कारण उन्हें क्रोध उत्पन्न हुआ॥ २१-२२१/२॥

क्रोधसे आविष्ट उन ब्रह्माके नेत्रोंसे आँसूकी बूँदें गिरने लगीं, तब उन आँसूकी बूँदोंसे भूत-प्रेत उत्पन्न हुए। अपने आँसुओंसे उत्पन्न उन सभीको देखकर ब्रह्मदेवने अपनी निन्दा की। उस समय क्रोध और अमर्षके कारण उनको तीव्र मूर्च्छा आ गयी और मूर्च्छित तथा क्रोधाविष्ट प्रजापतिने अपने प्राण त्याग दिये॥ २३—२५॥

तब प्राणोंके अधिष्ठाता भगवान् नीललोहित रुद्र उनपर असीम कृपा करनेके लिये उन प्रभु ब्रह्माजीके मुखसे प्रकट हुए। उत्पन्न होकर उन सामर्थ्यशाली रुद्रने स्वयंको ग्यारह भागोंमें विभक्त कर लिया। तत्पश्चात् भगवान् शिवने उन एकादश रुद्रोंसे कहा—हे पुत्रो! मैंने लोकके कल्याणके लिये तुमलोगोंकी सृष्टि की है, अतः तुमलोग समस्त लोकोंकी स्थापना, उनके कल्याण तथा प्रजासन्तानकी वृद्धिके लिये आलस्यरहित होकर प्रयत्न करो॥ २६—२८१/२॥

तब इस प्रकार कहे गये वे सभी रुद्र रोने लगे और चारों ओर भागने लगे। रुदन करने और भागनेके कारण वे रुद्र नामसे प्रसिद्ध हुए। जो रुद्र हैं, वे ही प्राण हैं, जो प्राण हैं, वे ही महामना रुद्र हैं॥ २९-३०॥

ततो मृतस्य देवस्य ब्रह्मणः परमेष्ठिनः।
घृणी ददौ पुनः प्राणान् ब्रह्मपुत्रो महेश्वरः॥ ३१

इसके पश्चात् दयालु ब्रह्मपुत्र महेश्वरने मरे हुए परमेष्ठी ब्रह्मदेवको पुनः प्राण प्रदान किये॥ ३१॥

प्रहृष्टवदनो रुद्रः प्राणप्रत्यागमाद्विभोः।
अभ्यभाषत विश्वेशो ब्रह्माणं परमं वचः॥ ३२

मा भैर्माभैर्महाभाग विरिञ्चे जगतां गुरो।
मया ते प्राणिताः प्राणाः सुखमुत्तिष्ठ सुव्रत॥ ३३

ब्रह्माजीके शरीरमें पुनः प्राणसंचार हो जानेसे प्रसन्नमुखवाले विश्वेश्वर रुद्र ब्रह्माजीसे उत्तम वचन कहने लगे—हे विरिंचे! हे जगद्गुरो! हे महाभाग! भय मत कीजिये, भय मत कीजिये। हे सुव्रत! मैंने आपको प्राणदान दिया है, अतः सुखपूर्वक उठिये॥ ३२-३३॥

स्वप्नानुभूतमिव तच्छ्रुत्वा वाक्यं मनोहरम्।
हरं निरीक्ष्य शनकैर्नेत्रैः फुल्लाम्बुजप्रभैः॥ ३४

तथा प्रत्यागतप्राणः स्निग्धगम्भीरया गिरा।
उवाच वचनं ब्रह्मा तमुद्दिश्य कृताञ्जलिः॥ ३५

त्वं हि दर्शनमात्रेण चानन्दयसि मे मनः।
को भवान् विश्वमूर्त्या वा स्थित एकादशात्मकः॥ ३६

इसके पश्चात् स्वप्नके अनुभवके समान उस मनोहर वाक्यको सुनकर विकसित कमलके समान नेत्रोंसे शिवजीकी ओर धीरे-धीरे देख करके लौटे हुए प्राणवाले ब्रह्मदेवने हाथ जोड़कर उन्हें उद्देश्य करके कोमल तथा गम्भीर वाणीमें कहा—आप अपने दर्शनमात्रसे मेरे मनको आह्लादित कर रहे हैं। आप कौन हैं, जो सम्पूर्ण जगत्‌के रूपमें स्थित हैं, क्या वे ही भगवान् आप ग्यारह रूपोंमें प्रकट हुए हैं?॥ ३४—३६॥

तस्य तद्वचनं श्रुत्वा व्याजहार महेश्वरः।
स्पृशन् कराभ्यां ब्रह्माणं सुसुखाभ्यां सुरेश्वरः॥ ३७

मां विद्धि परमात्मानं तव पुत्रत्वमागतम्।
एते चैकादश रुद्रास्त्वां सुरक्षितुमागताः॥ ३८

तस्मात्तीव्रामिमां मूर्च्छां विधूय मदनुग्रहात्।
प्रबुद्धस्व यथापूर्वं प्रजा वै स्रष्टुमर्हसि॥ ३९

उनके उस वचनको सुनकर देवताओंके स्वामी महेश्वरने अपने परम सुखद हाथोंसे ब्रह्माजीका स्पर्श करते हुए कहा—मुझ परमात्माको अपने पुत्ररूपमें आया हुआ समझिये और ये एकादश रुद्र आपकी रक्षाहेतु यहाँ आये हैं। अतः मेरे अनुग्रहसे इस तीव्र मूर्च्छाका त्याग करके जागिये और पूर्वकी भाँति प्रजाओंकी सृष्टि कीजिये॥ ३७—३९॥

एवं भगवता प्रोक्तो ब्रह्मा प्रीतमना ह्यभूत्।
नामाष्टकेन विश्वात्मा तुष्टाव परमेश्वरम्॥ ४०

भगवान् शंकरके ऐसा कहनेपर विश्वात्मा ब्रह्मा प्रसन्नचित्त हो गये और आठ नामों [-वाले स्तोत्र]-से परमेश्वरकी स्तुति करने लगे॥ ४०॥

ब्रह्मोवाच

नमस्ते भगवन् रुद्र भास्करामिततेजसे।
नमो भवाय देवाय रसायाम्बुमयात्मने।
शर्वाय क्षितिरूपाय सदासुरभये नमः॥ ४१
ईशाय वसवे तुभ्यं नमः स्पर्शमयात्मने।
पशूनां पतये चैव पावकायातितेजसे।
भीमाय व्योमरूपाय शब्दमात्राय ते नमः॥ ४२
उग्रायोग्रस्वरूपाय यजमानात्मने नमः।
महाशिवाय सोमाय नमोऽस्त्वमृतमूर्तये॥ ४३

ब्रह्माजी बोले—हे भगवन्! रुद्र! अमित तेजस्वी, सूर्यमूर्ति आप ईशानको नमस्कार है। रसस्वरूप जलमय विग्रहवाले आप भवदेवताको नमस्कार है। सर्वदा गन्ध गुणसे समन्वित पृथ्वीरूपधारी आप शर्वको नमस्कार है। स्पर्शमय वसु [वायु]-रूपधारी, उग्रस्वरूप आप उग्रको नमस्कार है। यजमानमूर्ति आप पशुपतिको नमस्कार है। अतीव तेजोमय अग्निमूर्ति आप रुद्रको नमस्कार है। शब्दतन्मात्रासे युक्त आकाशमूर्ति आप भीमको नमस्कार है। सोम-स्वरूप अमृतमूर्ति आप महादेव शिवजीको नमस्कार है॥ ४१—४३॥

एवं स्तुत्वा महादेवं ब्रह्मा लोकपितामहः।
प्रार्थयामास विश्वेशं गिरा प्रणतिपूर्वया॥ ४४

भगवन् भूतभव्येश मम पुत्र महेश्वर।
सृष्टिहेतोस्त्वमुत्पन्नो ममाङ्गेऽनङ्गनाशन॥ ४५

तस्मान्महति कार्येऽस्मिन् व्यापृतस्य जगत्प्रभो।
सहायं कुरु सर्वत्र स्त्रष्टुमर्हसि सुप्रजाः॥ ४६

इस प्रकार लोकपितामह ब्रह्मा विश्वेश्वर महादेवकी स्तुतिकर अत्यन्त विनीत वाणीसे उनकी प्रार्थना करने लगे। हे भगवन्! हे भूतभव्येश! हे मेरे पुत्र महेश्वर! हे कामनाशक! आप सृष्टिके निमित्त मेरे शरीरसे उत्पन्न हुए हैं। हे जगत्प्रभो! इस महान् कार्यमें संलग्न मेरी सभी जगह श्रेष्ठ सहायता कीजिये और श्रेष्ठ प्रजाओंकी सृष्टि कीजिये॥ ४४—४६॥

तेनैवं प्रार्थितो देवो रुद्रस्त्रिपुरमर्दनः।
बाढमित्येव तां वाणीं प्रतिजग्राह शंकरः॥ ४७

ततः स भगवान् ब्रह्मा हृष्टं तमभिनन्द्य च।
स्त्रष्टुं तेनाभ्यनुज्ञातस्तथान्याश्चासृजत्प्रजाः॥ ४८

उनके द्वारा इस प्रकार प्रार्थित हुए त्रिपुरमर्दन शंकर रुद्रदेवने 'ठीक है'—ऐसा कहकर उनकी बात स्वीकार कर ली। इसके पश्चात् भगवान् ब्रह्मदेव उन हर्षित रुद्रका अभिनन्दन करके सृष्टि करनेके लिये उनकी आज्ञा लेकर अन्य प्रजाओंकी रचना करने लगे॥ ४७-४८॥

मरीचिभृग्वंगिरसः पुलस्त्यं पुलहं क्रतुम्।
दक्षमत्रिं वसिष्ठं च सोऽसृजन्मनसैव च।
पुरस्तादसृजद् ब्रह्मा धर्मं संकल्पमेव च॥ ४९

ब्रह्माने मरीचि, भृगु, अंगिरा, पुलस्त्य, पुलह, क्रतु, दक्ष, अत्रि, वसिष्ठको अपने मनसे उत्पन्न किया, फिर उन्होंने धर्म तथा संकल्पकी रचना की॥ ४९॥

इत्येते ब्रह्मणः पुत्रा द्वादशादौ प्रकीर्तिताः।
सह रुद्रेण संभूताः पुराणा गृहमेधिनः॥ ५०

सबसे पहले ब्रह्माजीके ये बारह पुत्र कहे गये हैं। ये सभी पुराणपुरुष और गृहस्थधर्मका पालन करनेवाले हैं, जो रुद्रके साथ उत्पन्न हुए हैं॥ ५०॥

तेषां द्वादश वंशाः स्युर्दिव्या देवगणान्विताः।
प्रजावन्तः क्रियावन्तो महर्षिभिरलंकृताः॥ ५१
अथ देवासुरान् पितॄन् मनुष्यांश्च चतुष्टयम्।
सह रुद्रेण सिसृक्षुरम्भस्येतानि वै विधिः॥ ५२

देवगणोंसहित इनके बारह दिव्य वंश कहे गये हैं। वे सभी प्रजावान्, क्रियावान् तथा महर्षियोंसे विभूषित हैं। तत्पश्चात् जलमें स्थित हुए रुद्रसहित ब्रह्माजीने देवता, असुर, पितर तथा मनुष्य—इन चारोंको रचनेकी इच्छा की॥ ५१-५२॥

स सृष्ट्यर्थं समाधाय ब्रह्मात्मानमयूयुजत्।
मुखादजनयद्देवान् पितॄंश्चैवोपपक्षतः॥ ५३

जघनादसुरान् सर्वान् प्रजनादपि मानुषान्।
अवस्करे क्षुधाविष्टा राक्षसास्तस्य जज्ञिरे॥ ५४

पुत्रास्तमोरजःप्राया बलिनस्ते निशाचराः।
सर्पा यक्षास्तथा भूता गंधर्वाः संप्रजज्ञिरे॥ ५५

अतः सृष्टिके लिये ब्रह्माजीने समाधिस्थ होकर चित्तको एकाग्र किया। उन्होंने अपने मुखसे देवगणोंको, कक्षसे पितरोंको, जघनदेशसे सभी असुरोंको तथा शिश्नभागसे मनुष्योंको उत्पन्न किया। उनके गुदास्थानसे भूखे राक्षस उत्पन्न हुए। उनके वे पुत्र तमोगुण तथा रजोगुणसे समन्वित महाबली निशाचर हुए। इसी प्रकार सर्प, यक्ष, भूत तथा गन्धर्व उत्पन्न हुए॥ ५३—५५॥

वयांसि पक्षतः सृष्टाः पक्षिणो वक्षसोऽसृजत्।
मुखतोऽजांस्तथा पार्श्वादुरगांश्च विनिर्ममे॥ ५६

उन्होंने पक्षभागसे शब्द करनेवाले पक्षियोंको तथा अन्य पक्षियोंको छातीसे उत्पन्न किया, मुखसे अजोंको तथा पार्श्वस्थानसे सर्पोंको उत्पन्न किया।

पद्भ्यां चाश्वान्समातङ्गान् शरभान् गवयान् मृगान्।
उष्ट्रानश्वतरांश्चैव न्यंकूनन्यांश्च जातयः॥ ५७

उन्होंने पैरसे घोड़े, हाथी, शरभ, गवय, मृग, ऊँट, खच्चर, बारहसिंघा तथा अन्य पशु जातियोंको उत्पन्न किया॥ ५६-५७॥

औषध्यः फलमूलानि रोमभ्यस्तस्य जज्ञिरे।
गायत्रीं च ऋचं चैव त्रिवृत्साम रथन्तरम्॥ ५८

अग्निष्टोमं च यज्ञानां निर्ममे प्रथमान्मुखात्।
यजूंषि त्रैष्टुभं छंदः स्तोमं पंचदशं तथा॥ ५९

बृहत्साम तथोक्थं च दक्षिणादसृजन्मुखात्।
सामानि जगतीछंदः स्तोमं सप्तदशं तथा॥ ६०

वैरूप्यमतिरात्रं च पश्चिमादसृजन् मुखात्।
एकविंशमथर्वाणमाप्तोर्यामाणमेव च॥ ६१

अनुष्टुभं स वैराजमुत्तरादसृजन्मुखात्।
उच्चावचानि भूतानि गात्रेभ्यस्तस्य जज्ञिरे॥ ६२

रोमावलियोंसे ओषधियों और फल-मूलोंका प्राकट्य हुआ। ब्रह्माजीके पूर्ववर्ती मुखसे गायत्री छन्द, ऋग्वेद, त्रिवृत् स्तोम, रथन्तर साम तथा अग्निष्टोम नामक यज्ञकी उत्पत्ति हुई। उनके दक्षिण मुखसे यजुर्वेद, त्रिष्टुप् छन्द, पंचदश स्तोम, बृहत्साम और उक्थ नामक यज्ञकी उत्पत्ति हुई। उन्होंने अपने पश्चिम मुखसे सामवेद, जगती छन्द, सप्तदश स्तोम,वैरूप्य साम और अतिरात्र नामक यज्ञको प्रकट किया। उनके उत्तरवर्ती मुखसे एकविंश स्तोम, अथर्ववेद, आप्तोर्याम नामक याग, अनुष्टुपछन्द और वैराज नामक सामका प्रादुर्भाव हुआ। उनके अंगोंसे और भी बहुत-से छोटे-बड़े प्राणी उत्पन्न हुए॥ ५८—६२॥

यक्षाः पिशाचा गंधर्वास्तथैवाप्सरसां गणाः।
नरकिन्नररक्षांसि वयः पशुमृगोरगाः॥ ६३

अव्ययं चैव यदिदं जगत् स्थावरजंगमम्।
तेषां वै यानि कर्माणि प्राक्सृष्टानि प्रपेदिरे॥ ६४

तान्येव ते प्रपद्यन्ते सृज्यमानाः पुनः पुनः।
हिंस्राहिंस्रे मृदु क्रूरे धर्माधर्मावृतानृते॥ ६५

तद्भाविताः प्रपद्यन्ते तस्मात्तत्तस्य रोचते।

उन्होंने यक्ष, पिशाच, गन्धर्व, अप्सराओंके समुदाय, मनुष्य, किंनर, राक्षस, पक्षी, पशु, मृग और सर्प आदि सम्पूर्ण नित्य एवं अनित्य स्थावर-जंगम जगत्की रचना की। उनमेंसे जिन्होंने जैसे-जैसे कर्म पूर्वकल्पोंमें अपनाये थे, पुनः-पुनः सृष्टि होनेपर उन्होंने फिर उन्हीं कर्मोंको अपनाया। [नूतन सृष्टि होनेपर भी वे प्राणी] अपनी पूर्वभावनासे भावित होकर हिंसा-अहिंसासे युक्त मृदु-कठोर, धर्म-अधर्म तथा सत्य और मिथ्या कर्मको अपनाते हैं; क्योंकि पहलेकी वासनाके अनुकूल कर्म ही उन्हें अच्छे लगते हैं॥ ६३—६५१/२॥

महाभूतेषु नानात्वमिन्द्रियार्थेषु मुक्तिषु॥ ६६

विनियोगं च भूतानां धातैव व्यदधत्स्वयम्।
नामरूपं च भूतानां प्राकृतानां प्रपञ्चनम्॥ ६७

वेदशब्देभ्य एवादौ निर्ममेऽसौ पितामहः।
आर्षाणि चैव नामानि याश्च वेदेषु वृत्तयः॥ ६८

इस प्रकार विधाताने ही स्वयं इन्द्रियोंके विषय, भूत और शरीर आदिमें विभिन्नता एवं व्यवहारकी सृष्टि की है। उन पितामहने कल्पके आरम्भमें देवता आदि प्राणियोंके नाम, रूप तथा कार्य-विस्तारको वेदोक्त वर्णनके अनुसार ही निश्चित किया। ऋषियोंके नाम तथा जीविका-साधक कर्म भी उन्होंने वेदोंके अनुसार ही निर्दिष्ट किये॥ ६६—६८॥

शर्वर्य्यन्ते प्रसूतानां तान्येवैभ्यो ददावजः।
यथर्तावृतुलिंगानि नानारूपाणि पर्य्यये॥ ६९

अपनी रात्रिके व्यतीत होनेपर अजन्मा ब्रह्माने स्वरचित प्राणियोंको वे ही नाम और कर्म दिये, जो पूर्वकल्पमें उन्हें प्राप्त थे। जिस प्रकार भिन्न-भिन्न ऋतुओंके पुनः-पुनः आनेपर उनके चिह्न और नाम-रूप आदि पूर्ववत् रहते हैं, उसी प्रकार युगादिकालमें भी उनके पूर्वभाव ही दृष्टिगोचर होते हैं। इस प्रकार स्वयम्भू ब्रह्माजीकी लोकसृष्टि उन्हींके विभिन्न अंगोंसे प्रकट हुई है॥ ६९-७०॥

दृश्यन्ते तानि तान्येव तथा भावा युगादिषु।
इत्येष कारणोद्भूतो लोकसर्गः स्वयंभुवः॥ ७०

महदाद्यो विशेषान्तो विकारः प्रकृतेः स्वयम्।
चंद्रसूर्यप्रभाजुष्टो ग्रहनक्षत्रमंडितः॥ ७१

नदीभिश्च समुद्रैश्च पर्वतैश्च स मंडितः।
पुरैश्च विविधै रम्यैः स्फीतैर्जनपदैस्तथा॥ ७२

महत्से लेकर विशेषपर्यन्त सब कुछ प्रकृतिका विकार है। यह प्राकृत जगत् चन्द्रमा और सूर्यकी प्रभासे उद्भासित, ग्रह और नक्षत्रोंसे मण्डित, नदियों, पर्वतों तथा समुद्रोंसे अलंकृत और भाँति-भाँतिके रमणीय नगरों एवं समृद्धिशाली जनपदोंसे सुशोभित है। [इसीको ब्रह्माजीका वन या ब्रह्मवृक्ष कहते हैं]॥ ७१-७२॥

तस्मिन् ब्रह्मवनेऽव्यक्तो ब्रह्मा चरति सर्ववित्।
अव्यक्तबीजप्रभव ईश्वरानुग्रहे स्थितः॥ ७३

बुद्धिस्कंधमहाशाख इन्द्रियांतरकोटरः।
महाभूतप्रमाणश्च विशेषामलपल्लवः॥ ७४

धर्माधर्मसुपुष्पाढ्यः सुखदुःखफलोदयः।
आजीव्यः सर्वभूतानां ब्रह्मवृक्षः सनातनः॥ ७५

उस ब्रह्मवनमें अव्यक्त एवं सर्वज्ञ ब्रह्मा विचरते हैं। वह सनातन ब्रह्मवृक्ष अव्यक्तरूपी बीजसे प्रकट एवं ईश्वरके अनुग्रहपर स्थित है। बुद्धि इसका तना और बड़ी-बड़ी डालियाँ है। इन्द्रियाँ भीतरके खोखले हैं। महाभूत इसकी सीमा हैं। विशेष पदार्थ इसके निर्मल पत्ते हैं। धर्म और अधर्म इसके सुन्दर फूल हैं। इसमें सुख और दुःखरूपी फल लगते हैं तथा यह सम्पूर्ण भूतोंके जीवनका सहारा है॥ ७३—७५॥

द्यां मूर्द्धानं तस्य विप्रा वदंति
खं वै नाभिं चंद्रसूर्यौ च नेत्रे।
दिशः श्रोत्रे चरणौ च क्षितिं च
सोऽचिन्त्यात्मा सर्वभूतप्रणेता॥ ७६

वक्त्रात्तस्य ब्राह्मणाः संप्रसूताः
तद्वक्षसः क्षत्रियाः पूर्वभागात्।
वैश्या ऊरुभ्यां तस्य पद्भ्यां च शूद्राः
सर्वे वर्णा गात्रतः संप्रसूताः॥ ७७

ब्राह्मणलोग द्युलोकको उनका मस्तक, आकाशको नाभि, चन्द्रमा और सूर्यको नेत्र, दिशाओंको कान और पृथ्वीको उनके पैर बताते हैं। वे अचिन्त्यस्वरूप महेश्वर ही सब भूतोंके निर्माता हैं। उनके मुखसे ब्राह्मण प्रकट हुए हैं। वक्षःस्थलके ऊपरी भागसे क्षत्रियोंकी उत्पत्ति हुई है, दोनों जाँघोंसे वैश्य और पैरोंसे शूद्र उत्पन्न हुए हैं। इस प्रकार उनके अंगोंसे ही सम्पूर्ण वर्णोंका प्रादुर्भाव हुआ है॥ ७६-७७॥

इति श्रीशिवमहापुराणे सप्तम्यां वायवीयसंहितायां पूर्वखण्डे सृष्टिवर्णनं नाम द्वादशोऽध्यायः॥ १२॥

॥ इस प्रकार श्रीशिवमहापुराणके अन्तर्गत सातवीं वायवीयसंहिताके पूर्वखण्डमें सृष्टिवर्णन नामक बारहवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ १२॥

अथ त्रयोदशोऽध्यायः

कल्पभेदसे त्रिदेवों (ब्रह्मा, विष्णु, रुद्र)-के एक-दूसरेसे प्रादुर्भावका वर्णन

ऋषय ऊचुः

भवता कथिता सृष्टिर्भवस्य परमात्मनः।
चतुर्मुखमुखात्तस्य संशयो नः प्रजायते॥ १

ऋषि बोले—[हे वायुदेव!] आपने परमात्मा शिवकी उत्पत्ति ब्रह्माजीके मुखसे बतायी, इस विषयमें हमलोगोंको संशय हो रहा है॥ १॥

देवश्रेष्ठो विरूपाक्षो दीप्तः शूलधरो हरः।
कालात्मा भगवान् रुद्रः कपर्दी नीललोहितः॥ २
सब्रह्मकमिमं लोकं सविष्णुमपि पावकम्।
यः संहरति संक्रुद्धो युगान्ते समुपस्थिते॥ ३
यस्य ब्रह्मा च विष्णुश्च प्रणामं कुरुतो भयात्।
लोकसंकोचकस्यास्य यस्य तौ वशवर्तिनौ॥ ४
योऽयं देवः स्वकादंगाद् ब्रह्मविष्णू पुरासृजत्।
स एव हि तयोर्नित्यं योगक्षेमकरः प्रभुः॥ ५
स कथं भगवान् रुद्र आदिदेवः पुरातनः।
पुत्रत्वमगमच्छंभुर्ब्रह्मणोऽव्यक्तजन्मनः॥ ६

जो देवताओंमें श्रेष्ठ, विरूपाक्ष, दीप्तिमान्, शूल धारण करनेवाले, हर, कालात्मा, जटाधारी तथा नीललोहित हैं। जो भगवान् रुद्र युगान्तमें कुपित होकर ब्रह्मा, विष्णु तथा पावकसहित इस लोकका संहार करते हैं, जिन्हें ब्रह्मा तथा विष्णु भयसे नमस्कार करते हैं, सभी लोकोंका संहार करनेवाले जिन रुद्रके वशमें वे दोनों रहते हैं, जिन देवने पूर्वकालमें अपने शरीरसे ब्रह्मा तथा विष्णुको उत्पन्न किया और जो प्रभु उन दोनोंका नित्य योगक्षेम वहन करते हैं। वे आदिदेव पुरातन अव्यक्तजन्मा शम्भु भगवान् रुद्र ब्रह्माजीके पुत्र किस प्रकार हुए?॥ २—६॥

प्रजापतिश्च विष्णुश्च रुद्रस्यैतौ परस्परम्।
सृष्टौ परस्परस्यांगादिति प्रागपि शुश्रुम॥ ७

हमलोग पहले भी सुन चुके हैं कि रुद्रके शरीरसे ब्रह्मा और विष्णु एक-एक करके उत्पन्न हुए हैं॥ ७॥

कथं पुनरशेषाणां भूतानां हेतुभूतयोः।
गुणप्रधानभावेन प्रादुर्भावः परस्परात्॥ ८

इतना ही नहीं, जब वे दोनों ही सृष्टिके हेतुभूत हैं, तब इनकी मुख्यता और गौणता एवं उत्तरोत्तर प्रादुर्भाव किस प्रकार कहा गया?॥ ८॥

नापृष्टं भवता किंचिन्नाश्रुतं च कथंचन।
भगवच्छिष्यभूतेन भवता सकलं स्मृतम्॥ ९

ऐसी कोई बात नहीं है, जो आपने ब्रह्मदेवसे न पूछी हो और कोई ऐसी बात नहीं है, जो आपने उनसे न सुनी हो। आप ब्रह्माजीके प्रधान शिष्य हैं, अतः सभी बातें आपको स्मरण भी हैं॥ ९॥

तत्त्वं वद यथा ब्रह्मा मुनीनामवदद्विभुः।
वयं श्रद्धालवस्तात श्रोतुमीश्वरसद्यशः॥ १०

हे तात! जैसा सर्वव्यापी ब्रह्माने आपसे कहा है, उसे आप हम मुनियोंको बताइये, हमलोग ईश्वरका उत्तम चरित्र सुननेके लिये श्रद्धायुक्त हैं॥ १०॥

वायुरुवाच

स्थाने पृष्टमिदं विप्रा भवद्भिः प्रश्नकोविदैः।
इदमेव पुरा पृष्टो मम प्राह पितामहः॥ ११

तदहं सम्प्रवक्ष्यामि यथा रुद्रसमुद्भवः।
यथा च पुनरुत्पत्तिर्ब्रह्मविष्ण्वोः परस्परम्॥ १२

वायु बोले—हे विप्रो! प्रश्न करनेमें प्रवीण आपलोगोंने यह उचित ही प्रश्न किया है। यही बात मैंने ब्रह्माजीसे भी पूछी थी, तब उन्होंने मुझे बताया था। जिस प्रकार रुद्रकी उत्पत्ति हुई तथा [उस कल्पमें पुनः] ब्रह्मा और विष्णुकी परस्पर उत्पत्ति जिस प्रकार हुई, मैं वह सब आपलोगोंसे कहूँगा॥ ११-१२॥

त्रयस्ते कारणात्मानो जाताः साक्षान्महेश्वरात्।
चराचरस्य विश्वस्य सर्गस्थित्यन्तहेतवः॥ १३
परमैश्वर्यसंयुक्ताः परमेश्वरभाविताः।
तच्छक्त्याधिष्ठिता नित्यं तत्कार्यकरणक्षमाः॥ १४

इस चराचर जगत्के सृष्टि, पालन तथा संहारके कारणभूत तीनों ही देवता साक्षात् महेश्वरसे उत्पन्न हुए हैं। वे परम ऐश्वर्यसे युक्त, परमेश्वरसे भावित तथा उनकी शक्तिसे अधिष्ठित होकर उनके कार्यको करनेमें सर्वथा समर्थ हैं॥ १३-१४॥

पित्रा नियमिताः पूर्वं त्रयोऽपि त्रिषु कर्मसु।
ब्रह्मा सर्गे हरिस्त्राणे रुद्रः संहरणे तथा॥ १५
तथाप्यन्योऽन्यमात्सर्यादन्योऽन्यातिशयाशिनः।
तपसा तोषयित्वा स्वं पितरं परमेश्वरम्॥ १६

पितृरूप परमेश्वरने पूर्व कालमें इन तीनोंको तीन कार्योंमें नियुक्त किया है। ब्रह्माको सृजनके लिये, विष्णुको पालनके लिये तथा रुद्रको संहारके लिये नियुक्त किया है। फिर भी परस्पर मत्सरताके कारण वे अपने उत्पत्ति-कर्ता परमेश्वरको तपस्यासे सन्तुष्टकर एक-दूसरेसे अधिक सामर्थ्यकी अपेक्षा रखते हैं॥ १५-१६॥

लब्ध्वा सर्वात्मना तस्य प्रसादात्परमेष्ठिनः।
ब्रह्मनारायणौ पूर्वं रुद्रः कल्पान्तरेऽसृजत्॥ १७
कल्पान्तरे पुनर्ब्रह्मा रुद्रविष्णू जगन्मयः।
विष्णुश्च भगवान् रुद्रं ब्रह्माणमसृजत्पुनः॥ १८
नारायणं पुनर्ब्रह्मा ब्रह्माणं च पुनर्भवः।
एवं कल्पेषु कल्पेषु ब्रह्मविष्णुमहेश्वराः॥ १९
परस्परेण जायन्ते परस्परहितैषिणः।
तत्तत्कल्पान्तवृत्तान्तमधिकृत्य महर्षिभिः॥ २०
प्रभावः कथ्यते तेषां परस्परसमुद्भवात्।
शृणु तेषां कथां चित्रां पुण्यां पापप्रमोचिनीम्॥ २१
कल्पे तत्पुरुषे वृत्तां ब्रह्मणः परमेष्ठिनः।

उन परमेष्ठीकी पूर्णरूपसे प्रसन्नता प्राप्तकर पूर्वकल्पमें रुद्रने ब्रह्मा और नारायणको उत्पन्न किया। पुनः किसी दूसरे कल्पमें जगन्मय ब्रह्माने रुद्र और विष्णुको उत्पन्न किया। इसी प्रकार किसी [अन्य] कल्पमें भगवान् विष्णुने रुद्र तथा ब्रह्माको उत्पन्न किया। पुनः किसी कल्पमें ब्रह्मा नारायणको और किसी कल्पमें रुद्रदेवने ब्रह्माको उत्पन्न किया है, इस प्रकार प्रतिकल्पमें ब्रह्मा, विष्णु तथा महेश्वर परस्पर हित करनेकी इच्छासे एक-दूसरेके द्वारा उत्पन्न होते रहते हैं। महर्षिगण उन-उन कल्पोंके वृत्तान्तको लेकर आपसमें समुद्भवकी दृष्टिसे उनके प्रभावका वर्णन करते हैं। अब आपलोग उनकी अद्भुत, पुण्यप्रद तथा पापनाशक कथाको सुनिये, जो परमेष्ठी ब्रह्माके तत्पुरुष नामक कल्पमें घटित हुई थी॥ १७—२१$^1/_2$॥

पुरा नारायणो नाम कल्पे वै मेघवाहने॥ २२
दिव्यं वर्षसहस्रं तु मेघो भूत्वावहद्धराम्।
तस्य भावं समालक्ष्य विष्णोर्विश्वजगद्गुरुः॥ २३
सर्वः सर्वात्मभावेन प्रददौ शक्तिमव्ययाम्।
शक्तिं लब्ध्वा तु सर्वात्मा शिवात्सर्वेश्वरात्तदा॥ २४
ससर्ज भगवान् विष्णुर्विश्वं विश्वसृजा सह।

पूर्वकालमें मेघवाहन नामक कल्पमें भगवान् नारायणने मेघ बनकर दिव्य सहस्रवर्षपर्यन्त पृथ्वीको धारण किया। तब उन विष्णुका भाव देखकर समस्त जगत्के गुरु सर्वात्मा शिवने उन्हें सर्वात्मभावके साथ अव्यय शक्ति दी। इस प्रकार सर्वेश्वर शिवसे शक्तिको प्राप्तकर सर्वात्मा भगवान् विष्णु ब्रह्माको साथ लेकर जगत्की रचना करने लगे॥ २२—२४$^1/_2$॥

विष्णोस्तद्वैभवं दृष्ट्वा सृष्टस्तेन पितामहः॥ २५
ईर्ष्यया परया ग्रस्तः प्रहसन्निदमब्रवीत्।
गच्छ विष्णो मया ज्ञातं तव सर्गस्य कारणम्।
आवयोरधिकश्चास्ति स रुद्रो नात्र संशयः॥ २६

तस्य देवाधिदेवस्य प्रसादात्परमेष्ठिनः।
स्रष्टा त्वं भगवानाद्यः पालकः परमार्थतः॥ २७

अहं च तपसाराध्य रुद्रं त्रिदशनायकम्।
त्वया सह जगत्सर्वं स्रक्ष्याम्यत्र न संशयः॥ २८

एवं विष्णुमुपालभ्य भगवानब्जसम्भवः।
एवं विज्ञापयामास तपसा प्राप्य शंकरम्॥ २९

भगवन् देवदेवेश विश्वेश्वर महेश्वर।
तव वामाङ्गजो विष्णुर्दक्षिणाङ्गभवो ह्यहम्॥ ३०

मया सह जगत्सर्वं तथाप्यसृजदच्युतः।
स मत्सरादुपालब्धस्त्वदाश्रयबलान्मया॥ ३१

मद्भावान्नाधिकस्तेऽतिभावस्त्वयि महेश्वरे।
त्वत्त एव समुत्पत्तिरावयोः सदृशी यतः॥ ३२

तस्य भक्त्या यथापूर्वं प्रसादं कृतवानसि।
तथा ममापि तत्सर्वं दातुमर्हसि शंकर॥ ३३

इति विज्ञापितस्तेन भगवान् भगनेत्रहा।
न्यायेन वै ददौ सर्वं तस्यापि स घृणानिधिः॥ ३४

लब्ध्वैवमीश्वरादेव ब्रह्मा सर्वात्मतां क्षणात्।
त्वरमाणोऽथ संगम्य ददर्श पुरुषोत्तमम्॥ ३५

क्षीरार्णवालये शुभ्रे विमाने सूर्यसंनिभे।
हेमरत्नान्विते दिव्ये मनसा तेन निर्मिते॥ ३६

अनंतभोगशय्यायां शयानं पंकजेक्षणम्।
चतुर्भुजमुदाराङ्गं सर्वाभरणभूषितम्॥ ३७

शंखचक्रधरं सौम्यं चन्द्रबिंबसमाननम्।
श्रीवत्सवक्षसं देवं प्रसन्नमधुरस्मितम्॥ ३८

धरामृदुकरांभोजस्पर्शरक्तपदांबुजम्।

विष्णुके ऐश्वर्यको देखकर उन्हींसे उत्पन्न होनेपर भी महान् ईर्ष्यासे ग्रस्त ब्रह्माजीने हँसते हुए कहा—हे विष्णो! अब चले जाओ, मैंने आपकी सृष्टिका कारण जान लिया। वे रुद्र हमदोनोंसे बढ़कर हैं, इसमें सन्देह नहीं है॥ २५-२६॥

उन्हीं देवाधिदेव परमात्माके परम अभीष्ट अनुग्रहसे आप भगवान् इस जगत्के आदि स्रष्टा और पालक हैं। तपसे मैं भी देवताओंके नायक रुद्रकी आराधनाकर आपके साथ सम्पूर्ण जगत्की सृष्टि करूँगा, इसमें सन्देह नहीं है॥ २७-२८॥

इस प्रकार विष्णुको उलाहना देकर पद्मयोनि भगवान् ब्रह्माजीने तपसे शिवजीका साक्षात्कार किया और वे इस प्रकार शंकरजीसे कहने लगे—हे भगवन्! देवाधिदेव! विश्वेश्वर! हे महेश्वर! बायें अंगसे विष्णु तथा दाहिने अंगसे मैं उत्पन्न हुआ हूँ तो भी मेरे साथ उत्पन्न होकर विष्णुने सारा जगत् उत्पन्न किया। इस समय मैंने भी आपके आश्रयके बलपर मत्सरतापूर्वक उनको तिरस्कृत किया। चूँकि हमदोनोंकी समान उत्पत्ति आपसे ही हुई है और आप महेश्वरमें उनकी भक्ति भी मेरी अपेक्षा अधिक नहीं है। इसलिये हे महेश्वर! जिस प्रकार पूर्वमें आपने उनकी भक्तिके कारण उनपर अनुग्रह किया है, उसी प्रकार मुझपर अनुग्रह करके वह सब कुछ प्रदान कीजिये॥ २९—३३॥

इस प्रकार उनके द्वारा प्रार्थित दयानिधि भगनेत्रनाशक भगवान् शिवने न्यायतः उन्हें भी सारी शक्ति प्रदान की॥ ३४॥

इस प्रकार ब्रह्मदेवने क्षणमात्रमें शिवद्वारा सर्वात्मता प्राप्तकर शीघ्रतासे जाकर विष्णुको देखा। वहाँ क्षीरसागरके मध्यमें सूर्यके समान प्रकाशित, सुवर्ण-रत्नजटित और अपने मनसे उत्पन्न किये गये धवल तथा दिव्य विमानमें अनन्तनागकी शय्यापर शयन करते हुए कमलनयन, चार भुजाओंवाले, कोमल अंगोंवाले, सभी आभूषणोंसे विभूषित, शंख-चक्र धारण किये हुए, सौम्य, चन्द्रबिम्बके समान मुखवाले, श्रीवत्सचिह्नसे शोभित वक्षःस्थलवाले, खिली हुई मधुर मुसकानसे युक्त, स्थलकमलके समान कोमल करकमलको अपने चरणकमलपर स्थित किये हुए, क्षीरसागरके [मन्थनसे

क्षीरार्णवामृतमिव शयानं योगनिद्रया॥ ३९

तमसा कालरुद्राख्यां रजसा कनकाण्डजम्।
सत्त्वेन सर्वगं विष्णुं निर्गुणत्वे महेश्वरम्॥ ४०

तं दृष्ट्वा पुरुषं ब्रह्मा प्रगल्भमिदमब्रवीत्।
ग्रसामि त्वामहं विष्णो त्वमात्मानं यथा पुरा॥ ४१

उत्पन्न रत्नभूत] अमृतके समान, योगनिद्रामें शयन करते हुए तमोगुणसे कालरुद्र, रजोगुणसे हिरण्यगर्भ, सत्त्वगुणसे सर्वव्यापक विष्णु तथा निर्गुण होनेसे साक्षात् परमेश्वररूप उस पुरुष (विष्णु)-को देखकर ब्रह्माजीने साभिमान यह कहा—हे विष्णो! जिस प्रकार पूर्व समयमें आपने मुझे ग्रस लिया था, उसी प्रकार मैं भी आपको ग्रसता हूँ॥ ३५—४१॥

तस्य तद्वचनं श्रुत्वा प्रतिबुद्ध्य पितामहम्।
उदैक्षत महाबाहुः स्मितमीषच्चकार च॥ ४२

उनका वचन सुनकर महाबाहु विष्णुने जागकर ब्रह्माकी ओर देखा और थोड़ा-सा मुसकराने लगे॥ ४२॥

तस्मिन्नवसरे विष्णुर्ग्रस्तस्तेन महात्मना।
सृष्टश्च ब्रह्मणा सद्यो भ्रुवोर्मध्यादयत्नतः॥ ४३

तस्मिन्नवसरे साक्षाद्भगवानिन्दुभूषणः।
शक्तिं तयोरपि द्रष्टुमरूपो रूपमास्थितः॥ ४४

उसी समय उन महात्मा ब्रह्माने विष्णुको ग्रस लिया, किंतु वे तत्काल ही ब्रह्माके भ्रूमध्यसे बिना यत्नके ही प्रकट हो गये। उस समय साक्षात् निराकार भगवान् चन्द्रमौलिने उन दोनोंकी शक्ति देखनेके लिये साकार रूप धारण कर लिया॥ ४३-४४॥

प्रसादमतुलं कर्तुं पुरा दत्तवरस्तयोः।
आगच्छत्तत्र यत्रेमौ ब्रह्मनारायणौ स्थितौ॥ ४५

पूर्व समयमें उन्होंने दोनोंको ही वर प्रदान किया था, इसलिये उनपर अतुल अनुग्रह करनेके लिये वे वहाँ आये, जहाँ ये दोनों ब्रह्मा तथा विष्णु स्थित थे॥ ४५॥

अथ तुष्टुवतुर्देवं प्रीतौ भीतौ च कौतुकात्।
प्रणेमतुश्च बहुशो बहुमानेन दूरतः॥ ४६

भवोऽपि भगवानेतावनुगृह्य पिनाकधृक्।
सादरं पश्यतोरेव तयोरन्तरधीयत॥ ४७

तब उनके इस कौतुकसे प्रसन्न एवं भयभीत वे दोनों दूरसे ही शिवकी स्तुति करने लगे और सम्मानपूर्वक उन्हें बारंबार प्रणाम करने लगे। पिनाकधारी भगवान् सदाशिव भी उनपर अनुग्रह करके उन दोनोंके आदरपूर्वक देखते-देखते अन्तर्धान हो गये॥ ४६-४७॥

इति श्रीशिवमहापुराणे सप्तम्यां वायवीयसंहितायां पूर्वखण्डे ब्रह्मविष्णुसृष्टिकथनं नाम त्रयोदशोऽध्यायः॥ १३॥

॥ इस प्रकार श्रीशिवमहापुराणके अन्तर्गत सातवीं वायवीयसंहिताके पूर्वखण्डमें ब्रह्माविष्णुसृष्टिकथन नामक तेरहवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ १३॥

अथ चतुर्दशोऽध्यायः

प्रत्येक कल्पमें ब्रह्मासे रुद्रकी उत्पत्तिका वर्णन

वायुरुवाच

प्रतिकल्पं प्रवक्ष्यामि रुद्राविर्भावकारणम्।
यतोऽविच्छिन्नसंताना ब्रह्मसृष्टिः प्रवर्तते॥ १

वायुदेव बोले—अब मैं प्रत्येक कल्पमें रुद्रके आविर्भावका कारण बताऊँगा, जिससे ब्रह्मसृष्टिका प्रवाह अविच्छिन्न रूपसे चलता रहता है॥ १॥

कल्पे कल्पे प्रजाः सृष्ट्वा ब्रह्मा ब्रह्माण्डसंभवः।
अवृद्धिहेतोर्भूतानां मुमोह भृशदुःखितः॥ २

ब्रह्माण्डको उत्पन्न करनेवाले ब्रह्माजी प्रत्येक कल्पमें प्रजाओंकी रचनाकर उसका विस्तार नहीं कर पानेके कारण जब अत्यन्त दुखी और किंकर्तव्यविमूढ़

तस्य दुःखप्रशान्त्यर्थं प्रजानां च विवृद्धये।
तत्तत्कल्पेषु कालात्मा रुद्रो रुद्रगणाधिपः॥ ३

निर्दिष्टः परमेशेन महेशो नीललोहितः।
पुत्रो भूत्वानुगृह्णाति ब्रह्माणं ब्रह्मणोऽनुजः॥ ४

स एव भगवानीशस्तेजोराशिरनामयः।
अनादिनिधनो धाता भूतसंकोचको विभुः॥ ५

परमैश्वर्यसंयुक्तः परमेश्वरभावितः।
तच्छक्त्याधिष्ठितः शश्वत्तच्चिह्नैरपि चिह्नितः॥ ६

तन्नामनामा तद्रूपस्तत्कार्यकरणक्षमः।
तत्तुल्यव्यवहारश्च तदाज्ञापरिपालकः॥ ७

सहस्रादित्यसंकाशश्चन्द्रावयवभूषणः।
भुजंगहारकेयूरवलयो मुञ्जमेखलः॥ ८

जलंधरविरिञ्चेन्द्रकपालशकलोज्ज्वलः।
गङ्गातुंगतरंगार्द्रपिंगलाननमूर्द्धजः॥ ९

भग्नदंष्ट्राङ्कुराक्रान्तप्रान्तकान्तधराधरः।
सव्यश्रवणपार्श्वान्तमंडलीकृतकुण्डलः॥ १०

महावृषभनिर्याणो महाजलदनिःस्वनः।
महानलसमप्रख्यो महाबलपराक्रमः॥ ११

एवं घोरमहारूपो ब्रह्मपुत्रो महेश्वरः।
विज्ञानं ब्रह्मणे दत्त्वा सर्गं सह करोति च॥ १२

तस्माद् रुद्रप्रसादेन प्रतिकल्पं प्रजापतेः।
प्रवाहरूपतो नित्या प्रजासृष्टिः प्रवर्तते॥ १३

कदाचित्प्रार्थितः स्रष्टुं ब्रह्मणा नीललोहितः।
स्वात्मना सदृशान् सर्वान् ससर्ज मनसा विभुः॥ १४

हो जाते हैं, तब उनके दुःखके प्रशमनहेतु तथा प्रजाओंकी वृद्धिके लिये उन-उन कल्पोंमें परमेश्वरसे प्रेरित होकर रुद्रगणोंके अधिपति कालात्मा, नीललोहित, महेश्वर, रुद्र [अजन्मा होते हुए भी] बादमें ब्रह्माके पुत्र होकर ब्रह्मदेवपर कृपा करते हैं॥ २—४॥

वे ही तेजोराशि, निरामय, आदि-अन्तसे रहित, सबके निर्माता, प्राणियोंके संहारक, सर्वव्यापक भगवान् ईश परम ऐश्वर्यसे समन्वित, परमेश्वरसे भावित और सदा उन्हींकी शक्तिसे अधिष्ठित हो उन्हींके चिह्नोंको धारण करते हैं॥ ५-६॥

उनके नामके समान नामवाले, उन्हींका रूप धारण करनेवाले, उनका कार्य करनेमें समर्थ, उन्हीं परमेश्वरके समान व्यवहारवाले तथा उन्हींकी आज्ञाका पालन करनेवाले वे रुद्र हजार सूर्योंके समान दीप्तिमान्, चन्द्रखण्डका भूषण धारण करनेवाले, सर्पमय हार-केयूर-कंकण धारण करनेवाले तथा मूँजकी मेखला धारण करनेवाले हैं॥ ७-८॥

वे रुद्रदेव जलको धारण करनेवाले वरुण-ब्रह्मा-इन्द्रके कपालखण्डोंसे उज्ज्वल, गंगाकी उत्तुंग तरंगोंसे आर्द्र तथा पिंगल मुख एवं केशोंवाले, [प्रलयकालमें अपनी भयानक] दाढ़ोंके अग्रभागसे पर्वतोंके प्रान्तभागको आक्रान्त करनेवाले, अपने दाहिने कानके पार्श्व भागमें मण्डलाकार कुण्डल धारण करनेवाले, महावृषभपर सवारी करनेवाले, महामेघके समान गम्भीर वाणीवाले, प्रचण्ड अग्निके समान कान्तिवाले और महान् बल तथा पराक्रमवाले हैं। इस प्रकारके महाघोर रूपवाले ब्रह्मपुत्र महेश्वर ब्रह्माको ज्ञान देकर सृष्टिकार्यमें उन्हें साहाय्य प्रदान करते हैं॥ ९—१२॥

इस प्रकार प्रत्येक कल्पमें रुद्रकी कृपासे उन प्रजापति ब्रह्मासे नित्य प्रजा-सृष्टि प्रवाहरूपसे होती रहती है। किसी समय ब्रह्माजीने [प्रजाओंकी] सृष्टि करनेहेतु प्रार्थना की, तब उन नीललोहित प्रभुने मनसे अपने समान ही समस्त प्रजाओंकी

कपर्दिनो निरातंकान्नीलग्रीवाँस्त्रिलोचनान्।
जरामरणनिर्मुक्तान् दीप्तशूलवरायुधान्॥ १५

सृष्टि की। उन्होंने जटाजूटधारी, भयरहित, नीलकण्ठ, त्रिलोचन, उन्होंने जरामरणरहित तथा देदीप्यमान त्रिशूलरूप श्रेष्ठ आयुध धारण किये हुए समस्त रुद्रोंकी सृष्टि की॥ १३—१५॥

तैस्तु संछादितं सर्वं चतुर्दशविधं जगत्।
तान्दृष्ट्वा विविधान् रुद्रान् रुद्रमाह पितामहः॥ १६

नमस्ते देवदेवेश मास्त्राक्षीरीदृशीः प्रजाः।
अन्याः सृज त्वं भद्रं ते प्रजा मृत्युसमन्विताः॥ १७

उन लोगोंने समस्त चौदह भुवनोंको आच्छादित कर लिया, [तब] उन विविध रुद्रोंको देखकर ब्रह्माजीने रुद्रसे कहा—हे देवदेवेश! आपको नमस्कार है, आप इस प्रकारकी प्रजाओंकी रचना मत कीजिये। आप मरणधर्मयुक्त अन्य प्रजाओंकी सृष्टि कीजिये, आपका कल्याण हो॥ १६-१७॥

इत्युक्तः प्रहसन्प्राह ब्रह्माणं परमेश्वरः।
नास्ति मे तादृशः सर्गः सृज त्वमशुभाः प्रजाः॥ १८

ये त्विमे मनसा सृष्टा महात्मानो महाबलाः।
चरिष्यन्ति मया सार्द्धं सर्व एव हि याज्ञिकाः॥ १९

ऐसा कहे जानेपर परमेश्वरने ब्रह्माजीसे हँसते हुए कहा—मेरी सृष्टिमें ऐसी प्रजा नहीं हो सकती, अतः ऐसी अशुभ प्रजाकी सृष्टि आप ही करें। मैंने मनसे जिन महा-बलवान् एवं महान् आत्मावाले रुद्रगणोंकी सृष्टि की है, वे सभी याज्ञिक बनकर मेरे साथ विचरण करेंगे॥ १८-१९॥

इत्युक्त्वा विश्वकर्माणं विश्वभूतेश्वरो हरः।
सह रुद्रैः प्रजासर्गान्निवृत्तात्माध्यतिष्ठत॥ २०

ततः प्रभृति देवोऽसौ न प्रसूते प्रजाः शुभाः।
ऊर्ध्वरेताः स्थितः स्थाणुर्यावदाभूतसंप्लवम्॥ २१

विश्वकर्ता ब्रह्मदेवसे ऐसा कहकर समग्र प्राणियोंके ईश्वर शिवजी रुद्रोंके साथ प्रजासर्गसे उपरत हो [स्थाणुके समान] अवस्थित हो गये। उसी समयसे उन शिवजीने शुभ प्रजाओंकी सृष्टि नहीं की और वे ऊर्ध्वरेता बनकर प्रलय-कालतकके लिये स्थाणुरूपमें स्थित हो गये॥ २०-२१॥

इति श्रीशिवमहापुराणे सप्तम्यां वायवीयसंहितायां पूर्वखण्डे
रुद्राविर्भाववर्णनं नाम चतुर्दशोऽध्यायः॥ १४॥

॥ इस प्रकार श्रीशिवमहापुराणके अन्तर्गत सातवीं वायवीयसंहिताके पूर्वखण्डमें
रुद्राविर्भाववर्णन नामक चौदहवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ १४॥

अथ पञ्चदशोऽध्यायः

अर्धनारीश्वररूपमें प्रकट शिवकी ब्रह्माजीद्वारा स्तुति

वायुरुवाच

यदा पुनः प्रजाः सृष्टा न व्यवर्द्धन्त वेधसः।
तदा मैथुनजां सृष्टिं ब्रह्मा कर्तुममन्यत॥ १

न निर्गतं पुरा यस्मान्नारीणां कुलमीश्वरात्।
तेन मैथुनजां सृष्टिं न शशाक पितामहः॥ २

वायुदेव बोले—जब ब्रह्माजीद्वारा रची गयी प्रजाओंका पुनः विस्तार नहीं हुआ, तब ब्रह्माजीने मैथुनी सृष्टि करनेका विचार किया। पूर्व समयमें तबतक स्त्रियोंका कुल ईश्वरसे उत्पन्न नहीं हुआ था, इस कारणसे ब्रह्माजी मैथुनी सृष्टि नहीं कर सके॥ १-२॥

ततः स विदधे बुद्धिमर्थनिश्चयगामिनीम्।
प्रजानामेव वृद्ध्यर्थं प्रष्टव्यः परमेश्वरः॥ ३

प्रसादेन विना तस्य न वर्द्धेरन्निमाः प्रजाः।
एवं संचिन्त्य विश्वात्मा तपः कर्तुं प्रचक्रमे॥ ४

उसके बाद ब्रह्माजीको अपना कार्य सिद्ध करनेवाली बुद्धि उत्पन्न हुई कि प्रजाओंकी वृद्धिके लिये परमेश्वरसे पूछना चाहिये; क्योंकि उनके अनुग्रहके बिना इन प्रजाओंकी वृद्धि नहीं हो सकती—ऐसा विचारकर विश्वात्मा ब्रह्माजीने तप करनेका निश्चय किया॥ ३-४॥

तदाद्या परमा शक्तिरनंता लोकभाविनी।
आद्या सूक्ष्मतरा शुद्धा भावगम्या मनोहरा॥ ५
निर्गुणा निष्प्रपञ्चा च निष्कला निरुपप्लवा।
निरन्तररता नित्या नित्यमीश्वरपार्श्वगा॥ ६
तया परमया शक्त्या भगवन्तं त्रियम्बकम्।
संचिन्त्य हृदये ब्रह्मा ततापं परमं तपः॥ ७

तब जो आद्या, अनन्ता, लोकभाविनी, आदिशक्ति, अत्यन्त सूक्ष्म, शुद्ध, भावगम्य, मनोहर, निर्गुण, प्रपंचरहित, निष्कल, उपद्रवरहित, सदा तत्पर रहनेवाली, नित्य तथा सर्वदा ईश्वरके पास रहनेवाली हैं, उन परम शक्तिसे संवलित भगवान् शिवका मनमें चिन्तन करके ब्रह्माजी कठोर तप करने लगे॥ ५—७॥

तीव्रेण तपसा तस्य युक्तस्य परमेष्ठिनः।
अचिरेणैव कालेन पिता संप्रतुतोष ह॥ ८

ततः केनचिदंशेन मूर्तिमाविश्य कामपि।
अर्द्धनारीश्वरो भूत्वा ययौ देवः स्वयं हरः॥ ९

तब कठोर तपमें लीन उन ब्रह्मापर शिवजी थोड़े ही समयमें सन्तुष्ट हो गये। इसके बाद अपने अनिर्वचनीय अंशसे किसी अद्भुत मूर्तिमें प्रविष्ट हो अर्धनारीश्वररूप धारणकर शिवजी स्वयं ब्रह्माजीके समीप गये॥ ८-९॥

तं दृष्ट्वा परमं देवं तमसः परमव्ययम्।
अद्वितीयमनिर्देश्यमदृश्यमकृतात्मभिः॥ १०

सर्वलोकविधातारं सर्वलोकेश्वरेश्वरम्।
सर्वलोकविधायिन्या शक्त्या परमया युतम्॥ ११

अप्रतर्क्यमनाभासममेयमजरं ध्रुवम्।
अचलं निर्गुणं शांतमनंतमहिमास्पदम्॥ १२

सर्वगं सर्वदं सर्वसदसद्व्यक्तिवर्जितम्।
सर्वोपमाननिर्मुक्तं शरण्यं शाश्वतं शिवम्॥ १३

प्रणम्य दंडवद् ब्रह्मा समुत्थाय कृताञ्जलिः।
श्रद्धाविनयसंपन्नैः श्राव्यैः संस्कारसंयुतैः॥ १४

यथार्थयुक्तसर्वार्थैर्वेदार्थपरिबृंहितैः।
तुष्टाव देवं देवीं च सूक्तैः सूक्ष्मार्थगोचरैः॥ १५

तमसे परे, अविनाशी, अद्वितीय, अनिर्देश्य, पापियोंके लिये अदृश्य, सभी लोकोंके विधाता, सभी लोकोंके ईश्वरके भी ईश्वर, सर्वलोक-विधायिनी परम शक्तिसे समन्वित, अप्रतर्क्य, प्रत्यक्षके अविषय, अप्रमेय, अजर, ध्रुव, अचल, निर्गुण, शान्त, अनन्त महिमासे युक्त, सर्वगामी, सर्वदाता, सत्-असत् अभिव्यक्तिसे रहित, सभी उपमानोंसे रहित, शरण्य तथा शाश्वत उन परमदेव शिवजीको ब्रह्माजीने देखा, [तब वे] उठकर हाथ जोड़कर दण्डवत् प्रणाम करके श्रद्धा-विनयसे सम्पन्न, सुनानेयोग्य, संस्कार तथा यथार्थतासे युक्त, सम्पूर्ण अर्थोंसे समन्वित, वेदार्थसे परिबृंहित, सूक्ष्म अर्थोंसे परिपूर्ण सूक्तोंसे शिव तथा पार्वतीकी स्तुति करने लगे॥ १०—१५॥

ब्रह्मोवाच

जय देव महादेव जयेश्वर महेश्वर।
जय सर्वगुणश्रेष्ठ जय सर्वसुराधिप॥ १६

ब्रह्माजी बोले—हे देव! आपकी जय हो, हे महादेव! आपकी जय हो। हे ईश्वर! हे महेश्वर! आपकी जय हो, सर्वगुणश्रेष्ठ! आपकी जय हो, हे सभी देवताओंके अधीश्वर! आपकी जय हो॥ १६॥

जय प्रकृतिकल्याणि जय प्रकृतिनायिके।
जय प्रकृतिदूरे त्वं जय प्रकृतिसुन्दरि॥ १७

जयामोघमहामाय जयामोघमनोरथ।
जयामोघमहालील जयामोघमहाबल॥ १८

जय विश्वजगन्मातर्जय विश्वजगन्मयि।
जय विश्वजगद्धात्रि जय विश्वजगत्सखि॥ १९

जय शाश्वतिकैश्वर्य जय शाश्वतिकालय।
जय शाश्वतिकाकार जय शाश्वतिकानुग॥ २०

जयात्मत्रयनिर्मात्रि जयात्मत्रयपालिनि।
जयात्मत्रयसंहर्त्रि जयात्मत्रयनायिके॥ २१

जयावलोकनायत्तजगत्कारणबृंहण।
जयोपेक्षाकटाक्षोत्थहुतभुग्भुक्तभौतिक॥ २२

जय देवाद्यविज्ञेये स्वात्मसूक्ष्मदृशोज्ज्वले।
जय स्थूलात्मशक्त्येशे जय व्याप्तचराचरे॥ २३

जय नानैकविन्यस्तविश्वतत्त्वसमुच्चय।
जयासुरशिरोनिष्ठश्रेष्ठानुगकदम्बक॥ २४

जयोपाश्रितसंरक्षासंविधानपटीयसि।
जयोन्मूलितसंसारविषवृक्षाङ्कुरोद्गमे॥ २५

हे प्रकृतिकल्याणि! आपकी जय हो, हे प्रकृतिनायिके! आपकी जय हो। हे प्रकृतिदूरे! आपकी जय हो, हे प्रकृतिसुन्दरि! आपकी जय हो॥ १७॥

हे अमोघ महामायावाले! आपकी जय हो, हे अमोघ मनोरथवाले! आपकी जय हो। हे अमोघ महालीला करनेवाले! आपकी जय हो। हे अमोघ महाबलवाले! आपकी जय हो। हे विश्वजगन्मातः! आपकी जय हो, हे विश्वजगन्मयि! आपकी जय हो। हे विश्वजगद्धात्रि! आपकी जय हो, हे विश्वजगत्सखि! आपकी जय हो। हे शाश्वत ऐश्वर्यवाले! आपकी जय हो। हे शाश्वतस्थानवाले! आपकी जय हो, हे शाश्वत आकारवाले! आपकी जय हो। हे शाश्वत अनुगमन किये जानेवाले! आपकी जय हो॥ १८—२०॥

[ब्रह्मा, विष्णु एवं महेश्वररूप] तीनों आत्माओंका निर्माण करनेवाली! आपकी जय हो, तीनों आत्माओंका पालन करनेवाली! आपकी जय हो, तीनों आत्माओंका संहार करनेवाली! आपकी जय हो, तीनों आत्माओंकी नायिकारूपिणि! आपकी जय हो। अपने अवलोकनमात्रसे जगत्कार्यके कारणभूत [अव्यक्तादिका] उपबृंहण (विस्तार) करनेवाले! आपकी जय हो, उपेक्षापूर्वक अपने कटाक्षोंसे उत्पन्न अग्निद्वारा [प्रलयकालमें] समस्त भौतिक पदार्थोंको भस्म करनेवाले! आपकी जय हो॥ २१-२२॥

हे देवता आदिसे भी ज्ञात न होनेवाली! हे आत्म-तत्त्वके सूक्ष्म विज्ञानसे प्रकाशित होनेवाली! आपकी जय हो। हे स्थूल आत्मशक्तिसे जगत्को नियन्त्रित करनेवाली! आपकी जय हो। हे [अपने स्वरूपसे] चराचरको व्याप्त करनेवाली! आपकी जय हो॥ २३॥

सारे ब्रह्माण्डके तत्त्वसमुच्चयको अनेक तथा एक रूप होकर धारण करनेवाले! आपकी जय हो। असुरोंके मस्तकोंपर [मानो] आरूढ़ हुए उत्तम भक्तवृन्दवाले! आपकी जय हो। अपनी उपासना करनेवाले भक्तोंकी रक्षामें अतिशय सामर्थ्यवाली! आपकी जय हो। संसाररूपी विषवृक्षके उगनेवाले अंकुरोंका उन्मूलन करनेवाली! आपकी जय हो॥ २४-२५॥

जय प्रादेशिकैश्वर्यवीर्यशौर्यविजृम्भण।
जय विश्वबहिर्भूत निरस्तपरवैभव॥ २६

जय प्रणीतपञ्चार्थप्रयोगपरमामृत।
जय पञ्चार्थविज्ञानसुधास्त्रोतःस्वरूपिणि॥ २७

अपने भक्तजनोंके ऐश्वर्य, वीर्य तथा शौर्यको विकसित करनेवाले! आपकी जय हो। विश्वसे बहिर्भूत तथा अपने वैभवसे दूसरोंके वैभवोंको तिरस्कृत करनेवाले! आपकी जय हो। पंचविध मोक्षरूप पुरुषार्थके प्रयोगद्वारा परमानन्दमय अमृतकी प्राप्ति करानेवाले! आपकी जय हो। पंचविध पुरुषार्थके विज्ञानरूपी अमृतकी स्रोत-स्वरूपिणि! आपकी जय हो॥ २६-२७॥

जयातिघोरसंसारमहारोगभिषग्वर।
जयानादिमलाज्ञानतमःपटलचन्द्रिके॥ २८

जय त्रिपुरकालाग्ने जय त्रिपुरभैरवि।
जय त्रिगुणनिर्मुक्ते जय त्रिगुणमर्दिनि॥ २९

अत्यन्त घोर संसाररूपी महारोगको दूर करनेवाले श्रेष्ठ वैद्य! आपकी जय हो। अनादिकालसे होनेवाले पाप-अज्ञानरूपी अन्धकारको हरण करनेके लिये चन्द्रिकारूपिणि! आपकी जय हो। हे त्रिपुरका विनाश करनेके लिये कालाग्निस्वरूप! आपकी जय हो। हे त्रिपुरभैरवि! आपकी जय हो। हे त्रिगुणनिर्मुक्ते! आपकी जय हो, हे त्रिगुणमर्दिनि! आपकी जय हो॥ २८-२९॥

जय प्रथमसर्वज्ञ जय सर्वप्रबोधिके।
जय प्रचुरदिव्याङ्ग जय प्रार्थितदायिनि॥ ३०

हे आदि सर्वज्ञ! आपकी जय हो, हे सर्वप्रबोधिके! आपकी जय हो, आपकी जय हो। हे अत्यन्त मनोहर अंगोंवाले! आपकी जय हो, हे प्रार्थित वस्तु प्रदान करनेवाली! आपकी जय हो॥ ३०॥

क्व देव ते परं धाम क्व च तुच्छं हि नो वचः।
तथापि भगवन् भक्त्या प्रलपन्तं क्षमस्व माम्॥ ३१
विज्ञाप्यैवंविधैः सूक्तैर्विश्वकर्मा चतुर्मुखः।
नमश्चकार रुद्राय रुद्राण्यै च मुहुर्मुहुः॥ ३२

हे देव! कहाँ आपका उत्कृष्ट धाम और कहाँ हमारी तुच्छ वाणी, फिर भी हे भगवन्! भक्तिसे प्रलाप करते हुए मुझको क्षमा करें। विश्वविधाता चतुर्मुख ब्रह्माने इस प्रकारके सूक्तोंसे प्रार्थना करके रुद्र तथा रुद्राणीको बारंबार नमस्कार किया॥ ३१-३२॥

इदं स्तोत्रवरं पुण्यं ब्रह्मणा समुदीरितम्।
अर्द्धनारीश्वरं नाम शिवयोर्हर्षवर्द्धनम्॥ ३३
य इदं कीर्त्तयेद्भक्त्या यस्य कस्यापि काङ्क्षया।
स तत्फलमवाप्नोति शिवयोः प्रीतिकारणात्॥ ३४
सकलभुवनभूतभावनाभ्यां
जननविनाशविहीनविग्रहाभ्याम्।
नरवरयुवतीवपुर्द्धराभ्यां
सततमहं प्रणतोऽस्मि शंकराभ्याम्॥ ३५

ब्रह्माजीद्वारा कथित अर्धनारीश्वर नामक यह श्रेष्ठ स्तोत्र पुण्य देनेवाला है और शिव तथा पार्वतीके हर्षको बढ़ानेवाला है। जो कोई भक्तिभावसे जिस किसी भी वस्तुकी कामनासे इसका पाठ करता है, वह शिव एवं पार्वतीको प्रसन्न करनेके कारण उस फलको प्राप्त कर लेता है। समस्त भुवनोंके प्राणियोंको उत्पन्न करनेवाले, जन्म और मृत्युसे रहित विग्रहवाले, श्रेष्ठ नर और नारीका देह धारण करनेवाले शिव और शिवाको मैं निरन्तर प्रणाम करता हूँ॥ ३३—३५॥

इति श्रीशिवमहापुराणे सप्तम्यां वायवीयसंहितायां पूर्वखण्डे शिवशिवास्तुतिवर्णनं नाम पञ्चदशोऽध्यायः॥ १५॥

॥ इस प्रकार श्रीशिवमहापुराणके अन्तर्गत सातवीं वायवीयसंहिताके पूर्वखण्डमें शिवशिवास्तुतिवर्णन नामक पन्द्रहवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ १५॥

अथ षोडशोऽध्यायः

महादेवजीके शरीरसे देवीका प्राकट्य और देवीके भ्रूमध्यभागसे शक्तिका प्रादुर्भाव

वायुरुवाच

अथ देवो महादेवो महाजलदनादया।
वाचा मधुरगंभीरशिवदश्लक्ष्णवर्णया॥ १
अर्थसंपन्नपदया राजलक्षणयुक्तया।
अशेषविषयारंभरक्षाविलयदक्षया ॥ २
मनोहरतरोदारमधुरस्मितपूर्वया ।
संबभाषेसुसम्प्रीतो विश्वकर्माणमीश्वरः॥ ३

ईश्वर उवाच

वत्स वत्स महाभाग मम पुत्र पितामह।
ज्ञातमेव मया सर्वं तव वाक्यस्य गौरवम्॥ ४
प्रजानामेव वृद्ध्यर्थं तपस्तप्तं त्वयाधुना।
तपसानेन तुष्टोऽस्मि ददामि च तवेप्सितम्॥ ५
इत्युक्त्वा परमोदारं स्वभावमधुरं वचः।
ससर्ज वपुषो भागाद्देवीं देववरो हरः॥ ६
यामाहुर्ब्रह्मविद्वांसो देवीं दिव्यगुणान्विताम्।
परस्य परमां शक्तिं भवस्य परमात्मनः॥ ७
यस्यां न खलु विद्यन्ते जन्ममृत्युजरादयः।
या भवानी भवस्याङ्गात्समाविरभवत्किल॥ ८
यस्या वाचो निवर्तन्ते मनसा चेन्द्रियैः सह।
सा भर्तुर्वपुषो भागाज्जातेव समदृश्यत॥ ९
या सा जगदिदं कृत्स्नं महिम्ना व्याप्य तिष्ठति।
शरीरिणीव सा देवी विचित्रं समलक्ष्यत॥ १०
सर्वं जगदिदं चैषा संमोहयति मायया।
ईश्वरात्सैव जाताऽभूदजाता परमार्थतः॥ ११
न यस्याः परमो भावः सुराणामपि गोचरः।
विश्वामरेश्वरी चैव विभक्ता भर्तुरङ्गतः॥ १२
तां दृष्ट्वा परमेशानीं सर्वलोकमहेश्वरीम्।
सर्वज्ञां सर्वगां सूक्ष्मां सदसद्व्यक्तिवर्जिताम्॥ १३
परमां निखिलं भासा भासयन्तीमिदं जगत्।
प्रणिपत्य महादेवीं प्रार्थयामास वै विराट्॥ १४

वायुदेव बोले—इसके पश्चात् प्रभु महादेवजी महामेघकी गर्जनाके समान मधुर-गम्भीर, मंगलदायिनी एवं कोमल वर्णोंवाली, अर्थयुक्त पदोंवाली, नृपोचित अनुशासनभावसे युक्त, अपने समस्त कथनीय विषयोंकी रक्षा करते हुए उनकी निर्दोष तथा निपुण प्रस्तुति करनेवाली, अतिशय मनोहर, उदार तथा मधुर मुसकानयुक्त वाणीमें अत्यन्त प्रसन्न होकर ब्रह्माजीसे कहने लगे—॥ १—३॥

ईश्वर बोले—हे वत्स! हे महाभाग! हे मेरे पुत्र पितामह! मैंने तुम्हारी बातके सारे महत्त्वको जान लिया है। मैं तुम्हारी इस तपस्यासे सन्तुष्ट हूँ, क्योंकि तुमने प्रजाओंकी वृद्धिके लिये यह तप किया है, मैं तुम्हें अभीष्ट वर प्रदान करता हूँ॥ ४-५॥

इस प्रकार परम उदार तथा स्वभावतः मधुर वचन कहकर देवताओंमें श्रेष्ठ महादेवने अपने शरीरके [वाम] भागसे देवीको प्रकट किया। जिन दिव्य गुणसम्पन्न देवीको ब्रह्मवेत्ता लोग परात्पर परमात्मा शिवकी पराशक्ति कहते हैं, जिनमें जन्म, मृत्यु, जरा आदि नहीं हैं, वे भवानी शिवजीके अंगसे उत्पन्न हुईं, जिन्हें न जानकर मन एवं इन्द्रियोंके साथ वाणी लौट आती है, वे अपने स्वामीके देहभागसे उत्पन्न हुई-सी दिखायी पड़ीं, जो अपनी महिमासे इस सम्पूर्ण संसारको व्याप्त करके विराजमान हैं, वे देवी शरीरधारीकी भाँति विचित्ररूपसे दिखायी पड़ीं, जो कि अपनी मायासे इस सारे जगत्को मोहित करती हैं, परमार्थकी दृष्टिसे अजन्मा होनेपर भी वे ही ईश्वरसे प्रकट हुईं। जिनका परम भाव देवताओंको भी ज्ञात नहीं है, वे ही समस्त देवताओंकी अधीश्वरी अपने पतिके शरीरसे प्रकट हुईं॥ ६—१२॥

सर्वव्यापिनी, सूक्ष्मा, सत्-असत् अभिव्यक्तिसे रहित, परमा और अपनी प्रभासे सम्पूर्ण जगत्को प्रकाशित करने-वाली तथा सब कुछ जाननेवाली सर्वलोकमहेश्वरी परमेशानी महादेवीको देखकर प्रणाम करके विराट् [ब्रह्माजी]-ने उनसे इस प्रकार प्रार्थना की—॥ १३-१४॥

ब्रह्मोवाच

देवि देवेन सृष्टोऽहमादौ सर्वजगन्मयि।
प्रजासर्गे नियुक्तश्च सृजामि सकलं जगत्॥ १५

मनसा निर्मिताः सर्वे देवि देवादयो मया।
न वृद्धिमुपगच्छन्ति सृज्यमानाः पुनः पुनः॥ १६

मिथुनप्रभवामेव कृत्वा सृष्टिमतः परम्।
संवर्धयितुमिच्छामि सर्वा एव मम प्रजाः॥ १७

न निर्गतं पुरा त्वत्तो नारीणां कुलमव्ययम्।
तेन नारीकुलं स्त्रष्टुं शक्तिर्मम न विद्यते॥ १८

सर्वासामेव शक्तीनां त्वत्तः खलु समुद्भवः।
तस्मात्सर्वत्र सर्वेषां सर्वशक्तिप्रदायिनीम्॥ १९

त्वामेव वरदां मायां प्रार्थयामि सुरेश्वरीम्।
चराचरविवृद्ध्यर्थमंशेनैकेन सर्वगे॥ २०

दक्षस्य मम पुत्रस्य पुत्री भव भवार्दिनि।

एवं सा याचिता देवी ब्रह्मणा ब्रह्मयोनिना॥ २१

शक्तिमेकां भ्रुवोर्मध्यात् ससर्जात्मसमप्रभाम्।
तामाह प्रहसन् प्रेक्ष्य देवदेववरो हरः॥ २२

ब्रह्माणं तपसाराध्य कुरु तस्य यथेप्सितम्।

तामाज्ञां परमेशस्य शिरसा प्रतिगृह्य सा॥ २३

ब्रह्मणो वचनाद्देवी दक्षस्य दुहिताऽभवत्।
दत्त्वैवमतुलां शक्तिं ब्रह्मणे ब्रह्मरूपिणीम्॥ २४

विवेश देहं देवस्य देवश्चान्तरधीयत।

तदाप्रभृति लोकेऽस्मिन् स्त्रियां भोगः प्रतिष्ठितः॥ २५

प्रजासृष्टिश्च विप्रेन्द्रा मैथुनेन प्रवर्तते।
ब्रह्मापि प्राप सानन्दं सन्तोषं मुनिपुङ्गवाः॥ २६

ब्रह्माजी बोले—हे देवि! हे सर्वजगन्मयि! महादेवजीने सबसे पहले मुझे उत्पन्न किया और प्रजाकी सृष्टिके कार्यमें लगाया, तभीसे मैं समस्त जगत्की सृष्टि कर रहा हूँ॥ १५॥

हे देवि! मेरे द्वारा मानसिक संकल्पसे रचे गये देवता आदि सभी लोग बारंबार सृष्टि करनेपर भी बढ़ नहीं रहे हैं। अतः अब मैं मैथुनी सृष्टि करके ही अपनी सभी प्रजाओंकी वृद्धि करना चाहता हूँ। [हे देवि!] आपसे पहले नारीकुलका प्रादुर्भाव नहीं हुआ है, इसलिये नारीकुलकी सृष्टि करनेके लिये मुझमें शक्ति नहीं है॥ १६—१८॥

सम्पूर्ण शक्तियोंका प्राकट्य आपसे ही होता है, अतः सर्वत्र सबको सब प्रकारकी शक्ति देनेवाली तथा वर प्रदान करनेवाली आप माया-रूपिणी देवेश्वरीसे प्रार्थना करता हूँ। हे सर्वगे! हे संसारभयका नाश करनेवाली! चराचर जगत्की वृद्धिके लिये अपने एक अंशसे आप मेरे पुत्र दक्षकी कन्याके रूपमें जन्म लें॥ १९-२०१/२॥

ब्रह्मयोनि ब्रह्माके इस प्रकार याचना करनेपर देवी रुद्राणीने अपनी भौंहोंके मध्यभागसे अपने ही समान कान्तिमयी एक शक्ति प्रकट की॥ २११/२॥

उसे देखकर देवेश्वर हरने हँसते हुए कहा—तुम अपनी तपस्यासे ब्रह्माकी आराधनाकर उनका अभीष्ट पूरा करो॥ २२१/२॥

परमेश्वरकी आज्ञाको शिरोधार्य करके वे देवी ब्रह्माजीकी प्रार्थनाके अनुसार दक्षकी पुत्री हो गयीं। इस प्रकार ब्रह्माजीको ब्रह्मरूपिणी अनुपम शक्ति देकर वे महादेवजीके शरीरमें प्रविष्ट हो गयीं और [तब] महादेवजी भी अन्तर्धान हो गये॥ २३—२४१/२॥

तभीसे इस जगत्में स्त्रीजातिमें भोग प्रतिष्ठित हुआ और हे विप्रेन्द्रो! मैथुनद्वारा प्रजाकी सृष्टि होने लगी। हे मुनिवरो! इससे ब्रह्माजीको भी आनन्द और सन्तोष प्राप्त हुआ॥ २५-२६॥

एतद्वः सर्वमाख्यातं देव्याः शक्तिसमुद्भवम्।
पुण्यवृद्धिकरं श्राव्यं भूतसर्गानुषङ्गतः ॥ २७

य इदं कीर्तयेन्नित्यं देव्याः शक्तिसमुद्भवम्।
पुण्यं सर्वमवाप्नोति पुत्रांश्च लभते शुभान्॥ २८

प्राणियोंके सृष्टिप्रसंगमें मैंने देवीसे शक्तिके प्रादुर्भावका यह सारा आख्यान आपलोगोंको सुनाया, जो कि पुण्यकी वृद्धि करनेवाला तथा सुनानेयोग्य है। जो प्रतिदिन देवीसे शक्तिके प्रादुर्भावकी इस कथाका कीर्तन करता है, उसे सब प्रकारका पुण्य प्राप्त होता है तथा शुभ लक्षणवाले पुत्रोंकी प्राप्ति होती है॥ २७-२८॥

इति श्रीशिवमहापुराणे सप्तम्यां वायवीयसंहितायां पूर्वखण्डे देवीशक्त्युद्भवो नाम षोडशोऽध्यायः ॥ १६ ॥

॥ इस प्रकार श्रीशिवमहापुराणके अन्तर्गत सातवीं वायवीयसंहिताके पूर्वखण्डमें देवीसे शक्तिका उद्भव नामक सोलहवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ १६ ॥

अथ सप्तदशोऽध्यायः

ब्रह्माके आधे शरीरसे शतरूपाकी उत्पत्ति तथा दक्ष आदि प्रजापतियोंकी उत्पत्तिका वर्णन

वायुरुवाच

एवं लब्ध्वा परां शक्तिमीश्वरादेव शाश्वतीम्।
मैथुनप्रभवां सृष्टिं कर्तुकामः प्रजापतिः॥ १

स्वयमप्यर्द्धतो नारी चार्द्धेन पुरुषोऽभवत्।
यार्द्धेन नारी सा तस्माच्छतरूपा व्यजायत॥ २

विराजमसृजद्ब्रह्मा सोऽर्द्धेन पुरुषोऽभवत्।
स वै स्वायंभुवः पूर्वं पुरुषो मनुरुच्यते॥ ३

वायुदेवने कहा—इस प्रकार मैथुनजन्य सृष्टि करनेकी इच्छावाले प्रजापति ब्रह्मा सदाशिवसे पराशक्ति प्राप्तकर स्वयं भी आधे भागसे स्त्री तथा आधे भागसे पुरुषरूप हो गये। जो नारीरूप अर्धभाग था, उससे शतरूपा प्रकट हुईं। [दूसरा] जो पुरुषरूप अर्धभाग हुआ, उससे ब्रह्माने विराट्का सृजन किया। उसे ही पूर्वपुरुष स्वायम्भुव मनु कहा जाता है॥ १—३॥

सा देवी शतरूपा तु तपः कृत्वा सुदुश्चरम्।
भर्त्तारं दीप्तयशसं मनुमेवान्वपद्यत॥ ४

उन देवी शतरूपाने अत्यन्त कठोर तप करके उज्ज्वल यशवाले स्वायम्भुव मनुको पतिरूपमें प्राप्त किया॥ ४॥

तस्मात्तु शतरूपा सा पुत्रद्वयमसूयत।
प्रियव्रतोत्तानपादौ पुत्रौ पुत्रवतां वरौ॥ ५

कन्ये द्वे च महाभागे याभ्यां जातास्त्विमाः प्रजाः।
आकूतिरेका विज्ञेया प्रसूतिरपरा स्मृता॥ ६

शतरूपाने उन्हीं मनुसे पुत्रवानोंमें श्रेष्ठ प्रियव्रत और उत्तानपाद नामक दो श्रेष्ठ पुत्रों और महाभाग्यशालिनी दो कन्याओंको उत्पन्न किया, जिन दोनोंसे ये प्रजाएँ हुईं। पहलीको आकूति जानना चाहिये तथा दूसरी प्रसूति कही गयी है॥ ५-६॥

स्वायंभुवः प्रसूतिं च ददौ दक्षाय तां प्रभुः।
रुचेः प्रजापतेश्चैव चाकूतिं समपादयत्॥ ७

आकूत्यां मिथुनं जज्ञे मानसस्य रुचेः शुभम्।
यज्ञश्च दक्षिणा चैव याभ्यां संवर्तितं जगत्॥ ८

प्रभु स्वायम्भुव मनुने प्रसूति नामक कन्याको दक्षको तथा आकूतिको रुचि नामक प्रजापतिको प्रदान किया। ब्रह्माके मानसपुत्र रुचिने आकूतिमें जुड़वाँ संतान उत्पन्न की, जिनका नाम यज्ञ तथा दक्षिणा है। जिन दोनोंसे यह सारा संसार चल रहा है॥ ७-८॥

स्वायंभुवसुतायां तु प्रसूत्यां लोकमातरः।
चतस्रो विंशतिः कन्या दक्षस्त्वजनयत्प्रभुः॥ ९

श्रद्धा लक्ष्मीर्धृतिः पुष्टिस्तुष्टिर्मेधा क्रिया तथा।
बुद्धिर्लज्जा वपुः शांतिस्सिद्धिः कीर्तिस्त्रयोदशी॥ १०

पत्न्यर्थं प्रतिजग्राह धर्मो दाक्षायणीः प्रभुः।
ताभ्यः शिष्टा यवीयस्य एकादश सुलोचनाः॥ ११

ख्यातिः सत्यथ सम्भूतिः स्मृतिः प्रीतिः क्षमा तथा।
सन्नतिश्चानसूया च ऊर्जा स्वाहा स्वधा तथा॥ १२

भृगुः शर्वो मरीचिश्च अंगिराः पुलहः क्रतुः।
पुलस्त्योऽत्रिर्वसिष्ठश्च पावकः पितरस्तथा॥ १३

ख्यात्याद्या जगृहुः कन्या मुनयो मुनिसत्तमाः।
कामाद्यास्तु यशोऽन्ता ये ते त्रयोदश सूनवः॥ १४

धर्मस्य जज्ञिरे तास्तु श्रद्धाद्याः सुसुखोत्तराः।
दुःखोत्तराश्च हिंसायामधर्मस्य च सन्ततौ॥ १५

निकृत्यादय उत्पन्नाः पुत्राश्च धर्मलक्षणाः।
नैषां भार्याश्च पुत्रा वा सर्वे त्वनियमाः स्मृताः॥ १६

स एष तामसः सर्गो जज्ञे धर्मनियामकः।

या सा दक्षस्य दुहिता रुद्रस्य दयिता सती॥ १७

भर्तृनिन्दाप्रसंगेन त्यक्त्वा दाक्षायणीं तनुम्।
दक्षं च दक्षभार्य्यां च विनिंद्य सह बन्धुभिः॥ १८

सा मेनायामाविरभूत्पुत्री हिमवतो गिरेः।
रुद्रस्तु तां सतीं दृष्ट्वा रुद्रांस्त्वात्मसमप्रभान्॥ १९

यथाऽसृजदसंख्यातांस्तथा कथितमेव च।
भृगोः ख्यात्यां समुत्पन्ना लक्ष्मीर्नारायणप्रिया॥ २०

देवौ धातृविधातारौ मन्वन्तरविधारिणौ।
तयोर्वै पुत्रपौत्राद्याः शतशोऽथ सहस्रशः॥ २१

स्वायंभुवेऽन्तरे नीताः सर्वे ते भार्गवा मताः।
मरीचेरपि संभूतिः पौर्णमासमसूयत॥ २२

प्रभु दक्षने स्वायम्भुव मनुकी कन्या प्रसूतिमें लोकमातास्वरूपा चौबीस कन्याओंको उत्पन्न किया। उनमें श्रद्धा, लक्ष्मी, धृति, पुष्टि, तुष्टि, मेधा, क्रिया, बुद्धि, लज्जा, वपु, शान्ति, सिद्धि और तेरहवीं कीर्ति—ये जो कन्याएँ थीं, इन दक्षकन्याओंको प्रभु धर्मने पत्नीके रूपमें ग्रहण किया। उनसे छोटी दक्षकी ग्यारह सुलोचना कन्याएँ थीं। ख्याति, सती, सम्भूति, स्मृति, प्रीति, क्षमा, सन्नति, अनसूया, ऊर्जा, स्वाहा और स्वधा। हे मुनिश्रेष्ठो! भृगु, शर्व, मरीचि, अंगिरा, पुलह, क्रतु, पुलस्त्य, अत्रि, वसिष्ठ, पावक तथा पितर—इन मुनियोंने ख्याति आदि कन्याओंसे विवाह किया। धर्मसे पूर्वोक्त तेरह कन्याओंमें कामसे लेकर यशपर्यन्त (काम, दर्प, नियम, सन्तोष, लोभ, श्रुत, दण्ड, प्रबोध, विनय, व्यवसाय, क्षेम, सुख और यश)—ये तेरह पुत्र क्रमशः उत्पन्न हुए। जो सन्तानें श्रद्धा आदिसे हुई थीं, वे सुखस्वरूप थीं। अधर्मसे हिंसा [नामक भार्या]-में दुःख देनेवाली सन्तानें उत्पन्न हुईं। अधर्मके निकृति आदि अधर्म लक्षणवाले पुत्र उत्पन्न हुए। इनको कोई स्त्री अथवा पुत्र नहीं थे, वे सभी नियमसे रहित कहे गये हैं। धर्मको संकुचित करनेवाला यह तामस सर्ग है॥ ९—१६½॥

जो दक्षकी कन्या सती थीं, वे रुद्रकी पत्नी हुईं। अपने पतिकी निन्दाके प्रसंगसे उन्होंने माता-पिता तथा बन्धुओंकी भर्त्सनाकर अपने शरीरको त्याग दिया और हिमालयके घर मेनाकी पुत्री होकर उत्पन्न हुईं॥ १७-१८½॥

रुद्रने सतीको देखकर [अर्थात् प्राप्त करके उनसे] जिस प्रकार अपने समान प्रभाववाले असंख्य रुद्रोंको उत्पन्न किया, वह कथा तो हम कह चुके हैं। भृगुसे ख्यातिमें नारायणप्रिया लक्ष्मी उत्पन्न हुईं तथा मन्वन्तर धारण करनेवाले धाता और विधाता नामक दो देव भी उनके पुत्र हुए, उन्हीं दोनोंके सैकड़ों-हजारों पुत्र, पौत्र आदि हुए। स्वायम्भुव मन्वन्तरमें भृगुसे उत्पन्न होनेके कारण वे सभी भार्गव कहे गये। सम्भूतिने मरीचिसे पौर्णमास

कन्याचतुष्टयं चैव महीयांसस्तदन्वयाः।
येषां वंशे समुत्पन्नो बहुपुत्रस्स कश्यपः॥ २३

स्मृतिश्चाङ्गिरसः पत्नी जनयामास वै सुतौ।
आग्नीध्रं शरभञ्चैव तथा कन्याचतुष्टयम्॥ २४

तदीयाः पुत्रपौत्राश्च येऽतीतास्ते सहस्रशः।
प्रीत्यां पुलस्त्यभार्यायां दन्तोऽग्निरभवत्सुतः।
पूर्वजन्मनि योऽगस्त्यः स्मृतः स्वायंभुवेऽन्तरे॥ २५

तत्सन्ततीया बहवः पौलस्त्या इति विश्रुताः।
क्षमा तु सुषुवे पुत्रान् पुलहस्य प्रजापतेः॥ २६

कर्दमश्चासुरिश्चैव सहिष्णुश्चेति ते त्रयः।
त्रेताग्निवर्चसः सर्वे येषां वंशः प्रतिष्ठितः॥ २७

क्रतोः क्रतुसमान्भार्या सन्नतिः सुषुवे सुतान्।
नैषां भार्याश्च पुत्राश्च सर्वे ते ह्यूर्ध्वरेतसः॥ २८

षष्टिस्तानि सहस्राणि वालखिल्या इति स्मृताः।
अनूरोरग्रतो यान्ति परिवार्य्य दिवाकरम्॥ २९
अत्रेर्भार्यानसूया च पञ्चात्रेयानसूयत।
कन्यकां च श्रुतिं नाम माता शंखपदस्य च॥ ३०
सत्यनेत्रश्च हव्यश्च आपोमूर्तिः शनैश्चरः।
सोमश्च पञ्चमस्त्वेते पञ्चात्रेयाः प्रकीर्तिताः॥ ३१
तेषां पुत्राश्च पौत्राश्च ह्यात्रेयाणां महात्मनाम्।
स्वायंभुवेऽन्तरेऽतीताः शतशोऽथ सहस्रशः॥ ३२
ऊर्जायां तु वसिष्ठस्य पुत्रा वै सप्त जज्ञिरे।
ज्यायसी च स्वसा तेषां पुंडरीका सुमध्यमा॥ ३३

रजोगात्रोर्ध्वबाहू च सवनश्चानयश्च यः।
सुतपाः शुक्र इत्येते सप्त सप्तर्षयः स्मृताः॥ ३४
गोत्राणि नामभिस्तेषां वासिष्ठानां महात्मनाम्।
स्वायंभुवेऽन्तरेऽतीतान्यर्बुदानि शतानि च॥ ३५

इत्येष ऋषिसर्गस्तु सानुबन्धः प्रकीर्तितः।
समासाद्विस्तराद्वक्तुमशक्योऽयमिति द्विजाः॥ ३६

नामक पुत्र और चार कन्याओंको उत्पन्न किया। उनकी बहुत सन्तानें हुईं, जिनके वंशमें बहुत पुत्रोंवाले कश्यप उत्पन्न हुए॥ १९—२३॥

अंगिराकी पत्नी स्मृतिने आग्नीध्र तथा शरभ नामक दो पुत्र और चार कन्याएँ उत्पन्न कीं। उनके हजारों पुत्र तथा पौत्र हुए। पुलस्त्यकी प्रीति नामक पत्नीमें अग्निस्वरूप दन्त नामक पुत्र हुआ, जो पूर्वजन्ममें स्वायम्भुव मन्वन्तरमें अगस्त्यके नामसे प्रसिद्ध था। उनकी सन्तानें भी बहुत हुईं, जो पौलस्त्य—इस नामसे प्रसिद्ध थीं। प्रजापति पुलहकी पत्नी क्षमाने भी तीन पुत्रोंको जन्म दिया। कर्दम, आसुरि तथा सहिष्णु—ये तीनों अग्नियोंके समान तेजस्वी थे, जिनका वंश स्थिर रूपसे चलता रहा॥ २४—२७॥

क्रतुकी सन्नति नामक भार्याने क्रतुके समान बहुतसे पुत्र उत्पन्न किये, इनकी भार्याएँ तथा पुत्र नहीं थे, वे सभी ऊर्ध्वरेता हुए। वे साठ हजार वालखिल्य कहे गये हैं, जो सूर्यको घेरकर अरुणके आगे-आगे चलते हैं॥ २८-२९॥

अत्रिकी भार्या अनसूयाने पाँच पुत्रों तथा श्रुति नामक कन्याको जन्म दिया, वह [श्रुति] शंखपद [ऋषि]-की माता हुई। सत्यनेत्र, हव्य, आपोमूर्ति, शनैश्चर और सोम—ये पाँचों अत्रिपुत्र कहे गये हैं। स्वायम्भुव मन्वन्तरमें उन महात्मा अत्रिपुत्रोंके सैकड़ों-हजारों पुत्र-पौत्र हुए॥ ३०—३२॥

ऊर्जासे वसिष्ठके सात पुत्र हुए, उनकी बड़ी बहन पुण्डरीका थी, जो अत्यन्त सुन्दरी थी। रजोगात्र, ऊर्ध्वबाहु, सवन, अनय, सुतपा और शुक्र—ये सात सप्तर्षि कहे गये हैं। उन महात्मा वसिष्ठपुत्रोंके नामसे गोत्र भी प्रवर्तित हुए। इस प्रकार सैकड़ों अर्बुद वर्षोंतक स्वायम्भुव मन्वन्तरमें इनके वंश चलते रहे॥ ३३—३५॥

हे ब्राह्मणो! इस प्रकार मैंने परम्परानुरूप ऋषि-सृष्टिका संक्षेपमें वर्णन किया, क्योंकि विस्तारपूर्वक इसका वर्णन नहीं किया जा सकता है॥ ३६॥

योऽसौ रुद्रात्मको वह्निर्ब्रह्मणो मानसः सुतः।
स्वाहा तस्य प्रिया लेभे पुत्रांस्त्रीनमितौजसः॥ ३७

पावकः पवमानश्च शुचिरित्येष ते त्रयः।
निर्मन्थ्यः पवमानः स्याद्वैद्युतः पावकः स्मृतः॥ ३८

सूर्ये तपति यश्चासौ शुचिः सौर उदाहृतः।
हव्यवाहः कव्यवाहः सहरक्षा इति त्रयः॥ ३९

त्रयाणां क्रमशः पुत्रा देवपितृसुराश्च ते।
एतेषां पुत्रपौत्राश्च चत्वारिंशन्नवैव ते॥ ४०

ब्रह्माके मानस पुत्र अग्नि जो रुद्रात्मक भी कहे जाते हैं, उनकी पत्नी स्वाहाने पावक, पवमान और शुचि नामक अमित तेजस्वी तीन पुत्र उत्पन्न किये। मन्थनसे उत्पन्न अग्नि पवमान है। बिजलीसे उत्पन्न अग्नि पावक कही गयी है। तपते हुए सूर्यमें जो तेज है, वह शुचि अथवा सौर कहा गया है। हव्यवाह, कव्यवाह और सहरक्षा—ये तीनों क्रमशः उपर्युक्त अग्नियोंके पुत्र हैं। इन तीनोंके पुत्र क्रमसे देवता, पितर एवं असुर हैं। इनके उनचास पुत्र एवं पौत्र हैं॥ ३७—४०॥

काम्यनैमित्तिकाजस्त्रकर्मसु त्रिषु संस्थिताः।
सर्वे तपस्विनो ज्ञेयाः सर्वे व्रतभृतस्तथा॥ ४१

सर्वे रुद्रात्मकाश्चैव सर्वे रुद्रपरायणाः।
तस्मादग्निमुखे यत्तद् हुतं स्यादेव केनचित्॥ ४२

तत्सर्वं रुद्रमुद्दिश्य दत्तं स्यान्नात्र संशयः।
इत्येवं निश्चयोऽग्नीनामनुक्रान्तो यथातथम्॥ ४३

नातिविस्तरतो विप्राः पितॄन्वक्ष्याम्यतः परम्।
यस्मात्षड् ऋतवस्तेषां स्थानं स्थानाभिमानिनाम्॥ ४४

ये काम्य, नैमित्तिक तथा नित्य—इन तीनों प्रकारके कर्मोंमें निरन्तर स्थित रहते हैं। इन सभीको तपस्वी तथा निरन्तर व्रत धारण करनेवाला जानना चाहिये। ये सभी रुद्रस्वरूप तथा रुद्रपरायण हैं, इसलिये कोई अग्निमुखमें जो कुछ भी आहुति देता है, वह सब रुद्रको उद्देश्य करके दिया हुआ समझा जाता है, इसमें सन्देह नहीं। इस प्रकार मैंने तथ्योंके आधारपर अग्निके वंशको कहा। हे ब्राह्मणो! इसके अनन्तर मैं संक्षेपमें पितरोंका वर्णन करूँगा। [वसन्त आदि] छः ऋतुएँ उन स्थानाभिमानी पितरोंके छः स्थान हैं॥ ४१—४४॥

ऋतवः पितरस्तस्मादित्येषा वैदिकी श्रुतिः।
यस्माद् ऋतुषु सर्वे हि जायन्ते स्थास्नुजंगमाः॥ ४५

तस्मादेते हि पितर आर्तवा इति च श्रुतम्।
एवं पितॄणामेतेषामृतुकालाभिमानिनाम्॥ ४६

पितरोंको ऋतु भी कहा जाता है—ऐसा वेदमें कहा गया है; क्योंकि स्थावर, जंगम सभी अपनी-अपनी ऋतुओंमें ही उत्पन्न होते हैं, इसलिये पितर [सभीके उद्भवहेतु होनेसे ऋतु या] आर्तव भी कहे गये हैं—ऐसी श्रुति है। इस प्रकार ऋतुकालाभिमानी इन पितरोंका पितृत्व श्रुतियोंमें वर्णित है॥ ४५-४६॥

आत्मैश्वर्या महात्मानस्तिष्ठन्तीहाभ्रसंगमात्।
अग्निष्वात्ता बर्हिषदः पितरो द्विविधाः स्मृताः॥ ४७

अयज्वानश्च यज्वानः क्रमात्ते गृहमेधिनः।
स्वधाऽसूत पितृभ्यश्च द्वे कन्ये लोकविश्रुते॥ ४८

मेनां च धरणीं चैव याभ्यां विश्वमिदं धृतम्।
अग्निष्वात्तसुता मेना धरणी बर्हिषत्सुता॥ ४९

सभी ऐश्वर्योंको अपनेमें स्थितकर ये पितर आकाशमें स्थित रहते हैं। अग्निष्वात्त तथा बर्हिषद्—ये दो प्रकारके पितर कहे गये हैं। ये यज्ञ करनेवाले तथा यज्ञ न करनेवाले गृहस्थके क्रमशः पितर हैं। स्वधाने पितरोंसे लोकविख्यात दो पुत्रियों मेना तथा धरणीको जन्म दिया। जिन्होंने इस संसारको धारण किया है। मेना अग्निष्वात्तकी पुत्री हैं तथा धरणी बर्हिषत्की पुत्री हैं॥ ४७—४९॥

मेना हिमवतः पत्नी मैनाकं क्रौंचमेव च।
गौरीं गंगां च सुषुवे भवाङ्गाश्लेषपावनीम्॥ ५०

मेना हिमालयकी पत्नी हुईं, उन्होंने मैनाक तथा क्रौंच नामक दो पुत्रों और गौरी तथा गंगा नामक दो पुत्रियोंको जन्म दिया, जो शिवके देहसे संयुक्त होकर [संसारको] पवित्र करनेवाली हैं॥ ५०॥

मेरोस्तु धरणी पत्नी दिव्यौषधिसमन्वितम्।
मंदरं सुषुवे पुत्रं चित्रसुन्दरकन्धरम्॥ ५१
स एव मंदरः श्रीमान्मेरुपुत्रस्तपोबलात्।
साक्षाच्छ्रीकंठनाथस्य शिवस्यावसथं गतः॥ ५२

मेरुकी पत्नी धरणी हुई, जिसने दिव्य औषधियोंसे युक्त तथा अद्भुत सुन्दर शिखरोंवाले मन्दरपर्वतको पुत्ररूपमें जन्म दिया। मेरुका वही श्रीमान् पुत्र मन्दर अपनी तपस्याके बलसे साक्षात् श्रीकण्ठनाथ शिवकी निवासभूमि हुआ॥ ५१-५२॥

साऽसूत धरणी भूयस्तिस्त्रः कन्याश्च विश्रुताः।
वेलां च नियतिं चैव तृतीयामपि चायतिम्॥ ५३

उस धरणीने पुनः वेला, नियति और आयति—इन लोकप्रसिद्ध तीन कन्याओंको जन्म दिया॥ ५३॥

आयतिर्नियतिश्चैव पत्न्यौ द्वे भृगुपुत्रयोः।
स्वायंभुवेऽन्तरे पूर्वं कथितस्ते तदन्वयः॥ ५४
सुषुवे सागराद्वेला कन्यामेकामनिंदिताम्।
सवर्णां नाम सामुद्रीं पत्नीं प्राचीनबर्हिषः॥ ५५
सामुद्री सुषुवे पुत्रान्दश प्राचीनबर्हिषः।
सर्वे प्राचेतसा नाम धनुर्वेदस्य पारगाः॥ ५६

आयति तथा नियति भृगुके पुत्रोंकी पत्नियाँ हुईं। स्वायम्भुव मन्वन्तरके प्रसंगमें इनके वंशका वर्णन पूर्वमें किया गया है। वेलाने सागरसे एक मनोहर कन्याको जन्म दिया, जिसका नाम सामुद्री या सवर्णा है, वह प्राचीनबर्हिकी पत्नी हुई। समुद्रपुत्री सवर्णाने प्राचीनबर्हिसे दस पुत्र उत्पन्न किये, ये सभी प्रचेता नामवाले थे और धनुर्वेदके पारगामी थे॥ ५४—५६॥

येषां स्वायंभुवे दक्षः पुत्रत्वमगमत्पुरा।
त्रियम्बकस्य शापेन चाक्षुषस्यान्तरे मनोः॥ ५७

प्राचीन कालमें स्वायम्भुव मन्वन्तरमें मनुके पुत्ररूपमें उत्पन्न दक्ष चाक्षुष मन्वन्तरमें शिवके शापके कारण प्रचेताओंके पुत्रके रूपमें उत्पन्न हुए॥ ५७॥

इत्येते ब्रह्मपुत्राणां धर्मादीनां महात्मनाम्।
नातिसङ्क्षेपतो विप्रा नातिविस्तरतः क्रमात्॥ ५८
वर्णिता वै मया वंशा दिव्या देवगणान्विताः।
क्रियावन्तः प्रजावन्तो महर्द्धिभिरलंकृताः॥ ५९

हे ब्राह्मणो! इस प्रकार मैंने ब्रह्मदेवके धर्म आदि महात्मा पुत्रोंके वंशोंका वर्णन न तो बहुत संक्षेपमें तथा न तो बहुत विस्तारसे ही कहा, जो दिव्य, देवगणसमन्वित, क्रियावान्, प्रजावान् तथा महान् समृद्धियोंसे अलंकृत हैं॥ ५८-५९॥

प्रजानां संनिवेशोऽयं प्रजापतिसमुद्भवः।
न हि शक्यः प्रसंख्यातुं वर्षकोटिशतैरपि॥ ६०
राज्ञामपि च यो वंशो द्विधा सोऽपि प्रवर्तते।
सूर्यवंशः सोमवंश इति पुण्यतमः क्षितौ॥ ६१

प्रजापतिसे उत्पन्न प्रजाओंके इस सन्निवेशकी गणना तो करोड़ों वर्षोंमें भी नहीं की जा सकती है। इसी प्रकार राजाओंका भी वंश दो प्रकारका है, ये परम पवित्र सूर्यवंश तथा चन्द्रवंशके नामसे भूर्लोकमें विख्यात हैं॥ ६०-६१॥

इक्ष्वाकुरम्बरीषश्च ययातिर्नहुषादयः।
पुण्यश्लोकाः श्रुता येऽत्र तेऽपि तद्वंशसंभवाः॥ ६२

इक्ष्वाकु, अम्बरीष, ययाति, नहुष आदि जो पुण्यकीर्ति राजर्षि यहाँ सुने गये हैं, वे इन्हीं वंशोंमें उत्पन्न हुए, इनके अतिरिक्त विविध पराक्रमोंसे युक्त

अन्ये च राजऋषयो नानावीर्यसमन्विताः।
किं तैः फलमनुत्क्रान्तैरुक्तपूर्वैः पुरातनैः॥ ६३

अन्य राजर्षि भी उत्पन्न हुए। उनका वर्णन मैंने पहले ही कर दिया है, अब जो पुराने तथा बीते हुए हैं, पहले ही कहे जा चुके उन राजर्षियोंके वर्णनसे कोई लाभ भी नहीं है॥ ६२-६३॥

किं चेश्वरकथावृत्तौ यत्र तत्रान्यकीर्तनम्।
न सद्भिः सम्मतं मत्वा नोत्सहे बहुभाषितुम्॥ ६४

बहुत क्या कहें, जहाँ शिवके चरित्रका वर्णन किया जा रहा हो, वहाँ दूसरी कथाका वर्णन सज्जन-सम्मत नहीं है—ऐसा मानकर मैं [उस विषयमें] अत्यधिक कहनेका उत्साह नहीं करता हूँ॥ ६४॥

प्रसंगादीश्वरस्यैव प्रभावद्योतनादपि।
सर्गादयोऽपि कथिता इत्यत्र तत्प्रविस्तरैः॥ ६५

प्रसंगवश सृष्टि आदिका वर्णन ईश्वरके प्रभावको प्रकट करनेके लिये ही किया है, अतः विस्तारका प्रयोजन व्यर्थ है॥ ६५॥

इति श्रीशिवमहापुराणे सप्तम्यां वायवीयसंहितायां पूर्वखण्डे सृष्टिकथनं नाम सप्तदशोऽध्यायः॥ १७॥

॥ इस प्रकार श्रीशिवमहापुराणके अन्तर्गत सातवीं वायवीयसंहिताके पूर्वखण्डमें सृष्टिकथन नामक सत्रहवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ १७॥

अथाष्टादशोऽध्यायः

दक्षके शिवसे द्वेषका कारण

ऋषय ऊचुः

देवी दक्षस्य तनया त्यक्त्वा दाक्षायणीं तनुम्।
कथं हिमवतः पुत्री मेनायामभवत्पुरा॥ १

कथं च निन्दितो रुद्रो दक्षेण च महात्मना।
निमित्तमपि किं तत्र येन स्यान्निन्दितो भवः॥ २

उत्पन्नश्च कथं दक्षो ह्यभिशापाद्भवस्य तु।
चाक्षुषस्यान्तरे पूर्वं मनोः प्रब्रूहि मारुत॥ ३

ऋषि बोले—पूर्वकालमें दक्षकी पुत्री सती देवी दक्षसे उत्पन्न हुए अपने शरीरका त्यागकर किस तरह हिमालयपत्नी मेनामें जन्म लेकर हिमालयकी पुत्री हुईं? महात्मा दक्षने रुद्रकी निन्दा क्यों की और उसमें क्या कारण था, जिससे रुद्रदेवको निन्दित होना पड़ा? शिवजीके शापके कारण चाक्षुष मन्वन्तरमें दक्षकी पुनः उत्पत्ति कैसे हुई? हे वायुदेव! यह सब बताइये॥ १—३॥

वायुरुवाच

शृण्वन्तु कथयिष्यामि दक्षस्य लघुचेतसः।
वृत्तं पापात् प्रमादाच्च विश्वामरविदूषणम्॥ ४

वायुदेव बोले—सुनिये, अत्यन्त तुच्छ स्वभाववाले दक्ष पाप एवं प्रमादके कारण जिस तरह जगत्के देवताओंको निन्दितकर कलंकके भागी बने, उन सभी कथाओंको मैं आपलोगोंसे कह रहा हूँ॥ ४॥

पुरा सुरासुराः सर्वे सिद्धाश्च परमर्षयः।
कदाचिद् द्रष्टुमीशानं हिमवच्छिखरं ययुः॥ ५

पूर्व समयमें कभी शिवजीके दर्शनके लिये देवता, असुर, सिद्ध एवं महर्षिगण हिमालयके शिखरपर गये॥ ५॥

तदा देवश्च देवी च दिव्यासनगतावुभौ।
दर्शनं ददतुस्तेषां देवादीनां द्विजोत्तमाः॥ ६

हे द्विजश्रेष्ठो! वहाँ दिव्य आसनपर विराजमान शंकर एवं देवीने उन देवता आदिको दर्शन दिया॥ ६॥

तदानीमेव दक्षोऽपि गतस्तत्र सहामरैः।
जामातरं हरं द्रष्टुं देवीं चात्मसुतां सतीम्॥ ७

उस समय देवताओंके साथ दक्ष भी अपनी पुत्री सती तथा जामाता शंकरको देखनेके लिये गये हुए थे॥ ७॥

तदात्मगौरवाद्देवो देव्या दक्षे समागते।
देवादिभ्यो विशेषेण न कदाचिदभूत्स्मृतिः॥ ८

उस समय देवीके साथ स्थित भगवान् सदाशिव अपनी स्वरूपमहिमामें निमग्न होनेके कारण (लोक-व्यवहारमें अनासक्त होनेसे) आये हुए पितृतुल्य श्वशुर दक्षका देवताओंकी अपेक्षा विशेष आदर करना चाहिये, इस बातका तनिक भी स्मरण न कर सके॥ ८॥

तस्य तस्याः परं भावमज्ञातुश्चापि केवलम्।
पुत्रीत्येवं विमूढस्य तस्यां वैरमजायत॥ ९

भगवान् सदाशिव तथा सतीकी परम महिमासे अपरिचित तथा सती देवीको केवल पुत्री समझनेवाले दक्ष [इसी कारण] सतीसे द्वेष करने लगे॥ ९॥

ततस्तेनैव वैरेण विधिना च प्रचोदितः।
नाजुहाव भवं दक्षो दीक्षितस्तामपि द्विषन्॥ १०

इसी वैरभावके कारण तथा दुर्भाग्यसे प्रेरित हुए [यज्ञ]-दीक्षित दक्षने द्वेषवश न केवल शिवजीको अपितु अपनी पुत्रीको भी यज्ञमें आमन्त्रित नहीं किया॥ १०॥

अन्याञ्जामातरः सर्वानाहूय स यथाक्रमम्।
शतशः पुष्कलामर्चाञ्चकार च पृथक् पृथक्॥ ११

जितने भी अन्य जामाता थे, उन सभीको बुलाकर दक्षने पृथक्-पृथक् उनका अत्यधिक सत्कार किया॥ ११॥

तथा तान्संगतान् श्रुत्वा नारदस्य मुखात्तदा।
ययौ रुद्राय रुद्राणी विज्ञाप्य भवनं पितुः॥ १२

तब नारदजीके मुखसे अपने पिताके यज्ञमें उन सभीको गया हुआ सुनकर रुद्राणी भी रुद्रदेवको सूचितकर पिताके भवन जाने लगीं॥ १२॥

अथ संनिहितं दिव्यं विमानं विश्वतोमुखम्।
लक्षणाढ्यं सुखारोहमतिमात्रं मनोहरम्॥ १३

तप्तजाम्बूनदप्रख्यं चित्ररत्नपरिष्कृतम्।
मुक्तामयवितानाग्र्यं स्रग्दामसमलंकृतम्॥ १४

तप्तकाञ्चननिर्व्यूहं रत्नस्तम्भशतावृतम्।
वज्रकल्पितसोपानं विद्रुमस्तम्भतोरणम्॥ १५

पुष्पपट्टपरिस्तीर्णं चित्ररत्नमहासनम्।

[उनकी यात्राके लिये आया हुआ जो विमान था, वह] चारों ओर खिड़कियोंवाला, सभी प्रकारके लक्षणोंसे समन्वित, सुखपूर्वक आरोहणके लिये अतीव योग्य, मनको मोहित करनेवाला, सर्वोत्तम, तप्त स्वर्णके समान देदीप्यमान, विचित्र रत्नोंसे परिष्कृत, मोतियोंसे युक्त वितानसे सुशोभित, मालाओंसे अलंकृत, विचित्र तप्त स्वर्ण-जैसी कान्तिवाली खूटियोंसे युक्त, सैकड़ों रत्नजटित स्तम्भोंसे आवृत, हीरेसे निर्मित सीढ़ियोंवाला, मूँगोंके तोरणसे सुशोभित स्तम्भवाला, बिछे हुए पुष्पोंसे युक्त विचित्र रत्नोंके

वज्रजालकिरच्छिद्रमच्छिद्रमणिकुट्टिमम् ॥ १६
मणिदण्डमनोज्ञेन महावृषभलक्ष्मणा।
अलङ्कृतपुरोभागमभ्रशुभ्रेण केतुना॥ १७
रत्नकञ्चुकगुप्तांगैश्चित्रवेत्रैकपाणिभिः।
अधिष्ठितमहाद्वारमप्रधृष्यैर्गणेश्वरैः॥ १८
मृदंगतालगीतादिवेणुवीणाविशारदैः।
विदग्धवेषभूषैश्च बहुभिः स्त्रीजनैर्वृतम्॥ १९
आरुरोह महादेवी सह प्रियसखीजनैः।

आसनसे शोभायमान, हीरेकी जालियोंवाला, दोषरहित मणियोंसे निर्मित फर्शवाला था, जिसमें मणिमय मनोहर दण्ड लगा था और जो महावृषभके चिह्नसे अंकित था, ऐसे मेघसदृश उज्ज्वल ध्वजसे अलंकृत पूर्वभागवाले, रत्नजटित कंचुकसे ढँके हुए देहवाले तथा हाथमें बेंत धारण किये हुए दुर्धर्ष गणेश्वरोंसे अधिष्ठित महाद्वारवाले, मृदंग-ताल-गीत-वेणु-वीणा-वादनमें प्रवीण तथा मनोहर वेष धारण की हुई बहुत-सी स्त्रियोंसे घिरे हुए तथा अपने पास लाये गये उस दिव्य विमानपर महादेवी अपनी प्रिय सखियोंके साथ आरूढ़ हुईं॥ १३—१९१/२॥

चामरव्यजने तस्या वज्रदंडमनोहरे॥ २०
गृहीत्वा रुद्रकन्ये द्वे विवीजतुरुभे शुभे।
तदा चामरयोर्मध्ये देव्या वदनमाबभौ॥ २१
अन्योऽन्यं युध्यतोर्मध्ये हंसयोरिव पंकजम्।
छत्रं शशिनिभं तस्याश्चूडोपरि सुमालिनी॥ २२
धृतमुक्तापरिक्षिप्तं बभार प्रेमनिर्भरा।
तच्छत्रमुज्ज्वलं देव्या रुरुचे वदनोपरि॥ २३
उपर्यमृतभांडस्य मंडलं शशिनो यथा।
अथ चाग्रे समासीना सुस्मितास्या शुभावती॥ २४
अक्षद्यूतविनोदेन रमयामास वै सतीम्।
सुयशाः पादुके देव्याः शुभे रत्नपरिष्कृते॥ २५
स्तनयोरन्तरे कृत्वा तदा देवीमसेवत।
अन्या काञ्चनचार्वङ्गी दीप्तं जग्राह दर्पणम्॥ २६
अपरा तालवृन्तं च परा तांबूलपेटिकाम्।
काचित्क्रीडाशुकं चारु करेऽकुरुत भामिनी॥ २७

उस समय दो सुन्दर रुद्रकन्याएँ हीरेसे जटित दण्डवाले दो मनोहर चामर हाथोंमें लेकर उनके दोनों ओरसे डुला रही थीं। उस समय दोनों चामरोंके मध्य देवीका मुखमण्डल इस प्रकार शोभायमान होने लगा, जैसे परस्पर लड़ते हुए दो हंसोंके मध्य कमल सुशोभित हो रहा हो। सुमालिनीने प्रेमसे परिपूर्ण होकर भगवती सतीके शिरोभागमें चन्द्रके समान मनको मुग्ध करनेवाले छत्रको लगाया। वह मोतीकी झालरोंसे सुसज्जित था। देवीके मुखमण्डलपर वह समुज्ज्वल मनोहर छत्र इस तरह शोभायमान हो रहा था, मानो अमृतकलशके ऊपर चन्द्रमा सुशोभित हो रहा हो। देवी सतीके सम्मुख बैठी मन्द मुसकान करती हुई शुभावती पासेके खेलद्वारा सती देवीका मनोविनोद कर रही थी। सुयशा देवीकी रत्नजटित सुन्दर पादुका अपने वक्ष:स्थलसे लगाकर उनकी सेवा कर रही थी। स्वर्णके समान अंगवाली कोई दूसरी सखी हाथमें उज्ज्वल दर्पण धारण की हुई थी। किसी सखीने तालवृन्त धारण कर रखा था तो कोई पानदान लिये हुए थी। एक सुन्दरीने हाथमें मनोहर क्रीडाशुक धारण कर रखा था॥ २०—२७॥

काचित्तु सुमनोज्ञानि पुष्पाणि सुरभीणि च।
काचिदाभरणाधारं बभार कमलेक्षणा॥ २८
काचिच्च पुनरालेपं सुप्रसूनं शुभाञ्जनम्।
अन्याश्च सदृशास्तास्ता यथास्वमुचितक्रियाः॥ २९

कोई मनको मुग्ध करनेवाले सुगन्धित पुष्प तथा कोई कमलनयना स्त्री आभूषणोंकी पेटी लिये हुए थी। किसीके हाथमें सुगन्धित आलेप, उत्तम फूल एवं सुन्दर अंजन था। इसी तरह अन्यान्य दासियाँ उन महादेवीको चारों ओरसे घेरकर अपने-अपने अनुकूल कार्योंमें लगकर उनकी सेवा

आवृत्य तां महादेवीमसेवन्त समन्ततः।
अतीव शुशुभे तासामन्तरे परमेश्वरी॥ ३०

तारापरिषदो मध्ये चंद्रलेखेव शारदी।

ततः शंखसमुत्थस्य नादस्य समनन्तरम्॥ ३१

प्रास्थानिको महानादः पटहः समताड्यत।
ततो मधुरवाद्यानि सह तालोद्यतैः स्वनैः॥ ३२

अनाहतानि सन्नेदुः काहलानां शतानि च।

सायुधानां गणेशानां महेशसमतेजसाम्॥ ३३

सहस्राणि शतान्यष्टौ तदानीं पुरतो ययुः।
तेषां मध्ये वृषारूढो गजारूढो यथा गुरुः॥ ३४

जगाम गणपः श्रीमान् सोमनन्दीश्वरार्चितः।

देवदुंदुभयो नेदुर्दिवि दिव्यसुखा घनाः॥ ३५

ननृतुर्मुनयः सर्वे मुमुदुः सिद्धयोगिनः।
ससृजुः पुष्पवृष्टिं च वितानोपरि वारिदाः॥ ३६

तदा देवगणैश्चान्यैः पथि सर्वत्र संगताः।
क्षणादिव पितुर्गेहं प्रविवेश महेश्वरी॥ ३७

तां दृष्ट्वा कुपितो दक्षश्चात्मनः क्षयकारणात्।
तस्या यवीयसीभ्योऽपि चक्रे पूजामसत्कृताम्॥ ३८

तदा शशिमुखी देवी पितरं सदसि स्थितम्।
अंबिका युक्तमव्यग्रमुवाचाकृपणं वचः॥ ३९

देव्युवाच

ब्रह्मादयः पिशाचान्ता यस्याज्ञावशवर्तिनः।
स देवः सांप्रतं तात विधिना नार्चितः किल॥ ४०

तदास्तां मम ज्यायस्याः पुत्र्याः पूजां किमीदृशीम्।
असत्कृतामवज्ञाय कृतवानसि गर्हितम्॥ ४१

एवमुक्तोऽब्रवीदेनां दक्षः क्रोधादमर्षितः।
त्वत्तः श्रेष्ठा विशिष्टाश्च पूज्या बालाः सुता मम॥ ४२

कर रही थीं। वे परमेश्वरी उनके बीचमें इस तरह अत्यधिक सुशोभित हो रही थीं, जिस तरह तारोंके समूहके मध्यमें शरत्कालीन चन्द्ररेखा सुशोभित होती है॥ २८—३०१/२॥

इसके पश्चात् शंखध्वनिके होते ही महान् ध्वनि करनेवाले, प्रस्थानके सूचक नगाड़े बज उठे। ताल और स्वरसे समन्वित दूसरे भी सुमधुर बाजे और बिना आघातके सैकड़ों काहल नामक बाजे भी बजने लगे॥ ३१-३२१/२॥

उस समय महादेवके समान अमित तेजस्वी एक हजार आठ सौ गणेशोंके समूह अस्त्र-शस्त्रसे युक्त हो उनके आगे चलने लगे। उन गणोंके मध्यमें बैलपर सवार देववन्दित श्रीमान् गणपति सोमनन्दी हाथीपर आरूढ़ देवगुरु बृहस्पतिके समान चलने लगे॥ ३३-३४१/२॥

उस समय आकाशमें कानोंको सुख देनेवाले देवगणोंके नगाड़े बजने लगे। सभी मुनिगण नाचने लगे, सिद्ध और योगी हर्षित हो उठे एवं बादल वितानके ऊपर पुष्पवृष्टि करने लगे। मार्गमें अनेक देवताओं तथा अन्य लोगोंसे मिलती हुई वे महेश्वरी थोड़ी देरमें अपने पिता दक्षके घर पहुँच गयीं। उन्हें देखकर अपनी मृत्युके वशीभूत हुए दक्ष कुपित हो उठे और उन्होंने सतीका उतना भी सत्कार नहीं किया, जितना कि उनकी छोटी बहनोंका किया था। इसके बाद उन चन्द्रमुखी सती देवीने सभामें विराजमान अपने पिता दक्षसे युक्तियुक्त, उदार तथा धैर्ययुक्त वाणीमें कहा—॥ ३५—३९॥

देवी बोलीं—हे तात! ब्रह्मासे लेकर पिशाच-पर्यन्त जिनकी आज्ञाका पालन करते हैं, आपने इस समय उन देवाधिदेवकी विधिपूर्वक अर्चना नहीं की। उनकी पूजाकी बात तो छोड़िये, आपको मुझ ज्येष्ठ पुत्रीका सत्कार भी क्या इसी तरह करना चाहिये? आपने मेरा सत्कार न करके निन्दित कार्य किया है॥ ४०-४१॥

सती देवीने जब उनसे इस प्रकार कहा, तब दक्षने क्रोधसे व्याकुल होकर कहा—ये मेरी पुत्रियाँ तुम्हारी अपेक्षा श्रेष्ठ, विशिष्ट और पूज्य हैं।

तासां तु ये च भर्त्तारस्ते मे बहुमता मुदा।
गुणैश्चाप्यधिकाः सर्वे भर्तुस्ते त्र्यंबकादपि॥ ४३

स्तब्धात्मा तामसः शर्वः त्वमिमं समुपाश्रिता।
तेन त्वामवमन्येऽहं प्रतिकूलो हि मे भवः॥ ४४

इनके जो पति हैं, वे भी मेरे लिये अत्यन्त माननीय हैं और वे सभी तुम्हारे पति त्रिनेत्र शिवसे गुणोंमें बहुत अधिक हैं। जिनकी तुम आश्रिता हो, वे शिव स्तब्ध और तमोगुणी हैं। मैंने तुम्हारा अपमान इसीलिये किया; क्योंकि शिव मेरे अनुकूल नहीं हैं॥ ४२—४४॥

तथोक्ता पितरं दक्षं क्रुद्धा देवी तमब्रवीत्।
शृण्वतामेव सर्वेषां ये यज्ञसदसि स्थिताः॥ ४५

अकस्मान्मम भर्तारमजाताशेषदूषणम्।
वाचा दूषयसे दक्ष साक्षाल्लोकमहेश्वरम्॥ ४६

इस तरह दक्षके कहनेपर यज्ञमें जो सदस्य स्थित थे, उन सभीको सुनाते हुए वे देवी अपने पिता दक्षसे कहने लगीं—हे दक्ष! आपने सर्वथा निर्दोष साक्षात् लोकमहेश्वर मेरे पतिको वचनोंद्वारा अकारण दूषित बताया है॥ ४५-४६॥

विद्याचौरो गुरुद्रोही वेदेश्वरविदूषकः।
त एते बहुपाप्मानः सर्वे दंड्या इति श्रुतिः॥ ४७

तस्मादत्युत्कटस्यास्य पापस्य सदृशो भृशम्।
सहसा दारुणो दंडस्तव दैवाद्भविष्यति॥ ४८

त्वया न पूजितो यस्माद्देवदेवस्त्रियम्बकः।
तस्मात्तव कुलं दुष्टं नष्टमित्यवधारय॥ ४९

विद्याकी चोरी करनेवाला, गुरुद्रोही एवं वेद तथा ईश्वरकी निन्दा करनेवाला—ये सभी पापी दण्डके योग्य हैं, ऐसी वेदाज्ञा है। इसलिये दैवयोगसे आपको उसी महापापके समान ही दारुण दण्ड सहसा प्राप्त होगा। आपने देवाधिदेव सदाशिवकी पूजा नहीं की, अतः आपका दूषित कुल नष्ट हो गया—ऐसा समझिये॥ ४७—४९॥

इत्युक्त्वा पितरं रुष्टा सती संत्यक्तसाध्वसा।
तदीयां च तनुं त्यक्त्वा हिमवन्तं ययौ गिरिम्॥ ५०

इस तरह क्रोधित हुई सती देवीने निर्भय होकर अपने पितासे ऐसा कहकर उनसे सम्बन्धित शरीरको त्याग दिया और हिमालयपर्वतपर चली गयीं॥ ५०॥

स पर्वतवरः श्रीमाँल्लब्धपुण्यफलोदयः।
तदर्थमेव कृतवान् सुचिरं दुश्चरं तपः॥ ५१

तस्मात्तमनुगृह्णाति भूधरेश्वरमीश्वरी।
स्वेच्छया पितरं चक्रे स्वात्मनो योगमायया॥ ५२

पुण्य फलोंकी समृद्धिवाले श्रीमान् पर्वतश्रेष्ठ हिमालयने उन भगवतीकी प्राप्तिके लिये सुदीर्घ-कालपर्यन्त दुष्कर तप किया था। इसीलिये उन ईश्वरीने उन पर्वतराज हिमालयपर अनुग्रह किया और योगमायाके द्वारा अपनी इच्छासे उन्हें अपना पिता बनाया॥ ५१-५२॥

यदा गता सती दक्षं विनिन्द्य भयविह्वलम्।
तदा तिरोहिता मंत्रा विहतश्च ततोऽध्वरः॥ ५३

तदुपश्रुत्य गमनं देव्यास्त्रिपुरमर्दनः।
दक्षाय च ऋषिभ्यश्च चुकोप च शशाप तान्॥ ५४

यस्मादवमता दक्ष मत्कृतेऽनागसा सती।
पूजिताश्चेतराः सर्वाः स्वसुता भर्तृभिः सह॥ ५५

वैवस्वतेऽन्तरे तस्मात्तव जामातरस्त्वमी।

जिस समय सती भयसे व्याकुल दक्षकी निन्दा करके गयीं, उसी समय मन्त्र तिरोहित हो गये और वह यज्ञ विनष्ट हो गया। शिवजीने देवीके गमनका समाचार सुनकर दक्ष तथा ऋषियोंपर अत्यधिक क्रोध किया और उन्हें शाप दे दिया। हे दक्ष! आपने मेरे कारण दोषरहित सतीका अपमान किया और पतियोंसहित अपनी अन्य सभी पुत्रियोंका सत्कार किया, अतः आपके ये सभी अयोनिज जामाता वैवस्वत मन्वन्तरमें ब्रह्माजीके द्वारा प्रवर्तित

उत्पत्स्यन्ते समं सर्वे ब्रह्मयज्ञेष्वयोनिजाः॥ ५६
भविता मानुषो राजा चाक्षुषस्य त्वमन्वये।
प्राचीनबर्हिषः पौत्रः पुत्रश्चापि प्रचेतसः॥ ५७
अहं तत्रापि ते विघ्नमाचरिष्यामि दुर्मते।
धर्मार्थकामयुक्तेषु कर्मस्वपि पुनः पुनः॥ ५८

यज्ञोंमें उत्पन्न होंगे और आप चाक्षुष मन्वन्तरमें प्राचीनबर्हिके पौत्र तथा प्रचेताओंके पुत्र होकर मनुष्योंके राजा बनेंगे। हे दुर्मते! मैं उस समय आपके धर्म, अर्थ, कामसे युक्त कार्योंमें बारंबार विघ्न डालूँगा॥ ५३—५८॥

तेनैवं व्याहृतो दक्षो रुद्रेणामिततेजसा।
स्वायंभुवीं तनुं त्यक्त्वा पपात भुवि दुःखितः॥ ५९

ततः प्राचेतसो दक्षो जज्ञे वै चाक्षुषेऽन्तरे।
प्राचीनबर्हिषः पौत्रः पुत्रश्चैव प्रचेतसाम्॥ ६०

जिस समय अमित तेजस्वी रुद्रने दक्षके प्रति ऐसा कहा, उसी समय दुखी दक्ष ब्रह्मदेवसे उत्पन्न अपने देहका त्यागकर पृथ्वीपर गिर पड़े। इसके पश्चात् वही प्राचेतस दक्ष चाक्षुष मन्वन्तरमें प्राचेतस नामसे प्रचेताओंके पुत्र और प्राचीनबर्हिके पौत्रके रूपमें पृथ्वीपर उत्पन्न हुए॥ ५९-६०॥

भृग्वादयोऽपि जाता वै मनोर्वैवस्वतस्य तु।
अन्तरे ब्रह्मणो यज्ञे वारुणीं बिभ्रतस्तनुम्॥ ६१

वे भृगु आदि महर्षि भी वैवस्वत मन्वन्तरके ब्रह्माजीके यज्ञमें वरुणके पुत्रके रूपमें उत्पन्न हुए॥ ६१॥

तदा दक्षस्य धर्मार्थं प्रवृत्तस्य दुरात्मनः।
महेशः कृतवान् विघ्नं मनौ वैवस्वते सति॥ ६२

तब वैवस्वत मन्वन्तरमें उन दुरात्मा दक्षके धर्मार्थ प्रवृत्त होनेपर महादेवने विघ्न किया॥ ६२॥

इति श्रीशिवमहापुराणे सप्तम्यां वायवीयसंहितायां पूर्वखण्डे सतीदेहत्यागो नामाष्टादशोऽध्यायः॥ १८॥

॥ इस प्रकार श्रीशिवमहापुराणके अन्तर्गत सातवीं वायवीयसंहिताके पूर्वखण्डमें सतीदेहत्याग नामक अठारहवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ १८॥

अथैकोनविंशोऽध्यायः

दक्षयज्ञका उपक्रम, दधीचिका दक्षको शाप देना, वीरभद्र और भद्रकालीका प्रादुर्भाव तथा उनका यज्ञध्वंसके लिये प्रस्थान

ऋषय ऊचुः

कथं दक्षस्य धर्मार्थं प्रवृत्तस्य दुरात्मनः।
महेशः कृतवान् विघ्नमेतदिच्छाम वेदितुम्॥ १

ऋषि बोले—धर्मकार्यमें प्रवृत्त हुए दुरात्मा दक्षके कर्ममें महेश्वरने किस प्रकार विघ्न किया, हमलोग यह जानना चाहते हैं?॥ १॥

वायुरुवाच

विश्वस्य जगतो मातुरपि देव्यास्तपोबलात्।
पितृभावमुपागत्य मुदिते हिमवद्गिरौ॥ २

देवेऽपि तत्कृतोद्वाहे हिमवच्छिखरालये।
सङ्क्रीडति तया सार्द्धं काले बहुतरे गते॥ ३

वैवस्वतेऽन्तरे प्राप्ते दक्षः प्राचेतसः स्वयम्।
अश्वमेधेन यज्ञेन यक्ष्यमाणोऽन्वपद्यत॥ ४

वायु बोले—अपने तपके प्रभावसे सारे संसारकी माता भगवती देवीका पितृत्व प्राप्त करके हिमालय बहुत ही प्रसन्न हुए। जब शिवजीका उनसे विवाह हो गया और हिमालयके शिखरपर उनके साथ विहार करते हुए शिवजीका बहुत समय बीत गया। तब वैवस्वत मन्वन्तरके प्राप्त होनेपर उन प्रचेताके पुत्र स्वयं दक्षने अश्वमेधयज्ञ करनेका विचार किया॥ २—४॥

ततो हिमवतः पृष्ठे दक्षो वै यज्ञमाहरत्।
गंगाद्वारे शुभे देशे ऋषिसिद्धनिषेविते॥ ५
तस्य तस्मिन्मखे देवाः सर्वे शक्रपुरोगमाः।
गमनाय समागम्य बुद्धिमापेदिरे तदा॥ ६
आदित्या वसवो रुद्राः साध्याः सह मरुद्गणैः।
ऊष्मपाः सोमपाश्चैव आज्यपा धूमपास्तथा॥ ७
अश्विनौ पितरश्चैव तथा चान्ये महर्षयः।
विष्णुना सहिताः सर्वे स्वागता यज्ञभागिनः॥ ८
दृष्ट्वा देवकुलं सर्वमीश्वरेण विना गतम्।
दधीचो मन्युनाविष्टो दक्षमेवमभाषत॥ ९

दधीच उवाच

अप्यपूज्ये चैव पूजा पूज्यानां चाप्यपूजने।
नरः पापमवाप्नोति महद्वै नात्र संशयः॥ १०
असतां सम्मतिर्यत्र सतामवमतिस्तथा।
दंडो देवकृतस्तत्र सद्यः पतति दारुणः॥ ११
एवमुक्त्वा तु विप्रर्षिः पुनर्दक्षमभाषत।
पूज्यं तु पशुभर्तारं कस्मान्नार्चयसे प्रभुम्॥ १२

दक्ष उवाच

सन्ति मे बहवो रुद्राः शूलहस्ताः कपर्दिनः।
एकादशावस्थिता ये नान्यं वेद्मि महेश्वरम्॥ १३

दधीच उवाच

किमेभिरमरैरन्यैः पूजितैरध्वरे फलम्।
राजा चेदध्वरस्यास्य न रुद्रः पूज्यते त्वया॥ १४
ब्रह्मविष्णुमहेशानां स्त्रष्टा यः प्रभुरव्ययः।
ब्रह्मादयः पिशाचान्ता यस्य कैंकर्यवादिनः॥ १५
प्रकृतीनां परश्चैव पुरुषस्य च यः परः।
चिन्त्यते योगविद्वद्भिर्ऋषिभिस्तत्त्वदर्शिभिः॥ १६
अक्षरं परमं ब्रह्म ह्यसच्च सदसच्च यत्।
अनादिमध्यनिधनमप्रतर्क्यं सनातनम्॥ १७
यः स्त्रष्टा चैव संहर्ता भर्ता चैव महेश्वरः।
तस्मादन्यं न पश्यामि शंकरात्मानमध्वरे॥ १८

दक्ष हिमालयके पृष्ठपर ऋषियों तथा सिद्धोंद्वारा सेवित गंगाद्वार नामक शुभस्थानपर यज्ञ करने लगे॥ ५॥

इसके बाद उनके उस यज्ञमें जानेके लिये इन्द्रादि समस्त देवता आपसमें विचार करने लगे॥ ६॥

आदित्य, वसु, रुद्र, साध्य, मरुद्गण, ऊष्मप, सोमप, आज्यप, धूमप, दोनों अश्विनीकुमार, पितृगण तथा अन्य महर्षिगण—विष्णुके सहित ये सभी लोग उस यज्ञमें भाग लेनेके लिये आये। [उस यज्ञमें] सदाशिवके अतिरिक्त सभी देवताओंको उपस्थित देखकर कोपाविष्ट दधीच दक्षसे इस प्रकार कहने लगे—॥ ७—९॥

दधीचि बोले—अपूज्यके पूजनसे तथा पूज्योंकी पूजा न करनेसे मनुष्यको बड़ा पाप लगता है, इसमें सन्देह नहीं है। जहाँ असज्जनोंका सम्मान तथा सत्पुरुषोंका अपमान होता है, वहाँ शीघ्र ही ईश्वरके द्वारा दिया गया कठोर दण्ड उपस्थित होता है॥ १०-११॥

दधीचिने इस प्रकार कहकर दक्षसे पुनः कहा—तुम पूज्य पशुपति महेश्वरका पूजन किसलिये नहीं करते हो?॥ १२॥

दक्ष बोले—जटाजूटसे समन्वित, हाथमें त्रिशूल धारण किये हुए एकादश रुद्र तथा अन्य बहुत-से रुद्र मेरे यहाँ उपस्थित हैं, मैं और किसी अन्य महेश्वरको नहीं जानता हूँ॥ १३॥

दधीचि बोले—यदि तुम इस यज्ञके राजा महेश्वरका पूजन नहीं कर रहे हो, तो इस यज्ञमें इन अन्य देवताओंके पूजनसे क्या लाभ!॥ १४॥

जो अविनाशी प्रभु, ब्रह्मा, रुद्र और विष्णुको उत्पन्न करनेवाले हैं और ब्रह्मासे लेकर पिशाचपर्यन्त जिनके वशवर्ती हैं, जो प्रकृति और पुरुषसे परे हैं, जिनके ध्यानमें योगज्ञाता और तत्त्वदर्शी महर्षि तत्पर रहते हैं, जो अक्षर परम ब्रह्म तथा सदसत्स्वरूप हैं, आदि-मध्य-अन्तसे रहित, तर्कसे सर्वथा अज्ञेय, विशुद्ध तथा सनातन हैं, जो सृष्टि करनेवाले, पालन करनेवाले, संहार करनेवाले तथा महेश्वर हैं, मैं इस यज्ञमें उन शंकरात्माके अतिरिक्त अन्य किसीको नहीं देखता हूँ॥ १५—१८॥

दक्ष उवाच

एतन्मखेशस्य सुवर्णपात्रे
हविः समस्तं विधिमन्त्रपूतम्।
विष्णोर्नयाम्यप्रतिमस्य भागं
प्रभोर्विभज्याहवनीयमद्य ॥ १९

दधीच उवाच

यस्मान्नाराधितो रुद्रः सर्वदेवेश्वरेश्वरः।
तस्माद्दक्ष तवाशेषो यज्ञोऽयं न भविष्यति॥ २०
इत्युक्त्वा वचनं क्रुद्धो दधीचो मुनिसत्तमः।
निर्गम्य च ततो देशाज्जगाम स्वकमाश्रमम्॥ २१

निर्गतेऽपि मुनौ तस्मिन्देवा दक्षं न तत्यजुः।
अवश्यमनुभावित्वादनर्थस्य तु भाविनः॥ २२

एतस्मिन्नेव काले तु ज्ञात्वैतत्सर्वमीश्वरात्।
दग्धुं दक्षाध्वरं विप्रा देवी देवमचोदयत्॥ २३

देव्या संचोदितो देवो दक्षाध्वरजिघांसया।
ससर्ज सहसा वीरं वीरभद्रं गणेश्वरम्॥ २४

सहस्रवदनं देवं सहस्रकमलेक्षणम्।
सहस्रमुद्गरधरं सहस्रशरपाणिकम्॥ २५

शूलटंकगदाहस्तं दीप्तकार्मुकधारिणम्।
चक्रवज्रधरं घोरं चंद्रार्द्धकृतशेखरम्॥ २६

कुलिशोद्योतितकरं तडिज्ज्वलितमूर्द्धजम्।
दंष्ट्राकरालं बिभ्राणं महावक्त्रं महोदरम्॥ २७

विद्युज्जिह्वं प्रलंबोष्ठं मेघसागरनिःस्वनम्।
वसानं चर्म वैयाघ्रं महद्रुधिरनिस्रवम्॥ २८

गण्डद्वितयसंसृष्टमण्डलीकृतकुण्डलम्।
वरामरशिरोमालावलीकलितशेखरम् ॥ २९

रणन्नूपुरकेयूरमहाकनकभूषितम्।
रत्नसंचयसंदीप्तं तारहारावृतोरसम्॥ ३०

महाशरभशार्दूलसिंहैः सदृशविक्रमम्।
प्रशस्तमत्तमातंगसमानगमनालसम् ॥ ३१

दक्ष बोले—[हे महर्षे!] इस सोनेके पात्रमें यज्ञेश्वर विष्णुके निमित्त विधिपूर्वक अभिमन्त्रित हवि रखी हुई है, उसे मैं प्रस्तुत कर रहा हूँ, उस सम्पूर्ण हविको विभाजितकर उनके लिये अभी प्रदान कीजिये॥ १९॥

दधीचि बोले—हे दक्ष! आपने देवदेवेश्वर रुद्रकी आराधना नहीं की है, अतः आपका यह यज्ञ पूर्ण नहीं होगा। यह वचन कहकर मुनिश्रेष्ठ दधीचि क्रुद्ध हो उस यज्ञशालासे निकलकर अपने आश्रमको चले गये॥ २०-२१॥

उन मुनिके चले जानेपर तथा अवश्य होनेवाले अनिष्टको समझते हुए भी देवताओंने दक्षका त्याग नहीं किया। हे विप्रो! इसी समय ईश्वर शिवसे यह सब जानकर देवीने दक्षके यज्ञको जलानेके लिये शिवजीको प्रेरित किया॥ २२-२३॥

तब देवीके द्वारा प्रेरित किये गये शिवने दक्षके यज्ञको विनष्ट करनेकी इच्छासे पराक्रमी, हजार मुखोंवाले, कमलके समान हजार नेत्रोंवाले, हजारों मुद्गर, हजारों धनुष, हजारों शूल, टंक, गदा, तेजस्वी धनुष, चक्र [आदि शस्त्रास्त्रोंसे युक्त] तथा भयंकर स्वरूपवाले, वज्र अपने हाथोंमें धारण किये हुए, मस्तकपर अर्धचन्द्र धारण किये हुए, वज्रसे चमकते हुए हाथवाले, विद्युत्‌की प्रभाके सदृश केशोंवाले, भयंकर दाढ़ोंसे युक्त, विशाल मुख तथा उदरवाले, बिजलीके समान जीभवाले, लटकते हुए लम्बे ओठवाले, समुद्र एवं मेघकी गर्जनाके समान शब्दवाले, अत्यधिक रक्त-स्रावसे युक्त, व्याघ्रके चर्मको धारण किये हुए, दोनों कपोलोंसे सटे हुए गोलाकार कुण्डल धारण किये हुए, देवताओंकी उत्तम शिरोमालावलीसे सुशोभित सिरवाले, उत्तम स्वर्णनिर्मित बजते हुए नूपुर तथा बाजूबन्दसे विभूषित, रत्नोंसे प्रकाशित, तारमय हारसे आवृत वक्षःस्थलवाले, महाशरभ, शार्दूल और सिंहके समान पराक्रमवाले, मदमत्त महान् हाथीके समान मन्थर गतिवाले, शंख-चामर-

शंखचामरकुंदेन्दुमृणालसदृशप्रभम् ।
सतुषारमिवाद्रीन्द्रं साक्षाज्जङ्गमतां गतम्॥ ३२

ज्वालामालापरिक्षिप्तं दीप्तमौक्तिकभूषणम्।
तेजसा चैव दीव्यन्तं युगान्त इव पावकम्॥ ३३

स जानुभ्यां महीं गत्वा प्रणतः प्राञ्जलिस्ततः।
पार्श्वतो देवदेवस्य पर्यतिष्ठद् गणेश्वरः॥ ३४

मन्युना चासृजद्भद्रां भद्रकालीं महेश्वरीम्।
आत्मनः कर्मसाक्षित्वे तेन गन्तुं सहैव तु॥ ३५

तं दृष्ट्वावस्थितं वीरभद्रं कालाग्निसन्निभम्।
भद्रया सहितं प्राह भद्रमस्त्विति शंकरः॥ ३६

स च विज्ञापयामास सह देव्या महेश्वरम्।
आज्ञापय महादेव किं कार्यं करवाण्यहम्॥ ३७

ततस्त्रिपुरहा प्राह हैमवत्याः प्रियेच्छया।
वीरभद्रं महाबाहुं वाचा विपुलनादया॥ ३८

महादेव उवाच

प्राचेतसस्य दक्षस्य यज्ञं सद्यो विनाशय।
भद्रकाल्या सहासि त्वमेतत्कृत्यं गणेश्वर॥ ३९
अहमप्यनया सार्द्धं रैभ्याश्रमसमीपतः।
स्थित्वा वीक्षे गणेशान विक्रमं तव दुःसहम्॥ ४०

वृक्षाः कनखले ये तु गंगाद्वारसमीपगाः।
सुवर्णशृंगस्य गिरेर्मेरुमंदरसंनिभाः॥ ४१

तस्मिन्प्रदेशे दक्षस्य यज्ञः संप्रति वर्तते।
सहसा तस्य यज्ञस्य विघातं कुरु मा चिरम्॥ ४२

इत्युक्ते सति देवेन देवी हिमगिरीन्द्रजा।
भद्रं भद्रां च संप्रेक्ष्य वत्सं धेनुरिवौरसम्॥ ४३

आलिङ्ग्य च समाघ्राय मूर्ध्नि षड्वदनं यथा।
सस्मिता वचनं प्राह मधुरं मधुरं स्वयम्॥ ४४

कुन्द, चन्द्रमा एवं मृणालके समान प्रभावाले, मानो बर्फसे ढका हुआ साक्षात् हिमालयपर्वत ही चलता-फिरता सुशोभित हो रहा हो—ऐसे प्रतीत होनेवाले, ज्वालासमूहसे देदीप्यमान, मोतियोंके आभूषणोंसे सुशोभित और अपने तेजके कारण प्रलयकालीन अग्निके समान प्रदीप्त होनेवाले गणाधिप वीरभद्रको सहसा उत्पन्न किया। घुटने टेककर हाथ जोड़कर शिवजीको प्रणाम करके वीरभद्र उनके समीप बैठ गये॥ २४—३४॥

इसके पश्चात् देवीने क्रोधसे अपने कर्मके साक्षित्वके लिये महेश्वरी भद्रा भद्रकालीको साथ जानेके लिये उत्पन्न किया। तब भद्रकालीसे समन्वित कालाग्निके सदृश स्थित उन वीरभद्रको देखकर शंकरजीने कहा—तुम्हारा कल्याण हो॥ ३५-३६॥

तत्पश्चात् वीरभद्रने देवीके साथ विराजमान महेश्वरसे कहा—हे महादेव! आज्ञा दीजिये, मैं आपका कौन-सा कार्य करूँ? तब त्रिपुरका वध करनेवाले सदाशिवने पार्वतीका प्रिय करनेकी इच्छासे महागम्भीर वाणीमें महान् भुजाओंवाले वीरभद्रसे कहा—॥ ३७-३८॥

महादेव बोले—हे गणेश्वर! तुम प्रचेताके पुत्र दक्षके यज्ञको विनष्ट करो, तुम भद्रकालीके साथ इस कार्यको करो। हे गणेशान! मैं भी इन देवीके साथ रैभ्यके आश्रमके पास स्थित होकर तुम्हारा दुःसह पराक्रम देखता रहूँगा॥ ३९-४०॥

कनखलमें गंगाद्वारके समीप स्थित जो ऊँचे वृक्ष हैं, वे सोनेके शिखरवाले मेरुपर्वतपर मन्दरके समान दिखायी पड़ रहे हैं, उसी प्रदेशमें दक्षका यज्ञ हो रहा है। उस यज्ञको तुम विना विलम्ब किये सहसा विनष्ट कर दो॥ ४१-४२॥

सदाशिवके द्वारा इस प्रकार कहे जानेपर हिमवान्की कन्या पार्वती देवी वीरभद्र और भद्रकालीको इस तरह देखकर जैसे कोई गाय अपने बछड़ेको देखती हो, उनका आलिंगन करके पुनः कार्तिकेयके समान उनका मस्तक सूँघकर हँसती हुई अत्यन्त मधुर वचन बोलीं—॥ ४३-४४॥

देव्युवाच

वत्स भद्र महाभाग महाबलपराक्रम।
मत्प्रियार्थं त्वमुत्पन्नो मम मन्युं प्रमार्जय॥ ४५

यज्ञेश्वरमनाहूय यज्ञकर्मरतोऽभवत्।
दक्षो वैरेण तं तस्माद्बिन्धि यज्ञं गणेश्वर॥ ४६

यज्ञलक्ष्मीमलक्ष्मीं त्वं भद्र कृत्वा ममाज्ञया।
यजमानं च तं हत्वा वत्स हिंसय भद्रया॥ ४७

अशेषामिव तामाज्ञां शिवयोश्चित्रकृत्ययोः।
मूर्ध्नि कृत्वा नमस्कृत्य भद्रो गन्तुं प्रचक्रमे॥ ४८

अथैष भगवान्क्रुद्धः प्रेतावासकृतालयः।
वीरभद्रो महादेवो देव्या मन्युप्रमार्जकः॥ ४९
ससर्ज रोमकूपेभ्यो रोमजाख्यान् गणेश्वरान्।
दक्षिणाद्भुजदेशात्तु शतकोटिगणेश्वरान्॥ ५०
पादात्तथोरुदेशाच्च पृष्ठात्पार्श्वान्मुखाद्गलात्।
गुह्याद् गुल्फाच्छिरोमध्यात्कंठादास्यात्तथोदरात्॥ ५१
तदा गणेश्वरैर्भद्रैर्भद्रतुल्यपराक्रमैः।
संछादितमभूत्सर्वं साकाशविवरं जगत्॥ ५२
सर्वे सहस्रहस्तास्ते सहस्रायुधपाणयः।
रुद्रस्यानुचराः सर्वे सर्वे रुद्रसमप्रभाः॥ ५३

शूलशक्तिगदाहस्ताष्टंकोपलशिलाधराः।
कालाग्निरुद्रसदृशास्त्रिनेत्राश्च जटाधराः॥ ५४

निपेतुर्भृशमाकाशे शतशः सिंहवाहनाः।
विनेदुश्च महानादाञ्जलदा इव भद्रजाः॥ ५५

तैर्भद्रैर्भगवान् भद्रस्तथा परिवृतो बभौ।
कालानलशतैर्युक्तो यथान्ते कालभैरवः॥ ५६

देवी बोलीं—हे वत्स! हे महाभाग! महान् बल तथा पराक्रमवाले हे वीरभद्र! तुम मेरा हित करनेके लिये ही उत्पन्न हुए हो, अतः मेरे क्रोधका शमन करो॥ ४५॥

गणेश्वर! वैरके कारण यज्ञेश्वरको बिना बुलाये ही दक्षने यज्ञकर्म प्रारम्भ किया है, इसलिये तुम शीघ्र ही उस यज्ञको नष्ट कर दो। हे भद्र! हे वत्स! तुम इस भद्राके साथ मेरी आज्ञासे यज्ञलक्ष्मीको अलक्ष्मी बनाकर उस यज्ञकर्ता दक्षको विनष्ट कर दो॥ ४६-४७॥

तब विचित्र कार्य करनेवाले उन शिव तथा पार्वतीके सभी आदेशोंको सिरपर धारणकर उन्हें नमस्कार करके वीरभद्र जानेके लिये उद्यत हो गये॥ ४८॥

इसके पश्चात् श्मशानवासी भगवान् वीरभद्र महादेवने देवीके क्रोधको शान्त करनेकी इच्छासे अपने रोमकूपोंसे हजारों रोमज नामक गणेश्वरोंको उत्पन्न किया। इसी तरह उन्होंने अपनी दाहिनी भुजा, चरण, ऊरुप्रदेश, पीठ, पार्श्व, मुख, गला, गुह्य, गुल्फ, सिर, मध्यभाग, कण्ठ, जबड़े तथा पेटसे सौ करोड़ गणेश्वरोंको उत्पन्न किया। उस समय वीरभद्रके समान पराक्रमवाले गणेश्वरोंसे आकाशविवरसहित सारा जगत् ढँक गया॥ ४९—५२॥

उन सभीके हजार हाथ थे तथा हाथोंमें हजारों आयुध थे। वे सभी रुद्रके अनुचर थे तथा रुद्रके समान तेजस्वी थे॥ ५३॥

वे हाथोंमें शूल, शक्ति, गदा, टंक, उपल एवं शिला लिये हुए थे। वे कालाग्निरुद्रके समान, तीन नेत्रोंवाले तथा जटाजूटसे समन्वित थे॥ ५४॥

वीरभद्रद्वारा उत्पन्न वे करोड़ों गण सिंहोंपर विराजमान हो आकाशमें विचरने लगे और मेघके समान महाघोर गर्जना करने लगे॥ ५५॥

उन गणोंसे घिरे हुए भगवान् वीरभद्र इस तरह प्रतीत हो रहे थे, जैसे प्रलयकालमें सैकड़ों कालाग्नियोंसे घिरे हुए कालभैरव शोभित होते हैं॥ ५६॥

तेषां मध्ये समारुह्य वृषेन्द्रं वृषभध्वजः।
जगाम भगवान् भद्रः शुभ्रमभ्रं यथा भवः॥ ५७

तस्मिन्वृषभमारूढे भद्रे तु भसितप्रभः।
बभार मौक्तिकं छत्रं गृहीतसितचामरः॥ ५८

उन गणोंके बीच वृषभध्वज भगवान् वीरभद्र बैलपर आरूढ़ होकर गये। तब श्वेत चामर लिये हुए भसितप्रभ नामक गणने वृषभपर सवार उन वीरभद्रके सिरके ऊपर मुक्तामणिकी झालरवाला छत्र लगा दिया॥ ५७-५८॥

स तदा शुशुभे पार्श्वे भद्रस्य भसितप्रभः।
भगवानिव शैलेन्द्रः पार्श्वे विश्वजगद्गुरोः॥ ५९

सोऽपि तेन बभौ भद्रः श्वेतचामरपाणिना।
बालसोमेन सौम्येन यथा शूलवरायुधः॥ ६०

उस समय वीरभद्रके समीप वह भसितप्रभ इस तरह सुशोभित हो रहा था, जैसे समस्त जगत्के गुरु भगवान् शंकरके समीप ऐश्वर्यसम्पन्न हिमालय सुशोभित होते हैं। वे वीरभद्र भी श्वेत चामरको हाथमें धारण किये हुए उस भसितप्रभके साथ इस तरह सुशोभित हो रहे थे, जैसे श्रेष्ठ त्रिशूल धारण करनेवाले भगवान् रुद्र सौम्य बालचन्द्रमासे शोभायमान होते हैं॥ ५९-६०॥

दध्मौ शंखं सितं भद्रं भद्रस्य पुरतः शुभम्।
भानुकम्पो महातेजा हेमरत्नैरलङ्कृतः॥ ६१

इसके बाद सुवर्ण-रत्नादिसे अलंकृत महातेजस्वी भानुकम्प नामक गणेश्वरने वीरभद्रके आगे अपना कल्याणमय, शुभ एवं श्वेत वर्णका शंख बजाया॥ ६१॥

देवदुंदुभयो नेदुर्दिव्यसंकुलनिःस्वनाः।
ववृषुः शतशो मूर्ध्नि पुष्पवर्षं बलाहकाः॥ ६२

सघन तथा दिव्य ध्वनिवाली देवदुन्दुभियाँ बजने लगीं और मेघ उनके सिरपर फूलोंकी वर्षा करने लगे॥ ६२॥

फुल्लानां मधुगर्भाणां पुष्पाणां गन्धबन्धवः।
मार्गानुकूलसंवाहा ववुश्च पथि मारुताः॥ ६३

ततो गणेश्वराः सर्वे मत्ता युद्धबलोद्धताः।
ननृतुर्मुमुदुर्नेदुर्जहसुर्जगदुर्जगुः॥ ६४

मकरन्दसे परिपूर्ण, खिले हुए फूलोंकी सुगन्धसे सुरभित तथा यात्राके अनुकूल हवाएँ मार्गमें बहने लगीं। इसके पश्चात् सभी गणेश्वर मत्त तथा युद्धबलसे गर्वित होकर नृत्य करने लगे, हर्षित हो उठे, नाद करने लगे, कुछ हँसने लगे, चिल्लाने लगे तथा कुछ गाने लगे॥ ६३-६४॥

तदा भद्रगणान्तःस्थो बभौ भद्रः सभद्रया।
यथा रुद्रगणान्तःस्थस्त्र्यम्बकोऽम्बिकया सह॥ ६५

उस समय अपने गणोंके मध्यमें वीरभद्र भद्रकालीके साथ उसी प्रकार शोभित हो रहे थे, जैसे रुद्रगणोंके मध्य शिवजी पार्वतीके साथ सुशोभित होते हैं॥ ६५॥

तत्क्षणादेव दक्षस्य यज्ञवाटं हिरण्मयम्।
प्रविवेश महाबाहुर्वीरभद्रो महानुगः॥ ६६

उसी समय अनुचरोंसहित महाबाहु वीरभद्रने दक्षकी सुवर्णमयी यज्ञशालामें प्रवेश किया॥ ६६॥

ततस्तु दक्षप्रतिपादितस्य
क्रतुप्रधानस्य गणप्रधानः।
प्रयोगभूमिं प्रविवेश भद्रो
रुद्रो यथान्ते भुवनं दिधक्षुः॥ ६७

गणोंमें प्रधान वीरभद्र दक्षके द्वारा सम्पादित किये जा रहे उस महायज्ञकी प्रयोगभूमि अर्थात् मण्डपमें वैसे ही प्रविष्ट हुए जैसे प्रलयकालमें जगत्को भस्मीभूत करनेकी इच्छावाले रुद्र [ब्रह्माण्डमें] प्रवेश करते हैं॥ ६७॥

इति श्रीशिवमहापुराणे सप्तम्यां वायवीयसंहितायां पूर्वखण्डे वीरभद्रोत्पत्तिवर्णनं नामैकोनविंशोऽध्यायः॥ १९॥

॥ इस प्रकार श्रीशिवमहापुराणके अन्तर्गत सातवीं वायवीयसंहिताके पूर्वखण्डमें वीरभद्रोत्पत्तिवर्णन नामक उन्नीसवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ १९॥

अथ विंशोऽध्यायः

गणोंके साथ वीरभद्रका दक्षकी यज्ञभूमिमें आगमन तथा उनके द्वारा दक्षके यज्ञका विध्वंस

वायुरुवाच

ततो विष्णुप्रधानानां सुराणाममितौजसाम्।
ददर्श च महत्सत्रं चित्रध्वजपरिच्छदम्॥ १

सुदर्भऋजुसंस्तीर्णं सुसमिद्धहुताशनम्।
काञ्चनैर्यज्ञभांडैश्च भ्राजिष्णुभिरलंकृतम्॥ २

ऋषिभिर्यज्ञपटुभिर्यथावत्कर्मकर्तृभिः।
विधिना वेददृष्टेन स्वनुष्ठितबहुक्रमम्॥ ३

देवांगनासहस्राढ्यमप्सरोगणसेवितम्।
वेणुवीणारवैर्जुष्टं वेदघोषैश्च बृंहितम्॥ ४

वायु बोले—इसके पश्चात् वीरभद्रने विष्णुके नेतृत्ववाले तेजस्वी देवगणोंसे युक्त उस महायज्ञको देखा, जो चित्र-विचित्र ध्वजाओंसे सुशोभित था, जहाँ सीधे-सीधे श्रेष्ठ कुश बिछे हुए थे, भलीभाँति अग्नि प्रज्वलित हो रही थी, जो चमकते हुए सुवर्णमय यज्ञपात्रोंसे अलंकृत था तथा जिसमें यथोचित कर्म करनेवाले यज्ञकुशल ऋषियोंके द्वारा वेदविहित रीतिसे भलीभाँति विविध यज्ञकृत्योंका संचालन हो रहा था, जो हजारों देवांगनाओं एवं अप्सराओंसे समन्वित था, वेणु-वीणाकी ध्वनियोंसे गुंजित था तथा वेदघोषोंसे मानो अभिवृद्धिको प्राप्त हो रहा था॥ १—४॥

दृष्ट्वा दक्षाध्वरं वीरो वीरभद्रः प्रतापवान्।
सिंहनादं तदा चक्रे गंभीरो जलदो यथा॥ ५

ततः किलकिलाशब्द आकाशं पूरयन्निव।
गणेश्वरैः कृतो यज्ञे महान्व्यक्कृतसागरः॥ ६

दक्षके यज्ञको देखकर वीर तथा प्रतापी वीरभद्रने गम्भीर मेघके समान सिंहनाद किया। यज्ञभूमिमें गणेश्वरोंके द्वारा किया जाता हुआ किलकिलाहटभरा वह महानाद मानों आकाशको परिपूर्ण-सा कर रहा था और सागरके घोषको तिरस्कृत-सा कर रहा था॥ ५-६॥

तेन शब्देन महता ग्रस्ताः सर्वे दिवौकसः।
दुद्रुवुः परितो भीताः स्रस्तवस्त्रविभूषणाः॥ ७

उस महान् शब्दसे आक्रान्त हुए सभी देवगण भयसे व्याकुल हो चारों ओर भागने लगे, उनके वस्त्र एवं आभूषण खिसक गये। उस समय देवगण अत्यधिक

किंस्विद्भग्नो महामेरुः किंस्वित्संदीर्यते मही।
किमिदं किमिदं वेति जजल्पुस्त्रिदशा भृशम्॥ ८

संक्षुब्ध हो आपसमें बार-बार कहने लगे—क्या महामेरु टूट गया, अथवा पृथ्वी फट रही है! यह क्या हो गया, यह क्या हो गया?॥ ७-८॥

मृगेन्द्राणां यथा नादं गजेन्द्रा गहने वने।
श्रुत्वा तथाविधं केचित्तत्यजुर्जीवितं भयात्॥ ९

पर्वताश्च व्यशीर्यन्त चकम्पे च वसुंधरा।
मरुतश्च व्यघूर्णन्त चुक्षुभे मकरालयः॥ १०

अग्नयो नैव दीप्यन्ते न च दीप्यति भास्करः।
ग्रहाश्च न प्रकाशन्ते नक्षत्राणि च तारकाः॥ ११

एतस्मिन्नेव काले तु यज्ञवाटं तदुज्ज्वलम्।
संप्राप भगवान्भद्रो भद्रैश्च सह भद्रया॥ १२

जिस प्रकार गहन वनमें सिंहोंका नाद सुनकर हाथी व्याकुल हो जाते हैं, उसी तरह उन शब्दोंको सुनकर कुछ लोग भयसे प्राण त्यागने लगे। पर्वत फटने लगे, पृथ्वी कम्पित हो उठी, आँधियाँ चलने लगीं। समुद्र संक्षुब्ध हो उठे, आगका जलना बन्द हो गया, सूर्यकी प्रभा धूमिल हो गयी और नक्षत्रों, ग्रहों तथा तारागणोंका प्रकाश लुप्त हो गया। उसी समय भगवान् वीरभद्र अपने गणों एवं भद्रकालीके साथ उस समुज्ज्वल यज्ञस्थलमें पहुँचे॥ ९—१२॥

तं दृष्ट्वा भीतभीतोऽपि दक्षो दृढ इव स्थितः।
क्रुद्धवद् वचनं प्राह को भवान् किमिहेच्छसि॥ १३

उन्हें देखकर दक्ष भयभीत होते हुए भी दृढ़की भाँति बैठे रहे और क्रोधित होकर यह वचन कहने लगे—आप कौन हैं और यहाँ क्या चाहते हैं?॥ १३॥

तस्य तद्वचनं श्रुत्वा दक्षस्य च दुरात्मनः।
वीरभद्रो महातेजा मेघगंभीरनिःस्वनः॥ १४

स्मयन्निव तमालोक्य दक्षं देवांश्च ऋत्विजः।
अर्थगर्भमसंभ्रान्तमवोचदुचितं वचः॥ १५

उस दुरात्मा दक्षके वचनको सुनकर मेघके समान गम्भीर गर्जना करनेवाले महातेजस्वी वीरभद्रने दक्ष, देवताओं तथा ऋत्विजोंकी ओर देखकर हँसते हुए अर्थपूर्ण, सर्वथा सुस्पष्ट एवं उचित वचन कहा—॥ १४-१५॥

वीरभद्र उवाच

वयं ह्यनुचराः सर्वे शर्वस्यामिततेजसः।
भागाभिलिप्सया प्राप्ता भागो नः सम्प्रदीयताम्॥ १६

अथ चेदध्वरेऽस्माकं न भागः परिकल्पितः।
कथ्यतां कारणं तत्र युध्यतां वा मयामरैः॥ १७

इत्युक्तास्ते गणेन्द्रेण देवा दक्षपुरोगमाः।
ऊचुर्मन्त्राः प्रमाणं नो न वयं प्रभवस्त्विति॥ १८

वीरभद्र बोले—हम सब अमिततेजस्वी [भगवान्] रुद्रके अनुचर हैं और अपने भागकी कामनासे यहाँ आये हैं, अतः आप हमारा भाग दीजिये। यदि इस यज्ञमें हमारा भाग नहीं रखा गया है, तो उसका कारण बताइये अथवा इन देवताओंको साथ लेकर मुझसे युद्ध कीजिये। वीरभद्रके द्वारा इस तरह कहे जानेपर दक्षके सहित देवताओंने उनसे कहा—इस विषयमें तो मन्त्र ही प्रमाण हैं। हमलोग इसमें समर्थ नहीं हैं॥ १६—१८॥

मन्त्रा ऊचुस्सुरा यूयं मोहोपहतचेतसः।
येन प्रथमभागार्हं न यजध्वं महेश्वरम्॥ १९

मन्त्रोंने कहा—हे देवताओ! आपलोगोंकी बुद्धि मोहसे ग्रसित है, जिससे आपलोग प्रथम भाग पानेके योग्य महेश्वरका यजन नहीं कर रहे हैं॥ १९॥

मंत्रोक्ता अपि ते देवाः सर्वे संमूढचेतसः।
भद्राय न ददुर्भागं तत्प्रहाणमभीप्सवः॥ २०

यदा तथ्यं च पथ्यं च स्ववाक्यं तद्वृथाऽभवत्।
तदा ततो ययुर्मन्त्रा ब्रह्मलोकं सनातनम्॥ २१

मन्त्रोंके द्वारा इस प्रकार कहे जानेपर भी मूढ़ बुद्धिवाले उन सभी देवताओंने वीरभद्रके बहिष्कारकी कामना करते हुए उनको भाग नहीं दिया। जब उनके अपने वे सत्य एवं हितकर वचन व्यर्थ हो गये, तब वे मन्त्र वहाँसे सनातन ब्रह्मलोकको चले गये॥ २०-२१॥

अथोवाच गणाध्यक्षो देवान् विष्णुपुरोगमान्।
मन्त्राः प्रमाणं न कृता युष्माभिर्बलगर्वितैः॥ २२

यस्मादस्मिन् मखे देवैरित्थं वयमसत्कृताः।
तस्माद्वो जीवितैस्सार्द्धमपनेष्यामि गर्वितम्॥ २३

इसके पश्चात् गणेश्वरने विष्णु आदि देवगणोंसे कहा—बलसे गर्वित आपलोगोंने मन्त्रोंको भी प्रमाण नहीं माना और [तुम] देवताओंने इस यज्ञमें हमलोगोंका ऐसा तिरस्कार किया है, अतः मैं प्राणोंसहित आपलोगोंके घमण्डको विनष्ट कर दूँगा॥ २२-२३॥

इत्युक्त्वा भगवान् क्रुद्धो व्यदहन्नेत्रवह्निना।
यज्ञवाटं महाकूटं यथा तिस्रः पुरो हरः॥ २४

इस प्रकार कहकर कुपित हुए भगवान् वीरभद्र पर्वतके समान यज्ञवाटको नेत्राग्निसे उसी प्रकार जलाने लगे, जिस प्रकार शंकरने त्रिपुरको जलाया था॥ २४॥

ततो गणेश्वराः सर्वे पर्वतोदग्रविग्रहाः।
यूपानुत्पाट्य होतॄणां कंठेष्वाबध्य रज्जुभिः॥ २५

यज्ञपात्राणि चित्राणि भित्त्वा संचूर्ण्य वारिणि।
गृहीत्वा चैव यज्ञाङ्गं गंगास्त्रोतसि चिक्षिपुः॥ २६

पर्वतोंके समान भयानक शरीरवाले गणेश्वरोंने यज्ञके स्तम्भोंको उखाड़कर हवनकर्ताओंके कण्ठोंमें रस्सियोंसे बाँध दिया और विचित्र रूपवाले यज्ञपात्रोंको तोड़-फोड़कर जलमें और यज्ञकी सभी सामग्री उठाकर गंगामें फेंक दी॥ २५-२६॥

तत्र दिव्यान्नपानानां राशयः पर्वतोपमाः।
क्षीरनद्योऽमृतस्त्रावाः सुस्निग्धदधिकर्दमाः॥ २७
उच्चावचानि मांसानि भक्ष्याणि सुरभीणि च।
रसवन्ति च पानानि लेह्यचोष्याणि तानि वै॥ २८
वीरास्तद्भुञ्जते वक्त्रैर्विलुम्पन्ति क्षिपन्ति च।
वज्रैश्चक्रैर्महाशूलैः शक्तिभिः पाशपट्टिशैः॥ २९
मुसलैरसिभिष्टंकैर्भिन्दिपालैः परश्वधैः।
उद्धतांस्त्रिदशान्सर्वाल्लँलोकपालपुरस्सरान्॥ ३०
बिभिदुर्बलिनो वीरा वीरभद्रांगसंभवाः।

वहाँपर जो दिव्य अन्न-पानकी पहाड़-जैसी राशियाँ थीं, अमृतके समान मधुर दूधकी नदियाँ, स्निग्ध दधिकी राशियाँ, अनेक प्रकारके फलोंके गूदे, सुगन्धित भोज्य पदार्थ, रसमय पानसामग्री, लेह्य पदार्थ एवं चोष्य पदार्थ थे, उन्हें वे वीर खाने लगे, मुखोंमें डालने लगे और फेंकने लगे। वीरभद्रके शरीरसे उत्पन्न बलवान् वीर वज्र, चक्र, महाशूल, शक्ति, पाश, पट्टिश, मूसल, खड्ग, टंक, भिन्दिपाल तथा फरसोंसे लोकपालादि सभी उद्धत देवताओंपर प्रहार करने लगे॥ २७—३०$^{1}/_{2}$॥

छिन्धि भिन्धि क्षिप क्षिप्रं मार्यतां दार्यतामिति॥ ३१

हरस्व प्रहरस्वेति पाटयोत्पाटयेति च।
संरम्भप्रभवाः क्रूराः शब्दाः श्रवणशङ्कवः॥ ३२

यत्र तत्र गणेशानां जज्ञिरे समरोचिताः।
विवृत्तनयनाः केचिद् दष्टदंष्ट्रोष्ठतालवः॥ ३३

इस तरह गणेश्वरोंके 'छेदन करो, भेदन करो, फेंक दो, शीघ्र मारो-काटो, चूर्ण करो, छीन लो, प्रहार करो, उखाड़ दो, फाड़ दो आदि कानोंको शंकुकी भाँति पीड़ा देनेवाले युद्धोचित भयानक शब्द जहाँ-तहाँ होने लगे। कोई आँखोंसे घूर रहा था, तो किसीने अपने दाँतोंसे ओठ और तालुओंको काट

आश्रमस्थान् समाकृष्य मारयन्ति तपोधनान्।
स्रुवानपहरन्तश्च क्षिपन्तोऽग्निं जलेषु च॥ ३४
कलशानपि भिन्दन्तश्छिन्दन्तो मणिवेदिकाः।
गायन्तश्च नदन्तश्च हसन्तश्च मुहुर्मुहुः।
रक्तासवं पिबन्तश्च ननृतुर्गणपुङ्गवाः॥ ३५
निर्मथ्य सेंद्रानमरान् गणेन्द्रा
वृषेन्द्रनागेन्द्रमृगेन्द्रसाराः।
चक्रुर्बहून्यप्रतिमप्रभावाः
सहर्षरोमाणि विचेष्टितानि॥ ३६

लिया। वे श्रेष्ठ गण आश्रमोंमें स्थित तपस्वियोंको खींच-खींचकर पीटने लगे और स्रुवोंको छीनते हुए तथा अग्नियोंको जलराशिमें डालते हुए, कलशोंको फोड़ते हुए, मणिनिर्मित वेदियोंको नष्ट करते हुए, बारंबार गाते हुए, गरजते हुए, हँसते हुए तथा आसवकी भाँति रक्तको पीते हुए नाचने लगे॥ ३१—३६॥

श्रेष्ठ वृषभ, गजराज एवं सिंहके समान बलवाले और अप्रतिम प्रभाववाले गणेश्वरोंने इन्द्रसहित सभी देवताओंको रौंदकर रोमांचित कर देनेवाली अनेक भयानक चेष्टाएँ कीं॥ ३७॥

नन्दन्ति केचित्प्रहरन्ति केचित्
धावन्ति केचित्प्रलपन्ति केचित्॥ ३७

नृत्यन्ति केचिद्विहसन्ति केचित्
वल्गन्ति केचित्प्रमथा बलेन॥ ३८

कोई प्रमथ आह्लादित हो रहे थे, कोई प्रहार करते, कोई दौड़ते, कोई प्रलाप करते, कोई नाचते, कोई हँसते और कोई बलपूर्वक उछलते-कूदते थे॥ ३८॥

केचिज्जिघृक्षन्ति घनान्स तोयान्
केचिद्ग्रहीतुं रविमुत्पतन्ति।
केचित्प्रसर्तुं पवनेन सार्द्ध-
मिच्छन्ति भीमाः प्रमथा वियत्स्थाः॥ ३९

कोई भयंकर प्रमथगण जलसे समन्वित बादलोंको पकड़नेकी इच्छा कर रहे थे, तो कोई सूर्यको पकड़नेके लिये उछल रहे थे और कोई आकाशमें स्थित होकर पवनके साथ उड़नेकी इच्छा कर रहे थे॥ ३९॥

आक्षिप्य केचिच्च वरायुधानि
महाभुजंगानिव वैनतेयाः।
भ्रमन्ति देवानपि विद्रवन्तः
खमण्डले पर्वतकूटकल्पाः॥ ४०

कोई प्रमथगण श्रेष्ठ आयुधोंको [कौतूहलवश] पकड़ ले रहे थे, जैसे बड़े-बड़े सर्पोंको गरुड़ पकड़ लेते हैं और कोई पर्वतशिखरके सदृश प्रमथगण देवताओंको दौड़ाते हुए आकाशमें विचरण कर रहे थे॥ ४०॥

उत्पाट्य चोत्पाट्य गृहाणि केचित्
सजालवातायनवेदिकानि।
विक्षिप्य विक्षिप्य जलस्य मध्ये
कालाम्बुदाभाः प्रमथा निनेदुः॥ ४१

उद्वर्तितद्वारकपाटकुड्यं
विध्वस्तशालावलभीगवाक्षम्।
अहो बताभज्यत यज्ञवाट-
मनाप्तवद्वाक्यमिवायथार्थम्॥ ४२

कोई प्रमथगण जालयुक्त खिड़कियों तथा वेदियोंसे समन्वित घरोंको उखाड़-उखाड़कर उन्हें जलके बीचमें फेंक-फेंककर प्रलयकालीन मेघोंके समान गर्जन कर रहे थे। [उस समय विलाप करते हुए लोग कह रहे थे—] अहो! दुःखका विषय है कि किवाड़ों तथा दीवारोंवाला और ध्वस्त किये गये प्रकोष्ठों, खिड़कियों एवं कँगूरोंवाला यह यज्ञस्थल अप्रामाणिक तथा असत्य कथनकी भाँति विनष्ट हुआ जा रहा है॥ ४१-४२॥

हा नाथ तातेति पितः सुतेति
भ्रातर्ममाम्बेति च मातुलेति।
उत्पाट्यमानेषु गृहेषु नार्यो
ह्यनाथशब्दान्बहुशः प्रचक्रुः॥ ४३

उस समय विध्वस्त किये जा रहे घरोंमें स्थित स्त्रियाँ हा नाथ! हा तात! हा पिता! हा पुत्र! हा भ्रातः! हा मेरी माता! हा मातुल! आदि दैन्यसूचक शब्दोंको बार-बार बोल रही थीं॥ ४३॥

इति श्रीशिवमहापुराणे सप्तम्यां वायवीयसंहितायां पूर्वखण्डे यज्ञविध्वंसनो नाम विंशोऽध्यायः॥ २०॥

॥ इस प्रकार श्रीशिवमहापुराणके अन्तर्गत सातवीं वायवीयसंहिताके पूर्वखण्डमें यज्ञविध्वंसन नामक बीसवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ २०॥

अथैकविंशोऽध्यायः

वीरभद्रका दक्षके यज्ञमें आये देवताओंको दण्ड देना तथा दक्षका सिर काटना

वायुरुवाच

ततस्त्रिदशमुख्यास्ते विष्णुशक्रपुरोगमाः।
सर्वे भयपरित्रस्ता दुद्रुवुर्भयविह्वलाः॥ १

वायु बोले—[हे विप्रगण!] तब देवताओंमें प्रमुख वे विष्णु, इन्द्रादि उस भयंकर [वीरभद्र]-से संत्रस्त हो गये तथा भयसे व्याकुल हो पलायन करने लगे॥ १॥

निजैरदूषितैरंगैर्दृष्ट्वा देवानुपद्रुतान्।
दंड्यानदण्डितान् मत्वा चुकोप गणपुङ्गवः॥ २

देवताओंको उनके स्वस्थ अंगोंसे युक्त देखकर तथा दण्डयोग्य होनेपर भी बिना दण्ड पाये भागते हुए जानकर गणश्रेष्ठ वीरभद्र क्रोधित हो उठे॥ २॥

ततस्त्रिशूलमादाय शर्वशक्तिनिबर्हणम्।
ऊर्ध्वदृष्टिर्महाबाहुर्मुखाज्ज्वालाः समुत्सृजन्॥ ३

अमरानपि दुद्राव द्विरदानिव केसरी।
तानभिद्रवतस्तस्य गमनं सुमनोहरम्॥ ४

वारणस्येव मत्तस्य जगाम प्रेक्षणीयताम्।
ततस्तत्क्षोभयामास महत्सुरबलं बली॥ ५

महासरोवरं यद्वन्मत्तो वारणयूथपः।
विकुर्वन्बहुधा वर्णान्नीलपांडुरलोहितान्॥ ६

तत्पश्चात् सभी शक्तियोंको विनष्ट करनेवाले त्रिशूलको लेकर वे महाबाहु वीरभद्र ऊपरकी ओर दृष्टि किये हुए तथा मुखसे आग उगलते हुए उसी तरह देवताओंको दौड़ा लिये, जैसे सिंह हाथियोंको दौड़ाता है। उस समय उनको दौड़ाते हुए वीरभद्रकी अति मनोहर चाल मदसे परिपूर्ण हाथीकी चालके समान दिखायी पड़ने लगी। उन बलशालीने देवताओंकी महान् सेनाको उसी प्रकार क्षुब्ध कर दिया, जैसे मतवाला हाथी महासरोवरको मथकर उसे नील, पाण्डुर, लोहित आदि वर्णोंवाला कर देता है॥ ३—६॥

बिभ्रद् व्याघ्राजिनं वासो हेमप्रवरतारकम्।
छिन्दन् भिन्दन्नुदन् क्लिन्दन्दारयन्प्रमथन्नपि॥ ७

व्यचरद्देवसंघेषु भद्रोऽग्निरिव कक्षगः।

उस समय व्याघ्रचर्म पहने हुए और श्रेष्ठ चमकीले सुवर्णनिर्मित तारोंवाले वस्त्र धारण किये वीरभद्र छेदन करते हुए, भेदन करते हुए, फेंकते हुए, गीला करते हुए, फाड़ते हुए और मथते हुए देवताओंके मध्य वैसे ही विचरण करने लगे, जिस प्रकार सूखी घास के मध्यमें अग्नि प्रज्वलित होती

यत्र तत्र महावेगाच्चरन्तं शूलधारिणम्॥ ८
तमेकं त्रिदशाः सर्वे सहस्रमिव मेनिरे।

है। सभी देवताओंने यहाँ-वहाँ अकेले विचरण करते हुए त्रिशूलधारी एक वीरभद्रको हजारोंकी संख्यामें माना॥ ७-८१/२॥

भद्रकाली च संक्रुद्धा युद्धवृद्धमदोद्धता॥ ९
मुक्तज्वालेन शूलेन निर्बिभेद रणे सुरान्।
स तया रुरुचे भद्रो रुद्रकोपसमुद्भवः॥ १०
प्रभयेव युगान्ताग्निश्चलया धूमधूम्रया।
भद्रकाली तदा युद्धे विद्रुतत्रिदशा बभौ॥ ११
कल्पे शेषानलज्वाला दग्धविश्वजगद्यथा।

युद्धके कारण बढ़े हुए मदसे उन्मत्त भद्रकालीने अत्यधिक कुपित होकर अग्नि उगलते हुए अपने त्रिशूलसे देवताओंको युद्धमें मारना प्रारम्भ कर दिया। रुद्रके क्रोधसे उत्पन्न वीरभद्र उनके साथ उसी प्रकार सुशोभित होने लगे, जिस प्रकार प्रलयाग्नि चलायमान धुएँसे धूम्रवर्णवाली प्रभाके साथ सुशोभित होती है। उस समय युद्धमें देवताओंको भगाती हुई भद्रकाली वैसे ही शोभित हो रही थीं, मानो कल्पान्तमें समग्र विश्वको दग्ध करती हुई शेषके मुखसे निकली अग्निज्वाला हो॥ ९—१११/२॥

तदा सवाजिनं सूर्यं रुद्रान् रुद्रगणाग्रणीः॥ १२
भद्रो मूर्ध्नि जघानाशु वामपादेन लीलया।
असिभिः पावकं भद्रः पट्टिशैस्तु यमं यमीम्॥ १३
रुद्रान् दृढेन शूलेन मुद्गरैर्वरुणं दृढैः।
परिघैर्निर्ऋतिं वायुं टंकैष्टंकधरः स्वयम्॥ १४
निर्बिभेद रणे वीरो लीलयैव गणेश्वरः।
सर्वान्देवगणान्सद्यो मुनीन् शंभोर्विरोधिनः॥ १५
ततो देवः सरस्वत्या नासिकाग्रं सुशोभनम्।
चिच्छेद करजाग्रेण देवमातुस्तथैव च॥ १६
चिच्छेद च कुठारेण बाहुदंडं विभावसोः।
अग्रतो द्व्यङ्गुलां जिह्वामात्तहव्यां लुलाव च॥ १७

गणेश्वर वीरभद्रने [दक्षके द्वारा आहूत] रुद्रगणों तथा अश्वसहित सूर्यके सिरपर खेल ही खेलमें बड़ी शीघ्रतासे अपने बायें पैरसे प्रहार किया। उन वीरभद्रने अग्निपर तलवारसे, यम तथा यमीपर पट्टिशसे, रुद्रोंपर कठोर शूलसे, वरुणपर दृढ़ मुद्गरोंसे, परिघोंसे निर्ऋतिपर तथा टंकोंसे वायुपर प्रहार किया। इस तरह संग्राममें वीर गणेश्वर वीरभद्रने लीलापूर्वक शीघ्र ही समस्त देवताओं तथा शिवविरोधी मुनियोंको मार गिराया। इसके अनन्तर वीरभद्रने सरस्वती तथा देवमाता अदितिकी अति सुन्दर नासिकाके अग्रभागको अपने नखसे विदीर्ण कर दिया, कुठारसे अग्निकी भुजा काट दी तथा हविष्यको ग्रहण करनेवाली दो अँगुल जीभ काट डाली॥ १२—१७॥

स्वाहादेव्यास्तथा देवो दक्षिणं नासिकापुटम्।
चकर्त करजाग्रेण वामं च स्तनचूचुकम्॥ १८

उन देवने अपने नखाग्रसे स्वाहा देवीकी नासिकाका दक्षिण भाग और उनका बायाँ स्तनाग्र काट लिया॥ १८॥

भगस्य विपुले नेत्रे शतपत्रसमप्रभे।
प्रसह्योत्पाटयामास भद्रः परमवेगवान्॥ १९

परम वेगशाली वीरभद्रने बलपूर्वक भगदेवताके कमलके समान बड़े-बड़े नेत्रोंको निकाल लिया॥ १९॥

पूष्णो दशनरेखां च दीप्तां मुक्तावलीमिव।
जघान धनुषः कोट्या स तेनास्पष्टवागभूत्॥ २०

उन्होंने पूषा देवताकी चमकती हुई मोतीकी मालाके सदृश दन्तपंक्तिको धनुषकी नोंकसे तोड़ दिया, जिससे वे स्पष्ट बोलनेमें असमर्थ हो गये॥ २०॥

ततश्चंद्रमसं देवः पादांगुष्ठेन लीलया।
क्षणं कृमिवदाक्रम्य घर्षयामास भूतले॥ २१

शिरश्चिच्छेद दक्षस्य भद्रः परमकोपतः।
क्रोशंत्यामेव वैरिण्यां भद्रकाल्यै ददौ च तत्॥ २२

तत्प्रहृष्टा समादाय शिरस्तालफलोपमम्।
सा देवी कंदुकक्रीडां चकार समरांगणे॥ २३

ततो दक्षस्य यज्ञस्त्री कुशीला भर्तृभिर्यथा।
पादाभ्यां चैव हस्ताभ्यां हन्यते स्म गणेश्वरैः॥ २४

अरिष्टनेमिनं सोमं धर्मं चैव प्रजापतिम्।
बहुपुत्रं चांगिरसं कृशाश्वं काश्यपं तथा॥ २५

गले प्रगृह्य बलिनो गणपाः सिंहविक्रमाः।
भर्त्सयन्तो भृशं वाग्भिर्निजघ्नुर्मूर्ध्नि मुष्टिभिः॥ २६

धर्षिता भूतवेतालैर्दाराः सुतपरिग्रहाः।
यथा कलियुगे जारैर्बलेन कुलयोषितः॥ २७

तच्च विध्वस्तकलशं भग्नयूपं गतोत्सवम्।
प्रदीपितमहाशालं प्रभिन्नद्वारतोरणम्॥ २८

उत्पाटितसुरानीकं हन्यमानतपोधनम्।
प्रशान्तब्रह्मनिर्घोषं प्रक्षीणजनसञ्चयम्॥ २९

क्रन्दमानातुरस्त्रीकं हताशेषपरिच्छदम्।
शून्यारण्यनिभं जज्ञे यज्ञवाटं तदार्दितम्॥ ३०

शूलवेगप्ररुग्णाश्च भिन्नबाहूरुवक्षसः।
विनिकृत्तोत्तमांगाश्च पेतुरुर्व्यां सुरोत्तमाः॥ ३१

तत्पश्चात् उन देवने चन्द्रदेवताको लीलापूर्वक कीड़ेके समान पृथ्वीपर पटककर अपने चरणके अँगूठेसे उन्हें पीस डाला। वीरभद्रने अत्यधिक क्रोधित हो दक्षका सिर काट लिया और वीरिणीके रोते-कलपते रहनेपर भी उसे भद्रकालीको दे दिया॥ २१-२२॥

ताड़के फलके समान उस सिरको लेकर वे देवी अत्यधिक हर्षित होकर रणभूमिमें कन्दुक-क्रीड़ा करने लगीं। इसके बाद गणेश्वर लोग दक्षकी यज्ञस्त्री (यजमानी)-को पैरों एवं हाथोंसे इस प्रकार मारने लगे, जिस प्रकार शीलविहीन नारीको उसके पति मारते हैं॥ २३-२४॥

इसके पश्चात् बलशाली तथा सिंहके समान पराक्रमवाले गणेश्वरोंने अरिष्टनेमि, सोम, धर्म, प्रजापति, बहुतसे पुत्रोंवाले अंगिरा, कृशाश्व तथा कश्यपका गला पकड़कर दुर्वचनोंसे उन्हें झिड़कते हुए घूँसोंसे उनके सिरोंपर प्रहार करना शुरू कर दिया॥ २५-२६॥

उस समय उन भूत-वेतालोंके द्वारा पुत्र एवं पतिसहित स्त्रियाँ इस तरह अपमानित की गयीं, जैसे कलियुगमें व्यभिचारियोंद्वारा बलपूर्वक कुलीन नारियाँ सतायी जाती हैं॥ २७॥

गणेश्वरोंके उपद्रवसे उस यज्ञस्थानके सारे कलश विनष्ट हो गये, यज्ञस्तम्भ टूट गया, वह स्थान आनन्दरहित हो गया, यज्ञशाला जलने लगी, द्वार-तोरण तोड़ दिये गये, देवताओंकी सेना छिन्न-भिन्न हो गयी, तपस्वी मारे जाने लगे, वेदका घोष बन्द हो गया, जनसमूह तितर-बितर हो गया, आतुरों और स्त्रियोंका क्रन्दन होने लगा, सभी यज्ञसामग्री विनष्ट हो गयी; इस तरह [उन गणेश्वरोंसे] नष्ट-भ्रष्ट किया गया वह यज्ञस्थल अरण्यके समान शून्य प्रतीत होने लगा॥ २८—३०॥

शूलके तीव्र प्रहारसे कटे हुए भुजा, ऊरु, वक्षःस्थल तथा सिरवाले श्रेष्ठ देवता पृथ्वीपर गिरे हुए थे॥ ३१॥

हतेषु तेषु देवेषु पतितेषु सहस्रशः।
प्रविवेश गणेशानः क्षणादाहवनीयकम्॥ ३२

इस प्रकार हजारों देवताओंके मारे जाने तथा पृथ्वीपर गिर जानेपर वे गणेश्वर (वीरभद्र) क्षणमात्रमें वहाँ पहुँचे, जहाँ आहवनीयाग्नि जल रही थी॥ ३२॥

प्रविष्टमथ तं दृष्ट्वा भद्रं कालाग्निसन्निभम्।
दुद्राव मरणाद्भीतो यज्ञो मृगवपुर्धरः॥ ३३

स विस्फार्य महच्चापं दृढज्याघोषभीषणम्।
भद्रस्तमभिदुद्राव विक्षिपन्नेव सायकान्॥ ३४

आकर्णपूर्णमाकृष्टं धनुरम्बुदसन्निभम्।
नादयामास च ज्यां द्यां खं च भूमिं च सर्वशः॥ ३५

कालाग्निके समान उन वीरभद्रको यज्ञस्थलमें प्रविष्ट हुआ देखकर मरणसे भयभीत यज्ञ मृगरूप धारणकर भागने लगा। उन वीरभद्रने कठोर प्रत्यंचाके भयानक शब्दवाला महाधनुष खींचकर बाणोंको छोड़ते हुए यज्ञका पीछा किया। जब यज्ञका वध करनेहेतु वीरभद्रने बादलके समान शब्द करनेवाला अपना धनुष कानतक खींचकर प्रत्यंचाकी टंकार की, उस समय उसके शब्दसे दिशाएँ, स्वर्ग तथा भूमि कम्पायमान हो उठे॥ ३३—३५॥

तमुपश्रुत्य सन्नादं हतोऽस्मीत्येव विह्वलम्।
शरेणार्धेन वक्रेण स वीरोऽध्वरपूरुषम्॥ ३६

महाभयस्खलत्पादं वेपन्तं विगतत्विषम्।
मृगरूपेण धावन्तं विशिरस्कं तदाकरोत्॥ ३७

उस भयानक शब्दको सुनकर 'हाय! अब मैं मरा' इस प्रकार कहकर वह यज्ञ विह्वल हो गया। वीरभद्रने अत्यधिक भयके कारण लड़खड़ाते पैरोंवाले, काँपते हुए तथा कान्तिसे रहित उस दौड़ते हुए मृगरूपधारी यज्ञपुरुषको सिरविहीन कर दिया॥ ३६-३७॥

तमीदृशमवज्ञातं दृष्ट्वा वै सूर्यसंभवम्।
विष्णुः परमसंक्रुद्धो युद्धायाभवदुद्यतः॥ ३८

तमुवाह महावेगात्स्कन्धेन नतसंधिना।
सर्वेषां वयसां राजा गरुडः पन्नगाशनः॥ ३९

देवाश्च हतशिष्टा ये देवराजपुरोगमाः।
प्रचक्रुस्तस्य साहाय्यं प्राणांस्त्यक्तुमिवोद्यताः॥ ४०

यज्ञाग्निसे उत्पन्न उस यज्ञका इस प्रकार अपमान होते देखकर विष्णु अति कुपित होकर युद्ध करनेके लिये उद्यत हुए। पक्षियोंके राजा तथा सर्पभोजी गरुड़ बड़े वेगसे उन विष्णुको अपने झुके हुए सन्धि भागवाले कन्धोंपर बैठाकर चल दिये। उस समय मरनेसे बचे हुए जो इन्द्रादि देवता थे, वे अपने प्राणतक देनेके लिये तैयार होकर उनकी सहायता करने लगे॥ ३८—४०॥

विष्णुना सहितान् देवान् मृगेन्द्रः क्रोष्टुकानिव।
दृष्ट्वा जहास भूतेन्द्रो मृगेन्द्र इव विव्यथः॥ ४१

विष्णुसहित देवताओंको देखकर वीरभद्र इस तरह हँसने लगे, जैसे सियारोंको देखकर सिंह निडर हो उनका उपहास करता है॥ ४१॥

इति श्रीशिवमहापुराणे सप्तम्यां वायवीयसंहितायां पूर्वखण्डे देवदंडवर्णनं नामैकविंशोऽध्यायः॥ २१॥

॥ इस प्रकार श्रीशिवमहापुराणके अन्तर्गत सातवीं वायवीयसंहिताके पूर्वखण्डमें देवदण्डवर्णन नामक इक्कीसवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ २१॥

अथ द्वाविंशोऽध्यायः

वीरभद्रके पराक्रमका वर्णन

वायुरुवाच

तस्मिन्नवसरे व्योम्नि समाविरभवद्रथः।
सहस्त्रसूर्यसंकाशश्चारुचीरवृषध्वजः ॥ १

अश्वरत्नद्वयोदारो रथचक्रचतुष्टयः।
सञ्चितानेकदिव्यास्त्रशस्त्ररत्नपरिष्कृतः ॥ २

तस्यापि रथवर्यस्यासीत्स एव हि सारथिः।
यश्चैव त्रैपुरे युद्धे पूर्वं शार्वरथे स्थितः ॥ ३

स तं रथवरं ब्रह्मा शासनादेव शूलिनः।
हरेः समीपमानीय कृताञ्जलिरभाषत ॥ ४

भगवन् भद्र भद्राङ्ग भगवानिन्दुभूषणः।
आज्ञापयति वीरस्त्वां रथमारोढुमव्ययः ॥ ५

रैभ्याश्रमसमीपस्थस्त्र्यंबकोऽम्बिकया सह।
सम्पश्यते महाबाहो दुस्सहं ते पराक्रमम् ॥ ६

तस्य तद्वचनं श्रुत्वा स वीरो गणकुञ्जरः।
आरुरोह रथं दिव्यमनुगृह्य पितामहम् ॥ ७

तथा रथवरे तस्मिन् स्थिते ब्रह्मणि सारथौ।
भद्रस्य ववृधे लक्ष्मी रुद्रस्येव पुरद्विषः ॥ ८

ततः शंखवरं दीप्तं पूर्णचंद्रसमप्रभम्।
प्रदध्मौ वदने कृत्वा भानुकंपो महाबलः ॥ ९

तस्य शंखस्य तं नादं भिन्नसागरसन्निभम्।
श्रुत्वा भयेन देवानां जज्वाल जठरानलः ॥ १०

यक्षविद्याधराहीन्द्रैः सिद्धैर्युद्धदिदृक्षुभिः।
क्षणेन निबिडीभूताः साकाशविवरा दिशः ॥ ११

ततः शार्ङ्गेण चापाङ्कात्स नारायणनीरदः।
महता बाणवर्षेण तुतोद गणगोवृषम् ॥ १२

वायु बोले—[हे ब्राह्मणो!] उसी समय आकाशमें एक रथ प्रकट हुआ, जो हजारों सूर्योंके समान, मनोहर वस्त्रमें वृषचिह्नवाली ध्वजासे युक्त, दो [वेगवान् तथा] श्रेष्ठ अश्वोंसे युक्त, चार पहियोंवाला, अनेक तरहके दिव्य अस्त्रों एवं शस्त्रोंसे परिपूर्ण और रत्नोंसे सुसज्जित था॥ १-२॥

उस उत्तम रथके सारथी वे ही [ब्रह्मा] बने, जो पहले त्रिपुरसंग्राममें शिवजीके रथमें स्थित हुए थे॥ ३॥

भगवान् सदाशिवके ही आदेशसे ब्रह्माजी उस श्रेष्ठ रथको लेकर विष्णुके समीप जा करके हाथ जोड़कर [वीरभद्रसे] कहने लगे—॥ ४॥

हे भगवन्! हे वीरभद्र! हे भद्रांग! वीर अविनाशी भगवान् चन्द्रभूषण सदाशिवने आपको रथपर आरूढ़ होनेकी आज्ञा दी है और हे महाबाहो! वे त्रिनेत्र शिव भवानी पार्वतीके साथ रैभ्याश्रमके समीप रहकर आपका दुःसह पराक्रम आज देखेंगे। उनका यह वचन सुनकर गणोंमें श्रेष्ठ वे वीरभद्र पितामहको अनुगृहीत करके दिव्य रथपर सवार हो गये। उस श्रेष्ठ रथपर सारथीके रूपमें ब्रह्माजीके विराजमान हो जानेपर वीरभद्र त्रिपुरको मारनेवाले सदाशिवके समान सुशोभित होने लगे॥ ५—८॥

उसी समय महाबलवान् भानुकम्प नामक गणने पूर्ण चन्द्रके समान प्रकाशित अपने देदीप्यमान शंखको मुखपर रखकर बजाया। उस शंखके क्षुभित सागरके घोषके सदृश नादको सुनकर भयके कारण देवताओंके जठरमें मानो अग्नि-सी जल उठी। उस समय संग्राम देखनेकी इच्छावाले यक्ष, विद्याधर, सर्पराज एवं सिद्धोंसे आकाशमण्डलसहित सभी दिशाएँ क्षणमात्रमें ही आच्छादित हो गयीं। तब शार्ङ्गधनुषरूप इन्द्रधनुषसे समन्वित उन नारायणरूप मेघने बाणोंकी वर्षासे गणोंके स्वामी वीरभद्रको व्याकुल कर दिया॥ ९—१२॥

तं दृष्ट्वा विष्णुमायान्तं शतधा बाणवर्षिणम्।
स चाददे धनुर्जैत्रं भद्रो बाणसहस्रमुक्॥ १३

समादाय च तद्दिव्यं धनुः समरभैरवम्।
शनैर्विस्फारयामास मेरुं धनुरिवेश्वरः॥ १४

तस्य विस्फार्य्यमाणस्य धनुषोऽभून्महास्वनः।
तेन स्वनेन महता पृथिवीं समकंपयत्॥ १५

सैकड़ों प्रकारसे बाणोंकी वर्षा करनेवाले नारायणको आते हुए देखकर उन वीरभद्रने भी अपने जैत्र नामक धनुषको उठा लिया, जो हजारों बाणोंकी वर्षा करनेमें समर्थ था। जिस प्रकार ईश्वरने मेरुको धनुष बनाकर चढ़ाया था, उसी प्रकार वीरभद्रने भी संग्रामभूमिमें भय उत्पन्न करनेवाले उस दिव्य धनुषको लेकर कानोंतक चढ़ाया। उस धनुषको चढ़ाते ही इस प्रकार बड़ी ही तीव्र ध्वनि हुई, उस महान् ध्वनिसे उन्होंने पृथ्वीको कम्पित कर दिया॥ १३—१५॥

ततः शरवरं घोरं दीप्तमाशीविषोपमम्।
जग्राह गणपः श्रीमान्स्वयमुग्रपराक्रमः॥ १६

इसके पश्चात् भयानक पराक्रमवाले श्रीमान् गणराज [वीरभद्र]-ने स्वयं भी सर्पकी-सी आकृतिवाला, देदीप्यमान तथा भयानक एक उत्तम बाण [तरकससे] ले लिया॥ १६॥

बाणोद्धारे भुजो ह्यस्य तूणीवदनसंगतः।
प्रत्यदृश्यत वल्मीकं विविक्षुरिव पन्नगः॥ १७

जिस समय वे अपने तूणीरसे बाण निकालने लगे, उस समय तरकसमें प्रविष्ट होती हुई उनकी भुजा बिलमें घुसनेकी इच्छावाले सर्पके समान प्रतीत होने लगी॥ १७॥

समुद्धृतः करे तस्य तत्क्षणं रुरुचे शरः।
महाभुजंगसंदष्टो यथा बालभुजङ्गमः॥ १८

शरेण घनतीव्रेण भद्रो रुद्रपराक्रमः।
विव्याध कुपितो गाढं ललाटे विष्णुमव्ययम्॥ १९

उस समय उनके हाथमें लिया हुआ बाण इस प्रकार सुशोभित होने लगा, मानो महान् सर्पने बालसर्पको जकड़ लिया हो। इसके पश्चात् रुद्रके समान पराक्रमी वीरभद्रने क्रोधित हो अपने तीखे सुदृढ़ बाणसे अविनाशी विष्णुके ललाटपर तीव्र प्रहार किया॥ १८-१९॥

ललाटेऽभिहतो विष्णुः पूर्वमेवावमानितः।
चुकोप गणपेन्द्राय मृगेन्द्रायेव गोवृषः॥ २०

ललाटपर प्रहार किये जानेसे संग्राममें सबसे पहले अपमानित हुए विष्णु वीरभद्रपर इस तरह क्रुद्ध हुए, मानो सिंहपर वृषभ क्रोधित हो गया हो॥ २०॥

ततस्त्वशनिकल्पेन क्रूरास्येन महेषुणा।
विव्याध गणराजस्य भुजे भुजगसन्निभे॥ २१

सोऽपि तस्य भुजे भूयः सूर्यायुतसमप्रभम्।
विससर्ज शरं वेगाद्वीरभद्रो महाबलः॥ २२

इसके पश्चात् उन्होंने वज्रके समान कठोर और कराल मुखवाले महान् बाणसे वीरभद्रकी भुजंगसदृश भुजाओंपर आघात किया। तब उन महाबली वीरभद्रने भी दस हजार सूर्योंके समान प्रभावाले बाणको पुनः विष्णुकी भुजापर वेगपूर्वक छोड़ा॥ २१-२२॥

स च विष्णुः पुनर्भद्रं भद्रो विष्णुं तथा पुनः।
स च तं च स तं विप्राः शरैस्तावनुजघ्नतुः॥ २३

तयोः परस्परं वेगाच्छरानाशु विमुञ्चतोः।
द्वयोः समभवद्युद्धं तुमुलं रोमहर्षणम्॥ २४

तद्दृष्ट्वा तुमुलं युद्धं तयोरेव परस्परम्।
हाहाकारो महानासीदाकाशे खेचरेरितः॥ २५

ततस्त्वनलतुण्डेन शरेणादित्यवर्चसा।
विव्याध सुदृढं भद्रं विष्णोर्महति वक्षसि॥ २६

स तु तीव्रप्रपातेन शरेण दृढमाहतः।
महतीं रुजमासाद्य निपपात विमोहितः॥ २७

पुनः क्षणादिवोत्थाय लब्धसंज्ञस्तदा हरिः।
सर्वाण्यपि च दिव्यास्त्राण्यथैनं प्रत्यवासृजत्॥ २८

स च विष्णुर्धनुर्मुक्तान्सर्वान् शर्वचमूपतिः।
सहसा वारयामास घोरैः प्रतिशरैः शरान्॥ २९

ततो विष्णुः स्वनामाङ्कं बाणमव्याहतं क्वचित्।
ससर्ज क्रोधरक्ताक्षः तमुद्दिश्य गणेश्वरम्।
तं बाणं बाणवर्येण भद्रो भद्राह्वयेण तु॥ ३०

अप्राप्तमेव भगवान् चिच्छेद शतधा पथि।
अथैकेनेषुणा शार्ङ्गं द्वाभ्यां पक्षौ गरुत्मतः॥ ३१

निमेषादेव चिच्छेद तदद्भुतमिवाभवत्।

ततो योगबलाद्विष्णुर्देहाद्देवान् सुदारुणान्॥ ३२

शंखचक्रगदाहस्तान् विससर्ज सहस्रशः।
सर्वांस्तान्क्षणमात्रेण त्रैपुरानिव शंकरः॥ ३३

निर्ददाह महाबाहुर्नेत्रसृष्टेन वह्निना।

ततः क्रुद्धतरो विष्णुश्चक्रमुद्यम्य सत्वरः॥ ३४

तस्मिन्वीरे समुत्स्रष्टुं तदानीमुद्यतोऽभवत्।

हे विप्रो! इस तरह वे विष्णु उन वीरभद्रपर और वे वीरभद्र उन विष्णुपर अपने-अपने बाणोंसे बार-बार प्रहार करने लगे। उस समय तीव्र वेगसे शीघ्रतापूर्वक एक-दूसरेपर बाण छोड़ते हुए उन दोनोंमें रोमांचकारी घोर युद्ध होने लगा॥ २३-२४॥

उन दोनोंके परस्पर घनघोर युद्धको देखकर आकाशगामी देवताओंमें महान् हाहाकार होने लगा॥ २५॥

इसके बाद वीरभद्रने सूर्यके समान तेजस्वी तथा उल्कायुक्त अग्रभागवाले बाणसे अत्यन्त दृढ़तापूर्वक विष्णुके चौड़े वक्षःस्थलपर आघात किया॥ २६॥

उस बाणके तीव्र प्रहारसे अत्यधिक आहत हुए वे विष्णु महान् पीड़ा प्राप्त करके मूर्च्छित होकर गिर पड़े। इसके बाद क्षणभरमें चेतनाको प्राप्तकर वे विष्णु उठ करके उनपर सभी दिव्यास्त्रोंका प्रयोग करने लगे। शिवजीके सेनापति वीरभद्रने भी विष्णुके धनुषसे छूटे हुए सभी बाणोंको अपने घोर बाणोंसे सरलतापूर्वक काट दिया॥ २७—२९॥

तदनन्तर क्रोधसे लाल नेत्रोंवाले विष्णुने अपने नामसे अंकित और कहीं भी प्रतिरुद्ध न होनेवाले बाणको गणेश्वर वीरभद्रको लक्ष्य करके छोड़ा। भगवान् वीरभद्रने भी अपने भद्र नामक श्रेष्ठ बाणसे उस बाणको अपने पास बिना आये ही उसके मार्गमें सैकड़ों टुकड़े कर दिये। पुनः एक बाणसे विष्णुके शार्ङ्गधनुषको और दो बाणोंसे गरुड़के पंखोंको एक निमेषमें काट दिया, यह अद्भुत घटना हो गयी॥ ३०-३१ $^{1}/_{2}$॥

इसके बाद योगबलके द्वारा विष्णुने हाथोंमें शंख, चक्र और गदा धारण किये हुए हजारों भयंकर देवताओंको अपने शरीरसे उत्पन्न किया, किंतु महाबाहु वीरभद्रने अपने नेत्रसे निकली हुई अग्निसे उन सभीको क्षणमात्रमें इस तरह दग्ध कर दिया, जिस तरह शिवजीने तीनों पुरोंको भस्म कर दिया था॥ ३२-३३ $^{1}/_{2}$॥

तब विष्णु अति क्रोधित हो शीघ्रतासे अपना चक्र उठाकर उसे वीरभद्रपर चलानेके लिये उद्यत हुए। उस समय अपने सामने चक्र उठाकर उन्हें खड़ा

तं दृष्ट्वा चक्रमुद्यम्य पुरतः समुपस्थितम्॥ ३५
स्मयन्निव गणेशानो व्यष्टंभयदयत्नतः।
स्तंभिताङ्गस्तु तच्चक्रं घोरमप्रतिमं क्वचित्॥ ३६
इच्छन्नपि समुत्स्त्रष्टुं न विष्णुरभवत्क्षमः।
श्वसन्निवैकमुद्धृत्य बाहुं चक्रसमन्वितम्॥ ३७
अतिष्ठदलसो भूत्वा पाषाणमिव निश्चलः।
विशरीरो यथा जीवो विशृङ्गो वा यथा वृषः॥ ३८
विदंष्ट्रश्च यथा सिंहस्तथा विष्णुरवस्थितः।
तं दृष्ट्वा दुर्दशापन्नं विष्णुमिन्द्रादयः सुराः।
समुन्नद्धा गणेन्द्रेण मृगेन्द्रेणेव गोवृषाः॥ ३९
प्रगृहीतायुधा योद्धुं क्रुद्धाः समुपतस्थिरे।
तान्दृष्ट्वा समरे भद्रः क्षुद्रानिव हरिर्मृगान्॥ ४०
साक्षाद् रुद्रतनुर्वीरो वरवीरगणावृतः।
अट्टहासेन घोरेण व्यष्टम्भयदनिंदितः॥ ४१
तथा शतमखस्यापि सवज्रो दक्षिणः करः।
सिसृक्षोरेव उद्वज्रश्चित्रीकृत इवाभवत्॥ ४२
अन्येषामपि सर्वेषां सरक्ता अपि बाहवः।
अलसानामिवारंभास्तादृशाः प्रतियान्त्युत॥ ४३
एवं भगवता तेन व्याहताशेषवैभवात्।
अमराः समरे तस्य पुरतः स्थातुमक्षमाः॥ ४४
स्तब्धैरवयवैरेव दुद्रुवुर्भयविह्वलाः।
स्थितिं न चक्रिरे युद्धे वीरतेजोऽभयाकुलाः॥ ४५
विद्रुतांस्त्रिदशान्वीरान्वीरभद्रो महाभुजः।
विव्याध निशितैर्बाणैर्मेघो वर्षैरिवाचलान्॥ ४६

देखकर वीरभद्रने हँसते हुए बिना प्रयत्न किये ही उसे स्तम्भित कर दिया। तब वीरभद्रपर आघात करनेकी इच्छा रखते हुए भी विष्णु अपने उस अप्रतिम और कठोर चक्रको चलानेमें असमर्थ हो गये॥ ३४—३६१/२॥

उस समय एक हाथमें चक्र लिये विष्णु वहींपर दीर्घ निःश्वास छोड़ते हुए आलस्ययुक्त होकर पत्थरके समान निश्चल हो गये। विष्णु उसी तरह हो गये, जैसे शरीरसे रहित जीव, शृंगविहीन बैल तथा दाढ़से रहित सिंह [किंकर्तव्यविमूढ़] हो जाता है। तब उन्हें दुर्गतिमें पड़ा देखकर इन्द्रादि देवगण वीरभद्रसे लड़नेके लिये इस तरह सन्नद्ध हो गये, मानो वृष क्रुद्ध होकर सिंहसे संग्राम करना चाहते हों। वे कुपित होकर शस्त्र लेकर युद्ध करनेके लिये उपस्थित हो गये॥ ३७—३९१/२॥

तब महावीर गणोंसे घिरे हुए तथा साक्षात् रुद्रके सदृश शरीरवाले निष्कलंक वीरभद्रने उनकी तरफ उसी प्रकार देखा, जैसे सिंह क्षुद्र मृगोंको देखता है। [तदुपरान्त वीरभद्रने] अट्टहासके द्वारा अपना वज्र छोड़नेकी इच्छा रखनेवाले इन्द्रका वज्रयुक्त उठा हुआ दाहिना हाथ स्तम्भित कर दिया, जिससे वह चित्र-लिखित-जैसा हो गया। उसी तरह अन्य समस्त देवगणोंकी शस्त्रोंके सहित उठी हुई भुजाएँ भी आलसी पुरुषोंके कार्योंके समान स्तम्भित हो गयीं॥ ४०—४३॥

इस प्रकार भगवान्‌के द्वारा अपना सम्पूर्ण ऐश्वर्य नष्ट कर दिये जानेके कारण सभी देवता संग्राममें उनके सम्मुख स्थित रहनेमें असमर्थ हो गये और स्तम्भित अंगोंसहित भयसे व्याकुल हो भागने लगे। वीरभद्रके तेजके भयसे व्याकुल वे युद्धस्थलमें टिक न सके॥ ४४-४५॥

तब महान् भुजाओंवाले वीरभद्र भागते हुए वीर देवगणोंको अपने तीखे बाणोंसे इस प्रकार बींधने लगे, मानो पर्वतोंपर मेघ वर्षा कर रहा हो॥ ४६॥

बहवस्तस्य वीरस्य बाहवः परिघोपमाः।
शस्त्रैश्चकाशिरे दीप्तैः साग्निज्वाला इवोरगाः॥ ४७

अस्त्रशस्त्राण्यनेकानि स वीरो विसृजन्बभौ।
विसृजन्सर्वभूतानि यथादौ विश्वसंभवः॥ ४८

उस समय उन वीरभद्रकी देदीप्यमान शस्त्रोंसे युक्त, परिघके समान बहुत-सी भुजाएँ प्रकाशित हो उठीं, मानो वे अग्निज्वालासहित सर्प हों। अनेक प्रकारके अस्त्र-शस्त्रोंको छोड़ते हुए वे वीरभद्र उसी प्रकार शोभित हुए, जैसे कल्पादिमें सभी प्राणियोंकी सृष्टि करते हुए ब्रह्माजी शोभित होते हैं॥ ४७-४८॥

यथा रश्मिभिरादित्यः प्रच्छादयति मेदिनीम्।
तथा वीरः क्षणादेव शरैः प्राच्छादयद्दिशः॥ ४९

खमण्डले गणेन्द्रस्य शराः कनकभूषिताः।
उत्पतन्तस्तडिद्रूपैरुपमानपदं ययुः॥ ५०

महान्तस्ते सुरगणान् मंडूकानिव डुंडुभाः।
प्राणैर्वियोजयामासुः पपुश्च रुधिरासवम्॥ ५१

जैसे सूर्य अपनी रश्मियोंसे पृथ्वीको आच्छादित कर देता है, उसी तरह वीरभद्रने थोड़ी ही देरमें बाणोंसे दिशाओंको आच्छन्न कर दिया। गणेश्वर वीरभद्रके सुवर्णमण्डित बाण आकाश-मण्डलमें उछलते हुए [अपनी त्वरित गति तथा द्युतिके कारण] स्वयं बिजलियोंके उपमान बन गये। जिस प्रकार डुण्डुभ मेढकका रुधिर पी जाता है तथा उसे प्राणविहीन कर देता है, उसी प्रकार वे बड़े-बड़े बाण देवताओंके रुधिररूपी आसवको पीने लगे और उन्हें प्राणहीन करने लगे॥ ४९—५१॥

निकृत्तबाहवः केचित्केचिल्लूनवराननाः।
पार्श्वे विदारिताः केचिन्निपेतुरमरा भुवि॥ ५२

विशिखोन्मथितैर्गात्रैर्बहुभिश्छिन्नसन्धिभिः।
विवृत्तनयनाः केचिन्निपेतुर्भूतले मृताः।
गां प्रवेष्टुमिवेच्छन्तः खं गन्तुमिव लिप्सवः॥ ५३

अलब्धात्मनिरोधानां व्यलीयन्तः परस्परम्।
भूमौ केचित्प्रविविशुः पर्वतानां गुहाः परे॥ ५४

अपरे जग्मुराकाशं परे च विविशुर्जलम्।

[उस समय] किन्हींकी भुजाएँ कट गयीं, किन्हींके सुन्दर मुख छिन्न-भिन्न हो गये, किन्हींकी पसलियाँ टूट गयीं और कुछ देवता पृथ्वीपर गिर पड़े। बाणोंके द्वारा अंगोंके पीड़ित होनेसे तथा सन्धिभागके विच्छिन्न हो जानेसे कुछ देवता आँखें फाड़कर पृथ्वीपर गिरकर मर गये, कोई पृथ्वीमें प्रविष्ट होनेकी इच्छासे और कोई-कोई छिपनेके लिये स्थान न प्राप्तकर आपसमें एक-दूसरेके शरीरमें छिप गये, कोई पृथ्वीमें प्रविष्ट हो गये और कोई पर्वतोंकी गुफाओंमें छिप गये, कोई आसमानमें चले गये तथा कोई देवता जलमें छिप गये॥ ५२—५४½॥

तथा संछिन्नसर्वांगैः स वीरस्त्रिदशैर्बभौ॥ ५५

परिग्रस्तः प्रजावर्गो भगवानिव भैरवः।
दग्धत्रिपुरसंव्यूहस्त्रिपुरारिर्यथाऽभवत् ॥ ५६

एवं देवबलं सर्वं दीनं बीभत्सदर्शनम्।
गणेश्वरसमुत्पन्नं कृपणं वपुराददे॥ ५७

छिन्न-भिन्न अंगोंवाले देवताओंके सहित वे वीरभद्र इस प्रकार सुशोभित हो रहे थे, किस प्रकार प्रजाका संहार करके भगवान् भैरव सुशोभित होते हैं अथवा जिस प्रकार त्रिपुरको दग्ध करके त्रिपुरारि शोभित हुए थे। इस प्रकार गणेश्वरके द्वारा उपद्रुत (भगाये गये) देवगणोंकी सारी सेना छिन्न-भिन्न हो दीन, अशरण एवं बीभत्स दिखायी देने लगी॥ ५५—५७॥

तदा त्रिदशवीराणामसृक्सलिलवाहिनी।
प्रावर्तत नदी घोरा प्राणिनां भयशंसिनी॥ ५८

उस समय उन देवगणोंके रक्तकी घोर नदी प्रवाहित होने लगी, जो प्राणियोंको भयभीत कर देनेवाली थी॥ ५८॥

रुधिरेण परिक्लिन्ना यज्ञभूमिस्तदा बभौ।
रक्तार्द्रवसना श्यामा हतशुंभेव कौशिकी॥ ५९

उस समय रुधिरसे पूर्णतः सिक्त यज्ञभूमि ऐसी प्रतीत होने लगी, मानो शुम्भका वधकर रक्तसे गीले वस्त्रोंवाली श्यामा कौशिकी देवी हों॥ ५९॥

तस्मिन्महति संवृत्ते समरे भृशदारुणे।
भयेनेव परित्रस्ता प्रचचाल वसुन्धरा॥ ६०

महोर्मिकलिलावर्तश्चुक्षुभे च महोदधिः।
पेतुश्चोल्का महोत्पाताः शाखाश्च मुमुचुर्द्रुमाः॥ ६१

अप्रसन्ना दिशः सर्वाः पवनश्चाशिवो ववौ।
अहो विधिविपर्यासस्त्वश्वमेधोऽयमध्वरः।
यजमानः स्वयं दक्षो ब्रह्मपुत्रप्रजापतिः॥ ६२

धर्मादयः सदस्याश्च रक्षको गरुडध्वजः।
भागांश्च प्रतिगृह्णंति साक्षादिन्द्रादयः सुराः॥ ६३

तथापि यजमानस्य यज्ञस्य च सहर्त्विजः।
सद्य एव शिरच्छेदः साधु संपद्यते फलम्॥ ६४

तस्मान्नावेदनिर्दिष्टं न चेश्वरबहिष्कृतम्।
नासत्परिगृहीतं च कर्म कुर्यात्कदाचन॥ ६५

अत्यन्त भयानक उस महायुद्धके होनेपर पृथ्वी भयसन्त्रस्त होकर काँपने लगी, समुद्र भी व्याकुल हो उठा तथा उसमें महागम्भीर आवर्त एवं लहरें उठने लगीं, उत्पातसूचक उल्कापात होने लगे, वृक्षोंकी शाखाएँ टूटने लगीं, सभी दिशाएँ मलिन हो गयीं और अमंगलसूचक वायु बहने लगा। अहो! भाग्यकी कैसी विडम्बना है कि यह अश्वमेधयज्ञ है, जिसके यजमान स्वयं ब्रह्माके पुत्र प्रजापति दक्ष हैं, धर्म आदि सदस्य हैं, भगवान् विष्णु रक्षक हैं और साक्षात् इन्द्रादि देवता अपना-अपना भाग ग्रहण कर रहे हैं, फिर भी ऋत्विजोंके सहित यजमान तथा उस यज्ञपुरुषका सिर शीघ्र ही कट गया, यह तो बड़ा ही उत्तम फल प्राप्त हुआ! अतः वेदविरुद्ध होनेपर भी वेदसम्मत प्रतीत होनेवाला, ईश्वर [की महत्तासे विरुद्ध होनेके कारण]- बहिष्कृत तथा असज्जनोंके द्वारा परिगृहीत कर्म कभी नहीं करना चाहिये॥ ६०—६५॥

कृत्वापि सुमहत्पुण्यमिष्ट्वा यज्ञशतैरपि।
न तत्फलमवाप्नोति भक्तिहीनो महेश्वरे॥ ६६

कृत्वापि सुमहत्पापं भक्त्या यजति यः शिवम्।
मुच्यते पातकैः सर्वैर्नात्र कार्या विचारणा॥ ६७

बहुनात्र किमुक्तेन वृथा दानं वृथा तपः।
वृथा यज्ञो वृथा होमः शिवनिन्दारतस्य तु॥ ६८

महान् पुण्य करके तथा सैकड़ों यज्ञ करके भी महेश्वरके प्रति भक्तिसे रहित व्यक्ति उन [अनुष्ठानों]-का फल प्राप्त नहीं करता है। किंतु जो बहुत बड़ा पाप करके भी भक्तिपूर्वक शिवका यजन करता है, वह सभी पापोंसे मुक्त हो जाता है, इसमें सन्देह नहीं करना चाहिये। इस विषयमें बहुत कहना व्यर्थ है, शिवनिन्दा करनेवालेका दान, तप, यज्ञ तथा होम व्यर्थ है॥ ६६—६८॥

ततः सनारायणकाः सरुद्राः
सलोकपालाः समरे सुरौघाः।
गणेन्द्रचापच्युतबाणविद्धाः
प्रदुद्रुवुर्गाढरुजाभिभूताः॥ ६९

तदनन्तर उस युद्धमें वीरभद्रके धनुषसे छूटे हुए बाणोंसे पीड़ित हुए नारायण, रुद्र एवं लोकपालोंसहित सभी देवता अत्यन्त दुःखित होकर पलायन करने लगे॥ ६९॥

चेलुः क्वचित्केचन शीर्णकेशाः
सेदुः क्वचित्केचन दीर्घगात्राः।
पेतुः क्वचित्केचन भिन्नवक्त्रा
नेशुः क्वचित्केचन देववीराः॥ ७०
केचिच्च तत्र त्रिदशा विपन्ना
विस्त्रस्तवस्त्राभरणास्त्रशस्त्राः।
निपेतुरुद्भासितदीनमुद्रा
मदं च दर्पं च बलं च हित्वा॥ ७१
समुत्पथप्रस्थितमप्रधृष्यो
विक्षिप्य दक्षाध्वरमक्षतास्त्रैः।
बभौ गणेशः स गणेश्वराणां
मध्ये स्थितः सिंह इवर्षभाणाम्॥ ७२

कुछ देवता बालोंके कट जानेसे युद्धसे भाग निकले, कोई शरीरके भारी होनेके कारण [भागनेमें असमर्थ हो दुःखसे] बैठ गये। कटे-फटे मुखोंवाले कुछ देवता गिर पड़े तथा कुछ देववीरोंकी मृत्यु हो गयी। कितने देवता इतने व्याकुल हो गये कि उनके वस्त्र, आभरण, अस्त्र एवं शस्त्र शिथिल होकर खिसक गये और वे मद, दर्प तथा बलका त्याग करके दीनभाव प्रदर्शित करते हुए गिर पड़े। इस प्रकार अप्रतिहत वे गणेश्वर वीरभद्र अपने दुर्भेद्य अस्त्रोंसे विधिहीन दक्ष-यज्ञको विनष्टकर अपने मुख्य गणोंके मध्य उसी प्रकार शोभायमान हुए, जिस प्रकार ऋषभों अर्थात् वन्य पशुओंके मध्य सिंह शोभित होता है॥ ७०—७२॥

इति श्रीशिवमहापुराणे सप्तम्यां वायवीयसंहितायां पूर्वखण्डे दक्षयज्ञविध्वंसवर्णनं नाम द्वाविंशोऽध्यायः॥ २२॥

॥ इस प्रकार श्रीशिवमहापुराणके अन्तर्गत सातवीं वायवीयसंहिताके पूर्वखण्डमें दक्षयज्ञविध्वंसवर्णन नामक बाईसवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ २२॥

अथ त्रयोविंशोऽध्यायः

पराजित देवोंके द्वारा की गयी स्तुतिसे प्रसन्न शिवका यज्ञकी सम्पूर्ति करना तथा देवताओंको सान्त्वना देकर अन्तर्धान होना

वायुरुवाच

इति संछिन्नभिन्नाङ्गा देवा विष्णुपुरोगमाः।
क्षणात्कष्टां दशामेत्य त्रेसुः स्तोकावशेषिताः॥ १

वायुदेव बोले—[हे विप्रवरो!] इस प्रकार अस्त्रोंसे छिन्न-भिन्न अंगोंवाले विष्णु आदि देवता क्षणमात्रमें कष्टको प्राप्तकर युद्धमें शेष देवताओंके साथ व्याकुल हो गये॥ १॥

त्रस्तांस्तान्समरे वीरान् देवानन्यांश्च वै गणाः।
प्रमथाः परमक्रुद्धा वीरभद्रप्रणोदिताः॥ २
प्रगृह्य च तथा दोषं निगडैरायसैर्दृढैः।
बबन्धुः पाणिपादेषु कंधरेषूदरेषु च॥ ३

वीरभद्रके द्वारा प्रेरित क्रोधी प्रमथगणोंने देवताओंके अपराधके अनुसार युद्धमें बचे हुए उन अन्य भयभीत देववीरोंको पकड़कर अत्यन्त दृढ़ लोहेकी जंजीरोंसे उनके हाथ, पैर, कन्धा तथा पेट बाँध दिये॥ २-३॥

तस्मिन्नवसरे ब्रह्मा भद्रमद्रीन्द्रजानुतम्।
सारथ्याल्लब्धवात्सल्यः प्रार्थयन् प्रणतोऽब्रवीत्॥ ४
अलं क्रोधेन भगवन्नष्टाश्चैते दिवौकसः।
प्रसीद क्षम्यतां सर्वं रोमजैः सह सुव्रत॥ ५

उस समय देवी पार्वतीके स्नेह-पात्र उन वीरभद्रके सारथी होनेके कारण अनुग्रहको प्राप्त हुए ब्रह्माजी प्रार्थना करते हुए विनयपूर्वक कहने लगे—हे भगवन्! अब क्रोधका शमन कीजिये; ये देवता विनष्ट हो चुके हैं। हे सुव्रत! प्रसन्न होइये और अपने रोमसे उत्पन्न गणोंके साथ आप इन सभीको क्षमा कीजिये॥ ४-५॥

एवं विज्ञापितस्तेन ब्रह्मणा परमेष्ठिना।
शमं जगाम संप्रीतो गणपस्तस्य गौरवात्॥ ६

देवाश्च लब्धावसरा देवदेवस्य मंत्रिणः।
धारयन्तोऽञ्जलीन्मूर्ध्नि तुष्टुवुर्विविधैः स्तवैः॥ ७

देवा ऊचुः

नमः शिवाय शान्ताय यज्ञहन्त्रे त्रिशूलिने।
रुद्रभद्राय रुद्राणां पतये रुद्रभूतये॥ ८
कालाग्निरुद्ररूपाय कालकामाङ्गहारिणे।
देवतानां शिरोहन्त्रे दक्षस्य च दुरात्मनः॥ ९
संसर्गादस्य पापस्य दक्षस्य क्लिष्टकर्मणः।
शासिताः समरे वीर त्वया वयमनिन्दिताः॥ १०

दग्धाश्चामी वयं सर्वे त्वत्तो भीताश्च भो प्रभो।
त्वमेव गतिरस्माकं त्राहि नः शरणागतान्॥ ११

वायुरुवाच

तुष्टस्त्वेवं स्तुतो देवान् विसृज्य निगडात्प्रभुः।
आनयद्देवदेवस्य समीपममरानिह॥ १२

देवोऽपि तत्र भगवानन्तरिक्षे स्थितः प्रभुः।
सगणः सर्वगः शर्वः सर्वलोकमहेश्वरः॥ १३

तं दृष्ट्वा परमेशानं देवा विष्णुपुरोगमाः।
प्रीता अपि च भीताश्च नमश्चक्रुर्महेश्वरम्॥ १४

दृष्ट्वा तानमरान्भीतान्प्रणतार्तिहरो हरः।
इदमाह महादेवः प्रहसन् प्रेक्ष्य पार्वतीम्॥ १५

महादेव उवाच

मा भैष्ट त्रिदशाः सर्वे यूयं वै मामकाः प्रजाः।
अनुग्रहार्थमेवेह धृतो दंडः कृपालुना॥ १६

भवतां निर्जराणां हि क्षान्तोऽस्माभिर्व्यतिक्रमः।
क्रुद्धेष्वस्मासु युष्माकं न स्थितिर्न च जीवितम्॥ १७

उन परमेष्ठी ब्रह्माजीके इस प्रकार प्रार्थना करनेपर अति प्रसन्न हुए गणाधिप [वीरभद्र] उनके गौरवके कारण शान्त हो गये। देवता भी उचित समय जानकर सिरपर अंजलि धारणकर अनेक प्रकारके स्तोत्रोंसे देवदेव शिवके मन्त्री वीरभद्रकी स्तुति करने लगे॥ ६-७॥

देवगण बोले—शिव, शान्तस्वरूप, यज्ञहन्ता, त्रिशूलधारी, रुद्रभद्र, रुद्रपति एवं रुद्रभूति, कालाग्नि-रुद्ररूप, काल तथा कामदेवके शरीरको विनष्ट करनेवाले देवताओं तथा दुरात्मा दक्षके सिरका छेदन करनेवाले आपको नमस्कार है। हे वीर! यद्यपि हमलोग निरपराध हैं, फिर भी इस पापी दक्षके संसर्गके कारण आपने हमलोगोंको संग्राममें दण्ड दिया है॥ ८—१०॥

हे प्रभो! आपने हमलोगोंको [अपनी कोपाग्निसे] जला-सा दिया है, इसलिये हम आपसे डरे हुए हैं, अब आप ही हमारे रक्षक हैं, हम शरणागतोंकी रक्षा कीजिये॥ ११॥

वायु बोले—इस प्रकार स्तुतिसे प्रसन्न हुए प्रभु वीरभद्र देवताओंको लोहेकी जंजीरसे मुक्त करके उनको देवदेव [शिव]-के समीप ले आये। उस समय सर्वसमर्थ, सर्वलोकमहेश्वर, सर्वव्यापी भगवान् सदाशिव गणोंके साथ अन्तरिक्षमें विराजमान थे॥ १२-१३॥

उन परमेश्वरको देखकर विष्णु आदि देवताओंने डरे होनेपर भी प्रसन्नतापूर्वक महेश्वरको प्रणाम किया॥ १४॥

तब उन देवताओंको डरा हुआ देखकर दीनोंके दुःखको दूर करनेवाले महादेव पार्वतीकी ओर देखकर देवताओंसे हँसते हुए यह कहने लगे—॥ १५॥

महादेव बोले—हे देवताओ! डरिये मत, क्योंकि आप सभी लोग मेरी प्रजा हैं, कृपालु वीरभद्रने अनुग्रहके लिये ही आपलोगोंको दण्डित किया है। अब हमलोगोंने आप देवगणोंके अपराधको क्षमा कर दिया, हमलोगोंके क्रोधित हो जानेपर न आपलोगोंकी स्थिति रह सकती है और न जीवन रह सकता है॥ १६-१७॥

वायुरुवाच

इत्युक्तास्त्रिदशाः सर्वे शर्वेणामिततेजसा।
सद्यो विगतसन्देहा ननृतुर्विबुधा मुदा॥ १८

वायु बोले—अमिततेजस्वी सदाशिवने सभी देवताओंसे ऐसा कहा, तब वे देवता शीघ्र ही सन्देहरहित होकर प्रसन्नतापूर्वक नाचने लगे॥ १८॥

प्रसन्नमनसो भूत्वानन्दविह्वलमानसाः।
स्तुतिमारेभिरे कर्तुं शंकरस्य दिवौकसः॥ १९

वे देवता प्रसन्नचित्त तथा आनन्दविह्वल मनवाले होकर शिवजीकी स्तुति करने लगे॥ १९॥

देवा ऊचुः

त्वमेव देवाखिललोककर्ता
पाता च हर्ता परमेश्वरोऽसि।
कविष्णुरुद्राख्यस्वरूपभेदै
रजस्तमःसत्त्वधृतात्ममूर्त्ते॥ २०
सर्वमूर्त्ते नमस्तेऽस्तु विश्वभावन पावन।
अमूर्त्ते भक्तहेतोर्हि गृहीताकृतिसौख्यद॥ २१

देवगण बोले—हे देव! ब्रह्मा, विष्णु तथा रुद्र नामक स्वरूपभेदोंसे रजोगुण, सत्त्वगुण तथा तमोगुणको धारण करनेवाले आत्ममूर्ते! आप कर्ता, पालक तथा संहारक परमेश्वर हैं। हे सर्वमूर्ते! हे विश्वभावन! हे पावन! हे अमूर्ते! हे भक्तोंको सुख देनेके लिये स्वरूप धारण करनेवाले! आपको नमस्कार है॥ २०-२१॥

चंद्रोऽगदो हि देवेश कृपातस्तव शंकर।
निमज्जनान्मृतः प्राप सुखं मिहिरजाजलिः॥ २२

हे देवेश! आपकी कृपासे ही चन्द्रमा [यक्ष्माके] रोगसे मुक्त हो गये। हे शंकर! मिहिरजाजलिने जलमें डूबकर मर जानेके बाद भी पुनः जीवित हो आपकी दयासे सुख प्राप्त किया॥ २२॥

सीमन्तिनी हतधवा तव पूजनतः प्रभो।
सौभाग्यमतुलं प्राप सोमवारव्रतात्सुतान्॥ २३

हे प्रभो! सीमन्तिनीने सोमवारका व्रत करनेसे तथा आपके पूजनके प्रभावसे पतिके मर जानेपर भी पुनः अतुल सौभाग्य तथा अनेक पुत्रोंको प्राप्त किया॥ २३॥

श्रीकराय ददौ देवः स्वीयं पदमनुत्तमम्।
सुदर्शनमरक्षस्त्वं नृपमंडलभीतितः॥ २४

हे देव! आपने श्रीकरको अपना उत्तम पद प्रदान किया और राजाओंके भयसे सुदर्शनकी रक्षा की॥ २४॥

मेदुरं तारयामास सदारं च घृणानिधिः।
शारदां विधवां चक्रे सधवां क्रियया भवान्॥ २५

आप कृपालुने स्त्रीसहित मेदुरका उद्धार किया और अपनी कृपासे विधवा शारदाको सधवा बना दिया॥ २५॥

भद्रायुषो विपत्तिं च विच्छिद्य त्वमदाः सुखम्।
सौमिनी भवबन्धाद्वै मुक्ताभूत्तव सेवनात्॥ २६

आपने भद्रायुकी विपत्ति दूर करके उसे सुख प्रदान किया और आपकी सेवाके प्रभावसे सौमिनी संसारबन्धनसे मुक्त हो गयी॥ २६॥

विष्णुरुवाच

त्वं शंभो कहरीशाश्च रजस्सत्त्वतमोगुणैः।
कर्ता पाता तथा हर्ता जनानुग्रहकांक्षया॥ २७

विष्णु बोले—हे शिवजी! आप प्राणियोंपर अनुग्रह करनेकी कामनासे रज, सत्त्व और तमोगुणसे ब्रह्मा, विष्णु एवं रुद्रमूर्ति धारणकर इस जगत्की उत्पत्ति, पालन तथा संहार करते हैं॥ २७॥

सर्वगर्वापहारी च सर्वतेजोविलासकः।
सर्वविद्यादिगूढश्च सर्वानुग्रहकारकः॥ २८

आप सभीका घमण्ड दूर करनेवाले हैं, सभीको तेज प्रदान करनेवाले, सभी विद्याओंमें गुप्त रूपसे निवास करनेवाले एवं सबपर अनुग्रह करनेवाले हैं॥ २८॥

त्वत्तः सर्वं च त्वं सर्वं त्वयि सर्वं गिरीश्वर।
त्राहि त्राहि पुनस्त्राहि कृपां कुरु ममोपरि॥ २९

अथास्मिन्नन्तरे ब्रह्मा प्रणिपत्य कृतांजलिः।
एवं त्ववसरं प्राप्य व्यज्ञापयत शूलिने॥ ३०

हे गिरीश्वर! आपसे सब कुछ है, आप ही सब कुछ हैं और सब कुछ आपमें ही स्थित है। मेरी रक्षा कीजिये, रक्षा कीजिये, पुनः रक्षा कीजिये और मुझपर दया कीजिये। इसके बाद उचित अवसर पाकर ब्रह्माजी हाथ जोड़कर प्रणाम करके शिवजीसे इस प्रकार कहने लगे—॥ २९-३०॥

ब्रह्मोवाच

जय देव महादेव प्रणतार्तिविभंजन।
ईदृशेष्वपराधेषु कोऽन्यस्त्वत्तः प्रसीदति॥ ३१

लब्धात्मानो भविष्यंति ये पुरा निहता मृधे।
प्रत्यापत्तिर्न कस्य स्यात्प्रसन्ने परमेश्वरे॥ ३२

यदिदं देवदेवानां कृतमन्तुषु दूषणम्।
तदिदं भूषणं मन्ये त अंगीकारगौरवात्॥ ३३

ब्रह्माजी बोले—हे देव! भक्तोंका दुःख दूर करनेवाले! आपकी जय हो। इस प्रकारका अपराध करनेवालोंपर भी आपके अतिरिक्त और कौन प्रसन्न हो सकता है! जो देवता इस संग्रामभूमिमें पहले मारे गये हैं, वे फिर जीवित हो उठें। [आप] परमेश्वरके प्रसन्न हो जानेपर किसकी अभ्युन्नति नहीं हो सकती है अर्थात् सभीका अभ्युदय ही होगा। हे देव! देवताओंके शरीरोंमें जो ये घाव हो गये हैं, आपके अंगीकार करनेके गौरवसे उन्हें मैं भूषण ही मानता हूँ॥ ३१—३३॥

इति विज्ञाप्यमानस्तु ब्रह्मणा परमेष्ठिना।
विलोक्य वदनं देव्या देवदेवः स्मयन्निव॥ ३४

पुत्रभूतस्य वात्सल्याद् ब्रह्मणः पद्मजन्मनः।
देवादीनां यथापूर्वमङ्गानि प्रददौ प्रभुः॥ ३५

परमेष्ठी ब्रह्माके इस प्रकार प्रार्थना करनेपर पार्वतीके मुखकी ओर देखकर मुसकराते हुए देवदेव प्रभुने पुत्रस्वरूप कमलयोनि ब्रह्माके वात्सल्यके कारण देवताओंके अंगोंको पहलेकी भाँति कर दिया॥ ३४-३५॥

प्रमथाद्यैश्च या देव्यो दण्डिता देवमातरः।
तासामपि यथापूर्वाण्यङ्गानि गिरिशो ददौ॥ ३६

दक्षस्य भगवानेव स्वयं ब्रह्मा पितामहः।
तत्पापानुगुणं चक्रे जरच्छागमुखं मुखम्॥ ३७

सोऽपि संज्ञां ततो लब्ध्वा स दृष्ट्वा जीवितः सुधीः।
भीतः कृताञ्जलिः शंभुं तुष्टाव प्रलपन्बहु॥ ३८

इसी प्रकार प्रमथोंके द्वारा जो देवियाँ तथा देवमाताएँ दण्डित की गयी थीं, सदाशिवने उनके भी अंगोंको पूर्वके समान कर दिया। स्वयं पितामह भगवान् ब्रह्माने दक्षके पापके अनुसार वृद्ध बकरेके मुखके समान उनका मुख बना दिया। इसके पश्चात् जीवित हुए वे बुद्धिमान् दक्ष भी चेतना प्राप्त करके शिवजीको देखकर भयभीत हो हाथ जोड़कर बहुत प्रलाप करते हुए शिवकी स्तुति करने लगे—॥ ३६—३८॥

दक्ष उवाच

जय देव जगन्नाथ लोकानुग्रहकारक।
कृपां कुरु महेशानापराधं मे क्षमस्व ह॥ ३९

कर्त्ता भर्त्ता च हर्ता च त्वमेव जगतां प्रभुः।
मया ज्ञातं विशेषेण विष्ण्वादिसकलेश्वरः॥ ४०

दक्ष बोले—लोकपर अनुग्रह करनेवाले हे जगन्नाथ! हे देव! आपकी जय हो। हे महेशान! आप मुझपर कृपा कीजिये और मेरे अपराधको क्षमा कीजिये। हे प्रभो! आप ही जगत्के कर्ता, भर्ता, हर्ता तथा प्रभु हैं, मैं विशेषरूपसे जान गया कि आप विष्णु आदि सभीके ईश्वर हैं। आपने ही सारे जगत्का

त्वयैव विततं सर्वं व्याप्तं सृष्टं च नाशितम्।
न हि त्वदधिकाः केचिदीशास्तेऽच्युतकादयः ॥ ४१

विस्तार किया है, आप सर्वत्र व्याप्त हैं, आप ही इसकी सृष्टि और विनाश करते हैं। विष्णु आदि कोई भी देवता आपसे बढ़कर नहीं हैं ॥ ३९—४१ ॥

वायुरुवाच

तं तथा व्याकुलं भीतं प्रलपन्तं कृतागसम्।
स्मयन्निवावदत्प्रेक्ष्य मा भैरिति घृणानिधिः ॥ ४२

तथोक्त्वा ब्रह्मणस्तस्य पितुः प्रियचिकीर्षया।
गाणपत्यं ददौ तस्मै दक्षायाक्षयमीश्वरः ॥ ४३

ततो ब्रह्मादयो देवा अभिवन्द्य कृतांजलिः।
तुष्टुवुः प्रश्रया वाचा शंकरं गिरिजाधिपम् ॥ ४४

वायु बोले—तब अपराध किये हुए, व्याकुल, भयभीत तथा गिड़गिड़ाते हुए उन दक्षको देखकर करुणानिधि शिवजीने मुसकराते हुए कहा—'[हे दक्ष!] भयभीत मत होइये।' ऐसा कहकर शिवजीने उनके पिता ब्रह्माजीका प्रिय करनेकी इच्छासे दक्षको अक्षय गाणपत्यपद प्रदान किया। तदनन्तर ब्रह्मादि देवता हाथ जोड़कर प्रणाम करके विनम्र वाणीमें गिरिजापति शंकरकी स्तुति करने लगे ॥ ४२—४४ ॥

ब्रह्मादय ऊचुः

जय शंकर देवेश दीनानाथ महाप्रभो।
कृपां कुरु महेशानापराधं नो क्षमस्व वै ॥ ४५

ब्रह्मा आदि [देवता] बोले—हे शंकर! हे देवेश! हे दीनानाथ! हे महाप्रभो! हे महेशान! कृपा कीजिये और हमारे अपराधको क्षमा कीजिये ॥ ४५ ॥

मखपाल मखाधीश मखविध्वंसकारक।
कृपां कुरु महेशानापराधं नः क्षमस्व वै ॥ ४६

देवदेव परेशान भक्तप्राणप्रपोषक।
दुष्टदण्डप्रदः स्वामिन्कृपां कुरु नमोऽस्तु ते ॥ ४७

हे यज्ञपालक! हे यज्ञाधीश! हे दक्षयज्ञविध्वंस-कारक! हे महेशान! कृपा कीजिये और हमलोगोंके अपराधको क्षमा कीजिये। हे देवदेव! हे परेशान! हे भक्तप्राणपोषक! आप दुष्टोंको दण्ड देनेवाले हैं। हे दुष्टदण्डप्रद स्वामिन्! कृपा करें, आपको नमस्कार है ॥ ४६-४७ ॥

त्वं प्रभो गर्वहर्ता वै दुष्टानां त्वामजानताम्।
रक्षको हि विशेषेण सतां त्वत्सक्तचेतसाम् ॥ ४८

हे प्रभो! जो आपको नहीं जानते—ऐसे दुष्टोंका आप गर्व दूर करते हैं और अपनेमें आसक्त चित्तवाले सत्पुरुषोंके आप रक्षक हैं ॥ ४८ ॥

अद्भुतं चरितं ते हि निश्चितं कृपया तव।
सर्वापराधः क्षन्तव्यो विभवो दीनवत्सलाः ॥ ४९

हे प्रभो! आपकी दयासे ही अब हमलोगोंने निश्चय किया है कि आपका चरित्र अद्भुत है। हे दीनवत्सल प्रभो! हमारे द्वारा जो भी अपराध किये गये हैं, उन्हें क्षमा कर दीजिये ॥ ४९ ॥

वायुरुवाच

इति स्तुतो महादेवो ब्रह्माद्यैरमरैः प्रभुः।
स भक्तवत्सलः स्वामी तुतोष करुणोदधिः ॥ ५०
चकारानुग्रहं तेषां ब्रह्मादीनां दिवौकसाम्।
ददौ वरांश्च सुप्रीत्या शंकरो दीनवत्सलः ॥ ५१
स च ततस्त्रिदशान् शरणागतान्
परमकारुणिकः परमेश्वरः।
अनुगतस्मितलक्षणया गिरा
शमितसर्वभयः समभाषत ॥ ५२

वायु बोले—इस प्रकार ब्रह्मादि देवताओंद्वारा स्तुत वे करुणासागर, भक्तवत्सल प्रभु महादेव प्रसन्न हो गये। तब दीनवत्सल भगवान् शंकरने ब्रह्मा आदि देवगणोंपर अनुग्रह किया और अत्यन्त प्रेमपूर्वक उन्हें वर प्रदान किया। तत्पश्चात् सबके भयको दूर करनेवाले वे परम दयालु परमेश्वर शरणमें आये हुए देवताओंसे अनुगतोंके प्रति स्वाभाविक रूपसे मन्दहास्ययुक्त वाणीमें कहने लगे— ॥ ५०—५२ ॥

शिव उवाच

यदिदमाग इहाचरितं सुरै-
विधिनियोगवशादिव यन्त्रितैः।
शरणमेव गतानवलोक्य व-
स्तदखिलं किल विस्मृतमेव नः॥ ५३

शिवजी बोले—देवताओंने यह जो अपराध किया है, वह दैवकी परवशतासे ही किया है। अब आपलोगोंको शरणागत देखकर हमने निश्चय ही वह समस्त अपराध भुला दिया॥ ५३॥

तदिह यूयमपि प्रकृतं मन-
स्यविगणय्य विमर्दमपत्रपाः।
हरिविरिञ्चिसुरेन्द्रमुखाः सुखं
व्रजत देवपुरं प्रति संप्रति॥ ५४
इति सुरानभिधाय सुरेश्वरो
निकृतदक्षकृतक्रतुरक्रतुः।
स गिरिजानुचरः सपरिच्छदः
स्थित इवाम्बरतोन्तरधाद्धरः॥ ५५

हे विष्णु, ब्रह्मा, इन्द्रादि देवगणो! अब आपलोग भी इस संग्रामभूमिमें अपनी दुर्दशाका मनमें ध्यान न करके लज्जाका परित्यागकर सुखपूर्वक देवलोकको इस समय प्रस्थान करें। देवताओंसे ऐसा कहकर दक्ष-यज्ञका विनाशकर पार्वती एवं गणोंके साथ शिवजी आकाशमें विराजमान हो अन्तर्धान हो गये॥ ५४-५५॥

अथ सुरा अपि ते विगतव्यथाः
कथितभद्रसुभद्रपराक्रमाः।
सपदि खेन सुखेन यथासुखं
ययुरनेकमुखाः मघवन्मुखाः॥ ५६

इसके पश्चात् व्यथारहित वे इन्द्रादि देवगण भी वीरभद्रके कल्याणकारी पराक्रमका वर्णन करते हुए सुखपूर्वक आकाशमार्गसे शीघ्र ही अपने-अपने स्थानोंको चले गये॥ ५६॥

इति श्रीशिवमहापुराणे सप्तम्यां वायवीयसंहितायां पूर्वखण्डे गिरिशानुनयो नाम त्रयोविंशोऽध्यायः॥ २३॥

॥ इस प्रकार श्रीशिवमहापुराणके अन्तर्गत सातवीं वायवीयसंहिताके पूर्वखण्डमें गिरिशानुनय नामक तेईसवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ २३॥

अथ चतुर्विंशोऽध्यायः

शिवका तपस्याके लिये मन्दराचलपर गमन, मन्दराचलका वर्णन, शुम्भ-निशुम्भ दैत्यकी उत्पत्ति, ब्रह्माकी प्रार्थनासे उनके वधके लिये शिव और शिवाके विचित्र लीला-प्रपंचका वर्णन

ऋषय ऊचुः

अन्तर्धानगतो देव्या सह सानुचरो हरः।
क्व यातः कुत्र वा वासः किं कृत्वा विरराम ह॥ १

तदनन्तर ऋषियोंने पूछा—प्रभो ! अपने गणों तथा देवीके साथ अन्तर्धान होकर भगवान् शिव कहाँ गये, कहाँ रहे और क्या करके विरत हुए?॥ १॥

वायुरुवाच

महीधरवरः श्रीमान् मंदरश्चित्रकंदरः।
दयितो देवदेवस्य निवासस्तपसोऽभवत्॥ २
तपो महत्कृतं तेन वोढुं स्वशिरसा शिवौ।
चिरेण लब्धं तत्पादपंकजस्पर्शजं सुखम्॥ ३

वायुदेव बोले—महर्षियो! पर्वतोंमें श्रेष्ठ और विचित्र कन्दराओंसे सुशोभित जो परम सुन्दर मन्दराचल है, वही अपनी तपस्याके प्रभावसे देवाधिदेव महादेवजीका प्रिय निवास-स्थान हुआ। उसने पार्वती और शिवको अपने सिरपर ढोनेके लिये बड़ा भारी तप किया था और दीर्घकालके बाद तब उसे उनके चरणारविन्दोंके स्पर्शका सुख प्राप्त हुआ॥ २-३॥

तस्य शैलस्य सौन्दर्यं सहस्रवदनैरपि।
न शक्यं विस्तराद्वक्तुं वर्षकोटिशतैरपि॥ ४

शक्यमप्यस्य सौन्दर्यं न वर्णयितुमुत्सहे।
पर्वतान्तरसौन्दर्यं साधारणविधारणात्॥ ५

इदं तु शक्यते वक्तुमस्मिन्पर्वतसुन्दरे।
ऋद्ध्या कयापि सौन्दर्यमीश्वरावासयोग्यता॥ ६

अत एव हि देवेन देव्याः प्रियचिकीर्षया।
अतीव रमणीयोऽयं गिरिरन्तःपुरीकृतः॥ ७

मेखलाभूमयस्तस्य विमलोपलपादपाः।
शिवयोर्नित्यसान्निध्यात्न्यक्कुर्वन्त्यखिलं जगत्॥ ८

पितृभ्यां जगतो नित्यं स्नानपानोपयोगतः।
अवाप्तपुण्यसंस्कारः प्रसरद्भिरितस्ततः॥ ९

लघुशीतलसंस्पर्शैरच्छाच्छैर्निर्झराम्बुभिः।
अधिराज्येन चाद्रीणामद्रीरेषोऽभिषिच्यते॥ १०

निशासु शिखरप्रान्तवर्तिना स शिलोच्चयः।
चन्द्रेणाचलसाम्राज्यच्छत्रेणेव विराजते॥ ११

स शैलश्चंचलीभूतैर्बालैश्चामरयोषिताम्।
सर्वपर्वतसाम्राज्यचामरैरिव वीज्यते॥ १२

प्रातरभ्युदिते भानौ भूधरो रत्नभूषितः।
दर्पणे देहसौभाग्यं द्रष्टुकाम इव स्थितः॥ १३

उस पर्वतके सौन्दर्यका विस्तारपूर्वक वर्णन सहस्रों मुखोंद्वारा सौ करोड़ वर्षोंमें भी नहीं किया जा सकता। उसके सामने समस्त पर्वतोंका सौन्दर्य तुच्छ हो जाता है। उसका सौन्दर्यवर्णन सम्भव ही नहीं है, अतएव मुझमें उसके सौन्दर्यवर्णनके प्रति उत्साह नहीं है॥ ४-५॥

इस सम्बन्धमें यही कहा जा सकता है कि इस सुन्दर पर्वतपर किसी अपूर्व समृद्धिके कारण इसमें शिवजीके निवासकी योग्यता है। इसीलिये महादेवजीने देवीका प्रिय करनेकी इच्छासे उस अत्यन्त रमणीय पर्वतको अपना अन्तःपुर बना लिया॥ ६-७॥

उस पर्वतकी मध्यवर्ती भूमियाँ, स्वच्छ पाषाण तथा वृक्ष शिव तथा पार्वतीके नित्य सान्निध्यके कारण समस्त संसार [के सौभाग्य]-को तिरस्कृत करते हैं॥ ८॥

संसारके माता-पिता देवी पार्वती तथा भगवान् शंकरके स्नान, पान आदिके लिये इधर-उधर बहते हुए झरनोंका शीतल, निर्मल तथा सुपेय जल नित्यप्रति अर्पित करके [यथेष्ट] पुण्य संस्कारोंको प्राप्त किये हुए उस हिमालयका मानो पर्वतोंके अधिपति पदपर [उन झरनोंके जलसे] अभिषेक-सा किया जा रहा है॥ ९-१०॥

रात्रिके समय [उदित हुआ] चन्द्रमा हिमालयके शिखरपर स्थित है, [जिससे प्रतीत होता है कि] मानो पर्वतोंके साम्राज्यपर अधिष्ठित उस गिरिराजके ऊपर चन्द्ररूपी राजछत्र शोभायमान हो रहा है॥ ११॥

[पर्वतीय भूमिपर विचरण करती हुई] चमरी गायोंके हिलते हुए बालोंसे ऐसा प्रतीत हो रहा है कि मानो समस्त पर्वतोंके साम्राज्यपर अधिष्ठित उस हिमालयके ऊपर चँवर डुलाये जा रहे हों। प्रभातकालमें उदित हुए सूर्यमें प्रतिबिम्बित-सा होता हुआ हिमालय ऐसा प्रतीत हो रहा है, मानो रत्नभूषित वह पर्वतराज अपने देहसौन्दर्यको दर्पणमें देखनेको उद्यत-सा हो गया हो॥ १२-१३॥

कूजद्विहंगवाचालैर्वातोद्धूतलताभुजैः ।
विमुक्तपुष्पैः सततं व्यालम्बिमृदुपल्लवैः ॥ १४

लताप्रतानजटिलैस्तरुभिस्तापसैरिव ।
जयाशिषा सहाभ्यर्च्य निषेव्यत इवाद्रिराट् ॥ १५

लताजालरूपी जटाओंको धारण किये हुए वे [पर्वतीय] वृक्ष वाचाल पक्षियोंके कलरव, लटकते हुए कोमल पल्लवों तथा वायुद्वारा कम्पित लताओंसे झरते हुए पुष्पोंके द्वारा मानो तपस्वियोंकी भाँति गिरिराज हिमालयका समर्चन तथा आशीर्वाचनके साथ विजया-भिनन्दन-सा करते हुए प्रतीत हो रहे हैं ॥ १४-१५ ॥

अधोमुखैरूर्ध्वमुखैः शृंगैस्तिर्यङ्मुखैस्तथा ।
प्रपतन्निव पाताले भूपृष्ठादुत्पतन्निव ॥ १६

परीतः सर्वतो दिक्षु भ्रमन्निव विहायसि ।
पश्यन्निव जगत्सर्वं नृत्यन्निव निरन्तरम् ॥ १७

गुहामुखैः प्रतिदिनं व्यात्तास्यो विपुलोदरैः ।
अजीर्णलावण्यतया जृंभमाण इवाचलः ॥ १८

ग्रसन्निव जगत्सर्वं पिबन्निव पयोनिधिम् ।
वमन्निव तमोऽन्तस्थं माद्यन्निव खमम्बुदैः ॥ १९

ऊँचे, नीचे तथा तिरछे शृंगोंसे युक्त वह पर्वत मानो पृथ्वीसे पातालमें गिर-सा रहा है अथवा भूपृष्ठसे ऊपरकी ओर उछल-सा रहा है या सभी दिशाओंमें व्याप्त होकर आकाशमें घूम-सा रहा है अथवा सारे संसारको देखता हुआ सदा नृत्य-सा कर रहा है। वह पर्वत विस्तृत उदरवाली विशाल कन्दराओंके द्वारा मानो अपना मुख फैलाकर सौन्दर्यातिशयको अपनेमें न पचाकर जँभाई-सा ले रहा हो या कि मानो सारे संसारको निगल-सा रहा हो, अथवा सागरको पी-सा रहा हो या अपने भीतर छिपे हुए अन्धकारका वमन-सा कर रहा हो अथवा बादलोंसे आकाशको मदमत्त-सा करता हुआ प्रतीत हो रहा है ॥ १६—१९ ॥

निवासभूमयस्तास्ता दर्पणप्रतिमोदराः ।
तिरस्कृतातपाः स्निग्धाश्रमच्छायामहीरुहाः ॥ २०

सरित्सरस्तडागादिसंपर्कशिशिरानिलाः ।
तत्र तत्र निषण्णाभ्यां शिवाभ्यां सफलीकृताः ॥ २१

तमिमं सर्वतः श्रेष्ठं स्मृत्वा साम्बस्त्रियम्बकः ।
रैभ्याश्रमसमीपस्थश्चान्तर्धानं गतो ययौ ॥ २२

तत्रोद्यानमनुप्राप्य देव्या सह महेश्वरः ।
रराम रमणीयासु दिव्यान्तःपुरभूमिषु ॥ २३

दर्पणके समान [उज्ज्वल] अन्तर्देशवाली आवास-भूमियों तथा अपनी सघन तथा स्निग्ध छाया-से सूर्यके तापको दूर करनेवाले आश्रमके वृक्षों तथा नदियों, सरोवरों, तड़ागों आदिको छूकर बहनेवाली शीतल हवाओंको उन शिवा-शिवने जहाँ-तहाँ विश्राम करके कृतकृत्य किया। इस सर्वश्रेष्ठ पर्वतका स्मरण करके रैभ्य-आश्रमके समीप स्थित हुए अम्बिकासहित भगवान् त्रिलोचन वहाँसे अन्तर्धान होकर चले गये। मन्दराचलके उद्यानमें पहुँचकर देवी-सहित महेश्वर वहाँकी रमणीय तथा दिव्य अन्तःपुरकी भूमियोंमें रमण करने लगे ॥ २०—२३ ॥

तथा गतेषु कालेषु प्रवृद्धासु प्रजासु च ।
दैत्यौ शुंभनिशुंभाख्यौ भ्रातरौ सम्बभूवतुः ॥ २४

ताभ्यां तपोबलाद्दत्तं ब्रह्मणा परमेष्ठिना ।
अवध्यत्वं जगत्यस्मिन्पुरुषैरखिलैरपि ॥ २५

जब इस तरह कुछ समय बीत गया और [ब्रह्माजीकी मैथुनी सृष्टिके द्वारा] प्रजाएँ बढ़ गयीं, तब शुम्भ और निशुम्भ नामक दो दैत्य उत्पन्न हुए। वे परस्पर भाई थे। उनके तपोबलसे प्रभावित हो परमेष्ठी ब्रह्माने उन दोनों भाइयोंको यह वर दिया था कि 'इस जगत्के किसी भी पुरुषसे तुम मारे नहीं जा

अयोनिजा तु या कन्या ह्यम्बिकांशसमुद्भवा।
अजातपुंस्पर्शरतिरविलंघ्यपराक्रमा ॥ २६

तया तु नौ वधः संख्ये तस्यां कामाभिभूतयोः।
इति चाभ्यर्थितो ब्रह्मा ताभ्यां प्राह तथास्त्विति॥ २७

सकोगे।' उन दोनोंने ब्रह्माजीसे यह प्रार्थना की थी कि 'पार्वती देवीके अंशसे उत्पन्न जो अयोनिजा कन्या उत्पन्न हो, जिसे पुरुषका स्पर्श तथा रति नहीं प्राप्त हुई हो तथा जो अलंघ्य पराक्रमसे सम्पन्न हो, उसके प्रति कामभावसे पीड़ित होनेपर हम युद्धमें उसीके हाथों मारे जायँ।' उनकी इस प्रार्थनापर ब्रह्माजीने 'तथास्तु' कहकर स्वीकृति दे दी॥ २४—२७॥

ततः प्रभृति शक्रादीन्विजित्य समरे सुरान्।
निःस्वाध्यायवषट्कारं जगच्चक्रतुरक्रमात्॥ २८

तयोर्वधाय देवेशं ब्रह्माभ्यर्थितवान्पुनः।
विनिन्द्यापि रहस्यम्बां क्रोधयित्वा यथा तथा॥ २९

तद्वर्णकोशजां शक्तिमकामां कन्यकात्मिकाम्।
निशुम्भशुम्भयोर्हन्त्रीं सुरेभ्यो दातुमर्हसि॥ ३०

तभीसे युद्धमें इन्द्र आदि देवताओंको जीतकर उन दोनोंने जगत्‌को अनीतिपूर्वक वेदोंके स्वाध्याय और वषट्कार आदिसे रहित कर दिया। तब ब्रह्माने उन दोनोंके वधके लिये देवेश्वर शिवसे प्रार्थना की—'प्रभो! आप एकान्तमें देवीकी निन्दा करके भी जैसे-तैसे उन्हें क्रोध दिलाइये और उनके रूप-रंगकी निन्दासे उत्पन्न हुई, कामभावसे रहित, कुमारीस्वरूपा शक्तिको निशुम्भ और शुम्भके वधके लिये देवताओंको अर्पित कीजिये।'॥ २८—३०॥

एवमभ्यर्थितो धात्रा भगवान्नीललोहितः।
कालीत्याह रहस्यम्बां निन्दयन्निव सस्मितः॥ ३१

ततः क्रुद्धा तदा देवी सुवर्णा वर्णकारणात्।
स्मयन्ती चाह भर्तारमसमाधेयया गिरा॥ ३२

ब्रह्माजीके इस तरह प्रार्थना करनेपर भगवान् नीललोहित रुद्र एकान्तमें पार्वतीकी निन्दा-सी करते हुए मुसकराकर बोले—'तुम तो काली हो।' तब सुन्दर वर्णवाली देवी पार्वती अपने श्यामवर्णके कारण आक्षेप सुनकर कुपित हो उठीं और पतिदेवसे मुसकराकर समाधानरहित वाणीद्वारा बोलीं—॥ ३१-३२॥

देव्युवाच

ईदृशे मम वर्णेऽस्मिन्न रतिर्भवतोऽस्ति चेत्।
एतावन्तं चिरं कालं कथमेषा नियम्यते॥ ३३

देवीने कहा—प्रभो! यदि मेरे इस काले रंगपर आपका प्रेम नहीं है तो इतने दीर्घकालसे अपनी इच्छाका आप दमन क्यों करते रहे हैं?॥ ३३॥

अरत्या वर्तमानोऽपि कथं च रमसे मया।
न ह्यशक्यं जगत्यस्मिन्नीश्वरस्य जगत्प्रभोः॥ ३४

स्वात्मारामस्य भवतो रतिर्न सुखसाधनम्।
इति हेतोः स्मरो यस्मात्प्रसभं भस्मसात्कृतः॥ ३५

जब आपको मेरे इस स्वरूपसे अरुचि थी, तो आप मेरे साथ रमण क्यों करते रहे? हे जगत्‌के ईश्वर! आपके लिये अशक्य तो कुछ भी नहीं है। आप स्वात्मारामके लिये रति सुखका साधन नहीं है, यही कारण है कि आपने बलपूर्वक कामदेवको भस्म कर दिया॥ ३४-३५॥

या च नाभिरता भर्तुरपि सर्वांगसुन्दरी।
सा वृथैव हि जायेत सर्वैरपि गुणान्तरैः॥ ३६

भर्तुर्भोगैकशेषो हि सर्ग एवैष योषिताम्।

कोई स्त्री कितनी ही सर्वांगसुन्दरी क्यों न हो, यदि पतिका उसपर अनुराग नहीं हुआ तो अन्य समस्त गुणोंके साथ ही उसका जन्म लेना व्यर्थ हो जाता है। स्त्रियोंकी यह सृष्टि ही पतिके अनुरागका

तथासत्यन्यथा भूता नारी कुत्रोपयुज्यते॥ ३७

तस्माद्वर्णमिमं त्यक्त्वा त्वया रहसि निन्दितम्।
वर्णान्तरं भजिष्ये वा न भजिष्यामि वा स्वयम्॥ ३८

इत्युक्त्वोत्थाय शयनाद्देवी साचष्ट गद्गदम्।
ययाचेऽनुमतिं भर्तुस्तपसे कृतनिश्चया॥ ३९

तथा प्रणयभङ्गेन भीतो भूतपतिः स्वयम्।
पादयोः प्रणमन्नेव भवानीं प्रत्यभाषत॥ ४०

ईश्वर उवाच

अजानती च क्रीडोक्तिं प्रिये किं कुपितासि मे।
रतिः कुतो वा जायेत त्वत्तश्चेदरतिर्मम॥ ४१

माता त्वमस्य जगतः पिताहमधिपस्तथा।
कथं तदुपपद्येत त्वत्तो नाभिरतिर्मम॥ ४२

आवयोरभिकामोऽपि किमसौ कामकारितः।
यतः कामसमुत्पत्तेः प्रागेव जगदुद्भवः॥ ४३

पृथग्जनानां रतये कामात्मा कल्पितो मया।
ततः कथमुपालब्धः कामदाहादहं त्वया॥ ४४

मां वै त्रिदशसामान्यं मन्यमानो मनोभवः।
मनाक्परिभवं कुर्वन्मया वै भस्मसात्कृतः॥ ४५

विहारोऽप्यावयोरस्य जगतस्त्राणकारणात्।
ततस्तदर्थं त्वय्यद्य क्रीडोक्तिं कृतवानहम्॥ ४६

स चायमचिरादर्थस्तवैवाविष्करिष्यते।
क्रोधस्य जनकं वाक्यं हृदि कृत्वेदमब्रवीत्॥ ४७

देव्युवाच

श्रुतपूर्वं हि भगवंस्तव चाटुवचो मया।
येनैवमतिधीराहमपि प्रागभिवञ्चिता॥ ४८

प्रधान अंग है। यदि वह उससे वंचित हो गयी तो इसका और कहाँ उपयोग हो सकता है? इसलिये आपने एकान्तमें जिसकी निन्दा की है, उस वर्णको त्यागकर अब मैं दूसरा वर्ण ग्रहण करूँगी अथवा स्वयं ही मिट जाऊँगी॥ ३६—३८॥

ऐसा कहकर देवी पार्वती शय्यासे उठकर खड़ी हो गयीं और तपस्याके लिये दृढ़ निश्चय करके गद्गद कण्ठसे जानेकी आज्ञा माँगने लगीं। इस प्रकार प्रेम भंग होनेसे भयभीत हो भूतनाथ भगवान् शिव स्वयं भवानीके चरणोंमें मानो [प्रणामहेतु] गिरते हुए-से बोले—॥ ३९-४०॥

भगवान् शिवने कहा—प्रिये! मैंने क्रीडा या मनोविनोदके लिये यह बात कही है। मेरे इस अभिप्रायको न जानकर तुम कुपित क्यों हो गयीं? यदि तुमपर मेरा प्रेम नहीं होगा तो और किसपर हो सकता है? तुम इस जगत्की माता हो और मैं पिता तथा अधिपति हूँ। फिर तुमपर मेरा प्रेम न होना कैसे सम्भव हो सकता है! हम दोनोंका वह प्रेम भी क्या कामदेवकी प्रेरणासे हुआ है, कदापि नहीं; क्योंकि कामदेवकी उत्पत्तिसे पहले ही जगत्की उत्पत्ति हुई है। कामदेवकी सृष्टि तो मैंने साधारण लोगोंकी रतिके लिये की है। [ऐसी दशामें] तुम मुझे कामदाहका उलाहना क्यों दे रही हो?॥ ४१—४४॥

कामदेव मुझे साधारण देवताके समान मानकर मेरा कुछ-कुछ तिरस्कार करने लगा था, अतः मैंने उसे भस्म कर दिया। हम दोनोंका यह लीलाविहार भी जगत्की रक्षाके लिये ही है, अतः उसीके लिये आज मैंने तुम्हारे प्रति यह परिहासयुक्त बात कही थी। मेरे इस कथनकी सत्यता तुमपर शीघ्र ही प्रकट हो जायगी। [तब भगवान् शिवके उस] क्रोधोत्पादक वचनको हृदयमें विचारकर देवीने कहना आरम्भ किया—॥ ४५—४७॥

देवीने कहा—भगवन्! मैं पूर्वसे ही आपद्वारा कहे गये चाटुकारितापूर्ण वचनोंको सुनती आ रही हूँ, उन्हीं वचनोंके कारण धैर्यशालिनी [या कि अतीव

प्राणानप्यप्रिया भर्तुर्नारी या न परित्यजेत्।
कुलांगना शुभा सद्भिः कुत्सितैव हि गम्यते॥ ४९

भूयसी च तवाप्रीतिरगौरमिति मे वपुः।
क्रीडोक्तिरपि कालीति घटते कथमन्यथा॥ ५०

सद्भिर्विगर्हितं तस्मात्तव कार्ष्ण्यमसंमतम्।
अनुत्सृज्य तपोयोगात्स्थातुमेवेह नोत्सहे॥ ५१

बुद्धिमती] होकर भी मैं आपके द्वारा ठगी जाती रही। पतिके प्यारसे वंचित होनेपर जो नारी अपने प्राणोंका भी परित्याग नहीं कर देती, वह कुलांगना और शुभलक्षणा होनेपर भी सत्पुरुषोंद्वारा निन्दित ही समझी जाती है। मेरा शरीर गौर वर्णका नहीं है, इस बातको लेकर आपको बहुत खेद होता है, अन्यथा क्रीडा या परिहासमें भी आपके द्वारा मुझे 'काली-कलूटी' कहा जाना कैसे सम्भव हो सकता था। मेरा कालापन आपको प्रिय नहीं है, इसलिये वह सत्पुरुषोंद्वारा भी निन्दित है; अतः तपस्याद्वारा इसका त्याग किये बिना अब मैं यहाँ रह ही नहीं सकती॥ ४८—५१॥

शिव उवाच

यद्येवंविधतापस्ते तपसा किं प्रयोजनम्।
ममेच्छया स्वेच्छया वा वर्णान्तरवती भव॥ ५२

शिव बोले—यदि अपनी श्यामताको लेकर तुम्हें इस तरह संताप हो रहा है तो इसके लिये तपस्या करनेकी क्या आवश्यकता है? तुम मेरी या अपनी इच्छामात्रसे ही दूसरे वर्णसे युक्त हो जाओ॥ ५२॥

देव्युवाच

नेच्छामि भवतो वर्णं स्वयं वा कर्तुमन्यथा।
ब्रह्माणं तपसाराध्य क्षिप्रं गौरी भवाम्यहम्॥ ५३

देवीने कहा—मैं आपसे अपने रंगका परिवर्तन नहीं चाहती। स्वयं भी इसे बदलनेका संकल्प नहीं कर सकती। अब तो तपस्याद्वारा ब्रह्माजीकी आराधना करके ही मैं शीघ्र गौरी हो जाऊँगी॥ ५३॥

ईश्वर उवाच

मत्प्रसादात्पुरा ब्रह्मा ब्रह्मत्वं प्राप्तवान्पुरा।
तमाहूय महादेवि तपसा किं करिष्यसि॥ ५४

शिव बोले—महादेवि ! पूर्वकालमें मेरी ही कृपासे ब्रह्माको ब्रह्मपदकी प्राप्ति हुई थी। अतः तपस्याद्वारा उन्हें बुलाकर तुम क्या करोगी?॥ ५४॥

देव्युवाच

त्वत्तो लब्धपदा एव सर्वे ब्रह्मादयः सुराः।
तथाप्याराध्य तपसा ब्रह्माणं त्वन्नियोगतः॥ ५५

पुरा किल सती नाम्ना दक्षस्य दुहिताऽभवम्।
जगतां पतिमेव त्वां पतिं प्राप्तवती तथा॥ ५६

एवमद्यापि तपसा तोषयित्वा द्विजं विधिम्।
गौरी भवितुमिच्छामि को दोषः कथ्यतामिह॥ ५७

देवीने कहा—इसमें संदेह नहीं कि ब्रह्मा आदि समस्त देवताओंको आपसे ही उत्तम पदोंकी प्राप्ति हुई है, तथापि आपकी आज्ञा पाकर मैं तपस्याद्वारा ब्रह्माजीकी आराधना करके ही अपना अभीष्ट सिद्ध करना चाहती हूँ। पूर्वकालमें जब मैं सतीके नामसे दक्षकी पुत्री हुई थी, तब तपस्याद्वारा ही मैंने आप जगदीश्वरको पतिके रूपमें प्राप्त किया था। इसी प्रकार आज भी तपस्याद्वारा ब्राह्मण ब्रह्माको संतुष्ट करके मैं गौरी होना चाहती हूँ। ऐसा करनेमें यहाँ क्या दोष है? यह बताइये॥ ५५—५७॥

एवमुक्तो महादेव्या वामदेवः स्मयन्निव।
न तां निर्बन्धयामास देवकार्यचिकीर्षया॥ ५८

महादेवीके ऐसा कहनेपर वामदेव शिवजी मुसकराते हुए-से चुप रह गये। देवताओंका कार्य सिद्ध करनेकी इच्छासे उन्होंने देवीको रोकनेके लिये हठ नहीं किया॥ ५८॥

इति श्रीशिवमहापुराणे सप्तम्यां वायवीयसंहितायां पूर्वखण्डे शिवमन्दरगिरिनिवास-क्रीडोक्तिवर्णनं नाम चतुर्विंशोऽध्यायः॥ २४॥

॥ इस प्रकार श्रीशिवमहापुराणके अन्तर्गत सातवीं वायवीयसंहिताके पूर्वखण्डमें शिवमन्दरगिरिनिवास-क्रीडोक्तिवर्णन नामक चौबीसवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ २४॥

अथ पञ्चविंशोऽध्यायः

पार्वतीकी तपस्या, व्याघ्रपर उनकी कृपा, ब्रह्माजीका देवीके साथ वार्तालाप, देवीके द्वारा काली त्वचाका त्याग और उससे उत्पन्न कौशिकीके द्वारा शुम्भ-निशुम्भका वध

वायुरुवाच

ततः प्रदक्षिणीकृत्य पतिमम्बा पतिव्रता।
नियम्य च वियोगार्तिं जगाम हिमवद्गिरिम्॥ १

वायुदेव कहते हैं—महर्षियो! तदनन्तर पतिव्रता माता पार्वती पतिकी परिक्रमा करके उनके वियोगसे होनेवाले दुःखको किसी तरह रोककर हिमालयपर्वतपर चली गयीं॥ १॥

तपः कृतवती पूर्वं देशे यस्मिन्सखीजनैः।
तमेव देशमवृणोत्तपसे प्रणयात्पुनः॥ २

ततः स्वपितरं दृष्ट्वा मातरं च तयोर्गृहे।
प्रणम्य वृत्तं विज्ञाप्य ताभ्यां चानुमता सती॥ ३

पुनस्तपोवनं गत्वा भूषणानि विसृज्य च।
स्नात्वा तपस्विनो वेषं कृत्वा परमपावनम्॥ ४

संकल्प्य च महातीव्रं तपः परमदुश्चरम्।
सदा मनसि सन्धाय भर्तुश्चरणपंकजम्॥ ५

तमेव क्षणिके लिङ्गे ध्यात्वा बाह्यविधानतः।
त्रिसन्ध्यमभ्यर्चयन्ती वन्यैः पुष्पैः फलादिभिः॥ ६

उन्होंने पहले सखियोंके साथ जिस स्थानपर तप किया था, उस स्थानसे उनका प्रेम हो गया था। अतः फिर उसीको उन्होंने तपस्याके लिये चुना। तदनन्तर माता-पिताके घर जा उनका दर्शन और प्रणाम करके उन्हें सब समाचार बताकर उनकी आज्ञा ले उन्होंने सारे आभूषण उतार दिये और फिर तपोवनमें जा स्नानके पश्चात् तपस्वीका परमपावन वेष धारण करके अत्यन्त तीव्र एवं परम दुष्कर तपस्या करनेका संकल्प किया। वे मन-ही-मन सदा पतिके चरणारविन्दोंका चिन्तन करती हुई किसी क्षणिक लिंगमें उन्हींका ध्यान करके पूजनकी बाह्य विधिके अनुसार जंगलके फल-फूल आदि उपकरणोंद्वारा तीनों समय उनका पूजन करती थीं॥ २—६॥

स एव ब्रह्मणो मूर्तिमास्थाय तपसः फलम्।
प्रदास्यति ममेत्येवं नित्यं कृत्वाऽकरोत्तपः॥ ७

तथा तपश्चरन्तीं तां काले बहुतिथे गते।
दृष्टः कश्चिन्महाव्याघ्रो दुष्टभावादुपागमत्॥ ८

'भगवान् शंकर ही ब्रह्माका रूप धारण करके मेरी तपस्याका फल मुझे देंगे।' ऐसा दृढ़ विश्वास रखकर वे प्रतिदिन तपस्यामें लगी रहती थीं। इस तरह तपस्या करते-करते जब बहुत समय बीत गया, तब एक दिन उनके पास कोई बहुत बड़ा व्याघ्र देखा

तथैवोपगतस्यापि तस्यातीव दुरात्मनः।
गात्रं चित्रार्पितमिव स्तब्धं तस्याः सकाशतः॥ ९

तं दृष्ट्वापि तथा व्याघ्रं दुष्टभावादुपागतम्।
न पृथग्जनवद्देवी स्वभावेन विविच्यते॥ १०
स तु विष्टब्धसर्वांगो बुभुक्षापरिपीडितः।
ममामिषं ततो नान्यदिति मत्वा निरन्तरम्॥ ११
निरीक्ष्यमाणः सततं देवीमेव तदाऽनिशम्।
अतिष्ठदग्रतस्तस्या उपासनमिवाचरत्॥ १२
देव्याश्च हृदये नित्यं ममैवायमुपासकः।
त्राता च दुष्टसत्त्वेभ्य इति प्रववृते कृपा॥ १३

तस्या एव कृपायोगात्सद्यो नष्टमलत्रयः।
बभूव सहसा व्याघ्रो देवीं च बुबुधे तदा॥ १४

न्यवर्तत बुभुक्षा च तस्याङ्गस्तम्भनं तथा।
दौरात्म्यं जन्मसिद्धं च तृप्तिश्च समजायत॥ १५

तदा परमभावेन ज्ञात्वा कार्तार्थ्यमात्मनः।
सद्योपासक एवैष सिषेवे परमेश्वरीम्॥ १६
दुष्टानामपि सत्त्वानां तथान्येषां दुरात्मनाम्।
स एव द्रावको भूत्वा विचचार तपोवने॥ १७
तपश्च ववृधे देव्यास्तीव्रं तीव्रतरात्मकम्।
देवाश्च दैत्यनिर्बन्धाद् ब्रह्माणं शरणं गताः॥ १८

चक्रुर्निवेदनं देवाः स्वदुःखस्यारिपीडनात्।
यथा च ददतुः शुम्भनिशुम्भौ वरसम्मदात्॥ १९

सोऽपि श्रुत्वा विधिर्दुःखं सुराणां कृपयान्वितः।
आसीद्दैत्यवधायैव स्मृत्वा हेत्वाश्रयां कथाम्॥ २०

सामरः प्रार्थितो ब्रह्मा ययौ देव्यास्तपोवनम्।
संस्मरन्मनसा देवदुःखमोक्षं स्वयत्नतः॥ २१

गया। वह दुष्टभावसे वहाँ आया था। पार्वतीजीके निकट आते ही उस दुरात्माका शरीर जडवत् हो गया। वह उनके समीप चित्रलिखित-सा दिखायी देने लगा॥ ७—९॥

दुष्टभावसे पास आये हुए उस व्याघ्रको देखकर भी देवी पार्वती साधारण नारीकी भाँति स्वभावसे विचलित नहीं हुईं। उस व्याघ्रके सारे अंग अकड़ गये थे। वह भूखसे अत्यन्त पीड़ित हो रहा था और यह सोचकर कि 'यही मेरा भोजन है' निरन्तर देवीकी ओर ही देख रहा था। देवीके सामने खड़ा-खड़ा वह रातों-दिन उनकी उपासना-सी करने लगा॥ १०—१२॥

इधर देवीके हृदयमें सदा यही भाव आता था कि यह व्याघ्र मेरा ही उपासक है, दुष्ट वन-जन्तुओंसे मेरी रक्षा करनेवाला है। यह सोचकर वे उसपर कृपा करने लगीं। उन्हींकी कृपासे उसके तीनों प्रकारके मल तत्काल नष्ट हो गये। फिर तो उस व्याघ्रको सहसा देवीके स्वरूपका बोध हुआ, उसकी भूख मिट गयी और उसके अंगोंकी जडता भी दूर हो गयी। साथ ही उसकी जन्मसिद्ध दुष्टता नष्ट हो गयी और उसे निरन्तर तृप्ति बनी रहने लगी॥ १३—१५॥

उस समय उत्कृष्टरूपसे अपनी कृतार्थताका अनुभव करके वह तत्काल भक्त हो गया और उन परमेश्वरीकी सेवा करने लगा। अब वह अन्य दुष्ट जन्तुओंको खदेड़ता हुआ तपोवनमें विचरने लगा। इधर देवीकी तपस्या बढ़ी और तीव्रसे तीव्रतर होती गयी॥ १६-१७१/२॥

[उसी समय] देवता शुम्भ आदि दैत्योंके दुराग्रहसे दुखी हो ब्रह्माजीकी शरणमें गये। उन्होंने शत्रुपीडनजनित अपने दुःखको उनसे निवेदन किया। शुम्भ और निशुम्भ वरदान पानेके घमंडसे देवताओंको जैसे-जैसे दुःख देते थे, वह सब सुनकर ब्रह्माजीको उनपर बड़ी दया आयी। उन्होंने दैत्यवधके लिये भगवान् शंकरके साथ हुई बातचीतका स्मरण करके और अपने प्रयत्नसे देवताओंके दुःखनाशके विषयमें मन-ही-मन सोचते हुए देवताओंके प्रार्थना करनेपर उनके साथ देवीके तपोवनको प्रस्थान किया॥ १८—२१॥

ददर्श च सुरश्रेष्ठः श्रेष्ठे तपसि निष्ठिताम्।
प्रतिष्ठामिव विश्वस्य भवानीं परमेश्वरीम्॥ २२

ननाम चास्य जगतो मातरं स्वस्य वै हरेः।
रुद्रस्य च पितुर्भार्यामार्यामद्रीश्वरात्मजाम्॥ २३

ब्रह्माणमागतं दृष्ट्वा देवी देवगणैः सहः।
अर्घ्यं तदर्हं दत्त्वाऽस्मै स्वागताद्यैरुपाचरत्॥ २४

तां च प्रत्युपचारोक्तिं पुरस्कृत्याभिनन्द्य च।
पप्रच्छ तपसो हेतुमजानन्निव पद्मजः॥ २५

वहाँ सुरश्रेष्ठ ब्रह्माने उत्तम तपमें परिनिष्ठित परमेश्वरी पार्वतीको देखा। वे सम्पूर्ण जगत्की प्रतिष्ठा-सी जान पड़ती थीं। अपने, श्रीहरिके तथा रुद्रदेवके भी जन्मदाता पिता महामहेश्वरकी भार्या आर्या जगन्माता गिरिराजनन्दिनी पार्वतीजीको ब्रह्माजीने प्रणाम किया। देवगणोंके साथ ब्रह्माजीको आया देख देवीने उनके योग्य अर्घ्य देकर स्वागत आदिके द्वारा उनका सत्कार किया। बदलेमें उनका भी सत्कार और अभिनन्दन करके ब्रह्माजी अनजानकी भाँति देवीकी तपस्याका कारण पूछने लगे॥ २२—२५॥

ब्रह्मोवाच

तीव्रेण तपसानेन देव्या किमिह साध्यते।
तपःफलानां सर्वेषां त्वदधीना हि सिद्धयः॥ २६

यश्चैव जगतां भर्ता तमेव परमेश्वरम्।
भर्तारमात्मना प्राप्य प्राप्तं च तपसः फलम्॥ २७

अथवा सर्वमेवैतत्क्रीडाविलसितं तव।
इदं तु चित्रं देवस्य विरहं सहसे कथम्॥ २८

ब्रह्माजी बोले—देवि! इस तीव्र तपस्याके द्वारा आप यहाँ किस अभीष्ट मनोरथकी सिद्धि करना चाहती हैं? तपस्याके सम्पूर्ण फलोंकी सिद्धि तो आपके ही अधीन है। जो समस्त लोकोंके स्वामी हैं, उन्हीं परमेश्वरको पतिके रूपमें पाकर आपने तपस्याका सम्पूर्ण फल प्राप्त कर लिया है अथवा यह सारा ही क्रियाकलाप आपका लीलाविलास है। परंतु आश्चर्यकी बात तो यह है कि आप इतने दिनोंसे महादेवजीके विरहका कष्ट कैसे सह रही हैं?॥ २६—२८॥

देव्युवाच

सर्गादौ भवतो देवादुत्पत्तिः श्रूयते यदा।
तदा प्रजानां प्रथमस्त्वं मे प्रथमजः सुतः॥ २९

यदा पुनः प्रजावृद्ध्यै ललाटाद्भवतो भवः।
उत्पन्नोऽभूत्तदा त्वं मे गुरुः श्वशुरभावतः॥ ३०

यदाभवद्गिरीन्द्रस्ते पुत्रो मम पिता स्वयम्।
तदा पितामहस्त्वं मे जातो लोकपितामह॥ ३१

तदीदृशस्य भवतो लोकयात्राविधायिनः।
वृत्तमन्तःपुरे भर्त्रा कथयिष्ये कथं पुनः॥ ३२

किमत्र बहुना देहे यश्चायं मम कालिमा।
त्यक्त्वा सत्त्वविधानेन गौरी भवितुमुत्सहे॥ ३३

देवीने कहा—ब्रह्मन्! जब सृष्टिके आदिकालमें महादेवजीसे आपकी उत्पत्ति सुनी जाती है, तब समस्त प्रजाओंमें प्रथम होनेके कारण आप मेरे ज्येष्ठ पुत्र होते हैं। फिर जब प्रजाकी वृद्धिके लिये आपके ललाटसे भगवान् शिवका प्रादुर्भाव हुआ, तब आप मेरे पतिके पिता और मेरे श्वशुर होनेके कारण गुरुजनोंकी कोटिमें आ जाते हैं और जब मैं यह सोचती हूँ कि स्वयं मेरे पिता गिरिराज हिमालय आपके पुत्र हैं, तब आप मेरे साक्षात् पितामह लगते हैं। लोकपितामह! इस तरह आप लोकयात्राके विधाता हैं। अन्तः-पुरमें पतिके साथ जो वृत्तान्त घटित हुआ है, उसे मैं आपके सामने कैसे कह सकूँगी? अतः यहाँ बहुत कहनेसे क्या लाभ? मेरे शरीरमें जो यह कालापन है, इसे सात्त्विक-विधिसे त्यागकर मैं गौरवर्णा होना चाहती हूँ॥ २९—३३॥

ब्रह्मोवाच

एतावता किमर्थेन तीव्रं देवि तपः कृतम्।
स्वेच्छैव किमपर्याप्ता क्रीडेयं हि तवेदृशी॥ ३४

क्रीडाऽपि च जगन्मातस्तव लोकहिताय वै।
अतो ममेष्टमनया फलं किमपि साध्यताम्॥ ३५

ब्रह्माजी बोले—देवि! इतने ही प्रयोजनके लिये आपने ऐसा कठोर तप क्यों किया? क्या इसके लिये आपकी इच्छामात्र ही पर्याप्त नहीं थी? अथवा यह भी आपकी एक लीला ही है। जगन्मातः! आपकी लीला भी लोकहितके लिये ही होती है। अतः आप इसके द्वारा मेरे एक अभीष्ट फलकी सिद्धि कीजिये॥ ३४-३५॥

निशुंभशुंभनामानौ दैत्यौ दत्तवरौ मया।
दृप्तौ देवान्प्रबाधेते त्वत्तो लब्धस्तयोर्वधः॥ ३६

अलं विलम्बनेनात्र त्वं क्षणेन स्थिरा भव।
शक्तिर्विसृज्यमानाद्य तयोर्मृत्युर्भविष्यति॥ ३७

निशुम्भ और शुम्भ नामक दो दैत्य हैं, उनको मैंने वर दे रखा है। इससे उनका घमंड बहुत बढ़ गया है और वे देवताओंको सता रहे हैं। उन दोनोंको आपके ही हाथसे मारे जानेका वरदान प्राप्त हुआ है। अतः अब विलम्ब करनेसे कोई लाभ नहीं। आप क्षणभरके लिये सुस्थिर हो जाइये। आपके द्वारा जो शक्ति रची या छोड़ी जायगी, वही उन दोनोंके लिये मृत्युरूपा हो जायगी॥ ३६-३७॥

ब्रह्मणाऽभ्यर्थिता चैव देवी गिरिवरात्मजा।
त्वक्कोशं सहसोत्सृज्य गौरी सा समजायत॥ ३८

सा त्वक्कोशात्मनोत्सृष्टा कौशिकी नाम नामतः।
काली कालाम्बुदप्रख्या कन्यका समपद्यत॥ ३९

ब्रह्माजीके इस प्रकार प्रार्थना करनेपर गिरिराज-कुमारी देवी पार्वती सहसा [अपनी काली] त्वचाके आवरणको उतारकर गौरवर्णा हो गयीं। त्वचाकोष (काली त्वचामय आवरण)-रूपसे त्यागी गयी जो उनकी शक्ति थी, उसका नाम 'कौशिकी' हुआ। वह काले मेघके समान कान्तिवाली कृष्णवर्णा कन्या हो गयी॥ ३८-३९॥

सा तु मायात्मिका शक्तिर्योगनिद्रा च वैष्णवी।
शंखचक्रत्रिशूलादिसायुधाष्टमहाभुजा ॥ ४०

सौम्या घोरा च मिश्रा च त्रिनेत्रा चन्द्रशेखरा।
अजातपुंस्पर्शरतिरधृष्या चातिसुन्दरी॥ ४१

देवीकी वह मायामयी शक्ति ही योगनिद्रा और वैष्णवी कहलाती है। उसके आठ बड़ी-बड़ी भुजाएँ थीं। उसने उन हाथोंमें शंख, चक्र और त्रिशूल आदि आयुध धारण कर रखे थे। उस देवीके तीन रूप हैं—सौम्य, घोर और मिश्र। वह तीन नेत्रोंसे युक्त थी। उसने मस्तकपर अर्धचन्द्रका मुकुट धारण कर रखा था। उसे पुरुषका स्पर्श तथा रतिका योग नहीं प्राप्त था और वह [दूसरोंसे] अजेय थी एवं अत्यन्त सुन्दरी थी॥ ४०-४१॥

दत्ता च ब्रह्मणे देव्या शक्तिरेषा सनातनी।
निशुंभस्य च शुंभस्य निहन्त्री दैत्यसिंहयोः॥ ४२

ब्रह्मणाऽपि प्रहृष्टेन तस्यै परमशक्तये।
प्रबलः केसरी दत्तो वाहनत्वे समागतः॥ ४३

देवीने अपनी इस सनातन शक्तिको ब्रह्माजीके हाथमें दे दिया। वही दैत्यप्रवर शुम्भ और निशुम्भका वध करनेवाली हुई। उस समय प्रसन्न हुए ब्रह्माजीने उस पराशक्तिको सवारीके लिये एक प्रबल सिंह प्रदान किया, जो उनके साथ ही आया था॥ ४२-४३॥

विन्ध्ये च वसतिं तस्याः पूजामासवपूर्वकैः।
मांसैर्मत्स्यैरपूपैश्च निर्वर्त्यासौ समादिशत्॥ ४४

सा चैव संमता शक्तिर्ब्रह्मणो विश्वकर्मणः।
प्रणम्य मातरं गौरीं ब्रह्माणं चानुपूर्वशः॥ ४५

शक्तिभिश्चापि तुल्याभिः स्वात्मजाभिरनेकशः।
परीता प्रययौ विन्ध्यं दैत्येन्द्रौ हन्तुमुद्यता॥ ४६

निहतौ च तया तत्र समरे दैत्यपुंगवौ।
तद्बाणैः कामबाणैश्च च्छिन्नभिन्नाङ्गमानसौ॥ ४७

तद्युद्धविस्तरश्चात्र न कृतोऽन्यत्र वर्णनात्।
ऊहनीयं परस्माच्च प्रस्तुतं वर्णयामि वः॥ ४८

उस देवीके रहनेके लिये ब्रह्माजीने विन्ध्य-गिरिपर वासस्थान दिया और वहाँ नाना प्रकारके उपचारोंसे उसका पूजन किया। विश्वकर्मा ब्रह्माके द्वारा सम्मानित हुई वह शक्ति अपनी माता गौरीको और ब्रह्माजीको क्रमशः प्रणाम करके अपने ही अंगोंसे उत्पन्न और अपने ही समान शक्तिशालिनी बहुसंख्यक शक्तियोंको साथ ले दैत्यराज शुम्भ-निशुम्भको मारनेके लिये उद्यत होकर विन्ध्यपर्वतको चली गयी॥ ४४—४६॥

उसने समरांगणमें शुम्भ-निशुम्भके मन तथा शरीरको अपने हाव-भावरूप बाणों तथा [वास्तविक] बाणोंसे छिन्न-भिन्नकर उन दोनों दैत्यराजोंको मार गिराया। उस युद्धका अन्यत्र वर्णन हो चुका है, इसलिये उसकी विस्तृत कथा यहाँ नहीं कही गयी। दूसरे स्थलोंसे उसकी ऊहा कर लेनी चाहिये। अब मैं प्रस्तुत प्रसंगका वर्णन करता हूँ॥ ४७-४८॥

इति श्रीशिवमहापुराणे सप्तम्यां वायवीयसंहितायां पूर्वखण्डे देवीगौरत्वप्राप्तिर्नाम पञ्चविंशोऽध्यायः॥ २५॥

॥ इस प्रकार श्रीशिवमहापुराणके अन्तर्गत सातवीं वायवीयसंहिताके पूर्वखण्डमें देवीगौरत्व-प्राप्ति नामक पच्चीसवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ २५॥

अथ षड्विंशोऽध्यायः

ब्रह्माजीद्वारा दुष्कर्मी बतानेपर भी गौरीदेवीका शरणागत व्याघ्रको त्यागनेसे इनकार करना और माता-पितासे मिलकर मन्दराचलको जाना

वायुरुवाच

उत्पाद्य कौशिकीं गौरी ब्रह्मणे प्रतिपाद्य ताम्।
तस्य प्रत्युपकाराय पितामहमथाब्रवीत्॥ १

देव्युवाच

दृष्टः किमेष भवता शार्दूलो मदुपाश्रयः।
अनेन दुष्टसत्त्वेभ्यो रक्षितं मत्तपोवनम्॥ २

मय्यर्पितमना एष भजते मामनन्यधीः।
अस्य संरक्षणादन्यत्प्रियं मम न विद्यते॥ ३

भवितव्यमनेनातो ममान्तःपुरचारिणा।
गणेश्वरपदं चास्मै प्रीत्या दास्यति शंकरः॥ ४

वायुदेवता कहते हैं—कौशिकीको उत्पन्न करके उसे ब्रह्माजीके हाथमें देनेके पश्चात् गौरी देवीने प्रत्युपकारके लिये पितामहसे कहा—॥ १॥

देवी बोलीं—क्या आपने मेरे आश्रयमें रहनेवाले इस व्याघ्रको देखा है? इसने दुष्ट जन्तुओंसे मेरे तपोवनकी रक्षा की है। यह मुझमें अपना मन लगाकर अनन्यभावसे मेरा भजन करता रहा है। अतः इसकी रक्षाके सिवा दूसरा कोई मेरा प्रिय कार्य नहीं है। यह मेरे अन्तःपुरमें विचरनेवाला होगा। भगवान् शंकर इसे प्रसन्नतापूर्वक गणेश्वरका पद प्रदान

एनमग्रेसरं कृत्वा सखीभिर्गन्तुमुत्सहे।
प्रदीयतामनुज्ञा मे प्रजानां पतिना त्वया॥ ५

करेंगे। मैं इसे आगे करके सखियोंके साथ यहाँसे जाना चाहती हूँ। इसके लिये आप मुझे आज्ञा दें; क्योंकि आप प्रजापति हैं॥ २—५॥

इत्युक्तः प्रहसन्ब्रह्मा देवीं मुग्धामिव स्मयन्।
तस्य तीव्रैः पुरावृत्तैर्दौरात्म्यं समवर्णयत्॥ ६

देवीके ऐसा कहनेपर उन्हें भोली-भाली जान हँसते और मुसकराते हुए ब्रह्माजी उस व्याघ्रकी पुरानी क्रूरतापूर्ण करतूतें बताते हुए उसकी दुष्टताका वर्णन करने लगे॥ ६॥

ब्रह्मोवाच

पशौ देवि मृगाः क्रूराः क्व च तेऽनुग्रहः शुभः।
आशीविषमुखे साक्षादमृतं किं निषिच्यते॥ ७

व्याघ्रमात्रेण सन्नेष दुष्टः कोऽपि निशाचरः।
अनेन भक्षिता गावो ब्राह्मणाश्च तपोधनाः॥ ८

तर्पयंस्तान् यथाकामं कामरूपी चरत्यसौ।
अवश्यं खलु भोक्तव्यं फलं पापस्य कर्मणः॥ ९

अतः किं कृपया कृत्यमीदृशेषु दुरात्मसु।
अनेन देव्याः किं कृत्यं प्रकृत्या कलुषात्मना॥ १०

ब्रह्माजीने कहा—देवि! कहाँ तो पशुओंमें क्रूर व्याघ्र और कहाँ यह आपकी मंगलमयी कृपा। आप विषधर सर्पके मुखमें साक्षात् अमृत क्यों सींच रही हैं? यह तो व्याघ्रके रूपमें रहनेवाला कोई दुष्ट निशाचर है। इसने बहुत-सी गौओं और तपस्वी ब्राह्मणोंको खा डाला है। यह उन सबको इच्छानुसार ताप देता हुआ मनमाना रूप धारण करके विचरता है। अतः इसे अपने पापकर्मका फल अवश्य भोगना चाहिये। ऐसे दुष्टोंपर आपको कृपा करनेकी क्या आवश्यकता है? स्वभावसे ही कलुषित चित्तवाले इस दुष्ट जीवसे देवीको क्या काम है?॥ ७—१०॥

देव्युवाच

यदुक्तं भवता सर्वं तथ्यमस्त्वयमीदृशः।
तथापि मां प्रपन्नोऽभून्न त्याज्यो मामुपाश्रितः॥ ११

देवी बोलीं—आपने जो कुछ कहा है, वह सब ठीक है। यह ऐसा ही सही, तथापि मेरी शरणमें आ गया है। अतः मुझे इसका त्याग नहीं करना चाहिये॥ ११॥

ब्रह्मोवाच

अस्य भक्तिमविज्ञाय प्राग्वृत्तं ते निवेदितम्।
भक्तिश्चेदस्य किं पापैर्न ते भक्तः प्रणश्यति॥ १२

पुण्यकर्मापि किं कुर्य्यात्त्वदीयाज्ञानपेक्षया।
अजा प्रज्ञा पुराणी च त्वमेव परमेश्वरी॥ १३

ब्रह्माजीने कहा—देवि! इसकी आपके प्रति भक्ति है, इस बातको जाने बिना ही मैंने आपके समक्ष इसके पूर्वचरित्रका वर्णन किया है। यदि इसके भीतर भक्ति है तो पहलेके पापोंसे इसका क्या बिगड़नेवाला है; क्योंकि आपके भक्तका कभी नाश नहीं होता। जो आपकी आज्ञाका पालन नहीं करता, वह पुण्यकर्मा होकर भी क्या करेगा? देवि! आप ही अजन्मा, बुद्धिमती, पुरातन शक्ति और परमेश्वरी हैं॥ १२-१३॥

त्वदधीना हि सर्वेषां बंधमोक्षव्यवस्थितिः।
त्वदृते परमा शक्तिः संसिद्धिः कस्य कर्मणा॥ १४

त्वमेव विविधा शक्तिः भवानामथ वा स्वयम्।
अशक्तः कर्मकरणे कर्ता वा किं करिष्यति॥ १५

विष्णोश्च मम चान्येषां देवदानवरक्षसाम्।

सबके बन्ध और मोक्षकी व्यवस्था आपके ही अधीन है। आपके सिवा पराशक्ति कौन है? आपके बिना किसको कर्मजनित सिद्धि प्राप्त हो सकती है? आप ही स्वयमेव असंख्य रुद्रोंकी विविधरूपा शक्ति हैं। शक्तिरहित कर्ता काम करनेमें कौन-सी सफलता प्राप्त करेगा? भगवान् विष्णुको, मुझको तथा अन्य

तत्तदैश्वर्यसम्प्राप्त्यै तवैवाज्ञा हि कारणम्॥ १६

अतीताः खल्वसंख्याता ब्रह्माणो हरयो भवाः।
अनागतास्त्वसंख्यातास्त्वदाज्ञानुविधायिनः ॥ १७

त्वामनाराध्य देवेशि पुरुषार्थचतुष्टयम्।
लब्धुं न शक्यमस्माभिरपि सर्वैः सुरोत्तमैः॥ १८

व्यत्यासोऽपि भवेत्सद्यो ब्रह्मत्वस्थावरत्वयोः।
सुकृतं दुष्कृतं चापि त्वयैव स्थापितं यतः॥ १९

त्वं हि सर्वजगद्भर्तुः शिवस्य परमात्मनः।
अनादिमध्यनिधना शक्तिराद्या सनातनी॥ २०

समस्तलोकयात्रार्थं मूर्तिमाविश्य कामपि।
क्रीडसे विविधैर्भावैः कस्त्वां जानाति तत्त्वतः॥ २१

अतो दुष्कृतकर्मापि व्याघ्रोऽयं त्वदनुग्रहात्।
प्राप्नोतु परमां सिद्धिमत्र कः प्रतिबन्धकः॥ २२

इत्यात्मनः परं भावं स्मारयित्वानुरूपतः।
ब्रह्मणाभ्यर्थिता गौरी तपसोऽपि न्यवर्तत॥ २३

ततो देवीमनुज्ञाप्य ब्रह्मण्यन्तर्हिते सति।
देवीं च मातरं दृष्ट्वा मेनां हिमवता सह॥ २४

प्रणम्याश्वास्य बहुधा पितरौ विरहासहौ।
तपः प्रणयिनो देवी तपोवनमहीरुहान्॥ २५

विप्रयोगशुचेवाग्रे पुष्पबाष्पं विमुञ्चतः।
तत्तच्छाखासमारूढविहगोदीरितै रुतैः॥ २६

व्याकुलं बहुधा दीनं विलापमिव कुर्वतः।

देवता, दानव और राक्षसोंको उन-उन ऐश्वर्योंकी प्राप्ति करानेके लिये आपकी आज्ञा ही कारण है। असंख्य ब्रह्मा, विष्णु तथा रुद्र, जो आपकी आज्ञाका पालन करनेवाले हैं, बीत चुके हैं और भविष्यमें भी होंगे। देवेश्वरि! आपकी आराधना किये बिना हम सब श्रेष्ठ देवता भी धर्म आदि चारों पुरुषार्थोंकी प्राप्ति नहीं कर सकते॥ १४—१८॥

आपके संकल्पसे ब्रह्मत्व और स्थावरत्वका तत्काल व्यत्यास (फेर-बदल) भी हो जाता है अर्थात् ब्रह्मा स्थावर (वृक्ष आदि) हो जाता है और स्थावर ब्रह्मा; क्योंकि पुण्य और पापके फलोंकी व्यवस्था आपने ही की है। आप ही जगत्के स्वामी परमात्मा शिवकी अनादि, अमध्य और अनन्त सनातन आदिशक्ति हैं॥ १९-२०॥

आप सम्पूर्ण लोकयात्राका निर्वाह करनेके लिये किसी अद्‌भुत मूर्तिमें आविष्ट हो नाना प्रकारके भावोंसे क्रीड़ा करती हैं। भला, आपको ठीक-ठीक कौन जानता है। अतः यह पापाचारी व्याघ्र भी आज आपकी कृपासे परम सिद्धि प्राप्त करे, इसमें कौन बाधक हो सकता है॥ २१-२२॥

इस प्रकार [देवीको] उनके परम तत्त्वका स्मरण कराकर ब्रह्माजीने जब उचित प्रार्थना की, तब गौरीदेवी तपस्यासे निवृत्त हुईं। तदनन्तर देवीकी आज्ञा लेकर ब्रह्माजी अन्तर्धान हो गये। फिर देवीने अपने वियोगको न सह सकनेवाले माता-पिता मेना और हिमवान्‌का दर्शन करके उन्हें प्रणाम किया तथा उन्हें नाना प्रकारसे आश्वासन दिया। इसके बाद देवीने तपस्याके प्रेमी तपोवनके वृक्षोंको देखा। वे उनके सामने फूलोंकी वर्षा कर रहे थे। ऐसा जान पड़ता था, मानो उनसे होनेवाले वियोगके शोकसे पीड़ित हो वे आँसू बरसा रहे हों। अपनी शाखाओंपर बैठे हुए विहंगमोंके कलरवोंके व्याजसे मानो वे व्याकुलतापूर्वक नाना प्रकारसे दीनतापूर्ण विलाप कर रहे थे॥ २३—२६½॥

सखीभ्यः कथयन्त्वेवं सत्त्वरा भर्तृदर्शने॥ २७

पुरस्कृत्य च तं व्याघ्रं स्नेहात्पुत्रमिवौरसम्।
देहस्य प्रभया चैव दीपयन्ती दिशो दश॥ २८

प्रययौ मन्दरं गौरी यत्र भर्ता महेश्वरः।
सर्वेषां जगतां धाता कर्ता पाता विनाशकृत्॥ २९

तदनन्तर पतिके दर्शनके लिये उतावली हो उस व्याघ्रको औरस पुत्रकी भाँति स्नेहसे आगे करके सखियोंसे बातचीत करती और देहकी दिव्य प्रभासे दसों दिशाओंको उद्दीपित करती हुई गौरीदेवी मन्दराचलको चली गयीं, जहाँ सम्पूर्ण जगत्‌के आधार, स्रष्टा, पालक और संहारक पतिदेव महेश्वर विराजमान थे॥ २७—२९॥

इति श्रीशिवमहापुराणे सप्तम्यां वायवीयसंहितायां पूर्वखण्डे व्याघ्रगतिवर्णनं नाम षड्विंशोऽध्यायः॥ २६॥

॥ इस प्रकार श्रीशिवमहापुराणके अन्तर्गत सातवीं वायवीयसंहिताके पूर्वखण्डमें व्याघ्रगतिवर्णन नामक छब्बीसवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ २६॥

अथ सप्तविंशोऽध्यायः

मन्दराचलपर गौरीदेवीका स्वागत, महादेवजीके द्वारा उनके और अपने उत्कृष्ट स्वरूप एवं अविच्छेद्य सम्बन्धका प्रकाशन तथा देवीके साथ आये हुए व्याघ्रको उनका गणाध्यक्ष बनाकर अन्तःपुरके द्वारपर सोमनन्दी नामसे प्रतिष्ठित करना

ऋषय ऊचुः

कृत्वा गौरं वपुर्दिव्यं देवी गिरिवरात्मजा।
कथं ददर्श भर्तारं प्रविष्टा मन्दिरं सती॥ १

प्रवेशसमये तस्या भवनद्वारगोचरैः।
गणेशैः किं कृतं देवस्तां दृष्ट्वा किं तदाकरोत्॥ २

ऋषियोंने पूछा—अपने शरीरको दिव्य गौरवर्णसे युक्त बनाकर गिरिराजकुमारी देवी पार्वतीने जब मन्दराचल प्रदेशमें प्रवेश किया, तब वे अपने पतिसे किस प्रकार मिलीं? प्रवेशकालमें उनके भवनद्वारपर रहनेवाले गणेश्वरोंने क्या किया तथा महादेवजीने भी उन्हें देखकर उस समय उनके साथ कैसा बर्ताव किया?॥ १-२॥

वायुरुवाच

प्रवक्तुमञ्जसाशक्यः तादृशः परमो रसः।
येन प्रणयगर्भेण भावो भाववतां हृतः॥ ३

द्वाःस्थैः ससंभ्रमैरेव देवो देव्यागमोत्सुकः।
शंकमाना प्रविष्टान्तस्तं च सा समपश्यत॥ ४

तैस्तैः प्रणयभावैश्च भवनान्तरवर्तिभिः।
गणेन्द्रैर्वन्दिता वाचा प्रणनाम त्रियम्बकम्॥ ५

वायुदेवताने कहा—जिस प्रेमगर्भित रसके द्वारा अनुरागी पुरुषोंके मनका हरण हो जाता है, उस परम रसका ठीक-ठीक वर्णन करना असम्भव है। द्वारपाल बड़ी उतावलीसे राह देखते थे। उनके साथ ही महादेवजी भी देवीके आगमनके लिये उत्सुक थे। जब वे भवनमें प्रवेश करने लगीं, तब शंकित हो उन-उन प्रेमजनित भावोंसे वे उनकी ओर देखने लगे। देवी भी उनकी ओर उन्हीं भावोंसे देख रही थीं। उस समय उस भवनमें रहनेवाले श्रेष्ठ पार्षदोंने देवीकी वन्दना की। फिर देवीने विनययुक्त वाणीद्वारा भगवान् त्रिलोचनको प्रणाम किया॥ ३—५॥

प्रणम्य नोत्थिता यावत्तावत्तां परमेश्वरः।
प्रगृह्य दोर्भ्यामाश्लिष्य परितः परया मुदा॥ ६

वे प्रणाम करके अभी उठने भी नहीं पायी थीं कि परमेश्वरने उन्हें दोनों हाथोंसे पकड़कर बड़े आनन्दके साथ हृदयसे लगा लिया॥ ६॥

स्वाङ्के धर्तुं प्रवृत्तोऽपि सा पर्यङ्के न्यषीदत।
पर्यङ्कतो बलाद्देवीं सोऽङ्कमारोप्य सुस्मिताम्॥ ७

सस्मितो विवृतैर्नेत्रैस्तद्वक्त्रं प्रपिबन्निव।
तया संभाषणायेशः पूर्वभाषितमब्रवीत्॥ ८

उन्हें वे अपनी गोदमें ही बिठानेके लिये तत्पर हुए, पर तबतक पार्वती पलंगपर बैठ गयीं। फिर इसके बाद शिवजीने मधुर मुसकानसे समन्वित हुई देवीको बलपूर्वक पलंगसे उठाकर अपनी गोदमें बैठा लिया। फिर मुसकराते हुए वे एकटक नेत्रोंसे उनके मुखचन्द्रकी सुधाका पान-सा करने लगे। फिर उनसे बातचीत करनेके लिये उन्होंने पहले अपनी ओरसे वार्ता आरम्भ की॥ ७-८॥

देवदेव उवाच

सा दशा च व्यतीता किं तव सर्वांगसुन्दरि।
यस्यामनुनयोपायः कोऽपि कोपान्न लभ्यते॥ ९

स्वेच्छयापि न कालीति नान्यवर्णवतीति च।
त्वत्स्वभावहृतं चित्तं सुभ्रु चिंतावहं मम॥ १०

देवाधिदेव महादेवजी बोले—सर्वांगसुन्दरि प्रिये! क्या तुम्हारी वह मनोदशा दूर हो गयी, जिसके रहते तुम्हारे क्रोधके कारण मुझे अनुनय-विनयका कोई भी उपाय नहीं सूझता था। मेरा मन स्वेच्छासे भी नहीं, तुम्हारे काले वर्णसे नहीं अथवा अन्य किसी वर्णसे अपहृत नहीं हुआ, जैसा कि तुम्हारे स्वभावसे अपहृत है। जिसके कारण हे सुभ्रु! मैं बहुत ही चिन्तित हो गया था॥ ९-१०॥

विस्मृतः परमो भावः कथं स्वेच्छाङ्गयोगतः।
न सम्भवन्ति ये तत्र चित्तकालुष्यहेतवः॥ ११

पृथग्जनवदन्योऽन्यं विप्रियस्यापि कारणम्।
आवयोरपि यद्यस्ति नास्त्येवैतच्चराचरम्॥ १२

जो भाव स्वेच्छापूर्वक परस्पर अंगके संयोगसे उत्पन्न नहीं होते, ऐसे परम [भावरूप] रसको तुमने कैसे भुला दिया? अंगसंयोगसे उत्पन्न भाव तो चित्तमें कालुष्यके हेतु बनते हैं। यदि साधारण लोगोंकी भाँति हम दोनोंमें भी एक-दूसरेके अप्रियका कारण विद्यमान है, तब तो इस चराचर जगत्‌का नाश हुआ ही समझना चाहिये॥ ११-१२॥

अहमग्निशिरोनिष्ठस्त्वं सोमशिरसि स्थिता।
अग्नीषोमात्मकं विश्वमावाभ्यां समधिष्ठितम्॥ १३

जगद्धिताय चरतोः स्वेच्छाधृतशरीरयोः।
आवयोर्विप्रयोगे हि स्यान्निरालम्बनं जगत्॥ १४

अस्ति हेत्वन्तरं चात्र शास्त्रयुक्तिविनिश्चितम्।
वागर्थमिव चैवैतज्जगत्स्थावरजंगमम्॥ १५

त्वं हि वागमृतं साक्षादहमर्थामृतं परम्।
द्वयमप्यमृतं कस्माद्वियुक्तमुपपद्यते॥ १६

मैं अग्निके मस्तकपर स्थित हूँ और तुम सोमके। हम दोनोंसे ही यह अग्नि-सोमात्मक जगत् प्रतिष्ठित है। जगत्‌के हितके लिये स्वेच्छासे शरीर धारण करके विचरनेवाले हम दोनोंके वियोगमें यह जगत् निराधार हो जायगा। इसमें शास्त्र और युक्तिसे निश्चित किया हुआ दूसरा हेतु भी है। यह स्थावर-जंगमरूप जगत् वाणी और अर्थमय ही है। तुम साक्षात् वाणीमय अमृत हो और मैं अर्थमय परम उत्तम अमृत हूँ। ये दोनों अमृत एक-दूसरेसे विलग कैसे हो सकते हैं?॥ १३—१६॥

विद्याप्रत्यायिका त्वं मे वेद्योऽहं प्रत्ययात्तव।
विद्यावेद्यात्मनोरेव विश्लेषः कथमावयोः॥ १७

न कर्मणा सृजामीदं जगत्प्रतिसृजामि च।
सर्वस्याज्ञैकलभ्यत्वादाज्ञात्वं हि गरीयसी॥ १८

आज्ञैकसारमैश्वर्यं यस्मात्स्वातन्त्र्यलक्षणम्।
आज्ञया विप्रयुक्तस्य चैश्वर्यं मम कीदृशम्॥ १९

न कदाचिदवस्थानमावयोर्विप्रयुक्तयोः।
देवानां कार्यमुद्दिश्य लीलोक्तिं कृतवानहम्॥ २०

त्वयाप्यविदितं नास्ति कथं कुपितवत्यसि।
ततस्त्रिलोकरक्षार्थे कोपो मय्यपि ते कृतः॥ २१

यदनर्थाय भूतानां न तदस्ति खलु त्वयि।

इति प्रियंवदे साक्षादीश्वरे परमेश्वरे॥ २२

शृंगारभावसाराणां जन्मभूमिरकृत्रिमा।
स्वभर्त्रा ललितं तथ्यमुक्तं मत्वा स्मितोत्तरम्॥ २३

लज्जया न किमप्यूचे कौशिकी वर्णनात्परम्।
तदेव वर्णयाम्यद्य शृणु देव्याश्च वर्णनम्॥ २४

देव्युवाच

किं देवेन न सा दृष्टा या सृष्टा कौशिकी मया।
तादृशी कन्यका लोके न भूता न भविष्यति॥ २५

तस्या वीर्यं बलं विन्ध्यनिलयं विजयं तथा।
शुंभस्य च निशुंभस्य मारणे च रणे तयोः॥ २६

प्रत्यक्षफलदानं च लोकाय भजते सदा।
लोकानां रक्षणं शश्वद् ब्रह्मा विज्ञापयिष्यति॥ २७

तुम मेरे स्वरूपका बोध करानेवाली विद्या हो और मैं तुम्हारे दिये हुए विश्वासपूर्ण बोधसे जाननेयोग्य परमात्मा हूँ। हम दोनों क्रमशः विद्यात्मा और वेद्यात्मा हैं, फिर हममें वियोग होना कैसे सम्भव है? मैं अपने प्रयत्नसे जगत्‌की सृष्टि और संहार नहीं करता। एकमात्र आज्ञासे ही सबकी सृष्टि और संहार उपलब्ध होते हैं। वह अत्यन्त गौरवपूर्ण आज्ञा तुम्हीं हो॥ १७-१८॥

ऐश्वर्यका एकमात्र सार आज्ञा (शासन) है, क्योंकि वही स्वतन्त्रताका लक्षण है। आज्ञासे वियुक्त होनेपर मेरा ऐश्वर्य कैसा होगा। हमलोगोंका एक-दूसरेसे विलग होकर रहना कभी सम्भव नहीं है। देवताओंके कार्यकी सिद्धिके उद्देश्यसे ही मैंने [उस दिन] लीलापूर्वक व्यंग्य वचन कहा था॥ १९-२०॥

तुम्हें भी तो यह बात अज्ञात नहीं थी। फिर तुम कुपित कैसे हो गयीं! अतः यही कहना पड़ता है कि तुमने भी मुझपर जो क्रोध किया था, वह त्रिलोकीकी रक्षाके लिये ही था; क्योंकि तुममें ऐसी कोई बात नहीं है, जो जगत्‌के प्राणियोंका अनर्थ करनेवाली हो॥ २१$^{१}/_{२}$॥

इस प्रकार प्रिय वचन बोलनेवाले साक्षात् परमेश्वर शिवके प्रति शृंगाररसके सारभूत भावोंकी प्राकृतिक जन्मभूमि देवी पार्वती अपने पतिकी कही हुई यह मनोहर बात सुनकर तथा इसे सत्य जान मुसकराकर रह गयीं, लज्जावश कोई उत्तर न दे सकीं। केवल कौशिकी [के यश]-का वर्णन छोड़कर और कुछ उन्होंने नहीं कहा। देवीने कौशिकीके विषयमें जो कुछ कहा, उसका वर्णन करता हूँ॥ २२—२४॥

देवी बोलीं—'भगवन्! मैंने जिस कौशिकीकी सृष्टि की है, उसे क्या आपने नहीं देखा है? वैसी कन्या न तो इस लोकमें हुई है और न होगी।' यों कहकर देवीने उसके विन्ध्यपर्वतपर निवास करने तथा समरांगणमें शुम्भ और निशुम्भका वध करके उनपर विजय पानेका प्रसंग सुनाकर उसके बल-पराक्रमका वर्णन किया। साथ ही यह भी बताया कि वह उपासना करनेवाले लोगोंको सदा प्रत्यक्ष फल देती है तथा निरन्तर लोकोंकी रक्षा करती रहती है। इस विषयमें ब्रह्माजी आपको आवश्यक बातें बतायेंगे॥ २५—२७॥

इति संभाषमाणाया देव्या एवाज्ञया तदा।
व्याघ्रः सख्या समानीय पुरोऽवस्थापितस्तदा॥ २८

तं प्रेक्ष्याह पुनर्देवी देवानीतमुपायनम्।
व्याघ्रं पश्य न चानेन सदृशो मदुपासकः॥ २९

अनेन दुष्टसंघेभ्यो रक्षितं मत्तपोवनम्।
अतीव मम भक्तश्च विश्रब्धश्च स्वरक्षणात्॥ ३०

स्वदेशं च परित्यज्य प्रसादार्थं समागतः।
यदि प्रीतिरभून्मत्तः परां प्रीतिं करोषि मे॥ ३१

नित्यमन्तःपुरद्वारि नियोगान्नन्दिनः स्वयम्।
रक्षिभिः सह तच्चिह्नैर्वर्ततामयमीश्वर॥ ३२

वायुरुवाच

मधुरं प्रणयोदर्कं श्रुत्वा देव्याः शुभं वचः।
प्रीतोऽस्मीत्याह तं देवः स चादृश्यत तत्क्षणात्॥ ३३

बिभ्रद्वेत्रलतां हैमीं रत्नचित्रं च कञ्चुकम्।
छुरिकामुरगप्रख्यां गणेशो रक्षवेषधृक्॥ ३४

यस्मात्सोमो महादेवो नन्दी चानेन नन्दितः।
सोमनन्दीति विख्यातस्तस्मादेष समाख्यया॥ ३५

इत्थं देव्याः प्रियं कृत्वा देवश्चार्द्धेन्दुभूषणः।
भूषयामास तं दिव्यैर्भूषणै रत्नभूषितैः॥ ३६

ततः स गौरीं गिरिशो गिरीन्द्रजां
सगौरवां सर्वमनोहरां हरः।
पर्यङ्कमारोप्य वराङ्गभूषणै-
र्विभूषयामास शशाङ्कभूषणः॥ ३७

उस समय इस प्रकार बातचीत करती हुई देवीकी आज्ञासे ही एक सखीने उस व्याघ्रको लाकर उनके सामने खड़ा कर दिया। उसे देखकर देवी कहने लगीं— 'देव! यह व्याघ्र मैं आपके लिये भेंट लायी हूँ। आप इसे देखिये। इसके समान मेरा उपासक दूसरा कोई नहीं है॥ २८-२९॥

इसने दुष्ट जन्तुओंके समूहसे मेरे तपोवनकी रक्षा की थी। यह मेरा अत्यन्त भक्त है और अपने रक्षणात्मक कार्यसे मेरा विश्वासपात्र बन गया है। मेरी प्रसन्नताके लिये यह अपना देश छोड़कर यहाँ आ गया है। महेश्वर! यदि मेरे आनेसे आपको प्रसन्नता हुई है और यदि आप मुझसे अत्यन्त प्रेम करते हैं तो मैं चाहती हूँ कि यह नन्दीकी आज्ञासे मेरे अन्तःपुरके द्वारपर अन्य रक्षकोंके साथ उन्हींके चिह्न धारण करके सदा स्थित रहे॥ ३०—३२॥

वायुदेव कहते हैं—देवीके इस मधुर और अन्ततोगत्वा प्रेम बढ़ानेवाले शुभ वचनको सुनकर महादेवजीने कहा—'मैं बहुत प्रसन्न हूँ।' फिर तो वह व्याघ्र उसी क्षण लचकती हुई सुवर्णजटित बेंतकी छड़ी, रत्नोंसे जटित विचित्र कवच, सर्पकी-सी आकृतिवाली छुरी तथा रक्षकोचित वेष धारण किये गणाध्यक्षके पदपर प्रतिष्ठित दिखायी दिया॥ ३३-३४॥

उसने उमासहित महादेव [और नन्दी]-को आनन्दित किया था। इसलिये सोमनन्दी नामसे विख्यात हुआ। इस प्रकार देवीका प्रिय कार्य करके चन्द्रार्धभूषण महादेवजीने उन्हें रत्नभूषित दिव्य आभूषणोंसे भूषित किया॥ ३५-३६॥

चन्द्रभूषण भगवान् शिवने सर्वमनोहारिणी गिरिराजकुमारी गौरी देवीको पलंगपर बिठाकर उस समय सुन्दर अलंकारोंसे स्वयं ही उनका शृंगार किया॥ ३७॥

इति श्रीशिवमहापुराणे सप्तम्यां वायवीयसंहितायां पूर्वखण्डे देवीशिवमिलनवर्णनं नाम सप्तविंशोऽध्यायः॥ २७॥

॥ इस प्रकार श्रीशिवमहापुराणके अन्तर्गत सातवीं वायवीयसंहिताके पूर्वखण्डमें देवीशिवमिलनवर्णन नामक सत्ताईसवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ २७॥

अथाष्टाविंशोऽध्यायः

अग्नि और सोमके स्वरूपका विवेचन तथा जगत्की अग्नीषोमात्मकताका प्रतिपादन

ऋषय ऊचुः

देवीं समादधानेन देवेनेदं किमीरितम्।
अग्नीषोमात्मकं विश्वं वागर्थात्मकमित्यपि॥ १

आज्ञैकसारमैश्वर्यमाज्ञात्वमिति चोदितम्।
तदिदं श्रोतुमिच्छामो यथावदनुपूर्वशः॥ २

ऋषियोंने पूछा—प्रभो! पार्वती देवीका समाधान करते हुए महादेवजीने यह बात क्यों कही कि 'सम्पूर्ण विश्व अग्नीषोमात्मक एवं वागर्थात्मक है। ऐश्वर्यका सार एकमात्र आज्ञा ही है और वह आज्ञा तुम हो।' अतः इस विषयमें हम क्रमशः यथार्थ बातें सुनना चाहते हैं॥ १-२॥

वायुरुवाच

अग्निरित्युच्यते रौद्री घोरा या तैजसी तनुः।
सोमः शाक्तोऽमृतमयः शक्तेः शान्तिकरी तनुः॥ ३

वायुदेव बोले—महर्षियो! रुद्रदेवका जो घोर तेजोमय शरीर है, उसे अग्नि कहते हैं और अमृतमय सोम शक्तिका स्वरूप है; क्योंकि शक्तिका शरीर शान्तिकारक है॥ ३॥

अमृतं यत्प्रतिष्ठा सा तेजो विद्या कला स्वयम्।
भूतसूक्ष्मेषु सर्वेषु त एव रसतेजसी॥ ४

द्विविधा तेजसो वृत्तिः सूर्यात्मा चानलात्मिका।
तथैव रसवृत्तिश्च सोमात्मा च जलात्मिका॥ ५

जो अमृत है, वह प्रतिष्ठा नामक कला है और जो तेज है, वह साक्षात् विद्या नामक कला है। सम्पूर्ण सूक्ष्म भूतोंमें वे ही दोनों रस और तेज हैं। तेजकी वृत्ति दो प्रकारकी है। एक सूर्यरूपा है और दूसरी अग्निरूपा। इसी तरह रसवृत्ति भी दो प्रकारकी है—एक सोमरूपिणी और दूसरी जलरूपिणी॥ ४-५॥

विद्युदादिमयं तेजो मधुरादिमयो रसः।
तेजोरसविभेदैस्तु धृतमेतच्चराचरम्॥ ६

तेज विद्युत् आदिके रूपमें उपलब्ध होता है तथा रस मधुर आदिके रूपमें। तेज और रसके भेदोंने ही इस चराचर जगत्को धारण कर रखा है॥ ६॥

अग्नेरमृतनिष्पत्तिरमृतेनाग्निरेधते।
अत एव हि विक्रान्तमग्नीषोमं जगद्धितम्॥ ७

हविषे सस्यसम्पत्तिर्वृष्टिः सस्याभिवृद्धये।
वृष्टेरेव हविस्तस्मादग्नीषोमधृतं जगत्॥ ८

अग्निसे अमृतकी उत्पत्ति होती है और अमृत-स्वरूप घीसे अग्निकी वृद्धि होती है, अतएव अग्नि और सोमको दी हुई आहुति जगत्के लिये हितकारक होती है। शस्य-सम्पत्ति हविष्यका उत्पादन करती है। वर्षा शस्यको बढ़ाती है। इस प्रकार वर्षासे ही हविष्यका प्रादुर्भाव होता है, जिससे यह अग्नीषोमात्मक जगत् टिका हुआ है॥ ७-८॥

अग्निरूर्ध्वं ज्वलत्येष यावत्सौम्यं परामृतम्।
यावदग्न्यास्पदं सौम्यममृतं च स्रवत्यधः॥ ९

अत एव हि कालाग्निरधस्ताच्छक्तिरूर्ध्वतः।
यावदादहनं चोर्ध्वमधश्चाप्लावनं भवेत्॥ १०

अग्नि वहाँतक ऊपरको प्रज्वलित होता है, जहाँतक सोम-सम्बन्धी परम अमृत विद्यमान है और जहाँतक अग्निका स्थान है, वहाँतक सोमसम्बन्धी अमृत नीचेको झरता है। इसीलिये कालाग्नि नीचे है और शक्ति ऊपर। जहाँतक अग्नि है, उसकी गति ऊपरकी ओर है और जो जलका आप्लावन है, उसकी गति नीचेकी ओर है॥ ९-१०॥

आधारशक्त्यैव धृतः कालाग्निरयमूर्ध्वगः।
तथैव निम्नगः सोमः शिवशक्तिपदास्पदः॥ ११

शिवश्चोर्ध्वमधः शक्तिरूर्ध्वं शक्तिरधः शिवः।
तदित्थं शिवशक्तिभ्यां नाव्याप्तमिह किञ्चन॥ १२

आधारशक्तिने ही इस ऊर्ध्वगामी कालाग्निको धारण कर रखा है तथा निम्नगामी सोम शिव-शक्तिके आधारपर प्रतिष्ठित है। शिव ऊपर हैं और शक्ति नीचे तथा शक्ति ऊपर है और शिव नीचे। इस प्रकार शिव और शक्तिने यहाँ सब कुछ व्याप्त कर रखा है॥ ११-१२॥

असकृच्चाग्निना दग्धं जगद्यद्भस्मसात्कृतम्।
अग्नेर्वीर्यमिदं चाहुस्तद्वीर्यं भस्म यत्ततः॥ १३

यश्चेत्थं भस्मसद्भावं ज्ञात्वा स्नाति च भस्मना।
अग्निरित्यादिभिर्मन्त्रैर्बद्धः पाशात्प्रमुच्यते॥ १४

बारंबार अग्निद्वारा जलाया हुआ यह जगत् भस्मसात् हो जाता है। यह अग्निका वीर्य है। भस्मको ही अग्निका वीर्य कहते हैं। जो इस प्रकार भस्मके श्रेष्ठ स्वरूपको जानकर **'अग्निः'** इत्यादि मन्त्रोंद्वारा भस्मसे स्नान करता है, वह बँधा हुआ जीव पाशसे मुक्त हो जाता है॥ १३-१४॥

अग्नेर्वीर्यं तु यद्भस्म सोमेनाप्लावितं पुनः।
अयोगयुक्त्या प्रकृतेरधिकाराय कल्पते॥ १५

योगयुक्त्या तु तद्भस्म प्लाव्यमानं समन्ततः।
शाक्तेनामृतवर्षेण चाधिकारान्निवर्तयेत्॥ १६

अग्निके वीर्यरूप भस्मको सोमने अयोगयुक्तिके द्वारा फिर आप्लावित किया; इसलिये वह प्रकृतिके अधिकारमें चला गया। यदि योगयुक्तिसे शाक्त अमृतवर्षाके द्वारा उस भस्मका सब ओर आप्लावन हो तो वह प्रकृतिके अधिकारोंको निवृत्त कर देता है॥ १५-१६॥

अतो मृत्युंजयायेत्थममृतप्लावनं सदा।
शिवशक्त्यमृतस्पर्शे लब्धं येन कुतो मृतिः॥ १७

यो वेद दहनं गुह्यं प्लावनं च यथोदितम्।
अग्नीषोमपदं हित्वा न स भूयोऽभिजायते॥ १८

अतः इस तरहका अमृतप्लावन सदा मृत्युपर विजय पानेके लिये ही होता है। शिवाग्निके साथ शक्ति-सम्बन्धी अमृतका स्पर्श होनेपर जिसने अमृतका आप्लावन प्राप्त कर लिया, उसकी मृत्यु कैसे हो सकती है? जो अग्निके इस गुह्य स्वरूपको तथा पूर्वोक्त अमृतप्लावनको ठीक-ठीक जानता है, वह अग्नीषोमात्मक जगत्को त्यागकर फिर यहाँ जन्म नहीं लेता॥ १७-१८॥

शिवाग्निना तनुं दग्ध्वा शक्तिसौम्यामृतेन यः।
प्लावयेद्योगमार्गेण सोऽमृतत्वाय कल्पते॥ १९

हृदि कृत्वेममर्थं वै देवेन समुदाहृतम्।
अग्नीषोमात्मकं विश्वं जगदित्यनुरूपतः॥ २०

जो शिवाग्निसे शरीरको दग्ध करके शक्तिस्वरूप सोमामृतसे योगमार्गके द्वारा इसे आप्लावित करता है, वह अमृतस्वरूप हो जाता है। इसी अभिप्रायको हृदयमें धारण करके महादेवजीने इस सम्पूर्ण जगत्को अग्नीषोमात्मक कहा था। उनका वह कथन सर्वथा उचित है॥ १९-२०॥

इति श्रीशिवमहापुराणे सप्तम्यां वायवीयसंहितायां पूर्वखण्डे भस्मतत्त्ववर्णनं नामाष्टाविंशोऽध्यायः॥ २८॥

॥ इस प्रकार श्रीशिवमहापुराणके अन्तर्गत सातवीं वायवीयसंहिताके पूर्वखण्डमें भस्मतत्त्ववर्णन नामक अट्ठाईसवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ २८॥

अथैकोनत्रिंशोऽध्यायः

जगत् 'वाणी और अर्थरूप' है—इसका प्रतिपादन

वायुरुवाच

निवेदयामि जगतो वागर्थात्म्यं कृतं यथा।
षडध्ववेदनं सम्यक् समासान्न तु विस्तरात्॥ १

नास्ति कश्चिदशब्दार्थो नापि शब्दो निरर्थकः।
ततो हि समये शब्दः सर्वः सर्वार्थबोधकः॥ २

प्रकृतेः परिणामोऽयं द्विधा शब्दार्थभावना।
तामाहुः प्राकृतीं मूर्तिं शिवयोः परमात्मनोः॥ ३

शब्दात्मिका विभूतिर्या सा त्रिधा कथ्यते बुधैः।
स्थूला सूक्ष्मा परा चेति स्थूला या श्रुतिगोचरा॥ ४

सूक्ष्मा चिन्तामयी प्रोक्ता चिन्तया रहिता परा।
या शक्तिः सा परा शक्तिः शिवतत्त्वसमाश्रया॥ ५

ज्ञानशक्तिसमायोगादिच्छोपोद्बलिका तथा।
सर्वशक्तिसमष्ट्यात्मा शक्तितत्त्वसमाख्यया॥ ६

समस्तकार्यजातस्य मूलप्रकृतितां गता।
सैव कुण्डलिनी माया शुद्धाध्वपरमा सती॥ ७

सा विभागस्वरूपैव षडध्वात्मा विजृंभते।
तत्र शब्दास्त्रयोऽध्वानस्त्रयश्चार्था समीरिताः॥ ८

सर्वेषामपि वै पुंसां नैजशुद्ध्यनुरूपतः।
लयभोगाधिकाराः स्युः सर्वतत्त्वविभागतः॥ ९

वायुदेवता कहते हैं—महर्षियो! अब यह बता रहा हूँ कि जगत्‌की वागर्थात्मकताकी सिद्धि कैसे की गयी है। छः अध्वाओं (मार्गों)-का सम्यक् ज्ञान मैं संक्षेपसे ही करा रहा हूँ, विस्तारसे नहीं। कोई भी ऐसा अर्थ नहीं है, जो बिना शब्दका हो और कोई भी ऐसा शब्द नहीं है, जो बिना अर्थका हो। अतः समयानुसार सभी शब्द सम्पूर्ण अर्थोंके बोधक होते हैं॥ १-२॥

प्रकृतिका यह परिणाम शब्दभावना और अर्थभावनाके भेदसे दो प्रकारका है। उसे परमात्मा शिव तथा पार्वतीकी प्राकृत मूर्ति कहते हैं॥ ३॥

उनकी जो शब्दमयी विभूति है, उसे विद्वान् तीन प्रकारकी बताते हैं—स्थूला, सूक्ष्मा और परा। स्थूला वह है, जो कानोंको प्रत्यक्ष सुनायी देती है; जो केवल चिन्तनमें आती है, वह सूक्ष्मा कही गयी है और जो चिन्तनकी भी सीमासे परे है, उसे परा कहा गया है। वह शक्तिस्वरूपा है। वही शिवतत्त्वके आश्रित रहनेवाली पराशक्ति कही गयी है॥ ४-५॥

ज्ञानशक्तिके संयोगसे वही इच्छाकी उपोद्बलिका (उसे दृढ़ करनेवाली) होती है। वह सम्पूर्ण शक्तियोंकी समष्टिरूपा है। वही शक्तितत्त्वके नामसे विख्यात हो समस्त कार्यसमूहकी मूल प्रकृति मानी गयी है। उसीको कुण्डलिनी कहा गया है। वही विशुद्धाध्वपरा सत्तामयी माया है॥ ६-७॥

वह स्वरूपतः विभागरहित होती हुई भी छः अध्वाओंके रूपमें विस्तारको प्राप्त होती है। उन छः अध्वाओंमेंसे तीन तो शब्दरूप हैं और तीन अर्थरूप बताये गये हैं। सभी पुरुषोंको आत्मशुद्धिके अनुरूप सम्पूर्ण तत्त्वोंके विभागसे लय और भोगके अधिकार प्राप्त होते हैं॥ ८-९॥

कलाभिस्तानि तत्त्वानि व्याप्तान्येव यथातथम्।
परस्याः प्रकृतेरादौ पञ्चधा परिणामतः॥ १०
कलाश्च ता निवृत्त्याद्याः पर्य्याप्ता इति निश्चयः।
मंत्राध्वा च पदाध्वा च वर्णाध्वा चेति शब्दतः॥ ११
भुवनाध्वा च तत्त्वाध्वा कलाध्वा चार्थतः क्रमात्।
अत्रान्योऽन्यं च सर्वेषां व्याप्यव्यापकतोच्यते॥ १२

वे सम्पूर्ण तत्त्व कलाओंद्वारा यथायोग्य व्याप्त हैं। परा प्रकृतिके जो आदिमें पाँच प्रकारके परिणाम होते हैं, वे ही निवृत्ति आदि कलाएँ हैं। मन्त्राध्वा, पदाध्वा और वर्णाध्वा—ये तीन अध्वा शब्दसे सम्बन्ध रखते हैं तथा भुवनाध्वा, तत्त्वाध्वा और कलाध्वा—ये तीन अर्थसे सम्बन्ध रखनेवाले हैं। इन सबमें भी परस्पर व्याप्य-व्यापक भाव बताया जाता है॥ १०—१२॥

मंत्राः सर्वे पदैर्व्याप्ता वाक्यभावात्पदानि च।
वर्णैर्वर्णसमूहं हि पदमाहुर्विपश्चितः॥ १३
वर्णास्तु भुवनैर्व्याप्तास्तेषां तेषूपलम्भनात्।
भुवनान्यपि तत्त्वौघैरुत्पत्त्यान्तर्बहिः क्रमात्॥ १४

सम्पूर्ण मन्त्र पदोंसे व्याप्त हैं; क्योंकि वे वाक्यरूप हैं। सम्पूर्ण पद भी वर्णोंसे व्याप्त हैं; क्योंकि विद्वान् पुरुष वर्णोंके समूहको ही पद कहते हैं। वे वर्ण भी भुवनोंसे व्याप्त हैं; क्योंकि उन्हींमें उनकी उपलब्धि होती है। भुवन भी तत्त्वोंके समूहद्वारा बाहर-भीतरसे व्याप्त हैं; क्योंकि उनकी उत्पत्ति ही तत्त्वोंसे हुई है॥ १३-१४॥

व्याप्तानि कारणैस्तत्त्वैरारब्धत्वादनेकशः।
अंतरादुत्थितानीह भुवनानि तु कानिचित्॥ १५
पौराणिकानि चान्यानि विज्ञेयानि शिवागमे।
सांख्ययोगप्रसिद्धानि तत्त्वान्यपि च कानिचित्॥ १६

उन कारणभूत तत्त्वोंसे ही उनका आरम्भ हुआ है। अनेक भुवन उनके अन्दरसे ही प्रकट हुए हैं। उनमेंसे कुछ तो पुराणोंमें प्रसिद्ध हैं। अन्य भुवनोंका ज्ञान शिव-सम्बन्धी आगमसे प्राप्त करना चाहिये। कुछ तत्त्व सांख्य और योगशास्त्रोंमें भी प्रसिद्ध हैं॥ १५-१६॥

शिवशास्त्रप्रसिद्धानि ततोऽन्यान्यपि कृत्स्नशः।
कलाभिस्तानि तत्त्वानि व्याप्तान्येव यथातथम्॥ १७
परस्याः प्रकृतेरादौ पञ्चधा परिणामतः।
कलाश्च ता निवृत्त्याद्या व्याप्ताः पञ्च यथोत्तरम्॥ १८

शिवशास्त्रोंमें प्रसिद्ध तथा दूसरे-दूसरे भी जो तत्त्व हैं, वे सब-के-सब कलाओंद्वारा यथायोग्य व्याप्त हैं। परा प्रकृतिके जो आदिकालमें पाँच परिणाम हुए, वे ही निवृत्ति आदि कलाएँ हैं। वे पाँच कलाएँ उत्तरोत्तर तत्त्वोंसे व्याप्त हैं॥ १७-१८॥

व्यापिकातः पराशक्तिरविभक्ता षडध्वनाम्।
परप्रकृतिभावस्य तत्सत्त्वाच्छिवतत्त्वतः॥ १९
शक्त्यादि च पृथिव्यन्तं शिवतत्त्वसमुद्भवम्।
व्याप्तमेकेन तेनैव मृदा कुंभादिकं यथा॥ २०

अतः परा शक्ति सर्वत्र व्यापक है। वह विभागरहित होकर भी छः अध्वाओंके रूपमें विभक्त है। परप्रकृतिका शिवतत्त्वसे सम्बन्ध होनेपर शक्तिसे लेकर पृथ्वीतत्त्वपर्यन्त सम्पूर्ण तत्त्वोंका प्रादुर्भाव शिवतत्त्वसे हुआ है। अतः जैसे घड़े आदि मिट्टीसे व्याप्त हैं, उसी प्रकार वे सारे तत्त्व एकमात्र शिवसे ही व्याप्त हैं॥ १९-२०॥

शैवं तत्परमं धाम यत्प्राप्यं षड्भिरध्वभिः।
व्यापिकाऽव्यापिका शक्तिः पञ्चतत्त्वविशोधनात्॥ २१
निवृत्त्या रुद्रपर्यन्तं स्थितिरण्डस्य शोध्यते।

जो छः अध्वाओंसे प्राप्त होनेवाला है, वही शिवका परम धाम है। पाँच तत्त्वोंके शोधनसे व्यापिका और अव्यापिका शक्ति जानी जाती है। निवृत्तिकलाके द्वारा रुद्रलोकपर्यन्त ब्रह्माण्डकी स्थितिका शोधन

प्रतिष्ठया तदूर्ध्वं तु यावदव्यक्तगोचरम्॥ २२

तदूर्ध्वं विद्यया मध्ये यावद्विश्वेश्वरावधि।
शान्त्या तदूर्ध्वमध्वान्ते विशुद्धिः शान्त्यतीतया॥ २३

यामाहुः परमं व्योम परप्रकृतियोगतः।

एतानि पञ्चतत्त्वानि यैर्व्याप्तमखिलं जगत्॥ २४

अत्रैव सर्वमेवेदं द्रष्टव्यं खलु साधकैः।
अध्वव्याप्तिमविज्ञाय शुद्धिं यः कर्तुमिच्छति॥ २५

स विप्रलम्भकः शुद्धेर्नालं प्रापयितुं फलम्।
वृथा परिश्रमस्तस्य निरयायैव केवलम्॥ २६

शक्तिपातसमायोगादृते तत्त्वानि तत्त्वतः।
तद्व्याप्तिस्तद्विवृद्धिश्च ज्ञातुमेवं न शक्यते॥ २७

शक्तिराज्ञा परा शैवी चिद्रूपा परमेश्वरी।
शिवोऽधितिष्ठत्यखिलं यया कारणभूतया॥ २८

नात्मनो नैव मायैषा न विकारो विचारतः।
न बंधो नापि मुक्तिश्च बंधमुक्तिविधायिनी॥ २९

सर्वैश्वर्यपराकाष्ठा शिवस्याव्यभिचारिणी।
समानधर्मिणी तस्य तैस्तैर्भावैर्विशेषतः॥ ३०

स तयैव गृही सापि तेनैव गृहिणी सदा।
तयोरपत्यं यत्कार्यं परप्रकृतिजं जगत्॥ ३१

स कर्ता कारणं सेति तयोर्भेदो व्यवस्थितः।
एक एव शिवः साक्षाद् द्विधाऽसौ समवस्थितः॥ ३२

होता है। प्रतिष्ठा-कलाद्वारा उससे भी ऊपर जहाँतक अव्यक्तकी सीमा है, वहाँतकका शोधन किया जाता है॥ २१-२२॥

मध्यवर्तिनी विद्या-कलाद्वारा उससे भी ऊपर विद्येश्वरपर्यन्त स्थानका शोधन होता है। शान्ति-कलाद्वारा उससे भी ऊपरके स्थानका तथा शान्त्यतीता-कलाके द्वारा अध्वाके अन्ततकका शोधन हो जाता है। उसीको परप्रकृतिके योगके कारण 'परम व्योम' कहा गया है॥ २३½॥

ये पाँच तत्त्व बताये गये, जिनसे सम्पूर्ण जगत् व्याप्त है। वहीं साधकोंको यह सब कुछ देखना चाहिये; जो अध्वाकी व्याप्तिको न जानकर शोधन करना चाहता है, वह शुद्धिसे वंचित रह जाता है, उसके फलको नहीं पा सकता। उसका सारा परिश्रम व्यर्थ, केवल नरककी ही प्राप्ति करानेवाला होता है॥ २४—२६॥

शक्तिपातका संयोग हुए बिना तत्त्वोंका ठीक-ठीक ज्ञान नहीं हो सकता। उनकी व्याप्ति और वृद्धिका ज्ञान भी असम्भव है। शिवकी जो चित्स्वरूपा परमेश्वरी परा- शक्ति है, वही आज्ञा है। उस कारणरूपा आज्ञाके सहयोगसे ही शिव सम्पूर्ण विश्वके अधिष्ठाता होते हैं॥ २७-२८॥

विचारदृष्टिसे देखा जाय तो आत्मामें कभी विकार नहीं होता। यह विकारकी प्रतीति मायामात्र है। न तो बन्धन है और न उस बन्धनसे छुटकारा दिलानेवाली कोई मुक्ति है। शिवकी जो अव्यभिचारिणी पराशक्ति है, वही सम्पूर्ण ऐश्वर्यकी पराकाष्ठा है। वह उन्हींके समान धर्मवाली है और विशेषतः उनके उन-उन विलक्षण भावोंसे युक्त है॥ २९-३०॥

उसी शक्तिके साथ शिव गृहस्थ बने हुए हैं और वह भी सदा उन शिवके ही साथ उनकी गृहिणी बनकर रहती है। जो पराप्रकृतिजन्य जगत्-रूप कार्य है, वही उन शिव-दम्पतीकी संतान है। शिव कर्ता हैं और शक्ति कारण। यही उन दोनोंका भेद है। वास्तवमें एकमात्र साक्षात् शिव ही दो रूपोंमें स्थित हैं॥ ३१-३२॥

स्त्रीपुंसभावेन तयोर्भेद इत्यपि केचन।
अपरे तु परा शक्तिः शिवस्य समवायिनी॥ ३३

प्रभेव भानोश्चिद्रूपा भिन्नैवेति व्यवस्थितिः।
तस्माच्छिवः परो हेतुस्तस्याज्ञा परमेश्वरी॥ ३४

कुछ लोगोंका कहना है कि स्त्री और पुरुषरूपमें ही उनका भेद है। अन्य लोग कहते हैं कि पराशक्ति शिवमें नित्य समवेत है। जैसे प्रभा सूर्यसे भिन्न नहीं है, उसी प्रकार चित्स्वरूपिणी पराशक्ति शिवसे अभिन्न ही है। यही सिद्धान्त है अतः शिव परम कारण हैं, उनकी आज्ञा ही परमेश्वरी है॥ ३३-३४॥

तयैव प्रेरिता शैवी मूलप्रकृतिरव्यया।
महामाया च माया च प्रकृतिस्त्रिगुणेति च॥ ३५

त्रिविधा कार्यभेदेन सा प्रसूते षडध्वनः।
स वागर्थमयश्चाध्वा षड्विधो निखिलं जगत्॥ ३६

अस्यैव विस्तरं प्राहुः शास्त्रजातमशेषतः॥ ३७

उसी कारणसे प्रेरित होकर शिवकी अविनाशी मूल प्रकृति कार्यभेदसे महामाया, माया और त्रिगुणात्मिका प्रकृति—इन तीन रूपोंमें स्थित हो छः अध्वाओंको प्रकट करती है। वह छः प्रकारका अध्वा वागर्थमय है, वही सम्पूर्ण जगत्‌के रूपमें स्थित है; सभी शास्त्रसमूह इसी भावका विस्तारसे प्रतिपादन करते हैं॥ ३५—३७॥

इति श्रीशिवमहापुराणे सप्तम्यां वायवीयसंहितायां पूर्वखण्डे
वागर्थात्मकतत्त्ववर्णनं नामैकोनत्रिंशोऽध्यायः ॥ २९ ॥

॥ इस प्रकार श्रीशिवमहापुराणके अन्तर्गत सातवीं वायवीयसंहिताके पूर्वखण्डमें
वागर्थात्मकतत्त्ववर्णन नामक उनतीसवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ २९ ॥

अथ त्रिंशोऽध्यायः

ऋषियोंका शिवतत्त्वविषयक प्रश्न

ऋषय ऊचुः

चरितानि विचित्राणि गुह्याणि गहनानि च।
दुर्विज्ञेयानि देवैश्च मोहयन्ति मनांसि नः॥ १

ऋषिगण बोले—शिवजीके चरित्र अद्भुत, गोपनीय, गहन तथा देवताओंद्वारा भी दुर्विज्ञेय हैं, वे हम सभीके मनको मोहित कर देते हैं॥ १॥

शिवयोस्तत्त्वसम्बन्धे न दोष उपलभ्यते।
चरितैः प्राकृतो भावस्तयोरपि विभाव्यते॥ २

शिव और शिवाके [विचित्र] चरित्रोंके आधारपर भले ही लौकिकताकी प्रतीति हो, पर वस्तुतः उनके नित्य सम्बन्धमें किसी भी दोषकी कल्पना नहीं की जा सकती॥ २॥

ब्रह्मादयोऽपि लोकानां सृष्टिस्थित्यन्तहेतवः।
निग्रहानुग्रहौ प्राप्य शिवस्य वशवर्तिनः॥ ३

शिवः पुनर्न कस्यापि निग्रहानुग्रहास्पदम्।
अतोऽनायत्तमैश्वर्यं तस्यैवेति विनिश्चितम्॥ ४

लोकोंके सृजन, पालन तथा संहारके कारणस्वरूप ब्रह्मा आदि भी निग्रह-अनुग्रहको प्राप्त करते हुए शिवके वशमें रहते हैं। शिवजी किसीके भी निग्रह तथा अनुग्रहपर आश्रित नहीं हैं, अतः उनका ऐश्वर्य भी किसीके द्वारा प्रदत्त या कहींसे आया हुआ नहीं है—यह सुनिश्चित है॥ ३-४॥

यद्येवमीदृशैश्वर्यं तत्तु स्वातन्त्र्यलक्षणम्।

अगर शिवजीका ऐश्वर्य इस प्रकारका है तो उसे स्वाभाविक रूपसे नित्यसिद्ध स्वतन्त्रताका ज्ञापक

स्वभावसिद्धं चैतस्य मूर्तिमत्तास्पदं भवेत्॥ ५

समझना चाहिये, जबकि ऐसा नहीं है; क्योंकि नित्य स्वतन्त्र सत्ता आकारके अधीन कैसे हो सकती है?॥ ५॥

न मूर्तिश्च स्वतंत्रस्य घटते मूलहेतुना।
मूर्तेरपि च कार्यत्वात्तत्सिद्धिः स्यादहैतुकी॥ ६

स्वतन्त्र सत्ताका मूर्तिपरतन्त्र होना सिद्ध नहीं होता, क्योंकि वह तो [सभीका] मूल कारण है, जबकि मूर्ति तो कार्य अथवा उत्पाद्य है, ऐसी स्थितिमें मूर्तिको भी हेतुरहित या नित्य मानना पड़ेगा॥ ६॥

सर्वत्र परमो भावोऽपरमश्चान्य उच्यते।
परमापरमौ भावौ कथमेकत्र संगतौ॥ ७

परमभाव तथा उसे पृथक् अपरमभाव—इन दो भावोंकी सर्वत्र चर्चा की जाती है। [ये दोनों ही भाव परस्पर विरुद्ध होनेसे भिन्न-भिन्न आधारोंका आश्रय लेते हैं।] ऐसी दशामें परम तथा अपरम-भावकी स्थिति एक ही अधिकरण अर्थात् भगवान् शिवमें कैसे संगत हो सकती है?॥ ७॥

निष्कलो हि स्वभावोऽस्य परमः परमात्मनः।
स एव सकलः कस्मात्स्वभावो ह्यविपर्ययः॥ ८

परमात्माका परम स्वभाव निष्कल कहा गया है तो फिर वह सकल किस प्रकार हो गया; क्योंकि स्वभावमें तो किसी भी प्रकार विपरीतता होती नहीं है॥ ८॥

स्वभावो विपरीतश्चेत्स्वतन्त्रः स्वेच्छया यदि।
न करोति किमीशानो नित्यानित्यविपर्ययम्॥ ९

यदि कदाचित् 'परमात्मा अपनी इच्छासे स्व-स्वभावसे विपरीत स्वभाववाला भी हो सकता है' ऐसा कहें तो वह ऐश्वर्यशाली परमात्मा नित्यानित्य-विपर्यय क्यों नहीं कर देता अर्थात् नित्यको अनित्य तथा अनित्यको नित्य क्यों नहीं बना देता?॥ ९॥

मूर्तात्मा सकलः कश्चित्स चान्यो निष्कलः शिवः।
शिवेनाधिष्ठितश्चेति सर्वत्र लघु कथ्यते॥ १०

यदि यह कहा जाय कि सकलस्वरूप मूर्त्यात्मा कोई और है तथा निष्कलस्वरूप शिव उससे भिन्न कोई अन्य तत्त्व है तो फिर निश्चयपूर्वक यह क्यों कहा जाता है कि सर्वत्र शिव ही अधिष्ठित हैं अर्थात् उनसे भिन्न किसी अन्य तत्त्वकी अधिष्ठान सत्ता नहीं है?॥ १०॥

मूर्त्यात्मैव तदा मूर्तिः शिवस्यास्य भवेदिति।
तस्यां मूर्तौ मूर्तिमतोः पारतन्त्र्यं हि निश्चितम्॥ ११

यदि ये कहें कि मूर्त्यात्मा वस्तुतः उन शिवकी अभिव्यक्तिमात्र है तो फिर उस मूर्ति [के माध्यम]-से [शिवके अभिव्यक्त होनेके कारण] निश्चय ही उन मूर्तिमान् शिवकी परतन्त्रता सिद्ध हो जायगी॥ ११॥

अन्यथा निरपेक्षेण मूर्तिः स्वीक्रियते कथम्।
मूर्तिस्वीकरणं तस्मान्मूर्तौ साध्यफलेप्सया॥ १२

यदि शिव [अभिव्यक्तिके लिये] मूर्तिके परतन्त्र न होते तो उन निरपेक्षके द्वारा मूर्तिको स्वीकार ही क्यों किया जाता? इससे यह सिद्ध होता है कि मूर्तिसे सिद्ध होनेवाले प्रयोजनकी ही कामनासे शिव मूर्तिको स्वीकार करते हैं॥ १२॥

न हि स्वेच्छाशरीरत्वं स्वातन्त्र्यायोपपद्यते।
स्वेच्छैव तादृशी पुंसां यस्मात्कर्मानुसारिणी॥ १३

स्वेच्छासे शरीर धारण करना [परमात्माके] स्वातन्त्र्यको सिद्ध करनेवाला हेतु भी नहीं माना जा सकता; क्योंकि अन्य पुरुषोंमें भी कर्मका अनुसरण करनेवाली वैसी ही स्वेच्छा देखी जाती है?॥ १३॥

स्वीकर्तुं स्वेच्छया देहं हातुं च प्रभवन्त्युत।
ब्रह्मादयः पिशाचान्ताः किं ते कर्मातिवर्तिनः॥ १४

अपनी इच्छासे [कर्मानुसार] देह धारण करने तथा उसका त्याग करनेमें ब्रह्मासे लेकर पिशाचपर्यन्त [सभी प्राणी] समर्थ हैं तो क्या उनको कर्मका अतिक्रमण करनेवाला मान लिया जाय?॥ १४॥

इच्छया देहनिर्माणमिन्द्रजालोपमं विदुः।
अणिमादिगुणैश्वर्यवशीकारानतिक्रमात् ॥ १५

[अपनी] इच्छासे देहनिर्माण तो इन्द्रजालके समान कहा गया है, अणिमा आदि सिद्धियोंको वशमें करनेसे ही यह सम्भव है॥ १५॥

विश्वरूपं दधद्विष्णुर्दधीचेन महर्षिणा।
युध्यता समुपालब्धस्तद्रूपं दधता स्वयम्॥ १६

[महाराज क्षुपकी ओरसे] युद्ध करते हुए भगवान् विष्णुने जब विश्वरूप दिखाकर दधीचको स्तब्ध करना चाहा, तब महर्षि दधीचने स्वयं भी विष्णुका रूप धारणकर उनकी वंचना की॥ १६॥

सर्वस्मादधिकस्यापि शिवस्य परमात्मनः।
शरीरवत्तयान्यात्मसाधर्म्यं प्रतिभाति नः॥ १७

हमलोगोंको तो ऐसा प्रतीत हो रहा है कि सबसे उत्कृष्ट होकर भी जब परमात्मा शिव शरीर धारण करते हैं तो वे [निश्चय ही] अन्य प्राणियोंके समान हैं॥ १७॥

सर्वानुग्राहकं प्राहुः शिवं परमकारणम्।
स निगृह्णाति देवानां सर्वानुग्राहकः कथम्॥ १८

परम कारण शिवको सबपर अनुग्रह करनेवाला कहा गया है। वे देवताओंका निग्रह भी करते हैं, तो फिर वे सबपर अनुग्रह करनेवाले कैसे हैं?॥ १८॥

चिच्छेद बहुशो देवो ब्रह्मणः पञ्चमं शिरः।
शिवनिन्दां प्रकुर्वन्तं पुत्रेति कुमतेर्हठात्॥ १९

विष्णोरपि नृसिंहस्य रभसा शरभाकृतिः।
बिभेद पद्भ्यामाक्रम्य हृदयं नखरैः खरैः॥ २०

दुर्बुद्धिवश शिवको पुत्र मानकर पुनः-पुनः निन्दामें तत्पर हुए ब्रह्माजीके पाँचवें सिरको शिवने काट डाला था। शरभरूपधारी शिवने शीघ्रतापूर्वक अपने पैरोंसे आक्रमण करके नृसिंहरूपवाले विष्णुके हृदयको तीक्ष्ण नाखूनोंसे विदीर्ण कर दिया था॥ १९-२०॥

देवस्त्रीषु च देवेषु दक्षस्याध्वरकारणात्।
वीरेण वीरभद्रेण न हि कश्चिददण्डितः॥ २१

दक्षके यज्ञमें भाग लेनेके कारण देवस्त्रियों तथा देवताओंमें ऐसा कोई नहीं था, जो पराक्रमी वीरभद्रके द्वारा दण्डित नहीं किया गया हो॥ २१॥

पुरत्रयं च सस्त्रीकं सदैत्यं सह बालकैः।
क्षणेनैकेन देवेन नेत्राग्नेरिन्धनीकृतम्॥ २२

शिवजीने स्त्रियों, दैत्यों तथा बालकोंसहित त्रिपुरको एक क्षणमें अपने नेत्रकी अग्निसे जला दिया था॥ २२॥

प्रजानां रतिहेतुश्च कामो रतिपतिः स्वयम्।
क्रोशतामेव देवानां हुतो नेत्रहुताशने॥ २३

गावश्च कश्चिद्दुग्धौघं स्रवन्त्यो मूर्ध्नि खेचराः।
सरुषा प्रेक्ष्य देवेन तत्क्षणे भस्मसात्कृताः॥ २४

प्रजाओंकी [उत्पत्ति तथा स्त्री-पुरुषोंकी पारस्परिक] रतिके हेतुस्वरूप रतिपति कामदेव देवताओंके चीखने-चिल्लानेपर भी शिवजीकी नेत्राग्निमें भस्म हो गये थे। उनके सिरपर दुग्धधारा गिराती हुई कुछ आकाशचारिणी गायोंको भी प्रभु शिवने क्रोधपूर्वक देखकर उसी क्षण भस्म कर दिया था॥ २३-२४॥

जलन्धरासुरो दीर्णश्चक्रीकृत्य जलं पदा।
बद्ध्वानन्तेन यो विष्णुं चिक्षेप शतयोजनम्॥ २५

तमेव जलसंधायी शूलेनैव जघान सः।
तच्चक्रं तपसा लब्ध्वा लब्धवीर्यो हरिः सदा॥ २६

जिसने शेषनाग [-को रज्जु बनाकर उस]-से विष्णुको बाँधकर उन्हें सौ योजन दूर फेंक दिया था, उस जलन्धरासुरको [शिवजीने] अपने चरणसे जलको चक्राकृति बनाकर भयभीत कर दिया। जलमें स्थित हुए शिवजीने उस दैत्यको त्रिशूलसे मार डाला। तपस्या करके भगवान् शिवसे [उनके सुदर्शन नामक] चक्रको प्राप्तकर विष्णु भगवान् सदाके लिये [अपूर्व] पराक्रमी हो गये॥ २५-२६॥

जिघांसतां सुरारीणां कुलं निर्घृणचेतसाम्।
त्रिशूलेनान्धकस्योरः शिखिनैवोपतापितम्॥ २७

शिवजीने हिंसाके लिये दयारहित देवशत्रुओंके कुल तथा अन्धक दैत्यके हृदयको त्रिशूलकी अग्निसे सन्तप्त कर दिया था॥ २७॥

कण्ठात्कालाङ्गनां सृष्ट्वा दारकोऽपि निपातितः।
कौशिकीं जनयित्वा तु गौर्य्यास्त्वक्कोशगोचराम्॥ २८

शुंभः सह निशुंभेन प्रापितो मरणं रणे।

कण्ठसे कृष्णवर्णा नारीको उत्पन्न करके उन्होंने दारुकका संहार कराया और गौरीके त्वचाकोशमें [अव्यक्त रूपसे] विद्यमान कौशिकीका प्रादुर्भाव कराके युद्धमें निशुम्भसहित शुम्भका वध कराया॥ २८½॥

श्रुतं च महदाख्यानं स्कान्दे स्कन्दसमाश्रयम्॥ २९

वधार्थे तारकाख्यस्य दैत्येन्द्रस्येन्द्रविद्विषः।
ब्रह्मणाभ्यर्थितो देवो मन्दरान्तःपुरं गतः॥ ३०

कार्तिकेयसे सम्बन्धित महान् आख्यान स्कन्दपुराणमें सुना गया है। इन्द्रके शत्रु तारक नामक दैत्यराजके वधके लिये ब्रह्माजीने मन्दराचलपर अन्तःपुरमें शिवजीसे प्रार्थना की थी॥ २९-३०॥

विहृत्य सुचिरं देव्या विहारातिप्रसङ्गतः।
रसां रसातलं नीतामिव कृत्वाभिधां ततः॥ ३१

देवीं च वञ्चयंस्तस्यां स्ववीर्यमतिदुर्वहम्।
अविसृज्य विसृज्याग्नौ हविः पूतमिवामृतम्॥ ३२

[उस समय] शिवजी सुदीर्घकालतक भगवती पार्वतीके साथ [मन्दराचलपर] लीलाविहार करते रहे। उनके असाधारण लीला-प्रसंगोंसे ऐसा प्रतीत हो रहा था, मानो पृथ्वी रसातलको ही चली जायगी। उन्होंने लीलावश भगवतीकी वंचनाकर उनमें अपने तेजका आधान न करके उस दुर्वह तेजको अग्निमें पवित्र आज्य हविके समान विसर्जित कर दिया॥ ३१-३२॥

गंगादिष्वपि निक्षिप्य वह्निद्वारा तदंशतः।
तत्समाहृत्य शनकैस्तोकं स्तोकमितस्ततः॥ ३३

स्वाहया कृत्तिकारूपात्स्वभर्त्रा रममाणया।
सुवर्णीभूतया न्यस्तं मेरौ शरवणे क्वचित्॥ ३४

अग्निदेवने उस [शैव] तेजको अनेक अंशोंमें विभक्त करके गंगा आदि नदियोंमें डाल दिया। तदुपरान्त भगवती स्वाहाने कृत्तिकाओंका रूप धारण करके जहाँ-तहाँ अंशरूपसे विकीर्ण उस तेजको ग्रहण कर लिया। तदुपरान्त सुमेरुपर्वतपर अग्निदेवके साथ विहार करती हुई स्वर्णवर्णा स्वाहा देवीने उस तेजको वहीं सरकण्डोंके वनमें किसी स्थानपर स्थापित कर दिया॥ ३३-३४॥

संदीपयित्वा कालेन तस्य भासा दिशो दश।
रञ्जयित्वा गिरीन्सर्वान् काञ्चनीकृत्य मेरुणा॥ ३५

ततश्चिरेण कालेन संजाते तत्र तेजसि।
कुमारे सुकुमाराङ्गे कुमाराणां निदर्शने॥ ३६

तच्छैशवं स्वरूपं च तस्य दृष्ट्वा मनोहरम्।
सह देवासुरैर्लोकैर्विस्मिते च विमोहिते॥ ३७

समय आनेपर वह तेज [अग्निके समान] प्रज्वलित हो उठा और उसने अपने प्रकाशसे दसों दिशाओंको मानो अनुरंजित-सा कर दिया तथा सुमेरुसहित [निकटवर्ती] सभी पर्वतोंको स्वर्णमय बना दिया। तत्पश्चात् दीर्घकालके बीतनेपर कुमारोंके सदृश सुकुमार देहवाला वह शिवपुत्र प्रादुर्भूत हुआ। उसके शैशवोचित मनोहर स्वरूपको देखकर देवताओं तथा असुर आदिके सहित सभी लोग आश्चर्यचकित एवं मुग्ध हो गये॥ ३५—३७॥

देवोऽपि स्वयमायातः पुत्रदर्शनलालसः।
सह देव्याङ्कमारोप्य ततोऽस्य स्मेरमाननम्॥ ३८

पीतामृतमिव स्नेहविवशेनान्तरात्मना।

उस समय पुत्रको देखनेकी अभिलाषा लिये हुए देवी पार्वतीके साथ स्वयं भगवान् शिव भी वहाँ आ पहुँचे। उन्होंने बालकको गोदमें बैठा लिया और उस मुसकराते हुए बालककी मुखमाधुरीको वे स्नेहविवश चित्तसे मानो अमृतके समान पीने लगे॥ ३८१/२॥

देवेष्वपि च पश्यत्सु वीतरागैस्तपस्विभिः॥ ३९

स्वस्य वक्षःस्थले स्वैरं नर्तयित्वा कुमारकम्।
अनुभूय च तत्क्रीडां संभाव्य च परस्परम्॥ ४०

स्तन्यमाज्ञापयन्देव्याः पाययित्वामृतोपमम्।
तवावतारो जगतां हितायेत्यनुशास्य च॥ ४१

स्वयं देवश्च देवी च न तृप्तिमुपजग्मतुः।

वीतराग तपस्वियोंके साथ वहाँ उपस्थित देवताओंके समक्ष ही शिवजीने अपने वक्षःस्थलपर इच्छानुरूप बालकको नचाकर तथा उसकी बालकोचित क्रीडाओंके सुखका अनुभव करके देवी पार्वतीको दुग्धपान करानेके लिये संकेत किया, देवीने भी आदरसहित शिवजीकी आज्ञा मानकर उसे अमृतसदृश दुग्ध पिलाया। तदनन्तर उस बालकसे यह कहकर कि 'तुम्हारा आविर्भाव संसारके कल्याणके लिये हुआ है' भगवती पार्वती तथा स्वयं महादेव शंकर तृप्त नहीं हो सके॥ ३९—४११/२॥

ततः शक्रेण संधाय बिभ्यता तारकासुरात्॥ ४२

कारयित्वाऽभिषेकं च सेनापत्ये दिवौकसाम्।
पुत्रमन्तरतः कृत्वा देवेन त्रिपुरद्विषः॥ ४३

स्वयमंतर्हितेनैव स्कन्दमिन्द्रादिरक्षितम्।
तच्छक्त्या क्रौञ्चभेदिन्या युधि कालाग्निकल्पया॥ ४४

छेदितं तारकस्यापि शिरः शक्रभिया सह।
स्तुतिं चक्रुर्विशेषेण हरिधातृमुखाः सुराः॥ ४५

तथा रक्षोऽधिपः साक्षाद्रावणो बलगर्वितः।
उद्धरन्स्वभुजैर्दीर्घैः कैलासं गिरिमात्मनः॥ ४६

तदागोऽसहमानस्य देवदेवस्य शूलिनः।
पादांगुष्ठपरिस्पन्दान्ममज्ज मृदितो भुवि॥ ४७

बटोः केनचिदर्थेन स्वाश्रितस्य गतायुषः।
त्वरयागत्य देवेन पादान्तं गमितोऽन्तकः॥ ४८

स्ववाहनमविज्ञाय वृषेन्द्रं वडवानलः।
सगलग्रहमानीतस्ततोऽस्त्येकोदकं जगत्॥ ४९

अलोकविदितैस्तैस्तैर्वृत्तैरानन्दसुन्दरैः।
अङ्गहारक्रमेणेदमसकृच्चालितं जगत्॥ ५०

शान्त एव सदा सर्वमनुगृह्णाति चेच्छिवः।
सर्वाणि पूरयेदेव कथं शक्तेन मोचयेत्॥ ५१

अनादिकर्मवैचित्र्यमपि नात्र नियामकम्।
कारणं खलु कर्मापि भवेदीश्वरकारितम्॥ ५२

तदुपरान्त तारकासुरसे भयभीत इन्द्रके साथ परामर्श करके त्रिपुरारि शिवने [अपने पुत्रका] देवसेनापतिके पदपर अभिषेक करवाया। इन्द्र आदि देवताओंसे संरक्षित कुमार स्कन्दको सेनाके मध्यमें भेजकर शिवजी अदृश्य होकर वहीं स्थित हो गये। उस युद्धमें कुमारने क्रौंच पर्वतको विदीर्ण करनेवाली प्रलयकालीन अग्निके समान [देदीप्यमान] उस शक्तिसे इन्द्रके भयके साथ-साथ तारकासुरका मस्तक भी काट डाला। तब ब्रह्मा, विष्णु आदि देवताओंने कुमारका विशेष स्तवन किया॥ ४२—४५॥

ऐसे ही अपने बलसे गर्वित होकर अपनी विशाल भुजाओंसे कैलासपर्वतको उठानेमें लगा हुआ राक्षसराज साक्षात् रावण उस पापको सहन न करनेवाले देवदेव शिवके पैरके अँगूठेके स्पन्दनमात्रसे मसल दिया गया और भूमिमें चला गया॥ ४६-४७॥

समाप्त हुई आयुवाले किसी वटुकने प्रयोजनवश शिवजीका आश्रय ग्रहण किया था। जब यमराजने उसके प्राणोंको हरण करना चाहा तो भगवान् शिवने शीघ्रतासे आ करके यमराजको पैरोंतले दबा लिया। [एक बार शिवजी] बडवानलको ही अपना वाहन वृषभ समझकर उसे गला पकड़ करके ले आये, जिसके कारण सारा संसार जलमय हो गया॥ ४८-४९॥

लोक जिन्हें जाननेमें समर्थ नहीं है, ऐसे आंगिक चेष्टाओंसे युक्त एवं आनन्द तथा सौन्दर्यसे परिपूर्ण नृत्ताभिनयोंके द्वारा अनेक बार शिवजीने जगत्को चलायमान कर दिया था॥ ५०॥

वायुदेव! यदि शिव सदा शान्तभावसे रहकर ही सबपर अनुग्रह करते हैं तो सबकी अभिलाषाओंको एक साथ ही पूर्ण क्यों नहीं कर देते? जो सब कुछ करनेमें समर्थ होगा, वह सबको एक साथ ही बन्धन-मुक्त क्यों नहीं कर सकेगा? यदि कहें अनादिकालसे चले आनेवाले सबके विचित्र कर्म अलग-अलग हैं, अतः सबको एक समान फल नहीं मिल सकता तो यह ठीक नहीं है; क्योंकि कर्मोंकी विचित्रता भी यहाँ नियामक नहीं हो सकती। कारण कि वे कर्म भी

किमत्र बहुनोक्तेन नास्तिक्यं हेतुकारकम्।
यथा ह्याशु निवर्तेत तथा कथय मारुत॥ ५३

ईश्वरके करानेसे ही होते हैं। इस विषयमें बहुत कहनेसे क्या लाभ। उपर्युक्तरूपसे विभिन्न युक्तियोंद्वारा फैलायी गयी नास्तिकता जिस प्रकारसे शीघ्र ही निवृत्त हो जाय, वैसा उपदेश दीजिये॥ ५१—५३॥

इति श्रीशिवमहापुराणे सप्तम्यां वायवीयसंहितायां पूर्वखण्डे शिवतत्त्वप्रश्नो नाम त्रिंशोऽध्यायः॥ ३०॥

॥ इस प्रकार श्रीशिवमहापुराणके अन्तर्गत सातवीं वायवीयसंहिताके पूर्वखण्डमें शिवतत्त्वविषयक प्रश्न नामक तीसवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ ३०॥

अथैकत्रिंशोऽध्यायः

शिवजीकी सर्वेश्वरता, सर्वनियामकता तथा मोक्षप्रदताका निरूपण

वायुरुवाच

स्थाने संशयितं विप्रा भवद्भिर्हेतुचोदितैः।
जिज्ञासा हि न नास्तिक्यं साधयेत्साधुबुद्धिषु॥ १

प्रमाणमत्र वक्ष्यामि सतां मोहनिवर्तकम्।
असतां त्वन्यथाभावः प्रसादेन विना प्रभोः॥ २

वायुदेवताने कहा—ब्राह्मणो! आपलोगोंने युक्तियोंसे प्रेरित होकर जो संशय उपस्थित किया है, वह उचित ही है; क्योंकि किसी बातको जाननेकी इच्छा अथवा तत्त्वज्ञानके लिये उठाया गया प्रश्न साधु-बुद्धिवाले पुरुषोंमें नास्तिकताका उत्पादन नहीं कर सकता। मैं इस विषयमें ऐसा प्रमाण प्रस्तुत करूँगा, जो सत्पुरुषोंके मोहको दूर करनेवाला है। असत् पुरुषोंका जो अन्यथा भाव होता है, उसमें प्रभु शिवकी कृपाका अभाव ही कारण है॥ १-२॥

शिवस्य परिपूर्णस्य परानुग्रहमन्तरा।
न किंचिदपि कर्तव्यमिति साधु विनिश्चितम्॥ ३

स्वभाव एव पर्याप्तः परानुग्रहकर्मणि।
अन्यथा निःस्वभावेन न किमप्यनुगृह्यते॥ ४

परं सर्वमनुग्राह्यं पशुपाशात्मकं जगत्।
परस्यानुग्रहार्थं तु पत्युराज्ञासमन्वयः॥ ५

पतिराज्ञापकः सर्वमनुगृह्णाति सर्वदा।
तदर्थमर्थस्वीकारे परतन्त्रः कथं शिवः॥ ६

परिपूर्ण परमात्मा शिवके परम अनुग्रहके बिना कुछ भी कर्तव्य नहीं है, ऐसा निश्चय किया गया है। परानुग्रह कर्ममें स्वभाव ही पर्याप्त (पूर्णतः समर्थ) है, अन्यथा निःस्वभाव पुरुष किसीपर भी अनुग्रह नहीं कर सकता। पशु और पाशरूप सारा जगत् ही पर कहा गया है। वह अनुग्रहका पात्र है। परको अनुगृहीत करनेके लिये पतिकी आज्ञाका समन्वय आवश्यक है। पति आज्ञा देनेवाला है, वही सदा सबपर अनुग्रह करता है। उस अनुग्रहके लिये ही आज्ञा-रूप अर्थको स्वीकार करनेपर शिव परतन्त्र कैसे कहे जा सकते हैं?॥ ३—६॥

अनुग्राह्यानपेक्षोऽस्ति न हि कश्चिदनुग्रहः।
अतः स्वातन्त्र्यशब्दार्थाननपेक्षत्वलक्षणः॥ ७

एतत्पुनरनुग्राह्यं परतन्त्रं तदिष्यते।
अनुग्रहाद् ऋते तस्य भुक्तिमुक्त्योरनन्वयात्॥ ८

अनुग्राहककी अपेक्षा न रखकर कोई भी अनुग्रह सिद्ध नहीं हो सकता। अतः स्वातन्त्र्य-शब्दके अर्थकी अपेक्षा न रखना ही अनुग्रहका लक्षण है। जो अनुग्राह्य है, वह परतन्त्र माना जाता है; क्योंकि पतिके अनुग्रहके बिना उसे भोग और मोक्षकी प्राप्ति नहीं होती॥ ७-८॥

मूर्तात्मानोऽप्यनुग्राह्या शिवाज्ञाननिवर्तनात्।
अज्ञानाधिष्ठितं शम्भोर्न किंचिदिह विद्यते॥ ९

येनोपलभ्यतेऽस्माभिः सकलेनापि निष्कलः।
स मूर्त्यात्मा शिवः शैवमूर्तिरित्युपचर्यते॥ १०

जो मूर्त्यात्मा हैं, वे भी अनुग्रहके पात्र हैं; क्योंकि उनसे भी शिवकी आज्ञाकी निवृत्ति नहीं होती—वे भी शिवकी आज्ञासे बाहर नहीं हैं। यहाँ कोई ऐसी वस्तु नहीं है, जो शिवकी आज्ञाके अधीन न हो। सकल (सगुण या साकार) होनेपर भी जिसके द्वारा हमें निष्कल (निर्गुण या निराकार) शिवकी प्राप्ति होती है, उस मूर्ति या लिंगके रूपमें साक्षात् शिव ही विराज रहे हैं। वह 'शिवकी मूर्ति है' यह बात तो उपचारसे कही जाती है॥ ९-१०॥

न ह्यसौ निष्कलः साक्षाच्छिवः परमकारणम्।
साकारेणानुभावेन केनाप्यनुपलक्षितः॥ ११

प्रमाणगम्यतामात्रं तत्स्वभावोपपादकम्।
न तावतात्रोपेक्षाधीरुपलक्षणमंतरा॥ १२

जो साक्षात् निष्कल तथा परम कारणरूप शिव हैं, वे किसीके द्वारा भी साकार अनुभावसे उपलक्षित नहीं होते, ऐसी बात नहीं है। यहाँ प्रमाणगम्य होना उनके स्वभावका उपपादक नहीं है, प्रमाण अथवा प्रतीकमात्रसे अपेक्षा-बुद्धिका उदय नहीं होता। वे परम तत्त्वके उपलक्षणमात्र हैं, इसके सिवा उनका और कोई अभिप्राय नहीं है॥ ११-१२॥

आत्मोपमोल्बणं साक्षान्मूर्तिरिव हि काचन।
शिवस्य मूर्तिर्मूर्त्यात्मा परस्तस्योपलक्षणम्॥ १३

यथा काष्ठेष्वनारूढो न वह्निरुपलभ्यते।
एवं शिवोऽपि मूर्त्यात्मन्यनारूढ इति स्थितिः॥ १४

कोई-न-कोई मूर्ति ही आत्माका साक्षात् उपलक्षण होती है। 'शिवकी मूर्ति है' इस कथनका अभिप्राय यह है कि उस मूर्तिके रूपमें परम शिव विराजमान हैं। मूर्ति उनका उपलक्षण है। जैसे काष्ठ आदि आलम्बनका आश्रय लिये बिना केवल अग्नि कहीं उपलब्ध नहीं होती, उसी प्रकार शिव भी मूर्त्यात्मामें आरूढ़ हुए बिना उपलब्ध नहीं होते। यही वस्तुस्थिति है॥ १३-१४॥

यथाग्निमानयेत्युक्ते ज्वलत्काष्ठादृते स्वयम्।
नाग्निरानीयते तद्वत्पूज्यो मूर्त्यात्मना शिवः॥ १५

अत एव हि पूजादौ मूर्त्यात्मपरिकल्पनम्।
मूर्त्यात्मनि कृतं साक्षाच्छिव एव कृतं यतः॥ १६

जैसे किसीसे यह कहनेपर कि 'तुम आग ले आओ' उसके द्वारा जलती हुई लकड़ी आदिके सिवा साक्षात् अग्नि नहीं लायी जाती, उसी प्रकार शिवका पूजन भी मूर्तिरूपमें ही हो सकता है, अन्यथा नहीं। इसीलिये पूजा आदिमें 'मूर्त्यात्मा' की परिकल्पना होती है; क्योंकि मूर्त्यात्माके प्रति जो कुछ किया जाता है, वह साक्षात् शिवके प्रति किया गया ही माना गया है॥ १५-१६॥

लिंगादावपि तत्कृत्यमर्चायां च विशेषतः।
तत्तन्मूर्त्यात्मभावेन शिवोऽस्माभिरुपास्यते॥ १७

यथानुगृह्यते सोऽपि मूर्त्यात्मा परमेष्ठिना।

लिंग आदिमें, विशेषतः अर्चाविग्रहमें जो पूजनकृत्य होता है, वह भगवान् शिवका ही पूजन है। उन-उन मूर्तियोंके रूपमें शिवकी भावना करके हमलोग शिवकी ही उपासना करते हैं। जैसे परमेष्ठी

तथा मूर्त्यात्मनिष्ठेन शिवेन पशवो वयम्॥ १८

लोकानुग्रहणायैव शिवेन परमेष्ठिना।
सदाशिवादयः सर्वे मूर्त्यात्मानोऽप्यधिष्ठिताः॥ १९

शिव मूर्त्यात्मापर अनुग्रह करते हैं, उसी प्रकार मूर्त्यात्मामें स्थित शिव हम पशुओंपर अनुग्रह करते हैं। परमेष्ठी शिवने लोकोंपर अनुग्रह करनेके लिये ही सदाशिव आदि सम्पूर्ण मूर्त्यात्माओंको अधिष्ठित—अपनी आज्ञामें रखकर अनुगृहीत किया है॥ १७—१९॥

आत्मनामेव भोगाय मोक्षाय च विशेषतः।
तत्त्वातत्त्वस्वरूपेषु मूर्त्यात्मसु शिवान्वयः॥ २०

आत्माओं [जीवों]-के ही भोग तथा मोक्षके लिये विशेष रूपसे तात्त्विक तथा अतात्त्विक स्वरूपोंवाले मूर्त्यात्माओंमें शिवकी अवस्थिति देखी जाती है॥ २०॥

भोगः कर्मविपाकात्मा सुखदुःखात्मको मतः।
न च कर्म शिवेऽस्तीति तस्य भोगः किमात्मकः॥ २१

सर्वं शिवोऽनुगृह्णाति न निगृह्णाति किञ्चन।
निगृह्णतां तु ये दोषाश्शिवे तेषामसंभवात्॥ २२

ये पुनर्निग्रहाः केचिद् ब्रह्मादिषु निदर्शिताः।
तेऽपि लोकहितायैव कृताः श्रीकण्ठमूर्तिना॥ २३

सुख-दुःखात्मक फलभोग तो किये गये कर्मोंका ही परिणाम माना जाता है तो फिर कर्मफलोंका भोग किस प्रकार हो सकेगा? भगवान् शिव सबपर अनुग्रह ही करते हैं, किसीका निग्रह नहीं करते, क्योंकि निग्रह करनेवाले लोगोंमें जो दोष होते हैं, वे शिवमें असम्भव हैं। ब्रह्मा आदिके प्रति जो निग्रह देखे गये हैं, वे भी श्रीकण्ठमूर्ति शिवके द्वारा लोकहितके लिये ही किये गये हैं॥ २१—२३॥

ब्रह्माण्डस्याधिपत्यं हि श्रीकण्ठस्य न संशयः।
श्रीकण्ठाख्यां शिवो मूर्तिं क्रीडतीमधितिष्ठति॥ २४

सदोषा एव देवाद्या निगृहीता यथोदितम्।
ततस्तेऽपि विपाप्मानः प्रजाश्चापि गतज्वराः॥ २५

निग्रहोऽपि स्वरूपेण विदुषां न जुगुप्सितः।
अत एव हि दण्ड्येषु दण्डो राज्ञां प्रशस्यते॥ २६

भगवान् शंकर [संसारके नियमन आदिकी] क्रीडामें निरत श्रीकण्ठ नामक स्वरूपमें अधिष्ठित हैं और वह श्रीकण्ठमूर्ति ही इस ब्रह्माण्डपर अधिकार करके स्थित है, इसमें सन्देह नहीं है। अपराधयुक्त होनेके कारण देवगण भी [शिवजीके द्वारा] उचित रीतिसे अनुशासित किये गये थे, इससे वे पापरहित हो गये और प्रजाजनोंका क्लेश भी दूर हो गया। विद्वानोंकी दृष्टिमें निग्रह भी स्वरूपसे दूषित नहीं है। (जब वह राग-द्वेषसे प्रेरित होकर किया जाता है, तभी निन्दनीय माना जाता है।) इसीलिये दण्डनीय अपराधियोंको राजाओंकी ओरसे मिले हुए दण्डकी प्रशंसा की जाती है॥ २४—२६॥

यत्सिद्धिरीश्वरत्वेन कार्यवर्गस्य कृत्स्नशः।
न च चेदीशतां कुर्याज्जगतः कथमीश्वरः॥ २७

जिन्होंने अपने ऐश्वर्यके द्वारा समस्त कार्योंको पूर्ण किया था, वे यदि अपने ऐश्वर्यको प्रकट न करें तो उन्हें संसार ईश्वर कैसे मानेगा? भगवान् शिवकी

ईशेच्छा च विधातृत्वं विधेराज्ञापनं परम्।
आज्ञावश्यमिदं कुर्यान्न कुर्यादिति शासनम्॥ २८

इच्छा ही उनका विधानकर्तृत्व है और विधान उनकी सामर्थ्यशालिनी आज्ञा है। 'यह कर्तव्य है और यह कर्तव्य नहीं है' इस प्रकारके अनुशासनका नाम आज्ञा है॥ २७-२८॥

तच्छासनानुवर्तित्वं साधुभावस्य लक्षणम्।
विपरीतमसाधोः स्यान्न सर्वं तत्तु दृश्यते॥ २९

साधु संरक्षणीयं चेद्विनिवर्त्यमसाधु यत्।
निवर्तते च सामादेरन्ते दण्डो हि साधनम्॥ ३०

हितार्थलक्षणं चेदं दण्डान्तमनुशासनम्।
अतो यद्विपरीतं तदहितं संप्रचक्षते॥ ३१

जो लोग उनके इस अनुशासनका पालन करते हैं, वे ही साधुजन हैं तथा [शिवानुशासनसे] विपरीत आचरण करनेवाला असाधु कहलाता है। अतएव सभी लोग साधु नहीं हो पाते। यदि साधुकी रक्षा करनी है तो असाधुका निवारण करना ही होगा। पहले साम आदि तीन उपायोंसे असाधुके निवारणका प्रयत्न किया जाता है। यदि यह प्रयत्न सफल नहीं हुआ तो अन्तमें चौथे उपाय दण्डका ही आश्रय लिया जाता है। यह दण्डान्त अनुशासन लोकहितके लिये ही किया जाना चाहिये। यही उसके औचित्यको परिलक्षित कराता है। यदि अनुशासन इसके विपरीत हो तो उसे अहितकर कहते हैं॥ २९—३१॥

हिते सदा निषण्णानामीश्वरस्य निदर्शनम्।
स कथं दुष्यते सद्भिरसतामेव निग्रहात्॥ ३२

जो सदा हितमें ही लगे रहनेवाले हैं, उन्हें ईश्वरका दृष्टान्त अपने सामने रखना चाहिये। (ईश्वर केवल दुष्टोंको ही दण्ड देते हैं, इसीलिये निर्दोष कहे जाते हैं।) अतः जो दुष्टोंको ही दण्ड देता है, वह उस निग्रह-कर्मको लेकर सत्पुरुषोंद्वारा लांछित कैसे किया जा सकता है?॥ ३२॥

अयुक्तकारिणो लोके गर्हणीया विवेकिता।
यदुद्वेजयते लोकं तदयुक्तं प्रचक्षते॥ ३३

सर्वोऽपि निग्रहो लोके न च विद्वेषपूर्वकः।
न हि द्वेष्टि पिता पुत्रं यो निगृह्याति शिक्षयेत्॥ ३४

माध्यस्थेनापि निग्राह्यान्यो निगृह्णाति मार्गतः।
तस्याप्यवश्यं यत्किञ्चिन्नैर्घृण्यमनुवर्तते॥ ३५

अयुक्त अर्थात् अनुचित कर्म करनेवाले लोग विवेकी पुरुषके द्वारा गर्हित माने जाते हैं और जो कर्म लोगोंको उद्विग्न करता है, वह कर्म अयुक्त कहलाता है। लोकमें जहाँ कहीं भी निग्रह होता है, वह यदि विद्वेषपूर्वक न हो, तभी श्रेष्ठ माना जाता है। जो पिता पुत्रको दण्ड देकर उसे अधिक शिक्षित बनाता है, वह उससे द्वेष नहीं करता। तटस्थ भावसे जो व्यक्ति दण्डनीय लोगोंको अनुशासित करता है, उसमें भी यत्किंचित् कठोरता देखी ही जाती है॥ ३३—३५॥

अन्यथा न हिनस्त्येव सदोषानप्यसौ परान्।
हिनस्ति चायमप्यज्ञान्परं माध्यस्थ्यमाचरन्॥ ३६

यदि उसमें कठोरता न हो तो वह अपराधी पुरुषोंको दण्डित ही कैसे करेगा, पर वह मध्यस्थ भावमें स्थित रहकर भी अज्ञ पुरुषोंको दण्डित करता है॥ ३६॥

तस्माद्दुःखात्मिकां हिंसां कुर्वाणो यः स निर्घृणः।
इति निर्बन्धयन्त्येके नियमो नेति चापरे॥ ३७

इसलिये [भले ही वह मध्यस्थ भाववाला क्यों न हो, पर] दण्डित करता हुआ व्यक्ति निर्दय होता ही है—ऐसा कुछ लोग कहते हैं और दूसरे लोग कहते हैं कि ऐसा कोई [निश्चित] नियम नहीं है॥ ३७॥

निदानज्ञस्य भिषजो रुग्णे हिंसां प्रयुञ्जतः।
न किञ्चिदपि नैर्घृण्यं घृणैवात्र प्रयोजिका॥ ३८

जिस प्रकार रोगके कारणको जाननेवाला वैद्य रोगीके प्रति निर्दयतापूर्ण व्यवहार करता हुआ भी [वस्तुतः] तनिक भी निर्दयी नहीं होता, अपितु उसका यह व्यवहार दयासे ही प्रेरित होता है॥ ३८॥

घृणापि न गुणायैव हिंस्त्रेषु प्रतियोगिषु।
तादृशेषु घृणी भ्रान्त्या घृणान्तरितनिर्घृणः॥ ३९

उपेक्षापीह दोषाय रक्ष्येषु प्रतियोगिषु।
शक्तौ सत्यामुपेक्षातो रक्ष्यः सद्यो विपद्यते॥ ४०

सर्पस्यास्यगतं पश्यन् यस्तु रक्ष्यमुपेक्षते।
दोषाभासान्समुत्प्रेक्ष्य फलतः सोऽपि निर्घृणः॥ ४१

हिंसाके लिये उद्यत शत्रुके प्रति की गयी दया उपकारिणी नहीं होती, यदि कदाचित् वैसे लोगोंके प्रति व्यक्ति भ्रमवश दयावान् हो भी जाय तो अन्ततोगत्वा उसे निर्दय होना ही पड़ता है। रक्षणीय व्यक्तिकी रक्षा न करना और दण्डनीय व्यक्तिको दण्ड न देना—यह दोनों ही प्रकारकी उपेक्षा दोषपूर्ण है। सामर्थ्यके होनेपर भी यदि रक्षणीय व्यक्तिकी रक्षा न की जाय तो शीघ्र ही रक्षणीय व्यक्तिका नाश हो जाता है। सर्पके मुखमें जाते हुए व्यक्तिको देखते हुए भी जो पुरुष दोषाभासोंका अनुमानकर उस रक्षणीय व्यक्तिकी उपेक्षा कर देता है, वस्तुतः वह भी निर्दय ही होता है॥ ३९—४१॥

तस्माद् घृणा गुणायैव सर्वथेति न सम्मतम्।
सम्मतं प्राप्तकामित्वं सर्वं त्वन्यदसम्मतम्॥ ४२

इसलिये दया प्रत्येक समय कल्याणकारिणी ही होती है—ऐसा मानना उचित नहीं है। अतएव आवश्यकतानुरूप व्यवहार ही उचित है तथा उसके अतिरिक्त व्यवहार अनुचित कहा गया है॥ ४२॥

मूर्त्यात्मस्वपि रागाद्या दोषाः सन्त्येव वस्तुतः।
तथापि तेषामेवैते न शिवस्य तु सर्वथा॥ ४३

मूर्त्यात्माओंमें भी राग आदि दोष होते ही हैं, पर वे दोष वस्तुतः उनके ही समझने चाहिये, [सर्वव्यापक होनेपर भी] शिवमें दोषोंकी स्थिति सर्वथा नहीं है॥ ४३॥

अग्नावपि समाविष्टं ताम्रं खलु सकालिकम्।
इति नाग्निरसौ दुष्येत्ताम्रसंसर्गकारणात्॥ ४४

मलसे युक्त ताम्रका अग्निमें प्रक्षेप होनेपर भी वह अग्नि [समल] ताम्रके संसर्गसे मलिन नहीं होती॥ ४४॥

नाग्नेरशुचिसंसर्गादशुचित्वमपेक्षते।
अशुचेस्त्वग्निसंयोगाच्छुचित्वमपि जायते॥ ४५

अपवित्र वस्तुओंका संसर्ग होनेपर भी अग्निमें अपवित्रता नहीं देखी जाती, किंतु अग्निके संसर्गसे अपवित्र वस्तु पवित्र हो जाती है। इस प्रकार शुद्ध

एवं शोध्यात्मसंसर्गान्न ह्यशुद्धः शिवो भवेत्।
शिवसंसर्गतस्त्वेष शोध्यात्मैव हि शुद्ध्यति॥ ४६

अयस्यग्नौ समाविष्टे दाहोऽग्नेरेव नायसः।
मूर्त्तात्मन्येवमैश्वर्यमीश्वरस्यैव नात्मनाम्॥ ४७

न हि काष्ठं ज्वलत्यूर्ध्वमग्निरेव ज्वलत्यसौ।
काष्ठस्याङ्गारता नाग्नेरेवमत्रापि योज्यताम्।
अत एव जगत्यस्मिन्काष्ठपाषाणमृत्स्वपि॥ ४८

शिवावेशवशादेव शिवत्वमुपचर्यते।
मैत्र्यादयो गुणा गौणास्तस्मात्ते भिन्नवृत्तयः।
तैर्गुणैरुपरक्तानां दोषाय च गुणाय च॥ ४९

यत्तु गौणमगौणं च तत्सर्वमनुगृह्णतः।
न गुणाय न दोषाय शिवस्य गुणवृत्तयः॥ ५०

न चानुग्रहशब्दार्थं गौणमाहुर्विपश्चितः।
संसारमोचनं किं तु शैवमाज्ञामयं हितम्॥ ५१

हितं तदाज्ञाकरणं यद्धितं तदनुग्रहः।
सर्वं हिते नियुञ्जानः सर्वानुग्रहकारकः॥ ५२

यस्तूपकारशब्दार्थस्तमप्याहुरनुग्रहम् ।
तस्यापि हितरूपत्वाच्छिवः सर्वोपकारकः॥ ५३

हिते सदा नियुक्तं तु सर्वं चिदचिदात्मकम्।
स्वभावप्रतिबन्धं तत्समं न लभते हितम्॥ ५४

करनेयोग्य [मलावृत] जीवके संसर्गसे शिवजी अशुद्ध नहीं होते, अपितु उनके संसर्गसे अशुद्ध जीव शुद्ध हो जाता है॥ ४५-४६॥

जैसे अग्निमें गिरे हुए लोहेमें जो दाहकता है, वह लोहेकी नहीं अपितु अग्निकी ही है, उसी प्रकार मूर्त्यात्मामें स्थित जो ऐश्वर्य है, वह वस्तुतः शिवका ही है, आत्माओं [मूर्त्यात्मा]-का नहीं॥ ४७॥

काष्ठ कभी ऊपरकी ओर नहीं जलता अपितु अग्नि [-की शिखा] ही ऊपरकी ओर जलती है। इसी प्रकार काष्ठ ही अंगारके रूपमें देखा जाता है, न कि अग्नि—ऐसा ही इस विषयमें भी समझ लेना चाहिये। इसलिये इस संसारमें भी काष्ठ, पाषाण, मृत्तिका आदिमें शिवकी व्याप्ति होनेके कारण उनका शिवरूपसे व्यवहार किया जाता है। मैत्री आदि गुण चित्तवृत्तिरूप होनेके कारण गौण कहे गये हैं। उन्हीं गुणोंसे उपरत होनेके कारण [जीवोंके] कर्म दोषयुक्त तथा गुणयुक्त हो जाते हैं॥ ४८-४९॥

ये गुणात्मक वृत्तियाँ चाहे प्रधान हों या अप्रधान हों, पर इससे अनुग्रहकर्ता भगवान् शिवमें न दोषकी स्थिति होती है और न गुणकी ही स्थिति होती है। अनुग्रह शब्दके तात्पर्यको विद्वानोंने लाक्षणिक नहीं कहा है, उनके मतमें यह अर्थ संसारबन्धनसे छुड़ानेवाला तथा कल्याणकारी शिवादेश है॥ ५०-५१॥

शिवकी आज्ञाका पालन ही हित है और जो हित है, वही उनका अनुग्रह है। अतएव सबको हितमें नियुक्त करनेवाले शिव सबपर अनुग्रह करनेवाले कहे गये हैं। जो 'उपकार' शब्दका अर्थ है, उसे भी अनुग्रह ही कहा गया है; क्योंकि उपकार भी हितरूप ही होता है। अतः सबका उपकार करनेवाले शिव सर्वानुग्राहक हैं। शिवके द्वारा जड-चेतन सभी सदा हितमें ही नियुक्त होते हैं। परंतु सबको जो एक साथ और एक समान हितकी उपलब्धि नहीं होती, इसमें उनका स्वभाव ही प्रतिबन्धक है॥ ५२—५४॥

यथा विकासयत्येव रविः पद्मानि भानुभिः।
समं न विकसन्त्येव स्वस्वभावानुरोधतः॥ ५५

स्वभावोऽपि हि भावानां भाविनोऽर्थस्य कारणम्।
न हि स्वभावो नश्यन्तमर्थं कर्तृषु साधयेत्॥ ५६

सुवर्णमेव नाङ्गारं द्रावयत्यग्निसङ्गमः।
एवं पक्वमलानेव मोचयेन्न शिवः परान्॥ ५७

जैसे सूर्य अपनी किरणोंद्वारा सभी कमलोंको विकासके लिये प्रेरित करते हैं, परंतु वे अपने-अपने स्वभावके अनुसार एक साथ और एक समान विकसित नहीं होते, स्वभाव भी पदार्थोंके भावी अर्थका कारण होता है, किंतु वह नष्ट होते हुए अर्थको कर्ताओंके लिये सिद्ध नहीं कर सकता। जैसे अग्निका संयोग सुवर्णको ही पिघलाता है, कोयले या अंगारको नहीं, उसी प्रकार भगवान् शिव परिपक्व मलवाले पशुओंको ही बन्धनमुक्त करते हैं, दूसरोंको नहीं॥ ५५—५७॥

यद्यथा भवितुं योग्यं तत्तथा न भवेत्स्वयम्।
विना भावनया कर्ता स्वतन्त्रः सन्ततो भवेत्॥ ५८

जो वस्तु जैसी होनी चाहिये, वैसी वह स्वयं नहीं बनती। वैसी बननेके लिये कर्ताकी भावनाका सहयोग होना आवश्यक है। कर्ताकी भावनाके बिना ऐसा होना सम्भव नहीं है, अतः कर्ता सदा स्वतन्त्र होता है॥ ५८॥

स्वभावविमलो यद्वत्सर्वानुग्राहकः शिवः।
स्वभावमलिनास्तद्वदात्मनो जीवसंज्ञिताः॥ ५९

अन्यथा संसरन्त्येते नियमान्न शिवः कथम्।
कर्ममायानुबन्धोऽस्य संसारः कथ्यते बुधैः॥ ६०

अनुबन्धोऽयमस्यैव न शिवस्येति हेतुमान्।
स हेतुरात्मनामेव निजो नागन्तुको मलः॥ ६१

आगन्तुकत्वे कस्यापि भाव्यं केनापि हेतुना।
योऽयं हेतुरसावेकस्त्वविचित्रस्वभावतः॥ ६२

सबपर अनुग्रह करनेवाले शिव जिस तरह स्वभावसे ही निर्मल हैं, उसी तरह 'जीव' संज्ञा धारण करनेवाली आत्माएँ स्वभावतः मलिन होती हैं। यदि ऐसी बात न होती तो वे जीव क्यों नियमपूर्वक संसारमें भटकते और शिव क्यों संसार-बन्धनसे परे रहते? विद्वान् पुरुष कर्म और मायाके बन्धनको ही जीवका 'संसार' कहते हैं। यह बन्धन जीवको ही प्राप्त होता है, शिवको नहीं। इसमें कारण है, जीवका स्वाभाविक मल। वह कारणभूत मल जीवोंका अपना स्वभाव ही है, आगन्तुक नहीं है। यदि आगन्तुक होता तो किसीको भी किसी भी कारणसे बन्धन प्राप्त हो जाता। जो यह हेतु है, वह एक है; क्योंकि सब जीवोंका स्वभाव एक-सा है॥ ५९—६२॥

आत्मतायाः समत्वेऽपि बद्धा मुक्ताः परे यतः।
बद्धेष्वेव पुनः केचिल्लयभोगाधिकारतः॥ ६३

यद्यपि सबमें एक-सा आत्मभाव है, तो भी मलके परिपाक और अपरिपाकके कारण कुछ जीव बद्ध हैं और कुछ बन्धनसे मुक्त हैं। बद्ध जीवोंमें भी कुछ लोग लय और भोगके अधिकारके अनुसार उत्कृष्ट और निकृष्ट होकर ज्ञान और ऐश्वर्य आदिकी

ज्ञानैश्वर्यादिवैषम्यं भजन्ते सोत्तराधराः।
केचिन्मूर्त्यात्मतां यान्ति केचिदासन्नगोचराः ॥ ६४

विषमताको प्राप्त होते हैं अर्थात् कुछ लोग अधिक ज्ञान और ऐश्वर्यसे युक्त होते हैं तथा कुछ लोग कम। कोई मूर्त्यात्मा होते हैं और कोई साक्षात् शिवके समीप विचरनेवाले होते हैं॥ ६३-६४॥

मूर्त्यात्मसु शिवाः केचिदध्वनां मूर्द्धसु स्थिताः।
मध्ये महेश्वरा रुद्रास्त्ववर्वाचीनपदे स्थिताः ॥ ६५

मूर्त्यात्माओंमें भी कोई तो शिवस्वरूप हो छहों अध्वाओंके ऊपर स्थित होते हैं, कोई अध्वाओंके मध्यमार्गमें महेश्वर होकर रहते हैं और कोई निम्नभागमें रुद्ररूपसे स्थित होते हैं॥ ६५॥

आसन्नेऽपि च मायायाः परस्मात्कारणात्त्रयम्।
तत्राप्यात्मा स्थितोऽधस्तादन्तरात्मा च मध्यतः ॥ ६६

परस्तात्परमात्मेति ब्रह्मविष्णुमहेश्वराः।
वर्तन्ते वसवः केचित्परमात्मपदाश्रयाः ॥ ६७

शिवके समीपवर्ती स्वरूपमें भी मायासे परे होनेके कारण उत्कृष्ट, मध्यम और निकृष्टके भेदसे तीन श्रेणियाँ होती हैं—वहाँ निम्न स्थानमें आत्माकी स्थिति है, मध्यम स्थानमें अन्तरात्माकी स्थिति है और जो सबसे उत्कृष्ट श्रेणीका स्थान है, उसमें परमात्माकी स्थिति है। ये ही क्रमशः ब्रह्मा, विष्णु और महेश्वर कहलाते हैं। कोई पशु (जीव) परमात्मपदका आश्रय लेनेवाले होते हैं, कोई अन्तरात्मपदपर और आत्मपदपर प्रतिष्ठित होते हैं॥ ६६-६७½॥

अन्तरात्मपदे केचित्केचिदात्मपदे तथा।

शान्त्यतीतपदे शैवाः शान्ते माहेश्वरे ततः ॥ ६८

विद्यायां तु यथा रौद्राः प्रतिष्ठायां तु वैष्णवाः।
निवृत्तौ च तथात्मानो ब्रह्मा ब्रह्माङ्गयोनयः ॥ ६९

शैव शान्त्यतीत पदका तथा माहेश्वरगण शान्तिपदका सेवन करते हैं। विद्यापदमें रौद्रगण एवं प्रतिष्ठापदमें वैष्णव स्थितिलाभ करते हैं। निवृत्तिपदमें ब्रह्माजी तथा उनके शरीरसे उत्पन्न दिव्यात्माएँ निवास करती हैं॥ ६८-६९॥

देवयोन्यष्टकं मुख्यं मानुष्यमथ मध्यमम्।
पक्ष्यादयोऽधमाः पञ्च योनयस्ताश्चतुर्दश ॥ ७०

अष्टविध देवयोनियाँ प्रधान मानी गयी हैं, मनुष्ययोनि मध्यम हैं और पंचविध पशुयोनियाँ अधम कही गयी हैं। इस प्रकार ये चौदह योनियाँ कही गयी हैं॥ ७०॥

उत्तराधरभावोऽपि ज्ञेयः संसारिणो मलः।
यथाऽऽमभावो मुक्तस्य पूर्वं पश्चात्तु पक्वता ॥ ७१

संसारी जीवका उत्कृष्ट तथा अपकृष्ट भाव ही वस्तुतः उसका स्वाभाविक मल कहा गया है, जिस प्रकार खायी गयी भोज्य वस्तुकी पूर्वावस्थाको आम कहते हैं और खानेके उपरान्त उसी वस्तुकी पक्व संज्ञा हो जाती है। उसी प्रकार मल भी पक्व और आमके भेदसे दो प्रकारका होता है, यह द्विविध मल ही [जन्म-मरणादिरूप] संसारका कारण होता है॥ ७१½॥

मलोऽप्यामश्च पक्वश्च भवेत्संसारकारणम्।

आमे त्वधरता पुंसां पक्वे तूत्तरता क्रमात्॥ ७२

पश्वात्मानस्त्रिधा भिन्ना एकद्वित्रिमलाः क्रमात्।
अत्रोत्तरा एकमला द्विमला मध्यमा मताः।
त्रिमलास्त्वधमा ज्ञेया यथोत्तरमधिष्ठिताः॥ ७३

त्रिमलानधितिष्ठन्ति द्विमलैकमलाः क्रमात्।
इत्थमौपाधिको भेदो विश्वस्य परिकल्पितः॥ ७४

एकद्वित्रिमलान्सर्वाञ्छिव एकोऽधितिष्ठति।
अशिवात्मकमप्येतच्छिवेनाधिष्ठितं यथा॥ ७५

अरुद्रात्मकमित्येवं रुद्रैर्जगदधिष्ठितम्।
अण्डान्ता हि महाभूमिः शतरुद्राद्यधिष्ठिता॥ ७६

मायान्तमन्तरिक्षं तु ह्यमरेशादिभिः क्रमात्।
अंगुष्ठमात्रपर्यन्तैः समन्तात्सन्ततं ततम्॥ ७७

महामायावसाना द्यौर्वाम्याद्यैर्भुवनाधिपैः।
अनाश्रितान्तैरध्वान्तर्वर्त्तिभिः समधिष्ठिताः॥ ७८

ते हि साक्षाद्दिविषदस्त्वन्तरिक्षसदस्तथा।
पृथिवीषद इत्येवं देवा देवव्रतैः स्तुताः॥ ७९

एवं त्रिभिर्मलैरामैः पक्वैरेव पृथक्पृथक्।
निदानभूतैः संसाररोगः पुंसां प्रवर्तते॥ ८०

अस्य रोगस्य भैषज्यं ज्ञानमेव न चापरम्।
भिषगाज्ञापकः शम्भुः शिवः परमकारणम्॥ ८१

अपक्व मल जीवगणोंकी अधोगतिका कारण होता है और पक्व मल उनकी क्रमशः ऊर्ध्वगतिका कारण बनता है। ये पशु जीवात्मा एक, दो तथा तीन मलोंसे युक्त होते हैं। एक मलसे युक्त जीव यहाँ श्रेष्ठ कहा गया है, दो मलोंवाला मध्यम तथा तीन मलवाला जीव अधम कहा गया है। ये मलावृत जीव उत्तरोत्तर अधिष्ठित हैं। तीन मलवालोंपर दो मलवाले तथा उनपर एक मलवाले अधिष्ठित होते हैं। इस प्रकार मलरूप उपाधिके कारण संसारी जीवोंका भेद परिकल्पित किया गया है॥ ७२—७४॥

एक, दो तथा तीन मलवाले सभी जीवोंपर एकमात्र भगवान् शिवका आधिपत्य है। यह जगत् जिस प्रकार अशिवात्मक अर्थात् अभद्र होकर भी शिवसे अधिष्ठित है, उसी प्रकार अरुद्रात्मक होकर भी रुद्रोंद्वारा अधिष्ठित होता है। [समस्त] ब्रह्माण्डात्मिका यह महाभूमि शतरुद्र आदिके द्वारा अधिष्ठित है तथा उनसे अधिष्ठित यह महाभूमि मायासे आवेष्टित और अन्तरिक्षसे निरन्तर आवृत तथा अंगुष्ठमात्र परिमाणवाले अमरेशादि देवगणोंसे अधिष्ठित है॥ ७५—७७॥

महामायापर्यन्त यह द्युलोक वाम आदि भुवनपतियोंके द्वारा अधिष्ठित है तथा साक्षात् सम्बन्ध न होनेपर भी [पूर्वोक्त] षडध्वाके अन्तर्वर्ती देवगणोंसे भी अधिष्ठित है। वामादि दिविषद्, अमरेशादि अन्तरिक्षसद् तथा शतरुद्रादि पृथिवीषद्—इन देवगणोंका देवोपासक [मुनिगण] सर्वदा स्तवन करते रहते हैं॥ ७८-७९॥

संसाररोगके कारणभूत, [अल्प पक्व,] पक्व तथा अपक्व—इन तीनों मलोंके द्वारा मनुष्य [जन्म-मरणरूप] संसाररोगसे ग्रस्त होते हैं॥ ८०॥

इस संसाररोगकी औषधि ज्ञानके अतिरिक्त अन्य कुछ भी नहीं है। कल्याणस्वरूप, परमकारण भगवान् शिव ही आज्ञारूप औषधि प्रदान करनेवाले वैद्य हैं॥ ८१॥

अदुःखेनाऽपि शक्तोऽसौ पशून्मोचयितुं शिवः।
कथं दुःखं करोतीति नात्र कार्या विचारणा॥ ८२

दुःखमेव हि सर्वोऽपि संसार इति निश्चितम्।
कथं दुःखमदुःखं स्यात्स्वभावो ह्यविपर्ययः ॥ ८३

न हि रोगी ह्यरोगी स्याद्भिषग्भैषज्यकारणात्।
रोगार्तं तु भिषग्रोगाद्भैषजैः सुखमुद्धरेत्॥ ८४

एवं स्वभावमलिनान्स्वभावाद्दुःखिनः पशून्।
स्वाज्ञौषधविधानेन दुःखान्मोचयते शिवः॥ ८५

न भिषक् कारणं रोगे शिवः संसारकारणम्।
इत्येतदपि वैषम्यं न दोषायास्य कल्पते॥ ८६

दुःखे स्वभावसंसिद्धे कथं तत्कारणं शिवः।
स्वाभाविको मलः पुंसां स हि संसारयत्यमून्॥ ८७

संसारकारणं यत्तु मलं मायाद्यचेतनम्।
तत्स्वयं न प्रवर्तेत शिवसान्निध्यमन्तरा॥ ८८

यथा मणिरयस्कान्तः सान्निध्यादुपकारकः।
अयसश्चलतस्तद्वच्छिवोऽप्यस्येति सूरयः॥ ८९

न निवर्तयितुं शक्यं सान्निध्यं सदकारणम्।
अधिष्ठाता ततो नित्यमज्ञातो जगतः शिवः॥ ९०

न शिवेन विना किंचित्प्रवृत्तमिह विद्यते।
तत्प्रेरितमिदं सर्वं तथापि न स मुह्यति॥ ९१

भगवान् शिव तो अनायास ही समस्त पशुओंको बन्धनसे मुक्त करनेमें समर्थ हैं। फिर वे उन्हें बन्धनमें डाले रखकर क्यों दुःख देते हैं? यहाँ ऐसा विचार या संदेह नहीं करना चाहिये; क्योंकि सारा संसार दुःखरूप ही है, ऐसा विचारवानोंका निश्चित सिद्धान्त है। जो स्वभावतः दुःखमय है, वह दुःखरहित कैसे हो सकता है। स्वभावमें उलट-फेर नहीं हो सकता॥ ८२-८३॥

वैद्यकी दवासे रोग अरोग नहीं होता। वह रोगपीड़ित मनुष्यका अपनी दवासे सुखपूर्वक उद्धार कर देता है। इसी प्रकार जो स्वभावतः मलिन और स्वभावसे ही दुखी हैं, उन पशुओंको अपनी आज्ञारूपी ओषधि देकर शिव दुःखसे छुड़ा देते हैं। रोग होनेमें वैद्य कारण नहीं है, परंतु संसारकी उत्पत्तिमें शिव कारण हैं। अतः रोग और वैद्यके दृष्टान्तसे शिव और संसारके दार्ष्टान्तिमें समानता नहीं है। इसलिये इसके द्वारा शिवपर दोषारोपण नहीं किया जा सकता। जब दुःख स्वभाव-सिद्ध है, तब शिव उसके कारण कैसे हो सकते हैं? जीवोंमें जो स्वाभाविक मल है, वही उन्हें संसारके चक्रमें डालता है॥ ८४—८७॥

विद्वानोंका कहना है कि संसारका कारणभूत जो मल—अचेतन माया आदि है, वह शिवका सांनिध्य प्राप्त किये बिना स्वयं चेष्टाशील नहीं हो सकता। जैसे चुम्बकमणि लोहेका सांनिध्य पाकर ही उपकारक होता है—लोहेको खींचता है, उसी प्रकार शिव भी जड माया आदिका सांनिध्य पाकर ही उसके उपकारक होते हैं, उसे सचेष्ट बनाते हैं॥ ८८-८९॥

उनके विद्यमान सांनिध्यको अकारण हटाया नहीं जा सकता। अतः जगत्के लिये जो सदा अज्ञात हैं, वे शिव ही इसके अधिष्ठाता हैं। शिवके बिना यहाँ कोई भी प्रवृत्त (चेष्टाशील) नहीं होता, उनकी आज्ञाके बिना एक पत्ता भी नहीं हिलता। उनसे प्रेरित होकर ही यह सारा जगत् विभिन्न प्रकारकी चेष्टाएँ करता है, तथापि वे शिव कभी मोहित नहीं होते॥ ९०-९१॥

शक्तिराज्ञात्मिका तस्य नियन्त्री विश्वतोमुखी।
तया ततमिदं शश्वत्तथापि स न दुष्यति॥ ९२

अनिदं प्रथमं सर्वमीशितव्यं स ईश्वरः।
ईशनाच्च तदीयाज्ञा तथापि स न दुष्यति॥ ९३

उनकी आज्ञारूपिणी जो शक्ति है, वही सबका नियन्त्रण करती है। उसका सब ओर मुख है। उसीने सदा इस सम्पूर्ण दृश्यप्रपंचका विस्तार किया है, तथापि उसके दोषसे शिव दूषित नहीं होते। यह समस्त जगत् शिवसे प्रेरित होता है, किंतु इससे शिवका स्वस्वरूप विकृत नहीं होता। प्रेरणा अथवा शासनका कार्य शिवकी आज्ञाके द्वारा सम्पन्न होता है॥ ९२-९३॥

योऽन्यथा मन्यते मोहात्स विनश्यति दुर्मतिः।
तच्छक्तिवैभवादेव तथापि स न दुष्यति॥ ९४

जो दुर्बुद्धि मानव मोहवश इसके विपरीत मान्यता रखता है, वह नष्ट हो जाता है। शिवकी शक्तिके वैभवसे ही संसार चलता है, तथापि इससे शिव दूषित नहीं होते॥ ९४॥

एतस्मिन्नन्तरे व्योम्नः श्रुता वागशरीरिणी।
सत्यमोममृतं सौम्यमित्याविरभवत्स्फुटम्॥ ९५

ततो हृष्टतराः सर्वे विनष्टाशेषसंशयाः।
मुनयो विस्मयाविष्टाः प्रणेमुः पवनं प्रभुम्॥ ९६

तथा विगतसन्देहान्कृत्वापि पवनो मुनीन्।
नैते प्रतिष्ठितज्ञाना इति मत्वैवमब्रवीत्॥ ९७

इसी समय आकाशसे शरीररहित वाणी सुनायी दी—**'सत्यम् ओम् अमृतं सौम्यम्'*** इन पदोंका वहाँ स्पष्ट उच्चारण हुआ, उसे सुनकर सब लोग बहुत प्रसन्न हुए। उनके समस्त संशयोंका निवारण हो गया तथा उन मुनियोंने विस्मित हो प्रभु पवनदेवको प्रणाम किया। इस प्रकार उन मुनियोंको संदेहरहित करके भी वायुदेवने यह नहीं माना कि इन्हें पूर्ण ज्ञान हो गया। 'इनका ज्ञान अभी प्रतिष्ठित नहीं हुआ है' ऐसा समझकर ही वे इस प्रकार बोले—॥ ९५—९७॥

वायुरुवाच

परोक्षमपरोक्षं च द्विविधं ज्ञानमिष्यते।
परोक्षमस्थिरं प्राहुरपरोक्षं तु सुस्थिरम्॥ ९८

हेतूपदेशगम्यं यत्तत्परोक्षं प्रचक्षते।
अपरोक्षं पुनः श्रेष्ठादनुष्ठानाद्भविष्यति॥ ९९

नापरोक्षादृते मोक्ष इति कृत्वा विनिश्चयम्।
श्रेष्ठानुष्ठानसिद्ध्यर्थं प्रयतध्वमतन्द्रिताः॥ १००

वायुदेवताने कहा—मुनियो! परोक्ष और अपरोक्षके भेदसे ज्ञान दो प्रकारका माना गया है। परोक्ष ज्ञानको अस्थिर कहा जाता है और अपरोक्ष ज्ञानको सुस्थिर। युक्तिपूर्ण उपदेशसे जो ज्ञान होता है, उसे विद्वान् पुरुष परोक्ष कहते हैं। वही श्रेष्ठ अनुष्ठानसे अपरोक्ष हो जायगा। अपरोक्ष ज्ञानके बिना मोक्ष नहीं होता, ऐसा निश्चय करके तुमलोग आलस्यरहित हो श्रेष्ठ अनुष्ठानकी सिद्धिके लिये प्रयत्न करो॥ ९८—१००॥

इति श्रीशिवमहापुराणे सप्तम्यां वायवीयसंहितायां पूर्वखण्डे ज्ञानोपदेशो नामैकत्रिंशोऽध्यायः॥ ३१॥

॥ इस प्रकार श्रीशिवमहापुराणके अन्तर्गत सातवीं वायवीयसंहिताके पूर्वखण्डमें ज्ञानोपदेश नामक इकतीसवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ ३१॥

* इन पदोंका सम्मिलित अर्थ इस प्रकार है—हाँ, वह सत्य है, अमृतमय है और सौम्य है।

अथ द्वात्रिंशोऽध्यायः

परम धर्मका प्रतिपादन, शैवागमके अनुसार पाशुपत ज्ञान तथा उसके साधनोंका वर्णन

ऋषय ऊचुः

किं तच्छ्रेष्ठमनुष्ठानं मोक्षो येनापरोक्षितः।
तत्तस्य साधनं चाद्य वक्तुमर्हसि मारुत॥ १

ऋषियोंने पूछा—वायुदेव! वह कौन-सा श्रेष्ठ अनुष्ठान है, जो मोक्षस्वरूप ज्ञानको अपरोक्ष कर देता है? उसको और उसके साधनोंको आज आप हमें बतानेकी कृपा करें॥ १॥

वायुरुवाच

शैवो हि परमो धर्मः श्रेष्ठानुष्ठानशब्दितः।
यत्रापरोक्षो लक्ष्येत साक्षान्मोक्षप्रदः शिवः॥ २

वायुने कहा—भगवान् शिवका बताया हुआ जो परम धर्म है, उसीको श्रेष्ठ अनुष्ठान कहा गया है। उसके सिद्ध होनेपर साक्षात् मोक्षदायक शिव अपरोक्ष हो जाते हैं॥ २॥

स तु पञ्चविधो ज्ञेयः पंचभिः पर्वभिः क्रमात्।
क्रियातपोजपध्यानज्ञानात्मभिरनुत्तरैः॥ ३

तैरेव सोत्तरैः सिद्धो धर्मस्तु परमो मतः।
परोक्षमपरोक्षं च ज्ञानं यत्र च मोक्षदम्॥ ४

वह परम धर्म पाँचों पर्वोंके कारण क्रमशः पाँच प्रकारका जानना चाहिये। उन पर्वोंके नाम हैं—क्रिया, तप, जप, ध्यान और ज्ञान। ये उत्तरोत्तर श्रेष्ठ हैं, उन उत्कृष्ट साधनोंसे सिद्ध हुआ धर्म परम धर्म माना गया है। जहाँ परोक्ष ज्ञान भी अपरोक्ष ज्ञान होकर मोक्षदायक होता है॥ ३-४॥

परमोऽपरमश्चोभौ धर्मौ हि श्रुतिचोदितौ।
धर्मशब्दाभिधेयेऽर्थे प्रमाणं श्रुतिरेव नः॥ ५

परमो योगपर्यन्तो धर्मः श्रुतिशिरोगतः।
धर्मस्त्वपरमस्तद्वदधः श्रुतिमुखोत्थितः॥ ६

वैदिक धर्म दो प्रकारके बताये गये हैं—परम और अपरम। 'धर्म' शब्दसे प्रतिपाद्य अर्थमें हमारे लिये श्रुति ही प्रमाण है। योगपर्यन्त जो परम धर्म है, वह श्रुतियोंके शिरोभूत उपनिषद्में वर्णित है और जो अपरम धर्म है, वह उसकी अपेक्षा नीचे श्रुतिके मुखभागसे अर्थात् संहिता-मन्त्रोंद्वारा प्रतिपादित हुआ है॥ ५-६॥

अपश्वात्माधिकारत्वाद्यो धर्मः परमो मतः।
साधारणस्ततोऽन्यस्तु सर्वेषामधिकारतः॥ ७

स चायं परमो धर्मः परधर्मस्य साधनम्।
धर्मशास्त्रादिभिः सम्यक् साङ्ग एवोपबृंहितः॥ ८

जिसमें पशु (बद्ध) जीवोंका अधिकार नहीं है, वह वेदान्तवर्णित धर्म 'परम धर्म' माना गया है। उससे भिन्न जो यज्ञ-यागादि हैं, उसमें सबका अधिकार होनेसे वह साधारण या 'अपरम धर्म' कहलाता है। जो अपरम धर्म है, वही परम धर्मका साधन है। धर्मशास्त्र आदिके द्वारा उसका सम्यक् रूपसे विस्तारपूर्वक सांगोपांग निरूपण हुआ है॥ ७-८॥

शैवो यः परमो धर्मः श्रेष्ठानुष्ठानशब्दितः।
इतिहासपुराणाभ्यां कथंचिदुपबृंहितः॥ ९

शैवागमैस्तु संपन्नः सहाङ्गोपाङ्गविस्तरः।

भगवान् शिवके द्वारा प्रतिपादित जो परम धर्म है, उसीका नाम श्रेष्ठ अनुष्ठान है। इतिहास और पुराणोंद्वारा उसका किसी प्रकार विस्तार हुआ है, परंतु शैव-शास्त्रोंद्वारा उसके विस्तारका सांगोपांग निरूपण

तत्संस्काराधिकारैश्च सम्यगेवोपबृंहितः॥ १०

शैवागमो हि द्विविधः श्रौतोऽश्रौतश्च संस्कृतः।
श्रुतिसारमयः श्रौतः स्वतन्त्र इतरो मतः॥ ११

स्वतन्त्रो दशधा पूर्वं तथाष्टादशधा पुनः।
कामिकादिसमाख्याभिः सिद्धः सिद्धान्तसंज्ञितः॥ १२

श्रुतिसारमयो यस्तु शतकोटिप्रविस्तरः।
परं पाशुपतं यत्र व्रतं ज्ञानं च कथ्यते॥ १३

युगावर्तेषु शिष्येत योगाचार्यस्वरूपिणा।
तत्र तत्रावतीर्णेन शिवेनैव प्रवर्त्यते॥ १४

संक्षिप्यास्य प्रवक्तारश्चत्वारः परमर्षयः।
रुरुर्दधीचोऽगस्त्यश्च उपमन्युर्महायशाः॥ १५

ते च पाशुपता ज्ञेयाः संहितानां प्रवर्तकाः।
तत्सन्ततीया गुरवः शतशोऽथ सहस्रशः॥ १६

तत्रोक्तः परमो धर्मश्चर्याद्यात्मा चतुर्विधः।
तेषु पाशुपतो योगः शिवं प्रत्यक्षयेद् दृढम्॥ १७

तस्माच्छ्रेष्ठमनुष्ठानं योगः पाशुपतो मतः।
तत्राप्युपायको युक्तो ब्रह्मणा स तु कथ्यते॥ १८

नामाष्टकमयो योगः शिवेन परिकल्पितः।
तेन योगेन सहसा शैवी प्रज्ञा प्रजायते॥ १९

किया गया है। वहीं उसके स्वरूपका सम्यक् रूपसे प्रतिपादन हुआ है। साथ ही उसके संस्कार और अधिकार भी सम्यक् रूपसे विस्तारपूर्वक बताये गये हैं॥ ९-१०॥

शैव-आगमके दो भेद हैं—श्रौत और अश्रौत। जो श्रुतिके सार तत्त्वसे सम्पन्न है, वह संस्कार-सम्पन्न श्रौत है; और जो स्वतन्त्र है, वह अश्रौत माना गया है। स्वतन्त्र शैवागम पहले दस प्रकारका था, फिर अठारह प्रकारका हुआ। वह कामिका आदि संज्ञाओंसे सिद्ध होकर सिद्धान्त नाम धारण करता है॥ ११-१२॥

श्रुतिसारमय जो शैव-शास्त्र है, उसका विस्तार सौ करोड़ श्लोकोंमें किया गया है। उसीमें उत्कृष्ट 'पाशुपत व्रत' और 'पाशुपत ज्ञान' का वर्णन किया गया है। युग-युगमें होनेवाले शिष्योंको उसका उपदेश देनेके लिये भगवान् शिव स्वयं ही योगाचार्य-रूपसे जहाँ-तहाँ अवतीर्ण हो उसका प्रचार करते हैं॥ १३-१४॥

इस शैव-शास्त्रको संक्षिप्त करके उसके सिद्धान्तका प्रवचन करनेवाले मुख्यतः चार महर्षि हैं—रुरु, दधीच, अगस्त्य और महायशस्वी उपमन्यु। उन्हें संहिताओंका प्रवर्तक 'पाशुपत' जानना चाहिये। उनकी संतान-परम्परामें सैकड़ों-हजारों गुरुजन हो चुके हैं॥ १५-१६॥

पाशुपत सिद्धान्तमें जो परम धर्म बताया गया है, वह चर्या* आदि चार पादोंके कारण चार प्रकारका माना गया है। उन चारोंमें जो पाशुपत योग है, वह दृढ़तापूर्वक शिवका साक्षात्कार करानेवाला है। इसलिये पाशुपत योग ही श्रेष्ठ अनुष्ठान माना गया है। उसमें भी ब्रह्माजीने जो उपाय बताया है, उसका वर्णन किया जाता है॥ १७-१८॥

भगवान् शिवके द्वारा परिकल्पित जो 'नामाष्टकमय योग' है, उसके द्वारा सहसा 'शैवी प्रज्ञा' का उदय होता है। उस प्रज्ञाद्वारा पुरुष शीघ्र ही सुस्थिर परम

* चर्या, विद्या, क्रिया और योग—ये चार पाद हैं।

प्रज्ञया परमं ज्ञानमचिराल्लभते स्थिरम्।
प्रसीदति शिवस्तस्य यस्य ज्ञानं प्रतिष्ठितम्॥ २०

ज्ञान प्राप्त कर लेता है। जिसके हृदयमें वह ज्ञान प्रतिष्ठित हो जाता है, उसके ऊपर भगवान् शिव प्रसन्न होते हैं॥ १९-२०॥

प्रसादात्परमो योगो यः शिवं चापरोक्षयेत्।
शिवापरोक्षात्संसारकारणेन वियुज्यते॥ २१

ततः स्यान्मुक्तसंसारो मुक्तः शिवसमो भवेत्।
ब्रह्मप्रोक्त इत्युपायः स एव पृथगुच्यते॥ २२

उनके कृपा-प्रसादसे वह परम योग सिद्ध होता है, जो शिवका अपरोक्ष दर्शन कराता है। शिवके अपरोक्ष ज्ञानसे संसार-बन्धनका कारण दूर हो जाता है। इस प्रकार संसारसे मुक्त हुआ पुरुष शिवके समान हो जाता है। यह ब्रह्माजीका बताया हुआ उपाय है। उसीका पृथक् वर्णन करते हैं॥ २१-२२॥

शिवो महेश्वरश्चैव रुद्रो विष्णुः पितामहः।
संसारवैद्यः सर्वज्ञः परमात्मेति मुख्यतः॥ २३

शिव, महेश्वर, रुद्र, विष्णु, पितामह (ब्रह्मा), संसारवैद्य, सर्वज्ञ और परमात्मा—ये मुख्यतः आठ नाम हैं। ये आठों मुख्य नाम शिवके प्रतिपादक हैं॥ २३॥

नामाष्टकमिदं मुख्यं शिवस्य प्रतिपादकम्।
आद्यं तु पञ्चकं ज्ञेयं शान्त्यतीताद्यनुक्रमात्॥ २४

संज्ञा सदाशिवादीनां पञ्चोपाधिपरिग्रहात्।
उपाधिविनिवृत्तौ तु यथास्वं विनिवर्तते॥ २५

पदमेव हि तं नित्यमनित्याः पदिनः स्मृताः।
पदानां परिवृत्तौ तु मुच्यन्ते पदिनो यतः॥ २६

इनमेंसे आदिके पाँच नाम क्रमशः शान्त्यतीता आदि पाँच कलाओंसे सम्बन्ध रखते हैं और उन पाँच उपाधियोंको ग्रहण करनेसे सदाशिव आदिके बोधक होते हैं। उपाधिकी निवृत्ति होनेपर इन भेदोंकी निवृत्ति हो जाती है। वह पद तो नित्य है। किंतु उस पदपर प्रतिष्ठित होनेवाले अनित्य कहे गये हैं। पदोंका परिवर्तन होनेपर पदवाले पुरुष मुक्त हो जाते हैं॥ २४—२६॥

परिवृत्त्यन्तरे भूयस्तत्पदप्राप्तिरुच्यते।
आत्मान्तराभिधानं स्याद्यदाद्यं नामपञ्चकम्॥ २७

अन्यत्तु त्रितयं नाम्नामुपादानादियोगतः।
त्रिविधोपाधिवचनाच्छिव एवानुवर्तते॥ २८

परिवर्तनके अनन्तर पुनः दूसरे आत्माओंको उस पदकी प्राप्ति बतायी जाती है और उन्हींके वे आदिके पाँच नाम नियत होते हैं। उपादान आदिके योगसे अन्य तीन नाम (संसारवैद्य, सर्वज्ञ और परमात्मा) भी त्रिविध उपाधिका प्रतिपादन करते हुए शिवमें ही अनुगत होते हैं॥ २७-२८॥

अनादिमलसंश्लेषः प्रागभावात्स्वभावतः।
अत्यन्तं परिशुद्धात्मेत्यतोऽयं शिव उच्यते॥ २९

अथवाशेषकल्याणगुणैकधन ईश्वरः।
शिव इत्युच्यते सद्भिः शिवतत्त्वार्थवादिभिः॥ ३०

अनादि मलका संसर्ग उनमें पहलेसे ही नहीं है तथा वे स्वभावतः अत्यन्त शुद्धस्वरूप हैं, इसलिये 'शिव' कहलाते हैं अथवा वे ईश्वर समस्त कल्याणमय गुणोंके एकमात्र घनीभूत विग्रह हैं। इसलिये शिवतत्त्वके अर्थको जाननेवाले श्रेष्ठ महात्मा उन्हें शिव कहते हैं॥ २९-३०॥

त्रयोविंशतितत्त्वेभ्यः प्रकृतिर्हि परा मता।
प्रकृतेस्तु परं प्राहुः पुरुषं पञ्चविंशकम्॥ ३१

यं वेदादौ स्वरं प्राहुर्वाच्यवाचकभावतः।

वेदैकवेद्ययाथात्म्याद्वेदान्ते च प्रतिष्ठितः॥ ३२

तस्य प्रकृतिलीनस्य यः परः स महेश्वरः।
तदधीनप्रवृत्तित्वात्प्रकृतेः पुरुषस्य च॥ ३३

अथवा त्रिगुणं तत्त्वमुपेयमिदमव्ययम्।
मायां तु प्रकृतिं विद्यान्मायिनं तु महेश्वरम्॥ ३४

मायाविक्षोभकोऽनन्तो महेश्वरसमन्वयात्।
कालात्मा परमात्मादिः स्थूलः सूक्ष्मः प्रकीर्तितः॥ ३५

रुद् दुःखं दुःखहेतुर्वा तद्द्रावयति नः प्रभुः।
रुद्र इत्युच्यते सद्भिः शिवः परमकारणम्॥ ३६

तत्त्वादिभूतपर्यन्तं शरीरादिष्वतन्द्रितः।
व्याप्याधितिष्ठति शिवस्ततो रुद्र इतस्ततः॥ ३७

जगतः पितृभूतानां शिवो मूर्त्यात्मनामपि।
पितृभावेन सर्वेषां पितामह उदीरितः॥ ३८

निदानज्ञो यथा वैद्यो रोगस्य विनिवर्तकः।
उपायैर्भेषजैस्तद्वल्लयभोगाधिकारतः॥ ३९

संसारस्येश्वरो नित्यं समूलस्य निवर्तकः।
संसारवैद्य इत्युक्तः सर्वतत्त्वार्थवेदिभिः॥ ४०

तेईस तत्त्वोंसे परे जो प्रकृति बतायी गयी है, उससे भी परे पचीसवें तत्त्वके स्थानमें पुरुषको बताया गया है, जिसे वेदके आदिमें ओंकाररूप कहा गया है। ओंकार और पुरुषमें वाच्य-वाचक-भाव सम्बन्ध है॥ ३१ $^{1}/_{2}$॥

उसके यथार्थ स्वरूपका ज्ञान एकमात्र वेदसे ही होता है। वे ही वेदान्तमें प्रतिष्ठित हैं। किंतु वह प्रकृतिसे संयुक्त है; अतः उससे भी परे जो परम पुरुष है, उसका नाम 'महेश्वर' है; क्योंकि प्रकृति और पुरुष दोनोंकी प्रवृत्ति उसीके अधीन है अथवा यह जो अविनाशी त्रिगुणमय तत्त्व है, इसे प्रकृति समझना चाहिये। इस प्रकृतिको माया कहते हैं। यह माया जिनकी शक्ति है, उन मायापतिका नाम 'महेश्वर' है॥ ३२—३४॥

महेश्वरके सम्बन्धसे जो माया अथवा प्रकृतिमें क्षोभ उत्पन्न करते हैं, वे अनन्त [या 'विष्णु'] कहे गये हैं। वे ही कालात्मा और परमात्मा आदि नामोंसे पुकारे जाते हैं। उन्हींको स्थूल और सूक्ष्मरूप भी कहा गया है। दुःख अथवा दुःखके हेतुका नाम 'रुत्' है। जो प्रभु उसका द्रावण करते हैं—उसे मार भगाते हैं, उन परम कारण शिवको साधु पुरुष 'रुद्र' कहते हैं॥ ३५-३६॥

कला, काल आदि तत्त्वोंसे लेकर भूतोंमें पृथ्वी-पर्यन्त जो छत्तीस* तत्त्व हैं, उन्हींसे शरीर बनता है। उस शरीर, इन्द्रिय आदिमें जो तन्द्रारहित हो व्यापकरूपसे स्थित हैं, वे भगवान् शिव 'रुद्र' कहे गये। जगत्के पितारूप जो मूर्त्यात्मा हैं, उन सबके पिताके रूपमें भगवान् शिव विराजमान हैं; इसलिये वे 'पितामह' कहे गये हैं॥ ३७-३८॥

जैसे रोगोंके निदानको जाननेवाला वैद्य तदनुकूल उपायों और दवाओंसे रोगको दूर कर देता है, उसी तरह ईश्वर लययोगाधिकारसे सदा जड-मूलसहित संसार-रोगकी निवृत्ति करते हैं; अतः सम्पूर्ण तत्त्वोंके ज्ञाता विद्वान् उन्हें 'संसारवैद्य' कहते हैं॥ ३९-४०॥

---

* कला, काल, नियति, विद्या, राग प्रकृति और गुण—ये सात तत्त्व, पंचतन्मात्रा, दस इन्द्रियाँ, चार अन्तःकरण, पाँच शब्द आदि विषय तथा आकाश, वायु, तेज, जल और पृथिवी—ये छत्तीस तत्त्व हैं।

दशार्थज्ञानसिद्ध्यर्थमिन्द्रियेष्वेषु सत्स्वपि।
त्रिकालभाविनो भावान्स्थूलान्सूक्ष्मानशेषतः॥ ४१

अणवो नैव जानन्ति माययैव मलावृताः।
असत्स्वपि च सर्वेषु सर्वार्थज्ञानहेतुषु॥ ४२

यद्यथावस्थितं वस्तु तत्तथैव सदाशिवः।
अयत्नेनैव जानाति तस्मात्सर्वज्ञ उच्यते॥ ४३

सर्वात्मा परमैरेभिर्गुणैर्नित्यसमन्वयात्।
स्वस्मात्परात्मविरहात्परमात्मा शिवः स्वयम्॥ ४४

दस विषयोंके ज्ञानके लिये दसों इन्द्रियोंके होते हुए भी जीव तीनों कालोंमें होनेवाले स्थूल-सूक्ष्म पदार्थोंको पूर्णरूपसे नहीं जानते; क्योंकि मायाने ही उन्हें मलसे आवृत कर दिया है। परंतु भगवान् सदाशिव सम्पूर्ण विषयोंके ज्ञानके साधनभूत इन्द्रियादिके न होनेपर भी जो वस्तु जिस रूपमें स्थित है, उसे उसी रूपमें ठीक-ठीक जानते हैं; इसलिये वे 'सर्वज्ञ' कहलाते हैं। जो इन सभी उत्तम गुणोंसे नित्य संयुक्त होनेके कारण सबके आत्मा हैं, जिनके लिये अपनेसे अतिरिक्त किसी दूसरे आत्माकी सत्ता नहीं है, वे भगवान् शिव स्वयं ही 'परमात्मा' हैं॥ ४१—४४॥

नामाष्टकमिदं चैव लब्ध्वाचार्यप्रसादतः।
निवृत्त्यादिकलाग्रन्थिं शिवाद्यैः पञ्चनामभिः॥ ४५

यथास्वं क्रमशश्छित्त्वा शोधयित्वा यथागुणम्।
गुणितैरेव सोद्घातैः निरुद्घातैरथापि वा॥ ४६

हृत्कण्ठतालुभ्रूमध्यब्रह्मरन्ध्रसमन्विताम् ।
छित्त्वा पुर्यष्टकाकारं स्वात्मानं च सुषुम्णया॥ ४७

द्वादशान्तःस्थितस्येन्दोर्नीत्वोपरि शिवौजसि।
संहृत्य वदनं पश्चाद्यथासंस्करणं लयात्॥ ४८

आचार्यकी कृपासे इन आठों नामोंका अर्थसहित उपदेश पाकर शिव आदि पाँच नामोंद्वारा निवृत्ति आदि पाँचों कलाओंकी ग्रन्थिका क्रमशः छेदन और गुणके अनुसार शोधन करके गुणित, उद्घातयुक्त और अनिरुद्ध प्राणोंद्वारा हृदय, कण्ठ, तालु, भ्रूमध्य और ब्रह्मरन्ध्रसे युक्त पुर्यष्टकका भेदन करके सुषुम्णा नाड़ीद्वारा अपने आत्माको सहस्रार चक्रके भीतर ले जाय। [उसका शुभ्रवर्ण है। वह तरुण सूर्यके सदृश रक्तवर्ण केसरके द्वारा रंजित और अधोमुख है। उसके पचास दलोंमें स्थित 'अ' से लेकर 'क्ष' तक सबिन्दु अक्षर-कर्णिकाके बीचमें गोलाकार चन्द्रमण्डल है। यह चन्द्रमण्डल छत्राकारमें स्थित है। उसने एक ऊर्ध्वमुख द्वादश-दल कमलको आवृत कर रखा है। उस कमलकी कर्णिकामें विद्युत्-सदृश अकथादि त्रिकोण यन्त्र है। उस यन्त्रके चारों ओर सुधासागर होनेके कारण वह मणिद्वीपके आकारका हो गया है। उस द्वीपके मध्यभागमें मणिपीठ है। उसके बीचमें नाद-बिन्दुके ऊपर हंसपीठ है। उसपर परम शिव विराजमान हैं।] उक्त चन्द्रमण्डलके ऊपर स्थित शिवके तेजमें अपने आत्माको संयुक्त करे॥ ४५—४८॥

शाक्तेनामृतवर्षेण संसिक्तायां तनौ पुनः।
अवतार्य स्वमात्मानममृतात्माकृतिं हृदि॥ ४९

द्वादशान्तःस्थितस्येन्दोः परस्ताच्छ्वेतपङ्कजे।

इस प्रकार जीवको शिवमें लीन करके शाक्त अमृतवर्षाके द्वारा अपने शरीरके अभिषिक्त होनेकी भावना करे। तत्पश्चात् अमृतमय विग्रहवाले अपने आत्माको ब्रह्मरन्ध्रसे उतारकर हृदयमें द्वादश-दल कमलके भीतर स्थित चन्द्रमासे परे श्वेत कमलपर

समासीनं महादेवं शंकरं भक्तवत्सलम्॥ ५०

अर्द्धनारीश्वरं देवं निर्मलं मधुराकृतिम्।
शुद्धस्फटिकसंकाशं प्रसन्नं शीतलद्युतिम्॥ ५१

अर्धनारीश्वर रूपमें विराजमान मनोहर आकृतिवाले निर्मल देव भक्तवत्सल महादेव शंकरका चिन्तन करे। उनकी अंगकान्ति शुद्धस्फटिक मणिके समान उज्ज्वल है। वे शीतल प्रभासे युक्त और प्रसन्न हैं॥ ४९—५१॥

ध्यात्वा हि मानसे देवं स्वस्थचित्तोऽथ मानवः।
शिवनामाष्टकेनैव भावपुष्पैः समर्चयेत्॥ ५२

अभ्यर्च्चनान्ते तु पुनः प्राणानायम्य मानवः।
सम्यक् चित्तं समाधाय शार्वं नामाष्टकं जपेत्॥ ५३

नाभौ चाष्टाहुतीर्हुत्वा पूर्णाहुत्या नमस्ततः।
अष्टपुष्पप्रदानेन कृत्वाभ्यर्च्चनमंतिमम्॥ ५४

निवेदयेत्स्वमात्मानं चुलुकोदकवर्त्मना।

इस प्रकार मन-ही-मन ध्यान करके शान्तचित्त हुआ मनुष्य शिवके आठ नामोंद्वारा ही भावमय पुष्पोंसे उनकी पूजा करे। पूजनके अन्तमें पुनः प्राणायाम करके चित्तको भलीभाँति एकाग्र रखते हुए शिवनामाष्टकका जप करे। फिर भावनाद्वारा नाभिमें आठ आहुतियोंका हवन करके पूर्णाहुति एवं नमस्कारपूर्वक आठ फूल चढ़ाकर अन्तिम अर्चना पूरी करके चुल्लूमें लिये हुए जलको आत्मसमर्पणकी भावनासे शिवके चरणोंमें समर्पित कर दे॥ ५२—५४½॥

एवं कृत्वाचिरादेव ज्ञानं पाशुपतं शुभम्॥ ५५

लभते तत्प्रतिष्ठां च वृत्तं चानुत्तमं तथा।
योगं च परमं लब्ध्वा मुच्यते नात्र संशयः॥ ५६

इस प्रकार करनेसे शीघ्र ही मंगलमय पाशुपत ज्ञानकी प्राप्ति हो जाती है और साधक उस ज्ञानकी सुस्थिरता पा लेता है। साथ ही वह परम उत्तम पाशुपत-व्रत एवं परम योगको पाकर मुक्त हो जाता है, इसमें संशय नहीं है॥ ५५-५६॥

इति श्रीशिवमहापुराणे सप्तम्यां वायवीयसंहितायां पूर्वखण्डे श्रेष्ठानुष्ठानवर्णनं नाम द्वात्रिंशोऽध्यायः॥ ३२॥

॥ इस प्रकार श्रीशिवमहापुराणके अन्तर्गत सातवीं वायवीयसंहिताके पूर्वखण्डमें श्रेष्ठानुष्ठानवर्णन नामक बत्तीसवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ ३२॥

अथ त्रयस्त्रिंशोऽध्यायः

पाशुपत-व्रतकी विधि और महिमा तथा भस्मधारणकी महत्ता

ऋषय ऊचुः

भगवञ्छ्रोतुमिच्छामो व्रतं पाशुपतं परम्।
ब्रह्मादयोऽपि यत्कृत्वा सर्वे पाशुपताः स्मृताः॥ १

ऋषि बोले—भगवन्! हम परम उत्तम पाशुपत-व्रतको सुनना चाहते हैं, जिसका अनुष्ठान करके ब्रह्मा आदि सब देवता पाशुपत माने गये हैं॥ १॥

वायुरुवाच

रहस्यं वः प्रवक्ष्यामि सर्वपापनिकृन्तनम्।
व्रतं पाशुपतं श्रौतमथर्वशिरसि श्रुतम्॥ २

वायुदेवने कहा—मैं तुम सब लोगोंको गोपनीय पाशुपत-व्रतका रहस्य बताता हूँ, जिसका अथर्ववेदके शीर्षभागमें वर्णन है तथा जो सभी पापोंका नाश करनेवाला है॥ २॥

कालश्चैत्री पौर्णमासी देशः शिवपरिग्रहः।
क्षेत्रारामाद्यरण्यं वा प्रशस्तः शुभलक्षणः॥ ३

चित्रासे युक्त पौर्णमासी इसके लिये उत्तम काल है। शिवके द्वारा अनुगृहीत स्थान ही इसके लिये उत्तम देश है अथवा क्षेत्र, बगीचे आदि तथा वनप्रान्त

तत्र पूर्वं त्रयोदश्यां सुस्नातः सुकृताह्निकः।
अनुज्ञाप्य स्वमाचार्यं संपूज्य प्रणिपत्य च॥ ४

पूजां वैशेषिकीं कृत्वा शुक्लांबरधरः स्वयम्।
शुक्लयज्ञोपवीती च शुक्लमाल्यानुलेपनः॥ ५

दर्भासने समासीनो दर्भमुष्टिं प्रगृह्य च।
प्राणायामत्रयं कृत्वा प्राङ्मुखो वाप्युदङ्मुखः।
ध्यात्वा देवं च देवीं च तद्विज्ञापनवर्त्मना॥ ६
व्रतमेतत्करोमीति भवेत्संकल्प्य दीक्षितः।
यावच्छरीरपातं वा द्वादशाब्दमथापि वा॥ ७
तदर्धं वा तदर्धं वा मासद्वादशकं तु वा।
तदर्धं वा तदर्धं वा मासमेकमथापि वा॥ ८
दिनद्वादशकं वाथ दिनषट्कमथापि वा।
तदर्धं दिनमेकं वा व्रतसंकल्पनावधि॥ ९
अग्निमाधाय विधिवद्विरजाहोमकारणात्।
हुत्वाज्येन समिद्भिश्च चरुणा च यथाक्रमम्॥ १०

पूर्णामापूर्य तां भूयस्तत्त्वानां शुद्धिमुद्दिशन्।
जुहुयान्मूलमन्त्रेण तैरेव समिदादिभिः॥ ११

तत्त्वान्येतानि मद्देहे शुद्ध्यन्तामित्यनुस्मरन्।
पञ्चभूतानि तन्मात्राः पञ्चकर्मेन्द्रियाणि च॥ १२
ज्ञानकर्मविभेदेन पञ्चकर्मविभागशः।
त्वगादिधातवः सप्त पञ्च प्राणादिवायवः॥ १३
मनोबुद्धिरहंख्यातिर्गुणाः प्रकृतिपूरुषौ।
रागो विद्याकले चैव नियतिः काल एव च॥ १४
माया च शुद्धविद्या च महेश्वरसदाशिवौ।
शक्तिश्च शिवतत्त्वं च तत्त्वानि क्रमशो विदुः॥ १५

मन्त्रैस्तु विरजैर्हुत्वा होतासौ विरजो भवेत्।
शिवानुग्रहमासाद्य ज्ञानवान्स हि जायते॥ १६

भी शुभ एवं प्रशस्त देश हैं। पहले त्रयोदशीको भलीभाँति स्नान करके नित्यकर्म सम्पन्न कर ले। फिर अपने आचार्यकी आज्ञा लेकर उनका पूजन और नमस्कार करके [व्रतके अंगरूपसे देवताओंकी] विशेष पूजा करे। उपासकको स्वयं श्वेत वस्त्र, श्वेत यज्ञोपवीत, श्वेत पुष्प और श्वेत चन्दन धारण करना चाहिये॥ ३—५॥

वह कुशके आसनपर बैठकर हाथमें मुट्ठीभर कुश ले पूर्व या उत्तरकी ओर मुँह करके तीन प्राणायाम करनेके पश्चात् भगवान् शिव और देवी पार्वतीका ध्यान करे। फिर यह संकल्प करे कि मैं शिवशास्त्रमें बतायी हुई विधिके अनुसार यह पाशुपत-व्रत करूँगा। वह जबतक शरीर गिर न जाय, तबतकके लिये अथवा बारह, छः या तीन वर्षोंके लिये अथवा बारह, छः, तीन या एक महीनेके लिये अथवा बारह, छः, तीन या एक दिनके लिये इस व्रतकी दीक्षा ले॥ ६—९॥

संकल्प करनेके बाद विरजा होमके लिये विधिवत् अग्निकी स्थापना करके क्रमशः घी, समिधा और चरुसे हवन करके पूर्णाहुति सम्पन्न करे। तत्पश्चात् तत्त्वोंकी शुद्धिके उद्देश्यसे मूलमन्त्रद्वारा उन समिधा आदि सामग्रियोंकी ही फिर आहुतियाँ दे॥ १०-११॥

उस समय वह बारंबार यह चिन्तन करे कि 'मेरे शरीरमें जो ये तत्त्व हैं, सब शुद्ध हो जायँ।' उन तत्त्वोंके नाम इस प्रकार हैं—पाँचों भूत, उनकी पाँचों तन्मात्राएँ, पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ, पाँच कर्मेन्द्रियाँ, पाँच विषय, त्वचा आदि सात धातुएँ, प्राण आदि पाँच वायु, मन, बुद्धि, अहंकार, प्रकृति, पुरुष, राग, विद्या, कला, नियति, काल, माया, शुद्ध विद्या, महेश्वर, सदाशिव, शक्ति-तत्त्व और शिव-तत्त्व—ये क्रमशः तत्त्व कहे गये हैं॥ १२—१५॥

विरजा मन्त्रोंसे आहुति करके होता रजोगुणरहित शुद्ध हो जाता है। फिर शिवका अनुग्रह पाकर वह ज्ञानवान् होता है॥ १६॥

अथ गोमयमादाय पिण्डीकृत्याभिमन्त्र्य च।
विन्यस्याग्नौ च सम्प्रोक्ष्य दिने तस्मिन्हविष्यभुक्॥ १७

प्रभाते तु चतुर्दश्यां कृत्वा सर्वं पुरोदितम्।
दिने तस्मिन्निराहारः कालं शेषं समापयेत्॥ १८

तदनन्तर गोबर लाकर उसकी पिण्डी बनाये। फिर उसे मन्त्रद्वारा अभिमन्त्रित करके अग्निमें डाल दे। इसके बाद इसका प्रोक्षण करके उस दिन व्रती केवल हविष्य खाकर रहे। जब रात बीतकर प्रातःकाल आये, तब चतुर्दशीमें पुनः पूर्वोक्त सब कृत्य करे। उस दिन शेष समय निराहार रहकर ही बिताये॥ १७-१८॥

प्रातः पर्वणि चाप्येवं कृत्वा होमावसानतः।
उपसंहृत्य रुद्राग्निं गृह्णीयाद्भस्म यत्नतः॥ १९

ततश्च जटिलो मुण्डी शिखैकजट एव वा।
भूत्वा स्नात्वा ततो वीतलज्जश्चेत्स्याद्दिगम्बरः॥ २०

अपि काषायवसनश्चर्मचीराम्बरोऽथ वा।
एकाम्बरो वल्कली वा भवेद्दण्डी च मेखली॥ २१

फिर पूर्णिमाको प्रातःकाल इसी तरह होमपर्यन्त कर्म करके रुद्राग्निका उपसंहार करे। तदनन्तर यत्नपूर्वक उसमेंसे भस्म ग्रहण करे। इसके बाद साधक चाहे जटा रखा ले, चाहे सारा सिर मुड़ा ले या चाहे तो केवल सिरपर शिखा धारण करे। इसके बाद स्नान करके यदि वह लोकलज्जासे ऊपर उठ गया हो तो दिगम्बर हो जाय। अथवा गेरुआ वस्त्र, मृगचर्म या फटे-पुराने चीथड़ेको ही धारण कर ले। एक वस्त्र धारण करे या वल्कल पहनकर रहे। कटिमें मेखला धारण करके हाथमें दण्ड ले ले॥ १९—२१॥

प्रक्षाल्य चरणौ पश्चाद् द्विराचम्यात्मनस्तनुम्।
संकुलीकृत्य तद्भस्म विरजानलसंभवम्॥ २२

अग्निरित्यादिभिर्मन्त्रैः षड्भिराथर्वणैः क्रमात्।
विमृज्याङ्गानि मूर्द्धादिचरणान्तानि तैः स्पृशेत्॥ २३

तदनन्तर दोनों पैर धोकर आचमन करे। विरजाग्निसे प्रकट हुए भस्मको एकत्र करके '**अग्निरिति भस्म**' इत्यादि छः अथर्ववेदीय मन्त्रोंद्वारा उसे अपने शरीरमें लगाये। मस्तकसे लेकर पैरतक सभी अंगोंमें उसे अच्छी तरह मल ले॥ २२-२३॥

ततस्तेन क्रमेणैव समुद्धृत्य च भस्मना।
सर्वाङ्गोद्धूलनं कुर्यात्प्रणवेन शिवेन वा॥ २४

ततस्त्रिपुण्ड्रं रचयेत्त्रियायुषसमाह्वयम्।
शिवभावं समागम्य शिवयोगमथाचरेत्॥ २५

तत्पश्चात् इसी क्रमसे प्रणव या शिवमन्त्रद्वारा सर्वांगमें भस्म रमाकर '**त्र्यायुषम्**' इत्यादि मन्त्रोंसे ललाट आदि अंगोंमें त्रिपुण्ड्रकी रचना करे। इस प्रकार शिवभावको प्राप्त हो शिवयोगका आचरण करे॥ २४-२५॥

कुर्यात् त्रिसन्ध्यमप्येवमेतत्पाशुपतं व्रतम्।
भुक्तिमुक्तिप्रदं चैतत्पशुत्वं विनिवर्तयेत्॥ २६

तत्पशुत्वं परित्यज्य कृत्वा पाशुपतं व्रतम्।
पूजनीयो महादेवो लिंगमूर्तिः सनातनः॥ २७

तीनों संध्याओंके समय ऐसा ही करना चाहिये। यही 'पाशुपत-व्रत' है, जो भोग और मोक्ष देनेवाला है। यह जीवोंके पशुभावको निवृत्त कर देता है। इस प्रकार पाशुपत-व्रतके अनुष्ठानद्वारा पशुत्वका परित्याग करके लिंगमूर्ति सनातन महादेवजीका पूजन करना चाहिये॥ २६-२७॥

पद्ममष्टदलं हैमं नवरत्नैरलङ्कृतम्।
कर्णिकाकेशरोपेतमासनं परिकल्पयेत्॥ २८

विभवे तदभावे तु रक्तं सितमथापि वा।
पद्मं तस्याप्यभावे तु केवलं भावनामयम्॥ २९

तत्पद्मकर्णिकामध्ये कृत्वा लिङ्गं कनीयसम्।
स्फाटिकं पीठिकोपेतं पूजयेद्विधिवत्क्रमात्॥ ३०

प्रतिष्ठाप्य विधानेन तल्लिङ्गं कृतशोधनम्।
परिकल्प्यासनं मूर्तिं पञ्चवक्त्रप्रकारतः॥ ३१

पञ्चगव्यादिभिः पूर्णैर्यथाविभवसम्भृतैः।
स्नापयेत्कलशैः पूर्णैरष्टापदसमुद्भवैः॥ ३२

गंधद्रव्यैः सकर्पूरैश्चन्दनाद्यैः सकुंकुमैः।
सवेदिकं समालिप्य लिङ्गं भूषणभूषितम्॥ ३३
बिल्वपत्रैश्च पद्मैश्च रक्तैः श्वेतैस्तथोत्पलैः।
नीलोत्पलैस्तथान्यैश्च पुष्पैस्तैस्तैः सुगंधिभिः॥ ३४
पुण्यैः प्रशस्तैः पत्रैश्च चित्रैर्दूर्वाक्षतादिभिः।
समभ्यर्च्य यथालाभं महापूजाविधानतः॥ ३५
धूपं दीपं तथा चापि नैवेद्यं च समादिशेत्।
निवेदयित्वा विभवे कल्याणं च समाचरेत्॥ ३६

इष्टानि च विशिष्टानि न्यायेनोपार्जितानि च।
सर्वद्रव्याणि देयानि व्रते तस्मिन्विशेषतः॥ ३७

श्रीपत्रोत्पलपद्मानां संख्या साहस्त्रिकी मता।
प्रत्येकमपरा संख्या शतमष्टोत्तरं द्विजाः॥ ३८

तत्रापि च विशेषेण न त्यजेद्बिल्वपत्रकम्।

यदि वैभव हो तो सोनेका अष्टदल कमल बनवाये, जिसमें नौ प्रकारके रत्न जड़े गये हों। उसमें कर्णिका और केसर भी हों। ऐसे कमलको भगवान्‌का आसन बनाये। धनाभाव होनेपर लाल या सफेद कमलके फूलका आसन अर्पित करे। वह भी न मिले तो केवल भावनामय कमल समर्पित करे॥ २८-२९॥

उस कमलकी कर्णिकाके मध्यमें पीठिकासहित छोटेसे स्फटिकमणिमय लिंगकी स्थापना करके क्रमशः विधिपूर्वक उसका पूजन करे॥ ३०॥

उस लिंगका शोधन करके पहले शास्त्रीय विधिके अनुसार उसकी स्थापना कर लेनी चाहिये। फिर आसन दे पंचमुखके प्रकारसे मूर्तिकी कल्पना करके पंचगव्य आदिसे पूर्ण, अपने वैभवके अनुसार संगृहीत, भरे हुए सुवर्णनिर्मित कलशोंसे उस मूर्तिको स्नान कराये॥ ३१-३२॥

फिर सुगन्धित द्रव्य, कपूर, चन्दन और कुंकुम आदिसे वेदीसहित भूषणभूषित शिवलिंगका अनुलेपन करके बिल्वपत्र, लाल कमल, श्वेत कमल, नील कमल, अन्यान्य सुगन्धित पुष्प, पवित्र एवं उत्तम पत्र तथा दूर्वा और अक्षत आदि विचित्र उपचार चढ़ाकर यथाप्राप्त सामग्रियोंद्वारा महापूजनकी विधिसे उसमें मूर्तिकी अभ्यर्चना करे॥ ३३—३५॥

फिर धूप, दीप और नैवेद्य निवेदन करे। वैभवसम्पन्न होनेपर इस तरह भगवान् शिवको उत्तम वस्तुएँ निवेदन करके अपना कल्याण करे॥ ३६॥

उस व्रतमें विशेषतः वे सभी वस्तुएँ देनी चाहिये, जो अपनेको अधिक प्रिय हों, श्रेष्ठ हों, और न्यायपूर्वक उपार्जित हुई हों। हे द्विजो! बिल्वपत्र, उत्पल और कमलोंकी संख्या एक-एक हजार होनी चाहिये। अन्य पत्रों और फूलोंमेंसे प्रत्येककी संख्या एक सौ आठ होनी चाहिये। इन सामग्रियोंमें भी बिल्वपत्रको विशेष यत्नपूर्वक जुटाये। उसे भूलकर भी न छोड़े॥ ३७-३८½॥

हैममेकं परं प्राहुः पद्मं पद्मसहस्त्रकात्॥ ३९
नीलोत्पलादिष्वप्येतत्समानं बिल्वपत्रकैः।
पुष्पान्तरे न नियमो यथालाभं निवेदयेत्॥ ४०
अष्टाङ्गमर्घ्यमुत्कृष्टं धूपालेपौ विशेषतः।
चन्दनं वामदेवाख्ये हरितालं च पौरुषे॥ ४१
ईशाने भसितं केचिदालेपनमितीदृशम्।
न धूपमिति मन्यन्ते धूपान्तरविधानतः।
सितागुरुमघोराख्ये मुखे कृष्णागुरुं पुनः॥ ४२
पौरुषे गुग्गुलं सद्ये सौम्ये सौगंधिकं मुखे।
ईशानेऽपि ह्युशीरादि देयाद् धूपं विशेषतः॥ ४३
शर्करामधुकर्पूरकपिलाघृतसंयुतम्।
चंदनागरुकाष्ठाद्यं सामान्यं सम्प्रचक्षते॥ ४४
कर्पूरवर्तिराज्याढ्या देया दीपावलिस्ततः।
अर्घ्यमाचमनं देयं प्रतिवक्त्रमतः परम्॥ ४५
प्रथमावरणे पूज्यौ क्रमाद्धेरम्बषणमुखौ।
ब्रह्माङ्गानि ततश्चैव प्रथमावरणेऽर्चिते॥ ४६
द्वितीयावरणे पूज्या विघ्नेशाश्चक्रवर्तिनः।
तृतीयावरणे पूज्या भवाद्या अष्टमूर्तयः॥ ४७

सोनेका बना हुआ एक ही कमल एक सहस्र कमलोंसे श्रेष्ठ बताया गया है। नील कमल आदिके विषयमें भी यही बात है। ये सब बिल्वपत्रोंके समान ही महत्त्व रखते हैं। अन्य पुष्पोंके लिये कोई नियम नहीं है। वे जितने मिलें, उतने ही चढ़ाने चाहिये। अष्टांग अर्घ्य उत्कृष्ट माना जाता है। धूप और आलेप (चन्दन)- के विषयमें विशेष बात यह है॥ ३९-४०१/२॥

'वामदेव' नामक मुखमें चन्दन, 'तत्पुरुष' नामक मुखमें हरिताल और 'ईशान' नामक मुखमें भस्म लगाना चाहिये। कोई-कोई भस्मकी जगह आलेपनका विधान करते हैं। दूसरे प्रकारके धूपका विधान होनेसे कुछ लोग प्रसिद्ध धूपका निषेध करते हैं। 'अघोर' नामक मुखके लिये श्वेत अगुरुका धूप देना चाहिये। 'तत्पुरुष' नामक मुखके लिये कृष्ण अगुरुके धूपका विधान है। 'वामदेव'के लिये सौगन्धिक, 'सद्योजात' मुखके लिये गुग्गुल तथा 'ईशान' के लिये भी उशीर आदि धूपको विशेषरूपसे देना चाहिये॥ ४१—४३॥

शर्करा, मधु, कपूर, कपिला गायका घी, चन्दनका चूरा तथा अगुरु नामक काष्ठ आदिका चूर्ण—इन सबको मिलाकर जो धूप तैयार किया जाता है, उसे सब [देवताओं]-के लिये सामान्यरूपसे उपयोगके योग्य बताया गया है॥ ४४॥

कपूरकी बत्ती और घीके दीपक जलाकर दीपमाला देनी चाहिये। तत्पश्चात् प्रत्येक मुखके लिये पृथक्-पृथक् अर्घ्य और आचमन देनेका विधान है॥ ४५॥

प्रथम आवरणमें गणेश और कार्तिकेयकी पूजा करनी चाहिये। उनके साथ ही बाह्य अंगोंकी भी पूजा आवश्यक है। प्रथमावरणकी पूजा हो जानेपर द्वितीयावरणमें चक्रवर्ती विघ्नेश्वरोंका पूजन करना चाहिये। तृतीयावरणमें भव आदि अष्टमूर्तियोंकी पूजाका विधान है॥ ४६-४७॥

महादेवादयस्तत्र तथैकादशमूर्तयः।
चतुर्थावरणे पूज्याः सर्व एव गणेश्वराः॥ ४८

बहिरेव तु पद्मस्य पञ्चमावरणे क्रमात्।
दशदिक्पतयः पूज्याः सास्त्राः सानुचरास्तथा॥ ४९

वहीं महादेव आदि एकादश मूर्तियोंका भी पूजन आवश्यक है। चौथे आवरणमें सभी गणेश्वर पूजनीय हैं। पंचमावरणमें कमलके बाह्यभागमें दस दिक्पालों, उनके अस्त्रों और अनुचरोंकी क्रमशः पूजा करनी चाहिये॥ ४८-४९॥

ब्रह्मणो मानसाः पुत्राः सर्वेऽपि ज्योतिषां गणाः।
सर्वा देव्यश्च देवाश्च सर्वे सर्वे च खेचराः॥ ५०

पातालवासिनश्चान्ये सर्वे मुनिगणा अपि।
योगिनो हि मखाः सर्वे पतंगा मातरस्तथा॥ ५१

क्षेत्रपालाश्च सगणाः सर्वं चैतच्चराचरम्।
पूजनीयं शिवप्रीत्या मत्वा शंभुविभूतिमत्॥ ५२

वहीं ब्रह्माके मानस पुत्रोंकी, समस्त ज्योतिर्गणोंकी, सब देवी-देवताओंकी, सभी आकाशचारियोंकी, पातालवासियोंकी, अखिल मुनीश्वरोंकी, योगियोंकी, सब यज्ञोंकी, द्वादश सूर्योंकी, मातृकाओंकी, गणोंसहित क्षेत्रपालोंकी और इस समस्त चराचर जगत्की पूजा करनी चाहिये। इन सबको शंकरजीकी विभूति मानकर शिवकी प्रसन्नताके लिये ही इनका पूजन करना उचित है॥ ५०—५२॥

अथावरणपूजान्ते संपूज्य परमेश्वरम्।
साज्यं सव्यञ्जनं हृद्यं हविर्भक्त्या निवेदयेत्॥ ५३

मुखवासादिकं दत्त्वा ताम्बूलं सोपदंशकम्।
अलङ्कृत्य च भूयोऽपि नानापुष्पविभूषणैः॥ ५४

नीराजनान्ते विस्तीर्य पूजाशेषं समापयेत्।
चषकं सोपकारं च शयनं च समर्पयेत्॥ ५५

इस प्रकार आवरणपूजाके पश्चात् परमेश्वर शिवका पूजन करके उन्हें भक्तिपूर्वक घृत और व्यंजनसहित मनोहर हविष्य निवेदन करना चाहिये। मुखशुद्धिके लिये आवश्यक उपकरणोंसहित ताम्बूल देकर नाना प्रकारके फूलोंसे पुनः इष्टदेवका शृंगार करे। आरती उतारे। तत्पश्चात् पूजनका शेष कृत्य पूर्ण करे। पानचषक तथा उपकारक सामग्रियोंसहित शय्या समर्पित करे॥ ५३—५५॥

चन्द्रसंकाशहारं च शयनीयं समर्पयेत्।
आद्यं नृपोचितं हृद्यं तत्सर्वमनुरूपतः॥ ५६

कृत्वा च कारयित्वा च हुत्वा च प्रतिपूजनम्।
व्योमकेशस्तवं जप्त्वा विद्यां पंचाक्षरीं जपेत्॥ ५७

शय्यापर चन्द्रमाके समान चमकीला हार दे। राजोचित मनोहर वस्तुएँ सब प्रकारसे संचित करके दे। स्वयं पूजन करे, दूसरोंसे भी कराये तथा प्रत्येक पूजनमें आहुति दे। इसके बाद व्योमकेश भगवान् शिवकी स्तुति-प्रार्थना करके पंचाक्षरी विद्याको जपे॥ ५६-५७॥

प्रदक्षिणां प्रणामं च कृत्वात्मानं समर्पयेत्।
ततः पुरस्ताद्देवस्य गुरुविप्रौ च पूजयेत्॥ ५८

दत्त्वार्घ्यमष्टौ पुष्पाणि देवमुद्वास्य लिंगतः।
अग्नेश्चाग्निं सुसंयम्य ह्युद्वास्य च तमप्युत॥ ५९

परिक्रमा और प्रणाम करके अपने-आपको समर्पित करे। तदनन्तर इष्टदेवके सामने ही गुरु और ब्राह्मणकी पूजा करे। इसके बाद अर्घ्य और आठ फूल देकर पूजित लिंग या मूर्तिसे देवताका विसर्जन करे। फिर अग्निदेवका भी विसर्जन करके पूजा समाप्त करे॥ ५८-५९॥

प्रत्यहं च जनस्त्वेवं कुर्यात्सेवां पुरोदिताम्।
ततस्तत्साम्बुजं लिङ्गं सर्वोपकरणान्वितम्॥ ६०

समर्पयेत्स्वगुरवे स्थापयेद्वा शिवालये।

मनुष्यको चाहिये कि प्रतिदिन इसी प्रकार पूर्वोक्तरूपसे सेवा करे। पूजनके अन्तमें [सुवर्णमय] कमल तथा अन्य सब उपकरणोंसहित उस शिवलिंगको गुरुके हाथमें दे दे अथवा शिवालयमें स्थापित कर दे॥ ६०१/२॥

संपूज्य च गुरून्विप्रान् व्रतिनश्च विशेषतः॥ ६१

भक्तान्द्विजांश्च शक्तश्चेद्दीनानाथांश्च तोषयेत्।
स्वयं चानशने शक्तः फलमूलाशनोऽथ वा॥ ६२

पयोव्रतो वा भिक्षाशी भवेदेकाशनस्तथा।
नक्तं युक्ताशनो नित्यं भूशय्यानिरतः शुचिः॥ ६३

गुरुओं, ब्राह्मणों तथा विशेषतः व्रतधारियोंकी पूजा करके सामर्थ्य हो तो भक्त ब्राह्मणों तथा दीनों और अनाथोंको भी संतुष्ट करे। स्वयं उपवासमें असमर्थ होनेपर फल-मूल खाकर या दूध पीकर रहे अथवा भिक्षान्नभोजी हो या एक समय भोजन करे। रातको प्रतिदिन परिमित भोजन करे और पवित्रभावसे भूमिपर ही सोये॥ ६१—६३॥

भस्मशायी तृणेशायी चीराजिनधृतोऽथ वा।
ब्रह्मचर्यव्रतो नित्यं व्रतमेतत्समाचरेत्॥ ६४

अर्कवारे तथार्द्रायां पञ्चदश्यां च पक्षयोः।
अष्टम्यां च चतुर्दश्यां शक्तस्तूपवसेदपि॥ ६५

भस्मपर, तृणपर अथवा चीर या मृगचर्मपर शयन करे। प्रतिदिन ब्रह्मचर्यका पालन करते हुए इस व्रतका अनुष्ठान करे। यदि शक्ति हो तो रविवारके दिन, आर्द्रा नक्षत्रमें, दोनों पक्षोंकी पूर्णिमा और अमावास्याको, अष्टमीको तथा चतुर्दशीको उपवास करे॥ ६४-६५॥

पाखण्डिपतितोदक्याः सूतकान्त्यजपूर्वकान्।
वर्जयेत्सर्वयत्नेन मनसा कर्मणा गिरा॥ ६६

क्षमादानदयासत्याहिंसाशीलः सदा भवेत्।
संतुष्टश्च प्रशान्तश्च जपध्यानरतस्तथा॥ ६७

मन, वाणी और क्रियाद्वारा सम्पूर्ण प्रयत्नसे पाखण्डी, पतित, रजस्वला स्त्री, सूतकमें पड़े हुए लोग तथा अन्त्यज आदिके सम्पर्कका त्याग करे। निरन्तर क्षमा, दान, दया, सत्यभाषण और अहिंसामें तत्पर रहे। संतुष्ट और शान्त रहकर जप और ध्यानमें लगा रहे॥ ६६-६७॥

कुर्यात्त्रिषवणस्नानं भस्मस्नानमथापि वा।
पूजां वैशेषिकीं चैव मनसा वचसा गिरा॥ ६८

बहुनात्र किमुक्तेन नाचरेदशिवं व्रती।
प्रमादात्तु तथाचारे निरूप्य गुरुलाघवे॥ ६९

उचितां निष्कृतिं कुर्यात्पूजाहोमजपादिभिः।
आसमाप्तेर्व्रतस्यैवमाचरेन्न प्रमादतः॥ ७०

तीनों काल स्नान करे अथवा भस्म-स्नान कर ले। मन, वाणी और क्रियाद्वारा विशेष पूजा किया करे। इस विषयमें अधिक कहनेसे क्या लाभ? व्रतधारी पुरुष कभी अशुभ आचरण न करे। प्रमादवश यदि वैसा आचरण बन जाय तो उसके गुरु-लाघवका विचार करके उसके दोषका निवारण करनेके लिये पूजा, होम और जप आदिके द्वारा उचित प्रायश्चित्त करे। व्रतकी समाप्तिपर्यन्त भूलकर भी अशुभ आचरण न करे॥ ६८—७०॥

गोदानं च वृषोत्सर्गं कुर्यात्पूजां च संपदा।
भक्तश्च शिवप्रीत्यर्थं सर्वकामविवर्जितः॥ ७१

सामान्यमेतत्कथितं व्रतस्यास्य समासतः।
प्रतिमासं विशेषं च प्रवदामि यथाश्रुतम्॥ ७२

सम्पत्ति हो तो उसके अनुसार गोदान, वृषोत्सर्ग और पूजन करे। भक्त पुरुष निष्कामभावसे शिवकी प्रीतिके लिये ही सब कुछ करे। यह संक्षेपसे इस व्रतकी सामान्य विधि कही गयी है॥ ७१½॥

वैशाखे वज्रलिङ्गं तु ज्येष्ठे मारकतं शुभम्।
आषाढे मौक्तिकं विद्याच्छ्रावणे नीलनिर्मितम्॥ ७३

मासे भाद्रपदे चैव पद्मरागमयं परम्।
आश्विने मासि विद्याद्वै लिङ्गं गोमेदकं वरम्॥ ७४

अब शास्त्रके अनुसार प्रत्येक मासमें जो विशेष कृत्य है, उसे बताता हूँ। वैशाखमासमें हीरेके बने हुए शिवलिंगका पूजन करना चाहिये। ज्येष्ठमासमें मरकत-मणिमय शिवलिंगकी पूजा उचित है। आषाढ़-मासमें मोतीके बने हुए शिवलिंगको पूजनीय समझे। श्रावणमासमें नीलमका बना हुआ शिवलिंग पूजनके योग्य है। भाद्रपदमासमें पूजनके लिये पद्मरागमणिमय शिवलिंगको उत्तम माना गया है। आश्विनमासमें गोमेदमणिके बने हुए लिंगको उत्तम समझे॥ ७२—७४॥

कार्तिक्यां वैद्रुमं लिङ्गं वैदूर्यं मार्गशीर्षके।
पुष्परागमयं पौषे माघे द्युमणिजं तथा॥ ७५

फाल्गुने चन्द्रकान्तोत्थं चैत्रे तद्व्यत्ययोऽथ वा।
सर्वमासेषु रत्नानामलाभे हैममेव वा॥ ७६

कार्तिकमासमें मूँगेके और मार्गशीर्षमासमें वैदूर्यमणिके बने हुए लिंगकी पूजाका विधान है। पौषमासमें पुष्पराग (पुखराज)-मणिके तथा माघमासमें सूर्यकान्तमणिके लिंगका पूजन करना चाहिये। फाल्गुनमासमें चन्द्रकान्तमणिके और चैत्रमें सूर्यकान्त-मणिके बने हुए लिंगके पूजनकी विधि है। अथवा रत्नोंके न मिलनेपर सभी मासोंमें सुवर्णमय लिंगका ही पूजन करना चाहिये॥ ७५-७६॥

हैमाभावे राजतं वा ताम्रजं शैलजं तथा।
मृण्मयं वा यथालाभं जातुषं चान्यदेव वा॥ ७७

सर्वगंधमयं वाथ लिङ्गं कुर्याद्यथारुचि।
व्रतावसानसमये समाचरितनित्यकः॥ ७८

सुवर्णके अभावमें चाँदी, ताँबे, पत्थर, मिट्टी, लाह या और किसी वस्तुका जो सुलभ हो, लिंग बना लेना चाहिये। अथवा अपनी रुचिके अनुसार सर्वगन्धमय लिंगका निर्माण करे॥ ७७½॥

कृत्वा वैशेषिकीं पूजां हुत्वा चैव यथा पुरा।
संपूज्य च तथाचार्यं व्रतिनश्च विशेषतः॥ ७९

व्रतकी समाप्तिके समय नित्यकर्म पूर्ण करके पूर्ववत् विशेष पूजा और हवन करनेके पश्चात् आचार्यका तथा विशेषतः व्रती ब्राह्मणका पूजन करे॥ ७८-७९॥

देशिकेनाप्यनुज्ञातः प्राङ्मुखो वाप्युदङ्मुखः।
दर्भासनो दर्भपाणिः प्राणापानौ नियम्य च॥ ८०

जपित्वा शक्तितो मूलं ध्यात्वा साम्बं त्रियम्बकम्।

फिर आचार्यकी आज्ञा ले पूर्व या उत्तरकी ओर मुँह करके कुशासनपर बैठे। हाथमें कुश ले, प्राणायाम करके, 'साम्बसदाशिव' का ध्यान करते हुए यथाशक्ति मूलमन्त्रका जप करे। फिर पूर्ववत् आज्ञा ले हाथ

अनुज्ञाप्य यथापूर्वं नमस्कृत्य कृताञ्जलिः॥ ८१

समुत्सृजामि भगवन् व्रतमेतत्त्वदाज्ञया।
इत्युक्त्वा लिङ्गमूलस्थान्दर्भानुत्तरतस्त्यजेत्॥ ८२

ततो दण्डजटाचीरमेखला अपि चोत्सृजेत्।
पुनराचम्य विधिवत्पंचाक्षरमुदीरयेत्॥ ८३

जोड़ नमस्कार करके कहे—'भगवन्! अब मैं आपकी आज्ञासे इस व्रतका उत्सर्ग करता हूँ।' ऐसा कहकर शिवलिंगके मूल भागमें उत्तरदिशाकी ओर कुशोंका त्याग करे। तदनन्तर दण्ड, चीर, जटा और मेखलाको भी त्याग दे। इसके बाद फिर विधिपूर्वक आचमन करके पंचाक्षरमन्त्रका जप करे॥ ८०—८३॥

यः कृत्वात्यन्तिकीं दीक्षामादेहान्तमनाकुलः।
व्रतमेतत्प्रकुर्वीत स तु वै नैष्ठिकः स्मृतः॥ ८४

सोऽत्याश्रमी च विज्ञेयो महापाशुपतस्तथा।
स एव तपतां श्रेष्ठः स एव च महाव्रती॥ ८५

जो आत्यन्तिक दीक्षा ग्रहण करके अपने शरीरका अन्त होनेतक शान्तभावसे इस व्रतका अनुष्ठान करता है, वह 'नैष्ठिक व्रती' कहा गया है। उसे सब आश्रमोंसे ऊपर उठा हुआ महापाशुपत जानना चाहिये। वही तपस्वी पुरुषोंमें श्रेष्ठ है और वही महान् व्रतधारी है॥ ८४-८५॥

न तेन सदृशः कश्चित्कृतकृत्यो मुमुक्षुषु।
यो यतिर्नैष्ठिको जातस्तमाहुर्नैष्ठिकोत्तमम्॥ ८६

मोक्षकी कामना करनेवालोंमें उसके समान धन्य कोई नहीं है। जो यति नैष्ठिक हो गया है, उसे निष्ठासम्पन्न पुरुषोंमें उत्तम कहा गया है॥ ८६॥

योऽन्वहं द्वादशाहं वा व्रतमेतत्समाचरेत्।
सोऽपि नैष्ठिकतुल्यः स्यात्तीव्रव्रतसमन्वयात्॥ ८७

घृताक्तो यश्चरेदेतद् व्रतं व्रतपरायणः।
द्वित्रैकदिवसं वापि स च कश्चन नैष्ठिकः॥ ८८

जो बारह दिनोंतक प्रतिदिन विधिपूर्वक इस व्रतका अनुष्ठान करता है, वह भी नैष्ठिकके ही तुल्य है; क्योंकि उसने तीव्र व्रतका आश्रय लिया है। जो अपने शरीरमें घी लगाकर व्रतके सभी नियमोंके पालनमें तत्पर हो दो-तीन दिन या एक दिन भी इस व्रतका अनुष्ठान करता है, वह भी कोई नैष्ठिक ही है॥ ८७-८८॥

कृत्यमित्येव निष्कामो यश्चरेद् व्रतमुत्तमम्।
शिवार्पितात्मा सततं न तेन सदृशः क्वचित्॥ ८९

भस्मच्छन्नो द्विजो विद्वान्महापातकसम्भवैः।
पापैः सुदारुणैः सद्यो मुच्यते नात्र संशयः॥ ९०

जो निष्काम होकर अपना परम कर्तव्य मानकर अपने-आपको शिवके चरणोंमें समर्पित करके इस उत्तम व्रतका सदा अनुष्ठान करता है, उसके समान कहीं कोई नहीं है। विद्वान् ब्राह्मण भस्म लगाकर महापातक-जनित अत्यन्त दारुण पापोंसे भी तत्काल छूट जाता है, इसमें संशय नहीं है॥ ८९-९०॥

रुद्राग्निर्यत्परं वीर्यं तद्भस्म परिकीर्तितम्।
तस्मात्सर्वेषु कालेषु वीर्यवान्भस्मसंयुतः॥ ९१

भस्मनिष्ठस्य नश्यन्ति दोषा भस्माग्निसंगमात्।
भस्मस्नानविशुद्धात्मा भस्मनिष्ठ इति स्मृतः॥ ९२

रुद्राग्निका जो सबसे उत्तम वीर्य (बल) है, वही भस्म कहा गया है। अतः जो सभी समयोंमें भस्म लगाये रहता है, वह वीर्यवान् माना गया है। भस्ममें निष्ठा रखनेवाले पुरुषके सारे दोष उस भस्माग्निके संयोगसे दग्ध होकर नष्ट हो जाते हैं। जिसका शरीर भस्मस्नानसे विशुद्ध है, वह भस्मनिष्ठ कहा गया है॥ ९१-९२॥

भस्मना दिग्धसर्वांगो भस्मदीप्तस्त्रिपुंड्रकः।
भस्मस्नायी च पुरुषो भस्मनिष्ठ इति स्मृतः॥ ९३

भूतप्रेतपिशाचाश्च रोगाश्चातीव दुस्सहाः।
भस्मनिष्ठस्य सान्निध्याद् विद्रवन्ति न संशयः॥ ९४

जिसके सारे अंगोंमें भस्म लगा हुआ है, जो भस्मसे प्रकाशमान है, जिसने भस्ममय त्रिपुण्ड्र लगा रखा है तथा जो भस्मसे स्नान करता है, वह भस्मनिष्ठ माना गया है। भूत, प्रेत, पिशाच तथा अत्यन्त दुःसह रोग भी भस्मनिष्ठके सान्निध्यसे दूर भागते हैं, इसमें संशय नहीं है॥ ९३-९४॥

भासनाद्भसितं प्रोक्तं भस्म कल्मषभक्षणात्।
भूतिः भूतिकरी चैव रक्षा रक्षाकरी परा॥ ९५

किमन्यदिह वक्तव्यं भस्ममाहात्म्यकारणम्।
व्रती च भस्मना स्नातः स्वयं देवो महेश्वरः॥ ९६

परमास्त्रं च शैवानां भस्मैतत्पारमेश्वरम्।
धौम्याग्रजस्य तपसि व्यापदो यन्निवारिताः॥ ९७

तस्मात्सर्वप्रयत्नेन कृत्वा पाशुपतव्रतम्।
धनवद्भस्म संगृह्य भस्मस्नानरतो भवेत्॥ ९८

वह शरीरको भासित करता है, इसलिये 'भसित' कहा गया है तथा पापोंका भक्षण करनेके कारण उसका नाम 'भस्म' है। भूति (ऐश्वर्य)-कारक होनेसे उसे 'भूति' या 'विभूति' भी कहते हैं। विभूति रक्षा करनेवाली है, अतः उसका एक नाम 'रक्षा' भी है। भस्मके माहात्म्यको लेकर यहाँ और क्या कहा जाय। भस्मसे स्नान करनेवाला व्रती पुरुष साक्षात् महेश्वरदेव कहा गया है। यह परमेश्वर (रुद्राग्नि)-सम्बन्धी भस्म शिव-भक्तोंके लिये बड़ा भारी अस्त्र है; क्योंकि उसने धौम्य मुनिके बड़े भाई उपमन्युके तपमें आयी हुई आपत्तियोंका निवारण किया था; इसलिये सर्वथा प्रयत्न करके पाशुपत-व्रतका अनुष्ठान करनेके पश्चात् हवन-सम्बन्धी भस्मका धनके समान संग्रह करके सदा भस्मस्नानमें तत्पर रहना चाहिये॥ ९५—९८॥

इति श्रीशिवमहापुराणे सप्तम्यां वायवीयसंहितायां पूर्वखण्डे पशुपतिव्रतविधानवर्णनं नाम त्रयस्त्रिंशोऽध्यायः॥ ३३॥

॥ इस प्रकार श्रीशिवमहापुराणके अन्तर्गत सातवीं वायवीयसंहितामें पूर्वखण्डके पशुपतिव्रतविधानवर्णन नामक तैंतीसवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ ३३॥

अथ चतुस्त्रिंशोऽध्यायः

उपमन्युका गोदुग्धके लिये हठ तथा माताकी आज्ञासे शिवोपासनामें संलग्न होना

ऋषय ऊचुः

धौम्याग्रजेन शिशुना क्षीरार्थं हि तपः कृतम्।
तस्मात् क्षीरार्णवो दत्तस्तस्मै देवेन शूलिना॥ १

स कथं शिशुको लेभे शिवशास्त्रप्रवक्तृताम्।
कथं वा शिवसद्भावं ज्ञात्वा तपसि निष्ठितः॥ २

कथं च लब्धविज्ञानस्तपश्चरणपर्वणि।

ऋषियोंने पूछा—प्रभो! धौम्यके बड़े भाई उपमन्यु जब छोटे बालक थे, तब उन्होंने दूधके लिये तपस्या की थी और भगवान् शिवने प्रसन्न होकर उन्हें क्षीरसागर प्रदान किया था। परंतु शैशवावस्थामें उन्हें शिवशास्त्रके प्रवचनकी शक्ति कैसे प्राप्त हुई अथवा वे कैसे शिवके सत्स्वरूपको जानकर तपस्यामें निरत हुए? तपश्चरणके पर्वमें उन्हें भस्मके

रुद्राग्नेर्यत्परं वीर्यं लेभे भस्म स्वरक्षकम्॥ ३

वायुरुवाच

न ह्येष शिशुकः कश्चित्प्राकृतः कृतवांस्तपः।
मुनिवर्यस्य तनयो व्याघ्रपादस्य धीमतः॥ ४

जन्मान्तरेण संसिद्धः केनापि खलु हेतुना।
स्वपदप्रच्युतो दिष्ट्या प्राप्तो मुनिकुमारताम्॥ ५

महादेवप्रसादस्य भाग्यापन्नस्य भाविनः।
दुग्धाभिलाषप्रभवद्वारतामगमत्तपः॥ ६

अतः सर्वगणेशत्वं कुमारत्वं च शाश्वतम्।
सह दुग्धाब्धिना तस्मै प्रददौ शंकरः स्वयम्॥ ७

तस्य ज्ञानागमोऽप्यस्य प्रसादादेव शांकरात्।
कौमारं हि परं साक्षाज्ज्ञानं शक्तिमयं विदुः॥ ८

शिवशास्त्रप्रवक्तृत्वमपि तस्य हि तत्कृतम्।
कुमारमुखतो लब्धज्ञानाब्धेरिव नन्दिनः॥ ९

दृष्टं तु कारणं तस्य शिवज्ञानसमन्वये।
स्वमातृवचनं साक्षाच्छोकजं क्षीरकारणात्॥ १०

कदाचित्क्षीरमत्यल्पं पीतवान्मातुलाश्रमे।
ईर्ष्यया मातुलसुतं संतृप्तक्षीरमुत्तमम्॥ ११

पीत्वा स्थितं यथाकामं दृष्ट्वा वै मातुलात्मजम्।
उपमन्युर्व्याघ्रपादिः प्रीत्या प्रोवाच मातरम्॥ १२

विज्ञानकी प्राप्ति कैसे हुई, जिससे जो रुद्राग्निका उत्तम वीर्य है, उस आत्मरक्षक भस्मको उन्होंने प्राप्त किया?॥ १—३॥

वायुदेवने कहा—महर्षियो! जिन्होंने वह तप किया था, वे उपमन्यु कोई साधारण बालक नहीं थे, परम बुद्धिमान् मुनिवर व्याघ्रपादके पुत्र थे। उन्हें जन्मान्तरमें ही सिद्धि प्राप्त हो चुकी थी। परंतु किसी कारणवश वे अपने पदसे च्युत हो गये—योगभ्रष्ट हो गये। अतः भाग्यवश जन्म लेकर वे मुनिकुमार हुए॥ ४-५॥

दुग्धकी कामनासे उपमन्युकी जो तपस्यामें प्रवृत्ति हुई, वह भविष्यमें प्राप्त होनेवाले महादेवजीके अनुग्रहमें मानो द्वार अर्थात् माध्यम बन गयी॥ ६॥

उसके फलस्वरूप भगवान् शंकरने उपमन्युको दुग्धका समुद्र देनेके साथ-साथ अपने भक्तोंमें वरिष्ठता और शाश्वत कुमारभाव भी प्रदान किया॥ ७॥

विद्वज्जन जिस शक्तिमय उत्कृष्ट ज्ञानको स्कन्दके द्वारा उपदिष्ट बतलाते हैं, उस ज्ञानको उपमन्युने साक्षात् भगवान् शिवके अनुग्रहसे प्राप्त किया था॥ ८॥

जिस प्रकार महासागरके सदृश ज्ञानराशिसे सम्पन्न कुमार कार्तिकेयके मुखसे नन्दीने शिवशास्त्रके प्रवचनका अधिकार प्राप्त किया था, वैसे ही उपमन्युने भी [भगवान् शिवसे] शिवशास्त्रके प्रवचनका अधिकार प्राप्त कर लिया॥ ९॥

उपमन्युके द्वारा दुग्धके लिये हठ करनेपर उनकी माताने शोकवश जो बात कही थी, वही उनकी शिवज्ञानप्राप्तिमें कारण प्रतीत होती है॥ १०॥

एक समयकी बात है, अपने मामाके आश्रममें उन्हें पीनेके लिये बहुत थोड़ा दूध मिला। उनके मामाका बेटा अपनी इच्छाके अनुसार गरम-गरम उत्तम दूध पीकर उनके सामने खड़ा था। मातुलपुत्रको इस अवस्थामें देखकर व्याघ्रपादकुमार उपमन्युके मनमें ईर्ष्या हुई और वे अपनी माँके पास जाकर बड़े प्रेमसे बोले—॥ ११-१२॥

उपमन्युरुवाच

मातर्मातर्महाभागे मम देहि तपस्विनि।
गव्यं क्षीरमतिस्वादु नाल्पमुष्णं पिबाम्यहम्॥ १३

उपमन्युने कहा—'मातः! महाभागे ! तपस्विनि! मुझे अत्यन्त स्वादिष्ट गरम-गरम गायका दूध दो। मैं थोड़ा-सा नहीं पीऊँगा।'॥ १३॥

वायुरुवाच

तच्छ्रुत्वा पुत्रवचनं तन्माता च तपस्विनी।
व्याघ्रपादस्य महिषी दुःखमापत्तदा च सा॥ १४
उपलाल्याथ सुप्रीत्या पुत्रमालिङ्ग्य सादरम्।
दुःखिता विललापाथ स्मृत्वा नैर्धन्यमात्मनः॥ १५

वायुदेवने कहा—[हे ऋषियों] बेटेकी यह बात सुनकर व्याघ्रपादकी पत्नी तपस्विनी माताके मनमें उस समय बड़ा दुःख हुआ। उसने पुत्रको बड़े आदरके साथ छातीसे लगा लिया और प्रेमपूर्वक लाड़-प्यार करके अपनी निर्धनताका स्मरण हो आनेसे वह दुखी हो विलाप करने लगी॥ १४-१५॥

स्मृत्वा स्मृत्वा पुनः क्षीरमुपमन्युः स बालकः।
देहि देहीति तामाह रुदन्भूयो महाद्युतिः॥ १६
तद् हठं सा परिज्ञाय द्विजपत्नी तपस्विनी।
शान्तये तद् हठस्याथ शुभोपायमरीरचत्॥ १७

महातेजस्वी बालक उपमन्यु बारंबार दूधको याद करके रोते हुए मातासे कहने लगे—'माँ! दूध दो, दूध दो।' बालकके उस हठको जानकर उस तपस्विनी ब्राह्मण-पत्नीने उसके हठके निवारणके लिये एक सुन्दर उपाय किया॥ १६-१७॥

उञ्छवृत्त्यार्जितान्बीजान्स्वयं दृष्ट्वा च सा तदा।
बीजपिष्टमथालोड्य तोयेन कलभाषिणी॥ १८
एह्येहि मम पुत्रेति सामपूर्वं ततः सुतम्।
आलिङ्ग्यादाय दुःखार्ता प्रददौ कृत्रिमं पयः॥ १९

उसने स्वयं उञ्छ-वृत्तिसे कुछ बीजोंका संग्रह किया था। उन बीजोंको देखकर उस मधुरभाषिणीने तत्काल उठा लिया और पीसकर पानीमें घोल दिया। फिर मीठी वाणीमें बोली—'आओ, आओ मेरे लाल!' यों कह बालकको शान्त करके हृदयसे लगा लिया और दुःखसे पीड़ित हो उसने कृत्रिम दूध उसके हाथमें दे दिया॥ १८-१९॥

पीत्वा च कृत्रिमं क्षीरं मात्रा दत्तं स बालकः।
नैतत्क्षीरमिति प्राह मातरं चातिविह्वलः॥ २०
दुःखिता सा तदा प्राह संप्रेक्ष्याघ्राय मूर्द्धनि।
सम्मार्ज्य नेत्रे पुत्रस्य कराभ्यां कमलायते॥ २१

माताके दिये हुए उस बनावटी दूधको पीकर बालक अत्यन्त व्याकुल हो उठा और बोला—'माँ! यह दूध नहीं है।' तब वह बहुत दुखी हो गयी और बेटेका मस्तक सूँघकर अपने दोनों हाथोंसे उसके कमलसदृश नेत्रोंको पोंछती हुई कहने लगी॥ २०-२१॥

जनन्युवाच

तटिनी रत्नपूर्णास्ताः स्वर्गपातालगोचराः।
भाग्यहीना न पश्यन्ति भक्तिहीनाश्च ये शिवे॥ २२
राज्यं स्वर्गं च मोक्षं च भोजनं क्षीरसंभवम्।
न लभन्ते प्रियाण्येषां न तुष्यति यदा शिवः॥ २३
भवप्रसादजं सर्वं नान्यद्देवप्रसादजम्।
अन्यदेवेषु निरता दुःखार्ता विभ्रमन्ति च॥ २४

माता बोली—जो लोग भाग्यहीन तथा शिवजीके प्रति भक्तिरहित हैं, वे स्वर्ग-पातालमें गोचर होनेवाली रत्नोंसे परिपूर्ण नदियोंको नहीं देख पाते हैं। शिवजी जबतक लोगोंपर प्रसन्न नहीं होते हैं, वे तबतक राज्य, स्वर्ग, मोक्ष तथा दुग्धसे बना हुआ भोजन—इन प्रिय वस्तुओंको प्राप्त नहीं कर पाते हैं। सब कुछ शिवजीकी कृपासे प्राप्त होता है, वह किसी दूसरे देवताकी कृपासे प्राप्त नहीं होता है। अन्य देवताओंमें आसक्त लोग दुःखसे पीड़ित होकर भटकते रहते हैं॥ २२—२४॥

क्षीरं तत्र कुतोऽस्माकं वने निवसतां सदा।
क्व दुग्धसाधनं वत्स क्व वयं वनवासिनः ॥ २५

सदा वनमें निवास करनेवाले हमलोगोंको दूध कहाँसे मिलेगा? हे वत्स! कहाँ दुग्धकी उपलब्धि और कहाँ हम वनवासी! ॥ २५ ॥

कृत्स्नाभावेन दारिद्र्यान्मया ते भाग्यहीनया।
मिथ्यादुग्धमिदं दत्तं पिष्टमालोड्य वारिणा ॥ २६

जननी बोली—'बेटा! अपने पास सभी वस्तुओंका अभाव होनेके कारण दरिद्रतावश मुझ अभागिनीने पीसे हुए बीजोंको पानीमें घोलकर यह तुम्हें कृत्रिम दूध दिया था ॥ २६ ॥

त्वं मातुलगृहे स्वल्पं पीत्वा स्वादु पयः शृतम्।
ज्ञात्वा स्वादु त्वया पीतं तज्जातीयमनुस्मरन् ॥ २७

तुमने मामाके घरमें पकाये हुए स्वादिष्ट थोड़ेसे दूधको पीकर [कृत्रिम दूधको भी] उसीके समान स्मरण करके स्वादिष्ट जानकर इसे भी पी लिया ॥ २७ ॥

दत्तं न पय इत्युक्त्वा रुदन् दुःखीकरोषि माम्।
प्रसादेन विना शंभोः पयस्तव न विद्यते ॥ २८

तुम 'दूध नहीं दिया' ऐसा कहकर रोते हुए मुझे बारंबार दुखी करते हो। किंतु भगवान् शिवकी कृपाके बिना तुम्हारे लिये कहीं दूध नहीं है ॥ २८ ॥

पादपंकजयोस्तस्य साम्बस्य सगणस्य च।
भक्त्या समर्पितं यत्तत्कारणं सर्वसम्पदाम् ॥ २९

अधुना वसुदोऽस्माभिर्महादेवो न पूजितः।
सकामानां यथाकामं यथोक्तफलदायकः ॥ ३०

भक्तिपूर्वक माता पार्वती और अनुचरोंसहित भगवान् शिवके चरणारविन्दोंमें जो कुछ समर्पित किया गया हो, वही सम्पूर्ण सम्पत्तियोंका कारण होता है। महादेवजी ही धन देनेवाले हैं। इस समय हम लोगोंने उनकी आराधना नहीं की है। वे भगवान् ही सकाम पुरुषोंको उनकी इच्छाके अनुसार फल देनेवाले हैं ॥ २९-३० ॥

धनान्युद्दिश्य नास्माभिरितः प्रागर्चितः शिवः।
अतो दरिद्राः संजाता वयं तस्मान्न ते पयः ॥ ३१

पूर्वजन्मनि यद्दत्तं शिवमुद्दिश्य वै सुत।
तदेव लभ्यते नान्यद् विष्णुमुद्दिश्य वा प्रभुम् ॥ ३२

हम लोगोंने आजसे पहले कभी भी धनकी कामनासे भगवान् शिवकी पूजा नहीं की है। इसीलिये हम दरिद्र हो गये और यही कारण है कि तुम्हारे लिये दूध नहीं मिल रहा है। बेटा! पूर्वजन्ममें भगवान् शिव अथवा विष्णुके उद्देश्यसे जो कुछ दिया जाता है, वही वर्तमान जन्ममें मिलता है, दूसरा कुछ नहीं' ॥ ३१-३२ ॥

वायुरुवाच

इति मातृवचः श्रुत्वा तथ्यं शोकादिसूचकम्।
बालोऽप्यनुतपन्नन्तः प्रगल्भमिदमब्रवीत् ॥ ३३

वायुदेव बोले—वह बालक इस प्रकार माताके शोकसूचक यथार्थ कथनको सुनकर मनमें सन्ताप करता हुआ यह गम्भीर वचन कहने लगा ॥ ३३ ॥

उपमन्युरुवाच

शोकेनालमितो मातः साम्बो यद्यस्ति शंकरः।
त्यज शोकं महाभागे सर्वं भद्रं भविष्यति ॥ ३४

उपमन्यु बोले—माँ! यदि माता पार्वतीसहित भगवान् शिव विद्यमान हैं, तब आजसे शोक करना व्यर्थ है। महाभागे! अब शोक छोड़ो, सब मंगलमय

शृणु मातर्वचो मेऽद्य महादेवोऽस्ति चेत् क्वचित्।
चिराद्वा ह्यचिराद्वापि क्षीरोदं साधयाम्यहम्॥ ३५

ही होगा। माँ! आज मेरी बात सुन लो। यदि कहीं महादेवजी हैं तो मैं देरसे या जल्दी ही उनसे क्षीरसागर माँग लाऊँगा॥ ३४-३५॥

वायुरुवाच

इति श्रुत्वा वचस्तस्य बालकस्य महामतेः।
प्रत्युवाच तदा माता सुप्रसन्ना मनस्विनी॥ ३६

वायुदेवता कहते हैं—उस महाबुद्धिमान् बालककी वह बात सुनकर उसकी मनस्विनी माता उस समय बहुत प्रसन्न हुई और यों बोली—॥ ३६॥

मातोवाच

शुभं विचारितं तात त्वया मत्प्रीतिवर्द्धनम्।
विलम्बं मा कृथास्त्वं हि भज साम्बं सदाशिवम्॥ ३७

माताने कहा—बेटा! तुमने बहुत अच्छा विचार किया है। तुम्हारा यह विचार मेरी प्रसन्नताको बढ़ानेवाला है। अब तुम देर न लगाओ। साम्ब सदाशिवका भजन करो॥ ३७॥

सर्वस्मादधिकोऽस्त्येव शिवः परमकारणम्।
तत्कृतं हि जगत्सर्वं ब्रह्माद्यास्तस्य किंकराः॥ ३८

तत्प्रसादकृतैश्वर्या दासास्तस्य वयं प्रभोः।
तं विनान्यं न जानीमः शंकरं लोकशंकरम्॥ ३९

परम कारण शिव सबसे बढ़कर हैं, सम्पूर्ण जगत् उन्हींका बनाया हुआ है और ब्रह्मा आदि [देवता] उन्हीं प्रभुके किंकर तथा उनसे प्राप्त ऐश्वर्यवाले हैं। हमलोग भी उन्हींके अनुचर हैं। संसारका कल्याण करनेवाले शंकरके अतिरिक्त अन्य किसीको हम नहीं जानते॥ ३८-३९॥

अन्यान् देवान् परित्यज्य कर्मणा मनसा गिरा।
तमेव साम्बं सगणं भज भावपुरस्सरम्॥ ४०

तस्य देवाधिदेवस्य शिवस्य वरदायिनः।
साक्षान्नमः शिवायेति मंत्रोऽयं वाचकः स्मृतः॥ ४१

सप्तकोटिमहामंत्राः सर्वे सप्रणवाः परे।
तस्मिन्नेव विलीयन्ते पुनस्तस्माद्विनिर्गताः॥ ४२

अन्य देवताओंको छोड़कर मन, वाणी और क्रियाद्वारा भक्तिभावके साथ पार्षदगणोंसहित उन्हीं साम्ब सदाशिवका भजन करो। **'नमः शिवाय'** यह मन्त्र उन देवाधिदेव वरदायक शिवका साक्षात् वाचक माना गया है। प्रणवसहित जो दूसरे सात करोड़ महामन्त्र हैं, वे सब इसीमें लीन होते हैं और फिर इसीसे प्रकट होते हैं॥ ४०—४२॥

सप्रसादाश्च ते मंत्राः स्वाधिकाराद्यपेक्षया।
सर्वाधिकारस्त्वेकोऽयं मंत्र एवेश्वराज्ञया॥ ४३

यथा निकृष्टानुत्कृष्टान्सर्वानप्यात्मनः शिवः।
क्षमते रक्षितुं तद्वन्मंत्रोऽयमपि सर्वदा॥ ४४

वे सभी मन्त्र अपने-अपने अधिकारके अनुरूप ही फल प्रदान करनेमें समर्थ हैं, अर्थात् जो मन्त्र जिस कामनाकी सिद्धिके लिये अधिकृत हैं, वे उसीको फलीभूत कर पानेमें समर्थ होते हैं, परंतु यह एकमात्र मन्त्र भगवान् शिवकी आज्ञासे सर्वाधिकारसम्पन्न होनेके कारण सभी कामनाओंको फलीभूत करनेमें समर्थ है। जिस प्रकार भगवान् शिव पापी या पुण्यात्मा—किसीकी भी रक्षा या उद्धार करनेमें सक्षम हैं, उसी प्रकार यह मन्त्र भी प्रत्येक समय प्रत्येक व्यक्तिकी रक्षामें समर्थ है॥ ४३-४४॥

प्रबलश्च तथा ह्येष मंत्रो मन्त्रान्तरादपि।
सर्वरक्षाक्षमोऽप्येष नापरः कश्चिदिष्यते॥ ४५

तस्मान्मन्त्रान्तरांस्त्यक्त्वा पंचाक्षरपरो भव।
तस्मिन् जिह्वान्तरगते न किंचिदिह दुर्लभम्॥ ४६

यह मन्त्र दूसरे सभी मन्त्रोंसे प्रबल है। यही सबकी रक्षा करनेमें समर्थ है; अतः दूसरेकी इच्छा नहीं करनी चाहिये। इसलिये तुम दूसरे मन्त्रोंको त्यागकर केवल पंचाक्षरके जपमें लग जाओ। इस मन्त्रके जिह्वापर आते ही यहाँ कुछ भी दुर्लभ नहीं रह जाता है॥ ४५-४६॥

अघोरास्त्रं च शैवानां रक्षाहेतुरनुत्तमम्।
तच्च तत्प्रभवं मत्वा तत्परो भव नान्यथा॥ ४७

यह शिवभक्तोंकी रक्षाका हेतुभूत सर्वश्रेष्ठ अघोरास्त्र ही है, इस [अस्त्र]-को उसी मन्त्रसे उत्पन्न हुआ मानकर तुम उस मन्त्रमें निरत हो जाओ, इसके विपरीत मत होओ॥ ४७॥

भस्मेदं तु मया लब्धं पितुरेव तवोत्तमम्।
विरजानलसंसिद्धं महाव्यापन्निवारणम्॥ ४८

मन्त्रं च ते मया दत्तं गृहाण मदनुज्ञया।
अनेनैवाशु जप्तेन रक्षा तव भविष्यति॥ ४९

यह उत्तम भस्म जिसे मैंने तुम्हारे पिताजीसे ही प्राप्त किया है, यह विरजा होमकी अग्निसे सिद्ध हुआ है, अतः बड़ी-से-बड़ी आपत्तियोंका निवारण करनेवाला है। मैंने तुम्हें जो पंचाक्षरमन्त्र बताया है, उसको मेरी आज्ञासे ग्रहण करो। इसके जपसे ही शीघ्र तुम्हारी रक्षा होगी॥ ४८-४९॥

वायुरुवाच

एवं मात्रा समादिश्य शिवमस्त्वित्युदीर्य च।
विसृष्टस्तद्वचो मूर्ध्नि कुर्वन्नेव तदा मुनिः॥ ५०

तां प्रणम्यैवमुक्त्वा च तपः कर्तुं प्रचक्रमे।
तमाह च तदा माता शुभं कुर्वन्तु ते सुराः॥ ५१

वायुदेवता कहते हैं—इस प्रकार आज्ञा देकर और 'तुम्हारा कल्याण हो' ऐसा कहकर माताने पुत्रको बिदा किया। मुनि उपमन्युने उस आज्ञाको शिरोधार्य करके उसके चरणोंमें प्रणाम किया और ऐसा ही करूँगा—यह कहकर तपस्याके लिये जानेकी तैयारी की। उस समय माताने आशीर्वाद देते हुए कहा—'सब देवता तुम्हारा मंगल करें'॥ ५०-५१॥

अनुज्ञातस्तया तत्र तपस्तेपे स दुश्चरम्।
हिमवत्पर्वतं प्राप्य वायुभक्षः समाहितः॥ ५२

अष्टेष्टकाभिः प्रासादं कृत्वा लिङ्गं च मृण्मयम्।
तत्रावाह्य महादेवं साम्बं सगणमव्ययम्॥ ५३

भक्त्या पञ्चाक्षरेणैव पत्रैः पुष्पैर्वनोद्भवैः।
समभ्यर्च्य चिरं कालं चचार परमं तपः॥ ५४

माताकी आज्ञा पाकर उस बालकने दुष्कर तपस्या आरम्भ की। हिमालयपर्वतके एक शिखरपर जाकर उपमन्यु एकाग्रचित्त हो केवल वायु पीकर रहने लगे। उन्होंने आठ ईंटोंका एक मन्दिर बनाकर उसमें मिट्टीके शिवलिंगकी स्थापना की। उसमें माता पार्वती तथा गणोंसहित अविनाशी महादेवजीका आवाहन करके भक्तिभावसे पंचाक्षरमन्त्रद्वारा ही वनके पत्र-पुष्प आदि उपचारोंसे उनकी पूजा करते हुए वे चिरकालतक उत्तम तपस्यामें लगे रहे॥ ५२—५४॥

ततस्तपश्चरन्तं तं बालमेकाकिनं कृशम्।
उपमन्युं द्विजवरं शिवसंसक्तमानसम्॥ ५५

उन एकाकी कृशकाय बालक द्विजवर उपमन्युको शिवमें मन लगाकर तपस्या करते देख पूर्वकालमें

पुरा मरीचिना शप्ताः केचिन्मुनिपिशाचकाः।
संपीड्य राक्षसैर्भावैस्तपसो विघ्नमाचरन्॥ ५६

मरीचिके शापसे पिशाचभावको प्राप्त हुए कुछ मुनियोंने अपने राक्षसस्वभावसे उन्हें सताना और उनके तपमें विघ्न डालना आरम्भ किया॥ ५५-५६॥

स च तैः पीड्यमानोऽपि तपः कुर्वन्कथञ्चन।
सदा नमः शिवायेति क्रोशति स्मार्तनादवत्॥ ५७

तन्नादश्रवणादेव तपसो विघ्नकारिणः।
ते तं बालं समुत्सृज्य मुनयः समुपाचरन्॥ ५८

तपसा तस्य विप्रस्य चोपमन्योर्महात्मनः।
चराचरं च मुनयः प्रदीपितमभूज्जगत्॥ ५९

उनके द्वारा सताये जानेपर भी उपमन्यु किसी प्रकार तपमें लगे रहे और सदा '**नमः शिवाय**' का आर्तनादकी भाँति जोर-जोरसे उच्चारण करते रहे। उस शब्दको सुनते ही उनकी तपस्यामें विघ्न डालनेवाले वे मुनि उस बालकको सताना छोड़कर उसकी सेवा करने लगे। हे मुनियो! ब्राह्मणबालक महात्मा उपमन्युकी उस तपस्यासे सम्पूर्ण चराचर जगत् संतप्त हो उठा॥ ५७—५९॥

इति श्रीशिवमहापुराणे सप्तम्यां वायवीयसंहितायां पूर्वखण्डे उपमन्युतपोवर्णनं नाम चतुस्त्रिंशोऽध्यायः॥ ३४॥

॥ इस प्रकार श्रीशिवमहापुराणके अन्तर्गत सातवीं वायवीयसंहितामें पूर्वखण्डमें उपमन्युतपोवर्णन नामक चौंतीसवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ ३४॥

अथ पञ्चत्रिंशोऽध्यायः

भगवान् शंकरका इन्द्ररूप धारण करके उपमन्युके भक्तिभावकी परीक्षा लेना, उन्हें क्षीरसागर आदि देकर बहुत-से वर देना और अपना पुत्र मानकर पार्वतीके हाथमें सौंपना, कृतार्थ हुए उपमन्युका अपनी माताके स्थानपर लौटना

वायुरुवाच

अथ सर्वे प्रदीप्ताङ्गा वैकुण्ठं प्रययुर्द्रुतम्।
प्रणम्याहुश्च तत्सर्वं हरये देवसत्तमाः॥ १

वायुदेव बोले—तदनन्तर [उपमन्युके तपसे] सन्तप्त होते हुए शरीरवाले सभी श्रेष्ठ देवता शीघ्र ही वैकुण्ठ पहुँचे और उन्होंने प्रणाम करके विष्णुको वह सब बताया॥ १॥

श्रुत्वा तेषां तदा वाक्यं भगवान्पुरुषोत्तमः।
किमिदं त्विति संचिन्त्य ज्ञात्वा तत्कारणं च सः॥ २

जगाम मन्दरं तूर्णं महेश्वरदिदृक्षया।
दृष्ट्वा देवं प्रणम्यैवं प्रोवाच सुकृताञ्जलिः॥ ३

तब उनकी बात सुनकर वे भगवान् पुरुषोत्तम 'यह क्या है'—ऐसा सोचकर और उसका कारण जानकर महेश्वरके दर्शनकी इच्छासे शीघ्र ही मन्दर पर्वतपर गये तथा [वहाँ] शिवजीको देखकर उन्हें प्रणाम करके हाथ जोड़कर इस प्रकार कहने लगे—॥ २-३॥

विष्णुरुवाच

भगवन्ब्राह्मणः कश्चिदुपमन्युरिति श्रुतः।
क्षीरार्थमदहत्सर्वं तपसा तन्निवारय॥ ४

विष्णु बोले—हे भगवन्! उपमन्यु—इस नामसे प्रसिद्ध कोई ब्राह्मण दूधके लिये [अपनी] तपस्यासे सबको जला रहा है, उसे रोकिये॥ ४॥

वायुरुवाच

इति श्रुत्वा वचो विष्णोः प्राह देवो महेश्वरः।

वायुदेव बोले—विष्णुका यह वचन सुनकर भगवान् महेश्वरने कहा—मैं उस बालकको रोकूँगा,

शिशुं निवारयिष्यामि तत्त्वं गच्छ स्वमाश्रमम्॥ ५

तच्छ्रुत्वा शंभुवचनं स विष्णुर्देववल्लभः।
जगामाश्वास्य तान्सर्वान् स्वलोकममरादिकान्॥ ६

एतस्मिन्नन्तरे देवः पिनाकी परमेश्वरः।
शक्रस्य रूपमास्थाय गन्तुं चक्रे मतिं ततः॥ ७

अथ जगाम मुनेस्तु तपोवनं
गजवरेण सितेन सदाशिवः।
सह सुरासुरसिद्धमहोरगै-
रमरराजतनुं स्वयमास्थितः॥ ८

स वारणश्चारु तदा विभुं तं
निवीज्य बालव्यजनेन दिव्यम्।
दधार शच्या सहितं सुरेन्द्रं
करेण वामेन सितातपत्रम्॥ ९

रराज भगवान्सोमः शक्ररूपी सदाशिवः।
तेनातपत्रेण यथा चन्द्रबिम्बेन मन्दरः॥ १०

आस्थायैवं हि शक्रस्य स्वरूपं परमेश्वरः।
जगामानुग्रहं कर्तुमुपमन्योस्तदाश्रमम्॥ ११

तं दृष्ट्वा परमेशानं शक्ररूपधरं शिवम्।
प्रणम्य शिरसा प्राह महामुनिवरः स्वयम्॥ १२

उपमन्युरुवाच

पावितश्चाश्रमः सोऽयं मम देवेश्वर स्वयम्।
प्राप्तो यत्त्वं जगन्नाथ भगवन्देवसत्तम॥ १३

वायुरुवाच

एवमुक्त्वा स्थितं प्रेक्ष्य कृताञ्जलिपुटं द्विजम्।
प्राह गंभीरया वाचा शक्ररूपधरो हरः॥ १४

शक्र उवाच

तुष्टोऽस्मि ते वरं ब्रूहि तपसाऽनेन सुव्रत।
ददामि चेप्सितान्सर्वान् धौम्याग्रज महामुने॥ १५

वायुरुवाच

एवमुक्तस्तदा तेन शक्रेण मुनिपुङ्गवः।
वरयामि शिवे भक्तिमित्युवाच कृताञ्जलिः॥ १६
तन्निशम्य हरिः प्राह मां न जानासि लेखपम्।

आप अपने लोकको जाइये। शिवजीका यह वचन सुनकर देवताओंके प्रिय वे विष्णु उन सभी देवताओंको आश्वासन देकर अपने लोकको चले गये॥ ५-६॥

तदनन्तर [भगवान् विष्णुके अनुरोध करनेपर] श्रीशिवजीने [पहले] इन्द्रका रूप धारण करके उपमन्युके पास जानेका विचार किया। फिर श्वेत ऐरावतपर आरूढ़ हो स्वयं देवराज इन्द्रका शरीर ग्रहण करके भगवान् सदाशिव देवता, असुर, सिद्ध तथा बड़े-बड़े नागोंके साथ उपमन्यु मुनिके तपोवनकी ओर चले॥ ७-८॥

उस समय वह ऐरावत दायीं सूँड़में चँवर लेकर शचीसहित दिव्यरूपवाले देवराज इन्द्रको हवा कर रहा था और बायीं सूँड़में श्वेत छत्र लेकर उनपर लगाये चल रहा था। इन्द्रका रूप धारण किये उमासहित भगवान् सदाशिव उस श्वेत छत्रसे उसी तरह सुशोभित हो रहे थे, जैसे उदित हुए पूर्ण चन्द्रमण्डलसे मन्दराचल शोभायमान होता है॥ ९-१०॥

इस तरह इन्द्रके स्वरूपका आश्रय ले परमेश्वर शिव उपमन्युके उस आश्रमपर [अपने उस भक्तपर] अनुग्रह करनेके लिये जा पहुँचे॥ ११॥

इन्द्ररूपधारी परमेश्वर शिवको आया देख मुनियोंमें श्रेष्ठ उपमन्यु मुनिने मस्तक झुकाकर प्रणाम किया और इस प्रकार कहा—॥ १२॥

उपमन्यु बोले—'देवेश्वर! जगन्नाथ! भगवन्! देवशिरोमणे! आप स्वयं यहाँ पधारे, इससे मेरा यह आश्रम पवित्र हो गया'॥ १३॥

वायुदेव बोले—ऐसा कहकर हाथ जोड़े हुए खड़े उन द्विजकी ओर देखकर इन्द्ररूपधारी शिवजी गम्भीर वाणीमें कहने लगे—॥ १४॥

इन्द्ररूपधारी शिव बोले—उत्तम व्रतका पालन करनेवाले धौम्यके बड़े भैया महामुने उपमन्यो! मैं तुम्हारी इस तपस्यासे बहुत संतुष्ट हूँ। तुम वर माँगो, मैं तुम्हें सम्पूर्ण अभीष्ट वस्तुएँ प्रदान करूँगा॥ १५॥

वायुदेवता कहते हैं—उन इन्द्रदेवके ऐसा कहनेपर उस समय मुनिप्रवर उपमन्युने हाथ जोड़कर कहा—[भगवन्!] 'मैं भगवान् शिवकी भक्ति माँगता हूँ।' यह सुनकर इन्द्रने कहा—'क्या तुम मुझे नहीं

त्रैलोक्याधिपतिं शक्रं सर्वदेवनमस्कृतम्॥ १७

मद्भक्तो भव विप्रर्षे मामेवार्चय सर्वदा।
ददामि सर्वं भद्रं ते त्यज रुद्रं च निर्गुणम्॥ १८

रुद्रेण निर्गुणेनापि किं ते कार्यं भविष्यति।
देवपङ्क्तिबहिर्भूतो यः पिशाचत्वमागतः॥ १९

जानते! मैं समस्त देवताओंका पालक और तीनों लोकोंका अधिपति इन्द्र हूँ। सब देवता मुझे नमस्कार करते हैं। ब्रह्मर्षे! मेरे भक्त हो जाओ। सदा मेरी ही पूजा करो, तुम्हारा कल्याण हो। मैं तुम्हें सब कुछ दूँगा। निर्गुण रुद्रको त्याग दो। उस निर्गुण रुद्रसे तुम्हारा कौन-सा कार्य सिद्ध होगा, जो देवताओंकी पंक्तिसे बाहर होकर पिशाचभावको प्राप्त हो गया है।'॥ १६—१९॥

वायुरुवाच

तच्छ्रुत्वा प्राह स मुनिर्जपन्पञ्चाक्षरं मनुम्।
मन्यमानो धर्मविघ्नं प्राह तं कर्तुमागतम्॥ २०

वायुदेवता कहते हैं—यह सुनकर पंचाक्षर-मन्त्रका जप करते हुए वे मुनि उपमन्यु इन्द्रको अपने धर्ममें विघ्न डालनेके लिये आया हुआ जानकर बोले—॥ २०॥

उपमन्युरुवाच

त्वयैवं कथितं सर्वं भवनिंदारतेन वै।
प्रसंगादेव देवस्य निर्गुणत्वं महात्मनः॥ २१

उपमन्युने कहा—यद्यपि तुम भगवान् शिवकी निन्दामें तत्पर हो, तथापि इसी प्रसंगमें परमात्मा महादेवजीकी निर्गुणता बताकर तुमने स्वयं ही उनका सम्पूर्ण महत्त्व स्पष्टरूपसे कह दिया॥ २१॥

त्वं न जानासि वै रुद्रं सर्वदेवेश्वरेश्वरम्।
ब्रह्मविष्णुमहेशानां जनकं प्रकृतेः परम्॥ २२

सदसद्व्यक्तमव्यक्तं यमाहुर्ब्रह्मवादिनः।
नित्यमेकमनेकं च वरं तस्माद् वृणोम्यहम्॥ २३

हेतुवादविनिर्मुक्तं सांख्ययोगार्थदं परम्।
उपासते यं तत्त्वज्ञा वरं तस्माद् वृणोम्यहम्॥ २४

तुम नहीं जानते कि भगवान् रुद्र सम्पूर्ण देवेश्वरोंके भी ईश्वर हैं। ब्रह्मा, विष्णु और महेशके भी जनक हैं तथा प्रकृतिसे परे हैं। ब्रह्मवादी लोग उन्हींको सत्-असत्, व्यक्त-अव्यक्त, नित्य, एक और अनेक कहते हैं। अतः मैं उन्हींसे वर माँगूँगा। जो युक्तिवादसे परे तथा सांख्य और योगके सारभूत अर्थका ज्ञान प्रदान करनेवाले हैं, तत्त्वज्ञानी पुरुष उत्कृष्ट जानकर जिनकी उपासना करते हैं, उन भगवान् शिवसे ही मैं वर माँगूँगा॥ २२—२४॥

नास्ति शंभोः परं तत्त्वं सर्वकारणकारणात्।
ब्रह्मविष्ण्वादिदेवानां स्रष्टुर्गुणपराद्विभोः॥ २५

बहुनात्र किमुक्तेन मयाद्यानुमितं महत्।
भवान्तरे कृतं पापं श्रुता निन्दा भवस्य चेत्॥ २६

समस्त कारणोंके भी कारण, ब्रह्मा, विष्णु आदि देवताओंकी सृष्टि करनेवाले, गुणोंसे परे तथा सर्वव्यापी शम्भुसे बढ़कर कोई तत्त्व नहीं है। अधिक कहनेसे क्या प्रयोजन, आज मैं सोचता हूँ कि मैंने पूर्वजन्ममें महान् पाप किया था, जो कि शिवकी निन्दा सुनी है॥ २५-२६॥

श्रुत्वा निंदां भवस्याथ तत्क्षणादेव सन्त्यजेत्।
स्वदेहं तन्निहत्याशु शिवलोकं स गच्छति॥ २७

आस्तां तावन्ममेच्छेयं क्षीरं प्रति सुराधम।
निहत्य त्वां शिवास्त्रेण त्यजाम्येतं कलेवरम्॥ २८

जो शिवकी निन्दा सुनते ही उसी क्षण उसे मारकर शीघ्र ही अपने शरीरको त्याग देता है, वह शिवलोक जाता है। देवाधम! दूधके लिये जो मेरी इच्छा है, वह यों ही रह जाय; परंतु शिवास्त्रके द्वारा तुम्हारा वध करके मैं अपने इस शरीरको त्याग दूँगा॥ २७-२८॥

वायुरुवाच

एवमुक्त्वोपमन्युस्तं मर्तुं व्यवसितः स्वयम्।
क्षीरे वाञ्छामपि त्यक्त्वा निहन्तुं शक्रमुद्यतः॥ २९

भस्मादाय तदा घोरमघोरास्त्राभिमंत्रितम्।
विसृज्य शक्रमुद्दिश्य ननाद स मुनिस्तथा॥ ३०

स्मृत्वा शंभुपदद्वंद्वं स्वदेहं दग्धुमुद्यतः।
आग्नेयीं धारणां बिभ्रदुपमन्युरवस्थितः॥ ३१

एवं व्यवसिते विप्रे भगवान् भगनेत्रहा।
वारयामास सौम्येन धारणां तस्य योगिनः॥ ३२

तद्विसृष्टमघोरास्त्रं नंदीश्वरनियोगतः।
जगृहे मध्यतः क्षिप्तं नन्दी शंकरवल्लभः॥ ३३

स्वं रूपमेव भगवानास्थाय परमेश्वरः।
दर्शयामास विप्राय बालेन्दुकृतशेखरम्॥ ३४

क्षीरार्णवसहस्त्रं च पीयूषार्णवमेव वा।
दध्यादेरर्णवांश्चैव घृतोदार्णवमेव च॥ ३५

फलार्णवं च बालस्य भक्ष्यभोज्यार्णवं तथा।
अपूपानां गिरिं चैव दर्शयामास स प्रभुः॥ ३६

एवं स ददृशे देवो देव्या सार्द्धं वृषोपरि।
गणेश्वरैस्त्रिशूलाद्यैर्दिव्यास्त्रैरपि संवृतः॥ ३७

दिवि दुंदुभयो नेदुः पुष्पवृष्टिः पपात च।
विष्णुब्रह्मेन्द्रप्रमुखैर्देवैश्छन्ना दिशो दश॥ ३८

अथोपमन्युरानन्दसमुद्रोर्मिभिरावृतः।
पपात दण्डवद्भूमौ भक्तिनम्रेण चेतसा॥ ३९

एतस्मिन्समये तत्र सस्मितो भगवान्भवः।
एह्येहीति तमाहूय मूर्ध्न्याघ्राय ददौ वरान्॥ ४०

शिव उवाच

भक्ष्यभोज्यान्यथाकामं बान्धवैर्भुङ्क्ष्व सर्वदा।
सुखी भव सदा दुःखान्निर्मुक्तो भक्तिमान्मम॥ ४१

वायुदेवता कहते हैं—ऐसा कहकर स्वयं मर जानेका निश्चय करके उपमन्यु दूधकी भी इच्छा छोड़कर इन्द्रका वध करनेके लिये उद्यत हो गये। उस समय अघोर अस्त्रसे अभिमन्त्रित घोर भस्मको लेकर मुनिने इन्द्रके उद्देश्यसे छोड़ दिया और बड़े जोरसे सिंहनाद किया। फिर शम्भुके युगल चरणारविन्दोंका चिन्तन करते हुए वे अपनी देहको दग्ध करनेके लिये उद्यत हो गये और आग्नेयी धारणा धारण करके स्थित हुए॥ २९—३१॥

ब्राह्मण उपमन्यु जब इस प्रकार स्थित हुए, तब भगदेवताके नेत्रका नाश करनेवाले भगवान् शिवने योगी उपमन्युकी उस धारणाको अपनी सौम्यदृष्टिसे रोक दिया। उनके छोड़े हुए उस अघोरास्त्रको नन्दीश्वर शिवजीकी आज्ञासे शिववल्लभ नन्दीने बीचमें ही पकड़ लिया॥ ३२-३३॥

तत्पश्चात् परमेश्वर भगवान् शिवने अपने बालेन्दुशेखररूपको धारण कर लिया और ब्राह्मण उपमन्युको उसे दिखाया। इतना ही नहीं, उन प्रभुने उस मुनिको सहस्रों क्षीरसागर, सुधासागर, दधि आदिके सागर, घृतके समुद्र, फलसम्बन्धी रसके समुद्र तथा भक्ष्य-भोज्य पदार्थोंके समुद्रका दर्शन कराया और पूओंका पहाड़ खड़ा करके दिखा दिया॥ ३४—३६॥

इसी तरह देवी पार्वतीके साथ महादेवजी वहाँ वृषभपर आरूढ़ दिखायी दिये। वे अपने गणाध्यक्षों तथा त्रिशूल आदि दिव्यास्त्रोंसे घिरे हुए थे। देवलोकमें दुन्दुभियाँ बजने लगीं, आकाशसे फूलोंकी वर्षा होने लगी तथा विष्णु, ब्रह्मा और इन्द्र आदि देवताओंसे दसों दिशाएँ आच्छादित हो गयीं॥ ३७-३८॥

उस समय उपमन्यु आनन्दसागरकी लहरोंसे घिरे हुए थे। वे भक्तिविनम्र चित्तसे पृथ्वीपर दण्डकी भाँति पड़ गये। इसी समय वहाँ मुसकराते हुए भगवान् शिवने 'यहाँ आओ, यहाँ आओ' कहकर उन्हें बुलाया और उनका मस्तक सूँघकर अनेक वर दिये॥ ३९-४०॥

शिव बोले—वत्स! तुम अपने भाई-बन्धुओंके साथ सदा इच्छानुसार भक्ष्य-भोज्य पदार्थोंका उपभोग करो। दुःखसे छूटकर सर्वदा सुखी रहो, तुम्हारे हृदयमें मेरे प्रति भक्ति सदा बनी रहे॥ ४१॥

उपमन्यो महाभाग तवाम्बैषा हि पार्वती।
मया पुत्रीकृतो ह्यद्य दत्तः क्षीरोदकार्णवः॥ ४२
मधुनश्चार्णवश्चैव दध्यन्नार्णव एव च।
आज्यौदनार्णवश्चैव फलाद्यर्णव एव च॥ ४३
अपूपगिरयश्चैव भक्ष्यभोज्यार्णवस्तथा।
एते दत्ता मया ते हि त्वं गृह्णीष्व महामुने॥ ४४

महाभाग उपमन्यो! ये पार्वतीदेवी तुम्हारी माता हैं। आज मैंने तुम्हें अपना पुत्र बना लिया और तुम्हारे लिये क्षीरसागर प्रदान किया। केवल दूधका ही नहीं, मधु, दही, अन्न, घी, भात तथा फल आदिके रसका भी समुद्र तुम्हें दे दिया। ये पूओंके पहाड़ तथा भक्ष्य-भोज्य पदार्थोंके सागर मैंने तुम्हें समर्पित किये। महामुने! ये सब ग्रहण करो॥ ४२—४४॥

पिता तव महादेवो माता वै जगदम्बिका।
अमरत्वं मया दत्तं गाणपत्यं च शाश्वतम्॥ ४५

वरान्वरय सुप्रीत्या मनोऽभिलषितान्परान्।
प्रसन्नोऽहं प्रदास्यामि नात्र कार्या विचारणा॥ ४६

आजसे मैं महादेव तुम्हारा पिता हूँ और जगदम्बा उमा तुम्हारी माता हैं। मैंने तुम्हें अमरत्व तथा गणपतिका सनातन पद प्रदान किया। अब तुम्हारे मनमें जो दूसरी-दूसरी अभिलाषाएँ हों, उन सबको तुम बड़ी प्रसन्नताके साथ वरके रूपमें माँगो। मैं संतुष्ट हूँ। इसलिये वह सब दूँगा। इस विषयमें कोई अन्यथा विचार नहीं करना चाहिये॥ ४५-४६॥

वायुरुवाच

एवमुक्त्वा महादेवः कराभ्यामुपगृह्य तम्।
मूर्ध्न्याघ्राय सुतस्तेऽयमिति देव्यै न्यवेदयत्॥ ४७

वायुदेव कहते हैं—ऐसा कहकर महादेवजीने उन्हें दोनों हाथोंसे पकड़कर हृदयसे लगा लिया और मस्तक सूँघकर यह कहते हुए देवीकी गोदमें दे दिया कि यह तुम्हारा पुत्र है॥ ४७॥

देवी च गुहवत्प्रीत्या मूर्ध्नि तस्य कराम्बुजम्।
विन्यस्य प्रददौ तस्मै कुमारपदमव्ययम्॥ ४८

क्षीराब्धिरपि साकारः क्षीरं स्वादु करे दधत्।
उपस्थाय ददौ पिण्डीभूतं क्षीरमनस्वरम्॥ ४९

देवीने कार्तिकेयकी भाँति प्रेमपूर्वक उनके मस्तकपर अपना करकमल रखा और उन्हें अविनाशी कुमारपद प्रदान किया। क्षीरसागरने भी साकाररूप धारण करके उनके हाथमें अनश्वर पिण्डीभूत स्वादिष्ठ दूध समर्पित किया॥ ४८-४९॥

योगैश्वर्यं सदा तुष्टिं ब्रह्मविद्यामनश्वराम्।
समृद्धिं परमां तस्मै ददौ संतुष्टमानसः॥ ५०

तत्पश्चात् पार्वतीदेवीने संतुष्टचित्त हो उन्हें योगजनित ऐश्वर्य, सदा संतोष, अविनाशिनी ब्रह्मविद्या और उत्तम समृद्धि प्रदान की॥ ५०॥

अथ शंभुः प्रसन्नात्मा दृष्ट्वा तस्य तपो महः।
पुनर्ददौ वरं दिव्यं मुनये ह्युपमन्यवे॥ ५१

व्रतं पाशुपतं ज्ञानं व्रतयोगं च तत्त्वतः।
ददौ तस्मै प्रवक्तृत्वपाटवं सुचिरं परम्॥ ५२

तदनन्तर उनके तपोमय तेजको देखकर प्रसन्नचित्त हुए शम्भुने उपमन्यु मुनिको पुनः दिव्य वरदान दिया। पाशुपत-व्रत, पाशुपतज्ञान, तात्त्विक व्रतयोग तथा चिरकालतक उसके प्रवचनकी परम पटुता उन्हें प्रदान की॥ ५१-५२॥

सोऽपि लब्ध्वा वरान्दिव्यान् कुमारत्वं च सर्वदा।
तस्माच्छिवाच्च तस्याश्च शिवाया मुदितोऽभवत्॥ ५३
ततः प्रसन्नचेतस्कः सुप्रणम्य कृताञ्जलिः।
ययाचे स वरं विप्रो देवदेवान्महेश्वरात्॥ ५४

भगवान् शिव और शिवासे दिव्य वर तथा नित्य कुमारत्व पाकर वे प्रमुदित हो उठे। इसके बाद प्रसन्नचित्त हो प्रणाम करके हाथ जोड़ उन ब्राह्मण उपमन्युने देवदेव महेश्वरसे यह वर माँगा॥ ५३-५४॥

उपमन्युरुवाच

प्रसीद देवदेवेश प्रसीद परमेश्वर।
स्वभक्तिं देहि परमां दिव्यामव्यभिचारिणीम्॥ ५५

श्रद्धां देहि महादेव स्वसम्बन्धिषु मे सदा।
स्वदास्यं परमं स्नेहं सान्निध्यं चैव सर्वदा॥ ५६

उपमन्यु बोले—देवदेवेश्वर! प्रसन्न होइये। परमेश्वर! प्रसन्न होइये और मुझे अपनी परम दिव्य एवं अव्यभिचारिणी भक्ति दीजिये। महादेव! अपने सम्बन्धियोंमें मेरी सदा श्रद्धा बनी रहनेका वर दीजिये! साथ ही, अपना दासत्व, उत्कृष्ट स्नेह और नित्य सामीप्य प्रदान कीजिये॥ ५५-५६॥

एवमुक्त्वा प्रसन्नात्मा हर्षगद्गदया गिरा।
स तुष्टाव महादेवमुपमन्युर्द्विजोत्तमः॥ ५७

ऐसा कहकर प्रसन्नचित्त हुए द्विजश्रेष्ठ उपमन्युने हर्षगद्गद वाणीद्वारा महादेवजीका स्तवन किया॥ ५७॥

देवदेव महादेव शरणागतवत्सल।
प्रसीद करुणासिंधो साम्ब शंकर सर्वदा॥ ५८

उपमन्यु बोले—देवदेव! महादेव! शरणागत-वत्सल! करुणासिन्धो! साम्बसदाशिव ! आप सदा मुझपर प्रसन्न होइये॥ ५८॥

वायुरुवाच

एवमुक्तो महादेवः सर्वेषां च वरप्रदः।
प्रत्युवाच प्रसन्नात्मोपमन्युं मुनिसत्तमम्॥ ५९

वायुदेव कहते हैं—उनके ऐसा कहनेपर सबको वर देनेवाले प्रसन्नात्मा महादेवने मुनिवर उपमन्युको इस प्रकार उत्तर दिया॥ ५९॥

शिव उवाच

वत्सोपमन्यो तुष्टोऽस्मि सर्वं दत्तं मया हि ते।
दृढभक्तोऽसि विप्रर्षे मया जिज्ञासितो ह्यसि॥ ६०
अजरश्चामरश्चैव भव त्वं दुःखवर्जितः।
यशस्वी तेजसा युक्तो दिव्यज्ञानसमन्वितः॥ ६१

शिव बोले—वत्स उपमन्यो ! मैं तुमपर संतुष्ट हूँ। इसलिये मैंने तुम्हें सब कुछ दे दिया। ब्रह्मर्षे! तुम मेरे सुदृढ़ भक्त हो; क्योंकि इस विषयमें मैंने तुम्हारी परीक्षा ले ली है। तुम अजर-अमर, दुःखरहित, यशस्वी, तेजस्वी और दिव्य ज्ञानसे सम्पन्न होओ॥ ६०-६१॥

अक्षया बान्धवाश्चैव कुलं गोत्रं च ते सदा।
भविष्यति द्विजश्रेष्ठ मयि भक्तिश्च शाश्वती॥ ६२
सान्निध्यं चाश्रमे नित्यं करिष्यामि द्विजोत्तम।
उपकण्ठं मम त्वं वै सानन्दं विहरिष्यसि॥ ६३

द्विजश्रेष्ठ! तुम्हारे बन्धु-बान्धव, कुल तथा गोत्र सदा अक्षय रहेंगे। मेरे प्रति तुम्हारी भक्ति सदा बनी रहेगी। विप्रवर! मैं तुम्हारे आश्रममें नित्य निवास करूँगा। तुम मेरे पास सानन्द विचरोगे॥ ६२-६३॥

एवमुक्त्वा स भगवान् सूर्यकोटिसमप्रभः।
ईशानः स वरान्दत्त्वा तत्रैवान्तर्दधे हरः॥ ६४

उपमन्युः प्रसन्नात्मा प्राप्य तस्माद्वराद्वरान्।
जगाम जननीस्थानं सुखं प्रापाधिकं च सः॥ ६५

ऐसा कहकर उपमन्युको अभीष्ट वर दे करोड़ों सूर्योंके समान तेजस्वी भगवान् महेश्वर वहीं अन्तर्धान हो गये। उन श्रेष्ठ परमेश्वरसे उत्तम वर पाकर उपमन्युका हृदय प्रसन्नतासे खिल उठा। उन्हें बहुत सुख मिला और वे अपनी जन्मदायिनी माताके स्थानपर चले गये॥ ६४-६५॥

इति श्रीशिवमहापुराणे वैयासिक्यां चतुर्विंशतिसाहस्र्यां संहितायां तदन्तर्गतायां सप्तम्यां वायवीयसंहितायां पूर्वखण्डे उपमन्युचरितवर्णनं नाम पञ्चत्रिंशोऽध्यायः॥ ३५॥

॥ इस प्रकार व्यासविरचित चौबीस हजार श्लोकोंवाले श्रीशिवमहापुराणके अन्तर्गत सातवीं वायवीयसंहिताके पूर्वखण्डमें उपमन्युचरितवर्णन नामक पैंतीसवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ ३५॥

॥ समाप्तोऽयं सप्तम्याः वायवीयसंहितायाः पूर्वखण्डः॥

॥ ॐ श्रीसाम्बशिवाय नमः ॥ ॥ ॐ श्रीगणेशाय नमः ॥

श्रीशिवमहापुराण

सप्तम्याः वायवीयसंहितायाः उत्तरखण्डः

अथ प्रथमोऽध्यायः

ऋषियोंके पूछनेपर वायुदेवका श्रीकृष्ण और उपमन्युके मिलनका प्रसंग सुनाना, श्रीकृष्णको उपमन्युसे ज्ञानका और भगवान् शंकरसे पुत्रका लाभ

ॐ नमः समस्तसंसारचक्रभ्रमणहेतवे।
गौरीकुचतटद्वन्द्वकुङ्कुमाङ्कितवक्षसे ॥ १

जो समस्त संसार-चक्रके परिभ्रमणमें कारणरूप हैं तथा गौरीके युगल उरोजोंमें लगे हुए केसरसे जिनका वक्षःस्थल अंकित है, उन भगवान् उमावल्लभ शिवको नमस्कार है॥ १॥

सूत उवाच

उक्त्वा भगवतो लब्धं प्रसादमुपमन्युना।
नियमादुत्थितो वायुर्मध्ये प्राप्ते दिवाकरे॥ २

ऋषयश्चापि ते सर्वे नैमिषारण्यवासिनः।
अथायमर्थः प्रष्टव्य इति कृत्वा विनिश्चयम्॥ ३

कृत्वा यथा स्वकं कृत्यं प्रत्यहं ते यथा पुरा।
भगवन्तमुपायान्तं समीक्ष्य समुपाविशन्॥ ४

सूतजी बोले—उपमन्युको भगवान् शंकरके कृपाप्रसादके प्राप्त होनेका प्रसंग सुनाकर मध्याह्नकालमें नित्यनियमके उद्देश्यसे वायुदेव कथा बन्द करके उठ गये। तब नैमिषारण्यनिवासी अन्य ऋषि भी 'अब अमुक बात पूछनी है' ऐसा निश्चय करके उठे और प्रतिदिनकी भाँति अपना तात्कालिक नित्यकर्म पूरा करके भगवान् वायुदेवको आया देख फिर आकर उनके पास बैठ गये॥ २—४॥

अथासौ नियमस्यान्ते भगवानम्बरोद्भवः।
मध्ये मुनिसभायास्तु भेजे क्लृप्तं वरासनम्॥ ५

सुखासनोपविष्टश्च वायुर्लोकनमस्कृतः।
श्रीमद्विभूतिमीशस्य हृदि कृत्वेदमब्रवीत्॥ ६

तं प्रपद्ये महादेवं सर्वज्ञमपराजितम्।
विभूतिः सकलं यस्य चराचरमिदं जगत्॥ ७

नियम समाप्त होनेपर जब आकाशजन्मा वायुदेव मुनियोंकी सभामें अपने लिये निश्चित उत्तम आसनपर विराजमान हो गये—सुखपूर्वक बैठ गये, तब वे लोकवन्दित पवनदेव परमेश्वरकी श्रीसम्पन्न विभूतिका मन-ही-मन चिन्तन करके इस प्रकार बोले—'मैं उन सर्वज्ञ और अपराजित महान् देव भगवान् शंकरकी शरण लेता हूँ, जिनकी विभूति इस समस्त चराचर जगत्के रूपमें फैली हुई है'॥ ५—७॥

इत्याकर्ण्य शुभां वाणीं ऋषयः क्षीणकल्मषाः।
विभूतिविस्तरं श्रोतुमूचुस्ते परमं वचः॥ ८

उनकी शुभ वाणीको सुनकर वे निष्पाप ऋषि भगवान्की विभूतिका विस्तारपूर्वक वर्णन सुननेके लिये यह उत्तम वचन बोले—॥ ८॥

ऋषय ऊचुः

उक्तं भगवता वृत्तमुपमन्योर्महात्मनः।
क्षीरार्थेनापि तपसा यत्प्राप्तं परमेश्वरात्॥ ९

ऋषियोंने कहा—भगवन्! आपने महात्मा उपमन्युका चरित्र सुनाया, जिससे यह ज्ञात हुआ कि उन्होंने केवल दूधके लिये तपस्या करके भी परमेश्वर शिवसे सब कुछ पा लिया। हमने पहलेसे ही सुन रखा

दृष्टोऽसौ वासुदेवेन कृष्णेनाक्लिष्टकर्मणा।
धौम्याग्रजस्ततस्तेन कृत्वा पाशुपतं व्रतम् ॥ १०

प्राप्तं च परमं ज्ञानमिति प्रागेव शुश्रुम।
कथं स लब्धवान् कृष्णो ज्ञानं पाशुपतं परम्॥ ११

है कि अनायास ही महान् कर्म करनेवाले वसुदेवनन्दन भगवान् श्रीकृष्ण किसी समय धौम्यके बड़े भाई उपमन्युसे मिले थे और उनकी प्रेरणासे पाशुपत-व्रतका अनुष्ठान करके उन्होंने परम ज्ञान प्राप्त कर लिया था; अतः आप यह बतायें कि भगवान् श्रीकृष्णने परम उत्तम पाशुपतज्ञान किस प्रकार प्राप्त किया?॥ ९—११॥

वायुरुवाच

स्वेच्छया ह्यवतीर्णोऽपि वासुदेवः सनातनः।
निन्दयन्निव मानुष्यं देहशुद्धिं चकार सः॥ १२

पुत्रार्थं हि तपस्तप्तुं गतस्तस्य महामुनेः।
आश्रमं मुनिभिर्दृष्टं दृष्टवांस्तत्र वै मुनिम् ॥ १३

वायुदेव बोले—अपनी इच्छासे अवतीर्ण होनेपर भी सनातन वासुदेवने मानव-शरीरकी निन्दा-सी करते हुए लोकसंग्रहके लिये शरीरकी शुद्धि की थी। वे पुत्र-प्राप्तिके निमित्त तप करनेके लिये उन महामुनिके आश्रमपर गये थे, जहाँ बहुत-से मुनि उपमन्युजीका दर्शन कर रहे थे। भगवान् श्रीकृष्णने भी वहाँ जाकर उनका दर्शन किया॥ १२-१३॥

भस्मावदातं सर्वाङ्गं त्रिपुंड्राङ्कितमस्तकम्।
रुद्राक्षमालाभरणं जटामण्डलमण्डितम्॥ १४

तच्छिष्यभूतैर्मुनिभिः शास्त्रैर्वेदमिवावृतम्।
शिवध्यानरतं शांतमुपमन्युं महाद्युतिम्॥ १५

उनके सारे अंग भस्मसे उज्ज्वल दिखायी देते थे। मस्तक त्रिपुण्ड्रसे अंकित था। रुद्राक्षकी माला ही उनका आभूषण थी। वे जटामण्डलसे मण्डित थे। शास्त्रोंसे वेदकी भाँति वे अपने शिष्यभूत महर्षियोंसे घिरे हुए थे और शिवजीके ध्यानमें तत्पर हो शान्तभावसे बैठे थे॥ १४-१५॥

नमश्चकार तं दृष्ट्वा हृष्टसर्वतनूरुहः।
बहुमानेन कृष्णोऽसौ त्रिःकृत्वा तु प्रदक्षिणाम्।
स्तुतिं चकार सुप्रीत्या नतस्कन्धः कृताञ्जलिः॥ १६

उन महातेजस्वी उपमन्युका दर्शन करके श्रीकृष्णने उन्हें नमस्कार किया। उस समय उनके सम्पूर्ण शरीरमें रोमांच हो आया। श्रीकृष्णने बड़े आदरके साथ मुनिकी तीन बार परिक्रमा की। फिर अत्यन्त प्रसन्नताके साथ मस्तक झुका हाथ जोड़कर उनका स्तवन किया॥ १६॥

तस्यावलोकनादेव मुनेः कृष्णस्य धीमतः।
नष्टमासीन्मलं सर्वं मायाजं कार्यमेव च॥ १७

उन मुनिको देखनेमात्रसे ही बुद्धिमान् श्रीकृष्णका मायाजनित तथा कर्मजनित समस्त मल (पाप) नष्ट हो गया॥ १७॥

ततः क्षीणमलं कृष्णमुपमन्युर्यथाविधि।
भस्मनोद्धूल्य तं मन्त्रैरग्निरित्यादिभिः क्रमात्॥ १८

अथ पाशुपतं साक्षाद् व्रतं द्वादशमासिकम् ।
कारयित्वा मुनिस्तस्मै प्रददौ ज्ञानमुत्तमम्॥ १९

तदनन्तर उपमन्युने विधिपूर्वक '**अग्निरिति भस्म**' इत्यादि मन्त्रोंसे श्रीकृष्णके शरीरमें भस्म लगाकर उनसे बारह महीनेका साक्षात् पाशुपत-व्रत करवाया। तत्पश्चात् मुनिने उन्हें उत्तम ज्ञान प्रदान किया॥ १८॥

तदाप्रभृति तं कृष्णं मुनयः शंसितव्रताः।
दिव्याः पाशुपताः सर्वे परिवृत्योपतस्थिरे॥ २०

उसी समयसे उत्तम व्रतका पालन करनेवाले सम्पूर्ण दिव्य पाशुपत मुनि उन श्रीकृष्णको चारों ओरसे घेरकर उनके पास बैठे रहने लगे। फिर गुरुकी आज्ञासे परम शक्तिमान् श्रीकृष्णने पुत्रके लिये साम्ब शिवकी आराधनाका उद्देश्य मनमें लेकर तपस्या की॥ १९-२०॥

ततो गुरुनियोगाद् वै कृष्णः परमशक्तिमान्।
तपश्चकार पुत्रार्थं साम्बमुद्दिश्य शंकरम्॥ २१
तपसा तेन वर्षान्ते दृष्टोऽसौ परमेश्वरः।
श्रिया परमया युक्तः साम्बश्च सगणः शिवः॥ २२
वरार्थमाविर्भूतस्य हरस्य सुभगाकृतेः।
स्तुतिं चकार नत्वाऽसौ कृष्णः सम्यक् कृताञ्जलिः॥ २३

उस तपस्यासे सन्तुष्ट हो एक वर्षके पश्चात् पार्षदोंसहित, परम ऐश्वर्यशाली परमेश्वर साम्ब शिवने उन्हें दर्शन दिया। श्रीकृष्णने वर देनेके लिये प्रकट हुए सुन्दर अंगवाले महादेवजीको हाथ जोड़कर प्रणाम किया और उनकी स्तुति भी की॥ २१—२३॥

साम्बेन सगणेनापि लब्धवान् पुत्रमात्मनः।
तपसा तुष्टचित्तेन दत्तं विष्णोः शिवेन वै॥ २४
यस्मात्साम्बो महादेवः प्रददौ पुत्रमात्मनः।
तस्माज्जाम्बवतीसूनुं साम्बं चक्रे स नामतः॥ २५

गणोंसहित साम्ब सदाशिवका स्तवन करके श्रीकृष्णने अपने लिये एक पुत्र प्राप्त किया। वह पुत्र तपस्यासे संतुष्टचित्त हुए साक्षात् शिवने श्रीविष्णुको दिया था। चूँकि साम्ब शिवने उन्हें अपना पुत्र प्रदान किया, इसलिये श्रीकृष्णने जाम्बवती-कुमारका नाम साम्ब ही रखा॥ २४-२५॥

तदेतत्कथितं सर्वं कृष्णस्यामितकर्मणः।
महर्षेर्ज्ञानलाभश्च पुत्रलाभश्च शंकरात्॥ २६
य इदं कीर्तयेन्नित्यं शृणुयाच्छ्रावयेत्तथा।
स विष्णोर्ज्ञानमासाद्य तेनैव सह मोदते॥ २७

इस प्रकार अमितपराक्रमी श्रीकृष्णको महर्षि उपमन्युसे ज्ञान-लाभ और भगवान् शंकरसे पुत्र-लाभ हुआ। इस प्रकार यह सब प्रसंग मैंने पूरा-पूरा कह सुनाया। जो प्रतिदिन इसे कहता-सुनता या सुनाता है, वह भगवान् विष्णुका ज्ञान पाकर उन्हींके साथ आनन्दित होता है॥ २६-२७॥

इति श्रीशिवमहापुराणे सप्तम्यां वायवीयसंहितायामुत्तरखण्डे कृष्णपुत्रप्राप्तिवर्णनं नाम प्रथमोऽध्यायः॥ १॥

॥ इस प्रकार श्रीशिवमहापुराणके अन्तर्गत सातवीं वायवीयसंहिताके उत्तरखण्डमें कृष्णपुत्रप्राप्तिवर्णन नामक पहला अध्याय पूर्ण हुआ॥ १॥

अथ द्वितीयोऽध्यायः

उपमन्युद्वारा श्रीकृष्णको पाशुपत ज्ञानका उपदेश

ऋषय ऊचुः

किं तत्पाशुपतं ज्ञानं कथं पशुपतिः शिवः।
कथं धौम्याग्रजः पृष्टः कृष्णेनाक्लिष्टकर्मणा॥ १
एतत्सर्वं समाचक्ष्व वायो शङ्करविग्रह।
त्वत्समो न हि वक्तास्ति त्रैलोक्येष्वपरः प्रभुः॥ २

ऋषियोंने पूछा—पाशुपत ज्ञान क्या है? भगवान् शिव पशुपति कैसे हैं? और अनायास ही महान् कर्म करनेवाले भगवान् श्रीकृष्णने उपमन्युसे किस प्रकार प्रश्न किया था? वायुदेव! आप साक्षात् शंकरके स्वरूप हैं, इसलिये ये सब बातें बताइये। तीनों लोकोंमें आपके समान दूसरा कोई वक्ता इन बातोंको बतानेमें समर्थ नहीं है॥ १-२॥

सूत उवाच

इत्याकर्ण्य वचस्तेषां महर्षीणां प्रभञ्जनः।
संस्मृत्य शिवमीशानं प्रवक्तुमुपचक्रमे॥ ३

सूतजी कहते हैं—उन महर्षियोंकी यह बात सुनकर वायुदेवने भगवान् शंकरका स्मरण करके इस प्रकार उत्तर देना आरम्भ किया॥ ३॥

वायुरुवाच

पुरा साक्षात् महेशेन श्रीकण्ठाख्येन मन्दरे।
देव्यै देवेन कथितं ज्ञानं पाशुपतं परम्॥ ४

वायुदेव बोले—पूर्वकालमें साक्षात् श्रीकण्ठ भगवान् महेश्वरने देवी पार्वतीसे उत्तम पाशुपतज्ञान कहा था।

तदेव पृष्टं कृष्णेन विष्णुना विश्वयोनिना।
पशुत्वं च सुरादीनां पतित्वं च शिवस्य च॥ ५
यथोपदिष्टं कृष्णाय मुनिना ह्युपमन्युना।
तथा समासतो वक्ष्ये तच्छृणुध्वमतन्द्रिताः॥ ६

विश्वयोनि विष्णुरूप श्रीकृष्णने उसीको [उपमन्युसे] पूछा था। तब मुनि उपमन्युने श्रीकृष्णको देवता आदिके पशुत्व तथा शिवजीका उनके पति होनेके विषयमें जैसा उपदेश किया था, उसीको मैं संक्षेपमें बताऊँगा, आपलोग सावधान होकर सुनिये॥ ४—६॥

पुरोपमन्युमासीनं विष्णुः कृष्णवपुर्धरः।
प्रणिपत्य यथान्यायमिदं वचनमब्रवीत्॥ ७

[वायुदेव बोले—] महर्षियो! पूर्वकालमें श्रीकृष्णरूपधारी भगवान् विष्णुने अपने आसनपर बैठे हुए महर्षि उपमन्युसे उन्हें प्रणाम करके न्यायपूर्वक यों प्रश्न किया॥ ७॥

श्रीकृष्ण उवाच

भगवन् श्रोतुमिच्छामि देव्यै देवेन भाषितम्।
दिव्यं पाशुपतं ज्ञानं विभूतिं वास्य कृत्स्नशः॥ ८
कथं पशुपतिर्देवः पशवः के प्रकीर्तिताः।
कैः पाशैस्ते निबध्यन्ते विमुच्यन्ते च ते कथम्॥ ९

श्रीकृष्णने कहा—भगवन्! महादेवजीने देवी पार्वतीको जिस दिव्य पाशुपत ज्ञान तथा अपनी सम्पूर्ण विभूतिका उपदेश दिया था, मैं उसीको सुनना चाहता हूँ। महादेवजी पशुपति कैसे हुए? पशु कौन कहलाते हैं? वे पशु किन पाशोंसे बाँधे जाते हैं और फिर किस प्रकार उनसे मुक्त होते हैं?॥ ८-९॥

इति सञ्चोदितः श्रीमानुपमन्युर्महात्मना।
प्रणम्य देवं देवीं च प्राह पृष्टो यथा तथा॥ १०

महात्मा श्रीकृष्णके इस प्रकार पूछनेपर श्रीमान् उपमन्युने महादेवजी तथा देवी पार्वतीको प्रणाम करके उनके प्रश्नके अनुसार उत्तर देना आरम्भ किया॥ १०॥

उपमन्युरुवाच

ब्रह्माद्याः स्थावरान्ताश्च देवदेवस्य शूलिनः।
पशवः परिकीर्त्यन्ते संसारवशवर्तिनः॥ ११
तेषां पतित्वाद्देवेशः शिवः पशुपतिः स्मृतः।
मलमायादिभिः पाशैः स बध्नाति पशून् पतिः॥ १२
स एव मोचकस्तेषां भक्त्या सम्यगुपासितः।

उपमन्यु बोले—देवकीनन्दन! ब्रह्माजीसे लेकर स्थावरपर्यन्त जो भी संसारके वशवर्ती चराचर प्राणी हैं, वे सब-के-सब भगवान् शिवके पशु कहलाते हैं और उनके पति होनेके कारण देवेश्वर शिवको पशुपति कहा गया है। वे पशुपति अपने पशुओंको मल और माया आदि पाशोंसे बाँधते हैं और भक्तिपूर्वक उनके द्वारा आराधित होनेपर वे स्वयं ही उन्हें उन पाशोंसे मुक्त करते हैं॥ ११-१२½॥

चतुर्विंशतितत्त्वानि मायाकर्मगुणा अमी॥ १३
विषया इति कथ्यन्ते पाशा जीवनिबन्धनाः।
ब्रह्मादिस्तम्बपर्यन्तान् पशून् बद्ध्वा महेश्वरः॥ १४
पाशैरेतैः पतिर्देवः कार्यं कारयति स्वकम्।

जो चौबीस तत्त्व हैं, वे मायाके कार्य एवं गुण हैं। वे ही विषय कहलाते हैं, जीवों (पशुओं)-को बाँधनेवाले पाश वे ही हैं। इन पाशोंद्वारा ब्रह्मासे लेकर कीटपर्यन्त समस्त पशुओंको बाँधकर महेश्वर पशुपतिदेव उनसे अपना कार्य कराते हैं॥ १३-१४½॥

तस्याज्ञया महेशस्य प्रकृतिः पुरुषोचिताम्॥ १५
बुद्धिं प्रसूते सा बुद्धिरहङ्कारमहङ्कृतिः।
इन्द्रियाणि दशैकं च तन्मात्रापञ्चकं तथा॥ १६
शासनाद्देवदेवस्य शिवस्य शिवदायिनः।
तन्मात्राण्यपि तस्यैव शासनेन महीयसा॥ १७

उन महेश्वरकी ही आज्ञासे प्रकृति पुरुषोचित बुद्धिको जन्म देती है। बुद्धि अहंकारको प्रकट करती है तथा अहंकार कल्याणदायी देवाधिदेव शिवकी आज्ञासे ग्यारह इन्द्रियों और पाँच तन्मात्राओंको उत्पन्न करता है। तन्मात्राएँ भी उन्हीं महेश्वरके महान् शासनसे प्रेरित हो क्रमशः पाँच महाभूतोंको उत्पन्न

महाभूतान्यशेषाणि भावयन्त्यनुपूर्वशः।
ब्रह्मादीनां तृणान्तानां देहिनां देहसङ्गतिम्॥ १८
महाभूतान्यशेषाणि जनयन्ति शिवाज्ञया।
अध्यवस्यति वै बुद्धिरहङ्कारोऽभिमन्यते॥ १९
चित्तं चेतयते चापि मनः सङ्कल्पयत्यपि।
श्रोत्रादीनि च गृह्णन्ति शब्दादीन् विषयान् पृथक्॥ २०
स्वानेव नान्यान् देवस्य दिव्येनाज्ञाबलेन वै।
वागादीन्यपि यान्यासंस्तानि कर्मेन्द्रियाणि च॥ २१
यथास्वं कर्म कुर्वन्ति नान्यत्किंचिद् शिवाज्ञया।
शब्दादयोऽपि गृह्यन्ते क्रियन्ते वचनादयः॥ २२

करती हैं। वे सब महाभूत शिवकी आज्ञासे ब्रह्मासे लेकर तृणपर्यन्त देहधारियोंके लिये देहकी सृष्टि करते हैं, बुद्धि कर्तव्यका निश्चय करती है और अहंकार अभिमान करता है। चित्त चेतता है और मन संकल्प-विकल्प करता है, श्रवण आदि ज्ञानेन्द्रियाँ पृथक्-पृथक् शब्द आदि विषयोंको ग्रहण करती हैं॥ १५—२०॥

वे महादेवजीके आज्ञाबलसे केवल अपने ही विषयोंको ग्रहण करती हैं। वाक् आदि कर्मेन्द्रियाँ कहलाती हैं और शिवकी इच्छासे अपने लिये नियत कर्म ही करती हैं, दूसरा कुछ नहीं। शब्द आदि जाने जाते हैं और बोलना आदि कर्म किये जाते हैं॥ २१-२२॥

अविलङ्घ्या हि सर्वेषामाज्ञा शंभोर्गरीयसी।
अवकाशमशेषाणां भूतानां संप्रयच्छति॥ २३
आकाशः परमेशस्य शासनादेव सर्वगः।
प्राणाद्यैश्च तथा नामभेदैरंतर्बहिर्जगत्॥ २४
बिभर्ति सर्वं शर्वस्य शासनेन प्रभञ्जनः।
हव्यं वहति देवानां कव्यं कव्याशिनामपि॥ २५
पाकाद्यं च करोत्यग्निः परमेश्वरशासनात्।
सञ्जीवनाद्यं सर्वस्य कुर्वन्त्यापस्तदाज्ञया॥ २६
विश्वम्भरा जगन्नित्यं धत्ते विश्वेश्वराज्ञया।

इन सबके लिये भगवान् शंकरकी गुरुतर आज्ञाका उल्लंघन करना असम्भव है। परमेश्वर शिवके शासनसे ही आकाश सर्वव्यापी होकर समस्त प्राणियोंको अवकाश प्रदान करता है, वायुतत्त्व भगवान् शिवकी आज्ञासे प्राण आदि नामभेदोंद्वारा बाहर-भीतरके सम्पूर्ण जगत्को धारण करता है। अग्नितत्त्व देवताओंके लिये हव्य और कव्यभोजी पितरोंके लिये कव्य पहुँचाता है। साथ ही मनुष्योंके लिये पाक आदिका भी कार्य करता है। जल सबको जीवन देता है और पृथ्वी सम्पूर्ण जगत्को सदा धारण किये रहती है॥ २३—२६१/२॥

देवान् पात्यसुरान् हन्ति त्रिलोकमभिरक्षति॥ २७
आज्ञया तस्य देवेन्द्रः सर्वैर्देवैरलङ्घ्यया।
आधिपत्यमपां नित्यं कुरुते वरुणः सदा॥ २८
पाशैर्बध्नाति च यथा दण्ड्यांस्तस्यैव शासनात्।
ददाति नित्यं यक्षेन्द्रो द्रविणं द्रविणेश्वरः॥ २९
पुण्यानुरूपं भूतेभ्यः पुरुषस्यानुशासनात्।
करोति सम्पदः शश्वत् ज्ञानं चापि सुमेधसाम्॥ ३०

शिवकी आज्ञा सम्पूर्ण देवताओंके लिये अलंघनीय है। उसीसे प्रेरित होकर देवराज इन्द्र देवताओंका पालन, दैत्योंका दमन और तीनों लोकोंका संरक्षण करते हैं। वरुणदेव सदा जलतत्त्वके पालन और संरक्षणका कार्य सँभालते हैं, साथ ही दण्डनीय प्राणियोंको अपने पाशोंद्वारा बाँध लेते हैं। धनके स्वामी यक्षराज कुबेर प्राणियोंको उनके पुण्यके अनुरूप सदा धन देते हैं और उत्तम बुद्धिवाले पुरुषोंको सम्पत्तिके साथ ज्ञान भी प्रदान करते हैं॥ २७—३०॥

निग्रहं चाप्यसाधूनामीशानः शिवशासनात्।
धत्ते तु धरणीं मूर्ध्ना शेषः शिवनियोगतः॥ ३१

यामाहुस्तामसीं रौद्रीं मूर्तिमन्तकरीं हरेः।
सृजत्यशेषमीशस्य शासनाच्चतुराननः॥ ३२

अन्याभिर्मूर्तिभिः स्वाभिः पाति चान्ते निहन्ति च।

ईश्वर असाधु पुरुषोंका निग्रह करते हैं तथा शेष शिवकी ही आज्ञासे अपने मस्तकपर पृथ्वीको धारण करते हैं। उन शेषको श्रीहरिकी तामसी रौद्रमूर्ति कहा गया है, जो जगत्का प्रलय करनेवाली है। ब्रह्माजी शिवकी ही आज्ञासे सम्पूर्ण जगत्की सृष्टि करते हैं तथा अपनी अन्य मूर्तियोंद्वारा पालन और संहारका कार्य भी करते हैं॥ ३१-३२१/२॥

विष्णुः पालयते विश्वं कालकालस्य शासनात्॥ ३३
सृजते ग्रसते चापि स्वकाभिस्तनुभिस्त्रिभिः।
हरत्यन्ते जगत्सर्वं हरस्तस्यैव शासनात्।
सृजत्यपि च विश्वात्मा त्रिधा भिन्नस्तु रक्षति॥ ३४
कालः करोति सकलं कालः संहरति प्रजाः।
कालः पालयते विश्वं कालकालस्य शासनात्॥ ३५
त्रिभिरंशैर्जगद् बिभ्रत्तेजोभिर्वृष्टिमादिशन्।
दिवि वर्षत्यसौ भानुर्देवदेवस्य शासनात्॥ ३६
पुष्णात्योषधिजातानि भूतान्याह्लादयत्यपि।
देवैश्च पीयते चन्द्रश्चन्द्रभूषणशासनात्॥ ३७

भगवान् विष्णु कालके भी काल शिवजीकी आज्ञासे अपनी त्रिविध मूर्तियोंद्वारा विश्वका पालन, सर्जन और संहार भी करते हैं। विश्वात्मा भगवान् हर भी तीन रूपोंमें विभक्त हो उन्हींकी आज्ञासे सम्पूर्ण जगत्का संहार, सृष्टि और रक्षा करते हैं। काल सबको उत्पन्न करता है। वही प्रजाओंका संहार करता है तथा वही विश्वका पालन करता है। यह सब वह महाकालकी आज्ञासे प्रेरित होकर ही करता है॥ ३३—३५$^{1}/_{2}$॥

भगवान् सूर्य उन्हीं देवाधिदेवकी आज्ञासे अपने तीन अंशोंद्वारा जगत्का पालन करते, अपनी किरणोंद्वारा वृष्टिके लिये आदेश देते और स्वयं ही आकाशमें मेघ बनकर बरसते हैं। चन्द्रभूषण शिवका शासन मानकर ही चन्द्रमा ओषधियोंको पोषित और प्राणियोंको आह्लादित करते हैं। साथ ही देवताओंको अपनी अमृतमयी कलाओंका पान करने देते हैं॥ ३६-३७॥

आदित्या वसवो रुद्रा अश्विनौ मरुतस्तथा॥ ३८
खेचरा ऋषयः सिद्धा भोगिनो मनुजा मृगाः।
पशवः पक्षिणश्चैव कीटाद्याः स्थावराणि च॥ ३९
नद्यः समुद्रा गिरयः काननानि सरांसि च।
वेदाः साङ्गाश्च शास्त्राणि मन्त्रस्तोममखादयः॥ ४०
कालाग्न्यादिशिवान्तानि भुवनानि सहाधिपैः।
ब्रह्माण्डान्यप्यसंख्यानि तेषामावरणानि च॥ ४१
वर्तमानान्यतीतानि भविष्यन्त्यपि कृत्स्नशः।
दिशश्च विदिशश्चैव कालभेदाः कलादयः॥ ४२
यच्च किञ्चिज्जगत्यस्मिन् दृश्यते श्रूयतेऽपि वा।
तत्सर्वं शङ्करस्याज्ञाबलेन समधिष्ठितम्॥ ४३

आदित्य, वसु, रुद्र, अश्विनीकुमार, मरुद्गण, आकाशचारी ऋषि, सिद्ध, नागगण, मनुष्य, मृग, पशु, पक्षी, कीट आदि, स्थावर प्राणी, नदियाँ, समुद्र, पर्वत, वन, सरोवर, अंगोंसहित वेद, शास्त्र, मन्त्र, वैदिकस्तोत्र और यज्ञ आदि, कालाग्निसे लेकर शिवपर्यन्त भुवन, उनके अधिपति, असंख्य ब्रह्माण्ड, उनके आवरण, वर्तमान, भूत और भविष्य, दिशा-विदिशाएँ, कला आदि कालके भिन्न-भिन्न भेद तथा जो कुछ भी इस जगत्में देखा और सुना जाता है, वह सब भगवान् शंकरकी आज्ञाके बलसे ही टिका हुआ है॥ ३८—४३॥

आज्ञाबलात्तस्य धरा स्थितेह
धराधरा वारिधराः समुद्राः।
ज्योतिर्गणाः शक्रमुखाश्च देवाः
स्थिरं चरं वा चिदचिद्यदस्ति॥ ४४

उनकी आज्ञाके ही बलसे यहाँ पृथ्वी, पर्वत, मेघ, समुद्र, नक्षत्रगण, इन्द्रादि देवता, स्थावर, जंगम अथवा जड और चेतन—सबकी स्थिति है॥ ४४॥

उपमन्युरुवाच

अत्याश्चर्यमिदं कृष्ण शंभोरमितकर्मणः।
आज्ञाकृतं शृणुष्वैतत् श्रुतं श्रुतिमुखे मया॥ ४५

उपमन्यु बोले—हे कृष्ण! अगणित लीलाकृत्य करनेवाले भगवान् शिवकी आज्ञाशक्तिसे सम्पन्न हुए कृत्य अतीव अद्भुत हैं। वेद-शास्त्रादिमें [वर्णित उन चरित्रोंको जैसा] मैंने सुना है, उसे आपलोग श्रवण कीजिये॥ ४५॥

पुरा किल सुराः सेन्द्रा विवदन्तः परस्परम्।
असुरान् समरे जित्वा जेताऽहमहमित्युत॥ ४६

तदा महेश्वरस्तेषां मध्यतो वरवेषधृक्।
स्वलक्षणैर्विहीनाङ्गः स्वयं यक्ष इवाभवत्॥ ४७

स तानाह सुरानेकं तृणमाधाय भूतले।
य एतद्विकृतं कर्तुं क्षमते स तु दैत्यजित्॥ ४८

यक्षस्य वचनं श्रुत्वा वज्रपाणिः शचीपतिः।
किञ्चित् क्रुद्धो विहस्यैनं तृणमादातुमुद्यतः॥ ४९

न तत्तृणमुपादातुं मनसापि च शक्यते।
यथा तथापि तच्छेत्तुं वज्रं वज्रधरोऽसृजत्॥ ५०

तद्वज्रं निजवज्रेण संसृष्टमिव सर्वतः।
तृणेनाभिहतं तेन तिर्यगग्रं पपात ह॥ ५१

ततश्चान्ये सुसंरब्धा लोकपाला महाबलाः।
ससृजुस्तृणमुद्दिश्य स्वायुधानि सहस्रशः॥ ५२

प्रजज्वाल महावह्निः प्रचण्डः पवनो ववौ।
प्रवृद्धोऽपांपतिर्यद्वत्प्रलये समुपस्थिते॥ ५३

एवं देवैः समारब्धं तृणमुद्दिश्य यत्नतः।
व्यर्थमासीदहो कृष्ण यक्षस्यात्मबलेन वै॥ ५४

तदाह यक्षं देवेन्द्रः को भवानित्यमर्षितः।
ततः स पश्यतामेव तेषामन्तरधादथ॥ ५५

तदन्तरे हैमवती देवी दिव्यविभूषणा।
आविरासीन्नभोरङ्गे शोभमाना शुचिस्मिता॥ ५६

तां दृष्ट्वा विस्मयाविष्टा देवाः शक्रपुरोगमाः।
प्रणम्य यक्षं पप्रच्छुः कोऽसौ यक्षो विलक्षणः॥ ५७

साऽब्रवीत्सस्मितं देवी स युष्माकमगोचरः।
येनेदं भ्राम्यते चक्रं संसाराख्यं चराचरम्॥ ५८

तेनादौ क्रियते विश्वं तेन संह्रियते पुनः।
न तन्नियन्ता कश्चित् स्यात्तेन सर्वं नियम्यते॥ ५९

पूर्वकालमें इन्द्रसहित सभी देवता युद्धमें असुरोंको जीतकर जब आपसमें यह विवाद करने लगे कि जीतनेवाला मैं हूँ, तब उनके मध्य शिवजी [अर्धचन्द्र, तृतीय नेत्र आदि] अपने चिह्नोंसे रहित हो, उत्तम वेषधारण किये हुए [किसी] यक्षकी भाँति [वहाँ उपस्थित] हो गये। उन्होंने पृथ्वीतलपर एक तृण रखकर उन देवताओंसे कहा—जो इसे विकृत करनेमें समर्थ हो सके, वही दैत्योंको जीतनेवाला है॥ ४६—४८॥

यक्षका वचन सुनकर हाथमें वज्र धारण करनेवाले शचीपति [इन्द्र] कुछ कुपित हो गये और हँस करके इस तृणको उठानेका उद्योग करने लगे॥ ४९॥

परंतु वे उस तृणको उठा पानेमें मनसे भी सक्षम नहीं हो सके। तब उन्होंने उस तृणको काटनेके लिये अपने वज्रसे [अन्य] वज्रको उत्पन्न करके जैसे-तैसे छोड़ा, पर तृणसे टकराकर वह वज्र तिरछा होकर उनके आगे गिर पड़ा॥ ५०-५१॥

तदनन्तर अन्य महाबली लोकपाल भी उस तृणको उद्देश्य करके अपने हजारों अस्त्र चलाने लगे। उस समय प्रलय उपस्थित होनेकी भाँति महान् अग्नि प्रज्वलित हो उठी, भयंकर हवा चलने लगी और समुद्र बढ़ने लगा॥ ५२-५३॥

हे कृष्ण! इस प्रकार देवताओंके द्वारा यत्नपूर्वक किये गये सभी उपाय यक्षके आत्मबलसे व्यर्थ हो गये। तदनन्तर देवेन्द्रने कुपित होकर यक्षसे कहा—आप कौन हैं? तब उन [देवताओं]-के देखते-देखते वह [यक्ष] अन्तर्धान हो गया॥ ५४-५५॥

इसके बाद दिव्य आभूषणोंको धारण की हुई पवित्र मुसकानवाली देवी हैमवती आकाशमण्डलमें प्रकट हुईं। उन्हें देखकर इन्द्र आदि देवता विस्मयमें पड़ गये और उन्हें प्रणाम करके पूछने लगे कि यह विलक्षण यक्ष कौन था?॥ ५६-५७॥

तब उन देवीने मुसकराकर कहा—'वे आप लोगोंके लिये अगोचर हैं [अर्थात् आप लोगोंकी दृष्टिसे परे हैं] उन्हींके द्वारा यह चराचर संसार-चक्र चलाया जा रहा है। उन्हींके द्वारा प्रारम्भमें विश्वका सृजन किया जाता है और उन्हींके द्वारा पुनः संहार कर लिया जाता है। उनका नियन्ता [अन्य] कोई नहीं है; उन्हींके द्वारा सबपर नियन्त्रण किया जाता है॥ ५८-५९॥

इत्युक्त्वा सा महादेवी तत्रैवान्तरधीयत।
देवाश्च विस्मिताः सर्वे तां प्रणम्य दिवं ययुः॥ ६०

ऐसा कहकर वे महादेवी वहींपर अन्तर्धान हो गयीं और विस्मित हुए सभी देवता उन्हें प्रणाम करके स्वर्गको चले गये॥ ६०॥

इति श्रीशिवमहापुराणे सप्तम्यां वायवीयसंहितायामुत्तरखण्डे शिवमाहात्म्यवर्णनं नाम द्वितीयोऽध्यायः॥ २॥

॥ इस प्रकार श्रीशिवमहापुराणके अन्तर्गत सातवीं वायवीयसंहिताके उत्तरखण्डमें शिवमाहात्म्यवर्णन नामक दूसरा अध्याय पूर्ण हुआ॥ २॥

अथ तृतीयोऽध्यायः

भगवान् शिवकी ब्रह्मा आदि पंचमूर्तियों, ईशानादि ब्रह्ममूर्तियों तथा पृथ्वी एवं शर्व आदि अष्टमूर्तियोंका परिचय और उनकी सर्वव्यापकताका वर्णन

उपमन्युरुवाच

शृणु कृष्ण महेशस्य शिवस्य परमात्मनः।
मूर्त्यात्मभिस्ततं कृत्स्नं जगदेतच्चराचरम्॥ १

उपमन्यु कहते हैं—श्रीकृष्ण! महेश्वर परमात्मा शिवकी मूर्तियोंसे यह सम्पूर्ण चराचर जगत् [किस प्रकार] व्याप्त है, यह सुनो॥ १॥

स शिवः सर्वमेवेदं स्वकीयाभिश्च मूर्तिभिः।
अधितिष्ठत्यमेयात्मा ह्येतत्सर्वमनुस्मृतम्॥ २

अप्रमेय स्वरूपवाले उन शिवने अपनी मूर्तियोंके द्वारा इस सम्पूर्ण संसारको अधिष्ठित कर रखा है, यह सब बातें तो [तुमको] स्मरण ही हैं॥ २॥

ब्रह्मा विष्णुस्तथा रुद्रो महेशानः सदाशिवः।
मूर्त्तयस्तस्य विज्ञेया याभिर्विश्वमिदं ततम्॥ ३

ब्रह्मा, विष्णु, रुद्र, महेशान तथा सदाशिव— ये उन परमेश्वरकी पाँच मूर्तियाँ जाननी चाहिये, जिनसे यह सम्पूर्ण विश्व विस्तारको प्राप्त हुआ है॥ ३॥

अथान्याश्चापि तनवः पञ्च ब्रह्मसमाह्वयाः।
तनूभिस्ताभिरव्याप्तमिह किञ्चिन्न विद्यते॥ ४

इनके सिवा और भी उनके पाँच शरीर हैं, जिन्हें पंचब्रह्म (सद्योजात आदि) कहते हैं। इस जगत्में कोई भी ऐसी वस्तु नहीं है, जो उन मूर्तियोंसे व्याप्त न हो॥ ४॥

ईशानः पुरुषोऽघोरो वामः सद्यस्तथैव च।
ब्रह्माण्येतानि देवस्य मूर्त्तयः पञ्च विश्रुताः॥ ५

ईशान, पुरुष, अघोर, वामदेव और सद्योजात— ये महादेवजीकी विख्यात पाँच ब्रह्ममूर्तियाँ हैं॥ ५॥

ईशानाख्या तु या तस्य मूर्त्तिराद्या गरीयसी।
भोक्तारं प्रकृतेः साक्षात् क्षेत्रज्ञमधितिष्ठति॥ ६

स्थाणोस्तत्पुरुषाख्या या मूर्तिर्मूर्तिमतः प्रभोः।
गुणाश्रयात्मकं भोग्यमव्यक्तमधितिष्ठति॥ ७

इनमें जो ईशान नामक उनकी आदि श्रेष्ठतम मूर्ति है, वह प्रकृतिके साक्षात् भोक्ता क्षेत्रज्ञको व्याप्त करके स्थित है। मूर्तिमान् प्रभु शिवकी जो तत्पुरुष नामक मूर्ति है, वह गुणोंके आश्रयरूप भोग्य अव्यक्त (प्रकृति)-में अधिष्ठित है॥ ६-७॥

धर्माद्यष्टाङ्गसंयुक्तं बुद्धितत्त्वं पिनाकिनः।
अधितिष्ठत्यघोराख्या मूर्त्तिरत्यन्तपूजिता॥ ८

पिनाकपाणि महेश्वरकी जो अत्यन्त पूजित अघोर नामक मूर्ति है, वह धर्म आदि आठ अंगोंसे युक्त बुद्धितत्त्वको अपना अधिष्ठान बनाती है॥ ८॥

वामदेवाह्वयां मूर्त्तिं महादेवस्य वेधसः।
अहंकृतेरधिष्ठात्रीमाहुरागमवेदिनः॥ ९

विधाता महादेवकी वामदेव नामक मूर्तिको आगमवेत्ता विद्वान् अहंकारकी अधिष्ठात्री बताते हैं॥ ९॥

सद्योजाताह्वयां मूर्त्तिं शम्भोरमितवर्चसः।
मानसः समधिष्ठात्रीं मतिमन्तः प्रचक्षते॥ १०

बुद्धिमान् पुरुष अमित तेजस्वी शिवकी सद्योजात नामक मूर्तिको मनकी अधिष्ठात्री कहते हैं॥ १०॥

श्रोत्रस्य वाचः शब्दस्य विभोर्व्योम्नस्तथैव च।
ईश्वरीमीश्वरस्येमामीशाख्यां हि विदुर्बुधाः॥ ११

त्वक्पाणिस्पर्शवायूनामीश्वरीं मूर्तिमैश्वरीम्।
पुरुषाख्यं विदुः सर्वे पुराणार्थविशारदाः॥ १२

चक्षुषश्चरणस्यापि रूपस्याग्नेस्तथैव च।
अघोराख्यामधिष्ठात्रीं मूर्तिमाहुर्मनीषिणः॥ १३

रसनायाश्च पायोश्च रसस्यापां तथैव च।
ईश्वरीं वामदेवाख्यां मूर्त्तिं तन्निरतां विदुः॥ १४

घ्राणस्य चैवोपस्थस्य गन्धस्य च भुवस्तथा।
सद्योजाताह्वयां मूर्तिमीश्वरीं सम्प्रचक्षते॥ १५

मूर्तयः पञ्च देवस्य वंदनीयाः प्रयत्नतः।
श्रेयोऽर्थिभिर्नरैर्नित्यं श्रेयसामेकहेतवः॥ १६

तस्य देवादिदेवस्य मूर्त्यष्टकमयं जगत्।
तस्मिन् व्याप्य स्थितं विश्वं सूत्रे मणिगणा इव॥ १७

शर्वो भवस्तथा रुद्र उग्रो भीमः पशोः पतिः।
ईशानश्च महादेवो मूर्त्तयश्चाष्ट विश्रुताः॥ १८

भूम्यम्भोऽग्निमरुद्व्योमक्षेत्रज्ञार्कनिशाकराः।
अधिष्ठिता महेशस्य शर्वाद्यैरष्टमूर्त्तिभिः॥ १९

चराचरात्मकं विश्वं धत्ते विश्वम्भरात्मिका।
शार्वी शर्वाह्वया मूर्तिरिति शास्त्रस्य निश्चयः॥ २०

सञ्जीवनं समस्तस्य जगतः सलिलात्मिका।
भावीति गीयते मूर्तिर्भवस्य परमात्मनः॥ २१

बहिरन्तर्गता विश्वं व्याप्य तेजोमयी शुभा।
रौद्री रुद्रस्य या मूर्तिरास्थिता घोररूपिणी॥ २२

स्पन्दयत्यनिलात्मेदं बिभर्ति स्पन्दते स्वयम्।
औग्रीति कथ्यते सद्भिर्मूर्तिरुग्रस्य वेधसः॥ २३

विद्वान् पुरुष भगवान् शिवकी ईशान नामक मूर्तिको श्रवणेन्द्रिय, वाणी, शब्द और व्यापक आकाशतत्त्वकी स्वामिनी मानते हैं। पुराणोंके अर्थज्ञानमें निपुण समस्त विद्वानोंने महेश्वरके तत्पुरुष नामक विग्रहको त्वचा, हाथ, स्पर्श और वायु-तत्त्वका स्वामी समझा है॥ ११-१२॥

मनीषी [मुनि] शिवकी अघोर नामक मूर्तिको नेत्र, पैर, रूप और अग्नि-तत्त्वकी अधिष्ठात्री बताते हैं॥ १३॥

भगवान् शिवके चरणोंमें अनुराग रखनेवाले महात्मा पुरुष उनकी वामदेव नामक मूर्तिको रसना, पायु, रस और जलतत्त्वकी स्वामिनी समझते हैं तथा सद्योजात नामक मूर्तिको वे घ्राणेन्द्रिय, उपस्थ, गन्ध और पृथ्वी-तत्त्वकी अधिष्ठात्री कहते हैं॥ १४-१५॥

महादेवजीकी ये पाँचों मूर्तियाँ कल्याणकी एकमात्र हेतु हैं। कल्याणकामी पुरुषोंको इनकी सदा ही यत्नपूर्वक वन्दना करनी चाहिये। उन देवाधिदेव महादेवजीकी जो आठ मूर्तियाँ हैं, तत्स्वरूप ही यह जगत् है। उन आठ मूर्तियोंमें यह विश्व उसी प्रकार ओतप्रोतभावसे स्थित है, जैसे सूतमें मनके पिरोये होते हैं॥ १६-१७॥

शर्व, भव, रुद्र, उग्र, भीम, पशुपति, ईशान तथा महादेव—ये शिवकी विख्यात आठ मूर्तियाँ हैं॥ १८॥

महेश्वरकी इन शर्व आदि आठ मूर्तियोंसे क्रमशः भूमि, जल, अग्नि, वायु, आकाश, क्षेत्रज्ञ, सूर्य और चन्द्रमा अधिष्ठित होते हैं। उनकी पृथ्वीमयी मूर्ति सम्पूर्ण चराचर जगत्को धारण करती है। उसके अधिष्ठाताका नाम शर्व है। इसलिये वह शिवकी 'शार्वी' मूर्ति कहलाती है। यही शास्त्रका निर्णय है॥ १९-२०॥

उनकी जलमयी मूर्ति समस्त जगत्के लिये जीवनदायिनी है। जल परमात्मा भवकी मूर्ति है, इसलिये उसे 'भावी' कहते हैं। शिवकी तेजोमयी शुभमूर्ति विश्वके बाहर-भीतर व्याप्त होकर स्थित है। उस घोररूपिणी मूर्तिका नाम रुद्र है, इसलिये वह 'रौद्री' कहलाती है॥ २१-२२॥

भगवान् शिव वायुरूपसे स्वयं गतिशील होते और इस जगत्को गतिशील बनाते हैं। साथ ही वे इसका भरण-पोषण भी करते हैं। वायु भगवान् उग्रकी मूर्ति है; इसलिये साधु पुरुष इसे 'औग्री' कहते हैं॥ २३॥

सर्वावकाशदा सर्वव्यापिका गगनात्मिका।
मूर्तिर्भीमस्य भीमाख्या भूतवृन्दस्य भेदिका॥ २४

सर्वात्मनामधिष्ठात्री सर्वक्षेत्रनिवासिनी।
मूर्तिः पशुपतेर्ज्ञेया पशुपाशनिकृन्तनी॥ २५

भगवान् भीमकी आकाशरूपिणी मूर्ति सबको अवकाश देनेवाली, सर्वव्यापिनी तथा भूतसमुदायकी भेदिका है। वह भीमा नामसे प्रसिद्ध है (अतः इसे 'भैमी' मूर्ति भी कहते हैं)। सम्पूर्ण क्षेत्रोंमें निवास करनेवाली तथा सम्पूर्ण आत्माओंकी अधिष्ठात्री शिव-मूर्तिको 'पशुपति' मूर्ति समझना चाहिये। वह पशुओंके पाशोंका उच्छेद करनेवाली है॥ २४-२५॥

दीपयन्ती जगत्सर्वं दिवाकरसमाह्वया।
ईशानाख्या महेशस्य मूर्तिर्दिवि विसर्पति॥ २६

महेश्वरकी जो 'ईशान' नामक मूर्ति है, वही दिवाकर (सूर्य) नाम धारण करके सम्पूर्ण जगत्को प्रकाशित करती हुई आकाशमें विचरती है॥ २६॥

आप्याययति यो विश्वममृतांशुर्निशाकरः।
महादेवस्य सा मूर्तिर्महादेवसमाह्वया॥ २७

आत्मा तस्याष्टमी मूर्तिः शिवस्य परमात्मनः।
व्यापिकेतरमूर्तीनां विश्वं तस्मात् शिवात्मकम्॥ २८

जिनकी किरणोंमें अमृत भरा है और जो सम्पूर्ण विश्वको उस अमृतसे आप्यायित करते हैं, वे चन्द्रदेव भगवान् शिवके महादेव नामक विग्रह हैं; अतः उन्हें 'महादेव' मूर्ति कहते हैं। यह जो आठवीं मूर्ति है, वह परमात्मा शिवका साक्षात् स्वरूप है तथा अन्य सब मूर्तियोंमें व्यापक है। इसलिये यह सम्पूर्ण विश्व शिवरूप ही है॥ २७-२८॥

वृक्षस्य मूलसेकेन शाखाः पुष्यन्ति वै यथा।
शिवस्य पूजया तद्वत्पुष्यत्यस्य वपुर्जगत्॥ २९

सर्वाभयप्रदानं च सर्वानुग्रहणं तथा।
सर्वोपकारकरणं शिवस्याराधनं विदुः॥ ३०

यथेह पुत्रपौत्रादेः प्रीत्या प्रीतो भवेत्पिता।
तथा सर्वस्य संप्रीत्या प्रीतो भवति शङ्करः॥ ३१

देहिनो यस्य कस्यापि क्रियते यदि निग्रहः।
अनिष्टमष्टमूर्तेस्तत्कृतमेव न संशयः॥ ३२

जैसे वृक्षकी जड़ सींचनेसे उसकी शाखाएँ पुष्ट होती हैं, उसी प्रकार भगवान् शिवकी पूजासे उनके स्वरूपभूत जगत्का पोषण होता है। इसलिये सबको अभय दान देना, सबपर अनुग्रह करना और सबका उपकार करना—यह शिवका आराधन माना गया है। जैसे इस जगत्में अपने पुत्र-पौत्र आदिके प्रसन्न रहनेसे पिता-पितामह आदिको प्रसन्नता होती है, उसी प्रकार सम्पूर्ण जगत्की प्रसन्नतासे भगवान् शंकर प्रसन्न होते हैं। यदि किसी भी देहधारीको दण्ड दिया जाता है तो उसके द्वारा अष्टमूर्तिधारी शिवका ही अनिष्ट किया जाता है, इसमें संशय नहीं है॥ २९—३२॥

अष्टमूर्त्यात्मना विश्वमधिष्ठाय स्थितं शिवम्।
भजस्व सर्वभावेन रुद्रं परमकारणम्॥ ३३

आठ मूर्तियोंके रूपमें सम्पूर्ण विश्वको व्याप्त करके स्थित हुए भगवान् शिवका तुम सब प्रकारसे भजन करो; क्योंकि रुद्रदेव सबके परम कारण हैं॥ ३३॥

इति श्रीशिवमहापुराणे सप्तम्यां वायवीयसंहितायामुत्तरखण्डे कृष्णायोपमन्यो-रुपदेशवर्णनं नाम तृतीयोऽध्यायः॥ ३॥

॥ इस प्रकार श्रीशिवमहापुराणके अन्तर्गत सातवीं वायवीयसंहिताके उत्तरखण्डमें श्रीकृष्णको उपमन्युका उपदेशवर्णन नामक तीसरा अध्याय पूर्ण हुआ॥ ३॥

अथ चतुर्थोऽध्यायः

शिव और शिवाकी विभूतियोंका वर्णन

श्रीकृष्ण उवाच

भगवन् परमेशस्य शर्वस्यामिततेजसः।
मूर्तिभिर्विश्वमेवेदं यथा व्याप्तं तथा श्रुतम्॥ १

अथैतत् ज्ञातुमिच्छामि याथात्म्यं परमेशयोः।
स्त्रीपुम्भावात्मकं चेदं ताभ्यां कथमधिष्ठितम्॥ २

श्रीकृष्णने पूछा—भगवन् ! अमित तेजस्वी भगवान् शिवकी मूर्तियोंने इस सम्पूर्ण जगत्को जिस प्रकार व्याप्त कर रखा है, वह सब मैंने सुना। अब मुझे यह जाननेकी इच्छा है कि परमेश्वरी शिवा और परमेश्वर शिवका यथार्थ स्वरूप क्या है, उन दोनोंने स्त्री और पुरुषरूप इस जगत्को किस प्रकार व्याप्त कर रखा है?॥ १-२॥

उपमन्युरुवाच

श्रीमद्विभूतिं शिवयोर्याथात्म्यं च समासतः।
वक्ष्ये तद्विस्तराद्वक्तुं भवेनापि न शक्यते॥ ३

उपमन्यु बोले—देवकीनन्दन ! मैं शिवा और शिवके श्रीसम्पन्न ऐश्वर्यका और उन दोनोंके यथार्थ स्वरूपका संक्षेपसे वर्णन करूँगा। विस्तारपूर्वक इस विषयका वर्णन तो भगवान् शिव भी नहीं कर सकते॥ ३॥

शक्तिः साक्षान्महादेवी महादेवश्च शक्तिमान्।
तयोर्विभूतिलेशो वै सर्वमेतच्चराचरम्॥ ४

वस्तु किञ्चिदचिद्रूपं किञ्चिद्वस्तु चिदात्मकम्।
द्वयं शुद्धमशुद्धं च परं चापरमेव च॥ ५

साक्षात् महादेवी पार्वती शक्ति हैं और महादेवजी शक्तिमान्। उन दोनोंकी विभूतिका लेशमात्र ही इस सम्पूर्ण चराचर जगत्के रूपमें स्थित है। यहाँ कोई वस्तु जडरूप है और कोई वस्तु चेतनरूप। वे दोनों क्रमशः शुद्ध, अशुद्ध तथा पर और अपर कहे गये हैं॥ ४-५॥

यत्संसरति चिच्चक्रमचिच्चक्रसमन्वितम्।
तदेवाशुद्धमपरमितरं तु परं शुभम्॥ ६

अपरं च परं चैव द्वयं चिदचिदात्मकम्।
शिवस्य च शिवायाश्च स्वाम्यं चैतत्स्वभावतः॥ ७

जो चिन्मण्डल जडमण्डलके साथ संयुक्त हो संसारमें भटक रहा है, वही अशुद्ध और अपर कहा गया है। उससे भिन्न जो जडके बन्धनसे मुक्त है, वह पर और शुद्ध कहा गया है। अपर और पर चिदचित्स्वरूप हैं, इनपर स्वभावतः शिव और शिवाका स्वामित्व है॥ ६-७॥

शिवयोर्वै वशे विश्वं न विश्वस्य वशे शिवौ।
ईशितव्यमिदं यस्मात्तस्माद्विश्वेश्वरौ शिवौ॥ ८

शिवा और शिवके ही वशमें यह विश्व है। विश्वके वशमें शिवा और शिव नहीं हैं। यह जगत् शिव और शिवाके शासनमें है, इसलिये वे दोनों इसके ईश्वर या विश्वेश्वर कहे गये हैं॥ ८॥

यथा शिवस्तथा देवी यथा देवी तथा शिवः।
नानयोरन्तरं विद्याच्चन्द्रचन्द्रिकयोरिव॥ ९

चन्द्रो न खलु भात्येष यथा चंद्रिकया विना।
न भाति विद्यमानोऽपि तथा शक्त्या विना शिवः॥ १०

जैसे शिव हैं वैसी शिवादेवी हैं, तथा जैसी शिवादेवी हैं, वैसे ही शिव हैं। जिस तरह चन्द्रमा और उनकी चाँदनीमें कोई अन्तर नहीं है, उसी प्रकार शिव और शिवामें कोई अन्तर न समझे। जैसे चन्द्रिकाके बिना ये चन्द्रमा सुशोभित नहीं होते, उसी प्रकार शिव विद्यमान होनेपर भी शक्तिके बिना सुशोभित नहीं होते॥ ९-१०॥

प्रभया हि विना यद्वद्भानुरेष न विद्यते।
प्रभा च भानुना तेन सुतरां तदुपाश्रया॥ ११

एवं परस्परापेक्षा शक्तिशक्तिमतोः स्थिता।
न शिवेन विना शक्तिर्न शक्त्या च विना शिवः॥ १२

शक्तो यया शिवो नित्यं भुक्तौ मुक्तौ च देहिनाम्।
आद्या सैका परा शक्तिश्चिन्मयी शिवसंश्रया॥ १३

जैसे ये सूर्यदेव कभी प्रभाके बिना नहीं रहते और प्रभा भी उन सूर्यदेवके बिना नहीं रहती, निरन्तर उनके आश्रयमें ही रहती है, उसी प्रकार शक्ति और शक्तिमान्‌को सदा एक-दूसरेकी अपेक्षा होती है। न तो शिवके बिना शक्ति रह सकती है और न शक्तिके बिना शिव। जिसके द्वारा शिव सदा देहधारियोंको भोग और मोक्ष देनेमें समर्थ होते हैं, वह आद्या अद्वितीया चिन्मयी पराशक्ति शिवके ही आश्रित है॥ ११—१३॥

यामाहुरखिलेशस्य तैस्तैरनुगुणैर्गुणैः।
समानधर्मिणीमेव शिवस्य परमात्मनः॥ १४

सैका परा च चिद्रूपा शक्तिः प्रसवधर्मिणी।
विभज्य बहुधा विश्वं विदधाति शिवेच्छया॥ १५

ज्ञानी पुरुष उसी शक्तिको सर्वेश्वर परमात्मा शिवके अनुरूप उन-उन अलौकिक गुणोंके कारण उनकी समधर्मिणी कहते हैं। वह एकमात्र चिन्मयी पराशक्ति सृष्टिधर्मिणी है। वही शिवकी इच्छासे विभागपूर्वक नाना प्रकारके विश्वकी रचना करती है॥ १४-१५॥

सा मूलप्रकृतिर्माया त्रिगुणा च त्रिधा स्मृता।
शिवया च विपर्यस्तं यया ततमिदं जगत्॥ १६

एकधा च द्विधा चैव तथा शतसहस्रधा।
शक्तयः खलु भिद्यन्ते बहुधा व्यवहारतः॥ १७

शिवेच्छया परा शक्तिः शिवतत्त्वैकतां गता।
ततः परिस्फुरत्यादौ सर्गे तैलं तिलादिव॥ १८

वह शक्ति मूलप्रकृति, माया और त्रिगुणा—तीन प्रकारकी बतायी गयी है, उस शक्तिरूपिणी शिवाने ही इस जगत्‌का विस्तार किया है। व्यवहारभेदसे शक्तियोंके एक-दो, सौ, हजार एवं बहुसंख्यक भेद हो जाते हैं। शिवकी इच्छासे पराशक्ति शिवतत्त्वके साथ एकताको प्राप्त होती है। तदुपरान्त कल्पके आदिमें उसी प्रकार सृष्टिके प्रसंगमें शक्तिका प्रादुर्भाव होता है, जैसे तिलसे तेलका॥ १६—१८॥

ततः क्रियाख्यया शक्त्या शक्तौ शक्तिमदुत्थया।
तस्यां विक्षोभ्यमाणायामादौ नादः समुद्बभौ॥ १९

नादाद्विनिःसृतो बिन्दुर्बिन्दोर्देवः सदाशिवः।
तस्मान् महेश्वरो जातः शुद्धविद्या महेश्वरात्॥ २०

तदनन्तर शक्तिमान्‌से शक्तिमें क्रियामयी शक्ति प्रकट होती है। उसके विक्षुब्ध होनेपर आदिकालमें पहले नादकी उत्पत्ति हुई। फिर नादसे बिन्दुका प्राकट्य हुआ और बिन्दुसे सदाशिव देवका। उन सदाशिवसे महेश्वर प्रकट हुए और महेश्वरसे शुद्ध विद्या॥ १९-२०॥

सा वाचामीश्वरी शक्तिर्वागीशाख्या हि शूलिनः।
या सा वर्णस्वरूपेण मातृकेति विजृंभिते॥ २१

अथानन्तसमावेशान् माया कालमवासृजत्।
नियतिं च कलां विद्यां कलातो रागपूरुषौ॥ २२

मायातः पुनरेवाभूदव्यक्तं त्रिगुणात्मकम्।
त्रिगुणाच्च ततोऽव्यक्ताद्विभक्ताः स्युस्त्रयो गुणाः॥ २३

वह वाणीकी ईश्वरी है। इस प्रकार त्रिशूलधारी महेश्वरसे वागीश्वरी नामक शक्तिका प्रादुर्भाव हुआ, जो वर्णों (अक्षरों)-के रूपमें विस्तारको प्राप्त होती है और मातृका कहलाती है। तदनन्तर अनन्तके समावेशसे मायाने काल, नियति, कला और विद्याकी सृष्टि की। कलासे राग तथा पुरुष हुए। फिर मायासे ही त्रिगुणात्मिका अव्यक्त प्रकृति हुई। उस त्रिगुणात्मक अव्यक्तसे तीनों गुण पृथक्-पृथक् प्रकट हुए॥ २१—२३॥

सत्त्वं रजस्तमश्चेति यैर्व्याप्तमखिलं जगत्।
गुणेभ्यः क्षोभ्यमाणेभ्यो गुणेशाख्यास्त्रिमूर्त्तयः॥ २४

अभवन् महदादीनि तत्त्वानि च यथाक्रमम्।
तेभ्यः स्युरण्डपिण्डानि त्वसंख्यानि शिवाज्ञया।
अधिष्ठितान्यनन्ताद्यैर्विद्येशैश्चक्रवर्तिभिः ॥ २५

उनके नाम हैं—सत्त्व, रज और तम; इनसे यह सम्पूर्ण जगत् व्याप्त है। गुणोंमें क्षोभ होनेपर उनसे गुणेश नामक तीन मूर्तियाँ प्रकट हुईं। साथ ही 'महत्' आदि तत्त्वोंका क्रमशः प्रादुर्भाव हुआ। उन्हींसे शिवकी आज्ञाके अनुसार असंख्य अण्ड-पिण्ड प्रकट होते हैं, जो अनन्त आदि विद्येश्वर चक्रवर्तियोंसे अधिष्ठित हैं॥ २४-२५॥

शरीरान्तरभेदेन शक्तेर्भेदाः प्रकीर्तिताः।
नानारूपास्तु विज्ञेयाः स्थूलसूक्ष्मविभेदतः॥ २६
रुद्रस्य रौद्री सा शक्तिर्विष्णोर्वै वैष्णवी मता।
ब्रह्माणी ब्रह्मणः प्रोक्ता चेन्द्रस्यैन्द्रीति कथ्यते॥ २७

शरीरान्तरके भेदसे शक्तिके बहुत-से भेद कहे गये हैं। स्थूल और सूक्ष्मके भेदसे उनके अनेक रूप जानने चाहिये। रुद्रकी शक्ति रौद्री, विष्णुकी वैष्णवी, ब्रह्माकी ब्रह्माणी और इन्द्रकी इन्द्राणी कहलाती है॥ २६-२७॥

किमत्र बहुनोक्तेन यद्विश्वमिति कीर्तितम्।
शक्त्यात्मनैव तद्व्याप्तं यथा देहोऽन्तरात्मना॥ २८
तस्मात् शक्तिमयं सर्वं जगत्स्थावरजङ्गमम्।
कला या परमा शक्तिः कथिता परमात्मनः॥ २९
एवमेषा परा शक्तिरीश्वरेच्छानुयायिनी।
स्थिरं चरं च यद्विश्वं सृजतीति विनिश्चयः॥ ३०

यहाँ बहुत कहनेसे क्या लाभ—जिसे विश्व कहा गया है, वह उसी प्रकार शक्त्यात्मासे व्याप्त है, जैसे शरीर अन्तरात्मासे। अतः सम्पूर्ण स्थावर-जंगमरूप जगत् शक्तिमय है। यह पराशक्ति परमात्मा शिवकी कला कही गयी है। इस तरह यह पराशक्ति ईश्वरकी इच्छाके अनुसार चलकर चराचर जगत्की सृष्टि करती है, ऐसा विज्ञ पुरुषोंका निश्चय है॥ २८—३०॥

ज्ञानक्रिया चिकीर्षाभिस्तिसृभिः स्वात्मशक्तिभिः।
शक्तिमानीश्वरः शश्वत् विश्वं व्याप्याधितिष्ठति॥ ३१

इदमित्थमिदं नेत्थं भवेदित्येवमात्मिका।
इच्छाशक्तिर्महेशस्य नित्या कार्यनियामिका॥ ३२

ज्ञान, क्रिया और इच्छा—अपनी इन तीन शक्तियोंद्वारा शक्तिमान् ईश्वर सदा सम्पूर्ण विश्वको व्याप्त करके स्थित होते हैं। यह इस प्रकार हो और यह इस प्रकार न हो—इस तरह कार्योंका नियमन करनेवाली महेश्वरकी इच्छाशक्ति नित्य है॥ ३१-३२॥

ज्ञानशक्तिस्तु तत्कार्यं करणं कारणं तथा।
प्रयोजनं च तत्त्वेन बुद्धिरूपाध्यवस्यति॥ ३३

यथेप्सितं क्रियाशक्तिर्यथाध्यवसितं जगत्।
कल्पयत्यखिलं कार्यं क्षणात् सङ्कल्परूपिणी॥ ३४

उनकी जो ज्ञानशक्ति है, वह बुद्धिरूप होकर कार्य, करण, कारण और प्रयोजनका ठीक-ठीक निश्चय करती है; तथा शिवकी जो क्रियाशक्ति है, वह संकल्परूपिणी होकर उनकी इच्छा और निश्चयके अनुसार कार्यरूप सम्पूर्ण जगत्की क्षणभरमें कल्पना कर देती है॥ ३३-३४॥

यथाशक्ति त्रयोत्थानं शक्तिप्रसवधर्मिणी।
शक्त्या परमया नुन्ना प्रसूते सकलं जगत्॥ ३५

एवं शक्तिसमायोगात् शक्तिमानुच्यते शिवः।
शक्तिशक्तिमदुत्थं तु शाक्तं शैवमिदं जगत्॥ ३६

यथा न जायते पुत्रः पितरं मातरं विना।
तथा भवं भवानीं च विना नैतच्चराचरम्॥ ३७

इस प्रकार तीनों शक्तियोंसे जगत्का उत्थान होता है। प्रसव-धर्मवाली जो शक्ति है, वह पराशक्तिसे प्रेरित होकर ही सम्पूर्ण जगत्की सृष्टि करती है। इस तरह शक्तियोंके संयोगसे शिव शक्तिमान् कहलाते हैं। शक्ति और शक्तिमान्से प्रकट होनेके कारण यह जगत् शाक्त और शैव कहा गया है। जैसे माता-पिताके बिना पुत्रका जन्म नहीं होता, उसी प्रकार भव और भवानीके बिना इस चराचर जगत्की उत्पत्ति नहीं होती॥ ३५—३७॥

स्त्रीपुंसप्रभवं विश्वं स्त्रीपुंसात्मकमेव च।
स्त्रीपुंसयोर्विभूतिश्च स्त्रीपुंसाभ्यामधिष्ठितम्॥ ३८

परमात्मा शिवः प्रोक्तः शिवा सा च प्रकीर्तिता।
शिवः सदाशिवः प्रोक्तः शिवा सा च मनोन्मनी।
शिवो महेश्वरो ज्ञेयः शिवा मायेति कथ्यते॥ ३९

स्त्री और पुरुषसे प्रकट हुआ जगत् स्त्री और पुरुष-रूप ही है; यह स्त्री और पुरुषकी विभूति है, अतः स्त्री और पुरुषसे अधिष्ठित है। इनमें शक्तिमान् पुरुषरूप शिव तो परमात्मा कहे गये हैं और स्त्रीरूपिणी शिवा उनकी पराशक्ति। शिव सदाशिव कहे गये हैं और शिवा मनोन्मनी। शिवको महेश्वर जानना चाहिये और शिवा माया कहलाती हैं॥ ३८-३९॥

पुरुषः परमेशानः प्रकृतिः परमेश्वरी।
रुद्रो महेश्वरः साक्षाद् रुद्राणी रुद्रवल्लभा॥ ४०
विष्णुर्विश्वेश्वरो देवो लक्ष्मीर्विश्वेश्वरप्रिया।
ब्रह्मा शिवो यदा स्त्रष्टा ब्रह्माणी ब्रह्मणः प्रिया॥ ४१
भास्करो भगवान् शम्भुः प्रभा भगवती शिवा।
महेन्द्रो मन्मथारातिः शची शैलेन्द्रकन्यका॥ ४२
जातवेदा महादेवः स्वाहा शर्वार्द्धदेहिनी।
यमस्त्रियम्बको देवस्तत्प्रिया गिरिकन्यका॥ ४३
निर्ऋतिर्भगवानीशो नैर्ऋती नगनन्दिनी।
वरुणो भगवान् रुद्रो वारुणी भूधरात्मजा॥ ४४
बालेन्दुशेखरो वायुः शिवा शिवमनोहरा।
यक्षो यज्ञशिरोहर्ता ऋद्धिर्हिमगिरीन्द्रजा॥ ४५

परमेश्वर शिव पुरुष हैं और परमेश्वरी शिवा प्रकृति। महेश्वर शिव रुद्र हैं और उनकी वल्लभा शिवादेवी रुद्राणी। विश्वेश्वर देव विष्णु हैं और उनकी प्रिया लक्ष्मी। जब सृष्टिकर्ता शिव ब्रह्मा कहलाते हैं, तब उनकी प्रियाको ब्रह्माणी कहते हैं। भगवान् शिव भास्कर हैं और भगवती शिवा प्रभा। कामनाशन शिव महेन्द्र हैं और गिरिराजनन्दिनी उमा शची। महादेवजी अग्नि हैं और उनकी अर्धांगिनी उमा स्वाहा। भगवान् त्रिलोचन यम हैं और गिरिराज-नन्दिनी उमा यमप्रिया। भगवान् शंकर निर्ऋति हैं और पार्वती नैर्ऋती। भगवान् रुद्र वरुण हैं और पार्वती वारुणी। चन्द्रशेखर शिव वायु हैं और पार्वती वायुप्रिया। शिव यक्ष हैं और पार्वती ऋद्धि॥ ४०—४५॥

चन्द्रार्धशेखरश्चन्द्रो रोहिणी रुद्रवल्लभा।
ईशानः परमेशानस्तदार्या परमेश्वरी॥ ४६

अनन्तवलयोऽनन्तो ह्यनन्तानन्तवल्लभा।
कालाग्निरुद्रः कालारिः काली कालान्तकप्रिया॥ ४७

पुरुषाख्यो मनुः शंभुः शतरूपा शिवप्रिया।
दक्षः साक्षान्महादेवः प्रसूतिः परमेश्वरी॥ ४८

रुचिर्भवो भवानी च बुधैराकूतिरुच्यते।
भृगुर्भगाक्षिहा देवः ख्यातिस्त्रिनयनप्रिया॥ ४९

मरीचिर्भगवान् रुद्रः सम्भूतिः शर्ववल्लभा।
गङ्गाधरोऽङ्गिरा ज्ञेयः स्मृतिः साक्षादुमा स्मृता॥ ५०

पुलस्त्यः शशभृन्मौलिः प्रीतिः कान्ता पिनाकिनः।
पुलहस्त्रिपुरध्वंसी तत्प्रिया तु शिवप्रिया॥ ५१

चन्द्रार्धशेखर शिव चन्द्रमा हैं और रुद्रवल्लभा उमा रोहिणी। परमेश्वर शिव ईशान हैं और परमेश्वरी शिवा उनकी पत्नी। नागराज अनन्तको वलयरूपमें धारण करनेवाले भगवान् शंकर अनन्त हैं और उनकी वल्लभा शिवा अनन्ता। कालशत्रु शिव कालाग्निरुद्र हैं और [उमा] कालान्तकप्रिया काली हैं। जिनका दूसरा नाम पुरुष है, ऐसे स्वायम्भुव मनुके रूपमें साक्षात् शम्भु ही हैं और शिवप्रिया उमा शतरूपा हैं। साक्षात् महादेव दक्ष हैं और परमेश्वरी पार्वती प्रसूति। भगवान् भव रुचि हैं और भवानीको ही विद्वान् पुरुष आकूति कहते हैं। महादेवजी भृगु हैं और पार्वती ख्याति। भगवान् रुद्र मरीचि हैं और शिववल्लभा सम्भूति। भगवान् गंगाधर अंगिरा हैं और साक्षात् उमा स्मृति। चन्द्रमौलि पुलस्त्य हैं और पार्वती प्रीति। त्रिपुरनाशक शिव पुलह हैं और पार्वती ही उनकी प्रिया [पुलहपत्नी] हैं॥ ४६—५१॥

क्रतुध्वंसी क्रतुः प्रोक्तः सन्ततिर्दयिता विभोः।
त्रिनेत्रोऽत्रिरुमा साक्षादनसूया स्मृता बुधैः॥ ५२

कश्यपः कालहा देवो देवमाता महेश्वरी।
वसिष्ठो मन्मथारातिर्देवी साक्षादरुन्धती॥ ५३

शङ्करः पुरुषाः सर्वे स्त्रियः सर्वा महेश्वरी।
सर्वे स्त्रीपुरुषास्तस्मात्तयोरेव विभूतयः॥ ५४

यज्ञविध्वंसी शिव क्रतु कहे गये हैं और उनकी प्रिया पार्वती संनति। भगवान् शिव अत्रि हैं और साक्षात् उमा अनसूया। कालहन्ता शिव कश्यप हैं और महेश्वरी उमा देवमाता अदिति। कामनाशन शिव वसिष्ठ हैं और साक्षात् देवी पार्वती अरुन्धती। भगवान् शंकर ही संसारके सारे पुरुष हैं और महेश्वरी शिवा ही सम्पूर्ण स्त्रियाँ। अतः सभी स्त्री-पुरुष उन्हींकी विभूतियाँ हैं॥ ५२—५४॥

विषयी भगवानीशो विषयः परमेश्वरी।
श्राव्यं सर्वमुमारूपं श्रोता शूलवरायुधः॥ ५५

प्रष्टव्यं वस्तुजातं तु धत्ते शङ्करवल्लभा।
प्रष्टा स एव विश्वात्मा बालचन्द्रावतंसकः॥ ५६

भगवान् शिव विषयी हैं और परमेश्वरी उमा विषय। जो कुछ सुननेमें आता है वह सब उमाका रूप है और श्रोता साक्षात् भगवान् शंकर हैं। जिसके विषयमें प्रश्न या जिज्ञासा होती है, उस समस्त वस्तु-समुदायका रूप शंकरवल्लभा शिवा स्वयं धारण करती हैं तथा पूछनेवाला जो पुरुष है, वह बालचन्द्रशेखर विश्वात्मा शिवरूप ही है॥ ५५-५६॥

द्रष्टव्यं वस्तुरूपं तु बिभर्त्ति भववल्लभा।
द्रष्टा विश्वेश्वरो देवः शशिखण्डशिखामणिः॥ ५७

रसजातं महादेवी देवो रसयिता शिवः।
प्रेयजातं च गिरिजा प्रेयांश्चैव गराशनः॥ ५८

मन्तव्यवस्तुतां धत्ते सदा देवी महेश्वरी।
मन्ता स एव विश्वात्मा महादेवो महेश्वरः॥ ५९

बोद्धव्यवस्तुरूपं तु बिभर्त्ति भववल्लभा।
देवः स एव भगवान् बोद्धा मुग्धेन्दुशेखरः॥ ६०

भववल्लभा उमा ही द्रष्टव्य वस्तुओंका रूप धारण करती हैं और द्रष्टा पुरुषके रूपमें शशिखण्डमौलि भगवान् विश्वनाथ ही सब कुछ देखते हैं। सम्पूर्ण रसकी राशि महादेवी हैं और उस रसका आस्वादन करनेवाले मंगलमय महादेव हैं। प्रेमसमूह पार्वती हैं और प्रियतम विषभोजी शिव हैं। देवी महेश्वरी सदा मन्तव्य वस्तुओंका स्वरूप धारण करती हैं और विश्वात्मा महेश्वर महादेव उन वस्तुओंके मन्ता (मनन करनेवाले) हैं। भववल्लभा पार्वती बोद्धव्य (जाननेयोग्य) वस्तुओंका स्वरूप धारण करती हैं और शिशु-शशिशेखर भगवान् महादेव ही उन वस्तुओंके ज्ञाता हैं॥ ५७—६०॥

प्राणः पिनाकी सर्वेषां प्राणिनां भगवान् प्रभुः।
प्राणस्थितिस्तु सर्वेषामम्बिका चाम्बुरूपिणी॥ ६१

बिभर्ति क्षेत्रतां देवी त्रिपुरान्तकवल्लभा।
क्षेत्रज्ञत्वं तदा धत्ते भगवानन्तकान्तकः॥ ६२

अहः शूलायुधो देवः शूलपाणिप्रिया निशा।
आकाशः शङ्करो देवः पृथिवी शङ्करप्रिया॥ ६३

समुद्रो भगवानीशो वेला शैलेन्द्रकन्यका।
वृक्षो वृषध्वजो देवो लता विश्वेश्वरप्रिया॥ ६४

सामर्थ्यशाली भगवान् पिनाकी सम्पूर्ण प्राणियोंके प्राण हैं और सबके प्राणोंकी स्थिति जलरूपिणी माता पार्वती हैं। त्रिपुरान्तक पशुपतिकी प्राणवल्लभा पार्वती-देवी जब क्षेत्रका स्वरूप धारण करती हैं, तब कालके भी काल भगवान् महाकाल क्षेत्रज्ञरूपमें स्थित होते हैं। शूलधारी महादेवजी दिन हैं तो शूलपाणिप्रिया पार्वती रात्रि। कल्याणकारी महादेवजी आकाश हैं और शंकरप्रिया पार्वती पृथिवी। भगवान् महेश्वर समुद्र हैं तो गिरिराज-कन्या शिवा उसकी तटभूमि हैं। वृषभध्वज महादेव वृक्ष हैं, तो विश्वेश्वरप्रिया उमा उसपर फैलनेवाली लता हैं॥ ६१—६४॥

पुँल्लिङ्गमखिलं धत्ते भगवान् पुरशासनः।
स्त्रिलिङ्गं चाखिलं धत्ते देवी देवमनोरमा॥ ६५

शब्दजालमशेषं तु धत्ते सर्वस्य वल्लभा।
अर्थस्वरूपमखिलं धत्ते मुग्धेन्दुशेखरः॥ ६६

यस्य यस्य पदार्थस्य या या शक्तिरुदाहृता।
सा सा विश्वेश्वरी देवी स स सर्वो महेश्वरः॥ ६७

यत्परं यत्पवित्रं च यत्पुण्यं यच्च मङ्गलम्।
तत्तदाह महाभागास्तयोस्तेजोविजृम्भितम्॥ ६८

भगवान् त्रिपुरनाशक महादेव सम्पूर्ण पुँल्लिंगरूपको स्वयं धारण करते हैं और महादेवमनोरमा देवी शिवा सारा स्त्रीलिंगरूप धारण करती हैं। शिववल्लभा शिवा समस्त शब्दजालका रूप धारण करती हैं और बालेन्दुशेखर शिव सम्पूर्ण अर्थका। जिस-जिस पदार्थकी जो-जो शक्ति कही गयी है, वह-वह शक्ति तो विश्वेश्वरी देवी शिवा हैं और वह-वह सारा पदार्थ साक्षात् महेश्वर हैं। जो सबसे परे है, जो पवित्र है, जो पुण्यमय है तथा जो मंगलरूप है, उस-उस वस्तुको महाभाग महात्माओंने उन्हीं दोनों शिव-पार्वतीके तेजसे विस्तारको प्राप्त हुई बताया है॥ ६५—६८॥

यथा दीपस्य दीप्तस्य शिखा दीपयते गृहम्।
तथा तेजस्तयोरेतद् व्याप्य दीपयते जगत्॥ ६९

तृणादिशिवमूर्त्यन्तं विश्वस्यातिशयक्रमः।
सन्निकर्षक्रमवशात्तयोरिति परा श्रुतिः॥ ७०

जैसे जलते हुए दीपककी शिखा समूचे घरको प्रकाशित करती है, उसी प्रकार शिव-पार्वतीका ही यह तेज व्याप्त होकर सम्पूर्ण जगत्को प्रकाश दे रहा है। तृणसे लेकर शिवकी मूर्तिपर्यन्त इस विश्वका व्यवहार उन्हीं दोनोंके सन्निकर्षके कारण चल रहा है—ऐसा परा श्रुति कहती है॥ ६९-७०॥

सर्वाकारात्मकावेतौ सर्वश्रेयोविधायिनौ।
पूजनीयौ नमस्कार्यौ चिन्तनीयौ च सर्वदा॥ ७१

ये दोनों शिवा और शिव सर्वरूप हैं, सबका कल्याण करनेवाले हैं; अतः सदा ही इन दोनोंका पूजन, नमन एवं चिन्तन करना चाहिये॥ ७१॥

यथाप्रज्ञमिदं कृष्ण याथात्म्यं परमेशयोः।
कथितं हि मया तेऽद्य न तु तावदियत्तया॥ ७२

श्रीकृष्ण! आज मैंने तुम्हारे समक्ष अपनी बुद्धिके अनुसार परमेश्वर शिव और शिवाके यथार्थ स्वरूपका वर्णन किया है, परंतु इयत्तापूर्वक नहीं; अर्थात् इस वर्णनसे यह नहीं मान लेना चाहिये कि इन दोनोंके यथार्थरूपका पूर्णतः वर्णन हो गया; क्योंकि इनके स्वरूपकी इयत्ता (सीमा) नहीं है॥ ७२॥

तत्कथं शक्यते वक्तुं याथात्म्यं परमेशयोः।
महतामपि सर्वेषां मनसोऽपि बहिर्गतम्॥ ७३

जो समस्त महापुरुषोंके भी मनकी सीमासे परे है, परमेश्वर शिव और शिवाके उस यथार्थ स्वरूपका वर्णन कैसे किया जा सकता है!॥ ७३॥

अन्तर्गतमनन्यानामीश्वरार्पितचेतसाम् ।
अन्येषां बुद्ध्यनारूढमारूढं च यथैव तत्॥ ७४

जिन्होंने अपने चित्तको महेश्वरके चरणोंमें अर्पित कर दिया है तथा जो उनके अनन्यभक्त हैं, उनके ही मनमें वे आते हैं और उन्हींकी बुद्धिमें आरूढ़ होते हैं। दूसरोंकी बुद्धिमें वे आरूढ़ नहीं होते॥ ७४॥

येयमुक्ता विभूतिर्वै प्राकृती सा परा मता।
अप्राकृतां परामन्यां गुह्यां गुह्यविदो विदुः॥ ७५

यहाँ मैंने जिस विभूतिका वर्णन किया है, वह प्राकृत है, इसलिये अपरा मानी गयी है। इससे भिन्न जो अप्राकृत एवं परा विभूति है, वह गुह्य है। उनके गुह्य रहस्यको जाननेवाले पुरुष ही उन्हें जानते हैं॥ ७५॥

यतो वाचो निवर्तन्ते मनसा चेन्द्रियैः सह।
अप्राकृती परा चैषा विभूतिः पारमेश्वरी॥ ७६
सैवेह परमं धाम सैवेह परमा गतिः।
सैवेह परमा काष्ठा विभूतिः परमेष्ठिनः॥ ७७

परमेश्वरकी यह अप्राकृत परा विभूति वह है, जहाँसे मन और इन्द्रियोंसहित वाणी लौट आती है। परमेश्वरकी वही विभूति यहाँ परम धाम है, वही यहाँ परमगति है और वही यहाँ पराकाष्ठा है॥ ७६-७७॥

तां प्राप्तुं प्रयतन्तेऽत्र जितश्वासा जितेन्द्रियाः।
गर्भकारागृहद्वारं निश्छिद्रं घटितं यथा॥ ७८

संसाराशीविषालीढमृतसञ्जीवनौषधम्।
विभूतिं शिवयोर्विद्वान्न बिभेति कुतश्चन॥ ७९

जिस प्रकार गर्भाशयरूप निश्छिद्र कारागारमें शिशु श्वासको अवरुद्धकर स्थित होता है, वैसे ही जो अपने श्वास और इन्द्रियोंपर विजय पा चुके हैं, वे योगीजन ही उन्हें पानेका प्रयत्न करते हैं। शिवा और शिवकी यह विभूति संसाररूपी विषधर सर्पके डसनेसे मृत्युके अधीन हुए मानवोंके लिये संजीवनी ओषधि है। इसे जाननेवाला पुरुष किसीसे भी भयभीत नहीं होता॥ ७८-७९॥

यः परामपरां चैव विभूतिं वेत्ति तत्त्वतः।
सोऽपरां भूतिमुल्लंघ्य परां भूतिं समश्नुते॥ ८०

जो इस परा और अपरा विभूतिको ठीक-ठीक जान लेता है, वह अपरा विभूतिको लाँघकर परा विभूतिका अनुभव करने लगता है॥ ८०॥

एतत्ते कथितं कृष्ण याथात्म्यं परमात्मनोः।
रहस्यमपि योग्योऽसि भर्गभक्तो भवानिति॥ ८१

नाशिष्येभ्योऽप्यशैवेभ्यो नाभक्तेभ्यः कदाचन।
व्याहरेदीशयोर्भूतिमिति वेदानुशासनम्॥ ८२

श्रीकृष्ण! यह तुमसे परमात्मा शिव और पार्वतीके यथार्थ स्वरूपका गोपनीय होनेपर भी वर्णन किया गया है; क्योंकि तुम भगवान् शिवकी भक्तिके योग्य हो। जो शिष्य न हों, शिवके उपासक न हों और भक्त भी न हों, ऐसे लोगोंको कभी शिव-पार्वतीकी इस विभूतिका उपदेश नहीं देना चाहिये। यह वेदकी आज्ञा है॥ ८१-८२॥

तस्मात्त्वमतिकल्याण परेभ्यः कथयेन्न हि।
त्वादृशेभ्योऽनुरूपेभ्यः कथयैतन्न चान्यथा॥ ८३

अतः अत्यन्त कल्याणमय श्रीकृष्ण! तुम दूसरोंको इसका उपदेश न देना। जो तुम्हारे जैसे योग्य पुरुष हों, उन्हींसे कहना; अन्यथा मौन ही रहना॥ ८३॥

विभूतिमेतां शिवयोर्योग्येभ्यो यः प्रदापयेत्।
संसारसागरान् मुक्तः शिवसायुज्यमाप्नुयात्॥ ८४

कीर्तनादस्य नश्यन्ति महान्त्यः पापकोटयः।
त्रिश्चतुर्धा समभ्यस्तैर्विनश्यन्ति ततोऽधिकाः॥ ८५

नश्यन्त्यनिष्टरिपवो वर्द्धन्ते सुहृदस्तथा।
विद्या च वर्द्धते शैवी मतिः सत्ये प्रवर्तते॥ ८६

भक्तिः पराः शिवे साम्बे सानुगे सपरिच्छदे।
यद्यदिष्टतमं चान्यत्तत्तदाप्नोत्यसंशयम्॥ ८७

जो शिवा-शिवकी इस विभूतिको योग्य भक्तोंको प्रदान करता है, वह संसार-सागरसे मुक्त होकर शिवसायुज्य प्राप्त करता है। इसके कीर्तनसे बड़े-बड़े पाप नष्ट हो जाते हैं; तीन-चार बार इसका अभ्यास करनेसे उससे भी अधिक पाप नष्ट हो जाते हैं। इसके द्वारा विनाशकारी शत्रु नष्ट हो जाते हैं, सुहृदोंकी वृद्धि होती है, शैवी विद्या बढ़ती है, बुद्धि सत्यमें प्रवृत्त होती है और शिव-पार्वती-गणों तथा उनके अनुचरोंके प्रति श्रेष्ठ भक्ति उत्पन्न होती है। व्यक्तिका जो-जो अन्य परम अभीष्ट होता है, उसे वह निःसन्देह प्राप्त कर लेता है॥ ८४—८७॥

अन्तःशुचिः शिवे भक्तो विस्रब्धः कीर्तयेद्यदि।
प्रबलैः कर्मभिः पूर्वैः फलं चेत्प्रतिबध्यते।
पुनः पुनः समभ्यस्येत्तस्य नास्तीह दुर्लभम्॥ ८८

जो भीतरसे पवित्र, शिवका भक्त और विश्वासी हो, वह यदि इसका कीर्तन करे तो मनोवांछित फलका भागी होता है। यदि पहलेके प्रबल प्रतिबन्धक कर्मोंद्वारा प्रथम बार फलकी प्राप्तिमें बाधा पड़ जाय, तो भी बारंबार साधनका अभ्यास करना चाहिये। ऐसा करनेवाले पुरुषके लिये यहाँ कुछ भी दुर्लभ नहीं है॥ ८८॥

इति श्रीशिवमहापुराणे सप्तम्यां वायवीयसंहितायामुत्तरखण्डे गौरीशङ्करविभूतियोगो नाम चतुर्थोऽध्यायः॥ ४॥

॥ इस प्रकार श्रीशिवमहापुराणके अन्तर्गत सातवीं वायवीयसंहिताके उत्तरखण्डमें गौरीशंकर-विभूतियोग नामक चौथा अध्याय पूर्ण हुआ॥ ४॥

अथ पञ्चमोऽध्यायः

परमेश्वर शिवके यथार्थ स्वरूपका विवेचन तथा उनकी शरणमें जानेसे जीवके कल्याणका कथन

उपमन्युरुवाच

विग्रहं देवदेवस्य विश्वमेतत् चराचरम्।
तदेवं न विजानन्ति पशवः पाशगौरवात्॥ १

उपमन्यु कहते हैं—यदुनन्दन! यह चराचर जगत् देवाधिदेव महादेवजीका स्वरूप है। परंतु पशु (जीव) भारी पाशसे बँधे होनेके कारण जगत्‌को इस रूपमें नहीं जानते॥ १॥

तमेकमेव बहुधा वदन्ति यदुनन्दन।
अजानन्तः परं भावमविकल्पं महर्षयः॥ २
अपरं ब्रह्मरूपं च परं ब्रह्मात्मकं तथा।
केचिदाहुर्महादेवमनादिनिधनं परम्॥ ३

महर्षिगण उन परमेश्वर शिवके निर्विकल्प परम भावको न जाननेके कारण उन एकका ही अनेक रूपोंमें वर्णन करते हैं—कोई उस परमतत्त्वको अपर ब्रह्मरूप कहते हैं, कोई परब्रह्मरूप बताते हैं और कोई आदि-अन्तसे रहित उत्कृष्ट महादेवस्वरूप कहते हैं॥ २-३॥

भूतेन्द्रियान्तःकरणप्रधानविषयात्मकम्।
अपरं ब्रह्म निर्दिष्टं परं ब्रह्म चिदात्मकम्॥ ४

पंच महाभूत, इन्द्रिय, अन्तःकरण तथा प्राकृत विषयरूप जड तत्त्वको अपरब्रह्म कहा गया है। इससे भिन्न समष्टि चैतन्यका नाम परब्रह्म है॥ ४॥

बृहत्त्वाद् बृंहणत्वाद्वा ब्रह्म चेत्यभिधीयते।
उभे ते ब्रह्मणो रूपे ब्रह्मणोऽधिपतेः प्रभोः।
विद्याविद्यास्वरूपीति कैश्चिदीशो निगद्यते॥ ५

बृहत् और व्यापक होनेके कारण उसे ब्रह्म कहते हैं। प्रभो! वेदों एवं ब्रह्माजीके अधिपति परब्रह्म परमात्मा शिवके वे पर और अपर दो रूप हैं। कुछ लोग महेश्वर शिवको विद्याविद्यास्वरूपी कहते हैं॥ ५॥

विद्यां तु चेतनां प्राहुस्तथाविद्यामचेतनाम्।
विद्याविद्यात्मकं चैव विश्वं विश्वगुरोर्विभोः॥ ६
रूपमेव न संदेहो विश्वं तस्य वशे यतः।
भ्रांतिर्विद्या परा चेति शार्वं रूपं परं विदुः॥ ७

इनमें विद्या चेतना है और अविद्या अचेतना। यह विद्याविद्यारूप विश्व जगद्गुरु भगवान् शिवका रूप ही है, इसमें संदेह नहीं है; क्योंकि विश्व उनके वशमें है। भ्रान्ति, विद्या तथा पराविद्या या परम तत्त्व—ये शिवके तीन उत्कृष्ट रूप माने गये हैं॥ ६-७॥

अयथाबुद्धिरर्थेषु बहुधा भ्रान्तिरुच्यते।
यथार्थाकारसंवित्तिर्विद्येति परिकीर्त्यते॥ ८

विकल्परहितं तत्त्वं परमित्यभिधीयते।
वैपरीत्यादसत् शब्दः कथ्यते वेदवादिभिः॥ ९

पदार्थोंके विषयमें जो अनेक प्रकारकी असत्य धारणाएँ हैं, उन्हें भ्रान्ति कहते हैं। यथार्थ धारणा या ज्ञानका नाम विद्या है तथा जो विकल्परहित परम ज्ञान है, उसे परम तत्त्व कहते हैं। वेदवादियोंके द्वारा [परम तत्त्व ही सत् तथा] इससे विपरीत असत् कहा गया है॥ ८-९॥

तयोः पतित्वात्तु शिवः सदसस्पतिरुच्यते।
क्षराक्षरात्मकं प्राहुः क्षराक्षरपरं परे॥ १०

सत् और असत् दोनोंका पति होनेके कारण शिव सदसत्पति कहलाते हैं। अन्य महर्षियोंने क्षर, अक्षर और उन दोनोंसे परे परम तत्त्वका प्रतिपादन किया है॥ १०॥

क्षरः सर्वाणि भूतानि कूटस्थोऽक्षर उच्यते।
उभे ते परमेशस्य रूपे तस्य वशे यतः॥ ११

तयोः परः शिवः शान्तः क्षराक्षरपरः स्मृतः।
समष्टिव्यष्टिरूपं च समष्टिव्यष्टिकारणम्॥ १२

वदन्ति मुनयः केचित् शिवं परमकारणम्।
समष्टिमाहुरव्यक्तं व्यष्टिं व्यक्तं तथैव च॥ १३

सम्पूर्ण भूत क्षर हैं और जीवात्मा अक्षर कहलाता है। वे दोनों परमेश्वरके रूप हैं; क्योंकि उन्हींके अधीन हैं। शान्तस्वरूप शिव उन दोनोंसे परे हैं, इसलिये क्षराक्षरपर कहे गये हैं। कुछ महर्षि परम कारणरूप शिवको समष्टि-व्यष्टिस्वरूप तथा समष्टि और व्यष्टिका कारण कहते हैं। अव्यक्तको समष्टि कहते हैं और व्यक्तको व्यष्टि॥ ११—१३॥

ते रूपे परमेशस्य तदिच्छायाः प्रवर्तनात्।
तयोः कारणभावेन शिवं परमकारणम्॥ १४

कारणार्थविदः प्राहुः समष्टिव्यष्टिकारणम्।
जातिव्यक्तिस्वरूपीति कथ्यते कैश्चिदीश्वरः॥ १५

वे दोनों परमेश्वर शिवके रूप हैं, क्योंकि उन्हींकी इच्छासे प्रवृत्त होते हैं। उन दोनोंके कारणरूपसे स्थित भगवान् शिव परम कारण हैं। अतः कारणार्थवेत्ता ज्ञानी पुरुष उन्हें समष्टि-व्यष्टिका कारण बताते हैं। कुछ लोग परमेश्वरको जाति-व्यक्ति-स्वरूप कहते हैं॥ १४-१५॥

या पिण्डेऽप्यनुवर्तेत सा जातिरिति कथ्यते।
व्यक्तिर्व्यावृत्तिरूपं तं पिण्डजातं समाश्रयम्॥ १६

जातयो व्यक्तयश्चैव तदाज्ञापरिपालिताः।
यतस्ततो महादेवो जातिव्यक्तिवपुः स्मृतः॥ १७

जिसका शरीरमें भी अनुवर्तन हो, वह जाति कही गयी है। शरीरकी जातिके आश्रित रहनेवाली जो व्यावृत्ति है, जिसके द्वारा जातिभावनाका आच्छादन और वैयक्तिक भावनाका प्रकाशन होता है, उसका नाम व्यक्ति है। जाति और व्यक्ति दोनों ही भगवान् शिवकी आज्ञासे परिपालित हैं, अतः उन महादेवजीको जाति-व्यक्तिस्वरूप कहा गया है॥ १६-१७॥

प्रधानपुरुषव्यक्तकालात्मा कथ्यते शिवः।
प्रधानं प्रकृतिं प्राहुः क्षेत्रज्ञं पुरुषं तथा॥ १८

त्रयोविंशतितत्त्वानि व्यक्तमाहुर्मनीषिणः।
कालः कार्यप्रपञ्चस्य परिणामैककारणम्॥ १९

कोई-कोई शिवको प्रधान, पुरुष, व्यक्त और कालरूप कहते हैं। प्रकृतिका ही नाम प्रधान है। जीवात्माको ही क्षेत्रज्ञ कहते हैं। तेईस तत्त्वोंको मनीषी पुरुषोंने व्यक्त कहा है और जो कार्य-प्रपंचके परिणामका एकमात्र कारण है, उसका नाम काल है॥ १८-१९॥

एषामीशोऽधिपो धाता प्रवर्तकनिवर्तकः।
आविर्भावतिरोभावहेतुरेकः स्वराडजः॥ २०

तस्मात् प्रधानपुरुषव्यक्तकालस्वरूपवान्।

हेतुर्नेताऽधिपस्तेषां धाता चोक्तो महेश्वरः॥ २१

विराड् हिरण्यगर्भात्मा कैश्चिदीशो निगद्यते।
हिरण्यगर्भो लोकानां हेतुर्विश्वात्मको विराट्॥ २२

अन्तर्यामी परश्चेति कथ्यते कविभिः शिवः।
प्राज्ञस्तैजसविश्वात्मेत्यपरे सम्प्रचक्षते॥ २३

तुरीयमपरे प्राहुः सौम्यमेव परे विदुः।
माता मानं च मेयं च मतिं चाहुरथापरे॥ २४

कर्ता क्रिया च कार्यं च करणं कारणं परे।
जाग्रत्स्वप्नसुषुप्त्यात्मेत्यपरे सम्प्रचक्षते॥ २५

तुरीयमपरे प्राहुस्तुर्यातीतमितीतरे।
तमाहुर्विगुणं केचिद् गुणवन्तं परे विदुः॥ २६
केचित्संसारिणं प्राहुस्तमसंसारिणं परे।
स्वतन्त्रमपरे प्राहुरस्वतन्त्रं परे विदुः॥ २७
घोरमित्यपरे प्राहुः सौम्यमेव परे विदुः।
रागवन्तं परे प्राहुर्वीतरागं तथा परे॥ २८
निष्क्रियं च परे प्राहुः सक्रियं चेतरे जनाः।
निरिन्द्रियं परे प्राहुः सेन्द्रियं च तथा परे॥ २९
ध्रुवमित्यपरे प्राहुस्तमध्रुवमितीतरे।
अरूपं केचिदाहुर्वै रूपवन्तं परे विदुः॥ ३०
अदृश्यमपरे प्राहुर्दृश्यमित्यपरे विदुः।
वाच्यमित्यपरे प्राहुरवाच्यमिति चापरे।
शब्दात्मकं परे प्राहुः शब्दातीतमथापरे॥ ३१
केचित् चिन्तामयं प्राहुश्चिन्तया रहितं परे।
ज्ञानात्मकं परे प्राहुर्विज्ञानमिति चापरे॥ ३२
केचित् ज्ञेयमिति प्राहुरज्ञेयमिति केचन।
परमेके तमेवाहुरपरं च तथा परे॥ ३३

भगवान् शिव इन सबके ईश्वर, पालक, धारणकर्ता, प्रवर्तक, निवर्तक तथा आविर्भाव और तिरोभावके एकमात्र हेतु हैं। वे स्वयंप्रकाश एवं अजन्मा हैं। इसीलिये उन महेश्वरको प्रधान, पुरुष, व्यक्त और कालरूप कहा गया है॥ २०१/२॥

उन्हें ही कारण, नेता, अधिपति और धाता बताया गया है। कुछ लोग महेश्वरको विराट् और हिरण्यगर्भरूप बताते हैं। जो सम्पूर्ण लोकोंकी सृष्टिके हेतु हैं, उनका नाम हिरण्यगर्भ है और विश्वरूपको विराट् कहते हैं॥ २१-२२॥

ज्ञानी पुरुष भगवान् शिवको अन्तर्यामी और परम पुरुष कहते हैं। दूसरे लोग उन्हें प्राज्ञ, तैजस और विश्वरूप बताते हैं। कोई उन्हें तुरीयरूप मानते हैं और कोई सौम्यरूप। कितने ही विद्वानोंका कथन है कि वे ही माता, मान, मेय और मितिरूप हैं। अन्य लोग कर्ता, क्रिया, कार्य, करण और कारणरूप कहते हैं। दूसरे ज्ञानी उन्हें जाग्रत्, स्वप्न और सुषुप्तिरूप बताते हैं॥ २३—२५॥

कोई भगवान् शिवको तुरीयरूप कहते हैं तो कोई तुरीयातीत। कोई निर्गुण बताते हैं, कोई सगुण। कोई संसारी कहते हैं, कोई उन्हें असंसारी। कोई स्वतन्त्र मानते हैं, कोई अस्वतन्त्र। कोई उन्हें घोर समझते हैं, कोई सौम्य। कोई रागवान् कहते हैं, कोई वीतराग; कोई निष्क्रिय बताते हैं, कोई सक्रिय। किन्हींके कथनानुसार वे निरिन्द्रिय हैं तो किन्हींके मतमें सेन्द्रिय हैं॥ २६—२९॥

एक उन्हें ध्रुव कहता है तो दूसरा अध्रुव; कोई उन्हें साकार बताते हैं तो कोई निराकार। किन्हींके मतमें वे अदृश्य हैं तो किन्हींके मतमें दृश्य; कोई उन्हें वर्णनीय मानते हैं तो कोई अनिर्वचनीय। किन्हींके मतमें वे शब्दस्वरूप हैं तो किन्हींके मतमें शब्दातीत; कोई उन्हें चिन्तनका विषय मानते हैं तो कोई अचिन्त्य समझते हैं। दूसरे लोगोंका कहना है कि वे ज्ञानस्वरूप हैं, कोई उन्हें विज्ञानकी संज्ञा देते हैं। किन्हींके मतमें वे ज्ञेय हैं और किन्हींके मतमें अज्ञेय। कोई उन्हें पर बताता है तो कोई अपर॥ ३०—३३॥

एवं विकल्प्यमानं तु याथात्म्यं परमेष्ठिनः।
नाध्यवस्यन्ति मुनयो नानाप्रत्ययकारणात्॥ ३४

ये: पुनः सर्वभावेन प्रपन्नाः परमेश्वरम्।
ते हि जानन्त्ययत्नेन शिवं परमकारणम्॥ ३५

इस तरह उनके विषयमें नाना प्रकारकी कल्पनाएँ होती हैं। इन नाना प्रतीतियोंके कारण मुनिजन उन परमेश्वरके यथार्थ स्वरूपका निश्चय नहीं कर पाते। जो सर्वभावसे उन परमेश्वरकी शरणमें आ गये हैं, वे ही उन परम कारण शिवको बिना यत्नके ही जान पाते हैं॥ ३४-३५॥

यावत्पशुर्नैव पश्यत्यनीशं
कविं पुराणं भुवनस्येशितारम्।
तावद्दुःखे वर्तते बद्धपाशः
संसारेऽस्मिञ्चक्रनेमिक्रमेण ॥ ३६

जबतक पशु (जीव), जिनका दूसरा कोई ईश्वर नहीं है, उन सर्वेश्वर, सर्वज्ञ, पुराणपुरुष तथा तीनों लोकोंके शासक शिवको नहीं देखता, तबतक वह पाशोंसे बद्ध हो इस दुःखमय संसार-चक्रमें गाड़ीके पहियेकी नेमिके समान घूमता रहता है॥ ३६॥

यदा पश्यः पश्यते रुक्मवर्णं
कर्तारमीशं पुरुषं ब्रह्मयोनिम्।
तदा विद्वान्पुण्यपापे विधूय
निरञ्जनः परममुपैति साम्यम्॥ ३७

जब यह द्रष्टा जीवात्मा सबके शासक, ब्रह्माके भी आदिकारण, सम्पूर्ण जगत्‌के रचयिता, सुवर्णोपम, दिव्य प्रकाशस्वरूप परम पुरुषका साक्षात्कार कर लेता है, तब पुण्य और पाप दोनोंको भलीभाँति हटाकर निर्मल हुआ वह ज्ञानी महात्मा सर्वोत्तम समताको प्राप्त कर लेता है॥ ३७॥

इति श्रीशिवमहापुराणे सप्तम्यां वायवीयसंहितायामुत्तरखण्डे पशुपतित्वज्ञानयोगो नाम पञ्चमोऽध्यायः॥ ५॥

॥ इस प्रकार श्रीशिवमहापुराणके अन्तर्गत सातवीं वायवीयसंहिताके उत्तरखण्डमें पशुपतित्वज्ञानयोग नामक पाँचवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ ५॥

अथ षष्ठोऽध्यायः

शिवके शुद्ध, बुद्ध, मुक्त, सर्वमय, सर्वव्यापक एवं सर्वातीत स्वरूपका तथा उनकी प्रणवरूपताका प्रतिपादन

उपमन्युरुवाच

न शिवस्याणवो बन्धः कार्यो मायेय एव वा।
प्राकृतो वाथ बोद्धा वा ह्यहङ्कारात्मकस्तथा॥ १
नैवास्य मानसो बन्धो न चैत्तो नेन्द्रियात्मकः।
न च तन्मात्रबन्धोऽपि भूतबन्धो न कश्चन॥ २

उपमन्यु कहते हैं—यदुनन्दन! शिवको न तो आणव मलका ही बन्धन प्राप्त है, न कर्मका और न मायाका ही। प्राकृत, बौद्ध, अहंकार, मन, चित्त, इन्द्रिय, तन्मात्रा और पंचभूतसम्बन्धी भी कोई बन्धन उन्हें नहीं छू सका है॥ १-२॥

न च कालः कला चैव नाविद्या नियतिस्तथा।
न रागो न च विद्वेषः शम्भोरमिततेजसः॥ ३
न चास्त्यभिनिवेशोऽस्य कुशलाकुशलान्यपि।
न चास्त्यभिनिवेशोऽस्य कुशलाकुशलान्यपि।
कर्माणि तद्विपाकश्च सुखदुःखे च तत्फले॥ ४
आशयैर्नापि सम्बन्धः संस्कारैः कर्मणामपि।
भोगैश्च भोगसंस्कारैः कालत्रितयगोचरैः॥ ५

अमित तेजस्वी शम्भुको न काल, न कला, न अविद्या, न नियति, न राग और न द्वेषरूप ही बन्धन प्राप्त है। उनमें न तो सदसत्कर्मोंका अभिनिवेश है, न उन कर्मोंका परिपाक है, न उनके फलस्वरूप सुख और दुःख हैं, न उनका वासनाओंसे सम्बन्ध है, न कर्मोंके संस्कारोंसे। भूत, भविष्य और वर्तमान भोगों तथा उनके संस्कारोंसे भी उनका सम्पर्क नहीं है॥ ३—५॥

न तस्य कारणं कर्ता नादिरंतस्तथान्तरम्।
न कर्म करणं वापि नाकार्यं कार्यमेव च॥ ६

नास्य बन्धुरबन्धुर्वा नियन्ता प्रेरकोऽपि वा।
न पतिर्न गुरुस्त्राता नाधिको न समस्तथा॥ ७

न उनका कोई कारण है, न कर्ता। न आदि है, न अन्त और न मध्य है; न कर्म और करण है; न अकर्तव्य है और न कर्तव्य ही है। उनका न कोई बन्धु है और न अबन्धु; न नियन्ता है, न प्रेरक; न पति है, न गुरु है और न त्राता ही है। उनसे अधिकको चर्चा कौन करे, उनके समान भी कोई नहीं है॥ ६-७॥

न जन्ममरणे तस्य न कांक्षितमकांक्षितम्।
न विधिर्न निषेधश्च न मुक्तिर्न च बन्धनम्॥ ८

नास्ति यद्यदकल्याणं तत्तदस्य कदाचन।
कल्याणं सकलं चास्ति परमात्मा शिवो यतः॥ ९

उनका न जन्म होता है, न मरण। उनके लिये कोई वस्तु न तो वांछित है और न अवांछित ही। उनके लिये न विधि है न निषेध। न बन्धन है न मुक्ति। जो-जो अकल्याणकारी दोष हैं, वे उनमें कभी नहीं रहते। परंतु सम्पूर्ण कल्याणकारी गुण उनमें सदा ही रहते हैं; क्योंकि शिव साक्षात् परमात्मा हैं॥ ८-९॥

स शिवः सर्वमेवेदमधिष्ठाय स्वशक्तिभिः।
अप्रच्युतः स्वतो भावः स्थितः स्थाणुरतः स्मृतः॥ १०

शिवेनाधिष्ठितं यस्मात् जगत्स्थावरजङ्गमम्।
सर्वरूपः स्मृतः शर्वस्तथा ज्ञात्वा न मुह्यति॥ ११

शर्वो रुद्रो नमस्तस्मै पुरुषः सत्परो महान्।
हिरण्यबाहुर्भगवान् हिरण्यपतिरीश्वरः॥ १२

अम्बिकापतिरीशानः पिनाकी वृषवाहनः।
एको रुद्रः परं ब्रह्म पुरुषः कृष्णपिङ्गलः॥ १३

वे शिव अपनी शक्तियोंद्वारा इस सम्पूर्ण जगत्में व्याप्त होकर अपने स्वभावसे च्युत न होते हुए सदा ही स्थित रहते हैं; इसलिये उन्हें स्थाणु कहते हैं। यह सम्पूर्ण चराचर जगत् शिवसे अधिष्ठित है; अतः भगवान् शिव सर्वरूप माने गये हैं। जो ऐसा जानता है, वह कभी मोहमें नहीं पड़ता। रुद्र सर्वरूप हैं। उन्हें नमस्कार है। वे सत्स्वरूप, परम महान् पुरुष, हिरण्यबाहु भगवान्, हिरण्यपति, ईश्वर, अम्बिकापति, ईशान, पिनाकपाणि तथा वृषभवाहन हैं। एकमात्र रुद्र ही परब्रह्म परमात्मा हैं। वे ही कृष्ण-पिंगलवर्णवाले पुरुष हैं॥ १०—१३॥

बालाग्रमात्रो हृन्मध्ये विचिन्त्यो दहरान्तरे।
हिरण्यकेशः पद्माक्षो ह्यरुणस्ताम्र एव च॥ १४

योऽवसर्पत्यसौ देवो नीलग्रीवो हिरण्मयः।
सौम्योऽघोरस्तथा मिश्रश्चाक्षरश्चामृतोऽव्ययः॥ १५

स पुंविशेषः परमो भगवानन्तकान्तकः।
चेतनाचेतनोन्मुक्तः प्रपञ्चाच्च परात्परः॥ १६

वे हृदयके भीतर कमलके मध्यभागमें केशके अग्रभागकी भाँति सूक्ष्मरूपसे चिन्तन करनेयोग्य हैं। उनके केश सुनहरे रंगके हैं। नेत्र कमलके समान सुन्दर हैं। अंगकान्ति अरुण और ताम्रवर्णकी है। वे सुवर्णमय नीलकण्ठ देव सदा विचरते रहते हैं। उन्हें सौम्य, घोर, मिश्र, अक्षर, अमृत और अव्यय कहा गया है। वे पुरुषविशेष परमेश्वर भगवान् शिव कालके भी काल हैं। चेतन और अचेतनसे परे हैं। इस प्रपंचसे भी परात्पर हैं॥ १४—१६॥

शिवेनातिशयत्वेन ज्ञानैश्वर्ये विलोकिते।
लोकेशातिशयत्वेन स्थितं प्राहुर्मनीषिणः॥ १७

शिवमें ऐसे ज्ञान और ऐश्वर्य देखे गये हैं, जिनसे बढ़कर ज्ञान और ऐश्वर्य अन्यत्र नहीं हैं। मनीषी पुरुषोंने भगवान् शिवको लोकमें सबसे अधिक

प्रतिसर्गप्रसूतानां ब्रह्मणां शास्त्रविस्तरम्।
उपदेष्टा स एवादौ कालावच्छेदवर्तिनाम्॥ १८

ऐश्वर्यशाली पदपर प्रतिष्ठित बताया है। प्रत्येक कल्पमें उत्पन्न होकर एक सीमित कालतक रहनेवाले ब्रह्माओंको आदिकालमें विस्तारपूर्वक शास्त्रका उपदेश देनेवाले भगवान् शिव ही हैं॥ १७-१८॥

कालावच्छेदयुक्तानां गुरूणामप्यसौ गुरुः।
सर्वेषामेव सर्वेशः कालावच्छेदवर्जितः॥ १९
शुद्धा स्वाभाविकी तस्य शक्तिः सर्वातिशायिनी।
ज्ञानमप्रतिमं नित्यं वपुरत्यन्तनिर्मलम्॥ २०

एक सीमित कालतक रहनेवाले गुरुओंके भी वे गुरु हैं। वे सर्वेश्वर सदा सभीके गुरु हैं। कालकी सीमा उन्हें छू नहीं सकती। उनकी शुद्ध स्वाभाविक शक्ति सबसे बढ़कर है। उन्हें अनुपम ज्ञान और नित्य अक्षय शरीर प्राप्त है॥ १९-२०॥

ऐश्वर्यमप्रतिद्वन्द्वं सुखमात्यन्तिकं बलम्।
तेजः प्रभावो वीर्यं च क्षमा कारुण्यमेव च॥ २१
परिपूर्णस्य सर्गाद्यैर्नात्मनोऽस्ति प्रयोजनम्।
परानुग्रह एवास्य फलं सर्वस्य कर्मणः॥ २२

उनके ऐश्वर्यकी कहीं तुलना नहीं है। उनका सुख अक्षय और बल अनन्त है। उनमें असीम तेज, प्रभाव, पराक्रम, क्षमा और करुणा भरी है। वे नित्य परिपूर्ण हैं। उन्हें सृष्टि आदिसे अपने लिये कोई प्रयोजन नहीं है। दूसरोंपर परम अनुग्रह ही उनके समस्त कर्मोंका फल है॥ २१-२२॥

प्रणवो वाचकस्तस्य शिवस्य परमात्मनः।
शिवरुद्रादिशब्दानां प्रणवो हि परः स्मृतः॥ २३
शम्भोः प्रणववाच्यस्य भावनात्तज्जपादपि।
या सिद्धिः सा परा प्राप्या भवत्येव न संशयः॥ २४

प्रणव उन परमात्मा शिवका वाचक है। शिव, रुद्र आदि नामोंमें प्रणव ही सबसे उत्कृष्ट माना गया है। प्रणववाच्य शम्भुके चिन्तन और जपसे जो सिद्धि प्राप्त होती है, वही परा सिद्धि है, इसमें संशय नहीं है॥ २३-२४॥

तस्मादेकाक्षरं देवमाहुरागमपारगाः।
वाच्यवाचकयोरैक्यं मन्यमाना मनस्विनः॥ २५
अस्य मात्राः समाख्याताश्चतस्रो वेदमूर्द्धनि।
अकारश्चाप्युकारश्च मकारो नाद इत्यपि॥ २६
अकारं बह्वृचं प्राहुरुकारो यजुरुच्यते।
मकारः सामनादोऽस्य श्रुतिराथर्वणी स्मृता॥ २७

इसीलिये शास्त्रोंके पारंगत मनस्वी विद्वान् वाच्य और वाचककी एकता स्वीकार करते हुए महादेवजीको एकाक्षरात्मक प्रणवरूप कहते हैं। माण्डूक्य-उपनिषद्में प्रणवकी चार मात्राएँ बतायी गयी हैं—अकार, उकार, मकार और नाद। अकारको ऋग्वेद कहते हैं। उकार यजुर्वेदरूप कहा गया है। मकार सामवेद है और नाद अथर्ववेदकी श्रुति है॥ २५—२७॥

अकारश्च महाबीजं रजः स्त्रष्टा चतुर्मुखः।
उकारः प्रकृतिर्योनिः सत्त्वं पालयिता हरिः॥ २८
मकारः पुरुषो बीजं तमः संहारको हरः।
नादः परः पुमानीशो निर्गुणो निष्क्रियः शिवः॥ २९

अकार महाबीज है, वह रजोगुण तथा सृष्टिकर्ता ब्रह्मा है। उकार प्रकृतिरूपा योनि है, वह सत्त्वगुण तथा पालनकर्ता श्रीहरि है। मकार जीवात्मा एवं बीज है, वह तमोगुण तथा संहारकर्ता रुद्र है। नाद परम पुरुष परमेश्वर है, वह निर्गुण एवं निष्क्रिय शिव है॥ २८-२९॥

सर्वं तिसृभिरेवेदं मात्राभिर्निखिलं त्रिधा।
अभिधाय शिवात्मानं बोधयत्यर्धमात्रया॥ ३०

इस प्रकार प्रणव अपनी तीन मात्राओंके द्वारा ही तीन रूपोंमें इस जगत्का प्रतिपादन करके अपनी अर्धमात्रा (नाद)-के द्वारा शिवस्वरूपका बोध कराता है॥ ३०॥

यस्मात्परं नापरमस्ति किञ्चिद्-
यस्मान्नाणीयो न ज्यायोऽस्ति किञ्चित्।
वृक्ष इव स्तब्धो दिवि तिष्ठत्येक-
स्तेनेदं पूर्णं पुरुषेण सर्वम्॥ ३१

जिनसे श्रेष्ठ दूसरा कुछ भी नहीं है, जिनसे बढ़कर कोई न तो अधिक सूक्ष्म है और न महान् ही है तथा जो अकेले ही वृक्षकी भाँति निश्चलभावसे प्रकाशमय आकाशमें स्थित हैं, उन परम पुरुष परमेश्वर शिवसे यह सम्पूर्ण जगत् परिपूर्ण है॥ ३१॥

इति श्रीशिवमहापुराणे सप्तम्यां वायवीयसंहितायामुत्तरखण्डे शिवतत्त्ववर्णनं नाम षष्ठोऽध्यायः॥ ६॥

॥ इस प्रकार श्रीशिवमहापुराणके अन्तर्गत सातवीं वायवीयसंहिताके उत्तरखण्डमें शिवतत्त्ववर्णन नामक छठाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ ६॥

अथ सप्तमोऽध्यायः

परमेश्वरकी शक्तिका ऋषियोंद्वारा साक्षात्कार, शिवके प्रसादसे प्राणियोंकी मुक्ति, शिवकी सेवा-भक्ति तथा पाँच प्रकारके शिवधर्मका वर्णन

उपमन्युरुवाच

शक्तिः स्वाभाविकी तस्य विद्या विश्वविलक्षणा।
एकानेकस्य रूपेण भाति भानोरिव प्रभा॥ १

उपमन्यु कहते हैं— परमेश्वर शिवकी स्वाभाविक शक्ति विद्या है, जो सबसे विलक्षण है। वह एक होकर भी अनेक रूपसे भासित होती है। जैसे सूर्यकी प्रभा एक होकर भी अनेक रूपमें प्रकाशित होती है॥ १॥

अनन्ताः शक्तयो यस्या इच्छाज्ञानक्रियादयः।
मायाद्याश्चाभवन्वह्नेर्विस्फुलिंगा यथा तथा॥ २

सदाशिवेश्वराद्या हि विद्याविद्येश्वरादयः।
अभवन् पुरुषाश्चास्याः प्रकृतिश्च परात्परा॥ ३

उस विद्याशक्तिसे इच्छा, ज्ञान, क्रिया और माया आदि अनेक शक्तियाँ उत्पन्न हुई हैं, ठीक उसी तरह जैसे अग्निसे बहुत-सी चिनगारियाँ प्रकट होती हैं। उसीसे सदाशिव और ईश्वर आदि तथा विद्या और विद्येश्वर आदि पुरुष भी प्रकट हुए हैं। परात्पर प्रकृति भी उसीसे उत्पन्न हुई है॥ २-३॥

महदादिविशेषान्तास्त्वजाद्याश्चापि मूर्त्तयः।
यच्चान्यदस्ति तत्सर्वं तस्याः कार्यं न संशयः॥ ४

सा शक्तिः सर्वगा सूक्ष्मा प्रबोधानन्दरूपिणी।
शक्तिमानुच्यते देवः शिवः शीतांशुभूषणः॥ ५

महत्तत्त्वसे लेकर विशेषपर्यन्त सारे विकार तथा अज (ब्रह्मा) आदि मूर्तियाँ भी उसीसे प्रकट हुई हैं। इनके सिवा जो अन्य वस्तुएँ हैं, वे सब भी उसी शक्तिके कार्य हैं, इसमें संशय नहीं है। वह शक्ति सर्वव्यापिनी, सूक्ष्मा तथा ज्ञानानन्दरूपिणी है। उसीसे शीतांशुभूषण भगवान् शिव शक्तिमान् कहलाते हैं॥ ४-५॥

वेद्यः शिवः शिवा विद्या प्रज्ञा चैव श्रुतिः स्मृतिः।
धृतिरेषा स्थितिर्निष्ठा ज्ञानेच्छाकर्मशक्तयः॥ ६

आज्ञा चैव परं ब्रह्म द्वे विद्ये च परापरे।
शुद्धविद्या शुद्धकला सर्वं शक्तिकृतं यतः॥ ७

माया च प्रकृतिर्जीवो विकारो विकृतिस्तथा।
असच्च सच्च यत्किंचित्तया सर्वमिदं ततम्॥ ८

शक्तिमान्—शिव वेद्य हैं और शक्तिरूपिणी—शिवा विद्या हैं। वे शक्तिरूपा शिवा ही प्रज्ञा, श्रुति, स्मृति, धृति, स्थिति, निष्ठा, ज्ञानशक्ति, इच्छाशक्ति, कर्मशक्ति, आज्ञाशक्ति, परब्रह्म, परा और अपरा नामकी दो विद्याएँ, शुद्ध विद्या और शुद्ध कला हैं; क्योंकि सब कुछ शक्तिका ही कार्य है। माया, प्रकृति, जीव, विकार, विकृति, असत् और सत् आदि जो कुछ भी उपलब्ध होता है, वह सब उस शक्तिसे ही व्याप्त है॥ ६—८॥

सा देवी मायया सर्वं ब्रह्माण्डं सचराचरम्।
मोहयत्यप्रयत्नेन मोचयत्यपि लीलया॥ ९

अनया सह सर्वेशः सप्तविंशप्रकारया।
विश्वं व्याप्य स्थितस्तस्मात् मुक्तिरत्र प्रवर्तते॥ १०

वे शक्तिरूपिणी शिवादेवी मायाद्वारा समस्त चराचर ब्रह्माण्डको अनायास ही मोहमें डाल देती और लीलापूर्वक उसे मोहके बन्धनसे मुक्त भी कर देती हैं। इस शक्तिके सत्ताईस प्रकार हैं, सत्ताईस प्रकारवाली इस शक्तिके साथ सर्वेश्वर शिव सम्पूर्ण विश्वको व्याप्त करके स्थित हैं। इन्हींके चरणोंमें मुक्ति विराजती है॥ ९-१०॥

मुमुक्षवः पुरा केचिन्मुनयो ब्रह्मवादिनः।
संशयाविष्टमनसो विमृशन्ति यथातथम्॥ ११

किं कारणं कुतो जाता जीवामः केन वा वयम्।
कुत्रास्माकं सम्प्रतिष्ठा केन वाधिष्ठिता वयम्॥ १२

केन वर्तामहे शश्वत्सुखेष्वन्येषु चानिशम्।
अविलङ्घ्या च विश्वस्य व्यवस्था केन वा कृता॥ १३

कालस्य भावो नियतिर्यदृच्छा नात्र युज्यते।
भूतानि योनिः पुरुषो योगी चैषां परोऽथवा॥ १४

अचेतनत्वात्कालादेश्चेतनत्वेऽपि चात्मनः।
सुखदुःखानि भूतत्वादनीशत्वाद्विचार्यते॥ १५

पूर्वकालकी बात है, संसारबन्धनसे छूटनेकी इच्छावाले कुछ ब्रह्मवादी मुनियोंके मनमें यह संशय हुआ। वे परस्पर मिलकर यथार्थरूपसे विचार करने लगे—इस जगत्का कारण क्या है? हम किससे उत्पन्न हुए हैं और किससे जीवन धारण करते हैं? हमारी प्रतिष्ठा कहाँ है? हमारा अधिष्ठाता कौन है? हम किसके सहयोगसे सदा सुखमें और दुःखमें रहते हैं? किसने इस विश्वकी अलंघनीय व्यस्था की है? यदि कहें काल, स्वभाव, नियति (निश्चित फल देनेवाला कर्म) और यदृच्छा (आकस्मिक घटना) इसमें कारण हों तो यह कथन युक्तिसंगत नहीं जान पड़ता। पाँचों महाभूत तथा जीवात्मा भी कारण नहीं हैं। इन सबका संयोग तथा अन्य कोई भी कारण नहीं है; क्योंकि ये काल आदि अचेतन हैं। जीवात्माके चेतन होनेपर भी वह सुख-दुःखसे अभिभूत तथा असमर्थ होनेसे इस जगत्का कारण नहीं हो सकता। अतः कौन कारण है, इसका विचार करना चाहिये॥ ११—१५॥

तद्ध्यानयोगानुगताः प्रपश्यन् शक्तिमैश्वरीम्।
पाशविच्छेदिकां साक्षान्निगूढां स्वगुणैर्भृशम्॥ १६

तया विच्छिन्नपाशास्ते सर्वकारणकारणम्।
शक्तिमन्तं महादेवमपश्यन्दिव्यचक्षुषा॥ १७

यः कारणान्यशेषाणि कालात्मसहितानि च।
अप्रमेयोऽनया शक्त्या सकलं योऽधितिष्ठति॥ १८

[इस प्रकार आपसमें विचार करनेपर जब वे युक्तियोंद्वारा किसी निर्णयतक न पहुँच सके,] तब उन्होंने ध्यानयोगमें स्थित होकर परमेश्वरकी स्वरूपभूता अचिन्त्य शक्तिका साक्षात्कार किया, जो अपने ही गुणोंसे— सत्त्व, रज और तमसे ढकी है तथा उन तीनों गुणोंसे परे है। परमेश्वरकी वह साक्षात् शक्ति समस्त पाशोंका विच्छेद करनेवाली है। उसके द्वारा बन्धन काट दिये जानेपर जीव अपनी दिव्य दृष्टिसे उन सर्वकारण-कारण शक्तिमान् महादेवजीका दर्शन करने लगते हैं, जो कालसे लेकर जीवात्मातक पूर्वोक्त समस्त कारणोंपर तथा सम्पूर्ण विश्वपर अपनी इस शक्तिके द्वारा ही शासन करते हैं। वे परमात्मा अप्रमेय हैं॥ १६—१८॥

ततः प्रसादयोगेन योगेन परमेण च।
दृष्टेन भक्तियोगेन दिव्यां गतिमवाप्नुयुः॥ १९

तस्मात् सह तथा शक्त्या हृदि पश्यन्ति ये शिवम्।
तेषां शाश्वतिकी शान्तिर्नेतरेषामिति श्रुतिः॥ २०

न हि शक्तिमतः शक्त्या विप्रयोगोऽस्ति जातुचित्।
तस्मात् शक्तेः शक्तिमतस्तादात्म्यान्निर्वृतिर्द्वयोः॥ २१

तदनन्तर परमेश्वरके प्रसादयोग, परमयोग तथा सुदृढ़ भक्तियोगके द्वारा उन मुनियोंने दिव्य गति प्राप्त कर ली। श्रीकृष्ण! जो अपने हृदयमें शक्तिसहित भगवान् शिवका दर्शन करते हैं, उन्हींको सनातन शान्ति प्राप्त होती है, दूसरोंको नहीं, यह श्रुतिका कथन है। शक्तिमान्‌का शक्तिसे कभी वियोग नहीं होता। अतः शक्ति और शक्तिमान् दोनोंके तादात्म्यसे परमानन्दकी प्राप्ति होती है॥ १९—२१॥

क्रमो विवक्षितो नूनं विमुक्तौ ज्ञानकर्मणोः।
प्रसादे सति सा मुक्तिर्यस्मात्करतले स्थिता॥ २२

देवो वा दानवो वापि पशुर्वा विहगोऽपि वा।
कीरो वाथ कृमिर्वापि मुच्यते तत्प्रसादतः॥ २३

मुक्तिकी प्राप्तिमें निश्चय ही ज्ञान और कर्मका कोई क्रम विवक्षित नहीं है, जब [शिव और शक्तिकी] कृपा हो जाती है, तब वह मुक्ति हाथमें आ जाती है। देवता, दानव, पशु, पक्षी तथा कीड़े-मकोड़े भी उनकी कृपासे मुक्त हो जाते हैं॥ २२-२३॥

गर्भस्थो जायमानो वा बालो वा तरुणोऽपि वा।
वृद्धो वा म्रियमाणो वा स्वर्गस्थो वाथ नारकी॥ २४
पतितो वापि धर्मात्मा पण्डितो मूढ एव वा।
प्रसादे तत्क्षणादेव मुच्यते नात्र संशयः॥ २५

गर्भका बच्चा, जन्मता हुआ बालक, शिशु, तरुण, वृद्ध, मुमूर्षु, स्वर्गवासी, नारकी, पतित, धर्मात्मा, पण्डित अथवा मूर्ख साम्बशिवकी कृपा होनेपर तत्काल मुक्त हो जाते हैं, इसमें संशय नहीं है॥ २४-२५॥

अयोग्यानां च कारुण्याद्भक्तानां परमेश्वरः।
प्रसीदति न संदेहो विगृह्य विविधान् मलान्॥ २६

प्रसादादेव सा भक्तिः प्रसादो भक्तिसम्भवः।
अवस्थाभेदमुत्प्रेक्ष्य विद्वांस्तत्र न मुह्यति॥ २७

परमेश्वर अपनी स्वाभाविक करुणासे अयोग्य भक्तोंके भी विविध मलोंको दूर करके उनपर कृपा करते हैं, इसमें सन्देह नहीं है। भगवान्‌की कृपासे ही भक्ति होती है और भक्तिसे ही उनकी कृपा होती है। अवस्थाभेदका विचार करके विद्वान् पुरुष इस विषयमें मोहित नहीं होता है॥ २६-२७॥

प्रसादपूर्विका येयं भुक्तिमुक्तिविधायिनी।
नैव सा शक्यते प्राप्तुं नरैरेकेन जन्मना॥ २८

अनेकजन्मसिद्धानां श्रौतस्मार्तानुवर्तिनाम्।
विरक्तानां प्रबुद्धानां प्रसीदति महेश्वरः॥ २९

प्रसन्ने सति देवेशे पशौ तस्मिन् प्रवर्तते।
अस्ति नाथो ममेत्यल्पा भक्तिर्बुद्धिपुरःसरा॥ ३०

तपसा विविधैः शैवैर्धर्मैः संयुज्यते नरः।
तत्प्रयोगे तदभ्यासस्ततो भक्तिः परा भवेत्॥ ३१

कृपाप्रसादपूर्वक जो यह भक्ति होती है, वह भोग और मोक्ष दोनोंकी प्राप्ति करानेवाली है। उसे मनुष्य एक जन्ममें नहीं प्राप्त कर सकता। अनेक जन्मोंतक श्रौत-स्मार्त कर्मोंका अनुष्ठान करके सिद्ध हुए विरक्त एवं ज्ञानसम्पन्न पुरुषोंपर महेश्वर प्रसन्न होते और कृपा करते हैं। देवेश्वर शिवके प्रसन्न होनेपर उस पशु (जीव)-में बुद्धिपूर्वक थोड़ी-सी भक्तिका उदय होता है। तब वह यह अनुभव करने लगता है कि भगवान् शिव मेरे स्वामी हैं। फिर तपस्यापूर्वक वह नाना प्रकारके शैवधर्मोंके पालनमें संलग्न होता है। उन धर्मोंके पालनमें बारंबार लगे रहनेसे उसके हृदयमें पराभक्तिका प्रादुर्भाव होता है॥ २८—३१॥

परया च तया भक्त्या प्रसादो लभ्यते परः।
प्रसादात्सर्वपाशेभ्यो मुक्तिर्मुक्तस्य निर्वृतिः॥ ३२

अल्पभावोऽपि यो मर्त्यः सोऽपि जन्मत्रयात्परम्।
न योनियन्त्रपीडायै भवेन्नैवात्र संशयः॥ ३३

उस पराभक्तिसे परमेश्वरका परम प्रसाद उपलब्ध होता है। प्रसादसे सम्पूर्ण पाशोंसे छुटकारा मिलता है और छुटकारा मिल जानेपर परमानन्दकी प्राप्ति होती है, जिस मनुष्यका भगवान् शिवमें थोड़ा-सा भी भक्तिभाव है, वह तीन जन्मोंके बाद अवश्य मुक्त हो जाता है। उसे इस संसारमें योनियन्त्रकी पीड़ा नहीं सहनी पड़ती॥ ३२-३३॥

साङ्गानङ्गा च या सेवा सा भक्तिरिति कथ्यते।
सा पुनर्भिद्यते त्रेधा मनोवाक्कायसाधनैः॥ ३४

शिवरूपादिचिन्ता या सा सेवा मानसी स्मृता।
जपादिर्वाचिकी सेवा कर्मपूजादि कायिकी॥ ३५

सांगा (अंगसहित) और अनंगा (अंगरहित) जो सेवा है, उसीको भक्ति कहते हैं। उसके फिर तीन भेद होते हैं—मानसिक, वाचिक और शारीरिक। शिवके रूप आदिका जो चिन्तन है, उसे मानसिक सेवा कहते हैं। जप आदि वाचिक सेवा है और पूजन आदि कर्म शारीरिक सेवा है॥ ३४-३५॥

सेयं त्रिसाधना सेवा शिवधर्मश्च कथ्यते।
स तु पञ्चविधः प्रोक्तः शिवेन परमात्मना॥ ३६

तपः कर्म जपो ध्यानं ज्ञानं चेति समासतः।
कर्म लिङ्गार्चनाद्यं च तपश्चान्द्रायणादिकम्॥ ३७

जपस्त्रिधा शिवाभ्यासश्चिन्ता ध्यानं शिवस्य तु।
शिवागमोक्तं यज्ज्ञानं तदत्र ज्ञानमुच्यते॥ ३८

इन त्रिविध साधनोंसे सम्पन्न होनेवाली जो यह सेवा है, इसे 'शिवधर्म' भी कहते हैं। परमात्मा शिवने पाँच प्रकारका शिवधर्म बताया है—तप, कर्म, जप, ध्यान और ज्ञान। लिंगपूजन आदिको 'कर्म' कहते हैं। चान्द्रायण आदि व्रतोंका नाम 'तप' है। [वाचिक, उपांशु और मानस—] तीन प्रकारका जो शिव-मन्त्रका अभ्यास (आवृत्ति) है, उसीको 'जप' कहते हैं। शिवका चिन्तन ही 'ध्यान' कहलाता है तथा शिवसम्बन्धी आगमोंमें जिस ज्ञानका वर्णन है, उसीको यहाँ 'ज्ञान' शब्दसे कहा गया है॥ ३६—३८॥

श्रीकण्ठेन शिवेनोक्तं शिवायै च शिवागमः।
शिवाश्रितानां कारुण्याच्छ्रेयसामेकसाधनम्॥ ३९

तस्माद्विवर्द्धयेद्भक्तिं शिवे परमकारणे।
त्यजेच्च विषयासङ्गं श्रेयोऽर्थी मतिमान्नरः॥ ४०

श्रीकण्ठ शिवने शिवाके प्रति जिस ज्ञानका उपदेश किया है, वही शिवागम है। शिवके आश्रित जो भक्तजन हैं, उनपर कृपा करके कल्याणके एकमात्र साधक इस ज्ञानका उपदेश किया गया है। अतः कल्याणकामी बुद्धिमान् पुरुषको चाहिये कि वह परम कारण शिवमें भक्तिको बढ़ाये तथा विषयासक्तिका त्याग करे॥ ३९-४०॥

इति श्रीशिवमहापुराणे सप्तम्यां वायवीयसंहितायामुत्तरखण्डे
शिवतत्त्वकथनं नाम सप्तमोऽध्यायः॥ ७॥

॥ इस प्रकार श्रीशिवमहापुराणके अन्तर्गत सातवीं वायवीयसंहिताके उत्तरखण्डमें शिवतत्त्वकथन नामक सातवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ ७॥

अथाष्टमोऽध्यायः

शिव-ज्ञान, शिवकी उपासनासे देवताओंको उनका दर्शन, सूर्यदेवमें शिवकी पूजा करके अर्घ्यदानकी विधि तथा व्यासावतारोंका वर्णन

कृष्ण उवाच

भगवन् श्रोतुमिच्छामि शिवेन परिभाषितम्।
वेदसारं शिवज्ञानं स्वाश्रितानां विमुक्तये॥ १

श्रीकृष्ण बोले—भगवन्! अब मैं उस शिव-ज्ञानको सुनना चाहता हूँ, जो वेदोंका सारतत्त्व है तथा जिसे भगवान् शिवने अपने शरणागत भक्तोंकी मुक्तिके लिये कहा है॥ १॥

अभक्तानामबुद्धीनामयुक्तानामगोचरम् ।
अर्थैर्दशार्द्धैः संयुक्तं गूढमप्राज्ञनिन्दितम्॥ २

वर्णाश्रमकृतैर्द्धर्मैर्विपरीतं क्वचित्समम्।
वेदात् षडङ्गादुद्धृत्य सांख्याद्योगाच्च कृत्स्नशः॥ ३

शतकोटिप्रमाणेन विस्तीर्णं ग्रंथसंख्यया।
कथितं परमेशेन तत्र पूजा कथं प्रभोः॥ ४

वह भक्तिहीन, [निर्मल] बुद्धिसे रहित तथा चंचल चित्तवाले लोगोंके लिये अज्ञेय है; वह [शिवके सर्गादि पंचकृत्यरूप] पाँच प्रयोजनोंसे युक्त, अतिगम्भीर तथा बुद्धिमानोंके द्वारा समादृत है, वर्णाश्रम धर्मोंसे कहीं विपरीत तथा कहीं उनके अनुकूल है और अंगोंसहित वेदोंसे एवं सांख्य तथा योगसे पूर्णतः ग्रहण करके सौ करोड़ श्लोकसंख्यामें विस्तारसे शिवजीके द्वारा कहा गया है। उसमें प्रभु शिवकी पूजा किस प्रकार बतायी गयी है?॥ २—४॥

कस्याधिकारः पूजादौ ज्ञानयोगादयः कथम्।
तत्सर्वं विस्तरादेव वक्तुमर्हसि सुव्रत॥ ५

पूजा आदिमें किसका अधिकार है तथा ज्ञानयोग आदि कैसे सिद्ध होते हैं? उत्तम व्रतका पालन करनेवाले मुनीश्वर! ये सब बातें विस्तारपूर्वक बताइये॥ ५॥

उपमन्युरुवाच

शैवं संक्षिप्य वेदोक्तं शिवेन परिभाषितम्।
स्तुतिनिंदादिरहितं सद्यः प्रत्ययकारकम्॥ ६

उपमन्युने कहा—भगवान् शिवने जिस वेदोक्त ज्ञानको संक्षिप्त करके कहा है, वही शैव-ज्ञान है। वह निन्दा-स्तुति आदिसे रहित तथा श्रवणमात्रसे ही अपने प्रति विश्वास उत्पन्न करनेवाला है॥ ६॥

गुरुप्रसादजं दिव्यमनायासेन मुक्तिदम्।
कथयिष्ये समासेन तस्य शक्यो न विस्तरः॥ ७

यह दिव्य ज्ञान गुरुकी कृपासे प्राप्त होता है और अनायास ही मोक्ष देनेवाला है। मैं उसे संक्षेपमें ही बताऊँगा; क्योंकि उसका विस्तारपूर्वक वर्णन कोई कर ही नहीं सकता है॥ ७॥

सिसृक्षया पुराव्यक्ताच्छिवः स्थाणुर्महेश्वरः।
सत्कार्यकारणोपेतः स्वयमाविरभूत्प्रभुः॥ ८

पूर्वकालमें महेश्वर शिव सृष्टिकी इच्छा करके सत्कार्य-कारणोंसे नियुक्त हो स्वयं ही अव्यक्तसे व्यक्तरूपमें प्रकट हुए॥ ८॥

जनयामास च तदा ऋषिर्विश्वाधिकः प्रभुः।
देवानां प्रथमं देवं ब्रह्माणं ब्रह्मणस्पतिम्॥ ९

उस समय ज्ञानस्वरूप भगवान् विश्वनाथने देवताओंमें सबसे प्रथम देवता वेदपति ब्रह्माजीको उत्पन्न किया॥ ९॥

ब्रह्मापि पितरं देवं जायमानं न्यवैक्षत।
तं जायमानं जनको देवः प्रापश्यदाज्ञया॥ १०

ब्रह्माने उत्पन्न होकर अपने पिता महादेवको देखा तथा ब्रह्माजीके जनक महादेवजीने भी उत्पन्न हुए ब्रह्माकी ओर स्नेहपूर्ण दृष्टिसे देखा और उन्हें

दृष्टो रुद्रेण देवोऽसावसृजद्विश्वमीश्वरः।
वर्णाश्रमव्यवस्थां च चकार स पृथक् पृथक्॥ ११

सृष्टि रचनेकी आज्ञा दी। रुद्रदेवकी कृपादृष्टिसे देखे जानेपर सृष्टिके सामर्थ्यसे युक्त हो उन ब्रह्मदेवने समस्त संसारकी रचना की और पृथक्-पृथक् वर्णों तथा आश्रमोंकी व्यवस्था की॥ १०-११॥

सोमं ससर्ज यज्ञार्थे सोमाद् द्यौः समजायत।
धरा च वह्निः सूर्यश्च यज्ञो विष्णुः शचीपतिः॥ १२

ते चान्ये च सुरा रुद्रं रुद्राध्यायेन तुष्टुवुः।
प्रसन्नवदनस्तस्थौ देवानामग्रतः प्रभुः॥ १३

उन्होंने यज्ञके लिये सोमकी सृष्टि की। सोमसे द्युलोकका प्रादुर्भाव हुआ। फिर पृथ्वी, अग्नि, सूर्य, यज्ञमय विष्णु और शचीपति इन्द्र प्रकट हुए। वे सब तथा अन्य देवता रुद्राध्याय पढ़कर रुद्रदेवकी स्तुति करने लगे। तब भगवान् महेश्वर अपनी लीला प्रकट करनेके लिये उन सबका ज्ञान हरणकर प्रसन्नमुखसे उन देवताओंके आगे खड़े हो गये॥ १२-१३॥

अपहृत्य स्वलीलार्थं तेषां ज्ञानं महेश्वरः।
तमपृच्छंस्ततो देवाः को भवानिति मोहिताः॥ १४
सोऽब्रवीद्भगवान् रुद्रो ह्यहमेकः पुरातनः।
आसं प्रथममेवाहं वर्तामि च सुरोत्तमाः॥ १५
भविष्यामि च मत्तोऽन्यो व्यतिरिक्तो न कश्चन।
अहमेव जगत् सर्वं तर्पयामि स्वतेजसा॥ १६

उस समय लीलावश भगवान् महेश्वरने उनके ज्ञानका अपहरण कर लिया, तब देवताओंने मोहित होकर उनसे पूछा—'आप कौन हैं?' वे भगवान् रुद्र बोले—'श्रेष्ठ देवताओ ! सबसे पहले मैं ही था। इस समय भी सर्वत्र मैं ही हूँ और भविष्यमें भी मैं ही रहूँगा। मेरे सिवा दूसरा कोई नहीं है। मैं ही अपने तेजसे सम्पूर्ण जगत्को तृप्त करता हूँ॥ १४—१६॥

मत्तोऽधिकः समो नास्ति मां यो वेद स मुच्यते।
इत्युक्त्वा भगवान् रुद्रस्तत्रैवान्तरधत्त सः॥ १७

मुझसे अधिक और मेरे समान कोई नहीं है। जो मुझे जानता है, वह मुक्त हो जाता है।' ऐसा कहकर भगवान् रुद्र वहीं अन्तर्धान हो गये॥ १७॥

अपश्यन्तस्तमीशानं स्तुवन्तश्चैव सामभिः।
व्रतं पाशुपतं कृत्वा त्वथर्वशिरसि स्थितम्॥ १८
भस्मसंछन्नसर्वांगा बभूवुरमरास्तदा।
अथ तेषां प्रसादार्थं पशूनां पतिरीश्वरः॥ १९
सगणाश्चोमया सार्द्धं सान्निध्यमकरोत् प्रभुः।

जब देवताओंने उन महेश्वरको नहीं देखा, तब वे सामवेदके मन्त्रोंद्वारा उनकी स्तुति करने लगे। अथर्वशीर्षमें वर्णित पाशुपत-व्रतको ग्रहण करके उन अमरगणोंने अपने सम्पूर्ण अंगोंमें भस्म लगा लिया। यह देख उनपर कृपा करनेके लिये पशुपति महादेव अपने गणों और उमाके साथ उनके निकट आये॥ १८-१९१/२॥

यं विनिद्रा जितश्वासा योगिनो दग्धकिल्बिषाः॥ २०
हृदि पश्यन्ति तं देवं ददृशुर्देवपुङ्गवाः।
यामाहुः परमां शक्तिमीश्वरेच्छानुवर्तिनीम्॥ २१
तामपश्यन् महेशस्य वामतो वामलोचनाम्।

प्राणायामके द्वारा श्वासको जीतकर निद्रारहित एवं निष्पाप हुए योगीजन अपने हृदयमें जिनका दर्शन करते हैं, उन्हीं महादेवको उन देवेश्वरोंने वहाँ देखा। जिन्हें ईश्वरकी इच्छाका अनुसरण करनेवाली पराशक्ति कहते हैं, उन वामलोचना भवानीको भी उन्होंने वामदेव महेश्वरके वामभागमें विराजमान देखा॥ २०-२११/२॥

ये विनिर्धूतसंसाराः प्राप्ताः शैवं परं पदम्॥ २२

नित्यसिद्धाश्च ये चान्ये ते च दृष्टा गणेश्वराः।
अथ तं तुष्टुवुर्देवा देव्या सह महेश्वरम्॥ २३

स्तोत्रैर्माहेश्वरैर्दिव्यैः श्रौतैः पौराणिकैरपि।
देवोऽपि देवानालोक्य घृणया वृषभध्वजः॥ २४

तुष्टोऽस्मीत्याह सुप्रीतः स्वभावमधुरां गिरम्।
अथ सुप्रीतमनसं प्रणिपत्य वृषध्वजम्।
अर्थमर्हत्तमं देवाः पप्रच्छुरिदमादरात्॥ २५

जो संसारको त्यागकर शिवके परमपदको प्राप्त हो चुके हैं तथा जो नित्य सिद्ध हैं, उन गणेश्वरोंका भी देवताओंने दर्शन किया। तत्पश्चात् देवता महेश्वरसम्बन्धी वैदिक और पौराणिक दिव्य स्तोत्रोंद्वारा देवीसहित महेश्वरकी स्तुति करने लगे। तब वृषभध्वज महादेवजी भी उन देवताओंकी ओर कृपापूर्वक देखकर अत्यन्त प्रसन्न हो स्वभावतः मधुर वाणीमें बोले—'मैं तुमलोगोंपर बहुत संतुष्ट हूँ।' उन प्रार्थनीय एवं पूज्यतम भगवान् वृषभध्वजको अत्यन्त प्रसन्नचित्त जान देवताओंने प्रणाम करके आदरपूर्वक उनसे अतीव महत्त्वपूर्ण विषय पूछा॥ २२—२५॥

देवा ऊचुः

भगवन् केन मार्गेण पूजनीयोऽसि भूतले।
कस्याधिकारः पूजायां वक्तुमर्हसि तत्त्वतः॥ २६

देवता बोले—भगवन्! इस भूतलपर किस मार्गसे आपकी पूजा होनी चाहिये और उस पूजामें किसका अधिकार है? यह ठीक-ठीक बतानेकी कृपा करें॥ २६॥

ततः सस्मितमालोक्य देवीं देववरो हरः।
स्वरूपं दर्शयामास घोरं सूर्यात्मकं परम्॥ २७

तब देवेश्वर शिवने देवीकी ओर मुसकराते हुए देखा और अपने परम घोर सूर्यमय स्वरूपको दिखाया॥ २७॥

सर्वैश्वर्यगुणोपेतं सर्वतेजोमयं परम्।
शक्तिभिर्मूर्तिभिश्चाङ्गैर्ग्रहैर्देवैश्च संवृतम्॥ २८

अष्टबाहुं चतुर्वक्त्रमर्द्धनारीकमद्भुतम्।
दृष्ट्वैवमद्भुताकारं देवा विष्णुपुरोगमाः॥ २९

बुद्ध्वा दिवाकरं देवं देवीं चैव निशाकरम्।
पञ्चभूतानि शेषाणि तन्मयं च चराचरम्॥ ३०

उनका वह स्वरूप सम्पूर्ण ऐश्वर्य-गुणोंसे सम्पन्न, सर्वतेजोमय, सर्वोत्कृष्ट तथा शक्तियों, मूर्तियों, अंगों, ग्रहों और देवताओंसे घिरा हुआ था। उसके आठ भुजाएँ और चार मुख थे। उसका आधा भाग नारीके रूपमें था। उस अद्भुत आकृतिवाले आश्चर्यजनक स्वरूपको देखते ही सब देवता यह जान गये कि सूर्यदेव, पार्वतीदेवी, चन्द्रमा, आकाश, वायु, तेज, जल, पृथ्वी तथा शेष पदार्थ भी शिवके ही स्वरूप हैं। सम्पूर्ण चराचर जगत् शिवमय ही है॥ २८—३०॥

एवमुक्त्वा नमश्चक्रुस्तस्मै चार्घ्यं प्रदाय वै॥ ३१

परस्पर ऐसा कहकर उन्होंने भगवान् सूर्यको अर्घ्य दिया और नमस्कार किया॥ ३१॥

सिन्दूरवर्णाय सुमण्डलाय
सुवर्णवर्णाभरणाय तुभ्यम्।
पद्माभनेत्राय सपङ्कजाय
ब्रह्मेन्द्रनारायणकारणाय॥ ३२

अर्घ्य देते समय वे इस प्रकार बोले—'जिनका वर्ण सिन्दूरके समान है और मण्डल सुन्दर है, जो सुवर्णके समान कान्तिमान् आभूषणोंसे विभूषित हैं, जिनके नेत्र कमलके समान हैं, जिनके हाथमें भी कमल हैं, जो ब्रह्मा, इन्द्र और नारायणके भी कारण हैं, उन भगवान्‌को नमस्कार है।'॥ ३२॥

सुरत्नपूर्णं ससुवर्णतोयं
सकुङ्कुमाद्यं सकुशं सपुष्पम्।
प्रदत्तमादाय सहेमपात्रं
प्रशस्तमर्घ्यं भगवन् प्रसीद॥ ३३
नमः शिवाय शान्ताय सगणायादिहेतवे।
रुद्राय विष्णवे तुभ्यं ब्रह्मणे सूर्यमूर्तये॥ ३४

[यों कह] उत्तम रत्नोंसे पूर्ण, सुवर्ण, कुंकुम, कुश और पुष्पसे युक्त जल सोनेके पात्रमें लेकर उन देवेश्वरको उत्कृष्ट अर्घ्य दे [और कहे—] 'भगवन्! आप प्रसन्न हों। आप सबके आदिकारण हैं। आप ही रुद्र, विष्णु, ब्रह्मा और सूर्यरूप हैं। गणोंसहित आप शान्त शिवको नमस्कार है।'॥ ३३-३४॥

यः शिवं मण्डले सौरे सम्पूज्यैव समाहितः।
प्रातर्मध्याह्नसायाह्ने प्रदद्यादर्घ्यमुत्तमम्॥ ३५
प्रणमेद्वा पठेदेतान् श्लोकान् श्रुतिमुखानिमान्।
न तस्य दुर्लभं किञ्चिद्भक्तश्चेन्मुच्यते दृढम्॥ ३६
तस्मादभ्यर्चयेनित्यं शिवमादित्यरूपिणम्।
धर्मकामार्थमुक्त्यर्थं मनसा कर्मणा गिरा॥ ३७

जो एकाग्रचित्त हो सूर्यमण्डलमें शिवका पूजन करके प्रातःकाल, मध्याह्नकाल और सायंकालमें उनके लिये उत्तम अर्घ्य देता है, प्रणाम करता है और इन श्रवण-सुखद श्लोकोंको पढ़ता है, उसके लिये कुछ भी दुर्लभ नहीं है। यदि वह भक्त है तो अवश्य ही मुक्त हो जाता है। इसलिये प्रतिदिन शिवरूपी सूर्यका पूजन करना चाहिये। धर्म, अर्थ, काम और मोक्षके लिये मन, वाणी तथा क्रियाद्वारा उनकी आराधना करनी चाहिये॥ ३५—३७॥

अथ देवान् समालोक्य मण्डलस्थो महेश्वरः।
सर्वागमोत्तरं दत्त्वा शास्त्रमन्तरधाद्धरः॥ ३८
तत्र पूजाधिकारोऽयं ब्रह्मक्षत्रविशामिति।
ज्ञात्वा प्रणम्य देवेशं देवा जग्मुर्यथागतम्॥ ३९

तत्पश्चात् मण्डलमें विराजमान महेश्वर देवताओंकी ओर देखकर और उन्हें सम्पूर्ण शास्त्रोंमें श्रेष्ठ शिवशास्त्र देकर वहीं अन्तर्धान हो गये। उस शास्त्रमें शिवपूजाका अधिकार ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्योंको दिया गया है। यह जानकर देवेश्वर शिवको प्रणाम करके देवता जैसे आये थे, वैसे चले गये॥ ३८-३९॥

अथ कालेन महता तस्मिन् शास्त्रे तिरोहिते।
भर्तारं परिपप्रच्छ तदङ्कस्था महेश्वरी॥ ४०

तदनन्तर दीर्घकालके पश्चात् जब वह शास्त्र लुप्त हो गया, तब भगवान् शंकरके अंकमें बैठी हुई महेश्वरी शिवाने पतिदेवसे उसके विषयमें पूछा॥ ४०॥

तया सञ्चोदितो देवो देव्या चन्द्रविभूषणः।
अवदत्करमुद्धृत्य शास्त्रं सर्वागमोत्तरम्॥ ४१
प्रवर्तितं च तल्लोके नियोगात्परमेष्ठिनः।
मयागस्त्येन गुरुणा दधीचेन महर्षिणा॥ ४२
स्वयमप्यवतीर्योर्व्यां युगावर्तेषु शूलधृक्।
स्वाश्रितानां विमुक्त्यर्थं कुरुते ज्ञानसंततिम्॥ ४३

तब देवीसे प्रेरित हो चन्द्रभूषण महादेवने वेदोंका सार निकालकर सम्पूर्ण आगमोंमें श्रेष्ठ शास्त्रका उपदेश किया, फिर उन परमेश्वरकी आज्ञासे मैंने, गुरुदेव अगस्त्यने और महर्षि दधीचिने भी लोकमें उस शास्त्रका प्रचार किया। शूलपाणि महादेव स्वयं भी युग-युगमें भूतलपर अवतार ले अपने आश्रितजनोंकी मुक्तिके लिये ज्ञानका प्रसार करते हैं॥ ४१—४३॥

ऋभुः सत्यो भार्गवश्च ह्यंगिराः सविता द्विजाः।
मृत्युः शतक्रतुर्धीमान् वसिष्ठो मुनिपुङ्गवः॥ ४४
सारस्वतस्त्रिधामा च त्रिवृतो मुनिपुङ्गवः।
शततेजाः स्वयं धर्मो नारायण इति श्रुतः॥ ४५

ऋभु, सत्य, भार्गव, अंगिरा, सविता, मृत्यु, बुद्धिशील, इन्द्र, मुनिवर वसिष्ठ, सारस्वत, त्रिधामा, मुनिश्रेष्ठ त्रिवृत्, शततेजा, साक्षात् धर्मस्वरूप नारायण, स्वरक्ष, बुद्धिमान् आरुणि, कृतंजय, भरद्वाज, श्रेष्ठ

स्वरक्षश्चारुणिर्धीमांस्तथा चैव कृतञ्जयः।
मामतेयो भरद्वाजो गौतमः कविरुत्तमः ॥ ४६
वाचःश्रवा मुनिः साक्षात्तथा सूक्ष्मायणिः शुचिः।
तृणबिंदुर्मुनिः कृष्णः शक्तिः शाक्तेय उत्तरः ॥ ४७
जातूकर्ण्यो हरिः साक्षात् कृष्णद्वैपायनो मुनिः।
व्यासावतारान् शृण्वन्तु कल्पयोगेश्वरान् क्रमात् ॥ ४८

विद्वान् गौतम, वाचःश्रवा मुनि, पवित्र सूक्ष्मायणि, तृणविन्दु मुनि, कृष्ण, शक्ति, शाक्तेय (पाराशर), उत्तर, जातूकर्ण्य और साक्षात् नारायण-स्वरूप कृष्णद्वैपायन मुनि—ये सब व्यासावतार हैं। अब क्रमशः कल्प-योगेश्वरोंका वर्णन सुनो ॥ ४४—४८ ॥

लैङ्गे व्यासावतारा हि द्वापरान्तेषु सुव्रताः।
योगाचार्यावताराश्च तथा शिष्येषु शूलिनः ॥ ४९
तत्र तत्र विभोः शिष्याश्चत्वारः स्युर्महौजसः।
शिष्यास्तेषां प्रशिष्याश्च शतशोऽथ सहस्रशः ॥ ५०

लिंगपुराणमें द्वापरके अन्तमें होनेवाले उत्तम व्रतधारी व्यासावतार तथा योगाचार्यावतारोंका वर्णन है। भगवान् शिवके शिष्योंमें भी जो प्रसिद्ध हैं, उनका वर्णन है। उन अवतारोंमें भगवान्‌के मुख्यरूपसे चार महातेजस्वी शिष्य होते हैं। फिर उनके सैकड़ों, हजारों शिष्य-प्रशिष्य हो जाते हैं ॥ ४९-५० ॥

तेषां सम्भावनाल्लोके शैवाज्ञाकरणादिभिः।
भाग्यवन्तो विमुच्यन्ते भक्त्या चात्यन्तभाविताः ॥ ५१

लोकमें उनके उपदेशके अनुसार भगवान् शिवकी आज्ञा पालन करने आदिके द्वारा भक्तिसे अत्यन्त भावित हो भाग्यवान् पुरुष मुक्त हो जाते हैं ॥ ५१ ॥

इति श्रीशिवमहापुराणे सप्तम्यां वायवीयसंहितायामुत्तरखण्डे शिवतत्त्वज्ञाने व्यासावतारवर्णनं नामाष्टमोऽध्यायः ॥ ८ ॥

॥ इस प्रकार श्रीशिवमहापुराणके अन्तर्गत सातवीं वायवीयसंहिताके उत्तरखण्डमें शिवतत्त्वज्ञानके प्रसंगमें व्यासावतारवर्णन नामक आठवाँ अध्याय पूर्ण हुआ ॥ ८ ॥

अथ नवमोऽध्यायः

शिवके अवतार योगाचार्यों तथा उनके शिष्योंकी नामावली

श्रीकृष्ण उवाच

युगावर्तेषु सर्वेषु योगाचार्यच्छलेन तु।
अवतारान्हि शर्वस्य शिष्यांश्च भगवन् वद ॥ १

श्रीकृष्ण बोले—भगवन्! समस्त युगावर्तोंमें योगाचार्यके व्याजसे भगवान् शंकरके जो अवतार होते हैं और उन अवतारोंके जो शिष्य होते हैं, उन सबका वर्णन कीजिये ॥ १ ॥

उपमन्युरुवाच

श्वेतः सुतारो मदनः सुहोत्रः कङ्क एव च।
लौगाक्षिश्च महामायो जैगीषव्यस्तथैव च ॥ २
दधिवाहश्च ऋषभो मुनिरुग्रोऽत्रिरेव च।
सुपालको गौतमश्च तथा वेदशिरा मुनिः ॥ ३
गोकर्णश्च गुहावासी शिखण्डी चापरः स्मृतः।
जटामाली चाट्टहासो दारुको लाङ्गुली तथा ॥ ४
महाकालश्च शूली च दण्डी मुण्डीश एव च।
सहिष्णुः सोमशर्मा च लकुलीश्वर एव च ॥ ५
एते वाराहकल्पेऽस्मिन् सप्तमस्यान्तरे मनोः।
अष्टाविंशतिसंख्याता योगाचार्या युगक्रमात् ॥ ६

उपमन्युने कहा—श्वेत, सुतार, मदन, सुहोत्र, कंक, लौगाक्षि, महामायावी जैगीषव्य, दधिवाह, ऋषभ मुनि, उग्र, अत्रि, सुपालक, गौतम, वेदशिरा मुनि, गोकर्ण, गुहावासी, शिखण्डी, जटामाली, अट्टहास, दारुक, लांगुली, महाकाल, शूली, दण्डी, मुण्डीश, सहिष्णु, सोमशर्मा और नकुलीश्वर—ये वाराह कल्पके इस सातवें मन्वन्तरमें युगक्रमसे अट्ठाईस योगाचार्य प्रकट हुए हैं ॥ २—६ ॥

शिष्याः प्रत्येकमेतेषां चत्वारः शान्तचेतसः।
श्वेतादयश्च रुष्यान्तांस्तान् ब्रवीमि यथाक्रमम् ॥ ७

इनमेंसे प्रत्येकके शान्तचित्तवाले चार-चार शिष्य हुए हैं, जो श्वेतसे लेकर रुष्यपर्यन्त बताये गये हैं। मैं उनका क्रमशः वर्णन करता हूँ, सुनो।

श्वेतः श्वेतशिखश्चैव श्वेताश्वः श्वेतलोहितः।
दुन्दुभिः शतरूपश्च ऋचीकः केतुमांस्तथा॥ ८
विकोशश्च विकेशश्च विपाशः पाशनाशनः।
सुमुखो दुर्मुखश्चैव दुर्गमो दुरतिक्रमः॥ ९
सनत्कुमारः सनकः सनन्दश्च सनातनः।
सुधामा विरजाश्चैव शंखश्चाण्डज एव च॥ १०
सारस्वतश्च मेघश्च मेघवाहः सुवाहकः।
कपिलश्चासुरिः पञ्चशिखो बाष्कल एव च॥ ११
पराशरश्च गर्गश्च भार्गवश्चाङ्गिरास्तथा।
बलबन्धुर्निरामित्रः केतुशृङ्गस्तपोधनः॥ १२
लम्बोदरश्च लम्बश्च लम्बात्मा लम्बकेशकः।
सर्वज्ञः समबुद्धिश्च साध्यसिद्धिस्तथैव च॥ १३
सुधामा कश्यपश्चैव वसिष्ठो विरजास्तथा।
अत्रिरुग्रो गुरुश्रेष्ठः श्रवणोऽथ श्रविष्टकः॥ १४
कुणिश्च कुणिबाहुश्च कुशरीरः कुनेत्रकः।
काश्यपो ह्युशनाश्चैव च्यवनश्च बृहस्पतिः॥ १५
उतथ्यो वामदेवश्च महाकालो महानिलः।
वाचःश्रवा सुवीरश्च श्यावकश्च यतीश्वरः॥ १६
हिरण्यनाभः कौशल्यो लोकाक्षिः कुथुमिस्तथा।
सुमन्तुर्जैमिनिश्चैव कुबन्धः कुशकन्धरः॥ १७
प्लक्षो दार्भायणिश्चैव केतुमान् गौतमस्तथा।
भल्लवी मधुपिङ्गश्च श्वेतकेतुस्तथैव च॥ १८
उशिजो बृहदश्वश्च देवलः कविरेव च।
शालिहोत्रः सुवेषश्च युवनाश्वः शरद्वसुः॥ १९
अक्षपादः कणादश्च उलूको वत्स एव च।
कुलिकश्चैव गर्गश्च मित्रको रुष्य एव च॥ २०
एते शिष्या महेशस्य योगाचार्यस्वरूपिणः।
संख्या च शतमेतेषां सह द्वादशसंख्यया॥ २१

श्वेत, श्वेतशिख, श्वेताश्व, श्वेतलोहित, दुन्दुभि, शतरूप, ऋचीक, केतुमान्, विकोश, विकेश, विपाश, पाशनाशन, सुमुख, दुर्मुख, दुर्गम, दुरतिक्रम, सनत्कुमार, सनक, सनन्दन, सनातन, सुधामा, विरजा, शंख, अण्डज, सारस्वत, मेघ, मेघवाह, सुवाहक, कपिल, आसुरि, पंचशिख, वाष्कल, पराशर, गर्ग, भार्गव, अंगिरा, बलबन्धु, निरामित्र, केतुशृंग, तपोधन, लम्बोदर, लम्ब, लम्बात्मा, लम्बकेशक, सर्वज्ञ, समबुद्धि, साध्यबुद्धि, सुधामा, कश्यप, वसिष्ठ, विरजा, अत्रि, उग्र, गुरुश्रेष्ठ, श्रवण, श्रविष्ठक, कुणि, कुणबाहु, कुशरीर, कुनेत्रक, काश्यप, उशना, च्यवन, बृहस्पति, उतथ्य, वामदेव, महाकाल, महानिल, वाचःश्रवा, सुवीर, श्यावक, यतीश्वर, हिरण्यनाभ, कौशल्य, लोकाक्षि, कुथुमि, सुमन्तु, जैमिनी, कुबन्ध, कुशकन्धर, प्लक्ष, दार्भायणि, केतुमान्, गौतम, भल्लवी, मधुपिंग, श्वेतकेतु, उशिज, बृहदश्व, देवल, कवि, शालिहोत्र, सुवेष, युवनाश्व, शरद्वसु, [छगल, कुम्भकर्ण, कुम्भ, प्रबाहुक, उलूक, विद्युत्, शम्बूक, आश्वलायन,] अक्षपाद, कणाद, उलूक, वत्स, कुशिक, गर्ग, मित्रक और रुष्य—ये योगाचार्यरूपी महेश्वरके शिष्य हैं। इनकी संख्या एक सौ बारह है॥ ७—२१॥

सर्वे पाशुपताः सिद्धा भस्मोद्धूलितविग्रहाः।
सर्वशास्त्रार्थतत्त्वज्ञा वेदवेदाङ्गपारगाः॥ २२

शिवाश्रमरताः सर्वे शिवज्ञानपरायणाः।
सर्वे सङ्गविनिर्मुक्ताः शिवैकासक्तचेतसः॥ २३

सर्वद्वन्द्वसहा धीराः सर्वभूतहिते रताः।
ऋजवो मृदवः स्वस्था जितक्रोधा जितेन्द्रियाः॥ २४

रुद्राक्षमालाभरणास्त्रिपुण्ड्राङ्कितमस्तकाः।
शिखाजटाः सर्वजटा अजटा मुण्डशीर्षकाः॥ २५

ये सब-के-सब सिद्ध पाशुपत हैं। इनका शरीर भस्मसे विभूषित रहता है। ये सम्पूर्ण शास्त्रोंके तत्त्वज्ञ, वेद और वेदांगोंके पारंगत विद्वान्, शिवाश्रममें अनुरक्त, शिवज्ञानपरायण, सब प्रकारकी आसक्तियोंसे मुक्त, एकमात्र भगवान् शिवमें ही मनको लगाये रखनेवाले, सम्पूर्ण द्वन्द्वोंको सहनेवाले, धीर, सर्वभूतहितकारी, सरल, कोमल, स्वस्थ, क्रोधशून्य और जितेन्द्रिय होते हैं, रुद्राक्षकी माला ही इनका आभूषण है। उनके मस्तक त्रिपुण्ड्रसे अंकित होते हैं। उनमेंसे कोई तो शिखाके रूपमें ही जटा धारण करते हैं। किन्हींके सारे केश ही जटारूप होते हैं। कोई-कोई ऐसे हैं, जो जटा नहीं रखते हैं और कितने ही सदा माथा मुड़ाये रहते हैं॥ २२—२५॥

फलमूलाशनप्राया: प्राणायामपरायणा:।
शिवाभिमानसम्पन्ना: शिवध्यानैकतत्परा: ॥ २६

समुन्मथितसंसारविषवृक्षाङ्कुरोद्गमा: ।
प्रयातुमेव सन्नद्धा: परं शिवपुरं प्रति ॥ २७

सदेशिकानिमान् मत्वा नित्यं य: शिवमर्चयेत्।
स याति शिवसायुज्यं नात्र कार्या विचारणा ॥ २८

वे प्राय: फल-मूलका आहार करते हैं। प्राणायाम-साधनमें तत्पर होते हैं। 'मैं शिवका हूँ' इस अभिमानसे युक्त होते हैं। सदा शिवके ही चिन्तनमें लगे रहते हैं। उन्होंने संसाररूपी विषवृक्षके अंकुरको मथ डाला है। वे सदा परमधाममें जानेके लिये ही कटिबद्ध होते हैं। जो योगाचार्योंसहित इन शिष्योंको जान-मानकर सदा शिवकी आराधना करता है, वह शिवका सायुज्य प्राप्त कर लेता है, इसमें कोई अन्यथा विचार नहीं करना चाहिये ॥ २६—२८ ॥

इति श्रीशिवमहापुराणे सप्तम्यां वायवीयसंहितायामुत्तरखण्डे शिवस्य योगावतारवर्णनं नाम नवमोऽध्याय: ॥ ९ ॥

॥ इस प्रकार श्रीशिवमहापुराणके अन्तर्गत सातवीं वायवीयसंहिताके उत्तरखण्डमें शिवका योगावतारवर्णन नामक नौवाँ अध्याय पूर्ण हुआ ॥ ९ ॥

अथ दशमोऽध्याय:

भगवान् शिवके प्रति श्रद्धा-भक्तिकी आवश्यकताका प्रतिपादन, शिवधर्मके चार पादोंका वर्णन एवं ज्ञानयोगके साधनों तथा शिवधर्मके अधिकारियोंका निरूपण, शिवपूजनके अनेक प्रकार एवं अनन्यचित्तसे भजनकी महिमा

श्रीकृष्ण उवाच

भगवन् सर्वयोगीन्द्र गणेश्वर मुनीश्वर।
षडाननसमप्रख्य सर्वज्ञाननिधे गुरो ॥ १

प्रायस्त्वमवतीर्योर्व्यां पाशविच्छित्तये नृणाम्।
महर्षिवपुरास्थाय स्थितोऽसि परमेश्वर ॥ २

अन्यथा हि जगत्यस्मिन् देवो वा दानवोऽपि वा।
त्वत्तोऽन्य: परमं भावं को जानीयात् शिवात्मकम् ॥ ३

तस्मात्तव मुखोद्गीर्णं साक्षादिव पिनाकिन:।
शिवज्ञानामृतं पीत्वा न मे तृप्तमभून्मन: ॥ ४

साक्षात्सर्वजगत्कर्तुर्भर्तुरङ्कं समाश्रिता।
भगवन् किन्नु पप्रच्छ भर्तारं परमेश्वरी ॥ ५

श्रीकृष्ण बोले—हे भगवन्! हे सर्वयोगीन्द्र! हे गणेश्वर! हे मुनीश्वर! हे कार्तिकेयतुल्य बुद्धिमान्! हे सर्वज्ञाननिधे! हे गुरो! हे परमेश्वर! मनुष्योंके बन्धनको काटनेके लिये पृथ्वीपर अवतार लेकर महर्षिदेह धारण करके आप स्थित हैं, अन्यथा इस संसारमें आपके अतिरिक्त कौन-सा देवता अथवा दानव शिवात्मक परम भावको जान सकता था। अत: साक्षात् पिनाकी [शिव]-के समान आपके मुखसे निकले हुए शिवज्ञानरूपी अमृतका पान करके मेरा मन तृप्त नहीं हुआ। हे भगवन्! सम्पूर्ण जगत्के कर्ता अपने पति साक्षात् शिवके अंकदेशमें विराजमान परमेश्वरीने उनसे क्या पूछा था? ॥ १—५ ॥

उपमन्युरुवाच

स्थाने पृष्टं त्वया कृष्ण तद्वक्ष्यामि यथातथम्।
भवभक्तस्य युक्तस्य तव कल्याणचेतस: ॥ ६

उपमन्यु बोले—हे कृष्ण! आपने उचित प्रश्न किया है, मैं शिवभक्त, योगी तथा कल्याणमय चित्तवाले आपको यथार्थरूपमें उसे बताऊँगा ॥ ६ ॥

महीधरवरे दिव्ये मन्दरे चारुकन्दरे।
देव्या सह महादेवो दिव्यो ध्यानगतोऽभवत् ॥ ७

दिव्य स्वरूपवाले महादेव देवी पार्वतीके साथ सुन्दर कन्दराओंवाले दिव्य मन्दरपर्वतपर ध्यानमग्न थे ॥ ७ ॥

तदा देव्याः प्रियसखी सुस्मितास्या शुभावती।
फुल्लान्यतिमनोज्ञानि पुष्पाणि समुदाहरत्॥ ८
ततः स्वमङ्कमारोप्य देवीं देववरो हरः।
अलंकृत्य च तैः पुष्पैरास्ते हृष्टतरः स्वयम्॥ ९

उस समय देवी पार्वतीकी मुसकानयुक्त मुखवाली प्रिय सखी शुभावती खिले हुए तथा अत्यन्त मनोहर पुष्पोंको ले आयी। तत्पश्चात् देवश्रेष्ठ शिवजी स्वयं देवी पार्वतीको अपने अंकमें बिठाकर उन पुष्पोंसे उन्हें अलंकृत करके अत्यन्त प्रसन्न हुए॥ ८-९॥

अथान्तःपुरचारिण्यो देव्यो दिव्यविभूषणाः।
अन्तरङ्गा गणेन्द्राश्च सर्वलोकमहेश्वरीम्॥ १०
भर्तारं परिपूर्णं च सर्वलोकमहेश्वरम्।
चामरासक्तहस्ताश्च देवीं देवं सिषेविरे॥ ११
ततः प्रियाः कथा वृत्ता विनोदाय महेशयोः।
त्राणाय च नृणां लोके ये शिवं शरणं गताः॥ १२

इसके बाद अन्तःपुरमें रहनेवाली दिव्य आभूषण धारण की हुई देवियाँ तथा अन्तरंग गणेश्वर हाथोंमें चँवर धारण करके सभी लोकोंकी महेश्वरी पार्वती एवं सभी लोकोंके स्वामी परिपूर्ण भगवान् शिवकी सेवा करने लगे। तदनन्तर शिवा-शिवके विनोदके लिये तथा लोकमें जो शिवके शरणागत हैं, उन मनुष्योंके कल्याणके लिये प्रिय कथाएँ प्रारम्भ हुईं॥ १०—१२॥

तदावसरमालोक्य सर्वलोकमहेश्वरी।
भर्तारं परिपप्रच्छ सर्वलोकमहेश्वरम्॥ १३

उस समय अवसर देखकर सभी लोकोंकी स्वामिनी [पार्वती]-ने अपने पति सर्वलोकमहेश्वरसे पूछा॥ १३॥

देव्युवाच

केन वश्यो महादेवो मर्त्यानां मन्दचेतसाम्।
आत्मतत्त्वाद्यशक्तानामात्मनामकृतात्मनाम्॥ १४

देवीने कहा—'महादेव! जो आत्मतत्त्व आदिके साधनमें नहीं लगे हैं तथा जिनका अन्तःकरण पवित्र एवं वशीभूत नहीं है, ऐसे मन्दमति, मर्त्यलोकवासी जीवात्माओंके वशमें आप किस उपायसे हो सकते हैं?'॥ १४॥

ईश्वर उवाच

न कर्मणा न तपसा न जपैर्नासनादिभिः।
न ज्ञानेन न चान्येन वश्योऽहं श्रद्धया विना॥ १५

श्रद्धा मय्यस्ति चेत्पुंसां येन केनापि हेतुना।
वश्यः स्पृश्यश्च दृश्यश्च पूज्यः संभाष्य एव च॥ १६

महादेवजी बोले—देवि ! यदि साधकके मनमें श्रद्धा-भक्ति न हो तो पूजनकर्म, तपस्या, जप, आसन आदि, ज्ञान तथा अन्य साधनसे भी मैं उसके वशीभूत नहीं होता हूँ। यदि मनुष्योंकी मुझमें श्रद्धा हो तो जिस किसी भी हेतुसे मैं उसके वशमें हो जाता हूँ। फिर तो वह मेरा दर्शन, स्पर्श, पूजन एवं मेरे साथ सम्भाषण भी कर सकता है॥ १५-१६॥

साध्या तस्मान् मयि श्रद्धा मां वशीकर्तुमिच्छता।
श्रद्धा हेतुः स्वधर्मस्य रक्षणं वर्णिनामिह॥ १७

स्ववर्णाश्रमधर्मेऽथ वर्तते यस्तु मानवः।
तस्यैव भवति श्रद्धा मयि नान्यस्य कस्यचित्॥ १८

अतः जो मुझे वशमें करना चाहे, उसे पहले मेरे प्रति श्रद्धा करनी चाहिये। श्रद्धा ही स्वधर्मका हेतु है और वही इस लोकमें वर्णाश्रमी पुरुषोंकी रक्षा करनेवाली है। जो मानव अपने वर्णाश्रम-धर्मके पालनमें लगा रहता है, उसीकी मुझमें श्रद्धा होती है, दूसरेकी नहीं॥ १७-१८॥

आम्नायसिद्धमखिलं धर्ममाश्रमिणामिह।
ब्रह्मणा कथितं पूर्वं ममैवाज्ञापुरःसरम्॥ १९

स तु पैतामहो धर्मो बहुवित्तक्रियान्वितः।

वर्णाश्रमी पुरुषोंके सम्पूर्ण धर्म वेदोंसे सिद्ध हैं। पूर्वकालमें ब्रह्माजीने मेरी ही आज्ञा लेकर उनका वर्णन किया था। ब्रह्माजीका बताया हुआ वह धर्म अधिक धनके द्वारा साध्य है तथा अनेक प्रकारके

नात्यन्तफलभूयिष्ठः क्लेशायाससमन्वितः।
तेन धर्मेण महता श्रद्धां प्राप्य सुदुर्लभाम्॥ २०

वर्णिनो ये प्रपद्यन्ते मामनन्यसमाश्रयाः।
तेषां सुखेन मार्गेण धर्मकामार्थमुक्तयः॥ २१

क्रियाकलापसे युक्त होता है। उससे मिलनेवाला अधिकांश फल अक्षय नहीं है तथा उस धर्मके अनुष्ठानमें अनेक प्रकारके क्लेश और आयास उठाने पड़ते हैं। उस महान् धर्मसे परम दुर्लभ श्रद्धाको पाकर जो वर्णाश्रमी मनुष्य अनन्यभावसे मेरी शरणमें आ जाते हैं, उन्हें सुखद मार्गसे धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष प्राप्त होते हैं॥ १९—२१॥

वर्णाश्रमसमाचारो मया भूयः प्रकल्पितः।
तस्मिन् भक्तिमतामेव मदीयानां तु वर्णिनाम्॥ २२

अधिकारो न चान्येषामित्याज्ञा नैष्ठिकी मम।
तदाज्ञप्तेन मार्गेण वर्णिनो मदुपाश्रयाः॥ २३

मलमायादिपाशेभ्यो विमुक्ता मत्प्रसादतः।
पुरं मदीयमासाद्य पुनरावृत्तिदुर्लभम्।
परमं मम साधर्म्यं प्राप्य निर्वृतिमाययुः॥ २४

वर्णाश्रम-सम्बन्धी आचारकी सृष्टि मैंने ही बारंबार की है। उसमें भक्तिभाव रखकर जो मेरे हो गये हैं, उन्हीं वर्णाश्रमियोंका मेरी उपासनामें अधिकार है, दूसरोंका नहीं, यह मेरी निश्चित आज्ञा है। मेरी आज्ञाके अनुसार धर्ममार्गसे चलनेवाले वर्णाश्रमी पुरुष मेरी शरणमें आ मेरे कृपाप्रसादसे मल और माया आदि पाशोंसे मुक्त हो जाते हैं तथा मेरे पुनरावृत्तिरहित धाममें पहुँचकर मेरा उत्तम साधर्म्य प्राप्त करके परमानन्दमें निमग्न हो जाते हैं॥ २२—२४॥

तस्मात् लब्ध्वाप्यलब्ध्वा वा वर्णधर्मं मयेरितम्।
आश्रित्य मम भक्तश्चेत्स्वात्मनात्मानमुद्धरेत्॥ २५

अलब्धलाभ एवैष कोटिकोटिगुणाधिकः।
तस्मान्मे मुखतो लब्धं वर्णधर्मं समाचरेत्॥ २६

इसलिये मेरे बताये हुए वर्णधर्मको पाकर अथवा न पाकर भी जो मेरी शरण ले मेरा भक्त बन जाता है, वह स्वयं ही अपनी आत्माका उद्धार कर लेता है। यह कोटि-कोटि गुना अधिक अलब्ध-लाभ है। अतः मेरे मुखसे प्रतिपादित वर्णधर्मका पालन अवश्य करना चाहिये॥ २५-२६॥

ममावतारा हि शुभे योगाचार्यच्छलेन तु।
सर्वांतरेषु सन्त्यार्ये सन्ततिश्च सहस्रशः॥ २७

अयुक्तानामबुद्धीनामभक्तानां सुरेश्वरि।
दुर्लभं सन्ततिज्ञानं ततो यत्नात्समाश्रयेत्॥ २८

हे शुभे! हे आर्ये! योगाचार्योंके बहानेसे मेरे हजारों अवतार तथा सन्ततियाँ सभी मन्वन्तरोंमें होते हैं। हे सुरेश्वरि! योगनिष्ठाशून्य, असद् बुद्धिवाले तथा भक्तिरहित लोगोंको मेरी अवतार-परम्पराका ज्ञान दुर्लभ होता है, अतः प्रयत्नपूर्वक [वर्णाश्रमोचित आचारका] आश्रय ग्रहण करना चाहिये॥ २७-२८॥

सा हानिस्तन्महच्छिद्रं स मोहः सान्धमूकता।
यदन्यत्र श्रमं कुर्यान्मोक्षमार्गबहिष्कृतः॥ २९

ज्ञानं क्रिया च चर्या च योगश्चेति सुरेश्वरि।
चतुष्पादः समाख्यातो मम धर्मः सनातनः॥ ३०

जो मोक्षमार्गसे विलग होकर दूसरी किसी वस्तुके लिये श्रम करता है, उसके लिये वही सबसे बड़ी हानि है, वही बड़ी भारी त्रुटि है, वही मोह है और वही अन्धता एवं मूकता है। देवेश्वरि! मेरा जो सनातनधर्म है, वह चार चरणोंसे युक्त बताया गया है। उन चरणोंके नाम हैं—ज्ञान, क्रिया, चर्या और योग॥ २९-३०॥

पशुपाशपतिज्ञानं ज्ञानमित्यभिधीयते।
षडध्वशुद्धिर्विधिना गुर्वधीना क्रियोच्यते॥ ३१

वर्णाश्रमप्रयुक्तस्य मयैव विहितस्य च।
ममार्चनादिधर्मस्य चर्या चर्येति कथ्यते॥ ३२

पशु, पाश और पतिका ज्ञान ही ज्ञान कहलाता है। गुरुके अधीन जो विधिपूर्वक षडध्वशोधनका कार्य होता है, उसे क्रिया कहते हैं। मेरे द्वारा विहित वर्णाश्रमप्रयुक्त जो मेरे पूजन आदि धर्म हैं, उनके आचरणका नाम चर्या है॥ ३१-३२॥

मदुक्तेनैव मार्गेण मय्यवस्थितचेतसः।
वृत्त्यन्तरनिरोधो यो योग इत्यभिधीयते॥ ३३

अश्वमेधगणात् श्रेष्ठं देवि चित्तप्रसाधनम्।
मुक्तिदं च तथा ह्येतदुष्प्राप्यं विषयैषिणाम्॥ ३४

विजितेन्द्रियवर्गस्य यमेन नियमेन च।
पूर्वपापहरो योगो विरक्तस्यैव कथ्यते॥ ३५

वैराग्याज्जायते ज्ञानं ज्ञानाद्योगः प्रवर्तते॥ ३६

योगज्ञः पतितो वापि मुच्यते नात्र संशयः।

दया कार्याथ सततमहिंसा ज्ञानसंग्रहः॥ ३७

सत्यमस्तेयमास्तिक्यं श्रद्धा चेन्द्रियनिग्रहः।
अध्यापनं चाध्ययनं यजनं याजनं तथा॥ ३८

ध्यानमीश्वरभावश्च सततं ज्ञानशीलता।
य एवं वर्त्तते विप्रो ज्ञानयोगस्य सिद्धये॥ ३९

अचिरादेव विज्ञानं लब्ध्वा योगं च विन्दति।

दग्ध्वा देहमिमं ज्ञानी क्षणात् ज्ञानाग्निना प्रिये।
प्रसादान्मम योगज्ञः कर्मबन्धं प्रहास्यति॥ ४०

पुण्यः पुण्यात्मकं कर्म मुक्तेस्तत्प्रतिबन्धकम्।
तस्मान्नियोगतो योगी पुण्यापुण्यं विवर्जयेत्॥ ४१

फलकामनया कर्मकरणात्प्रतिबध्यते।
न कर्ममात्रकरणात्तस्मात्कर्मफलं त्यजेत्॥ ४२

प्रथमं कर्मयज्ञेन बहिः सम्पूज्य मां प्रिये।
ज्ञानयोगरतो भूत्वा पश्चाद्योगं समभ्यसेत्॥ ४३

विदिते मम याथात्म्ये कर्मयज्ञेन देहिनः।
न यजन्ति हि मां युक्ताः समलोष्टाश्मकाञ्चनाः॥ ४४

मेरे बताये हुए मार्गसे ही मुझमें सुस्थिरभावसे चित्त लगानेवाले साधकके द्वारा जो अन्तःकरणकी अन्य वृत्तियोंका निरोध किया जाता है, उसीको योग कहते हैं। देवि! चित्तको निर्मल एवं प्रसन्न बनाना अश्वमेध यज्ञोंके समूहसे भी श्रेष्ठ है; क्योंकि वह मुक्ति देनेवाला है। विषयभोगकी इच्छा रखनेवाले लोगोंके लिये यह 'मनः प्रसाद' दुर्लभ है। जिसने यम और नियमके द्वारा इन्द्रियसमुदायपर विजय प्राप्त कर लिया है, उस विरक्त पुरुषके लिये ही योगको सुलभ बताया गया है। योग पूर्वपापोंको हर लेनेवाला है। वैराग्यसे ज्ञान होता है और ज्ञानसे योग। योगज्ञ पुरुष पतित हो तो भी मुक्त हो जाता है, इसमें संशय नहीं है॥ ३३—३६१/२॥

सब प्राणियोंपर दया करनी चाहिये। सदा अहिंसाधर्मका पालन सबके लिये उचित है। ज्ञानका संग्रह भी आवश्यक है। सत्य बोलना, चोरीसे दूर रहना, ईश्वर और परलोकपर विश्वास रखना, मुझमें श्रद्धा करना, इन्द्रियोंको संयममें रखना, वेद-शास्त्रोंका पढ़ना-पढ़ाना, यज्ञ करना-कराना, मेरा चिन्तन करना, ईश्वरके प्रति अनुराग रखना और सदा ज्ञानशील होना ब्राह्मणके लिये नितान्त आवश्यक है। जो ब्राह्मण ज्ञानयोगकी सिद्धिके लिये सदा इस प्रकार उपर्युक्त धर्मोंका पालन करता है, वह शीघ्र ही विज्ञान पाकर योगको भी सिद्ध कर लेता है॥ ३७—३९१/२॥

प्रिये! ज्ञानी पुरुष ज्ञानाग्निके द्वारा इस [कर्ममय] शरीरको क्षणभरमें दग्ध करके मेरे प्रसादसे योगका ज्ञाता होकर कर्म-बन्धनसे छुटकारा पा जाता है। पुण्य-पापमय जो कर्म है, उसे मोक्षका प्रतिबन्धक बताया गया है; इसलिये योगी पुरुष योगके द्वारा पुण्यापुण्यका परित्याग कर दे। फलकी कामनासे प्रेरित होकर कर्म करनेसे ही मनुष्य बन्धनमें पड़ता है, केवल कर्म करनेमात्रसे नहीं; अतः कर्मके फलको त्याग देना चाहिये॥ ४०—४२॥

प्रिये! पहले कर्ममय यज्ञद्वारा बाहर मेरी पूजा करके फिर ज्ञानयोगमें तत्पर हो साधक योगका अभ्यास करे। कर्मयज्ञसे मेरे यथार्थ स्वरूपका बोध प्राप्त हो जानेपर जीव योगयुक्त हो मेरे यजनसे विरत हो जाते हैं। उस समय वे मिट्टी, पत्थर और सुवर्णमें भी समभाव रखते हैं॥ ४३-४४॥

नित्ययुक्तो मुनिः श्रेष्ठो मद्भक्तश्च समाहितः।
ज्ञानयोगरतो योगी मम सायुज्यमाप्नुयात्॥ ४५

अथाविरक्तचित्ता ये वर्णिनो मदुपाश्रिताः।
ज्ञानचर्या क्रियास्वेव तेऽधिकुर्युस्तदर्हकाः॥ ४६

द्विधा मत्पूजनं ज्ञेयं बाह्यमाभ्यन्तरं तथा।
वाङ्मनःकायभेदाच्च त्रिधा मद्भजनं विदुः॥ ४७

तपः कर्म जपो ध्यानं ज्ञानं वेत्यनुपूर्वशः।
पञ्चधा कथ्यते सद्भिस्तदेव भजनं पुनः॥ ४८

अन्यात्मविदितं बाह्यमस्मदभ्यर्चनादिकम्।
तदेव तु स्वसंवेद्यमाभ्यन्तरमुदाहृतम्॥ ४९

मनो मत्प्रवणं चित्तं न मनोमात्रमुच्यते।
मन्नामनिरता वाणी वाङ्मता खलु नेतरा॥ ५०

लिङ्गैर्मच्छासनादिष्टैस्त्रिपुण्ड्रादिभिरङ्कितः।
ममोपचारनिरतः कायः कायो न चेतरः॥ ५१

मदर्चा कर्म विज्ञेयं बाह्ये यागादिनोच्यते।
मदर्थे देहसंशोषस्तपः कृच्छ्रादि नो मतम्॥ ५२

जपः पञ्चाक्षराभ्यासः प्रणवाभ्यास एव च।
रुद्राध्यायादिकाभ्यासो न वेदाध्ययनादिकम्॥ ५३

ध्यानं मद्रूपचिन्ताद्यं नात्माद्यर्थसमाधयः।
ममागमार्थविज्ञानं ज्ञानं नान्यार्थवेदनम्॥ ५४

जो मेरा भक्त नित्ययुक्त एवं एकाग्रचित्त हो ज्ञानयोगमें तत्पर रहता है, वह मुनियोंमें श्रेष्ठ एवं योगी होकर मेरा सायुज्य प्राप्त कर लेता है। जो वर्णाश्रमी पुरुष मनसे विरक्त नहीं हैं, वे मेरा आश्रय ले ज्ञान, चर्या और क्रिया—इन तीनमें ही प्रवृत्त होनेके अधिकारी हैं, वे केवल उन्हींके अनुष्ठानकी योग्यता रखते हैं॥ ४५-४६॥

मेरा पूजन दो प्रकारका है—बाह्य और आभ्यन्तर। इसी तरह मन, वाणी और शरीर—इन त्रिविध साधनोंके भेदसे मेरा भजन तीन प्रकारका माना गया है। तप, कर्म, जप, ध्यान और ज्ञान—ये मेरे भजनके पाँच स्वरूप हैं; अतः साधुपुरुष उसे पाँच प्रकारका भी कहते हैं॥ ४७-४८॥

[मूर्ति आदिमें] जो मेरा पूजन आदि होता है, जिसे दूसरे लोग जान लेते हैं, वह 'बाह्य' पूजन या भजन कहा गया है तथा वही भजन-पूजन जब मनके द्वारा होनेसे केवल अपने ही अनुभवका विषय होता है, तब 'आभ्यन्तर' कहलाता है॥ ४९॥

मुझमें लगा हुआ चित्त ही 'मन' कहलाता है। सामान्यतः मनमात्रको यहाँ मन नहीं कहा गया है। इसी तरह जो वाणी मेरे नामके जप और कीर्तनमें लगी हुई है, वही 'वाणी' कहलानेयोग्य है, दूसरी नहीं तथा जो मेरे शास्त्रमें बताये हुए त्रिपुण्ड्र आदि चिह्नोंसे अंकित है और निरन्तर मेरी सेवा-पूजामें लगा हुआ है, वही शरीर 'शरीर' है, दूसरा नहीं॥ ५०-५१॥

मेरी पूजाको ही 'कर्म' जानना चाहिये। बाहर जो यज्ञ आदि किये जाते हैं, उन्हें 'कर्म' नहीं कहा गया है। मेरे लिये शरीरको सुखाना ही 'तप' है, कृच्छ्र-चान्द्रायण आदिका अनुष्ठान नहीं। पंचाक्षर-मन्त्रकी आवृत्ति, प्रणवका अभ्यास तथा रुद्राध्याय आदिका बारंबार पाठ ही यहाँ 'जप' कहा गया है, वेदाध्ययन आदि नहीं॥ ५२-५३॥

मेरे स्वरूपका चिन्तन-स्मरण ही 'ध्यान' है। आत्मा आदिके लिये की हुई समाधि नहीं। मेरे आगमोंके अर्थको भलीभाँति जानना ही 'ज्ञान' है, दूसरी किसी वस्तुके अर्थको समझना नहीं॥ ५४॥

बाह्ये वाभ्यन्तरे वाथ यत्र स्यान्मनसो रतिः।
प्राग्वासनावशाद्देवि तत्त्वनिष्ठां समाचरेत्॥ ५५

बाह्यादाभ्यन्तरं श्रेष्ठं भवेच्छतगुणाधिकम्।
असङ्करत्वाद्दोषाणां दृष्टानामप्यसम्भवात्॥ ५६

शौचमाभ्यन्तरं विद्वान्न बाह्यं शौचमुच्यते।
अन्तःशौचविमुक्तात्मा शुचिरप्यशुचिर्यतः॥ ५७

बाह्यमाभ्यन्तरं चैव भजनं भावपूर्वकम्।
न भावरहितं देवि विप्रलम्भैककारणम्॥ ५८

कृतकृत्यस्य पूतस्य मम किं क्रियते नरैः।
बहिर्वाभ्यन्तरं वाथ मया भावो हि गृह्यते॥ ५९

भावैकात्मा क्रिया देवि मम धर्मः सनातनः।
मनसा कर्मणा वाचा ह्यनपेक्ष्य फलं क्वचित्॥ ६०

फलोद्देशेन देवेशि लघुर्मम समाश्रयः।
फलार्थी तदभावे मां परित्यक्तुं क्षमो यतः॥ ६१

फलार्थिनोऽपि यस्यैव मयि चित्तं प्रतिष्ठितम्।
भावानुरूपफलदस्तस्याप्यहमनिन्दिते ॥ ६२

फलानपेक्षया येषां मनो मत्प्रवणं भवेत्।
प्रार्थयेयुः फलं पश्चाद्भक्तास्तेऽपि मम प्रियाः॥ ६३

प्राक् संस्कारवशादेव ये विचिन्त्य फलाफले।
विवशा मां प्रपद्यन्ते मम प्रियतमा मताः॥ ६४

मल्लाभान्न परो लाभस्तेषामस्ति यथातथम्।
ममापि लाभस्तल्लाभान्नापरः परमेश्वरि॥ ६५

मदनुग्रहतस्तेषां भावो मयि समर्पितः।
फलं परमनिर्वाणं प्रयच्छति बलादिव॥ ६६

देवि! पूर्ववासनावश बाह्य अथवा आभ्यन्तर जिस पूजनमें मनका अनुराग हो, उसीमें दृढ़ निष्ठा रखनी चाहिये। बाह्य पूजनसे आभ्यन्तर पूजन सौ गुना अधिक श्रेष्ठ है; क्योंकि उसमें दोषोंका मिश्रण नहीं होगा तथा प्रत्यक्ष दीखनेवाले दोषोंकी भी वहाँ सम्भावना नहीं रहती है॥ ५५-५६॥

भीतरकी शुद्धिको ही शुद्धि समझनी चाहिये। बाहरी शुद्धिको शुद्धि नहीं कहते हैं। जो आन्तरिक शुद्धिसे रहित है, वह बाहरसे शुद्ध होनेपर भी अशुद्ध ही है। देवि! बाह्य और आभ्यन्तर दोनों ही प्रकारका भजन भाव (अनुराग)-पूर्वक ही होना चाहिये, बिना भावके नहीं। भावरहित भजन तो एकमात्र विप्रलम्भ (छलना)-का ही कारण होता है॥ ५७-५८॥

मैं तो सदा ही कृतकृत्य एवं पवित्र हूँ, मनुष्य मेरा क्या करेंगे? उनके द्वारा किये गये बाह्य अथवा आभ्यन्तर पूजनमें उनका जो भाव (प्रेम) है, उसीको मैं ग्रहण करता हूँ। देवि! क्रियाका एकमात्र आत्मा भाव ही है। वही मेरा सनातनधर्म है। मन, वाणी और कर्मद्वारा कहीं भी किंचिन्मात्र फलकी इच्छा न रखकर ही क्रिया करनी चाहिये। देवेश्वरि! फलका उद्देश्य रखनेसे मेरा आश्रय लघु हो जाता है; क्योंकि फलार्थीको यदि फल न मिला तो वह मुझे छोड़ सकता है॥ ५९—६१॥

सती साध्वी देवि! फलार्थी होनेपर भी जिस साधकका चित्त मुझमें ही प्रतिष्ठित है, उसे उसके भावके अनुसार फल मैं अवश्य देता हूँ। जिनका मन फलकी इच्छा न रखकर ही मुझमें लगा हो, परंतु पीछे वे फल चाहने लगे हों, वे भक्त भी मुझे प्रिय हैं॥ ६२-६३॥

जो पूर्वसंस्कारवश ही फलाफलकी चिन्ता न करके विवश हो मेरी शरण लेते हैं, वे भक्त मुझे अधिक प्रिय हैं। परमेश्वरि! उन भक्तोंके लिये मेरी प्राप्तिसे बढ़कर दूसरा कोई वास्तविक लाभ नहीं है तथा मेरे लिये भी वैसे भक्तोंकी प्राप्तिसे बढ़कर और कोई लाभ नहीं है॥ ६४-६५॥

मुझमें समर्पित हुआ उनका भाव मेरे अनुग्रहसे ही उनको मानो बलपूर्वक परम निर्वाणरूप फल प्रदान करता है। जिन्होंने अपने चित्तको मुझे समर्पित कर

महात्मनामनन्यानां मयि संन्यस्तचेतसाम्।
अष्टधा लक्षणं प्राहुर्मम धर्माधिकारिणाम्॥ ६७

दिया है, अतएव जो मेरे अनन्य भक्त हैं, वे महात्मा पुरुष ही मेरे धर्मके अधिकारी हैं। उनके आठ लक्षण बताये गये हैं॥ ६६-६७॥

मद्भक्तजनवात्सल्यं पूजायां चानुमोदनम्।
स्वयमभ्यर्चनं चैव मदर्थे चाङ्गचेष्टितम्॥ ६८

मत्कथाश्रवणे भक्तिः स्वरनेत्राङ्गविक्रियाः।
ममानुस्मरणं नित्यं यश्च मामुपजीवति॥ ६९

एवमष्टविधं चिह्नं यस्मिन् म्लेच्छेऽपि वर्तते।
स विप्रेन्द्रो मुनिः श्रीमान् स यतिः स च पण्डितः॥ ७०

मेरे भक्तजनोंके प्रति स्नेह, मेरी पूजाका अनुमोदन, स्वयंकी भी मेरे पूजनमें प्रवृत्ति, मेरे लिये ही शारीरिक चेष्टाओंका होना, मेरी कथा सुननेमें भक्तिभाव, कथा सुनते समय स्वर, नेत्र और अंगोंमें विकारका होना, बारंबार मेरी स्मृति और सदा मेरे आश्रित रहकर ही जीवन-निर्वाह करना—ये आठ प्रकारके चिह्न यदि किसी म्लेच्छमें भी हों तो वह विप्रशिरोमणि श्रीमान् मुनि है। वह संन्यासी है और वही पण्डित है॥ ६८—७०॥

न मे प्रियश्चतुर्वेदी मद्भक्तो श्वपचोऽपि यः।
तस्मै देयं ततो ग्राह्यं स च पूज्यो यथा ह्यहम्॥ ७१

पत्रं पुष्पं फलं तोयं यो मे भक्त्या प्रयच्छति।
तस्याहं न प्रणश्यामि स च मे न प्रणश्यति॥ ७२

जो मेरा भक्त नहीं है, वह चारों वेदोंका विद्वान् हो तो भी मुझे प्रिय नहीं है। परंतु जो मेरा भक्त है, वह चाण्डाल हो तो भी प्रिय है। उसे उपहार देना चाहिये, उससे प्रसाद ग्रहण करना चाहिये तथा वह मेरे समान ही पूजनीय है। जो भक्ति-भावसे मुझे पत्र, पुष्प, फल अथवा जल समर्पित करता है, उसके लिये मैं अदृश्य नहीं होता हूँ और वह मेरी भी दृष्टिसे कभी ओझल नहीं होता है॥ ७१-७२॥

इति श्रीशिवमहापुराणे सप्तम्यां वायवीयसंहितायामुत्तरखण्डे शिवभक्तिवर्णनं नाम दशमोऽध्यायः॥ १०॥

॥ इस प्रकार श्रीशिवमहापुराणके अन्तर्गत सातवीं वायवीयसंहिताके उत्तरखण्डमें शिवभक्तिवर्णन नामक दसवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ १०॥

अथैकादशोऽध्यायः

वर्णाश्रम-धर्म तथा नारी-धर्मका वर्णन; शिवके भजन, चिन्तन एवं ज्ञानकी महत्ताका प्रतिपादन

ईश्वर उवाच

अथ वक्ष्यामि देवेशि भक्तानामधिकारिणाम्।
विदुषां द्विजमुख्यानां वर्णधर्मसमासतः॥ १

महादेवजी कहते हैं—देवेश्वरि! अब मैं अधिकारी, विद्वान् एवं श्रेष्ठ ब्राह्मण-भक्तोंके लिये संक्षेपसे वर्णधर्मका वर्णन करता हूँ॥ १॥

त्रिःस्नानं चाग्निकार्यं च लिङ्गार्चनमनुक्रमम्।
दानमीश्वरभावश्च दया सर्वत्र सर्वदा॥ २
सत्यं सन्तोषमास्तिक्यमहिंसा सर्वजन्तुषु।
ह्रीःश्रद्धाध्ययनं योगः सदाध्यापनमेव च॥ ३
व्याख्यानं ब्रह्मचर्यं च श्रवणं च तपः क्षमा।
शौचं शिखोपवीतं च उष्णीषं चोत्तरीयकम्॥ ४

तीनों काल स्नान, अग्निहोत्र, विधिवत् शिवलिंग-पूजन, दान, ईश्वर-प्रेम, सदा और सर्वत्र दया, सत्य-भाषण, संतोष, आस्तिकता, किसी भी जीवकी हिंसा न करना, लज्जा, श्रद्धा, अध्ययन, योग, निरन्तर अध्यापन, व्याख्यान, ब्रह्मचर्य, उपदेश-श्रवण, तपस्या, क्षमा, शौच, शिखा-धारण, यज्ञोपवीत-धारण, पगड़ी

निषिद्धासेवनं चैव भस्मरुद्राक्षधारणम्।
पर्वण्यभ्यर्चनं देवि चतुर्दश्यां विशेषतः॥ ५
पानं च ब्रह्मकूर्चस्य मासि मासि यथाविधि।
अभ्यर्चनं विशेषेण तेनैव स्नाप्य मां प्रिये॥ ६
सर्वक्रियान्नसन्त्यागः श्राद्धान्नस्य च वर्जनम्।
तथा पर्युषितान्नस्य यावकस्य विशेषतः॥ ७
मद्यस्य मद्यगन्धस्य नैवेद्यस्य च वर्जनम्।
सामान्यं सर्ववर्णानां ब्राह्मणानां विशेषतः॥ ८
क्षमा शान्तिश्च सन्तोषः सत्यमस्तेयमेव च।
ब्रह्मचर्यं मम ज्ञानं वैराग्यं भस्मसेवनम्॥ ९
सर्वसङ्गनिवृत्तिश्च दशैतानि विशेषतः।

लिङ्गानि योगिनां भूयो दिवा भिक्षाशनं तथा॥ १०
वानप्रस्थाश्रमस्थानां समानमिदमिष्यते।
रात्रौ न भोजनं कार्यं सर्वेषां ब्रह्मचारिणाम्॥ ११
अध्यापनं याजनं च क्षत्रियस्याप्रतिग्रहः।
वैश्यस्य च विशेषेण मया नात्र विधीयते॥ १२
रक्षणं सर्ववर्णानां युद्धे शत्रुवधस्तथा।
दुष्टपक्षिमृगाणां च दुष्टानां शातनं नृणाम्॥ १३
अविश्वासश्च सर्वत्र विश्वासो मम योगिषु।
स्त्रीसंसर्गश्च कालेषु चमूरक्षणमेव च॥ १४
सदा सञ्चारितैश्चारैर्लोकवृत्तान्तवेदनम्।
सदास्त्रधारणं चैव भस्मकंचुकधारणम्॥ १५
राज्ञां ममाश्रमस्थानामेष धर्मस्य संग्रहः।
गोरक्षणं च वाणिज्यं कृषिर्वैश्यस्य कथ्यते॥ १६
शुश्रूषेतरवर्णानां धर्मः शूद्रस्य कथ्यते।
उद्यानकरणं चैव मम क्षेत्रसमाश्रयः॥ १७
धर्मपत्न्यास्तु गमनं गृहस्थस्य विधीयते।
ब्रह्मचर्यं वनस्थानां यतीनां ब्रह्मचारिणाम्॥ १८

धारण करना, दुपट्टा लगाना, निषिद्ध वस्तुका सेवन न करना, भस्म धारण करना तथा रुद्राक्षकी माला पहनना, प्रत्येक पर्वमें विशेषतः चतुर्दशीको शिवकी पूजा करना, ब्रह्मकूर्चका पान, प्रत्येक मासमें ब्रह्मकूर्चसे विधिपूर्वक मुझे नहलाकर मेरा विशेषरूपसे पूजन करना, सम्पूर्ण क्रियान्नका त्याग, श्राद्धान्नका परित्याग, बासी अन्न तथा विशेषतः यावक (कुल्थी या बोरो धान)-का त्याग, मद्य और मद्यकी गन्धका त्याग, शिवको निवेदित (चण्डेश्वरके भाग) नैवेद्यका त्याग—ये सभी वर्णोंके सामान्य धर्म हैं। ब्राह्मणोंके लिये विशेष धर्म ये हैं—क्षमा, शान्ति, संतोष, सत्य, अस्तेय (चोरी न करना), ब्रह्मचर्य, शिवज्ञान, वैराग्य, भस्म-सेवन और सब प्रकारकी आसक्तियोंसे निवृत्ति— इन दस धर्मोंको ब्राह्मणोंका विशेष धर्म कहा गया है॥ २—९१/२॥

अब योगियों (यतियों)-के लक्षण बताये जाते हैं। दिनमें भिक्षान्न भोजन उनका विशेष धर्म है। यह वानप्रस्थ आश्रमवालोंके लिये भी उनके समान ही अभीष्ट है। इन सबको और ब्रह्मचारियोंको भी रातमें भोजन नहीं करना चाहिये। पढ़ाना, यज्ञ कराना और दान लेना—इनका विधान मैंने विशेषतः क्षत्रिय और वैश्यके लिये नहीं किया है॥ १०—१२॥

मेरे आश्रयमें रहनेवाले राजाओं या क्षत्रियोंके लिये थोड़ेमें धर्मका संग्रह इस प्रकार है। सब वर्णोंकी रक्षा, युद्धमें शत्रुओंका वध, दुष्ट पक्षियों, मृगों तथा दुराचारी मनुष्योंका दमन करना, सब लोगोंपर विश्वास न करना, केवल शिव-योगियोंपर ही विश्वास रखना, ऋतुकालमें ही स्त्रीसंसर्ग करना, सेनाका संरक्षण, गुप्तचर भेजकर लोकमें घटित होनेवाले समाचारोंको जानना, सदा अस्त्र धारण करना तथा भस्ममय कंचुक धारण करना॥ १३—१५१/२॥

गोरक्षा, वाणिज्य और कृषि—ये वैश्यके धर्म बताये गये हैं। शूद्रेतर वर्णों—ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्योंकी सेवा शूद्रका धर्म कहा गया है॥ १६१/२॥

बाग लगाना, मेरे तीर्थोंकी यात्रा करना तथा अपनी धर्मपत्नीके साथ ही समागम करना गृहस्थके लिये विहित धर्म है। वनवासियों, यतियों और ब्रह्मचारियोंके लिये ब्रह्मचर्यका पालन मुख्य धर्म है।

स्त्रीणां तु भर्तृशुश्रूषा धर्मो नान्यः सनातनः।
ममार्चनं च कल्याणि नियोगो भर्तुरस्ति चेत्॥ १९
या नारी भर्तृशुश्रूषां विहाय व्रततत्परा।
सा नारी नरकं याति नात्र कार्या विचारणा॥ २०

स्त्रियोंके लिये पतिकी सेवा ही सनातनधर्म है, दूसरा नहीं। कल्याणि! यदि पतिकी आज्ञा हो तो नारी मेरा पूजन भी कर सकती है। जो स्त्री पतिकी सेवा छोड़कर व्रतमें तत्पर होती है, वह नरकमें जाती है। इस विषयमें विचार करनेकी आवश्यकता नहीं है॥ १७—२०॥

अथ भर्तृविहीनाया वक्ष्ये धर्मं सनातनम्।
व्रतं दानं तपः शौचं भूशय्यानक्तभोजनम्॥ २१
ब्रह्मचर्यं सदा स्नानं भस्मना सलिलेन वा।
शान्तिर्मौनं क्षमा नित्यं संविभागो यथाविधि॥ २२
अष्टम्यां च चतुर्दश्यां पौर्णमास्यां विशेषतः।
एकादश्यां च विधिवदुपवासो ममार्चनम्॥ २३

अब मैं विधवा स्त्रियोंके सनातन-धर्मका वर्णन करूँगा। व्रत, दान, तप, शौच, भूमि-शयन, केवल रातमें ही भोजन, सदा ब्रह्मचर्यका पालन, भस्म अथवा जलसे स्नान, शान्ति, मौन, क्षमा, विधिपूर्वक सब जीवोंको अन्नका वितरण, अष्टमी, चतुर्दशी, पूर्णिमा तथा विशेषतः एकादशीको विधिवत् उपवास और मेरा पूजन [—ये विधवा स्त्रियोंके धर्म हैं।]॥ २१—२३॥

इति संक्षेपतः प्रोक्तो मयाश्रमनिषेविणाम्।
ब्रह्मक्षत्रविशां देवि यतीनां ब्रह्मचारिणाम्॥ २४
तथैव वानप्रस्थानां गृहस्थानां च सुन्दरि।
शूद्राणामथ नारीणां धर्म एष सनातनः॥ २५
ध्येयस्त्वयाऽहं देवेशि सदा जाप्यः षडक्षरः।
वेदोक्तमखिलं धर्ममिति धर्मार्थसंग्रहः॥ २६

देवि! इस प्रकार मैंने संक्षेपसे अपने आश्रमका सेवन करनेवाले ब्राह्मणों, क्षत्रियों, वैश्यों, संन्यासियों, ब्रह्मचारियों तथा वानप्रस्थों और गृहस्थोंके धर्मका वर्णन किया। साथ ही शूद्रों और नारियोंके लिये भी इस सनातनधर्मका उपदेश दिया। देवेश्वरि! तुम्हें सदा मेरा ध्यान और मेरे षडक्षर-मन्त्रका जप करना चाहिये। यही सम्पूर्ण वेदोक्त धर्म है और यही धर्म तथा अर्थका संग्रह है॥ २४—२६॥

अथ ये मानवा लोके स्वेच्छया धृतविग्रहाः।
भावातिशयसंपन्नाः पूर्वसंस्कारसंयुताः॥ २७
विरक्ता वानुरक्ता वा स्त्र्यादीनां विषयेष्वपि।
पापैर्न ते विलिम्पन्ते पद्मपत्रमिवाम्भसा॥ २८

लोकमें जो मनुष्य अपनी इच्छासे मेरे विग्रहकी सेवाका व्रत धारण किये हुए हैं पूर्वजन्मकी सेवाके संस्कारसे युक्त होनेके कारण भावातिरेकसे सम्पन्न हैं, वे स्त्री आदि विषयोंमें अनुरक्त हों या विरक्त, पापोंसे उसी प्रकार लिप्त नहीं होते, जैसे जलसे कमलका पत्ता॥ २७-२८॥

तेषां ममात्मविज्ञानं विशुद्धानां विवेकिनाम्।
मत्प्रसादाद्विशुद्धानां दुःखमाश्रमरक्षणम्॥ २९
नास्ति कृत्यमकृत्यं च समाधिर्वा परायणम्।
न विधिर्न निषेधश्च तेषां मम यथा तथा॥ ३०

मेरे प्रसादसे विशुद्ध हुए उन विवेकी पुरुषोंको मेरे स्वरूपका ज्ञान हो जाता है। फिर उनके लिये कर्तव्याकर्तव्यका विधि-निषेध नहीं रह जाता, ऐसी दशामें आश्रमोचित धर्मोंका अनुपालन भी उनके लिये प्रपंचवत् दुःखरूप ही होता है। समाधि तथा शरणागति भी आवश्यक नहीं रहती। जैसे मेरे लिये कोई विधि-निषेध नहीं है, वैसे ही उनके लिये भी नहीं है॥ २९-३०॥

तथेह परिपूर्णस्य साध्यं मम न विद्यते।
तथैव कृतकृत्यानां तेषामपि न संशयः॥ ३१
मद्भक्तानां हितार्थाय मानुषं भावमाश्रिताः।
रुद्रलोकात्परिभ्रष्टास्ते रुद्रा नात्र संशयः॥ ३२

परिपूर्ण होनेके कारण जैसे मेरे लिये कुछ साध्य नहीं है, निश्चय ही उसी प्रकार उन कृतकृत्य ज्ञानयोगियोंके लिये भी कोई कर्तव्य नहीं रह जाता है। वे मेरे भक्तोंके हितके लिये मानवभावका आश्रय लेकर भूतलपर स्थित हैं। उन्हें रुद्रलोकसे परिभ्रष्ट अर्थात् अवतीर्ण रुद्र ही समझना चाहिये; इसमें संशय नहीं है॥ ३१-३२॥

ममानुशासनं यद्वद् ब्रह्मादीनां प्रवर्तकम्।
तथा नराणामन्येषां तन्नियोगः प्रवर्तकः॥ ३३

ममाज्ञाधारभावेन सद्भावातिशयेन च।
मदालोकनमात्रेण सर्वपापक्षयो भवेत्॥ ३४

प्रत्ययाश्च प्रवर्तन्ते प्रशस्तफलसूचकाः।
मयि भाववतां पुंसां प्रागदृष्टार्थगोचराः॥ ३५

कम्पस्वेदोऽश्रुपातश्च कण्ठे च स्वरविक्रिया।
आनन्दाद्युपलब्धिश्च भवेदाकस्मिकी मुहुः॥ ३६

स तैर्व्यस्तैः समस्तैर्वा लिङ्गैरव्यभिचारिभिः।
मन्दमध्योत्तमैर्भावैर्विज्ञेयास्ते नरोत्तमाः॥ ३७

यथायोऽग्निसमावेशान्नायो भवति केवलम्।
तथैव मम सान्निध्यान्न ते केवलमानुषाः॥ ३८

हस्तपादादिसाधर्म्याद् रुद्रान् मर्त्यवपुर्धरान्।
प्राकृतानिव मन्वानो नावजानीत पण्डितः॥ ३९

अवज्ञानं कृतं तेषु नरैर्व्यामूढचेतनैः।
आयुः श्रियं कुलं शीलं हित्वा निरयमावहेत्॥ ४०

ब्रह्मविष्णुसुरेशानामपि तूलायते पदम्।
मत्तोऽन्यदनपेक्षाणामुद्धतानां महात्मनाम्॥ ४१

अशुद्धं बौद्धमैश्वर्यं प्राकृतं पौरुषं तथा।
गुणेशानामतस्त्याज्यं गुणातीतपदैषिणाम्॥ ४२

अथ किं बहुनोक्तेन श्रेयः प्राप्त्यैकसाधनम्।
मयि चित्तसमासङ्गो येन केनापि हेतुना॥ ४३

जैसे मेरी आज्ञा ब्रह्मा आदि देवताओंको कार्यमें प्रवृत्त करनेवाली है, उसी प्रकार उन शिवयोगियोंकी आज्ञा भी अन्य मनुष्योंको कर्तव्यकर्ममें लगानेवाली है। वे मेरी आज्ञाके आधार हैं। उनमें अतिशय सद्भाव भी है। इसलिये उनका दर्शन करनेमात्रसे सब पापोंका नाश हो जाता है तथा प्रशस्त फलकी प्राप्तिको सूचित करनेवाले विश्वासकी भी वृद्धि होती है॥ ३३-३४½ ॥

जिन पुरुषोंका मुझमें अनुराग है, उन्हें उन बातोंका भी ज्ञान हो जाता है, जो पहले कभी उनके देखने, सुनने या अनुभवमें नहीं आयी होती हैं। उनमें अकस्मात् कम्प, स्वेद, अश्रुपात, कण्ठमें स्वरविकार तथा आनन्द आदि भावोंका बारंबार उदय होने लगता है। ये सब लक्षण उनमें कभी एक-एक करके अलग-अलग प्रकट होते हैं और कभी सम्पूर्ण भावोंका एक साथ उदय होने लगता है। कभी विलग न होनेवाले इन मन्द, मध्यम और उत्तम भावोंद्वारा उन श्रेष्ठ सत्पुरुषोंकी पहचान करनी चाहिये॥ ३५—३७ ॥

जैसे जब लोहा आगमें तपकर लाल हो जाता है, तब केवल लोहा नहीं रह जाता, उसी तरह मेरा सांनिध्य प्राप्त होनेसे वे केवल मनुष्य नहीं रह जाते—मेरा स्वरूप हो जाते हैं। हाथ, पैर आदिके साधर्म्यसे मानव-शरीर धारण करनेपर भी वे वास्तवमें रुद्र हैं। उन्हें प्राकृत मनुष्य समझकर विद्वान् पुरुष उनकी अवहेलना न करे॥ ३८-३९ ॥

जो मूढ़चित्त मानव उनके प्रति अवहेलना करते हैं, वे अपनी आयु, लक्ष्मी, कुल और शीलको त्यागकर नरकमें गिरते हैं। मुझसे अतिरिक्त किसी अन्यकी चाह न रखनेवाले, जीवन्मुक्त महामना शिवयोगियोंके लिये ब्रह्मा, विष्णु तथा इन्द्रका पद भी तुच्छ होता है॥ ४०-४१ ॥

[गुणोंके सम्बन्धसे उत्पन्न होनेवाले] बुद्धिलब्ध, प्राकृत तथा जीवात्मसम्बन्धी ऐश्वर्य अशुद्ध हैं, अतएव गुणातीतपदकी प्राप्तिकी इच्छावाले गुणेश्वरोंको इनको त्याग देना चाहिये। अथवा बहुत कहनेसे क्या लाभ? जिस किसी भी उपायसे मुझमें चित्त लगाना कल्याणकी प्राप्तिका एकमात्र साधन है॥ ४२-४३ ॥

उपमन्युरुवाच

इत्थं श्रीकण्ठनाथेन शिवेन परमात्मना।
हिताय जगतामुक्तो ज्ञानसारार्थसंग्रहः ॥ ४४

विज्ञानसंग्रहस्यास्य वेदशास्त्राणि कृत्स्नशः।
सेतिहासपुराणानि विद्या व्याख्यानविस्तरः ॥ ४५

ज्ञानं ज्ञेयमनुष्ठेयमधिकारोऽथ साधनम्।
साध्यं चेति षडर्थानां संग्रहस्त्वेष संग्रहः ॥ ४६

गुरोरधिकृतं ज्ञानं ज्ञेयं पाशः पशुः पतिः।
लिङ्गार्चनाद्यनुष्ठेयं भक्तस्त्वधिकृतोऽपि यः ॥ ४७

साधनं शिवमन्त्राद्यं साध्यं शिवसमानता।
षडर्थसंग्रहस्यास्य ज्ञानात्सर्वज्ञतोच्यते ॥ ४८

प्रथमं कर्मयज्ञादेर्भक्त्या वित्तानुसारतः।
बाह्येऽभ्यर्च्य शिवं पश्चादन्तर्यागरतो भवेत् ॥ ४९

रतिरभ्यन्तरे यस्य न बाह्ये पुण्यगौरवात्।
न कर्म करणीयं हि बहिस्तस्य महात्मना ॥ ५०

ज्ञानामृतेन तृप्तस्य भक्त्या शैवशिवात्मनः।
नान्तर्न च बहिः कृष्ण कृत्यमस्ति कदाचन ॥ ५१

तस्मात् क्रमेण संत्यज्य बाह्यमाभ्यन्तरं तथा।
ज्ञानेन ज्ञेयमालोक्य ज्ञानं चापि परित्यजेत् ॥ ५२

नैकाग्रं चेच्छिवे चित्तं किं कृतेनापि कर्मणा।
एकाग्रमेव चेच्चित्तं किं कृतेनापि कर्मणा ॥ ५३

तस्मात्कर्माण्यकृत्वा वा कृत्वा वान्तर्बहिःक्रमात्।
येन केनाप्युपायेन शिवे चित्तं निवेशयेत् ॥ ५४

उपमन्यु कहते हैं—इस प्रकार परमात्मा श्रीकण्ठनाथ शिवने तीनों लोकोंके हितके लिये ज्ञानके सारभूत अर्थका संग्रह प्रकट किया है ॥ ४४ ॥

सम्पूर्ण वेद-शास्त्र, इतिहास, पुराण और विद्याएँ इस विज्ञान-संग्रहकी ही विस्तृत व्याख्याएँ हैं ॥ ४५ ॥

ज्ञान, ज्ञेय, अनुष्ठेय, अधिकार, साधन और साध्य—इन छः अर्थोंका ही यह संक्षिप्त संग्रह बताया गया है। गुरुके माध्यमसे प्राप्त हुआ ज्ञान ही [वस्तुतः] ज्ञान है, पाश, पशु तथा पति—ये जाननेयोग्य विषय हैं, लिंगार्चन आदि अनुष्ठेय कर्म हैं तथा जो शिवभक्त है, वही यहाँ अधिकारी कहा गया है ॥ ४६-४७ ॥

[इस शास्त्रमें] शिवमन्त्र आदि साधन कहे गये हैं तथा शिवके साथ अभिन्नता साध्य है। ज्ञान, ज्ञेयादि इन छः विषयोंके ज्ञानसे सर्वज्ञताकी प्राप्ति हो जाती है, ऐसा [शास्त्रोंमें] कहा जाता है ॥ ४८ ॥

अपने वैभवके अनुसार भक्तिपूर्वक कर्मयज्ञ आदिके द्वारा भगवान् शिवकी बाह्यपूजा करनेके पश्चात् अन्तर्यागमें निरत होना चाहिये। [पूर्वमें किये गये] महान् पुण्योंके कारण जिस महात्माकी बहिर्यागमें विशेष अनुरक्ति हो चुकी है, उसके लिये [कोई भी] बाह्य कर्तव्य शेष नहीं रहता ॥ ४९-५० ॥

श्रीकृष्ण! जो शिव और शिवासम्बन्धी ज्ञानामृतसे तृप्त है और उनकी भक्तिसे सम्पन्न है, उसके लिये बाहर-भीतर कुछ भी कर्तव्य शेष नहीं है। इसलिये क्रमशः बाह्य और आभ्यन्तर कर्मको त्यागकर ज्ञानसे ज्ञेयका साक्षात्कार करके फिर उस साधनभूत ज्ञानको भी त्याग दे ॥ ५१-५२ ॥

यदि चित्त शिवमें एकाग्र नहीं है तो कर्म करनेसे भी क्या लाभ? और यदि चित्त एकाग्र ही है तो कर्म करनेकी भी क्या आवश्यकता है? अतः बाहर और भीतरके कर्म करके या न करके जिस-किसी भी उपायसे भगवान् शिवमें चित्त लगाये ॥ ५३-५४ ॥

शिवे निविष्टचित्तानां प्रतिष्ठितधियां सताम्।
परत्रेह च सर्वत्र निर्वृतिः परमा भवेत्॥ ५५

इहोन्नमः शिवायेति मन्त्रेणानेन सिद्धयः।
स तस्मादधिगन्तव्यः परावरविभूतये॥ ५६

जिनका चित्त भगवान् शिवमें लगा है और जिनकी बुद्धि सुस्थिर है, ऐसे सत्पुरुषोंको इहलोक और परलोकमें भी सर्वत्र परमानन्दकी प्राप्ति होती है। यहाँ '**ॐ नमः शिवाय**' इस मन्त्रसे सब सिद्धियाँ सुलभ होती हैं; अतः परावर विभूति (उत्तम-मध्यम ऐश्वर्य)-की प्राप्तिके लिये इस मन्त्रका ज्ञान प्राप्त करना चाहिये॥ ५५-५६॥

इति श्रीशिवमहापुराणे सप्तम्यां वायवीयसंहितायामुत्तरखण्डे शिवज्ञानवर्णनं नामैकादशोऽध्यायः॥ ११॥

॥ इस प्रकार श्रीशिवमहापुराणके अन्तर्गत सातवीं वायवीयसंहिताके उत्तरखण्डमें शिवज्ञानवर्णन नामक ग्यारहवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ ११॥

अथ द्वादशोऽध्यायः

पंचाक्षर-मन्त्रके माहात्म्यका वर्णन

श्रीकृष्ण उवाच

महर्षिवर सर्वज्ञ सर्वज्ञानमहोदधे।
पञ्चाक्षरस्य माहात्म्यं श्रोतुमिच्छामि तत्त्वतः॥ १

श्रीकृष्ण बोले—सर्वज्ञ महर्षिप्रवर! आप सम्पूर्ण ज्ञानके महासागर हैं। अब मैं [आपके मुखसे] पंचाक्षर-मन्त्रके माहात्म्यका तत्त्वतः वर्णन सुनना चाहता हूँ॥ १॥

उपमन्युरुवाच

पञ्चाक्षरस्य माहात्म्यं वर्षकोटिशतैरपि।
अशक्यं विस्तराद्वक्तुं तस्मात्संक्षेपतः शृणु॥ २
वेदे शिवागमे चायमुभयत्र षडक्षरः।
सर्वेषां शिवभक्तानामशेषार्थप्रसाधकः॥ ३

उपमन्युने कहा—देवकीनन्दन! पंचाक्षर-मन्त्रके माहात्म्यका विस्तारपूर्वक वर्णन तो सौ करोड़ वर्षोंमें भी नहीं किया जा सकता; अतः संक्षेपसे इसकी महिमा सुनो—वेदमें तथा शैवागममें दोनों जगह यह षडक्षर (प्रणवसहित पंचाक्षर)-मन्त्र समस्त शिवभक्तोंके सम्पूर्ण अर्थका साधक कहा गया है॥ २-३॥

तदल्पाक्षरमर्थाढ्यं वेदसारं विमुक्तिदम्।
आज्ञासिद्धमसंदिग्धं वाक्यमेतत् शिवात्मकम्॥ ४
नानासिद्धियुतं दिव्यं लोकचित्तानुरञ्जकम्।
सुनिश्चितार्थं गम्भीरं वाक्यं तत्पारमेश्वरम्॥ ५

इस मन्त्रमें अक्षर तो थोड़े ही हैं, परंतु यह महान् अर्थसे सम्पन्न है। यह वेदका सारतत्त्व है। मोक्ष देनेवाला है, शिवकी आज्ञासे सिद्ध है, संदेहशून्य है तथा शिवस्वरूप वाक्य है। यह नाना प्रकारकी सिद्धियोंसे युक्त, दिव्य, लोगोंके मनको प्रसन्न एवं निर्मल करनेवाला, सुनिश्चित अर्थवाला (अथवा निश्चय ही मनोरथको पूर्ण करनेवाला) तथा परमेश्वरका गम्भीर वचन है॥ ४-५॥

मन्त्रं सुखमुखोच्चार्यमशेषार्थप्रसिद्धये।
प्राहोन्नमः शिवायेति सर्वज्ञः सर्वदेहिनाम्॥ ६

इस मन्त्रका मुखसे सुखपूर्वक उच्चारण होता है। सर्वज्ञ शिवने सम्पूर्ण देहधारियोंके सारे मनोरथोंकी सिद्धिके लिये इस '**ॐ नमः शिवाय**' मन्त्रका प्रतिपादन किया है॥ ६॥

तद्बीजं सर्वविद्यानां मन्त्रमाद्यं षडक्षरम्।
अतिसूक्ष्मं महार्थं च ज्ञेयं तद्वटबीजवत्॥ ७

देवो गुणत्रयातीतः सर्वज्ञः सर्वकृत्प्रभुः।
ओमित्येकाक्षरे मन्त्रे स्थितः सर्वगतः शिवः॥ ८

ईशानाद्यानि सूक्ष्माणि ब्रह्माण्येकाक्षराणि तु।
मन्त्रे नमः शिवायेति संस्थितानि यथाक्रमम्॥ ९

मन्त्रे षडक्षरे सूक्ष्मे पञ्चब्रह्मतनुः शिवः।
वाच्यवाचकभावेन स्थितः साक्षात्स्वभावतः॥ १०

वाच्यः शिवोऽप्रमेयत्वात् मन्त्रस्तद्वाचकः स्मृतः।
वाच्यवाचकभावोऽयमनादिः संस्थितस्तयोः॥ ११

यथानादिप्रवृत्तोऽयं घोरसंसारसागरः।
शिवोऽपि हि तथानादिः संसारान्मोचकः स्थितः॥ १२

व्याधीनां भेषजं यद्वत्प्रतिपक्षः स्वभावतः।

तद्वत्संसारदोषाणां प्रतिपक्षः शिवः स्मृतः।
असत्यस्मिन् जगन्नाथे तमोभूतमिदं भवेत्॥ १३

अचेतनत्वात्प्रकृतेरज्ञत्वात्पुरुषस्य च।

प्रधानपरमाण्वादि यावत्किंचिदचेतनम्॥ १४

न तत्कर्तृ स्वयं दृष्टं बुद्धिमत्कारणं विना।
धर्माधर्मोपदेशश्च बन्धमोक्षौ विचारणात्॥ १५

न सर्वज्ञं विना पुंसामादिसर्गः प्रसिद्ध्यति।
वैद्यं विना निरानन्दाः क्लिश्यन्ते रोगिणो यथा॥ १६

तस्मादनादिः सर्वज्ञः परिपूर्णः सदाशिवः।
अस्ति नाथः परित्राता पुंसां संसारसागरात्॥ १७

आदिमध्यान्तनिर्मुक्तः स्वभावविमलः प्रभुः।

यह आदि षडक्षर-मन्त्र सम्पूर्ण विद्याओं (मन्त्रों)-का बीज (मूल) है। जैसे वटके बीजमें महान् वृक्ष छिपा हुआ है, उसी प्रकार अत्यन्त सूक्ष्म होनेपर भी इस मन्त्रको महान् अर्थसे परिपूर्ण समझना चाहिये। 'ॐ' इस एकाक्षर-मन्त्रमें तीनों गुणोंसे अतीत, सर्वज्ञ, सर्वकर्ता, द्युतिमान्, सर्वव्यापी प्रभु शिव प्रतिष्ठित हैं॥ ७-८॥

ईशान आदि जो सूक्ष्म एकाक्षररूप ब्रह्म हैं, वे सब **'नमः शिवाय'** इस मन्त्रमें क्रमशः स्थित हैं। सूक्ष्म षडक्षर-मन्त्रमें पंचब्रह्मरूपधारी साक्षात् भगवान् शिव स्वभावतः वाच्यवाचक-भावसे विराजमान हैं। अप्रमेय होनेके कारण शिव वाच्य हैं और मन्त्र उनका वाचक माना गया है॥ ९-१०॥

शिव और मन्त्रका यह वाच्य-वाचकभाव अनादिकालसे चला आ रहा है। जैसे यह घोर संसारसागर अनादिकालसे प्रवृत्त है, उसी प्रकार संसारसे छुड़ानेवाले भगवान् शिव भी अनादिकालसे ही नित्य विराजमान हैं। जैसे औषध रोगोंका स्वभावतः शत्रु है, उसी प्रकार भगवान् शिव संसार-दोषोंके स्वाभाविक शत्रु माने गये हैं॥ ११-१२१/२॥

यदि ये भगवान् विश्वनाथ न होते तो यह जगत् अन्धकारमय हो जाता; क्योंकि प्रकृति जड है और जीवात्मा अज्ञानी। [अतः इन्हें प्रकाश देनेवाले परमात्मा ही हैं]॥ १३१/२॥

प्रकृतिसे लेकर परमाणुपर्यन्त जो कुछ भी जडरूप तत्त्व है, वह किसी बुद्धिमान् (चेतन) कारणके बिना स्वयं 'कर्ता' नहीं देखा गया है। जीवोंके लिये धर्म करने और अधर्मसे बचनेका उपदेश दिया जाता है। उनके बन्धन और मोक्ष भी देखे जाते हैं। अतः विचार करनेसे सर्वज्ञ परमात्मा शिवके बिना प्राणियोंके आदिसर्गकी सिद्धि नहीं होती। जैसे रोगी वैद्यके बिना सुखसे रहित हो क्लेश उठाते हैं, [उसी प्रकार सर्वज्ञ शिवका आश्रय न लेनेसे संसारी जीव नाना प्रकारके क्लेश भोगते हैं]॥ १४—१६॥

अतः यह सिद्ध हुआ कि जीवोंका संसारसागरसे उद्धार करनेवाले स्वामी अनादि सर्वज्ञ परिपूर्ण सदाशिव विद्यमान हैं। वे प्रभु आदि, मध्य और अन्तसे रहित हैं। स्वभावसे ही निर्मल हैं तथा सर्वज्ञ एवं परिपूर्ण हैं।

सर्वज्ञः परिपूर्णश्च शिवो ज्ञेयः शिवागमे॥ १८

तस्याभिधानमन्त्रोऽयमभिधेयश्च स स्मृतः।
अभिधानाभिधेयत्वात् मन्त्रः सिद्धः परः शिवः॥ १९

उन्हें 'शिव' नामसे जानना चाहिये। शिवागममें उनके स्वरूपका विशदरूपसे वर्णन है। यह पंचाक्षर-मन्त्र उनका अभिधान (वाचक) है और वे शिव अभिधेय (वाच्य) हैं। अभिधान और अभिधेय (वाचक और वाच्य)-रूप होनेके कारण परमशिव-स्वरूप यह मन्त्र 'सिद्ध' माना गया है॥ १७—१९॥

एतावत्तु शिवज्ञानमेतावत्परमं पदम्।
यदोन्नमः शिवायेति शिववाक्यं षडक्षरम्॥ २०

विधिवाक्यमिदं शैवं नार्थवादं शिवात्मकम्।
यः सर्वज्ञः सुसंपूर्णः स्वभावविमलः शिवः॥ २१

'ॐ नमः शिवाय' यह जो षडक्षर शिववाक्य है, इतना ही शिवज्ञान है और इतना ही परमपद है। यह शिवका विधि-वाक्य है, अर्थवाद नहीं है। यह उन्हीं शिवका स्वरूप है, जो सर्वज्ञ, परिपूर्ण और स्वभावतः निर्मल हैं॥ २०-२१॥

लोकानुग्रहकर्त्ता च स मृषार्थं कथं वदेत्।
यद्यथावस्थितं वस्तु गुणदोषैः स्वभावतः॥ २२

यावत्फलं च तत्पूर्णं सर्वज्ञस्तु यथा वदेत्।
रागाज्ञानादिभिर्दोषैर्ग्रस्तत्वादनृतं वदेत्॥ २३

ते चेश्वरे न विद्येते ब्रूयात्स कथमन्यथा।
अज्ञाताशेषदोषेण सर्वज्ञेन शिवेन यत्।
प्रणीतममलं वाक्यं तत्प्रमाणं न संशयः॥ २४

जो समस्त लोकोंपर अनुग्रह करनेवाले हैं, वे भगवान् शिव झूठी बात कैसे कह सकते हैं? जो सर्वज्ञ हैं, वे तो मन्त्रसे जितना फल मिल सकता है, उतना पूरा-का-पूरा बतायेंगे। परंतु जो राग और अज्ञान आदि दोषोंसे ग्रस्त हैं, वे झूठी ही बात कह सकते हैं। वे राग और अज्ञान आदि दोष ईश्वरमें नहीं हैं; अतः ईश्वर कैसे झूठ बोल सकते हैं? जिनका सम्पूर्ण दोषोंसे कभी परिचय ही नहीं हुआ, उन सर्वज्ञ शिवने जिस निर्मल वाक्य—पंचाक्षर-मन्त्रका प्रणयन किया है, वह प्रमाणभूत ही है, इसमें संशय नहीं है॥ २२—२४॥

तस्मादीश्वरवाक्यानि श्रद्धेयानि विपश्चिता।
यथार्थपुण्यपापेषु तदश्रद्धो व्रजत्यधः॥ २५

इसलिये विद्वान् पुरुषको चाहिये कि वह ईश्वरके वचनोंपर श्रद्धा करे। यथार्थ पुण्य-पापके विषयमें ईश्वरके वचनोंपर श्रद्धा न करनेवाला पुरुष नरकमें जाता है॥ २५॥

स्वर्गापवर्गसिद्ध्यर्थं भाषितं यत्सुशोभनम्।
वाक्यं मुनिवरैः शान्तैस्तद्विज्ञेयं सुभाषितम्॥ २६

शान्त स्वभाववाले श्रेष्ठ मुनियोंने स्वर्ग और मोक्षकी सिद्धिके लिये जो सुन्दर बात कही है, उसे सुभाषित समझना चाहिये॥ २६॥

रागद्वेषानृतक्रोधकामतृष्णानुसारि यत्।
वाक्यं निरयहेतुत्वात्तद्दुर्भाषितमुच्यते॥ २७

जो वाक्य राग, द्वेष, असत्य, काम, क्रोध और तृष्णाका अनुसरण करनेवाला हो, वह नरकका हेतु होनेके कारण दुर्भाषित कहलाता है॥ २७॥

संस्कृतेनाऽपि किं तेन मृदुना ललितेन वा।
अविद्यारागवाक्येन संसारक्लेशहेतुना॥ २८

यच्छ्रुत्वा जायते श्रेयो रागादीनां च संक्षयः।
विरूपमपि तद्वाक्यं विज्ञेयमिति शोभनम्॥ २९

अविद्या एवं रागसे युक्त वाक्य जन्म-मरणरूप संसार-क्लेशकी प्राप्तिमें कारण होता है। अतः वह कोमल, ललित अथवा संस्कृत (संस्कारयुक्त) हो तो भी उससे क्या लाभ? जिसे सुनकर कल्याणकी प्राप्ति हो तथा राग आदि दोषोंका नाश हो जाय, वह वाक्य सुन्दर शब्दावलीसे युक्त न हो तो भी शोभन तथा समझनेयोग्य है॥ २८-२९॥

बहुत्वेऽपि हि मन्त्राणां सर्वज्ञेन शिवेन यः।
प्रणीतो विमलो मन्त्रो न तेन सदृशः क्वचित्॥ ३०

मन्त्रोंकी संख्या बहुत होनेपर भी जिस विमल षडक्षर-मन्त्रका निर्माण सर्वज्ञ शिवने किया है, उसके समान कहीं कोई दूसरा मन्त्र नहीं है॥ ३०॥

साङ्गानि वेदशास्त्राणि संस्थितानि षडक्षरे।
न तेन सदृशस्तस्मान्मन्त्रोऽप्यस्त्यपरः क्वचित्॥ ३१

सप्तकोटिमहामन्त्रैरुपमन्त्रैरनेकधा ।
मन्त्रः षडक्षरो भिन्नः सूत्रं वृत्त्यात्मना यथा॥ ३२

षडक्षर-मन्त्रमें छहों अंगोंसहित सम्पूर्ण वेद और शास्त्र विद्यमान हैं; अतः उसके समान दूसरा कोई मन्त्र कहीं नहीं है। सात करोड़ महामन्त्रों और अनेकानेक उपमन्त्रोंसे यह षडक्षर-मन्त्र उसी प्रकार भिन्न है, जैसे वृत्तिसे सूत्र॥ ३१-३२॥

शिवज्ञानानि यावन्ति विद्यास्थानानि यानि च।
षडक्षरस्य सूत्रस्य तानि भाष्यं समासतः॥ ३३

जितने शिवज्ञान हैं और जो-जो विद्यास्थान हैं, वे सब षडक्षर-मन्त्ररूपी सूत्रके संक्षिप्त भाष्य हैं॥ ३३॥

किं तस्य बहुभिर्मन्त्रैः शास्त्रैर्वा बहुविस्तरैः।
यस्योन्नमः शिवायेति मन्त्रोऽयं हृदि संस्थितः॥ ३४

तेनाधीतं श्रुतं तेन कृतं सर्वमनुष्ठितम्।
येनोन्नमः शिवायेति मन्त्राभ्यासः स्थिरीकृतः॥ ३५

नमस्कारादिसंयुक्तं शिवायेत्यक्षरत्रयम्।
जिह्वाग्रे वर्तते यस्य सफलं तस्य जीवितम्॥ ३६

अंत्यजो वाधमो वापि मूर्खो वा पंडितोऽपि वा।
पञ्चाक्षरजपे निष्ठो मुच्यते पापपञ्जरात्॥ ३७

जिसके हृदयमें '**ॐ नमः शिवाय**' यह षडक्षर-मन्त्र प्रतिष्ठित है, उसे दूसरे बहुसंख्यक मन्त्रों और अनेक विस्तृत शास्त्रोंसे क्या प्रयोजन है? जिसने '**ॐ नमः शिवाय**' इस मन्त्रका जप दृढ़तापूर्वक अपना लिया है, उसने सम्पूर्ण शास्त्र पढ़ लिया और समस्त शुभ कृत्योंका अनुष्ठान पूरा कर लिया। आदिमें '**नमः**' पदसे युक्त '**शिवाय**'—ये तीन अक्षर जिसकी जिह्वाके अग्रभागमें विद्यमान हैं, उसका जीवन सफल हो गया। पंचाक्षर-मन्त्रके जपमें लगा हुआ पुरुष यदि पण्डित, मूर्ख, अन्त्यज अथवा अधम भी हो तो वह पापपंजरसे मुक्त हो जाता है॥ ३४—३७॥

इत्युक्तं परमेशेन देव्या पृष्टेन शूलिना।
हिताय सर्वमर्त्यानां द्विजानां तु विशेषतः॥ ३८

देवी [पार्वती]-के द्वारा पूछे जानेपर शूलधारी परमेश [शिव]-ने सभी मनुष्यों और विशेष रूपसे द्विजोंके हितके लिये इसे कहा था॥ ३८॥

इति श्रीशिवमहापुराणे सप्तम्यां वायवीयसंहितायामुत्तरखण्डे पंचाक्षरमाहात्म्यवर्णनं नाम द्वादशोऽध्यायः॥ १२॥

॥ इस प्रकार श्रीशिवमहापुराणके अन्तर्गत सातवीं वायवीयसंहिताके उत्तरखण्डमें पंचाक्षरमाहात्म्यवर्णन नामक बारहवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ १२॥

अथ त्रयोदशोऽध्यायः

पंचाक्षर-मन्त्रकी महिमा, उसमें समस्त वाङ्मयकी स्थिति, उसकी उपदेशपरम्परा, देवीरूपा पंचाक्षरीविद्याका ध्यान, उसके समस्त और व्यस्त अक्षरोंके ऋषि, छन्द, देवता, बीज, शक्ति तथा अंगन्यास आदिका विचार

देव्युवाच

कलौ कलुषिते काले दुर्जये दुरतिक्रमे।
अपुण्यतमसाच्छन्ने लोके धर्मपराङ्मुखे॥ १
क्षीणे वर्णाश्रमाचारे सङ्कटे समुपस्थिते।
सर्वाधिकारे संदिग्धे निश्चिते वापि पर्यये॥ २

देवी बोलीं—महेश्वर! दुर्जय, दुर्लङ्घ्य एवं कलुषित कलिकालमें जब सारा संसार धर्मसे विमुख हो पापमय अन्धकारसे आच्छादित हो जायगा, वर्ण और आश्रम-सम्बन्धी आचार नष्ट हो जायँगे, धर्मसंकट उपस्थित हो जायगा, सबका अधिकार संदिग्ध, अनिश्चित

तदोपदेशे विहते गुरुशिष्यक्रमे गते।
केनोपायेन मुच्यन्ते भक्तास्तव महेश्वर॥ ३

और विपरीत हो जायगा, उस समय उपदेशकी प्रणाली नष्ट हो जायगी और गुरु-शिष्यकी परम्परा भी जाती रहेगी, ऐसी परिस्थितिमें आपके भक्त किस उपायसे मुक्त हो सकते हैं?॥ १—३॥

ईश्वर उवाच

आश्रित्य परमां विद्यां हृद्यां पञ्चाक्षरीं मम।
भक्त्या च भावितात्मानो मुच्यन्ते कलिजा नराः॥ ४

महादेवजीने कहा—देवि ! कलिकालके मनुष्य मेरी परम मनोरम पंचाक्षरी विद्याका आश्रय ले भक्तिसे भावितचित्त होकर संसार-बन्धनसे मुक्त हो जाते हैं॥ ४॥

मनोवाक्कायजैर्दोषैर्वक्तुं स्मर्तुमगोचरैः।
दूषितानां कृतघ्नानां निन्दकानां छलात्मनाम्॥ ५

लुब्धानां वक्रमनसामपि मत्प्रवणात्मनाम्।
मम पञ्चाक्षरी विद्या संसारभयतारिणी॥ ६

मयैवमसकृद्देवि प्रतिज्ञातं धरातले।
पतितोऽपि विमुच्येत मद्भक्तो विद्ययाऽनया॥ ७

जो अकथनीय और अचिन्तनीय हैं—उन मानसिक, वाचिक और शारीरिक दोषोंसे जो दूषित, कृतघ्न, निर्दय, छली, लोभी और कुटिलचित्त हैं, वे मनुष्य भी यदि मुझमें मन लगाकर मेरी पंचाक्षरी विद्याका जप करेंगे, उनके लिये वह विद्या ही संसारभयसे तारनेवाली होगी। देवि! मैंने बारंबार प्रतिज्ञापूर्वक यह बात कही है कि भूतलपर मेरा पतित हुआ भक्त भी इस पंचाक्षरी विद्याके द्वारा बन्धनसे मुक्त हो जाता है॥ ५—७॥

देव्युवाच

कर्मायोग्यो भवेन्मर्त्यः पतितो यदि सर्वथा।
कर्मायोग्येन यत्कर्म कृतं च नरकाय हि।
ततः कथं विमुच्येत पतितो विद्ययाऽनया॥ ८

देवी बोलीं—यदि मनुष्य पतित होकर सर्वथा कर्म करनेके योग्य न रह जाय तो उसके द्वारा किया गया कर्म नरकको ही प्राप्ति करानेवाला होता है। ऐसी दशामें पतित मानव इस विद्याद्वारा कैसे मुक्त हो सकता है?॥ ८॥

ईश्वर उवाच

तथ्यमेतत्त्वया प्रोक्तं तथा हि शृणु सुन्दरि।
रहस्यमिति मत्वैतद्गोपितं यन्मया पुरा॥ ९

महादेवजीने कहा—सुन्दरि! तुमने यह बहुत ठीक बात पूछी है। अब इसका उत्तर सुनो, पहले मैंने इस विषयको गोपनीय समझकर अबतक प्रकट नहीं किया था॥ ९॥

समन्त्रकं मां पतितः पूजयेद्यदि मोहितः।
नारकी स्यान्न सन्देहो मम पञ्चाक्षरं विना॥ १०

अब्भक्षा वायुभक्षाश्च ये चान्ये व्रतकर्शिताः।
तेषामेतैर्व्रतैर्नास्ति मम लोकसमागमः॥ ११

भक्त्या पञ्चाक्षरेणैव यो हि मां सकृदर्चयेत्।
सोऽपि गच्छेन्मम स्थानं मन्त्रस्यास्यैव गौरवात्॥ १२

यदि पतित मनुष्य मोहवश (अन्य) मन्त्रोंके उच्चारणपूर्वक मेरा पूजन करे तो वह निःसंदेह नरकगामी हो सकता है। किंतु पंचाक्षर-मन्त्रके लिये ऐसा प्रतिबन्ध नहीं है। जो केवल जल पीकर और हवा खाकर तप करते हैं तथा दूसरे लोग जो नाना प्रकारके व्रतोंद्वारा अपने शरीरको सुखाते हैं, उन्हें इन व्रतोंद्वारा मेरे लोककी प्राप्ति नहीं होती। परंतु जो भक्तिपूर्वक पंचाक्षर-मन्त्रसे ही एक बार मेरा पूजन कर लेता है, वह भी इस मन्त्रके ही प्रतापसे मेरे धाममें पहुँच जाता है॥ १०—१२॥

तस्मात्तपांसि यज्ञाश्च व्रतानि नियमास्तथा।
पञ्चाक्षरार्चनस्यैते कोट्यंशेनापि नो समाः॥ १३

बद्धो वाप्यथ मुक्तो वा पाशात्पञ्चाक्षरेण यः।
पूजयेन्मां स मुच्येत नात्र कार्या विचारणा॥ १४

इसलिये तप, यज्ञ, व्रत और नियम पंचाक्षरद्वारा मेरे पूजनकी करोड़वीं कलाके समान भी नहीं हैं। कोई बद्ध हो या मुक्त, जो पंचाक्षर-मन्त्रके द्वारा मेरा पूजन करता है, वह अवश्य ही संसारपाशसे छुटकारा पा जाता है॥ १३-१४॥

अरुद्रो वा सरुद्रो वा सकृत्पञ्चाक्षरेण यः।
पूजयेत्पतितो वापि मूढो वा मुच्यते नरः॥ १५

रुद्रभक्तिसे रहित अथवा रुद्रभक्तिसे युक्त जो पतित अथवा मूर्ख मनुष्य भी पंचाक्षरसे एक बार मेरा पूजन कर लेता है, वह मुक्त हो जाता है॥ १५॥

षडक्षरेण वा देवि तथा पञ्चाक्षरेण वा।
स ब्रह्माङ्गेन मां भक्त्या पूजयेद्यदि मुच्यते॥ १६

देवि! [ईशान आदि पाँच] ब्रह्म जिसके अंग हैं, उस षडक्षर या पंचाक्षर-मन्त्रके द्वारा जो भक्तिभावसे मेरा पूजन करता है, वह मुक्त हो जाता है॥ १६॥

पतितोऽपतितो वापि मन्त्रेणानेन पूजयेत्।
मम भक्तो जितक्रोधो सलब्धोऽलब्ध एव वा॥ १७

अलब्धाल्लब्ध एवेह कोटिकोटिगुणाधिकः।
तस्मात् लब्ध्वैव मां देवि मन्त्रेणानेन पूजयेत्॥ १८

कोई पतित हो या अपतित, वह इस पंचाक्षर-मन्त्रके द्वारा मेरा पूजन करे। मेरा भक्त पंचाक्षर-मन्त्रका उपदेश गुरुसे ले चुका हो या नहीं, वह क्रोधको जीतकर इस मन्त्रके द्वारा मेरी पूजा किया करे। जिसने मन्त्रकी दीक्षा नहीं ली है, उसकी अपेक्षा दीक्षा लेनेवाला पुरुष कोटि-कोटि गुणा अधिक माना गया है। अतः देवि! दीक्षा लेकर ही इस मन्त्रसे मेरा पूजन करना चाहिये॥ १७-१८॥

लब्ध्वा सम्पूजयेद्यस्तु मैत्र्यादिगुणसंयुतः।
ब्रह्मचर्यरतो भक्त्या मत्सादृश्यमवाप्नुयात्॥ १९

किमत्र बहुनोक्तेन भक्ताः सर्वेऽधिकारिणः।
मम पञ्चाक्षरे मन्त्रे तस्मात् श्रेष्ठतरो हि सः॥ २०

पञ्चाक्षरप्रभावेण लोकवेदमहर्षयः।
तिष्ठन्ति शाश्वता धर्मा देवाः सर्वमिदं जगत्॥ २१

जो इस मन्त्रकी दीक्षा लेकर मैत्री, मुदिता [करुणा, उपेक्षा] आदि गुणोंसे युक्त तथा ब्रह्मचर्यपरायण हो भक्तिभावसे मेरा पूजन करता है, वह मेरी समता प्राप्त कर लेता है। इस विषयमें अधिक कहनेसे क्या लाभ? मेरे पंचाक्षर-मन्त्रमें सभी भक्तोंका अधिकार है। इसलिये वह श्रेष्ठतर मन्त्र है। पंचाक्षरके प्रभावसे ही लोक, वेद, महर्षि, सनातनधर्म, देवता तथा यह सम्पूर्ण जगत् टिके हुए हैं॥ १९—२१॥

प्रलये समनुप्राप्ते नष्टे स्थावरजङ्गमे।
सर्वं प्रकृतिमापन्नं तत्र संलयमेष्यति॥ २२

एकोऽहं संस्थितो देवि न द्वितीयोऽस्ति कुत्रचित्।
तदा वेदाश्च शास्त्राणि सर्वे पञ्चाक्षरे स्थिताः॥ २३

ते नाशं नैव सम्प्राप्ता मच्छक्त्या ह्यनुपालिताः।
ततः सृष्टिरभून्मत्तः प्रकृत्यात्मप्रभेदतः॥ २४

देवि! प्रलयकाल आनेपर जब चराचर जगत् नष्ट हो जाता है और सारा प्रपंच प्रकृतिमें मिलकर वहीं लीन हो जाता है, तब मैं अकेला ही स्थित रहता हूँ, दूसरा कोई कहीं नहीं रहता। उस समय समस्त देवता और शास्त्र पंचाक्षर-मन्त्रमें स्थित होते हैं। अतः मेरी शक्तिसे पालित होनेके कारण वे नष्ट नहीं होते हैं। तदनन्तर मुझसे प्रकृति और पुरुषके भेदसे युक्त सृष्टि होती है॥ २२—२४॥

गुणमूर्त्यात्मनां चैव ततोऽवान्तरसंहृतिः।
तदा नारायणः शेते देवो मायामयीं तनुम्॥ २५

आस्थाय भोगिपर्यङ्कशयने तोयमध्यगः।
तन्नाभिपङ्कजाज्जातः पञ्चवक्त्रः पितामहः॥ २६

तत्पश्चात् त्रिगुणात्मक मूर्तियोंका संहार करनेवाला अवान्तर प्रलय होता है। उस प्रलयकालमें भगवान् नारायणदेव मायामय शरीरका आश्रय ले जलके भीतर शेषशय्यापर शयन करते हैं। उनके नाभिकमलसे पंचमुख ब्रह्माजीका जन्म होता है॥ २५-२६॥

सिसृक्षमाणो लोकांस्त्रीन्न सक्तो ह्यसहायवान्।
मुनीन्दश संसर्जादौ मानसानमितौजसः॥ २७

ब्रह्माजी तीनों लोकोंकी सृष्टि करना चाहते थे; किन्तु कोई सहायक न होनेसे उसे कर नहीं पाते थे। तब उन्होंने पहले अमित तेजस्वी दस महर्षियोंकी

तेषां सिद्धिविवृद्ध्यर्थं मां प्रोवाच पितामहः।
मत्पुत्राणां महादेव शक्तिं देहि महेश्वर॥ २८

इत्येवं प्रार्थितस्तेन पञ्चवक्त्रधरो ह्यहम्।
पञ्चाक्षराणि क्रमशः प्रोक्तवान् पद्मयोनये॥ २९

स पञ्चवदनैस्तानि गृह्णँल्लोकपितामहः।
वाच्यवाचकभावेन ज्ञातवान्मां महेश्वरम्॥ ३०

ज्ञात्वा प्रयोगं विधिवत् सिद्धमन्त्रः प्रजापतिः।
पुत्रेभ्यः प्रददौ मन्त्रं मन्त्रार्थं च यथातथम्॥ ३१

ते च लब्ध्वा मन्त्ररत्नं साक्षात् लोकपितामहात्।
तदाज्ञप्तेन मार्गेण मदाराधनकांक्षिणः॥ ३२

मेरोस्तु शिखरे रम्ये मुञ्जवान्नाम पर्वतः।
मत्प्रियः सततं श्रीमान्मद्भक्तै रक्षितः सदा॥ ३३

तस्याभ्याशे तपस्तीव्रं लोकं स्रष्टुं समुत्सुकाः।
दिव्यं वर्षसहस्रं तु वायुभक्षाः समाचरन्॥ ३४

तेषां भक्तिमहं दृष्ट्वा सद्यः प्रत्यक्षतामियाम्।
ऋषिं छंदश्च कीलं च बीजशक्तिं च दैवतम्॥ ३५

न्यासं षडङ्गं दिग्बन्धं विनियोगमशेषतः।
प्रोक्तवानहमार्याणां जगत्सृष्टिविवृद्धये॥ ३६

ततस्ते मन्त्रमाहात्म्याद् ऋषयस्तपसैधिताः।
सृष्टिं वितन्वते सम्यक् सदेवासुरमानुषीम्॥ ३७

अस्याः परमविद्यायाः स्वरूपमधुनोच्यते।
आदौ नमः प्रयोक्तव्यं शिवाय तु ततः परम्॥ ३८

सैषा पञ्चाक्षरी विद्या सर्वश्रुतिशिरोगता।

सृष्टि की, जो उनके मानसपुत्र कहे गये हैं। उन पुत्रोंकी सिद्धि बढ़ानेके लिये पितामह ब्रह्माने मुझसे कहा—महादेव! महेश्वर! मेरे पुत्रोंको शक्ति प्रदान कीजिये॥ २७-२८॥

उनके इस प्रकार प्रार्थना करनेपर पाँच मुख धारण करनेवाले मैंने ब्रह्माजीके प्रति प्रत्येक मुखसे एक-एक अक्षरके क्रमसे पाँच अक्षरोंका उपदेश किया॥ २९॥

लोकपितामह ब्रह्माजीने भी अपने पाँच मुखोंद्वारा क्रमशः उन पाँचों अक्षरोंको ग्रहण किया और वाच्यवाचकभावसे मुझ महेश्वरको जाना। मन्त्रके प्रयोगको जानकर प्रजापतिने विधिवत् उसे सिद्ध किया। तत्पश्चात् उन्होंने अपने पुत्रोंको यथावत् रूपसे उस मन्त्रका और उसके अर्थका भी उपदेश दिया॥ ३०-३१॥

साक्षात् लोकपितामह ब्रह्मासे उस मन्त्ररत्नको पाकर मेरी आराधनाकी इच्छा रखनेवाले उन मुनियोंने उनकी बतायी हुई पद्धतिसे उस मन्त्रका जप करते हुए मेरुके रमणीय शिखरपर मुंजवान् पर्वतके निकट एक सहस्र दिव्य वर्षोंतक तीव्र तपस्या की। वे लोकसृष्टिके लिये अत्यन्त उत्सुक थे। इसलिये वायु पीकर कठोर तपस्यामें लग गये। जहाँ उनकी तपस्या चल रही थी, वह श्रीमान् मुंजवान् पर्वत सदा ही मुझे प्रिय है और मेरे भक्तोंने निरन्तर उसकी रक्षा की है॥ ३२—३४॥

उन ऋषियोंकी भक्ति देखकर मैंने तत्काल उन्हें प्रत्यक्ष दर्शन दिया और उन आर्य ऋषियोंको पंचाक्षर-मन्त्रके ऋषि, छन्द, देवता, बीज, शक्ति, कीलक, षडंगन्यास, दिग्बन्ध और विनियोग—इन सब बातोंका पूर्णरूपसे ज्ञान कराया। संसारकी सृष्टि बढ़े—इसके लिये मैंने उन्हें मन्त्रकी सारी विधियाँ बतायीं। तब वे उस मन्त्रके माहात्म्यसे तपस्यामें बहुत बढ़ गये और देवताओं, असुरों तथा मनुष्योंकी सृष्टिका भलीभाँति विस्तार करने लगे॥ ३५—३७॥

अब इस उत्तम विद्या पंचाक्षरीके स्वरूपका वर्णन किया जाता है। आदिमें **'नमः'** पदका प्रयोग करना चाहिये। उसके बाद **'शिवाय'** पदका। यही वह पंचाक्षरी विद्या है, जो समस्त श्रुतियोंकी सिरमौर है

सर्वजातस्य सर्वस्य बीजभूता सनातनी॥ ३९
प्रथमं मन्मुखोद्गीर्णा सा ममैवास्ति वाचिका।

तथा सम्पूर्ण शब्दसमुदायकी सनातन बीजरूपिणी है। यह विद्या पहले-पहल मेरे मुखसे निकली; इसलिये मेरे ही स्वरूपका प्रतिपादन करनेवाली है। [इसका एक देवीके रूपमें ध्यान करना चाहिये] ॥ ३८-३९१/२ ॥

तप्तचामीकरप्रख्या पीनोन्नतपयोधरा॥ ४०
चतुर्भुजा त्रिनयना बालेन्दुकृतशेखरा।
पद्मोत्पलकरा सौम्या वरदाभयपाणिका॥ ४१

इस देवीकी अंग-कान्ति तपाये हुए सुवर्णके समान है। इसके पीन पयोधर ऊपरको उठे हुए हैं। यह चार भुजाओं और तीन नेत्रोंसे सुशोभित है। इसके मस्तकपर बालचन्द्रमाका मुकुट है। दो हाथोंमें पद्म और उत्पल हैं। अन्य दो हाथोंमें वरद और अभयकी मुद्रा है। मुखाकृति सौम्य है॥ ४०-४१ ॥

सर्वलक्षणसंपन्ना सर्वाभरणभूषिता।
सितपद्मासनासीना नीलकुञ्चितमूर्द्धजा॥ ४२
अस्याः पञ्चविद्या वर्णाः प्रस्फुरद् रश्मिमंडलाः।
पीतः कृष्णस्तथा धूम्रः स्वर्णाभो रक्त एव च॥ ४३
पृथक् प्रयोज्या यद्येते बिंदुनादविभूषिताः।
अर्द्धचन्द्रनिभो बिंदुर्नादो दीपशिखाकृतिः॥ ४४

यह समस्त शुभ लक्षणोंसे सम्पन्न तथा सम्पूर्ण आभूषणोंसे विभूषित है। श्वेत कमलके आसनपर विराजमान है। इसके काले-काले घुँघराले केश बड़ी शोभा पा रहे हैं। इसके अंगोंमें पाँच प्रकारके वर्ण हैं, जिनकी रश्मियाँ प्रकाशित हो रही हैं। वे वर्ण हैं—पीत, कृष्ण, धूम्र, स्वर्णिम तथा रक्त। इन वर्णोंका यदि पृथक्-पृथक् प्रयोग हो तो इन्हें विन्दु और नादसे विभूषित करना चाहिये। विन्दुकी आकृति अर्द्धचन्द्रके समान है और नादकी आकृति दीपशिखाके समान॥ ४२—४४ ॥

बीजं द्वितीयं बीजेषु मन्त्रस्यास्य वरानने।
दीर्घपूर्वं तुरीयस्य पञ्चमं शक्तिमादिशेत्॥ ४५
वामदेवो नाम ऋषिः पंक्तिश्छन्द उदाहृतम्।
देवता शिव एवाहं मन्त्रस्यास्य वरानने॥ ४६

सुमुखि! यों तो इस मन्त्रके सभी अक्षर बीजरूप हैं, तथापि उनमें दूसरे अक्षरको इस मन्त्रका बीज समझना चाहिये। दीर्घ-स्वरपूर्वक जो चौथा वर्ण है, उसे कीलक और पाँचवें वर्णको शक्ति समझना चाहिये। इस मन्त्रके वामदेव ऋषि हैं और पंक्ति छन्द है। वरानने! मैं शिव ही इस मन्त्रका देवता हूँ* ॥ ४५-४६ ॥

गौतमोऽत्रिर्वरारोहे विश्वामित्रस्तथाङ्गिराः।
भरद्वाजश्च वर्णानां क्रमशश्चर्षयः स्मृताः॥ ४७
गायत्र्यनुष्टुप् त्रिष्टुप् च छंदांसि बृहती विराट्।
इन्द्रो रुद्रो हरिर्ब्रह्मा स्कंदस्तेषां च देवताः॥ ४८
मम पञ्चमुखान्याहुः स्थानं तेषां वरानने।
पूर्वादिश्चोर्ध्वपर्यन्तं नकारादि यथाक्रमम्॥ ४९

वरारोहे! गौतम, अत्रि, विश्वामित्र, अंगिरा और भरद्वाज—ये नकारादि वर्णोंके क्रमशः ऋषि माने गये हैं। गायत्री, अनुष्टुप्, त्रिष्टुप्, बृहती और विराट्—ये क्रमशः पाँचों अक्षरोंके छन्द हैं। इन्द्र, रुद्र, विष्णु, ब्रह्मा और स्कन्द—ये क्रमशः उन अक्षरोंके देवता हैं। वरानने! मेरे पूर्व आदि चारों दिशाओंके तथा ऊपरके—पाँचों मुख इन नकारादि अक्षरोंके क्रमशः स्थान हैं॥ ४७—४९ ॥

* 'ॐ अस्य श्रीशिवपञ्चाक्षरीमन्त्रस्य वामदेव ऋषिः, पंक्तिश्छन्दः, शिवो देवता, मं बीजम्, यं शक्तिः, वां कीलकं सदाशिवकृपाप्रसादोपलब्धिपूर्वकमखिलपुरुषार्थसिद्धये जपे विनियोगः।' शिवपुराणके इस वर्णनके अनुसार यही विनियोगवाक्य है। मन्त्र-महार्णव आदिमें जो विनियोग दिया गया है, उसमें 'ॐ' बीजम्, 'नमः' शक्तिः, 'शिवाय' इति कीलकम् इतना अन्तर है।

उदात्तः प्रथमो वर्णश्चतुर्थश्च द्वितीयकः।
पञ्चमः स्वरितश्चैव तृतीयो निहितः स्मृतः॥ ५०

मूलविद्या शिवं शैवं सूत्रं पञ्चाक्षरं तथा।
नामान्यस्य विजानीयाच्छैवं मे हृदयं महत्॥ ५१

पंचाक्षर-मन्त्रका पहला अक्षर उदात्त है। दूसरा और चौथा भी उदात्त ही है। पाँचवाँ स्वरित है और तीसरा अक्षर अनुदात्त माना गया है। इस पंचाक्षर-मन्त्रके—मूल विद्या शिव, शैव, सूत्र तथा पंचाक्षर नाम जाने। शैव (शिवसम्बन्धी) बीज प्रणव मेरा विशाल हृदय है॥ ५०-५१॥

नकारः शिर उच्येत मकारस्तु शिखोच्यते।
शिकारः कवचं तद्वद्वकारो नेत्रमुच्यते॥ ५२

यकारोऽस्त्रं नमः स्वाहा वषट् हुं वौषडित्यपि।
फडित्यपि च वर्णानामन्तेऽङ्गत्वं यदा तदा॥ ५३

नकार सिर कहा गया है, मकार शिखा है, 'शि' कवच है, 'वा' नेत्र है और यकार अस्त्र है। इन वर्णोंके अन्तमें अंगोंके चतुर्थ्यन्तरूपके साथ क्रमशः नमः, स्वाहा, वषट्, हुम्, वौषट् और फट् जोड़नेसे अंगन्यास होता है*॥ ५२-५३॥

तत्रापि मूलमन्त्रोऽयं किञ्चिद्भेदसमन्वयात्।
तत्रापि पञ्चमो वर्णो द्वादशस्वरभूषितः॥ ५४

तस्मादनेन मन्त्रेण मनोवाक्कायभेदतः।
आवयोरर्चनं कुर्य्याज्जपहोमादिकं तथा॥ ५५

देवि! थोड़ेसे भेदके साथ यह तुम्हारा भी मूलमन्त्र है। उस पंचाक्षर-मन्त्रमें जो पाँचवाँ वर्ण 'य' है, उसे बारहवें स्वरसे विभूषित किया जाता है, अर्थात् **'नमः शिवाय'** के स्थानमें **'नमः शिवायै'** कहनेसे यह देवीका मूलमन्त्र हो जाता है। अतः साधकको चाहिये कि वह इस मन्त्रसे मन, वाणी और शरीरके भेदसे हम दोनोंका पूजन, जप और होम आदि करे। (मन आदिके भेदसे यह पूजन तीन प्रकारका होता है—मानसिक, वाचिक और शारीरिक।)॥ ५४-५५॥

यथाप्रज्ञं यथाकालं यथाशास्त्रं यथामति।
यथाशक्ति यथासंपद्यथायोगं यथारति॥ ५६

यदा कदापि वा भक्त्या यत्र कुत्रापि वा कृता।
येन केनापि वा देवि पूजा मुक्तिं नयिष्यति॥ ५७

देवि! जिसकी जैसी समझ हो, जिसे जितना समय मिल सके, जिसकी जैसी बुद्धि, शक्ति, सम्पत्ति, उत्साह एवं योग्यता और प्रीति हो, उसके अनुसार वह शास्त्रविधिसे जब कभी, जहाँ कहीं अथवा जिस किसी भी साधनद्वारा मेरी पूजा कर सकता है। उसकी की हुई वह पूजा उसे अवश्य मोक्षकी प्राप्ति करा देगी॥ ५६-५७॥

मय्यासक्तेन मनसा यत्कृतं मम सुन्दरि।
मत्प्रियं च शिवं चैव क्रमेणाप्यक्रमेण वा॥ ५८
तथापि मम भक्ता ये नात्यन्तविवशाः पुनः।

सुन्दरि! मुझमें मन लगाकर जो कुछ क्रम या व्युत्क्रमसे किया गया हो, वह कल्याणकारी तथा मुझे प्रिय होता है। तथापि जो मेरे भक्त हैं और कर्म

---

* अंगन्यासवाक्यका प्रयोग यों समझना चाहिये—ॐ ॐ हृदयाय नमः, ॐ नं शिरसे स्वाहा, ॐ मं शिखायै वषट्, ॐ शिं कवचाय हुम्, ॐ वां नेत्रत्रयाय वौषट्, ॐ यं अस्त्राय फट् इति हृदयादिषडङ्गन्यासः। इसी तरह करन्यासका प्रयोग है—यथा— ॐ ॐ अङ्गुष्ठाभ्यां नमः, ॐ नं तर्जनीभ्यां नमः, ॐ मं मध्यमाभ्यां नमः, ॐ शिं अनामिकाभ्यां नमः, ॐ वां कनिष्ठिकाभ्यां नमः, ॐ यं करतलकरपृष्ठाभ्यां नमः। विनियोगमें जो ऋषि आदि आये हैं, उनका न्यास इस प्रकार समझना चाहिये—ॐ वामदेवर्षये नमः शिरसि, पंक्तिच्छन्दसे नमः मुखे, शिवदेवतायै नमः हृदये, मं बीजाय नमः गुह्ये, यं शक्तये नमः पादयोः, वां कीलकाय नमः नाभौ, विनियोगाय नमः सर्वाङ्गे।

तेषां सर्वेषु शास्त्रेषु मयैव नियमः कृतः ॥ ५९

तत्रादौ संप्रवक्ष्यामि मन्त्रसंग्रहणं शुभम्।
यं विना निष्फलं जाप्यं येन वा सफलं भवेत्॥ ६०

करनेमें अत्यन्त विवश (असमर्थ) नहीं हो गये हैं, उनके लिये सब शास्त्रोंमें मैंने ही नियम बनाया है, उस नियमका उन्हें पालन करना चाहिये। अब मैं पहले मन्त्रकी दीक्षा लेनेका शुभ विधान बता रहा हूँ, जिसके बिना मन्त्र-जप निष्फल होता है और जिसके होनेसे जप-कर्म अवश्य सफल होता है॥ ५८—६०॥

इति श्रीशिवमहापुराणे सप्तम्यां वायवीयसंहितायामुत्तरखण्डे पंचाक्षरमाहात्म्यवर्णनं नाम त्रयोदशोऽध्यायः॥ १३॥

॥ इस प्रकार श्रीशिवमहापुराणके अन्तर्गत सातवीं वायवीयसंहिताके उत्तरखण्डमें पंचाक्षर-माहात्म्यवर्णन नामक तेरहवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ १३॥

अथ चतुर्दशोऽध्यायः

गुरुसे मन्त्र लेने तथा उसके जप करनेकी विधि, पाँच प्रकारके जप तथा उनकी महिमा, मन्त्रगणनाके लिये विभिन्न प्रकारकी मालाओंका महत्त्व तथा अंगुलियोंके उपयोगका वर्णन, जपके लिये उपयोगी स्थान तथा दिशा, जपमें वर्जनीय बातें, सदाचारका महत्त्व, आस्तिकताकी प्रशंसा तथा पंचाक्षर-मन्त्रकी विशेषताका वर्णन

ईश्वर उवाच

आज्ञाहीनं क्रियाहीनं श्रद्धाहीनं वरानने।
आज्ञार्थं दक्षिणाहीनं सदा जप्तं च निष्फलम्॥ १

ईश्वर (महादेवजी) कहते हैं—वरानने! आज्ञाहीन, क्रियाहीन, श्रद्धाहीन तथा विधिके पालनार्थ आवश्यक दक्षिणासे हीन जो जप किया जाता है, वह सदा निष्फल होता है॥ १॥

आज्ञासिद्धं क्रियासिद्धं श्रद्धासिद्धं ममात्मकम्।
एवं चेद्दक्षिणायुक्तं मन्त्रसिद्धिर्महत्फलम्॥ २

मेरा स्वरूपभूत मन्त्र यदि आज्ञासिद्ध, क्रियासिद्ध और श्रद्धासिद्ध होनेके साथ ही दक्षिणासे भी युक्त हो तो उसकी सिद्धि होती है और उससे महान् फल प्राप्त होता है॥ २॥

उपगम्य गुरुं विप्रमाचार्यं तत्त्ववेदिनम्।
जापिनं सद्गुणोपेतं ध्यानयोगपरायणम्॥ ३
तोषयेत्तं प्रयत्नेन भावशुद्धिसमन्वितः।

शिष्यको चाहिये कि वह पहले तत्त्ववेत्ता आचार्य, जपशील, सद्‌गुणसम्पन्न, ध्यान-योगपरायण एवं ब्राह्मण गुरुकी सेवामें उपस्थित हो, मनमें शुद्धभाव रखते हुए प्रयत्नपूर्वक उन्हें संतुष्ट करे॥ ३१/२॥

वाचा च मनसा चैव कायेन द्रविणेन च॥ ४
आचार्यं पूजयेद्विप्रः सर्वदातिप्रयत्नतः।
हस्त्यश्वरथरत्नानि क्षेत्राणि च गृहाणि च॥ ५
भूषणानि च वासांसि धान्यानि च धनानि च।
एतानि गुरवे दद्याद्भक्त्या च विभवे सति॥ ६
वित्तशाठ्यं न कुर्वीत यदीच्छेत्सिद्धिमात्मनः।
पश्चान्निवेद्य स्वात्मानं गुरवे सपरिच्छदम्॥ ७

ब्राह्मण साधक अपने मन, वाणी, शरीर और धनसे आचार्यका पूजन करे। वह वैभव हो तो गुरुको भक्तिभावसे हाथी, घोड़े, रथ, रत्न, क्षेत्र, वस्त्राभूषण, धान्य, धन और गृह आदि अर्पित करे। जो अपने लिये सिद्धि चाहता हो, वह धनके दानमें कृपणता न करे। तदनन्तर सब सामग्रियोंसहित अपने-आपको गुरुकी सेवामें अर्पित कर दे॥ ४—७॥

एवं संपूज्य विधिवद्यथाशक्ति त्ववञ्चयन्।
आददीत गुरोर्मन्त्रं ज्ञानं चैव क्रमेण तु॥ ८

एवं तुष्टो गुरुः शिष्यं पूजकं वत्सरोषितम्।
शुश्रूषुमनहङ्कारं स्नातं शुचिमुपोषितम्॥ ९

स्नापयित्वा विशुद्ध्यर्थं पूर्णकुंभघृतेन वै।
जलेन मन्त्रशुद्धेन पुण्यद्रव्ययुतेन च॥ १०

अलंकृत्य सुवेषं च गन्धस्रग्वस्त्रभूषणैः।

पुण्याहं वाचयित्वा च ब्राह्मणानभिपूज्य च॥ ११

समुद्रतीरे नद्यां च गोष्ठे देवालयेऽपि वा।
शुचौ देशे गृहे वापि काले सिद्धिकरे तिथौ॥ १२

नक्षत्रे शुभयोगे च सर्वदोषविवर्जिते।
अनुगृह्य ततो दद्याज्ज्ञानं मम यथाविधि॥ १३

स्वरेणोच्चारयेत्सम्यगेकान्तेऽतिप्रसन्नधीः।
उच्चार्योच्चारयित्वा तमावयोर्मन्त्रमुत्तमम्॥ १४

शिवं चास्तु शुभं चास्तु शोभनोऽस्तु प्रियोऽस्त्विति।
एवं दद्याद् गुरुर्मन्त्रमाज्ञां चैव ततः परम्॥ १५

एवं लब्ध्वा गुरोर्मन्त्रमाज्ञां चैव समाहितः।
सङ्कल्प्य च जपेन्नित्यं पुरश्चरणपूर्वकम्॥ १६

यावज्जीवं जपेन्नित्यमष्टोत्तरसहस्रकम्।
अनन्यस्तत्परो भूत्वा स याति परमां गतिम्॥ १७

जपेदक्षरलक्षं वै चतुर्गुणितमादरात्।
नक्ताशी संयमी यः स पौरश्चरणिकः स्मृतः॥ १८

यः पुरश्चरणं कृत्वा नित्यजापी भवेत्पुनः।
तस्य नास्ति समो लोके स सिद्धः सिद्धिदो भवेत्॥ १९

इस प्रकार यथाशक्ति निश्छलभावसे गुरुकी विधिवत् पूजा करके गुरुसे मन्त्र एवं ज्ञानका उपदेश क्रमशः ग्रहण करे। इस तरह संतुष्ट हुए गुरु अपने पूजक शिष्यको, जो एक वर्षतक उनकी सेवामें रह चुका हो, गुरुकी सेवामें उत्साह रखनेवाला हो, अहंकाररहित हो और उपवासपूर्वक स्नान करके शुद्ध हो गया हो, पुनः विशेष शुद्धिके लिये पूर्ण कलशमें रखे हुए घृतसे तथा पवित्र द्रव्ययुक्त मन्त्रशुद्ध जलसे नहलाकर चन्दन, पुष्पमाला, वस्त्र और आभूषणोंद्वारा अलंकृत करके उसे सुन्दर वेश-भूषासे विभूषित करे॥ ८—१०१/२॥

तत्पश्चात् शिष्यसे ब्राह्मणोंद्वारा पुण्याहवाचन करवाकर और ब्राह्मणोंकी पूजा करके समुद्रतटपर, नदीके किनारे, गोशालामें, देवालयमें, किसी भी पवित्र स्थानमें अथवा घरमें सिद्धिदायक काल आनेपर शुभ तिथि, शुभ नक्षत्र एवं सर्वदोषरहित शुभ योगमें गुरु अपने उस शिष्यको अनुग्रहपूर्वक विधिके अनुसार मेरा ज्ञान दे॥ ११—१३॥

एकान्त स्थानमें अत्यन्त प्रसन्नचित्त हो उच्चस्वरसे हम दोनोंके उस उत्तम मन्त्रका शिष्यसे भलीभाँति उच्चारण कराये। बारंबार उच्चारण कराकर शिष्यको इस प्रकार आशीर्वाद दे—'तुम्हारा कल्याण हो, मंगल हो, शोभन हो, प्रिय हो' इस तरह गुरु शिष्यको मन्त्र और तदुपरान्त आज्ञा प्रदान करे॥ १४-१५॥

इस प्रकार गुरुसे मन्त्र और आज्ञा पाकर शिष्य एकाग्रचित्त हो संकल्प करके पुरश्चरणपूर्वक प्रतिदिन उस मन्त्रका जप करता रहे। वह जबतक जीये, तबतक अनन्यभावसे तत्परतापूर्वक नित्य एक हजार आठ मन्त्रोंका जप किया करे। जो ऐसा करता है, वह परम गतिको प्राप्त होता है॥ १६-१७॥

जो प्रतिदिन संयमसे रहकर केवल रातमें भोजन करता है और मन्त्रके जितने अक्षर हैं, उतने लाखका चौगुना जप आदरपूर्वक पूरा कर देता है, वह 'पौरश्चरणिक' कहलाता है। जो पुरश्चरण करके प्रतिदिन जप करता रहता है, उसके समान इस लोकमें दूसरा कोई नहीं है। वह सिद्धिदायक सिद्ध हो जाता है॥ १८-१९॥

स्नानं कृत्वा शुचौ देशे बद्ध्वा रुचिरमासनम्।
त्वया मां हृदि संचिन्त्य संचिन्त्य स्वगुरुं ततः॥ २०

उदङ्मुखः प्राङ्मुखो वा मौनी चैकाग्रमानसः।
विशोध्य पञ्चतत्त्वानि दहनप्लावनादिभिः॥ २१

मन्त्रन्यासादिकं कृत्वा सकलीकृतविग्रहः।
आवयोर्विग्रहौ ध्यायन्प्राणापानौ नियम्य च॥ २२

विद्यास्थानं स्वकं रूपं ऋषिं छन्दोऽधिदैवतम्।
बीजं शक्तिं तथा वाक्यं स्मृत्वा पञ्चाक्षरीं जपेत्॥ २३

साधकको चाहिये कि वह शुद्ध देशमें स्नान करके सुन्दर आसन बाँधकर अपने हृदयमें तुम्हारे साथ मुझ शिवका और अपने गुरुका चिन्तन करते हुए उत्तर या पूर्वकी ओर मुँह किये मौनभावसे बैठे, चित्तको एकाग्र करे तथा दहन-प्लावन आदिके द्वारा पाँचों तत्त्वोंका शोधन करके मन्त्रका न्यास आदि करे। इसके बाद सकलीकरणकी क्रिया सम्पन्न करके प्राण और अपानका नियमन करते हुए हम दोनोंके स्वरूपका ध्यान करे और विद्यास्थान, अपने रूप, ऋषि, छन्द, देवता, बीज, शक्ति तथा मन्त्रके वाच्यार्थरूप मुझ परमेश्वरका स्मरण करके पंचाक्षरीका जप करे॥ २०—२३॥

उत्तमं मानसं जाप्यमुपांशुं चैव मध्यमम्।
अधमं वाचिकं प्राहुरागमार्थविशारदाः॥ २४

मानस जप उत्तम है, उपांशु जप मध्यम है तथा वाचिक जप उससे निम्नकोटिका माना गया है—ऐसा आगमार्थविशारद विद्वानोंका कथन है॥ २४॥

उत्तमं रुद्रदैवत्यं मध्यमं विष्णुदैवतम्।
अधमं ब्रह्मदैवत्यमित्याहुरनुपूर्वशः॥ २५

रुद्रसे अधिष्ठित [मानस] जप उत्तम कहा गया है, विष्णुसे अधिष्ठित [उपांशु] जप मध्यम कहा जाता है तथा ब्रह्मासे अधिष्ठित [वाचिक] जप अधम कहलाता है—ऐसा क्रमशः समझना चाहिये॥ २५॥

यदुच्चनीचस्वरितैः स्पष्टास्पष्टपदाक्षरैः।
मन्त्रमुच्चारयेद्वाचा वाचिकोऽयं जपः स्मृतः॥ २६

जो ऊँचे-नीचे स्वरसे युक्त तथा स्पष्ट और अस्पष्ट पदों एवं अक्षरोंके साथ मन्त्रका वाणीद्वारा उच्चारण करता है, उसका यह जप 'वाचिक' कहलाता है॥ २६॥

जिह्वामात्रपरिस्पंदादीषदुच्चारितोऽपि वा।
अपरैरश्रुतः किञ्चिच्छ्रुतो वोपांशुरुच्यते॥ २७

जिस जपमें केवल जिह्वामात्र हिलती है अथवा बहुत धीमे स्वरसे अक्षरोंका उच्चारण होता है तथा जो दूसरोंके कानमें पड़नेपर भी उन्हें कुछ सुनायी नहीं देता, ऐसे जपको 'उपांशु' कहते हैं॥ २७॥

धिया यदक्षरश्रेण्या वर्णाद्वर्णं पदात्पदम्।
शब्दार्थचिन्तनं भूयः कथ्यते मानसो जपः॥ २८

जिस जपमें अक्षर-पङ्क्तिका एक वर्णसे दूसरे वर्णका, एक पदसे दूसरे पदका तथा शब्द और अर्थका मनके द्वारा बारंबार चिन्तनमात्र होता है, वह 'मानस' जप कहलाता है॥ २८॥

वाचिकस्त्वेक एव स्यादुपांशुः शतमुच्यते।
साहस्त्रं मानसः प्रोक्तः सगर्भस्तु शताधिकः॥ २९

वाचिक जप एकगुना ही फल देता है, उपांशु जप सौगुना फल देनेवाला बताया जाता है, मानस जपका फल सहस्त्रगुना कहा गया है तथा सगर्भ जप उससे सौगुना अधिक फल देनेवाला है॥ २९॥

प्राणायामसमायुक्तः सगर्भो जप उच्यते।
आद्यन्तयोरगर्भोऽपि प्राणायामः प्रशस्यते॥ ३०

प्राणायामपूर्वक जो जप होता है, उसे 'सगर्भ' जप कहते हैं। अगर्भ जपमें भी आदि और अन्तमें प्राणायाम कर लेना श्रेष्ठ बताया गया है॥ ३०॥

चत्वारिंशत्समावृत्तीः प्राणानायम्य संस्मरेत्।
मन्त्रं मन्त्रार्थविद्धीमानशक्तः शक्तितो जपेत्॥ ३१

मन्त्रार्थवेत्ता बुद्धिमान् साधक प्राणायाम करते समय चालीस बार मन्त्रका स्मरण कर ले। जो ऐसा करनेमें असमर्थ हो, वह अपनी शक्तिके अनुसार जितना हो सके, उतने ही मन्त्रोंका मानसिक जप कर ले॥ ३१॥

पञ्चकं त्रिकमेकं वा प्राणायामं समाचरेत्।
अगर्भं वा सगर्भं वा सगर्भस्तत्र शस्यते॥ ३२

पाँच, तीन अथवा एक बार अगर्भ या सगर्भ प्राणायाम करे। इन दोनोंमें सगर्भ प्राणायाम श्रेष्ठ माना गया है॥ ३२॥

सगर्भादपि साहस्रं सध्यानो जप उच्यते।
एषु पञ्चविधेष्वेकः कर्त्तव्यः शक्तितो जपः॥ ३३

सगर्भकी अपेक्षा भी ध्यानसहित जप सहस्रगुना फल देनेवाला कहा जाता है। इन पाँच प्रकारके जपोंमेंसे कोई एक जप अपनी शक्तिके अनुसार करना चाहिये॥ ३३॥

अङ्गुल्या जपसंख्यानमेकमेवमुदाहृतम्।
रेखयाष्टगुणं विद्यात्पुत्रजीवैर्दशाधिकम्॥ ३४

शतं स्याच्छंखमणिभिः प्रवालैस्तु सहस्रकम्।
स्फाटिकैर्दशसाहस्रं मौक्तिकैर्लक्षमुच्यते॥ ३५

पद्माक्षैर्दशलक्षं तु सौवर्णैः कोटिरुच्यते।
कुशग्रंथ्या च रुद्राक्षैरनन्तगुणितं भवेत्॥ ३६

अँगुलीसे जपकी गणना करना एकगुना बताया गया है। रेखासे गणना करना आठगुना उत्तम समझना चाहिये। पुत्रजीव (जियापोता)-के बीजोंकी मालासे गणना करनेपर जपका दसगुना अधिक फल होता है। शंखके मनकोंसे सौ गुना, मूँगोंसे हजारगुना, स्फटिकमणिकी मालासे दस हजारगुना, मोतियोंकी मालासे लाखगुना, पद्माक्षसे दस लाखगुना और सुवर्णके बने हुए मनकोंसे गणना करनेपर कोटिगुना अधिक फल बताया गया है। कुशकी गाँठसे तथा रुद्राक्षसे गणना करनेपर अनन्तगुने फलकी प्राप्ति होती है॥ ३४—३६॥

त्रिंशदक्षैः कृता माला धनदा जपकर्मणि।
सप्तविंशतिसंख्यातैरक्षैः पुष्टिप्रदा भवेत्॥ ३७

पञ्चविंशतिसंख्यातैः कृता मुक्तिं प्रयच्छति।
अक्षैस्तु पञ्चदशभिरभिचारफलप्रदा॥ ३८

तीस रुद्राक्षके दानोंसे बनायी गयी माला जप-कर्ममें धन देनेवाली होती है। सत्ताईस दानोंकी माला पुष्टिदायिनी और पचीस दानोंकी माला मुक्तिदायिनी होती है, पंद्रह रुद्राक्षोंकी बनी हुई माला अभिचारकर्ममें फलदायक होती है॥ ३७-३८॥

अंगुष्ठं मोक्षदं विद्यात्तर्ज्जनीं शत्रुनाशिनीम्।
मध्यमां धनदां शांतिं करोत्येषा ह्यनामिका॥ ३९

अष्टोत्तरशतं माला तत्र स्यादुत्तमोत्तमा।
शतसंख्योत्तमा माला पञ्चाशद्भिस्तु मध्यमा॥ ४०

चतुःपञ्चाशदक्षैस्तु हृच्छ्रेष्ठा हि प्रकीर्तिता।
इत्येवं मालया कुर्याज्जपं कस्मै न दर्शयेत्॥ ४१

जपकर्ममें अँगूठेको मोक्षदायक समझना चाहिये और तर्जनीको शत्रुनाशक। मध्यमा धन देती है और अनामिका शान्ति प्रदान करती है। एक सौ आठ दानोंकी माला उत्तमोत्तम मानी गयी है। सौ दानोंकी माला उत्तम और पचास दानोंकी माला मध्यम होती है। चौवन दानोंकी माला मनोहारिणी एवं श्रेष्ठ कही गयी है। इस तरहकी मालासे जप करे। वह जप किसीको दिखाये नहीं॥ ३९—४१॥

कनिष्ठा क्षरणी प्रोक्ता जपकर्मणि शोभना।
अंगुष्ठेन जपेज्जप्यमन्यैरंगुलिभिः सह॥ ४२
अंगुष्ठेन विना जप्यं कृतं तदफलं यतः।

कनिष्ठिका अंगुलि अक्षरणी (जपके फलको क्षरित—नष्ट न करनेवाली) मानी गयी है; इसलिये जपकर्ममें शुभ है। दूसरी अंगुलियोंके साथ अंगुष्ठद्वारा जप करना चाहिये; क्योंकि अंगुष्ठके बिना किया हुआ जप निष्फल होता है॥ ४२१/२ ॥

गृहे जपं समं विद्याद् गोष्ठे शतगुणं विदुः॥ ४३
पुण्यारण्ये तथारामे सहस्रगुणमुच्यते।
अयुतं पर्वते पुण्ये नद्यां लक्षमुदाहृतम्॥ ४४
कोटिं देवालये प्राहुरनन्तं मम सन्निधौ।

घरमें किये हुए जपको समान या एकगुना समझना चाहिये। गोशालामें उसका फल सौगुना हो जाता है, पवित्र वन या उद्यानमें किये हुए जपका फल सहस्रगुना बताया जाता है। पवित्र पर्वतपर दस हजारगुना, नदीके तटपर लाखगुना, देवालयमें कोटिगुना और मेरे निकट किये हुए जपको अनन्तगुना कहा गया है॥ ४३-४४१/२ ॥

सूर्यस्याग्नेर्गुरोरिन्दोर्दीपस्य च जलस्य च॥ ४५
विप्राणां च गवां चैव सन्निधौ शस्यते जपः।

सूर्य, अग्नि, गुरु, चन्द्रमा, दीपक, जल, ब्राह्मण और गौओंके समीप किया हुआ जप श्रेष्ठ होता है॥ ४५१/२ ॥

तत्पूर्वाभिमुखं वश्यं दक्षिणं चाभिचारिकम्॥ ४६
पश्चिमं धनदं विद्यादौत्तरं शांतिदं भवेत्।

पूर्वाभिमुख किया हुआ जप वशीकरणमें और दक्षिणाभिमुख जप अभिचारकर्ममें सफलता प्रदान करनेवाला है। पश्चिमाभिमुख जपको धनदायक जानना चाहिये और उत्तराभिमुख जप शान्तिदायक होता है॥ ४६१/२ ॥

सूर्याग्निविप्रदेवानां गुरूणामपि सन्निधौ॥ ४७
अन्येषां च प्रसक्तानां मन्त्रं न विमुखो जपेत्।
उष्णीषी कंचुकी नग्नो मुक्तकेशो गलावृतः॥ ४८
अपवित्रकरोऽशुद्धो विलपन्न जपेत् क्वचित्।

सूर्य, अग्नि, ब्राह्मण, देवता तथा अन्य श्रेष्ठ पुरुषोंके समीप उनकी ओर पीठ करके जप नहीं करना चाहिये, सिरपर पगड़ी रखकर, कुर्ता पहनकर, नंगा होकर, बाल खोलकर, गलेमें कपड़ा लपेटकर, अशुद्ध हाथ लेकर, सम्पूर्ण शरीरसे अशुद्ध रहकर तथा विलापपूर्वक कभी जप नहीं करना चाहिये॥ ४७-४८१/२ ॥

क्रोधं मदं क्षुतं त्रीणि निष्ठीवनविजृंभणे॥ ४९
दर्शनं च श्वनीचानां वर्जयेज्जपकर्मणि।
आचमेत्संभवे तेषां स्मरेद्वा मां त्वया सह॥ ५०
ज्योतींषि च प्रपश्येद्वा कुर्याद् वा प्राणसंयमम्।

जप करते समय क्रोध, मद, छींकना, थूकना, जँभाई लेना तथा कुत्तों और नीच पुरुषोंकी ओर देखना वर्जित है। यदि कभी वैसा सम्भव हो जाय तो आचमन करे अथवा तुम्हारे साथ मेरा (पार्वतीसहित शिवका) स्मरण करे या ग्रह-नक्षत्रोंका दर्शन करे अथवा प्राणायाम कर ले॥ ४९-५०१/२ ॥

अनासनः शयानो वा गच्छन्नुत्थित एव वा॥ ५१
रथ्यायामशिवे स्थाने न जपेत्तिमिरान्तरे।
प्रसार्य्य न जपेत्पादौ कुक्कुटासन एव वा॥ ५२

बिना आसनके बैठकर, सोकर, चलते-चलते अथवा खड़ा होकर जप न करे। गलीमें या सड़कपर, अपवित्र स्थानमें तथा अँधेरेमें भी जप न करे। दोनों पाँव फैलाकर, कुक्कुट आसनसे बैठकर, सवारी या

यानशय्याधिरूढो वा चिन्ताव्याकुलितोऽथवा।
शक्तश्चेत्सर्वमेवैतदशक्तः शक्तितो जपेत्॥ ५३

खाटपर चढ़कर अथवा चिन्तासे व्याकुल होकर जप न करे। यदि शक्ति हो तो इन सब नियमोंका पालन करते हुए जप करे और अशक्त पुरुष यथाशक्ति जप करे॥ ५१—५३॥

किमत्र बहुनोक्तेन समासेन वचः शृणु।
सदाचारो जपन् शुद्धं ध्यायन्भद्रं समश्नुते॥ ५४

आचारः परमो धर्म आचारः परमं धनम्।
आचारः परमा विद्या आचारः परमा गतिः॥ ५५

आचारहीनः पुरुषो लोके भवति निन्दितः।
परत्र च सुखी न स्यात्तस्मादाचारवान्भवेत्॥ ५६

इस विषयमें बहुत कहनेसे क्या लाभ? संक्षेपसे मेरी यह बात सुनो। सदाचारी मनुष्य शुद्धभावसे जप और ध्यान करके कल्याणका भागी होता है। आचार परम धर्म है, आचार उत्तम धन है, आचार श्रेष्ठ विद्या है और आचार ही परम गति है। आचारहीन पुरुष संसारमें निन्दित होता है और परलोकमें भी सुख नहीं पाता। इसलिये सबको आचारवान् होना चाहिये॥ ५४—५६॥

यस्य यद्विहितं कर्म वेदे शास्त्रे च वैदिकैः।
तस्य तेन समाचारः सदाचारो न चेतरः॥ ५७

सद्भिराचरितत्वाच्च सदाचारः स उच्यते।
सदाचारस्य तस्याहुरास्तिक्यं मूलकारणम्॥ ५८

वेदज्ञ विद्वानोंने वेद-शास्त्रके कथनानुसार जिस वर्णके लिये जो कर्म विहित बताया है, उस वर्णके पुरुषको उसी कर्मका सम्यक् आचरण करना चाहिये। वही उसका सदाचार है, दूसरा नहीं। सत्पुरुषोंने उसका आचरण किया है; इसीलिये वह सदाचार कहलाता है। उस सदाचारका भी मूल कारण आस्तिकता है॥ ५७-५८॥

आस्तिकश्चेत्प्रमादाद्यैः सदाचारादविच्युतः।
न दुष्यति नरो नित्यं तस्मादास्तिकतां व्रजेत्॥ ५९

यथेहास्ति सुखं दुःखं सुकृतैर्दुष्कृतैरपि।
तथा परत्र चास्तीति मतिरास्तिक्यमुच्यते॥ ६०

यदि मनुष्य आस्तिक हो तो प्रमाद आदिके कारण सदाचारसे कभी भ्रष्ट हो जानेपर भी दूषित नहीं होता। अतः सदा आस्तिकताका आश्रय लेना चाहिये। जैसे इहलोकमें सत्कर्म करनेसे सुख और दुष्कर्म करनेसे दुःख होता है, उसी तरह परलोकमें भी होता है—इस विश्वासको आस्तिकता कहते हैं॥ ५९-६०॥

रहस्यमन्यद्वक्ष्यामि गोपनीयमिदं प्रिये।
न वाच्यं यस्य कस्यापि नास्तिकस्याथ वा पशोः॥ ६१

हे प्रिये! मैं तुमसे एक और रहस्यमय बात कहता हूँ, इसे [सदा] गुप्त रखना चाहिये। जिस किसी भी नास्तिक अथवा पशुतुल्य प्राणीको इसे नहीं बताना॥ ६१॥

सदाचारविहीनस्य पतितस्यान्त्यजस्य च।
पञ्चाक्षरात्परं नास्ति परित्राणं कलौ युगे॥ ६२

गच्छतस्तिष्ठतो वापि स्वेच्छया कर्म कुर्वतः।
अशुचेर्वा शुचेर्वापि मन्त्रोऽयं न च निष्फलः॥ ६३

सदाचारसे हीन, पतित और अन्त्यजका उद्धार करनेके लिये कलियुगमें पंचाक्षर-मन्त्रसे बढ़कर दूसरा कोई उपाय नहीं है। चलते-फिरते, खड़े होते अथवा स्वेच्छानुसार कर्म करते हुए अपवित्र या पवित्र पुरुषके जप करनेपर भी यह मन्त्र निष्फल नहीं होता॥ ६२-६३॥

अनाचारवतां पुंसामविशुद्धषडध्वनाम्।
अनादिष्टोऽपि गुरुणा मन्त्रोऽयं न च निष्फलः॥ ६४

आचारहीन तथा षडध्वशोधनसे रहित पुरुषोंके लिये और जिसे गुरुसे मन्त्रकी दीक्षा प्राप्त नहीं हुई उनके लिये भी यह मन्त्र निष्फल नहीं होता है॥ ६४॥

अन्त्यजस्यापि मूर्खस्य मूढस्य पतितस्य च।
निर्मर्यादस्य नीचस्य मन्त्रोऽयं न च निष्फलः॥ ६५

सर्वावस्थां गतस्यापि मयि भक्तिमतः परम्।
सिध्यत्येव न संदेहो नापरस्य तु कस्यचित्॥ ६६

न लग्नतिथिनक्षत्रवारयोगादयः प्रिये।
अस्यात्यन्तमवेक्ष्याः स्युर्नैष सुप्तः सदोदितः॥ ६७

न कदाचिन्न कस्यापि रिपुरेष महामनुः।
सुसिद्धो वापि सिद्धो वा साध्यो वापि भविष्यति॥ ६८

सिद्धेन गुरुणादिष्टः सुसिद्ध इति कथ्यते।
असिद्धेनापि वा दत्तः सिद्धसाध्यस्तु केवलः॥ ६९

असाधितः साधितो वा सिध्यत्येव न संशयः।
श्रद्धातिशययुक्तस्य मयि मन्त्रे तथा गुरौ॥ ७०

तस्मान्मन्त्रान्तरांस्त्यक्त्वा सापायानधिकारतः।
आश्रयेत्परमां विद्यां साक्षात्पञ्चाक्षरीं बुधः॥ ७१

मन्त्रान्तरेषु सिद्धेषु मन्त्र एष न सिध्यति।
सिद्धे त्वस्मिन्महामन्त्रे ते च सिद्धा भवंत्युत॥ ७२

यथा देवेष्वलब्धोऽस्मि लब्धेष्वपि महेश्वरि।
मयि लब्धे तु ते लब्धा मन्त्रेष्वेषु समो विधिः॥ ७३

ये दोषाः सर्वमन्त्राणां न तेऽस्मिन् संभवन्त्यपि।
अस्य मन्त्रस्य जात्यादीननपेक्ष्य प्रवर्तनात्॥ ७४

तथापि नैव क्षुद्रेषु फलेषु प्रतियोगिषु।
सहसा विनियुञ्जीत तस्मादेष महाबलः॥ ७५

उपमन्युरुवाच

एवं साक्षान्महादेव्यै महादेवेन शूलिना।
हिताय जगतामुक्तः पञ्चाक्षरविधिर्यथा॥ ७६

अन्त्यज, मूर्ख, मूढ़, पतित, मर्यादारहित और नीचके लिये भी यह मन्त्र निष्फल नहीं होता। किसी भी अवस्थामें पड़ा हुआ मनुष्य भी, यदि मुझमें उत्तम भक्तिभाव रखता है, तो उसके लिये यह मन्त्र निःसंदेह सिद्ध होगा ही, किंतु दूसरे किसीके लिये वह सिद्ध नहीं हो सकता॥ ६५-६६॥

प्रिये! इस मन्त्रके लिये लग्न, तिथि, नक्षत्र, वार और योग आदिका अधिक विचार अपेक्षित नहीं है। यह मन्त्र कभी सुप्त नहीं होता, सदा जाग्रत् ही रहता है। यह महामन्त्र कभी किसीका शत्रु नहीं होता। यह सदा सुसिद्ध, सिद्ध अथवा साध्य ही रहता है॥ ६७-६८॥

सिद्ध गुरुके उपदेशसे प्राप्त हुआ मन्त्र सुसिद्ध कहलाता है। असिद्ध गुरुका भी दिया हुआ मन्त्र सिद्ध कहा गया है। जो केवल परम्परासे प्राप्त हुआ है, किसी गुरुके उपदेशसे नहीं मिला है, वह मन्त्र साध्य होता है। जो मुझमें, मन्त्रमें तथा गुरुमें अतिशय श्रद्धा रखनेवाला है, उसको मिला हुआ मन्त्र किसी गुरुके द्वारा साधित हो या असाधित, सिद्ध होकर ही रहता है, इसमें संशय नहीं है॥ ६९-७०॥

इसलिये अधिकारकी दृष्टिसे विघ्नयुक्त होनेवाले दूसरे मन्त्रोंको त्यागकर विद्वान् पुरुष साक्षात् परमा विद्या पंचाक्षरीका आश्रय ले। दूसरे मन्त्रोंके सिद्ध हो जानेसे ही यह मन्त्र सिद्ध नहीं होता। परंतु इस महामन्त्रके सिद्ध होनेपर वे दूसरे मन्त्र अवश्य सिद्ध हो जाते हैं॥ ७१-७२॥

महेश्वरि! जैसे अन्य देवताओंके प्राप्त होनेपर भी मैं नहीं प्राप्त होता; परंतु मेरे प्राप्त होनेपर वे सब देवता प्राप्त हो जाते हैं, यही न्याय इन सब मन्त्रोंके लिये भी है। सब मन्त्रोंके जो दोष हैं, वे इस मन्त्रमें सम्भव नहीं हैं; क्योंकि यह मन्त्र जाति आदिकी अपेक्षा न रखकर प्रवृत्त होता है। तथापि छोटे-छोटे तुच्छ फलोंके लिये सहसा इस मन्त्रका विनियोग नहीं करना चाहिये; क्योंकि यह मन्त्र महान् फल देनेवाला है॥ ७३—७५॥

उपमन्यु कहते हैं—यदुनन्दन! इस प्रकार त्रिशूलधारी महादेवजीने तीनों लोकोंके हितके लिये साक्षात् महादेवी पार्वतीसे इस पंचाक्षर-मन्त्रकी

य इदं कीर्त्तयेद्भक्त्या शृणुयाद्वा समाहितः।
सर्वपापविनिर्मुक्तः प्रयाति परमां गतिम्॥ ७७

विधि कही थी, जो एकाग्रचित्त हो भक्ति-भावसे इस प्रसंगको सुनता या सुनाता है, वह सब पापोंसे मुक्त हो परमगतिको प्राप्त होता है॥ ७६-७७॥

इति श्रीशिवमहापुराणे सप्तम्यां वायवीयसंहितायामुत्तरखण्डे पंचाक्षरमहिमवर्णनं नाम चतुर्दशोऽध्यायः॥ १४॥

॥ इस प्रकार श्रीशिवमहापुराणके अन्तर्गत सातवीं वायवीयसंहिताके उत्तरखण्डमें पंचाक्षर-महिमवर्णन नामक चौदहवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ १४॥

अथ पञ्चदशोऽध्यायः

त्रिविध दीक्षाका निरूपण, शक्तिपातकी आवश्यकता तथा उसके लक्षणोंका वर्णन, गुरुका महत्त्व, ज्ञानी गुरुसे ही मोक्षकी प्राप्ति तथा गुरुके द्वारा शिष्यकी परीक्षा

श्रीकृष्ण उवाच

भगवन्मन्त्रमाहात्म्यं भवता कथितं प्रभो।
तत्प्रयोगविधानं च साक्षाच्छ्रुतिसमं यथा॥ १

इदानीं श्रोतुमिच्छामि शिवसंस्कारमुत्तमम्।
मन्त्रसंग्रहणे किञ्चित्सूचितं न तु विस्तृतम्॥ २

श्रीकृष्ण बोले—भगवन्! आपने मन्त्रका माहात्म्य तथा उसके प्रयोगका विधान बताया, जो साक्षात् वेदके तुल्य है। अब मैं उत्तम शिव-संस्कारकी विधि सुनना चाहता हूँ, जिसे मन्त्र-ग्रहणके प्रकरणमें आपने कुछ सूचित किया था, पर उसका विस्तृत वर्णन नहीं किया था॥ १-२॥

उपमन्युरुवाच

हन्त ते कथयिष्यामि सर्वपापविशोधनम्।
संस्कारं परमं पुण्यं शिवेन परिभाषितम्॥ ३

उपमन्युने कहा—अच्छा, मैं तुम्हें शिवद्वारा कथित परम पवित्र संस्कारका विधान बता रहा हूँ, जो समस्त पापोंका शोधन करनेवाला है॥ ३॥

सम्यक् कृताधिकारः स्यात्पूजादिषु नरो यतः।
संस्कारः कथ्यते तेन षडध्वपरिशोधनम्॥ ४

मनुष्य जिसके प्रभावसे पूजा आदिमें उत्तम अधिकार प्राप्त कर लेता है, उस षडध्वशोधन कर्मको संस्कार कहते हैं। संस्कार अर्थात् शुद्धि करनेसे ही उसका नाम संस्कार है॥ ४॥

दीयते येन विज्ञानं क्षीयते पाशबन्धनम्।
तस्मात्संस्कार एवायं दीक्षेत्यपि च कथ्यते॥ ५

यह विज्ञान देता है और पाशबन्धनको क्षीण करता है। इसलिये इस संस्कारको ही दीक्षा भी कहते हैं॥ ५॥

शांभवी चैव शाक्ती च मांत्री चैव शिवागमे।
दीक्षोपदिश्यते त्रेधा शिवेन परमात्मना॥ ६

शिव-शास्त्रमें परमात्मा शिवने 'शाम्भवी', 'शाक्ती' और 'मान्त्री' तीन प्रकारकी दीक्षाका उपदेश किया है॥ ६॥

गुरोरालोकमात्रेण स्पर्शात्संभाषणादपि।
सद्यः संज्ञा भवेज्जन्तोः पाशोपक्षयकारिणी॥ ७

सा दीक्षा शांभवी प्रोक्ता सा पुनर्भिद्यते द्विधा।
तीव्रा तीव्रतरा चेति पाशोपक्षयभेदतः॥ ८

यया स्यान्निर्वृतिः सद्यः सैव तीव्रतरा मता।
तीव्रा तु जीवतोऽत्यन्तं पुंसः पापविशोधिका॥ ९

गुरुके दृष्टिपातमात्रसे, स्पर्शसे तथा सम्भाषणसे भी जीवको जो तत्काल पाशोंका नाश करनेवाली संज्ञा अर्थात् सम्यक् बुद्धि प्राप्त होती है, वह शाम्भवी दीक्षा कहलाती है। उस दीक्षाके भी दो भेद हैं—तीव्रा और तीव्रतरा। पाशोंके क्षीण होनेमें जो शीघ्रता या मन्दता होती है, उसीके भेदसे ये दो भेद हुए हैं। जिस दीक्षासे तत्काल सिद्धि या शान्ति प्राप्त होती है, वही तीव्रतरा मानी गयी है। जीवित पुरुषके पापका अत्यन्त शोधन करनेवाली जो दीक्षा है, उसे तीव्रा कहा गया है॥ ७—९॥

शाक्ती ज्ञानवती दीक्षा शिष्यदेहं प्रविश्य तु।
गुरुणा योगमार्गेण क्रियते ज्ञानचक्षुषा॥ १०

गुरु योगमार्गसे शिष्यके शरीरमें प्रवेश करके ज्ञानदृष्टिसे जो ज्ञानवती दीक्षा देते हैं, वह शाक्ती कही गयी है॥ १०॥

मान्त्री क्रियावती दीक्षा कुंडमंडलपूर्विका।
मंदमंदतरोद्देशात्कर्तव्या गुरुणा बहिः॥ ११

शक्तिपातानुसारेण शिष्योऽनुग्रहमर्हति।
शैवधर्मानुसारस्य तन्मूलत्वात्समासतः॥ १२

क्रियावती दीक्षाको मान्त्री दीक्षा कहते हैं। इसमें पहले होमकुण्ड और यज्ञमण्डपका निर्माण किया जाता है। फिर गुरु बाहरसे मन्द या मन्दतर उद्देश्यको लेकर शिष्यका संस्कार करते हैं। शक्तिपातके अनुसार शिष्य गुरुके अनुग्रहका भाजन होता है। शैव-धर्मका अनुसरण शक्तिपात-मूलक है; अतः संक्षेपसे उसके विषयमें निवेदन किया जाता है॥ ११-१२॥

यत्र शक्तिर्न पतिता तत्र शुद्धिर्न जायते।
न विद्या न शिवाचारो न मुक्तिर्न च सिद्धयः॥ १३

तस्मात् लिङ्गानि संवीक्ष्य शक्तिपातस्य भूयसः।
ज्ञानेन क्रियया वाथ गुरुः शिष्यं विशोधयेत्॥ १४

जिस शिष्यमें गुरुकी शक्तिका पात नहीं हुआ, उसमें शुद्धि नहीं आती तथा उसमें न तो विद्या, न शिवाचार, न मुक्ति और न सिद्धियाँ ही होती हैं; अतः प्रचुर शक्तिपातके लक्षणोंको देखकर गुरु ज्ञान अथवा क्रियाके द्वारा शिष्यका शोधन करे॥ १३-१४॥

योऽन्यथा कुरुते मोहात् स विनश्यति दुर्मतिः।
तस्मात्सर्वप्रकारेण गुरुः शिष्यं परीक्षयेत्॥ १५

लक्षणं शक्तिपातस्य प्रबोधानन्दसम्भवः।
सा यस्मात्परमा शक्तिः प्रबोधानन्दरूपिणी॥ १६

आनन्दबोधयोर्लिङ्गमन्तःकरणविक्रियाः।
यथा स्यात्कम्परोमाञ्चस्वरनेत्राङ्गविक्रियाः॥ १७

जो मोहवश इसके विपरीत आचरण करता है, वह दुर्बुद्धि नष्ट हो जाता है; अतः गुरु सब प्रकारसे शिष्यका परीक्षण करे। उत्कृष्ट बोध और आनन्दकी प्राप्ति ही शक्तिपातका लक्षण है; क्योंकि वह परमाशक्ति प्रबोधानन्दरूपिणी ही है। आनन्द और बोधका लक्षण है अन्तःकरणमें (सात्त्विक) विकार। जब अन्तःकरण द्रवित होता है, तब बाह्य शरीरमें कम्प, रोमांच, स्वरविकार,[१] नेत्रविकार[२] और अंगविकार[३] प्रकट होते हैं॥ १५—१७॥

शिष्योऽपि लक्षणैरेभिः कुर्याद्गुरुपरीक्षणम्।
तत्सम्पर्कैः शिवार्चादौ सङ्गतैर्वाथ तद्गतैः॥ १८

शिष्यस्तु शिक्षणीयत्वाद्गुरोर्गौरवकारणात्।
तस्मात् सर्वप्रयत्नेन गुरोर्गौरवमाचरेत्॥ १९

शिष्य भी शिवपूजन आदिमें गुरुका सम्पर्क प्राप्त करके अथवा उनके साथ रह करके उनमें प्रकट होनेवाले इन लक्षणोंसे गुरुकी परीक्षा करे। शिष्य गुरुका शिक्षणीय होता है और उसका गुरुके प्रति गौरव होता है। इसलिये सर्वथा प्रयत्न करके शिष्य ऐसा आचरण करे, जो गुरुके गौरवके अनुरूप हो॥ १८-१९॥

यो गुरुः स शिवः प्रोक्तो यः शिवः स गुरुः स्मृतः।
गुरुर्वा शिव एवाथ विद्याकारेण संस्थितः॥ २०

यथा शिवस्तथा विद्या यथा विद्या तथा गुरुः।
शिवविद्या गुरूणां च पूजया सदृशं फलम्॥ २१

जो गुरु है, वह शिव कहा गया है और जो शिव है, वह गुरु माना गया है। विद्याके आकारमें शिव ही गुरु बनकर विराजमान हैं। जैसे शिव हैं, वैसी विद्या है। जैसी विद्या है, वैसे गुरु हैं। शिव, विद्या और गुरुके पूजनसे समान फल मिलता है॥ २०-२१॥

१. कण्ठसे गद्गदवाणीका प्रकट होना। २. नेत्रोंसे अश्रुपात होना। ३. शरीरमें स्तम्भ (जड़ता) तथा स्वेद आदिका उदय होना।

सर्वदेवात्मकश्चासौ सर्वमन्त्रमयो गुरुः।
तस्मात्सर्वप्रयत्नेन तस्याज्ञां शिरसा वहेत्॥ २२

शिव सर्वदेवात्मक हैं और गुरु सर्वमन्त्रमय। अतः सम्पूर्ण यत्नसे गुरुकी आज्ञाको शिरोधार्य करना चाहिये॥ २२॥

श्रेयोऽर्थी यदि गुर्वाज्ञां मनसापि न लंघयेत्।
गुर्वाज्ञापालको यस्मात् ज्ञानसंपत्तिमश्नुते॥ २३

यदि शिष्य [अपने] कल्याणका इच्छुक है, तो वह मनसे भी गुरुकी आज्ञाका उल्लंघन न करे; क्योंकि गुरुकी आज्ञाका पालन करनेवाला ज्ञानरूपी सम्पदा प्राप्त करता है॥ २३॥

गच्छंस्तिष्ठन् स्वपन् भुञ्जन्नान्यत्कर्म समाचरेत्।
समक्षं यदि कुर्वीत सर्वं चानुज्ञया गुरोः॥ २४

गुरोर्गृहे समक्षं वा न यथेष्टासनो भवेत्।
गुरुर्देवो यतः साक्षात्तद्गृहं देवमन्दिरम्॥ २५

चलते, बैठते, सोते तथा भोजन करते समय अन्य कर्म नहीं करना चाहिये। यदि गुरुके सामने कर्म करे तो सब कुछ उनकी आज्ञासे करे। गुरुके घरमें अथवा उनके सामने अपनी इच्छाके अनुरूप आसनपर न बैठे, क्योंकि गुरु साक्षात् देवता होते हैं और उनका घर देवमन्दिर है॥ २४-२५॥

पापिनां च यथा सङ्गात्तत्पापात्पतितो भवेत्।
यथेह वह्निसम्पर्कात् मलं त्यजति काञ्चनम्।
तथैव गुरुसम्पर्कात् पापं त्यजति मानवः॥ २६

यथा वह्निसमीपस्थो घृतकुम्भो विलीयते।
तथा पापं विलीयेत ह्याचार्यस्य समीपतः॥ २७

यथा प्रज्वलितो वह्निः शुष्कमार्द्रं च निर्दहेत्।
तथायमपि सन्तुष्टो गुरुः पापं क्षणाद्दहेत्॥ २८

जैसे पापियोंके संगके कारण उनके पापसे मनुष्य पतित हो जाता है, जैसे अग्निके सम्पर्कसे सोना मल (गन्दगी) छोड़ देता है, वैसे ही गुरुके सम्पर्कसे मनुष्य पापसे मुक्त हो जाता है। जैसे अग्निके पास स्थित घड़ेमें रखा हुआ घृत पिघल जाता है, वैसे ही आचार्यके सम्पर्कसे शिष्यका पाप गल जाता है। जैसे प्रज्वलित अग्नि सूखे तथा गीले पदार्थको जला डालती है, वैसे ही प्रसन्न हुए ये गुरु भी क्षणभरमें पापको जला देते हैं॥ २६—२८॥

मनसा कर्मणा वाचा गुरोः क्रोधं न कारयेत्॥ २९

तस्य क्रोधेन दह्यन्ते ह्यायुः श्रीज्ञानसत्क्रियाः।
तत्क्रोधकारिणो ये स्युस्तेषां यज्ञाश्च निष्फलाः॥ ३०

यमाश्च नियमाश्चैव नात्र कार्या विचारणा।

मन, वचन तथा कर्मसे गुरुको कुपित नहीं करना चाहिये, उनके क्रोधसे आयु, श्री, ज्ञान तथा सत्कर्म दग्ध हो जाते हैं, जो उन्हें कुपित करते हैं, उनके यज्ञ, यम तथा नियम निष्फल हो जाते हैं, इसमें सन्देह नहीं करना चाहिये॥ २९-३०॥

गुरोर्विरुद्धं यद्वाक्यं न वदेज्जातुचिन्नरः॥ ३१
वदेद्यदि महामोहाद्रौरवं नरकं व्रजेत्।

मनुष्यको चाहिये कि जो वचन गुरुके विरुद्ध हो, उसे कभी न बोले। यदि वह महामोहके कारण बोलता है, तो रौरव नरकमें पड़ता है॥ ३१½॥

मनसा कर्मणा वाचा गुरुमुद्दिश्य यत्नतः॥ ३२

श्रेयोऽर्थी चेन्नरो धीमान्न मिथ्याचारमाचरेत्।
गुरोर्हितं प्रियं कुर्यादादिष्टो वा न वा सदा॥ ३३

यदि मनुष्य अपना कल्याण चाहनेवाला और बुद्धिमान् है तो वह गुरुके प्रति मन, वाणी और क्रियाद्वारा कभी मिथ्याचार—कपटपूर्ण बर्ताव न करे। गुरु आज्ञा दें या न दें, शिष्य सदा उनका हित और प्रिय करे॥ ३२-३३॥

असमक्षं समक्षं वा तस्य कार्यं समाचरेत्।
इत्थमाचारवान्भक्तो नित्यमुद्युक्तमानसः ॥ ३४

गुरुप्रियकरः शिष्यः शैवधर्मांस्ततोऽर्हति।

गुरुश्चेद्गुणवान् प्राज्ञः परमानन्दभासकः ॥ ३५
तत्त्वविच्छिवसंसक्तो मुक्तिदो न तु चापरः।
संवित्सञ्जननं तत्त्वं परमानन्दसम्भवम् ॥ ३६
तत्तत्त्वं विदितं येन स एवानन्ददर्शकः।
न पुनर्नाममात्रेण संविदारहितस्तु यः ॥ ३७

अन्योऽन्यं तारयेन्नौका किं शिला तारयेच्छिलाम्।
एतस्य नाममात्रेण मुक्तिर्वै नाममात्रिका ॥ ३८

यैः पुनर्विदितं तत्त्वं ते मुक्ता मोचयन्त्यपि।
तत्त्वहीने कुतो बोधः कुतो ह्यात्मपरिग्रहः ॥ ३९

परिग्रहविनिर्मुक्तः पशुरित्यभिधीयते।
पशुभिः प्रेरितश्चापि पशुत्वं नातिवर्तते ॥ ४०

तस्मात्तत्त्वविदेवेह मुक्तो मोचक इष्यते।

सर्वलक्षणसंयुक्तः सर्वशास्त्रविदप्ययम् ॥ ४१

सर्वोपायविधिज्ञोऽपि तत्त्वहीनस्तु निष्फलः।

यस्यानुभवपर्यन्ता बुद्धिस्तत्त्वे प्रवर्तते ॥ ४२
तस्यावलोकनाद्यैश्च परानन्दोऽभिजायते।
तस्माद्यस्यैव संपर्कात्प्रबोधानंदसंभवः ॥ ४३
गुरुं तमेव वृणुयान्नापरं मतिमान्नरः।

स शिष्यैर्विनयाचारचतुरैरुचितो गुरुः ॥ ४४

यावद्विज्ञायते तावत्सेवनीयो मुमुक्षुभिः।
ज्ञाते तस्मिन्स्थिरा भक्तिर्यावत्तत्त्वं समाश्रयेत् ॥ ४५

उनके सामने और पीठ-पीछे भी उनका कार्य करता रहे। ऐसे आचारसे युक्त गुरुभक्त और सदा मनमें उत्साह रखनेवाला जो गुरुका प्रिय कार्य करनेवाला शिष्य है, वही शैव धर्मोंके उपदेशका अधिकारी है ॥ ३४१/२ ॥

यदि गुरु गुणवान्, विद्वान्, परमानन्दका प्रकाशक, तत्त्ववेत्ता और शिवभक्त है तो वही मुक्ति देनेवाला है, दूसरा नहीं। ज्ञान उत्पन्न करनेवाला जो परमानन्दजनित तत्त्व है, उसे जिसने जान लिया है, वही आनन्दका साक्षात्कार करा सकता है। ज्ञानरहित नाममात्रका गुरु ऐसा नहीं कर सकता ॥ ३५—३७ ॥

नौकाएँ एक-दूसरीको पार लगा सकती हैं, किंतु क्या कोई शिला दूसरी शिलाको तार सकती है? नाममात्रके गुरुसे नाममात्रकी ही मुक्ति प्राप्त हो सकती है। जिन्हें तत्त्वका ज्ञान है, वे ही स्वयं मुक्त होकर दूसरोंको भी मुक्त करते हैं। तत्त्वहीनको कैसे बोध होगा और बोधके बिना कैसे 'आत्मा' का अनुभव होगा? ॥ ३८-३९ ॥

जो आत्मानुभवसे शून्य है, वह 'पशु' कहलाता है। पशुकी प्रेरणासे कोई पशुत्वको नहीं लाँघ सकता; अतः तत्त्वज्ञ पुरुष ही 'मुक्त' और 'मोचक' हो सकता है, अज्ञ नहीं ॥ ४०१/२ ॥

समस्त शुभ लक्षणोंसे युक्त, सम्पूर्ण शास्त्रोंका ज्ञाता तथा सब प्रकारके उपाय-विधानका जानकार होनेपर भी जो तत्त्वज्ञानसे हीन है, उसका जीवन निष्फल है ॥ ४११/२ ॥

जिस पुरुषकी अनुभवपर्यन्त बुद्धि तत्त्वके अनुसंधानमें प्रवृत्त होती है, उसके दर्शन, स्पर्श आदिसे परमानन्दकी प्राप्ति होती है। अतः जिसके सम्पर्कसे ही उत्कृष्ट बोधस्वरूप आनन्दकी प्राप्ति सम्भव हो, बुद्धिमान् पुरुष उसीको अपना गुरु चुने, दूसरेको नहीं ॥ ४२-४३१/२ ॥

योग्य गुरुका जबतक अच्छी तरह ज्ञान न हो जाय, तबतक विनयाचार-चतुर मुमुक्षु शिष्योंको उनकी निरन्तर सेवा करनी चाहिये। उनका अच्छी तरह ज्ञान—सम्यक् परिचय हो जानेपर उनमें सुस्थिर भक्ति करे। जबतक तत्त्वका बोध न प्राप्त हो जाय, तबतक निरन्तर गुरुसेवनमें लगा रहे ॥ ४४-४५ ॥

न तु तत्त्वं त्यजेज्जातु नोपेक्षेत कथंचन।
यत्रानंदः प्रबोधो वा नाल्पमप्युपलभ्यते॥ ४६
वत्सरादपि शिष्येण सोऽन्यं गुरुमुपाश्रयेत्।

तत्त्वको न तो कभी छोड़े और न किसी तरह भी उसकी उपेक्षा ही करे। जिसके पास एक वर्षतक रहनेपर भी शिष्यको थोड़ेसे भी आनन्द और प्रबोधकी उपलब्धि न हो, वह शिष्य उसे छोड़कर दूसरे गुरुका आश्रय ले॥ ४६१/२॥

गुरुमन्यं प्रपन्नेऽपि नावमन्येत पौर्विकम्।
गुरोर्भ्रातॄंस्तथा पुत्रान् बोधकान् प्रेरकानपि॥ ४७

दूसरे गुरुके शरणागत होनेपर भी पूर्वगुरुका, गुरुके भाइयोंका, उनके पुत्रोंका, उपदेशकोंका तथा प्रेरकोंका अपमान न करे॥ ४७॥

तत्रादावुपसङ्गम्य ब्राह्मणं वेदपारगम्।
गुरुमाराधयेत्प्राज्ञं शुभगं प्रियदर्शनम्॥ ४८
सर्वाभयप्रदातारं करुणाक्रान्तमानसम्।
तोषयेत्तं प्रयत्नेन मनसा कर्मणा गिरा॥ ४९

सर्वप्रथम ब्राह्मण, वेदमें पारंगत, प्रज्ञासम्पन्न, सुन्दर, प्रियदर्शन, सब प्रकारसे अभय प्रदान करनेवाले तथा करुणामय चित्तवाले गुरुके पास जाकर उनकी आराधना करनी चाहिये और मन-वचन-कर्मसे प्रयत्नपूर्वक उन्हें प्रसन्न करना चाहिये॥ ४८-४९॥

तावदाराधयेच्छिष्यः प्रसन्नोऽसौ भवेद्यथा।
तस्मिन् प्रसन्ने शिष्यस्य सद्यः पापक्षयो भवेत्॥ ५०
तस्माद्धनानि रत्नानि क्षेत्राणि च गृहाणि च।
भूषणानि च वासांसि यानशय्यासनानि च॥ ५१
एतानि गुरवे दद्याद्भक्त्या वित्तानुसारतः।
वित्तशाठ्यं न कुर्वीत यदीच्छेत्परमां गतिम्॥ ५२

शिष्यको चाहिये कि तबतक उनकी आराधना करे, जबतक वे प्रसन्न न हो जायँ। उनके प्रसन्न हो जानेपर शीघ्र ही शिष्यके पापका नाश हो जाता है, अतः धन, रत्न, क्षेत्र, गृह, आभूषण, वस्त्र, वाहन, शय्या, आसन—यह सब भक्तिपूर्वक अपने धन-सामर्थ्यके अनुसार गुरुको प्रदान करना चाहिये। यदि शिष्य परमगति चाहता है, तो उसे धनकी कृपणता नहीं करनी चाहिये॥ ५०—५२॥

स एव जनको माता भर्ता बन्धुर्धनं सुखम्।
सखा मित्रं च यत्तस्मात्सर्वं तस्मै निवेदयेत्॥ ५३
निवेद्य पश्चात्स्वात्मानं सान्वयं सपरिग्रहम्।
समर्प्य सोदकं तस्मै नित्यं तद्वशगो भवेत्॥ ५४
यदा शिवाय स्वात्मानं दत्तवान् देशिकात्मने।
तदा शैवो भवेद्देही न ततोऽस्ति पुनर्भवः॥ ५५

वे ही पिता, माता, पति, बन्धु, धन, सुख, सखा तथा मित्र हैं, इसलिये उन्हें सब कुछ अर्पित कर देना चाहिये। इस प्रकार निवेदित करके बादमें परिवार तथा बन्धुजनोंसहित अपनेको भी संकल्पपूर्वक उन्हें समर्पित करके सदाके लिये उनके अधीन हो जाना चाहिये। जब मनुष्य शिवस्वरूप गुरुके निमित्त अपनेको समर्पित कर देता है, तब वह शैव हो जाता है और उसके बाद उसका पुनर्जन्म नहीं होता है॥ ५३—५५॥

गुरुश्च स्वाश्रितं शिष्यं वर्षमेकं परीक्षयेत्।
ब्राह्मणं क्षत्रियं वैश्यं द्विवर्षं च त्रिवर्षकम्॥ ५६

गुरुको भी चाहिये कि वह अपने आश्रित ब्राह्मण-जातीय शिष्यकी एक वर्षतक परीक्षा करे। क्षत्रिय शिष्यकी दो वर्ष और वैश्यकी तीन वर्षतक परीक्षा करे॥ ५६॥

प्राणद्रव्यप्रदानाद्यैरादेशैश्च समासमैः।
उत्तमांश्चाधमे कृत्वा नीचानुत्तमकर्मणि॥ ५७

प्राणोंको संकटमें डालकर सेवा करने और अधिक धन देने आदिका अनुकूल-प्रतिकूल आदेश देकर, उत्तम जातिवालोंको छोटे काममें लगाकर और छोटोंको उत्तम काममें नियुक्त करके उनके धैर्य और सहनशीलताकी परीक्षा करे॥ ५७॥

आक्रुष्टास्ताडिता वापि ये विषादं न यान्त्यपि।
ते योग्याः संयताः शुद्धाः शिवसंस्कारकर्मणि॥ ५८

अहिंसका दयावन्तो नित्यमुद्युक्तचेतसः।
अमानिनो बुद्धिमन्तः त्यक्तस्पर्द्धाः प्रियंवदाः॥ ५९

ऋजवो मृदवः स्वच्छा विनीताः स्थिरचेतसः।
शौचाचारसमायुक्ताः शिवभक्ता द्विजातयः॥ ६०

एवं वृत्तसमोपेता वाङ्मनःकायकर्मभिः।
शोध्या बोध्या यथान्यायमिति शास्त्रेषु निश्चयः॥ ६१

गुरुके तिरस्कार आदि करनेपर भी जो विषादको नहीं प्राप्त होते, वे ही संयमी, शुद्ध तथा शिव-संस्कार कर्मके योग्य हैं। जो किसीकी हिंसा नहीं करते, सबके प्रति दयालु होते हैं, सदा हृदयमें उत्साह रखकर सब कार्य करनेको उद्यत रहते हैं; अभिमानशून्य, बुद्धिमान् और स्पर्धारहित होकर प्रिय वचन बोलते हैं; सरल, कोमल, स्वच्छ, विनयशील, सुस्थिरचित्त, शौचाचारसे संयुक्त और शिवभक्त होते हैं, ऐसे आचार-व्यवहारवाले द्विजातियोंको मन, वाणी, शरीर और क्रियाद्वारा यथोचित रीतिसे शुद्ध करके तत्त्वका बोध कराना चाहिये, यह शास्त्रोंका निर्णय है॥ ५८—६१॥

नाधिकारः स्वतो नार्याः शिवसंस्कारकर्मणि।
नियोगाद्भर्तुरस्त्येव भक्तियुक्ता यदीश्वरे॥ ६२

शिव-संस्कार कर्ममें नारीका स्वतः अधिकार नहीं है। यदि वह शिवभक्त हो तो पतिकी आज्ञासे ही उक्त संस्कारकी अधिकारिणी होती है॥ ६२॥

तथैव भर्तृहीनाया पुत्रादेरभ्यनुज्ञया।
अधिकारो भवत्येव कन्यायाः पितुराज्ञया।
शूद्राणां मर्त्यजातीनां पतितानां विशेषतः॥ ६३

तथा सङ्करजातीनां नाध्वशुद्धिर्विधीयते।
तेऽप्यकृत्रिमभावाश्चेच्छिवे परमकारणे॥ ६४
पादोदकप्रदानाद्यैः कुर्युः पापविशोधनम्।

विधवा स्त्रीका पुत्र आदिकी अनुमतिसे और कन्याका पिताकी आज्ञासे शिव-संस्कारमें अधिकार होता है। शूद्रों, पतितों और वर्णसंकरोंके लिये षडध्वशोधन (शिव-संस्कार)-का विधान नहीं है। वे भी यदि परमकारण शिवमें स्वाभाविक अनुराग रखते हों तो शिवका चरणोदक लेकर अपने पापोंकी शुद्धि करें॥ ६३-६४½॥

अत्रानुलोमजाता ये युक्ता एव द्विजातिषु॥ ६५
तेषामध्वविशुद्ध्यादि कुर्यान्मातृकुलोचितम्।

द्विजातियोंमें जो वर्णसंकर उत्पन्न हुए हैं, उनकी अध्व-शुद्धि माताके कुलके अनुसार करना चाहिये॥ ६५½॥

या तु कन्या स्वपित्राद्यैः शिवधर्मे नियोजिता॥ ६६

स भक्ताय प्रदातव्या नापराय विरोधिने।
दत्ता चेत्प्रतिकूलाय प्रमादाद्बोधयेत्पतिम्॥ ६७

अशक्ता तं परित्यज्य मनसा धर्ममाचरेत्।
यथा मुनिवरं त्यक्त्वा पतिमत्रिं पतिव्रता॥ ६८

कृतकृत्याभवत्पूर्वं तपसाराध्य शङ्करम्।
यथा नारायणं देवं तपसाराध्य पांडवाः॥ ६९

पतीँल्लब्धवती धर्मे गुरुभिर्न नियोजिता।
अस्वातन्त्र्यकृतो दोषो नेहास्ति परमार्थतः॥ ७०

शिवधर्मे नियुक्तायाः शिवशासनगौरवात्।

जो कन्या पिता आदिके द्वारा शिवधर्ममें नियुक्त की गयी हो, [पिता आदिको चाहिये कि वे] उसे शिवभक्त वरको ही प्रदान करें, किसी शिवविरोधीको नहीं। यदि असावधानीवश किसी प्रतिकूलको दे दी जाय, तो वह कन्या पतिको समझाये; यदि वह असमर्थ हो, तो उसे छोड़कर मनोयोगसे [एकाकिनी ही रहकर] शिवधर्मका आचरण करे; जैसे कि अपने पति मुनिवर अत्रिको छोड़कर पतिव्रता अनसूया तपस्यासे शंकरकी आराधना करके कृतकृत्य हुईं और जैसे तपस्याके द्वारा भगवान् नारायणकी आराधना करके द्रौपदीने गुरुजनोंके द्वारा धर्मानुशासित होकर पतिरूपमें पाण्डवोंका वरण किया। शिवधर्मके आधारपर [इस प्रकारका] व्यवहार करनेवाली द्रौपदीको शिवजीके धर्मानुशासनके गौरववश वस्तुतः इस प्रसंगसे यथेच्छाचाररूप पाप भी नहीं लगा॥ ६६—७०½॥

बहुनात्र किमुक्तेन योऽपि कोऽपि शिवाश्रयः ॥ ७१

संस्कार्यो गुर्वधीनश्चेत्संस्क्रिया न प्रभिद्यते।

इस विषयमें अधिक क्या कहा जाय! जो कोई भी शिवजीका आश्रय ले ले और गुरुका अनुगत हो जाय [तो गुरुको चाहिये कि वे] उसको दीक्षा आदिसे संस्कारसम्पन्न करें, [यह अवश्य है कि अधिकारी-भेदसे] संस्कारकी प्रक्रिया भिन्न हो जाती है ॥ ७११/२ ॥

गुरोरालोकनादेव स्पर्शात्संभाषणादपि ॥ ७२

यस्य सञ्जायते प्रज्ञा तस्य नास्ति पराजयः।
मनसा यस्तु संस्कारः क्रियते योगवर्त्मना ॥ ७३

स नेह कथितो गुह्यो गुरुवक्त्रैकगोचरः।
क्रियावान् यस्तु संस्कारः कुंडमंडपपूर्वकः।
स वक्ष्यते समासेन तस्य शक्यो न विस्तरः ॥ ७४

गुरुके द्वारा [कृपापूर्वक] देखने, छूने अथवा वार्तालाप करनेमात्रसे उस [साधक]-में निर्मल बुद्धिका उदय होता है और तब वह [नानाविध दोषोंसे] पराजित नहीं होता। यौगिक रीतिसे [शिष्यको] जो मानसी दीक्षा प्रदान की जाती है, वह विषय अतीव गोपनीय होनेके कारण गुरुमुखसे ही जाननेयोग्य है, अतएव यहाँ उसका वर्णन नहीं किया गया। कुण्ड-मण्डप आदिका निर्माण करके जिस दीक्षाप्रक्रियाका सम्पादन किया जाता है, उसीको यहाँ संक्षेपमें बताया जा रहा है, क्योंकि उसका विस्तृत वर्णन करना सम्भव नहीं है ॥ ७२—७४ ॥

इति श्रीशिवमहापुराणे सप्तम्यां वायवीयसंहितायामुत्तरखण्डे दीक्षाविधाने गुरुमाहात्म्यवर्णनं नाम पञ्चदशोऽध्यायः ॥ १५ ॥

॥ इस प्रकार श्रीशिवमहापुराणके अन्तर्गत सातवीं वायवीयसंहिताके उत्तरखण्डमें दीक्षाविधानमें गुरुमाहात्म्यवर्णन नामक पन्द्रहवाँ अध्याय पूर्ण हुआ ॥ १५ ॥

अथ षोडशोऽध्यायः

समय-संस्कार या समयाचारकी दीक्षाकी विधि

उपमन्युरुवाच

पुण्येऽहनि शुचौ देशे बहुदोषविवर्जिते।
देशिकः प्रथमं कुर्यात्संस्कारं समयाह्वयम् ॥ १

उपमन्यु कहते हैं—यदुनन्दन! नाना प्रकारके दोषोंसे रहित शुद्ध स्थान और पवित्र दिनमें गुरु पहले शिष्यका 'समय' नामक संस्कार करे ॥ १ ॥

परीक्ष्य भूमिं विधिवद् गन्धवर्णरसादिभिः।
शिल्पिशास्त्रोक्तमार्गेण मण्डपं तत्र कल्पयेत् ॥ २

गन्ध, वर्ण और रस आदिसे विधिपूर्वक भूमिकी परीक्षा करके वास्तु-शास्त्रमें बतायी हुई पद्धतिसे वहाँ मण्डपका निर्माण करे ॥ २ ॥

कृत्वा वेदिं च तन्मध्ये कुण्डानि परिकल्पयेत्।
अष्टदिक्षु तथा दिक्षु तत्रैशान्यां पुनः क्रमात् ॥ ३

प्रधानकुण्डं कुर्वीत यद्वा पश्चिमभागतः।
प्रधानमेकमेवाथ कृत्वा शोभां प्रकल्पयेत् ॥ ४

वितानध्वजमालाभिर्विविधाभिरनेकशः।
वेदिमध्ये ततः कुर्यान्मंडलं शुभलक्षणम् ॥ ५

मण्डपके बीचमें वेदी बनाकर आठों दिशाओंमें छोटे-छोटे कुण्ड बनाये। फिर ईशानकोणमें या पश्चिम-दिशामें प्रधानकुण्डका निर्माण करे। एक ही प्रधान कुण्ड बनाकर चँदोवा, ध्वज तथा अनेक प्रकारकी बहुसंख्यक मालाओंसे उसको सजाये। तत्पश्चात् वेदीके मध्यभागमें शुभ लक्षणोंसे युक्त मण्डल बनाये ॥ ३—५ ॥

रक्तहेमादिभिश्चूर्णैरीश्वरावाहनोचितम् ।
सिंदूरशालिनीवारचूर्णैर्वाथ निर्धनः ॥ ६

लालरंगके सुवर्ण आदिके चूर्णसे वह मण्डल बनाना चाहिये। मण्डल ऐसा हो कि उसमें ईश्वरका आवाहन किया जा सके। निर्धन मनुष्य सिन्दूर तथा अगहनी या तिन्नीके चावलके चूर्णसे मण्डल बनाये॥ ६॥

एकहस्तं द्विहस्तं वा सितं वा रक्तमेव वा।
एकहस्तस्य पद्मस्य कर्णिकाष्टांगुला मता॥ ७

उस मण्डपमें एक या दो हाथका श्वेत या लाल कमल बनाये। एक हाथके कमलकी कर्णिका आठ अंगुलकी होनी चाहिये॥ ७॥

केसराणि तदर्धानि शेषं चाष्टदलादिकम्।
द्विहस्तस्य तु पद्मस्य द्विगुणं कर्णिकादिकम्॥ ८

कृत्वा शोभोपशोभाढ्या मैशान्यां तस्य कल्पयेत्।
एकहस्तं तदर्द्धं वा पुनर्वेद्यां तु मंडलम्॥ ९

उसके केसर चार अंगुलमें हों और शेष भागमें अष्टदल आदिकी कल्पना करे। दो हाथके कमलकी कर्णिका आदि एक हाथवालेसे दुगुनी होनी चाहिये। उक्त वेदी या मण्डपके ईशानकोणमें पुनः एक वेदीपर एक हाथ या आधे हाथका मण्डल बनाये और उसे शोभाजनक सामग्रियोंसे सुशोभित करे॥ ८-९॥

व्रीहितंदुलसिद्धार्थतिलपुष्पकुशास्तृते ।
तत्र लक्षणसंयुक्तं शिवकुंभं प्रसाधयेत्॥ १०

तत्पश्चात् धान, चावल, सरसों, तिल, फूल और कुशासे उस मण्डलको आच्छादित करके उसके ऊपर शुभ लक्षणसे युक्त शिवकलशकी स्थापना करे॥ १०॥

सौवर्णं राजतं वापि ताम्रजं मृन्मयं तु वा।
गन्धपुष्पाक्षताकीर्णं कुशदूर्वाङ्कुराचितम्॥ ११

सितसूत्रावृतं कंठे नववस्त्रयुगावृतम्।
शुद्धाम्बुपूर्णमुत्कूर्चं सद्रव्यं सपिधानकम्॥ १२

वह कलश सोना, चाँदी, ताँबा अथवा मिट्टीका होना चाहिये। उसपर गन्ध, पुष्प, अक्षत, कुश और दूर्वांकुर रखे जायँ, उसके कण्ठमें सफेद सूत लपेटा जाय और उसे दो नूतन वस्त्रोंसे आच्छादित किया जाय। उसमें शुद्ध जल भर दिया जाय। कलशमें एक मुट्ठा कुश अग्रभाग ऊपरकी ओर करके डाला जाय। सुवर्ण आदि द्रव्य छोड़ा जाय और उस कलशको ऊपरसे ढक दिया जाय॥ ११-१२॥

भृङ्गारं वर्धनीं चापि शंखं च चक्रमेव वा।
विना सूत्रादिकं सर्वं पद्मपत्रमथापि वा॥ १३

तस्यासनारविंदस्य कल्पयेदुत्तरे दले।
अग्रतश्चंदनांभोभिरस्त्रराजस्य वर्धनीम्॥ १४

उस आसनरूप कमलके उत्तर दलमें सूत्र आदिके बिना झारी या गडुआ, वर्धनी (विशिष्ट जलपात्र), शंख, चक्र और कमलदल आदि सब सामग्री संग्रह करके रखे। उक्त आसन-मण्डलके अग्रभागमें चन्दनमिश्रित जलसे भरी हुई वर्धनी अस्त्रराजके लिये रखे॥ १३-१४॥

मण्डलस्य ततः प्राच्यां मन्त्रकुंभे च पूर्ववत्।
कृत्वा विधिवदीशस्य महापूजां समाचरेत्॥ १५

फिर मण्डलके पूर्वभागमें पूर्ववत् मन्त्रयुक्त कलशकी स्थापना करके शिवकी विधिपूर्वक महापूजा आरम्भ करे॥ १५॥

अथार्णवस्य तीरे वा नद्यां गोष्ठेऽपि वा गिरौ।
देवागारे गृहे वापि देशेऽन्यस्मिन्मनोहरे॥ १६

कृत्वा पूर्वोदितं सर्वं विना वा मंडपादिकम्।

समुद्र या नदीके किनारे, गोशालामें, पर्वतके शिखरपर, देवालयमें अथवा घरमें या किसी भी मनोहर स्थानमें मण्डपादि रचनाके बिना पूर्वोक्त सब कार्य करे॥ १६१/२॥

मंडलं पूर्ववत्कृत्वा स्थंडिलं च विभावसोः॥ १७
प्रविश्य पूजाभवनं प्रहृष्टवदनो गुरुः।
सर्वमङ्गलसंयुक्तः समाचरितनैत्यकः॥ १८
महापूजां महेशस्य कृत्वा मण्डलमध्यतः।
शिवकुंभे तथा भूयः शिवमावाह्य पूजयेत्॥ १९

फिर पूर्ववत् मण्डल और अग्निकी वेदी बनाकर गुरु प्रसन्नमुखसे पूजा-भवनमें प्रवेश करे। वहाँ सब प्रकारके मंगल-कृत्यका सम्पादन करके नित्यकर्मके अनुष्ठानपूर्वक मण्डलके मध्यभागमें महेश्वरकी महापूजा करनेके अनन्तर पुनः शिवकलशपर शिवका आवाहन-पूजन करे॥ १७—१९॥

पश्चिमाभिमुखं ध्यात्वा यज्ञरक्षकमीश्वरम्।
अर्चयेदस्त्रवर्द्धन्यामस्त्रमीशस्य दक्षिणे॥ २०
मन्त्रकुम्भे च विन्यस्य मन्त्रं मन्त्रविशारदः।
कृत्वा मुद्रादिकं सर्वं मन्त्रयागं समाचरेत्॥ २१

पश्चिमाभिमुख यज्ञरक्षक ईश्वरका ध्यान करके अस्त्रराजकी वर्धनीमें दक्षिणकी ओर ईश्वरके अस्त्रकी पूजा करे। फिर मन्त्रयुक्त कलशमें मन्त्र तथा मुद्रा आदिका न्यास करके मन्त्रविशारद गुरु मन्त्र-याग करे॥ २०-२१॥

ततः शिवानले होमं कुर्याद्देशिकसत्तमः।
प्रधानकुण्डे परितो जुहुयुश्चापरे द्विजाः॥ २२
आचार्यात्पादमर्द्धं वा होमस्तेषां विधीयते।
प्रधानकुण्ड एवाथ जुहुयाद्देशिकोत्तमः॥ २३

इसके बाद देशिकशिरोमणि गुरु प्रधान कुण्डमें शिवाग्निकी स्थापना करके उसमें होम करे। साथ ही दूसरे ब्राह्मण भी चारों ओरसे उसमें आहुति डालें। आचार्यसे आधे या चौथाई होमका उनके लिये विधान है। आचार्यशिरोमणिको प्रधान कुण्डमें ही हवन करना चाहिये॥ २२-२३॥

स्वाध्यायमपरे कुर्युः स्तोत्रं मङ्गलवाचनम्।
जपं च विधिवच्चान्ये शिवभक्तिपरायणाः॥ २४

दूसरे लोगोंको स्वाध्याय, स्तोत्र एवं मंगलपाठ करना चाहिये। अन्य शिवभक्त भी वहाँ विधिवत् जप करें॥ २४॥

नृत्यं गीतं च वाद्यं च मङ्गलान्यपराणि च।
पूजनं च सदस्यानां कृत्वा सम्यग्विधानतः॥ २५
पुण्याहं कारयित्वाथ पुनः संपूज्य शङ्करम्।
प्रार्थयेद्देशिको देवं शिष्यानुग्रहकाम्यया॥ २६
प्रसीद देवदेवेश देहमाविश्य मामकम्।
विमोचयैनं विश्वेश घृणया च घृणानिधे॥ २७

नृत्य, गीत, वाद्य एवं अन्य मंगल-कृत्य भी होने चाहिये। सदस्योंका विधिवत् पूजन, पुण्याहवाचन तथा पुनः भगवान् शंकरका पूजन सम्पन्न करके शिष्यपर अनुग्रह करनेकी इच्छा मनमें ले आचार्य महादेवजीसे इस प्रकार प्रार्थना करे—'देवदेवेश्वर! प्रसन्न होइये। विश्वनाथ! दयानिधे! मेरे शरीरमें प्रवेश करके आप कृपापूर्वक इस शिष्यको बन्धनमुक्त कराइये।'॥ २५—२७॥

अथ चैवं करोमीति लब्धानुज्ञस्तु देशिकः।
आनीयोपोषितं शिष्यं हविष्याशिनमेव वा॥ २८
एकाशनं वा विरतं स्नातं प्रातःकृतक्रियम्।
जपन्तं प्रणवं देवं ध्यायन्तं कृतमङ्गलम्॥ २९

तदनन्तर 'मैं ऐसा ही करूँगा' इस प्रकार इष्टदेवकी अनुमति पाकर गुरु उस शिष्यको, जिसने उपवास किया हो या हविष्य भोजन किया हो, अपने निकट बुलाये। वह शिष्य एक समय भोजन करनेवाला और विरक्त हो। स्नान करके प्रातःकालका कृत्य पूरा कर चुका हो। मंगलकृत्यका सम्पादन करके प्रणवका जप और महादेवजीका ध्यान कर रहा हो॥ २८-२९॥

द्वारस्य पश्चिमस्याग्रमण्डले दक्षिणस्य वा।
दर्भासने समासीनं विधायोदङ्मुखं शिशुम्॥ ३०
स्वयं प्राग्वदनस्तिष्ठन्नूर्ध्वकायं कृताञ्जलिम्।
संप्रोक्ष्य प्रोक्षणीतोयैर्मूर्द्धन्यस्त्रेण मुद्रया॥ ३१
पुष्पक्षेपेण सन्ताड्य बध्नीयाल्लोचनं गुरुः।
दुकूलार्द्धेन वस्त्रेण मन्त्रितेन नवेन च॥ ३२

उसे पश्चिम या दक्षिण द्वारके सामने मण्डलमें कुशके आसनपर उत्तरकी ओर मुँह करके बिठाये और गुरु स्वयं पूर्वकी ओर मुँह करके खड़ा रहे। शिष्य ऊपरकी ओर मुँह करके हाथ जोड़ ले। गुरु प्रोक्षणीके जलसे शिष्यका प्रोक्षण करके उसके मस्तकपर अस्त्रमुद्राद्वारा फूल फेंककर मारे। फिर अभिमन्त्रित नूतन वस्त्र—आधे दुपट्टेसे उसकी आँखोंको बाँध दे॥ ३०—३२॥

ततः प्रवेशयेच्छिष्यं गुरुर्द्वारेण मंडलम्।
सोऽपि तेनेरितः शंभोराचरेत् त्रिःप्रदक्षिणाम्॥ ३३
ततः सुवर्णसंमिश्रं दत्त्वा पुष्पाञ्जलिं प्रभोः।
प्राङ्मुखश्चोदङ्मुखो वा प्रणमेद्दण्डवत्क्षितौ॥ ३४

इसके बाद शिष्यको दरवाजेसे मण्डलके भीतर प्रवेश कराये। शिष्य भी गुरुसे प्रेरित हो शंकरजीकी तीन बार प्रदक्षिणा करे। इसके बाद प्रभुको सुवर्णमिश्रित पुष्पांजलि चढ़ाकर पूर्व या उत्तरकी ओर मुँह करके पृथ्वीपर दण्डकी भाँति गिरकर साष्टांग प्रणाम करे॥ ३३-३४॥

ततः संप्रोक्ष्य मूलेन शिरस्यस्त्रेण पूर्ववत्।
सन्ताड्य देशिकस्तस्य मोचयेन्नेत्रबन्धनम्॥ ३५

तदनन्तर मूलमन्त्रसे गुरु शिष्यका प्रोक्षण करके पूर्ववत् अस्त्रमन्त्रके द्वारा उसके मस्तकपर फूलसे ताड़न करनेके पश्चात् नेत्र-बन्धन खोल दे॥ ३५॥

स दृष्ट्वा मंडलं भूयः प्रणमेत्साञ्जलिः प्रभुम्।
अथासीनं शिवाचार्यो मंडलस्य तु दक्षिणे॥ ३६
उपवेश्यात्मनः सव्ये शिष्यं दर्भासने गुरुः।
आराध्य च महादेवं शिवहस्तं प्रविन्यसेत्॥ ३७

शिष्य पुनः मण्डलकी ओर देखकर हाथ जोड़ प्रभुको प्रणाम करे। इसके बाद शिवस्वरूप आचार्य शिष्यको मण्डलके दक्षिण अपने बायें भागमें कुशके आसनपर बिठाये और महादेवजीकी आराधना करके उसके मस्तकपर शिवका वरद हाथ रखे॥ ३६-३७॥

शिवतेजोमयं पाणिं शिवमन्त्रमुदीरयेत्।
शिवाभिमानसंपन्नो न्यसेच्छिष्यस्य मस्तके॥ ३८
सर्वाङ्गालम्बनं चैव कुर्यात्तेनैव देशिकः।
शिष्योऽपि प्रणमेद्भूमौ देशिकाकृतिमीश्वरम्॥ ३९

'मैं शिव हूँ' इस अभिमानसे युक्त गुरु शिवके तेजसे सम्पन्न अपने हाथको शिष्यके मस्तकपर रखे और शिवमन्त्रका उच्चारण करे। उसी हाथसे वह शिष्यके सम्पूर्ण अंगोंका स्पर्श करे। शिष्य भी आचार्यरूपमें उपस्थित हुए ईश्वरको पृथ्वीपर गिरकर साष्टांग प्रणाम करे॥ ३८-३९॥

ततः शिवानले देवं समभ्यर्च्य यथाविधि।
हुताहुतित्रयं शिष्यमुपवेश्य यथा पुरा॥ ४०
दर्भाग्रैः संस्पृशंस्तं च विद्ययात्मानमाविशेत्।

तदनन्तर जब शिष्य शिवाग्निमें महादेवजीकी विधिवत् पूजा करके तीन आहुति दे ले, तब गुरु पुनः पूर्ववत् शिष्यको अपने पास बिठा ले। कुशोंके अग्रभागसे उसका स्पर्श करते हुए विद्या या मन्त्रद्वारा अपने-आपको उसके भीतर आविष्ट करे॥ ४०½॥

नमस्कृत्य महादेवं नाडीसन्धानमाचरेत्॥ ४१
शिवशास्त्रोक्तमार्गेण कृत्वा प्राणस्य निर्गमम्।
शिष्यदेहप्रवेशं च स्मृत्वा मन्त्रांस्तु तर्पयेत्॥ ४२

तत्पश्चात् महादेवजीको प्रणाम करके नाड़ी-संधान करे। फिर शिव-शास्त्रमें बताये हुए मार्गसे प्राणका निष्क्रमण करके शिष्यके शरीरमें प्रवेशकी भावना करे, साथ ही मन्त्रोंका तर्पण भी करे॥ ४१-४२॥

सन्तर्पणाय मूलस्य तेनैवाहुतयो दश।
देयास्तिस्रस्तथाङ्गानामङ्गैरेव यथाक्रमम्॥ ४३

ततः पूर्णाहुतिं दत्त्वा प्रायश्चित्ताय देशिकः।
पुनर्दशाहुतीः कुर्यान्मूलमन्त्रेण मन्त्रवित्॥ ४४

पुनः संपूज्य देवेशं सम्यगाचम्य देशिकः।
हुत्वा चैव यथान्यायं स्वजात्या वैश्यमुद्धरेत्॥ ४५

तस्यैवं जनयेत्क्षात्रमुद्धारं च ततः पुनः।
कृत्वा तथैव विप्रत्वं जनयेदस्य देशिकः॥ ४६

राजन्यं चैवमुद्धृत्य कृत्वा विप्रं पुनस्तयोः।
रुद्रत्वं जनयेद्विप्रे रुद्रनामैव साधयेत्॥ ४७

प्रोक्षणं ताडनं कृत्वा शिशोः स्वात्मानमात्मनि।
शिवात्मकमनुस्मृत्य स्फुरन्तं विस्फुलिंगवत्॥ ४८

नाड्या यथोक्तया वायुं रेचयेन्मन्त्रतो गुरुः।
निर्गम्य प्रविशेन्नाड्यां शिष्यस्य हृदयं तथा॥ ४९

प्रविश्य तस्य चैतन्यं नीलबिन्दुनिभं स्मरन्।
स्वतेजसापास्तमलं ज्वलन्तमनुचिन्तयेत्॥ ५०

तमादाय तया नाड्या मन्त्री संहारमुद्रया।
पूरकेण निवेश्यैनमेकीभावार्थमात्मनः॥ ५१

कुंभकेन तथा नाड्या रेचकेन यथा पुरा।
तस्मादादाय शिष्यस्य हृदये तं निवेशयेत्॥ ५२

तमालभ्य शिवाल्लब्धं तस्मै दत्त्वोपवीतकम्।
हुत्वाऽऽहुतित्रयं पश्चाद्दद्यात्पूर्णाहुतिं ततः॥ ५३

देवस्य दक्षिणे शिष्यमुपवेश्य वरासने।
कुशपुष्पपरिस्तीर्णे बद्धाञ्जलिरुदङ्‌मुखम्॥ ५४

मूलमन्त्रके तर्पणके लिये उसीके उच्चारणपूर्वक दस आहुतियाँ देनी चाहिये। फिर अंगोंके तर्पणके लिये अंग-मन्त्रोंद्वारा ही क्रमशः तीन आहुतियाँ दे। इसके बाद पूर्णाहुति देकर मन्त्रवेत्ता गुरु प्रायश्चित्तके निमित्त मूलमन्त्रसे पुनः दस आहुतियाँ अग्निमें डाले॥ ४३-४४॥

फिर देवेश्वर शिवका पूजन करके सम्यक् आचमन और हवन करनेके पश्चात् यथोचित रीतिसे जातितः वैश्यका उद्धार करे। भावनाद्वारा उसके वैश्यत्वको निकालकर उसमें क्षत्रियत्वकी उत्पत्ति करे। फिर इसी तरह क्षत्रियत्वका भी उद्धार करके गुरु उसमें ब्राह्मणत्वकी उद्भावना करे॥ ४५-४६॥

इसी प्रणालीसे जातितः क्षत्रियका भी उद्धार करके ब्राह्मण बनाये। फिर उन दोनों शिष्योंमें रुद्रत्वकी उत्पत्ति करे। जो जातिसे ही ब्राह्मण है, उस शिष्यमें केवल रुद्रत्वकी ही स्थापना करे। फिर शिष्यका प्रोक्षण और ताड़न करके आगकी चिनगारियोंके समान प्रकाशमान शिवस्वरूप उसकी आत्माको अपने आत्मामें स्थित होनेकी भावना करे॥ ४७-४८॥

तदनन्तर पूर्वोक्त नाड़ीसे गुरु मन्त्रोच्चारणपूर्वक वायुका रेचन (निःसारण) करे। वायुका निःसारण करके उस नाड़ीके द्वारा ही शिष्यके हृदयमें वह स्वयं प्रवेश करे। प्रवेश करके उसके चैतन्यका नील बिन्दुके समान चिन्तन करे। साथ ही यह भावना करे कि मेरे तेजसे इसका सारा मल नष्ट हो गया और यह पूर्णतः प्रकाशित हो रहा है॥ ४९-५०॥

इसके बाद उस जीव-चैतन्यको लेकर नाड़ीसे संहारमुद्रा एवं पूरक प्राणायामद्वारा अपने आत्मासे एकीभूत करनेके लिये उसमें निविष्ट करे। फिर रेचककी ही भाँति कुम्भकद्वारा उसी नाड़ीसे उस जीव-चैतन्यको वहाँसे लेकर शिष्यके हृदयमें स्थापित कर दे॥ ५१-५२॥

तत्पश्चात् शिष्यका स्पर्श करके शिवसे उपलब्ध हुए यज्ञोपवीतको उसे देकर गुरु तीन बार आहुति दे पूर्णाहुति होम करे॥ ५३॥

इसके बाद आराध्यदेवके दक्षिणभागमें शिष्यको कुश तथा फूलसे आच्छादित करके श्रेष्ठ आसनपर बिठाकर उसका मुँह उत्तरकी ओर करके उसे

स्वस्तिकासनमारूढं विधाय प्राङ्मुखः स्वयम्।
वरासनस्थितो मन्त्रैर्महामङ्गलनिःस्वनैः ॥ ५५

समादाय घटं पूर्णं पूर्णमेव प्रसाधितम्।
ध्यायमानः शिवं शिष्यमभिषिञ्चेत देशिकः ॥ ५६

स्वस्तिकासनमें स्थित करे। शिष्य गुरुकी ओर हाथ जोड़े रहे। गुरु स्वयं पूर्वाभिमुख हो एक श्रेष्ठ आसनपर खड़ा रहे और पहलेसे ही स्थापनपूर्वक सिद्ध किये हुए पूर्ण घटको लेकर शिवका ध्यान करते हुए मन्त्रपाठ तथा मांगलिक वाद्योंकी ध्वनिके साथ शिष्यका अभिषेक करे ॥ ५४—५६ ॥

अथापनुद्य स्नानाम्बु परिधाय सिताम्बरम्।
आचान्तोऽलंकृतः शिष्यः प्राञ्जलिर्मण्डपं व्रजेत् ॥ ५७

उपवेश्य यथापूर्वं तं गुरुर्दर्भविष्टरे।
संपूज्य मंडले देवं करन्यासं समाचरेत् ॥ ५८

ततस्तु भस्मना देवं ध्यायेन्मनसि देशिकः।
समालभेत पाणिभ्यां शिशुं शिवमुदीरयेत् ॥ ५९

तदनन्तर शिष्य उस अभिषेकके जलको पोंछकर श्वेत वस्त्र धारण करे, आचमन करके अलंकृत हो हाथ जोड़ मण्डपमें जाय। तब गुरु पहलेकी भाँति उसे कुशासनपर बिठाकर मण्डलमें महादेवजीकी पूजा करके करन्यास करे। इसके बाद मन-ही-मन महादेवजीका ध्यान करते हुए दोनों हाथोंमें भस्म ले शिष्यके अंगोंमें लगाये और शिव-मन्त्रका उच्चारण करे ॥ ५७—५९ ॥

अथ तस्य शिवाचार्यो दहनप्लावनादिकम्।
सकलीकरणं कृत्वा मातृकान्यासवर्त्मना ॥ ६०

ततः शिवासनं ध्यात्वा शिष्यमूर्द्धनि देशिकः।
तत्रावाह्य यथान्यायमर्चयेन्मनसा शिवम् ॥ ६१

तदनन्तर शिवाचार्य मातृकान्यासके मार्गसे शिष्यका दहन-प्लावनादि सकलीकरण करके उसके मस्तक-पर शिवके आसनका ध्यान करे और वहाँ शिवका आवाहन करके यथोचित रीतिसे उनकी मानसिक पूजा करे ॥ ६०-६१ ॥

प्रार्थयेत्प्राञ्जलिर्देवं नित्यमत्र स्थितो भव।
इति विज्ञाप्य तं शंभोस्तेजसा भासुरं स्मरेत् ॥ ६२

संपूज्याथ शिवं शैवीमाज्ञां प्राप्य शिवात्मिकाम्।
कर्णे शिष्यस्य शनकैः शिवमन्त्रमुदीरयेत् ॥ ६३

तत्पश्चात् हाथ जोड़ महादेवजीकी प्रार्थना करे—'प्रभो! आप नित्य यहाँ विराजमान हों।' इस तरह प्रार्थना करके मन-ही-मन यह भावना करे कि शिष्य भगवान् शंकरके तेजसे प्रकाशित हो रहा है। इसके बाद पुनः शिवकी पूजा करके शिवारूपिणी शैवी आज्ञा प्राप्त करके गुरु शिष्यके कानमें धीरे-धीरे शिवमन्त्रका उच्चारण करे ॥ ६२-६३ ॥

स तु बद्धाञ्जलिः श्रुत्वा मन्त्रं तद्गतमानसः।
शनैस्तं व्याहरेच्छिष्यः शिवाचार्यस्य शासनात् ॥ ६४

ततः शाक्तं च संदिश्य मन्त्रं मन्त्रविचक्षणः।
उच्चारयित्वा च सुखं तस्मै मङ्गलमादिशेत् ॥ ६५

शिष्य हाथ जोड़े हुए उस मन्त्रको सुनकर उसीमें मन लगा शिवाचार्यकी आज्ञाके अनुसार धीरे-धीरे उसकी आवृत्ति करे। फिर मन्त्र-ज्ञानकुशल आचार्य शाक्त-मन्त्रका उपदेश दे, उसका सुख-पूर्वक उच्चारण करवाकर शिष्यके प्रति मंगलाशंसा करे ॥ ६४-६५ ॥

ततः समासान्मन्त्रार्थं वाच्यवाचकयोगतः।
समादिश्येश्वरं रूपं योगमासनमादिशेत् ॥ ६६

तत्पश्चात् संक्षेपसे वाच्यवाचक योगके अनुसार ईश्वररूप मन्त्रका उपदेश देकर योगासनकी शिक्षा दे ॥ ६६ ॥

अथ गुर्वाज्ञया शिष्यः शिवाग्निगुरुसन्निधौ।
भक्त्यैवमभिसन्धाय दीक्षावाक्यमुदीरयेत्॥ ६७

वरं प्राणपरित्यागश्छेदनं शिरसोऽपि वा।
न त्वनभ्यर्च्य भुञ्जीत भगवन्तं त्रिलोचनम्॥ ६८

तदनन्तर शिष्य गुरुकी आज्ञासे शिव, अग्नि तथा गुरुके समीप भक्तिभावसे प्रतिज्ञापूर्वक निम्नांकितरूपसे दीक्षावाक्यका उच्चारण करे—'मेरे लिये प्राणोंका परित्याग कर देना अच्छा होगा अथवा सिर कटा देना भी अच्छा होगा; किंतु मैं भगवान् त्रिलोचनकी पूजा किये बिना कभी भोजन नहीं कर सकता।' ॥ ६७-६८ ॥

स एव दद्यान्नियतो यावन्मोहविपर्ययः।
तावदाराधयेद्देवं तन्निष्ठस्तत्परायणः॥ ६९

ततः स समयो नाम भविष्यति शिवाश्रमे।
लब्धाधिकारो गुर्वाज्ञापालकस्तद्वशो भवेत्॥ ७०

जबतक मोह दूर न हो, तबतक वह भगवान् शिवमें ही निष्ठा रखकर उन्हींके आश्रित हो नियमपूर्वक उन्हींकी आराधना करता रहे। फिर भगवान् शिव ही उसे योगक्षेम प्रदान करते हैं। ऐसा करनेसे उस शिष्यका नाम 'समय' होगा। उसे शिवाश्रममें रहनेका अधिकार प्राप्त होगा। वहाँ रहनेवाले शिष्यको गुरुकी आज्ञाका पालन करते हुए सदा उनके वशमें रहना चाहिये॥ ६९-७० ॥

अतः परं न्यस्तकरो भस्मादाय स्वहस्ततः।
दद्याच्छिष्याय मूलेन रुद्राक्षं चाभिमन्त्रितम्॥ ७१

प्रतिमा वापि देवस्य गूढदेहमथापि वा।
पूजाहोमजपध्यानसाधनानि च संभवे॥ ७२

इसके बाद गुरु करन्यास करके अपने हाथसे भस्म लेकर मूलमन्त्रका उच्चारण करते हुए उस भस्म तथा रुद्राक्षको अभिमन्त्रित करके शिष्यके हाथमें दे दे। साथ ही महादेवजीकी प्रतिमा अथवा उनका गूढ़ शरीर (लिंग) और यथासम्भव पूजा, होम, जप एवं ध्यानके साधन भी दे॥ ७१-७२ ॥

सोऽपि शिष्यः शिवाचार्याल्लब्धानि बहुमानतः।
आददीताज्ञया तस्य देशिकस्य न चान्यथा॥ ७३

आचार्यादाप्तमखिलं शिरस्याधाय भक्तितः।
रक्षयेत्पूजयेच्छंभुं मठे वा गृह एव वा॥ ७४

फिर वह शिष्य भी शिवाचार्यसे प्राप्त हुई उन वस्तुओंको उन्हींकी आज्ञासे बड़े आदरके साथ ग्रहण करे। उनकी आज्ञाका उल्लंघन न करे, आचार्यसे प्राप्त हुई सारी वस्तुओंको भक्तिभावसे सिरपर रखकर ले जाय और उनकी रक्षा करे। अपनी रुचिके अनुसार मठमें या घरमें शंकरजीकी पूजा करता रहे॥ ७३-७४ ॥

अतः परं शिवाचारमादिशेदस्य देशिकः।
भक्तिश्रद्धानुसारेण प्रज्ञायाश्चानुसारतः॥ ७५

यदुक्तं यत्समाज्ञातं यच्चैवान्यत्प्रकीर्तितम्।
शिवाचार्येण समये तत्सर्वं शिरसा वहेत्॥ ७६

इसके बाद गुरु भक्ति, श्रद्धा और बुद्धिके अनुसार शिष्यको शिवाचारकी शिक्षा दे। शिवाचार्यने समयाचारके विषयमें जो कुछ कहा हो, जो आज्ञा दी हो तथा और भी जो कुछ बातें बतायी हों, उन सबको शिष्य शिरोधार्य करे॥ ७५-७६ ॥

शिवागमस्य ग्रहणं वाचनं श्रवणं तथा।
देशिकादेशतः कुर्यान्न स्वेच्छातो न चान्यतः॥ ७७

गुरुके आदेशसे ही वह शिवागमका ग्रहण, पठन और श्रवण करे। न तो अपनी इच्छासे करे और न दूसरेकी प्रेरणासे ही। इस प्रकार मैंने संक्षेपसे

इति संक्षेपतः प्रोक्तः संस्कारः समयाह्वयः।
साक्षाच्छिवपुरप्राप्तौ नृणां परमसाधनम्॥ ७८

समयाख्य-संस्कार—समयाचारकी दीक्षाका वर्णन किया है। यह मनुष्योंको साक्षात् शिवधामकी प्राप्ति करानेके लिये सबसे उत्तम साधन है॥ ७७-७८॥

इति श्रीशिवमहापुराणे सप्तम्यां वायवीयसंहितायामुत्तरखण्डे शिष्यसंस्कारवर्णनं नाम षोडशोऽध्यायः॥ १६॥

॥ इस प्रकार श्रीशिवमहापुराणके अन्तर्गत सातवीं वायवीयसंहिताके उत्तरखण्डमें शिष्य-संस्कारवर्णन नामक सोलहवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ १६॥

अथ सप्तदशोऽध्यायः

षडध्वशोधनका निरूपण

उपमन्युरुवाच

अतः परं समावेक्ष्य गुरुः शिष्यस्य योग्यताम्।
षडध्वशुद्धिं कुर्वीत सर्वबन्धविमुक्तये॥ १

उपमन्यु कहते हैं—यदुनन्दन! इसके बाद गुरु शिष्यकी योग्यताको देखकर उसके सम्पूर्ण बन्धनोंकी निवृत्तिके लिये षडध्वशोधन करे॥ १॥

कला तत्त्वं च भुवनं वर्णं पदमतः परम्।
मन्त्रश्चेति समासेन षडध्वा परिपठ्यते॥ २

कला, तत्त्व, भुवन, वर्ण, पद और मन्त्र—ये ही संक्षेपसे छः अध्वा कहे गये हैं॥ २॥

निवृत्त्याद्याः कलाः पञ्च कलाध्वा कथ्यते बुधैः।
व्याप्ताः कलाभिरितरे त्वध्वानः पञ्च पञ्चभिः॥ ३

निवृत्ति* आदि जो पाँच कलाएँ हैं, उन्हें विद्वान् पुरुष कलाध्वा कहते हैं। अन्य पाँच अध्वा इन पाँचों कलाओंसे व्याप्त हैं॥ ३॥

शिवतत्त्वादिभूम्यन्तं तत्त्वाध्वा समुदाहृतः।
षड्विंशत्संख्ययोपेतः शुद्धाशुद्धोभयात्मकः॥ ४

शिवतत्त्वसे लेकर भूमिपर्यन्त जो छब्बीस तत्त्व हैं, उनको 'तत्त्वाध्वा' कहा गया है। यह अध्वा शुद्ध और अशुद्धके भेदसे दो प्रकारका है॥ ४॥

आधाराद्युन्मनान्तश्च भुवनाध्वा प्रकीर्तितः।
विना भेदोपभेदाभ्यां षष्टिसंख्यासमन्वितः॥ ५

आधारसे लेकर उन्मनातक 'भुवनाध्वा' कहा गया है। यह भेद और उपभेदोंको छोड़कर साठ है॥ ५॥

पञ्चाशद् रुद्ररूपास्तु वर्णा वर्णाध्वसंज्ञिताः।
अनेकभेदसम्पन्नः पदाध्वा समुदाहृतः॥ ६

रुद्रस्वरूप जो पचास वर्ण हैं, उन्हें 'वर्णाध्वा' की संज्ञा दी गयी है। पदोंको 'पदाध्वा' कहा गया है, जिसके अनेक भेद हैं॥ ६॥

सर्वोपमन्त्रैर्मन्त्राध्वा व्याप्तः परमविद्यया।
यथा शिवो न तत्त्वेषु गण्यते तत्त्वनायकः॥ ७

मन्त्राध्वनि न गण्येत तथासौ मन्त्रनायकः।
कलाध्वनो व्यापकत्वं व्याप्यत्वं चेतराध्वनाम्॥ ८

सब प्रकारके उपमन्त्रोंसे 'मन्त्राध्वा' होता है, जो परम विद्यासे व्याप्त है। जैसे तत्त्वनायक शिवकी तत्त्वोंमें गणना नहीं होती, उसी प्रकार उस मन्त्रनायक महेश्वरकी मन्त्राध्वामें गणना नहीं होती। कलाध्वा व्यापक है और अन्य अध्वा व्याप्य हैं॥ ७-८॥

न वेत्ति तत्त्वतो यः स नैवार्हत्यध्वशोधनम्।
षड्विधस्याध्वनो रूपं न येन विदितं भवेत्॥ ९
व्याप्यव्यापकता तेन ज्ञातुमेव न शक्यते।

जो इस बातको ठीक-ठीक नहीं जानता है, वह अध्वशोधनका अधिकारी नहीं है। जिसने छः प्रकारके अध्वाका रूप नहीं जाना, वह उनके व्याप्य-व्यापक भावको समझ ही नहीं सकता है।

* निवृत्ति, प्रतिष्ठा, विद्या, शान्ति और शान्त्यतीता—ये पाँच कलाएँ हैं।

तस्मादध्वस्वरूपं च व्याप्यव्यापकतां तथा॥ १०
यथावदवगम्यैव कुर्यादध्वविशोधनम्।

इसलिये अध्वाओंके स्वरूप तथा उनके व्याप्य-व्यापक भावको ठीक-ठीक जानकर ही अध्व-शोधन करना चाहिये॥ ९-१०१/२॥

कुण्डमण्डलपर्यन्तं तत्र कृत्वा यथा पुरा॥ ११
द्विहस्तमानं कुर्वीत प्राच्यां कलशमण्डलम्।
ततः स्नातः शिवाचार्यः सशिष्यः कृतनैत्यकः॥ १२
प्रविश्य मण्डलं शम्भोः पूजां पूर्ववदाचरेत्।

पूर्ववत् कुण्ड और मण्डल-निर्माणका कार्य वहाँ करके पूर्वदिशामें दो हाथ लम्बा-चौड़ा कलशमण्डल बनावे। तत्पश्चात् शिवाचार्य शिष्यसहित स्नान और नित्यकर्म करके मण्डलमें प्रविष्ट हो पहलेकी ही भाँति शिवजीकी पूजा करे॥ ११-१२१/२॥

तत्राढकावरैः सिद्धं तन्दुलैः पायसं प्रभोः॥ १३
अर्द्धं निवेद्य होमार्थं शेषं समुपकल्पयेत्।
पुरतः कल्पिते वाथ मण्डले वर्णिमण्डिते॥ १४
स्थापयेत्पञ्चकलशान्दिक्षु मध्ये च देशिकः।

फिर वहाँ लगभग चार सेर चावलसे तैयार की गयी खीरमेंसे आधा प्रभुको नैवेद्य लगा दे और शेष खीरको होमके लिये रख दे। पूर्वदिशाकी ओर बने हुए अनेक रंगोंसे अलंकृत मण्डलमें गुरु पाँच कलशोंकी स्थापना करे। चारको तो चारों दिशाओंमें रखे और एकको मध्यभागमें॥ १३-१४१/२॥

तेषु ब्रह्माणि मूलार्णैर्बिन्दुनादसमन्वितैः॥ १५
नम आद्यैर्यकारान्तैः कल्पयेत्कल्पवित्तमः।

उन कलशोंपर मूलमन्त्रके '**नमः शिवाय**' इन पाँचों अक्षरोंको विन्दु और नादसे युक्त करके उनके द्वारा कल्पविधिका ज्ञाता गुरु ईशान आदि ब्रह्मोंकी स्थापना करे॥ १५१/२॥

ईशानं मध्यमे कुम्भे पुरुषं पुरतः स्थिते॥ १६
अघोरं दक्षिणे वामे वामं सद्यं च पश्चिमे।
रक्षां विधाय मुद्रां च बद्ध्वा कुम्भाभिमन्त्रणम्॥ १७
कृत्वा शिवानलैर्होमं प्रारभेत यथा पुरा।

मध्यवर्ती कलशपर '**ॐ नं ईशानाय नमः, ईशानं स्थापयामि**' कहकर ईशानकी स्थापना करे। पूर्ववर्ती कलशपर '**ॐ मं तत्पुरुषाय नमः, तत्पुरुषं स्थापयामि**' कहकर तत्पुरुषकी, दक्षिण कलशपर '**ॐ शिं अघोराय नमः, अघोरं स्थापयामि**' कहकर अघोरकी, वाम या उत्तरभागमें रखे हुए कलशपर '**ॐ वां वामदेवाय नमः, वामदेवं स्थापयामि**' कहकर वामदेवकी तथा पश्चिमके कलशपर '**ॐ यं सद्योजाताय नमः, सद्योजातं स्थापयामि**' कहकर सद्योजातकी स्थापना करे। तदनन्तर रक्षाविधान करके मुद्रा बाँधकर कलशोंको अभिमन्त्रित करे। इसके बाद पूर्ववत् शिवाग्निमें होम आरम्भ करे॥ १६-१७१/२॥

यदर्द्धं पायसं पूर्वं होमार्थं परिकल्पितम्॥ १८
हुत्वा शिष्यस्य तच्छेषं भोक्तुं समुपकल्पयेत्।
तर्पणान्तं च मन्त्राणां कृत्वा कर्म यथा पुरा॥ १९
हुत्वा पूर्णाहुतिं तेषां ततः कुर्यात्प्रदीपनम्।
ॐकारादनु हुङ्कारं ततो मूलं फडन्तकम्॥ २०
स्वाहान्तं दीपने प्राहुरङ्गानि च यथाक्रमम्।
तेषामाहुतयस्तिस्रो देया दीपनकर्मणि॥ २१

पहले होमके लिये जो आधी खीर रखी गयी थी, उसका हवन करके शेषभाग शिष्यको खानेके लिये दे। पहलेकी भाँति मन्त्रोंका तर्पणान्त कर्म करके पूर्णाहुति होम करनेके पश्चात् प्रदीपन कर्म करे। प्रदीपन कर्ममें '**ॐ हुं नमः शिवाय फट् स्वाहा**' का उच्चारण करके क्रमशः हृदय आदि अंगोंको तीन-तीन आहुतियाँ देनी चाहिये। अंगोंमें हृदय, सिर, शिखा, कवच, नेत्रत्रय और अस्त्र—इन छःकी गणना है॥ १८—२१॥

मन्त्रैरेकैकशस्तैस्तु विचिन्त्या दीप्तमूर्तयः।
त्रिगुणं त्रिगुणीकृत्य द्विजकन्याकृतं सितम्॥ २२

सूत्रं सूत्रेण संमन्त्र्य शिखाग्रे बन्धयेच्छिशोः।

इनमेंसे एक-एक अंगको तीन-तीन बार मन्त्र पढ़कर तीन-तीन आहुतियाँ देनी चाहिये। इन सबके स्वरूपका तेजस्वीरूपमें चिन्तन करना चाहिये। इसके बाद ब्राह्मणकी कुमारी कन्याके द्वारा काते हुए सफेद सूतको एक बार त्रिगुण करके पुनः त्रिगुण करे। फिर उस सूत्रको अभिमन्त्रित करके उसका एक छोर शिष्यकी शिखाके अग्रभागमें बाँध दे॥ २२१/२॥

चरणांगुष्ठपर्यन्तमूर्ध्वकायस्य तिष्ठतः॥ २३
लम्बयित्वा तु तत्सूत्रं सुषुम्णां तत्र योजयेत्।
शान्तया मुद्रयादाय मूलमन्त्रेण मन्त्रवित्॥ २४
हुत्वाहुतित्रयं तस्याः सान्निध्यमुपकल्पयेत्।
हृदि सन्ताड्य शिष्यस्य पुष्पक्षेपेण पूर्ववत्॥ २५
चैतन्यं समुपादाय द्वादशान्ते निवेद्य च।
सूत्रं सूत्रेण संयोज्य संरक्ष्यास्त्रेण वर्मणा॥ २६
अवगुण्ठ्याथ तत्सूत्रं शिष्यदेहं विचिन्तयेत्।
मूलत्रयमयं पाशं भोगभोग्यत्वलक्षणम्॥ २७
विषयेन्द्रियदेहादिजनकं तस्य भावयेत्।

शिष्य सिर ऊँचा करके खड़ा हो जाय, उस अवस्थामें वह सूत उसके पैरके अँगूठेतक लटकता रहे। सूतको इस तरह लटकाकर उसमें सुषुम्णा नाड़ीकी संयोजना करे। फिर मन्त्रज्ञ गुरु शान्त मुद्राके साथ मूलमन्त्रसे तीन आहुतिका होम करके उस नाड़ीको लेकर उस सूत्रमें स्थापित करे। फिर पूर्ववत् फूल फेंककर शिष्यके हृदयमें ताड़न करे और उससे चैतन्यको लेकर बारह आहुतियोंके पश्चात् शिवको निवेदितकर उस लटकते हुए सूत्रको एक सूतसे जोड़े और '**हुं फट्**' मन्त्रसे रक्षा करके उस सूतको शिष्यके शरीरमें लपेट दे। फिर यह भावना करे कि शिष्यका शरीर मूलत्रयमय पाश है, भोग और भोग्यत्व ही इसका लक्षण है, यह विषय, इन्द्रिय और देह आदिका जनक है॥ २३—२७१/२॥

व्योमादिभूतरूपिण्यः शान्त्यतीतादयः कलाः॥ २८

सूत्रे स्वनामभिर्योज्यः पूज्यश्चैव नमोयुतैः।
अथवा बीजभूतैस्तत्कृत्वा पूर्वोदितं क्रमात्॥ २९

ततो मलादेस्तत्त्वादौ व्याप्तिं समवलोकयेत्।
कलाव्याप्तिं मलादौ च हुत्वा संदीपयेत्कलाः॥ ३०

तदनन्तर शान्त्यतीता आदि पाँच कलाओंको, जो आकाशादि तत्त्वरूपिणी हैं, उस सूत्रमें उनके नाम ले-लेकर जोड़ना चाहिये। यथा—

'**व्योमरूपिणीं शान्त्यतीतकलां योजयामि, वायुरूपिणीं शान्तिकलां योजयामि, तेजोरूपिणीं विद्याकलां योजयामि, जलरूपिणीं प्रतिष्ठाकलां योजयामि, पृथ्वीरूपिणीं निवृत्तिकलां योजयामि।**' इति।

इस तरह इन कलाओंका योजन करके उनके नामके अन्तमें '**नमः**' जोड़कर इनकी पूजा करे। यथा—'**शान्त्यतीतकलायै नमः, शान्तिकलायै नमः।**' इत्यादि। अथवा आकाशादिके बीजभूत (**हं यं रं वं लं**) मन्त्रोंद्वारा या पंचाक्षरके पाँच अक्षरोंमें नाद-विन्दुका योग करके बीजरूप हुए उन मन्त्राक्षरोंद्वारा क्रमशः पूर्वोक्त कार्य करके तत्त्व आदिमें मलादि पाशोंकी व्याप्तिका चिन्तन करे। इसी तरह मलादि पाशोंमें भी कलाओंकी व्याप्ति देखे। फिर आहुति करके उन कलाओंको संदीपित करे॥ २८—३०॥

शिष्यं शिरसि संताड्य सूत्रं देहे यथाक्रमम्।
शांत्यतीतपदे सूत्रं लाञ्छयेन्मन्त्रमुच्चरन्॥ ३१

तदनन्तर शिष्यके मस्तकपर [पुष्पसे] ताड़न करके उसके शरीरमें लिपटे हुए सूत्रको मूलमन्त्रके उच्चारणपूर्वक शान्त्यतीत पदमें अंकित करे॥ ३१॥

एवं कृत्वा निवृत्त्यन्तं शान्त्यतीतमनुक्रमात्।
हुत्वाहुतित्रयं पश्चान्मण्डले च शिवं यजेत्॥ ३२

इस प्रकार क्रमशः शान्त्यतीतसे आरम्भ करके निवृत्तिकलापर्यन्त पूर्वोक्त कार्य करके तीन आहुतियाँ देकर मण्डलमें पुनः शिवका पूजन करे॥ ३२॥

देवस्य दक्षिणे शिष्यमुपवेश्योत्तरामुखम्।
सदर्भे मण्डले दद्याद्धोमशिष्टं चरुं गुरुः॥ ३३

इसके बाद देवताके दक्षिणभागमें शिष्यको कुशयुक्त आसनपर मण्डलमें उत्तराभिमुख बिठाकर गुरु होमा-वशिष्ट चरु उसे दे॥ ३३॥

शिष्यस्तद्गुरुणा दत्तं सत्कृत्य शिवपूर्वकम्।
भुक्त्वा पश्चाद् द्विराचम्य शिवमन्त्रमुदीरयेत्॥ ३४

गुरुके दिये हुए उस चरुको शिष्य आदरपूर्वक ग्रहण करके शिवका नाम ले उसे खा जाय। फिर दो बार आचमन करके शिवमन्त्रका उच्चारण करे॥ ३४॥

अपरे मण्डले दद्यात् पञ्चगव्यं तथा गुरुः।
सोऽपि तच्छक्तितः पीत्वा द्विराचम्य शिवं स्मरेत्॥ ३५

इसके बाद गुरु दूसरे मण्डलमें शिष्यको पंचगव्य दे। शिष्य भी अपनी शक्तिके अनुसार उसे पीकर दो बार आचमन करके शिवका स्मरण करे॥ ३५॥

तृतीये मण्डले शिष्यमुपवेश्य यथा पुरा।
प्रदद्याद्दन्तपवनं यथाशास्त्रोक्तलक्षणम्॥ ३६

अग्रेण तस्य मृदुना प्राङ्मुखो वाप्युदङ्मुखः।
वाचं नियम्य चासीनः शिष्यो दन्तान्विशोधयेत्॥ ३७

इसके बाद गुरु शिष्यको मण्डलमें पूर्ववत् बिठाकर उसे शास्त्रोक्त लक्षणसे युक्त दन्तधावन दे। शिष्य पूर्व या उत्तरकी ओर मुँह करके बैठे और मौन हो उस दातौनके कोमल अग्रभागद्वारा अपने दाँतोंकी शुद्धि करे॥ ३६-३७॥

प्रक्षाल्य दन्तपवनं त्यक्त्वाचम्य शिवं स्मरेत्।
प्रविशेद्देशिकादिष्टः प्राञ्जलिः शिवमण्डलम्॥ ३८

फिर उस दातौनको धोकर फेंक दे और [कुल्ला करके मुँह-हाथ धोकर] आचमन करे तथा शिवका स्मरण करे। फिर गुरुकी आज्ञा पाकर शिष्य हाथ जोड़े हुए शिवमण्डलमें प्रवेश करे॥ ३८॥

त्यक्तं तद्दन्तपवनं दृश्यते गुरुणा यदि।
प्रागुदक्पश्चिमे वाग्रे शिवमन्यच्छिवेतरम्॥ ३९

उस फेंके हुए दातौनको यदि गुरुने पूर्व, उत्तर या पश्चिम दिशामें अपने सामने देख लिया तब तो मंगल है; अन्यथा अन्य दिशाओंमें देखनेपर अमंगल होता है॥ ३९॥

अशस्ताशामुखे तस्मिन् गुरुस्तद्दोषशान्तये।
शतमर्द्धं तदर्द्धं वा जुहुयान्मूलमन्त्रतः॥ ४०

यदि निन्दित दिशाकी ओर वह दीख जाय तो उसके दोषकी शान्तिके लिये गुरु मूलमन्त्रसे एक सौ आठ या चौवन आहुतियोंका होम करे॥ ४०॥

ततः शिष्यं समालभ्य जपित्वा कर्णयोः शिवम्।
देवस्य दक्षिणे भागे तं शिष्यमधिवासयेत्॥ ४१

तत्पश्चात् शिष्यका स्पर्श करके उसके कानमें 'शिव' नामका जप करके महादेवजीके दक्षिणभागमें शिष्यको बिठाये॥ ४१॥

अहतास्तरणास्तीर्णे स दर्भशयने शुचिः।
मन्त्रितेऽन्तः शिवं ध्यायन् शयीत प्राक् शिरा निशि॥ ४२

वहाँ नूतन वस्त्रपर बिछे हुए कुशके अभिमन्त्रित आसनपर पवित्र हुआ शिष्य मन-ही-मन शिवका ध्यान करते हुए पूर्वकी ओर सिरहाना करके रातमें सोये॥ ४२॥

शिखायां बद्धसूत्रस्य शिखया तच्छिखां गुरुः।
आबध्याहतवस्त्रेण तमाच्छाद्य च वर्मणा॥ ४३

शिखामें सूत बँधे हुए उस शिष्यकी शिखाको शिखासे ही बाँधकर गुरु नूतन वस्त्रद्वारा हुंकार-उच्चारण करके उसे ढक दे॥ ४३॥

रेखात्रयं च परितो भस्मना तिलसर्षपैः।
कृत्वास्त्रजप्तैस्तद् बाह्ये दिगीशानां बलिं हरेत्॥ ४४

शिष्योऽपि परतोऽनश्नन्कृत्वैवमधिवासनम्।
प्रबुध्योत्थाय गुरुवे स्वप्नं दृष्टं निवेदयेत्॥ ४५

फिर शिष्यके चारों ओर भस्म, तिल और सरसोंसे तीन रेखा खींचकर फट्-मन्त्रका जप करके रेखाके बाह्यभागमें दिक्पालोंके लिये बलि दे। शिष्य भी उपवासपूर्वक वहाँ रातमें सोया रहे और सबेरा होनेपर उठकर अपने देखे हुए स्वप्नकी बातें गुरुको बताये॥ ४४-४५॥

इति श्रीशिवमहापुराणे सप्तम्यां वायवीयसंहितायामुत्तरखण्डे शिवदीक्षाविधानवर्णनं नाम सप्तदशोऽध्यायः॥ १७॥

॥ इस प्रकार श्रीशिवमहापुराणके अन्तर्गत सातवीं वायवीयसंहिताके उत्तरखण्डमें शिवदीक्षा-विधानवर्णन नामक सत्रहवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ १७॥

अथाष्टादशोऽध्यायः

षडध्वशोधनकी विधि

उपमन्युरुवाच

ततः स्नानादिकं सर्वं समाप्याचार्यचोदितः।
गच्छेद्बद्धाञ्जलिर्ध्यायन् शिवमण्डलपार्श्वतः॥ १

उपमन्यु कहते हैं—यदुनन्दन! तदनन्तर गुरुकी आज्ञा ले शिष्य स्नान आदि सम्पूर्ण कर्मको समाप्त करके शिवका चिन्तन करता हुआ हाथ जोड़ शिवमण्डलके समीप जाय॥ १॥

अथ पूजां विना सर्वं कृत्वा पूर्वदिने यथा।
नेत्रबन्धनपर्यन्तं दर्शयेत् मण्डलं गुरुः॥ २

इसके बाद पूजाके सिवा पहले दिनका शेष सारा कृत्य नेत्रबन्धनपर्यन्त कर लेनेके अनन्तर गुरु उसे मण्डलका दर्शन कराये॥ २॥

बद्धनेत्रेण शिष्येण पुष्पावकिरणे कृते।
यत्रापतन्ति पुष्पाणि तस्य नामाऽस्य संदिशेत्॥ ३
तं चोपनीय निर्माल्यमण्डलेऽस्मिन्यथा पुरा।
पूजयेद्देवमीशानं जुहुयाच्च शिवानले॥ ४

आँखमें पट्टी बँधे रहनेपर शिष्य कुछ फूल बिखेरे। जहाँ भी फूल गिरें, वहीं उसको उपदेश दे। फिर पूर्ववत् उसे निर्माल्य मण्डलमें ले जाकर ईशानदेवकी पूजा कराये और शिवाग्निमें हवन करे॥ ३-४॥

शिष्येण यदि दुःस्वप्नो दृष्टस्तद्दोषशान्तये।
शतमर्द्धं तदर्द्धं वा जुहुयान्मूलविद्यया॥ ५
ततः सूत्रं शिखाबद्धं लम्बयित्वा यथा पुरा।
आधारपूजाप्रभृति यन्निवृत्तिकलाश्रयम्॥ ६
वागीश्वरीपूजनान्तं कुर्याद्धोमपुरःसरम्।

यदि शिष्यने दुःस्वप्न देखा हो तो उसके दोषकी शान्तिके लिये सौ या पचास बार मूलमन्त्रसे अग्निमें आहुति दे। तदनन्तर शिखामें बँधे हुए सूतको पूर्ववत् लटकाकर आधार-शक्तिकी पूजासे लेकर निवृत्तिकला-सम्बन्धी वागीश्वरीपूजनपर्यन्त सब कार्य होमपूर्वक करे॥ ५-६१/२॥

अथ प्रणम्य वागीशं निवृत्तेर्व्यापिकां सतीम्॥ ७
मण्डले देवमभ्यर्च्य हुत्वा चैवाहुतित्रयम्।
प्रापयेच्च शिशोः प्राप्तिं युगपत्सर्वयोनिषु॥ ८

इसके बाद निवृत्तिकलामें व्यापक सती वागीश्वरीको प्रणाम करके मण्डलमें महादेवजीके पूजनपूर्वक तीन आहुतियाँ दे। शिष्यको एक ही समय सम्पूर्ण योनियोंमें प्राप्त करानेकी भावना करे॥ ७-८॥

सूत्रदेहेऽथ शिष्यस्य ताडनप्रोक्षणादिकम्।
कृत्वात्मानं समादाय द्वादशान्ते निवेद्य च॥ ९
ततोऽप्यादाय मूलेन मुद्रया शास्त्रदृष्टया।
योजयेन्मनसाचार्यो युगपत्सर्वयोनिषु॥ १०

फिर शिष्यके सूत्रमय शरीरमें ताड़न-प्रोक्षण आदि करके उसके आत्मचैतन्यको लेकर द्वादशान्तमें निवेदन करे। फिर वहाँसे भी उसे लेकर आचार्य मूलमन्त्रसे शास्त्रोक्त मुद्राद्वारा मानसिक भावनासे एक ही साथ सम्पूर्ण योनियोंमें संयुक्त करे॥ ९-१०॥

देवानां जातयश्चाष्टौ तिरश्चां पञ्च जातयः।
जात्यैकया च मानुष्या योनयश्च चतुर्दश॥ ११
तासु सर्वासु युगपत्प्रवेशाय शिशोर्द्धिया।
वागीशान्यां यथान्यायं शिष्यात्मानं निवेशयेत्॥ १२

देवताओंकी आठ जातियाँ हैं, तिर्यक्-योनियों (पशु-पक्षियों)-की पाँच और मनुष्योंकी एक जाति। इस प्रकार कुल चौदह योनियाँ हैं। उन सबमें शिष्यको एक साथ प्रवेश करानेके लिये गुरु मन-ही-मन भावनाद्वारा शिष्यकी आत्माको यथोचित रीतिसे वागीश्वरीके गर्भमें निविष्ट करे॥ ११-१२॥

गर्भनिष्पत्तये देवं संपूज्य प्रणिपत्य च।
हुत्वा चैव यथान्यायं निष्पन्नं तदनुस्मरेत्॥ १३
निष्पन्नस्यैवमुत्पत्तिमनुवृत्तिं च कर्मणा।
आर्जवं भोगनिष्पत्तिः कुर्यात् प्रीतिं परां तथा॥ १४

वागीश्वरीमें गर्भकी सिद्धिके लिये महादेवजीका पूजन, प्रणाम और उनके निमित्त हवन करके यह चिन्तन करे कि यथावत्‌रूपसे वह गर्भ सिद्ध हो गया। सिद्ध हुए गर्भकी उत्पत्ति, कर्मानुवृत्ति, सरलता, भोगप्राप्ति और परा प्रीतिका चिन्तन करे॥ १३-१४॥

निष्कृत्यर्थं च जात्यायुर्भोगसंस्कारसिद्धये।
हुत्वाहुतित्रयं देवं प्रार्थयेद्देशिकोत्तमः॥ १५

तत्पश्चात् उस जीवके उद्धार तथा जाति, आयु एवं भोगके संस्कारकी सिद्धिके लिये तीन आहुतिका हवन करके श्रेष्ठ गुरु महादेवजीसे प्रार्थना करे॥ १५॥

भोक्तृत्वविषयासङ्गमलं तत्कायशोधनम्।
कृत्वैवमेव शिष्यस्य छिंद्यात्पाशत्रयं ततः॥ १६
निकृत्या परिबद्धस्य पाशस्यात्यन्तभेदतः।
कृत्वा शिष्यस्य चैतन्यं स्वच्छं मन्येत केवलम्॥ १७

भोक्तृत्वविषयक आसक्ति (अथवा भोक्तृता और विषयासक्ति)-रूप मलके निवारणपूर्वक शिष्यके शरीरका शोधन करके उसके त्रिविध पाशका उच्छेद कर डाले। कपट या मायासे बँधे हुए शिष्यके पाशका अत्यन्त भेदन करके उसके चैतन्यको केवल स्वच्छ माने॥ १६-१७॥

हुत्वा पूर्णाहुतिं वह्नौ ब्रह्माणं पूजयेत्ततः।
हुत्वाहुतित्रयं तस्मै शिवाज्ञामनुसंदिशेत्॥ १८
पितामह त्वया नास्य यातुः शैवं परं पदम्।
प्रतिबन्धो विधातव्यः शैवाज्ञैषा गरीयसी॥ १९

फिर अग्निमें पूर्णाहुति देकर ब्रह्माका पूजन करे। ब्रह्माके लिये तीन आहुति देकर उन्हें शिवकी आज्ञा सुनाये—'पितामह! यह जीव शिवके परम-पदको जानेवाला है। तुम्हें इसमें विघ्न नहीं डालना चाहिये। यह भगवान् शिवकी गुरुतर आज्ञा है।'॥ १८-१९॥

इत्यादिश्य तमभ्यर्च्य विसृज्य च विधानतः।
समभ्यर्च्य महादेवं जुहुयादाहुतित्रयम्॥ २०

निवृत्त्या शुद्धमुद्धृत्य शिष्यात्मानं यथा पुरा।
निवेश्यात्मनि सूत्रे च वागीशं पूजयेत्ततः॥ २१

हुत्वाहुतित्रयं तस्मै प्रणम्य च विसृज्य ताम्।
कुर्यान्निवृत्तः सन्धानं प्रतिष्ठां कलया सह॥ २२

सन्धाने युगपत्पूजां कृत्वा हुत्वाहुतित्रयम्।
शिष्यात्मनः प्रतिष्ठायां प्रवेशं त्वथ भावयेत्॥ २३

ततः प्रतिष्ठामावाह्य कृत्वाशेषं पुरोदितम्।
तद्व्याप्तिं व्यापिकां तस्य वागीशानीं च भावयेत्॥ २४

पूर्णेन्दुमण्डलप्रख्यां कृत्वा शेषं च पूर्ववत्।

विष्णवे संविशेदाज्ञां शिवस्य परमात्मनः॥ २५

विष्णोर्विसर्जनाद्यं च कृत्वा शेषं च विद्यया।
प्रतिष्ठामनुसन्धाय तस्यां चापि यथा पुरा॥ २६

कृत्वानुचिन्त्य तद्व्याप्तिं वागीशां च यथाक्रमम्।
दीप्ताग्नौ पूर्णहोमान्तं कृत्वा शेषं च पूर्ववत्॥ २७

नीलरुद्रमुपस्थाप्य तस्मै पूजादिकं तथा।
कृत्वा कर्म शिवाज्ञां च दद्यात्पूर्वोक्तवर्त्मना॥ २८

ततस्तमपि चोद्वास्य कृत्वा तस्याथ शान्तये।
विद्याकलां समाधाय तद्व्याप्तिं चावलोकयेत्॥ २९

स्वात्मनो व्यापिकां तद्वद्वागीशीं च यथा पुरा।
बालार्कसदृशाकारां भासयन्तीं दिशो दश॥ ३०

ततः शेषं यथापूर्वं कृत्वा देवं महेश्वरम्।
आवाह्याराध्य हुत्वास्मै शिवाज्ञां मनसा दिशेत्॥ ३१

महेश्वरं तथोत्सृज्य कृत्वान्यां च कलामिमाम्।
शान्त्यतीतां कलां नीत्वा तद्व्याप्तिमवलोकयेत्॥ ३२

ब्रह्माजीको शिवका यह आदेश सुनाकर उनकी विधिवत् पूजा और विसर्जन करके महादेवजीकी अर्चना करे और उनके लिये तीन आहुति दे। तत्पश्चात् निवृत्तिद्वारा शुद्ध हुए शिष्यके आत्माका पूर्ववत् उद्धार करके अपनी आत्मा एवं सूत्रमें स्थापितकर वागीश्वरीका पूजन करे॥ २०-२१॥

उनके लिये तीन आहुति दे और प्रणाम करके विसर्जन कर दे। तत्पश्चात् निवृत्त पुरुष प्रतिष्ठाकलाके साथ सांनिध्य स्थापित करे॥ २२॥

उस समय एक बार पूजा करके तीन आहुति दे और शिष्यके आत्माके प्रतिष्ठाकलामें प्रवेशकी भावना करे। इसके बाद प्रतिष्ठाका आवाहन करके पूर्वोक्त सम्पूर्ण कार्य सम्पन्न करनेके पश्चात् उसमें सर्वत्र व्यापक वागीश्वरीदेवीका ध्यान करे। उनकी कान्ति पूर्ण चन्द्रमण्डलके समान है। ध्यानके पश्चात् शेष कार्य पूर्ववत् करे॥ २३-२४½॥

तदनन्तर भगवान् विष्णुको परमात्मा शिवकी आज्ञा सुनाये। फिर उनका भी विसर्जन आदि शेष कृत्य पूर्ण करके प्रतिष्ठाका विद्यासे संयोग करे। उसमें भी पूर्ववत् सब कार्य करे॥ २५-२६॥

साथ ही उसमें व्याप्त वागीश्वरीदेवीका चिन्तन-पूजन तथा प्रज्वलित अग्निमें पूर्णहोमान्त सब कर्म क्रमशः सम्पन्न करके पूर्ववत् नीलरुद्रका आवाहन एवं पूजन आदि करे। फिर पूर्वोक्त रीतिसे उन्हें भी शिवकी आज्ञा सुना दे॥ २७-२८॥

तदनन्तर उनका भी विसर्जन करके शिष्यकी दोषशान्तिके लिये विद्याकलाको लेकर उसकी व्याप्तिका अवलोकन करे और उसमें व्यापिका वागीश्वरीदेवीका पूर्ववत् ध्यान करे। उनकी आकृति प्रातःकालके सूर्यकी भाँति अरुण रंगकी है और वे दसों दिशाओंको उद्भासित कर रही हैं॥ २९-३०॥

इस प्रकार ध्यान करके शेष कार्य पूर्ववत् करे। फिर महेश्वरदेवका आवाहन, पूजन और उनके उद्देश्यसे हवन करके उन्हें मन-ही-मन शिवकी पूर्वोक्त आज्ञा सुनाये। तत्पश्चात् महेश्वरका विसर्जन करके अन्य शान्तिकलाको शान्त्यतीताकलातक पहुँचाकर उसकी व्यापकताका अवलोकन करे॥ ३१-३२॥

स्वात्मनो व्यापिकां तद्वद्वागीशीं च विचिन्तयेत्।
नभोमण्डलसङ्काशां पूर्णान्तं चापि पूर्ववत्॥ ३३

कृत्वा शेषविधानेन समभ्यर्च्य सदाशिवम्।
तस्मै समादिशेदाज्ञां शम्भोरमितकर्मणः॥ ३४

तत्रापि च यथापूर्वं शिवं शिरसि पूर्ववत्।
समभ्यर्च्य च वागीशं प्रणम्य च विसर्जयेत्॥ ३५

ततः शिवेन सम्प्रोक्ष्य शिष्यं शिरसि पूर्ववत्।
विलयं शान्त्यतीतायाः शक्तितत्त्वेऽथ चिन्तयेत्॥ ३६

षडध्वनः परे पारे सर्वाध्वव्यापिनीं पराम्।
कोटिसूर्यप्रतीकाशां शैवीं शक्तिं च चिन्तयेत्॥ ३७

तदग्रे शिष्यमानीय शुद्धस्फटिकनिर्मलम्।
प्रक्षाल्य कर्त्तरीं पश्चात् शिवशास्त्रोक्तमार्गतः॥ ३८

कुर्यात्तस्य शिखाच्छेदं सह सूत्रेण देशिकः।
ततस्तां गोमये न्यस्य शिवाग्नौ जुहुयाच्छिखाम्॥ ३९

वौषडन्तेन मूलेन पुनः प्रक्षाल्य कर्तरीम्।
हस्ते शिष्यस्य चैतन्यं तद्देहे विनिवर्तयेत्॥ ४०

ततः स्नातं समाचान्तं कृतस्वस्त्ययनं शिशुम्।
प्रवेश्य मण्डलाभ्याशं प्रणिपत्य च दण्डवत्॥ ४१

पूजां कृत्वा यथान्यायं क्रियावैकल्यशुद्धये।
वाचकेनैव मन्त्रेण जुहुयादाहुतित्रयम्॥ ४२

उपांशूच्चारयोगेन जुहुयादाहुतित्रयम्।
पुनः संपूज्य देवेशं मन्त्रवैकल्यशुद्धये॥ ४३

मानसोच्चारयोगेन जुहुयादाहुतित्रयम्।
तत्र शम्भुं समाराध्य मण्डलस्थं सहाम्बया।
हुत्वाहुतित्रयं पश्चात्प्रार्थयेत्प्राञ्जलिर्गुरुः॥ ४४

भगवंस्त्वत्प्रसादेन शुद्धिरस्य षडध्वनः।
कृता तस्मात्परं धाम गमयैनं तवाव्ययम्॥ ४५

उसके स्वरूपमें व्यापक वागीश्वरीदेवीका चिन्तन करे। उनका स्वरूप आकाशमण्डलके समान व्यापक है। इस प्रकार ध्यान करके पूर्णाहुति-होमपर्यन्त सारा कार्य पूर्ववत् करे। शेष कार्यकी पूर्ति करके सदाशिवकी विधिवत् पूजा करे और उन्हें भी अमित पराक्रमी शम्भुकी आज्ञा सुना दे। फिर वहाँ भी पूर्ववत् शिष्यके मस्तकपर शिवकी पूजा करके उन वागीश्वरदेवको प्रणाम करे और उनका विसर्जन कर दे॥ ३३—३५॥

तदनन्तर शिव-मन्त्रसे पूर्ववत् शिष्यके मस्तकका प्रोक्षण करके यह चिन्तन करे कि शान्त्यतीताकलाका शक्तितत्त्वमें विलय हो गया। छहों अध्वाओंसे परे जो शिवकी सर्वाध्वव्यापिनी पराशक्ति है, वह करोड़ों सूर्योंके समान तेजस्विनी है, ऐसा उसके स्वरूपका ध्यान करे॥ ३६-३७॥

फिर उस शक्तिके आगे शुद्ध स्फटिकके समान निर्मल हुए शिष्यको ले आकर बिठा दे और आचार्य कैंचीको धोकर शिव-शास्त्रमें बतायी हुई पद्धतिके अनुसार सूत्रसहित उसकी शिखाका छेदन करे। उस शिखाको पहले गोबरमें रखकर फिर '**ॐ नमः शिवाय वौषट्**' का उच्चारण करके उसका शिवाग्निमें हवन कर दे। फिर कैंची और दोनों हाथ धोकर शिष्यकी चेतनाको उसके शरीरमें लौटा दे॥ ३८—४०॥

इसके बाद जब शिष्य स्नान, आचमन और स्वस्तिवाचन कर ले, तब उसे मण्डलके निकट ले जाय और शिवको दण्डवत् प्रणाम करके क्रियालोप-जनित दोषकी शुद्धिके लिये यथोचित रीतिसे पूजा करे। तदनन्तर वाचक मन्त्रका धीरे-धीरे उच्चारण करके अग्निमें तीन आहुतियाँ दे॥ ४१-४२॥

तदुपरान्त उपांशुरीतिसे भी मन्त्र पढ़कर तीन आहुतियाँ प्रदान करे। फिर मन्त्र-वैकल्यजनित दोषकी शुद्धिके लिये देवेश्वर शिवका पूजन करके मन्त्रका मानसिक उच्चारण करते हुए अग्निमें तीन आहुतियाँ दे। वहाँ मण्डलमें विराजमान अम्बा पार्वतीसहित शम्भुकी समाराधना करके तीन आहुतियोंका हवन करनेके पश्चात् गुरु हाथ जोड़ इस प्रकार प्रार्थना करे—'भगवन्! आपकी कृपासे इस शिष्यकी षडध्वशुद्धि की गयी; अतः अब आप इसे अपने अविनाशी परमधाममें पहुँचाइये।'॥ ४३—४५॥

इति विज्ञाप्य देवाय नाडीसन्धानपूर्वकम्।
पूर्णान्तं पूर्ववत्कृत्वा ततो भूतानि शोधयेत्॥ ४६

स्थिरास्थिरे ततः शुद्ध्यै शीतोष्णे च ततः पदे।
ध्यायेद्व्याप्त्यैकताकारे भूतशोधनकर्मणि॥ ४७

भूतानां ग्रन्थिविच्छेदं कृत्वा त्यक्त्वा सहाधिपैः।
भूतानि स्थितियोगेन यो जपेत्परमे शिवे॥ ४८

विशोध्यास्यं तनुं दग्ध्वा प्लावयित्वा सुधाकणैः।
स्थाप्यात्मानं ततः कुर्याद्विशुद्धाध्वमयं वपुः॥ ४९

तत्रादौ शान्त्यतीतां तु व्यापिकां स्वाध्वनः कलाम्।
शुद्धामेव शिशोर्मूर्ध्नि न्यसेच्छान्तिमुखे तथा॥ ५०

विद्यां गलादिनाभ्यन्तं प्रतिष्ठां तदधः क्रमात्।
जान्वन्तं तदधो न्यस्येन्निवृत्तिं चानुचिन्तयेत्॥ ५१

स्वबीजैः सूत्रमन्त्रं च न्यस्याङ्गैस्तं शिवात्मकम्।
बुद्ध्वा तं हृदयांभोजे देवमावाह्य पूजयेत्॥ ५२

आशास्य नित्यसान्निध्यं शिवस्वात्म्यं शिशौ गुरुः।
शिवतेजोमयस्यास्य शिशोरापादयेद्गुणान्॥ ५३

अणिमादीन्प्रसीदेति प्रदद्यादाहुतित्रयम्।
तथैव तु गुणानेव पुनरस्योपपादयेत्॥ ५४

सर्वज्ञतां तथा तृप्तिं बोधं चाद्यन्तवर्जितम्।
अलुप्तशक्तिं स्वातन्त्र्यमनन्तां शक्तिमेव च॥ ५५

ततो देवमनुज्ञाप्य सद्यादिकलशैस्तु तम्।
अभिषिञ्चेत देवेशं ध्यायन्हृदि यथाक्रमम्॥ ५६

इस तरह भगवान्से प्रार्थनाकर नाड़ी-संधान-पूर्वक पूर्ववत् पूर्णाहुति-होमपर्यन्त कर्मका सम्पादन करके भूतशुद्धि करे। स्थिर-तत्त्व (पृथ्वी), अस्थिर-तत्त्व (वायु), शीत-तत्त्व (जल), उष्ण-तत्त्व (अग्नि) तथा व्यापकता एवं एकतारूप आकाश-तत्त्वका भूतशुद्धि कर्ममें चिन्तन करे॥ ४६-४७॥

यह चिन्तन उन भूतोंकी शुद्धिके उद्देश्यसे ही करना चाहिये। भूतोंकी ग्रन्थियोंका छेदन करके उनके अधिपतियों या अधिष्ठाता देवताओं-सहित उनके त्यागपूर्वक स्थितियोगके द्वारा उन्हें परम शिवमें नियोजित करे॥ ४८॥

इस प्रकार शिष्यके शरीरका शोधन करके भावनाद्वारा उसे दग्ध करे। फिर उसकी राखको भावनाद्वारा ही अमृतकणोंसे आप्लावित करे। तदनन्तर उसमें आत्माकी स्थापना करके उसके विशुद्ध अध्वमय शरीरका निर्माण करे॥ ४९॥

उसमें पहले सम्पूर्ण अध्वोंमें व्यापक शुद्ध शान्त्यतीताकलाका शिष्यके मस्तकपर न्यास करे। फिर शान्तिकलाका मुखमें, विद्याकलाका गलेसे लेकर नाभिपर्यन्त-भागमें, प्रतिष्ठा-कलाका उससे नीचेके जानुपर्यन्त अंगोंमें न्यास करके उससे भी नीचेके अंगोंमें निवृत्तिकलाका न्यासकर चिन्तन करे॥ ५०-५१॥

तदनन्तर अपने बीजोंसहित सूत्रमन्त्रका न्यास करके सम्पूर्ण अंगोंसहित शिष्यको शिवस्वरूप समझे। फिर उसके हृदयकमलमें महादेवजीका आवाहन करके पूजन करे॥ ५२॥

गुरुको चाहिये कि शिष्यमें भगवान् शिवके स्वरूपकी नित्य उपस्थिति मानकर शिवके तेजसे तेजस्वी हुए उस शिष्यके अणिमा आदि गुणोंका भी चिन्तन करे। फिर भगवान् शिवसे 'आप प्रसन्न हों' ऐसा कहकर अग्निमें तीन आहुतियाँ दे। इसी प्रकार पुनः शिष्यके लिये निम्नांकित गुणोंका ही उपपादन करे। सर्वज्ञता, तृप्ति, आदि-अन्तरहित बोध, अलुप्तशक्तिमत्ता, स्वतन्त्रता और अनन्त-शक्ति— इन गुणोंकी उसमें भावना करे॥ ५३—५५॥

इसके बाद महादेवजीसे आज्ञा लेकर उन देवेश्वरका मन-ही-मन चिन्तन करते हुए सद्योजात आदि कलशोंद्वारा क्रमशः शिष्यका अभिषेक करे॥ ५६॥

अथोपवेश्य तं शिष्यं शिवमभ्यर्च्य पूर्ववत्।
लब्धानुज्ञः शिवाच्छैवीं विद्यामस्मै समादिशेत्॥ ५७

तदनन्तर शिष्यको अपने पास बिठाकर पूर्ववत् शिवकी अर्चना करके उनकी आज्ञा ले। उस शिष्यको शैवी विद्याका उपदेश करे॥ ५७॥

ओंकारपूर्विकां तत्र सम्पुटां तु नमोऽन्तगाम्।
शिवशक्तियुताञ्चैव शक्तिविद्यां च तादृशीम्॥ ५८

ऋषिं छन्दश्च देवं च शिवतां शिवयोस्तथा।
पूजां सावरणां शम्भोरासनानि च सन्दिशेत्॥ ५९

उस शैवी विद्याके आदिमें ओंकार हो। वह उस ओंकारसे ही सम्पुटित हो और उसके अन्तमें **नमः** लगा हुआ हो। वह विद्या शिव और शक्ति दोनोंसे संयुक्त हो। यथा **ॐ ॐ नमः शिवाय ॐ नमः।** इसी तरह शक्ति विद्याका भी उपदेश करे। यथा—**ॐ ॐ नमः शिवायै ॐ नमः।** इन विद्याओंके साथ ऋषि, छन्द, देवता, शिवा और शिवकी शिवरूपता, आवरण-पूजा तथा शिवसम्बन्धी आसनोंका भी उपदेश दे॥ ५८-५९॥

पुनः संपूज्य देवेशं यन्मया समनुष्ठितम्।
सुकृतं कुरु तत्सर्वमिति विज्ञापयेत् शिवम्॥ ६०

तत्पश्चात् देवेश्वर शिवका पुनः पूजन करके कहे—'भगवन्! मैंने जो कुछ किया है, वह सब आप सुकृतरूप कर दें।' इस तरह भगवान् शिवसे निवेदन करना चाहिये॥ ६०॥

सहशिष्यो गुरुर्देवं दण्डवत्क्षितिमण्डले।
प्रणम्योद्वासयेत्तस्मात् मण्डलात्पावकादपि॥ ६१

तदनन्तर शिष्यसहित गुरु पृथ्वीपर दण्डकी भाँति गिरकर महादेवजीको प्रणाम करे। प्रणामके अनन्तर उस मण्डलसे और अग्निसे भी उनका विसर्जन कर दे॥ ६१॥

ततः सदसिकाः सर्वे पूज्याः पूजार्हकाः क्रमात्॥ ६२

सेव्या वित्तानुसारेण सदस्याश्च सहर्त्विजः।
वित्तशाठ्यं न कुर्वीत यदीच्छेत् शिवमात्मनः॥ ६३

इसके बाद समस्त पूजनीय सदस्योंका क्रमशः पूजन करना चाहिये। सदस्यों और ऋत्विजोंकी अपने वैभवके अनुसार सेवा करनी चाहिये। साधक यदि अपना कल्याण चाहे तो धन खर्च करनेमें कंजूसी न करे॥ ६२-६३॥

इति श्रीशिवमहापुराणे सप्तम्यां वायवीयसंहितायामुत्तरखण्डे षडध्वशुद्ध्यादिकथनं नामाष्टादशोऽध्यायः॥ १८॥

॥ इस प्रकार श्रीशिवमहापुराणके अन्तर्गत सातवीं वायवीयसंहिताके उत्तरखण्डमें षडध्व-शुद्धि आदिका कथन नामक अठारहवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ १८॥

अथैकोनविंशोऽध्यायः

साधक-संस्कार और मन्त्र-माहात्म्यका वर्णन

उपमन्युरुवाच

अतः परं प्रवक्ष्यामि साधकं नाम नामतः।
संस्कारमन्त्रमाहात्म्यं कथने सूचितं मया॥ १

उपमन्यु कहते हैं—[यदुनन्दन!] अब मैं साधक-संस्कार और मन्त्र-माहात्म्यका वर्णन करूँगा। इस बातकी सूचना मैं पहले दे चुका हूँ॥ १॥

सम्पूज्य मण्डले देवं स्थाप्य कुम्भे च पूर्ववत्।
हुत्वा शिष्यमनुष्णीषं प्रापयेद्भुवि मण्डले॥ २

पूर्ववत् मण्डलमें कलशपर स्थापित महादेवजीकी पूजा करनेके पश्चात् हवन करे। फिर नंगे सिर शिष्यको उस मण्डलके पास भूमिपर बिठावे॥ २॥

पूर्णान्तं पूर्ववत्कृत्वा हुत्वाऽऽहुतिशतं तथा।
सन्तर्प्य मूलमन्त्रेण कलशैर्देशिकोत्तमः॥ ३

सन्दीप्य च यथापूर्वं कृत्वा पूर्वोदितं क्रमात्।
अभिषिच्य यथापूर्वं प्रदद्यान्मन्त्रमुत्तमम्॥ ४

पूर्णाहुति-होमपर्यन्त सब कार्य पूर्ववत् करके मूल-मन्त्रसे सौ आहुतियाँ दे। श्रेष्ठ गुरु कलशोंसे मूलमन्त्रके उच्चारणपूर्वक तर्पण करके संदीपन कर्म करे। फिर क्रमशः पूर्वोक्त कर्मोंका सम्पादन करके अभिषेक करे। तत्पश्चात् गुरु शिष्यको उत्तम मन्त्र दे॥ ३-४॥

तत्र विद्योपदेशान्तं कृत्वा विस्तरशः क्रमात्।
पुष्पाम्बुना शिशोः पाणौ विद्यां शैवीं समर्पयेत्॥ ५

तवैहिकामुष्मिकयोः सर्वसिद्धिफलप्रदः।
भवत्येव महामन्त्रः प्रसादात्परमेष्ठिनः॥ ६

वहाँ विद्योपदेशान्त सब कार्य विस्तारपूर्वक सम्पादित करके पुष्पयुक्त जलसे शिष्यके हाथपर शैवी विद्याको समर्पित करे और इस प्रकार कहे—'सौम्य ! यह महामन्त्र परमेश्वर शिवके कृपा-प्रसादसे तुम्हारे लिये ऐहलौकिक तथा पारलौकिक सम्पूर्ण सिद्धियोंके फलको देनेवाला हो।'॥ ५-६॥

इत्युक्त्वा देवमभ्यर्च्य लब्धानुज्ञः शिवाद्गुरुः।
साधनं शिवयोगं च साधकाय समादिशेत्॥ ७

तच्छ्रुत्वा गुरुसन्देशं क्रमशो मन्त्रसाधकः।
पुरतो विनियोगस्य मन्त्रसाधनमाचरेत्॥ ८

ऐसा कह महादेवजीकी पूजा करके उनकी आज्ञा ले गुरु साधकको साधन और शिवयोगका उपदेश दे। गुरुके उस उपदेशको सुनकर मन्त्रसाधक शिष्य उनके सामने ही विनियोग करके मन्त्र-साधन आरम्भ करे॥ ७-८॥

साधनं मूलमन्त्रस्य पुरश्चरणमुच्यते।
पुरतश्चरणीयत्वाद्विनियोगाख्यकर्मणः॥ ९

नात्यन्तं करणीयं तु मुमुक्षोर्मन्त्रसाधनम्।
कृतं तु तदिहान्यत्र तस्यापि शुभदं भवेत्॥ १०

मूलमन्त्रके साधनको पुरश्चरण कहते हैं; क्योंकि विनियोग नामक कर्म सबसे पहले आचरणमें लानेयोग्य है। यही पुरश्चरण शब्दकी व्युत्पत्ति है। मुमुक्षुके लिये मन्त्र-साधन अत्यन्त कर्तव्य है; क्योंकि किया हुआ मन्त्रसाधन इहलोक और परलोकमें साधकके लिये कल्याणदायक होता है॥ ९-१०॥

शुभेऽहनि शुभे देशे काले वा दोषवर्जिते।
शुक्लदन्तनखः स्नातः कृतपूर्वाह्णिकक्रियः॥ ११

अलंकृत्य यथा लब्धैर्गन्धमाल्यविभूषणैः।
सोष्णीषः सोत्तरासङ्गः सर्वशुक्लसमाहितः॥ १२

देवालये गृहेऽन्यस्मिन् देशे वा सुमनोहरे।
सुखेनाभ्यस्तपूर्वेण त्वासनेन कृतासनः॥ १३

तनुं कृत्वात्मनः शैवीं शिवशास्त्रोक्तवर्त्मना।

शुभ दिन और शुभ देशमें निर्दोष समयमें दाँत और नख साफ करके अच्छी तरह स्नान करे और पूर्वाह्णकालिक कृत्य पूर्ण करके यथाप्राप्त गन्ध, पुष्पमाला तथा आभूषणोंसे अलंकृत हो, सिरपर पगड़ी रख, दुपट्टा ओढ़ पूर्णतः श्वेत वस्त्र धारणकर देवालयमें, घरमें या और किसी पवित्र तथा मनोहर देशमें पहलेसे अभ्यासमें लाये गये सुखासनसे बैठकर शिवशास्त्रोक्त पद्धतिके अनुसार अपने शरीरको शिवरूप बनाये॥ ११—१३½॥

संपूज्य देवदेवेशं नकुलीश्वरमीश्वरम्॥ १४

निवेद्य पायसं तस्मै समाप्याराधनं क्रमात्।
प्रणिपत्य च तं देवं प्राप्तानुज्ञाश्च तन्मुखात्॥ १५

कोटिवारं तदर्द्धं वा तदर्द्धं वा जपेत् शिवम्।
लक्षविंशतिकं वापि दशलक्षमथापि वा॥ १६

फिर देवदेवेश्वर नकुलीश्वर शिवका पूजन करके उन्हें खीरका नैवेद्य अर्पित करे। क्रमशः उनकी पूजा पूरी करके उन प्रभुको प्रणाम करे और उनके मुखसे आज्ञा पाकर एक करोड़, आधा करोड़ अथवा चौथाई करोड़ शिवमन्त्रका जप करे अथवा बीस लाख या दस लाख जप करे॥ १४—१६॥

ततश्च पायसाक्षारलवणैकमिताशनः।
अहिंसकः क्षमी शान्तो दान्तश्चैव सदा भवेत्॥ १७

अलाभे पायसस्याश्नन्फलमूलादिकानि वा।
विहितानि शिवेनैव विशिष्टान्युत्तरोत्तरम्॥ १८

चरुं भक्ष्यमथो सक्तुकणान्यावकमेव च।
शाकं पयो दधि घृतं मूलं फलमथोदकम्॥ १९

अभिमन्त्र्य च मन्त्रेण भक्ष्यभोज्यादिकानि च।
साधनेऽस्मिन् विशेषेण नित्यं भुञ्जीत वाग्यतः॥ २०

मन्त्राष्टशतपूतेन जलेन शुचिना व्रती।
स्नायान्नदीनदोत्थेन प्रोक्षयेद्वाथ शक्तितः॥ २१

तर्पयेच्च तथा नित्यं जुहुयाच्च शिवानले।
सप्तभिः पञ्चभिर्द्रव्यैस्त्रिभिर्वाथ घृतेन वा॥ २२

इत्थं भक्त्या शिवं शैवो यः साधयति साधकः।
तस्येहामुत्र दुष्प्रापं न किञ्चिदपि विद्यते॥ २३

अथवाहरहर्मन्त्रं जपेदेकाग्रमानसः।
अनश्नन्नेव साहस्रं विना मन्त्रस्य साधनम्॥ २४

न तस्य दुर्लभं किञ्चिन्न तस्यास्त्यशुभं क्वचित्।
इह विद्यां श्रियं सौख्यं लब्ध्वा मुक्तिं च विन्दति॥ २५

साधने विनियोगे च नित्ये नैमित्तिके तथा।
जपेज्जलैर्भस्मना च स्नात्वा मन्त्रेण च क्रमात्॥ २६

शुचिर्बद्धशिखः सूत्री सपवित्रकरस्तथा।
धृतत्रिपुण्ड्ररुद्राक्षो विद्यां पञ्चाक्षरीं जपेत्॥ २७

उसके बादसे सदा पायस एवं क्षार-नमक-रहित अन्य पदार्थका दिन-रातमें केवल एक बार भोजन करे। अहिंसा, क्षमा, शम (मनोनिग्रह), दम (इन्द्रियसंयम)-का पालन करता रहे। खीर न मिले तो फल, मूल आदिका भोजन करे। भगवान् शिवने निम्नांकित भोज्य पदार्थोंका विधान किया है, जो उत्तरोत्तर श्रेष्ठ हैं॥ १७-१८॥

पहले तो चरु भक्षण करनेयोग्य है। उसके बाद सत्तूके कण, जौके आटेका हलुआ, साग, दूध, दही, घी, मूल, फल और जल—ये आहारके लिये विहित हैं॥ १९॥

इन भक्ष्य-भोज्य आदि पदार्थोंको मूलमन्त्रसे अभिमन्त्रित करके प्रतिदिन मौनभावसे भोजन करे। इस साधनमें विशेषरूपसे ऐसा करनेका विधान है॥ २०॥

व्रतीको चाहिये कि एक सौ आठ मन्त्रसे अभिमन्त्रित किये हुए पवित्र जलसे स्नान करे अथवा नदी-नदके जलको यथाशक्ति मन्त्र-जपके द्वारा अभिमन्त्रित करके अपने शरीरका प्रोक्षण कर ले, प्रतिदिन तर्पण करे और शिवाग्निमें आहुति दे। हवनीय पदार्थ सात, पाँच या तीन द्रव्योंके मिश्रणसे तैयार करे अथवा केवल घृतसे ही आहुति दे॥ २१-२२॥

जो शिवभक्त साधक इस प्रकार भक्ति-भावसे शिवकी साधना या आराधना करता है, उसके लिये इहलोक और परलोकमें कुछ भी दुर्लभ नहीं है॥ २३॥

अथवा प्रतिदिन बिना भोजन किये ही एकाग्रचित्त हो एक सहस्र मन्त्रका जप किया करे। मन्त्र-साधनाके बिना भी जो ऐसा करता है, उसके लिये न तो कुछ दुर्लभ है और न कहीं उसका अमंगल ही होता है। वह इस लोकमें विद्या, लक्ष्मी तथा सुख पाकर अन्तमें मोक्ष प्राप्त कर लेता है॥ २४-२५॥

साधन, विनियोग तथा नित्य-नैमित्तिक कर्ममें क्रमशः जलसे, मन्त्रसे और भस्मसे भी स्नान करके पवित्र हो, शिखा बाँधकर यज्ञोपवीत धारणकर कुशकी पवित्री हाथमें ले ललाटमें त्रिपुण्ड्र लगाकर रुद्राक्षकी माला लिये पंचाक्षर-मन्त्रका जप करना चाहिये॥ २६-२७॥

इति श्रीशिवमहापुराणे सप्तम्यां वायवीयसंहितायामुत्तरखण्डे साधकसंस्कारमन्त्रमाहात्म्यं नामैकोनविंशोऽध्यायः॥ १९॥

॥ इस प्रकार श्रीशिवमहापुराणके अन्तर्गत सातवीं वायवीयसंहिताके उत्तरखण्डमें साधक-संस्कार मन्त्र-माहात्म्य नामक उन्नीसवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ १९॥

अथ विंशोऽध्यायः

योग्य शिष्यके आचार्यपदपर अभिषेकका वर्णन तथा संस्कारके विविध प्रकारोंका निर्देश

उपमन्युरुवाच

अथैवं संस्कृतं शिष्यं कृतपाशुपतव्रतम्।
आचार्यत्वेऽभिषिञ्चेत तद्योगत्वेन चान्यथा॥ १

उपमन्यु कहते हैं—यदुनन्दन! जिसका इस प्रकार संस्कार किया गया हो और जिसने पाशुपत-व्रतका अनुष्ठान पूरा कर लिया हो, वह शिष्य यदि योग्य हो तो गुरु उसका आचार्यपदपर अभिषेक करे, योग्यता न होनेपर न करे॥ १॥

मण्डलं पूर्ववत्कृत्वा संपूज्य परमेश्वरम्।
स्थापयेत्पञ्चकलशान्दिक्षु मध्ये च पूर्ववत्॥ २

[इस अभिषेकके लिये] पूर्ववत् मण्डल बनाकर परमेश्वर शिवकी पूजा करे। फिर पूर्ववत् पाँच कलशोंकी स्थापना करे। इनमें चार तो चारों दिशाओंमें हों और पाँचवाँ मध्यमें हो॥ २॥

निवृत्तिं पुरतो न्यस्य प्रतिष्ठां पश्चिमे घटे।
विद्यां दक्षिणतः शान्तिमुत्तरे मध्यतः पराम्॥ ३

कृत्वा रक्षादिकं तत्र बद्ध्वा मुद्रां च धैनवीम्।
अभिमन्त्र्य घटान्हुत्वा पूर्णान्तं च यथा पुरा॥ ४

पूर्ववाले कलशपर निवृत्तिकलाका, पश्चिमवाले कलशपर प्रतिष्ठाकलाका, दक्षिण कलशपर विद्याकलाका, उत्तर कलशपर शान्तिकलाका और मध्यवर्ती कलशपर शान्त्यतीताकलाका न्यास करके उनमें रक्षा आदिका विधान करके धेनुमुद्रा बाँधकर कलशोंको अभिमन्त्रित करके पूर्ववत् पूर्णाहुतिपर्यन्त होम करे॥ ३-४॥

प्रवेश्य मण्डले शिष्यमनुष्णीषं च देशिकः।
तर्पणाद्यं तु मन्त्राणां कुर्यात्पूर्वावसानकम्॥ ५
ततः सम्पूज्य देवेशमनुज्ञाप्य च पूर्ववत्।
अभिषेकाय तं शिष्यमासनं त्वधिरोहयेत्॥ ६

फिर नंगे सिर शिष्यको मण्डलमें ले आकर गुरु-मन्त्रोंका तर्पण आदि करे और पूर्णाहुतिपर्यन्त हवन एवं पूजन करके पूर्ववत् देवेश्वरकी आज्ञा ले शिष्यको अभिषेकके लिये ऊँचे आसनपर बिठाये॥ ५-६॥

सकलीकृत्य तं पश्चात्कलापञ्चकरूपिणम्।
न्यस्तमन्त्रतनुं बद्ध्वा शिवं शिष्यं समर्पयेत्॥ ७

ततो निवृत्तिकुम्भादिघटानुद्धृत्य वै क्रमात्।
मध्यमान्ताच्छिवेनैव शिष्यं तमभिषेचयेत्॥ ८

पहले सकलीकरणकी क्रिया करके पंचकला-रूपी शिष्यके शरीरमें मन्त्रका न्यास करे। फिर उस शिष्यको बाँधकर शिवको सौंप दे। तदनन्तर निवृत्तिकला आदिसे युक्त कलशोंको क्रमशः उठाकर शिष्यका शिवमन्त्रसे अभिषेक करे। अन्तमें मध्यवर्ती कलशके जलसे अभिषेक करना चाहिये॥ ७-८॥

शिवहस्तं समर्प्याथ शिशोः शिरसि देशिकः।
शिवभावसमापन्नः शिवाचार्यं तमादिशेत्॥ ९

अथालंकृत्य तं देवमाराध्य शिवमण्डले।
शतमष्टोत्तरं हुत्वा दद्यात्पूर्णाहुतिं ततः॥ १०

इसके बाद शिवभावको प्राप्त हुआ आचार्य शिष्यके मस्तकपर शिवहस्त* रखे और उसे शिवाचार्यकी संज्ञा दे। तदनन्तर उसको वस्त्राभूषणोंसे अलंकृत करके शिवमण्डलमें महादेवजीकी आराधना करके एक सौ आठ आहुति एवं पूर्णाहुति दे॥ ९-१०॥

---

* गुरु पहले अपने दाहिने हाथपर सुगन्ध-द्रव्यद्वारा मण्डलका निर्माण करे, तत्पश्चात् वह उसपर विधिपूर्वक भगवान् शिवकी पूजा करे। इस प्रकार वह 'शिवहस्त' हो जाता है। 'मैं स्वयं परम शिव हूँ' यह निश्चय करके श्रीगुरुदेव असंदिग्ध-चित्तसे शिष्यके सिरका स्पर्श करते हैं। उस 'शिवहस्त' के स्पर्शमात्रसे शिष्यका शिवत्व अभिव्यक्त हो जाता है।

पुनः सम्पूज्य देवेशं प्रणम्य भुवि दण्डवत्।
शिरस्यञ्जलिमाधाय शिवं विज्ञापयेद्गुरुः॥ ११

भगवंस्त्वत्प्रसादेन देशिकोऽयं मया कृतः।
अनुगृह्य त्वया देव दिव्याज्ञास्मै प्रदीयताम्॥ १२

फिर देवेश्वरकी पूजा एवं भूतलपर साष्टांग प्रणाम करके गुरु मस्तकपर हाथ जोड़ भगवान् शिवसे यह निवेदन करे—'भगवन्! आपकी कृपासे मैंने इस योग्य शिष्यको आचार्य बना दिया है। देव! अब आप अनुग्रह करके इसे दिव्य आज्ञा प्रदान करें।'॥ ११-१२॥

एवं विज्ञाप्य शिष्येण सह भूयः प्रणम्य च।
शिवं शिवागमं दिव्यं पूजयेत् शिववद्गुरुः॥ १३

पुनः शिवमनुज्ञाप्य शिवज्ञानस्य पुस्तकम्।
उभाभ्यामथ पाणिभ्यां दद्याच्छिष्याय देशिकः॥ १४

इस प्रकार कहकर गुरु शिष्यके साथ पुनः शिवको प्रणाम करे और दिव्य शिवशास्त्रका शिवकी ही भाँति पूजन करे। इसके बाद शिवकी आज्ञा लेकर आचार्य अपने उस शिष्यको अपने दोनों हाथोंसे शिवसम्बन्धी ज्ञानकी पुस्तक दे॥ १३-१४॥

स तां मूर्ध्नि समाधाय विद्यां विद्यासनोपरि।
अधिरोप्य यथान्यायमभिवन्द्य समर्चयेत्॥ १५

अथ तस्मै गुरुर्दद्याद्राजोपकरणान्यपि।
आचार्यपदवीं प्राप्तो राज्यं चापि यतोऽर्हति॥ १६

वह उस शिवागम विद्याको मस्तकपर रखकर फिर उसे विद्यासनपर रखे और यथोचित रीतिसे प्रणामकर उसकी पूजा करे। तदनन्तर गुरु उसे राजोचित चिह्न प्रदान करे; क्योंकि आचार्य-पदवीको प्राप्त हुआ पुरुष राज्य पानेके भी योग्य है॥ १५-१६॥

अथानुशासनं कुर्यात्पूर्वैराचरितं यथा।
यथा च शिवशास्त्रोक्तं यथा लोकेषु पूज्यते॥ १७

शिष्यान् परीक्ष्य यत्नेन शिवशास्त्रोक्तलक्षणैः।
संस्कृत्य च शिवज्ञानं तेभ्यो दद्याच्च देशिकः॥ १८

तत्पश्चात् गुरु उसे पूर्वाचार्योंद्वारा आचरित तथा शिवशास्त्रोक्त आचारका अनुशासन करे, जिससे सब लोकोंमें सम्मान होता है। 'आचार्य' पदवीको प्राप्त हुआ पुरुष शिवशास्त्रोक्त लक्षणोंके अनुसार यत्नपूर्वक शिष्योंकी परीक्षा करके उनका संस्कार करनेके अनन्तर उन्हें शिवज्ञानका उपदेश दे॥ १७-१८॥

एवं सर्वमनायासं शौचं क्षान्तिं दयां तथा।
अस्पृहामप्यसूयां च यत्नेन च विभावयेत्॥ १९

इत्थमादिश्य तं शिष्यं शिवमुद्वास्य मण्डलात्।
शिवकुम्भानलादींश्च सदस्यानपि पूजयेत्॥ २०

इस प्रकार वह बिना किसी आयासके शौच, क्षमा, दया, अस्पृहा (कामना-त्याग) तथा अनसूया (ईर्ष्या-त्याग) आदि गुणोंका यत्नपूर्वक अपने भीतर संग्रह करे। इस तरह उस शिष्यको आदेश देकर मण्डलसे शिवका, शिव-कलशोंका तथा अग्नि आदिका विसर्जन करके वह सदस्योंका भी पूजन (दक्षिणा आदिसे सत्कार) करे॥ १९-२०॥

युगपद्वाथ संस्कारान् कुर्वीत सगणो गुरुः।
तत्र त्रयं द्वयं वापि प्रयोगस्योपदिश्यते॥ २१

तदादावेव कलशान्कल्पयेदध्वशुद्धिवत्।
कृत्वा समयसंस्कारमभिषेकं विनाऽखिलम्॥ २२

समभ्यर्च्य शिवं भूयः कृत्वा चाध्वविशोधनम्।
तस्मिन् परिसमाप्ते तु पुनर्देवं प्रपूजयेत्॥ २३

अथवा, अपने गणोंसहित गुरु एक साथ ही सब संस्कार करे। जहाँ दो या तीन संस्कारोंका प्रयोग करना हो, वहाँके लिये विधिका उपदेश किया जाता है—वहाँ आदिमें ही अध्वशुद्धि-प्रकरणमें कहे अनुसार कलशोंकी स्थापना करे। अभिषेकके सिवा समयाचार दीक्षाके सब कर्म करके शिवका पूजन और अध्वशोधन करे। अध्वशुद्धि हो जानेपर फिर महादेवजीकी पूजा करे॥ २१—२३॥

हुत्वा मन्त्रं तु संतर्प्य सन्दीप्याशास्य चेश्वरम्।
समर्प्य मन्त्रं शिष्यस्य पाणौ शेषं समापयेत्॥ २४

इसके बाद हवन और मन्त्र-तर्पण करके दीपन-कर्म करे तथा महेश्वरकी आज्ञा ले शिष्यके हाथमें मन्त्रसमर्पणपूर्वक शेष कार्य पूर्ण करे॥ २४॥

अथवा मन्त्रसंस्कारमनुचिन्त्याखिलं क्रमात्।
अध्वशुद्धिं गुरुः कुर्यादभिषेकावसानिकम्॥ २५

अथवा सम्पूर्ण मन्त्र-संस्कारका क्रमशः अनुचिन्तन करके गुरु अभिषेकपर्यन्त अध्वशुद्धिका कार्य सम्पन्न करे॥ २५॥

तत्र यः शान्त्यतीतादिकलासु विहितो विधिः।
स सर्वोऽपि विधातव्यस्तत्त्वत्रयविशोधने॥ २६

शिवविद्यात्मतत्त्वाख्यं तत्त्वत्रयमुदाहृतम्।
शक्तौ शिवस्ततो विद्यात्तस्यास्त्वात्मा समुद्बभौ॥ २७

वहाँ शान्त्यतीता आदि कलाओंके लिये जिस विधिका अनुष्ठान किया गया है। वह सारा विधान तीन तत्त्वोंकी शुद्धिके लिये भी कर्तव्य है। शिव-तत्त्व, विद्या-तत्त्व और आत्म-तत्त्व—ये तीन तत्त्व कहे गये हैं। शक्तिमें पहले शिवका, फिर विद्याका और उसके बाद उसकी आत्माका आविर्भाव हुआ है॥ २६-२७॥

शिवेन शान्त्यतीताध्वा व्याप्तस्तदपरः परः।
विद्यया परिशिष्टोऽध्वा ह्यात्मना निखिलः क्रमात्॥ २८

दुर्लभं शाम्भवं मत्वा मन्त्रमूलं मनीषिणः।
शाक्तं शंसीत संस्कारं शिवशास्त्रार्थपारगाः॥ २९

इति ते सर्वमाख्यातं संस्काराख्यस्य कर्मणः।
चातुर्विध्यमिदं कृष्ण किं भूयः श्रोतुमिच्छसि॥ ३०

शिवसे 'शान्त्यतीताध्वा' व्याप्त है, उससे 'शान्तिकलाध्वा' उससे 'विद्या-कलाध्वा' विद्यासे परिशिष्ट 'प्रतिष्ठा-कलाध्वा' और उससे 'निवृत्ति-कलाध्वा' व्याप्त है। शिवशास्त्रके पारंगत मनीषी पुरुष मन्त्रमूलक शाम्भव (शैव)-संस्कारको दुर्लभ मानकर शाक्तसंस्कारका प्रतिपादन करते हैं। श्रीकृष्ण! इस प्रकार मैंने तुमसे सम्पूर्ण यह चतुर्विध संस्कार-कर्मका वर्णन किया। अब और क्या सुनना चाहते हो?॥ २८—३०॥

इति श्रीशिवमहापुराणे सप्तम्यां वायवीयसंहितायामुत्तरखण्डे विशेषादिसंस्कृतिर्नाम विंशोऽध्यायः॥ २०॥

॥ इस प्रकार श्रीशिवमहापुराणके अन्तर्गत सातवीं वायवीयसंहिताके उत्तरखण्डमें विशेषादिसंस्कृति नामक बीसवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ २०॥

अथैकविंशोऽध्यायः

शिवशास्त्रोक्त नित्य-नैमित्तिक कर्मका वर्णन

श्रीकृष्ण उवाच

भगवन् श्रोतुमिच्छामि शिवाश्रमनिषेविणाम्।
शिवशास्त्रोदितं कर्म नित्यनैमित्तिकं तथा॥ १

श्रीकृष्ण बोले—मैं शिवके आश्रमका सेवन करनेवालोंके शिवशास्त्रोक्त नित्य-नैमित्तिक कर्मको सुनना चाहता हूँ॥ १॥

उपमन्युरुवाच

प्रातरुत्थाय शयनाद्ध्यात्वा देवं सहाम्बया।
विचार्य कार्यं निर्गच्छेद् गृहादभ्युदितेऽरुणे॥ २

अबाधे विजने देशे कुर्यादावश्यकं ततः।
कृत्वा शौचं विधानेन दन्तधावनमाचरेत्॥ ३

उपमन्यु बोले—प्रातःकाल शयनसे उठकर पार्वतीसहित शिवका ध्यान करके अपने [दैनन्दिन] कर्तव्यका भलीभाँति चिन्तन करके अरुणोदयकालमें घरसे निकल जाय। बाधारहित एकान्त स्थानमें आवश्यक कार्य करनेके अनन्तर शौच करके विधि-पूर्वक दन्तधावन करना चाहिये। दातौनके उपलब्ध न

अलाभे दन्तकाष्ठानामष्टम्यादिदिनेषु च।
अपां द्वादशगंडूषैः कुर्यादास्यविशोधनम्॥ ४

होनेपर तथा अष्टमी आदि (प्रतिपदा, षष्ठी, अष्टमी, नवमी, एकादशी, चतुर्दशी, पूर्णिमा) दिनोंमें [दातौनका निषेध होनेके कारण] बारह बार जलसे कुल्ला करके मुख शुद्ध करना चाहिये॥ २—४॥

आचम्य विधिवत्पश्चाद्वारुणं स्नानमाचरेत्।
नद्यां वा देवखाते वा ह्रदे वाथ गृहेऽपि वा॥ ५

इसके बाद आचमन करके विधिवत् नदी अथवा देवखात (देवालयके समीप निर्मित कुण्ड आदि) अथवा सरोवर अथवा घरमें ही [प्रातःकालीन] स्नान करना चाहिये॥ ५॥

स्नानद्रव्याणि तत्तीरे स्थापयित्वा बहिर्मलम्।
व्यपोह्य मृदमालिप्य स्नात्वा गोमयमालिपेत्॥ ६

स्नात्वा पुनः पुनर्वस्त्रं त्यक्त्वा वाथ विशोध्य च।
सुस्नातो नृपवद्भूयः शुद्धं वासो वसीत च॥ ७

स्नान-द्रव्योंको तटपर रखकर उस [सरोवर आदि]-के बाहर [मर्दन आदिके द्वारा दैहिक] मलको दूर करके मिट्टीका लेप करके स्नान करे तथा अनन्तर गोमयका लेप करना चाहिये। इसके बाद पुनः स्नान करके वस्त्रका त्यागकर अथवा उसे धोकर पुनः स्नान करके राजाकी भाँति शुद्ध वस्त्र धारण करना चाहिये॥ ६-७॥

मलस्नानं सुगन्धाद्यैः स्नानं दन्तविशोधनम्।
न कुर्याद् ब्रह्मचारी च तपस्वी विधवा तथा॥ ८

सोपवीतः शिखां बद्ध्वा प्रविश्य च जलान्तरम्।
अवगाह्य समाचान्तो जले न्यस्येत् त्रिमण्डलम्॥ ९

ब्रह्मचारी, तपस्वी तथा विधवा स्त्रीको [देहमर्दन आदि क्रियाओंवाला] मलस्नान, सुगन्धित पदार्थोंसे स्नान तथा दातौन नहीं करना चाहिये। उपवीत धारण करके शिखाबन्धनकर जलमें प्रविष्ट होकर डुबकी लगाकर सम्यक् आचमन करके जलमें तीन मण्डल बनाने चाहिये॥ ८-९॥

तोये मग्नः पुनर्मन्त्रं जपेच्छक्त्या शिवं स्मरेत्।
उत्थायाचम्य तेनैव स्वात्मानमभिषेचयेत्॥ १०

पुनः जलमें डुबकी लगाये हुए अपनी शक्तिके अनुसार मन्त्र जपे और शिवका स्मरण करे। फिर बाहर निकलकर आचमन करके उसीसे अपना अभिषेक करे॥ १०॥

गोशृङ्गेण सदर्भेण पालाशेन दलेन वा।
पाद्मेन वाथ पाणिभ्यां पञ्चकृत्वस्त्रिरेव वा॥ ११
उद्यानादौ गृहे चैव वर्द्धन्या कलशेन वा।
अवगाहनकालेऽद्भिर्मन्त्रितैरभिषेचयेत् ॥ १२

दर्भके साथ गायके सींगसे, पलाशके पत्तेसे, कमलदलसे अथवा दोनों हाथोंसे पाँच या तीन बार अभिषेक करे। उद्यान आदि तथा घरमें वर्धनी अथवा कलशसे स्नानके समय अभिमन्त्रित जलसे स्नान करना चाहिये॥ ११-१२॥

अथ चेद्वारुणं कर्तुमशक्तः शुद्धवाससा।
आर्द्रेण शोधयेद्देहमापादतलमस्तकम्॥ १३

आग्नेयं वाथ वा मान्त्रं कुर्यात् स्नानं शिवेन वा।
शिवचिन्तापरं स्नानं युक्तस्यात्मीयमुच्यते॥ १४

यदि जलस्नान करनेमें [व्यक्ति] असमर्थ हो, तो भींगे हुए शुद्ध वस्त्रसे पैरोंसे लेकर मस्तकतक शरीरको पोंछना चाहिये। भस्मस्नान अथवा मन्त्रस्नान शिवमन्त्रसे करना चाहिये। शिवचिन्तनसे युक्त होकर किया गया स्नान उस योगपरायण व्यक्तिका आत्मीय कहा जाता है॥ १३-१४॥

स्वसूत्रोक्तविधानेन मन्त्राचमनपूर्वकम्।
आचरेद् ब्रह्मयज्ञान्तं कृत्वा देवादितर्पणम्॥ १५

मण्डलस्थं महादेवं ध्यात्वाभ्यर्च्य यथाविधि।
दद्यादर्घ्यं ततस्तस्मै शिवायादित्यरूपिणे॥ १६
अथवैतत्स्वसूत्रोक्तं कृत्वा हस्तौ विशोधयेत्।
करन्यासं ततः कृत्वा सकलीकृतविग्रहः॥ १७
वामहस्तगताम्भोभिर्गन्धसिद्धार्थकान्वितैः।
कुशपुञ्जेन वाऽभ्युक्ष्य मूलमन्त्रसमन्वितैः॥ १८
आपोहिष्ठादिभिर्मन्त्रैः शेषमाघ्राय वै जलम्।
वामनासापुटेनैव देवं सम्भावयेत्सितम्॥ १९

अर्घमादाय देहस्थं सव्यनासापुटेन च।
कृष्णवर्णेन बाह्यस्थं भावयेच्च शिलागतम्॥ २०

तर्पयेदथ देवेभ्य ऋषिभ्यश्च विशेषतः।
भूतेभ्यश्च पितृभ्यश्च दद्यादर्घ्यं यथाविधि॥ २१
रक्तचन्दनतोयेन हस्तमात्रेण मण्डलम्।
सुवृत्तं कल्पयेद्भूमौ रक्तचूर्णाद्यलंकृतम्॥ २२
तत्र सम्पूजयेद्भानुं स्वकीयावरणैः सह।
खखोल्कायेति मन्त्रेण साङ्गतः सुखसिद्धये॥ २३
पुनश्च मण्डलं कृत्वा तदङ्गैः परिपूज्य च।
तत्र स्थाप्य हेमपात्रं मागधप्रस्थसंमितम्॥ २४
पूरयेत् गन्धतोयेन रक्तचन्दनयोगिना।
रक्तपुष्पैस्तिलैश्चैव कुशाक्षतसमन्वितैः॥ २५
दूर्वापामार्गगव्यैश्च केवलेन जलेन वा।
जानुभ्यां धरणीं गत्वा नत्वा देवं च मण्डले॥ २६
कृत्वा शिरसि तत्पात्रं दद्यादर्घ्यं शिवाय तत्।
अथवाञ्जलिना तोयं सदर्भं मूलविद्यया॥ २७
उत्क्षिपेदम्बरस्थाय शिवायादित्यमूर्तये।
कृत्वा पुनः करन्यासं करशोधनपूर्वकम्॥ २८

बुद्ध्वेशानादि सद्यान्तं पञ्चब्रह्ममयं शिवम्।
गृहीत्वा भसितं मन्त्रैर्विमृज्याङ्गानि संस्पृशेत्॥ २९

अपने सूत्रमें कथित विधानके अनुसार मन्त्राचमनपूर्वक देवता आदिका तर्पण करके ब्रह्मयज्ञपर्यन्त सभी कर्म करना चाहिये॥ १५॥

इसके बाद मण्डलमें विराजमान महादेवका ध्यान तथा यथाविधि पूजन करके उन आदित्यस्वरूप शिवको अर्घ्य प्रदान करना चाहिये। अथवा अपने सूत्रमें कथित इस कर्मको करके दोनों हाथोंको धो लेना चाहिये। तत्पश्चात् करन्यास और शरीरका सकलीकरण करके बायें हाथमें लिये हुए गन्ध-सरसोंमिश्रित जलसे कुशपुंजके द्वारा मूलमन्त्रसहित **'आपो हि ष्ठा'** आदि मन्त्रोंसे प्रोक्षण करके शेष जलको सूँघकर बायें नासापुटसे श्वेतवर्णवाले महादेवकी भावना करनी चाहिये॥ १६—१९॥

पुनः अर्घ लेकर दाहिने नासापुटसे देहके बाहर स्थित कृष्णवर्णवाले महादेवकी भावना करनी चाहिये। इसके बाद विशेषकर देवताओं, ऋषियों, पितरों एवं भूतोंका तर्पण करना चाहिये तथा उन्हें विधिपूर्वक अर्घ्य प्रदान करना चाहिये॥ २०-२१॥

रक्तचन्दनमिश्रित जलसे एक हाथ प्रमाणका पूर्ण गोलाकार मण्डल भूमिपर बनाये, जो रक्तचूर्ण आदिसे अलंकृत हो। उसमें सुखप्राप्तिके लिये **'खखोल्काय'**—इस मन्त्रसे आवरणोंसहित सूर्यकी सांगोपांग पूजा करे॥ २२-२३॥

पुनः मण्डल बनाकर अंगपूजन करके मागधप्रस्थ प्रमाणवाला सुवर्णपात्र स्थापितकर उसे गन्ध तथा रक्त-चन्दनयुक्त जलसे और रक्तपुष्प, तिल, कुश, अक्षत, दूर्वा, अपामार्ग तथा दुग्ध, गोमूत्रादि गव्य पदार्थोंसे अथवा केवल जलसे भर दे। तत्पश्चात् घुटनोंके बल पृथ्वीपर विनत होकर मण्डलमें महादेवको प्रणाम करके उस पात्रको सिरसे लगाकर शिवको वह अर्घ्य प्रदान करे; अथवा मूलविद्या (मन्त्र)-के द्वारा आकाशस्थित आदित्यरूप शिवको अंजलिसे दर्भयुक्त जल समर्पित करे॥ २४—२७१/२॥

तत्पश्चात् हस्तप्रक्षालन करके पुनः करन्यास करके ईशानसे लेकर सद्योजातपर्यन्त पंच ब्रह्ममय शिवका ध्यान करके भस्म लेकर यकारादि नकारान्त वर्णात्मक मन्त्रोंसे अर्थात् पंचाक्षरके वर्णोंका विलोम क्रमसे उच्चारण करते हुए उसे लगाकर अंगोंका स्पर्श करे॥ २८-२९॥

आपादान्तैः शिरोवक्त्रहृद्गुह्यचरणान् क्रमात्।
ततो मूलेन सर्वाङ्गमालभ्य वसनान्तरम्॥ ३०
परिधाय द्विराचम्य प्रोक्ष्यैकादशमन्त्रितैः।
जलैराच्छाद्य वासोऽन्यद् द्विराचम्य शिवं स्मरेत्॥ ३१

मूलमन्त्रसे सिर, मुख, हृदय, गुह्यदेश तथा चरण-क्रमसे सम्पूर्ण देहका स्पर्शकर पुनः दूसरा वस्त्र धारण करके दो बार आचमनकर ग्यारह मन्त्रोंसे अभिमन्त्रित जलसे प्रोक्षण करके दूसरा वस्त्र ओढ़कर दो बार आचमन करके शिवका स्मरण करे॥ ३०-३१॥

पुनर्न्यस्तकरो मन्त्री त्रिपुण्ड्रं भस्मना लिखेत्।
अवक्रमाय तं व्यक्तं ललाटे गन्धवारिणा॥ ३२

वृत्तं वा चतुरस्त्रं वा बिन्दुमर्द्धेन्दुमेव वा।
ललाटे यादृशं पुण्ड्रं लिखितं भस्मना पुनः॥ ३३

तादृशं भुजयोर्मूर्ध्नि स्तनयोरन्तरे लिखेत्।
सर्वाङ्गोद्धूलनं चैव न समानं त्रिपुण्ड्रकैः॥ ३४

तस्मात् त्रिपुण्ड्रमेवैकं लिखेदुद्धूलनं विना।

इसके बाद मन्त्रसाधक पुनः करन्यास करके सुगन्धित जलयुक्त भस्मसे ललाटपर स्पष्ट त्रिपुण्ड्र लगाये, जो टेढ़ा-मेढ़ा न हो तथा आयताकार हो या गोल, चौकोर, विन्दुमात्र अथवा अर्धचन्द्राकार हो। भस्मसे जैसा त्रिपुण्ड्र ललाटपर लगाया गया हो, वैसा ही [त्रिपुण्ड्र] दोनों भुजाओंमें, सिरपर तथा स्तनोंके बीच लगाये। सभी अंगोंमें भस्मसे उद्धूलन भी त्रिपुण्ड्रकी समता नहीं कर सकता है, अतः उद्धूलनके बिना भी एक त्रिपुण्ड्र अवश्य ही लगाना चाहिये॥ ३२—३४$^{1}/_{2}$॥

रुद्राक्षान्धारयेन्मूर्ध्नि कण्ठे श्रोते करे तथा॥ ३५

सुवर्णवर्णमच्छिन्नं शुभं नान्यैर्धृतं शुभम्।
विप्रादीनां क्रमात् श्रेष्ठं पीतं रक्तमथासितम्॥ ३६

तदलाभे यथालाभं धारणीयमदूषितम्।
तत्रापि नोत्तरं नीचैर्धार्यं नीचमथोत्तरैः॥ ३७

सिरपर, कण्ठमें, कानमें तथा हाथमें रुद्राक्षोंको धारण करे। सुवर्णके समान वर्णवाले, अच्छिन्न, सुन्दर तथा दूसरोंके द्वारा धारण न किये गये रुद्राक्षको धारण करे। श्वेत, पीला, लाल तथा काला रुद्राक्ष क्रमशः ब्राह्मण आदि वर्णोंके लिये विहित होता है। वैसा न मिलनेपर जो भी [रुद्राक्ष] प्राप्त हो जाय, उसे धारण करे, किंतु वह दोषयुक्त न हो। उसमें भी निम्न वर्णवालोंको उत्तमवर्णका तथा उत्तम वर्णवालोंको निम्नवर्णका रुद्राक्ष नहीं धारण करना चाहिये॥ ३५—३७॥

नाशुचिर्द्धारयेदक्षं सदा कालेषु धारयेत्।
इत्थं त्रिसंध्यमथवा द्विसंध्यं सकृदेव वा॥ ३८

कृत्वा स्नानादिकं शक्त्या पूजयेत्परमेश्वरम्।
पूजास्थानं समासाद्य बद्ध्वा रुचिरमासनम्॥ ३९

ध्यायेद्देवं च देवीं च प्राङ्मुखो वाप्युदङ्मुखः।
श्वेतादीन्नकुलीशान्तांस्तच्छिष्यान्प्रणमेद्गुरुम्॥ ४०

अपवित्र-अवस्थामें रुद्राक्ष धारण नहीं करना चाहिये, अपितु उचित अवसरोंमें ही धारण करना प्रशस्त है। इस प्रकार तीनों सन्ध्याकालोंमें अथवा दो सन्ध्याकालोंमें अथवा एक सन्ध्याके समय स्नान आदि [कृत्य] करके सामर्थ्यानुसार परमेश्वरकी पूजा करनी चाहिये। पूजास्थानमें आकर उत्तम आसन लगाकर पूर्वाभिमुख अथवा उत्तराभिमुख होकर शिव तथा पार्वतीका ध्यान करना चाहिये और श्वेतसे लेकर नकुलीशपर्यन्त शिवावतारोंको उनके शिष्योंसहित तथा [अपने] गुरुको प्रणाम करना चाहिये॥ ३८—४०॥

पुनर्देवं शिवं नत्वा ततो नामाष्टकं जपेत्।
शिवो महेश्वरश्चैव रुद्रो विष्णुः पितामहः ॥ ४१

संसारवैद्यः सर्वज्ञः परमात्मेति चाष्टकम्।
अथवा शिवमेवैकं जपित्वैकादशाधिकम् ॥ ४२

जिह्वाग्रे तेजसो राशिं ध्यात्वा व्याध्यादिशान्तये।
प्रक्षाल्य चरणौ कृत्वा करौ चन्दनचर्चितौ।
प्रकुर्वीत करन्यासं करशोधनपूर्वकम् ॥ ४३

इसके बाद भगवान् शिवको पुनः नमस्कार करके उनके आठ नामोंका जप करना चाहिये; शिव, महेश्वर, रुद्र, विष्णु, पितामह, संसारवैद्य, सर्वज्ञ तथा परमात्मा—इन आठ नामोंका अथवा एक ही 'शिव' नामका ग्यारहसे अधिक बार जप करके व्याधि आदिकी शान्तिके लिये जिह्वाके अग्रभागपर तेजकी राशि [शिव]-का ध्यान करके पैरोंको धोकर हस्तप्रक्षालन करके दोनों हाथोंको चन्दनलिप्त करके करन्यास करना चाहिये ॥ ४१—४३ ॥

इति श्रीशिवमहापुराणे सप्तम्यां वायवीयसंहितायामुत्तरखण्डे नित्यनैमित्तिककर्मवर्णनं नामैकविंशोऽध्यायः ॥ २१ ॥

॥ इस प्रकार श्रीशिवमहापुराणके अन्तर्गत सातवीं वायवीयसंहिताके उत्तरखण्डमें नित्यनैमित्तिक-कर्मवर्णन नामक इक्कीसवाँ अध्याय पूर्ण हुआ ॥ २१ ॥

अथ द्वाविंशोऽध्यायः

शिवशास्त्रोक्त न्यास आदि कर्मोंका वर्णन

उपमन्युरुवाच

न्यासस्तु त्रिविधः प्रोक्तः स्थित्युत्पत्तिलयक्रमात्।
स्थितिर्न्यासो गृहस्थानामुत्पत्तिर्ब्रह्मचारिणाम् ॥ १

यतीनां संहतिन्यासो वनस्थानां तथैव च।
स एव भर्तृहीनायाः कुटुम्बिन्याः स्थितिर्भवेत् ॥ २

कन्यायाः पुनरुत्पत्तिं वक्ष्ये न्यासस्य लक्षणम्।
अंगुष्ठादिकनिष्ठान्तं स्थितिन्यास उदाहृतः ॥ ३

दक्षिणांगुष्ठमारभ्य वामाङ्गुष्ठान्तमेव च।
उत्पत्तिन्यास आख्यातो विपरीतस्तु संहृतिः ॥ ४

उपमन्यु बोले—[हे कृष्ण!] स्थिति, उत्पत्ति तथा लयके क्रमसे न्यास तीन प्रकारका कहा गया है। स्थिति [नामक] न्यास गृहस्थोंके लिये और उत्पत्तिन्यास ब्रह्मचारियोंको विहित बताया गया है। यतियोंके लिये संहारन्यासकी विधि है और वही वानप्रस्थियोंके लिये भी विहित है। पतिविहीन कुटुम्बिनी स्त्रीके लिये भी स्थिति नामक न्यास विहित है। कन्याके लिये उत्पत्तिन्यास विहित है। अब न्यासका लक्षण बताऊँगा। अँगूठेसे कनिष्ठिकातक स्थितिन्यास कहा गया है। दाहिने अँगूठेसे आरम्भ करके बाँयें अँगूठेतक उत्पत्तिन्यास कहा गया है; उसके विपरीत संहृतिन्यास होता है ॥ १—४ ॥

सबिन्दुकान्नकारादीन् वर्णान् न्यस्येदनुक्रमात्।
अंगुलीषु शिवं न्यस्येत् तलयोरप्यनामयोः ॥ ५

अस्त्रन्यासं ततः कृत्वा दशदिक्ष्वस्त्रमन्त्रतः।
निवृत्त्यादिकलाः पञ्च पञ्चभूतस्वरूपिणीः ॥ ६

पञ्चभूताधिपैः सार्द्धं तत्तच्चिह्नसमन्विताः।
हृत्कण्ठतालुभ्रूमध्यब्रह्मरन्ध्रसमाश्रयाः ॥ ७

बिन्दुसहित नकार आदि वर्णोंका क्रमसे अँगुलियोंमें न्यास करे और दोनों करतल तथा अनामिकाओंमें शिवका अर्थात् मूलमन्त्रका न्यास करे। इसके बाद अस्त्रमन्त्रसे दसों दिशाओंमें अस्त्रन्यास करे तदुपरान्त पंचभूतस्वरूपवाली तथा पंचभूताधिपोंके चिह्नोंसे युक्त एवं हृदय, कण्ठ, तालु, भ्रूमध्य तथा ब्रह्मरन्ध्रके आश्रित रहनेवाली, पंचभूताधिपों और उनके अपने बीजोंसे संश्लिष्ट निवृत्ति आदि पाँच कलाओंकी उन-उन बीजमन्त्रोंमें भावना करे। उन [कलाओं]-के शोधनके लिये पंचाक्षरीविद्या [मन्त्र]-का जप करे ॥ ५—७ ॥

तत्तद्बीजेन सङ्ग्रन्थींस्तत्तद्बीजेषु भावयेत्।
तासां विशोधनार्थाय विद्यां पञ्चाक्षरीं जपेत्॥ ८
निरुद्ध्वा प्राणवायुं च गुणसंख्यानुसारतः।
भूतग्रन्थिं ततः छिन्द्यादस्त्रेणैवास्त्रमुद्रया॥ ९
नाड्याः सुषुम्णयात्मानं प्रेरितं प्राणवायुना।
निर्गतं ब्रह्मरंध्रेण योजयेत् शिवतेजसा॥ १०
विशोष्य वायुना पश्चाद्देहं कालाग्निना दहेत्।
ततश्चोपरिभावेन कलाः संहृत्य वायुना॥ ११
देहं संहृत्य वै दग्धं कलाः स्पृष्ट्वा सहाधिपम्।
प्लावयित्वामृतैर्देहं यथास्थानं निवेशयेत्॥ १२
अथ संहृत्य वै दग्धः कलासर्गं विनैव तु।
अमृतप्लावनं कुर्याद् भस्मीभूतस्य वै ततः॥ १३

तीन बार प्राणायाम करके अस्त्रमन्त्र तथा अस्त्रमुद्रासे भूतग्रन्थिको काटे। सुषुम्नानाड़ीसे प्राणवायुद्वारा आत्माको प्रेरितकर ब्रह्मरन्ध्रसे निर्गत उस आत्माको शिवतेजसे युक्त करे, इसके बाद वायुसे देहको सुखाकर उसे कालाग्निसे दग्ध कर दे। तत्पश्चात् ऊपरी भावसे वायुद्वारा कलाओंको संहृत करके दग्ध देहको संहृत करके अब्धिके साथ कलाओंका स्पर्श करके अमृतसे देहको प्लावित कर उसे यथास्थान निविष्ट कराये। इसके बाद कलासृष्टिके बिना उसका संहार करके भस्मीभूत उस देहका अमृतप्लावन करे॥ ८—१३॥

ततो विद्यामये तस्मिन् देहे दीपशिखाकृतिम्।
शिवान्निर्गतमात्मानं ब्रह्मरन्ध्रेण योजयेत्॥ १४
देहस्यान्तः प्रविष्टं तं ध्यात्वा हृदयपङ्कजे।
पुनश्चामृतवर्षेण सिञ्चेद् विद्यामयं वपुः॥ १५

तत्पश्चात् उस विद्यामय देहमें दीपशिखाके [सदृश] आकारवाले शिवनिर्गत आत्माको ब्रह्मरन्ध्रसे संयुक्त करे। पुनः देहके भीतर प्रविष्ट उस आत्माका हृदयकमलमें ध्यान करके अमृतवर्षासे पुनः विद्यामय शरीरका सेचन करे॥ १४-१५॥

ततः कुर्यात् करन्यासं करशोधनपूर्वकम्।
देहन्यासं ततः पश्चान्महत्या मुद्रया चरेत्॥ १६
अङ्गन्यासं ततः कृत्वा शिवोक्तेन तु वर्त्मना।
वर्णन्यासं ततः कुर्याद्धस्तपादादिसन्धिषु॥ १७
षडङ्गानि ततो न्यस्य जातिषट्कयुतानि च।
दिग्बन्धमाचरेत्पश्चादाग्नेयादि यथाक्रमम्॥ १८
यद्वा मूर्द्धादिपञ्चाङ्गं न्यासमेव समाचरेत्।
तथा षडङ्गन्यासं च भूतशुद्ध्यादिकं विना॥ १९

इसके बाद हाथोंको शुद्ध करके करन्यास करे। तत्पश्चात् महती मुद्रासे देहन्यास करे। तदनन्तर शिवोक्त मार्गसे अंगन्यास करनेके पश्चात् हाथ-पैरकी सन्धियोंमें वर्णन्यास करे। इसके बाद छः जातियोंसे युक्त षडंगन्यास करके क्रमानुसार अग्निकोण आदि दिशाओंमें दिग्बन्ध करे। अथवा सिर आदिमें पंचांगन्यास करे तथा भूतशुद्धि आदिके बिना षडंगन्यास करे॥ १६—१९॥

एवं समासरूपेण कृत्वा देहात्मशोधनम्।
शिवभावमुपागम्य पूजयेत्परमेश्वरम्॥ २०
अथ यस्यास्त्यवसरो नास्ति वा मतिविभ्रमः।
स विस्तीर्णेन कल्पेन न्यासकर्म समाचरेत्॥ २१

इस प्रकार संक्षिप्तरूपसे देह तथा आत्माका शोधन करके शिवभावको प्राप्त होकर परमेश्वरका पूजन करे। जिसे समय हो तथा बुद्धिभ्रम न हो, वह विस्तृतविधिसे न्यासकर्म करे॥ २०-२१॥

तत्राद्यो मातृकान्यासो ब्रह्मन्यासस्ततः परः।
तृतीयः प्रणवन्यासो हंसन्यासस्तदुत्तरः॥ २२
पञ्चमः कथ्यते सद्भिर्न्यासः पञ्चाक्षरात्मकः।
एतेष्वेकमनेकं वा कुर्यात् पूजादिकर्मसु॥ २३

उसमें पहला मातृकान्यास, दूसरा ब्रह्मन्यास, तीसरा प्रणवन्यास, चौथा हंसन्यास और पाँचवाँ पंचाक्षरात्मकन्यास सज्जनोंद्वारा कहा जाता है। इनमें एक या अनेक न्यासोंका पूजा आदि कर्मोंमें उपयोग करे॥ २२-२३॥

अकारं मूर्ध्नि विन्यस्य आकारं च ललाटके।
इं ईं च नेत्रयोस्तद्वत् उं ऊं श्रवणयोस्तथा॥ २४
ऋं ॠं कपोलयोश्चैव लृं लॄं नासापुटद्वये।

मूर्धामें अंकारका न्यास करके ललाटमें 'आं' का, नेत्रोंमें 'इं-ईं' का, कानोंमें 'उं-ऊं' का, कपोलोंमें 'ऋं-ॠं' का, दोनों नासापुटोंमें 'लृं-लॄं' का, दोनों ओठोंमें 'एं-ऐं' का, दोनों दन्तपंक्तियोंमें 'ओं-औं'

एमैंमोष्ठद्वयोरोमौं दन्तपंक्तिद्वयोः क्रमात्॥ २५
अं जिह्वायामथो तालुन्यः प्रयोज्यो यथाक्रमम्।
कवर्गं दक्षिणे हस्ते न्यसेत्पञ्चसु सन्धिषु॥ २६
चवर्गं च तथा वामहस्तसन्धिषु विन्यसेत्।
टवर्गं च तवर्गं च पादयोरुभयोरपि॥ २७
पफौ तु पार्श्वयोः पृष्ठे नाभौ चापि बभौ ततः।
न्यसेन्मकारं हृदये त्वगादिषु यथाक्रमम्॥ २८
यकारादिसकारान्तान् न्यसेत्सप्तसु धातुषु।
हकारं हृदयस्यान्तः क्षकारं भ्रूयुगान्तरे॥ २९
एवं वर्णान् प्रविन्यस्य पञ्चाशत् रुद्रवर्त्मना।
अङ्गवक्त्रकलाभेदात् पञ्च ब्रह्माणि विन्यसेत्॥ ३०

का, जीभमें 'अं' का और तालुमें 'अः' का क्रमसे न्यास करे। दाहिने हाथकी पाँचों सन्धियोंमें कवर्ग (क,ख,ग,घ,ङ)-का न्यास करे और बायें हाथकी पाँचों सन्धियोंमें चवर्ग (च,छ,ज,झ,ञ)-का न्यास करे। दोनों पैरोंमें टवर्ग तथा तवर्गका, दोनों पार्श्वोंमें 'प-फ' का, पृष्ठ तथा नाभिमें 'ब-भ' का और हृदयमें मकारका न्यास करे। 'य' से लेकर 'स' तकके वर्णोंका न्यास त्वचा आदि सातों धातुओंमें क्रमसे करे। हृदयके भीतर हकारका और दोनों भौहोंके मध्य क्षकारका न्यास करे। इस प्रकार शिवशास्त्रके अनुसार पचास वर्णोंका न्यास करके अंग-वक्त्र-कलाभेदसे पंचब्रह्मोंका न्यास करे॥ २४—३०॥

करन्यासाद्यमपि तैः कृत्वा वाथ न वा क्रमात्।
शिरोवदनहृद्गुह्यपादेष्वेतानि कल्पयेत्॥ ३१
ततश्चोर्ध्वादिवक्त्राणि पश्चिमान्तानि कल्पयेत्।
ईशानस्य कलाः पञ्च पञ्चस्वेतेषु च क्रमात्॥ ३२

तदुपरान्त उन्हींसे करन्यास आदि भी करे अथवा बिना किये भी क्रमपूर्वक सिर, मुख, हृदय, गुह्य तथा पैरोंमें इनकी कल्पना करे। इसके बाद ऊर्ध्व आदि मुखोंके क्रमसे पश्चिमतकके शिवके मुखोंकी कल्पना करे। इन पाँचों मुखोंमें क्रमसे ईशानकी पाँच कलाओंका न्यास करे॥ ३१-३२॥

ततश्चतुर्षु वक्त्रेषु पुरुषस्य कला अपि।
चतस्रः प्रणिधातव्याः पूर्वादिक्रमयोगतः॥ ३३
हृत्कण्ठांसेषु नाभौ च कुक्षौ पृष्ठे च वक्षसि।
अघोरस्य कलाश्चाष्टौ पादयोरपि हस्तयोः॥ ३४

इसके बाद पूर्व आदिके क्रमसे चार मुखोंमें तत्पुरुषकी चार कलाओंकी कल्पना करे। पुनः हृदय, कण्ठ, कंधा, नाभि, कुक्षि, पीठ, वक्ष, दोनों पैरों तथा हाथोंमें अघोरकी आठ कलाओंका न्यास करे॥ ३३-३४॥

पश्चात् त्रयोदशकलाः पायुमेढ्रोरुजानुषु।
जंघास्फिक्कटिपार्श्वेषु वामदेवस्य भावयेत्॥ ३५
सद्यस्याऽपि कलाश्चाष्टौ पादयोरपि हस्तयोः।
घ्राणे शिरसि बाह्वोश्च कल्पयेत्कल्पवित्तमः।
अष्टत्रिंशत्कलान्यासमेवं कृत्वानुपूर्वशः॥ ३६
पश्चात् प्रणवविद्धीमान् प्रणवन्यासमाचरेत्।
बाहुद्वये कूर्परयोस्तथा च मणिबन्धयोः॥ ३७
पार्श्वोदरोरुजंघेषु पादयोः पृष्ठतस्तथा।

इसके बाद गुदा, लिंग, जानु, जंघा, नितम्ब, कटि तथा पार्श्वभागोंमें वामदेवकी तेरह कलाओंकी भावना करे। इसके बाद मन्त्रवेत्ताको चाहिये कि दोनों पैरों, दोनों हाथों, नासिका, सिर तथा दोनों बाहुओंमें सद्योजातकी आठ कलाओंकी भावना करे। इस प्रकार क्रमानुसार अड़तीस कलाओंका न्यास करके प्रणववेत्ता विद्वान्‌को बादमें दोनों बाहुओं, दोनों कुहनियों, दोनों मणिबन्धों, पार्श्वभागों, उदर, ऊरु, जंघाओं, पैरों तथा पीठमें प्रणवन्यास करना चाहिये॥ ३५—३७$^1/_2$॥

इत्थं प्रणवविन्यासं कृत्वा न्यासविचक्षणः॥ ३८
हंसन्यासं प्रकुर्वीत शिवशास्त्रे यथोदितम्।
बीजं विभज्य हंसस्य नेत्रयोर्घ्राणयोरपि॥ ३९

इस प्रकार प्रणवन्यास करके न्यासविद्‌को चाहिये कि जैसा शिवशास्त्रमें कहा गया है, उसके अनुसार हंसन्यास करे। हंसबीजका विभाजन करके नेत्रोंमें, नासिकाछिद्रोंमें, भुजाओंमें, नेत्रोंमें, मुखमें, ललाटमें,

विभज्य बाहुनेत्रास्यललाटे कर्णयोरपि।
कक्षयोः स्कन्धयोश्चैव पार्श्वयोः स्तनयोस्तथा॥ ४०
कट्यां पाण्योर्गुल्फयोश्च यद्वा पञ्चाङ्गवर्त्मना।
हंसन्यासमिमं कृत्वा न्यसेत् पञ्चाक्षरीं ततः॥ ४१

कानोंमें, काँखोंमें, स्कन्धोंमें, पार्श्वोंमें, स्तनोंमें, कटिमें, हाथोंमें तथा टखनोंमें हंसन्यास करे अथवा पंचांगविधिसे इस हंसन्यासको करके पंचाक्षरीविद्याका न्यास करे॥ ३८—४१॥

यथा पूर्वोक्तमार्गेण शिवत्वं येन जायते।
नाशिवः शिवमभ्यस्येन्नाशिवः शिवमर्चयेत्।
नाशिवस्तु शिवं ध्यायेन्नाशिवः प्राप्नुयात् शिवम्॥ ४२

तस्मात् शैवीं तनुं कृत्वा त्यक्त्वा च पशुभावनाम्।
शिवोऽहमिति संचिन्त्य शैवं कर्म समाचरेत्॥ ४३

इस प्रकार पूर्वमें बतायी गयी रीतिसे न्यासद्वारा अपनेमें शिवत्वका आधान करे। अशिव होकर शिवका अभ्यास न करे, अशिव होकर शिवका पूजन न करे तथा अशिव होकर शिवका ध्यान न करे, अशिव मनुष्य शिवको नहीं प्राप्त कर सकता है। अतः शरीरको शैवीधारणासे युक्त करके तथा पशुभावनाका त्याग करके 'मैं शिव हूँ'—ऐसा विचार करके शिवकर्म करे॥ ४२-४३१/२॥

कर्मयज्ञस्तपोयज्ञो जपयज्ञस्तदुत्तरः।
ध्यानयज्ञो ज्ञानयज्ञः पञ्च यज्ञाः प्रकीर्तिताः॥ ४४

कर्मयज्ञरताः केचित्तपोयज्ञरताः परे।
जपयज्ञरताश्चान्ये ध्यानयज्ञरतास्तथा॥ ४५

ज्ञानयज्ञरताश्चान्ये विशिष्टाश्चोत्तरोत्तरम्।
कर्मयज्ञो द्विधा प्रोक्तः कामाकामविभेदतः॥ ४६

कर्मयज्ञ, तपयज्ञ, जपयज्ञ, ध्यानयज्ञ तथा ज्ञानयज्ञ—ये पाँच यज्ञ कहे गये हैं। कुछ लोग कर्मयज्ञमें संलग्न रहते हैं, कुछ लोग तपयज्ञमें रत रहते हैं, कुछ लोग जपयज्ञमें लगे रहते हैं, कुछ लोग ध्यानयज्ञमें लीन रहते हैं और कुछ लोग ज्ञानयज्ञपरायण रहते हैं। ये उत्तरोत्तर श्रेष्ठ होते हैं। सकाम तथा अकामके भेदसे कर्मयज्ञ दो प्रकारका कहा गया है॥ ४४—४६॥

कामान् कामी ततो भुक्त्वा कामासक्तः पुनर्भवेत्।
अकामो रुद्रभवने भोगान् भुक्त्वा ततश्च्युतः॥ ४७

तपोयज्ञरतो भूत्वा जायते नात्र संशयः।
तपस्वी च पुनस्तस्मिन् भोगान् भुक्त्वा ततश्च्युतः॥ ४८

जपध्यानरतो भूत्वा जायते भुवि मानवः।
जपध्यानरतो मर्त्यस्तद्वैशिष्ट्यवशादिह॥ ४९

ज्ञानं लब्ध्वाचिरादेव शिवसायुज्यमाप्नुयात्।

सकाम मनुष्य कामनाओंका भोग करके पुनः-पुनः उन्हीं कामनाओंमें फँसता रहता है। निष्काम रुद्रभवनमें भोगोंको भोगकर फिर वहाँसे लौटकर पृथ्वीलोकमें तपयज्ञपरायण होकर उत्पन्न होता है, इसमें सन्देह नहीं है। वह तपस्वी पुनः इस लोकमें भोगोंको भोगकर वहाँसे फिर लौटकर जपध्यान-परायण होकर पृथ्वीलोकमें मनुष्य होता है। जपध्यानमें संलग्न मनुष्य उसकी विशिष्टताके कारण इस लोकमें अविलम्ब ज्ञान प्राप्त करके शिवसायुज्यको प्राप्त होता है॥ ४७—४९१/२॥

तस्मान्मुक्तो शिवाज्ञसः कर्मयज्ञोऽपि देहिनाम्॥ ५०

अकामः कामसंयुक्तो बन्धायैव भविष्यति।
तस्मात्पञ्चसु यज्ञेषु ध्यानज्ञानपरो भवेत्॥ ५१

ध्यानं ज्ञानं च यस्यास्ति तीर्णस्तेन भवार्णवः।
हिंसादिदोषनिर्मुक्तो विशुद्धश्चित्तसाधनः॥ ५२

अतः कर्मयज्ञ भी शिवाज्ञासे देहधारियोंको मुक्ति प्राप्त कराता है। निष्कामकर्म मनुष्यके कामयुक्त होनेपर उसके बन्धनका कारण बनता है। अतः पाँचों यज्ञोंमें ध्यानयज्ञ तथा ज्ञानयज्ञमें परायण होना चाहिये। जिसने ध्यान तथा ज्ञान प्राप्त कर लिया, उसने मानो भवसागर पार कर लिया। हिंसा आदि दोषोंसे रहित होनेसे विशुद्धताको प्राप्त यह ध्यानयज्ञ चित्तको

ध्यानयज्ञः परस्तस्मादपवर्गफलप्रदः।
बहिः कर्मिकरा यद्वन्नातीव फलभागिनः॥ ५३

दृष्ट्वा नरेन्द्रभवने तद्वदत्रापि कर्मिणः।
ध्यानिनां हि वपुः सूक्ष्मं भवेत्प्रत्यक्षमैश्वरम्॥ ५४

यथेह कर्मिणां स्थूलं मृत्काष्ठाद्यैः प्रकल्पितम्।
ध्यानयज्ञरतास्तस्माद्देवान्पाषाणमृण्मयान् ॥ ५५

नात्यन्तं प्रतिपद्यन्ते शिवयाथात्म्यवेदनात्।
आत्मस्थं यः शिवं त्यक्त्वा बहिरभ्यर्चयेन्नरः॥ ५६

हस्तस्थं फलमुत्सृज्य लिहेत्कूर्परमात्मनः।

अभ्युन्नत करनेवाला, श्रेष्ठ तथा मोक्षदायक कहा गया है। जिस प्रकार राजाके अन्तरंग सेवक विशिष्ट लाभोंको प्राप्त कर लेते हैं, जो बहिरंग सेवकोंके लिये दुर्लभ हैं, वैसे ही ध्यानयोगी भी उत्कृष्ट फलोंको प्राप्त करते हैं। ध्यानियोंको शिवका सूक्ष्म विग्रह वैसे ही प्रत्यक्ष हो जाता है, जैसे कि कर्मयज्ञ करनेवालोंको मिट्टी, काष्ठ आदिसे बना हुआ स्थूलरूप प्रत्यक्ष होता है। अतः ध्यानयज्ञपरायण भक्त शिवको भलीभाँति जाननेके कारण मिट्टी, पत्थर आदिसे निर्मित देवताओंपर अधिक श्रद्धा नहीं करते हैं। अपने हृदयमें स्थित शिवको छोड़कर जो मनुष्य बाह्य पूजन करता है, वह हस्तगत फलको छोड़कर मानो अपनी कुहनी चाटता है॥ ५०—५६१/२॥

ज्ञानाद्ध्यानं भवेद्ध्यानाज्ज्ञानं भूयः प्रवर्तते॥ ५७
तदुभाभ्यां भवेन्मुक्तिस्तस्माद्ध्यानरतो भवेत्।
द्वादशान्ते तथा मूर्ध्नि ललाटे भ्रूयुगान्तरे॥ ५८
नासाग्रे वा तथास्ये वा कन्धरे हृदये तथा।
नाभौ वा शाश्वतस्थाने श्रद्धाविद्धेन चेतसा॥ ५९
बहिर्यागोपचारेण देवं देवीं च पूजयेत्।
अथवा पूजयेन्नित्यं लिङ्गे वा कृतकेऽपि वा॥ ६०
वह्नौ वा स्थण्डिले वाथ भक्त्या वित्तानुसारतः।
अथवान्तर्बहिश्चैव पूजयेत्परमेश्वरम्।
अन्तर्यागरतः पूजां बहिः कुर्वीत वा न वा॥ ६१

ज्ञानसे ध्यानयोग सिद्ध होता है और पुनः ध्यानसे ज्ञानोपलब्धि होती है, उन दोनोंसे मुक्ति हो जाती है। अतः ध्यानपरायण होना चाहिये। द्वादशान्त, सिर, ललाट, भ्रूमध्य, नासाग्र, मुख, कन्धा, हृदय (वक्ष), नाभि तथा शाश्वतस्थानमें श्रद्धायुक्त मनसे बाहरी पूजोपचारोंसे शिव तथा पार्वतीका पूजन करना चाहिये अथवा [प्रतिष्ठित] लिंगमें या बनाये गये पार्थिवलिंगमें अथवा अग्निमें अथवा स्थण्डिलमें भक्तिपूर्वक अपने धनसामर्थ्यके अनुसार पूजन करना चाहिये। अथवा बाहर तथा भीतर परमेश्वरकी पूजा करे। अन्तर्यागमें निरत व्यक्ति बहिर्याग करे अथवा न करे॥ ५७—६१॥

इति श्रीशिवमहापुराणे सप्तम्यां वायवीयसंहितायामुत्तरखण्डे शिवशास्त्रोक्त-नित्यनैमित्तिककर्मवर्णनं नाम द्वाविंशोऽध्यायः॥ २२॥

॥ इस प्रकार श्रीशिवमहापुराणके अन्तर्गत सातवीं वायवीयसंहिताके उत्तरखण्डमें शिवशास्त्रोक्त नित्य-नैमित्तिककर्मवर्णन नामक बाईसवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ २२॥

अथ त्रयोविंशोऽध्यायः

अन्तर्याग अथवा मानसिक पूजाविधिका वर्णन

उपमन्युरुवाच

व्याख्यां पूजाविधानस्य प्रवदामि समासतः।
शिवशास्त्रे शिवेनैव शिवायै कथितस्य तु॥ १

तदनन्तर श्रीकृष्णके पूछनेपर नित्यनैमित्तिक कर्म तथा न्यासका वर्णन करनेके पश्चात् उपमन्यु बोले—अब मैं पूजाके विधानका संक्षेपसे वर्णन करता हूँ। इसे शिवशास्त्रमें शिवने शिवाके प्रति कहा है॥ १॥

अङ्गमभ्यन्तरं यागमग्निकार्यावसानकम्।
विधाय वा न वा पश्चाद् बहिर्यागं समाचरेत्॥ २
तत्र द्रव्याणि मनसा कल्पयित्वा विशोध्य च।
ध्यात्वा विनायकं देवं पूजयित्वा विधानतः॥ ३

मनुष्य अग्निहोत्रपर्यन्त अन्तर्यागका अनुष्ठान करके पीछे बहिर्याग (बाह्यपूजन) करे। (उसकी विधि इस प्रकार है—) अन्तर्यागमें पहले पूजाद्रव्योंको मनसे कल्पित और शुद्ध करके गणेशजीका विधिपूर्वक चिन्तन एवं पूजन करे॥ २-३॥

दक्षिणे चोत्तरे चैव नन्दीशं सुयशां तथा।
आराध्य मनसा सम्यगासनं कल्पयेद्बुधः॥ ४

तत्पश्चात् दक्षिण और उत्तरभागमें क्रमशः नन्दीश्वर और सुयशाकी आराधना करके विद्वान् पुरुष मनसे उत्तम आसनकी कल्पना करे॥ ४॥

आराधनादिकैर्युक्तः सिंहयोगासनादिकम्।
पद्मासनं वा विमलं तत्त्वत्रयसमन्वितम्॥ ५
तस्योपरि शिवं ध्यायेत् साम्बं सर्वमनोहरम्।

सिंहासन, योगासन अथवा तीनों तत्त्वोंसे युक्त निर्मल पद्मासनकी भावना करे। उसके ऊपर सर्वमनोहर साम्ब-शिवका ध्यान करे॥ ५१/२॥

सर्वलक्षणसम्पन्नं सर्वावयवशोभनम्॥ ६
सर्वातिशयसंयुक्तं सर्वाभरणभूषितम्।
रक्तास्यपाणिचरणं कुन्दचन्द्रस्मिताननम्॥ ७
शुद्धस्फटिकसङ्काशं फुल्लपद्मत्रिलोचनम्।
चतुर्भुजमुदाराङ्गं चारुचन्द्रकलाधरम्॥ ८
वरदाभयहस्तं च मृगटङ्कधरं हरम्।
भुजङ्गहारवलयं चारुनीलगलान्तरम्॥ ९
सर्वोपमानरहितं सानुगं सपरिच्छदम्।

वे शिव समस्त शुभ लक्षणोंसे युक्त और सम्पूर्ण अवयवोंसे शोभायमान हैं। वे सबसे बढ़कर हैं और समस्त आभूषण उनकी शोभा बढ़ाते हैं। उनके हाथ-पैर लाल हैं। उनका मुसकराता हुआ मुख कुन्द और चन्द्रमाके समान शोभा पाता है। उनकी अंगकान्ति शुद्ध स्फटिकके समान निर्मल है। तीन नेत्र प्रफुल्ल कमलकी भाँति सुन्दर हैं। चार भुजाएँ, उत्तम अंग और मनोहर चन्द्रकलाका मुकुट धारण किये भगवान् हर अपने दो हाथोंमें वर तथा अभयकी मुद्रा धारण करते हैं और शेष दो हाथोंमें मृगमुद्रा एवं टंक लिये हुए हैं। उनकी कलाईमें सर्पोंकी माला कड़ेका काम देती है। गलेके भीतर मनोहर नील चिह्न शोभित होता है, उनकी कहीं कोई उपमा नहीं है। वे अपने अनुगामी सेवकों तथा आवश्यक उपकरणोंके साथ विराजमान हैं॥ ६—९१/२॥

ततः संचिन्तयेत्तस्य वामभागे महेश्वरीम्॥ १०
प्रफुल्लोत्पलपत्राभां विस्तीर्णायतलोचनाम्।
पूर्णचन्द्राभवदनां नीलकुंचितमूर्धजाम्॥ ११
नीलोत्पलदलप्रख्यां चन्द्रार्द्धकृतशेखराम्।
अतिवृत्तघनोत्तुंगस्निग्धपीनपयोधराम् ॥ १२

इस तरह ध्यान करके उनके वाम-भागमें महेश्वरी शिवाका चिन्तन करे। शिवाकी अंगकान्ति प्रफुल्ल कमलदलके समान परम सुन्दर है। उनके नेत्र बड़े-बड़े हैं। मुख पूर्ण चन्द्रमाके समान सुशोभित है। मस्तकपर काले-काले घुँघराले केश शोभा पाते हैं। वे नील उत्पलदलके समान कान्तिमती हैं। मस्तकपर अर्धचन्द्रका मुकुट धारण करती हैं। उनके पीन पयोधर अत्यन्त गोल, घनीभूत, ऊँचे और स्निग्ध हैं। शरीरका मध्यभाग कृश है। नितम्बभाग स्थूल है। वे महीन पीले वस्त्र धारण किये हुए हैं। सम्पूर्ण आभूषण उनकी शोभा बढ़ाते हैं। ललाटपर लगे हुए

तनुमध्यां पृथुश्रोणीं पीतसूक्ष्मवराम्बराम्।
सर्वाभरणसंपन्नां ललाटतिलकोज्ज्वलाम्॥ १३

विचित्रपुष्पसङ्कीर्णकेशपाशोपशोभिताम्।
सर्वतोऽनुगुणाकारां किञ्चिल्लज्जानताननाम्॥ १४

हेमारविन्दं विलसद्दधानां दक्षिणे करे।
दंडवच्चापरं हस्तं न्यस्यासीनां महासने॥ १५

पाशविच्छेदिकां साक्षात्सच्चिदानन्दरूपिणीम्।

सुन्दर तिलकसे उनका सौन्दर्य और खिल उठा है। विचित्र फूलोंकी मालासे गुम्फित केशपाश उनकी शोभा बढ़ाते हैं। उनकी आकृति सब ओरसे सुन्दर और सुडौल है। मुख लज्जासे कुछ-कुछ झुका है। वे दाहिने हाथमें शोभाशाली सुवर्णमय कमल धारण किये हुए हैं और दूसरे हाथको दण्डकी भाँति सिंहासनपर रखकर उसका सहारा ले उस महान् आसनपर बैठी हुई हैं। शिवादेवी समस्त पाशोंका छेदन करनेवाली साक्षात् सच्चिदानन्दस्वरूपिणी हैं॥ १०—१५½॥

एवं देवं च देवीं च ध्यात्वासनवरे शुभे॥ १६
सर्वोपचारवद् भक्त्या भावपुष्पैः समर्चयेत्।

इस प्रकार महादेव और महादेवीका ध्यान करके शुभ एवं श्रेष्ठ आसनपर सम्पूर्ण उपचारोंसे युक्त भावमय पुष्पोंद्वारा उनका पूजन करे॥ १६½॥

अथवा परिकल्प्यैवं मूर्तिमन्यतमां विभोः॥ १७
शैवीं सदाशिवाख्यां वा तथा माहेश्वरीं पराम्।
षड्विंशकाभिधानां वा श्रीकंठाख्यामथापि वा॥ १८

अथवा उपर्युक्त वर्णनके अनुसार प्रभु शिवकी एक मूर्ति बनवा ले, उसका नाम शिव या सदाशिव हो। दूसरी मूर्ति शिवाकी होनी चाहिये; उसका नाम माहेश्वरी षड्विंशका अथवा 'श्रीकण्ठ' हो॥ १७-१८॥

मन्त्रन्यासादिकांश्चापि कृत्वा स्वस्यां तनौ यथा।
अस्यां मूर्तौ मूर्तिमन्तं शिवं सदसतः परम्॥ १९

ध्यात्वा बाह्यक्रमेणैव पूजां निर्वर्त्तयेद्धिया।
समिदाज्यादिभिः पश्चान्नाभौ होमं च भावयेत्॥ २०

फिर अपने ही शरीरकी भाँति मूर्तिमें मन्त्रन्यास आदि करके उस मूर्तिमें सत्-असत्से परे मूर्तिमान् परम शिवका ध्यान करे। इसके बाद बाह्य पूजनके ही क्रमसे मनसे पूजा सम्पादित करे। तत्पश्चात् समिधा और घी आदिसे नाभिमें होमकी भावना करे॥ १९-२०॥

भ्रूमध्ये च शिवं ध्यायेच्छुद्धदीपशिखाकृतिम्।
इत्थमङ्गे स्वतंत्रे वा योगे ध्यानमये शुभे॥ २१

अग्निकार्यावसानं च सर्वत्रैव समो विधिः।
अथ चिन्तामयं सर्वं समाप्याराधनक्रमम्॥ २२

लिङ्गे च पूजयेद्देवं स्थंडिले वानलेऽपि वा॥ २३

तदनन्तर भ्रूमध्यमें शुद्ध दीपशिखाके समान आकार-वाले ज्योतिर्मय शिवका ध्यान करे। इस प्रकार अपने अंगमें अथवा स्वतन्त्र विग्रहमें शुभ ध्यानयोगके द्वारा अग्निमें होम-पर्यन्त सारा पूजन करना चाहिये। यह विधि सर्वत्र ही समान है। इस तरह ध्यानमय आराधनाका सारा क्रम समाप्त करके महादेवजीका शिवलिंगमें, वेदीपर अथवा अग्निमें पूजन करे॥ २१—२३॥

इति श्रीशिवमहापुराणे सप्तम्यां वायवीयसंहितायामुत्तरखण्डे पूजाविधान-व्याख्यानवर्णनं नाम त्रयोविंशोऽध्यायः॥ २३॥

॥ इस प्रकार श्रीशिवमहापुराणके अन्तर्गत सातवीं वायवीयसंहिताके उत्तरखण्डमें पूजाविधानव्याख्यानवर्णन नामक तेईसवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ २३॥

अथ चतुर्विंशोऽध्यायः

शिवपूजनकी विधि

उपमन्युरुवाच

प्रोक्षयेन्मूलमन्त्रेण पूजास्थानं विशुद्धये।
गन्धचन्दनतोयेन पुष्पं तत्र विनिक्षिपेत्॥ १

अस्त्रेणोत्सार्य वै विघ्नानवगुण्ठ्य च वर्मणा।
अस्त्रं दिक्षु प्रविन्यस्य कल्पयेदर्चनाभुवम्॥ २

तत्र दर्भान्परिस्तीर्य क्षालयेत्प्रोक्षणादिभिः।
संशोध्य सर्वपात्राणि द्रव्यशुद्धिं समाचरेत्॥ ३

प्रोक्षणीमर्घ्यपात्रं च पाद्यपात्रमतः परम्।
तथैवाचमनीयस्य पात्रं चेति चतुष्टयम्॥ ४
प्रक्षाल्य प्रोक्ष्य वीक्ष्याथ क्षिपेत्तेषु जलं शिवम्।
पुण्यद्रव्याणि सर्वाणि यथालाभं विनिक्षिपेत्॥ ५
रत्नानि रजतं हेम गन्धपुष्पाक्षतादयः।
फलपल्लवदर्भांश्च पुण्यद्रव्याण्यनेकधा॥ ६
स्नानोदके सुगन्धादि पानीये च विशेषतः।
शीतलानि मनोज्ञानि कुसुमादीनि निक्षिपेत्॥ ७
उशीरं चन्दनं चैव पाद्ये तु परिकल्पयेत्।
जातिकङ्कोलकर्पूरबहुमूलतमालकान्॥ ८
क्षिपेदाचमनीये च चूर्णयित्वा विशेषतः।
एलां पात्रेषु सर्वेषु कर्पूरं चन्दनं तथा॥ ९
कुशाग्राण्यक्षतांश्चैव यवव्रीहितिलानपि।
आज्यसिद्धार्थपुष्पाणि भसितं चार्घ्यपात्रके॥ १०

कुशपुष्पयवव्रीहिबहुमूलतमालकान्।
प्रक्षिपेत् प्रोक्षणीपात्रे भसितं च यथाक्रमम्॥ ११

सर्वत्र मन्त्रं विन्यस्य वर्मणावेष्ट्य बाह्यतः।
पश्चादस्त्रेण संरक्ष्य धेनुमुद्रां प्रदर्शयेत्॥ १२

पूजाद्रव्याणि सर्वाणि प्रोक्षणीपात्रवारिणा।
सम्प्रोक्ष्य मूलमन्त्रेण शोधयेद्विधिवत्ततः॥ १३

उपमन्यु कहते हैं—यदुनन्दन! विशुद्धिके लिये मूलमन्त्रसे गन्ध, चन्दनमिश्रित जलके द्वारा पूजास्थानका प्रोक्षण करना चाहिये। इसके बाद वहाँ फूल बिखेरे॥ १॥

अस्त्र-मन्त्र (**फट्**)-का उच्चारण करके विघ्नोंको भगाये। फिर कवच-मन्त्र (**हुम्**)-से पूजास्थानको सब ओरसे अवगुण्ठित करे। अस्त्र-मन्त्रका सम्पूर्ण दिशाओंमें न्यास करके पूजाभूमिकी कल्पना करे। वहाँ सब ओर कुश बिछा दे और प्रोक्षण आदिके द्वारा उस भूमिका प्रक्षालन करे। पूजासम्बन्धी समस्त पात्रोंका शोधन करके द्रव्यशुद्धि करे॥ २-३॥

प्रोक्षणीपात्र, अर्घ्यपात्र, पाद्यपात्र और आचमनीय-पात्र—इन चारोंका प्रक्षालन, प्रोक्षण और वीक्षण करके इनमें शुभ जल डाले और जितने मिल सकें, उन सभी पवित्र द्रव्योंको उनमें डाले॥ ४-५॥

पंचरत्न, चाँदी, सोना, गन्ध, पुष्प, अक्षत आदि तथा फल, पल्लव और कुश—ये सब अनेक प्रकारके पुण्य द्रव्य हैं। स्नान और पीनेके जलमें विशेषरूपसे सुगन्ध आदि एवं शीतल मनोज्ञ पुष्प आदि छोड़े॥ ६-७॥

पाद्यपात्रमें खश और चन्दन छोड़ना चाहिये। आचमनीयपात्रमें विशेषतः जायफल, कंकोल, कपूर, सहिजन और तमालका चूर्ण करके डालना चाहिये। इलायची सभी पात्रोंमें डालनेकी वस्तु है। कपूर, चन्दन, कुशाग्रभाग, अक्षत, जौ, धान, तिल, घी, सरसों, फूल और भस्म—इन सबको अर्घ्यपात्रमें छोड़ना चाहिये॥ ८—१०॥

कुश, फूल, जौ, धान, सहिजन, तमाल और भस्म—इन सबका प्रोक्षणीपात्रमें प्रक्षेपण करना चाहिये॥ ११॥

सर्वत्र मन्त्र-न्यास करके कवच-मन्त्रसे प्रत्येक पात्रको बाहरसे आवेष्टित करे। तत्पश्चात् अस्त्र-मन्त्रसे उसकी रक्षा करके धेनुमुद्रा दिखाये। पूजाके सभी द्रव्योंका प्रोक्षणीपात्रके जलसे मूलमन्त्रद्वारा प्रोक्षण करके विधिवत् शोधन करे॥ १२-१३॥

पात्राणां प्रोक्षणीमेकामलाभे सर्वकर्मसु।
साधयेदर्घ्यमद्भिस्तत्सामान्यं साधकोत्तमः॥ १४
ततो विनायकं देवं भक्ष्यभोज्यादिभिः क्रमात्।
पूजयित्वा विधानेन द्वारपार्श्वेऽथ दक्षिणे॥ १५
अन्तःपुराधिपं साक्षान्नन्दिनं सम्यगर्चयेत्।

श्रेष्ठ साधकको चाहिये कि अधिक पात्रोंके न मिलनेपर सब कर्मोंमें एकमात्र प्रोक्षणीपात्रको ही सम्पादित करके रखे और उसीके जलसे सामान्यतः अर्घ्य आदि दे। तत्पश्चात् मण्डपके दक्षिण द्वारभागमें भक्ष्य-भोज्य आदिके क्रमसे विधिपूर्वक विनायकदेवकी पूजा करके अन्तःपुरके स्वामी साक्षात् नन्दीकी भलीभाँति पूजा करे॥ १४-१५½॥

चामीकराचलप्रख्यं सर्वाभरणभूषितम्॥ १६
बालेन्दुमुकुटं सौम्यं त्रिनेत्रं च चतुर्भुजम्।
दीप्तशूलमृगीटंकतिग्मवेत्रधरं प्रभुम्॥ १७
चन्द्रबिम्बाभवदनं हरिवक्त्रमथापि वा।

उनकी अंगकान्ति सुवर्णमय पर्वतके समान है। समस्त आभूषण उनकी शोभा बढ़ाते हैं। मस्तकपर बालचन्द्रका मुकुट सुशोभित होता है। उनकी मूर्ति सौम्य है। वे तीन नेत्र और चार भुजाओंसे युक्त हैं। उन प्रभुके एक हाथमें चमचमाता हुआ त्रिशूल, दूसरेमें मृगी, तीसरेमें टंक और चौथेमें तीखा बेंत है। उनके मुखकी कान्ति चन्द्रमण्डलके समान उज्ज्वल है। मुख वानरके सदृश है॥ १६-१७½॥

उत्तरे द्वारपार्श्वस्य भार्यां च मरुतां सुताम्॥ १८
सुयशां सुव्रतामम्बां पादमण्डनतत्पराम्।

द्वारके उत्तर पार्श्वमें उनकी पत्नी सुयशा हैं, जो मरुद्गणोंकी कन्या हैं। वे उत्तम व्रतका पालन करनेवाली हैं और पार्वतीजीके चरणोंका शृंगार करनेमें लगी रहती हैं॥ १८½॥

पूजयित्वा प्रविश्यान्तर्भवनं परमेष्ठिनः॥ १९
संपूज्य लिङ्गं तैर्द्रव्यैर्निर्माल्यमपनोदयेत्।
प्रक्षाल्य पुष्पं शिरसि न्यसेत्तस्य विशुद्धये॥ २०

उनका पूजन करके परमेश्वर शिवके भवनके भीतर प्रवेश करे और उन द्रव्योंसे शिवलिंगका पूजन करके निर्माल्यको वहाँसे हटा ले। तदनन्तर फूल धोकर शिवलिंगके मस्तकपर उसकी शुद्धिके लिये रखे॥ १९-२०॥

पुष्पहस्तो जपेत् शक्त्या मन्त्रं मन्त्रविशुद्धये।
ऐशान्यां चण्डमाराध्य निर्माल्यं तस्य दापयेत्॥ २१

फिर हाथमें फूल ले यथाशक्ति मन्त्रका जप करे। इससे मन्त्रकी शुद्धि होती है। ईशानकोणमें चण्डकी आराधना करके उन्हें पूर्वोक्त निर्माल्य अर्पित करे॥ २१॥

कल्पयेदासनं पश्चादाधारादि यथाक्रमम्।
आधारशक्तिं कल्याणीं श्यामां ध्यायेदथो भुवि॥ २२
तस्याः पुरस्तादुत्कण्ठमनन्तं कुण्डलाकृतिम्।
धवलं पञ्चफणिनं लेलिहानमिवाम्बरम्॥ २३
तस्योपर्यासनं भद्रं कण्ठीरवचतुष्पदम्।
धर्मो ज्ञानं च वैराग्यमैश्वर्यं च पदानि वै॥ २४

तत्पश्चात् इष्टदेवके लिये आसनकी कल्पना करे। क्रमशः आधार आदिका ध्यान करे—कल्याणमयी आधार-शक्ति भूतलपर विराजमान हैं और उनकी अंगकान्ति श्याम है। इस प्रकार उनके स्वरूपका चिन्तन करे। उनके ऊपर फन उठाये सर्पाकार अनन्त बैठे हैं, जिनकी अंगकान्ति उज्ज्वल है। वे पाँच फनोंसे युक्त हैं और आकाशको चाटते हुए-से जान पड़ते हैं। अनन्तके ऊपर भद्रासन है, जिसके चारों पायोंमें सिंहकी आकृति बनी हुई है। वे चारों पाये क्रमशः धर्म, ज्ञान, वैराग्य और ऐश्वर्यरूप हैं॥ २२—२४॥

आग्नेयादिश्वेतरक्तपीतश्यामानि वर्णतः।
अधर्मादीनि पूर्वादीन्युत्तरान्तान्यनुक्रमात्॥ २५

राजावर्तमणिप्रख्यान्यस्य गात्राणि भावयेत्।
अस्योर्ध्वच्छादनं पद्ममासनं विमलं सितम्॥ २६

धर्म नामवाला पाया आग्नेयकोणमें है और उसका रंग सफेद है। ज्ञान नामक पाया नैर्ऋत्यकोणमें है और उसका रंग लाल है। वैराग्य वायव्यकोणमें है और उसका रंग पीला है तथा ऐश्वर्य ईशानकोणमें है और उसका वर्ण श्याम है। अधर्म आदि उस आसनके पूर्वादि भागोंमें क्रमशः स्थित हैं अर्थात् अधर्म पूर्वमें, अज्ञान दक्षिणमें, अवैराग्य पश्चिममें और अनैश्वर्य उत्तरमें हैं। इनके अंग राजावर्त मणिके समान हैं—ऐसी भावना करनी चाहिये। इस भद्रासनको ऊपरसे आच्छादित करनेवाला श्वेत निर्मल पद्ममय आसन है॥ २५-२६॥

अष्टपत्राणि तस्याहुरणिमादिगुणाष्टकम्।
केसराणि च वामाद्या रुद्रा वामादिशक्तिभिः॥ २७

बीजान्यपि च ता एव शक्तयोऽन्तर्मनोन्मनीः।
कर्णिकापरवैराग्यं नालं ज्ञानं शिवात्मकम्॥ २८

कन्दश्च शिवधर्मात्मा कर्णिकान्ते त्रिमण्डले।
त्रिमण्डलोपर्यात्मादितत्त्वत्रितयमासनम् ॥ २९

अणिमा आदि आठ ऐश्वर्य—गुण ही उस कमलके आठ दल हैं; वामदेव आदि रुद्र अपनी वामा आदि शक्तियोंके साथ उस कमलके केसर हैं। वे मनोन्मनी आदि अन्तःशक्तियाँ ही बीज हैं, अपर वैराग्य कर्णिका है, शिवस्वरूप ज्ञान नाल है, शिवधर्म कन्द है, कर्णिकाके ऊपर तीन मण्डल (चन्द्रमण्डल, सूर्यमण्डल और वह्नि-मण्डल) हैं और उन मण्डलोंके ऊपर आत्मतत्त्व, विद्यातत्त्व तथा शिवतत्त्वरूप त्रिविध आसन हैं॥ २७—२९॥

सर्वासनोपरि सुखं विचित्रास्तरणास्तृतम्।
आसनं कल्पयेद्दिव्यं शुद्धविद्यासमुज्ज्वलम्॥ ३०

इन सब आसनोंके ऊपर विचित्र बिछौनोंसे आच्छादित एक सुखद दिव्य आसनकी कल्पना करे, जो शुद्ध विद्यासे अत्यन्त प्रकाशमान हो॥ ३०॥

आवाहनं स्थापनं च सन्निरोधं निरीक्षणम्।
नमस्कारं च कुर्वीत बध्वा मुद्राः पृथक्पृथक्॥ ३१

आसनके अनन्तर आवाहन, स्थापन, संनिरोधन, निरीक्षण एवं नमस्कार करे। इन सबकी पृथक्-पृथक् मुद्राएँ बाँधकर दिखाये*॥ ३१॥

पाद्यमाचमनं चार्घ्यं गन्धं पुष्पं ततः परम्।
धूपं दीपं च ताम्बूलं दत्त्वाथ स्नापयेत् शिवौ॥ ३२

अथवा परिकल्प्यैवमासनं मूर्तिमेव च।
सकलीकृत्य मूलेन ब्रह्मभिश्चापरैस्तथा॥ ३३

आवाहयेत्ततो देव्या शिवं परमकारणम्।

तदनन्तर पाद्य, आचमन, अर्घ्य, [आदि देकर स्नान कराये, तदुपरान्त वस्त्र, यज्ञोपवीत,] गन्ध, पुष्प, धूप, दीप, [नैवेद्य] और ताम्बूल देकर शिवा और शिवको समर्पित करे। अथवा उपर्युक्त रूपसे आसन और मूर्तिकी कल्पना करके मूलमन्त्र एवं अन्य ईशानादि ब्रह्ममन्त्रोंद्वारा सकलीकरणकी क्रिया करके देवी पार्वतीसहित परम कारण शिवका आवाहन करे॥ ३२-३३½॥

* दोनों हाथोंकी अंजलि बनाकर अनामिका अंगुलिके मूलपर्वपर अँगूठेको लगा देना 'आवाहन' मुद्रा है। इसी आवाहन मुद्राको अधोमुख कर दिया जाय तो वह 'स्थापन' मुद्रा हो जाती है। यदि मुट्ठीके भीतर अँगूठेको डाल दिया जाय और दोनों हाथोंकी मुट्ठी संयुक्त कर दी जाय तो वह 'संनिरोधन' मुद्रा कही गयी है। दोनों मुट्ठियोंको उत्तान कर देनेपर 'सम्मुखीकरण' नामक मुद्रा होती है। इसीको यहाँ 'निरीक्षण' नामसे कहा गया है। शरीरको दण्डकी भाँति देवताके सामने डाल देना, मुखको नीचेकी ओर रखना और दोनों हाथोंको देवताकी ओर फैला देना—साष्टांग प्रणामकी इस क्रियाको ही यहाँ 'नमस्कार' मुद्रा कहा गया है।

शुद्धस्फटिकसङ्काशं देवं निश्चलमक्षरम्॥ ३४

कारणं सर्वलोकानां सर्वलोकमयं परम्।
अन्तर्बहि:स्थितं व्याप्य ह्यणोरणु महत्तरम्॥ ३५

भक्तानामप्रयत्नेन दृश्यमीश्वरमव्ययम्।
ब्रह्मेन्द्रविष्णुरुद्राद्यैरपि देवैरगोचरम्॥ ३६

वेदसारं च विद्वद्भिरगोचरमिति श्रुतम्।
आदिमध्यान्तरहितं भेषजं भवरोगिणाम्॥ ३७

शिवतत्त्वमिति ख्यातं शिवार्थं जगति स्थिरम्।

पञ्चोपचारवद्भक्त्या पूजयेल्लिङ्गमुत्तमम्॥ ३८

लिङ्गमूर्तिर्महेशस्य शिवस्य परमात्मनः।
स्नानकाले प्रकुर्वीत जयशब्दादिमङ्गलम्॥ ३९

पञ्चगव्यघृतक्षीरदधिमध्वादिपूर्वकैः।
मूलैः फलानां सारैश्च तिलसर्षपसक्तुभिः॥ ४०

बीजैर्यवादिभिश्शस्तैश्चूर्णैर्माषादिसंभवैः।
संस्नाप्यालिप्य पिष्टाद्यैः स्नापयेदुष्णवारिभिः॥ ४१

घर्षयेद्बिल्वपत्राद्यैर्लेपगन्धापनुत्तये।
पुनः संस्नाप्य सलिलैश्चक्रवर्त्त्युपचारतः॥ ४२

सुगन्धामलकं दद्याद् हरिद्रां च यथाक्रमम्।
ततः संशोध्य सलिलैर्लिङ्गं बेरमथापि वा॥ ४३

स्नापयेद्गन्धतोयेन कुशपुष्पोदकेन च।
हिरण्यरत्नतोयैश्च मन्त्रसिद्धैर्यथाक्रमम्॥ ४४

असंभवे तु द्रव्याणां यथासंभवसंभृतैः।
केवलैर्मन्त्रतोयैर्वा स्नापयेच्छ्रद्धया शिवम्॥ ४५

भगवान् शिवकी अंगकान्ति शुद्ध स्फटिकके समान उज्ज्वल है। वे निश्चल, अविनाशी, समस्त लोकोंके परम कारण, सर्वलोकस्वरूप, सबके बाहर-भीतर विद्यमान, सर्वव्यापी, अणु-से-अणु और महान्से भी महान् हैं॥ ३४-३५॥

भक्तोंको अनायास ही दर्शन देते हैं। सबके ईश्वर एवं अव्यय हैं। ब्रह्मा, इन्द्र, विष्णु तथा रुद्र आदि देवताओंके लिये भी अगोचर हैं। सम्पूर्ण वेदोंके सारतत्त्व हैं। विद्वानोंके भी दृष्टिपथमें नहीं आते हैं। आदि, मध्य और अन्तसे रहित हैं। भवरोगसे ग्रस्त प्राणियोंके लिये औषधरूप हैं। शिवतत्त्वके रूपमें विख्यात हैं और सबका कल्याण करनेके लिये जगत्में सुस्थिर शिवलिंगके रूपमें विद्यमान हैं॥ ३६-३७½॥

ऐसी भावना करके भक्तिभावसे गन्ध, धूप, दीप, पुष्प और नैवेद्य—इन पाँच उपचारोंद्वारा उत्तम शिवलिंगका पूजन करे। परमात्मा महेश्वर शिवकी लिंगमयी मूर्तिके स्नानकालमें जय-जयकार आदि शब्द और मंगलपाठ करे॥ ३८-३९॥

पंचगव्य, घी, दूध, दही, मधु [और शर्करा]-के साथ फल-मूलके सारतत्त्वसे, तिल, सरसों, सत्तूके उबटनसे, जौ आदिके उत्तम बीजोंसे, उड़द आदिके चूर्णोंसे तथा आटा आदिसे आलेपन करके मन्दोष्ण जलसे शिवलिंगको नहलाये॥ ४०-४१॥

लेप और गन्धके निवारणके लिये बिल्वपत्र आदिसे रगड़े। फिर जलसे नहलाकर चक्रवर्ती सम्राट्के लिये उपयोगी उपचारोंसे (अर्थात् सुगन्धित तेल-फुलेल आदिके द्वारा) सेवा करे। सुगन्धयुक्त आँवला और हल्दी भी क्रमशः अर्पित करे। इन सब वस्तुओंसे शिवलिंग अथवा शिवमूर्तिका भलीभाँति शोधन करके चन्दनमिश्रित जल, कुश-पुष्पयुक्त जल, सुवर्ण एवं रत्नयुक्त जल तथा मन्त्रसिद्ध जलसे क्रमशः स्नान कराये॥ ४२—४४॥

इन सब द्रव्योंका मिलना सम्भव न होनेपर यथासम्भव संगृहीत वस्तुओंसे युक्त जलद्वारा अथवा केवल मन्त्राभि-मन्त्रित जलद्वारा श्रद्धापूर्वक शिवको स्नान कराये॥ ४५॥

कलशेनाथ शंखेन वर्द्धन्या पाणिना तथा।
सकुशेन सपुष्पेण स्नापयेन्मन्त्रपूर्वकम्॥ ४६
पवमानेन रुद्रेण नीलेन त्वरितेन च।
लिङ्गसूक्तादिसूक्तैश्च शिरसाथर्वणेन च॥ ४७
ऋग्भिश्च सामभिः शैवैर्ब्रह्मभिश्चापि पञ्चभिः।
स्नापयेद्देवदेवेशं शिवेन प्रणवेन च॥ ४८

कलश, शंख और वर्धनीसे तथा कुश और पुष्पसे युक्त हाथके जलसे मन्त्रोच्चारणपूर्वक इष्टदेवताको नहलाना चाहिये। पवमानसूक्त, रुद्रसूक्त, नीलरुद्रसूक्त, त्वरितमन्त्र, लिंगसूक्त आदिसूक्तोंसे, अथर्वशीर्ष, ऋग्वेद, सामवेद तथा शिवसम्बन्धी ईशानादि पंच-ब्रह्ममन्त्र, शिवमन्त्र तथा प्रणवसे देवदेवेश्वर शिवको स्नान कराये॥ ४६—४८॥

यथा देवस्य देव्याश्च कुर्यात्स्नानादिकं तथा।
न तु कश्चिद्विशेषोऽस्ति तत्र तौ सदृशौ यतः॥ ४९
प्रथमं देवमुद्दिश्य कृत्वा स्नानादिकाः क्रियाः।
देव्यै पश्चात्प्रकुर्वीत देवदेवस्य शासनात्॥ ५०

जैसे महादेवजीको स्नान कराये, उसी तरह महादेवी पार्वतीको भी स्नान आदि कराना चाहिये। उन दोनोंमें कोई अन्तर नहीं है; क्योंकि वे दोनों सर्वथा समान हैं। पहले महादेवजीके उद्देश्यसे स्नान आदि क्रिया करके फिर देवीके लिये उन्हीं देवाधिदेवके आदेशसे सब कुछ करे॥ ४९-५०॥

अर्द्धनारीश्वरे पूज्ये पौर्वापर्यं न विद्यते।
तत्र तत्रोपचाराणां लिङ्गे वान्यत्र वा क्वचित्॥ ५१

अर्धनारीश्वरकी पूजा करनी हो तो उसमें पूर्वापरका विचार नहीं है। अतः उसमें महादेव और महादेवीकी साथ-साथ पूजा होती रहती है। शिवलिंगमें या अन्यत्र मूर्ति आदिमें अर्द्धनारीश्वरकी भावनासे सभी उपचारोंका शिव और शिवाके लिये एक साथ ही उपयोग होता है॥ ५१॥

कृत्वाऽभिषेकं लिङ्गस्य शुचिना च सुगन्धिना।
संमृज्य वाससा दद्यादंबरं चोपवीतकम्॥ ५२
पाद्यमाचमनं चार्घ्यं गन्धं पुष्पं च भूषणम्।
धूपं दीपं च नैवेद्यं पानीयं मुखशोधनम्॥ ५३
पुनश्चाचमनीयं च मुखवासं ततः परम्।
मुकुटं च शुभं भद्रं सर्वरत्नैरलंकृतम्॥ ५४
भूषणानि पवित्राणि माल्यानि विविधानि च।
व्यजने चामरे छत्रं तालवृन्तं च दर्पणम्॥ ५५
दत्त्वा नीराजनं कुर्यात्सर्वमङ्गलनिःस्वनैः।
गीतनृत्यादिभिश्चैव जयशब्दसमन्वितैः॥ ५६

पवित्र सुगन्धित जलसे शिवलिंगका अभिषेक करके उसे वस्त्रसे पोंछे। फिर नूतन वस्त्र एवं यज्ञोपवीत चढ़ाये। तत्पश्चात् पाद्य, आचमन, अर्घ्य, गन्ध, पुष्प, आभूषण, धूप, दीप, नैवेद्य, पीनेयोग्य जल, मुखशुद्धि, पुनराचमन, मुखवास तथा सम्पूर्ण रत्नोंसे जटित सुन्दर मुकुट, आभूषण, नाना प्रकारकी पवित्र पुष्पमालाएँ, छत्र, चँवर, व्यजन, ताड़का पंखा और दर्पण देकर सब प्रकारकी मंगलमयी वाद्यध्वनियोंके साथ इष्टदेवकी नीराजना करे (आरती उतारे)। उस समय गीत और नृत्य आदिके साथ जय-जयकार भी होनी चाहिये॥ ५२—५६॥

हैमे च राजते ताम्रे पात्रे वा मृण्मये शुभे।
पद्मकैः शोभितैः पुष्पैर्बीजैर्दध्यक्षतादिभिः॥ ५७
त्रिशूलशंखयुग्माब्जनन्द्यावर्तैः करीषजैः।
श्रीवत्सस्वस्तिकादर्शवज्रैर्वह्न्यादिचिह्नितैः॥ ५८

सोना, चाँदी, ताँबा अथवा मिट्टीके सुन्दर पात्रमें कमल आदिके शोभायमान फूल रखे। कमलके बीज तथा दही, अक्षत आदि भी डाल दे। त्रिशूल, शंख, दो कमल, नन्द्यावर्त नामक शंखविशेष, सूखे गोबरकी आग, श्रीवत्स, स्वस्तिक, दर्पण, वज्र तथा अग्नि

अष्टौ प्रदीपान्परितो विधायैकं तु मध्यमे।
तेषु वामादिकाश्चिन्त्याः पूज्याश्च नव शक्तयः ॥ ५९

आदिसे चिह्नित पात्रमें आठ दीपक रखे। वे आठों आठ दिशाओंमें रहें और एक नौवाँ दीपक मध्यभागमें रहे। इन नवों दीपकोंमें वामा आदि नव शक्तियोंका ध्यान तथा पूजन करे॥ ५७—५९॥

कवचेन समाच्छाद्य संरक्ष्यास्त्रेण सर्वतः।
धेनुमुद्रां च संदर्श्य पाणिभ्यां पात्रमुद्धरेत्॥ ६०
अथवारोपयेत्पात्रे पञ्चदीपान्यथाक्रमम्।
विदिक्ष्वपि च मध्ये च दीपमेकमथापि वा॥ ६१

फिर कवचमन्त्रसे आच्छादन और अस्त्रमन्त्रद्वारा सब ओरसे संरक्षण करके धेनुमुद्रा दिखाकर दोनों हाथोंसे पात्रको ऊपर उठाये अथवा पात्रमें क्रमशः पाँच दीप रखे। चारको चारों कोनोंमें और एकको बीचमें स्थापित करे॥ ६०-६१॥

ततस्तत्पात्रमुद्धृत्य लिङ्गादेरुपरि क्रमात्।
त्रिःप्रदक्षिणयोगेन भ्रामयेन्मूलविद्यया॥ ६२
दद्यादर्घ्यं ततो मूर्ध्नि भसितं च सुगन्धितम्।
कृत्वा पुष्पाञ्जलिं पश्चादुपहारान्निवेदयेत्॥ ६३
पानीयं च ततो दद्याद्दत्त्वा वाचमनं पुनः।
पञ्च सौगन्धिकोपेतं ताम्बूलं च निवेदयेत्॥ ६४

तत्पश्चात् उस पात्रको उठाकर शिवलिंग या शिवमूर्ति आदिके ऊपर क्रमशः तीन बार प्रदक्षिण क्रमसे घुमाये और मूलमन्त्रका उच्चारण करता रहे। तदनन्तर मस्तकपर अर्घ्य और सुगन्धित भस्म चढ़ाये। फिर पुष्पांजलि देकर उपहार निवेदन करे। इसके बाद जल देकर आचमन कराये। फिर पाँच सुगन्धित द्रव्योंसे युक्त ताम्बूल भेंट करे॥ ६२—६४॥

प्रोक्षयेत्प्रोक्षणीयानि गाननाट्यानि कारयेत्।
लिङ्गादौ शिवयोश्चिन्तां कृत्वा शक्त्या जपेत् शिवम्॥ ६५
प्रदक्षिणं प्रणामं च स्तवं चात्मसमर्पणम्।
विज्ञापनं च कार्याणां कुर्याद्विनयपूर्वकम्॥ ६६

तत्पश्चात् प्रोक्षणीय पदार्थोंका प्रोक्षण करके नृत्य और गीतका आयोजन करे। लिंग या मूर्ति आदिमें शिव तथा पार्वतीका चिन्तन करते हुए यथाशक्ति शिव-मन्त्रका जप करे। जपके पश्चात् प्रदक्षिणा, नमस्कार, स्तुतिपाठ, आत्मसमर्पण तथा कार्यका विनयपूर्वक विज्ञापन करे॥ ६५-६६॥

अर्घ्यं पुष्पाञ्जलिं दत्त्वा बद्ध्वा मुद्रां यथाविधि।
पश्चात्क्षमापयेद्देवमुद्वास्यात्मनि चिन्तयेत्॥ ६७
पाद्यादिमुखवासान्तमर्घ्याद्यं चातिसङ्कटे।
पुष्पविक्षेपमात्रं वा कुर्याद्भावपुरःसरम्॥ ६८

फिर अर्घ्य और पुष्पांजलि दे विधिवत् मुद्रा बाँधकर इष्टदेवसे त्रुटियोंके लिये क्षमा-प्रार्थना करे। तत्पश्चात् मूर्तिसहित देवताका विसर्जन करके अपने हृदयमें उसका चिन्तन करे। पाद्यसे लेकर मुखवासपर्यन्त पूजन करना चाहिये अथवा अर्घ्य आदिसे पूजन आरम्भ करना चाहिये या अधिक संकटकी स्थितिमें प्रेमपूर्वक केवल फूलमात्र चढ़ा देना चाहिये॥ ६७-६८॥

तावतैव परो धर्मो भावेन सुकृतो भवेत्।
असम्पूज्य न भुञ्जीत शिवमाप्राणसञ्चरात्॥ ६९

प्रेमपूर्वक उतनेसे ही अर्थात् फूलमात्र चढ़ा देनेसे ही परम धर्मका सम्पादन हो जाता है। जबतक प्राण रहे शिवका पूजन किये बिना भोजन न करे॥ ६९॥

यदि पापस्तु भुंजीत स्वैरं तस्य न निष्कृतिः।
प्रमादेन तु भुंक्ते चेत्तदुद्गीर्य प्रयत्नतः॥ ७०
स्नात्वा द्विगुणमभ्यर्च्य देवं देवीमुपोष्य च।

यदि कोई पापी स्वेच्छासे भोजन ग्रहण करता है, तो उसके पापका प्रतिकार नहीं हो सकता। यदि भूलसे खा ले तो उसे प्रयत्नपूर्वक उगल दे। स्नान करके शिव तथा पार्वतीका दोगुना पूजनकर निराहार

शिवस्यायुतमभ्यस्येद् ब्रह्मचर्यपुरःसरम्॥ ७१
परेद्युः शक्तितो दत्त्वा सुवर्णाद्यं शिवाय च।
शिवभक्ताय वा कृत्वा महापूजां शुचिर्भवेत्॥ ७२

रहकर ब्रह्मचर्यपूर्वक शिवका दस हजार जप करे और दूसरे दिन यथाशक्ति शिवको अथवा शिवभक्तको सुवर्ण आदि प्रदानकर महापूजा करके वह पवित्र हो जाता है॥ ७०—७२॥

इति श्रीशिवमहापुराणे सप्तम्यां वायवीयसंहितायामुत्तरखण्डे शास्त्रोक्तशिवपूजनवर्णनं नाम चतुर्विंशोऽध्यायः॥ २४॥

॥ इस प्रकार श्रीशिवमहापुराणके अन्तर्गत सातवीं वायवीयसंहिताके उत्तरखण्डमें शास्त्रोक्त शिवपूजनवर्णन नामक चौबीसवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ २४॥

अथ पञ्चविंशोऽध्यायः

शिवपूजाकी विशेष विधि तथा शिव-भक्तिकी महिमा

उपमन्युरुवाच

अनुक्तं चात्र पूजायाः क्रमलोपभयादिव।
यत्तदन्यत्प्रवक्ष्यामि समासान्न तु विस्तरात्॥ १

उपमन्यु बोले—हे कृष्ण! इस विषयमें जो कुछ नहीं कह पाया हूँ, उसे पूजाके क्रमके लोप होनेके भयसे विस्तारपूर्वक तो नहीं, अपितु संक्षेपमें ही कहूँगा॥ १॥

हविर्निवेदनात्पूर्वं दीपदानादनन्तरम्।
कुर्यादावरणाभ्यर्चां प्राप्ते नीराजनेऽथवा॥ २

उपमन्यु कहते हैं—यदुनन्दन! दीपदानके बाद और नैवेद्य-निवेदनसे पहले आवरण-पूजा करनी चाहिये अथवा आरतीका समय आनेपर आवरणपूजा करे॥ २॥

तत्रेशानादिसद्यान्तं रुद्राद्यस्त्रान्तमेव च।
शिवस्य वा शिवायाश्च प्रथमावरणे यजेत्॥ ३

वहाँ शिव या शिवाके प्रथम आवरणमें ईशानसे लेकर 'सद्योजातपर्यन्त' तथा हृदयसे लेकर अस्त्रपर्यन्तका पूजन करे*॥ ३॥

ऐशान्यां पूर्वभागे च दक्षिणे चोत्तरे तथा।
पश्चिमे च तथाग्नेय्यामैशान्यां नैर्ऋते तथा॥ ४
वायव्यां पुनरैशान्यां चतुर्दिक्षु ततः परम्।
गर्भावरणमाख्यातं मन्त्रसंघातमेव वा॥ ५
हृदयाद्यस्त्रपर्यन्तमथवापि समर्चयेत्।

ईशानमें, पूर्वभागमें, दक्षिणमें, उत्तरमें, पश्चिममें, आग्नेयकोणमें, ईशानकोणमें, नैर्ऋत्यकोणमें, वायव्यकोणमें, फिर ईशानकोणमें तत्पश्चात् चारों दिशाओंमें गर्भावरण अथवा मन्त्र-संघातकी पूजा बतायी गयी है या हृदयसे लेकर अस्त्रपर्यन्त अंगोंकी पूजा करे॥ ४-५१/२॥

तद्बहिः पूर्वतः शक्रं यमं दक्षिणतो यजेत्॥ ६
वरुणं वारुणे भागे धनदं चोत्तरे बुधः।
ईशमैशेऽनलं स्वीये नैर्ऋते निर्ऋतिं यजेत्॥ ७
मारुते मारुतं विष्णुं नैर्ऋते विधिमैश्वरे।

इनके बाह्यभागमें पूर्वदिशामें इन्द्रका, दक्षिण-दिशामें यमका, पश्चिम दिशामें वरुणका, उत्तर दिशामें कुबेरका, ईशानकोणमें ईशानका, अग्निकोणमें अग्निका, नैर्ऋत्य-कोणमें निर्ऋतिका, वायव्यकोणमें वायुका, नैर्ऋत्य और पश्चिमके बीचमें अनन्त या विष्णुका तथा ईशान और पूर्वके बीचमें ब्रह्माका पूजन करे॥ ६-७१/२॥

* अर्थात्—ईशान, तत्पुरुष, अघोर, वामदेव और सद्योजात—इन पाँच मूर्तियोंका तथा हृदय, सिर, शिखा, कवच, नेत्र और अस्त्र—इन अंगोंका पूजन करना चाहिये।

बहिःपद्मस्य वज्राद्यान्याब्जान्तान्यायुधान्यपि॥ ८
प्रसिद्धरूपाण्याशासु लोकेशानां क्रमाद्यजेत्।
देवं देवीं च संप्रेक्ष्य सर्वावरणदेवताः॥ ९
बद्धाञ्जलिपुटा ध्येयाः समासीना यथासुखम्।
सर्वावरणदेवानां स्वाभिधानैर्नमोयुतैः॥ १०
पुष्पैः सम्पूजनं कुर्यान्नत्वा सर्वान्यथाक्रमम्।
गर्भावरणमेवापि यजेत्स्वावरणेन वा॥ ११

कमलके बाह्यभागमें वज्रसे लेकर कमलपर्यन्त लोकेश्वरोंके सुप्रसिद्ध आयुधोंका पूर्वादि दिशाओंमें क्रमशः पूजन करे। यह ध्यान करना चाहिये कि समस्त आवरणदेवता सुखपूर्वक बैठकर महादेव और महादेवीकी ओर दोनों हाथ जोड़े देख रहे हैं। फिर सभी आवरण देवताओंको प्रणाम करके '**नमः**' पदयुक्त अपने-अपने नामसे पुष्पोपचार समर्पणपूर्वक उनका क्रमशः पूजन करे। (यथा **इन्द्राय नमः पुष्पं समर्पयामि** इत्यादि।) इसी तरह गर्भावरणका भी अपने आवरण-सम्बन्धी मन्त्रसे यजन करे॥ ८—११॥

योगे ध्याने जपे होमे बाह्ये वाभ्यन्तरेऽपि वा।
हविश्च षड्विधं देयं शुद्धं मुद्गान्नमेव च॥ १२
पायसं दधिसंमिश्रं गौडं च मधुनाप्लुतम्।
एतेष्वेकमनेकं वा नानाव्यञ्जनसंयुतम्॥ १३
गुडखण्डान्वितं दद्यान्मथितं दधि चोत्तमम्।
भक्ष्याण्यपूपमुख्यानि स्वादुमन्ति फलानि च॥ १४

योग, ध्यान, होम, जप और बाह्य अथवा आभ्यन्तरमें भी देवताका पूजन करना चाहिये। इसी तरह उनके लिये छः प्रकारकी हवि भी देनी चाहिये—किसी एक शुद्ध अन्नका बना हुआ, मूँगमिश्रित अन्न या मूँगकी खिचड़ी, खीर, दधिमिश्रित अन्न, गुड़का बना हुआ पकवान तथा मधुसे तर किया हुआ भोज्य पदार्थ—इनमेंसे एक या अनेक हविष्यको नाना प्रकारके व्यंजनोंसे संयुक्त तथा गुड़ और खाँड़से सम्पन्न करके नैवेद्यके रूपमें अर्पित करना चाहिये। साथ ही मक्खन और उत्तम दही परोसना चाहिये। पूआ आदि अनेक प्रकारके भक्ष्य पदार्थ और स्वादिष्ट फल देने चाहिये॥ १२—१४॥

रक्तचन्दनपुष्पाढ्यं पानीयं चातिशीतलम्।
मृदु एलारसाक्तं च खण्डं पूगफलस्य च॥ १५
दलानि नागवल्ल्याश्च युक्तानि खदिरादिभिः।
गौराणि स्वर्णवर्णानि विहितानि शिवानि च।
शैलमेव सितं चूर्णं नातिरूक्षं न दूषितम्॥ १६
कर्पूरं चाथ कङ्कोलं जात्यादि च नवं शुभम्।
आलेपनं चन्दनं स्यान्मूलकाष्ठं रजोमयम्॥ १७
कस्तूरिका कुंकुमं च रसो मृगमदात्मकः।
पुष्पाणि सुरभीण्येव पवित्राणि शुभानि च॥ १८

लाल चन्दन और पुष्पवासित अत्यन्त शीतल जल अर्पित करना चाहिये। मुख-शुद्धिके लिये मधुर इलायचीके रससे युक्त सुपारीके कोमल टुकड़े, खैर आदिसे युक्त सुनहरे रंगके पीले पानके पत्तोंके बने हुए बीड़े, शिलाजीतका चूर्ण, सफेद चूना, जो अधिक रूखा या दूषित न हो, कपूर, कंकोल, नूतन एवं सुन्दर जायफल आदि अर्पित करने चाहिये। आलेपनके लिये चन्दनका मूलकाष्ठ अथवा उसका चूरा, कस्तूरी, कुंकुम, मृगमदात्मक रस होने चाहिये। फूल वे ही चढ़ाने चाहिये, जो सुगन्धित, पवित्र और सुन्दर हों॥ १५—१८॥

निर्गन्धान्युग्रगन्धानि दूषितान्युषितानि च।
स्वयमेव विशीर्णानि न देयानि शिवार्चने॥ १९
वासांसि च मृदून्येव तपनीयमयानि च।

गन्धरहित, उत्कट गन्धवाले, दूषित, बासी तथा स्वयं ही टूटकर गिरे हुए फूल शिवके पूजनमें नहीं देने चाहिये। कोमल वस्त्र ही चढ़ाने चाहिये। भूषणोंमें विशेषतः वे ही अर्पित करने चाहिये, जो सोनेके बने

विद्युद्वलयकल्पानि भूषणानि विशेषतः॥ २०
सर्वाण्येतानि कर्पूरनिर्यासागुरुचन्दनैः।
आधूपितानि पुष्पौघैर्वासितानि समन्ततः॥ २१
चन्दनागुरुकर्पूरकाष्ठगुग्गुलुचूर्णकैः।
घृतेन मधुना चैव सिद्धो धूपः प्रशस्यते॥ २२

कपिलासम्भवेनैव घृतेनातिसुगन्धिना।
नित्यं प्रदीपिता दीपाः शस्ताः कर्पूरसंयुताः॥ २३

पञ्चगव्यं च मधुरं पयो दधि घृतं तथा।
कपिलासम्भवं शम्भोरिष्टं स्नाने च पानके॥ २४

आसनानि च भद्राणि गजदन्तमयानि च।
सुवर्णरत्नयुक्तानि चित्राण्यास्तरणानि च॥ २५

मृदूपधानयुक्तानि सूक्ष्मतूलमयानि च।
उच्चावचानि रम्याणि शयनानि सुखानि च॥ २६

नद्याः समुद्रगामिन्या नदाद्वाम्भः समाहृतम्।
शीतञ्च वस्त्रपूतं तद्विशिष्टं स्नानपानयोः॥ २७

छत्रं शशिनिभं चारु मुक्तादामविराजितम्।
नवरत्नचितं दिव्यं हेमदण्डमनोहरम्॥ २८

चामरे च सिते सूक्ष्मे चामीकरपरिष्कृते।
राजहंसद्वयाकारे रत्नदण्डोपशोभिते॥ २९

दर्पणं चापि सुस्निग्धं दिव्यगन्धानुलेपनम्।
समन्ताद्रत्नसञ्छन्नं स्रग्वरैश्चापि भूषितम्॥ ३०

गम्भीरनिनदः शंखो हंसकुंदेन्दुसन्निभः।
आस्यपृष्ठादिदेशेषु रत्नचामीकराचितः॥ ३१

काहलानि च रम्याणि नानानादकराणि च।
सुवर्णनिर्मितान्येव मौक्तिकालंकृतानि च॥ ३२

हुए तथा विद्युन्मण्डलके समान चमकीले हों, ये सब वस्तुएँ कपूर, गुग्गुल, अगुरु और चन्दनसे आधूपित तथा पुष्पसमूहोंसे सुवासित होनी चाहिये। चन्दन, अगुरु, कपूर, सुगन्धित काष्ठ तथा गुग्गुलके चूर्ण, घी और मधुसे बना हुआ धूप उत्तम माना गया है॥ १९—२२॥

कपिला गायके अत्यन्त सुगन्धित घीसे प्रतिदिन जलाये गये कर्पूरयुक्त दीप श्रेष्ठ माने गये हैं। पंचगव्य, मीठे पदार्थ और कपिला गायका दूध, दही एवं घी—ये सब भगवान् शंकरके स्नान और पानके लिये अभीष्ट हैं॥ २३-२४॥

हाथीके दाँतके बने हुए भद्रासन, जो सुवर्ण एवं रत्नोंसे जटित हैं, शिवके लिये श्रेष्ठ बताये गये हैं। उन आसनोंपर विचित्र बिछावन, कोमल गद्दे और तकिये होने चाहिये। इनके सिवा और भी बहुत-सी छोटी-बड़ी सुन्दर एवं सुखद शय्याएँ होनी चाहिये॥ २५-२६॥

समुद्रगामिनी नदी एवं नदसे लाया तथा कपड़ेसे छानकर रखा हुआ शीतल जल भगवान् शंकरके स्नान और पानके लिये श्रेष्ठ कहा गया है। चन्द्रमाके समान उज्ज्वल छत्र, जो मोतियोंकी लड़ियोंसे सुशोभित, नवरत्नजटित, दिव्य एवं सुवर्णमय दण्डसे मनोहर हो, भगवान् शिवकी सेवामें अर्पित करनेयोग्य हैं॥ २७-२८॥

सुवर्णभूषित दो श्वेत चँवर, जो रत्नमय दण्डोंसे शोभायमान तथा दो राजहंसोंके समान आकारवाले हों, शिवकी सेवामें देनेयोग्य हैं। सुन्दर एवं स्निग्ध दर्पण, जो दिव्य गन्धसे अनुलिप्त, सब ओरसे रत्नोंद्वारा आच्छादित तथा सुन्दर हारोंसे विभूषित हो, भगवान् शंकरको अर्पित करना चाहिये॥ २९-३०॥

उनके पूजनमें हंस, कुन्द एवं चन्द्रमाके समान उज्ज्वल तथा गम्भीर ध्वनि करनेवाले शंखका उपयोग करना चाहिये, जिसके मुख और पृष्ठ आदि भागोंमें रत्न एवं सुवर्ण जड़े गये हों। शंखके सिवा नाना प्रकारकी ध्वनि करनेवाले सुन्दर काहल (वाद्यविशेष), जो सुवर्णनिर्मित तथा मोतियोंसे अलंकृत हों, बजाने चाहिये॥ ३१-३२॥

भेरीमृदङ्गमुरजतिमिच्छपटहादयः ।
समुद्रकल्पसन्नादाः कल्पनीयाः प्रयत्नतः ॥ ३३
भाण्डान्यपि च रम्याणि पात्राण्यपि च कृत्स्नशः ।
तदाधाराणि सर्वाणि सौवर्णान्येव साधयेत् ॥ ३४
आलयं च महेशस्य शिवस्य परमात्मनः ।
राजावसथवत्कल्प्यं शिल्पशास्त्रोक्तलक्षणम् ॥ ३५
उच्चप्राकारसंभिन्नं भूधराकारगोपुरम् ।
अनेकरत्नसंछन्नं हेमद्वारकपाटकम् ॥ ३६
तप्तजाम्बूनदमयं रत्नस्तम्भशतावृतम् ।
मुक्तादामवितानाढ्यं विद्रुमद्वारतोरणम् ॥ ३७
चामीकरमयैर्दिव्यैर्मुकुटैः कुम्भलक्षणैः ।
अलंकृतशिरोभागमस्त्रराजेन चिह्नितम् ॥ ३८
राजन्यार्हनिवासैश्च राजवीथ्यादिशोभितैः ।
प्रोच्छ्रितप्रांशुशिखरैः प्रासादैश्च समन्ततः ॥ ३९
आस्थानस्थानवर्यैश्च स्थितैर्दिक्षु विदिक्षु च ।
अत्यन्तालंकृतप्रान्तमन्तरावरणैरिव ॥ ४०
उत्तमस्त्रीसहस्त्रैश्च नृत्यगेयविशारदैः ।
वेणुवीणाविदग्धैश्च पुरुषैर्बहुभिर्युतम् ॥ ४१
रक्षितं रक्षिभिर्वीरैर्गजवाजिरथान्वितैः ।
अनेकपुष्पवाटीभिरनेकैश्च सरोवरैः ॥ ४२
दीर्घिकाभिरनेकाभिर्दिग्विदिक्षु विराजितम् ।
वेदवेदान्ततत्त्वज्ञैः शिवशास्त्रपरायणैः ॥ ४३
शिवाश्रमरतैर्भक्तैः शिवशास्त्रोक्तलक्षणैः ।
शान्तैः स्मितमुखैः स्फीतैः सदाचारपरायणैः ॥ ४४
शैवैर्माहेश्वरैश्चैव श्रीमद्भिः सेवितं द्विजैः ।
एवमन्तर्बहिर्वाथ यथाशक्तिविनिर्मितैः ॥ ४५
स्थाने शिलामये दान्ते दारवे चेष्टकामये ।

इनके अतिरिक्त भेरी, मृदंग, मुरज, तिमिच्छ और पटह आदि बाजे भी, जो समुद्रकी गर्जनाके समान ध्वनि करनेवाले हों, यत्नपूर्वक जुटाकर रखने चाहिये। पूजाके सभी पात्र, भाण्ड और उनके आधार भी सुवर्णके ही बनवाये ॥ ३३-३४ ॥

परमात्मा महेश्वर शिवका मन्दिर राजमहलके समान बनवाना चाहिये, जो शिल्पशास्त्रमें बताये हुए लक्षणोंसे युक्त हो। वह ऊँची चहारदीवारीसे घिरा हो। उसका गोपुर इतना ऊँचा हो कि पर्वताकार दिखायी दे। वह अनेक प्रकारके रत्नोंसे आच्छादित हो। उसके दरवाजेके फाटक सोनेके बने हुए हों ॥ ३५-३६ ॥

उस मन्दिरके मण्डपमें तपाये हुए सोने तथा रत्नोंके सैकड़ों खम्भे लगे हों। चँदोवेमें मोतियोंकी लड़ियाँ लगी हुई हों। दरवाजेके फाटकमें मूँगे जड़े गये हों। मन्दिरका शिखर सोनेके बने हुए दिव्य कलशाकार मुकुटोंसे अलंकृत एवं अस्त्रराज त्रिशूलसे चिह्नित हो ॥ ३७-३८ ॥

वह मन्दिर राजमार्गोंसे शोभायमान तथा चारों ओरसे अत्यधिक ऊँचे शिखरोंवाले राजोचित भवनोंसे युक्त होना चाहिये। उसमें दिशाओं और विदिशाओंमें उत्तम सभाभवन, विश्रामभूमियाँ आदि हों तथा उसका अन्तर्भाग सभी प्रकारसे अलंकृत होना चाहिये। नृत्य तथा गायनमें पारंगत हजारों स्त्रियों तथा वीणा, वेणु आदिके वादनमें निपुण पुरुषोंसे उसे युक्त होना चाहिये। गज, अश्व तथा रथोंसे युक्त वीर रक्षकोंसे वह रक्षित हो तथा उसमें सभी दिशाओं-विदिशाओंमें अनेक पुष्पोद्यान और सरोवर हों ॥ ३९—४२ ॥

उस भवनके सभी ओर बहुत-सी बावलियाँ बनायी गयी हों। वेद तथा वेदान्त विद्याके मर्मको समझनेवाले, शिवशास्त्रपरायण, शैवधर्मके अनुपालक, शिवशास्त्रमें बताये गये लक्षणोंसे सम्पन्न, शान्त, प्रसन्नमुख, भक्तिनिष्ठ, सदाचारनिरत तथा सौभाग्यसम्पन्न शैव और माहेश्वर द्विजोंसे वह सेवित हो रहा हो ॥ ४३-४४१/२ ॥

अपने सामर्थ्यके अनुरूप इस प्रकारकी आन्तरिक तथा बाह्य संरचनावाले स्थानपर या कि शिलानिर्मित, हाथीदाँतसे निर्मित, काष्ठनिर्मित, ईंटोंसे बने या केवल

केवलं मृण्मये वापि पुण्यारण्येऽथवा गिरौ ॥ ४६
नद्यां देवालयेऽन्यत्र देशे वाथ गृहे शुभे।
आढ्यो वाथ दरिद्रो वा स्वकां शक्तिमवंचयन्।
द्रव्यैर्न्यायार्जितैरेव भक्त्या देवं समर्च्चयेत् ॥ ४७

मृत्तिकासे निर्मित भवनमें अथवा किसी पावन वन, पर्वत, नदीतट, देवमन्दिर, किसी पवित्र क्षेत्रमें या शुभ गृहमें समृद्ध अथवा विपन्न साधकको अपने सामर्थ्यके अनुरूप न्यायोपार्जित द्रव्योंसे भक्तिपूर्वक महादेवजीकी पूजा करनी चाहिये ॥ ४५—४७ ॥

अथान्यायार्जितैश्चापि भक्त्या चेच्छिवमर्च्चयेत्।
न तस्य प्रत्यवायोऽस्ति भाववश्यो यतः प्रभुः ॥ ४८

न्यायार्जितैरपि द्रव्यैरभक्त्या पूजयेद्यदि।
न तत्फलमवाप्नोति भक्तिरेवात्र कारणम् ॥ ४९

यदि कोई अन्यायोपार्जित द्रव्यसे भी भक्तिपूर्वक शिवजीकी पूजा करता है तो उसे भी कोई पाप नहीं लगता; क्योंकि भगवान् भावके वशीभूत हैं। न्यायोपार्जित धनसे भी यदि कोई बिना भक्तिके पूजन करता है तो उसे उसका फल नहीं मिलता; क्योंकि पूजाकी सफलतामें भक्ति ही कारण है ॥ ४८-४९ ॥

भक्त्या वित्तानुसारेण शिवमुद्दिश्य यत्कृतम्।
अल्पे महति वा तुल्यं फलमाढ्यदरिद्रयोः ॥ ५०

भक्त्या प्रचोदितः कुर्यादल्पवित्तोऽपि मानवः।
महाविभवसारोऽपि न कुर्याद् भक्तिवर्जितः ॥ ५१

भक्तिसे अपने वैभवके अनुसार भगवान् शिवके उद्देश्यसे जो कुछ किया जाय वह थोड़ा हो या बहुत, करनेवाला धनी हो या दरिद्र, दोनोंका समान फल है। जिसके पास बहुत थोड़ा धन है, वह मानव भी भक्तिभावसे प्रेरित होकर भगवान् शिवका पूजन कर सकता है, किंतु महान् वैभवशाली भी यदि भक्तिहीन है तो उसे शिवका पूजन नहीं करना चाहिये ॥ ५०-५१ ॥

सर्वस्वमपि यो दद्याच्छिवे भक्तिविवर्जितः।
न तेन फलभाक् स स्याद् भक्तिरेवात्र कारणम् ॥ ५२

न तत्तपोभिरत्युग्रैर्न च सर्वैर्महामखैः।
गच्छेच्छिवपुरं दिव्यं मुक्त्वा भक्तिं शिवात्मिकाम् ॥ ५३

गुह्याद्गुह्यतरं कृष्ण सर्वत्र परमेश्वरे।
शिवे भक्तिर्न संदेहस्तया युक्तो विमुच्यते ॥ ५४

शिवके प्रति भक्तिहीन पुरुष यदि अपना सर्वस्व भी दे डाले तो उससे वह शिवाराधनाके फलका भागी नहीं होता; क्योंकि आराधनामें भक्ति ही कारण है। शिवके प्रति भक्तिको छोड़कर कोई अत्यन्त उग्र तपस्याओं और सम्पूर्ण महायज्ञोंसे भी दिव्य शिवधाममें नहीं जा सकता। अतः श्रीकृष्ण! सर्वत्र परमेश्वर शिवके आराधनमें भक्तिका ही महत्त्व है। यह गुह्यसे भी गुह्यतर बात है। इसमें संदेह नहीं है ॥ ५२—५४ ॥

शिवमन्त्रजपो ध्यानं होमो यज्ञस्तपःश्रुतम्।
दानमध्ययनं सर्वं भावार्थं नात्र संशयः ॥ ५५

भावहीनो नरः सर्वं कृत्वापि न विमुच्यते।
भावयुक्तः पुनः सर्वमकृत्वापि विमुच्यते ॥ ५६

शिवमन्त्रका जप, ध्यान, होम, यज्ञ, तप, वेदाभ्यास, दान तथा अध्ययन—ये सब भाव (भक्ति)-के लिये ही हैं, इसमें सन्देह नहीं है। भावरहित मनुष्य इन सबका अनुष्ठान करके भी मुक्त नहीं होता है, किंतु भावयुक्त मनुष्य ये सब बिना किये भी मुक्त हो जाता है ॥ ५५-५६ ॥

चान्द्रायणसहस्त्रैश्च प्राजापत्यशतैस्तथा।
मासोपवासैश्चान्यैश्च शिवभक्तस्य किं पुनः ॥ ५७

अभक्ता मानवाश्चास्मिँल्लोके गिरिगुहासु च।
तपंति चाल्पभोगार्थं भक्तो भावेन मुच्यते ॥ ५८

हजारों चान्द्रायण व्रतों, सैकड़ों प्राजापत्य व्रतों, महीनेभरके उपवासों तथा अन्य [सत्कर्मों]-से शिवभक्तको क्या प्रयोजन! इस लोकमें भक्तिहीन मनुष्य अल्प भोगोंके लिये पर्वतकी कन्दराओंमें तप करते हैं, पर भक्त तो भावसे ही मुक्त भी हो जाता है ॥ ५७-५८ ॥

सात्त्विकं मुक्तिदं कर्म सत्त्वे वै योगिनः स्थिताः।
राजसं सिद्धिदं कुर्युः कर्मिणो रजसावृताः॥ ५९

असुरा राक्षसाश्चैव तमोगुणसमन्विताः।
ऐहिकार्थं यजन्तीशं नराश्चान्येऽपि तादृशाः॥ ६०

सात्त्विक कर्म मुक्ति देनेवाला होता है, अतः योगी सत्त्वमें ही स्थित रहते हैं। कर्मपरायण रजोगुणी लोग सिद्धि प्रदान करनेवाले राजस कर्म करते हैं। तमोगुणसे युक्त असुर, राक्षस तथा वैसे ही दूसरे मनुष्य लौकिक कामनाओंकी प्राप्तिके लिये शिवका यजन करते हैं॥ ५९-६०॥

तामसं राजसं वापि सात्त्विकं भावमेव च।
आश्रित्य भक्त्या पूजाद्यं कुर्वन् भद्रं समश्नुते॥ ६१

तामस, राजस अथवा सात्त्विक—किसी भी भावका आश्रय लेकर भक्तिपूर्वक पूजा आदि करनेवाला कल्याण प्राप्त करता है॥ ६१॥

यतः पापार्णवात् त्रातुं भक्तिर्नौरिव निर्मिता।
तस्माद्भक्त्युपपन्नस्य रजसा तमसा च किम्॥ ६२

अन्त्यजो वाधमो वापि मूर्खो वा पतितोऽपि वा।
शिवं प्रपन्नश्चेत् कृष्ण पूज्यः सर्वसुरासुरैः॥ ६३

तस्मात् सर्वप्रयत्नेन भक्त्यैव शिवमर्चयेत्।
अभक्तानां क्वचिदपि फलं नास्ति यतस्ततः॥ ६४

पापके महासागरको पार करनेके लिये भगवान् शिवकी भक्ति नौकाके समान है। इसलिये जो भक्तिभावसे युक्त है, उसे रजोगुण और तमोगुणसे क्या हानि हो सकती है? श्रीकृष्ण! अन्त्यज, अधम, मूर्ख अथवा पतित मनुष्य भी यदि भगवान् शिवकी शरणमें चला जाय तो वह समस्त देवताओं एवं असुरोंके लिये भी पूजनीय हो जाता है। अतः सर्वथा प्रयत्न करके भक्तिभावसे ही शिवकी पूजा करे; क्योंकि अभक्तोंको कहीं भी फल नहीं मिलता॥ ६२—६४॥

वक्ष्याम्यतिरहस्यं ते शृणु कृष्ण वचो मम।
वेदैः शास्त्रैर्वेदविद्भिर्विचार्य सुविनिश्चितम्॥ ६५

हे कृष्ण! अब मैं आपको एक परम रहस्य बताऊँगा, आप मेरा वचन सुनिये, वेदोंके विद्वानोंने वेदों तथा शास्त्रोंके द्वारा विचार करके इसे सुनिश्चित किया है॥ ६५॥

इति श्रीशिवमहापुराणे सप्तम्यां वायवीयसंहितायामुत्तरखण्डे शिवशास्त्रोक्तपूजनवर्णनं नाम पञ्चविंशोऽध्यायः॥ २५॥

॥ इस प्रकार श्रीशिवमहापुराणके अन्तर्गत सातवीं वायवीयसंहिताके उत्तरखण्डमें शिवशास्त्रोक्त पूजनवर्णन नामक पचीसवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ २५॥

अथ षड्विंशोऽध्यायः

सांगोपांगपूजाविधानका वर्णन

उपमन्युरुवाच

ब्रह्मघ्नो वा सुरापो वा स्तेयी वा गुरुतल्पगः।
मातृहा पितृहा वापि वीरहा भ्रूणहापि वा॥ १

सम्पूज्यामन्त्रकं भक्त्या शिवं परमकारणम्।
तैस्तैः पापैः प्रमुच्येत वर्षैर्द्वादशभिः क्रमात्॥ २

तस्मात् सर्वप्रयत्नेन पतितोऽपि यजेत् शिवम्।
भक्तश्चेन्नापरः कश्चिद्भिक्षाहारो जितेंद्रियः॥ ३

उपमन्यु बोले—ब्राह्मणहन्ता, सुरापान करनेवाला, चोरी करनेवाला, गुरुपत्नीके साथ व्यभिचार करनेवाला, माता-पिताका वध करनेवाला, राजहन्ता तथा भ्रूणहत्या करनेवाला भी बिना मन्त्रके ही भक्तिपूर्वक परम कारण शिवका पूजन करके उन-उन पापोंसे क्रमसे बारह वर्षोंमें मुक्त हो जाता है। अतः पतितको भी सभी प्रयत्नोंसे शिवकी पूजा करनी चाहिये। भक्त ही मुक्त होता है, दूसरा कोई नहीं, चाहे वह भिक्षाहारी और जितेन्द्रिय ही हो॥ १—३॥

कृत्वापि सुमहत्पापं भक्त्या पञ्चाक्षरेण तु।
पूजयेद्यदि देवेशं तस्मात्पापात्प्रमुच्यते॥ ४

उपमन्यु कहते हैं—[यदुनन्दन!] कोई बड़ा भारी पाप करके भी भक्तिभावसे पंचाक्षर-मन्त्रद्वारा यदि देवेश्वर शिवका पूजन करे तो वह उस पापसे मुक्त हो जाता है॥ ४॥

अब्भक्षा वायुभक्षाश्च ये चान्ये व्रतकर्शिताः।
तेषामेतैर्व्रतैर्नास्ति शिवलोकसमागमः॥ ५

जो जल तथा वायुका आहार ग्रहण करनेवाले और व्रतोंके द्वारा शरीरको कृश करनेवाले अन्य लोग हैं, [वे भले ही इनका आचरण करते रहें, पर बिना शिवभक्तिके] उनका इन व्रतोंके द्वारा शिवलोक-सान्निध्य नहीं हो सकता है॥ ५॥

भक्त्या पञ्चाक्षरेणैव यः शिवं सकृदर्चयेत्।
सोऽपि गच्छेच्छिवस्थानं शिवमन्त्रस्य गौरवात्॥ ६

जो भक्तिभावसे पंचाक्षर-मन्त्रद्वारा एक ही बार शिवका पूजन कर लेता है, वह भी शिवमन्त्रके गौरववश शिवधामको चला जाता है॥ ६॥

तस्मात्तपांसि यज्ञाश्च सर्वे सर्वस्वदक्षिणाः।
शिवमूर्त्यर्चनस्यैते कोट्यंशेनापि नो समाः॥ ७

अतः सभी तप, यज्ञ तथा सर्वस्व दक्षिणाएँ—ये सब शिवमूर्तिके पूजनके करोड़वें अंशके भी बराबर नहीं हैं॥ ७॥

बद्धो वाप्यथ मुक्तो वा पाशात्पञ्चाक्षरेण चेत्।
पूजयन्मुच्यते भक्तो नात्र कार्या विचारणा॥ ८

अरुद्रो वा सरुद्रो वा सूक्तेन शिवमर्चयेत्।
यः सकृत्पतितो वापि मूढो वा मुच्यते नरः॥ ९

कोई बद्ध हो अथवा मुक्त हो, पंचाक्षरमन्त्रसे पूजा करनेवाला भक्त मुक्त हो जाता है, इसमें कोई विचार नहीं करना चाहिये। कोई सरुद्र अर्थात् रुद्रोपासक हो या अरुद्र अर्थात् परम्परासे उपासक न हो, अथवा पतित या मोहग्रस्त ही क्यों न हो, किंतु [शास्त्रोंमें] भलीभाँति कहे गये [पंचाक्षरमन्त्र]-के द्वारा यदि एक बार भी शिवपूजन करता है तो उसे मोक्ष प्राप्त होता है॥ ८-९॥

षडक्षरेण वा देवं सूक्तमन्त्रेण पूजयेत्।
शिवभक्तो जितक्रोधो ह्यलब्धो लब्ध एव च॥ १०

दीक्षित अथवा अदीक्षित शिवभक्तको चाहिये कि वह क्रोधादि विकारोंको जीतकर [शास्त्रोंमें] भलीभाँति प्रतिपादित इस षडक्षरमन्त्रके द्वारा भगवान् शिवका पूजन करे॥ १०॥

अलब्धाल्लब्ध एवात्र विशिष्टो नात्र संशयः।
सब्रह्माङ्गेन वा तेन सहंसेन विमुच्यते॥ ११

दीक्षाविहीनकी अपेक्षा शिवोपासनामें दीक्षित साधकका विशेष अधिकार निश्चय ही बताया गया है। पंच ब्रह्ममन्त्रों तथा हंस मन्त्रके [पारायण-जप आदिके] द्वारा मनुष्य मोक्ष प्राप्त कर लेता है॥ ११॥

तस्मान्नित्यं शिवं भक्त्या सूक्तमन्त्रेण पूजयेत्।
एककालं द्विकालं वा त्रिकालं नित्यमेव वा॥ १२

येऽर्चयन्ति महादेवं विज्ञेयास्ते महेश्वराः।
ज्ञानेनात्मसहायेन नार्चितो भगवान् शिवः॥ १३
स चिरं संसरत्यस्मिन् संसारे दुःखसागरे।

अतः प्रतिदिन भक्तिपूर्वक इस प्रशंसित मन्त्रसे शिवका पूजन करना चाहिये। जो लोग प्रतिदिन एक समय, दो समय अथवा तीन समय महादेवकी पूजा करते हैं, उन्हें [साक्षात्] शिवका प्रमुख गण समझना चाहिये। जिसने आत्मसहायक ज्ञानसे भगवान् शिवका अर्चन नहीं किया, वह इस दुःखसागररूपी संसारमें दीर्घकालतक भ्रमण करता रहता है॥ १२-१३१/२॥

दुर्लभं प्राप्य मानुष्यं मूढो नार्चयते शिवम्॥ १४
निष्फलं तस्य तज्जन्म मोक्षाय न भवेद्यतः।

जो मूढ़ दुर्लभ मानव-जन्म पाकर भगवान् शिवकी अर्चना नहीं करता, उसका वह जन्म निष्फल है; क्योंकि वह मोक्षका साधक नहीं होता॥ १४१/२॥

दुर्लभं प्राप्य मानुष्यं येऽर्चयन्ति पिनाकिनम्॥ १५
तेषां हि सफलं जन्म कृतार्थास्ते नरोत्तमाः।
भवभक्तिपरा ये च भवप्रणतचेतसः॥ १६
भवसंस्मरणोद्युक्ता न ते दुःखस्य भागिनः।

जो दुर्लभ मानव-जन्म पाकर पिनाकपाणि महादेवजीकी आराधना करते हैं, उन्हींका जन्म सफल है और वे ही कृतार्थ एवं श्रेष्ठ मनुष्य हैं। जो भगवान् शिवकी भक्तिमें तत्पर रहते हैं, जिनका चित्त भगवान् शिवके सामने प्रणत होता है तथा जो सदा ही भगवान् शिवके चिन्तनमें लगे रहते हैं, वे कभी दुःखके भागी नहीं होते॥ १५-१६१/२॥

भवनानि मनोज्ञानि विभ्रमाभरणाः स्त्रियः॥ १७
धनं चातृप्तिपर्यन्तं शिवपूजाविधेः फलम्।
ये वाञ्छन्ति महाभोगान् राज्यं च त्रिदशालये॥ १८
ते वाञ्छन्ति सदाकालं हरस्य चरणाम्बुजम्।
सौभाग्यं कान्तिमद्रूपं सत्त्वं त्यागार्द्रभावता॥ १९
शौर्यं वै जगति ख्यातिः शिवमर्चयतो भवेत्।

मनोहर भवन, हाव, भाव, विलाससे विभूषित [तरुणी] स्त्रियाँ और जिससे पूर्ण तृप्ति हो जाय, इतना धन—ये सब भगवान् शिवकी आराधनाके फल हैं। जो देवलोकमें महान् भोग और राज्य चाहते हैं, वे सदा भगवान् शिवके चरणारविन्दोंका चिन्तन करते हैं। सौभाग्य, कान्तिमान् रूप, बल, त्याग, दयाभाव, शूरता और विश्वमें विख्याति—ये सब बातें भगवान् शिवकी पूजा करनेवाले लोगोंको ही सुलभ होती हैं॥ १७—१९१/२॥

तस्मात् सर्वं परित्यज्य शिवैकाहितमानसः॥ २०
शिवपूजाविधिं कुर्याद्यदीच्छेत् शिवमात्मनः।
त्वरितं जीवितं याति त्वरितं याति यौवनम्॥ २१
त्वरितं व्याधिरभ्येति तस्मात् पूज्यः पिनाकधृक्।
यावन्नायाति मरणं यावन्नाक्रमते जरा॥ २२
यावन्नेन्द्रियवैकल्यं तावत्पूजय शङ्करम्।
न शिवार्चनतुल्योऽस्ति धर्मोऽन्यो भुवनत्रये॥ २३

इसलिये जो अपना कल्याण चाहता हो, उसे सब कुछ छोड़कर केवल भगवान् शिवमें मन लगा उनकी आराधना करनी चाहिये। जीवन बड़ी तेजीसे जा रहा है, यौवन शीघ्रतासे बीता जा रहा है और रोग तीव्रगतिसे निकट आ रहा है, इसलिये सबको पिनाकपाणि महादेवजीकी पूजा करनी चाहिये, जबतक मृत्यु नहीं आती है, जबतक वृद्धावस्थाका आक्रमण नहीं होता और जबतक इन्द्रियोंकी शक्ति क्षीण नहीं हो जाती है, तबतक ही भगवान् शंकरकी आराधना कर लो। भगवान् शिवकी आराधनाके समान दूसरा कोई धर्म तीनों लोकोंमें नहीं है॥ २०—२३॥

इति विज्ञाय यत्नेन पूजनीयः सदाशिवः।
द्वारयागं च वनिकां परिवारबलिक्रियाम्॥ २४
नित्योत्सवं च कुर्वीत प्रासादे यदि पूजयेत्।
हविर्निवेदनादूर्ध्वं स्वयं चानुचरोऽपि वा॥ २५
प्रासादपरिवारेभ्यो बलिं दद्याद्यथाक्रमम्।

इस बातको समझकर प्रयत्नपूर्वक भगवान् सदाशिवकी अर्चना करनी चाहिये। यदि शिवजीकी पूजा प्रासादमें की जाय, उस अवसरपर द्वारयाग, वृक्षारोपण, परिवार देवताओंके लिये बलि-निवेदन तथा नित्योत्सव करना चाहिये। हविको निवेदित करनेसे पहले स्वयं (आचार्य) अथवा अनुचर (शिष्य) प्रासादमें स्थित परिवार-देवताओंको बतायी गयी रीतिसे बलि प्रदान

निर्गम्य सह वादित्रैस्तदाशाभिमुखः स्थितः॥ २६

पुष्पं धूपं च दीपं च दद्यादन्नं जलैः सह।
ततो दद्यात् महापीठे तिष्ठन् बलिमुदङ्मुखः॥ २७

ततो निवेदितं देवे यत्तदन्नादिकं पुरा।
तत्सर्वं सावशेषं वा चण्डाय विनिवेदयेत्॥ २८

हुत्वा च विधिवत्पश्चात्पूजाशेषं समापयेत्।
कृत्वा प्रयोगं विधिवद्यावन्मन्त्रं जपं ततः॥ २९
नित्योत्सवं प्रकुर्वीत यथोक्तं शिवशासने।

विपुले तैजसे पात्रे रक्तपद्मोपशोभिते॥ ३०

अस्त्रं पाशुपतं दिव्यं तत्रावाह्य समर्चयेत्।
शिरस्यारोप्य तत्पात्रं द्विजस्यालंकृतस्य च॥ ३१

न्यस्तास्त्रवपुषा तेन दीप्तयष्टिधरस्य च।
प्रासादपरिवारेभ्यो बहिर्मङ्गलनिःस्वनैः॥ ३२

नृत्यगेयादिभिश्चैव सह दीपध्वजादिभिः।
प्रदक्षिणत्रयं कृत्वा न द्रुतं चाविलम्बितम्॥ ३३

महापीठं समावृत्य त्रिःप्रदक्षिणयोगतः।
पुनः प्रविष्टो द्वारस्थो यजमानः कृताञ्जलिः।
आदायाभ्यन्तरं नीत्वा ह्यस्त्रमुद्वासयेत्ततः॥ ३४

प्रदक्षिणादिकं कृत्वा यथापूर्वोदितं क्रमात्।
आदाय चाष्टपुष्पाणि पूजामथ समापयेत्॥ ३५

करे। उस समय प्रासादसे बाहर जाकर उन-उन देवताओंके समक्ष स्थित होकर मंगलवाद्य भी बजवाने चाहिये। बलि देनेसे पूर्व पुष्प, धूप, दीप आदि अन्य उपचार समर्पितकर उस महापीठमें उत्तराभिमुख स्थित होकर साधक अन्न, जलादिके सहित बलि प्रदान करे। पहले जो अन्न आदि शिवजीको निवेदन किया जा चुका है और उससे जो बच गया है, यह सब चण्डको निवेदित कर दे॥ २४—२८॥

तदुपरान्त सविधि हवन करके अवशिष्ट पूजनको सम्पन्न करे, इस अनुष्ठानको पूर्णकर यथा सामर्थ्य मन्त्र-जप भी करे। इस प्रकार शिवशास्त्रमें बतायी गयी विधिसे नित्योत्सव करना चाहिये॥ २९१/२॥

रक्तवर्णके [अष्टदल] कमलसे सुशोभित एक बड़े [सुवर्ण] धातुपात्रमें [भगवान् शिवके] दिव्य पाशुपत अस्त्रका आवाहनकर उसकी पूजा करे। यजमान अस्त्रमन्त्रसे न्यास करके उस पात्रको [वस्त्र-माल्यादिसे] अलंकृत तथा चमकती हुई छड़ी लेकर स्थित ब्राह्मणके सिरपर रखकर उसके साथ शिवप्रासादके परिवार-देवताओंको [पूजा-बलि आदि प्रदान करके] न अधिक वेगसे न ही मन्द गतिसे अर्थात् मध्यम गतिसे उस महापीठकी तीन बार प्रदक्षिणा करे। उस समय प्रासादसे बाहर मांगलिक ध्वनि (शंख, मृदंग आदि) तथा नृत्य-गीतादि भी होने चाहिये। साधक [पूजाके अंगके रूपमें] दीपदान तथा ध्वजदान भी करे। महापीठकी तीन बार प्रदक्षिणा करके अंजलि बाँधे हुए यजमान मन्दिरके द्वारपर आये और अस्त्रके सहित मन्दिरके अन्दर प्रविष्ट हो उस अस्त्राजका विसर्जन कर दे। तदुपरान्त पूर्वमें बतायी गयी विधिसे क्रमपूर्वक प्रदक्षिणा आदि सम्पन्न करके आठ पुष्प लेकर पूजाका समापन करे॥ ३०—३५॥

इति श्रीशिवमहापुराणे सप्तम्यां वायवीयसंहितायामुत्तरखण्डे साङ्गोपाङ्ग-पूजाविधानवर्णनं नाम षड्विंशोऽध्यायः॥ २६॥

॥ इस प्रकार श्रीशिवमहापुराणके अन्तर्गत सातवीं वायवीयसंहिताके उत्तरखण्डमें सांगोपांगपूजा-विधानवर्णन नामक छब्बीसवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ २६॥

अथ सप्तविंशोऽध्यायः

शिवपूजनमें अग्निकर्मका वर्णन

उपमन्युरुवाच

अथाग्निकार्यं वक्ष्यामि कुण्डे वा स्थण्डिलेऽपि वा।
वेद्यां वा ह्यायसे पात्रे मृण्मये वा नवे शुभे॥ १

आधायाग्निं विधानेन संस्कृत्य च ततः परम्।
तत्राराध्य महादेवं होमकर्मसमाचरेत्॥ २

उपमन्यु बोले—[हे कृष्ण!] अब मैं अग्निकार्यका वर्णन करूँगा। कुण्डमें, स्थण्डिलपर, वेदीमें, लोहेके हवनपात्रमें या नूतन सुन्दर मिट्टीके पात्रमें विधिपूर्वक अग्निकी स्थापना करके उसका संस्कार करे। तत्पश्चात् वहाँ महादेवजीकी आराधना करके होमकर्म आरम्भ करे॥ १-२॥

कुण्डं द्विहस्तमानं वा हस्तमात्रमथापि वा।
वृत्तं वा चतुरस्रं वा कुर्याद्वेदिं च मण्डलम्॥ ३

कुण्डं विस्तारवन्निम्नं तन्मध्येऽष्टदलाम्बुजम्।
चतुरंगुलमुत्सेधं तस्य द्व्यङ्गुलमेव वा॥ ४

वितस्तिद्विगुणोन्नत्या नाभिमन्तः प्रचक्षते।
मध्ये च मध्यमाङ्गुल्या मध्यमोत्तमपर्वणोः॥ ५

कुण्ड दो या एक हाथ लम्बा-चौड़ा होना चाहिये। वेदीको गोल या चौकोर बनाना चाहिये। साथ ही मण्डल भी बनाना आवश्यक है। कुण्ड विस्तृत और गहरा होना चाहिये। उसके मध्यभागमें अष्टदल-कमल अंकित करे। वह दो या चार अंगुल ऊँचा हो। कुण्डके भीतर दो बित्तेकी ऊँचाईपर नाभिकी स्थिति बतायी गयी है। मध्यमा अंगुलिके मध्यम और उत्तम पर्वोंके बराबर मध्यभाग या कटिभाग जानना चाहिये॥ ३—५॥

अंगुलैः कथ्यते सद्भिश्चतुर्विंशतिभिः करः।
मेखलानां त्रयं वापि द्वयमेकमथापि वा॥ ६

यथाशोभं प्रकुर्वीत श्लक्ष्णमिष्टं मृदा स्थिरम्।
अश्वत्थपत्रवद्योनिं गजाधरवदेव वा॥ ७

साधु पुरुष चौबीस अंगुलके बराबर एक हाथका परिमाण बताते हैं। कुण्डकी तीन, दो या एक मेखला होनी चाहिये। इन मेखलाओंका इस तरह निर्माण करे, जिससे कुण्डकी शोभा बढ़े। सुन्दर और चिकनी योनि बनाये, जिसकी आकृति पीपलके पत्तेकी भाँति अथवा हाथीके अधरोष्ठके समान हो॥ ६-७॥

ह्रमेखलामध्यतः कुर्यात् पश्चिमे दक्षिणेऽपि वा।
शोभनामग्रतः किञ्चिन्निम्नामुन्मीलिकां शनैः॥ ८

अग्रेण कुण्डाभिमुखीं किञ्चिदुत्सृज्य मेखलाम्।
नोत्सेधनियमो वेद्याः सा मार्दी वाथ सैकती॥ ९

कुण्डके दक्षिण या पश्चिम भागमें मेखलाके बीचोबीच सुन्दर योनिका निर्माण करना चाहिये, जो मेखलासे कुछ नीची हो। उसका अग्रभाग कुण्डकी ओर हो तथा वह मेखलाको कुछ छोड़कर बनायी गयी हो। वेदीके लिये ऊँचाईका कोई नियम नहीं है। वह मिट्टी या बालूकी होनी चाहिये॥ ८-९॥

मण्डलं गोशकृत्तोयैर्मानं पात्रस्य नोदितम्।
कुण्डं च मृण्मयं वेदिमालिम्पेद् गोमयाम्बुना॥ १०

गायके गोबर या जलसे मण्डल बनाना चाहिये। पात्रका परिमाण नहीं बताया गया है। कुण्ड और मिट्टीकी वेदीको गोबर और जलसे लीपना चाहिये॥ १०॥

प्रक्षाल्य तापयेत्पात्रं प्रोक्षयेदन्यदम्भसा।
स्वसूत्रोक्तप्रकारेण कुण्डादौ विलिखेत्ततः॥ ११

पात्रको धोकर तपाये तथा अन्य वस्तुओंका जलसे प्रोक्षण करे। अपने-अपने गृह्यसूत्रमें बतायी हुई विधिके अनुसार कुण्डमें और वेदीपर उल्लेखन (रेखा)

सम्प्रोक्ष्य कल्पयेद्दर्भैः पुष्पैर्वा वह्निविष्टरम्।
अर्चनार्थं च होमार्थं सर्वद्रव्याणि साधयेत्॥ १२

करे। [रेखाओंपरसे मृत्तिका लेकर ईशानकोणमें फेंक दे।] फिर अग्निके उस आसनका कुशों अथवा पुष्पोंद्वारा जलसे प्रोक्षण करे। तत्पश्चात् पूजन और हवनके लिये सब प्रकारके द्रव्योंका संग्रह करे॥ ११-१२॥

प्रक्षाल्य क्षालनीयानि प्रोक्षण्या प्रोक्ष्य शोधयेत्।
मणिजं काष्ठजं वाथ श्रोत्रियागारसम्भवम्॥ १३

अन्यं वाभ्यर्हितं वह्निं ततः साधारमानयेत्।
त्रिःप्रदक्षिणमावृत्य कुण्डादेरुपरि क्रमात्॥ १४

वह्निबीजं समुच्चार्य त्वादधीताग्निमासने।
योनिमार्गेण वा तद्वदात्मनः सम्मुखेन वा॥ १५

धोनेयोग्य वस्तुओंको धोकर प्रोक्षणीके जलसे उनका प्रोक्षण करके उन्हें शुद्ध करे। इसके बाद सूर्यकान्तमणिसे प्रकट, काष्ठसे उत्पन्न, श्रोत्रियकी अग्निशालामें संचित अथवा दूसरी किसी उत्तम अग्निको आधारसहित ले आये। उसे कुण्ड अथवा वेदीके ऊपर तीन बार प्रदक्षिणक्रमसे घुमाकर अग्निबीज (रं)-का उच्चारण करके उस अग्निको उक्त कुण्ड या वेदीके आसनपर स्थापित कर दे। कुण्डमें स्थापित करना हो तो योनिमार्गसे अग्निका आधान करे और वेदीपर अपने सामनेकी ओर अग्निकी स्थापना करे॥ १३—१५॥

योनिप्रदेशगः सर्वं कुण्डं कुर्याद्विचक्षणः।
स्वनाभ्यन्तःस्थितं वह्निं तद्रन्ध्राद्विस्फुलिङ्गवत्॥ १६

निर्गम्य पावके बाह्ये लीनं बिम्बाकृतिं स्मरेत्।

योनिप्रदेशके पास स्थित विद्वान् पुरुष समस्त कुण्डको अग्निसे संयुक्त करे। साथ ही यह भावना करे कि अपनी नाभिके भीतर जो अग्निदेव विराजमान हैं, वे ही नाभिरन्ध्रसे चिनगारीके रूपमें निकलकर बाह्य अग्निमें मण्डलाकार होकर लीन हुए हैं॥ १६ $\frac{1}{2}$॥

आज्यसंस्कारपर्यन्तमन्वाधानपुरःसरम् ॥ १७
स्वसूत्रोक्तक्रमात्कुर्यात् मूलमन्त्रेण मन्त्रवित्।
शिवमूर्तिं समभ्यर्च्य ततो दक्षिणपार्श्वतः॥ १८
न्यस्य मन्त्रं घृते मुद्रां दर्शयेद्धेनुसंज्ञिताम्।

अग्निपर समिधा रखनेसे लेकर घीके संस्कारपर्यन्त सारा कार्य मन्त्रज्ञ पुरुष अपने गृह्यसूत्रमें बताये हुए क्रमसे मूलमन्त्रद्वारा सम्पन्न करे। तदनन्तर शिवमूर्तिकी पूजा करके दक्षिण पार्श्वमें मन्त्र-न्यास करे और घृतमें धेनुमुद्राका प्रदर्शन करे॥ १७-१८$^1/_2$॥

स्रुक्स्रुवौ तैजसौ ग्राह्यौ न कांस्यायससैसकौ॥ १९

यज्ञदारुमयौ वापि स्मार्तौ वा शिल्पसम्मतौ।
पर्णे वा ब्रह्मवृक्षादेरच्छिद्रे मध्य उत्थिते॥ २०

संमृज्य दर्भैस्तौ वह्नौ सन्ताप्य प्रोक्षयेत्पुनः।
परिषिच्य स्वसूत्रोक्तक्रमेण शिवपूर्वकैः॥ २१

जुहुयादष्टभिर्बीजैरग्निसंस्कारसिद्धये ।

स्रुक् और स्रुवा—ये दोनों धातुके बने हुए हों तो ग्रहण करनेयोग्य हैं। परंतु काँसे, लोहे और शीशेके बने हुए स्रुक्, स्रुवाको नहीं ग्रहण करना चाहिये अथवा यज्ञसम्बन्धी काष्ठके बने हुए स्रुक्, स्रुवा भी ग्राह्य हैं। स्मृति या शिल्पशास्त्रमें जो विहित हों, वे भी ग्राह्य हैं अथवा ब्रह्मवृक्ष (पलास या गूलर) आदिके छिद्ररहित तथा ऊपरकी ओर उभारवाले बिचले दो पत्ते लेकर उन्हें कुशसे पोंछे और अग्निमें तपाकर फिर उनका प्रोक्षण करे। [उन्हीं पत्तोंको स्रुक् और स्रुवाका रूप दे] उनमें घी उठाये और अपने गृह्यसूत्रमें बताये हुए क्रमसे शिवबीज (ॐ)-सहित आठ बीजाक्षरोंद्वारा अग्निमें आहुति दे। इससे अग्निका संस्कार सम्पन्न होता है॥ १९—२१$^1/_2$॥

भ्रुं स्तुं ब्रुं श्रुं क्रमेणैव पुं ड्रुं द्रुं इत्यतः परम्॥ २२

बीजानि सप्त सप्तानां जिह्वानामनुपूर्वशः।
त्रिशिखा मध्यमा जिह्वा बहुरूपसमाह्वया॥ २३

तस्याः शिखा दक्षिणतो ज्वलन्ती वामतः परा।
हिरण्या प्रागुदग्जिह्वा कनका पूर्वतः स्थिता॥ २४

रक्ताग्नेयी नैर्ऋती च कृष्णान्या सुप्रभा मता।
अतिरिक्ता मरुज्जिह्वा स्वनामानुगुणप्रभा॥ २५

स्वबीजानन्तरं वाच्या स्वाहान्तश्च यथाक्रमम्।
जिह्वामन्त्रैस्तु हुत्वाज्यं जिह्वास्वैकैकशः क्रमात्॥ २६

रं वह्नयेति स्वाहेति मध्ये हुत्वाहुतित्रयम्।
सर्पिषा वा समिद्भिर्वा परिषेचनमाचरेत्॥ २७

एवं कृते शिवाग्निः स्यात्स्मरेत्तत्र शिवासनम्।
तत्रावाह्य यजेद्देवमर्धनारीश्वरं शिवम्।
दीपान्तं परिषिच्याथ समिद्धोमं समाचरेत्॥ २८

ताः पालाश्यः परा वापि यज्ञिया द्वादशाङ्गुलाः।
अवक्रा न स्वयं शुष्काः सत्वचो निर्व्रणाः समाः॥ २९

वे बीज इस प्रकार हैं—**भ्रुं स्तुं ब्रुं श्रुं पुं ड्रुं द्रुं।** ये सात हैं, इनमें शिवबीज (ॐ)-को सम्मिलित कर लेनेपर आठ बीजाक्षर होते हैं। उपर्युक्त सात बीज क्रमशः अग्निकी सात जिह्वाओंके हैं। उनकी मध्यमा जिह्वाका नाम बहुरूपा है। उसकी तीन शिखाएँ हैं। उनमेंसे एक शिखा दक्षिणमें और दूसरी वाम दिशा (उत्तर)-में प्रज्वलित होती है और बीचवाली शिखा बीचमें ही प्रकाशित होती है। ईशानकोणमें जो जिह्वा है, उसका नाम हिरण्या है। पूर्वदिशामें विद्यमान जिह्वा कनका नामसे प्रसिद्ध है। अग्निकोणमें रक्ता, नैर्ऋत्यकोणमें कृष्णा और वायव्यकोणमें सुप्रभा नामकी जिह्वा प्रकाशित होती है। इनके अतिरिक्त पश्चिममें जो जिह्वा प्रज्वलित होती है, उसका नाम मरुत् है। इन सबकी प्रभा अपने-अपने नामके अनुरूप है॥ २२—२५॥

अपने-अपने बीजके अनन्तर क्रमशः इनका नाम लेना चाहिये और नामके अन्तमें स्वाहाका प्रयोग करना चाहिये। इस तरह जो जिह्वामन्त्र* बनते हैं, उनके द्वारा क्रमशः प्रत्येक जिह्वाके लिये एक-एक घीकी आहुति दे, परंतु मध्यमाकी तीन जिह्वाओंके लिये तीन आहुतियाँ दे। कुण्डके मध्यभागमें '**रं वह्नये स्वाहा**' बोलकर तीन आहुतियाँ दे। ये आहुतियाँ घी अथवा समिधासे देनी चाहिये। आहुति देनेके पश्चात् अग्निमें जलका सेचन करे॥ २६-२७॥

ऐसा करनेपर वह अग्नि भगवान् शिवकी हो जाती है। फिर उसमें शिवके आसनका चिन्तन करे और वहाँ अर्धनारीश्वर भगवान् शिवका आवाहन करके पूजन करे। पाद्य-अर्घ्य आदिसे लेकर दीपदानपर्यन्त पूजन करके अग्निका जलसे प्रोक्षण करे। तत्पश्चात् समिधाओंकी आहुति दे। वे समिधाएँ पलासकी या गूलर आदि दूसरे यज्ञिय वृक्षकी होनी चाहिये। उनकी लम्बाई बारह अंगुलकी हो। समिधाएँ टेढ़ी न हों। स्वतः सूखी हुई भी न हों। उनके छिलके न उतरे हों तथा उनपर किसी प्रकारकी चोट न हो। सब समिधाएँ एक-सी होनी

* ओं भ्रुं त्रिशिखायै बहुरूपायै स्वाहा (दक्षिणे मध्ये उत्तरे च) ३। ओं स्तुं हिरण्यायै स्वाहा (ऐशान्याम्) १। ओं ब्रुं कनकायै स्वाहा (पूर्वस्याम्) १। ओं श्रुं रक्तायै स्वाहा (आग्नेय्याम्) १। ओं पुं कृष्णायै स्वाहा (नैर्ऋत्याम्) १। ओं ड्रुं सुप्रभायै स्वाहा (पश्चिमायाम्) १। ओं द्रुं मरुज्जिह्वायै स्वाहा (वायव्ये) १।

दशाङ्गुला वा विहिताः कनिष्ठाङ्गुलिसम्मिताः।
प्रादेशमात्रा वालाभे होतव्याः सकला अपि॥ ३०

चाहिये। दस अंगुल लम्बी समिधाएँ भी हवनके लिये विहित हैं। उनकी मोटाई कनिष्ठिका अंगुलिके समान होनी चाहिये अथवा प्रादेशमात्र (अँगूठेसे लेकर तर्जनीपर्यन्त) लम्बी समिधाएँ उपयोगमें लानी चाहिये। यदि उपयुक्त समिधाएँ न मिलें तो जो मिल सकें, उन सबका ही हवन करना चाहिये॥ २८—३०॥

दूर्वापत्रसमाकारां चतुरङ्गुलमायताम्।
दद्यादाज्याहुतिं पश्चादन्नमक्षप्रमाणतः॥ ३१

लाजांस्तथा सर्षपांश्च यवांश्चैव तिलांस्तथा।
सर्पिषाक्तानि भक्ष्याणि लेह्यचोष्याणि सम्भवे॥ ३२

दशैवाहुतयस्तत्र पञ्च वा त्रितयं च वा।
होतव्याः शक्तितो दद्यादेकमेवाथ वाहुतिम्॥ ३३

समिधा-हवनके बाद घीकी आहुति दे। घीकी धारा दूर्वादलके समान पतली और चार अंगुल लम्बी हो। उसके बाद अन्नकी आहुति देनी चाहिये, जिसका प्रत्येक ग्रास सोलह-सोलह माशेके बराबर हो। लावा, सरसों, जौ और तिल—इन सबमें घी मिलाकर यथासम्भव भक्ष्य, लेह्य और चोष्यका भी मिश्रण करे तथा इन सबकी यथाशक्ति दस, पाँच या तीन आहुतियाँ दे अथवा एक ही आहुति दे॥ ३१—३३॥

स्रुवेणाज्यं समित्याद्यास्रुचा शेषात्करेण वा।
तत्र दिव्येन होतव्यं तीर्थेनार्षेण वा तथा॥ ३४

द्रव्येणैकेन वालाभे जुहुयात् श्रद्धया पुनः।
प्रायश्चित्ताय जुहुयान्मन्त्रयित्वाहुतित्रयम्॥ ३५

स्रुवासे, समिधासे, स्रुक्से अथवा हाथसे आहुति देनी चाहिये। उसमें भी दिव्य तीर्थसे अथवा ऋषितीर्थसे आहुति देनेका विधान है; यदि उपर्युक्त सभी द्रव्य न मिलें तो किसी एक ही द्रव्यसे श्रद्धापूर्वक आहुति देनी चाहिये। प्रायश्चित्तके लिये मन्त्रसे अभिमन्त्रित करके तीन आहुतियाँ दे॥ ३४-३५॥

ततो होमावशिष्टेन घृतेनापूर्य वै स्रुचम्।
निधाय पुष्पं तस्याग्रे स्रुवेणाधोमुखेन ताम्॥ ३६
सदर्भेण समाच्छाद्य मूलेनाञ्जलिनोत्थितः।
वौषडन्तेन जुहुयाद्धारां तु यवसम्मिताम्॥ ३७

फिर होमावशिष्ट घृतसे स्रुक्को भरकर उसके अग्रभागमें फूल रखकर उसे दर्भसहित अधोमुख स्रुवासे ढक दे। इसके बाद खड़ा हो उसे अंजलिमें लेकर **'ओं नमः शिवाय वौषट्'** का उच्चारण करके जौके तुल्य घीकी धाराकी आहुति दे॥ ३६-३७॥

इत्थं पूर्णाहुतिं कृत्वा परिषिञ्चेच्च पूर्ववत्।
तत उद्वास्य देवेशं गोपयेत्तु हुताशनम्॥ ३८
तमप्युद्वास्य वा नाभौ यजेत्संधाय नित्यशः।

इस प्रकार पूर्णाहुति करके अग्निमें पूर्ववत् जलका छींटा दे। तत्पश्चात् देवेश्वर शिवका विसर्जन करके अग्निकी रक्षा करे। फिर अग्निका भी विसर्जन करके भावनाद्वारा नाभिमें स्थापित करके नित्य यजन करे॥ ३८ $\frac{1}{2}$ ॥

अथवा वह्निमानीय शिवशास्त्रोक्तवर्त्मना॥ ३९
वागीशीगर्भसम्भूतं संस्कृत्य विधिवद्यजेत्।
अन्वाधानं पुनः कृत्वा परिधीन् परिधाय च॥ ४०
पात्राणि द्वन्द्वरूपेण निक्षिप्येष्ट्वा शिवं ततः।

अथवा शिवशास्त्रमें बतायी हुई पद्धतिके अनुसार वागीश्वरीके गर्भसे प्रकट हुए अग्निदेवको लाकर विधिवत् संस्कार करके उनका पूजन करे। फिर समिधाका आधान करके सब ओरसे परिधियोंका निर्माण करे। इसके बाद वहाँ दो-दो पात्र रखकर शिवका यजन करके प्रोक्षणीपात्रका शोधन करे।

संशोध्य प्रोक्षणीपात्रं प्रोक्ष्य तानि तदम्भसा॥ ४१
प्रणीतापात्रमैशान्यां विन्यस्यापूरितं जलैः।
आज्यसंस्कारपर्यन्तं कृत्वा संशोध्य स्रुक्स्रुवौ॥ ४२
गर्भाधानं पुंसवनं सीमन्तोन्नयनं ततः।
कृत्वा पृथक् पृथग्घुत्वा जातमग्निं विचिन्तयेत्॥ ४३

त्रिपादं सप्तहस्तं च चतुःशृङ्गं द्विशीर्षकम्।
मधुपिङ्गं त्रिनयनं सकपर्देन्दुशेखरम्॥ ४४

रक्तं रक्ताम्बरालेपं माल्यभूषणभूषितम्।
सर्वलक्षणसंपन्नं सोपवीतं त्रिमेखलम्॥ ४५

शक्तिमन्तं स्रुक्स्रुवौ च दधानं दक्षिणे करे।
तोमरं तालवृन्तं च घृतपात्रं तथेतरैः॥ ४६

जातं ध्यात्वैवमाकारं जातकर्म समाचरेत्।
नालापनयनं कृत्वा ततः संशोध्य सूतकम्॥ ४७
शिवाग्निरुचिनामास्य कृत्वाहुतिपुरःसरम्।
पित्रोर्विसर्जनं कृत्वा चौलोपनयनादिकम्॥ ४८
आप्तोर्यामावसानान्तं कृत्वा संस्कारमस्य तु।
आज्यधारादिहोमं च कृत्वा स्विष्टकृतं ततः॥ ४९
रमित्यनेन बीजेन परिषिञ्चेत्ततः परम्।
ब्रह्मविष्णुशिवेशानां लोकेशानां तथैव च॥ ५०
तदस्त्राणां च परितः कृत्वा पूजां यथाक्रमम्।
धूपदीपादिसिद्ध्यर्थं वह्निमुद्धृत्य कृत्यवित्॥ ५१
साधयित्वाज्यपूर्वाणि द्रव्याणि पुनरेव च।
कल्पयित्वासनं वह्नौ तत्रावाह्य यथापुरा॥ ५२
सम्पूज्य देवं देवीं च ततः पूर्णान्तमाचरेत्।

उस पात्रके जलसे पूर्वोक्त वस्तुओंका प्रोक्षण करके जलसे भरे हुए प्रणीतापात्रको ईशानकोणमें रखे। घीके संस्कार-तकका सारा कार्य करके स्रुक् और स्रुवाका संशोधन करे॥ ३९—४२॥

तदनन्तर पिता शिवद्वारा माता वागीश्वरीके गर्भाधान, पुंसवन और सीमन्तोन्नयन-संस्कार [की भावना] करके प्रत्येक संस्कारके निमित्त पृथक्-पृथक् आहुति दे और गर्भसे अग्निके उत्पन्न होनेकी भावना करे। उनके तीन पैर, सात हाथ, चार सींग और दो मस्तक हैं। मधुके समान पिंगल-वर्णवाले तीन नेत्र हैं। सिरपर जटाजूट और चन्द्रमाका मुकुट है॥ ४३-४४॥

उनकी अंगकान्ति लाल है। लाल रंगके ही वस्त्र, चन्दन, माला और आभूषण उनकी शोभा बढ़ाते हैं। सब लक्षणोंसे सम्पन्न, यज्ञोपवीतधारी तथा त्रिगुण मेखलासे युक्त हैं। उनके दायें हाथोंमें शक्ति, स्रुक् और स्रुवा है तथा बायें हाथोंमें तोमर, ताड़का पंखा और घीसे भरा हुआ पात्र है॥ ४५-४६॥

इस आकृतिमें उत्पन्न हुए अग्निदेवका ध्यान करके उनका 'जातकर्म' संस्कार करे। तत्पश्चात् नालच्छेदन करके सूतककी शुद्धि करे। फिर आहुति देकर उस शिवसम्बन्धी अग्निका रुचि नाम रखे। इसके बाद माता-पिताका विसर्जन करके चूडाकर्म और उपनयन आदिसे लेकर आप्तोर्यामपर्यन्त संस्कार करे।* तत्पश्चात् घृतधारा आदिका होम करके स्विष्टकृत् होम करे॥ ४७—४९॥

इसके बाद 'रं' बीजका उच्चारण करके अग्निपर जलका छींटा डाले। फिर ब्रह्मा, विष्णु, शिव, ईश, लोकेश्वरगण और उनके अस्त्रोंका सब ओर क्रमशः पूजन करके धूप, दीप आदिकी सिद्धिके लिये अग्निको अलग निकालकर कर्मविधिका ज्ञाता पुरुष पुनः घृतयुक्त पूर्वोक्त होम-द्रव्य तैयार करके अग्निमें आसनकी कल्पना (भावना) करे और उसपर पूर्ववत् महादेव और महादेवीका आवाहन, पूजन करके पूर्णाहुतिपर्यन्त सब कार्य सम्पन्न करे॥ ५०—५२ १/२॥

* उपनयनसे आप्तोर्यामपर्यन्त संस्कारोंकी नामावली इस प्रकार है—उपनयन, व्रतबन्ध, समावर्तन, विवाह, उपाकर्म, उत्सर्जन, (सात पाक-यज्ञ—) हुत, प्रहुत, आहुत, शूलगव, बलिहरण, प्रत्यवरोहण, अष्टकाहोम, (सात हविर्यज्ञ-संस्था—) अग्न्याधान, अग्निहोत्र, दर्शपूर्णमास, चातुर्मास्य, आग्रयणेष्टि, निरूढपशुबन्ध, सौत्रामणि, (सात सोमयज्ञ-संस्था—) अग्निष्टोम, अत्यग्निष्टोम, उक्थ्य, षोडशी, वाजपेय, अतिरात्र, आप्तोर्याम।

अथवा स्वाश्रमोक्तं तु वह्निकर्म शिवार्पणम्॥ ५३

बुद्ध्वा शिवाश्रमी कुर्यान्न च तत्रापरो विधिः।
शिवाग्नेर्भस्म संग्राह्यमग्निहोत्रोद्भवं तु वा॥ ५४

अथवा अपने आश्रमके लिये शास्त्र-विहित अग्निहोत्रकर्म करके उसे भगवान् शिवको समर्पित करे। शिवाश्रमी पुरुष इन सब बातोंको समझकर होमकर्म करे। इसके लिये दूसरी कोई विधि नहीं है। शिवाग्निका भस्म संग्रहणीय है। अग्निहोत्रकर्मका भस्म भी संग्रह करनेके योग्य है॥ ५३-५४॥

वैवाहाग्निभवं वापि पक्वं शुचि सुगन्धि च।
कपिलायाः शकृच्छस्तं गृहीतं गगने पतत्॥ ५५

न क्लिन्नं नातिकठिनं न दुर्गन्धं न शोषितम्।
उपर्यधः परित्यज्य गृह्णीयात्पतितं यदि॥ ५६

वैवाहिक अग्निका भस्म भी जो परिपक्व, पवित्र एवं सुगन्धित हो, संग्रह करके रखना चाहिये। कपिला गायका वह गोबर, जो गिरते समय आकाशमें ही दोनों हाथोंपर रोक लिया गया हो, उत्तम माना गया है। वह यदि अधिक गीला वा अधिक कड़ा न हो, दुर्गन्धयुक्त और सूखा हुआ न हो तो अच्छा माना गया है। यदि वह पृथ्वीपर गिर गया हो तो उसमेंसे ऊपर और नीचेके हिस्सेको त्यागकर बीचका भाग ले ले॥ ५५-५६॥

पिण्डीकृत्य शिवाग्न्यादौ तत्क्षिपेन्मूलमन्त्रतः।
अपक्वमतिपक्वं च संत्यज्य भसितं सितम्॥ ५७

आदाय वा समालोड्य भस्माधारे विनिःक्षिपेत्।
तैजसं दारवं वापि मृण्मयं शैलमेव च॥ ५८

अन्यद्वा शोभनं शुद्धं भस्माधारं प्रकल्पयेत्।
समे देशे शुभे शुद्धे धनवद्भस्म निःक्षिपेत्॥ ५९

उस गोबरका पिण्ड बनाकर उसे शिवाग्नि आदिमें मूल-मन्त्रके उच्चारणपूर्वक छोड़ दे। जब वह पक जाय, तब उसे निकाल ले। उसमें जितना अधपका हो, उसको और जो भाग बहुत अधिक पक गया हो, उसको भी त्यागकर श्वेत भस्म ले ले और उसे घोटकर चूर्ण बना दे। इसके बाद उसे भस्म रखनेके पात्रमें रख दे। भस्मपात्र धातुका, लकड़ीका, मिट्टीका, पत्थरका अथवा और किसी वस्तुका बनवा ले। वह देखनेमें सुन्दर होना चाहिये। उसमें रखे हुए भस्मको धनकी भाँति किसी शुभ, शुद्ध एवं समतल स्थानमें रखे॥ ५७—५९॥

प्रस्थितो भस्म गृह्णीयात् स्वयं चानुचरोऽपि वा।
न चायुक्तकरे दद्यान्नैवाशुचितले क्षिपेत्।
न संस्पृशेच्च नीचाङ्गैर्नोपेक्षेत न लंघयेत्॥ ६०

तस्माद्भसितमादाय विनियुञ्जीत मन्त्रतः।
कालेषूक्तेषु नान्यत्र नायोग्येभ्यः प्रदापयेत्॥ ६१

प्रस्थानकालमें स्वयं या सेव्यके द्वारा भस्म ग्रहण करे। किसी अयोग्य या अपवित्रके हाथमें भस्म न दे। नीचे अपवित्र स्थानमें भी न डाले। नीचेके अंगोंसे उसका स्पर्श न करे। भस्मकी न तो उपेक्षा करे और न उसे लाँघे ही। शास्त्रोक्त समयपर उस पात्रसे भस्म लेकर मन्त्रोच्चारणपूर्वक अपने ललाट आदिमें लगाये। दूसरे समयमें उसका उपयोग न करे और न अयोग्य व्यक्तियोंके हाथमें उसे दे॥ ६०-६१॥

भस्मसंग्रहणं कुर्याद्देवेऽनुद्वासिते सति।
उद्वासने कृते यस्माच्चण्डभस्म प्रजायते॥ ६२

भगवान् शिवका विसर्जन न हुआ हो, तभी भस्म-संग्रह कर ले; क्योंकि विसर्जनके बाद उसपर चण्डका अधिकार हो जाता है॥ ६२॥

अग्निकार्ये कृते पश्चात् शिवशास्त्रोक्तमार्गतः ।
स्वसूत्रोक्तप्रकाराद्वा बलिकर्म समाचरेत् ॥ ६३

अथ विद्यासनं न्यस्य सुप्रलिप्ते तु मण्डले।
विद्याकोशं प्रतिष्ठाप्य यजेत्पुष्पादिभिः क्रमात् ॥ ६४

जब अग्निकार्य सम्पन्न कर लिया जाय, तब शिवशास्त्रोक्त मार्गसे अथवा अपने गृह्यसूत्रमें बतायी हुई विधिसे बलिकर्म करे। तदनन्तर अच्छी तरह लिपे-पुते मण्डलमें विद्यासनको बिछाकर विद्याकोशकी स्थापना करके क्रमशः पुष्प आदिके द्वारा यजन करे ॥ ६३-६४ ॥

विद्यायाः पुरतः कृत्वा गुरोरपि च मण्डलम्।
तत्रासनवरं कृत्वा पुष्पाद्यैर्गुरुमर्चयेत् ॥ ६५

ततोऽनुपूजयेत् पूज्यान् भोजयेच्च बुभुक्षितान्।
ततः स्वयं च भुञ्जीत शुद्धमन्नं यथासुखम् ॥ ६६

विद्याके सामने गुरुका भी मण्डल बनाकर वहाँ श्रेष्ठ आसन रखे और उसपर पुष्प आदिके द्वारा गुरुकी पूजा करे। तदनन्तर पूजनीय पुरुषोंकी पूजा करे और भूखोंको भोजन कराये। इसके बाद स्वयं सुखपूर्वक शुद्ध अन्न भोजन करे ॥ ६५-६६ ॥

निवेदितं च वा देवे तच्छेषं चात्मशुद्धये।
श्रद्दधानो न लोभेन न चण्डाय समर्पितम् ॥ ६७

गन्धमाल्यादि यच्चान्यत्तत्राप्येष समो विधिः ।
न तु तत्र शिवोऽस्मीति बुद्धिं कुर्याद्विचक्षणः ॥ ६८

वह अन्न तत्काल भगवान् शिवको निवेदित किया गया हो अथवा उनका प्रसाद हो। उसे आत्मशुद्धिके लिये श्रद्धापूर्वक भोजन करे। जो अन्न चण्डको समर्पित हो, उसे लोभवश ग्रहण न करे। गन्ध और पुष्पमाला आदि जो अन्य वस्तुएँ हैं, उनके लिये भी यह विधि समान ही है अर्थात् चण्डका भाग होनेपर उन्हें ग्रहण नहीं करना चाहिये। वहाँ विद्वान् पुरुष 'मैं ही शिव हूँ' ऐसी बुद्धि न करे ॥ ६७-६८ ॥

भुक्त्वाचम्य शिवं ध्यात्वा हृदये मूलमुच्चरेत्।
कालशेषं नयेद्योग्यैः शिवशास्त्रकथादिभिः ॥ ६९

रात्रौ व्यतीते पूर्वांशे कृत्वा पूजां मनोहराम्।
शिवयोः शयनं त्वेकं कल्पयेदतिशोभनम् ॥ ७०

भोजन और आचमन करके शिवका मन-ही-मन चिन्तन करते हुए मूलमन्त्रका उच्चारण करे। शेष समय शिवशास्त्रकी कथाके श्रवण आदि योग्य कार्योंमें बिताये। रातका प्रथम प्रहर बीत जानेपर मनोहर पूजा करके शिव और शिवाके लिये एक परम सुन्दर शय्या प्रस्तुत करे ॥ ६९-७० ॥

भक्ष्यभोज्याम्बरालेपपुष्पमालादिकं तथा।
मनसा कर्मणा वापि कृत्वा सर्वं मनोहरम् ॥ ७१

ततो देवस्य देव्याश्च पादमूले शुचिः स्वपेत्।
गृहस्थो भार्यया सार्द्धं तदन्येऽपि तु केवलाः ॥ ७२

उसके साथ ही भक्ष्य, भोज्य, वस्त्र, चन्दन और पुष्पमाला आदि भी रख दे। मनसे और क्रियाद्वारा भी सब सुन्दर व्यवस्था करके पवित्र हो महादेवजी और महादेवीके चरणोंके निकट शयन करे। यदि उपासक गृहस्थ हो तो वह वहाँ अपनी पत्नीके साथ शयन करे। जो गृहस्थ न हों, वे अकेले ही सोयें ॥ ७१-७२ ॥

प्रत्यूषसमयं बुद्ध्वा मन्त्रमाद्यमुदीरयेत्।
प्रणम्य मनसा देवं साम्बं सगणमव्ययम् ॥ ७३

देशकालोचितं कृत्वा शौचाद्यमपि शक्तितः ।
शंखादिनिनदैर्दिव्यैर्देवं देवीं च बोधयेत् ॥ ७४

उषःकाल आया जान सर्वप्रथम मूलमन्त्रका आवर्तन करे और मन-ही-मन पार्वतीदेवी तथा पार्षदोंसहित अविनाशी भगवान् शिवको प्रणाम करके देशकालोचित कार्य तथा शौच आदि कृत्य पूर्ण करे। फिर यथाशक्ति शंख आदि वाद्योंकी दिव्य

ततस्तत्समयोन्निद्रैः पुष्पैरतिसुगन्धिभिः।
निर्वर्त्य शिवयोः पूजां प्रारभेत पुरोदितम्॥ ७५

ध्वनियोंसे महादेव और महादेवीको जगाये। इसके बाद उस समय खिले हुए परम सुगन्धित पुष्पोंद्वारा शिवा और शिवकी पूजा करके पूर्वोक्त कार्य आरम्भ करे॥ ७३—७५॥

इति श्रीशिवमहापुराणे सप्तम्यां वायवीयसंहितायामुत्तरखण्डे अग्निकार्यवर्णनं नाम सप्तविंशोऽध्यायः॥ २७॥

॥ इस प्रकार श्रीशिवमहापुराणके अन्तर्गत सातवीं वायवीयसंहिताके उत्तरखण्डमें अग्निकार्यवर्णन नामक सत्ताईसवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ २७॥

अथाष्टाविंशोऽध्यायः

शिवाश्रमसेवियोंके लिये नित्य-नैमित्तिक कर्मकी विधिका वर्णन

उपमन्युरुवाच

अतः परं प्रवक्ष्यामि शिवाश्रमनिषेविणाम्।
शिवशास्त्रोक्तमार्गेण नैमित्तिकविधिक्रमम्॥ १

उपमन्यु बोले—[हे कृष्ण!] अब मैं शिवाश्रमका सेवन करनेवालोंके लिये शिवशास्त्रमें कथित मार्गसे नैमित्तिकविधिक्रमका वर्णन करूँगा॥ १॥

सर्वेष्वपि च मासेषु पक्षयोरुभयोरपि।
अष्टम्यां च चतुर्दश्यां तथा पर्वणि च क्रमात्॥ २
अयने विषुवे चैव ग्रहणेषु विशेषतः।
कर्तव्या महती पूजा ह्यधिका वापि शक्तितः॥ ३

सभी मासोंमें दोनों ही पक्षोंकी अष्टमी, चतुर्दशी तिथियों तथा पर्वके अवसरपर, अयनमें, विषुवकालमें तथा विशेषकर ग्रहणोंमें अधिक रूपमें अथवा अपने सामर्थ्यके अनुसार शिवकी महापूजा करनी चाहिये॥ २-३॥

मासि मासि यथान्यायं ब्रह्मकूर्चं प्रसाध्य तु।
स्नापयित्वा शिवं तेन पिबेच्छेषमुपोषितः॥ ४
ब्रह्महत्यादिदोषाणामतीव महतामपि।
निष्कृतिर्ब्रह्मकूर्चस्य पानान्नान्या विशिष्यते॥ ५

व्रतीको चाहिये कि प्रत्येक मासमें विधिके अनुसार ब्रह्मकूर्च बनाकर उससे शिवजीको स्नान कराकर शेष [ब्रह्मकूर्च]-का पान करे। बहुत बड़े ब्रह्महत्या आदि पापोंकी भी निष्कृति ब्रह्मकूर्चके पानसे हो जाती है, कुछ भी निष्कृति शेष नहीं रह जाती है॥ ४-५॥

पौषे तु पुष्यनक्षत्रे कुर्यान्नीराजनं विभोः।
माघे मघाख्ये नक्षत्रे प्रदद्याद् घृतकंबलम्॥ ६
फाल्गुने चोत्तरान्ते वै प्रारभेत महोत्सवम्।
चैत्रे चित्रापौर्णमास्यां दोलां कुर्याद्यथाविधि॥ ७

पौष महीनेमें पुष्य नक्षत्रमें शिवजीका नीराजन करे और माघ महीनेमें मघा नामक नक्षत्रमें घृत तथा कम्बलका दान करे। फाल्गुनमासमें उत्तराफाल्गुनी-युक्त पूर्णिमाके दिन महोत्सवका प्रारम्भ करे और चैत्रमासमें चित्रानक्षत्रयुक्त पूर्णिमाको यथाविधि दोलनोत्सव करे॥ ६-७॥

वैशाख्यां तु विशाखायां कुर्यात्पुष्पमहालयम्।
ज्येष्ठे मूलाख्यनक्षत्रे शीतकुम्भं प्रदापयेत्॥ ८
आषाढे चोत्तराषाढे पवित्रारोपणं तथा।
श्रावणे प्राकृतान्यानि मण्डलानि प्रकल्पयेत्॥ ९
श्रविष्ठाख्ये तु नक्षत्रे प्रौष्ठपद्यां ततः परम्।

वैशाखमासमें विशाखानक्षत्रमें पुष्पमहालय करना चाहिये। ज्येष्ठमासमें मूल [ज्येष्ठा]-संज्ञक नक्षत्रमें शीतलजलयुक्त कुम्भका दान करना चाहिये। आषाढ़मासमें उत्तराषाढ़ानक्षत्रमें पवित्रारोपण करना चाहिये और सावन महीनेमें श्रविष्ठा (श्रवण) नामक नक्षत्रमें अन्य प्राकृत मण्डल बनाने चाहिये। उसके बाद भाद्रपदमासकी पूर्णिमाको पूर्वाषाढ़ा नक्षत्रयुक्त

प्रोक्षयेच्च जलक्रीडां पूर्वाषाढाश्रये दिने॥ १०
आश्वयुज्यां ततो दद्यात्पायसं च नवौदनम्।
अग्निकार्यं च तेनैव कुर्यात् शतभिषग्दिने॥ ११

कार्तिक्यां कृत्तिकायोगे दद्याद्दीपसहस्रकम्।
मार्गशीर्षे तथार्द्रायां घृतेन स्नापयेत् शिवम्॥ १२

अशक्तस्तेषु कालेषु कुर्यादुत्सवमेव वा।
आस्थानं वा महापूजामधिकं वा समर्चनम्॥ १३
आवृत्तेऽपि च कल्याणे प्रशस्तेष्वपि कर्मसु।
दौर्मनस्य दुराचारे दुःस्वप्ने दुष्टदर्शने॥ १४
उत्पाते वाशुभेऽन्यस्मिन् रोगे वा प्रबलेऽथवा।
स्नानपूजाजपध्यानहोमदानादिकाः क्रियाः॥ १५
निमित्तानुगुणाः कार्याः पुरश्चरणपूर्विकाः।
शिवानले च विहते पुनः सन्धानमाचरेत्॥ १६
य एवं शर्वधर्मिष्ठो वर्तते नित्यमुद्यतः।
तस्यैकजन्मना मुक्तिं प्रयच्छति महेश्वरः॥ १७
एतद्यथोत्तरं कुर्यात् नित्यनैमित्तिकेषु यः।
दिव्यं श्रीकण्ठनाथस्य स्थानमाद्यं स गच्छति॥ १८
तत्र भुक्त्वा महाभोगान् कल्पकोटिशतं नरः।
कालान्तरे च्युतस्तस्मादौमं कौमारमेव च॥ १९
सम्प्राप्य वैष्णवं ब्राह्मं रुद्रलोकं विशेषतः।
तत्रोषित्वा चिरं कालं भुक्त्वा भोगान्यथोदितान्॥ २०
पुनश्चोर्ध्वं गतस्तस्मादतीत्य स्थानपञ्चकम्।
श्रीकण्ठाज्ज्ञानमासाद्य तस्मात् शैवपुरं व्रजेत्॥ २१
अर्द्धचर्यारतश्चापि द्विरावृत्त्यैवमेव तु।
पश्चाज्ज्ञानं समासाद्य शिवसायुज्यमाप्नुयात्॥ २२
अर्द्धार्द्धचरितो यस्तु देही देहक्षयात्परम्।
अण्डान्तं वोर्ध्वमव्यक्तमतीत्य भुवनद्वयम्॥ २३
सम्प्राप्य पौरुषं रौद्रस्थानमद्रीन्द्रजापतेः।
अनेकयुगसाहस्रं भुक्त्वा भोगाननेकधा॥ २४
पुण्यक्षये क्षितिं प्राप्य कुले महति जायते।

दिनमें [मन्त्रोंसे प्रोक्षण एवं] जलविहार करवाना चाहिये। तदनन्तर आश्विनमासकी पूर्णिमाको खीर तथा नये चावलका भात निवेदित करे, पुनः उसीसे शतभिषानक्षत्रमें हवन करे॥ ८—११॥

कृत्तिकानक्षत्रयुक्त कार्तिकमासमें हजार दीपोंका दान करना चाहिये। मार्गशीर्ष (अगहन)-मासमें आर्द्रानक्षत्रमें घृतसे शिवजीको स्नान कराना चाहिये॥ १२॥

यदि उन समयोंमें यह सब करनेमें असमर्थ हो, तो उत्सव, सभा, महापूजा अथवा अधिक अर्चन करे। घरमें [विवाहादि] मांगलिक कृत्य होनेपर, प्रशस्त कर्मोंमें, मनके दुखी होनेपर, दुराचारमें, दुःस्वप्नमें, दुष्टोंका दर्शन होनेपर, उपद्रव उपस्थित होनेपर, अन्य अशुभ निमित्त होनेपर अथवा प्रबल रोग होनेपर स्नान-पूजा-जप-ध्यान-होम-दान आदि क्रियाएँ उद्देश्यके अनुसार पुरश्चरणपूर्वक करे। संस्कृत शिवाग्निमें पुनः सन्धान [होमादि] करे॥ १३—१६॥

जो मनुष्य इस प्रकार सावधान होकर नित्य शिवधर्मपरायण रहता है, उसे महेश्वर एक ही जन्ममें मुक्ति प्रदान कर देते हैं। जो नित्यनैमित्तिक कर्मोंमें इसे यथोचित रूपसे करता है, वह श्रीकण्ठनाथके दिव्य आदिलोकको जाता है। मनुष्य वहाँपर सौ करोड़ कल्पोंतक महान् सुखोंको भोगकर कुछ समय बाद वहाँसे लौटकर उमा, कुमार (कार्तिकेय), विष्णु, ब्रह्मा तथा विशेष रूपसे रुद्रके लोकोंको प्राप्त करता है और वहाँपर दीर्घकालतक निवास करके यथोक्त भोगोंको भोगकर पुनः उन पाँचों स्थानोंको पार करके उससे भी ऊपर चला जाता है और वहाँ श्रीकण्ठसे ज्ञान प्राप्तकर वहाँसे शिवलोक चला जाता है॥ १७—२१॥

इन अनुष्ठानोंका आधा करनेवाला भी इसकी दो आवृत्तिसे ही बादमें ज्ञान प्राप्तकर शिवसायुज्य पा जाता है। जो मनुष्य उसके आधेका भी आधा अनुष्ठान करता है, वह शरीरक्षय [के अनन्तर] ब्रह्माण्ड अथवा ऊपरके दो अव्यक्त भुवनोंको पारकर पार्वतीपतिके पौरुष रौद्रस्थानको प्राप्त करके (वहाँ) अनेक हजार युगोंतक अनेक प्रकारके सुखोंका उपभोग कर पुनः पुण्यके क्षीण होनेपर पृथ्वीलोकमें आकर उच्च कुलमें जन्म लेता है॥ २२—२४½॥

तत्रापि पूर्वसंस्कारवशेन स महाद्युतिः ॥ २५
पशुधर्मान् परित्यज्य शिवधर्मरतो भवेत्।
तद्धर्मगौरवादेव ध्यात्वा शिवपुरं व्रजेत् ॥ २६
भोगांश्च विविधान् भुक्त्वा विद्येश्वरपदं व्रजेत्।
तत्र विद्येश्वरैः सार्द्धं भुक्त्वा भोगान् बहून् क्रमात् ॥ २७
अण्डस्यान्तर्बहिर्वाथ सकृदावर्तते पुनः।
ततो लब्ध्वा शिवज्ञानं परां भक्तिमवाप्य च ॥ २८
शिवसाधर्म्यमासाद्य न भूयो विनिवर्तते।

वहाँपर भी महातेजस्वी वह पूर्व संस्कारके कारण पशुधर्मोंका त्याग करके शिवधर्ममें संलग्न रहता है और उस धर्मके प्रभावसे ही शिवका ध्यान करके शिवलोकको जाता है। वहाँ विविध सुखोंको भोगकर विद्येश्वरलोकको जाता है और वहाँ विद्येश्वरोंके साथ क्रमसे अनेक भोगोंको भोगकर ब्रह्माण्डके भीतर अथवा बाहर एक बार फिर लौटता है। तदनन्तर उत्तम भक्ति प्राप्त करके उसीसे शिवज्ञानको सिद्धकर शिवसाधर्म्यकी प्राप्ति करके पुनः संसारमें नहीं आता है ॥ २५—२८½ ॥

यश्चातीव शिवे भक्तो विषयासक्तचित्तवत् ॥ २९
शिवधर्मानसौ कुर्वन्नकुर्वन् वापि मुच्यते।
एकावृत्तो द्विरावृत्तस्त्रिरावृत्तो निवर्तकः ॥ ३०

जो विषयमें आसक्त चित्तवालोंकी भाँति शिवके प्रति अत्यधिक भक्तिपरायण है, वह शिवधर्मोंको करता हुआ अथवा न करता हुआ भी मुक्त हो जाता है, वह एक बार, दो बार अथवा तीन बार जन्म लेकर मुक्ति प्राप्त कर लेता है ॥ २९-३० ॥

न पुनश्चक्रवर्ती स्यात् शिवधर्माधिकारवान्।
तस्मात् शिवाश्रितो भूत्वा येन केनापि हेतुना ॥ ३१

शिवधर्मे मतिं कुर्यात् श्रेयसे चेत्कृतोद्यमः।
नात्र निर्बन्धयिष्यामो वयं कंचन केनचित् ॥ ३२

निर्बन्धेभ्योऽतिवादेभ्यः प्रकृत्यैतन्न रोचते।
रोचते वा परेभ्यस्तु पुण्यसंस्कारगौरवात् ॥ ३३

संसारकारणं येषां न प्ररोढुमलं भवेत्।
प्रकृत्यनुगुणं तस्माद्विमृश्यैतदशेषतः ॥ ३४

शिवधर्मेऽधिकुर्वीत यदीच्छेच्छिवमात्मनः ॥ ३५

शिवधर्मका अधिकारी चक्रकी भाँति बार-बार विभिन्न योनियोंमें भ्रमण नहीं करता है। अतः यदि कोई [अपने] कल्याणके लिये प्रयत्नशील हो, तो उसे शिवका आश्रय लेकर जिस किसी भी उपायसे शिवधर्ममें बुद्धि लगानी चाहिये। [गुरु कहे कि] हम किसीको अपनी इच्छासे किसी बन्धनमें आबद्ध नहीं करते हैं, दीक्षाविहीन तथा विवाद करनेवालोंको स्वभावतः यह शिवधर्म रुचिकर नहीं लगता, जो पूर्वजन्मकृत पुण्यसंस्कारके गौरवसे युक्त हैं, उन्हें ही [इस शिवधर्ममें] रुचि होती है। जो जगत्‌को सृष्टि आदिका मूल कारण माननेवाले हैं, उनमें यह शिवधर्म आरूढ़ होनेमें समर्थ नहीं हो पाता, अतएव यदि अपना कल्याण अभीष्ट हो तो ऐसे व्यक्तिको उसके स्वभावके अनुरूप गुरु शिवधर्ममें दीक्षित करे ॥ ३१—३५ ॥

इति श्रीशिवमहापुराणे सप्तम्यां वायवीयसंहितायामुत्तरखण्डे नित्यनैमित्तिकविधिवर्णनं नामाष्टाविंशोऽध्यायः ॥ २८ ॥

॥ इस प्रकार श्रीशिवमहापुराणके अन्तर्गत सातवीं वायवीयसंहिताके उत्तरखण्डमें नित्यनैमित्तिकविधिवर्णन नामक अट्ठाईसवाँ अध्याय पूर्ण हुआ ॥ २८ ॥

अथैकोनत्रिंशत्तमोऽध्यायः

काम्यकर्मका वर्णन

श्रीकृष्ण उवाच

भगवंस्त्वन्मुखादेव श्रुतं श्रुतिसमं मया।
स्वाश्रितानां शिवप्रोक्तं नित्यनैमित्तिकं तथा ॥ १

श्रीकृष्ण बोले—हे भगवन्! मैंने आपके मुखसे शिवभक्तोंके लिये शिवद्वारा कही गयी वेदतुल्य प्रामाणिक नित्यनैमित्तिक विधिका श्रवण किया, अब

इदानीं श्रोतुमिच्छामि शिवधर्माधिकारिणाम्।
काम्यमप्यस्ति चेत्कर्म वक्तुमर्हसि साम्प्रतम्॥ २

मैं शिवधर्मके अधिकारियोंका जो भी काम्य कर्म है, उसे सुनना चाहता हूँ, आप इस समय उसे बतानेकी कृपा करें॥ १-२॥

उपमन्युरुवाच

अस्त्यैहिकफलं किञ्चिदामुष्मिकफलं तथा।
ऐहिकामुष्मिकञ्चापि तच्च पञ्चविधं पुनः॥ ३

किञ्चित् क्रियामयं कर्म किञ्चित् कर्म तपोमयम्॥ ४

जपध्यानमयं किञ्चित् किञ्चित् सर्वमयं तथा।
क्रियामयं तथा भिन्नं होमदानार्चनक्रमात्॥ ५

सर्वशक्तिमतामेव नान्येषां सफलं भवेत्।
शक्तिश्चाज्ञा महेशस्य शिवस्य परमात्मनः॥ ६

तस्मात् काम्यानि कर्माणि कुर्यादाज्ञाधरो द्विजः।

उपमन्यु बोले—[हे कृष्ण!] कुछ कर्म ऐहिक फलात्मक अर्थात् इस लोकमें फल देनेवाले हैं और कुछ आमुष्मिक फलात्मक अर्थात् परलोकमें फल देनेवाले हैं तथा कुछ ऐसे भी हैं, जो इस लोकमें और परलोकमें—दोनों ही स्थानोंपर फल देनेवाले हैं। ये कर्म पाँच प्रकारके बताये गये हैं। कुछ क्रियामय कर्म हैं, कुछ तपोमय कर्म हैं, कुछ जपमय कर्म हैं, कुछ ध्यानमय कर्म हैं तथा कुछ सर्वमय कर्म हैं। होम, दान तथा अर्चनके भेदसे क्रियामय कर्म क्रमशः [तीन प्रकारके कहे गये] हैं, ये सब शक्तिमानोंके ही सफल होते हैं, दूसरोंके नहीं। परमात्मा महेश शिवकी आज्ञा ही शक्ति है, अतः शिवकी आज्ञासे युक्त होकर द्विजको काम्यकर्म करना चाहिये॥ ३—६½॥

अथ वक्ष्यामि काम्यं हि चेहामुत्र फलप्रदम्॥ ७

शैवैर्माहेश्वरैश्चैव कार्यमन्तर्बहिः क्रमात्।
शिवो महेश्वरश्चेति नात्यन्तमिह भिद्यते॥ ८

यथा तथा न भिद्यन्ते शैवा माहेश्वरा अपि।
शिवाश्रिता हि ते शैवा ज्ञानयज्ञरता नराः॥ ९

माहेश्वराः समाख्याताः कर्मयज्ञरता भुवि।
तस्मादाभ्यन्तरे कुर्युः शैवा माहेश्वरा बहिः॥ १०

न तु प्रयोगो भिद्येत वक्ष्यमाणस्य कर्मणः।

[तदनन्तर शिवाश्रमसेवियोंके लिये नैमित्तिक कर्मकी विधि बताकर उपमन्युजीने कहा—यदुनन्दन!] अब मैं काम्य कर्मका वर्णन करूँगा, जो इहलोक और परलोकमें भी फल देनेवाला है। शैवों तथा माहेश्वरोंको क्रमशः भीतर और बाहर इसे करना चाहिये। जैसे शिव और महेश्वरमें यहाँ अत्यन्त भेद नहीं है, उसी प्रकार शैवों और माहेश्वरोंमें भी अधिक भेद नहीं है। जो मनुष्य शिवके आश्रित रहकर ज्ञानयज्ञमें तत्पर होते हैं, वे शैव कहलाते हैं और जो शिवाश्रित भक्त भूतलपर कर्मयज्ञमें संलग्न रहते हैं, वे महान् ईश्वरका यजन करनेके कारण माहेश्वर कहे गये हैं। इसलिये ज्ञानयोगी शैवोंको अपने भीतर [भावनाद्वारा] कर्मका अनुष्ठान करना चाहिये और कर्मपरायण माहेश्वरोंको बाहर [विहित द्रव्यों तथा उपकरणोंद्वारा] उस [कर्मयज्ञ]-का सम्पादन करना चाहिये। आगे बताये जानेवाले कर्मके प्रयोगमें उनके लिये कोई भेद नहीं है॥ ७—१०½॥

परीक्ष्य भूमिं विधिवद् गन्धवर्णरसादिभिः॥ ११
मनोऽभिलषिते तत्र वितानविततताम्बरे।
सुप्रलिप्ते महीपृष्ठे दर्पणोदरसंनिभे॥ १२
प्राचीमुत्पादयेत्पूर्वं शास्त्रदृष्टेन वर्त्मना।
एकहस्तं द्विहस्तं वा मण्डलं परिकल्पयेत्॥ १३

गन्ध, वर्ण और रस आदिके द्वारा विधिपूर्वक भूमिकी परीक्षा करके मनोभिलषित स्थानपर आकाशमें चँदोवा तान दे और उस स्थानको भलीभाँति लीप-पोतकर दर्पणके समान स्वच्छ बना दे। तत्पश्चात् शास्त्रोक्त मार्गसे वहाँ पहले पूर्वदिशाकी कल्पना करे। उस दिशामें एक या दो हाथका मण्डल बनाये॥ ११—१३॥

आलिखेद्विमलं पद्ममष्टपत्रं सकर्णिकम्।
रत्नहेमादिभिश्चूर्णैर्यथासम्भवसम्भृतैः ॥ १४

पञ्चावरणसंयुक्तं बहुशोभासमन्वितम्।
दलेषु सिद्धयः कल्प्याः केसरेषु सशक्तिकाः॥ १५

रुद्रा वामादयस्त्वष्टौ पूर्वादिदलतः क्रमात्।
कर्णिकायां च वैराग्यं बीजेषु नव शक्तयः॥ १६

उस मण्डलमें सुन्दर अष्टदल कमल अंकित करे। कमलमें कर्णिका भी होनी चाहिये। यथासम्भव संचित रत्न और सुवर्ण आदिके चूर्णसे उसका निर्माण करे। वह अत्यन्त शोभायमान और पाँच आवरणोंसे युक्त हो। कमलके आठ दलोंमें पूर्वादि क्रमसे अणिमा आदि आठ सिद्धियोंकी कल्पना करे तथा उनके केसरोंमें शक्तिसहित वामदेव आदि आठ रुद्रोंको पूर्वादि दलके क्रमसे स्थापित करे। कमलकी कर्णिकामें वैराग्यको स्थान दे और बीजोंमें नवशक्तियोंकी स्थापना करे॥ १४—१६॥

स्कन्दे शिवात्मको धर्मो नाले ज्ञानं शिवाश्रयम्।
कर्णिकोपरि चाग्नेयं मण्डलं सौरमैन्दवम्॥ १७

कमलके कन्दमें शिवसम्बन्धी धर्म और नालमें शिवसम्बन्धी ज्ञानकी भावना करे। कर्णिकाके ऊपर अग्निमण्डल, सूर्यमण्डल और चन्द्रमण्डलकी भावना करे॥ १७॥

शिवविद्यात्मतत्त्वाख्यं तत्त्वत्रयमतः परम्।
सर्वासनोपरि सुखं विचित्रकुसुमान्वितम्॥ १८

पञ्चावरणसंयुक्तं पूजयेदम्बया सह।

इन मण्डलोंके ऊपर शिवतत्त्व, विद्यातत्त्व और आत्मतत्त्वका चिन्तन करे। सम्पूर्ण कमलासनके ऊपर सुखपूर्वक विराजमान और नाना प्रकारके विचित्र पुष्पोंसे अलंकृत, पाँच आवरणोंसहित भगवान् शिवका माता पार्वतीके साथ पूजन करे॥ १८१/२॥

शुद्धस्फटिकसङ्काशं प्रसन्नं शीतलद्युतिम्॥ १९

विद्युद्वलयसङ्काशजटामुकुटभूषितम् ।
शार्दूलचर्मवसनं किञ्चित्स्मितमुखांबुजम्॥ २०

उनकी अंगकान्ति शुद्ध स्फटिकमणिके समान उज्ज्वल है। वे सतत प्रसन्न रहते हैं। उनकी प्रभा शीतल है। मस्तकपर विद्युन्मण्डलके समान चमकीला जटारूप मुकुट उनकी शोभा बढ़ाता है। वे व्याघ्रचर्म धारण किये हुए हैं। उनके मुखारविन्दपर कुछ-कुछ मन्द मुसकानकी छटा छा रही है॥ १९-२०॥

रक्तपद्मदलप्रख्यपादपाणितलाधरम् ।
सर्वलक्षणसंपन्नं सर्वाभरणभूषितम्॥ २१

दिव्यायुधवरैर्युक्तं दिव्यगन्धानुलेपनम्।
पञ्चवक्त्रं दशभुजं चन्द्रखण्डशिखामणिम्॥ २२

उनके हाथकी हथेलियाँ और पैरोंके तलवे लाल कमलके समान अरुण प्रभासे उद्भासित हैं। वे भगवान् शिव समस्त शुभलक्षणोंसे सम्पन्न और सब प्रकारके आभूषणोंसे विभूषित हैं। उनके हाथोंमें उत्तमोत्तम दिव्य आयुध शोभा पा रहे हैं और अंगोंमें दिव्य चन्दनका लेप लगा हुआ है। उनके पाँच मुख और दस भुजाएँ हैं। अर्धचन्द्र उनकी शिखाके मणि हैं॥ २१-२२॥

अस्य पूर्वमुखं सौम्यं बालार्कसदृशप्रभम्।
त्रिलोचनारविंदाढ्यं कृतबालेन्दुशेखरम्॥ २३

उनका पूर्ववर्ती मुख प्रातःकालके सूर्यकी भाँति अरुण प्रभासे उद्भासित एवं सौम्य है। उसमें तीन नेत्ररूपी कमल खिले हुए हैं तथा सिरपर बालचन्द्रमाका मुकुट शोभा पाता है॥ २३॥

दक्षिणं नीलजीमूतसमानरुचिरप्रभम्।
भ्रुकुटीकुटिलं घोरं रक्तवृत्तेक्षणत्रयम्॥ २४

दंष्ट्राकरालं दुर्द्धर्षं स्फुरिताधरपल्लवम्।
उत्तरं विद्रुमप्रख्यं नीलालकविभूषितम्॥ २५

सविलासं त्रिनयनं चन्द्राभरणशेखरम्।
पश्चिमं पूर्णचन्द्राभं लोचनत्रितयोज्ज्वलम्॥ २६

चन्द्ररेखाधरं सौम्यं मंदस्मितमनोहरम्।
पञ्चमं स्फटिकप्रख्यमिंदुरेखासमुज्ज्वलम्॥ २७

अतीव सौम्यमुत्फुल्ललोचनत्रितयोज्ज्वलम्।

दक्षिणमुख नील जलधरके समान श्याम प्रभासे भासित होता है। उसकी भौंहें टेढ़ी हैं। वह देखनेमें भयानक है। उसमें गोलाकार लाल-लाल आँखें दृष्टिगोचर होती हैं। दाढ़ोंके कारण वह मुख विकराल जान पड़ता है। उसका पराभव करना किसीके लिये भी कठिन है। उसके अधरपल्लव फड़कते रहते हैं। उत्तरवर्ती मुख मूँगेकी भाँति लाल है। काले-काले केशपाश उसकी शोभा बढ़ाते हैं। उसमें विभ्रमविलाससे युक्त तीन नेत्र हैं और उसका मस्तक अर्द्धचन्द्रमय मुकुटसे विभूषित है। भगवान् शिवका पश्चिम मुख पूर्ण चन्द्रमाके समान उज्ज्वल तथा तीन नेत्रोंसे प्रकाशमान है। उसका मस्तक चन्द्रलेखाकी शोभा धारण करता है। वह मुख देखनेमें सौम्य है और मन्द मुसकानकी शोभासे उपासकोंके मनको मोहे लेता है। उनका पाँचवाँ मुख स्फटिकमणिके समान निर्मल, चन्द्रलेखासे समुज्ज्वल, अत्यन्त सौम्य तथा तीन प्रफुल्ल नेत्रकमलोंसे प्रकाशमान है॥ २४—२७½ ॥

दक्षिणे शूलपरशुवज्रखड्गानलोज्ज्वलम्॥ २८

सव्ये च नागनाराचघण्टापाशांकुशोज्ज्वलम्।

भगवान् शिव अपने दाहिने हाथोंमें शूल, परशु, वज्र, खड्ग और अग्नि धारण करके उन सबकी प्रभासे प्रकाशित होते हैं तथा बायें हाथोंमें नाग, बाण, घण्टा, पाश तथा अंकुश उनकी शोभा बढ़ाते हैं॥ २८½ ॥

निवृत्त्या जानुसंबद्धमानाभेश्च प्रतिष्ठया॥ २९

आकंठं विद्यया तद्वदाललाटं तु शान्तया।
तदूर्ध्वं शान्त्यतीताख्यकलया परया तथा॥ ३०

पैरोंसे लेकर घुटनोंतकका भाग निवृत्तिकलासे सम्बद्ध है। उससे ऊपर नाभितकका भाग प्रतिष्ठाकलासे, कण्ठतकका भाग विद्याकलासे, ललाटतकका भाग शान्तिकलासे और उसके ऊपरका भाग शान्त्यतीताकलासे संयुक्त है॥ २९-३० ॥

पञ्चाध्वव्यापिनं साक्षात्कलापञ्चकविग्रहम्।
ईशानमुकुटं देवं पुरुषाख्यं पुरातनम्॥ ३१

अघोरहृदयं तद्वद्वामगुह्यं महेश्वरम्।
सद्यपादं च तन्मूर्तिमष्टत्रिंशत्कलामयम्॥ ३२

इस प्रकार वे पंचाध्वव्यापी तथा साक्षात् पंचकलामय शरीरधारी हैं। ईशानमन्त्र उनका मुकुट है। तत्पुरुषमन्त्र उन पुरातनदेवका मुख है। अघोरमन्त्र हृदय है। वामदेवमन्त्र उन महेश्वरका गुह्यभाग है और सद्योजातमन्त्र उनका युगल चरण है। उनकी मूर्ति अड़तीस कलामयी* है॥ ३१-३२ ॥

* कला, काल, नियति, विद्या, राग, प्रकृति और गुण—ये सात तत्त्व, पंचभूत, पंचतन्मात्रा, दस इन्द्रियाँ, चार अन्तःकरण और पाँच शब्द आदि विषय—ये छत्तीस तत्त्व हैं। ये सब तत्त्व जीवके शरीरमें होते हैं। परमेश्वरके शरीरको शाक्त (शक्तिस्वरूप एवं चिन्मय) तथा मन्त्रमय बताया गया है। इन दो तत्त्वोंको जोड़ लेनेसे अड़तीस कलाएँ होती हैं। समस्त जड-चेतन परमेश्वरका स्वरूप होनेसे उनकी मूर्तिको अड़तीस कलामयी बताया गया है। अथवा पाँच स्वर और तैंतीस व्यंजनरूप होनेसे उनके शरीरको अड़तीस कलामय कहा गया है।

मातृकामयमीशानं पञ्चब्रह्ममयं तथा।
ॐकाराख्यमयं चैव हंसशक्त्या समन्वितम्॥ ३३

तथेच्छात्मिकया शक्त्या समारूढाङ्कमंडलम्।
ज्ञानाख्यया दक्षिणतो वामतश्च क्रियाख्यया॥ ३४

तत्त्वत्रयमयं साक्षाद्विद्यामूर्तिं सदाशिवम्।

परमेश्वर शिवका विग्रह मातृका-(वर्णमाला-) मय, पंचब्रह्म ('ईशानः सर्वविद्यानाम्' इत्यादि पाँच मन्त्र)-मय, प्रणवमय तथा हंसशक्तिसे सम्पन्न है। इच्छाशक्ति उनके अंकमें आरूढ़ है, ज्ञानशक्ति दक्षिणभागमें है तथा क्रियाशक्ति वामभागमें विराजमान है। वे त्रितत्त्वमय हैं। अर्थात् आत्मतत्त्व, विद्यातत्त्व और शिवतत्त्व उनके स्वरूप हैं। वे सदाशिव साक्षात् विद्यामूर्ति हैं। इस प्रकार उनका ध्यान करना चाहिये॥ ३३-३४½॥

मूर्तिं मूलेन सङ्कल्प्य सकलीकृत्य च क्रमात्॥ ३५
संपूज्य च यथान्यायमर्घान्तं मूलविद्यया।
मूर्तिमन्तं शिवं साक्षाच्छक्त्या परमया सह॥ ३६
तत्रावाह्य महादेवं सदसद्व्यक्तिवर्जितम्।
पञ्चोपकरणं कृत्वा पूजयेत्परमेश्वरम्॥ ३७

मूलमन्त्रसे मूर्तिकी कल्पना और सकलीकरणकी क्रिया करके मूलमन्त्रसे ही यथोचित रीतिसे [क्रमशः पाद्य आदि] विशेषार्घ्यपर्यन्त पूजन करे। फिर पराशक्तिके साथ साक्षात् मूर्तिमान् शिवका पूर्वोक्त मूर्तिमें आवाहन करके सदसद्व्यक्तिरहित परमेश्वर महादेवका गन्धादि पंचोपचारोंसे पूजन करे॥ ३५—३७॥

ब्रह्मभिश्च षडङ्गैश्च ततो मातृकया सह।
प्रणवेन शिवेनैव शक्तियुक्तेन च क्रमात्॥ ३८
शान्तेन वा तथान्यैश्च वेदमन्त्रैश्च कृत्स्नशः।
पूजयेत्परमं देवं केवलेन शिवेन वा॥ ३९
पाद्यादिमुखवासान्तं कृत्वा प्रस्थापनं विना।
पञ्चावरणपूजां तु ह्यारभेत यथाक्रमम्॥ ४०

पाँच ब्रह्ममन्त्रोंसे, छः अंगमन्त्रोंसे, मातृकामन्त्रसे, प्रणवसे, शक्तियुक्त शिव-मन्त्रसे, शान्त तथा अन्य वेदमन्त्रोंसे अथवा केवल शिवमन्त्रसे उन परम देवका पूजन करे। पाद्यसे लेकर मुखशुद्धिपर्यन्त पूजन सम्पन्न करके इष्टदेवका विसर्जन किये बिना ही क्रमशः पाँच आवरणोंकी पूजा आरम्भ करे॥ ३८—४०॥

इति श्रीशिवमहापुराणे सप्तम्यां वायवीयसंहितायामुत्तरखण्डे काम्यकर्मवर्णनं नामैकोनत्रिंशत्तमोऽध्यायः॥ २९॥

॥ इस प्रकार श्रीशिवमहापुराणके अन्तर्गत सातवीं वायवीयसंहिताके उत्तरखण्डमें काम्यकर्मवर्णन नामक उनतीसवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ २९॥

अथ त्रिंशोऽध्यायः

आवरणपूजाकी विस्तृत विधि तथा उक्त विधिसे पूजनकी महिमाका वर्णन

उपमन्युरुवाच

तत्रादौ शिवयोः पार्श्वे दक्षिणे वामतः क्रमात्।
गन्धाद्यैरर्चयेत् पूर्वं देवौ हेरंबषण्मुखौ॥ १

उपमन्यु कहते हैं—[यदुनन्दन!] पहले शिवा और शिवके दायें और बायें भागमें क्रमशः गणेश और कार्तिकेयका गन्ध आदि पाँच [उपचारों]-द्वारा पूजन करे॥ १॥

ततो ब्रह्माणि परित ईशानादि यथाक्रमम्।
सशक्तिकानि सद्यान्तं प्रथमावरणे यजेत्॥ २

षडंगान्यपि तत्रैव हृदयादीन्यनुक्रमात्।
शिवस्य च शिवायाश्च वाह्नेयादि समर्चयेत्॥ ३

फिर इन सबके चारों ओर ईशानसे लेकर सद्योजातपर्यन्त पाँच ब्रह्ममूर्तियोंका शक्तिसहित क्रमशः पूजन करे। यह प्रथम आवरणमें किया जानेवाला पूजन है। उसी आवरणमें हृदय आदि छः अंगों तथा शिव और शिवाका अग्निकोणसे लेकर पूर्वदिशापर्यन्त आठ दिशाओंमें क्रमशः पूजन करे॥ २-३॥

तत्र वामादिकान् रुद्रानष्टौ वामादिशक्तिभिः।
अर्चयेद्वा न वा पश्चात्पूर्वादिपरितः क्रमात्॥ ४

वहीं वामा आदि शक्तियोंके साथ वाम आदि आठ रुद्रोंकी पूर्वादि दिशाओंमें क्रमशः पूजा करे। यह पूजन वैकल्पिक है॥ ४॥

प्रथमावरणं प्रोक्तं मया ते यदुनंदन।
द्वितीयावरणं प्रीत्या प्रोच्यते श्रद्धया शृणु॥ ५

अनन्तं पूर्वदिक्पत्रे तच्छक्तिं तस्य वामतः।
सूक्ष्मं दक्षिणदिक्पत्रे सह शक्त्या समर्चयेत्॥ ६

यदुनन्दन! यह मैंने तुमसे प्रथम आवरणका वर्णन किया है। अब प्रेमपूर्वक दूसरे आवरणका वर्णन किया जाता है, श्रद्धापूर्वक सुनो। पूर्व-दिशावाले दलमें अनन्तका और उनके वामभागमें उनकी शक्तिका पूजन करे। दक्षिणदिशावाले दलमें शक्तिसहित सूक्ष्मदेवकी पूजा करे॥ ५-६॥

ततः पश्चिमदिक्पत्रे सह शक्त्या शिवोत्तमम्।
तथैवोत्तरदिक्पत्रे चैकनेत्रं समर्चयेत्॥ ७
एकरुद्रं च तच्छक्तिं पश्चादीशदलेऽर्चयेत्।
त्रिमूर्तिं तस्य शक्तिं च पूजयेदग्निदिग्दले॥ ८
श्रीकण्ठं नैर्ऋते पत्रे तच्छक्तिं तस्य वामतः।
तथैव मारुते पत्रे शिखंडीशं समर्चयेत्॥ ९

पश्चिमदिशाके दलमें शक्तिसहित शिवोत्तमका, उत्तरदिशावाले दलमें शक्तियुक्त एकनेत्रका, ईशानकोणवाले दलमें एकरुद्र और उनकी शक्तिका, अग्निकोणवाले दलमें त्रिमूर्ति और उनकी शक्तिका, नैर्ऋत्यकोणके दलमें श्रीकण्ठ और उनकी शक्तिका तथा वायव्यकोणवाले दलमें शक्तिसहित शिखण्डीशका पूजन करे॥ ७—९॥

द्वितीयावरणे चेज्याः सर्वतश्चक्रवर्त्तिनः।
तृतीयावरणे पूज्याः शक्तिभिश्चाष्टमूर्तयः॥ १०
अष्टसु क्रमशो दिक्षु पूर्वादिपरितः क्रमात्।
भवः शर्वस्तथेशानो रुद्रः पशुपतिस्ततः॥ ११
उग्रो भीमो महादेव इत्यष्टौ मूर्तयः क्रमात्।
अनन्तरं ततश्चैव महादेवादयः क्रमात्।
शक्तिभिः सह संपूज्यास्तत्रैकादशमूर्तयः॥ १२

समस्त चक्रवर्तियोंकी भी द्वितीय आवरणमें ही पूजा करनी चाहिये। तृतीय आवरणमें शक्तियोंसहित अष्टमूर्तियोंका पूर्वादि आठों दिशाओंमें क्रमशः पूजन करे। भव, शर्व, ईशान, रुद्र, पशुपति, उग्र, भीम और महादेव—ये क्रमशः आठ मूर्तियाँ हैं। इसके बाद उसी आवरणमें शक्तियोंसहित महादेव आदि ग्यारह मूर्तियोंकी पूजा करनी चाहिये॥ १०—१२॥

महादेवः शिवो रुद्रः शङ्करो नीललोहितः।
ईशानो विजयो भीमो देवदेवो भवोद्भवः॥ १३
कपर्दीशश्च कथ्यन्ते तथैकादशशक्तयः।
तत्राष्टौ प्रथमं पूज्याः वाह्नेयादि यथाक्रमम्॥ १४

महादेव, शिव, रुद्र, शंकर, नीललोहित, ईशान, विजय, भीम, देवदेव, भवोद्भव तथा कपर्दीश (या कपालीश)—ये ग्यारह मूर्तियाँ हैं। इनमेंसे जो प्रथम आठ मूर्तियाँ हैं, उनका अग्निकोणवाले दलसे लेकर पूर्वदिशापर्यन्त आठ दिशाओंमें पूजन करना चाहिये॥ १३-१४॥

देवदेवः पूर्वपत्रे ईशानं चाग्निगोचरे।
भवोद्भवस्तयोर्मध्ये कपालीशस्ततः परम्॥ १५

तस्मिन्नावरणे भूयो वृषेन्द्रं पुरतो यजेत्।
नंदिनं दक्षिणे तस्य महाकालं तथोत्तरे॥ १६

शास्तारं वह्निदिक्पत्रे मातृर्दक्षिणदिग्दले।
गजास्यं नैर्ऋते पत्रे षण्मुखं वारुणे पुनः॥ १७

देवदेवको पूर्वदिशाके दलमें स्थापित एवं पूजित करे और ईशानका पुनः अग्निकोणमें स्थापन-पूजन करे। फिर इन दोनोंके बीचमें भवोद्भवकी पूजा करे और उन्हींके बाद कपालीश या कपर्दीशका स्थापन-पूजन करना चाहिये। उस तृतीय आवरणमें फिर वृषभराजका पूर्वमें, नन्दीका दक्षिणमें, महाकालका उत्तरमें, शास्ताका अग्निकोणके दलमें, मातृकाओंका दक्षिणदिशाके दलमें, गणेशजीका नैर्ऋत्यकोणके दलमें,

ज्येष्ठां वायुदले गौरीमुत्तरे चंडमैश्वरे।
शास्तृनन्दीशयोर्मध्ये मुनीन्द्रं वृषभं यजेत्॥ १८

कार्तिकेयका पश्चिमदलमें, ज्येष्ठाका वायव्यकोणके दलमें, गौरीका उत्तरदलमें, चण्डका ईशानकोणमें तथा शास्ता एवं नन्दीश्वरके बीचमें मुनीन्द्र वृषभका यजन करे॥ १५—१८॥

महाकालस्योत्तरतः पिङ्गलं तु समर्चयेत्।
शास्तृमातृसमूहस्य मध्ये भृङ्गीश्वरं ततः॥ १९
मातृविघ्नेशमध्ये तु वीरभद्रं समर्चयेत्।
स्कन्दविघ्नेशयोर्मध्ये यजेद्देवीं सरस्वतीम्॥ २०
ज्येष्ठाकुमारयोर्मध्ये श्रियं शिवपदार्चिताम्।
ज्येष्ठागणाम्बयोर्मध्ये महामोटीं समर्चयेत्॥ २१

महाकालके उत्तरभागमें पिंगलका, शास्ता और मातृकाओंके बीचमें भृंगीश्वरका, मातृकाओं तथा गणेशजीके बीचमें वीरभद्रका, स्कन्द और गणेशजीके बीचमें सरस्वतीदेवीका, ज्येष्ठा और कार्तिकेयके बीचमें शिवचरणोंकी अर्चना करनेवाली श्रीदेवीका, ज्येष्ठा और गणाम्बा (गौरी)-के बीचमें महामोटीकी पूजा करे॥ १९—२१॥

गणाम्बाचण्डयोर्मध्ये देवीं दुर्गां प्रपूजयेत्।
अत्रैवावरणे भूयः शिवानुचरसंहतिम्॥ २२
रुद्रप्रथमभूताख्यां विविधां च सशक्तिकाम्।
शिवायाश्च सखीवर्गं यजेद्ध्यात्वा समाहितः॥ २३

गणाम्बा और चण्डके बीचमें दुर्गादेवीकी पूजा करे। इसी आवरणमें पुनः शिवके अनुचरवर्गकी पूजा करे। इस अनुचरवर्गमें रुद्रगण, प्रमथगण और भूतगण आते हैं। इन सबके विविध रूप हैं और ये सब-के-सब अपनी शक्तियोंके साथ हैं। इनके बाद एकाग्रचित्त हो शिवाके सखीवर्गका भी ध्यान एवं पूजन करना चाहिये॥ २२-२३॥

एवं तृतीयावरणं वितते पूजिते सति।
चतुर्थावरणं ध्यात्वा बहिस्तस्य समर्चयेत्॥ २४

इस प्रकार तृतीय आवरणके देवताओंका विस्तारपूर्वक पूजन हो जानेपर उसके बाह्यभागमें चतुर्थ आवरणका चिन्तन एवं पूजन करे॥ २४॥

भानुः पूर्वदले पूज्यो दक्षिणे चतुराननः।
रुद्रो वरुणदिक्पत्रे विष्णुरुत्तरदिग्दले॥ २५
चतुर्णामपि देवानां पृथगावरणान्यथ।
तस्याङ्गानि षडेवादौ दीप्ताद्याभिश्च शक्तिभिः॥ २६

पूर्वदलमें सूर्यका, दक्षिणदलमें चतुर्मुख ब्रह्माका, पश्चिमदलमें रुद्रका और उत्तर दिशाके दलमें भगवान् विष्णुका पूजन करे। इन चारों देवताओंके भी पृथक्- पृथक् आवरण हैं। इनके प्रथम आवरणमें छहों अंगों तथा दीप्ता आदि शक्तियोंकी पूजा करनी चाहिये॥ २५-२६॥

दीप्ता सूक्ष्मा जया भद्रा विभूतिर्विमला क्रमात्।
अमोघा विद्युता चैव पूर्वादिपरितः स्थिताः॥ २७
द्वितीयावरणे पूज्याश्चतस्रो मूर्तयः क्रमात्।
पूर्वाद्युत्तरपर्यन्ताः शक्तयश्च ततः परम्॥ २८

दीप्ता, सूक्ष्मा, जया, भद्रा, विभूति, विमला, अमोघा और विद्युता—इनकी क्रमशः पूर्व आदि आठ दिशाओंमें स्थिति है। द्वितीय आवरणमें पूर्वसे लेकर उत्तरतक क्रमशः चार मूर्तियोंकी और उनके बाद उनकी शक्तियोंकी पूजा करे॥ २७-२८॥

आदित्यो भास्करो भानू रविश्चेत्यनुपूर्वशः।
अर्को ब्रह्मा तथा रुद्रो विष्णुश्चैते विवस्वतः॥ २९
विस्तारा पूर्वदिग्भागे सुतारा दक्षिणे स्थिता।
बोधनी पश्चिमे भागे आप्यायिन्युत्तरे पुनः॥ ३०

आदित्य, भास्कर, भानु और रवि—ये चार मूर्तियाँ क्रमशः पूर्वादि चारों दिशाओंमें पूजनीय हैं। तत्पश्चात् अर्क, ब्रह्मा, रुद्र तथा विष्णु—ये चार मूर्तियाँ भी पूर्वादि दिशाओंमें पूजनीय हैं। पूर्वदिशामें विस्तरा, दक्षिणदिशामें सुतरा, पश्चिमदिशामें बोधिनी

उषां प्रभां तथा प्राज्ञां सन्ध्यामपि ततः परम्।
ऐशानादिषु विन्यस्य द्वितीयावरणे यजेत्॥ ३१

और उत्तरदिशामें आप्यायिनीकी पूजा करे। ईशानकोणमें उषाकी, अग्निकोणमें प्रभाकी, नैर्ऋत्यकोणमें प्राज्ञाकी और वायव्यकोणमें संध्याकी पूजा करे। इस तरह द्वितीय आवरणमें इन सबकी स्थापना करके विधिवत् पूजा करनी चाहिये॥ २९—३१॥

सोममङ्गारकं चैव बुधं बुद्धिमतां वरम्।
बृहस्पतिं बृहद्बुद्धिं भार्गवं तेजसां निधिम्॥ ३२
शनैश्चरं तथा राहुं केतुं धूम्रं भयङ्करम्।
समन्ततो यजेदेतांस्तृतीयावरणे क्रमात्॥ ३३
अथवा द्वादशादित्यान् द्वितीयावरणे यजेत्।
तृतीयावरणे चैव राशीन्द्वादश पूजयेत्॥ ३४

तृतीय आवरणमें सोम, मंगल, बुद्धिमानोंमें श्रेष्ठ बुध, विशालबुद्धि बृहस्पति, तेजोनिधि शुक्र, शनैश्चर तथा धूम्रवर्णवाले भयंकर राहु-केतुका पूर्वादि दिशाओंमें पूजन करे अथवा द्वितीय आवरणमें द्वादश आदित्योंकी पूजा करनी चाहिये और तृतीय आवरणमें द्वादश राशियोंकी॥ ३२—३४॥

सप्तसप्त गणांश्चैव बहिस्तस्य समन्ततः।
ऋषीन्देवांश्च गन्धर्वान्पन्नगानप्सरोगणान्॥ ३५
ग्रामण्यश्च तथा यक्षान्यातुधानांस्तथा हयान्।
सप्तच्छंदोमयांश्चैव वालखिल्यांश्च पूजयेत्॥ ३६
एवं तृतीयावरणे समभ्यर्च्य दिवाकरम्।
ब्रह्माणमर्चयेत्पश्चात् त्रिभिरावरणैः सह॥ ३७

उसके बाह्य भागमें सात-सात गणोंकी सब ओर पूजा करनी चाहिये। ऋषियों, देवताओं, गन्धर्वों, नागों, अप्सराओं, ग्रामणियों, यक्षों, यातुधानों, सात छन्दोमय अश्वों तथा वालखिल्योंका पूजन करे। इस तरह तृतीय आवरणमें सूर्यदेवका पूजन करनेके पश्चात् तीन आवरणोंसहित ब्रह्माजीका पूजन करे॥ ३५—३७॥

हिरण्यगर्भं पूर्वस्यां विराजं दक्षिणे ततः।
कालं पश्चिमदिग्भागे पुरुषं चोत्तरे यजेत्॥ ३८

हिरण्यगर्भः प्रथमो ब्रह्मा कमलसन्निभः।
कालो जात्यञ्जनप्रख्यः पुरुषः स्फटिकोपमः॥ ३९

त्रिगुणो राजसश्चैव तामसः सात्त्विकस्तथा।
चत्वार एते क्रमशः प्रथमावरणे स्थिताः॥ ४०

पूर्वदिशामें हिरण्यगर्भका, दक्षिणमें विराट्का, पश्चिमदिशामें कालका और उत्तरदिशामें पुरुषका पूजन करे। हिरण्यगर्भ नामक जो पहले ब्रह्मा हैं, उनकी अंगकान्ति कमलके समान है। काल जन्मसे ही अंजनके समान काले हैं और पुरुष स्फटिकमणिके समान निर्मल हैं। त्रिगुण, राजस, तामस तथा सात्त्विक स्वरूपवाले ये चारों पूर्वादि दिशाके क्रमसे प्रथम आवरणमें ही स्थित हैं॥ ३८—४०॥

द्वितीयावरणे पूज्याः पूर्वादिपरितः क्रमात्।
सनत्कुमारः सनकः सनंदश्च सनातनः॥ ४१

तृतीयावरणे पश्चादर्चयेच्च प्रजापतीन्।
अष्टौ पूर्वांश्च पूर्वादौ त्रीन् प्राक्पश्चादनुक्रमात्॥ ४२

द्वितीय आवरणमें पूर्वादि दिशाओंके दलोंमें क्रमशः सनत्कुमार, सनक, सनन्दन और सनातनका पूजन करना चाहिये। तत्पश्चात् तीसरे आवरणमें ग्यारह प्रजापतियोंकी पूजा करे। उनमेंसे प्रथम आठका तो पूर्व आदि आठ दिशाओंमें पूजन करे, फिर शेष तीनका पूर्व आदिके क्रमसे अर्थात् पूर्व, दक्षिण एवं पश्चिममें स्थापन-पूजन करे॥ ४१-४२॥

दक्षो रुचिर्भृगुश्चैव मरीचिश्च तथाङ्गिराः।
पुलस्त्यः पुलहश्चैव क्रतुरत्रिश्च कश्यपः॥ ४३
वसिष्ठश्चेति विख्याताः प्रजानां पतयस्त्विमे।
तेषां भार्य्याश्च तैः सार्द्धं पूजनीया यथाक्रमम्॥ ४४
प्रसूतिश्च तथाऽऽकूतिः ख्यातिः सम्भूतिरेव च।

दक्ष, रुचि, भृगु, मरीचि, अंगिरा, पुलस्त्य, पुलह, क्रतु, अत्रि, कश्यप और वसिष्ठ—ये ग्यारह विख्यात प्रजापति हैं। इनके साथ इनकी पत्नियोंका भी क्रमशः पूजन करना चाहिये। प्रसूति, आकूति, ख्याति, सम्भूति,

धृतिः स्मृतिः क्षमा चैव सन्नतिश्चानसूयका॥ ४५
देवमातारुन्धती च सर्वाः खलु पतिव्रताः।
शिवार्चनरता नित्यं श्रीमत्यः प्रियदर्शनाः॥ ४६

धृति, स्मृति, क्षमा, संनति, अनसूया, देवमाता अदिति तथा अरुन्धती—ये सभी ऋषिपत्नियाँ पतिव्रता, सदा शिव-पूजनपरायणा, कान्तिमती और प्रियदर्शना (परम सुन्दरी) हैं॥ ४३—४६॥

प्रथमावरणे वेदांश्चतुरो वा प्रपूजयेत्।
इतिहासपुराणानि द्वितीयावरणे पुनः॥ ४७
तृतीयावरणे पश्चाद्धर्मशास्त्रपुरःसराः।
वैदिक्यो निखिला विद्याः पूज्या एव समन्ततः॥ ४८

अथवा प्रथम आवरणमें चारों वेदोंका पूजन करे, फिर द्वितीय आवरणमें इतिहास-पुराणोंकी अर्चना करे तथा तृतीय आवरणमें धर्मशास्त्रसहित सम्पूर्ण वैदिक विद्याओंका सब ओर पूजन करना चाहिये॥ ४७-४८॥

पूर्वादिपुरतो वेदास्तदन्ये तु यथारुचि।
अष्टधा वा चतुर्धा वा कृत्वा पूजां समन्ततः॥ ४९
एवं ब्रह्माणमभ्यर्च्य त्रिभिरावरणैर्युतम्।
दक्षिणे पश्चिमे पश्चाद् रुद्रं सावरणं यजेत्॥ ५०

चार वेदोंको पूर्वादि चार दिशाओंमें पूजना चाहिये, अन्य ग्रन्थोंको अपनी रुचिके अनुसार आठ या चार भागोंमें बाँटकर सब ओर उनकी पूजा करनी चाहिये। इस प्रकार दक्षिणमें तीन आवरणोंसे युक्त ब्रह्माजीकी पूजा करके पश्चिममें आवरणसहित रुद्रका पूजन करे॥ ४९-५०॥

तस्य ब्रह्मषडंगानि प्रथमावरणं स्मृतम्।
द्वितीयावरणं चैव विद्येश्वरमयं तथा॥ ५१
तृतीयावरणे भेदो विद्यते स तु कथ्यते।
चतस्रो मूर्तयस्तस्य पूज्याः पूर्वादितः क्रमात्॥ ५२

ईशान आदि पाँच ब्रह्म और हृदय आदि छः अंगोंको रुद्रदेवका प्रथम आवरण कहा गया है। द्वितीय आवरण विद्येश्वरमय[1] है। तृतीय आवरणमें भेद है। अतः उसका वर्णन किया जाता है। उस आवरणमें पूर्वादि दिशाओंके क्रमसे [त्रिगुणादि] चार मूर्तियोंकी पूजा करनी चाहिये॥ ५१-५२॥

त्रिगुणः सकलो देवः पुरस्ताच्छिवसंज्ञकः।
राजसो दक्षिणे ब्रह्मा सृष्टिकृत्पूज्यते भवः॥ ५३
तामसः पश्चिमे चाग्निः पूज्यः संहारको हरः।
सात्त्विकः सुखकृत्सौम्ये विष्णुर्विश्वपतिर्मृडः॥ ५४

पूर्वदिशामें पूर्णरूप शिव नामक महादेव पूजित होते हैं, इनकी 'त्रिगुण' संज्ञा है [क्योंकि ये त्रिगुणात्मक जगत्के आश्रय हैं]। दक्षिणदिशामें 'राजस' पुरुषके नामसे प्रसिद्ध सृष्टिकर्ता ब्रह्माका पूजन किया जाता है, ये 'भव' कहलाते हैं। पश्चिम-दिशामें 'तामस' पुरुष अग्निकी पूजा की जाती है, इन्हींको संहारकारी 'हर' कहा गया है। उत्तरदिशामें 'सात्त्विक' पुरुष सुखदायक विष्णुका पूजन किया जाता है। ये ही विश्वपालक 'मृड' हैं॥ ५३-५४॥

एवं पश्चिमदिग्भागे शम्भोः षड्विंशकं शिवम्।
समभ्यर्च्योत्तरे पार्श्वे ततो वैकुंठमर्चयेत्॥ ५५

इस प्रकार पश्चिमभागमें शम्भुके शिवरूपका, जो [पचीस तत्त्वोंका साक्षी] छब्बीसवाँ[2] तत्त्व-रूप है, पूजन करके उत्तरदिशामें भगवान् विष्णुका पूजन करना चाहिये॥ ५५॥

---

१. पाशुपत-दर्शनमें विद्येश्वरोंकी संख्या आठ बतायी गयी है। उनके नाम इस प्रकार हैं—अनन्त, सूक्ष्म, शिवोत्तम, एकनेत्र, एकरुद्र, त्रिमूर्ति, श्रीकण्ठ और शिखण्डी। इनको क्रमशः पूर्व आदि दिशाओंमें स्थापित करके इनकी पूजा करे। द्वितीय आवरणमें इन्हींकी पूजा बतायी गयी है।

२. सांख्योक्त २४ प्राकृत तत्त्वोंके साक्षी जीवको पचीसवाँ तत्त्व कहा गया है; जो इससे भी परे हैं, वे सर्वसाक्षी परमात्मा शिव छब्बीसवें तत्त्वरूप हैं।

वासुदेवं पुरस्कृत्वा प्रथमावरणे यजेत्।
अनिरुद्धं दक्षिणतः प्रद्युम्नं पश्चिमे ततः॥ ५६

सौम्ये सङ्कर्षणं पश्चाद् व्यत्यस्तौ वा यजेदिमौ।
प्रथमावरणं प्रोक्तं द्वितीयावरणं शुभम्॥ ५७

मत्स्यः कूर्मो वराहश्च नरसिंहोऽथ वामनः।
रामश्चान्यतमः कृष्णो भवानश्वमुखोऽपि च॥ ५८

तृतीयावरणे चक्रं पूर्वभागे समर्चयेत्।
नारायणाख्यं याम्येऽस्त्रं क्वचिदव्याहतं यजेत्॥ ५९

पश्चिमे पांचजन्यं च शार्ङ्गं धनुरथोत्तरे।
एवं त्र्यावरणैः साक्षाद्विश्वाख्यं परमं हरिम्॥ ६०

महाविष्णुं सदाविष्णुं मूर्त्तीकृत्य समर्चयेत्।
इत्थं विष्णोश्चतुर्व्यूहक्रमान्मूर्तिचतुष्टयम्।
पूजयित्वा च तच्छक्तीश्चतस्रः पूजयेत्क्रमात्॥ ६१

प्रभामाग्नेयदिग्भागे नैर्ऋते तु सरस्वतीम्।
गणांबिकां च वायव्ये लक्ष्मीं रौद्रे समर्चयेत्॥ ६२

एवं भान्वादिमूर्त्तीनां तच्छक्तीनामनन्तरम्।
पूजां विधाय लोकेशांस्तत्रैवावरणे यजेत्॥ ६३

इन्द्रमग्निं यमं चैव निर्ऋतिं वरुणं तथा।
वायुं सोमं कुबेरं च पश्चादीशानमर्चयेत्॥ ६४

एवं चतुर्थावरणं पूजयित्वा विधानतः।
आयुधानि महेशस्य पश्चाद् बाह्ये समर्चयेत्॥ ६५

श्रीमत् त्रिशूलमैशाने वज्रं माहेन्द्रदिङ्मुखे।
परशुं वह्निदिग्भागे याम्ये सायकमर्चयेत्॥ ६६

नैर्ऋते तु यजेत्खड्गं पाशं वारुणगोचरे।
अंकुशं मारुते भागे पिनाकं चोत्तरे यजेत्॥ ६७

पश्चिमाभिमुखं रौद्रं क्षेत्रपालं समर्चयेत्।
पञ्चमावरणं चैव सम्पूज्यानन्तरं बहिः॥ ६८

सर्वावरणदेवानां बहिर्वा पञ्चमेऽथवा।
पञ्चमे मातृभिः सार्द्धं महोक्षं पुरतो यजेत्॥ ६९

इनके प्रथम आवरणमें वासुदेवको पूर्वमें, अनिरुद्धको दक्षिणमें, प्रद्युम्नको पश्चिममें और संकर्षणको उत्तरमें स्थापित करके इनकी पूजा करनी चाहिये। यह प्रथम आवरण बताया गया। अब द्वितीय शुभ आवरण बताया जाता है॥ ५६-५७॥

मत्स्य, कूर्म, वराह, नरसिंह, वामन, श्रीराम या तीनों राम, आप श्रीकृष्ण और हयग्रीव—ये द्वितीय आवरणमें पूजित होते हैं। तृतीय आवरणमें पूर्वभागमें चक्रकी पूजा करे, दक्षिणभागमें कहीं भी प्रतिहत न होनेवाले नारायणास्त्रका यजन करे, पश्चिममें पांचजन्यका और उत्तरमें शार्ङ्गधनुषकी पूजा करे। इस प्रकार तीन आवरणोंसे युक्त साक्षात् विश्व नामक परम हरि महाविष्णुकी, जो सदा सर्वत्र व्यापक हैं, मूर्तिमें भावना करके पूजा करे। इस तरह विष्णुके चतुर्व्यूहक्रमसे चार मूर्तियोंका पूजन करके क्रमशः उनकी चार शक्तियोंका पूजन करे॥ ५८—६१॥

प्रभाका अग्निकोणमें, सरस्वतीका नैर्ऋत्यकोणमें, गणाम्बिकाका वायव्यकोणमें तथा लक्ष्मीका ईशानकोणमें पूजन करे। इसी प्रकार भानु आदि मूर्तियों और उनकी शक्तियोंका पूजन करके उसी आवरणमें लोकेश्वरोंकी पूजा करे॥ ६२-६३॥

उनके नाम इस प्रकार हैं—इन्द्र, अग्नि, यम, निर्ऋति, वरुण, वायु, सोम, कुबेर तथा ईशान। इस प्रकार चौथे आवरणकी विधिपूर्वक पूजा सम्पन्न करके बाह्यभागमें महेश्वरके आयुधोंकी अर्चना करे॥ ६४-६५॥

ईशानकोणमें तेजस्वी त्रिशूलकी, पूर्वदिशामें वज्रकी, अग्निकोणमें परशुकी, दक्षिणमें बाणकी, नैर्ऋत्यकोणमें खड्गकी, पश्चिममें पाशकी, वायव्यकोणमें अंकुशकी और उत्तरदिशामें पिनाककी पूजा करे। तत्पश्चात् पश्चिमाभिमुख रौद्ररूपधारी क्षेत्रपालका अर्चन करे॥ ६६-६७१/२॥

इस तरह पंचम आवरणकी पूजाका सम्पादन करके समस्त आवरण देवताओंके बाह्यभागमें अथवा पाँचवें आवरणमें ही मातृकाओंसहित महावृषभ नन्दिकेश्वरका पूर्वदिशामें पूजन करे॥ ६८-६९॥

ततः समन्ततः पूज्याः सर्वा वै देवयोनयः।
खेचरा ऋषयः सिद्धा दैत्या यक्षाश्च राक्षसाः॥ ७०
अनन्ताद्याश्च नागेन्द्रा नागैस्तत्तत्कुलोद्भवैः।
डाकिनी भूतवेतालप्रेतभैरवनायकाः॥ ७१
पातालवासिनश्चान्ये नानायोनिसमुद्भवाः।
नद्यः समुद्रा गिरयः काननानि सरांसि च॥ ७२
पशवः पक्षिणो वृक्षाः कीटाद्याः क्षुद्रयोनयः।
नराश्च विविधाकारा मृगाश्च क्षुद्रयोनयः॥ ७३
भुवनान्यन्तरण्डस्य ततो ब्रह्माण्डकोटयः।
बहिरंडान्यसंख्यानि भुवनानि सहाधिपैः॥ ७४
ब्रह्मांडाधारका रुद्रा दशदिक्षु व्यवस्थिताः।
यद्गौणं यच्च मायेयं यद्वा शाक्तं ततः परम्॥ ७५
यत्किञ्चिदस्ति शब्दस्य वाच्यं चिदचिदात्मकम्।
तत्सर्वं शिवयोः पार्श्वे बुद्ध्वा सामान्यतो यजेत्॥ ७६

तदनन्तर समस्त देवयोनियोंकी चारों ओर अर्चना करे। इसके सिवा जो आकाशमें विचरनेवाले ऋषि, सिद्ध, दैत्य, यक्ष, राक्षस, अनन्त आदि नागराज, उन-उन नागेश्वरोंके कुलमें उत्पन्न हुए अन्य नाग, डाकिनी, भूत, वेताल, प्रेत और भैरवोंके नायक, नाना योनियोंमें उत्पन्न हुए अन्य पातालवासी जीव, नदी, समुद्र, पर्वत, वन, सरोवर, पशु, पक्षी, वृक्ष, कीट आदि क्षुद्र योनिके जीव, मनुष्य, नाना प्रकारके आकारवाले मृग, क्षुद्र जन्तु, ब्रह्माण्डके भीतरके लोक, कोटि-कोटि ब्रह्माण्ड, ब्रह्माण्डके बाहरके असंख्य भुवन और उनके अधीश्वर तथा दसों दिशाओंमें स्थित ब्रह्माण्डके आधारभूत रुद्र और गुणजनित, मायाजनित, शक्तिजनित तथा उससे भी परे जो कुछ भी शब्दवाच्य जड-चेतनात्मक प्रपंच है, उन सबको शिवा और शिवके पार्श्वभागमें स्थित जानकर उनका सामान्यरूपसे यजन करे॥ ७०—७६॥

कृताञ्जलिपुटाः सर्वेऽचिन्त्याः स्मितमुखास्तथा।
प्रीत्या संप्रेक्षमाणाश्च देवं देवीं च सर्वदा॥ ७७

वे सब लोग हाथ जोड़कर मन्द मुसकानयुक्त मुखसे सुशोभित होते हुए प्रेमपूर्वक महादेव और महादेवीका दर्शन कर रहे हैं, ऐसा चिन्तन करना चाहिये।

इत्थमावरणाभ्यर्चां कृत्वा विक्षेपशान्तये।
पुनरभ्यर्च्य देवेशं पञ्चाक्षरमुदीरयेत्॥ ७८

इस तरह आवरण-पूजा सम्पन्न करके विक्षेपकी शान्तिके लिये पुनः देवेश्वर शिवकी अर्चना करनेके पश्चात् पंचाक्षरमन्त्रका जप करे॥ ७७-७८॥

निवेदयेत्ततः पश्चाच्छिवयोरमृतोपमम्।
सुव्यञ्जनसमायुक्तं शुद्धं चारु महाचरुम्॥ ७९

द्वात्रिंशदाढकैर्मुख्यमधमं त्वाढकावरम्।
साधयित्वा यथासंपच्छ्रद्धया विनिवेदयेत्॥ ८०

तदनन्तर शिव और पार्वतीके सम्मुख उत्तम व्यंजनोंसे युक्त तथा अमृतके समान मधुर, शुद्ध एवं मनोहर महाचरुका नैवेद्य निवेदन करे। यह महाचरु बत्तीस आढक (लगभग तीन मन आठ सेर)-का हो तो उत्तम है और कम-से-कम एक आढक (चार सेर)-का हो तो निम्न श्रेणीका माना गया है। अपने वैभवके अनुसार जितना हो सके, महाचरु तैयार करके उसे श्रद्धापूर्वक निवेदित करे॥ ७९-८०॥

ततो निवेद्य पानीयं तांबूलं चोपदंशकैः।
नीराजनादिकं कृत्वा पूजाशेषं समापयेत्॥ ८१

भोगोपयोग्यद्रव्याणि विशिष्टान्येव साधयेत्।
वित्तशाठ्यं न कुर्वीत भक्तिमान्विभवे सति॥ ८२

तदनन्तर जल और ताम्बूल-इलायची आदि निवेदन करके आरती उतारकर शेष पूजा समाप्त करे। यागके उपयोगमें आनेवाले द्रव्य, भोजन, वस्त्र आदिको उत्तम श्रेणीका ही तैयार कराकर दे। भक्तिमान् पुरुष वैभव होते हुए धनव्यय करनेमें कंजूसी न करे॥ ८१-८२॥

शठस्योपेक्षकस्यापि व्यङ्गं चैवानुतिष्ठतः।
न फलन्त्येव कर्माणि काम्यानीति सतां कथा॥ ८३

जो शठ या कंजूस है और पूजाके प्रति उपेक्षाकी भावना रखता है, वह यदि कृपणतावश कर्मको किसी अंगसे हीन कर दे तो उसके वे काम्य कर्म सफल नहीं होते, ऐसा सत्पुरुषोंका कथन है॥ ८३॥

तस्मात्सम्यगुपेक्षां च त्यक्त्वा सर्वांगयोगतः।
कुर्यात्काम्यानि कर्माणि फलसिद्धिं यदीच्छति॥ ८४

इत्थं पूजां समाप्याथ देवं देवीं प्रणम्य च।
भक्त्या मनः समाधाय पश्चात्स्तोत्रमुदीरयेत्॥ ८५

इसलिये मनुष्य यदि फलसिद्धिका इच्छुक हो तो उपेक्षाभावको त्यागकर सम्पूर्ण अंगोंके योगसे काम्य कर्मोंका सम्पादन करे। इस तरह पूजा समाप्त करके महादेव और महादेवीको प्रणाम करे। फिर भक्तिभावसे मनको एकाग्र करके स्तुतिपाठ करे॥ ८४-८५॥

ततः स्तोत्रमुपास्यान्ते त्वष्टोत्तरशतावराम्।
जपेत्पञ्चाक्षरीं विद्यां सहस्त्रोत्तरमुत्सुकः॥ ८६

विद्यापूजां गुरोः पूजां कृत्वा पश्चाद्यथाक्रमम्।
यथोदयं यथाश्रद्धं सदस्यानपि पूजयेत्॥ ८७

स्तुतिके पश्चात् साधक उत्सुकतापूर्वक कम-से-कम एक सौ आठ बार और सम्भव हो तो एक हजारसे अधिक बार पंचाक्षरी विद्याका जप करे। तत्पश्चात् क्रमशः विद्या और गुरुकी पूजा करके अपने अभ्युदय और श्रद्धाके अनुसार यज्ञमण्डपके सदस्योंका भी पूजन करे॥ ८६-८७॥

तत उद्वास्य देवेशं सर्वैरावरणैः सह।
मण्डलं गुरवे दद्याद्यागोपकरणैः सह॥ ८८

शिवाश्रितेभ्यो वा दद्यात्सर्वमेवानुपूर्वशः।
अथवा तच्छिवायैव शिवक्षेत्रे समर्पयेत्॥ ८९

शिवाग्नौ वा यजेद्देवं होमद्रव्यैश्च सप्तभिः।
समभ्यर्च्य यथान्यायं सर्वावरणदेवताः॥ ९०

फिर आवरणोंसहित देवेश्वर शिवका विसर्जन करके यज्ञके उपकरणोंसहित वह सारा मण्डल गुरुको अथवा शिवचरणाश्रित भक्तोंको दे दे। अथवा उसे शिवके ही उद्देश्यसे शिवके क्षेत्रमें समर्पित कर दे। अथवा समस्त आवरण-देवताओंका यथोचित रीतिसे पूजन करके सात प्रकारके होमद्रव्योंद्वारा शिवाग्निमें इष्टदेवताका यजन करे॥ ८८—९०॥

एष योगेश्वरो नाम त्रिषु लोकेषु विश्रुतः।
न तस्मादधिकः कश्चिद्यागोऽस्ति भुवने क्वचित्॥ ९१

न तदस्ति जगत्यस्मिन्नसाध्यं यदनेन तु।
ऐहिकं वा फलं किञ्चिदामुष्मिकफलं तु वा॥ ९२

इदमस्य फलं नेदमिति नैव नियम्यते।
श्रेयोरूपस्य कृत्स्नस्य तदिदं श्रेष्ठसाधनम्॥ ९३

यह तीनों लोकोंमें विख्यात योगेश्वर नामक योग है। इससे बढ़कर कोई योग त्रिभुवनमें कहीं नहीं है। संसारमें कोई ऐसी वस्तु नहीं, जो इससे साध्य न हो। इस लोकमें मिलनेवाला कोई फल हो या परलोकमें, इसके द्वारा सब सुलभ है। यह इसका फल नहीं है, ऐसा कोई नियन्त्रण नहीं किया जा सकता; क्योंकि सम्पूर्ण श्रेयोरूप साध्यका यह श्रेष्ठ साधन है॥ ९१—९३॥

इदं न शक्यते वक्तुं पुरुषेण यदर्च्यते।
चिन्तामणेरिवैतस्मात्तत्तेन प्राप्यते फलम्॥ ९४

तथापि क्षुद्रमुद्दिश्य फलं नैतत्प्रयोजयेत्।
लघ्वर्थी महतो यस्मात्स्वयं लघुतरो भवेत्॥ ९५

यह निश्चितरूपसे कहा जा सकता है कि पुरुष जो कुछ फल चाहता है, वह सब चिन्तामणिके समान इससे प्राप्त हो सकता है। तथापि किसी क्षुद्र फलके उद्देश्यसे इसका प्रयोग नहीं करना चाहिये; क्योंकि किसी महान्‌से लघु फलकी इच्छा रखनेवाला पुरुष स्वयं लघुतर हो जाता है॥ ९४-९५॥

महद्वा फलमल्पं वा कृतं चेत्कर्म सिध्यति।
महादेवं समुद्दिश्य कृतं कर्म प्रयुज्यताम्॥ ९६

तस्मादनन्यलभ्येषु शत्रुमृत्युंजयादिषु।
फलेषु दृष्टादृष्टेषु कुर्य्यादेतद्विचक्षणः॥ ९७

महत्स्वपि च पापेषु महारोगभयादिषु।
दुर्भिक्षादिषु शांत्यर्थं शांतिं कुर्य्यादनेन तु॥ ९८

बहुना किं प्रलापेन महाव्यापन्निवारकम्।
आत्मीयमस्त्रं शैवानामिदमाह महेश्वरः॥ ९९

तस्मादितः परं नास्ति परित्राणमिहात्मनः।
इति मत्वा प्रयुञ्जानः कर्मेदं शुभमश्नुते॥ १००

स्तोत्रमात्रं शुचिर्भूत्वा यः पठेत्सुसमाहितः।
सोऽप्यभीष्टतमादर्थादष्टांशफलमाप्नुयात्॥ १०१

अर्थं तस्यानुसन्धाय पर्वण्यनशनः पठेत्।
अष्टम्यां वा चतुर्दश्यां फलमर्द्धं समाप्नुयात्॥ १०२

यस्त्वर्थमनुसन्धाय पर्वादिषु तथा व्रती।
मासमेकं जपेत्स्तोत्रं स कृत्स्नं फलमाप्नुयात्॥ १०३

महादेवजीके उद्देश्यसे महान् या अल्प जो भी कर्म किया जाय, वह सब सिद्ध होता है। अतः उन्हींके उद्देश्यसे कर्मका प्रयोग करना चाहिये। शत्रु तथा मृत्युपर विजय पाना आदि जो फल दूसरोंसे सिद्ध होनेवाले नहीं हैं, उन्हीं लौकिक या पारलौकिक फलोंके लिये विद्वान् पुरुष इसका प्रयोग करे॥ ९६-९७॥

महापातकोंमें, महान् रोगसे भय आदिमें तथा दुर्भिक्ष आदिमें यदि शान्ति करनेकी आवश्यकता हो तो इसीसे शान्ति करे। अधिक बढ़-बढ़कर बातें बनानेसे क्या लाभ? इस योगको महेश्वर शिवने शैवोंके लिये बड़ी भारी आपत्तिका निवारण करनेवाला अपना निजी अस्त्र बताया है॥ ९८-९९॥

अतः इससे बढ़कर यहाँ अपना कोई रक्षक नहीं है, ऐसा समझकर इस कर्मका प्रयोग करनेवाला पुरुष शुभ फलका भागी होता है। जो प्रतिदिन पवित्र एवं एकाग्रचित्त होकर स्तोत्रमात्रका पाठ करता है, वह भी अभीष्ट प्रयोजनका अष्टमांश फल पा लेता है। जो अर्थका अनुसंधान करते हुए पूर्णिमा, अष्टमी अथवा चतुर्दशीको उपवासपूर्वक स्तोत्रका पाठ करता है, उसे आधा अभीष्ट फल प्राप्त हो जाता है। जो अर्थका अनुसंधान करते हुए लगातार एक मासतक स्तोत्रका पाठ करता है और पूर्णिमा, अष्टमी एवं चतुर्दशीको व्रत रखता है, वह सम्पूर्ण अभीष्ट फलका भागी होता है॥ १००—१०३॥

इति श्रीशिवमहापुराणे सप्तम्यां वायवीयसंहितायामुत्तरखण्डे शैवानां काम्यकर्मवर्णनं नाम त्रिंशोऽध्यायः॥ ३०॥

॥ इस प्रकार श्रीशिवमहापुराणके अन्तर्गत सातवीं वायवीयसंहिताके उत्तरखण्डमें शैवोंका काम्यकर्मवर्णन नामक तीसवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ ३०॥

अथैकत्रिंशोऽध्यायः

शिवके पाँच आवरणोंमें स्थित सभी देवताओंकी स्तुति तथा उनसे अभीष्टपूर्ति एवं मंगलकी कामना

उपमन्युरुवाच

स्तोत्रं वक्ष्यामि ते कृष्ण पञ्चावरणमार्गतः।
योगेश्वरमिदं पुण्यं कर्म येन समाप्यते॥ १

उपमन्यु कहते हैं—हे श्रीकृष्ण! अब मैं तुम्हारे समक्ष पंचावरण-मार्गसे किये जानेवाले [पूजनके अंगभूत] स्तोत्रका वर्णन करूँगा, जिससे यह योगेश्वर नामक पुण्यकर्म पूर्णरूपसे सम्पन्न होता है॥ १॥

जय जय जगदेकनाथ शम्भो
प्रकृतिमनोहर नित्यचित्स्वभाव।
अतिगतकलुषप्रपञ्चवाचा-
मपि मनसां पदवीमतीततत्त्वम्॥ २

जगत्‌के एकमात्र रक्षक! नित्य चिन्मयस्वभाव! प्रकृतिमनोहर शम्भो! आपका तत्त्व कलुषराशिसे रहित निर्मल, वाणी तथा मनकी पहुँचसे भी परे है। आपकी जय हो, जय हो॥ २॥

स्वभावनिर्मलाभोग जय सुन्दरचेष्टित।
स्वात्मतुल्यमहाशक्ते जय शुद्धगुणार्णव॥ ३

आपका श्रीविग्रह स्वभावसे ही निर्मल है, आपकी चेष्टा परम सुन्दर है, आपकी जय हो। आपकी महाशक्ति आपके ही तुल्य है। आप विशुद्ध कल्याणमय गुणोंके महासागर हैं, आपकी जय हो॥ ३॥

अनन्तकान्तिसम्पन्न जयासदृशविग्रह।
अतर्क्यमहिमाधार जयानाकुलमङ्गल॥ ४

आप अनन्त कान्तिसे सम्पन्न हैं। आपके श्रीविग्रहकी कहीं तुलना नहीं है, आपकी जय हो। आप अतर्क्य महिमाके आधार हैं तथा शान्तिमय मंगलके निकेतन हैं। आपकी जय हो॥ ४॥

निरञ्जन निराधार जय निष्कारणोदय।
निरन्तरपरानन्द जय निर्वृतिकारण॥ ५

निरंजन (निर्मल), आधाररहित तथा बिना कारणके प्रकट होनेवाले शिव! आपकी जय हो। निरन्तर परमानन्दमय! शान्ति और सुखके कारण! आपकी जय हो॥ ५॥

जयातिपरमैश्वर्य जयातिकरुणास्पद।
जय स्वतन्त्रसर्वस्व जयासदृशवैभव॥ ६

अतिशय उत्कृष्ट ऐश्वर्यसे सुशोभित तथा अत्यन्त करुणाके आधार! आपकी जय हो। प्रभो! आपका सब कुछ स्वतन्त्र है तथा आपके वैभवकी कहीं समता नहीं है; आपकी जय हो, जय हो॥ ६॥

जयावृतमहाविश्व जयानावृत केनचित्।
जयोत्तर समस्तस्य जयात्यन्तनिरुत्तर॥ ७

आपने विराट् विश्वको व्याप्त कर रखा है, किंतु आप किसीसे भी व्याप्त नहीं हैं। आपकी जय हो, जय हो। आप सबसे उत्कृष्ट हैं, किंतु आपसे श्रेष्ठ कोई नहीं है। आपकी जय हो, जय हो॥ ७॥

जयाद्भुत जयाक्षुद्र जयाक्षत जयाव्यय।
जयामेय जयामाय जयाभव जयामल॥ ८

आप अद्भुत हैं, आपकी जय हो। आप अक्षुद्र (महान्) हैं, आपकी जय हो। आप अक्षत (निर्विकार) हैं, आपकी जय हो। आप अविनाशी हैं, आपकी जय हो। अप्रमेय परमात्मन्! आपकी जय हो। मायारहित महेश्वर! आपकी जय हो। अजन्मा शिव! आपकी जय हो। निर्मल शंकर! आपकी जय हो॥ ८॥

महाभुज महासार महागुण महाकथ।
महाबल महामाय महारस महारथ॥ ९

महाबाहो! महासार! महागुण! महती कीर्तिकथासे युक्त! महाबली! महामायावी! महान् रसिक तथा महारथ! आपकी जय हो॥ ९॥

नमः परमदेवाय नमः परमहेतवे।
नमः शिवाय शान्ताय नमः शिवतराय ते॥ १०

आप परम आराध्यको नमस्कार है। आप परम कारणको नमस्कार है। शान्त शिवको नमस्कार है और आप परम कल्याणमय प्रभुको नमस्कार है॥ १०॥

त्वदधीनमिदं कृत्स्नं जगद्धि ससुरासुरम्॥ ११
अतस्त्वद्विहितामाज्ञां क्षमते कोऽतिवर्तितुम्॥ १२

देवताओं और असुरोंसहित यह सम्पूर्ण जगत् आपके अधीन है। अतः आपकी आज्ञाका उल्लंघन करनेमें कौन समर्थ हो सकता है॥ ११-१२॥

अयं पुनर्जनो नित्यं भवदेकसमाश्रयः।
भवानतोऽनुगृह्यास्मै प्रार्थितं सम्प्रयच्छतु॥ १३

हे सनातनदेव! यह सेवक एकमात्र आपके ही आश्रित है; अतः आप इसपर अनुग्रह करके इसे इसकी प्रार्थित वस्तु प्रदान करें॥ १३॥

जयाम्बिके जगन्मातर्जय सर्वजगन्मयि।
जयानवधिकैश्वर्ये जयानुपमविग्रहे॥ १४

अम्बिके! जगन्मातः! आपकी जय हो। सर्वजगन्मयि! आपकी जय हो। असीम ऐश्वर्यशालिनि! आपकी जय हो। आपके श्रीविग्रहकी कहीं उपमा नहीं है, आपकी जय हो॥ १४॥

जय वाङ्मनसातीते जयाचिद्ध्वान्तभञ्जिके।
जय जन्मजराहीने जय कालोत्तरोत्तरे॥ १५

मन, वाणीसे अतीत शिवे! आपकी जय हो। अज्ञानान्धकारका भंजन करनेवाली देवि! आपकी जय हो। जन्म और जरासे रहित उमे! आपकी जय हो। कालसे भी अतिशय उत्कृष्ट शक्तिवाली दुर्गे! आपकी जय हो॥ १५॥

जयानेकविधानस्थे जय विश्वेश्वरप्रिये।
जय विश्वसुराराध्ये जय विश्वविजृम्भिणि॥ १६

अनेक प्रकारके विधानोंमें स्थित परमेश्वरि! आपकी जय हो। विश्वनाथप्रिये! आपकी जय हो। समस्त देवताओंकी आराधनीया देवि! आपकी जय हो। सम्पूर्ण विश्वका विस्तार करनेवाली जगदम्बिके! आपकी जय हो॥ १६॥

जय मङ्गलदिव्याङ्गि जय मङ्गलदीपिके।
जय मङ्गलचारित्रे जय मङ्गलदायिनि॥ १७

मंगलमय दिव्य अंगोंवाली देवि! आपकी जय हो। मंगलको प्रकाशित करनेवाली! आपकी जय हो। मंगलमय चरित्रवाली सर्वमंगले! आपकी जय हो। मंगलदायिनि! आपकी जय हो॥ १७॥

नमः परमकल्याणगुणसञ्चयमूर्तये।
त्वत्तः खलु समुत्पन्नं जगत्त्वय्येव लीयते॥ १८

परम कल्याणमय गुणोंकी आप मूर्ति हैं, आपको नमस्कार है। सम्पूर्ण जगत् आपसे ही उत्पन्न हुआ है, अतः आपमें ही लीन होगा॥ १८॥

त्वद्विनातः फलं दातुमीश्वरोऽपि न शक्नुयात्।
जन्मप्रभृति देवेशि जनोऽयं त्वदुपाश्रितः॥ १९

अतोऽस्य तव भक्तस्य निर्वर्तय मनोरथम्।

देवेश्वरि! अतः आपके बिना ईश्वर भी फल देनेमें समर्थ नहीं हो सकते। यह जन जन्मकालसे ही आपकी शरणमें आया हुआ है। अतः देवि! आप अपने इस भक्तका मनोरथ सिद्ध कीजिये॥ १९१/२॥

पञ्चवक्त्रो दशभुजः शुद्धस्फटिकसंनिभः॥ २०
वर्णब्रह्मकलादेहो देवः सकलनिष्कलः।
शिवमूर्तिसमारूढः शान्त्यतीतः सदाशिवः।
भक्त्या मयार्चितो मह्यं प्रार्थितं शं प्रयच्छतु॥ २१

प्रभो! आपके पाँच मुख और दस भुजाएँ हैं। आपकी अंगकान्ति शुद्ध स्फटिकमणिके समान निर्मल है। वर्ण, ब्रह्म और कला आपके विग्रहरूप हैं। आप सकल और निष्कल देवता हैं। शिवमूर्तिमें सदा व्याप्त रहनेवाले हैं। शान्त्यतीत पदमें विराजमान सदाशिव आप ही हैं। मैंने भक्तिभावसे आपकी अर्चना की है। आप मुझे प्रार्थित कल्याण प्रदान करें॥ २०-२१॥

सदाशिवाङ्कमारूढा शक्तिरिच्छा शिवाह्वया।
जननी सर्वलोकानां प्रयच्छतु मनोरथम्॥ २२

सदाशिवके अंकमें आरूढ़, इच्छाशक्तिस्वरूपा, सर्वलोकजननी शिवा मुझे मनोवांछित वस्तु प्रदान करें॥ २२॥

शिवयोर्दयितौ पुत्रौ देवौ हेरम्बषणमुखौ।
शिवानुभावौ सर्वज्ञौ शिवज्ञानामृताशिनौ॥ २३

तृप्तौ परस्परं स्निग्धौ शिवाभ्यां नित्यसत्कृतौ।
सत्कृतौ च सदा देवौ ब्रह्माद्यैस्त्रिदशैरपि॥ २४

सर्वलोकपरित्राणं कर्तुमभ्युदितौ सदा।
स्वेच्छावतारं कुर्वन्तौ स्वांशभेदैरनेकशः॥ २५

ताविमौ शिवयोः पार्श्वे नित्यमित्थं मयार्चितौ।
तयोराज्ञां पुरस्कृत्य प्रार्थितं मे प्रयच्छताम्॥ २६

शिव और पार्वतीके प्रिय पुत्र, शिवके समान प्रभावशाली सर्वज्ञ तथा शिवज्ञानामृतका पान करके तृप्त रहनेवाले देवता गणेश और कार्तिकेय परस्पर स्नेह रखते हैं। शिवा और शिव दोनोंसे सत्कृत हैं तथा ब्रह्मा आदि देवता भी इन दोनों देवोंका सर्वथा सत्कार करते हैं। ये दोनों भाई निरन्तर सम्पूर्ण लोकोंकी रक्षा करनेके लिये उद्यत रहते हैं और अपने विभिन्न अंशोंद्वारा अनेक बार स्वेच्छापूर्वक अवतार धारण करते हैं। वे ही ये दोनों बन्धु शिव और शिवाके पार्श्वभागमें मेरे द्वारा इस प्रकार पूजित हो उन दोनोंकी आज्ञा ले प्रतिदिन मुझे प्रार्थित वस्तु प्रदान करें॥ २३—२६॥

शुद्धस्फटिकसङ्काशमीशानाख्यं सदाशिवम्।
मूर्द्धाभिमानिनी मूर्तिः शिवस्य परमात्मनः॥ २७

शिवार्चनरतं शान्तं शान्त्यतीतं खमास्थितम्।
पञ्चाक्षरान्तिमं बीजं कलाभिः पञ्चभिर्युतम्॥ २८

प्रथमावरणे पूर्वं शक्त्या सह समर्चितम्।
पवित्रं परमं ब्रह्म प्रार्थितं मे प्रयच्छतु॥ २९

जो शुद्ध स्फटिकमणिके समान निर्मल, ईशान नामसे प्रसिद्ध और सदा कल्याणस्वरूप है, परमात्मा शिवकी मूर्धाभिमानिनी मूर्ति है; शिवार्चनमें रत, शान्त, शान्त्यतीतकलामें प्रतिष्ठित, आकाशमण्डलमें स्थित, शिव-पंचाक्षरका अन्तिम बीजस्वरूप, पाँच कलाओंसे युक्त और प्रथम आवरणमें सबसे पहले शक्तिके साथ पूजित है, वह पवित्र परब्रह्म मुझे मेरी अभीष्ट वस्तु प्रदान करे॥ २७—२९॥

बालसूर्यप्रतीकाशं पुरुषाख्यं पुरातनम्।
पूर्ववक्त्राभिमानं च शिवस्य परमेष्ठिनः॥ ३०

शान्त्यात्मकं मरुत्संस्थं शम्भोः पादार्चने रतम्।
प्रथमं शिवबीजेषु कलासु च चतुष्कलम्॥ ३१

पूर्वभागे मया भक्त्या शक्त्या सह समर्चितम्।
पवित्रं परमं ब्रह्म प्रार्थितं मे प्रयच्छतु॥ ३२

जो प्रातःकालके सूर्यकी भाँति अरुणप्रभासे युक्त, पुरातन, तत्पुरुष नामसे विख्यात, परमेष्ठी शिवके पूर्ववर्ती मुखका अभिमानी, शान्तिकलास्वरूप या शान्तिकलामें प्रतिष्ठित, वायुमण्डलमें स्थित, शिवचरणार्चनपरायण, शिवके बीजोंमें प्रथम और कलाओंमें चार कलाओंसे युक्त है, मैंने पूर्वदिशामें भक्तिभावसे शक्तिसहित जिसका पूजन किया है, वह पवित्र परब्रह्म शिव मेरी प्रार्थना सफल करे॥ ३०—३२॥

अञ्जनादिप्रतीकाशमघोरं घोरविग्रहम्।
देवस्य दक्षिणं वक्त्रं देवदेवपदार्चकम्॥ ३३

विद्यापदं समारूढं वह्निमण्डलमध्यगम्।
द्वितीयं शिवबीजेषु कलास्वष्टकलान्वितम्॥ ३४

शम्भोर्दक्षिणदिग्भागे शक्त्या सह समर्चितम्।
पवित्रं परमं ब्रह्म प्रार्थितं मे प्रयच्छतु॥ ३५

जो कज्जलपर्वतके समान श्याम, घोर शरीरवाला एवं अघोर नामसे प्रसिद्ध है, महादेवजीके दक्षिण मुखका अभिमानी तथा देवाधिदेव शिवके चरणोंका पूजक है, विद्याकलापर आरूढ़ और अग्निमण्डलके मध्य विराजमान है, शिवबीजोंमें द्वितीय तथा कलाओंमें अष्टकलायुक्त एवं भगवान् शिवके दक्षिणभागमें शक्तिके साथ पूजित है, वह पवित्र परब्रह्म मुझे मेरी अभीष्ट वस्तु प्रदान करे॥ ३३—३५॥

कुङ्कुमक्षोदसङ्काशं वामाख्यं वरवेषधृक्।
वक्त्रमुत्तरमीशस्य प्रतिष्ठायां प्रतिष्ठितम्॥ ३६

वारिमण्डलमध्यस्थं महादेवार्चने रतम्।
तुरीयं शिवबीजेषु त्रयोदशकलान्वितम्॥ ३७

देवस्योत्तरदिग्भागे शक्त्या सह समर्चितम्।
पवित्रं परमं ब्रह्म प्रार्थितं मे प्रयच्छतु॥ ३८

शङ्खकुन्देन्दुधवलं सद्याख्यं सौम्यलक्षणम्।
शिवस्य पश्चिमं वक्त्रं शिवपादार्चने रतम्॥ ३९

निवृत्तिपदनिष्ठं च पृथिव्यां समवस्थितम्।
तृतीयं शिवबीजेषु कलाभिश्चाष्टभिर्युतम्॥ ४०

देवस्य पश्चिमे भागे शक्त्या सह समर्चितम्।
पवित्रं परमं ब्रह्म प्रार्थितं मे प्रयच्छतु॥ ४१

शिवस्य तु शिवायाश्च हृन्मूर्त्ती शिवभाविते।
तयोराज्ञां पुरस्कृत्य ते मे कामं प्रयच्छताम्॥ ४२

शिवस्य च शिवायाश्च शिवामूर्त्ती शिवाश्रिते।
सत्कृत्य शिवयोराज्ञां ते मे कामं प्रयच्छताम्॥ ४३

शिवस्य च शिवायाश्च वर्मणी शिवभाविते।
सत्कृत्य शिवयोराज्ञां ते मे कामं प्रयच्छताम्॥ ४४

शिवस्य च शिवायाश्च नेत्रमूर्त्ती शिवाश्रिते।
सत्कृत्य शिवयोराज्ञां ते मे कामं प्रयच्छताम्॥ ४५

अस्त्रमूर्त्ती च शिवयोर्नित्यमर्चनतत्परे।
सत्कृत्य शिवयोराज्ञां ते मे कामं प्रयच्छताम्॥ ४६

वामो ज्येष्ठस्तथा रुद्रः कालो विकरणस्तथा।
बलो विकरणश्चैव बलप्रमथनः परः॥ ४७

सर्वभूतस्य दमनस्तादृशाश्चाष्टशक्तयः।
प्रार्थितं मे प्रयच्छन्तु शिवयोरेव शासनात्॥ ४८

जो कुंकुमचूर्ण अथवा केसरयुक्त चन्दनके समान रक्त-पीतवर्णवाला, सुन्दर वेषधारी और वामदेव नामसे प्रसिद्ध है, भगवान् शिवके उत्तरवर्ती मुखका अभिमानी है, प्रतिष्ठाकलामें प्रतिष्ठित है, जलके मण्डलमें विराजमान तथा महादेवजीकी अर्चनामें तत्पर है, शिवबीजोंमें चतुर्थ तथा तेरह कलाओंसे युक्त है और महादेवजीके उत्तरभागमें शक्तिके साथ पूजित हुआ है, वह पवित्र परब्रह्म मेरी प्रार्थना पूर्ण करे॥ ३६—३८॥

जो शंख, कुन्द और चन्द्रमाके समान धवल, सौम्य तथा सद्योजात नामसे विख्यात है, भगवान् शिवके पश्चिम मुखका अभिमानी एवं शिवचरणोंकी अर्चनामें रत है, निवृत्तिकलामें प्रतिष्ठित तथा पृथ्वी-मण्डलमें स्थित है, शिवबीजोंमें तृतीय, आठ कलाओंसे युक्त और महादेवजीके पश्चिमभागमें शक्तिके साथ पूजित हुआ है, वह पवित्र परब्रह्म मुझे मेरी प्रार्थित वस्तु दे॥ ३९—४१॥

शिव और शिवाकी हृदयरूपिणी मूर्तियाँ शिवभावसे भावित हो उन्हीं दोनोंकी आज्ञा शिरोधार्य करके मेरा मनोरथ पूर्ण करें॥ ४२॥

शिव और शिवाकी शिखारूपा मूर्तियाँ शिवके ही आश्रित रहकर उन दोनोंकी आज्ञाका आदर करके मुझे मेरी अभीष्ट वस्तु प्रदान करें॥ ४३॥

शिव और शिवाकी कवचरूपा मूर्तियाँ शिवभावसे भावित हो शिव-पार्वतीकी आज्ञाका सत्कार करके मेरी कामना सफल करें॥४४॥

शिव और शिवाकी नेत्ररूपा मूर्तियाँ शिवके आश्रित रह उन्हीं दोनोंकी आज्ञा शिरोधार्य करके मुझे मेरा मनोरथ प्रदान करें॥ ४५॥

शिव और शिवाकी अस्त्ररूपा मूर्तियाँ नित्य उन्हीं दोनोंके अर्चनमें तत्पर रह उनकी आज्ञाका सत्कार करती हुई मुझे मेरी अभीष्ट वस्तु प्रदान करें॥ ४६॥

वाम, ज्येष्ठ, रुद्र, काल, विकरण, बलविकरण, बलप्रमथन तथा सर्वभूत-दमन—ये आठ शिवमूर्तियाँ तथा इनकी वैसी ही आठ शक्तियाँ—वामा, ज्येष्ठा, रुद्राणी, काली, विकरणी, बलविकरणी, बलप्रमथनी तथा सर्वभूतदमनी—ये सब शिव और शिवाके ही शासनसे मुझे प्रार्थित वस्तु प्रदान करें॥ ४७-४८॥

अथानन्तश्च सूक्ष्मश्च शिवश्चाप्येकनेत्रकः।
एकरुद्रस्त्रिमूर्तिश्च श्रीकण्ठश्च शिखण्डिकः॥ ४९

तथाष्टौ शक्तयस्तेषां द्वितीयावरणेऽर्चिताः।
ते मे कामं प्रयच्छन्तु शिवयोरेव शासनात्॥ ५०

अनन्त, सूक्ष्म, शिव (अथवा शिवोत्तम), एकनेत्र, एकरुद्र, त्रिमूर्ति, श्रीकण्ठ और शिखण्डी—ये आठ विद्येश्वर तथा इनकी वैसी ही आठ शक्तियाँ—अनन्ता, सूक्ष्मा, शिवा (अथवा शिवोत्तमा), एकनेत्रा, एकरुद्रा, त्रिमूर्ति, श्रीकण्ठी और शिखण्डिनी, जिनकी द्वितीय आवरणमें पूजा हुई है, शिवा और शिवके ही शासनसे मेरी मनःकामना पूर्ण करें॥ ४९-५०॥

भवाद्या मूर्तयश्चाष्टौ तासामपि च शक्तयः।
महादेवादयश्चान्ये तथैकादशमूर्तयः॥ ५१

शक्तिभिः सहिताः सर्वे तृतीयावरणे स्थिताः।
सत्कृत्य शिवयोराज्ञां दिशन्तु फलमीप्सितम्॥ ५२

भव आदि आठ मूर्तियाँ और उनकी शक्तियाँ तथा शक्तियोंसहित महादेव आदि ग्यारह मूर्तियाँ, जिनकी स्थिति तीसरे आवरणमें है, शिव और पार्वतीकी आज्ञा शिरोधार्य करके मुझे अभीष्ट फल प्रदान करें॥ ५१-५२॥

वृषराजो महातेजा महामेघसमस्वनः।
मेरुमन्दरकैलासहिमाद्रिशिखरोपमः॥ ५३

सिताभ्रशिखराकारः ककुदा परिशोभितः।
महाभोगीन्द्रकल्पेन वालेन च विराजितः॥ ५४

रक्तास्यशृङ्गचरणो रक्तप्रायविलोचनः।
पीवरोन्नतसर्वाङ्गः सुचारुगमनोज्ज्वलः॥ ५५

प्रशस्तलक्षणः श्रीमान् प्रज्वलन्मणिभूषणः।
शिवप्रियः शिवासक्तः शिवयोर्ध्वजवाहनः॥ ५६

तथा तच्चरणन्यासपावितापरविग्रहः।
गोराजपुरुषः श्रीमान् श्रीमच्छूलवरायुधः।
तयोराज्ञां पुरस्कृत्य स मे कामं प्रयच्छतु॥ ५७

जो वृषभोंके राजा महातेजस्वी, महान् मेघके समान शब्द करनेवाले, मेरु, मन्दराचल, कैलास और हिमालयके शिखरकी भाँति ऊँचे एवं उज्ज्वलवर्णवाले हैं, श्वेत बादलोंके शिखरकी भाँति ऊँचे ककुद्से शोभित हैं, महानागराज (शेष)-के शरीरकी भाँति पूँछ जिनकी शोभा बढ़ाती है, जिनके मुख, सींग और पैर भी लाल हैं, नेत्र भी प्रायः लाल ही हैं, जिनके सारे अंग मोटे और उन्नत हैं, जो अपनी मनोहर चालसे बड़ी शोभा पाते हैं, जिनमें उत्तम लक्षण विद्यमान हैं, जो चमचमाते हुए मणिमय आभूषणोंसे विभूषित हो अत्यन्त दीप्तिमान् दिखायी देते हैं, जो भगवान् शिवको प्रिय हैं और शिवमें ही अनुरक्त रहते हैं, शिव और शिवा दोनोंके ही जो ध्वज और वाहन हैं तथा उनके चरणोंके स्पर्शसे जिनका पृष्ठभाग परम पवित्र हो गया है, जो गौओंके राजपुरुष हैं, वे श्रेष्ठ और चमकीला त्रिशूल धारण करनेवाले नन्दिकेश्वर वृषभ शिव और शिवाकी आज्ञा शिरोधार्य करके मुझे अभीष्ट वस्तु प्रदान करें॥ ५३—५७॥

नन्दीश्वरो महातेजा नगेन्द्रतनयात्मजः।
सनारायणकैर्देवैर्नित्यमभ्यर्च्य वन्दितः॥ ५८

शर्वस्यान्तःपुरद्वारि सार्धं परिजनैः स्थितः।
सर्वेश्वरसमप्रख्यः सर्वासुरविमर्दनः॥ ५९

सर्वेषां शिवधर्माणामध्यक्षत्वेऽभिषेचितः।

जो गिरिराजनन्दिनी पार्वतीके लिये पुत्रके तुल्य प्रिय हैं, श्रीविष्णु आदि देवताओंद्वारा नित्य पूजित एवं वन्दित हैं, भगवान् शंकरके अन्तःपुरके द्वारपर परिजनोंके साथ खड़े रहते हैं, सर्वेश्वर शिवके समान ही तेजस्वी हैं तथा समस्त असुरोंको कुचल देनेकी शक्ति रखते हैं, शिवधर्मका पालन करनेवाले सम्पूर्ण शिवभक्तोंके अध्यक्षपदपर जिनका अभिषेक हुआ है, जो भगवान्

शिवप्रियः शिवासक्तः श्रीमच्छूलवरायुधः॥ ६०

शिवाश्रितेषु संसक्तस्त्वनुरक्तश्च तैरपि।
सत्कृत्य शिवयोराज्ञां स मे कामं प्रयच्छतु॥ ६१

शिवके प्रिय, शिवमें ही अनुरक्त तथा तेजस्वी त्रिशूल नामक श्रेष्ठ आयुध धारण करनेवाले हैं, भगवान् शिवके शरणागत भक्तोंपर जिनका स्नेह है तथा शिवभक्तोंका भी जिनमें अनुराग है, वे महातेजस्वी नन्दीश्वर शिव और पार्वतीकी आज्ञाको शिरोधार्य करके मुझे मनोवांछित वस्तु प्रदान करें॥ ५८—६१॥

महाकालो महाबाहुर्महादेव इवापरः।
महादेवाश्रितानां तु नित्यमेवाभिरक्षतु॥ ६२

दूसरे महादेवके समान महातेजस्वी महाबाहु महाकाल महादेवजीके शरणागत भक्तोंकी नित्य ही रक्षा करें॥ ६२॥

शिवप्रियः शिवासक्तः शिवयोरर्चकः सदा।
सत्कृत्य शिवयोराज्ञां स मे दिशतु काङ्क्षितम्॥ ६३

वे भगवान् शिवके प्रिय हैं, भगवान् शिवमें उनकी आसक्ति है तथा वे सदा ही शिव तथा पार्वतीके पूजक हैं, इसलिये शिवा और शिवकी आज्ञाका आदर करके मुझे मनोवांछित वस्तु प्रदान करें॥ ६३॥

सर्वशास्त्रार्थतत्त्वज्ञः शास्ता विष्णोः परा तनुः।
महामोहात्मतनयो मधुमांसासवप्रियः।
तयोराज्ञां पुरस्कृत्य स मे कामं प्रयच्छतु॥ ६४

जो सम्पूर्ण शास्त्रोंके तात्त्विक अर्थके ज्ञाता, भगवान् विष्णुके द्वितीय स्वरूप, सबके शासक तथा महामोहात्मा [कद्रू]-के पुत्र हैं, मधु, फलका गूदा और आसव जिन्हें प्रिय हैं, वे नागराज भगवान् शेष शिव और पार्वतीकी आज्ञाको सामने रखते हुए मेरी इच्छाको पूर्ण करें॥ ६४॥

ब्रह्माणी चैव माहेशी कौमारी वैष्णवी तथा।
वाराही चैव माहेन्द्री चामुण्डा चण्डविक्रमा॥ ६५
एता वै मातरः सप्त सर्वलोकस्य मातरः।
प्रार्थितं मे प्रयच्छन्तु परमेश्वरशासनात्॥ ६६

ब्रह्माणी, माहेश्वरी, कौमारी, वैष्णवी, वाराही, माहेन्द्री तथा प्रचण्ड पराक्रमशालिनी चामुण्डादेवी—ये सर्वलोकजननी सात माताएँ परमेश्वर शिवके आदेशसे मुझे मेरी प्रार्थित वस्तु प्रदान करें॥६५-६६॥

मत्तमातङ्गवदनो गङ्गोमाशङ्करात्मजः।
आकाशदेहो दिग्बाहुः सोमसूर्याग्निलोचनः॥ ६७

ऐरावतादिभिर्दिव्यैर्दिग्गजैर्नित्यमर्चितः।
शिवज्ञानमदोद्भिन्नस्त्रिदशानामविघ्नकृत्॥ ६८

विघ्नकृच्चासुरादीनां विघ्नेशः शिवभावितः।
सत्कृत्य शिवयोराज्ञां स मे दिशतु काङ्क्षितम्॥ ६९

जिनका मतवाले हाथीका-सा मुख है; जो गंगा, उमा और शिवके पुत्र हैं; आकाश जिनका शरीर है, दिशाएँ भुंजाएँ हैं तथा चन्द्रमा, सूर्य और अग्नि जिनके तीन नेत्र हैं; ऐरावत आदि दिव्य दिग्गज जिनकी नित्य पूजा करते हैं, जिनके मस्तकसे शिवज्ञानमय मदकी धारा बहती रहती है, जो देवताओंके विघ्नका निवारण करते और असुर आदिके कार्योंमें विघ्न डालते रहते हैं, वे विघ्नराज गणेश शिवसे भावित हो शिवा और शिवकी आज्ञा शिरोधार्य करके मेरा मनोरथ प्रदान करें॥ ६७—६९॥

षण्मुखः शिवसम्भूतः शक्तिवज्रधरः प्रभुः।
अग्नेश्च तनयो देवो ह्यपर्णातनयः पुनः॥ ७०
गङ्गायाश्च गणाम्बायाः कृत्तिकानां तथैव च।

जिनके छः मुख हैं, भगवान् शिवसे जिनकी उत्पत्ति हुई है, जो शक्ति और वज्र धारण करनेवाले प्रभु हैं, अग्निके पुत्र तथा अपर्णा (शिवा)-के बालक हैं; गंगा, गणाम्बा तथा कृत्तिकाओंके भी पुत्र हैं;

विशाखेन च शाखेन नैगमेयेन चावृतः॥ ७१
इन्द्रजिच्चेन्द्रसेनानीस्तारकासुरजित्तथा ।
शैलानां मेरुमुख्यानां वेधकश्च स्वतेजसा॥ ७२
तप्तचामीकरप्रख्यः शतपत्रदलेक्षणः।
कुमारः सुकुमाराणां रूपोदाहरणं महत्॥ ७३
शिवप्रियः शिवासक्तः शिवपादार्चकः सदा।
सत्कृत्य शिवयोराज्ञां स मे दिशतु काङ्क्षितम्॥ ७४

विशाख, शाख और नैगमेय—इन तीनों भाइयोंसे जो सदा घिरे रहते हैं; जो इन्द्र-विजयी, इन्द्रके सेनापति तथा तारकासुरको परास्त करनेवाले हैं; जिन्होंने अपनी शक्तिसे मेरु आदि पर्वतोंको छेद डाला है, जिनकी अंगकान्ति तपाये हुए सुवर्णके समान है, नेत्र प्रफुल्ल कमलके समान सुन्दर हैं, कुमार नामसे जिनकी प्रसिद्धि है, जो सुकुमारोंके रूपके सबसे बड़े उदाहरण हैं; शिवके प्रिय, शिवमें अनुरक्त तथा शिव-चरणोंकी नित्य अर्चना करनेवाले हैं; वे स्कन्द शिव और शिवाकी आज्ञा शिरोधार्य करके मुझे मनोवांछित वस्तु दें॥ ७०—७४॥

ज्येष्ठा वरिष्ठा वरदा शिवयोर्यजने रता।
तयोराज्ञां पुरस्कृत्य सा मे दिशतु काङ्क्षितम्॥ ७५

सर्वश्रेष्ठ और वरदायिनी ज्येष्ठादेवी, जो सदा भगवान् शिव और पार्वतीके पूजनमें लगी रहती हैं, उन दोनोंकी आज्ञा मानकर मुझे मनोवांछित वस्तु प्रदान करें॥ ७५॥

त्रैलोक्यवन्दिता साक्षादुल्काकारा गणाम्बिका।
जगत्सृष्टिविवृद्ध्यर्थं ब्रह्मणाभ्यर्थिता शिवात्॥ ७६
शिवायाः प्रविभक्ताया भ्रुवोरन्तरनिःसृताः।
दाक्षायणी सती मेना तथा हैमवती ह्युमा॥ ७७
कौशिक्याश्चैव जननी भद्रकाल्यास्तथैव च।
अपर्णायाश्च जननी पाटलायास्तथैव च॥ ७८
शिवार्चनरता नित्यं रुद्राणी रुद्रवल्लभा।
सत्कृत्य शिवयोराज्ञां सा मे दिशतु काङ्क्षितम्॥ ७९

त्रैलोक्यवन्दिता, साक्षात् उल्का (लुकाठी)-जैसी आकृतिवाली गणाम्बिका, जो जगत्की सृष्टि बढ़ानेके लिये ब्रह्माजीके प्रार्थना करनेपर शिवके शरीरसे पृथक् हुई शिवाके दोनों भौंहोंके बीचसे निकली थीं, जो दाक्षायणी, सती, मेना तथा हिमवान्‌कुमारी उमा आदिके रूपमें प्रसिद्ध हैं; कौशिकी, भद्रकाली, अपर्णा और पाटलाकी जननी हैं; नित्य शिवार्चनमें तत्पर रहती हैं एवं रुद्रवल्लभा रुद्राणी कहलाती हैं, वे शिव और शिवाकी आज्ञा शिरोधार्य करके मुझे मनोवांछित वस्तु दें॥ ७६—७९॥

चण्डः सर्वगणेशानः शम्भोर्वदनसम्भवः।
सत्कृत्य शिवयोराज्ञां स मे दिशतु काङ्क्षितम्॥ ८०

समस्त शिवगणोंके स्वामी चण्ड, जो भगवान् शंकरके मुखसे प्रकट हुए हैं, शिवा और शिवकी आज्ञाका आदर करके मुझे अभीष्ट वस्तु प्रदान करें॥ ८०॥

पिङ्गलो गणपः श्रीमान् शिवासक्तः शिवप्रियः।
आज्ञया शिवयोरेव स मे कामं प्रयच्छतु॥ ८१

भगवान् शिवमें आसक्त और शिवके प्रिय गणपाल श्रीमान् पिंगल शिव और शिवाकी आज्ञासे ही मेरी मनःकामना पूर्ण करें॥ ८१॥

भृङ्गीशो नाम गणपः शिवाराधनतत्परः।
प्रयच्छतु स मे कामं पत्युराज्ञापुरःसरम्॥ ८२

शिवकी आराधनामें तत्पर रहनेवाले भृंगीश्वर नामक गणपाल अपने स्वामीकी आज्ञा ले मुझे मनोवांछित वस्तु प्रदान करें॥ ८२॥

वीरभद्रो महातेजा हिमकुन्देन्दुसन्निभः।
भद्रकालीप्रियो नित्यं मातॄणां चाभिरक्षिता॥ ८३
यज्ञस्य च शिरोहर्ता दक्षस्य च दुरात्मनः।

हिम, कुन्द और चन्द्रमाके समान उज्ज्वल, भद्रकालीके प्रिय, सदा ही मातृगणोंकी रक्षा करनेवाले, दुरात्मा दक्ष और उसके यज्ञका सिर काटनेवाले

उपेन्द्रेन्द्रयमादीनां देवानामङ्गतक्षकः ॥ ८४
शिवस्यानुचरः श्रीमान् शिवशासनपालकः ।
शिवयोः शासनादेव स मे दिशतु काङ्क्षितम् ॥ ८५

उपेन्द्र, इन्द्र और यम आदि देवताओंके अंगोंमें घाव कर देनेवाले, शिवके अनुचर तथा शिवकी आज्ञाके पालक, महातेजस्वी श्रीमान् वीरभद्र शिव और शिवाके आदेशसे ही मुझे मेरी मनचाही वस्तु दें ॥ ८३—८५ ॥

सरस्वती महेशस्य वाक्सरोजसमुद्भवा ।
शिवयोः पूजने सक्ता सा मे दिशतु काङ्क्षितम् ॥ ८६

महेश्वरके मुखकमलसे प्रकट हुई तथा शिव-पार्वतीके पूजनमें आसक्त रहनेवाली वे सरस्वतीदेवी मुझे मनोवांछित वस्तु प्रदान करें ॥ ८६ ॥

विष्णोर्वक्षःस्थिता लक्ष्मीः शिवयोः पूजने रता ।
शिवयोः शासनादेव सा मे दिशतु काङ्क्षितम् ॥ ८७

भगवान् विष्णुके वक्षःस्थलमें विराजमान लक्ष्मीदेवी, जो सदा शिव और शिवाके पूजनमें लगी रहती हैं, उन शिवदम्पतीके आदेशसे ही मेरी अभिलाषा पूर्ण करें ॥ ८७ ॥

महामोटी महादेव्याः पादपूजापरायणा ।
तस्या एव नियोगेन सा मे दिशतु काङ्क्षितम् ॥ ८८

महादेवी पार्वतीके पादपद्मोंकी पूजामें परायण महामोटी उन्हींकी आज्ञासे मेरी मनचाही वस्तु मुझे दें ॥ ८८ ॥

कौशिकी सिंहमारूढा पार्वत्याः परमा सुता ।
विष्णोर्निद्रा महामाया महामहिषमर्दिनी ॥ ८९

निशुम्भशुम्भसंहर्त्री मधुमांसासवप्रिया ।
सत्कृत्य शासनं मातुः सा मे दिशतु काङ्क्षितम् ॥ ९०

पार्वतीकी सबसे श्रेष्ठ पुत्री सिंहवाहिनी कौशिकी, भगवान् विष्णुकी योगनिद्रा महामाया, महामहिषमर्दिनी, महालक्ष्मी तथा मधु और फलोंके गूदे तथा रसको प्रेमपूर्वक भोग लगानेवाली निशुम्भ-शुम्भसंहारिणी महासरस्वती माता पार्वतीकी आज्ञासे मुझे मनोवांछित वस्तु प्रदान करें ॥ ८९-९० ॥

रुद्रा रुद्रसमप्रख्याः प्रमथाः प्रथितौजसः ।
भूताख्याश्च महावीर्या महादेवसमप्रभाः ॥ ९१
नित्यमुक्ता निरुपमा निर्द्वन्द्वा निरुपप्लवाः ।
सशक्तयः सानुचराः सर्वलोकनमस्कृताः ॥ ९२
सर्वेषामेव लोकानां सृष्टिसंहरणक्षमाः ।
परस्परानुरक्ताश्च परस्परमनुव्रताः ॥ ९३
परस्परमतिस्निग्धाः परस्परनमस्कृताः ।
शिवप्रियतमा नित्यं शिवलक्षणलक्षिताः ॥ ९४
सौम्या घोरास्तथा मिश्राश्चान्तरालद्वयात्मिकाः ।
विरूपाश्च सुरूपाश्च नानारूपधरास्तथा ॥ ९५
सत्कृत्य शिवयोराज्ञां ते मे कामं दिशन्तु वै ।

रुद्रदेवके समान तेजस्वी रुद्रगण, प्रख्यातपराक्रमी प्रमथगण तथा महादेवजीके समान तेजस्वी, महाबली भूतगण, जो नित्यमुक्त, उपमारहित, निर्द्वन्द्व, उपद्रवशून्य, शक्तियों और अनुचरोंके साथ रहनेवाले, सर्वलोकवन्दित, समस्त लोकोंकी सृष्टि और संहारमें समर्थ, परस्पर एक-दूसरेके अनुरक्त और भक्त, आपसमें अत्यन्त स्नेह रखनेवाले, एक-दूसरेको नमस्कार करनेवाले, शिवके नित्य प्रियतम, शिवके ही चिह्नोंसे लक्षित, सौम्य, घोर, उभय भावयुक्त, दोनोंके बीचमें रहनेवाले द्विरूप, कुरूप, सुरूप और नानारूपधारी हैं, वे शिव और शिवाकी आज्ञाका सत्कार करते हुए मेरा मनोरथ सिद्ध करें ॥ ९१—९५ १/२ ॥

देव्याः प्रियसखीवर्गो देवीलक्षणलक्षितः ॥ ९६
सहितो रुद्रकन्याभिः शक्तिभिश्चाप्यनेकशः ।
तृतीयावरणे शम्भोर्भक्त्या नित्यं समर्चितः ॥ ९७
सत्कृत्य शिवयोराज्ञां स मे दिशतु मङ्गलम् ।

देवीकी प्रिय सखियोंका समुदाय, जो देवीके ही लक्षणोंसे लक्षित है और भगवान् शिवके तीसरे आवरणमें रुद्रकन्याओं तथा अनेक शक्तियोंसहित नित्य भक्तिभावसे पूजित हुआ है, वह शिव-पार्वतीकी आज्ञाका सत्कार करके मुझे मंगल प्रदान करे ॥ ९६-९७ १/२ ॥

दिवाकरो महेशस्य मूर्तिर्दीप्तसुमण्डलः॥ ९८
निर्गुणो गुणसङ्कीर्णस्तथैव गुणकेवलः।
अविकारात्मकश्चाद्य एकः सामान्यविक्रियः॥ ९९
असाधारणकर्मा च सृष्टिस्थितिलयक्रमात्।
एवं त्रिधा चतुर्द्धा च विभक्तः पञ्चधा पुनः॥ १००
चतुर्थावरणे शम्भोः पूजितश्चानुगैः सह।
शिवप्रियः शिवासक्तः शिवपादार्चने रतः॥ १०१
सत्कृत्य शिवयोराज्ञां स मे दिशतु मङ्गलम्।

भगवान् सूर्य महेश्वरकी मूर्ति हैं, उनका सुन्दर मण्डल दीप्तिमान् है, वे निर्गुण होते हुए भी कल्याणमय गुणोंसे युक्त हैं, केवल सद्गुणरूप हैं; निर्विकार, सबके आदि कारण और एकमात्र (अद्वितीय) हैं; यह सामान्य जगत् उन्हींकी सृष्टि है; सृष्टि, पालन और संहारके क्रमसे उनके कर्म असाधारण हैं; इस तरह वे तीन, चार और पाँच रूपोंमें विभक्त हैं; भगवान् शिवके चौथे आवरणमें अनुचरोंसहित उनकी पूजा हुई है; वे शिवके प्रिय, शिवमें ही आसक्त तथा शिवके चरणारविन्दोंकी अर्चनामें तत्पर हैं; ऐसे सूर्यदेव शिवा और शिवकी आज्ञाका सत्कार करके मुझे मंगल प्रदान करें॥ ९८—१०१½॥

दिवाकरषडङ्गानि दीप्ताद्याश्चाष्टशक्तयः॥ १०२
आदित्यो भास्करो भानू रविश्चेत्यनुपूर्वशः।
अर्को ब्रह्मा तथा रुद्रो विष्णुश्चादित्यमूर्तयः॥ १०३
विस्तरा सुतरा बोधिन्याप्यायिन्यपराः पुनः।
उषा प्रभा तथा प्राज्ञा संध्या चेत्यपि शक्तयः॥ १०४
सोमादिकेतुपर्यन्ता ग्रहाश्च शिवभाविताः।
शिवयोराज्ञया नुन्ना मङ्गलं प्रदिशन्तु मे॥ १०५
अथवा द्वादशादित्यास्तथा द्वादश शक्तयः।
ऋषयो देवगन्धर्वाः पन्नगाप्सरसां गणाः॥ १०६
ग्रामण्यश्च तथा यक्षा राक्षसाश्च सुरास्तथा।
सप्त सप्तगणाश्चैते सप्तच्छन्दोमया हयाः॥ १०७
वालखिल्यादयश्चैव सर्वे शिवपदार्चकाः।
सत्कृत्य शिवयोराज्ञां मङ्गलं प्रदिशन्तु मे॥ १०८

सूर्यदेवसे सम्बन्ध रखनेवाले छहों अंग, उनकी दीप्ता आदि आठ शक्तियाँ; आदित्य, भास्कर, भानु रवि, अर्क, ब्रह्मा, रुद्र तथा विष्णु—ये आठ आदित्यमूर्तियाँ और उनकी विस्तरा, सुतरा, बोधिनी, आप्यायिनी तथा उनके अतिरिक्त उषा, प्रभा, प्राज्ञा और संध्या—ये शक्तियाँ; चन्द्रमासे लेकर केतुपर्यन्त शिवभावित ग्रह, बारह आदित्य, उनकी बारह शक्तियाँ तथा ऋषि, देवता, गन्धर्व, नाग, अप्सराओंके समूह, ग्रामणी (अगुवा), यक्ष, राक्षस—ये सात-सात संख्यावाले गण, सात छन्दोमय अश्व, वालखिल्य आदि मुनि—ये सब-के-सब भगवान् शिवके चरणारविन्दोंकी अर्चना करनेवाले हैं। ये लोग शिव और पार्वतीकी आज्ञाका आदर करते हुए मुझे मंगल प्रदान करें॥ १०२—१०८॥

ब्रह्माथ देवदेवस्य मूर्तिर्भूमण्डलाधिपः।
चतुःषष्टिगुणैश्वर्यो बुद्धितत्त्वे प्रतिष्ठितः॥ १०९
निर्गुणो गुणसङ्कीर्णस्तथैव गुणकेवलः।
अविकारात्मको देवस्ततः साधारणः पुरः॥ ११०
असाधारणकर्मा च सृष्टिस्थितिलयक्रमात्।
एवं त्रिधा चतुर्द्धा च विभक्तः पञ्चधा पुनः॥ १११
चतुर्थावरणे शम्भोः पूजितश्च सहानुगैः।
शिवप्रियः शिवासक्तः शिवपादार्चने रतः॥ ११२
सत्कृत्य शिवयोराज्ञां स मे दिशतु मङ्गलम्।

ब्रह्माजी देवाधिदेव महादेवजीकी मूर्ति हैं। भूमण्डलके अधिपति हैं। चौंसठ गुणोंके ऐश्वर्यसे युक्त हैं और बुद्धितत्त्वमें प्रतिष्ठित हैं। वे निर्गुण होते हुए भी अनेक कल्याणमय गुणोंसे सम्पन्न हैं, सद्गुणसमूहरूप हैं, निर्विकार देवता हैं, उनके सामने दूसरे सब लोग साधारण हैं। सृष्टि, पालन और संहारके क्रमसे उनके सब कर्म असाधारण हैं। इस तरह वे तीन, चार एवं पाँच आवरणों या स्वरूपोंमें विभक्त हैं। भगवान् शिवके चौथे आवरणमें अनुचरोंसहित उनकी पूजा हुई है; वे शिवके प्रिय, शिवमें ही आसक्त तथा शिवके चरणारविन्दोंकी अर्चनामें तत्पर हैं; ऐसे ब्रह्मदेव शिवा और शिवकी आज्ञाका सत्कार करके मुझे मंगल प्रदान करें॥ १०९—११२½॥

हिरण्यगर्भो लोकेशो विराट् कालश्च पूरुषः ॥ ११३
सनत्कुमारः सनकः सनन्दश्च सनातनः।
प्रजानां पतयश्चैव दक्षाद्या ब्रह्मसूनवः॥ ११४
एकादश सपत्नीका धर्मः सङ्कल्प एव च।
शिवार्चनरताश्चैते शिवभक्तिपरायणाः॥ ११५
शिवाज्ञावशगाः सर्वे दिशन्तु मम मङ्गलम्।
चत्वारश्च तथा वेदाः सेतिहासपुराणकाः॥ ११६
धर्मशास्त्राणि विद्याभिर्वैदिकीभिः समन्विताः।
परस्पराविरुद्धार्थाः शिवप्रकृतिपादकाः॥ ११७
सत्कृत्य शिवयोराज्ञां मङ्गलं प्रदिशन्तु मे।
अथ रुद्रो महादेवः शम्भोर्मूर्तिर्गरीयसी॥ ११८
वाह्नेयमण्डलाधीशः पौरुषैश्वर्यवान् प्रभुः।
शिवाभिमानसम्पन्नो निर्गुणस्त्रिगुणात्मकः॥ ११९
केवलं सात्त्विकश्चापि राजसश्चैव तामसः।
अविकाररतः पूर्वं ततस्तु समविक्रियः॥ १२०
असाधारणकर्मा च सृष्ट्यादिकरणात्पृथक्।
ब्रह्मणोऽपि शिरश्छेत्ता जनकस्तस्य तत्सुतः॥ १२१
जनकस्तनयश्चापि विष्णोरपि नियामकः।
बोधकश्च तयोर्नित्यमनुग्रहकरः प्रभुः॥ १२२
अण्डस्यान्तर्बहिर्वर्ती रुद्रो लोकद्वयाधिपः।
शिवप्रियः शिवासक्तः शिवपादार्चने रतः॥ १२३
शिवस्याज्ञां पुरस्कृत्य स मे दिशतु मङ्गलम्।
तस्य ब्रह्म षडङ्गानि विद्येशानां तथाष्टकम्॥ १२४
चत्वारो मूर्तिभेदाश्च शिवपूर्वाः शिवार्चकाः।
शिवो भवो हरश्चैव मृडश्चैव तथापरः।
शिवस्याज्ञां पुरस्कृत्य मङ्गलं प्रदिशन्तु मे॥ १२५
अथ विष्णुर्महेशस्य शिवस्यैव परा तनुः।
वारितत्त्वाधिपः साक्षादव्यक्तपदसंस्थितः॥ १२६

हिरण्यगर्भ, लोकेश, विराट्, कालपुरुष, सनत्कुमार, सनक, सनन्दन, सनातन, दक्ष आदि ब्रह्मपुत्र, ग्यारह प्रजापति और उनकी पत्नियाँ, धर्म तथा संकल्प—ये सब-के-सब शिवकी अर्चनामें तत्पर रहनेवाले और शिवभक्तिपरायण हैं, अतः शिवकी आज्ञाके अधीन हो मुझे मंगल प्रदान करें॥ ११३—११५ १/२ ॥

चार वेद, इतिहास, पुराण, धर्मशास्त्र और वैदिक विद्याएँ—ये सब-के-सब एकमात्र शिवके स्वरूपका प्रतिपादन करनेवाले हैं; अतः इनका तात्पर्य एक-दूसरेके विरुद्ध नहीं है। ये सब शिव और शिवाकी आज्ञा शिरोधार्य करके मेरा मंगल करें॥ ११६-११७ १/२ ॥

महादेव रुद्र शम्भुकी सबसे गरिष्ठ मूर्ति हैं। ये अग्निमण्डलके अधीश्वर हैं। समस्त पुरुषार्थों और ऐश्वर्योंसे सम्पन्न हैं, सर्वसमर्थ हैं। इनमें शिवत्वका अभिमान जाग्रत् है। ये निर्गुण होते हुए भी त्रिगुणरूप हैं। केवल सात्त्विक, राजस और तामस भी हैं। ये पहलेसे ही निर्विकार हैं। सब कुछ इन्हींकी सृष्टि है। सृष्टि, पालन और संहार करनेके कारण इनका कर्म असाधारण माना जाता है। ये ब्रह्माजीके भी मस्तकका छेदन करनेवाले हैं। ब्रह्माजीके पिता और पुत्र भी हैं। इसी तरह विष्णुके भी जनक और पुत्र हैं तथा उन्हें नियन्त्रणमें रखनेवाले हैं। ये उन दोनों—ब्रह्मा और विष्णुको ज्ञान देनेवाले तथा नित्य उनपर अनुग्रह रखनेवाले हैं। ये प्रभु ब्रह्माण्डके भीतर और बाहर भी व्याप्त हैं तथा इहलोक और परलोक—दोनों लोकोंके अधिपति रुद्र हैं। ये शिवके प्रिय, शिवमें ही आसक्त तथा शिवके ही चरणारविन्दोंकी अर्चनामें तत्पर हैं, अतः शिवकी आज्ञाको सामने रखते हुए मेरा मंगल करें॥ ११८—१२३ १/२ ॥

भगवान् शंकरके स्वरूपभूत ईशानादि ब्रह्म, हृदयादि छः अंग, आठ विद्येश्वर, शिव आदि चार मूर्तिभेद—शिव, भव, हर और मृड—ये सब-के-सब शिवके पूजक हैं। ये लोग शिवकी आज्ञाको शिरोधार्य करके मुझे मंगल प्रदान करें॥ १२४-१२५॥

भगवान् विष्णु महेश्वर शिवके ही उत्कृष्ट स्वरूप हैं। वे जलतत्त्वके अधिपति और साक्षात् अव्यक्त पदपर प्रतिष्ठित हैं। प्राकृत गुणोंसे रहित हैं।

निर्गुणः सत्त्वबहुलस्तथैव गुणकेवलः।
अविकाराभिमानी च त्रिसाधारणविक्रियः॥ १२७

असाधारणकर्मा च सृष्ट्यादिकरणात्पृथक्।
दक्षिणाङ्गभवेनापि स्पर्धमानः स्वयम्भुवा॥ १२८

आद्येन ब्रह्मणा साक्षात्सृष्टः स्रष्टा च तस्य तु।
अण्डस्यान्तर्बहिर्वर्ती विष्णुर्लोकद्वयाधिपः॥ १२९

असुरान्तकरश्चक्री शक्रस्यापि तथानुजः।
प्रादुर्भूतश्च दशधा भृगुशापच्छलादिह॥ १३०

भूभारनिग्रहार्थाय स्वेच्छयावातरत् क्षितौ।
अप्रमेयबलो मायी मायया मोहयन् जगत्॥ १३१

मूर्तिं कृत्वा महाविष्णुं सदाविष्णुमथापि वा।
वैष्णवैः पूजितो नित्यं मूर्तित्रयमयासने॥ १३२

शिवप्रियः शिवासक्तः शिवपादार्चने रतः।
शिवस्याज्ञां पुरस्कृत्य स मे दिशतु मङ्गलम्॥ १३३

उनमें दिव्य सत्त्वगुणकी प्रधानता है तथा वे विशुद्ध गुणस्वरूप हैं। उनमें निर्विकाररूपताका अभिमान है। साधारणतया तीनों लोक उनकी कृति हैं। सृष्टि, पालन आदि करनेके कारण उनके कर्म असाधारण हैं। वे रुद्रके दक्षिणांगसे प्रकट हुए स्वयम्भूके साथ एक समय स्पर्धा कर चुके हैं। साक्षात् आदिब्रह्माद्वारा उत्पादित होकर भी वे उनके भी उत्पादक हैं। ब्रह्माण्डके भीतर और बाहर व्याप्त हैं। इसलिये विष्णु कहलाते हैं। दोनों लोकोंके अधिपति हैं। असुरोंका अन्त करनेवाले, चक्रधारी तथा इन्द्रके भी छोटे भाई हैं। दस अवतारविग्रहोंके रूपमें यहाँ प्रकट हुए हैं। भृगुके शापके बहाने पृथ्वीका भार उतारनेके लिये उन्होंने स्वेच्छासे इस भूतलपर अवतार लिया है। उनका बल अप्रमेय है। वे मायावी हैं और अपनी मायाद्वारा जगत्को मोहित करते हैं। उन्होंने महाविष्णु अथवा सदाविष्णुका रूप धारण करके त्रिमूर्तिमय आसनपर वैष्णवोंद्वारा नित्य पूजा प्राप्त की है। वे शिवके प्रिय, शिवमें ही आसक्त तथा शिवके चरणोंकी अर्चनामें तत्पर हैं। वे शिवकी आज्ञा शिरोधार्य करके मुझे मंगल प्रदान करें १२६—१३३॥

वासुदेवोऽनिरुद्धश्च प्रद्युम्नश्च ततः परः।
सङ्कर्षणः समाख्याताश्चतस्रो मूर्तयो हरेः॥ १३४
मत्स्यः कूर्मो वराहश्च नारसिंहोऽथ वामनः।
रामत्रयं तथा कृष्णो विष्णुस्तुरगवक्त्रकः॥ १३५
चक्रं नारायणस्यास्त्रं पाञ्चजन्यं च शार्ङ्गकम्।
सत्कृत्य शिवयोराज्ञां मङ्गलं प्रदिशन्तु मे॥ १३६

वासुदेव, अनिरुद्ध, प्रद्युम्न तथा संकर्षण—ये श्रीहरिकी चार विख्यात मूर्तियाँ (व्यूह) हैं। मत्स्य, कूर्म, वराह, नृसिंह, वामन, परशुराम, राम, बलराम, श्रीकृष्ण, विष्णु, हयग्रीव, चक्र, नारायणास्त्र, पांचजन्य तथा शार्ङ्गधनुष—ये सब-के-सब शिव और शिवाकी आज्ञाका सत्कार करते हुए मुझे मंगल प्रदान करें॥ १३४—१३६॥

प्रभा सरस्वती गौरी लक्ष्मीश्च शिवभाविता।
शिवयोः शासनादेता मङ्गलं प्रदिशन्तु मे॥ १३७

प्रभा, सरस्वती, गौरी तथा शिवके प्रति भक्तिभाव रखनेवाली लक्ष्मी—ये शिव और शिवाके आदेशसे मेरा मंगल करें॥ १३७॥

इन्द्रोऽग्निश्च यमश्चैव निर्ऋतिर्वरुणस्तथा।
वायुः सोमः कुबेरश्च तथेशानस्त्रिशूलधृक्॥ १३८

सर्वे शिवार्चनरताः शिवसद्भावभाविताः।
सत्कृत्य शिवयोराज्ञां मङ्गलं प्रदिशन्तु मे॥ १३९

इन्द्र, अग्नि, यम, निर्ऋति, वरुण, वायु, सोम, कुबेर तथा त्रिशूलधारी ईशान—ये सब-के-सब शिवसद्भावसे भावित होकर शिवार्चनमें तत्पर रहते हैं। ये शिव और शिवाकी आज्ञाका आदर मानकर मुझे मंगल प्रदान करें॥ १३८-१३९॥

त्रिशूलमथ वज्रं च तथा परशुसायकौ।
खड्गपाशाङ्कुशाश्चैव पिनाकश्चायुधोत्तमः॥ १४०
दिव्यायुधानि देवस्य देव्याश्चैतानि नित्यशः।
सत्कृत्य शिवयोराज्ञां रक्षां कुर्वन्तु मे सदा॥ १४१

त्रिशूल, वज्र, परशु, बाण, खड्ग, पाश, अंकुश और श्रेष्ठ आयुध पिनाक—ये महादेव तथा महादेवीके दिव्य आयुध शिव और शिवाकी आज्ञाका नित्य सत्कार करते हुए सदा मेरी रक्षा करें॥ १४०-१४१॥

वृषरूपधरो देवः सौरभेयो महाबलः।
वडवाख्यानलस्पर्द्धी पञ्चगोमातृभिर्वृतः॥ १४२

वाहनत्वमनुप्राप्तस्तपसा परमेशयोः।
तयोराज्ञां पुरस्कृत्य स मे कामं प्रयच्छतु॥ १४३

वृषभरूपधारी देव, जो सुरभिके महाबली पुत्र हैं, वड़वानलसे भी होड़ लगाते हैं, पाँच गोमाताओंसे घिरे रहते हैं और अपनी तपस्याके प्रभावसे परमेश्वर शिव तथा परमेश्वरी शिवाके वाहन हुए हैं, उन दोनोंकी आज्ञा शिरोधार्य करके मेरी इच्छा पूर्ण करें॥ १४२-१४३॥

नन्दा सुनन्दा सुरभिः सुशीला सुमनास्तथा।
पञ्च गोमातरस्त्वेताः शिवलोके व्यवस्थिताः॥ १४४

शिवभक्तिपरा नित्यं शिवार्चनपरायणाः।
शिवयोः शासनादेव दिशन्तु मम वाञ्छितम्॥ १४५

नन्दा, सुनन्दा, सुरभि, सुशीला और सुमना—ये पाँच गोमाताएँ सदा शिवलोकमें निवास करती हैं। ये सब-की-सब नित्य शिवार्चनमें लगी रहती हैं और शिवभक्ति-परायणा हैं, अतः शिव तथा शिवाके आदेशसे ही मेरी इच्छाकी पूर्ति करें॥ १४४-१४५॥

क्षेत्रपालो महातेजा नीलजीमूतसंनिभः।
दंष्ट्राकरालवदनः स्फुरद्रक्ताधरोज्ज्वलः॥ १४६

रक्तोर्ध्वमूर्द्धजः श्रीमान् भ्रुकुटीकुटिलेक्षणः।
रक्तवृत्तत्रिनयनः शशिपन्नगभूषणः॥ १४७

नग्नस्त्रिशूलपाशासिकपालोद्यतपाणिकः।
भैरवो भैरवैः सिद्धैर्योगिनीभिश्च संवृतः॥ १४८

क्षेत्रे क्षेत्रे समासीनः स्थितो यो रक्षकः सताम्।
शिवप्रणामपरमः शिवसद्भावभावितः॥ १४९

शिवाश्रितान् विशेषेण रक्षन् पुत्रानिवौरसान्।
सत्कृत्य शिवयोराज्ञां स मे दिशतु मङ्गलम्॥ १५०

क्षेत्रपाल महान् तेजस्वी हैं, उनकी अंगकान्ति नील मेघके समान है और मुख दाढ़ोंके कारण विकराल जान पड़ता है। उनके लाल-लाल ओठ फड़कते रहते हैं, जिससे उनकी शोभा बढ़ जाती है, उनके सिरके बाल भी लाल और ऊपरको उठे हुए हैं। वे तेजस्वी हैं, उनकी भौंहें तथा आँखें भी टेढ़ी ही हैं। वे लाल और गोलाकार तीन नेत्र धारण करते हैं। चन्द्रमा और सर्प उनके आभूषण हैं। वे सदा नंगे ही रहते हैं तथा उनके हाथोंमें त्रिशूल, पाश, खड्ग और कपाल उठे रहते हैं। वे भैरव हैं और भैरवों, सिद्धों तथा योगिनियोंसे घिरे रहते हैं। प्रत्येक क्षेत्रमें उनकी स्थिति है। वे वहाँ सत्पुरुषोंके रक्षक होकर रहते हैं। उनका मस्तक सदा शिवके चरणोंमें झुका रहता है, वे सदा शिवके सद्भावसे भावित हैं तथा शिवके शरणागत भक्तोंकी औरस पुत्रोंकी भाँति विशेष रक्षा करते हैं। ऐसे प्रभावशाली क्षेत्रपाल शिव और शिवाकी आज्ञाका सत्कार करते हुए मुझे मंगल प्रदान करें॥ १४६—१५०॥

तालजङ्घादयस्तस्य प्रथमावरणेऽर्चिताः।
सत्कृत्य शिवयोराज्ञां चत्वारः समवन्तु माम्॥ १५१

तालजंघ आदि शिवके प्रथम आवरणमें पूजित हुए हैं, वे चारों देवता शिवकी आज्ञाका आदर करके मेरी रक्षा करें॥ १५१॥

भैरवाद्याश्च ये चान्ये समन्तात्तस्य वेष्टिताः।
तेऽपि मामनुगृह्णन्तु शिवशासनगौरवात्॥ १५२

जो भैरव आदि तथा दूसरे लोग शिवको सब ओरसे घेरकर स्थित हैं, वे भी शिवके आदेशका गौरव मानकर मुझपर अनुग्रह करें॥ १५२॥

नारदाद्याश्च मुनयो दिव्या देवैश्च पूजिताः।
साध्या नागाश्च ये देवा जनलोकनिवासिनः॥ १५३
विनिवृत्ताधिकाराश्च महर्लोकनिवासिनः।
सप्तर्षयस्तथान्ये वै वैमानिकगणैः सह॥ १५४
सर्वे शिवार्चनरताः शिवाज्ञावशवर्तिनः।
शिवयोराज्ञया मह्यं दिशन्तु समकाङ्क्षितम्॥ १५५

नारद आदि देवपूजित दिव्य मुनि, साध्य, नाग, जनलोकनिवासी देवता, विशेषाधिकारसे सम्पन्न महर्लोकनिवासी, सप्तर्षि तथा अन्य वैमानिकगण सदाशिवकी अर्चनामें तत्पर रहते हैं। ये सब शिवकी आज्ञाके अधीन हैं, अतः शिवा और शिवकी आज्ञासे मुझे मनोवांछित वस्तु प्रदान करें॥ १५३—१५५॥

गन्धर्वाद्याः पिशाचान्ताश्चतस्त्रो देवयोनयः।
सिद्धा विद्याधराद्याश्च येऽपि चान्ये नभश्चराः॥ १५६
असुरा राक्षसाश्चैव पातालतलवासिनः।
अनन्ताद्याश्च नागेन्द्रा वैनतेयादयो द्विजाः॥ १५७
कूष्माण्डाः प्रेतवेताला ग्रहा भूतगणाः परे।
डाकिन्यश्चापि योगिन्यः शाकिन्यश्चापि तादृशाः॥ १५८
क्षेत्रारामगृहादीनि तीर्थान्यायतनानि च।
द्वीपाः समुद्रा नद्यश्च नदाश्चान्ये सरांसि च॥ १५९
गिरयश्च सुमेर्वाद्याः काननानि समन्ततः।
पशवः पक्षिणो वृक्षाः कृमिकीटादयो मृगाः॥ १६०
भुवनान्यपि सर्वाणि भुवनानामधीश्वराः।
अण्डान्यावरणैः सार्धमासाश्च दश दिग्गजाः॥ १६१
वर्णाः पदानि मन्त्राश्च तत्त्वान्यपि सहाधिपैः।
ब्रह्माण्डधारका रुद्रा रुद्राश्चान्ये सशक्तिकाः॥ १६२
यच्च किञ्चिज्जगत्यस्मिन्दृष्टं चानुमितं श्रुतम्।
सर्वे कामं प्रयच्छन्तु शिवयोरेव शासनात्॥ १६३

गन्धर्वोंसे लेकर पिशाचपर्यन्त जो चार देवयोनियाँ हैं, जो सिद्ध, विद्याधर, अन्य आकाशचारी, असुर, राक्षस, पातालतलवासी अनन्त आदि नागराज, गरुड आदि दिव्य पक्षी, कूष्माण्ड, प्रेत, वेताल, ग्रह, भूतगण, डाकिनियाँ, योगिनियाँ, शाकिनियाँ तथा वैसी ही और स्त्रियाँ, क्षेत्र, आराम (बगीचे), गृह आदि तीर्थ, देवमन्दिर, द्वीप, समुद्र, नदियाँ, नद, सरोवर, सुमेरु आदि पर्वत, सब ओर फैले हुए वन, पशु, पक्षी, वृक्ष, कृमि, कीट आदि, मृग, समस्त भुवन, भुवनेश्वर, आवरणोंसहित ब्रह्माण्ड, बारह मास, दस दिग्गज, वर्ण, पद, मन्त्र, तत्त्व, उनके अधिपति, ब्रह्माण्डधारक रुद्र, अन्य रुद्र और उनकी शक्तियाँ तथा इस जगत्में जो कुछ भी देखा, सुना और अनुमान किया हुआ है—ये सब-के-सब शिवा और शिवकी आज्ञासे मेरा मनोरथ पूर्ण करें॥ १५६—१६३॥

अथ विद्या परा शैवी पशुपाशविमोचिनी।
पञ्चार्थसंज्ञिता दिव्या पशुविद्याबहिष्कृता॥ १६४
शास्त्रं च शिवधर्माख्यं धर्माख्यं च तदुत्तरम्।
शैवाख्यं शिवधर्माख्यं पुराणं श्रुतिसम्मितम्॥ १६५
शैवागमाश्च ये चान्ये कामिकाद्याश्चतुर्विधाः।
शिवाभ्यामविशेषेण सत्कृत्येह समर्चिताः॥ १६६
ताभ्यामेव समाज्ञाता ममाभिप्रेतसिद्धये।
कर्मेदमनुमन्यन्तां सफलं साध्वनुष्ठितम्॥ १६७

जो पंच-पुरुषार्थस्वरूपा होनेसे पंचार्था कही गयी है, जिसका स्वरूप दिव्य है तथा जो पशुविद्याकी कोटिसे बाहर है, वह पशुओंको पाशसे मुक्त करनेवाली शैवी परा विद्या, शिवधर्मशास्त्र, शैवधर्म, श्रुतिसम्मत शिवसंज्ञकपुराण, शैवागम तथा धर्मकामादि चतुर्विध पुरुषार्थ, जिन्हें शिव और शिवाके समान ही मानकर उन्हींके समान पूजा दी गयी है, उन्हीं दोनोंकी आज्ञा लेकर मेरे अभीष्टकी सिद्धिके लिये इस कर्मका अनुमोदन करें, इसे सफल और सुसम्पन्न घोषित करें॥ १६४—१६७॥

श्वेताद्या नकुलीशान्ताः सशिष्याश्चापि देशिकाः।
तत्सन्ततीया गुरवो विशेषाद् गुरवो मम॥ १६८
शैवा माहेश्वराश्चैव ज्ञानकर्मपरायणाः।
कर्मेदमनुमन्यन्तां सफलं साध्वनुष्ठितम्॥ १६९

श्वेतसे लेकर नकुलीशपर्यन्त, शिष्य-सहित आचार्यगण, उनकी संतानपरम्परामें उत्पन्न गुरुजन, विशेषतः मेरे गुरु, शैव, माहेश्वर, जो ज्ञान और कर्ममें तत्पर रहनेवाले हैं, मेरे इस कर्मको सफल और सुसम्पन्न मानें॥ १६८-१६९॥

लौकिका ब्राह्मणाः सर्वे क्षत्रियाश्च विशः क्रमात्।
वेदवेदाङ्गतत्त्वज्ञाः सर्वशास्त्रविशारदाः॥ १७०
सांख्या वैशेषिकाश्चैव यौगा नैयायिका नराः।
सौरा ब्राह्मास्तथा रौद्रा वैष्णवाश्चापरे नराः॥ १७१
शिष्टाः सर्वे विशिष्टाश्च शिवशासनयन्त्रिताः।
कर्मेदमनुमन्यन्तां ममाभिप्रेतसाधकम्॥ १७२

लौकिक ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, वेदवेदांगोंके तत्त्वज्ञ विद्वान्, सर्वशास्त्रकुशल, सांख्यवेत्ता, वैशेषिक, योगशास्त्रके आचार्य, नैयायिक, सूर्योपासक, ब्रह्मोपासक, शैव, वैष्णव तथा अन्य सब शिष्ट और विशिष्ट पुरुष शिवकी आज्ञाके अधीन हो मेरे इस कर्मको अभीष्टसाधक मानें॥ १७०—१७२॥

शैवाः सिद्धान्तमार्गस्थाः शैवाः पाशुपतास्तथा।
शैवा महाव्रतधराः शैवाः कापालिकाः परे॥ १७३
शिवाज्ञापालकाः पूज्या ममापि शिवशासनात्।
सर्वे मामनुगृह्णन्तु शंसन्तु सफलक्रियाम्॥ १७४

सिद्धान्तमार्गी शैव, पाशुपत शैव, महाव्रतधारी शैव तथा अन्य कापालिक शैव—ये सब-के-सब शिवकी आज्ञाके पालक तथा मेरे भी पूज्य हैं। अतः शिवकी आज्ञासे इन सबका मुझपर अनुग्रह हो और वे इस कार्यको सफल घोषित करें॥ १७३-१७४॥

दक्षिणज्ञाननिष्ठाश्च दक्षिणोत्तरमार्गगाः।
अविरोधेन वर्तन्तां मन्त्रं श्रेयोऽर्थिनो मम॥ १७५

जो दक्षिणाचारके ज्ञानमें परिनिष्ठ तथा दक्षिणाचारके उत्कृष्ट मार्गपर चलनेवाले हैं, वे परस्पर विरोध न रखते हुए मन्त्रका जप करें और मेरे कल्याणकामी हों॥ १७५॥

नास्तिकाश्च शठाश्चैव कृतघ्नाश्चैव तामसाः।
पाषण्डाश्चातिपापाश्च वर्तन्तां दूरतो मम॥ १७६
बहुभिः किं स्तुतैरत्र येऽपि केऽपि चिदास्तिकाः।
सर्वे मामनुगृह्णन्तु सन्तः शंसन्तु मङ्गलम्॥ १७७

नास्तिक, शठ, कृतघ्न, तामस, पाखण्डी और अति पापी प्राणी मुझसे दूर ही रहें। यहाँ बहुतोंकी स्तुतिसे क्या लाभ? जो कोई भी आस्तिक संत हैं, वे सब मुझपर अनुग्रह करें और मेरे मंगल होनेका आशीर्वाद दें॥ १७६-१७७॥

नमः शिवाय साम्बाय ससुतायादिहेतवे।
पञ्चावरणरूपेण प्रपञ्चेनावृताय ते॥ १७८

जो पंचावरणरूपी प्रपंचसे घिरे हुए हैं और सबके आदि कारण हैं, उन आप पुत्रसहित साम्ब सदाशिवको मेरा नमस्कार है॥ १७८॥

इत्युक्त्वा दण्डवद् भूमौ प्रणिपत्य शिवं शिवाम्।
जपेत्पञ्चाक्षरीं विद्यामष्टोत्तरशतावराम्॥ १७९
तथैव शक्तिविद्यां च जपित्वा तत्समर्पणम्।
कृत्वा तं क्षमयित्वेशं पूजाशेषं समापयेत्॥ १८०

ऐसा कहकर शिव और शिवाके उद्देश्यसे भूमिपर दण्डकी भाँति गिरकर प्रणाम करे और कम-से-कम एक सौ आठ बार पंचाक्षरी विद्याका जप करे। इसी प्रकार शक्तिविद्या (**ॐ नमः शिवायै**)-का जप करके उसका समर्पण करे और महादेवजीसे क्षमा माँगकर शेष पूजाकी समाप्ति करे॥ १७९-१८०॥

एतत्पुण्यतमं स्तोत्रं शिवयोर्हृदयङ्गमम्।
सर्वाभीष्टप्रदं साक्षाद्भुक्तिमुक्त्यैकसाधनम्॥ १८१

यह परम पुण्यमय स्तोत्र शिव और शिवाके हृदयको अत्यन्त प्रिय है, सम्पूर्ण मनोरथोंको देनेवाला है और भोग तथा मोक्षका एकमात्र साक्षात् साधन है॥ १८१॥

य इदं कीर्तयेन्नित्यं शृणुयाद्वा समाहितः।
स विधूयाशु पापानि शिवसायुज्यमाप्नुयात्॥ १८२

जो एकाग्रचित्त हो प्रतिदिन इसका कीर्तन अथवा श्रवण करता है, वह सारे पापोंको शीघ्र ही धो-बहाकर भगवान् शिवका सायुज्य प्राप्त कर लेता है॥ १८२॥

गोघ्नश्चैव कृतघ्नश्च वीरहा भ्रूणहापि वा।
शरणागतघाती च मित्रविश्रम्भघातकः॥ १८३

दुष्टपापसमाचारो मातृहा पितृहापि वा।
स्तवेनानेन जप्तेन तत्तत्पापात् प्रमुच्यते॥ १८४

जो गोहत्यारा, कृतघ्न, वीरघाती, गर्भस्थ शिशुकी हत्या करनेवाला, शरणागतका वध करनेवाला और मित्रके प्रति विश्वासघाती है, दुराचार और पापाचारमें ही लगा रहता है तथा माता और पिताका भी घातक है, वह भी इस स्तोत्रके जपसे तत्काल पाप-मुक्त हो जाता है॥ १८३-१८४॥

दुःस्वप्नादिमहानर्थसूचकेषु भयेषु च।
यदि सङ्कीर्तयेदेतन्न ततोऽनर्थभाग्भवेत्॥ १८५

दुःस्वप्न आदि महान् अनर्थसूचक भयोंके उपस्थित होनेपर यदि मनुष्य इस स्तोत्रका कीर्तन करे तो वह कदापि अनर्थका भागी नहीं हो सकता॥ १८५॥

आयुरारोग्यमैश्वर्यं यच्चान्यदपि वाञ्छितम्।
स्तोत्रस्यास्य जपे तिष्ठंस्तत्सर्वं लभते नरः॥ १८६

आयु, आरोग्य, ऐश्वर्य तथा और जो भी मनोवांछित वस्तु है, उन सबको इस स्तोत्रके जपमें संलग्न रहनेवाला पुरुष प्राप्त कर लेता है॥ १८६॥

असम्पूज्य शिवं स्तोत्रं जपात्फलमुदाहृतम्।
सम्पूज्य च जपे तस्य फलं वक्तुं न शक्यते॥ १८७

शिवकी पूर्वोक्त पूजा न करके केवल स्तोत्रका पाठ करनेसे जो फल मिलता है, उसको यहाँ बताया गया है; परंतु शिवकी पूजा करके इस स्तोत्रका पाठ करनेसे जो फल मिलता है, उसका तो वर्णन ही नहीं किया जा सकता॥ १८७॥

आस्तामियं फलावाप्तिरस्मिन् सङ्कीर्तिते सति।
सार्धमम्बिकया देवः श्रुत्वैव दिवि तिष्ठति॥ १८८

तस्मान्नभसि सम्पूज्य देवदेवं सहोमया।
कृताञ्जलिपुटस्तिष्ठन् स्तोत्रमेतदुदीरयेत्॥ १८९

यह फलकी प्राप्ति अलग रहे, इस स्तोत्रका कीर्तन करनेपर इसे सुनते ही माता पार्वतीसहित महादेवजी आकाशमें आकर खड़े हो जाते हैं। अतः उस समय उमासहित देवदेव महादेवकी आकाशमें पूजा करके दोनों हाथ जोड़ खड़ा हो जाय और इस स्तोत्रका पाठ करे॥ १८८-१८९॥

इति श्रीशिवमहापुराणे सप्तम्यां वायवीयसंहितायामुत्तरखण्डे शिवमहास्तोत्रवर्णनं नामैकत्रिंशोऽध्यायः॥ ३१॥

॥ इस प्रकार श्रीशिवमहापुराणके अन्तर्गत सातवीं वायवीयसंहिताके उत्तरखण्डमें शिवमहास्तोत्रवर्णन ' नामक इकतीसवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ ३१॥

अथ द्वात्रिंशोऽध्यायः

ऐहिक फल देनेवाले कर्मों और उनकी विधिका वर्णन, शिव-पूजनकी विधि, शान्ति-पुष्टि आदि विविध काम्य कर्मोंमें विभिन्न हवनीय पदार्थोंके उपयोगका विधान

उपमन्युरुवाच

एतत्ते कथितं कृष्ण कर्मेहामुत्र सिद्धिदम्।
क्रियातपोजपध्यानसमुच्चयमयं परम्॥ १

उपमन्यु कहते हैं—हे श्रीकृष्ण! यह मैंने तुमसे इहलोक और परलोकमें सिद्धि प्रदान करनेवाला क्रम बताया है, जो उत्तम तो है ही, इसमें क्रिया, जप, तप और ध्यानका समुच्चय भी है॥ १॥

अथ वक्ष्यामि शैवानामिहैव फलदं नृणाम्।
पूजाहोमजपध्यानतपोदानमयं महत्॥ २

अब मैं शिव-भक्तोंके लिये यहीं फल देनेवाले पूजन, होम, जप, ध्यान, तप और दानमय महान् कर्मका वर्णन करता हूँ। मन्त्रार्थके श्रेष्ठ ज्ञाताको

तत्र संसाधयेत्पूर्वं मन्त्रं मन्त्रार्थवित्तमः।
दृष्टसिद्धिकरं कर्म नान्यथा फलदं यतः॥ ३

चाहिये कि वह पहले मन्त्रको सिद्ध करे, अन्यथा इष्टसिद्धिकारक कर्म भी फलद नहीं होता॥ २-३॥

सिद्धमन्त्रोऽप्यदृष्टेन प्रबलेन तु केनचित्।
प्रतिबन्धफलं कर्म न कुर्यात्सहसा बुधः॥ ४

तस्य तु प्रतिबन्धस्य कर्तुं शक्येह निष्कृतिः।
परीक्ष्य शकुनाद्यैस्तदादौ निष्कृतिमाचरेत्॥ ५

मन्त्र सिद्ध कर लेनेपर भी, जिस कर्मका फल किसी प्रबल अदृष्टके कारण प्रतिबद्ध हो, उसे विद्वान् पुरुष सहसा न करे। उस प्रतिबन्धकका यहाँ निवारण किया जा सकता है। कर्म करनेके पहले ही शकुन आदि करके उसकी परीक्षा कर ले और प्रतिबन्धकका पता लगनेपर उसे दूर करनेका प्रयत्न करे॥ ४-५॥

योऽन्यथा कुरुते मोहात्कर्मैहिकफलं नरः।
न तेन फलभाक्स स्यात्प्राप्नुयाच्चोपहास्यताम्॥ ६

अविस्रब्धो न कुर्वीत कर्म दृष्टफलं क्वचित्।
स खल्वश्रद्दधानः स्यान्नाश्रद्धः फलमृच्छति॥ ७

जो मनुष्य ऐसा न करके मोहवश ऐहिक फल देनेवाले कर्मका अनुष्ठान करता है, वह उससे फलका भागी नहीं होता और जगत्में उपहासका पात्र बनता है। जिस पुरुषको विश्वास न हो, वह ऐहिक फल देनेवाले कर्मका अनुष्ठान कभी न करे; क्योंकि उसके मनमें श्रद्धा नहीं रहती और श्रद्धाहीन पुरुषको उस कर्मका फल नहीं मिलता॥ ६-७॥

नापराधोऽस्ति देवस्य कर्मण्यपि तु निष्फले।
यथोक्तकारिणां पुंसामिहैव फलदर्शनात्॥ ८

किया कर्म निष्फल हो जाय, तो भी उसमें देवताका कोई अपराध नहीं है; क्योंकि शास्त्रोक्त विधिसे ठीक-ठीक कर्म करनेवाले पुरुषोंको यहीं फलकी प्राप्ति देखी जाती है॥ ८॥

साधकः सिद्धमन्त्रश्च निरस्तप्रतिबंधकः।
विश्वस्तः श्रद्दधानश्च कुर्वन्नाप्नोति तत्फलम्॥ ९

जिसने मन्त्रको सिद्ध कर लिया है, प्रतिबन्धकको दूर कर दिया है, मन्त्रपर विश्वास रखता है और मनमें श्रद्धासे युक्त है, वह साधक कर्म करनेपर उसके फलको अवश्य पाता है॥ ९॥

अथवा तत्फलावाप्त्यै ब्रह्मचर्यरतो भवेत्।
रात्रौ हविष्यमश्नीयात्पायसं वा फलानि वा॥ १०

हिंसादि यन्निषिद्धं स्यान्न कुर्यान्मनसापि तत्।
सदा भस्मानुलिप्ताङ्गः सुवेषश्च शुचिर्भवेत्॥ ११

उस कर्मके फलकी प्राप्तिके लिये ब्रह्मचर्यपरायण होना चाहिये। रातमें हविष्य भोजन करे, खीर या फल खाकर रहे, हिंसा आदि जो निषिद्ध कर्म हैं, उन्हें मनसे भी न करे, सदा अपने शरीरमें भस्म लगाये, सुन्दर एवं पवित्र वेषभूषा धारण करे और पवित्र रहे॥ १०-११॥

इत्थमाचारवान्भूत्वा स्वानुकूले शुभेऽहनि।
पूर्वोक्तलक्षणे देशे पुष्पदामाद्यलंकृते॥ १२

आलिप्य शकृता भूमिं हस्तमानावरां यथा।
विलिखेत्कमले भद्रे दीप्यमानं स्वतेजसा॥ १३

इस प्रकार आचारवान् होकर अपने अनुकूल शुभ दिनमें पुष्पमाला आदिसे अलंकृत पूर्वोक्त लक्षणवाले स्थानमें एक हाथ भूमिको गोबरसे लीपकर वहाँ बिछे हुए भद्रासनपर कमल अंकित करे, जो अपने तेजसे प्रकाशमान हो॥ १२-१३॥

तप्तजाम्बूनदमयमष्टपत्रं सकेसरम्।
मध्ये कर्णिकया युक्तं सर्वरत्नैरलंकृतम्॥ १४

स्वाकारसदृशेनैव नालेन च समन्वितम्।

वह तपाये हुए सुवर्णके समान रंगवाला हो। उसमें आठ दल हों और केसर भी बना हो। मध्यभागमें वह कर्णिकासे युक्त और सम्पूर्ण रत्नोंसे अलंकृत हो। उसमें अपने आकारके समान ही नाल

तादृशे स्वर्णनिर्माणे कंदे सम्यग्विधानतः॥ १५
तत्राणिमादिकं सर्वं संकल्प्य मनसा पुनः।
रत्नजं वाथ सौवर्णं स्फटिकं वा सलक्षणम्।
लिङ्गं सवेदिकं चैव स्थापयित्वा विधानतः॥ १६

तत्रावाह्य यजेद्देवं साम्बं सगणमव्ययम्।
तत्र माहेश्वरी कल्प्या मूर्तिर्मूर्तिमतः प्रभोः॥ १७

चतुर्भुजा चतुर्वक्त्रा सर्वाभरणभूषिता।
शार्दूलचर्मवसना किञ्चिद्विहसितानना॥ १८

वरदाभयहस्ता च मृगटङ्कधरा तथा।
अथवाष्टभुजा चिन्त्या चिन्तकस्य यथारुचि॥ १९

तदा त्रिशूलपरशुखड्गवज्राणि दक्षिणे।
वामे पाशांकुशौ तद्वत्खेटं नागं च बिभ्रती॥ २०

बालार्कसदृशप्रख्या प्रतिवक्त्रं त्रिलोचना।
तस्याः पूर्वमुखं सौम्यं स्वाकारसदृशप्रभम्॥ २१

दक्षिणं नीलजीमूतसदृशं घोरदर्शनम्।
उत्तरं विद्रुमप्रख्यं नीलालकविभूषितम्॥ २२

पश्चिमं पूर्णचन्द्राभं सौम्यमिन्दुकलाधरम्।
तदङ्कमंडलारूढा शक्तिर्माहेश्वरी परा॥ २३

महालक्ष्मीरिति ख्याता श्यामा सर्वमनोहरा।

मूर्तिं कृत्वैवमाकारां सकलीकृत्य च क्रमात्॥ २४

मूर्तिमन्तमथावाह्य यजेत्परमकारणम्।
स्नानार्थे कल्पयेत्तत्र पञ्चगव्यं तु कापिलम्॥ २५

पञ्चामृतं च पूर्णानि बीजानि च विशेषतः।
पुरस्तान्मण्डलं कृत्वा रत्नचूर्णाद्यलंकृतम्॥ २६

होनी चाहिये। वैसे स्वर्णनिर्मित कमलपर सम्यग्विधिसे मन-ही-मन अणिमा आदि सब सिद्धियोंकी भावना करे। फिर उसपर रत्नका, सोनेका अथवा स्फटिक मणिका उत्तम लक्षणोंसे युक्त वेदीसहित शिवलिंग स्थापित करे॥ १४—१६॥

उसमें विधि-पूर्वक पार्षदोंसहित अविनाशी साम्ब सदाशिवका आवाहन और पूजन करे। फिर वहाँ साकार भगवान् महेश्वरकी भावनामयी मूर्तिका निर्माण करे, जिसके चार भुजाएँ और चार मुख हों। वह सब आभूषणोंसे विभूषित हो, उसे व्याघ्रचर्म पहनाया गया हो। उसके मुखपर कुछ-कुछ हास्यकी छटा छा रही हो। उसने अपने दो हाथोंमें वरद और अभयकी मुद्रा धारण की हो और शेष दो हाथोंमें मृग-मुद्रा और टंक ले रखे हों। अथवा उपासककी रुचिके अनुसार अष्टभुजा मूर्तिकी भावना करनी चाहिये॥ १७—१९॥

उस दशामें वह मूर्ति अपने दाहिने चार हाथोंमें त्रिशूल, परशु, खड्ग और वज्र लिये हो और बायें चार हाथोंमें पाश, अंकुश, खेट और नाग धारण करती हो। उसकी अंगकान्ति प्रातःकालके सूर्यकी भाँति लाल हो और वह अपने प्रत्येक मुखमें तीन-तीन नेत्र धारण करती हो। उस मूर्तिका पूर्ववर्ती मुख सौम्य तथा अपनी आकृतिके अनुरूप ही कान्तिमान् है। दक्षिणवर्ती मुख नील मेघके समान श्याम और देखनेमें भयंकर है। उत्तरवर्ती मुख मूँगेके समान लाल है और सिरकी नीली अलकें उसकी शोभा बढ़ाती हैं॥ २०—२२॥

पश्चिमवर्ती मुख पूर्ण चन्द्रमाके समान उज्ज्वल, सौम्य तथा चन्द्रकलाधारी है। उस शिवमूर्तिके अंकमें पराशक्ति माहेश्वरी शिवा आरूढ़ हैं। उनकी अवस्था सोलह वर्षकी-सी है। वे सबका मन मोहनेवाली हैं और महालक्ष्मीके नामसे विख्यात हैं॥ २३१/२॥

इस प्रकार भावनामयी मूर्तिका निर्माण और पद्धति क्रमसे सकलीकरण करके उनमें मूर्तिमान् परम कारण शिवका आवाहन और पूजन करे। वहाँ स्नान करानेके लिये कपिला गायके पंचगव्य और पंचामृतका संग्रह करे। विशेषतः चूर्ण और बीजको भी एकत्र करे। फिर पूर्वदिशामें मण्डल बनाकर उसे

कर्णिकायां प्रविन्यस्येदीशानकलशं पुनः।
सद्यादिकलशान्पश्चात्परितस्तस्य कल्पयेत्॥ २७

ततो विद्येशकलशानष्टौ पूर्वादिवत्क्रमात्।
तीर्थाम्बुपूरितान्कृत्वा सूत्रेणावेष्ट्य पूर्ववत्॥ २८

पुण्यद्रव्याणि निक्षिप्य समन्त्रं सविधानकम्।
दुकूलाद्येन वस्त्रेण समाच्छाद्य समन्ततः॥ २९

सर्वत्र मन्त्रं विन्यस्य तत्तन्मन्त्रपुरःसरम्।
स्नानकाले तु सम्प्राप्ते सर्वमङ्गलनिःस्वनैः॥ ३०
पञ्चगव्यादिभिश्चैव स्नापयेत्परमेश्वरम्।
ततः कुशोदकाद्यानि स्वर्णरत्नोदकान्यपि॥ ३१
गन्धपुष्पादिसिद्धानि मन्त्रसिद्धानि च क्रमात्।
उद्धृत्योद्धृत्य मन्त्रेण तैस्तैः स्नाप्य महेश्वरम्॥ ३२
गन्धपुष्पादिदीपांश्च पूजाकर्म समाचरेत्।
पलावरः स्यादालेप एकादशपलोत्तरः॥ ३३

सुवर्णरत्नपुष्पाणि शुभानि सुरभीणि च।
नीलोत्पलाद्युत्पलानि बिल्वपत्राण्यनेकशः॥ ३४

कमलानि च रक्तानि श्वेतान्यपि च शम्भवे।
कृष्णागुरूद्भवो धूपः सकर्पूराज्यगुग्गुलः॥ ३५

कपिलाघृतसंसिद्धा दीपाः कर्पूरवर्तिजाः।
पञ्च ब्रह्मषडङ्गानि पूज्यान्यावरणानि च॥ ३६

नैवेद्यः पयसा सिद्धः स गुडाज्यो महाचरुः।
पाटलोत्पलपद्माद्यैः पानीयं च सुगन्धितम्॥ ३७

पञ्चसौगंधिकोपेतं ताम्बूलं च सुसंस्कृतम्।
सुवर्णरत्नसिद्धानि भूषणानि विशेषतः॥ ३८

वासांसि च विचित्राणि सूक्ष्माणि च नवानि च।
दर्शनीयानि देयानि गानवाद्यादिभिः सह॥ ३९

रत्नचूर्ण आदिसे अलंकृत करके कमलकी कर्णिकामें ईशान-कलशकी स्थापना करे। तत्पश्चात् उसके चारों ओर सद्योजात आदि मूर्तियोंके कलशोंकी स्थापना करे॥ २४—२७॥

इसके बाद पूर्व आदि आठ दिशाओंमें क्रमशः विद्येश्वरके आठ कलशोंकी स्थापना करके उन सबको तीर्थके जलसे भर दे और कण्ठमें सूत लपेट दे। फिर उनके भीतर पवित्र द्रव्य छोड़कर मन्त्र और विधिके साथ साड़ी या धोती आदि वस्त्रसे उन सब कलशोंको चारों ओरसे आच्छादित कर दे॥ २८-२९॥

तदनन्तर मन्त्रोच्चारणपूर्वक उन सबमें मन्त्रन्यास करके स्नानका समय आनेपर सब प्रकारके मांगलिक शब्दों और वाद्योंके साथ पंचगव्य आदिके द्वारा परमेश्वर शिवको स्नान कराये। कुशोदक, स्वर्णोदक और रत्नोदक आदिको—जो गन्ध, पुष्प आदिसे वासित और मन्त्रसिद्ध हों—क्रमशः ले-लेकर मन्त्रोच्चारणपूर्वक उन-उनके द्वारा महेश्वरको नहलाये॥ ३०—३२॥

फिर गन्ध, पुष्प और दीप आदि निवेदन करके पूजा-कर्म सम्पन्न करे। आलेपन या उबटन कम-से-कम एक पल और अधिक-से-अधिक ग्यारह पल हो। सुन्दर, सुवर्णमय और रत्नमय पुष्प अर्पित करे। सुगन्धित नील कमल, नील कुमुद, अनेकशः बिल्वपत्र, लाल कमल और श्वेत कमल भी शम्भुको चढ़ाये। कालागुरुके धूपको कपूर, घी और गुग्गुलसे युक्त करके निवेदन करे॥ ३३—३५॥

कपिला गायके घीसे युक्त दीपकमें कपूरकी बत्ती बनाकर रखे और उसे जलाकर देवताके सम्मुख दिखाये। ईशानादि पाँच ब्रह्मकी, छहों अंगोंकी और पाँच आवरणोंकी पूजा करनी चाहिये॥ ३६॥

दूधमें तैयार किया हुआ पदार्थ नैवेद्यके रूपमें निवेदनीय है। गुड़ और घीसे युक्त महाचरुका भी भोग लगाना चाहिये। पाटल, उत्पल और कमल आदिसे सुवासित जल पीनेके लिये देना चाहिये। पाँच प्रकारकी सुगन्धोंसे युक्त तथा अच्छी तरह लगाया हुआ ताम्बूल मुखशुद्धिके लिये अर्पित करना चाहिये। सुवर्ण और रत्नोंके बने हुए आभूषण, नाना प्रकारके रंगवाले नूतन महीन वस्त्र, जो दर्शनीय हों, इष्टदेवको देने चाहिये। उस समय गीत, वाद्य और कीर्तन आदि भी करने चाहिये॥ ३७—३९॥

जपश्च मूलमन्त्रस्य लक्षः परमसंख्यया।
एकावरा त्र्युत्तरा च पूजा फलवशादिह॥ ४०

दशसंख्यावरो होमः प्रतिद्रव्यं शतोत्तरः।
घोररूपश्शिवश्चिन्त्यो मारणोच्चाटनादिषु॥ ४१

शिवलिङ्गे शिवाग्नौ च ह्यन्यासु प्रतिमासु च।
चिन्त्यः सौम्यतनुः शम्भुः कार्ये शान्तिकपौष्टिके॥ ४२

मूलमन्त्रका एक लाख जप करना चाहिये। पूजा कम-से-कम एक बार, नहीं तो दो या तीन बार करनी चाहिये; क्योंकि अधिकका अधिक फल होता है। होम- सामग्रीके लिये जितने द्रव्य हों, उनमेंसे प्रत्येक द्रव्यकी कम-से-कम दस और अधिक-से-अधिक सौ आहुतियाँ देनी चाहिये। अभिचार आदि कर्ममें शिवके घोररूपका चिन्तन करना चाहिये। शान्तिकर्म या पौष्टिककर्म करते समय शिवलिंगमें, शिवाग्निमें तथा अन्य प्रतिमाओंमें शिवके सौम्यरूपका ध्यान करना चाहिये॥ ४०—४२॥

आयसौ स्रुक्स्रुवौ कार्यौ मारणादिसु कर्मसु।
तदन्यत्र तु सौवर्णौ शान्तिकाद्येषु कृत्स्नशः॥ ४३

दूर्वया घृतगोक्षीरमिश्रया मधुना तथा।
चरुणा सघृतेनैव केवलं पयसापि वा॥ ४४

जुहुयान्मृत्युविजये तिलै रोगोपशान्तये।
घृतेन पयसा चैव कमलैर्वाथ केवलैः॥ ४५

समृद्धिकामो जुहुयान्महादारिद्र्यशान्तये।
जातीपुष्पेण वश्यार्थी जुहुयात्सघृतेन तु॥ ४६

अभिचार आदि कर्मोंमें लोहेके बने हुए स्रुक् और स्रुवाका उपयोग करना चाहिये। अन्य शान्ति आदि कर्मोंमें सुवर्णके [अथवा यज्ञिय काष्ठके] स्रुक् और स्रुवा बनवाने चाहिये। मृत्युपर विजय पानेके लिये घी, दूधमें मिलायी हुई दूर्वासे, मधुसे, घृतयुक्त चरुसे अथवा केवल दूधसे भी हवन करना चाहिये तथा रोगोंकी शान्तिके लिये तिलोंकी आहुति देनी चाहिये। समृद्धिकी इच्छा रखनेवाला पुरुष महान् दारिद्र्यकी शान्तिके लिये घी, दूध अथवा केवल कमलके फूलोंसे होम करे। अभिचार कर्मका इच्छुक पुरुष घृतयुक्त जातीपुष्प (चमेली या मालतीके फूल)-से हवन करे॥ ४३—४६॥

घृतेन करवीरैश्च कुर्यादाकर्षणं द्विजः।
तैलेनोच्चाटनं कुर्यात्स्तम्भनं मधुना पुनः॥ ४७

द्विजको चाहिये कि वह घृत और करवीर-पुष्पोंकी आहुति, तेलकी आहुति और मधुकी आहुतिसे इन कर्मोंको करे॥ ४७॥

स्तम्भनं सर्षपेणापि लशुनेन तु पातनम्।
ताडनं रुधिरेण स्यात्खरस्योष्ट्रस्य चोभयोः॥ ४८
मारणोच्चाटने कुर्याद्रोहिबीजैस्तिलान्वितैः।
विद्वेषणं च तैलेन कुर्याल्लाङ्गलकस्य तु॥ ४९
बंधनं रोहिबीजेन सेनास्तम्भनमेव च।
रक्तसर्षपसंमिश्रैर्होमद्रव्यैरशेषतः॥ ५०

तन्त्रशास्त्रीय अभिचार कर्मोंमें सार्षप, लशुन, तिलमिश्रित रोहिबीज, लांगलक तैल, शोणित आदिका प्रयोग होता है॥ ४८—५०॥

हस्तयन्त्रोद्भवैस्तैलैर्जुहुयादाभिचारिके।
कटुकीतुषसंयुक्तैः कार्पासास्थिभिरेव च॥ ५१
सर्षपैस्तैलसंमिश्रैर्जुहुयादाभिचारिके।
ज्वरोपशान्तिदं क्षीरं सौभाग्यफलदं तथा॥ ५२

अभिचार-कर्ममें हस्तचालित यन्त्रसे तैयार किये गये तेलकी आहुति देनी चाहिये। कुटकीकी भूसी, कपासकी ढोढ़ तथा तैलमिश्रित सरसोंकी भी आहुति दी जा सकती है। दूधकी आहुति ज्वरकी शान्ति करनेवाली तथा सौभाग्यरूप फल प्रदान करनेवाली होती है॥ ५१-५२॥

सर्वसिद्धिकरो होमः क्षौद्राज्यदधिभिर्युतैः।
क्षीरेण तन्दुलैश्चैव चरुणा केवलेन वा॥ ५३

मधु, घी और दहीको परस्पर मिलाकर इनसे, दूध और चावलसे अथवा केवल चरुसे किया गया होम सम्पूर्ण सिद्धियोंको देनेवाला होता है। सात

शान्तिकं पौष्टिकं वापि सप्तभिः समिदादिभिः।
द्रव्यैर्विशेषतो होमे वश्यमाकर्षणं तथा॥ ५४

वश्यमाकर्षणं चैव श्रीप्रदं च विशेषतः।
बिल्वपत्रैस्तु हवनं शत्रोर्विजयदं तथा॥ ५५

समिधः शान्तिकार्येषु पालाशखदिरादिकाः।
करवीरार्कजाः क्रौर्ये कण्टकिन्यश्च विग्रहे॥ ५६

प्रशान्तः शान्तिकं कुर्यात्पौष्टिकं च विशेषतः।
निर्घृणः क्रुद्धचित्तस्तु प्रकुर्यादाभिचारिकम्॥ ५७

अतीव दुरवस्थायां प्रतीकारान्तरं न चेत्।
आततायिनमुद्दिश्य प्रकुर्यादाभिचारिकम्॥ ५८

प्रकारकी समिधा आदिसे शान्तिक अथवा पौष्टिक कर्म भी करे। विशेषतः द्रव्योंद्वारा होम करनेपर वश्य और आकर्षणकी सिद्धि होती है। बिल्वपत्रोंका हवन वशीकरण तथा आकर्षणका साधक और लक्ष्मीकी प्राप्ति करानेवाला है, साथ ही वह शत्रुपर विजय प्रदान कराता है॥ ५३—५५॥

शान्तिकार्यमें पलाश और खैर आदिकी समिधाओंका होम करना चाहिये। क्रूरतापूर्ण कर्ममें कनेर और आककी समिधाएँ होनी चाहिये। लड़ाई-झगड़ेमें कटीले पेड़ोंकी समिधाओंका हवन करना चाहिये। शान्ति और पुष्टिकर्मको विशेषतः शान्तचित्त पुरुष ही करे। जो निर्दय और क्रोधी हो, उसीको आभिचारिक कर्ममें प्रवृत्त होना चाहिये। वह भी उस दशामें, जबकि दुरवस्था चरम सीमाको पहुँच गयी हो और उसके निवारणका दूसरा कोई उपाय न रह गया हो, आततायीको नष्ट करनेके उद्देश्यसे आभिचारिक कर्म करना चाहिये॥ ५६—५८॥

स्वराष्ट्रपतिमुद्दिश्य न कुर्यादाभिचारिकम्।
यद्यास्तिकः सुधर्मिष्ठो मान्यो वा योऽपि कोऽपि वा॥ ५९

तमुद्दिश्यापि नो कुर्यादाततायिनमप्युत।
मनसा कर्मणा वाचा योऽपि कोऽपि शिवाश्रितः॥ ६०

स्वराष्ट्रपतिमुद्दिश्य शिवाश्रितमथापि वा।
कृत्वाभिचारिकं कर्म सद्यो विनिपतेन्नरः॥ ६१

स्वराष्ट्रपालकं तस्माच्छिवभक्तं च कञ्चन।
न हिंस्यादभिचाराद्यैर्यदीच्छेत्सुखमात्मनः॥ ६२

अन्यं कमपि चोद्दिश्य कृत्वा वै मारणादिकम्।
पश्चात्तापेन संयुक्तः प्रायश्चित्तं समाचरेत्॥ ६३

अपने राष्ट्रके स्वामीको हानि पहुँचानेके उद्देश्यसे आभिचारिक कर्म कदापि नहीं करना चाहिये। यदि कोई आस्तिक, परम धर्मात्मा और माननीय पुरुष हो, उससे यदि कभी आततायीपनका कार्य हो जाय, तो भी उसको नष्ट करनेके उद्देश्यसे आभिचारिक कर्मका प्रयोग नहीं करना चाहिये। जो कोई भी मन, वाणी और क्रियाद्वारा भगवान् शिवके आश्रित हो, उसके तथा राष्ट्रस्वामीके उद्देश्यसे भी आभिचारिक कर्म करके मनुष्य शीघ्र ही पतित हो जाता है। इसलिये कोई भी पुरुष जो अपने लिये सुख चाहता हो, अपने राष्ट्रपालक राजाकी तथा शिवभक्तकी अभिचार आदिके द्वारा हिंसा न करे। दूसरे किसीके उद्देश्यसे भी अभिचार आदिका प्रयोग करनेपर पश्चात्तापसे युक्त हो प्रायश्चित्त करना चाहिये॥ ५९—६३॥

बाणलिङ्गेऽपि वा कुर्यान्निर्धनो धनवानपि।
स्वयम्भूतेऽथ वा लिङ्गे आर्षके वैदिकेऽपि वा॥ ६४

अभावे हेमरत्नानामशक्तौ च तदर्जने।

निर्धन या धनवान् पुरुष भी बाणलिंग (नर्मदासे प्रकट हुए शिवलिंग), स्वयम्भूलिंग, ऋषियोंद्वारा स्थापित लिंग या वैदिक लिंगमें भगवान् शंकरकी पूजा करे। जहाँ ऐसे लिंगका अभाव हो वहाँ सुवर्ण और रत्नके बने हुए शिवलिंगमें पूजा करनी चाहिये। यदि सुवर्ण और रत्नोंके उपार्जनकी शक्ति न हो तो

मनसैवाचरेदेतद् द्रव्यैर्वा प्रतिरूपकैः॥ ६५

मनसे ही भावनामयी मूर्तिका निर्माण करके मानसिक पूजन करना चाहिये। अथवा प्रतिनिधि द्रव्योंद्वारा शिवलिंगकी कल्पना करनी चाहिये॥ ६४-६५॥

क्वचिदंशे तु यः शक्तस्त्वशक्तः क्वचिदंशके।
सोऽपि शक्त्यनुसारेण कुर्वंश्चेत्फलमृच्छति॥ ६६

कर्मण्यनुष्ठितेऽप्यस्मिन्फलं यत्र न दृश्यते।
द्विस्त्रिर्वावर्त्तयेत्तत्र सर्वथा दृश्यते फलम्॥ ६७

पूजोपयुक्तं यद् द्रव्यं हेमरत्नाद्यनुत्तमम्।
तत्सर्वं गुरवे दद्याद् दक्षिणां च ततः पृथक्॥ ६८

जो किसी अंशमें समर्थ और किसी अंशमें असमर्थ है, वह भी यदि अपनी शक्तिके अनुसार पूजन-कर्म करता है तो अवश्य फलका भागी होता है। जहाँ इस कर्मका अनुष्ठान करनेपर भी फल नहीं दिखायी देता, वहाँ दो या तीन बार उसकी आवृत्ति करे। ऐसा करनेसे सर्वथा फलका दर्शन होगा। पूजाके उपयोगमें आया हुआ जो सुवर्ण, रत्न आदि उत्तम द्रव्य हो, वह सब गुरुको दे देना चाहिये तथा उसके अतिरिक्त दक्षिणा भी देनी चाहिये॥ ६६—६८॥

स चेन्नेच्छति तत्सर्वं शिवाय विनिवेदयेत्।
अथवा शिवभक्तेभ्यो नान्येभ्यस्तु प्रदीयते॥ ६९

यः स्वयं साधयेच्छक्त्या गुर्वादिनिरपेक्षया।
सोऽप्येवमाचरेदत्र न गृह्णीयात्स्वयं पुनः॥ ७०

स्वयं गृह्णाति यो लोभात्पूजाङ्गद्रव्यमुत्तमम्।
कांक्षितं न लभेन्मूढो नात्र कार्या विचारणा॥ ७१

यदि गुरु नहीं लेना चाहते हों तो वह सब वस्तु भगवान् शिवको ही समर्पित कर दे अथवा शिवभक्तोंको दे दे। इनके सिवा दूसरोंको देनेका विधान नहीं है। जो पुरुष गुरु आदिकी अपेक्षा न रखकर स्वयं यथाशक्ति पूजा सम्पन्न करता है, वह भी ऐसा ही आचरण करे। पूजामें चढ़ायी हुई वस्तु स्वयं न ले ले। जो मूढ़ लोभवश पूजाके अंगभूत उत्तम द्रव्यको स्वयं ग्रहण कर लेता है, वह अभीष्ट फलको नहीं पाता। इसमें अन्यथा विचार नहीं करना चाहिये॥ ६९—७१॥

अर्चितं यत्तु तल्लिंगं गृह्णीयाद्वा न वा स्वयम्।
गृह्णीयाद्यदि तन्नित्यं स्वयं वान्योऽपि वार्चयेत्॥ ७२

यथोक्तमेव कर्मैतदाचरेद्योऽनपायतः।
फलं व्यभिचरेन्नैवमित्यतः किं प्ररोचकम्॥ ७३

किसीके द्वारा पूजित शिवलिंगको मनुष्य ग्रहण करे या न करे, यह उसकी इच्छापर निर्भर है। यदि ले ले तो स्वयं नित्य उसकी पूजा करे अथवा उसकी प्रेरणासे दूसरा कोई पूजा करे। जो पुरुष इस कर्मका शास्त्रीय विधिके अनुसार ही निरन्तर अनुष्ठान करता है, वह फल पानेसे कभी वंचित नहीं रहता। इससे बढ़कर प्रशंसाकी बात और क्या हो सकती है?॥ ७२-७३॥

तथाप्युद्देशतो वक्ष्ये कर्मणः सिद्धिमुत्तमाम्।
अपि शत्रुभिराक्रान्तो व्याधिभिर्वाप्यनेकशः॥ ७४

मृत्योरास्यगतश्चापि मुच्यते निरपायतः।
पूजायतेऽतिकृपणो रिक्तो वैश्रवणायते॥ ७५

कामायते विरूपोऽपि वृद्धोऽपि तरुणायते।
शत्रुर्मित्रायते सद्यो विरोधी किंकरायते॥ ७६

तथापि मैं संक्षेपसे कर्मजनित उत्तम सिद्धिकी महिमाका वर्णन करता हूँ। इससे शत्रुओं अथवा अनेक प्रकारकी व्याधियोंका शिकार होकर और मौतके मुँहमें पड़कर भी मनुष्य बिना किसी विघ्न-बाधाके मुक्त हो जाता है। अत्यन्त कृपण भी उदार और निर्धन भी कुबेरके समान हो जाता है। कुरूप भी कामदेवके समान सुन्दर और बूढ़ा भी जवान हो जाता है। शत्रु क्षणभरमें मित्र और विरोधी भी किंकर हो जाता है॥ ७४—७६॥

विषायते यदमृतं विषमप्यमृतायते।
स्थलायते समुद्रोऽपि स्थलमप्यर्णवायते॥ ७७

महीधरायते श्वभ्रं स च श्वभ्रायते गिरिः।
पद्माकरायते वह्निः सरो वैश्वानरायते॥ ७८

वनायते यदुद्यानं तदुद्यानायते वनम्।
सिंहायते मृगः क्षुद्रः सिंहः क्रीडामृगायते॥ ७९

अमृत विषके समान और विष भी अमृतके समान हो जाता है। समुद्र भी स्थल और स्थल भी समुद्रवत् हो जाता है। गड्ढा पहाड़-जैसा ऊँचा और पर्वत भी गड्ढेके समान हो जाता है। अग्नि सरोवरके समान शीतल और सरोवर भी अग्नि के समान दाहक बन जाता है। उद्यान जंगल और जंगल उद्यान हो जाता है। क्षुद्र मृग सिंहके समान शौर्यशाली और सिंह भी क्रीडामृगके समान आज्ञापालक हो जाता है॥ ७७—७९॥

स्त्रियोऽभिसारिकायन्ते लक्ष्मीः सुचरितायते।
स्वैरप्रेष्यायते वाणी कीर्तिस्तु गणिकायते॥ ८०

स्वैराचारायते मेधा वज्रसूचीयते मनः।
महावातायते शक्तिर्बलं मत्तगजायते॥ ८१

स्तम्भायते समुद्योगैः शत्रुपक्षे स्थिता क्रिया।
शत्रुपक्षायतेऽरीणां सर्व एव सुहृज्जनः॥ ८२

स्त्रियाँ अभिसारिका बन जाती हैं—अधिक प्रेम करने लगती हैं और लक्ष्मी सुस्थिर हो जाती है। वाणी इच्छानुसार दासी बन जाती है और कीर्ति गणिकाके समान सर्वत्रगामिनी हो जाती है। बुद्धि स्वेच्छानुसार विचरनेवाली और मन हीरेको छेदनेवाली सूईके समान सूक्ष्म हो जाता है। शक्ति आँधीके समान प्रबल हो जाती है और बल मत्त गजराजके समान पराक्रमशाली हो जाता है। शत्रु-पक्षके उद्योग और कार्य स्तब्ध हो जाते हैं तथा शत्रुओंके समस्त सुहृद्गण उनके लिये शत्रुपक्षके समान हो जाते हैं॥ ८०—८२॥

शत्रवः कुणपायन्ते जीवन्तोऽपि सबांधवाः।
आपन्नोऽपि गतारिष्टः स्वयं खल्वमृतायते॥ ८३

रसायनायते नित्यमपथ्यमपि सेवितम्।
अनिशं क्रियमाणापि रतिस्त्वभिनवायते॥ ८४

अनागतादिकं सर्वं करस्थामलकायते।
यादृच्छिकफलायन्ते सिद्धयोऽप्यणिमादयः॥ ८५

बहुनात्र किमुक्तेन सर्वकामार्थसिद्धिषु।
अस्मिन्कर्मणि निर्वृत्ते त्वनवाप्यं न विद्यते॥ ८६

शत्रु बन्धु-बान्धवोंसहित जीते-जी मुर्देके समान हो जाते हैं और सिद्धपुरुष स्वयं आपत्तिमें पड़कर भी अरिष्टरहित (संकटमुक्त) हो जाता है। अमरत्व-सा प्राप्त कर लेता है। उसका खाया हुआ अपथ्य भी उसके लिये सदा रसायनका काम देता है। निरन्तर रतिका सेवन करनेपर भी वह नया-सा ही बना रहता है। भविष्य आदिकी सारी बातें उसे हाथपर रखे हुए आँवलेके समान प्रत्यक्ष दिखायी देती हैं। अणिमा आदि सिद्धियाँ भी इच्छा करते ही फल देने लगती हैं। इस विषयमें बहुत कहनेसे क्या लाभ? इस कर्मका सम्पादन कर लेनेपर सम्पूर्ण अभिलषित सिद्धियोंमें कोई भी ऐसी सिद्धि नहीं रहती, जो अलभ्य हो॥ ८३—८६॥

इति श्रीशिवमहापुराणे सप्तम्यां वायवीयसंहितायामुत्तरखण्डे
ऐहिकसिद्धिकर्मवर्णनं नाम द्वात्रिंशोऽध्यायः॥ ३२॥

॥ इस प्रकार श्रीशिवमहापुराणके अन्तर्गत सातवीं वायवीयसंहिताके उत्तरखण्डमें ऐहिक सिद्धिकर्मवर्णन नामक बत्तीसवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ ३२॥

अथ त्रयस्त्रिंशोऽध्यायः

पारलौकिक फल देनेवाले कर्म—शिवलिंग-महाव्रतकी विधि और महिमाका वर्णन

उपमन्युरुवाच

अतः परं प्रवक्ष्यामि केवलामुष्मिकं विधिम्।
नैतेन सदृशं किञ्चित्कर्मास्ति भुवनत्रये॥ १

उपमन्यु कहते हैं—यदुनन्दन ! अब मैं केवल परलोकमें फल देनेवाले कर्मकी विधि बतलाऊँगा। तीनों लोकोंमें इसके समान दूसरा कोई कर्म नहीं है॥ १॥

पुण्यातिशयसंयुक्तः सर्वैर्देवैरनुष्ठितः।
ब्रह्मणा विष्णुना चैव रुद्रेण च विशेषतः॥ २
इन्द्रादिलोकपालैश्च सूर्याद्यैर्नवभिर्ग्रहैः।
विश्वामित्रवसिष्ठाद्यैर्ब्रह्मविद्भिर्महर्षिभिः॥ ३
श्वेतागस्त्यदधीचाद्यैरस्माभिश्च शिवाश्रितैः।
नंदीश्वरमहाकालभृङ्गीशाद्यैर्गणेश्वरैः॥ ४
पातालवासिभिर्दैत्यैः शेषाद्यैश्च महोरगैः।
सिद्धैर्यक्षैश्च गन्धर्वै रक्षोभूतपिशाचकैः॥ ५
स्वं स्वं पदमनुप्राप्तं सर्वैरयमनुष्ठितः।
अनेन विधिना सर्वे देवा देवत्वमागताः॥ ६

यह विधि अतिशय पुण्यसे युक्त है और सम्पूर्ण देवताओंने इसका अनुष्ठान किया है। ब्रह्मा, विष्णु, रुद्र, इन्द्रादि लोकपाल, सूर्यादि नवग्रह, विश्वामित्र और वसिष्ठ आदि ब्रह्मवेत्ता महर्षि, श्वेत, अगस्त्य, दधीचि तथा हम-सरीखे शिवभक्त, नन्दीश्वर, महाकाल और भृंगीश आदि गणेश्वर, पातालवासी दैत्य, शेष आदि महानाग, सिद्ध, यक्ष, गन्धर्व, राक्षस, भूत और पिशाच—इन सबने अपना-अपना पद प्राप्त करनेके लिये इस विधिका अनुष्ठान किया है। इस विधिसे ही सब देवता देवत्वको प्राप्त हुए हैं॥ २—६॥

ब्रह्मा ब्रह्मत्वमापन्नो विष्णुर्विष्णुत्वमागतः।
रुद्रो रुद्रत्वमापन्न इन्द्रश्चेन्द्रत्वमागतः॥ ७
गणेशश्च गणेशत्वमनेन विधिना गतः।
सितचंदनतोयेन लिङ्गं स्नाप्य शिवं शिवाम्।
श्वेतैर्विकसितैः पद्मैः सम्पूज्य प्रणिपत्य च॥ ८
तत्र पद्मासनं रम्यं कृत्वा लक्षणसंयुतम्।
विभवे सति हेमाद्यै रत्नाद्यैर्वा स्वशक्तितः॥ ९

इसी विधिसे ब्रह्माको ब्रह्मत्वकी, विष्णुको विष्णुत्वकी, रुद्रको रुद्रत्वकी, इन्द्रको इन्द्रत्वकी और गणेशको गणेशत्वकी प्राप्ति हुई है। श्वेतचन्दनयुक्त जलसे लिंगस्वरूप शिव और शिवाको स्नान कराकर प्रफुल्ल श्वेत कमलोंद्वारा उनका पूजन करे। फिर उनके चरणोंमें प्रणाम करके वहीं [लिपी-पुती भूमिपर] सुन्दर शुभलक्षण पद्मासन बनवाकर रखे। धन हो तो अपनी शक्तिके अनुसार सोने या रत्न आदिका पद्मासन बनवाना चाहिये॥ ७—९॥

मध्ये केसरजालस्य स्थाप्य लिङ्गं कनीयसम्।
अंगुष्ठप्रतिमं रम्यं सर्वगन्धमयं शुभम्॥ १०
दक्षिणे स्थापयित्वा तु बिल्वपत्रैः समर्चयेत्।
अगुरुं दक्षिणे पार्श्वे पश्चिमे तु मनःशिलाम्॥ ११
उत्तरे चंदनं दद्याद्धरितालं तु पूर्वतः।
सुगन्धैः कुसुमै रम्यैर्विचित्रैश्चापि पूजयेत्॥ १२

कमलके केसरोंके मध्यभागमें अंगुष्ठके बराबर छोटे-से सुन्दर शिवलिंगकी स्थापना करे। वह सर्वगन्धमय और सुन्दर होना चाहिये। उसे दक्षिणभागमें स्थापित करके बिल्वपत्रोंद्वारा उसकी पूजा करे। फिर उसके दक्षिणभागमें अगुरु, पश्चिम भागमें मैनसिल, उत्तरभागमें चन्दन और पूर्वभागमें हरिताल चढ़ाये। फिर सुन्दर सुगन्धित विचित्र पुष्पोंद्वारा पूजा करे॥ १०—१२॥

धूपं कृष्णागुरुं दद्यात्सर्वतश्च सगुग्गुलम्।
वासांसि चातिसूक्ष्माणि विकाशानि निवेदयेत्॥ १३
पायसं घृतसंमिश्रं घृतदीपांश्च दापयेत्।
सर्वं निवेद्य मन्त्रेण ततो गच्छेत्प्रदक्षिणाम्॥ १४

सब ओर काले अगुरु और गुग्गुलकी धूप दे। अत्यन्त महीन और निर्मल वस्त्र निवेदन करे। घृतमिश्रित खीरका भोग लगाये। घीके दीपक जलाकर रखे। मन्त्रोच्चारणपूर्वक सब कुछ चढ़ाकर परिक्रमा करे॥ १३-१४॥

प्रणम्य भक्त्या देवेशं स्तुत्वा चान्ते क्षमापयेत्।
सर्वोपहारसंमिश्रं ततो लिङ्गं निवेदयेत्॥ १५

शिवाय शिवमन्त्रेण दक्षिणामूर्तिमाश्रितः।
एवं योऽर्चयते नित्यं पञ्चगन्धमयं शुभम्॥ १६

सर्वपापविनिर्मुक्तः शिवलोके महीयते।
एतद् व्रतोत्तमं गुह्यं शिवलिङ्गमहाव्रतम्॥ १७

भक्तस्य ते समाख्यातं न देयं यस्य कस्यचित्।
देयं च शिवभक्तेभ्यः शिवेन कथितं पुरा॥ १८

भक्तिभावसे देवेश्वर शिवको प्रणाम करके उनकी स्तुति करे और अन्तमें त्रुटियोंके लिये क्षमा-प्रार्थना करे। तत्पश्चात् शिवपंचाक्षरमन्त्रसे सम्पूर्ण उपहारोंसहित वह शिवलिंग शिवको समर्पित करे और स्वयं दक्षिणामूर्तिका आश्रय ले। जो इस प्रकार पंच गन्धमय शुभ लिंगकी नित्य अर्चना करता है, वह सब पापोंसे मुक्त हो शिवलोकमें प्रतिष्ठित होता है। यह शिवलिंग-महाव्रत सब व्रतोंमें उत्तम और गोपनीय है। तुम भगवान् शंकरके भक्त हो; इसलिये तुमसे इसका वर्णन किया है। जिस किसीको इसका उपदेश नहीं करना चाहिये। केवल शिवभक्तोंको ही इसका उपदेश देना चाहिये। प्राचीनकालमें भगवान् शिवने ही इस व्रतका उपदेश दिया था॥ १५—१८॥

इति श्रीशिवमहापुराणे सप्तम्यां वायवीयसंहितायामुत्तरखण्डे आमुष्मिककर्मविधिवर्णनं नाम त्रयस्त्रिंशोऽध्यायः॥ ३३॥

॥ इस प्रकार श्रीशिवमहापुराणके अन्तर्गत सातवीं वायवीयसंहिताके उत्तरखण्डमें आमुष्मिक कर्मविधिवर्णन नामक तैंतीसवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ ३३॥

अथ चतुस्त्रिंशोऽध्यायः

मोहवश ब्रह्मा तथा विष्णुके द्वारा लिंगके आदि और अन्तको जाननेके लिये किये गये प्रयत्नका वर्णन

उपमन्युरुवाच

नित्यनैमित्तिकात्काम्याद्या सिद्धिरिह कीर्तिता।
सा सर्वा लभ्यते सद्यो लिङ्गबेरप्रतिष्ठया॥ १

सर्वो लिङ्गमयो लोकः सर्वं लिङ्गे प्रतिष्ठितम्।
तस्मात्प्रतिष्ठिते लिङ्गे भवेत्सर्वं प्रतिष्ठितम्॥ २

ब्रह्मणा विष्णुना वापि रुद्रेणान्येन केन वा।
लिङ्गप्रतिष्ठामुत्सृज्य क्रियते स्वपदस्थितिः॥ ३
किमन्यदिह वक्तव्यं प्रतिष्ठां प्रति कारणम्।
प्रतिष्ठितं शिवेनापि लिङ्गं वैश्वेश्वरं यतः॥ ४
तस्मात्सर्वप्रयत्नेन परत्रेह च शर्मणे।
स्थापयेत्परमेशस्य लिङ्गं बेरमथापि वा॥ ५

उपमन्यु बोले—[हे कृष्ण!] नित्य-नैमित्तिक तथा काम्यव्रतसे जो सिद्धि यहाँ कही गयी है, वह सब लिंग अथवा मूर्तिकी प्रतिष्ठासे शीघ्र ही प्राप्त हो जाती है। समग्र जगत् लिंगमय है और सब कुछ लिंगमें प्रतिष्ठित है, अतः लिंगकी प्रतिष्ठा कर लेनेपर सबकी प्रतिष्ठा हो जाती है॥ १-२॥

ब्रह्मा, विष्णु, रुद्र अथवा अन्य किसने लिंग-प्रतिष्ठाको छोड़कर अपना पद प्राप्त किया है अर्थात् किसीने भी नहीं। इस प्रतिष्ठाके सम्बन्धमें और अधिक क्या कहा भी जाय, क्योंकि [स्वयं] शिवने भी विश्वेश्वरलिंगकी प्रतिष्ठा की है। अतः इस लोक तथा परलोकमें कल्याणके लिये प्रयत्नपूर्वक परमेश्वरके लिंग अथवा मूर्तिकी स्थापना करनी चाहिये॥ ३—५॥

श्रीकृष्ण उवाच

किमिदं लिङ्गमाख्यातं कथं लिङ्गी महेश्वरः।
कथं च लिङ्गभावोऽस्य कस्मादस्मिञ्छिवोऽर्च्यते॥ ६

श्रीकृष्ण बोले—यह लिंग क्यों कहा गया, महेश्वर लिंगी कैसे हैं, वे महेश्वर लिंगस्वरूप कैसे हुए और इस [लिंग]-में शिव किस कारणसे पूजे जाते हैं?॥ ६॥

उपमन्युरुवाच

अव्यक्तं लिङ्गमाख्यातं त्रिगुणप्रभवाप्ययम्।
अनाद्यनन्तं विश्वस्य यदुपादानकारणम्॥ ७
तदेव मूलप्रकृतिर्माया च गगनात्मिका।
तत एव समुत्पन्नं जगदेतच्चराचरम्॥ ८
अशुद्धं चैव शुद्धं यच्छुद्धाशुद्धं च तत्त्रिधा।
ततः शिवो महेशश्च रुद्रो विष्णुः पितामहः॥ ९
भूतानि चेन्द्रियैर्जाता लीयन्तेऽत्र शिवाज्ञया।
अतएव शिवो लिङ्गो लिङ्गमाज्ञापयेद्यतः॥ १०
यतो न तदनाज्ञातं कार्याय प्रभवेत्स्वतः।
ततो जातस्य विश्वस्य तत्रैव विलयो यतः॥ ११
अनेन लिङ्गता तस्य भवेन्नान्येन केनचित्।

उपमन्यु बोले—यह लिंग अव्यक्त, तीनों गुणोंको उत्पन्न तथा विलीन करनेवाला, आदि-अन्तसे रहित और संसारके प्रादुर्भावका उपादान कारण है॥ ७॥

वह लिंग ही मूल प्रकृति तथा आकाशरूपा माया है, यह चराचर जगत् उसीसे उत्पन्न हुआ है। वह [लिंग] अशुद्ध, शुद्ध तथा शुद्धाशुद्ध—इन तीन भेदोंवाला है। उसीसे शिव, महेश, रुद्र, विष्णु, पितामह (ब्रह्मा) और इन्द्रियोंसहित [पंच] महाभूत—ये सब उत्पन्न होते हैं और शिवकी आज्ञासे इसीमें विलीन हो जाते हैं। भगवान् शिवको भलीभाँति शिवलिंग ज्ञापित करता है, अतः वे लिंगी हैं। उनकी आज्ञाके बिना कोई भी स्वयं कार्य नहीं कर सकता है और उनसे उत्पन्न हुए विश्वका विलय भी उन्हींमें हो जाता है। इसीसे उनकी लिंगात्मकता सिद्ध होती है, अन्य किसी [भी माध्यम]-से नहीं॥ ८—११½॥

लिङ्गं च शिवयोर्देहस्ताभ्यां यस्मादधिष्ठितम्॥ १२
अतस्तत्र शिवः साम्बो नित्यमेव समर्च्यते।
लिङ्गवेदी महादेवी लिङ्गं साक्षान्महेश्वरः॥ १३
तयोः सम्पूजनादेव स च सा च समर्चितौ।
न तयोर्लिंगदेहत्वं विद्यते परमार्थतः॥ १४
यतस्त्वेतौ विशुद्धौ तौ देहस्तदुपचारतः।

शिव तथा शिवाका [नित्य] अधिष्ठान होनेके कारण यह लिंग उनका [स्थूल] विग्रह कहा जाता है। अतः उसीमें नित्य अम्बासहित शिवकी पूजा की जाती है। लिंगकी आधारवेदिका साक्षात् महादेवी पार्वती हैं और उसपर अधिष्ठित लिंग स्वयं महेश्वर हैं। उन दोनोंके पूजनसे ही वे [शिव] तथा वे [पार्वती] पूजित हो जाते हैं। पारमार्थिक रूपसे तो उन [शिव और शिवाके उपाधिविनिर्मुक्त] विशुद्धरूप होनेसे देहभाव है ही नहीं, अतः उनके लिंगात्मक देहकी कल्पना वस्तुतः औपचारिक है॥ १२—१४॥

तदेव परमा शक्तिः शिवस्य परमात्मनः॥ १५
शक्तिराज्ञां यदादत्ते प्रसूते तच्चराचरम्।
न तस्य महिमा शक्यो वक्तुं वर्षशतैरपि॥ १६
येनादौ मोहितौ स्यातां ब्रह्मनारायणावपि।

वही परमात्मा शिवकी परमा शक्ति है। वह शक्ति परमात्माकी आज्ञाको प्राप्त करके चराचर जगत्की सृष्टि करती है। सैकड़ों वर्षोंमें भी उसकी महिमाका वर्णन नहीं किया जा सकता है, जिसने पूर्वकालमें ब्रह्मा तथा विष्णुको भी मोहित कर दिया था॥ १५—१६½॥

पुरा त्रिभुवनस्यास्य प्रलये समुपस्थिते॥ १७
वारिशय्यागतो विष्णुः सुष्वापानाकुलः सुखम्।
यदृच्छया गतस्तत्र ब्रह्मा लोकपितामहः॥ १८
ददर्श पुण्डरीकाक्षं स्वपन्तं तमनाकुलम्।
मायया मोहितः शम्भोर्विष्णुमाह पितामहः॥ १९
कस्त्वं वदेत्यमर्षेण प्रहृत्योत्थाप्य माधवम्।

पूर्वकालमें इस त्रिलोकीका प्रलय हो जानेपर जब [भगवान्] विष्णु जलशय्यापर विराजमान होकर निश्चिन्त हो सुखपूर्वक शयन कर रहे थे, तब लोकपितामह ब्रह्मा अपनी इच्छासे वहाँ जा पहुँचे। उन पितामहने सुखपूर्वक सोते हुए विष्णुको देखा और शम्भुकी मायासे मोहित होकर उन लक्ष्मीपति विष्णुको क्रोधपूर्वक मारकर उन्हें उठाया और कहा—तुम कौन हो, बताओ॥ १७—१९½॥

स तु हस्तप्रहारेण तीव्रेणाभिहतः क्षणात्॥ २०
प्रबुद्धोत्थाय शयनाद्ददर्श परमेष्ठिनम्।
तमाह चान्तः संक्रुद्धः स्वयमक्रुद्धवद्धरिः॥ २१
कुतस्त्वमागतो वत्स कस्मात्त्वं व्याकुलो वद।
इति विष्णुवचः श्रुत्वा प्रभुत्वगुणसूचकम्॥ २२
रजसा बद्धवैरस्तं ब्रह्मा पुनरभाषत।
वत्सेति मां कुतो ब्रूषे गुरुः शिष्यमिवात्मनः॥ २३
मां न जानासि किं नाथं प्रपञ्चो यस्य मे कृतिः।
त्रिधात्मानं विभज्येदं सृष्ट्वाथ परिपाल्यते॥ २४
संहरामि न मे कश्चित् स्त्रष्टा जगति विद्यते।

हाथके तीव्र प्रहारसे आहत हुए वे विष्णु क्षणभरमें जग गये तथा उन्होंने शयनसे उठकर ब्रह्माजीको देखा और मनमें क्रुद्ध होकर भी स्वयं क्रोधरहितकी भाँति उनसे कहा—हे वत्स! तुम कहाँसे आये हो और [इतना] व्याकुल किसलिये हो, इसे बताओ॥ २०-२११/२॥

विष्णुका यह प्रभुत्वगुणसूचक वचन सुनकर रजोगुणसे [चित्तके आक्रान्त होनेके कारण विष्णुके प्रति] शत्रुताकी भावनावाले ब्रह्माने पुनः उनसे कहा—जैसे गुरु अपने शिष्यसे कहता है, वैसे ही तुम मुझे 'वत्स'—ऐसा क्यों कह रहे हो? क्या तुम मुझ स्वामीको नहीं जानते हो, यह सम्पूर्ण जगत्-प्रपंच जिसकी अपनी रचना है? अपनेको तीन रूपोंमें विभक्त करके मैं इस जगत्का सृजन करके पुनः इसका पालन करता हूँ और [अन्तमें] संहार भी कर देता हूँ, संसारमें मेरी सृष्टि करनेवाला कोई नहीं है॥ २२—२४१/२॥

इत्युक्ते सति सोऽप्याह ब्रह्माणं विष्णुरव्ययः॥ २५
अहमेवादिकर्तास्य हर्ता च परिपालकः।
भवानपि ममैवाङ्गादवतीर्णः पुराव्ययात्॥ २६
मन्नियोगात्त्वमात्मानं त्रिधा कृत्वा जगत्त्रयम्।
सृजस्यवसि चान्ते तत्पुनः प्रतिसृजस्यपि॥ २७

उनके ऐसा कहनेपर उन अविनाशी विष्णुने भी ब्रह्मासे कहा—मैं ही इस जगत्का आदिकर्ता, परिपालक तथा संहारक हूँ। आप भी पूर्वकालमें मेरे ही अव्ययस्वरूपसे अवतीर्ण हुए थे। मेरी ही आज्ञासे तुम अपनेको तीन रूपोंमें विभक्त करके तीनों लोकोंका सृजन करते हो, पालन करते हो और फिर अन्तमें संहार भी करते हो॥ २५—२७॥

विस्मृतोऽसि जगन्नाथं नारायणमनामयम्।
तवापि जनकं साक्षान्मामेवमवमन्यसे॥ २८
तवापराधो नास्त्यत्र भ्रान्तोऽसि मम मायया।
मत्प्रसादादियं भ्रांतिरपैष्यति तवाचिरात्॥ २९

क्या तुम मुझ जगत्पति, निर्विकार नारायणको भूल गये हो और अपने ही पिताका ऐसा अपमान कर रहे हो, इसमें तुम्हारा अपराध नहीं है, तुम मेरी मायाके कारण भ्रमित हो गये हो, तुम्हारी यह भ्रान्ति मेरी कृपासे शीघ्र ही दूर हो जायगी॥ २८-२९॥

शृणु सत्यं चतुर्वक्त्र सर्वदेवेश्वरो ह्यहम्।
कर्ता भर्ता च हर्ता च न मयास्ति समो विभुः॥ ३०

हे चतुर्मुख! सत्य बात सुनो, मैं निश्चय ही सभी देवताओंका स्वामी हूँ और [जगत्का] सृजन करनेवाला, पालन करनेवाला तथा संहार करनेवाला हूँ, मेरे समान ऐश्वर्यशाली कोई नहीं है॥ ३०॥

एवमेव विवादोऽभूद् ब्रह्मविष्ण्वोः परस्परम्।
अभवच्च महायुद्धं भैरवं रोमहर्षणम्॥ ३१
मुष्टिभिर्निघ्नतोस्तीव्रं रजसा बद्धवैरयोः।

ब्रह्मा तथा विष्णुका आपसमें इस प्रकारका विवाद हुआ और रजोगुणके कारण बद्धवैरवाले उन दोनोंके बीच घूँसोंसे एक-दूसरेपर तीव्र प्रहार करते हुए भयानक तथा रोमांचकारी युद्ध होने लगा। तब

तयोर्दर्पापहाराय प्रबोधाय च देवयोः॥ ३२
मध्ये समाविरभवल्लिंगमैश्वरमद्भुतम्।
ज्वालामालासहस्राढ्यमप्रमेयमनौपमम् ॥ ३३
क्षयवृद्धिविनिर्मुक्तमादिमध्यान्तवर्जितम् ।
तस्य ज्वालासहस्रेण ब्रह्मविष्णू विमोहितौ॥ ३४
विसृज्य युद्धं किं त्वेतदित्यचिन्तयतां तदा।
न तयोस्तस्य याथात्म्यं प्रबुद्धमभवद्यदा॥ ३५
तदा समुद्यतौ स्यातां तस्याद्यन्तं परीक्षितुम्॥ ३६

तत्र हंसाकृतिर्ब्रह्मा विश्वतः पक्षसंयुतः।
मनोऽनिलजवो भूत्वा गतस्तूर्ध्वं प्रयत्नतः॥ ३७
नारायणोऽपि विश्वात्मा नीलाञ्जनचयोपमम्।
वाराहममितं रूपमास्थाय गतवानधः॥ ३८
एवं वर्षसहस्रं तु त्वरन् विष्णुरधोगतः।
नापश्यदल्पमप्यस्य मूलं लिङ्गस्य सूकरः॥ ३९

तावत्कालं गतश्चोर्ध्वं तस्यान्तं ज्ञातुमिच्छया।
श्रान्तोऽत्यन्तमदृष्ट्वान्तं पपाताधः पितामहः॥ ४०

तथैव भगवान् विष्णुः श्रान्तः संविग्नलोचनः।
क्लेशेन महता तूर्णमधस्तादुत्थितोऽभवत्॥ ४१

समागतावथान्योन्यं विस्मयस्मेरवीक्षणौ।
मायया मोहितौ शम्भोः कृत्याकृत्यं न जगमतुः॥ ४२

पृष्ठतः पार्श्वतस्तस्य चाग्रतश्च स्थितावुभौ।
प्रणिपत्य किमात्मेदमित्यचिन्तयतां तदा॥ ४३

उन दोनों देवताओंके अभिमानको नष्ट करनेके लिये तथा उनके प्रबोधनके लिये उनके बीच अद्भुत शिवलिंग प्रकट हुआ, जो हजारों ज्वालासमूहोंसे युक्त, असीम, अनुपम, क्षय-वृद्धिसे रहित और आदि-मध्य तथा अन्तसे रहित था॥ ३१—३३½॥

तब उसके हजारों ज्वालासमूहोंसे ब्रह्मा तथा विष्णु मोहित हो गये और युद्ध छोड़कर 'यह क्या है'—ऐसा सोचने लगे। जब उन दोनोंको उसकी यथार्थता समझमें नहीं आयी, तब वे उसके आरम्भ तथा अन्तकी परीक्षा करनेके लिये उद्यत हुए॥ ३४—३६॥

उस समय ब्रह्माजी पंख धारण किये हुए हंसरूप होकर सभी ओर मन तथा वायुके सदृश वेगवान् होकर प्रयत्नपूर्वक ऊपरकी ओर गये और विश्वात्मा विष्णु भी नील अंजनपर्वतके समान वाराहका रूप धारणकर नीचेकी ओर गये॥ ३७-३८॥

इस प्रकार वराहरूपधारी विष्णुजी शीघ्रता करते हुए एक हजार वर्षोंतक नीचे जाते रहे, किंतु वे इस लिंगके मूलदेशको अल्पमात्र भी देख पानेमें समर्थ नहीं हो सके। उसका अन्त जाननेकी इच्छासे उतने ही समयतक ऊपरकी ओर गये हुए ब्रह्मा भी अत्यधिक थक गये और उसका अन्त न देखकर नीचे गिर पड़े॥ ३९-४०॥

उसी प्रकार आकुल नेत्रोंवाले भगवान् विष्णु भी थककर बड़े कष्टसे शीघ्रतापूर्वक नीचेसे ऊपर आ गये॥ ४१॥

वे दोनों आकर आश्चर्य तथा मुसकानसे युक्त होकर एक-दूसरेको देखने लगे और शिवकी मायासे मोहित होकर अपने कृत्य तथा अकृत्यको नहीं जान सके। उस समय वे दोनों उस [लिंग]-के पीछे, बगलमें तथा आगे खड़े होकर उसे प्रणाम करके 'यह क्या है'—ऐसा सोचने लगे॥ ४२-४३॥

इति श्रीशिवमहापुराणे सप्तम्यां वायवीयसंहितायामुत्तरखण्डे हरिविधिमोहवर्णनं नाम चतुस्त्रिंशोऽध्यायः॥ ३४॥

॥ इस प्रकार श्रीशिवमहापुराणके अन्तर्गत सातवीं वायवीयसंहिताके उत्तरखण्डमें हरिविधिमोहवर्णन नामक चौंतीसवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ ३४॥

अथ पञ्चत्रिंशोऽध्यायः

लिंगमें शिवका प्राकट्य तथा उनके द्वारा ब्रह्मा-विष्णुको दिये गये ज्ञानोपदेशका वर्णन

उपमन्युरुवाच

अथाविरभवत्तत्र सनादं शब्दलक्षणम्।
ओमित्येकाक्षरं ब्रह्म ब्रह्मणः प्रतिपादकम्॥ १

तदप्यविदितं तावद् ब्रह्मणा विष्णुना तथा।
रजसा तमसा चित्तं तयोर्यस्मात्तिरस्कृतम्॥ २

तदा विभक्तमभवच्चतुर्द्धैकं तदक्षरम्।
अ उ मेति त्रिमात्राभिः परस्ताच्चार्द्धमात्रया॥ ३

तत्राकारः श्रितो भागे ज्वलल्लिङ्गस्य दक्षिणे।
उकारश्चोत्तरे तद्वन्मकारस्तस्य मध्यतः॥ ४

अर्द्धमात्रात्मको नादः श्रूयते लिङ्गमूर्द्धनि।

विभक्तेऽपि तदा तस्मिन् प्रणवे परमाक्षरे॥ ५
विभागार्थं च तौ देवौ न किञ्चिदवजग्मतुः।
वेदात्मना तदाव्यक्तः प्रणवो विकृतिं गतः॥ ६
तत्राकारो ऋगभवदुकारो यजुरव्ययः।
मकारः साम सञ्जातो नादस्त्वाथर्वणी श्रुतिः॥ ७

ऋगयं स्थापयामास समासात्त्वर्थमात्मनः।
रजोगुणेषु ब्रह्माणं मूर्तिष्वाद्यं क्रियास्वपि॥ ८

सृष्टिं लोकेषु पृथिवीं तत्त्वेष्वात्मानमव्ययम्।
कलाध्वनि निवृत्तिं च सद्यं ब्रह्मसु पञ्चसु॥ ९

लिङ्गभागेष्वधोभागं बीजाख्यं कारणत्रये।
चतुःषष्टिगुणैश्वर्यं बौद्धं यदणिमादिषु॥ १०

तदित्थमर्थैर्दशभिर्व्याप्तं विश्वमृचा जगत्।

अथोपस्थापयामास स्वार्थं दशविधं यजुः॥ ११

सत्त्वं गुणेषु विष्णुं च मूर्तिष्वाद्यं क्रियास्वपि।
स्थितिं लोकेष्वन्तरिक्षं विद्यां तत्त्वेषु च त्रिषु॥ १२

कलाध्वसु प्रतिष्ठां च वामं ब्रह्मसु पञ्चसु।
मध्यं तु लिङ्गभागेषु योनिं च त्रिषु हेतुषु॥ १३

प्राकृतं च तथैश्वर्यं तस्माद्विश्वं यजुर्मयम्।

उपमन्यु बोले—[हे कृष्ण!] तदुपरान्त वहाँपर ब्रह्मतत्त्वका प्रतिपादक, नादमय, एकाक्षरात्मक शब्द-ब्रह्म ओंकार प्रकट हुआ॥ १॥

उस समय ब्रह्मा तथा विष्णु उसे भी नहीं जान सके; क्योंकि उन दोनोंका चित्त रजोगुण तथा तमोगुणसे आच्छन्न था॥ २॥

तब वह एक अक्षर [ओम्] अ, उ, म्—इन तीन मात्राओं तथा आगे आधी मात्राके द्वारा चार भागोंमें विभक्त हो गया॥ ३॥

उस जाज्वल्यमान लिंगके दक्षिण भागमें अकार, उत्तरमें उकार और उसी तरह मध्यमें मकार सुना गया। लिंगके शीर्षभागमें अर्धमात्रात्मक नाद सुना गया॥ ४½॥

तब उस परम अक्षर प्रणव (ओम्)-के विभक्त होनेपर भी वे दोनों देवता उस विभाजनके अर्थको कुछ भी नहीं समझ सके। इसके वह बाद अव्यक्त प्रणव वेदोंके रूपमें परिणमित हो गया। उसका अकार ऋग्वेद, उकार यजुर्वेद, मकार सामवेद और [अर्धमात्रात्मक] नाद अथर्ववेद हुआ॥ ५—७॥

[सर्वप्रथम] उस ऋग्वेदने संक्षेपमें अपने [दशविध] तात्पर्यको प्रस्तुत किया—गुणोंमें रजोगुण, मूर्तियोंमें आदिमूर्ति ब्रह्मा, क्रियाओंमें सृष्टि-क्रिया, लोकोंमें भूलोक, तत्त्वोंमें अविनाशी आत्मतत्त्व, कलाध्वोंमें निवृत्तिकला, पंचब्रह्मोंमें सद्योजात, लिंगके विभागोंमें अधोदेश, तीनों कारणोंमें बीज नामक कारण तथा अणिमादि सिद्धियोंमें स्थित चतुष्षष्टिगुणात्मक ऐश्वर्योंमें बौद्ध ऐश्वर्य—इस प्रकार दस अर्थोंसे समन्वित ऋग्वेदके द्वारा समस्त विश्व व्याप्त है॥ ८—१०½॥

तदुपरान्त यजुर्वेदने अपने दशविध तात्पर्योंको प्रतिपादित किया—गुणोंमें सत्त्वगुण, मूर्तियोंमें आदिमूर्ति विष्णु, क्रियाओंमें स्थिति नामक क्रिया, लोकोंमें अन्तरिक्ष, तत्त्वोंमें विद्यातत्त्व, कलाध्वोंमें प्रतिष्ठा नामक कला, पंचब्रह्मोंमें वामदेव, लिंगविभागोंमें मध्यभाग, तीनों कारणोंमें योनि नामक कारण तथा ऐश्वर्योंमें प्राकृत ऐश्वर्य—इस प्रकार यह विश्व यजुर्वेदमय है॥ ११—१३½॥

ततोपस्थापयामास सामार्थं दशधात्मनः॥ १४

तमोगुणेष्वथो रुद्रं मूर्तिष्वाद्यं क्रियासु च।
संहृतिं त्रिषु लोकेषु तत्त्वेषु शिवमुत्तमम्॥ १५

विद्याकलास्वघोरं च तथा ब्रह्मसु पञ्चसु।
लिङ्गभागेषु पीठोद्‍र्ध्वं बीजिनं कारणत्रये॥ १६

पौरुषं च तथैश्वर्यमित्थं साम्ना ततं जगत्।

अथाथर्वाह नैर्गुण्यमर्थं प्रथममात्मनः॥ १७

ततो महेश्वरं साक्षात् मूर्तिष्वपि सदाशिवम्।
क्रियासु निष्क्रियस्यापि शिवस्य परमात्मनः॥ १८

भूतानुग्रहणं चैव मुच्यन्ते येन जन्तवः।
लोकेष्वपि यतो वाचो निवृत्ता मनसा सह॥ १९

तदूर्ध्वमुन्मनालोकात् सोमलोकमलौकिकम्।
सोमः सहोमया यत्र नित्यं निवसतीश्वरः॥ २०

तदूर्ध्वमुन्मनालोकाद्यं प्राप्तो न निवर्तते।

शान्तिं च शान्त्यतीतां च व्यापिकां वै कलास्वपि॥ २१

तत्पूरुषं तथेशानं ब्रह्म ब्रह्मसु पञ्चसु।
मूर्द्धानमपि लिङ्गस्य नादभागेष्वनुत्तमम्॥ २२

यत्रावाह्य समाराध्यः केवलो निष्कलः शिवः।
तत्त्वेष्वपि तदा बिन्दोर्नादात् शक्तेस्ततः परात्॥ २३

तत्त्वादपि परं तत्त्वमतत्त्वं परमार्थतः।
कारणेषु त्रयातीतान् मायाविक्षोभकारणात्॥ २४

अनन्तात् शुद्धविद्यायाः परस्ताच्च महेश्वरात्।
सर्वविद्येश्वराधीशात्र पराच्च सदाशिवात्॥ २५

इसके पश्चात् सामवेदने अपने दशविध अर्थका प्रतिपादन किया—गुणोंमें तमोगुण, मूर्तियोंमें आदिमूर्ति रुद्र, क्रियाओंमें संहार क्रिया, तीनों लोकोंमें [स्वर्ग] लोक, तत्त्वोंमें उत्तम शिवतत्त्व, कलाध्वोंमें विद्याकला, पंचब्रह्मोंमें अघोर ब्रह्म, लिंगविभागोंमें पीठोर्ध्वभाग, तीनों कारणोंमें बीजी नामक कारण तथा ऐश्वर्योंमें पौरुष ऐश्वर्य—इस प्रकार यह विश्व सामवेदसे अभिव्याप्त है॥ १४—१६½॥

इसके उपरान्त अथर्ववेदने अपने निर्गुणात्मक उत्कृष्ट तात्पर्यका प्रतिपादन किया—मूर्तियोंमें सदाशिवकी महेश्वर नामवाली मूर्ति, क्रियारहित परमात्मा शिवकी [उपचारतः] होनेवाली क्रियाओंमें प्राणिमात्रके प्रति अनुग्रहरूपा क्रिया, जिसके कारण ही प्राणियोंको मोक्षलाभ होता है; लोकोंमें वह अलौकिक सोमलोक, जिसे अधिगत करनेमें वागादि इन्द्रियोंसहित मन भी असमर्थ हो लौट आता है, वह अलौकिक सोमलोक तो उन्मनालोकसे भी ऊपर है, जहाँ उमाके साथ साम्बसदाशिव भगवान् ईशान नित्य विराजते हैं। उन्मनालोकके ऊपर विद्यमान उस लोकको प्राप्त हुआ जीव पुनः जन्म नहीं लेता॥ १७—२०½॥

कलाओंमें शान्तिकला तथा सभी कलाओंमें अभिव्याप्त शान्त्यतीता कला, पंचब्रह्मोंमें तत्पुरुष तथा ईशानसंज्ञक ब्रह्म, लिंगके विभागोंमें मूर्धा नामक विभाग, [प्रणवके कल्पित] अवयवोंमें नाद नामक वह अवयव, जिसमें आवाहनपूर्वक एकमात्र निष्कल शिवकी ही आराधना की जाती है। तत्त्वोंमें वह तत्त्व, जो बिन्दुसे लेकर नाद तथा शक्तिसे भी परे है। उस तत्त्वसे भी परे जो परमार्थतः परतत्त्व है और जो अतत्त्व भी कहा जाता है। मायाके विक्षोभसे जो कार्यके जनक होते हैं, उन तीनों कारणोंसे भी वह अतीत है॥ २१—२४॥

शुद्धविद्यासे परे जो महान् ऐश्वर्यवाला अनन्ततत्त्व है, उससे भी परे जो सर्वविद्येश्वरेश्वर तत्त्व है, उससे भी परे वह तत्त्व है, किंतु वह सदाशिवसे परे नहीं है॥ २५॥

सर्वमन्त्रतनोर्देवात् शक्तित्रयसमन्वितात्।
पञ्चवक्त्राद्दशभुजात् साक्षात् सकलनिष्कलात्॥ २६

तस्मादपि परादृबिन्दोरर्द्धेन्दोश्च ततः परात्।
ततः परान्निशाधीशान्नादाख्याच्च ततः परात्॥ २७

ततः परात् सुषुम्णेशाद् ब्रह्मरन्ध्रेश्वरादपि।
ततः परस्मात् शक्तेश्च परस्तात् शिवतत्त्वतः॥ २८

सकलमन्त्रमय देहवाले, तीनों शक्तियोंसे समन्वित पंचमुख, दशभुज, सकल एवं निष्कल स्वरूपवाले साक्षात् परमदेवसे भी परे है। उनसे भी परे जो बिन्दु तथा अर्धेन्दुतत्त्व हैं और उनसे भी परे नाद नामक निशाधीश (सोम) तत्त्व है। नादसे परे सुषुम्णेश तथा उनसे परे ब्रह्मरन्ध्रेश तत्त्व है, ब्रह्मरन्ध्रेश्वरसे परे शक्तितत्त्व (कुण्डलिनी) तथा शक्तिसे परे स्थित जो शिवतत्त्व है, वह उससे भी परे है॥ २६—२८॥

परमं कारणं साक्षात्स्वयं निष्कारणं शिवम्।
कारणानां च धातारं ध्यातारं ध्येयमव्ययम्॥ २९

परमाकाशमध्यस्थं परमात्मोपरि स्थितम्।
सर्वैश्वर्येण सम्पन्नं सर्वेश्वरमनीश्वरम्॥ ३०

ऐश्वर्याच्चापि मायेयादशुद्धान् मानुषादिकात्।
अपराच्च परात्त्याज्यादविशुद्धाध्वगोचरात्॥ ३१

तत्परात् शुद्धविद्याद्यादुन्मनान्तात्परात्परात्।
परमं परमैश्वर्यमुन्मनाद्यमनादि च॥ ३२

अपारमपराधीनं निरस्तातिशयं स्थिरम्।

[वे सर्वतत्त्वातीत परमतत्त्व] भगवान् शिव जगत्के साक्षात् कारण न होते हुए भी वस्तुतः परमकारण हैं। उन्हींको कारणोंका आश्रय, ध्याता, ध्येय, अविनाशी, परमव्योमके मध्यमें अवस्थित, परमात्मतत्त्वसे भी ऊपर स्थित, सर्वैश्वर्यसम्पन्न, सर्वेश्वर, एकमात्र स्वयं ईश्वररूप [माना गया है।] मायासे जायमान अशुद्ध मानुषादि ऐश्वर्यसे परे, अपरसे भी परे जो षडध्वगोचर तत्त्व है, उससे भी परे, जो शुद्ध विद्यासे लेकर उन्मनापर्यन्त व्यापक परात्पर तत्त्व है, जो परमोत्कृष्ट है, परमैश्वर्यमय है, उन्मनाका भी आदि कारण तथा अनादि है। जो अनुल्लंघ्य, नित्य स्वतन्त्र, समस्त विशेषोंसे विशिष्ट है तथा स्थिर है—वही परमशिव है॥ २९—३२½॥

इत्थमर्थैर्दशविधैरियमाथर्वणी श्रुतिः॥ ३३
यस्माद् गरीयसी तस्माद्विश्वं व्याप्तमथर्वणा।

इस प्रकार इन दशविध अर्थोंसे समन्वित यह अथर्ववेद अत्यन्त महनीय है तथा यह समस्त विश्व अथर्ववेदके द्वारा व्याप्त है॥ ३३½॥

ऋग्वेदः पुनराहेदं जाग्रद्रूपं मयोच्यते॥ ३४

येनाहमात्मतत्त्वस्य नित्यमस्म्यभिधायकः।
यजुर्वेदोऽवदत्तद्वत्स्वप्नावस्था मयोच्यते॥ ३५

भोग्यात्मना परिणता विद्या वेद्या यतो मयि।
साम चाह सुषुप्त्याख्यमेवं सर्वं मयोच्यते॥ ३६

ममार्थेन शिवेनेदं तामसेनाभिधीयते।

ऋग्वेदने पुनः यह कहा कि [जीवात्मा या जगत्की] जाग्रदवस्थाका निरूपण मेरे द्वारा किया जाता है; क्योंकि मैं ही आत्मतत्त्वका सतत प्रतिपादन करनेवाला हूँ। उसी प्रकार यजुर्वेदने कहा कि [जीवात्मा या जगत्की] स्वप्नदशाका प्रतिपादन मेरे द्वारा किया जाता है; क्योंकि मुझमें या कि मुझसे ही भोग्यरूपमें परिणत हुई विद्याका अधिगम होता है। तदुपरान्त सामवेदने कहा कि सुषुप्ति नामक अवस्थाका समग्रतया प्रतिपादन मेरे द्वारा होता है तथा तमोगुणाश्रयी रुद्रके द्वारा प्रतिपादित समस्त अर्थ मेरा ही कथन है॥ ३४—३६½॥

अथर्वाह तुरीयाख्यं तुरीयातीतमेव च॥ ३७

मयाभिधीयते तस्मादध्वातीतपदोऽस्म्यहम्।
अध्वात्मकं तु त्रितयं शिवविद्यात्मसंज्ञितम्॥ ३८

तत्त्रैगुण्यं त्रयीसाध्यं संशोध्यं च पदैषिणा।
अध्वातीतं तुरीयाख्यं निर्वाणं परमं पदम्॥ ३९

तदतीतं च नैर्गुण्यादध्वनोऽस्य विशोधकम्।
द्वयोः प्रमापको नादो नादान्तश्च मदात्मकः॥ ४०

तस्मात् ममार्थस्वातन्त्र्यात् प्रधानः परमेश्वरः।

यदस्ति वस्तु तत्सर्वं गुणप्राधान्ययोगतः॥ ४१

समस्तं व्यस्तमपि च प्रणवार्थं प्रचक्षते।
सर्वार्थवाचकं तस्मादेकं ब्रह्मैतदक्षरम्॥ ४२

तेनोमिति जगत्कृत्स्नं कुरुते प्रथमं शिवः।
शिवो हि प्रणवो ह्येष प्रणवो हि शिवः स्मृतः॥ ४३

वाच्यवाचकयोर्भेदो नात्यन्तं विद्यते यतः।

चिन्तया रहितो रुद्रो वाचो यन्मनसा सह॥ ४४

अप्राप्य तन्निवर्तन्ते वाच्यस्त्वेकाक्षरेण सः।
एकाक्षरादकाराख्यादात्मा ब्रह्माभिधीयते॥ ४५

एकाक्षरादुकाराख्याद् विद्या विष्णुरुदीर्यते।
एकाक्षरान्मकाराख्यात् शिवो रुद्र उदाहृतः॥ ४६

तत्पश्चात् अथर्ववेदने कहा कि 'तुरीय' नामक तत्त्व तथा तुरीयातीत तत्त्व भी मेरे द्वारा ही निरूपित होता है, इसलिये मुझे अध्वातीतपद अर्थात् अध्वातीत तत्त्वका प्रतिपादक भी कहा जाता है। अध्वात्मक तत्त्व तीन हैं—शिवतत्त्व, विद्यातत्त्व तथा आत्मतत्त्व। ये तीनों ही त्रिगुणात्मक तथा वेदोंके द्वारा ज्ञात होनेयोग्य हैं। परमपदकी अभिलाषावाले साधकको अध्वातीत तुरीयनामक तत्त्वका अनुसन्धान करना चाहिये। यह तुरीयतत्त्व [निर्विशेष ब्रह्म] ही निर्वाण तथा परमपद कहा जाता है। गुणरहित होनेके कारण यह तुरीयतत्त्व अध्वातीत भी कहा गया है तथा अध्वात्मक शिवादि तत्त्वोंका यह विशोधक भी है। तुरीय तथा अध्वत्रितय शिवादि—इन दोनोंके आविर्भावका हेतु नाद है तथा नादतत्त्वकी चरम अवस्था ही मेरा स्वरूप है। इसलिये मेरे अनुसार [सर्वतोभावेन] स्वतन्त्र होनेसे परमेश्वर शिव ही प्रधान तत्त्व हैं॥ ३७—४०१/२॥

[इस जगत्में] जो कोई भी वस्तु है, वह सब गुणोंकी प्रधानताके योगसे समष्टि अथवा व्यष्टिरूपमें प्रणवार्थ कही जाती है। इसीलिये यह ब्रह्मरूप, एकाक्षरात्मक प्रणव [व्यष्टि अथवा समष्टिरूप] प्रत्येक वस्तुका अभिधायक कहा गया है। यही कारण है कि इस समग्र विश्वकी रचना ओंकारके द्वारा सर्वप्रथम भगवान् शिव करते हैं। शिवजी प्रणवसे अभिन्न हैं तथा यह प्रणव भी साक्षात् शिव ही है। [प्रणव वाचक है तथा शिव वाच्य है;] क्योंकि वाच्य और वाचकमें परमार्थतः भेद नहीं होता॥ ४१—४३१/२॥

भगवान् रुद्र [सर्वथा] अचिन्त्य हैं, क्योंकि वागादि इन्द्रियाँ भी मनके साथ उनका अनुसन्धान करनेमें असमर्थ होकर लौट आती हैं। वे [रुद्रदेव तो केवल] एकाक्षरात्मक प्रणवके द्वारा ही प्रतिपादित किये जा सकते हैं। [प्रणवके अन्तर्वर्ती] अकार नामक एकाक्षरसे आत्मस्वरूप ब्रह्माका निरूपण किया जाता है, उकार नामक एकाक्षरसे विद्यास्वरूप विष्णुका निरूपण किया जाता है तथा मकार नामक एकाक्षरसे शिवस्वरूप रुद्रका प्रतिपादन किया जाता है॥ ४४—४६॥

दक्षिणाङ्गान् महेशस्य जातो ब्रह्मात्मसंज्ञकः।
वामाङ्गादभवद्विष्णुस्ततो विद्येति संज्ञितः॥ ४७
हृदयान्नीलरुद्रोऽभूच्छिवस्य शिवसंज्ञकः।
सृष्टेः प्रवर्तको ब्रह्मा स्थितेर्विष्णुर्विमोहकः॥ ४८
संहारस्य तथा रुद्रस्तयोर्नित्यं नियामकः॥ ४९

महेश्वरके दक्षिणांगसे आत्मसंज्ञक ब्रह्माका प्रादुर्भाव हुआ तथा उनके वामांगसे विद्यासंज्ञक विष्णु प्रकट हुए। उन सदाशिवके हृदयदेशसे शिवसंज्ञक नीलरुद्रका प्राकट्य हुआ। ब्रह्माके द्वारा सृष्टिका प्रवर्तन हुआ और विमोहक विष्णुके द्वारा स्थितिकार्य सम्पन्न किया गया। रुद्रदेवने सृष्टिका संहार तथा ब्रह्मा और विष्णुका नियमन कार्य किया॥ ४७—४९॥

तस्मात्त्रयस्ते कथ्यन्ते जगतः कारणानि च।
कारणत्रयहेतुश्च शिवः परमकारणम्॥ ५०
अर्थमेतमविज्ञाय रजसा बद्धवैरयोः।
युवयोः प्रतिबोधाय मध्ये लिङ्गमुपस्थितम्॥ ५१

यही कारण है कि ये तीनों देवता जगत‍्के कारण कहे गये हैं और इन तीनों कारणोंके भी कारण शिव परमकारण कहे गये हैं। इस बातको बिना भलीभाँति समझे रजोगुणसे प्रेरित होकर तुम दोनोंने आपसमें वैर बाँध लिया, अतः तुमलोगोंको प्रतिबोधित करनेके लिये मध्यमें यह लिंग उपस्थित हुआ॥ ५०-५१॥

एवमोमिति मां प्राहुर्यदिहोक्तमथर्वणा।
ऋचो यजूंषि सामानि शाखाश्चान्याः सहस्रशः॥ ५२
वेदेष्वेवं स्वयं वक्त्रैर्व्यक्तमित्थं वदत्स्वपि।
स्वप्नानुभूतमिव तत्ताभ्यां नाध्यवसीयते॥ ५३
तयोस्तत्र प्रबोधाय तमोपनयनाय च।
लिङ्गेऽपि मुद्रितं सर्वं यथा वेदैरुदाहृतम्॥ ५४
तद् दृष्ट्वा मुद्रितं लिङ्गे प्रसादाल्लिङ्गिनस्तदा।
प्रशान्तमनसौ देवौ प्रबुद्धौ सम्बभूवतुः॥ ५५

इस प्रकार अथर्ववेदके द्वारा प्रतिपादित मतका समर्थन 'ओम्' [ऐसा ही है] कहकर सैकड़ों, हजारों शाखाओंवाले ऋग्वेद, यजुर्वेद तथा सामवेदने भी किया। स्वयं वेदोंके द्वारा अपने श्रीमुखसे इस प्रकार सुस्पष्ट रूपसे कहे जानेपर भी उन दोनों [देवताओं]-को स्वप्नकालिक अनुभूतिके समान [परमतत्त्वका] निश्चय न हो सका, तब वहाँपर उनके अज्ञानका हरणकर उन्हें प्रबोधित करनेके लिये वह वेदोक्त मत उसी लिंगमें वैसे ही मुद्रित अर्थात् अंकित हो गया। तब उन लिंगी भगवान् शिवके अनुग्रहसे लिंगमें अंकित उस अभिप्रायका अवलोकनकर वे दोनों देवता शान्तचित्त तथा ज्ञानवान् हो गये॥ ५२—५५॥

उत्पत्तिं विलयं चैव याथात्म्यं च षडध्वनाम्।
ततः परतरं धाम धामवन्तं च पूरुषम्॥ ५६
निरुत्तरतरं ब्रह्म निष्कलं शिवमीश्वरम्।
पशुपाशमयस्यास्य प्रपञ्चस्य सदा पतिम्॥ ५७
अकुतोभयमत्यन्तमवृद्धिक्षयमव्ययम्।
बाह्यमाभ्यन्तरं व्याप्तं बाह्याभ्यन्तरवर्जितम्॥ ५८
निरस्तातिशयं शश्वद्विश्वलोकविलक्षणम्।
अलक्षणमनिर्देश्यमवाङ्मनसगोचरम्॥ ५९

उस समय उत्पत्ति, प्रलय, षडध्वाओंका वास्तविक स्वरूप, अध्वातीत श्रेष्ठतम परमपद, परमपदमें अधिष्ठित परमपुरुष, निरुत्तरतर अर्थात् सर्वातिशायि निष्कल ब्रह्मस्वरूप महेश्वर शिव, जो कि पशुपाशमय इस जगत्प्रपंचके नित्य अधिपति हैं, जो सर्वतोभावेन भयरहित हैं, जिनके स्वस्वरूपमें वृद्धि अथवा ह्रासरूप विकार नहीं होते, ऐसे बाह्य-आभ्यन्तरदेशमें व्याप्त, बाह्य तथा आभ्यन्तरके भेदसे रहित, सर्वथा समस्त अतिशयोंका अतिक्रमण करनेवाले, समस्त लोकसे विलक्षण, लक्षणोंसे रहित, अनिर्देश्य, वागादि इन्द्रियों तथा मनसे ज्ञात न होनेवाले, ज्योतिःस्वरूप, एकरस, शान्त, प्रसन्न, सर्वदा भासमान, समस्त मंगलोंके

प्रकाशैकरसं शान्तं प्रसन्नं सततोदितम्।
सर्वकल्याणनिलयं शक्त्या तादृशयान्वितम्॥ ६०
ज्ञात्वा देवं विरूपाक्षं ब्रह्मनारायणौ तदा।
रचयित्वाञ्जलिं मूर्ध्नि भीतौ तौ वाचमूचतुः॥ ६१

ब्रह्मोवाच

अज्ञो वाहमभिज्ञो वा त्वयादौ देव निर्मितः।
ईदृशीं भ्रान्तिमापन्न इति कोऽत्रापराध्यति॥ ६२

आस्तां ममेदमज्ञानं त्वयि सन्निहते प्रभो।
निर्भयः कोऽभिभाषेत कृत्यं स्वस्य परस्य वा॥ ६३

आवयोर्देवदेवस्य विवादोऽपि हि शोभनः।
पादप्रणामफलदो नाथस्य भवतो यतः॥ ६४

विष्णुरुवाच

स्तोतुं देव न वागस्ति महिम्नः सदृशी तव।
प्रभोरग्रे विधेयानां तूष्णींभावो व्यतिक्रमः॥ ६५

किमत्र संघटेत्कृत्यमित्येवावसरोचितम्।
अजानन्नपि यत्किञ्चित् प्रलप्य त्वां नतोऽस्म्यहम्॥ ६६

कारणत्वं त्वया दत्तं विस्मृतं तव मायया।
मोहितोऽहंकृतश्चापि पुनरेवास्मि शासितः॥ ६७

विज्ञापितैः किं बहुभिर्भीतोऽस्मि भृशमीश्वर।
यतोऽहमपरिच्छेद्यं त्वां परिच्छेत्तुमुद्यतः॥ ६८

त्वामुशन्ति महादेवं भीतानामार्तिनाशनम्।
अतो व्यतिक्रमं मेऽद्य क्षन्तुमर्हसि शंकर॥ ६९

इति विज्ञापितस्ताभ्यामीश्वराभ्यां महेश्वरः।
प्रीतोऽनुगृह्य तौ देवौ स्मितपूर्वमभाषत॥ ७०

ईश्वर उवाच

वत्स वत्स विधे विष्णो मायया मम मोहितौ।
युवां प्रभुत्वेऽहंकृत्य बद्धवैरौ परस्परम्॥ ७१

अधिष्ठान तथा अपने सदृश महिमामयी परमशक्तिसे समन्वित विरूपाक्ष भगवान् शंकरको [तत्त्वतः] जानकर ब्रह्मा तथा विष्णु तब सिरपर अंजलि बाँधकर भयभीत हो इस प्रकार कहने लगे— ॥ ५६—६१ ॥

ब्रह्माजी बोले—हे देव! मैं अज्ञानी हूँ अथवा आपको भलीभाँति जाननेवाला हूँ [चाहे जो कुछ भी हूँ, पर] प्रारम्भमें आपके द्वारा ही उत्पन्न किया गया हूँ। [यदि मैं] इस प्रकारके भ्रमसे ग्रस्त हुआ तो इसमें किसका अपराध कहा जाय! आपके समीप होनेपर भी यदि मेरा अज्ञान रहता है, तो रहे (इससे क्या हानि हो सकती है!) ऐसा कौन है, जो निर्भय होकर अपना अथवा पराया कृत्य बता सके। [हे प्रभो!] हमलोगोंका विवाद भी मंगलमय ही है; क्योंकि देवाधिदेव आप स्वामीका चरणवन्दनरूप फल इसीसे मिला है॥ ६२—६४॥

विष्णु बोले—हे देव! [यद्यपि] आपकी महिमाके अनुरूप स्तुति करनेमें वाणी समर्थ नहीं है, [तथापि] स्वामीके समक्ष सेवकोंका मौन रहना भी तो अपराध ही है। इस अवसरपर क्या करना उचित रहेगा, यह तो मैं नहीं जानता तथापि जैसे-तैसे प्रलाप करते हुए मैं आपको प्रणाम करता हूँ। आपने ही हमें जगत्कारणता प्रदान की थी, परंतु आपकी मायासे मोहित होनेके कारण मैं [आपको] भूल गया। जब मैं अभिमानग्रस्त हो उठा तब आपने ही मुझे [इस समय] पुनः अनुशासित किया है। बहुत कुछ कहनेसे क्या लाभ? हे ईश्वर! मैं अत्यधिक भयभीत हो गया हूँ; क्योंकि मैंने अपरिच्छिन्न स्वरूपवाले आपको परिच्छिन्न बतानेका दुःसाहस किया है॥ ६५—६८॥

आप महादेवको भयभीत लोगोंके दुःखका नाशक कहा जाता है, इसलिये हे शंकर! मेरे इस अपराधको आज आप क्षमा कर दीजिये। इस प्रकार उन दोनों लोकेश्वरोंके द्वारा निवेदन किये जानेपर प्रसन्न हुए भगवान् उन देवताओंपर कृपा करके मुसकराते हुए कहने लगे— ॥ ६९-७० ॥

ईश्वर बोले—हे वत्स विधे! हे वत्स विष्णो! तुम दोनों मेरी मायासे मोहित होकर अपनी प्रभुताका अहंकार करने लगे और तुमने आपसमें शत्रुता मान

विवादं युद्धपर्यन्तं कृत्वा नोपरतौ किल।
ततश्छिन्ना प्रजासृष्टिर्जगत्कारणभूतयोः ॥ ७२

अज्ञानमानप्रभवाद्वैमत्याद्युवयोरपि ।
तन्निवर्तयितुं युष्मद्दर्पमोहौ मयैव तु ॥ ७३

एवं निवारितावद्यलिङ्गाविर्भावलीलया।
तस्माद्भूयो विवादं च व्रीडां चोत्सृज्य कृत्स्नशः ॥ ७४

ली। तुम लोगोंके वाद-विवादका पर्यवसान युद्धमें हुआ तथापि उससे निवृत्त नहीं हो सके। जगत्के कारणस्वरूप तुम दोनोंके अज्ञान तथा अहंकारसे उत्पन्न हुई असहमतिके कारण यह प्रजासृष्टि विच्छिन्न हो रही थी, तब [प्रजाओंके उच्छेदको] रोकनेके लिये इस समय मैंने लिंगरूपसे लीलापूर्वक आविर्भूत होकर तुम्हारे अभिमान तथा मोहको निवृत्त किया है। इसलिये बार-बारके विवाद तथा लज्जाका पूर्णरूपसे परित्याग करके आपलोगोंको ईर्ष्यासे मुक्त होकर अपने-अपने कर्तव्यका अनुपालन करना चाहिये ॥ ७१—७४ ॥

यथास्वं कर्म कुर्यातां भवन्तौ वीतमत्सरौ।
पुरा ममाज्ञया सार्द्धं समस्तज्ञानसंहिताः ॥ ७५

युवाभ्यां हि मया दत्ताः कारणत्वप्रसिद्धये।
मन्त्ररत्नं च सूत्राख्यं पञ्चाक्षरमयं परम् ॥ ७६

मयोपदिष्टं सर्वं तद्युवयोरद्य विस्मृतम्।
ददामि च पुनः सर्वं यथापूर्वं ममाज्ञया ॥ ७७

यतो विना युवां तेन न क्षमौ सृष्टिरक्षणे।

तुमलोगोंकी कारणत्वप्रसिद्धि अर्थात् जगन्निर्माण आदि सामर्थ्यकी सिद्धिके लिये मैंने अपनी आज्ञाशक्तिके साथ पूर्वकालमें समस्त ज्ञानराशि तुम्हें प्रदान की थी। [उसके साथ ही] पंचाक्षरात्मक सूत्रनामसे प्रसिद्ध अत्यन्त उत्कृष्ट मन्त्ररत्नका भी मैंने आप लोगोंको उपदेश किया था, आज वह सब कुछ तुमलोग भूल चुके हो। अब मैं फिरसे अपनी आज्ञाशक्तिके साथ पूर्वकी भाँति वह सब प्रदान कर रहा हूँ, क्योंकि बिना उसके तुम दोनों सृष्टिरचना तथा उसके पालनमें समर्थ नहीं हो सकोगे ॥ ७५—७७१/२ ॥

एवमुक्त्वा महादेवो नारायणपितामहौ ॥ ७८

मन्त्रराजं ददौ ताभ्यां ज्ञानसंहितया सह।
तौ लब्ध्वा महतीं दिव्यामाज्ञां माहेश्वरीं पराम् ॥ ७९

महार्थं मन्त्ररत्नं च तथैव सकलाः कलाः।
दण्डवत्प्रणतिं कृत्वा देवदेवस्य पादयोः ॥ ८०

अतिष्ठतां वीतभयावानंदस्तिमितौ तदा।
एतस्मिन्नन्तरे चित्रमिन्द्रजालवदैश्वरम् ॥ ८१

लिङ्गं क्वापि तिरोभूतं न ताभ्यामुपलभ्यते।
ततो विलप्य हाहेति सद्यः प्रणयभङ्गतः ॥ ८२

भगवान् नारायण तथा ब्रह्माजीसे इस प्रकार कहकर भगवान् महादेवने उन दोनोंको ज्ञानराशिके साथ [पंचाक्षर] मन्त्रराज प्रदान किया। वे दोनों दिव्य, परा, महिमामयी, माहेश्वरी आज्ञाशक्ति, परमार्थरूप मन्त्ररत्न तथा समस्त कलाओंको प्राप्त करनेके उपरान्त देवाधिदेवके चरणोंमें दण्डवत् प्रणाम करके निर्भय तथा आनन्दमग्न होकर स्थित हो गये। इस बीचमें आश्चर्यजनक इन्द्रजालकी भाँति वह भगवल्लिंग अन्तर्धान हो गया। जब वे उसे देख नहीं पाये तो भावनाके आहत-सी हो जानेके कारण उस समय हाहाकारपूर्वक विलाप करने लगे ॥ ७८—८२ ॥

किमद्भुतमिदं वृत्तमिति चोक्त्वा परस्परम्।
अचिंत्यवैभवं शम्भोर्विचिन्त्य च गतव्यथौ ॥ ८३

अभ्युपेत्य परां मैत्रीमालिंग्य च परस्परम्।
जगद्व्यापारमुद्दिश्य जग्मतुर्देवपुङ्गवौ ॥ ८४

घटित हुआ यह वृत्तान्त सत्य है या असत्य है, इस प्रकार परस्पर कहते हुए वे भगवान् शंकरके अचिन्तनीय ऐश्वर्यका स्मरणकर व्यथारहित हो गये। उन्होंने उत्तम मित्रभावसे युक्त हो एक-दूसरेका आलिंगन किया और संसारके कृत्यों [को सम्पन्न करने]-के

ततः प्रभृति शक्राद्याः सर्व एव सुरासुराः।
ऋषयश्च नरा नागा नार्यश्चापि विधानतः।
लिङ्गप्रतिष्ठां कुर्वन्ति लिङ्गे तं पूजयन्ति च॥ ८५

उद्देश्यसे वे दोनों देवश्रेष्ठ [अपने-अपने धामको] चले गये। उसी समयसे इन्द्र आदि देवगण, असुरगण, ऋषिगण, मनुष्य, नाग तथा स्त्रियाँ—[ये सभी] विधानपूर्वक शिवलिंगकी प्रतिष्ठा करके लिंगमूर्तिमें उन भगवान् शिवकी अर्चना करने लगे॥ ८३—८५॥

इति श्रीशिवमहापुराणे सप्तम्यां वायवीयसंहितायामुत्तरखण्डे हरिविधिमोहनिवारणं नाम पञ्चत्रिंशोऽध्यायः॥ ३५॥

॥ इस प्रकार श्रीशिवमहापुराणके अन्तर्गत सातवीं वायवीयसंहिताके उत्तरखण्डमें हरिविधिमोहनिवारण नामक पैंतीसवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ ३५॥

अथ षट्त्रिंशोऽध्यायः

शिवलिंग एवं शिवमूर्तिकी प्रतिष्ठाविधिका वर्णन

श्रीकृष्ण उवाच

भगवन् श्रोतुमिच्छामि प्रतिष्ठाविधिमुत्तमम्।
लिङ्गस्यापि च बेरस्य शिवेन विहितं यथा॥ १

श्रीकृष्ण बोले—[हे भगवन्!] मैं लिंग तथा मूर्तिकी उत्तम प्रतिष्ठाविधिको सुनना चाहता हूँ, जिसे शिवजीने कहा था॥ १॥

उपमन्युरुवाच

अनात्मप्रतिकूले तु दिवसे शुक्लपक्षके।
शिवशास्त्रोक्तमार्गेण कुर्याल्लिंगं प्रमाणवत्॥ २
स्वीकृत्याथ शुभस्थानं भूपरीक्षां विधाय च।
दशोपचारान्कुर्वीत लक्षणोद्धारपूर्वकान्॥ ३
तेषां दशोपचाराणां पूर्वं पूज्य विनायकम्।
स्थानशुद्ध्यादिकं कृत्वा लिङ्गं स्नानालयं नयेत्॥ ४

उपमन्यु बोले—[हे कृष्ण!] शुक्लपक्षमें अपने [चन्द्र-तारा आदिके विचारसे] अनुकूल दिनमें शिवशास्त्रमें बतायी गयी रीतिसे प्रमाणके अनुसार लिंग बनाये। शुभ स्थानका चयन करके भूपरीक्षाकर लक्षणोंके प्रतिकूल दोषोंका निराकरण करके दसों उपचार करे। उन दस उपचारोंके अन्तर्गत सर्वप्रथम विनायक (श्रीगणेश)-का पूजन करके स्थानशुद्धि आदि करे और लिंगको स्नानगृहमें ले जाय॥ २—४॥

शलाकया काञ्चनया कुंकुमादिरसाक्तया।
लक्षितं लक्षणं शिल्पशास्त्रेण विलिखेत्ततः॥ ५
अष्टमृत्सलिलैर्वाथ पञ्चमृत्सलिलैस्तथा।
लिङ्गं पिंडिकया सार्द्धं पञ्चगव्यैश्च शोधयेत्॥ ६

कुंकुम आदिके रससे रंजित सोनेकी शलाकासे उसपर लक्षणांकन करे और शिल्पशास्त्रके द्वारा लक्षणोंको उत्कीर्ण करे। उसके बाद आठ प्रकारकी मिट्टियोंसे युक्त जलसे अथवा पाँच प्रकारकी मिट्टियोंसे युक्त जलसे और पंचगव्यसे पिण्डिकासहित लिंगका शोधन करे॥ ५-६॥

सवेदिकं समभ्यर्च्य दिव्याद्यं तु जलाशयम्।
नीत्वाधिवासयेत्तत्र लिङ्गं पिंडिकया सह॥ ७
अधिवासालये शुद्धे सर्वशोभासमन्विते।
सतोरणे सावरणे दर्भमालासमावृते॥ ८
दिग्गजाष्टकसंपन्ने दिक्पालाष्टघटान्विते।
अष्टमङ्गलकैर्युक्ते कृतदिक्पालकार्चिते॥ ९
तैजसं दारवं वापि कृत्वा पद्मासनाङ्कितम्।
विन्यसेन्मध्यतस्तत्र विपुलं पीठकालयम्॥ १०

इसके बाद वेदीसहित लिंगका पूजन करके जलाशयमें ले जाकर वहाँ पिण्डिकाके साथ लिंगका अधिवासन करे। सभी शोभाओंसे समन्वित, तोरण (बन्दनवार)-से सुशोभित, आवरण (चन्दोवा आदि)-से युक्त, कुशकी मालाओंसे आवेष्टित, आठों दिग्गजोंसे युक्त, आठों दिक्पालोंके घटोंसे समन्वित, आठों मंगलद्रव्योंसे युक्त और पूजित, दिक्पालोंसे सुशोभित, पवित्र अधिवासगृहमें पद्मासनसे अंकित एक धातु अथवा काष्ठकी विशाल चौकी बनाकर वहाँपर बीचमें रखे॥ ७—१०॥

द्वारपालान् समभ्यर्च्य भद्रादींश्चतुरः क्रमात्।
सुभद्रश्च विभद्रश्च सुनन्दश्च विनन्दकः॥ ११
स्नापयित्वा समभ्यर्च्य लिङ्गं वेदिकया सह।
सकूर्चाभ्यां तु वस्त्राभ्यां समावेष्ट्य समन्ततः॥ १२
प्रापय्य शनकैस्तोयं पीठिकोपरि शाययेत्।
प्राक् शिरस्कमधः सूत्रं पिंडिकां चास्य पश्चिमे॥ १३

तत्पश्चात् सुभद्र, विभद्र, सुनन्द तथा विनन्द—इन चार द्वारपालोंका पूजन करके वेदीसहित लिंगको स्नान कराकर पूजन करके उसे कूर्चसहित दो वस्त्रोंसे चारों ओरसे लपेटकर जलको धीरे-धीरे पोंछकर पीठिकाके ऊपर शयन कराये, लिंगका सिर पूर्वकी ओर, सूत्रको नीचेकी ओर तथा पिण्डिकाको इसके पीछे पश्चिमकी ओर रखे॥ ११—१३॥

सर्वमङ्गलसंयुक्तं लिङ्गं तत्राधिवासयेत्।
पञ्चरात्रं त्रिरात्रं वाप्येकरात्रमथापि वा॥ १४

सभी मंगल द्रव्योंसे युक्त लिंगका वहाँ पाँच रात, तीन रात अथवा एक राततक अधिवासन कराये॥ १४॥

विसृज्य पूजितं तत्र शोधयित्वा च पूर्ववत्।
सम्पूज्योत्सवमार्गेण शयनालयमानयेत्॥ १५

उस स्थानपर पूर्वमें पूजित देवताओंका विसर्जन करके लिंगका पूर्वकी भाँति शोधनकर पुनः पूजन करे और उत्सव करते हुए उसे शयनस्थानपर ले जाय॥ १५॥

तत्रापि शयनस्थानं कुर्यात् मण्डलमध्यतः।
शुद्धैर्जलैः स्नापयित्वा लिङ्गमभ्यर्चयेत्क्रमात्॥ १६

वहाँ भी मण्डलके मध्यमें शयनस्थान बनाये और शुद्ध जलसे लिंगको स्नान कराकर क्रमसे पूजन करे॥ १६॥

ऐशान्यां पद्ममालिख्य शुद्धलिप्ते महीतले।
शिवकुम्भं शोधयित्वा तत्रावाह्य शिवं यजेत्॥ १७
वेदीमध्ये सितं पद्मं परिकल्प्य विधानतः।
तस्य पश्चिमतश्चापि चण्डिकापद्ममालिखेत्॥ १८
क्षौमाद्यैर्वाहतैर्वस्त्रैः पुष्पैर्दर्भैरथापि वा।
प्रकल्प्य शयनं तस्मिन् हेमपुष्पं विनिक्षिपेत्॥ १९

ईशानकोणमें [गोमयसे] लिपे हुए शुद्ध भूमितलपर कमलकी रचना करके शिवकुम्भका स्थापन कर उसमें शिवका आवाहन करके पूजन करे। वेदीके मध्यमें विधानपूर्वक श्वेत कमल बनाकर उसके पश्चिममें भी पिण्डिकाके लिये कमलकी रचना करे। रेशमी आदि नवीन वस्त्रों अथवा पुष्पों अथवा दर्भोंसे शयन तैयार करके उसपर स्वर्णपुष्प बिखेरे॥ १७—१९॥

तत्र लिङ्गं समानीय सर्वमङ्गलनिःस्वनैः।
रक्तेन वस्त्रयुग्मेन सकूर्चेन समन्ततः॥ २०
सह पिंडिकयावेष्ट्य शाययेच्च यथा पुरा।
पुरस्तात्पद्ममालिख्य तद्दलेषु यथाक्रमम्॥ २१
विद्येशकलशान्न्यस्येन्मध्ये शैवीं च वर्द्धनीम्।
परीत्य पद्मत्रितयं जुहुयुर्द्विजसत्तमाः॥ २२

सभी मंगल ध्वनियोंके साथ वहाँ लिंगको लाकर कूर्चसहित दो लाल वस्त्रोंसे चारों ओरसे पिण्डिकाके साथ उसे लपेटकर पूर्वकी भाँति शयन कराये। इसके बाद उसके आगे कमलकी रचना करके उसके दलोंमें क्रमानुसार विद्येश्वरके कलशोंको रखकर बीचमें शैवी वर्धनी स्थापित करे और [वरण] किये गये श्रेष्ठ ब्राह्मण तीनों पद्मांकित मण्डलोंकी परिक्रमा करते हुए आहुति डालें॥ २०—२२॥

ते चाष्टमूर्त्तयः कल्प्याः पूर्वादिपरितः स्थिताः।
चत्वारश्चाथ वा दिक्षु स्वध्येतारः सजापकाः॥ २३
जुहुयुस्ते विरिञ्च्याद्याश्चतस्रो मूर्तयः स्मृताः।
देशिकः प्रथमं तेषामैशान्यां पश्चिमेऽथ वा॥ २४
प्रधानहोमं कुर्वीत सप्तद्रव्यैर्यथाक्रमम्।
आचार्यात् पादमर्द्धं वा जुहुयुश्चापरे द्विजाः॥ २५

[यजनकर्ममें वरण किये गये] उन आठ ब्राह्मणोंके प्रति 'ये भगवान् शिवकी आठ मूर्तियाँ हैं' ऐसी भावना करे, वे पूर्व आदिके क्रमसे स्थित होकर कर्म सम्पन्न करें अथवा चार दिशाओंमें पाठ तथा जप करनेवाले ब्रह्मा आदि चार ब्राह्मण स्थित हों। वे हवन करें। उनसे पहले आचार्य ईशानकोणमें अथवा पश्चिममें सात द्रव्योंसे यथाक्रम प्रधान होम करे। अन्य ब्राह्मण आचार्यसे आधा अथवा चौथाई हवन करें॥ २३—२५॥

प्रधानमेकमेवात्र जुहुयादथ वा गुरुः।
पूर्वं पूर्णाहुतिं हुत्वा घृतेनाष्टोत्तरं शतम्॥ २६
मूर्ध्नि मूलेन लिङ्गस्य शिवहस्तं प्रविन्यसेत्।
शतमर्द्धं तदर्द्धं वा क्रमाद् द्रव्यैश्च सप्तभिः॥ २७
हुत्वा हुत्वा स्पृशेल्लिङ्गं वेदिकां च पुनःपुनः।
पूर्णाहुतिं ततो हुत्वा क्रमाद्दद्याच्च दक्षिणाम्॥ २८
आचार्यात् पादमर्द्धं वा होतृणां स्थपतेरपि।
तदर्द्धं देयमन्येभ्यः सदस्येभ्यश्च शक्तितः॥ २९

प्रधान होम आचार्य अथवा गुरु कोई एक ही करे, पहले घृतसे एक सौ आठ आहुति देकर पुनः पूर्णाहुति प्रदान करे। मूल मन्त्रसे शिवलिंगके शीर्षदेशपर शिवहस्त रखे। इसके बाद क्रमसे सात द्रव्योंसे सौ, पचास अथवा पचीस आहुतियाँ देते हुए बार-बार लिंग तथा वेदिकाका स्पर्श करे। इसके बाद पूर्णाहुति प्रदान करके क्रमसे दक्षिणा दे। आचार्यसे आधी अथवा चौथाई दक्षिणा हवनकर्ताओंको, उसकी आधी दक्षिणा शिल्पीको और अन्य सदस्योंको अपने सामर्थ्यके अनुसार दक्षिणा दे॥ २६—२९॥

ततः श्वभ्रे वृषं हैमं कूर्चं वापि निवेश्य च।
मृदम्भसा पञ्चगव्यैः पुनः शुद्धजलेन च॥ ३०
शोधितां चंदनालिप्तां श्वभ्रे ब्रह्मशिलां क्षिपेत्।
करन्यासं ततः कृत्वा नवभिः शक्तिनामभिः॥ ३१
हरितालादिधातूंश्च बीजगन्धौषधैरपि।
शिवशास्त्रोक्तविधिना क्षिपेद् ब्रह्मशिलोपरि॥ ३२

तत्पश्चात् गड्ढेमें स्वर्ण-वृषभ अथवा कूर्च रखकर मिट्टीयुक्त जलसे, पंचगव्योंसे तथा पुनः शुद्ध जलसे शुद्ध की हुई तथा चन्दनसे लिप्त ब्रह्मशिलाको गड्ढेमें स्थापित करे। इसके बाद शक्तिके नौ नामोंसे करन्यास करके शिवशास्त्रमें कथित विधिके अनुसार बीज, गन्ध तथा औषधियोंके साथ हरिताल आदि धातुओंको ब्रह्मशिलाके ऊपर छोड़े॥ ३०—३२॥

प्रतिलिङ्गं तु संस्थाप्य क्षीरवृक्षसमुद्भवम्।
स्थितं बुद्ध्वा तदुत्सृज्य लिङ्गं ब्रह्मशिलामपि॥ ३३
प्रागुदक्प्रवरां किञ्चित् स्थापयेन्मूलविद्यया।
पिण्डिकां चाथ संयोज्य शाक्तं मूलमनुस्मरन्॥ ३४
बन्धनं बन्धकद्रव्यैः कृत्वा स्थानं विशोध्य च।
दत्त्वा चार्घ्यं च पुष्पाणि कुर्युर्यवनिकां पुनः॥ ३५
यथायोग्यं निषेकादि लिङ्गस्य पुरतस्तदा।
आनीय शयनस्थानात्कलशान्विन्यसेत्क्रमात्॥ ३६

क्षीरवृक्ष [दूधवाले]-के काष्ठसे निर्मित प्रत्येक लिंगको समीप रखकर, मूलमन्त्र पढ़ते हुए उसे ईशानाभिमुख स्थापित करे। उस समय शक्तिबीजका उच्चारण करते हुए स्थानशोधनकर बन्धक द्रव्योंसे पिण्डिकाको स्थिर करे। इसके बाद अर्घ्य-पुष्पादि अर्पित करके परदा डाल दे। तत्पश्चात् यथोचित रीतिसे निषेक आदि कृत्य करके शयनस्थानमें रखे कलशोंको लाकर लिंगके समक्ष उन्हें क्रमशः स्थापित कर दे॥ ३३—३६॥

महापूजामथारभ्य सम्पूज्य कलशान्दश।
शिवमन्त्रमनुस्मृत्य शिवकुम्भजलान्तरे॥ ३७
अंगुष्ठानामिकायोगादादाय तमुदीरयेत्।
न्यसेदीशानभागस्य मध्ये लिङ्गस्य मन्त्रवित्॥ ३८
शक्तिं न्यसेत्तथा विद्यां विद्येशांश्च यथाक्रमम्।
लिङ्गमूले शिवजलैस्ततो लिङ्गं निषेचयेत्॥ ३९
वर्द्धन्या पिंडिकां लिङ्गं विद्येशकलशैः पुनः।
अभिषिच्यासनं पश्चादाधाराद्यं प्रकल्पयेत्॥ ४०

तत्पश्चात् उन कलशोंका पूजन करके महापूजाका आरम्भ करे। शिवमन्त्रका स्मरण करते हुए शिवकुम्भस्थ जलको अंगुष्ठ-अनामिकाके योगसे ग्रहण करते हुए मूल मन्त्रका उच्चारण करे। मन्त्रज्ञ साधक लिंगके ईशान भागके मध्यमें शक्ति-कलश तथा ब्रह्मकलशादिकी स्थापना करे। तदुपरान्त शिवकुम्भके जलसे लिंगमूलका अभिषेक करे। तत्पश्चात् वर्धनीके जलसे पिण्डिकाका तथा विद्येशकलशोंके द्वारा लिंगका अभिषेक करके आधार आदि आसनकी परिकल्पना करे॥ ३७—४०॥

कृत्वा पञ्चकलान्यासं दीप्तं लिङ्गमनुस्मरेत्।
आवाहयेत् शिवौ साक्षात् प्राञ्जलिः प्रागुदङ्मुखः॥ ४१
वृषाधिराजमारुह्य विमानं वा नभस्तलात्।
अलंकृतं सहायान्तं देव्या देवमनुस्मरन्।
सर्वाभरणशोभाढ्यं सर्वमङ्गलनिःस्वनैः॥ ४२
ब्रह्मविष्णुमहेशार्कशक्राद्यैर्देवदानवैः।
आनन्दक्लिन्नसर्वांगैर्विन्यस्ताञ्जलिमस्तकैः॥ ४३
स्तुवद्भिरेव नृत्यद्भिर्नमद्भिरभितो वृतम्।
ततः पञ्चोपचारैश्च कृत्वा पूजां समापयेत्॥ ४४

तदनन्तर पूर्व अथवा उत्तरकी ओर मुख करके हाथ जोड़कर साक्षात् शिव-शिवाका आवाहन करे। वृषभराज अथवा अलंकृत विमानपर आरूढ़ होकर देवी [पार्वती]-के साथ आकाशमार्गसे आते हुए, समस्त आभूषणोंकी शोभासे सम्पन्न और सभी प्रकारकी मंगलध्वनि करनेवाले, आनन्दसे विह्वल समस्त अंगोंवाले, [अपनी] अंजलियोंको मस्तकपर रखे हुए, स्तुति, नृत्य तथा नमस्कार करते हुए ब्रह्मा-विष्णु-महेश-सूर्य-शक्र आदि देवताओं तथा दानवोंसे घिरे हुए भगवान् शिवका स्मरण करते हुए पंचोपचारसे पूजन करके इसका समापन करे॥ ४१—४४॥

नातः परतरः कश्चिद्विधिः पञ्चोपचारकात्।
प्रतिष्ठां लिङ्गवत्कुर्यात् प्रतिमास्वपि सर्वतः॥ ४५
लक्षणोद्धारसमये कार्यं नयनमोचनम्।
जलाधिवासे शयने शाययेत्तांस्त्वधोमुखीम्॥ ४६

पंचोपचारसे बढ़कर पूजाकी कोई भी विधि नहीं है। लिंगकी भाँति प्रतिमाओंमें भी भलीभाँति प्रतिष्ठा करे। लक्षणके उद्धारके समय नेत्रोंको उन्मीलित कर दे, जलाधिवासमें शयन कराते समय प्रतिमाको अधोमुख करके शयन कराये॥ ४५-४६॥

कुम्भोदशायितां मन्त्रैर्हृदि तां सन्नियोजयेत्।
कृतालयां परामाहुः प्रतिष्ठामकृतालयात्॥ ४७
शक्तः कृतालयः पश्चात् प्रतिष्ठाविधिमाचरेत्।
अशक्तश्चेत्प्रतिष्ठाप्य लिङ्गं बेरमथापि वा॥ ४८
शक्तेरनुगुणं पश्चात् प्रकुर्वीत शिवालयम्।

मन्त्रोंसे कुम्भजलमें सुलायी गयी उस मूर्तिका हृदयमें ध्यान करे। आलय (स्थान)-रहितसे आलययुक्त प्रतिष्ठाको श्रेष्ठ कहा गया है। यदि समर्थ हो, तो मन्दिर बनवाकर बादमें प्रतिष्ठाविधि करे और यदि असमर्थ हो, तो लिंग अथवा मूर्तिकी प्रतिष्ठा करके बादमें अपने सामर्थ्यके अनुसार शिवालयका निर्माण करे॥ ४७-४८½॥

गृहार्चां च पुनर्वक्ष्ये प्रतिष्ठाविधिमुत्तमम्॥ ४९
कृत्वा कनीयसं बेरं लिङ्गं वा लक्षणान्वितम्।
अयने चोत्तरे प्राप्ते शुक्लपक्षे शुभे दिने॥ ५०
वेदीं कृत्वा शुभे देशे तत्राब्जं पूर्ववल्लिखेत्।
विकीर्य पत्रपुष्पाद्यैर्मध्ये कुम्भं निधाय च॥ ५१
परितस्तस्य चतुरः कलशान् दिक्षु विन्यसेत्।

अब मैं गृहमें पूजाके योग्य मूर्ति अथवा लिंगकी उत्तम प्रतिष्ठाविधिका वर्णन करूँगा। एक छोटी तथा लक्षणयुक्त मूर्ति अथवा [वैसा ही] लिंग बनाकर उत्तरायण उपस्थित होनेपर शुक्लपक्षमें शुभ दिनमें शुभ स्थानमें वेदीका निर्माण करके वहाँ पूर्वकी भाँति कमलकी रचना करे। वहाँ पत्र-पुष्प आदि बिखेरकर मध्यमें कलश रखकर उसके चारों दिशाओंमें चार कलश स्थापित करे॥ ४९—५१½॥

पञ्च ब्रह्माणि तद्बीजैस्तेषु पञ्चसु पञ्चभिः॥ ५२
न्यस्य सम्पूज्य मुद्रादि दर्शयित्वाभिरक्ष्य च।
विशोध्य लिङ्गं बेरं वा मृत्तोयाद्यैर्यथा पुरा॥ ५३
स्थापयेत्पुष्पसंछन्नमुत्तरस्थे वरासने।
निधाय पुष्पं शिरसि प्रोक्षयेत् प्रोक्षणीजलैः॥ ५४

इसके बाद पाँच ब्रह्मोंका उनके पाँच बीजमन्त्रोंसे उन पाँच कलशोंमें न्यास करके उनका पूजन करके, मुद्रा आदि दिखाकर, रक्षाविधान करके और पुनः पूर्वकी भाँति मिट्टी-जल आदिके द्वारा लिंग अथवा मूर्तिका शोधन करके पुष्पसे आच्छादितकर उसे उत्तर दिशामें स्थित उत्तम आसनपर स्थापित करे। तत्पश्चात् उसके सिरपर पुष्प रखकर प्रोक्षणी-जलसे प्रोक्षण करे॥ ५२—५४॥

समभ्यर्च्य पुनः पुष्पैर्जयशब्दादिपूर्वकम्।
कुम्भैरीशानविद्यान्तैः स्नापयेन्मूलविद्यया॥ ५५
ततः पञ्चकलान्यासं कृत्वा पूजां च पूर्ववत्।
नित्यमाराधयेत्तत्र देव्या देवं त्रिलोचनम्॥ ५६
एकमेवाथ वा कुम्भं मूर्तिमन्त्रसमन्वितम्।
न्यस्य पद्मान्तरे सर्वं शेषं पूर्ववदाचरेत्॥ ५७

अत्यन्तोपहतं लिङ्गं विशोध्य स्थापयेत्पुनः।
सम्प्रोक्षयेदुपहतं मनागुपहतं यजेत्॥ ५८

लिङ्गानि बाणसंज्ञानि स्थापनीयानि वा न वा।
तानि पूर्वं शिवेनैव संस्कृतानि यतस्ततः॥ ५९

शेषाणि स्थापनीयानि यानि दृष्टानि बाणवत्।
स्वयमुद्भूतलिङ्गे च दिव्ये चार्षे तथैव च॥ ६०

अपीठे पीठमावेश्य कृत्वा सम्प्रोक्षणं विधिम्।
यजेत्तत्र शिवं तेषां प्रतिष्ठा न विधीयते॥ ६१

दग्धं श्लथं क्षताङ्गं च क्षिपेल्लिङ्गं जलाशये।
संधानयोग्यं संधाय प्रतिष्ठाविधिमाचरेत्॥ ६२

बेराद्वा विकलाल्लिङ्गाद्देवपूजापुरःसरम्।
उद्वास्य हृदि संधानं त्यागं वा युक्तमाचरेत्॥ ६३

एकाहपूजाविहतौ कुर्याद् द्विगुणमर्चनम्।
द्विरात्रे च महापूजां सम्प्रोक्षणमतः परम्॥ ६४

मासादूर्ध्वमनेकाहं पूजा यदि विहन्यते।
प्रतिष्ठा प्रोच्यते कैश्चित्कैश्चित्सम्प्रोक्षणक्रमः॥ ६५

सम्प्रोक्षणे तु लिङ्गादेर्देवमुद्वास्य पूर्ववत्।
अष्टपञ्चक्रमेणैव स्नापयित्वा मृदम्भसा॥ ६६

गवां रसैश्च संस्नाप्य दर्भतोयैर्विशोध्य च।
प्रोक्षयेत्प्रोक्षणीतोयैर्मूलेनाष्टोत्तरं शतम्॥ ६७

इसके बाद पुष्पोंसे पूजन करके जयध्वनिके साथ ईशानसे लेकर विद्येश्वरतकके कुम्भोंसे मूलमन्त्रके द्वारा स्नान कराये। पुनः पाँच कलाओंका न्यास तथा पूर्वकी भाँति पूजन करके वहाँ देवीके साथ भगवान् त्रिलोचनकी नित्य आराधना करे। अथवा मूर्तिसे युक्त तथा मन्त्राभिमन्त्रित एक कुम्भको कमलके बीचमें रखकर शेष सब कुछ पूर्वकी भाँति करे॥ ५५—५७॥

अत्यधिक दोषयुक्त लिंगका शोधन करके उसे पुनः स्थापित करे, दोषयुक्त लिंगका प्रोक्षण करे और थोड़ा दोषयुक्त लिंगका पूजन करे। बाणसंज्ञक लिंगोंकी प्रतिष्ठा करे अथवा न करे; क्योंकि वे तो शिवजीके द्वारा पहले ही संस्कार-सम्पन्न किये गये हैं। अन्य लिंग जो बाणसदृश दिखायी देते हैं, उनकी स्थापना कर लेनी चाहिये। स्वयंभू लिंग, देवताओंद्वारा स्थापित लिंग तथा ऋषियोंद्वारा स्थापित लिंगके पीठरहित होनेपर उन्हें पीठमें बैठाकर सम्प्रोक्षणविधान करके उनमें शिवका पूजन करे, उनकी प्रतिष्ठा नहीं की जाती है॥ ५८—६१॥

जले हुए, क्षतिग्रस्त तथा विशीर्ण अंगवाले लिंगको जलाशयमें डाल देना चाहिये, किंतु जोड़े जा सकनेवाले लिंगको जोड़कर उसकी प्रतिष्ठा करनी चाहिये। विशीर्ण हुए लिंग अथवा मूर्तिमें देवताकी पूजाके उपरान्त हृदयमें उद्वासन करके उस [लिंग आदि]-का सन्धान या त्याग जो उचित हो, उसे करना चाहिये॥ ६२-६३॥

एक दिन पूजा छूट जानेपर दूसरे दिन दुगुना पूजन करे और दो रात पूजाके छूट जानेपर महापूजा करे तथा इससे भी अधिक समयतक यदि पूजा न हुई हो तो सम्प्रोक्षण करे। यदि एक माससे अधिक अनेक दिनों तक पूजा बाधित हो गयी हो, तो कुछ लोग पुनः प्रतिष्ठाका और कुछ लोग सम्प्रोक्षणका विधान बताते हैं॥ ६४-६५॥

लिंग आदिके सम्प्रोक्षणमें पूर्वकी भाँति शिवजीका उद्वासन करके पाँच अथवा आठ बार मिट्टीयुक्त जलसे स्नान कराकर पुनः गायके दूध आदिसे स्नान कराये और कुशोदकसे शोधन करके एक सौ आठ बार मूलमन्त्रके द्वारा प्रोक्षणीके जलसे प्रोक्षण करे॥ ६६-६७॥

सपुष्पं सकुशं पाणिं न्यस्य लिङ्गस्य मस्तके।
पञ्चावरं जपेन्मूलमष्टोत्तरशतोत्तरम्॥ ६८
ततो मूलेन मूर्द्धादिपीठान्तं संस्पृशेदपि।
पूजां च महतीं कुर्याद्देवमावाह्य पूर्ववत्॥ ६९
अलब्धे स्थापिते लिङ्गे शिवस्थाने जलेऽथ वा।
वह्नौ रवौ तथा व्योम्नि भगवन्तं शिवं यजेत्॥ ७०

लिंगके मस्तकपर पुष्प-कुशसहित हाथ रखकर कम-से-कम पाँच बार या एक सौ आठ बार जप करे और इसके बाद मूलमन्त्रसे सिरसे लेकर पीठतकका स्पर्श करे। शिवजीका आवाहन करके पूर्वकी भाँति महापूजा करे। स्थापित लिंगके उपलब्ध न होनेपर शिवस्थानमें, जलमें, अग्निमें, सूर्यमें अथवा आकाशमें भगवान् शिवकी पूजा करे॥ ६८—७०॥

इति श्रीशिवमहापुराणे सप्तम्यां वायवीयसंहितायामुत्तरखण्डे प्रतिष्ठाविधिवर्णनं नाम षट्त्रिंशोऽध्यायः॥ ३६॥

॥ इस प्रकार श्रीशिवमहापुराणके अन्तर्गत सातवीं वायवीयसंहिताके उत्तरखण्डमें प्रतिष्ठाविधिवर्णन नामक छत्तीसवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ ३६॥

अथ सप्तत्रिंशोऽध्यायः

योगके अनेक भेद, उसके आठ और छः अंगोंका विवेचन—यम, नियम, आसन, प्राणायाम, दशविध प्राणोंको जीतनेकी महिमा, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान और समाधिका निरूपण

श्रीकृष्ण उवाच

ज्ञाने क्रियायां चर्यायां सारमुद्धृत्य संग्रहात्।
उक्तं भगवता सर्वं श्रुतं श्रुतिसमं मया॥ १

श्रीकृष्णने कहा—भगवन्! आपने ज्ञान, क्रिया और चर्याका संक्षिप्त सार उद्धृत करके मुझे सुनाया है। यह सब श्रुतिके समान आदरणीय है और इसे मैंने ध्यानपूर्वक सुना है॥ १॥

इदानीं श्रोतुमिच्छामि योगं परमदुर्लभम्।
साधिकारं च साङ्गं च सविधिं सप्रयोजनम्॥ २

अब मैं अधिकार, अंग, विधि और प्रयोजनसहित परम दुर्लभ योगका वर्णन सुनना चाहता हूँ॥ २॥

यद्यस्ति मरणं पूर्वं योगाद्यनुपमर्दतः।
सद्यः साधयितुं शक्यं येन स्यान्नात्महा नरः॥ ३
तच्च तत्कारणं चैव तत्कालकरणानि च।
तद्भेदतारतम्यं च वक्तुमर्हसि तत्त्वतः॥ ४

यदि योग आदिका अभ्यास करनेसे पहले ही मृत्यु हो जाय तो मनुष्य आत्मघाती होता है; अतः आप योगका ऐसा कोई साधन बताइये, जिसे शीघ्र सिद्ध किया ज़ा सके, जिससे कि मनुष्यको आत्मघाती न होना पड़े। योगका वह अनुष्ठान, उसका कारण, उसके लिये उपयुक्त समय, साधन तथा उसके भेदोंका तारतम्य क्या है?॥ ३-४॥

उपमन्युरुवाच

स्थाने पृष्टं त्वया कृष्ण सर्वप्रश्नार्थवेदिना।
ततः क्रमेण तत्सर्वं वक्ष्ये शृणु समाहितः॥ ५

उपमन्यु बोले—श्रीकृष्ण! तुम सब प्रश्नोंके तारतम्यके ज्ञाता हो। तुम्हारा यह प्रश्न बहुत ही उचित है, इसलिये मैं इन सब बातोंपर क्रमशः प्रकाश डालूँगा। तुम एकाग्रचित्त होकर सुनो॥ ५॥

निरुद्धवृत्त्यन्तरस्य शिवे चित्तस्य निश्चला।
या वृत्तिः सा समासेन योगः स खलु पञ्चधा॥ ६
मन्त्रयोगः स्पर्शयोगो भावयोगस्तथापरः।
अभावयोगः सर्वेभ्यो महायोगः परो मतः॥ ७

जिसकी दूसरी वृत्तियोंका निरोध हो गया है, ऐसे चित्तकी भगवान् शिवमें जो निश्चल वृत्ति है, उसीको संक्षेपसे 'योग' कहा गया है। यह योग पाँच प्रकारका है—मन्त्रयोग, स्पर्शयोग, भावयोग, अभावयोग और महायोग॥ ६-७॥

मन्त्राभ्यासवशेनैव मन्त्रवाच्यार्थगोचरः।
अव्याक्षेपा मनोवृत्तिर्मन्त्रयोग उदाहृतः॥ ८

प्राणायाममुखा सैव स्पर्शयोगोऽभिधीयते।
स मन्त्रस्पर्शनिर्मुक्तो भावयोगः प्रकीर्तितः॥ ९

विलीनावयवं विश्वं रूपं सम्भाव्यते यतः।
अभावयोगः सम्प्रोक्तोऽनाभासाद्वस्तुनः सतः॥ १०

शिवस्वभाव एवैकश्चिन्त्यते निरुपाधिकः।
यथा शैवमनोवृत्तिर्महायोग इहोच्यते॥ ११

दृष्टे तथानुश्रविके विरक्तं विषये मनः।
यस्य तस्याधिकारोऽस्ति योगे नान्यस्य कस्यचित्॥ १२

विषयद्वयदोषाणां गुणानामीश्वरस्य च।
दर्शनादेव सततं विरक्तं जायते मनः॥ १३

अष्टाङ्गो वा षडङ्गो वा सर्वयोगः समासतः।
यमश्च नियमश्चैव स्वस्तिकाद्यं तथासनम्॥ १४
प्राणायामः प्रत्याहारो धारणा ध्यानमेव च।
समाधिरिति योगांगान्यष्टावुक्तानि सूरिभिः॥ १५
आसनं प्राणसंरोधः प्रत्याहारोऽथ धारणा।
ध्यानं समाधिर्योगस्य षडंगानि समासतः॥ १६
पृथग्लक्षणमेतेषां शिवशास्त्रे समीरितम्।
शिवागमेषु चान्येषु विशेषात् कामिकादिषु॥ १७
योगशास्त्रेष्वपि तथा पुराणेष्वपि केषु च।
अहिंसा सत्यमस्तेयं ब्रह्मचर्यापरिग्रहः।
यम इत्युच्यते सद्भिः पञ्चावयवयोगतः॥ १८
शौचं तुष्टिस्तपश्चैव जपः प्रणिधिरेव च।
इति पञ्च प्रभेदः स्यान्नियमः स्वांशभेदतः॥ १९

स्वस्तिकं पद्ममध्येन्दुं वीरं योगं प्रसाधितम्।
पर्यङ्कं च यथेष्टं च प्रोक्तमासनमष्टधा॥ २०

मन्त्र-जपके अभ्यासवश मन्त्रके वाच्यार्थमें स्थित हुई विक्षेपरहित जो मनकी वृत्ति है, उसका नाम 'मन्त्रयोग' है। मनकी वही वृत्ति जब प्राणायामको प्रधानता दे तो उसका नाम 'स्पर्शयोग' होता है। वही स्पर्शयोग जब मन्त्रके स्पर्शसे रहित हो तो 'भावयोग' कहलाता है॥ ८-९॥

जिससे सम्पूर्ण विश्वके रूपमात्रका अवयव विलीन (तिरोहित) हो जाता है, उसे 'अभावयोग' कहा गया है; क्योंकि उस समय सद्वस्तुका भी भान नहीं होता॥ १०॥

जिससे एकमात्र उपाधिशून्य शिवस्वभावका चिन्तन किया जाता है और मनकी वृत्ति शिवमयी हो जाती है, उसे 'महायोग' कहते हैं॥ ११॥

देखे और सुने गये लौकिक और पारलौकिक विषयोंकी ओरसे जिसका मन विरक्त हो गया हो, उसीका योगमें अधिकार है, दूसरे किसीका नहीं है। लौकिक और पारलौकिक दोनों विषयोंके दोषोंका और ईश्वरके गुणोंका सदा ही दर्शन करनेसे मन विरक्त होता है॥ १२-१३॥

प्रायः सभी योग आठ या छः अंगोंसे युक्त होते हैं। यम, नियम, स्वस्तिक आदि आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान और समाधि—ये विद्वानोंने योगके आठ अंग बताये हैं। आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान और समाधि—ये थोड़ेमें योगके छः लक्षण हैं॥ १४—१६॥

शिव-शास्त्रमें इनके पृथक्-पृथक् लक्षण बताये गये हैं। अन्य शिवागमोंमें, विशेषतः कामिक आदिमें, योगशास्त्रोंमें और किन्हीं-किन्हीं पुराणोंमें भी इनके लक्षणोंका वर्णन है। अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह—इन्हें सत्पुरुषोंने यम कहा है। इस प्रकार यम पाँच अवयवोंके योगसे युक्त है॥ १७-१८॥

शौच, सन्तोष, तप, जप (स्वाध्याय) और प्रणिधान—इन पाँच भेदोंसे युक्त दूसरे योगांगको नियम कहा गया है। तात्पर्य यह कि नियम अपने अंशोंके भेदसे पाँच प्रकारका है। आसनके आठ भेद कहे गये हैं—स्वस्तिक आसन, पद्मासन, अर्धचन्द्रासन, वीरासन, योगासन, प्रसाधितासन, पर्यंकासन और अपनी रुचिके अनुसार आसन॥ १९-२०॥

प्राणः स्वदेहजो वायुस्तस्यायामो निरोधनम्।
तद्रेचकं पूरकं च कुम्भकं च त्रिधोच्यते॥ २१

अपने शरीरमें प्रकट हुई जो वायु है, उसको प्राण कहते हैं। उसे रोकना ही उसका आयाम है। उस प्राणायामके तीन भेद कहे गये हैं—रेचक, पूरक और कुम्भक॥ २१॥

नासिकापुटमंगुल्या पीड्यैकमपरेण तु।
औदरं रेचयेद्वायुं तथायं रेचकः स्मृतः॥ २२

बाह्येन मरुता देहं दृतिवत्परिपूरयेत्।
नासापुटेनापरेण पूरणात्पूरकं मतम्॥ २३

न मुञ्चति न गृह्णाति वायुमन्तर्बहिः स्थितम्।
सम्पूर्णं कुम्भवत्तिष्ठेदचलः स तु कुम्भकः॥ २४

रेचकाद्यं त्रयमिदं न द्रुतं न विलम्बितम्।
तद्यतः क्रमयोगेन त्वभ्यसेद्योगसाधकः॥ २५

नासिकाके एक छिद्रको दबाकर या बन्द करके दूसरेसे उदरस्थित वायुको बाहर निकाले। इस क्रियाको रेचक कहा गया है। फिर दूसरे नासिका-छिद्रके द्वारा बाह्य वायुसे शरीरको धौंकनीकी भाँति भर ले। इसमें वायुके पूरणकी क्रिया होनेके कारण इसे 'पूरक' कहा गया है। जब साधक भीतरकी वायुको न तो छोड़ता है और न बाहरकी वायुको ग्रहण करता है, केवल भरे हुए घड़ेकी भाँति अविचलभावसे स्थित रहता है, तब उस प्राणायामको 'कुम्भक' नाम दिया जाता है। योगके साधकको चाहिये कि वह रेचक आदि तीनों प्राणायामोंको न तो बहुत जल्दी-जल्दी करे और न बहुत देरसे करे। साधनाके लिये उद्यत हो क्रमयोगसे उसका अभ्यास करे॥ २२—२५॥

रेचकादिषु योऽभ्यासो नाडीशोधनपूर्वकः।
स्वेच्छोत्क्रमणपर्यन्तः प्रोक्तो योगानुशासने॥ २६

कन्यकादिक्रमवशात् प्राणायामनिरोधनम्।
तच्चतुर्द्धोपदिष्टं स्यान्मात्रागुणविभागतः॥ २७

रेचक आदिमें नाड़ीशोधनपूर्वक जो प्राणायामका अभ्यास किया जाता है, उसे स्वेच्छासे उत्क्रमणपर्यन्त करते रहना चाहिये—यह बात योगशास्त्रमें बतायी गयी है। कनिष्ठ आदिके क्रमसे प्राणायाम चार प्रकारका कहा गया है। मात्रा और गुणोंके विभाग—तारतम्यसे ये भेद बनते हैं॥ २६-२७॥

कन्यकस्तु चतुर्द्धा स्यात्स च द्वादशमात्रकः।
मध्यमस्तु द्विरुद्धातश्चतुर्विंशतिमात्रकः॥ २८

उत्तमस्तु त्रिरुद्धातः षड्विंशन् मात्रकः परः।
स्वेदकंपादिजनकः प्राणायामस्तदुत्तरः॥ २९

चार भेदोंमेंसे जो कन्यक या कनिष्ठ प्राणायाम है, यह प्रथम उद्घात[1] कहा गया है; इसमें बारह मात्राएँ होती हैं। मध्यम प्राणायाम द्वितीय उद्घात है, उसमें चौबीस मात्राएँ होती हैं। उत्तम श्रेणीका प्राणायाम तृतीय उद्घात है, उसमें छत्तीस मात्राएँ होती हैं। उससे भी श्रेष्ठ जो सर्वोत्कृष्ट चतुर्थ[2] प्राणायाम है, वह शरीरमें स्वेद और कम्प आदिका जनक होता है॥ २८-२९॥

१-उद्घातका अर्थ नाभिमूलसे प्रेरणा की हुई वायुका सिरमें टक्कर खाना है। यह प्राणायाममें देश, काल और संख्याका परिमाण है।

२-योगसूत्रमें चतुर्थ प्राणायामका परिचय इस प्रकार दिया गया है—'बाह्यान्तरविषयाक्षेपी चतुर्थः' अर्थात् बाह्य और आभ्यन्तर विषयोंको फेंकनेवाला प्राणायाम चौथा है।

आनन्दोद्भवरोमाञ्चनेत्राश्रूणां विमोचनम्।
जल्पभ्रमणमूर्छाद्यं जायते योगिनः परम्॥ ३०

जानुं प्रदक्षिणीकृत्य न द्रुतं न विलम्बितम्।
अंगुलीस्फोटनं कुर्यात्सा मात्रेति प्रकीर्तिता॥ ३१

मात्रा क्रमेण विज्ञेयाश्चोद्घातक्रमयोगतः।
नाडीविशुद्धिपूर्वं तु प्राणायामं समाचरेत्॥ ३२

योगीके अन्दर आनन्दजनित रोमांच, नेत्रोंसे अश्रुपात, जल्प, भ्रान्ति और मूर्च्छा आदि भाव प्रकट होते हैं। घुटनेके चारों ओर प्रदक्षिण-क्रमसे न बहुत जल्दी और न बहुत धीरे-धीरे चुटकी बजाये। घुटनेकी एक परिक्रमामें जितनी देरतक चुटकी बजती है, उस समयका मान एक मात्रा है। मात्राओंको क्रमशः जानना चाहिये। उद्घात क्रम-योगसे नाड़ीशोधनपूर्वक प्राणायाम करना चाहिये॥ ३०—३२॥

अगर्भश्च सगर्भश्च प्राणायामो द्विधा स्मृतः।
जपं ध्यानं विनागर्भः सगर्भस्तत्समन्वयात्॥ ३३

अगर्भाद्गर्भसंयुक्तः प्राणायामः शताधिकः।
तस्मात्सगर्भं कुर्वन्ति योगिनः प्राणसंयमम्॥ ३४

प्राणस्य विजयादेव जीयन्ते देहवायवः।

प्राणायामके दो भेद बताये गये हैं—अगर्भ और सगर्भ। जप और ध्यानके बिना किया गया प्राणायाम 'अगर्भ' कहलाता है और जप तथा ध्यानके सहयोग-पूर्वक किये जानेवाले प्राणायामको 'सगर्भ' कहते हैं। अगर्भसे सगर्भ प्राणायाम सौ गुना अधिक उत्तम है। इसलिये योगीजन प्रायः सगर्भ प्राणायाम किया करते हैं। प्राणविजयसे ही शरीरकी वायुओंपर विजय पायी जाती है॥ ३३-३४१/२॥

प्राणोऽपानः समानश्च ह्युदानो व्यान एव च॥ ३५

नागः कूर्मश्च कृकलो देवदत्तो धनञ्जयः।
प्रयाणं कुरुते यस्मात्तस्मात्प्राणोऽभिधीयते॥ ३६

अवाङ्नयत्यपानाख्यो यदाहारादि भुज्यते।
व्यानो व्यान शयत्यङ्गान्यशेषाणि विवर्धयन्॥ ३७

उद्वेजयति मर्माणीत्युदानो वायुरीरितः।
समं नयति सर्वाङ्गं समानस्तेन गीयते॥ ३८

प्राण, अपान, समान, उदान, व्यान, नाग, कूर्म, कृकल, देवदत्त और धनंजय—ये दस प्राणवायु हैं। प्राण प्रयाण करता है, इसीलिये उसे 'प्राण' कहते हैं। जो कुछ भोजन किया जाता है, उसे जो वायु नीचे ले जाती है, उसको 'अपान' कहते हैं। जो वायु सम्पूर्ण अंगोंको बढ़ाती हुई उनमें व्याप्त रहती है, उसका नाम 'व्यान' है। जो वायु मर्मस्थानोंको उद्वेजित करती है, उसकी 'उदान' संज्ञा है। जो वायु सब अंगोंको समभावसे ले चलती है, वह अपने उस समनयनरूप कर्मसे 'समान' कहलाती है॥ ३५—३८॥

उद्गारे नाग आख्यातः कूर्म उन्मीलने स्थितः।
कृकलः क्षवथौ ज्ञेयो देवदत्तो विजृम्भणे॥ ३९

न जहाति मृतं चापि सर्वव्यापी धनञ्जयः।
क्रमेणाभ्यस्यमानोऽयं प्राणायामः प्रमाणवान्॥ ४०

र्दहत्यखिलं दोषं कर्तुर्देहं च रक्षति।

मुखसे कुछ उगलनेमें कारणभूत वायुको 'नाग' कहा गया है। आँख खोलनेके व्यापारमें 'कूर्म' नामक वायुकी स्थिति है। छींकमें 'कृकल' और जँभाईमें 'देवदत्त' नामक वायुकी स्थिति है। 'धनंजय' नामक वायु सम्पूर्ण शरीरमें व्याप्त रहती है। वह मृतक शरीरको भी नहीं छोड़ती। क्रमसे अभ्यासमें लाया हुआ यह प्राणायाम जब उचित प्रमाण या मात्रासे युक्त हो जाता है, तब वह कर्ताके सारे दोषोंको दग्ध कर देता है और उसके शरीरकी रक्षा करता है॥ ३९—४०१/२॥

प्राणे तु विजिते सम्यक् तच्चिह्नान्युपलक्षयेत्॥ ४१

विण्मूत्रश्लेष्मणां तावदल्पभावः प्रजायते।
बहुभोजनसामर्थ्यं चिरादुच्छ्वासनं तथा॥ ४२

लघुत्वं शीघ्रगामित्वमुत्साहः स्वरसौष्ठवम्।
सर्वरोगक्षयश्चैव बलं तेजः सुरूपता॥ ४३
धृतिर्मेधा युवत्वं च स्थिरता च प्रसन्नता।
तपांसि पापक्षयता यज्ञदानव्रतादयः॥ ४४
प्राणायामस्य तस्यैते कलां नार्हन्ति षोडशीम्।

इन्द्रियाणि प्रसक्तानि यथास्वं विषयेष्विह॥ ४५

आहत्य यन्निगृह्णाति स प्रत्याहार उच्यते।
मनःपूर्वाणीन्द्रियाणि स्वर्गं नरकमेव च॥ ४६

निगृहीतनिसृष्टानि स्वर्गाय नरकाय च।
तस्मात्सुखार्थी मतिमान् ज्ञानवैराग्यमास्थितः॥ ४७

इन्द्रियाश्वान्निगृह्याशु स्वात्मनात्मानमुद्धरेत्।

धारणा नाम चित्तस्य स्थानबन्धः समासतः॥ ४८

स्थानं च शिव एवैको नान्यद्दोषत्रयं यतः।
कालं कं चावधीकृत्य स्थानेऽवस्थापितं मनः॥ ४९

न तु प्रच्यवते लक्ष्याद्धारणा स्यान्न चान्यथा।
मनसः प्रथमं स्थैर्यं धारणातः प्रजायते॥ ५०

तस्माद्धीरं मनः कुर्याद्धारणाभ्यासयोगतः।

ध्यै चिन्तायां स्मृतो धातुः शिवचिन्ता मुहुर्मुहुः॥ ५१

अव्याक्षिप्तेन मनसा ध्यानं नाम तदुच्यते।

प्राणपर विजय प्राप्त हो जाय तो उससे प्रकट होनेवाले चिह्नोंको अच्छी तरह देखे। पहली बात यह होती है कि विष्ठा, मूत्र और कफकी मात्रा घटने लगती है, अधिक भोजन करनेकी शक्ति हो जाती है और विलम्बसे साँस चलती है। शरीरमें हलकापन आता है। शीघ्र चलनेकी शक्ति प्रकट होती है। हृदयमें उत्साह बढ़ता है। स्वरमें मिठास आती है। समस्त रोगोंका नाश हो जाता है। बल, तेज और सौन्दर्यकी वृद्धि होती है॥ ४१—४३॥

धृति, मेधा, युवापन, स्थिरता और प्रसन्नता आती है। तप, प्रायश्चित्त, यज्ञ, दान और व्रत आदि जितने भी साधन हैं—ये प्राणायामकी सोलहवीं कलाके भी बराबर नहीं हैं॥ ४४१/२॥

अपने-अपने विषयमें आसक्त हुई इन्द्रियोंको वहाँसे हटाकर जो अपने भीतर निगृहीत करता है, उस साधनको 'प्रत्याहार' कहते हैं। मन और इन्द्रियाँ ही मनुष्यको स्वर्ग तथा नरकमें ले जानेवाली हैं। [यदि उन्हें वशमें रखा जाय तो वे स्वर्गकी प्राप्ति कराती हैं और विषयोंकी ओर खुली छोड़ दिया जाय तो वे नरकमें डालनेवाली होती हैं।] इसलिये सुखकी इच्छा रखनेवाले बुद्धिमान् पुरुषको चाहिये कि वह ज्ञान-वैराग्यका आश्रय ले इन्द्रियरूपी अश्वोंको शीघ्र ही काबूमें करके स्वयं ही आत्माका उद्धार करे॥ ४५—४७१/२॥

चित्तको किसी स्थान-विशेषमें बाँधना—किसी ध्येय-विशेषमें स्थिर करना—यही संक्षेपसे 'धारणा' का स्वरूप है। एकमात्र शिव ही स्थान हैं, दूसरा नहीं; क्योंकि दूसरे स्थानोंमें त्रिविध दोष विद्यमान हैं। किसी नियमित कालतक स्थानस्वरूप शिवमें स्थापित हुआ मन जब लक्ष्यसे च्युत न हो तो धारणाकी सिद्धि समझना चाहिये, अन्यथा नहीं। मन पहले धारणासे ही स्थिर होता है, इसलिये धारणाके अभ्याससे मनको धीर बनाये॥ ४८—५०१/२॥

[अब ध्यानकी व्याख्या करते हैं।] ध्यानमें 'ध्यै चिन्तायाम्' यह धातु मानी गयी है। [इसी धातुसे ल्युट् प्रत्यय करनेपर 'ध्यान' की सिद्धि होती है;] अतः विक्षेपरहित चित्तसे जो शिवका बारंबार चिन्तन

ध्येयावस्थितचित्तस्य सदृशः प्रत्ययश्च यः॥ ५२
प्रत्ययान्तरनिर्मुक्तः प्रवाहो ध्यानमुच्यते।
सर्वमन्यत्परित्यज्य शिव एव शिवंकरः॥ ५३
परो ध्येयोऽधिदेवेशः समाप्ताथर्वणी श्रुतिः।

किया जाता है, उसीका नाम 'ध्यान' है। ध्येयमें स्थित हुए चित्तकी जो ध्येयाकार वृत्ति होती है और बीचमें दूसरी वृत्ति अन्तर नहीं डालती; उस ध्येयाकार वृत्तिका प्रवाहरूपसे बना रहना 'ध्यान' कहलाता है। दूसरी सब वस्तुओंको छोड़कर केवल कल्याणकारी परमदेव देवेश्वर शिवका ही ध्यान करना चाहिये। वे ही सबके परम ध्येय हैं। यह अथर्ववेदकी श्रुतिका अन्तिम निर्णय है॥ ५१—५३½॥

तथा शिवा परा ध्येया सर्वभूतगतौ शिवौ॥ ५४
तौ श्रुतौ स्मृतिशास्त्रेभ्यः सर्वगौ सर्वदोदितौ।
सर्वज्ञौ सततं ध्येयौ नानारूपविभेदतः॥ ५५

इसी प्रकार शिवादेवी भी परम ध्येय हैं। ये दोनों शिवा और शिव सम्पूर्ण भूतोंमें व्याप्त हैं। श्रुति, स्मृति एवं शास्त्रोंसे यह सुना गया है कि शिवा और शिव सर्वव्यापक, सर्वदा उदित, सर्वज्ञ एवं नाना रूपोंमें निरन्तर ध्यान करनेयोग्य हैं॥ ५४-५५॥

विमुक्तिः प्रत्ययः पूर्वः प्रत्ययश्चाणिमादिकम्।
इत्येतद् द्विविधं ज्ञेयं ध्यानस्यास्य प्रयोजनम्॥ ५६
ध्याता ध्यानं तथा ध्येयं यच्च ध्यानप्रयोजनम्।
एतच्चतुष्टयं ज्ञात्वा योगं युञ्जीत योगवित्॥ ५७
ज्ञानवैराग्यसम्पन्नः श्रद्दधानः क्षमान्वितः।
निर्ममश्च सदोत्साही ध्यातेत्थं पुरुषः स्मृतः॥ ५८

इस ध्यानके दो प्रयोजन जानने चाहिये। पहला है मोक्ष और दूसरा प्रयोजन है अणिमा आदि सिद्धियोंकी उपलब्धि। ध्याता, ध्यान, ध्येय और ध्यान-प्रयोजन—इन चारोंको अच्छी तरह जानकर योगवेत्ता पुरुष योगका अभ्यास करे। जो ज्ञान और वैराग्यसे सम्पन्न, श्रद्धालु, क्षमाशील, ममतारहित तथा सदा उत्साह रखनेवाला है, ऐसा ही पुरुष ध्याता कहा गया है अर्थात् वही ध्यान करनेमें सफल हो सकता है॥ ५६—५८॥

जपाच्छ्रान्तः पुनर्ध्यायेद्ध्यानाच्छ्रान्तः पुनर्जपेत्।
जपध्यानाभियुक्तस्य क्षिप्रं योगः प्रसिद्ध्यति॥ ५९
धारणा द्वादशायामा ध्यानं द्वादशधारणम्।
ध्यानद्वादशकं यावत्समाधिरभिधीयते॥ ६०
समाधिर्नाम योगाङ्गमन्तिमं परिकीर्तितम्।
समाधिना च सर्वत्र प्रज्ञालोकः प्रवर्तते॥ ६१

साधकको चाहिये कि वह जपसे थकनेपर फिर ध्यान करे और ध्यानसे थक जानेपर पुनः जप करे। इस तरह जप और ध्यानमें लगे हुए पुरुषका योग जल्दी सिद्ध होता है। बारह प्राणायामोंकी एक धारणा होती है, बारह धारणाओंका ध्यान होता है और बारह ध्यानकी एक समाधि कही गयी है। समाधिको योगका अन्तिम अंग कहा गया है। समाधिसे सर्वत्र बुद्धिका प्रकाश फैलता है॥ ५९—६१॥

यदर्थमात्रनिर्भासं स्तिमितोदधिवत्स्थितम्।
स्वरूपशून्यवद्ध्यानं समाधिरभिधीयते॥ ६२
ध्येये मनः समावेश्य पश्येदपि च सुस्थिरम्।
निर्वाणानलवद्योगी समाधिस्थः प्रगीयते॥ ६३

जिस ध्यानमें केवल ध्येय ही अर्थरूपसे भासता है, ध्याता निश्चल महासागरके समान स्थिरभावसे स्थित रहता है और ध्यानस्वरूपसे शून्य-सा हो जाता है, उसे 'समाधि' कहते हैं। जो योगी ध्येयमें चित्तको लगाकर सुस्थिरभावसे उसे देखता है और बुझी हुई आगके समान शान्त रहता है, वह 'समाधिस्थ' कहलाता है॥ ६२-६३॥

न शृणोति न चाघ्राति न जल्पति न पश्यति।
न च स्पर्शं विजानाति न संकल्पयते मनः॥ ६४

न वाभिमन्यते किञ्चिद् बध्यते न च काष्ठवत्।
एवं शिवे विलीनात्मा समाधिस्थ इहोच्यते॥ ६५

वह न सुनता है, न सूँघता है, न बोलता है, न देखता है, न स्पर्शका अनुभव करता है, न मनसे संकल्प-विकल्प करता है, न उसमें अभिमानकी वृत्तिका उदय होता है और न वह बुद्धिके द्वारा ही कुछ समझता है। केवल काष्ठकी भाँति स्थित रहता है। इस तरह शिवमें लीनचित्त हुए योगीको यहाँ समाधिस्थ कहा जाता है॥ ६४-६५॥

यथा दीपो निवातस्थः स्पन्दते न कदाचन।
तथा समाधिनिष्ठोऽपि तस्मान्न विचलेत्सुधीः॥ ६६

एवमभ्यसतश्चारं योगिनो योगमुत्तमम्।
तदन्तराया नश्यन्ति विघ्नाः सर्वे शनैः शनैः॥ ६७

जैसे वायुरहित स्थानमें रखा हुआ दीपक कभी हिलता नहीं है—निःस्पन्द बना रहता है, उसी तरह समाधिनिष्ठ शुद्ध चित्त योगी भी उस समाधिसे कभी विचलित नहीं होता—सुस्थिरभावसे स्थिर रहता है। इस प्रकार उत्तम योगका अभ्यास करनेवाले योगीके सारे अन्तराय शीघ्र नष्ट हो जाते हैं और सम्पूर्ण विघ्न भी धीरे-धीरे दूर हो जाते हैं॥ ६६-६७॥

इति श्रीशिवमहापुराणे सप्तम्यां वायवीयसंहितायां वायुनैमिषेयर्षिसंवादे उत्तरखण्डे योगगतिवर्णनं नाम सप्तत्रिंशोऽध्यायः॥ ३७॥

॥ इस प्रकार श्रीशिवमहापुराणके अन्तर्गत सातवीं वायवीयसंहिताके उत्तरखण्डमें वायु और नैमिषीय ऋषियोंके संवादमें योगगतिवर्णन नामक सैंतीसवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ ३७॥

अथाष्टत्रिंशोऽध्यायः

योगमार्गके विघ्न, सिद्धि-सूचक उपसर्ग तथा पृथ्वीसे लेकर बुद्धितत्त्वपर्यन्त ऐश्वर्यगुणोंका वर्णन, शिव-शिवाके ध्यानकी महिमा

उपमन्युरुवाच

आलस्यं व्याधयस्तीव्राः प्रमादः स्थानसंशयः।
अनवस्थितचित्तत्वमश्रद्धा भ्रान्तिदर्शनम्॥ १
दुःखानि दौर्मनस्यं च विषयेषु च लोलता।
दशैते युञ्जतां पुंसामन्तरायाः प्रकीर्तिताः॥ २

उपमन्यु कहते हैं—श्रीकृष्ण ! आलस्य, तीक्ष्ण व्याधियाँ, प्रमाद, स्थान-संशय, अनवस्थितचित्तता, अश्रद्धा, भ्रान्ति-दर्शन, दुःख, दौर्मनस्य और विषय-लोलुपता—ये दस योगसाधनमें लगे हुए पुरुषोंके लिये योगमार्गके विघ्न कहे गये हैं*॥ १-२॥

आलस्यमलसत्वं तु योगिनां देहचेतसोः।
धातुवैषम्यजा दोषा व्याधयः कर्मदोषजाः॥ ३

योगियोंके शरीर और चित्तमें जो अलसताका भाव आता है, उसीको यहाँ 'आलस्य' कहा गया है। वात, पित्त और कफ—इन धातुओंकी विषमतासे जो दोष उत्पन्न होते हैं, उन्हींको 'व्याधि' कहते हैं।

* योगदर्शन, समाधिपादके ३०वें सूत्रमें नौ प्रकारके चित्तविक्षेपोंको योगका अन्तराय बताया गया है और ३१ वें सूत्रमें पाँच 'विक्षेपसहभू' संज्ञक विघ्न अथवा प्रतिबन्धक कहे गये हैं। किंतु यहाँ शिवपुराणमें दस प्रकारके अन्तराय बताये गये हैं। इनमें योगदर्शनकथित 'अलब्धभूमिकत्व' को छोड़ दिया गया है और 'विक्षेपसहभू' में परिगणित दुःख और दौर्मनस्यको सम्मिलित कर लिया गया है। योगसूत्रमें 'स्त्यान और संशय—ये दो पृथक्-पृथक् अन्तराय' हैं और यहाँ 'स्थान-संशय' नामसे एक ही अन्तराय माना गया है; साथ ही इस पुराणमें 'अश्रद्धा' को भी एक अन्तरायके रूपमें गिना गया है।

प्रमादो नाम योगस्य साधना नाम भावना।
इदं वेत्युभयाक्रान्तं विज्ञानं स्थानसंशयः ॥ ४

अप्रतिष्ठा हि मनसस्त्वनवस्थितिरुच्यते।
अश्रद्धा भावरहिता वृत्तिर्वै योगवर्त्मनि ॥ ५

कर्मदोषसे इन व्याधियोंकी उत्पत्ति होती है। असावधानीके कारण योगके साधनोंका न हो पाना 'प्रमाद' है। 'यह है या नहीं है' इस प्रकार उभयकोटिसे आक्रान्त हुए ज्ञानका नाम 'स्थान-संशय' है। मनका कहीं स्थिर न होना ही अनवस्थितचित्तता (चित्तकी अस्थिरता) है। योगमार्गमें भावरहित (अनुरागशून्य) जो मनकी वृत्ति है, उसीको 'अश्रद्धा' कहा गया है ॥ ३—५ ॥

विपर्यस्ता मतिर्या सा भ्रान्तिरित्यभिधीयते।
दुःखमज्ञानजं पुंसां चित्तस्याध्यात्मिकं विदुः ॥ ६

आधिभौतिकमङ्गोत्थं यच्च दुःखं पुरा कृतैः।
आधिदैविकमाख्यातमशन्यस्त्रविषादिकम् ॥ ७

इच्छाविघातजं क्षोभं दौर्मनस्यं प्रचक्षते।
विषयेषु विचित्रेषु विभ्रमस्तत्र लोलता ॥ ८

विपरीतभावनासे युक्त बुद्धिको 'भ्रान्ति' कहते हैं। ['दुःख' कहते हैं कष्टको, उसके तीन भेद हैं—आध्यात्मिक, आधिभौतिक और आधिदैविक।] मनुष्योंके चित्तका जो अज्ञानजनित दुःख है, उसे आध्यात्मिक दुःख समझना चाहिये। पूर्वकृत कर्मोंके परिणामसे शरीरमें जो रोग आदि उत्पन्न होते हैं, उन्हें आधिभौतिक दुःख कहा गया है। विद्युत्पात, अस्त्र-शस्त्र और विष आदिसे जो कष्ट प्राप्त होता है, उसे आधिदैविक दुःख कहते हैं। इच्छापर आघात पहुँचनेसे मनमें जो क्षोभ होता है, उसीका नाम है 'दौर्मनस्य'। विचित्र विषयोंमें जो सुखका भ्रम है, वही 'विषयलोलुपता' है ॥ ६—८ ॥

शान्तेष्वेतेषु विघ्नेषु योगासक्तस्य योगिनः।
उपसर्गाः प्रवर्तन्ते दिव्यास्ते सिद्धिसूचकाः ॥ ९

प्रतिभा श्रवणं वार्ता दर्शनास्वादवेदनाः।
उपसर्गाः षडित्येते व्यये योगस्य सिद्धयः ॥ १०

योगपरायण योगीके इन विघ्नोंके शान्त हो जानेपर जो 'दिव्य उपसर्ग' (विघ्न) प्राप्त होते हैं, वे सिद्धिके सूचक हैं। प्रतिभा, श्रवण, वार्ता, दर्शन, आस्वाद और वेदना—ये छः प्रकारकी सिद्धियाँ ही 'उपसर्ग' कहलाती हैं, जो योगशक्तिके अपव्ययमें कारण होती हैं ॥ ९-१० ॥

सूक्ष्मे व्यवहितेऽतीते विप्रकृष्टे त्वनागते।
प्रतिभा कथ्यते योऽर्थे प्रतिभासो यथातथम् ॥ ११

श्रवणं सर्वशब्दानां श्रवणे चाप्रयत्नतः।
वार्त्ता वार्त्तासु विज्ञानं सर्वेषामेव देहिनाम् ॥ १२

दर्शनं नाम दिव्यानां दर्शनं चाप्रयत्नतः।
तथास्वादश्च दिव्येषु रसेष्वास्वाद उच्यते ॥ १३

स्पर्शनाधिगमस्तद्वद् वेदना नाम विश्रुता।
गन्धादीनां च दिव्यानामाब्रह्मभुवनाधिपाः ॥ १४

जो पदार्थ अत्यन्त सूक्ष्म हो, किसीकी ओटमें हो, भूतकालमें रहा हो, बहुत दूर हो अथवा भविष्यमें होनेवाला हो, उसका ठीक-ठीक प्रतिभास (ज्ञान) हो जाना 'प्रतिभा' कहलाता है। सुननेका प्रयत्न न करनेपर भी सम्पूर्ण शब्दोंका सुनायी देना 'श्रवण' कहा गया है। समस्त देहधारियोंकी बातोंको समझ लेना 'वार्ता' है। दिव्य पदार्थोंका बिना किसी प्रयत्नके दिखायी देना 'दर्शन' कहा गया है, दिव्य रसोंका स्वाद प्राप्त होना 'आस्वाद' कहलाता है, अन्तःकरणके द्वारा दिव्य स्पर्शोंका तथा ब्रह्मलोकतकके गन्धादि दिव्य भोगोंका अनुभव 'वेदना' नामसे विख्यात है ॥ ११—१४ ॥

संतिष्ठन्ते च रत्नानि प्रयच्छन्ति बहूनि च।
स्वच्छन्दमधुरा वाणी विविधा स्यात्प्रवर्तते॥ १५

रसायनानि सर्वाणि दिव्याश्चौषधयस्तथा।
सिध्यन्ति प्रणिपत्यैनं दिशंति सुरयोषितः॥ १६

योगसिद्ध्येकदेशेऽपि दृष्टे मोक्षे भवेन्मतिः।
दृष्टमेतन्मया यद्वत् तद्वन्मोक्षो भवेदिति॥ १७

कृशता स्थूलता बाल्यं वार्द्धक्यं चैव यौवनम्।
नानाजातिस्वरूपं च चतुर्णां देहधारणम्॥ १८

पार्थिवांशं विना नित्यं सुरभिर्गन्धसंग्रहः।
एवमष्टगुणं प्राहुः पैशाचं पार्थिवं पदम्॥ १९

जले निवसनं चैव भूम्यामेवं विनिर्गमः।
इच्छेच्छक्तः स्वयं पातुं समुद्रमपि नातुरः॥ २०

यत्रेच्छति जगत्यस्मिंस्तत्रैव जलदर्शनम्।
विना कुम्भादिकं पाणौ जलसञ्चयधारणम्॥ २१

यद्वस्तु विरसञ्चापि भोक्तुमिच्छति तत्क्षणात्।
रसादिकं भवेच्चान्यत् त्रयाणां देहधारणम्॥ २२

निर्व्रणत्वं शरीरस्य पार्थिवैश्च समन्वितम्।
तदिदं षोडशगुणमाप्यमैश्वर्यमद्भुतम्॥ २३

शरीरादग्निनिर्माणं तत्तापभयवर्जनम्।
शक्तिर्जगदिदं दग्धुं यदीच्छेदप्रयत्नतः॥ २४

स्थापनं वानलस्याऽप्सु पाणौ पावकधारणम्।
दग्धे सर्गे यथापूर्वं मुखे चान्नादिपाचनम्।
द्वाभ्यां देहविनिर्माणमाप्यैश्वर्यसमन्वितम्॥ २५

एतच्चतुर्विंशतिधा तैजसं परिचक्षते।

सिद्ध योगीके पास स्वयं ही रत्न उपस्थित हो जाते हैं और बहुत-सी वस्तुएँ प्रदान करते हैं। मुखसे इच्छानुसार नाना प्रकारकी मधुर वाणी निकलती है। सब प्रकारके रसायन और दिव्य ओषधियाँ सिद्ध हो जाती हैं। देवांगनाएँ इस योगीको प्रणाम करके [मनोवांछित वस्तुएँ] देती हैं। यह मैंने जैसे देखा या अनुभव किया है, तदनुसार योगसिद्धिके एकदेशका भी साक्षात्कार हो जाय तो मोक्षमें मन लग जाता है अर्थात् मोक्ष भी हो सकता है॥ १५—१७॥

कृशता, स्थूलता, बाल्यावस्था, वृद्धावस्था, युवावस्था, नाना जातिका स्वरूप; पृथ्वी, जल, अग्नि और वायु—इन चार तत्त्वोंके शरीरको धारण करना, नित्य अपार्थिव एवं मनोहर गन्धको ग्रहण करना—ये पार्थिव ऐश्वर्यके आठ गुण बताये गये हैं॥ १८-१९॥

जलमें निवास करना, पृथ्वीपर ही जलका निकल आना, इच्छा करते ही बिना किसी आतुरताके स्वयं समुद्रको भी पी जानेमें समर्थ होना, इस संसारमें जहाँ चाहे वहीं जलका दर्शन होना, घड़ा आदिके बिना हाथमें ही जलराशिको धारण करना, जिस विरस वस्तुको भी खानेकी इच्छा हो, उसका तत्काल सरस हो जाना, जल, तेज और वायु—इन तीन तत्त्वोंके शरीरको धारण करना तथा देहका फोड़े, फुंसी और घाव आदिसे रहित होना—पार्थिव ऐश्वर्यके आठ गुणोंको मिलाकर ये सोलह जलीय ऐश्वर्यके अद्भुत गुण हैं॥ २०—२३॥

शरीरसे अग्निको प्रकट करना, अग्निके तापसे जलनेका भय दूर हो जाना, यदि इच्छा हो तो बिना किसी प्रयत्नके इस जगत्को जलाकर भस्म कर देनेकी शक्तिका होना, पानीके ऊपर अग्निको स्थापित कर देना, हाथमें आग धारण करना, सृष्टिको जलाकर फिर उसे ज्यों-का-त्यों कर देनेकी क्षमताका होना, मुखमें ही अन्न आदिको पचा लेना तथा तेज और वायु—दो ही तत्त्वोंसे शरीरको रच लेना—ये आठ गुण जलीय ऐश्वर्यके उपर्युक्त सोलह गुणोंके साथ चौबीस होते हैं। ये चौबीस तैजस ऐश्वर्यके गुण कहे गये हैं॥ २४-२५१/२॥

मनोजवत्वं भूतानां क्षणादन्तः प्रवेशनम्॥ २६

पर्वतादिमहाभारधारणं चाप्रयत्नतः।
गुरुत्वं च लघुत्वं च पाणावनिलधारणम्॥ २७

अंगुल्यग्रनिपाताद्यैर्भूमेरपि च कम्पनम्।
एकेन देहनिष्पत्तिर्युक्तं भोगैश्च तेजसैः॥ २८

द्वात्रिंशद्गुणमैश्वर्यं मारुतं कवयो विदुः।

छायाहीनविनिष्पत्तिरिन्द्रियाणामदर्शनम् ॥ २९

खेचरत्वं यथाकाममिन्द्रियार्थसमन्वयः।
आकाशलंघनं चैव स्वदेहे तन्निवेशनम्॥ ३०

आकाशपिण्डीकरणमशरीरत्वमेव च।
अनिलैश्वर्यसंयुक्तं चत्वारिंशद्गुणं महत्॥ ३१

ऐन्द्रमैश्वर्यमाख्यातमाम्बरं तत्प्रचक्षते।

यथाकामोपलब्धिश्च यथाकामविनिर्गमः॥ ३२

सर्वस्याभिभवश्चैव सर्वगुह्यार्थदर्शनम्।
कर्मानुरूपनिर्माणं वशित्वं प्रियदर्शनम्॥ ३३

संसारदर्शनं चैव भोगैरैन्द्रैः समन्वितम्।
एतच्चान्द्रमसैश्वर्यं मानसं गुणतोऽधिकम्॥ ३४

छेदनं ताडनं चैव बंधनं मोचनं तथा।
ग्रहणं सर्वभूतानां संसारवशवर्तिनाम्॥ ३५

प्रसादश्चापि सर्वेषां मृत्युकालजयस्तथा।
आभिमानिकमैश्वर्यं प्राजापत्यं प्रचक्षते॥ ३६

मनके समान वेगशाली होना, प्राणियोंके भीतर क्षणभरमें प्रवेश कर जाना, बिना प्रयत्नके ही पर्वत आदिके महान् भारको उठा लेना, भारी हो जाना, हलका होना, हाथमें वायुको पकड़ लेना, अंगुलिके अग्रभागकी चोटसे भूमिको भी कम्पित कर देना, एकमात्र वायुतत्त्वसे ही शरीरका निर्माण कर लेना—ये आठ गुण तैजस ऐश्वर्यके चौबीस गुणोंके साथ बत्तीस हो जाते हैं। विद्वानोंने वायुसम्बन्धी ऐश्वर्यके ये ही बत्तीस गुण स्वीकार किये हैं॥ २६—२८½॥

शरीरकी छायाका न होना, इन्द्रियोंका दिखायी न देना, आकाशमें इच्छानुसार विचरण करना, इन्द्रियोंके सम्पूर्ण विषयोंका समन्वय होना—आकाशको लाँघना, अपने शरीरमें उसका निवेश करना, आकाशको पिण्डकी भाँति ठोस बना देना और निराकार होना—ये आठ गुण अग्निके बत्तीस गुणोंसे मिलकर चालीस होते हैं। ये चालीस ही वायुसम्बन्धी ऐश्वर्यके गुण हैं। यही सम्पूर्ण इन्द्रियोंका ऐश्वर्य है, इसीको 'ऐन्द्र' एवं 'आम्बर' (आकाशसम्बन्धी) ऐश्वर्य भी कहते हैं॥ २९—३१½॥

इच्छानुसार सभी वस्तुओंकी उपलब्धि, जहाँ चाहे वहाँ निकल जाना, सबको अभिभूत कर लेना, सम्पूर्ण गुह्य अर्थका दर्शन होना, कर्मके अनुरूप निर्माण करना, सबको वशमें कर लेना, सदा प्रिय वस्तुका ही दर्शन होना और एक ही स्थानसे सम्पूर्ण संसारका दिखायी देना—ये आठ गुण पूर्वोक्त इन्द्रियसम्बन्धी ऐश्वर्य-गुणोंसे मिलकर अड़तालीस होते हैं। चान्द्रमस ऐश्वर्य इन अड़तालीस गुणोंसे युक्त कहा गया है। यह पहलेके ऐश्वर्योंसे अधिक गुणवाला है। इसे 'मानस ऐश्वर्य' भी कहते हैं॥ ३२—३४॥

छेदना, पीटना, बाँधना, खोलना, संसारके वशमें रहनेवाले समस्त प्राणियोंको ग्रहण करना, सबको प्रसन्न रखना, पाना, मृत्युको जीतना तथा कालपर विजय पाना—ये सब अहंकारसम्बन्धी ऐश्वर्यके अन्तर्गत हैं। आहंकारिक ऐश्वर्यको ही 'प्राजापत्य' भी कहते हैं॥ ३५-३६॥

एतच्चान्द्रमसैर्भोगैः षट्पञ्चाशद्गुणं महत्।
सर्गः संकल्पमात्रेण त्राणं संहरणं तथा॥ ३७

स्वाधिकारश्च सर्वेषां भूतचित्तप्रवर्तनम्।
असादृश्यं च सर्वस्य निर्माणं जगतः पृथक्॥ ३८

शुभाशुभस्य करणं प्राजापत्यैश्च संयुतम्।
चतुःषष्टिगुणं ब्राह्ममैश्वर्यं च प्रचक्षते॥ ३९

चान्द्रमस ऐश्वर्यके गुणोंके साथ इसके आठ गुण मिलकर छप्पन होते हैं। महान् आभिमानिक ऐश्वर्यके ये ही छप्पन गुण हैं। संकल्पमात्रसे सृष्टि-रचना करना, पालन करना, संहार करना, सबके ऊपर अपना अधिकार स्थापित करना, प्राणियोंके चित्तको प्रेरित करना, सबसे अनुपम होना, इस जगत्से पृथक् नये संसारकी रचना कर लेना तथा शुभको अशुभ और अशुभको शुभ कर देना—यह 'बौद्ध ऐश्वर्य' है। प्राजापत्य ऐश्वर्यके गुणोंको मिलाकर इसके चौंसठ गुण होते हैं। इस बौद्ध ऐश्वर्यको ही 'ब्राह्म ऐश्वर्य' भी कहते हैं॥ ३७—३९॥

बौद्धादस्मात्परं गौणमैश्वर्यं प्राकृतं विदुः।
वैष्णवं तत्समाख्यातं तस्यैव भुवनस्थितिः।
ब्रह्मणा तत्पदं सर्वं वक्तुमन्यैर्न शक्यते॥ ४०

तत्पौरुषं च गौणं च गाणेशं पदमैश्वरम्।
विष्णुना तत्पदं किञ्चिज्ज्ञातुमन्यैर्न शक्यते॥ ४१

इससे उत्कृष्ट है गौण ऐश्वर्य, जिसे प्राकृत भी कहते हैं। उसीका नाम 'वैष्णव ऐश्वर्य' है। तीनों लोकोंका पालन उसीके अन्तर्गत है। उस सम्पूर्ण वैष्णव-पदको न तो ब्रह्मा कह सकते हैं और न दूसरे ही उसका पूर्णतया वर्णन कर सकते हैं। उसीको पौरुषपद भी कहते हैं। गौण और पौरुषपदसे उत्कृष्ट गणपतिपद है। उसीको ईश्वरपद भी कहते हैं। उस पदका किंचित् ज्ञान श्रीविष्णुको है। दूसरे लोग उसे नहीं जान सकते॥ ४०-४१॥

विज्ञानसिद्धयश्चैव सर्वा एवौपसर्गिकाः।
निरोद्धव्याः प्रयत्नेन वैराग्येण परेण तु॥ ४२

प्रतिभासेष्वशुद्धेषु गुणेष्वासक्तचेतसः।
न सिध्येत्परमैश्वर्यमभयं सार्वकामिकम्॥ ४३

ये सारी विज्ञान-सिद्धियाँ औपसर्गिक हैं। इन्हें परम वैराग्यद्वारा प्रयत्नपूर्वक रोकना चाहिये। इन अशुद्ध प्रातिभासिक गुणोंमें जिसका चित्त आसक्त है, उसे सम्पूर्ण कामनाओंको पूर्ण करनेवाला निर्भय परम ऐश्वर्य नहीं सिद्ध होता॥ ४२-४३॥

तस्माद्गुणांश्च भोगांश्च देवासुरमहीभृताम्।
तृणवद्यस्त्यजेत्तस्य योगसिद्धिः परा भवेत्॥ ४४

अथवानुग्रहेच्छायां जगतो विचरेन्मुनिः।
यथाकामं गुणान्भोगान्भुक्त्वा मुक्तिं प्रयास्यति॥ ४५

इसलिये देवता, असुर और राजाओंके गुणों तथा भोगोंको जो तृणके समान त्याग देता है, उसे ही उत्कृष्ट योगसिद्धि प्राप्त होती है। अथवा यदि जगत्पर अनुग्रह करनेकी इच्छा हो तो वह योगसिद्ध मुनि इच्छानुसार विचरे। इस जीवनमें गुणों और भोगोंका उपभोग करके अन्तमें उसे मोक्षकी प्राप्ति होगी॥ ४४-४५॥

अथ प्रयोगं योगस्य वक्ष्ये शृणु समाहितः।

शुभे काले शुभे देशे शिवक्षेत्रादिके पुनः।

विजने जन्तुरहिते निःशब्दे बाधवर्जिते॥ ४६

अब मैं योगके प्रयोगका वर्णन करूँगा। एकाग्रचित्त होकर सुनो। शुभ काल हो, शुभ देश हो, भगवान् शिवका क्षेत्र आदि हो, एकान्त स्थान हो, जीव-जन्तु न रहते हों, कोलाहल न होता हो और किसी बाधाकी सम्भावना न हो—ऐसे स्थानमें लिपी-पुती सुन्दर

सुप्रलिप्ते स्थले सौम्ये गन्धधूपादिवासिते।
मुक्तपुष्पसमाकीर्णे वितानादिविचित्रिते॥ ४७

कुशपुष्पसमित्तोयफलमूलसमन्विते।
नाग्न्यभ्याशे जलाभ्याशे शुष्कपर्णचयेऽपि वा॥ ४८

न दंशमशकाकीर्णे सर्पश्वापदसंकुले।
न च दुष्टमृगाकीर्णे न भये दुर्जनावृते॥ ४९

श्मशाने चैत्यवल्मीके जीर्णागारे चतुष्पथे।
नदीनदसमुद्राणां तीरे रथ्यान्तरेऽपि वा॥ ५०

न जीर्णोद्यानगोष्ठादौ नानिष्टे न च निंदिते।

नाजीर्णाम्लरसोद्गारे न च विण्मूत्रदूषिते॥ ५१

न च्छर्द्यामातिसारे वा नातिभुक्तौ श्रमान्विते।
न चातिचिन्ताकुलितो न चातिक्षुत्पिपासितः॥ ५२

नापि स्वगुरुकर्मादौ प्रसक्तो योगमाचरेत्।

युक्ताहारविहारश्च युक्तचेष्टश्च कर्मसु॥ ५३

युक्तनिद्राप्रबोधश्च सर्वायासविवर्जितः।
आसनं मृदुलं रम्यं विपुलं सुसमं शुचि॥ ५४

पद्मकस्वस्तिकादीनामभ्यसेदासनेषु च।
अभिवन्द्य स्वगुर्वन्तानभिवाद्याननुक्रमात्॥ ५५

ऋजुग्रीवशिरोवक्षा नातिष्ठेच्छिलष्टलोचनः।
किञ्चिदुन्नामितशिरा दन्तैर्दन्तान्न संस्पृशेत्॥ ५६

भूमिको गन्ध और धूप आदिसे सुवासित करके वहाँ फूल बिखेर दे, चँदोवा आदि तानकर उसे विचित्र रीतिसे सजा दे तथा वहाँ कुश, पुष्प, समिधा, जल, फल और मूलकी सुविधा हो। [फिर वहाँ योगका अभ्यास करे।] अग्निके निकट, जलके समीप और सूखे पत्तोंके ढेरपर योगाभ्यास नहीं करना चाहिये॥ ४६—४८॥

जहाँ डाँस और मच्छर भरे हों, साँप और हिंसक जन्तुओंकी अधिकता हो, दुष्ट पशु निवास करते हों, भयकी सम्भावना हो तथा जो दुष्टोंसे घिरा हुआ हो—ऐसे स्थानमें भी योगाभ्यास नहीं करना चाहिये। श्मशानमें, चैत्यवृक्षके नीचे, बाँबीके निकट, जीर्ण-शीर्ण घरमें, चौराहेपर, नदी-नद और समुद्रके तटपर, गली या सड़कके बीचमें, उजड़े हुए उद्यानमें, गोष्ठ आदिमें अनिष्टकारी और निन्दित स्थानमें भी योगाभ्यास न करे॥ ४९-५०१/२॥

जब शरीरमें अजीर्णका कष्ट हो, खट्टी डकार आती हो, विष्ठा और मूत्रसे शरीर दूषित हो, सर्दी हुई हो या अतिसार रोगका प्रकोप हो, अधिक भोजन कर लिया गया हो या अधिक परिश्रमके कारण थकावट हुई हो, जब मनुष्य अत्यन्त चिन्तासे व्याकुल हो, अधिक भूख-प्यास सता रही हो तथा जब वह अपने गुरुजनोंके कार्य आदिमें लगा हुआ हो, उस अवस्थामें भी उसे योगाभ्यास नहीं करना चाहिये॥ ५१-५२१/२॥

जिसके आहार-विहार उचित एवं परिमित हों, जो कर्मोंमें यथायोग्य समुचित चेष्टा करता हो तथा जो उचित समयसे सोता और जागता हो एवं सर्वथा आयासरहित हो, उसीको योगाभ्यासमें तत्पर होना चाहिये। आसन मुलायम, सुन्दर, विस्तृत, सब ओरसे बराबर और पवित्र होना चाहिये। पद्मासन और स्वस्तिकासन आदि जो यौगिक आसन हैं, उनपर भी अभ्यास करना चाहिये। अपने आचार्यपर्यन्त गुरुजनोंकी परम्पराको क्रमशः प्रणाम करके अपनी गर्दन, मस्तक और छातीको सीधी रखे। ओठ और नेत्र अधिक सटे हुए न हों। सिर कुछ-कुछ ऊँचा हो। दाँतोंसे दाँतोंका स्पर्श न करे॥ ५३—५६॥

दन्ताग्रसंस्थितां जिह्वामचलां सन्निवेश्य च।
पार्ष्णिभ्यां वृषणौ रक्षंस्तथा प्रजननं पुनः॥ ५७

ऊर्वोरुपरि संस्थाप्य बाहू तिर्यगयत्नतः।
दक्षिणं करपृष्ठं तु न्यस्य वामतलोपरि॥ ५८

उन्नाम्य शनकैः पृष्ठमुरो विष्टभ्य चाग्रतः।
सम्प्रेक्ष्य नासिकाग्रं स्वं दिशश्चानवलोकयन्॥ ५९

सम्भृतप्राणसञ्चारः पाषाण इव निश्चलः।
स्वदेहायतनस्यान्तर्विचिन्त्य शिवमम्बया॥ ६०

हृत्पद्मपीठिकामध्ये ध्यानयज्ञेन पूजयेत्।

मूले नासाग्रतो नाभौ कंठे वा तालुरंध्रयोः॥ ६१

भ्रूमध्ये द्वारदेशे वा ललाटे मूर्ध्नि वा स्मरेत्।
परिकल्प्य यथान्यायं शिवयोः परमासनम्॥ ६२

तत्र सावरणं वापि निरावरणमेव वा।
द्विदले षोडशारे वा द्वादशारे यथाविधि॥ ६३

दशारे वा षडस्रे वा चतुरस्रे शिवं स्मरेत्।
भ्रुवोरन्तरतः पद्मं द्विदलं तडिदुज्ज्वलम्॥ ६४

भ्रूमध्यस्थारविन्दस्य क्रमाद्वै दक्षिणोत्तरे।
विद्युत्समानवर्णे च पर्णे वर्णावसानके॥ ६५

षोडशारस्य पत्राणि स्वराः षोडश तानि वै।
पूर्वादीनि क्रमादेतत्पद्मं कन्दस्य मूलतः॥ ६६

ककारादिठकारान्ता वर्णाः पर्णान्यनुक्रमात्।
भानुवर्णस्य पद्मस्य ध्येयं तद्हृदयान्तरे॥ ६७

दाँतोंके अग्रभागमें स्थित हुई जिह्वाको अविचलभावसे रखते हुए, एड़ियोंसे दोनों अण्डकोशों और प्रजननेन्द्रियकी रक्षापूर्वक दोनों जाँघोंके ऊपर बिना किसी यत्नके अपनी दोनों भुजाओंको रखे। फिर दाहिने हाथके पृष्ठभागको बायें हाथकी हथेलीपर रखकर धीरेसे पीठको ऊँची करे और छातीको आगेकी ओरसे सुस्थिर रखते हुए नासिकाके अग्रभागपर दृष्टि जमाये। अन्य दिशाओंकी ओर दृष्टिपात न करे॥ ५७—५९॥

प्राणका संचार रोककर पाषाणके समान निश्चल हो जाय। अपने शरीरके भीतर मानस-मन्दिरमें हृदय-कमलके आसनपर पार्वतीसहित भगवान् शिवका चिन्तन करके ध्यान-यज्ञके द्वारा उनका पूजन करे॥ ६०१/२॥

मूलाधार चक्रमें, नासिकाके अग्रभागमें, नाभिमें, कण्ठमें, तालुके दोनों छिद्रोंमें, भौंहोंके मध्यभागमें, द्वारदेशमें, ललाटमें या मस्तकमें शिवका चिन्तन करे। शिवा और शिवके लिये यथोचित रीतिसे उत्तम आसनकी कल्पना करके वहाँ सावरण या निरावरण शिवका स्मरण करे। द्विदल, चतुर्दल, षड्दल, दशदल, द्वादशदल अथवा षोडशदल कमलके आसनपर विराजमान शिवका विधिवत् स्मरण करना चाहिये। दोनों भौंहोंके मध्यभागमें द्विदल कमल है, जो विद्युत्के समान प्रकाशमान है॥ ६१—६४॥

भ्रूमध्यमें स्थित जो कमल है, उसके क्रमशः दक्षिण और उत्तर भागमें दो पत्ते हैं, जो विद्युत्के समान दीप्तिमान् हैं। उनमें दो अन्तिम वर्ण 'ह' और 'क्ष' अंकित हैं। षोडशदल कमलके पत्ते सोलह स्वररूप हैं, [जिनमें 'अ' से लेकर 'अः' तकके अक्षर क्रमशः अंकित हैं।] यह जो कमल है, उसकी नालके मूलभागसे बारह दल प्रस्फुटित हुए हैं, जिनमें 'क' से लेकर 'ठ' तकके बारह अक्षर क्रमशः अंकित हैं। सूर्यके समान प्रकाशमान इस कमलके उन द्वादश दलोंका अपने हृदयके भीतर ध्यान करना चाहिये॥ ६५—६७॥

वर्णाः पर्णानि पक्षस्य नाभेरुपरि पृष्ठतः।
गोक्षीरधवलस्योक्ता डादिफान्ता यथाक्रमम्।
अधो दलस्याम्बुजस्य एतस्य च दलानि षट्॥ ६८

विधूमाङ्गारवर्णस्य वर्णा वाद्याश्च लान्तिमाः।

तत्पश्चात् गो-दुग्धके समान उज्ज्वल कमलके दस दलोंका चिन्तन करे। उनमें क्रमशः 'ड' से लेकर 'फ' तकके अक्षर अंकित हैं। इसके बाद नीचेकी ओर दलवाले कमलके छः दल हैं, जिनमें 'ब' से लेकर 'ल' तकके अक्षर अंकित हैं। इस कमलकी कान्ति धूमरहित अंगारके समान है॥ ६८$\frac{1}{2}$ ॥

मूलाधारारविंदस्य हेमाभस्य यथाक्रमम्।
वकारादिसकारान्ता वर्णाः पर्णमयाः स्थिताः॥ ६९

एतेष्वथारविंदेषु यत्रैवाभिरतं मनः।
तत्रैव देवं देवीं च चिन्तयेद्धीरया धिया॥ ७०

मूलाधारमें स्थित जो कमल है, उसकी कान्ति सुवर्णके समान है। उसमें क्रमशः 'व' से लेकर 'स' तकके चार अक्षर चार दलोंके रूपमें स्थित हैं। इन कमलोंमेंसे जिसमें ही अपना मन रमे, उसीमें महादेव और महादेवीका अपनी धीर बुद्धिसे चिन्तन करे॥ ६९-७० ॥

अंगुष्ठमात्रममलं दीप्यमानं समन्ततः।
शुद्धदीपशिखाकारं स्वशक्त्या पूर्णमण्डितम्॥ ७१

इन्दुरेखासमाकारं तारारूपमथापि वा।
नीवारशूकसदृशं बिससूत्राभमेव वा॥ ७२

कदम्बगोलकाकारं तुषारकणिकोपमम्।
क्षित्यादितत्त्वविजयं ध्याता यद्यपि वाञ्छति॥ ७३

तत्तत्तत्त्वाधिपामेव मूर्तिं स्थूलां विचिन्तयेत्।

उनका स्वरूप अँगूठेके बराबर, निर्मल और सब ओरसे दीप्तिमान् है। अथवा वह शुद्ध दीपशिखाके समान आकारवाला है और अपनी शक्तिसे पूर्णतः मण्डित है। अथवा चन्द्रलेखा या ताराके समान रूपवाला है अथवा वह नीवारके सींक या कमलनालसे निकलेवाले सूतके समान है। कदम्बके गोलक या ओसके कणसे भी उसकी उपमा दी जा सकती है। वह रूप पृथिवी आदि तत्त्वोंपर विजय प्राप्त करनेवाला है। ध्यान करनेवाला पुरुष जिस तत्त्वपर विजय पानेकी इच्छा रखता हो, उसी तत्त्वके अधिपतिकी स्थूल मूर्तिका चिन्तन करे॥ ७१—७३$\frac{1}{2}$ ॥

सदाशिवान्ता ब्रह्माद्या भवाद्याश्चाष्टमूर्तयः॥ ७४

शिवस्य मूर्तयः स्थूलाः शिवशास्त्रे विनिश्चिताः।
घोरा मिश्राः प्रशान्ताश्च मूर्तयस्ता मुनीश्वरैः॥ ७५

फलाभिलाषरहितैश्चिन्त्याश्चिन्ताविशारदैः।
घोराश्चेच्चिन्तिताः कुर्युः पापरोगपरिक्षयम्॥ ७६

ब्रह्मासे लेकर सदाशिवपर्यन्त तथा भव आदि आठ मूर्तियाँ ही शिवशास्त्रमें शिवकी स्थूल मूर्तियाँ निश्चित की गयी हैं। मुनीश्वरोंने उन्हें 'घोर', 'शान्त' और 'मिश्र' तीन प्रकारकी बताया है। फलकी आशा न रखनेवाले ध्यानकुशल पुरुषोंको इनका चिन्तन करना चाहिये। यदि घोर मूर्तियोंका चिन्तन किया जाय तो वे शीघ्र ही पाप और रोगका नाश करती हैं॥ ७४—७६ ॥

चिरेण मिश्रे सौम्ये तु न सद्यो न चिरादपि।

मिश्र मूर्तियोंमें शिवका चिन्तन करनेपर चिरकालमें सिद्धि प्राप्त होती है और सौम्यमूर्तिमें शिवका ध्यान किया जाय तो सिद्धि प्राप्त होनेमें न तो अधिक शीघ्रता होती है और न अधिक विलम्ब

सौम्ये मुक्तिर्विशेषेण शान्तिः प्रज्ञा प्रसिध्यति ॥ ७७
सिध्यन्ति सिद्धयश्चात्र क्रमशो नात्र संशयः ॥ ७८

ही। सौम्यमूर्तिमें ध्यान करनेसे विशेषतः मुक्ति, शान्ति एवं शुद्ध बुद्धि प्राप्त होती है। क्रमशः सभी सिद्धियाँ प्राप्त होती हैं, इसमें संशय नहीं है ॥ ७७-७८ ॥

इति श्रीशिवमहापुराणे सप्तम्यां वायवीयसंहितायामुत्तरखण्डे योगगतौ विघ्नोत्पत्तिवर्णनं नामाष्टत्रिंशोऽध्यायः ॥ ३८ ॥

॥ इस प्रकार श्रीशिवमहापुराणके अन्तर्गत सातवीं वायवीयसंहिताके उत्तरखण्डमें योगगतिमें विघ्नोत्पत्तिवर्णन नामक अड़तीसवाँ अध्याय पूर्ण हुआ ॥ ३८ ॥

अथैकोनचत्वारिंशोऽध्यायः

ध्यान और उसकी महिमा, योगधर्म तथा शिवयोगीका महत्त्व, शिवभक्त या शिवके लिये प्राण देने अथवा शिवक्षेत्रमें मरणसे तत्काल मोक्ष-लाभका कथन

उपमन्युरुवाच

श्रीकंठनाथं स्मरतां सद्यः सर्वार्थसिद्धयः।
प्रसिध्यन्तीति मत्वैके तं वै ध्यायन्ति योगिनः॥ १

उपमन्यु कहते हैं—श्रीकृष्ण! श्रीकण्ठनाथका स्मरण करनेवाले लोगोंके सम्पूर्ण मनोरथोंकी सिद्धि तत्काल हो जाती है, ऐसा जानकर कुछ योगी उनका ध्यान अवश्य करते हैं॥ १॥

स्थित्यर्थं मनसः केचित्स्थूलध्यानं प्रकुर्वते।
स्थूले तु निश्चलं चेतो भवेत्सूक्ष्मे तु तत्स्थिरम्॥ २

शिवे तु चिंतिते साक्षात्सर्वाः सिध्यन्ति सिद्धयः।
मूर्त्यन्तरेषु ध्यातेषु शिवरूपं विचिन्तयेत्॥ ३

कुछ लोग मनकी स्थिरताके लिये स्थूलरूपका ध्यान करते हैं। स्थूल-रूपके चिन्तनमें लगकर जब चित्त निश्चल हो जाता है, तब सूक्ष्मरूपमें वह स्थिर होता है। भगवान् शिवका चिन्तन करनेपर सब सिद्धियाँ प्रत्यक्ष सिद्ध हो जाती हैं। अन्य मूर्तियोंका ध्यान करनेपर भी शिवरूपका अवश्य चिन्तन करना चाहिये॥ २-३॥

लक्षयेन्मनसः स्थैर्यं तत्तद्ध्यायेत्पुनः पुनः।
ध्यानमादौ सविषयं ततो निर्विषयं जगुः॥ ४

तत्र निर्विषयं ध्यानं नास्तीत्येव सतां मतम्।
बुद्धेर्हि सन्ततिः काचिद्ध्यानमित्यभिधीयते॥ ५

जिस-जिस रूपमें मनकी स्थिरता लक्षित हो, उस-उसका बारंबार ध्यान करना चाहिये। ध्यान पहले सविषय होता है, फिर निर्विषय होता है—ऐसा ज्ञानी पुरुषोंका कथन है। इस विषयमें कुछ सत्पुरुषोंका मत है कि कोई भी ध्यान निर्विषय होता ही नहीं। बुद्धिकी ही कोई प्रवाहरूपा संतति 'ध्यान' कहलाती है॥ ४-५॥

तेन निर्विषया बुद्धिः केवलेह प्रवर्तते।
तस्मात्सविषयं ध्यानं बालार्ककिरणाश्रयम्॥ ६

सूक्ष्माश्रयं निर्विषयं नापरं परमार्थतः।
यद्वा सविषयं ध्यानं तत्साकारसमाश्रयम्॥ ७

निराकारात्मसंवित्तिर्ध्यानं निर्विषयं मतम्।
निर्बीजं च सबीजं च तदेव ध्यानमुच्यते॥ ८

इसलिये निर्विषय बुद्धि केवल—निर्गुण-निराकार ब्रह्ममें ही प्रवृत्त होती है। अतः सविषय ध्यान प्रातःकालके सूर्यकी किरणोंके समान ज्योतिका आश्रय लेनेवाला है। तथा निर्विषय ध्यान सूक्ष्मतत्त्वका अवलम्बन करनेवाला है। इन दोके सिवा और कोई ध्यान वास्तवमें नहीं है। अथवा सविषय ध्यान साकार स्वरूपका अवलम्बन करनेवाला है तथा निराकार स्वरूपका जो बोध या अनुभव है, वही निर्विषय ध्यान माना गया है। वह सविषय और निर्विषय ध्यान ही क्रमशः सबीज और निर्बीज कहा जाता है॥ ६—८॥

निराकाराश्रयत्वेन साकाराश्रयतस्तथा।
तस्मात्सविषयं ध्यानमादौ कृत्वा सबीजकम्॥ ९

अन्ते निर्विषयं कुर्यान्निर्बीजं सर्वसिद्धये।
प्राणायामेन सिध्यन्ति दिव्याः शांत्यादयः क्रमात्॥ १०

निराकारका आश्रय लेनेसे उसे निर्बीज और साकारका आश्रय लेनेसे सबीजकी संज्ञा दी गयी है। अतः पहले सविषय या सबीज ध्यान करके अन्तमें सब प्रकारकी सिद्धिके लिये निर्विषय अथवा निर्बीज ध्यान करना चाहिये। प्राणायाम करनेसे क्रमशः शान्ति आदि दिव्य सिद्धियाँ सिद्ध होती हैं॥ ९-१०॥

शान्तिः प्रशान्तिर्दीप्तिश्च प्रसादश्च ततः परम्।
शमः सर्वापदां चैव शान्तिरित्यभिधीयते॥ ११

तमसोऽन्तर्बहिर्नाशः प्रशान्तिः परिगीयते।
बहिरन्तःप्रकाशो यो दीप्तिरित्यभिधीयते॥ १२

स्वस्थता या तु सा बुद्धेः प्रसादः परिकीर्तितः।
कारणानि च सर्वाणि सबाह्याभ्यन्तराणि च॥ १३

बुद्धेः प्रसादतः क्षिप्रं प्रसन्नानि भवन्त्युत।

उनके नाम हैं—शान्ति, प्रशान्ति, दीप्ति और प्रसाद। समस्त आपदाओंके शमनको ही शान्ति कहा गया है। तम (अज्ञान)-का बाहर और भीतरसे नाश ही प्रशान्ति है। बाहर और भीतर जो ज्ञानका प्रकाश होता है, उसका नाम दीप्ति है तथा बुद्धिकी जो स्वस्थता (आत्मनिष्ठता) है, उसीको प्रसाद कहा गया है। बाह्य और आभ्यन्तरसहित जो समस्त करण हैं, वे बुद्धिके प्रसादसे शीघ्र ही प्रसन्न (निर्मल) हो जाते हैं॥ ११—१३½॥

ध्याता ध्यानं तथा ध्येयं यद्वा ध्यानप्रयोजनम्।
एतच्चतुष्टयं ज्ञात्वा ध्याता ध्यानं समाचरेत्॥ १४

ज्ञानवैराग्यसम्पन्नो नित्यमव्यग्रमानसः।
श्रद्दधानः प्रसन्नात्मा ध्याता सद्भिरुदाहृतः॥ १५

ध्याता, ध्यान, ध्येय और ध्यान-प्रयोजन—इन चारको जानकर ध्यान करनेवाला पुरुष ध्यान करे। जो ज्ञान और वैराग्यसे सम्पन्न हो, सदा शान्तचित्त रहता हो, श्रद्धालु हो और जिसकी बुद्धि प्रसादगुणसे युक्त हो, ऐसे साधकको ही सत्पुरुषोंने ध्याता कहा है॥ १४-१५॥

ध्यै चिन्तायां स्मृतो धातुः शिवचिन्ता मुहुर्मुहुः॥ १६

योगाभ्यासस्तथाल्पोऽपि यथा पापं विनाशयेत्।
ध्यायतः क्षणमात्रं वा श्रद्धया परमेश्वरम्॥ १७

अव्याक्षिप्तेन मनसा ध्यानमित्यभिधीयते॥ १८

'ध्यै चिन्तायाम्' यह धातु है। इसका अर्थ है चिन्तन। भगवान् शिवका बारंबार चिन्तन ही ध्यान कहलाता है। जैसे थोड़ा-सा भी योगाभ्यास पापका नाश कर देता है, उसी तरह क्षणमात्र भी ध्यान करनेवाले पुरुषके सारे पाप नष्ट हो जाते हैं। श्रद्धापूर्वक, विक्षेपरहित चित्तसे परमेश्वरका जो चिन्तन है, उसीका नाम 'ध्यान' है॥ १६—१८॥

बुद्धिप्रवाहरूपस्य ध्यानस्यास्यावलम्बनम्।
ध्येयमित्युच्यते सद्भिस्तच्च साम्बः स्वयं शिवः॥ १९

विमुक्तिप्रत्ययं पूर्णमैश्वर्यं चाणिमादिकम्।
शिवध्यानस्य पूर्णस्य साक्षादुक्तं प्रयोजनम्॥ २०

यस्मात्सौख्यं च मोक्षं च ध्यानादुभयमाप्नुयात्।
तस्मात्सर्वं परित्यज्य ध्यानयुक्तो भवेन्नरः॥ २१

बुद्धिके प्रवाहरूप ध्यानका जो आलम्बन या आश्रय है, उसीको साधु पुरुष 'ध्येय' कहते हैं। स्वयं साम्ब सदाशिव ही वह ध्येय हैं। मोक्ष-सुखका पूर्ण अनुभव और अणिमा आदि ऐश्वर्यकी उपलब्धि— ये पूर्ण शिवध्यानके साक्षात् प्रयोजन कहे गये हैं। ध्यानसे सौख्य और मोक्ष दोनोंकी प्राप्ति होती है, इसलिये मनुष्यको सब कुछ छोड़कर ध्यानमें लग जाना चाहिये॥ १९—२१॥

नास्ति ध्यानं विना ज्ञानं नास्ति ध्यानमयोगिनः।
ध्यानं ज्ञानं च यस्यास्ति तीर्णस्तेन भवार्णवः॥ २२

ज्ञानं प्रसन्नमेकाग्रमशेषोपाधिवर्जितम्।
योगाभ्यासेन युक्तस्य योगिनस्त्वेव सिध्यति॥ २३

बिना ध्यानके ज्ञान नहीं होता और जिसने योगका साधन नहीं किया है, उसका ध्यान नहीं सिद्ध होता। जिसे ध्यान और ज्ञान दोनों प्राप्त हैं, उसने भवसागरको पार कर लिया। समस्त उपाधियोंसे रहित, निर्मल ज्ञान और एकाग्रतापूर्ण ध्यान—ये योगाभ्याससे युक्त योगीको ही सिद्ध होते हैं॥ २२-२३॥

प्रक्षीणाशेषपापानां ज्ञाने ध्याने भवेन्मतिः।
पापोपहतबुद्धीनां तद्वार्तापि सुदुर्लभा॥ २४

यथा वह्निर्महादीप्तः शुष्कमार्द्रं च निर्दहेत्।
तथा शुभाशुभं कर्म ध्यानाग्निर्दहते क्षणात्॥ २५

जिनके सारे पाप नष्ट हो गये हैं, उन्हींकी बुद्धि ज्ञान और ध्यानमें लगती है। जिनकी बुद्धि पापसे दूषित है, उनके लिये ज्ञान और ध्यानकी बात भी अत्यन्त दुर्लभ है। जैसे प्रज्वलित हुई आग सूखी और गीली लकड़ीको भी जला देती है, उसी प्रकार ध्यानाग्नि शुभ और अशुभ कर्मको भी क्षणभरमें दग्ध कर देती है॥ २४-२५॥

अत्यल्पोऽपि यथा दीपः सुमहन्नाशयेत्तमः।
योगाभ्यासस्तथाल्पोऽपि महापापं विनाशयेत्॥ २६

ध्यायतः क्षणमात्रं वा श्रद्धया परमेश्वरम्।
यद्भवेत् सुमहच्छ्रेयस्तस्यान्तो नैव विद्यते॥ २७

जैसे बहुत छोटा दीपक भी महान् अन्धकारका नाश कर देता है, इसी तरह थोड़ा-सा योगाभ्यास भी महान् पापका विनाश कर डालता है। श्रद्धापूर्वक क्षणभर भी परमेश्वरका ध्यान करनेवाले पुरुषको जो महान् श्रेय प्राप्त होता है, उसका कहीं अन्त नहीं है॥ २६-२७॥

नास्ति ध्यानसमं तीर्थं नास्ति ध्यानसमं तपः।
नास्ति ध्यानसमो यज्ञस्तस्माद्ध्यानं समाचरेत्॥ २८

तीर्थानि तोयपूर्णानि देवान्पाषाणमृण्मयान्।
योगिनो न प्रपद्यन्ते स्वात्मप्रत्ययकारणात्॥ २९

ध्यानके समान कोई तीर्थ नहीं है, ध्यानके समान कोई तप नहीं है और ध्यानके समान कोई यज्ञ नहीं है; इसलिये ध्यान अवश्य करे। अपने आत्मा एवं परमात्माका बोध प्राप्त करनेके कारण योगीजन केवल जलसे भरे हुए तीर्थों और पत्थर एवं मिट्टीकी बनी हुई देवमूर्तियोंका आश्रय नहीं लेते [वे आत्मतीर्थमें अवगाहन करते और आत्मदेवके ही भजनमें लगे रहते हैं]॥ २८-२९॥

योगिनां च वपुः सूक्ष्मं भवेत्प्रत्यक्षमैश्वरम्।
यथा स्थूलमयुक्तानां मृत्काष्ठाद्यैः प्रकल्पितम्॥ ३०

यथेहान्तश्चरा राज्ञः प्रियाः स्युर्न बहिश्चराः।
तथान्तर्ध्याननिरताः प्रियाश्शम्भोर्न कर्मिणः॥ ३१

जैसे अयोगी पुरुषोंको मिट्टी और काठ आदिकी बनी हुई स्थूल मूर्तियोंका प्रत्यक्ष होता है, उसी तरह योगियोंको ईश्वरके सूक्ष्म स्वरूपका प्रत्यक्ष दर्शन होता है। जैसे राजाको अपने अन्तःपुरमें विचरनेवाले स्वजन एवं परिजन प्रिय होते हैं और बाहरके लोग उतने प्रिय नहीं होते, उसी प्रकार भगवान् शंकरको अन्तःकरणमें ध्यान लगानेवाले भक्त ही अधिक प्रिय हैं, बाह्य उपचारोंका आश्रय लेनेवाले कर्मकाण्डी नहीं॥ ३०-३१॥

बहिष्करा यथा लोके नातीव फलभोगिनः।
दृष्ट्वा नरेन्द्रभवने तद्वदत्रापि कर्मिणः॥ ३२

जैसे लोकमें यह देखा गया है कि बाहरी लोग राजाके भवनमें राजकीय पुरुषोचित फलका उपभोग नहीं कर पाते, केवल अन्तःपुरके लोग ही उस फलके भागी होते हैं, उसी प्रकार यहाँ बाह्यकर्मी पुरुष उस फलको नहीं पाते, जो ध्यानयोगियोंको सुलभ होता है॥ ३२॥

यद्यन्तरा विपद्यन्ते ज्ञानयोगार्थमुद्यतः।
योगस्योद्योगमात्रेण रुद्रलोकं गमिष्यति॥ ३३

अनुभूय सुखं तत्र स जातो योगिनां कुले।
ज्ञानयोगं पुनर्लब्ध्वा संसारमतिवर्तते॥ ३४

ज्ञानयोगकी साधनाके लिये उद्यत हुआ पुरुष यदि बीचमें ही मर जाय तो भी वह योगके लिये उद्योग करनेमात्रसे रुद्रलोकमें जायगा। वहाँ दिव्य सुखका उपभोग करके वह फिर योगियोंके कुलमें जन्म लेगा और पुनः ज्ञानयोगको पाकर संसारसागरको लाँघ जायगा॥ ३३-३४॥

जिज्ञासुरपि योगस्य यां गतिं लभते नरः।
न तां गतिमवाप्नोति सर्वैरपि महामखैः॥ ३५

द्विजानां वेदविदुषां कोटिं सम्पूज्य यत्फलम्।
भिक्षामात्रप्रदानेन तत्फलं शिवयोगिने॥ ३६

यज्ञाग्निहोत्रदानेषु तीर्थहोमेषु यत्फलम्।
योगिनामन्नदानेन तत्समस्तं फलं लभेत्॥ ३७

योगका जिज्ञासु पुरुष भी जिस गतिको पाता है, उसे यज्ञकर्ता सम्पूर्ण महायज्ञोंका अनुष्ठान करके भी नहीं पाता। करोड़ों वेदवेत्ता द्विजोंकी पूजा करनेसे जो फल मिलता है, वह एक शिवयोगीको भिक्षा देनेमात्रसे प्राप्त हो जाता है। यज्ञ, अग्निहोत्र, दान, तीर्थसेवन और होम—इन सभी पुण्यकर्मोंके अनुष्ठानसे जो फल मिलता है, वह सारा फल शिवयोगियोंको अन्न देनेमात्रसे प्राप्त हो जाता है॥ ३५—३७॥

ये चापवादं कुर्वन्ति विमूढाः शिवयोगिनाम्।
श्रोतृभिस्ते प्रपद्यन्ते नरकेष्वामहीक्षयात्॥ ३८

सति श्रोतरि वक्ता स्यादपवादस्य योगिनाम्।
तस्माच्छ्रोता च पापीयान्दण्ड्यः सुमहतां मतः।
ये पुनः सततं भक्त्या भजन्ति शिवयोगिनः॥ ३९

ते विदन्ति महाभोगानन्ते योगं च शांकरम्।
भोगार्थिभिर्नरैस्तस्मात्सम्पूज्याः शिवयोगिनः॥ ४०

प्रतिश्रयान्नपानाद्यैः शय्याप्रावरणादिभिः।

जो मूढ़ मानव शिवयोगियोंकी निन्दा करते हैं, वे श्रोताओंसहित नरकमें पड़ते हैं और प्रलयकालतक वहीं रहते हैं। श्रोताके होनेपर ही कोई शिवयोगियोंकी निन्दाका वक्ता हो सकता है, इसलिये महापुरुषोंके मतमें उस निन्दाको सुननेवाला भी महान् पापी और दण्डनीय है। जो लोग सदा भक्तिभावसे शिवयोगियोंकी सेवा करते हैं, वे महान् भोग पाते और अन्तमें शिवयोगकी भी उपलब्धि कर लेते हैं। इसलिये भोगार्थी मनुष्योंको चाहिये कि वे रहनेको स्थान, खान-पान, शय्या तथा ओढ़ने-बिछानेकी सामग्री आदि देकर सदा शिवयोगियोंका सत्कार करें॥ ३८—४०१/२॥

योगधर्मः ससारत्वादभेद्यः पापमुद्गरैः॥ ४१

वज्रतंदुलवज्ज्ञेयं तथा पापेन योगिनः।
न लिप्यन्ते च पापौघैः पद्मपत्रं यथाम्भसा॥ ४२

योगधर्म सुदृढ़—अत्यन्त प्रबल है, अतः पापरूपी मुद्गरोंसे उसका भेदन नहीं हो सकता। योगधर्म और पाप-मुद्गरमें उतना ही अन्तर समझना चाहिये, जितना वज्र और तन्दुलमें; अतः योगीजन पापों और तापसमूहोंसे उसी तरह लिप्त नहीं होते, जैसे कमलका पत्ता पानीसे॥ ४१-४२॥

यस्मिन्देशे वसेन्नित्यं शिवयोगरतो मुनिः।
सोऽपि देशो भवेत्पूतः स पूत इति किं पुनः॥ ४३

तस्मात्सर्वं परित्यज्य कृत्यमन्यद्विचक्षणः।
सर्वदुःखप्रहाणाय शिवयोगं समभ्यसेत्॥ ४४

शिवयोगपरायण मुनि जिस देशमें नित्य निवास करता है, वह देश भी पवित्र हो जाता है। फिर उसकी पवित्रताके विषयमें तो कहना ही क्या? अतः चतुर एवं विद्वान् पुरुष सब कृत्योंको छोड़कर सम्पूर्ण दुःखोंसे छुटकारा पानेके लिये शिवयोगका अभ्यास करे॥ ४३-४४॥

सिद्धयोगफलो योगी लोकानां हितकाम्यया।
भोगान्भुक्त्वा यथाकामं विहरेद्वात्र वर्तताम्॥ ४५

अथवा क्षुद्रमित्येव मत्वा वैषयिकं सुखम्।
त्यक्त्वा विरागयोगेन स्वेच्छया कर्म मुच्यताम्॥ ४६

जिसका योगफल सिद्ध हो गया है, वह योगी यथेष्ट भोगोंको भोगकर समस्त लोकोंकी हित-कामनासे संसारमें विचरे अथवा अपने स्थानपर ही रहे या विषयसुखको अत्यन्त तुच्छ समझकर छोड़ दे और वैराग्ययोगसे स्वेच्छापूर्वक कर्मोंका परित्याग कर दे॥ ४५-४६॥

यस्त्वासन्नां मृतिं मर्त्यो दृष्ट्वारिष्टं च भूयसा।
स योगारम्भनिरतः शिवक्षेत्रं समाश्रयेत्॥ ४७

स तत्र निवसन्नेव यदि धीरमना नरः।
प्राणान् विनापि रोगाद्यैः स्वयमेव परित्यजेत्॥ ४८

कृत्वाप्यनशनं चैव हुत्वा चाङ्गं शिवानले।
क्षिप्त्वा वा शिवतीर्थेषु स्वदेहमवगाहनात्॥ ४९

शिवशास्त्रोक्तविधिवत्प्राणान्यस्तु परित्यजेत्।
सद्य एव विमुच्येत नात्र कार्या विचारणा॥ ५०

रोगाद्यैर्वाथ विवशः शिवक्षेत्रं समाश्रितः।
म्रियते यदि सोऽप्येवं मुच्यते नात्र संशयः॥ ५१

जो मनुष्य बहुत-से अरिष्ट देखकर अपनी मृत्युको निकट जान ले, उसे योगानुष्ठानमें संलग्न हो शिवक्षेत्रका आश्रय लेना चाहिये। वह मनुष्य यदि धीरचित्त होकर वहीं निवास करता रहे तो रोग आदिके बिना भी स्वयं ही प्राणोंका परित्याग कर सकता है। अनशन करके, शिवाग्निमें शरीरकी आहुति देकर अथवा शिवतीर्थोंमें अवगाहन करते हुए अपने शरीरको उन्हींके जलमें डालकर शिवशास्त्रोक्त विधिसे जो अपने प्राणोंका त्याग करता है, वह तत्काल मुक्त हो जाता है—इसमें अन्यथा विचार करनेकी आवश्यकता नहीं है अथवा जो रोग आदिसे विवश होकर शिवक्षेत्रकी शरण लेता है, उसकी भी यदि वहाँ मृत्यु हो जाय तो वह इसी प्रकार मुक्त हो जाता है—इसमें संशय नहीं है॥ ४७—५१॥

यथा हि मरणं श्रेष्ठमुशन्त्यनशनादिभिः।
शास्त्रविश्रम्भधीरेण मनसा क्रियते यतः॥ ५२

इसलिये लोग अनशन आदिसे शिवक्षेत्रमें श्रेष्ठ मरणकी कामना करते हैं; क्योंकि शास्त्रपर विश्वास करके धीर हुए मनसे उनके द्वारा इस तरहकी मृत्यु स्वीकार की जाती है॥ ५२॥

शिवनिन्दारतं हत्वा पीडितः स्वयमेव वा।
यस्त्यजेदुस्त्यजान्प्राणान्न स भूयः प्रजायते॥ ५३

शिवकी निन्दा करनेवालेको आक्रान्त करके अथवा स्वयं निन्दासे व्यथित होकर जो कठिनाईसे त्याग किये जानेयोग्य [अपने] प्राणोंका त्याग कर देता है, वह पुनः जन्म नहीं लेता है॥ ५३॥

शिवनिन्दारतं हन्तुमशक्तो यः स्वयं मृतः।
सद्य एव प्रमुच्येत त्रिःसप्तकुलसंयुतः॥ ५४

शिवनिन्दा करनेवालेको आक्रान्त करनेमें असमर्थ जो [व्यक्ति] स्वयं मर जाता है, वह [अपनी] इक्कीस पीढ़ियोंके साथ स्वयं मुक्त हो जाता है।

शिवार्थे यस्त्यजेत्प्राणान् शिवभक्तार्थमेव वा।
न तेन सदृशः कश्चिन्मुक्तिमार्गस्थितो नरः॥ ५५

जो शिवके लिये अथवा शिवभक्तोंके लिये प्राणत्याग करता है, उसके समान दूसरा कोई मनुष्य मुक्ति-मार्गपर स्थित नहीं है॥ ५४-५५॥

तस्माच्छीघ्रतरा मुक्तिस्तस्य संसारमंडलात्।
एतेष्वन्यतमोपायं कथमप्यवलम्ब्य वा॥ ५६

षडध्वशुद्धिं विधिवत्प्राप्तो वा म्रियते यदि।
पशूनामिव तस्येह न कुर्यादौर्ध्वदैहिकम्॥ ५७

इस कारण इस संसार-मण्डलसे उसकी शीघ्र मुक्ति हो जाती है। इनमेंसे किसी एक उपायका किसी तरह भी अवलम्बन करके अथवा विधिवत् षडध्वशुद्धिको प्राप्त होकर यदि कोई मनुष्य मरता है तो उसका अन्य पशुओं—प्राणियोंके समान यहाँ और्ध्वदैहिक संस्कार नहीं करना चाहिये॥ ५६-५७॥

नैवाशौचं प्रपद्येत तत्पुत्रादिर्विशेषतः।
शिवचारार्थमथवा शिवविद्यार्थमेव वा।
खनेद्वा भुवि तद्देहं दहेद्वा शुचिनाग्निना॥ ५८

क्षिपेद्वाप्सु शिवास्वेव त्यजेद्वा काष्ठलोष्टवत्।
अथैनमपि चोद्दिश्य कर्म चेत्कर्तुमीप्सितम्॥ ५९

कल्याणमेव कुर्वीत शक्त्या भक्तांश्च तर्पयेत्।
धनं तस्य भजेच्चैवः शैवी चेत्तस्य सन्ततिः।
नास्ति चेत्तच्छिवे दद्यान्नादद्यात्पशुसन्ततिः॥ ६०

विशेषतः उसके पुत्र आदिको उसके मरनेसे अशौचकी प्राप्ति नहीं होती। ऐसे पुरुषके मृत शरीरको धरतीमें गाड़ दे या पवित्र अग्निसे जला दे या शिव-स्वरूपजलमें डाल दे अथवा काठ या मिट्टीके ढेलेकी भाँति कहीं भी फेंक दे, सब उसके लिये बराबर है। यदि ऐसे पुरुषके उद्देश्यसे भी कोई कर्म करनेकी इच्छा हो तो दूसरोंका कल्याण ही करे और अपनी शक्तिके अनुसार शिवभक्तोंको तृप्त करे। उसके धनको शिवभक्त ही ग्रहण करे। यदि उसकी संतति शिवभक्त हो तो वह भी ग्रहण कर सकती है। यदि ऐसा सम्भव न हो तो उसका धन भगवान् शिवको समर्पित कर दे। परंतु उसकी पशुसंतति (शिवभक्तिहीन संतान) उस धनको ग्रहण न करे॥ ५८—६०॥

इति श्रीशिवमहापुराणे सप्तम्यां वायवीयसंहितायामुत्तरखण्डे
शैवयोगवर्णनं नामैकोनचत्वारिंशोऽध्यायः॥ ३९॥

॥ इस प्रकार श्रीशिवमहापुराणके अन्तर्गत सातवीं वायवीयसंहिताके उत्तरखण्डमें शैवयोगवर्णन नामक उनतालीसवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ ३९॥

अथ चत्वारिंशोऽध्यायः

वायुदेवका अन्तर्धान होना, ऋषियोंका सरस्वतीमें अवभृथ-स्नान और काशीमें दिव्य तेजका दर्शन करके ब्रह्माजीके पास जाना, ब्रह्माजीका उन्हें सिद्धि-प्राप्तिकी सूचना देकर मेरुके कुमारशिखरपर भेजना

सूत उवाच

इति स विजितमन्योर्यादवेनोपमन्यो-
रधिगतमभिधाय ज्ञानयोगं मुनिभ्यः।
प्रणतिमुपगतेभ्यस्तेभ्य उद्भावितात्मा
सपदि वियति वायुः सायमन्तर्हितोऽभूत्॥ १

सूतजी कहते हैं—इस प्रकार क्रोधको जीतनेवाले उपमन्युसे यदुकुलनन्दन श्रीकृष्णने जो ज्ञानयोग प्राप्त किया था, उसका प्रणतभावसे बैठे हुए उन मुनियोंको उपदेश देकर आत्मदर्शी वायुदेव उसी समय सायंकाल आकाशमें अन्तर्धान हो गये॥ १॥

ततः प्रभातसमये नैमिषीयास्तपोधनाः।
सत्रान्तेऽवभृथं कर्तुं सर्व एव समुद्ययुः॥ २

तदा ब्रह्मसमादेशाद्देवी साक्षात्सरस्वती।
प्रसन्ना स्वादुसलिला प्रावर्तत नदी शुभा॥ ३

तदनन्तर प्रातःकाल नैमिषारण्यके समस्त तपस्वी मुनि सत्रके अन्तमें अवभृथ-स्नान करनेको उद्यत हुए। उस समय ब्रह्माजीके आदेशसे साक्षात् सरस्वतीदेवी स्वादिष्ठ जलसे भरी हुई स्वच्छ सुन्दर नदीके रूपमें वहाँ बहने लगीं॥ २-३॥

सरस्वतीं नदीं दृष्ट्वा मुनयो हृष्टमानसाः।
समाप्य सत्रं प्रारब्धं चक्रुस्तत्रावगाहनम्॥ ४

अथ सन्तर्प्य देवादींस्तदीयैः सलिलैः शिवैः।
स्मरन्तः पूर्ववृत्तान्तं ययुर्वाराणसीं प्रति॥ ५

सरस्वती नदीको उपस्थित देख मुनि मन-ही-मन बड़े प्रसन्न हुए। उन्होंने सत्र समाप्त करके उसमें अवगाहन (स्नान) आरम्भ किया। उस नदीके मंगलमय जलसे देवता आदिका तर्पण करके पूर्व-वृत्तान्तका स्मरण करते हुए वे सब-के-सब वाराणसीपुरीकी ओर चल दिये॥ ४-५॥

तदा ते हिमवत्पादात्पतन्तीं दक्षिणामुखीम्।
दृष्ट्वा भागीरथीं तत्र स्नात्वा तत्तीरतो ययुः॥ ६

उस समय हिमालयके चरणोंसे निकलकर दक्षिणकी ओर बहनेवाली भागीरथीका दर्शन करके उन ऋषियोंने उसमें स्नान किया और भागीरथीके ही किनारेका मार्ग पकड़कर वे आगे बढ़े॥ ६॥

ततो वाराणसीं प्राप्य मुदिताः सर्व एव ते।
तदोत्तरप्रवाहायां गङ्गायामवगाह्य च॥ ७

अविमुक्तेश्वरं लिङ्गं दृष्ट्वाभ्यर्च्य विधानतः।
प्रयातुमुद्यतास्तत्र ददृशुर्दिवि भास्वरम्॥ ८

सूर्यकोटिप्रतीकाशं तेजोदिव्यं महाद्भुतम्।
आत्मप्रभावितानेन व्याप्तसर्वदिगन्तरम्॥ ९

तदनन्तर वाराणसीमें पहुँचकर उन सबको बड़ी प्रसन्नता हुई। वहाँ उत्तरवाहिनी गंगामें स्नान करके उन्होंने अविमुक्तेश्वर-लिंगका दर्शन और विधिपूर्वक पूजन किया। पूजन करके जब वे चलनेको उद्यत हुए तब उन्होंने आकाशमें एक दिव्य और परम अद्भुत प्रकाशमान तेज देखा, जो करोड़ों सूर्योंके समान जान पड़ता था। उसने अपनी प्रभाके प्रसारसे सम्पूर्ण दिगन्तको व्याप्त कर लिया था॥ ७—९॥

अथ पाशुपताः सिद्धाः भस्मसञ्छन्नविग्रहाः।
मुनयोऽभ्येत्य शतशो लीनाः स्युस्तत्र तेजसि॥ १०

तथा विलीयमानेषु तपस्विषु महात्मसु।
सद्यस्तिरोदधे तेजस्तदद्भुतमिवाभवत्॥ ११

तद् दृष्ट्वा महदाश्चर्यं नैमिषीया महर्षयः।
किमेतदित्यजानन्तो ययुर्ब्रह्मवनं प्रति॥ १२

तदनन्तर जिन्होंने अपने शरीरमें भस्म लगा रखा था, वे सैकड़ों सिद्ध पाशुपत मुनि निकट जाकर उस तेजमें लीन हो गये। उन तपस्वी महात्माओंके इस प्रकार लीन हो जानेपर वह तेज तत्काल अदृश्य हो गया। वह एक अद्भुत-सी घटना घटित हुई! उस महान् आश्चर्यको देखकर वे नैमिषारण्यके निवासी महर्षि 'यह क्या है' इस बातको न जानते हुए ब्रह्मवनको चले गये॥ १०—१२॥

प्रागेवैषां तु गमनात्पवनो लोकपावनः।
दर्शनं नैमिषीयाणां संवादस्तैर्महात्मनः॥ १३

शुद्धां बुद्धिं ततस्तेषां साम्बे सानुचरे शिवे।
समाप्तिं चापि सत्रस्य दीर्घपूर्वस्य सत्रिणाम्॥ १४

इनके जानेसे पहले ही लोकपावन पवनदेव वहाँ जा पहुँचे। उन्होंने नैमिषारण्यवासी ऋषियोंका जिस प्रकार साक्षात्कार हुआ, जिस तरह उनसे उनकी बातचीत हुई, उन ऋषियोंकी शुद्ध बुद्धि जिस प्रकार पार्षदोंसहित साम्ब सदाशिवमें लगी थी और जिस प्रकार उन यज्ञपरायण ऋषियोंका वह दीर्घकालिक

शिवार्थे यस्त्यजेत्प्राणान् शिवभक्तार्थमेव वा।
न तेन सदृशः कश्चिन्मुक्तिमार्गस्थितो नरः ॥ ५५

जो शिवके लिये अथवा शिवभक्तोंके लिये प्राणत्याग करता है, उसके समान दूसरा कोई मनुष्य मुक्ति-मार्गपर स्थित नहीं है॥ ५४-५५॥

तस्माच्छीघ्रतरा मुक्तिस्तस्य संसारमंडलात्।
एतेष्वन्यतमोपायं कथमप्यवलम्ब्य वा॥ ५६

षडध्वशुद्धिं विधिवत्प्राप्तो वा म्रियते यदि।
पशूनामिव तस्येह न कुर्यादौर्ध्वदैहिकम्॥ ५७

इस कारण इस संसार-मण्डलसे उसकी शीघ्र मुक्ति हो जाती है। इनमेंसे किसी एक उपायका किसी तरह भी अवलम्बन करके अथवा विधिवत् षडध्वशुद्धिको प्राप्त होकर यदि कोई मनुष्य मरता है तो उसका अन्य पशुओं—प्राणियोंके समान यहाँ और्ध्वदैहिक संस्कार नहीं करना चाहिये॥ ५६-५७॥

नैवाशौचं प्रपद्येत तत्पुत्रादिर्विशेषतः।
शिवचारार्थमथवा शिवविद्यार्थमेव वा।
खनेद्वा भुवि तद्देहं दहेद्वा शुचिनाग्निना॥ ५८

क्षिपेद्वाप्सु शिवास्वेव त्यजेद्वा काष्ठलोष्टवत्।
अथैनमपि चोद्दिश्य कर्म चेत्कर्तुमीप्सितम्॥ ५९

कल्याणमेव कुर्वीत शक्त्या भक्तांश्च तर्पयेत्।
धनं तस्य भजेच्चैवः शैवी चेत्तस्य सन्ततिः।
नास्ति चेत्तच्छिवे दद्यान्नादद्यात्पशुसन्ततिः॥ ६०

विशेषतः उसके पुत्र आदिको उसके मरनेसे अशौचकी प्राप्ति नहीं होती। ऐसे पुरुषके मृत शरीरको धरतीमें गाड़ दे या पवित्र अग्निसे जला दे या शिव-स्वरूपजलमें डाल दे अथवा काठ या मिट्टीके ढेलेकी भाँति कहीं भी फेंक दे, सब उसके लिये बराबर है। यदि ऐसे पुरुषके उद्देश्यसे भी कोई कर्म करनेकी इच्छा हो तो दूसरोंका कल्याण ही करे और अपनी शक्तिके अनुसार शिवभक्तोंको तृप्त करे। उसके धनको शिवभक्त ही ग्रहण करे। यदि उसकी संतति शिवभक्त हो तो वह भी ग्रहण कर सकती है। यदि ऐसा सम्भव न हो तो उसका धन भगवान् शिवको समर्पित कर दे। परंतु उसकी पशुसंतति (शिवभक्तिहीन संतान) उस धनको ग्रहण न करे॥ ५८—६०॥

इति श्रीशिवमहापुराणे सप्तम्यां वायवीयसंहितायामुत्तरखण्डे शैवयोगवर्णनं नामैकोनचत्वारिंशोऽध्यायः॥ ३९॥

॥ इस प्रकार श्रीशिवमहापुराणके अन्तर्गत सातवीं वायवीयसंहिताके उत्तरखण्डमें शैवयोगवर्णन नामक उनतालीसवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ ३९॥

अथ चत्वारिंशोऽध्यायः

वायुदेवका अन्तर्धान होना, ऋषियोंका सरस्वतीमें अवभृथ-स्नान और काशीमें दिव्य तेजका दर्शन करके ब्रह्माजीके पास जाना, ब्रह्माजीका उन्हें सिद्धि-प्राप्तिकी सूचना देकर मेरुके कुमारशिखरपर भेजना

सूत उवाच

इति स विजितमन्योर्यादवेनोपमन्यो-
रधिगतमभिधाय ज्ञानयोगं मुनिभ्यः।
प्रणतिमुपगतेभ्यस्तेभ्य उद्भावितात्मा
सपदि वियति वायुः सायमन्तर्हितोऽभूत्॥ १

सूतजी कहते हैं—इस प्रकार क्रोधको जीतनेवाले उपमन्युसे यदुकुलनन्दन श्रीकृष्णने जो ज्ञानयोग प्राप्त किया था, उसका प्रणतभावसे बैठे हुए उन मुनियोंको उपदेश देकर आत्मदर्शी वायुदेव उसी समय सायंकाल आकाशमें अन्तर्धान हो गये॥ १॥

ततः प्रभातसमये नैमिषीयास्तपोधनाः।
सत्रान्तेऽवभृथं कर्तुं सर्व एव समुद्ययुः॥ २

तदा ब्रह्मसमादेशाद्देवी साक्षात्सरस्वती।
प्रसन्ना स्वादुसलिला प्रावर्तत नदी शुभा॥ ३

सरस्वतीं नदीं दृष्ट्वा मुनयो हृष्टमानसाः।
समाप्य सत्रं प्रारब्धं चक्रुस्तत्रावगाहनम्॥ ४

अथ सन्तर्प्य देवादींस्तदीयैः सलिलैः शिवैः।
स्मरन्तः पूर्ववृत्तान्तं ययुर्वाराणसीं प्रति॥ ५

तदा ते हिमवत्पादात्पन्ततीं दक्षिणामुखीम्।
दृष्ट्वा भागीरथीं तत्र स्नात्वा तत्तीरतो ययुः॥ ६

ततो वाराणसीं प्राप्य मुदिताः सर्व एव ते।
तदोत्तरप्रवाहायां गङ्गायामवगाह्य च॥ ७

अविमुक्तेश्वरं लिङ्गं दृष्ट्वाभ्यर्च्य विधानतः।
प्रयातुमुद्यतास्तत्र ददृशुर्दिवि भास्वरम्॥ ८

सूर्यकोटिप्रतीकाशं तेजोदिव्यं महाद्भुतम्।
आत्मप्रभावितानेन व्याप्तसर्वदिगन्तरम्॥ ९

अथ पाशुपताः सिद्धाः भस्मसञ्छन्नविग्रहाः।
मुनयोऽभ्येत्य शतशो लीनाः स्युस्तत्र तेजसि॥ १०

तथा विलीयमानेषु तपस्विषु महात्मसु।
सद्यस्तिरोदधे तेजस्तदद्भुतमिवाभवत्॥ ११

तद् दृष्ट्वा महदाश्चर्यं नैमिषीया महर्षयः।
किमेतदित्यजानन्तो ययुर्ब्रह्मवनं प्रति॥ १२

प्रागेवैषां तु गमनात्पवनो लोकपावनः।
दर्शनं नैमिषीयाणां संवादस्तैर्महात्मनः॥ १३

शुद्धां बुद्धिं ततस्तेषां साम्बे सानुचरे शिवे।
समाप्तिं चापि सत्रस्य दीर्घपूर्वस्य सत्रिणाम्॥ १४

तदनन्तर प्रातःकाल नैमिषारण्यके समस्त तपस्वी मुनि सत्रके अन्तमें अवभृथ-स्नान करनेको उद्यत हुए। उस समय ब्रह्माजीके आदेशसे साक्षात् सरस्वतीदेवी स्वादिष्ठ जलसे भरी हुई स्वच्छ सुन्दर नदीके रूपमें वहाँ बहने लगीं॥ २-३॥

सरस्वती नदीको उपस्थित देख मुनि मन-ही-मन बड़े प्रसन्न हुए। उन्होंने सत्र समाप्त करके उसमें अवगाहन (स्नान) आरम्भ किया। उस नदीके मंगलमय जलसे देवता आदिका तर्पण करके पूर्व-वृत्तान्तका स्मरण करते हुए वे सब-के-सब वाराणसीपुरीकी ओर चल दिये॥ ४-५॥

उस समय हिमालयके चरणोंसे निकलकर दक्षिणकी ओर बहनेवाली भागीरथीका दर्शन करके उन ऋषियोंने उसमें स्नान किया और भागीरथीके ही किनारेका मार्ग पकड़कर वे आगे बढ़े॥ ६॥

तदनन्तर वाराणसीमें पहुँचकर उन सबको बड़ी प्रसन्नता हुई। वहाँ उत्तरवाहिनी गंगामें स्नान करके उन्होंने अविमुक्तेश्वर-लिंगका दर्शन और विधिपूर्वक पूजन किया। पूजन करके जब वे चलनेको उद्यत हुए तब उन्होंने आकाशमें एक दिव्य और परम अद्भुत प्रकाशमान तेज देखा, जो करोड़ों सूर्योंके समान जान पड़ता था। उसने अपनी प्रभाके प्रसारसे सम्पूर्ण दिगन्तको व्याप्त कर लिया था॥ ७—९॥

तदनन्तर जिन्होंने अपने शरीरमें भस्म लगा रखा था, वे सैकड़ों सिद्ध पाशुपत मुनि निकट जाकर उस तेजमें लीन हो गये। उन तपस्वी महात्माओंके इस प्रकार लीन हो जानेपर वह तेज तत्काल अदृश्य हो गया। वह एक अद्भुत-सी घटना घटित हुई! उस महान् आश्चर्यको देखकर वे नैमिषारण्यके निवासी महर्षि 'यह क्या है' इस बातको न जानते हुए ब्रह्मवनको चले गये॥ १०—१२॥

इनके जानेसे पहले ही लोकपावन पवनदेव वहाँ जा पहुँचे। उन्होंने नैमिषारण्यवासी ऋषियोंका जिस प्रकार साक्षात्कार हुआ, जिस तरह उनसे उनकी बातचीत हुई, उन ऋषियोंकी शुद्ध बुद्धि जिस प्रकार पार्षदोंसहित साम्ब सदाशिवमें लगी थी और जिस प्रकार उन यज्ञपरायण ऋषियोंका वह दीर्घकालिक

विज्ञाप्य जगतां धात्रे ब्रह्मणे ब्रह्मयोनये।
स्वकार्ये तदनुज्ञातो जगाम स्वपुरं प्रति॥ १५

अथ स्थानगतो ब्रह्मा तुम्बुरोर्नारदस्य च।
परस्परं स्पर्द्धितयोर्गाने विवदमानयोः॥ १६

तदुद्भावितगानोत्थरसैर्माध्यस्थमाचरन्।
गन्धर्वैरप्सरोभिश्च सुखमास्ते निषेवितः॥ १७

तदानवसरादेव द्वाःस्थैर्द्वारि निवारिताः।
मुनयो ब्रह्मभवनाद्बहिः पार्श्वमुपाविशन्॥ १८

अथ तुम्बुरुणा गाने समतां प्राप्य नारदः।
साहचर्येष्वनुज्ञातो ब्रह्मणा परमेष्ठिना॥ १९

त्यक्त्वा परस्परस्पर्द्धां मैत्रीं च परमां गतः।
सह तेनाप्सरोभिश्च गन्धर्वैश्च समावृतः॥ २०

उपवीणयितुं देवं नकुलीश्वरमीश्वरम्।
भवनान्निर्ययौ धातुर्जलदादंशुमानिव॥ २१

तं दृष्ट्वा षट्कुलीयास्ते नारदं मुनिगोवृषम्।
प्रणम्यावसरं शम्भोः पप्रच्छुः परमादरात्॥ २२

स चावसर एवायमितोऽन्तर्गम्यतामिति।
वदन्नययावन्यपरस्त्वरया परया युतः॥ २३

ततो द्वारि स्थिता ये वै ब्रह्मणे तान्न्यवेदयन्।
तेन ते विविशुर्वेश्म पिण्डीभूयाण्डजन्मनः॥ २४

प्रविश्य दूरतो देवं प्रणम्य भुवि दंडवत्।
समीपे तदनुज्ञाताः परिवृत्योपतस्थिरे॥ २५

यज्ञ पूरा हुआ था, ये सारी बातें जगत्स्रष्टा ब्रह्मयोनि ब्रह्माजीको बतायीं। फिर अपने कार्यके लिये उनसे आज्ञा ले वे अपने नगरको चले गये॥ १३—१५॥

तदनन्तर अपने स्थानपर बैठे हुए ब्रह्माजी गानकी कलामें परस्पर स्पर्धा रखने और विवाद करनेवाले तुम्बुरु और नारदके गानजनित रसका आस्वादन करते हुए वहाँ मध्यस्थता करने लगे। उस समय वे गन्धर्वों और अप्सराओंसे सेवित हो सुखपूर्वक बैठे थे॥ १६-१७॥

उस वेलामें किसी बाहरी व्यक्तिको वहाँ जानेका अवसर नहीं दिया जाता था। इसीलिये जब नैमिषारण्यनिवासी मुनि वहाँ पहुँचे, तब द्वारपालोंने उन्हें द्वारपर ही रोक दिया। वे मुनि ब्रह्मभवनसे बाहर ही पार्श्वभागमें बैठ गये। इधर संगीत-गोष्ठीमें नारदने तुम्बुरुकी समानता प्राप्त की। तब परमेष्ठी ब्रह्माने उन्हें तुम्बुरुके साथ रहनेकी आज्ञा दी और वे पारस्परिक स्पर्धाको त्यागकर तुम्बुरुके परम मित्र हो गये॥ १८-१९॥

तत्पश्चात् गन्धर्वों और अप्सराओंसे घिरे हुए नारद नकुलेश्वर महादेवको वीणागान सुनाकर संतुष्ट करनेके लिये तुम्बुरुके साथ ब्रह्मभवनसे उसी प्रकार निकले, जैसे मेघोंकी घटासे सूर्यदेव बाहर निकलते हैं॥ २०-२१॥

उस समय मुनिवर नारदको देखकर उन छः कुलोंमें उत्पन्न हुए ऋषियोंने प्रणाम किया और बड़े आदरके साथ ब्रह्माजीसे मिलनेका अवसर पूछा। नारदजीका चित्त दूसरी ओर लगा था और वे बड़ी उतावलीमें थे। अतः उनके पूछनेपर बोले—'यही अवसर है। आपलोग भीतर जाइये।' यह कहते हुए वे चले गये॥ २२-२३॥

तदनन्तर द्वारपालोंने ब्रह्माजीको उन ऋषियोंके आगमनकी सूचना दी। उनकी आज्ञा पाकर वे सब एक साथ ब्रह्माजीके भवनमें प्रविष्ट हुए। भीतर जाकर उन्होंने दूरसे ही दण्डकी भाँति पृथ्वीपर गिरकर ब्रह्माजीको प्रणाम किया। फिर उनका आदेश पाकर वे ऋषि उनके पास गये और चारों ओरसे उन्हें घेरकर बैठे॥ २४-२५॥

तांस्तत्रावस्थितान् पृष्ट्वा कुशलं कमलासनः।
वृत्तान्तं वो मया ज्ञातं वायुरेवाह नो यतः॥ २६

भवद्भिः किं कृतं पश्चान्मारुतेऽन्तर्हिते सति।

उन्हें वहाँ बैठा देख कमलासन ब्रह्माने उनका कुशल-समाचार पूछा और बताया कि मुझे तुमलोगोंका सारा वृत्तान्त ज्ञात हो चुका है; क्योंकि वायुदेवने ही यहाँ सब कुछ कहा है। अब तुम बताओ, जब वायुदेव तुम्हें कथा सुनाकर अदृश्य हो गये, तब तुमने क्या किया?॥ २६१/२॥

इत्युक्तवति देवेशे मुनयोऽवभृथात्परम्॥ २७
गङ्गातीर्थेऽस्य गमनं यात्रां वाराणसीं प्रति।
दर्शनं तत्र लिङ्गानां स्थापितानां सुरेश्वरैः॥ २८
अविमुक्तेश्वरस्यापि लिङ्गस्याभ्यर्चनं सकृत्।
आकाशे महतस्तस्य तेजोराशेश्च दर्शनम्॥ २९
मुनीनां विलयं तत्र निरोधं तेजसस्ततः।
याथात्म्यवेदनं तस्य चिन्तितस्यापि चात्मभिः॥ ३०
सर्वं सविस्तरं तस्मै प्रणम्याहुर्मुहुर्मुहुः।

देवेश्वर ब्रह्माके इस प्रकार पूछनेपर उन मुनियोंने अवभृथ-स्नानके पश्चात् गंगातीर्थमें जाने, वाराणसीकी यात्रा करने, वहाँ देवेश्वरोंद्वारा स्थापित शिवलिंगों और अविमुक्तेश्वरलिंगके भी दर्शन-पूजन करने, आकाशमें महान् तेज:पुंजके दिखायी देने, कतिपय महर्षियोंके उसमें लीन होने तथा फिर उस तेजके अदृश्य हो जानेकी सब बातें ब्रह्माजीसे विस्तारपूर्वक उन्हें बारंबार प्रणाम करके कहीं। साथ ही यह भी बताया कि 'हम अपने मनमें बहुत विचार करनेपर भी उस तेजको ठीक-ठीक जान न सके'॥ २७—३०१/२॥

मुनिभिः कथितं श्रुत्वा विश्वकर्मा चतुर्मुखः॥ ३१
कंपयित्वा शिरः किञ्चित्प्राह गम्भीरया गिरा।
प्रत्यासीदति युष्माकं सिद्धिरामुष्मिकी परा॥ ३२
भवद्भिर्दीर्घसत्रेण चिरमाराधितः प्रभुः।
प्रसादाभिमुखो भूत इति भूतार्थसूचितम्॥ ३३
वाराणस्यां तु युष्माभिर्यद् दृष्टं दिवि दीप्तिमत्।
तल्लिंगसंज्ञितं साक्षात्तेजो माहेश्वरं परम्॥ ३४

मुनियोंका कथन सुनकर विश्वस्रष्टा चतुर्मुख ब्रह्माने किंचित् सिर हिलाकर गम्भीर वाणीमें कहा—'महर्षियो! तुम्हें परम उत्तम पारलौकिक सिद्धि प्राप्त होनेका अवसर आ रहा है। तुमने दीर्घकालिक सत्रद्वारा चिरकालतक प्रभुकी आराधना की है। इसलिये वे प्रसन्न होकर तुमलोगोंपर कृपा करनेको उत्सुक हैं। उस तेज:पुंजके दर्शनकी जो घटना घटित हुई है, उससे यही बात सूचित होती है। तुमने वाराणसीमें आकाशके भीतर जो दीप्तिमान् दिव्य तेज देखा था, वह साक्षात् ज्योतिर्मय लिंग ही था, उसे महेश्वरका उत्कृष्ट तेज समझो॥ ३१—३४॥

तत्र लीनाश्च मुनयः श्रौतपाशुपतव्रताः।
मुक्ता बभूवुः स्वस्थाश्च नैष्ठिका दग्धकिल्बिषाः॥ ३५
प्राप्यानेन यथा मुक्तिरचिराद्भवतामपि।
स चायमर्थः सूच्येत युष्मद्दृष्टेन तेजसा॥ ३६
तत्र वः काल एवैष दैवादुपनतः स्वयम्।
प्रयात दक्षिणं मेरोः शिखरं देवसेवितम्॥ ३७

उस तेजमें श्रौत और पाशुपत-व्रतका पालन करनेवाले मुनि, जो स्वधर्ममें पूर्णतः निष्ठा रखनेवाले थे और अपने पापको दग्ध कर चुके थे, लीन हुए हैं। लीन होकर वे स्वस्थ एवं मुक्त हो गये हैं। इसी मार्गसे तुम्हें भी शीघ्र ही मुक्ति प्राप्त होनेवाली है। तुम्हारे देखे हुए उस तेजसे यही बात सूचित होती है। तुम्हारे लिये यह वही समय दैववश स्वयं उपस्थित

सनत्कुमारो यत्रास्ते मम पुत्रः परो मुनिः।
प्रतीक्ष्यागमनं साक्षाद्भूतनाथस्य नंदिनः॥ ३८

हो गया है। तुम मेरुपर्वतके दक्षिण शिखरपर, जहाँ देवता रहते हैं, जाओ, वहीं मेरे पुत्र सनत्कुमार, जो उत्कृष्ट मुनि हैं, निवास करते हैं। वे वहाँ साक्षात् भूतनाथ नन्दीके आगमनकी प्रतीक्षामें हैं॥ ३५—३८॥

पुरा सनत्कुमारोऽपि दृष्ट्वापि परमेश्वरम्।
अज्ञानात्सर्वयोगीन्द्रमानी विनयदूषितः॥ ३९

अभ्युत्थानादिकं युक्तमकुर्वन्नतिनिर्भयः।
ततोऽपराधात्क्रुद्धेन महोष्ट्रो नंदिना कृतः॥ ४०

पूर्वकालकी बात है, सनत्कुमार अज्ञानवश अपनेको सब योगियोंका शिरोमणि मानने लगे थे। इसीलिये दुर्विनीत हो गये थे। यही कारण है कि उन्होंने किसी समय परमेश्वर शिवको सामने देखकर भी उनके लिये उचित अभ्युत्थान आदि सत्कार नहीं किया। वे अपने स्थानपर निर्भय बैठे रहे। उनके इस अपराधसे कुपित हो नन्दीने उन्हें बहुत बड़ा ऊँट बना दिया॥ ३९-४०॥

अथ कालेन महता तदर्थे शोचता मया।
उपास्य देवं देवीं च नंदिनं चानुनीय वै॥ ४१

कथंचिद् दुष्टता तस्य प्रयत्नेन निवारिता।
प्रापितो हि यथापूर्वं सनत्पूर्वां कुमारताम्॥ ४२

तब उनके लिये मुझे बड़ा शोक हुआ और मैंने दीर्घकालतक महादेव और महादेवीकी उपासना करके नन्दीसे भी बड़ी अनुनय-विनय की। इस प्रकार प्रयत्न करके किसी तरह उनको ऊँटकी योनिसे छुटकारा दिलाया और उन्हें पूर्ववत् सनत्कुमाररूपकी प्राप्ति करायी॥ ४१-४२॥

तदाह च महादेवः स्मयन्निव गणाधिपम्।
अवज्ञाय हि मामेव तथाहंकृतवान्मुनिः॥ ४३

अतस्त्वमेव याथात्म्यं ममास्मै कथयानघ।
ब्रह्मणः पूर्वजः पुत्रो मां मूढमिव संस्मरन्॥ ४४

मयैव शिष्यस्ते दत्तो मम ज्ञानप्रवर्तकः।
धर्माध्यक्षाभिषेकं च तव निर्वर्त्तयिष्यति॥ ४५

उस समय महादेवजीने मुसकराते हुए-से अपने गणाध्यक्ष नन्दीसे कहा— 'अनघ! सनत्कुमार मुनिने मेरी ही अवहेलना करके अपना वैसा अहंकार प्रकट किया था, अतः तुम्हीं उनको मेरे यथार्थ स्वरूपका उपदेश दो। ब्रह्माका ज्येष्ठ पुत्र मूढ़की भाँति मेरा स्मरण कर रहा है, अतः मैंने ही उसको तुम्हें शिष्यके रूपमें दिया है; तुमसे उपदेश पाकर वह मेरे ज्ञानका प्रवर्तक होगा और वही तुम्हारा धर्माध्यक्षके पदपर अभिषेक करेगा।'॥ ४३—४५॥

स एवं व्याहृतो भूयः सर्वभूतगणाग्रणीः।
यत्पुराज्ञापनं मूर्ध्ना प्राप्य प्रतिगृहीतवान्॥ ४६

तथा सनत्कुमारोऽपि मेरौ मदनुशासनात्।
प्रसादार्थं गणस्यास्य तपश्चरति दुश्चरम्॥ ४७

द्रष्टव्यश्चेति युष्माभिः प्राग्गणेशसमागमात्।
तत्प्रसादार्थमचिरान्नन्दी तत्रागमिष्यति॥ ४८

महादेवजीके ऐसा कहनेपर समस्त भूतगणोंके अध्यक्ष नन्दीने [प्रातःकाल] मस्तक झुकाकर स्वामीकी वह आज्ञा शिरोधार्य की तथा सनत्कुमार भी मेरी आज्ञासे इस गणराज नन्दीको प्रसन्न करनेके लिये मेरुपर दुष्कर तपस्या कर रहे हैं। गणाध्यक्ष नन्दीके समागमसे पहले ही तुमलोग सनत्कुमारसे मिलो; क्योंकि उनपर कृपा करनेके लिये नन्दी शीघ्र ही वहाँ आयेंगे॥ ४६—४८॥

इति सत्वरमादिश्य प्रेषिता विश्वयोनिना।
कुमारशिखरं मेरोर्दक्षिणं मुनयो ययुः॥ ४९

विश्वयोनि ब्रह्माके इस प्रकार आदेश देकर भेजनेपर वे मुनि मेरुपर्वतके दक्षिणवर्ती कुमार-शिखरपर शीघ्र गये॥ ४९॥

इति श्रीशिवमहापुराणे सप्तम्यां वायवीयसंहितायामुत्तरखण्डे नैमिषर्षियात्रावर्णनं नाम चत्वारिंशोऽध्यायः॥ ४०॥

॥ इस प्रकार श्रीशिवमहापुराणके अन्तर्गत सातवीं वायवीयसंहिताके उत्तरखण्डमें नैमिषर्षियात्रावर्णन नामक चालीसवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ ४०॥

अथैकचत्वारिंशोऽध्यायः

मेरुगिरिके स्कन्द-सरोवरके तटपर मुनियोंका सनत्कुमारजीसे मिलना, भगवान् नन्दीका वहाँ आना और दृष्टिपातमात्रसे पाशछेदन एवं ज्ञानयोगका उपदेश करके चला जाना, शिवपुराणकी महिमा तथा ग्रन्थका उपसंहार

सूत उवाच

तत्र स्कन्दसरो नाम सरः सागरसन्निभम्।
अमृतस्वादुशिशिरस्वच्छागाधलघूदकम्॥ १

समन्ततः संघटितं स्फटिकोपलसञ्चयैः।
सर्वर्तुकुसुमैः फुल्लैश्छादिताखिलदिङ्मुखम्॥ २

सूतजी कहते हैं—वहाँ [मेरुपर्वतपर] सागरके समान एक विशाल सरोवर है, जिसका नाम स्कन्द-सर है। उसका जल अमृतके समान स्वादिष्ठ, शीतल, स्वच्छ, अगाध और हलका है। वह सरोवर सब ओरसे स्फटिकमणिके शिलाखण्डोंद्वारा संघटित हुआ है। उसके चारों ओर सभी ऋतुओंमें खिलनेवाले फूलोंसे भरे हुए वृक्ष उसे आच्छादित किये रहते हैं॥ १-२॥

शैवलैरुत्पलैः पद्मैः कुमुदैस्तारकोपमैः।
तरङ्गैरभ्रसङ्काशैराकाशमिव भूमिगम्॥ ३

सुखावतरणारोहैः स्थलैर्नीलशिलामयैः।
सोपानमार्गै रुचिरैः शोभमानाष्टदिङ्मुखम्॥ ४

उस सरोवरमें सेवार, उत्पल, कमल और कुमुदके पुष्प तारोंके समान शोभा पाते हैं और तरंगें बादलोंके समान उठती रहती हैं, जिससे जान पड़ता है कि आकाश ही भूमिपर उतर आया है। वहाँ सुखपूर्वक उतरने-चढ़नेके लिये सुन्दर घाट और सीढ़ियाँ हैं। वहाँकी भूमि नीली शिलाओंसे आबद्ध है। आठों दिशाओंकी ओरसे वह सरोवर बड़ी शोभा पाता है॥ ३-४॥

तत्रावतीर्णैश्च यथा तत्रोत्तीर्णैश्च भूयसा।
स्नातैः सितोपवीतैश्च शुक्लकौपीनवल्कलैः॥ ५

जटाशिखायनैर्मुण्डैस्त्रिपुंड्रकृतमण्डनैः।
विरागविवशस्मेरमुखैर्मुनिकुमारकैः॥ ६

घटैः कमलिनीपत्रपुटैश्च कलशैः शिवैः।
कमण्डलुभिरन्यैश्च तादृशैः करकादिभिः॥ ७

आत्मार्थं च परार्थं च देवतार्थं विशेषतः।
आनीयमानसलिलमात्तपुष्पं च नित्यशः॥ ८

वहाँ बहुत-से लोग नहानेके लिये उतरते हैं और कितने ही नहाकर निकलते रहते हैं। स्नान करके श्वेत यज्ञोपवीत और उज्ज्वल कौपीन धारण किये, वल्कल पहने, सिरपर जटा अथवा शिखा रखाये या मूँड़ मुड़ाये, ललाटमें त्रिपुण्ड्र लगाये, वैराग्यसे विमल एवं मुसकराते मुखवाले बहुत-से मुनिकुमार घड़ोंमें, कमलिनीके पत्तोंके दोनोंमें, सुन्दर कलशोंमें, कमण्डलुओंमें तथा वैसे ही करकों (करवों) आदिमें अपने लिये, दूसरोंके लिये, विशेषतः देवपूजाके लिये वहाँसे नित्य जल और फूल ले जाते हैं॥ ५—८॥

अन्तर्जलशिलारूढैर्नीचानां स्पर्शशंकया।
आचारवद्भिर्मुनिभिः कृतभस्माङ्गधूसरैः॥ ९
इतस्ततोऽप्सु मज्जद्भिरिष्टशिष्टैः शिलागतैः।
तिलैश्च साक्षतैः पुष्पैस्त्यक्तदर्भपवित्रकैः॥ १०
देवाद्यमृषिमध्यं च निर्वर्त्य पितृतर्पणम्।
निवेदयेदभिज्ञेभ्यो नित्यस्नानगतान् द्विजान्॥ ११

आचारसम्पन्न, भस्मोद्धूलित शरीरवाले, सम्मान्य शिष्ट मुनिजन अपवित्र पुरुष आदिके स्पर्शसे शंकित रहते हुए उस सरोवरमें जहाँ-तहाँ जलमें डूबी हुई शिलाओंपर स्थित हो स्नानकृत्य सम्पन्न करते हैं। देवर्षि-मनुष्य-पितृतर्पण करनेके उपरान्त छोड़े गये कुश, तिल, अक्षत, पुष्प तथा पवित्रक आदिसे युक्त वह सरोवर स्नानादि धर्मकृत्योंके सम्पादनार्थ आये हुए द्विजोंका मानो परिचय-सा देता रहता है॥ ९—११॥

स्थाने स्थाने कृतानेकबलिपुष्पसमीरणैः।
सौरार्घ्यपूर्वं कुर्वद्भिः स्थण्डिलेभ्यर्चनादिकम्॥ १२
क्वचिन्निमज्जदुन्मज्जत्प्रस्त्रस्तगजयूथपम्।
क्वचिच्च तृषयायातमृगीमृगतुरङ्गमम्॥ १३
क्वचित्पीतजलोत्तीर्णमयूरवरवारणम्।
क्वचित्कृततटाघातवृषप्रतिवृषोज्ज्वलम्॥ १४

स्थान-स्थानपर अनेक प्रकारकी पुष्पबलि आदि [मन्त्रोंके] उच्चारणपूर्वक दी जाती है, कुछ लोग सूर्यदेवको अर्घ्य देते हैं और कुछ लोग वेदिकाओंपर देवताओंकी अर्चनामें निरत रहते हैं। उस सरोवरमें कहीं [श्रमके कारण] शिथिल शरीरवाले श्रेष्ठ गज डूबते-उतराते हुए जलक्रीडा करते हैं तो कहीं प्यास बुझानेके लिये हरिण, हरिणियाँ और घोड़े आते दीखते हैं। वहाँपर कहीं तो जल पीकर उड़ते हुए मयूर परस्पर स्पर्धा-सी करते हैं तो कहींपर तटोंको आहत करते हुए वृषभ अपने प्रतिद्वन्द्वी वृषभोंसे लड़ते हुए शोभित होते हैं॥ १२—१४॥

क्वचित्कारंडवरवैः क्वचित्सारसकूजितैः।
क्वचिच्च कोकनिनदैः क्वचिद्भ्रमरगीतिभिः॥ १५
स्नानपानादिकरणैः स्वसम्पद्द्रुमजीविभिः।
प्रणयात्प्राणिभिस्तैस्तैर्भाषमाणमिवासकृत्॥ १६
कूलशाखिशिखालीनकोकिलाकुलकूजितैः।
आतपोपहतान् सर्वान्नामन्त्रयदिवानिशम्॥ १७

कहीं कारण्डव पक्षियोंकी ध्वनि हो रही है, कहीं सारसोंका कूजन सुनायी दे रहा है, कहीं कोकपक्षी (चक्रवाक) शब्द कर रहे हैं और कहीं भौंरे गुंजन करते हुए मानो गीत-सा गा रहे हैं। वह सरोवर जलमें स्नान-पानादि करते हुए अपने समीपवर्ती वृक्षोंका आश्रय लेकर रहनेवाले जीव-जन्तुओंसे मानो प्रेमपूर्वक बार-बार वार्तालाप कर रहा है। वह सरोवर अपने तटवर्ती वृक्षोंकी चोटियोंपर बैठकर कूजन करती हुई कोयलोंकी [कुहू-कुहू] ध्वनिके बहानेसे मानो आतपसे सन्तप्त सभी जीवोंको निरन्तर आमन्त्रित-सा करता है॥ १५—१७॥

उत्तरे तस्य सरसस्तीरे कल्पतरोरधः।
वेद्यां वज्रशिलामय्यां मृदुले मृगचर्मणि॥ १८
सनत्कुमारमासीनं शश्वद्बालवपुर्धरम्।
तत्कालमात्रोपरतं समाधेरचलात्मनः॥ १९
उपास्यमानं मुनिभिर्योगीन्द्रैरपि पूजितम्।
ददृशुर्नैमिषेयास्ते प्रणताश्चोपतस्थिरे॥ २०

उस सरोवरके उत्तर तटपर एक कल्पवृक्षके नीचे हीरेकी शिलासे बनी हुई वेदीपर कोमल मृगचर्म बिछाकर सदा बालरूपधारी सनत्कुमारजी बैठे थे। वे अपनी अविचल समाधिसे उसी समय उपरत हुए थे। उस समय बहुत-से ऋषि-मुनि उनकी सेवामें बैठे थे और योगीश्वर भी उनकी पूजा कर रहे थे। नैमिषारण्यके मुनियोंने वहाँ सनत्कुमारजीका दर्शन किया। उनके चरणोंमें मस्तक झुकाया और उनके आस-पास बैठ गये॥ १८—२०॥

यावत्पृष्टवते तस्मै प्रोचुः स्वागतकारणम्।
तुमुलः शुश्रुवे तावद्दिवि दुंदुभिनिःस्वनः॥ २१

ददृशे तत्क्षणे तस्मिन् विमानं भानुसन्निभम्।
गणेश्वरैरसंख्येयैः संवृतं च समन्ततः॥ २२

अप्सरोगणसंकीर्णं रुद्रकन्याभिरावृतम्।
मृदङ्गमुरजोद्घुष्टं वेणुवीणारवान्वितम्॥ २३

चित्ररत्नवितानाढ्यं मुक्तादामविराजितम्।
मुनिभिः सिद्धगन्धर्वैर्यक्षचारणकिन्नरैः ॥ २४

नृत्यद्भिश्चैव गायद्भिर्वादयद्भिश्च संवृतम्।
वीरगोवृषचिह्नेन विद्रुमद्रुमयष्टिना॥ २५

कृतगोपुरसत्कारं केतुना मान्यहेतुना।
तस्य मध्ये विमानस्य चामरद्वितयान्तरे॥ २६

छत्रस्य मणिदंडस्य चन्द्रस्येव शुचेरधः।
दिव्यसिंहासनारूढं देव्या सुयशया सह॥ २७

श्रिया च वपुषा चैव त्रिभिश्चापि विलोचनैः।
प्राकारैरभिकृत्यानां प्रत्यभिज्ञापकं प्रभोः॥ २८

अविलंघ्य जगत्कर्तुराज्ञापनमिवागतम्।
सर्वानुग्रहणं शम्भोः साक्षादिव पुरःस्थितम्॥ २९

शिलादतनयं साक्षाच्छ्रीमच्छूलवरायुधम्।
विश्वेश्वरगणाध्यक्षं विश्वेश्वरमिवापरम्॥ ३०

विश्वस्यापि विधातॄणां निग्रहानुग्रहक्षमम्।
चतुर्बाहुमुदाराङ्गं चन्द्ररेखाविभूषितम्॥ ३१

कंठे नागेन मौलौ च शशांकेनाप्यलंकृतम्।
सविग्रहमिवैश्वर्यं सामर्थ्यमिव सक्रियम्॥ ३२

सनत्कुमारजीके पूछनेपर उन ऋषियोंने उनसे ज्यों ही अपने आगमनका कारण बताना आरम्भ किया, त्यों ही आकाशमें दुन्दुभियोंका तुमुल नाद सुनायी दिया। उसी समय सूर्यके समान तेजस्वी एक विमान दृष्टिगोचर हुआ, जो असंख्य गणेश्वरोंद्वारा चारों ओरसे घिरा हुआ था। उसमें अप्सराएँ तथा रुद्रकन्याएँ भी थीं। वहाँ मृदंग, ढोल और वीणाकी ध्वनि गूँज रही थी॥ २१—२३॥

उस विमानमें विचित्र रत्नजटित चँदोवा तना था और मोतियोंकी लड़ियाँ उसकी शोभा बढ़ा रही थीं। बहुत-से मुनि, सिद्ध, गन्धर्व, यक्ष, चारण और किन्नर नाचते, गाते और बाजे बजाते हुए उस विमानको सब ओरसे घेरकर चल रहे थे, उसमें वृषभचिह्नसे युक्त और मूँगेके दण्डसे विभूषित ध्वजा-पताका फहरा रही थी, जो उसके गोपुरकी शोभा बढ़ाती थी। उस विमानके मध्यभागमें दो चँवरोंके बीच चन्द्रमाके समान उज्ज्वल मणिमय दण्डवाले शुभ्र छत्रके नीचे दिव्य सिंहासनपर शिलादपुत्र नन्दी देवी सुयशाके साथ बैठे थे। वे अपनी कान्तिसे, शरीरसे तथा तीनों नेत्रोंसे बड़ी शोभा पा रहे थे। भगवान् शंकरको आवश्यक कार्योंकी सूचना देनेवाले वे नन्दी मानो जगत्स्रष्टा शिवके अलंघनीय आदेशका मूर्तिमान् स्वरूप होकर वहाँ आये थे, अथवा उनके रूपमें मानो साक्षात् शम्भुका सम्पूर्ण अनुग्रह ही साकाररूप धारण करके वहाँ सबके सामने उपस्थित हुआ था॥ २४—२९॥

शोभाशाली श्रेष्ठ त्रिशूल ही उनका आयुध है। वे विश्वेश्वरके गणोंके अध्यक्ष हैं और दूसरे विश्वनाथकी भाँति शक्तिशाली हैं। उनमें विश्व-स्रष्टा विधाताओंका भी निग्रह और अनुग्रह करनेकी शक्ति है। उनके चार भुजाएँ हैं। अंग-अंगसे उदारता सूचित होती है, वे चन्द्रलेखासे विभूषित हैं। कण्ठमें नाग और मस्तकपर चन्द्रमा उनके अलंकार हैं। वे साकार ऐश्वर्य और सक्रिय सामर्थ्यके स्वरूप-से जान पड़ते हैं॥ ३०—३२॥

समाप्तमिव निर्वाणं सर्वज्ञमिव सङ्गतम्।
दृष्ट्वा प्रहृष्टवदनो ब्रह्मपुत्रः सहर्षिभिः॥ ३३

तस्थौ प्राञ्जलिरुत्थाय तस्यात्मानमिवार्पयन्।
अथ तत्रान्तरे तस्मिन्विमाने चावनिं गते॥ ३४

प्रणम्य दण्डवद्देवं स्तुत्वा व्यज्ञापयन्मुनीन्।
षट्कुलीया इमे दीर्घं नैमिषे सत्रमास्थिताः।
आगता ब्रह्मणादिष्टाः पूर्वमेवाभिकांक्षया॥ ३५

भलीभाँति प्राप्त हुए मोक्ष अथवा निकट उपस्थित हुए सर्वज्ञ परमात्माके समान प्रतीत होनेवाले उन्हें देखकर ऋषियोंसहित ब्रह्मपुत्र सनत्कुमारका मुख प्रसन्नतासे खिल उठा। वे दोनों हाथ जोड़कर उठे और उन्हें आत्मसमर्पण-सा करते हुए खड़े हो गये। इतनेमें ही वह विमान धरतीपर आ गया, सनत्कुमारने देव नन्दीको साष्टांग प्रणाम करके उनकी स्तुति की और मुनियोंका परिचय देते हुए कहा—'ये छः कुलोंमें उत्पन्न ऋषि हैं, जो नैमिषारण्यमें दीर्घकालसे सत्रका अनुष्ठान करते थे। ब्रह्माजीके आदेशसे आपका दर्शन करनेके लिये ये लोग पहलेसे ही यहाँ आये हुए हैं'॥ ३३—३५॥

श्रुत्वा वाक्यं ब्रह्मपुत्रस्य नंदी
छित्त्वा पाशान्दृष्टिपातेन सद्यः।
शैवं धर्मं चैश्वरं ज्ञानयोगं
दत्त्वा भूयो देवपार्श्वं जगाम॥ ३६

ब्रह्मपुत्र सनत्कुमारका यह कथन सुनकर नन्दीने दृष्टिपातमात्रसे उन सबके पाशोंको तत्काल काट डाला और ईश्वरीय शैवधर्म एवं ज्ञानयोगका उपदेश देकर वे फिर महादेवजीके पास चले गये॥ ३६॥

सनत्कुमारेण च तत्समस्तं
व्यासाय साक्षाद्गुरवे ममोक्तम्।
व्यासेन चोक्तं महितेन मह्यं
मया च तद्वः कथितं समासात्॥ ३७

सनत्कुमारने वह समस्त ज्ञान साक्षात् मेरे गुरु व्यासको दिया, पूजनीय व्यासजीने मुझे संक्षेपसे वह सब कुछ बताया और उस ज्ञानको मैंने संक्षेपमें आप लोगोंको बताया॥ ३७॥

नावेदविद्भ्यः कथनीयमेतत्
पुराणरत्नं पुरशासनस्य।
नाभक्तशिष्याय च नास्तिकेभ्यो
दत्तं हि मोहान्निरयं ददाति॥ ३८

त्रिपुरारि शिवके इस पुराणरत्नका उपदेश वेदके न जाननेवाले लोगोंको नहीं देना चाहिये। जिस शिष्यकी गुरुमें भक्ति न हो, उसको तथा नास्तिकोंको भी इसका उपदेश नहीं देना चाहिये। यदि मोहवश इन अनधिकारियोंको इसका उपदेश दिया गया तो यह नरक प्रदान करता है॥ ३८॥

मार्गेण सेवानुगतेन यैस्तद्
दत्तं गृहीतं पठितं श्रुतं वा।
तेभ्यः सुखं धर्ममुखं त्रिवर्गं
निर्वाणमन्ते नियतं ददाति॥ ३९

जिन लोगोंने सेवानुगत-मार्गसे इस पुराणका उपदेश दिया, लिया, पढ़ा अथवा सुना है, उनको यह सुख तथा धर्म आदि त्रिवर्ग प्रदान करता है और अन्तमें निश्चय ही मोक्ष देता है॥ ३९॥

परस्परस्योपकृतं भवद्भि-
र्मया च पौराणिकमार्गयोगात्।
अतो गमिष्येऽहमवाप्तकामः
समस्तमेवास्तु शिवं सदा नः॥ ४०

इस पौराणिक मार्गके सम्बन्धसे आपलोगोंने और मैंने एक-दूसरेका उपकार किया है; अतः मैं सफल-मनोरथ होकर जा रहा हूँ। हमलोगोंका सदा सब प्रकारसे मंगल ही हो॥ ४०॥

सूते कृताशिषि गते मुनयः सुवृत्ता
यागे च पर्यवसिते महति प्रयागे।

सूतजीके आशीर्वाद देकर चले जाने और [नैमिषारण्यके अन्तर्गत स्थित] प्रयागतीर्थमें उस महायज्ञके पूर्ण हो जानेपर वे सदाचारी मुनि विषय-

काले कलौ च विषयैः कलुषायमाणे
वाराणसीपरिसरे वसतिं वितेनुः ॥ ४१
अथ च ते पशुपाशमुमुक्षया-
खिलतया कृतपाशुपतव्रताः।
अधिकृताखिलबोधसमाधयः
परमनिर्वृतिमापुरनिन्दिताः ॥ ४२

कलुषित कलिकालके आनेसे काशीके आसपास निवास करने लगे। तदनन्तर पशु-पाशसे छूटनेकी इच्छासे उन सबने पूर्णतया पाशुपत-व्रतका अनुष्ठान किया और सम्पूर्ण बोध एवं समाधिपर अधिकार करके वे अनिन्द्य महर्षि परमानन्दको प्राप्त हो गये॥ ४१-४२॥

व्यास उवाच

एतच्छिवपुराणं हि समाप्तं हितमादरात्।
पठितव्यं प्रयत्नेन श्रोतव्यं च तथैव हि॥ ४३
नास्तिकाय न वक्तव्यमश्रद्धाय शठाय च।
अभक्ताय महेशस्य तथा धर्मध्वजाय च॥ ४४

व्यासजी कहते हैं—यह शिवपुराण पूरा हुआ, इस हितकर पुराणको बड़े आदर एवं प्रयत्नसे पढ़ना तथा सुनना चाहिये। नास्तिक, श्रद्धाहीन, शठ, महेश्वरके प्रति भक्तिसे रहित तथा धर्मध्वजी (पाखण्डी)-को इसका उपदेश नहीं देना चाहिये॥ ४३-४४॥

एतच्छ्रुत्वा ह्येकवारं भवेत् पापं हि भस्मसात्।
अभक्तो भक्तिमाप्नोति भक्तो भक्तिसमृद्धिभाक्॥ ४५
पुनः श्रुते च सद्भक्तिर्मुक्तिः स्याच्च श्रुते पुनः।
तस्मात् पुनः पुनश्चैव श्रोतव्यं हि मुमुक्षुभिः॥ ४६

इसका एक बार श्रवण करनेसे ही सारा पाप भस्म हो जाता है। भक्तिहीन भक्ति पाता है और भक्त भक्तिकी समृद्धिका भागी होता है। दोबारा श्रवण करनेपर उत्तम भक्ति और तीसरी बार सुननेपर मुक्ति सुलभ हो जाती है, इसलिये मुमुक्षु पुरुषोंको बारंबार इसका श्रवण करना चाहिये॥ ४५-४६॥

पञ्चावृत्तिः प्रकर्तव्या पुराणस्यास्य सद्धिया।
परं फलं समुद्दिश्य तत्प्राप्नोति न संशयः॥ ४७
पुरातनाश्च राजानो विप्रा वैश्याश्च सत्तमाः।
सप्तकृत्वस्तदावृत्यालभन्त शिवदर्शनम्॥ ४८

किसी भी उत्तम फलको पानेके लिये शुद्ध-बुद्धिसे इस पुराणकी पाँच आवृत्ति करनी चाहिये। ऐसा करनेसे मनुष्य उस फलको प्राप्त कर लेता है, इसमें संशय नहीं है। प्राचीन कालके राजाओं, ब्राह्मणों तथा श्रेष्ठ वैश्योंने इसकी सात आवृत्ति करके शिवका साक्षात् दर्शन प्राप्त किया है॥ ४७-४८॥

श्रोष्यत्यथापि यश्चेदं मानवो भक्तितत्परः।
इह भुक्त्वाखिलान् भोगानन्ते मुक्तिं लभेच्च सः॥ ४९
एतच्छिवपुराणं हि शिवस्यातिप्रियं परम्।
भुक्तिमुक्तिप्रदं ब्रह्मसम्मितं भक्तिवर्धनम्॥ ५०
एतच्छिवपुराणस्य वक्तुः श्रोतुश्च सर्वदा।
सगणः ससुतः साम्बः शं करोतु स शङ्करः॥ ५१

जो मनुष्य भक्तिपरायण हो इसका श्रवण करेगा, वह भी इहलोकमें सम्पूर्ण भोगोंका उपभोग करके अन्तमें मोक्ष प्राप्त कर लेगा। यह श्रेष्ठ शिवपुराण भगवान् शिवको अत्यन्त प्रिय है। यह वेदके तुल्य माननीय, भोग और मोक्ष देनेवाला तथा भक्तिभावको बढ़ानेवाला है। अपने प्रमथगणों, दोनों पुत्रों तथा देवी पार्वतीजीके साथ भगवान् शंकर इस पुराणके वक्ता और श्रोताका सदा कल्याण करें॥ ४९—५१॥

इति श्रीशिवमहापुराणे सप्तम्यां वायवीयसंहितायामुत्तरखण्डे व्यासोपदेश-श्रीशिवमहापुराणमाहात्म्यवर्णनं नामैकचत्वारिंशोऽध्यायः॥ ४१॥

इस प्रकार श्रीशिवमहापुराणके अन्तर्गत सातवीं वायवीयसंहिताके उत्तरखण्डमें व्यासोपदेश एवं श्रीशिवमहापुराणमाहात्म्यवर्णन नामक इकतालीसवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ ४१॥

॥ श्रीशिवमहापुराण-द्वितीय खण्ड—उत्तरार्ध सम्पूर्ण॥

॥ समाप्तोऽयं ग्रन्थः॥ श्रीसाम्बशिवार्पणमस्तु॥

॥ श्रीहरिः ॥

सदाशिवके विभिन्न स्वरूपोंका ध्यान

भगवान् सदाशिव

यो धत्ते भुवनानि सप्त गुणवान् स्रष्टा रजःसंश्रयः संहर्ता तमसान्वितो गुणवतीं मायामतीत्य स्थितः।
सत्यानन्दमनन्तबोधममलं ब्रह्मादिसंज्ञास्पदं नित्यं सत्त्वसमन्वयादधिगतं पूर्णं शिवं धीमहि॥

जो रजोगुणका आश्रय लेकर संसारकी सृष्टि करते हैं, सत्त्वगुणसे सम्पन्न हो सातों भुवनोंका धारण पोषण करते हैं, तमोगुणसे युक्त हो सबका संहार करते हैं तथा त्रिगुणमयी मायाको लाँघकर अपने शुद्ध स्वरूपमें स्थित रहते हैं, उन सत्यानन्दस्वरूप, अनन्त बोधमय, निर्मल एवं पूर्णब्रह्म शिवका हम ध्यान करते हैं। वे ही सृष्टिकालमें ब्रह्मा, पालनके समय विष्णु और संहारकालमें रुद्र नाम धारण करते हैं तथा सदैव सात्त्विकभावको अपनानेसे ही प्राप्त होते हैं।

परमात्मप्रभु शिव

वेदान्तेषु यमाहुरेकपुरुषं व्याप्य स्थितं रोदसी यस्मिन्नीश्वर इत्यनन्यविषयः शब्दो यथार्थाक्षरः।
अन्तर्यश्च मुमुक्षुभिर्नियमितप्राणादिभिर्मृग्यते स स्थाणुः स्थिरभक्तियोगसुलभो निःश्रेयसायास्तु वः॥

वेदान्तग्रन्थोंमें जिन्हें एकमात्र परम पुरुष परमात्मा कहा गया है, जिन्होंने समस्त द्यावा—पृथिवीको अन्तर्बाह्य—सर्वत्र व्याप्त कर रखा है, जिन एकमात्र महादेवके लिये 'ईश्वर' शब्द अक्षरशः यथार्थरूपमें प्रयुक्त होता है और जो किसी दूसरेके विशेषणका विषय नहीं बनता, अपने अन्तर्हृदयमें समस्त प्राणोंको निरुद्ध करके मोक्षकी इच्छावाले योगीजन जिनका निरन्तर चिन्तन और अन्वेषण करते रहते हैं, वे नित्य एक समान सुस्थिर रहनेवाले, महाप्रलयमें भी विक्रियाको प्राप्त न होनेवाले और भक्तियोगसे शीघ्र प्रसन्न होनेवाले भगवान् शिव आप सभीका परम कल्याण करें।

मङ्गलस्वरूप भगवान् शिव

कृपाललितवीक्षणं स्मितमनोज्ञवक्त्राम्बुजं शशाङ्ककलयोज्ज्वलं शमितघोरतापत्रयम्।
करोतु किमपि स्फुरत्परमसौख्यसच्चिद्वपुर्धराधरसुताभुजोद्वलयितं महो मङ्गलम्॥

जिनकी कृपापूर्ण चितवन बड़ी ही सुन्दर है, जिनका मुखारविन्द मन्द मुसकानकी छटासे अत्यन्त मनोहर दिखायी देता है, जो चन्द्रमाकी कला जैसे परम उज्ज्वल हैं, जो आध्यात्मिक आदि तीनों तापोंको शान्त कर देनेमें समर्थ हैं, जिनका स्वरूप सच्चिन्मय एवं परमानन्दरूपसे प्रकाशित होता है तथा जो गिरिराजनन्दिनी पार्वतीके भुजापाशसे आवेष्टित हैं, वे शिव नामक कोई अनिर्वचनीय तेजःपुंज सबका मंगल करें।

भगवान् अर्धनारीश्वर

नीलप्रवालरुचिरं विलसत्त्रिनेत्रं पाशारुणोत्पलकपालत्रिशूलहस्तम्।
अर्धाम्बिकेशमनिशं प्रविभक्तभूषं बालेन्दुबद्धमुकुटं प्रणमामि रूपम्॥
यो धत्ते निजमाययैव भुवनाकारं विकारोज्झितो यस्याहुः करुणाकटाक्षविभवौ स्वर्गापवर्गाभिधौ।
प्रत्यग्बोधसुखाद्वयं हृदि सदा पश्यन्ति यं योगिनस्तस्मै शैलसुताञ्चितार्धवपुषे शश्वन्नमस्तेजसे॥

श्रीशंकरजीका शरीर नीलमणि और प्रवालके समान सुन्दर (नीललोहित) है, तीन नेत्र हैं, चारों हाथोंमें पाश, लाल कमल, कपाल और त्रिशूल हैं, आधे अंगमें अम्बिकाजी और आधेमें महादेवजी हैं। दोनों अलग अलग शृंगारोंसे सज्जित हैं, ललाटपर अर्धचन्द्र है और मस्तकपर मुकुट सुशोभित है, ऐसे स्वरूपको नमस्कार है।

जो निर्विकार होते हुए भी अपनी मायासे ही विराट् विश्वका आकार धारण कर लेते हैं, स्वर्ग और अपवर्ग (मोक्ष) जिनके कृपा-कटाक्षके ही वैभव बताये जाते हैं तथा योगीजन जिन्हें सदा अपने हृदयके भीतर

अद्वितीय आत्मज्ञानानन्दस्वरूपमें ही देखते हैं, उन तेजोमय भगवान् शंकरको, जिनका आधा शरीर शैलराजकुमारी पार्वतीसे सुशोभित है, निरन्तर मेरा नमस्कार है।

भगवान् शंकर

वन्दे वन्दनतुष्टमानसमतिप्रेमप्रियं प्रेमदं पूर्णं पूर्णकरं प्रपूर्णनिखिलैश्वर्यैकवासं शिवम्।
सत्यं सत्यमयं त्रिसत्यविभवं सत्यप्रियं सत्यदं विष्णुब्रह्मनुतं स्वकीयकृपयोपात्ताकृतिं शंकरम्॥

वन्दना करनेसे जिनका मन प्रसन्न हो जाता है, जिन्हें प्रेम अत्यन्त प्यारा है, जो प्रेम प्रदान करनेवाले, पूर्णानन्दमय, भक्तोंकी अभिलाषा पूर्ण करनेवाले, सम्पूर्ण ऐश्वर्योंके एकमात्र आवासस्थान और कल्याणस्वरूप हैं, सत्य जिनका श्रीविग्रह है, जो सत्यमय हैं, जिनका ऐश्वर्य त्रिकालाबाधित है, जो सत्यप्रिय एवं सत्यप्रदाता हैं, ब्रह्मा और विष्णु जिनकी स्तुति करते हैं, स्वेच्छानुसार शरीर धारण करनेवाले उन भगवान् शंकरकी मैं वन्दना करता हूँ।

गौरीपति भगवान् शिव

विश्वोद्भवस्थितिलयादिषु हेतुमेकं गौरीपतिं विदिततत्त्वमनन्तकीर्तिम्।
मायाश्रयं विगतमायमचिन्त्यरूपं बोधस्वरूपममलं हि शिवं नमामि॥

जो विश्वकी उत्पत्ति, स्थिति और लय आदिके एकमात्र कारण हैं, गौरी गिरिराजकुमारी उमाके पति हैं, तत्त्वज्ञ हैं, जिनकी कीर्तिका कहीं अन्त नहीं है, जो मायाके आश्रय होकर भी उससे अत्यन्त दूर हैं तथा जिनका स्वरूप अचिन्त्य है, उन विमल बोधस्वरूप भगवान् शिवको मैं प्रणाम करता हूँ।

महामहेश्वर

ध्यायेन्नित्यं महेशं रजतगिरिनिभं चारुचन्द्रावतंसं रत्नाकल्पोज्ज्वलाङ्गं परशुमृगवराभीतिहस्तं प्रसन्नम्।
पद्मासीनं समन्तात् स्तुतममरगणैर्व्याघ्रकृत्तिं वसानं विश्वाद्यं विश्वबीजं निखिलभयहरं पञ्चवक्त्रं त्रिनेत्रम्॥

चाँदीके पर्वतके समान जिनकी श्वेत कान्ति है, जो सुन्दर चन्द्रमाको आभूषणरूपसे धारण करते हैं, रत्नमय अलंकारोंसे जिनका शरीर उज्ज्वल है, जिनके हाथोंमें परशु तथा मृग, वर और अभय मुद्राएँ हैं, जो प्रसन्न हैं, पद्मके आसनपर विराजमान हैं, देवतागण जिनके चारों ओर खड़े होकर स्तुति करते हैं, जो बाघकी खाल पहनते हैं, जो विश्वके आदि, जगत्की उत्पत्तिके बीज और समस्त भयको हरनेवाले हैं, जिनके पाँच मुख और तीन नेत्र हैं, उन महेश्वरका प्रतिदिन ध्यान करना चाहिये।

पञ्चमुख सदाशिव

मुक्तापीतपयोदमौक्तिकजवावर्णैर्मुखैः पञ्चभिस्त्र्यक्षैरञ्चितमीशमिन्दुमुकुटं पूर्णेन्दुकोटिप्रभम्।
शूलं टङ्ककृपाणवज्रदहनान् नागेन्द्रघण्टाङ्कुशान् पाशं भीतिहरं दधानममिताकल्पोज्ज्वलं चिन्तयेत्॥

जिन भगवान् शंकरके पाँच मुखोंमें क्रमशः ऊर्ध्वमुख गजमुक्ताके समान हलके लाल रंगका, पूर्व-मुख पीतवर्णका, दक्षिण-मुख सजल मेघके समान नील-वर्णका, पश्चिम-मुख मुक्ताके समान कुछ भूरे रंगका और उत्तर-मुख जवापुष्पके समान प्रगाढ़ रक्तवर्णका है, जिनकी तीन आँखें हैं और सभी मुखमण्डलोंमें नीलवर्णके मुकुटके साथ चन्द्रमा सुशोभित हो रहे हैं, जिनके मुखमण्डलकी आभा करोड़ों पूर्ण चन्द्रमाके तुल्य आह्लादित करनेवाली हैं, जो अपने हाथोंमें क्रमशः त्रिशूल, टंक (परशु), तलवार, वज्र, अग्नि, नागराज, घण्टा, अंकुश, पाश तथा अभयमुद्रा धारण किये हुए हैं एवं जो अनन्त कल्पवृक्षके समान कल्याणकारी हैं, उन सर्वेश्वर भगवान् शंकरका ध्यान करना चाहिये।

अम्बिकेश्वर

आद्यन्तमङ्गलमजातसमानभावमार्यं तमीशमजरामरमात्मदेवम्।
पञ्चाननं प्रबलपञ्चविनोदशीलं सम्भावये मनसि शंकरमम्बिकेशम्॥

जो आदि और अन्तमें (तथा मध्यमें भी) नित्य मंगलमय हैं, जिनकी समानता अथवा तुलना कहीं भी नहीं है, जो आत्माके स्वरूपको प्रकाशित करनेवाले देवता (परमात्मा) हैं, जिनके पाँच मुख हैं और जो खेल-

ही-खेलमें—अनायास जगत्‌की रचना, पालन और संहार तथा अनुग्रह एवं तिरोभावरूप पाँच प्रबल कर्म करते रहते हैं, उन सर्वश्रेष्ठ अजर-अमर ईश्वर अम्बिकापति भगवान् शंकरका मैं मन-ही-मन चिन्तन करता हूँ।

पार्वतीनाथ भगवान् पञ्चानन

शूलाही टङ्कघण्टासिसृणिकुलिशपाशाग्न्यभीतीर्दधानं दोर्भिः शीतांशुखण्डप्रतिघटितजटाभारमौलिं त्रिनेत्रम्। नानाकल्पाभिरामापघनमभिमतार्थप्रदं सुप्रसन्नं पद्मस्थं पञ्चवक्त्रं स्फटिकमणिनिभं पार्वतीशं नमामि॥

जो अपने करकमलोंमें क्रमशः त्रिशूल, सर्प, टंक (परशु), घण्टा, तलवार, अंकुश, वज्र, पाश, अग्नि तथा अभयमुद्रा धारण किये हुए हैं, जिनका प्रत्येक मुखमण्डल द्वितीयाके चन्द्रमासे युक्त जटाओंसे सुशोभित हो रहा है, जिनके चन्द्रमा, सूर्य और अग्नि—ये तीन नेत्र हैं, जो अनेक कल्पवृक्षोंके समान अपने भक्तोंको स्थिर रहनेवाले मनोरथोंसे परिपूर्ण कर देते हैं और जो सदा अत्यन्त प्रसन्न ही रहते हैं, जो कमलके ऊपर विराजित हैं, जिनके पाँच मुख हैं तथा जिनका वर्ण स्फटिकमणिके समान दिव्य प्रभासे आभासित हो रहा है, उन पार्वतीनाथ भगवान् शंकरको मैं नमस्कार करता हूँ।

भगवान् महाकाल

स्रष्टारोऽपि प्रजानां प्रबलभवभयाद् यं नमस्यन्ति देवा यश्चित्ते सम्प्रविष्टोऽप्यवहितमनसां ध्यानमुक्तात्मनां च। लोकानामादिदेवः स जयतु भगवाञ्छ्रीमहाकालनामा बिभ्राणः सोमलेखामहिवलययुतं व्यक्तलिङ्गं कपालम्॥

प्रजाकी सृष्टि करनेवाले प्रजापति देव भी प्रबल संसार-भयसे मुक्त होनेके लिये जिन्हें नमस्कार करते हैं, जो सावधानचित्तवाले ध्यानपरायण महात्माओंके हृदयमन्दिरमें सुखपूर्वक विराजमान होते हैं और चन्द्रमाकी कला, सर्पोंके कंकण तथा व्यक्त चिह्नवाले कपालको धारण करते हैं, सम्पूर्ण लोकोंके आदिदेव उन भगवान् महाकालकी जय हो।

श्रीनीलकण्ठ

बालार्कायुततेजसं धृतजटाजूटेन्दुखण्डोज्ज्वलं नागेन्द्रैः कृतभूषणं जपवटीं शूलं कपालं करैः। खट्वाङ्गं दधतं त्रिनेत्रविलसत्पञ्चाननं सुन्दरं व्याघ्रत्वक्परिधानमब्जनिलयं श्रीनीलकण्ठं भजे॥

भगवान् श्रीनीलकण्ठ दस हजार बालसूर्योंके समान तेजस्वी हैं, सिरपर जटाजूट, ललाटपर अर्धचन्द्र और मस्तकपर सर्पोंका मुकुट धारण किये हैं, चारों हाथोंमें जपमाला, त्रिशूल, नर-कपाल और खट्वांग-मुद्रा है। तीन नेत्र हैं, पाँच मुख हैं, अति सुन्दर विग्रह है, बाघम्बर पहने हुए हैं और सुन्दर पद्मपर विराजित हैं। इन श्रीनीलकण्ठदेवका भजन करना चाहिये।

पशुपति

मध्याह्नार्कसमप्रभं शशिधरं भीमाट्टहासोज्ज्वलं त्र्यक्षं पन्नगभूषणं शिखिशिखाश्मश्रुस्फुरन्मूर्धजम्। हस्ताब्जैस्त्रिशिखं समुद्गरमसिं शक्तिं दधानं विभुं दंष्ट्राभीमचतुर्मुखं पशुपतिं दिव्यास्त्ररूपं स्मरेत्॥

जिनकी प्रभा मध्याह्नकालीन सूर्यके समान दिव्य रूपमें भासित हो रही है, जिनके मस्तकपर चन्द्रमा विराजित है, जिनका मुखमण्डल प्रचण्ड अट्टहाससे उद्भासित हो रहा है, सर्प ही जिनके आभूषण हैं तथा चन्द्रमा, सूर्य और अग्नि—ये तीन जिनके तीन नेत्रोंके रूपमें अवस्थित हैं, जिनकी दाढ़ी और सिरकी जटाएँ चित्र-विचित्र रंगके मोरपंखके समान स्फुरित हो रही हैं, जिन्होंने अपने करकमलोंमें त्रिशूल, मुद्गर, तलवार तथा शक्तिको धारण कर रखा है और जिनके चार मुख तथा दाढ़ें भयावह हैं, ऐसे सर्वसमर्थ, दिव्य रूप एवं अस्त्रोंको धारण करनेवाले पशुपतिनाथका ध्यान करना चाहिये।

भगवान् दक्षिणामूर्ति

मुद्रां भद्रार्थदात्रीं सपरशुहरिणां बाहुभिर्बाहुमेकं जान्वासक्तं दधानो भुजगवरसमाबद्धकक्षो वटाधः। आसीनश्चन्द्रखण्डप्रतिघटितजटः क्षीरगौरस्त्रिनेत्रो दद्यादाद्यैः शुकाद्यैर्मुनिभिरभिवृतो भावशुद्धिं भवो वः॥

जो भगवान् दक्षिणामूर्ति अपने करकमलोंमें अर्थ प्रदान करनेवाली भद्रामुद्रा, मृगीमुद्रा और परशु धारण

किये हुए हैं और एक हाथ घुटनेपर टेके हुए हैं, कटिप्रदेशमें नागराजको लपेटे हुए हैं तथा वटवृक्षके नीचे अवस्थित हैं, जिनके प्रत्येक सिरके ऊपर जटाओंमें द्वितीयाका चन्द्रमा जटित है और वर्ण धवल दुग्धके समान उज्ज्वल है, सूर्य, चन्द्रमा और अग्नि—ये तीनों जिनके तीन नेत्रके रूपमें स्थित हैं, जो सनकादि एवं शुकदेव [नारद] आदि मुनियोंसे आवृत हैं, वे भगवान् भव—शंकर आपके हृदयमें विशुद्ध भावना (विरक्ति) प्रदान करें।

महामृत्युञ्जय

हस्ताभ्यां कलशद्वयामृतरसैराप्लावयन्तं शिरो द्वाभ्यां तौ दधतं मृगाक्षवलये द्वाभ्यां वहन्तं परम्।
अङ्कन्यस्तकरद्वयामृतघटं कैलासकान्तं शिवं स्वच्छाम्भोजगतं नवेन्दुमुकुटं देवं त्रिनेत्रं भजे॥
हस्ताम्भोजयुगस्थकुम्भयुगलादुद्धृत्य तोयं शिरः सिञ्चन्तं करयोर्युगेन दधतं स्वाङ्के सकुम्भौ करौ।
अक्षस्त्रङ्मृगहस्तमम्बुजगतं मूर्धस्थचन्द्रस्त्रवत्पीयूषार्द्रतनुं भजे सगिरिजं त्र्यक्षं च मृत्युञ्जयम्॥

त्र्यम्बकदेव अष्टभुज हैं। उनके एक हाथमें अक्षमाला और दूसरेमें मृगमुद्रा है, दो हाथोंसे दो कलशोंमें अमृतरस लेकर उससे अपने मस्तकको आप्लावित कर रहे हैं और दो हाथोंसे उन्हीं कलशोंको थामे हुए हैं। शेष दो हाथ उन्होंने अपने अंकपर रख छोड़े हैं और उनमें दो अमृतपूर्ण घट हैं। वे श्वेत पद्मपर विराजमान हैं, मुकुटपर बालचन्द्र सुशोभित है, मुखमण्डलपर तीन नेत्र शोभायमान हैं। ऐसे देवाधिदेव कैलासपति श्रीशंकरकी मैं शरण ग्रहण करता हूँ।

जो अपने दो करकमलोंमें रखे हुए दो कलशोंसे जल निकालकर उनसे ऊपरवाले दो हाथोंद्वारा अपने मस्तकको सींचते हैं। अन्य दो हाथोंमें दो घड़े लिये उन्हें अपनी गोदमें रखे हुए हैं तथा शेष दो हाथोंमें रुद्राक्ष एवं मृगमुद्रा धारण करते हैं, कमलके आसनपर बैठे हैं, सिरपर स्थित चन्द्रमासे निरन्तर झरते हुए अमृतसे जिनका सारा शरीर भीगा हुआ है तथा जो तीन नेत्र धारण करनेवाले हैं, उन भगवान् मृत्युंजयका, जिनके साथ गिरिराजनन्दिनी उमा भी विराजमान हैं, मैं भजन (चिन्तन) करता हूँ।

दारिद्र्यदहनशिवस्तोत्रम्

विश्वेश्वराय नरकार्णवतारणाय कर्णामृताय शशिशेखरधारणाय।
कर्पूरकान्तिधवलाय जटाधराय दारिद्र्यदुःखदहनाय नमः शिवाय॥ १॥

समस्त चराचर विश्वके स्वामिरूप विश्वेश्वर, नरकरूपी संसारसागरसे उद्धार करनेवाले, कर्णसे श्रवण करनेमें अमृतके समान नामवाले, अपने भालपर चन्द्रमाको आभूषणरूपमें धारण करनेवाले, कर्पूरकी कान्तिके समान धवल वर्णवाले, जटाधारी और दरिद्रतारूपी दुःखके विनाशक भगवान् शिवको मेरा नमस्कार है॥ १॥

गौरीप्रियाय रजनीशकलाधराय कालान्तकाय भुजगाधिपकङ्कणाय।
गङ्गाधराय गजराजविमर्दनाय दारिद्र्यदुःखदहनाय नमः शिवाय॥ २॥

गौरीके अत्यन्त प्रिय, रजनीश्वर (चन्द्र)-की कलाको धारण करनेवाले, कालके भी अन्तक (यम)-रूप, नागराजको कंकणरूपमें धारण करनेवाले, अपने मस्तकपर गंगाको धारण करनेवाले, गजराजका विमर्दन करनेवाले और दरिद्रतारूपी दुःखके विनाशक भगवान् शिवको मेरा नमस्कार है॥ २॥

भक्तिप्रियाय भवरोगभयापहाय उग्राय दुर्गभवसागरतारणाय।
ज्योतिर्मयाय गुणनामसुनृत्यकाय दारिद्र्यदुःखदहनाय नमः शिवाय॥ ३॥

भक्तिके प्रिय, संसाररूपी रोग एवं भयके विनाशक, संहारके समय उग्ररूपधारी, दुर्गम भवसागरसे पार करानेवाले, ज्योतिःस्वरूप, अपने गुण और नामके अनुसार सुन्दर नृत्य करनेवाले तथा दरिद्रतारूपी दुःखके विनाशक भगवान् शिवको मेरा नमस्कार है॥ ३॥

चर्माम्बराय शवभस्मविलेपनाय भालेक्षणाय मणिकुण्डलमण्डिताय।
मञ्जीरपादयुगलाय जटाधराय दारिद्र्यदुःखदहनाय नमः शिवाय॥ ४॥

व्याघ्रचर्मधारी, चिताभस्मको लगानेवाले, भालमें तृतीय नेत्रधारी, मणियोंके कुण्डलसे सुशोभित, अपने चरणोंमें नूपुर धारण करनेवाले जटाधारी और दरिद्रतारूपी दुःखके विनाशक भगवान् शिवको मेरा नमस्कार है॥ ४॥

पञ्चाननाय फणिराजविभूषणाय हेमांशुकाय भुवनत्रयमण्डिताय।
आनन्दभूमिवरदाय तमोमयाय दारिद्र्यदुःखदहनाय नमः शिवाय॥ ५॥

पाँच मुखवाले, नागराजरूपी आभूषणोंसे सुसज्जित, सुवर्णके समान वस्त्रवाले अथवा सुवर्णके समान किरणवाले, तीनों लोकोंमें पूजित, आनन्दभूमि (काशी)-को वर प्रदान करनेवाले, सृष्टिके संहारके लिये तमोगुणाविष्ट होनेवाले तथा दरिद्रतारूपी दुःखके विनाशक भगवान् शिवको मेरा नमस्कार है॥ ५॥

भानुप्रियाय भवसागरतारणाय कालान्तकाय कमलासनपूजिताय।
नेत्रत्रयाय शुभलक्षणलक्षिताय दारिद्र्यदुःखदहनाय नमः शिवाय॥ ६॥

सूर्यको अत्यन्त प्रिय अथवा सूर्यके प्रेमी, भवसागरसे उद्धार करनेवाले, कालके लिये भी महाकालस्वरूप, कमलासन (ब्रह्मा)-से सुपूजित, तीन नेत्रोंको धारण करनेवाले, शुभ लक्षणोंसे युक्त तथा दरिद्रतारूपी दुःखके विनाशक भगवान् शिवको मेरा नमस्कार है॥ ६॥

रामप्रियाय रघुनाथवरप्रदाय नागप्रियाय नरकार्णवतारणाय।
पुण्येषु पुण्यभरिताय सुरार्चिताय दारिद्र्यदुःखदहनाय नमः शिवाय॥ ७॥

मर्यादापुरुषोत्तम भगवान् रामको अत्यन्त प्रिय अथवा रामसे प्रेम करनेवाले, रघुनाथको वर देनेवाले, सर्पोंके अतिप्रिय, भवसागररूपी नरकसे तारनेवाले, पुण्यवानोंमें परिपूर्ण पुण्यवाले, समस्त देवताओंसे सुपूजित तथा दरिद्रतारूपी दुःखके विनाशक भगवान् शिवको मेरा नमस्कार है॥ ७॥

मुक्तेश्वराय फलदाय गणेश्वराय गीतप्रियाय वृषभेश्वरवाहनाय।
मातङ्गचर्मवसनाय महेश्वराय दारिद्र्यदुःखदहनाय नमः शिवाय॥ ८॥

मुक्तजनोंके स्वामिरूप, पुरुषार्थचतुष्टयरूप फलको देनेवाले, प्रमथादि गणोंके स्वामी, स्तुतिप्रिय, नन्दीवाहन, गजचर्मको वस्त्ररूपमें धारण करनेवाले, महेश्वर तथा दरिद्रतारूपी दुःखके विनाशक भगवान् शिवको मेरा नमस्कार है॥ ८॥

वसिष्ठेन कृतं स्तोत्रं सर्वरोगनिवारणम्।
सर्वसम्पत्करं शीघ्रं पुत्रपौत्रादिवर्धनम्।
त्रिसन्ध्यं यः पठेन्नित्यं स हि स्वर्गमवाप्नुयात्॥ ९॥

समस्त रोगोंके विनाशक तथा शीघ्र ही समस्त सम्पत्तियोंको प्रदान करनेवाले और पुत्र-पौत्रादि वंश-परम्पराको बढ़ानेवाले, वसिष्ठद्वारा निर्मित इस स्तोत्रका जो भक्त नित्य तीनों कालोंमें पाठ करता है, उसे निश्चय ही स्वर्गलोककी प्राप्ति होती है॥ ९॥

॥ इति महर्षिवसिष्ठविरचितं दारिद्र्यदहनशिवस्तोत्रं सम्पूर्णम्॥

गीताप्रेस, गोरखपुरसे प्रकाशित
पुराण, उपनिषद् आदि

1111 **सं० ब्रह्मपुराण**
1113 **नरसिंहपुराण**—सटीक
1189 **सं० गरुडपुराण**
1362 **अग्निपुराण** (हिन्दी-अनुवाद)
1361 **सं० श्रीवराहपुराण**
584 **सं० भविष्यपुराण**
1131 **कूर्मपुराण**—सटीक
631 **सं० ब्रह्मवैवर्तपुराण**
1432 **वामनपुराण**—सटीक
557 **मत्स्यमहापुराण**—सटीक
1610 **देवीपुराण (महाभागवत)**
517 **गर्गसंहिता** (भगवान् श्रीकृष्णकी लीलाओंका वर्णन)
47 **पातञ्जलयोग-प्रदीप**
135 **पातञ्जलयोग-दर्शन** [बँगलामें भी]
582 **छान्दोग्योपनिषद्**—सानुवाद, शांकर
577 **बृहदारण्यकोपनिषद्**— " "
1421 **ईशादि नौ उपनिषद्**— " "
(एक ही जिल्
66 **ईशादि नौ उपनिषद्**—
अन्वय-हिन्दी व्याख्या [बँगला
67 **ईशावास्योपनिषद्**—सानुवाद, शांकर [तेलुगु, कन्नड भी]
68 **केनोपनिषद्**—अजिल्द, सानुवाद, शांक
578 **कठोपनिषद्**— " "
69 **माण्डूक्योपनिषद्**— " "
513 **मुण्डकोपनिषद्**— " "
70 **प्रश्नोपनिषद्**— " "
71 **तैत्तिरीयोपनिषद्**— " "
72 **ऐतरेयोपनिषद्**— " "
73 **श्वेताश्वतरोपनिषद्**— "
65 **वेदान्त-दर्शन**—हिन्दी व्याख्यासहि
स
639 **श्रीनारायणीयम्**—सानुवाद [तेलुगु

गीताप्रेस, गोरखपुर—२७३००५

फोन : (०५५१) २३३४७२१, २३३१२५०